श्रीः

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत

(तृतीय खण्ड)

[उद्योगपर्व और भीष्मपर्व]

(सचित्र सरल हिंदी-अनुवादसहित)



अनुवादक

पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस गोरखपुर

[illegible]

मूल्य पौने दस रुपये

पता—गीताप्रेस पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

॥ श्रीहरि ॥

उद्योगपर्व

प्रजागरपर्व

सनत्सुजातपर्व

यानसन्धिपर्व

भीष्मपर्व

(जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व)

(भूमिपर्व)

(श्रीमद्भगवद्गीतापर्व)

चित्र-सूची

(तिरंगा)

(सादा)



विराटकी राजसभामें श्रीकृष्णका भाषण

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

उद्योगपर्व

(सेनोद्योगपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

राजा विराटकी सभामें भगवान् श्रीकृष्णका भाषण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये।

वैशम्पायन उवाच

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरा-
स्तदाभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः।
विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः
सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः॥ १॥



वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय अभिमन्युका विवाह करके कुरुवीर पाण्डव तथा उनके अपने पक्षके लोग (यादव, पाञ्चाल आदि) अत्यन्त आनन्दित हुए, रात्रिमें विश्राम करके वे प्रातःकाल उठे और (नित्यकर्म करके) विराटकी सभामें उपस्थित हुए॥ १॥

सभा तु सा मत्स्यपतेः समृद्धा
मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा।
न्यस्तासना माल्यवती सुगन्धा
तामभ्ययुस्ते नरराजवर्याः॥ २॥

मत्स्यदेशके अधिपति विराटकी वह सभा अत्यन्त समृद्धिशालिनी थी। उसमें मणियों (मोती, मूँगे आदि) की सिकड़ियाँ और झालरें लगी थीं। उसके फर्श और दीवारोंमें उत्तम उत्तम रत्नों (हीरे, पन्ने आदि) की पच्चीकारी की गयी थी। इन सबके कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। उस सभाभवनमें यथायोग्य स्थानोंपर आसन लगे हुए थे। जगह-जगह मालाएँ लटक रही थीं और सब ओर सुगन्ध फैल रही थी। वे श्रेष्ठ नरपतिगण उसी सभामें एकत्र हुए॥ २॥

अथासनान्याविशतां पुरस्ता-
दुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ।
वृद्धौ च मान्यौ पृथिवीपतीनां
पिता सरामं जनार्दनौ च॥ ३॥

वहाँ सबसे पहले राजा विराट और द्रुपद आसनपर विराजमान हुए, क्योंकि वे दोनों समस्त भूपतियोंमें वृद्ध और माननीय थे। तत्पश्चात् अपने पिता वसुदेवके साथ बलराम और श्रीकृष्णने भी आसन ग्रहण किये॥ ३॥

पाञ्चालराजस्य समीपतस्तु
शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः।
मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसंनिकृष्टौ
जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च॥ ४॥

पाञ्चालराज द्रुपदके पास शिनिवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि तथा रोहिणीनन्दन बलरामजी बैठे थे और मत्स्यराज विराटके अत्यन्त निकट श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर विराजमान थे॥ ४॥

सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो
भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च।
प्रद्युम्नसाम्बौ च युधि प्रवीरौ
विराटपुत्रश्च सहाभिमन्युः ॥ ५ ॥
सर्वे च शूराः पितृभिः समाना
वीर्येण रूपेण बलेन चैव।
उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः
सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु ॥ ६ ॥

राजा द्रुपदके सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न और साम्ब, विराटके पुत्रोंसहित अभिमन्यु तथा द्रौपदीके सभी पुत्र सुवर्णजटित सुन्दर सिंहासनोंपर आसपास ही बैठे थे। द्रौपदीके पाँचों पुत्र पराक्रम, सौन्दर्य और बलमें अपने पिता पाण्डवोंके ही समान थे। वे सब-के-सब शूरवीर थे ॥ ५-६ ॥

तथोपविष्टेषु महारथेषु
विराजमानाभरणाम्बरेषु।
रराज सा राजवती समृद्धा
ग्रहैरिव द्यौर्विमलैरुपेता ॥ ७ ॥

इस प्रकार चमकीले आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रोंसे विभूषित उन समस्त महारथियोंके बैठ जानेपर राजाओंसे भरी हुई वह समृद्धिशालिनी सभा ऐसी शोभा पा रही थी, मानो निर्मल ग्रह-नक्षत्रोंसे भरा आकाश जगमगा रहा हो ॥ ७ ॥

ततः कथास्ते समवाययुक्ताः
कृत्वा विचित्राः पुरुषप्रवीराः।
तस्थुर्मुहूर्तं परिचिन्तयन्तः
कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ॥ ८ ॥

तदनन्तर उन शूरवीर पुरुषोंने समाजमें जैसी बातचीत करनी उचित है, वैसी ही विविध प्रकारकी विचित्र बातें कीं। फिर वे सब नरेश भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए दो घड़ीतक कुछ सोचते हुए चुप बैठे रहे ॥ ८ ॥

कथान्तमासाद्य च माधवेन
संघट्टिताः पाण्डवकार्यहेतोः।
ते राजसिंहाः सहिता ह्यशृण्वन्
वाक्यं महार्थं सुमहोदयं च ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके कार्यके लिये ही इन श्रेष्ठ राजाओंको संगठित किया था। जब उन सब लोगोंकी बातचीत बंद हो गयी, तब वे सिंहके समान पराक्रमी नरेश एक साथ श्रीकृष्णके महत्त्वपूर्ण तथा श्रेष्ठ फल देनेवाले वचन सुनने लगे ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथायं
युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम्।
जितो निकृत्यापहृतं च राज्यं
वनप्रवासे समयः कृतश्च ॥ १० ॥

श्रीकृष्णने भाषण देना आरम्भ किया—उपस्थित सुहृद्गण! आप सब लोगोंको यह मालूम ही है कि सुबलपुत्र शकुनिने द्यूतसभामें किस प्रकार छल करके धर्मात्मा युधिष्ठिरको पराजित किया और उनका राज्य छीन लिया है। उस जूएमें यह शर्त रख दी गयी थी कि जो हारे, वह बारह वर्षोंतक वनवास और एक वर्षतक अज्ञातवास करे ॥ १० ॥

शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च
सत्ये स्थितैः सत्यरथैर्यथावत्।
पाण्डोः सुतैस्तद् व्रतमुग्ररूपं
वर्षाणि षट् सप्त च चीर्णमग्र्यैः ॥ ११ ॥

पाण्डव सदा सत्यपर आरूढ़ रहते हैं। सत्य ही इनका रथ है। इनमें वेगपूर्वक सारी पृथ्वीको जीत लेनेकी शक्ति है, तथापि इन वीरशिरोमणि पाण्डुकुमारोंने सत्यका पालन करके तेरह वर्षोंतक वनवास और अज्ञातवासरूप उग्र व्रतका धैर्यपूर्वक पालन किया है, जिसका साधन बड़ा ही कठिन है ॥ ११ ॥

त्रयोदशश्चैव सुदुस्तरोऽयम्
अज्ञायमानैर्भवतां समीपे।
क्लेशानसह्यांश्च विविधान् सहद्भिर्
महात्मभिश्चापि वने निविष्टम् ॥ १२ ॥

यह तेरहवाँ वर्ष तो उनके लिये बहुत ही कठिन था; परंतु इन महात्माओंने आपके पास ही अज्ञातरूपसे रहकर भाँति-भाँतिके असह्य क्लेश सहते हुए वह वर्ष बिताया है। इसके अतिरिक्त बारह वर्षोंतक ये वनमें भी रह चुके हैं ॥ १२ ॥

एतैः परप्रेष्यनियोगयुक्तै-
रिच्छद्भिराप्तं स्वकुलेन राज्यम्।
एवंगते धर्मसुतस्य राज्ञो
दुर्योधनस्यापि च यद्धितं स्यात् ॥ १३ ॥
तच्चिन्तयध्वं कुरुपुङ्गवानां
धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च।
अधर्मयुक्तं न च कामयेत
राज्यं सुराणामपि धर्मराजः ॥ १४ ॥

अपनी कुलपरम्परासे प्राप्त हुए राज्यकी अभिलाषासे ही इन वीरोंने तेरहवें वर्षतक महात्मा आपके दूसरोंकी सेवामें संलग्न रहकर सेवकका कार्य पूरा किया है। ऐसी परिस्थितिमें जिस उपायसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधनका भी हित हो, उसका आपलोग विचार करें। आप कोई ऐसा मार्ग ढूँढ़ निकालें, जो इन कुरुश्रेष्ठ वीरोंके लिये धर्मसंगत, न्यायोचित तथा उनकी कीर्ति बढ़ानेवाला हो। धर्मराज युधिष्ठिर यदि

यदि विप्लव देखकर कौरव भी राज्य प्राप्त होता हो तो उसे लेना नहीं चाहिये ॥ १२-१४ ॥

धर्मार्थयुक्तं तु महीक्षितस्य
ग्रामेऽपि कश्चिन्निवसेत् बुभूषेत्।
लिप्सेत हि राज्यं विदितं नृपाणां
यथापहृतं धृतराष्ट्रपुत्रैः ॥ १५ ॥

किसी ग्राममें भी राजाको धर्म और अर्थके अनुकूल […] कर सकता है। आप लोगोंमें यह शक्ति है कि दुर्योधन पुत्रोंने धर्मराजके साथ किस प्रकार व्यवहार किया है ॥ १५ ॥

मिथ्याप्रचारेण तथा ह्यधर्म्यं
कृच्छ्रं महत् प्राप्तमसह्यरूपम्।
न चापि पार्थो विजितो रणे तै-
रनन्तवीर्या धृतराष्ट्रपुत्रैः ॥ १६ ॥

क्योंकि इस मिथ्या व्यवहार तथा अन्यायसे कष्ट महान् और असह्य कष्ट पाया है वह भी आपलोगोंसे छिपा नहीं है। धृतराष्ट्रके पुत्र अनन्त बल और पराक्रमसे सम्पन्न युधिष्ठिरको किसी युद्धमें पराजित नहीं किया था (छलसे ही इनका धन छीना) ॥ १६ ॥

तथापि राजा सहितः सुहृद्भि-
रभीप्सतेऽनामयमेव तेषाम्।
यत् तु स्वयं पाण्डुसुतैर्विजित्य
समाहृतं भूमिपतीन् प्रपीड्य ॥ १७ ॥
तत् प्रार्थयन्ते पुरुषाग्र्यमुख्याः
कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च।
बालास्त्विमे तैर्विविधैरुपायैः
सम्प्रार्थिता हन्तुममित्रसाहाः ॥ १८ ॥
राज्यं जिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैः
सर्वं च तद् वो विदितं यथावत्।

तथापि सुहृदोंसहित राजा युधिष्ठिर उनकी भलाई ही चाहते हैं। पाण्डवोंने दूसरे भूपतियोंको युद्धमें जीतकर जो […] कुन्ती और माद्रीके ये वीर पुत्र मांग रहे हैं। […] अपना हित अहित कुछ नहीं समझते थे […] इनके […] […] कर […] राज्य छीनना चाहते थे […] आपलोग अच्छी तरह जानते हैं ॥

तेषां च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं
धर्मज्ञतां चापि युधिष्ठिरस्य ॥ १९ ॥
सम्बन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां
मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक् च।

इमे च सत्येऽभिरताः सदैव
तं पालयित्वा समयं यथावत् ॥ २० ॥

अतः आप सभी महानुभाव कौरवोंके बढ़े हुए लोभको, युधिष्ठिरकी धर्मज्ञताको तथा इन पाण्डवोंके पारस्परिक सम्बन्धको देखते हुए, अलग-अलग तथा एक साथ भी कुछ निश्चय करें। ये पाण्डव सदा सत्यमें ही तत्पर रहे हैं और अपनी की हुई प्रतिज्ञाका यथावत् पालन करके राज्य पानेके अधिकारी हैं ॥ १९-२० ॥

अतोऽन्यथा चेत् प्रकरोति तेषां
हन्युः समेतान् धृतराष्ट्रपुत्रान्।
तैर्विप्रकारं च निशाम्य कार्ये
सुहृज्जनास्तान् परिवारयेयुः ॥ २१ ॥

यदि अब भी धृतराष्ट्रपुत्र इनके साथ विपरीत व्यवहार ही करते रहेंगे—इनका राज्य नहीं लौटायेंगे तो पाण्डव उन सबको मार डालेंगे। सौहार्दसे पाण्डवोंके कार्यमें […] और उनका […] इस बात […] उनके सुहृदों और सम्बन्धियोंको उचित है कि वे उन दुष्ट कौरवोंको (इस प्रकार अन्यायाचार करनेसे) रोकें ॥ २१ ॥

युद्धेन बाधेरन्निमांस्तथैव
तैर्वध्यमाना युधि तांश्च हन्युः।
तथापि चेमानल्पतया समर्था-
न्मन्यध्वमेषां विजयाय चैव ॥ २२ ॥

यदि धृतराष्ट्रपुत्र युद्ध छेड़कर इन पाण्डवोंको सतावें तो उनके साथ मरकर भी युद्धमें उनका सामना करेंगे और उन्हें मार गिरायेंगे। […] यह मानते हों कि ये थोड़े हैं […] इनके विजय पानेमें समर्थ नहीं हैं।

समेत्य सर्वे सहिताः सुहृद्भि-
स्तेषां विनाशाय यतेयुरेव।
दुर्योधनस्यापि मतं यथाव-
न्न ज्ञायते किं नु करिष्यतीति ॥ २३ ॥

तथापि वे सब लोग […] कौरवोंके विनाशके लिये प्रयत्न ही करेंगे। (अब इन्हें […]) दुर्योधनका भी विचार […] क्योंकि दुर्योधनके भी मनका ठीक-ठीक पता नहीं है कि वह क्या करेगा ॥ २३ ॥

अज्ञायमाने च मते परस्य
किं स्यात् समारभ्यतमं मतं वः।
तस्माद्भवन्तो प्रहिणोतु धर्मशीलं
शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः ॥ २४ ॥

शत्रुपक्षका विचार जाने बिना आपलोग कोई एक

निश्चय कैसे कर सकते हैं ? जिन्हें आपसमें ही कर्तव्यका निर्णय किया न गया ... मेरा विचार है कि कोई धर्मशील, पवित्र, कुलीन और सावधान पुरुष दूत बनकर वहाँ जाय ॥ २४ ॥

दूतः समर्थः प्रयातु तेषां
राज्यार्धदानाय युधिष्ठिरस्य ।

वह दूत ऐसा होना चाहिये जो उनके जोशको शान्त कर सके और उन्हें युधिष्ठिरको इनका आधा राज्य देनेके लिये तैयार कर सके ॥ २५ ॥

निशम्य वाक्यं तु जनार्दनस्य
धर्मार्थयुक्तं मधुरं समं च ॥ २५ ॥
समाददे वाक्यमथाग्रजोऽस्य
सम्पूज्य वाक्यं तदतीव राजन् ॥ २६ ॥

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णका धर्म और अर्थसे युक्त मधुर एवं पक्षपातरहित वचन सुनकर उनके बड़े भाई बलरामजीने उस भाषणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके अपना भाषण आरम्भ किया ॥ २५-२६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें (युद्धके) पुरोहितको भेजनेके विषयमें पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

बलरामजीका भाषण

बलदेव उवाच

श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य
वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च ।
अजातशत्रोश्च हितं हितं च
दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः ॥ १ ॥

बलदेवजी बोले—सज्जनो ! भगवान् श्रीकृष्णने जो कुछ धर्मानुकूल तथा अर्थसिद्धिकारक भाषण किया है, उसे आप सब लोगोंने सुना है । इसीमें अजातशत्रु युधिष्ठिरका भी हित है तथा ऐसा करनेसे ही राजा दुर्योधनका भला है ॥ १ ॥

अर्धं हि राज्यस्य विसृज्य वीराः
कुन्तीसुतास्तस्य कृते यतन्ते ।
प्रदाय चार्धं धृतराष्ट्रपुत्रः
सुखी सहास्माभिरतीव मोदेत् ॥ २ ॥

वीर कुन्तीकुमार आधा राज्य छोड़कर शेष आधेके लिये ही प्रयत्नशील हैं । दुर्योधन भी पाण्डवोंको आधा राज्य देकर हमारे साथ-साथ भी सुखी और प्रसन्न होगा ॥ २ ॥

लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः
सम्यक्प्रवृत्तेषु परेषु चैव ।
ध्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयु-
स्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम् ॥ ३ ॥

पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर पाण्डव आधा राज्य पाकर दूसरे पक्षकी ओरसे अच्छा बर्ताव होनेपर अवश्य ही शान्त (कलहसे दूर) रहकर वहाँ सुखपूर्वक निवास करेंगे । इससे कौरवोंको भी शान्ति मिलेगी और प्रजावर्गका भी हित होगा ॥ ३ ॥

दुर्योधनस्यापि मतं च वेत्तुं
वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य ।
प्रियं मम स्याद् यदि तत्र कश्चिद्
व्रजेच्छमार्थं कुरुपाण्डवानाम् ॥ ४ ॥

यदि दुर्योधनका भी विचार जाननेके लिये युधिष्ठिरके संदेशको उससे बतलानेके उद्देश्यसे तथा कौरव-पाण्डवोंमें शान्ति स्थापित करनेके लिये वहाँ दूत जाय तो वह मेरे लिये बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी ॥ ४ ॥

स भीष्ममामन्त्र्य कुरुप्रवीरं
वैचित्रवीर्यं च महानुभावम् ।
द्रोणं सपुत्रं विदुरं कृपं च
गान्धारराजं च ससूतपुत्रम् ॥ ५ ॥

सर्वे च येऽन्ये धृतराष्ट्रपुत्रा
बलप्रधाना निगमप्रधानाः ।
स्थिताश्च धर्मेषु तथा स्वकेषु
लोकप्रवीराः श्रुतकालदृष्टाः ॥ ६ ॥

एतेषु सर्वेषु समागतेषु
पौरेषु वृद्धेषु च संगतेषु ।
ब्रवीतु वाक्यं प्रणिपातयुक्तं
कुन्तीसुतस्यार्थकरं यथा स्यात् ॥ ७ ॥

वह दूत वहाँ जाकर कुरुवंशके श्रेष्ठ वीर भीष्म, महानुभाव धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, शकुनि तथा कर्णसे एवं दूसरे जो धृतराष्ट्रपुत्र बलवान्, वेदज्ञ, लोकप्रसिद्ध वीर, शास्त्रज्ञ और कालज्ञ हों, उन सबसे भी आमन्त्रित करे और इन सबके आ जानेपर नागरिकों तथा बड़े-बूढ़ोंके सम्मिलित होनेपर वह दूत विनयपूर्वक प्रणाम करके ऐसी बात कहे, जिससे युधिष्ठिरके प्रयोजनकी सिद्धि हो ॥ ५-७ ॥

सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या
ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः ।

प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य
द्यूते प्रमत्तस्य हृतं च राज्यम् ॥ ८ ॥

किसी भी दशामें कौरवोंका अपराध नहीं था। युधिष्ठिर ही जुएमें प्रवृत्त हुए थे, क्योंकि उन्होंने बलवान् होकर ही धर्मराजके ऊपर अधिकार जमाया है। युधिष्ठिर भी जुआ खेलनेमें निपुण नहीं हैं, क्योंकि वे जूएको प्रिय मानकर उसमें आसक्त हो गये थे, तब इनके राज्यका अपहरण हुआ है।

निवार्यमाणश्च कुरुप्रवीरैः
सर्वैः सुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः।
स दीव्यमानः प्रतिदीव्य चैनं
गान्धारराजस्य सुतं मताक्षम् ॥ ९ ॥
हित्वा हि कर्णं च सुयोधनं च
समाह्वयद् देवितुमाजमीढः।
दुरोदरास्तत्र सहस्रशोऽन्ये
युधिष्ठिरो यान् विषहेत जेतुम् ॥ १० ॥
उत्सृज्य तान् सौबलमेव चायं
समाह्वयत् तेन जितोऽक्षमत्तः।

अजमीढवंशी कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर जुएका खेल नहीं जानते थे। इसीलिये उनके सुहृदोंने उन्हें मना किया था, परंतु इन्होंने किसीकी बात नहीं मानी। दूसरी ओर गान्धारराजका पुत्र शकुनि जुएके खेलमें निपुण था। यह जानते हुए भी वे उसीके साथ बारंबार खेलते रहे। इन्होंने कर्ण और दुर्योधनको छोड़कर शकुनिको ही अपने साथ जुआ खेलनेके लिये बुलाया था। वहाँ हजारों दूसरे जुआरी मौजूद थे, जिन्हें युधिष्ठिर जीत सकते थे; परंतु उन सबको छोड़कर इन्होंने सुबलपुत्रको ही बुलाया। इसीलिये उस जूएमें इनकी हार हुई।

स दीव्यमानः प्रतिदेवनेन
अक्षेषु नित्यं तु पराङ्मुखेषु ॥ ११ ॥
संरम्भमाणो विजितः प्रसह्य
तत्रापराधः शकुनेर्न कश्चित्।

जब ये खेलने लगे और प्रतिपक्षीकी ओरसे फेंके हुए पासे जब बराबर इनके प्रतिकूल पड़ने लगे, तब ये और भी

उत्तेजित होकर खेलने लगे। इस प्रकार हठपूर्वक जुआ खेलकर ये पराजित हुए हैं। इसमें शकुनिका कोई अपराध नहीं है।

तस्मात् प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु
वैचित्रवीर्यं बहुसामयुक्तम् ॥ १२ ॥
तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः
स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन।

इसलिये जो दूत यहाँसे भेजा जाय, वह धृतराष्ट्रको प्रणाम करके अत्यन्त विनयके साथ सामनीतियुक्त वचन कहे। ऐसा करनेसे ही धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको वह पुरुष अपने प्रयोजनकी सिद्धिमें लगा सकता है।

अयुद्धमाकाङ्क्षत कौरवाणां
साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम् ॥ १३ ॥
साम्ना जितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत
युद्धेऽनयो भविता नेह सोऽर्थः ॥ १४ ॥

कौरवोंके साथ युद्ध न हो, ऐसी आकाङ्क्षा करो—ऐसा कोई यत्न करो, जिससे शान्ति बनी रहे। शान्तिपूर्ण उपायसे ही दुर्योधनको आमन्त्रित करो। मेल-मिलापसे जो धन प्राप्त होता है, वही परिणाममें हितकारी होता है। युद्धमें तो दोनों पक्षोंके लोगोंका अन्याय अर्थात् अनीतिका ही व्यवहार किया जाता है और अन्यायसे इस जगत्में किसी प्रयोजनकी सिद्धि नहीं हो सकती।

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे
शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात।
तच्चापि वाक्यं परिनिन्द्य तस्य
समाददे वाक्यमिदं समन्युः ॥ १५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! मधुवंशके प्रमुख वीर बलदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकि सहसा उछलकर खड़े हो गये और उन्होंने कुपित होकर बलदेवजीके भाषणकी कड़ी आलोचना करते हुए इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बलदेववाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें बलदेववाक्यविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

सात्यकिके वीरोचित उद्गार

सात्यकिरुवाच

यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं सम्प्रभाषते।
यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥ १ ॥

सात्यकिने कहा—बलरामजी! मनुष्यका जैसा

हृदय होता है वही ही बात उनके मुखसे निकलती है आचरण भी वह करता है वही आप महान् हो रहे हैं।

सन्ति वै पुरुषा शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा
उभयोर्नो मतो पूर्वं दृश्येते पुरुषान् प्रति ॥ २ ॥

संसारमें शूरवीर पुरुष भी हैं और कायर भी। पुरुषोंमें ये दोनों रूप निश्चितरूपसे देखे जाते हैं।

एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ
फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन् वनस्पतौ ॥ ३ ॥

जैसे एक ही वृक्षमें कोई शाखा फलवाली होती है और कोई फलहीन, उसी प्रकार एक ही कुलमें दो प्रकारकी संतान उत्पन्न होती है—एक नपुंसक और दूसरी महान् बलवान्।



नाभ्यसूयामि ते राजन् ब्रुवतो धार्तराष्ट्रजान्
ये तु श्रोष्यन्ति ते वाक्यं तानसूयामि मारिष ॥ ४ ॥

आपकी बातोंमें दुर्योधनादि महानुभावोंके प्रति जो कुछ कह रहे हैं, उसमें मैं दोष नहीं निकाल रहा हूँ। जो लोग आपकी बात चुपचाप सुन रहे हैं, उन्हींको मैं दोषी मानता हूँ।

कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन्
सभायां परिषन्मध्ये व्याहर्तुमकुतोभयः ॥ ५ ॥

भला कोई भी मनुष्य यहाँ सभामें निर्भय होकर धर्म-राज युधिष्ठिरपर थोड़ा-सा भी दोषारोपण करे, तो वह कैसे बोलनेका अवसर पा सकता है?

समाहूय महाप्राज्ञं जितवन्तोऽक्षकोविदाः
मन्दस्य यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः ॥ ६ ॥

महात्मा युधिष्ठिर जुआ खेलना नहीं जानते थे, तो भी जुएके खेलमें निपुण धूर्तोंने उन्हें अपने घर बुलाकर अपने विश्वासके अनुसार हराया अथवा जीता है। (उनकी) धर्मपूर्वक विजय कैसे कही जा सकती है?

यदि कुन्तीसुतं गेहे क्रीडन्तं भ्रातृभिः सह
अभिगम्य जयेयुस्ते तत् तेषां धर्मतो भवेत्
आह्वाय तु राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा ॥ ७ ॥
निकृत्या जितवन्तस्ते किं नु तेषां परं शुभम्
कथं प्रणिपतेच्चायमिह कृत्वा पणं परम् ॥ ८ ॥

यदि भाइयोंसहित कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर अपने घरपर हुआ खेल रहे होते और ये कौरव वहाँ जाकर उन्हें हरा देते तो यह उनकी धर्मपूर्वक विजय कही जा सकती थी, परंतु उन्होंने क्षत्रियधर्मके ऊपर (स्थित) राजा युधिष्ठिरको बुलाकर कपटसे ही पराजित किया है, क्या यह उनका परम कल्याणकारी कर्म कहा जा सकता है? राजा युधिष्ठिर अपनी वनवासविषयक प्रतिज्ञा पूर्ण कर चुके हैं, अब किस लिये उनके आगे नतमस्तक हुआ करें?

वनवासाद् विमुक्तस्तु प्राप्तः पैतामहं पदम्
यद्ययं पापविजानिनि कामयेत युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥
एवमप्ययमत्यन्तं परान् नार्हति याचितुम्

यदि वनवाससे मुक्त होकर अपने बाप-दादोंके राज्यको पानेके न्याययुक्त अधिकारी हो गये हैं। यदि युधिष्ठिर शत्रुओंसे भी राज्य लेना चाहें तो भी इन्हें यह उचित नहीं है कि ये दीन बनकर शत्रुओंके आगे हाथ फैलाकर भीख माँगें।

कथं च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यं जिहीर्षवः ॥ १० ॥
निवृत्तवासान् कौन्तेयान् य आहुर्विदिता इति

कुन्तीके पुत्र वनवासकी अवधि पूरी करके अब लौटे हैं, तो भी कौरव यह कहने लगे हैं कि हमने तो इन्हें अवधि पूर्ण होनेसे पहले ही पहचान लिया है। ऐसी दशामें यह कैसे कहा जाय कि कौरव धर्ममें तत्पर हैं और पाण्डवोंके राज्यका अपहरण नहीं करना चाहते हैं?

अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ॥ ११ ॥
न व्यवस्यन्ति पाण्डूनां प्रदातुं पैतृकं वसु

ये भीष्म, द्रोण और विदुरके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी पाण्डवोंको उनका पैतृक धन सौंप देनेका

निश्चय समझ नहीं कर रहे हैं

यद् तु तान्सिद्धवर्णान् तुमीय रणे करतात्
पापको पातयिष्यामि कौन्तेयस्य महात्मन

हैं रणभूमिमें बालावे मैं सन्तुष्ट मनोहर महात्मा कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर भवना सिरा हुआ

यत् ते व्यवस्यन्ति प्रतिरताथ भीमत
गमिष्यन्ति सहात्मात्मा यमस्य सदन प्रति

यदि रण दिगन्त युधिष्ठिर परन्त्री नरनेशा निश्चय नहीं कर तो अब निर्जाणित कर ह पत्नीकी याशा करती हूँ

हि ते युयुधानस्य मरण्धस्य युयुत्मत
वेग समर्थो सम्राट्टु वज्रस्येव महीध

वेग बड़ सब भी सकता वेग कर सम नहीं है उस प्रवाह मुद्धका सकोवाड भरे हुए युद्ध स्वर्गके सका हन करनेकी सामर्थ्य राजाओंमें किसीमें भी नहीं

को हि गाण्डीवधन्वान कश्च चक्रायुध युधि
मा चापि विषहत् मत्र कश्च भीम दुरासदम्,
यम च दृढधन्वानौ यमकालोपमद्युती
चिराटद्रुपद वीरौ मकालोपमद्युती
को जि विपुरसादेद् धृष्टद्युम्न पावकम्

और तरम नि उनकी ज्ञा रसन हुए जो युद्ध विकसा युद्ध चक्रधर भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध पांड भैम यम और जानके मन सेरी युग नकुल सहदेव और राजा सप तनय तेरसन्ते करन वीरवर विराट नका मा ....लाश मामा कर सकता

पञ्चैवान् पाण्डवेयास्तु द्रौपद्या कीर्तिव भान,

शत्रुसमक्षान् पाल्गुना समवीर्यान् गतोत्कटान्
सौभद्र च महेष्वासममर(वि दु सहम्
गदप्रद्युम्नसाम्बांश्च कालसूर्या लोकमान्

द्रौपदीके वीरीं बढ़वेवाले वीं चक्रकुमार जिनके वीर्य माना ही भी जीलने पराक्रमी त्मा रस-भ्या सुन्दर कुमार मनुष्य युवतकुमार अर्जुन वाला दराज किप भी पराक्रम प्रद्युम्न और साम्ब कार और नीके समान वीर इन सबका सामना कौन कर सकता है

त तव धृतराष्ट्रस्य पुत्र शकुनिना सह
च निहत्य आवसिष्यामि पाण्डवम्

तिर दुलकुमार दुर्योधनको तथा कर तुम नहीं ऐसा

तावदमा विप्रत कश्चित्चक्षुषम् हत्वा उत्पातिन
अधर्म्यमयशस्य च शाश्वतवा निनम्

आश्चर्य नाम नहीं करता है और अवश्यमेव बात

हृष्णस्य फल कुरुव्यसनद्विना
विस् भूत य तु विसृव
जय पाण्डुसुत रा सभला युधिष्ठि
निहता वा रणे सर्वे स्वपत्नि वसु ताथ

तुम युद्ध मनमें भी अलि है भी हारा कर युद्ध और पुत्र

मात तम मगाय निम हो

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्योद्योगपर्वणि .... तृतीयोऽध्याय

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्योद्योगपर्वमें सात्यकिका पुरुषार्थ विषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ

चतुर्थोऽध्याय

राजा द्रुपदकी सम्मति

द्रुपद उवाच

एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशय
न हि दुर्योधनो राज्य मधुरेण प्रदास्यति
अनुवर्त्स्यति त चापि धृतराष्ट्र सुतप्रिय
भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद् राधेयसौबली

सात्यकिकी बात सुनकर द्रुपदने कहा—महाबाहो तुम्हारा कहना ठीक नहीं देख नहीं कि देता है होगा क्योंकि दुर्योधन मधुर व्यवहारसे राज्य नहीं देगा बल उस पुत्रके प्रति आसक्त रहनेवाले धृतराष्ट्र भी उसीका अनुसरण कर भीष्म और द्रोणाचार्य दीनतावश तथा

नहीं और शकुनि युधिष्ठिरने दुर्योधनको साथ दी।

बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते।
एतद्धि पुरुषेणाद्य कार्यं सुनयमिच्छता ॥ ३ ॥
न तु वाच्यो मृदु वचो धार्तराष्ट्रः कथंचन।
न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतो मम ॥ ४ ॥

बलदेवजीका कथन मेरे समझमें ठीक नहीं जान पड़ता। मैं जो कुछ कहने जा रहा हूँ, वही सुनीतिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको करना चाहिये। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे मधुर वचन कहना किसी प्रकार उचित नहीं है। मेरा ऐसा मत है कि वह पापपूर्ण विचार रखनेवाला है। अतः मृदु व्यवहारसे उसको वशमें करना सम्भव नहीं है ॥ ३-४ ॥

गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि ॥ ५ ॥

जो पापात्मा दुर्योधनके प्रति मृदु वचन बोलेगा, वह मानो गदहेके प्रति कोमलतापूर्ण व्यवहार करेगा और गायों के प्रति कठोर व्यवहार ॥ ५ ॥

मृदु वै मन्यते पापो भाष्यमाणमशक्तिजम्।
जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति ॥ ६ ॥

पापी पुरुष कोमल वचन बोलनेवालेको शक्तिहीन समझता है और वह मूर्ख कोमल व्यवहार करनेपर यह मानने लगता है कि मैंने इनके धनपर विजय पा ली ॥ ६ ॥

एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह।
प्रस्थापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः ॥ ७ ॥

हम तो अपने इस कार्यको करेंगे ही; इसके लिये यहाँ प्रयत्न किया जाना चाहिये। हमें अपने मित्रोंके पास यह संदेश भेजना चाहिये कि वे हमारे लिये सेनाओंका उद्योग करें ॥ ७ ॥

शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य वा विभो।
केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छन्तु शीघ्रगाः ॥ ८ ॥

भगवन्! हमारे शीघ्रगामी दूत शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन और समस्त केकयराजकुमारोंके पास जायँ ॥ ८ ॥

स तु दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः।
पूर्वाभिपन्नाः सन्तश्च भजन्ते पूर्वचोदकम् ॥ ९ ॥

निश्चय ही दुर्योधन भी सब राजाओंके पास संदेश भेजेगा। श्रेष्ठ राजा भी किसीके द्वारा पहले सहायताके लिये निमन्त्रित हो जाते हैं, तब प्रथम निमन्त्रण देनेवालेकी ही सहायता करते हैं ॥ ९ ॥

तत् त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव प्रचोदने।
महद्धि कार्यं वोढव्यमिति मे वर्तते मतिः ॥ १० ॥

अतः सभी राजाओंके पास पहले ही अपना निमन्त्रण पहुँच जाय इसके लिये शीघ्रता करो। मैं समझता हूँ, हमलोगोंको बहुत बड़े कार्यका भार वहन करना है ॥ १० ॥

शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्यानुगा नृपाः।
भगदत्ताय राज्ञे च पूर्वसागरवासिने ॥ ११ ॥

राजा शल्य तथा उनके अनुगामी नरेशोंके पास शीघ्र दूत भेजा जाय। पूर्व समुद्रके तटवर्ती राजा भगदत्तके पास भी दूत भेजना चाहिये ॥ ११ ॥

अमितौजसे तथोग्राय हार्दिक्यायान्धकाय च।
दीर्घप्रज्ञाय शूराय रोचमानाय वा विभो ॥ १२ ॥

भगवन्! इसी प्रकार अमितौजा, उग्र, हार्दिक्य (कृतवर्मा), अन्धक, दीर्घप्रज्ञ तथा शूरवीर रोचमानके पास भी दूतोंको भेजना आवश्यक है ॥ १२ ॥

आनीयतां बृहन्तश्च सेनाबिन्दुश्च पार्थिवः।
सेनजित् प्रतिविन्ध्यश्च चित्रवर्मा सुवास्तुकः ॥ १३ ॥
बाह्लीको मुञ्जकेशश्च चैद्याधिपतिरेव च।
सुपार्श्वश्च सुबाहुश्च पौरवश्च महारथः ॥ १४ ॥
शकानां पह्लवानां च दरदानां च ये नृपाः।
सुरारिश्च नदीजश्च कर्णवेष्टश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥
नीलश्च वीरधर्मा च भूमिपालश्च वीर्यवान्।
दुर्जयो दन्तवक्त्रश्च रुक्मी च जनमेजयः ॥ १६ ॥
आषाढो वायुवेगश्च पूर्वपाली च पार्थिवः।
भूरितेजा देवकश्च एकलव्यः सहात्मजः ॥ १७ ॥
कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान्।
काम्बोजा ऋषिका ये च पश्चिमानूपकाश्च ये ॥ १८ ॥
जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पञ्चनदा नृपाः।
क्राथपुत्रश्च दुर्धर्षः पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ १९ ॥
जानकिश्च सुशर्मा च मणिमान् योतिमत्सकः।
पांशुराष्ट्राधिपश्चैव धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ॥ २० ॥
तुण्डश्च दण्डधारश्च बृहत्सेनश्च वीर्यवान्।
अपराजितो निषादश्च श्रेणिमान् वसुमानपि ॥ २१ ॥
बृहद्बलो महौजाश्च बाहुः परपुरंजयः।
समुद्रसेनो राजा च सह पुत्रेण वीर्यवान् ॥ २२ ॥
उद्भवः क्षेमकश्चैव वाटधानश्च पार्थिवः।
श्रुतायुश्च दृढायुश्च शाल्वपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २३ ॥
कुमारश्च कलिङ्गानामीश्वरो युद्धदुर्मदः।
एतेषां प्रेष्यतां शीघ्रमेतद्धि मम रोचते ॥ २४ ॥

बृहन्तको भी बुलाया जाय। राजा सेनाबिन्दु, सेनजित्, प्रतिविन्ध्य, चित्रवर्मा, सुवास्तुक, बाह्लीक, मुञ्जकेश, चैद्यराज, सुपार्श्व, सुबाहु, महारथी पौरव, शक, पह्लव तथा दरद देशोंके नरेश भी निमन्त्रित किये जाने चाहिये। सुरारि, नदीज, भूपाल कर्णवेष्ट, नील, वीरधर्मा, पराक्रमी भूमिपाल, दुर्जय, दन्तवक्त्र, रुक्मी, जनमेजय, आषाढ, वायुवेग, राजा

पूर्वपाली पूरिनोश देवक दुर्योगदित एकलव्य कन्या देशके बहुतसे नरेश पश्चिमी समुद्रके पास रहनेवाले दाक्षिणदेशके राजा पश्चिम [illegible] नरेश [illegible] मल्ल पञ्चकर देशके राजा दुर्ग कश्यपु पर्वतीय नरेश राजा जानकीके पुत्र सुशर्मा मणिमान वाहिमालक [illegible] अभिजित [illegible] धृष्टकेतु तुण्ड दण्डधार राजा [illegible] [illegible] विदारराज अतिमान, [illegible] [illegible] क्षौद्र। [illegible] [illegible] पाण्डव आदि पुरुजित [illegible] [illegible] क्षेमक राजा [illegible] कश्यपु [illegible] [illegible] कुमार तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शीघ्र निमन्त्रण [illegible] [illegible] [illegible] जाना चाहता है

अथ च ब्राह्मणो विद्वान् मम राजन् पुरोहितः प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम्

मत्स्यराज [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दीजिये

यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शान्तनवो नृप धृतराष्ट्रो यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि द्रुपदवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पञ्चमोऽध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका द्वारकागमन, विराट और द्रुपदके सन्देशसे राजाओंका पाण्डवपक्षकी ओरसे युद्धके लिये आगमन

वासुदेव उवाच

उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरन्धर
अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पाण्डवस्यामितौजसः

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—[illegible] सोमकवंशके धुरंधर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राजा युधिष्ठिरके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

एतच्च पूर्वं कार्यं नः सुनीतमभिकाङ्क्षताम्
अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पहले यही काम करना चाहिये [illegible] [illegible] [illegible] करता है [illegible] [illegible] [illegible] माना जाता है

किंतु सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु
यथेष्टं वर्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च

परंतु हमलोगोंका कौरवों और पाण्डवोंसे एक-सा सम्बन्ध है [illegible] [illegible] कौरव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] योग्य अनुकूल बर्ताव करते हैं

ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान्
कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान् प्रति

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निमन्त्रित होकर आये हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च
शिष्यवत् ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

भवन्तं धृतराष्ट्रश्च सततं बहु मन्यते
आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

स भवान् प्रेषयत्वद्य पाण्डवार्थकरं वचः
सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद् भवान् ७

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का निश्चित मत होगा

यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुङ्गवः
न भवेत् कुरुपाण्डूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करेगा [illegible] कौरव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद् धृतराष्ट्रजः ।
अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान् समाह्वये ॥ ९ ॥

यदि धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन मोहवश घमंडमें आकर हमारा प्रस्ताव न स्वीकार करे, तो आप दूसरे राजाओंके पास दूत भेजकर उसके बाद हमलोगोंको आमन्त्रित कीजियेगा ॥ ९ ॥

ततो दुर्योधनो मन्दः सहामात्यः सबान्धवः ।
निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गाण्डीवधन्वनि ॥ १० ॥

फिर तो गाण्डीवधन्वा अर्जुनके कुपित होनेपर मन्दबुद्धि मूढ दुर्योधन अपने मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवोंसहित नष्ट हो जायगा ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः ।
गृहान् प्रस्थापयामास सगणं सहबान्धवम् ॥ ११ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर राजा विराटने सेवकगण तथा बान्धवोंसहित वृष्णिकुल-नन्दन भगवान् श्रीकृष्णका सत्कार करके उन्हें द्वारका जानेके लिये विदा किया ॥ ११ ॥

द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर युधिष्ठिर आदि पाण्डव तथा राजा विराट युद्धकी सभी तैयारियाँ करने लगे ॥ १२ ॥

ततः सम्प्रेषयामास विराटः सह बान्धवैः ।
सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥ १३ ॥

मत्स्यनरेश राजा विराट तथा महाराज द्रुपदने मिलकर सब राजाओंके पास युद्धका निमन्त्रण भेजा ॥ १३ ॥

वचनात् कुरुसिंहानां मत्स्यपाञ्चालयोश्च ते ।
समाजग्मुर्महीपाला सम्प्रहृष्टा महाबलाः ॥ १४ ॥

कुरुकुलके सिंह पाण्डव तथा मत्स्यनरेश विराट तथा पाञ्चालराज द्रुपदके कहनेसे (दूर-दूरके) महाबली नरेश बड़े हर्ष और उत्साहसे भरकर वहाँ आने लगे ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा पाण्डुपुत्राणां समागच्छन्महद् बलम् ।
धृतराष्ट्रसुताश्चापि समाजह्रुर्महीपतीन् ॥ १५ ॥

पाण्डवोंके यहाँ विशाल सेना एकत्र हो रही है, यह सुनकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंने भी भूमिपालोंको बुलाना आरम्भ कर दिया ॥ १५ ॥

समाकुला मही राजन् कुरुपाण्डवकारणात् ।
तदा समभवत् कृत्स्ना सम्प्रयाणे महीक्षिताम् ॥ १६ ॥
संकुला च तदा भूमिश्चतुरङ्गबलान्विता ।

राजन्! इस प्रकार कौरवों तथा पाण्डवोंके उद्देश्यसे दूर-दूरके नरेश अपनी सेना लेकर प्रस्थान करने लगे। इनकी चतुरङ्गिणी सेनासे सारी पृथ्वी व्याप्त हुई-सी जान पड़ने लगी ॥ १६ ॥

बलानि तेषां वीराणामागच्छन्ति ततस्ततः ॥ १७ ॥
चालयन्तीव गां देवीं सपर्वतवनामिमाम् ।

चारों ओरसे उन वीरोंके जो सैनिक आ रहे थे, वे पर्वतों और वनोंसहित इस सारी पृथ्वीको प्रकम्पित-सी कर रहे थे ॥ १७ ॥

ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम् ।
कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः ॥ १८ ॥

तदनन्तर पाञ्चालनरेशने युधिष्ठिरकी सम्मतिके अनुसार बुद्धि और अवस्थामें भी बढ़े-चढ़े अपने पुरोहितको कौरवोंके पास भेजा ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्योद्योगपर्वणि पुरोहितयाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्योद्योगपर्वमें पुरोहितका प्रस्थानविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्याय

द्रुपदका पुरोहितको दौत्यकर्मके लिये अनुमति देना तथा पुरोहितका हस्तिनापुरको प्रस्थान

द्रुपद उवाच

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेष्वपि द्विजातयः ॥ १ ॥

राजा द्रुपदने (पुरोहितसे) कहा—पुरोहितजी! समस्त भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। प्राणधारियोंमें भी बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं। बुद्धिजीवी प्राणियोंमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ १ ॥

द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें सिद्धान्तके जानकार, सिद्धान्त-के जानकारोंमें भी तदनुसार आचरण करनेवाले पुरुष तथा उनमें भी ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥



स भवान् कुलवृद्धेषु प्रधान इति मे मतिः ।
कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ॥ ३ ॥

मेरा ऐसा विश्वास है कि आप भीष्म-द्रोणादि कुलवृद्धोंमें प्रमुख हैं। आपका कुल तो श्रेष्ठ है ही, अवस्था तथा शास्त्रज्ञानमें भी आप बढ़े-चढ़े हैं ॥ ३ ॥

प्रज्ञया सदृशश्चासि शुक्रेणाङ्गिरसेन च ।
विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तं च कौरव ॥ ४ ॥

आपकी बुद्धि शुक्राचार्य और बृहस्पतिके समान है। दुर्योधनका आजतकका जो बर्ताव है, वह सब भी आपको ज्ञात ही है ॥ ४ ॥

पाण्डवानां यथावृत्तं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धृतराष्ट्रस्य विदितं विदिता पाण्डवाः परे ॥ ५ ॥

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरका आचार-विचार भी आपलोगोंसे छिपा नहीं है। धृतराष्ट्रको जानकारीमें शकुनिने पाण्डवोंको ठगा है ॥ ५ ॥

विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्तते ।
शकुनिर्बुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत् ॥ ६ ॥
अनक्षज्ञं मताक्षः सन् क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम् ।

विदुरजीके अनुनय-विनय करनेपर भी धृतराष्ट्र अपने पुत्रका ही अनुसरण करते हैं। शकुनिने स्वयं जूएके खेलमें प्रवीण होकर यह जानते हुए भी कि युधिष्ठिर जूएका खिलाड़ी नहीं हैं, व क्षत्रियधर्मपर चलनेवाले एकमात्र पुरुष हैं, उन्हें समझ-बूझकर जूएके लिये बुलाया ॥ ६½ ॥

ते तथा वञ्चयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥
न कस्यांचिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम् ।

उन सबने मिलकर धर्मराज युधिष्ठिरको ठगा है। अब वे किसी भी अवस्थामें स्वयं राज्य नहीं लौटायेंगे ॥ ७½ ॥

भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन् वचः ॥ ८ ॥
मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्तयिष्यति ।

परंतु आप राजा धृतराष्ट्रसे धर्मयुक्त बातें कहकर उनके योद्धाओंका मन निश्चय ही अपनी ओर फेर लेंगे ॥ ८½ ॥

विदुरश्चापि तद् वाक्यं साधयिष्यति तावकम् ॥ ९ ॥
भीष्मद्रोणकृपादीनां भेदं सञ्जनयिष्यति ।

विदुरजी भी वहाँ आपके वचनोंका समर्थन करेंगे तथा आप भीष्म, द्रोण एवं कृपाचार्य आदिमें भेद उत्पन्न कर देंगे ॥ ९½ ॥

अमात्येषु च भिन्नेषु योधेषु विमुखेषु च ॥ १० ॥
पुनरेकत्वकरणं तेषां कर्म भविष्यति ।

जब मन्त्रियोंमें फूट पड़ जायगी और योद्धा भी विमुख होकर चल देंगे, तब उनका (कौरवोंका) काम होगा—पुनः उनमें एकता स्थापित करना और संगठन ॥ १०½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः ॥ ११ ॥
सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव संचयम् ।

इसी बीचमें एकाग्रचित्तवाले कुन्तीकुमार आनायास ही सेनाका संगठन और द्रव्यका संग्रह कर लेंगे ॥ ११½ ॥

भिद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने तथा त्वयि ॥ १२ ॥
न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः ।

जब वहाँ हमारे स्वजन तथा मित्र रहेंगे और आप भी वहाँ आकर मीठीबातोंसे विलम्ब करते रहेंगे, तब निःसंदेह वे सेना-संग्रहका काम उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकेंगे ॥ १२½ ॥

एतत् प्रयोजनं चात्र प्राधान्येनोपलभ्यते ॥ १३ ॥
संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्याद् धर्म्यं वचस्तव ।

वहाँ आपके जानेका यही प्रयोजन प्रधानरूपसे दिखायी देता है। यह भी सम्भव है कि आपकी संगतिसे धृतराष्ट्रका मन बदल जाय और वे आपकी धर्मानुकूल बात स्वीकार कर लें ॥ १३½ ॥

स भवान् धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन् ॥ १४ ॥
कृपालुषु परिक्लेशान् पाण्डवानां प्रकीर्तयन् ।
वृद्धेषु कुलधर्मं च ब्रुवन् पूर्वैरनुष्ठितम् ॥ १५ ॥
विभेत्स्यति मनांस्येषामिति मे नात्र संशयः ।

आप धर्मपरायण तो हैं ही, वहाँ धर्मानुकूल बर्ताव करते हुए कौरवकुलमें जो कृपालु वृद्ध पुरुष हैं, उनके समक्ष पाण्डवोंके क्लेशोंका वर्णन कीजियेगा। इस प्रकार आप उनका मन दुर्योधनकी ओरसे फोड़ लेंगे, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है ॥ १४-१५½ ॥

न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित्।
दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः ॥

आपको उनसे कोई भय नहीं है; क्योंकि आप वेदवेत्ता ब्राह्मण हैं। विशेषतः दूतकर्ममें नियुक्त और वृद्ध हैं ॥ १६ ॥

स भवान् पुष्ययोगेन मुहूर्तेन जयेन च।
कौरवेयान् प्रयात्वाशु कौन्तेयस्यार्थसिद्धये ॥ १७ ॥

अतः आप पुष्य नक्षत्रसे युक्त जय नामक मुहूर्तमें कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरके कार्यकी सिद्धिके लिये कौरवोंके पास शीघ्र जाइये ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथानुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना।
पुरोधा वृत्तसम्पन्नो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महात्मा राजा द्रुपदके द्वारा इस प्रकार अनुशासित होकर सदाचार-सम्पन्न पुरोहितने हस्तिनापुरको प्रस्थान किया ॥ १८ ॥

शिष्यैः परिवृतो विद्वान् नीतिशास्त्रार्थकोविदः।
पाण्डवानां हितार्थाय कौरवान् प्रति जग्मिवान् ॥ १९ ॥

वे विद्वान् तथा नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्रके विशेषज्ञ थे। वे पाण्डवोंके हितके लिये शिष्योंके साथ कौरवोंकी (राजधानीकी) ओर गये थे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें पुरोहितप्रस्थानविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्याय

श्रीकृष्णका दुर्योधन तथा अर्जुन दोनोंको सहायता देना

वैशम्पायन उवाच

पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम्।
दूतान् प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पुरोहितको हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवलोग जहाँ-तहाँ राजाओंके यहाँ अपने दूतोंको भेजने लगे ॥ १ ॥

प्रस्थाप्य दूतानन्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः।
स्वयं जगाम कौरव्यः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ २ ॥

अन्य सब राजाओंके यहाँ दूत भेजकर कुरुकुलनन्दन कुन्तीपुत्र नरश्रेष्ठ अर्जुन स्वयं द्वारकापुरीको गये ॥ २ ॥

गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे।
सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तथा ॥ ३ ॥

सर्वमागमयामास पाण्डवानां विचेष्टितम्।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः ॥ ४ ॥

जब मधुकुलनन्दन श्रीकृष्ण और बलराम सैकड़ों वृष्णि, अन्धक और भोजवंशी यादवोंके साथ द्वारकापुरीकी ओर चले गये, तभी धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनने अपने नियुक्त किये हुए गुप्तचरोंसे पाण्डवोंकी सारी चेष्टाओंका पता लगा लिया था ॥ ३-४ ॥

स श्रुत्वा माधवं यान्तं सदश्वैरनिलोपमैः।
बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम् ॥ ५ ॥

जब उसने सुना कि श्रीकृष्ण विराटनगरसे द्वारकाको जा रहे हैं, तब वह वायुके समान वेगवान् उत्तम अश्वों तथा थोड़ी-सी सेनाके साथ द्वारकापुरीकी ओर चल दिया ॥ ५ ॥

तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः।
आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनंजयः ॥ ६ ॥

कुन्तीकुमार पाण्डुनन्दन अर्जुनने भी उसी दिन शीघ्रतापूर्वक रमणीय द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ।
सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाभिजग्मतुः ॥ ७ ॥

कुरुकुलको आनन्द देनेवाले उन दोनों नरवीरोंने द्वारकामें पहुँचकर देखा, श्रीकृष्ण शयन कर रहे हैं। तब वे दोनों सोये हुए श्रीकृष्णके पास गये ॥ ७ ॥

ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः।
उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णके शयनकक्षमें पहले दुर्योधनने उनके भवनमें प्रवेश किया और उनके सिरहानेकी ओर रक्खे हुए एक श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठ गया ॥ ८ ॥

ततः किरीटी तस्यानु प्रविवेश महामनाः।
पश्चार्धे च स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् महामना किरीटधारी अर्जुनने श्रीकृष्णके शयनागारमें प्रवेश किया। वे बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़े हुए श्रीकृष्णके चरणोंकी ओर खड़े रहे ॥ ९ ॥

प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम्।
स तयोः स्वागतं कृत्वा यथार्हं प्रतिपूज्य तौ ॥ १० ॥

तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः।
ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ॥ ११ ॥

जागनेपर वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्णने पहले अर्जुनको ही देखा। मधुसूदनने उन दोनोंका यथायोग्य स्वागत-सत्कार

करके उनको उनके आगमनका कारण पूछा। तब दुर्योधनने भगवान् श्रीकृष्णसे हँसते हुए-से कहा—

विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हसि।
समं हि भवतः सख्यं मयि चैवार्जुनेऽपि च॥ १२॥
तथा सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव।
अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन॥ १३॥
पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः।
त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन।
सततं सम्मतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय॥ १४॥

माधव! पाण्डवोंके साथ हमारा जो युद्ध होनेवाला है, उसमें आप मुझे सहायता दें। मेरी तथा अर्जुनकी आपके साथ एक-सी मित्रता है एवं हमलोगोंका आपके साथ सम्बन्ध भी समान ही है और मधुसूदन! आज मैं ही आपके पास पहले आया हूँ। पूर्वपुरुषोंके सदाचारका अनुसरण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष पहले आये हुए प्रार्थीकी ही सहायता करते हैं। जनार्दन! आप इस समय भूतलके सत्पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं और सभी सदा आपको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। अतः आप सत्पुरुषोंके ही आचारका पालन करें॥ १२—१४॥

कृष्ण उवाच

भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः।
दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनंजयः॥ १५॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! इसमें संदेह नहीं कि आप ही पहले यहाँ आये हैं, परंतु मैंने पहले कुन्तीनन्दन अर्जुनको ही देखा है॥ १५॥



तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात्।
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन॥ १६॥

सुयोधन! आप पहले आये हैं और अर्जुनको मैंने पहले देखा है; इसलिये मैं दोनोंकी ही सहायता करूँगा॥ १६॥

प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः।
तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनंजयः॥ १७॥

शास्त्रकी आज्ञा है कि पहले बालकोंको ही उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिये; अतः अवस्थामें छोटे होनेके कारण पहले कुन्तीपुत्र अर्जुन ही अपनी अभीष्ट वस्तु पानेके अधिकारी हैं॥ १७॥

मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत्।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः॥ १८॥

मेरे पास दस करोड़ गोपोंकी विशाल सेना है, जो सब-के-सब मेरे-जैसे ही बलिष्ठ शरीरवाले हैं। उन सबकी 'नारायण' संज्ञा है। वे सभी युद्धमें दृढ़तापूर्वक लोहा लेनेवाले हैं॥ १८॥

ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः।
अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः॥ १९॥

एक ओर तो वे दुर्धर्ष सैनिक युद्धके लिये उद्यत रहेंगे और दूसरी ओरसे अकेला मैं रहूँगा; परंतु मैं न तो युद्ध करूँगा और न कोई शस्त्र ही धारण करूँगा॥ १९॥

आभ्यामन्यतरं पार्थ यत् ते हृद्यतरं मतम्।
तद् वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः॥ २०॥

अर्जुन! इन दोनोंमेंसे कोई एक वस्तु, जो तुम्हारे मनको अधिक प्रिय जान पड़े, तुम पहले चुन लो; क्योंकि धर्मके अनुसार पहले तुम्हीं अपनी मनचाही वस्तु चुननेका अधिकार है॥ २०॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम्॥ २१॥
नारायणममित्रघ्नं कामाज्जातमजं नृषु।
सर्वक्षत्रस्य पुरतो देवदानवयोरपि॥ २२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार धनंजयने संग्रामभूमिमें युद्ध न करनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना सहायक चुना, जो साक्षात् शत्रुदमन नारायण हैं और अजन्मा होते हुए भी स्वेच्छासे देवता, दानव तथा समस्त क्षत्रियोंके सम्मुख मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २१-२२॥

दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमावरयत् तदा।
सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत॥ २३॥
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम्।
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः॥ २४॥
ततोऽभ्ययाद् भीमबलो रौहिणेयं महाबलम्।

सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत्।
प्रत्युवाच ततः शौरिर्धार्तराष्ट्रमिदं वचः॥२५॥

जनमेजय! जब दुर्योधनने वह सारी सेना ले ली, जो अनेक सहस्र गोपियोंसे सम्मानित थी। उन योद्धाओंको पाकर और श्रीकृष्णको ठगा गया समझकर राजा दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका बल भयंकर था। वह सारी सेना लेकर महाबली रोहिणीनन्दन बलरामजीके पास गया और उनसे अपने आनेका सारा कारण बताया। तब शूरवंशी बलरामजीने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको इस प्रकार उत्तर दिया॥२३-२५॥

बलदेव उवाच

विदितं ते नरव्याघ्र सर्वं भवितुमर्हति।
यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा॥२६॥

बलदेवजी बोले—पुरुषसिंह! मैंने राजा विराटके यहाँ विवाहोत्सवके अवसरपर जैसे जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हें मालूम हो गया होगा॥२६॥

निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनन्दन।
मया सम्बन्धकं तुल्यमिति राजन् पुनः पुनः॥२७॥
न च तद् वाक्यमुक्तं वै केशवः प्रत्यपद्यत।
न चाहमुत्सहे कृष्णं विना स्थातुमपि क्षणम्॥२८॥

कुरुनन्दन! तुम्हारे लिये मैंने श्रीकृष्णको बाध्य करके कहा था कि हमारे साथ दोनों पक्षोंका समानरूपसे सम्बन्ध है। राजन्! मैंने यह बात बार-बार दुहरायी; परंतु श्रीकृष्णको जँची नहीं और मैं श्रीकृष्णको छोड़कर एक क्षण भी अन्यत्र कहीं ठहर नहीं सकता॥२७-२८॥

नाहं सहायः पार्थानां नापि दुर्योधनस्य वै।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह॥२९॥

अतः मैं श्रीकृष्णकी ओर देखकर मन-ही-मन इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि मैं न तो अर्जुनकी सहायता करूँगा और न दुर्योधनकी ही॥२९॥

जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ॥३०॥

पुरुषरत्न! तुम समस्त राजाओंद्वारा सम्मानित भरतवंशमें उत्पन्न हुए हो। जाओ, क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करो॥३०॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम्।
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धान्मेने जितं जयम्॥३१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बलरामजीके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने उन्हें हृदयसे लगाया और श्रीकृष्णको ठगा गया जानकर युद्धमें अपनी निश्चित विजय समझ ली॥३१॥

सोऽभ्ययात् कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः।
कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा॥३२॥

तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन कृतवर्माके पास गया। कृतवर्माने उसे एक अक्षौहिणी सेना दी॥३२॥

स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः।
वृतः प्रतिययौ हृष्टः सुहृदः सम्प्रहर्षयन्॥३३॥

उस सारी भयंकर सेनाके द्वारा घिरा हुआ कुरुनन्दन दुर्योधन अपने सुहृदोंका हर्ष बढ़ाता हुआ बड़ी प्रसन्नताके साथ हस्तिनापुरको लौट गया॥३३॥

गते पीताम्बरधरो जगत्स्रष्टा जनार्दनः।
गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत्।
अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं वृतस्त्वया॥३४॥

दुर्योधनके चले जानेपर जगत्स्रष्टा पीताम्बरधारी जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—पार्थ! मैं तो युद्ध करूँगा नहीं, फिर तुमने क्या सोच-समझकर मुझे चुना है?॥३४॥

अर्जुन उवाच

भवान् समर्थस्तान् सर्वान् निहन्तुं नात्र संशयः।
निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ॥३५॥

अर्जुन बोले—भगवन्! आप अकेले ही उन सबका नाश करनेमें समर्थ हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। पुरुषोत्तम! (आपकी ही कृपासे) मैं भी अकेला ही उन सब शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हूँ॥३५॥

भवांस्तु कीर्तिमाँल्लोके तद् यशस्त्वां गमिष्यति।
यशसा चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः॥३६॥

परंतु आप संसारमें यशस्वी हैं। आप जहाँ भी रहेंगे, वह यश आपका ही अनुसरण करेगा। मुझे भी यशकी इच्छा है ही; इसीलिये मैंने आपका वरण किया है॥३६॥

सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा।
चिररात्रेप्सितं कामं तद् भवान् कर्तुमर्हति॥३७॥

मेरे मनमें बहुत दिनोंसे यह अभिलाषा थी कि आपसे सारथिका काम कराऊँ—अतः आप मेरे सारथि बनें। मेरी इस चिरकालिक अभिलाषाको आप पूर्ण करें॥३७॥

वासुदेव उवाच

उपपन्नमिदं पार्थ यत् स्पर्धसे मया सह।
सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव॥३८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! तुम जो (मुझसे

पर विजय पाओगे) मेरे साथ सदा स्नेह रखते हो, यह तुम्हारे लिये ठीक ही है। मैं तुम्हारा सारथ्य करूँगा। तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमामन्त्र्य कौन्तेयं शौरिर्यदुकुलोद्वहः। कृतो दुर्योधनं जित्वा पुनरायाद् युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार (अर्जुनकी इच्छा पूर्ण होनेसे) प्रसन्न हुए अर्जुन श्रीकृष्णके सहित दुर्योधनपर विजय पाकर दशार्हवंशी महात्माओंसे घिरे हुए पुनः युधिष्ठिरके पास आये ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि कृष्णसारथ्यस्वीकारे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें श्रीकृष्णका सारथ्यस्वीकारविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्याय

शल्यका दुर्योधनके सत्कारसे प्रसन्न हो उसे वर देना और युधिष्ठिरसे मिलकर उन्हें आश्वासन देना

वैशम्पायन उवाच

शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः। अभ्ययात् पाण्डवान् राजन् सह पुत्रैर्महारथैः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पाण्डवोंके दूतोंके मुखसे उनका संदेश सुनकर राजा शल्य अपने महारथी पुत्रोंके साथ विशाल सेनासे घिरकर पाण्डवोंके पास चले ॥ १ ॥

तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्धमिव योजनम्। तथा हि विपुलां सेनां बिभर्ति स नरर्षभः ॥ २ ॥

नरश्रेष्ठ शल्य इतनी अधिक सेनाका भरण-पोषण करते थे कि उसका पड़ाव पड़नेपर आधी योजन भूमि घिर जाती थी ॥ २ ॥

अक्षौहिणीपती राजन् महावीर्यपराक्रमः। विचित्रकवचाः शूरा विचित्रध्वजकार्मुकाः ॥ ३ ॥

विचित्राभरणाः सर्वे विचित्ररथवाहनाः। विचित्रस्रग्धराः सर्वे विचित्राम्बरभूषणाः ॥ ४ ॥

स्वदेशवेषाभरणा (वीराः) शतसहस्रशः। तस्य सेनाप्रणेतारो बभूवुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

राजन्! महान् बलवान् और पराक्रमी शल्य अक्षौहिणी सेनाके स्वामी थे। सैकड़ों और हजारों वीर क्षत्रियशिरोमणि उनकी विशाल वाहिनीका संचालन करनेवाले सेनापति थे। वे सब-के-सब शौर्यसम्पन्न, अद्भुत कवच धारण करनेवाले तथा विचित्र ध्वज एवं धनुषसे सुशोभित थे। उन सबके अङ्गोंमें विचित्र आभूषण शोभा दे रहे थे। सबोंके रथ और वाहन विचित्र थे। सबके गलेमें विचित्र मालाएँ सुशोभित थीं। सबके वस्त्र और अलंकार अद्भुत दिखायी देते थे। उन सबने अपने-अपने देशकी वेष-भूषा धारण कर रखी थी ॥ ३—५ ॥

व्यथयन्निव भूतानि कम्पयन्निव मेदिनीम्। शनैर्विश्रामयन् सेनां स ययौ येन पाण्डवः ॥ ६ ॥

राजा शल्य समस्त प्राणियोंको व्यथित और पृथ्वीको कम्पित-सी करते हुए अपनी सेनाको धीरे-धीरे विभिन्न स्थानोंपर ठहराकर विश्राम देते हुए उस मार्गपर चले, जिससे पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके पास शीघ्र पहुँच सकते थे ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महासेनं महारथम्। उपायान्तमभिद्रुत्य स्वयमानर्च भारत ॥ ७ ॥

भरतनन्दन! तदनन्तर दुर्योधनने महारथी एवं महामना राजा शल्यका आगमन सुनकर स्वयं आगे बढ़कर (आतिथ्य हो) उनका सेवा-सत्कार प्रारम्भ कर दिया ॥ ७ ॥

कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः। रमणीयेषु देशेषु रत्नचित्राः स्वलंकृताः ॥ ८ ॥

दुर्योधनने राजा शल्यका स्वागत-सत्कार करनेके लिये रमणीय प्रदेशोंमें रत्नोंसे अलंकृत सभाभवन तैयार कराये, जिनकी दीवारोंमें रत्न जड़े हुए थे। उन भवनोंको सब प्रकारसे सजाया गया था ॥ ८ ॥

शिल्पिभिर्विविधैश्चैव क्रीडास्तत्र प्रयोजिताः। तत्र माल्यानि मांसानि भक्ष्यं पेयं च सत्कृतम् ॥ ९ ॥

नाना प्रकारके शिल्पियोंने उनमें अनेकानेक क्रीडा-विहारके स्थान बनाये थे। वहाँ माला आदिके साथ खाद्य, भोज्य, खाने-पीनेके सामान तथा सत्कारकी अन्यान्य वस्तुएँ रखवायी गयी थीं ॥ ९ ॥

कूपाश्च विविधाकारा मनोहर्षविवर्धनाः। वाप्यश्च विविधाकारा औदकानि गृहाणि च ॥ १० ॥

अनेक प्रकारके कुएँ तथा मनमें प्रसन्नता बढ़ानेवाली बावलियाँ बनायी गयी थीं जो हृदयके हर्षको बढ़ा रही थीं। बहुत-से ऐसे गृह बने थे, जिनमें जलकी विशेष सुविधा सुलभ की गयी थी ॥ १० ॥

स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथामरः। दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः ॥ ११ ॥

सब ओर विभिन्न स्थानोंमें बने हुए उन सभाभवनोंमें पहुँचकर राजा शल्य दुर्योधनके मन्त्रियोंद्वारा देवताओंकी भाँति पूजित होते थे ॥ ११ ॥

आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसम्।
स तत्र विषयैर्युक्तः कल्याणैरतिमानुषैः ॥ १२ ॥

इस तरह (नाना स्थानोंमें ठहरते हुए) शल्य किसी दूसरे सभाभवनमें गये, जो देवमन्दिरोंके समान प्रकाशित होता था। वहाँ उन्हें अलौकिक कल्याणमय भोग प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरन्दरम्।
पप्रच्छ च ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः ॥ १३ ॥

उस समय उन क्षत्रियशिरोमणि नरेशने अपनेको आपसे अधिक सौभाग्यशाली समझा। उन्हें देवराज इन्द्र भी अत्यन्त तुच्छ प्रतीत हुए। उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने सेवकोंसे पूछा— ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः।
आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥ १४ ॥

युधिष्ठिरके किन आत्मीयजनोंने ये सभाभवन बनाये हैं। उन सबको बुलाओ; मैं उन्हें पुरस्कार देनेके योग्य मानता हूँ ॥ १४ ॥

प्रसादमेषां दास्यामि कुन्तीपुत्रोऽनुमन्यताम्।
दुर्योधनाय तत् सर्वं कथयन्ति स्म विस्मिताः ॥ १५ ॥

मैं इन सबको अपनी प्रसन्नताके फलस्वरूप कुछ पुरस्कार दूँगा। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको भी मेरे इस व्यवहार का अनुमोदन करना चाहिये।' यह सुनकर सब सेवकोंने विस्मित हो दुर्योधनसे ये सारी बातें कहीं ॥ १५ ॥

सम्प्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम्।
गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ॥ १६ ॥

जब हर्षमें भरे हुए राजा शल्य (उनके प्रति किये गये उपकारके बदले) प्राणतक देनेको तैयार हो गये, तब गुप्तरूपसे वहीं छिपा हुआ दुर्योधन मामा शल्यके सामने गया ॥ १६ ॥

तं दृष्ट्वा मद्रराजस्तु ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम्।
परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति ॥ १७ ॥

उसे देखकर तथा उसीने यह सारी तैयारी की है यह जानकर मद्रराजने प्रसन्नतापूर्वक दुर्योधनको हृदयसे लगा लिया और कहा—तुम अपनी अभीष्ट वस्तु मुझसे माँग लो ॥ १७ ॥

दुर्योधन उवाच

सत्यवाग् भव कल्याण वरो वै मम दीयताम्।
सर्वसेनाप्रणेता वै भवान् भवितुमर्हति ॥ १८ ॥

दुर्योधनने कहा—कल्याणस्वरूप महानुभाव! आपकी बात सत्य हो। आप मुझे अवश्य वर दीजिये। मैं चाहता हूँ कि आप मेरी सम्पूर्ण सेनाके अधिनायक हो जायँ ॥ १८ ॥

(यथैव पाण्डवास्तुभ्यं तथैवाभ्यधिका वयम्।
अनुग्राह्यं च पक्षं च भक्तं च भज मां विभो ॥

आपके लिये जैसे पाण्डव हैं, वैसा ही मैं हूँ। प्रभो! मैं आपका भक्त होनेके कारण आपके द्वारा समादर और पालित होने योग्य हूँ। अतः मुझे अपनाइये ॥

शल्य उवाच

एवमेतन्महाराज यथा वदसि पार्थिव।
एवं करोमि ते प्रीत एवमेतद् भविष्यति ॥)

शल्यने कहा—महाराज! तुम्हारा कहना ठीक है। भूपाल! तुम जैसा कहते हो, वैसा ही वर तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक देता हूँ; वह ऐसा ही होगा—मैं तुम्हारी सेनाका अधिनायक बनूँगा ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत् क्रियतामिति।
कृतमित्येव गान्धारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उस समय शल्यने दुर्योधनसे कहा—'तुम्हारी यह प्रार्थना मैंने स्वीकार कर ली। अब और कौन-सा काम करूँ?' यह सुनकर गान्धारीनन्दन दुर्योधनने बारंबार यही कहा कि 'मेरा तो सब काम आपने पूरा कर दिया' ॥ १९ ॥

शल्य उवाच

गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकीयं नरर्षभ।
अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिन्दमम् ॥ २० ॥

शल्य बोले—नरश्रेष्ठ दुर्योधन! अब तुम अपने नगर को जाओ। मैं शत्रुदमन युधिष्ठिरसे मिलने जाऊँगा ॥ २० ॥



गत्वा युधिष्ठिरं राजन् क्षिप्रमेष्ये वराधिप।
अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पाण्डवः पुरुषर्षभ॥

नरेश्वर! युधिष्ठिरसे मिलकर शीघ्र ही लौट आऊँगा। पाण्डुपुत्र नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरसे मिलना भी अत्यन्त आवश्यक है॥

दुर्योधन उवाच

क्षिप्रमागम्यतां राजन् पाण्डवं वीक्ष्य पार्थिव।
त्वय्यधीनाः स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः॥

दुर्योधनने कहा—राजन्! भूपाल! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरसे मिलकर शीघ्र ही आइये। राजेन्द्र! हम आपके ही अधीन हैं। आपने हमें जो वरदान दिया है, उसे याद रखियेगा॥

शल्य उवाच

क्षिप्रमेष्यामि भद्रं ते गच्छस्व स्वपुरं नृप।
परिष्वज्य तथान्योन्यं शल्यदुर्योधनावुभौ॥

शल्य बोले—नरेश्वर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने नगरको जाओ। मैं शीघ्र आऊँगा।

इसके बाद राजा शल्य तथा दुर्योधन दोनों एक दूसरेसे गले मिलकर विदा हुए॥

स तथा शल्यमामन्त्र्य पुनरायात् स्वकं पुरम्।
शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत्॥

इस प्रकार शल्यसे पूछकर दुर्योधन पुनः अपने नगरको लौट आया और शल्य कुन्तीकुमारोंसे दुर्योधनकी वह करतूत सुनानेके लिये युधिष्ठिरके पास गये॥

उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च।
पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह॥

विराटनगरके उपप्लव्य नामक स्थानमें जाकर पाण्डवोंकी छावनीमें पहुँचे और वहाँ उन सब पाण्डवोंसे मिले॥

समेत्य तु महाबाहुः शल्यः पाण्डुसुतैस्तदा।
पाद्यमर्घ्यं च गां चैव प्रत्यगृह्णाद् यथाविधि॥

पाण्डुपुत्रोंसे मिलकर महाबाहु शल्यने उनके द्वारा विधिपूर्वक दिये हुए पाद्य, अर्घ्य और गौको ग्रहण किया॥

ततः कुशलपूर्वं हि मद्रराजोऽरिसूदनः।
प्रीत्या परमया युक्तः समाश्लिष्यद् युधिष्ठिरम्।
तथा भीमार्जुनौ हृष्टौ स्वस्रीयौ च यमावुभौ॥

तत्पश्चात् शत्रुसूदन मद्रराज शल्यने कुशल-प्रश्नके अनन्तर बड़ी प्रसन्नताके साथ राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया। इसी प्रकार उन्होंने हर्षमें भरे हुए दोनों भाई भीमसेन और अर्जुनको तथा अपनी बहिनके बेटे दोनों भाई नकुल-सहदेवको भी गले लगाया॥

द्रौपदी च सुभद्रा च अभिमन्युश्च भारत।
समेत्य च महाबाहुं शल्यं पाण्डुसुतास्तदा।
कृताञ्जलिर्धर्मात्मा धर्मात्मा शल्यमब्रवीत्॥

भारत! तदनन्तर द्रौपदी, सुभद्रा और अभिमन्युने आकर राजा शल्यको प्रणाम किया। उस समय धर्मात्मा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर शल्यसे कहा॥

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं तेऽस्तु वै राजन्नेतदासनमास्यताम्।

युधिष्ठिर बोले—राजन्! आपका स्वागत है। इस आसनपर विराजिये॥

वैशम्पायन उवाच

तथा न्यषीदच्छल्यस्तु काञ्चने परमासने।
कुशलं पाण्डवाः पृष्ट्वा ... सर्वसुखावहम्॥
स तैः परिवृतः सर्वैः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः।
आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब शल्य सुवर्णके सुन्दर सिंहासनपर बैठे। उस समय कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर आदि सब पाण्डवोंने उनका कुशल-समाचार पूछा। तदनन्तर धर्मात्मा पाण्डवोंसे घिरकर आसनपर बैठे हुए राजा शल्य कुन्तीकुमार युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—॥

कुशलं राजशार्दूल कच्चित् ते कुरुनन्दन।
अरण्यवासाद् दिष्ट्यासि विमुक्तो जयतां वर॥

कुरुनन्दन! नृपश्रेष्ठ! तुम कुशलसे तो हो? विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम वनवासके कष्टसे छूट गये॥

सुदुष्करं कृतं राजन् निर्जने वसता त्वया।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह॥

राजेन्द्र! तुमने अपने भाइयों तथा इस द्रुपदकुमारी कृष्णाके साथ निर्जन वनमें निवास करके अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है॥

अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम्।
दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत॥

भारत! भयंकर अज्ञातवास करके तो तुमलोगोंने और भी दुष्कर कार्य सम्पन्न किया है। जो अपने राज्यसे वञ्चित हो गया है, उसे तो सदा ही दुःख उठाना पड़ता है। सुख कहाँसे मिल सकता

दुष्करस्यास्य महतो भारतेऽद्भुतकर्मणः वै।
यथान्यस्ति सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परंतप ॥ ३२ ॥

शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले नरेश ! दुर्योधनके दिये हुए इस महान् दुःसह कष्टमें तुम शत्रुओंको मारकर सुखके भागी होओगे ॥ ३२ ॥

विदितं ते महाराज लोकतत्त्वं नराधिप।
तस्माल्लोभकृतं किंचित् तव तात न विद्यते ॥ ३३ ॥

महाराज नरेश्वर ! तुम्हें लोकतत्त्वका यथार्थ ज्ञान है। तात ! इसलिये तुममें लोभजनित कोई भी कार्य नहीं है ॥ ३३ ॥

राजर्षीणां पुराणानां मार्गमन्वेषितव्यम् भारत।
तुले सत्यमिव यथा न भवन्तं तात युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥

भारत ! प्राचीन राजर्षियोंके मार्गका अनुसरण करो। तात युधिष्ठिर ! तुम सदा दान, तपस्या और सत्यमें ही संलग्न रहो ॥ ३४ ॥

क्षमा दमश्च सत्यं च अहिंसा च युधिष्ठिर।
अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन् प्रतिष्ठितः ॥ ३५ ॥

राजा युधिष्ठिर ! क्षमा, इन्द्रियसंयम, सत्य, अहिंसा तथा अद्भुत लोक—ये सब तुममें प्रतिष्ठित हैं ॥ ३५ ॥

मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः।
धर्मास्ते विदिता राजन् बहवो लोकसाक्षिकाः ॥ ३६ ॥

महाराज ! तुम कोमल, उदार, ब्राह्मणभक्त, दानी तथा धर्मपरायण हो। संसार जिनका साक्षी है, ऐसे बहुत-से धर्म तुम्हें ज्ञात हैं ॥ ३६ ॥

सर्वं जगदिदं तात विदितं ते परंतप।
दिष्ट्या कृच्छ्रमिदं राजन् पारितं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥

तात ! परंतप ! तुम्हें इस सम्पूर्ण जगत्‌का तत्त्व ज्ञात है। भरतश्रेष्ठ नरेश ! तुम इस महान् संकटसे पार हो गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ ३७ ॥

दिष्ट्या पश्यामि राजेन्द्र धर्मात्मानं सहानुगम्।
निस्तीर्णं दुष्करं राजंस्त्वां धर्मनिचयं प्रभो ॥ ३८ ॥

राजेन्द्र ! तुम धर्मात्मा एवं धर्मकी निधि हो। प्रभो ! तुमने भाइयोंसहित अपनी दुष्कर प्रतिज्ञा पूरी कर ली है और इस समय मैं तुम्हें देख रहा हूँ, यह मेरा बड़ा भाग्य है ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽस्याकथयद् राजा दुर्योधनसमागमम्।
तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत ॥ ३९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत ! तदनन्तर राजा शल्यने दुर्योधनके मिलने, सेवा-शुश्रूषा करने और उसे अपने वरदान देनेकी सारी बातें कह सुनायीं ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
दुर्योधनस्य यद् वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर बोले—वीर महाराज ! आपने प्रसन्नचित्त होकर जो दुर्योधनको उसकी सहायताका वचन दे दिया वह अच्छा ही किया ॥ ४० ॥

एकं त्विच्छामि भद्रं ते क्रियमाणं महीपते।
राजन्नकर्तव्यमपि कर्तुमर्हसि सत्तम ॥ ४१ ॥
तव त्वपेक्षया वीर शृणु विज्ञापयामि ते।
भवानिह च सारथ्ये वासुदेवसमो युधि ॥ ४२ ॥

परंतु पृथ्वीपते ! आपका कल्याण हो। मैं आपके द्वारा एक भी एक कार्य कराना चाहता हूँ। साधुशिरोमणे ! वह न करने योग्य होनेपर भी मेरी ओर देखते हुए आपको अवश्य करना चाहिये। वीरवर ! सुनिये, मैं वह कार्य आपको बता रहा हूँ। महाराज ! आप इस भूतल-पर संग्राममें सारथिका कार्य करनेके लिये वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके समान माने गये हैं ॥ ४१-४२ ॥

कर्णार्जुनाभ्यां सम्प्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम।
कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः ॥ ४३ ॥

नृपशिरोमणे ! जब कर्ण और अर्जुनमें द्वैरथयुद्धका अवसर प्राप्त होगा, उस समय आपको ही कर्णके सारथिका काम करना पड़ेगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ४३ ॥

तत्र पाल्योऽर्जुनो राजन् यदि मत्प्रियमिच्छसि।
तेजोवधश्च ते कार्यः सौतेरस्मज्जयावहः ॥ ४४ ॥
अकर्तव्यमपि ह्येतत् कर्तुमर्हसि मातुल।

राजन् ! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो उस युद्धमें आपको अर्जुनकी रक्षा करनी होगी। आपका कार्य इतना ही होगा कि आप कर्णका उत्साह भङ्ग करते रहें। यही कार्य हमें विजय दिलानेवाला होगा। मामाजी ! मेरे लिये यह न करनेयोग्य कार्य भी करें ॥ ४४½ ॥

शल्य उवाच

शृणु पाण्डव भद्रं ते यद् ब्रवीषि महात्मनः।
तेजोवधनिमित्तं मां सूतपुत्रस्य संयुगे ॥ ४५ ॥
अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवम्।
वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते ॥ ४६ ॥

शल्य बोले—पाण्डुनन्दन ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी बात सुनो ! युद्धमें महामना सूतपुत्र कर्णके तेज और उत्साहको नष्ट करनेके लिये तुम जो मुझसे अनुरोध करते हो, वह ठीक है। यह निश्चय है कि मैं उस युद्धमें उसका सारथि होऊँगा। क्योंकि कर्ण मुझे सारथ्यकर्ममें भगवान् श्रीकृष्णके समान समझता है ॥ ४५-४६ ॥



तस्याहं कुरुशार्दूल प्रतिलोमाहितं वचः।
अथ सत्कथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे ॥ ४७ ॥
यथा स हतदर्पश्च हततेजाश्च पाण्डव।
भविष्यति सुखं हन्तुं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४८ ॥

कुरुश्रेष्ठ! जब कर्ण रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्धकी इच्छा करेगा, उस समय मैं अवश्य ही उससे प्रतिकूल अहितकर वचन बोलूँगा, जिससे उसका अभिमान और तेज नष्ट हो जायगा और वह युद्धमें सुखपूर्वक मारा जा सकेगा। पाण्डुनन्दन! मैं तुमसे यह सत्य कहता हूँ।

एवमेतत् करिष्यामि यथा तात त्वमात्थ माम्।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्यामि ते प्रियम् ॥ ४९ ॥

तात! तुम मुझसे जो कुछ कह रहे हो, यह अवश्य पूर्ण करूँगा। इसके सिवा और भी जो कुछ मुझसे हो सकेगा, तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा।

यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह।
परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि च ॥
जटासुरात् परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते।
द्रौपद्याधिगतं सर्वं दमयन्त्या यथाशुभम् ॥ ५० ॥
सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदर्कं भविष्यति।
नात्र मन्युस्त्वया कार्यो विधिर्हि बलवत्तरः ॥ ५१ ॥

महाराज! तुमने द्रौपदीके साथ जो दुःख उठाया है, सूतपुत्र कर्णने तुम्हें जो कठोर बातें सुनायी हैं तथा पूर्वकालमें जटासुरने जो अशुभ दुःख दिया था अथवा जिस प्रकार द्रौपदीने कीचकसे दमयन्तीकी भाँति क्लेश प्राप्त किया है, वह सभी दुःख परिणाममें तुम्हारे लिये सुखके रूपमें परिणत हो जायगा। इसके लिये तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये, क्योंकि विधाताका विधान अति प्रबल होता है।

दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर।
देवैरपि हि दुःखानि प्राप्तानि जगतीपते ॥ ५२ ॥

युधिष्ठिर! महात्मा पुरुष भी समय-समयपर दुःख पाते हैं। पृथ्वीपते! देवताओंने भी बहुत दुःख उठाये हैं।

इन्द्रेण श्रूयते राजन् सभार्येण महात्मना।
अनुभूतं महद् दुःखं देवराजेन भारत ॥ ५३ ॥

भारत! सुननेमें आता है कि पत्नीसहित महामना देवराज इन्द्रने भी महान् दुःख भोगा है।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि शल्यवाक्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें शल्यवाक्यविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्याय

इन्द्रके द्वारा त्रिशिराका वध, वृत्रासुरकी उत्पत्ति, उसके साथ इन्द्रका युद्ध तथा देवताओंकी पराजय

युधिष्ठिर उवाच

कथमिन्द्रेण राजेन्द्र सभार्येण महात्मना।
दुःखं प्राप्तं परं घोरमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—राजेन्द्र! पत्नीसहित महात्मा इन्द्रने कैसे अत्यन्त भयंकर दुःख प्राप्त किया था? यह मैं जानना चाहता हूँ।

शल्य उवाच

शृणु राजन् पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम्।
सभार्येण यथा प्राप्तं दुःखमिन्द्रेण भारत ॥ २ ॥

शल्यने कहा—भरतवंशी नरेश! पूर्वकालमें घटित पुरातन इतिहास है, सुनो। इन्द्रने जिस प्रकार महान् दुःख प्राप्त किया था, वह बताता हूँ, सुनो।

त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद् देवश्रेष्ठो महातपाः।
स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्रोहात् किलासृजत् ॥ ३ ॥

त्वष्टा नामसे प्रसिद्ध एक प्रजापति थे, जो देवताओंमें

श्रेष्ठ और महान् तपस्वी माने जाते थे। कहते हैं उन्होंने इन्द्रके प्रति द्रोहबुद्धि होनेके कारण ही एक तीन सिर वाला पुत्र उत्पन्न किया

येन स सार्यमन् स्थाय विश्वरूपो महाद्युतिः
तस्मिन्निर्मलतोयेऽरे गृहस्त्वुद्भवलोचनम्

उस महातेजस्वी विश्वरूपने ... सूर्य चन्द्रमा तथा अग्निके समान ... और उन तीनों मुखोंद्वारा इन्द्रका स्थान ... प्राप्त करना चाहा

वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन नापिबत्
एकेन च दिशः सर्वाः पिबन्निव निरीक्षते

वह एक मुखसे वेदोंका स्वाध्याय करता, दूसरेसे सुरा पीता और तीसरेसे सम्पूर्ण दिशाओंको भी इस प्रकार देखता था मानो उन्हें ...

स तपस्वी मृदुर्दान्तो धर्मे तपसि चोद्यतः
तपस्तस्य महत् तीव्रं सुदुश्चरमरिंदम

शत्रुदमन! उसका वह पुत्र कोमल स्वभाववाला, तपस्वी, जितेन्द्रिय तथा धर्म और तपस्याके लिये सदा उद्यत रहनेवाला था। उसका बड़ा भारी तीव्र तप दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर था

तस्य दृष्ट्वा तपोवीर्यं सत्त्वं चामिततेजसः
विषादमगमच्छक्र इन्द्रोऽयं मा भवेदिति

उस अमिततेजस्वी बालकका तपोबल तथा सत्त्व देखकर इन्द्रको बड़ा दुःख हुआ ... कहीं यह इन्द्र ही न बन

कथं सज्जेत भोगेषु न च तप्येन्महत् तपः
विवर्धमानस्त्रिशिरा सर्वं हि भुवनं ग्रसेत्

क्या उपाय किया जाय, जिससे यह भोगोंमें आसक्त हो जाय और भारी तपस्यामें प्रवृत्त न हो; क्योंकि यह त्रिशिरा बढ़कर तीनों लोकोंको अपना ग्रास बना लेगा

इति संचिन्त्य बहुधा बुद्धिमान् भरतर्षभ
आज्ञापयत् सोऽप्सरसस्त्वष्टृपुत्रप्रलोभने

भरतश्रेष्ठ! इस तरह बहुत सोच-विचार करके बुद्धिमान् इन्द्रने त्वष्टाके पुत्रको लुभानेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी—

यथा स सज्जेत् त्रिशिराः कामभोगेषु वै भृशम्
क्षिप्रं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत मा चिरम्

अप्सराओ! जिस प्रकार त्रिशिरा कामभोगोंमें अत्यन्त आसक्त हो जाय, शीघ्र वही यत्न करो। जाओ, उसे लुभानेमें विलम्ब न करो

शृङ्गारवेषाः सुश्रोण्यो हारैर्युक्ता मनोहरैः
हावभावसमायुक्ताः सर्वाः सौन्दर्यशोभिताः ॥
प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं भयं मम
अस्वस्थं ह्यात्मनाऽऽत्मानं लक्षयामि वराङ्गनाः
भयं तन्मे महाघोरं क्षिप्रं नाशयताबलाः

सुन्दरियो! ... शृङ्गारके अनुरूप वेष धारण करके, मनोहर हारोंसे विभूषित हो, हाव-भावसे संयुक्त तथा सौन्दर्यसे सुशोभित हो त्रिशिराको लुभाओ। तुम्हारा कल्याण हो, मेरे मनके भयको शान्त करो। अङ्गनाओ! मैं अपने आपको अस्वस्थ-सा पा रहा हूँ। अतः अबलाओ! तुम मेरे इस अत्यन्त घोर भयका शीघ्र निवारण करो

अप्सरस ऊचुः

तथा यत्नं करिष्यामः शक्र तस्य प्रलोभने
यथा नावाप्स्यसि भयं तस्माद् बलनिषूदन ॥ ॥

अप्सराएँ बोलीं—शक्र! बलनिषूदन! इन्द्रदेव! त्रिशिराको लुभानेके लिये हम ऐसा यत्न करेंगी, जिससे उसकी ओरसे आपको कोई भय नहीं प्राप्त होगा

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां योऽसावास्ते तपोनिधिः
तं प्रलोभयितुं देव गच्छामः सहिता वयम् ॥ ॥
यतिष्यामो वशे कर्तुं व्यपनेतुं च ते भयम्

देव! जो तपोनिधि त्रिशिरा अपने नेत्रोंसे सबको दग्ध करता हुआ-सा बैठा रहता है, उसे प्रलोभनमें डालनेके लिये हम सब एक साथ जा रही हैं। उसे वशमें करने तथा आपके भयको दूर करनेके लिये हम पूर्ण प्रयत्न करेंगी

शल्य उवाच

इन्द्रेण तास्त्वनुज्ञाता जग्मुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम्
तत्र ता विविधैर्भावैर्लोभयन्त्यो वराङ्गनाः ॥ ॥
नित्यं सन्दर्शयामासुस्तथैवाङ्गेषु सौष्ठवम्
नाभ्यगच्छत् प्रहर्षं ता स पश्यन् सुमहातपाः ॥ २ ॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा पूर्णसागरसंनिभः

शल्य बोले—राजन्! इन्द्रकी आज्ञा पाकर वे सब अप्सराएँ त्रिशिराके समीप गयीं। वहाँ उन



कुलदेवीके नीति भाँतिके हाव भावोंद्वारा उन्हें लुभानेका प्रयत्न किया तथा अन्तिम विश्वरूपको अपने अङ्गोंके सौन्दर्यका दर्शन कराया। तथापि महातपस्वी महर्षि उन सबको देखते हुए भी उनके प्रति विकारको नहीं प्राप्त हुए। बल्कि वे इन्द्रियोंको वशमें करके पूर्ण समुद्रके समान शान्तभावसे बैठे रहे।

ताश्च तत्र परं कृत्वा पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ ७ ॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन्।
न स शक्यः सुदुर्धर्षो धैर्याच्चालयितुं प्रभो॥
यत् ते कार्यं महाभाग क्रियतां तदनन्तरम्।

वे सब अप्सराएँ त्रिशिराको विचलित करनेका पूरा प्रयत्न करके पुनः देवराज इन्द्रकी सेवामें उपस्थित हुईं और हाथ जोड़कर बोलीं—'प्रभो! वे त्रिशिरा बड़े दुर्धर्ष तपस्वी हैं। उन्हें धैर्यसे विचलित नहीं किया जा सकता। महाभाग! आपको जो कुछ करना हो, उसे कीजिये'।

सम्पूज्याप्सरसः शक्रो विसृज्य च महामतिः।
चिन्तयामास तस्यैव वधोपायं युधिष्ठिर॥

युधिष्ठिर! परम बुद्धिमान् इन्द्रने अप्सराओंका आदर-सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया और त्रिशिराके वधका उपाय सोचने लगे।

स तूष्णीं चिन्तयन् वीरो देवराजः प्रतापवान्॥
विनिश्चितमतिर्धीमान् वधे त्रिशिरसोऽभवत्।

प्रतापी वीर बुद्धिमान् देवराज इन्द्र चुपचाप सोचते हुए त्रिशिराके वधके विषयमें एक निश्चयपर पहुँच गये। २

वज्रमस्य क्षिपाम्यद्य स क्षिप्रं न भविष्यति॥ ॥
शत्रुः प्रवृद्धो नोपेक्ष्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा।

उन्होंने सोचा—आज मैं त्रिशिरापर वज्रका प्रहार करूँगा, जिससे वह तत्काल नष्ट हो जायगा। बलवान् पुरुषको दुर्बल शत्रुको भी बढ़ते हुए अपने शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

शास्त्रबुद्ध्या विनिश्चित्य कृत्वा बुद्धिं वधे दृढाम्।
अथ वैश्वानरनिभं घोररूपं भयावहम्॥
मुमोच वज्रं संक्रुद्धः शक्रस्त्रिशिरसं प्रति ॥ ३ ॥
स पपात हतस्तेन वज्रेण दृढमाहतः।
पर्वतस्येव शिखरं प्रणुन्नं मेदिनीतले ॥

शास्त्रयुक्त बुद्धिसे त्रिशिराके वधका दृढ़ निश्चय करके क्रोधमें भरे हुए इन्द्रने अग्निके समान तेजस्वी, घोर एवं भयंकर वज्रको त्रिशिराकी ओर चला दिया। उस वज्रकी गहरी चोट खाकर त्रिशिरा मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो वज्रके आघातसे टूटा हुआ पर्वतका शिखर भूतलपर पड़ा हो।

तं तु वज्रहतं दृष्ट्वा शयानमचलोपमम्।
न शर्म लेभे देवेन्द्रो दीपितस्तस्य तेजसा ॥

त्रिशिराको वज्रके आघातसे मरकर पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर पड़ा देखकर भी देवराज इन्द्रको शान्ति नहीं मिली। उनके तेजसे संतप्त होते रहे।

हतोऽपि दीप्ततेजाः स जीवन्निव हि दृश्यते।
घातितस्य शिरांस्याजौ जीवन्तीवाद्भुतानि वै ॥ ६ ॥

क्योंकि मारे जानेपर भी त्रिशिरा अपने उद्दीप्त तेजसे जीवित-से दिखायी देते थे। युद्धमें मारे हुए त्रिशिराके तीनों मस्तक अद्भुत प्रकारसे जीवित-से जान पड़ते थे।

ततोऽतिभीतगात्रस्तु शक्र आस्ते विचारयन्।
अथाजगाम परशुं स्कन्धेनादाय तक्षकः ॥ ७ ॥

इससे इन्द्र भयभीत होकर सोच-विचारमें पड़े रहे। इसी समय एक बढ़ई कंधेपर कुल्हाड़ी लिये उधर आ निकला।

तदरण्यं महाराज यत्रास्तेऽसौ निपातितः।
स भीतस्तत्र तक्षाणं ददर्श शचीपतिः ॥
अब्रवीत्तत्क्षणं चैव तत्पर पाकशासनः।
क्षिप्रं छिन्धि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥

महाराज! जहाँ त्रिशिरा मारकर गिराया गया था, उसी वनमें वह आया था। डरे हुए शचीपति इन्द्रने वहाँ अपना काम करते हुए बढ़ईको देखा। उन्होंने पाकशासन इन्द्रने तुरंत उससे कहा—'भाई! तू शीघ्र इसके तीनों

मस्तकके टुकड़े-टुकड़े कर दे । मेरी इस आज्ञाका पालन कर ॥ २९ ॥

तक्षोवाच

महास्कन्धो भृशं ह्येष परशुर्न भविष्यति ।
कर्तुं चाहं न शक्ष्यामि कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥ ३० ॥

बढ़ईने कहा—इसके कंधे तो बहुत बड़े और विशाल हैं । मेरा यह कुल्हाड़ा इनपर काम नहीं देगा और इस प्रकारका कार्य करना तो सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित पापकर्म है । अतः मैं इसे नहीं कर सकूँगा ॥ ३० ॥

इन्द्र उवाच

मा भैस्त्वं शीघ्रमेतद् वै कुरुष्व वचनं मम ।
मत्प्रसादाद्धि ते शस्त्रं वज्रकल्पं भविष्यति ॥ ३१ ॥

इन्द्रने कहा—तू भय न कर, शीघ्र मेरी इस आज्ञाका पालन कर । मेरे प्रसादसे तेरा कुल्हाड़ा वज्रके समान हो जायगा ॥ ३१ ॥

तक्षोवाच

कं भवन्तमहं विद्यां भीमकर्माणमद्य वै ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ३२ ॥

बढ़ईने पूछा—आज इस प्रकार भयंकर कर्म करनेवाले आप कौन हैं ? यह मैं कैसे जानूँ ? मैं आपका परिचय सुनना चाहता हूँ । आप यथार्थरूपसे बताइये ॥ ३२ ॥

इन्द्र उवाच

अहमिन्द्रो देवराजस्तक्षन् विदितमस्तु ते ।
कुरुष्वैतद् यथोक्तं मे तक्षन् मा त्वं विचारय ॥ ३३ ॥

इन्द्रने कहा—बढ़ई ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं देवराज इन्द्र हूँ । मैंने जो कुछ बताया है, उसे उसी तरह पूरा कर । इस विषयमें कुछ विचार न कर ॥ ३३ ॥

तक्षोवाच

क्रूरेण नापत्रपसे कथं शक्रेह कर्मणा ।
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न ते ॥ ३४ ॥

बढ़ईने कहा—इन्द्र ! इस क्रूर कर्मसे आपको लज्जा कैसे नहीं आती है ? इस ऋषिकुमारकी हत्या करनेपर जो ब्रह्महत्या होगी, क्या उसका भय आपको नहीं है ? ॥ ३४ ॥

इन्द्र उवाच

पश्चाद् धर्मं चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम् ।
शत्रुरेष महावीर्यो वज्रेण निहतो मया ॥ ३५ ॥

इन्द्रने कहा—यह महान् पराक्रमी शत्रु था, जिसे मैंने वज्रसे मार डाला है । इसके बाद मैं अपनी शुद्धि करनेके लिये मैं किसी ऐसे धर्मका अनुष्ठान करूँगा, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है ॥ ३५ ॥

अद्यापि चाहमुद्विग्नस्तक्षन्नस्माद् बिभेमि वै ।
क्षिप्रं छिन्धि शिरांसि त्वं करिष्येऽनुग्रहं तव ॥ ३६ ॥

बढ़ई ! यद्यपि यह मारा गया है तो भी अभीतक मुझे इसका भय लगा हुआ है । तू शीघ्र इसके मस्तकोंके टुकड़े-टुकड़े कर दे । मैं तेरे ऊपर अनुग्रह करूँगा ॥ ३६ ॥

शिरः पशोस्ते दास्यन्ति भागं यज्ञेषु मानवाः ।
एष तेऽनुग्रहस्तक्षन् क्षिप्रं कुरु मम प्रियम् ॥ ३७ ॥

मनुष्य [यज्ञोंमें] यज्ञभागके रूपमें पशुका सिर तेरे भागमें देंगे । बढ़ई ! यह तेरे ऊपर मेरा अनुग्रह है । अब तू जल्दी मेरा प्रिय कार्य कर ॥ ३७ ॥

शल्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तक्षा स महेन्द्रवचनात् तदा ।
शिरांस्यथ त्रिशिरसः कुठारेणाच्छिनत् तदा ॥ ३८ ॥

शल्य कहते हैं—राजन् ! महेन्द्रके इस कथनानुसार बढ़ईने उस समय कुल्हाड़ेसे त्रिशिराके तीनों सिरोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ३८ ॥

निकृत्तेषु ततस्तेषु निष्क्रामंस्त्वण्डजास्त्वथ ।
कपिञ्जलास्तित्तिराश्च कलविङ्काश्च सर्वशः ॥ ३९ ॥

उन मस्तकोंके कटनेपर उनके भीतरसे नाना प्रकारके पक्षी बाहर निकले, कपिञ्जल, तीतर और गौरैये ॥ ३९ ॥

येन वेदानधीते स्म पिबते सोममेव च ।
तस्माद् वक्त्राद् विनिष्पेतुः क्षिप्रं तस्य कपिञ्जलाः ॥ ४० ॥

जिस मुखसे वे वेदोंका पाठ करते तथा सोमरस पीते थे, उससे शीघ्रतापूर्वक कपिञ्जल पक्षी बाहर निकले थे ॥ ४० ॥

येन सर्वा दिशो राजन् पिबन्निव निरीक्षते ।
तस्माद् वक्त्राद् विनिष्पेतुस्तित्तिरास्तस्य पाण्डव ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर ! जिससे वे सम्पूर्ण दिशाओंको इस प्रकार देखते थे मानो उन्हें पी जायँगे, उस मुखसे तीतर पक्षी निकले ॥ ४१ ॥

यत् सुरापं तु तस्यासीद् वक्त्रं त्रिशिरसस्तदा ।
कलविङ्काः समुत्पेतुः श्येनाश्च भरतर्षभ ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! त्रिशिराका जो मुख सुरापान करनेवाला था, उससे गौरैये तथा बाज नामक पक्षी प्रकट हुए ॥ ४२ ॥

ततस्तेषु निकृत्तेषु विज्वरो मघवानथ ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टस्तक्षापि स्वगृहान् ययौ ॥ ४३ ॥

इन तीनों सिरोंके कट जानेपर इन्द्रकी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी । वे प्रसन्न होकर स्वर्गको चले गये तथा बढ़ई भी अपने घर चला गया ॥ ४३ ॥

(तत्रापि सहसा गत्वा वज्ञ शमनि कर्माविशत्
अर्धेन नाभिसज्जनि सर्वमेक तयाप्यनम्
अथ संवत्सरे पूर्ण भूमा पशुपत प्रभो
समाश्वेवात्र मघवान् न प्रभुहर्षा इति
तत इन्द्रो प्रम धारमासरत् पाकशासन
तपस च स नयुना यथा देवमघ्य
समुद्रेषु पृथिव्या च यावर्षा तु त्योरु च
निभज्य महाहत्या च तान् वरदन्यजयात्
वरदत्तु वर दत्त्वा पृथिव्यै सागराय च
वनस्पतिभ्य स्त्रीभ्यश्च ब्रह्महत्या मुमोच ताम्
ततस्तु शुद्धो भगवान् देवलोकश्च पूजित
इन्द्रस्थानमुपातिष्ठत् पूज्यमानो महर्षिभि)

[illegible] पर जाकर [illegible] कुछ नहीं कहा [illegible] देवता [illegible] शाप दिया है यह एक [illegible] नहीं हुआ युधिष्ठिर [illegible] भगवान् [illegible] यह [illegible] बताने [illegible] हमारे स्वामी [illegible] वृत्ति पा के [illegible] आचरण किया [illegible] वैसा [illegible] उन्होंने [illegible] पृथ्वी [illegible] अपना [illegible] [illegible] दिया [illegible] [illegible] सर्वोत्कृष्ट [illegible] दिया [illegible] [illegible] भगवान् [illegible] तब वहाँ [illegible] हुए अपने [illegible] हुए

मने कृत्वाथमात्मन त्वष्टा राजा सुखावहा
त्वष्टा महातपा श्रुत्वा [illegible] सुतम् ४८
क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत्

[illegible] त्वष्टा [illegible] मेरे पुत्रका [illegible] है [illegible] उनकी आँखें [illegible] हो गयीं और [illegible] इस प्रकार [illegible]

त्वष्टोवाच

तप्यमान तपो नित्य क्षान्त दान्त जितेन्द्रियम्
विनापराधेन यत पुत्र हिंसितवान् मम ४

त्वष्टाने कहा—[illegible] पर [illegible] तपस्वी और जितेन्द्रिय रहकर तपस्या [illegible] था [illegible] भी इन्द्र ने बिना किसी [illegible] उसकी हत्या की है

तस्माच्छक्रविनाशाय वृत्रमुत्पादयाम्यहम्
लोका पश्यन्तु मे वीर्य तपसश्च बलं महत् ॥ ४९

अत मैं भी देवेन्द्रके विनाशके लिये वृत्रासुरको उत्पन्न करूँगा आज सारे लोग मेरा [illegible] तपस्या का [illegible] देखें

स च पश्यतु देवेन्द्रो दुरात्मा पापचेतन
उपस्पृश्य तत क्रुद्धस्तपस्वी सुमहायशा ४७
अग्नौ हुत्वा समुत्पाद्य घोरं वृत्रमुवाच ह
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रभावात् तपसो मम ५

[illegible] और दुरात्मा [illegible] भी मेरा [illegible] ऐसा कहकर [illegible] महायशस्वी [illegible] आचमन करके अग्निमें आहुति दे [illegible] वृत्रासुरको उत्पन्न करके उससे कहा [illegible]



[illegible] तू मे [illegible]
सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा सूर्यवैश्वानरोपम
किं करोमीति चोवाच कालसूर्य इवोदित ५४

[illegible] और [illegible] वृत्रासुर [illegible] [illegible] वह [illegible] [illegible]

शक्र जहीति चाप्युक्तो जगाम त्रिदिवं तत
ततो युद्ध समभवद् वृत्रवासवयोस्तदा १० ॥

[illegible] इन्द्र [illegible] उसके ऐसा कहनेपर वृत्रासुर स्वर्गलोकमें [illegible] वृत्रासुर [illegible] इन्द्रमें [illegible] युद्ध छिड़ गया।

संक्रुद्धयो महाघोरं प्रसक्त कुरुसत्तम
ततो जग्राह देवेन्द्र वृत्रो वीर शतक्रतुम् ४१ ॥

अपावृत्याशिषद् वत्सः शक्रः करसमन्वितः
प्रसते वृत्रेण शक्रे तु सर्वभ्रान्तातिविह्वलाः ॥ २

कुरुश्रेष्ठ ! वे दोनों योद्धाओंमें भ्र हुए न उनमेंसे अजेय वीर ... हाथ कृपित हुए वीर वृत्रासुरने सामर्थ्य इन्द्रको पकड़ लिया और ... चाकर उन्हें अपने भीतर रख लिया । ... हुए देवता ... सम्पूर्ण लोक ... गया

अहन्यस्ते महासत्त्वा विस्मिताः पूर्णमाशिनम्
विजयमानाश्च शक्रो वृत्रस्याननादपावृताम् ॥ ३
ज्वालाक्रान्तास्यशिश्रिय निष्कान्तो मस्तकं ततः
ततः समुत्थाय शीघ्रं प्रायसंस्थिता ॥ ४

तब उस महापराक्रमी ... अभिमन्त्रित ... की थी । वृत्रासुरका ... सबने ... जम्भाई लेने लगा ... फैलाया तब सब इन्द्र अपना ... सिकोड़ कर बाहर निकल आए ... उस समय ... तमाम हो गया

ततः प्रवृत्तं युद्धं तयोः ... भयानकम्
तत्र ... युद्धं वृत्रवासवयोः पुनः

इन्द्रको उसके मुखसे निकला हुआ देख सब देवता बड़े प्रसन्न हुए ... वृत्रासुर ... फिर युद्ध होने लगा ।

सरस्वतीतटेऽभूत् घोरं सुचिरं भरतर्षभ
यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो बलसमन्वितः ॥ ५६ ॥
त्वष्टृतपोबलाविष्टस्तदा शक्रो न्यवर्तत
निवृत्ते च तदा देवा विषादमगमन् परम् ॥ ५७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! सरस्वतीके तटपर होनेवाला वह घोर युद्ध बहुत ... दिनोंतक चलता रहा । ... त्वष्टाके तपोबलसे ... ओर ... इन्द्र अधिक बलशाली हो गया ... तब इन्द्र युद्धसे विमुख हो गए । इससे विमुख होनेपर सब देवताओंको बड़ा दुःख हुआ ॥ ६ ॥

समेत्य सह शक्रेण त्वष्टृतेजोविमोहिताः
अमन्त्रयन्त ते सर्वे मुनिभिः सह भारत ॥ ५८ ॥
किं कार्यमिति वै राजन् विचिन्त्य भयमोहिताः
जग्मुः सर्वे महात्मानं मनोभिर्विष्णुमव्ययम्
उपविष्टा मन्दराग्रे सर्वे वृत्रवधेप्सवः ॥ ५९ ॥

भारत ! त्वष्टाके तेजसे मोहित हुए सब देवता देवराज इन्द्र तथा ऋषियोंके साथ मिलकर सलाह करने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये । राजन् ! भयसे मोहित हुए सब देवता ... आसीन होकर मन-ही-मन अविनाशी परमात्मा भगवान् विष्णुकी शरण गये और वृत्रासुरके वधकी इच्छासे मन्दराचलके शिखरपर जाकर बैठ गये ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे वृत्रवधवर्णनं नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
इस प्रकार श्रीमद्देवीभागवत महापुराणके षष्ठ स्कन्धमें वृत्रवधवर्णन नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ।
(मूलश्लोक अधिक पाठके ६ श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

दशमोऽध्याय

इन्द्रसहित देवताओंका भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और इन्द्रका उनके आदेशानुसार वृत्रासुरसे सन्धि करके अवसर पाकर उसे मारना एवं ब्रह्महत्याके भयसे जलमें छिपना

इन्द्र उवाच

सर्वं व्याप्तमिदं देवा वृत्रेण जगदव्ययम्
न ह्यस्य सदृशं किंचित् प्रतिघाताय यद् भवेत् ॥ १ ॥

इन्द्र बोले—देवताओ ! इस वृत्रने इस सम्पूर्ण अविनाशी जगत्को व्याप्त कर लिया है । इसके प्रतीकारके लिये ऐसा कोई साधन नहीं है जो इसका सामना कर सके ।

समर्थो ह्यभवं पूर्वमसमर्थोऽस्मि साम्प्रतम्
कथं नु कार्यं भद्रं वो दुर्धर्ष स हि मे मतः ॥ २ ॥

पहले मैं सब प्रकारसे सामर्थ्यवान् था, किंतु इस समय ... नहीं रहा । आपलोगोंका कल्याण हो, बताइये कैसे यह काम करना चाहिये । मुझे तो वृत्रासुर दुर्जय प्रतीत हो रहा है ।

तेजस्वी च महात्मा च युद्धे चामितविक्रमः
ग्रसेद् त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३ ॥

वह तेजस्वी और महात्मा है । युद्धमें उसके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है । वह देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको अपना ग्रास बना सकता है ।

तस्माद् विनिश्चयमिमं शृणुध्वं त्रिदिवौकसः
विष्णोः क्षयमुपागम्य समेत्य च महात्मना
तेन सम्मन्त्र्य वेत्स्यामो वधोपायं दुरात्मनः ॥ ४ ॥

अतः देवताओ ! इस विषयमें मेरे इस निश्चयको सुनो । हमलोग भगवान् विष्णुके धाममें चलें और उन परमात्मासे मिलकर, उन्हींसे सलाह करके उस दुरात्माके वधका उपाय जानें ।

शल्य उवाच

एवमुक्ते भगवता देवा नर्सिंहादयस्तदा
शरण्यं शरणं देवं जग्मुर्विष्णुं महाबलम्

शल्य बोले—भगवान् इतना ऐसा कहने पर कपिला सहित सम्पूर्ण देवता सबके शरणदाता अत्यन्त बलवान् भगवान् विष्णुकी शरणमें गये

ऊचुश्च सर्वे देवेशं विष्णुं कमललोचनम्
त्वमेव लोकशरणमस्मान् कालभयाद् भयाद्विमोचय प्रभो

सब ... कमलनयन देवेश्वर भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करने लगे ... आप ... तीन लोकोंके सम्पूर्ण विनाशक...



भवन्तं शाश्वतं विष्णुं सर्वाधारं निरञ्जनं
वसिष्ठ मद्भ्यां महावरस्य शमन देवाधरं हर

विष्णु ... ही ... है ... अकला ... सबके ... ब्रह्मादि ... कर्म ... ब्राह्मणं ... बुद्धिने ... कि ... कथा महा ... ... देवताओं ... बनाया

त्वं प्रभुः सर्वदेवानां त्वया स्वामिन् नतम्
त्वं हि देवो महादेव सर्वलोकनमस्कृत

आप ही सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी ... आपने ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है ... आप ही अखिल-विश्वनन्दित देवता

प्रतिभेषि त्वं देवानां सेन्द्राणाममरोत्तम
तस्मात् त्वामभिद् मद्य तथासुरसूदन

पुरुषोत्तम ... आप इन्द्र ... सम्पूर्ण देवता ... आनन्द ही असुरसूदन ... ... कर लिया

विष्णु उवाच

भवद्भिः कमलेन मे भवन्तां हितमुत्तमम्
नमस्कृत्य महामि वरान् अभिप्रीति

भगवान् विष्णु बोले ... में ... उत्तम ... तुम सबको एक उपाय ... ... प्रभावयुक्त

गत्वा ... यथा ... प्रथामी ... ...
साम ... प्रयुक्तस्य तत ... ...

तुम ... ... जहा
... ... नाथ
कर ... ...

भविष्यति जयो देवा ... मम ... उपाय
... प्रवक्ष्यामि ... ...

देवताओं ... ... ही ... नहीं
... आप ... ...

... ... सुरगणा
... ...

... ...
... और ... ... इनमें
... ...

उव

एवमुक्ते तु देवेन ... ...
... ...

शल्य कहते हैं ... भगवान् विष्णु ... कहनेपर
... ... करके
... ...

... ... महौजसम्
... ... दिशा ...
... ... सूर्यायुतसमप्रभम्
... ...

... ... आप ... तब
... ...
... ... और ... अपना ... ...
... ... सम्पूर्ण देवताओं ... ...
... ...

त्वमप्येष ततोऽभ्येत्य कृपमूलं प्रियं वच ।
श्लाघन्नुवाचेदं सर्वं तेजसा तव दुर्जय ॥ १७ ॥

उस समय प्रजाजनोंके पास जाकर ऋषियोंने उनसे यह प्रिय वचन कहा—दुर्जय वीर! तुम्हारे तेजसे यह सारा जगत् व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥

न च शक्नोषि लोकेषु वासव वसितुं वर ।
युध्यतोऽद्यापि च कालेऽस्मिन् युद्धमहर्निशम् ॥ १८ ॥

लोकलोकोंमें श्रेष्ठ पुत्र! इन्द्रके साथ तुम इस समय भी नहीं रह सकते। तुम दोनोंका युद्ध करते बहुत समय बीत गया है ॥ १८ ॥

पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
सख्यं भवतु ते पुत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १९ ॥

देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सारी प्रजा इस युद्धसे पीड़ित हो रही है। अतः पुत्र! हम चाहते हैं कि इन्द्रके साथ तुम्हारी सदाके लिये मित्रता हो जाय ॥ १९ ॥

अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रलोकं च शाश्वतान् ।
ऋषिवाक्यं निशम्याथ स तु वृत्रो महाबलः ॥ २० ॥
उवाच तान् मुनीन् सर्वान् प्रणम्य शिरसासुरः ।
सर्वे यूयं महाभागा गन्धर्वाश्चैव सर्वशः ॥ २१ ॥
यद् ब्रूथ तच्छ्रुतं सर्वं ममापि शृणुतानघाः ।
सन्धिः कथं वै भविता मम शक्रस्य चोभयोः ।
तेजसोर्हि द्वयोर्देवाः सख्यं वै भविता कथम् ॥ २२ ॥

इससे तुम्हें सुख मिलेगा और तुम्हें सनातन लोकोंकी भी प्राप्ति होती रहेगा। ऋषियोंकी यह बात सुनकर महाबली वृत्रासुरने उन सबको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'महाभाग देवताओ! महर्षियों तथा गन्धर्वो! आप सब लोग जो कुछ कह रहे हैं, वह सब मैंने सुन लिया। निष्पाप देवगण! अब मेरी भी बात आपलोग सुनें। मुझमें और इन्द्रमें सन्धि कैसे होगी? दो तेजस्वी पुरुषोंमें मैत्रीका सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित होगा?' ॥ २०—२२ ॥

ऋषय ऊचुः

सकृत् सतां सङ्गतं लिप्सितव्यं
ततः परं भविता भव्यमेव ।
नातिक्रमेत् सत्पुरुषेण सङ्गतं
तस्मात् सतां सङ्गतं लिप्सितव्यम् ॥ २३ ॥

ऋषि बोले—एक बार साधु पुरुषोंकी मित्रताकी अभिलाषा अवश्य रखनी चाहिये। साधु पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर उससे परम कल्याण ही होगा। साधु पुरुषोंके सङ्गकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। अतः साधुसंग मिलनेकी अवश्य इच्छा करे ॥ २३ ॥

दृढं सतां सङ्गतं चापि नित्यं
ब्रूयाच्चार्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः ।
महार्थवत् सत्पुरुषेण सङ्गतं
तस्मात् सन्तं न जिघांसेत धीरः ॥ २४ ॥

सज्जनोंका सङ्ग सुदृढ़ एवं चिरस्थायी होता है। धीर सन्त-महात्मा सङ्कटके समय हितकर कर्तव्यका ही उपदेश देते हैं। साधु पुरुषोंका सङ्ग महान् अभीष्ट वस्तुओंका साधक होता है। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह सज्जनोंको नष्ट करनेकी इच्छा न करे ॥ २४ ॥

इन्द्रः सतां सम्मतश्च निवासश्च महात्मनाम् ।
सत्यवादी ह्यदीनश्च धर्मवित् सूक्ष्मनिश्चयः ॥ २५ ॥

इन्द्र सत्पुरुषोंके सम्माननीय हैं। महात्मा पुरुषोंके आश्रय हैं। वे सत्यवादी, अनिन्दनीय, धर्मज्ञ तथा सूक्ष्म बुद्धिवाले हैं ॥ २५ ॥

तेन ते सह शक्रेण सन्धिर्भवतु शाश्वतः ।
एवं विश्वासमागच्छ मा ते भूद् बुद्धिरन्यथा ॥ २६ ॥

ऐसे इन्द्रके साथ तुम्हारी सदाके लिये सन्धि हो जाय। इस प्रकार तुम उनपर विश्वास प्राप्त करो। तुम्हें इसके विपरीत कोई विचार नहीं रखना चाहिये ॥ २६ ॥

शल्य उवाच

महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महाद्युतिः ।
अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ २७ ॥

शल्य कहते हैं—राजन्! महर्षियोंकी यह बात सुनकर महातेजस्वी वृत्रने उनसे कहा—'भगवन्! आप-जैसे तपस्वी महात्मा अवश्य ही मेरे लिये सम्माननीय हैं ॥ २७ ॥

ब्रवीमि यदहं देवास्तत् सर्वं क्रियते यदि ।
ततः सर्वं करिष्यामि यदूचुर्मां द्विजर्षभाः ॥ २८ ॥

देवताओ! मैं अभी जो कुछ कह रहा हूँ, वह सब यदि आपलोग स्वीकार कर लें तो इन श्रेष्ठ महर्षियोंने मुझसे जो आदेश दिये हैं, उन सबका मैं अवश्य पालन करूँगा ॥ २८ ॥

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ।
न शस्त्रेण न वज्रेण न दिवा न तथा निशि ॥ २९ ॥
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नित्यदा ॥ ३० ॥

विप्रवरो! मैं देवताओंसहित इन्द्रद्वारा न सूखी वस्तुसे, न गीली वस्तुसे, न पत्थरसे, न लकड़ीसे, न शस्त्रसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें ही मारा जाऊँ। इस शर्तपर देवराजके साथ सदाके लिये मेरी सन्धि हो, तो मैं उसे पसंद करता हूँ ॥ २९-३० ॥

बाढमित्येव ऋषयस्तमूचुर्भरतर्षभ ।
एवं वृत्ते तु सन्धाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥ ३१ ॥

बलके अब भूमिमें उनसे बहुत भयका का [illegible] प्रकार [illegible] हो [illegible] वृत्रासुरको [illegible] प्रसन्नता हुई

शुक्रः सहानवसापि शक्रो हर्षेणमन्वित
वृत्रस्य वधमयुक्तानुपायमन्वचिन्तयत् ३२

इन्द्र भी हर्षमें आकर [illegible] परन्तु वे इनके वधकालभी उपायोंको [illegible] रहते थे

छिद्रान्वेषी समुद्विग्न सदा वसति वृत्रहा
स कदाचित् समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ३३

वृत्रासुरके छिद्र [illegible] करते हुए देवराज [illegible] एक दिन उन्होंने समुद्रके ऊपर उस महान असुरको देखा

सन्ध्याकाल उपवृत्ते मुहूर्ते चातिदारुणे
तत सञ्चिन्त्य भगवान् वरदानं महात्मनः ३४
सन्ध्येयं वर्तते [illegible] रात्रिर्दिवसो न च
वृत्रश्चावश्यवध्योऽयं मम सर्वहरो रिपु ३
यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महासुरम्
महाबलं महाकायं न मे श्रेयो भविष्यति ३७

[illegible] वरदानका [illegible] मुहूर्त [illegible] विचार करने [illegible] वृत्रासुर [illegible] महान असुर [illegible]

एवं सञ्चिन्तयन्नेव शक्रो विष्णुमनुस्मरन्
अथ फेनं तदापश्यत् समुद्रे पर्वतोपमम् ३७

इस प्रकार [illegible] इन्द्र [illegible] विष्णुका बार बार स्मरण करते [illegible] उनकी दृष्टि समुद्रमें उठते हुए पर्वताकार फेनपर पड़ी

नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा
एनं क्षेप्स्यामि वृत्रस्य क्षणादेव नशिष्यति ३

उसे देखकर इन्होंने मन [illegible] यह न सूखा है न आर्द्र [illegible] वृत्रासुरपर [illegible] हो जायगा

सवज्रमथ फेनं त क्षिप्रं वृत्रे निसृष्टवान्
प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ३९

यह सोचकर इन्द्रने [illegible] वृत्रासुरका

देवता प्रहार किया उस [illegible] भगवान् विष्णुने [illegible]



फेनमें प्रवेश कर [illegible] वृत्रासुरको [illegible]

निहते तु तदा वृत्रे दिशो वितिमिराऽभवन्
प्रववौ च शिवो वायु प्रजाश्च जहृषुस्तथा ४०

वृत्रासुरके [illegible] दिशाओंका [illegible] और सम्पूर्ण प्रजामें [illegible]

ततो देवा सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा
ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन् विविधै स्तवै ४१

[illegible] तथा [illegible] स्तुति [illegible]

नमस्कार्य सर्वभूत [illegible]
[illegible] दैत्य ॥ ४

[illegible] और [illegible] और [illegible]

विष्णु त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास [illegible]
ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ४३
अनृतेनाभिभूत [illegible] परमदुर्मना
ब्रह्मवध्याभिभूतश्च स पूर्व [illegible] ॥ ४४ ॥

[illegible] और [illegible] प्रकार देवता [illegible]

को भय देनेवाले महापराक्रमी वृत्रासुरके मारे जानेपर मिथ्या आचरणसे व्याकुल हुए इन्द्र मन-ही-मन दुःखी हो गये ... उन्हें ... था।

स लोकान्तमासाद्य नष्टसंज्ञो विचेतनः ।
न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतः स्वकल्मषैः ॥ ५ ॥

वे सम्पूर्ण लोकोंकी अन्तिम सीमापर जाकर बेसुध और अचेत होकर रहने लगे। वहाँ अपने ही पापोंसे पीड़ित हुए देवराजका किसीको पता नहीं चला ॥ ५ ॥

प्रतिच्छन्नोऽवसच्चाप्सु चेष्टमान इवोरगः ।
ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥ ६ ॥
भूमिः प्रध्वस्तसंकाशा निर्वृक्षा शुष्ककानना ।
विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि च ॥ ७ ॥

वे जलमें छिपकर साँपकी भाँति पानीमें ही छिपकर रहने लगे। ब्रह्महत्याके भयसे पीड़ित होकर जब देवराज इन्द्र अदृश्य हो गये, तब यह पृथ्वी नष्ट-सी हो गयी, यहाँके वृक्ष उजड़ गये, जंगल सूख गये, नदियोंका स्रोत छिन्न-भिन्न हो गया और सरोवरोंका जल सूख गया ॥ ६-७ ॥

संक्षोभश्चापि सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत् ।
देवाश्चापि भृशं त्रस्तास्तथा सर्वे महर्षयः ॥ ८ ॥

वर्षा न होनेसे समस्त प्राणियोंमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। देवता तथा सम्पूर्ण महर्षि भी अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ ८ ॥

अराजकं जगत् सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ।
ततो भीताऽभवन् देवाः को नो राजा भवेदिति ॥ ९ ॥
दिवि देवर्षयश्चापि देवराजविनाकृताः ।
न स्म कश्चन देवानां राज्ये वै कुरुते मतिम् ॥ १० ॥

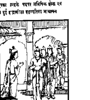
सम्पूर्ण जगत्में अराजकताके कारण भाँति-भाँतिके उपद्रव होने लगे। स्वर्गमें देवराज इन्द्रके बिना देवता तथा देवर्षि भी भयभीत होकर सोचने लगे- अब हमारा राजा कौन होगा? देवताओंमेंसे कोई भी स्वर्गके राज्यका भार लेनेका विचार नहीं करता था ॥ ९-१० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने इन्द्रविजये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें पुरोहितयानविषयक इन्द्रविजयविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

देवताओं तथा ऋषियोंके अनुरोधसे राजा नहुषका इन्द्रके पदपर अभिषिक्त होना एवं काम-भोगमें आसक्त होना और चिन्तामें पड़ी हुई इन्द्राणीका बृहस्पतिका आश्वासन



शल्य उवाच

ऋषयोऽथाब्रुवन् सर्वे देवाश्च त्रिदिवेश्वराः ।
अयं वै नहुषः श्रीमान् देवराज्येऽभिषिच्यताम् ।
तेजस्वी च यशस्वी च धार्मिकश्चैव नित्यदा ॥ १ ॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! इस प्रकार जब अराजकता हो गयी, तब ऋषियों तथा सम्पूर्ण देवताओंने परस्पर विचार करके कहा—ये जो श्रीमान् नहुष हैं, इन्हींको देवराजके पदपर अभिषिक्त किया जाय; क्योंकि ये तेजस्वी, यशस्वी तथा सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं ॥ १ ॥

ते गत्वा त्वब्रुवन् सर्वे राजा नो भव पार्थिव ।
स तानुवाच नहुषो देवानृषिगणांस्तथा ।
पितृभिः सहितान् राजन् परीप्सन् हितमात्मनः ॥ २ ॥

ऐसा निश्चय करके वे सब लोग राजा नहुषके पास जाकर बोले—पृथ्वीपते! आप हमारे राजा होइये। राजन्! तब नहुषने पितरोंसहित उन देवताओं तथा ऋषियोंसे अपने हितकी इच्छासे कहा— ॥ २ ॥

दुर्बलोऽहं न मे शक्तिर्भवतां परिपालने।
बलवाञ्जायते राजा बलं शक्रे हि नित्यदा ॥ ४ ॥

मैं तो दुर्बल हूँ, मुझमें आपलोगोंकी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं है। बलवान् पुरुष ही राजा होता है। इन्द्रमें ही बलकी नित्य सत्ता है ॥ ४ ॥

तमब्रुवन् पुनः सर्वे देवाः सर्षिपुरोगमाः।
अस्माकं तपसा युक्तः पाहि राज्यं त्रिविष्टपे ॥ ५ ॥
परस्परभयं घोरमस्माकं हि न संशयः।
अभिषिच्यस्व राजेन्द्र भव राजा त्रिविष्टपे ॥ ६ ॥

यह सुनकर समस्त देवता तथा ऋषि पुनः उनसे बोले—'राजेन्द्र! आप हमारी तपस्यासे संयुक्त हो स्वर्गके राज्यका पालन कीजिये। हमलोगोंमें प्रत्येकको एक-दूसरेसे घोर भय बना रहता है, इसमें संशय नहीं है। अतः आप अपना अभिषेक कराइये और स्वर्गके राजा होइये ॥ ५-६ ॥

देवदानवयक्षाणामृषीणां रक्षसां तथा।
पितृगन्धर्वभूतानां चक्षुर्विषयवर्तिनाम् ॥ ७ ॥
तेज आदास्यसे पश्यन् बलवांश्च भविष्यसि।
धर्मं पुरस्कृत्य सदा सर्वलोकाधिपो भव ॥ ८ ॥

देवता, दानव, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितर, गन्धर्व और भूत जो भी आपके नेत्रोंके सामने आ जायँगे, उन्हें देखते ही आप उनका तेज हर लेंगे और बलवान् हो जायँगे; अतः सदा धर्मको सामने रखते हुए आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति होइये ॥ ७-८ ॥

महर्षींश्चापि देवांश्च गोपायस्व त्रिविष्टपे।
अभिषिक्तः स राजेन्द्र ततो राजा त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥

आप स्वर्गमें रहकर ब्रह्मर्षियों तथा देवताओंका पालन कीजिये।' युधिष्ठिर! तदनन्तर राजा नहुषका स्वर्गमें इन्द्रके पदपर अभिषेक हुआ ॥ ९ ॥

धर्मं पुरस्कृत्य तदा सर्वलोकाधिपोऽभवत्।
सुदुर्लभं वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे ॥ १० ॥
धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा समपद्यत।

धर्मको आगे रखकर उस समय राजा नहुष सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति हो गये। वे परम दुर्लभ वर पाकर स्वर्गके राज्यको हस्तगत करके निरन्तर धर्मपरायण रहते हुए भी कामभोगोंमें आसक्त हो गये ॥ १०½ ॥

देवोद्यानेषु सर्वेषु नन्दनोपवनेषु च ॥ ११ ॥
कैलासे हिमवत्पृष्ठे मन्दरे श्वेतपर्वते।
सह्ये महेन्द्रे मलये समुद्रेषु सरित्सु च ॥ १२ ॥
अप्सरोभिः परिवृतो देवकन्यासमावृतः।
नहुषो देवराजोऽथ क्रीडन् बहुविधं तदा ॥ १३ ॥
शृण्वन् दिव्या बहुविधाः कथाः श्रुतिमनोहराः।
वादित्राणि च सर्वाणि गीतं च मधुरस्वनम् ॥ १४ ॥

देवराज नहुष सम्पूर्ण देवोद्यानों, नन्दनवनके उपवनों, कैलासमें, हिमालयके शिखरपर, मन्दराचल, श्वेतगिरि, सह्य, महेन्द्र तथा मलयपर्वतपर एवं समुद्रों और सरिताओंमें अप्सराओं तथा देवकन्याओंके साथ भाँति-भाँतिकी क्रीड़ा करते थे। कानों और मनको आकर्षित करनेवाली नाना प्रकारकी दिव्य कथाएँ सुनते थे तथा सब प्रकारके बाजों और मधुर स्वरमें गाये जानेवाले गीतोंका आनन्द लेते थे ॥ ११-१४ ॥

विश्वावसुर्नारदश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
ऋतवः षट् च देवेन्द्रं मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥ १५ ॥

विश्वावसु, नारद, गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय तथा छहों ऋतुएँ शरीर धारण करके देवेन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती थीं ॥ १५ ॥

मारुतः सुरभिर्वाति मनोज्ञः सुखशीतलः।
एवं च क्रीडतस्तस्य नहुषस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥
सम्प्राप्ता दर्शनं देवी शक्रस्य महिषी प्रिया।

उनके लिये वायु मनोहर, सुखद, शीतल और सुगन्धित होकर बहते थे। इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए दुरात्मा नहुषकी दृष्टि एक दिन देवराज इन्द्रकी प्यारी महारानी शचीपर पड़ी ॥ १६½ ॥

स तां सन्दृश्य दुष्टात्मा प्राह सर्वान् सभासदः ॥ १७ ॥
इन्द्रस्य महिषी देवी कस्मान्मां नोपतिष्ठति।
अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ १८ ॥
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम्।

उन्हें देखकर दुरात्मा नहुषने समस्त सभासदोंसे कहा—'इन्द्रकी महारानी शची मेरी सेवामें क्यों नहीं उपस्थित होती? मैं देवताओंका इन्द्र हूँ और सम्पूर्ण लोकोंका अधीश्वर हूँ। अतः शचीदेवी आज मेरे महलमें शीघ्र पधारें' ॥ १७-१८½ ॥

तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥ १९ ॥
रक्ष मां नहुषाद् ब्रह्मंस्तवास्मि शरणं गता।
सर्वलक्षणसम्पन्नां ब्रह्मंस्त्वं मां प्रभाषसे ॥ २० ॥
देवराजस्य दयितामत्यन्तं सुखभागिनीम्।
अवैधव्येन युक्तां चाप्येकपत्नीं पतिव्रताम् ॥ २१ ॥

यह सुनकर शचीदेवी मन-ही-मन बहुत दुःखी हुईं और बृहस्पतिसे बोलीं—'ब्रह्मन्! मैं आपकी शरणमें आयी हूँ, आप नहुषसे मेरी रक्षा कीजिये। विप्रवर! आप मुझसे कहा



करते हैं कि ... उनके ... इन्द्रकी ... एकपत्नी और पतिव्रता

... ममुपस्थितम्
तोषपूर्वं च आचक्ष्व नृप मे किल्बिषं ...

तस्मादेतद् भवेत् सत्यं ... प्रियभाषक

... अपनी पत्नीको ... देखूँगी ... नहीं ... है ... आपके ... सत्य होना चाहिये

बृहस्पतिरुवाच शचीं भयमोहिताम्
यदुक्तासि मया देवि सत्यं तद् भविता ध्रुवम् ॥
... नचिरात् ...
... सत्यमेतद् ब्रवीमि ते
... शक्रेण न चिराद् भयमीक्षसे ॥

यह सुनकर बृहस्पतिने ... शचीसे कहा—देवि! मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह ... तुम शीघ्र ही देवराज इन्द्रको यहाँ ... सत्य ... मैं ... कहता हूँ, थोड़े ही ... तुम्हें इन्द्रसे मिलन होगा।

... नहुष शक्राणीं शरणं गताम्
बृहस्पतिरङ्गिरसः ... नृपसत्तमः

नहुष ... इन्द्राणी ... बृहस्पतिके ... गयी ... सुनी ...

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि ... एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें ... ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

देव-नहुष-संवाद, बृहस्पतिके द्वारा इन्द्राणीकी रक्षा तथा इन्द्राणीका नहुषके पास कुछ समयकी अवधि माँगनेके लिये जाना

उवाच

क्रुद्धं तु नहुषं दृष्ट्वा देवा ऋषिपुरोगमाः
अब्रुवन् देवराजानं नहुषं घोरदर्शनम् ॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! नहुषको कुपित जानकर ऋषि ... सहित ... देवता उस घोर ... नहुषके पास गये और ... देवताओंने कहा ...

देवराज जहि क्रोधं त्वयि क्रुद्धे जगद् विभो
त्रस्तं सासुरगन्धर्वं सकिंनरमहोरगम् ॥

देवराज! आप क्रोध ... आपके कुपित होनेसे असुर, गन्धर्व, किन्नर और बड़े-बड़े नागोंसहित

... सम्पूर्ण जगत् भयभीत हो गया है ...

जहि क्रोधमिमं साधो न कुप्यन्ति भवद्विधाः
परस्य पत्नी सा देवी प्रसीदस्व सुरेश्वर ॥

साधो! आप इस क्रोधको त्याग दीजिये। आप-जैसे ... पुरुष ... क्रोध नहीं करते हैं ... वह देवी दूसरेकी पत्नी हैं।

निवर्तय मनः पापात् परदाराभिमर्शनात्
देवराजोऽसि भद्रं ते प्रजा धर्मेण पालय ॥

... परस्त्रीका स्पर्श ... पापसे अपने मनको हटाइये ... आप देवताओंके राजा हैं, आपका कल्याण हो। आप धर्मपूर्वक प्रजाका पालन कीजिये।

एवमुक्तो न जग्राह नहुषः काममोहितः
अथ देवानुवाचेदमिन्द्रं प्रति सुराधिपः ॥ ५ ॥

उनके ऐसा कहनेपर भी काममोहित हुए नहुषने उनकी बात नहीं मानी। तब उसने देवताओंसे इन्द्रके विषयमें इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

अहल्या धर्षिता पूर्वमृषिपत्नी यशस्विनी
जीवतो भर्तुरिन्द्रेण स वः किं न निवारितः ॥ ६ ॥

देवताओ! पूर्वकालमें इन्द्रने यशस्विनी ऋषिपत्नी अहल्याका उनके पतिके जीते-जी सतीत्व नष्ट किया था, उस समय आपलोगोंने उन्हें क्यों नहीं रोका? ॥ ६ ॥

बहूनि च नृशंसानि कृतानीन्द्रेण वै पुरा
वैधर्म्याण्युपधाश्चैव स वः किं न निवारितः ॥ ७ ॥

पूर्वकालमें इन्द्रने बहुत-से क्रूरतापूर्ण कर्म किये हैं, अनेक अधार्मिक कृत्य तथा छल-कपट किये हैं, उस समय आपलोगोंने उन्हें क्यों नहीं रोका था? ॥ ७ ॥

उपतिष्ठतु देवी मामेतदस्या हितं परम्
युष्माकं च सदा देवाः शिवमेवं भविष्यति ॥ ८ ॥

शची देवी मेरी सेवामें उपस्थित हों, इसीमें उनका परम हित है। देवताओ! ऐसा होनेपर ही सदा तुमलोगोंका कल्याण होगा ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

इन्द्राणीमानयिष्यामो यथेच्छसि दिवस्पते
जहि क्रोधमिमं वीर प्रीतो भव सुरेश्वर ॥ ९ ॥

देवता बोले—स्वर्गलोकके स्वामी! आपकी जैसी इच्छा है, उसके अनुसार हमलोग इन्द्राणीको आपकी सेवामें ले आयेंगे। वीर! आप यह क्रोध छोड़िये और प्रसन्न होइये ॥ ९ ॥

शल्य उवाच

इत्युक्त्वा ते तदा देवा ऋषिभिः सह भारत
जग्मुर्बृहस्पतिं वक्तुमिन्द्राणीं चाशुभं वचः ॥ १० ॥

शल्यने कहा—युधिष्ठिर! नहुषसे ऐसा कहकर उस समय देवता ऋषियोंके साथ इन्द्राणीसे यह अशुभ वचन कहनेके लिये बृहस्पतिजीके पास गये ॥ १० ॥

जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि
दत्ताभयां च विप्रेन्द्र त्वया देवर्षिसत्तम ॥ ११ ॥

उन्होंने कहा—देवर्षिप्रवर विप्रेन्द्र! हमें पता लगा है कि इन्द्राणी आपकी शरणमें आयी हैं और आपके ही भवनमें रह रही हैं। आपने उन्हें अभयदान दे रखा है ॥ ११ ॥

ते त्वां देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च महाद्युते
प्रसादयन्ति चेन्द्राणी नहुषाय प्रदीयताम् ॥ १२ ॥

महाद्युते! अब ये देवता, गन्धर्व और ऋषि आपको इस बातके लिये प्रसन्न करना चाहते हैं कि आप इन्द्राणीको राजा नहुषकी सेवामें अर्पित कर दें ॥ १२ ॥

इन्द्राद् विशिष्टो नहुषो देवराजो महाद्युतिः
वृणोत्वियं वरारोहा भर्तृत्वे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥

इस समय महातेजस्वी नहुष देवताओंके राजा हैं, अतः इन्द्रसे बढ़कर हैं। सुन्दरी इन्द्राणी इन्हें पतिरूपमें स्वीकार कर लें ॥ १३ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी बाष्पमुत्सृज्य सस्वरम्
उवाच रुदती दीना बृहस्पतिमिदं वचः ॥ १४ ॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर इन्द्राणी देवी आँसू बहाती हुई फूट-फूटकर रोने लगीं और दीनभावसे बृहस्पतिजीसे इस प्रकार बोलीं ॥ १४ ॥

नाहमिच्छामि नहुषं पतिं देवर्षिसत्तम
शरणागतास्मि ते ब्रह्मंस्त्राहि मां महतो भयात् ॥ १५ ॥

देवर्षिप्रवर! मैं नहुषको अपना पति बनाना नहीं चाहती। ब्रह्मन्! मैं आपकी शरणमें आयी हूँ, आप इस महान् भयसे मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥

बृहस्पतिरुवाच

शरणागतां न त्यक्ष्यामि इन्द्राणि मम निश्चयः
धर्मज्ञे धर्मशीले च न त्यजेयमनिन्दिते ॥ १६ ॥

बृहस्पतिने कहा—इन्द्राणी! मैं शरणागतका त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा निश्चय है। धर्मको जाननेवाली धर्मपरायण सती-साध्वी देवि! मैं तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा ॥ १६ ॥

अकार्यं कर्तुमिच्छामि ब्राह्मणः सन् विशेषतः
श्रुतधर्मा सत्यशीलो जानन् धर्मानुशासनम् ॥ १७ ॥
नाहमेतत् करिष्यामि गच्छ त्वं वै शुभानने
अस्मिन्नर्थे पुरा गीतं ब्रह्मणा श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥

मैं ब्राह्मण हूँ, विशेषतः धर्मको जानता हूँ, सत्यमें मेरी निष्ठा है और धर्मके अनुशासनका भी मुझे ज्ञान है; अतः मैं यह न करने योग्य कार्य नहीं कर सकता। शुभानने! तुम जाओ, मैं ऐसा नहीं करूँगा। इस विषयमें पूर्वकालमें ब्रह्माजीके द्वारा गाया हुआ गीत सुनिये ॥ १७-१८ ॥

न तस्य बीजं रोहति रोहकाले
न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे
न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन् ॥ १९ ॥

जो भयभीत होकर शरणमें आये हुए प्राणीको उसके शत्रुके हाथमें दे देता है, उसका बोया हुआ बीज समयपर नहीं जमता है। उसके यहाँ ठीक समयपर वर्षा नहीं होती और वह जब कभी अपनी रक्षा चाहता है, तो उसे कोई रक्षक नहीं मिलता है ॥ १९ ॥

मोघमन्नं विन्दति चाप्यचेताः
स्वर्गाल्लोकाद् भ्रश्यति नष्टचेष्टः ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै
न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः ॥ २० ॥

जो भयभीत शरणागतको शत्रुके हाथमें सौंप देता है, वह दुर्बलचित्त मानव जो अन्न ग्रहण करता है, वह व्यर्थ हो जाता है। उसके सारे उद्यम नष्ट हो जाते हैं और वह स्वर्गलोकसे नीचे गिर जाता है। इतना ही नहीं, देवता लोग उसके दिये हुए हविष्यको स्वीकार नहीं करते हैं ॥ २० ॥

प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले
सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे
सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥ २१ ॥

उसकी संतान असमयमें ही मर जाती है। उसके पितर सदा नरकमें निवास करते हैं। जो भयभीत शरणागतको शत्रुके हाथमें दे देता है, उसपर इन्द्र आदि देवता वज्रका प्रहार करते हैं ॥ २१ ॥

एतदेवं विजानन् वै न दास्यामि शचीमिमाम् ।
इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार शास्त्रोंके उपदेशके अनुसार शरणागतके त्यागसे होनेवाले अधर्मको मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ, अतः जो सम्पूर्ण विश्वमें इन्द्रकी पत्नी तथा देवराजकी प्यारी पटरानीके रूपमें विख्यात हैं, उन्हीं इन शचीदेवीको मैं नहुषके हाथमें नहीं दूँगा ॥ २२ ॥

अस्या हितं भवेद् यच्च मम चापि हितं भवेत् ।
क्रियतां तत् सुरश्रेष्ठा न हि दास्याम्यहं शचीम् ॥ २३ ॥

श्रेष्ठ देवताओ! जो इनके लिये हितकर हो, जिससे मेरा भी हित हो, वह कार्य आपलोग करें। मैं शचीको कदापि नहीं दूँगा ॥ २३ ॥

शल्य उवाच

अथ देवास्तमेवार्थं गुरुमाहुरिदं वचः ।
कथं सुनीतं तु भवेन्मन्त्रयस्व बृहस्पते ॥ २४ ॥

शल्य कहते हैं—राजन्! तब देवताओंने उन्हीं गुरुसे इस प्रकार कहा—'बृहस्पते! आप ही सलाह दीजिये कि किस उपायका अवलम्बन करनेसे शुभ परिणाम होगा?' ॥ २४ ॥

बृहस्पतिरुवाच

नहुषं याचतां देवी किंचित्कालान्तरं शुभा ।
इन्द्राणीहितमेतद्धि तथास्माकं भविष्यति ॥ २५ ॥

बृहस्पतिजीने कहा—देवगण! शुभलक्षणा शची देवी नहुषसे कुछ समयकी अवधि माँगें। इससे इनका और हमारा भी हित होगा ॥ २५ ॥

बहुविघ्नकरः कालः कालः कालं नयिष्यति ।
गर्वितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात् ॥ २६ ॥

देवताओ! समय अनेक प्रकारके विघ्नोंसे भरा होता है। इस समय नहुष आपलोगोंके वरदानके प्रभावसे बलवान् और गर्वीला हो गया है। परंतु वही उसे कालके गालमें खींच लेगा ॥ २६ ॥

शल्य उवाच

ततस्तेन तथोक्ते तु प्रीता वाक्यमथाब्रुवन् ।
ब्रह्मन् साध्विदमुक्तं ते हितं सर्वदिवौकसाम् ॥ २७ ॥

शल्य कहते हैं—राजन्! उनके इस प्रकार सलाह देनेपर देवता बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! आपने बहुत अच्छी बात कही है, इसमें सम्पूर्ण देवताओंका हित है ॥ २७ ॥

एवमेतद् द्विजश्रेष्ठ देवी चेयं प्रसाद्यताम् ।
ततः समस्ता इन्द्राणीं देवाश्चाग्निपुरोगमाः ।
ऊचुर्वचनमव्यग्रा लोकानां हितकाम्यया ॥ २८ ॥

द्विजश्रेष्ठ! इसी बातके लिये शचीदेवीको राजी कीजिये।' तदनन्तर अग्नि आदि सब देवता इन्द्राणीके पास जा सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये शान्तभावसे इस प्रकार बोले ॥ २८ ॥

देवा ऊचुः

त्वया जगदिदं सर्वं धृतं स्थावरजङ्गमम् ।
एकपत्न्यसि सत्या च गच्छस्व नहुषं प्रति ॥ २९ ॥
क्षिप्रं त्वामभिकामश्च विनशिष्यति पार्थिवः ।
नहुषो देवि शक्रश्च सुरैश्वर्यमवाप्स्यति ॥ ३० ॥

देवता बोले—देवि! यह समस्त चराचर जगत् तुमने ही धारण कर रखा है, क्योंकि तुम पतिव्रता और सत्यपरायणा हो, अतः तुम नहुषके पास चलो। देवि! तुम्हारी कामना करनेके कारण पापी नहुष शीघ्र नष्ट हो जायगा और इन्द्र पुनः अपने देवसाम्राज्यको प्राप्त कर लेंगे ॥ २९-३० ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा इन्द्राणी कार्यसिद्धये ।
अभ्यगच्छत सव्रीडा नहुषं घोरदर्शनम् ॥ ३१ ॥

अपनी कार्यसिद्धिके लिये ऐसा निश्चय करके इन्द्राणी

लगकर हाँफनेवाले नहुषने ... कामसे ... वहाँ
वहाँ सा नहुषस्यापि यथाकालमतिष्ठताम्
समाह्वयत शुक्लमा कामोपहतचेतसम्

नया अवस्था और सुन्दर रूप ... इन्द्राणीको देखकर दुरात्मा नहुष ... प्रसन्न हुआ ... उसकी बुद्धि मारी गयी थी ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीसत्यानुपालने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें इन्द्राणीके सत्यका पालनविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ

त्रयोदशोऽध्याय

नहुषका इन्द्राणीसे कुछ समयकी अवधि देना, इन्द्रका ब्रह्महत्यासे उद्धार तथा शचीद्वारा रात्रिदेवीकी उपासना

शल्य उवाच

अथ तामब्रवीद् दृष्ट्वा नहुषो देवराट् तदा
त्रयाणामपि लोकानामहमिन्द्रः शुचिस्मिते ॥ १ ॥
भजस्व मां वरारोहे पतित्वे वरवर्णिनि

शल्य कहते हैं युधिष्ठिर ... नहुषने इन्द्राणीको देखकर कहा ... मैं तीनों लोकोंका स्वामी इन्द्र हूँ ... तुम मुझे अपना पति बना लो

एवमुक्ता तु सा देवी नहुषेण पतिव्रता ॥ २ ॥
प्रावेपत भयोद्विग्ना प्रवाते कदली यथा
नमस्य सा हि ब्रह्माणं शिरसा तु कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥
देवराजमथोवाच नहुषं घोरदर्शनम्
कालमिच्छाम्यहं लब्धुं त्वत्तः कंचित् सुरेश्वर ॥ ४ ॥

नहुषके ऐसा कहनेपर वह ... देवी ... वायुसे हिलती हुई केलेके समान भयसे काँपने लगी ... मस्तक झुकाकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया और ... देवराज नहुषसे हाथ जोड़कर कहा ... मैं आपसे कुछ समयकी अवधि लेना चाहती हूँ

न हि विज्ञायते शक्रः किं नु वा क्व नु वा गतः
तत्त्वमेतत् तु विज्ञाय यदि न ज्ञायते प्रभो
ततोऽहं त्वामुपस्थास्ये सत्यमेतद् ब्रवीमि ते
एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ५ ॥

अभी ... पता नहीं है कि देवेन्द्र किस अवस्थामें पड़े हैं अथवा कहाँ चले गये हैं ... इसका ठीक-ठीक पता लगानेपर यदि ... बात मालूम नहीं हो सकी ... तो मैं आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगी ... यह मैं आपसे सत्य कहती हूँ ... इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर नहुषको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ६ ॥

नहुष उवाच

एवं भवतु सुश्रोणि यथा मामभिभाषसे
ज्ञात्वा चागमनं कार्यं सत्यमेतदनुस्मरेः ॥ ७ ॥

नहुष बोले सुन्दरी ... तुम मुझसे जैसा कह रही हो ... ऐसा ही हो ... इस सत्यको याद रखना ॥ ७ ॥

नहुषेण विसृष्टा च निश्चक्राम ततः शुभा
बृहस्पतिनिकेतं च सा जगाम यशस्विनी ॥ ८ ॥

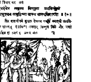
नहुषसे विदा लेकर शुभलक्षणा यशस्विनी देवी शची उस स्थानसे निकलीं और ... बृहस्पतिजीके भवनमें चली गयीं

तस्याः संश्रुत्य च वचो देवाः साग्निपुरोगमाः
चिन्तयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं राजसत्तम ॥ ९ ॥

नृपश्रेष्ठ ... इन्द्राणीकी बात सुनकर अग्नि आदि सब देवता एकचित्त होकर इन्द्रकी प्राप्तिके लिये आपसमें विचार करने लगे

देवदेवेन सङ्गम्य विष्णुना प्रभविष्णुना
ऊचुश्चैवं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ १० ॥

फिर बातचीतमें कुशल देवता सर्वशक्तिमान् ... भगवान् विष्णुसे मिले और ... उद्विग्न हो इस प्रकार बोले ... ॥



ब्रह्मवध्याभिभूतो वै शक्रः सुरगणेश्वर।
गतिर्भव त्वमीशान पूर्वजो जगतः प्रभुः ॥ ११ ॥

देवेश्वर! देवराज इन्द्र ब्रह्महत्यासे अभिभूत होकर कहीं छिप गये हैं। भगवन्! आप ही हमारे आश्रय और सम्पूर्ण जगत्के पूर्वज तथा प्रभु हैं ॥ ११ ॥

रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्।
त्वद्वीर्यान्निहते वृत्रे वासवो ब्रह्महत्यया ॥ १२ ॥
वृतः सुरगणश्रेष्ठ मोक्षं तस्य विनिर्दिश।

आपने समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये विष्णुरूप धारण किया है। यद्यपि वृत्रासुर आपकी ही शक्तिसे मारा गया है, तथापि इन्द्रको ब्रह्महत्याने आक्रान्त कर लिया है। सुरश्रेष्ठ! अब आप ही उनके उद्धारका उपाय बतलाइये ॥ १२½ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ॥ १३ ॥
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम्।
पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ॥ १४ ॥
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः।
स्वकर्मभिश्च नहुषो नाशं यास्यति दुर्मतिः ॥ १५ ॥
कंचित् कालमिमं देवा मर्षयध्वमतन्द्रिताः।

देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले—इन्द्र यज्ञद्वारा केवल मेरी ही आराधना करें। उससे मैं वज्रधारी इन्द्रको पवित्र कर दूँगा। पाकशासन इन्द्र पवित्र अश्वमेध यज्ञके द्वारा मेरी आराधना करके पुनः निर्भय हो देवेन्द्र-पदको प्राप्त कर लेंगे और खोटी बुद्धिवाला नहुष अपने कर्मोंसे ही नष्ट हो जायगा। देवताओ! तुम आलस्य छोड़कर कुछ कालतक और यह कष्ट सहन करो ॥ १३—१५½ ॥

श्रुत्वा विष्णोः शुभां सत्यां वाणीं तामृतोपमाम् ॥ १६ ॥
ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः।
यत्र शक्रो भयोद्विग्नस्तं देशमुपचक्रमुः ॥ १७ ॥

भगवान् विष्णुकी यह शुभ, सत्य और अमृतके समान मधुर वाणी सुनकर गुरु तथा महर्षियोंसहित सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ भयसे व्याकुल हुए इन्द्र छिपकर रहते थे ॥ १६-१७ ॥

तत्राश्वमेधः सुमहान् महेन्द्रस्य महात्मनः।
ववृते पावनार्थं वै ब्रह्महत्यापहो नृप ॥ १८ ॥

नरेश्वर! वहाँ महात्मा महेन्द्रकी शुद्धिके लिये एक महान् अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान हुआ, जो ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला था ॥ १८ ॥

विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च।
पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैव युधिष्ठिर ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर! इन्द्रने वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी और स्त्री—इनमें ब्रह्महत्याको बाँट दिया ॥ १९ ॥

संविभज्य च भूतेषु विसृज्य च सुरेश्वरः।
विज्वरो धूतपाप्मा च वासवोऽभवदात्मवान् ॥ २० ॥

इस प्रकार समस्त भूतोंमें ब्रह्महत्याका विभाजन करके देवेश्वर इन्द्रने उसे त्याग दिया और मनको वशमें करके वे निष्पाप तथा निश्चिन्त हो गये ॥ २० ॥

अकम्प्यं नहुषं स्थानाद् दृष्ट्वा च बलसूदनः।
तेजोघ्नं सर्वभूतानां वरदानाच्च दुःसहम् ॥ २१ ॥

परंतु बल नामक दानवका नाश करनेवाले इन्द्र जब अपना स्थान ग्रहण करनेके लिये स्वर्गलोकमें आये, तब उन्होंने देखा—नहुष देवताओंके वरदानसे अपनी दृष्टि मात्रसे समस्त प्राणियोंके तेजको नष्ट करनेमें समर्थ और दुःसह हो गया है। यह देखकर वे काँप उठे ॥ २१ ॥

ततः शचीपतिर्देवः पुनरेव व्यनश्यत।
अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकाङ्क्षी चचार ह ॥ २२ ॥

तदनन्तर शचीपति इन्द्रदेव पुनः वहाँसे अदृश्य हो गये तथा अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करते हुए समस्त प्राणियोंसे अदृश्य रहकर विचरने लगे ॥ २२ ॥

प्रनष्टे तु ततः शक्रे शची शोकसमन्विता।
हा शक्रेति तदा देवी विललाप सुदुःखिता ॥ २३ ॥

इन्द्रके पुनः अदृश्य हो जानेपर शची देवी शोकमें डूब गयी और अत्यन्त दुःखी हो 'हा इन्द्र! हा इन्द्र!' कहकर विलाप करने लगी ॥ २३ ॥

यदि दत्तं यदि हुतं गुरवस्तोषिता यदि।
एकभर्तृत्वमेवास्तु सत्यं यद्यस्ति वा मयि ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् वह इस प्रकार बोली—यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, गुरुजनोंको संतुष्ट रखा हो तथा मुझमें सत्य विद्यमान हो तो मेरा पातिव्रत्य सुरक्षित रहे ॥ २४ ॥

पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे।
देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः ॥ २५ ॥

उत्तरायणके दिन जो यह पुण्यमयी दिव्य रात्रि आ रही है, उसकी अधिष्ठात्री देवी रात्रिको मैं नमस्कार करती हूँ। मेरा मनोरथ सफल हो ॥ २५ ॥

प्रयता च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा।
पतिव्रतात्वात् सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत् ॥ २६ ॥
यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे।
इत्याहोपश्रुतिं देवी सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥ २७ ॥

ऐसा कहकर शचीने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर रात्रि देवीकी उपासना की। पतिव्रता तथा सत्य-

बना होनेके कारण उन्होंने उनकी नामवाली उपश्रुति [illegible] इन्द्र भी यह स्थान नहीं दिखाई [illegible] सम्पूर्ण ही दर्शन आवाहन किया और उनसे कहा [illegible] देवराज [illegible] ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि [illegible] त्रयोदशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें [illegible] तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ

चतुर्दशोऽध्याय

उपश्रुति देवीकी सहायतासे इन्द्राणीकी इन्द्रसे भेंट

शल्य उवाच

अथैनां रुचिरां साध्वीमुपश्रुतिरुपस्थिता।
तां वयोरूपसम्पन्नां दृष्ट्वा देवीमुपस्थिताम्॥
इन्द्राणी सम्प्रहृष्टात्मा सम्पूज्यैनामपृच्छत।
इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं का त्वं ब्रूहि वरानने॥

शल्य कहते हैं— युधिष्ठिर! तदनन्तर उस [illegible] देवी [illegible] उपस्थित हुई [illegible] पूछा [illegible] हूँ [illegible]

उपश्रुतिरुवाच

उपश्रुतिरहं देवि तवान्तिकमुपागता।
दर्शनं चैव सम्प्राप्ता तव सत्येन तोषिता॥

उपश्रुति बोली— [illegible] और तुम्हारे [illegible] तुम्हारे [illegible] दर्शन [illegible] है

पतिव्रतासि युक्ता च यमेन नियमेन च।
दर्शयिष्यामि ते शक्रं देवं वृत्रनिषूदनम्॥

तुम पतिव्रता हो [illegible] नियमसे [illegible] इन्द्रका [illegible] कराऊँगी

क्षिप्रमन्वेहि भद्रं ते द्रक्ष्यसे सुरसत्तमम्।
ततस्तां प्रस्थितां देवीमिन्द्राणी सा समन्वगात्॥

तुम्हारा कल्याण हो [illegible] आओ [illegible] उपश्रुति [illegible] इन्द्राणी भी [illegible] पीछे हो लीं

देवारण्यान्यतिक्रम्य पर्वतांश्च बहूंस्ततः।
हिमवन्तमतिक्रम्य उत्तरं पार्श्वमागमत्॥
समुद्रं च समासाद्य बहुयोजनविस्तृतम्।
आससाद महाद्वीपं नानाद्रुमलतावृतम्॥

[illegible] पर्वत [illegible] हिमालय [illegible] पार्श्वमें [illegible] पहुँचीं [illegible] और [illegible] द्वीपमें [illegible]

तत्रापश्यत् सरो दिव्यं नानाशकुनिभिर्वृतम्।
शतयोजनविस्तीर्णं तावदेवायतं शुभम्॥

[illegible] सरोवर [illegible]

तत्र दिव्यानि पद्मानि पञ्चवर्णानि भारत।
षट्पदैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सहस्रशः॥

[illegible] खिले हुए [illegible] थे [illegible]

सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा।
गौरेणोन्नतनालेन पद्मेन महता वृता॥

[illegible] एक बहुत बड़ी सुन्दर [illegible] और उसके [illegible]

पद्मस्य भित्त्वा नालं च विवेश सहिता तया।
बिसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम्॥

[illegible] इन्द्राणी [illegible] किया और वहाँ [illegible]

तं दृष्ट्वा च सुसूक्ष्मेण रूपेणावस्थितं प्रभुम्।
सूक्ष्मरूपधरा देवी बभूवोपश्रुतिश्च सा॥

[illegible] उपश्रुति [illegible]

इन्द्रं तुष्टाव चेन्द्राणी विश्रुतैः पूर्वकर्मभिः।
स्तूयमानस्ततो देवः शचीमाह पुरन्दरः॥

इन्द्राणीने पहलेके विख्यात कर्मोंका बखान करके इन्द्र देवका स्तवन किया। अपनी स्तुति सुनकर इन्द्रदेवने शचीसे कहा



देवि! तुम किसलिये यहाँ आयी हो और तुम्हें कैसे पता लगा है? तब इन्द्राणी [illegible] उनसे कुशलक्षेम बताया किया।

इन्द्रत्वं त्रिषु लोकेषु प्राप्य वीर्यसमन्वितः।
दर्पाविष्टश्च दुष्टात्मा मामुवाच शतक्रतो॥
उपतिष्ठेति स क्रूरः कालं च कृतवान् मम।
यदि न त्रास्यसि विभो करिष्यति स मां वशे॥

शतक्रतो! नहुष नामक राजा इन्द्रपद पाकर पराक्रम सम्पन्न हो गया है। वह दुष्टात्मा है। उस दुष्टात्मा के मन में यह बात आयी है कि मेरी सेवामें उपस्थित हो। उस क्रूर नरेशने मुझे [illegible] अवधि दी है। प्रभो! यदि आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो वह पापी मुझे अपने वशमें कर लेगा।

एतेन चाहं सन्तप्ता द्रुता शक्र तवान्तिकम्।
जहि रौद्रं महाबाहो नहुषं पापनिश्चयम्॥

महाबाहु इन्द्र! इस दुःखसे संतप्त होकर मैं आपके निकट आयी हूँ। आप [illegible] विचार रखनेवाले भयानक नहुषको मार डालिये।

प्रकाशयात्मनाऽऽत्मानं दैत्यदानवसूदन।
तेजः समाप्नुहि विभो देवराज्यं प्रशाधि च॥

दैत्यदानवसूदन! अपने आपको प्रकट कीजिये और तेज प्राप्त करके देवराज्यका शासन अपने हाथमें लीजिये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राणीकृतेन्द्रस्तुतौ चतुर्दशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें इन्द्राणीद्वारा इन्द्रस्तुतिविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

पञ्चदशोऽध्याय

इन्द्रकी आज्ञासे इन्द्राणीके अनुरोधपर नहुषका ऋषियोंको अपना वाहन बनाना तथा बृहस्पति और अग्निका संवाद

शल्य उवाच

एवमुक्तः स भगवाञ्छच्या ताः पुनरब्रवीत्।
विक्रमस्य न कालोऽयं नहुषो बलवत्तरः॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! शचीदेवीके यों कहनेपर भगवान् इन्द्रने पुनः उनसे कहा—'देवि! यह पराक्रम करनेका समय नहीं है। आजकल नहुष हमसे बलवान् हो रहा है।'

विवर्धितश्च ऋषिभिर्हव्यकव्यैश्च भाविनि।
नीतिमत्र विधास्यामि देवि तां कर्तुमर्हसि॥

भामिनि! ऋषियोंने हव्य और कव्य देकर उसकी शक्तिको बहुत बढ़ा दिया है। अतः मैं यहाँ नीतिसे काम लूँगा। देवि! तुम उसी नीतिका पालन करो।

गुह्यं चैतत् त्वया कार्यं नाख्यातव्यं शुभे क्वचित्।
गत्वा नहुषमेकान्ते ब्रवीहि च सुमध्यमे॥
ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते।
एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति तं वद॥

शुभे! तुम्हें गुप्तरूपसे यह कार्य करना है। कहीं भी इसे प्रकट न करना। सुमध्यमे! तुम एकान्तमें नहुषके पास जाकर कहो—'जगत्पते! आप दिव्य ऋषियानपर बैठकर मेरे पास आइये, तब मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी।'

इत्युक्ता देवराजेन पत्नी सा कमलेक्षणा।
एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तु जगाम नहुषं प्रति॥

देवरानी इस प्रकार आदेश देकर उनकी कल्याणमयी पत्नी शची 'एवमस्तु' कहकर नहुषके पास गयी।

नहुषस्तां ततो दृष्ट्वा स्मितो वाक्यमब्रवीत्
स्वागतं ते वरारोहे किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ६ ॥

उन्हें देखकर नहुष मुसकाया और इस प्रकार बोला—'वरारोहे! तुम्हारा स्वागत है। शुचिस्मिते! मैं तुम्हारा क्या सेवा करूँ?

भक्तं मां भज कल्याणि किमिच्छसि मनस्विनि
तव कल्याणि यत् कार्यं तत् करिष्ये सुमध्यमे ॥ ७ ॥

कल्याणि! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो। मनस्विनि! तुम क्या चाहती हो? सुमध्यमे! तुम्हारा जो भी कार्य होगा, उसे मैं पूर्ण करूँगा।

न च व्रीडा त्वया कार्या सुश्रोणि मयि विश्वसेः
सत्येन वै शपे देवि कर्तास्मि वचनं तव ॥ ८ ॥

सुश्रोणि! तुम्हें मुझसे लज्जा नहीं करनी चाहिये। मुझपर विश्वास करो। देवि! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारी बात अवश्य मानूँगा।'

इन्द्राण्युवाच

यो मे कृतस्त्वया कालस्तमाकाङ्क्षे जगत्पते
ततस्त्वमेव भर्ता मे भविष्यसि सुराधिप ॥ ९ ॥

इन्द्राणी बोलीं—जगत्पते! आपने मेरे लिये जो अवधि दी है, उसकी पूर्ति चाहती हूँ। सुराधिप! फिर तो आप ही मेरे पति होंगे।

कार्यं च हृदि मे यत्तु देवराजावधारय
वक्ष्यामि यदि मे राजन् प्रियमेतत् करिष्यसि
वाक्यं प्रणयसंयुक्तं ततः स्यां वशगा तव ॥ १० ॥

देवराज! मेरे हृदयमें एक कार्यकी अभिलाषा है, उसे बताती हूँ, सुनिये। राजन्! यदि आप मेरे इस प्रेमपूर्ण प्रस्तावको पूर्ण कर दें, प्रिय वचन कहें और मेरा यह कार्य सिद्ध करें, तो मैं आपके अधीन हो जाऊँगी।

इन्द्रस्य वाजिनो वाहा हस्तिनोऽथ रथास्तथा
इच्छाम्यहमथापूर्वं वाहनं ते सुराधिप
यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम् ॥ ११ ॥

सुरेश्वर! पहले इन्द्रके वाहन घोड़े, हाथी तथा रथ आदि रहे हैं। परंतु आपका वाहन सबसे विलक्षण—अपूर्व हो, ऐसी मेरी इच्छा है। वह वाहन ऐसा होना चाहिये, जो भगवान् विष्णु, रुद्र, असुर तथा राक्षसोंके भी उपयोगमें न आया हो।

वहन्तु त्वां महाभाग ऋषयः सङ्गता विभो
सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम रोचते ॥ १२ ॥

प्रभो! समस्त महर्षि एकत्र होकर शिबिकाद्वारा आपका वहन करें। राजन्! यही मुझे अच्छा लगता है।

नासुरेषु न देवेषु तुल्यो भवितुमर्हसि
सर्वेषां तेज आदत्स्व स्वेन वीर्येण दर्शनात्
न ते प्रमुखतः स्थातुं कश्चिदिच्छति वीर्यवान् ॥ १३ ॥

आप असुर तथा देवताओंके समान स्तरके अधिकारी नहीं हैं। देवताओं या असुरोंमें कोई भी आपकी समानता करने वाला नहीं है। कोई कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, आपके सामने नहीं टिक सकता।

शल्य उवाच

एवमुक्तस्तु नहुषः प्राहृष्यत तदा किल
उवाच वचनं चापि सुरेन्द्रस्तामनिन्दिताम् ॥ १४ ॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर उस समय नहुष बड़े प्रसन्न हुए। वे सती-साध्वी देवीसे इस प्रकार बोले।

नहुष उवाच

अपूर्वं वाहनमिदं त्वयोक्तं वरवर्णिनि
दृढं मे रुचितं देवि त्वद्वशोऽस्मि वरानने ॥ १५ ॥

नहुषने कहा—सुन्दरि! तुमने तो यह अपूर्व वाहन बताया। देवि! मुझे यह वाहन अधिक पसंद है। सुमुखि! मैं तुम्हारे वशमें हूँ।

न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान् कुरुते मुनीन्
अहं तपस्वी बलवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ १६ ॥

जो ऋषियोंको अपना वाहन बनाये, वह पुरुष थोड़ी शक्तिवाला नहीं हो सकता। मैं तपस्वी, बलवान् तथा भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंका स्वामी हूँ।

मयि क्रुद्धे जगन्न स्यान्मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्
देवदानवगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः
न मे क्रुद्धस्य पर्याप्ताः सर्वे लोकाः शुचिस्मिते
चक्षुषा यं प्रपश्यामि तस्य तेजो हराम्यहम् ॥ १७ ॥

मेरे कुपित होनेपर यह जगत् नहीं रह सकता। सब कुछ मुझमें ही प्रतिष्ठित है। शुचिस्मिते! देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस तथा सम्पूर्ण लोक मेरे क्रोधका सामना नहीं कर सकते। मैं अपनी आँखोंसे जिसे देख लेता हूँ, उसका तेज हर लेता हूँ।

तस्मात् ते वचनं देवि करिष्यामि न संशयः
सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे ब्रह्मर्षयस्तथा
पश्य माहात्म्यमस्माकमृद्धिं च वरवर्णिनि ॥ १८ ॥

अतः देवि! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा, इसमें संशय नहीं है। सम्पूर्ण सप्तर्षि और ब्रह्मर्षि मेरी पालकी

दोनोंके वार्तालापमें ... महात्मा नहुषने शचीको पुनः प्रत्यक्ष देख लिया ॥

शल्य उवाच

एवमुक्त्वा तु तां देवीं विसृज्य वरवर्णिनीम्।
विमाने योजयित्वा स ऋषीन् नियममास्थितान्॥
अब्रह्मण्यो बलोपेतो मत्तो वरमदेन च।
कामवृत्तः स दुष्टात्मा वाहयामास तानृषीन्॥

शल्य कहते हैं—राजन्! सुन्दर मुखवाली शची देवीसे ऐसा कहकर नहुषने उन्हें विदा कर दिया और नियमका पालन करनेवाले बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको अपना वाहन बनाकर अपनी पालकीमें जोत दिया। वह ब्राह्मणोंका द्रोही था। बल पाकर उन्मत्त हो गया था और वरदानसे मिले हुए बलके मदसे मतवाला हो रहा था। स्वेच्छाचारी दुष्टात्मा नहुषने उन महर्षियोंको अपना वाहन बनाया।

नहुषेण विसृष्टा च बृहस्पतिमथाब्रवीत्।
समयोऽल्पावशेषो मे नहुषेणेह यः कृतः॥

उधर नहुषसे विदा लेकर इन्द्राणी बृहस्पतिजीके पास गयी और इस प्रकार बोली—'ब्रह्मन्! नहुषने मेरे लिये जो समय निश्चित किया है, उसमें थोड़ा ही शेष रह गया है।



शक्रं मृगय शीघ्रं त्वं भक्तायाः कुरु मे दयाम्।
बाढमित्येव भगवान् बृहस्पतिरुवाच ताम्॥

'आप शीघ्र इन्द्रकी खोज कीजिये। मैं आपकी भक्त हूँ, मुझपर दया कीजिये।' तब भगवान् बृहस्पतिने 'बहुत अच्छा' कहकर उससे इस प्रकार कहा—

न भेतव्यं त्वया देवि नहुषाद् दुष्टचेतसः।
न ह्येष स्थास्यति चिरं गत एष नराधमः॥

'देवि! तुम दुष्टात्मा नहुषसे भय न करो। यह नराधम अब अधिक कालतक यहाँ नहीं टिक सकेगा। इसे तुम गया हुआ ही समझो।

अधर्मज्ञो महर्षीणां वाहनाच्च हतः शुभे।
इष्टिं चाहं करिष्यामि विनाशायास्य दुर्मतेः।
शक्रं चाधिगमिष्यामि मा भैस्त्वं भद्रमस्तु ते॥

'शुभे! यह पापी धर्मको नहीं जानता। अतः महर्षियोंको अपना वाहन बनानेके कारण शीघ्र ही नीचे गिराया गया-सा है। इसके सिवा मैं भी इस दुर्बुद्धि नहुषके विनाशके लिये यज्ञ करूँगा। साथ ही इन्द्रका पता भी लगाऊँगा। तुम डरो मत। तुम्हारा कल्याण होगा।'

ततः प्रज्वाल्य विधिवज्जुहाव परमं हविः।
बृहस्पतिर्महातेजा देवराजोपलब्धये॥
हुत्वाग्निं सोऽब्रवीद् राजञ्छक्रमन्विष्यतामिति।

तदनन्तर महातेजस्वी बृहस्पति देवराजकी प्राप्तिके लिये विधिपूर्वक अग्निको प्रज्वलित करके उसमें उत्तम हविष्यकी आहुति दी। राजन्! अग्निमें आहुति देकर उन्होंने अग्निदेवसे कहा—'आप इन्द्रदेवका पता लगाइये'।

तस्माच्च भगवान् देवः स्वयमेव हुताशनः।
स्त्रीवेषमद्भुतं कृत्वा सहसान्तरधीयत॥

तब उस अग्निकुण्डसे साक्षात् भगवान् अग्निदेव अद्भुत स्त्रीका वेष धारण करके प्रकट हुए और वहाँसे तत्काल अदृश्य हो गये।

स दिशः प्रदिशश्चैव पर्वतानि वनानि च।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विचिन्त्यातिमनोगतिः।
निमेषान्तरमात्रेण बृहस्पतिमुपागमत्॥

उनकी मनके समान तीव्र गति थी। वे दिशा, विदिशा, पर्वत, वन, पृथ्वी और आकाशमें इन्द्रकी खोज करके पलक मारते-मारते बृहस्पतिके पास लौट आये।

अग्निरुवाच

बृहस्पते न पश्यामि देवराजमहं क्वचित्।
आपः शेषाः सदा ह्यापः प्रवेष्टुं नोत्सहाम्यहम्॥

अग्निदेव बोले—बृहस्पते! मैं देवराज इन्द्रको कहीं नहीं देखता। केवल जल शेष रह गया है, जहाँ मैंने खोज नहीं की है। मैं जलमें कभी भी प्रवेश करनेका साहस नहीं कर सकता।

न मे तत्र गतिर्ब्रह्मन् किमन्यत् करवाणि ते।
तमब्रवीद् देवगुरुरपो विश महाद्युते॥

ब्रह्मन्! जलमें मेरी गति नहीं है। इसके सिवा दूसरा

तुम्हें कौन कर्म मैं करूँ। तब देवगुरु कहा— महाकुले! आप जलमें भी प्रविष्ट कीजिये ॥ ३२ ॥

अग्निरुवाच

नाहं समर्थः [illegible] ॥

[illegible] महाद्युते ॥ ३३ ॥

अग्निदेव बोले—मैं जलमें नहीं प्रवेश कर सकूँगा क्योंकि उसमें मेरा विनाश हो जायगा। महातेजस्वी देवगुरु! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। (मुझे कार्यमें जानेके लिये न कहो।) ॥ ३३ ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३४ ॥

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय तथा पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है। इनका तेज सर्वत्र काम करता है परंतु अपने उत्पत्तिस्थानोंमें आकर शान्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बृहस्पत्यग्निसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें बृहस्पति-अग्निसंवादविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्याय

बृहस्पतिद्वारा अग्नि और इन्द्रका स्तवन तथा बृहस्पति एवं लोकपालोंकी इन्द्रसे बातचीत

बृहस्पतिरुवाच

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यवाट्।
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि साक्षिवत् ॥ १ ॥

बृहस्पति बोले—अग्निदेव! आप सम्पूर्ण देवताओंके मुख हैं। आप ही देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाले हैं। आप समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें साक्षीकी भाँति गूढभावसे विचरते हैं ॥ १ ॥

त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः।
त्वया त्यक्तं जगच्चेदं सद्यो नश्येद्धुताशन ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष आपको एक बताते हैं। फिर वे ही आपको तीन प्रकारका कहते हैं। हुताशन! आपके त्याग देनेपर यह सम्पूर्ण जगत् तत्काल नष्ट हो जायगा ॥ २ ॥

कृत्वा तुभ्यं नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम्।
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ॥ ३ ॥

ब्राह्मणलोग आपको नमस्कार करके अपनी पत्नी तथा पुत्रोंके साथ अपने कर्मोंद्वारा प्राप्त की हुई अविनाशी गतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

त्वमेवाग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः।
यजन्ति सत्रैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे ॥ ४ ॥

अग्ने! आप ही हविष्यको वहन करनेवाले देवता हैं। आप ही उत्तम हवि हैं। याज्ञिक विद्वान् पुरुष बड़े-बड़े यज्ञोंमें सत्रों और यज्ञोंद्वारा आपकी ही आराधना करते हैं ॥ ४ ॥

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह
प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः।
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूति-
स्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा ॥ ५ ॥

हव्यवाहन! आप ही सृष्टिके समय इन तीनों लोकोंको उत्पन्न करके प्रलयकाल आनेपर पुनः प्रज्वलित हो इन सबका संहार करते हैं। अग्ने! आप ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके स्थान हैं और आप ही पुनः इसके आधार होते हैं ॥ ५ ॥

त्वामग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च त्वमेव हि।
दहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः ॥ ६ ॥

अग्निदेव! मनीषी पुरुष आपको ही मेघ और विद्युत् कहते हैं। आपसे ही ज्वालाएँ निकलकर सम्पूर्ण भूतोंको दग्ध करती हैं ॥ ६ ॥

त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत्।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु पावक ॥ ७ ॥

पावक! आपमें ही सारा जल संचित है। आपमें ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है। तीनों लोकोंमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो ॥ ७ ॥

स्वयोनिं भजते सर्वो विशस्वापोऽविशङ्कितः।
अहं त्वां वर्धयिष्यामि ब्राह्मैर्मन्त्रैः सनातनैः ॥ ८ ॥

सभी पदार्थ अपने-अपने कारणमें प्रवेश करते हैं। अतः आप भी निःशङ्क होकर जलमें प्रवेश कीजिये। मैं सनातन वेदमन्त्रोंद्वारा आपको बढ़ाऊँगा ॥ ८ ॥

एवं स्तुतो हव्यवाड् भगवान् कविरुत्तमः।
बृहस्पतिमथोवाच प्रीतिमान् वाक्यमुत्तमम्।
दर्शयिष्यामि ते शक्रं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥

इस प्रकार स्तुति की जानेपर हविष्यको वहन करनेवाले श्रेष्ठ एवं उत्तम भगवान् अग्निदेव प्रसन्न होकर बृहस्पतिसे यह उत्तम वचन बोले—'ब्रह्मन्! मैं आपको इन्द्रका दर्शन कराऊँगा, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ' ॥ ९ ॥

शल्य उवाच

प्रविश्यापस्ततो वह्निः ससमुद्राः सपल्वलाः।
आजगाम तमुद्देशं गूढो यत्र शतक्रतुः ॥ १० ॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर अग्निदेवके साथ राजगुरु बृहस्पति बड़े-बड़े जलाशयोंके जलमें प्रवेश करके क्रमशः उस सरोवरमें जा पहुँचे, जहाँ इन्द्र छिपे हुए थे।

अथ तत्रापि पद्मस्य विविधस्य भरतर्षभ।
अपश्यत् स गुरुस्तं च बिसमध्यगतं स्थितम् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ! उसमें कमलोंके भीतर खोज करते हुए अग्निदेव और गुरुने कमलनालके मध्यभागमें बैठे हुए देवराजको देखा।

आविश्य च ततः सूक्ष्मां तमाविश्य बृहस्पतिः।
अणुमात्रेण वपुषा पद्मतन्त्वाश्रितं प्रभुम् ॥ १२ ॥

वहाँ उन्होंने लोकपाल अग्निदेवके साथ बृहस्पतिने देखा कि भगवान् इन्द्र सूक्ष्म शरीर धारण करके एक कमलनालका आश्रय लेकर रहते हैं।

गत्वा देवर्षिगन्धर्वैः सहितोऽथ बृहस्पतिः।
पुराणैः कर्मभिर्देवं तुष्टाव बलसूदनम् ॥ १३ ॥

तब बृहस्पतिजीने देवर्षियों और गन्धर्वोंके साथ वहाँ जाकर इन्द्रके पूर्वकृत कर्मोंका वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की।

महासुरो हतः शक्र नमुचिर्दारुणस्त्वया।
शम्बरश्च बलश्चैव तथोभौ घोरविक्रमौ ॥ १४ ॥

इन्द्र! आपने अत्यन्त भयंकर नमुचिनामक महान् असुरको मार गिराया है। शम्बर और बल नामक भयानक पराक्रमी दानव थे, परंतु उन दोनोंको भी आपने मार डाला।

शतक्रतो विवर्धस्व सर्वाञ्शत्रून् निषूदय।
उत्तिष्ठ शक्र सम्पश्य देवर्षींश्च समागतान् ॥ १५ ॥

शतक्रतो! आप बढ़िये और सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार कीजिये। इन्द्रदेव! उठिये और यहाँ पधारे हुए देवर्षियोंका दर्शन कीजिये।

महेन्द्र दानवान् हत्वा लोकास्त्रातास्त्वया विभो।
अपां फेनं समासाद्य विष्णुतेजोऽपबृंहितम्।
त्वया वृत्रो हतः पूर्वं देवराज जगत्पते ॥ १६ ॥

प्रभो! महेन्द्र! आपने दानवोंका वध करके समस्त लोकोंकी रक्षा की है। जगदीश्वर देवराज! भगवान् विष्णुके तेजसे अत्यन्त शक्तिशाली बने हुए समुद्रके फेनको लेकर आपने पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध किया था।

त्वं सर्वभूतेषु शरण्य ईड्य-
स्त्वया समं विद्यते नेह भूतम्।
त्वया धार्यन्ते सर्वभूतानि शक्र
त्वं देवानां महिमानं चकर्थ ॥ १७ ॥

आप सम्पूर्ण भूतोंमें शरण देने योग्य और सबके स्तवनीय हैं। आपकी समानता करनेवाला प्राणी दूसरा कोई नहीं है। शक्र! आप ही सम्पूर्ण भूतोंको धारण करते हैं और आपने ही देवताओंकी महिमा बढ़ायी है॥ १७ ॥

पाहि सर्वांश्च लोकांश्च महेन्द्र बलमाहर।
एवं संस्तूयमानश्च सोऽवर्धत शनैः शनैः ॥ १८ ॥

महेन्द्र! आप बल प्राप्त कीजिये और सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये। इस प्रकार स्तुति की जानेपर देवराज इन्द्र धीरे-धीरे बढ़ने लगे।

स्वं चैव वपुरास्थाय बभूव स बलान्वितः।
अब्रवीच्च गुरुं देवो बृहस्पतिमुपस्थितम् ॥ १९ ॥

अपना पूर्व शरीर धारण करके वे बल-पराक्रमसे सम्पन्न हो गये। तत्पश्चात् इन्द्रने वहाँ सामने खड़े हुए गुरु बृहस्पतिसे कहा—

किं कार्यमवशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः।
वृत्रश्च सुमहाकायो यो वै लोकानवारयत् ॥ २० ॥

देवगण! त्वष्टाका पुत्र विश्वरूप और महान् असुर वृत्र जो सम्पूर्ण लोकोंका विनाश कर रहा था, मेरेद्वारा मारा गया। अब आपलोगोंका कौन-सा कार्य बचा हुआ है?

बृहस्पतिरुवाच

मानुषो नहुषो राजा देवर्षिगणतेजसा।
देवराज्यमनुप्राप्तः सर्वान् नो बाधते भृशम् ॥ २१ ॥

बृहस्पति बोले—महेन्द्र! मनुष्यलोकका राजा नहुष देवर्षियोंके प्रभावसे देवताओंका राज्य पा गया है। वह हम सब लोगोंको बहुत कष्ट दे रहा है।

इन्द्र उवाच

कथं च नहुषो राज्यं देवानां प्राप दुर्लभम्।
तपसा केन वा युक्तः किंवीर्यो वा बृहस्पते ॥ २२ ॥
(तन्मे सर्वं कथयस्व यथेन्द्रत्वमुपागतः)

इन्द्र बोले—बृहस्पते! नहुषने देवताओंका दुर्लभ राज्य कैसे प्राप्त किया? वह किस तपस्यासे युक्त है अथवा उसमें कितना बल और पराक्रम है? उसे किस प्रकार इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई है? ये सारी बातें आप मुझे बताइये।

बृहस्पतिरुवाच

देवा भीताः शक्रमकामयन्त
त्वया त्यक्तं महदैन्द्रं पदं तत्।
तदा देवाः पितरोऽथर्षयश्च
गन्धर्वसंघाश्च समेत्य सर्वे ॥ २३ ॥

गत्वाब्रुवन् नहुषं तत्र राजा
त्वं नो राजा भव भुवनस्य गोप्ता।
तानब्रवीन्नहुषो नास्मि शक्त
आप्यायध्वं तपसा तेजसा माम्॥२४॥

राजन्! इसके बाद उन सबने उग्र तपस्यावाले पुरुष [illegible] दिया तब देवताओंने भयभीत होकर दूसरे किसी इन्द्रकी कामना की। तब देवता, पितर, ऋषि तथा मुख्य गन्धर्व—सब मिलकर राजा नहुषके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने नहुषसे इस प्रकार कहा—'आप हमारे राजा होइये और सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर नहुषने उनसे कहा—'मुझमें इन्द्र बननेकी शक्ति नहीं है; आप अपने तप और तेजसे मुझे शक्तिशाली (पुष्ट) कीजिये'॥२४॥

एवमुक्तैर्ऋषिभिश्चापि देवै
राजाभवन्नहुषो घोरवीर्यः।
त्रैलोक्ये च प्राप्य राज्यं महर्षीन्
कृत्वा वाहान् याति लोकान् दुरात्मा॥२५॥

उनके ऐसा कहनेपर देवताओं तथा ऋषियोंने उसे [illegible] भयंकर पराक्रमी राजा नहुष स्वर्गका राजा बन गया। इस प्रकार तीनों लोकोंका राज्य पाकर वह दुरात्मा नहुष महर्षियोंको अपना वाहन बनाकर सब लोकोंमें घूमता है॥२५॥

तेजोहरं दृष्टिविषं सुघोरं
मा त्वं पश्येर्नहुषं वै कदाचित्।
देवाश्च सर्वे नहुषं भयार्ता
न पश्यन्ते गूढरूपाश्चरन्तः॥२६॥

वह देवराज नहुष भयंकर [illegible] हो गया है। उसकी दृष्टिमें भयंकर विष है। [illegible] अत्यन्त घोर तेजस्वी हो गया है। तुम नहुषकी ओर कभी न देखना। सब देवता भी अत्यन्त भयभीत हो गुप्तरूपसे विचरते रहते हैं, परंतु नहुषकी ओर कभी देखते नहीं हैं॥२६॥

शल्य उवाच

एवं वदत्यङ्गिरसां वरिष्ठे
बृहस्पतौ लोकपालः कुबेरः।
वैवस्वतश्चैव यमः पुराणो
देवश्च सोमो वरुणश्चाजगाम॥२७॥

शल्य कहते हैं—राजन्! अङ्गिराके पुत्रोंमें श्रेष्ठ बृहस्पति जब ऐसा कह रहे थे, उसी समय लोकपाल कुबेर, सूर्यपुत्र यम, पुरातन देवता चन्द्रमा तथा वरुण भी वहाँ आ पहुँचे॥२७॥

ते वै समागम्य महेन्द्रमूचु-
र्दिष्ट्या त्वाष्ट्रो निहतश्चैव वृत्रः।
दिष्ट्या च त्वां कुशलिनमक्षतं च
पश्यामो वै निहतारिं च शक्र॥२८॥

वे सब देवता इन्द्रसे मिलकर बोले—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया। वृत्रासुर भी मारा गया। शत्रुओंका वध करनेके पश्चात् आपको सकुशल और अक्षत देखते हैं, यह भी बड़े आनन्दकी बात है॥२८॥

स तान् यथावच्च हि लोकपालान्
समेत्य वै प्रीतमना महात्मा।
उवाच वाक्यं प्रतिभाष्य शक्रः
संचोदयन् नहुषस्यान्तरेण॥२९॥

उन लोकपालोंसे यथायोग्य मिलकर इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उन सबका यथोचित सत्कार करके राजा नहुषके प्रति [illegible] देते हुए कहा॥२९॥

राजा देवानां नहुषो घोररूप-
स्तत्र साह्यं दीयतां मे भवद्भिः।
ते चाब्रुवन् नहुषो घोररूपो
दृष्टीविषस्तस्य बिभीम देव॥३०॥

इस समय देवताओंका राजा नहुष बड़ा भयंकर हो रहा है। उसे हटानेके कार्यमें आपलोग मेरी सहायता करें। यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया—'देवेश्वर! नहुष तो बड़ा भयंकर रूपवाला है। उसकी दृष्टिमें विष है। अतः हमलोग उससे डरते हैं॥३०॥

त्वं चेद् राजानं नहुषं पराजये-
स्ततो वयं भागमर्हाम शक्र।
इन्द्रोऽब्रवीद् भवतु भवानपां पति-
र्यमः कुबेरश्च महाभिषेकम्॥३१॥
सम्प्राप्नुवन्त्वद्य सहैव दैवतै-
रिपुं जयामो नहुषं घोरदृष्टिम्।
ततः शक्रं ज्वलनोऽप्याह भागं
प्रयच्छ मह्यं तव साह्यं करिष्ये।
तमाह शक्रो भविताग्ने तवापि
इन्द्राग्न्योर्वै भाग एको महाक्रतौ॥३२॥

'इन्द्र! यदि आप राजा नहुषको पराजित करनेके लिये उद्यत हैं तो हम भी यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी हों।' इन्द्रने कहा—'बहुत अच्छा, आप जलके स्वामी हों। यमराज और कुबेर भी मेरे द्वारा अपने-अपने पदपर अभिषिक्त हों। देवताओंसहित हम सब लोग भयंकर दृष्टिवाले अपने शत्रु नहुषको पराजित करेंगे।' तब अग्निने भी इन्द्रसे कहा—'प्रभो! मुझे भी भाग दीजिये, मैं आपकी

महात्मा कुबेर ... तब इन्द्रने उनसे कहा—निरीश ... महायशस्वी इन्द्र ... और अधिकार एक सम्मिलित ... गया। निश्चय तुम्हारा भी अधिकार ... ।

शल्य उवाच

अथ संचिन्त्य भगवान् महेन्द्रः पाकशासनः।
कुबेरं सर्वयक्षाणां धनानां च प्रभुं तथा॥

शल्य कहते हैं—राजन्! इस प्रकार ... विचारकर पाकशासन भगवान् महेन्द्रने कुबेरको सम्पूर्ण यक्षों तथा धनका अधिपति बना दिया।

वैवस्वतं पितृणां च वरुणं चाप्यपां तथा।
आधिपत्यं ददौ शक्रः संचिन्त्य वरदस्तदा॥ ४॥

इसी प्रकार वरदायक इन्द्रने ... लोकपालोंको ... दिया और ... उनका स्वाभिमत प्रदान किया।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि इन्द्राधिकारप्रत्यागमने षोडशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें इन्द्रका अधिकार पुनः प्राप्त होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

दाक्षिणात्य अधिक पाठका ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं।

सप्तदशोऽध्याय

अगस्त्यजीका इन्द्रसे नहुषके पतनका वृत्तान्त बताना

शल्य उवाच

अथ संचिन्तयानस्य देवराजस्य धीमतः।
नहुषस्य वधोपायं लोकपालैः सहैव तैः॥
तपस्वी तत्र भगवानगस्त्यः प्रत्यदृश्यत।
सोऽब्रवीदर्च्य देवेन्द्रं दिष्ट्या वै वर्धते भवान्॥
विश्वरूपविनाशेन वृत्रासुरवधेन च।
दिष्ट्या च नहुषो भ्रष्टो देवराज्यात् पुरंदर।
दिष्ट्या हतारिं पश्यामि भवन्तं बलसूदन॥ ३॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! जिस समय बुद्धिमान् देवराज इन्द्र देवताओं तथा लोकपालोंके साथ बैठकर नहुषके वधका उपाय सोच रहे थे, उसी समय वहाँ तपस्वी भगवान् अगस्त्य दिखायी दिये। उन्होंने देवेन्द्रकी पूजा करके कहा—'सौभाग्यकी बात है कि आप विश्वरूपके विनाश तथा वृत्रासुरके वधसे निरन्तर अभ्युदयशील हो रहे हैं। बलसूदन पुरंदर! यह भी सौभाग्यकी ही बात है कि आज नहुष देवराजके पदसे भ्रष्ट हो गया। सौभाग्यसे ही मैं आपको शत्रुहीन देख रहा हूँ।'

इन्द्र उवाच

स्वागतं ते महर्षेऽस्तु प्रीतोऽहं दर्शनात् तव।
पाद्यमाचमनीयं च गामर्घ्यं च प्रतीच्छ मे॥

इन्द्र बोले—महर्षे! आपका स्वागत है। आपके दर्शनसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आपके लिये पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गौ समर्पित है। आप मेरी दी हुई ये सब वस्तुएँ ग्रहण कीजिये।

शल्य उवाच

पूजितं चोपविष्टं तमासने मुनिसत्तमम्।
पर्यपृच्छत देवेशो हृष्टो ब्राह्मणपुंगवम्॥
एतदिच्छामि भगवन् कथ्यमानं द्विजोत्तम।
परिभ्रष्टः कथं स्वर्गान्नहुषः पापनिश्चयः॥ ७॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जब पूजा ग्रहण करके आसनपर विराजमान हुए, तब देवेश्वर इन्द्रने प्रसन्न होकर उन विप्रशिरोमणिसे पूछा—'भगवन्! द्विजोत्तम! मैं आपके मुखसे यह सुनना चाहता हूँ कि पापपूर्ण विचार रखनेवाला नहुष स्वर्गसे किस प्रकार भ्रष्ट हुआ है?'

अगस्त्य उवाच

शृणु शक्र प्रियं वाक्यं यथा राजा दुरात्मवान्।
स्वर्गाद् भ्रष्टो दुराचारो नहुषो बलदर्पितः॥ ८॥

अगस्त्यजीने कहा—इन्द्र! बलके घमंडमें भरा हुआ दुराचारी और दुरात्मा राजा नहुष जिस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ है, वह प्रिय समाचार सुनो।

श्रमार्तास्तु वहन्तस्तं नहुषं पापकारिणम्।
देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥

महाभाग देवर्षि तथा निर्मल अन्तःकरणवाले ब्रह्मर्षि पापाचारी नहुषका भार ढोते-ढोते परिश्रमसे पीड़ित हो गये।

पप्रच्छुर्नहुषं देव संशयं जयतां वर।
य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम्॥
एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव।
नहुषो नेति तानाह तमसा मूढचेतनः॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ देव! ... समय उन महर्षियोंने नहुषसे एक संदेह पूछा—देवेन्द्र! गौओंके प्रोक्षणके विषयमें ब्रह्माजीने जो ये मन्त्र बताये गये हैं, इन्हें आप प्रामाणिक मानते हैं या नहीं? ... तमोगुणसे बुद्धि मोहित होनेके कारण

विश्वामित्र हो रही थी महर्षियोंको उत्तर देते हुए कहा इन देवताओंके प्रमाण हो गया

छर नु

भग सध्वनृत्तस्य भग मति यसे
प्रमाणमेतत्सकल पूर्वं प्रोक्त महर्षि

महर्षिगण बोले तुम धर्मात्मा बहुत से इस लिये यथार्थ तेज हो राजो महर्षियोंसे इन मनाओको उत्तम कहे प्रमाणभूत माना है।

सत्य उवा

नमो विमलमन स मुनिभि महा मासस
अथ मामरहूपा मूर्ति तृणायमर्महित

अगस्त्यजी कहते हैं—तब नहुष मोनेपर दिया पर लगा और अप्रि छित होकर अपनी मस्तक अपना प्रहार किया

तेनाभूत्तत्तेजाश्च नि श्रीकश्च शचीपति
ततस्त तामसा ऽविम्लतत्त्व भुद्रापर्वितम्

म्क माता गया रम आ
शाहीन गुफामें छुपकर अत्यन्त
पादित हुए हुए प्रकार

यस्मात् पूर्वं कृत राजन ब्रह्मर्षिस्तनुष्टिताम्
अगर वृषभमसि नव मूर्ध्नस्पृश एव
यस्मापि त्वसृषीन् मूढ ब्रह्मकल्पा दुरासदान्
बाहनान् तथा बाहयसि तेन स्वर्गाद्धतप्रभ
ध्वंस पाप परि ग्रह क्षीणपुण्यो महीतलम्

तब निर्गेन शि अन दि
अरे नामभूल हा मस्तको
पन ब्रह्मर्षिका मा सक
तुम जा विराग लात मार है पेय पाताला
गए प्रसा इन मान दुर्धर्ष ब्रह्मर्षियोको
वनाकर उनसे ना वाहकी तुम हो इसले
तबाहीन हो गए हो तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया भव
मराल दुम होकर पृथ्वीपर गिरो

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुन स्वर्गमवाप्स्यसि

तथा दस हजार वर्षोतक महान् सपका रूप धारण करक विचरोगे फिर पूर्ण स्वर्ग
लाक मन

म अ



एव भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यात्मरिंदम
दिष्टया वर्धामहे शक हतो ब्राह्मणकण्टक
भगवन् कार त्या नहुष नीच
तबला हम हो ज्ञाह कि सबा
सौभाग्य बात मन्त्रा की हा
है

त्रिपिष्टप प्रपद्यस्व पाहि लोकाञ्छचीपते
जितेन्द्रियो जितामित्र स्तूयमानो महर्षिभि

नीमन आप तन स्वर्गलोक नगर
विजय गर हाँ आपकी स्तुति है आप
आप जाय चलें लोक रक्षा
कु

ततो देवा भृशा तुष्टा महर्षिगणसंवृता
पितरश्चैव यक्षाश्च भुजगा राक्षसास्तथा
गन्धर्वा देवकन्याश्च सर्वे चाप्सरसां गणा
सरांसि सरित शैला सागराश्च विशाम्पते

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर तदनन्तर महर्षियोंसे घिरे हुए देवता पितर यक्ष नाग राक्षस गन्धर्व देवकन्याए तथा समस्त अप्सराए बहुत प्रसन्न हुई सरिताए पर्वत पोन और समुद्र भी बहुत खुश हुए

उपागम्याब्रुवन् सर्वे दिष्टया वर्धसि शत्रुहन्
हतश्च नहुष पापो दिष्टयागस्त्येन धीमता
दिष्टया पापसमाचार कृ सर्प महीतले

सब सो इन्द्र शत्रुहन

[illegible] [illegible] ... पाताल [illegible] [illegible] [illegible]
युधिष्ठिर [illegible] ... [illegible]

श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि [illegible] [illegible] अध्याय

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अष्टादशोऽध्याय

इन्द्र स्वर्गमें आकर अपने राज्यका पालन करना, शल्यका युधिष्ठिरको आश्वासन देना और उनसे विदा लेकर दुर्योधनके यहाँ जाना

ततः शक्रः स्तूयमानो गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
ऐरावतं समारुह्य द्विपेन्द्रं लक्षणैर्युतम् ॥
पावकश्च महातेजा महर्षिश्च बृहस्पतिः ।
यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च धनेश्वरः ॥
सर्वैर्देवैः परिवृतः शक्रो वृत्रनिषूदनः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यातस्त्रिभुवनं प्रभुः ॥

शल्य कहते हैं—युधिष्ठिर [illegible]

स समेत्य महेन्द्राण्या देवराजः शतक्रतुः ।
मुदा परमया युक्तः पालयामास देवराट् ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ततः स भगवांस्तत्र अङ्गिराः समदृश्यत ।
अथर्ववेदमन्त्रैश्च देवेन्द्रं समपूजयत् ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पूजन किया

ततस्तु भगवानिन्द्रः संहृष्टः समपद्यत ।
वरं च प्रददौ तस्मै अथर्वाङ्गिरसे तदा ॥

इससे भगवान् इन्द्र उस समय बहुत प्रसन्न ... और उन्होंने अथर्वाङ्गिरसको ... दिया

अथर्वाङ्गिरसो नाम वेदेऽस्मिन् भविष्यति ।
उदाहरणमेतद्धि यज्ञभागं च लप्स्यसे ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होगा

विख्यात होंगे और आपको यज्ञभाग ... होगा

एवं सम्पूज्य भगवानथर्वाङ्गिरसं तदा ।
व्यसर्जयन्महाराज देवराजः शतक्रतुः ॥

महाराज युधिष्ठिर ... [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सम्पूज्य सर्वांस्त्रिदशानृषींश्चापि तपोधनान् ।
इन्द्रः प्रमुदितो राजन् धर्मेणापालयत् प्रजाः ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

एवं समनुभूतं हि दुःखमिन्द्रेण भारत ।
अज्ञातवासश्च कृतः शत्रूणां वधकाङ्क्षया ॥

युधिष्ठिर [illegible] प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नात्र मन्युस्त्वया कार्यो यत् क्लिष्टोऽसि महावने ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र भ्रातृभिश्च महात्मभिः ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं करना चाहिये

एवं त्वमपि राजेन्द्र राज्यं प्राप्स्यसि भारत ।
वृत्रं हत्वा यथा प्राप्तं शक्रेण कौरवनन्दन ॥

भरतवंशी कुरुकुलनन्दन नरेश ... [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रकार तुम [illegible] [illegible] [illegible]

दुराचारश्च नहुषो ब्रह्मद्विट् पापचेतनः ।
अगस्त्यशापाभिहतो विनष्टः शाश्वतीः समाः ॥
एवं तव दुरात्मानः शत्रवः शत्रुसूदन ।
क्षिप्रं नाशं गमिष्यन्ति कर्णदुर्योधनादयः ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होकर [illegible] [illegible]

नष्ट हो गया। इसी प्रकार तुम्हारे शत्रु कर्ण और दुर्योधन आदि भी शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥

ततः सागरपर्यन्तां भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम्।
भ्रातृभिः सहितो वीर द्रौपद्या च महायशाः ॥ १५ ॥

वीर! तत्पश्चात् तुम अपने भाइयों तथा इन द्रौपदीके साथ समुद्रसे घिरी हुई इस समस्त भूमण्डलका राज्य भोगोगे।

उपाख्यानमिदं शक्रविजयं वेदसम्मितम्।
राज्ञा व्यूढेष्वनीकेषु श्रोतव्यं जयमिच्छता ॥ १६ ॥

इन्द्रकी विजय-गाथा वेदके तुल्य है। जब शत्रुओंकी सेना मोर्चा बाँधकर खड़ी हो, उस समय विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजाको इस इन्द्रविजय नामक उपाख्यानका अवश्य श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥

तस्मात् संश्रावयामि त्वां विजयं जयतां वर।
संस्तूयमाना वर्धन्ते महात्मानो युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

अतः विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर! मैं तुम्हें यह इन्द्रविजय नामक उपाख्यान सुनाता हूँ; क्योंकि अपने महात्मा देवताओंकी स्तुति-प्रशंसा करनेसे ही वे मनस्वी उन्नति करते हैं ॥ १७ ॥

क्षत्रियाणामभावोऽयं युधिष्ठिर महात्मनाम्।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर! दुर्योधनके अपराध तथा भीमसेन और अर्जुनके बलसे यह महामना क्षत्रियोंके संहारका अवसर उपस्थित हो गया है ॥ १८ ॥

आख्यानमिन्द्रविजयं य इदं नियतः पठेत्।
धूतपाप्मा जितस्वर्गः स प्रेत्येह च मोदते ॥ १९ ॥

जो पुरुष नियमपूर्वक रहकर इस इन्द्रविजयनामक उपाख्यानका पाठ करता है, वह पापरहित हो स्वर्गपर विजय पाता तथा इहलोक और परलोकमें भी सुखी होता है ॥ १९ ॥

न चारिजं भयं तस्य नापुत्रो वा भवेन्नरः।
नापदं प्राप्नुयात् काञ्चिद् दीर्घमायुश्च विन्दति।
सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित् पराजयम् ॥ २० ॥

वह मनुष्य कभी शत्रुओंसे भयभीत नहीं होता, उसे पुत्रहीन भी नहीं होना पड़ता। उसपर कोई आपत्ति नहीं आती, वह दीर्घायु होता है। उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है, तथा कभी उसकी पराजय नहीं होती ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ।
पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वरः ॥ २१ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ जनमेजय! शल्यने इस प्रकार आश्वासन देकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु शल्यवचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्रराजमिदं वचः ॥ २२ ॥

शल्यकी बात सुनकर कुन्तीपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर मद्रराजसे यह वचन बोले— ॥ २२ ॥

भवान् कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः।
तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्यार्जुनसंस्तवैः ॥ २३ ॥

मामाजी! जब अर्जुन और कर्णका युद्ध होगा, उस समय आप कर्णका सारथ्य करेंगे, इसमें संशय नहीं है। उस समय आप अर्जुनकी प्रशंसा करके कर्णके तेज और उत्साहका नाश करें, यह मेरा अनुरोध है ॥ २३ ॥

शल्य उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथा मां सम्प्रभाषसे।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्याम्यहं तव ॥ २४ ॥

शल्य बोले—राजन्! तुम जैसा कह रहे हो, ऐसा ही करूँगा और भी तुम्हारे हितके लिये जो कुछ मुझसे हो सकेगा, वह सब तुम्हारे लिये करूँगा ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्त्वामन्त्र्य कौन्तेयाञ्छल्यो मद्राधिपस्तदा।
जगाम सबलः श्रीमान् दुर्योधनमरिंदम ॥ २५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुदमन जनमेजय! तदनन्तर मद्रराज श्रीमान् शल्य कुन्तीकुमारोंसे विदा ले अपनी सेनाके साथ दुर्योधनके पास चले गये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि शल्यवाक्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें शल्यवाक्य विषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्याय

युधिष्ठिर और दुर्योधनके यहाँ सहायताके लिये आयी हुई सेनाओंका संक्षिप्त विवरण

वैशम्पायन उवाच

युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः।
महता चतुरङ्गेण बलेनागाद् युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर सात्वतवंशके महारथी वीर युयुधान सात्यकि विशाल चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये युधिष्ठिरके पास आये।

तस्य योधा महावीर्या नानावेषसमागताः ।
नानाप्रहरणा वीराः शोभयाञ्चक्रिरे बलम् ॥ २ ॥

उनके सैनिक बड़े पराक्रमी वीर थे। विभिन्न देशोंसे उनका आगमन हुआ था। वे भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र लिये उस सेनाकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २ ॥

परश्वधैर्भिन्दिपालैः शूलतोमरमुद्गरैः ।
परिघैर्यष्टिभिः पाशैः करवालैश्च निर्मलैः ॥ ३ ॥
सायकैर्मुसलैश्चित्रैः शरैश्च विविधैरपि ।
तैलधौतैः प्रकाशद्भिस्तदशोभत वै बलम् ॥ ४ ॥

उसमें भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर, परिघ, यष्टि, पाश, निर्मल तलवार, खड्ग, मूसल तथा भाँति-भाँतिके बाण आदि अस्त्र-शस्त्र तेलमें धुले होनेके कारण चमचमा रहे थे, जिनसे वह सेना सुशोभित हो रही थी ॥ ३-४ ॥



तस्य मेघप्रकाशस्य सौवर्णैः शोभितस्य च ।
बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥ ५ ॥

सात्यकिकी वह सेना (हाथियोंके समूहके कारण तथा काली वर्दी पहननेसे) मेघोंके समान काली दिखायी देती थी। सैनिकोंके सुनहरे आभूषणोंसे सुशोभित हो वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो बिजलियोंसहित मेघोंकी घटा छा रही हो ॥ ५ ॥

अक्षौहिणी तु सा सेना तदा यौधिष्ठिरं बलम् ।
प्रविश्यान्तर्दधे राजन् सागरं कुनदी यथा ॥ ६ ॥

राजन्! वह एक अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिरकी विशाल वाहिनीमें समाकर उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे कोई छोटी नदी समुद्रमें मिल गयी हो ॥ ६ ॥

तथैवाक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली ।
धृष्टकेतुरुपागच्छत् पाण्डवानमितौजसः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार बलवान् चेदिराज धृष्टकेतु अपनी एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर अमित तेजस्वी पाण्डवोंके पास आये ॥ ७ ॥

मागधश्च जयत्सेनो जारासन्धिर्महाबलः ।
अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत् ॥ ८ ॥

मगध और जयत्सेन और जरासन्धके महाबली पुत्र सहदेव—ये दोनों एक अक्षौहिणी सेनाके साथ धर्मराज युधिष्ठिरके पास आये थे ॥ ८ ॥

तथैव पाण्ड्यो राजेन्द्र सागरानूपवासिभिः ।
वृतो बहुविधैर्योधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥ ९ ॥

राजेन्द्र! इसी प्रकार समुद्रतटवर्ती प्रदेशमें रहनेवाले अनेक प्रकारके सैनिकोंसे घिरे हुए पाण्ड्यनरेश युधिष्ठिरके यहाँ पधारे थे ॥ ९ ॥

तस्य सैन्यमतीवासीत् तस्मिन् बलसमागमे ।
प्रेक्षणीयतरं राजन् सुवेषं बलवत् तदा ॥ १० ॥

राजन्! उस सैन्य-समागमके समय युधिष्ठिरकी सुन्दर वेष-भूषासे विभूषित तथा प्रबल सेना, जिसकी संख्या बहुत अधिक थी, देखने ही योग्य जान पड़ती थी ॥ १० ॥

द्रुपदस्याप्यभूत् सेना नानादेशसमागतैः ।
शोभिता पुरुषैः शूरैः पुत्रैश्चास्य महारथैः ॥ ११ ॥

द्रुपदकी सेना तो वहाँ पहलेसे ही उपस्थित थी, जो विभिन्न देशोंसे आये हुए शूरवीर पुरुषों तथा द्रुपदके महारथी पुत्रोंसे सुशोभित थी ॥ ११ ॥

तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।
पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पाण्डवानियात् ॥ १२ ॥

इसी प्रकार मत्स्यदेशके सेनापति विराट भी पर्वतीय राजाओंके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आ पहुँचे थे ॥ १२ ॥

इतश्चेतश्च पाण्डूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् ।
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैता विविधध्वजसंकुलाः ॥ १३ ॥
युयुत्समानाः कुरुभिः पाण्डवान् समहर्षयन् ।

महात्मा पाण्डवोंके पास इधर-उधरसे सात अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं, जो नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओंसे व्याप्त दिखायी देती थीं। वे सब सेनाएँ कौरवोंसे युद्ध करनेकी इच्छा रखकर पाण्डवोंका हर्ष बढ़ाती थीं ॥ १३½ ॥

तथैव धार्तराष्ट्रस्य हर्षं समभिवर्धयन् ॥ १४ ॥

१. उनका दूसरा नाम युयुधान है।

भगदत्तो महीपाल सेनामक्षौहिणीं ददौ।
तस्य चीनैः किरातैश्च काञ्चनैरिव संवृतम् ॥ १५
बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा।

इसी प्रकार राजा भगदत्तने दुर्योधनको एक अक्षौहिणी सेना प्रदान की। [illegible] चीन और किरात [illegible] सुवर्णमयी [illegible] सेना [illegible] पड़ती थी ॥

तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनन्दन ॥ १६
दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक्।

कुरुनन्दन! इसी प्रकार शूरवीर भूरिश्रवा तथा राजा शल्य [illegible] पृथक्-पृथक् एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास आये ॥

कृतवर्मा च हार्दिक्यो भोजान्धकुकुरैः सह ॥ १७
अक्षौहिण्यैव सेनाया दुर्योधनमुपागमत्।

हृदिकपुत्र कृतवर्मा भी भोज, अन्धक तथा कुकुरवंशी [illegible] एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास आया ॥

तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्बलम् ॥ १८
अशोभत यथा मत्तैर्वनं प्रक्रीडितैर्गजैः।

उन वनमालाधारी पुरुषसिंहोंसे कृतवर्माकी सेना उसी प्रकार सुशोभित हुई [illegible] हाथियोंसे कोई [illegible] वन [illegible] ॥

जयद्रथमुखाश्चान्ये सिन्धुसौवीरवासिनः ॥ १९
आजग्मुः पृथिवीपाल कम्पयन्त इवाचलान्।

जयद्रथ आदि अन्य राजा [illegible] सिन्धु और सौवीरदेशके निवासी थे, [illegible] दुर्योधनके पास आये ॥

तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौ तदा ॥ २०
विधूयमानो वातेन बहुरूप इवाम्बुदः।

उनकी वह एक अक्षौहिणी विशाल सेना उस समय [illegible] अनेक [illegible] प्रतीत होती थी ॥

सुदक्षिणश्च काम्बोजो यवनैश्च शकैस्तथा ॥ २१
उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशाम्पते।
तस्य सेनासमावायः शलभानामिवाबभौ ॥ २२ ॥
स च संप्राप्य कौरव्यं तत्रैवान्तर्दधे तदा।

राजन्! काम्बोजनरेश सुदक्षिण भी यवनों और शकोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लिये दुर्योधनके पास आया। उसका सैन्यसमूह [illegible] था। वह सारा सैन्य-समुदाय कौरव-सेनामें आकर विलीन हो गया ॥

तथा माहिष्मतीवासी नीलो नीलायुधैः सह ॥ २३
महीपालो महावीर्यैर्दक्षिणापथवासिभिः।

[illegible] माहिष्मतीपुरीके निवासी राजा नील भी [illegible] ॥

आवन्त्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ॥ २४
अक्षौहिण्या च कौरव्य दुर्योधनमुपागतौ।

[illegible] दुर्योधनके पास आये ॥

केकयाश्च नरव्याघ्राः सोदर्याः पञ्च पार्थिवाः।
संहर्षयन्तः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् ॥ २५

[illegible] दुर्योधनको [illegible] ॥

ततस्ततस्तु सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ॥ २६ ॥
तिस्रोऽन्याः समवर्तन्त वाहिन्यो भरतर्षभ।

[illegible] की तीन अक्षौहिणी सेना [illegible] ॥

एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः ॥ २७
युयुत्समाना कौन्तेयान्नानाध्वजसमाकुलाः।

[illegible] ग्यारह अक्षौहिणी [illegible] कुन्तीकुमारोंके साथ युद्ध करनेका उत्साह रखती थी ॥

न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत् तदा ॥ २८
राज्ञां स्वबलमुख्यानां प्राधान्येनापि भारत।

[illegible] पूर्ण [illegible] ॥

ततः पञ्चनदं चैव कृत्स्नं च कुरुजाङ्गलम्।
तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला ॥
अहिच्छत्रं कालकूटं गङ्गाकूलं च भारत। ३०
वारणा वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः ॥
एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान्। ३१
बभूव कौरवेयाणां बलेन सुसमाकुलः ॥

[illegible]

तत्र सैन्यं तथा मुख्यं वर्धयेत पुरोहितः ॥ २२

स पाञ्चाल्यराजेन प्रेषितः कौरवान् प्रति ॥ २३

पाञ्चालराज द्रुपदने अपने जिन पुरोहित ब्राह्मणको कौरवोंके पास भेजा था, उन्होंने वहाँ पहुँचकर उन [illegible] सेनाको देखा ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितनिर्याणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सेनोद्योगपर्वमें पुरोहितका हस्तिनापुरगमनविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

(सञ्जययानपर्व)

विंशोऽध्यायः

द्रुपदके पुरोहितका कौरवसभामें भाषण

वैशम्पायन उवाच

स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः।
सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर द्रुपदके पुरोहित कौरवराज धृतराष्ट्रके पास पहुँचकर राजा धृतराष्ट्र, भीष्म तथा विदुरजीद्वारा सम्मानित हुए ॥ १ ॥

सर्वं कौशल्यमुक्त्वाऽऽदौ पृष्ट्वा चैवमनामयम्।
सर्वसेनाप्रणेतॄणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥

उन्होंने पहले अपने पक्षके लोगोंका सारा कुशल-समाचार बताकर पूछनेपर कौरवोंका कुशल-समाचार पूछा। फिर सम्पूर्ण सेनानायकोंके सामने इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः।
वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति ॥ ३ ॥

आप सब लोग सनातन राजधर्मको जानते हैं, तथापि मैं [illegible] कुछ कह रहा हूँ कि [illegible] कुछ [illegible] मुझसे भी सुननेका अवसर मिले ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ।
तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः ॥ ४ ॥
धृतराष्ट्रस्य ये पुत्रास्ते प्राप्ताः पैतृकं वसु।
पाण्डुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥ ५ ॥

राजा धृतराष्ट्र तथा पाण्डु दोनों एक ही पिताके सुविख्यात पुत्र हैं। [illegible] पैतृक सम्पत्तिपर दोनोंका समान अधिकार है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। धृतराष्ट्रके जो पुत्र हैं, उन्होंने तो पैतृक धन प्राप्त कर लिया; परंतु पाण्डवोंको वह पैतृक धन क्यों नहीं प्राप्त हुआ? ॥ ४-५ ॥

एवंगते पाण्डवेयैर्विदितं वः पुरा यथा।
न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धार्तराष्ट्रेण संवृतम् ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रपुत्रोंने सारा धन अपने अधिकारमें कर लिया, इसलिये पाण्डुपुत्रोंको पैतृक धन नहीं मिला है। यह बात आपलोग पहलेसे ही जानते हैं ॥ ६ ॥

प्राणान्तिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः।
शेषवन्तो न शकिता नेतुं वै यमसादनम् ॥ ७ ॥

इसके बाद दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रपुत्रोंने प्राणनाशकारी उपायोंद्वारा अनेक बार पाण्डवोंको नष्ट करनेका प्रयत्न किया है, किंतु इनकी आयु शेष थी, इसलिये ये इन्हें यमलोक न भेज सके ॥ ७ ॥

पुनश्च वर्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः।
छद्मनापहृतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलैः ॥ ८ ॥

फिर महात्मा पाण्डवोंने अपने बाहुबलसे नूतन राज्यकी प्रतिष्ठा करके उसे बढ़ा लिया, परंतु शकुनिसहित क्षुद्र धृतराष्ट्रपुत्रोंने कपट-द्यूतका आश्रय ले उसका हरण कर लिया ॥ ८ ॥

तदप्यनुमतं कर्म तथायुक्तमनेन वै।
वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ९ ॥

राजा धृतराष्ट्रने उनके उस कार्यका अनुमोदन किया और उनकी जैसी आज्ञा मिली, उसके अनुसार पाण्डव महान् वनमें तेरह वर्षोंतक निवास करनेके लिये विवश हुए ॥ ९ ॥

सभायां क्लेशितैर्वीरैः सहभार्यैस्तथा भृशम्।
अरण्ये विविधाः क्लेशाः सम्प्राप्तास्तैः सुदारुणाः ॥ १० ॥

पत्नीसहित वीर पाण्डवोंको कौरवसभामें भारी क्लेश उठाना पड़ा तथा वनमें भी उन्हें नाना प्रकारके भयानक कष्ट भोगने पड़े ॥ १० ॥

तथा विराटनगरे योन्यन्तरगतैरिव।
प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः ॥ ११ ॥

इतना ही नहीं, दूसरी योनिमें पड़े हुए पापियोंकी तरह विराटनगरमें भी उन महात्माओंने महान् कष्ट सहन किया है ॥ ११ ॥

[illegible] ज्यायान [illegible] अवसर देनेके लिये [illegible]

एवं दृष्ट्वा कृत्वा तत् तव पूर्वनिश्चितम्
मामथ कुरुभिः गाधमिष्ठानि कुरुवृन्दा

महादेव आदि दर्शन अमोघ
भक्तेऽपि कथा कहा

तं तं कृपमाचार्य कृत दुर्योधनस्य
अर्जुनेऽपि युद्धाय भीष्मः सुहृत्तमा

एकाश्रयता पुनः एकाग्र समागता
महाबाहुर्बहुरूपी धनञ्जय

तथा कुरुते सोऽपि संध्याय व्यतिरिच्यते
एवमेव बाहुर्यास्तु महाद्युति

हि विमद्र घोरा कुन्तीं कुरुभिः सह
अमितादेन लोकस्य कालस्य पाण्डवा स्वयम्

बहूनाम् संनाह विकल्प किरीटिन
युधिष्ठिरस्य कृष्णाय बुद्ध्वा युद्धेन को नर

यदि धार्तराष्ट्रस्य हेतु स्याद् विग्रह हि
संयुगे अस्माकं वादियासहाया हि

ममो कथाधाम यथासमयमव
प्रवक्ष्यन्तु महात्म कालोऽत्यगात्स्वयम्

सर्वोविश्वास धर्मपुत्रस्य
युयुत्सुमानां कुरुभिः प्रतिज्ञेऽस्य शासनम्

अवरे पुरुषव्याघ्र सहभागितिर्णीतमा

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि ... विंश ... अध्याय

एकविंशोऽध्याय

भीष्मके द्वारा दुःख के युद्ध की तथा ... करते अर्जुनके ... करना के
रुद्र कराके आवेदपूर्ण ... द्वारा भीष्मकी वाक्का समर्थ करते
इस ... मानि करके छिद्रा ना

सञ्जय उवाच
ततः तद् वचनं श्रुत्वा ... महाद्युति
राजपुत्रस्य यथाकालं भीष्मो वचनमब्रवीत्
... कहन ... हितो

पुन: युधिष्ठिर ने नाद महात्मको प्रात मान
गुरुप उनका करना ठीक लगा

विरथा कुशलिन सर्व सह भ्रातृभिरेव
विश्वा सहायवन्तश्च विरथा धर्मे ते रता

... नाम विष्णु आप कुशल
सद भीमसेन नकुले शत्रु और
धर्म कपर वैभवपर धर्मका
नपथ

विरथा ... भागास्ते प्रागर कुरुनन्दन
विरथा पुत्रमनस पाण्डवा सह था भव

कुरुकुलके लिरिन बने गाड बताल
... हरा नहीं ... लोभाप्यका विषय
आप नकुल सहदेवके ... पुरुषमन ... यह
भी ... नाम

भवता सत्यमुक्त तु सर्वमेतन्न संशय
अतितीक्ष्ण तु ते वाक्य ब्राह्मण्यादिति मु मति

आप ... कहां ... सच ... हमे
सशय नहीं है ... आपकी ... हा नीति ... पर
तीक्ष्ण ब्राह्मण-स्वभावके कारण ही ... मुझे प्रतीत
होता

असशय कर्मेडिषामन्ते न बोह पाण्डवा
प्राप्य धर्म स्वयं पितृधनमनन्तरायम्

... और ...
...

...
... पाण्डुसुता मद्धमर
मा हि पाण्डुसुता युद्धे करतल जय
...
... ... मुझ

अपि वज्रधर स्वयम् किमुतान्ये धनुर्भृत
मयाराय ... इति मे मति

... युद्ध कहार ... नहीं
कर सकता ... के ... ही क्या ... मेरा
ऐसा विश्वास ... अर्जुन ... सामना कर सके
सकता

यदि ... पूर्णमासिन्य सम्पूता
युधपक्ष समागम कर्मो रामानमापदि

... दुध
... युद्ध ... कर ... मुझ

(दीपमालिनी हस्तको अर्घ्यनिवेदन ...)



मत्स्यनिर्मित अर्घ्यनोके भूतल भेदनेपर
पुण्यलोके किं ... भाषितेन पुनः पुनः

... ... सुनी ... यह
... ही ... दाहरा
... क्या

दुर्योधनाय शकुनिना निर्जितानां पुरा
समापेते गतारभ्य पाण्डुपुत्रे युधिष्ठिर

... कुनि दुर्योधन ... पहु
युधिष्ठिरको श्रीमर्मे ... और
...

सामयमाश्रित्य राज्य नेच्छति कस्यचम्
बलमाश्रित्य मत्स्यानां आलाय मूढतम्

... ... अपना ... राज
... ... गौरी नीति
मत्स्य और पाञ्चाल देशकी सेनाके भरोसे राज्य लेना
चाहते हैं

दुर्योधनो भयाद् विद्वन् दद्यात् पादमन्ततः
धर्मतस्तु मही कृत्स्ना प्रदद्याच्छत्रवेऽपि च

विद्वन् दुर्योधन किसीके भयसे अपने राज्यका आधा
चौथाई भाग ... नहा
तो ... दुर्योधन ... है

यदि काङ्क्षन्ति ते राज्यं पितृपैतामहं पुनः।
यथाप्रतिज्ञं कालं तं चरन्तु वनमाश्रिताः ॥ १३ ॥

यदि पाण्डव अपने बाप-दादोंका राज्य लेना चाहते हैं तो पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उतने समयतक पुनः वनमें निवास करें ॥ १३ ॥

ततो दुर्योधनस्याङ्के वर्तन्तामकुतोभयाः।
अधार्मिकीं तु मा बुद्धिं मौर्ख्यात् कुर्वन्तु केवलम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् वे दुर्योधनके आश्रयमें निर्भय होकर रह सकते हैं। केवल मूर्खतावश वे अपनी बुद्धिको अधर्मपरायण न बनावें ॥ १४ ॥

अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पाण्डवाः।
आसाद्येमान् कुरुश्रेष्ठान् स्मरिष्यन्ति वचो मम ॥ १५ ॥

यदि पाण्डव धर्मको त्यागकर युद्ध ही करना चाहते हैं तो इन कुरुकुलके वीरोंसे भिड़नेपर मेरी बात याद करेंगे ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच

किं नु राधेय वाचा ते कर्म तत् स्मर्तुमर्हसि।
एक एव यदा पार्थः षड्रथाञ्जितवान् युधि ॥ १६ ॥

भीष्मजी बोले—राधानन्दन! तू जो इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बनाता है, इससे क्या होगा। तुझे पार्थका वह पराक्रम याद करना चाहिये, जब कि विराटनगरके युद्धमें उन्होंने अकेले ही सम्पूर्ण रथियोंसहित छः अतिरथियोंको जीत लिया था ॥ १६ ॥

बहुशो जीयमानस्य कर्म दृष्टं तथैव ते।
न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत्।
ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान् ॥ १७ ॥

तेरा पराक्रम तो उसी समय देखा गया था, जब कि अनेक बार उनके सामने जाकर तुझे परास्त होना पड़ा। इन ब्राह्मणदेवताने जो कुछ कहा है, यदि हमलोग तदनुसार कार्य नहीं करेंगे तो यह निश्चय है कि युद्धमें पाण्डुनन्दन अर्जुनके हाथसे मारे जाकर हमें धूल फाँकनी पड़ेगी ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च।
अवभर्त्स्य च राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर धृतराष्ट्रने कर्णको डाँटकर भीष्मजीका सम्मान किया और उन्हें राजी करके इस प्रकार कहा ॥ १८ ॥

अस्मद्धितमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्।
पाण्डवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥ १९ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मने हमारे लिये यह हितकर बात कही है। इसमें पाण्डवोंका तथा सम्पूर्ण जगत्‌का भी हित है ॥ १९ ॥

चिन्तयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि संजयम्।
स भवान् प्रतियात्वद्य पाण्डवानेव मा चिरम् ॥ २० ॥

ब्रह्मन्! अब मैं कुछ सोच-विचारकर पाण्डवोंके पास संजयको भेजूँगा। आप पुनः पाण्डवोंके पास ही पधारें, विलम्ब न करें ॥ २० ॥

स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषयामास पाण्डवान्।
सभामध्ये समाहूय संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

तदनन्तर राजा धृतराष्ट्रने उन ब्राह्मणका सत्कार करके उन्हें पाण्डवोंके पास वापस भेजा और सभामें संजयको बुलाकर यह बात कही ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि पुरोहितयाने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें पुरोहितयात्राविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्याय

धृतराष्ट्रका संजयसे पाण्डवोंके प्रभाव और प्रतिभाका वर्णन करते हुए उसे संदेश देकर पाण्डवोंके पास भेजना

धृतराष्ट्र उवाच

प्राप्तानाहुः संजय पाण्डुपुत्रा-
नुपप्लव्ये तान् विजानीहि गत्वा।
अजातशत्रुं च सभाजयेथा
दिष्ट्यानघ ग्राममुपस्थितस्त्वम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! लोग कहते हैं कि पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें आ गये हैं। तुम वहाँ जाकर उनका समाचार जानो। अजातशत्रु युधिष्ठिरसे आदरपूर्वक मिलकर कहना 'सौभाग्यकी बात है कि आप सकुशल होकर अपने योग्य स्थानपर आ पहुँचे हैं' ॥ १ ॥

सर्वान् वदेः संजय स्वस्तिमन्तः
कृच्छ्रं वासमतदर्हा निरुष्य।
तेषां शान्तिर्विद्यतेऽस्मासु शीघ्रं
मिथ्योपेतानामुपकारिणां सताम् ॥ २ ॥

संजय! तुम पाण्डवोंसे कहना कि हमलोग सकुशल हैं। पाण्डवलोग मिथ्यासे दूर रहनेवाले, श्रेष्ठ तथा साधु पुरुष हैं। वे कभी ... भावसे ... नहीं थे तो भी उन्होंने ... विराट पुर ... लगा है इसपर भी हमारे ऊपर उनका क्रोध क्षीण हो गया है।

नाहं कञ्चित् अजात पाण्डवानां
मिथ्यावृत्तिं कांचन जात्वपश्यम्।
सर्वां श्रियं ह्यात्मवीर्येण लब्ध्वा
पर्याकार्षुः पाण्डवा मह्यमेव॥३॥

संजय! मैंने कभी पाण्डवोंमें थोड़ी-सी भी मिथ्या वृत्ति नहीं देखी है। पाण्डवोंने अपने पराक्रमसे प्राप्त हुई सारी सम्पत्ति मेरे ही अधीन कर दी थी॥३॥

दोषं ह्येषां नाध्यगच्छं परीच्छन्
नित्यं कंचिद् येन गर्हेय पार्थान्।
धर्मार्थाभ्यां कर्म कुर्वन्ति नित्यं
सुखप्रिया नानुरुध्यन्ति कामान्॥४॥

मैंने सदा ढूँढ़ते रहनेपर भी कुन्तीपुत्रोंका कोई ऐसा दोष नहीं देखा है, जिससे उनकी निन्दा करूँ। वे सदा धर्म और अर्थके लिये ही कर्म करते हैं। कामनावश सांसारिक प्रीति और स्त्री पुत्रादि प्रिय वस्तुओंमें नहीं फँसते हैं—काम भोगोंमें आसक्त होकर धर्मका परित्याग नहीं करते हैं॥४॥

घर्मं शीतं क्षुत्पिपासे तथैव
निद्रां तन्द्रीं क्रोधहर्षौ प्रमादम्।
धृत्या चैव प्रज्ञया चाभिभूय
धर्मार्थयोगात् प्रयतन्ति पार्थाः॥५॥

कुन्तीके पुत्र घाम, शीत, भूख, प्यास, निद्रा, तन्द्रा, क्रोध, हर्ष तथा प्रमादको धैर्य एवं विवेकपूर्ण बुद्धिके द्वारा जीतकर धर्म और अर्थके लिये ही प्रयत्नशील बने रहते हैं॥५॥

त्यजन्ति मित्रेषु धनानि काले
न संवासाज्जीर्यति मैत्रमेषाम्।
यथार्हमानार्थकरा हि पार्था-
स्तेषां द्वेष्टा नास्त्याजमीढस्य पक्षे॥६॥
अन्यत्र पापाद् विषमान्मन्दबुद्धे-
र्दुर्योधनात् क्षुद्रतराच्च कर्णात्।
(सुतो मम मृत्युवशं जगाम
दुर्योधनः संजय नष्टबुद्धिः।
भागं हर्तुं इच्छते मन्दबुद्धि-
र्महात्मनां संजय दीप्ततेजसाम्॥)
तेषां हीमौ हीनसुखप्रियाणां
महात्मनां संजनयतो हि तेजः॥७॥

वे समय आनेपर मित्रोंको धन देते हैं। दीर्घकालतक साथ रहनेसे भी उनकी मैत्री क्षीण नहीं होती है। कुन्तीके पुत्र सबका यथायोग्य सत्कार करनेवाले हैं। अजमीढ़कुल हम कौरवोंके पक्षमें पापी, विषम तथा मन्दबुद्धि दुर्योधन एवं अत्यन्त क्षुद्र स्वभाववाले कर्णको छोड़कर दूसरा कोई भी उनसे द्वेष रखनेवाला नहीं है। संजय! मेरा पुत्र दुर्योधन कालके अधीन हो गया है, क्योंकि उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है। वह मूर्ख अत्यन्त तेजस्वी महात्मा पाण्डवोंका भाग हड़पनेकी चेष्टा कर रहा है। केवल दुर्योधन और कर्ण ही सुख और प्रियसे वञ्चित हुए उन महात्मा पाण्डवोंके मनमें क्रोध उत्पन्न करते रहते हैं॥६-७॥

न चाभवीर्यं सुखमेधमानो
दुर्योधनः सुकृतं मन्यते तत्।
तेषां भागं यच्च मन्येत बालः
शक्यं हर्तुं जीवतां पाण्डवानाम्॥८॥

दुर्योधन घरमें ही पराक्रम दिखानेवाला है; उत्साहका वह निश्चय नहीं कर सकता, क्योंकि वह सुखमें ही पलकर बड़ा हुआ है। वह इतना मूर्ख है कि पाण्डवोंके जीते-जी उनका भाग हर लेना सम्भव समझता है। इतना ही नहीं, वह इस कुकर्मको उत्तम कर्म भी मानता है॥८॥

यस्यार्जुनः पदवीं केशवश्च
वृकोदरः सात्यकोऽजातशत्रोः।
माद्रीपुत्रौ सृञ्जयाश्चापि सर्वे
पुरा युद्धात् साधु तस्य प्रदानम्॥९॥

अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन, सात्यकि, नकुल, सहदेव और समस्त सृञ्जयवंशी वीर जिनके पीछे चलते हैं, उन युधिष्ठिरको युद्धसे पहले ही उनका राज्यभाग दे देना अच्छा है॥९॥

स ह्येवैकः पृथिवीं सव्यसाची
गाण्डीवधन्वा प्रणुदेद् रथस्थः।
तथा विष्णुः केशवोऽप्यप्रधृष्यो
लोकत्रयस्याधिपतिर्महात्मा॥१०॥
तिष्ठेत कस्तस्य मर्त्यः पुरस्ताद्
यः सर्वलोकेषु वरेण्य एकः।
पर्जन्यघोषान् प्रवपञ्छरौघान्
पतङ्गसङ्घानिव शीघ्रवेगान्॥११॥

गाण्डीवधारी सव्यसाची अर्जुन रथमें बैठकर अकेले ही सारी पृथ्वीको जीत सकते हैं। इसी प्रकार विजयशील एवं दुर्धर्ष महात्मा श्रीकृष्ण भी तीनों लोकोंको जीतकर उनके अधिपति हो सकते हैं। जो समस्त लोकोंमें एकमात्र सर्वश्रेष्ठ वीर हैं, जो मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा टिड्डियोंके दलकी भाँति तीव्र वेगसे चलनेवाले बाण-समूहोंकी वर्षा करते हैं, उन वीर अर्जुनके सामने कौन मनुष्य ठहर सकता है॥१०-११॥

दिशः प्राचीमपि चोत्तरां कुरूंश्च
गाण्डीवधन्वैकरथो जिगाय।
धनं चैषामाहरत् सव्यसाची
सेनानुगान् बलिदांश्चैव चक्रे ॥ १२ ॥

गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले एकमात्र रथपर आरूढ़ हो सव्यसाची अर्जुनने न केवल उत्तर दिशापर विजय पायी थी, अपितु उत्तर कुरुदेशको भी जीत लिया था और उन सबकी धन-सम्पत्ति छीनकर ले आये थे। उन्होंने द्रविडोंको भी जीतकर अपनी सेनाका अनुगामी बनाया था ॥ १२ ॥

यश्चैव देवान् खाण्डवे सव्यसाची
गाण्डीवधन्वा प्रजिगाय सेन्द्रान्।
उपाहरत् पाण्डवो जातवेदसे
यशो मानं वर्धयन् पाण्डवानाम् ॥ १३ ॥

गाण्डीवधनुष धारण करनेवाले पाण्डुपुत्र सव्यसाची अर्जुन वे ही हैं, जिन्होंने खाण्डववनमें इन्द्रसहित देवताओंपर विजय पायी थी और पाण्डवोंके यश तथा सम्मानकी वृद्धि करते हुए अग्निदेवको वह वन उपहारके रूपमें अर्पित किया था ॥ १३ ॥

गदाभृतां नास्ति समोऽत्र भीमा-
द्धस्त्यारोहो नास्ति समश्च तस्य।
रथेऽर्जुनादाहुरहीनमेनं
बाह्वोर्बलेनायुतनागवीर्यम् ॥ १४ ॥

गदाधारियोंमें इस भूतलपर भीमसेनके समान दूसरा कोई नहीं है और न उनके-जैसा कोई हाथीसवार ही है। रथपर बैठकर युद्ध करनेकी कलामें भी वे अर्जुनसे कम नहीं बताये जाते हैं और बाहुबलमें तो वे दस हजार हाथियोंके समान शक्तिशाली हैं ॥ १४ ॥

सुशिक्षितः कृतवैरस्तरस्वी
दहेत् क्रुद्धस्तरसा धार्तराष्ट्रान्।
सदात्यमर्षी न बलात् स शक्यो
युद्धे जेतुं वासवेनापि साक्षात् ॥ १५ ॥

अस्त्रविद्यामें उन्हें अच्छी शिक्षा मिली है। वे बड़े पराक्रमी वीर हैं। उनके साथ मेरे पुत्रोंने वैर ठान रखा है और वे सदा अत्यन्त अमर्षमें भरे रहते हैं। अतः यदि युद्ध हुआ तो भीमसेन मेरे दुर्बुद्धि पुत्रोंको वेगपूर्वक अपनी क्रोधाग्निसे जलाकर भस्म कर देंगे। साक्षात् इन्द्र भी उन्हें युद्धमें बलपूर्वक परास्त नहीं कर सकते ॥ १५ ॥

सुचेतसौ बलिनौ शीघ्रहस्तौ
सुशिक्षितौ भ्रातरौ फाल्गुनेन।
श्येनौ यथा पक्षिपूगान् रुजन्तौ
माद्रीपुत्रौ शेषयेतां न शत्रून् ॥ १६ ॥

माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव भी शुद्धचित्त और बलवान् हैं। अर्जुनने उन दोनोंके हाथोंको फुर्ती दिखानेमें प्रवीण बना दिया है और उन दोनों भाइयोंको युद्धकी अच्छी शिक्षा दी है। जैसे दो बाज पक्षियोंके समुदायको छिन्न-भिन्न कर देते हैं, उसी प्रकार वे दोनों भाई शत्रुओंसे भिड़कर उन्हें जीवित नहीं छोड़ सकते ॥ १६ ॥

एतद् वनं पूर्णमस्माकमेव
यत् सत्यं तान् प्राप्य नासतीति मन्ये।
तेषां मध्ये वर्तमानस्तरस्वी
धृष्टद्युम्नः पाण्डवानामिहैकः ॥ १७ ॥

सहामात्यः सोमकानां प्रबर्हः
संत्यक्तात्मा पाण्डवार्थे श्रुतो मे।
अजातशत्रुं प्रसहेत कोऽन्यो
येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥ १८ ॥

यह ठीक है कि हमारी सेना सब प्रकारसे परिपूर्ण है, तथापि मेरा यह विश्वास है कि यह पाण्डवोंका सामना करनेपर नहीं के बराबर है। पाण्डवोंके साथ धृष्टद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक बलवान् योद्धा है, जो सोमकवंशका श्रेष्ठ राजकुमार है। मैंने सुना है कि वह पाण्डवोंके लिये मन्त्रियोंसहित अपने शरीरका बलिदान कर चुका है। जिन अजातशत्रु युधिष्ठिरके अगुआ अथवा नेता वृष्णिवंशके सिंह भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उनका वेग दूसरा कौन सह सकता है? ॥ १७-१८ ॥

सहोषितश्चरितार्थो वयःस्थः
शाल्वेयानामधिपो वै विराटः।
सह पुत्रैः पाण्डवार्थे च शश्वद्
युधिष्ठिरं भक्त इति श्रुतं मे ॥ १९ ॥

मत्स्यदेशके राजा विराट भी अपने पुत्रोंके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये सदा उद्यत रहते हैं। मैंने सुना है कि वे युधिष्ठिरके बड़े भक्त हैं। कारण यह है कि अज्ञातवासके समय वे युधिष्ठिरके साथ एक साथ रह चुके हैं और युधिष्ठिरके द्वारा उनके गोधनकी रक्षा हुई है। अवस्थामें वृद्ध होनेपर भी वे युद्धमें नौजवान-से जान पड़ते हैं ॥ १९ ॥

अवरुद्धा रथिनः केकयेभ्यो
महेष्वासा भ्रातरः पञ्च सन्ति।
केकयेभ्यो राज्यमाकाङ्क्षमाणा
युद्धार्थिनश्चानुवसन्ति पार्थान् ॥ २० ॥

केकयदेशसे बाहर निकाले हुए पाँच भाई केकयराजकुमार महान् धनुर्धर एवं रथी वीर हैं। वे राज्यशासन करनेवाले केकयदेशीय राजाओंसे पुनः अपना राज्य लेना चाहते हैं, इसलिये उनकी ओरसे युद्ध करनेकी इच्छा लेकर पाण्डवोंके साथ रह रहे हैं ॥ २० ॥

सर्वांश्च वीरान् पृथिवीपतीनां
समागतान् पाण्डवार्थे निविष्टान्

शूराणां अभिजनः शृणोमि
वीरा युधिष्ठिरसंश्रिताश्च धर्मात्मनः ॥ २१ ॥

मैं यह भी सुनता हूँ कि राजाओंमें जितने वीर हैं, वे सब पाण्डवोंकी सहायताके लिये आकर उनकी छावनीमें रहते हैं। वे सब-के-सब शौर्यसम्पन्न, युधिष्ठिरके प्रति भक्ति रखनेवाले, सदाचारित एवं धर्मात्माके आश्रित हैं।

गिरिश्रया दुर्गनिवासिनश्च
योधाः पृथिव्यां कुलजातिशुद्धाः ।
म्लेच्छाश्च नानायुधवीर्यवन्तः
समागताः पाण्डवार्थे निविष्टाः ॥ २२ ॥

पर्वतोंपर रहनेवाले, दुर्ग भूमिमें निवास करनेवाले एवं समस्त भूमिके निवासी योद्धा, जो कुल और जातिकी दृष्टिसे बहुत शुद्ध हैं, वे तथा म्लेच्छ भी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं बल-पराक्रमसे सम्पन्न हो पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हैं और उनके शिविरमें निवास करते हैं।

पाञ्चालराजः समितिञ्जयश्च
योधप्रवीरैर्युधि संसमेतः ।
समागतः पाण्डवार्थे महात्मा
लोकप्रवीरोऽमितवीर्यतेजाः ॥ २३ ॥

पाञ्चालदेशके महामना राजा, जो संग्राममें शत्रुविजयी वीर, अनुपम पराक्रम और तेजसे सम्पन्न तथा कुरुओं[?] देवराज इन्द्रके समान हैं, पाण्डवोंकी सहायताके लिये बहुत-से प्रमुख योद्धाओंके साथ पधारे हैं ॥ २३ ॥

यश्च द्रोणादर्जुनाद् वासुदेवात्
कृपाद् भीष्माद् येन वृतं शृणोमि ।
यं तं कार्ष्णिप्रतिममाहुरेकं
स सात्यकिः पाण्डवार्थे निविष्टः ॥ २४ ॥

जिसने द्रोणाचार्य, अर्जुन, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य तथा भीष्मसे भी अस्त्रविद्या सीखी है तथा जिस एकमात्र वीरको श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्नके समान पराक्रमी बताया जाता है, वह सात्यकि भी, सुनता हूँ, पाण्डवोंकी सहायताके लिये आकर स्थित हुआ है।

उपाश्रिताश्चेदिकरूषकाश्च
सर्वोद्योगैर्भूमिपालैः समेताः ।
तेषां मध्ये सूर्यमिवातपन्तं
श्रिया वृतं चेदिपतिं ज्वलन्तम् ॥ २५ ॥
अस्तम्भनीयं युधि मन्यमानो
ज्याकर्षतां श्रेष्ठतमं पृथिव्याम् ।
सर्वोत्साहं क्षत्रियाणां निहत्य
प्रसह्य कृष्णस्तरसा ममर्द ॥ २६ ॥

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें चेदि और करूषदेशके भूपाल सब प्रकारकी तैयारीके साथ आश्रित होकर आये थे। उन सबके बीचमें चेदिराज शिशुपाल अपनी दिव्य शोभासे तपते हुए सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था। युद्धमें उसके वेगको रोकना असम्भव था। धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और भूमण्डलके सभी योद्धाओंमें शिशुपाल एक श्रेष्ठतम वीर था। यह सब समझकर भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ चेदिदेशीय क्षत्रियोंके सम्पूर्ण उत्साहको नष्ट करके हठपूर्वक बड़े वेगसे शिशुपालको मार डाला।

यशोमानौ वर्धयन् पाण्डवानां
पुराभिनच्छिशुपालं समीके ।
यस्य सर्वे वर्धयन्ति स्म मानं
करूषराजप्रमुखा नरेन्द्राः ॥ २७ ॥

करूषराज आदि सब नरेश जिसका सम्मान बढ़ाते थे, उस शिशुपालको भरी सभामें पाण्डवोंके यश और मानकी वृद्धिके उद्देश्यसे श्रीकृष्णने पहले ही मार डाला।

तमसह्यं केशवं तत्र मत्वा
सुग्रीवयुक्तेन रथेन कृष्णम् ।
सम्प्राद्रवंश्चेदिपतिं विहाय
सिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा इवान्ये ॥ २८ ॥

सुग्रीव आदि घोड़ोंसे जुते हुए रथपर आरूढ़ होनेवाले श्रीकृष्णको असह्य मानकर चेदिराज शिशुपालके सिवा दूसरे भूपाल उसी प्रकार पलायन कर गये, जैसे सिंहको देखकर दूसरे क्षुद्र पशु भाग जाते हैं।

यस्तं प्रतीपस्तरसा प्रत्युदीया-
दाशंसमानो द्वैरथे वासुदेवम् ।
सोऽशेत कृष्णेन हतः परासु-
र्वातेनेवोन्मथितः कर्णिकारः ॥ २९ ॥

जिसने द्वैरथ युद्धमें विजयकी आशा रखकर भगवान् श्रीकृष्णका विरोधी हो बड़े वेगसे उनपर धावा किया था, वह शिशुपाल श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर प्राणशून्य हो सदाके लिये इस प्रकार धरतीपर सो गया, मानो कनेरका वृक्ष हवाके वेगसे उखड़कर धराशायी हो गया हो।

पराक्रमं मे यदवेदयन्त
तेषामर्थे सञ्जय केशवस्य ।
अनुस्मरंस्तस्य कर्माणि विष्णो-
र्गावल्गणे नाधिगच्छामि शान्तिम् ॥ ३० ॥

संजय! पाण्डवोंके लिये किये हुए श्रीकृष्णके उस पराक्रमका वृत्तान्त मेरे गुप्तचरोंने मुझे बताया था। गावल्गणे! श्रीहरिके उन वीरोचित कर्मोंको बारंबार याद करके मुझे शान्ति नहीं मिल रही है ॥ ३० ॥

न जातु तावच्छत्रुरन्यः सहेत
येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः।
प्रवेपते मे हृदयं भयेन
श्रुत्वा कृष्णावेकरथे समेतौ॥ ३१॥

जिनके अग्रगामी वृष्णिसिंह भगवान् वासुदेव हैं, उन पाण्डवोंका आक्रमण कभी भी दूसरा कोई शत्रु नहीं सह सकता। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों एक रथपर एकत्र हो गये हैं, यह सुनकर तो मेरा हृदय भयसे काँप उठता है॥ ३१॥

न चेद् गच्छेत् संगरं मन्दबुद्धि-
स्ताभ्यां सुतो मे विपरीतचेताः।
नो चेत् कुरून् संजय निर्दहेता-
मिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव॥ ३२॥

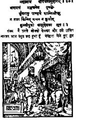
संजय! यदि मेरा मन्दबुद्धि पुत्र उन दोनोंसे युद्ध करनेके लिये न जाय तो भी यह भलाईकी बात हो सकती है, अन्यथा वे दोनों वीर कौरवोंको उसी प्रकार भस्म कर देंगे, जैसे इन्द्र और विष्णु दैत्योंकी सेनाका संहार कर डालते हैं॥ ३२॥

मतो हि मे शक्रसमो धनंजयः
सनातनो वृष्णिवीरश्च विष्णुः।
धर्मारामो ह्रीनिषेधस्तरस्वी
कुन्तीपुत्रः पाण्डवोऽजातशत्रुः॥ ३३॥
दुर्योधनेन निकृतो मनस्वी
नो चेत् क्रुद्धः प्रदहेद् धार्तराष्ट्रान्।
नाहं तथा ह्यर्जुनाद् वासुदेवाद्
भीमाद् वापि यमयोर्वा बिभेमि॥ ३४॥
यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूत
मन्योरहं भीततरः सदैव।
महातपा ब्रह्मचर्येण युक्तः
संकल्पोऽयं मानसस्तस्य सिध्येत्॥ ३५॥

मुझे तो अर्जुन इन्द्रके समान प्रतीत होते हैं और वृष्णिवीर श्रीकृष्ण सनातन विष्णु जान पड़ते हैं। कुन्तीनन्दन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर धर्माचरणमें ही सुख मानते हैं। वे लज्जाशील और बलवान् हैं। उनके मनमें किसीके प्रति कभी शत्रुभाव नहीं रहा है। यदि ऐसा न होता तो वे मनस्वी युधिष्ठिर दुर्योधनके द्वारा छल-कपटके शिकार होनेपर क्रोध करके मेरे सभी पुत्रोंको जलाकर भस्म कर देते। सूत! मैं अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन तथा नकुल-सहदेवसे भी उतना नहीं डरता, जितना कि क्रोधसे तमतमाये हुए राजा युधिष्ठिरके कोपसे उनके रोषसे मैं सदा ही अत्यन्त भयभीत रहता हूँ; क्योंकि वे महान् तपस्वी और ब्रह्मचर्यसे सम्पन्न हैं, इसलिये उनके मनमें जो संकल्प होगा, वह सिद्ध होकर ही रहेगा॥ ३३—३५॥

स तस्य क्रोधं संजयाहं समीक्ष्य
स्थाने जानन् भृशमस्म्यद्य भीतः।
स गच्छ शीघ्रं प्रहितो रथेन
पाञ्चालराजस्य चमूनिवेशनम्॥ ३६॥
अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः
पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम्।
जनार्दनं चापि समेत्य तात
महामात्रं वीर्यवतामुदारम्॥ ३७॥
अनामयं मद्वचनेन पृच्छे-
र्धृतराष्ट्रः पाण्डवैः शान्तिमीप्सुः।
न तस्य किंचिद् वचनं न कुर्यात्
कुन्तीपुत्रो वासुदेवस्य सूत॥ ३८॥

संजय! मैं उनके क्रोधको देखकर और उसे उचित जानकर आज बहुत डरा हुआ हूँ। मेरे द्वारा भेजे हुए तुम



रथपर चढ़कर शीघ्र ही पाञ्चालराज द्रुपदकी छावनीमें जाकर वहाँ अत्यन्त प्रेमपूर्वक अजातशत्रु युधिष्ठिरसे बातचीत करना और बार-बार उनका कुशल-मङ्गल पूछना। तात! तुम बलवानोंमें श्रेष्ठ महाभाग भगवान् श्रीकृष्णसे भी मिलकर मेरी ओरसे उनका कुशल-समाचार पूछना और यह बताना कि धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ शान्तिपूर्ण बर्ताव चाहते हैं। सूत! कुन्तीकुमार युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णकी कोई भी बात टाल नहीं सकते॥ ३६—३८॥

प्रियश्चैषामात्मसमश्च कृष्णो
विद्वांश्चैषां कर्मणि नित्ययुक्तः।
समानीय पाण्डवान् सृञ्जयांश्च
जनार्दनं युयुधानं विराटम्॥ ३९॥
अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः
सर्वांस्तथा द्रौपदेयांश्च पञ्च।
यद् यत् तत्र प्राप्तकालं परेभ्य-
स्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च।
तत् तद् भाषेथाः संजय राजमध्ये
न मूर्च्छयेद् यन्न युद्धहेतुः॥ ४०॥

क्योंकि श्रीकृष्ण इनके आत्माके समान प्रिय हैं। श्रीकृष्ण विहार हैं और सदा पाण्डवोंके हितके कार्योंमें लगे रहते हैं।

संजय! तुम वहाँ एकत्र हुए पाण्डवों तथा सम्बन्धी राजाओंसे और श्रीकृष्ण, सात्यकि, विराट एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंसे भी मेरी ओरसे स्वास्थ्यका समाचार पूछना। इसके सिवा जैसा अवसर हो और जिसमें तुम्हें भरतवंशियोंका हित प्रतीत हो, वैसी बातें पाण्डवलोगोंसे कहना। राजाओंके बीचमें ऐसा कोई वचन न कहना, जो उनके क्रोधको बढ़ाने तथा युद्धका कारण बने ॥ ३९-४० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि धृतराष्ट्रसंदेशे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें धृतराष्ट्रसंदेशविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ। २२

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४१ श्लोक हैं)

त्रयोविंशोऽध्यायः

संजयका युधिष्ठिरसे मिलकर उनकी कुशल पूछना एवं युधिष्ठिरका संजयसे कौरवपक्षका कुशल-समाचार पूछते हुए उससे सारगर्भित प्रश्न करना

वैशम्पायन उवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य संजयः।
उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा धृतराष्ट्रकी बात सुनकर संजय अमित तेजस्वी पाण्डवोंसे मिलनेके लिये उपप्लव्य गया ॥ १ ॥

स तु राजानमासाद्य कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

वहाँ पहले कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास जाकर सूतपुत्र संजयने उन्हें प्रणाम किया और उनसे बातचीत प्रारम्भ की। २।

गावल्गणिः संजयः सूतसूनु-
रजातशत्रुमवदत् प्रतीतः।
दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये
सहायवन्तं च महेन्द्रकल्पम् ॥ ३ ॥

गवल्गणके पुत्र सूतकुमार संजयने प्रसन्न होकर अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरसे कहा—राजन्! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं देवराज इन्द्रके समान सहायकों सहित आपको सकुशल देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

अनामयं पृच्छति त्वाम्बिकेयो
वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी।
कच्चिद् भीमः कुशली पाण्डवाग्र्यो
धनंजयस्तौ च माद्रीतनूजौ ॥ ४ ॥

बूढ़े एवं बुद्धिमान् अम्बिकानन्दन महाराज धृतराष्ट्रने आपका कुशल-समाचार पूछा है। भीमसेन, पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन तथा वे दोनों माद्रीकुमार नकुल-सहदेव कुशलसे तो हैं न? ॥ ४ ॥

कच्चित् कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री
सत्यव्रता वीरपत्नी सपुत्रा।
मनस्विनी यत्र च वाञ्छसि त्व-
मिष्टान् कामान् भारत स्वस्तिकामः ॥ ५ ॥

भारत! सत्यव्रतका पालन करनेवाली वीरपत्नी द्रुपदकुमारी राजपुत्री मनस्विनी कृष्णा अपने पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक है न? आप जिनके द्वारा अपने अभीष्ट मनोरथोंकी पूर्ति तथा कल्याणकी इच्छा रखते हैं, तथा जिन अभीष्ट भोगोंको बनाये रखना चाहते हैं, वे आत्मीय जन तथा धन-वैभव-वाहन आदि भोगोपकरण सकुशल हैं न? ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गावल्गणे संजय स्वागतं ते
प्रीतात्मनाहं त्वाभिवदामि सूत।
अनामयं प्रतिजाने तवाहं
सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन् ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले—गवल्गणकुमार संजय! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हें देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। विद्वन्! मैं अपने भाइयोंसहित कुशलसे हूँ तथा तुम्हें अपने आरोग्यकी सूचना दे रहा हूँ ॥ ६ ॥

चिरादिदं कुशलं भारतस्य
श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत।
मन्ये साक्षाद् दृष्टमहं नरेन्द्रं
दृष्ट्वैव त्वां संजय प्रीतियोगात् ॥ ७ ॥

सूत! कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भरतवंशी महाराज धृतराष्ट्रका यह कुशल-समाचार दीर्घकालके बाद सुनकर और प्रेमपूर्वक तुम्हें भी देखकर मैं यह अनुभव करता हूँ कि आज मुझे साक्षात् महाराज धृतराष्ट्रका ही दर्शन हुआ है। ७।

पितामहो नः स्थविरो मनस्वी
महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः।
स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो
यथापूर्वं वृत्तिरस्यास्ति कच्चित् ॥ ८ ॥

तात! मनस्वी परम ज्ञानी तथा समस्त धर्मोंसे सम्पन्न हमारे बूढ़े पितामह कुरुवंशी भीष्मजी तो कुशलसे

है ? इसलोगोंपर उनका स्नेहभाव तो पूर्ववत् बना हुआ है ?

कच्चिद् राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा ।
महाराजो बाह्लीकः प्रातिपेयः
कच्चिद् विद्वान् कुशली सूतपुत्र ॥ ९ ॥

संजय ! क्या अपने पुत्रोंसहित विचित्रवीर्यनन्दन महात्मा राजा धृतराष्ट्र सकुशल हैं ? प्रतीपके विद्वान् पुत्र महाराज बाह्लीक तो कुशलपूर्वक हैं ?

स सोमदत्तः कुशली तात कच्चिद्
भूरिश्रवाः सत्यसन्धः शलश्च ।
द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो
महेष्वासाः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥ १० ॥

तात ! सोमदत्त, भूरिश्रवा, सत्यप्रतिज्ञ शल, पुत्रसहित द्रोणाचार्य और विप्रवर कृपाचार्य—ये महाधनुर्धर वीर स्वस्थ तो हैं ?

सर्वे कुरुभ्यः स्पृहयन्ति संजय
धनुर्धरा ये पृथिव्यां युवानः ।
महाप्राज्ञाः सर्वशास्त्रावदाता
धनुर्भृतां मुख्यतमाः पृथिव्याम् ॥ ११ ॥

संजय ! क्या पृथ्वीके जो सम्पूर्ण धनुर्धर वीर हैं, जो परम बुद्धिमान्, समस्त शास्त्रोंके ज्ञानसे सम्पन्न तथा भूमण्डलके धनुर्धरोंमें प्रधान हैं, कौरवोंने उनका आदर करते हैं ?

कच्चिन्मानं तात लभन्त एते
धनुर्भृतः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ।
यस्य राष्ट्रे निवसति [illegible]
महेष्वासः शीलवान् द्रोणपुत्रः ॥ १२ ॥

तात ! जिनके राज्यमें शीलवान् तथा महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा निवास करता है, उन कौरवोंके यहाँ क्या पूर्वोक्त धनुर्धर वीर सम्मान पाते हैं ? क्या वे कौरव भी नीरोग हैं ?

वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चि-
न्महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः ।
कर्णोऽमात्यः कुशली तात कच्चित्
सुयोधनो यस्य मन्दो विधेयः ॥ १३ ॥

तात ! क्या राजा धृतराष्ट्रकी वैश्यजातीय पत्नीके पुत्र महाज्ञानी राजकुमार युयुत्सु सकुशल हैं ? मन्त्री कर्ण भी, जिसकी आज्ञाके अधीन रहता है यह मन्दबुद्धि दुर्योधन, वह कर्ण भी कुशलपूर्वक है ?

स्त्रियो वृद्धा भारतानां जनन्यो
महानस्यो दासभार्याश्च सूत ।
वध्वः पुत्रा भागिनेया भगिन्यो
दौहित्रा वा कच्चिदप्यव्यलीकाः ॥ १४ ॥

सूत ! भरतवंशियोंकी माताएँ, बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ, रसोई बनानेवाली सेविकाएँ, दासियाँ, बहुएँ, पुत्र, भानजे, बहिनें और पुत्रियोंके पुत्र ये सभी निष्कपटभावसे रहते हैं ?

कच्चिद् राजा ब्राह्मणानां यथावत्
प्रवर्तते पूर्ववत् तात वृत्तिम् ।
कच्चिद् दायान् मामकान् धार्तराष्ट्रो
द्विजातीनां संजय नोपहन्ति ॥ १५ ॥

तात ! क्या राजा दुर्योधन पहलेकी भाँति ब्राह्मणोंको जीविका देनेमें यथोचित रीतिसे तत्पर रहता है ? संजय ! मैंने ब्राह्मणोंको वृत्तिके रूपमें जो गाँव आदि दिये थे, उन्हें छीनता तो नहीं है ?

कच्चिद् राजा धृतराष्ट्रः सपुत्र
उपेक्षते ब्राह्मणातिक्रमान् वै ।
स्वर्गस्य कच्चिन्न तथा वर्त्मभूता
मुपेक्षते तेषु सदैव वृत्तिम् ॥ १६ ॥

पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र ब्राह्मणोंके प्रति किये गये अपराधोंकी उपेक्षा तो नहीं करते ? ब्राह्मणोंको जो सदा वृत्ति दी जाती है, वह स्वर्गलोकमें पहुँचानेका मार्ग है; अतः राजा उस वृत्तिकी उपेक्षा या अवहेलना तो नहीं करते हैं ?

एतज्ज्योतिरुत्तमं जीवलोके
शुक्लं प्रजानां विहितं विधात्रा ।
ते चेल्लोभं न नियच्छन्ति मन्दाः
कृत्स्नो नाशो भविता कौरवाणाम् ॥ १७ ॥

ब्राह्मणोंको दी हुई जीविकावृत्ति इस लोक और परलोकको प्रकाशित करनेवाली उत्तम ज्योति है। [illegible] विधाताने इसका विधान किया है। यह निर्मल [illegible] प्रजाके हितके लिये ही रखा गया है। यदि मन्दबुद्धि कौरव ब्राह्मणोंकी जीविकावृत्तिके अपहरण रूप लोभको काबूमें नहीं रखेंगे, तो कौरवकुलका सर्वथा विनाश हो जायगा।

कच्चिद् राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
बुभूषते वृत्तिममात्यवर्गे ।
कच्चिन्न भेदेन जिजीविषन्ति
सुहृद्रूपा दुर्हृदश्चैकमित्राः ॥ १८ ॥

क्या पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र मन्त्रिवर्गको भी जीविका निर्वाह करनेके प्रति देनेकी इच्छा करते हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि वे अपने जीविका चलाना चाहते हैं ? मित्ररूपमें छिपे हुए शत्रु और [illegible] रूप धारण किये हुए भाई भी

निर्वाह करना चाहते हैं) । वे युद्धके समयमें रहते हुए भी एकमत होकर शत्रु तो नहीं बन गये हैं ? ॥ १८ ॥

> कच्चिन्न पार्थान् कृपणाश्चरन्त-
> स्ते पाण्डवानां कुरवः सर्व एव ।
> द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च वीरो
> महात्मसु पापानि वदन्ति कच्चित् ॥ १९ ॥

तात संजय ! सभी कुरु कौरव मिलकर पाण्डवोंके किसी दोषकी चर्चा तो नहीं करते हैं ? पुत्रसहित द्रोणाचार्य और वीर कृपाचार्य इन महात्माओंपर किन्हीं दोषोंका आक्षेप तो नहीं करते हैं ? ॥ १९ ॥

> कच्चिद् राज्ये धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
> समेत्याहुः कुरवः सर्व एव ।
> कच्चिद् बहून् दस्युसङ्घान् समेतान्
> स्मरन्ति पार्थस्य युधा प्रमाथम् ॥ २० ॥

क्या कभी सब कौरव एकत्र हो धृतराष्ट्रके पुत्रोंके पास जाकर इसी राज्य लेनेके विषयमें कुछ कहते हैं ? क्या युद्धमें लुटेरोंके दलोंको देखकर वे कभी अर्जुनके पराक्रमको भी याद करते हैं ? ॥ २० ॥

> मौर्वीभुजाग्रप्रहितान् स्म तात
> दोधूयमानेन धनुर्धरेण ।
> गाण्डीवमुक्तान् स्तनयित्नुघोषा-
> नजिह्मगान् कच्चिदनुस्मरन्ति ॥ २१ ॥

तात ! प्रत्यञ्चाको बार-बार हिलाकर और भुजाओंसे खींच कर अङ्गुलियोंके अग्रभागसे जिनका संधान किया जाता है तथा जो गाण्डीव धनुषसे छूटकर मेघकी गर्जनाके समान शब्द करते हुए सीधे लक्ष्यतक पहुँच जाते हैं, अर्जुनके उन बाणोंको कौरवलोग बराबर याद करते हैं न ? ॥ २१ ॥

> न ह्यपश्यं कञ्चिदहं पृथिव्यां
> योधं समं वाधिकमर्जुनेन ।
> यस्यैकषष्टिर्निशितास्तीक्ष्णधाराः
> सुवाससः सम्मतो हस्तवापः ॥ २२ ॥

मैंने इस पृथ्वीपर अर्जुनसे बढ़कर या उनके समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देखा है; क्योंकि जब वे एक बार अपने हाथोंसे धनुषपर शर-संधान करते हैं, तब उनसे सुन्दर पंख और तेज धारवाले इकसठ तीखे बाण प्रकट होते हैं ॥ २२ ॥

> गदापाणिर्भीमसेनस्तरस्वी
> प्रवेपयञ्छत्रुसङ्घाननीके ।
> नागः प्रभिन्न इव नड्वलेषु
> चङ्क्रम्यते कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २३ ॥

जैसे मतवाले हाथीकी धारा बहानेवाला गजराज सरकंडोंके वनमें ...

> माद्रीसुतः सहदेवः कलिङ्गान्
> समागतानजयद् दन्तकूरे ।
> वामेनास्यन् दक्षिणेनैव यो वै
> महाबलं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २४ ॥

जिसमें दाँत पीसकर लड़ाई होती है, उस भयंकर युद्धमें माद्रीनन्दन सहदेवने दाहिने और बायें हाथसे बाणोंकी वर्षा करके अपना सामना करनेके लिये आये हुए कलिङ्गदेशीय योद्धाओंको परास्त किया था । क्या इस महाबली वीरको भी कौरव कभी याद करते हैं ? ॥ २४ ॥

> उद्यन्नयं नकुलः प्रेषितो वै
> शिबींस्त्रिगर्तान् संजय पश्यतस्ते ।
> दिशं प्रतीचीं वशमानयन्मे
> माद्रीसुतं कच्चिदेते स्मरन्ति ॥ २५ ॥

संजय ! यहाँ राजसूययज्ञमें तुम्हारे सामने ही शिबि और त्रिगर्त देशके वीरोंको जीतनेके लिये इस नकुलको भेजा गया था, परंतु इसने सारी पश्चिम दिशाको जीतकर मेरे अधीन कर दिया । क्या कौरव इस वीर माद्रीकुमार का भी स्मरण करते हैं ? ॥ २५ ॥

> पराभवो द्वैतवने य आसीद्
> दुर्मन्त्रिते घोषयात्रागतानाम् ।
> यत्र मन्दाञ्छत्रुवशं प्रयाता-
> नमोचयद् भीमसेनो जयश्च ॥ २६ ॥

कर्णकी खोटी सलाहके अनुसार घोषयात्रामें गये हुए दुर्योधनादिकी द्वैतवनमें जो पराजय हुई थी, उसमें ये सभी मन्दबुद्धि कौरव शत्रुओंके अधीन हो गये थे । उस समय भीमसेन और अर्जुनने ही उन्हें बन्धनसे मुक्त किया था ।२६।

> अहं पश्चादर्जुनमभ्यरक्षं
> माद्रीसुतौ भीमसेनोऽप्यरक्षत् ।
> गाण्डीवभृच्छत्रुसङ्घानुदस्य
> स्वस्त्यागमत् कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २७ ॥

उस युद्धमें मैंने पीछे रहकर नकुल द्वारा अर्जुनकी रक्षा की थी और भीमसेनने नकुल तथा सहदेवका संरक्षण किया था । गाण्डीवधारी अर्जुनने शत्रुओंके समुदायको मार भगाया था और सकुशल लौट आये थे । क्या कौरव कभी उनको याद करते हैं ? ॥ २७ ॥

न कर्मणा साधुनैकेन नूनं
सुखं शक्यं वै भवतीह संजय।
सर्वात्मना परिजेतुं वयं चे-
न्न शक्नुमो धृतराष्ट्रस्य पुत्रम्॥ २५॥

तथा यदि हम युद्धद्वारा दुर्योधनको सभी उपायों-से न जीत सकें तो केवल एक अच्छे कर्मद्वारा भी उसे सुखपूर्वक जीतना हमारे लिये निश्चय ही सम्भव नहीं है॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने त्रयोविंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें युधिष्ठिरका प्रश्नविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

चतुर्विंशोऽध्याय

संजयका युधिष्ठिरको उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उन्हें राज्य पुनःप्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा करना

संजय उवाच

यथार्हसे पाण्डव तत् तथैव
कुरून् कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि।
अनामयास्तात मनस्विनस्ते
कुरुश्रेष्ठान् पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम्॥

संजय बोला—कुरुश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन! आपने मुझसे जो कुछ कहा है, यथार्थ वैसा ही है। कौरवों तथा अन्य लोगोंके विषयमें आप जो कुछ पूछ रहे हैं, वह उचित ही है। कुन्तीनन्दन! आपने जिन श्रेष्ठ कुरुवंशियोंका कुशल-समाचार पूछा है, वे सभी स्वस्थ एवं सकुशल हैं॥ १॥

सन्त्येव वृद्धाः साधवो धार्तराष्ट्रे
सन्त्येव पापाः पाण्डव तस्य विद्धि।
दद्याद् रिपोश्चापि हि धार्तराष्ट्रः
कुतो दायाल्ँलोपयेद् ब्राह्मणानाम्॥

पाण्डुनन्दन! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके पास जहाँ बूढ़े साधु पुरुष हैं, वहीं उसके पास पापाचारी पुरुष भी रहते हैं। दुर्योधन तो शत्रुओंको भी धन देता है, फिर वह ब्राह्मणोंकी जीविका कैसे छीन सकता है॥ २॥

यद् युष्माकं वर्तते सौ न धर्म्य-
मद्रुग्धेषु द्रुग्धवत् तन्न साधु।
मित्रध्रुक् स्याद् धृतराष्ट्रः सपुत्रो
युष्मान् द्विषन् साधुवृत्तानसाधुः॥ ३॥

आपलोगोंके प्रति दुर्योधनका जो व्यवहार है, वह धर्मसंगत नहीं है। यदि वह आपके प्रति जो कि द्रोहरहित हैं, द्रोहीके समान ही व्यवहार करता है, तो दुर्योधनके लिये यह उचित नहीं है। आप जैसे साधु स्वभाव लोगोंसे द्वेष करनेसे तो दुर्योधनसहित राजा धृतराष्ट्र असाधु और मित्रद्रोही ही समझे जायँगे॥

न चानुजानाति भृशं च तप्यते
शोचत्यन्तः स्थविरोऽजातशत्रो।
शृणोति हि ब्राह्मणानां समेत्य
मित्रद्रोहः पातकेभ्यो गरीयान्॥ ४॥

अजातशत्रो! राजा धृतराष्ट्र आपके प्रति किये जानेवाले अन्याय की अनुमति नहीं देते हैं, बल्कि आपके प्रति उनके द्रोहकी बात सुनकर वे मन-ही-मन संतप्त होते तथा शोक किया करते हैं; क्योंकि वे ब्राह्मणोंसे मिलकर सदा यही सुना करते हैं कि मित्रद्रोह सब पापोंसे बड़ा है॥

स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संयुगे
युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः।
समुत्कृष्टे दुन्दुभिशङ्खशब्दे
गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति॥ ५॥

नरदेव! कौरवलोग युद्धकी चर्चा चलनेपर आपको तथा योद्धाओंके अगुआ अर्जुनको भी स्मरण करते हैं। युद्धकालमें दुन्दुभि और शङ्खकी ध्वनि गूँज उठती है, उस समय उन्हें गदापाणि भीमसेनकी याद आ जाती है॥

माद्रीसुतौ चापि रणाजिमध्ये
सर्वा दिशः सम्पतन्तौ स्मरन्ति।
सेनां वर्षन्तौ शरवर्षैरजस्रं
महारथौ समरे दुष्प्रकम्पौ॥ ६॥

समराङ्गणमें जिन्हें हराना तो दूरकी बात है, विचलित या कम्पित करना भी अत्यन्त कठिन है, जो शत्रुसेनापर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करते हैं और समरांगणमें सम्पूर्ण दिशाओंमें आक्रमण करते हैं, उन महारथी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव को भी कौरव सदा याद करते हैं॥

न त्वेव मन्ये पुरुषस्य राज-
न्ननागतं ज्ञायते यद् भविष्यम्।
त्वं चेदिमं सर्वधर्मोपपन्नः
प्राप्तः क्लेशं पाण्डव कृच्छ्ररूपम्॥

त्वमेवैतत् कुरुमुख्यस्य नृप
समीकुर्याः प्रशमायात्मनो वै ॥

पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिर ! मेरा तो विश्वास है कि मनुष्यका अनिष्ट जबतक वह सामने नहीं आता, किसीका कष्ट नहीं होता; क्योंकि आप-जैसे सर्वधर्मज्ञ पुरुष भी अत्यन्त सङ्कट कार्योमें कष्ट पाते हैं। अतः आपको बड़ाईपर भी आप ही अपनी बुद्धिसे विचारकर उनकी शान्तिके लिये पुनः कोई अच्छा उपाय ढूँढ़ निकालिये ।

न कामार्थं सन्त्यजेयुर्हि धर्मं
पाण्डोः सुताः सर्व एवाजमीढाः ।
तस्मात् तद् वै महाराज धर्मपात्मा
समीकुर्या येन शमोऽनुवृत्तः ॥

भरतवंश पाण्डवा कुंतभावा
ये वाम्यन्ते संस्थिता नरेन्द्र

पाण्डुके सभी पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी हैं। किसी भी स्वार्थके लिये कभी धर्मका त्याग नहीं करते। अतः आपका धर्म बना ही रहेगा। इसको इस कीजिये जिससे युधाष्ठ के सभा पुत्र, पाण्डव, सहायकी सभा आपके उधर आकर सेवामें सावधानीसे टिके हुए हैं। कल्याणके भागी हों।

तस्मादपीद् धृतराष्ट्रे निबोध
महासत्त्वो यथक पिता ते
सहामात्यं सहपुत्रस्य राजन्
समेत्य तां वाचमिमां निबोध ॥

महाराज युधिष्ठिर ! आपके ताऊ धृतराष्ट्रने एकान्तमें पुत्रों, मन्त्रियोंके लिये जो संदेश कहा था, उसे आप मन्त्रियों, पुत्रों सहित इस समय सुनिये ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें संजयवाक्यविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्याय

संजयका युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रका संदेश सुनाना एवं अपनी ओरसे भी शान्तिके लिये प्रार्थना करना

युधिष्ठिर उवाच

समागताः पाण्डवाः सृञ्जयाश्च
जनार्दनो युयुधानो विराटः ।
यत् ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं
गावल्गणे ब्रूहि तत् सूतपुत्र ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—गवल्गणकुमार सूतपुत्र संजय ! यहाँ पाण्डव, संजय, भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा राजा विराट—सब एकत्र हुए हैं। राजा धृतराष्ट्रने तुम्हारे द्वारा जो संदेश भेजा है, उसे कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच

अजातशत्रुं च वृकोदरं च
धनंजयं माद्रवतीसुतौ च ।
आमन्त्रये वासुदेवं च शौरिं
युयुधानं चेकितानं विराटम् ॥ २ ॥
पाञ्चालानामधिपं चैव वृद्धं
धृष्टद्युम्नं पार्षतं याज्ञसेनिम् ।
सर्वे वाचं शृणुतेमां मदीयां
वक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन् कुरूणाम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—मैं अजातशत्रु युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि, चेकितान, विराट, पाञ्चालनरेश बूढ़े राजा द्रुपद तथा उनके पुत्र धृष्टद्युम्नको भी आमन्त्रित करता हूँ। कौरवोंकी भलाई चाहता हुआ मैं जो कुछ कह रहा हूँ, मेरी उस वाणीको आप सब लोग सुनें ॥ २-३ ॥



शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्दन्
नयोजयत् त्वरमाणो रथं मे ।
सभ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञ-
स्तद् रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु ॥ ४ ॥

राजा युधिष्ठिर ! शान्तिका आदर करते हैं, युद्ध नहीं चाहते। उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ मेरे लिये शीघ्रतापूर्वक रथ तैयार कराया और मुझे यहाँ भेजा। मैं चाहता हूँ कि भाई, पुत्र तथा स्वजनोंसहित राजा धृतराष्ट्रका यह शान्ति-संदेश पाण्डवोंको स्वीकार प्रतीत हो और दोनों पक्षोंमें सन्धि स्थापित हो जाय।

सर्वे धर्म्याः समुपेतास्तु पार्थाः
प्रख्यानेन मार्दवेनार्जवेन।
जाताः कुले ह्यनृशंसा वदान्या
ह्रीनिषेधाः कर्मणां निश्चयज्ञाः॥

कुन्तीके पुत्रो ! आपलोग सब प्रकारके धर्मसे युक्त हैं। सरलता, कोमलता और नम्रता आदि गुणोंसे आप सम्पन्न हैं। आपलोगोंका जन्म उत्तम कुलमें हुआ है। आपलोगोंमें क्रूरताका सर्वथा अभाव है। आपलोग उदार, लज्जाशील और कर्मोंके परिणामको जाननेवाले हैं॥

न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं
सत्त्वं हि वस्तादृशं भीमसेनाः।
उद्भासते ह्यञ्जनबिन्दुवत् त-
च्छुक्ले वस्त्रे यद् भवेत् किल्बिषं वः॥

भयंकर सैन्यबलसे सम्पन्न पाण्डवो ! आपलोगोंमें ऐसा सत्त्वगुण भरा है कि आपके द्वारा कोई नीच कर्म बन नहीं सकता। यदि आपलोगोंमें कोई दोष होगा तो वह सफेद कपड़ेमें काले दागकी भाँति स्पष्ट दिखायी देगा॥

सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः
पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः।
कस्तत् कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन्
पराजयो यत्र समो जयश्च॥

जिसमें सबका विनाश निश्चित [illegible] है, जिसमें पापका उदय [illegible] है, जो नरकका द्वार है, जिसमें [illegible] अभाव [illegible] जाता है और जिसमें जय तथा पराजय दोनों समान [illegible] युद्ध-जैसा कठोर कर्म कौन [illegible] समझदार मनुष्य कभी करेगा?

ते वै धन्या यैः कृतं ज्ञातिकार्यं
ते वै पुत्राः सुहृदो बान्धवाश्च।
उपक्रुष्टं जीवितं संत्यजेयु-
स्तेन कुरूणां नियतो भवः स्यात्॥

जिन्होंने जाति और कुटुम्बके हितका कार्योंका साधन किया है, वे धन्य हैं। वे ही पुत्र, मित्र तथा बान्धव कहलाने योग्य हैं। कौरवोंको चाहिये कि वे निन्दित जीवनका परित्याग कर दें, जिससे कौरवकुलका अभ्युदय सुनिश्चित हो॥

ते चेत् कुरूननुशिष्याथ पार्था
निर्णीय सर्वान् द्विषतो निगृह्य।
समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्याद्
यज्जीवध्वं ज्ञातिवधे न साधु॥

कुन्तीकुमारो ! यदि आपलोग समस्त कौरवोंको निश्चित रूपसे अपना शत्रु मानकर उन्हें दण्ड दें, कैद करें अथवा उनका वध कर डालें तो उस दशामें आपका जो जीवन होगा, वह अपने द्वारा कुटुम्बीजनोंका वध होनेके कारण अच्छा नहीं समझा जायगा। वह निन्दित जीवन तो मृत्युके समान ही होगा॥

को ह्येव युष्मान् सह केशवेन
सचेकितानान् पार्षतबाहुगुप्तान्।
ससात्यकीन् विषहेत प्रजेतुं
लब्ध्वापि देवान् सचिवान् सहेन्द्रान्॥

राजन् ! श्रीकृष्ण, चेकितान और सात्यकि आपलोगोंके सहायक हैं। आपलोग महाराज द्रुपदके बाहुबलसे सुरक्षित हैं, ऐसी दशामें इन्द्रसहित समस्त देवताओंको अपने सहायकके रूपमें पाकर भी कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो आपलोगोंको जीतनेका साहस करेगा॥

को वा कुरून् द्रोणभीष्माभिगुप्ता-
नश्वत्थाम्ना शल्यकृपादिभिश्च।
रणे विजेतुं विषहेत राजन्
राधेयगुप्तान् सह भूमिपालैः॥

राजन् ! इसी प्रकार द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य आदि वीरों तथा अन्य राजाओंसहित कर्णके द्वारा सुरक्षित कौरवोंको युद्धमें जीतनेका साहस कौन कर सकता है?

महद् बलं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञः
को वै शक्तो हन्तुमक्षीयमाणः।
सोऽहं जये चैव पराजये च
निःश्रेयसं नाधिगच्छामि किंचित्॥ १२॥

राजा दुर्योधनके पास विशाल वाहिनी एकत्र हो गयी है, कौन ऐसा वीर है, जो स्वयं क्षीण हुए बिना उस सेनाका विनाश कर सके। मैं तो इस युद्धमें किसी भी पक्षकी जय हो या पराजय, कोई कल्याणकी बात नहीं देखता॥

कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया
निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः।
सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं
पाञ्चालानामधिपं चैव वृद्धम्॥ १३॥
कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये
कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृञ्जयानाम्।

न ह्येवमेव वचनं वासुदेवो
धनंजयो वा जातु किंचिद् कुर्यात् ॥ १४ ॥

अतः कुन्तीके पुत्र भी युद्धमें उत्पन्न हुए मुझसे अथवा मनुष्योंके समान सदा निन्दित कर्म कैसे कर सकते हैं जिससे न तो धर्मकी सिद्धि होनेवाली है और न अर्थकी ही यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रेष्ठ योद्धा भी उपस्थित हैं । मैं इनके समक्ष प्रणाम करके कहना चाहता हूँ हाथ जोड़कर शान्तनुनन्दनकी शरणमें आता हूँ आप विचार करें कि कुरु तथा सृंजय वंशका कल्याण कैसे हो मुझे विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्ण अथवा अर्जुन इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक कही हुई मेरी किसी बातको टुकरा नहीं सकते

प्रापयन् दयाद् यानमात्म कुलोऽस्य
एतद् विज्ञाय साधनाय ब्रवीमि ।
एतद् राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य
अत्र यद् वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात् ॥ १५ ॥

इतना ही नहीं मेरे माँगनेसे अर्जुन अपने प्राणतक दे सकते हैं, फिर दूसरी किसी वस्तुके लिये तो कहना ही क्या है । विद्वान् राजा युधिष्ठिर । मैं सन्धि-कार्यकी सिद्धिके लिये ही यह सब कह रहा हूँ । भीष्म तथा राजा धृतराष्ट्रका भी यही अभिमत है और इसीसे आप सब लोगोंको उत्तम शान्ति प्राप्त हो सकती है

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें संजयवाक्यविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ

षड्विंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरका संजयको इन्द्रप्रस्थ लौटानेसे ही शान्ति होना सम्भव बतलाना

युधिष्ठिर उवाच

का नु वाचं संजय मे शृणोषि
युद्धैषिणीं येन युद्धाद् बिभेषि ।
अयुद्धं वै तात युद्धाद् गरीयः
कस्तल्लब्ध्वा जातु युध्येत सूत ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—संजय ! तुमने मेरी कौन-सी ऐसी बात सुनी है, जिससे मेरा युद्धकी इच्छा प्रकट हुई है कि जिसके कारण तुम युद्धसे भयभीत हो रहे हो ? तात ! युद्ध करनेकी अपेक्षा युद्ध न करना ही श्रेष्ठ है । सूत ! युद्ध न करनेका अवसर पाकर भी कौन मनुष्य कभी युद्धमें प्रवृत्त होगा ?

अकुर्वतश्चेत् पुरुषस्य संजय
सिध्येत् संकल्पो मनसा यमिच्छेत् ।
न कर्म कुर्याद् विदितं ममैत-
दन्यत्र युद्धाद् बहु यल्लघीयः ॥ २ ॥

संजय ! यदि कर्म न करनेपर पुरुषका मनोरथ सिद्ध हो जाता, तो वह मनसे जिस-जिस वस्तुको चाहता, वह-वह उसे मिल जाती । ऐसी दशामें कोई भी मनुष्य कर्म नहीं करता, यह बात मुझे भलीभाँति ज्ञात है । युद्ध किये बिना यदि थोड़ा भी लाभ होता हो तो उसे बहुत समझना चाहिये

कुतो युद्धं जातु नरोऽवगच्छेत्
को देवशप्तो हि वृणीत युद्धम् ।
सुखैषिणः कर्म कुर्वन्ति पार्था
धर्मादहीनं यच्च लोकस्य पथ्यम् ॥ ३ ॥

मनुष्य कभी भी किसलिये युद्धका विचार करे । किस दैवके मारे हुएको युद्ध ही रुचता है ? कौन भाग्यका मारा युद्धका वरण करेगा ? कुन्तीके पुत्र सुखकी इच्छा रखकर वही कर्म करते हैं जो धर्मके विपरीत न हो तथा जिससे लोकोंका भला होता हो

धर्मोदयं सुखमाशंसमानाः
कृच्छ्रोपायं तत्त्वतः कर्म दुःखम् ।
सुखं प्रेप्सुर्विजिघांसुश्च दुःखं
य इन्द्रियाणां प्रीतिवशानुगामी ॥ ४ ॥

संजय ! जो सुख चाहता है और धर्मसे प्राप्त होनेवाला सुख पाना चाहता है, जो इन्द्रियोंकी प्रीतिके अधीन रहनेवाले विषयजनित सुखकी अभिलाषा रखता है, वह सुखको पाने और दुःखका नाश करनेकी इच्छासे कर्म करता है, परंतु वास्तवमें उसका मार्ग कष्ट और दुःखसे ही भरा है; क्योंकि यह कष्टदायक उपायोंसे ही प्राप्त है ।

कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति
यया प्रमुक्तो न करोति दुःखम् ।
यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो
भूयो बलं वर्धते पावकस्य ॥ ५ ॥

कामार्थलाभेन तथैव भूयो
न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः ।

विषयोंका चिन्तन करने [illegible] पीड़ा देता है और स्पष्ट चिन्तासे सर्वथा मुक्त है वह कभी दुःखका अनुभव नहीं करता जैसे प्रज्वलित अग्निमें ईंधन डालनेसे उसका बल बहुत अधिक बढ़ जाता है उसी प्रकार विषयभोग और धनका लाभ होनेसे मनुष्यकी तृष्णा और अधिक बढ़ जाती है जैसे ईंधन [illegible] अग्निकी भाँति मनुष्य कभी विषयभोग और धनसे तृप्त नहीं होता है

सम्पद्यमाने [illegible]
[illegible] राजा

[illegible] राजा धृतराष्ट्रके [illegible] विनाश प्राप्त हो गयी है [illegible] उनकी तृप्ति नहीं होती

[illegible] विमलात्मा
[illegible] शृणोति
[illegible]
न [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] काम
[illegible] करोति ॥

[illegible] नहीं है वह [illegible] किसी नहीं होता [illegible] नहीं [illegible] नहीं सुनता जिसने [illegible] नहीं किया है [illegible] और [illegible] नहीं [illegible] पुष्पमाला नहीं है [illegible] चन्दन आदि [illegible] भी उपयोग नहीं कर सकता जिसने पुण्य नहीं किया है [illegible] वस्त्र नहीं धारण करता यदि [illegible] पुण्यवान् हो तो [illegible] कुरुवंशमें [illegible] भोगलुब्ध [illegible] दुर्योधन आदिसे ही [illegible] है जो [illegible] सर्वांश [illegible] भीतर [illegible] को [illegible] देती रहती है

स्वयं राजा विषमस्थः परेषु
सामर्थ्यमन्विच्छति तन्न साधु
यथा [illegible] पादपं वृक्षमेव
तथा परेषामपि सोऽभ्युपैतु ॥

राजा [illegible] स्वयं तो विषम [illegible] रहे हुए हैं परंतु दूसरोंमें समतापूर्ण बर्ताव देखना चाहते हैं यह अच्छी बात नहीं है ऐसा अपना [illegible] देखते हैं [illegible] वृक्षोंको देख

[illegible] तु [illegible]
[illegible] विसृज्य
यथा [illegible] शोचेत्
[illegible] ॥

[illegible] उपपन्नोऽसि [illegible]
[illegible] कुरो
[illegible] रत
[illegible] सुतमनुशिष्य तु

[illegible] मनुष्य शिशिर [illegible] ग्रीष्म [illegible] बहुत [illegible] गहन [illegible] है और [illegible] और [illegible] अपने [illegible] तब उसकी [illegible] अपना [illegible] के लिये [illegible] करके बार बार [illegible] करते हैं उसी प्रकार आज राजा धृतराष्ट्र [illegible] अधिकारसे [illegible] दुर्बुद्धि, [illegible] मूर्ख और किसी [illegible] समझके अनुसार [illegible] अपना पुत्र दुर्योधनका [illegible] लेकर अब [illegible] [illegible] भाँति विलाप करते हैं

[illegible]
[illegible] विदुरस्यात्मनस्य
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी
[illegible] ॥

दुर्योधनस्य प्रि[illegible] राजा धृतराष्ट्र अपने [illegible] अधिक [illegible] विदुरजीके वचनोंको [illegible] समझकर उनकी अवहेलना करके [illegible] रहे हैं

[illegible] कुरूणां
[illegible]
स स राजा धृतराष्ट्रः कुरुभ्यो
न [illegible] विदुरं [illegible] ॥ २ ॥

[illegible] सिद्धि [illegible] विद्वान् [illegible] विदुरजीको [illegible] राजा [illegible] हित [illegible] आदर नहीं कि

[illegible]
[illegible]
दुर्योधने [illegible]
[illegible] १७
[illegible]
[illegible]
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी
[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] दुर्योधन मान [illegible] अपना मान [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और दीनताके [illegible] [illegible] [illegible] नेनेके [illegible] [illegible] [illegible] पाण्डु [illegible] पुत्र दुर्योधनका [illegible]

तथा पुत्रोंका सम्बन्धी गुण भी धर्म और अर्थका परित्याग किया है।

तथ्यं मे संजयमनीष्यतेऽमुं
भ्रान्ति कुरूणामागत भावभाव।
कथ्यां वाचं विदुरो भाषमाणो
न विन्दते यद् धार्तराष्ट्रान् महात्मा ॥ ६ ॥

संजय! इस समय मैं जैसा सोच रहा था, उसी समयकी बात है। विदुरने धर्मनीतिके अनुसार युक्तियुक्त वचन कहे थे, तो भी दुर्योधनकी ओरसे उन्हें आदर नहीं प्राप्त हुआ। उसी समय मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ था कि सम्भवतः कौरवोंका विनाशकाल समीप आ गया है।

यावत्पार्था नाभ्यवर्तन्त बुद्धिं
कृष्णं कुरून् सूत महाप्रज्ञान्।
यावत् प्रज्ञामन्ववर्तन्त तस्य
तावत् तेषां राष्ट्रमिदं बभूव ॥ ७ ॥

सूत! जबतक कौरव विदुर-जैसे बुद्धिके महासागर कार्य करते और चलते थे, तबतक यहाँ उनका राष्ट्र वृद्धि ही होती रही। जबसे उन्होंने विदुरजीकी सलाह लेना छोड़ दिया, तभीसे उनपर विपत्ति आ गयी है।

तस्यानुयाताः पितरोऽस्य मन्दा
ये मन्त्रिणो धार्तराष्ट्रस्य सूत।
दुःशासनः शकुनिः सूतपुत्रो
गावल्गणे पश्य सम्मोहमस्य ॥ ८ ॥

गावल्गणकुमार संजय! मेरे मूढ पुत्र दुर्योधनके जो मन्त्री हैं, उनके नाम आप सुन लें—दुःशासन, शकुनि तथा सूतपुत्र कर्ण—ये ही उसके मन्त्री हैं। इसका मोह तो देखो।

सोऽहं न पश्यामि परीक्षमाणः
कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृञ्जयानाम्।
आत्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रः परेभ्यः
प्रव्राजिते विदुरे दीर्घदृष्टौ ॥
आशासते वै धृतराष्ट्राः सपुत्रा
महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।
तस्मिञ्छमः केवलं नोपलभ्यः
सर्वं स्वकं मद्गतं मन्यतेऽर्थम् ॥

मैं बहुत सोचने-विचारनेपर भी कोई ऐसा उपाय नहीं देखता, जिससे कुरु तथा सृंजयवंशी क्षत्रियोंका कल्याण हो। धृतराष्ट्र इन शत्रुओंसे ऐश्वर्य छीनकर दूरदर्शी विदुरको देशसे निर्वासित करके अपने पुत्रोंसहित भूमण्डलका निष्कण्टक साम्राज्य प्राप्त करनेकी आशा लगाये बैठे हैं। ऐसे लोभी मनुष्यके साथ केवल सन्धि ही बनी रहेगी [illegible] शुद्ध सात्त्विक अवसर नहीं आयेगा, यह सम्भव नहीं जान पड़ता; क्योंकि हमलोगोंके धन [illegible] हमारे सारे धनको अपना भी मानने लगे हैं।

यत् तत् कर्णो मन्यते पारणीयं
युद्धे गृहीतायुधमर्जुनं वै।
आसंश्च युद्धानि पुरा महान्ति
कथं कर्णो नाभवद् द्वीप एषाम् ॥ २१ ॥

कर्ण जो ऐसा समझता है कि युद्धमें धनुष उठाये हुए अर्जुनको जीत लेना सहज है, यह उसकी भूल है। पहले भी तो बड़े-बड़े युद्ध हो चुके हैं, उनमें कर्ण इन कौरवोंका आश्रयदाता क्यों न हो सका?

कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च
द्रोणश्च जानाति पितामहश्च।
अन्ये च ये कुरवस्तत्र सन्ति
यथार्जुनान्नास्त्यपरो धनुर्धरः ॥ २२ ॥

अर्जुनसे बढ़कर दूसरा कोई धनुर्धर नहीं है—इस बातको कर्ण जानता है, दुर्योधन जानता है, आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म जानते हैं तथा अन्य जो-जो कौरव यहाँ हैं, वे सब भी जानते हैं।

जानन्त्येतत् कुरवः सर्व एव
ये चाप्यन्ये भूमिपालाः समेताः।
दुर्योधने राज्यमिहाभवद् यथा
अरिंदमे फाल्गुने विद्यमाने ॥ २३ ॥

सब कौरव तथा यहाँ एकत्र हुए अन्य भूपाल भी इस बातको जानते हैं कि शत्रुदमन अर्जुनके उपस्थित रहते हुए दुर्योधनने किस उपायसे पाण्डवोंका राज्य प्राप्त किया? अर्थात् उसने अपनी वीरतासे नहीं, अपितु कपटपूर्ण जूएके द्वारा इनका राज्य लिया।

तेनानुबन्धं मन्यते धार्तराष्ट्रः
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वम्।
किरीटिना तालमात्रायुधेन
तद्वेदिना संयुगं तत्र गत्वा ॥ २४ ॥

गाण्डीव आदिपर जो पाण्डवोंका ममत्व है, उसे तथा उनके धनको दुर्योधन हड़प लेना सम्भव मानता है; इसके लिये उसे उस किरीटधारी अर्जुनके साथ युद्धभूमिमें उतरना पड़ेगा, जो चार हाथ लंबा धनुष धारण करता और युद्धका प्रकाण्ड विद्वान् है।

गाण्डीवविस्फारितशब्दमाजा-
वशृण्वाना धार्तराष्ट्रा ध्रियन्ते।
क्रुद्धं च नेदीक्षते भीमसेनं
सुयोधनो मन्यते सिद्धमर्थम् ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्रके पुत्र तभीतक जीवित हैं, जबतक कि वे युद्धमें गाण्डीव धनुषका टंकारघोष नहीं सुन रहे हैं। दुर्योधन जबतक क्रोधमें भरे हुए भीमसेनको नहीं देख रहा है, तभीतक अपने राज्यप्राप्तिरूप मनोरथको सिद्ध हुआ समझे ॥

इन्द्रोऽप्येतान्नोत्सहेत तात हन्तुं
ऐश्वर्यं नो जीवति भीमसेने।
धनंजये नकुले चैव सूत
तथा वीरे सहदेवे मदीये ॥ २६ ॥

तात संजय ! जबतक भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा महाबली वीर सहदेव जीवित हैं, तबतक इन्द्र भी हमारे ऐश्वर्यका अपहरण नहीं कर सकता ॥ २६ ॥

स चेदेतां प्रतिपद्येत बुद्धिं
वृद्धो राजा सह पुत्रेण सूत।
एवं रणे पाण्डवकोपदग्धा
न नश्येयुः संजय धार्तराष्ट्राः ॥ २७ ॥

सूत ! यदि राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके साथ यह अच्छी तरह समझ लें कि पाण्डवोंको राज्य न देनेमें कुशल नहीं है तो धृतराष्ट्रके सभी पुत्र समराङ्गणमें पाण्डवोंकी क्रोधाग्निसे दग्ध होकर नष्ट होनेसे बच जायँगे ॥ २७ ॥

जानासि त्वं क्लेशमस्मासु वृत्तं
त्वां पूजयन् संजयाहं क्षमेयम्।
यच्चास्माकं कौरवैर्भूतपूर्वं
या नो वृत्तिर्धार्तराष्ट्रे तदाऽऽसीत् ॥ २८ ॥

संजय ! हमलोगोंको कौरवोंके कारण जो क्लेश उठाना पड़ा है, यह तुम भलीभाँति जानते हो तथापि मैं तुम्हारा आदर करते हुए उनके सब अपराधोंको क्षमा कर सकता हूँ। दुर्योधन आदि कौरवोंने पहले हमारे साथ कैसा बर्ताव किया है और उस समय हमलोगोंका उनके साथ कैसा बर्ताव रहा है, यह भी तुमसे छिपा नहीं है ॥ २८ ॥

अद्यापि तत् तत्र तथैव वर्ततां
शान्तिं गमिष्यामि यथा त्वमात्थ।
इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं
सुयोधनो यच्छतु भारताग्र्य ॥ २९ ॥

अब भी वह सब कुछ पहलेके ही समान हो सकता है। जैसा तुम कह रहे हो, उसके अनुसार मैं शान्ति धारण कर लूँगा। भरतकुलभूषण ! इन्द्रप्रस्थमें पूर्ववत् मेरा ही राज्य रहे और भरतकुलशिरोमणि सुयोधन मेरा वह राज्य मुझे लौटा दे ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्याय

संजयका युधिष्ठिरको युद्धमें दोषकी सम्भावना बतलाकर उन्हें युद्धसे उपरत करनेका प्रयत्न करना

संजय उवाच

धर्मनित्या पाण्डव ते विचेष्टा
लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ।
महास्रावं जीवितं चाप्यनित्यं
संपश्य त्वं पाण्डव मा व्यनीनशः ॥ १ ॥

संजय बोला—पाण्डुनन्दन ! आपकी प्रत्येक चेष्टा सदा धर्मके अनुसार ही होती है। कुन्तीकुमार ! आपकी वह धर्मयुक्त चेष्टा लोकमें तो विख्यात है ही, देखनेमें भी आ रही है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है तथापि इससे महान् सुयशकी प्राप्ति हो सकती है। पाण्डव ! आप जीवनकी उस अनित्यतापर दृष्टिपात करें और अपनी कीर्तिको नष्ट न होने दें ॥ १ ॥

न चेद् भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्
प्रयच्छन्ते तुभ्यमजातशत्रो।
भैक्षचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये
श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम् ॥ २ ॥

अजातशत्रो ! यदि कौरव युद्ध किये बिना आपको राज्यका भाग न दें, तो भी अन्धक और वृष्णिवंशी क्षत्रियोंके राज्यमें भीख माँगकर जीवन-निर्वाह कर लेना मैं आपके लिये अच्छा समझता हूँ, परंतु युद्ध करके राज्य लेना अच्छा नहीं समझता ॥ २ ॥

अल्पकालं जीवितं यन्मनुष्ये
महास्रावं नित्यदुःखं चलं च।
भूयश्च तद् वयसो नानुरूपं
तस्मात् पापं पाण्डव मा प्रसार्षीः ॥ ३ ॥

मनुष्यका जो यह जीवन है, वह बहुत थोड़े समयतक रहनेवाला है। इसको क्षीण करनेवाले महान् दोष इसे सदा घेरे रहते हैं। यह सदा दुःखमय और चञ्चल है। अतः पाण्डुनन्दन ! आप युद्धरूपी पाप न कीजिये। वह आपके सुयशके अनुरूप नहीं है ॥ ३ ॥

कामा मनुष्यं प्रसजन्त एते
धर्मस्य ये विघ्नमूलं नरेन्द्र।
पूर्वं नरस्तान् मतिमान् प्रणिघ्नन्
लोके प्रशंसां लभतेऽनवद्याम् ॥ ४ ॥

नरेन्द्र! जो धर्माचरणमें निपुण है, ... करता है, वह महान् अनन्त सुखका भागी होता है, ... मनुष्य ... कालको ... सदा ... भागी होता है।

लिप्यत्यसौ ह्यपेद्यन्ते पार्थ
 तावित्कायाद् बाध्यते धर्म एव।
धर्मं तु य महद्यति स पुरुष
 कालो पृथोहविनश्यानुरोधात्॥

कुन्तीनन्दन! इस ... धर्मकी तृष्णा ... जो ... धर्म भी नष्ट हो जाता है ... कारण ... है ... मनुष्य ... जानेके कारण ... हो जाता है?

अर्थं कृत्वा कर्मणा तस्य मुख्यं
 महाप्रतापं सविनयं भाति।
हीनो हि धर्मेण महामर्षीमा
 लब्ध्वा नरं नीतिरति पापबुद्धिः॥ ६॥

जो ... धर्म, अर्थ और ... मानकर तदनुसार ... पुरुष महाप्रताप ... सूर्यकी भाँति चमक उठता है, परंतु ... जिसकी बुद्धि पापमें ... मनुष्य ... पाकर भी ... ही ... रहता है।

वेदोऽधीतश्चरितं ब्रह्मचर्यं
 यज्ञैरिष्टं ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम्।
परं स्थानं मन्यमानेन भूय
 आत्मा दत्तो वर्षपूगं सुखेभ्यः॥ ७॥

... वेदका स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यका पालन एवं यज्ञका अनुष्ठान किया है, ... ब्राह्मणोंको दान दिया है और अनन्त वर्षोंतक ... [illegible] ... भी अर्पित कर दिया है।

सुखप्रियं सेवमानोऽतिवेलं
 योगाभ्यासे यो न करोति कर्म।
वित्तक्षये हीनसुखो विगर्ह्यो
 दुःखं शेते कामवेगप्रणुन्नः॥ ८॥

... मनुष्य भोग, ... और ... का निरन्तर ... सेवन ... योगाभ्यासके ... नहीं ... धनका नाश होनेपर सुखसे वञ्चित हो ... निन्दित ... होकर सदा ... करता रहता है।

एवं पुण्यकर्मतत्परो
 हित्वा धर्मं च प्रकरोत्यधर्मम्।
अश्रद्दधानः परलोकाय मूढो
 हित्वा देहं तप्यते प्रेत्य मन्दः॥ ९॥

जो ब्रह्मचर्यपालनमें ... त्याग करके ... आचरण करता है, ... विश्वास नहीं ... वह मन्दबुद्धि ... शरीर त्यागनेके बाद ... परलोकमें सदा कष्ट पाता है।

न कर्मणा विप्रणाशोऽस्त्यमुत्र
 पुण्यानां वाप्यथवा पापकानाम्।
पूर्वं कर्तुर्गच्छति पुण्यपापं
 पश्चात् त्वेतमनुयात्येव कर्ता॥ १०॥

पुण्य अथवा पाप किसी भी कर्मोंका परलोकमें नाश नहीं होता है। ... पहले पुण्य और ... पापकर्म ... फिर उसके पीछे-पीछे कर्ता आता है।

न्यायोपेतं ब्राह्मणेभ्योऽथ दत्तं
 श्रद्धापूतं गन्धरसोपपन्नम्।
अन्वाहार्येषूत्तमदक्षिणेषु
 तथारूपं कर्म विख्यायते ते॥ ११॥

... आपने ... इस रूपमें विख्यात है कि आपने ... उत्तम दक्षिणावाले ... अन्वाहार्य ... ब्राह्मणोंको न्यायोपार्जित ... श्रद्धापूर्वक ... गन्धयुक्त सुन्दर ... दान किया है।

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्यं
 न वै किंचिद् विद्यते प्रेत्य कार्यम्।
कृतं त्वया पारलौक्यं च कर्म
 पुण्यं महत् सद्भिरनुप्रशस्तम्॥ १२॥

कुन्तीनन्दन! इस शरीरमें रहते हुए ही कोई भी सत्कर्म किया जा सकता है। मरनेके बाद कोई कर्म नहीं किया जा सकता। आपने तो परलोकके लिये ... महान् पुण्यकर्म किया है, जिसकी साधु पुरुषोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

जहाति मृत्युं च जरां भयं च
 न क्षुत्पिपासे मनसश्चाप्रियाणि।
न कर्तव्यं विद्यते तत्र किंचि-
 दन्यत्र वै चेन्द्रियप्रीणनाद्धि॥ १३॥

पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गलोकमें जाकर मृत्यु, बुढ़ापा तथा भयका त्याग कर देता है। वहाँ उसे मनके प्रतिकूल भूख-प्यासका कष्ट भी नहीं ... पड़ता है। वहाँ इन्द्रियोंको सुख पहुँचानेके सिवा दूसरा कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है*।

एवंरूपं कर्मफलं नरेन्द्र
 मात्रावता हृदयस्य प्रियेण।

* देवयोनि भोगयोनि है, कर्मयोनि नहीं। वहाँ नवीन कर्मके अनुष्ठानके लिये ऐसा कार्य नहीं है।

स कोऽयं काम्यय दुर्यश च
शोकानुभवी मा प्रज्ञानीति य ४

नरेन्द्र! इस प्रकार [illegible] जिसके कर्मफलकी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये [illegible] लोभजनित नरक और दुर्गतिजनित स्वर्ग इन [illegible] कभी न [illegible] परितु स्थान मातृ-सुखके लिये निष्काम कर्म ग्रहण [illegible]?

मन्ये परं कर्मणा मा प्रसाद
सत्य दम आर्जवमानृशंस्यम्
अश्वमेध राजसूय तथेष्ट्वा
पापस्थानं कर्मणो मा पुनर्गाः ५

इस तरह [illegible] द्वारा [illegible] सत्य दम आर्जव [illegible] इन सद्गुणोंका कभी त्याग न करे [illegible] अश्वमेध राजसूय और अन्य यज्ञोंको भी न छोड़ें परंतु पुनः [illegible] पापकर्मके [illegible] फिर कभी न जाय

तच्चेदेवं [illegible] पार्था
करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय
निवसध्वं वर्षपूगान् वनेषु
दुःखं वासं पाण्डवा धर्महेतोः ६

कुन्तीकुमारो! यदि आपलोगोंको राज्य बिना दिये दुर्योधन आदि संग्राममें युद्धरूप पापकर्म ही करना है तब तो मैं यही कहूँगा कि आप बहुत वर्षोंतक दुःखमय वनवासका ही कष्ट भोगते रहें पाण्डवो! वह वनवास ही आपके लिये धर्ममय होगा ६

अप्रव्रज्येना[illegible] हित्वा सुरज्जा
प्राणाधीनं यद् बलं ते तदासीत्
नित्यं च पाञ्चालाः सचिवास्तवेमे
जनार्दनो युयुधानश्च वीरः ७

इन्हें [illegible] अपने [illegible] भी [illegible] क्योंकि आप जो [illegible] एकत्र हुई हैं यह [illegible] ही आपकी [illegible] भीमसेन आदि भी [illegible] सात्यकि [illegible] आपके [illegible] हैं

मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः
प्रहारिभिः सह वीरैर्विराटः
राजानश्च ये विजिता पुरस्तात्
त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः ८

प्रहार करनेमें कुशल वीर सैनिकों तथा पुत्रोंके साथ सुवर्णमय रथवाले मत्स्यदेशके राजा विराट तथा दूसरे

जो बहुत से नरेश [illegible] आपका [illegible] युद्धमें जीता था वे सब [illegible] आपका ही पक्ष लें

महासहायः प्रतपन् बलस्थः
पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम्
वरान् हनिष्यन् द्विषतो रङ्गमध्ये
व्यनेष्यथा धार्तराष्ट्रस्य दर्पम् ॥ ९

[illegible] आपके पास [illegible] सहायक [illegible] और [illegible] श्रीकृष्ण तथा अर्जुन [illegible] आगे रखकर [illegible] आक्रमण कर सकते थे [illegible] शत्रुओंका [illegible] करते हुए [illegible] दुर्योधनका [illegible] चूर-चूर कर सकते थे

बलं कस्माद् वर्धयित्वा परस्य
निजान् कस्मात् कर्शयित्वा सहायान्
निरुष्य कस्माद् वर्षपूगान् वनेषु
युयुत्ससे पाण्डव हीनकालम् ॥ १०

दुर्लभ [illegible] किस बात [illegible] कि आपने शत्रुकी [illegible] बल [illegible] लिये [illegible] सहायकोंकी दुर्बल बनाया और [illegible] वर्षोंतक वनमें निवास किया फिर आज [illegible] अनुकूल [illegible] बीत चुका है [illegible] युद्ध करनेकी इच्छा [illegible] हुई है?

अप्रज्ञो वा पाण्डव युध्यमानो
ऽधर्मज्ञो वा भूतिपथाद् व्यपैति
प्रज्ञावान् वा बुध्यमानोऽपि धर्मं
संरम्भाद् वा सोऽपि भूतेरपैति ॥ ११

पाण्डुकुमार! अज्ञानी अथवा अधर्मी मनुष्य भी युद्ध करके सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है और बुद्धिमान् अथवा धर्मज्ञ पुरुष भी [illegible] वैभवसे हाथ धो बैठता है

नाधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धि
र्न संरम्भात् कर्म चक्रे ह पापम्
अद्धा किं तत् कारणं यस्य हेतो
प्रज्ञाविरुद्धं कर्म चिकीर्षसीदम् ॥ १२ ॥

कुन्तीनन्दन! आपकी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं लगती तथा आपने क्रोधमें आकर भी कभी पापकर्म नहीं किया है तो बताइये वह कौन सा ऐसा प्रबल कारण है जिसके लिये अब आप [illegible] बुद्धिके विरुद्ध यह युद्धरूपी पापकर्म करना चाहते हैं?

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं
यशोमुषं पापफलोदयं च
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ १३ ॥

महाराज ! ... क्या ... होता है स्वर्गमें ... के कारण ... दर्द होने लगता है, जो ... प्रकार ... है, जो ... नहीं ... और ... कीजिये और ... हो जाइये ।

पापानुबन्धं को नु तं कामयेत
क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः ।
यत्र भीष्मः शान्तनवो हतः स्याद्
यत्र द्रोणः सहपुत्रो हतः स्यात् ॥ २५ ॥

जो ... है उस ... की इच्छा कौन करेगा ? आपकी दृष्टिमें तो क्षमा ही ... वस्तु है, वे भोग नहीं, जिनके लिये शान्तनुनन्दन भीष्म तथा पुत्रसहित आचार्य द्रोणकी हत्या ... जाय ।

कृपः शल्यः सौमदत्तिर्विकर्णो
विविंशतिः कर्णदुर्योधनौ च ।
एतान् हत्वा कीदृशं तत् सुखं स्याद्
यद् विन्देथास्तदनु ब्रूहि पार्थ ॥ २६ ॥

कुन्तीनन्दन ! ... कौन-सा सुख मिल सकता है जिसे आप कृपाचार्य, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण तथा दुर्योधन—इन सबका वध करके पाना चाहते हैं ? बताइये ।

लब्ध्वापीमां पृथिवीं सागरान्तां
जरामृत्यू नैव हि त्वं प्रजह्याः ।
प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्
नेवं विद्वान् नैव युद्धं कुरुष्व ॥ २६ ॥

राजन् ! समुद्रपर्यन्त इस सारी पृथ्वीको पाकर भी आप जरा-मृत्यु, प्रिय-अप्रिय तथा सुख-दुःखसे पिण्ड नहीं छुड़ा सकते । आप इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं; अतः मेरी प्रार्थना है कि आप युद्ध न करें ॥ २६ ॥

अमात्यानां यदि कामस्य हेतो-
रेवं युक्तं कर्म चिकीर्षसि त्वम् ।
अपाक्रमेः सम्प्रदाय स्वमेभ्यो
मा गास्त्वं वै देवयानात् पथोऽद्य ॥ २७ ॥

यदि आप अपने मन्त्रियोंकी इच्छासे ही ऐसा पापमय युद्ध करना चाहते हैं तो अपना सर्वस्व उन मन्त्रियोंको ही देकर वनवास ग्रहण कर लीजिये, परंतु अपने पुरुषत्वका वध करके देवयानमार्गसे भ्रष्ट न होइये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें संजयवाक्यविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

संजयको युधिष्ठिरका उत्तर

युधिष्ठिर उवाच

असंशयं संजय सत्यमेतद्
धर्मो वरः कर्मणां यत् त्वमात्थ ।
ज्ञात्वा तु मां संजय गर्हयेस्त्वं
यदि धर्मं यद्यधर्मं चरेयम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—संजय ! सब प्रकारके कर्मोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है, यह जो तुमने कहा है, वह बिलकुल ठीक है । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है; परंतु मैं धर्म कर रहा हूँ या अधर्म, इस बातको पहले अच्छी तरह जान लो, फिर मेरी निन्दा करना ॥ १ ॥

यत्राधर्मो धर्मरूपाणि धत्ते
धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः ।
बिभ्रद् धर्मो धर्मरूपं तथा च
विद्वांसस्तं सम्प्रपश्यन्ति बुद्ध्या ॥ २ ॥

कहीं तो अधर्म ही धर्मका रूप धारण कर लेता है, कहीं पूर्णतया धर्म ही अधर्म दिखायी देता है और कहीं धर्म अपने वास्तविक स्वरूपको ही धारण किये रहता है; विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिसे विचार करके उसको असली रूपको देख और समझ लेते हैं ॥ २ ॥

एवं तथैवापदि लिङ्गमेतद्
धर्माधर्मौ वृत्तिनित्यौ भजेताम् ।
आद्यं लिङ्गं यस्य तस्य प्रमाण-
मापद्धर्मं संजय तं निबोध ॥ ३ ॥

इस प्रकार जो ये नित्य विभिन्न वर्णोंका अपना-अपना लक्षण (चिह्न) है, जैसे ब्राह्मणके लिये अध्ययन-अध्यापन आदि, क्षत्रियके लिये शौर्य आदि तथा वैश्यके लिये कृषि आदि, ये ठीक इसी प्रकार उस उस वर्णके लिये धर्मरूप हैं और यही दूसरे वर्णके लिये अधर्मरूप हैं । इस प्रकार यद्यपि धर्म और अधर्म

सदा वृत्तिविहीनसे रहते हैं तथापि आपत्तिकालमें वे दूसरे वर्णके लक्षणको भी अपना लेते हैं। क्षत्रिय वर्णका आवश्यक जो विशेष लक्षण (याजन और अध्यापन आदि) है, वह ब्राह्मणके लिये अनावश्यक है। (परंतु क्षत्रियको आपत्तिकालमें भी याजन और अध्यापन आदिका आश्रय नहीं लेना चाहिये)। अतः प्रकृतिस्थ वर्णके लिये जो स्वधर्म है, उसे शुभ (आवश्यक कर्तव्य) जानो ॥ ३ ॥

लुप्तायां तु प्रकृतौ येन कर्म
निष्पादयेत् तत् परीप्सेद् विहीनः ।
प्रकृतिस्थश्चापदि वर्तमान
उभौ गर्ह्यौ भवतः संजयैतौ ॥ ४ ॥

प्रकृति (जीविकाके साधन) का सर्वथा लोप हो जानेपर जिस किसी आश्रयसे अपनी (जीविकाके) कर्म सफल हों, जीविकाहीन पुरुष उसे अवश्य अपनानेकी इच्छा करे। परंतु जो प्रकृतिस्थ (स्वाभाविक स्थितिमें स्थित) है, आपत्तिमें भी आवश्यक आश्रय लेता है, वह (अथवा जो आपत्तिकालमें भी अपने स्वधर्मका आश्रय न लेकर) दोनों निन्दाके पात्र होते हैं ॥ ४ ॥

अविनाशमिच्छतां ब्राह्मणानां
प्रायश्चित्तं विहितं यद् विधात्रा ।
समापद्येत कर्मसु वर्तमानान्
विकर्मस्थान् संजय गर्हयेत्त्वम् ॥ ५ ॥

संजय! (जीविकाका साधन नष्ट न होनेपर) ब्राह्मणोंका नाश न हो जाय, इसी इच्छासे विधाताने जो (उनके लिये अन्य वर्णोंके कर्मोंसे जीविका चलाकर अपनी) प्राणरक्षा का विधान किया है, उसपर ध्यान दो। फिर यदि वह आपत्तिकालमें भी (स्वाभाविक) कर्मोंमें ही लगे हों और आपत्तिकाल न होनेपर भी अन्य वर्णके विरुद्ध कर्मोंमें स्थित हों तो उस दशामें तुम उनकी निन्दा करो ॥ ५ ॥

मनीषिणां सत्त्वविच्छेदनाय
विधीयते सत्सु वृत्तिः सदैव ।
अब्राह्मणाः सन्ति तु ये न वैद्याः
सर्वोच्छेदं साधु मन्येत तेभ्यः ॥ ६ ॥

मनस्वी पुरुषोंको सत्त्व आदिके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये सदा ही सत्पुरुषोंका आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करना चाहिये, यह उनके लिये शास्त्रीय विधान है। परंतु जो ब्राह्मण नहीं हैं तथा जिनकी ब्रह्मविद्यामें निष्ठा नहीं है, उन सबके लिये उनके शरीर आदि उनके अनुसार ही जीविका चलानी चाहिये ॥ ६ ॥

तदध्वानं पितरो ये च पूर्वे
पितामहा ये च तेभ्यः परेऽन्ये ।
यज्ञैषिणो ये च हि कर्म कुर्यु-
र्नान्यं ततो नास्तिकोऽस्मीति मन्ये ॥ ७ ॥

मेरे पिता, पितामह और उनसे भी पूर्वके पितामह आदि तथा अन्य भी पूर्वज उसी मार्गपर चलते रहे, जिसकी मैंने ऊपर चर्चा की है; तथा जो कर्म करते हैं, वे भी उसी मार्गसे चलते आये हैं। मैं भी नास्तिक नहीं हूँ, इसलिये उसी मार्गपर चलता हूँ, उसके सिवा दूसरे मार्गपर विश्वास नहीं रखता हूँ ॥ ७ ॥

यत् किंच नेदं वित्तमस्यां पृथिव्यां
यद् देवानां त्रिदशानां परं यत् ।
प्राजापत्यं त्रिदिवं ब्रह्मलोकं
नाधर्मतः संजय कामये तम् ॥ ८ ॥

संजय! इस भूमण्डलमें जो कुछ भी धन-वैभव विद्यमान है, जिसे देवताओंके अधिकारमें जो कुछ है, तथा जो प्राजापत्यलोक, स्वर्ग एवं ब्रह्मलोक भी है, यह सब अधर्मसे मिल रहा हो तो भी मैं उसे लेना नहीं चाहूँगा ॥ ८ ॥

धर्मेश्वरः कुशलो नीतिमांश्च
उपासिता ब्राह्मणानां मनीषी ।
नानाविधांश्चैव महाबलांश्च
राजन्यभोजाननुशास्ति कृष्णः ॥ ९ ॥

यदि ह्यहं विसृजन् स्यामगर्ह्यो
युध्यमानो यदि जह्यां स्वधर्मम् ।
महायशाः केशवस्तद् ब्रवीतु
वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः ॥ १० ॥

यहाँ बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण धर्मके स्वामी, कुशल, नीतिमान्, ब्राह्मणभक्त और मनीषी हैं, जो नाना प्रकारके महान् बलवान् क्षत्रिय और भोजवंशियोंका शासन करते हैं। यदि मैं सामनीतिका परित्याग करके निन्दाका पात्र होता होऊँ या युद्धके लिये उद्यत होकर अपने धर्मका उल्लङ्घन करता होऊँ तो ये महायशस्वी यदुकुलनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण इसका निर्णय करें; क्योंकि ये दोनों पक्षोंका हित चाहनेवाले हैं ॥ ९-१० ॥

शैनेया हि चेदयश्चान्धकाश्च
वार्ष्णेयभोजाः कुकुराः सृञ्जयाश्च ।
उपासीना वासुदेवस्य बुद्धिं
निगृह्य शत्रून् सुहृदो नन्दयन्ति ॥ ११ ॥

तदनन्तर चेदिदेशके ... कुक्कुर तथा ... नहीं ... उन्होंने ... जाते और ... को आलिङ्गन कर

कृष्णस्य ... भीमसेनादयो
कृष्णकेन सर्वे ...
मनस्विन लाभपरायणाश्च
महाबल ... भोगवास
श्रीकृष्णका ... नहीं ... रथ ... हनि और ... उनमेन आदि ... इनका बचना ... पाण्ड ... मतवाली ... और ... नमस्कार हुए

कामयो ... प्रियबुद्ध ... मनो
... ...
यस्य स्वभावात् ... वासुदेव
... मेघ इव प्रजाया

कैकेय राजपुत्रोंने उनसे भाई ... कार्तिकेय ... श्रीकृष्णका ... पूछते हुए ... उत्तम ... अनिवार्य हुए ... भगवान् श्रीकृष्ण ... लिये ... और ... बर्ष ... सब ... मन ... वैसे ... बुद्धि

दशोऽयं केशवस्तान विहान्
विधि ... फलाय ... विधानम्
... कापुरुषस्य कुम्भे
नातिलाभे ... केशवस्य
... ... भाई ... भगवान् श्रीकृष्ण ... और विद्वान ... अन्तिम परिणाम ... इनकी ... नहीं कर सकता

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये ... इस ... उद्योगपर्व ... हुआ

एकोनत्रिंशोऽध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका ... करते हुए श्रीकृष्णका ... से ... चेतावनी देना

... उवाच

अविनाशं सञ्जय पाण्डवानां
मिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियं च
तथा ...
समाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम्



भगवान् श्रीकृष्णने कहा ... तथा ... उनका प्रिय ... चाहते ... हुए ...

कामो हि मे सञ्जय नित्यमेव
... शाम्यतेति
राज्ञश्च हि प्रियमेतच्छृणोमि
मन्ये चैतत् पाण्डवानां समक्षम्

... ... कौरवोंकी ... बुद्धिमान् ... युधिष्ठिरके ... भी ... हुआ

... ... हि ...
प्रवर्तितं ... पाण्डवेन
... धृतराष्ट्रः ...
... ...

मेकर बैठा ... युधिष्ठिर ... किया
... लेकर ... बनी
... युधिष्ठिर ...
... ...
... और ... कहा
... नहीं

धर्मं विचार ...
... जानामि युधिष्ठिर
... पाण्डव
... पूरयन् ...
यथा ... कुरुध्वे
पुत्र तस्मात् ...
असिन् विध ... यथाव
... माहात्म्यानाम्

... नहीं
और ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... नार

कामना ... पश्य
... निशिमेके
... दुन्येद्
... ब्राह्मणानाम्

... द्वारा
... ...
... ...
...

... ...
... ...
... ...

... ...
... ...
... ...

विद्या साधयन्तीह कर्म
... ...
... ...
... ...
... ... द्वि

...
... ...
...

... ...
... ... कर्म
... ...
... ...
... ...
... ...
... कथन

... भाति ... ...
... ...
... ...
... ... सुख
... ...
... कहते
... द्वारा
...
... ...
... ...
... ...
... ...

धर्म

... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
...
... ... सम्पूर्ण

महर्षियोंसे युक्त करती हुई सौभाग्यपूर्वक ... जाया करती है।

कर्मनिष्ठो यजति भूरितेजा
समाधिपन्नान्तरिक्ष विहाय
अतन्द्रितो ... चचार
धर्मार्थमिच्छन् सत्यमिह देवतानाम्

[illegible] देवताओंमें ... स्थान ... तत्पर होकर ... किया ... महले भी ... प्रयत्न ... होकर ही ... तथा ... गुणने ... समय ... करते हैं।

हित्वा सुख मनसश्च प्रियाणि
तस्य भव कर्मणा श्रेयसा च
लब्ध्वा धर्म पालयन्नप्रमत्तो
वृथ निर्जित्य सता ... च
यतानि सर्वाण्युपलयमानः
स देवराज्यमवाप्य मुख्यम्
शुभकर्मणा ... चचार
समाहितः ... महात्मा ...
हित्वा सुख ... प्रियाणि
तं ... गौरव स
तथा ... भामिनि
[illegible]

[illegible] सुख ... भी ... त्याग करके ... लोकोंमें ... धर्म ... महीपाल ... उत्तम ... सर्वदा ... तथा ... ही ... दैत्यराज ... वह ... हुआ है ... प्रकार ... भी ... समाहित ... गति ... ऐश्वर्य ... इन्द्रि ... सुख ... प्रभावसे ... सम्मानित ... चाहते ... हो ... प्रकाशित ... रहे हैं ... आदि ... तथा ... तुम ... लोग हुए

श्री राजा ... कुब
गन्धर्वयक्षाप्सरसां ... सुख
... विद्या ... च
निषेवमाणा ... भामिनि ॥ ६ ॥

सूत ... विश्वके गुण कुबेर गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी अपने-अपने कर्मोंके प्रभावसे ही स्वर्गमें विराजमान हैं। भगवान् तथा ... धर्मका ... करते वाले महर्षि भी ... ही ... अवस्थान रहे हैं।

ज्ञानविद सर्वलोकस्य धर्मी
विनेन्द्राणां क्षत्रियाणां विशां च
स कस्मात् त्वं जानता ज्ञानवान् सन्
व्याचष्ट ... पौरवार्थे ॥ ७ ॥

... श्रेष्ठ ... तथा सम्पूर्ण लोकोंके ... धर्मको जानते हो ... में भी श्रेष्ठ ... हो ... कौरवोंकी ... सिद्धिके लिये ... ऐसा ... हो।

आम्नायेषु नित्यसंयोगमस्य
तथाश्वमेधे राजसूये च विद्धि
संयुज्यते धनुषा वर्मणा च
हस्त्यश्वाद्यै रथशस्त्रैश्च भूयः
स चेदिमे कौरवाणामुपाय-
मधिगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः
धर्मत्राणं पुण्यमेषां कृतं स्या-
दार्ये वृत्ते भीमसेनं निगृह्य ॥ ८ ॥

राजा युधिष्ठिरका वेद शास्त्रोंके साथ ... सम्बन्ध ... रहता है ... अश्वमेध ... आदि यज्ञोंमें भी ... लगाव है ... धनुष ... हाथी घोड़े आदि ... रथों और ... भी ... नहीं है। कुन्तीपुत्र ... कौरवोंका वध किये बिना ही ... पानेका ... कोई दूसरा उपाय ... भीमसेनको ... आर्यपूर्ण ... आचरण ... पुण्यका ही सम्पादन ... भलीभाँति ... हो।

ते चेत् पित्र्ये कर्मणि वर्तमाना
आपद्येरन् दिष्टवशेन मृत्युम्
यथाशक्त्या पूरयन्तः स्वकर्म
तदप्येषां निधनं स्यात् प्रशस्तम् ॥ ९ ॥

पाण्डव ... अपने ... कर्म ... यदि ... मृत्यु हो ... अपने ... धर्मका पालन करते हुए यदि दैववश मृत्युको प्राप्त ... तो इनकी वह मृत्यु उत्तम ही मानी जायगी।

उताहो त्वं मन्यसे सर्वमेव
राज्ञां युद्धे वर्तते धर्मतन्त्रम्

अयुद्धे वा वर्तते धर्मतन्त्र
तस्य ते वाक्यमिमा शृणोमि

यदि तुम [illegible] भाषण [illegible] करो तो उसके समझाते [illegible] तो अभी तुम्हारे अरुण [illegible] राजाओंके [illegible] ओर [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] उन [illegible] [illegible] [illegible] अथवा [illegible] हुए तुम जो कुछ भी कहोगे वे तुम्हारी वही बात मुझको अच्छा है।

चातुर्वर्ण्यस्य प्रथम सविभाग
मवेक्षय त्व सजय वेद च धर्मं
निरामयाणां पाण्डवाना च धर्मं
प्रशाम च [illegible] वा प्रतिप्रते

जब तुम [illegible] ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके विभाग तथा वर्णोंके प्रत्येक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पाण्डवोंके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारा विचार हो [illegible] अनुसार उनकी [illegible] [illegible] निन्दा करना

अधीयीत ब्राह्मणो व यजेत
दद्यादीयात् तीर्थमुख्यानि चैव
अध्यापयेद् याजयेच्चापि याज्यान्
प्रतिग्रहान् वा विहितान् प्रतीच्छेत्

ब्राह्मण अध्ययन यज्ञ [illegible] दान करे [illegible] प्रधान [illegible] तीर्थोंकी यात्रा करे शिष्योंको पढ़ावे और यजमानोंका यज्ञ करावे [illegible] शास्त्रविहित प्रतिग्रह (दान) स्वीकार करे

अधीयीत क्षत्रियो यो यजेत
दद्याद् दानं न तु याचेत किंचित्
न याजयेन्नापि चाध्यापयीत
एष स्मृत क्षात्रधर्मं पुराण

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और दान करे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दूसरोंका यज्ञ करावे और [illegible] [illegible] ही [illegible] करे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धर्म बताया गया है

तथा राजन्यो [illegible] च प्रजाम
[illegible] धर्मेणाप्रमत्तोऽथ दत्त्वा
यज्ञैरिष्ट्वा सर्ववेदानधीत्य
दारान् कृत्वा पुण्यकृदावसेद् गृहान्
स धर्मात्मा धर्ममधीत्य पुण्य
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इसके सिवा [illegible] [illegible] अनुसार सावधान रहकर प्रजाजनोंकी रक्षा करे दान दे [illegible] करे सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके विवाह करे और पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ गृहस्थधर्म [illegible] इस प्रकार वह धर्मात्मा [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुमार [illegible] [illegible] [illegible] है

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
प्रिय कुर्वन् ब्राह्मणक्षत्रियाणाम्
[illegible] पुण्यकृदावसेद् गृहान्

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

परिचर्या वन्दन ब्राह्मणानां
नाधीयीत प्रतिषिद्धोऽस्य यज्ञ
नित्योत्थितो भूतये तन्द्रित स्यात्
एष स्मृत शूद्रधर्म पुराण

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करे इस प्रकार शूद्रोंका [illegible] [illegible] है

[illegible] राजा [illegible]
नियोजयन् सर्ववर्णान् स्वधर्मे
अकामात्मा समवृत्ति प्रजासु
नाधार्मिकाननुरुध्येत कामात्

राजा सावधानीसे [illegible] सब वर्णोंका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] सर्वधर्मोपपन्न
स त द्रष्टुमनुशिष्यात् प्रजानां
[illegible] [illegible] [illegible]

यदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सर्वधर्मसम्पन्न [illegible] [illegible] [illegible] करता है तो वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करनेवाला तो नहीं है

यदा गृध्यन् परभूमौ नृशंसो
[illegible] [illegible]
ततो राज्ञामभवद् युद्धमेतत्
तत्र जातं वर्म शस्त्र धनुश्च

जब कोई क्रूर मनुष्य दूसरोंकी धन-सम्पत्तिमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इच्छा करता है और [illegible] [illegible]

(पाण्डवोंके लिये) ऐसा समझ रहा जाता है कि यह समय सामरिक दुःखका अवसर उपस्थित होता है। इस युद्धके लिये ही अर्जुन और श्रीकृष्ण और अनुपम प्रादुर्भाव हुआ है। २९ ।

ध्रुवं तमिमं दस्युवधाय कृष्ण
सम्पादितं पथ नरस्य धनुष्मान् ॥ ३ ॥

अतः देवता [illegible] उस दुर्योधन तथा धनके लिये कवच आयुध और अनुपम आदि प्राप्त किया है ॥ ३० ॥

तथ पुत्र दस्युवधेन लक्ष्मी
भ्राजत नूनं कुरुभिस्तु प्रभूत ।
अभ्यासमेव समनुप्रपन्नौ
प्रादुर्भूतं सङ्गत साधु तत्र ॥ ३१ ॥

राजाओं (उद्योग) [illegible] पर [illegible] होती है। कभी [illegible] नीतिरूपमें प्रकट हो गया है [illegible] पवित्र है परंतु और [illegible] नहीं [illegible] ॥ ३१ ॥

तत्र राजा धृतराष्ट्र सपुत्रो
धन्यं हतम् पाण्डुसुतानां कुलात् ।
मायान्वितो राजवृत्तं पुराणं
तद्यथा कुरवः सम पन्थ ॥ ३२ ॥

राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके साथ मिलकर सहसा पाण्डवोंके प्रति [illegible] गया था। सदुपायसे अपने अलग हो गये हैं [illegible] कौरव भी [illegible] अनुसार कर रहे हैं [illegible] प्राचीन राजधर्मको नहीं देखते हैं ॥ ३२ ॥

स्थाणौ हरेद् यत्र धनं प्रमत्त
प्रसह्य वा यत्र हरेत वज्र ।
उभौ महर्षि भवन स्वजयैतौ
किं वै पुत्राणाम् धृतराष्ट्रस्य पुत्रे ॥ ३३ ॥

चोर छिपकर धन चुराता है और सामने आकर डाका डालता है [illegible] दोनों ही चोर डाकू निन्दाके ही पात्र होते हैं [illegible] तुम्हीं बताओ तुम्हारे पुत्र दुर्योधन और उनके अनुयायी क्या अन्तर है ? ॥ ३४ ॥

सोऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं
यमिच्छति क्रोधवशानुगामी ।
भाग पुनः पाण्डवानां निविष्टं
तत्र न सनातनस्य अपि वै ॥ ३५ ॥

दुर्योधन लोभके वशीभूत हो उसके अनुसार चलनेवाला है और वह [illegible] राज्यको लेना चाहता है। इसे वह धर्म मान रहा है परंतु यह तो पाण्डवोंका भाग है जो कौरवोंके यहाँ धरोहरके रूपमें रक्खा गया है। कल्प !

हमारे इस भागको हमसे छीननेवाले कौरव कैसे हो सकते हैं ? । १४ ।

कस्मिन् पदे युध्यता नो वधोऽपि
श्लाघ्यः पित्र्यं परराज्याद् विशिष्टम् ।
एतान् धर्मान् कौरवाणां पुराणा
नाचक्षीथा सञ्जय राजमध्ये ॥ ३५ ॥

सूत ! इस राज्यभागकी प्राप्तिके लिये युद्ध करते हुए हमलोगोंका वध हो जाय तो वह भी हमारे लिये श्लाघनीय ही है। बाप-दादोंका [illegible] राज्य परायेसे कहीं अच्छा है। सञ्जय तुम [illegible] बैठनेवाले राजाओंमें इन प्राचीन धर्मोंका कौरवोंके समक्ष वर्णन करना ॥ ३५ ॥

एते मन्दा मृत्युवशाभिपन्ना
समानीता धार्तराष्ट्रेण मूढाः ।
इदं पुनः कर्म पापीय एव
सभामध्ये पश्य वृत्तं कुरूणाम् ॥ ३६ ॥

दुर्योधनने जिन्हें युद्धके लिये बुलाया है, वे मूर्ख राजा कालके गालमें जानेवाले होकर मौतके पंजेमें फँस गये हैं। सभाके भीतर सबके सामने कौरवोंने जो यह अत्यन्त पापपूर्ण कर्म किया था, उनके इस दुराचारपर दृष्टि डालो ॥ ३६ ॥

प्रियां भार्यां द्रौपदीं पाण्डवानां
यशस्विनीं शीलवृत्तोपपन्नाम् ।
यदुपेक्षन्त कुरवो भीष्ममुख्याः
कामानुगेनोपरुद्धां रुदन्तीम् ॥ ३७ ॥

पाण्डवोंकी प्यारी पत्नी यशस्विनी द्रौपदी जो शील और सदाचारसे सम्पन्न है, रजस्वला अवस्थामें सभाके भीतर लायी जा रही थी, परंतु भीष्म आदि प्रधान कौरवोंने भी उसकी ओरसे उपेक्षा दिखायी ॥ ३७ ॥

तं चेत् तदा ते सकुमारवृद्धा
अवारयिष्यन् कुरवः समेताः ।
मम प्रियं धृतराष्ट्रोऽकरिष्यत्
पुत्राणां च कृतमस्याभविष्यत् ॥ ३८ ॥

यदि बालकसे लेकर बूढ़ेतक सभी कौरव उस समय दुःशासनको रोक देते तो राजा धृतराष्ट्र मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करते तथा उनके पुत्रोंका भी प्रिय मनोरथ सिद्ध हो जाता ॥ ३८ ॥

दुःशासनः प्रातिलोम्यान्निनाय
सभामध्ये श्वशुराणां च कृष्णाम् ।
सा तत्र नीता करुणं व्यपेक्ष्य
नान्यं क्षत्तुर्नाथमवाप किंचित् ॥ ३९ ॥

दुःशासन मर्यादाके विपरीत द्रौपदीको सभाके भीतर श्वशुरजनोंके सामने घसीट ले गया। द्रौपदीने वहाँ जाकर करुण

आपने भारी और बलवाहक हाथी, परंतु इनमें वहाँ सिंहनाद और गिरा और किसीने उनका समर्थन नहीं पाया ॥ ३९ ॥

कार्पण्यादेव सहितास्तत्र पृथा
शक्रप्रतापं प्रेक्षन्तु सभायाम् ।
[illegible] आता धर्मसमं प्रयाते
[illegible] प्रत्युक्तावालपुरिम ॥ ४० ॥

उस समय [illegible] वहाँ [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] युधिष्ठिरको प्रथमा वहाँ सम्मानित [illegible] बुद्धि [illegible] [illegible] वचन कहकर अर्थ [illegible] किया ॥ ४१ ॥

अयुक्तत्वा त्व धर्मेण सभायां
नमेत्स्यामि पाण्डवसोदरेषु ।
कृष्णा त्यक्तां कथं चचार युधं
[illegible] तत्र सभा समेत्य ॥ ४२ ॥
येन [illegible] पाण्डवानुजहार
तमसः प्रमान्नौरिव सागरौघात् ।
[illegible] सभायां
कृष्णा स्थिता [illegible] समीप ॥ ४३ ॥
न ते गतिर्विद्यते [illegible]
प्रथम [illegible] [illegible] वचम् ।
[illegible] च सन्ति
पतिं [illegible] मामिति त्व वृणीष्व ॥ ४४ ॥

सखा ! [illegible] ने [illegible] हुआ था उसे [illegible] पुत्र था [illegible] युधिष्ठिरको धर्मका उपदेश देना चाहते हो । द्रौपदीने उन [illegible] जाकर [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] महान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समीप [illegible] [illegible] करते हुए [illegible] [illegible] दूसरा गति नहीं है [illegible] [illegible] [illegible] पाण्डव [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] किसी दूसरेको अपना पति वरण कर लो ॥ ४१—४२ ॥

यो [illegible] भारती
[illegible] सुमेरु ।
[illegible]
[illegible] ॥ ४४ ॥

क्योंकि तुमसे निकला हुआ वह [illegible] पार [illegible] सा [illegible] और पहुँचानेवाला था । वह [illegible] [illegible] भीतर [illegible] [illegible] हुआ अर्जुनके हृदयमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] हृदयमें [illegible] हुआ है । और [illegible] [illegible] [illegible] है । ॥ ४४ ॥

कृष्णाजिनानि परिधित्समानान्
दुःशासनं कटुकान्यभ्यभाषत् ।
यत सर्वं पण्डतिला [illegible]
[illegible] दीर्घकालम् । ४५ ॥

जिस समय पाण्डव [illegible] [illegible] [illegible] पहन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

गान्धारराज शकुनिर्निकृत्या
यदब्रवीद् द्यूतकाले स पार्थम् ।
पराजितो [illegible] किं तवास्ति
कृष्णया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या ॥ ४६ ॥

गान्धारराज शकुनिने छलपूर्वक [illegible] [illegible] युधिष्ठिरसे [illegible] यह बात कही थी कि अब तो तुम [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारे पास क्या है ? इसलिये इस [illegible] तुम [illegible] द्रौपदीको दाँवपर लगाकर जुआ खेलो ॥ ४६ ॥

जानासि त्वं सञ्जय सर्वमेतद्
द्यूते वाक्यं [illegible] यथावत् ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
समागतु [illegible] विप्रम् ॥ ४७ ॥

सञ्जय ! ([illegible]) [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथापि [illegible] [illegible] हस्तिनापुर चलना चाहता हूँ ॥ ४७ ॥

[illegible] यदि [illegible]
[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible]
[illegible] कुरवो [illegible] ॥ ४८ ॥

यदि पाण्डवोंका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४८ ॥

यदि मे [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] ।
[illegible] [illegible] समक्ष
मां च [illegible] कुरवः पूजयेयु ॥ ४९ ॥

मैं यहाँ आकर गुरुजनोंके अनुसार धर्म और अधर्म युक्त ऐसी बातें करना जो [illegible] दबानेवाली होंगी। क्या धृतराष्ट्र पुत्रसहित अब भी विचार करेंगे ? कर [illegible] मेरा सम्मान करेंगे ?

अनाड-पथा नाकथा पाण्डुपुत्रान्
भीमेन वै वाचा परिहितेन।
परामृशन्त्वं मानवतुल्य विधि
मदात्मानाश्च कर्मणा स्वेन पापात्॥ ५०॥

संजय ! [illegible] जहाँ हुआ कौरवलोग इनके विपरीत भाव दिखाया था [illegible] कि ध्यान रहे हुए अर्जुन और युद्धके लिये तत्पर आगे बढ़नेवाले भीमसेनके द्वारा क्रोधित होकर धृतराष्ट्रके सभी पापात्मा पुत्र अपनी ही इस दोषसे नष्ट हो जायँगे। ५०।

पराजिनान् पाण्डवेयांस्तु वाचा
रौद्रा रूक्षा भाषते धार्तराष्ट्रः।
महाहवे भीमसेनोऽप्रमत्तो
दुर्योधनं स्मारयिता हि काले॥ ५१॥

द्यूतके समय जब पाण्डव हार गये थे, तब दुर्योधनने उनके प्रति बड़ी भयानक और रूखी बातें कही थीं। उन बातोंको याद रखनेवाले भीमसेन युद्धके समय गदा हाथमें लेकर दुर्योधनको उन बातोंकी याद दिलायेंगे। ५१॥

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी॥ ५२॥

दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्षके समान है, कर्ण उस वृक्षका स्कन्ध, शकुनि शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-पुष्प है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसके मूल (जड़) हैं॥ ५२॥

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च॥ ५३॥

युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष हैं। अर्जुन (उस वृक्षके) स्कन्ध, भीमसेन शाखा और माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव इसके समृद्ध फल-पुष्प हैं। मैं, वेद और ब्राह्मण ही इसके मूल (जड़) हैं॥ ५३॥

वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
व्याघ्रास्ते वै संजय पाण्डुपुत्राः।
सिंहाभिगुप्तं न वनं विनश्येत्
सिंहा न नश्येयुरनाभिगुप्ताः॥ ५४॥

संजय ! पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र एक वन है और पाण्डव उस वनमें निवास करनेवाले व्याघ्र हैं। सिंहोंसे रक्षित वन नष्ट नहीं होता एवं वनमें रहकर सुरक्षित सिंह नष्ट नहीं होता, अतः तुम लोग वन-व्याघ्र न बनो॥ ५४॥

निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्।
तस्माद् व्याघ्रो वनं रक्षेद् वनं व्याघ्रं च पालयेत्॥ ५५॥

व्याघ्र वनसे बाहर निकलने पर मारा जाता है और बिना व्याघ्रके वनको सब लोग आसानीसे काट लेते हैं। अतः व्याघ्र वनकी रक्षा करे और वन व्याघ्रकी॥ ५५॥

लताधर्मा धार्तराष्ट्राः शालाः संजय पाण्डवाः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता॥ ५६॥

संजय ! धृतराष्ट्रके पुत्र लताओंके समान हैं और पाण्डव शाल-वृक्षोंके समान। कोई भी लता किसी महान् वृक्षका आश्रय लिये बिना कभी नहीं बढ़ती है (अतः पाण्डवोंका आश्रय लेकर ही धृतराष्ट्रपुत्र बढ़ सकते हैं)। ५६॥

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः।
यत् कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत् करोतु नराधिप॥ ५७॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीपुत्र धृतराष्ट्रकी सेवा करनेके लिये भी उद्यत हैं और युद्धके लिये भी। अब राजा धृतराष्ट्रका जो कर्तव्य हो, उसका वे पालन करें॥ ५७॥

स्थिताः शमे महात्मानः पाण्डवा धर्मचारिणः।
योधाः समर्थास्तद् विद्वन्नाचरेथा यथातथम्॥ ५८॥

विद्वान् संजय ! धर्मका आचरण करनेवाले महात्मा पाण्डव सन्धिके लिये भी तैयार हैं और युद्ध करनेमें भी समर्थ हैं। इन दोनों अवस्थाओंको समझकर तुम राजा धृतराष्ट्रसे यथार्थ बात कहना॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि कृष्णवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यसम्बन्धी
उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५९ श्लोक हैं)

त्रिंशोऽध्याय

संजयकी विदाई तथा युधिष्ठिरका संदेश

संजय उवाच

आमन्त्रये त्वा नरदेवदेव
गच्छाम्यहं पाण्डव स्वस्ति तेऽस्तु।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं हि किंचि-
दुच्चारितं मे मनसोऽभिषङ्गात्॥१॥

संजयने कहा—नरदेवदेव पाण्डुनन्दन! आपका कल्याण हो। अब मैं आपसे विदा लेता और हस्तिनापुरको जाता हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि मैंने मानसिक आवेगके कारण वाणीद्वारा कोई ऐसी बात कह दी हो, जिससे आपको दुःख हुआ हो॥१॥

जनार्दनं भीमसेनार्जुनौ च
माद्रीसुतौ सात्यकिं चेकितानम्।
आमन्त्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः
सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः॥२॥

भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और चेकितानसे भी आज्ञा लेकर मैं जा रहा हूँ। आपलोग सुखी और कल्याणके भागी हों। राजाओ! आप मेरी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखें॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

अनुज्ञातः संजय स्वस्ति गच्छ
न नः स्मरस्यप्रियं जातु विद्वन्।
विद्मश्च त्वा ते च वयं च सर्वे
शुद्धात्मानं मध्यगतं सभास्थम्॥३॥

युधिष्ठिर बोले—संजय! मैं तुम्हें जानेकी अनुमति देता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो और तुम जाओ। विद्वन्! तुम कभी हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन नहीं करते हो। इसलिये कौरव तथा हमलोग सभी तुम्हें शुद्धचित्त एवं सभासद मानते हैं॥३॥

आप्तो दूतः संजय सुप्रियोऽसि
कल्याणवाक् शीलवान् दृष्टिमांश्च।
न मुह्येस्त्वं संजय जातु मत्या
न च क्रुध्येरुच्यमानोऽपि तथ्यम्॥४॥

संजय! तुम विश्वसनीय तथा हमारे अत्यन्त प्रिय दूत हो। तुम्हारी वाणी कल्याणमयी है। तुम शीलवान् और संतोषी हो। तुम्हारी बुद्धि कभी मोहित नहीं होती और सत्य वचन सुनकर भी तुम कभी क्रोध नहीं करते॥४॥

न मर्मगां जातु वक्तासि रूक्षां
नोपश्रुतिं कटुकां नोत शुक्ताम्।
धर्मारामामर्थवतीमहिंस्रा-
मेतां वाचं तव जानाम सूत॥५॥

सूत! तुम्हारे मुखसे कभी ऐसी बात नहीं निकलती, जो कटुवी होनेके साथ ही मर्मस्थानपर आघात करनेवाली हो। तुम नीरस और अप्रिय कटु बात भी नहीं बोलते। हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारा यह कथन धर्मानुकूल होनेके कारण मनोहर, अर्थयुक्त तथा हिंसाकी भावनासे रहित है॥५॥

त्वमेव नः प्रियतमोऽसि दूत
इहागच्छेद् विदुरो वा द्वितीयः।
अभीक्ष्णदृष्टोऽसि पुरा हि नस्त्वं
धनंजयस्यात्मसमः सखासि॥६॥

दूत! तुम्हीं हम सबको अत्यन्त प्रिय हो। यहाँ या तो तुम आओ या दूसरे विदुरजी आयें। पहले भी तुम हमसे बारंबार मिलते रहे हो और धनंजयके तो तुम आत्माके समान सखा हो॥६॥

इतो गत्वा संजय क्षिप्रमेव
उपातिष्ठेथा ब्राह्मणान् ये तदर्हाः।
विशुद्धवीर्यांश्चरणोपपन्नान्
कुले जातान् सर्वधर्मोपपन्नान्॥७॥

संजय! यहाँसे शीघ्र जाकर तुम आदर और सम्मानके योग्य उन विशुद्ध पराक्रमी, सदाचारपरायण, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा सर्वधर्मसम्पन्न ब्राह्मणोंको हमारी ओरसे प्रणाम करना॥७॥

स्वाध्यायिनो ब्राह्मणा भिक्षवश्च
तपस्विनो ये च नित्या वनेषु।
अभिवाद्या वै मद्वचनेन वृद्धा-
स्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः॥८॥

स्वाध्यायपरायण ब्राह्मण, संन्यासी, तपस्वी तथा जो नित्य वनोंमें निवास करनेवाले हैं, उन सबको और वृद्धोंको मेरी ओरसे प्रणाम कहना और अन्य लोगोंसे भी कुशल-समाचार पूछना॥८॥

पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञ
आचार्याश्चर्त्विजो ये च तस्य।
तैश्च त्वं तात सहितैर्यथार्हं
संगच्छेथाः कुशलेनैव सूत॥९॥

तात! तुम राजा धृतराष्ट्रके पुरोहित तथा उनके आचार्यों और ऋत्विजोंसे भी यथायोग्य मिलकर तुम

(मेरी ओरसे) कुशल मङ्गलका समाचार पूछते हुए मिलना ॥ ९ ॥

(वनाऽऽश्रमसदा मना प्राञ्जलिश्च
पृष्ठाः मया मङ्गलेन नेष्य ।)

सम्पन्न गोपालन ... उनकी और उनकी प्रवृत्तियोंको एकाग्र बनाए साथ लेकर मेरे अदबेन उन सबसे प्रणाम निवेदन करना ॥

अनाश्रिता ये च वसन्ति वृद्धा
मनस्विनः शीलबलोपपन्नाः ।
आशंसन्तोऽस्माकमनुस्मरन्तो
यथाशक्ति धर्ममात्रां चरन्तः ॥ १० ॥
ततस्त्वा मां कुशलिनं तेभ्यो
ह्यनामयं तात पृच्छेरशेषम् ।

तात ! जो अनाश्रित (वृद्ध) वैश्य पुरुष मनस्वी तथा शील और बलसे सम्पन्न हैं एवं हस्तिनापुरमें निवास करते हैं, जो यथाशक्ति कुल धर्मका आचरण करते हुए हमलोगोंके प्रति शुभ कामना रखते हैं और बारंबार हमें याद करते हैं, उन सबसे मेरी ओरसे कुशलसमाचार निवेदन करना। तत्पश्चात् उनसे आरोग्यका समाचार पूछना ॥ १० ॥

ये जीवन्ति व्यवहारेण राष्ट्रे
पशूंश्च ये पालयन्तो वसन्ति ॥ ११ ॥
(कृषिं च ये विशन्ति ये च लोके
तेषां सर्वेषां कुशलं स्म पृच्छ)।

जो वैश्य राज्यमें व्यापारसे जीविका चलाते हैं, पशुओंका पालन करते हुए निवास करते हैं तथा जो खेती करते और गोरक्षा करते हैं, उन सब वैश्योंका भी कुशल समाचार पूछना ॥ ११ ॥

आचार्य इष्टो नयवान् विधेयो
वेदानभीप्सन् ब्रह्मचर्यं चचार ।
योऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेव चक्रे
द्रोणः प्रसन्नोऽभिवाद्यस्तथासौ ॥ १२ ॥

जिन्होंने वेदोंकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये बहुत दिनोंतक ब्रह्मचर्यका पालन किया, तत्पश्चात् चार पादोंसे युक्त अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्त की, जो नीतिज्ञ, विनयशील और हमें प्रिय हैं, उन प्रसन्नचित्त आचार्य द्रोणको तुम मेरी ओरसे प्रणाम कहना ॥ १२ ॥

अधीतविद्यश्चरणोपपन्नो
योऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेव चक्रे ।
गन्धर्वपुत्रप्रतिमं तरस्विनं
तमश्वत्थामानं कुशलं स्म पृच्छेः ॥ १३ ॥

जो सदाचारसम्पन्न तथा सद्गुणयुक्त हैं, जिन्होंने चारों पादोंसे युक्त अस्त्रविद्याकी शिक्षा पायी है तथा जो गन्धर्वकुमारके समान वेगशाली वीर हैं, उन आचार्यपुत्र अश्वत्थामासे भी कुशलसमाचार पूछना ॥ १३ ॥

शारद्वतस्यावसथं स्म गत्वा
महारथस्यात्मविदां वरस्य ।
त्वं मामभीक्ष्णं परिकीर्तयन् वै
कृपस्य पादौ सञ्जय पाणिना स्पृशेः ॥ १४ ॥

सञ्जय ! तदनन्तर आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महारथी कृपाचार्यके घर जाकर बारंबार मेरा नाम लेते हुए अपने हाथसे उनके दोनों चरणोंका स्पर्श करना ॥ १४ ॥

यस्मिन् शौर्यमानृशंस्यं तपश्च
प्रज्ञा शीलं श्रुतिसत्त्वे धृतिश्च ।
पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य
भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः ॥ १५ ॥

जिनमें शौर्य, दया, तपस्या, बुद्धि, शील, शास्त्रज्ञान, सत्त्व और धैर्य आदि सद्गुण विद्यमान हैं, उन कुरुश्रेष्ठ पितामह भीष्मके दोनों चरण पकड़कर मेरा प्रणाम निवेदन करना ॥ १५ ॥

प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेता कुरूणां
बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी ।
तस्मै राज्ञे स्थविरायाभिवाद्य
आचक्षीथाः सञ्जय मामरोगम् ॥ १६ ॥

सञ्जय ! जो प्रज्ञाचक्षु, कौरवोंके नेता, अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, वृद्धसेवी और बुद्धिमान् हैं, उन बड़े-बूढ़े राजा धृतराष्ट्रको मेरा प्रणाम निवेदन करके यह बताना कि युधिष्ठिर नीरोग और सकुशल है ॥ १६ ॥

ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मन्दो
मूर्खः शठः सञ्जय पापशीलः ।
प्रशास्ता वै पृथिवीं याति सर्वां
सुयोधनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १७ ॥

तात संजय ! जो धृतराष्ट्रका ज्येष्ठ पुत्र मन्दबुद्धि, मूर्ख, शठ और पापाचारी है तथा जिसकी आज्ञा सारी पृथ्वीमें फैल रही है, उस सुयोधनसे भी मेरी ओरसे कुशल समाचार पूछना ॥ १७ ॥

भ्राता कनीयानपि तस्य मन्द-
स्तथाशीलः सञ्जय सोऽपि शश्वत् ।
महेष्वासः शूरतमः कुरूणां
दुःशासनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १८ ॥

उस समय जो दुर्योधनका छोटा भाई है तथा उन्होंने महान मूर्ख और गदा [illegible] करनेवाला है कुरुकुलके उस महापुरुष एवं विख्यात वीर दु[illegible]से भी कुशल पूछकर मेरा कुशल-समाचार कहना ।

यस्य कामो वर्तते नित्यमेव
नान्यः शमाद् भारतानामिति स्म ।
स बाह्लिकानामृषभो मनस्वी
त्वयाभिवाद्यः सञ्जय साधुशीलः ॥ १९ ॥

[illegible] भरतवंशियोंमें परस्पर शान्ति बनी रहे इसके सिवा दूसरी कोई कामना जिनके हृदयमें कभी नहीं होती है, उन बाह्लीकदेशके श्रेष्ठ पुरुष [illegible] उन साधु स्वभाववाले बुद्धिमान् बाह्लीकको भी तुम मेरा प्रणाम निवेदन करना ।

गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो
विज्ञानवान् नैव च निष्ठुरो यः ।
स्नेहादमर्षं सहते सदैव
स सोमदत्तः पूजनीयो मतो मे ॥ २० ॥

[illegible] श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित और ज्ञानवान् हैं जिनमें निष्ठुरताका लेशमात्र भी नहीं है जो स्नेहवश सदा [illegible] सहन करते हैं वे [illegible] भी मेरे [illegible] हैं ।

अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः
स नो भ्राता सञ्जय मत्सखा च ।
महेष्वासो रथिनामुत्तमोऽर्हः
सहामात्यः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ २१ ॥

[illegible] भाई सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा कुरुकुलमें परम पूजनीय माने गये हैं। [illegible] हमारे भाई और मेरे मित्र [illegible] रथियोंमें उनका बहुत ऊँचा स्थान है वे महान् धनुर्धर तथा आदरणीय वीर हैं तुम मेरी ओरसे मन्त्रियोंसहित उनका कुशल-समाचार पूछना ।

ये चैवान्ये कुरुमुख्या युवानः
पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्चैव ये नः ।
यं यमेषां मन्यसे येन योग्यं
तत्तत् प्रोच्यानामयं सूत वाच्याः ॥ २२ ॥

[illegible] जो कुरुकुलके प्रधान नवयुवक [illegible] हमारे पुत्र पौत्र और भाई लगते हैं [illegible] जिसे जो कुछ उस व्यवहारके योग्य समझो [illegible] वही बात कहकर उन सबसे [illegible] कि पाण्डव [illegible] सकुशल [illegible] हैं ।

ये राजानः पाण्डवायोधनाय
समानीता धार्तराष्ट्रेण केचित् ।
वसातयः शाल्वकाः केकयाश्च
तथाम्बष्ठा ये त्रिगर्ताश्च मुख्याः ॥ २३ ॥
प्राच्योदीच्या दाक्षिणात्याश्च शूरा-
स्तथा प्रतीच्याः पार्वतीयाश्च सर्वे ।
अनृशंसाः शीलवृत्तोपपन्ना-
स्तेषां सर्वेषां कुशलं सूत पृच्छेः ॥ २४ ॥

[illegible] राजा पाण्डवोंसे युद्ध करनेके लिये [illegible] जो [illegible] बुलाये गये हैं, जो वसाति, शाल्व, केकय, अम्बष्ठ तथा [illegible] मुख्य वीर हैं, पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशाके [illegible] पर्वतीय [illegible] और सदाचारसे सम्पन्न [illegible] उन सबसे तुम मेरी ओरसे उनका कुशल-समाचार पूछना ।

हस्त्यारोहा रथिनः सादिनश्च
पदातयश्चार्यसङ्घा महान्तः ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेषा-
मनामयं परिपृच्छेः समग्रान् ॥ २५ ॥

[illegible] हाथी [illegible] घुड़सवार [illegible] तथा पैदल [illegible] सबसे मेरा कुशल-समाचार [illegible] उन सबके आरोग्यका समाचार पूछना ।

तथा राज्ञो ह्यर्थयुक्तानमात्यान्
दौवारिकान् ये च सेनां नयन्ति ।
आयव्ययं ये गणयन्ति युक्ता
अर्थांश्च ये महतश्चिन्तयन्ति ॥ २६ ॥

[illegible] के हितमें संलग्न रहनेवाले मन्त्री, द्वारपाल [illegible] सेनापति, आय-व्ययका हिसाब करनेवाले [illegible] और जो बड़े-बड़े [illegible] विचार करनेवाले हैं [illegible] उनसे भी कुशल-समाचार पूछना ।

वृन्दारकं कुरुमध्येष्वमूढं
महाप्रज्ञं सर्वधर्मोपपन्नम् ।
न तस्य युद्धं रोचते वै कदाचिद्
वैश्यापुत्रं कुशलं तात पृच्छेः ॥ २७ ॥

[illegible] जो कौरवोंमें श्रेष्ठ, मोहरहित, परम बुद्धिमान् [illegible] समस्त धर्मोंसे सम्पन्न हैं [illegible] युद्ध [illegible] अच्छा नहीं लगता [illegible] युयुत्सुसे [illegible] मेरी ओरसे कुशल पूछना ।

निकर्तने देवने योऽद्वितीय-
श्छन्नोपधः साधुदेवी मताक्षः ।
यो दुर्जयो देवरथेन संख्ये
स चित्रसेनः कुशलं तात वाच्यः ॥ २८ ॥

तात ! जो पासेके प्रसारण और द्यूतक्रीडामें अद्वितीय है, छलको छिपाये रखकर अच्छी तरह जुआ खेलता है, पासे फेंकनेकी कलामें प्रवीण है तथा जो युद्धमें दिव्य रथ पर बैठनेके लिये भी दुर्जय है, उस निकर्तनमें भी कुशल गान्धारराज शकुनिसे भी कुशल समाचार पूछना और कहना ॥

गान्धारराजः शकुनिः पार्वतीयो
निकर्तने योऽद्वितीयोऽक्षदेवी ।
मानं कुर्वन् धार्तराष्ट्रस्य सूत
मिथ्याबुद्धेः कुशलं तात पृच्छेः ॥ २९ ॥

तात संजय ! जो जुआ खेलकर पाण्डवोंका अपहरण करनेकी कलामें अपना सानी नहीं रखता तथा दुर्योधनका सदा सम्मान करता है, मिथ्याबुद्धि पर्वतनिवासी गान्धारराज शकुनिसे भी कुशल पूछना ॥

यः पाण्डवानेकरथेन वीरः
समुत्सहत्यप्रधृष्यान् विजेतुम् ।
यो मुह्यतां मोहयिताद्वितीयो
वैकर्तनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ ३० ॥

जो अद्वितीय वीर एकमात्र रथकी सहायतासे अजेय पाण्डवोंको भी जीत कर डालनेका उत्साह रखता है तथा जो मोहमें पड़े हुए धृतराष्ट्रके पुत्रोंको और भी मोहित करनेवाला है, उस वैकर्तन कर्णकी भी कुशल पूछना ॥

स एव भक्तः स गुरुः स भर्ता
स वै पिता स च माता सुहृच्च ।
अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी
स नो मन्त्री कुशलं तं स्म पृच्छेः ॥ ३१ ॥

अगाधबुद्धि दूरदर्शी विदुरजी हमलोगोंके प्रेमी, गुरु, पालक, पिता-माता और सुहृद् हैं। वे ही हमारे मन्त्री भी हैं। संजय ! तुम मेरी ओरसे उनकी भी कुशल पूछना ॥

वृद्धाः स्त्रियो याश्च गुणोपपन्ना
या ज्ञायन्ते संजय मातरस्ताः ।
ताभिः सर्वाभिः सहिताभिः समेत्य
स्त्रीभिर्वृद्धाभिरभिवादं वदेथाः ॥ ३२ ॥

संजय ! कौरवकुलमें जो गुणवती बूढ़ी स्त्रियाँ हैं, वे सब हमारी माताएँ लगती हैं। उन सब बूढ़ी स्त्रियोंसे एक साथ मिलकर तुम उनसे हमारा प्रणाम निवेदन करना ॥

कच्चित् पुत्रा जीवपुत्राः सुसम्यग्
वर्तन्ते वो वृत्तिमनृशंसरूपाम् ।
इति स्मोक्त्वा संजय ब्रूहि पश्चा-
दजातशत्रुः कुशली सपुत्रः ॥ ३३ ॥

सञ्जय ! उन बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंसे इस प्रकार कहना 'माताओ ! आपके पुत्र आपके साथ उत्तम बर्ताव करते हैं न ? उनमें क्रूरता तो नहीं आ गयी है ? इन सबके दीर्घायु पुत्र हो गये हैं न ?' इस प्रकार कहकर पीछे यह बताना कि 'आपका बालक अजातशत्रु युधिष्ठिर पुत्रोंसहित सकुशल है' ॥

या नो भार्याः संजय वेत्थ तत्र
तासां सर्वासां कुशलं तात पृच्छेः ।
सुसंगुप्ताः सुरभयोऽनवद्याः
कच्चिद् गृहानावसथाप्रमत्ताः ॥ ३४ ॥
कच्चिद् वृत्तिं श्वशुरेषु भद्राः
कल्याणीं वर्तध्वमनृशंसरूपाम् ।
यथा च वः स्युः पतयोऽनुकूला-
स्तथा वृत्तिमात्मनः स्थापयध्वम् ॥ ३५ ॥

तात संजय ! हस्तिनापुरमें हमारे भाइयोंकी जो स्त्रियाँ हैं, उन सबको तो तुम जानते ही हो। उन सबकी कुशल पूछना और कहना 'क्या तुमलोग सर्वथा सुरक्षित रहकर निर्दोष जीवन बिता रही हो ? तुम्हें सात्त्विक सुगन्ध आदि प्रसाधन-सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं ? तुम सदा प्रमादशून्य होकर रहती हो न ? कल्याणि ! क्या तुम अपने श्वशुरजनोंके प्रति क्रूरतारहित कल्याणकारी बर्ताव करती हो तथा जिस प्रकार तुम्हारे पति अनुकूल बने रहें, वैसे व्यवहार और सद्भावको अपने हृदयमें स्थान देती हो ?'

या नः स्नुषाः संजय वेत्थ तत्र
प्राप्ताः कुलेभ्यश्च गुणोपपन्नाः ।
प्रजावत्यो ब्रूहि समेत्य ताश्च
युधिष्ठिरो वोऽभ्यवदत् प्रसन्नः ॥ ३६ ॥

संजय ! तुम वहाँ उन स्त्रियोंको भी जानते हो, जो हमारी पुत्रवधूएँ लगती हैं, जो उत्तम कुलोंसे आयी हैं तथा गुणसम्पन्न और संतानवती हैं, वहाँ जाकर उनसे कहना, 'बहुओ ! युधिष्ठिर प्रसन्न होकर तुमलोगोंका कुशल-समाचार पूछते थे' ॥

कन्याः स्वजेथाः सदनेषु संजय
अनामयं मद्वचनेन पृष्ट्वा ।
कल्याणा वः सन्तु पतयोऽनुकूला
यूयं पतीनां भवतानुकूलाः ॥ ३७ ॥

संजय ! राजमहलमें जो छोटी-छोटी बालिकाएँ हैं, उन्हें हृदयसे लगाना और मेरी ओरसे उनका आरोग्य-समाचार पूछकर उन्हें कहना, 'पुत्रियो ! तुम्हें कल्याणकारी पति प्राप्त हों और वे तुम्हारे अनुकूल बने रहें, साथ ही तुम भी पतियोंके अनुकूल बनी रहो' ॥

अलङ्कृता वस्त्रवत्यः सुगन्धा
अबीभत्साः सुखिता भोगवत्यः ।
लघु यासां दर्शनं वाक् च लक्ष्मी-
र्वयःस्थाश्च कुशलं तात पृच्छेः ॥ ३८ ॥

तात संजय ! जिनका दर्शन मनोहर और वाणी मनको प्रिय लगनेवाली होती है, जो वस्त्र-भूषासे अलंकृत सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित उत्तम सुगन्ध धारण करनेवाली घृणित व्यवहारसे रहित सुखशालिनी और भोग-सामग्रीसे सम्पन्न हैं, उन सब तरुण अवस्थावाली स्त्रियोंसे भी कुशल पूछना ॥ ३८ ॥

दास्यः स्युर्या वै दासकाश्च कुरूणां
तदाश्रया बहवः कुब्जखञ्जाः ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्यो
अनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ३९ ॥

कौरवोंके जो दास-दासियाँ हों तथा उनके आश्रित जो बहुतसे कुबड़े और लँगड़े मनुष्य रहते हैं, उन सबसे मुझे सकुशल बताकर अन्तमें मेरी ओरसे उनकी भी कुशल पूछना ॥ ३९ ॥

कच्चिद् वृत्तिं वर्तते वै पुराणीं
कच्चिद् भोगान् धार्तराष्ट्रो ददाति ।
अङ्गहीनान् कृपणान् वामनांश्च
आनृशंस्याद् धृतराष्ट्रो बिभर्ति ॥ ४० ॥

और कहना— 'क्या राजा धृतराष्ट्र दयावश जिन अङ्गहीनों, दीनों और बौने मनुष्योंका पालन करते हैं, उन्हें दुर्योधन भरण-पोषणकी सामग्री देता है ? क्या वह उनकी प्राचीन जीविका सुरक्षित निबाह करता है ?' ॥ ४० ॥

अन्धांश्च सर्वान् स्थविरांस्तथैव
हस्ताजीवा बहवो येऽत्र सन्ति ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्यो
अनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ४१ ॥

हस्तिनापुरमें जो बहुतसे हाथीवान हैं तथा जो अन्धे और बूढ़े हैं, उन सबको मेरा कुशल बताकर अन्तमें मेरी ओरसे उनके भी आरोग्य आदिका समाचार पूछना ॥ ४१ ॥

मा भैष्ट दुःखेन कुजीवितेन
नूनं कृतं परलोकेषु पापम् ।
निगृह्य शत्रून् सुहृदोऽनुगृह्य
वासोभिरन्नेन च वो भरिष्ये ॥ ४२ ॥

साथ ही उन्हें आश्वासन देते हुए मेरा यह संदेश सुना देना— 'तुम्हें जो दुःख प्राप्त होता है अथवा कुत्सित जीवन बिताना पड़ता है, इसके कारण दुःखी एवं भयभीत न होना। निश्चय ही यह दूसरे जन्मोंमें किये हुए पापका फल प्रकट हुआ है। मैं शत्रुओंका निग्रह करके हितैषी सुहृदोंपर अनुग्रह करते हुए अन्न और वस्त्रद्वारा तुमलोगोंका भरण-पोषण करूँगा ॥ ४२ ॥

सन्त्येव मे ब्राह्मणेभ्यः कृतानि
भावीन्यथो नो बत वर्तयन्ति ।
पश्यामि युक्तान् परिवर्तमानान्
तामेतां सिद्धिं श्रावयेथा नृपं तम् ॥ ४३ ॥

राजन् ! मैंने पहले ब्राह्मणोंके लिये कितनी ही वृत्तियाँ नियत कर रखी हैं, किंतु मैं देखता हूँ कि तुम्हारे कर्मचारी उन्हें चलने नहीं देते हैं। मैं उन ब्राह्मणोंको पुनः उन्हीं वृत्तियोंसे युक्त देखना चाहता हूँ।' संजय ! तुम राजा दुर्योधनको यह बात सुना देना कि उन वृत्तियोंका भाव तथा उससे सम्पन्न होना चाहिये ॥ ४३ ॥

ये चानाथा दुर्बलाः सर्वकाल-
मात्मन्येव प्रयतन्तेऽथ मूढाः ।
तांश्चापि त्वं कृपणान् सर्वथैव
अस्मद्वाक्यात् कुशलं तात पृच्छेः ॥ ४४ ॥

जो अनाथ, दुर्बल एवं मूर्खजन सदा अपने शरीरका पालन करनेके लिये ही प्रयत्न करते हैं, तुम मेरे कहनेसे उन दीनजनोंसे भी जाकर सब प्रकारसे उनका कुशल-समाचार पूछना ॥ ४४ ॥

ये चाप्यन्ये संश्रिता धार्तराष्ट्रान्
नानादिग्भ्योऽभ्यागताः सूतपुत्र ।
दृष्ट्वा तांश्चैवार्हतश्चापि सर्वान्
सम्पृच्छेथाः कुशलं चाव्ययं च ॥ ४५ ॥

सूतपुत्र ! इनके सिवा विभिन्न दिशाओंसे आये हुए दूसरे-दूसरे लोग दुर्योधनका आश्रय लेकर रहते हैं, उन सब माननीय पुरुषोंसे भी मिलकर उनसे कुशल और क्या वे जीवित बने रहें, इस सम्बन्धमें भी प्रश्न करना ॥ ४५ ॥

एवं सर्वानागताभ्यागतांश्च
राज्ञो दूतान् सर्वदिग्भ्योऽभ्युपेतान् ।
पृष्ट्वा सर्वान् कुशलं तांश्च सूत
पश्चादहं कुशली तेषु वाच्यः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार वहाँ सब दिशाओंसे पधारे हुए राजदूतों तथा अन्य सब अभ्यागतोंसे कुशल-मङ्गल पूछकर अन्तमें उनसे मेरा कुशल समाचार भी निवेदन करना ॥ ४६ ॥

न हीदृशाः सन्त्यपरे पृथिव्यां
ये योधका धार्तराष्ट्रेण लब्धाः ।
धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव
महाबलः शत्रुनिबर्हणाय ॥ ४७ ॥

यद्यपि दुर्योधनने बिना पीड़ा दिये ऐसा समझ लिया है कि धन और हम कुन्तीपुत्र दूसरे नहीं हैं तथापि मुझ तो मिल है और मेरे पास ... मानव ... धर्मका ही समझ महान धन है ॥ ४७ ॥

यद् दुर्योधन पालनाद्
सुखापनं मन्त्रय आत्मनो मा।
बहुल शरीरे हृदयं दुर्नाम
कामं कुरूणामपतोऽनुशिष्यात् ॥ ४८ ॥
न विद्यते युक्तिरेतस्य काचि-
न्नैवंविधाः स्याम यथा प्रियं ते।
देहस्व वा शक्रपुरीं ममैव
युध्यस्व वा भारतमुख्य वीर ॥ ४९ ॥

संजय ! दुर्योधनको तुम मेरी यह बात पुनः सुना देना—तुम्हारे शरीरके भीतर मनमें जो यह अभिलाषा उत्पन्न हुई है कि मैं कौरवोंका निष्कण्टक राज्य करूँ, वह तुम्हारे हृदयको पीड़ा ही दे रही है। उसकी सिद्धिका कोई उपाय नहीं है। हम ऐसा ... नहीं हैं कि तुम्हारा यह प्रिय कार्य होने दें। भरतवंशके प्रमुख वीर दुर्योधन! तुम इन्द्रप्रस्थपुरी फिर मुझे ही लौटा दो अथवा युद्ध करो ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरसंदेशे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें युधिष्ठिरसंदेशविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५० श्लोक हैं)

एकत्रिंशोऽध्याय

युधिष्ठिरका मुख्य-मुख्य कुरुवंशियोंके प्रति संदेश

युधिष्ठिर उवाच

उत सन्तमसन्तं च बालं वृद्धं च संजय।
उताबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशे ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—संजय! साधु-असाधु, बालक-वृद्ध तथा निर्बल एवं बलिष्ठ—सबको विधाता अपने वशमें रखता है ॥ १ ॥

उत बालाय पाण्डित्यं पण्डितायोत बालताम्।
ददाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २ ॥

वही सबका नियन्ता है और प्राणियोंके पूर्वकर्मोंके अनुसार उन्हें सब प्रकारका फल देता है। वही मूर्खको विद्वान् और विद्वान्को मूर्ख बना देता है ॥ २ ॥

अलं जिज्ञासमानाय आचक्षीथा यथातथम्।
अथ मन्त्रं मन्त्रयित्वा याथातथ्येन हृष्टवत् ॥ ३ ॥

दुर्योधन अथवा धृतराष्ट्र यदि मेरी ... और सेनाका समाचार पूछें तो तुम उन्हें सब ... बता देना। जिससे वे प्रसन्न होकर आपसमें सलाह करके यथार्थरूपमें अपने कर्तव्यका निश्चय कर सकें ॥ ३ ॥

गावल्गणे कुरून् गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम्।
अभिवाद्योपसंगृह्य ततः पृच्छेरनामयम् ॥ ४ ॥

संजय! तुम कुरुदेशमें जाकर मेरी ओरसे महाबली धृतराष्ट्रको प्रणाम करके उनके दोनों पैर पकड़ लेना और उनसे स्वास्थ्यका समाचार पूछना ॥ ४ ॥

ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम्।
तवैव राजन् वीर्येण सुखं जीवन्ति पाण्डवाः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कौरवोंसे घिरकर बैठे हुए उन महाराजसे कहना—राजन्! पाण्डवलोग आपकी ही सामर्थ्यसे सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं ॥ ५ ॥

तव प्रसादाद् बालास्ते प्राप्ता राज्यमरिंदम।
राज्ये तान् स्थापयित्वाग्रे नोपेक्षस्व विनश्यतः ॥ ६ ॥

शत्रुदमन नरेश! पहले जब वे बालक थे, तब आपकी ही कृपासे उन्हें राज्य मिला था। पहले उन्हें राज्यपर बिठाकर अब आप ही उन्हें नष्ट होते देख उपेक्षा न कीजिये ॥ ६ ॥

सर्वमप्येतदेकस्य नालं संजय कस्यचित्।
तात संहत्य जीवामो द्विषतां मा वशं गमः ॥ ७ ॥

संजय! उन्हें यह भी बताना कि तात! यह सारा राज्य किसी एकके ही लिये पर्याप्त हो ऐसी बात नहीं है। हम सब लोग मिलकर एक साथ रहकर सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कर। इसलिये आप कभी शत्रुओंके वशमें न पड़ें ॥ ७ ॥

तथा भीष्मं शान्तनवं भारतानां पितामहम्।
शिरसाभिवदेथास्त्वं मम नाम प्रकीर्तयन् ॥ ८ ॥
अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोऽस्माकं पितामहः।
भवता शान्तनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धृतः ॥ ९ ॥
स त्वं कुरु तथा तात स्वमतेन पितामह।
यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥ १० ॥

इसी तरह भरतवंशियोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजीको भी मेरा नाम लेते हुए सिर झुकाकर प्रणाम करना और प्रणामके पश्चात् हमारे उन पितामहसे इस प्रकार कहना चाहिये। आपने शान्तनुके डूबते हुए वंशका पुनरुद्धार किया था। अब फिर अपनी बुद्धिसे विचार करके कोई ऐसा काम

कौरवोंमें जिनसे आपकी भेंट हो, उनसे प्रेमपूर्वक कुशल पूछियेगा ।

तथैव विदुरं ब्रूया कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

संजय ! इसी प्रकार कौरवोंके मन्त्री विदुरजीसे कहना, सौम्य ! आप युद्ध न होनेकी ही सम्मति दें; क्योंकि भाई युधिष्ठिरका हित चाहनेवाले हैं ।

अथ दुर्योधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम् ।
मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः ॥ १२ ॥

तदनन्तर कौरवोंकी सभामें बैठे हुए अमर्षशील राजकुमार दुर्योधनको बार-बार अनुनय-विनय करके कहना—

अपापां यदुपैक्षस्त्वं कृष्णामेकां सभागताम् ।
तद् दुःखमतितिक्षाम मा वधिष्म कुरूनिति ॥ १३ ॥

तुमने द्रौपदीको बिना किसी अपराधके सभामें बुलाकर जो उसका तिरस्कार किया, उस दुःखको हमलोगोंने इसलिये चुपचाप सह लिया कि हमें कौरवोंका वध न करना पड़े ।

एवं पूर्वापरान् क्लेशानतितिक्षन्त पाण्डवाः ।
यथा बलीयसः सन्तस्तत् सर्वं कुरवो विदुः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार पाण्डवोंने अधिक शक्तिशाली होते हुए भी जो तुम्हारे दिये हुए पहले और पीछेके क्लेशोंको सहन किया है, उसे सब कौरव जानते हैं ।

यन्नः प्राव्राजयः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान् ।
तद् दुःखमतितिक्षाम मा वधिष्म कुरूनिति ॥ १५ ॥

सौम्य ! तुमने हमलोगोंको मृगचर्म पहनाकर जो वनमें निर्वासित कर दिया, उस दुःखको भी हम इसलिये सह गये हैं कि हमें कौरवोंका वध न करना पड़े ।

यत् तत् कुन्तीमतिक्रम्य कृष्णां केशेष्वधर्षयत् ।
दुःशासनस्तेऽनुमते तच्चास्माभिरुपेक्षितम् ॥ १६ ॥

तुम्हारी अनुमतिसे दुःशासनने माता कुन्तीकी अवहेलना करके जो द्रौपदीके केश पकड़कर खींचे, उस अपराधको भी हमने इसीलिये उपेक्षा कर दी है ।

यथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परंतप ।
निवर्तय परद्रव्याद् बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥ १७ ॥

परंतप ! अब हम अपना उचित भाग निश्चय ही लेंगे । नरश्रेष्ठ ! तुम दूसरेके धनसे अपनी लोभयुक्त बुद्धि हटा लो ।

शान्तिरेवं भवेद् राजन् प्रीतिश्चैव परस्परम् ।
राज्यैकदेशमपि नः प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥ १८ ॥

नरेश ! ऐसा होनेसे ही परस्पर शान्ति एवं प्रीति बनी रह सकती है । हम शान्ति चाहते हैं, अतः तुम हमें राज्यका एक हिस्सा ही दे दो ।

अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ।
अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पञ्चमम् ॥ १९ ॥

अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा पाँचवाँ कोई भी एक गाँव दे दो, जहाँ हम पाँचों भाई एकत्र रह सकें ।

भ्रातॄणां देहि पञ्चानां ग्रामान् पञ्च सुयोधन ।
शान्तिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सह संजय ॥ २० ॥

दुर्योधन ! हम पाँच भाइयोंको पाँच गाँव दे दो । महाप्राज्ञ संजय ! ऐसा हो जानेपर अपने कुटुम्बीजनोंके साथ हमलोगोंकी शान्ति बनी रहेगी ।

भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम् ।
स्मयमानाः समायान्तु पञ्चालाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥

अक्षतान् कुरुपञ्चालान् पश्येयमिति कामये ।
सर्वे सुमनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ ॥ २२ ॥

भाई भाईसे मिले और पिता पुत्रसे मिले । पांचालदेशीय क्षत्रिय कुरुवंशियोंके साथ मुसकराते हुए मिलें । मेरी यही कामना है कि मैं कौरवों तथा पांचालोंको स्वस्थ देखूँ । तात भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! हम सब लोग प्रसन्नचित्त होकर शान्ति धारण करें ।

अलमेव शमायास्मि तथा युद्धाय संजय ।
धर्मार्थयोरलं चाहं मृदवे दारुणाय च ॥ २३ ॥

संजय ! मैं शान्ति स्थापित करनेमें भी समर्थ हूँ और युद्ध करनेमें भी । धर्म और अर्थ दोनोंका भी मुझे ठीक-ठीक ज्ञान है । मैं समयानुसार कोमल भी हो सकता हूँ और कठोर भी ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरसन्देशे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें युधिष्ठिरसन्देशविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा कौरवोंके लिये संदेश देना, संजयका हस्तिनापुर जा धृतराष्ट्रसे मिलकर उन्हें युधिष्ठिरका कुशल-समाचार कहकर धृतराष्ट्रके कार्योंकी निन्दा करना

वैशम्पायन उवाच

(धर्मराजस्य तु वचः श्रुत्वा पार्थो धनंजयः।
उवाच संजयं तत्र वासुदेवस्य शृण्वतः॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए वहाँ संजयसे इस प्रकार कहा।

अर्जुन उवाच

पितामहं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च संजय।
द्रोणं सपुत्रं शल्यं च महाराजं च बाह्लिकम्॥
विकर्णं सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम्।
विविंशतिं चित्रसेनं जयत्सेनं च संजय॥
भगदत्तं तथा चान्यं शूरं रणजितं परम्।
ये चाप्यन्ये कुरवस्तत्र सन्ति
राजानश्चान्ये भूमिपाला समेताः।
युयुत्सवः पार्थिवा सम्प्रयाताः
समानीता धार्तराष्ट्रेण सूत॥
यथान्यायं कुशलं वन्दनं च
समागमे मद्वचनेन वाच्याः।
ततो नृपाः संजय राजमध्ये
दुर्योधनं पापकृतां प्रधानम्॥

अर्जुन बोले—संजय! शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म, धृतराष्ट्र, पुत्रसहित द्रोणाचार्य, शल्य, महाराज बाह्लीक, विकर्ण, सोमदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, विविंशति, चित्रसेन, जयत्सेन तथा भगदत्त और दूसरे शूरवीर रणविजयी भूपालगण तथा और भी जो कौरव वहाँ हैं, जो युद्धकी इच्छासे वहाँ पधारे हैं, उन सबसे यथायोग्य मेरी ओरसे कुशल पूछना और प्रणाम कहना। साथ ही दुर्योधनको सब राजाओंके मध्यमें पापियोंके सिरमौर दुर्योधनको मेरा संदेश सुना देना।

वैशम्पायन उवाच

एवं प्रतिष्ठाप्य धनंजयस्तु
ततोऽर्थवद् धर्मवच्चापि पार्थः।
उवाच वाक्यं संजयसम्प्रहर्षं
विशालनेत्रः शुद्धजाम्बूनदाभः॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार कुन्तीपुत्र धनंजयने संजयको अनुमति देकर अर्थ और धर्मसे युक्त बात कही जो संजयको हर्ष देनेवाली तथा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भयभीत करनेवाली थी।

अर्जुनेन समादिष्टस्तेऽभ्यनुज्ञातस्तु संजयः।
पार्थानामन्त्र्य स केशवं च महात्मनम्॥)

अर्जुनके इस प्रकार आदेश देनेपर संजयने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया। तत्पश्चात् उसने अन्य कुन्तीकुमारों तथा महात्मा भगवान् श्रीकृष्णसे जानेकी अनुमति माँगी।

अनुज्ञातः पाण्डवेन प्रययौ संजयस्तदा।
शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः॥ १॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर संजय महात्मा राजा धृतराष्ट्रके सम्पूर्ण आदेशोंका पालन करके उस समय वहाँसे प्रस्थित हुए।

सम्प्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च।
अन्तःपुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत्॥ २॥

हस्तिनापुर पहुँचकर उन्होंने शीघ्र ही राजमहलमें प्रवेश किया और अन्तःपुरके निकट जाकर द्वारपालसे कहा—

आचक्ष्व मां धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां समुपागतम्।
सकाशात् पाण्डुपुत्राणां संजयं मा चिरं कृथाः॥ ३॥

द्वारपाल! तुम राजा धृतराष्ट्रको मेरे आनेकी सूचना दो और कहो कि संजय पाण्डवोंके पाससे लौटकर आया है। विलम्ब न करो।

जागर्ति चेदभिवदेस्त्वं हि द्वाःस्थ
प्रविशेयं विदितो भूमिपस्य।
निवेदयाम्यात्ययिकं हि मेऽस्ति
द्वाःस्थोऽथ श्रुत्वा नृपतिं जगाम॥ ४॥

द्वारपाल! यदि महाराज जागते हों तो तुम उनसे मेरा प्रणाम कहना। उनकी सूचना मिल जानेपर मैं भीतर प्रवेश करूँगा। मुझे उनसे एक आवश्यक निवेदन करना है। यह सुनकर द्वारपाल अन्तःपुरमें राजा धृतराष्ट्रके पास गया और इस प्रकार बोला।

द्वाःस्थ उवाच

संजयोऽयं भूमिपते नमस्ते
दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते।
प्राप्तो दूतः पाण्डवानां सकाशात्
प्रशाधि राजन् किमयं करोतु॥ ५॥

द्वारपालने कहा—महाराज! आपको नमस्कार है। पाण्डवोंके पाससे लौटे हुए दूत संजय आपसे मिलनेकी इच्छासे

द्वारपर खड़े हैं। राजन्! आज्ञा दीजिये, उनसे क्या कहूँ ?

धृतराष्ट्र उवाच

आचक्ष्व मां कुशलिनं तथैव
प्रवेश्यतां स्वागतं संजयाय।
न चाहमेतस्य भवाम्यकाल्यः
स मे कस्माद् द्वारि तिष्ठेत क्षत्तः ॥

धृतराष्ट्रने कहा—द्वारपाल! संजयसे स्वागत है, कह दो कि मैं सकुशल हूँ। अब तुम उनको भीतर ले आओ। उनसे मिलनेमें मुझे कभी भी असुविधा नहीं होती। फिर वह द्वारपर क्यों खड़ा है ?

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्यानुमते नृपस्य
महद् वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम्।
सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद
वैचित्रवीर्यं प्राञ्जलिः सूतपुत्रः ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार राजाकी आज्ञा पाकर सूतपुत्र संजय बुद्धिमान्, शूरवीर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंसे सुरक्षित विशाल राजभवनमें प्रवेश किया और सिंहासनपर बैठे हुए विचित्रवीर्यनन्दन महाराज धृतराष्ट्रके पास जा हाथ जोड़कर कहा।

संजय उवाच

संजयोऽहं भूमिपते नमस्ते
प्राप्तोऽस्मि गत्वा नरदेव पाण्डवान्।
अभिवाद्य त्वां पाण्डुपुत्रो मनस्वी
युधिष्ठिरः कुशलं चान्वपृच्छत् ॥

संजय बोला—भूपाल! आपको नमस्कार है। नरदेव! मैं संजय हूँ और पाण्डवोंके पास जाकर लौटा हूँ। मनस्वी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आपको प्रणाम करके आपका कुशल पूछते हैं।

स ते पुत्रान् पृच्छति प्रीयमाणः
कच्चित् पुत्रैः प्रीयसे नप्तृभिश्च।
तथा सुहृद्भिः सचिवैश्च राजन्
ये चापि त्वामुपजीवन्ति तैश्च ॥

उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ आपके पुत्रोंका समाचार पूछा है और जानना चाहा है कि आप अपने पुत्रों, नातियों, सुहृदों, मन्त्रियों तथा जो लोग आपके आश्रित रहकर जीवननिर्वाह करते हैं, उन सबके साथ आनन्दपूर्वक हैं न ?

धृतराष्ट्र उवाच

अभिनन्द्य त्वां तात वदामि संजय
अजातशत्रुं च सुखेन पार्थम्।
कच्चित् स राजा कुशली सपुत्रः
सहामात्यः सानुजः कौरवाणाम् ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात संजय! मैं तुम्हारा स्वागत करके पूछता हूँ कि कुन्तीनन्दन अजातशत्रु युधिष्ठिर सुखी हैं न ? कौरवोंके राजा युधिष्ठिर अपने पुत्र, मन्त्री तथा छोटे भाइयोंसहित सकुशल हैं न ?

संजय उवाच

सहामात्यः कुशली पाण्डुपुत्रो
बुभूषते यच्च तेऽग्रे मनोऽभूत्।
निर्णिक्तधर्मार्थकरो मनस्वी
बहुश्रुतो दृष्टिमाञ्छीलवांश्च ॥

संजयने कहा—पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल हैं और पहले आपके मनमें जो उनका राज्य और धन आदि सम्बन्धी भाग था, उसे पुनः वापस लेना चाहते हैं। वे विशुद्धभावसे धर्म और अर्थका सेवन करनेवाले, मनस्वी, बहुज्ञ, दूरदर्शी और शीलवान् हैं।

परं धर्मात् पाण्डवस्यानृशंस्यं
धर्मः परो वित्तचयान्मतोऽस्य।
सुखप्रिये धर्महीने ह्यनर्थे
अनुरुध्यते भारत तस्य बुद्धिः ॥

भारत! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी दृष्टिमें अन्य धर्मोंकी अपेक्षा दया ही परम धर्म है। वे धन-संग्रहकी अपेक्षा धर्मको श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी बुद्धि धर्मविहीन एवं निष्प्रयोजन सुख तथा प्रिय वस्तुओंका अनुसरण नहीं करती।

परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते
सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
इमं दृष्ट्वा नियमं पाण्डवस्य
मन्ये परं कर्म दैवं मनुष्यात् ॥

महाराज! जैसे कठपुतली सूत्रधारकी प्रेरणासे ही नाचती है, उसी प्रकार मनुष्य भी दैवकी प्रेरणासे ही कर्म करता है। पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके इस कष्टको देखकर मैं यह मानता हूँ कि मनुष्यके पुरुषार्थकी अपेक्षा दैवका विधान ही बलवान् है।

इमं च दृष्ट्वा तव कर्मदोषं
पापोदर्कं घोरमवर्णरूपम्।
यावन्नरः कामयतेऽतिकाल्यं
तावन्नरोऽयं लभते प्रशंसाम् ॥

आपका कर्मदोष उत्पन्न मत्सर, अपकीर्ति तथा अभिमानमें पाप एवं दु:खकी प्राप्ति करानेवाला है। इसे भी देखकर मैं इसी निश्चयपर पहुँचा हूँ कि परमात्माका विधान ही प्रधान है, अतः विधाता बलवान् है। क्योंकि यह मनुष्य सीमित मतवाला ही प्रमाण बना है।

अजातशत्रुस्तु विहाय पापं
जीर्णां त्वचं सर्प इवासमर्थाम्।
विरोचतेऽहार्यवृत्तेन वीरो
युधिष्ठिरस्त्वयि पापं विसृज्य ॥

जैसे सर्प पुरानी केंचुलको जो शरीरमें ठहर नहीं सकती उतारकर चमक उठता है, उसी प्रकार अजातशत्रु वीर युधिष्ठिर पापका परित्याग करके और उस पापको आप ही छोड़कर अपने स्वाभाविक सदाचारसे सुशोभित हो रहे हैं।

अन्तरात्मन् कर्म निबोध राजन्
धर्मार्थयुक्तादार्यवृत्तादपेतम्।
उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन्
नूपस्त्वं पापं प्रसज्येह कृत्रिम ॥ १६॥

महाराज! जरा आप अपने कर्मपर तो ध्यान दीजिये, धर्म और अर्थसे युक्त जो श्रेष्ठ पुरुषोंका व्यवहार है, आपका बर्ताव उससे सर्वथा विपरीत है। राजन्! इसीके कारण इस लोकमें आपकी निन्दा हो रही है और पुनः परलोकमें भी आपको पापमय नरकका दु:ख भोगना पड़ेगा।

स त्वमर्थं संशयितं विना तै-
राशंससे पुत्रवशानुगोऽस्य।
अधर्मशब्दश्च महान् पृथिव्यां
नेदं कर्म त्वत्समं भारताग्र्य ॥ १७॥

भरतकुलशिरोमणे! आप केवल अपने पुत्रोंके वशमें होकर पाण्डवोंको अलग करके अकेले सम्पूर्ण सम्पत्ति ले लेना चाहते हैं; परंतु तो इसकी सफलतामें ही सन्देह है और यदि आप सफल हो भी जायँ तो इस भूमण्डलमें इस अधर्मके कारण आपकी बड़ी भारी निन्दा होगी। अतः यह कर्म कदापि आपके योग्य नहीं है।

हीनप्रज्ञो दौष्कुलेयो नृशंसो
दीर्घवैरी क्षत्रविद्यास्वधीरः।
एवंधर्मा नापदः संतितीर्षे-
द्धीनवीर्यो यश्च भवेदशिष्टः ॥ १८॥

जो बुद्धिहीन, नीच कुलमें उत्पन्न, क्रूर, दीर्घकालतक वैरभाव रखनेवाला, क्षत्रियोचित युद्धविद्यामें अस्थिर, पराक्रमहीन और अशिष्ट होते हैं, ऐसे ही स्वभाववाले लोगोंपर आपत्तियाँ आती हैं।

कुले जातो बलवान् यो यशस्वी
बहुश्रुतः सुखजीवी यतात्मा।
धर्माधर्मौ ग्रथितौ यो बिभर्ति
स ह्यस्य दिष्टस्य वशादुपैति ॥ १९॥

जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, बलवान्, यशस्वी, बहुज्ञ, विद्वान्, सुखजीवी और मनको वशमें रखनेवाला है; जो परस्पर गुथे हुए धर्म और अधर्मको धारण करता है, वही भाग्यवश अभीष्ट सुख-सम्पत्ति प्राप्त करता है।

कथं हि मन्त्राग्र्यधरो मनीषी
धर्मार्थयोरापदि सम्प्रणेता।
एवं युक्तः सर्वमन्त्रैरहीनो
नरो नृशंसं कर्म कुर्यादमूढः ॥ २०॥

आप श्रेष्ठ मन्त्रियोंका सेवन करनेवाले हैं, स्वयं भी बुद्धिमान् हैं, आपत्तिकालमें भी धर्म और अर्थका उचित रूपसे प्रयोग करते हैं, सब प्रकारकी अच्छी सलाहोंसे भी वञ्चित नहीं हैं; फिर आप-जैसा साधनसम्पन्न विद्वान् पुरुष ऐसा क्रूर कर्म कैसे कर सकते हैं?

तव ह्येते मन्त्रविदः समेत्य
समासते कर्मसु नित्ययुक्ताः।
तेषामयं बलवान् निश्चयश्च
कुरुक्षये नियमेनोदपादि ॥ २१॥

सदा कर्मोंमें नियुक्त किये हुए ये आपके मन्त्रवेत्ता मन्त्री सब आदि एकत्र होकर बैठक किया करते हैं। इन्होंने पाण्डवोंका राज्य न देनेका जो दृढ़ निश्चय कर लिया है, यह अवश्य ही कौरवोंके भावी विनाशका कारण बन गया है।

अकालिकं कुरवो नाभविष्यन्
पापेन चेत् पापमजातशत्रुः।
इच्छेज्जातु त्वयि पापं विसृज्य
निन्दा चेयं तव लोकेऽभविष्यत् ॥ २२॥

राजन्! यदि अजातशत्रु युधिष्ठिर आपको ही दोषी ठहराकर आप ही सारे पापों दोषोंका भार डालकर आपका ही नाश करके बदला लेनेकी इच्छा करें तो सारे कौरव असमयमें ही नष्ट हो जायँ और संसारमें केवल आपकी निन्दा फैल जाय।

किमन्यत्र विषयादीश्वराणां
यत्र पार्थः परलोकं ददर्श।
अत्यक्रामत् स तथा सम्मतः स्यात्
न संशयो नास्ति मनुष्यकारः ॥ २३॥

देवी कौन-सी वस्तु है, जो लोकपालोंके अधिकारसे बाहर हो? तभी तो अर्जुन इन्द्रकील पर्वतपर लोकपालोंसे मिलकर

एव उनसे स्नान प्राप्त करके भू और पुत्रलोकको लाकर [स्वर्ग] लोकको देखनेके लिये गये थे। इस प्रकार लोकपालोंद्वारा सम्मानित होनेपर भी यदि उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है तो निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि दैवबलके आगे मनुष्य का पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है ॥ २३ ॥

एतान् गुणान् कर्मकृतानवेक्ष्य
भावाभावौ वर्तमानावनित्यौ।
बलिर्हि राजा पारमविन्दमानो
नान्यत् कालात् कारणं तत्र मेने ॥ २४ ॥

ये शौर्य विद्या आदि गुण अपने पूर्वकर्मके अनुसार ही प्राप्त होते हैं और प्राणियोंकी वर्तमान उन्नति तथा अवनति भी अनित्य है, यह सब सोचकर राजा बलिने जब इसका पार नहीं पाया, तब यह निश्चय किया कि इन स्थितियोंका दैवके सिवा और कोई कारण नहीं है ॥

चक्षुः श्रोत्रे नासिका त्वक् च जिह्वा
ज्ञानस्यैतान्यायतनानि जन्तोः।
तानि प्रीतान्येव तृष्णाक्षयान्ते
तान्यव्यथो दुःखहीनः प्रणुद्यात् ॥ २५ ॥

आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा—ये जीवकी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, (ये मनुष्यकी) तृष्णाके क्षय होनेके बाद ही तृप्त प्रसन्न ही रहती हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह व्यथा और दुःखसे रहित हो तृष्णाकी निवृत्तिके लिये इन इन्द्रियोंको अपने वशमें करे ॥

न त्वेव मन्ये पुरुषस्य कर्म
संवर्तते सुप्रयुक्तं यथावत्।
मातुः पितुः कर्मणाभिप्रसूतः
संवर्धते विधिवद् भोजनेन ॥ २६ ॥

कहते हैं, केवल पुरुषार्थका अच्छी तरहसे प्रयोग होनेपर भी वह उत्तम फल देनेवाला होता है, पर माता-पिताके सम्पर्कसे उत्पन्न हुआ पुत्र विधिपूर्वक भोजनादिद्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है। परंतु मैं इस मान्यतापर विश्वास नहीं करता, क्योंकि इस विषयमें दैव ही प्रधान है ॥ २६ ॥

प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्
निन्दाप्रशंसे च भजन्त एनम्।
परस्त्वेनं गर्हयतेऽपराधे
प्रशंसते साधुवृत्तं तमेव ॥ २७ ॥

राजन्! इस जगत्में प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, निन्दा-प्रशंसा—ये मनुष्यको प्राप्त होते ही रहते हैं। इसीलिये लोग अपराध करनेपर अपराधीकी निन्दा करते हैं और शिष्टतापूर्वक उत्तम आचरण करनेवाले साधु पुरुषकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ २७ ॥

स त्वा गर्हे भारतानां विरोधा-
दन्तो नूनं भवितायं प्रजानाम्।
नो चेदिदं तव कर्मापराधात्
कुरून् दहेत् कृष्णवर्त्मेव कक्षम् ॥ २८ ॥

अतः आप जो भरतवंशमें विरोध फैलाते हैं, इसके कारण मैं तो आपकी निन्दा करता हूँ; क्योंकि इस वैरविरोधके परिणाममें निश्चय ही समस्त प्रजाओंका विनाश होगा। यदि आप मेरे कथनानुसार काम नहीं करेंगे तो आपके अपराधसे अर्जुन समस्त कौरवदलको उसी प्रकार भस्म कर डालेंगे, जैसे आग सूखे तृणको जला देती है ॥

त्वमेवैको जातपुत्रेषु राजन्
वशं गन्ता सर्वलोके नरेन्द्र।
कामात्मनां श्लाघसे द्यूतकाले
नागाः शमं पश्य विपाकमस्य ॥ २९ ॥

राजन्! महाराज! समस्त जगत्में एकमात्र आप ही अपने स्वेच्छाचारी पुत्रकी प्रशंसा करते हुए उसके अधीन होकर जुएके समय भी उसकी प्रशंसा करते थे, तथा शान्तिका उपाय उस समय आपने नहीं किया, उसका अब यह भयंकर परिणाम अपनी आँखों देख लीजिये ॥

अनाप्तानां प्रग्रहात् त्वं नरेन्द्र
तथाऽऽप्तानां निग्रहाच्चैव राजन्।
भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनन्तां
न शक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥ ३० ॥

नरेन्द्र! आपने ऐसे लोगों (शकुनि-कर्ण आदि)-को हृदयसे ग्रहण किया है जो विश्वासके योग्य नहीं हैं तथा विश्वसनीय पुरुषोंका निग्रह भी आपने कर दिया है। अतः कुरुकुल-नन्दन! अपनी इस मानसिक दुर्बलताके कारण आप अनन्त एवं समृद्धिशालिनी पृथ्वीकी रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकते ॥

अनुज्ञातो रथवेगावधूतः
श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं नृसिंह।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-
मजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥ ३१ ॥

नरश्रेष्ठ! इस समय रथके वेगसे हिलने-डुलनेके कारण मैं बहुत थक गया हूँ, यदि आज्ञा दें तो सोनेके लिये जाऊँ। प्रातःकाल जब समस्त कौरव सभामें एकत्र होंगे, उस समय वे अजातशत्रु युधिष्ठिरके वचन सुनेंगे ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अनुज्ञातोऽस्यावसथं परेहि
प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-
मजातशत्रोर्वचनं त्वयोक्तम्॥ २८॥

धृतराष्ट्रने कहा—सूतपुत्र! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम अपने घर जाओ और शयन करो। सबेरे सब कौरव सभामें एकत्र हो तुम्हारे मुखसे अजातशत्रु युधिष्ठिरका संदेश सुनेंगे॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत संजययानपर्वमें धृतराष्ट्र-संजय-संवादविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

(प्रजागरपर्व)

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र-विदुर-संवाद

वैशम्पायन उवाच

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर परम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने द्वारपालसे कहा—'मैं विदुरसे मिलना चाहता हूँ, उन्हें यहाँ शीघ्र बुला लाओ'॥ १॥

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत्।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति॥ २॥

धृतराष्ट्रका भेजा हुआ वह दूत जाकर विदुरसे बोला—'महामते! हमारे स्वामी महाराज धृतराष्ट्र आपसे मिलना चाहते हैं'॥ २॥

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम्।
अब्रवीद् धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां प्रतिवेदय॥ ३॥

उसके ऐसा कहनेपर विदुरजी राजमहलके पास जाकर बोले—'द्वारपाल! धृतराष्ट्रको मेरे आनेकी सूचना दे दो'॥ ३॥

द्वाःस्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात्।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम्॥ ४॥

द्वारपालने जाकर कहा—महाराज! आपकी आज्ञासे विदुरजी यहाँ आ पहुँचे हैं। वे आपके चरणोंका दर्शन करना चाहते हैं। मुझे आज्ञा दीजिये, उन्हें क्या काम बताया जाय?॥ ४॥

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम्।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्यो जातु दर्शने॥ ५॥

धृतराष्ट्रने कहा—महाबुद्धिमान् दूरदर्शी विदुरको भीतर ले आओ। मुझे इन विदुरसे मिलनेमें कभी भी अड़चन नहीं है॥ ५॥

द्वाःस्थ उवाच

प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः।
न हि ते दर्शनेऽकल्यो जातु राजाब्रवीद्धि माम्॥ ६॥

द्वारपाल विदुरके पास आकर बोला—विदुरजी! आप बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्रके अन्तःपुरमें प्रवेश कीजिये। महाराजने मुझसे कहा है कि मुझे विदुरसे मिलनेमें कभी अड़चन नहीं है॥ ६॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम्॥ ७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर विदुर धृतराष्ट्रके महलके भीतर जाकर चिन्तामें पड़े हुए राजासे हाथ जोड़कर बोले—

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात्।
यदि किंचन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम्॥ ८॥

'महाप्राज्ञ! मैं विदुर हूँ, आपकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। यदि मेरे करने योग्य कुछ काम हो तो मैं उपस्थित हूँ, मुझे आज्ञा कीजिये'॥ ७-८॥

धृतराष्ट्र उवाच

सञ्जयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति॥ ९॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! बुद्धिमान् संजय आया था, मुझे बुरा-भला कहकर चला गया है। कल सभामें वह अजातशत्रु युधिष्ठिरके वचन सुनायेगा॥ ९॥

* यहाँसे प्रजागरपर्व आरम्भ होकर ... अध्यायतक विदुरनीति है।

तस्याद्य कुशलीवाक्यं न विज्ञातं मन्ये मया।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥ १० ॥

आज मैं उस कुशलवीर युधिष्ठिरकी बात न जान सका—वही मेरे अङ्गोंको जला रहा है और उसीने मुझे अबतक जगा रक्खा है ॥ १० ॥

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ ११ ॥

तात! मैं चिन्तासे जलता हुआ अबतक जग रहा हूँ। मेरे लिये जो कल्याणकी बात समझो, वह कहो; क्योंकि हमलोगोंमें तुम्हीं धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो ॥ ११ ॥

यतः प्राप्तः संजयः पाण्डवेभ्यो
न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि
किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥ १२ ॥

संजय जबसे पाण्डवोंके यहाँसे लौटकर आया है, तबसे मेरे मनको पूर्ण शान्ति नहीं मिलती। सभी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं। कल वह क्या कहेगा, इसी बातकी मुझे इस समय बड़ी भारी चिन्ता हो रही है ॥ १२ ॥

विदुर उवाच

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ १३ ॥

विदुरजी बोले—राजन्! जिसका बलवान्‌के साथ विरोध हो गया है, उस साधनहीन दुर्बल मनुष्यको, जिसका सब कुछ हर लिया गया है उसको, कामीको तथा चोरको रातमें नींद नहीं आती ॥ १३ ॥

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिन्न परवित्तेषु गृध्यन् विपरितप्यसे ॥ १४ ॥

नरेन्द्र! कहीं आपको भी इन महान् दोषोंने स्पर्श तो नहीं कर लिया है? कहीं पराये धनके लोभसे तो आप कष्ट नहीं पा रहे हैं ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त तथा कल्याण करनेवाले सुन्दर वचन सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस राजर्षिवंशमें केवल तुम्हीं विद्वानोंके भी माननीय हो ॥ १५ ॥

विदुर उवाच

(राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत्।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥

विदुरजी बोले—महाराज धृतराष्ट्र! श्रेष्ठ लक्षणोंसे



सम्पन्न राजा युधिष्ठिर तीनों लोकोंके स्वामी हो सकते हैं। वे आपके आज्ञाकारी थे, पर आपने उन्हें वनमें भेज दिया ॥

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥

आप धर्मात्मा और धर्मके जानकार होते हुए भी आँखोंकी ज्योतिसे हीन होनेके कारण उन्हें पहचान न सके, इसीसे उनसे अत्यन्त विपरीत हो गये और उन्हें राज्यका भाग देनेमें आपकी सम्मति नहीं हुई ॥

आनृशंस्यादनुक्रोशाद् धर्मात् सत्यात् पराक्रमात्।
गुरुत्वात् त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते ॥

युधिष्ठिरमें क्रूरताका अभाव, दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम है, वे आपमें पूज्यबुद्धि रखते हैं। इन्हीं सद्गुणोंके कारण वे सोच-विचारकर चुपचाप बहुत-से क्लेश सह रहे हैं ॥

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥

आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण तथा दुःशासन-जैसे अयोग्य व्यक्तियोंपर राज्यका भार रखकर कैसे कल्याण चाहते हैं? ॥

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥)

अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान, उद्योग, दुःख सहनेकी शक्ति और धर्ममें स्थिरता—ये गुण जिस मनुष्यको पुरुषार्थसे च्युत नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है ॥

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम् ॥ १६ ॥

जो अच्छे कर्मोका सेवन करता और बुरे कर्मोंसे दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके वे सद्गुण पण्डित होनेके लक्षण हैं ॥ १६ ॥

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १७ ॥

क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा अपनेको पूज्य समझना—ये भाव जिसको पुरुषार्थसे भ्रष्ट नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है ॥ १७ ॥

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १८ ॥

दूसरे लोग जिसके कर्तव्य, सलाह और पहलेसे किये हुए विचारको नहीं जानते, बल्कि काम पूरा हो जानेपर ही जानते हैं, वही पण्डित कहलाता है ॥ १८ ॥

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ १९ ॥

सर्दी-गरमी, भय-अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता—ये जिसके कार्यमें विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है ॥ १९ ॥

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥ २० ॥

जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म और अर्थका ही अनुसरण करती है और जो भोगको छोड़कर पुरुषार्थका ही वरण करता है, वही पण्डित कहलाता है ॥ २० ॥

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किंचिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २१ ॥

विवेकपूर्ण बुद्धिवाले पुरुष शक्तिके अनुसार काम करनेकी इच्छा रखते हैं और करते भी हैं तथा किसी वस्तुको तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना नहीं करते ॥ २१ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे
तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ २२ ॥

विद्वान् पुरुष किसी विषयको देरतक सुनता है, किंतु शीघ्र ही समझ लेता है, समझकर कर्तव्यबुद्धिसे पुरुषार्थमें प्रवृत्त होता है—कामनासे नहीं; बिना पूछे दूसरेके विषयमें व्यर्थ कोई बात नहीं कहता है। उसका यह स्वभाव पण्डितकी मुख्य पहचान है ॥ २२ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २३ ॥

पण्डितोंकी-सी बुद्धि रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ वस्तुकी कामना नहीं करते, खोयी हुई वस्तुके विषयमें शोक करना नहीं चाहते और विपत्तिमें पड़कर घबराते नहीं हैं ॥ २३ ॥

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥ २४ ॥

जो पहले निश्चय करके फिर कार्यका आरम्भ करता है, कार्यके बीचमें नहीं रुकता, समयको व्यर्थ नहीं जाने देता और चित्तको वशमें रखता है, वही पण्डित कहलाता है ॥ २४ ॥

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥ २५ ॥

भरतकुलभूषण! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मोंमें रुचि रखते हैं, उन्नतिके कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालोंमें दोष नहीं निकालते ॥ २५ ॥

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥ २६ ॥

जो अपना आदर होनेपर हर्षके मारे फूल नहीं उठता, अनादरसे संतप्त नहीं होता तथा गङ्गाजीके कुण्डके समान जिसके चित्तको क्षोभ नहीं होता, वही पण्डित कहलाता है ॥ २६ ॥

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥ २७ ॥

जो सम्पूर्ण भौतिक पदार्थोंकी असलियतका ज्ञान रखनेवाला, सब कार्योंके करनेका ढंग जाननेवाला तथा मनुष्योंमें सबसे बढ़कर उपायका जानकार है, वह मनुष्य पण्डित कहलाता है ॥ २७ ॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ २८ ॥

जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं, जो विचित्र ढंगसे बातचीत करता है, तर्कमें निपुण और प्रतिभाशाली है तथा जो ग्रन्थके तात्पर्यको शीघ्र बता सकता है, वह पण्डित कहलाता है ॥ २८ ॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ २९ ॥

जिसकी विद्या बुद्धिका अनुसरण करती है और बुद्धि विद्याका तथा जो शिष्ट पुरुषोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, वही पण्डितकी संज्ञा पा सकता है ॥ २९ ॥

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ ३० ॥

बिना पढ़े ही गर्वसे फूल उठनेवाले, दरिद्र होकर भी बड़े-बड़े मनोरथ करनेवाले और बिना काम किये ही धन पानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको पण्डितजन मूर्ख कहते हैं ॥ ३० ॥

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥ ३१ ॥

जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरोंके कर्तव्यका पालन करता है तथा मित्रके साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है ॥ ३१ ॥

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३२ ॥

जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहनेवालोंको त्याग देता है तथा जो अपनेसे बलवान्‌के साथ वैर बाँधता है, उसे मूढ विचारका मनुष्य कहते हैं ॥ ३२ ॥

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३३ ॥

जो शत्रुको मित्र बनाता और मित्रसे द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है तथा सदा बुरे कर्मोंका आरम्भ किया करता है, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं ॥ ३३ ॥

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो अपने कार्योंको व्यर्थ ही फैलाता है, सर्वत्र संदेह करता है तथा शीघ्र होनेवाले कार्योंमें भी देर लगाता है, वह मूढ है ॥ ३४ ॥

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३५ ॥

जो पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन नहीं करता तथा जिसे सुहृद् मित्र नहीं मिलता, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं ॥ ३५ ॥

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ ३६ ॥

मूढ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाये ही भीतर चला आता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है और अविश्वसनीय मनुष्यपर भी विश्वास करता है ॥ ३६ ॥

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥ ३७ ॥

स्वयं दोषयुक्त बर्ताव करते हुए भी जो दूसरेपर उसके दोष बताकर आक्षेप करता है तथा जो असमर्थ होते हुए भी व्यर्थका क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है ॥ ३७ ॥

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन् नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥ ३८ ॥

जो अपने बलको न समझकर बिना काम किये ही धर्म और अर्थसे विरुद्ध तथा न पाने योग्य वस्तुकी इच्छा करता है, वह पुरुष इस संसारमें मूढबुद्धि कहलाता है ॥ ३८ ॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३९ ॥

राजन् ! जो अनधिकारीको उपदेश देता और शून्यकी उपासना करता है तथा जो कृपणका आश्रय लेता है, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं ॥ ३९ ॥

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥ ४० ॥

जो बहुत धन, विद्या तथा ऐश्वर्यको पाकर भी उद्दण्डतापूर्वक नहीं चलता, वह पण्डित कहलाता है ॥ ४० ॥

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥ ४१ ॥

जो अपने द्वारा भरण-पोषणके योग्य व्यक्तियोंको बाँटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता और अच्छा वस्त्र पहनता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन होगा ? ॥ ४१ ॥

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥ ४२ ॥

मनुष्य अकेला पाप कर (जो धन कमाता) है और (उस धनको) उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। उपभोग करनेवाले तो दोषसे छूट जाते हैं, पर उसका कर्ता ही दोषका भागी होता है ॥ ४२ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम् ॥ ४३ ॥

किसी धनुर्धर वीरके द्वारा छोड़ा हुआ बाण सम्भव है एकको भी मारे या न मारे। मगर बुद्धिमान्‌द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजाके साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्रका विनाश कर सकती है ॥ ४३ ॥

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥ ४४ ॥

एक (बुद्धि) से दो (कर्तव्य और अकर्तव्य) का निश्चय करके चार (साम, दान, भेद, दण्ड) से तीन (शत्रु, मित्र तथा उदासीन) को वशमें कीजिये। पाँच (इन्द्रियों) को जीतकर छः (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रयरूप) गुणोंको जानकर तथा सात (स्त्री, जूआ, मृगया, मद्य, कठोर वचन, दण्डकी कठोरता और अन्यायसे धनोपार्जन) को छोड़कर सुखी हो जाइये ॥ ४४ ॥

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥ ४५ ॥

१ [illegible]

विषका रस एक (पीनेवाले) को ही मारता है, शस्त्रसे एकका ही वध होता है; किंतु (गुप्त) मन्त्रका प्रकाशित होना राष्ट्र और प्रजाके साथ ही राजाका भी विनाश कर डालता है ॥ ४५ ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥ ४६ ॥

अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेला किसी विषयका निश्चय न करे, अकेला रास्ता न चले और बहुत-से लोग सोये हों तो उनमें अकेला न जागता रहे ॥ ४६ ॥

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥ ४७ ॥

राजन्! जैसे समुद्रके पार जानेके लिये नाव ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार स्वर्गके लिये सत्य ही एकमात्र सोपान है, दूसरा नहीं; किंतु आप इसे नहीं समझ रहे हैं ॥ ४७ ॥

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥ ४८ ॥

क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोषका आरोप होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं ॥ ४८ ॥

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा॥ ४९ ॥

किंतु क्षमाशील पुरुषका वह दोष नहीं मानना चाहिये; क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्योंका गुण तथा समर्थोंका भूषण है ॥ ४९ ॥

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः॥ ५० ॥

इस जगत्‌में क्षमा वशीकरणरूप है। भला, क्षमासे क्या नहीं सिद्ध होता? जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे? ॥ ५० ॥

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत्॥ ५१ ॥

तृणरहित स्थानमें गिरी हुई आग अपने-आप बुझ जाती है। क्षमाहीन पुरुष अपनेको तथा दूसरेको भी दोषका भागी बना लेता है ॥ ५१ ॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा॥ ५२ ॥

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम संतोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है ॥ ५२ ॥

(पृथिव्यां सागरान्तायां द्वाविमौ पुरुषाधमौ।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्च भिक्षुकः ॥)

समुद्रपर्यन्त इस सारी पृथ्वीमें ये दो प्रकारके अधम पुरुष हैं—अकर्मण्य गृहस्थ और कर्मोंमें लगा हुआ संन्यासी ॥

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥ ५३ ॥

जैसे साँप बिलमें रहनेवाले जीवोंको खा जाता है, उसी प्रकार यह पृथ्वी शत्रुसे विरोध न करनेवाले राजा और परदेश सेवन न करनेवाले ब्राह्मण—इन दोनोंको खा जाती है ॥ ५३ ॥

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते।
अब्रुवन् परुषं किंचिदसतोऽनर्थयंस्तथा॥ ५४ ॥

जरा भी कठोर न बोलना और दुष्ट पुरुषोंका आदर न करना—इन दो कर्मोंको करनेवाला मनुष्य इस लोकमें विशेष शोभा पाता है ॥ ५४ ॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः॥ ५५ ॥

दूसरी स्त्रीद्वारा चाहे गये पुरुषकी कामना करनेवाली स्त्रियाँ तथा दूसरोंके द्वारा पूजित मनुष्यका आदर करनेवाले पुरुष—ये दो प्रकारके लोग दूसरोंपर विश्वास करके चलनेवाले होते हैं ॥ ५५ ॥

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः॥ ५६ ॥

जो निर्धन होकर भी बहुमूल्य वस्तुकी इच्छा रखता और असमर्थ होकर भी क्रोध करता है—ये दोनों ही अपने लिये तीखे काँटोंके समान हैं एवं अपने शरीरको सुखानेवाले हैं ॥ ५६ ॥

द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः॥ ५७ ॥

दो ही अपने विपरीत कर्मके कारण शोभा नहीं पाते—अकर्मण्य गृहस्थ और प्रपञ्चमें लगा हुआ संन्यासी ॥ ५७ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥ ५८ ॥

राजन्! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं—शक्तिशाली होनेपर भी क्षमा करनेवाला और निर्धन होनेपर भी दान देनेवाला ॥ ५८ ॥

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्॥ ५९ ॥

न्यायपूर्वक कमाई किये हुए धनके दो ही दुरुपयोग समझने चाहिये—अपात्रको देना और सत्पात्रको न देना ॥ ५९ ॥

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ ६० ॥

जो धनी होनेपर भी दान न दे और दरिद्र होनेपर भी कष्ट सहन न कर सके—इन दो प्रकारके मनुष्योंको गलेमें मजबूत पत्थर बाँधकर पानीमें डुबा देना चाहिये ॥ ६० ॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ६१ ॥

पुरुषश्रेष्ठ! ये दो प्रकारके पुरुष सूर्यमण्डलको भेदकर ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं—योगयुक्त संन्यासी और संग्राममें शत्रुओंके सम्मुख युद्ध करके मारा गया योद्धा ॥ ६१ ॥

त्रयो न्याया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान् मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥ ६२ ॥

भरतश्रेष्ठ! मनुष्योंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकारके न्याययुक्त उपाय सुने जाते हैं, ऐसा वेदवेत्ता विद्वान् मानते हैं ॥ ६२ ॥

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेद् यथावत् तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ६३ ॥

राजन्! उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकारके पुरुष होते हैं, इनको यथायोग्य तीन ही प्रकारके कर्मोंमें लगाना चाहिये ॥ ६३ ॥

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः।
यत् ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद् धनम् ॥ ६४ ॥

राजन्! तीन ही धनके अधिकारी नहीं माने जाते—स्त्री, पुत्र तथा दास। ये जो कुछ कमाते हैं, वह धन उसीका होता है जिसके अधीन ये रहते हैं ॥ ६४ ॥

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥ ६५ ॥

दूसरेके धनका हरण, दूसरेकी स्त्रीका संसर्ग तथा सुहृद् मित्रका परित्याग—ये तीनों ही दोष (क्रमशः आयु, धर्म तथा कीर्तिका) नाश करनेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥ ६६ ॥

काम, क्रोध और लोभ—ये आत्माका नाश करनेवाले नरकके तीन दरवाजे हैं, अतः इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ॥ ६६ ॥

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात् त्रीणि चैकं च तत्समम् ॥ ६७ ॥

भारत! वरदान पाना, राज्यकी प्राप्ति और पुत्रका जन्म—ये तीन एक ओर और शत्रुके कष्टसे छूटना—यह एक ओर, ये तीन और यह एक बराबर ही हैं ॥ ६७ ॥

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेतान् शरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न संत्यजेत् ॥ ६८ ॥

भक्त, सेवक तथा मैं आपका ही हूँ, ऐसा कहनेवाले—इन तीन प्रकारके शरणागत मनुष्योंको संकट पड़नेपर भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ६८ ॥

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्या-
न्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च ॥ ६९ ॥

थोड़ी बुद्धिवाले, दीर्घसूत्री, जल्दबाज और स्तुति करनेवाले लोगोंके साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिये। ये चारों महाबली राजाके लिये त्यागने योग्य बताये गये हैं। विद्वान् पुरुष ऐसे लोगोंको पहचान ले ॥ ६९ ॥

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु
श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः
सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ७० ॥

तात! गृहस्थधर्ममें स्थित आप लक्ष्मीवान्‌के घरमें चार प्रकारके मनुष्योंको सदा रहना चाहिये—अपने कुटुम्बका बूढ़ा, संकटमें पड़ा हुआ उच्च कुलका मनुष्य, धनहीन मित्र और बिना संतानकी बहिन ॥ ७० ॥

चत्वार्याह महाराज सद्यस्कानि बृहस्पतिः।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥ ७१ ॥

महाराज! इन्द्रके पूछनेपर उनसे बृहस्पतिजीने जिन चारोंको तत्काल फल देनेवाला बताया था, उन्हें आप मुझसे सुनिये— ॥ ७१ ॥

देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम्।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥ ७२ ॥

देवताओंका संकल्प, बुद्धिमानोंका प्रभाव, विद्वानोंकी नम्रता और पापियोंका विनाश ॥ ७२ ॥

चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ ७३ ॥

चार कर्म भयको दूर करनेवाले हैं, किंतु वे ही यदि ठीक तरहसे सम्पादित न हों, तो भय प्रदान करते हैं। वे कर्म हैं—आदरके साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौनका पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदरके साथ यज्ञका अनुष्ठान ॥ ७३ ॥

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ॥ ७४॥

भरतश्रेष्ठ! पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु—मनुष्यको इन पाँच अग्नियोंकी बड़े यत्नसे सेवा करनी चाहिये॥ ७४॥

पञ्चैव पूजयँल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम्।
देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान्॥ ७५॥

देवता, पितर, मनुष्य, संन्यासी और अतिथि—इन पाँचोंकी पूजा करनेवाला मनुष्य शुद्ध यश प्राप्त करता है॥ ७५॥

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः॥ ७६॥

राजन्! आप जहाँ-जहाँ जायँगे, वहाँ-वहाँ मित्र, शत्रु, उदासीन, आश्रय देनेवाले तथा आश्रय पानेवाले—ये पाँच आपके पीछे लगे रहेंगे॥ ७६॥

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्॥ ७७॥

पाँच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुषकी यदि एक भी इन्द्रिय छिद्र (दोषयुक्त) हो जाय तो उससे उसकी बुद्धि इस प्रकार बाहर निकल जाती है, जैसे मशककी छेदसे पानी॥ ७७॥

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥ ७८॥

ऐश्वर्य या उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंको नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता (जल्दी हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत)—इन छः दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिये॥ ७८॥

षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम्॥ ७९॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥ ८०॥

उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाले होता, रक्षा करनेमें असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, ग्राममें रहनेकी इच्छावाले ग्वाले तथा वनमें रहनेकी इच्छावाले नाई—इन छः को वैसे ही छोड़ दे, जैसे समुद्रकी सैर करनेवाला मनुष्य छिद्रयुक्त नावका परित्याग कर देता है॥ ७९-८०॥

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥ ८१॥

मनुष्यको कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया (गुणोंमें दोष दिखानेकी प्रवृत्तिका अभाव), क्षमा तथा धैर्य—इन छः गुणोंका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ८१॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ ८२॥

राजन्! धनकी प्राप्ति, नित्य नीरोग रहना, स्त्रीका अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्रका आज्ञाके अंदर रहना तथा धन पैदा करानेवाली विद्याका ज्ञान—ये छः बातें इस मनुष्यलोकमें सुखदायिनी होती हैं॥ ८२॥

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः॥ ८३॥

मनमें नित्य रहनेवाले छः शत्रु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्यको जो वशमें कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापोंसे ही लिप्त नहीं होता, फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थोंसे युक्त होनेकी तो बात ही क्या है॥ ८३॥

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः॥ ८४॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः॥ ८५॥

निम्नाङ्कित छः प्रकारके मनुष्य छः प्रकारके लोगोंसे अपनी जीविका चलाते हैं, सातवेंकी उपलब्धि नहीं होती। चोर असावधान पुरुषसे, वैद्य रोगीसे, मतवाली स्त्रियाँ कामियोंसे, पुरोहित यजमानोंसे, राजा झगड़नेवालोंसे तथा विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे अपनी जीविका चलाते हैं॥ ८४-८५॥

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः॥ ८६॥

थोड़ी देर भी देख-रेख न करनेसे गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या तथा शूद्रोंसे मेल-जोल—ये छः चीजें नष्ट हो जाती हैं[1]॥ ८६॥

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्॥ ८७॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्॥ ८८॥

ये छः सदा अपने पूर्व उपकारीका सम्मान नहीं करते हैं—शिक्षा समाप्त हो जानेपर शिष्य आचार्यका, विवाहित बेटे माताका, कामवासनाकी शान्ति हो जानेपर पुरुष स्त्रीका, कृतकार्य मनुष्य सहायकका, नदीकी दुर्गम धारा पार कर लेनेवाले पुरुष नावका तथा रोगी पुरुष रोग छूटनेके बाद वैद्यका॥ ८७-८८॥

[1] 'मुहूर्त' शब्दका अर्थ दो घड़ी होता है, पर यहाँ थोड़े समयके अर्थमें भी आता है।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥

राजन्! नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेशमें न रहना, अच्छे लोगोंके साथ मेल होना, अपनी वृत्तिसे जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना—ये छः मनुष्यलोकके सुख हैं ॥

ईर्ष्यी घृणी नसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥

ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा शङ्कित रहनेवाला और दूसरोंके भाग्यपर जीवन-निर्वाह करनेवाला—ये छः सदा दुःखी रहते हैं ॥

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः ।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः ॥
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् ।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥

स्त्रीविषयक आसक्ति, जूआ, शिकार, मद्यपान, वचनकी कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धनका दुरुपयोग करना—ये सात दुःखदायी दोष राजाको सदा त्याग देने चाहिये। इनसे दृढ़मूल राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं ॥

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः ।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ॥
नैतान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति ।
एतान् दोषान् नरः प्राज्ञो बुद्ध्या बुद्ध्वा विसर्जयेत् ॥

विनाशके मुखमें पड़नेवाले मनुष्यके आठ पूर्वचिह्न हैं—प्रथम तो वह ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, फिर उनके विरोधका पात्र बनता है, ब्राह्मणोंका धन हड़प लेता है, उनको मारना चाहता है, ब्राह्मणोंकी निन्दामें आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यज्ञ-यागादिमें उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ माँगनेपर उनमें दोष निकालने लगता है। इन सब दोषोंको बुद्धिमान् मनुष्य समझे और समझकर त्याग दे ॥

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव सुसुखान्यपि ॥
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः संनिपातश्च मैथुने ॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः ।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥ [illegible] ॥

भारत! मित्रोंसे समागम, अधिक धनकी प्राप्ति, पुत्रका आलिङ्गन, मैथुनमें प्रवृत्ति, समयपर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्गके लोगोंमें उन्नति, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति, और जनसमाजमें सम्मान—ये आठ हर्षके सार दिखायी देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुखके भी साधन होते हैं ॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ [illegible]

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्तिके अनुसार दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुषकी ख्याति बढ़ा देते हैं ॥

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ॥ [illegible]

विद्वान् पुरुष जो इस शरीररूपी गृहको नौ दरवाजोंवाले, तीन खंभोंवाले, पाँच साक्षियोंवाले और आत्माके निवासस्थान इस शरीररूपी गृहको जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है ॥

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥ [illegible]
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु भावेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥ [illegible]

धृतराष्ट्र! दस प्रकारके लोग धर्मको नहीं जानते, उनके नाम सुनो—नशेमें मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी—ये दस हैं। अतः इन सब लोगोंमें विद्वान् पुरुष आसक्त न होवे ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैव सुधन्वना ॥ [illegible]

इसी विषयमें असुरोंके राजा प्रह्लादने सुधन्वाके साथ अपने पुत्रके प्रति कुछ उपदेश दिया था, नीतिज्ञ लोग उस प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं ॥

यः काममन्यू प्रजहाति राजा
पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी
तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥ [illegible]

जो राजा काम और क्रोधका त्याग करता है और सुपात्रको धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रोंका ज्ञाता और कर्तव्यको शीघ्र पूरा करनेवाला है, उसके व्यवहार और वचनोंको सब लोग प्रमाण मानते हैं ॥

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्
विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च
तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा॥

जो मनुष्योंमें विश्वास उत्पन्न करना जानता है, प्रमाण अपराध प्रमाणित हो गया है उन्हींको जो दण्ड देता है, जो दण्ड देनेकी न्यूनाधिक मात्रा तथा क्षमाका उपयोग जानता है, उसकी सेवामें सम्पूर्ण सम्पत्ति रहती है॥

सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद्
युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः
काले च यो विक्रमते स धीरः॥

जो किसी दुर्बलका अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रुके साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानोंके साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आनेपर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है॥

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचि-
दुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा
धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः॥

जो श्रेष्ठ महापुरुष आपत्ति पड़नेपर कभी दुःखी नहीं होता, बल्कि सावधानीके साथ उद्योगका आश्रय लेता है तथा समयपर दुःख सहता है, उसके शत्रु तो पराजित ही हैं॥

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः
पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं
न सेवते यः स सुखी सदैव॥

जो अनर्थकारी निरर्थक विदेशवास, पापियोंसे मेल, परस्त्रीगमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान—इन सबका सेवन नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है॥

न संरम्भेणारभते त्रिवर्ग-
माकारितः शंसति तत्त्वमेव।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं
नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः॥
न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च
न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।
नात्याह किंचित् क्षमते विवादं
सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम्॥

जो क्रोध या उतावलीके साथ धर्म, अर्थ तथा कामका आरम्भ नहीं करता, पूछनेपर यथार्थ बात ही बतलाता है, मित्रके लिये झगड़ा नहीं पसंद करता, आदर न मिलनेपर कुपित नहीं होता, विवेक नहीं खोता, दूसरोंके दोष नहीं देखता, सबपर दया करता है, असमर्थ होते हुए किसीकी जमानत नहीं देता, बढ़कर नहीं बोलता तथा विवादको सह लेता है, ऐसा मनुष्य सब जगह प्रशंसा पाता है॥

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं
न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किंचित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि॥

जो कभी उद्दण्डका-सा वेष नहीं बनाता, दूसरोंके सामने अपने पराक्रमकी डींग भी नहीं हाँकता, क्रोधसे व्याकुल होनेपर भी कटुवचन नहीं बोलता, उस मनुष्यको लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं॥

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥

जो शान्त हुई वैरकी आगको फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा 'मैं विपत्तिमें पड़ा हूँ' ऐसा सोचकर अनुचित काम नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले पुरुषको आर्यजन सबसे श्रेष्ठ कहते हैं॥

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं
नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

जो अपने सुखमें प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखके समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनोंमें सदाचारी कहलाता है॥

देशाचारान् समयाञ्जातिधर्मान्
बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव
महाजनस्याधिपत्यं करोति॥

जो मनुष्य देशके व्यवहार, लोकाचार तथा जातियोंके धर्मोंको जानना चाहता है, उसे उत्तम-अधमका विवेक हो जाता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, सदा महान् जनसमूहपर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है॥

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं
राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं
यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः॥

जो बुद्धिमान् दम्भ, मोह, मात्सर्य, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूहसे वैर और मतवाले, [illegible] तथा दुर्जनोंसे विवाद छोड़ देता है, वह श्रेष्ठ है॥

दानं होमं दैवतं मङ्गलानि
प्रायश्चित्तान् विविधाँल्लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि
तस्योत्थानं देवता राधयन्ति॥

जो दान, होम, देवपूजन, माङ्गलिक कार्य, प्रायश्चित्त तथा अनेक प्रकारके लौकिक आचार—इन नित्य किये जाने योग्य कर्मोंको करता है, देवतालोग उसके अभ्युदयकी सिद्धि करते हैं।

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः
समैः सख्यं व्यवहारं कथाश्च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः॥

जो अपने बराबरवालोंके साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन पुरुषोंके साथ नहीं, और गुणोंमें बढ़े-चढ़े पुरुषोंको सदा आगे रखता है, उस विद्वान्‌की नीति श्रेष्ठ नीति है।

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः॥

जो अपने आश्रित जनोंको बाँटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा माँगनेपर जो मित्र नहीं है उसे भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुषको सारे अनर्थ दूरसे ही छोड़ देते हैं।

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य
नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किंचित्।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च
नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः॥

जिसके अपनी इच्छाके अनुकूल और दूसरोंकी इच्छाके विरुद्ध कार्योंको दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्यका ठीक-ठीक सम्पादन होनेके कारण उसका थोड़ा भी काम बिगड़ने नहीं पाता।

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः
सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये
महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंको शान्ति प्रदान करनेमें तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरोंको आदर देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खानसे निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्नकी भाँति अपनी जातिवालोंमें अधिक प्रसिद्धि पाता है।

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः
स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः
स तेजसा सूर्य इवावभासते॥

जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगोंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रतासे युक्त होनेके कारण कान्तिमें सूर्यके समान शोभा पाता है।

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः
पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः।
त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च
तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय॥

अम्बिकानन्दन! शापसे दग्ध राजा पाण्डुके जो पाँच पुत्र वनमें उत्पन्न हुए, वे पाँच इन्द्रोंके समान शक्तिशाली हैं, उन्हें आपने ही बचपनसे पाला और शिक्षा दी है; वे भी आपकी आज्ञाका पालन करते रहते हैं।

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं
सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः।
न देवानां नापि च मानुषाणां
भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र॥

तात! उन्हें उनका न्यायोचित राज्यभाग देकर आप अपने पुत्रोंके साथ आनन्दित होते हुए सुख भोगिये। नरेन्द्र! ऐसा करनेपर आप देवताओं तथा मनुष्योंकी आलोचनाके विषय नहीं रह जायँगे।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरनीतिविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके [illegible] श्लोक मिलाकर कुल [illegible] श्लोक हैं)

———

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीके नीतियुक्त वचन

धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत् कार्यमनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—तात! मैं चिन्तासे जलता हुआ अभीतक जाग रहा हूँ, तुम मेरे करनेयोग्य जो कार्य समझो, उसे बताओ; क्योंकि हमलोगोंमें तुम्हीं धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो ॥ १ ॥

त्वं मां यथावद् विदुर प्रशाधि
प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व
श्रेयस्करं ब्रूहि तद् वै कुरूणाम् ॥ २ ॥

उदारचित्त विदुर! तुम अपनी बुद्धिसे विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश करो। जो बात युधिष्ठिरके लिये हितकर और कौरवोंके लिये कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ ॥ २ ॥

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन्
पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम् ।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथाव-
न्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३ ॥

विद्वन्! मेरे मनमें अनिष्टकी आशङ्का बनी रहती है, इसलिये मैं सर्वत्र अनिष्ट ही देखता हूँ; अतः व्याकुल हृदयसे मैं तुमसे पूछ रहा हूँ—अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहते हैं, सो सब ठीक-ठीक बताओ ॥ ३ ॥

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम् ॥ ४ ॥

विदुरजीने कहा—राजन्! मनुष्यको उचित है कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी अच्छी अथवा बुरी, कल्याण करनेवाली या अप्रिय—जो भी बात हो, बता दे ॥ ४ ॥

तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत् स्यात् कुरून् प्रति ।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ५ ॥

इसलिये राजन्! जिससे समस्त कौरवोंका हित हो, वही बात आपसे कहूँगा। मैं जो कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त वचन कह रहा हूँ, उन्हें आप ध्यान देकर सुनें ॥ ५ ॥

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत ।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ६ ॥

भारत! असत् उपाय (जूआ आदि) का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइये ॥ ६ ॥

तथैव योगविहितं यत् तु कर्म न सिध्यति ।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार अच्छे उपायोंका उपयोग करके सावधानीके साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान् पुरुषको उसके लिये मनमें ग्लानि नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥ ८ ॥

किसी प्रयोजनसे किये गये कर्मोंमें पहले प्रयोजनको समझ लेना चाहिये। खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिये, जल्दबाजीसे किसी कामका आरम्भ नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम् ।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥ ९ ॥

धीर मनुष्यको उचित है कि पहले कर्मोंके प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नतिका विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे ॥ ९ ॥

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ॥ १० ॥

जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, खजाना, देश तथा दण्ड आदिकी मात्राको नहीं जानता, वह राज्यपर स्थिर नहीं रह सकता ॥ १० ॥

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति ।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ॥ ११ ॥

जो इनके प्रमाणोंको उपर्युक्त प्रकारसे ठीक-ठीक जानता है तथा धर्म और अर्थके ज्ञानमें दत्तचित्त रहता है, वह राज्यको प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम् ।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥ १२ ॥

अब तो राज्य प्राप्त हो ही गया—ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये। उद्दण्डता सम्पत्तिको उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूपको बुढ़ापा ॥ १२ ॥

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम् ।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥ १३ ॥

जैसे मछली बढ़िया चारेसे ढकी हुई लोहेकी

कादीको लोभमें पड़कर निगल जाता है उसके होनेवाले परिणामका विचार नहीं करता [illegible] जाती है ॥

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ १४ ॥

अतः अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको ऐसी वस्तु खानी चाहिये जो परिणाममें अनिष्टकर न हो अर्थात् जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने पर पच जाय और पच जानेपर हितकारी हो ॥ १४ ॥

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥ १५ ॥

जो पेड़से कच्चे फलोंको तोड़ता है, वह उन फलोंसे रस तो पाता नहीं, परंतु उसके बीजका नाश हो जाता है ॥ १५ ॥

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम् ।
फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ १६ ॥

जो समयपर पके हुए फलको ग्रहण करता है, वह फलसे रस पाता है और उस बीजसे पुनः फल प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ १७ ॥

जैसे भौंरा फूलोंकी रक्षा करता हुआ ही उनके मधुका आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनोंको कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले ॥ १७ ॥

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥ १८ ॥

जैसे माली बगीचेमें एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजाकी रक्षापूर्वक उनसे कर ले। कोयला बनानेवालेकी तरह जड़ नहीं काटे ॥ १८ ॥

किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा ॥ १९ ॥

इसे करनेसे मेरा क्या लाभ होगा और न करनेसे क्या हानि होगी—इस प्रकार कर्मोंके विषयमें भलीभाँति विचार करके फिर मनुष्य करे या न करे ॥ १९ ॥

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथागताः ।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद् येषु निरर्थकः ॥ २० ॥

कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य असाध्य होनेके कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते; क्योंकि उनके लिये किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है ॥ २० ॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ २१ ॥

जिसकी प्रसन्नताका कोई फल नहीं और क्रोध भी व्यर्थ है, उसको प्रजा स्वामी बनाना नहीं चाहती—जैसे स्त्री नपुंसकको पति नहीं बनाना चाहती ॥ २१ ॥

कांश्चिदर्थान् नरः प्राज्ञो लघुमूलान् महाफलान् ।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ २२ ॥

जिनका मूल साधन छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान् पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है; वैसे कामोंमें वह विघ्न नहीं आने देता ॥ २२ ॥

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥ २३ ॥

जो राजा इस प्रकार प्रेमसे सबको कोमल दृष्टिसे देखता है मानो आँखोंसे पीता हो, वह चुपचाप बैठा भी रहे तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है ॥ २३ ॥

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः ।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥ २४ ॥

राजा वृक्षकी भाँति अच्छी तरह फूले (प्रसन्न रहे), पर फलसे खाली रहे (अधिक देनेवाला न हो); यदि फलसे युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिसपर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुँचके बाहर) होकर रहे; कच्चा (कम शक्तिवाला) होनेपर भी पके (शक्तिसम्पन्न) की भाँति अपनेको प्रकट करे; ऐसा करनेसे वह नष्ट नहीं होता ॥ २४ ॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥ २५ ॥

जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म—इन चारोंसे प्रजाको प्रसन्न करता है, उसीसे प्रजा प्रसन्न रहती है ॥ २५ ॥

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥ २६ ॥

जैसे व्याधसे हरिन भयभीत होते हैं, उसी प्रकार जिससे सब प्राणी डरते हैं, वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य पाकर भी प्रजाओंके द्वारा त्याग दिया जाता है ॥ २६ ॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा ।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ २७ ॥

अन्यायमें स्थित हुआ राजा बाप-दादोंका राज्य पाकर भी अपने कर्मोंसे उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है, जैसे हवा बादलको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ २७ ॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धनी ॥ २८ ॥

परमात्माके वचन पुरुषोंद्वारा किये हुए धर्मका आचरण करनेवाले राजाके राज्यकी पृथ्वी धनधान्यसे पूर्ण होकर उन्नतिको प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्यको बढ़ाती है ।

अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः ।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥ २९ ॥

जो राजा धर्मको छोड़ता और अधर्मका अनुष्ठान करता है उसकी राज्यभूमि आगपर रखे हुए चमड़ेकी भाँति संकुचित हो जाती है ।

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने ।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ ३० ॥

दूसरे राष्ट्रोंका नाश करनेके लिये जिस प्रकारका प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकारका प्रयत्न अपने राज्यकी रक्षाके लिये करना चाहिये ।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ ३१ ॥

धर्मसे ही राज्य प्राप्त करे और धर्मसे ही उसकी रक्षा करे, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मीको पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजाको छोड़ती है ।

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ ३२ ॥

निरर्थक बोलनेवाले, पागल तथा बकवाद करनेवाले बच्चेसे भी सब ओरसे उसी भाँति सार बात ग्रहण करनी चाहिये, जैसे पत्थरोंमेंसे सोना लिया जाता है ।

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः ।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥ ३३ ॥

जैसे शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाला मनुष्य एक-एक दाना चुनता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुषको जहाँ-तहाँसे भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मोंका संग्रह करते रहना चाहिये ।

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ ३४ ॥

गौएँ गन्धसे, ब्राह्मणलोग वेदोंसे, राजा गुप्तचरोंसे और अन्य साधारण लोग आँखोंसे देखा करते हैं ।

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।
अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि ॥ ३५ ॥

राजन्! जो गाय बड़ी कठिनाईसे दुहने देती है, वह बहुत कष्ट उठाती है; किंतु जो आसानीसे दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते ।

यदतप्तं प्रणमति न तत् संतापयन्त्यपि ।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत् संनामयन्त्यपि ॥ ३६ ॥

जो धातु बिना गरम किये मुड़ जाते हैं, उन्हें आगमें नहीं तपाते । जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकानेका प्रयत्न नहीं करता ।

एतयोपमया धीरः संनमेत बलीयसे ।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ३७ ॥

इस दृष्टान्तके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषको अधिक बलवान्‌के सामने झुक जाना चाहिये; जो अधिक बलवान्‌के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्रको प्रणाम करता है ।

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥ ३८ ॥

पशुओंके रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओंके सहायक हैं मन्त्री, स्त्रियोंके बन्धु (रक्षक) हैं पति और ब्राह्मणोंके बान्धव हैं वेद ।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३९ ॥

सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है, योगसे विद्या सुरक्षित होती है, सफाईसे सुन्दर रूपकी रक्षा होती है और सदाचारसे कुलकी रक्षा होती है ।

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ॥ ४० ॥

तौलनेसे नाजकी रक्षा होती है, फेरनेसे घोड़े सुरक्षित रहते हैं, बारम्बार देख-भाल करनेसे गौओंकी तथा मैले वस्त्रोंसे स्त्रियोंकी रक्षा होती है ।

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ४१ ॥

मेरा ऐसा विचार है कि सदाचारसे हीन मनुष्यका केवल ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि नीच कुलमें उत्पन्न मनुष्योंका भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है ।

य ईर्ष्युः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ ४२ ॥

जो दूसरोंके धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मानपर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है ।

अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत् ॥ ४३ ॥

न करनेयोग्य काम करनेसे, करनेयोग्य काममें प्रमाद करनेसे तथा कार्यसिद्धि होनेके पहले ही मन्त्र प्रकट हो जानेसे डरना चाहिये और जिससे नशा चढ़े, ऐसी मादक वस्तु नहीं पीनी चाहिये ।

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः॥ ४४॥

विद्याका मद, धनका मद और तीसरा ऊँचे कुलका मद है। ये घमंडी पुरुषोंके लिये तो मद हैं, परंतु ये (विद्या, धन और कुलीनता) ही सज्जन पुरुषोंके लिये दमके साधन हैं॥ ४४॥

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः किंचित्कार्यं कदाचन।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम्॥ ४५॥

कभी किसी कार्यमें सज्जनोंद्वारा प्रार्थित होनेपर दुष्टलोग अपनेको प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं॥ ४५॥

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः॥ ४६॥

मनस्वी पुरुषोंको सहारा देनेवाले सन्त हैं, सन्तोंके भी सहारे सन्त ही हैं, दुष्टोंको भी सहारा देनेवाले सन्त हैं, पर दुष्टलोग सन्तोंको सहारा नहीं देते॥ ४६॥

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्॥ ४७॥

अच्छे वस्त्रवाला सभाको जीतता (अपना प्रभाव जमा लेता) है, जिसके पास गौ है, वह (दूध, घी, मक्खन, खोवा आदि पदार्थोंके आस्वादनसे) मीठे स्वादकी आकांक्षाको जीत लेता है, सवारीसे चलनेवाला मार्गको जीत लेता (तय कर लेता) है और शीलस्वभाववाला पुरुष सबपर विजय पा लेता है॥ ४७॥

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः॥ ४८॥

पुरुषमें शील ही प्रधान है; जिसका वह नष्ट हो जाता है, इस संसारमें उसका जीवन, धन और बन्धुओंसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता॥ ४८॥

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ॥ ४९॥

भरतश्रेष्ठ! धनोन्मत्त (तामस स्वभाववाले) पुरुषोंके भोजनमें मांसकी, मध्यम श्रेणीवालोंके भोजनमें गोरसकी तथा दरिद्रोंके भोजनमें तेलकी प्रधानता होती है॥ ४९॥

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ ५०॥

दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट भोजन ही करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजनमें (विशेष) स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह भूख धनियोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है॥ ५०॥

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते॥ ५१॥

राजन्! संसारमें धनियोंको प्रायः भोजन करनेकी शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रोंके पेटमें काठ भी पच जाते हैं॥ ५१॥

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्॥ ५२॥

अधम पुरुषोंको जीविका न होनेसे भय लगता है, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मृत्युसे भय होता है, परंतु उत्तम पुरुषोंको अपमानसे ही महान् भय होता है॥ ५२॥

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते॥ ५३॥

यों तो (मद्य आदि) पीनेका नशा आदि भी नशा ही है, किंतु ऐश्वर्यका नशा तो बहुत ही बुरा है; क्योंकि ऐश्वर्यके मदसे मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होशमें नहीं आता॥ ५३॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव॥ ५४॥

वशमें न होनेके कारण विषयोंमें रमनेवाली इन्द्रियोंसे यह संसार उसी भाँति कष्ट पाता है, जैसे सूर्य आदि ग्रहोंसे नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं॥ ५४॥

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्शिना।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्॥ ५५॥

जो मनुष्य जीवोंको वशमें करनेवाली सहज पाँच इन्द्रियोंसे जीत लिया गया, उसकी आपत्तियाँ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ती हैं॥ ५५॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते॥ ५६॥

इन्द्रियोंसहित मनको जीते बिना ही जो मन्त्रियोंको जीतनेकी इच्छा करता है या मन्त्रियोंको अपने अधीन किये बिना शत्रुको जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुषको सब लोग त्याग देते हैं॥ ५६॥

आत्मानमेव प्रथमं देशरूपेण यो जयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते॥ ५७॥

जो पहले इन्द्रियोंसहित मनको ही शत्रु समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है॥ ५७॥

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥ ५८॥

इन्द्रियों तथा मनको जीतनेवाले, अपराधियोंको दण्ड देनेवाले और जाँच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है॥ ५८॥

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ ५९ ॥

राजन्! मनुष्यका शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वशमें करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबूमें किये हुए घोड़ोंसे रथीकी भाँति सुखपूर्वक संसारपथका अतिक्रमण करता है ॥ ५९ ॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ ६० ॥

शिक्षा न पाये हुए तथा काबूमें न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथिको मार्गमें मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वशमें न रहनेपर पुरुषको मार डालनेमें भी समर्थ होती हैं ॥ ६० ॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैः प्रसृतो बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ ६१ ॥

इन्द्रियोंके वशमें न रहनेके कारण अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दुःखको भी सुख मान बैठता है ॥ ६१ ॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ ६२ ॥

जो धर्म और अर्थका परित्याग करके इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है, वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्रीसे भी हाथ धो बैठता है ॥ ६२ ॥

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः ॥ ६३ ॥

जो अधिक धनका स्वामी होकर भी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ६३ ॥

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ६४ ॥

मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको अपने अधीन कर अपनेसे ही अपने आत्माको जाननेकी इच्छा करे, क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है ॥ ६४ ॥

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥ ६५ ॥

जिसने स्वयं अपने आत्माको ही जीत लिया है, उसका आत्मा ही उसका बन्धु है। वही आत्मा जीता गया होनेपर उसका बन्धु और वही न जीता हुआ होनेपर शत्रु है ॥ ६५ ॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥ ६६ ॥

राजन्! जिस प्रकार सूक्ष्म छिद्रवाले जालमें फँसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ मिलकर जालको काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध—दोनों विवेकको लुप्त कर देते हैं ॥ ६६ ॥

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥ ६७ ॥

जो इस जगत्‌में धर्म तथा अर्थका विचार करके विजय-साधन-सामग्रीका संग्रह करता है, वही उस सामग्रीसे युक्त होनेके कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है ॥ ६७ ॥

यः पञ्चाभ्यन्तराञ्छत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥ ६८ ॥

जो चित्तके विकारभूत पाँच इन्द्रियरूपी भीतरी शत्रुओंको जीते बिना ही दूसरे शत्रुओंको जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं ॥ ६८ ॥

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद् राजानो राज्यविभ्रमैः ॥ ६९ ॥

इन्द्रियोंपर अधिकार न होनेके कारण बड़े-बड़े साधु भी अपने कर्मों तथा राजालोग राज्यके भोगविलासोंमें बँधे रहते हैं ॥ ६८ ॥

असंत्यागात् पापकृतामपापां-
स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्
तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात् ॥ ७० ॥

पापाचारी दुष्टोंका त्याग न करके उनके साथ मिले रहनेसे निरपराध सज्जनोंको भी उन (पापियों) के समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ीमें मिल जानेसे गीली भी जल जाती है; इसलिये दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे ॥ ७० ॥

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम् ॥ ७१ ॥

जो पाँच विषयोंकी ओर दौड़नेवाले अपने पाँच इन्द्रियरूपी शत्रुओंको मोहके कारण वशमें नहीं करता, उस मनुष्यको विपत्ति ग्रस लेती है ॥ ७१ ॥

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥ ७२ ॥

गुणोंमें दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रियदमन, सत्यभाषण तथा सरलता—ये गुण दुरात्मा पुरुषोंमें नहीं होते ॥ ७२ ॥

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥ ७३ ॥

[illegible] उत्तम पुरुषोंमें नहीं होते।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते॥ ७४॥

मूर्ख मनुष्य विद्वानोंको गाली और निन्दासे कष्ट पहुँचाते हैं। गाली देनेवाला पापका भागी होता है और क्षमा करनेवाला पापसे मुक्त हो जाता है।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ७५॥

दुष्ट पुरुषोंका बल है हिंसा, राजाओंका बल है दण्ड देना, स्त्रियोंका बल है सेवा और गुणवानोंका बल है क्षमा।

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम्॥ ७६॥

राजन्! वाणीका पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है, परंतु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती, इसलिये अत्यन्त दुष्कर होनेपर भी वाणीका संयम करना ही उचित है।

अभ्यावहति कल्याणं विविधा वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते॥ ७७॥

राजन्! मधुर शब्दोंमें कही हुई बात अनेक प्रकारसे कल्याण करती है, किंतु वही यदि कटु शब्दोंमें कही जाय तो महान् अनर्थका कारण बन जाती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥ ७८॥

बाणोंसे बिंधा हुआ तथा फरसेसे काटा हुआ वन भी अंकुरित हो जाता है, किंतु कटु वचन कहकर वाणीसे किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता।

कर्णिनालीकनाराचान् निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः॥ ७९॥

कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणोंको शरीरसे निकाल सकते हैं, परंतु कटु वचनरूपी बाण नहीं निकाला जा सकता; क्योंकि वह हृदयके भीतर धँस जाता है।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥ ८०॥

कटु वचनरूपी बाण मुखसे निकलकर दूसरोंके मर्मस्थानपर ही चोट करते हैं; उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अतः विद्वान् पुरुष दूसरोंपर उनका प्रयोग न करे।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति॥ ८१॥

देवतालोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धिको पहले ही हर लेते हैं; इससे वह नीच कर्मोंपर ही अधिक दृष्टि रखता है।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति॥ ८२॥

विनाशकाल उपस्थित होनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है; फिर तो न्यायके समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदयसे बाहर नहीं निकलता।

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनांस्त्वमवबुध्यसे॥ ८३॥

भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रोंकी वह बुद्धि पाण्डवोंके प्रति विरोधसे व्याप्त हो गयी है; आप उन्हें पहचान नहीं रहे हैं।

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः॥ ८४॥

धृतराष्ट्र! जो राजलक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण त्रिभुवनका भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस पृथ्वीका शासक होने योग्य है।

अतीव सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित्॥ ८५॥

वह धर्म तथा अर्थके तत्त्वको जाननेवाला, तेज और बुद्धिसे युक्त, पूर्ण सौभाग्यशाली तथा आपके सभी पुत्रोंसे बढ़कर है।

अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः।
गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षति॥ ८६॥

राजेन्द्र! धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्यभाव तथा आपके प्रति गौरवबुद्धिके कारण बहुत कष्ट सह रहे हैं।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरजीके नीतिविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विदुरके द्वारा केशिनीके लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादका वर्णन करते हुए धृतराष्ट्रको धर्मोपदेश

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—महामते! तुम पुनः धर्म और अर्थसे युक्त बातें कहो, इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। इस विषयमें तुम विचित्र बातें कह रहे हो॥ १॥

विदुर उवाच

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे एते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते॥ २ ॥

विदुरजी बोले—राजन्! सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्राणियोंके साथ कोमलताका बर्ताव—ये दोनों एक समान हैं अथवा कोमलताके बर्तावका विशेष महत्त्व है॥ २॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि॥ ३ ॥

विभो! आप अपने पुत्र कौरव-पाण्डव दोनोंके साथ समानरूपसे कोमलताका बर्ताव कीजिये। ऐसा करनेसे इस लोकमें महान् सुयश प्राप्त करके मरनेके पश्चात् आप स्वर्गलोकमें जायँगे॥ ३॥

यावत् कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोकेषु गीयते।
तावत् स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते॥ ४ ॥

पुरुषश्रेष्ठ! इस लोकमें जबतक मनुष्यकी पावन कीर्तिका गान किया जाता है, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ४॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना॥ ५ ॥

विज्ञ पुरुष इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें केशिनीके लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादका वर्णन है॥ ५॥

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया॥ ६ ॥

राजन्! एक समयकी बात है, केशिनी नामवाली एक अनुपम सुन्दरी कन्या सर्वश्रेष्ठ पतिको वरण करनेकी इच्छासे स्वयंवर-सभामें उपस्थित हुई॥ ६॥

विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी॥ ७ ॥

उसी समय दैत्यकुमार विरोचन उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वहाँ आया। तब केशिनीने वहाँ दैत्यराजसे इस प्रकार बातचीत की॥ ७॥

केशिन्युवाच

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद् विरोचन।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति॥ ८ ॥

केशिनी बोली—विरोचन! ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो सुधन्वा ब्राह्मण ही मेरी शय्यापर क्यों न बैठे? अथवा मैं सुधन्वासे ही विवाह करूँ॥ ८॥

विरोचन उवाच

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः॥ ९ ॥

विरोचनने कहा—केशिनी! हम प्रजापतिकी श्रेष्ठ संतान हैं, अतः सबसे उत्तम हैं। यह सारा संसार हमलोगोंका ही है। हमारे सामने देवता क्या हैं? और ब्राह्मण कौन हैं?॥ ९॥

केशिन्युवाच

इहैवास्स्व प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ॥ १० ॥

केशिनी बोली—विरोचन! इसी जगह हम दोनों



प्रतीक्षा करें, कल प्रातःकाल सुधन्वा यहाँ आवेगा। फिर मैं तुम दोनोंको एकत्र उपस्थित देखूँगी॥ १०॥

विरोचन उवाच

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि संगतौ॥ ११॥

विरोचन बोला—कल्याणी! तुम जैसा कहती हो, वही करूँगा। भीरु! प्रातःकाल तुम मुझे और सुधन्वाको एक साथ उपस्थित देखोगी॥ ११॥

विदुर उवाच

व्यतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।
अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम।
विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः॥ १२॥

विदुरजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र! इसके बाद जब रात बीती और सूर्यमण्डलका उदय हुआ, उस समय सुधन्वा उस स्थानपर आया, जहाँ विरोचन केशिनीके साथ उपस्थित था॥ १२॥

सुधन्वा च समागच्छत् प्राह्लादिं केशिनीं तथा।
समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः॥ १३॥

भरतश्रेष्ठ! सुधन्वा प्रह्लादकुमार विरोचन और केशिनीके पास आया। ब्राह्मणको आया देख केशिनी उठ खड़ी हुई और उसने उसे आसन, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया॥ १३॥

सुधन्वोवाच

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादे तेऽहमासनम्।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेयं त्वया सह॥ १४॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लादनन्दन! मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय सुन्दर सिंहासनको केवल छू लेता हूँ; तुम्हारे साथ इसपर बैठ नहीं सकता, क्योंकि ऐसा होनेसे हम दोनों एक समान हो जायँगे॥ १४॥

विरोचन उवाच

अवहार्यं तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी।
सुधन्वन् न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम्॥ १५॥

विरोचनने कहा—सुधन्वन्! तुम्हारे लिये तो पीढ़ा, चटाई या कुशका आसन उचित है, तुम मेरे साथ बराबरके आसनपर बैठने योग्य हो ही नहीं॥ १५॥

सुधन्वोवाच

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम्॥ १६॥

सुधन्वाने कहा—विरोचन! पिता और पुत्र एक साथ एक आसनपर बैठ सकते हैं, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं, किंतु दूसरे कोई दो व्यक्ति परस्पर एक साथ नहीं बैठ सकते॥ १६॥

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किंचन बुध्यसे॥ १७॥

तुम्हारे पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर ही उच्चासनपर आसीन हुए मुझ सुधन्वाकी सेवा किया करते हैं। तुम अभी बालक हो, घरमें सुखसे पले हो; अतः तुम्हें इन बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है॥ १७॥

विरोचन उवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च यद् वित्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥ १८॥

विरोचन बोला—सुधन्वन्! हम असुरोंके पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोड़ा आदि धन है, उसकी मैं बाजी लगाता हूँ; हम तुम दोनों चलकर जो इस विषयके जानकार हों, उनसे पूछें कि हम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?॥ १८॥

सुधन्वोवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥ १९॥

सुधन्वा बोला—विरोचन! सुवर्ण, गाय और घोड़ा तुम्हारे ही पास रहें। हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाकर जो जानकार हों, उनसे पूछें॥ १९॥

विरोचन उवाच

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित्॥ २०॥

विरोचनने कहा—अच्छा, प्राणोंकी बाजी लगानेके पश्चात् हम दोनों कहाँ चलेंगे? मैं तो न देवताओंके पास जा सकता हूँ और न कभी मनुष्योंसे ही निर्णय करा सकता हूँ॥ २०॥

सुधन्वोवाच

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत्॥ २१॥

सुधन्वा बोला—प्राणोंकी बाजी लग जानेपर हम दोनों तुम्हारे पिताके पास चलेंगे। [मुझे विश्वास है कि] प्रह्लाद अपने बेटेके (भलेके) लिये भी झूठ नहीं बोल सकते हैं॥ २१॥

विदुर उवाच

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति॥ २२॥

विदुरजी कहते हैं—राजन्! इस तरह बाजी लगाकर परस्पर क्रुद्ध हो विरोचन और सुधन्वा दोनों उस समय वहाँ गये, जहाँ प्रह्लाद थे॥२२॥

प्रह्लाद उवाच

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गमिहागतौ॥२३॥

प्रह्लादने (मन-ही-मन) कहा—जो कभी भी एक साथ नहीं चलते थे, वे ही दोनों ये सुधन्वा और विरोचन आज साँपकी तरह क्रुद्ध होकर एक ही राहसे आते दिखायी देते हैं॥२३॥

किं वै सहैव चरथो न पुरा चरतः सह।
विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना॥२४॥

[फिर प्रकटरूपमें विरोचनसे कहा—] विरोचन! मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या सुधन्वाके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी है? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो? पहले तो तुम दोनों कभी एक साथ नहीं चलते थे॥२४॥

विरोचन उवाच

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणावेव पणावहे।
प्रह्लाद तत्त्वां पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदीः॥२५॥

विरोचन बोला—पिताजी! सुधन्वाके साथ मेरी मित्रता नहीं हुई है। हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाने आ रहे हैं। मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूँ। मेरे प्रश्नका झूठा उत्तर न दीजियेगा॥२५॥

प्रह्लाद उवाच

उदकं मधुपर्कं चाप्यानयन्तु सुधन्वने।
ब्राह्मणोऽभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता मे पीवरी कृता॥२६॥

प्रह्लादने कहा—सेवको! सुधन्वाके लिये जल और मधुपर्क ले आओ। [फिर सुधन्वासे कहा—] ब्रह्मन्! तुम मेरे पूजनीय अतिथि हो। मैंने तुम्हें दान करनेके लिये सफेद मोटी-ताजी गौ तैयार कर रखी है॥२६॥

सुधन्वोवाच

उदकं मधुपर्कं च पथि एवार्पितं मम।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद् विरोचनः॥२७॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! जल और मधुपर्क तो मुझे मार्गमें ही मिल गया है। तुम तो जो मैं पूछ रहा हूँ, उस प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर दो—ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या विरोचन?॥२७॥

प्रह्लाद उवाच

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत्॥२८॥

प्रह्लाद बोले—ब्रह्मन्! मेरे एक ही पुत्र है और इधर तुम स्वयं उपस्थित हो। तुम दोनोंके विवादमें मेरे-जैसा मनुष्य कैसे निर्णय दे सकता है?॥२८॥

सुधन्वोवाच

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद् वान्यत् स्यात् प्रियं धनम्।
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया॥२९॥

सुधन्वा बोला—मतिमन्! तुम्हारे पास गौ तथा दूसरा जो कुछ भी प्रिय धन हो, वह सब अपने औरस पुत्र विरोचनको दे दो; परंतु हम दोनोंके विवादमें तो तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना ही चाहिये॥२९॥

प्रह्लाद उवाच

अथ यो नैव प्रब्रूयात् सत्यं वा यदि वानृतम्।
एतत् सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत्॥३०॥

प्रह्लादने कहा—सुधन्वन्! अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ—जो सत्य न बोले अथवा असत्य निर्णय करे, ऐसे दुष्ट वक्ताकी क्या स्थिति होती है?॥३०॥

सुधन्वोवाच

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत्॥३१॥

सुधन्वा बोला—सौतवाली स्त्री, जूएमें हारे हुए जुआरी और भार ढोनेसे व्यथित शरीरवाले मनुष्यकी रातमें जो स्थिति होती है, वही स्थिति उलटा न्याय देनेवाले वक्ताकी भी होती है॥३१॥

नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पश्येद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥३२॥

जो झूठा निर्णय देता है, वह राजा नगरमें कैद होकर बाहरी दरवाजेपर भूखका कष्ट उठाता हुआ बहुत-से शत्रुओंको देखता है॥३२॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते॥३३॥

पशुके लिये झूठ बोलनेवाला पाँच पीढ़ियोंको, गौके लिये झूठ बोलनेवाला दस पीढ़ियोंको, घोड़ेके लिये असत्य भाषण करनेवाला सौ पीढ़ियोंको और मनुष्यके लिये झूठ बोलनेवाला एक हजार पीढ़ियोंको नरकमें गिराता है॥३३॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः॥३४॥

सुवर्णके लिये झूठ बोलनेवाला भूत और भविष्य सभी पीढ़ियोंको नरकमें गिराता है। पृथ्वी तथा स्त्रीके लिये झूठ बोलनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है; इसलिये तुम भूमि या स्त्रीके लिये कभी झूठ न बोलना॥३४॥

प्रह्लाद उवाच

मया श्रेयानाङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात् त्वं तेन वै जितः॥ ३५॥

प्रह्लादने कहा—विरोचन! सुधन्वाके पिता अङ्गिरा



मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, इसकी माँ तुम्हारी माताले श्रेष्ठ है; अतः तुम आज सुधन्वाद्वारा जीत लिये गये॥

विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव।
सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम्॥ ३६॥

विरोचन! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंका मालिक है। सुधन्वन्! अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचनको पाना चाहता हूँ॥

सुधन्वोवाच

यद् धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रह्राद दुर्लभम्॥ ३७॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! तुमने धर्मको ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूठ नहीं कहा है; इसलिये अब तुम्हारे इस दुर्लभ पुत्रको फिर तुम्हें दे रहा हूँ॥

एष प्रह्राद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः संनिधौ मम॥ ३८॥

प्रह्लाद! तुम्हारे इस पुत्र विरोचनको मैंने पुनः तुम्हें दे दिया, किंतु अब यह कुमारी केशिनीके निकट चलकर मेरे पैर धोये॥

विदुर उवाच

तस्माद् राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि।
मा गमः ससुतामात्योऽत्ययं पुत्राननुभ्रमन्॥ ३९॥

विदुरजी कहते हैं—इसलिये राजेन्द्र! आप पृथ्वीके लिये झूठ बोलकर पुत्र और मन्त्रियोंके साथ विनाशके मुखमें न जाइये॥

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥ ४०॥

देवतालोग चरवाहोंकी तरह डंडा लेकर पहरा नहीं देते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धिसे युक्त कर देते हैं॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः॥ ४१॥

मनुष्य जैसे-जैसे कल्याणमें मन लगाता है, वैसे-ही-वैसे उसके सारे मनोरथ सिद्ध होते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥

नैनं छन्दांसि वृजिनात् तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षा-
श्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले॥ ४२॥

कपटपूर्ण व्यवहार कर जीने वाले मायावीको वेद पापोंसे मुक्त नहीं करते, किंतु जैसे पंख निकल आनेपर चिड़ियोंके बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकालमें उस मायावीको त्याग देते हैं॥

मद्यपानं कलहं पूगवैरं
भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं
वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः॥ ४३॥

शराब पीना, कलह, समूहके साथ वैर, पति-पत्नीमें भेद पैदा करना, कुटुम्बवालोंमें भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजाके साथ द्वेष, स्त्री और पुरुषमें विवाद और बुरे रास्ते—इन सबको त्याग देनेयोग्य बताते हैं॥

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं
शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च
नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त॥ ४४॥

हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक—इन सातोंको कभी भी गवाह न बनावे॥

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।
एतानि चत्वार्यभयंकराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि॥ ४५॥

आदरके साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौनका पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदरके साथ यज्ञका अनुष्ठान—

ये चार कर्म भयको दूर करनेवाले हैं किंतु वे ही यदि ठीक तरहसे सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं।

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्याद् पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः॥ ७
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महणः समाः॥

घरमें आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज सन्तानकी कमाई खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, गर्भकी हत्या करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौएकी तरह काँव-काँव करनेवाला, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाला, ग्राम पुरोहित, व्रात्य, क्रूर तथा शक्तिमान् होते हुए भी रक्षाके लिये प्रार्थना करनेवाले शरणागतका जो वध करता है—ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारोंके समान हैं।

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं
वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः
कृच्छ्रास्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च॥

जलती हुई आगसे सुवर्णकी पहचान होती है, सदाचारसे सत्पुरुषकी, व्यवहारसे श्रेष्ठ पुरुषकी, भय प्राप्त होनेपर शूरकी, आर्थिक कठिनाईमें धीरकी और कठिन आपत्तिमें शत्रु एवं मित्रकी परीक्षा होती है।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥

बुढ़ापा सुन्दर रूपको, आशा धीरताको, मृत्यु प्राणोंको, असूया धर्माचरणको, काम लज्जाको, नीच पुरुषोंकी सेवा सदाचारको, क्रोध लक्ष्मीको और अभिमान सर्वस्वको नष्ट कर देता है।

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात् तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति॥

शुभ कर्मोंसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति होती है, प्रगल्भतासे वह बढ़ती है, चतुरतासे जड़ जमा लेती है और संयमसे सुरक्षित रहती है।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना।

एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति॥ ३

तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणों पर हठात् अधिकार जमा लेता है। जिस समय राजा किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय यह एक ही गुण (राजसम्मान) सभी गुणोंसे बढ़कर शोभा पाता है।

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके
स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भि-
श्चत्वार्येषामन्वयन्ति सन्तः॥

राजन्! मनुष्यलोकमें ये आठ गुण स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाले हैं। इनमेंसे चार तो सत्पुरुषोंके साथ नित्य सम्बद्ध हैं, उनमें ही निवास करते हैं और चारका सन्त पुरुष अनुसरण करते हैं।

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं
चत्वार्येतान्यन्वयन्ति सन्तः॥

यज्ञ, दान, अध्ययन और तप—ये चार सज्जनोंके साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता—इन चारोंका सन्त अनुसरण करते हैं।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥ ६॥

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभता—ये आठ प्रकारके धर्मके मार्ग बताये गये हैं।

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति॥ ७॥

इनमेंसे पहले चारोंका तो कोई दम्भी पुरुष भी दम्भके लिये सेवन कर सकता है, परंतु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह ही नहीं सकते।

---

१. ... [illegible] ... है।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥ ५८॥

जिस सभामें बड़े-बूढ़े नहीं वह सभा नहीं, जो धर्मकी बात न कहे वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य नहीं वह धर्म नहीं और जो कपटसे पूर्ण हो वह सत्य नहीं है॥ ५८॥

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशामी स्वर्गयोनयः॥ ५९॥

सत्य, विनयका भाव, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना—ये दस स्वर्गके हेतु हैं॥ ५९॥

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते॥ ६०॥

पापकीर्ति (निन्दित) मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फलको ही प्राप्त करता है और पुण्यकीर्ति (प्रशंसित) मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफलका ही उपभोग करता है॥ ६०॥

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥ ६१॥

इसलिये प्रशंसित व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि बारंबार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट कर देता है॥ ६१॥

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥ ६२॥

जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढ़ाता है॥ ६२॥

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति।
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः॥ ६३॥

जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है। इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोकको ही जाता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह एकाग्रचित्त होकर पुण्यका ही सेवन करे॥ ६३॥

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन्॥ ६४॥

गुणोंमें दोष देखनेवाला, मर्मपर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पापका आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्टको प्राप्त होता है॥ ६४॥

अनसूयः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते॥ ६५॥

दोषदृष्टिसे रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभकर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ महान् सुखको प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है॥ ६५॥

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम्॥ ६६॥

जो बुद्धिमान् पुरुषोंसे सद्बुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही धर्म और अर्थको प्राप्तकर अनायास ही अपनी उन्नति करनेमें समर्थ होता है॥ ६६॥

दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत् कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत्॥ ६७॥

दिनभरमें ही वह कार्य कर ले, जिससे रातमें सुखसे रह सके और आठ महीनोंमें वह कार्य कर ले, जिससे वर्षाके चार महीने सुखसे व्यतीत कर सके॥ ६७॥

पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्॥ ६८॥

पहली अवस्थामें वह काम करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुखपूर्वक रह सके और जीवनभर वह काम करे, जिससे मरनेके बाद भी (परलोकमें) सुखसे रह सके॥ ६८॥

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम्॥ ६९॥

सज्जन पुरुष पच जानेपर अन्नकी (निष्कलङ्क) यौवन बीत जानेपर स्त्रीकी, संग्राम जीत लेनेपर शूरकी और तत्त्वज्ञानको पार कर लेनेपर तपस्वीकी प्रशंसा करते हैं॥ ६९॥

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते॥ ७०॥

अधर्मसे प्राप्त हुए धनके द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं (परंतु दोष छिपानेके कारण) उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है॥ ७०॥

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥ ७१॥

अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले शिष्योंके शासक गुरु हैं, दुष्टोंके शासक राजा हैं और छिपे-छिपे पाप करनेवालोंके शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं॥ ७१॥

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च॥ ७२॥

ऋषि, नदी, वंश, महात्मा तथा स्त्रियोंके दुश्चरित्रका उत्पत्तिस्थान नहीं जाना जा सकता॥ ७२॥

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलभाग् राजंश्चिरं पालयते महीम्॥ ७३॥

राजन्! ब्राह्मणोंकी सेवा-पूजामें लगा रहनेवाला, दाता, कुटुम्बीजनोंके प्रति कोमलताका बर्ताव करनेवाला और शीलवान् क्षत्रिय चिरकालतक पृथ्वीका पालन करता है॥ ७३॥

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥ ७४॥

शूर वीर, विद्वान् और सेवाधर्मको जाननेवाला—ये तीन प्रकारके मनुष्य पृथ्वीसे सुवर्णरूपी पुष्पका चयन करते हैं॥ ७४॥

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च॥ ७५॥

भारत! बुद्धिसे विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबलसे किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणीके हैं, जङ्घासे किये जानेवाले कर्म अधम हैं और भार ढोनेका काम महान् अधम है॥ ७५॥

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा।
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि॥ ७६॥

राजन्! अब आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन तथा कर्णपर राज्यका भार रखकर उन्नति कैसे चाहते हैं?॥ ७६॥

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ।
पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत्॥ ७७॥

भरतश्रेष्ठ! पाण्डव सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं और आपमें पिताका-सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं; आप भी उनपर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिये॥ ७७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरजीके हितवाक्यविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

दत्तात्रेय और साध्य देवताओंके संवादका उल्लेख करके महाकुलीन लोगोंका लक्षण बतलाते हुए विदुरका धृतराष्ट्रको समझाना

विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्॥ १॥

विदुरजी कहते हैं—राजन्! इस विषयमें लोग दत्तात्रेय और साध्य देवताओंके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं; यह मेरा भी सुना हुआ है॥ १॥

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम्।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा॥ २॥

प्राचीन कालकी बात है, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाबुद्धिमान् महर्षि दत्तात्रेयजी हंसरूपसे विचर रहे थे; उस समय साध्य देवताओंने उनसे पूछा॥ २॥

साध्या ऊचुः

साध्या देवा वयमेते महर्षे
दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम्।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः
काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम्॥ ३॥

साध्य बोले—महर्षे! हम सब लोग साध्य देवता हैं। केवल आपको देखकर हम आपके विषयमें कुछ अनुमान नहीं कर सकते। हमें तो आप शास्त्रज्ञानसे युक्त, धीर एवं



बुद्धिमान् जान पड़ते हैं; अतः हमलोगोंको अपनी विचारपूर्ण उदार वाणी सुनानेकी कृपा करें॥ ३॥

हंस उवाच

एतत् कार्यममरा: संश्रुतं मे
धृति: शम: सत्यधर्मानुवृत्ति:।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं
प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥

परमहंसने कहा—सत्यदेवताओ! मैंने सुना है कि धैर्य धारण, मनोनिग्रह तथा सत्य-धर्मोंका पालन ही कर्तव्य है। इसके द्वारा पुरुषको चाहिये कि हृदयकी गाँठ खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने आत्माके समान समझे।

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षत:।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥

[illegible] गाली सुनकर भी स्वयं उसे [illegible] न दे। [illegible] सहन कर लिया गया [illegible] ही गाली देनेवालेको जला [illegible] है और उसके पुण्यको भी ले लेता है।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य
मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो
रूक्षां वाचं रुशतीं वर्जयीत ॥

दूसरोंको न तो गाली दे और न उनका अपमान करे, मित्रोंसे द्रोह तथा नीच पुरुषोंकी सेवा न करे, सदाचारसे हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणीका परित्याग करे।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्
रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद् वाचमुषतीं रूक्षरूपां
धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥

जगत्‌में रूखी बातें मनुष्योंके मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणोंको दग्ध करती रहती हैं, इसलिये धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातोंका सदाके लिये परित्याग कर दे।

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम् ॥

जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्मपर आघात करता और वाग्बाणोंसे मनुष्योंको पीड़ा पहुँचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह मनुष्योंमें महादरिद्र है और वह अपने मुखमें दरिद्रता अथवा मौतको बाँधे हुए ढो रहा है।

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणै-
र्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तै:।
स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो
विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति ॥

यदि दूसरा कोई इस मनुष्यको अग्नि और सूर्यके समान दग्ध करनेवाले अत्यन्त तीखे वाग्बाणोंसे बहुत चोट पहुँचाये तो वह विद्वान् पुरुष चोट खाकर अत्यन्त वेदना सहते हुए भी [illegible] समझे कि वह मेरे पुण्योंको पुष्ट कर रहा है।

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥

[illegible] [illegible] [illegible] रंग दिया जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका [illegible] है तो वह उन्हींके वश हो जाता है—उनका [illegible] नहीं [illegible] चढ़ जाता है।

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्
योऽनाहत: प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पातकं वै
तस्मै देवा: स्पृहयन्त्यागताय ॥

स्वयं किसीके प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरोंसे भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसीको मारता और न दूसरोंसे ही मरवाता है, मार खाकर भी अपराधीको मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमनकी बाट जोहते रहते हैं।

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहु:
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ ११ ॥

बोलनेसे न बोलना अच्छा बताया गया है, यह वाणीकी प्रथम विशेषता है और यदि बोलना ही पड़े तो सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है यानी मौनकी अपेक्षा भी [illegible] उत्तम है। सत्य और प्रिय बोलना वाणीकी तीसरी विशेषता है। यदि सत्य और प्रियके साथ ही धर्मसम्मत भी कहा जाय तो वह वचनकी चौथी विशेषता है। [illegible] उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है।

यादृशै: संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुष: ॥ १२ ॥

मनुष्य जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे लोगोंकी सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है।

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दु:खमण्वपि ॥ १३ ॥

मधुर विनयशील नियममें मनको इकट्ठा करता है उन उपायोंसे उसकी वृद्धि होती जाती है इस प्रकार यदि ओरसे निवृत्ति ही जाय तो उसे दैन्यभाव दुःखका भी कभी अनुभव नहीं होता

न श्लाघते आत्मगुणान्विवक्षुः
न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तम्।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो
न शोचते हृष्यति नैव चायम्॥ ६॥

जो न तो स्वयं किसीसे बैर करता न दूसरोंको जीतने की इच्छा रखता है न किसीके साथ वैर करता और न दूसरोंको चोट पहुँचाना चाहता है जो निन्दा और प्रशंसामें समानभाव रखता है वह इस लोकमें श्रेष्ठ ही माना है

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः॥

जो सबका कल्याण चाहता है किसीके अकल्याणकी बात मनमें भी नहीं लाता जो सत्यवादी कोमल और जितेन्द्रिय है वह उत्तम पुरुष माना गया है

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः॥ ७॥

जो झूठी सान्त्वना नहीं देता देनेकी प्रतिज्ञा करके दे ही देता है, दूसरोंके दोषोंको जानता है वह मध्यम श्रेणीका पुरुष है

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो
नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा
कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः॥

जिसका शासन अत्यन्त कठोर हो जो अनेक दोषोंसे दूषित हो कलंकित हो जो क्रोधवश किसीकी बुराई करना नहीं छोड़ता हो दूसरोंके किये हुए उपकारको नहीं मानता हो जिसकी किसीके साथ मित्रता नहीं हो तथा जो दुरात्मा हो—ये अधम पुरुषके चिह्न हैं

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः॥ ८॥

जो अपने ही ऊपर संदेह होनेके कारण दूसरोंसे भी कल्याण होनेका विश्वास नहीं करता मित्रोंको भी दूर रखता है वह अवश्य ही अधम पुरुष है

उत्तमानेव सेवेत प्राप्ते काले तु मध्यमान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः॥

जो अपनी उन्नति चाहता है, वह उत्तम पुरुषोंकी ही सेवा करे समय आ पड़नेपर मध्यम पुरुषोंकी भी सेवा कर ले परंतु अधम पुरुषोंकी सेवा कदापि न करे

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन
नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग् लभते प्रशंसां
न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम्॥ ११॥

मनुष्य दुष्ट पुरुषोंके बलसे निरन्तरके उद्योगसे बुद्धि तथा पुरुषार्थसे धन भले ही प्राप्त कर ले परंतु इससे उत्तम कुलीन मनुष्योंके सम्मान और सदाचारको वह पूर्णरूपसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकता

धृतराष्ट्र उवाच

महाकुलानां स्पृहयन्ति देवा
धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं
भवन्ति वै कानि महाकुलानि॥ १२॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! धर्म और अर्थके नित्य ज्ञाता एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषोंकी इच्छा करते हैं इसलिये मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ कि उत्तम कुलीन कौन हैं

विदुर उवाच

तपो दमो ब्रह्मवित्त्वं वितानाः
पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि॥ १३॥

विदुरजी बोले—राजन्! जिनमें तप इन्द्रियसंयम वेदोंका स्वाध्याय यज्ञ पवित्र विवाह अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं उन्हें महान् उत्तम कुल कहते हैं

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनि-
श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि॥ १४॥

जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते प्रसन्न चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्याग कर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं वे ही महान् कुलीन हैं

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च॥ १५॥

यज्ञ न करनेसे निन्दित कुलमें विवाह करनेसे वेदका त्याग और धर्मका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ १६॥

देवताके धनका नाश, ब्राह्मणके धनका अपहरण और ब्राह्मणोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं ॥ २६ ॥

ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥ २७ ॥

भारत! ब्राह्मणोंके अनादर और निन्दासे तथा धरोहर रखी हुई वस्तुको छिपा लेनेसे अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं ॥ २७ ॥

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ २८ ॥

गौओं, मनुष्यों और धनसे सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे अच्छे कुलोंकी गणनामें नहीं आ सकते ॥ २८ ॥

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः ॥ २९ ॥

थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचारसे सम्पन्न हैं तो वे अच्छे कुलोंकी गणनामें आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ ३० ॥

सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता; किंतु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये ॥ ३० ॥

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ ३१ ॥

जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे गौओं, पशुओं, घोड़ों तथा हरी-भरी खेतीसे सम्पन्न होनेपर भी उन्नति नहीं कर पाते ॥ ३१ ॥

मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु
राजामात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा
पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥ ३२ ॥

हमारे कुलमें कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरेके धनका अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता-पिता, देवता एवं अतिथियोंको भोजन करानेसे पहले भोजन करनेवाला भी न हो ॥ ३२ ॥

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद् यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत्।
न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम् ॥ ३३ ॥

हममेंसे जो ब्राह्मणोंकी हत्या करे, ब्राह्मणोंके साथ द्वेष करे तथा पितरोंको पिण्डदान एवं तर्पण न करे, वह हमारी सभामें न प्रवेश करे ॥ ३३ ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ३४ ॥

तृणका आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी—सज्जनोंके घरमें इन चार चीजोंकी कभी कमी नहीं होती ॥ ३४ ॥

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम्।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ३५ ॥

महाप्राज्ञ राजन्! पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंके यहाँ ये (तृण आदि) बड़ी श्रद्धाके साथ सत्कारके लिये उपस्थित की जाती हैं ॥ ३५ ॥

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै
शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति
महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः ॥ ३६ ॥

नृपते! रथ छोटा-सा होनेपर भी भार ढो सकता है, किंतु दूसरे काठ बड़े-बड़े होनेपर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते ॥ ३६ ॥

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति
यद् वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत
तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि ॥ ३७ ॥

जिसके क्रोधसे भयभीत होना पड़े तथा शङ्कित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिसपर पिताकी भाँति विश्वास किया जा सके; दूसरे तो साथीमात्र हैं ॥ ३७ ॥

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत्परायणम् ॥ ३८ ॥

पहलेसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो मित्रताका बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है ॥ ३८ ॥

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः ॥ ३९ ॥

जिसका चित्त चञ्चल है, जो वृद्धोंकी सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुषके लिये मित्रोंका संग्रह स्थायी नहीं होता ॥ ३९ ॥

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्थाः समतिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ॥ ४० ॥

जैसे सूखे सरोवरके चारों ओर ही हंस मँडराकर रह जाते हैं, उसके भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चञ्चल है, जो अज्ञानी और इन्द्रियोंका गुलाम है, उसे अर्थ त्याग देते हैं ॥ ४० ॥

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥ ४१ ॥

दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव मेघके समान चञ्चल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

सत्कृताश्च कृतज्ञाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान् नोपभुञ्जते ॥ ४२ ॥

जो मित्रोंसे सत्कार पाकर और उनकी सहायतासे कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नोंके मरनेपर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते ॥ ४२ ॥

अर्चयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने ।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥ ४३ ॥

धन हो या न हो, मित्रोंसे कुछ भी न माँगते हुए उनका सत्कार तो करे ही। मित्रोंके सार-असारकी परीक्षा न करे ॥ ४३ ॥

संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते बलम् ।
संतापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद् व्याधिमृच्छति ॥ ४४ ॥

संताप (शोक) से रूप नष्ट होता है, संतापसे बल नष्ट होता है, संतापसे ज्ञान नष्ट होता है और संतापसे मनुष्य रोगको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ४५ ॥

अभीष्ट वस्तु शोक करनेसे नहीं मिलती, उससे तो केवल शरीरको कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं। इसलिये आप मनमें शोक न करें ॥ ४५ ॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च
पुनर्नरो हीयते वर्धते च ।
पुनर्नरो याचति याच्यते च
पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ ४६ ॥

मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार हानि और वृद्धिको प्राप्त होता है, बार-बार स्वयं दूसरोंसे याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं तथा बार-बार वह दूसरोंके लिये शोक करता है और दूसरे उसके लिये शोक करते हैं ॥ ४६ ॥

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति
तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४७ ॥

सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण—ये बारी-बारीसे सबको प्राप्त होते रहते हैं, इसलिये धीर पुरुषको इनके लिये हर्ष और शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि
तेषां यद् यद् वर्धते यत्र यत्र ।
ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य
छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥ ४८ ॥

ये छः इन्द्रियाँ बहुत ही चञ्चल हैं, इनमेंसे जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषयकी ओर बढ़ती है, वहाँ-वहाँ बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है, जैसे फूटे घड़ेसे पानी सदा चू जाता है ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तनुरुच्छः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! सूक्ष्म धर्मसे बँधे हुए, विजयसे सुशोभित राजा युधिष्ठिरके साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है। अतः वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रोंका नाश कर डालेंगे ॥ ४९ ॥

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः ।
यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥ ५० ॥

महामते! यह सब कुछ सदा ही भयसे उद्विग्न है, मेरा यह मन भी भयसे उद्विग्न है, इसलिये जो उद्वेगशून्य और शान्त पद (मार्ग) हो, वही मुझे बताओ ॥ ५० ॥

विदुर उवाच

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ ॥ ५१ ॥

विदुरजी बोले—पापरहित नरेश! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और लोभत्यागके सिवा और कोई आपके लिये शान्तिका उपाय मैं नहीं देखता ॥ ५१ ॥

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत् ।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥ ५२ ॥

बुद्धिसे मनुष्य अपने भयको दूर करता है, तपस्यासे महत्पदको प्राप्त होता है, गुरुशुश्रूषासे ज्ञान और योगसे शान्ति पाता है ॥ ५२ ॥

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥ ५३ ॥

मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य दानके पुण्यका आश्रय नहीं लेते, वेदके पुण्यका भी आश्रय नहीं लेते, किंतु निष्काम-भावसे राग-द्वेषसे रहित हो इस लोकमें विचरते रहते हैं ॥ ५३ ॥

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥ ४ ॥

राजन् ! अच्छी प्रकार अध्ययन, न्यायपूर्वक युद्ध, पुण्यकर्म और अच्छी तरह की हुई तपस्याके अन्तमें सुखकी वृद्धि होती है ॥ ४ ॥

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना
न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति
न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥ ५ ॥

राजन् ! आपसमें फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछे हुए पलंगोंपर सोकर भी कभी सुखकी नींद नहीं पाते; उन्हें स्त्रियोंके पास रहकर तथा सूत-मागधोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती ॥ ५ ॥

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥ ६ ॥

जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्मका आचरण नहीं करते, वे सुख भी नहीं पाते, उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा उन्हें शान्तिकी वार्ता भी नहीं सुहाती ॥ ६ ॥

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं
न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात् ॥ ७ ॥

हितकी बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेमकी भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन् ! भेदभाववाले पुरुषोंकी विनाशके सिवा और कोई गति नहीं है ॥ ७ ॥

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः ।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥ ८ ॥

जैसे गौओंमें दूध, ब्राह्मणमें तप और युवती स्त्रियोंमें चंचलताका होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जातिभाइयोंसे भय होना भी सम्भव ही है ॥ ८ ॥

तन्तवोऽप्यायता नित्यं तन्तवो बहुलाः समाः ।
बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम् ॥ ९ ॥

नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएँ बहुत होनेके कारण बहुत वर्षोंतक नाना प्रकारके झोंके सहती हैं; यही बात सत्पुरुषोंके विषयमें भी समझनी चाहिये। वे दुर्बल होनेपर भी सामूहिक शक्तिसे बलवान् हो जाते हैं ॥ ९ ॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १० ॥

भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होनेपर धुआँ फेंकती हैं और एक साथ होनेपर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु भी आपसमें फूट होनेपर दुःख उठाते और एकता होनेपर सुखी रहते हैं ॥ १० ॥

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र ! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओंपर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठलसे पके हुए फलकी भाँति नीचे गिरते हैं ॥ ११ ॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥ १२ ॥

यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढ़मूल तथा बहुत बड़ा होनेपर भी एक ही क्षणमें आँधीके द्वारा बलपूर्वक शाखाओंसहित धराशायी किया जा सकता है ॥ १२ ॥

अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः ।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥ १३ ॥

किंतु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूहके रूपमें खड़े हैं, वे एक-दूसरेके सहारे बड़ी-से-बड़ी आँधीको भी सह सकते हैं ॥ १३ ॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार समस्त गुणोंसे सम्पन्न मनुष्यको भी शत्रु अकेला होनेपर अपनी शक्तिके अधीन समझते हैं, जैसे अकेले वृक्षको वायु ॥ १४ ॥

अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥ १५ ॥

किंतु परस्पर मेल होनेसे और एकसे दूसरेको सहारा मिलनेसे जातिवाले लोग इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे तालाबमें कमल ॥ १५ ॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥ १६ ॥

ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत—ये अवध्य होते हैं ॥ १६ ॥

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते ।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ १७ ॥

राजन् ! आपका कल्याण हो, मनुष्यमें धन और आरोग्यको छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है; क्योंकि रोगी तो मुर्देके समान है ॥ १७ ॥

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् ।

सतां पथं यत्न विकारयुक्तो
सम्यङ् महाराज पिब महात्मन् ॥ ६८ ॥

महाराज ! जो बिना रोगके उत्पन्न, कड़वा, सिरमें दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सत्पुरुषोंद्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोधको आप पी जाइये और शान्त होइये ॥ ६८ ॥

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव
न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥ ६९ ॥

रोगसे पीड़ित मनुष्य मधुर फलोंका आदर नहीं करते, विषयोंमें भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुःखी रहते हैं। वे न तो धन-सम्बन्धी भोगोंका और न सुखका ही अनुभव करते हैं ॥ ६९ ॥

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे
द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् ।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां
कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥ ७० ॥

राजन् ! पहले जुएमें द्रौपदीको जीती गयी देखकर मैंने आपसे कहा था—आप जुआ खेलनेमें आसक्त दुर्योधनको रोकिये, विद्वान् लोग इस प्रकार छल करना मना करते हैं; किंतु आपने मेरा कहना नहीं माना ॥ ७० ॥

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते
सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः ।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-
र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ ७१ ॥

वह बल नहीं, जिसका मृदुल स्वभावके साथ विरोध हो; सूक्ष्म धर्मका शीघ्र ही सेवन करना चाहिये। क्रूरतापूर्वक उपार्जित लक्ष्मी नष्ट हो जाती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढ़ायी गयी हो तो पुत्र-पौत्रोंतक चली जाती है ॥ ७१ ॥

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु
पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु ।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या
जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः ॥ ७२ ॥

राजन् ! आपके पुत्र पाण्डवोंकी रक्षा करें और पाण्डुके पुत्र आपके पुत्रोंकी रक्षा करें। सभी कौरव एक-दूसरेके शत्रुको शत्रु और मित्रको मित्र समझें, सबका एक ही कर्तव्य हो। सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें ॥ ७२ ॥

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य
त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान्
गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७३ ॥

अजमीढकुलनन्दन ! इस समय आप ही कौरवोंके आधारस्तम्भ हैं, कुरुवंश आपके ही अधीन है। तात ! कुन्तीके पुत्र अभी बालक हैं और वनवाससे बहुत कष्ट पा चुके हैं। इस समय अपने यशकी रक्षा करते हुए उनका पालन कीजिये ॥ ७३ ॥

संधत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रै-
र्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु ।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे
दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥ ७४ ॥

कुरुराज ! आप पाण्डवोंसे संधि कर लें, जिससे शत्रुओंको आपका छिद्र देखनेका अवसर न मिले। नरदेव ! सभी पाण्डव सत्यपर डटे हुए हैं। अब आप अपने पुत्र दुर्योधनको रोकिये ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरजीके हितवाक्यविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीका हितोपदेश

विदुर उवाच

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १ ॥
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥ २ ॥

विदुरजी कहते हैं—राजेन्द्र ! विचित्रवीर्यनन्दन ! स्वायम्भुव मनुजीने इन सत्रह प्रकारके पुरुषोंको आकाशपर मुक्कोंसे प्रहार करनेवाले, न झुकनेवाले वर्षाकालीन इन्द्रधनुषको झुकानेकी चेष्टा करनेवाले तथा पकड़में न आनेवाली सूर्यकी किरणोंको पकड़नेका प्रयास करनेवाले

सकता है अर्थात् इनसे सभी उद्योगोंमें विघ्न ला है ॥ २ ॥

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्
यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम्।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमस्तु ते
यश्चायाच्यं याचते कत्थते च ॥ ३ ॥
यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं
यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति
यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥ ४ ॥
वध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो
वध्वा वसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति स्वबीजं
स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥ ५ ॥
यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी
दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः।
यश्चासतः सान्त्वमुपासतीह
एतान् नयन्ति निरयं पाशहस्ताः ॥ ६ ॥

पाश हाथमें लिये यमराजके दूत इन सत्रह प्रकारके पुरुषोंको नरकमें ले जाते हैं—जो शासनके अयोग्य पुरुषपर शासन करता है; मर्यादाका उल्लङ्घन करके सन्तुष्ट होता है; शत्रुकी सेवा करता है; स्त्रीकी रक्षा करता है और उसके द्वारा अपने कल्याणका अनुभव करता है; याचना करनेके अयोग्य पुरुषसे याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है; अच्छे कुलमें उत्पन्न होकर भी नीच कर्म करता है; दुर्बल होकर भी सदा बलवान्‌से वैर रखता है; श्रद्धाहीनको उपदेश करता है; न चाहनेयोग्य वस्तुको चाहता है; श्वशुर होकर पुत्रवधूके साथ परिहास पसंद करता है तथा पुत्रवधूसे एकान्तवास करके भी निर्भय होकर समाजमें प्रतिष्ठा चाहता है; परस्त्रीमें अपने वीर्यका आधान करता है; मर्यादाके बाहर स्त्रीकी निन्दा करता है; किसीसे कोई वस्तु पाकर भी 'याद नहीं है' ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है; माँगनेपर दान देकर उसके लिये अपनी बड़ाई करता है और झूठको सही साबित करनेका यत्न करता है ॥ ३—६ ॥

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥ ७ ॥

जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये—यही नीतिधर्म है। कपटका आचरण करनेवालेके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा बर्ताव करनेवालेके साथ साधुभावसे ही बर्ताव करना चाहिये ॥ ७ ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥ ८ ॥

बुढ़ापा रूपका, आशा धैर्यका, मृत्यु प्राणोंका, दूसरोंके गुणोंमें दोष देखना धर्माचरणका, काम लज्जाका, नीच पुरुषोंकी सेवा सदाचारका, क्रोध लक्ष्मीका और अभिमान सर्वस्वका ही नाश कर देता है ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बतलाया गया है, तब वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता? ॥ ९ ॥

विदुर उवाच

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥ १० ॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ ११ ॥

विदुरजी बोले—राजन्! आपका कल्याण हो। अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं ॥ १०-११ ॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥ १२ ॥
आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १३ ॥

भारत! जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पुरुषकी स्त्रीके साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्रकी स्त्रीके साथ विवाह करता है, शराब पीता है तथा जो बड़ोंपर आदेश चलानेवाला, ब्राह्मणोंकी जीविका नष्ट करनेवाला, ब्राह्मणोंको सेवाकार्यके लिये इधर-उधर भेजनेवाला और शरणागतकी हिंसा करनेवाला है—ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारेके समान हैं। इनका संग हो जानेपर प्रायश्चित्त करे—यह वेदोंकी आज्ञा है ॥ १२-१३ ॥

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ १४ ॥

बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला नीतिज्ञ दाता यज्ञशेष अन्नका भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है ॥ १४ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १५ ॥

राजन्! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहजमें ही मिल सकते हैं; किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचनके वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं ॥ १५ ॥

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ १६ ॥

जो धर्मका आश्रय लेकर तथा स्वामीको प्रिय लगेगा या अप्रिय—इसका विचार छोड़कर अप्रिय होनेपर भी हितकी बात कहता है, उसीसे राजाको सच्ची सहायता मिलती है ॥ १६ ॥

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १७ ॥

कुलकी रक्षाके लिये एक मनुष्यका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, देशकी रक्षाके लिये गाँवका और आत्माके कल्याणके लिये सारी पृथ्वीका त्याग कर देना चाहिये ।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥ १८ ॥

आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, धनके द्वारा भी स्त्रीकी रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनोंके द्वारा सदा अपनी रक्षा करे ॥ १८ ॥

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ १९ ॥

पूर्वकालमें जूआ खेलना मनुष्योंमें वैर डालनेका कारण देखा गया है, अतः बुद्धिमान् मनुष्य हँसीके लिये भी जूआ न खेले ॥ १९ ॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्
नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय ।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य
न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥ २० ॥

प्रतीपनन्दन विचित्रवीर्यकुमार! राजन्! मैंने जूएका खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है; किंतु रोगीको जैसे दवा और पथ्य अच्छे नहीं लगते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी ॥

काकैरिमांश्चित्रबर्हान् मयूरान्
पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रैः ।
हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान् गूहमानः
प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥ २१ ॥

नरेन्द्र! आप कौओंके समान अपने पुत्रोंके द्वारा विचित्र पंखवाले मोरोंके समान पाण्डवोंको पराजित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं; सिंहोंको छोड़कर सियारोंकी रक्षा कर रहे हैं; समय आनेपर आपको इसके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ २१ ॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य ।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २२ ॥

तात! जो स्वामी सदा हितसाधनमें लगे रहनेवाले भक्त सेवकपर कभी क्रोध नहीं करता, उसपर भृत्यगण विश्वास करते हैं और उसे आपत्तिके समय भी नहीं छोड़ते ॥ २२ ॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन
राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम् ।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः
स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २३ ॥

सेवकोंकी जीविका बंद करके दूसरोंके राज्य और धनके अपहरणका प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि अपनी जीविका छिन जानेसे भोगोंसे वञ्चित होकर पहलेके प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजाका परित्याग कर देते हैं ॥ २३ ॥

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वा-
ण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम् ।
संगृह्णीयादनुरूपान् सहायान्
सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २४ ॥

पहले कर्तव्य एवं आय-व्यय और उचित वेतन आदिका निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकोंका संग्रह करे; क्योंकि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहायकोंद्वारा साध्य होते हैं ॥ २४ ॥

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः
सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्रीः ।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः
शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २५ ॥

जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामिभक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर उसपर कृपा करनी चाहिये ॥ २५ ॥

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः
प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः ।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी
त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य स्वामीके आज्ञा देनेपर उसकी बातका आदर नहीं करता, किसी कामोंमें लगाये जानेपर अस्वीकार कर देता है, अपनी बुद्धिपर गर्व करता और प्रतिकूल बोलनेवाला है, उसको शीघ्र ही त्याग देना चाहिये ॥ २६ ॥

अस्तम्भमक्लीबमदीर्घसूत्रं
सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं
दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २७ ॥

अहंकाररहित, कायरतासे शून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला—इन आठ गुणोंसे युक्त मनुष्यको 'दूत' बनाने योग्य बताया गया है ॥ २७ ॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे
गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले ।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो
न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥ २८ ॥

सावधान मनुष्य विश्वास करके असमयमें कभी दूसरेके घर न जाय, रातमें छिपकर चौराहेपर न खड़ा हो और राजा जिस स्त्रीको चाहता हो, उसे प्राप्त करनेका यत्न न करे ॥ २८ ॥

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्
संसृष्टमन्त्रस्य कुसंगतस्य ।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति
सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥ २९ ॥

दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगोंके साथ मन्त्रणा-समितिमें बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बातका खण्डन न करे, 'मैं तुमपर विश्वास नहीं करता' ऐसा भी न कहे, अपितु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहाँसे हट जाय ॥ २९ ॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः
पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।
सेनाजीवी चोद्धृतभक्त एव
व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥ ३० ॥

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चेवाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया हो, वह पुरुष—इन सबके साथ लेन-देनका व्यवहार न करे ॥ ३० ॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ३१ ॥

ये आठ गुण पुरुषकी शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलनेका स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता ॥ ३१ ॥

एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो बिभर्ति ॥ ३२ ॥

तात ! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणोंपर हठात् अधिकार कर लेता है। राजा जिस समय किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय यह गुण (राजसम्मान) उपर्युक्त सभी गुणोंसे बढ़कर शोभा पाता है ॥ ३२ ॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते
बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च
श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥ ३३ ॥

नित्य स्नान करनेवाले मनुष्यको बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दरी स्त्रियाँ—ये दस लाभ प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते
आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं
न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥ ३४ ॥

थोड़ा भोजन करनेवालेको निम्नाङ्कित छः गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं; उसकी संतान सुन्दर होती है तथा 'यह बहुत खानेवाला है' ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते ॥ ३४ ॥

अकर्मशीलं च महाशनं च
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेष-
मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ॥ ३५ ॥

अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगोंसे वैर करनेवाले, अधिक मायावी, क्रूर, देश-कालका ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्यको कभी अपने घरमें न ठहरने दे ॥ ३५ ॥

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च
वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्न-
मेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥ ३६ ॥

बहुत दुःखी होनेपर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगलमें रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बाँधनेवाले और कृतघ्नसे कभी सहायताकी याचना नहीं करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

संज्ञिषुधर्मांश्यमतिसमाप्
निरताकुल आवाहमाकिके
विद्युद्राग पद्ममालिनं वा
प्रेतान् लोका कराकमान् ४८

क्लेशादा कर्म करनेवा भयभय यामनी गदा
भववारण करनेवाले महिमा भक्तिवाले हैं गति
अपनेको बहुत अनन्तमान-मान प्रकारके समय पूर्वोकी
सेवा करें

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाद्यायबन्धना
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिध्यतः

धनकी प्राप्ति सहायकाल अपेक्षा रखती और सहायक
धनकी अपेक्षा रखते दोनों एक-दूसरे आश्रित
परस्परके सहयोग बिना इनकी सिद्धि नहीं होती

उत्पाद्य पुत्रानवृणांश्च कृत्वा
वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित्
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा
अरण्यसंस्थोऽपि मुनिर्बुभूषेत्

पुत्रोंको उत्पन्न कर उन्हें पाले-पोसे पूजा करना
उनके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध नाली
तथा कन्याओंको योग्य वरके साथ विवाह करना
बनमें मुनिवृत्तिसे रहनेकी इच्छा करे

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्
तत् कुर्यादीश्वरो ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये

जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये हितकर और अपने लिये
सुखद सर्वार्थसिद्धि कर समस्त सिद्धियोंका
यही मूल मन्त्र

बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः

जिसमें बुद्धि शक्ति उत्थान उद्योग
और अब कर्तव्यका अब उसे जीविकाके
अभावका भय सकता

पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं
यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो
यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः

पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेमें दोष देखिये
आदिके देवता भी व्यथित होंगे इन्द्र आदि देवताओंको
भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा इसके सिवा पुत्रोंके साथ वैर
नित्य उद्वेगपूर्ण जीवन कीर्तिका नाश और शत्रुओंको
आनन्द होगा

भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प
द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः
श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन् खे

इन्द्रके समान पराक्रमी महाराज आकाशमें तिरछा
उदित धूमकेतु सारे जगत्में अशान्ति उत्पन्न
करता देता उसी तरह भीष्म आप द्रोणाचार्य और
युधिष्ठिरका बढ़ा हुआ क्रोध समस्त जगत्का संहार कर
सकता

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ४४

आपके पुत्र कर्ण और पांचों पाण्डव सब
मिलकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन
सकते

धार्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रान् नीनशन् वनात् ४५

आपके पुत्र वनके समान और पाण्डव उसमें
रहनेवाले व्याघ्र आप व्याघ्रोंसहित समस्त वनको नष्ट
कीजिये वनसे व्याघ्रोंको भगाइये

न स्याद् वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम्

व्याघ्रोंके बिना वनकी रक्षा नहीं सकती
सिंह सकते क्योंकि व्याघ्र वनकी रक्षा करते
और व्याघ्रोंकी

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः

जिनका मन पापमें लगा रहता वैसा दुर्मतिके
कल्याणमय गुणोंको जाननेकी इच्छा नहीं रखते
कि उनके अवगुणोंको जान सकते

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्

अर्थकी पूर्ण सिद्धि चाहता उसे पहले धर्मका
आचरण करना चाहिये जैसे स्वर्गसे अमृत दूर नहीं
होता उसी प्रकार धर्मसे अर्थ अलग नहीं होता

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या

जिसकी बुद्धि पापसे हटकर कल्याणमें लगा दी गयी
उसने सबकी प्रकृति और विकृति
सबको जान लिया

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति

जो न्यायानुसार धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥

संनियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥ ५० ॥

राजन्! जो क्रोध और हर्षके उठे हुए वेगको रोक लेता है और आपत्तिमें भी मोहको प्राप्त नहीं होता, वही राजलक्ष्मीका अधिकारी होता है ॥ ५० ॥

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥ ५१ ॥
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥ ५२ ॥
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥ ५३ ॥
येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ ५४ ॥

राजन्! मनुष्योंमें पाँच प्रकारका बल होता है, उसे सुनिये। जो बाहुबल नामक बल है, वह निकृष्ट बल कहलाता है। मन्त्रियोंका मिलना दूसरा बल है। मनीषीलोग धनके लाभको तीसरा बल मानते हैं। और राजन्! जो बाप-दादोंसे प्राप्त हुआ मनुष्यका स्वाभाविक बल (कुलबल) है, वह अभिजात नामक चौथा बल है। भारत! जिससे इन सभी बलोंका संग्रह हो जाता है तथा जो सब बलोंमें श्रेष्ठ बल है, वह पाँचवाँ बुद्धिका बल कहलाता है ॥ ५१—५४ ॥

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्यका बहुत बड़ा अपकार कर सकता है, उस पुरुषके साथ वैर ठानकर इस विश्वासपर निश्चिन्त न हो जाय कि मैं उससे दूर हूँ, वह मेरा कुछ नहीं कर सकता ॥ ५५ ॥

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्याये प्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ५६ ॥

ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा, जो स्त्री, राजा, साँप, पढ़े हुए पाठ, सामर्थ्यशाली व्यक्ति, शत्रु, भोग और आयुपर पूर्ण विश्वास कर सकता है ॥ ५६ ॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तो-
श्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि
नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥ ५७ ॥

जिसको बुद्धिके बाणसे मारा गया है, उस जीवके लिये न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम, न मन्त्र, न कोई माङ्गलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभाँति सिद्ध जड़ी-बूटी ही है ॥ ५७ ॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥ ५८ ॥

भारत! मनुष्यको चाहिये कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुलमें उत्पन्न व्यक्तिका अनादर न करे; क्योंकि ये सभी बड़े तेजस्वी होते हैं ॥ ५८ ॥

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद् दारु यावन्नो दीप्यते परैः ॥ ५९ ॥

संसारमें अग्नि एक महान् तेज है, वह काठमें छिपा रहता है; किंतु जबतक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न करें, तबतक वह उस काठको नहीं जलाती ॥ ५९ ॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तद् दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ ६० ॥

वही अग्नि यदि काठसे मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है तो वह अपने तेजसे उस काठको, जंगलको तथा दूसरी वस्तुओंको भी जल्दी ही जला डालती है ॥ ६० ॥

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ ६१ ॥

इसी प्रकार अपने कुलमें उत्पन्न वे अग्निके समान तेजस्वी पाण्डव क्षमाभावसे युक्त और विकारशून्य हो काठमें छिपी हुई अग्निकी तरह शान्तभावसे स्थित हैं ॥ ६१ ॥

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ६२ ॥

अपने पुत्रोंसहित आप लताके समान हैं और पाण्डव महान् शालवृक्षके सदृश हैं; महान् वृक्षका आश्रय लिये बिना लता कभी बढ़ नहीं सकती ॥ ६२ ॥

वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय
सिंहान् वने पाण्डवांस्तात विद्धि।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्
सिंहा विनश्येयुर्ऋते वनेन ॥ ६३ ॥

राजन्! अम्बिकानन्दन! आपका पुत्र एक वन है और पाण्डवोंको उसके भीतर रहनेवाले सिंह मानिये। तात! सिंहसे सूना होनेपर वन नष्ट हो जाता है और वनके बिना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरजीके हितवाक्यविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्याय

विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश

विदुर उवाच

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते॥

विदुरजी कहते हैं—राजन्! कोई माननीय वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्तिके प्राण ऊपरको उठने लगते हैं। फिर जब वह वृद्धके स्वागतमें उठकर खड़ा होता और प्रणाम करता है, तब प्राणोंको पुनः वास्तविक स्थितिमें प्राप्त करता है।

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥

धीर पुरुषको चाहिये कि जब कोई साधु पुरुष अतिथिके रूपमें घरपर आवे, तब पहले आसन देकर, जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी स्थिति बतावे, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन करावे।

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च
न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे।
लोभाद् भयादर्थकार्पण्यतो वा
तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः॥

वेदवेत्ता ब्राह्मण जिसके घर दाताके लोभ, भय या कंजूसीके कारण जल, मधुपर्क और गौको नहीं स्वीकार करता, श्रेष्ठ पुरुषोंने उस गृहस्थका जीवन व्यर्थ बताया है।

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी
स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च
भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः॥

वैद्य, चीरफाड़ करनेवाला (जर्राह), ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भहत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता—ये यद्यपि पैर धोनेके योग्य नहीं हैं, तथापि यदि अतिथि होकर आवें तो विशेष प्रिय होनेपर भी आदरके योग्य होते हैं।

अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं
दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च।
तिला मांसं मूलफलानि शाकं
रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडश्च॥

नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकारकी गन्ध और गुड़—इतनी वस्तुएँ बेचने योग्य नहीं हैं।

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः॥ ६॥

जो क्रोध न करनेवाला, ढेले, पत्थर और सुवर्णको एक-सा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रहसे रहित, निन्दा-प्रशंसासे शून्य, प्रिय-अप्रियका त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (संन्यासी) है।

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः
सुसंयतात्माग्निकार्येष्वचोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो
धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः॥ ७॥

जो नीवार (जंगली चावल), कन्द-मूल, इङ्गुदी (लिसोड़ा) और साग खाकर निर्वाह करता है, मनको वशमें रखता है, अग्निहोत्र करता है, वनमें रहकर भी अतिथिसेवामें सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी (वानप्रस्थी) श्रेष्ठ माना गया है।

अपकृत्वा बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः॥ ८॥

बुद्धिमान् पुरुषकी बुराई करके इस विश्वासपर निश्चिन्त न रहे कि मैं दूर हूँ। बुद्धिमान्‌की बाँहें बड़ी लंबी होती हैं, सताया जानेपर वह उन्हीं बाँहोंसे बदला लेता है।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥ ९॥

जो विश्वासका पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं; किंतु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वाससे जो भय उत्पन्न होता है, वह मूलका भी उच्छेद कर डालता है।

अनीर्ष्युर्गुप्तदारः स्यात् संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्॥ १०॥

मनुष्यको चाहिये कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियोंका रक्षक, सम्पत्तिका न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ

---

[1] दही और गौको मिलाकर बनाये जानेवाले पेयको मधुपर्क कहते हैं; इससे बढ़कर दूसरा अतिथि-सत्कार नहीं माना गया है।

तथा स्त्रियोंके निकट मीठे वचन बोलनेवाला हो, परंतु उनके वशमें कभी न हो ॥ १० ॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः ॥ ११ ॥

स्त्रियाँ घरकी लक्ष्मी कही गयी हैं; ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, आदरके योग्य, पवित्र तथा घरकी शोभा हैं; अतः इनकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम्।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥ १२ ॥
भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्।

अन्तःपुरकी रक्षाका कार्य पिताको सौंप दे, रसोईघरका प्रबन्ध माताके हाथमें दे दे, गौओंकी सेवामें अपने समान व्यक्तिको नियुक्त करे और कृषिका काम स्वयं ही करे। इसी प्रकार सेवकोंद्वारा वाणिज्य-व्यापार करे और पुत्रोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी सेवा करे ॥ १२ ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ १३ ॥
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा पैदा हुआ है। इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी अपने उत्पत्तिस्थानमें शान्त हो जाता है ॥ १३ ॥

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥ १४ ॥
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते।

अच्छे कुलमें उत्पन्न, अग्निके समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठमें अग्निकी भाँति शान्तभावसे स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥ १५ ॥
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते।

जिस राजाकी मन्त्रणाको उसके बहिरंग एवं अन्तरंग सभासदतक नहीं जानते, सब ओर दृष्टि रखनेवाला वह राजा चिरकालतक ऐश्वर्यका उपभोग करता है ॥ १५ ॥

करिष्यन् न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥ १६ ॥
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते।

धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्योंको करनेसे पहले न बताये, करके ही दिखावे। ऐसा करनेसे अपनी मन्त्रणा दूसरोंपर प्रकट नहीं होती ॥ १६ ॥

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ १७ ॥
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते।

पर्वतकी चोटी अथवा राजमहलपर चढ़कर एकान्त स्थानमें जाकर या जंगलमें तृण आदिसे अनावृत स्थानपर मन्त्रणा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥ १८ ॥

अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान्।

भारत! जो मित्र न हो, मित्र होनेपर भी पण्डित न हो, पण्डित होनेपर भी जिसका मन वशमें न हो, वह अपनी गुप्त मन्त्रणा जाननेके योग्य नहीं है ॥ १८ ॥

नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात् सचिवमात्मनः ॥ १९ ॥
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥ २० ॥
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ २१ ॥

राजा अच्छी तरह परीक्षा किये बिना किसीको अपना मन्त्री न बनावे; क्योंकि धनकी प्राप्ति और मन्त्रकी रक्षाका भार मन्त्रीपर ही रहता है। जिसके धर्म, अर्थ और कामविषयक सभी कार्योंको पूर्ण होनेके बाद ही सभासद्गण जान पाते हैं, वही राजा समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ है। अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाले उस राजाको निःसन्देह सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १९—२१ ॥

अप्रशस्तानि कर्माणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रश्यते जीवितादपि ॥ २२ ॥

जो मोहवश बुरे (शास्त्रनिषिद्ध) कर्म करता है, वह उन कर्मोंका विपरीत परिणाम होनेसे अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठता है ॥ २२ ॥

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३ ॥

उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किंतु उनका अनुष्ठान न किया जाय तो वह पश्चात्तापका कारण माना गया है ॥ २३ ॥

अनधीत्य यथा वेदान् न विप्रः श्राद्धमर्हति।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥ २४ ॥

जैसे वेदोंको पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्ध करानेका अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रयनामक) छः गुणोंको जाने बिना कोई गुप्त मन्त्रणा सुननेका अधिकारी नहीं होता ॥ २४ ॥

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५ ॥

राजन्! जो सन्धि-विग्रह आदि छः गुणोंके जानकारीके कारण प्रसिद्ध है, स्थिति, वृद्धि और ह्रासको जानता है तथा जिसके स्वभावकी सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजाके अधीन पृथ्वी रहती है ॥ २५ ॥

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुधेयं वसुन्धरा ॥ २६ ॥

जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते, जो आवश्यक

कार्योंकी सदा देखभाल करता है और अमात्योंकी भी सदा जानकारी रखता है, उसका धन सदा वर्धमान ही होता है ॥ २६ ॥

सामान्यस्य च मुख्यस्य लब्धस्य च महीपतिः ।
[illegible] नैकः सम्पन्नो भवेत् ॥ २७ ॥

[illegible] अकेला ही न हड़प ले ॥ २७ ॥

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा ।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २८ ॥

ब्राह्मणको ब्राह्मण जानता है, स्त्रीको उसका पति जानता है, मन्त्रीको राजा जानता है और राजाको भी राजा ही जानता है ॥ २८ ॥

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः ।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति ।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव ॥ २९ ॥

वशमें आये हुए वध-योग्य शत्रुको कभी छोड़ना नहीं चाहिये। यदि अपना बल अधिक न हो तो नम्र होकर उसके पास समय बिताना चाहिये और बल होनेपर उसे मार ही डालना चाहिये; क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है ॥ २९ ॥

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च ।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ ३० ॥

देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगीपर होनेवाले क्रोधको प्रयत्नपूर्वक सदा रोकना चाहिये ॥ ३० ॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ ३१ ॥

मूर्खोंद्वारा सेवित निरर्थक कलहका बुद्धिमान् पुरुषको त्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे लोकमें यश मिलता है और अनर्थका सामना नहीं करना पड़ता ॥ ३१ ॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ ३२ ॥

जिसके प्रसन्न होनेका कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है, ऐसे राजाको प्रजा उसी भाँति नहीं चाहती, जैसे स्त्री नपुंसक पतिको ॥ ३२ ॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३३ ॥

बुद्धिसे धन प्राप्त होता है और मूर्खता दरिद्रताका कारण है—ऐसा कोई नियम नहीं है। संसारचक्रके वृत्तान्तको केवल विद्वान् पुरुष ही जानते हैं, दूसरे लोग नहीं ॥ ३३ ॥

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत ।
धनाभिजनवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥ ३४ ॥

भारत! मूढ मनुष्य विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुलमें बड़े माननीय पुरुषोंका सदा अनादर किया करता है ॥ ३४ ॥

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥ ३५ ॥

जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणोंमें दोष देखनेवाला, अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला और क्रोधी है, उसपर शीघ्र ही अनर्थ (संकट) टूट पड़ते हैं ॥ ३५ ॥

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ॥ ३६ ॥

ठगना न करना, दान देना, प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन न करना और अच्छी तरह कही हुई बात—ये सब सम्पूर्ण भूतोंको अपना बना लेते हैं ॥ ३६ ॥

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥ ३७ ॥

किसीको भी धोखा न देनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और कोमल स्वभाववाला राजा खजाना खाली हो जानेपर भी सहायकोंको पा जाता है अर्थात् उसे सहायक मिल जाते हैं ॥ ३७ ॥

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥ ३८ ॥

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्रसे द्रोह न करना—ये सात बातें लक्ष्मीको बढ़ानेवाली हैं ॥ ३८ ॥

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥ ३९ ॥

राजन्! जो अपने आश्रितोंमें धनका ठीक-ठीक बँटवारा नहीं करता तथा जो दुष्ट स्वभाववाला, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोकमें त्याग देने योग्य है ॥ ३९ ॥

न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि ।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥ ४० ॥

जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय व्यक्तिको कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घरमें रहनेवाले मनुष्यकी भाँति रातमें सुखसे नहीं सो सकता ॥ ४० ॥

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद् योगक्षेमस्य भारत ।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ४१ ॥

भारत! जिनके ऊपर दोषारोपण करनेसे योग-क्षेममें बाधा आती हो, उन लोगोंको देवताकी भाँति सदा प्रसन्न रखना चाहिये ॥ ४१ ॥

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च ।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥ ४२ ॥

जो धन आदि पदार्थ स्त्री, प्रमादी, पतित और नीच पुरुषोंके हाथमें सौंप दिये जाते हैं, वे संशयमें पड़ जाते हैं ॥ ४२ ॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता ।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव ॥ ४३ ॥

राजन्! जहाँका शासन स्त्री, जुआरी और बालकके हाथमें होता है, वहाँके लोग नदीमें पत्थरकी नावपर बैठनेवालोंकी भाँति विवश होकर विपत्तिके समुद्रमें डूब जाते हैं ॥ ४३ ॥

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत ।
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥ ४४ ॥

भारत! जो लोग जितना आवश्यक है, उतने ही काममें लगे रहते हैं, अधिकमें हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ; क्योंकि अधिकमें हाथ डालना संघर्षका कारण होता है ॥ ४४ ॥

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥ ४५ ॥

(केवल) जुआरी जिसकी प्रशंसा करते हैं, नर्तक जिसकी प्रशंसाका गान करते हैं और वेश्याएँ जिसकी बड़ाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता ही मुर्देके समान है ॥ ४५ ॥

हित्वा तान् परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः ।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥ ४६ ॥

भारत! आपने उन महान् धनुर्धर और अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवोंको छोड़कर यह महान् ऐश्वर्यका भार दुर्योधनके ऊपर रख दिया है ॥ ४६ ॥

तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात् त्वमचिरादिव ।
ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥ ४७ ॥

इसलिये आप शीघ्र ही उस ऐश्वर्यमदसे मूढ़ दुर्योधनको त्रिभुवनके साम्राज्यसे गिरे हुए बलिकी भाँति इस राज्यसे भ्रष्ट हुआ देखियेगा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरवाक्यविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके प्रति विदुरजीका नीतियुक्त उपदेश

धृतराष्ट्र उवाच

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे
सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं
तस्माद् वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! यह पुरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति और नाशमें स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्माने धागेसे बँधी हुई कठपुतलीकी भाँति इसे प्रारब्धके अधीन कर रखा है; इसलिये तुम कहते चलो, मैं सुननेके लिये धैर्य धारण किये बैठा हूँ ॥ १ ॥

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥ २ ॥

विदुरजी बोले—भारत! समयके विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ बोलें तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धिकी भी अवज्ञा ही होगी ॥ २ ॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥ ३ ॥

संसारमें कोई मनुष्य दान देनेसे प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलनेसे प्रिय होता है और तीसरा मन्त्र तथा औषधके बलसे प्रिय होता है; किंतु जो वास्तवमें प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है ॥ ३ ॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥ ४ ॥

जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु, न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही जान पड़ता है। प्रिय व्यक्ति (मित्र आदि) के तो सभी कर्म शुभ ही प्रतीत होते हैं और शत्रुके सभी कार्य पापमय ॥ ४ ॥

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्
दुर्योधनं त्यज पुत्रमेकम् ।
तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धि-
रस्यात्यागात् पुत्रशतस्य नाशः ॥ ५ ॥

राजन्! दुर्योधनके जन्म लेते ही मैंने कहा था कि केवल इस एक पुत्रको आप त्याग दें। इसके त्यागनेसे सौ पुत्रोंकी वृद्धि होगी और त्याग न करनेसे सौ पुत्रोंका नाश होगा ॥ ५ ॥

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥ ६ ॥

जो वृद्धि भविष्यमें नाशका कारण बने, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये और उस क्षयका भी बहुत आदर

करना चाहिये जो आगे चलकर अभ्युदयका कारण हो॥

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्॥

महाराज! वास्तवमें जो क्षय वृद्धिका कारण होता है, वह क्षय नहीं है; किंतु उस लाभको भी क्षय ही मानना चाहिये, जिसे पानेसे बहुत-से लाभोंका नाश हो जाय॥

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय॥

धृतराष्ट्र! कुछ लोग गुणमें बढ़े-चढ़े होते हैं और कुछ लोग धनमें। जो धनके धनी होते हुए भी गुणोंसे हीन हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिये॥

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह परिणाममें हितकर, बुद्धिमानोंद्वारा अनुमोदित है; यह भी ठीक है कि जहाँ धर्म होता है, वहीं जय होती है; तो भी मैं अपने बेटेका त्याग नहीं कर सकता॥

विदुर उवाच

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते॥

विदुरजी बोले—राजन्! जो अधिक गुणोंसे सम्पन्न और विनयी है, वह प्राणियोंका तनिक-सा भी संहार होते देख उसकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता॥

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः॥
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम्॥

जो दूसरोंकी निन्दामें ही लगे रहते हैं, दूसरोंको दुःख देने और आपसमें फूट डालनेके लिये सदा उत्साहके साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोषसे भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहनेमें भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगोंसे धन लेनेमें महान् दोष है और उन्हें देनेमें बहुत बड़ा भय है॥

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः॥

दूसरोंमें फूट डालनेका जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखनेके अयोग्य—निन्दित माने गये हैं॥

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति॥
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत् सुखम्॥

उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्योंका त्याग कर देना चाहिये। सौहार्दभाव निवृत्त हो जानेपर नीच पुरुषोंका प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्दसे होनेवाले फलकी सिद्धि और सुखका भी नाश हो जाता है॥

यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति॥

फिर वह नीच पुरुष निन्दा करनेके लिये यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जानेपर मोहवश विनाशके लिये उद्योग आरम्भ कर देता है, उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती॥

तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः।
निशाम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद् विवर्जयेत्॥

वैसे नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषोंसे होनेवाले सङ्गपर अपनी बुद्धिसे पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूरसे ही त्याग दे॥

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते॥

जो अपने कुटुम्बी दरिद्र, दीन तथा रोगीपर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओंसे वृद्धिको प्राप्त होता और अनन्त कल्याणका अनुभव करता है॥

ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम्।
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर॥

राजेन्द्र! जो लोग अपने भलेकी इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जातिभाइयोंको उन्नतिशील बनाना चाहिये; इसलिये आप भलीभाँति अपने कुलकी वृद्धि करें॥

श्रेयसा योक्ष्यसे राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्॥

राजन्! जो अपने कुटुम्बियोंका सत्कार करता है, वह कल्याणका भागी होता है॥

विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः॥

भरतश्रेष्ठ! अपने कुटुम्बके लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये; फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है?॥

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते।
दीयन्तां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर॥

राजन्! आप समर्थ हैं, वीर पाण्डवोंपर कृपा कीजिये और उनकी जीविकाके लिये कुछ गाँव दे दीजिये॥

एवं लोके यशःप्राप्तिर्भविष्यति नराधिप।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम्॥

और मैं भी इस कुलमें जन्मा हूँ। सब कुछ जानता हूँ, आप वृद्ध हैं इसलिये आपको अपने कुलका कल्याण करना चाहिये ॥

मया चापि हितं वाक्यं विधिवत् त्वद्धितैषिणा।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ! मुझे भी आपसे हितकी ही बात कहनी चाहिये। आप मुझे अपना हितैषी समझें। तात! शुभ चाहनेवालेको अपने जातिभाइयोंके साथ झगड़ा नहीं करना चाहिये, बल्कि उनके साथ मिलकर सुखका उपभोग करना चाहिये ॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ २४ ॥

जाति-भाइयोंके साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है, उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिये ॥

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥

इस जगत्‌में जाति-भाई ही तारते और जाति-भाई ही डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं ॥

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥ २६ ॥

राजेन्द्र! आप पाण्डवोंके प्रति सद्‌व्यवहार करें। मानद! उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओंके लिये दुर्जय हो जायँगे ॥

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥ २७ ॥

विषसे बुझे हुए बाण हाथमें लिये हुए व्याधके पास पहुँचकर जैसे हरिनको कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार जो जाति-बन्धु अपने धनी बन्धुके पास पहुँचकर दुःख पाता है, उसके पापका भागी वह धनी होता है ॥

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय ॥

नरश्रेष्ठ! आप पाण्डवोंको अथवा अपने पुत्रोंको मारे गये सुनकर पीछे संताप करेंगे, अतः इस बातका पहले ही विचार कर लीजिये ॥

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २९ ॥

इस जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। अतएव जिस कर्मके करनेसे अन्तमें खाटपर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहलेसे ही नहीं करना चाहिये ॥

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ ३० ॥

शुक्राचार्यके सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो नीतिका उल्लङ्घन नहीं करता, अतः जो बीत गया सो बीत गया, शेष कर्तव्यका विचार आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंपर ही निर्भर है ॥

दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यनेयं नरेश्वर ॥ ३१ ॥

नरेश्वर! दुर्योधनने पहले यदि पाण्डवोंके प्रति यह अपराध किया है तो आप इस कुलमें बड़े-बूढ़े हैं, आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिये ॥

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥ ३२ ॥

नरश्रेष्ठ! यदि आप उनको राजपदपर स्थापित कर देंगे तो संसारमें आपका कलङ्क धुल जायगा और आप बुद्धिमान् मनुष्योंके माननीय हो जायँगे ॥

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३३ ॥

जो धीर पुरुषोंके सुन्दर वचनोंके परिणामपर विचार करके उन्हें कार्यरूपमें परिणत करता है, वह चिरकालतक यशका भागी बना रहता है ॥

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥ ३४ ॥

अत्यन्त कुशल विद्वानोंके द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ ही है, यदि उससे कर्तव्यका ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होनेपर भी उसका अनुष्ठान न हुआ ॥

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते।
यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥ ३५ ॥

जो विद्वान् पापरूप फल देनेवाले कर्मोंका आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है; किंतु जो पूर्वमें किये हुए पापोंका विचार न करके उन्हींका अनुसरण करता है, वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य अगाध कीचड़से भरे हुए घोर नरकमें गिराया जाता है ॥

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥ ३६ ॥
मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥ ३७ ॥

बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रभेदके इन छः द्वारोंको जाने और धनकी रक्षाकी इच्छासे इन्हें सदा बंद रखे—नशेका सेवन, निद्रा, आवश्यक बातोंकी जानकारी

स्वतन्त्र अपने नेत्र-मुख आदिका विकार तुम मन्त्रिके … [illegible] और कार्यमें कुशल … भी … [illegible]

आकारमेंतापि यो ज्ञात्वा तद्गुणानि स्वयं नृप
विमर्शोपरक्षे युक्तः स … [illegible]

राजन् … [illegible] रहता है वह … [illegible] कार्यमें … [illegible] आदि वशमें कर … [illegible] है

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि

बृहस्पतिके समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान … [illegible] सेवा किये बिना धर्म और अर्थका ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम्

समुद्रमें गिरी हुई वस्तु … [illegible] जो सुनता नहीं उससे कही हुई बात भी निष्फल हो जाती है अजितेन्द्रिय पुरुषका शास्त्रज्ञान और राखमें किया हवन भी नष्ट ही है

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत्

बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिसे जाँचकर … [illegible] बारंबार उसकी योग्यताका निश्चय करे फिर दूसरोंसे सुनकर और स्वयं देखकर भलीभाँति विचार करके विद्वानोंके साथ मित्रता करे

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्

विनय अपयशका नाश करता है पराक्रम अनर्थको दूर करता है … [illegible] क्रोधका नाश करती है और सदाचार कुलक्षणका अंत करता है

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च

राजन् … [illegible] प्रकारसे … [illegible] घर … [illegible] भोजन और … [illegible] इन सबके द्वारा कुलकी परीक्षा

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः

देहाभिमानसे रहित पुरुषके … [illegible] न्याययुक्त … [illegible] उपस्थित हो तो वह उसका विरोध नहीं करता फिर कामासक्त मनुष्यके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ४४ ॥

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥ ४५ ॥

जो विद्वानोंकी सेवामें रहनेवाला वैद्य धार्मिक देखनेमें सुन्दर मित्रोंसे युक्त तथा मधुरभाषी हो ऐसे सुहृद्की रक्षा करनी चाहिये

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत्
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद् वरः ॥ [illegible]

अधम कुलमें उत्पन्न हुआ हो या … [illegible] कुलमें—जो मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता धर्मकी अपेक्षा रखता है कोमल स्वभाववाला तथा लज्जाशील है वह सैकड़ों कुलीनोंसे बढ़कर है

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ॥ ४७ ॥

जिन दो मनुष्योंका चित्तसे चित्त गुप्त रहस्यसे गुप्त रहस्य और बुद्धिसे बुद्धि मिल जाती है उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति ॥ ४८ ॥

मेधावी पुरुषको चाहिये कि तृणसे ढके हुए कुएँकी भाँति दुर्बुद्धि एवं विचारशक्तिसे … [illegible] का परित्याग कर दे क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ॥ [illegible]

विद्वान् पुरुषको उचित है कि अभिमानी मूर्ख क्रोधी साहसिक और धर्महीन पुरुषोंके साथ मित्रता … [illegible] करे

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते

मित्र तो … [illegible] होना चाहिये जो कृतज्ञ धार्मिक सत्यवादी उदार दृढ़ अनुराग रखनेवाला जितेन्द्रिय मर्यादाके भीतर रहनेवाला और मित्रताका त्याग न करनेवाला हो

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि

इन्द्रियोंको सब … [illegible] रोक रखना तो मृत्युसे भी बढ़कर कठिन है और उन्हें बिल्कुल खुली छोड़ देना देवताओंको भी नाश … [illegible] ना है

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाभिमानना

सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव गुणोंमें दोष न देखना क्षमा धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ॥ ५१ ॥

जो बात हुई ... उसके लिये ... करता है ... उत्तम आचरण करता है ॥ ५३ ॥

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ॥ ५४ ॥

जो आनेवाले दुःखको रोकनेका उपाय जानता है, वर्तमान कालिक कर्तव्यके पालनमें दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीतकालमें जो कर्तव्य शेष रह गया है उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थसे हीन नहीं होता ॥ ५४ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत् ॥ ५५ ॥

मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कर्म उस पुरुषको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये सदा कल्याणकारी कर्मोंको ही करे ॥ ५५ ॥

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥ ५६ ॥

माङ्गलिक पदार्थोंका स्पर्श, चित्तवृत्तियोंका निरोध, शास्त्रका अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषोंका बारंबार दर्शन—ये सब कल्याणकारी हैं ॥ ५६ ॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते ॥ ५७ ॥

उद्योगमें लगे रहना—उससे विरक्त न होना धन, लाभ और कल्याणका मूल है। इसलिये उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अनन्त सुखका उपभोग करता है ॥ ५७ ॥

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ॥ ५८ ॥

तात! समर्थ पुरुषके लिये सब जगह और सब समयमें क्षमाके समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है ॥ ५८ ॥

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥ ५९ ॥

जो शक्तिहीन है, वह तो सबपर क्षमा करे ही; जो शक्तिमान् है, वह भी धर्मके लिये क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टिमें अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिये तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है ॥ ५९ ॥

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥ ६० ॥

जिस सुखका सेवन करते रहनेपर भी मनुष्य धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे; किंतु मूढ़व्रत आचरण (निरा प्रमादपूर्ण जीवन) न करे ॥ ६० ॥

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥ ६१ ॥

जो दुःखसे पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता ॥ ६१ ॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥ ६२ ॥

खोटी बुद्धिवाले लोग सरलतासे युक्त और सरलताके ही कारण लज्जाशील मनुष्यको अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं ॥ ६२ ॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥ ६३ ॥

अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अतीव शूरवीर, अधिक व्रत-नियमोंका पालन करनेवाले और बुद्धिके घमंडमें चूर रहनेवाले मनुष्यके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं जाती ॥ ६३ ॥

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ॥ ६४ ॥

लक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानोंके पास रहती है और न अत्यन्त निर्गुणोंके पास। यह न तो बहुत-से गुणोंको चाहती है और न गुणहीनताके प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौकी भाँति यह अंधी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है ॥ ६४ ॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ ६५ ॥

वेदोंका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययनका फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्रीका फल है रति-सुख और पुत्रकी प्राप्ति तथा धनका फल है दान और उपभोग ॥ ६५ ॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥ ६६ ॥

जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे पारलौकिक कर्म करता है, वह मरनेके पश्चात् उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे रास्तेसे आया होता है ॥ ६६ ॥

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ॥ ६७ ॥

घोर जंगलमें, दुर्गम मार्गोंमें, कठिन आपत्तिके समय, घबराहटमें और प्रहारके लिये शस्त्र उठे रहनेपर भी मनमें बलवान् अर्थात् सात्त्विकबलसे युक्त पुरुषोंको भय नहीं होता ॥ ६७ ॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥ ६८ ॥

उद्योग समय रक्षा सावधानी धर्म स्त्री और ... ... करने इन्हें उपस्थित ... समझिये ।

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥ ६९ ॥

तपस्वियोंका बल है तप, वेदवेत्ताओंका बल है वेद, पापियोंका बल है हिंसा और गुणवानोंका बल है क्षमा ॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ ७० ॥

जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन और औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं होते ॥

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
संक्षेपेण धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ७१ ॥

जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके प्रति भी नहीं करना चाहिये । ... ... इसके विपरीत ... आचरणमें प्रवृत्ति होती है, वह तो अधर्म है ॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम् ॥ ७२ ॥

अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको सद्व्यवहारसे वशमें करे, कृपणको दानसे जीते और झूठपर सत्यसे विजय प्राप्त करे ॥

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥ ७३ ॥

स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्वके अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥ ७४ ॥

जो नित्य गुरुजनोंको प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं ॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ७५ ॥

जो धन अत्यन्त कष्ट उठानेसे, धर्मका उल्लङ्घन करनेसे अथवा शत्रुके सामने सिर झुकानेसे प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाइये ॥

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥ ७६ ॥

विद्याहीन पुरुष, संतानोत्पत्तिरहित स्त्रीप्रसङ्ग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजाके राष्ट्रके लिये शोक करना चाहिये ॥

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥ ७७ ॥

अधिक राह चलना देहधारियोंके लिये दुःखरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतोंका बुढ़ापा है, सम्भोगसे वञ्चित रहना स्त्रियोंके लिये बुढ़ापा है और वचनरूपी बाणोंका आघात मनके लिये बुढ़ापा है ॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ॥ ७८ ॥
मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥ ७९ ॥

अभ्यास न करना वेदोंका मल है, ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन न करना ब्राह्मणका मल है, बाह्लीकदेश (वाहीक) पृथ्वीका मल है तथा झूठ बोलना पुरुषका मल है, क्रीडा एवं हास-परिहासकी उत्सुकता पतिव्रता स्त्रीका मल है और पतिके बिना परदेशमें रहना स्त्रीमात्रका मल है ॥

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ८० ॥

सोनेका मल है चाँदी, चाँदीका मल है राँगा, राँगेका मल है सीसा और सीसेका मल है मलमात्र ॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥ ८१ ॥

अधिक सोकर नींदको जीतनेका प्रयास न करे, कामोपभोगके द्वारा स्त्रीको जीतनेकी इच्छा न करे, लकड़ी डालकर आगको जीतनेकी आशा न रखे और अधिक पीकर मदिरा पीनेकी आदतको जीतनेका प्रयास न करे ॥

यस्य दानजितं मित्रममित्रा युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥ ८२ ॥

जिसका मित्र धन-दानके द्वारा वशमें आ चुका है, शत्रु युद्धमें जीत लिये गये हैं और स्त्रियाँ खान-पानके द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है अर्थात् सुखमय है ॥

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथंचिन्न जीव्यते ॥ ८३ ॥

जिनके पास हजार रुपये हैं, वे भी जीवित हैं तथा जिनके पास सौ रुपये हैं, वे भी जीवित हैं; अतः महाराज धृतराष्ट्र! आप अधिकका लोभ छोड़ दीजिये, इससे भी किसी तरह जीवन नहीं रहेगा, यह बात नहीं है ॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ८४ ॥

इस पृथ्वीपर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ

है। वे सब केवल एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं अर्थात् उनसे किसीकी भी तृप्ति नहीं हो सकती। ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता ॥ ८४ ॥

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु समभावतः।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ॥ ८५ ॥

राजन्! मैं फिर कहता हूँ, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवोंमें समानभाव है तो उन सभी पुत्रोंके साथ एक-सा बर्ताव कीजिये ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरवाक्यविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

धर्मकी महत्ताका प्रतिपादन तथा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके धर्मका संक्षिप्त वर्णन

विदुर उवाच

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः
करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्त-
मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः ॥ १ ॥

विदुरजी कहते हैं—राजन्! जो मनुष्य सज्जन पुरुषोंसे आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्तिके अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुषको शीघ्र ही सुयशकी प्राप्ति होती है; क्योंकि संत जिसपर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है ॥ १ ॥

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं
यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं स दुःखान्यवमुच्य शेते
जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य ॥ २ ॥

जो अधर्मसे उपार्जित महान् धनराशिको भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है, वह जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ता है, उसी प्रकार दुःखोंसे मुक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है ॥ २ ॥

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥

झूठ बोलकर उन्नति करना, राजातक चुगली पहुँचाना, गुरुसे भी झूठा आग्रह करना—ये तीन कार्य ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ३ ॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥ ४ ॥

गुणोंमें दोष देखना एकदम मृत्युके समान है। कठोर बोलना लक्ष्मीका वध है तथा सेवाका अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा—ये तीन विद्याके शत्रु हैं ॥ ४ ॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥ ५ ॥

आलस्य, मद, मोह, चपलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान और लोभ—ये सात विद्यार्थियोंके लिये सदा ही दोष माने गये हैं ॥ ५ ॥

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥ ६ ॥

सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँसे मिले? विद्या चाहनेवालेके लिये सुख नहीं है। सुखकी चाह हो तो विद्याको छोड़े और विद्या चाहे तो सुखका त्याग करे ॥ ६ ॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ७ ॥

ईंधनसे आगकी, नदियोंसे समुद्रकी, समस्त प्राणियोंसे मृत्युकी और पुरुषोंसे कुलटा स्त्रीकी कभी तृप्ति नहीं होती ॥ ७ ॥

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः
क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्-
नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥ ८ ॥

आशा धैर्यको, यमराज समृद्धिको, क्रोध लक्ष्मीको, कृपणता यशको और देखभालका अभाव पशुओंको नष्ट कर देता है; परंतु राजन्! ब्राह्मण यदि अकेला ही क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्रका नाश कर देता है ॥ ८ ॥

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं
मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन
एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥ ९ ॥

बकरियाँ, काँसेके पात्र, चाँदी, मधु, मधु खींचनेका यन्त्र, पक्षी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, बूढ़ा कुटुम्बी और विपत्तिग्रस्त कुलीन पुरुष—ये सब आपके घरमें सदा मौजूद रहें ॥ ९ ॥

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥ १० ॥
गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥ ११ ॥

भारत ! ऋषियोंने कहा है कि देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियोंकी पूजाके लिये सफेद बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, तॉबेके बर्तन, शङ्ख, शालग्राम और गोरोचन—ये सब वस्तुएँ घरपर रखनी चाहिये ॥ १०-११ ॥

एवं च त्वा सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ १२ ॥
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये
संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥ १३ ॥

तात ! अब मैं तुम्हें वह सबसे श्रेष्ठ एवं बहुत बड़े पुण्यजनक बात बता रहा हूँ—कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है किंतु सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है पर इसका कारण अनित्य है। आप अनित्यको छोड़कर नित्यमें स्थित होइये और संतोष धारण कीजिये; क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है ॥ १२-१३ ॥

महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्
गतान् नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य ॥ १४ ॥

धन-धान्यादिसे परिपूर्ण पृथ्वीका शासन करके अन्तमें समस्त राज्य और विपुल भोगोंको यहीं छोड़कर यमराजके वशमें गये हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओंकी ओर दृष्टि डालिये ॥ १४ ॥

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्त-
श्चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ १५ ॥

राजन् ! जिसको बड़े कष्टसे पाला-पोसा था, वही पुत्र जब मर जाता है, तब मनुष्य उसे उठाकर तुरंत अपने घरसे बाहर कर देते हैं। पहले तो उसके लिये बाल छितराये करुणाभरे स्वरसे विलाप करते हैं, फिर साधारण काठकी भाँति उसे जलती चितामें झोंक देते हैं ॥ १५ ॥

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ १६ ॥

मरे हुए मनुष्यका धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीरकी धातुओंको पक्षी खाते हैं या आग जलाती है।

यह मनुष्य पुण्य-पापसे बँधा हुआ इन्हीं दोनोंके साथ परलोकमें गमन करता है ॥ १६ ॥

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥ १७ ॥

तात ! जैसे फल-फूलसे हीन वृक्षको पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेतको उसके जातिवाले, सुहृद् और पुत्र चितामें छोड़कर लौट आते हैं ॥ १७ ॥

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः ॥ १८ ॥

अग्निमें डाले हुए उस पुरुषके पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है। इसलिये पुरुषको चाहिये कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्मका ही संग्रह करे ॥ १८ ॥

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो
महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम्।
तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां
बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन् ॥ १९ ॥

इस लोक और परलोकसे ऊपर और नीचेतक सर्वत्र अज्ञानरूप महान् अन्धकार फैला हुआ है। वह इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है। राजन् ! आप इसको जान लीजिये जिससे वह आपका स्पर्श न कर सके ॥ १९ ॥

इदं वचः शक्ष्यसि चेद् यथाव-
न्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेवम्।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके
भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥ २० ॥

मेरी इस बातको सुनकर यदि आप सब ठीक-ठीक समझ सकेंगे तो इस मनुष्यलोकमें आपको महान् यश प्राप्त होगा और इहलोक तथा परलोकमें आपके लिये भय नहीं रहेगा ॥ २० ॥

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था
सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥ २१ ॥

भारत ! यह जीवात्मा एक नदी है। इसमें पुण्य ही तीर्थ है। सत्यस्वरूप परमात्मासे इसका उद्गम हुआ है। धैर्य ही इसके किनारे हैं। दया इसकी लहरें हैं। पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है; क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है ॥ २१ ॥

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर ॥ २२ ॥

काम-क्रोधादिरूप ग्राहसे भरी, पाँच इन्द्रियोंके जलसे

तुम इस संसाररूपी जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाहको धैर्यकी नौका बनाकर पार कीजिये॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं
विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य
यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्॥ २३॥

जो बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्थामें बड़े अपने बन्धुको आदर-सत्कारसे प्रसन्न करके उससे कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें प्रश्न करता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥ २४॥

शिश्न और उदरकी धैर्यसे रक्षा करे, अर्थात् कामवेग और भूखकी ज्वालाको धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथ-पैरकी नेत्रोंसे, नेत्र और कानोंकी मनसे तथा मन और वाणीकी सत्कर्मोंसे रक्षा करे॥

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती
नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
ऋतं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन्
न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्॥ २५॥

जो प्रतिदिन जलसे स्नान-संध्या तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितोंका अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता और गुरुकी सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता॥

अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नी-
निष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च।
गोब्राह्मणार्थे शस्त्रपूतान्तरात्मा
हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति॥ २६॥

वेदोंको पढ़कर, अग्निहोत्रके लिये अग्निके चारों ओर कुश बिछाकर, नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन कर और प्रजाजनोंका पालन करके गौ और ब्राह्मणोंके हितके लिये संग्राममें मृत्युको प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्रसे अन्तःकरण पवित्र हो जानेके कारण ऊर्ध्वलोकको जाता है॥

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च
धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च।
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं
प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते॥ २७॥

वैश्य यदि वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनोंको समय-समयपर धन देकर उनकी सहायता करे और यज्ञोंद्वारा तीनों अग्नियोंके* पवित्र धूमकी सुगन्ध लेता रहे, तो वह मरनेके पश्चात् स्वर्गलोकमें दिव्य सुख भोगता है॥

ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः
क्रमेणैतान् न्यायतः पूजयानः।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपाप-
स्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते॥ २८॥

शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी क्रमसे न्यायपूर्वक सेवा करके इन्हें संतुष्ट करता है, तो वह व्यथासे रहित हो पापोंसे मुक्त होकर देह-त्यागके बाद स्वर्गसुखका उपभोग करता है॥

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो
हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध।
क्षात्राद् धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्र-
स्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुङ्क्ष्व॥ २९॥

महाराज! आपसे यह मैंने चारों वर्णोंका धर्म बताया है; इसे बतानेका कारण भी सुनिये। आपके कारण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर क्षत्रियधर्मसे गिर रहे हैं, अतः आप उन्हें पुनः राजधर्ममें नियुक्त कीजिये॥

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम्॥ ३०॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! तुम प्रतिदिन मुझे जिस प्रकार उपदेश दिया करते हो, वह सब ठीक है। सौम्य! तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है॥

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते॥ ३१॥

यद्यपि मैं पाण्डवोंके प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ, तथापि दुर्योधनसे मिलनेपर फिर बुद्धि पलट जाती है॥

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम्॥ ३२॥

प्रारब्धका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति किसी भी प्राणीमें नहीं है। मैं तो प्रारब्धको ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत प्रजागरपर्वमें विदुरवाक्यविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

---

* गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि—ये तीन अग्नियाँ हैं।

(सनत्सुजातपर्व)

एकचत्वारिंशोऽध्याय

विदुरजीके द्वारा स्मरण करनेपर आये हुए सनत्सुजात ऋषिसे धृतराष्ट्रको उपदेश देनेके लिये उनकी प्रार्थना

धृतराष्ट्र उवाच

अनुक्तं यदि ते किंचिद् वाचा विदुर विद्यते।
तन्मे शुश्रूषवे ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे॥

धृतराष्ट्र बोले— विदुर! यदि तुम्हारी वाणीसे कुछ और कहना शेष रह गया हो तो कहो, मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है; क्योंकि तुम्हारे कहनेकी शैली विचित्र है।

विदुर उवाच

धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः।
सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत॥

विदुरने कहा— भरतवंशी धृतराष्ट्र! कुमार सनत्सुजात नामसे विख्यात जो अत्यन्त प्राचीन सनातन ऋषि हैं, उन्होंने ... कहा था ... मृत्यु है ही नहीं।

स ते गुह्यान् प्रकाशांश्च सर्वान् हृदयसंश्रयान्।
प्रवक्ष्यति महाराज सर्वबुद्धिमतां वरः॥ ३॥

महाराज! ... समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, वे ... हृदयमें स्थित ... और ... सभी प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर ...

धृतराष्ट्र उवाच

किं त्वं न वेद तद् भूयो यन्मे ब्रूयात् सनातनः।
त्वमेव विदुर ब्रूहि प्रज्ञाशेषोऽस्ति चेत् तव॥ ४॥

धृतराष्ट्रने कहा— विदुर! क्या तुम उस तत्त्वको नहीं जानते, जिसे अब पुनः सनातन ऋषि मुझे बतायेंगे? यदि तुम्हारी बुद्धि कुछ भी काम देती हो तो तुम्हीं मुझे उपदेश करो।

विदुर उवाच

शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद् वक्तुमुत्सहे।
कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम्॥ ५॥

विदुर बोले— राजन्! मेरा जन्म शूद्रा स्त्रीके गर्भसे हुआ है, अतः मेरा अधिकार नहीं है; इसके अतिरिक्त और कोई उपदेश देनेका मैं साहस नहीं कर सकता। किंतु कुमार सनत्सुजातकी बुद्धि सनातन है, मैं उसे जानता हूँ।

ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपि यो वदेत्।
न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद् ब्रवीमि ते॥ ६॥

ब्राह्मण-योनिमें जिसका जन्म हुआ है, वह यदि गोपनीय तत्त्वका प्रतिपादन कर दे तो देवताओंकी निन्दाका पात्र नहीं होता। इसी कारण मैं आपको ... कह रहा हूँ।

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रवीहि विदुर त्वं मे पुराणं तं सनातनम्।
कथमेतेन देहेन स्यादिहैव समागमः॥ ७॥

धृतराष्ट्रने कहा— विदुर! उन परम प्राचीन सनातन ऋषिका पता मुझे बताओ। ... इस देहसे यहीं उनका समागम कैसे हो सकता है?

वैशम्पायन उवाच

चिन्तयामास विदुरस्तमृषिं संशितव्रतम्।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास भारत॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— राजन्! तदनन्तर विदुरजीने उत्तम व्रतवाले उन ... ऋषिका स्मरण किया। उन्होंने भी यह जानकर कि विदुर मेरा स्मरण कर रहे हैं, प्रत्यक्ष दर्शन दिया।

स चैनं प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा।
सुखोपविष्टं विश्रान्तमथैनं विदुरोऽब्रवीत्॥

विदुरने शास्त्रोक्त विधिसे पाद्य, अर्घ्य एवं मधुपर्क आदि अर्पण करके उनका स्वागत किया। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम करने लगे, तब विदुरने उनसे कहा—

भगवन् संशयः कश्चिद् धृतराष्ट्रस्य मानसे।
यो न शक्यो मया वक्तुं तमस्मै वक्तुमर्हसि॥

भगवन्! धृतराष्ट्रके हृदयमें कुछ संशय है, जिसका समाधान मेरे द्वारा किया जाना उचित नहीं है। आप ही इस विषयका निरूपण करने योग्य हैं।

यं श्रुत्वायं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत्।
लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरान्तकौ।

[illegible] ॥ २८ ॥

और [illegible] प्रिय [illegible] मनुष्य [illegible] भूमण्डलमें ... देवी [illegible] काम-क्रोध [illegible] उन्नति—ये [illegible] चाहिये ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि विदुरकृतसनत्सुजातप्रार्थने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सनत्सुजातपर्वमें विदुरजीके द्वारा सनत्सुजात ऋषिकी प्रार्थनाविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्याय

सनत्सुजातजीके द्वारा धृतराष्ट्रके विविध प्रश्नोंका उत्तर

वैशम्पायन उवाच

ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी
सम्पूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत्।
सनत्सुजातं रहिते महात्मा
पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर बुद्धिमान् एवं महामना राजा धृतराष्ट्रने विदुरके कहे हुए उस वचनका भलीभाँति आदर करके उत्कृष्ट ज्ञानकी इच्छासे एकान्तमें सनत्सुजात मुनिसे प्रश्न किया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि
न मृत्युरस्तीति तवोपदेशम्।
देवासुरा ह्याचरन् ब्रह्मचर्य-
ममृत्यवे तत् कतरन्नु सत्यम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी! मैं यह सुना करता हूँ कि मृत्यु है ही नहीं, यह आपका सिद्धान्त है। साथ ही यह भी सुना है कि देवता और असुरोंने मृत्युसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन किया था। इन दोनोंमें कौन-सी बात सत्य है? ॥ २ ॥

सनत्सुजात उवाच

अमृत्युः कर्मणा केचिन्मृत्युर्नास्तीति चापरे।
शृणु मे ब्रुवतो राजन् यथैतन्मा विशङ्किथाः ॥ ३ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! इस विषयमें दो पक्ष हैं—मृत्यु है और वह ब्रह्मचर्यादि कर्मसे दूर होती है—यह एक पक्ष है और मृत्यु है ही नहीं—यह दूसरा पक्ष है। परंतु यह बात जैसी है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो और मेरे कथनमें सन्देह न करना ॥ ३ ॥



उभे सत्ये क्षत्रियाद्यप्रवृत्ते
मोहो मृत्युः सम्मतो यः कवीनाम्।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि
तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ ४ ॥

क्षत्रिय! उक्त दोनों ही पक्षोंका [illegible] कुछ विद्वानोंने मोहवश मृत्युकी सत्ता स्वीकार की है, किंतु मेरा कहना है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है ॥ ४ ॥

प्रमादाद् वै असुराः पराभव-
न्नप्रमादाद् ब्रह्मभूताः सुराश्च।
नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून्
न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥ ५ ॥

प्रमादके ही कारण असुरगण आसुरी सम्पत्तिवाले मृत्युसे पराजित हुए और अप्रमादसे ही देवगण दैवी सम्पत्तिवाले ब्रह्मस्वरूप हुए। यह निश्चय है कि मृत्यु व्याघ्रके समान प्राणियोंका भक्षण नहीं करती; क्योंकि उसका कोई रूप देखनेमें नहीं आता ॥ ५ ॥

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहु-
रात्मावसन्तममृतं ब्रह्मचर्यम् ।
पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः
शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम् ॥ ६ ॥

कुछ लोग इस प्रमादसे भिन्न यमको मृत्यु कहते हैं और हृदयमें दृढ़तापूर्वक पालन किये हुए ब्रह्मचर्यको ही अमृत मानते हैं। यमदेव पितृलोकमें राज्य-शासन करते हैं। वे पुण्यात्माओंके लिये मङ्गलमय और पापियोंके लिये अमङ्गलमय हैं ॥ ६ ॥

आस्यादेष निःसरते नराणां
क्रोधः प्रमादो लोभरूपश्च मृत्युः ।
अहंगतेनैव चरन् विमार्गान्
न चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥ ७ ॥

इस यमकी आज्ञासे ही क्रोध, प्रमाद और लोभरूपी मृत्यु मनुष्योंके विनाशमें प्रवृत्त होती है। अहंकारके वशीभूत होकर विपरीत मार्गपर चलता हुआ कोई भी मनुष्य परमात्माका साक्षात्कार नहीं कर पाता ॥ ७ ॥

ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना
इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति ।
ततस्तान् देवा अनुविप्लवन्ते
अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति ॥ ८ ॥

मनुष्य (क्रोध, प्रमाद और लोभसे) मोहित होकर अहंकारके अधीन हो इस लोकसे जाकर पुनः पुनः जन्म-मरणके चक्करमें पड़ते हैं। मरनेके बाद उनके मन, इन्द्रिय और प्राण भी साथ जाते हैं। शरीरसे प्राणरूपी इन्द्रियोंका वियोग होनेके कारण मृत्यु 'मरण' संज्ञाको प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

कर्मोदये कर्मफलानुरागा-
स्तत्रानुयान्ति न तरन्ति मृत्युम् ।
सदर्थयोगानवगमात् समन्तात्
प्रवर्तते भोगयोगेन देही ॥ ९ ॥

प्रारब्ध कर्मका उदय होनेपर कर्मोंके फलमें आसक्ति रखनेवाले लोग (देहत्यागके पश्चात्) परलोकका अनुगमन करते हैं; इसीलिये वे मृत्युको पार नहीं कर पाते। देहाभिमानी जीव परमात्माके साक्षात्कारके उपायको न जाननेसे विषयोंके उपभोगके कारण सब ओर (नाना प्रकारकी योनियोंमें) भटकता रहता है ॥ ९ ॥

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां
मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या ।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा
स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात् ॥ १० ॥

इस प्रकार विषयोंका जो भोग है, वह अवश्य ही इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है और इन झूठे विषयोंमें राग रखनेवाले मनुष्यकी उनकी ओर प्रवृत्ति होनी स्वाभाविक है। मिथ्याभोगोंमें आसक्ति होनेसे जिसके अन्तःकरणकी ज्ञानशक्ति नष्ट हो गयी है, वह सब ओर विषयोंका ही चिन्तन करता हुआ मन-ही-मन उनका आस्वादन करता है ॥ १० ॥

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति चैनं
कामक्रोधौ गृह्य चैनं तु पश्चात् ।
एते बालान् मृत्यवे प्रापयन्ति
धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम् ॥ ११ ॥

पहले तो विषयोंका चिन्तन ही लोगोंको मारे डालता है। इसके बाद वह काम और क्रोधको साथ लेकर पुनः जल्दी ही प्रहार करता है। इस प्रकार ये विषय-चिन्तन (काम और क्रोध) ही विवेकहीन मनुष्योंको मृत्युके निकट पहुँचाते हैं। परन्तु जो स्थिर बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे धैर्यसे मृत्युके पार हो जाते हैं ॥ ११ ॥

सोऽभिध्यायन्नुत्पतितान् निहन्या-
दनादरेणाप्रतिबुध्यमानः ।
नैनं मृत्युर्मृत्युरिवात्ति भूत्वा
एवं विद्वान् यो विनिहन्ति कामान् ॥ १२ ॥

(अतः जो मृत्युको जीतनेकी इच्छा रखता है,) उसे चाहिये कि परमात्माका ध्यान करके विषयोंको तुच्छ मानकर उन्हें कुछ भी न गिनते हुए उनकी कामनाओंको उत्पन्न होते ही नष्ट कर डाले। इस प्रकार जो विद्वान् विषयोंकी इच्छाको मिटा देता है, उसको [साधारण मनुष्योंकी] मृत्युकी भाँति मृत्यु नहीं मारती (अर्थात् वह जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है) ॥ १२ ॥

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति ।
कामान् व्युदस्य धुनुते यत् किञ्चित् पुरुषो रजः ॥ १३ ॥

कामनाओंके पीछे चलनेवाला मनुष्य कामनाओंके साथ ही नष्ट हो जाता है। परन्तु ज्ञानी पुरुष कामनाओंका त्याग कर देनेपर जो कुछ भी जन्म-मरणरूप दुःख है, उन सबको नष्ट कर देता है ॥ १३ ॥

तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते ।
मुह्यन्त इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत् सुखम् ॥ १४ ॥

काम ही समस्त प्राणियोंके लिये मोहक होनेके कारण तमोमय और अज्ञानरूप है तथा नरकके समान दुःखदायी देखा जाता है। जैसे मतवाले मोहित हुए पुरुष चलते-चलते गड्ढेकी ओर दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही कामी पुरुष भोगोंमें सुख मानकर उनकी ओर दौड़ते हैं ॥ १४ ॥

अमूढवृत्तेः पुरुषस्येह कुर्यात्
किं वै मृत्युस्तार्ण इवात्र व्याघ्रः।
अमन्यमानः क्षत्रिय किंचिदन्य-
न्नाधीयीत निर्णुदन्निवास्य चाशु ॥ १५ ॥

जिसके चित्तकी वृत्तियाँ विषयभोगोंसे मोहित नहीं हुई हैं, उस ज्ञानी पुरुषका इस लोकमें तिनकोंके बनाये हुए व्याघ्रके समान मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है? इसलिये राजन्! विषयभोगोंके मूल कारणरूप अज्ञानको नष्ट करनेकी इच्छासे दूसरे किसी भी सांसारिक पदार्थको कुछ भी न गिनकर उसका चिन्तन त्याग देना चाहिये ॥ १५ ॥

स क्रोधलोभौ मोहमयान्तरात्मा
स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः।
एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा
ज्ञाने तिष्ठन् न बिभेतीह मृत्योः।
विनश्यते विषये तस्य मृत्यु-
र्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ॥ १६ ॥

जो यह तुम्हारे शरीरके भीतर अन्तरात्मा है, मोहके वशीभूत होकर वही क्रोध, लोभ (प्रमाद) और मृत्युरूप हो जाता है। इस प्रकार मोहसे होनेवाली मृत्युको जानकर जो ज्ञाननिष्ठ हो जाता है, वह इस लोकमें मृत्युसे कभी नहीं डरता। उसके समीप आकर मृत्यु उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्युके अधिकारमें आया हुआ मरणधर्मा मनुष्य ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यानेवाहुरिज्यया साधुलोकान्
द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान्।
तेषां परार्थं कथयन्तीह वेदा
एतद् विद्वान् नोपैति कथं नु कर्म ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र बोले—द्विजातियोंके लिये यज्ञोंद्वारा जिन पवित्र सनातन एवं श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, यहाँ वेद उन्हींको परम पुरुषार्थ कहते हैं। इस बातको जाननेवाला विद्वान् उत्तम कर्मोंका आश्रय क्यों न ले? ॥ १७ ॥

सनत्सुजात उवाच

एवं ह्यविद्वानुपयाति तत्र
तथार्थजातं च वदन्ति वेदाः।
अनीह आयाति परं परात्मा
प्रयाति मार्गेण निहत्य मार्गान् ॥ १८ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! अज्ञानी पुरुष इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोकोंमें गमन करता है तथा वेद कर्मोंके बहुतेरे प्रयोजन भी बताते हैं; परंतु जो निष्काम पुरुष है, वह ज्ञानमार्गके द्वारा अन्य सभी मार्गोंका बाध करके परमात्मस्वरूप होता हुआ ही परमात्माको प्राप्त होता है।

धृतराष्ट्र उवाच

कोऽसौ नियुङ्क्ते तमजं पुराणं
स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण।
किं वास्य कार्यमथवा सुखं च
तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत् ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! यदि वह परमात्मा ही क्रमशः इस सम्पूर्ण जगत्के रूपमें प्रकट होता है तो उस अजन्मा और पुरातन पुरुषपर कौन शासन करता है? अथवा उसे इस रूपमें आनेकी क्या आवश्यकता है और क्या सुख मिलता है? यह सब मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥ १९ ॥

सनत्सुजात उवाच

दोषो महानत्र विभेदयोगे
ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः।
तथास्य नाधिक्यमपैति किंचि-
दनादियोगेन भवन्ति पुंसः ॥ २० ॥

सनत्सुजातने कहा—तुम्हारे इस मतके अनुसार जीव और ब्रह्मका भिन्न भेद मान लेना है, जिसे स्वीकार कर लेनेपर वेदविरोधरूप महान् दोषकी प्राप्ति होती है। अतएव अनादि मायाके सम्बन्धसे जीवोंका कामभोग आदिसे सम्बन्ध होता रहता है। ऐसा होनेपर भी जीवकी महत्ता नष्ट नहीं होती, क्योंकि मायाके सम्बन्धसे जीवके देहादि पुनः उत्पन्न होते रहते हैं ॥ २० ॥

य एतद् वा भगवान् स नित्यो
विकारयोगेन करोति विश्वम्।
तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्यते
तथार्थयोगे च भवन्ति वेदाः ॥ २१ ॥

जो नित्यस्वरूप भगवान् हैं, वे ही अपनी मायाके सम्बन्धसे इस विश्वप्रपञ्चकी सृष्टि करते हैं। यह माया उन्हीं परमात्माकी शक्ति है। महात्मा पुरुष इसे जानते हैं। इस अर्थके प्रतिपादनमें वेद भी प्रमाण हैं ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

येऽस्मिन् धर्मान् नाचरन्तीह केचित्
तथा धर्मान् केचिदिहाचरन्ति।
धर्मः पापेन प्रतिहन्यते स्वि-
दुताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र बोले—इस जगत्में कुछ लोग ऐसे हैं जो धर्मका आचरण नहीं करते तथा कुछ लोग उसका आचरण करते हैं, अतः धर्म पापके द्वारा नष्ट होता है या धर्म ही पापको नष्ट कर देता है? ॥ २२ ॥

सनत्सुजात उवाच

उभयमेव तत्रोपभुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च ॥ २३ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! धर्म और पाप दोनोंके पृथक्-पृथक् फल होते हैं और उन दोनोंका ही उपभोग करना पड़ता है ॥ २३ ॥

तस्मिन् स्थितो वाप्युभयं हि नित्यं
ज्ञानेन विद्वान् प्रणुदन्ति सिद्धम्।
तथाबल्या पुण्यमुपैति देही
तथागतं पापमुपैति सिद्धम् ॥ २४ ॥

किंतु परमात्मामें स्थित होकर विद्वान् पुरुष ज्ञानके द्वारा अपने पूर्वकृत पाप और पुण्य दोनोंका नाश कर देता है, यह बात सदा प्रसिद्ध है। यदि ऐसी स्थिति नहीं हुई तो देहाभिमानी मनुष्य कभी पुण्यफलको प्राप्त करता है और कभी क्रमशः प्राप्त हुए पूर्वार्जित पापके फलका अनुभव करता है ॥ २४ ॥

गत्वोभयं कर्मणा भुज्यतेऽस्थिरं
शुभस्य पापस्य स चापि कर्मणा।
धर्मेण पापं प्रणुदतीह विद्वान्
धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः ॥ २५ ॥

इस प्रकार पुण्य और पापके जो स्वर्ग-नरकरूप दो अस्थिर फल हैं, उनका भोग करके वह जगत्‌में जन्म ले पुनः तदनुसार कर्मोंमें लग जाता है, किंतु कर्मोंके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष निष्कामधर्मरूप साधनके द्वारा अपने पूर्वपापका यहाँ ही नाश कर देता है। इस प्रकार धर्म ही अत्यन्त बलवान् है, इसलिये निष्कामभावसे धर्माचरण करनेवालोंको समयानुसार अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यानिहाहुः स्वस्य धर्मस्य लोकान्
द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान्।
तेषां क्रमान् कथयतोऽपि चान्यान्
नैतद् विद्वन् वेदितुमिच्छामि कर्म ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! पुण्यकर्म करनेवाले द्विजातियोंको अपने-अपने धर्मके फलस्वरूप जिन सनातन लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, उनका क्रम बतलाइये तथा उनसे भिन्न जो अन्यान्य लोक हैं, उनका भी निरूपण कीजिये। अब मैं सकाम कर्मकी बात नहीं जानना चाहता ॥ २६ ॥

सनत्सुजात उवाच

येषां बलेऽस्य विस्पर्धा बले बलवतामिव।
ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य ब्रह्मलोकप्रकाशकाः ॥ २७ ॥

सनत्सुजातने कहा—जैसे दो बलवान् वीरोंमें अपना बल दिखानेके निमित्त एक दूसरेसे स्पर्धा रहती है, उसी प्रकार जो निष्कामभावसे यम-नियमादिके पालनमें दूसरोंसे बढ़नेका प्रयास करते हैं, वे ब्राह्मण यहाँसे मरकर जानेके बाद ब्रह्मलोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं ॥ २७ ॥

येषां धर्मे च विस्पर्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम्।
ते ब्राह्मणा इतो मुक्ताः स्वर्गं यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ २८ ॥

जिनकी धर्मके पालनमें स्पर्धा है, उनके लिये वह ज्ञानका साधन है। किंतु वे ब्राह्मण यदि सकामभावसे उसका अनुष्ठान करें तो मृत्युके पश्चात् यहाँसे देवताओंके निवासस्थान स्वर्गमें जाते हैं ॥ २८ ॥

तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः।
नैनं मन्येत भूयिष्ठं बाह्यमाभ्यन्तरं जनम् ॥ २९ ॥
यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोलपम्।
अन्नं पानं ब्राह्मणस्य तज्जीवेन्नानुसंज्वरेत् ॥ ३० ॥

ब्राह्मणके आचरणकी वेदवेत्ता पुरुष प्रशंसा करते हैं, किंतु जो धर्माचरणमें बहिर्मुख है उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। जो ज्ञानाभ्यासपूर्वक धर्मका पालन करनेसे अन्तर्मुख हो गया है, ऐसे पुरुषको श्रेष्ठ मानना चाहिये। वर्षा-ऋतुमें तृण-घास आदिकी भाँति जहाँ ब्राह्मणके योग्य अन्न-पान आदिकी अधिकता मालूम पड़े, उस देशमें रहकर वह जीवननिर्वाह करे; किंतु भूख-प्याससे अपनेको कष्ट नहीं पहुँचाये ॥ २९-३० ॥

यत्राकथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम्।
अतिरिक्तमिवाकुर्वन् स श्रेयान् नेतरो जनः ॥ ३१ ॥

किंतु जहाँ अपना माहात्म्य प्रकाशित न करनेपर भय और अमङ्गल प्राप्त हो, वहाँ रहकर भी जो अपनी विशेषता प्रकट नहीं करता, वही श्रेष्ठ पुरुष है, दूसरा नहीं ॥ ३१ ॥

यो वा कथयमानस्य आत्मानं नानुसंज्वरेत्।
ब्रह्मस्वं नोपभुञ्जीत तदन्नं सम्मतं सताम् ॥ ३२ ॥

जो किसीको आत्मप्रशंसा करते देख जलता नहीं तथा ब्राह्मणके स्वत्वका उपभोग नहीं करता, उसके अन्नको स्वीकार करना सत्पुरुषोंको सम्मत है ॥ ३२ ॥

यथा स्वं वान्तमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये।
एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपसेवनात् ॥ ३३ ॥

जैसे कुत्ता अपना वमन किया हुआ भी खा लेता है, उसी प्रकार वे ब्राह्मण अपने पराक्रमका प्रदर्शन करके जीविका चलाते हैं। वे सदा वमनका भोजन करनेवाले हैं और इससे उनकी सदा ही अवनति होती है ॥ ३३ ॥

नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः।
ज्ञातीनां तु वसन् मध्ये तं विदुर्ब्राह्मणं बुधाः ॥ ३४ ॥

जो कुटुम्बीजनोंके बीचमें रहकर भी अपनी साधनाको उनसे सदा गुप्त रखनेका प्रयत्न करता है, ऐसे ब्राह्मणको ही विद्वान् पुरुष ब्राह्मण मानते हैं ॥ ३४ ॥

यो ह्येतमात्मानमात्मना अनुपश्यति ।
निर्विकारमचलं शुद्धं सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जो मेरे रूप विनाशरहित अविकारी शुद्ध एवं सब प्रकारके उपाधियोंसे रहित आत्मा है, उसको जाननेवाला कौन बुद्धिमान् पुरुष उसका हनन—अपमान करना चाहेगा ? ॥ ३५ ॥

तस्माद्धि क्षत्रियस्यापि ब्रह्मावभाति पश्यति ॥ ३६ ॥

इसलिये उपर्युक्त रूपसे वैसा विनाशरहित क्षत्रिय भी आत्माके स्वरूपका अनुभव करता है तथा ब्रह्मको पाता है ॥ ३६ ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ ३७ ॥

जो उक्त प्रकारसे वर्तमान आत्माको उससे विपरीत रूपसे समझता है, आत्माका अपहरण करनेवाले उस चोरने कौन-सा पाप नहीं किया ? ॥ ३७ ॥

अश्रान्तः स्यादनादानः सम्मतो निरुपद्रवः ।
शिष्टो न शिष्टवत् स स्याद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित् कविः ॥ ३८ ॥

जो कर्तव्य पालनमें कभी थकता नहीं, दान नहीं लेता, सत्पुरुषोंमें सम्मानित और उपद्रवरहित है तथा शिष्ट होकर भी शिष्टताका विज्ञापन नहीं करता, वह ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता एवं विद्वान् है ॥ ३८ ॥

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या वेदेषु ये द्विजाः ।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्यास्तान् विद्याद् ब्रह्मणस्तनुम् ॥ ३९ ॥

जो लौकिक धनकी दृष्टिसे निर्धन होकर भी दैवी सम्पत्ति तथा यज्ञ-उपासना आदिसे सम्पन्न हैं, वे दुर्धर्ष और किसी भी विषयमें चलायमान नहीं होते; उनको ब्रह्मकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

सर्वान् स्विष्टकृतो देवान् विद्याद् य इह कश्चन ।
न समानो ब्राह्मणस्य यस्मिन् प्रयतते स्वयम् ॥ ४० ॥

यदि कोई इस लोकमें अभीष्ट सिद्धि करनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको जान ले तो भी वह ब्रह्मवेत्ताके समान नहीं होता, क्योंकि वह तो अभीष्ट फलकी सिद्धिके लिये ही प्रयत्न कर रहा है ॥ ४० ॥

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः ।
न मान्यमानो मन्येत नामानादभिसंतपेत् ॥ ४१ ॥

जो दूसरोंसे सम्मान पाकर भी अभिमान न करे और सम्माननीय पुरुषको देखकर जले नहीं तथा अपमान न करनेपर भी विद्वान्‌लोग जिसे आदर दें, वही सम्मानित है ॥ ४१ ॥

लोकस्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत् सदा ।
विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ॥ ४२ ॥

जगत्‌में जब सज्जन पुरुष आदर दें, तब सम्मानित व्यक्तिको ऐसा मानना चाहिये कि आँखोंको खोलने-मींचनेके समान अच्छे लोगोंकी यह स्वाभाविक वृत्ति है, जो आदर करते हैं ॥ ४२ ॥

अधर्मविदुषो मूढा लोके मायाविशारदाः ।
न मान्यं मानयिष्यन्ति मान्यानामवमानिनः ॥ ४३ ॥

किंतु जो संसारमें अधर्ममें निपुण, छल-कपटमें चतुर और माननीय पुरुषोंका अपमान करनेवाले मूढ़ मनुष्य हैं, वे आदरणीय व्यक्तियोंका भी आदर नहीं करते ॥ ४३ ॥

न वै मानं च मौनं च सहितौ वसतः सदा ।
अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद् विदुः ॥ ४४ ॥

यह निश्चित है कि मान और मौन सदा एक साथ नहीं रहते; क्योंकि मानसे इस लोकमें सुख मिलता है और मौनसे परलोकमें—ज्ञानीजन इस बातको जानते हैं ॥ ४४ ॥

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी ।
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥ ४५ ॥

राजन् ! लोकमें ऐश्वर्यरूपा लक्ष्मी सुखका घर मानी गयी है, वह भी कल्याणमार्गमें लुटेरोंकी भाँति विघ्न डालनेवाली है; किंतु ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मी प्रज्ञाहीन मनुष्यके लिये सर्वथा दुर्लभ है ॥ ४५ ॥

द्वाराणि तस्येह वदन्ति सन्तो
बहुप्रकाराणि दुराधराणि ।
सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौचविद्याः
षण्मानमोहप्रतिबाधनानि ॥ ४६ ॥

संत पुरुष उस ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मीकी प्राप्तिके अनेकों द्वार बतलाते हैं, जो कि मोहको जगानेवाले नहीं हैं तथा जिनको कठिनतासे धारण किया जाता है। उनके नाम हैं—सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्या ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सनत्सुजातपर्वमें बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्याय

ब्रह्मज्ञानमें उपयोगी मौन तप त्याग अप्रमाद एवं दम आदिके लक्षण तथा मदादि दोषोंका निरूपण

धृतराष्ट्र उवाच

कस्यैष मौनः कतरन्नु मौनं
प्रब्रूहि विद्वन्निह मौनभावम्।
मौनेन विद्वानुत याति मौनं
कथं मुने मौनमिहाचरन्ति॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! यह मौन किसका नाम है? [वाणीका संयम और परमात्माका स्वरूप—इन] दोनोंमें कौन-सा मौन है? यहाँ मौनभावका वर्णन कीजिये। क्या विद्वान् पुरुष मौनके द्वारा मौनरूप परमात्माको प्राप्त होता है? मुने! संसारमें लोग मौनका आचरण किस प्रकार करते हैं?॥ १॥

सनत्सुजात उवाच

यतो न वेदा मनसा सहैन-
मनुप्रविशन्ति ततोऽथ मौनम्।
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं
स तन्मयत्वेन विभाति राजन्॥ २॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! जहाँ मनके सहित वाणी नहीं पहुँच पाती, उस परमात्माका ही नाम मौन है, इसलिये वही मौनस्वरूप है। वैदिक तथा लौकिक शब्दोंका भी जहाँसे प्रादुर्भाव हुआ है, वे परमेश्वर तन्मयतापूर्वक ध्यान करनेसे प्रकाशमें आते हैं॥ २॥

धृतराष्ट्र उवाच

ऋचो यजूंषि यो वेद सामवेदं च यो द्विजः।
पापानि कुर्वन् पापेन लिप्यते किं न लिप्यते॥ ३॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! जो ऋक्, यजुर्वेद और सामवेदको जानता है तथा पाप करता है, वह उस पापसे लिप्त होता है या नहीं?॥ ३॥

सनत्सुजात उवाच

नैनं सामान्यृचो वापि न यजूंष्यविचक्षणम्।
त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम्॥ ४॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! मैं तुमसे असत्य नहीं कहता, ऋक्, साम अथवा यजुर्वेद कोई भी पाप करनेवाले अज्ञानीकी उसके पापकर्मसे रक्षा नहीं करते।

न छन्दांसि वृजिनात् तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षा-
श्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले॥ ५॥

जो कपटपूर्वक धर्मका आचरण करता है, उस मिथ्याचारीका वेद पापसे उद्धार नहीं करते। जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अन्तकालमें वेद भी उसका परित्याग कर देते हैं॥ ५॥

धृतराष्ट्र उवाच

न चेद् वेदा विना धर्मं त्रातुं शक्ता विचक्षण।
अथ कस्मात् प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः॥ ६॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! यदि धर्मके बिना वेद रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं, तो फिर वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी पवित्रता-सम्बन्धी यह प्रलाप क्यों चला आता है?॥ ६॥

सनत्सुजात उवाच

तस्यैव नामादिविशेषरूपै-
रिदं जगद् भाति महानुभाव।
निर्दिश्य सम्यक् प्रवदन्ति वेदा-
स्तद् विश्ववैरूप्यमुदाहरन्ति॥ ७॥

सनत्सुजातने कहा—महानुभाव! परब्रह्म परमात्माके ही नाम आदि विशेष रूपोंसे यह जगत् प्रतीत होता है। यह बात वेद अच्छी तरह निर्देश करके कहते हैं; किंतु वास्तवमें उसका स्वरूप इस विश्वसे विलक्षण बताया जाता है।

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या
ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्।
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात्
संजायते ज्ञानविदीपितात्मा॥ ८॥

उसीकी प्राप्तिके लिये तप और यज्ञका प्रतिपादन किया गया है। इन तप और यज्ञके द्वारा उस श्रोत्रिय विद्वान् पुरुषको पुण्यकी प्राप्ति होती है। फिर उस निष्काम पुण्यसे पापका नाश कर देनेके बाद उसका अन्तःकरण ज्ञानसे प्रकाशित हो जाता है।

ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वा-
नथान्यथा वर्गफलानुकाङ्क्षी।
अस्मिन् कृतं तत् परिगृह्य सर्व-
ममुत्र भुङ्क्ते पुनरेति मार्गम्॥ ९॥

तब विद्वान् पुरुष ज्ञानसे परमात्माको प्राप्त होता है; किंतु इसके विपरीत जो भोगाभिलाषी पुरुष धर्म, अर्थ

---

१. यथा मधुमक्खियाँ पुष्पोंसे मकरन्द ग्रहण करके उसे एकत्र करती हैं और ... वेदोंके पवित्र ... ब्राह्मण ... पवित्र ... होते हैं।

और सकाम विकर्मस्थली इच्छा बढ़ाते हैं ... इस लोकमें किये हुए उन्हीं कर्मोंसे पाप होते हैं ... उन्हें परलोकमें भोगना है तथा भोग समाप्त होनेपर पुनः इस मृत्युलोकमें लौट आते हैं ॥ ९ ॥

अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते।
ब्राह्मणानामिमे लोका ऋद्धे तपसि तिष्ठताम् ॥ १० ॥

इन लोगोंका जो तपस्या (स्वधर्मपालन) की जाती है उसका फल परलोकमें भोगा जाता है परंतु जो ब्रह्मज्ञानी इस लोकमें निष्कामभावसे युक्त तपस्या करते हैं वे इसी लोकमें तपस्यारूप फल प्राप्त करते हैं (और मुक्त हो जाते हैं)। इस प्रकार एक ही तपस्या ऋद्ध और समृद्ध भेदसे दो प्रकारकी है ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम्।
सनत्सुजात तद् ब्रूहि यथा विद्याम तद् वयम् ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—सनत्सुजातजी! विशुद्ध भावयुक्त केवल तप कैसे समृद्धशाली तथा ऋद्ध कैसे हो जाता है। यह इस प्रकार कहिये जिससे हम उसे समझ सकें ॥ ११ ॥

सनत्सुजात उवाच

निष्कल्मषं तपस्त्वेतत् केवलं परिचक्षते।
एतत् समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम् ॥ १२ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! ... निर्दोष होता है। इसमें ... नहीं रहता इसलिये यह विशुद्ध कहा जाता है और इसलिये यह ... कहा जाता है ॥ १२ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः ॥ १३ ॥

राजन्! तुम जिस (तपस्या) के विषयमें मुझसे पूछ रहे हो वह तप ही सारे जगत्का मूल है। वेदवेत्ता विद्वान् उस (निष्काम) तपसे ही परम अमृत मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः।
सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम् ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी! मैंने दोषरहित तपस्याका महत्त्व सुना। अब तपस्याके जो दोष हैं, उन्हें बताइये जिससे मैं इस सनातन गोपनीय ब्रह्मतत्त्वको जान सकूँ ॥ १४ ॥

सनत्सुजात उवाच

क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषा-
स्तथा नृशंसानि दशात्र राजन्।
धर्मादयो द्वादशैते पितॄणां
शास्त्रे गुणास्ते विदिता द्विजानाम् ॥ १५ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! क्रोध आदि बारह दोष हैं तथा तेरह प्रकारके नृशंस मनुष्य होते हैं। ... शास्त्रोंमें कथित ... आदि बारह गुण प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥

क्रोधः कामो लोभमोहौ विधित्सा
कृपासूये मानशोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा
वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम् ॥ १६ ॥

काम क्रोध लोभ मोह विधित्सा निर्दयता असूया अभिमान शोक स्पृहा ईर्ष्या और निन्दा—मनुष्योंमें रहनेवाले ये बारह दोष मनुष्योंके लिये सदा ही त्याज्य हैं ॥ १६ ॥

एकैकमेते पर्युपासते ह मनुष्यान् मनुजर्षभ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः ॥ १७ ॥

नरश्रेष्ठ! जैसे व्याधा मृगोंको मारनेका छिद्र (अवसर) देखता हुआ उनकी टोहमें लगा रहता है उसी प्रकार इनमेंसे एक-एक दोष मनुष्योंका छिद्र देखकर उनपर आक्रमण करता है ॥ १७ ॥

विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी
बिभ्रत् कोपं चपलोऽरक्षणश्च।
एतान् पापाः षण्नराः पापधर्मान्
प्रकुर्वते नो त्रसन्तः सुदुर्गे ॥ १८ ॥

अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले लोलुप, अहंकारी, क्रोधी, चञ्चल और आश्रितोंकी रक्षा नहीं करनेवाले—ये छः प्रकारके मनुष्य पापी हैं। महान् संकटमें पड़नेपर भी ये निडर होकर इन पापकर्मोंका आचरण करते हैं ॥ १८ ॥

सम्भोगसंविद् विषमोऽतिमानी
दत्त्वानुतापी कृपणो बलीयान्।
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा
एते परे सप्त नृशंसवर्गाः ॥ १९ ॥

सम्भोगमें ही मन लगानेवाले, विषमता रखनेवाले, अत्यन्त मानी, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाले, अत्यन्त कृपण, अर्थ और कामकी प्रशंसा करनेवाले तथा स्त्रियोंके द्वेषी—ये सात और पहले कहे हुए छः प्रकारके मनुष्य नृशंसवर्ग (क्रूर-समुदाय) कहे गये हैं ॥ १९ ॥

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च
अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया ।
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च
व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ २ ॥

ये धर्म इन्द्रियनिग्रह तप मत्सरताका अभाव लज्जा सहनशीलता किसीके दोष न देखना यज्ञ करना दान देना और शास्त्रज्ञान—ये ब्राह्मणके बारह व्रत हैं ।

यस्त्वेतेभ्यः प्रवसेद् द्वादशेभ्यः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ।
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वार्थितो यो
नास्य स्वमस्तीति स वेदितव्यः ॥

जो इन बारह गुणों से सम्पन्न होता है वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीके मनुष्योंका शासन कर सकता है इनमेंसे तीन दो या एक गुणसे भी जो युक्त है उसके पास कभी धन नहीं है ऐसा समझना चाहिये ।

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम् ।
तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥

दम त्याग और अप्रमाद इन तीन गुणोंमें अमृतका वास है जो मनीषी बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं वे कहते हैं कि इन गुणोंका मुख सत्यस्वरूप परमात्माकी ओर है अर्थात् ये परमात्माकी प्राप्तिके साधन हैं ।

दमोऽष्टादशदोषः स्यात् प्रतिकूलं कृताकृते ।
अनृतं चाभ्यसूया च कामार्थौ च तथा स्पृहा ॥ ४ ॥
क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च ।
मत्सरश्च विहिंसा च परितापस्तथारतिः ॥ ५ ॥
अपस्मारश्चातिवादस्तथा सम्भावनात्मनि ।
एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दान्तः सद्भिरुच्यते ॥

दम अठारह गुणोंवाला है निम्नाङ्कित अठारह दोषोंके त्यागको ही अठारह गुण समझना चाहिये—कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें विपरीत धारणा असत्यभाषण गुणोंमें दोषदृष्टि स्त्रीविषयक कामना सदा धनोपार्जनमें ही लगे रहना भोगेच्छा क्रोध शोक तृष्णा लोभ चुगली करनेकी आदत डाह हिंसा सन्ताप शास्त्रमें अरुचि कर्तव्यकी विस्मृति अधिक बकवाद और अपनेको बड़ा समझना—इन दोषोंसे जो मुक्त है उसीको सत्पुरुष दान्त जितेन्द्रिय कहते हैं ।

मदोऽष्टादशदोषः स्यात्त्यागो भवति षड्विधः ।
विपर्ययाः स्मृता एते मददोषा उदाहृताः ॥ २६ ॥
श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागस्तृतीयो दुष्करो भवेत् ।
तेन दुःखं तरत्येव भिन्नं तस्मिञ्जिते कृते ॥ २७ ॥

मदमें अठारह दोष हैं ऊपर जो दमके विपर्यय सूचित किये हैं वे ही मदके दोष बताये गये हैं त्याग छः प्रकारका होता है वह छहों प्रकारका त्याग अत्यन्त उत्तम है किंतु इनमें तीसरा अर्थात् कामत्याग बहुत ही कठिन है इसके द्वारा मनुष्य निश्चय ही दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है कामत्याग कर देनेपर मनुष्य सब कुछ जीत लेता है ।

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः प्रियं प्राप्य न हृष्यति ।
इष्टापूर्ते द्वितीयः स्यान्नित्यवैराग्ययोगतः ॥ २८ ॥
कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः ।
अप्यवाच्यं वदन्त्येतं स तृतीयो गुणः स्मृतः ॥

राजन्! छः प्रकारका जो श्रेष्ठ त्याग है उसे बतलाता हूँ प्रिय वस्तु पाकर हर्षित न होना—यह प्रथम त्याग है यज्ञ-होम आदि तथा कुआँ तालाब और बगीचे आदि बनानेका फल मनसे त्याग देना दूसरा त्याग है और सदा वैराग्ययुक्त होकर कामनाका त्याग करना—यह तीसरा त्याग कहा गया है महर्षिलोग इसे अनिर्वचनीय मोक्षका उपाय कहते हैं अतः यह तीसरा त्याग विशिष्ट गुण माना गया है ।

त्यक्तैर्द्रव्यैर्यद् भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ।
न च द्रव्यैस्तद् भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ॥

वैराग्ययुक्त पदार्थोंके त्यागसे जो निष्कामता प्राप्त है वह भोग्यवस्तुओंके उपभोगकी कामना करनेसे नहीं प्राप्त होती अथवा धनका संग्रह करके निष्कामता नहीं सिद्ध होती तथा कामनापूर्वक किसी वस्तुका उपभोग करनेसे भी निष्कामता प्राप्त नहीं होती ।

न च कर्मस्वसिद्धेषु दुःखं तेन च न ग्लपेत् ।
सर्वैरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानपि यो भवेत् ॥ २३ ॥

पुरुष सभी गुणोंसे युक्त और धनवान् हो यदि उसके कर्म सिद्ध न हों तो उसके लिये दुःख न करना चाहिये ।

अप्रिये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति ।
इष्टान् पुत्रांश्च दारांश्च न याचेत कदाचन ॥ ३२ ॥

कोई अप्रिय घटना हो जाय तो कभी व्यथाको प्राप्त न हो यह चौथा त्याग है अपने अभीष्ट पदार्थों—स्त्री पुत्रादिकी कभी याचना न करे यह पाँचवाँ त्याग है ।

अर्हते याचमानाय प्रदेयं तच्छुभं भवेत् ।
अप्रमादी भवेदेतैः स चाप्यष्टगुणो भवेत् ॥ ३३ ॥
सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च ।
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च तथासंग्रहमेव च ॥ ३४ ॥

सुयोग्य याचकके आ जानेपर उसे दान करे यह छठा त्याग है इन सबसे कल्याण होता है इन त्यागमय

गुणोंसे मनुष्य प्रमादी [illegible] आठ गुण माने गये [illegible] ध्यान [illegible] विचार समाधान [illegible]

अथवा

एवं दोषा महामोहात्मकान् दोषान् परिवर्जयेत्
तथा त्यागोऽप्रमादश्च स चाप्यष्टगुणो मतः

आठ गुण त्याग [illegible] दोषोंका [illegible] [illegible] अवश्य दोष [illegible] उनका [illegible] करना चाहिये [illegible] दना चाहिये

अष्टौ दोषाः प्रमादस्य तान् दोषान् परिवर्जयेत्
इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्यो मनसश्चैव भारत
अतीतानागतेभ्यश्च मुक्तयुक्तः सुखी भवेत्

[illegible] इन्द्रिय और उसा —[illegible] [illegible] बुद्धिसे [illegible] प्रमादरहित [illegible] और भूत [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] सुखी

सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः
तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम्

[illegible] सत्य [illegible] और प्रमाद आदि [illegible] मुक्ति प्रति

निवृत्तेनैव दोषेण तपोव्रतमिहाचरेत्
एतद् धात्रकृतं वृत्तं सत्यमेव सतां व्रतम्
दोषैरेतैर्वियुक्तस्तु गुणैरेतैः समन्वितः
एतत् समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम्
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र संक्षेपात् प्रब्रवीमि ते
एतत् पापहरं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम्

दोषोंसे निवृत्त [illegible] और [illegible] आचरण करना चाहिये [illegible] नियम [illegible] मनुष्यका [illegible] और गुणोंसे युक्त होना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मृत्यु [illegible] दूर करनेवाला [illegible] तथा [illegible] पवित्र

धृतराष्ट्र उवाच

आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कथ्यते जनः
तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथा परे
द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाप्यनृचश्च तथा परे
तेषां तु कतमः स स्याद् यमहं वेद वै द्विजम्

[illegible] कुछ लोग हिंदी [illegible] तथा [illegible] इनमें कौन [illegible] [illegible] [illegible]

सनत्सुजात उवाच

एकस्य वेदस्याज्ञानाद् वेदास्ते बहवः कृताः
सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः

[illegible] कहा [illegible] [illegible] [illegible] एक वेदके [illegible] दिये [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] होता

एवं वेदमविज्ञाय प्राज्ञोऽहमिति मन्यते
दानमध्ययनं यज्ञो लोभादेतत् प्रवर्तते ४४

[illegible] वेदके [illegible] भी कुछ लोग [illegible] ऐसा मानने लगते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रवृत्ति

सत्यात् प्रच्यवमानानां संकल्पो वितथो भवेत्
ततो यज्ञः प्रतायेत सत्यस्यैवावधारणात्

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया

मनसान्यस्य भवति वाचान्यस्याथ कर्मणा
संकल्पसिद्धः पुरुषः संकल्पानधितिष्ठति

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अनैभृत्येन चैतस्य दीक्षितव्रतमाचरेत्
नामैतद्धातुनिर्वृत्तं सत्यमेव सतां परम् ४७

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

दीखनेवाला यह ... हैं। ... जन्मसे ... ॥ ४७ ॥

ज्ञाने वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः।
विद्याद् बहु पठन्तं तु द्विजं वै बहुपाठिनम्॥ ४८॥

क्योंकि ज्ञानस्वरूप ... प्रत्यक्ष है और तपस्या परोक्ष है (इसलिये ज्ञानका ही आश्रय लेना चाहिये)। बहुत पढ़नेवाले ब्राह्मणको केवल बहुपाठी (बहुज्ञ) समझना चाहिये ॥ ४८

तस्मात् क्षत्रिय मा मंस्था जल्पितेनैव वै द्विजम्।
य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया॥ ४९॥

इसलिये महाराज! केवल बातें बनानेसे ही किसीको ब्राह्मण न मान लेना। जो सत्यस्वरूप परमात्मासे कभी पृथक् नहीं होता, उसीको तुम ब्राह्मण समझो ॥ ४९॥

छन्दांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा
पुरा जगौ महर्षिसङ्घ एषः।
छन्दोविदस्ते य उत नाधीतवेदा
न वेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम्॥ ५०॥

राजन्! अथर्वा मुनि एवं महर्षिसमुदायने पूर्वकालमें जिनका गान किया है, वे ही छन्द (वेद) हैं, किंतु सम्पूर्ण वेद पढ़ लेनेपर भी जो वेदोंके द्वारा जानने योग्य परमात्माके तत्त्वको नहीं जानते, वे वास्तवमें वेदके विद्वान् नहीं ॥ ५०।

छन्दांसि नाम द्विपदां वरिष्ठ
स्वच्छन्दयोगेन भवन्ति तत्र।
छन्दोविदस्तेन च तानधीत्य
गता न वेदस्य न वेद्यमार्याः॥ ५१॥

नरश्रेष्ठ! छन्द (वेद) उन परमात्मासे स्वच्छन्द नाम ... (स्वतः प्रमाण) हैं, इसलिये उनका अध्ययन करके ही वेदवेत्ता आर्यजन वेदवेद्य परमात्मा के तत्त्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ५१

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति
कश्चित्त्वेतान् बुध्यते वापि राजन्।
यो वेद वेदान् न स वेद वेद्यं
सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम्॥ ५२॥

राजन्! वास्तवमें वेदके तत्त्वको जाननेवाला कोई नहीं है अथवा यों समझो कि कोई विरला ही उसका रहस्य जान पाता है। जो केवल वेदके वाक्योंको जानता है, वह उनके द्वारा जानने योग्य परमात्माको नहीं जानता, किंतु जो सत्यमें स्थित है, वह वेदवेद्य परमात्माको जानता है ॥ ५२।

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति
वेदेन वेदं न विदुर्न वेद्यम्।
यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं
यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम्॥ ५३॥

जाननेवालोंमेंसे कोई भी वेदोंको अर्थात् उनके रहस्यको जाननेवाला नहीं है, क्योंकि जाननेमें आनेवाले मन-बुद्धि आदिके द्वारा न तो कोई वेदके रहस्यका ज्ञान पाता है और न जानने योग्य परमात्माको ही। जो मनुष्य केवल कर्म विधायक वेदको जानता है, वह भी बुद्धिद्वारा जानने योग्य पदार्थोंको ही जानता है, किंतु जो बुद्धिद्वारा जानने योग्य पदार्थोंको जानता है, वह (ज्ञानी पुरुष) वास्तविक तत्त्व परमात्माको नहीं जानता ॥ ५३ ॥

यो वेद वेदान् न स वेद वेद्यं
न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः।
तथापि वेदेन विदन्ति वेदं
ये ब्राह्मणा वेदविदो भवन्ति॥ ५४॥

जो महापुरुष वेदोंके रहस्यको जानता है, वह जानने योग्य परमात्माको भी जानता है, परंतु उस (जाननेवाले) को न तो वेदोंके अर्थको जाननेवाला जानता है और न वेद ही जानते हैं, तथापि वेदके रहस्यको जाननेवाले जो ब्राह्मण महापुरुष हैं, वे उस वेदके द्वारा ही वेदके रहस्यको जान लेते हैं। (तात्पर्य यह है कि सबका साक्षी होनेसे उसका ज्ञान भले ही न हो, परंतु उनसे लक्षित परमात्माका ज्ञान नहीं होता। अन्तःकरण शुद्ध होनेपर महापुरुषकी कृपासे ही साधक उसे समझ पाता है) ॥ ५४ ॥

धामांशभागस्य तथा हि वेदा
यथा च शाखा हि महीरुहस्य।
संवेदने चैव यथाऽऽमनन्ति
तस्मिन् हि सत्ये परमात्मनोऽर्थे॥ ५५॥

द्वितीयाके चन्द्रमाका सूक्ष्म स्वरूप बतानेके लिये जैसे वृक्षकी शाखाकी ओर संकेत किया जाता है, उसी प्रकार वेद सत्यस्वरूप परमात्माका ज्ञान करानेके लिये ही वेदोंका भी उपयोग किया जाता है, ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं ॥

अभिजानामि ब्राह्मणं व्याख्यातारं विचक्षणम्।
यश्छिन्नविचिकित्सः स व्याचष्टे सर्वसंशयान्॥ ५६॥

मैं तो उसीको ब्राह्मण समझता हूँ, जो परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला और वेदोंकी यथार्थ व्याख्या करनेवाला हो, जिसके अपने संदेह मिट गये हों और जो दूसरोंके भी सम्पूर्ण संशयोंको मिटा सके ॥ ५६ ॥

नास्य पर्येषणं गच्छेत् प्राचीनं नोत दक्षिणम्।
नार्वाचीनं कुतस्तिर्यङ् नादिशं तु कथञ्चन॥ ५७॥

इस आत्माकी खोज करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तरकी ओर जानेकी आवश्यकता नहीं है, फिर आग्नेय आदि कोणोंकी तो बात ही क्या है? इसी प्रकार दिशाशून्य रहित प्रदेशोंमें भी उसे नहीं ढूँढ़ना चाहिये ॥ ५७ ॥

अतः पर्यैव मन्येत सर्वार्थेषु कथञ्चन।
अविबिम्बमिव यो नरः पश्यति स प्रभुम् ॥ ५८ ॥

आत्माका अनुसन्धान अनात्मवस्तुओंमें तो किसी तरह [illegible] ही नहीं [illegible] वस्तुमें भी न [illegible] उस प्रभुका [illegible] न करे ॥ ५८ ॥

तूष्णीम्भूत उपासीत न चेष्टेन्मनसापि च।
उपावर्तस्व तद् ब्रह्म अन्तरात्मनि विश्रुतम् ॥ ५९ ॥

भारत ! इन्द्रियोंको [illegible] चेष्टा रहित होकर परमात्माकी उपासना करे, मनसे भी कोई चेष्टा न करे। राजन् ! तुम भी अपने हृदयाकाशमें स्थित उस विख्यात परमात्माकी बुद्धिपूर्वक उपासना करो ॥ ५९ ॥

मौनान्न स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः।
स्वलक्षणं तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ६० ॥

मौन रहने अथवा वनमें निवास करनेमात्रसे कोई मुनि नहीं होता। जो अपने आत्माके स्वरूपको जानता है वही श्रेष्ठ मुनि कहलाता है ॥ ६० ॥

सर्वार्थानां व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत् तथा ॥ ६१ ॥

[illegible] सब अर्थोंको व्याकृत (प्रकट) करनेके कारण ज्ञानी पुरुष वैयाकरण कहलाता है। यह समस्त अर्थोंका प्रकटीकरण मूलभूत ब्रह्मसे ही होता है, अतः वही मुख्य वैयाकरण है। विद्वान् पुरुष भी इसी प्रकार अर्थोंको व्याकृत (प्रकट) करता है, इसलिये वह भी वैयाकरण है ॥ ६१ ॥

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।
सत्ये वै ब्रह्मणि तिष्ठंस्तद् विद्वान् सर्वविद् भवेत् ॥ ६२ ॥

जो (राजन्) सम्पूर्ण लोकोंको प्रत्यक्ष देख लेता है, वह मनुष्य उन सब लोकोंका द्रष्टा कहलाता है, परंतु जो एक मात्र सत्यस्वरूप ब्रह्ममें ही स्थित है, वही ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सर्वज्ञ होता है ॥ ६२ ॥

धर्मादिषु स्थितोऽप्येवं क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति।
वेदानां चानुपूर्व्येण एतद् बुद्ध्या ब्रवीमि ते ॥ ६३ ॥

राजन् ! पूर्वोक्त धर्म आदिमें स्थित होनेसे तथा यथार्थ रूपसे (विधिवत्) अध्ययन करनेसे भी मनुष्य इसी प्रकार परमात्माका साक्षात्कार करता है। यह बात अपनी बुद्धिद्वारा निश्चय करके मैं तुम्हें बता रहा हूँ ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

[illegible] ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मका निरूपण

धृतराष्ट्र उवाच

सनत्सुजात यदिमां परार्थां
ब्राह्मीं वाचं प्रवदसि विश्वरूपाम्।
परां हि कामेन सुदुर्लभां कथां
प्रब्रूहि मे वाक्यमिदं कुमार ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—सनत्सुजातजी ! आप जिस सर्वोत्तम और सर्वरूपा ब्रह्मसम्बन्धिनी विद्याका उपदेश कर रहे हैं, कामी पुरुषोंके लिये वह अत्यन्त दुर्लभ है। कुमार ! मेरा तो यह कहना है कि आप इस उत्कृष्ट विषयका पुनः प्रतिपादन करें ॥ १ ॥

सनत्सुजात उवाच

नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं
यन्मां पृच्छस्यतिहृष्यतीव।
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या
विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ॥ २ ॥

सनत्सुजातने कहा—राजन् ! तुम जो मुझसे बारंबार प्रश्न करते समय अत्यन्त हर्षित हो उठते हो, सो इस प्रकार जल्दबाजी करनेसे ब्रह्मकी उपलब्धि नहीं होती। बुद्धिमें मनके लय हो जानेपर सब वृत्तियोंका विरोध करनेवाली जो स्थिति है, उसका नाम है ब्रह्मविद्या और वह ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही प्राप्त होती है ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अत्यन्तविद्यामिति यत् सनातनीं
ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्।
अनारभ्यां वसतीह कार्यकाले
कथं ब्राह्मण्यममृतत्वं लभेत ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—जो कर्मोंद्वारा आरम्भ होने योग्य नहीं है तथा कार्यके समयमें भी जो इन आत्माओंमें ही रहती है, उस अनन्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली इस सनातन विद्याको यदि आप ब्रह्मचर्यसे ही प्राप्त होने योग्य बता रहे हैं तो

गुरुजनोंके निकट ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान [illegible] मोक्ष [illegible] कर सकते हैं ॥ ३ ॥

सनत्सुजात उवाच

अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं
बुद्ध्या च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्।
यां प्राप्यैनं मर्त्यलोकं त्यजन्ति
या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या ॥ ४ ॥

सनत्सुजातजी बोले—राजन्! मैं सच्चिदानन्दघन अव्यक्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली उस पुरातन विद्याका वर्णन करता हूँ, जो मनुष्योंको बुद्धि और ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होती है, जिसे पाकर विद्वान् पुरुष इस मरणधर्मा शरीरको सदाके लिये त्याग देते हैं तथा जो वृद्ध गुरुजनोंमें नित्य विद्यमान रहती है ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमञ्जसा।
तत् कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतद् ब्रह्मन् ब्रवीहि मे ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—ब्रह्मन्! यदि वह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्यके द्वारा ही सुगमतासे जानी जा सकती है तो पहले मुझे यही बताइये कि ब्रह्मचर्यका पालन कैसे होता है ॥ ५ ॥

सनत्सुजात उवाच

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य
भूत्वा गर्भं ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति
प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम् ॥ ६ ॥

सनत्सुजातजी बोले—जो लोग आचार्यके आश्रममें प्रवेश कर अपनी सेवासे उनके अन्तरङ्ग भक्त हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे यहीं शास्त्रकार हो जाते हैं और देह त्यागनेके पश्चात् परम योगरूप परमात्माको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान्
ब्राह्मीं स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः।
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहा-
न्मुञ्जादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः ॥ ७ ॥

इस जगत्‌में जो लोग [illegible] स्थितिमें रहकर ही सम्पूर्ण कामनाओंको जीत लेते हैं और ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनेके लिये ही नाना प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, वे सत्त्वगुणमें स्थित हो यहीं से मूँजसे सींककी भाँति इस देहसे आत्माको विवेकद्वारा पृथक् कर लेते हैं ॥ ७ ॥

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत।
आचार्यशास्ता या जातिः सा पुण्या साजरामरा ॥ ८ ॥

भारत! यद्यपि माता और पिता—ये ही दोनों इस शरीरको जन्म देते हैं, तथापि आचार्यके उपदेशसे जो जन्म प्राप्त होता है, वह परम पवित्र और अजर-अमर है ॥ ८ ॥

य आवृणोत्यवितथेन वर्णा-
वृतं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन् ॥ ९ ॥

जो परमार्थतत्त्वके उपदेशसे सत्यको प्रकट करके अमरत्व प्रदान करते हुए ब्राह्मणादि वर्णोंकी रक्षा करते हैं, उन आचार्यको पिता-माता ही समझना चाहिये तथा उनके किये हुए उपकारका स्मरण करके कभी उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत
स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः।
मानं न कुर्यान्नादधीत रोष-
मेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ १० ॥

ब्रह्मचारी शिष्यको चाहिये कि वह नित्य गुरुको प्रणाम करे, बाहर-भीतरसे पवित्र हो प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमें मन लगावे, अभिमान न करे, मनमें क्रोधको स्थान न दे—यह ब्रह्मचर्यका पहला चरण है ॥ १० ॥

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते ॥ ११ ॥

जो शिष्यकी वृत्तिके क्रमसे ही जीवन-निर्वाह करता हुआ पवित्र हो विद्या प्राप्त करता है, उसका यह नियम भी ब्रह्मचर्यव्रतका पहला ही पाद कहलाता है ॥ ११ ॥

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १२ ॥

अपने प्राण और धन लगाकर भी मन, वाणी तथा कर्मसे आचार्यका प्रिय करे, यह दूसरा पाद कहलाता है ॥ १२ ॥

समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाऽऽचरेत्।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १३ ॥

गुरुके प्रति शिष्यका जैसा श्रद्धा और सम्मानपूर्ण बर्ताव हो, वैसा ही गुरुपत्नी और गुरुके पुत्रके साथ भी होना चाहिये, यह भी ब्रह्मचर्यका द्वितीय पाद कहलाता है ॥ १३ ॥

आचार्येणात्मकृतं विजानन्
ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन।
यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः
स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ १४ ॥

आचार्य जो अपना उपकार किये [illegible] उस प्रसङ्गमें रखकर तथा उनकी वो प्रयोजन [illegible] उस प्रसङ्ग को विचार करते मन ही मन प्रसन्न होकर शिष्य आचार्यके प्रति जो ऐसा भाव रखता है कि इन्होंने मुझे बड़ी उत्तम अवस्थामें पहुँचा दिया—यह कृतज्ञ का लक्षण कहा है।

आचार्यस्यास्याहत्य [illegible]
माह कुर्वीत नैतद्ध करोमि
इतीव मन्येत न भाषयेत
स च चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पाद

आचार्यके उपकारका बदला चुकाने लिये अर्थात् दक्षिणा आदिके द्वारा उनके प्रत्युपकार किये बिना विद्वान् शिष्य [illegible] [illegible] दक्षिणा देकर या गुरुका सेवा करके [illegible] ऐसा [illegible] [illegible] गुरुका उपकार कर रहा [illegible] मुझसे [illegible] की बात निकाले [illegible] ब्रह्मचर्यका चौथा पाद

कालेन पा [illegible] [illegible]
तत्त्वथ पाद गुरुयोगतत्त्वा
उत्साहयोगेन च पादमृच्छे
च्छास्त्रेण पाद च ततोऽभियाति

मनातन विद्यार्थ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम्ब समयसे योग [illegible] कला [illegible] [illegible] पुरुष [illegible] तथा कुछ [illegible] [illegible] उत्साहके मात्रासे और कुछ [illegible] [illegible] विचारसे प्राप्त करता है

धर्मादयो द्वादश यस्य रूप
मन्यानि चाङ्गानि तथा बलं च
आचार्ययोगे फलमिति चाहु
ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम् ॥ ७ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अन्य हैं तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सामर्थ्य है [illegible] जिसके [illegible] वह ब्रह्मचर्य [illegible] [illegible] प्राप्त [illegible] जानते [illegible] है ऐसा कहते [illegible]

[illegible] [illegible] च
धनमाचार्याय तदनुप्रयच्छेत्
सतां वृत्तिं बहुगुणामेवमेति
गुरोः पुत्रे भवति च वृत्तिरेषा

[illegible] [illegible] ब्रह्मचर्यका [illegible] चाहिये कि [illegible] [illegible] [illegible] जीवनमें [illegible] [illegible] शिष्यमें प्राप्त हो [illegible] आवश्यक [illegible] करनेसे यह शिष्य [illegible] अनेक गुणोंसे युक्त आचार का प्राप्त होता है गुरुपुत्रके प्रति भी उसकी यह भावना रहनी चाहिये

एव वसन् सर्वतो वर्धतीह
बहून् पुत्राँल्लभते च प्रतिष्ठाम्
वर्षन्ति चास्मै प्रदिशो दिशश्च
वसन्त्यस्मिन् ब्रह्मचर्ये जनाश्च ॥ ॥

इसी प्रकार गुरुकुलमें रहनेवाले शिष्यकी इस संसारमें सब प्रकारसे उन्नति होती है [illegible] बहुत [illegible] [illegible] बहुत पुत्र और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है [illegible] दिशा विदिशा उसके लिये सुखकी वर्षा करती हैं तथा उसके निकट [illegible] दूसरे लोग ब्रह्मचर्यपालनके लिये निवास करते हैं

एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन्
ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिण ॥

इस ब्रह्मचर्य [illegible] ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया [illegible] [illegible] मन की ऋषियोंने ब्रह्मलोकके लिये

गन्धर्वाणामनेनैव [illegible]
एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्योऽप्यह्नाय जायते ॥

[illegible] प्रभाव [illegible] और [illegible] दिव्य रूप [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] लोकों प्रकाशित करनेमें समर्थ होते हैं

आकाङ्क्षार्थस्य सङ्कल्पाद् रसमेषगुणैर्यथा
एव ह्येते समाज्ञाय ताद्दग्भावं गता इमे ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ब्रह्मचर्य [illegible] प्रदान करनेवाला है [illegible] [illegible] ये ऋषि देवता आदि ब्रह्मचर्य पालनसे वैसे महत्वको प्राप्त हुए

न [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] न [illegible] [illegible]
मृत्यु [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] जो [illegible] [illegible] ऐसा है [illegible] [illegible] [illegible] आचरण करता हुआ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ऐसा है तथा [illegible] विद्वान् पुरुष [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] मृत्युको भी जीत लेता

[illegible] [illegible] ते [illegible]
[illegible] [illegible] निर्मलेन
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] विशेषे ॥ ॥

यजन नामक पुरुष अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त करते हैं, किंतु जो उसको जाननेवाला विद्वान् है, वही उस ज्ञानके द्वारा सनातन परमात्माको प्राप्त होता है। मोक्षके लिये ज्ञानके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है॥

धृतराष्ट्र उवाच

यदाभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो
कृष्णमथायसं काद्रवं वा।
सद् ब्राह्मणः पश्यति योऽत्र विद्वान्
कथंरूपं तदमृतमक्षरं पदम्॥ २५॥

धृतराष्ट्र बोले—विद्वन्! यह जो ... परमात्मा ... किसके रूपमें ... प्रकाशित होता है? ... वह सफेद, लाल-सा, काला या ... सुवर्ण जैसा ... प्रतीत होता है॥

सनत्सुजात उवाच

आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो
कृष्णमायसमर्कवर्णम्।
न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे
नैतत् समुद्रे सलिलं बिभर्ति॥ २६॥

सनत्सुजातने कहा—राजन्! यद्यपि ... श्वेत, लाल, काले, लोहेके सदृश अथवा सूर्यके समान प्रकाशमान अनेकों प्रकारके रूप प्रतीत होते हैं, तथापि ब्रह्मका वास्तविक रूप न पृथ्वीमें है, न आकाशमें। समुद्रका जल भी उस रूपको नहीं धारण करता॥ २६॥

न तारकासु न च विद्युदाश्रितं
न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य।
न चापि वायौ न च देवतासु
नैतच्चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये॥ २७॥

उस ब्रह्मका वह रूप न तारोंमें है, न बिजलीके आश्रित है और न बादलोंमें ही दिखायी देता है। इसी प्रकार वायु, देवगण, चन्द्रमा और सूर्यमें भी वह नहीं देखा जाता॥ २७॥

नैवर्क्षु तन्न यजुःषु नाप्यथर्वसु
न दृश्यते वै विमलेषु सामसु।
रथन्तरे बार्हद्रथे वापि राजन्
महाव्रते नैव दृश्येद् ध्रुवं तत्॥ २८॥

राजन्! ऋग्वेदकी ऋचाओंमें, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें, अथर्ववेदके सूक्तोंमें तथा विशुद्ध सामवेदमें भी वह नहीं दिखायी देता। रथन्तर और बार्हद्रथ नामक साममें तथा महान् व्रतमें भी उसका दर्शन नहीं होता; क्योंकि वह ब्रह्म नित्य है॥ २८॥

अपारणीयं तमसः परस्तात्
तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले।
अणीयो रूपं क्षुरधारया तत्
महच्च रूपं तद् वै पर्वतेभ्यः॥ २९॥

उस ब्रह्मका पार पाना असम्भव है, वह अज्ञानान्धकारसे परे है। महाप्रलयमें सबका अन्त करनेवाला काल भी उसीमें लीन हो जाता है। वह रूप छुरेकी धारके समान अत्यन्त सूक्ष्म और पर्वतोंसे भी महान् है। अर्थात् वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर और महान्‌से भी महान् है॥ २९॥

सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद् ब्रह्म तद् यशः।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात् प्रलयं यान्ति तत्र हि॥ ३०॥

वही सबका आधार है, वही अमृत है, वही लोक, वही यश और वही ब्रह्म है। सम्पूर्ण भूत उसीसे प्रकट हुए और उसीमें लीन होते हैं॥ ३०॥

अनामयं तन्महदुद्यतं यशो
वाचो विकारं कवयो वदन्ति।
यस्मिञ्जगत् सर्वमिदं प्रतिष्ठितं
ये तद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ ३१॥

विद्वान् कहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् वाणीका विकार मात्र है। किंतु जिसमें यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है, वह ब्रह्म रोग-शोकसे रहित और सबसे श्रेष्ठ है और उसका महान् यश सर्वत्र फैला हुआ है। उस नित्य कारणरूप ब्रह्मको जो जानते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सनत्सुजातपर्वमें सनत्सुजातवाक्यविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

गुण-दोषोंके लक्षणोंका वर्णन और ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन

सनत्सुजात उवाच

शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मानः परासुता।
ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपासूया जुगुप्सता॥ १॥
द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः।

सनत्सुजातजी कहते हैं—राजन्! शोक, क्रोध, लोभ,

काम मान [illegible] निद्रा ईर्ष्या या [illegible] दूसरेके गुणोंमें दोष देखना और निन्दा करना—ये [illegible] [illegible] मनुष्योंके प्राणनाशक हैं

[illegible] राजेन्द्र मनुष्यान् [illegible]
[illegible] पाप [illegible] व्यवस्यति

[illegible] [illegible] दोष मनुष्योंको [illegible] [illegible] हुए [illegible] बुद्धि [illegible] करने लगता है

गृहस्थानुकूल [illegible] वा [illegible]
[illegible] न [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

[illegible] और [illegible] प्रकारसे मनुष्य [illegible] नहीं

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

[illegible]

धनस्य [illegible] च [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] धृति क्षमा च
[illegible] [illegible]

[illegible] और क्षमा—ये [illegible]

या [illegible] [illegible]
[illegible] पृथिवी न [illegible]
[illegible] [illegible]
नास्य [illegible]

[illegible] [illegible] नहीं

होता—ऐसा [illegible] चाहिये अर्थात् उसकी किसी भी वस्तुमें [illegible] नहीं होती

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ ७ ॥

इन्द्रियनिग्रह त्याग और अप्रमाद—इनमें [illegible] स्थिति है [illegible] है उन बुद्धिमान् [illegible] ये ही मुख्य साधन हैं

सद् [illegible] वा परीवादो [illegible] न [illegible]
[illegible] स्वयं एव कुर्वते [illegible] ॥ ॥

[illegible] हो या [illegible] निन्दा करना [illegible] नहीं [illegible] दूसरोंकी निन्दा करते हैं [illegible] नरकमें पड़ता है

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] भी [illegible] कार्य करना [illegible] [illegible]

कामक्रोधौ [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ ॥

[illegible] [illegible] वे [illegible] [illegible] हो जाता

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निश्चित [illegible]

[illegible] च [illegible]
[illegible] च [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] ॥ ॥

[illegible] गुण हैं [illegible] हैं [illegible] और [illegible] [illegible] गुण हैं [illegible] यह है कि अपना जो कुछ [illegible] है उसे [illegible]

मालोंतक दे डाले, जिसके लिये अप्राप्य वस्तु भी अवश्य देने योग्य हो जाती है और जो धन, पुत्रके मौजूदगीपर वह यह मानता अपने प्रिय पुत्र, भ्रमर तथा पत्नीको भी उसके हितके लिये त्यागकर देता है

त्यक्तद्रव्यस्य सङ्कल्पेह कामाद्
भुङ्क्ते कर्म स्वादिव वापते न ॥ १३ ॥

जिसको धन देकर उसके यहाँ मनुष्यपर पानेकी कामना न रखकर दान करे—यह चौथा गुण है। अपने परिश्रमसे उपार्जित धनका उपभोग करे, जिसकी कर्मपर अवलम्बित न रहे।—यह पाँचवाँ गुण है तथा जिसकी भलाईके लिये अपने भलेकी चाह न करे—यह छठा गुण है ॥ १३ ॥

द्रव्यवान् गुणवांश्चैव त्यागी भवति सात्त्विकः।
पञ्च भूतानि पञ्चभ्यो निवर्तयति तादृशः ॥ १४ ॥

जो धनी गृहस्थ इस प्रकार गुणवान्, त्यागी और सात्त्विक होता है, वह अपनी पाँच इन्द्रियोंको पाँच विषयोंसे हटा देता है ॥ १४ ॥

एतत् समृद्धमप्यूह्यं तपो भवति केवलम्।
सत्त्वात् प्रच्यवमानानां सङ्कल्पेन समाहितम् ॥ १५ ॥

जो वैराग्यको कारण सम्पन्न हुआ नहीं है, ऐसे मनुष्योंके हित योगियोंकी नासिक अनावश्यक किया विषय हुआ यह इन्द्रियनिग्रहरूप तप, पूर्ण होनेपर भी कर्मफल, कर्मियोंको प्राप्तिका कारण होता है, मुक्तिका नहीं ॥ १५ ॥

यतो यज्ञाः प्रवर्धन्ते सत्यस्यैवावरोधनात्।
मनसान्यस्य भवति वाचान्यस्याथ कर्मणा ॥ १६ ॥

क्योंकि सत्यस्वरूप ब्रह्मका न पाना ही जो हो उन यज्ञोंकी वृद्धि होती है, किसीका यज्ञ मनसे, किसीका वाणीसे और किसीका क्रियाके द्वारा सम्पन्न होता है ॥ १६ ॥

सङ्कल्पसिद्धं पुरुषमसङ्कल्पोऽधितिष्ठति।
ब्राह्मणस्य विशेषेण किञ्चान्यदपि मे शृणु ॥ १७ ॥

सङ्कल्पसिद्ध, जगत्, सकामपुरुषसे सङ्कल्परहित पुरुषी निष्कामपुरुषकी स्थिति ऊँची होती है, किंतु ब्रह्मवेत्ताकी स्थिति उससे भी विशिष्ट है। इसके सिवा एक बात और बताता हूँ, सुनो ॥ १७ ॥

अध्यापयेन्महदेतद् यशस्यं
वाचो विकाराः कवयो वदन्ति।
अस्मिन् योगे सर्वमिदं प्रतिष्ठितं
ये तद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १८ ॥

इस महान् एवं यशस्वी परात्पर परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है, इसे शिष्योंको अवश्य पढ़ाना चाहिये। परमात्मासे भिन्न यह सारा दृश्य प्रपञ्च वाणीका विकारमात्र है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। इस योगशास्त्रमें यह परमात्माविषयक सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। इसे जो जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मरणसे मुक्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

न कर्मणा सुकृतेनैव राजन्
सत्यं जयेज्जुहुयाद् वा यजेद् वा।
नैतेन बालोऽमृत्युमभ्येति राजन्
रतिं चासौ न लभत्यन्तकाले ॥ १९ ॥

राजन्! निष्कामभावसे रहित किये हुए केवल पुण्यकर्मके द्वारा मनुष्य सत्यको नहीं जीत सकता। अथवा जो हवन या यज्ञ किया जाता है, उससे भी अज्ञानी पुरुष अमरत्व—मुक्तिको नहीं पा सकता तथा अन्तकालमें उसे शान्ति भी नहीं मिलती ॥ १९ ॥

तूष्णीमेक उपासीत चेष्टेत मनसापि न।
तथा संस्तुतिनिन्दाभ्यां प्रीतिरोषौ विवर्जयेत् ॥ २० ॥

सब ओरसे एकाग्रता प्राप्त करके मौन होकर एकान्तमें उपासना करे। मनसे भी कोई चेष्टा न होने दे। स्तुति तथा निन्दामें हर्ष और क्रोधका त्याग कर दे ॥ २० ॥

अत्रैव तिष्ठन् क्षत्रिय ब्रह्माविशति पश्यति।
वेदेषु चानुपूर्व्येण एतद् विद्वन् ब्रवीमि ते ॥ २१ ॥

क्षत्रिय! उपर्युक्त साधन करनेसे मनुष्य यहाँ ब्रह्मका साक्षात्कार करके उसमें स्थित हो जाता है। विद्वन्! वेदोंमें क्रमशः विचार करके मैंने जैसा जाना है, वही तुम्हें बता रहा हूँ ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सनत्सुजातपर्वमें सनत्सुजातवाक्यसम्बन्धी पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

परमात्माके स्वरूपका वर्णन और योगीजनोंके द्वारा उनके साक्षात्कारका प्रतिपादन

सनत्सुजात उवाच

यत् तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद् यशः।
तद् वै देवा उपासन्ते यस्मादर्को विराजते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १ ॥

सनत्सुजातजी कहते हैं—राजन्! जो शुद्ध ब्रह्म है वह महान् ज्योतिर्मय देदीप्यमान एवं विशाल यशरूप है। सब देवता उसीकी उपासना करते हैं। उसीके प्रकाशसे सूर्य प्रकाशित होते हैं। उस सनातन भगवान्‌का योगी जन साक्षात्कार करते हैं ॥ १ ॥

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्धते।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २ ॥

शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होती है तथा उसीसे वह वृद्धिको प्राप्त होता है। वह शुद्ध ज्योति ही सूर्य आदि सम्पूर्ण ज्योतियोंके भीतर स्थित होकर उनको प्रकाशित कर रहा है और तपा रहा है, वह स्वयं सब प्रकारसे अतप्त और स्वयंप्रकाश है। उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ २ ॥

आपोऽथ अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये
उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे।
अतन्द्रितः सवितुर्विवस्वा-
नुभौ बिभर्ति पृथिवीं दिवं च।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ३ ॥

जलकी भाँति बहनेवाले परमात्मामें स्थित पाँच सूक्ष्म महाभूतोंसे अत्यन्त स्थूल पाञ्चभौतिक शरीर तथा हृदयाकाशमें रहनेवाले ईश्वर और जीव उसीके आश्रय होकर रहते हैं। सबका उत्पत्तिकारण सर्वव्यापी परमात्मा निरन्तर सोता रहता है तथा इन दोनोंको तथा पृथ्वी और द्युलोकको भी धारण करता है। उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ३ ॥

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च
दिशः शुक्रो भुवनं बिभर्ति।
तस्माद् दिशः सरितश्च स्रवन्ति
तस्मात् समुद्रा विहिता महान्तः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ४ ॥

उन दोनों देवताओंको, पृथ्वी और आकाशको, सम्पूर्ण दिशाओंको तथा समस्त लोकसमुदायको वह शुद्ध ब्रह्म ही धारण करता है। उसी परमात्मासे दिशाएँ प्रकट हुई हैं, उसीसे सरिताएँ प्रवाहित होती हैं तथा उसीसे बड़े-बड़े समुद्र प्रकट हुए हैं। उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ४ ॥

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तं ध्रुवस्याव्ययकर्मणः।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ५ ॥

जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदिका समूह-शरीररूपी रथ है, जिसके कर्म अपने-आप नष्ट होनेवाले नहीं हैं, उस इस शरीररूपी रथके पहियेकी भाँति घूमनेवाले मन-बुद्धिमें स्थित हुए इन्द्रियरूपी घोड़े उस हृदयाकाशमें स्थित ज्ञानस्वरूप दिव्य अविनाशी जीवात्माको दिव्य सनातन परमात्माके निकट ले जाते हैं। उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ५ ॥

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्।
मनीषयाथो मनसा हृदा च
य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ६ ॥

उस परमात्माका स्वरूप किसी दूसरेकी तुलनामें नहीं आ सकता। उसे कोई चर्मचक्षुओंसे नहीं देख सकता। जो निश्चयात्मिका बुद्धि, मन और हृदयसे उसे जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं अर्थात् परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं। उस सनातन भगवान्‌का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ६ ॥

द्वादशपूगां सरितं पिबन्तो देवरक्षिताम्।
मध्वीशन्तश्च ते तस्याः सञ्चरन्तीह घोराम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ७ ॥

जो इन्द्रिय, मन और बुद्धि इन बारहके समुदायसे युक्त है, तथा जो परमात्मासे सुरक्षित है, उस संसाररूप भयंकर नदीके विषयरूप मधुर जलको देखने और पीनेवाले लोग उसमें गोता लगाते रहते हैं। इससे मुक्त करनेवाले उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ७ ॥

तदर्धमासं पिबति सञ्चित्य भ्रमरो मधु।
ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ८ ॥

* जपयुक्त मन्त्रका कठोपनिषद्के प्रथम अध्यायकी तीसरी वल्लीके नामसे लेकर … विस्तृत विवरण मिलता है।

† इसका … श्वेताश्वतर … एक श्लोक कठोपनिषद्में मिलता है।

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

बड़े घड़ेकी [illegible] भरे महासागर [illegible] सर [illegible] मनशील [illegible] गये [illegible] बड़ेकोसे [illegible] प्रातियोंके लिये [illegible] रविको [illegible] उस सनातन [illegible] योगी साक्षात्कार [illegible]

हिरण्मयानांमन्यतमाधिपत्य [illegible]
ते तत्र पतितो भूत्वा प्रपतन्ति यथा दिशम्
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

[illegible] हैं [illegible] दीन [illegible] विभिन्न योनियोंमें [illegible] गमन करते हैं [illegible] सनातन [illegible] साक्षात्कार करते

पूर्णात् पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात् पूर्णानि चक्रिरे
हरन्ति पूर्णात् पूर्णानि पूर्णमेवावशिष्यते
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

पूर्ण परमेश्वरसे पूर्ण [illegible] पूर्ण [illegible] पूर्णसे ही [illegible] उस [illegible] तथा [illegible] पूर्णब्रह्म ही [illegible] उस सनातन [illegible] साक्षात्कार [illegible]

तस्माद् वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा
तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः

उस [illegible] ही वायुका आविर्भाव [illegible] और [illegible] यह [illegible] उसीसे अग्नि [illegible] उत्पत्ति हुई [illegible] यह [illegible]

सर्वमेव ततो विद्यात् तत् तद् वक्तुं न शक्नुमः
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

[illegible] जितने [illegible] नाम [illegible] हैं [illegible] इतना ही समझो कि [illegible] परमात्मासे ही प्रकट हुआ है [illegible] सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं

अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः
आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

[illegible] अपनेमें [illegible] है [illegible] चन्द्रमा [illegible] और सूर्यको परमात्मा [illegible] कर [illegible] सनातन परमेश्वरका योगीजन साक्षात्कार करते

एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन्
तं चेत् सततमूर्ध्वाय मृत्युर्नामृत भवेत्
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

[illegible] तल [illegible] उड़ता [illegible] समान [illegible] नहीं [illegible] है यदि [illegible] ऊपर उठा [illegible] और [illegible] [illegible] करते

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
लिङ्गस्य योगेन स याति नित्यम्
तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं
पश्यन्ति मूढा न विराजमानम्
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

[illegible] पुरुष अन्तरात्मा [illegible] नहीं [illegible] दोना [illegible] स्तुति [illegible] [illegible] और [illegible] किंतु [illegible] करता [illegible]

साधना वापि ससाधना वा
समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु
समानमेतदमृतस्येतरस्य
मुक्तास्तत्र मध्व उत्सं समापुः
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्

[illegible] साधनहीन [illegible] मनुष्योंमें समानरूपसे [illegible] जाता है [illegible] और [illegible] के लिये समान है अन्तर इतना ही कि इन दोनोंमेंसे मुक्त पुरुष हैं [illegible] आनन्दके मूलभूत परमात्माको प्राप्त होते हैं [illegible]

जहाँ) उसी प्रकार परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। १६।

उभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति
तदा हुतं चाहुतमग्निहोत्रम्।
मा ते ब्राह्मी लघुतामादधीत
प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥१७॥

ज्ञानी पुरुष ब्रह्मविद्याके द्वारा इस लोक और परलोक दोनोंके मर्मको जानकर ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। उस समय उसके द्वारा यदि अग्निहोत्र आदि कर्म न भी हुए हों तो भी वे पूर्ण हुए समझे जाते हैं। राजन्! यह ब्रह्मविद्या तुममें लघुता न आने दे तथा इसके द्वारा तुम्हें वह प्रज्ञा प्राप्त हो, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। उसी ब्रह्मविद्याके द्वारा योगीजन उस सनातन परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। १७।

एवंरूपो महात्मा स पावकं पुरुषो गिरन्।
यो वै तं पुरुषं वेद तस्येहार्थो न रिष्यते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥१८॥

जो ऐसा महात्मा पुरुष है वह भोक्ताभावको अपनेमें विलीन करके उस पूर्ण परमेश्वरको जान लेता है। इस लोकमें उसका प्रयोजन नष्ट नहीं होता [अर्थात् वह कृतार्थ हो जाता है]। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। १८।

यः सहस्रं सहस्राणां पक्षान् संतत्य सम्पतेत्।
मध्यमं मध्य आगच्छेदपि चेत् स्यान्मनोजवः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥१९॥

चाहे मनके समान वेगवाला ही क्यों न हो और दस लाख भी पंख लगाकर क्यों न उड़े, अन्तमें उसे हृदयस्थित परमात्मामें ही आना पड़ेगा। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं। १९।

न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य
पश्यन्ति चैनं सुविशुद्धसत्त्वाः।
हितो मनीषी मनसा न तप्यते
ये प्रव्रजेयुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥२०॥

इस परमात्माका स्वरूप सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, जिनका अन्तःकरण विशुद्ध है वे ही उसे देख पाते हैं। जो सबका हितैषी और मनको वशमें करनेवाला है तथा जिसके मनमें कभी दुःख नहीं होता एवं जो संन्यास ले सब कुछ त्याग कर देता है वे मुक्त हो जाते हैं। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं॥२०॥

गूहन्ति सर्पा इव गह्वराणि
स्वशिक्षया स्वेन वृत्तेन मर्त्याः।
तेषु प्रमुह्यन्ति जना विमूढा
यथाध्वानं मोहयन्ते भयाय।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥२१॥

जैसे सर्प बिलोंका आश्रय ले अपनेको छिपाये रहते हैं, उसी प्रकार दम्भी मनुष्य अपनी शिक्षा और सदाचारकी आड़ लेकर अपने दोषोंको छिपाये रहते हैं। जैसे ठग रास्ता चलनेवाले राहगीरोंके लिये दूसरा रास्ता बतलाकर मोहित कर देते हैं, मूर्ख मनुष्य उनपर विश्वास करके संकटमें पड़ जाते हैं, इसी प्रकार जो परमात्माके मार्गमें चलनेवाले हैं उन्हें भी दम्भी पुरुष अपने आचरणसे मोहित कर संकटमें डाल देते हैं; किंतु योगीजन ईश्वरकृपासे उनके फंदेमें न आकर उस सनातन परमात्माका ही साक्षात्कार करते हैं। २१।

नाहं सदासत्कृतः स्यां न मृत्यु-
र्न चामृत्युरमृतं मे कुतः स्यात्।
सत्यानृते सत्यसमानबन्धे
सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥२२॥

मैं (आत्मा) कभी किसीका असत्कारका पात्र नहीं होता, न मेरी मृत्यु होती है न जन्म; फिर मोक्ष किसका और कैसे हो? [क्योंकि मैं नित्यमुक्त ब्रह्म हूँ] सत्य और असत्य सब कुछ मुझ सनातन समब्रह्ममें स्थित है। एकमात्र मैं ही सत् और असत्‌की उत्पत्तिका स्थान हूँ। मेरे स्वरूपभूत उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं॥२२।

न साधुना नोत असाधुना वा
समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु।

समाप्नमेतदमृतस्य विद्या
वेदपुक्तो मधु तद् न परीप्सन्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

परमात्मा ... साधुकर्मी ... है और ... साधु ... नहीं ... वेदाभ्यासी मनुष्योंमें ... जाते हैं ... इस प्रकार ज्ञानवाले पुरुष होकर आनन्दमय ... है ... सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं।

नास्यकीर्तयेद् हृदयं नाचरन्ति
नासाधीत नाहुतमग्निहोत्रम्।
मनो ब्राह्मी लघुतामादधीत
प्रज्ञा चास्य नाम धीरा लभन्ते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

ब्रह्मवेत्ता पुरुषको ... किसीसे याचना नहीं करते ... ब्रह्मा ... ही किया ... इत्यादि बातें भी ... सब कर्तो ... बुद्धि प्राप्त करता है जिस प्रकार पुरुष ही ... करते हैं ... उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं।

एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति।
अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत् ततः परम्॥

... समस्त भूतोंमें परमात्मा ... निरन्तर देखता है ... दृष्टि ... भोगोंमें आसक्त मनुष्योंके लिये ...

यथोदपाने महति सर्वतः सम्प्लुतोदके।
एवं सर्वेषु वेदेषु आत्मानमनुजानतः॥

जैसे ... जलसे परिपूर्ण बड़े जलाशयके प्राप्त हो ... पर उसके लिये अन्य जलकी ... उसी प्रकार ... आत्माके ... जान ... कर ... शेष नहीं रह जाता।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा
न दृश्यतेऽसौ हृदये निविष्टः।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितश्च
स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः॥ ७॥

यह अङ्गुष्ठमात्र अन्तर्यामी ... सबके हृदयके भीतर स्थित है ... किसीको नहीं दीखता ... अजन्मा ... दिन-रात सावधान रहनेवाला है ... जो उसे जान लेता है वह ज्ञानी परमानन्दमें निमग्न ... जाता है।

अहमेवास्मि वो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः।
आत्माहमपि सर्वस्य यच्च नास्ति यदस्ति च॥

... मैं ही तुम्हारी माता और पिता माना गया हूँ ... मैं ही हूँ और ... भी मैं ही हूँ ... जो है वह भी ... और जो नहीं ... भी मैं हूँ।

पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत।
ममैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न वोऽप्यहम्॥

भारत ... मैं ... पितामह, पिता और पुत्र ... तुम ... मेरे ही आत्मामें स्थित हो, फिर भी ... तुम हमारे हो और हम तुम्हारे हैं ...

आत्मैव स्थानं मम जन्म चात्मा
ओतप्रोतोऽहमजरप्रतिष्ठः।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितोऽहं
मां विज्ञाय कविरास्ते प्रसन्नः॥

आत्मा ही मेरा स्थान है और आत्मा ही मेरा जन्म ... है। मैं सबमें ओतप्रोत और अपनी अजर महिमामें स्थित हूँ। मैं अजन्मा, चराचरस्वरूप तथा दिन-रात सावधान रहनेवाला हूँ। मुझे जानकर ज्ञानी पुरुष ... प्रसन्न हो जाता है।

अणोरणीयान् सुमनाः सर्वभूतेष्ववस्थितः।
पितरं सर्वभूतानां पुष्करे निहितं विदुः॥

परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और विशुद्ध मनवाला है। वह सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलमें स्थित उस पिताको ज्ञानी पुरुष जानते हैं।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सनत्सुजातपर्वमें छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

यानसन्धिपर्व

सप्तचत्वारिंशोऽध्याय

पाण्डवोंके यहाँसे लौटे हुए संजयका कौरवसभामें आगमन

वैशम्पायन उवाच

एवं सनत्सुजातेन विदुरेण च धीमता।
सार्धं कथयतो राज्ञः सा व्यतीयाय शर्वरी॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार सनत्सुजात तथा बुद्धिमान् विदुरजीके साथ बातें करते हुए राजा धृतराष्ट्रकी वह सारी रात बीत गयी।

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया॥

उस रात्रिके बीतनेपर सब राजा प्रसन्नतापूर्वक सूतपुत्र संजयसे मिलनेके लिये सभामें आये।

शुश्रूषमाणाः पार्थानां वाचो धर्मार्थसंहिताः।
धृतराष्ट्रमुखाः सर्वे ययू राजसभां शुभाम्॥
सुधावदातां विस्तीर्णां कनकाजिरभूषिताम्।
चन्द्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां परमवारिणा॥

[illegible]

रुचिरैरासनैस्तीर्णां काञ्चनैर्दारवैरपि।
अश्मसारमयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः॥

[illegible] सुन्दर [illegible] और उनके [illegible]

भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः॥
विदुरश्च महाप्राज्ञो युयुत्सुश्च महारथः।
सर्वे च सहिताः शूराः पार्थिवा भरतर्षभ॥
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्ते सभां शुभाम्।

जनमेजय! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, बुद्धिमान् विदुर, महारथी युयुत्सु तथा अन्य सभी शूरवीर नरेश धृतराष्ट्रको आगे करके उस सुन्दर सभामें एक साथ प्रविष्ट हुए।

दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः।
दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उलूकोऽथ विविंशतिः॥
कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम्।
विविशुस्ते सभां राजन् सुराः शक्रमिव यथा॥

[illegible] दुःशासन, चित्रसेन, सुबलपुत्र शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक और विविंशति—इन सबने कुरुराज दुर्योधनको आगे करके [illegible] सभामें प्रवेश किया।

आविशद्भिस्तदा राजन् शूरैः परिघबाहुभिः।
शुशुभे सा सभा राजन् सिंहैरिव गिरेर्गुहा॥

[illegible] समान सुदृढ़ भुजाओंवाले उन शूरवीरोंके प्रवेश करनेसे वह सभा [illegible] सुशोभित हुई।

प्रविश्य तु महेष्वासाः सभां समितिशोभनाः।
आसनानि महार्हाणि भेजिरे सूर्यवर्चसः॥

[illegible] सूर्यके समान तेजस्वी [illegible] सभामें प्रवेश करके [illegible] बहुमूल्य आसनोंपर सुशोभित हुए।



आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु भारत
तं सभे विवेशयामास सूतपुत्रमुपस्थितम्
अथ एष आयाति यो ऽयासीत् पाण्डवान् प्रति
दूतो स्तूर्णमायात सभ्यम् साधुवाजिभिः
भारत ... राजा सादर यथायोग्य आसनों
पर बैठ गये ... इन्द्रप्रस्थसे सूतनन्दन ... राजसभा
द्वारपर उपस्थित ... वही
पाण्डवोंके ... मेजा था ... रथको अच्छी तरह वहन
करनेवाले सिन्धुदेशीय घोड़ोंसे जुते ... रथपर सवार
हो सूत सञ्जय शीघ्र ... पहुँचे
उपेयाय ... शिरः स्थानात् प्रस्कन्द्य कुण्डली
प्रविवेश सभा पूर्णा महीपालैर्महात्मभिः
द्वारपरसे उतरकर रथसे ... कुण्डल धारण
किये सञ्जय रथसे नीचे उतरकर ... महात्मा भूपालोंसे भरी
और महान ... सभामें ... प्रविष्ट
प्रवेश

सञ्जय उवाच
प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान् गत्वा ... देवा
यथार्ह कुरून् सर्वान् प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः
सञ्जयने ... कहा ... जाकर ... वहाँ
आदिसे ... पाण्डव ... सबका
अवस्थाके ... अनुसार सभी कौरवोंका ... अभिनन्दन करते हैं
अभिवादयन्ति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत्
यूनश्चाभ्यवदन् पार्था प्रतिपूज्य यथावयः
वे ... बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम करते हैं ... समवयस्क
उनसे ... मित्रोचित व्यवहार करते हैं तथा
नवयुवकोंका ... उनकी ... अवस्थाके अनुसार सम्मान देकर
उनसे ... प्रकार
यथाह धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः
अब्रुवं पाण्डवान् गत्वा तन्निबोधत पार्थिवाः
... भारत ... वासुदेवधनञ्जयौ
... धृतराष्ट्र ... सुन
... ज्ञात ... कहा
... भगवान् श्रीकृष्ण ... अर्जुन
... सुने ... आप ... ध्यान

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयप्रत्यागमने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः
... सैंतालीसवाँ अध्याय
... श्लोक ... श्लोक

अष्टचत्वारिंशोऽध्याय

सञ्जयका कौरवसभामें अर्जुनका सन्देश सुनाना

धृत

पृच्छामि त्वां सञ्जय राजमध्ये
किमब्रवीद् वाक्यमदीनसत्त्वः
धनञ्जयस्तात युधां प्रणेता
दुरात्मनां जीवितच्छिन्महात्मा

धृतराष्ट्रने कहा ... लोगोंके बीच
तुमसे पूछता ... अनेक युद्धोंके संचालक
दुरात्माओंके ... उदारहृदय महात्मा
अर्जुनने इधर लिये ... सन्देश

सञ्जय उवाच

दुर्योधनो वाचमिमां शृणोतु
यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः
युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा
धनञ्जयः शृण्वतः केशवस्य

सञ्जय बोला—राजन्! युधिष्ठिरकी आज्ञासे युद्धके लिये उद्यत हुए महात्मा अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए जो बात कही ... उसे दुर्योधन सुनें



अंशप्रदाने धार्तराष्ट्रे विहाय
उपह्वरे वासुदेवस्य धीर।
अथोऽभ्यमा या न्यायान् किरीटी
मध्ये कृष्णा धार्तराष्ट्र कुरूणाम् ॥ ३ ॥
मन्युर्धन्वतरस्य कुमारियो वै
दुरात्मनः सूतपुत्रस्य सूत।
यो योऽकुमाराञ्जलि च सन्त
सभ्यमाह पाण्डवाऽनिभूद्
ये च राज न पाण्डवायोधनाय
अमानीता गुप्यता या पतयाम्।
यथा सर्वथ वर्धमं मबाक
सहामात्य श्रावयेथा नृप तम्

अब दुःशासन... तरह जानना चाहिये (?) किरीटधारी अर्जुन ... युद्धके लिये उद्यत हो भगवान् श्रीकृष्ण ... इसके बल बढ़ा है— ... वो कालके गालमें जानेवाला मन्दबुद्धि ... नर ... युद्ध करनेके लिये बीस ... कहेगा ... मिलाकर ... ता ... युद्ध करनेके लिये ... ... सुनाने हुए तुम कौरवोंकी ... मैं सभा कहा गयी ... धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनसे ... प्रकार कहना कि ... वह अच्छी तरह सुन

यथा नूनं देवराजस्य ...
पुष्करस्य वज्रहस्तस्य मध्य
तथाऽप्यय न् पाण्डवा ...
करोति न वसुकं समयाम्
... ... दे ... जो सुनना चाहे ... जब ... प्रथम ... ले ... हुआ ... विजय ... नहीं हुई ... वानों सु

एवमुक्तोऽर्जुनः ... योत्स्यता
गाण्डीवधन्वा लोहितपक्ष्मनेत्र
न चेद् राज्यं मुञ्चति धार्तराष्ट्रो
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः ॥ ७ ॥
अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्तात्
अनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः

गाण्डीवधारी अर्जुन युद्धके लिये उत्सुक ... पड़ता ... कमलदल ... यों कहते थे कि ... प्रकार था ... यदि दुर्योधन अजमीढकुलनन्दन महाराज युधिष्ठिरका राज्य नहीं लौटाता है तो निश्चय ही धृतराष्ट्रके पुत्रोंका पूर्वजन्मोंमें किया हुआ कोई ऐसा पापकर्म शेष रहा है जिसका फल उन्हें भोगना है

येषां युद्धं भीमसेनार्जुनाभ्यां
तथाश्विभ्यां वासुदेवेन चैव ॥ [illegible] ॥
शैनेयेन ध्रुवमात्तायुधेन
धृष्टद्युम्नेनाथ शिखण्डिना च।
युधिष्ठिरेणेन्द्रकल्पेन चैव
यो ध्यानाद्‌ निर्दहेद् गां दिवं च ॥ ९ ॥

क्योंकि उन्हें भीमसेन, अर्जुन, नकुल-सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण, अस्त्रधारी ... शिखण्डी ... उन महाराज युधिष्ठिरके साथ युद्ध करना है, जो अनिष्टचिन्तन करते ही पृथ्वी तथा स्वर्गलोकको भी भस्म कर सकते हैं।

तच्चेद् योद्धुं मन्यते धार्तराष्ट्रो
निर्वृत्तोऽर्थः सकलः पाण्डवानाम्।
मा तत् कार्षीः पाण्डवार्थाय हेतो-
रुपैहि युद्धं यदि मन्यसे त्वम् ॥ १० ॥

यदि दुर्योधन चाहता है कि इन सब वीरोंके साथ और उन युद्ध हो तो ठीक है, इससे पाण्डवोंका सारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा। ... तुम केवल पाण्डवोंके लाभके लिये ... राज्य लौटानेकी चेष्टा न करना, ... युद्धमें यदि ठीक समझो तो उसके ... दुर्योधन, तुम युद्ध ही ठानो।

यां तां वने दुःखशय्यामवात्सीत्
प्रव्राजितः पाण्डवो धर्मचारी।
आप्नोतु तां दुःखतरामनर्थां
अन्त्यां शय्यां धार्तराष्ट्रः परासुः ॥ ११ ॥

धर्मात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने वनमें निर्वासित होकर जिस दुःखमयी शय्यापर शयन किया है, दुर्योधन उससे भी अधिक दुःखदायिनी और अनर्थकारिणी मृत्युमय अन्तिम शय्याको ग्रहण करे।

ह्रिया ज्ञानेन तपसा दमेन
शौर्येणाथो धर्मगुप्त्या धनेन।
अन्यायवृत्तिः कुरुपाण्डवेयान्
अध्यातिष्ठद् धार्तराष्ट्रो दुरात्मा ॥ १२ ॥

अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेवाले दुरात्मा दुर्योधनको उचित है कि वह लज्जा, ज्ञान, तपस्या, इन्द्रियसंयम, शौर्य, धर्मरक्षा आदि गुणों तथा धनके द्वारा कौरव-पाण्डवोंपर अधिकार प्राप्त करे ... सबके हृदयको जीते ... अन्यायपूर्ण शासन करना असम्भव है।

मायोपधः प्रणिपातार्जवाभ्यां
तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन।
सत्यं ब्रुवन् प्रीतियुक्त्या नृपो न
तितिक्षमाणः क्लिश्यमानोऽतिवेलम् ॥ १३ ॥

'हमारे महाराज युधिष्ठिर नम्रता, सरलता, तप, इन्द्रिय संयम, धर्मरक्षा और बल—इन सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं। वे बहुत दिनोंसे अनेक प्रकारके क्लेश उठाते हुए भी सदा सत्य ही बोलते हैं तथा कौरवोंके कपटपूर्ण व्यवहारों तथा वचनोंको सहन करते रहते हैं ॥ १३ ॥

यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा
क्रोधं यत्तं वर्षपूगान् सुघोरम् ।
अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेता-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १४ ॥

परंतु अपने मनको शुद्ध एवं वशमें रखनेवाले ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर जिस समय उत्तेजित हो अनेक वर्षोंसे एकत्र हुए अपने अत्यन्त भयंकर क्रोधको कौरवोंपर छोड़ेंगे, उस समय वे धृतराष्ट्रपुत्र युद्ध करके पश्चात्ताप करेगा ॥ १४ ॥

कृष्णवर्त्मेव ज्वलितः समिद्धो
यथा दहेत् कक्षमग्निर्निदाघे ।
एवं दग्धा धार्तराष्ट्रस्य सेनां
युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽनुवीक्ष्य ॥ १५ ॥

जैसे ग्रीष्मऋतुमें प्रज्वलित अग्नि ईंधन पाकर सूखे घास-फूस एवं जंगलोंको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार क्रोधसे उद्दीप्त हुए युधिष्ठिर दुर्योधनकी सेनाको अपनी दृष्टिमात्रसे भस्म कर देंगे ॥ १५ ॥

यदा द्रष्टा भीमसेनं रणस्थं
गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् ।
दुर्मर्षणं पाण्डवं भीमवेगं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १६ ॥

जिस समय दुर्योधन हाथमें गदा लिये रणमें डटे हुए भयानक वेगवाले असह्य पाण्डुनन्दन भीमसेनको क्रोधरूपी विष उगलते देखेगा, उस समय युद्धके परिणामसे सोचकर उसे महान् पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ १६ ॥

सेनाग्रगं दंशितं भीमसेनं
स्वालक्षणं वीरहणं परेषाम् ।
घ्नन्तं चमूमन्तकसंनिकाशं
तदा स्मर्ता वचनस्यास्य मानी ॥ १७ ॥

जब भीमसेन कवच धारण करके शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करते हुए अपनी सेनाके आगे-आगे दिखायी देंगे, उस समय वे यमराजके समान विपक्षी सेनाका संहार करने लगेंगे, उस समय अभिमानी दुर्योधनको मेरी ये बातें याद आयेंगी ॥ १७ ॥

यदा द्रष्टा भीमसेनेन नागान्
निपातितान् गिरिकूटप्रकाशान् ।
कुम्भैरिवास्रं वमतो भिन्नकुम्भां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १८ ॥

जब भीमसेन पर्वतशिखरके सदृश हाथियोंके मस्तक चूर-चूर करके उनको गिरायेंगे और वे गजराज अपने फटे हुए कुम्भस्थलोंसे घड़ेकी भाँति रक्त बहाने लगेंगे, उस समय दुर्योधन जब यह दृश्य देखेगा, तब उसे युद्ध छेड़नेके कारण बड़ा भारी पश्चात्ताप होगा ॥ १८ ॥

महासिंहो गा इव संविगाह्य
गदापाणिर्धार्तराष्ट्रानुपेत्य ।
यदा भीमो भीमरूपो निहन्ता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १९ ॥

जब भयंकर रूपधारी भीमसेन हाथमें गदा लिये तुम्हारे बेटोंके समुदायमें घुसकर धृतराष्ट्रपुत्रोंके पास जाकर उनका उसी प्रकार संहार करने लगेंगे, जैसे महान् सिंह गौओंके झुंडमें घुसकर उन्हें दबोच लेता है, तब दुर्योधनको युद्धके लिये बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ १९ ॥

महाभये वीतभयः कृतास्त्रः
समागमे शत्रुबलावमर्दी ।
सकृद् रथेनाप्रतिमान् रथौघान्
पदातिसंघान् गदयाभिनिघ्नन् ॥ २० ॥
शैक्येन नागांस्तरसा विमृद्नन्
यदा छेत्ता धार्तराष्ट्रस्य सैन्यम् ।
छिन्दन् वनं परशुनेव शूर-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २१ ॥

जो भारीसे भारी भय आनेपर भी निर्भय रहते हैं, जिन्होंने समरमें अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की है तथा जो समरभूमिमें शत्रुओंको रौंद डालते हैं, वे ही शूरवीर भीमसेन जब एकमात्र रथपर आरूढ़ हो अपनी अपनी अप्रतिम रथसमूहोंको तथा पैदल सैनिकोंके समूह मार डालेंगे और छींकेके समान पकड़में आनेवाले हाथियोंको वेगपूर्वक कुचलकर मारेंगे, एवं कटोर भालोंसे उन्हें चकनाचूर करते हुए दुर्योधनकी सेनाको ऐसा छिन्न-भिन्न करने लगेंगे, जैसे कोई कुल्हाड़ीसे जंगल काट गिराता है, उस समय धृतराष्ट्रपुत्र मन-ही-मन यह सोचकर पछतायेगा कि मैंने युद्ध छेड़कर बड़ी भारी भूल की है ॥ २०-२१ ॥

तृणप्रायं ज्वलनेनेव दग्धं
ग्रामं यथा धार्तराष्ट्रः समीक्ष्य ।
पक्वं सस्यं वैद्युतेनेव दग्धं
पराहतां विपुलां स्वां वरूथिनीम् ॥ २२ ॥

हतप्रवीरं विपुलं ध्वजार्थे
परावास्तं भवतोऽपूज्यपक्षम्।
शत्रार्पितां भीमसेनेन वृष्णं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २३॥

जब वाचन ह दुःख कि जो मा यु व होनेवाला न आवाम केवल नाक हो जाता है इ प्रकार धृतराष्ट्र के अन्य सभी पुत्र भीमसेनका के आमिल त्याग हो गये मेरा विशाल सा वी विजयकी आपके गया हु पडा मंत्रीके समान नष्ट हो गए व वे मुख्य मुख्य वीर मारे गये मलिक पीठ दिये ना सभी मरण वी इन हो लाभ मले पुत्र विधे आप न का सामा इन भयानक युद्ध पर वेद तथा भीमसेनके अस्त्र शस्त्रों में नाग म युद्ध जाय ह तथा उस समय उसे युद्धके लिए बड़ा पछतावा हो॥

तथासनीनाम द् दृशिनात
धराशून बहुलक्षितयोधी
यद्गा रथान्यो गर्जिन मनेना
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २४॥

जिसके भेद और विचित्र योधिते युद्ध करनेवाले नकुल हाथि हाथमें लिए हुए खड्गसे तुम्हारे नाशवोंके मस्तक काट डा ला धन धरतीपर उनके ढेर लगाने जाता और रथा योद्धाओंका भयानक भेद प्राण न करेंगे उस समय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धका परिणाम सोचकर शोकसे भरा हो उठेगा॥

सुखोचिता दुःखशय्या वनेषु
दीर्घं कालं नकुलो यामशेत
आशीविष क्रुद्ध इवोद्वमन् विषं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २५॥

नकुल सामर्थ्यके योग्य वीरता कुन्ती दापकालतक वनमें दकर जिन दुःख शय्या सोना किया है उसका स्मरण करके क्रुद्ध बार बार फौंके भरे हुए विषैले सर्पकी भाँति विष उगलने लगेगा उ पय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको युद्ध छेड़न के कारण पछताना पड़ेगा॥

त्यक्तात्मानः पार्थिवा योधनाय
समादिष्टा धर्मराजेन सूत
रथैः शुभ्रैः सन्यमभिद्रवन्तो
दृष्ट्वा पश्चात् तप्स्यते धार्तराष्ट्रः॥ २६॥

सूत धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा युद्धके लिए आदेश पाकर उनके लिए प्राण देनेको उद्यत हो वीर भूपालगण चमकीले रथ पर सवार होकर आक्रमण कर कौरव-सेनापर आक्रमण करेंगे उस समय उन्हें देखकर दुर्योधनको युद्धके लिये अत्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ेगा॥ २६॥

शिशून् कृतास्त्रानशिशुप्रकाशान्
यदा द्रष्टा कौरवः पञ्च शूरान्।
त्यक्त्वा प्राणान् कैकयान् द्रोणमिन्दन्
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २७॥

जब अवस्थामें बालक होते हुए भी अस्त्र-शस्त्रोंकी पूर्ण शिक्षा पाकर युद्धमें जनसुदायीके समान शत्रुको संतापित करते हुए भी दीख पड़ेंगे शूरवीर पुत्र प्राणोंका मोह छोड़कर जब कौरवसेनापर टूट पड़ेंगे और कुरुराज दुर्योधन जब उन्हें अपनी आँखों देखेगा तब उसे युद्ध छेड़नेकी भूल का बड़ा पश्चात्ताप होगा॥

यदा गतोद्वाहमकूजनाक्षं
सुवर्णतारं रथमुत्तमाश्वम्।
दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः
शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः॥ २८॥

महाभये सम्प्रवृत्ते रथस्थं
विवर्तमानं समरे कृतास्त्रम्।
सर्वां दिशं सम्पतन्तं समीक्ष्य
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २९॥

जब महान् उत्तम बा वे सुशिक्षित घोड़ोंसे जुते हुए अपनी इच्छाके अनुकूल चलनेवाले तथा पहियोंकी धुरीसे तनिक भी आवाज न करनेवाले रथपर अस्त्रविद्याकी ओर घूमकर भयानक गोलाकार तारेके समान प्रतीत होता है आरूढ़ हो अपने बाणसमूहोंद्वारा विपक्षी राजाओंके मस्तक काट-काटकर गिराने लगेंगे और इस प्रकार महान्



नेवला वातावरण सा बनाकर रथपर बैठे हुए अमर्षशील सहदेव समरभूमिमें हर रहकर सब सेनी दिशाओंमें गान्धार आक्रमण करके उन ध्वजोंमें उन्हें देखकर दुरात्मा पुत्र दुर्योधनके मनमें युद्धका परिणाम सोचकर महान् पश्चात्ताप होगा ॥ २०-२१ ॥

इषुनिधेया निपुणः सत्यवादी
महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः ।
गान्धारिमाञ्छलमुले क्षिप्रकारी
हन्ता जनान् सहदेवस्तरस्वी ॥ २० ॥
यदा द्रष्टा द्रौपदेयान् महेषून्
शूरान् कृतास्त्रान् रथयुद्धकोविदान्
आशीविषान् घोरविषानिवायतः
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २१ ॥

तब द्रौपदीके पुत्रोंको महान् धनुर्धर महापराक्रमी शूरवीर वेगवान् तथा रीतिशास्त्रके ज्ञाता, अस्त्रविद्यामें निपुण और रथयुद्धमें कुशल हैं, जब समरभूमिमें युद्धमें शकुनिपर आक्रमण करके द्रवतोंके सैनिकोंका संहार करने लगेंगे तथा जब दुर्योधन महाबाहु शूरवीर अस्त्रविद्यामें निपुण तथा रथयुद्धकी कलामें कुशल द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको भयंकर विषवाले विषधर नागोंकी भाँति आक्रमण करते देखेगा, तब उसे युद्ध छेड़नेके कारण भारी पश्चात्ताप होगा ॥ २०-२१ ॥

यदाभिमन्युः परवीरघाती
शरैः परान् मेघ इवाभिवर्षन् ।
विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्र-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २२ ॥

अभिमन्यु बालक, भगवान् श्रीकृष्णके समान पराक्रमी तथा अस्त्रविद्यामें निपुण है वह शत्रुओंके बाणोंका प्रहार करनेमें समर्थ है। जिस समय वह मेघके समान बाणोंकी बौछार करता हुआ शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करेगा, उस समय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धके लिये मन-ही-मन बहुत ही पछता होगा ॥ २२ ॥

यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं
द्विषच्चमूं मृत्युमिवोत्पतन्तम् ।
सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २३ ॥

सुभद्राकुमार अवस्थामें यद्यपि बालक है तथापि उसका पराक्रम बुढ़ोंके समान है। वह इन्द्रके समान शक्तिशाली तथा अस्त्रविद्यामें पारङ्गत है। जिस समय वह शत्रुसेनापर विकराल कालके समान आक्रमण करेगा, उस समय उसे देखकर दुर्योधनको युद्ध छेड़नेके कारण बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ २३ ॥

प्रभद्रकाः सोमकाः पुत्रपौत्रा
निघ्नन्तः सिंहसमानवीर्याः ।
यदा धार्तराष्ट्रान् ससैन्यान्
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २४ ॥

प्रभद्रकगणोंके समान दिखायी देनेवाले युद्धविशारद तथा सिंहके समान पराक्रमी प्रभद्रकगणोंके तरुण जब सेनासहित धृतराष्ट्रपुत्रोंको मार भगायेंगे, उस समय दुर्योधन को यह सोचकर बड़ा पश्चात्ताप होगा कि मैंने क्यों युद्ध छेड़ा ॥ २४ ॥

वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ
पृथक् चमूभ्यामभिवर्तमानौ ।
यदा द्रष्टा धार्तराष्ट्रान् ससैन्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २५ ॥

जिस समय बूढ़े महारथी राजा विराट और द्रुपद अपनी अपनी पृथक् सेनाओंके साथ अलग-अलग धावा करके सैनिकोंसहित दुर्योधन आदि को मारेंगे, उस समय दुर्योधनको युद्धका परिणाम सोचकर महान् पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ २५ ॥

यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वन्
शिरांसि यूनां समरे रथस्थः ।
क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २६ ॥

जब अस्त्रविद्यामें निपुण राजा द्रुपद कुपित हो रथपर बैठकर समरभूमिमें अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा विपक्षी युवकोंके मस्तकोंको चुन-चुनकर काटने लगेंगे, उस समय दुर्योधनको इस युद्धके कारण भारी पश्चात्ताप होगा ॥ २६ ॥

यदा विराटः परवीरघाती
रणान्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा ।
मत्स्यैः सार्धमनृशंसरूपै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २७ ॥

जब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राजा विराट कोमल स्वभाववाले मत्स्यदेशीय योद्धाओंको साथ लेकर रणभूमिमें शत्रुसेनाके भीतर प्रवेश करेंगे, उस समय दुर्योधन युद्ध छेड़नेका परिणाम सोचकर शोकसे संतप्त हो उठेगा ॥ २७ ॥

ज्येष्ठं मात्स्यमनृशंसार्यरूपं
विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात् ।
यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डवार्थे
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २८ ॥

श्रेष्ठ तथा श्रेष्ठ स्वभाववाले राजा विराटके ज्येष्ठ पुत्र मत्स्यदेशीय महारथी उत्तरको जब दुर्योधन पाण्डवोंके हितके लिये कवच धारण किये देखेगा, तब उसे युद्धका परिणाम सोचकर मन-ही-मन बड़ा कष्ट होगा ॥ २८ ॥

रणे हते शैरवपता अव
सिस नुखा मत्तमे शाम्तनुः
आतु इतव भान्यपु
अशग सत्यमान् ब्रवीमि

और [illegible] प्रमुख [illegible] महाविराज़मति नाभ्यसी [illegible] मारे [illegible] समय [illegible] कौरव [illegible] कहते [illegible] नहीं है

या हिमवन्डी गमित पश्मिमवन्
[illegible] रोमानामियाना [illegible]
शिव्याश्वरवमुनुतव [illegible]
[illegible] युद्ध धातराष्ट्रोऽभ्यवाप्यम्

[illegible] पिता की [illegible] [illegible] [illegible]

यथा [illegible] [illegible]
[illegible] प्रमुख रोचमानम्
[illegible] गुरुमुनाव धीमान्
[illegible] धातराष्ट्र

[illegible] बुद्धिमान् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उत्पन्न

यथा स सेनापतिरप्रमेय
[illegible]
द्रोण रणे शत्रुसहोऽभियाता
[illegible] युद्ध धातराष्ट्रोऽभ्यवाप्यम्

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हीमान् मनीषी बलवान् मनस्वी
स लक्ष्मीवान सोमदत्तो [illegible]
आतु त [illegible]
[illegible]

[illegible] बुद्धिमान, [illegible] है इसी

[illegible] राजा [illegible] [illegible] नहीं [illegible]

इद न नूना मा दृष्टोऽयं लोके
युद्धेऽद्वितीय स्वविध रमाचम्
[illegible] [illegible]
महावल [illegible] कृतास्त्रम् ॥४४

[illegible] दुर्योधनने यह भी कह देना कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

महाबल दीपवाहु [illegible]
युद्धेऽद्वितीय परमास्त्रवेदी
[illegible]
महारथ [illegible] कृतास्त्र

[illegible] [illegible] नहीं है [illegible] [illegible]

यथा [illegible] [illegible]
शर [illegible] मेघ इव प्रवर्षन्
[illegible]
तया युद्ध धार्तराष्ट्रोऽभ्यवाप्यम्

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दुर्योधन युद्धका परिणाम [illegible]

यथा [illegible] युद्धे [illegible]
स [illegible] महात्मा
[illegible]
[illegible] उत्साद् रथाभ्ये

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

स [illegible] महात्मा
भिन्द्यात् [illegible] सर्वलोकम्
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] सर्वं [illegible] ॥ ४८

विशालबाहु दृढ धनुर्धर युद्धकुशल और शत्रुओंका फुर्ती दिखानेवाले अक्षयस्त्र आत्मिक पराक्रमको विदीर्ण कर सकते हैं और सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हैं। न समरांगणमें विजयश्रीसे सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित होते हैं ॥ ४८ ॥

चित्रं सुक्ष्मं सुकृतो याज्ञसेन्य
यस्य योगो वर्णिविर्निर्दिष्टस्य भूयान्।
यदाभिषिञ्चाद् योगमाहु प्रवास्य
मर्मविद् आत्मजिह्नीयसन् ॥ ४९ ॥

युद्धनिपुण वीर पुरुष जैसे जब अर्जुनकी रथाग्निको प्रदक्षिणा करने आते हैं उस समय तथा उनका समुचित कुमीय इत्यादि साथ कि सम्पन्न हैं जब यत्नपूर्वक युद्धशील वो बहुतसे उनका अर्जीका मन आता है। उनका रथ बोल विदित रहस्य और अस्त्रादि सम्पत्तियाँ तथा रथ है ॥ ४९ ॥

हिरण्मयं हस्तवापैरश्मिभिः
यदा युक्तं स्यन्दनं माधवस्य।
द्रष्टा पुरस्तान्मधुसूदनं तं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५० ॥

जब युद्धमें मधुसूदनको आगे रथपर देखेगा, तब दुर्योधन युद्धका मन्दबुद्धि पछतायेगा। ॥ ५० ॥

यदा रथं हेमभणिप्रकाशं
श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम्।
द्रष्टा समास्थाय केशवं
तदा सम्यक्तत्वकृता मा स मन्दः ॥ ५१ ॥

जब सुवर्ण और मणियोंसे प्रकाशित होनेवाले उस रथपर रथको जिसमें श्वेत घोड़े जुते हैं वानर ध्वजा फहरा रही होगी तथा जिसमें भगवान् केशव विराजमान होंगे, अर्जुनको मन्दबुद्धि दुर्योधन देखेगा तब उसे पछताना होगा ॥ ५१ ॥

यदा मौर्वीतलनिष्पेषमुग्रं
महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम्।
विधूयमानस्य महारणे मया
स नाभिज्ञास्यति मन्दबुद्धिः ॥ ५२ ॥
तदा मूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः
तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः।
दृष्ट्वा सैन्यं बाणवर्षान्धकारे
प्रभज्यन्तं गोकुलवद् रणाग्रे ॥ ५३ ॥

महान् समरके समय जब मैं गाण्डीव धनुषकी डोरी खींचूँगा उस समय मेरे हाथोंकी रगड़से वज्रपातके समान भयंकर भयानक आवाज होगी, मन्दबुद्धि दुर्योधन जब बाणोंकी उस उस टंकारको सुनेगा तथा रणभूमिके अग्र

भागमें मेरी बाणवर्षासे घने हुए अन्धकारमें इधर उधर भागती हुई गौओंके समान अपनी सेनाको युद्धमें पलायन करते देखेगा तब युद्ध छिड़नेके मूल उस दुर्बुद्धि एवं मूढ़ दुःसहायपुरुष मनमें बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ ५२-५३ ॥

बलाहकादुच्चरतः सुभीमान्
विद्युत्स्फुलिङ्गानिव घोररूपान्।
सहस्रघ्नान् द्विषतां सङ्गरेषु
अस्थिच्छिदो मर्मभिदः सुपुङ्खान् ॥ ५४ ॥
यदा द्रष्टा ज्यामुखाद् बाणसंघान्
गाण्डीवमुक्तानापततः शिताग्रान्।
हयान् गजान् वर्मिणश्चाददानां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५५ ॥

और गाण्डीव धनुषसे छूटकर मेरे धनुषकी डोरीसे छूटे हुए तीखी धारवाले सुन्दर पंखोंसे युक्त भयंकर बाणसमूह मानो निकल हुई उल्का अथवा बिजलीकी चिनगारियोंके समान जब युद्धभूमिमें आकर गिरेंगे और उनका रथियों, घोड़ों तथा हाथियोंका विनाश करते हुए सहस्रों शत्रुओंको मौतके घाट उतारते हुए तथा हड्डियोंको छेदने वाले घोड़ों, हाथियों तथा कवचधारी योद्धाओंको प्राण हरण करते देखेगा उस समय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन यह सब देखेगा तब युद्ध छेड़नेके कारण वह बहुत पछतायेगा ॥ ५४-५५ ॥

यदा मन्दः परबाणान् विमुक्तान्
ममेषुभिर्ह्रियमाणान् प्रतीपम्।
तिर्यग्विध्यांश्छिद्यमानान् क्षुरप्रै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५६ ॥

युद्धमें दूसरे योद्धा जो बाण चलायेंगे उन्हें मेरे बाण लौटाकर पीछे लौटा देंगे। साथ ही मेरे दूसरे बाण शत्रुओंके बाणसमूहको तिरछे करके छिन्न-भिन्न कर टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। जब मन्दबुद्धि दुर्योधन यह सब देखेगा, तब उसे युद्ध छेड़नेके कारण बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ ५६ ॥

यदा विपाठा मद्भुजविप्रमुक्ता
द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात्।
प्रच्छेत्स्यन्त्युत्तमाङ्गानि यूनां
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५७ ॥

जब मेरे हाथोंसे छूटे हुए विपाठ नामक बाण युवक योद्धाओंके मस्तकोंको उसी प्रकार काट-काटकर गिरा देंगे, जैसे पक्षी वृक्षोंके अग्रभागसे फल गिराकर उनको गिरा देते हैं उस समय यह सब देखकर दुर्योधनको बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ ५७ ॥

यदा द्रष्टा पततः स्यन्दनेभ्यो
महागजेभ्योऽश्वगतांश्च योधान्।
शरैर्हतान् पातितांश्चैव रङ्गे
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५८ ॥

जब दुर्योधन देखेगा कि उसके योधे बड़े-बड़े गजोंके और घोड़ोंके पीठपरसे भी मरकर मेरे बाणोंद्वारा मारे जाकर धराशायी किये जा रहे हैं, तब उसे युद्धके लिये भारी पछतावा होगा ॥

असम्बाधं यास्यतो नरान् परस्य
यदा द्रष्टा मन्दमतिर्धार्तराष्ट्रान्।
अकुर्वतः कर्म युद्धे समन्तात्
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५९ ॥

दुर्योधनको जब यह दिखायी देगा कि उसके दूसरे भाई शत्रुओंकी सामनेसे निकल न जाकर बने दूरसे देखकर ही अदृश्य हो रहे हैं, युद्धमें कोई पराक्रम नहीं कर रहे हैं तब वह भाई-बन्धुओंके कारण पश्चात्ताप करेगा ॥

पदातिसङ्घान् रथसङ्घान् समन्तात्
व्यात्ताननः काल इवाततेजाः।
प्रणोत्स्यामि ज्वलितैर्बाणवर्षैः
शत्रूंस्तदा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६० ॥

जब मैं सबकी अनिश्चित वर्षा करते हुए मुख फैलाये हुए कालकी भाँति अपने प्रज्वलित बाणोंकी बौछारसे धनुषधारी कौरव-सैनिकों तथा रथियोंके समूहोंको छिन्न-भिन्न करने लगूँगा, उस समय मन्दबुद्धि दुर्योधनको बड़ा पछतावा होगा ॥

सर्वा दिशः सम्पतता रथेन
रजोध्वस्तं गाण्डिवेनापकृत्तम्।
यदा द्रष्टा स्वबलं सम्प्रमूढं
तदा पश्चात् तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६१ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़नेवाले मेरे रथके द्वारा उड़ायी हुई धूलिसे आच्छादित होकर सारी सेना घबरायी हुई है और मेरे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उसका समस्त अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया है, तब उसे बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥

काँदिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं
दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम्।
हताश्ववीराग्र्यनरेन्द्रनागं
पिपासितं श्रान्तपत्रं भयार्तम् ॥ ६२ ॥
आर्तस्वरं हन्यमानं हतं च
विकीर्णकेशास्थिकपालसङ्घम्।
प्रजापतेः कर्म यथार्धनिष्ठितं
तदा दृष्ट्वा तप्स्यते मन्दबुद्धिः ॥ ६३ ॥

दुर्योधन अपनी सारी सेनाको देखेगा कि उसकी सारी सेना मानो भागने चली है और वह) जो यह भी नहीं जानता है कि किस दिशाको ओर जाय। किन्हीं योद्धाओंके अङ्ग प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हैं, सबके सैनिक अचेत हो रहे हैं, हाथी, घोड़े तथा नीचे अनेक नरेश मार डाले गये हैं, सारे वाहन थक गये हैं और सभी योद्धा प्यास तथा भयसे पीड़ित हो रहे हैं। बहुतेरे सैनिक आर्त स्वरसे रो रहे हैं, कितने ही मारे गये और मारे जा रहे हैं, बहुतोंके केश, अस्थि तथा कपालसमूह सब ओर बिखरे पड़े हैं, मानो विधाताका यथार्थ निश्चित विधान हो, इस प्रकार यह सब कुछ होकर ही रहेगा। यह सब देखकर उस समय मन्दबुद्धि दुर्योधनको मनमें बड़ा भारी होगा ॥ ६२-६३ ॥

यदा रथे गाण्डिवं वासुदेवं
दिव्यं शङ्खं पाञ्चजन्यं हयांश्च।
तूणावक्षय्यौ देवदत्तं च मां च
दृष्ट्वा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ६४ ॥

जब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन रथपर मेरे गाण्डीव धनुषको, भगवान् श्रीकृष्णको, उनके दिव्य पाञ्चजन्य शङ्खको, रथमें जुते हुए दिव्य घोड़ोंको, बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तूणीरोंको, मेरे देवदत्त नामक शङ्खको और मुझको भी देखेगा, उस समय युद्धका परिणाम सोचकर उसे बड़ा सन्ताप होगा ॥

उद्वर्तयन् दस्युसङ्घान् समेतान्
प्रवर्तयन् युगमन्यद् युगान्ते।
यदा धक्ष्याम्यग्निवत् कौरवेयां-
स्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः ॥ ६५ ॥

जब समय युद्धके लिये एकत्र हुए इन डाकुओंके दलोंका संहार करके प्रलयकालमें अन्य युगान्तर उपस्थित करता हुआ मैं अग्निके समान प्रज्वलित होकर कौरवोंको भस्म करने लगूँगा, उस समय पुत्रोंसहित महाराज धृतराष्ट्रको बड़ा सन्ताप होगा ॥

सभ्राता वै सहसैन्यः सभृत्यो
भ्रष्टैश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः।
दर्पस्यान्ते विहतो वेपमानः
पश्चान्मन्दस्तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ६६ ॥

भाइयों, सेनाओं तथा सेवकोंसहित सदा क्रोधके वशमें रहनेवाला अल्पबुद्धि मूढ़ दुर्योधन जब अपने समस्त ऐश्वर्यसे भ्रष्ट एवं आहत होकर काँपने लगेगा, उस समय सारा घमण्ड चूर-चूर हो जानेपर उसे (अपने कुकर्मोंके लिये) बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ ६६ ॥

पूर्वाह्णे मां कृतजप्यं कदाचिद्
विप्रः प्रोवाचोदकान्ते मनोज्ञम्।

भाई उस महाबली नरकासुरके साथ अत्यन्त भयावनी भागकर, श्रीकृष्णका युद्ध हुआ। श्रीकृष्णने हाथसे मारा जाकर वह धरतीपर हाथ पैर फैला और आँखोंके उलटे हुए कनेर पुष्पकी भाँति भूमिके लिये रणभूमिमें सो गया।

मातुलस्य कृष्णा मणिकुण्डले ते
हत्वा च भौमं नरकं मुरं च।
श्रिया वृतो यशसा चैव विद्वान्
प्रत्याजगामाप्रतिमप्रभावः॥

इस तरह अनुपम प्रभाववाले विद्वान् श्रीकृष्ण भूमि-पुत्र नरकासुर तथा मुरको मार करके देवी अदितिके दोनों मणिमय कुण्डल वहाँसे लेकर विजयश्री और उत्तम यशसे सुशोभित हो अपने घरकी ओर लौट आये।

अस्मै वरानब्रुवंस्तत्र देवा
दृष्ट्वा भीमं कर्म कृतं रणे तत्।
श्रमश्च ते युध्यमानस्य न स्या-
दाकाशे चाप्सु च ते क्रमः स्यात्॥
शस्त्राणि गात्रे न च ते क्रमेरन्
सिद्धेष कृष्णश्च ततः कृतार्थः।
एवंरूपे वासुदेवेऽप्रमेये
महाबले गुणसम्पत् सदैव॥ ७

युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णका वह भयानक पराक्रम देखकर देवताओंने वहाँ उन्हें इस प्रकार वर दिये — 'केशव! युद्ध करते समय आपको कभी थकावट न हो। आकाश और जलमें भी आपकी अप्रतिहत गति हो।' फिर और आपके अंगोंमें कोई भी अस्त्र-शस्त्र चोट न पहुँचा सके। इस प्रकार वर पाकर श्रीकृष्ण पूर्णतः कृतकृत्य हो गये हैं। इन अमित शक्तिशाली महाबली वासुदेवमें समस्त गुण-सम्पत्ति सदा विद्यमान है।

तमसह्यं विष्णुमनन्तवीर्य-
माशंसते धार्तराष्ट्रो विजेतुम्।
सदा ह्ययं तर्कयते दुरात्मा
तच्चाप्ययं सहतेऽस्मान् समीक्ष्य॥ ८॥

ऐसे अनन्त पराक्रमी और असह्य श्रीकृष्णको धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन जीत लेनेकी आशा करता है। वह दुरात्मा सदैव इनको कैद करनेकी बात सोचता रहता है। परंतु हमलोगोंकी ओर देखकर उसके इन अपराधोंको भी ये भगवान् सहते चले आ रहे हैं।

पर्यागतं मम कृष्णस्य चैव
यो मन्यते कलहं सम्भवन्तम्।
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वं
तद् वेदिता संयुगं तत्र गत्वा॥ ९॥

दुर्योधन मानता है कि मुझमें और श्रीकृष्णमें कलह करा दिया जा सकता है। पाण्डवोंका श्रीकृष्णके प्रति जो ममत्व अवस्थान है, उसे मिटा दिया जा सकता है। परंतु कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें पहुँचनेपर उसे इन दोनों बातोंका ठीक-ठीक पता चल जायगा।

नमस्कृत्वा शान्तनवाय राजन्
द्रोणायाथो सहपुत्राय चैव।
शारद्वतायाप्रतिद्वन्द्विने च
योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः॥

मैं शान्तनुनन्दन महाराज भीष्मको, आचार्य द्रोणको, पुत्रसहित अश्वत्थामाको और जिनका सामना कोई नहीं कर सकता, उन वीरवर कृपाचार्यको भी प्रणाम करके अपना राज्य पानेकी इच्छा लेकर अवश्य युद्ध करूँगा।

धर्मेणाहं निधनं तस्य मन्ये
यो योत्स्यते पाण्डवैः पापबुद्धिः।
मिथ्या ग्लहे निर्जिता वै नृशंसैः
संवत्सरान् वै द्वादश राजपुत्राः॥

जो पापबुद्धि मानव पाण्डवोंके साथ युद्ध करेगा, धर्मतः उसकी मृत्यु निकट आ गयी है, ऐसा मेरा विश्वास है। कारण कि इन क्रूर स्वभाववाले कौरवोंने हम सब लोगोंको कपटद्यूतमें जीतकर बारह वर्षोंके लिये वनमें निर्वासित कर दिया था। यद्यपि हम भी राजाके ही पुत्र थे।

वासः कृच्छ्रो विहितश्चाप्यरण्ये
दीर्घं कालं चैकमज्ञातवर्षम्।
ते हि कस्माज्जीवतां पाण्डवानां
नन्दिष्यन्ते धार्तराष्ट्राः पदस्थाः॥ १२

हमने कष्ट दीर्घकालतक बड़े कष्टसे वनमें रहे हैं और एक वर्षतक हम अज्ञातवास करते रहे हैं। ऐसी दशामें पाण्डवोंके जीते-जी वे कौरव अपने पदोंपर प्रतिष्ठित रहकर कैसे आनन्द मनाते रहेंगे?

न चेदस्मान् युध्यमानाञ्जयेयु-
र्देवैर्महेन्द्रप्रमुखैः सहायैः।
धर्मादधर्मश्चरितो गरीयां-
स्ततो ध्रुवं नास्ति कृतं च साधु॥ १३॥

यदि इन्द्र आदि देवताओंकी सहायता पाकर भी धृतराष्ट्र-पुत्र हमें युद्धमें जीत लेंगे तो यह मानना पड़ेगा कि धर्मकी अपेक्षा पापाचारका ही महत्त्व अधिक है और संसारसे पुण्य कर्मका अस्तित्व मिट गया है।

न चेदिमं पुरुषं कर्मबद्धं
न चेदस्मान् मन्यतेऽसौ विशिष्टान्

अथ/सेऽह वासुदेवद्वितीयो
दुर्योधनं मानुकम्प्य निहन्तुम् ।

यदि दुर्योधन मनुष्यकी कर्त्तोके मानसे वश हुआ नहीं मानता है अथवा यदि वह इनलोगोंका अपनेसे भाग तथा प्रदान नहीं समझता है तो भी मैं यह आशा करता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णको सहाय बनाकर मैं दुर्योधनको उनके सगे-सम्बन्धियोंसहित मार डालूँगा।

न चेदिदं कर्म नरेन्द्र चाप्य
चेद् भवेत् सुकृतं निष्फलं वा
इदं च तत्राभिसमीक्ष्य नूनं
पराजयो धार्तराष्ट्रस्य साधु

भावार्थ, यदि मनुष्यका किया पापकर्म निष्फल नहीं हो यथा पापकर्मोंका फल बिना दिये नहीं रहता तो मैं दुर्योधनके पापाचार और पहले किये हुए पापकर्मोंका विचार करके निश्चयपूर्वक कह सकता कि धृतराष्ट्रपुत्रकी पराजय अनिवार्य है और इसमें सबकी भलाई

प्रत्यक्षं कुरवः यद् ब्रवीमि
युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति
अन्यत्र युद्धात् कुरवो यदि स्यु
र्न युद्धे वै शेष इहास्ति कश्चित्

कौ। मैं इनलोगोंके यह सब सामने बता देना चाहता हूँ कि धृतराष्ट्रके पुत्र यदि युद्धभूमिमें आ जायेंगे नहीं बचेंगे कौरवोंके जीवनकी रक्षा तभी हो सकती युद्ध न हो युद्ध छिड़ जानेपर उनमेंसे कोई भी यहाँ शेष नहीं रहेगा।

हत्वा त्वहं धार्तराष्ट्रान् सकर्णान्
राज्यं कुरूणामवजेता समग्रम्
यद् व कार्यं तत् कुरुध्वं यथास्व
मिष्टान् दारानात्मभोगान् भजध्वम्

मैं कर्णसहित धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध करके कुरुदेशका सम्पूर्ण राज्य जीत लूँगा अतः तुमलोग जो-जो कर्तव्य शेष हो पूरा कर लो अपने मनके अनुसार स्त्रियों पत्नियोंके साथ सुख भोग लो और अपने शरीरके लिये भी जो अभीष्ट भोग हों उनका भोग कर लो।

अप्येव ब्राह्मणा सन्ति वृद्धा
बहुश्रुताः शीलवन्तः कुलीनाः
सांवत्सरा ज्योतिषि चाभियुक्ता
नक्षत्रयोगेषु च निश्चयज्ञाः

हमारे पास कितने ही ऐसे वृद्ध ब्राह्मण विद्यमान हैं जो अनेक शास्त्रोंके विद्वान् सुशील उत्तम कुलमें उत्पन्न वर्षके शुभाशुभ फलोंको जाननेवाले ज्योतिषशास्त्रके पारंगत तथा नक्षत्रोंके योगफलका निश्चितरूपसे ज्ञान रखनेवाले हैं।

उच्चावचं दैवयुक्तं रहस्यं
दिव्याः प्रश्ना मृगचक्रा मुहूर्ताः
क्षयं महान्तं कुरुसृञ्जयानां
निवेदयन्ते पाण्डवानां जयं च

दैवसम्बन्धी उन्नति अवनतिके कल्याणकारक रहस्य बता सकते प्रश्नोंके अलौकिक ढंगसे उत्तर देते हैं जिनसे विषय प्रत्यक्ष हो जाता है शुभाशुभ फलोंका पता लगानेके लिये सर्वतोभद्र आदि चक्रोंका भी अनुसंधान करते हैं ये मुहूर्तशास्त्रके भी पण्डित हैं वे सब निश्चितरूपसे यह निवेदन करते हैं कि कौरवों और सृञ्जयोंके घोर युद्ध महान् संहार होनेवाला है और पाण्डवोंकी विजय होगी।

यथा हि नो मन्यतेऽजातशत्रुः
संसिद्धार्थो द्विषतां निग्रहाय
जनार्दनश्चाप्यपरोक्षविद्यो
न संशयं पश्यति वृष्णिसिंहः

राजा महाराज युधिष्ठिर मानते हैं मैं अपने शत्रुओंका दमन करनेमें सिद्धमनोरथ होऊँगा इसीप्रकार परमात्मा और भगवान् श्रीकृष्णको सारी विद्याओंका प्रत्यक्ष ज्ञान है वे भी मेरे इस मनोरथके सिद्ध होनेमें संदेह नहीं देखते।

अहं तथैव खलु भाविरूप
पश्यामि बुद्ध्या स्वयमप्रमत्तः
दृष्टिश्च मे न व्यथते पुराणी
संयुध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति

मैं स्वयं सावधान होकर अपनी बुद्धिसे भावीको ही इसी प्रकार देखता हूँ मेरी चिरकालकी दृष्टि भी तिरोहित नहीं होती उसके अनुसार मैं निश्चितरूपसे कह सकता कि युद्धभूमिमें उतरनेपर धृतराष्ट्रके पुत्र जीवित नहीं बचेंगे।

अनालब्धं जृम्भति गाण्डिवं धनु
रनाहता कम्पति मे धनुर्ज्या
बाणाश्च मे तूणमुखाद् विसृत्य
मुहुर्मुहुर्गन्तुमुशन्ति चैव ॥ २८॥

गाण्डीव धनुष बिना स्पर्श किये ही तना जा रहा है मेरे धनुषकी डोरी बिना खींचे ही हिलने लगी है और मेरे बाण बार-बार तरकसके निकलकर शत्रुओंकी ओर जानेके लिये उतावले हो रहे हैं।

यदा गोग्रहणे भग्नाः सर्वे कुरवः संख्ये
हित्वैव चामी युद्धमनन्तवाहाः ।
व्यत्रैव पार्था रौद्ररूपा भवन्ति
कस्तान् रणे धास्यते तं किरीटिनम् ॥ ४ ॥

जब धर्मात्मा युधिष्ठिर, उत्साहपूर्वक इस प्रकार निश्चय कर अपनी सेना और अपने पुत्रोंका साथ लेकर मेरे सामने आवेंगे तो उस समय यह भयंकर बाधा मुझको होगी कि अर्जुन दुर्योधन युद्धके लिये मना किया जायगा ॥

गोमायुसंघाश्च नदन्ति रात्रौ
रक्षांस्यथो निष्पतन्त्यन्तरिक्षात् ।
मृगाः श्वगालाः शितिकण्ठाश्च काकाः
गृध्रा बकाश्चैव तरक्षवश्च ॥ ५ ॥

रातमें गीदड़ोंके दल कोलाहल मचाते हैं, राक्षस आकाशसे पृथ्वीपर टूटे पड़ते हैं तथा हिरन सियार, मोर, कौआ, गीध बगुले और भेड़िये आदि इधर दौड़ आते हैं ॥

सुवर्णपत्राश्च पतन्ति पश्चात्
दृष्ट्वा रथं श्वेतहयप्रयुक्तम् ।
अहं होकः पार्थिवान् सर्वयोधान्
वारयन् बाणवर्षैः मृत्युलोकं नयेयम् ॥ ६ ॥

श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथको देखकर सुवर्णमय पंखवाले पक्षी पीछेसे टूटे पड़ते हैं। इसका नाम पताका है। मैं अकेला ही योद्धा बनकर समस्त राजाओं और योद्धाओंको यमलोक पहुँचा दूँगा ॥

समाहरन्तं मृगयासमाप्तिम्
यथाग्निरिद्धो गहनं निदाघे ।
स्थूणाकर्णं पाशुपतं महास्त्रं
ब्राह्मं चास्त्रं यच्च शक्रोऽप्यदान्मे ॥ ७ ॥

यथा वृतो धृतराष्ट्र प्रमुखान्
महाप्रभा विविधविद्याविशिष्टाः ।
शान्ति लभस्व परमां हितेन भाव
स्थिराः सन्तु ते गान्धारीपुत्रा इति ॥ ८ ॥ आज मेरे सामने रणभूमिमें खड़े होकर कौन ऐसा है जो अपने प्राणोंको बचा सके? अब किसी भी प्रकारकी शान्ति नहीं रह सकती। उसी प्रकार मैं स्थूणाकर्ण, पाशुपत नामक दिव्य महास्त्र तथा ब्रह्मास्त्र एवं इन्द्रास्त्रका भी प्रयोग करूँगा। इन्हें पाकर मैं संग्राममें किसीको भी जीवित नहीं छोड़ूँगा। ऐसा करनेपर ही मुझे शान्ति मिलेगी। संजय! तुम उनसे स्पष्ट कह देना कि मेरा यह दृढ़ और उत्तम निश्चय है ॥ ९ ॥

न चैतस्मा समरे सूत लब्ध्वा
देवानपीन्द्रप्रमुखान् समेतान् ।
मन्यन्ते कल्याणं सर्वथा
स धार्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य ॥ १०-४८ ॥

सूत! इन पाण्डवोंको समरभूमिमें इन्द्र आदि समस्त देवताओंका भी पाकर उन्हें पराजित किये बिना नहीं रहेंगे। फिर भी धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन हठपूर्वक युद्ध ही करना चाहता है। इसका मोह तो देखो ॥

वृद्धो भीष्मः शान्तनवः कृपश्च
द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान् ।
एते सर्वे यद् वदन्ति तदस्तु
आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे ॥ ११ ॥

किन्तु मैं चाहता हूँ कि बूढ़े पितामह शान्तनुनन्दन भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुर—ये सब लोग मिलकर जैसा कहें, वही हो। समस्त कौरव दीर्घायु बनें ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि अर्जुनवाक्यनिवेदने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें संजयद्वारा अर्जुनके वचनोंका निवेदनविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय

भीष्मका दुर्योधनको सन्धिके लिये समझाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना एवं कर्णपर आक्षेप करना, कर्णकी आत्मप्रशंसा, भीष्मके द्वारा उसका पुनः उपहास एवं द्रोणाचार्यद्वारा भीष्मजीके कथनका अनुमोदन

वैशम्पायन उवाच

समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत! वहाँ एकत्र हुए उन समस्त राजाओंकी मण्डलीमें शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनसे यह बात कही ॥

बृहस्पतिश्चोशना च ब्रह्माणं पर्युपस्थितौ ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण वसवश्चाग्निना सह ॥ २ ॥

आदित्यास्त्वेव साध्याश्च ये च सप्तर्षयो दिवि ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वः सुस्नाताप्सरसां वरा ॥ ३ ॥

एक समयकी बात है, बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए । उनके साथ इन्द्रसहित मरुद्गण, वसुगण, आदित्य, साध्य, सप्तर्षि, विश्वावसु गन्धर्व और श्रेष्ठ अप्सराएँ भी वहाँ मौजूद थीं ॥ २-३ ॥

नमस्कृत्वाऽऽसनमुपस्थे लोकवृद्धं पितामहम् ।
परिवार्य च विश्वेशं पर्यासत दिवौकसः ॥ ४ ॥

वे सब देवता लोकके बड़े-बूढ़े पितामह ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें प्रणाम करके पश्चात् उन लोकेश्वरको घेरकर आसपास बैठ गये ॥ ४ ॥



ततः पूर्वस्थितु गच्छतः ब्रह्माणं वाक्यमब्रवीत् ।
अभवत् ओजसिषेते तौ न शास पितामह ॥ ५ ॥

यह देख बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे पूछा—'पितामह ! ये दोनों कौन हैं, जिन्होंने आपका अभिनन्दन भी नहीं किया । हमें इनका परिचय दीजिये' ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ ।
ज्वलन्तौ रोचमानौ च व्याप्यातीतौ महाबलौ ॥ ७ ॥
नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ ।
ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्त्वपराक्रमौ ॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—बृहस्पते ! ये जो दोनों महान् शक्तिशाली तपस्वी पृथ्वी और आकाशको प्रकाशित करते हुए ब्रह्मलोकका अतिक्रमण करके आगे बढ़ गये हैं, नर और नारायण हैं । ये अपने तेजसे प्रज्वलित और कान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं । इनका धैर्य और पराक्रम महान् है । ये अपनी तपस्याके प्रभावसे बड़े ही शक्तिशाली होकर भूलोकसे ब्रह्मलोकमें आये हैं ॥ ७-८ ॥

एतौ हि कर्मणा लोकं नन्दयामासतुर्ध्रुवम् ।
द्विधाभूतौ महाप्राज्ञौ विद्धि ब्रह्मन् परन्तपौ ।
असुराणां विनाशाय देवगन्धर्वपूजितौ ॥ ९ ॥

इन्होंने अपने सत्कर्मोंसे निश्चय ही समस्त लोकोंको आनन्द पहुँचाया है । ब्रह्मन् ! ये दोनों अत्यन्त बुद्धिमान् और शत्रुओंको संताप देनेवाले हैं । इनको एक होते हुए भी असुरोंके विनाशके लिये दो शरीर धारण किये हैं । देवता और गन्धर्व सदा इनकी पूजा करते हैं ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

जगाम शक्रस्तच्छ्रुत्वा यत्र तौ तपतुस्तपः ।
सार्धं देवगणैः सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ॥ १० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर इन्द्र बृहस्पति आदि सब देवताओंके साथ उस स्थानपर गये जहाँ वे दोनों ऋषि तपस्या करते थे ॥ १० ॥

तदा देवासुरे युद्धे भये जाते दिवौकसाम् ।
अयाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥ ११ ॥

उन दिनों देवासुर-संग्राम उपस्थित था और उसमें देवताओंको महान् भय प्राप्त हुआ था; अतः इन्द्रने उन दोनों महात्मा नर-नारायणसे वरदान माँगा ॥ ११ ॥

तावब्रूतां वृणीष्वेति तदा भरतसत्तम ।
अथैतावब्रवीच्छक्रः साह्यं नः क्रियतामिति ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! देवताओंकी प्रार्थना सुनकर उस समय उन दोनों ऋषियोंने इन्द्रसे कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो ।' तब इन्द्रने उनसे कहा—'भगवन् ! आप हमारी सहायता करें' ॥ १२ ॥

ततस्तौ शक्रमब्रूतां करिष्यावो यदिच्छसि ।
ताभ्यां च सहितः शक्रो विजिग्ये दैत्यदानवान् ॥ १३ ॥

तब नर-नारायण ऋषियोंने इन्द्रसे कहा—'देवराज ! तुम जो कुछ चाहते हो, वह हम करेंगे ।' फिर उन दोनोंको साथ लेकर इन्द्रने समस्त दैत्यों और दानवोंपर विजय पायी ॥ १३ ॥

नर एकरथे संमाने हत्वा शत्रून् परंतप
पौलोमान् कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च

एक समय शत्रुओंको ताप देनेवाले नरस्वरूप अर्जुनने युद्धमें इन्द्रसे प्राप्त हुए एकमात्र रथमें बैठकर हजारों पौलोम एवं कालखञ्ज नामक दानवोंका संहार किया

एष भ्राता रथो विहरन् भल्लेनापाहरच्छिरः
जम्भस्य ग्रसमानस्य तथा अर्जुन आहवे

उस समय नरस्वरूप अर्जुनने ही रथपर बैठे हुए भी भल्ले द्वारा सबको अपना ग्रास बनानेवाले जम्भ नामक असुरका मस्तक अपने एक भल्लसे काट गिराया

एष पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजत्
जित्वा षष्टिं सहस्राणि निवातकवचान् रणे

इन्होंने ही समुद्रके पार साठ हजार निवातकवचोंको पराजित करके समुद्रके उस पार बसे हुए दैत्योंके हिरण्यपुर नामक नगरको तहस-नहस कर डाला

एष देवान् सहेन्द्रेण जित्वा परपुरंजय
अतर्पयन्महाबाहुरर्जुनो जातवेदसम्

शत्रुओंके नगरपर विजय पानेवाले इन महाबाहु अर्जुनने खाण्डववनदाहके समय इन्द्रसहित समस्त देवताओंको जीतकर अग्निदेवको पूर्णतः तृप्त किया

नारायणस्तथैवात्र भूयसोऽन्याञ्जघान ह
एवमेतौ महावीर्यौ तौ पश्यत समागतौ

इसी प्रकार नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने भी दूसरे बहुत-से दैत्य और दानवोंका संहार किया है इस प्रकार दोनों महान् पराक्रमी हैं। दुर्योधन इस समय दोनों एकत्र हो गये हैं। तुम इन दोनोंको अच्छी तरह देख लो और समझो

वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ
नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः

परस्पर मिले हुए महारथी वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरातन देव नर और नारायण ही हैं यह बात विख्यात है

अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः
एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः
नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम्

इस मनुष्यलोकमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी इन्हें जीत नहीं सकते। श्रीकृष्ण नारायण हैं और अर्जुन नर कहे गये हैं। नारायण और नर दो एक ही सत्ता लोकहितके लिये दो शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं

एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान् ध्रुवान्
तत्र तत्रैव जायेते युद्धकाले पुनः पुनः

दोनों अपने सत्कर्मके प्रभावसे अक्षय एवं ध्रुवलोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं तथा जहाँ-जहाँ युद्धका अवसर आता है, वहाँ-वहाँ बारंबार अवतार ग्रहण करते हैं

तस्मात् कर्मैव कर्तव्यमिति होवाच नारदः
एतद्धि सर्वमाचष्ट वृष्णिचक्रस्य वेदवित्

दुष्टोंका दमन करके साधु पुरुषोंकी रक्षा करना ही इनका कर्म है — ये सारी बातें वेदवेत्ता नारदजीने समस्त वृष्णिवंशियोंसे प्रस्तुत कही थीं

शङ्खचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम्
पर्याददानं चास्त्राणि भीमधन्वानमर्जुनम्
सनातनौ महात्मानौ कृष्णावेकरथे स्थितौ
दुर्योधन तदा तात स्मर्तासि वचनं मम

तात दुर्योधन जब तुम देखोगे कि दोनों सनातन महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन एक ही रथपर बैठे हैं, श्रीकृष्णके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा और भयंकर धनुष धारण करनेवाले अर्जुन निरन्तर नाना प्रकारके अस्त्र लेते और छोड़ते रहते हैं तब तुम्हें मेरी कही बात याद आयेगी

नो चेदयमभावः स्यात् कुरूणां प्रत्युपस्थितः
अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपप्लुता

यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी तो समझ लो कौरवोंका विनाश समुपस्थित है। तात तुम्हारी बुद्धि अर्थ और धर्म दोनोंसे भ्रष्ट हो गयी है

नो चेद् ग्रहीष्यसे वाक्यं श्रोतासि सुबहून् हतान्
तवैव हि मतं सर्वे कुरवः पर्युपासते

यदि मेरा कहना नहीं मानोगे तो एक दिन सुनोगे कि बहुत-से कौरव मारे गये, क्योंकि सभी कौरव तुम्हारे मतका अनुसरण करते हैं

त्रयाणामेव च मतं तत् त्वमेकोऽनुमन्यसे
रामेण चैव शप्तस्य कर्णस्य भरतर्षभ
दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च
तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च

भरतश्रेष्ठ एक तुम्हीं ऐसे हो जो कि परशुरामजीद्वारा अभिशप्त छोटी जातिके सूतपुत्र कर्ण एवं सुबलपुत्र शकुनि तथा अपने नीच एवं पापात्मा भाई दुःशासन—इन तीनोंके मतका अनुमोदन एवं अनुसरण करते हो

कर्ण उवाच

नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह
क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् १९

कर्ण बोला—पितामह! आपने मेरे प्रति जिन शब्दोंका प्रयोग किया है, वे अनुचित हैं। आप-जैसे वृद्ध पुरुषको ऐसी बातें मुझसे नहीं कहनी चाहिये। मैं क्षत्रियधर्ममें स्थित हूँ और अपने धर्मसे कभी भ्रष्ट नहीं हुआ हूँ ॥ २९ ॥

किं चास्ति मम दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे ।
न हि मे वृजिनं किंचिद् धार्तराष्ट्रा विदुः क्वचित् ।
नाचरं वृजिनं किंचिद् धार्तराष्ट्रस्य किंचन ॥

मुझमें कौन-सा ऐसा दुराचार है, जिसके कारण आप मेरी निन्दा करते हैं। महाराज धृतराष्ट्रके पुत्रोंने कभी मेरा कोई पापाचार देखा या जाना हो, ऐसी बात नहीं है। मैंने दुर्योधनका कभी कोई अनिष्ट नहीं किया है ॥ ३० ॥

अहं हि पाण्डवान् सर्वान् हनिष्यामि रणे स्थितान् ।
प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः ॥

मैं युद्धभूमिमें खड़े हुए समस्त पाण्डवोंको अवश्य मार डालूँगा। जो लोग पहले ही अपने विरोधी बन गये हों, उनके साथ पुनः सन्धि कैसे की जा सकती है? ॥ ३१ ॥

राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्यं प्रियं मया ।
तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः ॥ ३२ ॥

मुझे जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्रका समस्त प्रिय कार्य करना चाहिये, उसी प्रकार दुर्योधनका भी करना उचित है; क्योंकि अब वे ही राज्यपर प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
धृतराष्ट्रं महाराज सम्भाष्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! कर्णकी यह बात सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने राजा धृतराष्ट्रको सम्बोधित करके पुनः इस प्रकार कहा ॥ ३३ ॥

यदयं कथते नित्यं हन्ताहं पाण्डवानिति ।
नायं कलापि सम्पूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ३४ ॥

राजन्! यह कर्ण जो प्रतिदिन यह डींग हाँका करता है कि मैं पाण्डवोंको मार डालूँगा, सो यह महात्मा पाण्डवोंकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है ॥ ३४ ॥

अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम् ।
तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥ ३५ ॥

तुम्हारे दुरात्मा पुत्रोंपर अन्यायके फलस्वरूप जो यह महान् संकट आनेवाला है, वह सब इस दुर्बुद्धि सूतपुत्र कर्णकी ही करतूत समझो ॥ ३५ ॥



एतमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।
अवामन्यत तान् वीरान् देवपुत्रानरिंदमान् ॥ ३६ ॥

तुम्हारे मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधनने इसीका आश्रय लेकर शत्रुओंका दमन करनेवाले उन वीर देवपुत्र पाण्डवोंका अपमान किया है ॥ ३६ ॥

किं चाप्येतेन तत्कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम् ।
तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥ ३७ ॥

पहले पाण्डवोंने मिलकर अथवा उनमेंसे एक-एकने अलग-अलग जैसे दुष्कर पराक्रम किये हैं, वैसा कौन-सा कठिन पुरुषार्थ इस सूतपुत्रने कभी किया है? ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम् ।
धनंजयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥ ३८ ॥

जब विराटनगरमें अर्जुनने अपना पराक्रम दिखाते हुए इसके प्यारे भाईको मार डाला था, तब इसने सब कुछ अपनी आँखों देखकर भी उनका क्या बिगाड़ लिया? ॥ ३८ ॥

सहितान् हि कुरून् सर्वानभियातो धनंजयः ।
प्रमथ्य चाच्छिनद् वासः किमयं प्रोषितस्तदा ॥ ३९ ॥

जब धनंजयने अकेले ही समस्त कौरवोंपर आक्रमण किया और सबको मूर्च्छित करके उनके वस्त्र छीन लिये थे, उस समय यह कर्ण क्या कहीं परदेश चला गया था? ॥ ३९ ॥

गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत् सुतस्तव ।
क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद् य इदानीं वृषायते ॥ ४० ॥

भीष्मजीके द्वारा जब उत्पन्नहोता है तुम्हारे पुत्रको कैसे लिये जा रहे हैं उस समय यह सूतपुत्र कहाँ था जो इस समय डींगकी तरह उछल रहा है ?

ननु तावभिसंगम्य पार्थेन च महात्मना
यथात्मनोऽन्यथा सम्यक् कर्णधारिस्ते पराजिता ॥ ४

यहाँ वे महात्मा भीमसेन अर्जुन और नकुल सहदेव ही थे कि जब इन गन्धर्वोंका नाश किया था

एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ
विकत्थमानस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥ ४

भरतश्रेष्ठ तुम्हारा भला हो यह कर्ण सर्वदा ही ऐसी बढ़ चढ़कर बातें करता है इसकी कही हुई बहुत-सी बातें झूठी सिद्ध हुई हैं यह तो धर्म और अर्थ दोनोंका ही लोप करनेवाला है

भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महामनाः
धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन् ॥ ४६ ॥

भीष्मजीकी यह बात सुनकर महामना द्रोणाचार्यने समस्त राजाओंके सामने उनकी प्रशंसा करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार कहा

यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत् क्रियतां नृप
न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ४८

नरेश्वर भरतकुलतिलक भीष्मजीने जो कहा है वही कीजिये जो लोग अर्थ और कामके लोभी हैं उनकी बात आपको नहीं माननी चाहिये ४४

पुरा युद्धात् साधु मन्ये पाण्डवैः सह संगमम्
यद् वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम् ॥ ४९ ॥
सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पाण्डवः

मैं तो युद्धसे पहले पाण्डवोंके साथ संधि करना ही उत्तम समझता हूँ अर्जुनने जो बात कही है और संजयने उसका जो संदेश यहाँ सुनाया है मैं वह सब जानता और समझता हूँ पाण्डुनन्दन अर्जुन वह करके ही रहेंगे

न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥ ४६ ॥

तीनों लोकोंमें अर्जुनके समान कोई धनुर्धर नहीं है

अनादृत्य तु तद् वाक्यमर्थवद् द्रोणभीष्मयोः
ततः स संजयं राजा पर्यपृच्छत पाण्डवान् ॥ ४७ ॥

द्रोणाचार्य और भीष्मकी बातें सार्थक और लाभदायक थीं परंतु उनकी अवहेलना करके राजा धृतराष्ट्र पुनः संजयसे पाण्डवोंका समाचार पूछने लगे

तदैव कुरवः सर्वे निराशा जीवितेऽभवन्
भीष्मद्रोणौ यदा राजा न सम्यगनुभाषते ॥ ४

राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्यसे भी भलीभाँति बात नहीं कर रहे हैं तभी समस्त कौरव अपने जीवनसे निराश हो गये

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसंधिपर्वमें भीष्मद्रोणवाक्यविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

संजयद्वारा युधिष्ठिरके प्रधान सहायकोंका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

किमसौ पाण्डवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत
श्रुत्वेह बहुला सेना प्रीत्यर्थं नः समागताः ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय हमारी प्रसन्नता और सहायताके लिये यहाँ हस्तिनापुरमें बहुत-सी सेना एकत्र हो रही है इस बातको सुनकर पाण्डुपुत्र धर्मपुत्र युधिष्ठिर क्या कहा

किमसौ चेष्टते सूत योत्स्यमानो युधिष्ठिरः
के वास्य भ्रातृपुत्राणां पश्यन्त्याज्ञेप्सवो मुखम्

सूत निकट भविष्यमें होनेवाले युद्धके लिये उद्यत होकर राजा युधिष्ठिर क्या उद्योग कर रहे हैं उनके भाइयों और पुत्रोंमेंसे कौन-कौन से लोग उनसे किसी कार्यके लिये आज्ञा पानेकी इच्छासे उनका मुख जोहते रहते हैं

के स्विदेनं वारयन्ति युद्धाच्छाम्येति वा पुनः
निकृत्या कोपितं मन्दैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर धर्मके ज्ञाता हैं और धर्मके आचरणमें तत्पर रहते हैं मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंने अपने कपटपूर्ण बर्तावसे उन्हें कुपित कर दिया है वहाँ कौन-कौन से वीर हैं जो उन्हें युद्धसे रोकते अथवा शान्त रहनेकी सलाह देकर युद्धसे रोकते हैं

संजय उवाच

राज्ञो मुखमुदीक्षन्ते पञ्चालाः पाण्डवैः सह
युधिष्ठिरस्य भद्रं ते स सर्वाननुशास्ति च ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज आपका कल्याण हो पाञ्चाल और पाण्डव सभी राजा युधिष्ठिरके मुखकी ओर देखते रहते हैं और वे उन सबको विभिन्न कार्योंके लिये आज्ञा देते हैं

प्रत्युद्गम्य पाण्डवानां पञ्चालानां च राजभिः
आयान्तमभिनन्दन्ति कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर समर आते हैं पाण्डवों
का पाञ्चालोंके रथयूथ पृथक्-पृथक् अगियोंमें खड़े होकर
उनका अभिनन्दन करते हैं

नभ: सूर्यमिवोद्यन्तं कौन्तेयं दीप्ततेजसम्
पञ्चाला: प्रतिनन्दन्ति तेजोराशिमिवोत्थितम् ॥ ६ ॥

जैसे आकाश उदयकालमें उद्दीप्त सूर्यदेवका
अभिनन्दन करता है उसी प्रकार मानो अब युद्धके
उदय होता हो तब उस दिखायी देनेवाले कुन्तीनन्दन
युधिष्ठिरका समस्त पाञ्चालगण अभिनन्दन करते हैं

आगोपालाविपालेभ्यो नन्दमाना युधिष्ठिरम्
पञ्चाला: केकया मत्स्या: प्रतिनन्दन्ति पाण्डवम् ॥ ७ ॥

ग्वाले और गड़रियोंसे लेकर केकय और
मत्स्यदेशीय राजा पर्यन्त सभी लोग पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका
सम्मान करते हैं

ब्राह्मण्यो राजपुत्र्यश्च विशां दुहितरश्च या:
क्रीडन्त्योऽभिगमायान्ति पार्थं संनद्धमीक्षितुम्

ब्राह्मण क्षत्रियों तथा वैश्योंकी कन्याएँ भी खेलती
कूदती युद्धके लिये तैयार युधिष्ठिरका देखनेके
उनके पास आ जाती हैं

धृतराष्ट्र उवाच

सञ्जयाचक्ष्व येनास्मान् पाण्डवा अभ्ययुञ्जत
धृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! बताओ पाण्डवोंने
धृष्टद्युम्नकी सेना तथा अन्यान्य सोमकोंके विशाल
वाहिनीके साथ और किन किनकी सहायता पाकर हमलोगोंसे
साथ युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं ॥

वैशम्पायन उवाच

गावल्गणिस्तु तत्पृष्ट: सभायां कुरुसंसदि
नि:श्वस्य सुभृशं दीर्घं मुहु: संचिन्तयन्निव
तत्रानिमित्ततो दैवात् सूतं कश्मलमाविशत्
तदाऽऽचचक्षे विदुर: सभायां राजसंसदि
सञ्जयोऽयं महाराज मूर्च्छित: पतितो भुवि
वाचं न सृजते काञ्चिद्धीनप्रज्ञोऽल्पचेतन:

वैशम्पायनजी कहते हैं जनमेजय! कौरवोंकी
सभामें राजा धृतराष्ट्रके इस प्रकार पूछनेपर सञ्जय बारम्बार
लम्बी साँस खींचते हुए दीर्घकालतक वहाँ चिन्तामें
निमग्न-से हो गये और अकस्मात् बिना किसी निमित्त कारणके
ही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े तब विदुरजीने उस राज-
सभामें धृतराष्ट्रसे कहा महाराज! ये सञ्जय मूर्च्छित होकर
धरतीपर गिर पड़े हैं उनकी बुद्धि और चेतना लुप्त-सी
हो रही है अब ये कुछ बोल नहीं सकते

धृतराष्ट्र उवाच

अपश्यत् सञ्जयो नूनं कुन्तीपुत्रान् महारथान्
तैरस्य पुरुषव्याघ्रैर्भृशमुद्वेजितं मन: ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र बोले निश्चय ही सञ्जयने महारथी कुन्ती-
पुत्रोंको देखा है अतः जान पड़ता है उन पुरुषसिंह पाण्डवोंने
इनके मनको अत्यन्त उद्विग्न कर दिया है

वैशम्पायन उवाच

सञ्जयश्चेतनां लब्ध्वा प्रत्याश्वस्येदमब्रवीत्
धृतराष्ट्रं महाराज सभायां कुरुसंसदि ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं जनमेजय! सञ्जयको पुनः
चेतना प्राप्त हो आया और होश सँभालकर कौरवसभामें
धृतराष्ट्रसे बोले

सञ्जय उवाच

दृष्टवानस्मि राजेन्द्र कुन्तीपुत्रान् महारथान्
मत्स्यराजगृहावासनिरोधेनावकर्शितान् ॥

सञ्जयने कहा—राजेन्द्र! मैंने महारथी कुन्तीपुत्रोंका
दर्शन किया है मत्स्यराजके यहाँ गुप्तवासकी अवधितक
छिपे रहनेके कारण वे अत्यन्त दुबले
हो गये हैं

शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुञ्जत
धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेऽभ्ययुञ्जत

महाराज पाण्डवोंने जिन वीरोंकी सहायता पाकर
युद्धके लिये उद्यत हुए हैं उनका परिचय सुनिये
स्मरण रहे कि उन वीरवर धृष्टद्युम्नका पूर्ण सहयोग
प्राप्त हुआ है जिनके बलपर उन पाण्डवोंने आप
लोगोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी की है

यो नैव रोषान्न भयान्न कामान्नार्थकारणात्
हेतुवादान्मृषा ब्रूयात् सत्यम् ॥
प्रमाणं महाराज धर्मे धर्मभृतां वर:
अजातशत्रुणा तेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥

महाराज जो धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने कोधके
लोभके लिये और कभी भी लाभ उठाकर झूठी बातका
नहीं कर सकते जो धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं और धर्मके विषयमें
प्रमाण माने जाते हैं उन अजातशत्रुकी सहायतासे पाण्डवोंने
युद्धकी तैयारी की है

यस्य बाहुबले तुल्य: पृथिव्यां नास्ति कश्चन
यो वै सर्वान् महीपालान् वशे चक्रे धनुर्धर:
यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाजयत् ॥
तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत

शत्रुदलमें जिनकी समानता करनेवाला इस भूमण्डलमें दूसरा कोई नहीं है, जिन्होंने केवल धनुष धारण करके युद्धमें काशी, अङ्ग, मगध और कलिङ्ग आदि देशोंके समस्त पार्थिवोंको जीतकर वशमें कर लिया था, उन भीमसेनके बलसे पाण्डवोंने आपके पुत्रोंपर आक्रमण करनेका उद्योग आरम्भ किया है।

यस्य वीर्येण सहसा जतुगृहाद् भुवि पाण्डवाः ।
नि सृत्य जतुगेहाद् वै हिडिम्बाद् पुरुषादकात् ॥
यश्चैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ।
याज्ञसेनीमथो यत्र सिन्धुराजोऽपकृष्टवान् ॥
तत्रैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥
यश्च तान् सङ्गतान् सर्वान् पाण्डवान् वारणावते ।
दह्यतो मोचयामास तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥

जिस बल और पराक्रमसे [illegible] लाक्षा-भवनसे निकलकर इस प्रकार जीवित बच गये, जिन्होंने मनुष्यभक्षी राक्षस हिडिम्बसे आपत्तिमें आये भाइयोंकी रक्षा की, उस समय वे कुन्तीकुमार भीम ही पाण्डवोंके लिये द्वीपके समान आश्रय हो गये, जब सिन्धुराज जयद्रथने द्रौपदीका अपहरण किया था, उस समय भी जिन कुन्तीकुमार वृकोदरने उन सबको द्वीपकी भाँति आश्रय दिया था तथा जिन्होंने वारणावत नगरमें एकत्र हुए समस्त पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जलनेसे बचाया था, उन्हीं भीमसेनके बलसे पाण्डवोंने आपके पुत्रोंके साथ युद्धकी तैयारी की है।

कृष्णाया चरता प्रीतिं येन क्रोधवशा हताः ।
प्रविश्य विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ॥
यस्य नागायुतप्राणं भुजयोः सारमर्पितम् ।
तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥

जिन्होंने द्रौपदीपर अपना प्रेम जताते हुए अत्यन्त दुर्गम एवं भयानक गन्धमादन पर्वतकी भूमिमें प्रवेश करके क्रोधवश नामवाले राक्षसोंको मार डाला, जिनकी दोनों भुजाओंमें दस हजार हाथियोंके समान बल है, उन्हीं भीमसेनके बलसे पाण्डवोंने आपलोगोंपर आक्रमणका उद्योग किया है। २४

कृष्णद्वितीयो विक्रम्य तुष्ट्यर्थं जातवेदसः ।
अजयद् यः पुरा वीरो युध्यमानं पुरन्दरम् ॥ ६
यः साक्षाद् देवदेवेशं शूलपाणिमुमापतिम् ।
तोषयामास युद्धेन देवदेवमुमापतिम् ॥ ७
यश्च सर्वान् वशे चक्रे लोकपालान् धनुर्धरः ।
तेन वो विजयेनाजौ पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥

जिन वीरशिरोमणिने पहले केवल भगवान् श्रीकृष्णके साथ जाकर अग्निदेवकी तृप्तिके लिये पराक्रम करके अपने साथ युद्ध करनेवाले देवराज इन्द्रको भी पराजित कर दिया था, जिन्होंने युद्धके द्वारा देवाधिदेव महादेव उमापति शंकरको भी तुष्ट किया था तथा जिन धनुर्धर वीरने समस्त लोकपालोंको भी हराकर अपने वशमें कर लिया, अर्जुन वे बल [illegible] इस युद्धमें आपलोगोंसे भिड़नेको तैयार हैं।

यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् ।
स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः ॥
तेन वो दर्शनीयेन वीरेणातिधनुष्मता ।
माद्रीपुत्रेण कौरव्य पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥

कुरुनन्दन! जिन्होंने सहस्रों म्लेच्छोंसे भरी हुई पश्चिम दिशाको जीतकर अपने अधीन कर लिया, [illegible] विचित्र युद्ध [illegible] कुशल योद्धा नकुल उधरसे युद्धके लिये तैयार खड़े हैं। माद्रीकुमार नकुल महान् धनुर्धर और परम दर्शनीय वीर हैं। उनके साथ पाण्डवोंने आपलोगोंपर आक्रमणकी तैयारी की है।

यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाजयत् ।
तेन वः सहदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥

जिन्होंने युद्धमें काशी, अङ्ग, मगध तथा कलिङ्गदेशके राजाओंको [illegible] जीत लिया है, उन वीरवर सहदेवके साथ पाण्डव आपलोगोंसे भिड़नेके लिये तैयार हुए हैं।

यस्य वीर्येण सदृशाश्चत्वारो भुवि मानवाः ।
अश्वत्थामा धृष्टकेतू रुक्मी प्रद्युम्न एव च ॥
तेन वः सहदेवेन युद्धं राजन् महात्ययम् ।
यवीयसा नृवीरेण माद्रीनन्दिवर्धनेन च ॥

राजन्! भूमण्डलमें अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्मी तथा प्रद्युम्न—ये चार पुरुष ही बल और पराक्रममें जिनकी समानता कर सकते हैं, जो माताका आनन्द प्रदान करनेवाले तथा पाण्डवोंमें सबसे छोटे हैं, उन नरश्रेष्ठ वीर सहदेवके साथ आपलोगोंका महान् विनाशकारी युद्ध होनेवाला है।

तपश्चचार या घोरं काशिकन्या पुरा सती ।
भीष्मस्य वधमिच्छन्ती प्रेत्यापि भरतर्षभ ॥ ४
पाञ्चालस्य सुता जज्ञे दैवाच्च स पुनः पुमान् ।
स्त्रीपुंसो पुरुषव्याघ्र यः स वेद गुणागुणान् ॥ ८

भरत [illegible] पूर्वकालमें काशिराजकी जिस सती-साध्वी कन्या अम्बाने भीष्मजीके वधकी इच्छासे घोर तपस्या की थी, वही मृत्युके पश्चात् पाञ्चालराज द्रुपदकी पुत्री होकर उत्पन्न हुई, परंतु दैववश वह फिर पुरुष हो गयी। वह वीर पाञ्चालकुमार स्त्री और पुरुष दोनों शरीरोंके गुण और अवगुणको जानता है।

यः कलिङ्गान् समापेदे पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
शिखण्डिना च कुरवः कृतास्त्रेणाभ्ययुञ्जत ॥ ६६ ॥

कौरवो ! जब द्रुपदकुमार युद्धमें उन्मत्त होकर लड़ता था, उन्होंने कलिङ्गदेशीय सैनिकोंको पराजित किया था, उस महाबली वीरका नाम शिखण्डी है, जिसके साथ पाण्डवोंने आपलोगोंसे युद्धकी तैयारी की है।

य एष पुरुषरूपेण स्त्रीपूर्वो भीष्मसंस्थितः।
महेष्वासेन वीरेण पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३७ ॥

जिसे स्त्रीसे पुरुष बना दिया था ... महान् धनुर्धर शिखण्डीके साथ पाण्डव आपसे युद्ध करनेको तैयार हैं।

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः।
आमुक्तकवचाः शूरास्तैश्च वत्सोऽभ्ययुञ्जत ॥ ३८ ॥

केकयदेशके पाँच राजकुमार जो सगे भाई हैं, कवच बाँधे युद्धके लिये उद्यत रहते हैं। महान् धनुर्धर शूरवीर हैं। उनके ऊपर [illegible] आपलोगोंसे युद्धकी तैयारी की है।

यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान् सत्यविक्रमः।
तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन सङ्गरः ॥ ३९ ॥

जिनकी बाँहें बड़ी-बड़ी हैं, जो शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाते हैं, जो ... पराक्रमी हैं, उन वृष्णिवंशके वीर युयुधानसे आपलोगोंका संग्राम होने वाला है।

य आसीच्छरणं काले पाण्डवानां महात्मनाम्।
रणे तेन विराटेन भवितां वः समागमः ॥ ४० ॥

जो अज्ञातवासके समय महात्मा पाण्डवोंके आश्रयदाता रहे हैं, उन विराटके साथ भी आपलोगोंका युद्ध होगा।

यः स काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः।
स तेषामभवद् योद्धा तेन वत्सोऽभ्ययुञ्जत ॥ ४१ ॥

काशिदेशके अधिपति महारथी नरेश जो वाराणसीपुरीमें रहते हैं, पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करनेको तैयार हैं। उनको साथ लेकर पाण्डव आपलोगोंपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत हैं।

शिशुभिर्दुर्जयैः संख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः।
आशीविषसमस्पर्शैः पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४२ ॥

द्रौपदीके महामनस्वी पुत्र, जो बालक होनेपर भी समरभूमिमें दुर्जय हैं, जिनका स्पर्श विषधर सर्पोंके समान है, उनके सहयोगसे भी पाण्डव आपलोगोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी कर रहे हैं।

यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे।
तेनाभिमन्युना सङ्ख्ये पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४३ ॥

जो पराक्रममें भगवान् श्रीकृष्णके समान और इन्द्रियसंयममें युधिष्ठिरके तुल्य हैं, उस अभिमन्युको साथ लेकर वे भी आपलोगोंसे युद्धकी तैयारी की है।

यस्तमप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः।
दुःसहः समरे क्रुद्धः शिशुपालात्मजो नृप ॥ ४४ ॥
तेन वश्चेदिराजेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत।
अक्षौहिण्या परिवृतः पाण्डवान् योऽभिसंश्रितः ॥ ४५ ॥

जिनके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, शिशुपालका महायशस्वी पुत्र धृष्टकेतु समरभूमिमें कुपित होनेपर जिसके वेगको सहना कठिन है, उस चेदिराजके साथ पाण्डव आपलोगोंपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहे हैं। उसने एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आकर पाण्डवोंका आश्रय लिया है ॥ ४४-४५ ॥

यः संश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः।
तेन वो वासुदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४६ ॥

जैसे इन्द्र देवताओंके आश्रयदाता हैं, उसी प्रकार जो पाण्डवोंके आश्रय हैं, उन भगवान् वासुदेवके साथ पाण्डवोंने आपलोगोंपर आक्रमण करनेकी तैयारी की है।

तथा चेदिपतेर्भ्राता शरभो भरतर्षभ।
करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वत्सोऽभ्ययुञ्जत ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! चेदिराजके भाई शरभ अपने अनुज करकर्षके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हैं। उन दोनोंके साथ ... उन्होंने आपसे युद्ध करनेका उद्योग किया है।

जारासन्धिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ।
युद्धे प्रतिरथौ वीरौ पाण्डवार्थे व्यवस्थितौ ॥ ४८ ॥

जरासन्धपुत्र सहदेव और जयत्सेन दोनों युद्धमें अनुपम वीर हैं। वे दोनों भी पाण्डवोंकी सहायताके लिये आकर डटे हुए हैं।

द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः।
त्यक्तात्मा पाण्डवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः ॥ ४९ ॥

महातेजस्वी राजा द्रुपद विशाल सेनाके साथ आये हैं और पाण्डवोंके लिये अपने शरीर और प्राणोंकी परवा न करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हैं।

एते चान्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः।
शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः ॥ ५० ॥

ये तथा और भी बहुत-से पूर्व तथा उत्तर दिशाओंमें रहनेवाले सैकड़ों भूपाल यहाँ आकर डटे हुए हैं, जिनका आश्रय लेकर महाराज युधिष्ठिर युद्धके लिये तैयार हैं।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जयवाक्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसंधिपर्वमें संजयवाक्यविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीमसेनके पराक्रमसे डरे हुए धृतराष्ट्रका विलाप

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः।
एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! तुमने जिन योद्धाओंके नाम बताये हैं, वे सभी बड़े उत्साही वीर हैं। इनमें भी जितने लोग वहाँ एकत्र हुए हैं, वे सब एक ओर और भीमसेन एक ओर॥ १॥

भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं संजायते महत्।
क्रुद्धादमर्षणात् तात व्याघ्रादिव महारुरोः॥ २॥

तात! मुझे अमर्ष भरे हुए क्रोधी भीमसे ही अधिक भय लगता है, ठीक उसी तरह, जैसे किसी महान् मृगको सिंहसे भय बना रहता है॥ २॥

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन्।
भीतो वृकोदरात् तात सिंहात् पशुरिवापरः॥ ३॥

तात! सिंहसे डरे हुए दूसरे पशुकी भाँति मैं भीमसेनसे भयभीत हो रातभर गरम गरम लंबी साँस खींचता हुआ जागता रहता हूँ॥ ३॥

न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः।
सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद् युधि॥ ४॥

महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। अपनी सेनामें किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो भीमका सामना कर सके—युद्धमें इनके वेगको सह सके॥ ४॥

अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डवः।
अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः॥ ५॥

कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र भीम अमर्षशील तथा वैरको दृढ़तापूर्वक पकड़े रखनेवाले हैं। उनकी कभी हँसी भी व्यर्थके लिये नहीं होती। वह उन्मत्त-सा दिखायी देता है। उसका स्वभाव उग्र है। वह टेढ़ी निगाहसे देखता और बड़े जोरसे गर्जना करता है॥ ५॥

महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति॥ ६॥

वह महान् वेगशाली, अत्यन्त उत्साही, विशालबाहु और महाबली है। वह युद्ध करके मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंका अन्त कर डालेगा॥ ६॥

ऊरुग्राहगृहीतानां गदां बिभ्रद् वृकोदरः।
कुरूणामृषभो युद्धे दण्डपाणिरिवान्तकः॥ ७॥

मेरे पुत्र भी बड़े दुराग्रही हैं, अतः इनके बीच भी कुरुश्रेष्ठ वृकोदर भीम दण्डपाणि यमराजकी भाँति युद्धमें गदा ले निश्चय ही वध कर डालेगा॥ ७॥

अष्टास्रिमायसीं घोरां गदां काञ्चनभूषणाम्।
मनसाहं प्रपश्यामि ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम्॥ ८॥

मैं मनसे अभी भी देख रहा हूँ, भीमसेनकी सुवर्णभूषित भयंकर गदा, जो लोहेकी बनी हुई और आठ कोनोंसे युक्त है, ब्रह्मदण्डके समान उठी हुई है॥ ८॥

यथा रुरूणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत्।
मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति॥ ९॥

जैसे बलवान् सिंह मृगोंके यूथोंमें निःशङ्क विचरण करता है, उसी प्रकार भीमसेन मेरी विशाल वाहिनियोंमें स्वच्छन्द विचरेगा॥ ९॥

सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः।
बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येऽपि रभसः सदा॥ १०॥

बाल्यकालमें भी मेरे सब पुत्रोंमें एकमात्र वह भीमसेन ही क्रूर पराक्रमी, बहुत अधिक खानेवाला, सबके प्रतिकूल चलनेवाला तथा सदा अत्यन्त वेगशाली था॥ १०॥

उद्वेपते मे हृदयं यदा दुर्योधनादयः।
बाल्येऽपि तेन युध्यन्तो वारणेनेव मर्दिताः॥ ११॥

इसकी याद आते ही मेरा हृदय काँपने लगता है कि मेरे दुर्योधन आदि पुत्र बचपनमें भी जब उसके साथ खेल-कूदमें लगते थे, तब उन्हें भीम हाथीके समान मसलते देता था।



तस्य वीर्येण संहृष्टा नित्यमेव सुता मम
स मया हेतुनानेन भीमो भीमपराक्रमः

युद्ध तक ... सदा ही ... भयंकर पराक्रमी भीमसेन ही ... पूछो ॥

महत्यात्मनीकानि रथवारणवाजिनाम्
श्यामीक्षणतो भीम कोऽस्मूर्च्छितमाहवे

युद्ध ... अपने ... रहा ... नहीन युद्धमें भले दुर्धर्ष ही मनुष्य हाथ और ... समस्त सेनाओंको ... ... रहा

अक्षो द्रोणार्जुनस ... वासुदेवमथ अपि
मयोऽसरम योधेश्वे हन्याद् भीममाहवे

... ... तथा ... ... बहुत ... करता ... ... ऐसे भीमका युद्धमें ... ... हुआ ॥

... शक्तए भीमसेनमभयम्
अनित्यश्च तु मन्येऽहं यत् नेन रिपुरात्मिका
... हता ... पुत्रा मम ... ॥

... मर्यादि ... युद्ध ... भीमसेनका ... सुनाओ ... ... लाभ ... कि ... ... और ... ... ही ... उसी ... ... पुत्रोंको ... बार ... ॥

येन भीमबल ... राक्षसाश्च पुत्रा हता
कथं तस्य रणे वेग मानुषः ... ॥

जिसने ... ... कर्म ... ... राक्षसोंको भी ... युद्धमें उसका ... मनुष्य ... सकेगा ॥

न जातु मयो ... मम ... ...
किं तु ... ... सम्प्रति ... ॥

... पाण्डुकुमार भीमसेन ... ... भी ... कभी नहीं रहा ... ... मेरे ... पुत्रोंने ... बार-बार ... ... समय मेरे ... ही ... ॥

निष्ठुरो रोषणः ... ...
नियमको ... तथा कथं ... दुर्योधन ॥

... ... और भी ... ... ही ... ही ... ... सदा ... ... भीमसेन ... ... ॥

... ...
... भीमसेन ... ... ॥

और ... ... भीमसेन ... समान ... है ॥

... ... एक ... ... नवाच ... ही ॥

... ... कुञ्जरान्
... ... ॥

... नहीं ... ... पुत्रोंके ... ... और ... हाथियों भी ... कर सकता ॥

इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात् पुरा
... ... ॥

... ही ... पीछे ... पहले ... ... था ... ... ॥

... ...
... ... क्रूरपराक्रम ॥

... ... भयंकर भीमसेन ... ... मेरे ... हाथियों ... ... भी ... ... ॥

... ... भीम ... ...
... ... पूर्व ... ॥

... ... मेरे पुत्रोंने ... ... ॥

... ...
... ... ॥

... ... और ... ... समान ... ... और ... ही ... ... ऐसे ... ... ॥

... ...
... ... ॥

... एक ... ... और ... ... ही ... ... मेरे मूर्ख पुत्र ... भीमसेन ... ... पार ... ॥

... ...
... ... ॥

... ... मूर्ख पुत्र मेरी बात नहीं सुनते हैं ...

उसकी ऊँची शाखाओं लगे हुए शहदको देखता है, पहले गिरनेका जो भयानक खतरा है, उसको और उसका ध्यान नहीं है ॥ ६ ॥

सायुधो ये समभिपतन्ति मरुत्पेव मृत्युना ।
निकृत्त चोदिता धात्रा सिंहेनेव महामृगाः ॥ ७ ॥

जैसे महान् मृग सिंहसे भिड़ जाते हैं, उसी प्रकार जो लोग उस मनुष्यवीरके साथ युद्धके लिये युद्धभूमिमें उतरेंगे, उन्हें विधाताने ही मृत्युके लिये प्रेरित कर रखा है, ऐसा मानना चाहिये ॥ ७ ॥

उपमया तात बाहुशिक्यं पदक्षिप्रमितौजसम् ।
अभितो यु सरस्वत्याः कथं शत्रवन्तो ने युधा ॥ ८ ॥

तात ! भयङ्कर भीमसेनकी गदा छींकेपर योग्य भाग हाथ एवं और व अंगोंमें विभूषित है उसे अत्यन्त तेजस्विनी गदाका एक भार यु महान्तक है । अतः भीम उसे मेरे पुत्रोंपर चलायेगा, तब वे उसका आघात कैसे सह सकेंगे ॥ ९ ॥

गदा धारमयोपातान् भिन्दन्तो हस्तिमस्तकान् ।
सृक्किणी लेलिहामस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः ॥ १० ॥
उद्दिश्य नादान् महतः कुर्वतो भैरवान् रवान् ।
प्रतीपं पततो मत्तान् कुञ्जरान् प्रतिगर्जतः ॥ ११ ॥
विगाह्य रथमार्गेषु वरानुद्दिश्य निघ्नतः ।
अग्नेः प्रज्वलितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजा ॥ १२ ॥

भीमसेन अ... आग महना और ... अपने ओठ चाटता हुआ गरज मुखाकर हाथियोंके मस्तक विदीर्ण करेगा मतवाले गजराज ... करने वाले गजराजोंकी ओर करके उनकी ओर दौड़ेगा प्रतिदिन दिखाकी ओर आनेवाले मतवाले हाथियोंकी गर्जनाके उत्तरमें स्वयं भी सिंहनाद करेगा और मेरे रथियोंका समाचारोंमें घुसकर रेष्ठ वीरोंको चुन चुनकर मारने लगेगा, उस समय अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाले भीमसे हाथसे मेरे पुत्र कैसे जीवित बचेंगे ॥ १२ ॥

वीथीं कुर्वन् महाबाहुर्द्रावयन् मम वाहिनीम् ।
नृत्यन्निव गदापाणिर्युगान्तं दर्शयिष्यति ॥ १३ ॥

महाबाहु भीम मेरी सेनाको भगाकर मार्ग बना लेगा और हाथमें गदा लिये नाचता हुआ-सा मेरी सेनाका संहार करेगा, उस समय प्रलयकालका दृश्य उपस्थित कर देगा ॥ १३ ॥

प्रभिन्न इव मातङ्गः प्रभञ्जन् पुष्पितान् द्रुमान् ।
प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः ॥ १४ ॥

जैसे मदमत्त गजराज खिले हुए वृक्षोंको तोड़ता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार भीमसेन समरभूमिमें मेरे पुत्रोंकी सेनामें भीतर प्रवेश करेगा ॥ १४ ॥

कुर्वन् रथान् विपुरुषान् विध्वजान् भग्नकूबरान् ।
आरुजन् पुरुषव्याघ्रो रथिनः सादिनस्तथा ॥ १५ ॥
गङ्गावेग इवानूपांस्तीरजान् विविधान् द्रुमान् ।
प्रभङ्क्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मम सञ्जय ॥ १६ ॥

सञ्जय ! वह पुरुषसिंह भीम रथोंको रथी सारथि और ध्वजाओंसे शून्य कर देगा एवं रथियों और घुड़सवारोंको भी मार डालेगा । जैसे गङ्गाजीका बढ़ता हुआ वेग अपने प्रदेशोंमें स्थित हुए नाना प्रकारके तटवर्ती वृक्षोंको गिराकर ... कर देता है, उसी प्रकार भीम युद्धभूमिमें जाकर मेरे पुत्रोंकी सेनाको तहस-नहस कर डालेगा ॥ १५-१६ ॥

दिशो नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनभयार्दिताः ।
मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव सञ्जय ॥ १७ ॥

सञ्जय ! निश्चय ही भीमसेनके भयसे पीड़ित हो मेरे पुत्र, सेवक तथा सहायक नरेश भिन्न-भिन्न दिशाओंमें भाग जायँगे ॥ १७ ॥

येन राजा महावीर्यः प्रविश्यान्तःपुरं पुरा ।
वासुदेवसहायेन जरासंधो निपातितः ॥ १८ ॥
कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासंधेन धीमता ।
मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता ॥ १९ ॥

परम बुद्धिमान् और बलवान् महाबली मगधराज जरासंधने इस सारी पृथिवी पर अधिकार करके इसे पीड़ा देना आरम्भ किया था, परंतु भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्णके साथ उसके अन्तःपुरमें जाकर उस महापराक्रमी नरेशको मार गिराया ॥ १८-१९ ॥

भीष्मप्रतापात् कुरवो नयेनान्धकवृष्णयः ।
ते न तस्य वशं प्राप्ताः केवलं दैवमेव तत् ॥ २० ॥

भीष्मजीके प्रतापसे कुरुवंशी और नीतिबलसे अन्धक और वृष्णिवंशके लोग ही जरासंधके वशमें नहीं पड़े । यह केवल दैवयोग था ॥ २० ॥

स गत्वा पाण्डुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना ।
अनायुधेन वीरेण निहतः किं ततोऽधिकम् ॥ २१ ॥

परंतु अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले वीर पाण्डुपुत्र भीमने वेगपूर्वक वहाँ जाकर बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके ही उस जरासंधको यमलोक पहुँचा दिया । इससे बढ़कर पराक्रम और क्या होगा ॥ २१ ॥

दीर्घकालसमासक्तं विषमाशीविषो यथा ।
स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम सञ्जय ॥ २२ ॥

सञ्जय ! जैसे विषधर सर्प बहुत दिनोंसे संचित किये हुए विषको किसीपर उगलता है, उसी प्रकार भीमसेन भी

दीर्घकालसे संचित अपने क्रोधको रणभूमिमें मेरे पुत्रोंपर छोड़ेगा ॥ ४१ ॥

महेन्द्र इव वज्रेण दानवान् देवसत्तमः ।
भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान् ॥ ४२ ॥

जैसे देवश्रेष्ठ इन्द्र वज्रसे दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार हाथमें गदा लिये भीमसेन मेरे पुत्रोंका संहार कर डालेगा ॥ ४२ ॥

अविषह्यमनावार्यं तीव्रवेगपराक्रमम् ।
पश्यामीवातिताम्राक्षमापतन्तं वृकोदरम् ॥ ४३ ॥

उसका आक्रमण दुःसह है। उसकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। उसका वेग और पराक्रम तीव्र है। मैं अत्यन्त लाल आँखोंवाले भीमको अपने ऊपर आते देख-सा रहा हूँ ॥ ४३ ॥

अगदस्याप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः ।
बाहुभ्यां युध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥ ४४ ॥

यदि वह गदा, धनुष, रथ और कवचसे रहित होकर केवल दोनों भुजाओंसे युद्ध करे तो भी उसके सामने कौन पुरुष ठहर सकता है? ॥ ४४ ॥

भीष्मो द्रोणश्च विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा ।
जानन्त्येते यथैवाहं वीर्यज्ञस्य भीमतः ॥ ४५ ॥

जैसे बुद्धिमान् भीमके बल और पराक्रमको मैं जानता हूँ, उसी प्रकार ये भीष्म, विप्रवर द्रोणाचार्य तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृप भी जानते हैं ॥ ४५ ॥

आर्यव्रतं तु जानन्तः सङ्गरान्न बिभित्सवः ।
सेनामुखेषु स्थास्यन्ति मामकानां नरर्षभाः ॥ ४६ ॥

तथापि ये नरश्रेष्ठ वीर पुरुषोंके व्रतको जानते हैं, इसलिये युद्धमें साथ न छोड़नेकी इच्छा रखनेके कारण ये मेरे पुत्रोंकी सेनाके मुहानेपर खड़े रहेंगे ॥ ४६ ॥

बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः ।
पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत् सुतान् ॥ ४७ ॥

पुरुषका भाग्य ही सबसे विशेष प्रबल है, क्योंकि मैं पाण्डवोंकी विजय देखकर भी अपने पुत्रोंको रोक नहीं पाता हूँ ॥ ४७ ॥

ते पुराणं महेष्वासा मार्गमैन्द्रं समास्थिताः ।
त्यक्ष्यन्ति तुमुले प्राणान् रक्षन्तः पार्थिवं यशः ॥ ४८ ॥

वे महाधनुर्धर भीष्म आदि पुरातन स्वर्गप्रद मार्गका आश्रय ले पार्थिव यशकी रक्षा करते हुए घमासान युद्धमें अपने प्राण त्याग देंगे ॥ ४८ ॥

यथैषां मामकास्तात तथैषां पाण्डवा अपि ।
पौत्रा भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च ॥ ४९ ॥

तात! इनके लिये जैसे मेरे पुत्र हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं। दोनों ही भीष्मके पौत्र तथा द्रोण और कृपके शिष्य हैं ॥

यत्त्वस्मदाश्रयं किंचिद् दत्तमिष्टं च संजय ।
तस्यापचितिमार्यत्वात् कर्तारः स्थविरास्त्रयः ॥ ५० ॥

संजय! भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य ये तीनों वृद्ध श्रेष्ठ पुरुष हैं। इन्होंने हमारे आश्रयमें रहकर जो कुछ भी दान-यज्ञ आदि किया है, उसका बदला चुकायेंगे (युद्धमें दुर्योधनका ही साथ देंगे) ॥ ५० ॥

आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः ।
निधनं ब्राह्मणस्याजौ वरमेवाहुरुत्तमम् ॥ ५१ ॥

जो ब्राह्मण शस्त्र धारण करके क्षात्रधर्मकी रक्षा करना चाहता है, युद्धमें उसकी मृत्यु ही उसके लिये उत्तम एवं श्रेष्ठ मानी गयी है ॥ ५१ ॥

स वै शोचामि सर्वान् वै ये युयुत्सन्ति पाण्डवैः ।
विक्रुष्टं विदुरेणादौ तदेतद् भयमागतम् ॥ ५२ ॥

जो लोग पाण्डवोंसे युद्ध करना चाहते हैं, उन सबके लिये मुझे बड़ा शोक हो रहा है। विदुरने पहले ही जिस भयकी घोषणा की थी, वही यह भय आज आ पहुँचा है।

न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य संजय ।
भवत्यतिबले ह्येतज्ज्ञानमप्युपघातकम् ॥ ५३ ॥

संजय! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ज्ञान दुःखका नाश नहीं कर सकता, अपितु प्रबल दुःख ही ज्ञानका भी नाश करनेवाला बन जाता है ॥ ५३ ॥

ऋषयो ह्यपि निर्मुक्ताः पश्यन्तो लोकसंग्रहान् ।
सुखे भवन्ति सुखिनस्तथा दुःखेन दुःखिताः ॥ ५४ ॥

जीवन्मुक्त महर्षि भी लोकव्यवहारको देखकर सुखके प्रसंगोंमें सुखी और दुःखमें दुःखी होते हैं ॥ ५४ ॥

किं पुनर्योऽहमासक्तस्तत्र तत्र सहस्रधा ।
पुत्रेषु राज्यदारेषु पौत्रेष्वपि च बन्धुषु ॥ ५५ ॥

फिर जो पुत्र, राज्य, स्त्री, पौत्र तथा बन्धु-बान्धवोंमें जहाँ-तहाँ सहस्रों प्रकारसे आसक्त हो रहा है, उसकी तो बात ही क्या है? ॥ ५५ ॥

संशये तु महत्यस्मिन् किं नु मे क्षममुत्तमम् ।
विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिन्तयन् ॥ ५६ ॥

इस महान् संकटके विषयमें मैं क्या उचित प्रतीकार कर सकता हूँ? बार-बार विचार करनेपर कौरवोंका विनाश ही दिखायी पड़ता है ॥ ५६ ॥

द्यूतप्रमुखमाभाति कुरूणां व्यसनं महत् ।
मन्देनैश्वर्यकामेन लोभात् पापमिदं कृतम् ॥ ५७ ॥

कृपाचार्य आदिकी धारणाएँ हो चलीं और भारी विपत्ति [illegible] होती हैं। [illegible] एवं दुर्योधनने [illegible] कर लिया है।

अन्ये चैवाधर्मेऽस्य कालपक्वमसंशयम्
[illegible] ॥

मैं [illegible] कि [illegible] तात [illegible] हो [illegible] है [illegible] उसकी नेमिके समान मैं [illegible] हूँ [illegible] इससे दूर [illegible] नहीं है।

किं नु कुर्यां कथं कुर्यां क्व नु गच्छामि संजय।
एते गच्छन्ति कुरवो मन्दाः कालवशं गताः॥

[illegible] कौरव [illegible] मृत्युके [illegible] चाहते हैं।

अवशोऽहं पुरा तात पुत्राणां निहते शते।
श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत्॥

तात [illegible] यदि युद्धमें मारे गये [illegible] होकर [illegible] मुझे [illegible] सकती है।

यथा निदाघे ज्वलनः समिद्धो
दहेत् कक्षं वायुना चोद्यमानः।
गदाहस्तः पाण्डवो वै तथैव
हन्ता मदीयान् सहितोऽर्जुनेन॥

जैसे [illegible] प्रज्वलित हुई अग्नि [illegible] वैसे ही [illegible] मेरे पुत्रोंको मार डालेंगे।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसंधिपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रद्वारा अर्जुनसे प्राप्त होनेवाले भयका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

यस्य वै नानृता वाचः प्रवृत्ता अनुशुश्रुम।
त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद् योद्धा यस्य धनंजयः॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जिनके मुखसे कभी कोई झूठ बात निकली हमने नहीं सुनी है तथा जिनके पक्षमें धनंजय-जैसे योद्धा हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिरको भूमण्डलका [illegible] तीनों लोकोंका राज्य भी प्राप्त हो सकता है।

तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः।
अनिशं चिन्तयानोऽपि यः प्रतीयाद् रथेन तम्॥

मैं निरन्तर सोचने विचारनेपर भी युद्धमें गाण्डीवधारी अर्जुनका ही सामना करनेवाला किसी ऐसे वीरको नहीं देखता जो [illegible] उनके सम्मुख आ सके।

अस्यतः कर्णिनालीकान् मार्गणान् हृदयच्छिदः।
प्रत्येता न समः कश्चिद् युधि गाण्डीवधन्वनः॥

जो हृदयको विदीर्ण कर देनेवाले कर्णी और नालीक आदि बाणोंकी [illegible] करते हैं, गाण्डीवधन्वा अर्जुनका युद्धमें सामना करनेवाला कोई [illegible] योद्धा नहीं है।

द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वीरौ नरर्षभौ।
कृतास्त्रौ बलिनां श्रेष्ठौ समरेष्वपराजितौ॥
महान् स्यात् संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम।
घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः॥ ५ ॥

यदि नरश्रेष्ठ वीरवर [illegible] अस्त्रविद्यामें पारङ्गत विद्वान् तथा युद्धमें कभी पर [illegible] होनेवाले मनुष्योंमें [illegible] वीरवर [illegible] और कर्ण अर्जुनका सामना करनेके लिये आवें तो भी मुझे अर्जुनपर विजय प्राप्त होनेमें महान् संदेह रहेगा। मैं [illegible] देखता हूँ मेरी विजय होगी ही नहीं; क्योंकि कर्ण [illegible] है और आचार्य द्रोण वृद्ध होनेके साथ ही [illegible] गुरु हैं।

समर्थो बलवान् पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः।
भवेत् सुतुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः॥

कुन्तीपुत्र [illegible] और बलवान् हैं, उनका धनुष [illegible] है [illegible] और थकावटको जीत चुके हैं; अतः उनके [illegible] अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ेगा [illegible] सब प्रकार [illegible] ही [illegible] होगी।

सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे प्राप्ता महद् यशः।
अपि सर्वामरैश्वर्यं त्यजेयुर्न पुनर्जयम्॥ ७ ॥

समस्त पाण्डव अस्त्रवेत्ता शूरवीर तथा महान् यशको प्राप्त [illegible] देवताओंका ऐश्वर्य [illegible] सकते हैं परंतु [illegible] नहीं छोड़ेंगे।

वधे नूनं भवेच्छान्तिस्तयोर्वा फाल्गुनस्य वा।
न तु हन्तार्जुनस्यास्ति जेता वास्य न विद्यते॥
मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मन्दान् प्रति य उत्थितः।

निश्चय ही द्रोणाचार्य और कर्णका वध हो जानेपर

हमारे पक्षके सारा नाश हो जायेंगे अथवा अर्जुनके बाण समूहसे पराजय प्राप्त हो बैठेंगे परन्तु अर्जुनका वध करनेवाला तो कोई है ही नहीं। उनके जीतनेवाला भी संसारमें कोई नहीं है। मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंके प्रति उनके हृदयमें जो क्रोध भरा उठा है वह कैसे शान्त होगा? ॥ ८॥

अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च ॥ ९ ॥

एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य ह।

दूसरे योद्धा भी अस्त्र चलाना जानते हैं परन्तु वे कभी हारते हैं और कभी जीतते भी हैं। केवल अर्जुन ही ऐसे हैं जिनकी निरन्तर विजय ही सुनी जाती है। ९ ।

त्रयस्त्रिंशत् समाहूय खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १० ॥

जिगाय च सुरान् सर्वान् नास्य विद्म पराजयम्।

पाण्डुनन्दन अर्जुनने (पुरुष-पुरुष) तैंतीस देवताओंको युद्धके लिये ललकारकर अग्निदेवको तृप्त किया और सभी देवताओंको जीत लिया। उनकी कभी पराजय हुई हो इसका पता हमें आजतक नहीं लगा ॥ १० ॥

यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ॥ ११ ॥

ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा।

तात! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण जिनका स्वभाव और आचार-व्यवहार भी अर्जुनके ही समान है युद्धमें उनका रथ हाँकते हैं अतः इन्द्रकी विजयकी भाँति उनकी भी विजय निश्चित है ॥ ११½ ॥

कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गाण्डिवं धनुः ॥ १२ ॥

युगपत् त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुम।

श्रीकृष्ण और अर्जुन एक रथपर बैठेंगे * और गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई है इस प्रकार ये तीनों तेज एक ही साथ एकत्र हो गये हैं, यह बात हमलोगोंने सुना है ॥ १२½ ॥

नैव नोऽस्ति धनुस्तादृक् न योद्धा न च सारथिः ॥ १३ ॥

तच्च मन्दा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः।

हमलोगोंके पास न तो वैसा धनुष है न अर्जुन-जैसा योद्धा है और न श्रीकृष्ण-जैसा सारथि ही है परन्तु दुर्योधनके वशीभूत हुए मेरे मूर्ख पुत्र इस बातको नहीं समझ पाते हैं ॥ १३½ ॥

शेषयेदशनिर्दीप्तो निपतन् मूर्ध्नि संजय ॥ १४ ॥

न तु शेषं शराः कुर्युरस्ताः किरीटिना।

संजय! ऊपरसे गिरता हुआ वज्र किसीके मस्तकपर पड़कर सम्भव है उसके जीवनको बचा दे परन्तु किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए बाण किसी तरह जाकर उसे जीवित नहीं छोड़ेंगे ॥ १४½ ॥

अपि चास्यन्निवाभाति निघ्नन्निव च फाल्गुनः ॥ १५ ॥

उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः।

मुझे तो वीर धनंजय युद्धमें बाणोंकी वर्षासे योद्धाओंके प्राण लेते और अपनी बाणवर्षाद्वारा उनके शरीरोंसे मस्तकोंको काटते हुए-से प्रतीत हो रहे हैं ॥ १५½ ॥

अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः ॥ १६ ॥

गाण्डीवेद्धं दहेदाजौ पुत्राणां मम वाहिनीम्।

क्या गाण्डीव धनुषसे प्रकट हुआ बाणमय तेज सब ओर प्रज्वलित-सा होकर मेरे पुत्रोंकी (विशाल) वाहिनीको युद्धमें जलाकर भस्म कर डालेगा? ॥ १६½ ॥

अपि सात्यकिघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः ॥ १७ ॥

वित्रस्ता बहुधा सेना भारती प्रतिभाति मे।

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि श्रीकृष्णके रथसंचालनकी आवाज सुनकर समस्त कौरवोंकी यह सेना सव्यसाची अर्जुनके भयसे पीड़ित और नाना प्रकारसे व्याकुल हो जायगी ॥ १७½ ॥

यथा कक्षे महानग्निः प्रदहन् सर्वतश्चरन्।

महार्चिरनिलोद्धूतस्तद्वद् धक्ष्यति मामकान् ॥ १८ ॥

जैसे वायुके वेगसे बढ़ी हुई आग सब ओर फैलकर प्रचण्ड लपटोंसे युक्त हो घास-फूस अथवा जंगलको जला कर भस्म कर देती है, उसी प्रकार अर्जुन मेरे पुत्रोंको नष्ट कर डालेंगे ॥ १८ ॥

यदोद्वमन् निशितान् बाणसङ्घा-

नवस्थाताततयी समरे किरीटी।

सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा

यथा भवेत् तद्वदवारणीयः ॥ १९ ॥

जिस समय शस्त्रधारी किरीटधारी अर्जुन समरभूमिमें रोषपूर्वक पैने बाणसमूहोंकी वर्षा करेंगे उस समय विधाताके रचे हुए सर्वसंहारक कालके समान उनको कोई रोक नहीं सकेगा ॥ १९ ॥

तदा ह्यभीक्ष्णं शृणुयाम् अकारान्

तोताश्च तानरवस्थे कुरूणाम्।

तेषां रणे सम्भवतां तथा रथाग्रे

क्षयं विनाशं भरतानुपैति ॥ २० ॥

* कुछ लोग 'कृष्णावेकरथे' पाठ मानकर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक रथपर बैठेंगे ऐसा अर्थ करते हैं कि अर्जुनने खाण्डवदाहके समय अपनी युद्धकला प्रकट की थी।

उस समय मैं महलोंमें बैठा हुआ बार-बार कौरवोंकी युद्धजनित विनाश ही तथा औरमें यह भरतवंशका विनाश आ विविध अवस्थाओंकी कथा सुनता रहूँगा। अहो! युद्धके पहुँचा है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जयवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसंधिपर्वमें संजयवाक्यविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कौरव-सभामें धृतराष्ट्रका युद्धसे भय दिखाकर शान्तिके लिये प्रस्ताव करना

धृतराष्ट्र उवाच

यथैव पाण्डवाः सर्वे पराक्रान्ता जिगीषवः।
तथैवाभिसरास्तेषां त्यक्तात्मानो जये धृताः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जैसे समस्त पाण्डव पराक्रमी और विजयके अभिलाषी हैं, उसी प्रकार उनके सहायक भी विजयके लिये कटिबद्ध तथा उसके लिये अपने प्राण निछावर करनेको तैयार हैं ॥ १ ॥

त्वमेव हि पराक्रान्तानाचक्षीथाः परान् मम।
पाञ्चालान् केकयान् मत्स्यान् मागधान् वत्सभूमिपान् ॥

तुमने ही मेरे निकट परम पराक्रमी पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, मागध तथा वत्सदेशीय उत्कृष्ट भूमिपालोंके नाम लिये हैं—(वे सभी पाण्डवोंकी विजय चाहते हैं) ॥ २ ॥

यश्च सेन्द्रानिमाँल्लोकानिच्छन् कुर्याद् वशे बली।
स श्रेष्ठो जगतः कृष्णः पाण्डवानां जये धृतः ॥ ३ ॥

इनके सिवा जो इच्छा करते ही इन्द्र आदि देवताओं सहित इन सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें कर सकते हैं, वे जगत्‌के सर्वश्रेष्ठ महाबली भगवान् श्रीकृष्ण भी पाण्डवोंको विजय दिलानेका दृढ़ निश्चय कर चुके हैं ॥ ३ ॥

समस्तामर्जुनाद् विद्यां सात्यकिः क्षिप्रमाप्तवान्।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत् प्रवपञ्छरान् ॥ ४ ॥

शिनिके पौत्र सात्यकिने थोड़े ही समयमें अर्जुनसे समस्त अस्त्रविद्या सीख ली है। वह युद्धमें बीजकी भाँति बाणोंकी वर्षा करते हुए पाण्डवपक्षकी ओरसे खड़े होंगे ॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः क्रूरकर्मा महारथः।
मामकेषु रणं कर्ता बलेषु परमास्त्रवित् ॥ ५ ॥

उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता और क्रूरतापूर्ण पराक्रम प्रकट करनेवाला पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न भी मेरी सेनाओंमें घुसकर युद्ध करेगा ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात्।
यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ॥ ६ ॥
अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जालं विततमन्तरा।
न मे सैन्यास्तरिष्यन्ति ततः क्रोशामि सञ्जय ॥ ७ ॥

तात संजय! मुझे युधिष्ठिरके क्रोधसे, अर्जुनके पराक्रमसे तथा दोनों भाई नकुल और सहदेवसे तथा भीमसेनसे बड़ा भय लगता है। मुझे भय है कि इन नरेशोंके द्वारा मेरी सेनाके भीतर जब अलौकिक अस्त्रोंका जाल-सा बिछा दिया जायगा, तब मेरे सैनिक उसे पार नहीं कर सकेंगे; इसीलिये मैं विलाप कर रहा हूँ ॥ ६-७ ॥

दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान् ब्रह्मवर्चसी।
मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पाण्डुनन्दनः ॥ ८ ॥
मित्रामात्यैः सुसम्पन्नः सम्पन्नो युक्तयोजकैः।
भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैरुपपन्नो महारथैः ॥ ९ ॥
धृत्या च पुरुषव्याघ्रो नैभृत्येन च पाण्डवः।
अनृशंसो वदान्यश्च ह्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १० ॥
बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।
तं सर्वगुणसम्पन्नं समिद्धमिव पावकम् ॥ ११ ॥
तपन्तमिव को मन्दः पतिष्यति पतङ्गवत्।
पाण्डवाग्निमनावार्यं मुमूर्षुर्मूढचेतनः ॥ १२ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर दर्शनीय, मनस्वी, लक्ष्मीवान्, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, मेधावी, सुनिश्चित बुद्धिसे युक्त, धर्मात्मा, मित्रों तथा मन्त्रियोंसे सम्पन्न, युद्धके लिये उद्योग करनेवाले सैनिकोंसे युक्त, महारथी भाइयों और श्वशुरोंसहित पुत्रोंसे सुरक्षित, धैर्यवान्, मन्त्रणाको गुप्त रखनेवाले पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी, दयालु, उदार, लज्जाशील, यथार्थ पराक्रमसे सम्पन्न, अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, मनको वशमें रखनेवाले, वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय हैं। इस प्रकार समस्त गुणोंसे सम्पन्न और प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उन युधिष्ठिरके सम्मुख युद्ध करनेके लिये कौन मूढ़ जा सकेगा? कौन अभागा मरनेकी इच्छावाला मनुष्य पतंगोंकी भाँति दुर्निवार पाण्डवरूपी अग्निमें जान-बूझकर गिरेगा? ॥ ८—१२ ॥

तनुरुच्चः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ १३ ॥

राजा युधिष्ठिर सूक्ष्म और प्रज्वलित अग्निके समान हैं। मैंने मिथ्या व्यवहारसे उनका तिरस्कार किया है, अतः वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रोंका अवश्य विनाश कर डालेंगे ॥ १३ ॥

तैर्युद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत।

युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् ॥ ८
यथा मे परमा बुद्धिर्यथा शाम्यन्ति मे मनः
यदि त्वयुक्तमिद् वो वय शान्त्य यतामहे

सोऽयं ... मैं पाण्डवोंके साथ युद्ध होना ... समझता हूँ ... यदि युद्ध हुआ ... समस्त कुरुकुलका विनाश अवश्यम्भावी है ... बुद्धिका यही सर्वोत्तम निश्चय है ... जिसे मेरे मनको शान्ति मिलती है ... यदि तुम्हें भी युद्ध होना ... अभीष्ट हो तो ... शान्तिके लिये प्रयत्न करें ॥

न तु न क्रियमाणमनुपेक्षेत युधिष्ठिर
कुरुनर्थेन ह्यधर्मेण ... कथञ्चन ॥ ९ ॥
युधिष्ठिर हमें ... युद्धकी ... देख ... हो पर ... न तो मुझे ही अधर्मपूर्वक कलह ... के कारण मानकर ... फिर ... शान्तिप्रस्ताव ... जानेपर ... नहीं ... सहमत होंगे ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

... धृतराष्ट्र ... पूरा हुआ

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्याय

सञ्जयका धृतराष्ट्रको उनके दोष बताते हुए दुर्योधनपर शासन करनेकी सलाह देना

सञ्जय उवाच

एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत
युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गाण्डीवेन प्रदृश्यते ॥ १
सञ्जयने कहा—महाराज ... ठीक है ... युद्धमें ... अर्जुनके द्वारा क्षत्रिय ... कुलका विनाश हो दिखायी देता है ॥

इदं तु नाभिजानामि तव धीरस्य नित्यशः
यत् पुत्रवशमागच्छेत् तत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ॥ २
... आप बुद्धिमान् ... हैं ... आपके ... मैं यह ... समझ पाता हूँ कि आप सव्यसाची अर्जुनके ... जानते हुए भी ... पुत्रोंके ... हो रहे हैं ॥

नैष कालो महाराज तव शश्वत् कृतागसः
त्वया ह्येवादितः पार्था निकृता भरतर्षभ ॥ ३
... कुरुकुलश्रेष्ठ महाराज ... पाण्डवोंका ... अपराध करनेवाले हैं ... इस ... द्वारा ... किया गया है ... है ... दिया है ॥

पिता श्रेष्ठः सुहृद् यः सम्यक्प्रणिहितात्मवान्
आस्थेयं हि हितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ॥ ४ ॥
... पिताके बराबर ... श्रेष्ठ सुहृद् है ... जो भलीभाँति सावधानी रखनेवाला है ... अपने बालकोंका हित-साधन ही करना चाहिये ... द्रोह रखनेवाला पुरुष पिता अथवा गुरुजन नहीं कहला सकता ॥

इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान्
द्यूतकाले महाराज स्मयसे स्म कुमारवत् ॥ ५
... द्यूतक्रीडाके समय जब आप सुनते ... पुत्रोंने ... जीता ... पाण्डवोंकी पराजय हो रही है ... आप बालकोंकी तरह मुसकराते थे ॥

रूक्षाण्युच्यमानांश्च पुरा पार्थानुपेक्षसे
कृत्स्नं राज्यं जयन्तीति प्रपातं नानुपश्यसि ॥ ६
पूर्वकालमें पाण्डवोंके प्रति कितनी ही कड़ी बातें कही ... वही ... पुत्र सारा ... जीतते चले जा रहे ... यह जानकर ... उनकी उपेक्षा करते थे ... इनके भावी विनाश ... होगा ... नहीं ... ॥

पित्र्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते सजाङ्गलम्
अथ वीरैर्जितामुर्वीमखिलां प्रत्यपद्यथाः ॥ ७
... कुरु ... देश ही आपका पैतृक राज्य है ... पाण्डवोंने ... जीती है ... ॥

बाहुवीर्यार्जिता भूमिस्तव पार्थैर्निवेदिता
मयेदं कृतमित्येव मन्यसे राजसत्तम ॥ ८
... कुन्तीपुत्रोंने अपने बाहुबलसे जीतकर यह ... आपको भेंट कर दी है ... ऐसा मानते हैं ॥

ग्रस्तान् गन्धर्वराजेन मज्जतो ह्यप्लवेऽम्भसि
आनिनाय पुनः पार्थः पुत्रांस्ते राजसत्तम ॥ ९
... गन्धर्वराज चित्रसेनने

आपके पुत्रोंको कष्ट दिया
नामके पाससे हुए युद्ध में पुन
युद्धस्थल आवे

कुमारस्तथा समरे विनिकृतेषु नव
पाण्डवेषु वने राजन् प्रव्रजत्सु पुनः पुनः

राजन् पाण्डवलोग तपोवनमें जब और
हारकर वनमें जाते और पाण्डवोंकी
बार मुस्कराकर अपनी प्रसन्नता प्रकट

प्रहर्षं राज्यलाभानुरूपं विततान् बहुनि
अप्यन्तर्धा विप्रुष्टेषु पुनर्मासचयोमथ

जब अर्जुन लक्ष्य भेदते बाणसमूहोंसे करने
आँधि तब सन्

नाशके सबोंसे हुए प्रतिवीरोंसे सदा
अश्वत्थामा पुन द्रोणनन्दन धनुष

केशव सर्वभूतात्मानुसाधा सुदर्शनम्
वासनो रोचमानाय केतु केतुमता वर

जब समसमसे भरी अर्जुन धनुषमें
उत्तम समस्त प्रतिवीरों सामान बलिष्ठ
वासुदेवमें सुसनातन भर और वर
वानरोंसे अधिक वेग प्रभावपाल

दृष्ट्वासि रणे गाण्डीवतलघोषं रथ
लोकविष्यति नो राजन् कालकर्मविनोदनम्

राजन् प्रकार भयानक गदाओंसे
नाथ लिये हुए सेना संहारोंसे अर्जुन रणमें
समभूमिमें उपस्थित होंगे कराल काल
जानकेसमान हम अगोचर हर

गान्धार यदुत्था राजन् निमिरिका नव
यच्च भीमार्जुनौ योधौ राजा राजसत्तम

भागोंमें वेग उपयुक्त महाराज जब
भीमसेन अधिकारमें होंगे तथा राजसेनासे
अर्जुन जैसे योद्धा हनीवसे होंगे राजा

तथा भीमसेनस्य मदजन्यों तब दृढप्रतिम्
दुर्योधनमुख राजा च्युत स्वस्ति योधयः

आपकी सेना अधिकार और सताते हाथी
आपके और दुर्योधन आदि कौरव विनाश

सेनाको देखनेसे नष्ट नष्ट करेंगे
भीमार्जुनयोर्वीरा तत्परस्ते विजय विधे
नव युधां महाराज ज्ञानवान्तानुसारिणा

यमौ महाराज आपके सब इनका नाश नेवाला
देख भीमसेन और दुर्बल भीत हारकर जब
करेंगे

मत्स्यास्त्वामय नावन्ति अश्वत्थामा रणेकया
शाल्वथा शूरसेनाश्च सर्व न्यायवर्तमान
जब होते पता वे भीमकालतया भीमता

मग्न मिल सागर तरी बरता
पाया केवल तथा शतरेन देवोंके सभी पास
कुमार और अनेक बला करते परम बुद्धिमान्
नकुलके समान उन्होंने पहले
गये

आकस्मा सास विराट्य नव पुत्र मनव
अनर्हाश्च तु यत्ते धनयुक्ता विकर्मणा
याऽक्लेशयत् पाण्डुपुत्रान् यो विल प्रसभ तुतापि
सर्वोपायर्नियन्तव्य सानुगः पापपूरुष
तव पुत्रो महाराज नानुशोचितुमर्हसि
घृतकाले मया चोक्त विदुरेण धीमता

युधिष्ठिरके प्रति द्रि
शिक्षा महात्मा
अन्तर रहनेके कारण और देख पाने वहाँ
पाण्डवोंका सने विरोध
काननं वह युद्धाद्य और उनके यही
भाग नरा पाण्डवे पापी दुर्योधन
सभी उपायोंसे विपद हित रूपमें रखना चाहिये और
बारबार इस तरह परं उनलोकके समान तथा
देख द्विमान युधिष्ठिरने भाइयों सबका
सब साधन नहीं

यदिदं निकृतिः पाण्डवा प्रति भारत
अनीशेनेव राजेन्द्र सर्वमेतन्निरर्थकम्

इत्थं पाण्डवोंके प्रति आपकी जगह
सामनकी भाति विचार किया
गया

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रथम श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें सञ्जयवाक्यविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय

धृतराष्ट्रको धैर्य देते हुए दुर्योधनद्वारा अपने उत्कर्ष और पाण्डवोंके अपकर्षका वर्णन

दुर्योधन उवाच

न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम्।
समर्थाः स्म परान् राजन् विजेतुं समरे विभो ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—महाराज! आप डरें नहीं। आप हमारे लिये शोक करने योग्य नहीं हैं। प्रभो! हम समर्थ और शक्तिशाली हैं तथा समर-भूमिमें शत्रुओंको जीतनेकी शक्ति रखते हैं ॥ १ ॥

वने प्रव्राजितान् पार्थान् यदायान्मधुसूदनः।
महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना ॥ २ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
राजानश्चान्वयुः पार्थान् बहवोऽन्येऽनुयायिनः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंको जब हमने वनमें भेज दिया, उस समय शत्रुओंके राष्ट्रोंको धूलमें मिला देनेवाली विशाल सेनाके साथ श्रीकृष्ण वहाँ आये थे। उनके साथ केकयराजकुमार, धृष्टकेतु, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न तथा और भी बहुत-से नरेश, जो पाण्डवोंके अनुयायी हैं, वहाँतक पधारे थे ॥ २-३ ॥



इन्द्रप्रस्थस्य चादूरात् समाजग्मुर्महारथाः।
व्यगर्हयन्त सङ्गम्य भवन्तं कुरुभिः सह ॥ ४ ॥

वे सभी महारथी इन्द्रप्रस्थके निकटतक आये और परस्पर मिलकर समस्त कौरवोंसहित आपकी निन्दा करने लगे ॥ ४ ॥

ते युधिष्ठिरमासीनमजिनैः प्रतिवासितम्।
कृष्णप्रधानाः संहत्य पर्युपासन्त भारत ॥ ५ ॥
प्रत्यादानं च राज्यस्य कार्यमूचुर्नराधिपाः।
भवतः सानुबन्धस्य समुच्छेदं चिकीर्षवः ॥ ६ ॥

भारत! वे लोग श्रीकृष्णको प्रधान मानकर एकत्रित हो वनमें मृगचर्मधारी युधिष्ठिरके समीप जाकर बैठे और सगे-सम्बन्धियोंसहित आपका मूलोच्छेद कर डालनेकी इच्छा रखकर कहने लगे—'धृतराष्ट्रके हाथसे राज्यको लौटा लेना ही कर्तव्य है' ॥ ५-६ ॥

श्रुत्वा चैतन्मयोक्तास्तु भीष्मद्रोणकृपास्तदा।
ज्ञातिक्षयभयाद् राजन् भीतेन भरतर्षभ ॥ ७ ॥
न ते स्थास्यन्ति समये पाण्डवा इति मे मतिः।
समुच्छेदं हि नः कृत्स्नं वासुदेवश्चिकीर्षति ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ! उनके इस निश्चयको सुनकर मैंने कुटुम्बी-जनोंके वधकी आशङ्कासे भयभीत हो भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे इस प्रकार निवेदन किया—'तात! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पाण्डवलोग अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर नहीं रहेंगे, क्योंकि वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हम सब लोगोंका पूर्णतः विनाश कर डालना चाहते हैं ॥ ७-८ ॥

ऋते च विदुरं सर्वे यूयं वध्या मता मम।
धृतराष्ट्रस्तु धर्मज्ञो न वध्यः कुरुसत्तमः ॥ ९ ॥

केवल विदुरजीको छोड़कर आप सब लोग मार डालनेके योग्य समझे गये हैं, यह बात मुझे मालूम हुई है। कुरुश्रेष्ठ धृतराष्ट्र धर्मज्ञ हैं, यह सोचकर उनका भी वध नहीं किया जायगा ॥ ९ ॥

समुच्छेदं च कृत्स्नं नः कृत्वा तात जनार्दनः।
एकराज्यं कुरूणां स्म चिकीर्षति युधिष्ठिरे ॥ १० ॥

तात! श्रीकृष्ण हमारा सर्वनाश करके कौरवोंका एक राज्य स्थापित कर उसे युधिष्ठिरको सौंपना चाहते हैं ॥ १० ॥

तत्र किं प्राप्तकालं नः प्रणिपातः पलायनम्।
प्राणान् वा संपरित्यज्य प्रतियुध्यामहे परान् ॥ ११ ॥

ऐसे अवसरमें हम लोगोंका क्या कर्तव्य है? हम उनके सामने सिर झुकावें, पीठ दिखाकर भाग जायँ अथवा प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंका सामना करें ॥ ११ ॥

प्रतियुद्धे तु नियतः स्यादस्माकं पराभवः।
युधिष्ठिरस्य सर्वे हि पार्थिवा वशवर्तिनः ॥ १२ ॥
विरक्तराष्ट्राश्च वयं मित्राणि कुपितानि नः।
धिक्कृताः पार्थिवैः सर्वैः स्वजनेन च सर्वशः ॥ १३ ॥

उनके साथ युद्ध होनेपर हमारा पराजय निश्चित है क्योंकि इस समय समस्त भूपाल राजा युधिष्ठिरके अधीन हैं। इस राज्यमें रहनेवाले सब लोग हमसे घृणा करते हैं। हमारे मित्र भी कुपित हो गये हैं। सम्पूर्ण राजा और आत्मीयजन हमें धिक्कार रहे हैं॥ १२-१३॥

प्रणिपाते न दोषोऽस्ति सन्धिर्नः शाश्वती समाः।
चिन्तये त्वेव शोचामि प्रज्ञानेत्रं जनाधिपम्॥ १४॥

(मैं समझता हूँ) इस समय नतमस्तक हो जानेमें कोई दोष नहीं है। इससे हमलोगोंमें सदाके लिये सन्धि हो जायगी। मुझे केवल अपने प्रज्ञाचक्षु पिता महाराज धृतराष्ट्रके लिये ही बड़ा शोक हो रहा है॥ १४॥

मत्कृते दुःखमापन्नः क्लेशं प्राप्तमनन्तकम्।
कृतं हि तव पुत्रैश्च परेषामवरोधनम्।
मत्प्रियार्थं पुरैवैतद् विदितं ते नरोत्तम॥ १५॥

उन्होंने मेरे लिये अनन्त क्लेश और दुःख प्राप्त किये हैं। नरश्रेष्ठ पिताजी! आपके पुत्रों तथा मेरे सहायक राजाओंने मेरी प्रसन्नताके लिये शत्रुओंका सदा ही अवरोध किया है, यह बात आप पहलेसे ही जानते हैं॥ १५॥

ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सामात्यस्य महारथाः।
वैरं प्रतिकरिष्यन्ति कुलोच्छेदेन पाण्डवाः॥ १६॥

इसलिये वे महारथी पाण्डव मन्त्रियोंसहित महाराज धृतराष्ट्रके कुलका समूलोच्छेद करके अपने वैरका बदला लेंगे॥ १६॥

ततो द्रोणोऽब्रवीद् भीष्मः कृपो द्रौणिश्च भारत।
मत्वा मां महतीं चिन्तामास्थितं व्यथितेन्द्रियम्॥ १७॥
अभिद्रुग्धाः परे चेन्नो न भेतव्यं परंतप।
असमर्थाः परे जेतुमस्मान् युधि समास्थितान्॥ १८॥

भारत! मेरी यह बात सुनकर आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाने मुझे बड़ी भारी चिन्तामें पड़कर सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे व्यथित हुआ जान आश्वासन देते हुए कहा—'परंतप! यदि शत्रुलोग हमसे द्रोह रखते हैं तो हमें डरना नहीं चाहिये। युद्धमें उपस्थित होनेपर शत्रु हमें जीतनेमें असमर्थ हैं॥ १७-१८॥

एकैकशः समर्थाः स्मो विजेतुं सर्वपार्थिवान्।
आगच्छन्तु विनेष्यामो दर्पमेषां शितैः शरैः॥ १९॥

हमलोगोंमेंसे एक-एक वीर भी समस्त राजाओंको जीतनेकी शक्ति रखता है। शत्रुलोग आवें तो सही, हम अपने तीखे बाणोंसे उनका घमंड चूर-चूर कर देंगे॥ १९॥

पुरैकेन हि भीष्मेण विजिताः सर्वपार्थिवाः।
मृते पितर्यतिक्रुद्धो रथेनैकेन भारत॥ २०॥

भारत! पहलेकी बात है, अपने पिता शान्तनुकी मृत्युके पश्चात् भीष्मजीने किसी समय अत्यन्त कुपित हो एकमात्र रथकी सहायतासे अकेले ही सब राजाओंको जीत लिया था॥ २०॥

जघान सुबहूंस्तेषां संरब्धः कुरुसत्तम।
ततस्ते शरणं जग्मुर्देवव्रतमिमं भयात्॥ २१॥

रोषमें भरे हुए कुरुश्रेष्ठ भीष्मने जब उनमेंसे बहुतसे राजाओंको मार डाला, तब वे डरके मारे पुनः इन्हीं देवव्रत (भीष्म)की शरणमें आये॥ २१॥

स भीष्मः सुसमर्थोऽयमस्माभिः सहितो रणे।
परान् विजेतुं तस्मात् ते व्येतु भीर्भरतर्षभ॥ २२॥

भरतश्रेष्ठ! वे ही ये सामर्थ्यशाली भीष्म युद्धमें शत्रुओंको जीतनेके लिये हमारे साथ हैं। अतः आपका भय दूर हो जाना चाहिये॥ २२॥

इत्येषां निश्चयो ह्यासीत् तत्कालेऽमिततेजसाम्।
पुरा परेषां पृथिवी कृत्स्नाऽऽसीद् वशवर्तिनी॥ २३॥
अस्मान् पुनरमी नाद्य समर्था जेतुमाहवे।
छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पाण्डवाः॥ २४॥

उस समय इन अमिततेजस्वी वीरोंने यही निश्चय किया था। पहले यह सारी पृथ्वी शत्रुओंके अधिकारमें थी, किंतु अब हमारे हाथमें आ गयी है। हमारे ये शत्रु अब हमें युद्धमें जीतनेकी शक्ति नहीं रखते। महाराज! अब तो पाण्डव पंख कटे हुए पक्षीके समान असहाय एवं पराक्रमशून्य हो गये हैं॥ २३-२४॥

अस्मत्संस्था च पृथिवी वर्तते भरतर्षभ।
एकार्थाः सुखदुःखेषु समानीताश्च पार्थिवाः॥ २५॥

भरतश्रेष्ठ! इस समय यह पृथ्वी हमारे अधिकारमें है। हमने जिन राजाओंको यहाँ बुलाया है, वे सब सुख और दुःखमें हमारे साथ एकमत्य रखते हैं। हमारे सुख-दुःखको अपना ही सुख-दुःख मानते हैं॥ २५॥

अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं वा परंतप।
मदर्थं पार्थिवाः सर्वे तद् विद्धि कुरुसत्तम॥ २६॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कुरुश्रेष्ठ! निश्चित जानिये, ये सब राजालोग मेरे लिये अग्निमें भी प्रवेश कर सकते हैं और समुद्रमें भी कूद सकते हैं॥ २६॥

उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसन्तीह दुःखितम्।
विलपन्तं बहुविधं भीतं परविकत्थने॥ २७॥

इतनेपर भी आप शत्रुओंकी मिथ्या प्रशंसा सुनकर पागल-से हो उठे हैं और दुःखी एवं भयभीत होकर नाना प्रकारसे विलाप कर रहे हैं। यह सब देखकर ये राजालोग यहाँ हँस रहे हैं॥ २७॥

यथा कोपवशो राजा समर्थो राष्ट्रपालने।
भावाना मन्यते सर्वो व्येतु ते भयमागतम्॥ २८॥

इन प्रजाओंमेंसे प्रत्येक अपने-आपको पाण्डवोंके द्वारा कुछ करनेमें समर्थ मानता है, अतः आपके मनमें जो भय आ गया है, वह निकल जाना चाहिये।

जेतुं समस्तां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात्।
हन्तुमक्षय्यरूपेण ब्रह्मणोऽपि स्वयम्भुवा॥ २९॥

मेरी सम्पूर्ण सेनाको इन्द्र भी नहीं जीत सकते। स्वयम्भू ब्रह्मा भी इसका नाश नहीं कर सकते।

युधिष्ठिरः पुरं हित्वा पञ्च ग्रामान् स याचति।
भीतो हि मामकात् सैन्यात् प्रभावाच्चैव मे विभो॥ ३०॥

प्रभो! युधिष्ठिर तो मेरी सेना और प्रभावसे इतने डरे हुए हैं कि राजधानी या नगरकी चाह छोड़कर अब पाँच गाँव माँगते हैं।

समर्थं मन्यसे यच्च कुन्तीपुत्रं वृकोदरम्।
तन्मिथ्या न हि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत॥ ३१॥

भारत! आप जो कुन्तीकुमार भीमसेनको शक्तिशाली मान रहे हैं, यह भी मिथ्या ही है; क्योंकि आप मेरे प्रभावको पूर्णरूपसे नहीं जानते हैं।

मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
नासीत् कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन॥ ३२॥

गदायुद्धमें मेरी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर कोई नहीं है। पूर्वकालमें कोई हुआ था, न है और न भविष्यमें ही कोई होगा।

युक्तो दुःखोषितश्चाहं विद्यापारगतस्तथा।
तस्मान्न भीमान्नान्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित्॥ ३३॥

मैंने गदायुद्धका बड़ा अभ्यास किया है और कष्ट सहकर अध्ययन करके उस विद्याका पारंगत विद्वान् हो गया हूँ। अतः भीमसेनसे या दूसरे योद्धाओंसे मुझे कोई भय नहीं है।

दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः।
सङ्कर्षणस्य भद्रं ते यत्तदैनमुपावसम्॥ ३४॥

आपका कल्याण हो, बलरामजीका भी यही निश्चय है कि गदायुद्धमें दुर्योधनके समान दूसरा कोई नहीं है। यह बात उन्होंने उस समय कही थी, जब मैं उनके पास रहकर गदाकी शिक्षा ले रहा था।

युद्धे सङ्कर्षणसमो बलेनाभ्यधिको भुवि।
गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद् युधि॥ ३५॥

मैं युद्धमें बलरामजीके समान हूँ और बलमें इस भूतलपर सबसे बढ़कर हूँ। युद्धमें भीमसेन मेरी गदाका प्रहार कभी नहीं सह सकते।

एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप।
स एवैनं नयेद् घोरं क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम्॥ ३६॥

महाराज! मैं रोषमें भरकर भीमसेनपर गदाका जो एक बार प्रहार करूँगा, वह भयंकर प्रहार एक ही आघातमें उन्हें शीघ्र ही यमलोक पहुँचा देगा।

इच्छेयं च गदाहस्तं राजन् द्रष्टुं वृकोदरम्।
सुचिरं प्रार्थितो ह्येष मम नित्यं मनोरथः॥ ३७॥

राजन्! मैं चाहता हूँ कि युद्धमें गदा हाथमें लिये हुए भीमसेनको अपने सामने देखूँ। मैंने दीर्घकालसे अपने मनमें इसी बातके लिये मनोरथ कर रखा है।

गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः।
विशीर्णगात्रः पृथिवीं परासुः प्रपतिष्यति॥ ३८॥

युद्धमें मेरी गदाके आघात सहकर कुन्तीपुत्र भीमसेनका शरीर छिन्न-भिन्न हो जायगा और वे प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर जायँगे।

गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः।
सकृन्मया विशीर्येत गिरिः शतसहस्रधा॥ ३९॥

यदि मैं एक बार क्रोधपूर्वक गदाका आघात कर दूँ तो हिमालय पर्वत भी तत्काल लाखों टुकड़ोंमें बिखर जायगा।

स चाप्येतद् विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा।
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः॥ ४०॥

भीमसेन भी इस बातको जानते हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुनको भी यह ज्ञात है। यह निश्चित है कि गदायुद्धमें दुर्योधनके समान दूसरा कोई नहीं है।

तत् ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे।
व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन् विमना भव॥ ४१॥

अतः राजन्! भीमसेनसे जो आपको भय हो रहा है, वह दूर हो जाना चाहिये। मैं महायुद्धमें उन्हें मार गिराऊँगा; इसलिये आप मनमें खेद न करें।

तस्मिन् मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः।
तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्स्यन्ति भरतर्षभ॥ ४२॥

तात! मेरे द्वारा भीमसेनके मारे जानेपर हमारे पक्षके बहुत-से रथी जो अर्जुनके समान या उनसे भी बढ़कर हैं, अर्जुनपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगेंगे।

भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा।
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिन्धुराजो जयद्रथः॥ ४३॥
एकैक एषां शक्तस्तु हन्तुं भारत पाण्डवान्।

समेतास्तु हन्युरेतान् नेष्यन्ति यमसादनम्

राजा भीष्म द्रोण कृप अश्वत्थामा कर्ण भूरिश्रवा शाल्व शल्य तथा मद्रराज शल्य तथा सिन्धुराज जयद्रथ—इनमेंसे एक-एक वीर समस्त पाण्डवोंका मारनेकी शक्ति रखता है यदि ये एक साथ मिल जायँ तो सबको क्षणभरमें उन सबको यमलोक पहुँचा दें।

समस्ता पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनंजयम्। ४४॥
कस्मादेकाकिनं जेतुमशक्ता हेतुरत्र विद्यते

राजाओंकी समस्त सेना एकमात्र अर्जुनको परास्त करनेमें असमर्थ कैसे होगी इसके लिये कोई कारण नहीं है ॥ ४५ ॥

शरजालैस्तु भीष्मेण शस्त्रो मिथिलोऽप्यथ ॥ ४६ ॥
द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गन्ता पार्थो यमक्षयम्

भीष्म द्रोणाचार्य अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके बाणसमूहोंसे घायल होकर कुन्तीपुत्र अर्जुन निश्चयपूर्वक यमलोकमें चला जायगा ॥ ४७ ॥

पितामहोऽपि गाङ्गेयः शान्तनोरपि भारत ॥ ४८ ॥
ब्रह्मर्षिसदृशो जज्ञे देवैरपि सुदुःसहः

भरतनन्दन ! हमारे पितामह गङ्गापुत्र भीष्मजी तो अपने पिता शान्तनुसे भी बढ़कर पराक्रमी हैं। वे ब्रह्मर्षियोंके समान अजेय होकर उत्पन्न हुए हैं। इनका वेग देवताओंके लिये भी असह्य है ॥

न हन्ता विद्यते चापि राजन् भीष्मस्य कश्चन ॥ ४९ ॥
पित्रा ह्युक्तः प्रसन्नेन नाकामस्त्वं मरिष्यसि

राजन् ! भीष्मजीको मारनेवाला तो कोई है ही नहीं क्योंकि उनके पिताने प्रसन्न होकर उन्हें यह वरदान दिया है कि तुम अपनी इच्छाके बिना नहीं मरोगे ॥

ब्रह्मर्षेश्च भरद्वाजाद् द्रोणो द्रोण्यामजायत ॥ ५० ॥
द्रोणाज्जज्ञे महाराज द्रौणिश्च परमास्त्रवित्

दूसरे वीर आचार्य द्रोण हैं जो ब्रह्मर्षि भरद्वाजके वीर्यसे कलशमें उत्पन्न हुए हैं। महाराज ! इन्हीं आचार्य द्रोणसे वीर अश्वत्थामाकी उत्पत्ति हुई है, जो अस्त्रविद्याके बहुत बड़े पण्डित हैं।

कृपश्चाचार्यमुख्योऽयं महर्षेर्गौतमादपि ॥ ५१ ॥
शरस्तम्बोद्भवः श्रीमानवध्य इति मे मतिः

आचार्योंमें प्रधान कृप भी महर्षि गौतमके बाणसे सरकंडोंके समूहमें उत्पन्न हुए हैं। वे श्रीमान् आचार्यपाद अवध्य हैं, ऐसा मेरा विचार है।

अयोनिजास्त्रयो ह्येते पिता माता च मातुलः ॥ ५२ ॥
अश्वत्थाम्नो महाराज स च शूरः स्थितो मम

सर्वे एते महाराज देवकल्पा महारथाः ॥ ५३ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाके ये पिता माता और मामा—तीनों ही अयोनिज हैं। अश्वत्थामा भी शूरवीर एवं मेरे पक्षमें स्थित है। एवम् ये सब के सब देवताओंके समान महान् रथी हैं।

शक्रस्यापि व्यथां कुर्युः संयुगे भरतर्षभ
नैतेषामर्जुनः शक्त एकैकं प्रति वीक्षितुम् ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ये तो वीर युद्धमें देवराज इन्द्रको भी पीड़ा दे सकते हैं। अर्जुन तो इनमेंसे किसी एककी ओर भी आँख उठाकर देख नहीं सकते।

सहितास्तु नरव्याघ्रा हनिष्यन्ति धनंजयम्
भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम ॥ ३ ॥

नरश्रेष्ठ ! एक साथ होकर युद्ध करनेपर अर्जुनको अवश्य मार डालेंगे। भीष्म द्रोण और कृप—इन तीनोंके समान ही कर्ण भी है, यह मेरी मान्यता है।

अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोऽसीति भारत
कुण्डले रुचिरे चास्य कर्णस्य सहजे शुभे ॥ ४ ॥

भारत ! परशुरामजीने कर्णको शिक्षा देनेके बाद यह कहकर उसे विदा किया था कि तुम मेरे समान हो। कर्णके कानोंमें सहज कुण्डल थे, जो सुन्दर और कल्याणमय थे और कवचसहित उत्पन्न हुए थे।

ते शच्यर्थे महेन्द्रेण याचितः स परंतप
अमोघया महाराज शक्त्या परमभीमया ॥ ५ ॥

परंतु देवराज इन्द्रने शचीके लिये उन्हें कर्णसे माँग लिया। महाराज ! कर्णने अत्यन्त भयंकर एवं अमोघ शक्ति लेकर उन्हें कुण्डल दिये।

तस्य शक्त्योपगूढस्य कस्माज्जीवेद् धनंजयः
विजयो मे ध्रुवं राजन् फलं पाणाविवाहितम् ॥ ६ ॥

इस प्रकार उस अमोघ शक्तिसे सुरक्षित कर्णके सामने युद्धके लिये आकर अर्जुन कैसे जीवित रह सकते हैं। राजन् ! हाथपर रखे हुए फलकी भाँति विजयकी प्राप्ति तो मुझे अवश्य ही होगी।

अभिव्यक्तः परेषां च कृत्स्नो भुवि पराजयः
अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयं प्रयुतं हन्ति भारत ॥ ७ ॥

भारत ! इस भूमण्डलपर मेरे शत्रुओंकी पूर्णतः पराजय भी स्पष्ट है कि ये पितामह भीष्म प्रतिदिन दस हजार सैनिकोंको मार डालेंगे।

तत्समाश्च महेष्वासा द्रोणद्रौणिकृपा अपि
संशप्तकानां वृन्दानि क्षत्रियाणां परंतप ॥ ८ ॥

अर्जुनं वयमस्मान् वा निहन्मात् कपिध्वजम्

स पालनीयोऽतिकाले सम्मतश्चापि पूजनः ॥ ५९ ॥
पार्थिवा स भवास्त्वेभ्यो‌ह्मसम्भवात् व्यपयते भयम्

कुरु द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी उन्हींके समान महाधनुर्धर हैं। इनके सिवा संशप्तक नामक क्षत्रियोंके समूह भी मेरे ही पक्षमें हैं। वे यह कहते हैं कि या तो हम लोग अर्जुनको मार डालेंगे या अर्जुन ही हमें मार डालेंगे। हमी हमारे उनके युद्धकी समाप्ति होगी। वे सब लोग अर्जुनके वधका दृढ़ निश्चय कर चुके हैं और उन्हें अर्जुनको पर्याप्त समझते हैं। ऐसी दशामें आप उन पाण्डवोंसे अकस्मात् व्यथित क्यों हो जाते हैं ॥

भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत ॥ ६० ॥
परेषां तन्ममाचक्ष्व यदि वेत्थ परंतप

शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतनन्दन! भीमसेनके मारे जानेपर शत्रुओंके दलमें दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो युद्ध कर सकेगा? यदि आप इसे जानते हों तो बताइये ॥

पञ्च ते भ्रातरः सर्वे धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ॥ ६१ ॥
परेषां सप्त ये राजन् योधाः सारं बलं मतम्

राजन्! पाँचों भाई पाण्डव, धृष्टद्युम्न और सात्यकि—ये शत्रुओंके सात योद्धा ही उनके प्रधान बल माने जाते हैं ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ६२ ॥
द्रौणिर्वैकर्तनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य आवन्त्यौ च जयद्रथः ॥ ६३ ॥
दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशाम्पते
श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ ६४ ॥
शलो भूरिश्रवाश्चापि विकर्णश्च तवात्मजः

प्रजानाथ! हमलोगोंके पक्षमें जो विशिष्ट योद्धा हैं, उनकी संख्या अधिक है। यथा भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि, अश्वत्थामा, वैकर्तन कर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक, प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त, शल्य, अवन्तीके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, जयद्रथ, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह,

श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा तथा विकर्ण ॥

अक्षौहिण्यो हि मे राजन् दशैका च समाहृताः ॥ ६५ ॥
न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात् पराजयः

महाराज! मैंने यहाँ ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित हो गयी हैं, परंतु शत्रुओंके पास इससे बहुत कम, कुल सात अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। फिर मेरी पराजय कैसे हो सकती है? ॥

बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृहस्पतिः ॥ ६६ ॥
परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी

राजन्! बृहस्पतिका कथन है कि शत्रुओंकी सेना अपनेसे एक तिहाई भी कम हो तो उसके साथ अवश्य युद्ध करना चाहिये, परंतु मेरी यह सेना तो शत्रुओंकी अपेक्षा चार अक्षौहिणी अधिक है। इसलिये यह अन्तर मेरी सम्पूर्ण सेनाकी एक तिहाई भी अधिक है ॥

गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत ॥ ६७ ॥
गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशाम्पते

भरत प्रजानाथ! मैं देख रहा हूँ कि शत्रुओंका बल हमारे अपेक्षा अनेक प्रकारसे गुणहीन न्यूनतम है, परंतु मेरा अपना बल सब प्रकारसे बहुत अधिक एवं गुणवाली है ॥

एतत् सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत ॥
न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

भरतनन्दन! इस प्रकार हमलोगोंमें मेरा बल अधिक है और पाण्डवोंका बहुत कम है, यह जानकर आप व्याकुल एवं अधीर न हों ॥

इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ॥
विधित्सुः प्राप्तकालानि ज्ञात्वा परपुरंजय ॥ ६९ ॥

जनमेजय! ऐसा कहकर शत्रुनगरविजयी दुर्योधन शत्रुओंकी स्थिति जानकर ही उस समयोचित कर्तव्योंकी जानकारीके लिये पुनः संजयसे प्रश्न किया ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि दुर्योधनवाक्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें दुर्योधनवाक्यविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्याय

संजयद्वारा अर्जुनके ध्वज तथा अश्वोंका तथा युधिष्ठिर आदिके घोड़ोंका वर्णन

दुर्योधन उवाच

अक्षौहिणीः सप्त लब्ध्वा राजभिः सह संजय ।
किंस्वित्‌ प्रकुरुते कौन्तेयो युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

दुर्योधनने पूछा—संजय! यह तो बताओ कि सात अक्षौहिणी सेना पाकर राजाओंसहित युद्धातुर युधिष्ठिर युद्धकी इच्छासे अब कौन-सा कार्य करना चाहते हैं? ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

अतीव मुदितो राजन् युद्धायेच्छुर्युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमावपि न विव्यथे ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन्! युधिष्ठिर युद्धकी अभिलाषा लेकर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। भीमसेन, अर्जुन तथा दोनों भाई नकुल-सहदेव भी भयभीत नहीं हैं ॥ २ ॥

रथं तु दिव्यं कौन्तेयः सर्वा विद्योतयन् दिशः ।
मन्त्रजिज्ञासमानः सन् बीभत्सुः समयोजयत् ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने तो मन्त्रप्रयोगसम्बन्धी कार्यकी परीक्षाके लिये अपने दिव्य रथकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उसे जोत रक्खा था ॥ ३ ॥

तमपश्याम संनद्धं अभ्रं विद्युद्युतं यथा ।
समन्तात् समभिध्याय हृष्यमाणोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥

उस समय सुवर्णमय कवच धारण किये अर्जुन हमें बिजलीके प्रकाशसे सुशोभित मेघके समान दिखायी दे रहे थे। उन्होंने सब ओरसे उन मन्त्रोंका सम्यक् चिन्तन करके हर्षसे उल्लसित होकर मुझसे कहा— ॥ ४ ॥

पूर्वरूपमिदं पश्य वयं जेष्याम संजय ।
बीभत्सुर्मां यथोवाच तथावैम्यहमप्युत ॥ ५ ॥

संजय! हमलोग युद्धमें अवश्य विजयी होंगे। उस विजयका यह पूर्वचिह्न आगेसे प्रकट हो रहा है। तुम भी देख लो। राजन्! अर्जुनने मुझसे जैसा कहा था, वैसा ही मैं भी मानता हूँ ॥ ५ ॥

दुर्योधन उवाच

प्रशंसस्यभिनन्दंस्तान् पार्थानक्षपराजितान् ।
अर्जुनस्य रथे ब्रूहि कथमश्वाः कथं ध्वजः ॥ ६ ॥

दुर्योधन बोला—संजय! तुम तो जूएमें हारे हुए कुन्तीपुत्रोंका अभिनन्दन करते हुए उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। बतलाओ तो सही, अर्जुनके रथमें कैसे घोड़े और कैसे ध्वज हैं? ॥ ६ ॥

संजय उवाच

भौवनः सह शक्रेण बहुचित्रं विशाम्पते ।
रूपाणि कल्पयामास त्वष्टा धात्रा सह विभो ॥ ७ ॥

संजयने कहा—प्रजानाथ! विश्वकर्मा त्वष्टा तथा प्रजापति इन्द्रके साथ मिलकर अर्जुनके रथकी ध्वजामें अनेक प्रकारके रूपोंकी रचना की है ॥ ७ ॥

ध्वजे हि तस्मिन् रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया ।
महाधनानि दिव्यानि महान्ति च लघूनि च ॥ ८ ॥

उन तीनोंने देवमायाके द्वारा उस ध्वजमें छोटी-बड़ी अनेक प्रकारकी बहुमूल्य एवं दिव्य मूर्तियोंका निर्माण किया है ॥ ८ ॥



भीमसेनानुरोधाय हनूमान् मारुतात्मजः ।
आत्मप्रतिकृतिं तस्मिन् ध्वज आरोपयिष्यति ॥ ९ ॥

भीमसेनके अनुरोधकी रक्षाके लिये पवननन्दन हनुमान् वहाँ उस ध्वजमें युद्धके समय अपने स्वरूपको स्थापित करेंगे।

सर्वा दिशो योजनमात्रमन्तरं
स तिर्यगूर्ध्वं च रुरोध वै ध्वजः ।
न सज्जतेऽसौ तरुभिः संवृतोऽपि
तथा हि माया विहिता भौवनेन ॥ १० ॥

वह ध्वज एक योजनतक सम्पूर्ण दिशाओं तथा अगल-बगल एवं ऊपरके अवकाशको व्याप्त कर रखता था। विश्वकर्माने ऐसी माया रच रक्खी है कि वह ध्वज वृक्षोंसे आवृत अथवा सम्बद्ध होनेपर भी कहीं अटकता नहीं है ॥ १० ॥

यथाऽऽकाशे शक्रधनुः प्रकाशते
न चैकवर्णं न च विद्म किं नु तत् ।
तथा ध्वजो विहितो भौवनेन
बह्वाकारं दृश्यते रूपमस्य ॥ ११ ॥

जैसे आकाशमें बहुरंगा इन्द्रधनुष प्रकाशित होता है और यह समझमें नहीं आता कि यह क्या है! ठीक उसी तरह विश्वकर्माका बनाया हुआ वह रंग-बिरंगा ध्वज है। उसका रूप अनेक प्रकारका दिखायी देता है ॥ ११ ॥

यथाग्निधूमो दिवमेति रुद्ध्वा
वर्णान् बिभ्रत् तैजसांश्चित्ररूपान् ।

तथा ध्वजो विहितो भीमसेन
 [illegible] भविता नाग राज

उस [illegible] भरत [illegible] देखकर [illegible] और [illegible] प्रकार [illegible] न सका [illegible] किया [illegible] और [illegible] नहीं [illegible] होगी

[illegible]
 [illegible] पुरुषाधिकारपेण [illegible]
सुप्ताकृतिं [illegible] नरेन्द्र
 [illegible]
[illegible]
 [illegible] पुरस्तात्

[illegible] वायुके समान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होती [illegible] यदि [illegible] लिये हुए [illegible] [illegible] देगा

[illegible]
 रथे [illegible]
[illegible] भीमसेनस्य [illegible]
 रथे [illegible] बभूव

युधिष्ठिरके रथमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] बताने [illegible] [illegible]

[illegible]
 [illegible] फाल्गुनेन
[illegible]
 [illegible] सहदेव वहन्ति

[illegible] होकर [illegible] भाई [illegible] लिये [illegible] और [illegible] [illegible] प्रतीत होते [illegible] और भाई [illegible] [illegible] देते हुए [illegible]

माद्रीपुत्र नकुल [illegible]
 [illegible] हरयो [illegible]
 [illegible]
 वहन्ति वीरं [illegible]

[illegible] देवता [illegible] दिये हुए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ठीक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया

[illegible] विचित्राः
 [illegible] सदश्वाः
 [illegible] द्रौपदेयान् कुमारान्
 [illegible] देवदत्ता बृहन्तः

[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुत्रोंको [illegible] [illegible] दिये हुए

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि [illegible] [illegible]

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें [illegible] [illegible] अध्याय पूरा हुआ

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय

सञ्जयद्वारा पाण्डवोंकी युद्धविषयक तयारीका वर्णन, धृतराष्ट्रका विलाप, दुर्योधनद्वारा अपनी प्रबलताका प्रतिपादन, धृतराष्ट्रका उसपर अविश्वास तथा सञ्जयद्वारा धृष्टद्युम्नकी शक्ति एवं संदेशका कथन

धृतराष्ट्र उवाच

[illegible] [illegible] [illegible]
ये योत्स्यन्ते पाण्डवार्थे पुत्रस्य मम वाहिनीम्

धृतराष्ट्रने पूछा—सञ्जय! तुमने यहाँ युधिष्ठिरको प्रसन्नताके लिये आये हुए जिन जिन राजाओंको देखा [illegible] उनके हितके लिये मेरे पुत्रकी सेनाके साथ युद्ध करेंगे

सञ्जय उवाच

मुख्यमन्धकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम्।
चेकितानं च तत्रैव युयुधानं च सात्यकिम्॥ २॥

सञ्जयने कहा—राजन्! मैंने वहाँ देखा कि वृष्णि और अन्धकवंशके प्रधान पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हुए हैं। वहाँ चेकितान और युयुधान सात्यकि भी उपस्थित हैं॥ २॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तु पाञ्चाल्यावभिसंश्रितौ।
महारथौ समाख्यातावुभौ पुरुषमानिनौ॥ ३॥

अपनेको पौरुषशाली वीर माननेवाले वे दोनों विख्यात महारथी अलग-अलग एक-एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हैं॥ ३॥

अक्षौहिण्याथ पाञ्चाल्यो दशभिस्तनयैर्वृतः।
सत्यजित्प्रमुखैर्वीरैर्धृष्टद्युम्नपुरोगमैः॥ ४॥
द्रुपदो वर्धयन् मानं शिखण्डिपरिपालितः।
उपायात् सर्वसैन्यानां प्रतिच्छाद्य तदा वपुः॥ ५॥

पाञ्चालनरेश द्रुपद धृष्टद्युम्न और सत्यजित् आदि वीर पुत्रोंके साथ शिखण्डीद्वारा सुरक्षित हो, अपने समस्त सैनिकोंके शरीरोंको कवच आदिसे आच्छादित करके तथा सबका एक अक्षौहिणी सेनाके साथ युधिष्ठिरका मान बढ़ानेके लिये वहाँ आये हैं॥ ४-५॥

विराटः सह पुत्राभ्यां शङ्खेनैवोत्तरेण च।
सूर्यदत्तादिभिर्वीरैर्मदिराक्षपुरोगमैः॥ ६॥
सहितः पृथिवीपालो भ्रातृभिस्तनयैस्तथा।
अक्षौहिण्यैव सैन्यानां वृतः पार्थं समाश्रितः॥ ७॥

राजा विराट अपने दो पुत्रों शङ्ख और उत्तरके साथ तथा सूर्यदत्त और मदिराक्ष आदि वीर भ्राताओं और अन्य पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी सहायताके लिये उपस्थित हैं॥ ६-७॥

जारासन्धिर्मागधश्च धृष्टकेतुश्च चेदिराट्।
पृथक् पृथगनुप्राप्तौ पृथगक्षौहिणीवृतौ॥ ८॥

जरासन्धकुमार मगधनरेश सहदेव तथा चेदिराज धृष्टकेतु—ये दोनों भी अलग-अलग एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये हैं॥ ८॥

केकया भ्रातरः पञ्च सर्वे लोहितकध्वजाः।
अक्षौहिणीपरिवृताः पाण्डवानभिसंश्रिताः॥ ९॥

लाल रंगकी ध्वजावाले जो पाँचों भाई केकयराजकुमार हैं, वे भी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंकी सेवामें उपस्थित हुए हैं॥ ९॥

एतानेतावतस्तत्र यानपश्यं समागतान्।
ये पाण्डवार्थे योत्स्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्॥ १०॥

मैंने इन सबको इतनी सेनाओंके साथ वहाँ आया हुआ देखा है। ये लोग पाण्डवोंके हितके लिये दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्ध करेंगे॥ १०॥

यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्।
स तत्र सेनाप्रमुखे धृष्टद्युम्नो महामनाः॥ ११॥

जो मनुष्यों, देवताओं, गन्धर्वों तथा असुरोंकी भी व्यूह-रचना-प्रणालीको जानते हैं, वे महामना धृष्टद्युम्न पाण्डवोंकी सेनाके अग्रभागमें सेनापति होकर रहेंगे॥ ११॥

भीष्मः शान्तनवो राजन् भागः कॢप्तः शिखण्डिनः।
तं विराटोऽनुसंयाता सह मत्स्यैः प्रहारिभिः॥ १२॥

राजन्! शान्तनुनन्दन भीष्मको वध करना शिखण्डीका भाग नियत किया गया है। राजा विराट मत्स्यदेशीय योद्धाओंके साथ शिखण्डीकी सहायताके लिये उसका अनुसरण करेंगे॥ १२॥

ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य भागो मद्राधिपो बली।
तौ तु तत्राब्रुवन् केचिद् विषमौ नो मताविति॥ १३॥

बलवान् मद्रराज शल्य ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरके हिस्सेमें पड़े हैं—युधिष्ठिर ही उनके साथ युद्ध करेंगे। वहाँ कुछ लोग यह बोल उठे थे कि ये दोनों हमें परस्पर समान शक्तिशाली नहीं जान पड़ते॥ १३॥

दुर्योधनः सहसुतः सार्धं भ्रातृशतेन च।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भीमसेनस्य भागतः॥ १४॥

पुत्रों तथा सौ भाइयोंसहित दुर्योधन और पूर्व एवं दक्षिण दिशाके क्षत्रियनरेश भीमसेनके भागमें नियत किये गये हैं॥ १४॥

अर्जुनस्य तु भागेन कर्णो वैकर्तनो मतः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सैन्धवश्च जयद्रथः॥ १५॥

वैकर्तन कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण और सिंधुराज जयद्रथ—ये सब अर्जुनके हिस्सेमें पड़े हैं॥ १५॥

अशक्याश्चैव ये केचित् पृथिव्यां शूरमानिनः।
सर्वांस्तानर्जुनः पार्थः कल्पयामास भागतः॥ १६॥

इनके सिवा और भी जो भूतलमें अपनेको शूरवीर माननेवाले अजेय नरेश भूमण्डलमें प्रसिद्ध माने जाते हैं, उन सबको कुन्तीकुमार अर्जुनने अपना भाग निश्चित किया है॥ १६॥

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः।
केकयानेव भागेन कृत्वा योत्स्यन्ति संयुगे॥ १७॥

पाँच भाई केकयराजकुमार भी महान् धनुर्धर हैं। वे युद्धमें अपने विरोधी केकयदेशीय योद्धाओंको ही अपना भाग बनाकर उनसे युद्ध करेंगे॥ १७॥

तेषामेव कृतो भागो मालवाः शाल्वकास्तथा।
त्रिगर्तानां च द्वौ मुख्यौ यौ तौ संशप्तकाविति॥ १८॥

सत्त्व दललताके विभदेशके सैनिक और प्रयासक देनाके दो प्रमुख वीर भी उन गजलयासुनाओंके ही भाग नियत किये गये हैं ॥ १८ ॥

दुर्योधनसुताः सर्वे तथा दुःशासनस्य च ।
सौभद्रेण हतो भागो राजा चैव बृहद्बलः ॥ १९ ॥

दुर्योधन तथा दुःशासनके सभी पुत्र और राजा बृहद्बल सुभद्रानन्दन अभिमन्युके हिस्सेमें पड़े हैं ॥ १९ ॥

द्रौपदेया महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
धृष्टद्युम्नमुखा द्रोणमभियास्यन्ति भारत ॥ २० ॥

भरतनन्दन ! सुवर्णनिर्मित ध्वजाओंसे युक्त महाधनुर्धर द्रौपदीपुत्र भी धृष्टद्युम्नको आगे करके द्रोणाचार्यपर आक्रमण करेंगे ॥ २० ॥

चेकितानः सोमदत्तं द्वैरथे योद्धुमिच्छति ।
भोजं तु कृतवर्माणं युयुधानो युयुत्सति ॥ २१ ॥

चेकितान द्वैरथ-युद्धमें सोमदत्तके साथ युद्ध करना चाहते हैं । सात्यकि भोजवंशी कृतवर्माके साथ युद्ध करनेको उत्सुक हैं ॥ २१ ॥

सहदेवस्तु माद्रेयः शूरः संक्रन्दनो युधि ।
स्वमंशं कल्पयामास श्यालं ते सुबलात्मजम् ॥ २२ ॥

महाराज ! युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी शूरवीर माद्रीनन्दन सहदेवने आपके साले सुबलपुत्र शकुनिको अपना भाग निश्चित किया है । २२ ॥

उलूकं चापि कैतव्यं ये च सारस्वता गणाः ।
नकुलः कल्पयामास भागं माद्रवतीसुतः ॥ २३ ॥

जो धूर्त जुआरी शकुनिका पुत्र है, उलूक है तथा जो सारस्वतप्रदेशके सैनिक हैं, उन सबको माद्रीकुमार नकुलने अपना भाग नियत किया है ॥ २३ ॥

ये चान्ये पार्थिवा राजन् प्रत्युद्यास्यन्ति संयुगे ।
समाह्वानेन तांश्चापि पाण्डुपुत्रा अकल्पयन् ॥ २४ ॥

राजन् ! दूसरे भी जो जो नरेश (आपकी ओरसे) युद्धमें पदार्पण करेंगे, उन सबका भी नाम ले-लेकर पाण्डवोंने उन्हें अपना भाग निश्चित किया है ॥ २४ ॥

एवमेषामनीकानि प्रविभक्तानि भागशः ।
यत् ते कार्यं सपुत्रस्य क्रियतां तदकालिकम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाएँ पृथक् पृथक् भागोंमें बँटी हुई हैं । अब पुत्रोंसहित आपका जो कर्तव्य हो, उसे अविलम्ब पूरा करें ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

न सन्ति सर्वे पुत्रा मे मूढा दुर्युद्धदेविनः ।
येषां युद्धं बलवता भीमेन रणमूर्धनि ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! कपटद्यूतमें कुशल मेरे मूर्ख पुत्र, जिनका युद्धके मुहानेपर बलवान् भीमसेनके साथ जिनका युद्ध होनेवाला है, वे सबके सब मरे हुए ही हैं; क्योंकि भीमसेनके साथ युद्ध होनेवाला हैं ॥ २६ ॥

राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा ।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ २७ ॥

भूमण्डलके समस्त राजाओंका वध करनेके लिये काल-धर्मा यमराजने उनका प्रोक्षण (संस्कार) किया है अतः वे सब गाण्डीवकी आगमें उसी प्रकार जा गिरेंगे, जैसे पतंगे आगमें जा पड़ते हैं ॥ २७ ॥

विद्रुतां वाहिनीं मन्ये कृतवैरैर्महात्मभिः ।
तां रणे कोऽनुयास्यन्ति प्रभग्नां पाण्डवैर्युधि ॥ २८ ॥

मैं तो समझता हूँ कि जिनका हमलोगोंके साथ वैर ठन गया है, उन महात्मा पाण्डवोंने युद्धमें हमारी विशाल सेनाको भगाकर मार भगाया है । उनके द्वारा खदेड़ी हुई उस सेनाका अनुसरण अथवा रक्षा कौन कर सकेंगे ? ॥ २८ ॥

सर्वे ह्यतिरथाः शूराः कीर्तिमन्तः प्रतापिनः ।
सूर्यपावकयोस्तुल्यास्तेजसा समितिंजयाः ॥ २९ ॥

समस्त पाण्डव अतिरथी शूरवीर यशस्वी प्रतापी युद्धविजयी तथा सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं ॥ २९ ॥

येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः ।
योधौ च पाण्डवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ ॥ ३० ॥
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टकेतुश्च सात्मजः ॥ ३१ ॥
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ।
शिखण्डी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः ॥ ३२ ॥
काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृञ्जयाः ।
विराटपुत्रो बभ्रुश्च पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥
येषामिन्द्रोऽप्यकामानां न हरेत् पृथिवीमिमाम् ।
वीराणां रणधीराणां ये भिन्द्युः पर्वतानपि ॥ ३४ ॥
तान् सर्वगुणसम्पन्नानमनुष्यप्रतापिनः ।
क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति संजय ॥ ३५ ॥

संजय ! युधिष्ठिर जिनके नेता हैं, भगवान् मधुसूदन जिनके रक्षक हैं, पाण्डुपुत्र अर्जुन, नकुल और भीमसेन जिनके प्रमुख योद्धा हैं, नकुल, सहदेव, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रुपद, धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके पुत्र, पाञ्चालदेशीय उत्तमौजा, दुर्जय वीर युधामन्यु, शिखण्डी, क्षत्रदेव, विराटकुमार उत्तर, काशी, चेदि तथा मत्स्यदेशके सैनिक, समस्त सृञ्जय, विराटकुमार बभ्रु तथा पाञ्चालदेशीय प्रभद्रकगण जिनके पक्षमें युद्धके लिये उद्यत हैं, जिनकी इच्छाके बिना देवराज इन्द्र भी इस पृथ्वीका अपहरण नहीं कर सकते, जो वीर तथा रणधीर हैं, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकते हैं, जिनका

प्रभाव देवताओंके समान है तथा जो समस्त शत्रुओंको संतप्त करनेवाले हैं, उन्हीं पाण्डवोंके साथ मेरा दुष्ट पुत्र दुर्योधन मेरे रोते-चिल्लाते हुए भी युद्ध करना चाहता है ॥ ३५ ॥

दुर्योधन उवाच

उभौ स्म एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ।
अथ कस्मात् पाण्डवानामेकतो मन्यसे जयम् ॥ ३६ ॥

दुर्योधन बोला—पिताजी ! हम कौरव तथा पाण्डव दोनों एक ही जातिके हैं और दोनों इसी भूमिपर रहते हैं, फिर एकमात्र पाण्डवोंकी ही विजय होगी, यह आशा आपने कैसे बना ली ? ॥ ३६ ॥

पितामहं च द्रोणं च कृपं कर्णं च दुर्जयम्।
जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च ॥ ३७ ॥
सुचेतसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः।
अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पाण्डवाः ॥ ३८ ॥

तात ! पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, दुर्जय वीर कर्ण, जयद्रथ, सोमदत्त तथा अश्वत्थामा—ये सभी उत्तम चेतनावाले और महान् धनुर्धर हैं। देवताओंसहित इन्द्र भी इन्हें युद्धमें जीत नहीं सकते; फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३७-३८ ॥

सर्वे च पृथिवीपाला मत्कृते तात पाण्डवान्।
आर्याः शस्त्रभृतः शूराः समर्थाः प्रतिबाधितुम् ॥ ३९ ॥

तात ! ये सभी भूपाल श्रेष्ठ, शस्त्रधारी और शूरवीर होनेके साथ ही मेरे लिये पाण्डवोंको बाधा देनेमें समर्थ हैं ॥ ३९ ॥

न मामकान् पाण्डवास्ते समर्था प्रतिवीक्षितुम्।
पराक्रान्तो ह्यहं पाण्डून् सपुत्रान् योद्धुमाहवे ॥ ४० ॥

पाण्डव मेरे पक्षके इन वीरोंकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं। पुत्रोंसहित पाण्डवोंके साथ मैं अकेला ही रणभूमिमें युद्ध करनेकी शक्ति रखता हूँ ॥ ४० ॥

मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे ये चिकीर्षन्ति भारत।
ते तानावारयिष्यन्ति एणेयानिव तन्तुना ॥ ४१ ॥

भरतनन्दन ! जो भूपाल मेरा प्रिय करना चाहते हैं, वे सब उन पाण्डवोंको आगे बढ़नेसे उसी प्रकार रोक देंगे, जैसे फन्देसे हिरनोंके बच्चोंको रोक लिया जाता है ॥ ४१ ॥

महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः।
अभिद्रुता भविष्यन्ति पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ४२ ॥

मेरे पक्षकी विशाल रथसेना तथा मेरे सैनिकोंके बाणसमूहोंसे आहत होकर पाञ्चाल और पाण्डव भाग खड़े होंगे ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष संजय।
न हि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरा यह पुत्र पागलके समान प्रलाप कर रहा है। यह युद्धमें धर्मराज युधिष्ठिरको कभी जीत नहीं सकता ॥ ४३ ॥

जानाति हि सदा भीष्मः पाण्डवानां यशस्विनाम्।
बलवत्तां सपुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥
यतो नारोचयदहं विग्रहं तैर्महात्मभिः।

पुत्रोंसहित धर्मज्ञ एवं यशस्वी महात्मा पाण्डव कितने बलवान् हैं, इस बातको भीष्मजी सदा अच्छी तरह जानते हैं, इसीलिये उन्हें उन महात्माओंके साथ युद्ध छेड़नेकी बात पसंद नहीं आयी ॥ ४४½ ॥

किं तु संजय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम् ॥ ४५ ॥
कस्तांस्तरस्विनो भूयः संदीपयति पाण्डवान्।
अर्चिष्मतो महेष्वासान् हविषा पावकानिव ॥ ४६ ॥

संजय ! तुम पुनः मेरे सामने पाण्डवोंकी चेष्टाका वर्णन करो। कौन ऐसा वीर है, जो वेगशाली और तेजस्वी महाधनुर्धर पाण्डवोंको बारंबार उसी प्रकार उत्तेजित किया करता है, जैसे घीकी आहुति डालनेसे अग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ ४५-४६ ॥

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नः सदैवैतान् संदीपयति भारत।
युध्यध्वमिति मा भैष्ट युद्धाद् भरतसत्तमाः ॥ ४७ ॥

संजयने कहा—भारत ! धृष्टद्युम्न सदा ही इन पाण्डवोंको उत्तेजित करते रहते हैं। वे कहते हैं—'भरतकुलभूषण वीरो ! आपलोग युद्ध करें। उससे तनिक भी भयभीत न हों ॥ ४७ ॥

ये केचित् पार्थिवास्तत्र धार्तराष्ट्रेण संवृताः।
युद्धे समागमिष्यन्ति तुमुले कवचह्रदे ॥ ४८ ॥
तान् सर्वानाहवे क्रुद्धान् सानुबन्धान् समागतान्।
अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिवौदकान् ॥ ४९ ॥

'दुर्योधनद्वारा वरण किये हुए जो कोई भी राजा कवचधारी वीरोंसे भरे हुए भयानक संग्राममें सामने आयेंगे, उन क्रोधमें भरे हुए तथा भाई-बन्धुओंसहित रणभूमिमें आये हुए उन सब राजाओंको मैं अकेला ही उसी प्रकार पकड़ लूँगा, जैसे तिमि नामक महामत्स्य जलके दूसरे मत्स्योंको निगल जाता है ॥ ४८-४९ ॥

भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम्।
एतांश्चापि निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥

'भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य तथा दुर्योधन—इन सबको मैं उसी भाँति आगे बढ़नेसे रोक दूँगा, जैसे किनारा समुद्रको रोके रखता है' ॥ ५० ॥

तथा ब्रुवति धर्मात्मा मयि राजा युधिष्ठिर
तव धर्मे न प्रीत च पञ्चाला पाण्डव सह
राज समभिवदा सा सभामध्ये समुद्गर
जानामि त्वा महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥
रणयमेषु वर्ताते कौरवाणां विमिवर्दे
पुरस्तादुपयातानां कौरवाणां युयुत्सताम् ॥

इस प्रकार कहते हुए धृष्टद्युम्नसे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर बोले ... महाबाहो पाञ्चालोंसहित समस्त ... वीर तुम्हारे ही और पराक्रमका ही आश्रय लेकर युद्धके लिये उद्यत हुए हैं। अतः तुम्हीं इस भयानक संग्राममें हमलोगोंका उद्धार करो। मैं जानता हूँ कि तुम क्षत्रियधर्ममें प्रतिष्ठित हो ... तुमको इच्छानुसार ... हुए ... कौरवोंका ... दूर हो ... हैं जैसे मैं कुछ भी चिन्ता नहीं है।

भवत यद् विधातव्यं तन्न श्रेय परन्तप
संग्रामादपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम्
पौरुषं दर्शयञ्छूरो यस्तिष्ठेदग्रत पुमान्
क्रीणीयात् तं सहस्रेण इति नीतिमतां मतम्

अब तुम जो कुछ करोगे वही ... श्रेयस्कर होगा। जो पुरुष अपना शौर्य प्रकट करते हुए युद्धभूमिसे भयभीत होकर भागे हुए शरणार्थी सैनिकोंके सामने खड़ा होता और उनकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेता है, उस वीरको सहस्रों मुद्राएँ देकर भी खरीद ले—अपने पक्षमें कर ले, यही नीतिज्ञ पुरुषोंका मत है।

स त्वं शूरश्च वीरश्च विक्रान्तश्च नरर्षभ
भयार्तानां परित्राता संयुगेषु न संशयः ॥

नरश्रेष्ठ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम शूर, वीर और पराक्रमी हो तथा युद्धमें भयसे पीड़ित हुए सैनिकोंकी रक्षा कर सकते हो।

एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे
धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वाचं गतसाध्वसम्
सर्वाञ्जनपदान् सूत योधा दुर्योधनस्य च

वाह्लीकान् कुरून् ब्रूयाः प्रातिपेयाञ्छरद्वतः।
सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रमथाश्वत्थाम्
दुःशासनं विकर्णं च तथा दुर्योधनं नृपम्
भीष्मं च ब्रूहि गत्वा त्वमाशु गच्छ च मा चिरम् ॥

धर्मात्मा कुन्तीकुमार युधिष्ठिर जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय धृष्टद्युम्नने मुझसे भयरहित वाणीमें कहा—सूत! वहाँ दुर्योधनके जितने योद्धा हैं, उनसे तथा समस्त देशवासियोंसे, बाह्लीक, कुरुवंशी प्रतीपवंशी, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, सूतपुत्र कर्ण, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा जयद्रथ, दुःशासन, विकर्ण, राजा दुर्योधन और भीष्मजी भी जाकर ऐसा यह सन्देश कहना। अभी जाओ, विलम्ब न करो।

युधिष्ठिरः साधुनैवाभ्युपेयो
मा वो वधीदर्जुनो देवगुप्तः
राज्यं ददध्वं धर्मराजस्य तूर्णं
याचध्वं वै पाण्डवं लोकवीरम् ॥

मेरा सन्देश इस प्रकार है—वीरो! राजा युधिष्ठिरके साथ सज्जनोचित बर्ताव करो। तुमलोग ... अवसर न आने दो कि देवताओंद्वारा सुरक्षित वीरवर अर्जुन तुमलोगोंका वध कर डालें। तुमलोग युधिष्ठिरको शीघ्र उनका राज्य लौटा दो और विश्वविख्यात वीर पाण्डुकुमारसे क्षमा याचना करो।

नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन
यथाविधः सव्यसाची पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥ ९ ॥

सत्यपराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुन जैसा सव्यसाची है, वैसा योद्धा इस भूमण्डलमें दूसरा कोई नहीं है।

देवैर्हि सम्भृतो दिव्यो रथो गाण्डीवधन्वनः
न स जेयो मनुष्येण मा स्म कृध्वं मनो युधि ॥ १२ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनका रथ देवताओं और गन्धर्वोंका दिया हुआ है, देवताओंद्वारा सुरक्षित है। कोई भी मनुष्य उन्हें जीत नहीं सकता; अतः तुमलोग अब युद्धमें मनको युद्धकी ओर न ले जाओ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें सञ्जयवाक्यविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

धृतराष्ट्रका दुर्योधनको सन्धिके लिये समझाना, दुर्योधनका अहंकारपूर्वक पाण्डवोंसे युद्ध करनेका ही निश्चय तथा धृतराष्ट्रका अन्य योद्धाओंको युद्धसे भय दिखाना

धृतराष्ट्र उवाच

क्षत्रतेजा ब्रह्मचारी कौमारादपि पाण्डवः
तेन संयुगमेष्यन्ति मन्दा विलपतो मम

धृतराष्ट्र बोले—संजय! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर क्षात्र तेजसे सम्पन्न हैं। उन्होंने कुमारावस्थासे ही विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन किया है। मेरे ये मूर्ख पुत्र मेरे विलापकी ओर

ध्यान न देकर उन्हीं युधिष्ठिरके साथ युद्ध छेड़नेवाले हैं।

दुर्योधन विजानीहि पुत्रार्थं भरतसत्तम
न हि युद्धं महासन्ति सर्वोपायसमर्थितम् ॥ २ ॥

महाकुलप्रसूत महाराज दुर्योधन! तुम युद्धसे निवृत्त हो जाओ। श्रेष्ठ पुरुष किसी भी दशामें युद्धकी प्रशंसा नहीं करते हैं।

अकामार्थं युधिष्ठिरयाशां साहसात्मस्य बोधितुम्
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम ॥ ३ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! तुम पाण्डवोंको उनका यथोचित राज्यभाग दे दो। बेटा! मन्त्रियोंसहित तुम्हारे जीवननिर्वाहके लिये तो आधा राज्य ही बहुत है।

यतस्ति कुरुषु सत्यं मन्यसे धर्मसंहितम्
यत् त्वां प्रशान्तिं मन्वेयाः पाण्डुपुत्रसहायवान् ॥ ४ ॥

उनका चरित्र यदि धर्मानुकूल समझते हैं, तो तुम महात्मा पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। वे आदरणीय शान्तिका प्रस्ताव रखते हैं, उनकी बात स्वीकार कर लो।

अश्लोकं लभते पुत्र त्वमेव वाहिनीम्
अयं एव तथाभावस्तव तु मोहात्तव दुष्प्रयम्

बेटा! तुम इस समयकी ही सेनाकी ओर दृष्टिपात करो। यह तुम्हारा विनाशकाल ही उपस्थित हुआ है; परंतु तुम मोहवश इस बातको समझ नहीं रहे हो।

न त्वहं युद्धमिच्छामि नाप्यिच्छति वाह्लिकः
न च भीष्मो न च द्रोणो नाश्वत्थामा न संजयः ॥ ६ ॥
न सोमदत्तो न शल्यो न कृपो युद्धमिच्छति
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा ॥ ७ ॥

बेटा! तो मैं युद्ध करना चाहता हूँ और न वाह्लिक इसकी इच्छा रखते हैं। और न भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, संजय, सोमदत्त, शल्य तथा कृपाचार्य ही युद्ध करना चाहते हैं। सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय और भूरिश्रवा भी युद्धके पक्षमें नहीं हैं।

येषु संप्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः
ते युद्धं नाभिनन्दन्ति तत् तुभ्यं तात रोचताम् ॥ ८ ॥

शत्रुओंसे पीड़ित होनेपर कौरवसैनिक जिनके आश्रयमें खड़े हो सकते हैं, वे ही लोग युद्धका अनुमोदन नहीं कर रहे हैं। तात! उनके इस विचारको तुम्हें भी पसंद करना चाहिये।

न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव
दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ९ ॥

मैं जानता हूँ, तुम अपनी इच्छासे युद्ध नहीं कर रहे हो। पापात्मा दुःशासन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि ही तुमसे यह कार्य करा रहे हैं।

दुर्योधन उवाच

नाहं भवन्तं न द्रोणं नाश्वत्थामानं न संजयम्
न भीष्मं न च काम्बोजं न कृपं न च बाह्लिकम् ॥ १० ॥
सत्यव्रतं पुरुमित्रं भूरिश्रवसमेव वा
अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वये ॥ ११ ॥

दुर्योधन बोला— पिताजी! मैंने आप, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, संजय, भीष्म, काम्बोजराज, कृपाचार्य, बाह्लीक, सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा अथवा आपके अन्यान्य योद्धाओंपर भार रखकर पाण्डवोंको युद्धके लिये आमन्त्रित नहीं किया है।

अहं च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै
युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥ १२ ॥

तात! भरतश्रेष्ठ! मैंने और कर्णने रणयज्ञका विस्तार करके युधिष्ठिरको पशु बनाकर उस यज्ञकी दीक्षा ले ली है।

रथो वेदी स्रुवः खड्गो गदा स्रुक् कवचं सदः
चातुर्होत्रं च धुर्यो मे शरा दर्भा हविर्यशः ॥ १३ ॥

इसमें रथ ही वेदी है, खड्ग स्रुवा है, गदा स्रुक् है, कवच सदस्य है, रथका भार वहन करनेवाले मेरे घोड़े ही चार होता हैं, बाण कुश हैं और यश ही हविष्य है।

आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे
विजित्य च समेष्यावो हतामित्रौ श्रिया वृतौ ॥ १४ ॥

नरेश्वर! हम दोनों समराङ्गणमें आत्मयज्ञके द्वारा यमराजका यजन करके शत्रुओंको मारकर विजयी हो विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होकर पुनः राजधानीमें लौटेंगे।

अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे
एते वयं हनिष्यामः पाण्डवान् समरे त्रयः ॥ १५ ॥

तात! मैं, कर्ण तथा भाई दुःशासन—हम तीन ही समरभूमिमें पाण्डवोंका संहार कर डालेंगे।

अहं हि पाण्डवान् हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम्
मां वा हत्वा पाण्डुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम् ॥ १६ ॥

या तो मैं ही पाण्डवोंको मारकर इस पृथ्वीका शासन करूँगा या पाण्डव ही मुझे मारकर भूमण्डलका राज्य भोगेंगे।

त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वं च पार्थिव
न जातु पाण्डवैः सार्धं वसेयमहमच्युत ॥ १७ ॥

धर्मसे च्युत न होनेवाले महाराज! मैं जीवन, राज्य,

कर—उन कुछ छोड़ दूंगा, परंतु पाण्डवोंसे लड़कर मिल-कर कदापि नहीं रह सकता ॥

यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष ।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥

पूज्य पिताजी ! तीखी सूईके अग्रभागसे जितनी भूमि छिद सकती है, उतनी भी मैं पाण्डवोंको नहीं दूंगा ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वान् वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया ।
ये मन्दमनुयास्यन्ति यान्त वैवस्वतक्षयम् ॥

धृतराष्ट्र बोले—तात कौरवगण ! दुर्योधनको तो मैंने त्याग दिया, यमलोकको जाते हुए इस मूर्खका जो लोग अनुसरण करेंगे, मैं उन सभी लोगोंके लिये शोक करता हूँ ॥



रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः ।
वरान् वरान् हनिष्यन्ति समेत्य युधि पाण्डवाः ॥

जैसे व्याघ्र मृगोंके झुंडमें श्रेष्ठ मृगोंको मार डालते हैं, उसी प्रकार योद्धाओंमें श्रेष्ठ पाण्डव युद्धमें एकत्र होकर कौरवोंके प्रधान प्रधान वीरोंका वध कर डालेंगे ॥

प्रतीपमिव मे भाति युयुधानेन भारती ।
व्यस्ता सीमन्तिनी त्रस्ता प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥

मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि युयुधानसे तिरस्कृत हुई भरतवंशियोंकी सेना विपरीत भावसे [illegible] ...

... और सात्यकिने उसको अधिकारमें करके रौंद डाला है और अब विपरीत दिशाकी ओर अस्त-व्यस्त दशामें भागी जा रही है ॥

सम्पूर्णं पूरयन् भूयो बलं पार्थस्य माधव ।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत् प्रवपञ्छरान् ॥

मधुवंशी सात्यकि युधिष्ठिरके … अर्जुनकी सेनाको और भी बढ़ाता हुआ, जैसे किसान खेतोंमें बीज बोता है, उसी प्रकार समर भूमिमें बाण बिखेरते हुए खड़े होंगे ॥

सेनामुखे प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति ।
सर्वे तस्यानुयास्यन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥

सेनाके अग्रभागमें युद्ध करनेवाले पाञ्चालोंके आगे भीमसेन खड़े होंगे और सब लोग उस निर्भय प्राकारस्वरूप वीरकी शरणमें रहकर उन्हींका आश्रय लेंगे ॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरान् विनिपातितान् ।
विशीर्णदन्तान् गिर्याभान् भिन्नकुम्भान् सशोणितान् ॥
तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान् ।
तदा भीमस्य संस्पर्शात् स्मर्तासि वचनस्य मे ॥

जब तुम देखोगे कि भीमसेनने पर्वताकार मतवाले हाथियोंके दाँत तोड़ दिये और कुम्भस्थल विदीर्ण करके उन्हें रक्तरञ्जित दशामें धराशायी कर दिया है और वे रणभूमिमें टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतोंके समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं, तब उस समय दृष्टिपात करके भीमसेनके स्पर्शसे भी भयभीत होकर मेरी कही हुई बातोंको याद करोगे ॥

निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं हतरथद्विपम् ।
गतिमग्नेरिव प्रेक्ष्य स्मर्तासि वचनस्य मे ॥

भीमसेन जब घोड़े, रथ और हाथियोंसे भरी हुई सारी कौरव-सेनाको अपनी क्रोधाग्निसे दग्ध करने लगेंगे, उस समय अग्निके समान उनकी गति देखकर तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी ॥

महद् वो भयमागामि चेच्छाम्यथ पाण्डवैः ।
गदया भीमसेनेन हताः शममुपैष्यथ ॥

तुमलोगोंपर बड़ा भारी भय आनेवाला है, यदि नहीं चाहता कि तुमलोग पाण्डवोंके साथ युद्ध करो । यदि हो गया तो तुमलोग भीमसेनकी गदासे मारे जाकर सदाके लिये शान्त हो जाओगे ॥

महावनमिव छिन्नं यदा द्रक्ष्यथ पातितम् ।
बलं कुरूणां भीमेन तदा स्मर्तासि मे वचः ॥

काटकर गिराये हुए विशाल वनकी भाँति जब तुम कौरवसेनाको भीमसेनके द्वारा मार गिरायी हुई देखोगे, तब तुम्हें मेरे वचनोंका स्मरण हो आयेगा ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु राजा स सर्वांस्तान् पृथिवीक्षितः।
अनुज्ञाप्य महाराज पुनः पप्रच्छ संजयम्॥ २९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! राजा धृतराष्ट्रने वहाँ बैठे हुए समस्त भूपालोंसे उपर्युक्त बात कहकर उन्हें समस्त-पुकारकर पुनः संजयसे पूछा॥२९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसंधिपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

एकोनषष्टितमोऽध्याय

संजयका धृतराष्ट्रके पूछनेपर उन्हें श्रीकृष्ण और अर्जुनके अन्तःपुरमें कहे हुए संदेश सुनाना

धृतराष्ट्र उवाच

यदब्रूतां महात्मानौ वासुदेवधनंजयौ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—महाप्राज्ञ संजय! महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने जो कुछ कहा हो, वह मुझे बताओ। मैं तुम्हारे मुखसे उनका संदेश सुनना चाहता हूँ॥ १॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथा दृष्टौ मया कृष्णधनंजयौ।
ऊचतुश्चापि यद् वीरौ तत् ते वक्ष्यामि भारत॥ २॥

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश! सुनिये। मैंने वीरवर श्रीकृष्ण और अर्जुनको जैसे देखा है और उन्होंने जो संदेश दिया है, वह आपसे कह रहा हूँ॥ २॥

पादाङ्गुलीरभिप्रेक्षन् प्रयतोऽहं कृताञ्जलिः।
शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः॥ ३॥

राजन्! मैं नरदेव श्रीकृष्ण और अर्जुनसे आपका संदेश सुनानेके लिये मनको पूर्ण संयममें रखकर अपने पैरोंकी अङ्गुलियोंपर ही दृष्टि लगाये और हाथ जोड़े हुए उनके अन्तःपुरमें गया॥ ३॥

नैवाभिमन्युर्न यमौ तं देशमभियान्ति वै।
यत्र कृष्णौ च कृष्णा च सत्यभामा च भामिनी॥ ४॥

जहाँ श्रीकृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी और मानिनी सत्यभामा विराज रही थीं, उस स्थानमें कुमार अभिमन्यु तथा नकुल-सहदेव भी नहीं जा सकते थे॥ ४॥

उभौ मध्वासवक्षीबावुभौ चन्दनरूषितौ।
स्रग्विणौ वरवस्त्रौ तौ दिव्याभरणभूषितौ॥ ५॥

वे दोनों मित्र मधुर पेय पीकर आनन्दनिर्भर हो रहे थे। उन दोनोंके श्रीअङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। वे सुन्दर वस्त्र और मनोहर पुष्पमाला धारण करके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे॥ ५॥

नैकरत्नविचित्रं तु काञ्चनं महदासनम्।
विविधास्तरणास्तीर्णं यत्रासातामरिंदमौ॥ ६॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर जिस विशाल आसनपर बैठे थे, वह सोनेका बना हुआ था। उसमें अनेक प्रकारके रत्न जड़े होनेके कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। उसपर भाँति-भाँतिके सुन्दर बिछौने बिछे हुए थे॥ ६॥

अर्जुनोत्सङ्गगौ पादौ केशवस्योपलक्षये।
अर्जुनस्य च कृष्णायां सत्यायां च महात्मनः॥ ७॥

मैंने देखा, श्रीकृष्णके दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें थे और महात्मा अर्जुनका एक पैर द्रौपदीकी तथा दूसरा सत्यभामाकी गोदमें था॥ ७॥

काञ्चनं पादपीठं तु पार्थो मे प्रादिशत् तदा।
तदहं पाणिना स्पृष्ट्वा ततो भूमावुपाविशम्॥ ८॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उस समय मुझे बैठनेके लिये एक सोनेका पादपीठ (पैर रखनेके पीढ़े) की ओर संकेत कर दिया। परंतु मैं हाथसे उसका स्पर्शमात्र करके पृथ्वीपर ही बैठ गया॥ ८॥

ऊर्ध्वरेखतलौ पादौ पार्थस्य शुभलक्षणौ।
पादपीठादपहृतौ तत्रापश्यमहं शुभौ॥ ९॥

बैठ जानेपर वहाँ मैंने पादपीठसे हटाये हुए अर्जुनके दोनों सुन्दर चरणोंको (ध्यानपूर्वक) देखा। उनके तलवोंमें ऊर्ध्वगामिनी रेखाएँ दृष्टिगोचर हो रही थीं और वे दोनों पैर शुभसूचक विविध लक्षणोंसे सम्पन्न थे॥ ९॥

श्यामौ बृहन्तौ तरुणौ शालस्कन्धाविवोद्गतौ।
एकासनगतौ दृष्ट्वा भयं मां महदाविशत्॥ १०॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों श्यामवर्ण, बड़े डील-डौलवाले, तरुण तथा शालवृक्षके स्कन्धोंके समान उन्नत हैं। उन दोनोंको एक आसनपर बैठे देख मेरे मनमें बड़ा भय समा गया॥ १०॥

इन्द्रविष्णुसमावेतौ मन्दात्मा नावबुध्यते
समाश्रयाद् द्रोणभीष्माभ्यां कर्णस्य च विकत्थनात्

'जैसे बौना इन्द्र और विष्णुके समान अमित पराक्रमी इन दोनों वीरोंको मन्दबुद्धि दुर्योधन नहीं समझ पाता है; वह द्रोणाचार्य और भीष्मका भरोसा करके तथा कर्णकी डींग भरी बातें सुनकर भ्रममें पड़ा हो रहा है।

निदेशस्थायिनौ यस्य मानसस्तस्य सेत्स्यते
संकल्पो धर्मराजस्य निश्चयो मे तदाभवत्॥

दोनों महात्मा जिसकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिरका मानसिक संकल्प अवश्य सिद्ध होगा; यही उस समय मेरा निश्चय हुआ था।

सत्कृतश्चान्नपानाभ्यामाच्छन्नो लब्धसत्क्रियः
अञ्जलिं मूर्ध्नि संधाय तौ संदेशमचोदयम्

तत्पश्चात् अन्न और पानके द्वारा मेरा सत्कार किया गया। लौकिक आदर-सत्कार पाकर मैंने उन दोनोंके पास मस्तकपर अञ्जलि जोड़कर मैं उन दोनोंसे आपका संदेश कह सुनाया।

धनुर्गुणाङ्किताहुना पाणिना शुभलक्षणम्
पादमानमयन् पार्थः केशवं समनोदयत्॥

तब अर्जुनने जिसमें धनुषकी डोरीका चिह्न बन गया था, उस हाथसे भगवान् श्रीकृष्णके शुभलक्षणसम्पन्न चरणको धीरे-धीरे दबाते हुए उन्हें उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया।

इन्द्रकेतुरिवोत्थाय सर्वाभरणभूषितः
इन्द्रवीर्योपमः कृष्णः संविष्टो मामभाषत
वाचं स वदतां श्रेष्ठो ह्लादिनीं वचनक्षमाम्
त्रासिनीं धार्तराष्ट्राणां मृदुपूर्वां सुदारुणाम्॥

तदनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी तथा समस्त आभूषणोंसे विभूषित वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण इन्द्रध्वजके समान उठ बैठे और मुझसे बात की। मुझको एवं सबको आह्लाद प्रदान करनेवाली प्रवचनयोग्य वाणी बोले। फिर वह वाणी अत्यन्त दारुणरूपमें प्रकट हुई, जो आपके पुत्रोंके लिये भय उत्पन्न करनेवाली थी।

वाचं तां वचनार्हस्य शिक्षाक्षरसमन्विताम्
अश्रौषमहमिष्टार्थां पश्चाद्धृदयशोषिणीम्॥

तत्पश्चात् महावीरमें कुशल भगवान् श्रीकृष्णकी वह वाणी मैंने सुनी। उसमें आयी जिसका एक-एक अक्षर शिक्षाप्रद था; वह अभीष्ट अर्थका प्रतिपादन करनेवाली तथा मनको सोख लेनेवाली थी।

वासुदेव उवाच

संजयेदं वचो ब्रूया धृतराष्ट्रं मनीषिणम्
कुरुमुख्यस्य भीष्मस्य द्रोणस्यापि च शृण्वतः

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—संजय! तुम कुरुकुलके प्रधान पुरुष भीष्म तथा आचार्य द्रोणके सुनते हुए उसी प्रकार बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रसे यह बात कहना।

आवयोर्वचनात् सूत ज्येष्ठानप्यभिवादयन्
यवीयसश्च कुशलं पश्चात् पृष्ट्वैवमुत्तरम्॥

सूत! तुम इन दोनोंकी ओरसे पहले हमसे बड़ी अवस्थाके पुरुषोंको प्रणाम कहना और जो छोटी अवस्थाके हमसे छोटे हों, उनकी कुशल पूछ लेना। उसके बाद हमारा यह उत्तर सुना देना।

यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्विप्रेभ्यो दत्त दक्षिणाः
पुत्रैर्दारैश्च मोदध्वं महद् वो भयमागतम्॥

'तुमलोग नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ करो, ब्राह्मणोंको दक्षिणाएँ दो और कितने दिन-पुत्र-कलत्रके साथ आनन्द भोग लो; क्योंकि तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा भय आ पहुँचा है।

अर्थांस्त्यजत पात्रेभ्यः सुतान् प्राप्नुत कामजान्।
प्रियं प्रियेभ्यश्चरत राजा हि त्वरते जये॥

सुपात्र व्यक्तियोंको धनका दान देकर अपनी इच्छाके अनुसार पुत्र पैदा कर लो तथा अपने प्रेमीजनोंका प्रिय कार्य कर लो; क्योंकि राजा युधिष्ठिर तुमलोगोंपर विजय पानेके लिये उतावले हो रहे हैं।

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥

जिस समय कौरवसभामें द्रौपदीका वस्त्र खींचा जा रहा था, उस समय हस्तिनापुरसे बहुत दूर था, उस समय कृष्णाने आर्तस्वरसे 'हे गोविन्द!' कहकर जो मुझे पुकारा था, उसका मेरे ऊपर ऋण चढ़ा हुआ है और वह ऋण बढ़ता ही जा रहा है। अपराधी कौरवोंका नाश किये बिना उसका भार मेरे हृदयसे दूर नहीं हो सकता।

तेजोमयं दुराधर्षं गाण्डीवं यस्य कार्मुकम्
मद्द्वितीयेन तेनेह वैरं वः सव्यसाचिना॥

जिनके पास अजेय तेजस्वी गाण्डीव नामक धनुष है और जिनका मित्र एवं सहायक दूसरा मैं हूँ, उन्हीं सव्यसाची अर्जुनके साथ तुमने वैर ठाना है।

मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमिच्छति
यो न कालपरीतो वाप्यपि साक्षात् पुरंदरः॥

जिसको काल्ने अपने अधीन न कर लिया हो, ऐसा कौन

पुरुष अबतक (या भविष्यमें) ही क्यों हो, अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है, जिसका सहायक दूसरा मैं हूँ॥

बाहुभ्यामुद्वहेद् भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः।
पातयेत् त्रिदिवाद् देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत्॥

जो अर्जुनको युद्धमें जीत ले, वह अपनी दोनों भुजाओंपर इस पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होकर इन सारी प्रजाओंको भस्म कर सकता है और सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गसे नीचे गिरा सकता है॥

देवासुरमनुष्येषु यक्षगन्धर्वभोगिषु।
न तं पश्याम्यहं युद्धे पाण्डवं योऽभ्ययाद् रणे॥

देवताओं, असुरों, मनुष्यों, यक्षों, गन्धर्वों तथा नागोंमें भी मुझे कोई ऐसा वीर नहीं दिखायी देता, जो पाण्डुनन्दन अर्जुनका सामना कर सके॥

यत् तद् विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम्।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥

विराटनगरमें अकेले अर्जुन और बहुतेरे कौरवोंका जो अद्भुत और महान् संग्राम हुआ था, वही मेरे उपर्युक्त कथनकी सत्यताका पर्याप्त प्रमाण है॥

एकेन पाण्डुपुत्रेण विराटनगरे यदा।
भग्नाः पलायत दिशः पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥

जब विराटनगरमें एकमात्र पाण्डुकुमार अर्जुनसे पराजित हो तुमलोगोंने भागकर विभिन्न दिशाओंकी शरण ली थी, तब वही घटना अर्जुनकी अजेयताका पर्याप्त प्रमाण है॥

बलं वीर्यं च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता।
अविषादश्च धैर्यं च पार्थान्नान्यत्र विद्यते॥

बल, पराक्रम, तेज, शीघ्रकारिता, हाथोंकी फुर्ती, विषादहीनता तथा धैर्य—ये सभी गुण कुन्तीपुत्र अर्जुनके सिवा एक साथ दूसरे किसी पुरुषमें नहीं हैं॥

इत्यब्रवीद्धृषीकेशः पार्थमुद्धर्षयन् गिरा।
गर्जन् समयवर्षीव गगने पाकशासनः॥

जैसे इन्द्र आकाशमें गर्जना करता हुआ समयपर वर्षा करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको अपनी वाणीसे आनन्दित करते हुए उपर्युक्त बात कही॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा किरीटी श्वेतवाहनः।
अर्जुनस्तन्महद् वाक्यमब्रवील्लोमहर्षणम्॥

भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुनकर किरीटधारी श्वेतवाहन अर्जुनने भी उस रोमांचकारी महावाक्यको दुहरा दिया॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि सञ्जयवाक्ये श्रीकृष्णवाक्यकथने एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें संजयवाक्यके प्रसंगमें श्रीकृष्णवाक्यकथनविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

षष्टितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके द्वारा कौरव-पाण्डवोंकी शक्तिका तुलनात्मक वर्णन

वैशम्पायन उवाच

संजयस्य वचः श्रुत्वा प्रज्ञाचक्षुर्जनेश्वरः।
ततः संख्यातुमारेभे तद्वचो गुणदोषतः॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! संजयकी बात सुनकर प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रने उसके वचनके गुण-दोषका विवेचन आरम्भ किया॥

प्रसंख्याय च सौक्ष्म्येण गुणदोषान् विचक्षणः।
यथावन्मतितत्त्वेन जयकामः सुतान् प्रति॥
बलाबलं विनिश्चित्य याथातथ्येन बुद्धिमान्।
यदा तु मेने भूयिष्ठं लघुत्वं गुणदोषयोः॥
पुनरेव कुरूणां च पाण्डवानां च बुद्धिमान्।
शक्तिं संख्यातुमारेभे तदा वै मनुजाधिपः॥

अपने पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले विद्वान् एवं बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने बुद्धितत्त्वके द्वारा उन वचनोंके सूक्ष्म गुण-दोषोंकी यथावत् समीक्षा करके दोनों पक्षोंके बलाबलका यथार्थरूपसे निश्चय कर लिया। तदनन्तर जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि गुण-दोषकी दृष्टिसे श्रीकृष्णका कथन ठीक है, तब उन बुद्धिमान् नरेशने पुनः कौरवों और पाण्डवोंकी शक्तिपर विचार करना आरम्भ किया॥

देवमानुषयोः शक्त्या तेजसा चैव पाण्डवान्।
कुरून् शक्त्याल्पतरया दुर्योधनमथाब्रवीत्॥ ४॥

पाण्डवोंमें दैवी शक्ति, मानवी शक्ति तथा तेज—इन तीनोंकी अधिकता जान पड़ी और कौरवपक्षमें शक्ति अल्प जान पड़ी। इस प्रकार विचार करके धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा॥

दुर्योधनेयं चिन्ता मे शश्वन्नाप्युपशाम्यति।
सत्यं ह्येतदहं मन्ये प्रत्यक्षं नानुमानतः॥ ५॥

बेटा दुर्योधन! मेरी यह चिन्ता कभी दूर नहीं होती है।

क्योंकि तुम्हारा पक्ष दुर्बल है। मैं यह बात अनुमानसे नहीं कहता हूँ, प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, अतः इसीको सत्य मानता हूँ।

(ईदृशोऽभिनिविष्टस्य पृथिवीक्षयकारके।
अधर्म्ये अयशस्ये च कार्ये महति दारुणे॥
पाण्डवैर्विग्रहस्तात सर्वथा मे न रोचते॥)

तुम ऐसे कार्यके लिये दुराग्रह करते हो जो समस्त भूमण्डलका विनाश करनेवाला है, वह अधर्मकारक तो है ही, अपयशकी भी वृद्धि करनेवाला है। इसके सिवा वह अत्यन्त भयानक कर्म है। अतः तुम्हारा पाण्डवोंके साथ युद्ध छेड़ना मुझे किसी भी तरह अच्छा नहीं लग रहा है।

आनृशंस्यं परे लोके सर्वभूतानि कुर्वते।
प्रियाणि चापि कुर्वन्ति यथाशक्ति हितानि च॥६॥

संसारके समस्त प्राणी अपने पुरुषोंपर अत्यन्त स्नेह करते हैं तथा अपनी शक्तिके अनुसार उनका प्रिय एवं हितसाधन करते हैं॥६॥

एवमेवोपकर्तृणां मनस्वी मानयत्यपि।
इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत् प्रियम्॥७॥

इसी प्रकार यह भी देखा है कि साधु पुरुष उपकारी मनुष्योंके उपकारका बदला चुकानेके लिये उनका बहुत बड़ा प्रिय कार्य करना चाहते हैं॥७॥

कच्चित् सात्त्विकवतो भ्राता पाण्डवे सकृतं परम्।
अनुस्मरन्ति भौमेऽस्मिन् कुरूणामनुसङ्गमम्॥८॥

कौरव-पाण्डवोंके इस भयंकर संग्राममें अग्निदेव भी खाण्डववनमें अर्जुनके किये हुए उपकारको याद करके उनकी सहायता अवश्य करेंगे॥८॥

अतिमानुषमायाश्च सायुधाश्चामरेश्वराः।
धनंजयं समेष्यन्ति संग्रामे युधि पैतृकम्॥९॥

इसके सिवा पाण्डवोंका जो अनेक देवताओंसे जुड़ा है, इसलिये वे यम आदि देवता युधिष्ठिर आदिके बुलानेपर उनकी सहायताके लिये अवश्य पधारेंगे॥९॥

भीष्मद्रोणकृपादीनां भयादशनिसम्भवम्।
रिरक्षिषन्तः संरम्भं करिष्यन्तीति मे मतिः॥१०॥

भीष्म, द्रोण और कृप आदिके भयसे पाण्डवोंकी रक्षा चाहते हुए देवतालोग भीष्म आदिपर वज्रके समान भयंकर क्रोध करेंगे, ऐसा मेरा विचार है॥१०॥

ते देवैः सहिताः पार्था न शक्याः प्रतिवीक्षितुम्।
मानुषेण नरव्याघ्रा वीर्यवन्तोऽस्त्रपारगाः॥११॥

नरश्रेष्ठ अस्त्रविद्याके पारङ्गत और पराक्रमी तो हैं ही, देवताओंका सहयोग भी प्राप्त कर चुके हैं। अतः कोई मनुष्य उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता॥११॥

दुरासदं यस्य दिव्यं गाण्डीवं धनुरुत्तमम्।
वारुणौ चाक्षयौ दिव्यौ शरपूर्णौ महेषुधी॥१२॥
वानरश्च ध्वजो दिव्यो निःसङ्गो धूमवद्गतिः।
रथश्च चतुरन्तायां यस्य नास्ति समः क्षितौ॥१३॥
महामेघनिभश्चापि निर्घोषः श्रूयते जनैः।
महाशनिसमः शब्दः शात्रवाणां भयङ्करः॥१४॥
यं चातिमानुषं वीर्ये कृत्स्नो लोको व्यवस्यति।
देवानामपि जेतारं यं विदुः पार्थिवा रणे॥१५॥
शतानि पञ्च चैवेषून् यो गृह्णन्निव दृश्यते।
निमेषान्तरमात्रेण मुञ्चन् दूरं च पातयन्॥१६॥
यमाह भीष्मो द्रोणश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च।
मद्रराजस्तथा शल्यो मध्यस्था ये च मानवाः॥१७॥
युद्धायावस्थितं पार्थं पार्थिवैरतिमानुषैः।
अशक्यं रथशार्दूलं पराजेतुमरिंदमम्॥१८॥
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः।
सदृशं बाहुवीर्येण कार्तवीर्यस्य पाण्डवम्॥१९॥
तमर्जुनं महेष्वासं महेन्द्रोपेन्द्ररक्षितम्।
निघ्नन्तमिव पश्यामि विमर्देऽस्मिन् महाहवे॥२०॥

जिसके पास उत्तम एवं दुर्धर्ष दिव्य गाण्डीव धनुष है, वरुणके दिये हुए बाणोंसे भरे दो दिव्य अक्षय तूणीर हैं, जिसका दिव्य वानर-ध्वज कहीं भी अटकता नहीं है, धूमकी भाँति सर्वत्र गतिशील होता जा सकता है, समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर जिसके रथकी समानता करनेवाला दूसरा रथ नहीं है, जिसका घर्घर शब्द सब लोगोंको महान् मेघकी गर्जनाके समान सुनायी देता है तथा शत्रुओंके हृदयमें वज्रपातके समान भय उत्पन्न कर देता है, जिसे सब लोग अलौकिक पराक्रमी मानते हैं, सम्पूर्ण राजा भी जिसे युद्धमें देवताओंको भी पराजित करनेमें समर्थ समझते हैं, जो पलक मारते-मारते पाँच सौ बाणोंको हाथमें लेता, छोड़ता और दूरस्थ लक्ष्यपर भी मार गिराता है, किंतु यह सब करते समय कोई भी जिसे देख नहीं पाता है, जिसके विषयमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य तथा तटस्थ मनुष्य भी यही कहते हैं कि युद्धके लिये खड़े हुए उस नरश्रेष्ठ अर्जुनको परास्त करना अमानुषिक शक्ति रखनेवाले भूमिपालोंके लिये भी असम्भव है, जो एक वेगसे पाँच सौ बाण चलाता है तथा जो बाहुबलमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान है, इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी उस महाधनुर्धर पाण्डुनन्दन अर्जुनको मैं इस महासमरमें शत्रुसंहार करता हुआ-सा देख रहा हूँ॥१२—२०॥

इत्येवं चिन्तयन् कृत्स्नमहोरात्राणि भारत।
अनिद्रो निःसुखश्चास्मि कुरूणां शमचिन्तया॥२१॥

भारत! मैं दिन-रात यही सब सोचते-सोचते नींद नहीं ले पाता हूँ, कुरुवंशियोंमें कैसे शान्ति बनी रहे—इस

किनारे लेना ठीक [illegible] है

क्षमावतोऽयं सुमहान् कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।
नाशयेत् कलहस्तस्मात् शाम्यन्तु मे न विग्रहः ॥
सम्मतो मे सदा पार्थैः नित्यं पाण्डुसुतैः [illegible] ।
कुरूणां हि सदा मान्यं पाण्डवानां हिताभिसारात् ॥

कौरवोंके लिये यह महान् विनाशका अवसर उपस्थित हुआ है। यदि [illegible] कलहका अन्त करनेके लिये [illegible] [illegible] तथा [illegible] नहीं है तो मुझे [illegible] किसी ही बात [illegible] अच्छी लगती है। कुन्तीपुत्रोंके साथ युद्ध छेड़ना ठीक नहीं है। मैं [illegible] पाण्डवोंका कौरवोंके [illegible] हितकारी मानता हूँ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये षष्टितमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

[illegible] श्लोक मिलाकर कुल [illegible] श्लोक हैं

दाक्षिणात्य अधिक पाठके [illegible] श्लोक मिलाकर कुल [illegible] श्लोक हैं

एकषष्टितमोऽध्यायः

दुर्योधनद्वारा आत्मप्रशंसा

वैशम्पायन उवाच

विदुरैतद् वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ।
आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह बात सुनकर अत्यन्त असहिष्णु दुर्योधनने [illegible] भारी क्रोध करके पुनः इस प्रकार कहा—

अशक्या देवसचिवाः पार्थाः स्युरिति यद् भवान् ।
मन्यते तद् भयं व्येतु भवतो राजसत्तम ॥

नृपश्रेष्ठ! आप जो यह मानते हैं कि कुन्तीके पुत्रोंको जीतना असम्भव है, क्योंकि देवता उनके सहायक हैं, यह डर [illegible] है। आपके मनसे यह भय निकल जाना चाहिये।

अकामद्वेषसंयोगाद् द्रोहाल्लोभाच्च भारत ।
उपेक्षया च भावानां देवा देवत्वमाप्नुवन् ॥

भरतनन्दन! काम, राग, द्वेष, मोह, [illegible] और [illegible] [illegible] इन दोषोंसे रहित होनेके कारण तथा दूषित भावोंकी उपेक्षा कर देनेके कारण ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया है।

इति द्वैपायनो व्यासो नारदश्च महातपाः ।
जामदग्न्यश्च रामो नः कथामकथयत् पुरा ॥

यह बात पूर्वकालमें [illegible] [illegible] महातपस्वी नारदजी तथा जमदग्निनन्दन परशुरामजीने हमलोगोंको बतायी थी।

नैव मानुषवद् देवाः प्रवर्तन्ते कदाचन ।
कामात् क्रोधात् तथा लोभाद् द्वेषाच्च भरतर्षभ ॥

भरतश्रेष्ठ! देवता मनुष्योंकी भाँति काम, क्रोध, लोभ और द्वेषवश किसी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते हैं।

यदि ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि ।
कामयोगात् प्रवर्तेरन् न पार्था दुःखमाप्नुयुः ॥

यदि अग्नि, वायु, धर्म, इन्द्र तथा दोनों अश्विनीकुमार कामनाके अधीन होकर [illegible] कार्योंमें प्रवृत्त होने लगें, तब तो कुन्तीपुत्रोंको कभी दुःख उठाना ही नहीं पड़ता।

तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात् कथञ्चन ।
दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद् भावेषु भारत ॥

अतः भरतनन्दन! आप किसी प्रकार भी ऐसी चिन्ता न करें; क्योंकि देवता सदा दिव्य भावों—शम आदिकी ही अपेक्षा रखते हैं, काम, क्रोध आदि आसुरभावोंकी नहीं।

अथ चेत् कामसंयोगाद् द्वेषो लोभश्च लक्ष्यते ।
देवेषु देवप्रामाण्यान्नैव तद् विक्रमिष्यति ॥

यदि देवताओंमें कामनावश द्वेष और लोभ लक्षित होता है तो उनमें देवत्वका अभाव हो जानेसे शास्त्र-प्रमाणके अनुसार [illegible] प्रभाव नहीं दिखा सकेगा; क्योंकि देवोंमें देवभावकी प्रधानता है।

मयाभिमन्त्रितः शश्वज्जातवेदाः प्रशाम्यति ।
दिधक्षुः सकलाँल्लोकान् परिक्षिप्य समन्ततः ॥

ऐसा तो मुझमें भी [illegible] है ही। यदि मैं अभिमन्त्रित कर दूँ तो सम्पूर्ण लोकोंको जलाकर भस्म कर डालनेकी इच्छासे [illegible] हुई आग भी सब ओरसे सिमटकर बुझ जाती है।

यद् वा परमकं तेजो येन युक्ता दिवौकसः ।
ममाप्यनुपमं भूयो देवेभ्यो विद्धि भारत ॥

भारत! स्वर्गवासी देवता जिस परम तेजसे युक्त हैं, उससे भी अनुपम तेज मुझे देवताओंसे ही प्राप्त हुआ है, यह आप अच्छी तरह जान लें।

विदीर्यमाणां वसुधां गिरीणां शिखराणि च ।
लोकस्य पश्यतो राजन् स्थापयाम्यभिमन्त्रणात् ॥

राजन्! मैं सब लोगोंके देखते-देखते विदीर्ण होती हुई

पृथ्वी तथा फटकर गिरते हुए पर्वत-शिखरोंको भी मन्त्रबलसे स्तम्भित करके इच्छानुसार स्थापित कर सकता हूँ ॥ १२ ॥

चलनात् केवलस्यास्य जङ्गमस्थावरस्य च।
विनाशाय समुत्पन्नं घोरं महाशनम्॥
अश्मवर्षं च वायुं च शमयामीह नित्यशः।
जगतः पश्यतोऽभीक्ष्णं भूतानामनुकम्पया॥ १३ ॥

इस चेतन-अचेतन और स्थावर-जङ्गम जगत्‌के विनाशके लिये प्रकट हुए बड़े-बड़े ओलोंसहित भयंकर शिलावृष्टि अथवा आँधीको मैं सदा समस्त प्राणियोंपर दया करके सबके देखते-देखते यहीं शान्त कर सकता हूँ ॥ १३ ॥

स्तम्भितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः।
देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता॥ १४ ॥

मेरे द्वारा स्तम्भित किये हुए जलके ऊपर रथ और पैदल सेनाएँ चल सकती हैं। एकमात्र मैं ही देवता और असुर जातियोंको प्रकट करनेमें समर्थ हूँ ॥ १४ ॥

अक्षौहिणीभिर्यान् देशान् यामि कार्येण केनचित्।
तत्रापो मे प्रवर्तन्ते यत्र यत्राभिकामये॥

मैं किसी कार्यके उद्देश्यसे जिन-जिन देशोंमें अक्षौहिणी सेनाएँ लेकर जाता हूँ, उनमें जहाँ-जहाँ मेरी इच्छा होती है, उन सभी स्थानोंमें मेरे इच्छानुसार जल प्रवाहित होने लगता है ॥ १५ ॥

भयानि विषये राजन् व्यालादीनि न सन्ति मे।
मन्त्रगुप्तानि भूतानि न हिंसन्ति भयंकराः॥ १६ ॥

मेरे राज्यमें सर्प आदि भयंकर जीव-जन्तु नहीं हैं। यदि कोई भयानक प्राणी हो भी तो वे मेरे मन्त्रोंद्वारा सुरक्षित जीव-जन्तुओंकी कभी हिंसा नहीं करते हैं।

निकामवर्षी पर्जन्यो राजन् विषयवासिनाम्।
धर्मिष्ठाश्च प्रजाः सर्वा ईतयश्च न सन्ति मे॥ १७ ॥

महाराज! मेरे राज्यमें रहनेवाली प्रजाओंके लिये मेघ इच्छानुसार जल बरसाता है। मेरी सारी प्रजा धर्मपरायण है तथा मेरे राज्यमें अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि किसी प्रकारका भी उपद्रव नहीं है।

अश्विनौ वायुरग्निश्च मरुद्भिः सह वृत्रहा।
धर्मश्चैव मया द्विष्टान् नोत्सहन्तेऽभिरक्षितुम्॥

जिससे मैं द्वेष रखता हूँ, उसकी रक्षा करनेका साहस अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, मरुद्गणोंसहित इन्द्र तथा धर्म भी नहीं कर सकते।

यदि ह्येते समर्थाः स्युर्मद्द्विषस्त्रातुमोजसा।
न स्म त्रयोदश समाः पार्था दुःखमवाप्नुयुः॥ १९ ॥

यदि ये लोग बलपूर्वक मेरे शत्रुओंकी रक्षा करनेमें समर्थ होते तो कुन्तीके पुत्र तेरह वर्षोंतक कष्ट नहीं भोगते।

न मे देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः।
शक्तास्त्रातुं मया द्विष्टं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ २० ॥

पिताजी! मैं आपसे यह सत्य कहता हूँ कि देवता, गन्धर्व, असुर तथा राक्षस भी मेरे शत्रुकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं।

यदभिध्याम्यहं शश्वच्छुभं वा यदि वाशुभम्।
नैतद् विपन्नपूर्वं मे मित्रेष्वरिषु चोभयोः॥ २१ ॥

मैं अपने मित्रों और शत्रुओं—दोनोंके विषयमें शुभ या अशुभ जो भी चिन्तन करता हूँ, वह पहले कभी निष्फल नहीं हुआ है।

भविष्यतीदमिति वा यद् ब्रवीमि परंतप।
नान्यथा भूतपूर्वं तत् सत्यवागिति मां विदुः॥ २२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज! मैं जो बात मुँहसे कह देता हूँ कि यह इसी प्रकार होगा, मेरा वह कथन पहले कभी मिथ्या नहीं हुआ है। इसीलिये लोग मुझे सत्यवादी मानते हैं।

लोकसाक्षिकमेतन्मे माहात्म्यं दिक्षु विश्रुतम्।
आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघया नृप॥ २३ ॥

राजन्! मेरा यह माहात्म्य सब लोगोंका प्रत्यक्ष देखा हुआ है और सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसिद्ध है। मैंने आपको आश्वासन देनेके लिये ही इसकी यहाँ चर्चा की है, आत्मश्लाघा करनेके लिये नहीं।

न ह्यहं श्लाघनो राजन् भूतपूर्वः कदाचन।
असदाचरितं ह्येतद् यदात्मानं प्रशंसति॥ २४ ॥

महाराज! आजसे पहले मैंने कभी भी आत्मप्रशंसा नहीं की है; क्योंकि मनुष्य जो अपनी प्रशंसा करता है, वह अच्छे पुरुषोंका काम नहीं है।

पाण्डवांश्चैव मत्स्यांश्च पाञ्चालान् केकयैः सह।
सात्यकिं वासुदेवं च श्रोतासि विजितान् मया॥ २५ ॥

आप किसी दिन सुनेंगे कि मैंने पाण्डवोंको, मत्स्यदेशके योद्धाओंको, केकयोंसहित पाञ्चालोंको तथा सात्यकि और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको भी जीत लिया है।

सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः।
तथैव ते विनङ्क्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः॥ २६ ॥

जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर सब प्रकारसे अपना अस्तित्व खो बैठती हैं, उसी प्रकार वे पाण्डव आदि योद्धा मेरे पास आनेपर अपने कुल-परिवारसहित नष्ट हो जायँगे ॥ २६ ॥

परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम।
परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते॥ २७ ॥

मेरी बुद्धि उत्तम है, तेज उत्कृष्ट है, बल-पराक्रम महान् है, विद्या बड़ी है तथा उद्योग भी सबसे बढ़कर है। इन सभी बातोंमें पाण्डवोंकी अपेक्षा मुझमें अधिक है॥ २७॥

पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा।
अस्त्रेषु यत् प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते॥ २८॥

पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, शल्य तथा शल—ये लोग अस्त्रोंके विषयमें जो कुछ जानते हैं, वह सब मुझमें विद्यमान है॥ २८॥

इत्युक्त्वा संजय क्षुद्रः कर्णपृष्ठतः भारत।
ज्ञात्वा युयुत्सो कार्याणि प्राप्तकालमरिंदम॥ २९॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले जनमेजय! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर भरतनन्दन धृतराष्ट्र युद्धकी इच्छा रखनेवाले दुर्योधनके अभिप्रायको समझकर उस समयके समयोचित प्रश्न किया॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि दुर्योधनवाक्ये एकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें दुर्योधनवाक्यविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६१॥

द्विषष्टितमोऽध्याय

कर्णकी आत्मप्रशंसा, भीष्मके द्वारा उसपर आक्षेप, कर्णका सभा त्यागकर जाना और भीष्मका उसके प्रति पुनः आक्षेपयुक्त वचन कहना

वैशम्पायन उवाच

तथा तु पृच्छन्तमतीव पार्थान्
वैचित्रवीर्यं तमचिन्तयित्वा।
उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं
प्रहर्षयन् संसदि कौरवाणाम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विचित्रवीर्यनन्दन धृतराष्ट्रको पहलेकी ही भाँति कुन्तीकुमार अर्जुनके विषयमें बारंबार प्रश्न करते देख उनकी कोई परवा न करके कर्णने कौरव-सभामें दुर्योधनको हर्ष प्रदान करते हुए कहा॥ १॥

मिथ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं
रामात् कृतं ब्रह्ममयं पुरस्तात्।
विज्ञाय तेनास्मि तदैवमुक्त-
स्तवान्तकाले प्रतिभास्यतीति॥ २॥

राजन्! मैंने पूर्वकालमें झूठे ही अपनेको ब्राह्मण बताकर परशुरामजीसे जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त कर लिया था, उसे उन्होंने मेरा यथार्थ परिचय जानकर उसी समय कह दिया—'कर्ण! अन्तकाल आनेपर तुम्हें इस ब्रह्मास्त्रका स्मरण नहीं रहेगा'॥ २॥

महापराधे ह्यपि संनतेन
महर्षिणाहं गुरुणा च शप्तः।
शक्तः प्रदग्धुं ह्यपि तिग्मतेजाः
ससागरामप्यवनिं महर्षिः॥ ३॥

यद्यपि मेरे द्वारा उन महर्षिका महान् अपराध हुआ था, तथापि उन गुरुदेवने जो मुझे शाप नहीं दिया, यह उनका मेरे ऊपर बहुत बड़ा अनुग्रह है; अन्यथा वे प्रचण्ड तेजस्वी महामुनि समुद्रसहित सारी पृथ्वीको भी दग्ध कर सकते हैं॥ ३॥

प्रसादितं ह्यस्य मया मनोऽभू-
च्छुश्रूषया स्वेन च पौरुषेण।
तदस्ति चास्त्रं मम सावशेषं
तस्मात् समर्थोऽस्मि ममैष भारः॥ ४॥

मैंने अपनी सेवा तथा पुरुषार्थसे उनके मनको प्रसन्न कर लिया था। वह ब्रह्मास्त्र अब भी मेरे पास है; मेरी आयु भी अभी शेष है; अतः मैं पाण्डवोंको जीतनेमें समर्थ हूँ। यह सारा भार मुझपर छोड़ दिया जाय॥ ४॥

निमेषमात्रात् तमृषेः प्रसाद-
मवाप्य पाञ्चालकरूषमत्स्यान्।
निहत्य पार्थान् सह पुत्रपौत्रै-
र्लोकानहं शस्त्रजितान् प्रपत्स्ये॥ ५॥

महर्षि परशुरामजीकी कृपासे पाकर मैं पलकमात्रमें पाञ्चाल, करूष तथा मत्स्यदेशीय योद्धाओंको और पुत्र-पौत्रोंसहित कुन्तीकुमारोंको मारकर शस्त्रोंद्वारा जीते हुए पुण्यलोकोंमें जाऊँगा॥ ५॥

पितामहस्तिष्ठतु ते समीपे
द्रोणश्च सर्वे च नरेन्द्रमुख्याः।
यथाप्रधानेन बलेन गत्वा
पार्थान् हनिष्यामि ममैष भारः॥ ६॥

पितामह भीष्म आपके ही पास रहें, आचार्य द्रोण तथा सभी मुख्य-मुख्य भूपाल भी आपके ही समीप रहें। मैं अपनी प्रधान सेनाके साथ जाकर अकेला ही सब कुन्तीकुमारोंको मार डालूँगा; यह सारा भार मुझपर रहा॥ ६॥

एवं ब्रुवाणं तमुवाच भीष्मः
किं कत्थसे कालपरीतबुद्धे।

न कर्म जानासि यथा प्रधानं
हते हता स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः ॥ ७ ॥

कर्णने ऐसी बातें कहते देख भीष्मजीने उससे कहा—कर्ण! क्यों अपनी बातोंकी डींग हाँक रहा है? काल पहुँचा है, अतएव तेरी बुद्धिका नाश हो गया है। क्या तू नहीं जानता कि तुझमें इस प्रधान वीरके मारे जानेपर सारे दुर्योधनादि ही मुख्यतया मारे जायँगे।

यद् खाण्डवं दाहयता कृतं हि
कृष्णद्वितीयेन धनञ्जयेन।
श्रुत्वैव तत् कर्म नियन्तुमात्मा
शक्यस्त्वया वै सह बान्धवेन ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णसहित अर्जुनने खाण्डववनका दाह करते समय जो पराक्रम किया था, उसे सुनकर ही अपने हित चाहनेवाले तुझे अपने मनको वशमें रखना उचित था।

या चापि शक्तिस्त्रिदशाधिपस्ते
दत्ता महात्मा भगवान् महेन्द्रः।
भस्मीकृतां तां समरे विशीर्णां
चक्राहतां द्रक्ष्यसि केशवेन ॥ ९ ॥

देवेश्वर महात्मा भगवान् इन्द्रने तुझे जो शक्ति प्रदान की है, वह भगवान् केशवके चक्रसे टूटकर चूर-चूर हो रणभूमिमें छिन्न-भिन्न हुई तू अपनी आँखों देख लेगा।

यस्ते शरः सर्पमुखो विभाति
सदाग्र्यमाल्यैर्महितः प्रयत्नात्।
स पाण्डुपुत्राभिहतः शरौघैः
सह त्वया यास्यति कर्ण नाशम् ॥ १० ॥

कर्ण! जो तेरा सर्पमुख बाण चमकता है और जिसकी तू प्रयत्नपूर्वक उत्तम पुष्पमाला आदि श्रेष्ठ वस्तुओंद्वारा पूजा किया करता है, वह पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाण-समूहोंसे छिन्न-भिन्न होकर तेरे साथ ही नष्ट हो जायगा।

बाणस्य भौमस्य च कर्ण हन्ता
किरीटिनं रक्षति वासुदेवः।
यस्त्वादृशानां च गरीयसां च
हन्ता रिपूणां तुमुले प्रगाढे ॥ ११ ॥

कर्ण! बाणासुर और भौमासुरका वध करनेवाले वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किरीटधारी अर्जुनकी रक्षा करते हैं, जो कि घोर तथा तुमुल युद्धमें तेरे-जैसे अथवा उससे भी बढ़कर शत्रुओंका विनाश कर सकते हैं।

कर्ण उवाच

असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्त-
स्तथा च भूयांश्च ततो महात्मा।



अहं यदुक्तः परुषं तु किंचित्
पितामहस्तस्य फलं शृणोतु ॥ १२ ॥

कर्ण बोला—इसमें संदेह नहीं कि वृष्णिकुलके स्वामी महात्मा श्रीकृष्णका जैसा प्रभाव बताया गया है, वे वैसे ही हैं, बल्कि उससे भी बढ़कर हैं। परंतु मेरे प्रति जो किंचित् कठोरवचनका प्रयोग किया गया है, उसका परिणाम स्वयं देख। यह पितामह भीष्म मुझसे सुन लें।

न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये
पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम्।
त्वयि प्रशान्ते तु मम प्रभावं
द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः ॥ १३ ॥

मैं अपने अस्त्र-शस्त्र रख देता हूँ। अब कभी पितामह मुझे इस सभामें अथवा युद्धभूमिमें ही देखेंगे। भीष्म! आपके शान्त हो जानेपर ही सब भूपाल रणभूमिमें मेरा प्रभाव देखेंगे।

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान्
हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम।
भीष्मस्तु दुर्योधनमेव राजन्
मध्ये कुरूणां प्रहसन्नुवाच ॥ १४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर महाधनुर्धर कर्ण सभा त्यागकर अपने घर चला गया। उस समय भीष्मने कौरवसभामें ठठाकर हँसते हुए दुर्योधनसे कहा।

सात्यकिश्च किल सूतपुत्र
कस्मात् स भाव विनिहत कमलाम्
व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्त्वा
लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात्

सूतपुत्र कर्ण है । सात्यकिके निकलते पहले पाण्डवों को जीतनेकी प्रतिज्ञा करते तत युद्ध ... महान् और सब कैसे सम्भाल सकता था अब तुमलोग पाण्डवसेनाके व्यूहका सामना करनेके लिये अपनी सेनाका भी व्यूह ... युद्ध कर और परस्पर एक दूसरेके ... भीमसेनके हाथों सारे संसारका संहार देखो।

आवन्त्यकालिङ्गजयद्रथेषु
चेदिष्वजे निहते वाह्लिके
अहं हनिष्यामि सदा परेषां
सहस्रशस्त्राणुतसहं ... भीमान्

... कलिङ्ग ... वाह्लीक ... हो गए तो मैं सदा ...

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्व ... धृतराष्ट्रवाक्य विषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अवश्य हो पाण्डवोंके ... अर्जुन ... सहित ... ।

पञ्च ग्रामे भगवानागमिष्यति
... कृतवास्तव्यवान्
... ।
वैचित्रवीर्यस्य ... ॥

... भगवान् ... सुन्दरता ... सहायक ... धर्म और ... ।

तथोक्तवाक्ये नृपतौ ... भीष्म
निक्षिप्य ... सदा च कर्णे
विचित्रवीर्यस्य सुतोऽल्पबुद्धि
दुर्योधनः शान्तनवं बभाषे

... भीष्मजीने यह बात कही और कर्ण हथियार ... हो ... तब ... बुद्धिवाले ... शान्तनुनन्दन भीष्मसे ... कहा

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

दुर्योधनद्वारा अपने पक्षकी प्रबलताका वर्णन करना और विदुरका दमकी महिमा बताना

दुर्योधन उवाच

समवाना मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम्
कथमेकान्ततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम्

दुर्योधन बोला — पितामह ! मनुष्योंमें हम और पाण्डव ... समान स्थान हैं, सबका जन्म भी एक ही कुलमें हुआ है; फिर आप यह कैसे मानते हैं कि युद्धमें एकमात्र कुन्तीकुमारोंकी ही विजय होगी ?

वयं च तेऽपि तुल्या वै वीर्येण च पराक्रमे
समेन वयसा चैव प्रातिभेन श्रुतेन च

... पराक्रम ... प्रतिभा और शास्त्रज्ञान इन सभी दृष्टियोंसे हमलोग और पाण्डव समान ही हैं।

अस्त्रेण योधमुख्या च शीघ्रत्वे कौशले तथा
सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः

अस्त्र-शस्त्र, योद्धाओंके समूह, हाथोंकी फुर्ती या युद्धकौशलमें हम और ... से ही हैं; सभी समान जातिके हैं और सब-के-सब मनुष्ययोनिमें ही उत्पन्न हुए हैं।



पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम्

नाद भवति न ग्लेनो न हृष्ये न च धार्ष्ट्ये ॥ ५
अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समागमे

बादमें यहां सभामें आ आप बहुत बात हैं कि विजय कुन्तीपुत्रोंके दो दोनों आप द्रोणाचार्य कृपाचार्य बाह्लिक तथा अन्य राजाओंसे पराक्रमपूर्वक भयोग करके युद्धका आरम्भ नहीं कर रहा हूँ

अहं चत्वरेऽन्तः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे
पाण्डवान् समरे पञ्च हनिष्याम शितैः शरैः

मैं विकर्ण पुत्र कर्ण तथा मेरा भाई दुःशासन हम तीन ही मिलकर युद्धभूमिमें पांचों पाण्डवोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालेंगे

ततो राजन् महायज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ६
ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च

राजन् तदनन्तर प्रचुर दक्षिणावाले विविध महायज्ञोंका अनुष्ठान करके गाय घोड़े और धन द्वारा मैं ब्राह्मणोंको तृप्त करूँगा

यदा परिकरिष्यन्ति ऐषीकानिव तान्तुना
भर्तारिवाम्भिव जले बाहुभिर्लोमकं रथ ॥ ७
पश्यन्नस्ते परान् तत्र रथनागसमाकुलान्
तदा दर्पं विमोक्ष्यन्ति पाण्डवाः स च केशव ॥

जैसे व्याध हरिणको घास या सरकंडेसे पकड़कर बांधते हैं और जैसे जलका प्रवाह कर्णधाररहित नौका रोकेवाँ गरजता हुआ देता है इसी प्रकार जब मैं समरभूमि पाण्डवोंको छिन्न भिन्न करूँगा उस समय और हाथियोंसे भरी हुई गदा विशाल वाहिनीको भी देखते हुए वे पाण्डव और वह श्रीकृष्ण सब अपना अहंकार त्याग देंगे

विदुर उवाच

१६ निःश्रेयसं भासुरैरसा विशिष्टतरौ विन
ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः

विदुरने कहा सदाचार जाननेवाले वृद्ध पुरुष कहते हैं कि इस लोकमें दम ही कल्याणका परम साधन है ब्राह्मणके लिये तो विशेषरूपसे है यही सनातन धर्म है

नस्य दान क्षमा सिद्धिर्यथावदुपपद्यते
दमो दानं तपो ज्ञानमधीतं चानुवर्तते ॥

जो दमयुक्त पुरुष है उसका दान क्षमा और सिद्धिका यथार्थ लाभ प्राप्त होता है क्योंकि दम ही दान तपस्या ज्ञान और स्वाध्यायका सम्पादन करता है

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उत्तमम्
विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विन्दते महत् ॥ १ ॥

तेजकी वृद्धि करता है दम पवित्र एवं उत्तम साधन है दमसे निष्पाप एवं बढ़े हुए तेजसे सम्पन्न पुरुष परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है

क्रव्यादेभ्य इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम्
येषां च प्रतिषेधार्थं क्षत्रं सृष्टं स्वयम्भुवा ॥ २ ॥

जैसे मांसभोजी हिंसक पशुओंसे लोग सदा डरते रहते हैं उसी प्रकार अजितेन्द्रिय पुरुषोंसे सभी प्राणियोंको भय बना रहता है जिनको हिंसा आदि दुष्कर्मोंसे रोकनेके लिये ब्रह्माजीने क्षत्रिय जातिकी सृष्टि की है

आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम्
तस्य लिङ्गं प्रवक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ॥ ३

चार आश्रमोंमें दमको ही उत्तम व्रत कहा गया है जिन गुणोंके समुदायसे दम होता है उनके अनुसरणका कारण बन जाता है उनका प्रकार हानेवाले चिह्नोंका मैं वर्णन करता हूँ

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम्
इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ ४
अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता
एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषः स्मृतः ॥ ५

जिस पुरुषमें क्षमा धैर्य अहिंसा समदर्शिता सत्य सरलता इन्द्रियसंयम धीरता मृदुता लज्जा स्थिरता उदारता सन्तोष और श्रद्धा—ये गुण विद्यमान हैं वह इन्द्रियविजयी माना गया है

कामो लोभश्च दर्पश्च मन्युर्निद्रा विकत्थनम्
मान ईर्ष्या च शोकश्च नैतद् दान्तो निषेवते
अजिह्ममशठं शुद्धमेतद् दान्तस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

जितेन्द्रिय पुरुष काम लोभ अभिमान क्रोध निद्रा आत्मश्लाघा मान ईर्ष्या तथा शोक—इन दुर्गुणोंको अपने पास नहीं फटकने देता कुटिलता और शठताका अभाव तथा आत्मशुद्धि यह जितेन्द्रिय पुरुषका लक्षण है ६

अलोलुपस्त्वल्पेप्सुः कामानामविचिन्तिता
समुद्रकल्पः पुरुषः स दान्तः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥

जो निर्लोभ थोड़ेमें सन्तुष्ट रहनेवाला भोगोंका चिन्तन न करनेवाला तथा समुद्रके समान गम्भीर है वह पुरुष इन्द्रियसंयमी कहा गया है

सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद् बुधः
प्राप्येह लोके सम्मानं सुगतिं प्रेत्य गच्छति ॥

अच्छे आचारवाले शीलवान् प्रसन्नचित्त तथा आत्मज्ञानी विद्वान् हैं वह इस जगत्में सम्मान पाकर मृत्युके पश्चात् उत्तम गतिका भागी होता है

अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तम ॥ १९ ॥

जिसे समस्त प्राणियोंसे निर्भयता प्राप्त हो गयी है तथा जिससे सभी प्राणियोंका भय दूर हो गया है, वह परिपक्व बुद्धिवाला पुरुष मनुष्योंमें श्रेष्ठ कहा गया है ॥ १९ ॥

सर्वभूतहितो मैत्रस्तथासर्वोद्वेजको जपन् ।
समुद्र इव गम्भीरः प्रज्ञातृप्तः प्रसीदति ॥ २० ॥

जो सम्पूर्ण भूतोंका हित चाहनेवाला और सबके प्रति मैत्रीभाव रखनेवाला है, उससे किसी भी पुरुषको उद्वेग नहीं प्राप्त होता है। जो समुद्रके समान गम्भीर एवं उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न है, वही परम शान्तिको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

कर्मणाऽऽचरितं पूर्वं सद्भिराचरितं च यत् ।
तदेवास्थाय मोदन्ते ज्ञात्वा शमपरायणाः ॥ २१ ॥

जो कर्म पूर्वकालसे आचरित है तथा इस लोकमें साधु पुरुषोंके द्वारा जिसका आचरण किया गया है, उसका आश्रय लेकर शमपरायण पुरुष सदा आनन्दमग्न रहते हैं ॥ २१ ॥

नैष्कर्म्यं वा समास्थाय ज्ञानतृप्तो जितेन्द्रियः ।
कालाकाङ्क्षी चरँल्लोके ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २२ ॥

अथवा जो ज्ञानसे तृप्त जितेन्द्रिय पुरुष नैष्कर्म्यका आश्रय लेकर कालकी प्रतीक्षा करता हुआ मनोवांछनाओंको लोकमें विचरता रहता है, वह ब्रह्मभावका पात्र होनेमें समर्थ होता है ॥ २२ ॥

शकुनीनामिवाकाशे पदं नैवोपलभ्यते ।
तथा प्रज्ञानतृप्तस्य मुनेर्वर्त्म न दृश्यते ॥ २३ ॥

जैसे आकाशमें पक्षियोंके चरणचिह्न नहीं दिखायी देते हैं, वैसे ही ज्ञानतृप्त मुनिका मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता है अर्थात् समझमें नहीं आता है ॥ २३ ॥

उत्सृज्य वा गृहान् यस्तु मोक्षमेवाभिमन्यते ।
लोकास्तेजोमयास्तस्य कल्पन्ते शाश्वता दिवि ॥ २४ ॥

गृहस्थाश्रमको त्यागकर मोक्षको ही आदर देता है, उसके लिये स्वर्गलोकमें तेजोमय सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि विदुरवाक्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें विदुरवाक्यविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

विदुरका कौटुम्बिक कलहसे हानि बताते हुए धृतराष्ट्रको सन्धिकी सलाह देना

विदुर उवाच

शकुनीनामिहार्थाय पाशं भूमावयोजयत् ।
कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम ॥ १ ॥

विदुरजी कहते हैं—तात! हमने पूर्वपुरुषोंके मुखसे सुन रखा है कि किसी समय एक चिड़ीमारने चिड़ियोंको फँसानेके लिये पृथ्वीपर एक जाल फैलाया ॥ १ ॥

तस्मिन् द्वौ शकुनौ बद्धौ युगपत् सहचारिणौ ।
तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ ॥ २ ॥

उस जालमें दो ऐसे पक्षी एक साथ फँस गये, जो सदा साथ-साथ उड़ने और विचरनेवाले थे। वे दोनों पक्षी उस समय जालको लेकर आकाशमें उड़ चले ॥ २ ॥

तौ विहायसमाक्रान्तौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा ।
अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥ ३ ॥

चिड़ीमार उन दोनोंको आकाशमें उड़ते देखकर भी खिन्न या हताश नहीं हुआ। वे जिधर-जिधर गये, उधर-उधर ही वह उनके पीछे दौड़ता रहा ॥ ३ ॥

तथा तमनुधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम् ।
आश्रमस्थो मुनिः कश्चिद् ददर्शाथ कृताह्निकः ॥ ४ ॥

उन दिनों उस वनमें कोई मुनि रहते थे। वे उस समय संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके आश्रममें ही बैठे हुए थे। उन्होंने पक्षियोंको पकड़नेके लिये उनका पीछा करते हुए उस व्याधको देखा ॥ ४ ॥

तावन्तरिक्षगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम् ।
श्लोकेनानेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥ ५ ॥

कुरुनन्दन! उन आकाशचारी पक्षियोंके पीछे शीघ्रतापूर्वक भूमिपर पैदल दौड़नेवाले उस व्याधसे मुनिने निम्नांकित श्लोकके अनुसार प्रश्न किया ॥ ५ ॥

विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन् प्रतिभाति मे ।
प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि ॥ ६ ॥

'अरे व्याध! मुझे यह बात बड़ी विचित्र और आश्चर्यजनक जान पड़ती है कि तू आकाशमें उड़ते हुए इन दोनों पक्षियोंके पीछे पृथ्वीपर पैदल दौड़ रहा है' ॥ ६ ॥

शाकुनिक उवाच

पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम ।
यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥ ७ ॥

व्याध बोला—मुने! ये दोनों पक्षी आपसमें मिल

गये हैं। अब मरे पक्ष आपसमें लिये जा रहे हैं। जब ये कहीं-कहीं झगड़ने लगेंगे, वहीं मेरे वशमें आ जायँगे॥

विदुर उवाच

तौ विषममनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसंधितौ।
विपक्षौ च तदुर्वीं पृथिव्यां संनिपेततुः ॥ ८ ॥

विदुरजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर कुछ ही देरमें कालके वशीभूत हुए वे दोनों दुर्बुद्धि पक्षी आपसमें झगड़ने लगे और लड़ते-लड़ते पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८॥



तौ युध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ।
उपसृत्यापरिज्ञातो जग्राह शकुनिस्तदा ॥ ९ ॥

जब वे क्रोधमें भरकर मौतके फंदेमें पड़े हुए वे दोनों पक्षी आपसमें जूझने लगे, उसी समय व्याधने चुपचाप उनके पास आकर उन दोनोंको पकड़ लिया॥ ९॥

एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्।
तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहात् ॥ १० ॥

इसी प्रकार जो कुटुम्बीजन धन-सम्पत्तिके लिये आपसमें कलह करते हैं, वे युद्ध करके उन्हीं दोनों पक्षियोंकी भाँति शत्रुओंके वशमें पड़ जाते हैं॥ १०॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रश्नोऽथ समागमः।
एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ ११ ॥

साथ बैठकर भोजन करना, आपसमें प्रेमसे वार्तालाप करना, एक दूसरेके सुख-दुःखको पूछना और सदा मिलते-जुलते रहना—ये ही भाई-बन्धुओंके काम हैं, परस्पर विरोध करना कदापि उचित नहीं है॥ ११॥

ये स्म काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते।
सिंहगुप्तमिवारण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते ॥ १२ ॥

जो शुद्ध हृदयवाले मनुष्य समय-समयपर बड़े-बूढ़ोंकी सेवा एवं सङ्ग करते रहते हैं, वे सिंहसे सुरक्षित वनके समान दूसरोंके लिये दुर्धर्ष हो जाते हैं (शत्रु उनके पास आक्रमण नहीं करते हैं)॥ १२॥

येऽर्थं सततमासाद्य दीना इव समासते।
श्रियं ते सम्प्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ ॥ १३ ॥

भरतश्रेष्ठ! जो धनको पाकर भी सदा दीनोंके समान तृष्णासे पीड़ित रहते हैं, वे (आपसमें कलह करके) अपनी सम्पत्ति शत्रुओंको दे डालते हैं॥ १३॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १४ ॥

भरतकुलभूषण धृतराष्ट्र! जैसे जलते हुए काठ अलग-अलग कर दिये जानेपर जल नहीं पाते, केवल धुआँ देते हैं और परस्पर मिल जानेपर प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार कुटुम्बीजन आपसकी फूटके कारण अलग-अलग रहनेपर अशक्त हो जाते हैं तथा परस्पर संगठित होनेपर बलवान् एवं तेजस्वी होते हैं॥ १४॥

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं गिरौ मया।
श्रुत्वा तदपि कौरव्य यथा श्रेयस्तथा कुरु ॥ १५ ॥

कौरवनन्दन! पूर्वकालमें किसी पर्वतपर मैंने जैसा देखा था, उसके अनुसार यह एक दूसरी बात बता रहा हूँ। इसे भी सुनकर आपको जिसमें अपनी भलाई जान पड़े, वही कीजिये॥ १५॥

वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम्।
ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजम्भकवातिकैः ॥ १६ ॥

एक समयकी बात है, हम बहुत-से भीलों और देवोपम ब्राह्मणोंके साथ उत्तर दिशाके गन्धमादन पर्वतपर गये थे। हमारे साथ जो ब्राह्मण थे, उन्हें मन्त्र-तन्त्रादिरूप विद्या और ओषधियोंके सेवन आदिका बड़ा भरोसा था॥ १६॥

कुञ्जभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम्।
दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १७ ॥

सम्पूर्ण गन्धमादन पर्वत सब ओरसे कुञ्जवन-सा जान पड़ता था। वहाँ दिव्य ओषधियाँ प्रकाशित हो रही थीं। सिद्ध और गन्धर्व उस पर्वतपर निवास करते थे॥ १७॥

तत्रापश्याम वै सर्वे मधु पीतकमाक्षिकम्।
मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसम्मितम् ॥ १८ ॥

वहाँ हम सब लोगोंने देखा, पर्वतकी एक दुर्गम गुफामें जिसमें कोई वृक्ष-लिनाए न होनेके कारण गिरनेकी ही अधिक

गम्भधगना करती है यह मधुधाप है। यह मक्खियोंका तैयार किया हुआ नहीं था। अथवा न मुझर्मे ममान कण न और न यह देखनेमें पहलेके समान जान पड़ता था।

आशीविषै रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम्।
यत् प्राप्य पुरुषो मर्त्योऽप्यमरत्वं नियच्छति ॥ १९ ॥
अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा।
इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधकाः ॥ २० ॥

भयंकर विषधर सर्प उस मधुकी रक्षा करते थे। कुबेरको वह मधु अत्यन्त प्रिय था। हमारे साथी औषधजीवी ब्राह्मण लोग कह रहे थे कि इस मधुको पाकर मरणधर्मा मनुष्य भी अमरत्व प्राप्त कर लेता है। अंधेको आँखें मिल जाती हैं और बूढ़ा भी जवान हो जाता है।

ततः किरातास्तद् दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते।
विनेशुर्विषमे तस्मिन् ससर्पे गिरिगह्वरे ॥ २१ ॥

महाराज! उस समय उस मधुको अमूल्य गुणयुक्त और उसे प्राप्त देख भीलोंने उसे पानेकी चेष्टा की, परंतु सर्पोंसे भरी हुई उस दुर्गम गुफामें जाकर वे सब के-सब नष्ट हो गये।

तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति।
मधु पश्यति सम्मोहात् प्रपातं नानुपश्यति ॥ २२ ॥

इसी प्रकार आपका यह पुत्र दुर्योधन अकेला ही इस पृथ्वीका उपभोग करना चाहता है। यह मोहवश केवल मधुको ही देखता है, भावी पतन या विनाशकी ओर इसकी दृष्टि नहीं जाती है।

दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना।
न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम् ॥ २३ ॥

रणभूमिमें सव्यसाची अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखता है, परंतु मैं इसमें वैसा अर्जुनके समान तेज या पराक्रम नहीं देखता।

एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता।
भीष्मद्रोणप्रभृतयः संत्रस्ताः साधुयायिनः ॥ २४ ॥
विराटनगरे भग्नाः किं तत्र तव दृश्यताम्।
प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव ॥ २५ ॥

जिन्होंने अकेले ही रथपर बैठकर सारी पृथ्वीपर विजय पायी है, विराटनगरमें लड़ाई करने गये हुए भीष्म और द्रोण जैसे महान् योद्धाओंको भी जिन्होंने भयभीत करके भगा दिया है, उनके सामने आपका पुत्र क्या पराक्रम कर सकता है? यह तो देखिये, आज भी वह वीर आपकी भी ओर ही प्रतीक्षा कर रहा है और आपकी ओरसे यह कौरवोंका सारा अपराध क्षमा कर सकता है।

द्रुपदो मत्स्यराजश्च संक्रुद्धश्च धनंजयः।
न शेषयेयुः समरे वायुयुक्ता इवाग्नयः ॥ २६ ॥

राजा द्रुपद, मत्स्यराज विराट और क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन—ये तीनों वायुके सहारे पाकर प्रज्वलित हुई त्रिविध अग्नियोंके समान युद्धभूमिमें आक्रमण करेंगे, तब किसीको जीवित न छोड़ेंगे।

अङ्के कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम्।
युध्यतोर्हि द्वयोर्युद्धे नैकान्तेन भवेज्जयः ॥ २७ ॥

महाराज धृतराष्ट्र! आप राजा युधिष्ठिरको अपनी गोदमें बैठा लीजिये, क्योंकि जब दोनों ओरसे युद्ध छिड़ जायगा, तब विजय किसकी होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि विदुरवाक्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें विदुरवाक्यविषयक चौंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वगः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—बेटा दुर्योधन! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो। तुम इस समय अनजान बटोहीके समान कुमार्गको ही सुमार्ग समझ रहे हो।

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां यत् तेजः प्रमिमीषसि।
पञ्चानामिव भूतानां महतां लोकधारिणाम् ॥ २ ॥

यही कारण है कि तुम सम्पूर्ण लोकोंके आधारस्वरूप पाँच महाभूतोंके समान पाँचों पाण्डवोंके तेजको नष्ट करनेकी इच्छा कर रहे हो।

युधिष्ठिरं हि कौन्तेयं परं धर्ममिहास्थितम्।
परां गतिमसम्प्रेक्ष्य न त्वं जेतुमिहार्हसि ॥ ३ ॥

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बड़े उत्तम धर्मका आश्रय लेकर रहते हैं। तुम मृत्युको प्राप्त हुए बिना उन्हें जीत लोगे, यह कदापि सम्भव नहीं है।

भीमसेनं च कौन्तेयं यस्य नास्ति समो बले ।
रणान्तकं तर्जयसे महावातमिव द्रुमः ॥ ४ ॥

जैसे वृक्ष प्रचण्ड आँधीको ललकारे, उसी प्रकार तुम संग्राममें यमराजके समान भयंकर भीमसेनको ललकार रहे हो, जिनके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं है। इससे तुम अपने विनाशका आह्वान करते हो ॥ ४ ॥

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव ।
युधि गाण्डीवधन्वानं को नु युध्येत बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

जैसे पर्वतोंमें मेरु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त शस्त्रधारियोंमें गाण्डीवधारी अर्जुन श्रेष्ठ हैं। उनसे कौन बुद्धिमान् मनुष्य रणभूमिमें युद्ध करनेका साहस करेगा? ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः कमिवाद्य न शातयेत् ।
शत्रुमध्ये शरान् मुञ्चन् देवराडशनीमिव ॥ ६ ॥

जैसे देवराज इन्द्र वज्र छोड़ते हैं, उसी प्रकार पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न शत्रुओंके बीच बाणोंकी वर्षा करता है। वह आज किसे छिन्न-भिन्न नहीं कर डालेगा? ॥ ६ ॥

सात्यकिश्चापि दुर्धर्षः सम्मतोऽन्धकवृष्णिषु ।
ध्वंसयिष्यति ते सेनां पाण्डवेयहिते रतः ॥ ७ ॥

अन्धक और वृष्णिवंशके सम्माननीय योद्धा सात्यकि भी दुर्धर्ष वीर हैं। वह सदा पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहता है। (युद्ध छिड़नेपर) वह तुम्हारी समस्त सेनाका संहार कर डालेगा ॥ ७ ॥

यः पुनः प्रतिमानेन त्रींल्लोकानतिरिच्यते ।
तं कृष्णं पुण्डरीकाक्षं को नु युध्येत बुद्धिमान् ॥ ८ ॥

जो तुलनामें तीनों लोकोंसे भी बढ़कर हैं, उन कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके साथ कौन बुद्धिमान् मनुष्य युद्ध करेगा? ॥ ८ ॥

एकतो ह्यस्य दाराश्च ज्ञातयश्च सबान्धवाः ।
आत्मा च पृथिवी चेयमेकतश्च धनंजयः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णके लिये एक ओर स्त्री, कुटुम्बीजन, भाई-बन्धु, अपना शरीर और यह सारी पृथ्वी है तथा दूसरी ओर अकेला अर्जुन है (अर्थात् वे अर्जुनके लिये इन सबका त्याग कर सकते हैं) ॥ ९ ॥

वासुदेवोऽपि दुर्धर्षो यतात्मा यत्र पाण्डवः ।
अविषह्यं पृथिव्यापि तद् बलं यत्र केशवः ॥ १० ॥

जहाँ अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले दुर्धर्ष वीर पाण्डुपुत्र अर्जुन हैं, वहीं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण भी रहते हैं और जिस सेनामें साक्षात् श्रीकृष्ण विराजमान रहते हों, उसका वेग समस्त भूमण्डलके लिये भी असह्य हो जाता है ॥ १० ॥

तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् ।
वृद्धं शान्तनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम् ॥ ११ ॥

तात! तुम श्रेष्ठ पुरुषों तथा तुम्हारे हितकी बात बतानेवाले सुहृदोंके कथनानुसार चलो। वृद्ध शान्तनुनन्दन भीष्म तुम्हारे पितामह हैं। तुम उनकी प्रत्येक बात सहन करो ॥ ११ ॥

मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम् ।
द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ १२ ॥
एते ह्यपि यथैवाहं मन्तुमर्हसि तांस्तथा ।
सर्वे धर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ॥ १३ ॥

मेरी बात भी सुनो। मैं कौरवोंके हितकी ही बात सोचता हूँ। मेरी ही भाँति द्रोण, कृप, विकर्ण और महाराज बाह्लीक—ये भी तुम्हारे हितैषी ही हैं। अतः तुम्हें मेरे ही समान इनका भी समादर करना चाहिये। भरतनन्दन! ये सब लोग धर्मज्ञ हैं और दोनों पक्षपर समानभावसे स्नेह रखते हैं ॥ १२-१३ ॥

यत् तद् विराटनगरे सह भ्रातृभिरग्रतः ।
उत्सृज्य गाः सुसंत्रस्तं बलं ते समशीर्यत ॥ १४ ॥
यच्चैव नगरे तस्मिञ्छ्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १५ ॥

विराटनगरमें तुम्हारे भाइयोंके आगे जो तुम्हारी समस्त सेना भयभीत हो गौओंको छोड़कर भाग खड़ी हुई थी और उस नगरमें जो एक (अर्जुन) का बहुतोंके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ सुना जाता है, वह एक ही उदाहरण (उनकी प्रशंसा और अपनी निन्दाके लिये) पर्याप्त है ॥ १४-१५ ॥

अर्जुनस्तत् तथाकार्षीत् किं पुनः सर्व एव ते ।
स भ्रातॄनभिजानीहि वृत्त्या च प्रतिपादय ॥ १६ ॥

जब वहाँ अकेले अर्जुनने इतना अद्भुत काम कर डाला, तब ये सब भाई मिलकर क्या नहीं कर सकते? अतः तुम पाण्डवोंको अपना भाई ही समझो और उनकी वृत्ति (जीविका) देकर उनके साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करो ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको अर्जुनका संदेश सुनाना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रः सुयोधनम्।
पुनरेव महाभागं संजयं पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्योधनसे ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् महाभाग धृतराष्ट्रने संजयसे पुनः प्रश्न किया ॥ १ ॥

ब्रूहि संजय यच्छेषं वासुदेवादनन्तरम्।
यदर्जुन उवाच त्वां परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

संजय! बताओ, भगवान् श्रीकृष्णके पश्चात् अर्जुनने जो अन्तिम संदेश दिया था, उसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ २ ॥

संजय उवाच

वासुदेववचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
उवाच काले दुर्धर्षो वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी बात सुनकर दुर्धर्ष वीर कुन्तीकुमार अर्जुनने उनके सुनते हुए ही यह समयोचित बात कही— ॥ ३ ॥

पितामहं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च संजय।
द्रोणं कृपं च कर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ ४ ॥
द्रौणिं च सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम्।
दुःशासनं शलं चैव पुरुमित्रं विविंशतिम् ॥ ५ ॥
विकर्णं चित्रसेनं च जयत्सेनं च पार्थिवम्।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम् ॥ ६ ॥
सैन्धवं दुःसहं चैव भूरिश्रवसमेव च।
भगदत्तं च राजानं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥ ७ ॥

ये चाप्यन्ये पार्थिवास्तत्र योद्धुं
समागताः कौरवाणां प्रियार्थम्।
मुमूर्षवः पाण्डवाग्नौ प्रदीप्ते
समानीता धार्तराष्ट्रेण होतुम् ॥ ८ ॥
यथान्यायं कौशलं वन्दनं च
समागता मद्वचनेन वाच्याः।
इदं ब्रूयाः संजय राजमध्ये
सुयोधनं पापकृतां प्रधानम् ॥ ९ ॥
अमर्षणं दुर्मतिं राजपुत्रं
पापात्मानं धार्तराष्ट्रं सुलुब्धम्।
सर्वं ममैतद् वचनं समग्रं
सहामात्यं संजय श्रावयेथाः ॥ १० ॥

संजय! तुम शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, महाराज बाह्लिक, अश्वत्थामा, सोमदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, दुःशासन, शल, पुरुमित्र, विविंशति, विकर्ण, चित्रसेन, राजा जयत्सेन, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, कुरुवंशी दुर्मुख, सिन्धुराज जयद्रथ, दुःसह, भूरिश्रवा, राजा भगदत्त, भूपाल जलसंध तथा अन्य जो-जो राजा कौरवोंका प्रिय करनेके लिये युद्धके उद्देश्यसे वहाँ एकत्र हुए हैं, जिनकी मृत्यु बहुत ही निकट है, जिन्हें दुर्योधनने पाण्डवरूपी प्रज्वलित अग्निमें होमनेके लिये बुलाया है, उन सबसे मिलकर मेरी ओरसे यथायोग्य प्रणाम आदि कहकर उनका कुशल-मङ्गल पूछना। संजय! तदनन्तर उन राजाओंकी मण्डलीमें पापाचारियोंमें प्रधान, असहिष्णु, दुर्बुद्धि, पापात्मा और अत्यन्त लोभी राजकुमार दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको मेरी कही हुई ये सारी बातें सुनाना ॥ ४—१० ॥

एवं प्रतिष्ठाप्य धनंजयो मां
ततोऽर्थवद् धर्मवच्चापि वाक्यम्।
प्रोवाचेदं वासुदेवं समीक्ष्य
पार्थो धीमाँल्लोहितान्तायताक्षः ॥ ११ ॥

इस प्रकार मुझे हस्तिनापुर जानेकी अनुमति देकर, जिनके विशाल नेत्रोंका कोना कुछ लाल रंगका है, उन परम बुद्धिमान् कुन्तीकुमार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखकर यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा— ॥ ११ ॥

यथा श्रुतं ते वदतो महात्मनो
मधुप्रवीरस्य वचः समाहितम्।
तथैव वाच्यं भवता हि मद्वचः
समागतेषु क्षितिपेषु सर्वशः ॥ १२ ॥

संजय! मधुवंशके प्रमुख वीर महात्मा श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त होकर जो बात कही है और तुमने उसे जैसा सुना है, वह सब ज्यों-की-त्यों सुना देना। फिर समस्त समागत भूपालोंकी मण्डलीमें मेरी यह बात कहना— ॥ १२ ॥

शराग्निधूमे रथनेमिनादिते
धनुःस्रुवेणास्त्रबलापहारिणा।
यथा न होमः क्रियते महामृधे
समेत्य सर्वे प्रयतध्वमादृताः ॥ १३ ॥

राजाओ! महान् युद्धरूपी यज्ञमें जहाँ बाणोंके टकरानेसे पैदा होनेवाला आगका धुआँ फैलता रहता है, रथोंकी घर्घराहट ही वेदमन्त्रोंकी ध्वनिका काम देती है, (बाणसमूहरूपी अग्निमें आहुति देनेवाले स्रुककी भाँति) अस्त्रबलमें ही फेंकनेवाले धनुषरूपी स्रुवाके द्वारा मुझे जिस प्रकार कौरवसैन्यरूपी हविष्यकी आहुति न देनी पड़े, उसके लिये तुम सब लोग आदरपूर्वक प्रयत्न करो ॥ १३ ॥

न चेदिदं प्रयच्छथ(?)मभीप्सितमार्जवो
युधिष्ठिरस्य समभीप्सितं स्वकम् ।
तथापि च स्तोकमहं(?)निकुञ्जरान्
दिवा नियुणाग्रहितां(?) सितैः शरैः ॥ १५ ॥

यदि तुमलोग धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिरका मनचाहा अभीष्ट राज्य उन्हें नहीं दोगे तो मैं तुम्हें अपने तीखे बाणोंद्वारा घोड़े, पैदल तथा हाथीसवारोंसहित यमराजकी अमङ्गलमयी दिशामें भेज दूँगा ॥ १५ ॥

ततोऽहमाभाष्य तथा धनंजयं
चतुर्भुजं चापि नमस्य केशवम् ।
जवेन सम्प्राप्त इहामरद्युते
तवान्तिकं प्रापयितुं वचो महत् ॥ १६ ॥

देवताओंके समान तेजस्वी महाराज! इसके बाद मैं अर्जुनसे विदा ले चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनका वह महत्त्वपूर्ण संदेश आपके पास पहुँचानेके लिये बड़े वेगसे तुरंत यहाँ चला आया हूँ ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि संजयवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें संजयवाक्यविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्याय

धृतराष्ट्रके पास व्यास और गान्धारीका आगमन तथा संजयका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें कुछ कहनेका आग्रह

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधने धार्तराष्ट्रे तद् वचो नाभिनन्दति ।
तूष्णीम्भूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने जब श्रीकृष्ण और अर्जुनके उन वचनोंका कुछ भी आदर नहीं किया और सब लोग चुप्पी साधकर रह गये, तब वहाँ बैठे हुए समस्त नरश्रेष्ठ भूपालगण उठकर चले गये ॥ १ ॥

उत्थितेषु महाराज पृथिव्यां सर्वराजसु ।
रहिते संजयं राजा परिप्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ २ ॥
आशंसमानो विजयं तेषां पुत्रवशानुगः ।
आत्मनश्च परेषां च पाण्डवानां च निश्चयम् ॥ ३ ॥

महाराज! भूमण्डलके सब राजा जब सभाभवनसे उठकर चले गये, तब अपने पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले तथा उन्हींके वशमें रहनेवाले राजा धृतराष्ट्रने एकान्तमें अपने, दूसरोंके और पाण्डवोंके पक्षपातियोंके निश्चित मत जाननेके लिये संजयसे कुछ और बात पूछना आरम्भ की ॥ २-३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

गावल्गणे ब्रूहि नः सारफल्गु
स्वसेनायां यावदिहास्ति किंचित् ।
त्वं पाण्डवानां निपुणं वेत्थ सर्वं
किमेषां ज्यायः किमु तेषां कनीयः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—गावल्गणकुमार संजय! हमारी सेनामें जो कुछ भी बल या दुर्बलता है, उसका हमसे वर्णन करो। इसी प्रकार पाण्डवोंकी सारी बातें तुम अच्छी तरह जानते हो, अतः बताओ, उनके बलमें क्या अधिक है और क्या कम है? ॥ ४ ॥

त्वमेतयोः सारवित् सर्वदर्शी
धर्मार्थयोर्निपुणो निश्चयज्ञः ।
स मे पृष्टः संजय ब्रूहि सर्वं
युध्यमानाः कतरेऽस्मिन् न सन्ति ॥ ५ ॥

संजय! तुम इन दोनों पक्षोंके सारासारको जाननेवाले, सबपर दृष्टि रखनेवाले, धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण तथा निश्चित सिद्धान्तके ज्ञाता हो; अतः मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम सब बातें बताओ। युद्धमें प्रवृत्त होनेपर किस पक्षके लोग इस लोकमें जीवित नहीं रह सकेंगे? ॥ ५ ॥

संजय उवाच

न त्वां ब्रूयां रहिते जातु किंचि-
दसूया हि त्वां प्रविशेत राजन् ।
आनयस्व पितरं महाव्रतं
गान्धारीं च महिषीमाजमीढ ॥ ६ ॥

संजयने कहा—राजन्! मैं एकान्तमें आपसे कभी कोई बात नहीं कह सकता; क्योंकि ऐसा करनेसे आपके हृदयमें

दोषदर्शनकी भावना उत्पन्न होगी। अजमीढनन्दन! आप अपने महान् कल्याणके लिये व्यासजी और महारानी गान्धारीको भी यहाँ बुला लीजिये ॥

गौ तेऽसुतौ विदितौ नरेन्द्र
धर्मज्ञौ तौ निपुणौ निश्चयज्ञौ।
तयोस्तु त्वां संनिधौ तद् वदेयं
कृत्स्नं मतं केशवपार्थयोर्यत् ॥ ७ ॥

नरेन्द्र! ये दोनों धर्मके ज्ञाता, विचारकुशल तथा सिद्धान्तका निश्चय करनेवाले हैं। अतः ये आपकी दोषदृष्टिका निवारण करेंगे। उन दोनोंके समीप मैं आपको श्रीकृष्ण और अर्जुनका जो विचार है, वह पूरा-पूरा बता दूँगा ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्ते च गान्धारी व्यासश्चात्राजगाम ह।
आनीतौ विदुरेणेह सभां शीघ्रं प्रवेशितौ ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! संजयके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्रके संदेशसे गान्धारी तथा महर्षि व्यास वहाँ आये। विदुरजी उन्हें वहाँ बुलाकर ले आये और तत्काल सभामें शीघ्र ही उनका प्रवेश कराया ॥

ततस्तन्मतमाज्ञाय संजयस्यात्मजस्य च।
अभ्युपेत्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर परम ज्ञानी श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने संजय तथा अपने पुत्र धृतराष्ट्रके उस विचारको जानकर इस प्रकार कहा ॥



व्यास उवाच

संपृच्छते धृतराष्ट्राय संजय
आचक्ष्व सर्वं यावदेषोऽनुयुङ्क्ते।
सर्वं यावद् वेत्थ तस्मिन् यथावद्
याथातथ्यं वासुदेवेऽर्जुने च ॥ १० ॥

व्यासजीने कहा—संजय! धृतराष्ट्र तुमसे जो कुछ जानना चाहते हैं, वह [illegible] इन्हें बताओ। ये भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके विषयमें जो कुछ पूछते हैं, वह सब जितना तुम जानते हो, उसके अनुसार यथार्थरूपसे कहो ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रव्यासगान्धारीसमागमे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें धृतराष्ट्र [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] श्लोक ५ [illegible]

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा बतलाना

संजय उवाच

अर्जुनो वासुदेवश्च धन्विनौ परमार्चितौ।
कामादन्यत्र सम्भूतौ सर्वाभावाय संमितौ ॥ १ ॥

संजयने कहा—राजन्! अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों बड़े सम्मानित धनुर्धर हैं। वे यद्यपि सदा सब कुछ जानने और करनेमें समर्थ हैं, तथापि लोकव्यवहारकी कामनासे पृथक्-पृथक् प्रकट हुए हैं और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ॥

व्यामान्तरं समास्थाय यथायुक्तं मनस्विनः।
चक्रं तद् वासुदेवस्य मायया वर्तते विभो ॥ २ ॥

प्रभो! मनस्वी भगवान् वासुदेवका सुदर्शन नामक चक्र उनकी मायासे [illegible] छिपा होकर उनके साथ रहता है, उसमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है। वह भगवान्‌के संकल्पके अनुसार [illegible] तेजस्वी रूप धारण करके शत्रुसंहारके लिये प्रवृत्त होता है ॥

सापह्नवं कौरवेषु पाण्डवानां सुसम्मतम्।
सारासारबलं ज्ञातुं तेजःपुञ्जावभासितम् ॥ ३ ॥

भौतिकोंपर उनका प्रभाव असर नहीं है। पाण्डवोंको यह अवस्था सिद्ध है। वह उनके सार असारभूत सबको जो वैसे मनुष्य और तेज पुरुषसे प्रकाशित होनेवाला है ॥ ३ ॥

नरकं शम्बरं चैव कंसं चैद्यं च माधवः।
जितवान् घोरसंकाशान् क्रीडन्निव महामनाः ॥ ४ ॥

महामनस्वी भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त भयंकर प्रतीत होनेवाले नरकासुर, शम्बरासुर, कंस तथा शिशुपालको भी खेल ही-खेलमें जीत लिया।

पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः।
मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी ॥ ५ ॥

पूर्ण स्वाधीन एवं सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अपने संकल्पसे ही भूलोक, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकको भी अपने अधीन कर लेते हैं।

भूयो भूयो हि यद् राजन् पृच्छसे पाण्डवान् प्रति।
सारासारबलं ज्ञातुं तत् समासेन मे शृणु ॥ ६ ॥

राजन्! आप जो बार-बार पाण्डवोंके [illegible] जाननेके लिये उनके विषयमें पूछते रहते हैं, वह सब संक्षेपसे मुझसे सुनिये।

एकतो वा जगत् कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः।
सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ ७ ॥

एक ओर सम्पूर्ण जगत् हो और दूसरी ओर अकेले भगवान् श्रीकृष्ण हों तो सारभूत बलकी दृष्टिसे भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण जगत्से बढ़कर सिद्ध होंगे।

भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः।
न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण अपने संकल्पमात्रसे इस सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर सकते हैं; परंतु उन्हें भस्म करनेमें यह सारा जगत् मिलकर भी समर्थ नहीं हो सकता।

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ ९ ॥

जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता है, उसी ओर भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं और जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिवं च पुरुषोत्तमः।
विचेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः ॥ १० ॥

समस्त प्राणियोंके आत्मा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण खेल-सा करते हुए ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकका संचालन करते हैं।

स कृत्वा पाण्डवान् सत्रं लोकं सम्मोहयन्निव।
अधर्मनिरतान् मूढान् दग्धुमिच्छति ते सुतान् ॥ ११ ॥

वे इस समय समस्त लोकोंको मोहित-सा करते हुए पाण्डवोंके निमित्तसे अधर्मपरायण मूढ़ पुत्रोंको भस्म करना चाहते हैं।

कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयतेऽनिशम् ॥ १२ ॥

वे भगवान् केशव ही अपनी योगशक्तिसे निरन्तर कालचक्र, जगच्चक्र तथा युगचक्रको घुमाते रहते हैं ॥ १२ ॥

कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च।
ईशते भगवानेकः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

मैं आपसे यह सत्य कहता हूँ कि एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही काल, मृत्यु तथा चराचर जगत्के स्वामी एवं शासक हैं।

ईशन्नपि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः।
कर्माण्यारभते कर्तुं कीनाश इव वर्धनः ॥ १४ ॥

महायोगी श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी एवं ईश्वर होते हुए भी किसानकी भाँति सदा नये-नये कर्मोंका आरम्भ करते रहते हैं ॥ १४ ॥

तेन वञ्चयते लोकान् मायायोगेन केशवः।
ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः ॥ १५ ॥

वे केशव अपनी मायाके प्रभावसे सब लोगोंको मोहमें डाले रहते हैं, किंतु जो मनुष्य केवल उन्हींकी शरण लेते हैं, वे उनकी मायासे मोहित नहीं होते हैं।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

१ यहाँ श्रीकृष्णका [illegible] ।

एकोनसप्ततितमोऽध्याय

संजयका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णप्राप्ति एवं तत्त्वज्ञानका साधन बताना

धृतराष्ट्र उवाच

कथं त्वं माधवं वेत्थ सर्वलोकमहेश्वरम्।
कथमेनं न वेदाहं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! मधुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण

समस्त लोकोंके महान् ईश्वर हैं। इस बातको तुम कैसे जानते हो? और मैं इन्हें इस रूपमें क्यों नहीं जानता? इसका रहस्य मुझे बताओ॥१॥

संजय उवाच

भद्रं राजन् न ते विद्या मम विद्या न हीयते।
विद्याहीनस्तमोध्वस्तो नाभिजानाति केशवम्॥२॥

संजयने कहा—राजन्! आपको तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं है और मेरी ज्ञानदृष्टि कभी लुप्त नहीं होती है। जो मनुष्य तत्त्वज्ञानसे शून्य है और जिसकी बुद्धि अज्ञानान्धकारसे घिर गयी है, वह श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता॥२॥

विद्यया तात जानामि त्रियुगं मधुसूदनम्।
कर्तारमकृतं देवं भूतानां प्रभवाप्ययम्॥३॥

तात! मैं ज्ञानदृष्टिसे ही प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाश करनेवाले त्रियुगस्वरूप भगवान् मधुसूदनको, जो सबके कर्ता हैं, परंतु किसीके कार्य नहीं हैं, जानता हूँ॥३॥

धृतराष्ट्र उवाच

गावल्गणेऽत्र का भक्तिर्या ते नित्या जनार्दने।
यया त्वमभिजानासि त्रियुगं मधुसूदनम्॥४॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! भगवान् श्रीकृष्णमें जो तुम्हारी नित्य भक्ति है, उसका स्वरूप क्या है? जिससे तुम त्रियुगस्वरूप भगवान् मधुसूदनको जानते हो॥४॥

संजय उवाच

मायां न सेवे भद्रं ते न वृथा धर्ममाचरे।
शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद् वेद्मि जनार्दनम्॥५॥

संजयने कहा—महाराज! आपका कल्याण हो। मैं कभी माया (छल-कपट)का सेवन नहीं करता, व्यर्थ (आडम्बरपूर्ण) धर्मका आचरण नहीं करता। भगवद्भक्तिसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, अतः मैं शास्त्रके वचनोंसे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपको यथावत् जानता हूँ॥५॥

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन हृषीकेशं प्रपद्यस्व जनार्दनम्।
आप्तो नः संजयस्तात शरणं गच्छ केशवम्॥६॥

यह सुनकर धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा—बेटा दुर्योधन! संजय हमलोगोंका विश्वासपात्र है। इसलिये तुम भी हृषीकेश जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जाओ॥६॥

दुर्योधन उवाच

भगवान् देवकीपुत्रो लोकांश्चेन्निहनिष्यति।
प्रवदन्नर्जुने सख्यं नाहं गच्छेऽद्य केशवम्॥७॥

दुर्योधन बोला—पिताजी! यद्यपि देवकीनन्दन श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं और वे इच्छा करते ही सम्पूर्ण लोकोंका संहार कर डालेंगे, तथापि वे अपनेको अर्जुनका मित्र बताते हैं, अतः मैं उनकी शरणमें नहीं जाता॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच

अवागगान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः।
ईर्ष्युर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः॥८॥

तब धृतराष्ट्रने गान्धारीसे कहा—गान्धारी! तुम्हारा दुर्बुद्धि, दुरात्मा, ईर्ष्यालु और अभिमानी पुत्र श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके नरककी ओर जा रहा है॥८॥

गान्धार्युवाच

ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन् वृद्धानां शासनातिग।
ऐश्वर्यजीविते हित्वा पितरं मां च बालिश॥९॥
वर्धयन् दुर्हृदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन्।
निहतो भीमसेनेन स्मर्तासि वचनं पितुः॥१०॥

गान्धारी बोली—दुरात्मा दुर्योधन! तू ऐश्वर्यकी इच्छा रखकर अपने बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है? अरे मूर्ख! इस ऐश्वर्य, जीवन, पिता और मुझ माताको भी त्यागकर शत्रुओंकी प्रसन्नता और मेरा शोक बढ़ाता हुआ जब तू भीमसेनके हाथों मारा जायगा, उस समय तुझे पिताकी बातें याद आयेंगी॥९-१०॥

व्यास उवाच

प्रियोऽसि राजन् कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे।
यस्य ते संजयो दूतो यस्त्वां श्रेयसि योक्ष्यते॥११॥

तदनन्तर व्यासजीने कहा—राजा धृतराष्ट्र! मेरी बात सुनो। तुम श्रीकृष्णके प्रिय हो, क्योंकि तुम्हें संजय-जैसा दूत मिला है, जो तुम्हें कल्याणके साधनमें लगायेगा॥११॥

जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम्।
शुश्रूषमाणमेकाग्रं मोक्ष्यते महतो भयात्॥१२॥

यह संजय पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णको जानता है और उनका जो परमतत्त्व है, उसे भी समझता है। यदि तुम एकाग्रचित्त होकर इसकी बातें सुनोगे तो यह तुम्हें महान् भयसे मुक्त कर देगा॥१२॥

वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः।
सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः॥१३॥
यमस्य वशमायान्ति काममूढाः पुनः पुनः।
अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः॥१४॥

विचित्रवीर्यकुमार! जो मनुष्य अपने धनसे सन्तुष्ट नहीं हैं और काम आदि विविध प्रकारके बन्धनोंसे बँधकर हर्ष

और कोधके वशीभूत हो रहे हैं व काममहित पुरुष अपनी महत्त्वमें [illegible] अपने [illegible] प्रेरित होकर बारंबार [illegible] आते हैं ॥ १३-१४ ॥

एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति ॥ १५ ॥

यह ज्ञानमार्ग एकमात्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। [illegible] मनीषी (ज्ञानी) पुरुष चलते हैं उस मार्गको [illegible] [illegible] मनुष्य मृत्युरूप [illegible] लाँघ जाता है और वह महात्मा पुरुष कभी इन [illegible] आसक्त नहीं होता है ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अङ्ग संजय मे शंस पन्थानमकुतोभयम् ।
येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयां शान्तिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—प्यारे संजय ! तुम मुझे वह निर्भय मार्ग बताओ जिससे चलकर मैं [illegible] इन्द्रियोंके स्वामी परम मोक्षस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकूँ ॥ १६ ॥

संजय उवाच

नाकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याज्जनार्दनम् ।
आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ॥ १७ ॥

संजयने कहा—महाराज ! जिसने अपने मनको वशमें नहीं किया है वह कभी नित्यसिद्ध परमात्मा भगवान् जनार्दनको नहीं पा सकता। अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें किये बिना दूसरा कोई [illegible] परमात्माकी प्राप्ति [illegible] नहीं हो सकता ॥ १७ ॥

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः ।
अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम् ॥ १८ ॥

[illegible] और दौड़नेवाली इन्द्रियोंका भोगोंसे [illegible] एवं सावधानीके [illegible] कर देना, प्रमाद न होना तथा किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना—ये तीन निश्चय ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके साधन हैं ॥ १८ ॥

इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः ।
बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः ॥ १९ ॥

राजन् ! आप आलस्य छोड़कर इन्द्रियोंको वशमें [illegible] तत्पर हो जाइये और आपकी बुद्धि किसी भी [illegible] हो [illegible] ॥ १९ ॥

एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम् ।
एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यान्ति मनीषिणः ॥ २० ॥

ब्राह्मणलोग इन्द्रियनिग्रहको [illegible] कहते हैं। विद्वान् ब्राह्मण इसीको ज्ञान मानते हैं। यह ज्ञान ही वह मार्ग है जिससे मनीषी पुरुष चलते हैं ॥ २० ॥

अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः ।
आगमाधिगमाद् योगाद् वशी तत्त्वे प्रसीदति ॥ २१ ॥

राजन् ! मनुष्य अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये बिना भगवान् श्रीकृष्णको नहीं पा सकते। जिसने शास्त्रज्ञान और योगके प्रभावसे अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर रखा है, वही तत्त्वज्ञान पाकर प्रसन्न होता है ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि संजयवाक्ये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें संजयवाक्यविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके विभिन्न नामोंकी व्युत्पत्तियोंका कथन

धृतराष्ट्र उवाच

भूयो मे पुण्डरीकाक्षं संजयाचक्ष्व पृच्छतः ।
नामकर्मार्थवित् तात प्राप्नुयां पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुम भगवान् श्रीकृष्णके नाम और कर्मोंका रहस्य जानते हो, अतः मेरे प्रश्नके अनुसार एक बार पुनः कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णका वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

श्रुतं मे वासुदेवस्य नामनिर्वचनं शुभम् ।
यावत् तत्राभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! मैंने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके नामोंकी मङ्गलमयी व्युत्पत्ति सुन रखी है, उसमें जितना मुझे स्मरण है, उतना बता रहा हूँ। वास्तवमें तो भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्रमाणोंकी पहुँचसे परे हैं ॥ २ ॥

वसनात् सर्वभूतानां वसुत्वाद् देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्त्वाद् विष्णुरुच्यते ॥ ३ ॥

भगवान् समस्त प्राणियोंके निवासस्थान हैं तथा वे सब भूतोंमें वास करते हैं, इसलिये 'वसु' हैं एवं देवताओंकी उत्पत्तिके स्थान होनेसे और समस्त देवता उनमें वास करते हैं, इसलिये उन्हें 'देव' कहा जाता है। अतएव उनका नाम 'वासुदेव' है, ऐसा जानना चाहिये। बृहत् अर्थात् व्यापक होनेके कारण वे ही 'विष्णु' कहलाते हैं ॥ ३ ॥

मौनाद् ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम् ।

सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः

[illegible]

अर्थात् सुखसे युक्त होनेके कारण हृषीक और [illegible] कारण [illegible] हृषीकेश करते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इन्द्रियों

कृषि [illegible] [illegible] [illegible]

विष्णुस्तद्भावयोगाच्च [illegible]

अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः

नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः

[illegible]

आनन्द [illegible] [illegible] [illegible]

कारण [illegible] [illegible]

कृष्ण [illegible]

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम्

तद्भावात्पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः

[illegible] [illegible] [illegible]

पूरणात्सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः

असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात्

सर्वस्य च सदा ज्ञानात्सर्वमेनं प्रचक्षते

[illegible]

यतः सत्त्वं न च्यवते यच्च सत्त्वान्न हीयते

सत्त्वतः सात्वतस्तस्मादार्षभादृषभेक्षणः

[illegible]

सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम्

सत्यात्सत्यं च गोविन्दस्तस्मात्सत्योऽपि नामतः

[illegible]

विष्णुर्विक्रमणाद्देवो जयनाज्जिष्णुरुच्यते

शाश्वतत्वादनन्तश्च गोविन्दो वेदनाद्गवाम्

[illegible]

न जायते जनित्र्यां यदजस्तस्मादनीकजित्

देवानां स्वप्रकाशत्वाद्दमाद्दामोदरं विभुम्

[illegible]

अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः

[illegible]

हर्षात्सुखात्सुखैश्वर्याद्धृषीकेशत्वमश्नुते

बाहुभ्यां रोदसी बिभ्रन्महाबाहुरिति स्मृतः

एवंविधो धर्मनित्यो भगवान्मधुसूदनः

आगन्ता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः

निरन्तर भक्तिपूर्वक ध्यान करनेवाले उन भगवान् मधुसूदनको ... मनसा भी श्रीकृष्णको ... कृपा करके ... उनकी मर्यादामें ... ॥ ८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि संजयवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें संजयवाक्यविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्याय

धृतराष्ट्रके द्वारा भगवद्गुणगान

धृतराष्ट्र उवाच

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय
द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे।
विभ्राजमानं वपुषा परेण
प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! जो लोग परम उत्तम कान्तिसे युक्त तथा दिशाओं-विदिशाओंको प्रकाशित करते हुए वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निकटसे दर्शन करेंगे, उन नेत्रवाले मनुष्योंके सौभाग्यकी मैं भी अभिलाषा रखता हूँ ॥ १ ॥

ईरयन्तं भारतीं भारतानाम्
अभ्यर्चनीयां शङ्करीं सृञ्जयानाम्।
बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामनिन्द्याम्
परासूनामग्रहणीयरूपाम् ॥ २ ॥

भगवान् कल्याणमय मनोहर वाणीमें ... वह भरतवंशियोंके तथा सृञ्जयोंके लिये कल्याणकारी तथा आदरणीय होगी। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंके लिये भगवान्‌की वह वाणी ग्रहणीय और अनिन्द्य होगी, परंतु जो मृत्युके निकट पहुँच चुके हैं, उनके लिये वह अग्राह्य प्रतीत होगी ॥ २ ॥

समुद्यन्तं सात्वतमेकवीरम्
प्रणेतारमृषभं यादवानाम्।
निहन्तारं क्षोभणं शात्रवाणाम्
मुष्णन्तं च द्विषतां वै यशांसि ॥ ३ ॥

अपने कुलमें अद्वितीय वीर सात्वतकुलभूषण यदुवंशियोंके नेता, शत्रुओंको क्षुब्ध करनेवाले तथा वैरियोंके यशको नष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ उदित होंगे और कौरव लोग उनका दर्शन करके धन्य हो जायँगे ॥ ३ ॥

द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता
महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम्।
ब्रुवन्तं वाचमनृशंसरूपाम्
वृष्णिश्रेष्ठं मोहयन्तं मदीयान् ॥ ४ ॥

महात्मा, शत्रुहन्ता, वरेण्य वृष्णिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण यहाँ आकर कोमल वाणी बोलेंगे और मेरे पक्षके लोगोंको मोहित करेंगे; उनको सब कौरव एकत्र होकर देखेंगे ॥ ४ ॥

ऋषिं सनातनतमं विपश्चितम्
वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम्।
अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णम्
हरिं प्रजानां भुवनस्य धाम ॥ ५ ॥

सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराणम्
अनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम्।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यम्
परं परेभ्यः शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

जो भगवान् सनातन ऋषि, ज्ञानी, वाणीके समुद्र और यतियोंके लिये कलशके समान ... अरिष्टनेमि, गरुड, सुपर्ण, हरि तथा प्रजाओं और भुवनके धाम हैं, जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो पुराणपुरुष हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो अनन्त कीर्तिसे युक्त हैं, शुक्रके धाता, अजन्मा, नित्य और परात्पर परमेश्वर हैं, उन श्रीकृष्णकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ५-६ ॥

त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रम्
देवासुराणामथ नागरक्षसाम्।
नराधिपानां विदुषां प्रधानम्
इन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

जो तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले, देवताओं, असुरों, नागों तथा राक्षसोंको भी जन्म देनेवाले हैं, तथा जो राजाओं और विद्वानोंमें प्रधान हैं, उन इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

(भगवद्यानपर्व)

द्विसप्ततितमोऽध्याय

युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे अपना अभिप्राय निवेदन करना, श्रीकृष्णका शान्तिदूत बनकर कौरव सभामें जानेके लिये उद्यत होना और इस विषयमें उन दोनोंका वार्तालाप



वैशम्पायन उवाच

सञ्जये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिर
(अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च भारत
विराटद्रुपदौ चैव केकयांश्च महारथान्
आश्वासिताश्च कृष्णेन शत्रुघ्नं कामधारणम्
अभिप्रायमहो गत्वा प्रयातु कुरुसंसदम्

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत! इधर संजयके चले जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने भीमसेन, अर्जुन, माद्रीकुमार नकुल-सहदेव, विराट, द्रुपद तथा कैकयदेशीय महारथियोंको साथ लेकर कहा—'हमलोग शत्रुदमन और शौर्य धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास चलकर उनसे कौरव सभामें जानेके लिये प्रार्थना करें।

यथा भीष्मेण द्रोणेन बाह्लीकेन च धीमता ॥
अन्यैश्च कुरुभिः सार्धं न युध्यामहि संयुगे

वे वहाँ जाकर ऐसा प्रयत्न करें, जिससे हमें भीष्म, द्रोण, बुद्धिमान् बाह्लीक तथा अन्य कुरुवंशियोंके साथ रणक्षेत्रमें युद्ध न करना पड़े।

एष नः प्रथमः कल्पः एतच्छ्रेय उत्तमम्
एवमुक्त्वा सुमनसस्तेऽभिजग्मुर्जनार्दनम्

यही हमारा पहला श्रेय है और यही हमारे लिये परम कल्याणकी बात है।' राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर वे सब लोग प्रसन्नचित्त होकर तब उन श्रीकृष्णके पास गये।

उपगम्य सह राजानो महत्या तस्थिवानरा
तदा च दुःसहाः सर्वे शक्रस्येव तथाभवन्

उन समस्त शत्रुओंके लिये दुःसह प्रतीत होनेवाले वे सभी नरश्रेष्ठ सभासद् भूपालगण पास जाकर श्रीकृष्णके निकट उसी प्रकार गये, जैसे देवता इन्द्रके पास जाते हैं।

जनार्दनं समासाद्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर ॥)
अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम् ॥ १ ॥

तदनन्तर यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ दशार्हकुलनन्दन जनार्दन श्रीकृष्णके पास पहुँचकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल
न च त्वदन्यं पश्यामि यो न आपत्सु तारयेत् ॥ २ ॥

मित्रवत्सल श्रीकृष्ण! मित्रोंकी सहायताके लिये यही उपयुक्त अवसर आया है। मैं आपके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो इस विपत्तिसे हमलोगोंका उद्धार करे ॥ २ ॥

त्वां हि माधवमाश्रित्य निर्भया मोहदर्पितम्
धार्तराष्ट्रं सहामात्यं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥ ३ ॥

माधव! आपकी शरणमें आकर हम सब लोग निर्भय हो गये हैं और व्यर्थ ही घमंड दिखानेवाले धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन तथा उसके मन्त्रियोंसे हम स्वयं युद्धके लिये ललकार रहे हैं ॥ ३ ॥

यथा हि सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीनरिंदम
तथा ते पाण्डवा रक्ष्याः पाह्यस्मान् महतो भयात् ॥ ४ ॥

शत्रुदमन! जैसे आप वृष्णिवंशियोंकी सब प्रकारकी आपत्तियोंसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आपको पाण्डवोंकी भी रक्षा करनी चाहिये। प्रभो! इस महान् भयसे आप हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

अयमस्मि महाबाहो ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।
करिष्यामि हि तत् सर्वं यत् त्वं वक्ष्यसि भारत ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो! यह मैं आपकी सेवाके लिये सर्वथा प्रस्तुत हूँ। आप जो कुछ कहना चाहते हों, कहिये। भारत! आप जो-जो कहेंगे, वह सब कार्य मैं निश्चय ही पूर्ण करूँगा ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं ते धृतराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम्।
एतद्धि सकलं कृष्ण संजयो मां यदब्रवीत् ॥ ६ ॥
तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्यात्मा विवृतान्तरः।
यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन् ॥ ७ ॥

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण! पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र क्या करना चाहते हैं, यह सब तो आपने सुन ही लिया। संजयने मुझसे जो कुछ कहा है, वह धृतराष्ट्रका ही मत है। संजय धृतराष्ट्रका अभिन्नस्वरूप होकर आया था। उसने उन्हींके मनोभावको प्रकाशित किया है। दूत अपने स्वामीकी कही हुई बातको ही दुहराता है; क्योंकि यदि वह उसके विपरीत कुछ कहता तो वध्य समझा जाता ॥ ६-७ ॥

अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति।
लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः ॥ ८ ॥

राजा धृतराष्ट्रको लोभ हो गया है, उनके मनमें पाप भर गया है; अतः वे अपने अनुरूप व्यवहार न करके राज्य दिये बिना ही हमारे साथ संधिका मार्ग ढूँढ़ रहे हैं ॥ ८ ॥

यत् तद् द्वादश वर्षाणि वनेषु व्युषिता वयम्।
छद्मना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ९ ॥
स्थाता नः समये तस्मिन् धृतराष्ट्र इति प्रभो।
नाहास्म समयं कृष्ण तद्धि नो ब्राह्मणा विदुः ॥ १० ॥

प्रभो! हम तो यही समझकर कि धृतराष्ट्र अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रहेंगे, उन्हींकी आज्ञासे बारह वर्ष वनमें रहे और एक वर्ष अज्ञातवास किया। श्रीकृष्ण! हमने अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं की है, इस बातको हमारे साथ रहनेवाले सभी ब्राह्मण जानते हैं ॥ ९-१० ॥

वृद्धो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नानुपश्यति।
वश्यत्वात् पुत्रगृद्धित्वान्मन्दस्यान्वेति शासनम् ॥ ११ ॥

परंतु राजा धृतराष्ट्र तो लोभमें डूबे हुए हैं। वे अपने धर्मकी ओर नहीं देखते हैं। पुत्रोंमें आसक्त होनेके तथा उन्हींके अधीन रहनेके कारण वे अपने मूढ़ पुत्र दुर्योधनकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥

सुयोधनमते तिष्ठन् राजास्मासु जनार्दन।
मिथ्याचरति लुब्धः सन् चरन् प्रियमिवात्मनः ॥ १२ ॥

जनार्दन! उनका मन इतना बढ़ गया है कि वे दुर्योधनकी ही रायमें चलते हैं और अपना ही प्रिय कार्य करते हुए हमारे साथ मिथ्या व्यवहार कर रहे हैं ॥ १२ ॥

इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः।
संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन ॥ १३ ॥

जनार्दन! इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात और क्या हो सकती है कि मैं अपनी माता तथा मित्रोंका भी अच्छी तरह भरण-पोषण नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

काशिभिश्चेदिपाञ्चालैर्मत्स्यैश्च मधुसूदन।
भवता चैव नाथेन पञ्च ग्रामा वृता मया ॥ १४ ॥

मधुसूदन! यद्यपि काशी, चेदि, पाञ्चाल और मत्स्यदेशके राजा हमारे सहायक हैं और आप हमलोगोंके रक्षक और स्वामी हैं, आपलोगोंकी सहायतासे हम सारा राज्य ले सकते हैं, तथापि मैंने केवल पाँच ही गाँव माँगे थे ॥ १४ ॥

अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्।
अवसानं च गोविन्द किंचिदेवात्र पञ्चमम् ॥ १५ ॥
पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा।
वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥ १६ ॥

गोविन्द! मैंने दुर्योधनसे यही कहा था कि तात! आप हमें अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और अन्तिम पाँचवाँ गाँव कोई-सा भी, जिसे आप देना चाहें, दे दें। इस प्रकार हम पाँच भाइयोंको पाँच गाँव या नगर दे दें, जिनमें हम पाँचों भाई एक साथ मिलकर रह सकें और हमारे कारण भरतवंशियोंका नाश न हो ॥ १५-१६ ॥

न च तानपि दुष्टात्मा धार्तराष्ट्रोऽनुमन्यते।
स्वाम्यमात्मनि मत्वासावतो दुःखतरं नु किम् ॥ १७ ॥

परंतु दुष्टात्मा दुर्योधन सबपर अपना ही आधिपत्य मानकर उन पाँच गाँवोंको भी देनेकी बात नहीं स्वीकार करता है। इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात हो सकती है? ॥ १७ ॥

कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृध्यतः।
लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम् ॥ १८ ॥

मनुष्य उत्तम कुलमें उत्पन्न और बूढ़ा होकर भी यदि दूसरेके धनको लेना चाहता है तो वह लोभ उसकी विचारशक्तिको नष्ट कर देता है। विचारशक्ति नष्ट होनेपर उसकी लज्जाको भी नष्ट कर देती है ॥ १८ ॥

ह्रीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हन्ति हतः श्रियम्।
श्रीर्हता पुरुषं हन्ति पुरुषस्याधनं वधः ॥ १९ ॥

नष्ट हुई लक्ष्मी धनको नष्ट कर देती है, नष्ट हुआ धर्म मनुष्यको बलपूर्वक नष्ट कर देता है और नष्ट हुई सम्पत्ति उस मनुष्यका विनाश कर देती है; क्योंकि धनका अभाव ही मनुष्यका वध है ॥ १९ ॥

अधनाद्धि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः।
अपुष्पादफलाद् वृक्षाद् यथा कृष्ण पतत्रिणः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण! धनहीन पुरुषसे उसके भाई-बन्धु, सुहृद् और ब्राह्मण भी उसी प्रकार मुँह मोड़ लेते हैं, जैसे पक्षी पुष्प और फलसे हीन वृक्षको छोड़कर चल देते हैं ॥ २० ॥

एतच्च मरणं तात यदस्मात् पतितादिव।
ज्ञातयो विनिवर्तन्ते प्रेतसत्त्वादिवासवः ॥ २१ ॥

तात! जैसे पतित मनुष्यसे जातिवाले लोग दूर भागते हैं और जैसे मृत शरीरसे प्राण निकल जाते हैं, उसी प्रकार मेरे कुटुम्बीजन भी जो मुझसे मुँह मोड़ रहे हैं, यही मेरे लिये मरण है ॥ २१ ॥

नातः पापीयसीं कांचिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत्।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ २२ ॥

जहाँ आज और कल सबेरेके लिये भोजन नहीं दिखायी देता, उस दरिद्रताको शम्बरासुरने [illegible] अवस्था नहीं है, यह शम्बरका कथन है ॥ २२ ॥

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥ २३ ॥

धनको उत्तम धर्म बताया गया है, धनमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। जगत्‌में धनी मनुष्य ही जीवन धारण करते हैं। जो निर्धन हैं, वे तो मरे हुएके ही समान हैं ॥ २३ ॥

ये धनादपकर्षन्ति नरं स्वबलमाश्रिताः।
ते धर्ममर्थं कामं च प्रमथ्नन्ति नरं च तम् ॥ २४ ॥

जो लोग अपने बलसे सिद्ध होकर किसी मनुष्यको धनसे वञ्चित कर देते हैं, वे उसके धर्म, अर्थ और काम तीनोंको नष्ट करते हैं तथा उस मनुष्यका भी नाश कर देते हैं ॥ २४ ॥

एतामवस्थां प्राप्यैके मरणं वव्रिरे जनाः।
ग्रामायैके वनायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥ २५ ॥

इस निर्धन-अवस्थाको प्राप्त कितने ही मनुष्योंने मृत्युका वरण किया है, कुछ लोग गाँव छोड़कर दूसरे गाँवमें जा बसे हैं, कितने ही वनमें चले गये हैं और कितने ही मनुष्य मरनेके लिये घरसे निकल पड़े हैं ॥ २५ ॥

उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम्।
दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥ २६ ॥

कितने लोग पागल हो जाते हैं, कुछ शत्रुओंके वश हो जाते हैं और कितने ही मनुष्य धनके लिये दूसरोंकी दासता स्वीकार कर लेते हैं ॥ २६ ॥

आपदेवास्य मरणात् पुरुषस्य गरीयसी।
श्रियो विनाशस्तद्ध्यस्य निमित्तं धर्मकामयोः ॥ २७ ॥

धन-सम्पत्तिका नाश मनुष्यके लिये भारी विपत्ति ही है। वह मृत्युसे भी बढ़कर है; क्योंकि सम्पत्ति ही मनुष्यके धर्म और कामकी सिद्धिका कारण है ॥ २७ ॥

यदस्य धर्म्यं मरणं शाश्वतं लोकवर्त्म तत्।
समन्तात् सर्वभूतानां न तदत्येति कश्चन ॥ २८ ॥

मनुष्यकी जो धर्मानुकूल मृत्यु है, वह परलोकके लिये सनातन मार्ग है। सम्पूर्ण प्राणियोंमेंसे कोई भी उस मृत्युका सब ओरसे उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥ २८ ॥

न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः।
यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखैधितः ॥ २९ ॥

श्रीकृष्ण! जो जन्मसे ही निर्धन रहा है, उसे उस दरिद्रताके कारण उतना कष्ट नहीं पहुँचता, जितना कि कल्याणमयी सम्पत्तिको पाकर सुखमें ही पले हुए पुरुषको उस सम्पत्तिसे वञ्चित होनेपर होता है ॥ २९ ॥

स तदाऽऽत्मापराधेन सम्प्राप्तो व्यसनं महत्।
सेन्द्रान् गर्हयते देवान् नात्मानं च कथंचन ॥ ३० ॥

यद्यपि वह मनुष्य उस समय अपने ही अपराधसे भारी संकटमें पड़ता है, तथापि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंकी ही निन्दा करता है, अपनेको किसी प्रकार भी दोष नहीं देता है ॥ ३० ॥

न चास्मिन् सर्वशास्त्राणि प्रतिघ्नन्ति निगर्हणाम्।
सोऽभिक्रुध्यति भृत्यानां सुहृदश्चाभ्यसूयति ॥ ३१ ॥

उस समय सम्पूर्ण शास्त्र भी उसके इस दुःखको [illegible] में समर्थ नहीं होते। वह सेवकोंपर कुपित होता और सगे सम्बन्धियोंके दोष देखने लगता है ॥ ३१ ॥

तं तदा मन्युरेवैति स भूयः सम्प्रमुह्यति।
स मोहवशमापन्नः क्रूरं कर्म निषेवते ॥ ३२ ॥

निर्धन अवस्थामें मनुष्यको केवल क्रोध आता है, जिससे वह पुनः मोहाच्छन्न हो जाता—विवेकशक्ति खो बैठता है। मोहके अधीन होकर वह क्रूरतापूर्ण कर्म करने लगता है ॥ ३२ ॥

पापकर्मात्यया चैव संकरं तेन पुष्यति।
संकरो नरकायैव सा काष्ठा पापकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार पापकर्मोंमें प्रवृत्त होनेके कारण वह वर्णसंकर सन्तानोंका पोषक होता है और वर्णसंकर केवल नरककी ही प्राप्ति कराता है। पापियोंकी यही अन्तिम गति है ॥ ३३ ॥

न चेत् प्रबुध्यते कृष्ण रणाय यमसादनम्
तस्य प्रबोध पर्वैव सज्जागुसरिष्यति ॥ ॥

श्रीकृष्ण दि मे जिसमें कल्याण हो ही होता
हो नम मैं निश्चय ही करता जाता है कर्तव्यका
इस नेतली प्रश्न हो है जिसे प्रकाश प्राप्त है
यह निश्चय ही लक्षण आयम

प्रधानमे हि पुरुष शास्त्रमाख्यातमवेक्षते
शास्त्रनिष्ठ पुरुषार्थं तथा श्रीरघुनन्दन
श्रीमान् हि पाप प्रद्वेष्टि तथा श्रीरभिवर्धन
श्रीमान् सन्नामुद् भवति यावद् भवति पूरुष

श्री मा इनसर वह केवल शास्त्रवचनोंपर ही
दृष्टि ना है उनमें निष्ठा होने वह पुन भए सकता
है धमस उस नष्ट है जा धर्मका साथ हो भा जाती
है आधार कारण पूर नष्ट उसी पर हो
जाता है अत नष्ट करना उन लगती है जो
जब ही धा है वह जाता ही पुरुष माना
जाता है

धर्मनित्य महात्मानो कार्ययोगाह सदा
नाधम कुशल बुद्धि न च पापे प्रवर्तते

सदा धर्म तत्पर महात्मा पुरुष धर्मनिष्ठ होकर
नित्य निरन्तर कर्मोमें रहता है वह कभी धर्ममें
मन नहीं लाता और उसम प्रवृत्त होता है

अह्रीको वा विमूढो वा नव स्त्री पुन पुमान्
नाम्याधिकारो ध अति यथा शूद्रस्तथैव स

जिन न है वह है और
पुरुष ही है का धर्म मे नहीं है वह
शूद्रके समान है

ह्रीमानवां देवांश्च पितॄन्सत्समये च
सनामृतत्व वर्जति सा वाह्य पुण्यकर्मणाम्

वह देवताओंका पितरोंकी भी
है इसका अमृतत्वको प्राप्त होता है नहीं
पुण्यात्मा श्रेष्ठ पर है

तदिद मयि ते दृष्ट प्रत्यक्ष मधुसूदन
यथा राज्यात् परिभ्रष्टो वसामि वसतीरिमा

मधुसूदन मुझमें प्रत्यक्ष देखा है कि
प्रकार राज्य और कि ने कहके मा
इन दिनों यह रहा हूं

ते वय श्रिय हातुमलं न्यायेन केनचित्
अत्र नो प्रयतमाना वधमूलेऽपि साधु तत् ॥ ८ ॥

इसलिये किसी भी न्यायसे अपनी पैतृक सम्पत्ति
का परित्याग करना योग्य नहीं है लिये यत्न करते
हुए यदि लोगोंका हो जाय तो यह भी
अच्छा ही है

तत्र न प्रथम कल्पो यद् वय ते च माधव
प्रशान्ता समभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ॥

माधव दि दूसरा इस है कि हम
और कौरव आपस सन्धि करके शान्तभाव
सम्पत्तिका सामान्यरूपसे उपभोग करें

तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया
यद् वय कौरवान् हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुम

दूसरा पक्ष यह है कि हम कौरवोंको मा
अपने अधि लें कर यह भय कुत्सित कर्मोंकी
पराकाष्ठा क्योंकि हम रण्में कितने ही निरपराध
मनुष्योंका संहार करके प्राप्त हमारी विजय हो

ये पुन स्युरसम्बद्धा अनार्या कृष्ण शत्रव
तेषामप्यवधः कार्य किं पुनर्य स्युरीदृशा

जो अनार्य हों तथा
सम्बन्ध भी न रखनेवाले उनका वध
करना उचित नहीं फिर स्वजन सुहृद और
गुरुजन ऐसे लोगोंका वध कितना बुरा है

ज्ञातयश्चैव भूयिष्ठा सहाया गुरवश्च न
तेषा वधोऽतिपापीयान् किन्नु युद्धेऽस्ति शोभनम्

हमारे पितृ विपक्षमें अधिक भाई बन्धु सहायक
और गुरुजन उनका वध बड़ा पाप है युद्धमें
अच्छी बात क्या है कुछ नहीं

पाप क्षत्रियधर्मोऽय वय च क्षत्रबन्धव
स स्वधर्मोऽप्यधर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता

क्षत्रियोंका यह धर्म पाप है हम भी
क्षत्रिय ही हैं अत धर्म हो या अधर्म
ही करना किसी दूसरी
का आश्रय भी निन्दित है

शूद्र करोति शुश्रूषा वैश्या वै पण्यजीविन
वय वधेन जीवाम कपाल ब्राह्मणैर्वृतम्

शूद्र सेवाका काम वैश्य व्यापार
करके जीविका चलाते हैं और ब्राह्मणोंने भिक्षा
मांगनेका काम चुन लिया है

क्षत्रिय क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति
श्वा श्वानं हन्ति दाशार्ह पश्य धर्मो यथागत

क्षत्रिय क्षत्रियको मारता है मछली मछलीको खाकर

जाती है और कृष्ण युद्धमें कलह ही होता है । दसाईनन्दन देखिये, ही यह सब नाश निशान करते हैं ।

युद्धे कृष्ण कलिर्नित्यं प्राणाः सीदन्ति संयुगे ।
बलं तु नीतिमात्राय हठे जयपराजयौ ॥

श्रीकृष्ण ! युद्धमें सदा कलह ही होता है और उसीके कारण प्राणोंका नाश होता है । मैं तो नीतिका ही आश्रय लेकर युद्ध करूँगा; पर दैवकी इच्छाके अनुसार जय और पराजय होती है ।

नासमुच्छन्देन भूतानां जीवितं मरणं तथा ।
नाप्यकाले सुखं प्राप्यं दुःखं वापि यदूत्तम ॥

प्राणियोंके जीवन और मरण अपनी इच्छाके अधीन नहीं हैं । यदुश्रेष्ठ ! अकालमें सुख और दुःखकी भी प्राप्ति नहीं होती ।

एको ह्यपि बहून् हन्ति घ्नन्त्येकं बहवोऽप्युत ।
शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशस्विनम् ॥

युद्धमें एक योद्धा भी बहुत-से वीरोंका संहार कर डालता है तथा बहुत-से योद्धा मिलकर भी किसी एकको ही मार पाते हैं । कभी कायर शूरवीरको मार देता है और यशस्वी पुरुष यशहीनके हाथसे मारा जाता है ।

जयो नैवोभयोर्दृष्टो नोभयोश्च पराजयः ।
तथैवापचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ ॥

[illegible] दोनों पक्षोंकी विजय होती देखी गयी है और दोनोंकी हार [illegible] । हाँ, दोनोंके धन-जनका नाश अवश्य देखा गया है । यदि कोई पक्ष पीठ दिखाकर भाग जाय तो उसे भी धन और जनकी हानि उठानी पड़ती है ।

सर्वथा वृजिनं युद्धं को घ्नन् न प्रतिहन्यते ।
हतस्य च हृषीकेश समौ जयपराजयौ ॥

इससे यह सिद्ध होता है कि युद्ध सर्वथा पापमय ही है । दूसरोंको मारनेवाला [illegible] है, जो स्वयं भी न मारा जाता हो । हृषीकेश ! युद्धमें मारे गये पुरुषके लिये विजय और पराजय समान हैं ।

पराजयश्च मरणान्मन्ये नैव विशिष्यते ।
यस्य स्याद् विजयः कृष्ण तस्याप्यपचयो ध्रुवम् ॥

श्रीकृष्ण ! मैं तो यह मानता हूँ कि पराजय मृत्युसे अच्छा नहीं है; किंतु जिसकी विजय होती है, उसे भी निश्चय ही धन-जनकी भारी हानि उठानी पड़ती है ।

अन्ततो दयितं घ्नन्ति केचिदप्यपरे जनाः ।
तस्याङ्ग बलहीनस्य पुत्रान् भ्रातॄनपश्यतः ॥
निर्वेदो जीविते कृष्ण सर्वतश्चोपजायते ।

ये ह्येव धीरा ह्रीमन्त आर्याः करुणवेदिनः ॥
त एव युद्धे हन्यन्ते यवीयान् मुच्यते जनः ।
हत्वाप्यनुशयो नित्यं परानपि जनार्दन ॥ ७ ॥

जो धीर-वीर, लज्जाशील, श्रेष्ठ और दयालु हैं, वे ही प्रायः युद्धमें मारे जाते हैं और अधम श्रेणीके मनुष्य जीवित बच जाते हैं । जनार्दन ! शत्रुओंको मारकर भी उनके लिये सदा मनमें पश्चात्ताप बना रहता है ।

अनुबन्धश्च पापोऽत्र शेषश्चाप्यवशिष्यते ।
शेषो हि बलमासाद्य न शेषमनुशेषयेत् ॥
सर्वोच्छेदे च यतते वैरस्यान्तविधित्सया ।

मारे हुए शत्रुका पीछा करना अनुबन्ध कहलाता है । यह भी एक पापपूर्ण कार्य है, क्योंकि जब मारे गये शत्रुओंमेंसे कोई शेष बचा रह जाता है, तब वह फिर बल-संग्रह करके विजयी पक्षके लोगोंका जड़-मूलसे नाश करनेका प्रयत्न करता है ।

जयो वैरं प्रसृजति दुःखमास्ते पराजितः ।
सुखं प्रशान्तः स्वपिति हित्वा जयपराजयौ ॥

विजयसे [illegible] भी [illegible] वैरकी सृष्टि करती है; पराजित पुरुष दुःखसे रहता है । जो जय और पराजयकी चिन्ता छोड़कर शान्तभावका आश्रय लेता है, वह शान्त पुरुष सुखसे सोता है ।

जातवैरश्च पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा ।
अनिर्वृतेन मनसा ससर्प इव वेश्मनि ॥

जिसने वैर बाँध लिया है, वह पुरुष सर्पयुक्त घरमें रहनेवालेकी भाँति उद्विग्नचित्त होकर सदा दुःखकी नींद सोता है ।

उत्सादयति यः सर्वं यशसा स वियुज्यते ।
अकीर्तिं सर्वभूतेषु शाश्वतीं सोऽधिगच्छति ॥

जो शत्रुके कुलमें आबालवृद्ध सभी पुरुषोंका उच्छेद कर डालता है, वह वीरोचित यशसे वञ्चित हो जाता है । वह समस्त प्राणियोंमें सदा बनी रहनेवाली अपकीर्तिका भागी होता है ।

न हि वैराणि शाम्यन्ति दीर्घकालकृतान्यपि ॥ ९ ॥
आख्यातारश्च विद्यन्ते पुमांश्चेद् विद्यते कुले ।

दीर्घकालतक मनमें दबाये रखनेपर भी वैरकी आग सर्वथा बुझ नहीं पाती; क्योंकि यदि कोई उस कुलमें जीवित है तो उससे पूर्वपरिचित वैर बतलानेवाले मनुष्य भी बहुत-से लोग मिल जाते हैं ॥ ६१ ॥

न चापि वैरं वैरेण केशव व्युपशाम्यति ।
हविषाग्निर्यथा कृष्ण भूय एवाभिवर्धते ॥ ६२ ॥

केशव! जैसे घी डालनेपर आग बुझनेके बजाय और अधिक प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार वैर करनेसे वैरकी आग शान्त नहीं होती, अपितु अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है ॥ ६२ ॥

अतोऽन्यथा नास्ति शान्तिर्नित्यमन्तरमन्ततः ॥ ६४ ॥
अन्तरं लिप्समानानामयं दोषो निरन्तरः ।

क्योंकि दोनों ओरसे एक-दूसरेका छिद्र देखते रहना बना रहता है, इसलिये दोनों पक्षोंमेंसे एकका सर्वथा नाश हुए बिना पूर्णतः शान्ति नहीं प्राप्त होती है। जो लोग छिद्र ढूँढ़ते रहते हैं, उनके सामने यह दोष निरन्तर प्रस्तुत रहता है ॥ ६४ ॥

पौरुषे यो हि बलवानाधिर्हृदयबाधनः ।
तस्य त्यागेन वा शान्तिर्मरणेनापि वा भवेत् ॥ ६५ ॥

यदि अपनेमें पुरुषार्थ है तो पूर्ववैरको याद करके जो हृदयको पीड़ा देनेवाला प्रबल सन्ताप बना रहता है, उसे मनःपूर्वक त्याग देनेसे ही शान्ति मिल सकती है अथवा मर जानेसे ही उस चिन्ताका निवारण हो सकता है ॥ ६५ ॥

अथवा मूलघातेन द्विषतां मधुसूदन ।
फलनिर्वृत्तिरिद्धा स्यात् तन्नृशंसतरं भवेत् ॥ ६६ ॥

अथवा शत्रुओंको समूल नष्ट कर देनेसे ही अभीष्ट फलकी सिद्धि हो सकती है; परंतु मधुसूदन! यह बड़ी क्रूरताका कार्य होगा ॥ ६६ ॥

या तु त्यागेन शान्तिः स्यात् तदृते वध एव सः ।
संशयाच्च समुच्छेदाद् द्विषतामात्मनस्तथा ॥ ६७ ॥

राज्यको त्याग देनेसे उसके बाद जो शान्ति मिलती है, वह भी वधके ही समान है; क्योंकि उस दशामें शत्रुओंको सदा यह संदेह बना रहता है कि ये अवसर देखकर प्रहार करेंगे और धन-सम्पत्तिसे वञ्चित होनेके कारण अपने विनाशकी सम्भावना भी रहती ही है ॥ ६७ ॥

न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम् ।
अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी ॥ ६८ ॥

अतः हमलोग न तो राज्य त्यागना चाहते हैं और न कुलके विनाशकी ही इच्छा रखते हैं। यदि नम्रता दिखानेसे भी शान्ति हो जाय तो वही उससे बढ़कर है ॥ ६८ ॥

सर्वेषां यतमानानामयुद्धमभिकाङ्क्षताम् ।
सान्त्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धमपराक्रमम् ॥ ६९ ॥

यद्यपि हम युद्धकी इच्छा न रखकर साम, दान और भेद—सभी उपायोंसे राज्य-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करते हैं, तथापि यदि हमारा सान्त्वनापूर्ण प्रयत्न व्यर्थ हुआ तो युद्ध ही हमारा प्रधान कर्तव्य होगा; उस समय पराक्रम छोड़कर हम नहीं रह सकते ॥ ६९ ॥

प्रतिघातेन सान्त्वस्य दारुणं सम्प्रवर्तते ।
तच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम् ॥ ७० ॥

जब शान्तिके प्रयत्नमें बाधा पड़ जाती है, तब भयंकर युद्ध आरम्भ हो जाता है। विद्वानोंने इस युद्धकी उपमा कुत्तोंके झगड़ेसे दी है ॥ ७० ॥

लाङ्गूलचालनं क्ष्वेडा प्रतिरावो विवर्तनम् ।
दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते ॥ ७१ ॥

कुत्ते पहले पूँछ हिलाते हैं, फिर गुर्राते और भूँकते हैं, तत्पश्चात् एक-दूसरेके निकट आते हैं, फिर दाँत दिखाना और भूँकना आरम्भ करते हैं, तत्पश्चात् उनमें युद्ध होने लगता है ॥ ७१ ॥

तत्र यो बलवान् कृष्ण जित्वा सोऽत्ति तदामिषम् ।
एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ७२ ॥

श्रीकृष्ण! उनमें जो बलवान् होता है, वही उस मांसको खाता है। उसके लिये उनमें झगड़ा हुआ था। यही दशा मनुष्योंकी है। इसमें कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ ७२ ॥

सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम् ।
अनादरोऽविरोधश्च प्रणिपाती हि दुर्बलः ॥ ७३ ॥

यह सर्वथा उचित है कि बलवानोंका दुर्बलोंके प्रति आदरबुद्धि न हो। वे उनका विरोध भी नहीं करते; दुर्बल वही है जो सदा झुकनेके लिये तैयार रहे ॥ ७३ ॥

पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति ।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च धृतराष्ट्रो जनार्दन ॥ ७४ ॥

जनार्दन! पिता, राजा और वृद्ध सर्वथा सम्मानके ही योग्य हैं; अतः धृतराष्ट्र हमारे लिये सदा माननीय एवं पूजनीय हैं ॥ ७४ ॥

कुत्तोंके युद्धमें क्रमशः सात अवस्थाएँ आती हैं। जब दो कुत्तोंको एक साथ किसी चीजकी आवश्यकता होती है, तब वे पहले एक-दूसरेको देखकर पूँछ हिलाते हैं, उसी प्रकार दो विरोधी व्यक्ति एक-दूसरेके प्रति अपना असन्तोष प्रकट करते हैं। कुत्ते भौंकते हैं, एक-दूसरेपर आक्रमण करते हैं। यह युद्धकी पहली अवस्था होती है। ... जो दाँत दिखाते हैं, वही युद्धका अन्तिम लक्षण है। फिर आमने-सामने युद्ध होता है और एक बलवान् ही कुत्तेको परास्त करता है। उसकी शक्ति ही उस मांसका उपभोग करती है, जिसके लिये सबने प्रयत्न किया है।

पृष्टवान् [illegible] पृच्छामि माधव
स पृथ्वीनाथम् [illegible] महाद्युते ॥ ७६ ॥

[illegible] इस [illegible] न [illegible] है [illegible] नहीं स्वीकार [illegible]

देवर्षि [illegible] त्वमसि [illegible]
उपलब्धागुणा [illegible] पुरुषोत्तम ॥ ७७ ॥

पुरुषोत्तम [illegible] आप [illegible] और [illegible] हैं ॥ ७७ ॥

दिव्यस्य प्रियकामश्च [illegible]
[illegible] सर्वनिश्चयवित् सुहृत् ॥

श्रीकृष्ण [illegible] क्योंकि [illegible] और [illegible] निश्चित [illegible] सुहृद् भी हैं ॥ ७८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः।
उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥ ७९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर [illegible] श्रीकृष्ण [illegible] दोनों [illegible] जाऊँगा।

शमं तत्र लभेयं चेद् युष्मदर्थमहापयन्।
पुण्यं मे सुमहद् राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥ ८० ॥

यदि [illegible] आपके स्वार्थमें किसी प्रकारकी बाधा न [illegible] दोनों [illegible] सन्धि [illegible] समझूँगा [illegible] महान् [illegible] पुण्यकर्म [illegible]

मोचयेयं मृत्युपाशात् संरब्धान् कुरुसृञ्जयान्।
पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च सर्वां च पृथिवीमिमाम् ॥ ८१ ॥

[illegible] कुरुसृञ्जयोंको [illegible] पाण्डवों और धृतराष्ट्रपुत्रोंको तथा इस सारी पृथ्वीको [illegible] मौतके फंदेसे छुड़ा दूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

न ममैतन्मतं कृष्ण यत् त्वं यायाः कुरून् प्रति।
सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥ ८२ ॥

युधिष्ठिर बोले—श्रीकृष्ण! मेरा यह विचार नहीं है कि आप कौरवोंके यहाँ जायँ; [illegible] आपकी [illegible] बातको भी दुर्योधन नहीं मानेगा।

समेतं पार्थिवं क्षत्रं दुर्योधनवशानुगम्।
तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये ॥ ८३ ॥

इसके [illegible] दुर्योधन [illegible] आपका जाना मुझे [illegible] ॥ ८३ ॥

न हि नः प्रीणयेद् द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम्।
न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव ॥ ८४ ॥

माधव! [illegible] सुख [illegible] देवत्व [illegible] नहीं [illegible] ॥ ८४ ॥

श्रीभगवानुवाच

जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम्।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम् ॥ ८५ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—महाराज! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन कितना पापाचारी है, यह [illegible] नहीं [illegible] सम्पूर्ण [illegible] ॥ ८५ ॥

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ८६ ॥

मेरे विषयमें [illegible] निश्चिन्त न हों; क्योंकि [illegible] नहीं ठहर सकते हैं [illegible] नहीं हो सकते हैं ॥ ८६ ॥

अथ चेत् ते प्रवर्तेरन् मयि किंचिदसाम्प्रतम्।
निर्दहेयं कुरून् सर्वानिति मे धीयते मतिः ॥ ८७ ॥

यदि वे मेरे साथ थोड़ा भी अनुचित बर्ताव [illegible] मैं [illegible] कौरवोंको [illegible] भस्म कर [illegible] मेरा निश्चित विचार है ॥ ८७ ॥

न जातु गमनं पार्थ भवेत् तत्र निरर्थकम्।
अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता ॥ ८८ ॥

अतः कुन्तीनन्दन! मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक नहीं होगा। [illegible] है वहाँ अपने अभीष्ट अर्थकी सिद्धि हो जाय और [illegible] तो भी हम निन्दासे तो बच ही जायँगे ॥ ८८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

यत् तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान्।
कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥ ८९ ॥

युधिष्ठिर बोले—श्रीकृष्ण ! आपकी जैसी रुचि हो वही कीजिये । आपका कल्याण हो । आप प्रसन्नतापूर्वक कौरवोंके पास जाइये । आशा है मैं पुनः आपको अपने कार्यमें सफल होकर वहाँसे सकुशल लौटा हुआ देखूँगा ।

शिवेनेतो व्रज कुरून् यात्वा भरतानामय प्रभो ।
यथा सर्वे सुमनसः सह स्याम सुचेतसः ॥ २० ॥

प्रभो ! आप कुरुदेशमें जाकर भरतवंशियोंको शान्त कीजिये, जिससे हम सब लोग शुद्ध हृदयसे प्रसन्नचित्त होकर एक साथ रह सकें ॥ २० ॥

भ्राताऽसि सखासि बीभत्सोर्मम च प्रियः ।
सौहृदेनाविशङ्क्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये ॥ २१ ॥

आप हमलोगोंके भाई और मित्र हैं। अर्जुनके तथा मेरे भी प्रीतिपात्र हैं। आपके सौहार्दमें किसीको हमारे मनमें कोई शङ्का नहीं है । अतः आप जाइये । आपका कल्याण हो ॥ २१ ॥

त्वमस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थं वेत्थ भाषितुम् ।
यद् यदस्मद्धितं कृष्ण तत् तद् वाच्यः सुयोधनः ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण ! आप हमको जानते हैं, कौरवोंको भी जानते हैं, हम दोनोंके स्वार्थोंसे भी आप अपरिचित नहीं हैं और बातचीत कैसे करनी चाहिये, यह भी आपको अच्छी तरह ज्ञात है। अतः जिस-जिस बातसे हमारा हित हो, वह सब आप दुर्योधनको बतावें ॥ २२ ॥

यद् यद् धर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः ।
तत् तत् केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत् ॥ २३ ॥

केशव ! जो-जो बात धर्मसंगत, युक्तियुक्त और हितकर हो, वह सब शान्तिपूर्ण हो या कठोर, आप अवश्य कहें ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि युधिष्ठिरकृष्णवाक्ये द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्णको प्रस्थानके लिये अनुमति देनेसे सम्बन्ध रखनेवाला बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ९२ श्लोक हैं)

त्रिसप्ततितमोऽध्याय

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको युद्धके लिये प्रोत्साहन देना

श्रीभगवानुवाच

संजयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया ।
सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! मैंने संजयकी और आपकी भी बातें सुनी हैं। कौरवोंका क्या अभिप्राय है, यह सब मैं जानता हूँ और आपका जो विचार है, उससे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ ॥ १ ॥

तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः ।
यदयुद्धेन लभ्येत तत् ते बहुमतं भवेत् ॥ २ ॥

आपकी बुद्धि धर्ममें स्थित है और उनकी बुद्धि शत्रुताका आश्रय ले रही है। आप तो बिना युद्ध किये जो कुछ मिल जाय, उसीको बहुत समझेंगे ॥ २ ॥

न चैतन्नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते ।
आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत् ॥ ३ ॥

परंतु महाराज ! यह क्षत्रियका नैष्ठिक (स्वाभाविक) कर्म नहीं है। सभी आश्रमोंके श्रेष्ठ पुरुषोंका यह कथन है कि क्षत्रियको भीख नहीं माँगनी चाहिये ॥ ३ ॥

जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्टः सनातनः ।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥

उसके लिये विधाताने यही सनातन कर्तव्य बताया है कि वह संग्राममें विजय प्राप्त करे अथवा वहीं प्राण दे दे। यही

क्षत्रियका स्वधर्म है। दीनता क्षत्रियके लिये प्रशंसाकी वस्तु नहीं है ॥ ४ ॥

न हि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर ।
विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परंतप ॥ ५ ॥

महाबाहु युधिष्ठिर ! दीनताका आश्रय लेनेसे क्षत्रियकी जीविका नहीं चल सकती । अतः शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज ! आप पराक्रम दिखलाइये और शत्रुओंका संहार कीजिये ॥ ५ ॥

अतिगृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः ।
कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परंतप ॥ ६ ॥

परंतप ! धृतराष्ट्रके पुत्र बड़े लोभी हैं। इधर उन्होंने बहुत-से मित्रराजाओंका संग्रह कर लिया है और उनके साथ दीर्घकालतक एकत्र रहकर उनका स्नेह भी प्राप्त कर लिया है (शिक्षा और सम्मान आदिके द्वारा) उन्होंने विशेष शक्तिका संचय कर लिया है ॥ ६ ॥

न पर्यायोऽस्ति यत् साम्यं त्वयि कुर्युर्विशाम्पते ।
बलवत्तां हि मन्यन्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः ॥ ७ ॥

अतः प्रजानाथ ! ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे (वे आपको आधा राज्य देकर) आपके प्रति समता (मैत्री) स्थापित करें । भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि उनके पक्षमें हैं, इसलिये वे अपनेको आपसे अधिक बलवान् समझते हैं ॥ ७ ॥

यावच्च मार्दवेनैतान् राजन्नुपचरिष्यसि।
तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिंदम ॥ ८ ॥

शत्रुदमन राजन्! जबतक आप इनके साथ नर्मीका बर्ताव करेंगे, तबतक ये आपके राज्यका अपहरण करनेकी ही चेष्टा करेंगे।

मातुश्चोपाध न कर्तव्यस्तव धर्मार्थकारणात्।
त्वत्कर्तुं मार्गेयाकुलेन क्षमामरिंदम ॥ ९ ॥

शत्रुमर्दन नरेश! आप यह न समझें कि धृतराष्ट्रके पुत्र आपपर कृपा करके या आपको दीन-दुःखी मानकर आपका धर्म, अर्थ और दृष्टि रखकर आपका मनोरथ पूर्ण कर देंगे।

एतदेव निमित्तं ते पाण्डवास्तु यथा त्वयि।
नान्वतप्यन्त कौपीनं तावत् कृत्वापि दुष्करम् ॥ १० ॥

पाण्डुनन्दन! कौरवोंके संधि न करनेका सबसे बड़ा कारण या प्रमाण तो यही है कि उन्होंने आपको कौपीन धारण कराकर तथा उसके द्वारा दीर्घकालके लिये वनवासका दुष्कर कष्ट देकर भी कभी इसके लिये पश्चात्ताप नहीं किया।

पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः।
ब्राह्मणानां च साधूनां राज्ञश्च नगरस्य च ॥ ११ ॥
पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः।
दानशीलं मृदुं दान्तं धर्मशीलमनुव्रतम् ॥ १२ ॥
यत् त्वामुपधिना राजन् द्यूते वञ्चितवांस्तदा।
न चापत्रपते पापो नृशंसस्तेन कर्मणा ॥ १३ ॥

राजन्! आप दानशील, कोमलस्वभाव, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, धर्मपरायण तथा सबके अनुकूल हैं तो भी क्रूर दुर्योधनने उस समय पितामह भीष्म, द्रोण, बुद्धिमान् विदुर, साधु ब्राह्मण, राजा धृतराष्ट्र, नागरिक तथा कुरुकुलके सभी श्रेष्ठ पुरुषोंके देखते-देखते आपको जुएमें छलसे ठग लिया और अपने उस कुकर्मके लिये वह पापात्मा आजतक लज्जाका अनुभव नहीं करता है।

तथाशीलसमाचारे राजन् मा प्रणयं कृथाः।
वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत ॥ १४ ॥

राजन्! ऐसे कुत्सित स्वभाव और खोटे आचरणवाले दुर्योधनके प्रति आप प्रेम न दिखाइये। भारत! धृतराष्ट्रके पुत्र तो सभी लोगोंके वध्य हैं; फिर आप उनका वध करें, इसके लिये तो कहना ही क्या है?

वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत् त्वां सहानुजम्।
श्लाघमानः प्रहृष्टः सन् भाषते भ्रातृभिः सह ॥ १५ ॥
एतावत् पाण्डवानां हि नास्ति किंचिदिह स्वकम्।
नामधेयं च गोत्रं च तदप्येषां न शिष्यते ॥ १६ ॥

क्या आप वह दिन भूल गये, जब कि दुर्योधनने भाइयोंसहित आपको अपने अनुचित वचनोंद्वारा मार्मिक पीड़ा पहुँचायी थी। वह अत्यन्त हर्षसे फूलकर अपनी मिथ्या महत्ता प्रकट करता हुआ अपने भाइयोंके साथ कहता था—'अब पाण्डवोंके पास इस जगत्में अपनी कहनेके लिये इतनी-सी भी कोई वस्तु नहीं रह गयी है। केवल नाम और गोत्र बचा है, परंतु वह भी शेष नहीं रहेगा।'

कालेन महता चैषां भविष्यति पराभवः।
प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो मयि ॥ १७ ॥

दीर्घकालके बाद इनकी भारी पराजय होगी। इनकी स्वाभाविक शूरता-वीरता आदि नष्ट हो जायगी और ये मेरे दास ही बन जायँगे।

दुःशासनेन पापेन तदा द्यूते प्रवर्तिते।
अनाथवत् तदा देवी द्रौपदी सुदुरात्मना ॥ १८ ॥
आकृष्य केशे रुदती सभायां राजसंसदि।
भीष्मद्रोणप्रमुखतो गौरिति व्याहृता मुहुः ॥ १९ ॥

उन दिनों जब जूएका खेल चल रहा था, अत्यन्त दुरात्मा पापी दुःशासन अनाथकी भाँति रोती-कलपती हुई महारानी द्रौपदीको उसके केश पकड़कर राजसभामें घसीट लाया और भीष्म तथा द्रोणाचार्य आदिके सामने उसने उसका उपहास करते हुए बार-बार उसे 'गाय' कहकर पुकारा।

भवता वारिताः सर्वे भ्रातरो भीमविक्रमाः।
धर्मपाशनिबद्धाश्च न किंचित् प्रतिपेदिरे ॥ २० ॥

यद्यपि आपके भाई भयंकर पराक्रम प्रकट करनेमें समर्थ थे, तथापि आपने इन्हें रोक दिया; इसलिये धर्मबन्धनमें बँधे होनेके कारण ये उस समय उस अन्यायका कुछ भी प्रतीकार न कर सके।

एताश्चान्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन्।
श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ २१ ॥

जब आप वनको जाने लगे, उस समय भी वह बन्धु-बान्धवोंके बीच ऊपर कही हुई तथा और भी बहुत-सी कठोर बातें कहकर अपनी श्लाघा करता था।

ये तत्रासन् समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम्।
अश्रुकण्ठा रुदन्तश्च सभायामासते तदा ॥ २२ ॥

जो लोग वहाँ बुलाये गये थे, वे सभी आपको निरपराध देखकर रोने और आँसू बहाते हुए रुँधे हुए कण्ठसे उस समय चुपचाप सभामें बैठे रहे।

न चैनमभ्यनन्दंस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह।
सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः ॥ २३ ॥

ब्राह्मणोंसहित उन राजाओंने वहाँ दुर्योधनकी प्रशंसा

नहीं की। उस समय सभी सभासद् वहाँ निन्दा ही कर रहे थे।

कुलीनस्य च या निन्दा वधो वामित्रकर्शन।
महागुणो वधो राजन् न तु निन्दा कुजीविका॥

शत्रुसूदन! कुलीन पुरुषकी निन्दा हो या वध हो, इनमें वध ही उसके लिये अत्यन्त गुणकारक है। निन्दा नहीं, निन्दा तो जीवनको घृणित बना देती है॥

तदेव निहतो राजन् पाण्डवैः निरपत्रपः।
निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः॥

महाराज! जब इस पृथ्वीपरके सब राजाओंने निन्दा की, उसी समय उस निर्लज्ज दुर्योधनकी एक प्रकारसे मृत्यु हो गयी।

ईषत्कार्यो वधस्तस्य यस्य चारित्रमीदृशम्।
प्रस्कन्नेन प्रतिस्तब्धस्याश्रितस्यमूलं इव द्रुमः॥ ६

जिसका चरित्र ऐसा गिरा हुआ है, उसका वध करना तो बहुत साधारण कार्य है। जिसकी जड़ कट गयी हो और जो केवल वेदीके आधारपर खड़ा हो, उस वृक्षकी भाँति दुर्योधनके भी धराशायी होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है॥

श्ववत् सर्वं इवासाद्य सर्वलोकस्य दुर्मतिः।
जहीनं त्वमभित्रस्तः राजन् विचिकित्सया॥ ७

खोटी बुद्धिवाला दुरात्मा दुर्योधन कुत्ते आदि सब लोगोंके लिये वध्य है। शत्रुओंका नाश करनेवाले महाराज! आप दुविधामें पड़े बिना इस दुष्टको अवश्य मार डालें।

सर्वथा त्वत्क्षमं चैतद् रोचते च ममानघ।
यत् त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः॥

निष्पाप नरेश! आप जो पितृतुल्य धृतराष्ट्र तथा पितामह भीष्मके प्रति प्रणाम एवं नम्रतापूर्ण बर्ताव करते हैं, वह सर्वथा आपके योग्य है, मैं भी इसे पसंद करता हूँ।

यत् तु सर्वस्य लोकस्य कथ्यामि संशयम्।
पेपाप्मासि द्विधाभावो राजन् दुर्योधनं प्रति॥

राजन्! दुर्योधनके सम्बन्धमें जिन लोगोंका मन दुविधामें है—जो उसके अच्छे या बुरे होनेका निश्चय नहीं कर सके हैं, उन लोगोंका संदेह मैं दूर करूँगा।

अथ्ये राजमहत् तत्र प्रातिपौरुषविनान् गुणान्
तत्र सर्वास्तु विप्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः॥ ९

मैं राजाओंसे भरी हुई सभामें आपके स्वाभाविक गुणोंका वर्णन और दुर्योधनके दोषों तथा अपराधोंका उद्घाटन करूँगा।

शुभ्रवतस्तत्र ते वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः॥ १०

यदि सम्भविष्यमाणं धर्मात्मा सत्यवागिति।
तथैवान्यो विदिष्यन्ति यथा लोभाद्वृत्तवान्॥

वहाँ मेरे मुखसे धर्म और अर्थसे युक्त हितकर वचन सुनकर नाना जनपदोंके स्वामी समस्त भूपाल आपके विषयमें यह निश्चितरूपसे मान लेंगे कि युधिष्ठिर धर्मात्मा एवं सत्यवादी हैं और दुर्योधनके सम्बन्धमें भी उन्हें यह निश्चय हो जायगा कि उसने लोभसे प्रेरित होकर ही अनुचित बर्ताव किया है।

गर्हयिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि।
वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्ये समागते॥ ११

मैं वहाँ आये हुए चारों वर्णोंके आबालवृद्ध जनसमुदायको अपनाकर उनके सामने तथा पुरवासियों और देशवासियोंके समक्ष भी दुर्योधनकी निन्दा करूँगा।

शमे च याच्यमानस्त्वं नाधर्मं तत्र लप्स्यसे।
कुरून् विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः॥ १२

वहाँ शान्तिके लिये याचना करनेपर आपको अधर्मकी प्राप्ति नहीं होगी, सब राजा कौरवोंकी तथा धृतराष्ट्रकी ही निन्दा करेंगे।

तस्मिँल्लोकपरित्यक्ते किं कार्यमवशिष्यते।
हते दुर्योधने राजन् यदन्यत् क्रियतामिति॥ १३

जब लोग दुर्योधनको त्यागकर उसकी निन्दा करेंगे, तब वह मरे हुएके समान हो जायगा। इस दशामें उसका कौन-सा कार्य शेष रह जाता है, जिसे सम्पन्न किया जाय।

यात्वा चाहं कुरून् सर्वान् युष्मदर्थमहापयन्।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम्॥ १४

वहाँ पहुँचकर आपके स्वार्थकी सिद्धिमें तनिक भी त्रुटि न होने देते हुए मैं समस्त कौरवोंको सन्धि-स्थापनके लिये प्रयत्न करूँगा और उनकी चेष्टाओंपर दृष्टि रखूँगा।

कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिताम्।
निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत॥ १५

भारत! मैं जाकर कौरवोंकी युद्धविषयक तैयारीकी बातें जान-सुनकर आपकी विजयके लिये पुनः यहाँ लौट आऊँगा।

सर्वथा युद्धमेवाहमाशंसामि परैः सह।
निमित्तानि हि सर्वाणि तथा प्रादुर्भवन्ति मे॥ १६

मुझे तो शत्रुओंके साथ सब प्रकारसे युद्धकी ही सम्भावना हो रही है; क्योंकि मेरे सामने ऐसे ही लक्षण प्रकट हो रहे हैं।

मृगाः शकुन्ताश्च वदन्ति घोरं
हस्त्यश्वमुख्येषु निशामुखेषु।

यो ऽसि कथानि तथैव पार्थ
वैरात् बहून् पुष्यति क्षेत्ररूपान् ॥ ४९ ॥

म... वायु और अग्नि भयंकर शब्द कर रहे हैं, क्रोध कालमें अद्भुत हाथियों और घोड़ोंके समुदायमें बड़ी भयानक आकृतियाँ प्रकट होती हैं। इसी प्रकार अग्निदेव भी नाना प्रकारके भयजनक रूपों ... ... धारण करते हैं ॥

मनुष्यलोकक्षयकृत् सुमेरो
यो वै ... स्यात्
... ... रथानाम्
नागान् हयांश्च प्रतिपादयित्वा ॥
योधाश्च सर्व कृतनिश्चयास्ते
भवन्तु शस्त्रभृत्स्वेषु यत्ताः ।
सांग्रामिक ते यदुपायमीय
सर्वं समग्रं कुरु तद्यथावत् ॥ ५१ ॥

यदि मनुष्यलोकका यह ... कालेवाली अत्यन्त भयंकर ... इसको नहीं प्राप्त हुई होती तो ऐसी बात देखनेमें नहीं आती ... आपके ... योद्धा युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके नाना प्रकारके शस्त्र, ... कवच, रथ, हाथी और घोड़ोंको सुसज्जित कर लें तथा रथ, हाथियों, घोड़ों ... युद्ध करनेके निमित्त सदा तैयार रहें। इनके सिवा आपको युद्धोपयोगी जन समस्त वस्तुओंका संग्रह करना है, उन सबका भी आप संग्रह कर लीजिये ॥

दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं
जीवंस्तवैतन्नृपते कथंचित् ।
यत् ते पुरस्तादभवत् समृद्धं
द्यूते हृतं पाण्डवमुख्य राज्यम् ॥ ५२ ॥

पाण्डवराज नरेश्वर! यह निश्चय मानिये कि आपके पास पहले जो समृद्धिशाली राज्य-वैभव था और जिसे आपने जूएमें खो दिया था, वह सारा राज्य अब दुर्योधन अपने जीते-जी आपको कभी नहीं दे सकता ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भीमसेनका शान्तिविषयक प्रस्ताव

भीम उवाच

यथा यथैव शान्तिः स्यात् कुरूणां मधुसूदन ।
तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥ १ ॥

भीमसेन बोले—मधुसूदन! आप कौरवोंसे वैसी ही बात कहें, जिससे इन लोगोंमें शान्ति स्थापित हो सके। युद्धकी बात सुनाकर उन्हें भयभीत न कीजियेगा ॥ १ ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धः श्रेयोद्वेषी महामनाः ।
नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्नैवैनं समाचरेः ॥ २ ॥

दुर्योधन अमर्षशील, सदा क्रोधमें भरा रहनेवाला, श्रेयका विरोधी और मनमें बड़े-बड़े हौसले रखनेवाला है; अतः उसके प्रति कठोर बात न कहियेगा ॥ २ ॥

प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेता दस्युभिः ।
ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः ॥ ३ ॥

दुर्योधन स्वभावसे ही पापात्मा है। उसके हृदयकी डाकुओंके समान क्रूरता भरी रहती है। वह ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो रहा है और पाण्डवोंके साथ वैर बाँध रखा है ॥ ३ ॥

अदीर्घदर्शी निष्ठुरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः ।
दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥ ४ ॥

वह अदूरदर्शी, निष्ठुर वचन बोलनेवाला, दूसरोंपर आक्षेप करनेवाला, क्रूरतापूर्ण पराक्रमी, दीर्घकालतक क्रोधको मनमें संचित रखनेवाला, शिक्षा देने या सन्मार्गपर ले जाने योग्य नहीं, पापात्मा तथा शठतामें प्रेम रखनेवाला है ॥ ४ ॥

म्रियेतापि न भज्येत नैव जह्यात् स्वकं मतम् ।
तादृशेन शमं कृष्ण मन्ये परमदुष्करम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण! वह मर जायगा, किंतु झुक न सकेगा; अपनी टेक नहीं छोड़ेगा। मैं समझता हूँ, ऐसे दुराग्रही मनुष्यके साथ सन्धि स्थापित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है ॥ ५ ॥

सुहृदामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ।
प्रतिहन्त्येव सुहृदां वाचश्चैव मनांसि च ॥ ६ ॥

दुर्योधन हितैषी सुहृदोंसे भी विपरीत आचरण करनेवाला है। उसने धर्मको तो त्याग ही दिया है, झूठको भी प्रिय मानकर अपना लिया है। वह मित्रोंकी भी बातोंका खण्डन करता है और उनके हृदयको चोट पहुँचाता है ॥ ६ ॥

स मन्युवशमापन्नः स्वभावं दुष्टमाश्रितः ।
स्वभावात् पापमभ्येति तृणैश्छन्न इवोरगः ॥ ७ ॥

उसका अंतःकरण क्रोधके वशीभूत होकर दुष्ट स्वभावका आश्रय ले चुका है। वह तिनकोंमें छिपे सर्पकी भाँति स्वभाववश दूसरोंकी हिंसा करता है ॥ ७ ॥

दुर्योधनो हि धर्मेण सर्वथा विदितस्तव ।
यच्छीलो यत्स्वभावश्च यद्बलो यत्पराक्रमः ॥ ८ ॥

भगवन् ! दुर्योधनकी जैसी शील और स्वभाव जैसा है, उसका बल और पराक्रम जिस प्रकारका है, वह सब कुछ आपको सब प्रकारसे ज्ञात है ॥ ८ ॥

पुरा प्रसन्नाः कुरवः सहपुत्रास्तथा वयम् ।
इन्द्रज्येष्ठा इवाभूम मोदमानाः सबान्धवाः ॥ ९ ॥

पूर्वकालमें पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित कौरव और हम लोग इन्द्र आदि देवताओंकी भाँति परस्पर मिलकर बड़ी प्रसन्नता और आनन्दके साथ रहते थे ॥ ९ ॥

दुर्योधनस्य क्रोधेन भरता मधुसूदन ।
दह्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः ॥ १० ॥

परंतु मधुसूदन ! जैसे शिशिरके अन्तमें (ग्रीष्मकाल आनेपर) वन दावानलसे दग्ध होने लगते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण भरतवंशी इस समय दुर्योधनकी क्रोधाग्निसे जलने वाले हैं ॥ १० ॥

अष्टादशेमे राजानः प्रख्याता मधुसूदन ।
ये समुच्चिच्छिदुर्ज्ञातीन् सुहृदश्च सबान्धवान् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! भागे बताये जानेवाले ये अठारह विख्यात नरेश हैं, जिन्होंने बन्धु-बान्धवोंसहित कुटुम्बीजनों तथा हितैषी सुहृदोंका संहार कर डाला था ॥ ११ ॥

असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।
पर्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते कलिरजायत ॥ १२ ॥
हैहयानामुदावर्तो नीपानां जनमेजयः ।
बहुलस्तालजङ्घानां कृमीणामुद्धतो वसुः ॥ १३ ॥
अजबिन्दुः सुवीराणां सुराष्ट्राणां रुषर्द्धिकः ।
अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ॥ १४ ॥
हयग्रीवो विदेहानां वरप्रश्च महौजसाम् ।
बाहुः सुन्दरवंशानां दीप्ताक्षाणां पुरूरवाः ॥ १५ ॥
सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृषध्वजः ।
धारणश्चन्द्रवत्सानां मुकुटानां विगाहनः ॥ १६ ॥
शमश्च नन्दिवेगानामित्येते कुलपांसनाः ।
युगान्ते कृष्ण सम्भूताः कुले कुलपुरुषाधमाः ॥ १७ ॥

जैसे धर्मके विनाशका समय उपस्थित होनेपर तेजसे प्रज्वलित होनेवाले समृद्धिशाली असुरोंमें सर्वनाशक कलि उत्पन्न हुआ था, उसी प्रकार हैहयवंशमें मुदावर्त, नीपकुलमें जनमेजय, तालजङ्घोंके वंशमें बहुल, कृमिकुलमें उद्दण्ड वसु, सुवीरोंके वंशमें अजबिन्दु, सुराष्ट्रकुलमें रुषर्द्धिक, बलीहवंशमें अर्कज, चीनोंके कुलमें धौतमूलक, विदेहवंशमें हयग्रीव, महौजा नामक क्षत्रियोंके कुलमें वरप्र, सुन्दरवंशी क्षत्रियोंमें बाहु, दीप्ताक्ष कुलमें पुरूरवा, चेदि और मत्स्यदेशीय क्षत्रियोंमें सहज, प्रवीरकुलमें वृषध्वज, चन्द्रवत्सकुलमें धारण, मुकुटवंशमें विगाहन तथा नन्दिवेगकुलमें शम—ये सभी कुलाङ्गार एवं नराधम क्षत्रिय कुलान्तकाल आनेपर अपने अपने समयके अनुसार भिन्न भिन्न कुलमें प्रकट हुए थे ॥ १२—१७ ॥

अप्ययं नः कुरूणां स्याद् युगान्ते कालसम्भृतः ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः ॥ १८ ॥

दुर्योधन (सबसे छोटे) राजाओंकी भाँति यह कुलाङ्गार नीच एवं पापपुरुष दुर्योधन भी इस समय युगके अन्तमें कालसे प्रेरित हो हमारे कुरुकुलके विनाशका कारण होकर उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥

तस्मान्मृदु शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम् ।
कामानुबन्धबहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम ॥ १९ ॥

अतः भयङ्कर पराक्रमी श्रीकृष्ण ! आप उससे जो कुछ भी कहें, कोमल एवं मधुर वाणीमें धीरे-धीरे कहें। आपका कथन धर्म एवं अर्थसे युक्त तथा हितकर हो। उसमें कटुता या उग्रता न आने पावे। साथ ही आपकी बात ऐसी हो कि जो अधिकांशमें उसकी रुचिके अनुकूल हो ॥ १९ ॥

अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः ।
नीचैर्भूत्वानुयास्यामो मा स्म नो भरता नशन् ॥ २० ॥

भगवन् ! हम सब लोग नीचे रहकर नम्रतापूर्वक दुर्योधनका अनुसरण करते रहेंगे, परंतु हमारे कारणसे भरतवंशियोंका नाश न हो ॥ २० ॥

अप्युदासीनवृत्तिः स्याद् यथा नः कुरुभिः सह ।
वासुदेव तथा कार्यं न कुरूननयः स्पृशेत् ॥ २१ ॥

वासुदेव ! हमलोग कौरवोंके साथ उदासीनभावसे तटस्थ वर्ताव भी करने लगें, वैसा ही आपको प्रयत्न करना चाहिये। किसी प्रकार भी कौरवोंको अन्यायका स्पर्श नहीं होना चाहिये ॥ २१ ॥

वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः ।
भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण ! आप बड़े बूढ़े पितामह भीष्मसे तथा अन्य सभासदोंसे ऐसा कहनेके लिये ही कहें, जिससे सब भाइयोंमें सौहार्द बना रहे और दुर्योधन भी शान्त हो जाय ॥ २२ ॥

अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने ॥ २३ ॥

मैं इस प्रकार शान्ति स्थापनके लिये कह रहा हूँ। राजा युधिष्ठिर भी शान्तिकी ही प्रशंसा करते हैं और अर्जुन भी युद्धके इच्छुक नहीं हैं, क्योंकि अर्जुनमें बहुत अधिक दया भरी हुई है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भीमसेनवाक्यविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका भीमसेनको उत्तेजित करना

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव।
अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपहितं वचः॥ १॥
गिरेरिव लघुत्वं तच्छीतत्वमिव पावके।
मत्वा रामानुजः शौरिः शार्ङ्गधन्वा वृकोदरम्॥ २॥
संतेजयंस्तदा वाग्भिर्मातरिश्वेव पावकम्।
उवाच भीममासीनं कृपयाभिपरिप्लुतम्॥ ३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भीमसेनके मुखसे पहले कभी न सुने गये मृदुतायुक्त वचन सुनकर महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण हँसनेसे लगे। जैसे पर्वतमें लघुता आ जाय और अग्निमें शीतलता प्रकट हो जाय, उसी प्रकार उनमें यह कोमलताका प्रादुर्भाव हुआ था। यह सोचकर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले रामानुज श्रीकृष्ण अपने पास बैठे हुए वृकोदर भीमसेनको, जो उस समय करुणासे द्रवित हो रहे थे, अपने वचनोंद्वारा उसी प्रकार उत्तेजित करते हुए बोले, मानो वायु अग्निको उद्दीप्त कर रही हो॥ १—३॥

श्रीभगवानुवाच

त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि।
वधाभिनन्दिनः क्रूरान् धार्तराष्ट्रान् मिमर्दिषुः॥ ४॥

श्रीभगवान् बोले—भैया भीमसेन! आपने सिवा और दिन तो तुम हिंसासे ही प्रसन्न होनेवाले क्रूर दुरात्मा



पुत्रोंको मसल डालनेकी इच्छा मनमें लिये सदा युद्धकी ही प्रशंसा किया करते थे॥ ४॥

न च स्वपिषि जागर्षि न्युब्जः शेषे परंतप।
घोरामशान्तां रुशतीं सदा वाचं प्रभाषसे॥ ५॥

परंतप! इन्हीं विचारोंमें डूबे रहनेके कारण तुम रातमें सोते भी नहीं थे, जागते ही रहते थे। कभी सोना ही पड़ा तो औंधे मुँह लेट जाते और सदा घोर, अशान्त तथा रोषभरी बातें ही तुम्हारे मुँहसे निकलती थीं॥ ५॥

निःश्वसन्नग्निवर्णेन संतप्तः स्वेन मन्युना।
अप्रशान्तमना भीम सधूम इव पावकः॥ ६॥

भीम! तुम बार-बार लम्बी साँस खींचते हुए अपने ही क्रोधसे उसी प्रकार संतप्त होते थे, जैसे आग अपने ही तेजसे जलती रहती है। तुममें व्याप्त धुएँ सहित अग्निकी भाँति तुम्हारे चित्तमें निरन्तर अशान्ति छायी रहती थी॥ ६॥

एकान्ते निःश्वसञ्शेषे भारार्त इव दुर्बलः।
अपि त्वां केचिदुन्मत्तं मन्यन्तेऽतद्विदो जनाः॥ ७॥

भारी बोझसे पीड़ित दुर्बल मनुष्यकी भाँति तुम एकान्तमें बारंबार जोर-जोरसे साँस खींचते रहते थे। इसीलिये तुम्हें कुछ लोग, जो इस बातको नहीं जानते हैं, पागल मानते हैं॥ ७॥

आरुज्य वृक्षान् निर्मूलान् गजः परिरुजन्निव।
निघ्नन् पद्भिः क्षितिं भीम निष्टनन् परिधावसि॥ ८॥

भीम! जैसे हाथी वृक्षोंको जड़-मूलसहित उखाड़कर उन्हें रौंदते हुए चिग्घाड़ने लगता है, उसी प्रकार तुम भी पैरोंसे पृथ्वीपर आघात करते हुए जोर-जोरसे गर्जते और चारों ओर दौड़ते थे॥ ८॥

नास्मिञ्जनेऽभिरमसे रहः क्षियसि पाण्डव।
नान्यं निशि दिवा वापि कदाचिदभिनन्दसि॥ ९॥

पाण्डुनन्दन! तुम कभी इस जनसमुदायमें प्रसन्नताका अनुभव नहीं करते थे, सदा एकान्तमें ही बैठकर कालक्षेप करते थे। दिन हो या रात, तुम कभी किसी दूसरेका अभिनन्दन नहीं करते थे॥ ९॥

अकस्मात् स्मयमानश्च रहस्यास्से रुदन्निव।
जान्वोर्मूर्धानमाधाय चिरमास्से प्रमीलितः॥ १०॥

कभी सहसा हँस पड़ते और कभी एकान्तमें बैठे रोते हुए-से प्रतीत होते थे और कभी घुटनोंपर मस्तक रखकर दीर्घकालतक नेत्र बंद किये बैठे रहते थे॥ १०॥

भ्रुकुटिं च मुखे कुर्वन्नोष्ठौ च विदशन्निव ।
त्वामीक्षन् दृश्यसे भीम सर्वं तन्मन्युकारितम् ॥ ११ ॥

भीमसेन! तुम बार-बार भौंहें टेढ़ी करके दोनों ओठोंको चबाते हुए-से देखते हो, यह सब तुम्हारे क्रोधकी करतूत है ॥ ११ ॥

यथा पुरस्तात् सविता दृश्यते शुक्रमुच्चरन् ।
यथा च पश्चान्निर्मुक्तो ध्रुवं पर्येति रश्मिवान् ॥ १२ ॥
तथा सत्यं ब्रवीम्येतन्नास्ति तस्य व्यतिक्रमः ।
हन्ताहं गदयाभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ १३ ॥
इति स्म मध्ये भ्रातॄणां सत्येनालभसे गदाम् ।
तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्धीयतेऽद्य परंतप ॥ १४ ॥

तुम अपने भाइयोंके बीचमें गदाकी शपथ खाकर बार-बार यह कहते थे—'जैसे सूर्यदेव पूर्वदिशामें उदित होते हुए अपने तेजोमण्डलको प्रकट करते दिखायी देते हैं और पश्चिम दिशामें वे ही अंशुमाली अस्ताचलको जाकर निश्चितरूपसे मेरुपर्वतकी परिक्रमा करते हैं, उनके इस नियममें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता, उसी प्रकार मैं यह सत्य कहता हूँ कि अमर्षशील दुर्योधनके पास जाकर अपनी गदासे उसके प्राण ले लूँगा। मेरे इस कथनमें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ सकता।' परंतप! ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम-जैसे वीरकी बुद्धि आज शान्ति स्थापनमें लग रही है, यह आश्चर्यकी बात है ॥ १२—१४ ॥

अहो युद्धाभिकाङ्क्षाणां युद्धकाल उपस्थिते ।
चेतांसि विप्रतीपानि यत् त्वां भीभीम विन्दति ॥ १५ ॥

अहो! युद्धका अवसर उपस्थित होनेपर पहलेसे युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले लोगोंके चित्त भी प्रतिकूल हो जाते हैं, यह कैसी उलटी बात है कि भीमसेन! आज तुम्हें भी युद्धसे भय होने लगा है ॥ १५ ॥

अहो पार्थ निमित्तानि विपरीतानि पश्यसि ।
स्वप्नान्ते जागरान्ते च तस्मात् प्रशममिच्छसि ॥ १६ ॥

कुन्तीनन्दन! जान पड़ता है कि तुम सोते और जागते समय अशुभ परिणामकी सूचना देनेवाले अपशकुन देखते हो, इसीसे तुम शान्तिकी इच्छा प्रकट कर रहे हो ॥ १६ ॥

अहो नाशंससे किंचित् पुंस्त्वं क्लीब इवात्मनि ।
कश्मलेनाभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः ॥ १७ ॥

अहो! कायर और नपुंसककी भाँति इस समय तुम अपनेमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं मानते, तुम्हारे ऊपर मोह छा गया है, जिससे तुम्हारी मानसिक दशा बिगड़ गयी है ॥ १७ ॥

उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रविषीदति ।
ऊरुस्तम्भगृहीतोऽसि तस्मात् प्रशममिच्छसि ॥ १८ ॥

जान पड़ता है कि तुम्हारा हृदय काँपता है, मन शिथिल होता जाता है, तुम्हारी जाँघें मानो अकड़ गयी हैं, इसीलिये तुम शान्ति चाहते हो ॥ १८ ॥

अनित्यं किल मर्त्यस्य चित्तं पार्थ चलाचलम् ।
वातवेगप्रचलिता अष्ठीला शाल्मलेरिव ॥ १९ ॥

पार्थ! कहते हैं कि मनुष्यका चित्त सदा एक निश्चयपर अटल नहीं रहता, वह हवाके वेगसे हिलती हुई सेमलकी फलीके समान चञ्चल रहता है ॥ १९ ॥

तवैषा विकृता बुद्धिर्गवां वागिव मानुषी ।
मनांसि पाण्डुपुत्राणां मज्जयत्यप्लवानिव ॥ २० ॥

यदि गौएँ मनुष्योंकी बोली बोलने लगें तो वह जैसे विकृति मानी जाती है, उसी प्रकार तुम्हारी यह बुद्धि विकृत होकर आश्रय बिना डूबनेवाले मनुष्योंकी भाँति पाण्डवोंके मनको चिन्तामग्न किये देती है ॥ २० ॥

इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् ।
यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनासमं वचः ॥ २१ ॥

भीमसेन! तुम जो यह ऐसी बात कह रहे हो, यह तुम्हारे योग्य कदापि नहीं है। जैसे पर्वतका चलना आश्चर्यकी बात है, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह शान्तिका प्रस्ताव मुझे महान् आश्चर्य जान पड़ता है ॥ २१ ॥

स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत ।
उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव ॥ २२ ॥

भारत! तुम अपने कर्मोंको और उत्तम कुलमें प्राप्त हुए अपने जन्मको देखकर खड़े हो जाओ। वीर! विषाद न करो और स्थिर रहो ॥ २२ ॥

न चैतदनुरूपं ते यत् ते ग्लानिररिंदम ।
यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥ २३ ॥

शत्रुदमन! तुम्हारे चित्तमें जो ग्लानि उत्पन्न हुई है, यह तुम्हारे-जैसे वीरके योग्य कदापि नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय जिसे ओज एवं पराक्रमसे प्राप्त नहीं करता, उसे वह उपभोगमें नहीं लाता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्याय

भीमसेनका उत्तर

सञ्जय उवाच

तथोक्तो वासुदेवेन नित्यमन्युरमर्षणः।
सदश्ववत् समाधावद् बभाषे तदनन्तरम्॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर सदा क्रोध और अमर्षमें भरे रहनेवाले मानी भीमसेन अच्छे घोड़ेकी भाँति उत्तेजित हो उठे और तुरंत ही इस प्रकार बोले—

भीम उवाच

अन्यथा मां चिकीर्षन्तमन्यथा मन्यसेऽच्युत।
प्रणीतभावमत्यन्तं युधि सत्यपराक्रमम्॥
वेत्सि दाशार्ह सत्त्वं मे दीर्घकालं सहोषितः

भीमसेनने कहा—अच्युत! मैं करना तो कुछ और चाहता हूँ, पर आप समझ कुछ और ही रहे हैं। दशार्हनन्दन! आप बहुत दिनोंतक मेरे साथ रहे हैं, अतः मेरे स्वभावको जानते हैं। मैं युद्धमें सच्चा पराक्रम दिखानेवाला हूँ और युद्धमें मेरा अनुराग है, यह भी आपसे छिपा नहीं है॥

उत वा मां न जानासि प्लवन् ह्रद इवाप्लवः।
तस्मादप्रतिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्च्छसि॥

अथवा जैसे नौकाके बिना अगाध जलमें तैरनेवाले पुरुषको उसकी गहराईका पता नहीं चलता, उसी प्रकार आप मुझे भी नहीं जानते हैं; इसीलिये आप अनुचित वचनोंद्वारा मेरा तिरस्कार कर रहे हैं॥

कथं हि भीमसेनं मां जानन् कश्चन माधव।
ब्रूयादप्रतिरूपाणि यथा मां वक्तुमर्हसि॥

माधव! मुझ भीमसेनको जाननेवाला कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो मुझसे ऐसी अनुचित बातें कहेगा, जैसी आप कह रहे हैं॥

तस्मादिदं प्रवक्ष्यामि वचनं वृष्णिनन्दन।
आत्मनः पौरुषं चैव बलं च न समं परैः॥

वृष्णिकुलनन्दन! इसीलिये मैं आपसे अपने पौरुष तथा बलका वर्णन करता हूँ, जिसकी समानता दूसरे लोग नहीं कर सकते॥

सर्वथा नार्यकर्मैतत् प्रशंसा स्वयमात्मनः॥ ६॥
अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि स्वबलं स्वयम्।

यद्यपि अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना सर्वथा नीच पुरुषोंका ही काम है, तथापि आपने जो मेरे पराक्रमके विपरीत बातें कहकर मेरा तिरस्कार किया है, उससे पीड़ित होकर मैं अपने बलका बखान करता हूँ॥

पश्यैते रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः॥ ७॥
अचले चाप्यनन्ते च प्रतिष्ठे सर्वमातरौ।

श्रीकृष्ण! आप इस पृथ्वी और आकाशकी ओर दृष्टिपात कीजिये, जिनके भीतर ये समस्त प्रजाएँ निवास करती हैं। ये दोनों सबके माता-पिता हैं। इन्हें अचल एवं अनन्त माना गया है। ये सबके आधार होते हुए भी स्वयं आधार शून्य हैं॥

यदीमे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले इव॥ ८॥
अहमेते निगृह्णीयां बाहुभ्यां सचराचरे।

यदि ये दोनों सहसा कुपित होकर दो शिलाओंकी भाँति परस्पर टकराने लगें तो मैं चराचर प्राणियोंसहित इन दोनोंको अपनी भुजाओंसे रोक सकता हूँ॥

पश्यैतदन्तरं बाह्वोर्महापरिघयोरिव।
य एतत् प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम्॥

मेरी इन विशाल परिघके समान मोटी भुजाओंके बीचका भाग तो देखिये। मैं ऐसे किसी वीर पुरुषको नहीं देखता, जो इनके बीचमें आकर फिर जीवित निकल जाय॥

हिमवांश्च समुद्रश्च वज्री च बलभित् स्वयम्।
मयाभिपन्नं त्रायेरन् बलमास्थाय न त्रयः॥

जो मेरी पकड़में आ जायगा, उसे हिमालय पर्वत, महासागर तथा बलासुरका नाश करनेवाले वज्रधारी इन्द्र—ये तीनों भी अपनी पूरी शक्ति लगाकर नहीं बचा सकते॥

युध्येयं क्षत्रियान् सर्वान् पाण्डवेष्वाततायिनः।
अधः पादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले॥

पाण्डवोंपर आक्रमण करनेवाले इन समस्त क्षत्रियोंसे मैं युद्ध करूँगा और इन्हें नीचे पृथ्वीपर गिराकर पैरोंतले दबा दूँगा॥

न हि त्वं नाभिजानासि मम विक्रममच्युत॥ १२॥
यथा मया विनिर्जित्य राजानो वशगाः कृताः।

अच्युत! मैंने राजाओंको जिस प्रकार जीतकर अपने अधीन किया था, मेरे उस पराक्रमसे आप अपरिचित नहीं हैं॥

अथ चेन्मन्यसे ... मामाम् ... लाभश्च ... वरान्
... युधि ... नाद्
... नृपेन्द्र ... हाथियों ... काली ... युद्ध ... रणभूमि
... युद्ध अमर ... प्रकार ... पूछकर
पहुंचपाखिपं किं ... तस्मिन् ...
... महात्मा ... सर्वलोकानभिजानाति ... दुर्योधन ... मधुसूदन
यथामति ... विद्धि ... सर्वथाप्युन्नतं ... भरतश्रेष्ठ
... युधि ... इति ... बुद्धि ... बुद्धि
... ...
सत्यप्रभु ... मातङ्गान् ... स्थित
... नरा ... दुर्योधनम्

इत्यार्षे ... भगवद्यानपर्वणि ... अध्यायः
१४४ ... ...

सप्तसप्ततितमोऽध्याय

श्रीकृष्णका भीमसेनको उत्तेजित करना

वासुदेव उवाच

... अथवा ...
... वचन ... बुद्धि ... बना ... भीमसेन ...
... भीमसेन ... भाव ... तुम्हारा
... ...
... महासत्त्वयुक्त ... ...
... कर्मा ... परिभाषामहम् ... ...
... महाबाहो ... देव ... महाबाहु
... ... पुरुषार्थ
... ...
... ...
यथा चात्मनि कल्याणं सम्भावयसि पाण्डव ... तथा ... पुरुषस्यात्मसिद्धये
... त्वयि सम्भावयाम्यहम् ... विनाशोऽपि ... पौरुषम्
... ... पुरुषको कर्म ...

कारण वनवास आदि क्लेशोंका भी शत्रु पर आता है। इस प्रकार जब दैवका क्रम पलटता है तब तो पुरुषार्थका भी फल पलटता है ॥ ६ ॥

अन्यथा परिदृष्टानि कविभिर्वीतमन्युभिः ।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः ॥ ७ ॥

परंतप ! विद्वानोंद्वारा अच्छी तरह देखे और निश्चय किये हुए कार्य वायुके वेगकी भाँति पलटकर किसी दूसरे ही रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं ॥ ७ ॥

सुमन्त्रितं सुनीतं च न्यायतश्चोपपादितम् ।
कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनापि विरुध्यते ॥ ८ ॥

जो भी तरह विचारपूर्वक निश्चित किये हुए उत्तम नीतिसे युक्त तथा न्यायपूर्वक सम्पादित किये हुए मानव सम्बन्धी पुरुषार्थरूप कर्मको भी कभी दैवसे बाधित हो जाते हैं—उसमें विघ्न पड़ जाता है ॥ ८ ॥

दैवमप्यकृतं कर्म पौरुषेण विहन्यते ।
शीतमुष्णं तथा वर्षं क्षुत्पिपासे च भारत ॥ ९ ॥

भारत ! दैवकृत कार्य भी मनुष्य होनेवाले पुरुषार्थद्वारा नष्ट कर दिया जाता है। जैसे शीतका निवारण सर्दी गर्मीका वस्त्रसे और भूख-प्यासका निवारण अन्न और जलसे हो जाता है ॥ ९ ॥

यदन्यद् दिष्टभावस्य पुरुषस्य स्वयंकृतम् ।
तस्मादनुपरोधश्च विद्यते तत्र लक्षणम् ॥ १० ॥

प्रारब्धके अतिरिक्त जो पुरुषका स्वयं अपना किया हुआ कर्म है उसकी भी सिद्धि होती है। इस विषयमें यथेष्ट उदाहरण मिलता है ॥ १० ॥

लोकस्य नान्यतो वृत्तिः पाण्डवान्यत्र कर्मणः ।
एवंबुद्धिः प्रवर्तेत फलं स्यादुभयान्वये ॥ ११ ॥

पाण्डुनन्दन ! पुरुषार्थको छोड़कर दूसरे किसी साधनसे—केवल दैवसे मनुष्योंका जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। अतः ऐसा विचारकर उसे कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। फिर प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनोंके सहयोगसे फलकी प्राप्ति होगी ॥ ११ ॥

य एवं कृतबुद्धिः सन् कर्मस्वेव प्रवर्तते ।
नासिद्धौ व्यथते तस्य न सिद्धौ हर्षमश्नुते ॥ १२ ॥

जो अपनी बुद्धिमें ऐसा निश्चय करके कर्मोंमें ही प्रवृत्त होता है, वह कर्मकी सिद्धि न होनेपर दुःखी नहीं होता और कार्यकी प्राप्ति होनेपर भी हर्षका अनुभव नहीं करता ॥ १२ ॥

तत्रेयमनुमात्रा मे भीमसेन विवक्षिता ।
नैकान्तसिद्धिर्वक्तव्या शत्रुभिः सह संयुगे ॥ १३ ॥

भीमसेन ! मुझे इस विषयमें अच्छा यह निवेदन करना अभीष्ट है कि युद्धमें शत्रुओंके साथ भिड़नेपर अवश्य ही विजय प्राप्त होगी, यह नहीं कहा जा सकता ॥ १३ ॥

नातिप्रहीणरश्मिः स्यात् तथा भवति पर्यये ।
विषादमर्छेद् ग्लानिं वा एतदर्थं ब्रवीमि ते ॥ १४ ॥

मनोभाव बदल जाय अथवा प्रारब्धके अनुसार कोई विपरीत घटना घटित हो जाय तो भी सहसा अपने तेज और उत्साहको सर्वथा नहीं छोड़ना चाहिये। विषाद या ग्लानिका अनुभव नहीं करना चाहिये—यह बात भी मैंने तुम्हें सावधान करनेके लिये कही है ॥ १४ ॥

श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ १५ ॥

पाण्डुनन्दन ! कल सबेरे मैं राजा धृतराष्ट्रके समीप जाकर तुमलोगोंके स्वार्थकी सिद्धिमें बाधा न पहुँचाते हुए दोनों पक्षोंमें संधि करानेका प्रयत्न करूँगा ॥ १५ ॥

शमं चेत् ते करिष्यन्ति ततोऽनन्तं यशो मम ।
भवतां च कृतः कामस्तेषां च श्रेय उत्तमम् ॥ १६ ॥

यदि वे संधि स्वीकार कर लेंगे तो मुझे अक्षय यशकी प्राप्ति होगी। तुमलोगोंका मनोरथ भी पूर्ण होगा और कौरवोंका भी परम कल्याण होगा ॥ १६ ॥

ते चेदभिनिवेक्ष्यन्ति नाभ्युपैष्यन्ति मे वचः ।
कुरवो युद्धमेवात्र रौद्रं कर्म भविष्यति ॥ १७ ॥

यदि वे कौरव पक्षपात दिखावेंगे और मेरी संधिविषयक बात ठुकरा देंगे तब यहाँ युद्ध ही होगा, जो भयानक कर्म है ॥ १७ ॥

अस्मिन् युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः ।
धूरर्जुनेन धार्या स्याद् वोढव्य इतरो जनः ॥ १८ ॥

भीमसेन ! इस युद्धमें सारा भार तुम्हारे ऊपर ही रक्खा जायगा एवं अर्जुन इस भारको धारण करेगा। अन्य योद्धाओंका भार भी तुम्हीं दोनोंको ढोना है ॥ १८ ॥

अहं हि यन्ता बीभत्सोर्भविता संयुगे सति ।
धनंजयस्यैष कामो न हि युद्धं न कामये ॥ १९ ॥

युद्ध आरम्भ होनेपर मैं अर्जुनका सारथि बनूँगा। यही अर्जुनकी इच्छा है। तुम यह न समझो कि मैं युद्ध होने देना नहीं चाहता ॥ १९ ॥

तस्मादाशङ्कमानोऽहं वृकोदर मतिं तव ।
तुदन् क्लीबया वाचा तेजस्ते समदीपयम् ॥ २० ॥

दुर्योधन लोगोंके तुम कालरूपमृत्यु होगा विचार नया है हमारे एक साथ क्रोध मानसिक प्रकार करने लगे तब मुझे इसलिये कहकर तुम्हारे सामने रौद्र कथा

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये सप्तसप्ततितमोऽध्याय

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कृष्णवाक्यसम्बन्धी सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ

अष्टसप्ततितमोऽध्याय

अर्जुनका कथन

अर्जुन उवाच

उक्तं युधिष्ठिरेणैव यावद् वाच्यं जनार्दन
तव वाक्यं तु मे श्रुत्वा प्रतिभाति परंतप
नैव प्रशममत्र त्वं मन्यसे सुकरं प्रभो
लोभाद् वा धृतराष्ट्रस्य दैन्याद् वा समुपस्थितात्

तदनन्तर अर्जुनने कहा मुझे जो कहना था वह ... दिया ... धृतराष्ट्रके लोभसे अथवा ... मुझे ऐसा जान पड़ता है कि ... हमारी प्रस्तुत ... करना कार्य सहज नहीं सम रहे

अफलं मन्यसे वापि पुरुषस्य पराक्रमम्
न चान्तरेण कर्माणि पौरुषेण फलोदयः

अथवा आप तुम्हें पराक्रमको निष्फल नहीं ... क्योंकि पूर्व जन्मके कर्म प्रारब्ध बिना पुरुषार्थ से किसी फलकी प्राप्ति नहीं होती

तदिदं भाषितं वाक्यं तथा च न तथैव तत्
न चैतदेवं द्रष्टव्यमसाध्यमपि किंचन

आपने जो बात कही है वह ठीक है ... सब ... ही हो ... सकता ... अशक्य ही समझना चाहिये

किं चैतन्मन्यसे कृच्छ्रमस्माकमवसादकम्
कुर्वन्ति तेषां कर्माणि येषां नास्ति फलोदयः

... किन्तु ... इसे हमारे लिये पीड़ित करनेवाला ... उनके लिये भी कोई विरोध नहीं

सम्पाद्यमानं सम्यक् च स्यात् कर्म सफलं प्रभो
स तथा कृष्ण वर्तस्व यथा शर्म भवेत् परैः

प्रभो ... सफल हो सकता है ... श्रीकृष्ण आप ऐसा ही प्रयत्न करें जिससे शत्रुओंके साथ हमारी सन्धि हो जाय

पाण्डवानां कुरूणां च भवान् परमकः सुहृत्
सुराणामसुराणां च यथा वीर प्रजापतिः

... वीर श्रीकृष्ण ... जैसे ... प्रजापति ... आप हम ... कौरवोंके ...

कुरूणां पाण्डवानां च प्रतिपत्स्व निरामयम्
अस्मद्धितमनुष्ठातुं न मन्ये तव दुष्करम्

... निरामय ... और हमारा ... हित ... ऐसा मैं नहीं मानता कि हमारा ... आपके लिये दुष्कर ... नहीं

एवं चेत् कार्यतामेति कार्यं तव जनार्दन
गमनादेवमेव त्वं करिष्यसि न संशयः

जनार्दन ... यदि आप ... वहाँ जानेमात्रसे ... कार्य सफल हो जायगा ... निःसन्देह ...

चिकीर्षितमथान्यत् ते तस्मिन् वीर दुरात्मनि
भविष्यति च तत् सर्वं यथा तव चिकीर्षितम्

वीर ... दुरात्मा दुर्योधन ... यदि आपको कुछ और ... ही ... करना ...

शर्म तैः सह वा नोऽस्तु तव वा यच्चिकीर्षितम्
विचार्यमाणो यः कामस्तव कृष्ण स नो गुरुः

न स नार्हति दुष्टात्मा वधं ससुतबान्धवः
येन धर्मसुते दृष्ट्वा तां श्रियमपराजिताम्
अपश्यतोपायमेतं धर्मिष्ठं मधुसूदन
उपायेन नृशंसेन हृता दुर्द्यूतदेविना

श्रीकृष्ण ... कौरवोंके साथ हम ... सन्धि ... अथवा आप जो कुछ करना चाहते ... नहीं ... हम सभी निश्चय ... हैं ... उसीको ... आपकी इच्छा हो, वही हमारे लिये गौरव तथा मान की वस्तु है। वह दुरात्मा दुर्योधन अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित ...

ही योग्य है जो धर्मपुत्र युधिष्ठिरका राज्य आदि सुई सम्पत्ति देखकर उसे सहन न कर सका। इतना ही नहीं उस कायरपुरुषने मामा शकुनिके द्वारा जूआका खेल कराके किसी धर्मात्माका राज्य छीन लिया, ऐसा निन्दनीय कर्म अबतक नहीं देखा। इस कपटपूर्ण उपायसे उस मन्दमतिने अपहरण कर लिया ॥ ११-१२ ॥

कथं हि पुरुषो जातः क्षत्रियेषु धनुर्धरः ॥ १३ ॥
समाहूतो निवर्तेत प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।

क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ कोई भी धनुर्धर पुरुष किसीके द्वारा युद्धके लिये ललकारा जानेपर कैसे पीछे हट सकता है? भले ही ऐसा करनेसे उसके प्राणत्यागका संकट भी उपस्थित हो जाय ॥ १३ ॥

अधर्मेण जितान् दृष्ट्वा वने प्रव्रजितांस्तथा ॥ १४ ॥
वध्यतां मम वार्ष्णेय निर्गतोऽसौ सुयोधनः ।

वृष्णिकुलनन्दन ! जबसे अधर्मपूर्वक हमलोग पराजित किये गये और वनमें भेज दिये गये, तभीसे मैंने मन-ही-मन दृढ़ निश्चय कर लिया था कि दुर्योधन मेरे हाथसे मारे जाने योग्य है ॥ १४ ॥

न चैतदद्भुतं कृष्ण मित्रार्थे यच्चिकीर्षसि ।
क्रिया कथं नु मुख्या स्यान्मृदुना वेतरेण वा ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! आप मित्रोंके हितके लिये जो कुछ करना चाहते हैं, वह आपके लिये अद्भुत नहीं है। परंतु अथवा कठोर, जिस उपायसे भी सम्भव हो किसी तरह अपना मुख्य कार्य सफल होना चाहिये ॥ १५ ॥

अथवा मन्यसे ज्यायान् वधस्तेषामनन्तरम् ।
तदेव क्रियतामाशु न विचार्यमतस्त्वया ॥ १६ ॥

अथवा यदि आप अब कौरवोंका वध ही श्रेष्ठ मानते हों तो वही शीघ्रतापूर्वक किया जाय। फिर इसके सिवा और किसी बातपर आपको विचार नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥

जानासि हि यथा तेन द्रौपदी पापबुद्धिना ।
परिक्लिष्टा सभामध्ये तच्च तस्यापि मर्षितम् ॥ १७ ॥

आप जानते हैं कि उस पापात्मा दुर्योधनने भरी सभामें द्रुपदकुमारी कृष्णाको कितना कष्ट पहुँचाया था, परंतु हमने उसके इस महान् अपराधको भी चुपचाप सह लिया था ॥ १७ ॥

स नाम सम्यग् वर्तेत पाण्डवेष्विति माधव ।
न मे संजायते बुद्धिर्बीजमुप्तमिवोषरे ॥ १८ ॥

माधव ! वही दुर्योधन अब पाण्डवोंके साथ अच्छा बर्ताव करेगा, ऐसी बात मेरी बुद्धिमें नहीं आती है। ऊसर खेतमें बोये हुए बीजकी भाँति उसके प्रति किया गया सारा प्रयत्न व्यर्थ होगा ॥ १८ ॥

तस्माद् यन्मन्यसे युक्तं पाण्डवानां च यद्धितम् ।
तदाशु कुरु वार्ष्णेय यन्नः कार्यमनन्तरम् ॥ १९ ॥

अतः वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण ! आप पाण्डवोंके लिये जो उचित एवं हितकर समझें तथा जो हमारे लिये आगे करने योग्य कार्य हो, उसे शीघ्र आरम्भ कर दें ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि अर्जुनवाक्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनको उत्तर देना

श्रीभगवानुवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
पाण्डवानां कुरूणां च प्रतिपत्स्ये निरामयम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—महाबाहु पाण्डुकुमार ! तुम जो कहते हो, वैसा ही करना उचित है। मैं वही करूँगा, जिससे कौरव तथा पाण्डव सभीका संकट दूर हो—दोनों सुखी हों ॥ १ ॥

सर्वं त्विदमायत्तं बीभत्सो कर्मणोर्द्वयोः ।
क्षेत्रं हि रसवच्छुद्धं कर्मणैवोपपादितम् ॥ २ ॥
ऋते वर्षं न कौन्तेय जातु निर्वर्तयेत् फलम् ।

अर्जुन ! इसमें संदेह नहीं कि शान्ति और युद्ध इन दोनों कार्योंमेंसे किसी एकको निश्चय करना परमात्माके अधीन है। देखो, खेतीके लिये क्षेत्र हल जोतने आदि कर्मके द्वारा सुधारकर शुद्ध किया जाय और उसमें पानीकी सुविधा भी हो, तो भी वर्षाके बिना वह कभी फल नहीं दे सकता ॥ २ ॥

तत्र वै पौरुषं ब्रूयुरासेकं यत्नकारितम् ॥ ३ ॥
तत्र चापि ध्रुवं पश्येच्छोषणं दैवकारितम् ।

जिस खेतमें बुवाई और सिंचाई की जाती है, वहाँ यह पुरुषार्थ ही किया जाता है, परंतु वहाँ भी दैववश सूखा पड़ जाता है, यह निश्चितरूपसे देखा जाता है [अतः पुरुषार्थकी सफलताके लिये प्रारब्धकी अनुकूलता आवश्यक है] ॥ ३ ॥

तदिदं निश्चितं बुद्ध्या पूर्वैरपि महात्मभिः ॥ ४ ॥
दैवे च मानुषे चैव संयुक्तं लोककारणम् ।

इसलिये दुर्योधनका महामोहके कारण अपनी बुद्धिद्वारा यही निश्चय किया है कि लाक्षाभवन [illegible] पुरुषार्थ श्रेयस्कर निर्वृ है

यदा हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः ॥ ५ ॥
तत्र तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथंचन

मैं पुरुषार्थमें स्थित हो यथा [illegible] उतना लक्ष्यिसाधने लिये अधिक [illegible] [illegible] दिव्यानकी किसी प्रकार [illegible] लिये समय नहीं है

स हि धर्मं च लोकं च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः ॥ ६ ॥
न हि संरम्भते तेन तथाभूतेन कर्मणा

दुर्बुद्धि दुर्योधन धर्म [illegible] अहंकार ही [illegible] है परंतु [illegible] करता नहीं [illegible] ६

तथापि बुद्धिं पापिष्ठां धार्तराष्ट्रस्य मे त्रिधा ॥ ७ ॥
प्रकुर्वन्ति [illegible] [illegible] दुरात्मनस्तथा

[illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] नहीं दुरात्मा [illegible] [illegible] [illegible] देते हैं

स हि त्यागेन [illegible] राज्यं [illegible] समुद्यतम्
अन्तरेण वधं तात मातुलभ्यं सुयोधनः

कुलीनन्दन [illegible] किसी [illegible] दुर्योधन [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] देकर कदापि संधि नहीं करेगा ८

न चापि प्रणिपातेन त्यक्तमिच्छति धर्मराट्
याच्यमानस्तु राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ९

धर्मराज युधिष्ठिर [illegible] [illegible] लिये [illegible] राज्य [illegible] नहीं चाहते [illegible] दुर्बुद्धि [illegible] मांगने पर [illegible] नहीं देगा

न तु मन्ये स तद् वाच्यो यद् युधिष्ठिरशासनम्
उक्तं प्रयोजनं धर्म्यं तु धर्मराजेन भारत ॥ १० ॥
तथा पापस्तु तत् सर्वं न करिष्यति कौरव
तस्मिंश्चाक्रियमाणेऽसौ लोके वध्यो भविष्यति ॥ ११ ॥

भरतनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरने [illegible] पांच गांवोंको मांगनेके लिये [illegible] [illegible] है तथा महात्मा [illegible] [illegible] जो धार्मिक प्रयोजन बताया है वह सब दुर्योधनसे कहना उचित नहीं है ऐसा मैं मानता हूं क्योंकि वह कुरुकुल-कलङ्क पापात्मा उन सब बातोंको कभी स्वीकार नहीं करेगा इसलिये उस प्रस्ताव स्वीकार न करनेपर वह इस जगत्में सबके ही वधके योग्य हो जायगा ११

मम चापि स वध्यो हि जगतश्चापि भारत
येन कौमारके यूयं सर्वे विप्रकृताः सदा ॥ १२ ॥
विप्रलुप्तं च वो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना
न चोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥

भारत [illegible] [illegible] [illegible] कुमारावस्थामें भी सदा नाना प्रकारके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारा [illegible] [illegible] अपहरण कर लिया है तथा [illegible] भी दुर्योधन युधिष्ठिरके [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] होता है वह मेरे और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] १३

असकृच्चाप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदितः
न मया तद् गृहीतं च पापं तस्य चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥

कुन्तीनन्दन [illegible] [illegible] भी तुम्हारी [illegible] [illegible] [illegible] लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसके पापपूर्ण मनोरथको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] १४

जानासि हि महाबाहो ममाप्यस्य परं मतम्
प्रियं चिकीर्षमाणं च धर्मराजस्य चाप्यरिं ॥ १५ ॥

महाबाहो तुम [illegible] [illegible] [illegible] दुर्योधनका भी मेरे [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] मैं धर्मराज युधिष्ठिरका [illegible] करना चाहता हूं

स जानंस्तस्य चात्मानं मम चैव परं मतम्
अज्ञानन्निव मां कस्मादर्जुनाद्याभिशङ्कसे ॥ १६ ॥

अर्जुन इस प्रकार तुम दुर्योधनके स्वार्थ [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आज अनजानकी [illegible] भी क्यों मुझपर संदेह कर रहे हो १६

यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाप्यनुगतं त्वया
विधानं विहितं पार्थ कथं शर्म भवेत् परैः ॥ १७ ॥

कुन्तीकुमार जो देवताओंका परम दिव्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विधान है उसमें भी तुम भलीभांति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सकती है

यत् तु वाचा मया शक्यं कर्मणा चापि पाण्डव
करिष्ये तदहं पार्थ न त्वाशंसे शमं परैः ॥ १८ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] वाणी और [illegible] [illegible] हो सकता है वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यह [illegible] भी [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] जायगी

कथं गोहरणे ह्युक्तो नैतच्छान्त तदा हितम्
याच्यमानो हि भीष्मेण संवत्सरगतेऽध्वनि ॥ १९ ॥

विराटनगरमें गोहरणके समय तुम्हारे अज्ञातवासका वर्ष पूरा हो चुका था उस समय भीष्मजीने मार्गमें दुर्योधनसे

बचना की कि पाण्डवोंके उनका राज्य देकर उन मेल कर लें कल्याण और हितकी बात थी उसने किये कम स्वीकार नहीं की

तदैव ते पराभूता यदा संकल्पितस्त्वया
लब्धा सुगरकाम्यपि न तु युद्ध कुलाधम

जब तुम कौरवोंका पराजित करने प्रयत्न किया उसी समय आ गये दुर्योधन कुलाङ्गार

सुयोधनके लिये निश्चिन्तता भी उचित नहीं है

सर्वथा तु त्वया कार्यं धर्मराजस्य शासनम्
विभाव्य तस्य भूयश्च कर्त्ता पतय दुरात्मन

यहाँ आकर सब बहुत धर्म उसी आज्ञाके अनुसार नष्टिये लिये प्रधान कर भी यह तथ्य हुआ तो फिर इसे यह चिन्त कर कि दुरात्मा दुर्योधनको नये पासनमें दण्ड भले

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये एकोनाशीतितमोऽध्याय

इस श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक ... अध्याय पूरा

अशीतितमोऽध्याय

नकुलका निवेदन

उवाच

उक्त युधिष्ठिर वाक्य धर्मराजेन माधव
धर्मज्ञेन यदा श्रुत तच्च हि तत् त्वया

नकुल बोले माधव धर्म और उदार धर्मराज युधिष्ठिर मान कहीं और आप उन्हें सुना

मतमाज्ञाय राज्ञश्च भीमसेनेन माधव
संशमो बाहुवी च ख्यापित माधवात्मन

दृढ़ शत्रुसूदन आशा जानकर भाई भीमसेन भी अपने बाहुबलकी सि को ... बताती है

तथैव फाल्गुनेनापि यदुक्त तत् त्वया श्रुतम्
आत्मनश्च मत वीर कथित भवतासकृत्

वीर इसी प्रकार अर्जुनने भी जो कुछ कहा है वह भी आपने सुन ही लिया है आप जो कारण करते हैं उसे भी आपने प्रकट किय

सर्वमेतदतिक्रम्य श्रुत्वा परमत भवान्
यत् प्राप्तकाल मन्येथास्तत कुर्या पुरुषोत्तम

पुरुषोत्तम नालोको पीछे छोड़कर और विरोधिये मत सुनकर आपका समय अनुसार कर्तव्य उचित जान पड़े वही कीजिया

तस्मिंस्तस्मिन् निमित्ते हि मत भवति केशव
प्राप्तकाल मनुष्येण क्षम कार्यमरिंदम

शत्रुओंका दमन करनेवाले केशव भिन्न भिन्न कारण उपस्थित हो मनुष्योंके विचार भी भिन्न भिन्न प्रकारके हो जाते हैं अतः मनुष्यको वही काम करना चाहिये जो उसके योग्य और समयोचित हो

अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थ पुनर्भवति सोऽन्यथा।
अनित्यमतयो लोके नरा पुरुषसत्तम

पुरुषश्रेष्ठ कि ... बात सोची कुछ जाता कुछ और जाता मनुष्य स्थिर विचारवाले नहीं होते

अन्यथा बुद्धयो ह्यासन्नस्मासु वनवासिषु
अदृश्येष्वन्यथा कृष्ण दृश्येषु पुनरन्यथा

श्रीकृष्ण जब हम वनमें निवास करते उस समय हमारा विचार कुछ और ही अज्ञातवास समय पर कुछ और हो गये और अब जनसे हम सबके सामने प्रकट हुए हैं तबसे हमलोगोंका विचार कुछ और हो गया है

अस्माकमपि वार्ष्णेय वने विचरतां तदा
तथा प्रणयो राज्ये यथा संप्रति वर्तते

वृष्णिनन्दन वनमें विचरण समय राज्यके विषयमें हमारा ... इस समय है

निवृत्तवनवासान् श्रुत्वा वी समागता
अक्षौहिण्यो हि सप्तेमास्त्वत्प्रसादाज्जनार्दन

जनार्दन वनवासकी अवधि पूरी करके आ गये सुनकर आपकी कृपासे सात अक्षौहिणी सेनाएँ यहाँ एकत्र गी

इमान् हि पुरुषव्याघ्रानचिन्त्यबलपौरुषान्
आत्तशस्त्रान् रणे दृष्ट्वा व्यथेदिह क पुमान्

यहाँ ये पुरुषसिंह वीर उपस्थित हैं इनके बल और पौरुष अचिन्त्य हैं रणभूमिमें इन्हें अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित देखकर किस पुरुषका हृदय भयभीत न होगा

स भवान् कुरुमध्ये सान्त्वपूर्वं भवेत्तरम्
अथवा यत्स्व यथा मन्ये व्याक्षेप सुयोध

आप कौरवोंके बीचमें उनसे इस सान्त्वनापूर्ण वा वक्तिता रे सन्धमें मुझको भय भी दिखाइयेगा जिससे दुर्योधनके मनमें व्यथा हो।

युधिष्ठिरं भीमसेनं चार्जुनं चापराजितम्
सहदेवं च मां चैव त्वां च राम च केशव
सात्यकिं च महावीर्यं विराटं च सहात्मजम्
द्रुपदं च सहामात्यं धृष्टद्युम्नं च माधव
काशिराजं च विक्रान्तं धृष्टकेतुं च चेदिपम्
मांसशोणितभृन्मर्त्यः प्रतियुध्येत को युधि

केशव तिमें ना और राजा ह कभी काल ने म नो युद्धमें स्थिर नहीं विरा नेवाले भ्र सहदेव नर महा वर सात्यकि पुत्र विराट मन्त्रि सहित पद धृष्टद्युम्न पत्र शिखर चन्दिर धृष्टकेतु तथा भावक भी तेरा र के

स भवान् गमनादेव साधयिष्यत्यसंशयम्

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि नकुलवाक्ये अशीतितमोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें नकुलवाक्यविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ

एकाशीतितमोऽध्याय

युद्धके लिये सहदेव तथा सात्यकिकी सम्मति और उनका समर्थन

सहदेव उवाच

यदेतत् कथितं राज्ञा धर्म एष सनातनः
यथा च युद्धमेव स्यात् तथा कार्यमरिंदम

सहदेवने कहा शत्रुदमन श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरने जो कुछ कहा है वह सनातन धर्म है मेरा कथन है कि आप सन्धि न होने दें युद्ध हो ऐसा ही करें

यदि प्रशममिच्छेयुः कुरवः पाण्डवैः सह
तथापि युद्धं दाशार्ह योजयेथाः सहेव

दशार्हनन्दन यदि कौरव पाण्डवोंके साथ सन्धि करना चाहें तो भी आप उनके साथ युद्धकी ही योजना करा देना

कथं नु दृष्ट्वा पाञ्चालीं तथा कृष्णां सभागताम्
अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने

श्रीकृष्ण पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको वैसी दयनीय दशामें सभाके भीतर लायी गयी देखकर दुर्योधनके प्रति मेरा जो क्रोध हुआ

वह दुर्योधनका वध किये बिना कैसे शान्त हो सकता है

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण धर्मराजश्च धार्मिकः
धर्ममुत्सृज्य तेनाहं योद्धुमिच्छामि संयुगे

श्रीकृष्ण यदि भीमसेन, अर्जुन तथा धर्मराज युधिष्ठिर धर्मका ही चिन्तन करते हैं तो मैं धर्मका परित्याग करके रणभूमिमें दुर्योधनके साथ युद्ध ही करना चाहता हूँ

सात्यकिरुवाच

सत्यमाह महाबाहो सहदेवो महामतिः
दुर्योधनवधे शान्तिस्तस्य कोपस्य मे भवेत्

सात्यकिने कहा महाबाहो परम बुद्धिमान् सहदेव ठीक कहते हैं दुर्योधनके वधसे ही मेरा और इनका कोप शान्त होगा

न जानासि यथा दृष्ट्वा चीराजिनधरान् वने
तथापि मन्युरुद्भूतो दुःखितान् वीक्ष्य पाण्डवान्

क्या आप भूल गये हैं जब कि वनमें वल्कल और

मुनाधर्म भार ... ऋा ... भार
शोभ उमड ... तथा
तस्मात्मात्रीसुत ... यथाह रणवार्क
यथाप ... योधाना तन्क्ला ... पुरुषोत्तम
अत पुरुष ... पुत्र ... हिम्मताले ही
... हतोर रहते ... बाल ... नहीं ... सम्पूर्ण
पाड भोका
... महात्मा
एवं बहूनि ... स्य तु युयुधाने महात्मनी
... इति ... हे ... तथा ... रीत नगवद्यानपर्वणि मह
... श्रीमहाभा ... उद्योग ... मन्तर्गत ... नगव

सुमति सहदेवोऽभूत् यथाभ्या तत्र सत्व
वैशम्पायनजी कहते हैं ... परम बुद्धिमान
... ... हो ... सम्पूर्ण योद्धाओंका
... हमला
हि सर्वतो ... शिरस्त्रच ... प्रत्यसृजमन्
... ओ ... प्राणय हत ... तो युयु सत्व
युद्ध ... ... सभी ... वीरोंमे ... बालु
... ... उनके ... सर्वथा
... आप ... नम ... पाठक
... मनोर ... हुन्ना

द्व्यशीतितमोऽध्याय

द्रौपदीका ... कृष्णसे अपना दु ख सुनाना अ ... कृष्णका उसे ... आश्वासन देना

राजस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम्
कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता
सुता द्रुपदस्य ... सर्वलक्षणमुखी ...
सम्पूज्य ... ... महारथम्
... वैशम्पायनजी कहते ... ... आप
और ... पता नार ... ... कुमार कृष्ण
युधिष्ठिर ... अप ... हित ... वचन सुनकर
जोकसे ... महार ... नार
... ... बुल ... ... भाव
... पल हुई
भीमसेन ... सहदेवो ... परमदुर्मना
अश्रुपूर्णेक्षणा वाक्यमुवाचेदं मनस्विनी
... अपना ... दर्ग ... ... मनवी
वहा ... हि ... और
श्रीकृष्णसे ... बोली
विदितं ... महाबाहो ... भारत मधुसूदन
यथा निकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पाण्डवाः सुखात्
धार्तराष्ट्रस्य पुत्रेण ... सामात्येन जनार्दन
यथा ... राज्ञा मन्त्र ... ...
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह तथापि ... तव
यथोक्त ... सर्वं श्रुतं त्वया
... ... महाव मधुसूदन ... आपको ... मालूम ही
कि ... धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने ... प्रकार
... लेकर ... कुलसे ... पर ... ...
दशार्हनन्दन ... धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे ... ...

... नाथ ... ... कुन्तीनन्दन
... मने
... मारने ... ही
... पि
... ... महाद्युते
... विस्रष्ट ... पुत्र ... ... राजा
... प्रयस ... महा ... और ... ग्राम
इति ... ... वाक्य ... ... आलम्य ... काराव
... ... प्रकार ... बहा
... ... पुत्र ... मन ... मन
... ... हमें ... हुआ ...
... ... करण ... ...
... ... माना
तांश्चापि सहसे ... वाक्यं श्रुत्वा कृष्ण सुयोधन
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह ... धर्मिसमुद्धत
... ... मनवाले
... ... सुनकर भी
... ... नहीं किया
... ... सुयोधन
... ...
... ... यदि दुर्योधन राज्य दिये
बिना ... ... इसे किसी तरह स्वीकार
करेगा
... ... हि महाबाहो पाण्डवाः सृञ्जयैः सह
धार्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम् ॥

महात्मा पाण्डवों [illegible] वीरोंके साथ
मही दुर्योधनकी आकर सैनाका [illegible] तरह [illegible]
[illegible]
द्रि सामा [illegible] राजयोऽर्पस्तेषु [illegible]
[illegible] [illegible] कृपा मधुसूदन
मधुर [illegible] [illegible]
[illegible] प्रयोजन नहीं [illegible]
[illegible] [illegible] दिये
[illegible] कृष्ण [illegible]
[illegible] कृष्ण [illegible] परिरक्षता
कृष्ण [illegible] [illegible] पुत्रको
[illegible] ऊपर
[illegible]
तस्मात् तेषु महात्मसु [illegible] क्षिप्रम् [illegible]
तथा महाबाहो पाण्डवैः [illegible] सुजय
[illegible] [illegible]
नीच

यस्तत् सामर्थ पार्थाना तव [illegible]
क्रियमाण [illegible] [illegible] सुखावहम्
यदि कुन्तीकुमारों [illegible] यदि
किया
शक्ति
[illegible] हि [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

[illegible] नात्र [illegible]
गुरुर्हि सर्ववर्णानां ब्राह्मणः प्रस्तुतसमुत्
[illegible] दूसरे वर्णोंके [illegible]
होता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
नहीं [illegible] वर्णोंके [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] इति धर्मविदो विदुः
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
होती यह बात [illegible] पुरुष जानते
[illegible]

यथा त्वां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
पाण्डवा [illegible] [illegible] [illegible]
कृष्ण [illegible]
[illegible] [illegible] दोष
पुनश्च [illegible] विश्वम्भर [illegible]
[illegible] युधिष्ठिरमपि केशव
[illegible] होनेसे
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
तुम [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
किया दिव
[illegible] पाण्डु [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible] पाण्डुषु
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

क्रोध ही [illegible] इन्होंने मुझ [illegible] दासभाव [illegible] कौरवोंके हाथ [illegible] मन ही-मन आपका चिन्तन किया [illegible] मेरी रक्षा [illegible]

यत्र मां भगवान् राजा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत्।
वरं वृणीष्व पाञ्चालि वरार्हासि मतासि मे ॥ २७ ॥

[illegible] पाञ्चालराजकुमारी! तुम मुझसे [illegible] मनोवाञ्छित वर [illegible] तुम मेरी [illegible] वधू हो ॥ २७ ॥

अदासाः पाण्डवाः सन्तु सरथाः सायुधा इति।
मयोक्ते यत्र निर्मुक्ता वनवासाय केशव ॥ २८ ॥

[illegible] और [illegible] ॥ २८ ॥

एवंविधानां दुःखानामभिज्ञोऽसि जनार्दन।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सभर्तृज्ञातिबान्धवान् ॥ २९ ॥

जनार्दन! [illegible] कमलनयन! [illegible] पति, कुटुम्बी तथा [illegible] रक्षा [illegible]

नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात् ॥ ३० ॥

श्रीकृष्ण! [illegible] पुत्रवधू [illegible] दासी बना दिया गया ॥ ३० ॥

धिक् पार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग् बलम्।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

[illegible] यदि [illegible] जीवित रहता है [illegible] अर्जुनके [illegible] और भीमसेनके बलको धिक्कार है ॥ ३१ ॥

यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि।
धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम् ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्ण! यदि मैं आपकी अनुग्रहपात्र हूँ, यदि मुझपर आपकी कृपा है तो आप धृतराष्ट्रके पुत्रोंपर पूर्णरूपसे क्रोध कीजिये ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम्।
सुनीलमसितापाङ्गी सर्वगन्धाधिवासितम् ॥ ३३ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं महाभुजगवर्चसम्।
केशपक्षं वरारोहा गृह्य सव्येन पाणिना ॥ ३४ ॥
पद्माक्षी पुण्डरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! [illegible] सुन्दर [illegible] कमलनयन [illegible] केशोंको दाहिने [illegible] सुन्दर [illegible] सब प्रकारकी [illegible] सुगन्धित [illegible] आँसू [illegible] ॥ ३३—३५ ॥



अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः।
स्मर्तव्यः सर्वकालेषु परेषां सन्धिमिच्छता ॥ ३६ ॥

कमलनयन [illegible] दुःशासनके हाथोंसे खींचे हुए [illegible] ॥ ३६ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ सन्धिकामुकौ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण! यदि भीमसेन और अर्जुन कायर होकर कौरवोंके साथ सन्धिकी कामना करते हैं तो मेरे बूढ़े पिता अपने महारथी पुत्रोंके साथ शत्रुओंसे युद्ध करेंगे ॥ ३७ ॥

पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह ॥ ३८ ॥

मधुसूदन! मेरे पाँच महापराक्रमी पुत्र भी वीर अभिमन्युको प्रधान बनाकर कौरवोंके साथ संग्राम करेंगे ॥ ३८ ॥

दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुण्ठितम्।
यद्यहं तं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे॥

यदि मैं दुःशासनकी साँवली भुजाको कटकर धूलमें लोटती हुई न देखूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी?

त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे।
विधाय हृदये मन्युं प्रदीप्तमिव पावकम्॥

प्रज्वलित अग्निके समान ... क्रोधको हृदयमें रखकर प्रतीक्षा करते हुए मेरे तेरह वर्ष बीत गये हैं।

विदीर्यते मे हृदयं भीमवाक्शल्यपीडितम्।
योऽयमद्य महाबाहुर्धर्मं समनुपश्यति॥

आज भीमसेनके वचनरूपी बाणसे पीड़ित होकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है; क्योंकि ये महाबाहु भीम आज केवल धर्मकी ओर ही ध्यान दे रहे हैं।

इत्युक्त्वा बाष्पकण्ठेन ... आयतलोचना।
रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम्॥
स्तनौ पीनायतश्रोणी सहितावभिवर्षती।
द्रवीभूतमिवात्युष्णं मुञ्चन्ती वारि नेत्रजम्॥

इतना कहकर ... विशाल नेत्रोंवाली द्रुपदकुमारी कृष्णा ... गला भर आया। वह काँपती हुई गद्गद वाणीमें फूट-फूटकर रोने लगी। ... उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी वर्षा होने लगी ... मानो द्रवीभूत होकर निकल रही हो।

तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन्।
अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः॥ ४५॥

तब महाबाहु केशवने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—

कृष्णे! तुम शीघ्र ही भरतवंशकी स्त्रियोंको भी इसी प्रकार रुदन करते देखोगी।

एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवाः।
हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धासि भामिनि॥ ४६॥

भीरु! ... जिनपर तुम कुपित हुई हो, उन शत्रुओंकी स्त्रियाँ भी अपने ... कुटुम्बी, बान्धव, मित्र और सेनाके मारे जानेसे इसी प्रकार रोयेंगी।

अहं च तत् करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह।
युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात्॥ ४७॥

महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे ... दैवके विधानके अनुसार ... भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवके साथ रहकर मैं भी वही करूँगा ...

धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वन्ति मे वचः।
शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वशृगालादनीकृताः॥

यदि कालके गालमें जानेवाले धृतराष्ट्रपुत्र मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मारे जाकर ... कुत्तों और गीदड़ोंके भोजन बनेंगे।

चलेद्धि हिमवाञ्छैलो मेदिनी शतधा फलेत्।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत्॥ ४

... हिमालय पर्वत अपने स्थानसे हट जाय, पृथ्वीके सैकड़ों टुकड़े हो जायँ और नक्षत्रोंसहित आकाश फट पड़े, परंतु मेरी बात झूठी नहीं हो सकती।

सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम्।
हतामित्राञ्छ्रिया युक्तानचिराद् द्रक्ष्यसे पतीन्॥

कृष्णे! मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, तुम शीघ्र ही देखोगी कि तुम्हारे पति शत्रुओंको मारकर राजलक्ष्मीसे सम्पन्न हो गये हैं।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रस्थाने द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णप्रस्थानविषयक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ।

त्र्यशीतितमोऽध्याय

श्रीकृष्णका हस्तिनापुरको प्रस्थान, युधिष्ठिरका माता कुन्ती एवं कौरवोंके लिये संदेश तथा श्रीकृष्णको मार्गमें दिव्य महर्षियोंका दर्शन

अर्जुन उवाच

कुरूणामद्य सर्वेषां भवान् सुहृदनुत्तमः।
सम्बन्धी दयितो नित्यमुभयोः पक्षयोरपि॥ १॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण! आजकल आप ही समस्त कौरवोंके सर्वोत्तम सुहृद् तथा दोनों पक्षोंके नित्य प्रिय सम्बन्धी हैं॥ १॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां प्रतिपाद्यमनामयम्।
समर्थः प्रशमं चैषां कर्तुमर्हसि केशव॥ २॥

केशव! पाण्डवोंके साथ धृतराष्ट्रपुत्रोंका मेल कराना आपका कर्तव्य है। ... आप दोनोंमें शान्ति भी स्थापित कर सकते हैं।

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षः सुयोधनममर्षणम्
शान्तयें भ्रातरं बुधायम् वाक्यमभिनिबद्ध
धनुर्धारी नारा बने उस्तन श्रीकृष्ण आर
हैं समझ अजन्मा आप दुर्यो
धर्म रूप

त्वया धर्मार्थ चतु प्रयत्नमानयम्
हिते नासत्यते बालो तथ्य प्रशमैध्यति
यदि भारत और अपने
कल्याणदायक वचनानुसार नहीं मानेगा
भरतव बताते

गुरुवाच

धम्यमवमन्दित वेद कुरूणां यशस्यमयम्
एव यास्यामि राज्ञान पुन भवीन्द्रया
श्रीभगवान् बोले हमारे हमलेगे
ठिये तथा तथा। लोक हुन्कार
कार्य मिथ कुरु

गच्छा उवाच

ततो व्यपेततमसि सूर्य विमलउद्गते
मत्ते मुहूर्त सम्प्राप्ते मृदुर्चावाचि दिवाकरे
कौमुदे मासि रेवत्या शरद् हिमागमे
स्फीतसस्यसुखे काले कल्य सत्त्ववत

महाकायकी वहती मजय
रात्रिज न्यक्ष और आकाशमें देदीप्य
उदित होनेपर उनकी कोमल किरणें सभी
कार्ति मासके रेवती एक मुहूर्त अनुकूल
होनेपर वसुपूरी पृथ्वीमें श्रेष्ठ ख्याय श्रीकृष्ण जाना
आरम्भ की दिन शरद् ऋतु अन्त और हेमन्तका
आर और नृप उनकी हुए होती
महत्ता

मङ्गल्या पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृता
ब्राह्मणानां प्रतीतानामृषीणामिव
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नात शुचिरलंकृत
उपतस्थे विवस्वन्तं पावक जनार्दनः
ऋषभं पृष्ठ आलभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रत
तत् प्रतिज्ञाय वचनं पाण्डवस्य जनार्दन
शिनेर्नप्तारमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम्

महाराज! तदा पहले आत काल मुनियोंके
मुखसे मङ्गलकारक सुननेवा देवराज इन्द्रकी भांति विख्यात
ब्राह्मणोंके मुखसे परम मधुर मङ्गलकारक एवं सुनते
हुए स्नान किया फिर उन्होंने पवित्र तथा पश्चा

धूपदीपे अलङ्ग कण्वानन्दन सूर्योपस्थान अग्निहोत्र
आदि पूर्वाह्णकाल सम्बन्ध किये बैल पीठ
ब्राह्मणोंको नमस्कार किया अग्निकी परिक्रमा करके
हुई मङ्गलकारक वस्तुओंका दर्शन
तथा तदनन्तर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके कहीहर विचार
स्मरण आसन हुए शिनिपौत्र सात्यकिसे इस
प्रकार कहा

आरोप्यतां शङ्खचक्रं गदया सह
उपासङ्गाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि
तुमुवान रथपर शङ्खं तूणीर शक्ति
अन्य प्रकारके अस्त्र

दुर्योधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबल
शत्रुरक्षो दुर्बलोऽपि उपेक्षिता

बलवान् शत्रुः दुर्ब
पुत्रकी बताई नहीं लडाई
रखना चाहिये शकुनि दुरात्मा
उनके स्थान पत्ता आग पत्ता

ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुर सरा
प्रसस्रुर्योजयिष्यन्तो रथं चक्रगदाभृत
चक्र और धारण करनेवाले गदाधर श्रीकृष्ण
रथको जोतकर उधर भाग चलनेवाले सेवक जोतने
लिये दौड़

दीप्ताग्निसदृशाकारं दीप्तमादित्यवर्चसम्
सूर्यचन्द्रप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलंकृतम्
प्रलयकालीन अग्नि समान दीप्तिमान दिव्य
प्रकाश सूर्य तथा सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी
पहियोंसे सुशोभित

अर्धचन्द्र मृगचन्द्रे समुपचितैः
पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणिरत्नैश्च सर्वश
अर्धचन्द्र चन्द्र पशुओं प्रकारके
रत्नोंसे अलंकृत होनेके
कारण बड़ी चित्र

तरुणादित्यसंकाशं बृहन्तं चारुदर्शनम्
मणिहेमविचित्राङ्गं सुध्वजं सुपताकिनम्

बालसूर्य समान विशाल
हेमसे मणी अर्गों सुवर्ण
जड़े हुए रथपर ध्वज युक्त और
पताका

सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम्
यशोघ्नं प्रत्यमित्राणां यदूनां नन्दिवर्धनम्

उसमें प्रकार पालक सुन्दर
स्वामी मार्ग नामक ताला
बीजा पाला शत्रु लिये दुःख उनके हारे
सुजाकर नाश कल्याण स्थानिक
आनन्दकी वृद्धि रही
वाजिभिः कुत्स्नसुवीरयोत्स्नप्रभावात्
बातें सम्पन्नमयात् सानन्द समर्पण
श्रीकृष्णके भेदसे भूमी
इस नाम हाथी सुन्दर कहारे
बहुमूल्य आभूषणोंद्वारा
जैन दिया
महिमान कृष्णाय भूप एवमित्रवधय
सुखेन कलो जेन सुपुत्रे
राजकन्या कृष्णा पिता
सदा दूत सहस
उत्तर
हुती
मेकशिखरप्रभव मेरुवद् दुर्भिलनम्
आयरोह रथ वि नमिल कामगम्
सैन्य सुत दुगा
तथा और दुर्भिक्षसे जाने
रणपर भरतवंशी निज
पहले होगा पलान् कृष्ण और
तत सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तम
पृथिवी चान्तरिक्षं रथघोषेण नादयन्
दहलकर सात्यकिको रणपर ठाकर पुरुष
श्रीकृष्णने सखी सामी अतिसे ब्रह्मा और स्थान
सुजाने हुए वहां प्रस्थान किया
व्यपायासत्तात कात तमेव समपद्यत
विश्वासानुकथी वायु प्रशान्तमभय
आव जागरा
बादल उस शिव
अनुष्ठ पूजकी
गया
प्रदक्षिणानुलोम मङ्गल्या मृगपक्षिण
प्रयाने सुते वसुधानुरुपालित
पुष्पवदं नाम सदा
मृगा औ पक्ष उनके दाहिने तथा अनुकूल शर्म बाल
उनका पूजन करने लगे
मङ्गल्यस्वाभवँ शान्तरत्नवलन्न शुद्ध
खल्वा शत्रुध्रा सुवस्य मधुसूदनम्

पावन मङ्गलसूचक
सूत्र श्रीकृष्ण कालिन्दीके
मध्यादुनिमहतामनुपमानाथ पावक
प्रवृत्तिमृगुणो सूत्रा पिधून समयपन
माधामपुर एम युत नदे-नदे
पावर नन्देर प्रमनि समये उतने
मिल प्राणि
मद्या मामनेवा सुविशुद्धो साथ कृत्य
शुक्लान्तवराङ्गलीका मकल्प कुशिका भृगु
देवनागर कृष्ण यदुसुलावहम्
व्यक्षिणमनन्तर महिला वासवानुजम्
भूत गुरु नारद
शिव देवर्षि तथा
स्वाद्भुत माने इनके
चारा
पयमताभवानगमहर्षिगणसाधुभि
शित प्रययौ कृष्ण कुरुणा मम्न गति
महर्षियों पाण्डु महा शालीने
सहा कुरुकुल उसी हस्तिनापुर
प्रस्था किया
मयादन्तमनुयातानु कुन्तीपुत्रा युधिष्ठिर
भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ पाण्डवौ
विनामा विमानतो धृष्टकेतुश्च नदिय
द्रुपद काशिराजश्च शिखण्डी महाराज
धृष्टद्युम्न युयुत्सु विराट सवे तथा
ससाधकार्थ यदु क्षत्रिया क्षत्रियर्षभ
क्षत्रियगणों कृष्णके समय सबी पहुँचाने
लिये कुन्ती पुत्र सौ नाम
भोमन लड्डू नकुल देव
चेकितान धानु द्रुपद काशिराज
पुत्र पंचकोंसहित राजा
विराट वासि शिखण्डी
प्रस्थान लिये उनके
ततोऽनुव्रज्य गोविन्द महाराजो युधिष्ठिर
राज्ञा मन्त्रयो विमानुपादाय असत्या
प्रणत वासि पुत्र सवी
चर्मात्रा विधि साथ कुछ दूरतक
विचार किया
कामाख्या भवाम लोभाचार्यं रणाम्
अन्याशमनुयत्त शिरःसुपित्रोसुप

धर्मज्ञो धृतिमान् प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशव।
ईश्वरः सर्वभूतानां देवदेवः सनातनः॥ ३५॥

जो कभी कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा अन्य किसी प्रयोजनके कारण भी अन्यायका अनुसरण नहीं कर सकते, जिनकी बुद्धि स्थिर है, जो धर्मज्ञ, धैर्यवान्, विद्वान् तथा समस्त भूतोंके भीतर निवास करते हैं, वे भगवान् केशव देवताओंके भी देवता, सनातन परमेश्वर तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके ईश्वर हैं॥ ३४-३५॥

तं सर्वगुणसम्पन्नं श्रीवत्सकृतलक्षणम्।
सखायमिह कौन्तेय व्रजन्तमनुप्रयाताम्॥ ३६॥

उन्हीं सर्वगुणसम्पन्न श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित भगवान् श्रीकृष्णको इन्होंने अपना सखा मानकर कुन्तीने नाना प्रकारसे पुत्रविलाप करना आरम्भ किया॥ ३६॥



कपिध्वज रथ

या सा बाल्यात् प्रभृत्यस्मान् पर्यवर्धयताबला।
उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता॥ ३७॥
दैवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता।
वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियास्माकं जनार्दन॥ ३८॥
सुयोधनभयाद् या नोऽत्रायतामित्रकर्शन।
महतो मृत्युसम्बाधादुत्तरन्नौरिवार्णवात्॥ ३९॥
अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव।
अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम्॥ ४०॥

युधिष्ठिर बोले—शत्रुओंका संहार करनेवाले जनार्दन! अबला होकर भी जिन्होंने बचपनसे ही हमें पाल-पोसकर बड़ा किया है, उपवास और तपस्यामें संलग्न रहना जिनका स्वभाव बन गया है, जो सदा कल्याणसाधनमें ही लगी रहती हैं, देवताओं और अतिथियोंकी पूजामें तथा गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषामें जिनका सुदृढ़ अनुराग है, जो पुत्रवत्सला एवं पुत्रोंसे प्यार करनेवाली हैं, जिनके प्रति हम सभी भाइयोंका अत्यन्त प्रेम है, जिन्होंने दुर्योधनके भयसे हमारी रक्षा की है, जैसे नौका मनुष्यको समुद्रमें डूबनेसे बचाती है, उसी प्रकार जिन्होंने मृत्युके महान् सङ्कटसे हमारा उद्धार किया है और माधव! जिन्होंने हमलोगोंके कारण सदा दुःख ही भोगे हैं, उन दुःख न भोगनेके योग्य हमारी माता कुन्तीसे मिलकर आप उनका कुशल-समाचार अवश्य पूछें॥ ३७—४०॥

भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम्।
अभिवाद्य स्वजेथास्त्वं पाण्डवान् परिकीर्तयन्॥ ४१॥

आप हम पाण्डवोंका समाचार बताते हुए हमारी ओरसे मिलियेगा और प्रणाम करके पुत्रशोकसे पीड़ित हुई उन देवीको पूर्ण बहुत आश्वासन दीजियेगा॥ ४१॥

ऊढात् प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिंदम।
निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्नुते॥ ४२॥

शत्रुदमन! उनको विवाहके समयसे लेकर अबतक ससुरालके घरमें आकर नाना प्रकारके दुःख और कष्ट ही भोगने तथा अनुभव किये हैं और इस समय भी वह यह सब कष्ट ही भोगती हैं॥ ४२॥

अपि जातु स कालः स्यात् कृष्ण दुःखविपर्ययः।
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखे दद्यामरिंदम॥ ४३॥

शत्रुनाशक श्रीकृष्ण! क्या कभी वह समय भी आयेगा, जब हमारे सब दुःख दूर हो जायँगे और हमलोग दुःखसे घबरी हुई अपनी माताको सुख दे सकेंगे?॥ ४३॥

प्रव्रजन्तोऽनुधावन्तीं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम्।
रुदतीमपहायैनामगच्छाम वयं वनम्॥ ४४॥

जब हम वनको जा रहे थे, उस समय पुत्रस्नेहसे व्याकुल हो करुण स्वरमें रोती हुई हमारे पीछे-पीछे दौड़ी आ रही थीं, परंतु हमलोग उन्हें वहीं छोड़कर वनको चले गये॥ ४४॥

न नूनं म्रियते दुःखैः सा चेज्जीवति केशव।
तथा पुत्राधिभिर्गाढमार्ता ह्यानर्तसत्कृता॥ ४५॥

आनर्तदेशके सम्मानित वीर केशव! यह निश्चित नहीं है कि मनुष्य दुःखोंसे बरबस मर ही जाता हो। इसलिये कदाचित् वह जीवित हों तो भी पुत्रोंकी चिन्तासे अत्यन्त पीड़ित ही होंगी॥ ४५॥

अभिवाद्यश्च वः कृष्ण त्वया मद्वचनाद् विभो ।
धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोऽधिकाः ॥ ४६ ॥
भीष्मं द्रोणं कृपं चैव महाराजं च बाह्लिकम् ।
द्रौणिं च सोमदत्तं च सर्वांश्च भरतान् प्रति ॥ ४७ ॥
विदुरं च महाप्राज्ञं कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
त्वयाभिष्वज्य मर्मज्ञ सजैया मधुसूदन ॥ ४८ ॥

प्रभो ! मधुसूदन श्रीकृष्ण ! आप हमारी ओरसे प्रणाम करके कर कथानुसार धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि वयोवृद्ध नरेश भीष्म द्रोण कृप महाराज बाह्लीक द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सोमदत्त तथा समस्त भरतवंशी क्षत्रियवृन्द तथा कौरवोंके मन्त्रकी रक्षा करनेवाले तथा परम बुद्धिमान् एवं महात्मा विदुरजीसे जाकर हम लोगोंकी ओरसे गले मिलियेगा ॥ ४६—४८ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः ।
अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ४९ ॥

राजाओंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर उनकी परिक्रमा करके आज्ञा ले लौट गये ॥ ४९ ॥

व्रजन्नेव तु बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम् ।
अब्रवीत् परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम् ॥ ५० ॥

पीछे अर्जुनने साथ-साथ जाते हुए ही शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अपराजित सखा नरश्रेष्ठ दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णसे कहा ॥ ५० ॥

यदस्माकं विभो वृत्तं पुरा वै मन्त्रनिश्चये ।
अर्धराज्यस्य गोविन्द विदितं सर्वराजसु ॥ ५१ ॥

गोविन्द ! पहले जब हमारी गुप्त मन्त्रणा हुई थी, उस समय सब निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचकर हमलोग आधा राज्य लेकर ही संधि करेंगे, इसका जो निश्चय था, उसको सभी राजा जानते हैं ॥ ५१ ॥

तच्चेद् दद्यादसङ्गेन सत्कृत्यानवमन्य च ।
प्रियं मे स्यान्महाबाहो मुच्येरन् महतो भयात् ॥ ५२ ॥

महाराज ! यदि दुर्योधन लोभ छोड़कर अनादर न करके सत्कारपूर्वक हमें आधा राज्य लौटा दे तो मेरा प्रिय कार्य सम्पन्न हो जाय तथा समस्त कौरव महान् भयसे छुटकारा पा जायँ ॥ ५२ ॥

अतश्चान्यथा कर्ता धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।
अन्तं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन ॥ ५३ ॥

जनार्दन ! यदि समुचित उपायको न जाननेवाला धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन इसके विपरीत आचरण करेगा तो मैं निश्चय ही उसके पक्षमें आये हुए समस्त क्षत्रियोंका संहार कर डालूँगा ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ते पाण्डवेन समहृष्यद् वृकोदरः ।
मुहुर्मुहुः क्रोधवशात् प्रावेपत च पाण्डवः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डुनन्दन अर्जुनके ऐसा कहनेपर पाण्डव भीमसेनको बड़ा हर्ष हुआ। वे क्रोधवश बारंबार काँपने लगे ॥ ५४ ॥

वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान् ।
धनञ्जयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनकी बात सुनकर ही कुन्तीकुमार भीमसेन बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। अर्जुनकी पूर्वोक्त बात सुनकर उनका हृदय अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भर गया था ॥ ५५ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा सम्प्रावेपन्त धन्विनः ।
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ ५६ ॥

उनका वह सिंहनाद सुनकर समस्त धनुर्धर भयके मारे थरथर काँपने लगे। उनके सभी वाहन मल-मूत्र करने लगे ॥ ५६ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चाक्त्वा विनिश्चयम् ।
अनुज्ञातो निववृते परिष्वज्य जनार्दनम् ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णसे वार्तालाप करके तथा अपना निश्चय बताकर फिर अर्जुन श्रीकृष्णकी आज्ञा ले लौट आये ॥ ५७ ॥

तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः ।
तूर्णमभ्यगमद्‌ धृष्टः शैब्यसुग्रीववाहनः ॥ ५८ ॥

उन सब राजाओंके लौट जानेपर शैब्य-सुग्रीव आदि घोड़ोंसे जुते रथपर बैठकर श्रीकृष्ण बड़े हर्षके साथ तीव्र गतिसे आगे बढ़े ॥ ५८ ॥

ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः ।
पन्थानमाचेमुरिव ग्रसमाना इवाम्बरम् ॥ ५९ ॥

दारुकके हाँकनेपर भगवान् वासुदेवके वे अश्व इतने वेगसे चलने लगे, मानो मार्गको पी रहे हों और आकाशको ग्रस लेना चाहते हों ॥ ५९ ॥

अथापश्यन्महाबाहुर्ऋषीनध्वनि केशवः ।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानान् स्थितानुभयतः पथि ॥ ६० ॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने मार्गमें कुछ महर्षियोंको उपस्थित देखा, जो रास्तेके दोनों ओर खड़े थे और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६० ॥

सोऽवतीर्य रथात् तूर्णमभिवाद्य जनार्दनः ।
यथावृत्तानृषीन् सर्वानभ्यभाषत पूजयन् ॥ ६१ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत ही रथसे उतर पड़े और

पूर्वोत्तमलो मढ़े हुए [illegible] समस्त महर्षियोंको प्रणाम करके उनका स्वागत करते हुए [illegible]



कलिद्रोषेषु कुशा [illegible] कदाचन [illegible] मनुष्ठित
आकृपाला यथा यथा कश्चित् निशम्य [illegible] आसन
पितृदेवातिथिभि [illegible] पूजा स्वनिष्ठिता

महात्मा [illegible] पूरा [illegible] मैंकुण्ठ [illegible] है [illegible] सत्कार [illegible]
[illegible] नाहि [illegible]
वहाँ आह्लादोंकी भाव [illegible] भा [illegible] सि [illegible]
देवतायों [illegible] सर्वदा [illegible] हुआ [illegible] का [illegible]
हो रहा है

सेव्य प्रत्युत्य ना पूजा [illegible] मधुसूदन
भगवन्न क सनिक [illegible] था भवतामिह
कि वा कार्यं भवत्वामह [illegible] करवाणि
केनाप्यथोपसम्प्राप्ता भगवन्न महात्मन्

तथापि [illegible] सौरकी एवं [illegible] भगवान् मधुसूदनने फिर उनको पूजा [illegible] महात्मा [illegible] यहाँ [illegible] आप का है [illegible] कौन [illegible] पाया है आपलोगोंका क्या [illegible] है भगवन् [illegible] आप [illegible] सेवा करूँ [illegible] आप [illegible] पधारे हैं

एवमुक्ता केशवेन मुनयः सहितास्तत
नारदाद्यमुख्या सम प्रत्यवन् केशवम्

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कठोर [illegible] धारण करने वाले नारद आदि [illegible] महर्षि उनका अभिनन्दन करते हुए

अथ [illegible] तपमालो महर्षि [illegible] देवल
अर्थयत्तु सुजानुभ्य मन्त्रय गुणको बली ॥
यमो [illegible] स्थूलशिरा [illegible] वासवलाथा
आश्रोयस्य स्यों [illegible] कर्मस्माण्डव्यपतापिनौ ॥
[illegible] पर्यो वदजातुक
मोजसेय [illegible] पाराशर्योऽथ पालितः
[illegible] सुमन्तरो [illegible]
इत्येतत्तु महात्मा रामदत्त महायशा

[illegible] जो [illegible] वहाँ उपस्थित थे
[illegible] प्रकार है [illegible] महर्षि
[illegible] पुत्र [illegible]
[illegible] गये [illegible] अष्टोत्तरशत
[illegible] विमल [illegible]
[illegible] आदि [illegible]
[illegible] बोले [illegible]
[illegible]

नामकत्तास्यम [illegible] मधुसूदनम्
परिरम्य च [illegible] सुर [illegible] ॥
[illegible]
[illegible] वाक्य
[illegible]

[illegible] पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुता
[illegible] निमित्तकामान्
त्रैलोक्यस्य [illegible] पुराणस्य महाबले ॥
सम्बे [illegible] विश्वस्य सर्वत
[illegible] जगत्स्त्रा च [illegible] ॥ ७ ॥
[illegible] महान् [illegible] केशव
धर्मस्य [illegible] धातुमि [illegible] साधन ॥ ८ ॥
[illegible] कुरु [illegible] गजाह्वये [illegible]

[illegible] विहीन पुरातन देवासुरसंग्रामका [illegible]
[illegible] अनेक
[illegible] विद्वान् [illegible] करनेवाले
[illegible] भूमण्डलके
[illegible] स्वरूप
आप [illegible] हैं [illegible]
[illegible] लिये हो हस्तिनापुरमें
[illegible] हो कौरवों
[illegible] आप [illegible] जाने
[illegible] सुनना
चाहते हैं

श्रीमत्प्रोत्साहयमान [illegible] विदुरश्च महामति ॥ ९९ ॥
[illegible] समेत्य

परंतप ! यहाँ कौरवसभामें भीष्म, द्रोण आदि महान् व्यक्ति परम बुद्धिमान् विदुर तथा आप पधारेंगे ॥ ६९-७० ॥

तत्र वाक्यानि दिव्यानि तथा तेषां च माधव ॥ ७० ॥
श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च हितानि च ।

गोविन्द ! माधव ! इस सभामें आपके तथा भीष्म आदिके मुखसे जो दिव्य, सत्य एवं हितकर वचन प्रकट होंगे, उन सबको हमलोग सुनना चाहते हैं ॥ ७० ॥

यथापृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम् ॥ ७१ ॥
परिस्थिताश्च ते वीर द्रक्ष्यामस्त्वां सभागतम् ।
आसीनमासने दिव्ये सर्वतेजःसमाहितम् ॥ ७२ ॥

महाबाहो ! अब हमलोग आपसे पूछकर विदा ले रहे हैं । पुनः आपका दर्शन करेंगे । वीर ! आपकी यात्रा निर्विघ्न हो । आप सभामें पधारकर जब दिव्य सिंहासनपर बैठे होंगे, उसी समय हम और उसमें समस्त तेजसे सम्पन्न आपके श्रीअङ्गोंका हम पुनः दर्शन करेंगे ॥ ७१-७२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रयाणे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णप्रयाणविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ७७½ श्लोक हैं)

चतुरशीतितमोऽध्याय

मार्गके शुभाशुभ शकुनोंका वर्णन तथा मार्गमें लोगोंद्वारा सत्कार पाते हुए श्रीकृष्णका वृकस्थल पहुँचकर वहाँ विश्राम करना

वैशम्पायन उवाच

प्रयान्तं देवकीपुत्रं परवीररुजो दश ।
महारथा महाबाहुमन्वयुः शस्त्रपाणयः ॥ १ ॥
पदातीनां सहस्रं च सादिनां च परंतप ।
भोज्यं च विपुलं राजन् प्रेष्याश्च शतशोऽपरे ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! शत्रुओंको नष्ट करनेवाले दस महारथी वीर हाथोंमें शस्त्र लिये महाबाहु श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चले । एक हजार पैदल और एक हजार घुड़सवार, प्रचुर भोजन-सामग्री तथा दूसरे सैकड़ों सेवक उनके साथ थे ॥ १-२ ॥

जनमेजय उवाच

कथं प्रयातो दाशार्हो महात्मा मधुसूदनः ।
कानि वा व्रजतस्तस्य निमित्तानि महौजसः ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—दशार्हकुलभूषण महात्मा मधुसूदनने किस प्रकार यात्रा की ? उन महातेजस्वी श्रीकृष्णके जाते समय कौन-कौनसे शकुन प्रकट हुए थे ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य प्रयाणे यान्यासन् निमित्तानि महात्मनः ।
तानि मे शृणु सर्वाणि दैवान्यौत्पातिकानि च ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! महात्मा श्रीकृष्णके प्रस्थान करते समय जो दिव्य शकुन और उत्पातसूचक अपशकुन प्रकट हुए थे, उनको तुम मुझसे सुनो ॥ ४ ॥

अनभ्रेऽशनिनिर्घोषः सविद्युत् समजायत ।
अन्वगेव च पर्जन्यः प्रावर्षद् विघने भृशम् ॥ ५ ॥

बिना बादलके ही आकाशमें बिजलीसहित वज्रकी गड़गड़ाहट सुनायी देने लगी । उसके बाद ही मेघरहित आकाशमें मेघोंकी भारी वर्षा होने लगी ॥ ५ ॥

प्रत्यग्ययुर्महानद्यः प्राङ्मुखाः सिन्धुसत्तमाः ।
विपरीता दिशः सर्वा न प्राज्ञायत किंचन ॥ ६ ॥

पूर्वकी ओर बहनेवाली सिन्धु आदि बड़ी-बड़ी नदियोंका प्रवाह उलटकर पश्चिमकी ओर हो गया । सारी दिशाएँ विपरीत प्रतीत होने लगीं । कुछ भी समझमें नहीं आता था ॥ ६ ॥



प्राज्वलन्नग्नयो राजन् पृथिवी समकम्पत ।
उदपानाश्च कुम्भाश्च प्रासिञ्चञ्छतशो जलम् ॥ ७ ॥

राजन् ! रथ और आग जलने लगी । धरती डोलने लगी । सेकड़ों जलाशय और कलश छलक-छलककर जल गिराने लगे ॥ ७ ॥

तमःसंवृतमप्यासीत् सर्वं जगदिदं तथा ।
न दिशो नादिशो राजन् प्रत्यदृश्यन्त रेणुना ॥ ८ ॥

राजन् ! यह सारा जगत् धूलके कारण अन्धकारसे आच्छन्न-सा हो गया । कौन दिशा है और दिशा नहीं है—इसका ज्ञान नहीं हो पाता था ॥ ८ ॥

प्रादुरासीन्महानादः खे शरीरं न दृश्यते ।
सर्वेषु राजन् देशेषु तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

महाराज ! फिर बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा । आकाशमें शब्द और मनुष्यकी भी आकृति दिखायी देने लगी । सम्पूर्ण देशोंमें वह अद्भुत-सा दिखायी दी ॥ ९ ॥

प्रामथ्नाद्धास्तिनपुरं वातो दक्षिणपश्चिमः ।
आरुजन् गणशो वृक्षान् परुषो भीमनिःस्वनः ॥ १० ॥

दक्षिण-पश्चिमसे आँधी उठी और हस्तिनापुरको मथने लगी । उसने झुंड-के-झुंड वृक्षोंको तोड़ उखाड़कर धराशायी कर दिया । वज्रपातका-सा कठोर शब्द होने लगा (इस प्रकारके उत्पात हस्तिनापुरके आस-पास घटित होते थे) ॥ १० ॥

यत्र यत्र तु वार्ष्णेयो वर्तते पथि भारत ।
तत्र तत्र सुखो वायुः सर्वं चासीत् प्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥

भारत ! वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण मार्गमें जहाँ-जहाँ रहते थे, वहाँ-वहाँ सुखदायिनी वायु चलती थी और सभी शुभ शकुन उनके दाहिने भागमें प्रकट होते थे ॥ ११ ॥

ववर्ष पुष्पवर्षं च कमलानि च भूरिशः ।
समश्च पन्था निर्दुःखो व्यपेतकुशकण्टकः ॥ १२ ॥

उनपर फूलोंकी और बहुसंख्यक खिले हुए कमलोंकी भी वृष्टि होती तथा सारा मार्ग कुश-कण्टकसे शून्य और समतल होकर क्लेश और दुःखसे रहित हो जाता था ॥ १२ ॥

संस्तुतो ब्राह्मणैर्गीर्भिस्तत्र तत्र महायशाः ।
अर्च्यते मधुपर्कैश्च वसुभिश्च वसुप्रदः ॥ १३ ॥

जहाँ ब्राह्मण विभिन्न स्थानोंमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते तथा मधुपर्कद्वारा उनकी पूजा करते थे । धनदाता भगवान्ने भी धन उनको यथेष्ट धन दिया ॥ १३ ॥

तं किरन्ति महात्मानं वन्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।
स्त्रियः पथि समागम्य सर्वभूतहिते रतम् ॥ १४ ॥

मार्गमें कितनी ही स्त्रियाँ आकर सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत रहनेवाले उन महात्मा श्रीकृष्णके ऊपर वनके सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करती थीं ॥ १४ ॥

स शालिभवनं रम्यं सर्वसस्यसमाचितम् ।
सुखं परमधर्मिष्ठमत्यगाद् भरतर्षभ ॥ १५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय सर्वकार्योंके लिये सबका कल्याण करनेवाले तथा सम्पूर्ण धान्य-सम्पत्तिसे भरे हुए अगहनी धानके मनोहर खेत देखते हुए भगवान् बड़े सुखसे यात्रा कर रहे थे ॥ १५ ॥

पश्यन् बहुपशून् ग्रामान् रम्यान् हृदयतोषणान् ।
पुराणि च व्यतिक्रामन् राष्ट्राणि विविधानि च ॥ १६ ॥

रास्तेमें कितने ही ऐसे गाँव मिलते, जिनमें बहुसंख्यक पशुओंका पालन पोषण होता था । वे देखनेमें अत्यन्त सुन्दर और मनको संतोष देनेवाले थे । उन सबको देखते और अनेकानेक नगरों एवं राष्ट्रोंको लाँघते हुए वे आगे बढ़ते चले गये ॥ १६ ॥

नित्यहृष्टाः सुमनसो भारतैरभिरक्षिताः ।
नोद्विग्नाः परचक्राणां व्यसनानामकोविदाः ॥ १७ ॥
उपप्लव्यादथायान्तं जनाः पुरनिवासिनः ।
पथ्यतिष्ठन्त सहिता विष्वक्सेनदिदृक्षया ॥ १८ ॥

इधर उपप्लव्य नगरसे आते हुए भगवान् श्रीकृष्णको देखनेकी इच्छासे अनेक नागरिक रास्तेमें एक साथ खड़े थे । भरतवंशियोंद्वारा सुरक्षित होनेके कारण वे नगर एवं राष्ट्रके लोग सदा प्रसन्न रहते थे । उनका मन बहुत प्रसन्न था । उन्हें शत्रुओंकी सेनाओंसे उद्विग्न होनेका अवसर नहीं प्राप्त था । दुःख और संकट कैसा होता है, इसको वे जानते ही नहीं थे ॥ १७-१८ ॥

ते तु सर्वे समायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम् ।
अर्चयामासुरर्चार्हं देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९ ॥

उन सबने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और अपने देशके पूजनीय अतिथि भगवान् श्रीकृष्णको समीप आते देख निकट जाकर उनका यथावत् पूजन किया ॥ १९ ॥

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा ।
प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ॥ २० ॥
अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
रथमोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ॥ २१ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जब वृकस्थलमें पहुँचे, उस समय नाना किरणोंसे मण्डित सूर्य अस्त होने लगे और पश्चिमके आकाशमें लाली छा गयी । तब भगवान्ने शीघ्र ही रथसे उतरकर उसे खोलनेकी आज्ञा दी और विधिपूर्वक शौच-स्नान करके वे संध्योपासना करने लगे ॥ २०-२१ ॥

वासुकोऽपि तथात्र सुब्यस्या परिचर्य यथाविधि
मुमोच सत्कृत्य यादि मुक्तवा वैतालमस्तदा ॥ २२ ॥

वासुकने भी योद्धोंको लाकर शास्त्रविधिके अनुसार उनकी परिचर्या की और उनका सारा सत्कार उतार दिया तथा उन्हें बन्धनमुक्त करके छोड़ दिया

अथ मतीय तु तत् सर्वमुवाच मधुसूदनम्
युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वास्यामहे क्षणम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् सारे कार्य समाप्त करके मधुसूदन श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिरका कार्य सिद्ध करनेके लिये आज रातमें हमलोग यहीं रहेंगे

अथ तत्पराक्रम्य चतुरङ्गं तदा तदा
सूपेन पानान्नानि गुणवन्ति समर्पयत् ॥ २४ ॥

क्योंकि विचार था कि सेवलोग यहीं ठहर गये तब क्षणभरमें उन्होंने खाने-पीनेके उत्तमोत्तम पदार्थ प्रस्तुत कर दिये

सविता प्राप्ते अधानात्तु न जाननू आह्नाना नृप
कार्या कुलीना धीमन्तो भार्याः युक्तिमनुष्ठिताः ॥ २५ ॥

राजन्! उस नगरमें जो प्रमुख ब्राह्मण होते थे ये सब कुलीन सदाचारी और शास्त्रोक्त विधिका पालन करनेवाले थे

तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिंदमम्
पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्भिर्मधुसूदनम् ॥ २६ ॥

उन्होंने शत्रुदमन महात्मा हृषीकेशके पास जाकर आशीर्वाद तथा मङ्गलपाठपूर्वक उनका यथोचित पूजन किया। १

ते पूजयित्वा दाशार्हं सर्वलोकेषु पूजितम्
न्यवेदयन्त वेश्मानि रजन्यां तु महात्मने ॥ २७ ॥

सर्वलोकपूजित दशार्हनन्दन श्रीकृष्णकी पूजा करके



उन्होंने उन महात्माको अपने रजनीवासके लिये घर अर्पित कर दिये अर्थात् अपने अपने घरोंमें ठहरनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना की

नाम प्रभुः कृतमित्युक्त्वा सत्कृत्य च यथार्हतः
अभ्येत्य च ततो वेश्मानि पुनरायात् सहैव तैः ॥ २८ ॥

तब भगवान्ने यह कहकर कि यहाँ ठहरनेके लिये पर्याप्त स्थान है उनका यथायोग्य सत्कार किया और उनके संतोषके लिये उन सबके घरोंपर जाकर पुनः उन्हींके साथ ही लौट आये

सुमृष्टं भोजयित्वा स ब्राह्मणांस्तत्र केशवः
भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत् तां क्षपां सुखम् ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् केशवने वहाँ उन ब्राह्मणोंको सुस्वादु अन्न भोजन कराया फिर स्वयं भी भोजन करके उन सबके साथ उस रातमें वहाँ सुखपूर्वक निवास किया।

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि श्रीकृष्णप्रयाणे चतुरशीतितमोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्वमेधिकपर्वके अन्तर्गत अनुगीतापर्वमें श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें प्रस्थानविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ

पञ्चाशीतितमोऽध्याय

दुर्योधनका धृतराष्ट्र आदिकी अनुमतिसे श्रीकृष्णके स्वागत-सत्कारके लिये मार्गमें विश्रामस्थान बनवाना

वैशम्पायन उवाच

तथा श्रुत्वा समायान्तं मधुसूदनम्
धृतराष्ट्रोऽब्रवीत् भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम् ॥ १ ॥
द्रोणं च सञ्जयं चैव विदुरं च महामतिम्
दुर्योधनं सहामात्यं हृष्टरोमाब्रवीदिदम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दूतोंके द्वारा भगवान् मधुसूदनके आगमनका समाचार जानकर धृतराष्ट्रके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने महाबाहु भीष्म, द्रोण, सञ्जय तथा परम बुद्धिमान् विदुरका यथावत् सत्कार करके मन्त्रियोंसहित दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—

अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥ ४ ॥
सत्कृत्याचक्षते चान्ये तथैवान्ये समागताः।
पृथगाख्याश्च वर्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥ ४ ॥

कुरुनन्दन ! एक अद्भुत और अत्यन्त आश्चर्यकी बात सुनायी देती है। घर-घरमें स्त्रियाँ, बालक और बूढ़े इसीकी चर्चा करते हैं। जो वहाँके निवासी हैं, वे तथा जो बाहरसे आये हुए हैं, वे भी आदरपूर्वक इसी बातको कहते हैं। चौराहोंपर और सभाओंमें भी पृथक्-पृथक् यही चर्चा चलती है ॥ ४ ॥

उपयास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी।
स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥ ५ ॥

वह बात यह है कि पाण्डवोंकी ओरसे परम पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारेंगे। वे मधुसूदन हमलोगोंके माननीय तथा सब प्रकारसे पूजनीय हैं ॥ ५ ॥

तस्मिन् हि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः।
तस्मिन् धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण लोकोंका जीवन उन्हींपर निर्भर है, क्योंकि वे सम्पूर्ण भूतोंके अधीश्वर हैं। उन माधवमें धैर्य, पराक्रम, बुद्धि और तेज सब कुछ है ॥ ६ ॥

स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः।
पूजिते हि सुखाय स्यादसुखं स्यादपूजिते ॥ ७ ॥

उन नरश्रेष्ठ श्रीकृष्णका यहाँ सम्मान होना चाहिये, क्योंकि वे सनातन धर्मस्वरूप हैं। सम्मानित होनेपर वे हमारे लिये सुखदायक होंगे और सम्मानित न होनेपर हमारे दुःखके कारण बन जायँगे ॥ ७ ॥

स चेत् तुष्यति दाशार्ह उपचारैररिंदमः।
कृत्स्नान् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ ८ ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण यदि हमारे स्वागत-सत्कारोंसे संतुष्ट हो जायँगे तो हम समस्त राजाओंमें अपने सारे मनोरथ प्राप्त कर लेंगे ॥ ८ ॥

तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परंतप।
सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमन्विताः ॥ ९ ॥

परंतप ! तुम श्रीकृष्णके स्वागत-सत्कारके लिये आज से ही तैयारी करो। मार्गमें अनेक विश्रामस्थान बनवाओ और उनमें सब प्रकारकी मनोनुकूल आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करो ॥ ९ ॥

यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत तस्य वै।
तथा कुरुष्व गान्धारे कथं वा भीष्म मन्यसे ॥ १० ॥

महाबाहु गान्धारीनन्दन ! तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे श्रीकृष्णके हृदयमें तुम्हारे प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय। भीष्मजी ! इस विषयमें आपकी क्या सम्मति है ? ॥ १० ॥

ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम्।
ऊचुः परममित्येवं पूजयन्तोऽस्य तद् वचः ॥ ११ ॥

तब भीष्म आदि सब लोगोंने उस प्रस्तावकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'बहुत उत्तम बात है' ॥ ११ ॥

तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा।
सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥

उन सबकी अनुमति जानकर राजा दुर्योधनने उस समय जगह-जगह सुन्दर सभाभवन तथा विश्रामस्थान बनवानेके लिये आदेश जारी किया ॥ १२ ॥

ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः।
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥ १३ ॥

तब कारीगरोंने विभिन्न रमणीय प्रदेशोंमें अलग-अलग सब प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न अनेक विश्रामस्थान बनाये ॥ १३ ॥

आसनानि विचित्राणि युक्तानि विविधैर्गुणैः।
स्त्रियो गन्धानलंकारान् सूक्ष्माणि वसनानि च ॥ १४ ॥
गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च।
माल्यानि च सुगन्धीनि तानि राजा ददौ ततः ॥ १५ ॥

नाना प्रकारके गुणोंसे युक्त विचित्र आसन, स्त्रियाँ, सुगन्धित पदार्थ, आभूषण, महीन वस्त्र, गुणकारक अन्न और पेय पदार्थ, भाँति-भाँतिके भोज्य तथा सुगन्धित पुष्पमालाएँ आदि वस्तुओंको राजा दुर्योधनने उन स्थानोंमें रखवाया ॥ १४-१५ ॥

विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले।
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥ १६ ॥

विशेषतः वृकस्थलनामक गाँवमें निवास करनेके लिये कुरुराज दुर्योधनने जो विश्रामस्थान बनवाया था, वह बड़ा मनोरम तथा प्रचुर रत्नराशिसे सम्पन्न था ॥ १६ ॥

एतद् विधाय वै सर्वं देवार्हमतिमानुषम्।
आचख्यौ धृतराष्ट्राय राजा दुर्योधनस्तदा ॥ १७ ॥

मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ यह सब देवोचित व्यवस्था करके राजा दुर्योधनने धृतराष्ट्रको इसकी सूचना दे दी ॥ १७ ॥

ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च।
असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात् कुरुसद्म तत् ॥ १८ ॥

परंतु यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण उन विश्रामस्थानों तथा नाना प्रकारके रत्नोंकी ओर दृष्टिपात न करके कौरवोंके निवासस्थान हस्तिनापुरकी ओर चलते चले गये ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि सभानिर्माणे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विश्रामस्थानके निर्माणसम्बन्धी पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्याय

धृतराष्ट्रका भगवान् श्रीकृष्णकी अगवानी करके उन्हें भेंट देने तथा दु:शासनके महलमें ठहरानेका विचार प्रकट करना

धृतराष्ट्र उवाच

उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपयातो जनार्दनः ।
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—विदुर! मुझे सूचना मिली है कि भगवान् श्रीकृष्ण उपप्लव्यसे यहाँके लिये प्रस्थित हो गये हैं। आज वृकस्थलमें ठहरे हैं तथा कल सबेरे ही इस नगरमें पहुँच जायँगे ॥ १ ॥

आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम् ।
महामना महावीर्यो महासत्त्वो जनार्दनः ॥ २ ॥

भगवान् जनार्दन आहुकवंशी क्षत्रियोंके अधिपति तथा समस्त सात्वतों (यादवों) के अगुआ हैं। उनका हृदय महान् है, पराक्रम भी महान् है तथा वे महान् धैर्यसे सम्पन्न हैं ॥ २ ॥

स्फीतस्य वृष्णिराष्ट्रस्य भर्ता गोप्ता च माधवः ।
त्रयाणामपि लोकानां भगवान् प्रपितामहः ॥ ३ ॥

वे भगवान् माधव समृद्धिशाली यादव गणराज्यके पोषक तथा संरक्षक हैं। तीनों लोकोंके प्रपितामह भी वे ही हैं ॥ ३ ॥

वृष्ण्यन्धकाः सुमनसो यस्य प्रज्ञामुपासते ।
आदित्या वसवो रुद्रा यथा बुद्धिं बृहस्पतेः ॥ ४ ॥

जैसे आदित्य, वसु तथा रुद्रगण बृहस्पतिकी बुद्धिका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके लोग प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णकी ही बुद्धिके आश्रित रहते हैं ॥ ४ ॥

तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने ।
प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तन्मे कथयतः शृणु ॥ ५ ॥

धर्मज्ञ विदुर! मैं तुम्हारे सामने ही उन महात्मा श्रीकृष्णकी जो पूजा करूँगा, उसे बतलाता हूँ, सुनो ॥ ५ ॥

एकवर्णैः सुकृष्णाङ्गैर्बाह्लीकैर्हेमभूषितैः ।
चतुर्युक्तान् रथांस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश ॥ ६ ॥

एक रंगके सुन्दर अङ्गोंवाले तथा बाह्लीकदेशमें उत्पन्न हुए उत्तम जातिके चार-चार घोड़ोंसे जुते हुए सोलह सुवर्णमय रथ मैं श्रीकृष्णको भेंट करूँगा ॥ ६ ॥

नित्यप्रभिन्नान् मातङ्गानीषादन्तान् प्रहारिणः ।
अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव ॥ ७ ॥

कुरुनन्दन! इनके सिवा मैं उन्हें आठ मतवाले हाथी भी दूँगा, जिनके गण्डस्थलोंसे सदा मद चूता रहता है, जिनके दाँत हलदण्डके समान प्रतीत होते हैं तथा जो शत्रुओंपर प्रहार करनेमें कुशल हैं और जिन आठों गजराजोंमेंसे प्रत्येकके साथ आठ-आठ सेवक हैं ॥ ७ ॥

दासीनामप्रजातानां शुभानां रुक्मवर्चसाम् ।
शतमस्मै प्रदास्यामि दासानामपि तावताम् ॥ ८ ॥

साथ ही मैं उन्हें सुवर्णकी-सी कान्तिवाली परम सुन्दरी सौ ऐसी दासियाँ दूँगा, जिनसे किसी सन्तानकी उत्पत्ति नहीं हुई है। दासियोंके ही बराबर दास भी दूँगा ॥ ८ ॥

आविकं बहु सुस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम् ।
तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट च ॥ ९ ॥

मेरे यहाँ पर्वतीय लोग भेड़ोंके ऊन द्वारा बने हुए (अठारह हजार) कम्बल हैं, जो स्पर्श करनेपर बड़े मुलायम जान पड़ते हैं। उनमेंसे अठारह हजार कम्बल भी मैं श्रीकृष्णको उपहारमें दूँगा ॥ ९ ॥

अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च ।
तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः ॥ १० ॥

चीनदेशमें उत्पन्न हुए हजारों मृगचर्म मेरे भण्डारमें सुरक्षित हैं; उनमेंसे श्रीकृष्ण जितना लेना चाहेंगे, उतने सब कम्बल उन्हें अर्पित कर दूँगा ॥ १० ॥

दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः ।
तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः ॥ ११ ॥

मेरे पास यह एक अत्यन्त तेजस्वी निर्मल मणि है, जो दिन तथा रातमें भी प्रकाशित होती है; इसे भी मैं श्रीकृष्णको ही दूँगा, क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं ॥ ११ ॥

एकेनाभिपतत्यह्ना योजनानि चतुर्दश ।
यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम् ॥ १२ ॥

एक रथ खच्चरियोंसे जुता हुआ मेरे पास है, जो एक दिनमें चौदह योजनतक चला जाता है। उसे भी मैं उन्हींको अर्पित करूँगा ॥ १२ ॥

यावन्ति वाहनान्यस्य यावन्तः पुरुषाश्च ते ।
ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णके साथ जितने वाहन और जितने सेवक आयेंगे, उन सबको मैं उससे आठगुना भोजन दे प्रत्येक समय देता रहूँगा ॥ १३ ॥

मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।
प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥ १४ ॥

दुर्योधनके सिवा मेरे सभी पुत्र और पौत्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सुन्दर-सुन्दर रथोंपर बैठकर श्रीकृष्णकी अगवानीके लिये जायँ ॥ १४ ॥

अलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः ।
वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यान्तु केशवम् ॥ १५ ॥

सहस्रों सुन्दरी वारांगनाएँ सुन्दर वेशभूषासे सज-धजकर महाभाग केशवकी अगवानीके लिये पैदल ही जायँगी ॥ १५ ॥

याश्चापि काश्चिद् गमिष्यन्ति जनार्दनम् ।
द्रष्टुं कन्याश्च कल्याण्यस्ताश्च यान्त्वनावृताः ॥ १६ ॥

जनार्दनका दर्शन करनेके लिये इस नगरसे जो भी कोई पर्दा न रखनेवाली कल्याणमयी कन्याएँ जाना चाहेंगी, वे जा सकेंगी ॥ १६ ॥

सस्त्रीपुरुषबालं च नगरं मधुसूदनम् ।
उदीक्षतां महात्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः ॥ १७ ॥

जैसे प्रजा सूर्यदेवका दर्शन करती है, उसी प्रकार स्त्री, पुरुष और बालकोंसहित यह सारा नगर महात्मा मधुसूदनका दर्शन करे ॥ १७ ॥

महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतो दिशः ।
जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात् ॥ १८ ॥

नगरमें चारों ओर विशाल ध्वजाएँ और पताकाएँ फहरा दी जायँ और श्रीकृष्ण जिस मार्गसे आ रहे हों, उस राजमार्गपर अच्छी तरह छिड़काव करके उसे धूलरहित कर दिया जाय' इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रने आदेश दिया ॥ १८ ॥

दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद् वरम् ।
तदस्य क्रियतां क्षिप्रं सुसम्मृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥

इतना कहकर वे फिर बोले—दुःशासनका महल दुर्योधनके राजभवनसे भी अच्छा है। उसीको भाड़-पोंछकर सब प्रकारसे सुसज्जित कर दिया जाय ॥ १९ ॥

एतद्धि रुचिराकारैः प्रासादैरुपशोभितम् ।
शिवं च रमणीयं च सर्वर्तुसुमहाधनम् ॥ २० ॥

यह महल सुन्दर आकारवाले भवनोंसे सुशोभित, कल्याणकारी, रमणीय, सभी ऋतुओंके वैभवसे सम्पन्न तथा प्रचुर धनराशिसे समृद्ध है ॥ २० ॥

सर्वमस्मिन् गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च ।
यद् यदर्हति वार्ष्णेयस्तत् तद् देयमसंशयम् ॥ २१ ॥

मेरे और दुर्योधनके पास जो भी रत्न हैं, वे सब इसी घरमें रखने हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उनमेंसे जो जो रत्न लेना चाहें, वे सब उन्हें निःसंदेह दे दिये जायँ ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

विदुरका धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करनेके लिये समझाना

विदुर उवाच

राजन् बहुमतश्चासि त्रैलोक्यस्यापि सत्तमः ।
सम्भावितश्च लोकस्य सम्मतश्चासि भारत ॥ १ ॥

विदुरजी बोले—राजन्! आप तीनों लोकोंके श्रेष्ठतम पुरुष हैं और सबके द्वारा बहुत सम्मानित होते हैं। भारत! इस लोकमें भी आपकी बड़ी प्रतिष्ठा और सम्मान है ॥ १ ॥

यत् त्वमेवंगते ब्रूयाः पश्चिमे वयसि स्थितः ।
शास्त्राद् वा सुप्रतर्काद् वा सुस्थिरः स्थविरो ह्यसि ॥ २ ॥

इस समय आप अन्तिम अवस्था (बुढ़ापे) में स्थित हैं। ऐसी स्थितिमें आप जो कुछ कह रहे हैं, वह शास्त्रसे अथवा लौकिक युक्तिसे भी ठीक ही है। इस सुस्थिर विचारके कारण ही आप वास्तवमें स्थविर (वृद्ध) हैं ॥ २ ॥

लेखाश्मनीव भाः सूर्ये महोर्मिरिव सागरे ।
धर्मस्त्वयि तथा राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ॥ ३ ॥

राजन्! जैसे पत्थरमें रेखा है, सूर्यमें प्रभा है और समुद्रमें उत्ताल तरंगें हैं, उसी प्रकार आपमें धर्मकी स्थिति है। यह सारी प्रजा निश्चितरूपसे जानती है ॥ ३ ॥

सदैव भावितो लोको गुणौघैस्तव पार्थिव ।
गुणानां रक्षणे नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥ ४ ॥

भूपाल! आपके सद्गुणसमूहसे सदा ही इस जगत्की उन्नति एवं प्रतिष्ठा हो रही है। अतः आप अपने बन्धु-बान्धवोंसहित सदा ही इन सद्गुणोंकी रक्षाके लिये प्रयत्न कीजिये ॥ ४ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद् बहु नीनशः ।
राजन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चैव सुप्रियान् ॥ ५ ॥

राजन्! आप सरलताको अपनाइये। मूर्खतावश कुटिलताका आश्रय ले अपने अत्यन्त प्रिय पुत्रों, पौत्रों तथा सुहृदोंका महान् संहार न कीजिये ॥ ५ ॥

यत् त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु ।
एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति ॥ ६ ॥

नरेश्वर! श्रीकृष्णको अतिथिरूपमें पाकर आप जो उन्हें बहुत-सी वस्तुएँ देना चाहते हैं, उन सबके साथ-साथ वे आपसे इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भी पानेके अधिकारी हैं ॥ ६ ॥

न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात् ।
एतद् दित्ससि कृष्णाय सत्येनात्मानमालभे ॥ ७ ॥

मैं सत्यकी शपथ खाकर अपने शरीरको छूकर कहता हूँ कि आप धर्मपालनके उद्देश्यसे अथवा श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये उन्हें ये सब वस्तुएँ नहीं देना चाहते हैं ॥ ७ ॥

मायैषा सत्यमेवैतच्छद्मैतद् भूरिदक्षिण ।
जानामि त्वन्मतं राजन् गूढं बाह्येन कर्मणा ॥ ८ ॥

बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले महाराज! यह सब आपकी माया और असत्याचरण है। आपके इन बाह्य व्यापारोंमें छिपा हुआ जो आपका वास्तविक अभिप्राय है, उसे मैं समझता हूँ ॥ ८ ॥

पञ्च पञ्चैव लिप्सन्ति ग्रामकान् पाण्डवा नृप ।
न च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तत्कः शमं करिष्यति ॥ ९ ॥

नरेन्द्र! पाण्डवलोग आपसे केवल पाँच गाँव ही पाना चाहते हैं, परंतु आप उन्हें वे गाँव भी नहीं देना चाहते हैं। इससे स्पष्ट सूचित होता है कि आप (संधिद्वारा) शान्ति स्थापन नहीं करेंगे ॥ ९ ॥

अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि ।
अनेनैवाभ्युपायेन पाण्डवेभ्यो बिभित्ससि ॥ १० ॥

आप तो धन देकर महाबाहु श्रीकृष्णको अपने पक्षमें लाना चाहते हैं और इस उपायसे आप यह आशा रखते हैं कि आप उन्हें पाण्डवोंकी ओरसे फोड़ लेंगे ॥ १० ॥

न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया ।
अन्यो धनंजयात् कर्तुमेतत् तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥

परंतु मैं आपको असली बात बताये देता हूँ, आप धन देकर अथवा दूसरा कोई उपाय या निन्दा करके श्रीकृष्णको अर्जुनसे पृथक् नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदास्य दृढभक्तिताम् ।
अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनंजयम् ॥ १२ ॥

मैं श्रीकृष्णके माहात्म्यको जानता हूँ। श्रीकृष्णके प्रति अर्जुनकी जो सुदृढ़ भक्ति है, उससे भी परिचित हूँ। अतः मैं यह निश्चितरूपसे जानता हूँ कि श्रीकृष्ण अपने प्राणोंके समान प्रिय सखा अर्जुनको कभी त्याग नहीं सकते ॥ १२ ॥

अन्यत् कुम्भादपां पूर्णादन्यत् पादावसेचनात् ।
अन्यत् कुशलसम्प्रश्नान्नैषिष्यति जनार्दनः ॥ १३ ॥

इसलिये आपकी दी हुई वस्तुओंमेंसे जलसे भरे हुए कलश, पैर धोनेके लिये जल और कुशल-प्रश्नको छोड़कर दूसरी किसी वस्तुको श्रीकृष्ण नहीं स्वीकार करेंगे ॥ १३ ॥

यत् त्वस्य प्रियमातिथ्यं मानार्हस्य महात्मनः ।
तदस्मै क्रियतां राजन् मानार्हो हि जनार्दनः ॥ १४ ॥

राजन्! सम्माननीय महात्मा श्रीकृष्णका जो परम प्रिय आतिथ्य है, वह तो कीजिये ही, क्योंकि वे भगवान् जनार्दन सबके द्वारा सम्मान पानेके योग्य हैं ॥ १४ ॥

आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः ।
येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु ॥ १५ ॥

महाराज! भगवान् केशव कल्याणकी इच्छा लेकर जिस प्रयोजनसे हम कुरुवंशियोंके पास आ रहे हैं, वही उन्हें उपहारमें दीजिये ॥ १५ ॥

शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च ।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥ १६ ॥

राजेन्द्र! दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण आप, दुर्योधन तथा पाण्डवोंमें संधि कराकर शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। अतः उनके इस कथनका पालन कीजिये (इसीमें सबका हित होगा) ॥ १६ ॥

पितासि राजन् पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे ।
वर्तस्व पितृवत् तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥ १७ ॥

महाराज! आप पिता हैं और पाण्डव आपके पुत्र हैं। आप वृद्ध हैं और वे शिशु हैं। आप उनके प्रति पिताके समान स्नेहयुक्त बर्ताव कीजिये। वे आपके प्रति सदा ही पुत्रोंकी भाँति भक्ति रखते हैं ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुरवाक्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुरवाक्यविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

दुर्योधनका श्रीकृष्णके विषयमें अपने विचार कहना एवं उसकी कुमन्त्रणासे कुपित हो भीष्मजीका सभासे उठ जाना

दुर्योधन उवाच

यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत् सत्यमच्युते ।
अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान् प्रति जनार्दनः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—पिताजी! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्णके सम्बन्धमें विदुरजी जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ ठीक है। जनार्दन श्रीकृष्णका कुन्तीके

पुत्रोंके प्रति अद्भुत अनुराग है, अतः उनकी ओरसे धोखा नहीं हो सकता।

यद् यत् सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने।
अनेकरूपं राजेन्द्र न तद् देयं कदाचन॥ २॥

राजेन्द्र! आप जो जनार्दनको सत्कारपूर्वक बहुत-सा धन-रत्न भेंट करना चाहते हैं, वह कदापि उन्हें न दें॥ २॥

देशः कालस्तथायुक्तो न हि नार्हति केशवः।
मंस्यत्यधोक्षजो राजन् भयादर्चति मामिति॥ ३॥

मैं इसलिये नहीं कहता कि श्रीकृष्ण उन वस्तुओंके अधिकारी नहीं हैं, अपितु इस दृष्टिसे मना कर रहा हूँ कि वर्तमान देश-काल इसके योग्य नहीं है कि उनका विशेष सत्कार किया जाय। राजन्! इस समय तो श्रीकृष्ण यही समझेंगे कि यह डरके मारे मेरी पूजा कर रहा है॥ ३॥

अवमानश्च यत्र स्यात् क्षत्रियस्य विशाम्पते।
न तत् कुर्याद् बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः॥ ४॥

प्रजानाथ! जहाँ क्षत्रियका अपमान होता हो, वहाँ समझदार क्षत्रियको कोई काम नहीं करना चाहिये, यह मेरा निश्चित विचार है॥ ४॥

स हि पूज्यतमो लोके कृष्णः पृथुललोचनः।
त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा॥ ५॥

विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण इस लोकमें ही नहीं, तीनों लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ एवं परम पूजनीय पुरुष हैं, यह बात मुझे सब प्रकारसे विदित है॥ ५॥

न तु तस्मै प्रदेयं स्यात् तथा कार्यगतिः प्रभो।
विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात्॥ ६॥

प्रभो! तथापि मेरा यह विचार है कि इस समय उन्हें कुछ नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसी ही कार्यप्रणाली प्राप्त है। जब कलह आरम्भ हो गया है, तब अतिथि-सत्कारद्वारा प्रेम दिखानेमात्रसे उसकी शान्ति नहीं हो सकती॥ ६॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः।
वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत्॥ ७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्योधनकी यह बात सुनकर कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्म विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार बोले—॥ ७॥

सत्कृतोऽसत्कृतो वापि न क्रुध्येत जनार्दनः।
नालमेनमवज्ञातुं नावज्ञेयो हि केशवः॥ ८॥

राजन्! श्रीकृष्णका कोई सत्कार करे या न करे, इससे वे कुपित नहीं होंगे; परंतु वे अवहेलनाके योग्य कदापि नहीं हैं। अतः कोई भी उनका अपमान या अवहेलना नहीं कर सकता॥ ८॥

यत् तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम्।
सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित् कर्तुमन्यथा॥ ९॥

महाबाहो! श्रीकृष्ण जिस कार्यको करनेकी बात अपने मनमें ठान लेते हैं, उसे कोई सारे उपाय करके भी उलट नहीं सकता॥ ९॥

स यद् ब्रूयान्महाबाहुस्तत् कार्यमविशङ्कया।
वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः॥ १०॥

अतः महाबाहु श्रीकृष्ण यहाँ आकर जो कुछ कहें, उसे निःशङ्क होकर करना चाहिये। तुम वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको माध्यम बनाकर तुम शीघ्र ही पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो॥ १०॥

धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः।
तस्मिन् वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह॥ ११॥

धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण जो कुछ कहेंगे, वह निश्चय ही धर्म और अर्थके अनुकूल होगा; अतः तुम्हें अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ उनसे प्रिय वचन ही बोलना चाहिये॥ ११॥

दुर्योधन उवाच

न पर्यायोऽस्ति यद् राजञ्छ्रियं निष्केवलामहम्।
तैः सहेमामुपाश्नीयां जीवन् जीव पितामह॥ १२॥

दुर्योधन बोला—पितामह! नरेश्वर! अब इस बातकी कोई सम्भावना नहीं है कि मैं जीवनभर पाण्डवोंके साथ मिलकर इस सम्पत्तिका उपभोग करूँ॥ १२॥

इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम्।
परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम्॥ १३॥

इस समय मैंने जो यह महान् कार्य करनेका निश्चय किया है, उसे सुनिये। पाण्डवोंके सबसे बड़े सहारे श्रीकृष्णको मैं कैद कर लूँगा॥ १३॥

तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति॥ १४॥

उनके कैद हो जानेपर समस्त यदुवंशी, इस भूमण्डलका राज्य तथा पाण्डव भी मेरी आज्ञाके अधीन हो जायँगे। श्रीकृष्ण कल सबेरे यहाँ आ ही जायँगे॥ १४॥

अत्रोपायान् यथा सम्यङ् न बुध्येत जनार्दनः।
न चापायो भवेत् कश्चित् तद् भवान् प्रब्रवीतु मे॥ १५॥

अतः इस विषयमें जो अच्छे उपाय हों जिनसे श्रीकृष्णको हम शान्तिका रस ... और ... मन्त्रणाकी कोई विधि ... वह सब आप मुझे बताइये

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम्।
धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाभवत्॥

वैशम्पायनजी कहते हैं राजन्! श्रीकृष्णको कैद करनेके विषयमें दुर्योधनकी ... सुनकर धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियोंके ... बहुत दुःखी और व्यथित हुए।

ततो दुर्योधनमिदं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः।
मैवं ... प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः॥

तदनन्तर धृतराष्ट्र दुर्योधनसे कहा प्रजापालक दुर्योधन! तुम ... बात मुखसे ... निकालो, यह सनातन धर्म नहीं है।



दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति॥

श्रीकृष्ण ... इस समय दूत बनकर आ रहे हैं। हमारे प्रिय और ... सम्बन्धी भी हैं। तथा उन्होंने कौरवोंका ... अपराध भी नहीं किया ... ऐसी दशामें ... कैद करनेके योग्य कैसे ... सकते हैं?

भीष्म उवाच

परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः।
वृणोत्यनर्थं न त्वर्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः॥

यह सुनकर भीष्मजीने कहा धृतराष्ट्र! तुम्हारा यह मन्दबुद्धि पुत्र काल(के वश) हो गया है। यह ... हितैषी सुहृदोंके कहनेपर ... भी अनर्थको ही अपनाता है, अर्थको नहीं।

इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम्।
वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्तसे॥

यह ... पापात्मा ... सुहृदोंकी बातें छोड़कर ... उसीका अनुसरण करते हो।

कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः।
तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति॥

... महान् ... श्रीकृष्णसे भिड़कर तुम्हारा यह दुर्बुद्धि पुत्र ... मन्त्रियोंसहित क्षणभरमें नष्ट हो जायगा।

पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः।
नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ता वाचः श्रोतुं कथंचन॥

... ... धर्मको त्याग दिया है, उस दुर्बुद्धि पापी ... दुर्योधनकी ... बातें मैं किसी प्रकार नहीं सुनना चाहता।

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान्।
उत्थाय तस्मात् स्थानाद्धि भीष्मः सत्यपराक्रमः॥

ऐसा कहकर ... सत्यपराक्रमी वृद्ध पितामह भीष्म ... अत्यन्त कुपित ... आसनसे उठकर चले गये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्ये अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें दुर्योधनवाक्यविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ।

एकोननवतितमोऽध्याय

श्रीकृष्णका स्वागत, धृतराष्ट्र तथा विदुरके घरोंपर उनका आतिथ्य

वैशम्पायन उवाच

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम्।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उधर वृकस्थलमें प्रातःकाल उठकर भगवान् श्रीकृष्ण ... नित्यकर्म पूर्ण किया फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर हस्तिनापुरकी ओर चले।

तं प्रयान्तं महाबाहुमनुज्ञाप्य महाद्युतिम्।
पर्यवर्तन्त ते सर्वे वृकस्थलनिवासिनः ॥ २ ॥

वहाँसे जाते हुए महाबाहु महायशस्वी श्रीकृष्णकी आज्ञा ले सम्पूर्ण वृकस्थलनिवासी वापस लौट गये ॥ २ ॥

धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः।
दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ३ ॥

दुर्योधनके सिवा धृतराष्ट्रके सभी पुत्र तथा भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि यथायोग्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो हस्तिनापुरकी ओर आते हुए श्रीकृष्णकी अगवानीके लिये गये ॥ ३ ॥

पौराश्च बहुला राजन् हृषीकेशं दिदृक्षवः।
यानैर्बहुविधैरन्ये पद्भिरेव तथा परे ॥ ४ ॥

राजन्! श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये बहुत-से नागरिक भी नाना प्रकारकी सवारियोंपर बैठकर तथा अन्य बहुत लोग पैदल ही चलकर गये ॥ ४ ॥

स वै पथि समागम्य भीष्मेणाक्लिष्टकर्मणा।
द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥ ५ ॥

अनायास ही महान् पराक्रम कर दिखानेवाले भीष्म तथा द्रोणाचार्यसे मार्गमें ही मिलकर धृतराष्ट्रपुत्रोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥

कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम्।
बभूवू राजमार्गाश्च बहुरत्नसमाचिताः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णके सम्मानके लिये हस्तिनापुरको खूब सजाया गया था। वहाँके राजमार्ग भी अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित किये गये थे ॥ ६ ॥

न च कश्चिद् गृहे राजंस्तदाऽऽसीद् भरतर्षभ।
न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय भगवान् वासुदेवके दर्शनकी अभिलाषाके कारण स्त्री, बालक अथवा वृद्ध कोई भी घरमें नहीं ठहर सका ॥ ७ ॥

राजमार्गे नरास्तस्मिन् संस्तुवन्त्यवनिं गताः।
तस्मिन् काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥ ८ ॥

महाराज! जब श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय राजमार्गमें भूमिपर खड़े हुए मनुष्य उनकी स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥

आवृतानि वरस्त्रीभिर्गृहाणि सुमहान्त्यपि।
प्रचलन्तीव भारेण दृश्यन्ते स्म महीतले ॥ ९ ॥

(भगवान् श्रीकृष्णको देखनेके लिये एकत्रित हुई) सुन्दरी स्त्रियोंसे भरे हुए बड़े-बड़े महल भी उनके भारसे इस भूतलपर विचलित होते-से दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः।
प्रनष्टगतयोऽभूवन् राजमार्गे नरैर्वृते ॥ १० ॥

सड़कें इतने लोगोंसे ऐसी खचाखच भर गयी थीं कि श्रीकृष्णके वेगपूर्वक चलनेवाले घोड़ोंकी गति भी अवरुद्ध हो गयी ॥ १० ॥

स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः।
पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥

शत्रुओंको क्षीण करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्रके अट्टालिकाओंसे सुशोभित उज्ज्वल भवनमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥

तिस्रः कक्ष्या व्यतिक्रम्य केशवो राजवेश्मनः।
वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिंदमः ॥ १२ ॥



उस राजभवनकी तीन ड्योढ़ियोंको पार करके शत्रुसूदन केशव विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रके समीप गये ॥ १२ ॥

अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णके आते ही महायशस्वी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र द्रोणाचार्य तथा भीष्मजीके साथ ही अपने आसनसे उठकर खड़े हो गये ॥ १३ ॥

कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः।
आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ १४ ॥

कृपाचार्य, सोमदत्त तथा महाराज बाह्लीक—ये सब लोग जनार्दनका सम्मान करते हुए अपने आसनोंसे उठ गये ॥



धृतराष्ट्रद्वारा श्रीकृष्णका स्वागत

ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम्।
स भीष्मं पूजयामास वार्ष्णेयो वाग्भिरञ्जसा ॥ १५ ॥

तब वृष्णिनन्दन श्रीकृष्णने यशस्वी राजा धृतराष्ट्रसे मिलकर अपने उत्तम वचनोंद्वारा भीष्मजीका आदर किया ॥ १५ ॥

तेषु धर्मानुपूर्वीं तां प्रयुज्य मधुसूदनः।
यथावयः समीयाय राजभिस्तत्र माधवः ॥ १६ ॥

मधुकुलतिलक मधुसूदन उन सबकी धर्मानुकूल पूजा करके अवस्थाक्रमके अनुसार वहाँ आये हुए समस्त राजाओंसे मिले ॥ १६ ॥

अथ द्रोणं सबाह्लीकं सपुत्रं च यशस्विनम्।
कृपं च सोमदत्तं च समीयाय जनार्दनः ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् जनार्दन पुत्रसहित यशस्वी द्रोणाचार्य, बाह्लीक, कृपाचार्य तथा सोमदत्तसे मिले ॥ १७ ॥

तत्रासीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम्।
शासनाद् धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥ १८ ॥

वहाँ एक स्वच्छ और कलापूर्ण बना हुआ सुवर्णका विशाल सिंहासन रखा हुआ था। धृतराष्ट्रकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्ण उसीपर विराजमान हुए ॥ १८ ॥

अथ गां मधुपर्कं चाप्युदकं च जनार्दने।
उपजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रपुरोहिताः ॥ १९ ॥

तदनन्तर धृतराष्ट्रके पुरोहितलोग भगवान् जनार्दनको आतिथ्यसत्कारके लिये उत्तम गौ, मधुपर्क तथा जल ले आये ॥ १९ ॥

कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान् परिहसन् कुरून्।
आस्ते सम्बन्धकं कुर्वन् कुरुभिः परिवारितः ॥ २० ॥

उनका आतिथ्य ग्रहण करके भगवान् गोविन्द हँसते हुए कौरवोंके साथ बैठ गये और सबसे अपने सम्बन्धके अनुसार यथायोग्य व्यवहार करते हुए कौरवोंसे घिरे हुए कुछ देर बैठे रहे ॥ २० ॥

सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः।
राजानं समनुज्ञाप्य निरक्रामदरिंदमः ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्रसे पूजित एवं सम्मानित हो महायशस्वी शत्रुदमन श्रीकृष्ण उनकी आज्ञा ले उस राजभवनसे बाहर निकले ॥ २१ ॥

तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि।
विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥ २२ ॥

फिर कौरव-सभामें यथायोग्य सबसे मिल-जुलकर मधुवंशी श्रीकृष्णने विदुरजीके रमणीय भवनमें पदार्पण किया ॥ २२ ॥

विदुरः सर्वकल्याणैरभिगम्य जनार्दनम्।
अर्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥ २३ ॥

विदुरजीने अपने घर पधारे हुए दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके निकट जाकर समस्त मनोवाञ्छित भोगों तथा सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया (और इस प्रकार कहा—) ॥ २३ ॥



या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥ २४ ॥

कमलनयन ! आपके दर्शनसे मुझे जो प्रसन्नता हुई है उसका आपसे क्या वर्णन किया जाय। आप तो समस्त देहधारियोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं (आपसे क्या छिपा है ?) ॥ २४ ॥

कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित्।
कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥ २५ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण जब उनका आतिथ्य ग्रहण कर चुके, तब सब धर्मोंके ज्ञाता विदुरजीने उनसे पाण्डवोंका कुशल-समाचार पूछा ॥ २५ ॥

प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुरो बुद्धिसत्तमः।
धर्मार्थनित्यस्य सतो गतरोषस्य धीमतः ॥ २६ ॥
तस्य सर्वं सविस्तरं पाण्डवानां विचेष्टितम्।
क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ २७ ॥

विदुरजी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ थे। सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले बुद्धिमान् विदुरसे पाण्डवोंकी सारी चेष्टाएँ विस्तारपूर्वक कह श्रीकृष्णने सदा … हितैषी सुहृद् … सुनायीं ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि पुनरागमनोपहारपूर्वक श्रीकृष्ण-विदुरसंवादे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णका पुनरागमन तथा श्रीकृष्ण-विदुरसंवादविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

नवतितमोऽध्याय

श्रीकृष्णका कुन्तीके समीप जाना एवं युधिष्ठिरका कुशल-समाचार पूछकर अपने दुःखोंका स्मरण करके विलाप करती हुई कुन्तीको आश्वासन देना

वैशम्पायन उवाच

अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः।
पितृष्वसारं स पृथामभ्यगच्छदरिंदमः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! शत्रुदमन श्रीकृष्ण विदुरजीसे मिलनेके बाद तीसरे पहरमें अपनी बुआ कुन्तीदेवीके पास गये।

सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम्।
कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत् पृथा पार्थाननुस्मरन् ॥ २ ॥

निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको आते देख कुन्तीदेवी उनके गले लग गयीं और अपने पुत्रोंको याद करके फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २ ॥

तेषां सत्त्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम्।
चिरस्य दृष्ट्वा वार्ष्णेयं बाष्पमाहारयत् पृथा ॥ ३ ॥

अपने उन शक्तिशाली पुत्रोंके साथ रहकर उनके साथ विचरनेवाले वृष्णिकुलनन्दन गोविन्दको दीर्घकालके बाद देखकर कुन्तीदेवी आँसुओंकी वर्षा करने लगीं ॥ ३ ॥

साब्रवीत् कृष्णमासीनं कृतातिथ्यं युधां पतिम्।
बाष्पगद्गदपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ॥ ४ ॥

उन्होंने योद्धाओंके स्वामी श्रीकृष्णका आतिथ्य-सत्कार किया। जब वे आतिथ्य ग्रहण करके आसनपर विराजमान हुए, तब सूखे मुख और अश्रुगद्गद कण्ठसे कुन्तीदेवी इस प्रकार बोलीं—

ये ते बाल्यात् प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः।
परस्परस्य सुहृदः संमताः समचेतसः।
निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः ॥ ५ ॥

'वत्स! मेरे पुत्र पाण्डव जो बाल्यकालसे ही गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषामें तत्पर रहते, परस्पर स्नेह रखते, सर्वत्र सम्मान पाते और मनमें समान भाव रखते थे, शत्रुओंकी शठताके शिकार होकर राज्यसे हाथ धो बैठे और जनसमुदायमें रहनेयोग्य होकर भी निर्जन वनमें चले गये।

विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः।
त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदतीमपहाय माम् ॥ ६ ॥

मेरे बेटे हर्ष और क्रोधको जीत चुके थे, वे ब्राह्मणोंका हित साधन करनेवाले तथा सत्यवादी थे, तथापि शत्रुओंके अन्यायसे विवश हो प्रियजन एवं सुखको छोड़कर मुझे यहीं बिलखती छोड़कर वे वनमें चले गये।

अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम।
अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः ॥ ७ ॥

केशव! उस समय वनमें जाते समय महात्मा पाण्डव मेरे हृदयको जड़-मूलसहित खींचकर अपने साथ ले गये। वे वनवासके योग्य कदापि नहीं थे। फिर उन्हें यह कष्ट कैसे प्राप्त हुआ?

ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले।
बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः।
अपश्यन्तः स्वपितरौ कथमूषुर्महावने ॥ ८ ॥

तात! वे बचपनमें ही पिताके प्यारसे वञ्चित हो गये थे। मैंने ही सदा उनका लालन-पालन किया। मेरे पुत्र सिंह, व्याघ्र और हाथियोंसे भरे हुए उस विशाल वनमें कैसे रहे होंगे? माता-पिताको न देखते हुए उन्होंने उस महान् वनमें किस प्रकार निवास किया होगा? ॥ ८ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गैर्वेणुनिःस्वनैः ॥ ९ ॥
पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात् प्रभृति केशव।

केशव! पाण्डव बाल्यावस्थासे ही शङ्ख और दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनिसे, मृदङ्गोंके मधुर नादसे तथा बाँसुरीकी सुरीली तानसे जगाये जाते थे ॥ ९ ॥

ये स्म वारणशब्देन हयानां हेषितेन च ॥ १० ॥
रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त तदा गृहे।
शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना ॥ ११ ॥

पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः ।
वस्त्रै रत्नैरलंकारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः ॥ १२ ॥
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिर्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
अर्चितैरर्चनार्हैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ॥ १३ ॥
प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्कवाजिनशायिनः ।
क्रूरं ते निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ॥ १४ ॥
न स्मोपयान्ति निद्रां वै न तदर्हा जनार्दन ।

जब वे अपनी राजधानीमें ऊँची अट्टालिकाओंके भीतर रङ्कुमृगके चर्मसे बने हुए बिछौनोंपर सुखपूर्वक शयन करते थे, उन दिनों हाथियोंके चिग्घाड़, घोड़ोंके हिनहिनाने तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे उनकी निद्रा टूटती थी। शङ्ख और भेरीकी ध्वनि तथा वेणु और वीणाके मधुर स्वरसे उन्हें जगाया जाता था। उस समय ब्राह्मण लोग पुण्याहवाचनके पवित्र घोषसे उनका समादर करते थे। वे महात्मा ब्राह्मणोंके मङ्गलमय आशीर्वाद सुनकर उठते थे। पूजित और पूजनीय पुरुष भी उनके गुण गा-गाकर अभिनन्दन किया करते थे। वे उत्तम वस्त्र, रत्न और अलंकारोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। अब वे ही पाण्डव उस विशाल वनमें हिंसक जन्तुओंके भयानक शब्द सुनकर अच्छी तरह नींद नहीं ले पाते होंगे। ऐसी बातोंके दुःख सहनेके योग्य वे कदापि नहीं थे ॥ १२—१५ ॥

भेरीमृदङ्गनिनदैः शङ्खवैणवनिस्वनैः ।
स्त्रीणां गीतनिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन ॥ १५ ॥
वन्दिमागधसूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम् ।
महावनेष्वबोध्यन्त श्वापदानां रुतेन च ॥ १६ ॥

मधुसूदन! जो भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख एवं वेणुकी ध्वनि तथा स्त्रियोंके गीतोंके मधुर शब्द सुनकर तथा सूत, मागध एवं वन्दीजनोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर जागते थे, वे ही वनमें हिंसक जन्तुओंके कठोर शब्द सुनकर किस प्रकार नींद तोड़ते होंगे? ॥ १५-१६ ॥

ह्रीमान् सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता ॥ १७ ॥
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते ।
अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ॥ १८ ॥
भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च ।
राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्वहाम् ॥ १९ ॥
शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसंगरः ।
राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत् ॥ २० ॥
अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृत्ततः ।
प्रियदर्शनो दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण! जो लज्जाशील, सत्यको धारण करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं, जो काम और द्वेषको वशमें करके सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करते हैं, जो अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष, भरत, दिलीप तथा उशीनरपुत्र शिबि आदि प्राचीन राजर्षियोंके द्वारा धारण करनेमें कठिन धर्मकी धुरीको धारण करते हैं, जिनमें शील और सदाचारकी सम्पत्ति भरी हुई है, जो धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और सर्वगुणसम्पन्न होनेके कारण इस भूमण्डलके ही नहीं, तीनों लोकोंके भी राजा हो सकते हैं, जिनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता है, जो शास्त्रज्ञान और सदाचार आदि सभी दृष्टियोंसे समस्त कौरवोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति शुद्ध जाम्बूनद सुवर्णके समान गोरी है, जो देखनेमें सबको प्रिय लगते हैं, वे महाबाहु अजातशत्रु युधिष्ठिर इस समय कैसे हैं? ॥ १७—२१ ॥

यः स नागायुतप्राणो वातरंहा महाबलः ।
सामर्षः पाण्डवो नित्यं प्रियो भ्रातुः प्रियंकरः ॥ २२ ॥
कीचकस्य तु सज्ञातेर्यो हन्ता मधुसूदन ।
शूरः क्रोधवशानां च हिडिम्बस्य बकस्य च ॥ २३ ॥
पराक्रमे शक्रसमो मातरिश्वसमो बले ।
महेश्वरसमः क्रोधे भीमः प्रहरतां वरः ॥ २४ ॥
क्रोधं बलममर्षं च यो निधाय परंतपः ।
जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने ॥ २५ ॥
तेजोराशिं महात्मानं वरिष्ठममितौजसम् ।
भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दन ॥ २६ ॥
तं ममाचक्ष्व वार्ष्णेय कथमद्य वृकोदरः ।
आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पाण्डवो बली ॥ २७ ॥

जनार्दन! जो दस हजार हाथियोंके समान शक्तिशाली हैं, जिनका वेग वायुके समान है, जो अत्यन्त क्रोधी होते हुए भी अपने भाईका सदा ही प्रिय करनेमें ही लगा रहता है, जिसने भाइयोंसहित कीचकका विनाश किया है, जिस शूरवीरने क्रोधवश नामक राक्षसोंका, हिडिम्बासुर तथा बकका भी संहार किया है, जो पराक्रममें इन्द्र, बलमें वायुदेव तथा क्रोधमें महेश्वरके समान हैं, जो प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें सर्वश्रेष्ठ एवं भयंकर हैं, शत्रुओंको संताप देनेवाले जो पाण्डुपुत्र अपने भीतर क्रोध, बल और अमर्षको रखते हुए भी मनको वशमें रखकर सदा बड़े भाईकी आज्ञाके अधीन रहते हैं, जो स्वभावतः अमर्षशील हैं, जिनके तेजकी राशि संचित है, जो महात्मा, सर्वश्रेष्ठ, अमिततेजस्वी तथा देखनेमें भी भयंकर हैं, वृष्णिनन्दन! उन मेरे द्वितीय पुत्र भीमसेनका समाचार बताओ। इस समय परिघके समान सुदृढ़ भुजाओंवाला मेरा मझला पुत्र पाण्डुकुमार भीमसेन कैसे है? ॥ २२—२७ ॥

अर्जुनेनार्जुनो यः स कृष्ण बाहुसहस्रिणा ।
द्विबाहुः स्पर्धते नित्यमतीतेनापि केशव ॥ २८ ॥

विक्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्तवीर्यस्य पाण्डवः ॥ २९ ॥
तेजसाऽऽदित्यसदृशो महर्षिसदृशो दमे ।
क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः ॥ ३० ॥
आधिराज्यं महद् दीप्तं प्रथितं मधुसूदन ।
आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु ॥ ३१ ॥
यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः पर्युपासते ।
स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥ ३२ ॥
यं गत्वाभिमुखः संख्ये न जीवन् कश्चिदाव्रजेत् ।
यो जेता सर्वभूतानामजेयो विष्णुरच्युत ॥ ३३ ॥
योऽपाश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।
स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनंजयः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण! जो अर्जुन दो भुजाओंसे युक्त होकर भी उस प्राचीनकालके सहस्र भुजाधारी कार्तवीर्य अर्जुनके साथ स्पर्धा रखता है, केशव! जो एक ही वेगसे पाँच सौ बाण चलाता है, जो पाण्डव अर्जुन धनुर्विद्यामें राजा कार्तवीर्यके समान ही समझा जाता है, जिसका तेज सूर्यके समान है, जो इन्द्रियसंयममें महर्षियोंके, क्षमामें पृथ्वीके और पराक्रममें देवराज इन्द्रके समान है, मधुसूदन! कौरवोंका वह विशाल साम्राज्य, जो सम्पूर्ण राजाओंमें प्रख्यात एवं प्रकाशित हो रहा है, जिसे अर्जुनने ही अपने पराक्रमसे उपलब्ध कराया है, समस्त पाण्डव जिसके बाहुबलका भरोसा रखते हैं, जो सम्पूर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ तथा सत्यपराक्रमी है, संग्राममें जिसके सम्मुख जाकर कोई जीवित नहीं लौटता है, अच्युत! जो सम्पूर्ण भूतोंको जीतनेमें समर्थ विजयशील एवं अजेय है तथा जैसे देवताओंके आश्रय इन्द्र हैं, उसी प्रकार जो समस्त पाण्डवोंका अवलम्ब है, वह तुम्हारा भाई और प्रिय अर्जुन इस समय कैसे है? ॥ २९—३४ ॥

दयावान् सर्वभूतेषु ह्रीनिषेधो महास्त्रवित् ।
मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे ॥ ३५ ॥
सहदेवो महेष्वासः शूरः समितिशोभनः ।
भ्रातॄणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा ॥ ३६ ॥
सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन ।
वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः ॥ ३७ ॥
ज्येष्ठापचायिनं वीरं सहदेवं युधां पतिम् ।
शुश्रूषुं मम वार्ष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे ॥ ३८ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण! जो समस्त प्राणियोंके प्रति दयालु, लज्जाशील, महान् अस्त्रवेत्ता, कोमल, सुकुमार, धार्मिक तथा मुझे विशेष प्रिय है, जो महाधनुर्धर शूरवीर सहदेव रणभूमिमें शोभा पानेवाला, सभी भाइयोंका सेवक, धर्म और अर्थके विवेचनमें कुशल तथा युवावस्थासे युक्त है, कल्याणकारी आचरणवाले जिस महात्मा सहदेवके आचार-व्यवहारकी सभी भाई प्रशंसा करते हैं, जो बड़े भाईके प्रति अनुरक्त, युद्धोंका नेता और मेरी सेवामें तत्पर रहनेवाला है, उस माद्रीकुमार वीर सहदेवका समाचार मुझे बताओ ॥ ३५—३८ ॥

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
भ्रातॄणां चैव सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ३९ ॥
चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः ।
कच्चित् स कुशली कृष्ण वत्सो मम सुखैधितः ॥ ४० ॥

श्रीकृष्ण! जो सुकुमार, युवक, शूरवीर, दर्शनीय तथा सभी भाइयोंका बाहर विचरनेवाला प्रिय प्राणस्वरूप है, जिसमें युद्धकी विचित्र कला शोभा पाती है, वह महान् धनुर्धर, महाबली एवं सुखसे पला हुआ मेरा पुत्र पाण्डुनन्दन नकुल सकुशल तो है? ॥ ३९-४० ॥

सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम् ।
अपि जातु महाबाहो पश्येयं नकुलं पुनः ॥ ४१ ॥

महाबाहो! क्या मैं सुख भोगनेके योग्य, दुःख भोगनेके अयोग्य एवं सुकुमार महारथी नकुलको फिर कभी देख सकूँगी? ॥ ४१ ॥

पक्ष्मसम्पातजे काले नकुलेन विनाकृता ।
न लभामि धृतिं वीर साद्य जीवामि पश्य माम् ॥ ४२ ॥

वीर! आँखोंकी पलकें गिरनेमें जितना समय लगता है, उतनी देर भी नकुलसे अलग रहनेपर मैं धैर्य नहीं रख पाती थी, परंतु आज इतने दिनोंसे उसे न देखकर भी जी रही हूँ, देखो, मैं कितनी निर्मम हूँ ॥ ४२ ॥

सर्वैः पुत्रैः प्रियतरा द्रौपदी मे जनार्दन ।
कुलीना रूपसम्पन्ना सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४३ ॥

जनार्दन! राजकुमारी कृष्णा मुझे अपने सभी पुत्रोंसे अधिक प्रिय है। वह कुलीन, अनुपम सुन्दरी तथा सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न है ॥ ४३ ॥

पुत्रलोकात् पतिलोकान् वृण्वाना सत्यवादिनी ।
प्रियान् पुत्रान् परित्यज्य पाण्डवाननुरुध्यते ॥ ४४ ॥

पुत्रलोकसे पतिलोकको श्रेष्ठ समझकर उसका वरण करनेवाली सत्यवादिनी द्रौपदी अपने प्यारे पुत्रोंको भी त्याग कर पाण्डवोंका अनुसरण करती है ॥ ४४ ॥

महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत ॥ ४५ ॥

अच्युत! जिसे मैंने सब प्रकारकी वस्तुएँ देकर सदा सत्कार किया है, वह श्रेष्ठ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई सर्वकल्याणी महारानी द्रौपदी इन दिनों कैसी दशामें है? ॥ ४५ ॥

पतिभिः पञ्चभिः शूरैरग्निकल्पैः प्रहारिभिः ।
उपपन्ना महेष्वासैर्द्रौपदी दुःखभागिनी ॥ ४६ ॥

कृष्ण! जो महाधनुर्धर, शूरवीर, युद्धकुशल तथा

अभिजात तेजस्वी तथा शक्तिसे युक्त है, वह द्रुपदकुमारी कृष्णा भी दुःख सहनेवाली हो गयी ॥ ४६ ॥

चतुर्दशमिदं वर्षं यन्नापश्यमरिंदम।
पुत्राधिभिः परिद्यूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम्॥ ४७ ॥

शत्रुदमन! यह चौदहवाँ वर्ष बीत रहा है, इन दिनों में मैंने पुत्रोंके वियोगसे कष्ट पाती हुई सत्यवादिनी द्रौपदीको नहीं देखा है।

न नूनं कर्मभिः पुण्यैरश्नुते पुरुषः सुखम्।
द्रौपदी चेत् तथावृत्ता नाश्नुते सुखमव्ययम्॥ ४८ ॥

यदि वैसे सदाचार और सत्कर्मोंसे युक्त द्रुपदकुमारी अक्षय सुख नहीं पा रही है, तब तो निश्चय ही यह कहना पड़ेगा कि मनुष्य पुण्यकर्मोंसे सुख नहीं पाता है।

न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः।
भीमसेनो यमौ वापि यदपश्यं सभागताम्॥ ४९ ॥
न मे दुःखतरं किंचिद् भूतपूर्वं ततोऽधिकम्।

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी मुझे द्रौपदीसे अधिक प्रिय नहीं हैं। जब द्रौपदीको मैंने सभामें लायी गयी देखा, उससे बढ़कर महान् दुःख मुझे पहले कभी नहीं हुआ था।

स्त्रीधर्मिणीं द्रौपदीं यच्छ्वशुराणां समीपगाम्।
आनायितामनार्येण क्रोधलोभानुवर्तिना।
सर्वे प्रैक्षन्त कुरव एकवस्त्रां सभागताम्॥ ५० ॥

क्रोध और लोभके वशीभूत हुए दुरात्मा दुर्योधनने रजस्वलावस्थामें एकवस्त्रधारिणी द्रौपदीको सभामें बुलवाया और उसे श्वशुरोंके समीप खड़ा कर दिया। उस समय सभी कौरवोंने उसे देखा था।

तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः।
कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा॥

वहीं राजा धृतराष्ट्र, महाराज बाह्लिक, कृपाचार्य, सोमदत्त तथा अन्यान्य कौरव खेदमें भरे हुए बैठे थे।

तस्यां संसदि सर्वस्यां क्षत्तारं पूजयाम्यहम्।
वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया॥

मैं तो उस कौरव सभामें सबसे अधिक आदरणीय विदुरजीको देखती हूँ, जिन्होंने द्रौपदीके प्रति किये जानेवाले अन्यायका प्रकटरूपमें विरोध किया था। मनुष्य अपने सदाचारसे ही श्रेष्ठ होता है, धन और विद्यासे नहीं।

तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः।
क्षत्तुः शीलमलंकारो लोकान् विष्टभ्य तिष्ठति॥ ५४ ॥

श्रीकृष्ण! परम बुद्धिमान्, गम्भीरस्वभाव महात्मा विदुरका शील ही आभूषण है, जो सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित है।

वैशम्पायन उवाच

सा शोकार्ता च हृष्टा च दृष्ट्वा गोविन्दमागतम्।
नानाविधानि दुःखानि सर्वाण्येवान्वकीर्तयत्॥ ५५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णको आया हुआ देख कुन्तीदेवी शोकातुर तथा आनन्दित हो अपने ऊपर आये हुए नाना प्रकारके सम्पूर्ण दुःखोंका पुनः वर्णन करने लगीं।

पूर्वैराचरितं यत् तत् कुराजभिररिंदम।
अक्षद्यूतं मृगवधः कच्चिदेषां सुखावहम्॥ ५६ ॥

शत्रुदमन श्रीकृष्ण! पहलेके दुष्ट राजाओंने जो जूआ और शिकारकी परिपाटी चलायी है, वह क्या इन पाण्डवोंके लिये सुखावह सिद्ध हुई है? कदापि नहीं।

तन्मां दहति यत् कृष्णा सभायां कुरुसंनिधौ।
धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा न कुशलं तथा॥ ५७ ॥

सभामें कौरवोंके निकट धृतराष्ट्रपुत्रोंने द्रौपदीको जो कष्ट पहुँचाया है, जिससे किसीका भला नहीं हो सकता, उसका स्मरण मेरे हृदयको दग्ध करता रहता है।

निर्वासनं च नगरात् प्रव्रज्या च परंतप।
नानाविधानां दुःखानामभिज्ञास्मि जनार्दन॥ ५८ ॥

परंतप जनार्दन! पाण्डवोंका नगरसे निकाला जाना और उनका वनमें रहनेके लिये जाना आदि नाना प्रकारके दुःखोंका मैं अनुभव कर चुकी हूँ।

अज्ञातचर्या बालानामवरोधश्च माधव।
न मे क्लेशतमं तत् स्यात् पुत्रैः सह परंतप॥ ५९ ॥

परंतप माधव! मेरे बालकोंको अज्ञातवासमें रहना पड़ा है और राज्य मिलनेमें उनको रुकावट भी डाली गयी है, पुत्रोंके साथ मुझे इतना महान् क्लेश नहीं प्राप्त होना चाहिये।

दुर्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्दशम्।
दुःखादपि सुखं न स्याद् यदि पुण्यफलक्षयः॥ ६० ॥

दुर्योधनने मेरे पुत्रोंको कपटके द्वारा जबसे वञ्चित कर दिया, तबसे दुःखमें पड़े हुए उन्हें चौदहवाँ वर्ष बीत रहा है। यदि दुःख भोगनेसे भी पुण्यके फलका क्षय होता, तब तो पापके फलस्वरूप दुःख भोग लेनेके कारण अब हमें भी दुःखके बाद सुख मिलना ही चाहिये।

न मे विशेषो जात्वासीद् धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः।
तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम्।
अस्माद् विमुक्तं संग्रामात् पश्येयं पाण्डवैः सह॥ ६१ ॥

नैव शक्या परानेतुं वशं धर्म्यं तथाविधम् ॥ ६१ ॥

श्रीकृष्ण! मेरे मनमें पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंके प्रति कभी भेदभाव नहीं था। इस सत्यके प्रभावसे निश्चय ही मैं देखूँगी कि तुम आगामी संग्राममें शत्रुओंका संहार करके पाण्डवोंसहित संकटसे मुक्त हो गये तथा राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न लोगोंका ही वरण किया है। पाण्डवोंमें ऐसे सभी गुण मौजूद हैं, जिनके ही कारण शत्रु उन्हें परास्त नहीं कर सकते ॥ ६१ ॥

पितरं त्वेव गर्हेयं नात्मानं न सुयोधनम् ॥ ६२ ॥
येनाहं कुन्तिभोजाय धनं वृत्तैरिवार्पिता ।

मैं जो कष्ट भोग रही हूँ, इसके लिये न अपनेको दोष देती हूँ, न दुर्योधनको, अपितु पिताजीकी ही निन्दा करती हूँ, जिन्होंने मुझे राजा कुन्तिभोजके हाथमें उस प्रकार दे दिया, जैसे धनवान् पुरुष याचकको धन दे देते हैं ॥ ६२ ॥

बालां मामार्यकस्तुभ्यं क्रीडन्तीं कन्दुहस्तिकाम् ॥ ६३ ॥
अदात् तु कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ।

मैं अभी बालिका ही थी, हाथमें गेंद लेकर खेलती फिरती थी, उसी अवस्थामें तुम्हारे पितामहने मित्रधर्मका पालन करते हुए अपने सखा महात्मा कुन्तिभोजके हाथमें मुझे दे दिया ॥ ६३ ॥

साहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परंतप ।
अत्यन्तदुःखिता कृष्ण किं जीवितफलं मम ॥ ६४ ॥

शत्रुदमन श्रीकृष्ण! इस प्रकार मेरे पिता तथा श्वशुरोंने भी मेरे साथ वञ्चनापूर्ण बर्ताव किया है, इससे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। मेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ? ॥ ६४ ॥

यन्मा वागब्रवीन्नक्तं सूतके सव्यसाचिनः ।
पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत् ॥ ६५ ॥
हत्वा कुरून् ग्रहजन्ये राज्यं प्राप्य धनंजयः ।
भ्रातृभिः सह कौन्तेयस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति ॥ ६६ ॥

धनंजयके जन्मकालमें जब मैं सूतिकागृहमें थी, उस समय रात्रिमें आकाशवाणीने मुझसे कहा था—'भद्रे! तेरा यह पुत्र सारी पृथ्वीको जीत लेगा। इसका यश स्वर्गलोकतक फैल जायगा। यह महान् संग्राममें कौरवोंका संहार करके राज्यपर अधिकार कर लेगा, फिर अपने भाइयोंके साथ तीन अश्वमेधयज्ञोंका अनुष्ठान करेगा' ॥ ६५-६६ ॥

नाहं तामभ्यसूयामि नमो धर्माय वेधसे ।
कृष्णाय महते नित्यं धर्मो धारयति प्रजाः ॥ ६७ ॥

मैं उस आकाशवाणीमें दोष नहीं देखती। भगवान् महाविष्णुस्वरूप धर्मको ही नमस्कार करती हूँ। वही इस जगत्‌का स्रष्टा है। धर्म ही सदा समस्त प्रजाको धारण करता है ॥ ६७ ॥

धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय यथा वागभ्यभाषत ।
त्वं चापि तत् तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ॥ ६८ ॥

वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण! यदि धर्म है तो तुम भी वह सब कार्य पूरा कर लोगे, जिसे उस समय आकाशवाणीने बताया था ॥ ६८ ॥

न मां माधव वैधव्यं नार्थनाशो न वैरिता ।
तथा शोकाय दहति यथा पुत्रैर्विनाभवः ॥ ६९ ॥

माधव! वैधव्य, धनका नाश तथा कुटुम्बीजनोंके साथ वैर होना भी मुझे उतना शोक नहीं देता, जितना कि पुत्रोंका विरह मुझे शोकदग्ध कर रहा है।

याहं गाण्डीवधन्वानं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
धनंजयं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ७० ॥

सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गाण्डीवधारी अर्जुनको जबतक मैं नहीं देख रही हूँ, तबतक मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी?

इदं चतुर्दशं वर्षं यन्नापश्यं युधिष्ठिरम् ।
धनंजयं च गोविन्द यमौ तं च वृकोदरम् ॥ ७१ ॥

गोविन्द! यह चौदहवाँ वर्ष है, जब मैं युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन तथा नकुल-सहदेवको नहीं देख पा रही हूँ ॥ ७१ ॥

जीवनाशं प्रनष्टानां श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ।
अर्थतस्ते मम मृतास्तेषां चाहं जनार्दन ॥ ७२ ॥

जनार्दन! जो लोग खो जाते हैं, उनके लिये मनुष्य श्राद्ध करते हैं। यदि अर्थतः देखा जाय तो मेरे लिये वे मर चुके हैं और मैं उनके लिये मर चुकी हूँ ॥ ७२ ॥

ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ७३ ॥

माधव! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे कहना—'बेटा! तुम्हारे धर्मकी बड़ी हानि हो रही है, तुम उसे व्यर्थ नष्ट न करो' ॥ ७३ ॥

पराश्रया वासुदेव या जीवति धिगस्तु ताम् ।
वृत्तेः कृपणलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी ॥ ७४ ॥

वासुदेव! जो स्त्री दूसरोंके आश्रित होकर जीवन निर्वाह करती है, उसे धिक्कार है। दीनतासे प्राप्त हुई जीविकासे तो मर जाना ही उत्तम है ॥ ७४ ॥

अथो धनंजयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ७५ ॥

श्रीकृष्ण! तुम अर्जुन तथा युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीमसेनसे कहना कि क्षत्राणी जिस प्रयोजनके लिये पुत्र उत्पन्न करती है, उसे पूरा करनेका यह समय आ गया है ॥ ७५ ॥

अर्थितस्त्वन्तेन्ते चाहते मिथ्या चाहितविप्लवि ।
लोकसम्भावितास्सन्तः सुदुष्करं करिष्यथ ॥ ७६ ॥
वृकोदरं च वीभत्सुं यत्तौ सव्यसाचिनौ क्षमा ।
काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवितम् ॥ ७७ ॥

यदि ऐसा समय आनेपर भी तुम युद्ध नहीं करोगे तो यह व्यर्थ बीत जायगा। तुमलोग इस जगत्के सम्मानित पुरुष हो। यदि तुम कोई अत्यन्त घृणित कर्म कर डालोगे तो उस कुत्सित कर्मके कारण मैं तुम्हें सदाके लिये त्याग दूँगी। मुझे तुम्हें तो समय आनेपर जीवन त्याग भी करना चाहिये। ऐसे समयके लिये उद्यत रहना चाहिये ॥ ७६-७७ ॥

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा ।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ॥ ७८ ॥

माधव ! तुम सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले माद्रीनन्दन नकुल सहदेवसे भी कहना—पुत्रो ! तुम प्राणोंकी बाजी लगाकर भी पराक्रमसे प्राप्त किये हुए भोगोंको ही ग्रहण करना ॥ ७८ ॥

विक्रमाधिगता ह्यर्था क्षत्रधर्मेण जीवतः ।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥ ७९ ॥

पुरुषोत्तम ! क्षत्रियधर्मसे जीवननिर्वाह करनेवाले मनुष्यके मनको पराक्रमसे प्राप्त हुआ धन ही सदा संतुष्ट रखता है ॥ ७९ ॥

गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
अर्जुनं पाण्डवं धीरं द्रौपद्याः पदवीं चर ॥ ८० ॥

महाबाहो ! तुम पाण्डवोंके पास जाकर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुनन्दन वीर अर्जुनसे कहना कि तुम द्रौपदीके बताये हुए मार्गपर चलो ॥ ८० ॥

विदितौ हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥ ८१ ॥

श्रीकृष्ण ! तुम तो जानते ही हो, यदि भीमसेन और अर्जुन अत्यन्त कुपित हो जायँ तो वे यमराजके समान होकर देवताओंको भी मृत्युके मुखमें पहुँचा सकते हैं ॥ ८१ ॥

तयोश्चैतदवज्ञानं यत् सा कृष्णा सभां गता ।
दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यभ्यभाषताम् ॥ ८२ ॥
दुर्योधनो भीमसेनमभ्यगच्छन्मनस्विनम् ।
पश्यतां कुरुमुख्यानां तस्य द्रक्ष्यति यत्फलम् ॥ ८३ ॥

द्रौपदीको जो सभामें उपस्थित होना पड़ा तथा दुःशासन और कर्णने जो उसके प्रति कठोर बातें कहीं, यह सब भीमसेन और अर्जुनका ही अपमान है। दुर्योधनने प्रधान-प्रधान कौरवोंके सामने मनस्वी भीमसेनका अपमान किया है। इसका जो फल मिलेगा, उसे वह देखेगा ॥

न हि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः ।
सुचिरादपि भीमस्य न हि वैरं प्रशाम्यति ।
यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्छत्रुकर्शनः ॥ ८४ ॥

भीमसेन वैर हो जानेपर कभी शान्त नहीं होता। भीमसेनका वैर बहुत दीर्घकालके बाद भी शान्त नहीं होता है, जबतक वह शत्रुओंका संहार नहीं कर डालता ॥ ८४ ॥

न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः ।
प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम् ॥ ८५ ॥
यत् तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता ।
अशृणोत् परुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः ॥ ८६ ॥

माधव ! राज्य छिन गया, यह कोई दुःखकी बात नहीं है। जूएमें हार जाना भी दुःखका कारण नहीं है। मेरे पुत्रोंको वनमें भेज दिया गया, इससे भी मुझे दुःख नहीं हुआ है। परंतु मेरी सुन्दरी पुत्रवधू एक वस्त्र धारण किये जो सभामें लायी गयी और उसने कठोर बातें सुनीं, इससे बढ़कर महान् दुःख मेरे लिये और क्या हो सकता है ? ॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाध्यगच्छत् तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥ ८७ ॥

सदा क्षत्रियधर्ममें अनुराग रखनेवाली परम सुन्दरी वधू कृष्णा उस समय रजस्वला थी। वह सनाथ होती हुई भी उस दिन किसीको अपना नाथ (रक्षक) न पा सकी ॥ ८७ ॥

यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन ।
रामश्च बलिनां श्रेष्ठः प्रद्युम्नश्च महारथः ॥ ८८ ॥
साहमेवंविधं दुःखं सहेऽद्य पुरुषोत्तम ।
भीमे जीवति दुर्धर्षे विजये चापलायिनि ॥ ८९ ॥

पुरुषोत्तम मधुसूदन ! पुत्रोंसहित जिस कुन्तीके रक्षकोंमें श्रेष्ठ बलवान् बलराम, प्रद्युम्न तथा तुम स्वयं हो, दुर्धर्ष वीर भीमसेन तथा युद्धसे पीछे न हटनेवाले विजयी अर्जुन और मेरे-जैसे पुत्र जीवित हैं, वही मैं ऐसे दुःख सह रही हूँ ॥ ८८-८९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिप्लुताम् ।
पितृष्वसारं शोचन्तीं शौरिः पार्थसखः पृथाम् ॥ ९० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर अर्जुनके मित्र भगवान् श्रीकृष्णने पुत्रोंकी चिन्तासे दुःखमें डूबकर शोक करती हुई अपनी बुआ कुन्तीको इस प्रकार आश्वासन दिया ॥ ९० ॥

वासुदेव उवाच

का नु सीमन्तिनी त्वादृग् लोकेष्वस्ति पितृष्वसः ।
शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता ॥ ९१ ॥

भगवान् वासुदेव बोले—बुआ! तुम्हारे-जैसी सौभाग्यशालिनी नारी दूसरी कौन है? तुम राजा शूरसेनकी पुत्री हो और महाराज अजमीढके कुलमें ब्याहकर आयी हो।

महाकुलीना भवती ह्रदाद्ध्रदमिवागता।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ ९२ ॥

तुम एक उत्तम कुलकी कन्या हो और दूसरे उत्तम कुलमें ब्याही गयी हो। मानो कमलिनी एक सरोवरसे दूसरे सरोवरमें आयी हो। तुम सर्वकल्याणी महारानी थीं। तुम्हारे पतिने तुम्हारा विशेष सम्मान किया है।

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः।
सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति ॥ ९३ ॥

तुम वीरपत्नी और वीरजननी तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हो। महाप्राज्ञे! तुम्हारी-जैसी विवेकशील स्त्रियाँ सुख और दुःख सब कुछ सहने योग्य हैं।

निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ।
एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीरसुखे रताः ॥ ९४ ॥

तुम्हारे सभी पुत्र निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, क्रोध, हर्ष, भूख-प्यास तथा सर्दी-गरमी इन सबको जीतकर सदा वीरोचित सुखका उपभोग करते हैं।

त्यक्तग्राम्यसुखाः पार्था नित्यं वीरसुखप्रियाः।
न तु स्वल्पेन तुष्येयुर्महोत्साहा महाबलाः ॥ ९५ ॥

तुम्हारे पुत्रोंने ग्राम्यसुखको त्याग दिया है। वे नित्य वीरसुख ही प्रिय मानते हैं। वे महान् उत्साही और महाबली हैं, अतः थोड़ेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकते।

अन्तं धीरा निषेवन्ते मध्यं ग्राम्यसुखप्रियाः।
उत्तमांश्च परिक्लेशान् भोगांश्चातीव मानुषान् ॥ ९६ ॥
अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे।
अन्तप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमन्तयोः ॥ ९७ ॥

धीर पुरुष भोगोंकी चरम सीमाका सेवन करते हैं। ग्राम्य विषयभोगोंमें आसक्त पुरुष भोगोंकी मध्य स्थितिका ही सेवन करते हैं। धीर पुरुष उत्तम क्लेश और अतिमानुष भोगोंको पाना चाहते हैं। महापुरुषोंका कहना है कि अन्तिम सुख दुःखकी स्थितिकी प्राप्ति ही वास्तविक सुख है तथा सुख दुःखके बीचकी स्थिति ही दुःख है ॥ ९६-९७ ॥

अभिवादयन्ति भवतीं पाण्डवाः सह कृष्णया।
आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याहुरनामयम् ॥ ९८ ॥

बुआ! द्रौपदीसहित पाण्डवोंने तुम्हें प्रणाम कहलाया है और अपनेको सकुशल बताकर अपनी कुशलता भी पूछी है।

अरोगान् सर्वसिद्धार्थान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान्।
ईश्वरान् सर्वलोकस्य हतामित्रान् श्रिया वृतान् ॥ ९९ ॥

तुम शीघ्र ही देखोगी, पाण्डव नीरोग अवस्थामें तुम्हारे सामने उपस्थित हैं, उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो गये हैं और वे अपने शत्रुओंका संहार करके सम्पूर्ण लक्ष्मीसे युक्त हो सम्पूर्ण जगत्के साम्राज्यपर प्रतिष्ठित हैं।

एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम्।
पुत्राधिभिरभिध्वस्ता निगृह्याबुद्धिजं तमः ॥ १०० ॥

इस प्रकार आश्वासन पाकर पुत्रोंकी आधिसे दुःखी हुई कुन्तीदेवीने अज्ञानजनित मोहका निरोध करके भगवान् जनार्दनसे कहा।

कुन्त्युवाच

यद् यत् तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन।
यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा ॥ १०१ ॥

कुन्ती बोली—महाबाहु मधुसूदन श्रीकृष्ण! जो पाण्डवोंके लिये हितकर हो तथा जैसे-जैसे तुम्हें उचित जान पड़े, वही करो।

अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परंतप।
प्रभावज्ञास्मि ते कृष्ण सत्यस्याभिजनस्य च ॥ १०२ ॥

परंतप श्रीकृष्ण! धर्मका लोप न करते हुए छल और कपटसे दूर रहकर यथोचित कार्य करना चाहिये। मैं तुम्हारी सत्यपालकता और कुल-मर्यादाका भी प्रभाव जानती हूँ।

व्यवस्थायां च मित्रेषु बुद्धिविक्रमयोस्तथा।
त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं तपो महत् ॥ १०३ ॥
त्वं त्राता त्वं महद् ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथैवात्थ तथैवैतत् त्वयि सत्यं भविष्यति ॥ १०४ ॥

प्रत्येक कार्यकी व्यवस्थामें, मित्रोंके संग्रहमें तथा बुद्धि और पराक्रममें भी जो तुम्हारा प्रभाव है, उसको मैं जानती हूँ। तुम्हीं हमारे कुलमें धर्म हो, तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं महान् तप हो और तुम्हीं परब्रह्म परमात्मा हो। सब कुछ तुममें ही प्रतिष्ठित है। तुम जो कुछ कहते हो, वह सब तुम्हारे सान्निध्यमें सत्य होकर ही रहेगा ॥ १०३-१०४ ॥

किसीसे पराजित न होनेवाले पुण्डरीकाक्ष! कौरवोंके, पाण्डवोंके तथा इस सम्पूर्ण जगत्के तुम्हीं आश्रय

हे ! केशव ! तुम्हारा पराक्रम तथा तुम्हारा बुद्धिबल भी बहाँ के अनुरूप ही है ॥

वैशम्पायन उवाच

तामामन्त्र्य च गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
प्रातिष्ठत महाबाहुर्दुर्योधनगृहान् प्रति ॥१०५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर महाबाहु गोविन्द कुन्तीदेवीकी परिक्रमा करके उनसे आज्ञा ले दुर्योधनके घरकी ओर चल दिये ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकृष्णसंवादे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्ण-कुन्ती-संवादविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल १०६½ श्लोक हैं)

एकनवतितमोऽध्याय

श्रीकृष्णका दुर्योधनके घर जाना एवं उसके निमन्त्रणको अस्वीकार करके विदुरजीके घरपर भोजन करना

वैशम्पायन उवाच

पृथामामन्त्र्य गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! शत्रुओंका दमन करनेवाले शूरनन्दन श्रीकृष्ण कुन्तीकी परिक्रमा करके एवं उनकी आज्ञा ले दुर्योधनके घर गये ॥ १ ॥

लक्ष्म्या परमया युक्तं पुरन्दरगृहोपमम्।
विचित्रैरासनैर्युक्तं प्रविवेश जनार्दनः ॥ २ ॥

वह घर इन्द्रभवनके समान उत्तम शोभासे सम्पन्न था। उसमें यथास्थान विचित्र आसन लगाकर रक्खे गये थे। श्रीकृष्णने उस घरमें प्रवेश किया ॥ २ ॥

तस्य कक्ष्या व्यतिक्रम्य तिस्रो द्वाःस्थैरवारितः।
ततोऽभ्रघनसंकाशं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
श्रिया ज्वलन्तं प्रासादमारुरोह महायशाः।

द्वारपालोंने उन्हें रोक-टोक नहीं की। उस राजभवनकी तीन ड्योढ़ियाँ पार करके महायशस्वी श्रीकृष्ण एक ऐसे प्रासादपर आरूढ़ हुए, जो आकाशमें छाये हुए बादलोंके समान उज्ज्वल, पर्वतशिखरके समान ऊँचा तथा अपनी अद्भुत प्रभासे प्रकाशमान था ॥ ३½ ॥

तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाभिसंवृतम् ॥ ४ ॥
धार्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शासीनमासने।

वहाँ उन्होंने सिंहासनपर बैठे हुए धृतराष्ट्रपुत्र महाबाहु दुर्योधनको देखा, जो सहस्रों राजाओं तथा कौरवोंसे घिरा हुआ था ॥ ४½ ॥

दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ५ ॥
दुर्योधनसमीपे तानासनस्थान् ददर्श सः।

दुर्योधनके पास ही दुःशासन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि—ये भी आसनोंपर बैठे थे। श्रीकृष्णने उनको भी देखा ॥ ५½ ॥

अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः ॥ ६ ॥
उदतिष्ठत् सहामात्यः पूजयन् मधुसूदनम्।

दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके आते ही महायशस्वी दुर्योधन मधुसूदनका सम्मान करते हुए मन्त्रियोंसहित उठकर खड़ा हो गया ॥ ६½ ॥

समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः ॥ ७ ॥
राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद् यथावयः।

मन्त्रियोंसहित दुर्योधनसे मिलकर वृष्णिकुलभूषण केशव अवस्थाके अनुसार वहाँ सभी राजाओंसे यथायोग्य मिले ॥ ७½ ॥

तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम् ॥ ८ ॥
विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः।

उस राजभवनमें सुन्दर रत्नोंसे विभूषित एक सुवर्णमय पलंग रक्खा हुआ था, जिसपर भाँति-भाँतिके बिछौने बिछे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण उसीपर विराजमान हुए ॥ ८½ ॥



तस्मिन् गा मधुपर्कं चाप्युपहृत्य जनार्दने ॥ ९ ॥
निवेदयामास तदा गृहान् राज्यं च कौरवः।

समय कुरुकुलके अत्याचारकी सेवामें लगे मधुपर्क, जल एवं गौ तथा राज्य कुछ निवेदन कर दिया ।

तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम् ।
उपासांचक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह ॥

तदनन्तर सूर्यके समान तेजस्वी गोविन्द निर्मल सूर्यके समान उसी प्रतीत हो रहे थे । उस समय कौरवों सहित सब राजा उनके पास आकर बैठ गये ।

ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम् ।
न्यमन्त्रयद् भोजनेन नाभ्यनन्दच्च केशवः ॥

तदनन्तर दुर्योधनने विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया, परंतु केशवने उस निमन्त्रणको स्वीकार नहीं किया ।

ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीत् कुरुसंसदि ।
मृदुपूर्वं शठोदर्कं कर्णमाभाष्य कौरवः ॥

तब कुरुराज दुर्योधनने कर्णसे सलाह करके कौरवसभामें श्रीकृष्णसे पूछा—उसके पूछनेका ढंग तो मधुर था, परंतु मनमें शठता भरी थी ।

कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च ।
त्वदर्थमुपनीतानि नाग्रहीस्त्वं जनार्दन ॥

जनार्दन ! आपके लिये अन्न, जल, वस्त्र और शय्या आदि जो सामग्री प्रस्तुत की गयी, उन्हें आपने ग्रहण क्यों नहीं किया ?

उभयोश्चाददः साह्यमुभयोश्च हिते रतः ।
सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव ॥
त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः ।
तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर ॥

आप तो दोनों पक्षोंको ही सहायता देते हैं और दोनोंके हित-साधनमें तत्पर हैं । माधव ! महाराज धृतराष्ट्रके आप प्रिय सम्बन्धी भी हैं । चक्र और गदा धारण करनेवाले गोविन्द ! आपको धर्म और अर्थका सम्पूर्णरूपसे यथार्थ ज्ञान भी है; फिर मेरा आतिथ्य ग्रहण न करनेका क्या कारण है ? यह मैं सुनना चाहता हूँ ।

वैशम्पायन उवाच

स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः ।
ओघमेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥
अनम्बूकृतमग्रस्तमनिरस्तमसंकुलम् ।
राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उसके ऐसा पूछनेपर उस समय महामनस्वी कमलनयन श्रीकृष्णने अपनी विशाल भुजा ऊपर उठाकर राजा दुर्योधनसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें उत्तर देना आरम्भ किया । उनका एक-एक पद स्पष्ट, युक्तियुक्त तथा प्रत्येक अक्षरको स्पष्टरूपसे सुशोभित तथा स्वरलोपमें दोष एवं उच्चारणदोष आदि दोषोंसे रहित था ।

कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह ।
कृतार्थं मां सहामात्यः समर्चिष्यसि भारत ॥

भारत ! ऐसा नियम है कि दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होनेपर ही भोजन और पूजा स्वीकार करते हैं; अतः मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर ही आप मंत्रियोंसहित मेरा सत्कार करना ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रो जनार्दनम् ।
न युक्तं भवतास्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ॥

यह सुनकर दुर्योधनने जनार्दनसे कहा—आप हम लोगोंके साथ ऐसा अनुचित बर्ताव न करें, यह आपको उचित नहीं है ।

कृतार्थं चाकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन ।
यतामहे पूजयितुं गोविन्द न च शक्नुमः ॥

दयानिधान मधुसूदन ! आपका उद्देश्य सिद्ध हो या न हो, हम लोग तो आपके सत्कारका प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु हमें सफलता नहीं मिल रही है ।

न च तत् कारणं विद्मो यस्मिन् नो मधुसूदन ।
पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नामंस्थाः पुरुषोत्तम ॥

मधुसूदन ! पुरुषोत्तम ! ऐसा कोई कारण नहीं जान पड़ता, जिससे आप प्रेमपूर्वक अर्पित की हुई पूजा ग्रहण न करें ।

वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः ।
स भवान् प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥

गोविन्द ! आपके साथ हम लोगोंका न तो वैर है और न झगड़ा ही है; अतः इन बातोंका विचार करके आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये ।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रं जनार्दनः ।
अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर दशार्हकुलभूषण जनार्दनने मन्त्रियोंसहित दुर्योधनकी ओर देखकर हँसते हुए-से उत्तर दिया ।

नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद् वा धर्मं जह्यां कथंचन ॥ ७ ॥

राजन् ! मैं कामसे, क्रोधसे, द्वेषसे, स्वार्थवश, बहाने बनाकर अथवा लोभसे भी किसी प्रकार धर्मका त्याग नहीं कर सकता ।

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ॥ २५ ॥

किसीके घरका अन्न या तो प्रेमके कारण भोजन किया जाता है या आपत्तिमें पड़नेपर। नरेश्वर! प्रेम तो तुम नहीं रखते और किसी आपत्तिमें हम नहीं पड़े हैं ॥ २५ ॥

अकस्माद् द्विषसे राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान्।
प्रियानुवर्तिनो भ्रातॄन् सर्वैः समुदितान् गुणैः ॥ २६ ॥

राजन्! पाण्डव तुम्हारे भाई ही हैं। वे अपने प्रेमियोंका भाव देनेवाले और समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं, तथापि तुम जन्मसे ही उनके साथ अकारण द्वेष रखते हो ॥ २६ ॥

अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते।
धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति ॥ २७ ॥

बिना कारण ही कुन्तीपुत्रोंके साथ द्वेष रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। पाण्डव सदा अपने धर्ममें स्थित रहते हैं, अतः उनके विरुद्ध कौन क्या कह सकता है? ॥ २७ ॥

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ २८ ॥

जो पाण्डवोंसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ एकप्राण हुआ ही समझो ॥ २८ ॥

कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद् विरुरुत्सति।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ २९ ॥

जो काम और क्रोधके वशीभूत होकर मोहवश किसी गुणवान् पुरुषके साथ विरोध करना चाहता है, उसे पुरुषोंमें अधम कहा गया है ॥ २९ ॥

यः कल्याणगुणाञ्ज्ञातीन् मोहाल्लोभाद् दिदृक्षते।
सोऽजितात्माजितक्रोधो न चिरं तिष्ठति श्रियम् ॥ ३० ॥

जो कल्याणमय गुणोंसे युक्त अपने कुटुम्बीजनोंको मोह और लोभकी दृष्टिसे देखना चाहता है, वह अपने मन और क्रोधको न जीतनेवाला पुरुष दीर्घकालतक राजलक्ष्मीका उपभोग नहीं कर सकता ॥ ३० ॥

अथ यो गुणसम्पन्नान् हृदयस्याप्रियानपि।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३१ ॥

जो अपने मनको प्रिय न लगनेवाले गुणवान् व्यक्तियोंको भी अपने प्रिय आचरणद्वारा वशमें कर लेता है, वह दीर्घकालतक यशस्वी बना रहता है ॥ ३१ ॥

(द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत्।
पाण्डवान् द्विषसे राजन् मम प्राणा हि पाण्डवाः ॥)

जो द्वेष रखता हो, उसका अन्न नहीं खाना चाहिये। द्वेष रखनेवालेको खिलाना भी नहीं चाहिये। राजन्! तुम पाण्डवोंसे द्वेष रखते हो और पाण्डव मेरे प्राण हैं ॥

सर्वमेतदभोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम्।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥ ३२ ॥

तुम्हारा यह सारा अन्न दुर्भावनासे दूषित है। अतः मेरे भोजन करने योग्य नहीं है। मेरे लिये तो यहाँ केवल विदुरका ही अन्न खाने योग्य है। यह मेरी निश्चित धारणा है ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम्।
निश्चक्राम ततः शुभ्राद् धार्तराष्ट्रनिवेशनात् ॥ ३३ ॥

अमर्षशील दुर्योधनसे ऐसा कहकर महाबाहु श्रीकृष्ण उसके भव्य भवनसे बाहर निकले ॥ ३३ ॥

निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः।
निवेशाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥

वहाँसे निकलकर महामना महाबाहु भगवान् वासुदेव ठहरनेके लिये महात्मा विदुरके भवनमें गये ॥ ३४ ॥

तमभ्यगच्छद् द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाह्लिकः।
कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम् ॥ ३५ ॥
त ऊचुर्माधवं वीरं कुरवो मधुसूदनम्।
निवेदयामो वार्ष्णेय सरत्नांस्ते गृहान् वयम् ॥ ३६ ॥

उस समय द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म, बाह्लीक तथा अन्य कौरवोंने भी महाबाहु श्रीकृष्णसे मुलाकात की। विदुरके घरमें ठहरे हुए यदुकुलवीर मधुसूदनसे वे सब कौरव बोले—'वृष्णिनन्दन! हमलोग रत्नोंसहित अपने घरोंको आपकी सेवामें समर्पित करते हैं' ॥ ३५-३६ ॥

तानुवाच महातेजाः कौरवान् मधुसूदनः।
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽपचितिः कृता ॥ ३७ ॥

तब महातेजस्वी मधुसूदनने कौरवोंसे कहा—'आप सब लोग अपने घरोंको जायँ। आपके द्वारा मेरा सारा सम्मान सम्पन्न हो गया' ॥ ३७ ॥

यातेषु कुरुषु क्षत्ता दाशार्हमपराजितम्।
अभ्यर्चयामास तदा सर्वकामैः प्रयत्नवान् ॥ ३८ ॥

कौरवोंके चले जानेपर विदुरजीने कभी पराजित न होनेवाले दशार्हनन्दन श्रीकृष्णको समस्त मनोवाञ्छित वस्तुएँ समर्पित करके प्रयत्नपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ३८ ॥

१. जो दुष्ट नहीं है, उसे भी दुष्ट बतलाना वैर है।
२. दूसरोंके शत्रुसे वैर करनेकी इच्छाका नाम क्रोध है।



तत्र दत्तान्यन्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च
उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥ ३९ ॥

तदनन्तर उन्होंने अनेक प्रकारके पवित्र एवं गुणकारक अन्न-पान महात्मा केशवको अर्पित किये।

तैस्तर्पयित्वा प्रथमं ब्राह्मणान् मधुसूदनः
वेदविद्भ्यो ददौ कृष्णः परमद्रविणान्यपि ॥ ४० ॥

मधुसूदनने उन अन्न-पानोंसे पहले ब्राह्मणोंको तृप्त किया। फिर उन्होंने उन वेदवेत्ताओंको बहुत-सा धन भी दिया।

ततोऽनुयायिभिः सार्धं मरुद्भिरिव वासवः
विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ ४१ ॥

तदनन्तर देवताओंसे घिरे इन्द्रकी भाँति अनुचरोंसहित भगवान् श्रीकृष्णने विदुरजीके पवित्र एवं गुणकारक अन्न-पान ग्रहण किये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णदुर्योधनसंवादे एकनवतितमोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्ण दुर्योधनसंवादविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ
(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४२ श्लोक हैं)

द्विनवतितमोऽध्याय

विदुरजीका धृतराष्ट्रपुत्रोंकी दुर्भावना बताकर श्रीकृष्णको उनके कौरवसभामें जानेका अनौचित्य बतलाना

वैशम्पायन उवाच

तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत्
नेदं सम्यग् व्यवसितं केशवागमनं तव ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! रातमें जब भगवान् श्रीकृष्ण भोजन करके विश्राम कर रहे थे, उस समय विदुरजीने उनसे कहा—'केशव! आपने जो यहाँ आनेका विचार किया है, यह आपकी अच्छी बुद्धिका परिचायक नहीं है।'

अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन
मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः ॥ २ ॥

जनार्दन! मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनोंका उल्लङ्घन कर चुका है। क्रोधी, दूसरोंके सम्मानको नष्ट करनेवाला और स्वयं सम्मान चाहनेवाला है। उसने बड़े-बूढ़े गुरुजनोंके आदेशको भी ठुकरा दिया है।

धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः
अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्तराष्ट्रो जनार्दन ॥ ३ ॥

जनार्दन! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन धर्मशास्त्रोंकी भी आज्ञा नहीं मानता, सदा मनमानी ही हठ रखता है। उस दुरात्माको कल्याणके मार्गपर ले आना असम्भव है।

कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक् सर्वशङ्कितः
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः ॥ ४ ॥

उसका मन भोगोंमें आसक्त है। वह अपनेको पण्डित मानता, मित्रोंसे द्रोह करता और सबको संदेहकी दृष्टिसे देखता है। वह स्वयं तो किसीका उपकार करता ही नहीं, दूसरोंके किये हुए उपकारको भी नहीं मानता। वह धर्मको त्यागकर असत्यसे प्रेम करता है।

मूढश्चाकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः
कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः ॥ ५ ॥

उसमें विवेकका सर्वथा अभाव है। उसकी बुद्धि किसी एक निश्चयपर नहीं रहती। वह अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखनेमें असमर्थ है। वह अपनी इच्छाओंका अनुसरण करनेवाला तथा सभी कार्योंमें अनिश्चित विचार रखनेवाला है।

एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्दोषैरेष समन्वितः
त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति ॥ ६ ॥

ये तथा और भी बहुत-से दोष उसमें भरे हुए हैं। अगर उसे हितकी बात बतायेंगे, तो भी वह क्रोधवश उसे स्वीकार नहीं करेगा।

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे जयद्रथे ।
भूयसीं वर्तते वृत्तिं न शमे कुरुते मनः ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और जयद्रथपर अधिक भरोसा रखता है, अतः मनमें संधि करनेका विचार ही नहीं रखता है ॥

निश्चितं धार्तराष्ट्राणां सकलानां जनार्दन ।
भीष्मद्रोणमुखान् पार्था नाशक्ताः प्रतियोधितुम् ॥

जनार्दन! धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंकी यह निश्चित धारणा है कि कुन्तीके पुत्र भीष्म एवं द्रोणाचार्य आदि वीरोंकी ओर देख भी नहीं सकते ॥

सेनासमुदयं कृत्वा पार्थिवं पृथुलोचन ।
कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ॥

मधुसूदन! यह मूर्ख दुर्बुद्धि राजाओंकी सेना एकत्र करके अपनेको कृतकृत्य मानता है ॥

एकः कर्णः परान् जेतुं समर्थ इति निश्चितम् ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥

दुर्बुद्धि दुर्योधनको तो यह विश्वास है कि अकेला कर्ण ही शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ है, इसलिये वह कदापि संधि नहीं करेगा ॥

संविच्च धार्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव ।
शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकाङ्क्षिणः ॥
न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम् ।
इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥

केशव! धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंने यह निश्चय कर लिया है कि हमें पाण्डवोंको उनका यथोचित राज्यभाग नहीं देना चाहिये। उनका ऐसा दृढ़ निश्चय है। इधर आप संधिके लिये प्रयत्न करते हुए उनमें उत्तम भ्रातृभाव स्थापित करना चाहते हैं; अतः उनसे आप जो कुछ भी कहेंगे, वह सब व्यर्थ ही होगा ॥

यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन ।
न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥

मधुसूदन! जहाँ अच्छी और बुरी बातोंका एक-सा ही परिणाम हो, वहाँ विद्वान् पुरुषको कुछ नहीं कहना चाहिये; क्योंकि वहाँ कोई बात कहना बहरोंके आगे राग अलापनेके समान व्यर्थ ही है ॥

अविजानत्सु मूढेषु निर्मर्यादेषु माधव ।
न त्वं वाक्यं ब्रुवन् युक्तश्चाण्डालेषु द्विजो यथा ॥

माधव! जैसे चाण्डालोंके बीचमें किसी विद्वान् ब्राह्मणका उपदेश देना उचित नहीं है, उसी प्रकार उन मर्यादारहित मूर्ख और अज्ञानियोंके बीच आपका कुछ भी कहना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता ॥

सोऽयं बलस्थो मूढश्च न करिष्यति ते वचः ।
तस्मिन् निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥

दुर्योधन सैन्यबल पाकर अपनेको शक्तिशाली समझता है और बात नहीं मानेगा; उसके प्रति कहा गया आपका वचन निरर्थक होगा ॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम् ।
तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥
दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।
प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण! वहाँ सभी पापात्मा मिलकर बैठे हुए हैं, अतः उनके बीचमें आपका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता है। वे दुर्बुद्धि, दुष्ट और दुराचारी हैं, उनकी संख्या बहुत है; श्रीकृष्ण! उनके बीचमें आपका उनके प्रतिकूल बात कहना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता ॥

अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रिया दर्पाच्च मोहितः ।
वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥

दुर्योधनने कभी वृद्ध पुरुषोंका सेवन नहीं किया है, वह राजलक्ष्मी और धनके अभिमानसे मोहित हो रहा है; इसके सिवा युवावस्था और अमर्षके कारण घमंडमें होकर मस्त रहता है, अतः आपके हितकर बात भी वह नहीं मानेगा ॥

बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव ।
त्वय्यस्य महती शङ्का न करिष्यति ते वचः ॥

माधव! दुर्योधनके पास बलवान् सेना है। इसके सिवा आपपर उसे महान् संदेह है; अतः वह आपकी बात नहीं मानेगा ॥

नेदमद्य युधा शक्यमिन्द्रेणापि सहामरैः ।
इति व्यवसिताः सर्वे धार्तराष्ट्रा जनार्दन ॥

जनार्दन! धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका यह दृढ़ निश्चय है कि देवताओंसहित इन्द्र भी इस समय युद्धके द्वारा हमारी सेनाको पराजित नहीं कर सकते ॥

तेष्वेवमुपपन्नेषु कामक्रोधानुवर्तिषु ।
समर्थमपि ते वाक्यमसमर्थं भविष्यति ॥

जो इस प्रकारका निश्चय किये बैठे हैं और काम-क्रोधके ही पीछे चलनेवाले हैं, उनके प्रति आपका युक्तियुक्त एक-एक वचन भी व्यर्थ एवं असफल हो जायगा ॥

मध्ये तिष्ठन् हस्त्यनीकस्य मन्दो
रथाश्वयुक्तस्य बलस्य मूढः ।
दुर्योधनो मन्यते वीतभीतिः
कृत्स्ना मयेयं पृथिवी जितेति ॥

रथियों और घुड़सवारोंसे युक्त हाथियोंकी सेनाके बीचमें खड़ा होकर अपने गर्वित हुआ मन्दबुद्धि मूढ़ दुर्योधन यह समझता है कि यह सारी पृथ्वी मैंने जीत ली ॥ २२ ॥

व्याहारते वै धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।
तस्मिन्नैश्वर्ये केवले लोभमूढो
कथं सन्धिं मन्यते लब्धमर्थम् ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्रका यह ज्येष्ठ पुत्र भूमण्डलका शत्रुरहित साम्राज्य पानेकी आशा रखता है। यह मन-ही-मन यह समझता भी करता है कि मुझमें नाम हुआ यह ... एक सन्ध स्तम ... है अधिकारमें आनन्द रहे ... उसके प्रति केवल भविष्य अपना सम्बन्ध न होगा ॥ २३ ॥

पर्यस्तेयं पृथिवी कालपक्वा
दुर्योधनार्थे पाण्डवान् योद्धुकामा।
समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां
राजानश्च क्षितिपालैः समेताः ॥ २४ ॥

आज इस है अब यह पृथ्वी कालसे पक कर नष्ट होनेवाली है, क्योंकि ... पृथ्वीके समस्त क्षत्रिय ... दुर्योधनके लिये ... पाण्डवोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ एकत्र हुए हैं ॥ २४ ॥

सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्तात्
त्वया राजानो हृतसाराश्च कृष्ण।
तवोद्वेगात् संश्रिता धार्तराष्ट्रान्
सुसंहताः सह कर्णेन वीराः ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण! ये सब के सब ही भूपाल हैं, जिन्होंने पहले आपके साथ वैर किया था और जिनका सारसर्वस्व आपने हर लिया था। ये ही आपके भयसे धृतराष्ट्रपुत्रोंकी शरणमें आये हैं तथा कर्णके साथ संगठित हो ... दिखाने को उद्यत हुए हैं ॥ २५ ॥

त्यक्तात्मानः सह दुर्योधनेन
हृष्टा योद्धुं पाण्डवान् सर्वयोधाः।
तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं
न तन्मतं मम दाशार्ह वीर ॥ २६ ॥

ये सब योद्धा दुर्योधनके साथ मिल गये हैं और अपने प्राणोंका मोह छोड़कर हर्ष एवं उत्साहके साथ पाण्डवोंसे युद्ध करनेको तैयार हैं। दशार्हवंशी वीर! यदि शत्रुओंके बीचमें यदि आप जायेंगे तो यह मुझे ठीक नहीं जान पड़ता ॥ २६ ॥

तेषां समुपविष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम्।
कथं मध्यं प्रपद्येथाः शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ २७ ॥
सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः।
प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥ २८ ॥
या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥

शत्रुसूदन! वहाँ दुष्टचित्तवाले बहुत-से शत्रु बैठे हों, वहाँ उनके बीचमें आप कैसे जाना चाहते हैं? यद्यपि महाबाहु श्रीकृष्ण! सर्वथा आप देवताओंके लिये भी दुःसह हैं और शत्रुहन्ता! मैं आपके प्रभाव, पौरुष और बुद्धिबलको भी भलीभाँति जानता हूँ, तथापि माधव! पाण्डवोंपर जो मेरा प्रेम है, वही भी उससे भी बढ़कर आपके प्रति है। अतः प्रेम, अधिक आदर और सौहार्दसे प्रेरित होकर मैं यह बात कह रहा हूँ ॥ २७—२९ ॥

या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा।
सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥ ३० ॥

कमलनयन! आपके दर्शनसे आपके प्रति मेरा जो प्रेम उमड़ आया है, उसका आपसे क्या वर्णन करूँ? आप तो समस्त देहधारियोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं। अतः सब ही सब कुछ देखते और जानते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णविदुरसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्ण-विदुरसंवादविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका कौरव-पाण्डवोंमें सन्धिस्थापनके प्रयत्नका औचित्य बताना

(वैशम्पायन उवाच)

विदुरस्य वचः श्रुत्वा प्रश्रितं पुरुषोत्तमः।
इदं प्रोवाच वचनं भगवान् मधुसूदनः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विदुरका यह स्नेह और विनयसे युक्त वचन सुनकर पुरुषोत्तम भगवान् मधुसूदनने यह बात कही ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद् विचक्षणः।
यथा वाच्यस्त्वद्विधेन भवता मद्विधः सुहृत् ॥ १ ॥
धर्मार्थयुक्तं तथ्यं च यथा त्वय्युपपद्यते।
तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत् पितृमातृवत् ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—विदुरजी! एक महान् बुद्धिमान्

पुरुष जैसी बात कह सकता है, विद्वान् मनुष्य जैसी सलाह दे सकता है, आप-जैसे हितैषी पुरुषको मेरे-जैसे सुहृत्से जैसी बात कहनी उचित है और आपके मुखसे जैसा धर्म और अर्थसे युक्त सत्य वचन निकलना चाहिये, आपने माता-पिताके समान स्नेहपूर्वक वैसी ही बात मुझसे कही है ॥ १-२ ॥

सत्यं प्राप्तं च युक्तं चाप्येवमेव यथाऽऽत्थ माम्।
शृणुष्वागमने हेतुं विदुरावहितो भव ॥ ३ ॥

आपने मुझसे जो कुछ कहा है, वही सत्य, समयोचित और युक्तिसंगत है, तथापि विदुरजी! यहाँ मेरे आनेका जो कारण है, उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥

दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरिताम्।
सर्वमेतदहं जानन् क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥ ४ ॥

विदुरजी! मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी दुष्टता तथा क्षत्रिय योद्धाओंके वैरभाव—इन सब बातोंको जानकर ही आज कौरवोंके पास आया हूँ ॥ ४ ॥

पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम्।
यो मोचयेन्मृत्युपाशात् प्राप्नुयाद् धर्ममुत्तमम् ॥ ५ ॥

रथ, घोड़े और हाथियोंसहित यह सारी पृथ्वी विनष्ट होना चाहती है। जो इसे मृत्युपाशसे छुड़ानेका प्रयत्न करेगा, उसे ही उत्तम धर्म प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

धर्मकार्यं यतञ्शक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६ ॥

मनुष्य यदि अपनी शक्तिभर किसी धर्मकार्यको करनेका प्रयत्न करते हुए भी उसमें सफलता न प्राप्त कर सके तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त हो जाता है, इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

मनसा चिन्तयन् पापं कर्मणा नाभिरोचयन्।
न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार यदि मनुष्य मनसे पापका चिन्तन करते हुए भी उसमें रुचि न होनेके कारण उसे क्रियाद्वारा सम्पादित न करे, तो उसे उस पापका फल नहीं मिलता है, ऐसा धर्मज्ञ पुरुष मानते हैं ॥ ७ ॥

सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया।
कुरूणां सृञ्जयानां च संग्रामे विनशिष्यताम् ॥ ८ ॥

अतः विदुरजी! मैं युद्धमें मारे जानेवाले कौरवों तथा सृञ्जयोंमें निश्छलभावसे संधि करानेका प्रयत्न करूँगा ॥ ८ ॥

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता।
कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥ ९ ॥

यह भयंकर संकट आपत्ति कर्ण और दुर्योधनद्वारा ही उपस्थित की गयी है; क्योंकि ये सभी लोग उन्हीं दोनोंका अनुसरण करते हैं। अतः इस विपत्तिका प्रादुर्भाव कौरवोंसे ही हुआ है ॥ ९ ॥

व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते।
अनुनीय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः ॥ १० ॥

जो किसी व्यसन या विपत्तिमें पड़कर कष्ट उठाते हुए मित्रको यथाशक्ति अनुनय-विनयद्वारा उसका उद्धार नहीं करता है, उसे विद्वान् पुरुष निर्दय एवं क्रूर मानते हैं ॥ १० ॥

आ केशग्रहणान्मित्रमकार्यात् संनिवर्तयन्।
अवाच्यः कस्यचिद् भवति कृतयत्नो यथाबलम् ॥ ११ ॥

जो अपने मित्रको उसकी चोटी पकड़कर भी बुरे कार्योंसे हटानेके लिये यथाशक्ति प्रयत्न करता है, वह किसीकी निन्दाका पात्र नहीं होता है ॥ ११ ॥

तत् समर्थं शुभं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
धार्तराष्ट्रः सहामात्यो ग्रहीतुं विदुरार्हति ॥ १२ ॥

अतः विदुरजी! दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको मेरी शुभ, हितकर, युक्तियुक्त तथा धर्म और अर्थके अनुकूल बात अवश्य माननी चाहिये ॥ १२ ॥

हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया ॥ १३ ॥

मैं तो निश्छलभावसे धृतराष्ट्रके पुत्रों, पाण्डवों तथा भूमण्डलके सभी क्षत्रियोंके हितका ही प्रयत्न करूँगा ॥ १३ ॥

हिते प्रयतमानं मां शङ्केद् दुर्योधनो यदि।
हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति ॥ १४ ॥

इस प्रकार हितसाधनके लिये प्रयत्न करनेपर भी यदि दुर्योधन मुझपर संदेह करेगा तो भी मेरे मनको तो प्रसन्नता ही होगी और मैं अपने कर्तव्यके भारसे उऋण हो जाऊँगा ॥ १४ ॥

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते।
सर्वयत्नेन माध्यस्थ्यं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥ १५ ॥

भाई-बन्धुओंमें परस्पर फूट होनेका अवसर आनेपर जो मित्र सर्वथा प्रयत्न करके उनमें मेल करानेके लिये मध्यस्थता नहीं करता, उसे विद्वान् पुरुष मित्र नहीं मानते हैं ॥ १५ ॥

न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा।
शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरुपाण्डवान् ॥

अधार्मिक पापी, मूढ़ और शत्रुभाव रखनेवाले लोग मेरे विषयमें यह न कहें कि श्रीकृष्णने समर्थ होते हुए भी क्रोधसे भरे हुए कौरव-पाण्डवोंको युद्धसे नहीं रोका (इसलिये भी मैं संधि करानेका प्रयत्न करूँगा) ॥ १६ ॥

उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत।
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥ १७ ॥

यह भगवद्यात्रा प्रसंग, आपत्ति कर्ण और दुर्योधनद्वारा

हैं दोनों पक्षोंका स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ इसके लिये पूरा प्रयत्न कर लेनेपर मैं लोगोंमें निन्दाका पात्र नहीं बनूँगा।

मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम्।
न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ १८ ॥

यदि मूर्ख दुर्योधन मेरे मङ्गलमय एवं धर्म तथा अर्थके अनुकूल वचनोंको सुनकर भी उसे ग्रहण नहीं करेगा तो वह दुर्भाग्यके अधीन हो जायगा।

महारथान् पाण्डवार्थे यथावत्
शमं कुरूणां यदि चाचरेयम्।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ १९ ॥

महामना विदुरजी! मैं पाण्डवोंका स्वार्थ बाधा न आने देकर कौरवों तथा पाण्डवोंमें यदि शान्ति स्थापित कर सकूँगा तो मेरे द्वारा यह महान् पुण्यकर्म बन जायगा और कौरव भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो जायँगे।

अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां
धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम्।
अवेक्षेरन् धार्तराष्ट्राः शमार्थं
मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ २० ॥

मैं शान्तिके लिये विद्वानोंद्वारा अनुमोदित धर्म और अर्थके अनुकूल हिंसारहित वाणी कहूँगा। यदि धृतराष्ट्रके पुत्र मेरी बातपर ध्यान देंगे तो उन्हें अवश्य शान्ति प्राप्त होगी तथा कौरव भी मुझे यहाँ शान्तिस्थापनके लिये ही आया हुआ जान मेरा आदर करेंगे।

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ २१ ॥

जैसे सिंहके सामने दूसरे पशु नहीं ठहर सकते, उसी प्रकार यदि मैं कुपित हो जाऊँ तो ये समस्त राजालोग एक साथ मिलकर भी मेरे सामने खड़े होनेमें समर्थ न होंगे।

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा।
शयने सुखसंस्पर्शे शिश्ये यदुसुखावहः ॥ २२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यदुकुलको सुख देनेवाले वृष्णिवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण विदुरजीसे उपर्युक्त बात कहकर सुखदायक स्पर्शवाली सुन्दर शय्यापर सो गये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

दुर्योधन एवं शकुनिके द्वारा बुलाये जानेपर भगवान् श्रीकृष्णका रथपर बैठकर प्रस्थान एवं कौरवसभामें प्रवेश और स्वागतके पश्चात् आसनग्रहण

वैशम्पायन उवाच

तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन परम बुद्धिमान् श्रीकृष्ण तथा विदुरके इस प्रकार बातचीत करते हुए ही वह नक्षत्रोंसे सुशोभित कल्याणमयी रात्रि व्यतीत हो चुकी थी।

धर्मार्थकामयुक्ताश्च विचित्रार्थपदाक्षराः।
शृण्वतो विविधा वाचो विदुरस्य महात्मनः ॥ २ ॥
कथाभिरनुरूपाभिः कृष्णस्यामिततेजसः।
अकामस्येव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ ३ ॥

महात्मा श्रीकृष्ण धर्म, अर्थ और कामके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें कहते रहे। उनकी बातोंके पद, अर्थ और अक्षर बड़े विचित्र थे। अतः महात्मा विदुर महाबाहुकी कही हुई उन विविध बातोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनते रहे। इस प्रकार अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण और विदुर दोनोंकी वह सुखद रात्रि मनोनुकूल कथावार्ताओंमें इतनी शीघ्र बीत गयी कि बिना इच्छाके ही मानो वह बीत गयी हो।

ततस्तु स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन् ॥ ४ ॥

तदनन्तर मधुर स्वरसे युक्त बहुत-से सूत और मागध शङ्ख और दुन्दुभियोंके घोषसे भगवान् श्रीकृष्णको जगाने लगे।

तत उत्थाय दाशार्हऋषभः सर्वसात्वताम्।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः ॥ ५ ॥

तब समस्त यदुवंशियोंके शिरोमणि दशार्हनन्दन श्रीकृष्णने शय्यासे उठकर प्रातःकालका समस्त आवश्यक कार्य सम्पन्न किया ॥ ५ ॥

हुत्वाग्निमनुतप्य स शुचिभिः समलङ्कृतः ।
ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् और जप करके अग्निहोत्र करनेके पश्चात् माधवने वस्त्राभूषण धारण कर उदयकालमें सूर्यका उपस्थान किया ॥ ६ ॥

अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ॥ ७ ॥
आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम् ।
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ॥ ८ ॥
त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवामराः ।
तावभ्यनन्दद् गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना ॥ ९ ॥

इसी समय राजा दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि भी सन्ध्योपासनामें लगे हुए अपराजित और दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके पास आये और उनसे इस प्रकार बोले 'गोविन्द! महाराज धृतराष्ट्र सभामें आ गये हैं। भीष्म आदि कौरव तथा समस्त भूपाल भी वहाँ उपस्थित हैं। जैसे स्वर्गमें देवता इन्द्रका आवाहन करते हैं, इसी प्रकार भीष्म आदि सब लोग आपके यहाँ पधारनेकी प्रतीक्षा करते हैं।' यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने परम मधुर सान्त्वनापूर्ण वचन द्वारा उन दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ ७–९ ॥

ततो विमल आदित्ये ब्राह्मणेभ्यो जनार्दनः ।
ददौ हिरण्यं वासांसि गाश्चाश्वांश्च परंतपः ॥ १० ॥
विसृज्य बहुरत्नानि दाशार्हमपराजितम् ।
तिष्ठन्तमुपसंगम्य ववन्दे सारथिस्तदा ॥ ११ ॥

तदनन्तर निर्मल सूर्यदेवका उदय हो जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले भगवान् जनार्दनने ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र, गौ तथा घोड़े दान किये। अनेक प्रकारके रत्नोंका दान करके खड़े हुए उन अपराजित दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके पास आकर सारथिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १०-११ ॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः ॥ १२ ॥

इसके बाद छोटी-छोटी घंटियोंसे सुशोभित और उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए चमकीले विशाल रथके साथ सारथि दारुक भी भगवान्‌की सेवामें उपस्थित हुआ ॥ १२ ॥

(तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः ।
सर्वरत्नमयं श्रीमान् सर्वपुण्यदमव्ययम् ॥

भगवान्‌के लिये जोतकर खड़ा किया हुआ वह दिव्य रथ सब प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित था, उसमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥

शैब्यस्तु शुकपत्राभः सुग्रीवः किंशुकप्रभः ।
मेघपुष्पो मेघवर्णः पाण्डुरस्तु बलाहकः ॥

उनमेंसे शैब्यका रंग तोतेकी पाँखके समान हरा था। सुग्रीव पलाशके फूलकी भाँति लाल था। मेघपुष्पकी कान्ति मेघोंके ही समान थी और बलाहक सफेद था।

दक्षिणं चावहच्छैब्यं सुग्रीवः सव्यतोऽभवत् ।
पृष्ठवाहौ तयोरास्तां मेघपुष्पबलाहकौ ॥

शैब्य दाहिने भागमें जुतकर उस रथका वहन करता था और सुग्रीव बायें भागमें। मेघपुष्प और बलाहक नामक घोड़े इनके पीछे जुते हुए थे ॥

वैनतेय स्थितस्तस्या प्रभाकरमिव स्पृशन् ।
ध्वजः सरत्नवान् कर्त्तुं युक्तश्चापि विराजते ॥

उस रथके ऊपर विश्वकर्माद्वारा निर्मित भगवान् श्रीकृष्णके रथमें लगे हुए रत्नजटित ध्वजपर सूर्यको स्पर्श करते हुए-से गरुड़ विराजमान थे ॥

तस्य कीर्तिमतश्चित्रं भास्करेण विराजता ।
शुशुभे स्यन्दनश्रेष्ठः पतगेन्द्रेण केतुना ॥

यशस्वी श्रीकृष्णका वह रथ उस ध्वजके कारण बड़ी शोभा पा रहा था ॥

चक्रमालाश्च तस्यासन् सौवर्णेन च केतुना ।
बभूव स रथश्रेष्ठः कालसूर्य इवोदितः ॥

मानसके समान ही वेगशाली वह रथ सुवर्णमय ध्वजके द्वारा उदयकालके प्रज्वलित सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था ।

पद्मिन्यश्चविमानैश्च कनकाम्बुजमालिनी ।
वृन्दमार्गविभागैश्च मुक्तैर्विविधरत्नजा ॥
प्रवालमणिजालैश्च मुक्ताविद्रुमभूषणैः ।
किङ्किणीजालसंछन्नैः नानारत्नविभूषितैः ॥
कादम्बरमयाभिश्च पद्मिनीभिरलङ्कृता ।
शुशुभे चन्दनैर्दिव्यैस्तालपत्रैश्च पाण्डुरैः ॥
व्याघ्रसिंहवराहैश्च गोवृषैर्मृगपक्षिभिः ।
नानाविधैश्च विविधैर्धातुभिश्च हिरण्मयैः ॥
तथा च वृषभैर्नानाकुञ्जराश्वरथेषु च ।)

उस रथमें नक्षत्रकी भाँति बहुसंख्यक रत्नजटित घण्टियाँ लगी थीं। उसको पृथक्-पृथक् दिव्य पताकाओंसे सुन्दर रूपसे विभूषित किया गया था। प्रवाल (मूँगा) मणि, वैदूर्य, मुक्ता आदि विविध आभूषणोंसे सजी हुई पताकाओं तथा घण्टियोंवाली झालरोंसे उस रथको अलंकृत किया गया था। सुवर्णमय कमलोंसे सजाये हुए सुवर्णके ही फूलों तथा व्याघ्र, सिंह, वराह, वृषभ, मृग, पक्षी तथा घोड़े और हाथियोंकी स्वर्णमयी प्रतिमाओंसे उस

उस रथकी अत्यन्त शोभा हो रही थी। कुरव (कुमार) की गोलाकार पंक्तियोंसे तथा अद्भुत वस्त्र-वितानकी झालरोंसे उस रथको विभूषित किया गया था।

समुच्छ्रितध्वजाकारं रथं दिव्यं महात्मनः ।
महाभ्रघननिर्घोषं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ १३ ॥
मणि प्रवालिन छाया वासवाश्च जनार्दन ।
कौस्तुभं मणिमामुच्य श्रिया परमया ज्वलन् ॥ १४ ॥
कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाभिरक्षितः ।
आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥ १५ ॥

महान् बादल गर्जनाके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित उस दिव्य रथपर उपस्थित जान अग्नि एवं ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके उन्होंने कौस्तुभमणि पहनकर अपनी उत्तम शोभासे प्रकाशित होते हुए कौरवोंसे घिरकर एवं वृष्णिवंशी वीरोंसे सुरक्षित हो समस्त यादवोंको आनन्द प्रदान करनेवाले भगवान् श्रु



अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम् ॥ १६ ॥

समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण बुद्धिमानोंमें उत्तम दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके पश्चात् सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता विदुरजी भी उस रथपर जा बैठे ॥ १६ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परंतपम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीकृष्णके पीछे-पीछे दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि भी दूसरे रथपर चढ़कर चले ॥ १७ ॥

सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां चापरे रथाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वै रथैरपि ॥ १८ ॥

सात्यकि, कृतवर्मा तथा वृष्णिवंशके दूसरे रथी भी हाथी, घोड़े तथा रथोंपर बैठकर श्रीकृष्णके पीछे-पीछे गये ॥ १८ ॥

तेषां हेमपरिष्कारैर्युक्ताः परमवाजिभिः ।
गच्छन्तो घोषिणश्चित्रा रथा राजन् विरेजिरे ॥ १९ ॥

राजन्! उन सबके उत्तम अश्वोंसे जुते हुए, सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित तथा चलते समय गम्भीर घोष करनेवाले विचित्र रथ बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ १९ ॥

सन्मृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम् ।
राजर्षिचरितं काले कृष्णो धीमाञ्छ्रिया ज्वलन् ॥ २० ॥

अपनी दिव्य कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण यथासमय उस विशाल राजमार्गपर जा पहुँचे, जिसपर पूर्वकालमें राजर्षि यात्रा करते थे। वहाँकी धूल झाड़ दी गयी थी और मार्गपर छिड़काव कर दिया गया था ॥ २० ॥

ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यन्तैकपुष्कराः ।
शङ्खाश्च दध्मिरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च ॥ २१ ॥

दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके प्रस्थान करनेपर भेरी, शङ्ख तथा दूसरे बाजे बज उठे ॥ २१ ॥

प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः ।
परिवार्य रथं शौरेरगच्छन्त परंतपाः ॥ २२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले, सिंहके समान पराक्रमी तथा सम्पूर्ण जगत्‌के प्रमुख वीर नवयुवक भगवान् श्रीकृष्णके रथको सब ओरसे घेरकर चलने लगे ॥ २२ ॥

ततोऽन्ये बहुसाहस्रा विचित्राद्भुतवाससः ।
असिप्रासायुधधराः कृष्णस्यासन् पुरःसराः ॥ २३ ॥

इनके सिवा अन्य हजारों सैनिक श्रीकृष्णके आगे-आगे चल रहे थे। वे सब विचित्र एवं अद्भुत वस्त्र धारण करके आये थे। उनके हाथोंमें खड्ग और प्रास आदि आयुध शोभा पाते थे ॥ २३ ॥

गजाः पञ्चशतास्तत्र रथाश्चासन् सहस्रशः ।
प्रयान्तमन्वयुर्वीरं दाशार्हमपराजितम् ॥ २४ ॥

किसीसे पराजित न होनेवाले दशार्हवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्णके पीछे उस यात्राके समय पाँच सौ हाथी और सहस्रों रथ जा रहे थे ॥ २४ ॥

पुरं कुरूणां संवृत्तं द्रष्टुकामं जनार्दनम् ।
सबालवृद्धं सस्त्रीकं रथ्यागतमरिंदम ॥ २५ ॥

समुद्रवत् समवेक्ष्य । उस समय भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये नगरमें बड़े तथा स्त्रियोंसे भरे होनेसे वह सारा नगर लहराता सा जान पड़ता था ॥ २५ ॥

वेदिकापाश्रिताभिश्च समाक्रान्तान्यनेकशः ।
प्रचलन्तीव भारेण योषिद्भिर्भवनान्युत ॥ २६ ॥

उन्होंने महलोंमें ओसारे भागतक बैठी हुई झुंड-की-झुंड स्त्रियोंके भारसे मानो हस्तिनापुरके वे सारे भवन कम्पित से हो रहे थे ॥ २६ ॥

स पूज्यमानः कुरुभिः संशृण्वन् मधुराः कथाः ।
यथार्हं प्रतिसत्कुर्वन् प्रेक्षमाणः शनैर्ययौ ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कौरवोंसे सम्मानित होते हुए उनकी मीठी-मीठी बातें सुनते हुए और यथायोग्य उनका भी सत्कार करते हुए धीरे-धीरे सबकी ओर देखते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ २७ ॥

ततः सभां समासाद्य केशवस्यानुयायिनः ।
शङ्खैर्वेणुनिनादैश्च दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ २८ ॥

श्रीकृष्णके सभाभवनमें पहुँचकर उनके साथ आये हुए लोगोंने शङ्ख और बाँसुरी आदि बाजोंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजा दिया ॥ २८ ॥

ततः सा समितिः सर्वा राज्ञाममिततेजसाम् ।
सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकाङ्क्षया ॥ २९ ॥

तदनन्तर अमिततेजस्वी राजाओंकी वह सारी सभा भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी आकाङ्क्षासे हर्षसे उल्लसित हो उठी ॥ २९ ॥

ततोऽभ्याशगते कृष्णे समहृष्यन् नराधिपाः ।
श्रुत्वा तं रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३० ॥
आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम् ।
अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात् ॥ ३१ ॥
नवमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णको निकट आया जान उनके रथकी मेघगर्जनाके समान गम्भीर घोष सुनकर सभी नरेश हर्षसे खिल उठे। समस्त सात्वतोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने सभाके द्वारपर पहुँचकर कैलासशिखरके समान ऊँचे रथसे नीचे उतरकर नूतन मेघके समान श्याम तथा तेजसे प्रकाशित होनेवाली इन्द्रभवनतुल्य उस कौरवसभाके भीतर प्रवेश किया ॥ ३० — ३२ ॥

पाणी गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः ।
ज्योतींष्यादित्यवद् राजन् कुरून् प्राच्छादयन्निव ॥ ३३ ॥

राजन्! जैसे सूर्य अपनी प्रभासे आकाशके तारोंको तिरोहित कर देते हैं, उसी प्रकार महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी दिव्य कान्तिसे कौरवोंको आच्छादित करते हुए विदुर और सात्यकिका हाथ पकड़े सभामें आये ॥ ३३ ॥

अग्रतो वासुदेवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ।
वृष्णयः कृतवर्मा चाप्यासन् कृष्णस्य पृष्ठतः ॥ ३४ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके आगे-आगे कर्ण और दुर्योधन थे और उनके पीछे कृतवर्मा तथा अन्य वृष्णिवंशी वीर थे ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः ।
आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ३५ ॥

उस समय भीष्म और द्रोणाचार्य आदि सब लोग श्रीकृष्णका सम्मान करनेके लिये राजा धृतराष्ट्रको आगे करके अपने आसनसे उठकर खड़े हो गये ॥ ३५ ॥



अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णके आगमनसे आते ही महायशस्वी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्यके साथ ही उठ गये ॥ ३६ ॥

उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥ ३७ ॥

महाराज धृतराष्ट्रके उठनेपर वहाँ चारों ओर बैठे हुए सहस्रों नरेश उठकर खड़े हो गये ॥ ३७ ॥

आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ३८ ॥

राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वहाँ भगवान् श्रीकृष्णके लिये

दुन्दुभि-नाद सब लोगोंका तुमुल घोष होने लगा था॥

स्तूयमानस्तु राजेन्द्र भीष्मद्रोणौ च माधव
धन्यमानस्तु धर्मात्मा राजमान्यान् यथावयः ॥ ४६ ॥

उस समय धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराते हुए राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य तथा सबका अवस्थाके अनुसार राजाओंसे भी वार्तालाप किया॥

तत्र केशवमायान्तं सम्यगभ्यागतं सभाम्
राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरुमध्ये जनार्दनम् ॥ ४७ ॥

वहाँ सभामें पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका कुरुवंशी राजाओं तथा अन्य सभी भूमिपालोंने सम्मानपूर्वक स्वागत किया॥

तत्र तिष्ठन् स दाशार्हो राजमध्ये परंतपः
व्योम्न्यपश्यदृषीनन्तरिक्षस्थान् परंतप
ततस्तानभिसम्प्रेक्ष्य नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ४८ ॥
अभ्यभाषत दाशार्हो भीष्मं शान्तनवं शनैः
पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता नृप ॥ ४९ ॥

राजसभामें खड़े हुए शत्रुसंतापी श्रीकृष्णने देखा कि आकाशमें कुछ ऋषि-मुनि खड़े हैं। उन नारद आदि महर्षियोंको देखकर श्रीकृष्णने धीरेसे शान्तनुनन्दन भीष्मसे कहा—'नरेश्वर! राजाओंकी सभा देखनेके लिये ऋषिगण पधारे हैं॥

निमन्त्र्यन्तामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा
नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केनचिदासितुम् ॥ ५० ॥

इन्हें अत्यन्त सत्कारपूर्वक आसन देकर निमन्त्रित किया जाय; क्योंकि इनके बैठे बिना कोई भी नहीं बैठ सकता॥

पूजा प्रयुज्यतामाशु मुनीनां भावितात्मनाम्
ऋषीनभ्यागतान् दृष्ट्वा सभाद्वारमुपस्थितान् ॥ ५१ ॥
त्वरमाणस्ततो भृत्यानासनानीत्यचोदयत्

'शुद्ध अन्तःकरणवाले इन मुनियोंका शीघ्र पूजन होना चाहिये।' शान्तनुनन्दन भीष्मने मुनियोंको सभाके द्वारपर उपस्थित देख उतावलीके साथ सेवकोंको आसन लानेकी आज्ञा दी॥

आसनान्यथ शुभ्राणि महान्ति विपुलानि च ॥ ५२ ॥
मणिकाञ्चनचित्राणि समाजह्रुस्ततस्ततः

तब सेवकोंने इधर-उधरसे मणि एवं सुवर्णसे जड़े हुए विशाल एवं विस्तृत आसन लाकर रख दिये॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घ्येषु भारत ॥ ५३ ॥
निषसादासने कृष्णो राजानश्च यथासनम्

भारत! उन आसनोंपर जब ऋषिलोग बैठ गये और उन्होंने अर्घ्य ग्रहण कर लिया, तब भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य राजाओंने भी अपना-अपना आसन ग्रहण किया॥

दुःशासनः सात्यकये ददावासनमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे

दुःशासनने सात्यकिको उत्तम आसन दिया और विविंशतिने कृतवर्माको सोनेका सिंहासन दिया॥

अविदूरेऽथ कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ॥ ५५ ॥
एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ

अमर्षमें भरे हुए महामना कर्ण और दुर्योधन दोनों एक आसनपर श्रीकृष्णके पास ही बैठे थे॥

गान्धारराजः शकुनिर्गान्धारैरभिरक्षितः ॥ ५६ ॥
निषसादासने राजा सहपुत्रो विशाम्पते

प्रजानाथ! गान्धारदेशीय सैनिकोंसे सुरक्षित गान्धारराज शकुनि भी एक आसनपर बैठा था॥

विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पर्ध्याजिनोत्तरे ॥ ५७ ॥
संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत्

परम बुद्धिमान् विदुर भगवान् श्रीकृष्णके आसनका स्पर्श करते हुए एक मणिमय चौकीपर, जिसके ऊपर श्वेत [illegible] बिछा हुआ था, बैठे थे॥

चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्वपार्थिवाः
अमृतस्येव नातृप्यन् प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ॥ ५८ ॥

सब राजा बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके उन्हें एकटक देखते हुए अमृत पीनेके समान तृप्त ही नहीं होते थे॥

अतसीपुष्पसंकाशः पीतवासा जनार्दनः
व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः ॥ ५९ ॥

अलसीके फूलके समान श्याम कान्तिवाले पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण उस सभाके मध्यभागमें सुवर्णमें जड़े हुए नीलमके समान शोभा पा रहे थे॥

ततस्तूष्णीं सर्वमासीद् गोविन्दगतमानसम्
न तत्र कश्चित् किंचिद्धि व्याजहार पुमान् क्वचित् ॥ ६० ॥

उस समय वहाँ सबका मन भगवान् गोविन्दमें ही लगा हुआ था। अतः सभी चुपचाप बैठे थे। कोई मनुष्य कहीं कुछ भी बोल नहीं रहा था॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णसभाप्रवेशे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णका सभामें प्रवेशविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १ श्लोक मिलाकर कुल ६० श्लोक हैं)

पञ्चनवतितमोऽध्याय

कौरवसभामें श्रीकृष्णका प्रभावशाली भाषण

वैशम्पायन उवाच

आसीनेषु च सर्वेषु तूष्णीम्भूतेषु राजसु।
वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः॥
जीमूत इव घर्मान्ते सर्वां संश्रावयन् सभाम्।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ... मौन होकर बैठ ... सुन्दर ... मुख ... दुन्दुभिके ... गम्भीर ... भगवान् श्रीकृष्ण ... सारी सभाको ... प्रेमपूर्वक ... बादल ... एक उच्च ... गर्जना ... सारी सभा ... सुनाते हुए धृतराष्ट्र ... प्रकार कहा।

श्रीभगवानुवाच

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद् याचितुमागतः॥

श्रीभगवान् बोले—भरतनन्दन! ... वीरोंका ... बिना ... कौरवों ... पाण्डवोंमें शान्ति ...



राजन् नान्यत् प्रवक्तव्यं तव निःश्रेयसं वचः।
विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिंदम॥

शत्रुदमन नरेश! मुझे इसके सिवा दूसरी कोई कल्याण ...

कारक ... ऐसी नहीं ... है ... जानने योग्य ... बातें ... आपको ...

इदमद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः॥

भूपाल! ... सभी ... कुरुवंश ... इसमें शास्त्र ... सदाचार ... आदर ... दुर्गोंसे ...

कृपानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं च भारत।
तथाऽऽर्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद् विशिष्यते॥

... दया ... अनुकम्पा ... नृशंसता ... क्षमा ... कौरवोंमें अन्य ... अधिक ... जाते ...

तस्मिन्नेवंविधे राजन् कुले महति तिष्ठति।
त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम्॥

... गुण ... प्रतिष्ठित ... यदि ... अनुचित काम ...

त्वं हि धारयिता श्रेष्ठ कुरूणां कुरुसत्तम।
मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च॥

कुरुश्रेष्ठ! ... प्रकट ... ... व्यवहार ... ... स्थापित ... रहे ...

ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत्॥

... पुत्र ... मर्यादा ... ... आचरण करते ...

अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद् वेत्थ पुरुषर्षभ॥

... अपने ... बन्धुओंके साथ ... ... करते ... पुरुषरत्न ...

दुर्योधन आदि आपके पुत्र ... ...
... ...
... ...
... ...

कर लिया कि इन्होंने धर्मकी मर्यादा तोड़ दी है। इस बातको आप अच्छी तरह जानते हैं।

तेषामारम्भमहतां कुरुभ्योऽथ समुत्थितम्
उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति

कुरुश्रेष्ठ! इस समय यह अत्यन्त भयंकर आपत्ति कौरवोंमें ही प्रकट हुई है। यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह समस्त भूमण्डलका विनाश कर डालेगी।

शक्यश्चायं शमयितुं त्वं चेदिच्छसि भारत
दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ

भारत! यदि आप चाहते हों तो इस महान् विनाशकारी संकटको अब भी शान्त किया जा सकता है। भरतश्रेष्ठ! मैं तो ऐसा मानता हूँ कि यहाँ शान्ति स्थापित होना कठिन कार्य नहीं है।

त्वय्यधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते
पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान्

प्रजानाथ कौरवनरेश! यहाँ शान्ति बनाये रखना आपके और मेरे अधीन है। आप अपने पुत्रोंको मर्यादामें रखिये और मैं पाण्डवोंको नियन्त्रणमें रखूँगा।

आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहान्वयैः
हितं बलवदप्येषां तिष्ठतां तव शासने

राजेन्द्र! आपके पुत्रोंको चाहिये कि अपने अनुयायियोंके साथ वे आपकी आज्ञाका पालन करें। यदि वे आपकी आज्ञामें रहेंगे तो इनका महान् हित हो सकता है।

तव चैव हितं राजन् पाण्डवानामथो हितम्
शमे प्रयतमानस्य मम शासनकाङ्क्षिणः

राजन्! यदि आप मेरे पूर्वोक्त उपदेशका पालन करना चाहें और शान्तिके लिये प्रयत्न करें तो इसमें आपका हित है और पाण्डवोंका भी भला होगा।

स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशाम्पते
सहायभूता भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर

प्रजानाथ! आप स्वयं युद्धको निष्फल समझकर और इसके बुरे परिणामपर दृष्टि रखकर शान्तिका प्रबन्ध कीजिये। जनेश्वर! ऐसा करनेसे भरतवंशी पाण्डव आपके ही सहायक होंगे।

धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन् पाण्डवैरभिरक्षितः
न हि शक्यास्तथाभूता यत्नादपि नराधिप

राजन्! आप पाण्डवोंसे सुरक्षित होकर धर्म और अर्थका अनुष्ठान कीजिये। नरेश्वर! आपको पाण्डवोंके समान सहायक प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिल सकते।

न हि त्वां पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः
इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः

महात्मा पाण्डवोंसे सुरक्षित होनेपर आपको देवताओंसहित इन्द्र भी नहीं जीत सकते, फिर दूसरे किसी राजाकी तो बात ही क्या है?

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः
सैन्धवश्च कलिङ्गश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः
युधिष्ठिरो भीमसेनः सव्यसाची यमौ तथा
सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः
को नु तान् विपरीतात्मा युध्येत भरतर्षभ

भरतश्रेष्ठ! जहाँ भीष्म, द्रोणाचार्य, कृप, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, सिन्धुराज जयद्रथ, कलिङ्गराज, काम्बोजनरेश सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल-सहदेव, महातेजस्वी सात्यकि तथा महारथी युयुत्सु-जैसे वीर हों, वहाँ कौन विपरीत बुद्धिवाला मनुष्य इन सबसे युद्ध करेगा?

लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम्
प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरुपाण्डवैः

शत्रुसूदन! कौरव और पाण्डवोंके साथ रहनेपर आप पुनः सम्पूर्ण जगत्के सम्राट् होंगे और शत्रुओंके लिये अजेय हो जायँगे।

तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते
श्रेयांसश्चैव राजानः संधास्यन्ते परंतप

पृथ्वीनाथ! परंतप! जो आपके समान अथवा आपसे बड़े राजा हैं, वे भी आपसे संधि कर लेंगे।

स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा
सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम्

इस प्रकार आप अपने पुत्र, पौत्र, पिता, भाई और सुहृदोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित होकर सुखपूर्वक जीवन बिता सकेंगे।

एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा
अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते

पृथ्वीपते! यदि आप पहलेकी ही भाँति इन पाण्डवोंको ही आगे रखकर इनका आदर-सत्कार करते रहेंगे तो सारी पृथ्वीका उपभोग कर सकेंगे।

एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत
अन्यान् विजेष्यसे शत्रूनेष स्वार्थस्तवाखिलः

भारत! इन समस्त पाण्डवों तथा अपने पुत्रोंके साथ रहकर

पक्ष आप दूसरे शत्रुओंपर भी विजय प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार आपके सम्पूर्ण स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥ २६ ॥

तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परंतप ।
यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहामात्यैर्नराधिप ॥ २७ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! यदि आप मन्त्रियोंसहित अपने समस्त पुत्रों (पाण्डवों और कौरवों) से मिलकर रहेंगे तो उन्हींके द्वारा जीती हुई इस भूमण्डलका राज्य भोगेंगे ॥ २७ ॥

संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान् क्षयः ।
क्षये चोभयतो राजन् कं धर्ममनुपश्यसि ॥ २८ ॥

महाराज! युद्ध छिड़नेपर तो महान् संहार ही दिखायी देता है। राजन्! इस प्रकार दोनों पक्षोंका विनाश करानेमें आप कौन-सा धर्म देखते हैं? ॥ २८ ॥

पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वापि महाबलैः ।
यद् विन्देथाः सुखं राजंस्तद् ब्रूहि भरतर्षभ ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ! यदि पाण्डव युद्धमें मारे गये अथवा आपके महाबली पुत्र ही नष्ट हो गये तो उस दशामें आपको कौन-सा सुख मिलेगा? यह बताइये ॥ २९ ॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः ।
पाण्डवास्तावकाश्चैव तान् रक्ष महतो भयात् ॥ ३० ॥

पाण्डव तथा आपके पुत्र सभी शूरवीर, अस्त्रविद्याके पारङ्गत तथा युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले हैं। आप इन सबकी महान् भयसे रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

न पश्येम कुरून् सर्वान् पाण्डवांश्चैव संयुगे ।
क्षीणानुभयतः शूरान् रथेभ्यो रथिभिर्हतान् ॥ ३१ ॥

कुरुवंशी तथा पाण्डव सब-के-सब युद्धमें मारे जायँ और दोनों पक्षोंके शूरवीर रथी रथियोंद्वारा रथोंसे गिराये जायँ, यह हम नहीं देखना चाहते ॥ ३१ ॥

समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम ।
अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥ ३२ ॥

राजसत्तम! भूमण्डलके समस्त राजा यहाँ एकत्र हो अमर्षके वशीभूत हो इन प्रजाओंका नाश करेंगे ॥ ३२ ॥

त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।
त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषं स्यात् कुरुनन्दन ॥ ३३ ॥

कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले नरेश! आप इस जगत्‌की रक्षा कीजिये, जिससे इन समस्त प्रजाओंका नाश न हो। आपके प्रकृतिस्थ होनेपर सब लोग बच जायँगे ॥ ३३ ॥

शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान् पाहि महतो भयात् ॥ ३४ ॥

राजन्! ये सब नरेश शुद्ध, उदार, लज्जाशील, श्रेष्ठ, पवित्र कुलोंमें उत्पन्न और एक दूसरेके सहायक हैं। आप इन सबकी महान् भयसे रक्षा कीजिये ॥ ३४ ॥

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥ ३५ ॥

आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे ये भूपाल परस्पर मिलकर तथा एक साथ खा-पीकर कुशलपूर्वक अपने-अपने घरको लौट जायँ ॥ ३५ ॥

सुवाससः स्रग्विणश्च सत्कृता भरतर्षभ ।
अमर्षं च निराकृत्य वैराणि च परंतप ॥ ३६ ॥

भरतश्रेष्ठ! परंतप! ये राजालोग उत्तम वस्त्र और सुन्दर हार धारण करके और अमर्ष तथा वैरको त्यागकर यहाँसे सत्कारपूर्वक विदा हों ॥ ३६ ॥

हार्दं यत् पाण्डवेष्वासीत् प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये ।
तदेव ते भवत्वद्य संधत्स्व भरतर्षभ ॥ ३७ ॥

भरतश्रेष्ठ! आपकी आयुका अन्तिम भाग आ पहुँचा है, इस अवस्थामें पाण्डवोंके प्रति आपका जो सौहार्द था, वही पुनः बना रहे; आप संधि कर लें ॥ ३७ ॥

बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।
तान् पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

भरतश्रेष्ठ! पाण्डव बाल्यावस्थामें ही पितासे बिछुड़ गये थे। उस समय आपने ही उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था। अतः अब उनकी और अपने पुत्रोंकी यथोचित रूपसे रक्षा कीजिये ॥ ३८ ॥

भवतैव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः ।
मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ॥ ३९ ॥

भरतश्रेष्ठ! आपको ही उनकी रक्षा करनी चाहिये, विशेषतः संकटमें तो आपको उनकी रक्षा करनी ही चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि पाण्डवोंसे वैर बढ़ जानेके कारण आपके धर्म और अर्थ दोनों नष्ट हो जायँ ॥ ३९ ॥

आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च ।
भवतः शासनाद् दुःखमनुभूतं सहानुगैः ॥ ४० ॥

राजन्! पाण्डवोंने आपको प्रणाम करके प्रसन्न करते हुए यह संदेश कहलाया है—'तात! आपकी आज्ञासे अनुयायियोंसहित हमने भारी दुःख सहन किया है ॥ ४० ॥

द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि नः ।
त्रयोदशं तथाज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥ ४१ ॥

बारह वर्षोंतक हमने निर्जन वनमें निवास किया है और तेरहवाँ वर्ष जनसमुदायसे भरे हुए स्थानमें अज्ञात रहकर बिताया है ॥ ४१ ॥

स्थाता न समये तस्मिन् पितेति कृतनिश्चयाः ।
नाहमस्य समय तात तथा नो प्रशमं विदुः ॥ ४

तात ! आप हमारे लोक पिता हैं, अतः हमारे विषयमें की हुई अपनी प्रतिज्ञाका [illegible] अर्थात् [illegible] [illegible] हमारा [illegible] प्रणय पूरा होता है।— ऐसा निश्चय [illegible] ही हम [illegible] की आज्ञाका [illegible] नहीं तोड़ते [illegible] आपके द्वारा [illegible] हुए आज्ञापालन [illegible] हैं।

तस्मिन् न समये तिष्ठ शिक्षिता भरतर्षभ ।
मिथ्याभिशप्ताः [illegible] राजन् [illegible] लभेमहि ॥ ४२ ॥

भरतवंशशिरोमणि ! हम उस प्रतिज्ञाका [illegible] पालन कर रहे हैं, अब आप [illegible] हम [illegible] अपनी प्रतिज्ञापर [illegible] हैं [illegible] हमारा [illegible] अब हमें हमारा [illegible] मिलना चाहिये।

[illegible] समर्थो [illegible] नाभ्यवपद्यतामुनर्हसि ।
गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षमहे ॥ ४४ ॥
स भवान् मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम् ।

आप धर्म और [illegible] जानते हैं [illegible] हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। आपमें गुरुत्व देखकर और गुरुजन हैं यह विचार करके आपकी आज्ञाका पालन [illegible] लिये हम बहुत से क्लेश चुपचाप सहते आ रहे हैं। [illegible] आप हमारे [illegible] माता पिताकी भाँति [illegible] कीजिये।

गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ ४
वर्तामहे त्वयि च ताम् [illegible] च समाचर ॥

भारत ! गुरुजनोंके प्रति शिष्य एवं पुत्रोंका [illegible] होना चाहिये, हम आपके प्रति उसीका पालन करते हैं। आप भी हमलोगोंके [illegible] पिता [illegible] गुरु [illegible] बर्ताव कीजिये।

पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ॥ ४७ ॥
संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ धर्मे सुवर्त्मनि ।

हम [illegible] यदि [illegible] पर जा रहे हों तो पिताके नाते आपका कर्तव्य है कि हमें सन्मार्गमें स्थापित करें। इसलिये आप स्वयं धर्मके सुन्दर मार्गपर [illegible] होइये और हमें भी धर्मके मार्गपर [illegible] लाइये।

आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ॥ ४७ ॥
धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् ।

भरतश्रेष्ठ ! आपके पुत्र [illegible] इस सभाके लिये भी यह सन्देश दिया है। [illegible] सभासद् [illegible] धर्मके ज्ञाता हैं। आपके रहते हुए यहाँ कोई अनुचित कार्य हो, यह उचित नहीं है ॥ ४८ ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥ ४८ ॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ।

जहाँ सभासदोंके देखते-देखते अधर्मके द्वारा धर्मका और मिथ्याके द्वारा सत्यका वध होता हो, वहाँ वे सभासद् नष्ट हुए माने जाते हैं।

विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते ॥ ४९ ॥
न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ।
धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान् ॥ ५० ॥

[illegible] धर्म अधर्मसे [illegible] होकर सभामें प्रवेश करता है और सभासद् [illegible] उसके काँटेको काटकर निकाल नहीं देते हैं, वहाँ [illegible] काँटेसे सभासद् ही विद्ध होते हैं अर्थात् उन्हें ही अधर्मसे लिप्त होना पड़ता है। जैसे [illegible] किनारे उगे हुए वृक्षोंको [illegible] देती है [illegible] समासदोंका नाश कर डालता है।

ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।
ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥ ५१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो पाण्डव सदा धर्मपर ही दृष्टि रखते [illegible] और चुपचाप [illegible] बैठे हैं, वे [illegible] न्याय [illegible] कहते हैं [illegible] धर्मसम्मत और न्याय [illegible]

शक्यं किमन्यद् वक्तुं ते दानात् [illegible] जनेश्वर ।
ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये समासते ॥
धर्मार्थौ सम्प्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
प्रमुञ्चेमान् मृत्युपाशात् क्षत्रियान् पुरुषर्षभ ॥ ५३ ॥

[illegible] इनके पाण्डवोंका [illegible] देनेके सिवा दूसरा कौन-सा [illegible] कहा जा सकता है? इस सभामें जो भूमिपाल [illegible] अर्थ और धर्मका विचार करके [illegible] बता दें कि [illegible] नहीं? पुरुषरत्न ! आप इन क्षत्रियोंको मौतके [illegible] से छुड़ाइये।

प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा मन्युवशमन्वगाः ।
पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम् ॥ ५४ ॥
ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुङ्क्ष्व भोगान् परंतप ।

भरतश्रेष्ठ ! शान्त हो जाइये, क्रोधके वशीभूत न होइये। पाण्डवोंको उनका पैतृक [illegible] देकर [illegible] पुत्रोंके साथ सफलमनोरथ हो मनोवाञ्छित भोग भोगिये।

अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ॥ ५५ ॥
सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते यां नराधिप ।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ॥ ५६ ॥

नरेश्वर! आप जानते हैं कि अजातशत्रु युधिष्ठिर सदा सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थित हैं। उनका पुत्रोंसहित आपके प्रति जो बर्ताव है, उससे भी आप अपरिचित नहीं हैं। आप लोगोंने उन्हें लाक्षागृहकी आगमें जलवाया तथा राज्य और देशसे निकाल दिया; तथापि वे पुनः आपकी ही शरणमें आये हैं॥ ५६॥

इन्द्रप्रस्थं त्वया पश्चात् स्वपुत्रैश्च विवासिताः।
स तत्र निवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान्॥ ५७॥
त्वन्मुखानकरोद् राजन् न च त्वामत्यवर्तत।

पुत्रोंसहित आपने ही युधिष्ठिरको पहले निकालकर इन्द्रप्रस्थमें भेज दिया था। वहाँ रहकर उन्होंने समस्त राजाओंको अपने वशमें किया और उन्हें आपका मुखापेक्षी बना दिया। राजन्! तो भी युधिष्ठिरने कभी आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया॥ ५७ ½॥

तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता॥ ५८॥
राष्ट्राणि धनधान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः।

ऐसे साधु बर्ताववाले युधिष्ठिरके राज्य तथा धन-धान्यका अपहरण करनेकी इच्छावाले सुबलपुत्र शकुनिने जूएके बहाने अपना महान् कपटजाल फैलाया॥ ५८ ½॥

स तामवस्थां सम्प्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभागताम्॥ ५९॥
क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिरः।

उस दयनीय अवस्थामें पड़कर अपनी महारानी कृष्णाको सभामें विवशतापूर्वक लायी गयी देखकर भी अमेयात्मा युधिष्ठिर क्षत्रियधर्मसे विचलित नहीं हुए॥ ५९ ½॥

अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत॥ ६०॥
धर्मादर्थात् सुखाच्चैव मा राजन् नीनशः प्रजाः।
अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थं चानर्थमात्मनः॥ ६१॥

भारत! मैं तो आपका और पाण्डवोंका भी कल्याण ही चाहता हूँ। राजन्! आप समस्त प्रजाको धर्म, अर्थ और सुखसे वञ्चित न कीजिये। आप अनर्थको ही अर्थ और अर्थको अनर्थ मान रहे हैं॥ ६०-६१॥

लोभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान् निगृह्णीष्व विशाम्पते।
स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः।
यत् ते पथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परंतप॥ ६२॥

प्रजानाथ! आपके पुत्र सब ओरसे लोभमें डूबे हुए हैं। उन्हें काबूमें कीजिये। शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीके पुत्र आपकी सेवाके लिये भी तैयार हैं और युद्धके लिये भी प्रस्तुत हैं। परंतप! आपके लिये जो हितकर जान पड़े, उसीका अवलम्बन कीजिये॥ ६२॥

वैशम्पायन उवाच

तद् वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन्।
न तत्र कश्चिद् वक्तुं हि वाचं प्राक्रामदग्रतः॥ ६३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णके उस कथनका समस्त राजाओंने हृदयसे आदर किया; परंतु वहाँ उनके उत्तरमें कोई भी कुछ कहनेके लिये अग्रसर न हो सका॥ ६३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक पञ्चानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९५॥

षण्णवतितमोऽध्याय

परशुरामजीका दम्भोद्भवकी कथाद्वारा नर-नारायणस्वरूप अर्जुन और श्रीकृष्णका महत्त्व वर्णन करना

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नभिहिते वाक्ये केशवेन महात्मना।
स्तिमिता हृष्टरोमाण आसन् सर्वे सभासदः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! महात्मा श्रीकृष्णके ऐसी बात कहनेपर सम्पूर्ण सभासद् चकित हो गये। उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया॥ १॥

कः स्विदुत्तरमेतेषां वक्तुं शक्नोति पूरुषः।
इति सर्वे मनोभिस्ते चिन्तयन्ति स्म पार्थिवाः॥ २॥

वे सब भूपाल मन-ही-मन यह सोचने लगे कि भगवान्के इन वचनोंका उत्तर कोई भी मनुष्य नहीं दे सकता॥ २॥

तथा तेषु च सर्वेषु तूष्णीम्भूतेषु राजसु।
जामदग्न्य इदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि॥ ३॥

इस प्रकार उन सब राजाओंके मौन हो जानेपर जमदग्निनन्दन परशुरामने कौरवसभामें इस प्रकार कहा॥ ३॥

इमां मे सोपमां वाचं शृणु सत्यामशङ्कितः।
तां श्रुत्वा श्रेय आदत्स्व यदि साध्विति मन्यसे॥ ४॥

'राजन्! तुम निःशङ्क होकर मेरी यह उदाहरणयुक्त बात सुनो। सुनकर यदि ठीक जान पड़े तो अपने कल्याणकारी और उत्तम वचनको स्वीकार करो॥ ४॥



राजा दम्भोद्भवो नाम सार्वभौमः पुराभवत्।
अखिलां बुभुजे सर्वां पृथिवीमिति नः श्रुतम्॥ ५ ॥

पूर्वकालमें दम्भोद्भव नामसे प्रसिद्ध एक सार्वभौम सम्राट् हो गये हैं। वे सम्पूर्ण भूमण्डलका राज्य भोगते थे, यह हमारे सुननेमें आया है ॥ ५ ॥

स तु नित्यं निशापाये प्रातरुत्थाय वीर्यवान्।
ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्चैव पृच्छन्नास्ते महारथः॥ ६ ॥

वे महारथी और पराक्रमी नरेश प्रतिदिन रात बीतनेपर प्रातःकाल उठकर ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे इस प्रकार पूछा करते थे ॥ ६ ॥

अस्ति कश्चिद् विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद् युधि।
शूद्रो वैश्यः क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वापि शस्त्रभृत्॥ ७ ॥

'क्या कहीं कोई ऐसा शस्त्रधारी शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण है, जो युद्धमें मुझसे बढ़कर अथवा मेरे समान हो?' ॥ ७ ॥

इति ब्रुवन्नन्वचरत् स राजा पृथिवीमिमाम्।
दर्पेण महता मत्तः कञ्चिदन्यमचिन्तयन्॥ ८ ॥

इसी प्रकार पूछते हुए वे राजा दम्भोद्भव महान् गर्वसे उन्मत्त हो दूसरे किसीको कुछ भी न समझते हुए इस पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ ८ ॥

तं च वैद्या अकृपणा ब्राह्मणाः सर्वतोऽभयाः।
प्रत्यषेधन्त राजानं श्लाघमानं पुनः पुनः॥ ९ ॥

उस समय सब ओरसे निर्भय, उदार एवं विद्वान् ब्राह्मणोंने बारंबार आत्मश्लाघा करनेवाले उन नरेशको मना किया ॥ ९ ॥

प्रतिषिद्धोऽप्यपृच्छत् स पुनः पुनरथ द्विजान्।
अतिमानं श्रिया मत्तं तमूचुर्ब्राह्मणास्तदा॥
तपस्विनो महात्मानो वेदप्रत्ययदर्शिनः।
उदीर्यमाणं राजानं क्रोधदीप्ता द्विजातयः॥ १० ॥

मना करनेपर भी वे राजा बारंबार ब्राह्मणोंसे वही प्रश्न करते ही रहे। उनका अहंकार बहुत बढ़ा हुआ था। वे धन-सम्पत्तिके मदसे उन्मत्त हो रहे थे। तब तपस्वी, महात्मा और वेदोक्त प्रमाणको ही सब कुछ माननेवाले उन ब्राह्मणोंने कुपित हो बढ़-बढ़कर बातें करनेवाले उन नरेशसे इस प्रकार कहा ॥ १०-११ ॥

अनेकजयिनौ संख्ये यौ वै पुरुषसत्तमौ।
तयोस्त्वं न समो राजन् भवितासि कदाचन॥ १२ ॥

'राजन्! दो ऐसे पुरुषरत्न हैं, जिन्होंने युद्धमें अनेक बार विजय पायी है। तुम कभी उनकी समानता नहीं कर सकोगे' ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स राजा तु पुनः पप्रच्छ तान् द्विजान्।
क्व तौ वीरौ क्वजन्मानौ किंकर्माणौ च कौ च तौ॥ १३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर राजाने उन ब्राह्मणोंसे पुनः पूछा—'वे दोनों वीर कहाँ रहते हैं? उनका जन्म किस कुलमें हुआ है? उनके कर्म कौन-से हैं और उनके नाम क्या हैं?' ॥ १३ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम्।
आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युध्यस्व पार्थिव॥ १४ ॥

ब्राह्मण बोले—भूपाल! हमने सुना है कि वे नर और नारायण नामसे प्रसिद्ध तपस्वी हैं और इस समय मनुष्यलोकमें आये हैं। तुम उन्हीं दोनोंके साथ युद्ध करो ॥ १४ ॥

श्रूयेते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ।
तपो घोरमनिर्देश्यं तप्येते गन्धमादने॥ १५ ॥

सुना है, वे दोनों महात्मा नर और नारायण गन्धमादन पर्वतपर ऐसी घोर तपस्या कर रहे हैं, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

स राजा महतीं सेनां योजयित्वा षडङ्गिनीम्।
अमृष्यमाणः सम्प्रायाद् यत्र तावपराजितौ॥ १६ ॥

राजाको यह बात सहन नहीं हुई। उन्होंने रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, खच्चर और ऊँट इन छः अंगोंसे युक्त विशाल सेनाको सुसज्जित करके उस स्थानकी यात्रा की, जहाँ कभी पराजित न होनेवाले वे दोनों महात्मा विराजमान थे ॥ १६ ॥

स गत्वा विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम्।
मार्गमाणोऽन्वगच्छत् तौ तापसौ वनमाश्रितौ॥ १७ ॥

राजा उनकी खोज करते हुए दुर्गम एवं भयंकर मार्ग आदि पर्वतपर गये और वहाँसे स्थित उन तपस्वी महात्माओंके पास जा पहुँचे ॥ १७ ॥

तौ दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाभ्यां कृशौ धमनिसंततौ ।
शीतवातातपैश्चैव कर्शितौ पुरुषोत्तमौ ॥ १८ ॥

वे दोनों पुरुषरत्न भूख प्यासके दुर्बल हो गये थे। उनके सारे अङ्गमें फैली हुई नस-नाड़ियाँ स्पष्ट दिखायी देती थीं। वे सर्दी-गरमी और हवाका कष्ट सहते सहते अत्यन्त कृशकाय हो रहे थे ॥ १८ ॥

अभिगम्योपसंगृह्य पर्यपृच्छदनामयम् ।
तमर्चित्वा मूलफलैरासनेनोदकेन च ॥ १९ ॥
न्यमन्त्रयेतां राजानं किं कार्यं क्रियतामिति ।
ततस्तामानुपूर्वीं स पुनरेवान्वकीर्तयत् ॥ २० ॥

निकट जाकर उनके चरणोंमें नमस्कार करके दम्भोद्भवने उन दोनोंका कुशल समाचार पूछा। तब नर और नारायणने राजाका आसन-सत्कार करके आसन, जल और फल-मूल देकर उसे भोजनके लिये निमन्त्रित किया। तदनन्तर पूछा कि हम आपका क्या कार्य करें ? यह सुनकर राजाने अपना सारा वृत्तान्त पुनः आरम्भसे कह सुनाया ॥ १९-२० ॥



बाहुभ्यां मे जिता भूमिर्निहताः सर्वशत्रवः ।
भवद्भ्यां युद्धमाकाङ्क्षन्नुपयातोऽस्मि पर्वतम् ॥ २१ ॥
आतिथ्यं दीयतामेतत् काङ्क्षितं मे चिरं प्रति ।

और कहा—मैंने अपने बाहुबलसे सारी पृथ्वीको जीत लिया है तथा समस्त शत्रुओंका संहार कर डाला है। अब आप दोनोंसे युद्ध करनेकी इच्छा लेकर इस पर्वतपर आया हूँ। यही मेरा चिरकालसे अभिलषित मनोरथ है। आप अतिथि-सत्कारके रूपमें इसे ही पूर्ण कर दीजिये ॥ २१½ ॥

नरनारायणावूचतुः

अपेतक्रोधलोभोऽयमाश्रमो राजसत्तम ॥ २२ ॥
न ह्यस्मिन्नाश्रमे युद्धं कुतः शस्त्रं कुतोऽनृजुः ।
अन्यत्र युद्धमाकाङ्क्ष बहवः क्षत्रियाः क्षितौ ॥ २३ ॥

नर-नारायण बोले—नृपश्रेष्ठ! हमारा यह आश्रम क्रोध और लोभसे रहित है। इस आश्रममें कभी युद्ध नहीं होता। फिर यहाँ अस्त्र-शस्त्र और कुटिल मनोवृत्तिवाला मनुष्य कहाँसे आ सकता है? इस पृथ्वीपर बहुत-से क्षत्रिय हैं। आप कहीं और जाकर युद्धकी अभिलाषा पूर्ण कीजिये ॥ २२-२३ ॥

राम उवाच

उच्यमानस्तथापि स्म भूय एवाभ्यभाषत ।
पुनः पुनः क्षम्यमाणः सान्त्व्यमानश्च भारत ॥ २४ ॥
दम्भोद्भवो युद्धमिच्छन्नाह्वयत्येव तापसौ ।

परशुरामजी कहते हैं—भारत! उन दोनों महात्माओंने बारंबार ऐसा कहकर राजाको क्षमा मांगी और उन्हें विविध प्रकारसे सान्त्वना दी। तथापि दम्भोद्भव युद्धकी इच्छासे उन दोनों तापसोंको युद्धके लिये ललकारता ही रहा ॥ २४½ ॥

ततो नरस्त्वषीकाणां मुष्टिमादाय भारत ॥ २५ ॥
अब्रवीदेहि युद्धार्थिन् युध्यस्व क्षत्रिय ।
सर्वशस्त्राणि चादत्स्व योजयस्व च वाहिनीम् ॥ २६ ॥
(संनह्यस्व च वर्माणि यानि चान्यानि सन्ति ते ।)
अहं हि ते विनेष्यामि युद्धश्रद्धामितः परम् ।
(यस्माद्वदसि दर्पेण ब्रह्मणानभिवादयन् ॥)

भरतनन्दन! तब महात्मा नरने हाथमें एक मुट्ठी सींक लेकर कहा—युद्धकी इच्छावाले क्षत्रिय! आ, युद्ध कर। अपने सारे अस्त्र-शस्त्र ले ले। सारी सेनाको तैयार कर ले। कवच बाँध ले तथा और भी जितने साधन हों, उन सबको साथ ले आ। तू बड़े घमंडमें आकर ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंका तिरस्कार करता फिरता है; इसलिये मैं आजसे तेरा युद्धविषयक विश्वास दूर किये देता हूँ ॥

दम्भोद्भव उवाच

यद्येतदस्त्रमस्मासु युक्तं तापस मन्यसे ॥ २७ ॥
एतेनापि त्वया योत्स्ये युद्धार्थी ह्यहमागतः ।

दम्भोद्भवने कहा—तापस! यदि आप यही अस्त्र हमारे लिये उपयुक्त मानते हैं तो मैं इसको लेकर भी आपके साथ युद्ध अवश्य करूँगा; क्योंकि मैं युद्धके लिये ही यहाँ आया हूँ ॥ २७½ ॥

राम उवाच

इत्युक्त्वा शरजालेन स समन्तादवाकिरत्।
दम्भोद्भवस्तापसं तं जिघांसुः सहसैनिकः॥

परशुरामजी कहते हैं—ऐसा कहकर सैनिकोंसहित दम्भोद्भव तपस्वी नरको मार डालनेकी इच्छासे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥

तस्य तानस्यतो घोरानिषून् परतनुच्छिदः।
कदर्थीकृत्य स मुनिरिषीकाभिः समापयत्॥

उस राजाके छोड़े हुए बाण शत्रुके शरीरको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले थे; उन बाणोंको मुनिने तुच्छ करके सींकोंसे ही नष्ट कर डाला॥

ततोऽस्य प्रासृजद् घोरमैषीकमपराजितम्।
अस्त्रमप्रतिसंधेयं तदद्भुतमिवाभवत्॥

तब किरीटी नरने उसके ऊपर भयंकर ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया, जिसका निवारण करना असम्भव था; वह अद्भुत अस्त्र सफल हुआ॥

तेषामक्षीणि कर्णांश्च नासिकाश्चैव मायया।
निमित्तवेधी स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत्॥

इस प्रकार लक्ष्यवेध करनेवाले मुनिने मायासे सैनिकोंकी आँखों, कानों और नासिकाओंको सींकोंसे भर दिया॥

स दृष्ट्वा श्वेतमाकाशमिषीकाभिः समाचितम्।
पादयोर्न्यपतद् राजा स्वस्ति मेऽस्त्विति चाब्रवीत्॥

दम्भोद्भव सींकोंसे भरे हुए समूचे आकाशको श्वेत हुआ देखकर मुनिके चरणोंमें गिर पड़ा और बोला—'भगवन्! मेरा कल्याण हो'॥

तमब्रवीन्नरो राजञ्छरण्यः शरणैषिणाम्।
ब्रह्मण्यो भव धर्मात्मा मा स्म चैवं पुनः कृथाः॥

राजन्! शरण चाहनेवालोंको शरण देनेवाले भगवान् नरने कहा—'राजन्! तुम ब्राह्मणहितैषी और धर्मात्मा बनो; फिर कभी ऐसा न करना॥

नैतादृक् पुरुषो राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन्।
मनसा नृपशार्दूल भवेत् परपुरंजय॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले नृपश्रेष्ठ! क्षत्रियधर्मका स्मरण रखते हुए कभी मनसे भी ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता, जैसा कि तुमने किया है॥

मा च दर्पसमाविष्टः क्षेप्सीः कांश्चित् कदाचन।
अल्पीयांसं विशिष्टं वा तत् ते राजन् समाहितम्॥

राजन्! आजसे फिर कभी घमंडमें आकर आप छोटे या बड़े किन्हीं राजाओंपर किसी प्रकार भी आक्षेप न करना। इस बातके लिये मैं तुम्हें सावधान कर रहा हूँ॥

कृतप्रज्ञो वीतलोभो निरहंकार आत्मवान्।
दान्तः क्षान्तो मृदुः सौम्यः प्रजाः पालय पार्थिव।
मा स्म भूयः क्षिपेः कंचिदविदित्वा बलाबलम्॥

भूपाल! तुम कृतप्रज्ञ, लोभरहित, अहंकारशून्य, मनको वशमें रखनेवाले, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, कोमलस्वभाव और सौम्य बनकर प्रजाका पालन करो। फिर कभी दूसरोंके बलाबलको जाने बिना किसीपर आक्षेप न करना॥

अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः।
कुशलं ब्राह्मणान् पृच्छेरावयोर्वचनाद् भृशम्॥

तुम्हारा कल्याण हो; हम आज्ञा देते हैं, जाओ। फिर कभी ऐसा बर्ताव न करना। हमलोगोंके कहनेसे तुम ब्राह्मणोंसे उनका कुशल-समाचार पूछते रहना॥

ततो राजा तयोः पादावभिवाद्य महात्मनोः।
प्रत्याजगाम स्वपुरं धर्मं चैवाचरद् भृशम्॥

तदनन्तर राजा दम्भोद्भव उन दोनों महात्माओंके चरणोंमें प्रणाम करके अपने नगरको लौट आया और विशेषरूपसे धर्मका आचरण करने लगा॥

सुमहच्चापि तत् कर्म यन्नरेण कृतं पुरा।
ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत्॥

इस प्रकार पूर्वकालमें नरने यह महान् कर्म किया था। इनसे बढ़कर गुणोंमें भगवान् नारायण श्रेष्ठ हैं॥

तस्माद् यावद् धनुःश्रेष्ठे गाण्डीवेऽस्त्रं न युज्यते।
तावत् त्वं मानमुत्सृज्य गच्छ राजन् धनंजयम्॥

अतः राजन्! जबतक श्रेष्ठ धनुष गाण्डीवपर दिव्य अस्त्रका संधान नहीं किया जाता, तबतक ही तुम अभिमान छोड़कर अर्जुनसे मिल जाओ॥

काकुदीकं शुकं नाकमक्षिसंतर्जनं तथा।
संतानं नर्तनं घोरमास्यमोदकमष्टमम्॥

काकुदीक, शुक, नाक, अक्षिसंतर्जन, संतान, नर्तन, घोर और आस्यमोदक—ये आठ अस्त्र हैं॥

---

१. जिस अस्त्रसे घायल होकर रथी रथके ककुद (कूबर) पर गिर पड़ता है, उसे काकुदीक कहते हैं; जिससे हृदयमें [illegible] पुरुष [illegible] रखकर शुक [illegible] नहीं [illegible] जिससे मोहित हुआ योद्धा [illegible] देखकर भागे और [illegible] जाते [illegible]

एतैर्विद्धाः सर्व एव मरणं यान्ति मानवाः ।
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ तथैव च ॥ ५३ ॥
मात्सर्याहंकृती चैव क्रमादेव यथाक्रमम् ।

इन अस्त्रोंसे विद्ध होकर सभी मनुष्य मृत्युको प्राप्त होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, मात्सर्य और अहंकार—ये क्रमशः आठ दोष बताये गये हैं जिनके प्रतीक स्वरूप उपर्युक्त आठ अस्त्र हैं ॥ ५२-५३ ॥

उन्मत्ताश्च विचेष्टन्ते नरप्रमत्ता विचेतसः ॥ ५४ ॥
स्वपन्ति च प्लवन्ते च छर्दयन्ति च मानवाः ।
मूत्रयन्ते च सततं रुदन्ति च हसन्ति च ॥ ५५ ॥

इन अस्त्रोंके प्रयोगसे कुछ लोग उन्मत्त हो जाते हैं और वैसी ही चेष्टा करने लगते हैं। कितनोंको सुध-बुध नहीं रह जाती, वे अचेत हो जाते हैं। कुछ मनुष्य सोने लगते हैं। कुछ उछलने-कूदने और कै करने लगते हैं। कितने ही मल-मूत्र करने लग जाते हैं और कुछ लोग निरन्तर रोते एवं हँसते रहते हैं ॥ ५४-५५ ॥

निर्माता सर्वलोकानामीश्वरः सर्वकर्मवित् ।
यस्य नारायणो बन्धुरर्जुनो दुःसहो युधि ॥ ५६ ॥

राजन्! सम्पूर्ण लोकोंके निर्माता [illegible] सबके ईश्वर तथा [illegible] नारायण जिनके बन्धु (सहायक) हैं, वे अर्जुन युद्धमें दुःसह हैं (उनका वेग सहन करना असम्भव है) ॥ ५६ ॥

कस्तमुत्सहते जेतुं त्रिषु लोकेषु भारत ।
वीरं कपिध्वजं जिष्णुं यस्य नास्ति समो युधि ॥ ५७ ॥

भारत! युद्धभूमिमें जिनकी समानता कोई भी नहीं कर सकता, उन विजयशील वीर कपिध्वज अर्जुनको जीतनेका साहस तीनों लोकोंमें कौन कर सकता है? ॥ ५७ ॥

असंख्येया गुणाः पार्थे तद्विशिष्टो जनार्दनः ।
त्वमेव भूयो जानासि कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ ५८ ॥
नरनारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥ ५९ ॥

महाराज! अर्जुनमें असंख्य गुण हैं, भगवान् जनार्दन तो उनसे भी बढ़कर हैं। तुम भी कुन्तीपुत्र अर्जुनको अच्छी तरह जानते हो। जो दोनों महात्मा नर और नारायण [illegible] हैं, वे ही अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं। तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि वे दोनों पुरुषरत्न सर्वश्रेष्ठ वीर हैं ॥ ५८-५९ ॥

यद्येतदेवं जानासि न च मामभिशङ्कसे ।
आर्यां मतिं समास्थाय शाम्य भारत पाण्डवैः ॥ ६० ॥

भारत! यदि तुम मेरी बातको इस प्रकार जानते हो और मुझपर तुम्हें तनिक भी संदेह नहीं है तो श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर पाण्डवोंसे संधि कर लो ॥ ६० ॥

अथ चेन्मन्यसे श्रेयो न मे भेदो भवेदिति ।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा च युद्धे मनः कृथाः ॥ ६१ ॥

भरतश्रेष्ठ! यदि तुम्हारी यह इच्छा हो कि हमलोगोंमें फूट न हो और इसीमें तुम अपना कल्याण समझो, तब तो संधि करके शान्त हो जाओ और युद्धमें मन न लगाओ ॥ ६१ ॥

भवतां च कुरुश्रेष्ठ कुलं बहुमतं भुवि ।
तत् तथैवास्तु भद्रं ते स्वार्थमेवानुचिन्तय ॥ ६२ ॥

कुरुश्रेष्ठ! तुम्हारा कुल इस भूतलपर बहुत प्रतिष्ठित है। वह उसी प्रकार सम्मानित बना रहे और तुम्हारा कल्याण हो। इसके लिये अपने वास्तविक स्वार्थका ही चिन्तन करो ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दम्भोद्भवोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें दम्भोद्भवोपाख्यानविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६२ श्लोक हैं)

सप्तनवतितमोऽध्याय

कण्व मुनिका दुर्योधनको संधिके लिये समझाते हुए मातलिका उपाख्यान आरम्भ करना

वैशम्पायन उवाच

जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जमदग्निनन्दन परशुरामका यह वचन सुनकर भगवान् कण्व मुनिने भी कौरवसभामें दुर्योधनसे यह बात कही ॥ १ ॥

[illegible] है, जिस अस्त्रसे आक्रान्त होकर मनुष्य [illegible] देने लगे, वह [illegible] कहलाता है। जिसके आघातसे विद्ध होकर लोग [illegible] करने लगें, वह [illegible] नामक अस्त्र है। [illegible] जिसके प्रयोगसे [illegible] जाने लगती है, [illegible] ऐसे [illegible] करने [illegible] है, वह [illegible] कहा गया है। जिससे आहत होकर लोग [illegible] [illegible] करते हैं, वह [illegible] नामक अस्त्र है। (भारतभावदीपिका)

कण्व उवाच

अक्षयश्चाव्ययश्चैव ब्रह्मा लोकपितामहः।
तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी॥ २॥

कण्व बोले—राजन्! जैसे लोकपितामह ब्रह्मा अक्षय और अविनाशी हैं, उसी प्रकार ये दोनों भगवान् नर-नारायण ऋषि भी हैं॥ २॥

आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः।
अजय्यश्चाव्ययश्चैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः॥ ३॥

अदितिके सभी पुत्रोंमें अथवा सम्पूर्ण आदित्योंमें एक मात्र भगवान् विष्णु ही अजेय, अविनाशी, नित्य विद्यमान एवं सर्वसमर्थ सनातन परमेश्वर हैं॥ ३॥

निमित्तमरणास्त्वन्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम्।
वायुरग्निस्तथाऽऽकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा॥ ४॥

अन्य सब लोग तो किसी निमित्तसे मृत्युको प्राप्त होते ही हैं। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह तथा नक्षत्र—ये सभी नाशवान् हैं॥ ४॥

ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा।
क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः॥ ५॥

जगत्का विनाश होनेके पश्चात् ये चन्द्रमा, सूर्य आदि तीनों लोकोंका सदाके लिये परित्याग करके नष्ट हो जाते हैं। फिर सृष्टिकालमें इन सबकी बारंबार सृष्टि होती है॥ ५॥

मुहूर्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः।
तिर्यग्योन्याश्च ये चान्ये जीवलोकचराश्च ये॥ ६॥

इनके सिवा दूसरे जो मनुष्य, पशु, पक्षी तथा जीवलोकमें विचरनेवाले अन्यान्य तिर्यग्योनिके प्राणी हैं, वे अल्पकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं॥ ६॥

भूयिष्ठेन तु राजानः श्रियं भुक्त्वाऽऽयुषः क्षये।
तरुणाः प्रतिपद्यन्ते भोक्तुं सुकृतदुष्कृते॥ ७॥

राजालोग भी प्रायः राज्यलक्ष्मीका उपभोग करके आयुका समाप्ति होनेपर मृत्युको प्राप्त होकर अपने-अपने पाप-पुण्यका फल भोगनेके लिये पुनः नूतन जन्म ग्रहण करते हैं॥ ७॥

स भवान् धर्मपुत्रेण शमं कर्तुमिहार्हति।
पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुन्धराम्॥ ८॥

राजन्! आपको धर्मपुत्र युधिष्ठिरके साथ संधि कर लेनी चाहिये। मैं चाहता हूँ कि पाण्डव तथा कौरव दोनों मिलकर इस पृथ्वीका पालन करें॥ ८॥

बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन।
बलवन्तो बलिभ्यो हि दृश्यन्ते पुरुषर्षभ॥ ९॥

पुरुषरत्न दुर्योधन! तुम्हें यह नहीं मानना चाहिये कि मैं ही सबसे अधिक बलवान् हूँ, क्योंकि बलवानोंसे बलवानोंकी भी बलवान् पुरुष देखे जाते हैं॥ ९॥

न बलं बलिनां मध्ये बलं भवति कौरव।
बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमाः॥ १०॥

कुरुनन्दन! बलवानोंके बीचमें सैनिक शक्ति बल नहीं समझा जाता है। समस्त पाण्डव देवताओंके समान पराक्रमी हैं, अतः वे ही सबसे बलवान् हैं॥ १०॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
मातलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम्॥ ११॥

इस प्रसंगमें कन्यादानके लिये वर ढूँढ़नेवाले मातलिके इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं॥ ११॥

मतस्त्रैलोक्यराजस्य मातलिर्नाम सारथिः।
तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता॥ १२॥

त्रिलोकीनाथ इन्द्रके प्रिय सारथिका नाम मातलि है। उनके कुलमें एक ही कन्या थी, जो अपने रूपके कारण सम्पूर्ण लोकमें विख्यात थी॥ १२॥

गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सा देवरूपिणी।
श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्याः सातिरिच्यते॥ १३॥

वह देवरूपिणी कन्या गुणकेशी नामसे प्रसिद्ध थी। गुणकेशी अपनी शोभा तथा सुन्दर शरीरके द्वारा अन्य सब नारियोंसे बढ़कर थी॥ १३॥

तस्याः प्रदानसमयं मातलिः सह भार्यया।
ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्परः परिचिन्तयन्॥ १४॥

राजन्! उसके विवाहका समय आया जान मातलि अपनी पत्नीके साथ उसी चिन्तामें पड़कर इस प्रकार विचार करने लगे॥ १४॥

धिक् खल्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम्।
नराणां मृदुसत्त्वानां कुले कन्याप्ररोहणम्॥ १५॥

अहो! जो उत्तम शीलवाले, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए, यशस्वी तथा कोमल स्वभाववाले हैं, ऐसे लोगोंके कुलमें कन्याका उत्पन्न होना बुरा ही माना गया है॥ १५॥

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते।
कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम्॥ १६॥

कन्या माताके कुलको, पिताके कुलको तथा जहाँ वह ब्याही जाती है, उस कुलको—सत्पुरुषोंके इन तीनों कुलोंको संशयमें डाल देती है॥ १६॥

देवमानुषलोकौ द्वौ मानसेनैव चक्षुषा।
अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः॥ १७॥

मैंने मानसिक दृष्टिके द्वारा देवलोक तथा मनुष्यलोक

दोनोंमें अच्छी फिर कन्याके लिये रूप सम्पन्न ... आने विचार किया

किया वहाँ कोई मुझे नहीं ... देवमनुष्येषु गुणकेशा समो वर

... रूपता ह्यत्र ... भविता मम

देवान् नच दितिजान् गन्धर्वान् मानुषान् ... इति ...

अनेकविध नरकरान तथव बहुलाशुभान् ... सौम्य ... रूपा

कण्व मुनि कहते ... पिता ... और

देवता ... और ... नहीं आया

... सुधर्मा कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्

भोगवान् ... कन्या शिरसा ... प्रविवेश महीतलम्

मातलिर्नागलोकाय ... शिवम्

... इति श्रीम ... महाभारते उद्योगपर्वणि ... मातलिवर ... सप्तनवतितम ... अध्याय

श्लोक ... दिव

अष्टनवतितमोऽध्याय

मातलिका अपनी पुत्रीके लिये वर खोजनेके निमित्त नारदजीके साथ वरुणलोकमें भ्रमण करना और वहाँ अनेक दर्शनीय वस्तुएँ देखना

कण्व उवाच

मातलिस्तु व्रजन् मार्गे नारदेन महर्षिणा ... अह ... स्थाप्य ... पर्यन्तानम्

वरुणं गच्छता दृष्टो यदृच्छया ... ततो ... कश्चिद् ... तदा

कण्व मुनि कहते ... मातले वहाँ

नारद देवताके ... लिये ... भ्रमणशीला भूमिगुप्ती मातलिसारथी

... माता ... ब्रह्माणं महामानी ... स्वाम

... नाम

नारदस्तमथोवाच ... भगवान् ... सुरसूत ... तत्र देवादिवर्द्धनी ... प्राय सद्

स्वर्गं ... सद्मसमहर्षयो ... प्रव्यपद्यत

नारद उनसे पूछा — ... उदानी ... और ...

जानेका उद्यत हुए ... देख ... भलाई ... रूप

यात्रि ... उनके आगे ... तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवन्तौ विचारतः

मातलिर्नारदेन सङ्गम्य पथि गच्छता ... नागलोक ... विचरतु

... यथावत् गच्छमानाय ... नार ... प्रति ... होकर ... साथ

मार्गमें ... दूर नारदजीसे ... सभी प्रश्न भवन काय निवेदन किया और उनकी आज्ञा लेकर

... आगे ... कार्य ... कहीं विचरने

तमुवाचाथ मुनिर्नारदः ... लक्षिताधिपति ... नारद सर्वभूताधारा ... सिन्धुमार्गम्

... दिदृक्षार्थं ... प्रभुता ... विभ ... आसन ... व्याख्याव ... वस्तु ... समुपागत

तब मुनिने मातलिसे कहा ... दोनों

वहाँ ... स्वामी ... दर्शनार्थी ... इच्छा

देवताओंके

नाग हैं जो नागलोकमें निवास करनेवाले सभी प्राणियोंको जानते थे। तब उन्होंने इन्द्रसारथि मातलिको वहाँका सब वस्तुओंका विषयमें विस्तारपूर्वक बताना आरम्भ किया॥

नारद उवाच

पश्यन्तं वरुणस्य सुतं पुत्रपौत्रसमाकुलम्।
पद्मदामकृतच्छत्रं स्थानं सर्वतोभद्रमुद्रितम्॥ १०॥

मातलि! यह वरुण तथा उनका पुत्रों और पौत्रोंसे घिरे हुए, जलराजका दर्शन किया है। देखो, वह उनका सबका मुद्रित स्थान है। इसका नाम है सर्वतोभद्र।

एष पुत्रो महाप्राज्ञ वरुणस्येह गोपतेः।
एष वै शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते॥ ११॥

ये विशिष्ट वरुणके परम बुद्धिमान् पुत्र हैं, जो अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार और पवित्रताके कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं।

पुष्करोऽप्यस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः।
रूपवान् दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः॥ १२॥

वरुणदेवका इस प्रिय पुत्रका नाम पुष्कर है। इनके नेत्र विकसित कमलके समान सुशोभित हैं। ये रूपवान् तथा दर्शनीय हैं। इन्हें चन्द्रमाकी पुत्रीने पतिरूपसे वरण किया है।

ज्योत्स्नाकालीति यामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम्।
आदित्यस्यैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः॥ १३॥

मातलि! जो साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूपवती है, वह ज्योत्स्नाकालीके नामसे प्रसिद्ध है। ... सूर्यदेवकी पुत्रीने इन पुष्करको अपना पति बनाया है।

भवनं पश्य वारुण्यं यदेतत् सर्वकाञ्चनम्।
यत् प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखा॥ १४॥

सखे! इन्द्रमित्र! देखो, यह वरुणदेवका भवन है, जो सब ओरसे सुवर्णका बना हुआ है। यहाँ पहुँचकर ही देवगण वास्तवमें देवत्वको प्राप्त करते हैं।

एतानि हृतराज्यानां दैतेयानां स्म मातले।
दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत॥ १५॥

मातले! जिनसे राज्य छीन लिये गये हैं, उन दैत्योंके ये देदीप्यमान सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र दिखायी देते हैं।

अक्षयाणि किलैतानि विवर्तन्ते स्म मातले।
अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह॥ १६॥

देवतालोग इन्हें जीतकर लाये हैं। ये अक्षय अस्त्र हैं और अपने प्रभावसे चलनेवाले हैं। देवताओंने असुरोंको पराजित करके इन्हें अपने हाथमें कर लिया है।

अत्र राक्षसजात्यश्च भूतजात्यश्च मातले।
दिव्यप्रहरणाश्चासन् पूर्वदैवतनिर्मिताः॥ १७॥

मातले! इन स्थानोंमें राक्षस और भूतजातिके लोग रहते थे, जिनके पास पूर्वकालमें देवताओंके बनाये हुए बहुत-से दिव्य अस्त्र थे।

अग्निरेष महार्चिष्मान् जागर्ति वारुणे ह्रदे।
वैष्णवं चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता॥ १८॥

यह वरुणके कुण्डमें बड़ी-बड़ी लपटोंवाला अग्नि प्रज्वलित हो रहा है। इसने धूमरहित अग्निसे प्रकाशित भगवान् विष्णुके चक्रको भी आवद्ध कर लिया है।

एष गाण्डीमयश्चापो लोकसंहारसम्भृतः।
रक्ष्यते दैवतैर्नित्यं यतस्तद् गाण्डिवं धनुः॥ १९॥

यह गाँठदार लकड़ीका बना हुआ धनुष है, जो जगत्‌का संहार करनेके लिये बनाया गया है। देवतालोग सदा इसकी रक्षा करते हैं।

एष कार्ये समुत्पन्ने तत् तद् धारयते बलम्।
सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवम्॥ २०॥

इसका धनुष आवश्यकता पड़नेपर लाखों धनुषोंके बराबर शक्ति धारण करता है और सदा अविचल रहता है।

अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु।
सृष्टः प्रथमजो दण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना॥ २१॥

ब्रह्मवादी ब्रह्माजीने पहले इस प्रचण्ड दण्डका निर्माण किया है। ... राक्षसोंके समान राजाओंमें अदम्य लोगोंको भी यह शासन करता है।

एतच्छत्रं नरेन्द्रस्य महच्छत्रेण भाषितम्।
पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम्॥ २२॥

यह अनुपम जलाधीश वरुणका एक महान् छत्र है, जो छत्रके समान शोभित होता है। इस महान् अभ्युदयशाली छत्रको वरुणके पुत्र धारण करते हैं।

एतत् सलिलराजस्य छत्रं छत्रगृहे स्थितम्।
सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति॥ २३॥

और यह सलिलराज वरुणका छत्र है, जो छत्रगृहमें रखा हुआ है। यह छत्र बादलकी भाँति सब ओरसे शीतल जल बरसाता रहता है।

एतच्छत्रात् परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम्।

तमसा मूर्छितं भाति येन नाभ्युच्छ्रितं दर्शनम् ॥ २४ ॥

इस उत्तम दिशा हुआ जलके समान निर्मल जल [illegible] अन्धकारसे आच्छन्न रहता है [illegible] दृष्टिपथमें नहीं आता है [illegible] ॥ २४ ॥

न च कार्यापरोधस्ते तस्माद् गच्छाव मा चिरम् ॥ २५ ॥

मातले! इस पातालमें [illegible] वर [illegible] नहीं मिलता [illegible] तुम्हारे कार्यमें [illegible] इसलिये हमलोग शीघ्र ही यहाँसे न लौटनेमें [illegible] ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें मातलिके वरका अनुसन्धानविषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

नारदजीके द्वारा पाताललोकका प्रदर्शन

नारद उवाच

एतत् तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम् ।
पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥ १ ॥

नारदजी बोले—मातले! यह जो नागलोकके नाभि-स्थानमें स्थित नगर दिखायी देता है [illegible] और दानव निवास करते हैं [illegible] ॥ १ ॥

इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद् भुवि जङ्गमाः ।
प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ॥ २ ॥

[illegible] जलके साथ बहकर आ जाते हैं, वे इस पातालमें प्रवेश करते समय भयसे पीड़ित हो बड़े जोर-जोरसे चीत्कार करने लगते हैं ॥ २ ॥

अत्रासुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः ।
व्यापारेण धृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ॥ ३ ॥

यहाँ जलका आहार करनेवाला आसुर अग्नि सदा प्रज्वलित रहता है [illegible] मर्यादामें स्थित किया गया है [illegible] इसलिये वह आगे नहीं जाता ॥ ३ ॥

अत्रामृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः ।
अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रदृश्यते ॥ ४ ॥

देवताओंने अपने शत्रुओंका संहार करके अमृत पीकर उसका अवशिष्ट भाग यहीं रख दिया था। इसीलिये अमृत [illegible] हानि और वृद्धि देखी जाती है ॥ ४ ॥

अत्र दिव्यं हयशिरः काले पर्वणि पर्वणि ।
उत्तिष्ठति सुवर्णाभं वार्भिरापूरयञ्जगत् ॥ ५ ॥

यहाँ अदितिनन्दन हयग्रीव विष्णु सुवर्णमय कान्ति धारण करके प्रत्येक पर्वपर वेदध्वनिके द्वारा जगत्को परिपूर्ण करते हुए प्रकट होते हैं ॥ ५ ॥

यस्मादत्र समग्रास्ताः पतन्ति जलमूर्तयः ।
तस्मात् पातालमित्येतत् ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥ ६ ॥

चन्द्रमा आदि जितनी भी जलमूर्तियाँ हैं, वे सब यहाँ गिरती [illegible] इसलिये इस उत्तम नगरका नाम पाताल है ([illegible] पतन्ति [illegible] पातालशब्दसे [illegible]) यह उत्तम नगर [illegible] है ॥ ६ ॥

ऐरावणोऽस्मात् सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः ।
मेघेष्वामुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ॥ ७ ॥

जगत्‌का हित करनेवाला ऐरावत यहींसे जल लेकर मेघोंमें स्थापित करता है, जिसे देवराज इन्द्र वर्षाके रूपमें बरसाते हैं ॥ ७ ॥

अत्र नानाविधाकारास्तिमयो नैकरूपिणः ।
अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसन्ति जलचारिणः ॥ ८ ॥

नाना प्रकारकी आकृति तथा अनेक भाँतिके रूपवाले जलचारी तिमि आदि मत्स्य चन्द्रमाकी किरणोंका पान करके यहाँ जलमें निवास करते हैं ॥ ८ ॥

अत्र सूर्यांशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः ।
मृता दिवसतः सूत पुनर्जीवन्ति ते निशि ॥ ९ ॥

सारथे! यहाँ पातालनिवासी बहुत-से जन्तु ऐसे हैं, जिनमें सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होते ही दिनमें मृत्यु हो जाती है [illegible] रात होनेपर चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे वे फिर जी उठते हैं ॥ ९ ॥

उदये नित्यशश्चात्र चन्द्रमा रश्मिभिर्वृतः ।
अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात् संजीवयति देहिनः ॥ १० ॥

यहाँ प्रतिदिन उदय होकर चन्द्रमा अपनी किरणमयी भुजाओंसे अमृतका स्पर्श करके उनके द्वारा इन प्राणियोंको जीवन प्रदान करते हैं ॥ १० ॥

अत्र तेऽधर्मनिरता बद्धाः कालेन पीडिताः ।
दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हृतश्रियः ॥ ११ ॥

इन्द्रने जिनकी सम्पत्ति हर ली है, वे अधर्मपरायण दैत्य कालसे पीड़ित एवं बँधे हुए होकर इसी स्थानमें निवास करते हैं ॥ ११ ॥

अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः ।
भूतये सर्वभूतानामचरत् तप उत्तमम् ॥ १२ ॥

[illegible] भगवान् भूतनाथने [illegible] प्राणियोंके कल्याणके लिये यहाँ उत्तम तपस्या की थी ।

अत्र गोवतिनो विप्राः स्वाध्यायाम्नायकर्शिताः ।
त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥ १३ ॥

[illegible] दुर्बल हुए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्वाध्याय [illegible] विजय [illegible] [illegible] [illegible] ब्राह्मण महर्षि [illegible] यहाँ [illegible] करते हैं ।

यत्रकामशयो विप्र येन केनचिदाशितः ।
येन केनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते ॥ १४ ॥

[illegible] जहाँ कहीं भी [illegible] [illegible] किसी [illegible] आदिसे [illegible] जाता है तथा [illegible] आदि [illegible] [illegible] पशुओंके [illegible] शरीर [illegible] [illegible] है वह यहाँ आचार्य कहलाता है ।

ऐरावतो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
प्रसूता सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥ १५ ॥

यहाँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वंशमें उत्पन्न हुए हैं ।

पश्य यदत्र ते कश्चिद् [illegible] गुणतो वर
वरयिष्यामि तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥ १६ ॥

मातले [illegible] [illegible] [illegible] कोई गुणवान वर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें [illegible] [illegible] श्रीमहाभारत [illegible] [illegible]

हरण करना ॥ ६ ॥

अप्सु [illegible] स्थितं [illegible] वियद्गतम् [illegible] [illegible]
[illegible] प्रजाना [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १७ ॥

[illegible] भीतर [illegible] [illegible] रक्खा हुआ है [illegible] यह अपनी [illegible] [illegible] रहा है उससे प्रजाओंकी सृष्टि आरम्भ होती है उसमें [illegible] अबतक [illegible] [illegible] [illegible] छूटता है और न अपने स्थानसे इधर-उधर जाता ही है ।

नास्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि च ।
पितरं मातरं चापि नास्य जानाति कश्चन ॥ १८ ॥

इसके [illegible] अथवा स्वभावके विषयमें कभी किसीको कुछ कहते नहीं सुना है । इसके पिता और माताको भी कोई नहीं जानता है ।

यतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः ।
धक्ष्यति मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १९ ॥

मातले [illegible] [illegible] प्रलयकालमें इस [illegible] भीतरसे [illegible] भारी आग प्रकट होगी जो चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीको [illegible] [illegible] [illegible]

मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याथ भाषितम् ।
न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो व्रज माचिरम् ॥ २० ॥

नारदजीका यह भाषण सुनकर मातलिने कहा, 'यहाँ मुझे कोई भी वर [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहीं चलिये ।'

शततमोऽध्याय

हिरण्यपुरका दिग्दर्शन और वर्णन

नारद उवाच

हिरण्यपुरमित्येतत् ख्यातं पुरवरं महत् ।
दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—मातले ! यह हिरण्यपुर नामक [illegible] एवं विशाल नगर है । यहाँ सैकड़ों मायाओंके साथ विचरनेवाले दैत्य और दानवोंका निवासस्थान है ।

अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥ २ ॥

[illegible] विश्वकर्मा [illegible] अपने [illegible] [illegible] अनुसार महान् प्रयत्न करके पाताललोकके भीतर इस नगरका निर्माण किया है ।

अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः ।
दानवा निवसन्ति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ॥ ३ ॥

[illegible] सहस्रों मायाओंका [illegible] महान् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहते हैं [illegible] पूर्वकालमें [illegible] [illegible] वरदान प्राप्त हो चुका है ।

नैते शक्रेण नान्येन यमेन वरुणेन वा ।
शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ॥ ४ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] कुबेर तथा और कोई देवता भी इन्हें वशमें नहीं कर सकता ।

असुराः कालखञ्जास्तथा विष्णुपदोद्भवाः

वैडूर्य्यपात्रैश्चान्यैश्च ब्रह्मपात्रोद्भवानि ये
हृष्टिको भोगिनश्चान्य वासवापनयानि च
नानाविधोपस्करण्या निबद्धन्याश्च मानवे

गाहले [illegible] किम्पुरे वरणीवे उत्स पुर
वातलक नाम [illegible] वा के [illegible] प्रकार कुर
वह हो [illegible] वर गावुन्न विलयी बने
[illegible]
[illegible] हैं

निवातकवचा नाम [illegible] युवाद्धमन्य
आन [illegible] शाखा नना शाकानि वाचितुम्

[illegible] है
वा गुदमें [illegible] कुप ना बनले ही
[illegible] गहीं
[illegible] है

वद्युगो मानले [illegible] पुत्रश्च मानुष
निभृया [illegible] सन्मानि

[illegible] पुनर्गाद
[illegible]
[illegible] है

पक्व नाडसालि दीपमालि मानल राजमणि च
कमोना विभिपुकेश्च युक्ताम्पुत्रतानि च

[illegible] किना
[illegible] निवाग [illegible] वेशा के
[illegible] हुआ है तथा [illegible] दूसरे
[illegible]

वद्यपाभिविचालि प्रभासयर्पिकालि च
मर्दस्पर्शलियुम्भाणि चक्रसारान्वितानि च

[illegible]
विविध [illegible] तीसी [illegible]
[illegible] आपके
[illegible] देत
है [illegible]
अधिक [illegible] है

पार्थिवान्यैव चाभान्ति पद्मरागमयानि च
रौशानि च दष्टवन्त सारपात्रीव चान्युत ॥

इसमें कुछ तो [illegible] दुष्ट जान पड़ते हैं कुछ
[illegible] हैं कुछ [illegible]
के और कुछ [illegible] दिखायी देते हैं

स्वर्णकरालि चाभान्ति दीसविशेषमाणि च
[illegible] विविधानि च ॥

वह तथा प्रवधिता अचिरे [illegible]
है [illegible] दृष्टि
[illegible] और
[illegible] है

नतानि शाखिन निकृष्य रूपनो वृक्षमलतथा
गुणलक्ष्य सदानि प्रभावपुष्पनन्ति च

[illegible] और [illegible]
[illegible]
[illegible] प्रसिद्ध है
[illegible]
है

भास्कोवान् पद्म कृष्णाना तथैव शायनमानुत
रक्तवर्णिन महाप्राण भाजनान्यासनानि च ॥

[illegible] सुन्दर
[illegible] है इनके
[illegible]
है

जलशाभालाया [illegible] च
कामपुष्पफलाश्रीपि पादपान् [illegible]

[illegible] है
[illegible]
[illegible] तथा
[illegible] है

मातले [illegible] भवत्
अथवान्या [illegible] मन्यसे ६ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]

मातलिस्त्वब्रवीदेन [illegible] तथाविधम्
[illegible] विविधोकसाम् ७

[illegible]
[illegible]
[illegible]

नित्यानुपश्यतः हि [illegible]
[illegible] कथम् ॥

[illegible] तथापि
[illegible] है [illegible] प्रमुख
के [illegible]

अन्यत्र साधु [illegible] गच्छामि वानामन्
[illegible] तथा ॥

धर्मात्मिने अच्छा नहीं होगा कि उसकोम किसी दूसरी ... यह भी जानता हूँ कि आपके मनमें हिंसात्मक कार्य ... जगह चलें । मैं गुणकेश साक्षात्कार भी नहीं कर सकता ... अब ... उत्कण्ठित कर ... इच्छा रहती है ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे शततमोऽध्याय ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें मातलिके द्वारा ... श्रीमहाभारत सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

एकाधिकशततमोऽध्याय

गरुडलोक तथा गरुडकी संतानोंका वर्णन

नारद उवाच

अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम्।
विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—मातले ! यह सर्पभोजी गरुड़ पक्षियोंका लोक है । किंतु पराक्रम प्रकट करने ... और महान् भार ढोनेमें इन्हें भी परिश्रम नहीं होता ।

वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम्।
सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥ २ ॥
सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले।
वर्धितानि प्रसूत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ॥ ३ ॥
पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च।
कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्धनैः ॥ ४ ॥

... गरुड़के छः पुत्रोंने इस कुलका विस्तार किया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सुमुख, सुनामा, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुच और पक्षिराज सुबल । विनताके वंशकी वृद्धि करनेवाले कश्यप कुलमें उत्पन्न हुए तथा ऐश्वर्यका विस्तार करनेवाले इन छः ... ने ... पक्षियोंकी सैकड़ों और सहस्रों शाखाओंका विस्तार किया है ॥ २—४ ॥

सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः।
सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ॥ ५ ॥

ये सभी ... श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित हैं । सभी धन-सम्पत्तिकी कामना करते हुए अपने भीतर अनन्त बल धारण करते हैं ॥ ५ ॥

कर्मणा क्षत्रियाश्चैते निर्घृणा भोगिभोजिनः।
ज्ञातिसंक्षयकर्तृत्वाद् ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ॥ ६ ॥

ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर भी ये कर्मसे क्षत्रिय हैं । इनमें दया नहीं होती है । ये सर्पोंको ही अपना आहार बनाते हैं । इस प्रकार अपने भाई-बन्धुओं—नागोंका संहार करनेके कारण इन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं है ॥ ६ ॥

नामानि चैषां वक्ष्यामि यथा प्राधान्यतः शृणु।
मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥ ७ ॥

मातले ! अब मैं इनमें कुछ प्रधान व्यक्तियोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो । यह गरुड़कुल भगवान् विष्णुका कृपापात्र होनेके कारण प्रशंसनीय है ॥ ७ ॥

दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम्।
हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव सदा गतिः ॥ ८ ॥

भगवान् विष्णु ही इनके देवता हैं, वे ही इनके परम आश्रय हैं । गरुड़ विष्णुको अपने हृदयमें सदा धारण करते हैं और वे विष्णु ही सदा इनकी गति हैं ॥ ८ ॥

सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः।
अनिलश्चानलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥ ९ ॥
पङ्कजिद् वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः।
वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषोऽनिमिषस्तथा ॥ १० ॥
त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकिर्द्वीपकस्तथा।
दैत्यद्वीपः सरिद्द्वीपः सारसः पद्मकेसरः ॥ ११ ॥
सुमुखः सुखकेतुश्च चित्रबर्हस्तथानघ।
मेघकृत् कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सोमभोजनः ॥ १२ ॥
गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः।
विष्णुधन्वा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ॥ १३ ॥
सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च।
मालयो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥ १४ ॥
एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः।
प्राधान्यतस्ते यशसा कीर्तिताः प्राणिनश्च ये ॥ १५ ॥

सुवर्णचूड, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्ड, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डली, पंकजित्, वज्रविष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग, दिशाचक्षु, निमेष, अनिमिष, त्रिराव, सप्तराव, वाल्मीकि, द्वीपक, दैत्यद्वीप, सरिद्द्वीप, सारस, पद्मकेसर, सुमुख, सुखकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेघकृत्, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सोमभोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधन्वा, कुमार, परिबर्ह, हरि, सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मालय, मातरिश्वा, निशाकर तथा दिवाकर—इस प्रकार संक्षेपसे मैंने इन गरुड़-पुत्रोंका वर्णन किया है । ये सभी यशस्वी तथा महाबली बताये गये हैं ॥ ९—१५ ॥

यद्यत्र न रुचिः काचिदेहि गच्छाव मातले ।

गमिष्यामि दैत्य त्वां वर यद्योपलप्स्यसे
मातले यदि इनमें तुम्हारी कोई रुचि हो ... तुम्हें कोई ... अवश्य मिल जायगा

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे एकाधिकशततमोऽध्याय

द्व्यधिकशततमोऽध्याय

सुरभि और उसकी सन्तानोंके साथ मातलिके सुमुखका वर्णन

उवाच

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम्
यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसम्भवा

... माता सुरभि ...

क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसम्भवम्
षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम्

अमृतेनाभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा
पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता

...

यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले
ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुत्तमम्

...

पुष्पितस्येव फेनेन पर्यन्तमनुवेष्टितम्
पिबन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः

...

फेनपा नाम ख्याता फेनाहाराश्च मातले
उग्रे तपसि वर्तन्ते यासां बिभ्यति देवताः

... रहते हैं। उनसे देवता भी डरते ...

अस्याश्चतस्रो धेन्वा ह्यन्या दिक्षु वसन्ति मातले
निवसन्ति दिशां पाल्या धारयन्त्यो दिशः स्मृताः

...

पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी
दक्षिणां धारयत्यन्या हंसिका नाम वै दिशम्

...

पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्यते सुभद्रया
महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया

...

सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम्
उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम्

...

आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे
मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः

उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले
उच्चैःश्रवाश्चाश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम्

...

सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम्
अमृतं चामृताशेषु सुरभिः क्षरते पयः

...

लोगोंके लिये सुधा, स्वधाभोजी पितरोंके लिये स्वधा तथा अमृतभोजी देवताओंके लिये अमृतरूप है ॥

अत्र नागपुरं गीतं .... ।
पीयते अमृतमेतेषां .... ॥ ५ ॥

यहाँ रसातलनिवासियोंके पूर्वकालमें जो पुरातन गाथा गायी गयी है, उसे ज्ञानी पुरुष स्मरण करते हैं ॥

न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।
परिवासः सुखस्तादृग् रसातलतले यथा ॥ ६ ॥

यहाँ जैसा सुख है, वैसा नागलोक, स्वर्गलोक तथा स्वर्गलोकके विमानोंमें निवास करनेपर भी सुखदायक नहीं होता ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें मातलिके द्वारा वरका अन्वेषणविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

नागलोकके नागोंका वर्णन और मातलिका नागकुमार सुमुखके साथ अपनी कन्याका ब्याह करनेका निश्चय

नारद उवाच

इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ।
यादृशी देवराजस्य पुरीवर्यामरावती ॥ १ ॥

नारदजी बोले—मातले! यह नागराज वासुकिद्वारा पालित भोगवती नामक पुरी है। देवराज इन्द्रकी श्रेष्ठ नगरी अमरावतीके ही समान यह पुरी सब प्रकारकी समृद्धिसे सम्पन्न है ॥ १ ॥

एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा ।
तपसा लोकमुख्येन प्रभावमहिता मही ॥ २ ॥

ये शेषनाग स्थित हैं, जो अपनी लोकश्रेष्ठ तपस्याके प्रभावसे महिमाशालिनी इस पृथ्वीको सदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं ॥ २ ॥

श्वेताचलनिभाकारो दिव्याभरणभूषितः ।
सहस्रं धारयन् मूर्ध्नां ज्वालाजिह्वो महाबलः ॥ ३ ॥

भगवान् शेषका शरीर श्वेत पर्वतके समान प्रतीत होता है। ये सहस्र मस्तक धारण करते हैं। इनकी जिह्वा अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशमान है। ये महाबली अनन्त दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होते हैं ॥ ३ ॥

इह नानाविधाकारा नानाविधविभूषणाः ।
सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४ ॥

यहाँ सुरसाके पुत्र नागगण शोक-संताप रहित होकर निवास करते हैं। वे रूप-रंगमें अनेक प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

मणिस्वस्तिकचक्राङ्काः कमण्डलुकलक्षणाः ।
सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥ ५ ॥

वे सभी नाग सहस्रोंकी संख्यामें यहाँ रहते हैं। सब-के-सब बलवान्, तथा स्वभावसे ही भयंकर हैं। इनमेंसे किन्हींके शरीरोंमें मणिका, किन्हींके स्वस्तिकका, किन्हींके चक्रका और किन्हींके शरीरमें कमण्डलुका चिह्न है ॥ ५ ॥

सहस्रशिरसः केचित् केचित् पञ्चशतानना ।
शतशीर्षास्तथा केचित् केचित् त्रिशिरसोऽपि च ॥ ६ ॥

कुछ नाग एक हजार मस्तकवाले हैं, किन्हींके पाँच सौ मस्तक हैं, कोई सौ सिरवाले और कोई तीन सिरवाले होते हैं ॥ ६ ॥

द्विपञ्चशिरसः केचित् केचित् सप्तमुखास्तथा ।
महाभोगा महाकायाः पर्वताभोगभोगिनः ॥ ७ ॥

कोई दस सिरवाले और कोई सात सिरवाले हैं। किन्हींके शरीर बड़े-बड़े फन हैं, किन्हींकी काया पर्वतोंके समान बड़ी है ॥ ७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
नागानामेकवंशानां यथाश्रेष्ठांस्तु मे शृणु ॥ ८ ॥

यहाँ एक-एक वंशके नागोंकी हजार, लाख और अरबोंकी संख्या है। मैं उनमेंसे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ नागोंका परिचय देता हूँ, सुनो ॥ ८ ॥

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
कालियो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ ९ ॥
बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः ।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥ १० ॥
आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ ।
कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥ ११ ॥
सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ ।
आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्ठूरिकस्तथा ॥ १२ ॥
तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः ।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥ १३ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
द्वितीय [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] कुकुर [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] रोनते [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] कुकुर कुकुर [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] कुकुर [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] कुकुर [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] और दूसरे [illegible]
[illegible] [illegible] वहि यह। [illegible]
देखो

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] मुनि कहते हैं [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
और उन्होंने नारदजीसे पूछा

[illegible]

[illegible] एक पुत्र [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] देखो [illegible] और [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] पिता [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इनके पिता [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] होने [illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

मुनि कहते [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] नाम [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
और [illegible]

[illegible] पिता [illegible] नाम [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] होकर नारदजीसे कहा
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

इति [illegible] [illegible]

इस प्रकार [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

नारदजीका नागराज आर्यकके सम्मुख सुमुखके साथ मातलिकी कन्याके विवाहका प्रस्ताव एवं मातलिका नारदजी, सुमुख एवं आर्यकके साथ इन्द्रके पास आकर उनके द्वारा सुमुखको दीर्घायु प्रदान कराना तथा सुमुख-गुणकेशी-विवाह

(कण्व उवाच

मातलेर्वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः ।
अब्रवीन्नागराजानमार्यकं कुरुनन्दन ॥)

कण्व मुनि कहते हैं—कुरुनन्दन ! मातलिकी बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदने नागराज आर्यकसे कहा ॥

नारद उवाच

सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत् ।
शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान् बली ॥ १ ॥

नारदजी बोले—नागराज ! ये इन्द्रके प्रिय सखा और सारथि मातलि हैं । इनमें पवित्रता, सुशीलता और उत्तम सद्गुण भरे हुए हैं । ये तेजस्वी होनेके साथ ही बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ १ ॥

शक्रस्यायं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च ।
अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे ॥ २ ॥

इन्द्रके मित्र, मन्त्री और सारथि सब कुछ यही हैं । प्रत्येक युद्धमें ये इन्द्रके साथ रहते हैं । इनका प्रभाव इन्द्रसे कुछ ही कम है ॥ २ ॥

अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम् ।
देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव नियच्छति ॥ ३ ॥

ये देवासुर-संग्राममें सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए देवराजके विजयशील श्रेष्ठ रथका अपने मानसिक सङ्कल्पसे ही (सञ्चालन और) नियन्त्रण करते हैं ॥ ३ ॥

अनेन विजितानश्वैर्दोर्भ्यां जयति वासवः ।
अनेन प्रहृते पूर्वं बलभित् प्रहरत्युत ॥ ४ ॥

ये अपने अश्वोंद्वारा जिन शत्रुओंको जीत लेते हैं उन्हींको देवराज इन्द्र अपने बाहुबलसे पराजित करते हैं । पहले इनके द्वारा प्रहार हो जानेपर ही बलनाशक इन्द्र शत्रुओंपर प्रहार करते हैं ॥ ४ ॥

अस्य कन्या वरारोहा रूपेणासदृशी भुवि ।
सत्यशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ॥ ५ ॥

इनके एक सुन्दरी कन्या है, जिसके समान सुन्दरी भूमण्डलमें कहीं नहीं है । उसका नाम है गुणकेशी । वह सत्य, शील और सद्गुणोंसे सम्पन्न है ॥ ५ ॥

तस्यार्थम् यत्नाच्चरतस्त्रैलोक्यममरद्युते ।
सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ॥ ६ ॥

देवोपम कान्तिवाले नागराज ! ये मातलि बड़े प्रयत्नसे कन्याके लिये वर ढूँढ़नेके निमित्त तीनों लोकोंमें विचरते हुए यहाँ आये हैं । आपका पौत्र सुमुख इन्हें अपनी कन्याका पति होने योग्य प्रतीत हुआ है उसीको इन्होंने पसंद किया है ॥ ६ ॥

यदि ते रोचते सम्यग् भुजगोत्तम मा चिरम् ।
क्रियतामार्यक क्षिप्रं बुद्धिः कन्यापरिग्रहे ॥ ७ ॥

नागप्रवर आर्यक ! यदि आपको भी यह सम्बन्ध भली भाँति रुचिकर जान पड़े तो शीघ्र ही इनकी पुत्रीके ब्याह लानेका निश्चय कीजिये ॥ ७ ॥

यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः ।
कुले तव तथैवास्तु गुणकेशी सुमध्यमा ॥ ८ ॥

जैसे भगवान् विष्णुके घरमें लक्ष्मी और अग्निके घरमें स्वाहा शोभा पाती है उसी प्रकार सुन्दरी गुणकेशी तुम्हारे कुलमें प्रतिष्ठित हो ॥ ८ ॥

पौत्रस्यार्थे भवांस्तस्माद् गुणकेशीं प्रतीच्छतु ।
सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ॥ ९ ॥

अतः आप अपने पौत्रके लिये गुणकेशीको स्वीकार करें । जैसे इन्द्रके अनुरूप शची है उसी प्रकार आपके सुमुख पौत्रके योग्य गुणकेशी है ॥ ९ ॥

पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे ।
बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च ॥ १० ॥
सुमुखस्य गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः ।

आपके और ऐरावतके प्रति हमारे हृदयमें विशेष सम्मान है और यह सुमुख भी शील, शौच और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंसे सम्पन्न है, इसलिये इसके पितृहीन होनेपर भी हम गुणोंके कारण इसका वरण करते हैं ॥ १०½ ॥

अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः ॥ ११ ॥
मातलेस्तस्य सम्मानं कर्तुमर्हो भवानपि ।

ये मातलि स्वयं चलकर कन्यादान करनेको उद्यत हैं । आपको भी इनका सम्मान करना चाहिये ॥ ११½ ॥

कण्व उवाच

स तु दीनः समाहृत्य भार्यां मातलमार्यकः ॥ १२ ॥

कण्व मुनि कहते हैं—कुरुनन्दन! तब नागराज आर्यक अत्यन्त दीन होकर दीनभावसे बोले— ॥ १२ ॥

आर्यक उवाच

म्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते।
कथमिच्छामि देवर्षे गुणकेशीं स्नुषां प्रति ॥ १३ ॥

आर्यक पुनः बोले—देवर्षे! मेरा पुत्र मारा गया और पौत्रका भी अभी प्रकार मृत्युने वरण किया है अतः मैं गुणकेशीको बहू बनानेकी इच्छा कैसे करूँ? ॥ १३ ॥

न मे नैतद् बहुमतं महर्षे वचनं तव।
सखा शक्रस्य संयुक्तः कस्यायं नेप्सितो भवेत् ॥ १४ ॥

महर्षे! मेरी दृष्टिमें आपके इस वचनका कम आदर नहीं है और ये मातलि तो इन्द्रके साथ रहनेवाले उनके सखा हैं अतः ये किसीको प्रिय नहीं लगते? ॥ १४ ॥

कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने।
अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महाद्युते ॥ १५ ॥
भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्तास्तेन वै वयम्।
पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता ॥ १६ ॥
मासेनान्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो।
ध्रुवं तथा तद् भविता जानीमस्तस्य निश्चयम्।
तेन हर्षः प्रणष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ॥ १७ ॥

परंतु महर्षे! महामुने! कारणकी दुर्बलतासे मैं चिन्तामें पड़ा रहता हूँ। महाद्युते! इस बालकका पिता जो मेरा पुत्र था गरुड़का भोजन बन गया। इस दुःखसे हमलोग पीड़ित हैं। प्रभो! जब गरुड़ यहाँसे जाने लगे तब पुनः यह कहते गये कि दूसरे महीनेमें मैं सुमुखको भी खा जाऊँगा। अवश्य ही ऐसा ही होगा क्योंकि हम गरुड़के निश्चयको जानते हैं। गरुड़के उस कथनसे मेरी हँसी-खुशी नष्ट हो गयी है ॥ १५—१७ ॥

कण्व उवाच

मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया।
जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ॥ १८ ॥

कण्व मुनि कहते हैं—राजन्! तब मातलिने आर्यकसे कहा—मैंने इस विषयमें एक विचार किया है। यह तो निश्चय ही है कि मैंने आपके पौत्रको जामाताके पदपर वरण कर लिया ॥ १८ ॥

सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः।
त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥ १९ ॥

अतः यह नागकुमार मेरे और नारदजीके साथ त्रिलोकीनाथ देवराज इन्द्रके पास चलकर उनका दर्शन करे ॥ १९ ॥

शेषेणैवास्य कार्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः।
सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ॥ २० ॥

साधुशिरोमणे! तदनन्तर मैं भगवान् इन्द्रके कार्यद्वारा इसकी आयुके विषयमें जानकारी प्राप्त करूँगा और इस बालकको भी ऐसा करूँगा कि गरुड़ इसे न मार सकें ॥ २० ॥

सुमुखश्च मया सार्धं देवेशमभिगच्छतु।
कार्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजंगम ॥ २१ ॥

नागराज! आपका कल्याण हो। सुमुख अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये मेरे साथ देवराज इन्द्रके पास चले ॥ २१ ॥

ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः।
ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर उन सभी महातेजस्वी सज्जनोंने सुमुखको साथ लेकर परम कान्तिमान् देवराज इन्द्रका दर्शन किया, जो स्वर्गके सिंहासनपर विराजमान थे ॥ २२ ॥

संगत्या तत्र भगवान् विष्णुरासीच्चतुर्भुजः।
ततस्तत् सर्वमाचख्यौ नारदो मातलिं प्रति ॥ २३ ॥

दैवसंयोगसे वहाँ चतुर्भुज भगवान् विष्णु भी उपस्थित थे। तदनन्तर देवर्षि नारदने मातलिसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः पुरंदरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम्।
अमृतं दीयतामस्मै क्रियताममरैः समः ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भगवान् विष्णुने लोकेश्वर इन्द्रसे कहा—देवराज! तुम सुमुखको अमृत दे दो और इसे देवताओंके समान बना दो ॥ २४ ॥

मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव।
लभन्तां भवतः कामात् काममेतं यथेप्सितम् ॥ २५ ॥

वासव! इस प्रकार मातलि, नारद और सुमुख—ये सभी तुमसे इच्छानुसार अमृतका दान पाकर अपना यह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कर लें ॥ २५ ॥

पुरंदरोऽथ संचिन्त्य वैनतेयपराक्रमम्।
विष्णुमेवाब्रवीदेनं भवानेव ददात्विति ॥ २६ ॥

तब देवराज इन्द्रने गरुड़के पराक्रमका विचार करके भगवान् विष्णुसे कहा—आप ही इसे उत्तम आयु प्रदान कीजिये ॥ २६ ॥

विष्णुरुवाच

ईशस्त्वं सर्वलोकानां चराणामचराश्च ये।
त्वया दत्तमदत्तं कः कर्तुमुत्सहते विभो ॥ २७ ॥

भगवान् विष्णु बोले प्रभो! तुम सम्पूर्ण जगत्में जितने भी चराचर प्राणी हैं उन सबके ईश्वर हो। तुम्हारी दी हुई वस्तुको फिर दी हुई करने (मिटाने) का साहस कौन कर सकता है?॥२७॥

[illegible] पन्नगायायुरुत्तमम्।
न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा॥२८॥

तब इन्द्रने उस नागको अच्छी आयु प्रदान की परंतु बलसूदन और इन्द्रका विनाश करनेवाले इन्द्रने उसे अमृतभोजी नहीं बनाया॥२८॥

लब्ध्वा वरं तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह।
कृतदारो यथाकामं जगाम च गृहान् प्रति॥२९॥

इन्द्रसे वर पाकर सुमुखका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह विवाह करके इच्छानुसार अपने घरको चला गया॥२९॥

नारदस्त्वार्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ।
अभिजग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम्॥३०॥

नारद और आर्यक दोनों ही कृतकृत्य हो महातेजस्वी देवराजकी अर्चना करके प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने स्थानको चले गये॥३०॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें मातलिवरान्वेषणविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१०४॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३१ श्लोक हैं)

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके द्वारा गरुडका गर्वभञ्जन तथा दुर्योधनद्वारा कण्व मुनिके उपदेशकी अवहेलना

कण्व उवाच

गरुडस्तत् तु शुश्राव यथावृत्तं महाबलः।
आयुःप्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत॥१॥

कण्व मुनि कहते हैं—भारत! महाबली गरुडने यह सारा वृत्तान्त सुना कि इन्द्रने सुमुख नागको दीर्घायु प्रदान कर दी है॥१॥

पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः।
सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवं समुपाद्रवत्॥२॥

यह सुनते ही आकाशचारी गरुड अत्यन्त कुपित हो अपने पंखोंकी प्रचण्ड वायुसे तीनों लोकोंको कम्पित करते हुए इन्द्रके समीप दौड़े आये॥२॥

गरुड उवाच

भगवन् किमवज्ञानात् क्षुधिः प्रतिहता मम।
कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि॥३॥

गरुड बोले—भगवन्! आपने अवहेलना करके मेरी जीविकामें क्यों बाधा पहुँचायी है? एक बार मुझे इच्छानुसार वर्ताव करनेका वरदान देकर अब फिर उससे विचलित हुए हैं॥३॥

निसर्गात् सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे।
आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्यते त्वया॥४॥

समस्त प्राणियोंके स्वामी विधाताने सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करते समय मेरा आहार निश्चित कर दिया था। फिर आप किसलिये उसमें बाधा उपस्थित करते हैं?॥४॥

वृतश्चैष महाराज स्थापितः समयश्च मे।
अनेन च मया देव भर्तव्यः प्रसवो महान्॥५॥

देव! मैंने इस महानागको अपने भोजनके लिये चुन लिया था। इसके लिये समय भी निश्चित कर लिया था और इसीके द्वारा मुझे अपने विशाल परिवारका भरण-पोषण करना था॥५॥

एतस्मिंस्त्वन्यथाभूते नान्यं हिंसितुमुत्सहे।
क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम्॥६॥

जब इसका यह हाल हो गया, तब अब मैं इसके बदले दूसरेकी हिंसा नहीं कर सकता। देवराज! आप स्वेच्छानुसार खिलवाड़ कर रहे हैं॥६॥

सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि तथा परिजनो मम।
ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान् भव वासव॥७॥

वासव! अब मैं प्राण त्याग दूँगा, मेरे परिवारमें तथा मेरे घरमें जो भरण-पोषण पानेयोग्य प्राणी हैं वे भी भोजनके अभावमें प्राण दे देंगे। अब आप अकेले प्रसन्न होइये॥७॥

एतच्चैवाहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन्।
त्रैलोक्यस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः॥८॥

बल और वृत्रासुरका वध करनेवाले देवराज! मैं इसी व्यवहारके योग्य हूँ; क्योंकि तीनों लोकोंका शासन करनेमें समर्थ होकर भी मैंने दूसरेकी सेवा स्वीकार की है॥८॥

त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम।
त्रैलोक्यराज राज्यं हि त्वयि वासव शाश्वतम्॥९॥

देवेश्वर! त्रिलोकीनाथ! आपके रहते भगवान् विष्णु भी मेरी जीविका रोकनेमें कारण नहीं हो सकते; क्योंकि वासव! तीनों लोकोंका राज्य सदा आपके ही अधीन है॥९॥

ममापि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता।
अहमप्युत्सहे लोकान् समस्तान् वोढुमञ्जसा ॥ १० ॥

मेरी माता भी प्रजापति दक्षकी पुत्री हैं। मेरे पिता भी महर्षि कश्यप ही हैं। मैं भी अनायास ही सम्पूर्ण लोकोंका भार वहन कर सकता हूँ ॥ १० ॥

असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम्।
मयापि सुमहत् कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥ ११ ॥

मुझमें भी वह विशाल बल है, जिसे समस्त प्राणी एक साथ मिलकर भी सह नहीं सकते। मैंने भी दैत्योंके साथ युद्ध छिड़नेपर महान् पराक्रम प्रकट किया है ॥ ११ ॥

श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान् रोचनामुखः।
प्रसभः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ॥ १२ ॥

मैंने भी श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रसभ और कालकाक्ष नामक दैत्योंको मारा है ॥ १२ ॥

यत् तु ध्वजस्थानगतो यत्नात् परिचरामि ते।
वहामि चैवानुजं ते तेन मामवमन्यसे ॥ १३ ॥

तथापि मैं जो रथकी ध्वजामें रहकर यत्नपूर्वक आपकी सेवा करता हूँ और आपके छोटे भाई (विष्णु) की सेवा करता और उनको वहन करता हूँ, इसलिये आप मेरी अवहेलना करते हैं ॥ १३ ॥

कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः।
मया योऽहं विशिष्टः सन् वहामीमं सबान्धवम् ॥ १४ ॥

मेरे सिवा दूसरा कौन है, जो भगवान् विष्णुका महान् भार सह सके? कौन मुझसे अधिक बलवान् है? मैं सबसे विशिष्ट शक्तिशाली होकर भी बन्धु-बान्धवोंसहित इन विष्णुभगवान्‌का भार वहन करता हूँ ॥ १४ ॥

अवज्ञाय तु यन्मेऽद्य भोजनाद् व्यपरोपितः।
तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चास्माच्च वासव ॥ १५ ॥

वासव! आपने मेरी अवहेलना करके जो मेरा भोजन छीन लिया है, उसके कारण मेरा सारा गौरव नष्ट हो गया। मेरा इस गौरवका नाश आप और इन भगवान् विष्णुके कारण हुआ है ॥ १५ ॥

अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः।
त्वमेषां किल सर्वेषां विशेषाद् बलवत्तरः ॥ १६ ॥

विष्णो! अदितिके गर्भसे जो ये बल और पराक्रमसे सुशोभित देवता उत्पन्न हुए हैं, इन सबमें आप सबसे अधिक शक्तिशाली माने गये हैं ॥ १६ ॥

सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः।
विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ॥ १७ ॥

तात! आपको मैं अपनी पाँखके एक देशमें बिठाकर बिना किसी कष्टके ढोता रहता हूँ। धीरे-धीरे आप ही विचार करें कि यहाँ कौन सबसे अधिक बलवान् है? ॥ १७ ॥

कण्व उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्कदारुणम्।
अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ॥ १८ ॥
गरुत्मन् मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बलम्।
अलमस्मत्समक्षं ते स्तोतुमात्मानमण्डज ॥ १९ ॥

कण्व मुनि कहते हैं—गान्धारीनन्दन! पक्षीकी ये बातें भयंकर परिणाम उपस्थित करनेवाली थीं। उन्हें सुनकर चक्रधारी भगवान् विष्णुने किसीसे क्षुब्ध न होनेवाले गरुडको क्षुब्ध करते हुए कहा—'गरुत्मन्! तुम हो तो अत्यन्त दुर्बल, परंतु अपने आपको बड़ा भारी बलवान् मानते हो। अण्डज! मेरे सामने फिर कभी अपनी प्रशंसा न करना ॥ १८-१९ ॥

त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे।
अहमेवात्मनाऽऽत्मानं वहामि त्वां च धारये ॥ २० ॥

सारी त्रिलोकी मिलकर भी मेरे शरीरका भार वहन करनेमें असमर्थ है। मैं ही अपने द्वारा अपनेको ढोता हूँ और तुमको भी धारण करता हूँ ॥ २० ॥

इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह।
यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ॥ २१ ॥

अच्छा, पहले तुम मेरी इस एक दाहिनी भुजाका भार वहन करो। यदि इस एकको ही धारण कर लोगे तो तुम्हारी यह सारी आत्मप्रशंसा सफल समझी जायगी ॥ २१ ॥

ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहुं समासजत्।
निपपात स भारार्तो विह्वलो नष्टचेतनः ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने गरुडके कंधेपर अपनी दाहिनी बाँह रख दी। उसके बोझसे पीड़ित एवं विह्वल होकर गरुड गिर पड़े। उनकी चेतना भी नष्ट-सी हो गयी ॥ २२ ॥

यावान् हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह।
एकस्या देहशाखायास्तावद्भारममन्यत ॥ २३ ॥

पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका जितना भार हो सकता है, उतना ही उस एक बाँहका भार है, यह गरुडको अनुभव हुआ ॥ २३ ॥

न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः।
ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ॥ २४ ॥

अत्यन्त बलशाली भगवान् अच्युतने गरुडको सम्पूर्ण बलसे नहीं दबाया था, इसीलिये उनके जीवनका नाश नहीं हुआ ॥ २४ ॥

व्यात्तास्यः स्रस्तकायश्च विचेता विह्वलः खगः।
मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः ॥ २५ ॥

उस महान् भारसे अत्यन्त पीड़ित हो गरुडने मुँह बा दिया। उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। उन्होंने अचेत और विह्वल होकर अपने पंख छोड़ दिये ॥ २५ ॥

स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः।
विचेता विह्वलो भीतः किंचिद् वाक्यमथाब्रवीत्॥ २६॥

तदनन्तर अचेत एवं विह्वल हुए विनतापुत्र पक्षिराज गरुडने भगवान् विष्णुको मस्तकसे प्रणाम किया और दीनभावसे कुछ कहा—॥ २६॥

भगवल्लोकसारस्य सदृशेन वपुष्मता।
भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले॥ २७॥

भगवन्! जगत्के मूर्तिमान् सारतत्त्व-सदृश आपकी इस भुजाके द्वारा जिसे आपने स्वाभाविक ही मेरे ऊपर रख दिया था मैं पिसकर पृथ्वीपर गिर गया हूँ॥ २७॥

क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याल्पचेतसः।
बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः॥ २८॥

देव! मैं आपकी ध्वजामें रहनेवाला एक साधारण पक्षी हूँ। इस समय आपके बल और तेजसे दग्ध होकर व्याकुल और अचेत-सा हो गया हूँ। आप मेरे अपराधको क्षमा करें॥ २८॥

न हि ज्ञातं बलं देव मया ते परमं विभो।
तेन मन्ये ह्यहं वीर्यमात्मनोऽसमं परैः॥ २९॥

विभो! मुझे आपके महान् बलका पता नहीं था। देव! इसीसे मैं अपने बल और पराक्रमको दूसरोंसे असमान ही नहीं, उनसे बहुत बढ़-चढ़कर मानता था॥ २९॥

ततः कृत्वा स भगवान् प्रसादं वै गरुत्मतः।
मैवं भूय इति स्नेहात् तदा चैनमुवाच ह॥ ३०॥

गरुडकी ऐसी बात सुनकर भगवान्ने उनपर कृपादृष्टि की और उस समय स्नेहपूर्वक उनसे कहा—'फिर कभी इस प्रकार घमंड न करना'॥ ३०॥

पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सुमुखं गरुडोरसि।
ततःप्रभृति राजेन्द्र सह सर्पेण वर्तते॥ ३१॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् भगवान्ने अपने पैरके अँगूठेसे सुमुख नागको उठाकर गरुडके वक्षःस्थलपर रख दिया। तभीसे गरुड उस सर्पके साथ लिये रहते हैं॥ ३१॥

एवं विष्णुबलाक्रान्तो गर्वनाशमुपागतः।
गरुडो बलवान् राजन् वैनतेयो महायशाः॥ ३२॥

राजन्! इस प्रकार महायशस्वी बलवान् विनतानन्दन गरुड भगवान् विष्णुके बलसे आक्रान्त हो अपना अहंकार छोड़ बैठे॥ ३२॥

कण्व उवाच

तथा त्वमपि गान्धारे यावत् पाण्डुसुतान् रणे।
नासादयसि तान् वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक॥ ३३॥

कण्व मुनि कहते हैं—गान्धारीनन्दन वत्स दुर्योधन! इसी तरह तुम भी जबतक रणभूमिमें उन वीर पाण्डवोंको अपने सामने नहीं पाते, तभीतक जीवन धारण करते हो॥ ३३॥

भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः।
धनंजयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातां तु कं रणे॥ ३४॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ महाबली भीम वायुके पुत्र हैं। अर्जुन भी इन्द्रके पुत्र हैं। वे दोनों मिलकर युद्धमें किसे नहीं मार डालेंगे?॥ ३४॥

विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाश्विनावुभौ।
एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः॥ ३५॥

धर्मस्वरूप विष्णु, वायु, इन्द्र और वे दोनों अश्विनीकुमार—इतने देवता तुम्हारे विरुद्ध हैं। तुम किस कारणसे इन देवताओंकी ओर देखनेतक भी साहस कर सकते हो?॥ ३५॥

तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि॥ ३६॥

अतः राजकुमार! इस विरोधसे तुम्हें कुछ मिलनेवाला नहीं है। पाण्डवोंसे सन्धि कर लो। भगवान् श्रीकृष्णको सहायक बनाकर इनके द्वारा तुम्हें अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये॥ ३६॥

प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः।
माहात्म्यस्य तदा विष्णोः सोऽयं चक्रगदाधरः॥ ३७॥

इन महातपस्वी नारदजीने उस समय भगवान् विष्णुके माहात्म्यको प्रत्यक्ष देखा था। वे चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु ही ये श्रीकृष्ण हैं॥ ३७॥

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन् भ्रुकुटीमुखः।
राधेयमभिसम्प्रेक्ष्य जहास स्वनवत् तदा॥ ३८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कण्वका यह कथन सुनकर दुर्योधनकी भौंहें तन गयीं। वह लम्बी साँस खींचता हुआ राधानन्दन कर्णकी ओर देखकर जोर-जोरसे हँसने लगा॥ ३८॥

कदर्थीकृत्य तद् वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः।
ऊरुं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत्॥ ३९॥

उस दुर्बुद्धिने कण्व मुनिके वचनोंकी अवहेलना करके हाथीकी सूँड़के समान चढ़ाव-उतारवाली अपनी मोटी जाँघपर हाथ पीटकर इस प्रकार कहा—॥ ३९॥

यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः।

तत्र त्वमद्य पश्येदं किं महाराज करिष्यति ॥ ४० ॥ जैसी मेरी आज्ञा है उसीके अनुसार मैं कार्य करता हूँ। महर्षे! मुझे ईश्वरने जैसा बनाया है, जो होनहार और आत्मरक्षीका यह प्रयत्न क्या करेगा ! ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें मातलिके द्वारा वरकी खोजविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्याय

नारदजीका दुर्योधनको समझाते हुए धर्मराजके द्वारा विश्वामित्रजीकी परीक्षा तथा गालवके विश्वामित्रसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये हठका वर्णन

जनमेजय उवाच

अनर्थे जातनिर्बन्धं परार्थे लोभमोहितम्।
अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ॥ १ ॥
ज्ञातीनां दुःखकर्तारं बन्धूनां शोकवर्धनम्।
सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥ २ ॥
कस्मान्नैनं विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः।
सौहृदाद् वा सुहृत् स्निग्धो भगवान् वा पितामहः ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! दुर्योधनका अनर्थकारी कार्योंमें ही अधिक आग्रह था। पराये धनके प्रति अधिक लोभ रखनेके कारण वह मोहित हो रहा था। दुर्जनोंमें ही उसका अनुराग था। उसने मरनेका ही निश्चय कर लिया था। वह कुटुम्बीजनोंके लिये दुःखदायक और भाई-बन्धुओंके शोकको बढ़ानेवाला था। सुहृदोंको क्लेश पहुँचाता और शत्रुओंका हर्ष बढ़ाता था। ऐसे कुमार्गपर चलनेवाले इस दुर्योधनको उसके भाई-बन्धु रोकते क्यों नहीं थे? कोई सुहृद्, स्नेही अथवा पितामह भगवान् व्यास इसे सौहार्दवश मना क्यों नहीं करते थे? ॥ १—३ ॥

वैशम्पायन उवाच

उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत् क्षमम्।
उक्तं बहुविधं चैव नारदेनापि तच्छृणु ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! भगवान् वेदव्यासने भी दुर्योधनसे उसके हितकी बात कही। भीष्मजीने भी जो उचित कर्तव्य था, वह बताया। इसके सिवा नारदजीने भी नाना प्रकारके उपदेश दिये। वह सब तुम सुनो ॥ ४ ॥

नारद उवाच

दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत्।
तिष्ठते हि सुहृद् यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा—राजन्! हित चाहनेवाले सुहृदोंकी बातोंको मन लगाकर सुने, ऐसा श्रोता दुर्लभ है। हितैषी सुहृद् भी दुर्लभ ही है; क्योंकि संकटमें सुहृद् ही खड़ा हो सकता है, भाई-बन्धु नहीं ठहर सकते ॥ ५ ॥

श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन।
न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ॥ ६ ॥

कुरुनन्दन! मैं देखता हूँ कि तुम्हें अपने सुहृदोंके उपदेशको सुननेकी विशेष आवश्यकता है; अतः तुम्हें किसी एक बातका दुराग्रह नहीं रखना चाहिये। आग्रहका परिणाम बड़ा भयंकर होता है ॥ ६ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यथा निर्बन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥ ७ ॥

इस विषयमें विज्ञ पुरुष इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिससे पता लगता है कि महर्षि गालवने हठ या दुराग्रहके कारण पराजय प्राप्त की थी ॥ ७ ॥

विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा।
अभ्यगच्छत् स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८ ॥

पहलेकी बात है, साक्षात् धर्मराज महर्षि भगवान् वसिष्ठका रूप धारण करके तपस्यामें लगे हुए विश्वामित्रके पास उनकी परीक्षा लेनेके लिये आये ॥ ८ ॥

सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत।
बुभुक्षुः क्षुधितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य तु ॥ ९ ॥

भारत! धर्म सप्तर्षियोंमेंसे एक (वसिष्ठजी) का वेष धारण करके भूखसे पीड़ित हो भोजनकी इच्छासे विश्वामित्रके आश्रमपर आये ॥ ९ ॥

विश्वामित्रोऽथ सम्भ्रान्तः श्रपयामास वै चरुम्।
परमान्नस्य यत्नेन न च तं प्रत्यपालयत् ॥ १० ॥

विश्वामित्रजीने बड़ी उतावलीके साथ उनके लिये उत्तम भोजन देनेकी इच्छासे यत्नपूर्वक चरु पकाना आरम्भ किया; परंतु वे अतिथिदेवता उनकी प्रतीक्षा न कर सके ॥ १० ॥

अन्नं तेन यदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः।
अथ गृह्यान्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽप्युपागमत् ॥ ११ ॥

उन्होंने जब दूसरे तपस्वी मुनियोंका दिया हुआ अन्न

का लिया तब विश्वामित्रजी भी अत्यन्त उष्ण भोजन लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ ११ ॥

भुक्तं मे तिष्ठ तावत् त्वमित्युक्त्वा भगवान् ययौ।
विश्वामित्रस्ततो राजन् स्थित एव महाद्युतिः ॥ १२ ॥

उस समय भगवान् धर्म यह कहकर कि मैंने भोजन कर लिया अब तुम रहने दो चले गये। राजन्! तब महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि वहाँ उसी अवस्थामें खड़े ही रह गये ॥ १२ ॥

भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना वै बाहुभ्यां संशितव्रतः।
स्थितः स्थाणुरिवाभ्याशे निश्चेष्टो मारुताशनः ॥ १३ ॥

कठोर व्रतका पालन करनेवाले विश्वामित्रने दोनों हाथोंसे उस भोजनपात्रको थामकर मस्तकपर रख लिया और आश्रमके समीप ही ठूँठे पेड़की भाँति वे निश्चेष्ट खड़े रहे। उस अवसरमें केवल वायु ही उनका आहार था ॥ १३ ॥

तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोद् गालवो मुनिः।
गौरवाद् बहुमानाच्च हार्देन प्रियकाम्यया ॥ १४ ॥

उन दिनों उनके प्रति गौरवबुद्धि विशेष आदर सम्मानका भाव तथा प्रेम भक्ति होनेके कारण उनकी प्रसन्नताके लिये गालवमुनि यत्नपूर्वक उनकी सेवा शुश्रूषामें लगे रहते थे ॥ १४ ॥

अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत्।
वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं भोजनेप्सया ॥ १५ ॥

तदनन्तर सौ वर्ष पूरे होनेपर पुनः धर्मदेव वसिष्ठ मुनिका वेष धारण करके भोजनकी इच्छासे विश्वामित्र मुनिके पास आये ॥ १५ ॥

स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं ध्रियमाणं महर्षिणा।
तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ॥ १६ ॥
प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथैवोष्णं तथा नवम्।
भुक्त्वा प्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः ॥ १७ ॥

उन्होंने देखा कि परम बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्र केवल वायु पीकर रहते हुए सिरपर भोजनपात्र रखे खड़े हैं। यह देखकर धर्मने वह भोजन ले लिया। वह अन्न उसी प्रकार गरम तथा उसी दिनकी तैयार की हुई रसोईके समान ताजा था। उसे खाकर वे बोले—'ब्रह्मर्षे! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ।' ऐसा कहकर मुनिवेषधारी धर्मदेव चले गये ॥ १६-१७ ॥

क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः।
धर्मस्य वचनात् प्रीतो विश्वामित्रस्तदाभवत् ॥ १८ ॥

क्षत्रियत्वसे ऊपर उठकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए विश्वामित्र को धर्मके वचनसे उस समय बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः।
शुश्रूषया च भक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच ह ॥ १९ ॥

वे तपस्वी शिष्य तपस्वी गालव मुनिकी सेवा-शुश्रूषा तथा भक्तिसे प्रसन्न होकर बोले—॥ १९ ॥

अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव।
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् ॥ २० ॥
प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम्।
दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरुकर्मणि ॥ २१ ॥

वत्स गालव! अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जाओ। उनके इस प्रकार आदेश देनेपर गालवने प्रसन्नता प्रकट करते हुए मधुर वाणीमें महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रसे इस प्रकार पूछा—'भगवन्! मैं आपको गुरुदक्षिणाके रूपमें क्या दूँ? ॥ २०-२१ ॥

दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिध्यति मानद।
दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते ॥ २२ ॥

मानद! दक्षिणायुक्त कर्म ही सफल होता है। दक्षिणा देनेवाले पुरुषको ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

स्वर्गे क्रतुफलं तद्धि दक्षिणा शान्तिरुच्यते।
किमाहरामि गुर्वर्थं ब्रवीतु भगवानिति ॥ २३ ॥

दक्षिणा देनेवाला मनुष्य ही स्वर्गमें यज्ञका फल पाता है। वेदोंमें दक्षिणाको ही शान्तिकर बताया गया है। अतः पूज्य गुरुदेव! बतावें कि मैं क्या गुरुदक्षिणा ले आऊँ?' ॥ २३ ॥

जानानस्तेन भगवाञ्जितः शुश्रूषणेन च।
विश्वामित्रस्तमसकृद् गच्छ गच्छेत्यचोदयत् ॥ २४ ॥

गालवकी सेवा शुश्रूषासे भगवान् विश्वामित्र उनके वशमें हो गये थे। अतः उनके उपकारको समझते हुए विश्वामित्रने उनसे बार-बार कहा—'जाओ, जाओ' ॥ २४ ॥

असकृद् गच्छ गच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः।
किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत ॥ २५ ॥

उनके द्वारा बारंबार 'जाओ, जाओ' की आज्ञा मिलनेपर भी गालवने अनेक बार आग्रहपूर्वक पूछा—'मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा दूँ?' ॥ २५ ॥

निर्बन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः।
किंचिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २६ ॥

तपस्वी गालवके बहुत आग्रह करनेपर विश्वामित्रको कुछ क्रोध आ गया और उन्होंने इस प्रकार कहा—॥ २६ ॥

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम्।

प्यारी दम्पतीसे मेरे दिये हुए गालव मालव आदि ॥ २७ ॥ आज ही यहाँ दो जिनके कान एक ओर श्याम वर्णके
घोड़े । तुम मुझे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले देते हो । जाओ देर न करो ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्याय

गालवकी चिन्ता और गरुडका आकर उन्हें आश्वासन देना

नारद उवाच

एवमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
नास्ते न शेते नाहारं कुरुते गालवस्तदा ॥ १ ॥

नारदजीने कहा— राजन् ! उस समय परम बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर गालव मुनि उस समय न कहीं बैठते न सोते और न भोजन ही करते थे ॥ १ ॥

त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ताशोकपरायणः ।
शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना ।
गालवो दुःखितो दुःखाद् विललाप सुयोधन ॥ २ ॥

वे चिन्ता और शोकमें डूबे रहनेके कारण पाण्डुवर्णके हो गये । उनके शरीरमें अस्थि-चर्ममात्र ही शेष रह गये थे । सुयोधन ! अत्यन्त शोक करते और चिन्ताकी आगसे दग्ध होते हुए दुःखी गालव मुनि दुःखसे विलाप करने लगे— ॥ २ ॥

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः संचयः कुतः ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥ ३ ॥

मेरे धनी मित्र कहाँ हैं ? मुझे कहाँसे धन प्राप्त होगा ? कहाँ मेरे लिये धनका संग्रह हुआ है ? और कहाँसे मुझे चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णके आठ सौ घोड़े प्राप्त होंगे ? ॥ ३ ॥

कुतो मे भोजने श्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे ।
श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे ॥ ४ ॥

ऐसी दशामें मुझे भोजनकी रुचि कहाँसे हो ? सुख भोगनेकी इच्छा कहाँसे हो ? और इस जीवनसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? इस जीवनको सुरक्षित रखनेके लिये मेरा जो उत्साह था, वह भी नष्ट हो गया ॥ ४ ॥

अहं पारे समुद्रस्य पृथिव्या वा परं परात् ।
गत्वाऽऽत्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे ॥ ५ ॥

मैं समुद्रके उस पार अथवा पृथ्वीसे बहुत दूर जाकर इस शरीरको त्याग दूँगा । अब मेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ ५ ॥

अधनस्याकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः ।
ऋणं धारयमाणस्य कुतः सुखमनीहया ॥ ६ ॥

जो निर्धन है जिसके मनोरथकी सिद्धि नहीं हुई है तथा जो नाना प्रकारके शुभ कर्मोंसे वञ्चित हो कर केवल ऋणका बोझ ढो रहा है, ऐसे मनुष्यको बिना उद्यमके जीवन धारण करनेसे क्या सुख होगा ? ॥ ६ ॥

सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम् ।
प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम् ॥ ७ ॥

जो इच्छानुसार प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करके सुहृदोंका धन भोगकर बदलेमें उपकार करनेमें असमर्थ हो, उसके जीनेसे मर जाना ही अच्छा है ॥ ७ ॥

प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः ।
मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टापूर्तं प्रणश्यति ॥ ८ ॥

जो कर्तव्य कर्मको करूँगा ऐसा कहकर किसी कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ले, परंतु पीछे उसकर उस कार्यका पालन न कर सके उस असत्यभाषणसे दग्ध हुए पुरुषके यज्ञ और कूप आदि सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

न रूपमनृतस्यास्ति नानृतस्यास्ति संततिः ।
नानृतस्याधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा ॥ ९ ॥

असत्यवादी मनुष्यका जीवन नहींके बराबर है । मिथ्या बोलनेवालेको संतान नहीं होती । झूठे मनुष्यको प्रभुत्व नहीं मिलता; फिर उसे शुभ गति कैसे प्राप्त हो सकती है ? ॥ ९ ॥

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ १० ॥

कृतघ्न मनुष्यको सुयश कहाँ ? स्थान या प्रतिष्ठा कहाँ और सुख भी कहाँ है ? कृतघ्न मनुष्य अविश्वसनीय होता है उसका कभी उद्धार नहीं होता है ॥ १० ॥

न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम् ।
पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन् कृतम् ॥ ११ ॥

निर्धन एवं पापी मनुष्यका जीना वास्तवमें जीवन नहीं है । पापी मनुष्य अपने कुटुम्बका पोषण भी कैसे कर सकता है ?

आपात्र निर्धन पुरुष अपना पुण्य कर्मोका नाश करता हुआ स्वयं भी निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चानृतोऽपि च।
गुरोर्यः कृतकार्यः सन् तत् करोमि न भाषितम्॥ १२॥

मैं पापी, कृतघ्न, कृपण और मिथ्यावादी हूँ, जिसने गुरुसे तो अपना काम बना लिया, परंतु अब जो उन्हें देनेकी प्रतिज्ञा की है, उसकी पूर्ति नहीं कर पा रहा हूँ।

सोऽहं प्रयत्नं परमं कृत्वा वक्ष्यामि वा गुरुम्।
कर्तव्यं न मया किंचित् कृतपूर्वो विधीयताम्।
आत्मप्रीत्या च मम सर्वे विदुषा गालवः स्मरेत्॥ १३॥

अतः मैं कोई उत्तम प्रयत्न करके अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा। मैंने आजसे पहले देवताओंसे भी कभी कोई याचना नहीं की है। सब देवता यज्ञमें मेरा समादर करते हैं।

अहं तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम्।
विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिमतां वरम्॥ १४॥

अब मैं त्रिभुवनके स्वामी एवं श्रेष्ठ देवोंके सर्वश्रेष्ठ आश्रय सुरश्रेष्ठ सच्चिदानन्दघन भगवान् विष्णुकी शरणमें जाता हूँ।

भोगा यस्मात् प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान् सुरासुरान्।
प्रणतो द्रष्टुमिच्छामि कृष्णं योगिनमव्ययम्॥ १५॥

जिनकी कृपासे समस्त देवताओं और असुरोंको भी प्रत्येक भोग प्राप्त होते हैं, उन्हीं अविनाशी योगी भगवान् विष्णुका मैं प्रणतभावसे दर्शन करना चाहता हूँ।

एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः।
दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया॥ १६॥

गालवके इस प्रकार कहनेपर उनके सखा विनतानन्दन गरुड अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका प्रिय करनेकी इच्छासे उन्हें दर्शन दिया और इस प्रकार कहा॥ १६॥

सुहृद् भवान् मम मतः सुहृदां च मतः सुहृत्।
ईप्सितेनाभिलाषेण योक्तव्यो विभवे सति॥ १७॥

गालव! तुम मेरे प्रिय सुहृद् हो और मेरे सुहृदोंके भी प्रिय सुहृद् हो। सुहृदोंका यह कर्तव्य है कि यदि उनके पास धन-वैभव हो तो वे उसका अपने सुहृद्का अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उपयोग करें।

विभवश्चास्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज।
पूर्वमुक्तस्त्वदर्थं च कृतः कामश्च तेन मे॥ १८॥

ब्रह्मन्! मेरे सबसे बड़े वैभव हैं इन्द्रके छोटे भाई भगवान् विष्णु। मैंने पहले तुम्हारे लिये उनसे निवेदन किया था और उन्होंने मेरी उस प्रार्थनाको स्वीकार करके मेरा मनोरथ पूर्ण किया था।

स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम्।
देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालव मा चिरम्॥ १९॥

अतः आओ, हम दोनों चलें। गालव! मैं तुम्हें सुखपूर्वक देश देशमें पहुँचा दूँगा। पृथ्वीके अन्तिम तटपर स्थित किसी देशमें भी ले चलूँगा, चलो, विलम्ब न करो।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥

अष्टाधिकशततमोऽध्याय

गरुडका गालवसे पूर्व दिशाका वर्णन करना

सुपर्ण उवाच

अनुशिष्टोऽस्मि देवेन गालव ज्ञानयोनिना।
ब्रूहि कामनु कां यामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम्॥ १॥

गरुडने कहा—गालव! ज्ञानदाता भगवान् विष्णुने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुम्हारी सहायता करूँ; अतः तुम अपनी इच्छाके अनुसार बताओ कि मैं सबसे पहले किस दिशाको ओर चलूँ।

पूर्वां वा दक्षिणां वाहमथवा पश्चिमां दिशम्।
उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव॥ २॥

द्विजश्रेष्ठ गालव! बोलो, मैं पूर्व, दक्षिण, पश्चिम अथवा उत्तरमेंसे किस दिशाकी ओर चलूँ?॥ २॥

यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः।
सविता यत्र संध्यायां साध्यानां वर्तते तपः॥ ३॥

यस्यां पूर्वं मतिर्याता यया व्याप्तमिदं जगत्।
चक्षुषी यत्र धर्मस्य यत्र चैष प्रतिष्ठितः॥ ४॥

हुतं यतो मुखैर्हव्यं सर्पते सर्वतोदिशम्।
एतद् द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाध्वनः॥ ५॥

विप्रवर! जिस दिशामें सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न एवं प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य प्रथम उदित होते हैं, जिस दिशामें संध्याके समय साध्यगण तपस्या करते हैं, जिस दिशामें [illegible] द्वारा पहले वह बुद्धि प्राप्त हुई है जिसने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है, धर्मके युगल-

नेत्रस्वरूप चन्द्रमा और सूर्य [illegible] इसी दिशामें उदित होते हैं और [illegible] पूर्वाभिमुख होकर धर्मानुष्ठान किये जानेके कारण जहाँ धर्म प्रतिष्ठित हुआ है तथा जिस [illegible] इसमें पवित्र हविष्यका हवन करनेपर वह आहुति सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाता है, वही यह पूर्वदिशा दिन एवं सूर्यमार्गका द्वार है

अत्र पूर्वं प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः।
यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्यात्मसम्भवाः॥

इसी दिशामें [illegible] दक्षकी कन्याओंने सबसे पहले प्रजाओंको जन्म दिया और [illegible] कश्यपजीकी सन्तानें [illegible] वृद्धिको प्राप्त हुई हैं

अतोमूलं सुराणां श्रीर्यतः शक्रोऽभ्यषिच्यत।
सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चात्र तपश्चितम्॥

[illegible] देवताओंकी सम्पत्तिका मूलस्थान पूर्व दिशा ही है [illegible] यहाँ इन्द्रका देवराजके पद [illegible] पर अभिषेक [illegible] है और इसी दिशामें देवताओंने तपस्या की

एतस्मात् कारणाद् ब्रह्मन् पूर्वेत्येषा दिगुच्यते।
यस्मात् पूर्वतरे काले पूर्वमेवावृता सुरैः॥
अत एव च सर्वेषां पूर्वामाशां प्रचक्षते।

ब्रह्मन्! इन्हीं सब कारणोंसे इस दिशाको पूर्व कहते हैं, क्योंकि सत्य पूर्वकालमें पहले यही दिशा देवताओंसे आवृत हुई थी [illegible] इसे सबकी आदि दिशा कहते हैं

पूर्वं सर्वाणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता।

[illegible] सुखकी अभिलाषा रखनेवाले [illegible] देवसम्बन्धी सारे कार्य पहले इस दिशाकी ओर [illegible] चाहिये

अत्र वेदाञ्जगौ पूर्वं भगवाँल्लोकभावनः।
अत्रैवोक्ता सवित्रासीत् सावित्री ब्रह्मवादिषु॥

इसका भगवान् [illegible] ने पहले इसी दिशामें वेदोंका गान किया [illegible] और [illegible] ब्रह्मवादी मुनियोंके यहीं सावित्रीका उपदेश किया

अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम।
अत्र लब्धवरैः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते॥

द्विजश्रेष्ठ! इसी दिशामें सूर्यने महर्षि याज्ञवल्क्यको शुक्लयजुर्वेदके मन्त्र दिये और इसी दिशामें देवतालोग यज्ञोंमें उस सोमरसका पान करते हैं, जो उन्हें वरदानमें प्राप्त हुआ है

अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते।

अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च॥

इसी दिशामें यज्ञोंद्वारा तृप्त हुए अग्निगण अपनी योनिस्वरूप जलका उपभोग करते हैं, यहीं वरुणने पातालका आश्रय [illegible] लक्ष्मीको प्राप्त किया

अत्र पूर्वं वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ।
सूतिश्चैव प्रतिष्ठा च निधनं च प्रकाशते॥

द्विजश्रेष्ठ! [illegible] इसी दिशामें पुरातन महर्षि वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई [illegible] यहीं उन्हें प्रतिष्ठा [illegible] [illegible] प्राप्ति हुई [illegible] इसी दिशामें उन्हें [illegible] देहत्याग करना पड़ा है

ओङ्कारस्यात्र जायन्ते सूतयो दशतीर्दश।
पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धूमं स्म धूमपाः॥

[illegible] इसी दिशामें प्रणव [illegible] [illegible] सैकड़ों शाखाएँ प्रकट हुई और [illegible] धूमपायी महर्षि हविष्यका धूमपान करते हैं

प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने।
शक्रेण यज्ञभागार्थे दैवतेषु प्रकल्पिताः॥

इसी दिशामें देवराज इन्द्र [illegible] यज्ञभागकी सिद्धिके लिये वनमें सूअर आदि हिंस्र पशुओंको प्रोक्षित करके देवताओंको [illegible]

अत्राहिताः कृतघ्नाश्च मानुषाश्चासुराश्च ये।
उदयंस्तान् हि सर्वान् वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः॥

इसमें उदित होनेवाले भगवान् सूर्य जो दूसरोंका अहित करनेवाले [illegible] कृतघ्न मनुष्य और असुर होते हैं, उन सबका [illegible] विनाश [illegible] उनकी आयु क्षीण कर देते

एतद् द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च।
एष पूर्वो दिशाभागो विशावैनं यदीच्छसि॥

[illegible] यह पूर्व दिग्विभाग ही त्रिलोकीका, स्वर्गका और सुखका भी द्वार है तुम्हारी [illegible] हो तो हम दोनों इसमें प्रवेश करें

प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्यास्मि वचने स्थितः।
ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाप्यपरां दिशम्॥

[illegible] [illegible] [illegible] उन भगवान् विष्णुका प्रिय [illegible] मुझे अवश्य करना [illegible] [illegible] गालव! बताओ, क्या मैं पूर्व दिशामें [illegible] दूसरी दिशाका भी वर्णन सुनो

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरितविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ

नवाधिकशततमोऽध्यायः

दक्षिण दिशाका वर्णन

सुपर्ण उवाच

इयं विवस्वता पूर्वं श्रौतेन विधिना किल।
गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यतेऽथ दिक्॥१॥

गरुड कहते हैं—गालव! यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें भगवान् सूर्यने वेदोक्त विधिके अनुसार यज्ञ करके आचार्य कश्यपको दक्षिणारूपसे इस दिशाका दान किया था। इसीलिये इसे दक्षिण दिशा कहते हैं॥१॥

अत्र लोकत्रयस्यास्य पितृपक्षः प्रतिष्ठितः।
अत्रोष्मपाणां देवानां निवासः श्रूयते द्विज॥२॥

ब्रह्मन्! तीनों लोकोंके पितृगण इसी दिशामें प्रतिष्ठित हैं तथा ऊष्मप नामक देवताओंका निवास भी इसी दिशामें सुना जाता है॥२॥

अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्धमासते।
इज्यमानाः स्म लोकेषु सम्प्राप्तास्तुल्यभागताम्॥३॥

विश्वेदेवगण पितरोंके साथ सदा दक्षिण दिशामें ही निवास करते हैं। समस्त लोकोंमें पूजित हो यज्ञमें पितरोंके समान ही भाग प्राप्त करते हैं॥३॥

एतद् द्वितीयं धर्मस्य द्वारमाचक्षते द्विज।
त्रुटिशो लवशश्चापि गण्यते कालनिश्चयः॥४॥

विप्रवर! विद्वान् पुरुष इस दक्षिण दिशाको धर्मका दूसरा द्वार बताते हैं। यहाँ चित्रगुप्त आदिके द्वारा त्रुटि और लव आदि सूक्ष्म कालांशोंपर दृष्टि रखते हुए प्राणियोंकी आयुकी निश्चित गणना की जाती है॥४॥

अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा।
तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः॥५॥

देवर्षि, पितृलोकके ऋषि तथा समस्त राजर्षि व्यथारहित हो सदा इसी दिशामें निवास करते हैं॥५॥

अत्र धर्मश्च सत्यं च कर्म चात्र निशाम्यते।
गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणामवसायिनाम्॥६॥

द्विजश्रेष्ठ! इसी दिशामें रहकर चित्रगुप्त आदिके द्वारा धर्मराजके निकट प्राणियोंके धर्म, सत्य तथा शुभाशुभ कर्मोंके विषयमें कहा जाता है। मृत प्राणी कर्मोंके अवसानमें इसी दिशाका आश्रय लेते हैं॥६॥

एषा दिक् सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते।
वृता त्वनवबोधेन सुखं तेन न गम्यते॥७॥

विप्रवर! यह वह दिशा है, जिसमें मृत्युके बाद सभी प्राणियोंको जाना पड़ता है। यह अज्ञानान्धकारसे आवृत रहती है, इसलिये इसमें सुखपूर्वक यात्रा सम्पन्न नहीं हो पाती है॥७॥

नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ।
सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः॥८॥

द्विजश्रेष्ठ! ब्रह्माजीने इस दिशामें प्रतिकूल स्वभाव एवं आचरणवाले सहस्रों राक्षसोंकी सृष्टि की है, जिनका दर्शन अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंको ही होता है॥८॥

अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च।
गायन्ति गाथा गन्धर्वाश्चित्तबुद्धिहरा द्विज॥९॥

ब्रह्मन्! इसी दिशामें गन्धर्वगण मन्दराचलके कुञ्जों और महर्षियोंके आश्रमोंमें मन और बुद्धिको आकर्षित करनेवाली गाथाओंका गान करते हैं॥९॥

अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः।
गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः॥१०॥

पूर्वकालमें यहीं राजा रैवत गाथाओंके रूपमें सामगान सुनते-सुनते अपनी स्त्री, मन्त्री तथा राज्यसे भी वियुक्त हो वनमें चले गये थे॥१०॥

अत्र सावर्णिना चैव यवक्रीतात्मजेन च।
मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन् यां सूर्यो नातिवर्तते॥११॥

ब्रह्मन्! इस दिशामें सावर्णि मनु तथा यवक्रीतके पुत्रने सूर्यकी गतिके लिये मर्यादा स्थापित की थी, जिसका सूर्यदेव कभी उल्लङ्घन नहीं करते हैं॥११॥

अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना।
रावणेन तपश्चीर्त्वा सुरेभ्योऽमरता वृता॥१२॥

पुलस्त्यवंशी राक्षसराज महामना रावणने इसी दिशामें तपस्या करके देवताओंसे अमरत्वका वरदान प्राप्त किया था॥१२॥

[illegible]

अत्र सुपर्णेन सूर्योऽपि शाण्डिल्यामधिष्ठितम्
अत्र स्वातिस्य माला पुलस्त्यऋषि पश्यपा

इसी दिशामें पत्नि हुई ...के कारण इन्द्र
देवताओं द्वारा ... बैठा ... दिशामें
... ... दिन कहते
मार्गमें ... ... नूतन
कहते

अत्र कुम्भजकर्मणो नरा ... पाताल
अत्र वैतरणी नाम नदी वितरज्जुला

गालव इसी दिशामें पापाचारी मनुष्य नरकोंकी
पकाये जाते दक्षिणमें ... ... वैतरणी नरकके ऋषि ... पापियोंके लिये
रहती

अत्र मन्ता सुखस्यान्तं ... प्राप्यते
यत्रावृत्तो दिनकरः सुरसं क्षरते पय
काष्ठां वासाय वासिष्ठीं हिमसुत्सृजते पुनः

मनुष्य इसी दिशामें जाकर सुख और ... अन्त
प्राप्त होता ... दिन दिशामें लौटकर
उत्तरायणके अन्तिम भागमें पहुँचकर दक्षिणायनके आरम्भ
आलोक ... ... मधुर
उनकी वर्षा करते ... ... द्वारा ... उत्तर
दिशामें पहुँचकर अर्थात् उत्तरायणके आरम्भमें
शिशिर ऋतु रहती ...

अत्राहं गालव पुरा क्षुधार्तः परिचिन्तयन्
लब्धवान् युध्यमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ

गालव ... मैं ... दिन ...
भारी चिन्तामें ...
... ...

अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः
विदुर्यं कपिलं देवं येनार्ताः सगरात्मजाः

इन्होंने ... देवता महर्षि ... उत्पन्न हुए
... ... दिशामें रहते ... जिन्हें
... ... जानते ... उन्होंने ... ...
...

अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः
अधीत्य सकलान् वेदाँल्लेभिरे मोक्षमक्षयम्

दिशामें शिव नामसे प्रसिद्ध कुछ सिद्ध ब्राह्मण रहते
... ... वेदोंका
अध्ययन करके ... ... मोक्ष
लिया

अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता
तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च

दक्षिणमें ... ...
देवताओं ... ...

अत्र निर्याणकाले ... सम्प्राप्ते महत्
अभेद्यं भास्करप्रभं तमः कृच्छ्रमवाप्यते

मृत्युके बाद ... दिशामें आनेवाले प्राणी
अत्यन्त ... ...
... ... अभेद्य

एष तस्यापि ... मार्गः परिकीर्तितः गालव
ब्रूहि यदि मन्यसे ... गन्तुं ... परम्

... ...
... ...
... ...

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि ... नवाधिकशततमोऽध्याय

... ...

दशाधिकशततमोऽध्याय

पश्चिम दिशाका वर्णन

सुपर्ण उवाच

इयं दिक् दयिता राज्ञो वरुणस्य तु ...
सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चादिरेव च

... ...
... ...
दिन ... ... और उत्पत्तिस्थान

अत्र पश्चात् सूर्यो विसर्जयति स्वयम्
पश्चिमेत्यभिविख्याता दिगियं द्विजसत्तम

... ... दिशामें
अपनी किरणोंका ... ...
नामसे विख्यात

यादसामत्र राज्येन सलिलस्य ... ...

कश्यपो भगवान् देवो वरुणं स्माभ्यषेचयत् ॥ ३ ॥

यहाँ कश्यपजी भगवान् [illegible] जल-जन्तुओं[illegible] शासन और जलकी रक्षा करनेके लिये इसी दिशामें वरुणका अभिषेक किया था ॥ ३ ॥

अत्र पीत्वा समस्तान् वै वरुणस्य रसांस्तु षट्।
जायते तरुणः सोमः शुक्लस्यादौ तमिस्रहा ॥ ४ ॥

अन्धकारका नाश करनेवाला चन्द्रमा शुक्लपक्षके आरम्भमें [illegible] वरुणके सम्पूर्ण छहों रसोंका पान करके [illegible] होकर उदित होते हैं ॥ ४ ॥

अत्र पश्चात्कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा।
निःश्वसन्तो महावातैरर्दिताः सुषुपुर्द्विज ॥ ५ ॥

ब्रह्मन्! पूर्वकालमें [illegible] महान् [illegible] दैत्योंको पराजित [illegible] और [illegible] किया था, जिससे वे [illegible] होकर [illegible] सो गये थे ॥ ५ ॥

अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः।
अस्तो नाम यतः संध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति ॥ ६ ॥

इसी दिशामें अस्ताचल है, जो [illegible] प्रतिदिन सूर्यदेवको प्रतिदिन ग्रहण करता है। वहींसे [illegible] सायंकालीन संध्याका आरम्भ होता है ॥ ६ ॥

अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये।
जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवायुषः ॥ ७ ॥

इसी दिशासे दिनके [illegible] आयुका [illegible] भाग हर लेनेके लिये [illegible] निद्राका प्राकट्य होता है ॥ ७ ॥

अत्र देवीं दितिं सुप्तामात्मप्रसवधारिणीम्।
विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ॥ ८ ॥

यहीं [illegible] देवराज इन्द्रने [illegible] हुई गर्भवती दिति देवीके [illegible] गर्भको [illegible] था, जिससे मरुद्गणोंकी [illegible] हुई ॥ ८ ॥

अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम्।
अपि वर्षसहस्रेण न चास्यान्तोऽधिगम्यते ॥ ९ ॥

इसी दिशामें [illegible] सदा मन्दराचलतक [illegible] पहुँचता है। [illegible] हजारों वर्षोंमें भी उसका अन्त नहीं पाया जा सकता ॥ ९ ॥

अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनाम्बुरुहस्य च।
उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ॥ १० ॥

इसी दिशामें सुवर्णमय [illegible] मन्दराचल [illegible] तथा सुवर्णमय कमलोंसे सुशोभित क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर सुरभि देवी अपने दूधका निर्झर बहाती हैं ॥ १० ॥

अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते।
स्वर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः ॥ ११ ॥

पश्चिम दिशामें ही समुद्रके भीतर सूर्यके समान तेजस्वी राहुका कबन्ध (धड़) दिखायी देता है, जो सूर्य और चन्द्रमाको मार डालनेकी [illegible] रखता है ॥ ११ ॥

सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः।
अदृश्यस्याप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः ॥ १२ ॥

इसी दिशामें पिङ्गलवर्णके केशोंसे सुशोभित, अप्रमेय प्रभावशाली एवं अदृश्यमूर्ति मुनिवर सुवर्णशिरा सामगान करते हैं। उनके उस गीतकी विपुल ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है ॥ १२ ॥

अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः।
आकाशे तिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात् ॥ १३ ॥

इसी दिशामें हरिमेधा मुनिकी कुमारी कन्या ध्वजवती निवास करती है, जो सूर्यदेवकी 'ठहरो, ठहरो' इस आज्ञासे आकाशमें स्थित है ॥ १३ ॥

अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खं चापि गालव।
आह्निकं चैव नैशं च दुःखस्पर्शं विमुञ्चति ॥ १४ ॥

गालव! वायु, अग्नि, जल और आकाश—ये सब इस दिशामें दिन और रातके दुःखमय स्पर्शका परित्याग करते हैं, अर्थात् यहाँ इनका स्पर्श सदा सुखद ही होता है ॥ १४ ॥

अतः प्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्तते गतिः।
अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम् ॥ १५ ॥

[illegible] दिशासे सूर्यकी [illegible] तिरछी चलने लगती है। यहीं नक्षत्र [illegible] सूर्यमण्डलमें प्रवेश करती हैं ॥ १५ ॥

अष्टाविंशतिरात्रं च चङ्क्रम्य सह भानुना।
निष्पतन्ति पुनः सूर्यात् सोमसंयोगयोगतः ॥ १६ ॥

अभिजित्‌सहित अट्ठाईस नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येक अट्ठाईस दिन सूर्यके साथ विचरण करके अमावस्याके [illegible] फिर [illegible] पृथक् हो जाता है ॥ १६ ॥

अत्र नित्यं स्रवन्तीनां प्रभवः सागरोदयः।
अत्र लोकत्रयस्यापस्तिष्ठन्ति वरुणालये ॥ १७ ॥

इसी दिशामें उन [illegible] नदियोंका [illegible] हुआ है, जिनसे सदा समुद्रकी पूर्ति होती रहती है। यहीं वरुणालयमें त्रिभुवनके लिये उपयोगी जलराशि संचित है ॥ १७ ॥

अत्र पन्नगराजस्याप्यनन्तस्य निवेशनम्।

अनादिनिधनस्यात्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

यहीं सनातन अनन्तदेव निवास तथा आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णुका सर्वोत्कृष्ट स्थान है ॥ १८ ॥

अत्रापि मरुतां स्थानं पवनस्य निवेशनम् ।
महर्षेः कश्यपस्यात्र मारीचस्य निवेशनम् ॥ १९ ॥

इसी दिशामें अनिलदेवके तथा मरुद्गणका भवन तथा मरीचिनन्दन महर्षि कश्यपका आश्रम है ॥ १९ ॥

एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः ।
ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम ॥ २० ॥

द्विजश्रेष्ठ गालव! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे पश्चिम दिशाका वर्णन बताया है। अब बताओ, तुम्हारा क्या विचार है? हम दोनों किस दिशाकी ओर चलें? ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्याय

उत्तर दिशाका वर्णन

सुपर्ण उवाच

यस्मादुत्तार्यते पापाद् यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते ।
तस्मादुत्तारणफलादुत्तरेत्युच्यते द्विज ॥ १ ॥

गरुड़ कहते हैं—गालव! इस मार्गसे जानेपर मनुष्य पापसे उद्धार हो जाता है और वह कल्याणमय स्वर्गीय सुखोंका उपभोग करता है। अतः इस उत्तारण (उद्धार करने) रूप फलके कारण ही इसे उत्तर दिशा कहते हैं ॥ १ ॥

उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापस्य गालव ।
मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः ॥ २ ॥

गालव! यह उत्तर दिशा उत्कृष्ट सुवर्ण आदि निधियोंका अधिष्ठान है (इसलिये भी इसका नाम उत्तर है)। यह उत्तर मार्ग पश्चिम और पूर्व दिशाओंका मध्यवर्ती बताया गया है ॥ २ ॥

अस्यां दिशि वरिष्ठायामुत्तरायां द्विजर्षभ ।
नासौम्यो नाविधेयात्मा नाधर्म्यो वसते जनः ॥ ३ ॥

द्विजश्रेष्ठ! इस गौरवशालिनी उत्तर दिशामें ऐसा मनुष्य नहीं रहता जो सौम्य स्वभावका न हो, जिसने अपने मनको वशमें न किया हो तथा जो धर्मका पालन न करता हो ॥ ३ ॥

अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः ।
बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्मा च शाश्वतः ॥ ४ ॥

इसी दिशामें बदरिकाश्रमतीर्थ है, जहाँ सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायण, विजयशील नरश्रेष्ठ नर और सनातन ब्रह्माजी निवास करते हैं ॥ ४ ॥

अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्यमास्ते महेश्वरः ।
प्रकृत्या पुरुषः सार्धं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५ ॥

इसमें ही हिमालयके शिखरपर प्रलयकालीन अग्निके समान तेजस्वी अन्तर्यामी भगवान् महेश्वर प्रकृतिके साथ नित्य निवास करते हैं ॥ ५ ॥

न स दृश्यो मुनिगणैस्तथा देवैः सवासवैः ।
गन्धर्वयक्षसिद्धैर्वा नरनारायणादृते ॥ ६ ॥

वे भगवान् नर और नारायणके सिवा और किसीकी दृष्टिमें नहीं आते। समस्त मुनिगण, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध अथवा इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उनका दर्शन नहीं कर पाते हैं ॥ ६ ॥

अत्र विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रचरणोऽव्ययः ।
सहस्रशिरसः श्रीमानेकः पश्यति मायया ॥ ७ ॥

यहाँ सहस्रों नेत्रों, सहस्रों चरणों और सहस्रों मस्तकोंवाले एकमात्र अविनाशी श्रीमान् भगवान् विष्णु ही इन मायाविशिष्ट महेश्वरका साक्षात्कार करते हैं ॥ ७ ॥

अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाभ्यषिच्यत ।
अत्र गङ्गां महादेवः पतन्तीं गगनाच्च्युताम् ॥ ८ ॥
प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम ।

उत्तर दिशामें चन्द्रमा द्विजराजके पदपर अभिषिक्त हुआ था। यहाँ आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको महादेवजीने अपने मस्तकपर धारण किया और फिर उन्हें मनुष्यलोकमें दे दिया ॥ ८ ॥

अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ॥ ९ ॥
अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च सम्बभुः ।

यहीं पार्वतीदेवीने भगवान् महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या की थी और इसी दिशामें महादेवजीको मोहित करनेके लिये काम प्रकट हुआ। फिर उनके ऊपर भगवान् शंकरका रोष हुआ। उस अवसरपर गिरिराज हिमालय और उमा भी वहाँ विराजमान थीं (इस प्रकार ये सब लोग यहाँ एक ही समयमें प्रकाशित हुए) ॥ ९ ॥

अत्र राक्षसयक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव ॥ १० ॥

आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः
अत्र नरवाहनः ... ... ॥ २१ ॥

गालव ! इसी दिशामें ... और गन्धर्वोंका आधिपत्य करनेके लिये नरवाहन कुबेरका अभिषेक हुआ था। इस दिशामें ही ... और वैखानस ऋषियोंका आश्रम है।

अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्च द्विजर्षभ
अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरभिरक्ष्यते ॥ २ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! यहीं मन्दाकिनी नदी और मन्दराचल है। इसी दिशामें राक्षसगण सौगन्धिकवनकी रक्षा करते हैं।

शाड्वलं कदलीस्कन्धमत्र संतानका नगाः
अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् ॥ ३ ॥
विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव

यहीं हरी-हरी घासोंसे सुशोभित ... है और यहीं कल्पवृक्ष शोभा पाते हैं। गालव ! इसी दिशामें ... नियमपूर्वक ... करनेवाले स्वच्छन्द ... सिद्धोंके इच्छानुसार भोगोंसे सम्पन्न ... अनुकूल विमान विचरते हैं।

अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चारुन्धती तथा ॥ ४ ॥
अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्रास्या उदयः स्मृतः

इसी दिशामें अरुन्धतीदेवी और ... सप्तर्षि प्रकाशित होते हैं। ... में स्वाती नक्षत्र निवास है और यहीं उसका उदय होता है।

अत्र यज्ञं समारुह्य ध्रुवं स्थाता पितामहः
ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः

इसी दिशामें ब्रह्माजी यज्ञमें ... होकर निश्चित रूपसे निवास करते हैं। ... तथा सूर्य भी सदा इन्हींकी परिक्रमा करते हैं।

अत्र गङ्गामहाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तम ॥ ६ ॥
धामा नाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिनः
न तेषां ज्ञायते मूर्तिर्नाकृतिर्न तपश्चितम् ॥ ७ ॥
परिवर्तसहस्राणि कामभोज्यानि गालव

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें धामा नामसे ... सत्यवादी महात्मा मुनि गङ्गाद्वारकी रक्षा करते हैं। उनकी मूर्ति, आकृति तथा संचित तपस्याका परिमाण किसीको ज्ञात नहीं होता है। गालव ! वे सहस्रों ... भोगोंको इच्छानुसार भोगते हैं।

यथा यथा प्रविशति तस्मात् परतरं नरः ॥
तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव
नैतत् केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ ॥ ९ ॥
ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम्
अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत् ॥ १० ॥

द्विजश्रेष्ठ ! मनुष्य ज्यों-ज्यों गङ्गाद्वारसे आगे बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे वहाँकी हिम ... गलता जाता है। विप्रवर ! ... साक्षात् भगवान् नारायण या विजयशील अविनाशी महात्मा नरको छोड़कर दूसरा कोई मनुष्य पहले कभी गङ्गाद्वारसे आगे नहीं गया है। इसी दिशामें कैलास पर्वत है, जो कुबेरका स्थान बताया गया है।

अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश
अत्र विष्णुपदं नाम क्रमता विष्णुना कृतम् ॥ २१ ॥
त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मन्नुत्तरां दिशमाश्रितम्
अत्र राजा मरुत्तेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम ॥ २२ ॥
उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः

यहीं विद्युत्प्रभा नामसे प्रसिद्ध ... अप्सराएँ उत्पन्न हुई थीं। ब्रह्मन् ! त्रिलोकीको नापते समय भगवान् विष्णुने इसी दिशामें अपना चरण रक्खा था, अतः इस दिशामें भगवान् विष्णुका पद चरणचिह्न ... है, जो आज भी मौजूद है। द्विजश्रेष्ठ ! यहींपर उत्तर दिशामें ... उशीरबीज नामक ... में ... सुवर्णमय सरोवर है, राजा मरुत्तने यज्ञ किया था।

जीमूतस्यात्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः ॥ २३ ॥
साक्षाद्धैमवतः पुण्यो विमलः कनकाकरः

इसी दिशामें ब्रह्मर्षि महात्मा जीमूतके समक्ष हिमालयकी पवित्र एवं निर्मल सुवर्णनिधि ... का स्थान प्रकट हुई थी।

ब्राह्मणेषु च यः कृत्स्नं स्वन्तं कृत्वा धनं महत् ॥ २४ ॥
वव्रे धनं महर्षिः स जैमूतं तद् धनं ततः

उस सम्पूर्ण विशाल धनराशिको उन्होंने ब्राह्मणोंमें बाँटकर उसका ... उपयोग किया और ब्राह्मणोंसे यह वर माँगा कि यह धन मेरे नामसे ... हो। इस कारण वह धन जैमूत नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अत्र नित्यं दिशापालाः सायंप्रातर्द्विजर्षभ ॥ २५ ॥
कस्य कार्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव

विप्रवर गालव ! यहाँ प्रतिदिन सबेरे और संध्याके समय भी दिक्पाल एकत्र हो ... पुकारते हैं कि किसको क्या काम है ?

एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यैर्दिगुत्तरा ॥ २६ ॥
उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा

द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह ... तथा अन्यान्य गुणोंके कारण यह दिशा उत्कृष्ट है और समस्त शुभ कर्मोंके लिये भी यही उत्तम मानी गयी है। इसलिये इसे उत्तर कहते हैं ॥ २६ ॥

एता विस्तरशस्तात तव संकीर्तिता दिशः ॥ २७ ॥
चतस्रः क्रमयोगेन कामाशां गन्तुमिच्छसि

तात! इस प्रकार मैंने क्रमशः चारों दिशाओंका तुम्हारे सामने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। बताओ, किस दिशामें जाना चाहते हो?

एषामोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः।
पृथिवीं चाखिलां ब्रह्मंस्तस्मादारोह मां द्विज॥ २८॥

द्विजश्रेष्ठ! मैं तुम्हें सम्पूर्ण पृथ्वी तथा समस्त दिशाओंका दर्शन करानेके लिये उद्यत हूँ; अतः तुम मेरी पीठपर बैठ जाओ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १११॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्याय

गरुडकी पीठपर बैठकर पूर्व दिशाकी ओर जाते हुए गालवका उनके वेगसे व्याकुल होना

गालव उवाच

गरुत्मन् भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज।
नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी॥ १॥

गालवने कहा—गरुत्मन्! भुजगराजके शत्रु सुपर्ण! विनतानन्दन तार्क्ष्य! तुम मुझे पूर्व दिशाकी ओर ले चलो, जहाँ धर्मके नेत्रस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं॥ १॥

पूर्वमेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्तिता।
दैवतानां हि सांनिध्यमत्र कीर्तितवानसि॥
अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक् प्रकीर्तितः।
इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्दैवतैरहम्।
भूयश्च तान् सुरान् द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज॥ २-३॥

जिस दिशाका तुमने सबसे पहले वर्णन किया है, उसी पूर्व दिशाकी ओर चलो। तुमने वहीं देवताओंका सान्निध्य बताया है। वहीं सत्य और धर्मकी स्थिति भी भलीभाँति प्रतिपादित की है। अरुणके छोटे भाई! मैं सम्पूर्ण देवताओंसे मिलना चाहता हूँ। उन सब देवताओंका दर्शन करना चाहता हूँ॥ २-३॥

नारद उवाच

तमाह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम्।
आरुरोहाथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा॥ ४॥

नारदजी कहते हैं—तब विनतानन्दन गरुडने ब्राह्मण गालवसे कहा—'तुम मेरे ऊपर चढ़ जाओ।' तब गालव मुनि गरुडकी पीठपर जा बैठे॥ ४॥

गालव उवाच

क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यते पन्नगाशन।
भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विवस्वतः॥ ५॥

गालवने कहा—सर्पभोजी गरुड! पूर्वाह्णकालमें सहस्र किरणोंसे सुशोभित भुवनभास्कर सूर्यका स्वरूप जैसा दिखायी देता है, आकाशमें उड़ते समय तुम्हारा स्वरूप भी वैसा ही दृष्टिगोचर होता है॥ ५॥

पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम्।
प्रस्थितानामिव समं पश्यामीह गतिं खग॥ ६॥

खेचर! तुम्हारे पंखोंकी हवासे उखड़कर ये वृक्ष पीछे-पीछे चले आ रहे हैं। मैं इन्हें ऐसा देख रहा हूँ, मानो ये भी तुम्हारे साथ चलनेके लिये प्रस्थित हुए हों॥ ६॥

ससागरवनामुर्वीं सशैलवनकाननाम्।
आकर्षन्निव चाभासि पक्षवातेन खेचर॥ ७॥

आकाशचारी गरुड! तुम अपने पंखोंसे पैदा होनेवाली वायुद्वारा पृथ्वीको समुद्र, वन और काननोंसहित खींचते-से चले जा रहे हो॥ ७॥

समीननागनक्रं च खमिवारोप्यते जलम्।
वायुना चैव महता पक्षवातेन चानिशम्॥ ८॥

पंखोंसे निरन्तर उठती हुई प्रबल वायुके वेगसे मत्स्य, नाग और नक्रोंसहित समुद्रका जल तुम्हारे द्वारा मानो आकाशमें उछाला जाता है॥ ८॥

तुल्यरूपाननान् मत्स्यांस्तथा तिमितिमिङ्गिलान्।
नागांश्च नररूपांश्च पश्याम्युन्मथितानिव॥ ९॥

जिनके आकार और मुख एक-से हैं, ऐसे मत्स्यों, तिमि और तिमिङ्गिलों तथा हाथी-घोड़े और मनुष्योंके समान मुखवाले जल-जन्तुओंको मैं उन्मथित हुए-से देख रहा हूँ॥ ९॥

महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरीकृते।
न शृणोमि न पश्यामि नात्मनो वेद्मि कारणम्॥ १०॥

महासागरकी इन भीषण गर्जनाओंने मेरे कान बहरे कर दिये हैं। मैं न तो कुछ सुन पाता हूँ, न देख पाता हूँ और न अपने बचावका कोई उपाय ही समझ पाता हूँ॥ १०॥

शनैः स तु भवान् यातु ब्रह्मवध्यामनुस्मरन्।
न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग॥ ११॥

तात गरुड! तुम्हें कहीं ब्रह्महत्या न हो जाय, इसका ध्यान रखते हुए धीरे-धीरे चलो। मुझे इस समय न तो सूर्य

दिखायी देते [illegible] पृथ्वी और आकाश [illegible] बल [illegible] उसका कोई
हष्टिगोचर होता [illegible] मुझे [illegible] दिखे मैंने जीवनके
[illegible] पुत्र

तव एव पश्यामि शरीरं [illegible]
सजीव आत्म पश्यामि [illegible]
नव [illegible] धर्मेण्वित [illegible]
आयनानि महत [illegible]

मुझे [illegible] तुम्हारे
शरीर नहीं [illegible] मुझे
[illegible] नहीं

शरीरं पश्यामि नव [illegible]
पदे पदे पश्यामि [illegible]

[illegible] प्रचुर [illegible]

[illegible]

पत्र [illegible] मुताल [illegible]
[illegible] प्रकाश [illegible]

[illegible]

[illegible] नन्दन हूए

[illegible] साहसात् [illegible] पुत्र
[illegible] महात्म [illegible]

[illegible] तुम्हारा
अपने [illegible] [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible]
[illegible] कहते [illegible]

प्रयोजनं किंचिद् [illegible]
[illegible] महाभाग [illegible]

[illegible] प्रयोजन नहीं
[illegible] महाभाग तुम्हारे [illegible]

[illegible] और [illegible] कृत्रिम
[illegible] इच्छा [illegible] नहीं
[illegible] परमेश्वर [illegible]
[illegible] पुत्र [illegible]
उपायो [illegible]
[illegible] क्यों
[illegible] उपाय [illegible] मिल

[illegible] शताब्दी हि [illegible]
[illegible]

[illegible] महिमा [illegible]
[illegible] पुत्र और [illegible]
[illegible]

[illegible] पश्यामि [illegible]
ततो [illegible] मया [illegible]

[illegible] पर्यंत [illegible]
[illegible]
[illegible] और

श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

[illegible] हुए

त्रयोदशाधिकशततम अध्याय

ऋषभ पर्वत के शिखरपर महर्षि गालव और गरुड पक्षिणी शाण्डिलीसे [illegible]
तथा गरुड और गालव का गुरुदक्षिणा चुकानेके विषयमें परस्पर विचार

[illegible] [illegible] शिखरपर [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
शाण्डिलीं [illegible]
[illegible] कहते हैं—तदनन्तर गालव और गरुडने [illegible]

[illegible]
[illegible] पुत्र [illegible]
तथा [illegible]

गरुड़ने उसे प्रणाम किया और गालवने उसका आदर सत्कार किया। तदनन्तर उसने भी उन दोनोंका स्वागत करके उन्हें आसनपर बैठनेके लिये कहा। उसकी आज्ञा पाकर वे दोनों वहाँ आसनपर बैठ गये ॥ २ ॥

सिद्धान्नं तया दत्तं बलिमन्त्रोपबृंहितम्।
भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावन्नमोहितौ ॥ ३ ॥

तपस्विनी शाण्डिलीने बलिवैश्वदेवसे बचा हुआ अभिमन्त्रित सिद्धान्न अर्पण किया। उसे खाकर वे दोनों तृप्त हो गये और भूमिपर ही सो गये। तत्पश्चात् निद्राने उन्हें अचेत कर दिया ॥ ३ ॥

मुहूर्तात् प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया।
अथ भ्रष्टतनूजाङ्गमात्मानं ददृशे खगः ॥ ४ ॥

दो घड़ी पश्चात् जब गरुड़ वहाँसे जानेकी इच्छासे उठे, तब उन्होंने अपने शरीरको पंखोंसे रहित देखा ॥ ४ ॥

मांसपिण्डोपमोऽभूत् स मुखपादान्वितः खगः।
गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विषण्णः पर्यपृच्छत ॥ ५ ॥

आकाशगामी गरुड़ मुख और पैरोंसे युक्त पंखोंके बिना मांसके लोंदेके समान हो गये। उन्हें इस दशामें देखकर गालव बहुत दुःखी हो गये और पूछने लगे— ॥ ५ ॥

किमिदं भवता प्राप्तमिहागमनजं फलम्।
वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति ॥ ६ ॥

सखे! तुम्हें यहाँ आनेका यह क्या फल मिला? हम दोनोंको कबतक यहाँ रहना पड़ेगा? ॥ ६ ॥

किं नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम्।
न ह्ययं भवतः स्वल्पो व्यभिचारो भविष्यति ॥ ७ ॥

तुमने अपने मनमें कौन-सा अशुभ चिन्तन किया है, जो धर्मको दूषित करनेवाला है? मैं समझता हूँ, तुम्हारे द्वारा यह कोई छोटा-सा पाप नहीं हुआ होगा ॥ ७ ॥

सुपर्णोऽथाब्रवीद् विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज।
इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः।
यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः।
यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ॥ ९ ॥

तब गरुड़ने गालवसे कहा—ब्रह्मन्! मैंने तो अपने मनमें यही सोचा था कि इस सिद्ध तपस्विनीको वहाँ पहुँचा दूँ, जहाँ प्रजापति ब्रह्मा हैं, जहाँ महादेवजी हैं, जहाँ सनातन भगवान् विष्णु हैं तथा जहाँ धर्म एवं यज्ञ हैं; वहीं इसे निवास करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया।
मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ॥ १० ॥

अतः मैं भगवती शाण्डिलीके चरणोंमें पड़कर यह प्रार्थना करता हूँ कि मैंने अपने चिन्तनशील मनके द्वारा आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ही यह बात सोची है ॥ १० ॥

तदेवं बहुमानात् ते मयेहानीप्सितं कृतम्।
सुकृतं दुष्कृतं वा त्वं माहात्म्यात् क्षन्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

आपके प्रति विशेष आदरका भाव होनेसे ही मैंने इस स्थानपर ऐसा चिन्तन किया है, जो सम्भवतः आपको अभीष्ट नहीं था। मेरे द्वारा यह पुण्य हुआ हो या पाप, आप अपने ही माहात्म्यसे मेरे इस अपराधको क्षमा करें ॥ ११ ॥

सा तौ तदाब्रवीत् तुष्टा पतगेन्द्रद्विजर्षभौ।
न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्ण त्यज सम्भ्रमम् ॥ १२ ॥

यह सुनकर शाण्डिली उस समय संतुष्ट हो पक्षिराज और विप्रवरसे बोली—'सुपर्ण! तुम डरो मत। तुम सुन्दर पंखोंसे युक्त हो जाओगे, अतः तुम्हें घबराना नहीं चाहिये' ॥ १२ ॥

निन्दितास्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम्।
लोकेभ्यः सपदि भ्रश्येद् यो मां निन्देत पापकृत् ॥ १३ ॥

वत्स! तुमने मेरी निन्दा की है, मैं निन्दा नहीं सहन करती हूँ। जो पापी मेरी निन्दा करेगा, वह पुण्य लोकोंसे तत्काल भ्रष्ट हो जायगा ॥ १३ ॥

हीनयालक्षणैः सर्वैस्तथानिन्दितया मया।
आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा ॥ १४ ॥

मैंने समस्त अशुभ लक्षणोंसे हीन और अनिन्दित रहकर सदाचारका पालन करते हुए यह उत्तम सिद्धि प्राप्त की है ॥ १४ ॥

आचारात् फलते धर्ममाचारात् फलते धनम्।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५ ॥

आचार ही धर्मको सफल बनाता है, आचार ही धनरूपी फल देता है, आचारसे मनुष्यको सम्पत्ति प्राप्त होती है और आचार ही अशुभ लक्षणोंका भी नाश कर देता है ॥ १५ ॥

तदायुष्मन् खगपते यथेष्टं गम्यतामितः।
न च ते गर्हणीयापि गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित् ॥ १६ ॥

आयुष्मन् पक्षिराज! अब तुम यहाँसे अपने अभीष्ट स्थानको जाओ। आजसे तुम्हें मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। स्त्रियाँ निन्दनीय हों तो भी तुम्हें कभी उनकी निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ १६ ॥

भवितासि यथापूर्वं बलवीर्यसमन्वितः।
बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥ १७ ॥

अब तुम पहलेकी ही भाँति बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो जाओगे । शाण्डिलीके इतना कहते ही गरुड़की पाँखें पहलेसे भी अधिक शक्तिशाली हो गयीं ॥ १७ ॥

अनुज्ञातस्तु शाण्डिल्या यथागतमुपागमत् ।
नैव चालाययामास तथारूपस्तु गरुत्मान् ॥ १८ ॥

तदनन्तर शाण्डिलीकी आज्ञा ले वे जैसे आये थे वैसे ही चले गये । … अनुसार … मनमें नहीं … ॥ १८ ॥

विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवं मार्गमास्थितम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य संनिधौ ॥ १९ ॥

इधर गालवको मार्गमें आते देख वक्ताओंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी … गरुड़के … इस प्रकार बोले ॥ १९ ॥

यस्त्वया स्वयमेवार्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज ।
तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् ॥ २० ॥

ब्रह्मन् ! तुमने स्वयं ही जिस धनको देनेकी प्रतिज्ञा की थी उसे देनेका समय आ गया है । फिर तुम जैसा ठीक समझो करो ॥ २० ॥

प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथा परम् ।
यथा संसिध्यते विप्र स मार्गस्तु निशाम्यताम् ॥ २१ ॥

मैं इतने दिनों तक और तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा । ब्रह्मन् ! जिस प्रकार तुम्हें सफलता मिल सके उस मार्गका विचार करो ॥ २१ ॥

सुपर्णोऽथाब्रवीद् दीनं गालवं भृशदुःखितम् ।
प्रत्यक्षं खल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥ २२ ॥

तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव ।
नादत्त्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयाऽऽसितुम् ॥ २३ ॥

तदनन्तर दीन और अत्यन्त दुःखी हुए गालव मुनिसे गरुड़ने कहा— द्विजश्रेष्ठ गालव ! विश्वामित्रजीने मेरे सामने जो कुछ कहा है वह सब … अतः चलो, इस विषयमें हम दोनों सलाह करें । गुरुको उनका सारा धन चुकाये बिना तुम नहीं बैठ सकोगे ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरितविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

गरुड और गालवका राजा ययातिके यहाँ जाकर गुरुको देनेके लिये श्यामकर्ण घोड़ोंकी याचना करना

नारद उवाच

अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः ।
निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ।
यस्माद्धिरण्मयं सर्वं हिरण्यं तेन चोच्यते ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने दीन-दुःखी गालव मुनिसे इस प्रकार कहा—पृथ्वीके भीतर जो … अग्निके द्वारा जिसका निर्माण किया है और … वायुने जिसका शोधन किया है उस सुवर्णको हिरण्य कहते हैं । यह सारा जगत् हिरण्यमय है, इसलिये भी उसे हिरण्य कहते हैं ॥ १ ॥

धत्ते धारयते चेदमेतस्मात् कारणाद् धनम् ।
तदेतत् त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ॥ २ ॥

यह इस जगत्‌को धारण करता है और पृथ्वीके भी धारण करता है । इस कारण उस सुवर्णका नाम धन है । यह धन तीनों लोकोंमें सदा स्थित रहता है ॥ २ ॥

नित्यं प्रोष्ठपदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ।
मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ॥ ३ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च ।
एवं न शक्यते लब्धुमलब्धव्यं द्विजर्षभ ॥
ऋते च धनमश्वानां नावाप्तिर्विद्यते तव ॥ ४ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद इन दो नक्षत्रोंमेंसे किसी एकके साथ शुक्रका योग हो तो अग्निदेव कुबेरके लिये अपने संकल्पसे धनका निर्माण करके उसे मनुष्योंको दे देते हैं । पूर्वभाद्रपदके देवता अजैकपाद्, उत्तरभाद्रपदके देवता अहिर्बुध्न्य और कुबेर—ये तीनों उस धनकी रक्षा करते हैं । इस प्रकार किसीको भी ऐसा धन नहीं मिल सकता जो प्रारब्धवश उसे मिलनेवाला न हो और धनके बिना तुम्हें अश्वोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ३-४ ॥

स त्वं याचात्र राजानं कंचिद् राजर्षिवंशजम् ।
अपीड्य राजा पौरान् हि यो नौ कुर्यात् कृतार्थिनौ ॥ ५ ॥

इसलिये मेरी राय यह है कि तुम राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुए किसी ऐसे राजाके पास चलकर उनसे भिक्षा

कामना करो, जो पुरवासियोंको पीड़ा दिये बिना ही इन दोनों-को धन देकर कृतार्थ कर सके ॥ ५ ॥

अस्ति सोमान्ववाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा ।
अभिगच्छावहे तं वै तस्यास्ति विभवो भुवि ॥ ६ ॥

चन्द्रवंशमें उत्पन्न एक राजा हैं, जो मेरे मित्र हैं। हम दोनों उन्हींके पास चलें। इस भूतलपर उनके पास वैभव है ॥ ६ ॥

ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः ।
स दास्यति मया चोक्तो भवता चार्थितः स्वयम् ॥ ७ ॥

मेरे उन मित्रका नाम है राजर्षि ययाति, जो महाराज नहुषके पुत्र हैं। वे सत्यपराक्रमी हैं। मेरे कहनेसे और आपके स्वयं याचना करनेपर वे तुम्हें धन देंगे ॥ ७ ॥

बिभर्ति यस्य सुमहानासीद् धनौघो धनदो यथा ।
एवं गुरुधनं विद्वन् दानेनैव विशोधय ॥ ८ ॥

उनके पास धनाध्यक्ष कुबेरके समान महान् वैभव रहा है। विद्वन्! इस प्रकार उनसे दान लेकर तुम गुरुदक्षिणाका ऋण चुका दो ॥ ८ ॥

तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत् क्षमम् ।
प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपस्थितौ ॥ ९ ॥

इस प्रकार परस्पर बात करते और उचित कर्तव्यको मन-ही-मन सोचते हुए वे दोनों प्रतिष्ठानपुरमें राजा ययातिके दरबारमें उपस्थित हुए ॥ ९ ॥

प्रतिगृह्य च सत्कारमर्घ्यपाद्यादिकं वरम् ।
पृष्टश्चागमनं हेतुमुवाच विनतासुतः ॥ १० ॥

राजाके द्वारा सत्कारपूर्वक दिये हुए अर्घ्य, पाद्य आदि ग्रहण करके विनतानन्दन गरुड़ने उनके पूछनेपर अपने आगमनका प्रयोजन इस प्रकार बताया ॥ १० ॥

अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः ।
विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद् वर्षाण्ययुतशो नृप ॥ ११ ॥

नहुषनन्दन! ये तपोनिधि गालव मेरे मित्र हैं। राजन्! ये दस हजार वर्षोंतक महर्षि विश्वामित्रके शिष्य रहे हैं ॥ ११ ॥

सोऽयं तेनाभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः ।
तमाह भगवन् किं ते ददानि गुरुदक्षिणाम् ॥ १२ ॥

विश्वामित्रजीने (इनकी सेवाके बदले) इनका भी उपकार करनेकी इच्छासे इन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी। तब इन्होंने उनसे पूछा— 'भगवन्! मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा दूँ?' ॥ १२ ॥

असकृत् तेन चोक्तेन किंचिदागतमन्युना ।
अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥ १३ ॥

एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ १४ ॥

गुर्वर्थो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे ।
इत्येवमाह सक्रोधो विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ १५ ॥

इनके बार-बार आग्रह करनेपर विश्वामित्रजीको कुछ क्रोध आ गया, अतः इनके पास थोड़ा-सा धन है, यह जानते हुए भी उन्होंने इनसे कहा— 'तुम मुझे गुरुदक्षिणा दो। गालव! मुझे शुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए ऐसे आठ सौ घोड़े ला दो, जिनका रंग चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और कान एक ओरसे श्याम रंगके हों। गालव! यदि तुम मेरी बात मानो तो यही गुरुदक्षिणा ला दो।' तपोधन विश्वामित्रने यह बात कुपित होकर ही कही थी ॥ १३—१५ ॥

सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः ।
अशक्तः प्रतिकर्तुं तद् भवन्तं शरणं गतः ॥ १६ ॥

अतः ये द्विजश्रेष्ठ गालव महान् शोकसे संतप्त हो गुरुदक्षिणा चुकानेमें असमर्थ हो रहे हैं और इसलिये आपकी शरणमें आये हैं ॥ १६ ॥

प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः ।
कृत्वापवर्गं गुरवे चरिष्यति महत् तपः ॥ १७ ॥

नरश्रेष्ठ! आपसे भिक्षा ग्रहण करके गुरुको पूर्वोक्त धन देकर ये व्यथारहित हो महान् तपस्या करेंगे ॥ १७ ॥

तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते ।
स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ॥ १८ ॥

अपनी तपस्याके एक अंशसे ये आपको भी संयुक्त करेंगे। यद्यपि आप अपनी राजर्षिजनोचित तपस्यासे पूर्ण हैं, तथापि ये अपने तपसे आपको और भी परिपूर्ण करेंगे ॥ १८ ॥

यावन्ति रोमाणि हये भवन्तीह नरेश्वर ।
तावतो वाजिदा लोकान् प्राप्नुवन्ति महीपते ॥ १९ ॥

नरेश्वर! भूपाल! (दान किये हुए) घोड़ेके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, दान करनेवाले लोगोंको (पर लोक) उतने ही लोक प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

पात्रं प्रतिग्रहस्यायं दातुं पात्रं तथा भवान् ।
शङ्खे क्षीरमिवासिक्तं भवत्वेतत् तथोपमम् ॥ २० ॥

ये गालव दान लेनेके सुयोग्य पात्र हैं और आप दान देनेके श्रेष्ठ अधिकारी हैं। जैसे शङ्खमें दूध रक्खा गया हो, उसी प्रकार इनको दिया हुआ आपका यह दान शोभा पाये ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

राजा ययातिका गालवको अपनी कन्या देना और गालवका उसे लेकर अयोध्यानरेशके यहाँ जाना

नारद उवाच

एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम्।
विमृश्यावहितो राजा निश्चित्य च पुनः पुनः॥१॥
यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः।
ययातिः सर्वकाशीश इदं वचनमब्रवीत्॥२॥

नारदजी कहते हैं—गरुड़के इस प्रकार यथार्थ और उत्तम बात कही गयी, तब सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले दाता, दानपति, प्रभावशाली तथा समस्त काशी प्रदेशके अधिपति होनेवाले सम्पूर्ण नरेशोंके स्वामी महाराज ययातिने मन-ही-मन बारंबार विचार करके एक निश्चयपर पहुँचकर इस प्रकार कहा॥१-२॥

दृष्ट्वा प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवं च द्विजर्षभम्।
निदर्शनं च तपसो भिक्षां श्लाघ्यां च कीर्तिताम्॥३॥
अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसम्भवान्।
मत्सकाशमनुप्राप्तावेतौ बुद्धिमवेक्ष्य च॥४॥

राजाने पहले अपने प्रिय मित्र गरुड़ तथा तपस्याकी मूर्तिमान् स्वरूप विप्रवर गालवको देखा, उनकी श्लाघ्य और उनकी बतायी हुई भिक्षा एवं इन दोनोंकी बात सुनकर मनमें इस प्रकार विचार किया—

ये दोनों सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए दूसरे अनेक राजाओंको छोड़कर मेरे पास आये हैं, ऐसा विचारकर राजाने॥३-४॥

अद्य मे सफलं जन्म तारितं चाद्य मे कुलम्।
अद्यायं तारितो देशो मम तार्क्ष्य त्वयानघ॥५॥

निष्पाप गरुड़! आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरे कुलका उद्धार हो गया और आज आपने मेरे इस सम्पूर्ण देशको भी तार दिया॥५॥

वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा।
न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तं हि मे सखे॥६॥

सखे! फिर भी मैं एक बात कहना चाहता हूँ। आप पहले मुझे जैसा धनवान् समझते थे, वैसा धनवान् अब मैं नहीं रह गया हूँ। मित्र! मेरा वैभव इन दिनों क्षीण हो गया है॥६॥

न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग।
न चाशामस्य विप्रर्षेर्वितथां कर्तुमुत्सहे॥७॥

आकाशचारी गरुड़! इस दशामें भी मैं आपके आगमनको निष्फल करनेमें असमर्थ हूँ और इन ब्रह्मर्षिकी आशाको भी मैं विफल करना नहीं चाहता॥७॥

तत्तु दास्यामि यत्कार्यमिदं सम्पादयिष्यति।
अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम्॥८॥

अतः मैं एक ऐसी वस्तु दूँगा, जो इस कार्यका सम्पादन कर देगी। अपने पास आकर कोई याचक हताश होकर लौट जाय तो वह आशा भंग करनेवाले राजाके सम्पूर्ण कुलको दग्ध कर देता है॥८॥

नातः परं वैनतेय किंचित्पापिष्ठमुच्यते।
यथाशानाशनं लोके देहि नास्तीति वा वचः॥९॥

विनतानन्दन! लोकमें कोई 'दीजिये' कहकर कुछ माँगे और उससे यह कह दिया जाय कि 'अभी मेरे पास नहीं है' इस प्रकार याचककी आशाको भंग करनेसे जितना पाप लगता है, उससे बढ़कर पापकर्म दूसरा कोई नहीं कहा जाता है॥९॥

हताशो ह्यकृतार्थः सन्हतः संभावितो नरः।
हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्चाकुर्वतो हितम्॥१०॥

कोई श्रेष्ठ मनुष्य जब कहीं याचना करके हताश एवं असफल होता है, तब वह मरे हुएके समान हो जाता है और अपना हित न करनेवाले उस पुरुषके पुत्रों तथा पौत्रोंका नाश कर डालता है॥१०॥

तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम।
इयं सुरसुतप्रख्या सर्वधर्मोपचायिनी॥११॥

अतः मेरी जो यह पुत्री है, यह चार कुलोंकी स्थापना करनेवाली है। इसकी कान्ति देवकन्याके समान है। यह सम्पूर्ण धर्मोंकी वृद्धि करनेवाली है॥११॥

सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव।
काङ्क्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम्॥१२॥

गालव! इसके रूप-सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर देवता, मनुष्य तथा असुर सभी लोग सदा इसे पानेकी अभिलाषा रखते हैं, अतः आप मेरी इस पुत्रीको ही ग्रहण कीजिये॥१२॥

अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम्।
किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते॥१३॥

इसके शुल्कके रूपमें राजालोग निश्चय ही अपना राज्य भी आपको दे देंगे, फिर आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ोंकी तो बात ही क्या है?॥१३॥

स भवान् प्रतिगृह्णातु ममैतां माधवीं सुताम्।
अहं दौहित्रवान् स्यां वै वर एष मम प्रभो॥१४॥

अब प्रभो ! आप मेरी इस पुत्री माधवीको ग्रहण करें और मुझे यह वर दें कि मैं दौहित्रवान् (नातियोंसे युक्त) होऊँ ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ।
पुनर्दास्याम इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५ ॥

तब गरुड़सहित गालवने उस कन्याको लेकर यह कहकर कि हम फिर कभी दिलेंगे (राजाको लौटा देंगे), मुनि कन्याके साथ वहाँसे चल दिये ॥ १५ ॥

उपलप्स्यामिति द्वारमश्वानामिति चिन्तयन् ।
[illegible] ॥ १६ ॥

[illegible] ॥ १६ ॥

गते पन्नगराजे तु गालवः सह कन्यया ।
चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुल्कतोऽगमत् ॥ १७ ॥

पक्षिराज गरुड़के चले जानेपर गालव उस कन्याके साथ यह सोचते हुए चल दिये कि राजाओंमेंसे कौन ऐसा नरेश है, जो इस कन्याका शुल्क देनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥

सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम् ।
अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ १८ ॥

[illegible] विचार करके अयोध्यामें इक्ष्वाकुवंशी [illegible] महापराक्रमी हर्यश्वके पास गये, जो चतुरङ्गिणी सेनासे सम्पन्न थे ॥ १८ ॥

कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम् ।
प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् ॥ १९ ॥

[illegible] और सैनिकबल—इनसे सम्पन्न [illegible] प्रजाको प्रिय थे। ब्राह्मणोंके प्रति [illegible] अधिक प्रेम था। वे प्रजावर्गकी हितकी इच्छा रखते [illegible] उनका मन भोगोंसे विरक्त हो चला था। वे उत्तम [illegible] हुए थे ॥ १९ ॥

तमुपागम्य विप्रः स हर्यश्वं गालवोऽब्रवीत् ।
कन्येयं मम राजेन्द्र प्रसवैः कुलवर्धिनी ॥ २० ॥
इयं शुल्केन भार्यार्थं हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् ।
शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा सम्प्रधार्यताम् ॥ २१ ॥

[illegible] विप्रवर गालवने [illegible] महाराज ! मेरी यह कन्या [illegible] संतानोंद्वारा वंशकी वृद्धि करनेवाली है। [illegible] शुल्क देकर इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करें। हर्यश्व ! मैं तुम्हें पहले इसका शुल्क बताऊँगा, उसे सुनकर तुम अपने कर्तव्यका निश्चय करो ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमोऽध्याय

हर्यश्वका दो सौ श्यामकर्ण घोड़े देकर ययातिकन्याके गर्भसे वसुमना नामक पुत्र उत्पन्न करना और गालवका इस कन्याके साथ वहाँसे प्रस्थान

नारद उवाच

हर्यश्वस्त्वब्रवीद् राजा विचिन्त्य बहुधा ततः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ॥ १ ॥
उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु ।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर नृपश्रेष्ठ राजा हर्यश्वने [illegible] उसके विषयमें बहुत देर विचार करके संतानकी [illegible] इच्छासे गरम गरम लम्बी साँस लेकर मुनिसे इस प्रकार कहा—द्विजश्रेष्ठ ! इस कन्याके [illegible] अङ्ग जो ऊँचे होने चाहिये, ऊँचे हैं। सात अङ्ग जो सूक्ष्म होने चाहिये, सूक्ष्म हैं। तीन अङ्ग जो गम्भीर होने चाहिये, गम्भीर हैं तथा इसके पाँच अङ्ग रक्तवर्णके हैं ॥ १-२ ॥

(श्रोण्यौ ललाटमूरू च घ्राणं चेति षडुन्नतम् ।
सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि केशरोमनखत्वचः ॥
स्वरः सत्त्वं च नाभिश्च त्रिगम्भीरं प्रचक्षते ।
पाणिपादतले रक्ते नेत्रान्तौ च नखानि च ॥)

दो नितम्ब, दो [illegible], ललाट और नासिका—ये छः अङ्ग [illegible] हैं। अङ्गुलियोंके पर्व, केश, रोम, नख और त्वचा—ये पाँच अङ्ग सूक्ष्म हैं। स्वर, अन्तःकरण तथा नाभि—ये तीन गम्भीर कहे जाते हैं तथा हथेली, पैरोंके तलवे, [illegible] [illegible] और नख—ये पाँच अङ्ग [illegible] हैं ॥

बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना ।
बहुलक्षणसम्पन्ना बहुप्रसवधारिणी ॥ ३ ॥

यह बहुतसे देवताओं तथा असुरोंके लिये भी दर्शनीय है। इसे गान्धर्वविद्या (संगीत) का भी अच्छा ज्ञान है। यह बहुतसे शुभ लक्षणोंसे सुशोभित तथा अनेक संतानों को जन्म देनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥

समर्थय जनयितुं चक्रवर्तिनमात्मजम्।
वृणु शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विभवं मम ॥ ४ ॥

विप्रवर ! आपकी यह कन्या चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ है, अतः आप मेरे वैभवको देखते हुए इसका लिये समुचित शुल्क बताइये ॥ ४ ॥

गालव उवाच

एकतः श्यामकर्णानां शतान्यष्टौ ददस्व मे।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम् ॥ ५ ॥
ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा।
अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना ॥ ६ ॥

गालवने कहा—राजन् ! आप मुझे अच्छे देश और अच्छी जातिमें उत्पन्न हुए पुष्ट शरीरवाले आठ सौ ऐसे घोड़े प्रदान कीजिये, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे विभूषित हों तथा उनके कान एक ओरसे श्यामवर्णके हों। यह शुभलक्षणा विशाललोचना कन्या अग्निकी उत्पत्तिकी कारणभूत अरणीकी भाँति आपके तेजस्वी पुत्रोंकी जननी होगी ॥ ५-६ ॥

नारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राजा हर्यश्वः काममोहितः।
उवाच गालवं दीनो राजर्षिर्ऋषिसत्तमम् ॥ ७ ॥

नारदजी कहते हैं—यह वचन सुनकर काममोहित हुए राजर्षि महाराज हर्यश्व मुनिश्रेष्ठ गालवसे अत्यन्त दीन होकर बोले— ॥ ७ ॥

द्वे मे शते संनिहिते हयानां यद्विधास्तव।
एष्टव्याः शतशस्त्वन्ये चरन्ति मम वाजिनः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन् ! आपको जैसे घोड़े लेने अभीष्ट हैं, वैसे तो मेरे यहाँ इन दिनों दो ही सौ घोड़े मौजूद हैं, किंतु दूसरी जातिके सैकड़ों घोड़े मेरे यहाँ विचरते हैं ॥ ८ ॥

सोऽहमेकमपत्यं वै जनयिष्यामि गालव।
अस्यामेतं भवान् कामं सम्पादयतु मे वरम् ॥ ९ ॥

अतः गालव ! मैं इस कन्यासे केवल एक संतान उत्पन्न करूँगा। आप मेरे इस श्रेष्ठ मनोरथको पूर्ण करें ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा कन्या गालवं वाक्यमब्रवीत्।
मम दत्तो वरः कश्चित् केनचिद् ब्रह्मवादिना ॥ १० ॥
प्रसूत्यन्ते प्रसूत्यन्ते कन्यैव त्वं भविष्यसि।
स त्वं ददस्व मां राज्ञे प्रतिगृह्य हयोत्तमान् ॥ ११ ॥

यह सुनकर उस कन्याने महर्षि गालवसे कहा—‘मुने ! मुझे किन्हीं वेदवादी महात्माने यह वर दे दिया था कि तुम प्रत्येक प्रसवके अन्तमें फिर कन्या ही हो जाओगी। अतः आप दो सौ उत्तम घोड़े लेकर मुझे राजाको सौंप दें ॥ १०-११ ॥

नृपेभ्यो हि चतुर्भ्यस्ते पूर्णान्यष्टौ शतानि मे।
भविष्यन्ति तथा पुत्रा मम चत्वार एव च ॥ १२ ॥

इस प्रकार चार राजाओंसे दो-दो सौ घोड़े लेनेसे आपके आठ सौ घोड़े पूरे हो जायँगे और मेरे भी चार ही पुत्र होंगे ॥ १२ ॥

क्रियतां मम संहारो गुर्वर्थं द्विजसत्तम।
एषा तावन्मम प्रज्ञा यथा वा मन्यसे द्विज ॥ १३ ॥

विप्रवर ! इस तरह आप गुरुदक्षिणाके लिये धनका संग्रह करें। यही मेरी मान्यता है। फिर आप जैसा ठीक समझें, करें ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु स मुनिः कन्यया गालवस्तदा।
हर्यश्वं पृथिवीपालमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

कन्याके ऐसा कहनेपर उस समय गालव मुनिने भूपाल हर्यश्वसे यह बात कही ॥ १४ ॥

इयं कन्या नरश्रेष्ठ हर्यश्व प्रतिगृह्यताम्।
चतुर्भागेन शुल्कस्य जनयस्वैकमात्मजम् ॥ १५ ॥

नरश्रेष्ठ हर्यश्व ! नियत शुल्कका चौथाई भाग देकर आप इस कन्याको ग्रहण करें और इसके गर्भसे केवल एक पुत्र उत्पन्न करें ॥ १५ ॥

प्रतिगृह्य स तां कन्यां गालवं प्रतिनन्द्य च।
समये देशकाले च लब्धवान् सुतमीप्सितम् ॥ १६ ॥

तब राजाने गालव मुनिका अभिनन्दन करके उस कन्याको ग्रहण किया और उचित देश-कालमें उसके द्वारा मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त किया ॥ १६ ॥

ततो वसुमना नाम वसुभ्यो वसुमत्तरः।
वसुप्रख्यो नरपतिः स बभूव वसुप्रदः ॥ १७ ॥

तदनन्तर वसुमना नामसे प्रसिद्ध वह पुत्र वसुओंके समान कान्तिमान्, उनसे भी अधिक धनवान्, वसुओंके समान पराक्रमी तथा धनदाता नरेश हुआ ॥ १७ ॥

अथ काले पुनर्धीमान् गालवः प्रत्युपस्थितः।
उपसंगम्य चोवाच हर्यश्वं प्रीतमानसम् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उचित समयपर बुद्धिमान् गालव पुनः वहाँ उपस्थित हुए और प्रसन्नचित्त राजा हर्यश्वसे मिलकर इस प्रकार बोले— ॥ १८ ॥

जातो नृप सुतस्तेऽयं बालो भास्करसंनिभः।
कालो गन्तुं नरश्रेष्ठ भिक्षार्थमपरं नृपम् ॥ १९ ॥

नरश्रेष्ठ नरेश ! आपको यह सूर्यके समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो गया। अब इस कन्याके साथ भिक्षाकी याचना करनेके लिये दूसरे राजाके यहाँ जानेका अवसर उपस्थित हुआ है ॥ १९ ॥

हर्यश्वः सत्यवचने स्थितः स्थित्वा च पौरुषे।
दुर्लभत्वात्प्रसवानां च प्रददौ माधवीं पुनः ॥ २० ॥

राजा हर्यश्व सत्य वचनपर दृढ़ रहनेवाले थे। उन्होंने पुरुषार्थी होकर भी छः सौ श्यामकर्ण घोड़े दुर्लभ होनेके कारण माधवीको पुनः लौटा दिया ॥ २० ॥

माधवी च पुनर्दीप्तां परित्यज्य नृपश्रियम्।
कुमारी कामतो भूत्वा गालवं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ २१ ॥

माधवी पुनः इच्छानुसार कुमारी होकर अपनी उस प्रकाशमान राजलक्ष्मीका परित्याग करके गालव मुनिके पीछे-पीछे चली गयी ॥ २१ ॥

त्वय्येव तावत् तिष्ठन्तु हया इत्युक्तवान् द्विजः।
प्रययौ कन्यया सार्धं दिवोदासं प्रजेश्वरम् ॥ २२ ॥

जाते समय ब्राह्मणने राजा हर्यश्वसे कहा—'महाराज! आपके दिये हुए दो सौ श्यामकर्ण घोड़े अभी आपके ही पास धरोहरके रूपमें रहें।' ऐसा कहकर गालव मुनि उस राजकन्याके साथ राजा दिवोदासके यहाँ गये ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल २५ श्लोक हैं)

सप्तदशाधिकशततमोऽध्याय

दिवोदासका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न करना

गालव उवाच

महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ॥ १ ॥
तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः।
धार्मिकः संयमे युक्तः सत्ये चैव जनेश्वरः ॥ २ ॥

मार्गमें गालवने राजकन्या माधवीसे कहा—भद्रे! काशीके अधिपति भीमसेनकुमार महापराक्रमी राजा दिवोदास महातेजस्वी एवं विख्यात भूमिपाल हैं। उन्हींके पास हम दोनों चलें। तुम धीरे-धीरे चली आओ। मनमें किसी प्रकारका शोक न करो। राजा दिवोदास धर्मात्मा, संयमी तथा सत्यपरायण हैं ॥ १-२ ॥

नारद उवाच

तमुपागम्य स मुनिर्न्यायतस्तेन सत्कृतः।
गालवः प्रसवस्यार्थे तं नृपं प्रत्यचोदयत् ॥ ३ ॥

नारदजी कहते हैं—राजा दिवोदासके पास जानेपर गालव मुनिका उनके द्वारा यथोचित सत्कार किया गया। तदनन्तर गालवने पूर्ववत् उन्हें भी शुल्क देकर उस कन्यासे एक संतान उत्पन्न करनेके लिये प्रेरित किया ॥ ३ ॥

दिवोदास उवाच

श्रुतमेतन्मया पूर्वं किमुक्त्वा विस्तरं द्विज।
काङ्क्षितो हि मयैषोऽर्थः श्रुत्वैव द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

दिवोदास बोले—ब्रह्मन्! यह सब वृत्तान्त मैंने पहलेसे ही सुन रखा है। अब इसे विस्तारपूर्वक कहनेकी क्या आवश्यकता है? द्विजश्रेष्ठ! आपके प्रस्तावको सुनते ही मेरे मनमें यह पुत्रोत्पादनकी अभिलाषा जाग उठी है ॥ ४ ॥

एतच्च मे बहुमतं यदुत्सृज्य नराधिपान्।
मामेवमुपयातोऽसि भावि चैतदसंशयम् ॥ ५ ॥

यह मेरे लिये बड़े सम्मानकी बात है कि आप दूसरे राजाओंको छोड़कर मेरे पास इस कार्यके लिये प्रार्थी होकर आये हैं। निःसंदेह ऐसा ही भावी है ॥ ५ ॥

स एव विभवोऽस्माकमश्वानामपि गालव।
अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि पार्थिवम् ॥ ६ ॥

गालव! मेरे पास भी दो ही सौ श्यामकर्ण घोड़े हैं; अतः मैं भी इसके गर्भसे एक ही राजकुमारको उत्पन्न करूँगा ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा द्विजश्रेष्ठः प्रादात् कन्यां महीपतेः।
विधिपूर्वं च तां राजा कन्यां प्रतिगृहीतवान् ॥ ७ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर विप्रवर गालवने वह कन्या राजाको दे दी। राजाने भी उसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ७ ॥

रेमे स तस्यां राजर्षिः प्रभावत्यां यथा रविः।
स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां स वासवः ॥ ८ ॥
यथा चन्द्रश्च रोहिण्यां यथा धूमोर्णया यमः।
वरुणश्च यथा गौर्यां यथा चर्द्ध्यां धनेश्वरः ॥ ९ ॥
यथा नारायणो लक्ष्म्यां जाह्नव्यां च यथोदधिः।
यथा रुद्रश्च रुद्राण्यां यथा वेद्यां पितामहः ॥ १० ॥
अदृश्यन्त्यां च वासिष्ठो वसिष्ठश्चाक्षमालया।
च्यवनश्च सुकन्यायां पुलस्त्यः सन्ध्यया यथा ॥ ११ ॥
अगस्त्यश्चापि वैदर्भ्यां सावित्र्यां सत्यवान् यथा।
यथा भृगुः पुलोमायामदित्यां कश्यपो यथा ॥ १२ ॥
रेणुकायां यथाऽऽर्चीको हैमवत्यां च कौशिकः।
बृहस्पतिश्च तारायां शुक्रश्च शतपर्वया ॥ १३ ॥

यथा सूर्यां सूर्यपतेरर्कस्य च सुवर्चला
ऋचीकः सत्यवत्यां च सरस्वत्यां यथा मनुः ॥ १४ ॥
शकुन्तलायां दुष्यन्तो धृत्यां धर्मश्च शाश्वतः
दमयन्त्यां नलश्चैव सत्यवत्यां च नारदः ॥ १५ ॥
जरत्कारुर्जरत्कार्वां पुलस्त्यश्च प्रतीच्यया
मेनकायां यथोर्णायुस्तुम्बुरुश्चैव रम्भया ॥ १६ ॥
वासुकिः शतशीर्षायां कुमार्यां च धनंजयः
वैदेह्यां च यथा रामो रुक्मिण्यां च जनार्दनः ॥ १७ ॥
तथा तु रममाणस्य दिवोदासस्य भूपतेः
माधवी जनयामास पुत्रमेकं प्रतर्दनम् ॥ १८ ॥

राजर्षि दिवोदास माधवीमें अनुरक्त होकर उसके साथ रमण करते रहे। जैसे सूर्य प्रभावतीके, अग्नि स्वाहाके, देवेन्द्र शचीके, चन्द्रमा रोहिणीके, यमराज धूमोर्णाके, वरुण गौरीके, कुबेर ऋद्धिके, नारायण लक्ष्मीके, समुद्र गङ्गाके, महादेव रुद्राणीके, पितामह ब्रह्मा वेदीके, वसिष्ठनन्दन शक्ति अदृश्यन्तीके, वसिष्ठ अक्षमालाके, च्यवन सुकन्याके, पुलस्त्य सन्ध्याके, अगस्त्य विदर्भकुमारी लोपामुद्राके, सत्यवान् सावित्रीके, भृगु पुलोमाके, कश्यप अदितिके, जमदग्नि रेणुकाके, कुशिकवंशी विश्वामित्र हैमवतीके, बृहस्पति ताराके, शुक्र शतपर्वाके, भूमिपति भूमिके, पुरूरवा उर्वशीके, ऋचीक सत्यवतीके, मनु सरस्वतीके, दुष्यन्त शकुन्तलाके, सनातन धर्मदेव धृतिके, नल दमयन्तीके, नारद सत्यवतीके, जरत्कारु मुनि नागकन्या जरत्कारुके, पुलस्त्य प्रतीच्याके, ऊर्णायु मेनकाके, तुम्बुरु रम्भाके, वासुकि शतशीर्षाके, धनंजय कुमारीके, श्रीरामचन्द्रजी विदेहनन्दिनी सीताके तथा भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीदेवीके साथ रमण करते हैं, उसी प्रकार रमण करते हुए राजा दिवोदासके वीर्यसे माधवीने प्रतर्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।

अथाजगाम भगवान् दिवोदासं स गालवः
समये समनुप्राप्ते वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

तदनन्तर समय आनेपर भगवान् गालव मुनि पुनः दिवोदासके पास आये और उनसे इस प्रकार बोले—

निर्यातयतु मे कन्यां भवांस्तिष्ठन्तु वाजिनः
यावदन्यत्र गच्छामि शुल्कार्थं पृथिवीपते ॥ २० ॥

पृथ्वीनाथ! आप मुझे राजकन्याको लौटा दीजिये। आपके दिये हुए घोड़े अभी आपके ही पास रहें। मैं इस कन्याके शुल्क प्राप्त करनेके लिये अन्यत्र जा रहा हूँ।

दिवोदासोऽथ धर्मात्मा समये गालवस्य ताम्
कन्यां निर्यातयामास स्थितः सत्ये महीपतिः ॥ २१ ॥

धर्मात्मा राजा दिवोदास अपनी की हुई सत्य प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेवाले थे; अतः उन्होंने गालवको वह कन्या लौटा दी।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

उशीनरका ययातिकन्या माधवीके गर्भसे शिबि नामक पुत्र उत्पन्न करना, गालवका उस कन्याको साथ लेकर जाना और मार्गमें गरुडका दर्शन करना

नारद उवाच

तथैव तां श्रियं त्यक्त्वा कन्या भूत्वा यशस्विनी
माधवी गालवं विप्रमभ्ययात् सत्यसंगरा ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर वह यशस्विनी एवं सत्यप्रतिज्ञ राजकन्या माधवी स्वतः कन्याभावको प्राप्त हो उस राजलक्ष्मीका त्याग करके विप्रवर गालवके साथ चली गयी।

गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः
जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम् ॥ २ ॥

गालवका मन अपने कार्यकी सिद्धिके चिन्तनमें लगा था। उन्होंने मन-ही-मन कुछ सोचते हुए राजा उशीनरसे मिलनेके लिये भोजनगरकी यात्रा की।

तमुवाचाथ गत्वा स नृपतिं सत्यविक्रमम्
इयं कन्या सुतौ द्वौ ते जनयिष्यति पार्थिवौ ॥ ३ ॥

उन सत्यपराक्रमी नरेशके पास जाकर गालवने उनसे कहा—'राजन्! यह कन्या आपके लिये दो राजोचित पुत्र उत्पन्न करेगी।

अस्यां भवानवाप्तार्थो भविता प्रेत्य चेह च
सोमार्कप्रतिसंकाशौ जनयित्वा सुतौ नृप ॥ ४ ॥

नरेश्वर! इसके गर्भसे सूर्य और चन्द्रमाके समान दो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करके आप लोक और परलोकमें भी पूर्णकाम होंगे ॥ ४ ॥

शुल्कं तु सर्वधर्मज्ञ हयानां चन्द्रवर्चसाम्
एकतःश्यामकर्णानां देयं मह्यं चतुःशतम् ॥ ५ ॥

उनका कहना है कि आप मुझसे [illegible] कन्याके शुल्कके रूपमें मुझे ऐसे चार सौ घोड़े प्रदान करें जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित तथा एक ओरसे श्यामवर्णके कानोंवाले हों ॥

गुणवांश्चाप्यहं [illegible] कृपणमतिश्च मे
यदि शक्यं महाराज क्रियतामविचारितम् ॥

मैंने गुरुदक्षिणा देनेके लिये यह उद्योग आरम्भ किया है अन्यथा मुझे इन घोड़ोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। महाराज यदि आपके लिये यह शुल्क देना सम्भव हो तो दें अन्यथा विचार करके कार्य करें कीजिये ॥

अनपत्योऽसि राजर्षे पुत्रौ जनय पार्थिव
पितरं पुत्रप्लवेन [illegible] तारय ॥

[illegible] में इनसे [illegible] दो पुत्र उत्पन्न करें और पुत्ररूपी नौकाद्वारा पितरोंका तथा अपना भी उद्धार कीजिये ॥

न पुत्रफलभोक्ता हि राजर्षे पात्यते दिवः
न याति नरकं घोरं यथा गच्छन्त्यनात्मजाः ॥

पुत्रजनित फलका उपभोग करनेवाला मनुष्य भी स्वर्गसे नीचे नहीं गिराया जाता और वह [illegible] नरकमें पड़ता है [illegible] प्रकार वह ही [illegible]

एतच्चान्यच्च विविधं श्रुत्वा गालवभाषितम्
उशीनरः प्रतिवचो ददौ तस्य नराधिप ॥

गालवकी कही हुई [illegible] भी [illegible] सुनकर [illegible] उशीनर [illegible] उत्तर दिया ॥

श्रुतवानस्मि ते वाक्यं यथा वदसि गालव
विधिस्तु बलवान् ब्रह्मन् प्रवणं हि मनो मम ॥

[illegible] कहते हैं [illegible] मेरा [illegible] इस [illegible] उत्सुक [illegible] है ॥

शते द्वे तु ममाश्वानामीदृशानां द्विजोत्तम
इतरेषां सहस्राणि सुबहूनि चरन्ति मे ॥

द्विजश्रेष्ठ आपको [illegible] [illegible] दो ही सौ हैं [illegible] तो यहाँ मेरे [illegible] विचरते हैं ॥

अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि गालव
पुत्रं द्विज गतं मार्गं गमिष्यामि परैरहम् ॥

[illegible] ब्रह्मर्षि गालव मैं भी इस कन्याके गर्भसे एक ही पुत्र उत्पन्न करूँगा। दूसरे लोग [illegible] [illegible] हैं उसी पथपर मैं भी चलूँगा ॥

मूल्येनापि समं कुर्यां तवाहं द्विजसत्तम
पौरजानपदार्थं तु ममार्थो नात्मभोगतः ॥ ३ ॥

द्विजवर मैं घोड़ोंका मूल्य देकर आपका सारा शुल्क चुका दूँ यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि मेरा धन पुरवासियों तथा जनपदनिवासियोंके लिये है अपने उपभोगके लिये नहीं ॥

कामतो हि धनं राजा पारक्यं यः प्रयच्छति
न स धर्मेण धर्मात्मन् युज्यते यशसा न च ॥ ४ ॥

धर्मात्मन् जो राजा पराये धनका अपनी इच्छाके अनुसार दान करता है उसे धर्म और यशकी प्राप्ति नहीं होती है ॥

सोऽहं प्रतिग्रहीष्यामि ददात्वेतां भवान् मम
कुमारीं देवगर्भाभामेकपुत्रभवाय मे ॥ ५ ॥

अतः आप देवकन्याके समान सुन्दरी इस राजकुमारीको [illegible] एक पुत्र उत्पन्न करनेके लिये मुझे दें। मैं इसे ग्रहण करूँगा ॥

तथा तु बहुधा कन्यामुक्तवन्तं नराधिपम्
उशीनरं द्विजश्रेष्ठो गालवः प्रत्यपूजयत् ॥ ६ ॥

[illegible] भाँति कन्याके विषयमें बहुत-सी बातें कहनेवाले राजा उशीनरकी विप्रवर गालवने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

उशीनरं प्रतिग्राह्य गालवः प्रययौ वनम्
रेमे स तां समासाद्य कृतपुण्य इव श्रियम् ॥ ७ ॥

उशीनरको वह कन्या सौंपकर गालव मुनि वनको चले गये। जैसे पुण्यात्मा पुरुष लक्ष्मीका उपभोग करे उसी प्रकार उस कन्याको पाकर राजा उशीनर उसके साथ रमण करने लगे ॥

कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च
उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च ॥
हर्म्येषु रम्येषु प्रासादशिखरेषु च
वातायनविमानेषु तथा गर्भगृहेषु च ॥ ९ ॥

उन्होंने पर्वतोंकी कन्दरा ओंमें नदियोंके सुरम्य तटोंपर झरनोंके आस-पास विचित्र उद्यानोंमें वनों और उपवनोंमें रमणीय महलोंकी अट्टालिकाओंपर वायुके मार्गमें [illegible] विमानोंपर तथा भूमिके भीतर बने हुए गर्भगृहोंमें माधवीके साथ विहार किया ॥

ततोऽस्य समये जज्ञे पुत्रो बालरविप्रभः
शिबिर्नाम्नाभिविख्यातो यः स पार्थिवसत्तमः ॥ १० ॥

तदनन्तर यथासमय उसके गर्भसे राजाको एक पुत्र प्राप्त हुआ जो बालसूर्यके समान तेजस्वी था। वही बड़ा

होनेपर तुम्हें यह महाराज दिविके नामसे विख्यात हुआ
उपस्थाय स तं विप्रा गालवस्य प्रतिगृह्य च
कन्यां प्रयातस्तां राजन् यथावद् विमतागतम्

राजन्! तत्पश्चात् गालव राजाके दरबारमें उपस्थित हुए और उस कन्याको वापस लेकर वहाँसे चल दिये। मार्गमें उन्हें विनतानन्दन गरुड़ दिखायी दिये

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरितविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

गालवका छः सौ घोड़ोंके साथ माधवीको विश्वामित्रजीकी सेवामें देना और उनके द्वारा उसके गर्भसे अष्टक नामक पुत्रकी उत्पत्ति होनेके बाद उस कन्याको ययातिके यहाँ लौटा देना

नारद उवाच

गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत्।
दिष्ट्या कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज॥१॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! विनतानन्दन गरुड़ने गालव मुनिसे हँसते हुए कहा—'ब्रह्मन्! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं तुम्हें यहाँ कृतार्थ देख रहा हूँ'॥१॥

गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम्।
चतुर्भागावशिष्टं तदाचख्यौ कार्यमस्य हि॥२॥

गरुड़की कही हुई यह बात सुनकर गालव बोले—'अभी गुरुदक्षिणाका एक चौथाई भाग बाकी रह गया है, जिसे मुझे पूरा करना है'॥२॥

सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं वदतां वरः।
प्रयत्नस्ते न कर्तव्यो नैष सम्पत्स्यते तव॥३॥

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ गरुड़ने गालवसे कहा—'अब तुम्हें इसके लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि तुम्हारा यह मनोरथ पूरा नहीं होगा॥३॥

पुरा हि कान्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम्।
भार्यार्थेऽवरयत् कन्यामृचीकस्तेन भाषितः॥४॥

पूर्वकालकी बात है, कान्यकुब्ज देशमें राजा गाधिकी कुमारी पुत्री सत्यवतीको अपनी पत्नी बनानेके लिये ऋचीक मुनिने राजासे उसे माँगा। तब राजाने ऋचीकसे कहा—॥४॥

एकतःश्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम्।
भगवन् दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव॥५॥
ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्यालयं गतः।
अश्वतीर्थे हयाँल्लब्ध्वा दत्तवान् पार्थिवाय वै॥६॥

'भगवन्! मुझे कन्याके शुल्करूपमें एक हजार ऐसे घोड़े दीजिये, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हों तथा जिनके एक ओरके कान श्याम वर्णके हों।' गालव! तब ऋचीक मुनि 'तथास्तु' कहकर वरुणके लोकमें गये और अश्वतीर्थमें वे घोड़े प्राप्त करके उन्होंने राजाको दे दिये॥५-६॥

इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु।
तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्तास्ते पार्थिवैस्तदा॥७॥

राजाने पुण्डरीक नामक यज्ञ करके वे सभी घोड़े ब्राह्मणोंको दक्षिणारूपमें बाँट दिये। उन ब्राह्मणोंसे उन राजाओंने दो-दो सौ घोड़े खरीदकर अपने पास रख लिये॥७॥

अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम।
नीयमानानि सन्तारे हृतान्यासन् वितस्तया॥८॥

द्विजश्रेष्ठ! उस समय एक बार नदीको पार करते समय चार सौ घोड़े, जो पार ले जाये जा रहे थे, वितस्ता नदीकी धारामें बह गये॥८॥

एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तुं गालव कर्हिचित्।
इमामश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय॥९॥
विश्वामित्राय धर्मात्मन् षड्भिरश्वशतैः सह।
ततोऽसि गतसम्मोहः कृतकृत्यो द्विजोत्तम॥१०॥

धर्मात्मा गालव! इस प्रकार इस देशमें छः सौ घोड़ोंके सिवा दूसरे घोड़े अप्राप्य हैं, अतः उन्हें कहीं भी पाना असम्भव है। मेरी राय यह है कि शेष दो सौ घोड़ोंके बदले यह कन्या ही विश्वामित्रजीको समर्पित कर दो। धर्मात्मन्! इन छः सौ घोड़ोंके साथ विश्वामित्रजीकी सेवामें इस कन्याको ही दे दो। द्विजश्रेष्ठ! ऐसा करनेसे तुम्हारी सारी घबराहट दूर हो जायगी और तुम सर्वथा कृतकृत्य हो जाओगे'॥९-१०॥

गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः।
आदायाश्वांश्च कन्यां च विश्वामित्रमुपागमत्॥११॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर गालव गरुड़के साथ वे छः सौ घोड़े और वह कन्या लेकर विश्वामित्रजीके पास आये॥११॥

अश्वानां काङ्क्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै।
शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम्॥१२॥

अब उन्होंने कहा—'गुरुदेव! आप जैसे चाहते थे, वैसे ही ये छः सौ घोड़े आपकी सेवामें प्रस्तुत हैं और शेष दो सौ घोड़ोंके बदले आप इस कन्याको ग्रहण करें॥ २॥

गत्वा राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकास्त्रयः।
चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तमम्॥ ३॥

'राजर्षियोंने इसके गर्भसे तीन धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किये हैं। अब आप भी इससे एक नरश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करें, जो इसकी चौथी संतान होगी॥ ३॥

पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु ते।
भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्यां यथासुखम्॥ ४॥

'इस प्रकार आपके आठ सौ घोड़ोंकी संख्या पूरी हो जाय और मैं आपसे उऋण होकर सुखपूर्वक तपस्या करूँ, ऐसी कृपा कीजिये'॥ ४॥

विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा।
कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद् वचः॥ ५॥

विश्वामित्रने पक्षिराज गरुड़सहित गालवको देखकर तथा उस परम सुन्दरी राजकन्यापर दृष्टिपात करके उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव।
पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः॥ ६॥

'गालव! तुमने पहले ही इसे यहाँ क्यों नहीं दे दिया, जिससे मेरे ही वंशका भार बढ़ानेवाले चार पुत्र हो जाते॥ ६॥

प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै।
अश्वाश्चाश्रममासाद्य चरन्तु मम सर्वशः॥ ७॥

'अच्छा, अब मैं एक पुत्ररूपी फलकी प्राप्तिके लिये तुम्हारी इस कन्याको ग्रहण करता हूँ। ये घोड़े मेरे आश्रममें आकर सब ओर चरें'॥ ७॥

स तया रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः।
आत्मजं जनयामास माधवीपुत्रमष्टकम्॥ ८॥

इस प्रकार महातेजस्वी विश्वामित्र मुनिने उसके साथ रमण करते हुए यथासमय उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया। माधवीके उस पुत्रका नाम अष्टक था॥ ८॥

जातमात्रं सुतं तं च विश्वामित्रो महामुनिः।
संयोज्यार्थैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत्॥ ९॥

उस पुत्रके उत्पन्न होते ही महामुनि विश्वामित्रने उसे धर्म, अर्थ तथा उन अश्वोंसे सम्पन्न कर दिया॥ ९॥

अथाष्टकः पुरं प्रायात् तदा सोमपुरप्रभम्।
निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ॥ १०॥

तदनन्तर अष्टक चन्द्रपुरीके समान प्रकाशित होनेवाली विश्वामित्रकी राजधानीमें गया और विश्वामित्र अपने शिष्य गालवको वह कन्या लौटाकर वनमें चले गये॥ १०॥

गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम्।
मनसाऽतिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह॥ ११॥
जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथापरः।
सत्यधर्मरतश्चान्यो यज्वा चापि तथापरः॥ १२॥
तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः।
चत्वारश्चैव राजानस्तथाहं च सुमध्यमे॥ १३॥

गरुड़सहित गालव भी गुरुदक्षिणा देकर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और राजकन्या माधवीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरी! तुम्हारे गर्भसे पहला पुत्र दानपति, दूसरा शूरवीर, तीसरा सत्य और धर्ममें तत्पर तथा चौथा यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला हुआ है। सुमध्यमे! तुमने इन पुत्रोंके द्वारा अपने पिताका तो उद्धार किया ही है, उन चार राजाओंका भी उद्धार कर दिया है। अतः अब तुम्हें जाओ'॥ ११—१३॥

गालवस्त्वभ्यनुज्ञाय सुपर्णं पन्नगाशनम्।
पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह॥ १४॥

ऐसा कहकर गालवने गरुड़से आज्ञा ले उस राजकन्याको पुनः उसके पिता ययातिके यहाँ लौटाकर स्वयं भी वनको ही चले गये॥ १४॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ ११९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरितविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११९॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्याय

माधवीका वनमें जाकर तप करना तथा ययातिका स्वर्गमें जाकर सुखभोगके पश्चात् मोहवश तेजोहीन होना

नारद उवाच

स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम्।
उपगम्याश्रमपदं गङ्गायमुनसंगमे॥ १॥

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर राजा ययातिने पुनः माधवीके स्वयंवरका विचार करके गङ्गा-यमुनाके संगमपर बने हुए अपने आश्रममें जाकर रहने लगे।

पृष्ठतोऽनुययौ ता रथमारोप्य माधवीम्
पूरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ॥ २ ॥

फिर हाथमें हार लिये बहिन माधवीको रथपर बिठाकर पूरु और यदु—ये दोनों भाई आश्रमपर गये ॥ २ ॥

नागयक्षमनुष्याणां गन्धर्वमृगपक्षिणाम्
शैलद्रुमवनौकानामासीत् तत्र समागमः ॥ ३ ॥

उस आश्रममें नाग, यक्ष, मनुष्य, गन्धर्व, पशु, पक्षी तथा पर्वत, वृक्ष और वनोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंका शुभागमन हुआ ॥ ३ ॥

नानापुरुषदेशानामीश्वरैश्च समाकुलम्
ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ॥ ४ ॥

प्रयागका वह वन अनेक जनपदोंके नरेशोंसे व्याप्त हो गया था। ब्रह्माजीके समान तेजस्वी महर्षियोंने उस वनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी
वरानुत्क्रम्य सर्वांस्तान् वरं वृतवती वनम् ॥ ५ ॥

उस समय जब माधवीको वर दिखाये जाने लगे, तब उस वरवर्णिनी कन्याने सारे वरोंको छोड़कर तपोवनको ही वर रूपमें वरण कर लिया ॥ ५ ॥

अवतीर्य रथात् कन्या नमस्कृत्य च बन्धुषु
उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ॥ ६ ॥

ययातिनन्दिनी कुमारी माधवी रथसे उतरकर अपने पिता, भाई आदि कुटुम्बियोंको नमस्कार करके पुण्य तपोवनमें चली गयी और वहाँ तपस्या करने लगी ॥ ६ ॥

उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा
आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥ ७ ॥

वह उपवासपूर्वक विविध प्रकारकी दीक्षाओं तथा नियमोंका पालन करती हुई अपने मनको राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित करके वनमें मृगोंके समान विचरने लगी ॥ ७ ॥

वैडूर्याङ्कुरकल्पानि मृदूनि हरितानि च
चरन्ती शष्पमुख्यानि तिक्तानि मधुराणि च ॥ ८ ॥
स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च
पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ॥ ९ ॥
वनेषु मृगराजेषु व्याघ्रविप्रोषितेषु च
दावाग्निविप्रमुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ॥ १० ॥
चरन्ती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी
चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्येण संवृता ॥ ११ ॥

वह उस समय माधवी वैदूर्यमणिके अंकुरोंके समान सुशोभित कोमल, चिकनी, हरी-हरी घास चरती, पवित्र नदियोंके शुद्ध, शीतल, निर्मल एवं सुस्वादु जल पीती और मृगोंके आवासभूत, व्याघ्ररहित एवं दावानलशून्य निर्जन वनोंमें मृगोंके साथ वनचारिणी मृगीकी भाँति विचरण करती थी। उसने ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक महान् धर्मका आचरण किया ॥ ८—११ ॥

ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः
बहुवर्षसहस्रायुरयुज्यत कालधर्मणा ॥ १२ ॥

राजा ययाति भी पूर्ववर्ती राजाओंके सदाचारका पालन करते हुए अनेक सहस्र वर्षोंकी आयु पूरी करके मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

पूरुर्यदुश्च द्वौ वंशौ वर्धमानौ नरोत्तमौ
ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः ॥ १३ ॥

उनके पुत्रोंमेंसे दो पुत्र नरश्रेष्ठ पूरु और यदु उस कुलकी अभ्युदयशाली थे। उन्हीं दोनोंके द्वारा नहुषपुत्र ययाति इस लोक और परलोकमें भी प्रतिष्ठित हुए ॥ १३ ॥

महीयते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः
महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्र्यफलभुग् विभुः ॥ १४ ॥

नरेश्वर महाराज ययाति महर्षियोंके समान पुण्यात्मा एवं तपस्वी थे। वे स्वर्गमें जाकर वहाँके श्रेष्ठ फलका उपभोग करने लगे ॥ १४ ॥

बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते
राजर्षिषु निषण्णेषु महीयस्सु महर्षिषु ॥ १५ ॥
अवमेने नरान् सर्वान् देवानृषिगणांस्तथा
ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १६ ॥

इस प्रकार वहाँ अनेक गुणोंसे युक्त कई हजार वर्षोंका समय व्यतीत हो गया। ययातिका चित्त अपना स्वर्गीय वैभव देखकर वहाँ आश्चर्यचकित हो उठा। उनकी बुद्धिपर मोह छा गया और वे महान् समृद्धिशाली महान् राजर्षियोंके अपने समीप बैठे होनेपर भी सम्पूर्ण देवताओं, मनुष्यों तथा महर्षियोंकी भी अवहेलना करने लगे ॥ १५-१६ ॥

ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः
ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ॥ १७ ॥

तदनन्तर बलसूदन इन्द्रदेवको ययातिके इस अपराधका पता लग गया। वे सम्पूर्ण राजर्षि भी उस समय ययातिको धिक्कारने लगे ॥ १७ ॥

विचारश्च समुत्पन्नो निरीक्ष्य नहुषात्मजम्
को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः ॥ १८ ॥

नहुषपुत्र ययातिको देखकर स्वर्गवासियोंमें यह विचार खड़ा हो गया कि यह कौन है? किस राजाका पुत्र है? और यहाँ स्वर्गमें कैसे आ गया? ॥ १८ ॥

कर्मणा केन सिद्धोऽयं क्व वानेन तपश्चितम्
कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽप्युत ॥ १९ ॥

इसे किन कर्मोंसे सिद्धि प्राप्त हुई है? इसने कहाँ तपस्या की है? स्वर्गमें किस प्रकार इसे जाना जाता है अथवा कौन इसको जानता है?

एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः।
दृष्ट्वा पप्रच्छुरन्योन्यं ययातिं नृपतिं प्रति॥ २०॥

इस प्रकार विचार करते हुए स्वर्गवासी ययातिके विषयमें एक दूसरेसे और देखकर प्रश्न करने लगे।

विमानपालाः शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः।
पृष्टा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाब्रुवन्॥ २१॥

सैकड़ों विमानरक्षकों, स्वर्गके द्वारपालों तथा सिंहासनोंके रक्षकोंसे पूछा गया; किंतु सबने यही उत्तर दिया—'हम इन्हें नहीं जानते'॥ २१॥

सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाभ्यजानन्त तं नृपम्।
स मुहूर्तादथ नृपो हतौजा अभवत् तदा॥ २२॥

उन सबके ज्ञानपर पर्दा पड़ गया था, अतः वे उन राजाको नहीं पहचान सके। फिर तो दो ही घड़ीमें राजा ययातिका तेज नष्ट हो गया॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिमोहे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रके प्रसंगमें ययातिमोहविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२०॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय

ययातिका स्वर्गलोकसे पतन और उनके दौहित्रों, पुत्री तथा गालव मुनिका उन्हें पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचानेके लिये अपना अपना पुण्य उनके लिये उद्यत होना

नारद उवाच

अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः।
कम्पितेनैव मनसा धर्षितः शोकवह्निना॥ १॥

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर राजा ययाति अपने सिंहासनसे गिरकर उस स्थानसे भी विचलित हो गये। उनका हृदय काँपने लगा और शोकाग्नि उन्हें दग्ध करने लगी॥ १॥

म्लानस्रग्भ्रष्टविज्ञानः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः।
विघूर्णन् स्रस्तसर्वाङ्गः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः॥ २॥

उन्होंने जो दिव्य पुष्पोंकी माला पहन रखी थी, वह मुरझा गयी। उनकी ज्ञानशक्ति लुप्त होने लगी। मुकुट और बाजूबन्द शरीरसे खिसक गये। चक्कर आने लगा। उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये और वस्त्र तथा आभूषण भी खिसक-खिसककर गिरने लगे॥ २॥

अदृश्यमानस्तान् पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः।
शून्यः शून्येन मनसा प्रपतिष्यन् महीतलम्॥ ३॥
किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम्।
येनाहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत्॥ ४॥

वे अन्तर्धान होनेके कारण स्वर्गवासियोंको नहीं दिखायी देते थे, परंतु वे उन्हें बार-बार देखते और कभी नहीं भी देख पाते थे। पृथ्वीपर गिरनेसे पहले शून्य-सा होकर शून्य हृदयसे राजा यह चिन्ता करने लगे कि मैंने अपने मनसे किस धर्मदूषक अशुभ वस्तुका चिन्तन किया है, जिसके कारण मुझे अपने स्थानसे भ्रष्ट होना पड़ा है॥ ३-४॥

ते तु तत्रैव राजानं सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा।
अपश्यन्त निरालम्बं तं ययातिं परिच्युतम्॥ ५॥

उस समय वहाँ सिद्ध और अप्सरा—सभीने राजा ययातिको आलम्बनशून्य हो स्वर्गसे गिरते हुए देखा॥ ५॥

अथैत्य पुरुषः कश्चित् क्षीणपुण्यनिपातकः।
ययातिमब्रवीद् राजन् देवराजस्य शासनात्॥ ६॥

राजन्! इतनेमें ही पुण्यरहित पुरुषोंको स्वर्गसे नीचे गिरानेवाला कोई पुरुष देवराजकी आज्ञासे वहाँ आकर ययातिसे इस प्रकार बोला॥ ६॥

अतीव मदमत्तस्त्वं न कश्चिन्नावमन्यसे।
मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नार्हस्त्वं पार्थिवात्मज॥ ७॥

राजकुमार! तुम अत्यन्त मदमत्त हो और कोई भी ऐसा महान् पुरुष यहाँ नहीं है, जिसका तुम तिरस्कार न करते हो। इस मानके कारण ही तुम अपने स्थानसे गिर रहे हो। अब तुम स्वर्गमें रहनेके योग्य नहीं हो॥ ७॥

न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत्।
पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः॥ ८॥

तुम्हें यहाँ कोई नहीं जानता है, अतः जाओ, नीचे गिरो। जब उसने ऐसा कहा, तब नहुषपुत्र ययाति तीन बार 'हाय! मैं साधु पुरुषोंके बीच में गिरूँ' ऐसा कहकर नीचे आने लगे॥ ८॥

पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः।
एतस्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान्॥ ९॥
चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात ह।

अष्टक आदि श्रेष्ठ राजा जिनके … थे, बिना कर रहे थे … उस समय … चार श्रेष्ठ राजाओंको देख और उन्होंने … मिलने लगे।

प्रतर्दनो वसुमना शिबिरौशीनरोऽष्टकः।
वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम्॥

वहाँ प्रतर्दन, वसुमना, औशीनर शिबि तथा अष्टक—ये चार नरेश वाजपेय यज्ञके द्वारा देवेश्वर इन्द्रको तृप्त करते।

तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्।
ययातिरुपजिघ्रन् वै निपपात महीं प्रति॥

उनके यज्ञका धूम स्वर्गके द्वार तक उपस्थित हुआ था। ययाति नीचे … हुए पृथ्वीपर गिर रहे थे।

भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीमिव।
गङ्गां गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः॥
श्रीमत्स्ववभृथाग्र्येषु चतुर्षु प्रतिबन्धुषु।
मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु च॥ ३॥

भूतलसे स्वर्गतक धूममयी नदी-सी प्रवाहित हो रही थी, मानो आकाशगङ्गा भूमिपर … हो। भूपाल ययाति उसी धूमरेखाका अवलम्बन करके लोकपालोंके समान तेजस्वी तथा … चारों … बीचमें गिरे।

चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु।
पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये॥

चारों श्रेष्ठ राजा उन चार विशाल अग्नियोंके समान तेजस्वी … जो … आहुति पाकर प्रज्वलित हो रहे हों। राजर्षि ययाति अपना पुण्य क्षीण हो … उनके मध्यमें गिरे।

तमाहुः पार्थिवाः सर्वे दीप्यमानमिव श्रिया।
को भवान् कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा॥
यक्षो वाप्यथवा देवो गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा।
न हि मानुषरूपोऽसि को वार्थः काङ्क्षितस्त्वया॥

उनको दिव्य कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले उन … से भी भूपालोंने पूछा—'आप कौन हैं? किसके भाई-बन्धु हैं तथा किस देश और नगरमें आपका निवासस्थान है? आप क्या हैं? यक्ष, देवता, गन्धर्व हैं या राक्षस? आपका स्वरूप मनुष्यों-जैसा नहीं है। बताइये, आप कौन-सा प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं?'

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः।
पतेयं सत्स्विति ध्यायन् भवत्सु पतितस्ततः॥ ७॥

ययातिने कहा—मैं राजर्षि ययाति हूँ। अपना पुण्य क्षीण होनेके कारण … स्वर्गसे नीचे गिर रहा हूँ। गिरते समय मेरे मनमें यह चिन्तन चल रहा था कि मैं सत्पुरुषोंके बीचमें गिरूँ … आपलोगोंके बीचमें आ पड़ा हूँ।

राजान ऊचुः

सत्यमेतद् भवतु ते काङ्क्षितं पुरुषर्षभ।
सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम्॥

वे राजा बोले—पुरुषशिरोमणे! आपका यह मनोरथ सत्य हो। आप हम सब लोगोंके यज्ञोंका फल और धर्म ग्रहण करें।

ययातिरुवाच

नाहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो ह्यहम्।
न मे सकाशा बुद्धिः परपुण्यविनाशने॥

ययातिने कहा—प्रतिग्रह ही जिसका धन है, वह ब्राह्मण मैं नहीं हूँ। मैं तो क्षत्रिय हूँ। मेरी बुद्धि दूसरेके पुण्यका … ग्रहण करके उसका नाश करनेमें लगनेवाली नहीं है।

नारद उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्याक्रमागताम्।
माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाद्येदमब्रुवन्॥
किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव।
आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने॥

नारदजी कहते हैं—इसी समय उन राजाओंने … माधवीको देखा, जो मृगोंकी भाँति उन्हींके साथ विचरती हुई क्रमशः वहाँ आ पहुँची थी। उसे प्रणाम करके राजाओंने इस प्रकार पूछा—'तपोधने! यहाँ आपके पधारनेका क्या प्रयोजन है? हम आपकी किस आज्ञाका पालन करें? हम सभी आपके पुत्र हैं, अतः … आज्ञा देनेके लिये आज्ञा प्रदान करें।'

तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा।
पितरं समुपागच्छद् ययातिं सा ववन्द च॥

उनकी यह बातें सुनकर माधवीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने पिता ययातिके पास गयी और उसने उन्हें प्रणाम किया।

स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान् पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत्।
दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः॥ ९॥

तदनन्तर तपस्विनी माधवीने उन पुत्रोंके सिरपर हाथ

रखकर प्रणाम किया तथा कहा—'महाराज ! ये सब आपके दौहित्र नाती और मेरे पुत्र हैं। पराये नहीं हैं ॥

इमे त्वां तारयिष्यन्ति दिष्टमेतत् पुरातनम्।
अहं ते दुहिता राजन् माधवी मृगचारिणी ॥ ५ ॥

'आपको तार देंगे। दौहित्रोंके द्वारा नानाका उद्धार होना पुरातन कालसे सुना गया है। राजन् ! मैं आपकी पुत्री माधवी हूँ और तपोवनमें मृगोंके समान जीवनचर्या रखकर विचरती हूँ ॥

मयाप्युपचितो धर्मस्ततोऽर्धं प्रतिगृह्यताम्।
यस्माद् राजन् नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः।
तस्मादिच्छन्ति दौहित्रान् यथा त्वं वसुधाधिप ॥

'मैंने भी महान् धर्मका संचय किया है। उसका आधा भाग आप ग्रहण करें। राजन् ! सब मनुष्य अपनी संतानोंके किये हुए सत्कर्मोंके फलके भागी होते हैं। इसीलिये वे दौहित्रोंकी इच्छा रखते हैं, जैसे आपने की थी' ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥ ६ ॥
अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथापि ते।
उच्चैरनुपमं स्निग्धं स्वरेणापूर्य मेदिनीम् ॥ ७ ॥
मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम्।

तब वे सभी राजा अपनी माताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और मनोहर नानाको भी नमस्कार करके अपने उच्च स्वरसे सम्पूर्ण स्वर्गसे पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए स्वर्गसे गिरे हुए नानाका उद्धार करनेका विचार किया ॥

अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम्।
तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ॥

तदनन्तर वहाँ आये हुए गालव मुनिने भी राजा ययातिसे कहा—'आप मेरी तपस्याका आठवाँ भाग लेकर उसके द्वारा स्वर्गलोकमें पदार्पण करें' ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिस्वर्गभ्रंशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरित्रके प्रसंगमें ययातिका स्वर्गसे पतनविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय

सत्सङ्ग एवं दौहित्रोंके पुण्यदानसे ययातिका पुनः स्वर्गारोहण

नारद उवाच

प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः।
समारुरोह नृपतिरस्पृशन् वसुधातलम्।
ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः।
दिव्यगन्धगुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत् पदा।

नारदजी कहते हैं—उन साधुपुरुषोंके द्वारा पहचान लिये जाते ही नरश्रेष्ठ राजा ययाति पृथ्वीतलका स्पर्श किये बिना ही स्वर्गकी ओर चल दिये। उस समय उनकी आकृति दिव्य हो गयी और उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी। उन्होंने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे। दिव्य आभूषण उनके अंगोंकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा दिव्य सुगन्धसे सुवासित हो रहे थे। अब वे पृथ्वीका स्पर्श नहीं कर रहे थे ॥

ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन् वचः।
ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ॥

तदनन्तर लोकमें दानपतिके नामसे विख्यात राजा वसुमनाने पहले उच्च स्वरसे वाणीका उच्चारण करते हुए महाराज ययातिसे इस प्रकार कहा— ॥

प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हया।
तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥

'मैंने सभी वर्णोंमें निन्दारहित रहकर जो पुण्य प्राप्त किया है, वह सब आपको दे रहा हूँ, आप उससे संयुक्त हों ॥

यत् फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत् फलम्।
यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥

'दानशील पुरुषको जो पुण्यफल प्राप्त होता है, क्षमाशील मनुष्यको जो फल मिलता है तथा अग्निस्थापन आदि करनेके अनुष्ठानसे मुझे जिस फलकी प्राप्ति होनेवाली है, उन सभी प्रकारके पुण्यफलोंसे आप सम्पन्न हों' ॥

ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः।
यथा धर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ॥
प्राप्तवानस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः।
वीरशब्दफलं चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ७ ॥

तदनन्तर क्षत्रियशिरोमणि प्रतर्दनने कहा—'मैं जिस प्रकार सदा धर्ममें तत्पर रहा हूँ और जैसे न्यायपूर्वक युद्धमें तत्पर होता आया हूँ तथा संसारमें मैंने जो क्षत्रिय वंशके अनुरूप यश और वीरताके शब्द पुण्यफलका अर्जन किया है, उससे आप युक्त हों' ॥

शिबिरौशीनरो धीमानुवाच मधुरां गिरम्
यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च
संगरेषु निपातेषु तथा तद्व्यसनेषु च।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज॥
यथा प्राणांश्च राज्यं च राजन् कर्म सुखानि च।
त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज॥
यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः।
प्रीतः शतक्रतुश्चैव तेन सत्येन खं व्रज॥

तदनन्तर उशीनरपुत्र बुद्धिमान् शिबिने मधुर वाणीमें कहा—[illegible] नारियोंमें, हास-परिहासके अवसरोंपर, युद्धमें, आपत्तिकालमें तथा संकटोंमें पड़नेपर भी कभी असत्य भाषण नहीं किया है, उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये। मैं अपने प्राण, राज्य और [illegible] कर्म-सुख आदि सब कुछ त्याग सकता हूँ, परंतु सत्य नहीं छोड़ सकता। उस सत्यके प्रभावसे आप [illegible]। मैंने सत्यसे धर्मको, सत्यसे अग्निदेवको तथा सत्यसे ही इन्द्रको भी प्रसन्न किया है, उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये॥

अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः।
अनेकशतयज्वानं वाक्यं प्राह धर्मवित्॥

[illegible] नाम [illegible] पुत्र कुशिकवंशी धर्मज्ञ राजर्षि अष्टकने अनेक [illegible] यज्ञ करनेवाले [illegible] से कहा—

शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्चरिताः प्रभो।
क्रतवो वाजपेयाश्च तथा सत्रान्युदिते [illegible]।
न मे रत्नानि भोगा वा तथाऽन्ये परिच्छदाः।
क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते [illegible] द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ [illegible]

मुझसे [illegible] पूछनेपर उसके [illegible] गया [illegible] पुण्य [illegible] तथा [illegible]
[illegible] किया [illegible] आप [illegible]
करें मेरे [illegible] सत्य का [illegible]
नहीं [illegible] यज्ञोंमें उपयोग किया [illegible]
[illegible] आप स्वर्ग [illegible]

यथा [illegible] उत्पन्ना दौहित्राश्च नराधिपम्।
तथा तस्य वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ॥

[illegible] जैसे [illegible] उनके प्रति [illegible] द्वारा [illegible] स्वर्गमें चले [illegible]

एवं सर्वे समस्तैस्ते राजानः सुकृतैस्तदा।
ययातिं स्थापयामासुर्दिवि [illegible]॥

[illegible] सब [illegible] अपने [illegible] पुण्य [illegible] द्वारा [illegible] राजा [illegible] फिर [illegible] स्वर्गलोकमें [illegible]

दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै।
चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्धनाः।
मातामहं महाप्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते॥

[illegible] दौहित्र [illegible] अपने [illegible] यज्ञ, दान [illegible] चार [illegible] वंशोंमें उत्पन्न [illegible] महाप्राज्ञ [illegible] नाना [illegible] स्वर्ग [illegible]

राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः।
दौहित्रास्ते महाराज दिवमारोहन् पार्थिवम्॥

[illegible] बोले [illegible] इस [illegible]
[illegible] गुण [illegible] सम्पूर्ण धर्म तथा [illegible]
[illegible] आपके दौहित्र [illegible] आप हमारे पुण्य लेकर [illegible] होइये

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्वर्गलोकमें ययातिका स्वागत, ययातिके पूछनेपर ब्रह्माजीका अभिमानको ही पतनका कारण बताना तथा नारदजीका दुर्योधनको समझाना

नारद उवाच
सद्भिरारोपितः स्वर्गं पार्थिवैर्भूरिदक्षिणैः।
अभ्यनुज्ञाय दौहित्रान् ययातिर्दिवमास्थितः॥

नारदजी कहते हैं—प्रचुर दक्षिणा देनेवाले उन [illegible] अभिषिक्त [illegible] द्वारा [illegible] पुनः [illegible] स्वर्गमें पहुँचाये गये राजा ययाति [illegible] दौहित्रोंसे विदा लेकर स्वर्गलोकमें [illegible]

परिष्वक्तश्च पुण्येन वायुना पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥

वहाँ उनके ऊपर नाना प्रकारके सुगन्धयुक्त पुष्पोंकी वर्षा हुई। पवित्र सौरभसे सुवासित पावन समीरने उनका मानो आलिङ्गन कर रहा था ॥ २ ॥

अचलं स्थानमासाद्य दौहित्रफलनिर्जितम् ।
कर्मभिः स्वैरुपचितो जज्वाल परया श्रिया ॥ ३ ॥

दौहित्रोंके पुण्यफलसे प्राप्त हुए अविचल स्थानको पाकर अपने सत्कर्मोंसे बढ़े हुए राजा ययाति उत्तम शोभासे प्रकाशित होने लगे ॥ ३ ॥

उपगीतोपनृत्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
प्रीत्या प्रतिगृहीतश्च स्वर्गे दुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४ ॥

गन्धर्व और अप्सराओंके समुदायोंने उनके गुणगान करते हुए उनके समीप नृत्य करके उन्हें प्रसन्न किया। स्वर्गलोकमें दुन्दुभि आदि बाजोंकी ध्वनिके साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया गया ॥ ४ ॥

अभिष्टुतश्च विविधैर्देवराजर्षिचारणैः ।
अर्चितश्चोत्तमार्घेण दैवतैरभिनन्दितः ॥ ५ ॥

नाना प्रकारके देवर्षियों, राजर्षियों तथा चारणोंने उनका स्तवन किया। देवताओंने उत्तम अर्घ्य निवेदन करके उनका पूजन और अभिनन्दन किया ॥ ५ ॥

प्राप्तः स्वर्गफलं चैव तमुवाच पितामहः ।
निर्वृतं शान्तमनसं वचोभिस्तर्पयन्निव ॥ ६ ॥

इस प्रकार स्वर्गका उत्तम फल पाकर उनका चित्त शान्त एवं आनन्दित हो गया। तत्पश्चात् मधुर वचनोंद्वारा तृप्त-सा करते हुए-से पितामह ब्रह्माजी उनसे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

चतुष्पादस्त्वया धर्मश्चितो लोक्येन कर्मणा ।
अक्षयस्तव लोकोऽयं कीर्तिश्चैवाक्षया दिवि ॥ ७ ॥

राजन्! तुमने लोकहितकारी कर्मद्वारा चारों चरणोंसे युक्त धर्मका संग्रह किया है; अतः तुम्हें यह अक्षय लोक प्राप्त हुआ और स्वर्गमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैल गयी ॥ ७ ॥

पुनस्तवेह राजर्षे सुकृतेन विघातितम् ।
आवृतं तमसा चेतः सर्वेषां स्वर्गवासिनाम् ॥ ८ ॥
येन त्वां नाभिजानन्ति ततोऽज्ञातोऽसि पातितः ।
प्रीत्यैव चासि दौहित्रैस्तारितस्त्वमिहागतः ॥ ९ ॥

राजर्षे! फिर तुमने अभिमानरूपी दोषके कारण अपने पुण्यका नाश किया था। उस समय समस्त स्वर्गवासियोंका चित्त तमोगुणसे व्याप्त हो गया था, जिससे वे तुम्हें नहीं जानते थे या नहीं पहचानते थे। अतः सबके लिये अज्ञात होनेके कारण तुम स्वर्गसे नीचे गिरा दिये गये। फिर तुम्हारे दौहित्रोंने प्रेमपूर्वक तुम्हें तार दिया है, जिससे तुम पुनः यहाँ आ गये हो ॥ ८-९ ॥

स्थानं च प्रतिपन्नोऽसि कर्मणा स्वेन निर्जितम् ।
अचलं शाश्वतं पुण्यमुत्तमं ध्रुवमव्ययम् ॥ १० ॥

अब तुमने अपने (गौहित्रोंद्वारा) कर्मसे जीते हुए अविचल सनातन पुण्यमय उत्तम ध्रुव तथा अविनाशी स्थानको प्राप्त कर लिया है ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

भगवन् संशयो मेऽस्ति कश्चित् तं छेत्तुमर्हसि ।
न ह्यन्यमहमर्हामि प्रष्टुं लोकपितामह ॥ ११ ॥

ययातिने कहा—भगवन्! मेरे मनमें कोई संदेह है, जिसका निवारण आप ही कर सकते हैं। लोकपितामह! मैं इस विषयमें और किसीसे पूछनेका साहस नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैरर्जितं मे महत् फलम् ॥ १२ ॥
कथं तदल्पकालेन क्षीणं येनास्मि पातितः ।
भगवन् वेत्थ लोकांश्च शाश्वतान् मम निर्मितान् ।
कथं नु मम तत् सर्वं विप्रणष्टं महाद्युते ॥ १३ ॥

मैंने कई हजार वर्षोंतक प्रजापालनसे बढ़े हुए एवं अनेक यज्ञों और दानोंके द्वारा जिस महान् पुण्य फलका उपार्जन किया था और जिसे प्रजापालनरूपी धर्मके द्वारा उत्तरोत्तर बढ़ाया था, वह सब थोड़े ही समयमें नष्ट कैसे हो गया? जिससे मैं स्वर्गसे नीचे गिरा दिया गया। भगवन्! महाद्युते! मुझे मेरे सत्कर्मोंद्वारा जो शाश्वत लोक प्राप्त हुए थे, उन्हें आप जानते हैं। मेरा वह सारा पुण्य सहसा नष्ट कैसे हो गया? ॥ १२-१३ ॥

पितामह उवाच

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैर्यत् त्वयोपार्जितं फलम् ॥ १४ ॥
तदनेनैव दोषेण क्षीणं येनासि पातितः ।
अभिमानेन राजेन्द्र धिक्कृतः स्वर्गवासिभिः ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले—राजेन्द्र! तुमने कई हजार वर्षोंतक अनेक यज्ञों और दानोंके द्वारा जिस पुण्यफलका उपार्जन किया और प्रजापालनरूपी धर्मके द्वारा जिसे उत्तरोत्तर बढ़ाया, वह सब इस अभिमानरूपी दोषके कारण ही नष्ट हो गया था, जिससे तुम नीचे गिराये गये। तुम्हारे अभिमानके ही कारण स्वर्गलोकके निवासियोंने तुम्हें धिक्कार दिया था ॥ १४-१५ ॥

नायं मानेन राजर्षे न बलेन न हिंसया ।
न शाठ्येन न मायाभिर्लोको भवति शाश्वतः ॥ १६ ॥

तर्पो यह कुलघातक अभिमानसे नरकमें गिराने वाला और भावी पीढ़ियोंके नाशकारी दुर्गति होगी।

शमयस्याक्षरस्यैवा राजन्नमननोऽन्तःमध्यमा
न हि मानमवाप्नोति कश्चिदिति राम काश्चित्।

राजन्, तुम्हें इस नीचे पद मध्यम का अभिमान कभी नहीं करना चाहिये जो लोग अभिमानकी आगमें जल रहे हैं उनके शान्तकी प्राप्ति कभी नहीं होती।

उत्कर्षोऽपकर्षश्च यत्र शान्तियमनेन नराः
विनश्यन्त्यपि ते प्रयास्यन्ति सदाम।

जो मनुष्य तुम्हारे सर्वं मिलने और पुन भावना होनेसे इस प्रकार आपसमें ... परमेश्वर भी अपने हाथ नहीं है।

एवं दोषोऽभिमानेन पुत्र भो गान्धिकाः
निर्विशन्तांलिमात्रः मात्स्यान् मारी च।

नारदजी कहते हैं ... अभिमानके कारण ... और ... महर्षि ... महान ... पथ।

श्रोतव्यं हितकामानां सुहृदां हितमिच्छताम्
न कर्तव्यो हि निश्चयो निश्चयो हि सुदारुणः।

अब तुम्हें ... हितकी इच्छा रखनेवाले सुहृदोंकी बात अवश्य सुननी और माननी चाहिये ... नहीं करना चाहिये क्योंकि ... विनाशक ... जानेवाला है।

तस्मात् त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधं च वर्जय
सङ्गच्छ पाण्डवैर्वीर संरम्भं त्यज पार्थिव।

अब गान्धारीनन्दन तुम भी अभिमान और क्रोधका त्याग करो ... तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लो और क्रोधसे आवेशको मनसे निकाल दो।

स भवान् सुहृदां वाक्यं कुरुतां न्यायसम्मतम्
समर्पयित्वा राज्यं तु विग्रहस्यो भविष्यसि।

तुम अपने सुहृदोंकी हितकर बात मान लो ... कारणको ... अनन्त शक्तिशाली पाण्डवोंके साथ युद्ध ... नहीं तो तुम बड़े भारी कष्टमें पड़ जाओगे।

ददाति यत् पार्थिव यत् करोति
यद् वा तपस्तप्यति यज्जुहोति
तस्य नाशोऽस्ति न चापकर्षो
नान्यस्तदश्नाति स एव कर्ता ॥

भूपाल, मनुष्य जो दान देता है, जो कर्म करता है, जो तपस्यामें प्राप्त होता है और जो होम यज्ञ आदिका अनुष्ठान करता ... उसका कभी नाश नहीं होता है और उसमें कभी ही ... है। उसका फल दूसरा कोई नहीं भोगता, कर्ता स्वयं ही उसका फल भोगता है।

इदं महाख्यानमनुत्तमं हि
बहुश्रुतानां गतरागरोषाम्
समीक्ष्य ... बहुधा प्रधानि
त्रियारति पृथिवीमुपाश्नुते।

... उपाख्यान ... महापुरुषों ... और ... सबके लिये ... उत्तम ... हितकर है ... लोकमें इसका ... प्रकाश ... विचारको ... कर ... कामनाएँ ... पृथ्वीका ... करता है।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गालवचरितविषयक ... ... एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके अनुरोधसे भगवान् श्रीकृष्णका दुर्योधनको समझाना

धृतराष्ट्र उवाच

भगवन्नेवमेवैतद् यथा वदसि नारद
इच्छामि चाहमप्येवं न त्वीशो भगवन्नहम्।

धृतराष्ट्र बोले—भगवन् नारद! आप जैसा कहते हैं वह ठीक है। मैं भी यही चाहता हूँ, परंतु मेरा कोई वश नहीं चलता।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा ... कृष्णमभ्यभाषत कौरव
स्वर्ग्यं लोक्यं च मामात्थ वाक्यं न्याय्यं च केशव।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! नारदजी ऐसा कहकर धृतराष्ट्र भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—केशव! आपने मुझसे जो बात कही है, वह इहलोक और परलोकमें

हितकर, धर्मसम्मत और न्यायसंगत है ॥ २ ॥

न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न मे प्रियम् ।
(न मन्यसे दुरात्मानं पुत्रं मम जनार्दन ।)
अङ्ग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम ॥ ३ ॥
अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम ।

तात जनार्दन ! मैं अपने वशमें नहीं हूँ। जो कुछ किया जा रहा है, वह मुझे प्रिय नहीं है। किंतु क्या करूँ ? मेरे दुरात्मा पुत्र मेरी बात नहीं मानेंगे। श्रीकृष्ण ! महाबाहु पुरुषोत्तम ! शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले मेरे इस मूर्ख पुत्र दुर्योधनको आप ही समझा-बुझाकर रास्तेपर लानेका प्रयत्न कीजिये ॥ ३½ ॥

न शृणोति महाबाहो वचनं साधुभाषितम् ॥ ४ ॥
गान्धार्याश्च हृषीकेश विदुरस्य च धीमतः ।
अन्येषां चैव सुहृदां भीष्मादीनां हितैषिणाम् ॥ ५ ॥

महाबाहु हृषीकेश ! यह सत्पुरुषोंकी कही हुई बातें नहीं सुनता है। गान्धारी, बुद्धिमान् विदुर तथा हित चाहनेवाले भीष्म आदि अन्यान्य सुहृदोंकी भी बात नहीं सुनता है ॥ ४-५ ॥

स त्वं पापमतिं क्रूरं पापचित्तमचेतनम् ।
अनुशाधि दुरात्मानं स्वयं दुर्योधनं नृपम् ॥ ६ ॥
सुहृत्कार्यं तु सुमहत् कृतं ते स्याज्जनार्दन ।

जनार्दन ! दुरात्मा राजा दुर्योधनकी बुद्धि पापमें लगी हुई है। यह पापका ही चिन्तन करनेवाला, क्रूर और विवेकशून्य है। आप ही इसे समझाइये। यदि आप इसे कर्तव्यका उपदेश कर सकें तो आपके द्वारा सुहृदोंका यह बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हो जायगा ॥ ६½ ॥

ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७ ॥
अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ।

तब सम्पूर्ण धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले वृष्णिनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अमर्षशील दुर्योधनकी ओर घूमकर मधुर वाणीमें उससे बोले ॥ ७½ ॥

दुर्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम ॥ ८ ॥
शर्मार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत ।

कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन ! तुम मेरी यह बात सुनो। भारत ! मैं विशेषतः सगे-सम्बन्धियोंसहित तुम्हारे कल्याणके लिये ही तुम्हें कुछ परामर्श दे रहा हूँ ॥ ८½ ॥

महाप्राज्ञकुले जातः साध्वेतत् कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः ।

तुम परम ज्ञानी महापुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हुए हो। स्वयं भी शास्त्रोंके ज्ञान तथा सद्व्यवहारसे सम्पन्न हो। इतने सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं। अतः तुम्हें मेरी यह अच्छी बात अवश्य मान लेनी चाहिये ॥ ९½ ॥

दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः ॥ १० ॥
त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे ।

तात ! जिसे तुम ठीक समझते हो, ऐसा अधम कार्य वे ही लोग करते हैं, जो नीच कुलमें उत्पन्न हुए हैं तथा जो दुरात्मा, क्रूर एवं निर्लज्ज हैं ॥ १०½ ॥

धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन् प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम् ॥ ११ ॥
असतां विपरीता तु लक्ष्यते भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! इस जगत्‌में सत्पुरुषोंका व्यवहार धर्म और अर्थसे युक्त देखा जाता है और दुर्जनोंका बर्ताव ठीक इसके विपरीत दृष्टिगोचर होता है ॥ ११½ ॥

विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि ॥ १२ ॥
अधर्मश्चानुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान् ।
अनिष्टश्चानिमित्तश्च न च शक्यश्च भारत ॥ १३ ॥

तुममें बारंबार यह विपरीत वृत्ति दिखायी देती है। भारत ! इस समय तुम्हारा जो दुराग्रह है, वह अधर्ममय ही है। उसके होनेका कोई समुचित कारण भी नहीं है। वह भयंकर, प्राणनाशक, अनिष्टकारक तथा महान् अनर्थमय है। तुम इसे सफल बना सको, यह सम्भव नहीं है ॥ १२-१३ ॥

तमनर्थं परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि ।
भ्रातॄणामथ भृत्यानां मित्राणां च परंतप ॥ १४ ॥

परंतप ! यदि तुम उस अनर्थकारी दुराग्रहको छोड़ दोगे तो अपने कल्याणके साथ ही भाइयों, सेवकों तथा मित्रोंका भी महान् हित साधन करोगे ॥ १४ ॥

अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे ।
प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ॥ १५ ॥
संधत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ ।

ऐसा करनेसे तुम्हें अधर्म और अपयशकी प्राप्ति करानेवाले कर्मसे छुटकारा मिल जायगा। अतः भरतकुलभूषण पुरुषसिंह ! तुम ज्ञानी, शूरवीर, महान् उत्साही, मनस्वी एवं बहुश्रुत पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो ॥ १५½ ॥

तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १६ ॥
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः ।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ॥ १७ ॥
अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य संजयस्य विविंशतेः ।
ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परंतप ॥ १८ ॥

यह बात परम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको भी प्रिय एवं हितकर जान पड़ती है। परंतप ! पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महामति विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, बुद्धिमान् बाह्लीक

अवस्थामें स्थिर रहना, इनकी रक्षा तथा आनन्द कुरुश्रेष्ठ ! अभी एवं निर्भीक भी यही उचित है ॥ १६–१८ ॥

धर्मे शुभं भवेत् तात सर्वस्य लघुलाघवात्।
ह्रीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान्।
तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ ॥ १९ ॥

तात ! नीति द्वारा ही सम्पूर्ण कल्याण भला हो सकता है। तुम श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न, बहुश्रुत, लज्जाशील और क्रूरतासे रहित हो। अतः भरतश्रेष्ठ ! तुम पिता और माताके शासनके अधीन रहो ॥ १९ ॥

पश्चाद्धृष्टा हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत।
उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम् ॥ २० ॥

भारत ! पिता जो कुछ शिक्षा देते हैं, उसको श्रेष्ठ पुरुष बादमें कल्याणकारी मानते हैं। भारी आपत्तिमें पड़नेपर सब लोग पिताके उपदेशका स्मरण करते हैं ॥ २० ॥

रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह सङ्गमः।
सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत् तुभ्यं तात रोचताम् ॥ २१ ॥

तात ! मन्त्रियोंसहित तुम्हारे पिताको पाण्डवोंके साथ संधि कर लेना ही अच्छा जान पड़ता है। कुरुश्रेष्ठ ! वही तुम्हें भी पसंद आना चाहिये ॥ २१ ॥

श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते।
विपाकान्ते दहत्येनं किम्पाकमिव भक्षितम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य सुहृदोंके मुखसे शास्त्रका उपदेश सुनकर भी उसे स्वीकार नहीं करता है, उसका वह अस्वीकार उस परिणाममें उसी प्रकार संतप्त करता है, जैसे खाया हुआ इन्द्रायण फल परिणाममें दाह उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ २२ ॥

यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिपद्यते।
स दीर्घसूत्रो हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ २३ ॥

जो मोहवश अपने हितकी बात नहीं मानता है, वह दीर्घसूत्री मनुष्य अपने स्वार्थसे भ्रष्ट होकर पश्चात्तापका भागी होता है ॥ २३ ॥

यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राक् तदेवाभिपद्यते।
आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते ॥ २४ ॥

जो मनुष्य अपने कल्याणकी बात सुनकर अपने मतका आग्रह छोड़कर पहले उसीको ग्रहण करता है, वह संसारमें सुखपूर्वक उन्नतिशील होता है ॥ २४ ॥

योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते।
शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः ॥ २५ ॥

जो अपनी ही भलाई चाहनेवाले सुहृद्के वचनोंको मनके प्रतिकूल होनेके कारण नहीं सहन करता है और उन अहितकर प्रतिकूल कहे हुए वचनोंको भी सुनता है, वह शत्रुओंके अधीन हो जाता है ॥ २५ ॥

सतां मतमतिक्रम्य योऽसतां वर्तते मते।
शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो नचिरादिव ॥ २६ ॥

जो मनुष्य सत्पुरुषोंकी सम्मतिका उल्लङ्घन करके दुष्टोंके मतके अनुसार चलता है, उसके सुहृद् उसे शीघ्र ही विपत्तिमें पड़ा देख शोक करते हैं ॥ २६ ॥

मुख्यानमात्यानुत्सृज्य यो निहीनान् निषेवते।
स घोरामापदं प्राप्य नोत्तारमधिगच्छति ॥ २७ ॥

जो अपने मुख्य मन्त्रियोंको छोड़कर नीच प्रकृतिके लोगोंका सेवन करता है, वह भयंकर विपत्तिमें फँसकर अपने उद्धारका कोई मार्ग नहीं देख पाता है ॥ २७ ॥

योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सताम्।
परान् वृणीते स्वान् द्वेष्टि तं गौस्त्यजति भारत ॥ २८ ॥

भारत ! जो दुष्ट पुरुषोंका संग करनेवाला और मिथ्याचार होकर अपने श्रेष्ठ सुहृदोंकी बात नहीं सुनता है, दूसरोंका आश्रय और अपनोंसे द्वेष रखता है, उसे यह भूमि त्याग देती है ॥ २८ ॥

स त्वं विरुध्य तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि।
अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम उन वीर पाण्डवोंसे विरोध करके दूसरे अशिष्ट, असमर्थ और मूढ़ मनुष्योंसे अपनी रक्षा चाहते हो ॥ २९ ॥

को हि शक्रसमान् ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान्।
अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत् त्वदन्यो भुवि मानवः ॥ ३० ॥

इस भूतलपर तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो इन्द्रके समान पराक्रमी एवं महारथी बन्धु-बान्धवोंको त्यागकर दूसरोंसे अपनी रक्षाकी आशा करेगा ॥ ३० ॥

जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया।
न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३१ ॥

तुमने जन्मसे ही कुन्तीपुत्रोंके साथ सदा शठतापूर्ण बर्ताव किया है, परंतु वे तुमपर कभी कुपित नहीं हुए हैं, क्योंकि पाण्डव धर्मात्मा हैं ॥ ३१ ॥

मिथ्याप्रचरितास्तात जन्मप्रभृति बान्धवाः।
त्वयि सम्यङ्महाबाहो प्रतिपन्ना यशस्विनः ॥ ३२ ॥

तात महाबाहो ! यद्यपि तुमने अपने ही भाई-बन्धुओंके साथ जन्मसे ही छल-कपटका बर्ताव किया है, तथापि वे यशस्वी पाण्डव तुम्हारे प्रति सदा सद्भाव ही रखते आये हैं ॥ ३२ ॥

त्वमपि प्रतिपद्यस्व तथैव भरतर्षभ
श्रेयो बन्धुषु मुख्येषु मा मा पुत्रक्षयकरः ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुम्हें भी उसी प्रकार उन श्रेष्ठ बन्धुओंके प्रति वैसा ही बर्ताव ... ना है। ... कुल ... नाशमें ... कारण न हो ॥ ३२ ॥

विवर्णासुख प्रज्ञान्वमारम्भा भरतर्षभ
धर्मार्थावनुरुध्यन्त त्रिवर्गासम्भवं नरः ॥ ३३ ॥

भरतभूषण! विद्वान् एवं बुद्धिमान् पुरुषोंका प्रत्येक कार्य धर्म, अर्थ ... काम ... त्रिवर्गकी ... सिद्धिसे युक्त होता है। ... यदि ... बुद्धिमान् मानव ... धर्म और अर्थका ही अनुसरण करते हैं ॥ ३३ ॥

पृथक् च विनिविष्टानां धर्मं धीरोऽनुरुध्यते
मध्यमोऽर्थं कलिं बालः काममेवानुरुध्यते ॥ ३४ ॥

पृथक्-पृथक् ... धर्म, अर्थ और काममें ... एकका ... पुरुष ... धर्मका ... अनुसरण करता है। मध्यम श्रेणीका मनुष्य कलहके कारणभूत ... का ... करता है। और ... अज्ञानी पुरुष ... की ... कामना ... ॥ ३४ ॥

इन्द्रियैः प्राकृतो लोभाद् धर्मं विप्रजहाति यः
कामार्थावनुपायेन लिप्समानो विनश्यति ॥ ३५ ॥

जो अधम मनुष्य इन्द्रियोंके वशीभूत होकर लोभवश धर्मको छोड़ देता है, वह अनुचित उपायसे अर्थ और कामकी लिप्सामें ... नष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत्
न हि धर्मादपैत्यर्थः कामो वापि कदाचन ॥ ३६ ॥

जो अर्थ और काम प्राप्त करना चाहता हो, उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये; क्योंकि अर्थ ... काम ... धर्मसे पृथक् ... नहीं होता है ॥ ३६ ॥

उपायं धर्ममेवाहुस्त्रिवर्गस्य विशाम्पते
लिप्समानो हि तेनाशु कक्षेऽग्निरिव वर्धते ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ! विद्वान् पुरुष धर्मको ही त्रिवर्गकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय बताते हैं। अतः जो धर्मके द्वारा ... चाहता है, वह शीघ्र ही उसी प्रकार उन्नतिको प्राप्त होता है, जैसे सूखे तिनकोंमें ... आग बढ़ जाती है ॥ ३७ ॥

स त्वं तातानुपायेन लिप्ससे भरतर्षभ
आधिराज्यं महद् दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ ३८ ॥

तात भरतश्रेष्ठ! तुम समस्त राजाओंमें विख्यात इस विशाल एवं उज्ज्वल साम्राज्यको अनुचित उपायसे पाना चाहते हो ॥ ३८ ॥

आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा
यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन् प्रवर्तते ॥ ३९ ॥

... जो उत्तम व्यवहार करनेवाले मनुष्योंके साथ ... व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ीसे जंगलकी भाँति उस ... अपना ... नाश करनेवाला ही होता है ॥ ३९ ॥

न तस्य हि मतिं छिन्द्याद् यस्य नेच्छेत् पराभवम्
अविच्छिन्नस्य धीरस्य कल्याणे धीयते मतिः ॥ ४० ॥
आत्मवान् नावमन्येत त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ४१ ॥
अप्यन्यं प्राकृतं किंचित् किमु तान् पाण्डवर्षभान्
अमर्षवशमापन्नो न किंचिद् बुध्यते जनः ॥ ४२ ॥

... जिसका पराभव ... करना चाहे, उसकी बुद्धि ... नष्ट नहीं हुई है, उसी ... पुरुषकी ... कल्याणकारी कार्यमें प्रवृत्त होती है। ... पुरुषको चाहिये कि वह तीनों लोकोंमें ... किसी ... पुरुषका भी अपमान न करे, फिर ... उन ... पाण्डवोंके अपमानकी तो बात ही क्या है? ... क्रोधके वशीभूत ... मनुष्य ... नहीं सोच पाता ॥ ४०—४२ ॥

छिद्यते ह्याततं सर्वं प्रमाणं पश्य भारत
श्रेयस्ते दुर्जनात् तात पाण्डवैः सह सङ्गतम् ॥ ४३ ॥

... देखो, क्रोधके ... मनुष्यके सामने प्रस्तुत ... प्रमाण भी उपेक्षित हो जाता है ... दुर्जनोंका साथ करनेकी अपेक्षा ... पाण्डवोंके साथ मेल-मिलाप रखना तुम्हारे लिये विशेष कल्याणकारी है ॥ ४३ ॥

तैर्हि सम्प्रीयमाणस्त्वं सर्वान् कामानवाप्स्यसि
पाण्डवैर्निर्मितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम ॥ ४४ ॥
पाण्डवान् पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशास्य चान्यतः

... उनके साथ प्रेम ... रखकर तुम सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त ... कर लोगे। ... पाण्डवोंद्वारा ... राज्यका उपभोग करते हुए ... यदि तुम ... उनकी अवहेलना करके ... दूसरोंसे रक्षाकी आशा रखते हो ...

दुःशासने दुर्विषहे कर्णे चापि ससौबले ॥ ४५ ॥
एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छसि भारत

... तुम दुःशासन, दुर्विषह, कर्ण और शकुनि—इन ... लोगोंपर ऐश्वर्यका भार रखकर उन्नतिकी इच्छा ... ॥ ४५ ॥

न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा ॥ ४६ ॥
विक्रमे चाप्यपर्याप्ताः पाण्डवान् प्रति भारत

भरतनन्दन! ये तुम्हें ज्ञान, धर्म और अर्थकी प्राप्ति

क्षत्रियोंमें उनका नहीं है और पाण्डवोंके सामने पराक्रम प्रकट करनेमें वा ये असमर्थ ही हैं ॥ ४६ ॥

न होमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ॥ ४७ ॥
युद्धाय भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे ।

तुम्हारे सहित ये सब राजालोग भी युद्धमें कुपित हुए भीमसेनके मुखकी ओर आँख उठाकर देख ही नहीं सकते हैं ॥ ४७ ॥

इदं सम्मिलितं तात समग्रं पार्थिवं बलम् ॥ ४८ ॥
अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णोऽयं च तथा कृपः ।
भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः ॥ ४९ ॥
अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनंजयम् ।

तात ! तुम्हारे निकट जो यह समस्त राजाओंकी सेना एकत्र हुई है, यह तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, अश्वत्थामा और जयद्रथ—ये सब मिलकर भी अर्जुनका सामना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ४८-४९ ॥

अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः ॥
मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत आधिथाः ॥ ५० ॥

सम्पूर्ण देवता और असुर भी युद्धमें अर्जुनको जीत नहीं सकते; वे समस्त मनुष्यों और गन्धर्वोंके द्वारा भी अजेय हैं; अतः तुम युद्धका विचार मत करो ॥ ५० ॥

दृश्यतां वा पुमान् कश्चित् समग्रे पार्थिवे बले ।
योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहान् ॥ ५१ ॥

राजाओंकी इस सारी सेनामें किसी ऐसे पुरुषपर दृष्टिपात तो करो, जो युद्धमें अर्जुनका सामना करके कुशलपूर्वक अपने घर लौट सके ॥ ५१ ॥

किं ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ ।
यस्मिञ्जिते जितं ते स्यात् पुमानेकः स दृश्यताम् ॥ ५२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यह नरसंहार करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? तुम अपने पक्षमें किसी ऐसे पुरुषको ढूँढ़ निकालो, जो उन अर्जुनपर विजय पा सके, जिनके जीते जानेपर तुम्हारी सबकी विजय मान ली जाय ॥ ५२ ॥

यः स देवान् सगन्धर्वान् सयक्षासुरपन्नगान् ।
अजयत् खाण्डवप्रस्थे कस्तं युध्येत मानवः ॥ ५३ ॥

जिन्होंने खाण्डववनमें यक्ष, गन्धर्व, असुरों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया था, उन अर्जुनके साथ कौन मनुष्य युद्ध कर सकेगा ॥ ५३ ॥

तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५४ ॥

इसके सिवा विराटनगरमें जो बहुतसे महारथी योद्धाओंके साथ एक अर्जुनके युद्धकी अत्यन्त अद्भुत घटना सुनी जाती है, वह एक ही उदाहरण यहाँ परिणामको बतानेके लिये पर्याप्त है ॥ ५४ ॥

युद्धे येन महादेवः साक्षात् संतोषितः शिवः ।
तमजेयमनाधृष्यं विजेतुं जिष्णुमच्युतम् ॥
आशंससीह समरे वीरमर्जुनमूर्जितम् ॥ ५५ ॥

जिन्होंने युद्धमें साक्षात् महादेव शिवको अपने पराक्रमसे संतुष्ट किया है, अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले उन अजेय दुर्धर्ष विजयशील बलवान् वीर अर्जुनको तुम युद्धमें जीतनेकी आशा करते हो, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ५५ ॥

मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमर्हति ।
युद्धे प्रतीपमायान्तमपि साक्षात् पुरंदरः ॥ ५६ ॥

फिर मैं जिसका सहायक बनकर साथ रहूँ और वह अर्जुन प्रतिपक्षी होकर युद्धके लिये सामने आ जाय, उस समय साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हों, कौन अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहेगा ॥ ५६ ॥

बाहुभ्यामुद्धरेद् भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत् त्रिदिवाद् देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ५७ ॥

जो युद्धमें अर्जुनको जीत सकता है, वह मानो अपनी भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होकर इन समस्त प्रजाओंको भस्म कर सकता है और स्वर्गसे देवताओंको नीचे गिरा सकता है ॥ ५७ ॥

पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातॄञ्ज्ञातीन् सम्बन्धिनस्तथा ।
त्वत्कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तम ॥ ५८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अपने इन पुत्रों, भाइयों, कुटुम्बीजनों और सगे-सम्बन्धियोंकी ओर तो देखो; ये सब तुम्हारे कारण नष्ट न हो जायँ ॥ ५८ ॥

अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् ।
कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥ ५९ ॥

नरेश्वर ! कौरवोंका वंश शेष रहे, इस कुलका पराभव न हो और तुम भी अपनी कीर्तिका नाश करके कुलघाती न कहलाओ ॥ ५९ ॥

त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः ।
महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ६० ॥

महारथी पाण्डव तुम्हींको युवराजके पदपर प्रतिष्ठित करेंगे और तुम्हारे पिता राजा धृतराष्ट्रको महाराजके पदपर बनाये रखेंगे ॥ ६० ॥

मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम् ।
अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ६१ ॥

[illegible] सर्वैर्ज्ञातिभिः [illegible] बान्धवैः सह दुर्योधन! सुखी रहो
[illegible] ह करो। कुन्तीके पुत्रोंको आधा राज्य देकर
[illegible] सम्पत्तिका उपभोग करो ॥ ६१ ॥
पाण्डवैः सहसंगम्य कृत्वा च सुहृदां वचः ।
संप्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥ ६२ ॥

पाण्डवोंके साथ सन्धि करके और अपने हितैषी सुहृदोंकी बात मानकर मित्रोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए तुम दीर्घकालतक कल्याणके भागी बने रहोगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भगवद्वाक्यविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका [illegible] श्लोक मिलाकर कुल [illegible] श्लोक हैं)

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्याय

भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायन उवाच

ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् ।
केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णका पूर्वोक्त वचन सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने ईर्ष्या और क्रोधमें भरे दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता ।
अन्वपद्यस्व तत् तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥ २ ॥

तात! भगवान् श्रीकृष्णने सुहृदोंमें परस्पर शान्ति बनाये रखनेकी इच्छासे जो बात कही है, उसे स्वीकार करो। क्रोधके वशीभूत न होओ ॥ २ ॥

अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः ।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

तात! महात्मा केशवकी बात न माननेसे तुम कभी श्रेय, सुख और कल्याण नहीं पाओगे ॥ ३ ॥

धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः ।
तमर्थमभिपद्यस्व मा राजन् नीनशः प्रजाः ॥ ४ ॥

तात! महाबाहु केशवने तुमसे धर्म और अर्थके अनुकूल ही बात कही है। राजन्! तुम उसे स्वीकार करो, प्रजाका विनाश न करो ॥ ४ ॥

ज्वलितां त्वं श्रियं दीप्तां भारतीं सर्वराजसु ।
जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद् भ्रंशयिष्यसि ॥ ५ ॥

यह भरतवंशकी राजलक्ष्मी समस्त राजाओंमें प्रकाशित हो रही है; किंतु मैं देखता हूँ कि तुम अपनी दुष्टताके कारण इसे धृतराष्ट्रके जीते-जी ही नष्ट कर दोगे ॥ ५ ॥

आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम् ।
अहमित्यनया बुद्ध्या जीविताद् भ्रंशयिष्यसि ॥ ६ ॥

साथ ही अपनी इस अहंकारयुक्त बुद्धिके कारण तुम पुत्र, भाई, बन्धु-बान्धव तथा मन्त्रियोंसहित अपनेआपको भी जीवनसे वञ्चित कर दोगे ॥ ६ ॥

अतिक्रामन् केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत् ।
पितुश्च भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः ॥ ७ ॥
मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः ।
पितरं मातरं चैव वृद्धौ शोकाय मा ददः ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ! केशवका वचन सत्य और सार्थक है। तुम इसका, अपने पिताका तथा बुद्धिमान् विदुरके वचनोंकी अवहेलना करके कुमार्गपर न चलो। कुलघाती, कुपुरुष और कुबुद्धि न बनो तथा माता-पिताको शोकके समुद्रमें न डुबाओ ॥ ७-८ ॥

अथ द्रोणोऽब्रवीत् तत्र दुर्योधनमिदं वचः ।
अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ॥ ९ ॥

तदनन्तर क्रोधके वशीभूत होकर बारंबार लम्बी साँस खींचनेवाले दुर्योधनसे द्रोणाचार्यने इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥

धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः ।
तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप ॥ १० ॥

तात! भगवान् श्रीकृष्ण और शान्तनुनन्दन भीष्मने धर्म और अर्थसे युक्त बात कही है। नरेश्वर! तुम उसे स्वीकार करो ॥ १० ॥

प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ ।
आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तदादत्स्व परंतप ॥ ११ ॥

राजन्! ये दोनों महापुरुष विद्वान्, मेधावी, जितेन्द्रिय, तुम्हारा भला चाहनेवाले और अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। इन्होंने तुमसे हितकी ही बात कही है; अतः तुम इसका सेवन करो ॥ ११ ॥

अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः ।
(मा वचो लघुबुद्धीनां समास्थास्त्वं परंतप)
माधवं बुद्धिमोहेन मावमंस्थाः परंतप ॥ १२ ॥

महामते! श्रीकृष्ण और भीष्मने जो कुछ कहा है, उसका पालन करो। परंतप! तुम तुच्छ बुद्धिवाले लोगोंकी बातपर भरोसा मत रक्खो। शत्रुदमन! अपनी बुद्धिके मोहसे माधवका तिरस्कार न करो ॥ १२ ॥

ये त्वां मोत्साहयन्त्येते मते ह्यस्याव वाञ्छितम्
वैरं करेभ्यः श्रीमायाः प्रतियोत्स्यन्ति संयुगे ॥ ३ ॥

जो लोग तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित कर रहे हैं, वे कभी तुम्हारा साथ नहीं दे सकते। वे युद्धका अवसर आनेपर वैरका बोझ दूसरोंके कंधेपर डाल देंगे।

मा वधीस्त्वं प्रजाः सर्वाः पुत्रान् भ्रातॄंस्तथैव च
वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयानलं हि तान् ॥ ४ ॥

समस्त प्रजाओं, पुत्रों और भाइयोंकी हत्या न कराओ। जिनकी ओर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, उन्हें तुम अजेय समझो।

एतावदेव मतं सत्यं सुहृदां कृष्णभीष्मयोः
यदि नादास्यसे तात पश्चात् तप्स्यसि भारत ॥ ५ ॥

तात भरतनन्दन! तुम्हारे हितैषी सुहृद् श्रीकृष्ण और भीष्मका यही सच्चा मत है। यदि तुम इसे ग्रहण नहीं करोगे तो पीछे पछताओगे।

यथोक्तं जामदग्न्येन भूयानेष ततोऽर्जुनः
कृष्णो हि देवकीपुत्रो देवैरपि सुदुःसहः
किं ते सुखप्रियेणेह प्रोक्तेन भरतर्षभ ॥ ६ ॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यथेच्छसि तथा कुरु
न हि त्वामुत्सहे वक्तुं भूयो भरतसत्तम ॥ ७ ॥

जमदग्निनन्दन परशुरामजीने जैसा बताया है, अर्जुन उससे भी बढ़कर है और देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण तो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुःसह हैं। भरतश्रेष्ठ! तुम्हें सुखद और प्रिय लगनेवाली अधिक बात कहनेसे क्या लाभ? ये सब बातें जो हमें कहनी थीं, हमने कह दीं। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। भरतकुलशिरोमणे! अब और कुछ कहनेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन् वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत्
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब द्रोणाचार्य यह बात कह रहे थे, उसी समय विदुरजी भी अमर्षमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी ओर देखकर बीचमें ही कहने लगे—

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ
इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ दुर्योधन! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता, मुझे तो तुम्हारे इन बूढ़े माता-पिता गान्धारी और धृतराष्ट्रके लिये भारी शोक हो रहा है।

यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा
हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाण्डजौ ॥ १० ॥

क्योंकि ये दोनों तुम-जैसे दुष्ट रक्षकके कारण मित्रों और मन्त्रियोंके मारे जानेपर पंख कटे हुए पक्षियोंकी भाँति अनाथ असहाय होकर विचरेंगे।

भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम्
कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम् ॥ ११ ॥

तुम-जैसे पापी और कुलघाती कुपुत्र पुत्रको जन्म देनेके कारण दोनों शोकमग्न हो भिक्षुककी भाँति इस पृथ्वीपर इधर-उधर भटकते फिरेंगे।

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत
आसीनं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर राजा धृतराष्ट्रने भाइयोंके साथ बैठे हुए तथा राजाओंसे घिरे हुए दुर्योधनसे कहा—

दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना
आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥ १३ ॥

दुर्योधन! तुम मेरी बातपर ध्यान दो। महात्मा श्रीकृष्ण जो बात कहते हैं, वह अत्यन्त कल्याणकारक, योगक्षेमसे युक्त तथा सदा अविनाशी रहनेवाली है, तुम उसे स्वीकार करो।

अनेन हि सहायेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा
इष्टान् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ १४ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले इन भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे हमलोग समस्त राजाओंमें सम्मानित रहकर अपने सभी अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेंगे।

सुसंहतः केशवेन तात गच्छ युधिष्ठिरम्
चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भरतानामनामयम् ॥ १५ ॥

तात! भगवान् श्रीकृष्णसे मिलकर तुम युधिष्ठिरके पास जाओ और पूर्णरूपसे कुछ मङ्गलाचरण करो, जिससे भरतवंशियोंका कल्याण हो।

वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छस्व संगमम्
कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ १६ ॥

तात! भगवान् श्रीकृष्णको मध्यस्थ बनाकर पाण्डवोंसे मिलो। मैं तुम्हारे लिये यही समयोचित कर्तव्य मानता हूँ। दुर्योधन! तुम यह अवसर हाथसे न जाने दो।

शमं चेद् याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम्
त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराभवः ॥ १७ ॥

यदि तुम शान्तिके लिये याचना करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका, जो तुम्हारे हितकी बात कह रहे हैं, तिरस्कार करोगे—इनकी आज्ञा नहीं मानोगे तो तुम्हारा पराभव हुए बिना नहीं रहेगा।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणादिवाक्ये अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भीष्म, द्रोण आदिके वचनविषयक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३८ ॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठका श्लोक मिलाकर कुल श्लोक हैं)

——

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्याय

भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको पुनः समझाना

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्रवचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ समर्थकौ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धृतराष्ट्रका कथन सुनकर दुर्बुद्धि दुर्योधनको समझानेमें समर्थ, दुःखका अनुभव करनेवाले भीष्म और द्रोणाचार्यने गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

यावत् कृष्णावसंनद्धौ यावत् तिष्ठति गाण्डिवम्।
यावद् धौम्यो न सेनाग्नौ जुहोतीह द्विषद्बलम्॥ २॥
यावन्न प्रेक्षते क्रुद्धः सेनां तव युधिष्ठिरः।
ह्रीनिषेधो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम्॥ ३॥

'जबतक श्रीकृष्ण और अर्जुन कवच धारण करके युद्धके लिये उद्यत नहीं होते हैं, जबतक गाण्डीव धनुष शान्त रखा हुआ है, जबतक धौम्य मुनि युद्धाग्निमें शत्रुसेनाकी आहुति नहीं डालते हैं और जबतक लज्जाशील महाधनुर्धर युधिष्ठिर कुपित होकर तुम्हारी सेनाकी ओर नहीं देखते, तभीतक यह वैरभाव शान्त हो जाना चाहिये॥ २-३॥

यावन्न दृश्यते पार्थः स्वेष्वनीकेष्ववस्थितः।
भीमसेनो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम्॥ ४॥

जबतक कुन्तीपुत्र महाधनुर्धर भीमसेन अपनी सेनाके अग्रभागमें खड़े नहीं दिखायी देते हैं, तभीतक यह वैर शान्त हो जाना चाहिये॥ ४॥

यावन्न चरते मार्गान् पृतनामभिहर्षयन्।
भीमसेनो गदापाणिस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः॥ ५॥

दुर्योधन! जबतक हाथमें गदा लिये भीमसेन तुम्हारी सेनाका संहार करते हुए युद्धके विभिन्न मार्गोंमें विचरण नहीं कर रहे हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो॥ ५॥

यावन्न शातयत्याजौ शिरांसि गजयोधिनाम्।
गदया वीरघातिन्या फलानीव वनस्पतेः॥ ६॥
कालेन परिपक्वानि तावच्छाम्यतु वैशसम्।

जबतक भीमसेन अपनी वीरघातिनी गदाद्वारा समयानुसार पके हुए वृक्षके फलोंकी भाँति युद्धभूमिमें गजारोही योद्धाओंके मस्तकोंको काट-काटकर नहीं गिरा रहे हैं, तभीतक तुम्हारा युद्धविषयक वैरभाव शान्त हो जाना चाहिये॥ ६॥

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ ७॥
विराटश्च शिखण्डी च शैशुपालिश्च दंशिताः।
यावन्न प्रविशन्त्येते नक्रा इव महार्णवम्॥ ८॥
कृतास्त्राः क्षिप्रमस्यन्तस्तावच्छाम्यतु वैशसम्।

नकुल, सहदेव, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, विराट, शिखण्डी तथा शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु—ये अस्त्रविद्यामें निपुण महान् वीर कवच धारण करके महासागरमें घुसे हुए ग्राहोंकी भाँति तुम्हारी सेनाके भीतर जबतक प्रवेश नहीं करते हैं, तभीतक यह कलहभाव शान्त हो जाना चाहिये॥ ७-८॥

यावन्न सुकुमारेषु शरीरेषु महीक्षिताम्॥ ९॥
गार्ध्रपत्राः पतन्त्युग्रास्तावच्छाम्यतु वैशसम्।

जबतक इन भूपालोंके सुकुमार शरीरोंपर गीधकी पाँखवाले भयंकर बाण नहीं गिर रहे हैं, तभीतक युद्धका संकल्प शान्त हो जाना चाहिये॥ ९॥

चन्दनागुरुदिग्धेषु हारनिष्कधरेषु च॥ १०॥
नोरःसु यावद् योधानां महेष्वासैर्महेषवः।
कृतास्त्रैः क्षिप्रमस्यद्भिर्दूरपातिभिरायसाः॥
अभिलक्ष्यैर्निपात्यन्ते तावच्छाम्यतु वैशसम्॥ ११॥

सामने आये हुए सबको मार गिरानेवाले, शीघ्रतापूर्वक बाण चलानेवाले और दूरतकका लक्ष्य बेधनेवाले, अस्त्रविद्याके पारङ्गत महाधनुर्धर वीर जबतक तुम्हारे योद्धाओंके चन्दन और अगुरुसे चर्चित तथा हार और निष्क धारण करनेवाले वक्षःस्थलोंपर लोहेके बाणोंकी वर्षा नहीं करते, तभीतक तुम्हें युद्धका विचार त्याग देना चाहिये॥ १०-११॥

अभिवादयमानं त्वां शिरसा राजकुञ्जरः।
पाणिभ्यां प्रतिगृह्णातु धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १२॥

हम चाहते हैं कि नृपश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करते देख दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लें॥ १२॥

ध्वजाङ्कुशपताकाङ्कं दक्षिणं ते सुदक्षिणः।
स्कन्धे निक्षिपतां बाहुं शान्तये भरतर्षभ॥ १३॥

भरतश्रेष्ठ! उत्तम दक्षिणा देनेवाले राजा युधिष्ठिर ध्वज, अङ्कुश और पताकाओंके चिह्नसे सुशोभित अपनी दाहिनी भुजाको शान्ति स्थापित करनेके लिये तुम्हारे कंधेपर रख दें॥ १३॥

रत्नौषधिसमेतेन रत्नाङ्गुलितलेन च।
उपविष्टस्य पृष्ठं ते पाणिना परिमार्जतु॥ १४॥

तथा तुम्हें पास बिठाकर रत्न एवं ओषधियोंसे युक्त और रत्नोंवाली अँगुलियोंसे सुशोभित हाथसे तुम्हारी पीठको धीरे-धीरे सहलावें॥ १४॥

शालस्कन्धो महाबाहुस्त्वां स्वजानो वृकोदरः।
साम्नाभिवदतां चापि शान्तये भरतर्षभ॥ १५॥

भरतश्रेष्ठ! शालवृक्षके तनेके समान ऊँचे-मोटे कंधोंवाले

महाबाहु भीमसेन भी शान्तिके लिये तुम्हें हृदयसे लगाकर तुमसे मीठी-मीठी बातें करें

अर्जुनेन यमाभ्यां च त्रिभिस्तैरभिवादितः।
मूर्ध्नि तान् समुपाघ्राय प्रेम्णाभिवद पार्थिव॥

राजन्! अर्जुन और नकुल-सहदेव—ये तीनों भाई तुम्हें प्रणाम करें और तुम उनके मस्तक सूँघकर उनके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो॥

दृष्ट्वा त्वां पाण्डवैर्वीरैर्भ्रातृभिः सह संगतम्।
आनन्दजान्यश्रूणि मुञ्चन्तु नराधिपाः॥

पृथ्वीके ये वीर भाई पाण्डवोंके साथ मिला हुआ देख सब नरेश अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहावें॥

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम्।
पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव॥

राजाओंकी सब राजधानियोंमें घोषणा करा दी जाय कि कौरव-पाण्डवोंका सारा झगड़ा शान्त होकर परस्पर मिलजुलकर रहनेका कार्य सम्पन्न हो गया। फिर तुम और युधिष्ठिर परस्पर भ्रातृभाव रखते हुए इस राज्यका उपभोग करो। तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर हो जायँ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणादिवाक्ये षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भीष्म और द्रोण आदिके वचनविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णको दुर्योधनका उत्तर, उसका पाण्डवोंको राज्य न देनेका निश्चय

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि।
प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कौरवसभामें यह अप्रिय वचन सुनकर दुर्योधनने यशस्वी महाबाहु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको इस प्रकार उत्तर दिया॥ १॥

प्रसमीक्ष्य भवानेतद् वक्तुमर्हति केशव।
मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे॥ २॥

केशव! आपको अच्छी तरह सोच-विचारकर ऐसी बातें कहनी चाहिये। आप तो विशेषरूपसे मुझे ही दोषी ठहराकर मेरी निन्दा कर रहे हैं॥ २॥

भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन।
भवान् गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम्॥ ३॥

मधुसूदन! आप पाण्डवोंके प्रेमकी दुहाई देकर जो अकारण ही सदा हमारी निन्दा करते रहते हैं, इसका क्या कारण है? क्या आप हमलोगोंके बलाबलका विचार करके ऐसा करते हैं?॥ ३॥

भवान् क्षत्ता च राजा चाप्याचार्यो वा पितामहः।
मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कंचन पार्थिवम्॥ ४॥

मैं देखता हूँ, आप, विदुरजी, पिताजी, आचार्य तथा पितामह भीष्म सभी लोग केवल मुझपर ही दोषारोपण करते हैं, दूसरे किसी राजापर नहीं॥ ४॥

न चाहं लक्षये कंचिद् व्यभिचारमिहात्मनः।
अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः॥ ५॥

परंतु मुझे यहाँ अपना कोई दोष नहीं दिखायी देता है, इधर राजाओंसहित आप सब लोग अकारण ही मुझसे द्वेष रखते हैं॥ ५॥

न चाहं कंचिदत्यर्थमपराधमरिंदम।
विचिन्तयन् प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव॥ ६॥

शत्रुदमन केशव! मैं बहुत सोच-विचारकर देखता हूँ तो भी मुझे अपना कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अपराध भी नहीं दृष्टिगोचर होता है॥ ६॥

प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन।
जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम्॥ ७॥

मधुसूदन! पाण्डवोंने बड़े प्रेमसे जूआ खेलना स्वीकार किया था, उसमें मामा शकुनिने उनका राज्य जीत लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध है?॥ ७॥

यत् पुनर्द्रविणं किंचित् तत्राजीयन्त पाण्डवाः।
तेभ्य एवाभ्यनुज्ञातं तत् तदा मधुसूदन॥ ८॥

मधुसूदन! उस जूएमें पाण्डवोंने जो कुछ धन हारा था, वह सब उसी समय उन्हींको लौटा दिया गया था॥ ८॥

अपराधो न चास्माकं यत् ते ह्यक्षपराजिताः।
अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम्॥ ९॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! अजेय पाण्डव जूएमें पुनः पराजित हो गये और उन्हें वनमें जाना पड़ा, तो यह भी हमारा अपराध नहीं है॥ ९॥

केन वाप्यपवादेन विरुध्यन्तेऽरिभिः सह।
अशक्ताः पाण्डवाः कृष्ण प्रहृष्टाः प्रत्यमित्रवत्॥ १०॥

कृष्ण! हमारे किस अपराधसे असमर्थ पाण्डव शत्रुओंके साथ मिलकर हमारा विरोध करते हैं और ऐसा करके भी बहुत प्रसन्न-से हो रहे हैं॥ १०॥

किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन् वा पुनरागसि।
धार्तराष्ट्रान् जिघांसन्ति पाण्डवाः सृञ्जयैः सह॥ ११॥

हमने उनका कोई बिगाड़ किया है? ये पाण्डव हमारे किस अपराधपर सृञ्जयोंके साथ मिलकर हम कुरुवंशियोंका वध करना चाहते हैं?

न चापि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा ।
प्रभ्रष्टाः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतुम् ॥ १२ ॥

हमलोग किसीके भयंकर कर्म अथवा भयानक वचनसे भयभीत हो धर्मसे च्युत होकर साक्षात् इन्द्रके सामने भी नतमस्तक नहीं हो सकते।

न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम् ।
उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ॥ १३ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीकृष्ण! मैं क्षत्रियधर्मका अनुसरण करनेवाले किसी भी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो युद्धमें हम लोगोंको जीतनेका साहस कर सके।

न हि भीष्मकृपद्रोणाः सकर्णा मधुसूदन ।
देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत पाण्डवैः ॥ १४ ॥

मधुसूदन! भीष्म, द्रोण, कृप और कर्णको देवता भी युद्धमें नहीं जीत सकते; फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है?

स्वधर्ममनुपश्यन्तो यदि माधव संयुगे ।
अस्त्रेण निधनं काले प्राप्स्यामः स्वर्ग्यमेव तत् ॥ १५ ॥

माधव! अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए यदि हमारी युद्धमें किसी समय शस्त्रोंके आघातसे मृत्यु हो जाय तो वह भी हमारे लिये स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाली होगी।

मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन ।
यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ॥ १६ ॥

जनार्दन! हम क्षत्रियोंका यही प्रधान धर्म है कि संग्राममें हमें बाणशय्यापर सोनेका अवसर प्राप्त हो।

ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे ।
अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तप्स्यन्ति माधव ॥ १७ ॥

माधव! इस प्रकार शत्रुओंके सामने नतमस्तक न होकर यदि युद्धमें वीरशय्या प्राप्त हो जाय तो इससे हमारे भाई-बन्धुओंको पश्चात्ताप नहीं होगा।

कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन् ।
भयाद् वृत्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कस्यचित् ॥ १८ ॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर क्षत्रियधर्मके अनुसार जीवननिर्वाह करनेवाला कौन ऐसा महापुरुष होगा, जो जीविकापर दृष्टि रखते हुए भी इस प्रकार भयके कारण किसी शत्रुके सामने मस्तक झुकायेगा?

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कस्यचित् ॥ १९ ॥

वीर पुरुषको चाहिये कि वह सदा उद्योग ही करे, किसीके सामने नतमस्तक न हो; क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषका कर्तव्य—पुरुषार्थ है। वीर पुरुष असमयमें ही नष्ट भले ही हो जाय, परंतु कभी शत्रुके सामने सिर न झुकाये।

इति मातङ्गवचनं परीप्सन्ति हितेप्सवः ।
धर्माय चैव प्रणमेद् ब्राह्मणेभ्यश्च मद्विधः ॥ २० ॥

अपना हित चाहनेवाले मनुष्य मातङ्ग मुनिके उपर्युक्त वचनका आदर करते हैं। मेरे-जैसा पुरुष केवल धर्म या ब्राह्मणोंको ही प्रणाम कर सकता है, अन्य किसीको नहीं।

अचिन्तयन् कञ्चिदन्यं यावज्जीवं तथाऽऽचरेत् ।
एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥ २१ ॥

दूसरे किसीकी कुछ भी परवा न करके जीवनभर ऐसा ही आचरण करता रहे, यही क्षत्रियोंका धर्म है और यही मेरा भी सदाका मत है।

राज्यांशश्चाभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराभवत् ।
न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव ॥ २२ ॥

केशव! मेरे पिताजीने पूर्वकालमें जो राज्यभाग मेरे भाइयोंको दिया था, उसे कोई मेरे जीते-जी फिर कभी नहीं पा सकता।

यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दन ।
न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाप्युपजीवाम माधव ।
अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम ॥ २३ ॥
अज्ञानाद् वा भयाद् वापि मयि बाले जनार्दन ।
न तदद्य पुनर्लभ्यं पाण्डवैर्वृष्णिनन्दन ॥ २४ ॥

जनार्दन! जबतक राजा धृतराष्ट्र जीवित हैं, तबतक हम और पाण्डवोंको हथियार न उठाकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहिये। वृष्णिनन्दन! पहले भी जो पाण्डवोंको राज्यका भाग दिया गया था, वह उन्हें देना उचित नहीं था, परंतु मैं उन दिनों बालक एवं पराधीन था। अतः अज्ञान अथवा भयसे जो कुछ उन्हें दे दिया गया, वह अब पाण्डव पुनः नहीं पा सकते ॥ २३-२४ ॥

ध्रियमाणे महाबाहौ मयि सम्प्रति केशव ।
यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव ।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥ २५ ॥

केशव! इस समय मुझ महाबाहु दुर्योधनके जीते-जी तीखी सूईकी नोकसे जितनी भूमि छिद सकती है, उतनी भी पाण्डवोंको नहीं दी जा सकती ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्ये सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें दुर्योधनवाक्यविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय

श्रीकृष्णका दुर्योधनको फटकारना और उसे कुपित होकर सभासे जाते देख उसे कैद करनेकी सलाह देना

वैशम्पायन उवाच

ततः सहस्त्रं दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! दुर्योधनकी बातें सुनकर श्रीकृष्णके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे कुछ विचार करके कौरव-सभामें दुर्योधनसे पुनः इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि।
स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान् ॥ २ ॥

दुर्योधन! तुम रणभूमिमें वीर-शय्या प्राप्त करोगे। तेरी यह इच्छा पूर्ण होगी। तुम मन्त्रियोंसहित धैर्यपूर्वक रहो; बहुत बड़ा नरसंहार होनेवाला है ॥ २ ॥

यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद् व्यतिक्रमः।
पाण्डवेष्विति तत् सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥ ३ ॥

मूढ! तू जो ऐसा मानता है कि पाण्डवोंके प्रति मेरा कोई अपराध ही नहीं है, तो इसके सम्बन्धमें सब बातें बताता हूँ। भूपालगण! आपलोग भी ध्यान देकर सुनें ॥ ३ ॥

श्रिया संतप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम्।
त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥ ४ ॥

भारत! महात्मा पाण्डवोंकी बढ़ती हुई लक्ष्मीसे संतप्त होकर तूने ही शकुनिके साथ यह खोटा विचार किया था कि पाण्डवोंके साथ जूआ खेला जाय ॥ ४ ॥

कथं च ज्ञातयस्तात श्रेयांसः साधुसम्मताः।
अथान्याय्यमुपस्थातुं जिह्मेनाजिह्मचारिणः ॥ ५ ॥

तात! तुम्हारे सगे भाई श्रेष्ठ, सदाचारी और साधु-सम्मानित हैं। श्रेष्ठ पाण्डव सदा सरल मार्गपर चलनेवाले हैं, उनके साथ अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेके लिये कैसे उद्यत हो सकते थे? ॥ ५ ॥

अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतां मतिविनाशनम्।
असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च ॥ ६ ॥

महामते! जूएका खेल तो सत्पुरुषोंकी बुद्धिको भी नष्ट करनेवाला है और यदि दुष्ट पुरुष उसमें प्रवृत्त हों तो उनमें बड़ा भारी कलह होता है तथा उन लोगोंपर दुःखमें कष्ट आते हैं ॥ ६ ॥

तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम्।
असमीक्ष्य सदाचारैः सार्धं पापानुबन्धनैः ॥ ७ ॥

तूने ही सदाचारकी ओर ध्यान न देकर पापासक्त पुरुषोंके सहित जूएको निमित्त बनाकर यह भयंकर आपत्ति खड़ी की है ॥ ७ ॥

कश्चान्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथार्हति।
आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया ॥ ८ ॥

तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा अधम होगा, जो अपने बड़े भाईकी स्त्रीको सभामें लाकर उसके साथ वैसा अनुचित बर्ताव करता, जैसा कि तूने द्रौपदीके प्रति सभाभवनमें न कहने योग्य बातें कहकर दुर्व्यवहार किया है ॥ ८ ॥

कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया ॥ ९ ॥

द्रौपदी उत्तम कुलमें उत्पन्न, शील और सदाचारसे सम्पन्न तथा पाण्डवोंको प्राणोंसे भी अधिक आदरणीय है। वह उनकी महारानी है, तथापि तूने उसके प्रति ऐसा बर्ताव किया ॥ ९ ॥

जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि।
दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्तः परंतपाः ॥ १० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार जब वनको जा रहे थे, उस समय दुःशासनने कौरव-सभामें उनके प्रति जैसी कठोर बातें कही थीं, उन्हें सभी कौरव जानते हैं ॥ १० ॥

सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु।
स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम् ॥ ११ ॥

सदा धर्ममें ही तत्पर रहनेवाले लोभरहित सदाचारी अपने बन्धुओंके प्रति कौन साधु पुरुष ऐसा अयोग्य बर्ताव करेगा ॥ ११ ॥

नृशंसानामनार्याणां परुषाणां च भाषणम्।
कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् ॥ १२ ॥

दुर्योधन! तूने कर्ण और दुःशासनके साथ अनेक बार नृशंस तथा अनार्य पुरुषोंकी-सी बातें कही हैं ॥ १२ ॥

सह मात्रा प्रदग्धुं तान् बालकान् वारणावते।
आस्थितः परमो यत्नो न समृद्धं च तत् तव ॥ १३ ॥

वारणावत नगरमें माताके साथ पाण्डवोंको उनकी बाल्यावस्थामें ही जला डालनेके लिये तूने महान् प्रयत्न किया था, परंतु तेरा वह प्रयत्न सफल न हो सका ॥ १३ ॥

ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ १४ ॥

उन दिनों पाण्डव अपनी माताके साथ दुर्योधनके भयसे एकचक्रा नगरीमें किसी ब्राह्मणके घरमें छिपे रहे ॥ १४ ॥

विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया।
सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत् तव ॥ १५ ॥

धूने भीमसेनको विष देकर, सर्पोंसे डसवाकर और बाँधे हुए हाथ-पैरोंसहित जलमें डुबाकर इन सभी उपायों द्वारा पाण्डवोंको नष्ट कर देनेका प्रयत्न किया है, परंतु वे यह प्रयत्न नहीं सफल न हो सका।

एवंवृत्तिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान्।
कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १६ ॥

ऐसे ही विचार रखकर तू पाण्डवोंके प्रति सदा कपटपूर्ण बर्ताव करता आया है। फिर कैसे मान लिया जाय कि महात्मा पाण्डवोंके प्रति तेरा कोई अपराध ही नहीं है?

पाण्डवेभ्यो यत्सदातेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि।
तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः ॥ १७ ॥

पापात्मन्! तू याचना करनेपर भी इन पाण्डवोंको जो पैतृक राज्य भाग नहीं देना चाहता है, वही तुझे उस समय देना पड़ेगा, जब कि रणभूमिमें धराशायी होकर तू ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जायगा।

कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत्।
मिथ्यावृत्तिरनार्यश्च समद्य विप्रतिपद्यसे ॥ १८ ॥

तू क्रूर मनुष्योंकी भाँति तू पाण्डवोंके प्रति बहुत-से अकार्य करके मिथ्याचारी और अनार्य होकर जो आज अपने उन अपराधोंके प्रति अनभिज्ञता प्रकट करता है।

मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव ॥ १९ ॥

माता-पिता, भीष्म, द्रोण और विदुर तुझसे बारंबार कहते हैं कि तू संधि कर ले—शान्त हो जा, परंतु भूपाल! तू शान्त होनेका नाम ही नहीं लेता।

शमे हि सुमहाँल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः।
न च रोचयसे राजन् किमन्यद् बुद्धिलाघवात् ॥ २० ॥

राजन्! शान्ति स्थापित होनेपर तेरा और युधिष्ठिरका दोनोंका ही महान् लाभ है, तू इसे पसंद नहीं करता, इसे बुद्धिकी मन्दताके सिवा और क्या कहा जा सकता है?

न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः।
अधर्म्यमयशस्यं च क्रियते पार्थिव त्वया ॥ २१ ॥

राजन्! तू हितैषी सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके कल्याणका भागी नहीं हो सकेगा। भूपाल! तू सदा अधर्म और अपयशका कार्य करता है।

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम्।
दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ २२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण ये सब बातें कह रहे थे, उसी समय दुःशासनने अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनसे कौरव-सभामें ही यह

न चेत् संधास्यसे राजन् स्वेन कामेन पाण्डवैः।
बद्ध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः ॥ २३ ॥

राजन्! यदि आप अपनी इच्छासे पाण्डवोंके साथ संधि नहीं करेंगे तो जान पड़ता है, कौरवलोग आपको बाँधकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके हाथमें सौंप देंगे।

वैकर्तनं त्वां च मां च त्रीनेतान् मनुजर्षभ।
पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते ॥ २४ ॥

नरश्रेष्ठ! पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और पिताजी कर्णको, आपको और मुझे—इन तीनोंको ही पाण्डवोंके अधिकारमें दे देंगे।

भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।
क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् ॥ २५ ॥
विदुरं धृतराष्ट्रं च महाराजं च बाह्लिकम्।
कृपं च सोमदत्तं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् ॥ २६ ॥
सर्वानेताननादृत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः।
अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता ॥ २७ ॥

भाईकी यह बात सुनकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अत्यन्त कुपित हो फुफकारते हुए महान् सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचता हुआ सहसा उठकर चल दिया। वह दुर्बुद्धि, निर्लज्ज, अशिष्ट पुरुषोंकी भाँति मर्यादाशून्य, अभिमानी तथा माननीय पुरुषोंका अपमान करनेवाला था। वह विदुर, धृतराष्ट्र, महाराज बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, द्रोण और भगवान् श्रीकृष्ण—इन सबका अनादर करके चला गया।

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभम्।
अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः ॥ २८ ॥

नरश्रेष्ठ दुर्योधनको वहाँसे जाते देख उसके भाई, मन्त्री तथा सहयोगी नरेश सभी उठकर उसके साथ चल दिये।

सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ २९ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनको भाइयोंसहित सभासे उठकर जाते देख शान्तनुनन्दन भीष्मने कहा—

धर्मार्थावभिसंत्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते।
हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो नचिरादिव ॥ ३० ॥

जो धर्म और अर्थका परित्याग करके क्रोधका ही अनुसरण करता है, उसे शीघ्र ही विपत्तिमें पड़ा देख उसके शत्रु उसकी हँसी उड़ाते हैं।

दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित्।
मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः ॥ ३१ ॥

राजा धृतराष्ट्रका यह दुरात्मा पुत्र दुर्योधन उपायको न जाननेवाला, राज्यका मिथ्या अभिमान रखनेवाला तथा क्रोध और लोभके

वशीभूत होनेवाला है । इस राजा दुर्योधनमें अत्यन्त अभिमान है ॥ २१ ॥

कालपक्वमिदं मन्ये सर्वं क्षत्रं जनार्दन ।
सर्वे ह्यनुसृता मोहात् पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः ॥ २२ ॥

जनार्दन ! मैं समझता हूँ कि ये समस्त क्षत्रिय कालके गालमें जानेवाले हैं; तभी तो ये सब के सब मोहवश अपने मन्त्रियोंसहित दुर्योधनका अनुसरण करते हैं ॥ २२ ॥

भीष्मस्याप मया कृष्ण द्रोणस्य पुरुषोत्तम
भीष्मद्रोणमुखा न सर्वे मन्त्रयन्त धीमतः ॥ २३ ॥

भीष्मजी यह सब सुनकर महाराज दुर्योधनसे अपने प्रकारसे भीष्म और द्रोण आदि सब लोगोंसे इस प्रकार कहा ॥ २३ ॥

सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः
प्रज्ञया मन्त्रमेवास्य न नियच्छन्ति मन्युना ॥ २४ ॥

कुरुकुलके सभी बड़े-बूढ़े लोगोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है कि आपलोग इस मूढ़ दुर्योधनको राज्यके ऊपर बिठाकर अब इसको बलपूर्वक नियन्त्रणमें नहीं रखते हैं ॥ २४ ॥

तत्र कालमहं मन्ये कालप्राप्तमरिंदम
क्रियतां यन्मया प्रोक्तं सर्वं शृणुत भारत ॥ २५ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले निष्पाप कौरवो ! इस विषयमें मैंने समयोचित कर्तव्यका निश्चय कर लिया है । उसका पालन करनेपर आपका भला होगा । वह सब मैं बता रहा हूँ, आपलोग सुनें ॥ २५ ॥

प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वक्ष्यामि हितं वचः ।
भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः ॥ २६ ॥

मैं तो हितकी बात बताने जा रहा हूँ, उसका आप लोगोंको भी प्रत्यक्ष अनुभव है । भरतवंशियो ! यदि वह आपके अनुकूल होनेके कारण ठीक जान पड़े तो आप उसे काममें ला सकते हैं ॥ २६ ॥

भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान् ।
जीवतः पितुरैश्वर्यं हृत्वा मन्युवशं गतः ॥ २७ ॥

बूढ़े भोजराज उग्रसेनका पुत्र कंस बड़ा दुराचारी एवं अजितेन्द्रिय था । वह अपने पिताके जीते-जी उनका राज्य-ऐश्वर्य लेकर स्वयं राजा बन बैठा था । जिसका परिणाम यह हुआ कि वह मृत्युके अधीन हो गया ॥ २७ ॥

उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः ।
ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे ॥ २८ ॥

समस्त भाई-बन्धुओंने उसका त्याग कर दिया था । अतः जातीय बन्धुओंके हितकी इच्छासे मैंने महान् युद्धमें उस उग्रसेनपुत्र कंसको मार डाला ॥ २८ ॥

आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः
उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्धनः ॥ २९ ॥

तदनन्तर हम सब कुटुम्बीजनोंने मिलकर भोजवंशी क्षत्रियोंकी उन्नति करनेवाले आहुक उग्रसेनको सत्कारपूर्वक पुनः राजा बना दिया ॥ २९ ॥

कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः ।
सम्भूय सुखमेधन्ते भारतान्धकवृष्णयः ॥ ४० ॥

भरतनन्दन ! कुलके रक्षाके लिये एकमात्र कंसका परित्याग करके अन्धक और वृष्णि आदि कुलोंके समस्त यादव परस्पर संगठित हो सुखसे रहते और उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे हैं ॥ ४० ॥

अपि चाप्यवदद् राजन् परमेष्ठी प्रजापतिः ।
व्यूढे देवासुरे युद्धेऽभ्युद्यतेष्वायुधेषु च ॥ ४१ ॥
द्वैधीभूतेषु लोकेषु विनश्यत्सु च भारत ।
अब्रवीत् सृष्टिमान् देवो भगवाँल्लोकभावनः ॥ ४२ ॥
पराभविष्यन्त्यसुरा दैतेया दानवैः सह ।
आदित्या वसवो रुद्रा भविष्यन्ति दिवौकसः ॥ ४३ ॥
देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
अस्मिन् युद्धे सुसंक्रुद्धा हनिष्यन्ति परस्परम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! इसके सिवा एक और उदाहरण लीजिये, एक समय प्रजापति ब्रह्माजीने जो बात कही थी, वही बता रहा हूँ । देवता और असुर युद्धके लिये मोर्चा बाँधकर खड़े थे । सबके अस्त्र-शस्त्र प्रहारके लिये ऊपर उठ गये थे । सारा जगत् दो भागोंमें बँटकर विनाशके गर्तमें गिरना चाहता था । उस अवस्थामें सृष्टिकी रचना करनेवाले लोक-भावन भगवान् ब्रह्माजीने स्पष्टरूपसे बता दिया कि इस युद्धमें दानवोंसहित दैत्यों तथा असुरोंकी पराजय होगी । आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता विजयी होंगे । देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस—ये युद्धमें अत्यन्त कुपित होकर एक दूसरेका वध करेंगे ॥ ४१—४४ ॥

इति मत्वाब्रवीद् धर्मं परमेष्ठी प्रजापतिः ।
वरुणाय प्रयच्छैतान् बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४५ ॥

यह मानकर परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माने धर्मराजसे यह बात कही, 'तुम इन दैत्यों और दानवोंको बाँधकर वरुणदेवको सौंप दो' ॥ ४५ ॥

एवमुक्तस्ततो धर्मो नियोगात् परमेष्ठिनः ।
वरुणाय ददौ सर्वान् बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४६ ॥

उनके ऐसा कहनेपर धर्मने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार सम्पूर्ण दैत्यों और दानवोंको बाँधकर वरुणको सौंप दिया ॥ ४६ ॥

तान् बद्ध्वा धर्मपाशैश्च स्वैश्च पाशैर्जलेश्वरः ।
वरुणः सागरे यत्तो नित्यं रक्षति दानवान् ॥ ४७ ॥

तबसे जलके स्वामी वरुण उन्हें धर्मपाश एवं अपने

पापोंमें बाँधकर अविलम्ब रखकर उन सैनिकोंके समूहकी सीमाको ही छोड़ दें।

तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चापि सौबलम्।
बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छत ॥ [illegible] ॥

भरतनन्दनो! इसी प्रकार आपलोग दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा दुःशासनको कैद करके पाण्डवोंके हाथमें दे दें।

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥

समस्त कुलकी भलाईके लिये एक पुरुषको, एक गाँवके हितके लिये कुलको, जनपदके भलेके लिये एक गाँवको और आत्मकल्याणके लिये समस्त भूमण्डलको त्याग दे।

राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ [illegible] ॥

राजन्! आप दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंके साथ संधि कर लें, जिससे आपके कारण सब क्षत्रियोंका संहार हो जाय।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

धृतराष्ट्रका गान्धारीको बुलाना और उसका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायन उवाच

कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता विदुरसे शीघ्रतापूर्वक कहा।

गच्छ तात महाप्राज्ञ गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम्।
आनयेह तया सार्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥ २ ॥

तात! तुम जाओ, बुद्धिमती एवं दूरदर्शिनी गान्धारी देवीको यहाँ बुला लाओ। मैं उसके साथ इस दुर्बुद्धि दुर्योधनको समझा-बुझाकर राहपर लानेका प्रयत्न करूँगा।

यदि सापि दुरात्मानं शमयेद् दुष्टचेतसम्।
अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥ ३ ॥

यदि वह भी उस दुष्टचित्त दुरात्माको शान्त कर सके तो हमलोग अपने सुहृद् श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन कर सकते हैं।

अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत्।
दुर्बुद्धेर्दुःसहायस्य समर्थं ब्रुवती वचः ॥ ४ ॥

सम्भव है, गान्धारी लोभके वशीभूत हुए दुर्बुद्धि एवं दुष्ट सहायकोंवाले दुर्योधनको उचित बात कहकर उसे सन्मार्गका दर्शन करा सके।

अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत्।
शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम् ॥ ५ ॥

यदि ऐसा हुआ तो दुर्योधनके द्वारा उपस्थित किया हुआ हमारा महान् एवं भयंकर संकट दीर्घकालके लिये शान्त हो जायगा और चिरस्थायी योगक्षेमकी प्राप्ति सुलभ होगी।

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम्।
आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥

राजाकी यह बात सुनकर विदुर धृतराष्ट्रके आदेशसे दूरदर्शिनी गान्धारीदेवीको वहाँ बुला लाये।

धृतराष्ट्र उवाच

एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः।
ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति ॥ ७ ॥

उस समय धृतराष्ट्रने कहा—गान्धारि! तुम्हारा यह दुरात्मा पुत्र गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है। यह ऐश्वर्यके लोभमें पड़कर राज्य और प्राण दोनों खो देगा।

अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान्।
सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥ ८ ॥

यह मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला मूढ़ दुरात्मा अशिष्ट पुरुषकी भाँति अपने सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके अपने पापी साथियोंके साथ सभासे बाहर निकल गया है।

वैशम्पायन उवाच

सा भर्तुर्वचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी।
अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पतिका यह वचन सुनकर यशस्विनी राजपुत्री गान्धारी महान् कल्याणका अनुसंधान करती हुई इस प्रकार बोलीं।

गान्धार्युवाच

आनायय सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम् ।
न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना ॥ १० ॥
आप्तुमाप्तं तथापीदमविनीतेन सर्वथा ।

गान्धारीने कहा—महाराज! राज्यकी कामनासे आतुर हुए अपने दुष्ट पुत्रको शीघ्र बुलवाइये। धर्म और अर्थका लोप करनेवाला कोई भी अशिष्ट पुरुष राज्य नहीं पा सकता। तथापि सर्वथा उच्छृङ्खलताका परिचय देनेवाले इस दुष्टने राज्यको प्राप्त कर लिया है।

त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः ॥ ११ ॥
यो जानन् पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्तसे ।

महाराज! आपको अपना बेटा बहुत प्रिय है, अतः वर्तमान परिस्थितिके लिये आप ही अत्यन्त निन्दनीय हैं; क्योंकि आप उसके पापपूर्ण विचारोंको जानते हुए भी सदा उसीकी बुद्धिका अनुसरण करते हैं।

स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः ॥ १२ ॥
अशक्योऽद्य त्वया राजन् विनिवर्तयितुं बलात् ।

राजन्! इस दुर्योधनको काम और क्रोधने अपने वशमें कर लिया है। यह लोभमें फँस गया है; अतः आज आपका इसे बलपूर्वक पीछे लौटाना असम्भव है।

राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः ॥ १३ ॥
दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम् ।

क्रूर स्वभाववाले दुष्ट सहायकोंसे युक्त, लोभी और दुरात्मा मूर्ख पुत्रको अपना राज्य सौंप देनेका फल महाराज धृतराष्ट्र भोग रहे हैं।

कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महीपतिः ।
भिन्नं हि स्वजनेन त्वां प्रहसिष्यन्ति शत्रवः ॥ १४ ॥
या हि शक्या महाराज साम्ना भेदेन वा पुनः ।
निस्तर्तुमापदः स्वेषु दण्डं कस्तत्र पातयेत् ॥ १५ ॥

भला, कोई भी राजा स्वजनोंमें फूट पड़ती देख उसकी उपेक्षा कैसे कर सकता है? राजन्! स्वजनोंमें फूट पड़नेपर शत्रु आपकी हँसी उड़ायेंगे। महाराज! जिस आपत्तिको साम अथवा भेदनीतिसे पार किया जा सकता है, उसमें अपने स्वजनोंपर दण्डका प्रयोग कौन करेगा? ॥ १४-१५ ॥

वैशम्पायन उवाच

शासनाद् धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम् ।
मातुश्च वचनात् क्षत्ता सभां प्रावेशयत् पुनः ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पिता धृतराष्ट्रके आदेश और माता गान्धारीकी आज्ञासे विदुर अमर्षशील दुर्योधनको पुनः सभामें बुला ले आये ॥ १६ ॥

स मातुर्वचनाकाङ्क्षी प्रविवेश पुनः सभाम् ।
अभिताम्रेक्षणः क्रोधान्निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ १७ ॥

दुर्योधनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वह फुफकारते हुए सर्पकी भाँति लंबी साँसें खींचता हुआ माताकी बात सुननेकी इच्छासे पुनः सभामें प्रविष्ट हुआ।

तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम् ।
विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

अपने कुमार्गगामी पुत्रको पुनः सभाके भीतर आया देख गान्धारी उसकी निन्दा करती हुई शान्तिस्थापनके लिये इस प्रकार बोली।

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक ।
हितं ते सानुबन्धस्य तथाऽऽयत्यां सुखोदयम् ॥ १९ ॥

बेटा दुर्योधन! मेरी यह बात सुनो। यह तुम्हारे और तुम्हारे सगे-सम्बन्धियोंके लिये हितकारक है तथा भविष्यमें सुखकी प्राप्ति करानेवाली है।

दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम ।
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद् वचः ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ दुर्योधन! तुम्हारे पिता, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य और विदुर तुमसे जो कुछ कहते हैं, अपने इन सुहृदोंकी वह बात मान लो।

भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता ।
भवेद् द्रोणमुखानां च सुहृदां शाम्यता त्वया ॥ २१ ॥

यदि तुम शान्त हो जाओगे तो तुम्हारे द्वारा भीष्मकी, पिताजीकी, मेरी तथा द्रोण आदि अन्य हितैषी सुहृदोंकी भी पूजा सम्पन्न हो जायगी।

न हि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते ।
अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरतसत्तम ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ! महामते! कोई भी अपनी इच्छामात्रसे राज्यको न तो पा सकता है, न उसकी रक्षा कर सकता है और न उसका उपभोग ही कर सकता है।

न ह्यवश्येन्द्रियो राज्यमश्नीयाद् दीर्घमन्तरम् ।
विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् ॥ २३ ॥

जिसने इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, वह दीर्घकालतक राज्यका उपभोग नहीं कर सकता। जिसने अपने मनको जीत लिया है, वह मेधावी पुरुष ही राज्यकी रक्षा कर सकता है।

कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः ।
तौ तु शत्रू विनिर्जित्य राजा विजयते महीम् ॥ २४ ॥

काम और क्रोध मनुष्यको धनसे दूर खींच ले जाते हैं। इन दोनों शत्रुओंको जीत लेनेपर राजा इस पृथ्वीपर विजय पाता है ॥ २४ ॥

सोऽयं प्रभूतं हि महैश्वर्यं सुदुर्लभम्।
राज्यं नात्मोत्थितं शक्यं न राज्यमभिरक्षितुम् ॥ २५ ॥

भूमीश्वर! यह महान् ऐश्वर्य ही राज्य नामक अभीष्ट रत्न है। जिनकी अन्तरात्मा दूषित है वे इसकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ २५ ॥

इन्द्रियाणि महाप्रेप्सुर्नियच्छेदर्थधर्मयोः।
इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्धतेऽग्निरिवेन्धनैः ॥ २६ ॥

महत्त्वको प्राप्त करनेकी इच्छावाला पुरुष अपनी इन्द्रियोंको अर्थ और धर्मसे नियन्त्रित करे। इन्द्रियोंको जीत लेनेपर बुद्धि उसी प्रकार बढ़ती है जैसे ईंधन डालनेसे आग प्रज्वलित हो उठती है ॥ २६ ॥

अविधेयानि हीमानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ २७ ॥

जैसे उद्दण्ड घोड़े काबूमें न होनेपर मूर्ख सारथिको मार्गमें ही मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाय तो ये मनुष्यका नाश करनेके लिये भी पर्याप्त हैं ॥ २७ ॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ २८ ॥

जो पहले अपने मनको न जीतकर मन्त्रियोंको जीतनेकी इच्छा करता है अथवा मन्त्रियोंको जीते बिना शत्रुओंको जीतना चाहता है, वह विवश होकर राज्य और जीवन दोनोंसे वञ्चित हो जाता है ॥ २८ ॥

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ २९ ॥

अतः पहले अपने मनको ही शत्रुके स्थानपर रखकर उसे जीते। तत्पश्चात् मन्त्रियों और शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छा करे। ऐसा करनेसे उसकी विजय पानेकी अभिलाषा कभी व्यर्थ नहीं होती है ॥ २९ ॥

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ ३० ॥

जिसने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर रक्खा है, मनपर विजय पा ली है तथा जो अपराधियोंको दण्ड प्रदान करता है, खूब सोच-समझकर काम करनेवाले उस धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है ॥ ३० ॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुभौ।
कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः ॥ ३१ ॥

छोटे छिद्रवाले जालसे ढकी हुई दो मछलियोंकी भाँति ये काम और क्रोध भी शरीरके भीतर ही छिपे हुए हैं, जो मनुष्यके ज्ञानको नष्ट कर देते हैं ॥ ३१ ॥

याभ्यां हि देवाः स्वर्यातुः स्वर्गस्य पिहितं मुखम्।
बिभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौ स्म वर्धितौ ॥ ३२ ॥

इन्हीं दोनों (काम और क्रोध) के द्वारा देवताओंने स्वर्गमें जानेवाले पुरुषके लिये उसका दरवाजा बंद कर रक्खा है। वीतराग पुरुषसे डरकर ही देवताओंने स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक काम और क्रोधकी वृद्धि की है ॥ ३२ ॥

कामं क्रोधं च लोभं च दम्भं दर्पं च भूमिपः।
सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥ ३३ ॥

जो राजा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और दर्पको अच्छी तरह जीतनेकी कला जानता है, वही इस पृथ्वीका शासक बन सकता है ॥ ३३ ॥

सततं निग्रहे युक्त इन्द्रियाणां भवेन्नृपः।
ईप्सन्नर्थं च धर्मं च द्विषतां च पराभवम् ॥ ३४ ॥

अतः अर्थ, धर्म तथा शत्रुओंका पराभव चाहनेवाले राजाको सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखनेका प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

कामाभिभूतः क्रोधाद् वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते।
स्वेषु चान्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ॥ ३५ ॥

जो राजा काम अथवा क्रोधसे अभिभूत होकर स्वजनों या दूसरोंके प्रति मिथ्या बर्ताव (कपट एवं अन्यायपूर्ण आचरण) करता है, उसके कोई सहायक नहीं होते ॥ ३५ ॥

एकीभूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिबर्हणैः।
पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी ॥ ३६ ॥

तात! पाण्डव परस्पर संगठित होनेके कारण एकीभूत हो गये हैं। वे परम ज्ञानी, शूरवीर तथा शत्रुसंहारमें समर्थ हैं। तुम उनके साथ मिलकर सुखपूर्वक इस पृथ्वीका राज्य भोग सकोगे ॥ ३६ ॥

यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः।
व्याहर्तुमर्हत तत् सत्यसन्धौ कृष्णधनंजयौ ॥ ३७ ॥

तात! शान्तनुनन्दन भीष्म तथा महारथी द्रोणाचार्य जैसा कह रहे हैं, वह सत्य ही है। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुन अजेय हैं ॥ ३७ ॥

भजस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयत्र केशवः ॥ ३८ ॥

अतः अनायास ही महान् कर्म करनेवाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लो; क्योंकि भगवान् केशव प्रसन्न होनेपर दोनों ही लोकोंमें सुख दे सकते हैं ॥ ३८ ॥

सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने।
प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य अपना भला चाहनेवाले ज्ञानी एवं विद्वान् सुहृदोंके शासनमें नहीं रहता, उनके आदेशके अनुसार नहीं चलता, वह शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला होता है ॥ ३९ ॥

न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम्।
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः ॥ ४० ॥

तात! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है, उससे धर्म और अर्थकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती; फिर सुख तो कहाँसे ही मिल सकता है? युद्धमें सदा विजय ही हो, यह भी निश्चित नहीं है; अतः उसमें मन न लगाओ ॥

भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च।
दत्तोंऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद् भीतैररिंदम ॥ ४१ ॥

शत्रुदमन महाप्राज्ञ! आपसमें फूट न हो, इसी भयसे पितामह भीष्मने, तुम्हारे पिताने और महाराज बाह्लीकने भी पाण्डवोंको राज्यका भाग अलग दिया है ॥

तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि।
यद् भुङ्क्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम् ॥ ४२ ॥

उसीके देनेका आज तुम यह प्रत्यक्ष फल देखते हो कि उन शूरवीर पाण्डवोंद्वारा निष्कण्टक बनायी हुई इस सम्पूर्ण पृथ्वीका तुम उपभोग करते हो ॥

प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम।
यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं महीक्षिताम् ॥ ४३ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले पुत्र! यदि तुम अपने मन्त्रियोंसहित इस भूमिका भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंको उनका यथोचित भाग—आधा राज्य दे दो ॥

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम्।
सुहृदां वचने तिष्ठन् यशः प्राप्स्यसि भारत ॥ ४४ ॥

भारत! भूमण्डलका आधा राज्य मन्त्रियोंसहित तुम्हारे जीवननिर्वाहके लिये पर्याप्त है। तुम सुहृदोंकी बातके अनुसार चलकर सुयश प्राप्त करोगे ॥ ४४ ॥

श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः।
पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात् ॥ ४५ ॥

तात! श्रीमान्, मनस्वी, बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय पाण्डवोंके साथ होनेवाला कलह तुम्हें महान् सुखसे वञ्चित कर देगा ॥

निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम्।
स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुम पाण्डवोंको उनका राज्यभाग देकर सुहृदोंके बढ़े हुए क्रोधको शान्त कर दो और अपने राज्यका यथोचित रीतिसे शासन करते रहो ॥

अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः।
शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥ ४७ ॥

वत्स! पाण्डवोंको जो तेरह वर्षोंके लिये निर्वासित कर दिया गया, यही उनका महान् तिरस्कार हुआ है। महामते! तुम्हारे काम और क्रोधसे इस अपकारकी और भी वृद्धि हुई है; अब तुम संधिके द्वारा इसे शान्त कर दो ॥ ४७ ॥

न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि।
सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते ॥ ४८ ॥

तुम जो कुन्तीके पुत्रोंका धन हड़प लेना चाहते हो, उसे करनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है। क्रोधको दृढ़तापूर्वक धारण करनेवाला सूतपुत्र कर्ण तथा तुम्हारा भाई दुःशासन ये दोनों भी ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनंजये।
धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम् ॥ ४९ ॥

जिस समय भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न—ये अत्यन्त कुपित होकर परस्पर युद्ध करेंगे, उस समय सारी प्रजाका विनाश अवश्यम्भावी है ॥

अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीघनः।
एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मा गमत् त्वत्कृते वधम् ॥ ५० ॥

तात! तुम अमर्षके वशीभूत होकर समस्त कौरवोंका वध न कराओ। तुम्हारे लिये इस सम्पूर्ण भूमण्डलका विनाश न हो ॥

यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः।
योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते ॥ ५१ ॥

मूढ! तुम जो यह मानते हो कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि भी पूरी शक्ति लगाकर मेरी ओरसे युद्ध करेंगे, यह अब सम्भव नहीं है ॥

समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विदितात्मनाम्।
पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः ॥ ५२ ॥

क्योंकि इन आत्मज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें तुम्हारा और पाण्डवोंका राज्य समान ही है। इनके हृदयमें दोनोंके लिये एक-सा ही प्रेम और स्थान है तथा धर्मको भी ये अधिक महत्त्व देते हैं ॥

राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम्।
न हि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम् ॥ ५३ ॥

इस राज्यका इन्होंने जो अन्न खाया है, उसके भयसे यद्यपि ये तुम्हारी ओरसे लड़कर अपने प्राणोंका त्याग कर देंगे, तथापि राजा युधिष्ठिरकी ओर कभी वक्र दृष्टिसे नहीं देख सकेंगे ॥

न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते।
तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ ॥ ५४ ॥

तात भरतश्रेष्ठ! इस संसारमें केवल लोभ करनेसे किसीको धनकी प्राप्ति होती नहीं दिखायी देती; अतः लोभसे कुछ सिद्ध होनेवाला नहीं है; तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गान्धारीवाक्ये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२९ ॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

दुर्योधनके षड्यन्त्रका सात्यकिद्वारा भंडाफोड़, श्रीकृष्णकी सिंहगर्जना तथा धृतराष्ट्र और विदुरका दुर्योधनको पुनः समझाना

वैशम्पायन उवाच

तत् तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम्।
पुनः प्रतस्थे संरम्भात् सकाशमकृतात्मनाम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! माताके कहे हुए उस नीतियुक्त वचनका अनादर करके दुर्योधन पुनः क्रोधपूर्वक वहाँसे उठकर उन्हीं अजितात्मा मन्त्रियोंके पास चला गया॥ १॥

ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः।
सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह॥ २॥

उस सभाभवनसे निकलकर दुर्योधन द्यूतविद्याके जानकार सुबलपुत्र राजा शकुनिके साथ गुप्त मन्त्रणा की॥ २॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च।
दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद् विचेष्टितम्॥ ३॥

उस समय दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा दुःशासन—इन चारोंने इस प्रकार दुष्ट

पुरायमस्मान् गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः।
सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च॥ ४॥
वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव।
प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा॥ ५॥

ये पहलेसे ही जनार्दन श्रीकृष्ण अनेक कार्य करनेवाले हैं, राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके साथ मिलकर जबतक हमें कैद करें, उसके पहले ही हमलोग ही बलपूर्वक इन पुरुषसिंह हृषीकेशको कैद कर लें, ठीक उसी तरह जैसे इन्द्रने विरोचनपुत्र बलिको कैद किया था॥ ४-५॥

श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः।
निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः॥ ६॥

श्रीकृष्णको कैद हुआ सुनकर पाण्डव उसी तरह हतोत्साह हो जायँगे, जैसे दाँत टूट जानेपर सर्प॥ ६॥

अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च।
अस्मिन् गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम्॥ ७॥
निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह।

ये महाबाहु श्रीकृष्ण ही इन सब पाण्डवोंके कल्याणसाधक और कवचकी भाँति रक्षा करनेवाले हैं। सम्पूर्ण यदुवंशियोंके शिरोमणि तथा वरदायक इन श्रीकृष्णके कैदी बना लिये जानेपर सोमकोंसहित सब पाण्डव उद्योगशून्य हो जायँगे॥ ७½॥

तस्माद् वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम्॥ ८॥
क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून्।

इसलिये हम यहाँ शीघ्रतापूर्वक कार्य करनेवाले केशवको राजा धृतराष्ट्रके चीखने-चिल्लानेपर भी कैद करके शत्रुओंसे युद्ध करें॥ ८½॥

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम्॥ ९॥
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुध्यत सात्यकिः।

विद्वान् सात्यकि दूसरोंके मनकी बात समझ लेनेवाले थे। वे उन दुष्टचित्त पापियोंके उस पापपूर्ण अभिप्रायको शीघ्र ही ताड़ गये॥ ९½॥

तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः॥ १०॥
अब्रवीत् कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम्।
व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः॥ ११॥
यावदाख्याम्यहं चैतत् कृष्णायाक्लिष्टकारिणे।

फिर उसके प्रतीकारके लिये वे सभासे बाहर निकलकर कृतवर्मासे मिले और इस प्रकार बोले—तुम शीघ्र ही अपनी सेनाको तैयार कर लो और स्वयं भी कवच धारण करके व्यूहरचनापूर्वक खड़ी हुई सेनाके साथ तबतक सभाके द्वारपर डटे रहो, जबतक मैं अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको कौरवोंके इस षड्यन्त्रकी सूचना दिये देता हूँ॥ १०-११½॥

स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव॥ १२॥
आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने।
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत॥ १३॥

ऐसा कहकर वीर सात्यकि सभामें प्रवेश किया, मानो सिंह पर्वतकी गुफामें घुस गया हो। वहाँ जाकर उन्होंने महात्मा केशवसे कौरवोंका अभिप्राय बताया। फिर धृतराष्ट्र और विदुरको भी इसकी सूचना दी॥ १२-१३॥

तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव।
धर्मादपेतमर्थाच्च कर्म साधुविगर्हितम्॥ १४॥
मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथंचन।

सात्यकिने किंचित् मुसकराते हुए-से उन कौरवोंके इस अभिप्रायको इस प्रकार बताया—'सभासदो! कुछ मूर्ख कौरव यहाँ ऐसा नीच कर्म करना चाहते हैं, जो धर्म अर्थ

और अब हमी इन्हींसे त्राहुपुरुषोत्तम निश्चित है यद्यपि इस कार्यमें उन्हें किसी प्रकार सफलता नहीं मिल सकती

क्रुद्धा विकुर्वते मूढा पापात्मानः समागताः ॥ १५ ॥
धर्षयिष्यामहे कृष्णं क्रोधलोभवशानुगाः

क्रोध और लोभके वशीभूत हो काम एवं रोषसे तिरस्कृत होकर कुछ पापात्मा एवं मूढ़ मनुष्य यहाँ आकर मनमें उपद्रव पैदा करना चाहते हैं

इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥ १६ ॥
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः

जैसे बालक और जड़ बुद्धिवाले लोग जलती आगको कपड़ेमें बाँधना चाहें, उसी प्रकार ये मन्दबुद्धि कौरव इन कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको कैद करना चाहते हैं

सात्यकिरेतच्छ्रुत्वा तु विदुरो दीर्घदर्शिवान् ॥ १७ ॥
दुर्योधनं महाबाहुमब्रवीत् कुरुसंसदि
राजन् परीतकालस्त्वं पुत्रा सर्वे परंतप ॥ १८ ॥
मन्त्रयन्त्यसुकार्यं च कर्तुं सर्वे समुद्यताः

सात्यकिकी यह बात सुनकर दूरदर्शी विदुरने कौरव सभामें महाबाहु धृतराष्ट्रसे कहा — राजन्! तुम्हारे पुत्र कालके अधीन हो गये हैं, इसीलिये ये यह अकीर्तिकारक और असम्भव कर्म करनेको उतारू हुए हैं

इमं हि पुण्डरीकाक्षमभिभूय प्रसह्य च ॥ १९ ॥
निग्रहीतुं किलेच्छन्ति सहिता वासवानुजम्
इमं पुरुषशार्दूलमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥ २० ॥
आसाद्य न भविष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम्

सुननेमें आया है कि ये सब संगठित होकर इन पुरुषसिंह कमलनयन श्रीकृष्णका तिरस्कार करके हठपूर्वक कैद करना चाहते हैं। ये भगवान् इन्द्रके छोटे भाई और दुर्धर्ष वीर हैं। इन्हें कोई भी पकड़ नहीं सकता। इनके पास आकर सभी विरोधी जलती आगमें गिरनेवाले पतिंगोंके समान नष्ट हो जायँगे

अयमिच्छन् हि तान् सर्वान् युध्यमानाञ्जनार्दनः ॥
सिंहो मृगानिव क्रुद्धो गमयेद् यमसादनम्

जैसे क्रोधमें भरा हुआ सिंह हरिनोंको मार डालता है उसी प्रकार ये भगवान् श्रीकृष्ण यदि चाहें तो युद्ध होनेपर समस्त विरोधी योद्धाओंको यमलोक पहुँचा सकते हैं ॥ २१ ॥
न त्वयं निन्दितं कर्म कुर्यात् पापं कथंचन ॥ २२ ॥
न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः

परन्तु ये पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण किसी प्रकार भी निन्दित अथवा पापकर्म नहीं कर सकते और कभी धर्मसे ही पीछे हट सकते हैं

(यथा वाराणसी दग्धा सकला सहसा पुरा।
यातुधानभयात् कृष्णेन चक्रविसृष्टया तदा ॥
तथा नागपुरं दग्ध्वा शत्रुघ्नचक्रधारः
स्वयं चक्रेश्वरो भूत्वा नाशयिष्यति कौरवान् ॥

श्रीकृष्णने जिस प्रकार चक्र छोड़कर एक ओर हाथियोंसहित वाराणसी नगर जला दी और काशिराजको उनके सभी सम्पत्तियोंसहित मार डाला, उसी प्रकार ये शत्रु चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं चक्रेश्वर होकर हस्तिनापुरको भस्म करके कौरवोंका नाश कर डालेंगे

पारिजातहरं कृष्णमेकं मधुसूदनमहम्
साम्प्रतं सारथ्यो युध्यतां रसुभि सह ॥

अद्भुतकर्मा युद्ध करनेवाले श्रीकृष्ण जब अकेले पारिजातका अपहरण करने गये, उस समय असंख्य योद्धाओंने और स्वयं इन्द्रने इनके ऊपर युद्धके द्वारा आक्रमण किया। परन्तु वे भी इन्हें पराजित न कर सके

मात्स्य निर्मोचने पाशान् षट् सहस्राणि तरस्विना
हताश्च वासुदेवेन जगृहस्तत्र नैरवान्

निर्मोचन नामक स्थानमें छः हजार बलिवाले पाश रखे गये थे, जिन्हें इन वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने निकट जाकर काट डाला

प्राग्ज्योतिषे तु भौमस्य निपूय गदया गिरिम्
मुरासुरः सहामात्यः कृष्णेन विनिपातितः ॥

इन्हीं श्रीकृष्णने भौमके द्वारपर पहुँचकर अपनी गदासे पर्वतको विदीर्ण करते हुए मन्त्रियोंसहित मुरासुरको मार गिराया था

सेवमानास्तु कुरवः तु धर्मविदी सदाच्युत
क्षमते पुण्डरीकाक्ष शक्त सन् पापकर्मणाम् ॥
एते हि यदि गोविन्दमिच्छन्ति सह राजभिः
अवस्थापयितुं सम भविष्यन्ति पतङ्गा ते ॥

अभी कौरवोंकी आयु शेष है, इसीलिये दया करनेवाले ये कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण इन पापाचारियोंको दण्ड देनेमें समर्थ होकर भी क्षमा करते आ रहे हैं। यदि ये कौरव अपने सहयोगी राजाओंके साथ गोविन्दको बन्दी बनाना चाहते हैं तो ये सब-के-सब आज ही पतङ्गोंके सदृश हो जायँगे

यथा वायोस्तृणाग्राणि वशं यान्ति बलीयसः
तथा चक्रभृतः सर्वे वशमेष्यन्ति कौरवाः ॥)

जैसे तिनकोंके अग्रभाग महाबलवान् वायुके वशमें होते हैं, उसी प्रकार समस्त कौरव चक्रधारी श्रीकृष्णके अधीन हो जायँगे

विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः
राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा ॥ २४
एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव

विदुरके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने समस्त सुहृदोंके सुनते हुए राजा धृतराष्ट्रकी ओर देखकर कहा—'राजन्! ये कुरु योद्धा यदि कुपित होकर मुझे बलपूर्वक पकड़ सकते हों तो आप इन्हें आज्ञा दे दीजिये। फिर देखिये ये मुझे पकड़ पाते हैं या मैं इन्हें बंदी बनाता हूँ।

एतान् हि सर्वान् संरब्धान् नियन्तुमहमुत्सहे ॥
न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथंचन

यद्यपि क्रोधसे भरे हुए इन समस्त कौरवोंको मैं काबूमें करनेकी शक्ति रखता हूँ, परंतु मैं किसी प्रकार भी कोई निन्दित कर्म अथवा पाप नहीं कर सकता।

पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्त स्वार्थाद्धास्यन्ति ते सुताः ॥ २६
एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः

भारत! ये आपके पुत्र पाण्डवोंका धन हड़पनेके लिये लुभाये हुए हैं, परंतु इन्हें अपने स्वार्थसे भी हाथ धोना पड़ेगा। यदि ये ऐसा ही चाहते हैं, तब तो युधिष्ठिरका काम बन गया।

अद्यैव ह्यहमेतांश्च ये चैनाननु भारत ॥ २७ ॥
निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत्

भारत! मैं आज ही इन कौरवों तथा इनके अनुगामियोंको कैद करके यदि कुन्तीपुत्रोंके हाथमें सौंप दूँ तो क्या बुरा होगा?

इदं तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म भारत ॥ २८ ॥
संनिधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम्

परंतु भारत! महाराज! आपके समीप मैं क्रोध अथवा पापबुद्धिसे होनेवाला यह निन्दित कर्म नहीं आरम्भ करूँगा।

एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत्
अहं तु सर्वांस्तस्यानुजानामि नराधिप

राजन्! यह दुर्योधन जैसा चाहता है, वैसा ही हो। मैं आपके सभी पुत्रोंको इसके लिये आज्ञा देता हूँ।

एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत
क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥ ३० ॥
सहमित्रं सहामात्यं ससोदर्यं सहानुगम्
शक्नुयां यदि पन्थानमवतारयितुं पुनः ॥ ३१ ॥

यह सुनकर धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा—'तुम उस पापात्मा राज्यलोभी दुर्योधनको उसके मित्र, मन्त्रियों, भाइयों तथा अनुगामी सेवकोंसहित शीघ्र मेरे पास बुला लाओ। यदि पुनः उसे सन्मार्गपर उतार सकूँ तो अच्छा होगा।'

ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत् सभाम्
अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ ३२ ॥

तब विदुरजी राजाओंसे घिरे हुए दुर्योधनको उसकी इच्छा न होते हुए भी भाइयोंसहित पुनः सभामें ले आये।

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत
कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चाभिसंवृतम् ॥ ३३ ॥

तब राजा धृतराष्ट्र कर्ण, दुःशासन तथा अन्य राजाओंसे भी घिरे हुए दुर्योधनसे राजा धृतराष्ट्रने कहा—

नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान्
पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि ॥ ३४ ॥

नृशंस! महापापी! नीच कर्म करनेवाले ही तेरे सहायक हैं, तू उन पापी सहायकोंसे मिलकर पापकर्म ही करना चाहता है।

अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम्
यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत् कुलपांसनः ॥ ३५ ॥

वह कर्म ऐसा है जिसकी साधु पुरुषोंने सदा निन्दा की है, वह अपयशकारक तो है ही, तू उसे कर भी नहीं सकता। तुझ-जैसा कुलाङ्गार और मूर्ख मनुष्य उसे करनेका चेष्टा करता है।

त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम्
पापः सहायैः सहितो निग्रहीतुं किलेच्छसि ॥ ३६ ॥

सुनता हूँ, तू अपने पापी सहायकोंसे मिलकर इन दुर्धर्ष और दुर्जय कमलनयन श्रीकृष्णको कैद करना चाहता है।

यो न शक्यो बलात् कर्तुं देवैरपि सवासवैः
तं त्वं प्रार्थयसे मन्द बालश्चन्द्रमसं यथा ॥ ३७ ॥

ओ मूढ! इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता जिन्हें बलपूर्वक अपने अधीन नहीं कर सकते, उन्हींको तू कैद करना चाहता है। तेरा यह प्रयास वैसा ही है, जैसे कोई बालक चन्द्रमाको पकड़ना चाहता हो।

देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः
न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुध्यसि केशवम् ॥ ३८ ॥

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, असुर और नाग भी समराङ्गणमें जिनका वेग नहीं सह सकते, उन भगवान् श्रीकृष्णको तू नहीं जानता।

दुर्ग्राह्यः पाणिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी
दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्राह्यः केशवो बलात् ॥ ३९ ॥

जैसे वायुको हाथसे पकड़ना दुष्कर है, चन्द्रमाको हाथसे छूना कठिन है और पृथ्वीको मस्तकपर धारण करना असम्भव है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको बलपूर्वक पकड़ना दुष्कर है।

इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत्
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर विदुरने भी अमर्षमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—

विदुर उवाच

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम साम्प्रतम्।
सौभद्वारे वानरेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम्॥ ४१॥

विदुर बोले—दुर्योधन! इस समय मेरी बात पर ध्यान दो। सौभद्वारमें द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक वानरराज रहता था, जिसने एक दिन पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा करके भगवान् श्रीकृष्णको आच्छादित कर दिया॥ ४१॥

ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम्।
ग्रहीतुं नाशकत् तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात्॥ ४२॥

वह पराक्रम करके सभी उपायोंसे श्रीकृष्णको पकड़ना चाहता था, परंतु उन्हें कभी पकड़ न सका। उन्हीं श्रीकृष्णको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो॥ ४२॥

प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः।
ग्रहीतुं नाशकत् तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात्॥ ४३॥

पहलेकी बात है, प्राग्ज्योतिषपुरमें गये हुए श्रीकृष्णको दानवोंसहित नरकासुरने भी बंदी बनानेकी चेष्टा की, परंतु वह भी वहाँ सफल न हो सका। उन्हींको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो॥ ४३॥

अनेकयुगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे।
नीत्वा कन्यासहस्राणि उपयेमे यथाविधि॥ ४४॥

अनेक युगों तथा असंख्य वर्षोंकी आयुवाले नरकासुरको युद्धमें मारकर श्रीकृष्ण उसके यहाँसे सहस्रों राजकन्याओंको उद्धार करके ले गये और उन सबके साथ उन्होंने विधिपूर्वक विवाह किया॥ ४४॥

निर्मोचने षट् सहस्राः पाशैर्बद्धा महासुराः।
ग्रहीतुं नाशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात्॥ ४५॥

निर्मोचननगरमें छः हजार बड़े-बड़े असुरोंने भगवान्‌को पाशोंमें बाँध लिया, वे असुर भी जिन्हें पकड़ न सके, उन्हींको तुम बलपूर्वक वशमें करना चाहते हो॥ ४५॥

अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ॥ ४६॥

भरतश्रेष्ठ! इन्होंने ही बाल्यावस्थामें शकुनी पूतनाका वध किया था और गौओंकी रक्षाके लिये अपने हाथपर गोवर्धन पर्वतको धारण किया था॥ ४६॥

अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन्॥ ४७॥

अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज केशी और कंस भी लोकहितके विरुद्ध आचरण करनेपर श्रीकृष्णके ही हाथसे मारे गये थे॥ ४७॥

जरासंधश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान्।
बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः॥ ४८॥

जरासंध, दन्तवक्त्र, पराक्रमी शिशुपाल और बाणासुर भी इन्हींके हाथसे मारे गये हैं तथा अन्य बहुत-से राजाओंका भी इन्होंने ही संहार किया है॥ ४८॥

वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः॥ ४९॥

अमित तेजस्वी श्रीकृष्णने राजा वरुणपर विजय पायी है। इन्होंने अग्निदेवको भी पराजित किया है और पारिजातहरण करते समय साक्षात् शचीपति इन्द्रको भी जीता है॥ ४९॥

एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः॥ ५०॥

इन्होंने एकार्णवके जलमें शयन करते समय मधु और कैटभ नामक दैत्योंको मारा था और दूसरा शरीर धारण करके हयग्रीव नामक राक्षसका भी इन्होंने ही वध किया था॥ ५०॥

अयं कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे।
यद् यदिच्छेदयं शौरिस्तत् तत् कुर्यादयत्नतः॥ ५१॥

ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है। सबके पुरुषार्थके कारण भी यही हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण जो-जो इच्छा करें, वह सब अनायास ही कर सकते हैं॥ ५१॥

तं न बुध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम्॥ ५२॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले इन भगवान् गोविन्दका पराक्रम भयंकर है। तुम इन्हें अच्छी तरह नहीं जानते। ये क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयानक हैं। ये श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा प्रशंसित एवं तेजकी राशि हैं॥ ५२॥

प्रधर्षयन् महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि॥ ५३॥

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णका तिरस्कार करनेपर तुम अपने मन्त्रियोंसहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतंगा आगमें पड़कर भस्म हो जाता है॥ ५३॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि विदुरवाक्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत यानसन्धिपर्वमें विदुरवाक्यविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके श्लोक मिलाकर कुल ५ श्लोक हैं)



३ग

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका विश्वरूप दर्शन कराकर कौरवसभासे प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

विदुरेणैवमुक्ते तु केशवः शत्रुपूगहा।
दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान्॥ १॥
एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन।
परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! विदुरजीके ऐसा कहनेपर शत्रुसमूहका संहार करनेवाले शक्तिशाली श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—दुर्बुद्धि दुर्योधन! तू मोहवश मुझे अकेला मान रहा है और इसलिये मेरा तिरस्कार करके तू मुझे पकड़ना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है॥ १-२॥

इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवान्धकवृष्णयः।
इहादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः॥ ३॥

देख, सब पाण्डव यहीं हैं। अन्धक और वृष्णिवंशके वीर भी यहीं मौजूद हैं। ये आदित्य, रुद्रगण तथा महर्षियोंसहित वसुगण भी यहीं हैं॥ ३॥

एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा।
तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः॥ ४॥
अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः।
तस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाभवत्॥ ५॥

ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका विनाश करनेवाले भगवान् केशव उच्चस्वरसे अट्टहास करने लगे। हँसते समय उन महात्मा श्रीकृष्णके अंगोंसे विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा अंगूठेके बराबर आकारवाले देवता आगकी लपटें छोड़ने लगे। उनके ललाटमें ब्रह्मा और वक्षःस्थलमें रुद्रदेव विराजमान थे॥ ४-५॥

लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्याद् व्यजायत।
आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाश्विनावपि॥ ६॥
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथैव च।
बभूवुश्चैव रूपाणि यक्षगन्धर्वरक्षसाम्॥ ७॥

उनकी भुजाओंमें लोकपाल थे और मुखसे अग्निदेव प्रकट हो रहे थे। आदित्य, साध्य, वसु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव तथा यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी उनके विभिन्न अंगोंमें प्रकट हो गये॥ ६-७॥

प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां संकर्षणधनंजयौ।
दक्षिणेऽथार्जुनो धन्वी हली रामश्च सव्यतः॥ ८॥

उनकी दोनों भुजाओंसे बलराम और अर्जुनका प्रादुर्भाव हुआ। दाहिनी भुजामें धनुर्धर अर्जुन और बायींमें हलधर बलराम विराजमान थे॥ ८॥

भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः।
अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः॥ ९॥
अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः।

भीमसेन, युधिष्ठिर तथा माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव भगवान्‌के पृष्ठभागमें स्थित थे। प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी योद्धा बड़े-बड़े विशाल आयुध हाथमें लिये भगवान्‌के अग्रभागमें प्रकट हुए॥ ९-१०॥

शङ्खचक्रगदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः॥ १०॥
अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च।
नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः॥ ११॥

शंख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, हल तथा नन्दक नामक खड्ग—ये सभी उठे हुए, सब प्रकारके आयुध श्रीकृष्णकी अनेक भुजाओंमें देदीप्यमान दिखायी देते थे॥ ११॥

नेत्राभ्यां नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्यां च समन्ततः।
प्रादुरासन् महारौद्राः सधूमाः पावकार्चिषः॥ १२॥

उनके नेत्रोंसे, नासिकाके छिद्रोंसे और दोनों कानोंसे सब ओर अत्यन्त भयंकर धूमयुक्त आगकी लपटें प्रकट हो रही थीं॥ १२॥

रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरीचयः।
तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः॥ १३॥
न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः।
ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम्॥ १४॥
संजयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान्।
प्रादात् तेषां स भगवान् दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः॥ १५॥

उनके रोमकूपोंसे सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाश फैल रहा था। महात्मा श्रीकृष्णके उस भयंकर स्वरूपको देखकर सब राजाओंके मनमें भय समा गया और उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये। द्रोणाचार्य, भीष्म, परम बुद्धिमान् विदुर, महाभाग संजय तथा तपस्वी महर्षियोंको छोड़कर अन्य सबकी आँखें बंद हो गयी थीं; इन द्रोण आदिको भगवान् जनार्दनने स्वयं ही दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे वे और सब लोग उन्हें देखनेमें समर्थ हो सके॥ १३-१५॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च॥ १६॥

उस सभाभवनमें भगवान् श्रीकृष्णका यह परम आश्चर्यमय रूप देखकर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ १६॥

धृतराष्ट्र उवाच

त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हित ।
तस्मात् त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

उस समय धृतराष्ट्रने कहा— कमलनयन यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण! आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के हितैषी हैं; अतः मुझपर भी कृपा कीजिये।

भगवन् मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः ।
भवन्तमन्यं द्रष्टुमिच्छामि नान्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ १८ ॥

भगवन्! मेरे नेत्रोंका तिरोधान हो चुका है, परंतु आज मैं आपसे पुनः दो नेत्र माँगता हूँ। केवल आपका दर्शन करना चाहता हूँ, आपके सिवा और किसीको मैं नहीं देखना चाहता।

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः ।
अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥ १९ ॥

तब दाशार्ह जनार्दनने धृतराष्ट्रसे कहा— कुरुनन्दन! आपको दो अदृश्य नेत्र प्राप्त हों।

तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रस्य चक्षुषी ।
उत्पन्ने वासुदेवस्य विश्वरूपदिदृक्षया ॥ २० ॥

महाराज! वहाँ यह अद्भुत बात हुई कि धृतराष्ट्रने भी भगवान् श्रीकृष्णके उनके विश्वरूपका दर्शन करनेकी इच्छासे दो नेत्र प्राप्त कर लिये।

ऋषयस्त्वद्भुतमपश्यन् धृतराष्ट्रं नराधिपम् ।
विस्मिताः ऋषयश्चास्य तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥

सिंहासनसे उठे हुए धृतराष्ट्रको नेत्र प्राप्त हो गये यह जानकर ऋषियोंको महान् आश्चर्य हुआ और वे मधुसूदनकी स्तुति करने लगे।

चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे ।
विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्रमें ज्वार उठ गया और समस्त भूपाल अत्यन्त विस्मित हो गये।

ततः स पुरुषव्याघ्रः संजहार वपुः स्वकम् ।
तद् दिव्यमद्भुतं चित्रमृद्धिमच्चारिन्दमः ॥ २३ ॥

तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको, जो दिव्य, अद्भुत एवं विचित्र ऐश्वर्यसे युक्त था, समेट लिया।

ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् वे मधुसूदन ऋषियोंकी आज्ञा ले सात्यकि और कृतवर्माका हाथ पकड़े सभाभवनसे चल दिये।

ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः ।
तस्मिन् कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥

उनके जाते ही नारद आदि महर्षि भी अदृश्य हो गये। वह सारा कोलाहल शान्त हो गया। यह सब एक अद्भुत-सी घटना हुई थी।

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।
अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ २६ ॥

पुरुषसिंह श्रीकृष्णको जाते देख राजाओंसहित समस्त कौरव भी उनके पीछे-पीछे चले, मानो देवता देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों।

अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद् राजमण्डलम् ।
निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २७ ॥

परंतु अमेयात्मा भगवान् श्रीकृष्ण उस समस्त राजमण्डलकी कुछ भी परवा न करके धूमयुक्त अग्निकी भाँति सभाभवनसे बाहर निकल आये।

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥ २८ ॥
सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना ।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २९ ॥

इसी समय शैब्य और सुग्रीव नामक घोड़ोंसे जुते हुए परम उज्ज्वल एवं विशाल रथके साथ सारथि दारुक दिखायी दिया। उस रथमें बहुत-सी छोटी-छोटी घंटिकाएँ शोभा पाती थीं। सोनेकी जालियोंसे उसकी विचित्र छटा दिखायी देती थी। वह शीघ्रगामी था और चलते समय मेघके समान गम्भीर घरघराहट पैदा करता था। उसके भीतर सब आवश्यक सामग्रियाँ सुन्दर ढंगसे सजाकर रक्खी गयी थीं। उसके ऊपर व्याघ्रचर्मका आवरण लगा हुआ था और उसमें रथकी रक्षाके लिये अन्य आवश्यक पदार्थ भी दिये गये थे।

तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।
वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥ ३० ॥

इसी प्रकार वृष्णिकुलमें सम्मानित वीर हार्दिक्य महारथी कृतवर्मा भी रथपर बैठे हुए दिखायी दिये।

उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिन्दमम् ।
धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ ३१ ॥

शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णका रथ उपस्थित है और अब वे यहाँसे जानेवाले हैं, ऐसा जानकर महाराज धृतराष्ट्रने पुनः उनसे कहा।

यावद्बलं मे पुत्रेषु पश्यस्येतज्जनार्दन ।
प्रत्यक्षं ते न ते किंचित् परोक्षं शत्रुकर्शन ॥ ३२ ॥

शत्रुसूदन जनार्दन! पुत्रोंपर मेरा कितना प्रभाव

करता है, वह आप देख ही रहे हैं। यह कुछ आपकी आँखोंके सामने है, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है॥ ३२॥

कुरूणां शममिच्छन्मे यत्नवान् च केशव।
विदितं वैतन्मया मे नाभिशङ्कितुमर्हसि॥ ३३॥

केशव! मैं भी चाहता हूँ कि कौरव-पाण्डवोंमें संधि हो जाय और मैं इसके लिये प्रयत्न भी करता रहता हूँ, परंतु मेरी इस अवस्थाको समझकर आपको मेरे ऊपर संदेह नहीं करना चाहिये॥ ३३॥

न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान् प्रति केशव।
ज्ञातमेव हितं वाक्यं मया प्रोक्तं सुयोधनम्॥ ३४॥

केशव! पाण्डवोंके प्रति मेरा भाव पापपूर्ण नहीं है। मैंने दुर्योधनको जो हितकी बात बतायी है, वह आपको ज्ञात ही है॥ ३४॥

आमन्त्रये कुरून् सर्वान् राजानश्च पार्थिवाः।
शमे प्रयतमानं मां सर्वलोकेश माधव॥ ३५॥

माधव! मैं जो शान्तिस्थापनके लिये प्रयत्नशील हूँ, इस बातको ये समस्त कौरव तथा यहाँ आये हुए राजालोग भी जानते हैं॥ ३५॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽभ्यगान्महाबाहुर्दाशार्हः सत्यविक्रमः।
द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम्॥ ३६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने जाकर आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, विदुर, बाह्लीक तथा कृपाचार्यसे विदा ली॥ ३६॥

प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वृत्तं कुरुसंसदि।
यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः॥ ३७॥

कौरव-सभामें जो कुछ घटित हुआ है, उसे आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है। मूढ़ दुर्योधन क्रोध करके अशिष्टकी भाँति आज सभासे उठकर चला गया था॥ ३७॥

वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः।
आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम्॥ ३८॥

महाराज धृतराष्ट्र भी अपनेको असमर्थ बता रहे हैं; अतः अब मैं आप सब लोगोंसे आज्ञा चाहता हूँ। मैं युधिष्ठिरके पास जाऊँगा॥ ३८॥

आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभम्।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः॥ ३९॥

नरश्रेष्ठ जनमेजय! तदनन्तर रथपर बैठकर प्रस्थानके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीकृष्णसे पूछकर महाधनुर्धर भरतवंशी उनके पीछे कुछ दूरतक गये॥ ३९॥

भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः॥ ४०॥

उन वीरोंके नाम इस प्रकार हैं—भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और महारथी युयुत्सु॥ ४०॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किंकिणीकिना।
कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं ययौ स पितृष्वसाम्॥ ४१॥

तदनन्तर किंकिणीविभूषित उस विशाल एवं उज्ज्वल रथके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण सब कौरवोंके देखते-देखते अपनी बुआ कुन्तीसे मिलनेके लिये गये॥ ४१॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विश्वरूपदर्शने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विश्वरूपदर्शनविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३१॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

श्रीकृष्णके पूछनेपर कुन्तीका उन्हें पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश देना

वैशम्पायन उवाच

प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च।
आचख्यौ तत् समासेन यद् वृत्तं कुरुसंसदि॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीके घरमें जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णने कौरव-सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब समाचार उन्हें संक्षेपसे कह सुनाया॥ १॥

वासुदेव उवाच

उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम्।
ऋषिभिश्च मया चैव न चासौ तद् गृहीतवान्॥ २॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—बुआजी! मैंने तथा महर्षियोंने भी नाना प्रकारके युक्तियुक्त वचन कहे, जो सर्वथा ग्रहण करने योग्य थे; परंतु दुर्योधनने उन्हें नहीं माना॥ २॥

कालपक्वमिदं सर्वं दुर्योधनवशानुगम्।
आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति॥ ३॥

जान पड़ता है, दुर्योधनके वशमें होकर उसीके पीछे चलनेवाला यह सारा क्षत्रियसमुदाय कालसे परिपक्व हो गया है (अब शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है)। अब मैं तुमसे

आज्ञा चाहता हूँ । अब शीघ्र ही पाण्डवोंके पास जाऊँगा ।

किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया ।
तद् ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥ ४ ॥

मेरे द्वारा पाण्डवोंसे तुम्हारा क्या संदेश कहना होगा, उसे बताओ । मैं तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ ।

कुन्त्युवाच

ब्रूहि केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ५ ॥

कुन्ती बोली—केशव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे जाकर कहना—बेटा ! तुम्हारे प्रजापालनरूप धर्मकी बड़ी हानि हो रही है; तुम उस धर्मपालनका व्यर्थ लोप न करो ।

श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः ।
अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते ॥ ६ ॥

राजन् ! जैसे वेदके अर्थको न जाननेवाले अल्प मेधावाले पाठीकी बुद्धि केवल वेदके मन्त्रोंकी आवृत्ति करनेमें ही नष्ट हो जाती है और केवल शब्दमात्र धर्मपर ही दृष्टि रखती है, उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि भी केवल शान्तिधर्मको ही देखती है ।

अङ्गावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ॥ ७ ॥

बेटा ! ब्रह्माजीने तुम्हारे लिये जो धर्म नियत किया है, उसीपर दृष्टि रखो । उन्होंने अपनी भुजाओंसे क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है; अतः क्षत्रिय बाहुबलसे ही जीविका चलानेवाले होते हैं ।

क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ।
शृणु चात्रोपमामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ॥ ८ ॥

वे युद्धरूपी कठोर कर्मके लिये रचे गये हैं तथा प्रजापालनमें भी सदा तत्पर रहते हैं । मैं इस विषयमें एक उदाहरण देती हूँ, जिसे मैंने वृद्ध पुरुषोंके मुखसे सुन रखा है ।

मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददात् पृथिवीमिमाम् ।
पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चासौ तां गृहीतवान् ॥ ९ ॥

पूर्वकालकी बात है, धनाध्यक्ष कुबेरने राजर्षि मुचुकुन्दपर प्रसन्न होकर उन्हें यह सारी पृथ्वी दे दी, परंतु उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया ।

बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये ।
ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥ १० ॥

वे बोले—'मेरी इच्छा है कि मैं अपने बाहुबलसे उपार्जित राज्यका उपभोग करूँ ।' इससे कुबेर बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए ।

मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद् वसुन्धराम् ।
बाहुवीर्यार्जितां सम्यक् क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ११ ॥

तदनन्तर क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले राजा मुचुकुन्दने अपने बाहुबलसे प्राप्त की हुई इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक शासन किया ।

यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा विन्दति भारत ॥ १२ ॥

भारत ! राजाके द्वारा सुरक्षित हुई प्रजा यहाँ जिस धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका चौथाई भाग उस राजाको मिल जाता है ।

राजा चरति चेद् धर्मं देवत्वायैव कल्पते ।
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ १३ ॥

यदि राजा धर्मका पालन करता है तो उसे देवत्वकी प्राप्ति होती है और यदि वह अधर्म करता है तो नरकमें ही पड़ता है ।

दण्डनीतिः स्वधर्मेण चातुर्वर्ण्यं नियच्छति ।
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति ॥ १४ ॥

राजाकी दण्डनीति यदि उसके द्वारा स्वधर्मके अनुसार प्रयुक्त हुई हो तो वह चारों वर्णोंको नियन्त्रणमें रखती और अधर्मसे निवृत्त करती है ।

दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते ॥ १५ ॥

यदि राजा दण्डनीतिके प्रयोगमें पूर्णतः न्यायसे काम लेता है तो कालमें कृतयुग नामक उत्तम काल आ जाता है ।

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम् ॥ १६ ॥

काल राजाका कारण है या राजा कालका कारण है ? ऐसा संदेह तुम्हारे मनमें नहीं उठना चाहिये; क्योंकि राजा ही कालका कारण होता है ।

राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ १७ ॥

राजा ही सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका स्रष्टा है । चौथे युग कलियुगके प्रकट होनेमें भी वही कारण है ।

कृतस्य करणाद् राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।
त्रेतायाः करणाद् राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ॥ १८ ॥

सत्ययुगकी सृष्टि करनेके कारण राजाको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । त्रेताकी सृष्टि

करनेसे भी उसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है, किंतु वह अक्षय नहीं होता।

प्रवर्तनाद् द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते।
कलेः प्रवर्तनाद् राजा पापमत्यन्तमश्नुते॥ १९॥

द्वापर उपस्थित करनेसे उसे यथाभाग पुण्य और पापका फल प्राप्त होता है, परंतु कलियुगकी प्रवृत्ति करनेसे राजाको अत्यन्त पाप भोगना पड़ता है॥ १९॥

ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः।
राजदोषेण हि जगत् स्पृश्यते जगतः स च॥ २०॥

ऐसा करनेसे वह दुष्कर्मी राजा अनेक वर्षोंतक नरकमें ही निवास करता है। राजाका दोष जगत्‌को और जगत्‌का दोष राजाको प्राप्त होता है॥ २०॥

राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान्।
नैतद् राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि॥ २१॥

बेटा! तुम्हारे पिता-पितामहोंने जिनका पालन किया है, उन राजधर्मोंकी ओर ही देखो। तुम जिसका आश्रय लेना चाहते हो, यह राजर्षियोंका आचार अथवा राजधर्म नहीं है॥ २१॥

न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्ये व्यवस्थितः।
प्रजापालनसम्भूतं फलं किंचन लब्धवान्॥ २२॥

जो सदा दयाभावमें ही स्थित हो विकल बना रहता है, ऐसे किसी भी पुरुषने प्रजापालनजनित किसी पुण्यफलको कभी नहीं प्राप्त किया है॥ २२॥

न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाहं न पितामहः।
प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया॥ २३॥

तुम जिस बुद्धिके सहारे चलते हो, उसके लिये न तो तुम्हारे पिता पाण्डुने, न मैंने और न पितामहने ही पहले कभी आशीर्वाद दिया था अर्थात् तुममें ऐसी बुद्धि होनेकी कामना किसीने नहीं की थी॥ २३॥

यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रज्ञासंतानमेव च।
माहात्म्यं बलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया॥ २४॥

मैं तो सदा यही मनाती रही हूँ कि तुममें यज्ञ, दान, तप, शौर्य, बुद्धि, संतान, महत्त्व, बल और ओजकी प्राप्ति हो॥ २४॥

नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं ददुर्मानुषदेवताः।
दीर्घमायुर्धनं पुत्रान् सम्यगाराधिताः शुभाः॥ २५॥

स्वाहा और स्वधाके द्वारा भलीभाँति आराधना करनेपर मनुष्य और देवता भी सदा संतुष्ट होकर पितृगण दीर्घायु, धन और पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये ही आशीर्वाद देते थे॥ २५॥

पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च।
दानमध्ययनं यज्ञं प्रजानां परिपालनम्॥ २६॥

देवता और पितर अपने उपासकों या पुत्रोंसे सदा दान, स्वाध्याय, यज्ञ या प्रजापालनकी ही आशा रखते हैं॥ २६॥

एतद् धर्ममधर्मं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः।
ते स्थ वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः॥ २७॥

श्रीकृष्ण! यह धर्म हो या अधर्म, तुम लोगोंने जन्मसे ही इसे पाया है। तात! पाण्डव उत्तम कुलमें उत्पन्न और विद्वान् होकर भी इस समय जीविकाके अभावसे पीड़ित हैं॥ २७॥

यत् तु दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः।
प्राप्य तृप्ताः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः॥ २८॥

भूखसे पीड़ित भूतलनिवासी मनुष्य जहाँ दानपति शूरवीर क्षत्रियके पास पहुँचकर उससे पूर्ण तृप्त हो जाते हैं, वहाँ उससे बढ़कर दूसरा धर्म क्या हो सकता है?॥ २८॥

दानेनान्यं बलेनान्यं तथा सूनृतयापरम्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद् राज्यं प्राप्येह धार्मिकः॥ २९॥

धर्मात्मा पुरुष यहाँ राज्य पाकर किसीको दानसे, किसीको बलसे और किसीको मधुर वाणीद्वारा वशमें करे। इस प्रकार सब ओरसे आते हुए लोगोंको दान, मान आदिसे संतुष्ट करके अपना ले॥ २९॥

ब्राह्मणः प्रचरेद् भैक्ष्यं क्षत्रियः परिपालयेत्।
वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान्॥ ३०॥

ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे जीविका चलाये, क्षत्रिय प्रजाका पालन करे, वैश्य धनोपार्जन करे और शूद्र उन तीनों वर्णोंकी सेवा करे॥ ३०॥

भैक्ष्यं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते।
क्षत्रियोऽसि क्षतात् त्राता बाहुवीर्योपजीविता॥ ३१॥

युधिष्ठिर! तुम्हारे लिये भिक्षावृत्तिका तो सर्वथा निषेध है और खेती भी तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम तो दुःखोंसे रक्षा करनेवाले क्षत्रिय हो; तुम्हें तो बाहुबलसे ही जीविका चलानी चाहिये॥ ३१॥

पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाथ नयेन वा॥ ३२॥

महाबाहो! तुम्हारा पैतृक भाग शत्रुओंके हाथमें पड़कर नष्ट हो गया है; तुम साम, दान, भेद अथवा दण्डनीतिसे पुनः उसका उद्धार करो॥ ३२॥

इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा।
परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वामित्रनन्दन॥ ३३॥

शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाले पाण्डव ! भाई बन्धुओं तथा अपनी हानि करनेवाले तुम बल खोकर अपनी बात और क्या हो सकती है कि तुम्हें बल देकर भी बन्धु-बान्धवोंसे हीन नामिकी भाँति पीतिकाके लिये तूर्णोंसे बिंधे हुए मना बिलकी आशा रखनेके ऊपर देखती रहती हूँ ॥ ३३ ॥

युध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान्।
मा गमत् क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ॥ ३४ ॥

अतः तुम राजधर्मके अनुसार युद्ध करो, कायर बनकर अपने बाप-दादोंका नाम मत डुबाओ और भाइयोंसहित पुण्यसे वञ्चित होकर पापमयी गतिको प्राप्त न होओ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्तीवाक्यविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

कुन्तीके द्वारा विदुलोपाख्यानका आरम्भ, विदुलाका रणभूमिसे भागकर आये हुए अपने पुत्रको कड़ी फटकार देकर पुनः युद्धके लिये उत्साहित करना

कुन्त्युवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परंतप ॥ १ ॥

कुन्ती बोली—शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीकृष्ण ! इस प्रसंगमें विद्वान् पुरुष विदुला और उसके पुत्रके संवादरूप इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ १ ॥

अत्र श्रेयश्च भूयश्च यथावद् वक्तुमर्हसि।
यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २ ॥
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥
विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम्।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४ ॥

इस इतिहासमें जो कल्याणकारी उपदेश हो, उसे तुम युधिष्ठिरके सामने यथावत् रूपसे कह देना। विदुला नामसे प्रसिद्ध एक क्षत्रिय महिला हो गयी है, जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, यशस्विनी, तेजस्विनी, मानिनी, जितेन्द्रिया, क्षत्रिय धर्मपरायणा और दूरदर्शिनी थी। राजाओंकी मण्डलीमें उसकी बड़ी ख्याति थी। वे अनेक शास्त्रोंको जाननेवाली और महापुरुषोंके उपदेश सुनकर उन्हें काममें लानेवाली थी। एक समय उसका पुत्र सिन्धुराजसे पराजित हो, अत्यन्त दीनचित्त हो सो रहा था। राजरानी विदुलाने उस समय अपने उस औरस पुत्रको देखकर उसकी बड़ी निन्दा की ॥ २—४ ॥

विदुलोवाच

अनन्दन मया जात द्विषतां हर्षवर्धन।
न मया त्वं न पित्रा च जातः क्वाभ्यागतो ह्यसि ॥ ५ ॥

विदुला बोली—अरे ! तू मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ है, तो भी मुझे आनन्दित करनेवाला नहीं है। तू तो शत्रुओंका ही हर्ष बढ़ानेवाला है। इसलिये अब मैं ऐसा समझती हूँ कि तू मेरे पेटसे पैदा हो नहीं हुआ, तेरे पिताने भी तुझे उत्पन्न नहीं किया। फिर तू ऐसा कायर कहाँसे आ गया ॥ ५ ॥

निर्मन्युरुपशस्यः पुरुषः क्लीबसाधनः।
यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥

तू क्रोधशून्य है, क्षत्रियोंमें गणना करनेयोग्य नहीं है, तू नाममात्रका पुरुष है, तेरे मन आदि सभी साधन नपुंसकोंके समान हैं। क्या तू जीवनभरके लिये निराश हो गया है ? अब भी तो उठ और अपने कल्याणके लिये पुनः युद्धका भार वहन कर ॥ ६ ॥

मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभर।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥

अरे कायर ! तू अपने-आप ही अपनी अवहेलना न कर। इस आत्माको थोड़े धनसे भरण-पोषण न कर। अपने मनको कल्याणमय बनाकर, उसे शुभ संकल्पोंसे सम्पन्न करके निडर हो जा। भयको समेट ले ॥ ७ ॥

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ८ ॥

ओ कायर ! उठ, खड़ा हो। तू इस प्रकार पराजित होकर सदा सोता पड़ा न रह। ऐसा करनेसे तो शत्रुओंको ही आनन्द दे रहा है और मान-प्रतिष्ठासे रहित होकर बन्धु-बान्धवोंको शोकमें डाल रहा है ॥ ८ ॥

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।
सुसंतोषः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥ ९ ॥

जैसे छोटी नदी थोड़े जलसे अनायास ही भर जाती है और चूहेकी अञ्जलि थोड़े अन्नसे ही भर जाती है, उसी प्रकार कायरको संतोष दिलाना बहुत सुगम है, वह थोड़ेसे ही संतुष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रम ॥ १० ॥

तू सर्पके दाँत तोड़ता हुआ तत्काल मृत्युको प्राप्त हो जा। प्राण जानेका संदेह हो तो भी शत्रुके साथ युद्धमें पराक्रम ही प्रकट कर ॥ १० ॥

अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन्।
विनदन् वाथवा तूष्णीं व्योम्नि वापरिशङ्कितः ॥ ११ ॥

आकाशमें निःशङ्क होकर उड़नेवाले बाज पक्षीकी भाँति रणभूमिमें निर्भय विचरता हुआ तू गर्जना करके अथवा चुप रहकर शत्रुके छिद्र देखता रह ॥ ११ ॥

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद् वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः ॥ १२ ॥

कायर! तू इस प्रकार वज्रसे मारे हुए मुर्देकी भाँति क्यों पड़ा है? उठ, पराजित होकर यहाँ मत सो ॥ १२ ॥

मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ गर्जितः ॥ १३ ॥

तू दीन होकर नष्ट न हो, अपने पुरुषार्थसे प्रसिद्धि प्राप्त कर। तू मध्यम, अधम अथवा निकृष्ट भावका आश्रय न ले, युद्धभूमिमें सिंहनाद करके डटा रह ॥ १३ ॥

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि विज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥ १४ ॥

तू तिन्दुककी जलती हुई लकड़ीके समान दो घड़ीके लिये भी प्रज्वलित हो उठ (थोड़ी देरके ही लिये सही, शत्रुके सामने महान् पराक्रम प्रकट कर), परंतु जीनेकी इच्छासे भूसीकी आगके समान ज्वालारहित केवल धूआँ न कर ॥ १४ ॥

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम्।
मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः ॥ १५ ॥

दो घड़ी भी प्रज्वलित रहना अच्छा है, परंतु दीर्घकालतक धूआँ छोड़ते हुए सुलगना अच्छा नहीं। किसी भी राजाके घरमें अत्यन्त कठोर अथवा अत्यन्त कोमल स्वभाववाले पुत्रका जन्म न हो ॥ १५ ॥

कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाऽऽजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ॥ १६ ॥

वीर पुरुष युद्धमें जाकर यथाशक्ति उत्तम पुरुषार्थ प्रकट करके धर्मके ऋणसे उऋण होता है और अपनी निन्दा नहीं करता है ॥ १६ ॥

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचन्ति पण्डिताः।
आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते ॥ १७ ॥

विद्वान् पुरुषको अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो या न हो, वह उसके लिये शोक नहीं करता। वह अपनी पूरी शक्तिके अनुसार प्राणपर्यन्त निरन्तर चेष्टा करता है और अपने लिये धनकी इच्छा नहीं करता ॥ १७ ॥

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १८ ॥

बेटा! तू धर्मको आगे रखकर या तो पराक्रम प्रकट कर अथवा उस गतिको प्राप्त हो जा, जो समस्त प्राणियोंके लिये निश्चित है। अन्यथा किस लिये जी रहा है? ॥ १८ ॥

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १९ ॥

कायर! तेरे इष्ट और आपूर्त कर्म नष्ट हो गये, सारी कीर्ति धूलमें मिल गयी और भोगका मूल साधन राज्य भी छिन गया। अब तू किसलिये जी रहा है? ॥ १९ ॥

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत् कथंचन ॥ २० ॥
उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन्।

मनुष्य डूबते समय अथवा ऊँचेसे नीचे गिरते समय भी शत्रुकी टाँग पकड़ ले और ऐसा करते समय यदि अपना मूलोच्छेद हो जाय तो भी किसी प्रकार विषाद न करे। अच्छी जातिके घोड़े जैसे भार ढोते हैं, उसे याद करके उद्यमपूर्वक धुरको उठाये और आगे बढ़ता रहे ॥ २० ॥

कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः।
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ॥ २१ ॥

बेटा! तू धैर्य और स्वाभिमानका अवलम्बन कर, अपने पुरुषार्थको जान और तेरे कारण डूबे हुए इस वंशका तू स्वयं ही उद्धार कर ॥ २१ ॥

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ २२ ॥

जिसके महान् और अद्भुत पुरुषार्थ एवं चरित्रकी सब लोग चर्चा नहीं करते हैं, वह मनुष्य अपने द्वारा जनसंख्याकी वृद्धिमात्र करनेवाला है। वह न तो स्त्री है और न पुरुष ही है ॥ २२ ॥

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥ २३ ॥

दान, तपस्या, सत्यभाषण, विद्या तथा धनोपार्जनमें जिसके सुयशका सर्वत्र बखान नहीं होता है, वह मनुष्य अपनी माताका पुत्र नहीं, मलमूत्रमात्र ही है ॥ २३ ॥

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा ॥ २४ ॥
जनान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान्।

जो शास्त्रज्ञान, तपस्या, धन-सम्पत्ति अथवा पराक्रमके द्वारा दूसरे लोगोंको पराजित कर देता है, वह उसी कर्मके द्वारा पुरुष कहलाता है ॥ २४½ ॥

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ॥ २५ ॥
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम्।

तुम्हें हिजड़ों, कापालिकों, क्रूर मनुष्यों तथा कायरोंके लिये उचित भिक्षा आदि निन्दनीय वृत्तिका आश्रय कभी नहीं लेना चाहिये; क्योंकि वह अपयश फैलानेवाली और दुःखदायिनी होती है ॥ २५½ ॥

यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम् ॥ २६ ॥
लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम्।
अहोलाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम् ॥ २७ ॥
नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते।

जिस दुर्बल मनुष्यका शत्रुगण भी अभिनन्दन करते हों, जो सब लोगोंके द्वारा अपमानित होता हो, जिसके आसन और वस्त्र निकृष्ट श्रेणीके हों, जो थोड़े लाभसे ही संतुष्ट होकर विस्मय प्रकट करता हो, जो सब प्रकारसे हीन, क्षुद्र जीवन बितानेवाला और ओछे स्वभावका हो, ऐसे बन्धुको पाकर उसके भाई-बन्धु सुखी नहीं होते ॥ २६-२७½ ॥

अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात् प्रवासिताः ॥ २८ ॥
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिंचनाः।

ऐसी अवस्थामें यदि हमलोग इस राज्यसे निर्वासित होकर सम्पूर्ण कामनाओं एवं सुखोंसे हीन, स्थानभ्रष्ट और अकिंचन हो जीविकाके अभावमें ही मर जायँगे ॥ २८½ ॥

अवर्णकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम् ॥ २९ ॥
कलिं पुत्रप्रवादेन संजय त्वामजीजनम्।

संजय! तू सत्पुरुषोंके बीचमें अपयश फैलानेवाला है, कुल और वंशका विनाश करनेवाला है। मैंने तुझ पुत्र नामधारी कलिको ही जन्म दिया है ॥ २९½ ॥

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ॥ ३० ॥
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्।

कोई भी नारी ऐसे पुत्रको जन्म न दे, जो अमर्षशून्य, उत्साहहीन, बल और पराक्रमसे रहित तथा शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला हो ॥ ३०½ ॥

मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान् ॥ ३१ ॥
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम्।

अरे! धूमकी तरह न उठ, जोर-जोरसे प्रज्वलित हो जा और वेगपूर्वक आक्रमण करके शत्रुओंका संहार कर डाल। तू एक मुहूर्त या एक क्षणके लिये भी वैरियोंके मस्तकपर जलती हुई आग बनकर छा जा ॥ ३१½ ॥

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥ ३२ ॥
क्षमावान् निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्।

जिसके हृदयमें अमर्ष है और जो शत्रुओंके प्रति क्षमाभाव धारण नहीं करता, इतने ही गुणोंके कारण वह पुरुष कहलाता है। जो क्षमाशील और अमर्षशून्य है, वह व्यक्ति न तो स्त्री है और न पुरुष ही कहलाने योग्य है ॥ ३२½ ॥

संतोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च ॥ ३३ ॥
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत्।

संतोष, दया, उद्योगशून्यता और भय—ये सम्पत्तिका नाश करनेवाले हैं। निश्चेष्ट मनुष्य कभी कोई महत्त्वपूर्ण पद नहीं पा सकता ॥ ३३½ ॥

एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना ॥ ३४ ॥
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम्।

पराजयके कारण जो लोगोंकी ओरसे निन्दा और तिरस्कार हो रहे हैं, इन सब दोषोंसे तू स्वयं ही अपने आपको मुक्त कर और अपने हृदयको लोहेके समान दृढ़ बनाकर पुनः अपने राज्यका अनुसंधान कर ॥ ३४½ ॥

परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते ॥ ३५ ॥
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद् य इह जीवति।

जो पर अर्थात् शत्रुका सामना करके उसके वेगको सह लेता है, वही इस पुरुषार्थके कारण पुरुष कहलाता है। जो इस जगत्में स्त्रीकी भाँति शोकपूर्ण जीवन बिताता है, उसका पुरुष नाम व्यर्थ कहा गया है ॥ ३५½ ॥

शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः ॥ ३६ ॥
दिष्टभावं गतस्यापि विघसे मोदते प्रजा।

जो शूरवीर, बलवान् और सिंहके समान पराक्रमपूर्वक विचरनेवाला है, वह यदि वीरगतिको प्राप्त हो जाय तो भी उसके राज्यमें प्रजा सुखी ही रहती है ॥ ३६½ ॥

य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ॥ ३७ ॥
अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८ ॥

जो अपने प्रिय और सुखका परित्याग करके सम्पत्तिका अन्वेषण करता है, वह शीघ्र ही अपने मन्त्रियोंका हर्ष बढ़ाता है ॥ ३७-३८ ॥

पुत्र उवाच

किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३९ ॥

पुत्र बोला—माँ! यदि तू मुझे न देखे तो यह सारी पृथ्वी मिल जानेपर भी तुझे क्या सुख मिलेगा। तेरे न

खानेपर दूसरे आभूषणोंकी भी क्या आवश्यकता होगी भाँति भाँतिके भोगों और धनोंसे भी क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ॥ ४१ ॥

मातोवाच

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः
ये त्वाद्दतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान् व्रजन्तु नः ॥ ४२ ॥

विदुला बोली—बेटा ! आज क्या भोजन करना है, इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए [illegible] लोक हैं, वे हमारे शत्रुओंको प्राप्त हों और [illegible] पुण्यात्मा पुरुषोंके जो लोक हैं, उनमें हमारे हितैषी सुहृद् पधारें ॥ ४२ ॥

भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम्
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥ ४३ ॥

[illegible] आत्मीय पुरुषोंने त्याग दिया हो, जो दूसरोंके अन्नपर जीविका चलाते हों, ऐसे दीन, दुर्बल मनुष्योंकी वृत्तिका अनुसरण न कर ॥ ४३ ॥

अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा
पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ४४ ॥

तात ! जैसे सभी प्राणियोंका जीवन मेघके अधीन है तथा जैसे [illegible] देवता इन्द्रका आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण तथा हितैषी सुहृद् तेरे सहारे जीवन निर्वाह करें ॥ ४४ ॥

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय
पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४५ ॥

संजय ! पके फलवाले वृक्षके समान जिस पुरुषका आश्रय लेकर सब प्राणी जीविका चलाते हैं, उसीका जीवन सार्थक है ॥ ४५ ॥

यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम्
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४६ ॥

जैसे इन्द्रके पराक्रमसे सब देवता सुखी रहते हैं, उसी प्रकार जिस शूरवीर पुरुषके बल और पुरुषार्थसे उसके भाई-बन्धु सुखपूर्वक उन्नति करते हैं, इस जगत्में उसीका जीवन श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य अपने बाहुबलका आश्रय लेकर उत्तम जीवन व्यतीत करता है, वही इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें शुभ गति पाता है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाका अपने पुत्रको उपदेशविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

विदुलाका अपने पुत्रको युद्धके लिये उत्साहित करना

विदुलोवाच

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १ ॥

विदुला बोली—संजय ! यदि तू इस दुरवस्थामें [illegible] पुरुषार्थको [illegible] तो [illegible] शीघ्र ही नीच पुरुषोंके मार्गपर [illegible] ॥ १ ॥

यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात्
क्षत्रियो जीविताकाङ्क्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ २ ॥

[illegible] जो क्षत्रिय जीवनके लोभसे [illegible] पराक्रम प्रकट करके अपने तेजका परिचय नहीं देता है, उसे सब लोग चोर मानते हैं ॥ २ ॥

अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च
नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥ ३ ॥

जैसे मरणासन्न पुरुषको औषध भी लाभ नहीं पहुँचाती, उसी प्रकार ये युक्तियुक्त, गुणकारी और सार्थक वचन भी तेरे हृदयतक पहुँच नहीं पाते हैं (यह कितने दुःखकी बात है) ॥ ३ ॥

सन्ति वै सिन्धुराजस्य संतुष्टा न तथा जनाः
दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥

[illegible] सिन्धुराजकी प्रजा उससे संतुष्ट नहीं है, तथापि तेरी दुर्बलताके कारण [illegible] सिन्धुराजके अधीन हो रही है [illegible] सिन्धुराजके [illegible] अवसरकी बाट देख रही है ॥ ४ ॥

सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः
अनुदुष्येयुरपरं पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५ ॥

दूसरे लोग भी तेरा पुरुषार्थ देखकर इधर-उधरसे सेना एकत्र करके सहायक [illegible] बनेंगे और [illegible] सिन्धुराजके शत्रु हो सकते हैं ॥ ५ ॥

तैः कृत्वा सह संघातं गिरिदुर्गालयं चर
काले व्यसनमाकाङ्क्षन् नैवायमजरामरः ॥ ६ ॥

तू उन सबके साथ मैत्री करके पर्वतोंकी दुर्गम गुफाओंमें विचरता रह, [illegible] सिन्धुराजपर विपत्ति आनेकी प्रतीक्षा कर; क्योंकि यह सिन्धुराज कोई अजर-अमर तो है नहीं ॥ ६ ॥

सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत् त्वयि ।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥ ७ ॥

तेरा नाम तो संजय है, परन्तु तुझमें इस नामके अनुसार गुण मैं नहीं देख रही हूँ । बेटा ! युद्धमें विजय प्राप्त करके अपना नाम सार्थक कर, व्यर्थ नाम न धारण कर ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
अयं प्राप्य महत् कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८ ॥

जब तू बालक था, उस समय एक उत्तम दृष्टिवाले महाबुद्धिमान् ब्राह्मणने तेरे विषयमें कहा था कि यह महान् संकटमें पड़कर भी पुनः उन्नतिको प्राप्त होगा ॥ ८ ॥

तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव ।
तस्मात् तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥ ९ ॥

उस ब्राह्मणकी बातको याद करके मैं यह आशा करती हूँ कि तेरी विजय होगी । तात ! इसीलिये मैं बारंबार तुझसे कहती हूँ और कहती रहूँगी ॥ ९ ॥

यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे ।
तस्यार्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥ १० ॥

जिसके प्रयोजनकी सिद्धि होनेपर उससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे लोग भी सहायक बन उन्नतिको प्राप्त होते हैं, नीतिमार्गपर चलकर अर्थसिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले उस पुरुषको निश्चय ही अपने अभीष्टकी सिद्धि होती है ॥ १० ॥

समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय ।
एवं विद्वान् युद्धमना भव मा प्रत्युपाहर ॥ ११ ॥

संजय ! युद्धसे हमारे पूर्वजोंका अथवा मेरा कोई लाभ हो या हानि, युद्ध करना क्षत्रियोंका धर्म है, ऐसा समझकर उसीमें मन लगा । युद्ध बंद न कर ॥ ११ ॥

नातः पापीयसीं कांचिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥

आज भोजन मिले और न कल, खानेके लिये भी भोजन दिखायी नहीं देता, उससे बढ़कर महान् पापपूर्ण दुःखकी अवस्था नहीं है, ऐसा शम्बरासुरका कथन है ॥ १२ ॥

पतिपुत्रवधादेतत् परमं दुःखमब्रवीत् ।
दारिद्र्यमिति यत् प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३ ॥

जिसका नाम दरिद्रता है, उसे पति और पुत्रके वधसे भी अधिक दुःखदायक बताया गया है । दरिद्रता मृत्युका समानार्थक शब्द है ॥ १३ ॥

अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥

मैं उत्तम कुलमें उत्पन्न हो एक सरोवरसे दूसरे सरोवरमें आयी और इस राजकी स्वामिनी, कल्याणमय सौभाग्यसे सम्पन्न तथा पतिदेवके परम आदरकी पात्र हुई ॥ १४ ॥

महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् ।
पुरा दृष्ट्वा सुहृद्वर्गो मामपश्यत् सुदुर्गताम् ॥ १५ ॥

पहले मेरे सुहृदोंने मुझे बहुमूल्य माला, आभूषणोंसे विभूषित तथा परम सुन्दर स्वच्छ वस्त्रोंसे आच्छादित देखा, तब उन्हें बड़ा हर्ष हुआ ॥ १५ ॥

यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृशदुर्बलाम् ।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सञ्जय ॥ १६ ॥

संजय ! जब तुम मुझे और अपनी पत्नीको अत्यन्त दुर्बल दशामें देखोगे, उस समय तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा नहीं होगी ॥ १६ ॥

दासकर्मकरान् भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।
अवृत्त्यास्मान् प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥ १७ ॥

जब सेवक, दास, कर्मकर, भृत्य, आचार्य, ऋत्विक् और पुरोहित जीविकाके अभावमें हमें छोड़कर जाने लगेंगे, उस समय उन्हें देखकर तुम्हें जीवन-धारणका कोई प्रयोजन नहीं दिखायी देगा ॥ १७ ॥

यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा ।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १८ ॥

यदि पहलेके समान आज भी मैं तेरे यशकी वृद्धि करनेवाले प्रशंसनीय कर्मोंको नहीं देखूँगी तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ १८ ॥

नेति चेद् ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्यते हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥ १९ ॥

यदि किसी ब्राह्मणको मांगनेपर मैं उसकी अभीष्ट वस्तुके लिये 'नहीं' कह दूँगी तो उस समय मेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा । आजतक मैंने या मेरे पतिदेवने भी कभी किसी ब्राह्मणको 'ना' नहीं की है ॥ १९ ॥

वयमाश्रयणीयाः स्म नाश्रितारः परस्य च ।
सान्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २० ॥

हम सदा दूसरोंके आश्रयदाता रहे हैं, दूसरोंके आश्रित कभी नहीं रहे, परंतु अब यदि दूसरोंका आश्रय लेकर जीवन धारण करना पड़ा तो मैं ऐसे जीवनका परित्याग ही कर दूँगी ॥ २० ॥

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान् सञ्जीवयस्व नः ॥ २१ ॥

बेटा ! अपार समुद्रमें डूबते हुए हमलोगोंको तू पार लगानेवाला हो । नौकाविहीन लोगोंके लिये नौका (जहाज) बन जा । हमारे लिये कहीं स्थान नहीं रह गया है, तू स्थान बन जा और हम मृतप्राय हो रहे हैं, तू हमें जीवन दान कर ॥ २१ ॥

सर्वे ते शत्रवः सह्या न चेज्जीवितुमिच्छसि।
अथ येनाक्षरी वृत्तिं प्रतीयामभ्युपपत्स्यसे ॥ २२ ॥
निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम्।

यदि तुझे जीवनके प्रति अधिक आसक्ति न हो तो तू अपने सभी शत्रुओंका पराभव कर सकता है और यदि इस प्रकार विषादग्रस्त एवं हतोत्साह होकर उसी कायरोंकी वृत्ति अपना रहा है तो तुझे इस पापपूर्ण जीविकाको त्याग देना चाहिये ॥ २२ ॥

एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३ ॥
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत।
माहेन्द्रं च गृहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥ २४ ॥

एक शत्रुका वध करनेसे ही शूरवीर पुरुष सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात हो जाता है। देवराज इन्द्र केवल वृत्रासुरका वध करके ही महेन्द्र नामसे प्रसिद्ध हो गये। उन्हें रहनेके लिये इन्द्रभवन प्राप्त हुआ और वे तीनों लोकोंके अधीश्वर हो गये ॥

नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान्।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद् यशः।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥

वीर पुरुष युद्धमें अपना नाम सुनाकर कवचधारी शत्रुओंको ललकारकर सेनाके अग्रभागको खदेड़कर अथवा शत्रुपक्षके किसी श्रेष्ठ पुरुषका वध करके जभी उत्तम युद्धके द्वारा महान् यश प्राप्त कर लेता है तभी उसके शत्रु व्यथित होते और उसके सामने मस्तक झुकाते हैं ॥ २५-२६ ॥

त्यक्त्वाऽऽत्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः।
अवशाः पूरयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥

कायर मनुष्य विवश हो युद्धमें अपने शरीरका त्याग करके युद्धकुशल शूरवीरको सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली अपनी समृद्धियोंके द्वारा तृप्त करते हैं ॥ २७ ॥

राज्यं वाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा।
न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥

जिसका भयानक रूपसे नाश हुआ है वह राज्य प्राप्त हो जाय या जीवन ही संशयमें पड़ जाय, किसी भी दशामें श्रेष्ठ पुरुष हाथमें आये हुए शत्रुको शेष नहीं रहने देते हैं ॥ २८ ॥

स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाप्यमृतोपमम्।
युद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥ २९ ॥

युद्धको स्वर्गद्वारके सदृश उत्तम मान अथवा अमृतके तुल्य राज्यकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग मानकर तू जलते हुए काठकी भाँति शत्रुओंपर टूट पड़ ॥ २९ ॥

जहि शत्रून् रणे राजन् स्वधर्ममनुपालय।
मा त्वा पश्ये सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धन ॥ ३० ॥

राजन्! तू युद्धमें शत्रुओंको मार और अपने धर्मका पालन कर। शत्रुओंका भय बढ़ानेवाले पुत्र! मैं तुझे अत्यन्त दीन या कायरके रूपमें न देखूँ ॥ ३० ॥

अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम्।
अपि त्वां नानुपश्येयं दीनाद् दीनमिव स्थितम् ॥ ३१ ॥

मैं तुझे दीनसे भी दीनके समान दयनीय अवस्थामें पड़ा हुआ तथा शोकमग्न हुए अपने बन्धुओं और गर्जन-तर्जन करते हुए शत्रुओंसे घिरा हुआ नहीं देखना चाहती ॥ ३१ ॥

हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघस्वार्थैर्यथा पुरा।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः ॥ ३२ ॥

तू सौवीर देशकी कन्याओं (अपनी पत्नियों) के साथ हर्षका अनुभव कर, पहलेकी भाँति अपने धनकी अधिकताके लिये गर्व कर, किंतु शिथिल होकर सिन्धुदेशीय (शत्रुदेशकी) कन्याओंके वशमें न हो जा ॥ ३२ ॥

युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाभिजनेन च।
यत् त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ॥ ३३ ॥
धुर्यवद्वहने वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत्।

तू तरुण है, रूप, विद्या और कुलीनतासे सम्पन्न है, यशस्वी तथा लोकमें विख्यात है। तुझ जैसा वीर पुरुष यदि कार्यभार उठानेके अवसरपर भार ढोनेसे बिना नाथे हुए बैलके समान बैठ रहे और भाग जाय तो मैं इसे तेरा मरण ही समझती हूँ ॥ ३३ ॥

यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ॥ ३४ ॥
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे।

यदि मैं यह देखूँ कि तू शत्रुकी चिकनी-चुपड़ी बातें करता तथा उसके पीछे-पीछे चलता है तो मेरे हृदयमें क्या शान्ति मिलेगी ॥ ३४ ॥

नास्मिञ्जातु कुले जातो गच्छेद् योऽन्यस्य पृष्ठतः ॥ ३५ ॥
न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि।

इस कुलमें कभी कोई ऐसा पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ जो दूसरेके पीछे-पीछे चलता हो। तात! तू दूसरेका सेवक होकर जीवित रहनेके योग्य नहीं है ॥ ३५ ॥

अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत् परिशाश्वतम् ॥ ३६ ॥
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि।
शाश्वतं चाव्ययं चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ३७ ॥

स्वयं विधाताने जिसकी सृष्टि की है, प्राचीन और अत्यन्त प्राचीन पुरुषोंने जिसका वर्णन किया है, परवर्ती और अतिपरवर्ती मनुष्य जिसका वर्णन करेंगे तथा जो चिरन्तन एवं अविनाशी है, उस सनातन और उत्तम क्षत्रिय-हृदयको मैं जानती हूँ ॥ ३६-३७ ॥

यो वै कश्चिदिहाजातः क्षत्रियः क्षत्रधर्मवित्।
भयाद् वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित्॥ ३८॥

इस जगत्‌में जो कोई भी क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है और क्षत्रियधर्मको जाननेवाला है, वह डरसे अथवा आजीविकाकी ओर दृष्टि रखकर भी किसीके सामने नतमस्तक नहीं हो सकता॥ ३८॥

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कस्यचित्॥ ३९॥

सदा उद्यम करे, किसीके आगे सिर न झुकावे। उद्यम ही पुरुषार्थ है। असमयमें नष्ट भले ही हो जाय, परंतु किसीके आगे नतमस्तक न हो॥ ३९॥

मातङ्गो मत्त इव च परीयात् सुमहामनाः।
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च संजय॥ ४०॥

संजय! महामनस्वी क्षत्रिय मदमत्त हाथीके समान सर्वत्र निर्भय विचरण करे और सदा ब्राह्मणोंको तथा धर्मको ही नमस्कार करे॥ ४०॥

नियच्छन्नितरान् वर्णान् विनिघ्नन् सर्वदुष्कृतः।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत्॥ ४१॥

क्षत्रिय सहायक हो अथवा असहाय, वह अन्य वर्णके लोगोंको काबूमें रखता और समस्त पापियोंको दण्ड देता हुआ जीवनभर वैसा ही पराक्रमशील बना रहे॥ ४१॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाका अपने पुत्रको उपदेशविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३४॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

विदुला और उसके पुत्रका संवाद—विदुलाके द्वारा कार्यमें सफलता प्राप्त करने तथा शत्रुवशीकरणके उपायोंका निर्देश

पुत्र उवाच

कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम्।
मम मातस्त्वकरुणे वैरप्रज्ञे ह्यमर्षणे॥ १॥

पुत्र बोला—मा! तेरा हृदय तो ऐसा जान पड़ता है मानो काले लोहेको ठोक-पीटकर बनाया गया हो। तू मेरी माता होकर भी इतनी निर्दय है। तेरी बुद्धि वीरोंके समान है और तू सदा अमर्षमें भरी रहती है॥ १॥

अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा।
नियोजयसि युद्धाय परमातेव मां तथा॥ २॥

अहो! क्षत्रियोंका आचार-व्यवहार कैसा आश्चर्यजनक है, जिसमें स्थित होकर तू मुझे इस प्रकार युद्धमें लगा रही है, मानो मैं तेरा कुछ भी न लगता होऊँ॥ २॥

ईदृशं वचनं ब्रूयाद् भवती पुत्रमेकजम्।
किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया॥ ३॥

मुझ इकलौते पुत्रसे तू ऐसी निष्ठुर बात कहती है। मुझे न देखनेपर सारी पृथ्वी भी तुझे मिल जाय तो उससे तुझे क्या सुख मिलेगा?॥ ३॥

किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा।
मयि ते समरहते प्रियपुत्रे विशेषतः॥ ४॥

मैं तेरा प्रिय पुत्र यदि युद्धमें मारा जाऊँ तो तुझे आभूषणोंसे, भोग-सामग्रियोंसे तथा अपने जीवनसे भी कौन-सा सुख प्राप्त होगा?॥ ४॥

मातोवाच

सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात्।
तावेवाभिसमीक्ष्याहं संजय त्वामचूचुदम्॥ ५॥

माता बोली—तात! सदा विद्वानोंकी सारी अवस्था भी धर्म और अर्थके निमित्त ही होती है। उन्हीं दोनोंकी ओर दृष्टि रखकर मैंने तुझे युद्धके लिये प्रेरित किया है॥ ५॥

स समीक्ष्यक्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे॥ ६॥
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि।
तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि संजय॥ ७॥
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम्।
सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम्॥ ८॥

यह तेरे लिये सारी बातोंका विचार करके पराक्रम करनेका मुख्य समय प्राप्त हुआ है। ऐसे समयमें भी यदि तू अपने कर्तव्यका पालन नहीं करेगा और तुझसे जिसकी सम्भावना की जाती है, उसके विपरीत कायरताका परिचय देकर शत्रुओंके प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव नहीं करेगा तो उस दशामें सब ओर तेरा अपयश फैल जायगा। संजय! ऐसे अवसरपर भी यदि मैं तुझे कुछ न कहूँ तो मेरा यह वात्सल्य गदहीके स्नेहके समान शक्तिहीन एवं निरर्थक होगा। तात! साधु पुरुष जिसकी निन्दा करते हैं और मूर्ख मनुष्य ही जिसपर चलते हैं, उस मार्गको त्याग दे॥ ६—८॥

अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ।
तव स्याद् यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥ १६ ॥

प्रजाने जिसका आश्रय ले रखा है वह तो बड़ी भारी अविद्या ही है [illegible] तू तो सुख तभी [illegible] सकता है जब [illegible] आचरण सत्पुरुषोंके जैसा हो जाय

धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन ।
दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ १७ ॥

धर्म [illegible] और गुणोंसे युक्त देवलोक [illegible] मनुष्य लोकमें भी [illegible] और [illegible] आचरणमें लगे हुए [illegible] ही तू मेरा प्रिय हो सकता है इससे विपरीत [illegible] किसी प्रकार भी तू मुझे प्रिय नहीं हो सकता

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्र नप्तृणा ।
अनुत्थानवता चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ॥ १८ ॥
रमते यस्तु पुत्रेण मोघं तस्य प्रजाफलम् ।
अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च ॥ १९ ॥
सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ।

बेटा ! जो इस प्रकार विनयशून्य एवं अशिक्षित पौत्रमें हर्षको प्राप्त होता है तथा उद्योगरहित दुर्विनीत एवं दुर्बुद्धि पुत्रसे सुख मानता है उसका संतानोत्पादन व्यर्थ है क्योंकि वे अधम पुरुष [illegible] तो कभी ही नहीं करते हैं और यदि करते हैं तो निन्दित कर्म ही करते हैं इसलिये वे अधम मनुष्य न तो इस लोकमें सुख पाते हैं और न परलोकमें ही

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः संजयेह जयाय च ॥ २० ॥
जयन् वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ।
न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद् विद्यते सुखम् ॥
यदमित्रान् वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमश्नुते ॥ २१ ॥

संजय ! इस लोकमें युद्ध एवं विजयके लिये ही ब्रह्माने क्षत्रियकी सृष्टि की है वह विजय प्राप्त करे या युद्धमें मारा जाय सभी अवस्थाओंमें उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है पुण्यमय स्वर्गलोकमें [illegible] भी वह सुख नहीं [illegible] जिसे क्षत्रिय वीर शत्रुओंको वशमें करके आनन्द अनुभव करता है

मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना ।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून् प्रतिजिगीषया ॥ २२ ॥
आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य वै ।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥ २३ ॥

अनेक बार शत्रुओंसे अपमानित एवं पराजित हो क्रोधसे दग्ध हो रहा हो वह अवश्य ही विजयकी इच्छासे शत्रुओंपर आक्रमण करे फिर तो वह अपने शरीरका परित्याग करके [illegible] ही शान्ति लाभ करता है [illegible] वह कैसे शान्ति पा सकता है

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति ।
यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याल्पमप्रियम् ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष इस जगत्में अल्प [illegible] अप्रिय की इच्छा [illegible] है [illegible] प्रिय [illegible] अल्प होता है उसके [illegible] भी निश्चय ही अल्प होगा

प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् ।
ध्रुवं चाभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥ २५ ॥

प्रियके अभावमें मनुष्य शोभा [illegible] पाता है जैसे गङ्गा समुद्रमें जाकर [illegible] हो जाती है उसी प्रकार वह [illegible] पुरुष [illegible] हो जाता है

पुत्र उवाच

नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः ।
कारुण्यमेवात्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ २६ ॥

पुत्रने कहा [illegible] तुझ अपने पुत्रको ऐसा विचार नहीं व्यक्त करना चाहिये [illegible] और गूँगेकी भाँति होकर मुझ [illegible] पुत्र [illegible] करुणापूर्ण दृष्टिसे ही देखो

माता उवाच

अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि ।
चोद्यं मां चोदयस्येतद् भृशं वै चोदयामि ते ॥ २७ ॥

माता [illegible] तू [illegible] मुझ बड़ी प्रसन्नता हुई है [illegible] विचार रखता है मुझे मेरे कर्तव्य [illegible] करनेकी प्रेरणा दे रहा है इसीलिये मैं भी तुझे [illegible] तेरा कर्तव्य [illegible]

अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान् ।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्रभाविनमेव ते ॥ २८ ॥

जब [illegible] [illegible] [illegible] मैं [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible]

म० स० १४

अकोशस्य सहायस्य कुतः स्विद् विजयो मम ।
इत्यवस्थां विदित्वेमामात्मनात्मनि दारुणाम् ॥ २९ ॥
राज्याद् भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतेः ।
ईदृशं भवती कंचिदुपायमनुपश्यति ॥ ३० ॥

पुत्र बोला — [illegible] है और [illegible]

महामना शक्तिमान् भी ही हैं। तब तुम्हें विजयरूप अभीष्ट सिद्धि कब प्राप्त होगी? आपकी इस दारुण वाक्यरूपी विषकी बात ही विचार करके मैंने अपनी आत्म [illegible] उसी प्रकार दूर हटा लिया है, जैसे सत्यकी ओरसे पार्थोका भाव हट जाता है। क्या तू ऐसा कोई उपाय देख रही है, जिससे मैं विजय पा सकूँ? ॥ २२-२३ ॥

तस्मै परिपालप्राज्ञे सम्यक् प्रकृतिं पृच्छते।
करिष्यामि हि तत् सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ २४ ॥

परिपालन बुद्धिवाली माँ! मेरे इस प्रश्नके अनुसार तू कोई उत्तम [illegible] दे। मैं तेरे सम्पूर्ण आदेशोंका यथोचित रीतिसे पालन करूँगा ॥ २४ ॥

माता उवाच

पुत्र नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे।
अमर्षेणैव चाप्यर्था नारब्धव्याः सुबालिशैः ॥ २५ ॥

माता बोली—बेटा! पहलेकी [illegible] हो गयी है—यह सोचकर तुम्हें अपना अनादर नहीं करना चाहिये; क्योंकि धन न होनेपर भी प्राप्त हो जाते हैं और प्राप्त होकर भी फिर नष्ट हो जाते हैं। अतः बुद्धिहीन पुरुषों को ईर्ष्यावश ही कार्यों [illegible] लिये कर्मोंका आरम्भ नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥

सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता।
अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च ॥ २६ ॥

तात! सभी कर्मोंके फलमें सदा अनित्यता रहती है। कभी उनका फल मिलता है और कभी नहीं भी मिलता है। इस अनित्यताको जानते हुए भी बुद्धिमान् पुरुष कर्म करते हैं और वे कभी असफल होते हैं तो कभी सफल भी हो जाते हैं ॥ २६ ॥

अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।
ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥ २७ ॥
अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा।

परन्तु जो कर्मका आरम्भ ही नहीं करते, वे तो कभी अपने अभीष्ट सिद्धिमें सफल नहीं होते। अतः कर्मोंका उद्योग न करनेका एक ही परिणाम प्राप्त होता है कि मनुष्योंका काम अभीष्ट [illegible] नहीं होता। परन्तु कर्मोंके उत्साहपूर्वक [illegible] परिणामोंकी ही सम्भावना रहती है—कभी वाञ्छनीय फल प्राप्त भी हो सकता है और नहीं भी ॥ २७ ॥

यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता ॥ २८ ॥
नुदेद् वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज।

राजकुमार! जिस मनुष्यको पहलेसे ही सभी पदार्थोंकी अनित्यता का ज्ञान होता है, वह कभी पुरुष अपने प्रतिकूल शत्रुकी उन्नति और अपनी अवनतिसे प्राप्त हुए दुःखका विचार द्वारा निवारण कर सकता है ॥ २८ ॥

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥ २९ ॥
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः।

तुमको उठना होगा ही। प्रातःकाल उठो, इस विचारको लेकर निरन्तर बिना खिन्न होकर तुम्हें उद्यत रहना होगा और ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंमें लग जाना चाहिये ॥ २९ ॥

मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणैश्चेश्वरैः सह ॥ ३० ॥
प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक।
अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ ३१ ॥

बेटा! देवाराधनसहित ब्राह्मणोंका पूजन तथा अन्यान्य माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करके ऐश्वर्यके [illegible] आरम्भ करने वाले बुद्धिमान् राजाकी शीघ्र उन्नति होती है। जैसे सूर्य सदा ही पूर्व दिशाका आश्रय लेकर उसे प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार राजलक्ष्मी पूर्वोक्त राजाको [illegible] प्राप्त होकर उसे [illegible] प्रकाशित कर देती है ॥ ३०-३१ ॥

निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च।
अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२ ॥

बेटा! मैंने तुम्हें अनेक दृष्टान्त, उपाय और कितने ही उत्साहवर्धक वचन सुनाये हैं। [illegible] दिखाया है। अब तू पुरुषार्थ कर। मैं तेरा पराक्रम देखूँगी ॥ ३२ ॥

पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहार्हसि।
क्रुद्धाँल्लुब्धान् परिक्षीणानवक्षिप्तान् विमानितान् ॥ ३३ ॥
स्पर्धिनश्चैव ये केचित् तान् युक्त उपधारय।
एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ॥ ३४ ॥
महावेग इवोद्धूतो मातरिश्वा बलाहकान्।

तुम्हें अभीष्ट पुरुषार्थ प्राप्त करना चाहिये। जो लोग [illegible] कुपित हों, जिनके मनमें लोभ हो, जो [illegible] क्षीण हो गये हों, जिन्हें अपमानित और तिरस्कृत किया गया हो तथा जो तेरे शत्रुओंसे [illegible] रखते हों, उनको [illegible] प्रकारसे [illegible] शत्रुओंके समुदायको भेद सकता है, ठीक उसी तरह, जैसे महान् वेगशाली वायु बादलोंको [illegible] छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ३३-३४ ॥

तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्योत्थायी प्रियंवदः ॥ ३५ ॥
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम्।

वे उन्हें अभिमत दान दें दिया कर। प्रतिदिन प्रातःकाल [illegible] उठ जाओ और सबसे [illegible] प्रिय वचन बोलो। [illegible] करनेसे वे अवश्य तेरा प्रिय करेंगे और [illegible] ही तुझे अपना अगुआ बना लेंगे।

यदैव शत्रुर्जानीयात् सपत्नं त्यक्तजीवितम्।
तदैवास्मादुद्विजते सर्पाद् वेश्मगतादिव ॥ २६ ॥

शत्रुको ज्यों ही यह [illegible] हो जाता है कि उसका विरोधी [illegible] छोड़कर [illegible] लिये [illegible] है, त्यों ही वह [illegible] उससे [illegible] उद्विग्न हो उठता है। २६।

तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि।
निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद् भविष्यति ॥ २७ ॥

यदि [illegible] पराक्रमसम्पन्न जानकर अपनी [illegible] के [illegible] करते हैं तो उसे विश्वसनीय [illegible] साम, दान [illegible] करके अनुकूल बना ले। [illegible] आक्रमण [illegible] शान्त हो [illegible] ऐसा करनेसे [illegible] उसका [illegible] हो जायगा।

निर्वादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ॥ २८ ॥

इस प्रकार [illegible] धन [illegible] आश्रय प्राप्त होता है [illegible] धनकी वृद्धि होती है। फिर धनवान् [illegible] आश्रय लेते और उनकी सेवा करते हैं। २८।

स्खलितार्थं पुनस्तात संत्यजन्त्यपि बान्धवाः।
अप्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ति च तादृशम् ॥ २९ ॥

इसके विपरीत [illegible] हो जाता है, उसके मित्र और भाई-बन्धु भी उसे त्याग देते हैं। उसका विश्वास नहीं करते हैं [illegible] निन्दा भी करते रहते हैं।

शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति।
अतः शक्यं भवेदेतद् यद् राज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ३० ॥

जो [illegible] शत्रुको सहायक बनाकर उसका विश्वास करता है [illegible] राज्य प्राप्त [illegible] सम्भावना ही नहीं करनी चाहिये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाके पुत्रानुशासनविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

विदुलाके उपदेशसे उसके पुत्रका युद्धके लिये उद्यत होना

माता [illegible]

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ १ ॥

[illegible] राजाको [illegible] भी नहीं चाहिये [illegible] हुआ हो तो भी उसे [illegible] कोई [illegible] न करे।

दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्यते।
राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक् कुर्वन्ति ते मतीः ॥ २ ॥

राजाको भयभीत देखकर उसके पहले सभी लोग भयभीत हो जाते हैं। राज्यकी प्रजा, सेना और मन्त्री भी उससे भिन्न विचार रखने लगते हैं। २।

शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः।
अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद् विमानिताः ॥ ३ ॥

उनमेंसे कुछ लोग तो उस राजाके शत्रुओंकी शरणमें चले जाते हैं, दूसरे लोग उसका त्यागमात्र कर देते हैं और

कुछ लोग जो [illegible] अपमानित हुए होते हैं, वे [illegible] ऊपर प्रहार करनेकी भी इच्छा कर बैठते हैं।

य एवात्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते।
अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इडा इव ॥ ४ ॥

[illegible] अत्यन्त सुहृद् होते [illegible] हैं [illegible] प्रेमवश [illegible] बँधे हुए बछड़ेवाली गायोंकी भाँति कुछ कर नहीं पाते, केवल [illegible] मंगलकामना करते रहते हैं।

शोचन्तमनुशोचन्ति प्रतीतानिव बान्धवान्।
अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥ ५ ॥

जो विपत्तिमें [illegible] शोक करते हुए राजाके साथ [illegible] ही शोकमग्न हो जाते हैं, मानो उनके कोई [illegible] मर गये हों, वैसा देखे ही लोगोंको तूने सुहृद् माना है, क्या तूने भी पहले ऐसे सुहृदोंका सम्मान किया है

ये राज्यमभिमन्यन्ते शत्रो व्यसनमीयुषः
स शीघ्रमस्य सुहृदो वा तथा त्वां [illegible] ॥ ६ ॥

जो राज्यसे गए हुए [illegible] जो अपना ही [illegible] उनको [illegible] राज्यका [illegible] [illegible] है एवं सुहृदोंका [illegible] [illegible] [illegible] और वे भी [illegible] अवसरोंकी [illegible] [illegible]

प्रभाव पौरुष बुद्धिं [illegible] यथा [illegible]
विषमस्य समाश्रय [illegible] जो विदुरे ॥ ७ ॥

मैं तेरा प्रभाव, पुरुषार्थ और बुद्धि-बलको जानना चाहती थी [illegible] तुझे [illegible] देख हुए [illegible] [illegible] [illegible] लिये मैंने [illegible] कहा है

यदेतत् [illegible] यदि [illegible] स्वयम्
[illegible] [illegible] जय यशसि [illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] यदि मैं यह [illegible] [illegible] और यदि तू भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नास्ति न [illegible] महान् [illegible]
[illegible] नैव [illegible] [illegible] ॥ १० ॥

अभी [illegible] [illegible] [illegible] है जिसका [illegible] नहीं [illegible] [illegible] है [illegible] नहीं [illegible] [illegible] तुझे सौंपती हूँ

नास्ति [illegible] भूय [illegible] [illegible]
[illegible] की [illegible] ॥ ११ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वाले हैं

[illegible] हि [illegible] च पुरुषस्य [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ १२ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहता है और शत्रुके [illegible] [illegible] [illegible] दूर [illegible] चाहता है उसके [illegible] और [illegible] पूर्वक [illegible] पुनः [illegible] हुआ करते हैं

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ १३ ॥

(कुन्ती बोली— श्रीकृष्ण [illegible] [illegible] यद्यपि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] १

पुत्र उवाच

[illegible] भूरिय [illegible] [illegible] [illegible] मया
[illegible] मे [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १३ ॥

पुत्र बोला—माँ ! मेरा यह राज्य [illegible] [illegible] हुआ है अब मुझे इसका उद्धार करना है नहीं तो मुझमें शत्रुओंका [illegible] करते हुए अपने [illegible] [illegible] कर देना है [illegible] मुझे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देख [illegible] [illegible] ही चाहिये ६

[illegible] हि [illegible] [illegible] [illegible]
किंचित् किंचित् [illegible] ॥ १४ ॥

मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहता था [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फिर मौन हो जाता था

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १५ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होता था [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] प्राप्ति [illegible] लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हूँ ९

कुन्त्युवाच

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १६ ॥

कुन्ती कहती है—श्रीकृष्ण [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] होके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १७ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ७

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १८ ॥

[illegible] [illegible] नामक इतिहास है [illegible] [illegible] [illegible] पुरुषको इसका [illegible] करना चाहिये [illegible] सुनकर पुत्रमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और शत्रुओंको [illegible] [illegible] है १८

इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते॥ १९॥

यह आख्यान पुत्रकी प्राप्ति करानेवाला है तथा साधारण पुरुषमें वीरभाव उत्पन्न करनेवाला है। यदि गर्भवती स्त्री इसे बारंबार सुने तो वह निश्चय ही वीर पुत्रको जन्म देती है॥ १९॥

विद्याशूरं तपःशूरं दमशूरं तपस्विनम्।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादेन सम्मतम्॥ २०॥
अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम्।
धृष्टवन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम्॥ २१॥
नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम्।
ईदृशं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम्॥ २२॥

इसे सुनकर क्षत्राणी विद्याशूर, तपःशूर, दमशूर, तपस्वी, ब्राह्मी शोभासे सम्पन्न, साधुवादके योग्य, तेजस्वी, बलवान्, परम सौभाग्यशाली, महारथी, धैर्यवान्, दुर्धर्ष, विजयी, किसीसे भी पराजित न होनेवाले, दुष्टोंका दमन करनेवाले, धर्मात्माओंके रक्षक तथा सत्यपराक्रमी वीर पुत्रको उत्पन्न करती है॥ २०—२२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें विदुलाद्वारा पुत्रको दिये गये उपदेशविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३५॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुन्तीका पाण्डवोंके लिये संदेश देना और श्रीकृष्णका उनसे विदा लेकर उपप्लव्य नगरमें जाना

कुन्त्युवाच

अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके।
उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता॥ १॥
अथान्तरिक्षे वागासीद् दिव्यरूपा मनोरमा।
सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः॥ २॥

कुन्ती बोली—केशव! तुम अर्जुनसे जाकर कहना—'तुम्हारे जन्मके समय जब मैं नारियोंसे घिरी हुई आश्रममें सूतिकागृहमें बैठी थी, उसी समय आकाशमें यह दिव्य एवं मनोरम वाणी सुनायी दी—"कुन्ती! यह पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी होगा॥ १-२॥

एष जेष्यति संग्रामे कुरून् सर्वान् समागतान्।
भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति॥ ३॥

यह भीमसेनको साथ लेकर युद्धमें आये हुए समस्त कौरवोंको जीत लेगा और सम्पूर्ण जगत्‌को व्याकुल कर देगा॥ ३॥

पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवस्पृशम्।
हत्वा कुरून् ग्रामजन्ये वासुदेवसहायवान्॥ ४॥
पित्र्यमंशं प्रनष्टं च पुनरप्युद्धरिष्यति।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति॥ ५॥

तेरा यह पुत्र भगवान् श्रीकृष्णके साथ रहकर इस भूमण्डलको जीत लेगा, इसका यश स्वर्गलोकतक फैल जायगा और यह समरमें विपक्षी कौरवोंको मारकर अपने पैतृक राज्य-भागका पुनरुद्धार करेगा। यह शोभासम्पन्न बालक अपने भाइयोंके साथ तीन अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करेगा"॥ ४-५॥

तं सत्यसंधं बीभत्सुं सव्यसाचिनमच्युत।
यथाहमेवं जानामि बलवन्तं दुरासदम्॥ ६॥

अच्युत! सव्यसाची अर्जुन जैसा सत्यप्रतिज्ञ है तथा उसमें जितना बल एवं दुर्धर्ष शक्ति है, उसे तुम्हीं जानते हो॥ ६॥

तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत।
धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति॥ ७॥

दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण! आकाशवाणीने जैसा कहा है, वैसा ही हो; मेरी भी यही इच्छा है। वृष्णिनन्दन! यदि धर्म सत्य है तो यह सब उसी प्रकार सत्य होगा॥ ७॥

त्वं चापि तत् तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि।
नाहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत॥ ८॥

श्रीकृष्ण! तुम स्वयं भी वह सब कुछ उसी रूपमें पूर्ण करोगे। आकाशवाणीने जैसा कहा है, उसमें मैं किसी दोषकी उद्भावना नहीं करती हूँ॥ ८॥

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।
एतद् धनंजयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः॥ ९॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः॥ १०॥

मैं तो उस महान् धर्मको नमस्कार करती हूँ; क्योंकि धर्म ही सम्पूर्ण प्रजाको धारण करता है। तुम अर्जुनसे तथा युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीमसेनसे भी जाकर कहना, 'क्षत्राणी जिसके लिये पुत्रको जन्म देती है, उसका यह उपयुक्त अवसर आ गया है। श्रेष्ठ मनुष्य किसीसे वैर ठन जानेपर उत्साहहीन नहीं होते'॥ ९-१०॥

विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति।
शामयन्न स कुर्वीत सम्पूर्णं शत्रुकर्षण॥११॥

शत्रुदमन श्रीकृष्ण! तुम्हें भीमसेनके विचार तो सदासे ज्ञात ही हैं। वह जबतक शत्रुओंका अन्त नहीं कर देता, उसका क्रोध शान्त नहीं होता॥११॥

सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः।
ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम्॥१२॥
युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि।
यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत् त्वमवर्तिथाः॥१३॥

माधव श्रीकृष्ण! तुम सब धर्मोंका विशेषरूपसे ज्ञान रखनेवाली महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू कल्याणमयी यशस्विनी द्रौपदीसे कहना—'बेटी! तू परम सौभाग्यशाली यशस्वी कुलमें उत्पन्न हुई है। तूने मेरे सभी पुत्रोंके साथ जो धर्मानुसार व्यवहार किया है, वह तेरे ही योग्य है'॥१२-१३॥

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि॥१४॥
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम॥१५॥

पुरुषोत्तम! तदनन्तर क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले दोनों माद्रीकुमारोंसे भी मेरा यह संदेश कहना—'वीरो! तुम प्राणोंकी बाजी लगाकर भी अपने पराक्रमसे प्राप्त हुए भोगोंका ही उपभोग करो। क्षत्रियधर्मसे निर्वाह करनेवाले मनुष्यका मन पराक्रमद्वारा प्राप्त किये हुए पदार्थोंसे ही सदा संतुष्ट रहता है'॥१४-१५॥

यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम्।
पाञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत् क्षन्तुमर्हति॥१६॥

पाण्डवो! सब प्रकारसे धर्मकी वृद्धि करनेवाले तुम सब लोगोंके देखते-देखते पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको जो कठोर वचन सुनाये गये हैं, उन्हें कौन वीर क्षमा कर सकता है?॥१६॥

न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चापि पराजयः।
प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद् दुःखकारणम्॥१७॥
यत् सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा।
अश्रौषीत् परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं मतम्॥१८॥

श्रीकृष्ण! मुझे राज्यके छिन जानेका उतना दुःख नहीं है। जूएमें हारने और पुत्रोंके वनवास होनेका भी मेरे मनमें उतना अधिक दुःख नहीं है; परंतु भरी सभामें मेरी सुन्दरी युवती पुत्रवधू द्रौपदीने रोते हुए जो दुर्योधनके कटुवचन सुने थे, वही मेरे लिये महान् दुःखका कारण बन गया है॥१७-१८॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा।
नाध्यगच्छत् तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती॥१९॥

क्षत्रियधर्ममें सदा तत्पर रहनेवाली मेरी सर्वांगसुन्दरी सती-साध्वी बहू कृष्णा उन दिनों रजस्वलावस्थामें थी। यह सब प्रकारसे सनाथ थी तो भी उस दिन कौरवसभामें उसे कोई रक्षक नहीं मिला (सब अनाथ-सी उसे दुःखें असहाय रह रही थी)॥१९॥

तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर॥२०॥

महाबाहो! सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह अर्जुनसे कहना कि तुम द्रौपदीके इच्छित पथपर चलो॥२०॥

विदितौ हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम्॥२१॥

श्रीकृष्ण! तुम तो अच्छी तरह जानते ही हो कि भीमसेन और अर्जुन कुपित होनेपर यमराज तथा कालके समान भयंकर हो जाते हैं और देवताओंको भी कालके गालमें पहुँचा सकते हैं॥२१॥

तयोश्चैतदवज्ञानं यत् सा कृष्णा सभां गता।
दुःशासनश्च यद् भीमं कटुकान्यभ्यभाषत॥२२॥
पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारये पुनः।

द्रौपदी जो सभामें लायी गयी और उसके सामने ही दुःशासनने भीमसेनसे जो कटु वचन कहे थे, वह सब भीमसेन और अर्जुनका ही तिरस्कार है। मैं पुनः उसकी याद दिला रही हूँ॥२२॥

पाण्डवान् कुशलं पृच्छेः सपुत्रान् कृष्णया सह॥२३॥
मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान् मे परिपालय॥२४॥

जनार्दन! तुम मेरी ओरसे द्रौपदी और पुत्रोंसहित पाण्डवोंसे कुशल पूछना और फिर मुझे भी सकुशल बताना। जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो। मेरे पुत्रोंकी रक्षा करना॥२३-२४॥

वैशम्पायन उवाच

अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः॥२५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने कुन्तीदेवीको प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की और फिर सिंहके समान मस्तानी चालसे बाहर निकल आये॥२५॥

ततो विसर्जयामास भीष्मादीन् कुरुपुङ्गवान्।
आरोप्याथ रथे कर्णं प्रायात् सात्यकिना सह॥२६॥

फिर भीष्म आदि प्रधान कुरुवंशियोंको उन्होंने विदा कर दिया और कर्णको रथपर बिठाकर सात्यकिके साथ वहाँसे प्रस्थान किया॥२६॥

ततः प्रयाते दाशार्हे कुरवः सङ्गता मिथः।
जजल्पुर्महदाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम्॥ २७॥

दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्णके चले जानेपर सब कौरव आपसमें मिले और उनके अत्यन्त अद्भुत एवं महान् आश्चर्यजनक कर्म आदिकी चर्चा करने लगे॥ २७॥

प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशावपाशिता।
दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैतदस्तीति निश्चयः॥ २८॥

वे बोले—'यह सारी पृथ्वी मृत्युपाशमें आबद्ध हो मोहाच्छन्न हो गयी है, जान पड़ता है दुर्योधनकी मूर्खतासे इसका विनाश हो जायगा'॥ २८॥

ततो निर्याय नगरात् प्रययौ पुरुषोत्तमः।
मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह॥ २९॥

उधर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण उस नगरसे निकलकर उपप्लव्यकी ओर चले। उस समय उन्होंने दीर्घकालतक कर्णके साथ मन्त्रणा की॥ २९॥

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः।
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत्॥ ३०॥

फिर राधानन्दन कर्णको विदा करके सम्पूर्ण यदुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीकृष्णने बड़े वेगसे घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक हाँका॥ ३०॥

ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः।
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः॥ ३१॥

दारुकके हाँकनेपर वे महान् वेगशाली अश्व मन और वायुके समान तीव्र गतिसे आकाशको पीते हुए-से चले॥ ३१॥

ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः।
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन्॥ ३२॥

उन्होंने शीघ्रगामी बाज पक्षीकी भाँति उस विशाल मार्गको तुरंत ही पार किया और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको उपप्लव्य नगरमें पहुँचा दिया॥ ३२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्यसमाप्तौ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्तीवाक्यविषयक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३७॥

अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

भीष्म और द्रोणका दुर्योधनको समझाना

वैशम्पायन उवाच

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कुन्तीका वचन सुनकर महारथी भीष्म और द्रोणने अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य सन्निधौ।
वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम्॥ २॥

'पुरुषसिंह! कुन्तीने श्रीकृष्णके समीप जो सार्थक, धर्मसम्मत, परम उत्तम एवं अत्यन्त भयंकर बात कही है, उसे तुमने भी सुना ही है॥ २॥

तत् करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य सम्मतम्।
न हि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव॥ ३॥

कुरुनन्दन! कुन्तीके पुत्र श्रीकृष्णकी सम्मतिके अनुसार वह सब कार्य करेंगे। अब राज्य लिये बिना वे कदापि शान्त नहीं रह सकते॥ ३॥

क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा।
सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव॥ ४॥

तुमने धूतक्रीडाके समय धर्मके बन्धनमें बँधे हुए पाण्डवों तथा सभामें द्रौपदीको भी भारी क्लेश पहुँचाया था; किंतु उन्होंने तुम्हारा वह अपराध चुपचाप सह लिया॥ ४॥

कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम्।
गाण्डीवं चेषुधी चैव रथं च ध्वजमेव च॥ ५॥
नकुलं सहदेवं च बलवीर्यसमन्वितौ।
सहायं वासुदेवं च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः॥ ६॥

'अब अस्त्रविद्यामें पारंगत अर्जुन और युद्धका दृढ़ निश्चय रखनेवाले भीमसेनको पाकर, गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकसोंवाले दोनों तूणीर, उस दिव्य रथ और ध्वजको भी हस्तगत करके तथा बल और पराक्रमसे सम्पन्न नकुल और सहदेवको युद्धके लिये उद्यत देखकर तथा भगवान् श्रीकृष्णको भी अपनी सहायताके लिये पाकर युधिष्ठिर तुम्हारा पूर्व अपराधोंको क्षमा नहीं करेंगे॥ ५-६॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता।
विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः॥ ७॥

'महाबाहो! पहले की हुई विराटनगरकी बात है, बुद्धिमान् अर्जुनने किस प्रकार युद्धमें हम सब लोगोंको परास्त कर दिया था और वह सब घटना तुम्हारी आँखोंके सामने घटित हुई थी॥ ७॥

दानवा घोरकर्माणो निवातकवचा युधि।
रौद्रमस्त्रं समाधाय दग्धा वानरकेतुना॥ ८॥

कपिध्वज अर्जुनने युद्धमें गरजकर काम करनेवाले निवात-कवच नामक दानवोंको पराजित करनेमें भी पाशुपत अस्त्र लेकर हाथ धर आता था।

कर्णप्रमुखांस्तान् त्वं च पि कथमा रक्षी
मोक्षितो घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥
संशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः स्वं पाण्डवैः

घोषयात्राके समय ये कर्ण आदि योद्धा तुम्हारे साथ थे, ये तुम सब भी ... और कवच आदिसे सम्पन्न थे, तथापि अर्जुनने ही तुम्हें गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ाया था। उनकी शक्तिका परिचय पानेके लिये यही उदाहरण पर्याप्त होगा। अतः भरतश्रेष्ठ! तुम अपने ही भाई पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो ॥ ११ ॥

यदीमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गताम् ॥
ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक् कविः।
तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् ॥

क्योंकि सारी पृथ्वी मौतकी दाढ़ोंके बीचमें जा पहुँची है। तुम अधिक ... इसकी रक्षा करो। तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर धर्मात्मा, दयालु, मधुरभाषी और विद्वान् हैं। तुम अपने मनका पाप ... छोड़कर उन पुरुषसिंह युधिष्ठिरकी शरणमें जाओ।

दृष्टश्च त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः।
प्रसन्नभ्रुकुटिः श्रीमान् कृता शान्तिः कुलस्य नः ॥ १२ ॥

जब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर यह देख लेंगे कि तुमने धनुष उतार दिया है और तुम्हारी टेढ़ी भौंहें शान्त एवं सीधी हो गयी हैं तथा तुम क्रोध त्यागकर प्रसन्न शोभासे सम्पन्न हो रहे हो, तब हमें विश्वास हो जायगा कि तुमने हमारे कुलमें शान्ति स्थापित कर दी।

तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम्।
अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिंदम ॥ १३ ॥

शत्रुदमन! तुम अपने मन्त्रियोंके साथ पाण्डुकुमार राजा युधिष्ठिरके पास जाओ और पहलेकी भाँति उन्हें हृदयसे लगाकर उन्हें प्रणाम करो।

अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः।
प्रतिगृह्णातु सौहार्दात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

भीमसेनके बड़े भाई कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुम्हें प्रणाम करते देख सौहार्दवश अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लें।

सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः।
परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः ॥ १५ ॥

जिनके कंधे सिंहके समान और भुजाएँ बड़ी गोलाकार तथा अधिक मोटी हैं, वे योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन भी तुम्हें अपनी दोनों भुजाओंमें भरकर छातीसे चिपका लें।

कम्बुग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः।
अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १६ ॥

शङ्खके समान ग्रीवा और कमलसदृश नेत्रोंवाले निद्राविजयी कुन्तीपुत्र धनंजय तुम्हें हाथ जोड़कर प्रणाम करें।

आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि।
तौ च त्वां गुरुवत् प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥ १७ ॥

इस भूतलपर जिनके रूपकी कहीं तुलना नहीं है, वे अश्विनीकुमारोंके पुत्र नरश्रेष्ठ नकुल-सहदेव तुम्हारे प्रति गुरुजनोचित प्रेम और आदरका भाव लेकर तुम्हारी सेवामें उपस्थित हों।

मुञ्चन्त्वानन्दजं चाश्रु दाशार्हप्रमुखा नृपाः।
संगच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं संत्यज्य पार्थिव ॥ १८ ॥

भूपाल! तुम अभिमान छोड़कर अपने उन भाइयोंसे मिल जाओ और ये समस्त राजा तथा श्रीकृष्ण आदि सब नरेश अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहावें।

प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्तं भ्रातृभिः सह।
समालिङ्ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥ १९ ॥

तदनन्तर तुम अपने भाइयोंके साथ इस सारी पृथ्वीका शासन करो और ये राजा लोग एक दूसरेसे मिल-जुलकर हर्षपूर्वक यहाँसे पधारें।

अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु कारणम्।
ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥ २० ॥

राजेन्द्र! इस युद्धसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हारे हितैषी सुहृद् जो तुम्हें युद्धसे रोकते हैं, उनकी यह बात सुनो और मानो, क्योंकि युद्ध छिड़ जानेपर क्षत्रियोंका निश्चय ही विनाश दिखायी दे रहा है।

ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः।
उत्पाता विविधा वीर दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ २१ ॥

वीर! ग्रह और नक्षत्र प्रतिकूल हो रहे हैं, पशु और पक्षी भयंकर शब्द कर रहे हैं तथा नाना प्रकारके ऐसे उत्पात एवं अपशकुन दिखायी देते हैं, जो क्षत्रियोंके विनाशकी सूचना देते हैं।

विशेषत इहास्माकं निमित्तानि निवेशने।
उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥ २२ ॥

विशेषतः यह हमारे घरमें बुरे निमित्त दृष्टिगोचर होते हैं। जलती हुई उल्काएँ गिरकर तुम्हारी सेनाको पीड़ित कर रही हैं।

वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते।
गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥ २३ ॥

प्रजानाथ! हमारे सारे वाहन अप्रसन्न एवं रोते-से

दिखायी देते हैं और तुम्हारी सेनाओंके चारों ओर बैठते हैं ॥ २७ ॥

नगरं च यथापूर्वं तथा राजनिवेशनम् ।
शिवाश्चाशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥ २८ ॥

इस नगर तथा राजभवनकी शोभा अब पहले-जैसी नहीं रही। सारी दिशाएँ जलती-सी प्रतीत होती हैं और उनमें अमङ्गलसूचक शब्द करती हुई गीदड़ियाँ फिर रही हैं ॥ २८ ॥

कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम् ।
त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च ॥ २९ ॥

महाबाहो! तुम पिता, माता तथा हम हितैषियोंका कहना मानो। अब शान्तिस्थापन और युद्ध दोनों तुम्हारे ही अधीन हैं ॥ २९ ॥

न चेत् करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्शन ।
तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥ ३० ॥

शत्रुसूदन! यदि तुम सुहृदोंकी बात नहीं मानोगे तो अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होती हुई अपनी सेनाको देखकर पछताओगे ॥ ३० ॥

भीमसेनस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे ।
श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।
यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति ॥ ३१ ॥

यदि हमारी ये बातें तुम्हें विपरीत जान पड़ती हैं तो जिस समय युद्धमें गर्जते हुए महाबली भीमसेनका सिंहनाद और अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनोगे, उस समय तुम्हें ये बातें याद आयेंगी ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें भीष्म-द्रोण-वाक्यविषयक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३८ ॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मसे वार्तालाप आरम्भ करके द्रोणाचार्यका दुर्योधनको पुनः संधिके लिये समझाना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ।
संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किंचिद् व्याजहार ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीष्म और द्रोणाचार्यके इस प्रकार कहनेपर दुर्योधनका मन उदास हो गया। उसने टेढ़ी आँखोंसे देखकर और भौंहोंको बीचसे सिकोड़कर मुँह नीचा कर लिया। वह उन दोनोंसे कुछ बोला नहीं ॥ १ ॥

तं वै विमनसं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्यान्योन्यमन्तिकात् ।
पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥ २ ॥

उसे उदास देख नरश्रेष्ठ भीष्म और द्रोण एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उसके निकट ही पुनः इस प्रकार बात करने लगे ॥ २ ॥

भीष्म उवाच

शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् ।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ॥

भीष्म बोले—अहो! जो गुरुजनोंकी सेवाके लिये उत्सुक रहता है, किसीके भी दोष न देखनेवाला, ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी है, उसी युधिष्ठिरसे हमें युद्ध करना पड़ेगा; इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात और क्या होगी? ॥ ३ ॥

द्रोण उवाच

अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनंजये ।
बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे ॥ ४ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—राजन्! मेरे अपने पुत्र अश्वत्थामामें जैसा आदर है, उससे भी अधिक अर्जुनके प्रति है। कपिध्वज अर्जुनमें मेरे प्रति बहुत विनयभाव है ॥ ४ ॥

तं चेत् पुत्रात् प्रियतरं प्रतियोत्स्ये धनंजयम् ।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५ ॥

मेरे पुत्रसे भी बढ़कर प्रियतम उसी अर्जुनसे मुझे क्षत्रियधर्मका आश्रय लेकर युद्ध करना पड़ेगा। क्षात्रवृत्तिको धिक्कार है ॥ ५ ॥

यस्य लोके समो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः ।
मत्प्रसादात् स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥ ६ ॥

मेरी ही कृपासे अर्जुन अन्य धनुर्धरोंसे श्रेष्ठ हो गये हैं। इस जगत्में उनके समान दूसरा कोई धनुर्धर नहीं है ॥ ६ ॥

मित्रध्रुग् दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः ।
न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः ॥ ७ ॥

जैसे यज्ञमें आया हुआ मूर्ख सम्मान नहीं पाता, उसी प्रकार मित्रद्रोही, दुष्टभाव, नास्तिक, कुटिल और शठ मनुष्य सज्जनोंमें आदर नहीं पाता है ॥ ७ ॥

वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति ।
चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥ ८ ॥

पापात्मा मनुष्यको पापसे रोका जाय तो भी वह पाप ही करना चाहता है और जिसका हृदय शुद्ध है, वह शुभात्मा पुरुष पापी पुरुषोंके द्वारा पापके लिये प्रेरित होनेपर भी शुभ कर्म करनेकी ही इच्छा रखता है ॥ ८ ॥

मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनु प्रिये
अहितत्वाय कल्पन्ते योधा भरतसत्तम ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुमने योद्धाओंके साथ सदा मिथ्या बर्ताव किया है तो भी ये सदा तुम्हारा प्रिय करनेमें ही लगे रहे हैं। अतः तुम्हारे ये ऐसा देख भाविदोष तुम्हारा ही अहित करनेवाले होंगे।

यदुक्तं कुरुवृद्धेन तथा च विदुरेण च
वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिमन्यसे ॥ १० ॥

कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भीष्मजीने, मैंने, विदुरजीने तथा भगवान् श्रीकृष्णने भी तुमसे तुम्हारे कल्याणकी ही बात बतायी है, तथापि तुम उसे मान नहीं रहे हो।

अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि
सग्राहनक्रमकरं गङ्गावेगमिवोष्णगे ॥ ११ ॥

जैसे कोई शक्तिशाली मनुष्य वर्षाकालमें बढ़े हुए ग्राह और मकर आदि जलजन्तुओंसे युक्त गङ्गाजीके वेगको दोनों बाहुओंसे तैरना चाहता हो, उसी प्रकार तुम मेरे पास बल है, ऐसा समझकर पाण्डव-सेनाको सहसा लाँघ जानेकी इच्छा रखते हो।

वास एव यथा त्यक्त्वा प्रावृणानोऽभिमन्यसे
स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद् यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ १२ ॥

जैसे कोई दूसरेका छोड़ा हुआ वस्त्र पहन ले और उसे अपना मानने लगे, उसी प्रकार तुम त्यागी हुई मालाकी भाँति युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको पाकर अब उसे लोभवश अपनी समझते हो।

द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम्
वनस्थमपि राज्यस्थः पाण्डवं को विजेष्यति ॥ १३ ॥

अपने अस्त्रधारी भाइयोंसे घिरे हुए द्रौपदीसहित पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर वनमें रहें तो भी उन्हें राजसिंहासनपर बैठा हुआ कौन नरेश युद्धमें जीत सकेगा?

निदेशे यस्य राजानः सर्वे तिष्ठन्ति किङ्कराः
तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥ १४ ॥

समस्त राजा जिसकी आज्ञामें सेवककी भाँति खड़े रहते हैं, उन राजराज कुबेरसे मिलकर धर्मराज युधिष्ठिर उनके साथ विराजमान हुए थे।

कुबेरसदनं प्राप्य ततो रत्नान्यवाप्य च
स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ १५ ॥

कुबेरके भवनमें जाकर उनसे भाँति-भाँतिके रत्न लेकर

अब पाण्डव तुम्हारे समृद्धिशाली राष्ट्रपर आक्रमण करके अपना राज्य वापस लेना चाहते हैं।

दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः
आवयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥ १६ ॥

हम दोनोंने तो दान, यज्ञ और स्वाध्याय कर लिये धनसे ब्राह्मणोंको तृप्त कर लिया, अब हमारी आयु समाप्त हो चुकी है, अतः हमें तो तुम कृतकृत्य ही समझो।

त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च
विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद् व्यसनमाप्स्यसि ॥ १७ ॥

परंतु तुम पाण्डवोंसे युद्ध ठानकर सुख, राज्य, मित्र और धन सब कुछ खोकर बड़े भारी संकटमें पड़ जाओगे।

द्रौपदी यस्य चाशास्ते विजयं सत्यवादिनी
तपोघोरव्रता देवी कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १८ ॥

तपस्या एवं घोर व्रतका पालन करनेवाली सत्यवादिनी देवी द्रौपदी जिनकी विजयकी कामना करती है, उन पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको तुम कैसे जीत सकोगे?

मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनंजयः
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिनके मन्त्री और समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन जिनके भाई हैं, उन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको तुम कैसे जीतोगे?

सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः
तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ २० ॥

धैर्यवान् और जितेन्द्रिय ब्राह्मण जिनके सहायक हैं, उन उग्र तपस्वी वीर पाण्डवको तुम कैसे जीत सकोगे?

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत् कार्यं भूतिमिच्छता
सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥ २१ ॥

जिस समय अपने सुहृद्गण संकटके समुद्रमें डूब रहे हों, उस समय कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सुहृद्‌का जो कर्तव्य है, उस अवसरपर उसे जैसी बात कहनी चाहिये, वह यद्यपि पहले कही जा चुकी है, तथापि मैं उसे दुहरा दूँगा।

अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च पराभवम् ॥ २२ ॥

राजन्! तुम्हें उन वीरोंके साथ युद्ध नहीं होना चाहिये। तुम कुरुकुलकी वृद्धिके लिये उन वीर पाण्डवोंके साथ संधि कर लो और पुत्रों, मन्त्रियों तथा सेनाओंसहित पराजयको प्राप्त होनेकी तैयारी न करो।

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको पाण्डवपक्षमें आ जानेके लिये समझाना

धृतराष्ट्र उवाच

राजपुत्रैः परिवृतस्तथा सूतैश्च संजय।
उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः॥ १॥
किमब्रवीद् रथे यात्वा राधेयं परवीरहा।
कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान्॥ २॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! राजपुत्रों तथा सूतोंसे घिरे हुए, शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण जब राधानन्दन कर्णको रथपर बिठाकर हस्तिनापुरसे बाहर निकल गये, तब उन्होंने उससे क्या कहा? गोविन्दने सूतपुत्र कर्णको क्या सान्त्वना दी? ॥ १-२॥

ओघमेघस्वनः काले कृष्णः कर्णमथाब्रवीत्।
मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ३॥

संजय! मेघके समान गम्भीर स्वरसे बोलनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उस समय कर्णसे जो मधुर अथवा कठोर वचन कहा हो—वह सब मुझसे कहो॥ ३॥

संजय उवाच

आनुपूर्व्येण वाक्यानि तीक्ष्णानि च मृदूनि च।
प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च॥ ४॥
हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः।
यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत॥ ५॥

संजय बोले—भारत! अमेयस्वरूप मधुसूदन श्रीकृष्णने राधानन्दन कर्णसे जो तीक्ष्ण, मधुर, प्रिय, धर्मसम्मत, सत्य, हितकर एवं हृदयग्राह्य बातें क्रमशः कही थीं, उन सबको आप मुझसे सुनिये॥ ४-५॥

वासुदेव उवाच

उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः।
तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया॥ ६॥

श्रीकृष्णने कहा—राधानन्दन! तुमने वेदोंके पारगत ब्राह्मणोंकी उपासना की है। तत्त्वज्ञानके लिये नियमपूर्वक दोषदृष्टिका परित्याग करके उन ब्राह्मणोंसे अपनी शङ्काएँ पूछी हैं॥ ६॥

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान्।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः॥ ७॥

कर्ण! सनातन वैदिक सिद्धान्त क्या है? इसे तुम अच्छी तरह जानते हो। धर्मशास्त्रोंके सूक्ष्म विषयोंके भी तुम परिनिष्ठित विद्वान् हो॥ ७॥

कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते।
वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः॥ ८॥

कर्ण! कन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसके दो भेद बताये जाते हैं—कानीन और सहोढ। जो विवाहसे पहले उत्पन्न होता है, वह कानीन है और जो ब्याहसे पहले गर्भमें आकर विवाहके बाद उत्पन्न होता है, वह सहोढ कहलाता है। ऐसे पुत्रकी माताका जिसके साथ विवाह होता है, शास्त्रज्ञोंने उसीको उसका पिता बताया है॥ ८॥

सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः।
निग्रहाद् धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि॥ ९॥

कर्ण! तुम्हारा जन्म भी इस प्रकार हुआ है। तुम कुन्तीके ही कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए पुत्र हो। अतः तुम भी धर्मानुसार पाण्डुके ही पुत्र हो। इसलिये आओ, धर्मशास्त्रोंके नियमके अनुसार तुम्हीं राजा होओगे॥ ९॥

पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ॥ १०॥

पिताके पक्षमें कुन्तीके सभी पुत्र तुम्हारे सहायक हैं और मातृपक्षमें वृष्णिवंशी तुम्हारे सहायक हैं। पुरुषश्रेष्ठ! तुम आज इन दोनों पक्षोंको अपना समझो॥ १०॥

मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः।
अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात्॥ ११॥

तात! मेरे साथ यहाँसे चलनेपर आज पाण्डवोंको तुम्हारे विषयमें यह पता लग जाय कि तुम कुन्तीके ही पुत्र हो और युधिष्ठिरसे भी पहले तुम्हारा जन्म हुआ है॥ ११॥

पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः।
द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः॥ १२॥

पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा किसीसे पराजित न होनेवाला सुभद्राकुमार वीर अभिमन्यु—ये सभी तुम्हारे चरणोंका स्पर्श करेंगे॥ १२॥

राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थे समागताः।
पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चान्धकवृष्णयः॥ १३॥

इसके सिवा पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हुए समस्त राजा, राजकुमार तथा अन्धक और वृष्णिवंशके यादव भी तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकायेंगे॥ १३॥

हिरण्मयांश्च ते कुम्भान् राजतान् पार्थिवांस्तथा।
ओषध्यः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः॥ १४॥
राजन्या राजकन्याश्चाप्यानयन्त्वभिषेचनम्॥ १५॥

बहुत-से राजपुत्र और राजकन्याएँ तुम्हारे लिये सोने, चाँदी तथा मिट्टीके बने हुए कलश, ओषधियाँ, सब प्रकारके बीज, सम्पूर्ण रत्न और लता आदि अभिषेक-सामग्री लेकर आयेंगी॥ १४-१५॥

अग्निं जुहोतु वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः ।
अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥ १६ ॥
पुरोहितः पाण्डवानां ब्रह्मकर्मण्यवस्थितः ।

विशुद्ध हृदयवाले द्विजश्रेष्ठ धौम्य आज तुम्हारे लिये होम करें और चारों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण तथा सदा ब्रह्मकर्ममें संलग्न रहनेवाले पाण्डवोंके पुरोहित धौम्य [illegible] तुम्हारा अभिषेक करें ॥ १६ ॥

तथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ १७ ॥
द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा ।
अहं च त्वाभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ॥ १८ ॥
युवराजोऽस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ १९ ॥
उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रं च ते महच्छ्वेतं भीमसेनो महाबलः ॥ २० ॥
अभिषिक्तस्य कौन्तेय धारयिष्यति मूर्धनि ।

इसी प्रकार पाँचों भाई पुरुषसिंह पाण्डव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, पाञ्चाल और चेदिदेशके नरेश तथा मैं—ये सब लोग तुम्हें पृथ्वीपालक सम्राट्के पदपर अभिषिक्त करेंगे। कठोर व्रतका पालन करनेवाले धर्मपुत्र धर्मात्मा कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज होंगे और हाथमें श्वेत चँवर लेकर तुम्हारे पीछे रथपर बैठेंगे। महाबली कुन्तीकुमार भीमसेन राज्याभिषेकके बाद तुम्हारे मस्तकपर महान् श्वेत छत्र धारण करेंगे ॥ १७—२० ॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ २१ ॥
रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति ।
अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति ॥ २२ ॥

सैकड़ों क्षुद्र घण्टिकाओंकी ध्वनिसे युक्त, व्याघ्रचर्मसे आच्छादित तथा श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए तुम्हारे रथको अर्जुन हाँकेंगे। अभिमन्यु सदा तुम्हारी सेवाके लिये निकट रहेगा ॥ २१-२२ ॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये ।
पञ्चालास्त्वानुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः ॥ २३ ॥

नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, पाञ्चालदेशीय क्षत्रिय तथा महारथी शिखण्डी—ये सब तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥ २३ ॥

अहं च त्वानुयास्यामि सर्वे चान्धकवृष्णयः ।
दाशार्हाः परिवारास्ते दाशार्णाश्च विशाम्पते ॥ २४ ॥

मैं तथा समस्त अन्धक और वृष्णिवंशके वीर भी तुम्हारा अनुसरण करेंगे। प्रजानाथ! दशार्ह तथा दशार्ण-कुलके समस्त क्षत्रिय तुम्हारे परिवार हो जायँगे ॥ २४ ॥

भुङ्क्ष्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो मङ्गलैश्च पृथग्विधैः ॥ २५ ॥

महाबाहो! तुम अपने भाई पाण्डवोंके साथ राज्य भोगो। जप, होम तथा नाना प्रकारके माङ्गलिक कार्योंमें संलग्न रहो ॥ २५ ॥

पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः ।
आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा ॥ २६ ॥

द्रविड, कुन्तल, आन्ध्र, तालचर, चूचुप तथा वेणुप देशके लोग तुम्हारे आगे-आगे चलें ॥ २६ ॥

स्तुवन्तु त्वाद्य बहुशः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।
विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥ २७ ॥

सूत, मागध और वन्दीजन नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा तुम्हारा यशोगान करें और पाण्डवलोग 'वसुषेण (कर्ण)-की विजय हो' ऐसी घोषणा करें ॥ २७ ॥

स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय ॥ २८ ॥

कुन्तीकुमार! नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति तुम अपने भाई पाण्डवोंसे घिरे रहकर राज्यका शासन और कुन्तीका अभिनन्दन करो ॥ २८ ॥

मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।
सौभ्रात्रं चैव तेऽद्यास्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ २९ ॥

तुम्हारे मित्र प्रसन्न हों और शत्रुओंके मनमें व्यथा हो। आज तुम्हारा अपने भाई पाण्डवोंके साथ उत्तम भ्रातृभाव स्थापित हो ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४० ॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कर्णका दुर्योधनके पक्षमें रहनेके निश्चित विचारका प्रतिपादन करते हुए समरयज्ञके रूपकका वर्णन करना

कर्ण उवाच

असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव ।
सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च ॥ १ ॥

कर्णने कहा—केशव! आपने सौहार्द, प्रेम, मैत्री और मेरे हितकी इच्छासे ही जो कुछ कहा है, वह निःसंदेह ठीक है ॥ १ ॥

सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डो पुत्रोऽसि धर्मतः
विवाहात् धर्मदाराणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं भी जानता हूँ कि आप मानते हैं, धर्मशास्त्रोंके निर्णयके अनुसार मैं धर्मतः पाण्डुका ही पुत्र हूँ। इन सब बातोंको मैं अच्छी तरह जानता और समझता हूँ ॥ २ ॥

कन्या गर्भं समाधत्त भास्कराद् मां जनार्दन
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥

जनार्दन ! कुन्तीने कन्यावस्थामें सूर्यदेवके संयोगसे मुझे गर्भमें धारण किया था और पैदा होनेपर सूर्यदेवकी आज्ञासे ही मुझे त्याग दिया था ॥ ३ ॥

सोऽस्मि कृष्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः
कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण ! इस प्रकार मैं [illegible] धर्मतः पाण्डुका ही पुत्र हूँ, परंतु कुन्तीने मुझे इस तरह त्याग दिया, मानो मैं [illegible] ॥ ४ ॥

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यानयद् गृहान्
राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ॥ ५ ॥

मधुसूदन ! उसके बाद अधिरथ नामक सूतने मुझे देखते ही अपने घर ले आये और बड़े स्नेहसे मुझे अपनी पत्नी राधाकी गोदमें दे दिया ॥ ५ ॥

मत्स्नेहाच्चैव राधायाः सद्यः क्षीरमवातरत्
सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ॥ ६ ॥

उस समय मेरे प्रति अधिक स्नेहके कारण [illegible] स्तनोंमें तत्काल दूध उतर आया। माधव ! उस अवस्थामें उन्होंने मेरा मल-मूत्र उठाना स्वीकार किया ॥ ६ ॥

तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम्
धर्मविद् धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥ ७ ॥

मेरे-जैसा धर्मशास्त्रोंके श्रवणमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य धर्मज्ञ पुरुष राधाके मुखका ग्रास कैसे छीन सकता है? उसको पालन-पोषण करनेवाली उस माता राधाको कैसे [illegible] सकता है? ॥ ७ ॥

तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम्
पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा ॥ ८ ॥

अधिरथ सूत भी मुझे अपना पुत्र ही मानते हैं और मैं भी सौहार्दवश उन्हें सदा अपना पिता ही मानता आया हूँ ॥ ८ ॥

स हि मे जातकर्मादि कारयामास माधव
शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥ ९ ॥
नाम मे वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः

माधव ! उन्होंने मेरे जातकर्म आदि संस्कार करवाये

तथा जनार्दन ! उन्होंने ही पुत्रप्रेमवश शास्त्रीय विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा मेरा वसुषेण नाम रखवाया ॥ ९ ॥

भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तेन केशव ॥ १० ॥
तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन
तासु मे हृदयं कृष्ण सञ्जातं कामबन्धनम् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरी युवावस्था होनेपर अधिरथने सूतजातिकी कई कन्याओंके साथ मेरा विवाह करवाया। अब उनसे मेरे पुत्र और पौत्र भी पैदा हो चुके हैं। जनार्दन ! उन स्त्रियोंमें मेरा हृदय कामभावसे आसक्त रहा है ॥ १०-११ ॥

न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः
हर्षाद् भयाद् वा गोविन्द अनृतं वक्तुमुत्सहे ॥ १२ ॥

गोविन्द ! अब मैं सम्पूर्ण पृथिवीका राज्य पाकर, सुवर्णकी राशि पाकर अथवा हर्ष या भयके कारण भी उस सम्बन्धको झूठा नहीं करना चाहता ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात्
मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ! धृतराष्ट्रके कुलमें दुर्योधनका आश्रय पाकर मैंने तेरह वर्षोंतक अकण्टक राज्यका उपभोग किया है ॥ १३ ॥

इष्टं च बहुभिर्यज्ञैः सह सूतैर्मयासकृत्
आवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैर्मया कृताः ॥ १४ ॥

वहाँ मैंने सूतोंके साथ मिलकर बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा उन्हींके साथ रहकर अनेकानेक कुलधर्म एवं वैवाहिक कार्य सम्पन्न किये हैं ॥ १४ ॥

मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः
दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पाण्डवैः ॥ १५ ॥

वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! दुर्योधनने मेरे ही भरोसे हथियार उठाने तथा पाण्डवोंके साथ विरोध करनेका साहस किया है ॥ १५ ॥

तस्माद् रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत
वृतवान् परमं हृष्टः प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥ १६ ॥

अतः अच्युत ! उसने द्वैरथ युद्धमें सव्यसाची अर्जुनके विरुद्ध योद्धा होनेके लिये बड़े हर्षके साथ मेरा ही वरण किया है ॥ १६ ॥

वधाद् बन्धाद् भयाद् वापि लोभाद् वापि जनार्दन
अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १७ ॥

जनार्दन ! वध, बन्धन, भय अथवा लोभसे भी मैं बुद्धिमान् दुर्योधनके साथ मिथ्या व्यवहार नहीं करना चाहता ॥ १७ ॥

यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथं सव्यसाचिना
अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥ १८ ॥

हृषीकेश ! अब यदि मैं अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्ध न

बस तो यह मेरे और आपके दोनोंके लिये आनन्दकी बात होगी

संवादाय हितार्थाय गूहनस्य मधुसूदन
मन्ये न प्रकाशं कुर्युस्त्वच्छ्रवणात् सत्तम ॥ १९ ॥

मधुसूदन! इसमें संदेह नहीं कि आप मेरे हितके लिये ही ये सब बातें कहते हैं। पाण्डव आपके अधीन हैं; इसलिये आप उनसे जो कुछ भी कहेंगे, वह सब वे अवश्य ही कर सकते हैं ॥ १९ ॥

मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र मधुसूदन।
एतदत्र हितं मन्ये सर्वयादवनन्दन ॥ २० ॥

समस्त यदुकुलको आनन्दित करनेवाले मधुसूदन! आप इस गुप्त मन्त्रणाको छिपाये रखें। इसीमें मैं यहाँ सब प्रकारसे हित समझता हूँ ॥ २० ॥

यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥ २१ ॥

अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर यदि यह जान लेंगे कि मैं कुन्तीका प्रथम पुत्र हूँ, तब वे राज्य ग्रहण नहीं करेंगे ॥ २१ ॥

प्राप्य चापि महद् राज्यं तदहं मधुसूदन।
स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिंदम ॥ २२ ॥

शत्रुदमन मधुसूदन! उस दशामें मैं उस समृद्धिशाली विशाल राज्यको पाकर भी दुर्योधनको ही सौंप दूँगा ॥ २२ ॥

स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः।
नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः ॥ २३ ॥

मैं भी यही चाहता हूँ कि जिनके नेता हृषीकेश और योद्धा अर्जुन हैं, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सदा राजा बने रहें ॥ २३ ॥

पृथिवी तस्य राष्ट्रं च यस्य भीमो महारथः।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः।
उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सौमकिः ॥ २५ ॥
चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चापराजितः।
इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा।
इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तिभोजो महामनाः ॥ २६ ॥
मातुलो भीमसेनस्य श्येनजिच्च महारथः।
शङ्खः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वं च जनार्दन ॥ २७ ॥

माधव! जिनके पक्षमें महारथी भीम, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न, महारथी सात्यकि, उत्तमौजा, युधामन्यु, सोमकवंशी सत्यधर्मा, चेदिराज धृष्टकेतु, चेकितान, अपराजित वीर शिखण्डी, इन्द्रगोपके समान लाल रंगवाले पाँचों भाई केकय राजकुमार,

इन्द्रधनुषके समान रंगवाले महामना कुन्तिभोज, भीमसेनके मामा महारथी श्येनजित्, विराटपुत्र शङ्ख तथा जनार्दन! सबकी निधिरूप आप हैं, उन्हीं युधिष्ठिरके अधिकारमें यह सारा भूमण्डल तथा कौरव-राज्य रहेगा ॥ २४—२७ ॥

महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः।
राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ २८ ॥

श्रीकृष्ण! दुर्योधनने यह क्षत्रियोंका बहुत बड़ा समुदाय एकत्र कर लिया है तथा समस्त राजाओंमें विख्यात यह उज्ज्वल कुरुदेशका राज्य भी उन्हें प्राप्त हो गया है ॥ २८ ॥

धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति।
अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥ २९ ॥

जनार्दन! दुर्योधनके यहाँ एक शस्त्र-यज्ञ होगा, जिसके साक्षी आप होंगे ॥ २९ ॥

आध्वर्यवं च ते कृष्ण क्रतावस्मिन् भविष्यति।
होता चैवात्र बीभत्सुः संनद्धः स कपिध्वजः ॥ ३० ॥

श्रीकृष्ण! इस यज्ञमें अध्वर्युका काम भी आपको ही करना होगा, कवच आदिसे सुसज्जित कपिध्वज अर्जुन इसमें होता बनेंगे ॥ ३० ॥

गाण्डीवं स्रुक् तथा चाज्यं वीर्यं पुंसां भविष्यति।
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं च माधव।
मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥

गाण्डीव धनुष स्रुवाका काम करेगा और वीरोंका पराक्रम ही हवनीय घृत होगा। माधव! सव्यसाची अर्जुनके द्वारा प्रयुक्त ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म और स्थूणाकर्ण आदि अस्त्र ही वहाँ मन्त्र होंगे ॥ ३१ ॥

अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे।
गीतं स्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक् तत्र भविष्यति ॥ ३२ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्यु भी अस्त्रविद्यामें अपने पिताका ही अनुसरण करनेवाला अथवा पराक्रममें उनसे भी बढ़कर है। वह इस यज्ञमें उत्तम रूपसे स्तोत्र-पाठका कार्य पूर्ण करेगा ॥ ३२ ॥

उद्गातात्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः।
विनदन् स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद् रणे ॥ ३३ ॥

अभिमन्यु ही उद्गाता और महाबली नरश्रेष्ठ भीमसेन ही प्रस्तोता होंगे, जो रणभूमिमें गर्जना करते हुए शत्रुसेनाके हाथियोंकी सेनाका विनाश कर डालेंगे ॥ ३३ ॥

स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद् राजा युधिष्ठिरः।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥ ३४ ॥

वे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ही सदा जप और होमोंसे संयुक्त रहकर उस यज्ञमें ब्रह्माका कार्य सम्पन्न करेंगे ॥ ३४ ॥

शङ्खास्तत्र समुरजा भेर्यश्च मधुसूदन ।
उत्क्रुष्टसिंहनादाश्च सुब्रह्मण्यो भविष्यति ॥

मधुसूदन ! वहाँ मुरज तथा भेरियोंके साथ जो शंख बजेंगे, वे तथा जोरसे किये हुए सिंहनाद ही सुब्रह्मण्याह्वान होंगे ॥

नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ ।
शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक् तत्र भविष्यतः ॥

माद्रीके यशस्वी पुत्र महापराक्रमी नकुल-सहदेव उसमें शामित्र कर्म करनेवाले होंगे ॥

कल्माषदण्डा गोविन्द विमला रथशक्तयः ।
यूपाः समुपकल्प्यन्तामस्मिन् यज्ञे जनार्दन ॥

गोविन्द ! जनार्दन ! विचित्र ध्वजदण्डोंसे सुशोभित निर्मल रथशक्तियाँ ही इस यज्ञमें यूपोंका काम देंगी ॥

कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः ।
तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥

कर्णि, नालीक, नाराच और वत्सदन्त आदि बाण उपबृंहण (चमस आदि पात्र) होंगे। तोमर सोमकलश तथा धनुष पवित्रका काम देंगे ॥

असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ।
हविस्तु रुधिरं कृष्ण अस्मिन् यज्ञे भविष्यति ॥

श्रीकृष्ण ! इस यज्ञमें खड्ग ही कपाल, शत्रुओंके मस्तक ही पुरोडाश तथा रुधिर ही हविष्य होंगे ॥

इध्माः परिधयश्चैव शक्त्यो विमला गदाः ।
सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥

निर्मल शक्तियाँ और गदाएँ ही सब ओर बिखरी हुई समिधाएँ और परिधि होंगी। द्रोण और कृपाचार्यके शिष्य ही सदस्यका काम करेंगे ॥

इषवोऽत्र परिस्तोमा मुक्ता गाण्डीवधन्वना ।
महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥ ४१ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुन, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा अन्य महारथियोंके चलाये हुए बाण ही चारों ओर बिछाये जानेवाले कुशोंका काम देंगे ॥

प्रातिप्रस्थानिकं कर्म सात्यकिः स करिष्यति ।
दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चास्य महाचमूः ॥ ४२ ॥

सात्यकि प्रतिप्रस्थाताका काम करेंगे, दुर्योधन इस यज्ञकी दीक्षा लेगा और उसकी विशाल सेना ही यजमानपत्नीका काम करेगी ॥

घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः ।
अतिरात्रे महाबाहो विततो यज्ञकर्मणि ॥ ४३ ॥

महाबाहो ! महाबली घटोत्कच अतिरात्र यज्ञके विस्तृत हो जानेपर शामित्र कर्म करेगा ॥

दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
वैताने कर्मणि तते जातो यः कृष्ण पावकात् ॥ ४४ ॥

कृष्ण ! जो श्रौत यज्ञके आरम्भमें ही साक्षात् अग्निकुण्डसे प्रकट हुआ था, वह प्रतापी वीर धृष्टद्युम्न इस यज्ञकी दक्षिणाका कार्य सम्पन्न करेगा ॥ ४४ ॥

यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान् ।
प्रियार्थं धार्तराष्ट्रस्य तेन तप्येऽद्य कर्मणा ॥ ४५ ॥

कृष्ण ! मैंने जो दुर्योधनका प्रिय करनेके लिये पाण्डवोंके प्रति कटुवचन सुनाये हैं, उस अयोग्य कर्मके कारण मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है ॥

यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना ।
पुनश्चितिस्तदा चास्य यज्ञस्याथ भविष्यति ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण ! जब तुम सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मुझे मारा गया देखोगे, उस समय इस यज्ञका पुनश्चिति कर्म आरम्भ होगा ॥ ४६ ॥

दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पाण्डवः ।
आनर्दं नर्दतः सम्यक् तदा सुत्यं भविष्यति ॥ ४७ ॥

जब पाण्डुनन्दन भीमसेन गर्जना करनेवाले दुःशासनका रक्त पान करेंगे, उस समय इस यज्ञका सोमाभिषव कर्म पूरा होगा ॥

यदा द्रोणं च भीष्मं च पाञ्चाल्यौ पातयिष्यतः ।
तदा यज्ञावसानं तद् भविष्यति जनार्दन ॥ ४८ ॥

जनार्दन ! जब दोनों पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मको मार गिरायेंगे, उस समय यह यज्ञ बीचमें समाप्त होगा ॥

दुर्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः ।
तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्तराष्ट्रस्य माधव ॥ ४९ ॥

माधव ! जब महाबली भीमसेन दुर्योधनका वध करेंगे, उस समय धृतराष्ट्रपुत्रका यह यज्ञ समाप्त हो जायगा ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य संगताः ।
हतेश्वरा हतसुता हतनाथाश्च केशव ॥ ५० ॥
गान्धार्या सह रोदन्त्यः श्वगृध्रकुररार्दिते ।
स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्दन ॥ ५१ ॥

केशव ! जिनके पति, पुत्र और संरक्षक मारे गये होंगे, वे धृतराष्ट्रके पुत्रों और पौत्रोंकी बहुएँ जब गान्धारीके साथ एकत्र होकर कुत्तों, गीधों और कुरर पक्षियोंसे भरे हुए समराङ्गणमें रोती हुई विचरेंगी, वही इस यज्ञका अवभृथस्नान होगा ॥

पितापुत्रा वयःस्था हविषा क्षत्रियर्षभ।
यथा मृत्युं न कुर्वीरन्नत्र मधुसूदन ॥ ५२ ॥

क्षत्रियशिरोमणि मधुसूदन! तुम्हारे इस शास्त्रीय ... ऐसा कहीं ऐसा न हो कि ... बूढ़े और ... क्षत्रियलोग ... मृत्युको प्राप्त हों। युद्धमें शस्त्रोंके द्वारा ही सबकी मृत्यु ... हो ॥ ५२ ॥

इदं तु विपुलं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं समन्तपञ्चकम्।
कुरुक्षेत्रं पुण्यतमं त्रैलोक्यस्यापि केशव ॥ ५३ ॥

केशव! कुरुक्षेत्र तीनों लोकोंमें परम पुण्यमय तीर्थ है। यह समन्तपञ्चक क्षेत्र ... वहाँ सबको शस्त्रोंके आघातसे मृत्युको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

तत्र पुण्यतमे क्षेत्रे निधनं प्राप्य ...
यथा क्षत्रं ... स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥ ५४ ॥

कमलनयन श्रीकृष्ण! आप भी ऐसी विधिका विधान कीजिये, जिससे ऐसा ... सारा क्षत्रियसमूह शस्त्रोंसे मरकर स्वर्गलोकमें पहुँच जाय ॥ ५४ ॥

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन।
तावत् कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति ॥ ५५ ॥

जनार्दन! जबतक ये पर्वत और नदियाँ रहेंगी, तबतक इस युद्धकी कीर्ति-कथा अक्षय बनी रहेगी ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम्।
समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥ ५६ ॥

वार्ष्णेय! ब्राह्मणलोग क्षत्रियोंकी सभाओंमें इस महाभारत-युद्धका, जो क्षत्रियोंके सुयशरूपी धनको बढ़ानेवाला होगा, वर्णन करेंगे ॥ ५६ ॥

समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव।
मन्त्रसंवरणं कुर्वन् नित्यमेव परंतप ॥ ५७ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले केशव! आप इस मन्त्रणाको सदा गुप्त रखते हुए ही कुन्तीकुमार अर्जुनको मेरे साथ युद्ध करनेके लिये ले आइये ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कर्णोपनिवादविषयक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका कर्णसे पाण्डवपक्षकी निश्चित विजयका प्रतिपादन

संजय उवाच

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा।
उवाच प्रहसन् वाक्यं स्मितपूर्वमिदं तदा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् केशव कर्णकी उपर्युक्त बात सुनकर ठठाकर हँस पड़े और मुसकराते हुए इस प्रकार बोले ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

अपि त्वां न तपेत् कर्ण राज्यलम्भोपपादनम्।
मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि ॥ २ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—कर्ण! मैंने जो तुम्हें राज्य-प्राप्तिका उपाय बताया है, क्या वह तुम्हारे मनको नहीं भाता है? तुम मेरी दी हुई इस पृथ्वीका शासन नहीं करना चाहते हो? ॥ २ ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामितीदं
न संशयः कश्चन विद्यतेऽत्र।
जयध्वजो दृश्यते पाण्डवस्य
समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंकी विजय अवश्यम्भावी है, इसमें कोई भी संशय नहीं है। पाण्डुनन्दन अर्जुनका वानरराजसे उपलक्षित उग्र ध्वज ऊँचा फहराता हुआ दिखायी देता है ॥ ३ ॥

दिव्या माया विहिता भौमनेन
समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा।
दिव्यानि भूतानि भयावहानि
दृश्यन्ति चैवात्र भयानकानि ॥ ४ ॥

विश्वकर्माने उस ध्वजमें दिव्य मायाकी रचना की है, वह ध्वज इन्द्रध्वजके समान प्रकाशित होता है। उसके ऊपर भयकी प्राप्ति करानेवाले दिव्य एवं भयानक प्राणी दिखायी देते हैं ॥ ४ ॥

न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य
ऊर्ध्वं तिर्यग् योजनमात्ररूपः।
श्रीमान् ध्वजः कर्ण धनंजयस्य
समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः ॥ ५ ॥

कर्ण! अर्जुनका वह अग्निके समान तेजस्वी तथा कान्तिमान् ध्वज एक योजन ऊँचा है। वह ऊपर अथवा अगल-बगलमें भी कहीं पर्वतों और वृक्षोंसे अटकता नहीं है ॥ ५ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चैवाग्निमारुते ॥ ६ ॥

गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ७ ॥

कर्ण! जब तुम युद्धमें श्रीकृष्णको सारथि बनाकर आते हुए श्वेतवाहन अर्जुनको तथा उनके द्वारा प्रकट किये जाते हुए ऐन्द्र, आग्नेय तथा वायव्य अस्त्रको देखोगे और वज्रकी गड़गड़ाहटके समान भयंकर टंकार करनेवाले गाण्डीव धनुषकी ... उस समय

तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रतीति नहीं होगी (केवल कलहस्वरूप भयंकर कलि ही दृष्टिगोचर होगा) ॥ ७ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम्॥ ८॥
आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम्।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च॥ ९॥

जब जप और होममें लगे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर संग्राममें अपनी विशाल सेनाकी रक्षा करते तथा सूर्यके समान दुःसह तेजसे शत्रुसेनाको संतप्त करते देखोगे, उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रतीति नहीं होगी ॥ ८-९ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम्।
दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे॥ १०॥
प्रभिन्नमिव मातङ्गं प्रतिद्विरदघातिनम्।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च॥ ११॥

जब तुम युद्धमें महाबली भीमसेनको दुःशासनका रक्त पीकर नाचते तथा मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान उद्दंड शत्रुरूपी गजराजोंका संहार करते देखोगे, उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रतीति नहीं होगी ॥ १०-११ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं कृपम्।
सुयोधनं च राजानं सैन्धवं च जयद्रथम्॥ १२॥
युद्धायापततस्तूर्णं वारितान् सव्यसाचिना।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च॥ १३॥

जब तुम देखोगे कि युद्धमें आक्रमण करनेवाले शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोणाचार्य, राजा दुर्योधन और सिंधुराज जयद्रथ ज्यों ही युद्धके लिये आगे बढ़ते हैं, त्यों ही सव्यसाची अर्जुनने तुरंत उन सबकी गति रोक दी है, तब तुम सत्ययुग, त्रेता और द्वापरको भी भूल जाओगे और उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापर कुछ भी याद नहीं रहेगा ॥ १२-१३ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ।
वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव॥ १४॥
विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च॥ १५॥

जब युद्धस्थलमें अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार आरम्भ होकर भयंकर रूप धारण कर लेगा (घमासान युद्ध होने लगेगा) और शत्रुवीरोंके रथोंको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले महाबली माद्रीकुमार नकुल-सहदेव दो गजराजोंकी भाँति धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको क्षुब्ध करने लगेंगे, तब तुम उनकी ओर देखोगे, उस अवस्थामें देखनेपर उस समय तुम्हारे सामने न सत्ययुग होगा, न त्रेता और न द्वापर ही रह जायगा ॥ १४-१५ ॥

ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम्।
सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः॥ १६॥

कर्ण! तुम यहाँसे जाकर आचार्य द्रोण, शान्तनुनन्दन भीष्म और कृपाचार्यसे कहना कि यह सौम्य (सुन्दर) मास चल रहा है। इसमें पशुओंके लिये घास और जलानेके लिये लकड़ी आदि वस्तुएँ सुगमतासे मिल सकती हैं ॥ १६ ॥

सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः।
निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः॥ १७॥

सब प्रकारकी ओषधियों तथा फल-फूलोंसे वनकी समृद्धि बढ़ी हुई है। धानके खेतोंमें खूब फल लगे हुए हैं। मक्खियाँ बहुत कम हो गयी हैं। धरतीपर कीचड़का नाम नहीं है। जल स्वच्छ एवं सुस्वादु प्रतीत होता है। इस सुखद समयमें न तो अधिक गर्मी है और न अधिक सर्दी ही (यह मार्गशीर्षका मास चल रहा है) ॥ १७ ॥

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥ १८॥

आजसे सातवें दिनके बाद अमावास्या होगी। उसके देवता इन्द्र कहे गये हैं। उसीमें युद्ध आरम्भ किया जाय ॥ १८ ॥

तथा राज्ञो वदेः सर्वान् ये युद्धायाभ्युपागताः।
यद् वो मनीषितं तद् वै सर्वं सम्पादयाम्यहम्॥ १९॥

इसी प्रकार जो युद्धके लिये वहाँ पधारे हैं, उन समस्त राजाओंसे भी कह देना, आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा है, वह सब मैं अवश्य पूर्ण करूँगा ॥ १९ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः।
प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम्॥ २०॥

दुर्योधनके वशमें रहनेवाले जितने राजा और राजकुमार हैं, वे शस्त्रोंद्वारा मृत्युको प्राप्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करेंगे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे कृष्णवाक्ये द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कर्णके द्वारा कृष्णवाक्यविषयक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

कर्णके द्वारा पाण्डवोंकी विजय और कौरवोंकी पराजय सूचित करनेवाले लक्षणों एवं अपने स्वप्नका वर्णन

सञ्जय उवाच

केशवस्य तु तद् वाक्यं कर्णः श्रुत्वा हितं शुभम्।
अब्रवीदभिसम्पूज्य कृष्णं तं मधुसूदनम्॥ १॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! भगवान् केशवका यह

[illegible] कर्ण मधुसूदन श्रीकृष्णके प्रति सम्मानका भाव प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार बोला—

जानन् मां किं महाबाहो सम्मोहयितुमिच्छसि।
योऽयं पृथिव्याः कार्त्स्न्येन विनाशः समुपस्थितः ॥ २ ॥
निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा।
दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ ३ ॥

महाबाहो! आप सब कुछ जानते हुए भी मुझे मोहमें क्यों डालना चाहते हैं? यह जो इस भूतलका पूर्णरूपसे विनाश उपस्थित हुआ है, उसमें मैं, शकुनि, दुःशासन तथा धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन निमित्तमात्र हुए हैं।

असंशयमिदं कृष्ण महद् युद्धमुपस्थितम्।
पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण! इसमें संदेह नहीं कि कौरवों और पाण्डवोंका यह बड़ा भयंकर युद्ध उपस्थित हुआ है, जो रक्तकी कीचसे भरा दिखायी देगा।

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः।
रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥ ५ ॥

दुर्योधनके वशमें रहनेवाले जो राजा और राजकुमार हैं, वे रणभूमिमें शस्त्रोंकी आगसे जलकर निश्चय ही यमलोकमें जायँगे।

स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन।
निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥ ६ ॥

मधुसूदन! मुझे बहुत-से भयंकर स्वप्न दिखायी देते हैं और भयंकर अपशकुन तथा अत्यन्त दारुण उत्पात होते हैं।

पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे।
शंसन्त इव वार्ष्णेय विविधा लोमहर्षणाः ॥ ७ ॥

वृष्णिनन्दन! वे रोमांचकारी उत्पात मानो दुर्योधनकी पराजय और युधिष्ठिरकी विजय घोषित करते हैं।

प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः।
शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम् ॥ ८ ॥

महातेजस्वी एवं तीक्ष्ण ग्रह शनैश्चर प्रजापतिसम्बन्धी रोहिणीनक्षत्रको पीड़ित करते हुए प्राणियोंको अधिक-से-अधिक पीड़ा दे रहे हैं।

कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन।
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संशमयन्निव ॥ ९ ॥

मधुसूदन! मङ्गल ग्रह ज्येष्ठा नक्षत्रके निकट वक्रगतिसे आकर अनुराधा नक्षत्रपर आना चाहते हैं, जो सम्पूर्ण राजाओंके मित्रमण्डलका विनाश-सा सूचित कर रहे हैं।

नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम्।
विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥ १० ॥

हृषीकेश श्रीकृष्ण! निश्चय ही कौरवोंपर महान् भय उपस्थित हुआ है। विशेषतः महापात नामक ग्रह चित्रा नक्षत्रको पीड़ा दे रहा है, जो राजाओंके विनाशका सूचक है।

सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च।
दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः ॥ ११ ॥

चन्द्रमाका कलङ्क (चिह्न) मिट-सा गया है, राहु सूर्यके समीप जा रहा है। आकाशसे ये उल्काएँ गिर रही हैं, वज्रपातके-से शब्द होते हैं और धरती डोलने-सी लगती है।

निष्टनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः।
पानीयं यवसं चापि नाभिनन्दन्ति माधव ॥ १२ ॥

माधव! हाथी चिग्घाड़ रहे हैं, घोड़े आँसू बहा रहे हैं और पानी तथा घास भी प्रसन्नतापूर्वक नहीं ग्रहण करते हैं।

प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम्।
निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥ १३ ॥

महाबाहो! कहते हैं, इन निमित्तोंके प्रकट होनेपर प्राणियोंका विनाश करनेवाला दारुण भय उपस्थित होता है।

अल्पे भुक्ते पुरीषं च प्रभूतमिह दृश्यते।
वाजिनां वारणानां च मनुष्याणां च केशव ॥ १४ ॥

केशव! हाथी, घोड़े तथा मनुष्य भोजन तो थोड़ा ही करते हैं, परंतु उनके पेटसे मल अधिक निकलता देखा जाता है।

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन।
पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥

मधुसूदन! दुर्योधनकी समस्त सेनाओंमें ये बातें पायी जाती हैं। मनीषी पुरुष इन्हें पराजयका लक्षण बताते हैं।

प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते।
प्रदक्षिणा मृगाश्चैव तत् तेषां जयलक्षणम् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण! पाण्डवोंके वाहन प्रसन्न बताये जाते हैं और मृग उनके दाहिनेसे जाते देखे जाते हैं। यह उनकी विजयका सूचक है।

अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव।
वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत् पराभवलक्षणम् ॥ १७ ॥

केशव! सभी मृग दुर्योधनके बायेंसे निकलते हैं और उसे प्रायः ऐसी वाणी सुनायी देती है, जिसके बोलनेवाला शरीर नहीं दिखायी देता। यह उसकी पराजयका चिह्न है।

मयूराः पुष्पशकुनाः हंससारसचातकाः।
जीवञ्जीवकसंघाश्चाप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥ १८ ॥

जो शुभ शकुन सूचित करनेवाले मुर्गे इस समय वाहन तथा पक्षोंके अनुसार अनुसरण करते हैं।

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] च [illegible] [illegible] ॥ १ ॥

इसी प्रकार तीन वस्तु एक एक राक्षस [illegible] तथा मक्खियोंके समूह कौओंके पीछे दौड़ते हैं

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

पूर्वोक्त [illegible] [illegible] भी [illegible] नहीं होते हैं और [illegible] बिना [illegible] ही [illegible] लगते हैं

[illegible] [illegible] यथा [illegible]
[illegible] [illegible] तद् पराभवलक्षणम् ॥ २ ॥

दुर्योधनकी सेनाओंमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं यह उनके पराभवका लक्षण है

[illegible] च [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] समुपस्थितम् ॥ २२ ॥
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] तिष्ठति ॥ २३ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] नहीं करते हैं [illegible] [illegible] [illegible] और सुन्दर [illegible] [illegible] [illegible] दिखायी देता है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एक [illegible] [illegible] होता है

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] च [illegible] घोर तद् पराभवलक्षणम् ॥ २४ ॥

[illegible] च और [illegible] दोनों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं यह भी [illegible] [illegible] लक्षण है

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मधुसूदन
[illegible] महद् घोर तद् पराभवलक्षणम् ॥ २५ ॥

मधुसूदन [illegible] [illegible] [illegible] और एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही लक्षण है

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] तद् पराभवलक्षणम् ॥ २६ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] सामने आ जाते हैं यह भी पराभवका ही [illegible] है

[illegible] प्रथम [illegible] [illegible] मधुसूदन
[illegible] [illegible] तद् पराभवलक्षणम् ॥ २७ ॥

मधुसूदन दुर्योधन पहले [illegible] [illegible] करता है

पर [illegible] तथा अपने प्रति [illegible] [illegible] [illegible] भी द्वेष करने लगता है यह उसकी पराजयका ही लक्षण है २८

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] च [illegible]
[illegible] [illegible] मधुसूदन
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २९ ॥

[illegible] पूर्व दिशा [illegible] दक्षिण दिशा [illegible] [illegible] [illegible] पश्चिम दिशा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथा उत्तर दिशा [illegible] समान [illegible] दिखायी देती है इस प्रकार ये दिशाओंके पृथक् पृथक् [illegible] [illegible] गये हैं।

[illegible] दिश [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३० ॥

माधव दुर्योधनको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] युधिष्ठिर
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३१ ॥

अच्युत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] युधिष्ठिरको एक बार [illegible] [illegible] [illegible] देखा है

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] च [illegible] [illegible] ॥ ३२ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिये हैं मैंने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही देखा है

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] पृथिवी [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३३ ॥

[illegible] श्रीकृष्ण मैंने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हुई देखा है

[illegible] [illegible] युधिष्ठिर
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३४ ॥

मैंने [illegible] [illegible] [illegible] युधिष्ठिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं

युधिष्ठिर। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३५

मैंने यह भी देखा कि युधिष्ठिर इस पृथ्वीको अपना ग्रास बनाये जा रहे हैं [illegible] यह निश्चित है कि आपकी ही [illegible] [illegible] [illegible] ही उपभोग करेंगे

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३६ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] नरश्रेष्ठ भीमसेन [illegible] गदा

लिये रथपर आरूढ़ हो इस पृथ्वीको ग्रसते हुए-से स्वप्नमें दिखायी दिये हैं ॥ ३५ ॥

क्षयमेष्यन्ति ते सर्वान् स सुव्यक्तं महाहवे।
विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३६ ॥

यह स्पष्ट जान पड़ता है कि ये सब महापुरुष इस युद्धमें समस्त राजाओंका संहार कर डालेंगे। हृषीकेश! मुझे यह भी विदित है कि जहाँ धर्म है उसी पक्षकी विजय होती है ॥ ३६ ॥

पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनंजयः।
तथा सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण! इसी प्रकार गाण्डीवधारी धनंजय भी आपके साथ श्वेत गजराजपर आरूढ़ हो अपनी परम कान्तिसे प्रकाशित होते हुए मुझे स्वप्नमें दृष्टिगोचर हुए हैं ॥ ३७ ॥

यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः।
पार्थिवान् समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥ ३८ ॥

अतः श्रीकृष्ण! आप सब लोग इस युद्धमें दुर्योधन आदि समस्त राजाओंका वध कर डालेंगे, इसमें मुझे संशय नहीं है ॥ ३८ ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः।
शुक्लकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृताः ॥ ३९ ॥
अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम्।
त्रय एते मया दृष्टाः पाण्डुरच्छत्रवाससः ॥ ४० ॥

नकुल, सहदेव तथा महारथी सात्यकि—ये तीन नरश्रेष्ठ मुझे स्वप्नमें श्वेत भुजबंद, श्वेत कण्ठहार, श्वेत वस्त्र और श्वेत मालाओंसे विभूषित हो उत्तम नरयान (पालकी) पर चढ़े दिखायी दिये हैं। ये तीनों ही श्वेत छत्र और श्वेत वस्त्रोंसे सुशोभित थे ॥ ३९-४० ॥

श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन।
धार्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान् विजानीहि केशव ॥ ४१ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः ॥ ४२ ॥

जनार्दन! दुर्योधनकी सेनाओंमेंसे भी तीन ही व्यक्ति स्वप्नमें श्वेत पगड़ीसे सुशोभित दिखायी दिये हैं। केशव! आप उनके नाम मुझसे जान लें। वे हैं—अश्वत्थामा, कृपाचार्य और यादव कृतवर्मा। माधव! अन्य सभी राजा लाल पगड़ी धारण किये दिखायी दिये हैं ॥ ४१-४२ ॥

उष्ट्रयुक्तं समारूढौ भीष्मद्रोणौ मया सह।
मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेण चाभिभो ॥ ४३ ॥
अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन।
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥ ४४ ॥

महाबाहु जनार्दन! मैंने स्वप्नमें देखा, भीष्म और द्रोणाचार्य दोनों महारथी मेरे तथा दुर्योधनके साथ ऊँट जुते हुए रथपर आरूढ़ हो दक्षिण दिशाकी ओर जा रहे थे। इसका फल यह होगा कि हमलोग थोड़े ही दिनोंमें यमलोक पहुँच जायँगे ॥ ४३-४४ ॥

अहं चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम्।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः ॥ ४५ ॥

मैं, अन्यान्य नरेश तथा यह सारा क्षत्रियसमुदाय—सब-के-सब गाण्डीवकी अग्निमें प्रवेश कर जायँगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ४५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुंधरा।
तथा हि मे वचः कर्ण नोपैति हृदयं तव ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण बोले—कर्ण! निश्चय ही अब इस पृथ्वीका विनाशकाल उपस्थित हो गया है, इसीलिये मेरी बात तुम्हारे हृदयतक नहीं पहुँचती है ॥ ४६ ॥

सर्वेषां तात भूतानां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ४७ ॥

तात! जब समस्त प्राणियोंका नाश निकट आ जाता है, तब अन्याय भी न्यायके समान प्रतीत होकर हृदयसे निकल नहीं पाता है ॥ ४७ ॥

कर्ण उवाच

अपि त्वा कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात्।
समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षयविनाशनात् ॥ ४८ ॥

कर्ण बोला—महाबाहु श्रीकृष्ण! वीर क्षत्रियोंका विनाश करनेवाले इस महायुद्धसे पार होकर यदि हम जीवित रह गये तो पुनः आपका दर्शन करेंगे ॥ ४८ ॥

अथवा संगमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम्।
तत्रेदानीं समेष्यामः पुनः सार्धं त्वयानघ ॥ ४९ ॥

अथवा श्रीकृष्ण! अब हमलोग स्वर्गमें ही मिलेंगे, यह निश्चित है। अनघ! वहीं आजकी ही भाँति पुनः आपसे हमारी भेंट होगी ॥ ४९ ॥

संजय उवाच

इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम्।
विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥ ५० ॥

संजय कहते हैं—ऐसा कहकर कर्ण भगवान् श्रीकृष्णका दृढ़ आलिङ्गन करके उनसे विदा ले रथके पिछले भागसे उतर पड़ा ॥ ५० ॥

ततः स्वरथमास्थाय जाम्बूनदविभूषितम्।
सहास्माभिर्निववृते राधेयो दीनमानसः ॥ ५१ ॥

तदनन्तर अपने सुवर्णभूषित रथपर आरूढ़ हो राधानन्दन कर्ण दीनचित्त होकर हमलोगोंके साथ लौट आया ॥ ५१ ॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात् केशवः सहसात्यकिः।

पुनःपुनश्चालयन् वाजिनो याहीति सारथिम्॥ २६॥

तदनन्तर सात्यकिसहित श्रीकृष्ण सारथिसे बार-बार 'चलो-चलो' ऐसा कहते हुए घोड़ोंको तीव्र गतिसे हाँकने लगे और चल दिये॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे कृष्णकर्णसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कर्णके साथ श्रीकृष्णका संवादविषयक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४३॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

विदुरकी बात सुनकर युद्धके भावी दुष्परिणामसे व्यथित हुई कुन्तीका बहुत सोच विचारके बाद कर्णके पास जाना

वैशम्पायन उवाच

असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान् गते।
अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाब्रवीत्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब श्रीकृष्ण का अनुनय असफल हो गया और वे कौरवोंके यहाँसे पाण्डवोंके पास चले गये, तब विदुरजी कुन्तीके पास जाकर शोकमग्न-से होकर धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—॥ १॥

जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे।
उत्क्रोशन्न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः॥ २॥

चिरंजीवी पुत्रोंको जन्म देनेवाली देवि! तुम तो जानती ही हो कि मेरी इच्छा सदा यही रही है कि कौरवों और पाण्डवोंमें युद्ध न हो। इसके लिये मैं पुकार-पुकारकर कहता रह गया, परंतु दुर्योधन मेरी बात मानता ही नहीं है॥ २॥

उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः।
भीमार्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि॥ ३॥

राजा युधिष्ठिर चेदि, पाञ्चाल और केकयदेशके वीर सैनिकगण, भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा नकुल-सहदेव आदि श्रेष्ठ सहायकोंसे सम्पन्न हैं॥ ३॥

उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः।
काङ्क्षते ज्ञातिसौहार्दाद् बलवान् दुर्बलो यथा॥ ४॥

वे युद्धके लिये उद्यत हो उपप्लव्यनगरमें छावनी डालकर बैठे हुए हैं, तथापि भाई-बन्धुओंके सौहार्दवश धर्मकी ही अभिलाषा रखते हैं। बलवान् होकर भी दुर्बलकी भाँति सन्धि करना चाहते हैं॥ ४॥

राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति।
मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते॥ ५॥

यह राजा धृतराष्ट्र बूढ़े हो जानेपर भी शान्त नहीं हो रहे हैं। पुत्रोंके मदसे उन्मत्त हो अधर्मके मार्गपर ही चलते हैं॥ ५॥

जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च।
सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथो भेदः प्रवर्तते॥ ६॥

जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन तथा शकुनिकी खोटी बुद्धिसे कौरव-पाण्डवोंमें परस्पर फूट होकर ही रहेगी॥ ६॥

अधर्मेण हि धर्मिष्ठं हृतं वै राज्यमीदृशम्।
येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति॥ ७॥

कौरवोंने परम धर्मात्मा पाण्डवोंका जो ऐसा राज्य अधर्मपूर्वक हर लिया है, उनका यह अधर्म ही उनके विनाशका कारण होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। अब यह अधर्म अपना फल दिखाकर ही रहेगा। अधर्मका फल है दुःख और विनाश, वह उन्हें प्राप्त होगा ही॥ ७॥

ह्रियमाणे बलाद् धर्मे कुरुभिः को न संज्वरेत्।
असाम्ना केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः॥ ८॥

कौरवोंके द्वारा बलपूर्वक धर्मका अपहरण होनेपर किसको चिन्ता नहीं होगी? भगवान् श्रीकृष्ण सन्धिके प्रयत्नमें असफल होकर लौट गये हैं, अतः पाण्डव भी अब युद्धके लिये महान् उद्योग करेंगे॥ ८॥

ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः।
चिन्तयन् न लभे निद्रामहःसु च निशासु च॥ ९॥

इस प्रकार यह कौरवोंका अन्याय सभी वीरोंका विनाश करनेवाला होगा। इन सब बातोंको सोचते हुए मुझे न तो दिनमें नींद आती है और न रातमें॥ ९॥

श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम्।
सा निःश्वसन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह॥ १०॥

विदुरजीने उनका भला चाहनेकी भावनासे ही यह बात कही थी। इसे सुनकर कुन्ती दुःखसे आतुर हो उठी और लम्बी साँस खींचती हुई मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगी—॥ १०॥

धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महान् ज्ञातिवधः कृतः।
वर्त्स्यते सुहृदां चैव युद्धेऽस्मिन् वै पराभवः॥ ११॥

अहो! इस धनको धिक्कार है, जिसके लिये परस्पर बन्धु-बान्धवोंका यह महान् संहार किया जानेवाला है। इस युद्धमें अपने सगे-सम्बन्धियोंकी भी पराजय होगी ही॥ ११॥

पाण्डवाश्चेदिपञ्चाला यादवाश्च समागताः।
भारतैः सह योत्स्यन्ति किं नु दुःखमतः परम्॥ १२॥

सम्बन्धी चेदि, पाञ्चाल और यादव एकत्र होकर भरत-वंशियोंके साथ युद्ध करेंगे, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है?

पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथा युद्धे पराभवम्।
अधनस्य मृतं श्रेयो न हि ज्ञातिक्षयो जयः ॥ १३ ॥

युद्धमें निश्चय ही मुझे बड़ा भारी दोष दिखायी देता है, और युद्ध न होनेपर भी पाण्डवोंका पराभव स्पष्ट है। निर्धन होकर मृत्युको प्राप्त कर लेना अच्छा है, परंतु बन्धु-बान्धवोंका विनाश करके विजय पाना कदापि अच्छा नहीं है॥ १३ ॥

इति मे चिन्तयन्त्या वै हृदि दुःखं प्रवर्तते।
पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ॥ १४ ॥
कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थं वर्धयन्ति भयं मम।

यह सब सोचकर मेरे हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा है। शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म, योद्धाओंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण तथा कर्ण भी दुर्योधनके लिये ही युद्धभूमिमें उतरेंगे, अतः ये मेरे भयको बढ़ा रहे हैं॥ १४ ॥

नाचार्यः कामवाञ्छिष्यैर्द्रोणो युध्येत जातुचित्।
पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः ॥ १५ ॥

आचार्य द्रोण तो हमारे हितकी इच्छा रखनेवाले हैं, वे अपने शिष्योंके साथ कभी युद्ध नहीं कर सकते। इसी प्रकार पितामह भीष्म भी पाण्डवोंके प्रति हार्दिक स्नेह कैसे नहीं रखेंगे? ॥ १५ ॥

अयं त्वेको वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १६ ॥
मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान्।

केवल यह एक कर्ण है, जो मिथ्या दृष्टि रखनेके कारण मोहवश खोटी बुद्धिवाले दुर्योधनका अनुसरण करता आ रहा है। इसीलिये यह पापात्मा सदा पाण्डवोंसे द्वेष ही रखता है॥ १६ ॥

महत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांश्च विशेषतः ॥ १७ ॥
कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति साम्प्रतम्।
आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान् प्रति ॥ १८ ॥
प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम्।

इसने महान् अनर्थ करनेका हठ ठान लिया है और विशेष बलवान् भी है। कर्ण सदा पाण्डवोंका अनिष्ट करनेको उद्यत रहता है; यही बात इस समय मेरे हृदयको दग्ध किये देती है। आज मैं कर्णके पास जाकर उसके मनको पाण्डवोंके प्रति प्रसन्न करनेके लिये उसे यथार्थ बातका परिचय देती हुई उससे बातचीत करूँगी, ऐसी मेरी आशा है॥ १७-१८ ॥

तोषितो भगवान् यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ॥ १९ ॥
आह्वानं मन्त्रसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेश्मनि।
सोऽहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तिभोजपुरस्कृता ॥ २० ॥
चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता।
बलाबलं च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम् ॥ २१ ॥

जब मैं पिताके घर रहती थी, उन्हीं दिनों अपनी सेवाओंद्वारा मैंने भगवान् दुर्वासाको संतुष्ट किया और उन्होंने मुझे यह वर दिया कि मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन करनेपर मैं किसी भी देवताको अपने पास बुला सकती हूँ। मेरे पिता कुन्तिभोज मेरा बड़ा आदर करते थे। मैं उनके अन्तःपुरमें रहकर अनेक प्रकारसे मन्त्रोंके बलाबल और ब्राह्मणकी वाणीकी शक्तिके विषयमें अनेक प्रकारसे विचार करने लगी॥ १९—२१ ॥

स्त्रीभावाद् बालभावाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः।
धात्र्या विश्रब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा ॥ २२ ॥

स्त्रीभाव और बालस्वभावके कारण मैं बार-बार इस प्रश्नपर विचार करती थी। उन दिनों एक विश्वस्त धाय मेरी रक्षा करती थी और सखियाँ मुझे घेरे रहती थीं॥ २२ ॥

दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारित्ररक्षिणी।
कथं नु सुकृतं मे स्यान्नापराधवती कथम् ॥ २३ ॥
अभिध्याय तं मन्त्रं ब्राह्मणं च नमस्य च।
कौतूहलात् तु तं लब्ध्वा बालिश्यादाचरं तदा।
कन्या सती देवमर्कमासादयमहं ततः ॥ २४ ॥

मैं अपने ऊपर आनेवाले सब प्रकारके दोषोंका निवारण करती हुई पिताके चरित्रकी रक्षा करती थी और सोचा करती थी कि कैसे मेरा कल्याण हो और मैं अपराधिनी न बनूँ। इस प्रकार मैंने मन-ही-मन उन ब्राह्मणदेवताको नमस्कार किया और उस मन्त्रको पाकर कौतूहलवश अविवेकके कारण मैंने उसका प्रयोग आरम्भ कर दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि कन्यावस्थामें ही मुझे भगवान् सूर्यदेवका समागम प्राप्त हुआ॥ २३-२४ ॥

योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत् परिरक्षितः।
कस्मान्न कुर्याद् वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ॥ २५ ॥

जो मेरा कानीन गर्भ है, जिसे मैंने पुत्रकी भाँति अपने उदरमें पाला है, वह कर्ण अपने भाइयोंके हितके लिये कही हुई मेरी लाभदायक बात क्यों नहीं मानेगा?॥ २५ ॥

इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यनिश्चयमुत्तमम्।
कार्यार्थमभिनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ॥ २६ ॥

इस प्रकार उत्तम कर्तव्यका निश्चय करके अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एक निश्चयपर पहुँचकर कुन्ती भागीरथीके तटपर गयी॥ २६ ॥

आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसंगिनः।
गङ्गातीरे पृथाश्रौषीद् वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥ २७ ॥

वहाँ गङ्गाके किनारे पहुँचकर कुन्तीने अपने दयालु और सत्यपरायण पुत्र कर्णके मुखसे वेदपाठकी गम्भीर ध्वनि सुनी॥ २७ ॥

तां मुखस्योपविष्टांश्च स पपतिष्ठत शुचिः
अप्यवस्थान कार्यार्थं प्रतीक्ष्यन्ती मनस्विनी ॥ २८ ॥

तब कुन्ती दोनों भीगे उत्तम उत्तरीय धारण कर पूर्वाभिमुख हो जप कर रहा था और तपस्विनी कुन्ती उसके पीछे समाप्तिकी प्रतीक्षा करती हुई कार्यवश उसके पीछे और खड़ी रही ॥ २८ ॥

अतिष्ठत् सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवाससि
कौरव्यपत्नी वार्ष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥ २९ ॥

वृष्णिकुलनन्दिनी राजरानी कुन्ती वहीं सूर्यदेवकी धूपसे पीड़ित हो कुम्हलायी हुई कमलमालाके समान कर्णके उत्तरीय वस्त्रकी छायामें खड़ी हो गयी ॥ २९ ॥

आपृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्य यतव्रतः
दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ३० ॥

नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले कर्ण जब पीठकी ओर धूप आ गयी तब जप पूरा करके घूमा तब कुन्तीको सामने पाकर उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनके पास खड़ा हो गया ॥ ३० ॥

यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः
उत्स्मयन् प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ॥ ३१ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, स्वाभिमानी और महातेजस्वी सूर्यपुत्र कर्ण जिसका दूसरा नाम वृष भी था, कुन्तीको यथोचित रीतिसे प्रणाम करके मुसकराता हुआ बोला ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें कुन्ती और कर्णकी भेंटविषयक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

*01100

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

कुन्तीका कर्णको अपना प्रथम पुत्र बताकर उससे पाण्डवपक्षमें मिल जानेका अनुरोध

कर्ण उवाच

राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये
प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥

कर्ण बोला—देवि! मैं राधा तथा अधिरथका पुत्र कर्ण हूँ और आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। आपने किस लिये यहाँतक आनेका कष्ट किया है? बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ॥ १ ॥

कुन्त्युवाच

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता
नासि सूतकुले जातः कर्ण तद् विद्धि मे वचः ॥ २ ॥

कुन्तीने कहा—कर्ण! तुम राधाके नहीं, कुन्तीके पुत्र हो। तुम्हारे पिता भी अधिरथ नहीं हैं और तुम सूतकुलमें नहीं उत्पन्न हुए हो। मेरी इस बातको ठीक मानो ॥ २ ॥

कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः
कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३ ॥

तुम कन्यावस्थामें मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए प्रथम पुत्र हो। महाराज कुन्तिभोजके घरमें पहले मैंने तुम्हें गर्भमें धारण किया था। बेटा! तुम पार्थ हो ॥ ३ ॥

प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः
अजीजनत् त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४ ॥

कर्ण! ये जो सबको प्रकाश देनेवाले तथा उष्णता प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्यदेव हैं, इन्होंने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तुम जैसे वीर पुत्रको मेरे गर्भसे उत्पन्न किया है ॥ ४ ॥

कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः
जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥ ५ ॥

दुर्धर्ष पुत्र! मैंने पिताके घरमें तुम्हें जन्म दिया था। तुम जन्मकालसे ही कुण्डल और कवच धारण किये देव बालकके समान शोभासम्पन्न रहे हो ॥ ५ ॥

स त्वं भ्रातॄनसम्बुद्ध्वा मोहाद् यदुपसेवसे
धार्तराष्ट्रान् न तद् युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥ ६ ॥

बेटा! तुम जो अपने भाइयोंको न जानकर मोहवश धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेवा कर रहे हो, यह तुम्हारे लिये कदापि योग्य नहीं है ॥ ६ ॥

एतद् धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये
यत् तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाप्येकदर्शिनी ॥ ७ ॥

पुत्र! धर्मशास्त्रमें मनुष्योंके लिये यही धर्मका उत्तम फल बताया गया है कि उनके पिता आदि गुरुजन तथा एकमात्र पुत्रपर ही दृष्टि रखनेवाली माता उनसे संतुष्ट रहें ॥ ७ ॥

अर्जुनेनार्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः
आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुङ्क्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ ८ ॥

अर्जुनने पूर्वकालमें जिसका उपार्जन किया था और दुष्टोंने लोभवश जिसे हर लिया है, युधिष्ठिरकी उस लक्ष्मीको तुम धृतराष्ट्रपुत्रोंसे छीनकर भाइयोंसहित उसका उपभोग करो ॥ ८ ॥

अद्य पश्यन्तु कुरवः कर्णार्जुनसमागमम्
सौभ्रात्रेण तदालक्ष्य संनमन्तामसाधवः ॥ ९ ॥

आज उत्तम भ्रातृभावसे सुशोभित कर्ण और अर्जुनका मिलन कौरवलोग देखें और उसे देखकर दुष्टोंके मस्तक झुक जायँ ॥ ९ ॥

सर्वाभिप्रहस्युक्तो राज सत्वाहमजिन्य
अब्रवीत महातेजा भीष्म परपुरंजय ॥ १० ॥

शत्रु-नगरीको जीतनेवाले महातेजस्वी भीष्म सन्धि-विग्रहके कार्यमें प्रवृत्त हो स्वागतके रीता और कर आदि लेनेका काम सम्भालते थे ।

सिंहासनस्थो नृपतिर्नृपमध्ये महाबल
अन्वास्यमान सतत विदुरेण महामते ॥ ११ ॥

महाबली राजा धृतराष्ट्र राजाओंके बीचमें सिंहासनपर बैठे हुए थे और महात्मा विदुर सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहते थे ।

कथं तस्य कुले जाता कुलभेदं व्यवस्यसि
सम्भूय साहसं न्याय्यं मुक्त्वा मोहात् ज्ञात्वापि ॥ १२ ॥

उन्होंने धर्मसे राज्य शासन करते हुए कुलमें जन्म लेनेवाले हो । आजकल में दुर्योधन मिलकर मनोनिमित्त मार्गीका उपयोग करते

सर्वान्यस्य न कार्येष्वाज्ञाविहिता कदाचन
भीष्मोऽथ वचनमिच्छामि न वध ज्ञातव्यम ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र ! मैं कौरवोंका या राजा मेरी किसी भी प्रकार कोई बात हो सकती हूँ तो आपका कि मुझसे बात करता हूँ तुम्हारा पिता नहीं ।

मम त्वकाऽधिका कुन्ते न गुणाय ज्ञानाधिक
यदा भीष्मप्रसादमलो श्रियो यद् अधिकस्त्वाह तत् कुरु ॥ १४ ॥

धनंजय ! मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम इस कामको प्राप्त करने की इच्छा नहीं करना । यह भीष्म हैं ही श्रेष्ठ हैं जो धर्मका जानते हैं उनका वचन सुना ।

इन्द्रियाणि पाण्डुपुत्राणां ज्ञानधर्माववर्तीत
समारुह्य लघु तात मम तथा मम सखा ॥ १५ ॥

मधुसूदन ! तुम भी जैसे आया था वैसे ही तात मेरे पुत्र आचार्य द्रोण हैं भी पाण्डवोंके मित्र सदा समान हैं

अश्वत्थामा यथा मम तथा धृतराष्ट्र मम
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जय ॥ १६ ॥

मेरे लिये जैसा अश्वत्थामा है वैसा ही श्वेत घोड़ोंवाला अर्जुन भी है । अधिक कहनेसे क्या लाभ, जहाँ धर्म है उसी पक्षकी विजय निश्चित है ।

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते महाराज द्रोणमामिततेजसा
व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गर
पितुर्वक्त्रमभिवीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं महाराज ! अमित तेजस्वी द्रोणाचार्यके इस प्रकार कहनेपर सत्यप्रतिज्ञ धर्मज्ञ विदुरने ओर पिता भीष्मकी ओर घूमकर उनके मुखकी ओर देखकर इस प्रकार कहा ॥ १७ ॥

विदुर उवाच

देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषत
प्रनष्टः कौरवो वंशस्त्वयायं पुनरुद्धृत ॥ १८ ॥

विदुर बोले—देवव्रत ! मेरी यह बात सुनिये यह कौरववंश नष्ट हो चला था विपत्ति आपने पुनः उद्धार किया था ॥ १८ ॥

तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्षसे
कोऽयं दुर्योधनो नाम कुलेऽस्मिन् कुलपांसन ॥ १९ ॥
यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्तसे
अनार्यस्याकृतज्ञस्य लोभेन हृतचेतस ॥ २० ॥

मैं भी कुछ कहने आते हूँ किंतु आप मेरी बात सुनकर भी उपेक्षा कर रहे हैं । मैं इतना जानता हूँ कि दुर्योधन कुलका कौन है जिसकी लोभसे बुद्धि नष्ट हो गयी है और आप उसकी बुद्धिका अनुसरण कर रहे हैं । अनार्य, कृतघ्न और लोभसे जिसकी बुद्धि दूषित हो गयी है तथा यह दुर्योधन कलंक बन गया है ॥ २० ॥

अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्मार्थदर्शिन
एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै ॥ २१ ॥

जो राजाकी आज्ञाका भी उल्लंघन करता ही है, धर्म और अर्थपर दृष्टि रखनेवाले अपने पिताकी भी बात नहीं मानता है । निश्चय ही एकमात्र दुर्योधनके कारण ये समस्त कौरव नष्ट हो रहे हैं ॥ २१ ॥

यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु
मां चैव धृतराष्ट्रं च पूर्वमेव महामते ॥ २२ ॥
चित्रकार इवालेख्यं कृत्वा स्वर्यात्मनात्मन

महाराज ! ऐसा कोई उपाय कीजिये कि ये कौरव नष्ट न हों । जैसे चित्रकार किसी चित्रको बनाकर एक स्थान पर रख देता है उसी प्रकार आपने मुझको और धृतराष्ट्रको पहलेसे ही निकम्मा बनाकर रख दिया है ॥ २२ ॥

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा ॥ २३ ॥
नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम्

महाबाहो ! जैसे प्रजापति प्रजाकी सृष्टि करके पुनः उनका संहार करते हैं उसी प्रकार आप भी अपने कुलका विनाश देखकर उसकी उपेक्षा न कीजिये ॥ २३ ॥

अथ तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ २४ ॥
वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव ह

यदि इन दिनों विनाशकाल उपस्थित होनेके कारण आपकी बुद्धि नष्ट हो गयी हो तो मेरे और धृतराष्ट्रके साथ वनमें चलिये ॥ २४ ॥

बद्ध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ २५ ॥

प्रशाधि राज्यमथाद्य पाण्डवैरभिरक्षितम्

आपकी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहती है। अब परम दुर्बुद्धि पुत्र दुर्योधनको छोड़कर पाण्डवोंद्वारा सुरक्षित इस राज्यका शासन कीजिये

प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान् ॥ २६ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च राज्ञाममिततेजसाम्।
विलपन्नेवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः।
प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २७ ॥

नृपश्रेष्ठ! प्रसन्न होइये। पाण्डवों, कौरवों तथा अमित तेजस्वी राजाओंका महान् विनाश दृष्टिगोचर हो रहा है। ऐसा कहकर दीनचित्त विदुरजी चुप हो गये और विशेष चिन्तामें मग्न होकर उस समय बार-बार लंबी साँसें खींचने लगे ॥ २६-२७ ॥

ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री
धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता।
दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं
राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥ २८ ॥

तदनन्तर राजा सुबलकी पुत्री गान्धारी अपने कुलके विनाशसे भयभीत हो क्रूर स्वभाववाले पापबुद्धि पुत्र दुर्योधनसे समस्त राजाओंके समक्ष क्रोधपूर्वक धर्म और अर्थसे युक्त वचन बोली ॥ २८ ॥

ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा
ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये।
शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवापराधं
पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य ॥ २९ ॥

जो ये राजा, ब्रह्मर्षि तथा अन्य सभासद् इस राजसभामें आकर बैठे हैं, वे सब लोग मन्त्री और सेवकोंसहित तुझ पापी दुर्योधनके अपराधोंको सुनें। मैं वर्णन करती हूँ ॥ २९ ॥

राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं
क्रमागतो नः कुलधर्म एषः।
त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन्
राज्यं कुरूणामनयाद् विहंसि ॥ ३० ॥

हमारे वंशकी परम्परासे चला आनेवाला कुलधर्म यही है कि यह कुरुराज्य पूर्व-पूर्व अधिकारीके क्रमसे उपभोगमें आवे (अर्थात् बापके पीछे बेटा अधिकारी होता है, फिर दूसरे पीढ़ीमें भी पुत्र उसका अधिकारी नहीं हो सकता)। तू अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले पापबुद्धि दुर्योधन! तू अपनी अन्यायसे इस कौरवराज्यका विनाश कर रहा है ॥ ३० ॥

राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी
तस्यानुजो विदुरो दीर्घदर्शी।
एतावतिक्रम्य कथं नृपत्वं
दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात् ॥ ३१ ॥

इस राज्यपर अधिकारके रूपमें परम बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और उनके छोटे भाई दूरदर्शी विदुर स्थापित किये गये थे। दुर्योधन! इन दोनोंका उल्लङ्घन करके तू आज मोहवश कैसे राजा बनना चाहता है? ॥ ३१ ॥

राजा च क्षत्ता च महानुभावौ
भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम्।
अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा
न कामयेद् यो नृवरो नदीजः ॥ ३२ ॥

राजा धृतराष्ट्र और विदुर—ये दोनों महानुभाव भी भीष्मजीके रहते उनके पराधीन हैं। भीष्मजीके रहते इन्हें राज्य लेनेका कोई अधिकार नहीं है। परंतु धर्मज्ञ होनेके कारण ये नरश्रेष्ठ महात्मा गङ्गानन्दन राज्य लेनेकी इच्छा ही नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥

राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं
तस्याद्य पुत्राः प्रभवन्ति नान्ये।
राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां
पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि ॥ ३३ ॥

वास्तवमें यह दुर्धर्ष राज्य महाराज पाण्डुका है। उन्हींके पुत्र इसके अधिकारी हो सकते हैं, दूसरे नहीं। अतः यह सारा राज्य पाण्डवोंका है; क्योंकि बाप-दादोंका राज्य पुत्र-पौत्रोंके पास ही जाता है ॥ ३३ ॥

यद् वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा
देवव्रतः सत्यसंधो मनीषी।
सर्वं तदस्माभिरहत्य कार्यं
राज्यं स्वधर्मान् परिपालयद्भिः ॥ ३४ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष सत्यप्रतिज्ञ एवं बुद्धिमान् महात्मा देवव्रत जो कुछ कहते हैं, उसे राज्य और स्वधर्मका पालन करनेवाले हम सब लोग बिना काट-छाँट किये पूर्णरूपसे मान लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

अनुज्ञया चाथ महाव्रतस्य
ब्रूयान्नृपोऽयं विदुरस्तथैव।
कार्यं भवेत् तत् सुहृद्भिर्नियोज्य
धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम् ॥ ३५ ॥

अथवा इन महान् व्रतधारी भीष्मजीकी आज्ञासे यह राजा धृतराष्ट्र तथा विदुर भी इस विषयमें कुछ कह सकते हैं और हमें सुहृदोंको भी धर्मको सामने रखते हुए उनकी सुदीर्घ कालतक पालन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां
युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः।
प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥ ३६ ॥

कौरवोंके इस न्याययुक्त आधा राज्यका पाण्डुपुत्र तथा धृतराष्ट्रनन्दन भयके कारण लोगोंको शिक्षा देते युधिष्ठिर ही शासन करें और ये राजा धृतराष्ट्र रहें ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४८ ॥

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनके प्रति धृतराष्ट्रके युक्तियुक्त वचन—पाण्डवोंको आधा राज्य देनेके लिये आदेश

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! गान्धारीके ऐसा कहनेपर राजा धृतराष्ट्रने समस्त राजाओंके बीच दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
तथा तत् कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥ २ ॥

बेटा दुर्योधन! मेरी यह बात सुन। तेरा कल्याण हो। यदि तेरे मनमें पिताके लिये कुछ भी गौरव है तो तुझसे जो कुछ कहूँ उसका पालन कर ॥ २ ॥

सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः।
सोमाद् बभूव षष्ठोऽयं ययातिर्नहुषात्मजः ॥ ३ ॥

सबसे पहले प्रजापति सोम हुए, जो कौरववंशकी वृद्धिके आदि कारण हैं। उनसे छठी पीढ़ीमें नहुषपुत्र ययातिका जन्म हुआ ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च राजर्षिसत्तमाः।
तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत् प्रभुः ॥ ४ ॥
पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः।
शर्मिष्ठायां सम्प्रसूतो दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ ५ ॥

ययातिके पाँच पुत्र हुए, जो सब-के-सब श्रेष्ठ राजर्षि थे। उनमें महातेजस्वी एवं शक्तिशाली ज्येष्ठ पुत्र यदु थे और सबसे छोटे पुत्रका नाम पूरु हुआ। जिन्होंने हमारे वंशकी वृद्धि की है। वे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४-५ ॥

यदुश्च भरतश्रेष्ठ देवयान्याः सुतोऽभवत्।
दौहित्रस्तात शुक्रस्य काव्यस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ! यदु देवयानीके पुत्र थे। तात! वे अमित तेजस्वी शुक्राचार्यके दौहित्र लगते थे ॥ ६ ॥

यादवानां कुलकरो बलवान् वीर्यसम्मतः।
अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥ ७ ॥

वे यादवकुलके प्रवर्तक, बलवान् एवं पराक्रमके लिये सम्मानित थे; परंतु उनकी बुद्धि बड़ी मन्द थी और उन्होंने घमण्डमें आकर समस्त क्षत्रियोंका अपमान किया था ॥ ७ ॥

न चातिष्ठत् पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः।
अवमेने च पितरं भ्रातॄंश्चाप्यपराजितः ॥ ८ ॥

बलके घमण्डसे वे इतने मोहित हो रहे थे कि पिताके आदेशपर चलते ही नहीं थे। किसीसे पराजित न होनेवाले यदु अपने भाइयों और पिताका भी अपमान करते थे ॥ ८ ॥

पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाभवद् बली।
वशे कृत्वा स नृपतीनवसन्नागसाह्वये ॥ ९ ॥

चारों समुद्र जिसके अन्तमें हैं, उस भूमण्डलमें यदु ही सबसे अधिक बलवान् थे। वे समस्त राजाओंको वशमें करके हस्तिनापुरमें निवास करते थे ॥ ९ ॥

तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः।
शशाप पुत्रं गान्धारे राज्याच्चापि व्यरोपयत् ॥ १० ॥

गान्धारीपुत्र! यदुके पिता नहुषनन्दन ययातिने अत्यन्त कुपित होकर यदुको शाप दे दिया और उन्हें राज्यसे भी उतार दिया ॥ १० ॥

ये चैनमन्ववर्तन्त भ्रातरो बलदर्पिताः।
शशाप तानभिक्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥ ११ ॥

अपने बलका घमण्ड रखनेवाले जिन जिन भाइयोंने यदुका अनुसरण किया, ययातिने कुपित होकर अपने उन पुत्रोंको भी शाप दे दिया ॥ ११ ॥

यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्तिनम्।
राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥ १२ ॥

तदनन्तर अपने अधीन रहनेवाले आज्ञापालक छोटे पुत्र पूरुको नृपश्रेष्ठ ययातिने राज्यपर बिठाया ॥ १२ ॥

एवं ज्येष्ठोऽप्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते।
यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥ १३ ॥

इस प्रकार यह सिद्ध है कि ज्येष्ठ पुत्र भी यदि अहंकारी हो तो उसे राज्यकी प्राप्ति नहीं होती और छोटे पुत्र भी बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करनेसे राज्य पानेके अधिकारी हो जाते हैं ॥ १३ ॥

तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः।
प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार मेरे पिताके पितामह राजा प्रतीप एक धर्मज्ञ राजा एवं तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ १४ ॥

तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः।
त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा महायशाः ॥ ५ ॥

धर्मपूर्वक राज्यका शासन करते हुए नृपश्रेष्ठ प्रतीपके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो देवताओंके समान तेजस्वी और यशस्वी थे।

देवापिरभवज्ज्येष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम्।
तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान् मे पितामहः ॥ ६ ॥

तात! उन तीनोंमें सबसे बड़े थे देवापि, उनके बाद बाह्लीक हुए और तीसरे पुत्र थे धैर्यवान् शान्तनु, जो मेरे पितामह थे।

देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः।
धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः ॥ ७ ॥
पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः।
सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयंगमः ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ देवापि महान् तेजस्वी होते हुए भी चर्मरोगसे पीड़ित थे। वे धार्मिक, सत्यवादी, पिताकी सेवामें तत्पर, साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित तथा नगर और जनपद निवासियोंके लिये भी आदरणीय थे। देवापि बालकोंसे लेकर बूढ़ोंतक सभीके हृदयमें अपना स्थान बना लिया था।

वदान्यः सत्यसंधश्च सर्वभूतहिते रतः।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥ ९ ॥

वे उदार, सत्यप्रतिज्ञ और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले थे। पिता तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार चलते थे।

बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शान्तनोश्च महात्मनः।
सौभ्रात्रं च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् ॥ १० ॥

वे बाह्लीक तथा महात्मा शान्तनुके प्रिय बन्धु थे। परस्पर मिलकर रहनेवाले उन तीनों महामना बन्धुओंमें परस्पर बड़े उत्तम भ्रातृभाव का सम्बन्ध था।

अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः।
सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः ॥ ११ ॥

तदनन्तर कुछ कालके पश्चात् बूढ़े नृपश्रेष्ठ प्रतीपने शास्त्रीय विधिके अनुसार राज्याभिषेकके लिये सामग्रियोंका संग्रह कराया।

कारयामास सर्वाणि मङ्गलार्थानि चै विभुः।
तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह ॥ १२ ॥
सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम्।

उन्होंने देवापिके अभिषेकके लिये सभी आवश्यक मङ्गलकृत्य सम्पन्न कराये, परंतु उस समय सब ब्राह्मणों तथा बड़े-बूढ़ोंने नगर और जनपदके लोगोंके साथ आकर देवापिके राज्याभिषेकको रोक दिया।

स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम् ॥ १३ ॥
अश्रुकण्ठोऽभवद् राजा पर्यशोचत चात्मजम्।

वितु राज्याभिषेक रोके जानेकी बात सुनकर वह प्रतीप राजा ... उनका गला भर आया। वे अपने पुत्रके लिये शोक करने लगे।

एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसंधश्च सोऽभवत् ॥ १४ ॥
प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः।

इस प्रकार यद्यपि देवापि उदार, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाओंके प्रिय थे तथापि चर्मरोगसे दूषित होनेके कारण दूषित मान लिये गये।

हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः।
इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन् द्विजर्षभाः ॥ १५ ॥

ब्राह्मण किसी अङ्गसे हीन राजाका देवता अभिनन्दन नहीं करते हैं, इसीलिये उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने नृपश्रेष्ठ प्रतीपको देवापिका अभिषेक करनेसे रोक दिया था।

ततः प्रव्यथितात्मासौ पुत्रशोकसमन्वितः।
ममार तं मृतं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥ १६ ॥

इससे राजाके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे पुत्रके लिये शोकमग्न हो गये। उनको मृत्यु हो गयी। यह देखकर देवापि वनमें चले गये।

बाह्लीको मातुलकुले त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः।
पितृभ्रातॄन् परित्यज्य प्राप्तवान् पुरमृद्धिमत् ॥ १७ ॥

बाह्लीक परम समृद्धिशाली राज्य तथा पिता और भाइयोंको छोड़कर मामाके घर चले गये।

बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
पितर्युपरते राजन् राजा राज्यमकारयत् ॥ १८ ॥

राजन्! तदनन्तर पिताकी मृत्यु होनेपर भाई बाह्लीककी आज्ञा लेकर लोकविख्यात राजा शान्तनुने राज्यका शासन किया।

तथैवाहं मतिमता परिचिन्त्येह पाण्डुना।
ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनाङ्ग इति भारत ॥ १९ ॥

भारत! इसी प्रकार मैं भी अङ्गहीन था, इसलिये ज्येष्ठ होनेपर भी बुद्धिमान् पाण्डु एवं ब्राह्मणोंके द्वारा खूब सोच-विचारकर राज्यसे वञ्चित कर दिया गया।

पाण्डुस्तु राज्यं सम्प्राप्तः कनीयानपि सन् नृप।
विनाशे तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिंदम ॥ २० ॥

पाण्डुने छोटे होनेपर भी राज्य प्राप्त किया और वे एक अच्छे राजा बनकर रहे हैं। शत्रुदमन दुर्योधन! पाण्डुकी मृत्युके बाद उनके पुत्रोंका यह राज्य है।

अप्यराजसुतो राज्यं कथं त्वं हर्तुमिच्छसि।
मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि।
अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥

मैं ही जब राज्यका अधिकारी था ही नहीं, तब तू कैसे उसे ले सकता है? तू राजाका पुत्र नहीं है, अतः इस राज्यका स्वामी नहीं हो सकता। तू पराये धनका अपहरण करना चाहता है?

युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा
न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य।
स कौरव्यस्यास्य कुलस्य भर्ता
प्रशासिता चैव महानुभावः॥ २॥

महात्मा युधिष्ठिर राजाके पुत्र हैं। न्यायतः प्राप्त हुए इस राज्यपर उन्हींका अधिकार है। वे ही इस कौरव कुलका भरण-पोषण करनेवाले स्वामी तथा इस राज्यके शासक हैं। उनका प्रभाव महान् है॥

स सत्यसंधः स तथाप्रमत्तः
शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः।
प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी
जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता॥ ३॥

सत्यप्रतिज्ञ और प्रमादरहित हैं, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चलते और भाई-बन्धुओंपर सद्भाव रखते हैं। युधिष्ठिरपर प्रजा अधिक स्नेह रखती है। वे सुहृदोंपर कृपा करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा साधुजनोंका भरण-पोषण करनेवाले हैं॥

क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च
सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः।
भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च
युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः॥ ४॥

यह भी आत्मज्ञान तथा धर्मके रक्षक युधिष्ठिरके अनुसार प्रमाण हैं। उनमें क्षमा आदि सभी राजोचित गुण हैं॥

अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो
लुब्धस्तथा बन्धुषु पापबुद्धिः।
क्रमागतं राज्यमिदं परेषां
हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीत॥ ५॥

तू राजपुत्र नहीं है। तेरा बर्ताव भी पुरुषोंके समान है। तू लोभी है और बन्धु-बान्धवोंके प्रति सदा पापपूर्ण विचार रखता है। दुर्विनीत! यह दूसरोंका राज्य तू क्रमशः कैसे हड़प सकेगा?॥

प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः
सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च।
ततोऽवशेषं तव जीवितस्य
सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र॥ ६॥

नरेन्द्र! तू मोह छोड़कर वाहनों और सामग्रियोंसहित आधा राज्य पाण्डवोंको दे दे। तभी भाइयोंसहित तेरा जीवन शेष रह सकता है॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनं प्रति भीष्मादिवचनकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें दुर्योधनके प्रति भीष्म आदिके वचनविषयक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४९॥

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका कौरवोंके प्रति साम, दान और भेदनीतिके प्रयोगकी असफलता बताकर दण्डके प्रयोगपर जोर देना

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न च मन्दोऽन्वबुध्यत॥ १॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी तथा धृतराष्ट्रके इस प्रकार कहनेपर भी उस मन्दबुद्धि दुर्योधनको तनिक भी चेत नहीं हुआ॥

अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोधसंरक्तलोचनः।
अन्वद्रवन्त तं पश्चाद् राजानस्त्यक्तजीविताः॥ २॥

वह मूर्ख क्रोधसे आँखें लाल किये उन सबकी अवहेलना करके सभासे उठकर चला गया। उसके पीछे अन्य राजा भी अपने जीवनका मोह छोड़कर सभासे उठकर चल दिये॥

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान् पार्थिवान् नष्टचेतसः।
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः॥ ३॥

बार-बार आज्ञा दे दी कि तुम लोग कुरुक्षेत्रको चलो, आज पुष्य नक्षत्र है॥

ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः।
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः॥ ४॥

तदनन्तर वे सभी भूपाल कालसे प्रेरित हो भीष्मको सेनापति बनाकर बड़े हर्षके साथ सैनिकोंसहित चल दिये हैं॥

अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणां समागताः।
तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत॥ ५॥

कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ आ गयी हैं। उन सबके प्रमुख हैं भीष्मजी, जो अपने तालध्वजके साथ सुशोभित हो रहे हैं॥

यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद् विधत्स्व विशाम्पते।
उक्तं भीष्मेण यद् वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च॥ ६॥

दुर्योधनने उन क्षत्रिय राजाओंको

वासुदेव धृतराष्ट्रके समक्ष मम भारत
पाण्डव कथित राजेन्द्र यद् वृत्तं कुरुसंसदि
प्रज्ञानाथ त्वं ... वा
को भवान् ... केशवमाये
तथा दुष्टात्मा ... सात्मने
कुरु
सात्यकिर्महामुक्त राजेन्द्र सौम्या सिंधुराज
कर्मोदारकाणां महात्मा प्रज्ञाता ... विदुरेण
... ... उष्ण बाहुपुत्र
को ... ... नामवी
विद ... ... प्रजाकल
उत्पत्ति हात
पुत्रमेवश्च ... सुदुष्ट ... ... पूज्य
धर्मानुकूलेन ... वैश्यानु ... हि
... ... अवश
क्षमा ... उवाच ... श्रेष्ठ
दुष्टाविध ... ... कथा
पक्ष्य तात्त्विकं वाक्य ... भिपूज्य सुयोध
तत्र ... समं ... यथापि
मह ... देवा
नहीं ... आत्मीय
बालोका ... भिद्या
अहानुवानि ... राषि वाक्यानि ... भार
धर्मानुवादि ... हि ... हि ... हि
... नहीं देन ... कुरु
... दुर्योधन ... धन
निभर्त्सयित्वा ... ... वाम
राधेय भाषयित्वा ... सौबल
... ... पुन
मेदयित्वा ... ... कृत्
पुन ... भिसयुक्त ... ...
कर्मेण ... ... कार्य ... ...
समस्त राजाओं ... ... दुर्योधन ... ...
समान ... ...
की बार बार ... ...

... ... मेद
... ... नहीं ... ... उतारी
... ... हि
... ... बहुत
... सर्व हिता ...
... ... बन्धु
... ... विदुरस्य हित
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... और ...
... ...
... ...
... ...
... पश्यामि ...
... ...
... ... कार
... ...
... ...
... ... कुरु
... ...
... ... कर
कुरु
... ...
... ...
... ...
... ... नहीं
... ... और ...
... ...

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि ... ...
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत भगवद्यानपर्वमें ... ... पूरा हुआ

सैन्यनिर्याणपर्व

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

पाण्डवपक्षके सेनापतिका चुनाव तथा पाण्डव-सेनाका कुरुक्षेत्रमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच ... ...

जनार्दनवचनं श्रुत्वा धर्मात्मा युधिष्ठिरः ... वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ... भगवान्

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर धर्मात्मा श्री राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके सामने ही भगवान् के सामने ही इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं सभायां कुरुसंसदि।
केशवस्यापि यद् वाक्यं तत् सर्वमवधारितम् ॥ २ ॥

कौरवसभामें जो कुछ हुआ है, वह सब वृत्तान्त तुम लोगोंने सुन लिया। फिर भगवान् श्रीकृष्णने भी जो बात कही है, उसे भी अच्छी तरह समझ लिया होगा ॥ २ ॥

तस्मात् सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः।
अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः समेता विजयाय च ॥ ३ ॥

अतः नरश्रेष्ठ वीरो! अब तुमलोग मेरी सेनाका विभाग करो। ये सात अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हो गयी हैं, जो अवश्य ही हमारी विजय करनेवाली होंगी ॥ ३ ॥

तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान् निबोधत।
द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ४ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान्।
एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥ ५ ॥

इन सातों अक्षौहिणियोंके जो सात विख्यात सेनापति हैं, उनके नाम बताता हूँ, सुनो। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और बलवान् भीमसेन—ये सब वीर हमारे लिये अपने शरीरका भी त्याग कर देनेको उद्यत हैं, अतः ये ही पाण्डवसेनाके संचालक होने योग्य हैं ॥ ४-५ ॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।
ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ६ ॥

ये सब-के-सब वेदवेत्ता, शूरवीर, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, लज्जाशील, नीतिज्ञ और युद्धकुशल हैं ॥ ६ ॥

इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः।
सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ॥ ७ ॥
यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिःपावकोपमम्।
तं तावत् सहदेवाद्य प्रब्रूहि कुरुनन्दन।
स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ॥ ८ ॥

इन सबने धनुर्वेदमें निपुणता प्राप्त की है तथा ये सब प्रकारके अस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेमें समर्थ हैं। अब यह बताना चाहिये कि इन सातोंका भी नेता कौन हो, जो सभी सेना-विभागोंको अच्छी तरह जानता हो तथा युद्धमें बाणरूपी ज्वालाओंसे प्रज्वलित अग्निके समान भीष्मजीके आक्रमणको सह सकता हो। पुरुषसिंह कुरुनन्दन सहदेव! पहले तुम अपना विचार प्रकट करो। हमारा प्रधान सेनापति होने योग्य कौन है? ॥ ७-८ ॥

सहदेव उवाच

संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः।
यं समाश्रित्य धर्मज्ञ स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥ ९ ॥
मत्स्यो विराटो बलवान् कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः।
प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ॥ १० ॥

सहदेव बोले—जो हम सबके सम्बन्धी हैं, दुःखमें हमारे साथ एक होकर रहनेवाले हैं, जो पराक्रमी भूपाल हैं, जिन धर्मज्ञ वीरका आश्रय लेकर हम अपना राज्यभाग प्राप्त कर सकते हैं तथा जो बलवान्, अस्त्रविद्यामें निपुण और युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले हैं, वे मत्स्यनरेश विराट संग्रामभूमिमें भीष्म तथा अन्य महारथियोंके सामना अच्छी तरह कर सकेंगे ॥ ९-१० ॥

वैशम्पायन उवाच

तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारदः।
नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥ ११ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सहदेवके इस प्रकार कहनेपर वचनकुशल नकुलने उसके बाद यह बात कही ॥ ११ ॥

वयसा शास्त्रतो धैर्यात् कुलेनाभिजनेन च।
ह्रीमान् बलान्वितः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥
वेद चास्त्रं भरद्वाजाद् दुर्धर्षः सत्यसंगरः।
यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मं चैव महाबलम् ॥ १३ ॥
श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः ॥ १४ ॥
यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः।
रोषाद् द्रोणविनाशाय वीरः समितिशोभनः ॥ १५ ॥
पितेवास्मान् समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः।
श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु ॥ १६ ॥
स द्रोणभीष्मावायान्तौ सहेदिति मतिर्मम।
स हि दिव्यास्त्रविद् राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः ॥ १७ ॥

जो अवस्था, शास्त्रज्ञान, धैर्य, कुल और जन्मभूमि—सभी दृष्टियोंसे बड़े हैं, जिनमें लज्जा, बल और श्री तीनों विद्यमान हैं, जो समस्त शास्त्रोंके ज्ञानमें प्रवीण हैं, जिन्होंने महर्षि भरद्वाजसे अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की है, जो सत्यप्रतिज्ञ एवं दुर्धर्ष योद्धा हैं, महाबली भीष्म और द्रोणाचार्यसे सदा स्पर्धा रखते हैं, जो समस्त राजाओंके समूहकी प्रशंसाके पात्र हैं और युद्धके मुहानेपर खड़े हो सबका सेनाओंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, बहुत-से पुत्र-पौत्रोंद्वारा घिरे रहनेके कारण जिनकी सैकड़ों शाखाओंसे सम्पन्न वृक्षकी भाँति शोभा होती है, जिन महाराजने रोषपूर्वक द्रोणाचार्यके विनाशके लिये पत्नीसहित घोर तपस्या की है, वे युद्धभूमिमें सुशोभित होनेवाले शूरवीर हैं और हमलोगोंपर सदा ही पिताके समान स्नेह रखते हैं, वे हमारे श्वशुर भूपालशिरोमणि द्रुपद हमारी सेनाके प्रमुख भागका संचालन करें। मेरे विचारसे राजा द्रुपद ही युद्धके लिये सम्मुख आये हुए द्रोणाचार्य और भीष्म पितामहका सामना कर सकते हैं; क्योंकि वे दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और द्रोणाचार्यके सखा हैं ॥ १२-१७ ॥

माद्रीसुतवाक्यमाज्ञाय तु सम्यो कृतलक्षण
वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद् वचः ॥ १८

माद्रीकुमारोंके इस प्रकार अपना विचार प्रकट करनेपर कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले इन्द्रके समान पराक्रमी इन्द्रपुत्र सव्यसाची अर्जुनने इस प्रकार कहा

योऽयं तव प्रसादेन ज्ञातुमसन्तोषयन्न च
दिव्य पुरुष ... महाभुज ॥ १९ ॥
धनुष्मान् कवची खड्गी रथमारुह्य दंशित
दिव्याद्धयवरैर्युक्तात् समिद्धाद् हव्यवाहनात् समुत्थित ॥ २०
गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान्
सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रम ॥ २१
सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्षा महाबल
सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युति ॥ २२ ॥
सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृश
सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपाद सुप्रतिष्ठित
अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारण
जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रिय ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद् भीष्मस्य सायकान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥

जो आपकी कृपासे यज्ञमें समान कान्तिमान् महाबाहु वीर अपने पिताकी तपस्याके प्रभावसे तथा महर्षियोंकी कृपासे प्रकट होकर उत्पन्न हुआ ... पुरुष है, जो ... धनुष और खड्ग धारण किये प्रकट हुआ और ... हो दिव्य एवं उत्तम अश्वोंसे जुते हुए रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये सुसज्जित ... जो ... महामेघके समान गर्जना करता है, जिसके शरीरकी गठन सिंहके समान है ... सिंहके समान ... ओर महान् ... है, जिसकी भौंहें ... सुन्दर हैं, जो ... जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर ... बड़े ... और ... है, जिसका किसी भी अस्त्र शस्त्रसे भेदन नहीं ... मदकी धारा बहानेवाले गजराजके ... होता है, ... द्रोणाचार्यका विनाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ है तथा जो ... सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय है, उस धृष्टद्युम्नको ही मैं प्रधान सेनापति बनानेके योग्य मानता हूँ। ... समान ... हैं उनका स्पर्श वज्र और अशनिके समान दुःसह है और धृष्टद्युम्न ही उन बाणोंका आघात सह सकता है ॥ १९—२५ ॥

यमदूतसमान् वेगे निपाते पावकोपमान्
रामेणाजौ विषहितान् वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥ २६ ॥

पुरुष न तं पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।
धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥ २७ ॥

जिन ... यमदूतोंके समान वेगवाले अग्निके समान तेजस्वी ... युद्धमें ... परशुरामजीने सहन किया था, वज्रके समान ... दारुण करनेवाले उन बाणोंको ... मैं धृष्टद्युम्नके सिवा दूसरे किसी पुरुषको नहीं देखता, जो महाव्रती भीष्मका वेग सह सके। यही मेरा विचार है ॥ २६-२७ ॥

क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम
अभेद्यकवचः श्रीमान् मातङ्ग इव यूथपः ॥ २८ ॥

जो शीघ्रतापूर्वक ... विचित्र ... करनेमें कुशल ... अभेद्य कवचसे सम्पन्न एवं ... गजराजके समान ... है, ऐसे ... मेरे मतमें सेनापति होनेके योग्य है ॥ २८ ॥

भीमसेन उवाच

वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मज
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥ २९ ॥

भीमसेनने कहा— ... उन्होंने ... अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया

भीमसेन उवाच

वधाय यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मज
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥ २९ ॥
यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥ ३० ॥
न तं युद्धे प्रपश्यामि यो विहन्यात् शिखण्डिनम्।
शस्त्रेण समरे राजन् सन्नद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥ ३१ ॥
द्वैरथे समरे नान्यो भीष्मं हन्यान्महाव्रतम्।
शिखण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः ॥ ३२ ॥

भीमसेनने कहा— राजन्! ... शिखण्डी पितामह भीष्मका वध करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है, यह बात यहाँ पधारे हुए सिद्ध एवं महर्षिगण कहते हैं ... संग्रामभूमिमें जब वह अपना दिव्यास्त्र ... करेगा, उस समय लोग उसका स्वरूप परशुरामके समान ... देखेंगे। ... किसी वीरको नहीं ... जो युद्धमें शिखण्डीको ... सके ... ऐसा महाबली ... द्वैरथ युद्धमें ... शिखण्डीके सिवा दूसरा कोई ... भीष्मको नहीं मार सकता ... अतः मेरी ... यही प्रधान सेनापति होनेके योग्य है ॥ २९—३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् ।
सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषां च केशव ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर बोले—तात! सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के सारासार और बलाबल भी जानते हैं [illegible] इनसे भी ये पूर्ण परिचित हैं ।

यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः ।
कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ॥२४॥

अतः दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण जिसका नाम बतावें वही हमारी सेनाका प्रधान नेता हो । वह अस्त्र-विद्यामें निपुण हो या न हो, वृद्ध हो या युवा हो, इसकी चिन्ता हमलोगोंको नहीं करनी चाहिये ।

एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये ।
अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे ॥२५॥

तात! ये भगवान् ही हमारी विजय अथवा पराजयके मूल कारण हैं । हमारे प्राण, राज्य, भाव, अभाव तथा सुख और दुःख सब इन्हींपर अवलम्बित हैं ।

एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता ।
यमाह कृष्णो दाशार्हः स नः सेनापतिर्वरः ॥२६॥

यही धाता और विधाता हैं । हमारे कार्यकी सिद्धि इन्हींपर निर्भर है । अतः भगवान् श्रीकृष्ण जिसके लिये प्रस्ताव करें, वही हमारी विशाल वाहिनीका प्रधान अधिनायक हो ।

ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते ।
ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनम् ॥२७॥
रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम् ।
अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥२८॥

अतः वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण अपना विचार प्रकट करें । इस समय रात्रि है । इसके बीत जानेपर सेनापतिका निर्वाचन करके रात बीतनेपर अस्त्र-शस्त्रोंका अधिवासन (पूजन) [illegible] आदि उत्सवोंद्वारा पूजन [illegible] तथा मङ्गलकृत्य सम्पादित करके [illegible] भगवान् श्रीकृष्णके अधीन हो [illegible] युद्धभूमिमें चलेंगे ॥२५—२८॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनंजयमवेक्ष्य ह ॥२९॥
ममाप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः ।
नेतारस्तव सेनाया [illegible] ॥३०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी ओर देखकर कहा—महाराज! आपलोगोंने जिन-जिन वीरोंके नाम लिये हैं, वे सब-के-सब मेरी रायमें भी सेनापति होनेके योग्य हैं; क्योंकि वे सभी बड़े पराक्रमी योद्धा हैं ।

सर्व एव समर्था हि तव शत्रून् प्रबाधितुम् ।
इन्द्रस्यापि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ॥३१॥
किं पुनर्धार्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम् ।

आपके ये सभी सेनापति शत्रुओंको पीड़ा देनेमें समर्थ हैं । ये महान् युद्धमें इन्द्रके मनमें भी भय उत्पन्न कर सकते हैं; फिर लोभी, पापात्मा दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी तो बात ही क्या है?

मयापि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थं महाहवे ॥३२॥
कृतो यत्नो महांस्तत्र शमः स्यादिति भारत ।
धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ॥३३॥

महाबाहु भरतनन्दन! मैंने भी आपका प्रिय करनेके लिये उस महान् युद्धको टालनेके लिये बड़ा भारी प्रयत्न किया, जिससे शान्ति स्थापित हो जाय । इससे हमलोग धर्मके ऋणसे उऋण हो गये । अब दोष देनेवाले लोग हमें किसी प्रकारका दोष नहीं दे सकते ।

कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ।
धार्तराष्ट्रो बलस्थं च मन्यतेऽऽतुरवद् बली ॥३४॥

मूर्ख दुर्योधन अपने-आपको कृतार्थ मानता है । वह [illegible] है; अतः अपनेको बलवान् [illegible] समझता है ॥३४॥

युज्यतां वाहिनी साधु वधसाध्या हि मे मताः ।
न धार्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनंजयम् ॥३५॥
भीमसेनं च संक्रुद्धं यमौ चापि यमोपमौ ।
युयुधानद्वितीयं च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥३६॥
अभिमन्युं द्रौपदेयान् विराटद्रुपदावपि ।
अक्षौहिणीपतींश्चान्यान् नरेन्द्रान् भीमविक्रमान् ॥३७॥

अतः आप अपनी सेनाको युद्धके लिये अच्छी तरह सुसज्जित कीजिये; क्योंकि मेरे मतमें वे शत्रुगण वधसे ही वशमें होने योग्य हैं । धृतराष्ट्रके पुत्र अर्जुनको, क्रोधमें भरे हुए भीमसेनको, यमराजके समान नकुल-सहदेवको, सात्यकिसहित अमर्षशील धृष्टद्युम्नको, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, विराट, द्रुपद तथा अक्षौहिणी सेनाओंके अधिपति अन्य भयंकर पराक्रमी नरेशोंको युद्धमें खड़े देखकर धृतराष्ट्रके पुत्र युद्धभूमिमें टिक नहीं सकेंगे ॥३५—३७॥

सारवद् बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम् ।
धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः ॥३८॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिंदम ।

हमारी सेना अत्यन्त शक्तिशाली, दुर्धर्ष और दुर्जय है । यह समरमें दुर्योधनकी सेनाका संहार कर डालेगी, इसमें संशय नहीं है । शत्रुदमन! मैं धृष्टद्युम्नको ही प्रधान सेनापति होनेके योग्य समझता हूँ ।

[illegible]

एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्राहृष्यन्नरोत्तमाः । [illegible] ॥
तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् ।
योगः [illegible] सम्भाषाः [illegible] ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! [illegible] ऐसा कहनेपर [illegible] प्रसन्न हुए [illegible] युद्धके लिये [illegible] हो [illegible] बढ़ते हुए [illegible] बड़ी [illegible] साथ दौड़ पड़े [illegible] महान् [illegible] जो [illegible]

[illegible] सर्वतः
[illegible] तुमुलः समपद्यत ॥

ओर घोड़े, हाथी और रथ के होने [illegible] और दुन्दुभियोंकी [illegible] गूँजने लगी [illegible]

[illegible] बलसमागमम् ।
[illegible] महोर्मिभिरिवाकुलम् ॥

पैदल और हाथियोंसे भरा हुआ वह [illegible] सेना [illegible] महासागरके समान हो [illegible]

[illegible] ।
[illegible] समन्ततः ॥
[illegible] वाहिनी ॥

[illegible] हुए [illegible] और [illegible] उनकी वह विशाल [illegible] दिखायी देती थी [illegible]

[illegible] भीमसेन [illegible] च दंशिताः ।
[illegible] धृष्टद्युम्न [illegible] ॥
[illegible] भीमसेनमुखा [illegible] ॥

[illegible] अभिमन्यु [illegible] द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न [illegible] भीमसेन [illegible]

[illegible] समुद्रस्येव [illegible]
[illegible] ॥

[illegible] युद्धको [illegible] बढ़े [illegible] युद्ध [illegible] और [illegible]

[illegible] ।
तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

हर्षसे भरे हुए और [illegible] सैनिक [illegible] विशेष [illegible]

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर समस्त सैनिकोंके बीचमें होकर चल [illegible]

[illegible] लघुयुक्तं च सर्वशः ।
[illegible] शिविरमभ्यम ॥ ८ ॥

[illegible] दानेवाली गाड़ी [illegible] अन्न [illegible] नाना [illegible] भी [illegible]

[illegible] कुरुजाङ्गलम् ।
[illegible] परिवारयन् ॥ ९ ॥

[illegible] कोई भी [illegible] हुए [illegible] दिया [illegible]

उपप्लव्ये तु [illegible] द्रौपदी [illegible] ।
[illegible] ॥ १० ॥

[illegible] द्रौपदी [illegible] हुई [illegible] भी [illegible]

[illegible] गुल्मैः [illegible] ।
[illegible] पाण्डुनन्दनाः ॥ ११ ॥

पाण्डवलोग [illegible] आवश्यक [illegible] और [illegible] सैनिकोंकी [illegible] और धन आदि [illegible] किया [illegible]

[illegible] हिरण्यं च [illegible] ।
[illegible] राजन् [illegible] ॥ १२ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] पुत्र [illegible] ।
अभिमन्यु [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

[illegible]

जग्मुर्वै [illegible] सौमकि ।
[illegible] ॥ १४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ १५ ॥

सेनाके पिछले भागमें जा रहे थे। विराट, धृष्टद्युम्न, सुदक्षिण, युधामन्यु, सुधर्मा, कुन्तिभोज और धृष्टद्युम्नके पुत्र भी जा रहे थे। इनके साथ चालीस हजार रथ, दो लाख घोड़े, चार लाख पैदल और साठ हजार हाथी थे ॥ ६६ ॥

अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः।
परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनंजयौ ॥ ६७ ॥

अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु तथा सात्यकि—ये सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको घेरकर चल रहे थे ॥ ६७ ॥

आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥ ६८ ॥

इस प्रकार सेनाकी व्यूहरचना करके प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए पाण्डव वैनिक कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर साँड़के समान गर्जना करते हुए दिखायी देने लगे ॥ ६८ ॥

तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शङ्खान् दध्मुररिंदमाः।
तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ६९ ॥

उन शत्रुदमन वीरोंने कुरुक्षेत्रकी सीमामें पहुँचकर अपने-अपने शङ्ख बजाये। इसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी शङ्खध्वनि की ॥ ६९ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः।
निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥ ७० ॥

वज्रकी गड़गड़ाहटके समान पाञ्चजन्यकी गम्भीर ध्वनि सुनकर सब ओर फैले हुए समस्त सैनिक हर्षसे उल्लसित एवं रोमाञ्चित हो उठे ॥ ७० ॥

शङ्खदुन्दुभिसंसृष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम्।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरांश्चान्वनादयत् ॥ ७१ ॥

शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिला हुआ वेगवान् वीरोंका सिंहनाद पृथ्वी, आकाश तथा समुद्रोंको प्रतिध्वनित करने लगा ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि कुरुक्षेत्रप्रवेशे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें पाण्डवोंका कुरुक्षेत्रमें प्रवेशविषयक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ७२ श्लोक हैं)

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कुरुक्षेत्रमें पाण्डवसेनाका पड़ाव तथा शिविर-निर्माण

वैशम्पायन उवाच

ततो देशे समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने।
निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने एक चिकने और समतल स्थानमें, जहाँ घास और ईंधनकी अधिकता थी, अपनी सेनाका पड़ाव डाला ॥ १ ॥

परिहृत्य श्मशानानि देवतायतनानि च।
आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥ २ ॥

मधुरानूषरे देशे शिवे पुण्ये महामतिः।
निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

श्मशान, देवमन्दिर, महर्षियोंके आश्रम, तीर्थ और सिद्धस्थान—इन सबका परित्याग करके उन परम बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने मनोहर, पुण्य, पवित्र, ऊसररहित एवं मधुर भूमिमें अपनी सेनाको ठहराया ॥ २-३ ॥

ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः।
प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥

विद्राव्य शतशो गुल्मान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्।
पर्यक्रामत् समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥ ५ ॥

तदनन्तर वाहनोंके विश्राम कर लेनेपर स्वयं भी विश्रामजनित सुखका अनुभव करके भगवान् श्रीकृष्ण उठे और सैकड़ों, हजारों भूमिपालोंसे घिरकर अर्जुनके साथ [illegible]

शिबिरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानः प्रतापवान् ॥ ६ ॥

द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा प्रतापी एवं उदार रथी सात्यकि युयुधानने शिविर बनाने योग्य भूमि नापी ॥ ६ ॥

आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम्।
सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥ ७ ॥

खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत।
गुप्त्यर्थमपि चादिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥ ८ ॥

विधिर्यः शिबिरस्यासीत् पाण्डवानां महात्मनाम्।
तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥ ९ ॥

भारत! कुरुक्षेत्रमें हिरण्वती नामक एक पवित्र नदी है, जो स्वच्छ एवं विशुद्ध जलसे भरी है। उसमें अनेक सुन्दर घाट हैं और उस नदीमें कंकड़ और कीचड़का नाम भी नहीं है। उसके समीप पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ खाई खुदवायी और उसकी रक्षाके लिये वहाँ रक्षाका कार्य करनेमें निपुण कुछ सेनाको ठहरा दिया। महात्मा पाण्डवोंके लिये शिविरका निर्माण जिस विधिसे किया गया था, उसी प्रकारसे भगवान् केशवने अन्य राजाओंके लिये भी शिविर बनवाये ॥ ७—९ ॥

यमूलफलभक्ष्याणि पुरातनकृतानि च
अभ्यक्तोऽप्यन्यशतानि ज्ञातयोऽथ सहस्रशः ॥ १ ॥
शिबिराणि महार्हाणि राजन् तत्र पृथक् पृथक्
विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥ २ ॥

राजेन्द्र ! उस समय राजाओंके लिये सैकड़ों और हजारों की संख्यामें दुर्लभ एवं बहुमूल्य शिबिर पृथक् पृथक् बनवाये गये थे। उनमें भी बहुत-से काष्ठ तथा अन्न [illegible] भक्ष्य-भोज्य [illegible] वे शिबिर भूतलपर रखे हुए विमानोंके समान सुशोभित हो रहे थे।

तत्रासन् शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥ ३ ॥

वहाँ सैकड़ों विद्वान् शिल्पी और शास्त्रविशारद वैद्य वेतन देकर रखे गये थे, जो समस्त आवश्यक उपकरण [illegible] साथ वहाँ रहते थे।

ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषः
ससर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः ॥ ४ ॥

प्रत्येक शिबिरमें प्रत्यञ्चा, धनुष, कवच, अस्त्र-शस्त्र, [illegible] पर्वतके समान ढेर [illegible]

बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम्
शिबिरे शिबिरे राजा संचकार युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

राजा युधिष्ठिरने प्रत्येक शिबिरमें प्रचुर जल, सुन्दर घास, भूसी और अग्नि [illegible]

महायन्त्राणि नाराचास्तोमराः परशुधेस्त्वथ
धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः ॥ ६ ॥

बड़े-बड़े यन्त्र, नाराच, तोमर, फरसे, धनुष, कवच, ऋष्टि और तरकस—ये सब वस्तुएँ भी उन सभी शिबिरोंमें संगृहीत थीं।

गजाः कण्टकसंनाहा लोहवर्मोत्तरच्छदाः
दृश्यन्ते तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥ ७ ॥

वहाँ लाखों योद्धाओंके साथ युद्ध करनेमें समर्थ पर्वतोंके समान विशालकाय बहुत-से हाथी [illegible] कण्टकयुक्त कवच तथा लोहेके ही झूल धारण किये हुए थे।

निविष्टान् पाण्डवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत
अभिसस्रुर्यथोद्देशं सबलाः सहवाहनाः ॥ ८ ॥

[illegible] पाण्डवोंने कुरुक्षेत्रमें अपनी सेनाका [illegible] अपनी सेना और [illegible] उनके [illegible] पास ठहर गये।

चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः
जयाय पाण्डुपुत्राणां समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ ९ ॥

जिन्होंने [illegible] ब्रह्मचर्यका पालन [illegible] पाण्डवोंकी विजयके लिये [illegible]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि [illegible]

[illegible] पूरे हुए ॥ १५२ ॥

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका सेनाको सुसज्जित होने और शिबिर निर्माण करनेके लिये आज्ञा देना तथा राजाओंको रणयात्राके लिये उद्यत होना

जनमेजय उवाच

युधिष्ठिरं सहानीकमुपायान्तं युयुत्सया
संनिविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम् ॥ १ ॥
विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम्
केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥ २ ॥
महेन्द्रमिव चादित्यैरभिगुप्तं महारथैः
श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! दुर्योधनने जब यह सुना कि राजा युधिष्ठिर युद्धकी इच्छासे सेनाओंके साथ चल पड़े हैं, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित हो कुरुक्षेत्रमें पहुँच गये और वहाँ सेनाका पड़ाव डाले पड़े हैं। दुर्योधन तथा विराट और [illegible] द्रुपद भी अपने पुत्रोंके साथ हैं [illegible] सैकड़ों भूपाल उन्हें घेरे हुए हैं तथा [illegible] आदित्योंसहित इन्द्रकी भाँति [illegible] महारथी योद्धाओंद्वारा सुरक्षित हैं, तब उसने क्या किया ?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते
सम्भ्रमे तुमुले तस्मिन् यदासीत् कुरुजाङ्गले ॥ ४ ॥

महामते ! कुरुजाङ्गलमें [illegible] युद्ध हुआ था, वह सब मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि संयुगे
पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ॥ ५ ॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः

युधामन्युश्च विक्रान्तो वैराटिश्च युयुत्सवः ॥ ६ ॥
एतदाख्याहि मे सर्वं विस्तरेण तपोधन ।
कुरूणां पाण्डवानां च यद्यदासीद् विचेष्टितम् ॥ ७ ॥

तपोधन ! जब भगवान् श्रीकृष्ण विराट, द्रुपद, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी तथा देवताओंके लिये भी दुर्जय महापराक्रमी युधामन्यु—ये सब लोग युद्धमें एकत्र होनेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी पीड़ित कर सकते हैं, अब वहाँ कौरवों तथा पाण्डवोंने कौन-सा कर्म किया यह सब विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ ६-७ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रतिश्रुते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर उस समय राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन और शकुनिसे इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥

अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थाञ्जनार्दनः ।
स एनान् मन्युनाविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण यहाँसे कृतकार्य होकर नहीं गये हैं, इसलिये वे क्रोधमें भरकर पाण्डवोंसे निश्चय ही युद्धके लिये उत्तेजित करेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ९ ॥

इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥ १० ॥

वास्तवमें श्रीकृष्ण यही चाहते हैं कि पाण्डवोंके साथ मेरा युद्ध हो। भीमसेन और अर्जुन—ये दोनों भाई तो श्रीकृष्णके ही मतमें स्थित रहनेवाले हैं ॥ १० ॥

अजातशत्रुरप्यद्य भीमसेनवशानुगः ।
निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः ॥ ११ ॥

अजातशत्रु युधिष्ठिर भी अधिकतर भीमसेनके वशमें रहा करते हैं। इसके सिवा पहले उनका मैंने उनके भाइयोंसहित तिरस्कार किया है ॥ ११ ॥

विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह ।
तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥ १२ ॥

विराट और द्रुपदके साथ भी मेरा पहलेका वैर है। वे दोनों [illegible] सेनापति भी श्रीकृष्णकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले हैं ॥ १२ ॥

भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः ।
तस्मात् सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥ १३ ॥

अतः अब यह [illegible] पाण्डवोंके साथ होनेवाला यह युद्ध बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी होगा, इसलिये तुम सब लोग आलस्य छोड़कर युद्धकी सारी तैयारी करो ॥ १३ ॥

शिबिराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः ।
सुपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥ १४ ॥
आसन्नजलकाष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
अच्छेद्याहारमार्गाणि रत्नोच्चयचितानि च ॥ १५ ॥

भूमिपालो! आप कुरुक्षेत्रमें सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें ऐसे शिबिर तैयार करावें, जिनमें अपनी आवश्यकताके अनुसार पर्याप्त अवकाश हो, तथा शत्रुओंका जिनपर अधिकार न हो सके, उनमें जल और काष्ठ आदि मिलनेकी सुविधा हो, उनके ऐसे मार्ग होने चाहिये जिनसे खाद्य सामग्रीकी सुविधासे लायी जा सके और शत्रुओंसे उसे नष्ट न कर सकें। तथा उनके चारों ओर किलेबंदी कर देनी चाहिये ॥ १४-१५ ॥

विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च ।
समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद् बहिः ॥ १६ ॥

उन शिबिरोंको नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे भरपूर एवं ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित करना चाहिये। शिबिरोंको नगरके बाहर बनाया जाय, उनसे बाहर अनेक सीधे तथा समतल मार्ग उन शिबिरोंमें जानेके लिये बनाये जायँ ॥ १६ ॥

प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् ।
ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥ १७ ॥
हृष्टरूपा महात्मानो विनाशाय महीक्षिताम् ।

आज ही यह घोषणा कर दी जाय कि कल सबेरे ही युद्धके लिये प्रस्थान करना है। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये। दुर्योधनका यह आदेश सुनकर 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उन सबने प्रतिज्ञा करके महामनस्वी कर्ण आदिने अत्यन्त प्रसन्न होकर सबेरा होते ही राजाओंके ठहरनेके लिये शिबिर बनाने आरम्भ कर दिये ॥ १७ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम् ॥ १८ ॥
आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः ।
बाहून् परिघसंकाशान् संस्पृशन्तः शनैः शनैः ॥ १९ ॥
काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागुरुभूषितान् ।

[illegible] राजा दुर्योधनकी यह आज्ञा सुनकर वे सब [illegible] अमर्षमें भरकर बहुमूल्य आसनोंसे उठकर खड़े हो गये ॥ १८-१९ ॥

उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः ।
अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥ २० ॥

उन्होंने अपने कमलसदृश करोंसे मस्तकपर पगड़ी बाँध ली, फिर धोती, चादर और सब प्रकारके आभूषण धारण कर लिये ॥ २० ॥

हेमपृष्ठानि रक्तानि [illegible] हयानि विविधानि च ।
कल्पयन्ति स्म नागानां सर्वोपकरणयुक्तिमत् ॥२१॥

[illegible] उन्होंने हाथियोंके लिये [illegible] सुवर्णमय विचित्र पीठोंवाले [illegible] सुसज्जित करने लगे ॥ २१ ॥

अथ वर्माणि चित्राणि काञ्चनानि बहूनि च
विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सर्वाणि सर्वशः ॥ २२ ॥

उन्होंने योद्धाओंके लिये सुवर्णजटित विचित्र कवच तथा सब प्रकारके विभिन्न अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिये ॥ २२ ॥

पादातास्तु पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च
आबद्धः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥ २३ ॥

पैदल योद्धाओंने भी अपने शरीरमें सुवर्णजटित कवच तथा भाँति-भाँतिके अनेक अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिये ॥ २३ ॥

तदुत्सव इवोदग्रं संप्रहृष्टनरावृतम्
नगरं धार्तराष्ट्रस्य भारतासीत् समाकुलम् ॥ २४ ॥

भारत ! दुर्योधनका वह नगर [illegible] मनुष्योंसे भरा हुआ [illegible] उत्सव-सा [illegible] प्रसन्न [illegible] हर्षोत्फुल्ल [illegible] वहाँ चहल-पहल मच गयी थी ॥ २४ ॥

जनौघसलिलावर्तो रथनागाश्वमीनवान्
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः कोशसञ्चयरत्नवान् ॥ २५ ॥
चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान्
प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाह्रदः ॥ २६ ॥
योधचन्द्रोदयोद्भूतः कुरुराजमहार्णवः
व्यदृश्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवोदधिः ॥ २७ ॥

राजन् ! जैसे चन्द्रोदयके समय समुद्र उत्ताल तरंगोंसे व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार कुरुराज दुर्योधनका [illegible] सैनिक समुदायरूपी चन्द्रमाके उदयसे उमड़ उठा था [illegible] तरंगोंसे व्याप्त [illegible] उस जनसमुदाय [illegible] हाथी और घोड़े [illegible] मत्स्य [illegible] शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस [illegible] गर्जना [illegible] [illegible] विविध आभूषण और कवच [illegible] तरंगोंके [illegible] शस्त्र ही [illegible] [illegible] महलोंकी पंक्तियाँ ही [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] ॥ २५—२७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि [illegible] त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें दुर्योधनकी सेनाका युद्धके लिये [illegible] विषयक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५३ ॥

चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने समयोचित कर्तव्यके विषयमें पूछना, भगवान्‌का युद्धको ही कर्तव्य बताना तथा इस विषयमें युधिष्ठिरका सन्ताप और अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णके वचनोंका समर्थन

वैशम्पायन उवाच

वासुदेवस्य तद् वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः
पुनः पप्रच्छ वार्ष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णके पूर्वोक्त कथनको स्मरण करके युधिष्ठिरने पुनः उनसे पूछा—भगवन् ! मन्दबुद्धि दुर्योधनने क्यों ऐसी बात कही ? ॥ १ ॥

अस्मिन्नभ्यागते काले किं च नः क्षममच्युत
कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥ २ ॥

अच्युत ! इस वर्तमान समयमें हमें क्या करना उचित है ? हम कैसा बर्ताव करें, जिससे अपने धर्मसे नीचे न गिरें ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च
वासुदेव मतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥ ३ ॥

वासुदेव ! तुम दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा भाइयोंसहित मेरा भी विचार जानते हो ॥ ३ ॥

विदुरस्याप्यथो वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चोभयोः
कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कार्त्स्न्येन ते श्रुता ॥ ४ ॥

विदुरने और भीष्मने [illegible] कही है, उसे भी आपने सुना है । विशालबुद्धे ! माता कुन्तीके विचार भी आपने पूर्णरूपसे सुन लिये हैं ॥ ४ ॥

तामतिक्रम्य तत् सर्वं विचार्य च पुनः पुनः
क्षमं यन्नो महाबाहो तद् ब्रवीह्यविचारयन् ॥ ५ ॥

महाबाहो ! इन सबके विचारोंको [illegible] बारंबार विचार करके हमारे लिये जो उचित हो, उसे नि:संकोच कहिये ॥ ५ ॥

श्रुत्वैतद् धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः
मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

भगवान्‌का यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने मेघ और दुन्दुभिके समान गम्भीर स्वरमें यह बात कही ॥ ६ ॥

कृष्ण उवाच

उक्तवानस्मि यद् वाक्यं धर्मसत्यहितं विभो ।
न तु तन्निकृतिप्रज्ञो कौरव्यो प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण बोले—मैंने जो धर्म और सत्यसे युक्त हितकर बात कही है, वह छल-कपट करनेमें ही कुशल कुरुवंशी दुर्योधनके मनमें नहीं बैठती है ॥ ७ ॥

न स भीष्मस्य भद्रं ते विदुरस्य वा ।
मम वा भाषितं किंचित् सर्वमेवातिवर्तते ॥ ८ ॥

राजन्! आपका कल्याण हो। दुर्योधन न भीष्मकी, न विदुरकी और न मेरी ही बात मानता है। वह सबकी सभी बातोंका उल्लङ्घन करता है ॥ ८ ॥

नैष कामयते धर्मं न च कामयते यशः ।
जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥ ९ ॥

दुरात्मा दुर्योधन कर्णका आश्रय लेकर सभी वस्तुओंको जीती हुई ही समझता है। इसीलिये न वह धर्मकी इच्छा रखता है और न यशकी ही कामना करता है ॥ ९ ॥

बन्धमाज्ञापयामास मम चापि सुयोधनः ।
न च तं लब्धवान् कामं दुरात्मा पापनिश्चयः ॥ १० ॥

पापपूर्ण निश्चयवाले दुरात्मा दुर्योधनने तो मुझे भी कैद कर लेनेकी आज्ञा दे दी थी; परंतु वह उस मनोरथको पूर्ण न कर सका ॥ १० ॥

न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राहतुर्वचः ।
सर्वे तमनुवर्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥ ११ ॥

अच्युत! वहाँ भीष्म तथा द्रोणाचार्य भी यह उचित बात नहीं कहते हैं। विदुरको छोड़कर अन्य सब लोग दुर्योधनका ही अनुसरण कर रहे हैं ॥ ११ ॥

शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि ।
त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त मूढा मूढममर्षणम् ॥ १२ ॥

सुबलपुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासन—इन तीन मूर्खोंने मूढ और अमर्षशील दुर्योधनसे आपके विषयमें अनेक अनुचित बातें कही थीं ॥ १२ ॥

किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषत कौरवः ।
संक्षेपेण दुरात्मासौ न युक्तं त्वयि वर्तते ॥ १३ ॥

उन लोगोंने जो-जो बातें कहीं, उन्हें यदि मैं पुनः यहाँ दोहराऊँ तो उससे क्या लाभ है? थोड़ेमें इतना ही समझ लीजिये कि वह दुरात्मा कौरव आपके प्रति न्यायोचित बर्ताव नहीं कर रहा है ॥ १३ ॥

पार्थिवेषु न सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः ।
यत् पापं यन्न कल्याणं सर्वं तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥

इन सब राजाओंमें तथा आपकी सेनामें स्थित हैं, जो पाप और अमङ्गलकारक भाव नहीं है, वह सब अकेले दुर्योधनमें विद्यमान है ॥ १४ ॥

न चापि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् ।
कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥ १५ ॥

हमलोग भी बहुत अधिक त्याग करके (अपना सर्वस्व खोकर) कभी किसी भी दशामें कौरवोंके साथ सन्धिकी इच्छा नहीं रखते हैं। अतः इसके बाद अब हमारे लिये युद्ध ही कर्तव्य है ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् ।
अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन जनमेजय! श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर वे सब राजा कुछ भी न बोलकर युधिष्ठिरका मुख देखने लगे ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमुपलभ्य महीक्षिताम् ।
योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥ १७ ॥

युधिष्ठिरने राजाओंका अभिप्राय जानकर भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल-सहदेवके साथ उन्हें युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दे दी ॥ १७ ॥

ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह ।
आज्ञापिते तदा योगे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥ १८ ॥

उस समय युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा मिलते ही समस्त योद्धा हर्षसे भर उठे। फिर तो पाण्डवोंके सैनिक किलकारियाँ करने लगे ॥ १८ ॥

अवध्यानां वधं पश्यन् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
निःश्वसन् भीमसेनं च विजयं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर यह देखकर कि युद्धमें अवध्य पुरुषोंका भी वध करना पड़ेगा, लंबी साँस खींचते हुए भीमसेन और अर्जुनसे इस प्रकार बोले— ॥ १९ ॥

यदर्थं वनवासश्च प्राप्तं दुःखं च यन्मया ।
सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥ २० ॥

जिसके लिये मैंने वनवास स्वीकार किया और नाना प्रकारके दुःख सहन किये, वही महान् अनर्थ मेरे प्रयत्नसे भी टल न सका। वह इच्छाके विपरीत आता ही जा रहा है ॥ २० ॥

तस्मिन् यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः ।
अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥ २१ ॥

यद्यपि उसे टालनेके लिये हमारी ओरसे पूरा प्रयत्न किया गया, परंतु हमारे द्वारा उसका निवारण नहीं हो सका और जिसके लिये कोई प्रयत्न नहीं किया गया था, वह महान् कलह स्वयं हमारे ऊपर आ गया ॥ २१ ॥

कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति।
कथं हत्वा गुरून् वृद्धान् विजयो नो भविष्यति॥२२॥

जो लोग मारने योग्य नहीं हैं, उनके साथ युद्ध करना कैसे उचित होगा? वृद्ध गुरुजनोंका वध करके हमें विजय किस प्रकार प्राप्त होगी?॥२२॥

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परंतपः।
यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद् वचः॥२३॥

भरतनन्दन! धर्मराजकी यह बात सुनकर शत्रुओंको संताप देनेवाले सव्यसाची अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुई बातें उन्हें कह सुनायीं॥२३॥

उक्तवान् देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च।
वचनं तत् यथा राजन् निखिलेनात्मचारितम्॥२४॥

वे बोले—'राजन्! देवकीनन्दन श्रीकृष्णने माता कुन्ती तथा विदुरजीके कहे हुए जो वचन आपको सुनाये हैं, उनपर आपने पूर्णरूपसे विचार किया होगा॥२४॥

न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः।
नापि युक्तं च कौन्तेय निवर्तितुमयुध्यतः॥२५॥

मेरा तो यह निश्चित मत है कि वे दोनों अधर्मकी बात नहीं कहेंगे। कुन्तीनन्दन! अब हमारे लिये युद्धसे निवृत्त होना भी उचित नहीं है'॥२५॥

तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा।
स्मयमानोऽब्रवीत् पार्थमेवमेतदिति ब्रुवन्॥२६॥

अर्जुनका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने भी मुसकराते हुए कहा—'अर्जुन ठीक कहते हैं'॥२६॥

ततस्ते धृतसंकल्पा युद्धाय सहसैनिकाः।
पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखमावसन्॥२७॥

महाराज! तदनन्तर सेनाओंसहित पाण्डव युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके उस रातमें वहाँ सुखपूर्वक रहे॥२७॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें युधिष्ठिर-अर्जुन-संवादविषयक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१५४॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

दुर्योधनके द्वारा सेनाओंका विभाजन और पृथक् पृथक् अक्षौहिणियोंके सेनापतियोंका अभिषेक

वैशम्पायन उवाच

व्युषितायां तु रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः।
व्यभजत् तान्यनीकानि दश चैकं च भारत॥१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जब सबेरा हुआ, तब राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका विभाग किया॥१॥

नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च।
सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु संदिदेश नराधिपः॥२॥

राजा दुर्योधनने पैदल, हाथी, रथ और घुड़सवार—इन सभी सेनाओंमेंसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणीके योद्धाओंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें यथास्थान नियुक्त कर दिया॥२॥

सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः।
सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सहर्ष्टयः॥३॥

सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः।
रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिस्तराः॥४॥

सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः।
साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः॥५॥

सघण्टाफलकाः सर्वे सायोगुडजलोपलाः।
सशालभिन्दिपालाश्च समधूच्छिष्टमुद्गराः॥६॥

सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः।
सशूर्पपिटकाः सर्वे सदात्राङ्कुशतोमराः॥७॥

सकीलकवचास्तथा वासीवृक्षादनान्विताः।
व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते॥८॥

सरष्टयः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः।
सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः॥९॥

वे सब सैनिक अनुकर्ष (रथकी मरम्मतके लिये उसके नीचे बँधा हुआ काष्ठ), तरकस, वरूथ (रथको ढकनेके लिये बाघ आदिका चमड़ा), उपासङ्ग (हाथी या घोड़ेपर रखे जानेवाले तरकस), तोमर, शक्ति, निषङ्ग, पताका, धनुष, भाँति-भाँतिकी रस्सियाँ, पाश, बिछौना, कचग्रह-विक्षेप (बाल पकड़कर फेंकनेवाले यन्त्र), तेल, गुड़, बालू, विषधर सर्पोंसे भरे हुए घड़े, राल और धूल, घुँघुरूवाली ढालें, लोहेके गोले, पत्थर, साल, भिन्दिपाल, मोम लगे हुए मुद्गर, काँटेदार लाठियाँ, हल, विष लगे हुए बाण, सूप तथा टोकरियाँ, दराँत, अङ्कुश, तोमर, काँटेदार कवच, बसूले आदि, बाघ और गैंड़ेके चमड़ोंसे मढ़े हुए रथ, शृङ्ग, प्रास, भाँति-भाँतिके आयुध, कुठार, कुदाल, तेलमें भिगोये हुए रेशमी वस्त्र तथा घी लिये हुए थे॥३—९॥

रुक्मजालप्रतिच्छन्ना नानामणिविभूषिताः।
चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः॥१०॥

वे सभी वैदिक रीतिसे शास्त्रोक्त कवच धारण किये नाना प्रकारके विमल आभूषणोंसे विभूषित हो उस सेनाको ही विविध शाखाके समान करते हुए अपने सुन्दर शरीरसे प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥

तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्रमाः।
कुलीना हययोनिज्ञाः सारथ्ये विनिवेशिताः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार जो धनुर्विद्यामें विविध शस्त्रोंका अभ्यास कर चुके थे, कुलीन तथा घोड़ोंकी जाति पहचाननेवाले थे, वे कवचधारी शूरवीर ही सारथिके कामपर नियुक्त किये गये थे ॥

बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः।
बद्धाभरणनिर्यूहा बद्धचर्मासिपट्टिशाः ॥ १२ ॥

उस सेनाके रथोंमें अमङ्गल-निवारणके लिये यन्त्र और ओषधियाँ बाँधी गयी थीं। वे रस्सियोंसे खूब कसे गये थे। उन रथोंपर भी ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। उनके ऊपर सोनेकी झालरें बँधी थीं और ढाल, तलवार और पट्टिश आदि रखे गये थे ॥

चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे योधसमन्विताः।
सप्रासप्रहिताः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥ १३ ॥

उन सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते हुए थे। वे सभी घोड़े मनस्वी वीरोंसे युक्त थे और सम्पूर्ण रथोंमें प्रास और सौ-सौ धनुष रखे हुए थे ॥

धुर्ययोर्हययोरेकस्तथान्यौ पार्ष्णिसारथी।
तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित् तथा ॥ १४ ॥
नगराणीव गुप्तानि दुरादेयानि शत्रुभिः।
आसन् रथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥ १५ ॥

प्रत्येक रथके दो-दो घोड़ोंपर एक-एक सारथि नियुक्त था। एक-एक रथके लिये दो पार्ष्णिसारथि नियत किये गये थे। वे दोनों ही रथियोंमें श्रेष्ठ थे तथा रथी भी अश्व-संचालनकी कलामें निपुण था। सब ओर सुवर्णमालाओंसे अलंकृत हजारों रथ शोभा पाते थे। शत्रुओंके लिये उनका जीतना अत्यन्त कठिन था। वे सब-के-सब नगरोंकी भाँति सुरक्षित थे ॥

यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः स्वलंकृताः।
बभूवुः सप्त पुरुषा रत्नवन्त इवाद्रयः ॥ १६ ॥

जिस प्रकार रथ सजाये गये थे, उसी प्रकार हाथियोंको भी स्वर्णमालाओंसे सुसज्जित किया गया था। उन सबको रस्सोंसे कसा गया था। उनपर सात-सात पुरुष बैठे हुए थे, जिससे वे हाथी रत्नयुक्त पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥

द्वावङ्कुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ।
द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपिनाकधृक् ॥ १७ ॥

राजन्! उनमेंसे दो पुरुष अङ्कुश लेकर महावतका काम करते थे, दो श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा थे, दो उत्तम खड्ग धारण करनेवाले थे और एक पुरुष शक्ति तथा त्रिशूल लिये रहता था ॥

गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सर्वमायुधकोशवत्।
तद् बभूव बलं राजन् कौरव्यस्य महात्मनः ॥ १८ ॥

राजन्! महामना दुर्योधनकी वह सारी सेना ही अस्त्र-शस्त्रोंके भण्डारसे युक्त मदमत्त गजराजोंसे व्याप्त हो रही थी ॥

आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलंकृतैः।
सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चायुतशो हयाः ॥ १९ ॥

इसी प्रकार कवचधारी, युद्धके लिये उद्यत, आभूषणोंसे विभूषित तथा पताकाधारी सवारोंसे युक्त हजारों-लाखों घोड़े वहाँ सेनामें मौजूद थे ॥

असंग्राहाः सुसम्पन्ना हेमभाण्डपरिच्छदाः।
अनेकशतसाहस्रास्ते सर्वे सादिनो वशे ॥ २० ॥

वे सभी घोड़े उछल-कूद मचाने आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण सदा अपने सवारोंके वशमें रहते थे। उन्हें अच्छी शिक्षा मिली थी और सुनहरे साजोंसे सुसज्जित थे। उनकी संख्या कई लाख थी ॥

नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः।
पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥ २१ ॥

उस सेनामें जो पैदल मनुष्य थे, वे भी सोनेके हारोंसे अलंकृत थे। उनके रूप-रंग, कवच और अस्त्र-शस्त्र नाना प्रकारके दिखायी देते थे ॥

रथस्यासन् दश गजा गजस्य दश वाजिनः।
नरा दश हयस्यासन् पादरक्षाः समन्ततः ॥ २२ ॥

एक-एक रथके पीछे दस-दस हाथी, एक-एक हाथीके पीछे दस-दस घोड़े और एक-एक घोड़ेके पीछे दस-दस पैदल सैनिक सब ओर पादरक्षक नियुक्त किये गये थे ॥

रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्यासन् शतं हयाः।
हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नसंधानकारिणः ॥ २३ ॥

एक-एक रथके पीछे पचास-पचास हाथी, एक-एक हाथीके पीछे सौ-सौ घोड़े और एक-एक घोड़ेके साथ सात-सात पैदल सैनिक इस उद्देश्यसे संगठित किये गये थे कि वे व्यूहके बिखर जानेपर उसे फिर जोड़ सकें। दूसरी सेनासे ऐसे सैनिक उपस्थितोंसे सम्पन्न किये रहें ॥

सेना पञ्चशतं नागा रथास्तावन्त एव च।
दशसेना च पृतना पृतना दश वाहिनी ॥ २४ ॥

पाँच सौ हाथियों और पाँच सौ रथोंकी एक सेना होती है। दस सेनाओंकी एक पृतना और दस पृतनाओंकी एक वाहिनी होती है ॥

सेना च वाहिनी चैव पृतना ध्वजिनी चमूः।
अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ताथ वरूथिनी ॥ २५ ॥

इसके सिवा सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, वरूथिनी और अक्षौहिणी—इन पर्यायवाची नामोंद्वारा भी सेनाका वर्णन किया गया है।

एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता ।
अक्षौहिण्यो दशैका च संख्याताः सप्त चैव ह ॥ २६ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् दुर्योधनने अपनी सेनाओंको व्यूहरचनापूर्वक संगठित किया था। कुरुक्षेत्रमें ग्यारह और सात मिलकर अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं ॥ २६ ॥

अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद् बलम् ।
अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद् बलम् ॥ २७ ॥

पाण्डवोंकी सेना केवल सात अक्षौहिणी थी और कौरवोंके पक्षमें ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हो गयी थीं ॥ २७ ॥

नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते ।
सेनामुखं च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥

पचपन पैदलोंकी एक टुकड़ीको पत्ति कहते हैं। तीन पत्तियाँ मिलकर एक सेनामुख कहलाती हैं। सेनामुखका ही दूसरा नाम गुल्म है ॥ २८ ॥

त्रयो गुल्मा गणस्त्वासीद् गणास्त्वयुतशोऽभवन् ।
दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः ॥ २९ ॥

तीन गुल्मोंका एक गण होता है। दुर्योधनकी सेनाओंमें युद्ध करनेवाले पैदल योद्धाओंके ऐसे-ऐसे गण दस हजारसे भी अधिक थे ॥ २९ ॥

तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान् ।
प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥ ३० ॥

उस समय वहाँ महाबाहु राजा दुर्योधनने अच्छी तरह सोच-विचारकर बुद्धिमान् एवं शूरवीर पुरुषोंको सेनापति बनाया ॥ ३० ॥

पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन् नरसत्तमान् ।
विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यषेचयत् ॥ ३१ ॥
कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम् ।
सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥ ३२ ॥
द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।
शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम् ॥ ३३ ॥

कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, काम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि तथा महाबली बाह्लीक—इन राजाओंको दुर्योधनने पहले बुलाकर उन सबको पृथक्-पृथक् एक-एक अक्षौहिणी सेनाका नायक नियत करके विधिपूर्वक उनका अभिषेक किया ॥ ३१—३३ ॥

दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलं च भारत ।
चक्रे स विविधां पूजां प्रत्यक्षं च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥

भारत! दुर्योधन नित्य और प्रत्येक बेलामें उन सेनापतियोंका बारंबार विविध प्रकारसे आदर-पूजन करता था ॥ ३४ ॥

तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः ।
बभूवुः सैनिका राजन् प्रियं राज्ञश्चिकीर्षवः ॥ ३५ ॥

उनके जो अनुयायी थे, उनको भी उसी प्रकार योग्य स्थानोंपर नियुक्त कर दिया गया। वे सैनिक राजा दुर्योधनका प्रिय करनेकी इच्छा रखकर अपने मनमें बड़े तत्पर हो गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यविभागे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें दुर्योधनके सैन्य-विभागसे सम्बन्ध रखनेवाला एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनके द्वारा भीष्मजीका प्रधान सेनापतिके पदपर अभिषेक और कुरुक्षेत्रमें पड़ाव डालकर शिविर-निर्माण

वैशम्पायन उवाच

ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः ।
सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन समस्त राजाओंके साथ शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जा हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि ।
दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥ २ ॥

पितामह! कितनी ही बड़ी सेना क्यों न हो, योग्य सेनापतिके बिना युद्धमें जाकर चींटियोंकी पंक्तिके समान छिन्न-भिन्न हो जाती है ॥ २ ॥

न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित् ।
शौर्यं च बलनेतॄणां स्पर्धते च परस्परम् ॥ ३ ॥

दो व्यक्तियोंकी बुद्धि कभी एक-सी नहीं होती। फिर भी सेनापति अपने शौर्यके विषयमें एक-दूसरेसे होड़ लगाते रहते हैं ॥ ३ ॥

श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः ।
अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः ॥ ४ ॥

महामते! सुना जाता है कि समस्त ब्राह्मणोंने अपनी कुशमयी ध्वजा फहराते हुए पहले कभी अमिततेजस्वी हैहय क्षत्रियोंपर आक्रमण किया था ॥ ४ ॥

तानन्वयुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह ।
एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

पितामह ! उन दिनों ब्राह्मणोंके साथ वैश्यों और शूद्रोंने भी उनका साथ दिया था । इस प्रकार तीनों वर्णोंके लोग एक ओर थे और दूसरी ओर चुने हुए श्रेष्ठ क्षत्रिय ॥ ५ ॥

ततो युद्धेऽभवद्भङ्गस्त्रयाणां वर्णानां पुनः पुनः ।
क्षत्रियास्तु जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब तीनों वर्णोंके लोग बार-बार पीठ दिखाकर भागने लगे । यद्यपि उनकी सेना अधिक थी, तो भी क्षत्रियोंने एकमात्र होकर उनपर विजय पायी ॥ ६ ॥

ततस्ते क्षत्रियास्तेन पप्रच्छुर्द्विजसत्तमान् ।
तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥ ७ ॥

पितामह ! तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे ही पूछा, 'हमारी पराजयका क्या कारण है ?' उस समय धर्मज्ञ क्षत्रियोंने उनसे यथार्थ कारण बता दिया ॥ ७ ॥

यूयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे ।
भवन्तस्तु पृथक् सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥ ८ ॥

'हमलोग रणमें एक बुद्धिमान् पुरुषको सेनापति बनाकर युद्धमें उसीके आदेश सुनते और मानते हैं; परंतु आप सब लोग पृथक्-पृथक् अपनी ही बुद्धिके अधीन हो मनमाना कार्य करते हैं' ॥ ८ ॥

ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम् ।
नये सुकुशलं शूरमजयन् क्षत्रियांस्ततः ॥ ९ ॥

तब उन ब्राह्मणोंने एक शूरवीर एवं नीतिनिपुण ब्राह्मणको सेनापति बनाया और क्षत्रियोंपर विजय प्राप्त की ॥ ९ ॥

एवं ये कुशलं शूरं हिते स्थितमकल्मषम् ।
सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥ १० ॥

इस प्रकार जो लोग किसी कुशल, शूरवीर, हितैषी तथा पापरहित पुरुषको सेनापति बना लेते हैं, वे संग्राममें शत्रुओंपर अवश्य विजय पाते हैं ॥ १० ॥

भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम ।
असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥ ११ ॥

आप तो शुक्राचार्यके समान नीतिमें कुशल हैं; आपका आश्रय लिये बिना कोई नहीं सकता और सदा धर्ममें ही स्थित रहते हैं; अतः आप हमारे सेनापति हो जाइये ॥ ११ ॥

रश्मीवतामिवादित्यो वीरुधामिव चन्द्रमाः ।
कुबेर इव यक्षाणां देवानामिव वासवः ॥ १२ ॥
पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पक्षिणां यथा ।
कुमार इव भूतानां वसूनामिव हव्यवाट् ॥ १३ ॥

जैसे किरणोंवाले तेजस्वी पदार्थोंमें सूर्य, वृक्ष और ओषधियोंमें चन्द्रमा, यक्षोंमें कुबेर, देवताओंमें इन्द्र, पर्वतोंमें मेरु, पक्षियोंमें गरुड, समस्त देवसेनापतियोंमें कार्तिकेय और वसुओंमें अग्निदेव अधिपति एवं रक्षक हैं, उसी प्रकार आप हमारी समस्त सेनाओंके अधिनायक और संरक्षक हों ॥ १२-१३ ॥

भवता हि वयं गुप्ताः शक्रेणेव दिवौकसः ।
अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

इन्द्रके द्वारा सुरक्षित देवताओंकी भाँति हम आपके द्वारा रक्षित होकर निश्चय ही देवताओंके लिये भी अजेय हो जायँगे ॥ १४ ॥

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।
वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥ १५ ॥

जैसे कार्तिकेय देवताओंके आगे आगे चलते हैं, वैसे ही आप हमारे अगुआ हों । जैसे बछड़े साँड़के पीछे चलते हैं, उसी प्रकार हम आपका अनुसरण करेंगे ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥ १६ ॥

भीष्मने कहा—भारत ! तुम जैसा कहते हो, वह ठीक है; पर मेरे लिये जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव हैं ॥ १६ ॥

अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप ।
योद्धव्यं तु तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! मैं पाण्डवोंको उनके कल्याणकी बात भी बताऊँगा और तुम्हारे लिये युद्ध करूँगा, ऐसी ही मैंने प्रतिज्ञा की है ॥ १७ ॥

न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि ।
ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात् कुन्तीपुत्राद् धनंजयात् ॥ १८ ॥

मैं इस भूतलपर नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र अर्जुनके सिवा दूसरे किसी योद्धाको अपने समान नहीं देखता हूँ ॥ १८ ॥

स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।
न तु मां विवृतो युद्धे जातु युध्येत पाण्डवः ॥ १९ ॥

महाबुद्धिमान् पाण्डुकुमार अर्जुन अनेक दिव्यास्त्रोंका ज्ञान रखता है; परंतु वह मेरे सामने आकर कभी युद्ध नहीं कर सकेगा ॥ १९ ॥

अहं चैव क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत् ।
कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥ २० ॥

अर्जुनकी ही भाँति मैं भी यदि चाहूँ तो अपने शस्त्रबलसे देवता, मनुष्य, असुर तथा राक्षसों सहित इस सम्पूर्ण जगत्‌को क्षणभरमें मनुष्यशून्य कर दूँ ॥ २० ॥

न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप ।
तस्माद् योधान् हनिष्यामि प्रयोगेणायुतं सदा ॥ २१ ॥
एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन ।
न चेत् ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥ २२ ॥

परंतु नरेश्वर ! मैं पाण्डुके पुत्रोंको किसी तरह मार

नहीं करूँगा। कुरुनन्दन! यदि पाण्डव इस युद्धमें मुझे पहले ही नहीं मार डालेंगे तो मैं अपने अस्त्रोंद्वारा प्रतिदिन उनके पक्षके दस हजार योद्धाओंका वध करता हुआ मैं इस प्रकार उनकी सेनाका संहार करूँगा ॥ २१ ॥

सेनापतिरहं राजन् समयेनापरेण ते ।
भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि ॥ २२ ॥

राजन्! मैं अपनी इच्छाके अनुसार एक शर्तपर तुम्हारा सेनापति होऊँगा। उसके बदले दूसरी शर्त नहीं मानूँगा। उस शर्तको तुम मुझसे यहाँ सुन लो ॥ २२ ॥

कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते ।
स्पर्धते हि सदात्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे ॥ २३ ॥

पृथ्वीपते! या तो पहले कर्ण ही युद्ध करे या मैं ही युद्ध करूँ; क्योंकि यह सूतपुत्र सदा युद्धमें मुझसे अत्यन्त स्पर्धा रखता है ॥ २३ ॥

कर्ण उवाच

नाहं जीवति गाङ्गेये राजन् योत्स्ये कथंचन ।
हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥ २४ ॥

कर्ण बोला—राजन्! मैं गङ्गानन्दन भीष्मके जीते-जी किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। इनके मारे जानेपर ही गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ लडूँगा ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद् भूरिदक्षिणम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥ २५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भीष्मजीको प्रधान सेनापतिके पदपर विधिपूर्वक अभिषिक्त कर



अभिषेक हो जानेपर उनकी बड़ी शोभा हुई ॥ २५ ॥

ततो भेरीश्च शङ्खांश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
वादयामासुरव्यग्रा वादका राजशासनात् ॥ २६ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनकी आज्ञासे निर्भय होकर सैकड़ों और हजारों भेरियों तथा शङ्खोंको बजाया ॥ २६ ॥

सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः ।
प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षं रुधिरकर्दमम् ॥ २७ ॥

उस समय वीरोंके सिंहनाद तथा वाहनोंके नाना प्रकारके शब्द प्रकट होने लगे। बादलोंके बिना ही आकाशसे रक्तकी वर्षा होने लगी। उसकी कीच जम गयी ॥ २७ ॥

निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजबृंहितनिःस्वनाः ।
आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत ॥ २८ ॥

हाथियोंके चिग्घाड़नेके साथ ही बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान भयंकर शब्द होने लगे। धरती डोलने लगी। इन सब उत्पातोंने प्रकट होकर समस्त योद्धाओंके मानसिक उत्साहको नष्ट कर दिया ॥ २८ ॥

वाचश्चाप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे ।
शिवाश्च भयवादिन्यो नेदुर्दीप्ततरं भृशम् ॥ २९ ॥

अशुभ आकाशवाणी सुनायी देने लगी। आकाशसे उल्काएँ गिरने लगीं। भयकी सूचना देनेवाली सियारिनें बार-बार अमङ्गलसूचक शब्द करने लगीं ॥ २९ ॥

सैनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान् ।
तदैतान्युग्ररूपाणि अभवन् शतशो नृप ॥ ३० ॥

नरेश्वर! राजा दुर्योधनने जब गङ्गानन्दन भीष्मको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया, उसी समय ये सैकड़ों भयानक उत्पात प्रकट हुए ॥ ३० ॥

ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम् ।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान् धनिनो निष्कगोभुवा ॥ ३१ ॥
वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः ।
आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ।
स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह ॥ ३२ ॥

इस प्रकार शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले भीष्मको सेनापति बनाकर दुर्योधनने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उन्हें गौ, सुवर्णमुद्रा, भूमि आदि दक्षिणा दी। उन ब्राह्मणोंके विजयसूचक आशीर्वादोंद्वारा सम्मानित होकर अपने सैनिकोंसे घिरे हुए भीष्मजीको आगे करके भाइयोंके साथ हस्तिनापुरसे बाहर निकला और विशाल सैन्य-शिविरके साथ कुरुक्षेत्रमें गया ॥ ३१-३२ ॥

परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः ।
शिबिरं मापयामास समे देशे जनाधिपः ॥ ३३ ॥

जनमेजय! कर्णके साथ कुरुक्षेत्रमें जाकर दुर्योधनने

एक उत्तम प्रदेशमें शिविरके लिये भूमिको नपवाया। उपद्रवरहित मनोहर प्रदेशमें जहाँ घास और ईंधनकी

मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने।
यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ ॥ ३९ ॥

प्रचुरता थी, दुर्योधनकी सेनाका शिविर हस्तिनापुरकी भाँति सुशोभित होने लगा ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि भीष्मसैनापत्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें भीष्मका सेनापतिपदपर अभिषेकविषयक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

युधिष्ठिरके द्वारा अपने सेनापतियोंका अभिषेक, यदुवंशियोंसहित बलरामजीका आगमन तथा पाण्डवोंसे विदा लेकर उनका तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान

जनमेजय उवाच

आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्।
पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम् ॥ १ ॥
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम्।
समुद्रमिव गाम्भीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम् ॥ २ ॥
प्रजापतिमिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम्।
महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥
रणयज्ञे प्रतिभये स्वाभीले लोमहर्षणे।
दीक्षितं चिररात्राय श्रुत्वा तत्र युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥
किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
भीमसेनार्जुनौ वापि कृष्णो वा प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! महापराक्रमी पितामह गङ्गानन्दन महात्मा भीष्म सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे। समस्त राजाओंमें उनके समान उच्च स्थान किसीका न था। वे बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, क्षमामें पृथ्वीके समान, गम्भीरतामें समुद्रके समान, स्थिरतामें हिमवान्‌के समान, उदारतामें प्रजापतिके समान और तेजमें भगवान् सूर्यके समान थे। वे अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा देवराज इन्द्रके समान शत्रुओंका विनाश करनेवाले थे। उस समय जो अत्यन्त भयङ्कर तथा रोमाञ्चकारी संग्रामयज्ञ आरम्भ हुआ था, उसमें उन्होंने दस दिनोंतकके लिये दीक्षा ले ली थी। यह सब सुनकर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु युधिष्ठिरने क्या कहा? भीमसेन तथा अर्जुनने भी उसके बारेमें क्या कहा? अथवा भगवान् श्रीकृष्णने भी किस प्रकार व्यक्त किया?

वैशम्पायन उवाच

आपद्धर्मार्थकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः।
सर्वान् भ्रातॄन् समानीय वासुदेवं च शाश्वतम् ॥ ६ ॥
उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! आपत्कालिक धर्मके ज्ञानमें कुशल, वक्ताओंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरने उस समय सब भाइयों तथा सनातन भगवान् वासुदेवको बुलाकर यह सान्त्वनापूर्ण वचन कहा ॥ ६ ॥

पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिताः ॥ ७ ॥
पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति।
तस्मात् सप्तसु सेनासु प्रणेतॄन् मम पश्यत ॥ ८ ॥

तुम सब लोग सेनामें घूमकर अपनी सेनाओंका निरीक्षण करो और कवच आदिसे सुसज्जित होकर खड़े हो जाओ। सबसे पहले तुम्हारा पितामह भीष्मसे ही युद्ध होगा, इसलिये अपनी सात अक्षौहिणी सेनाओंके सेनापतियोंकी देखभाल करो ॥ ७-८ ॥

कृष्ण उवाच

यथार्हति भवान् वक्तुमस्मिन् काल उपस्थिते।
तथेदमर्थवद् वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भरतकुलभूषण! ऐसा अवसर उपस्थित होनेपर आपको जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही यह अर्थयुक्त बात आपने कही है।

रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम्।
नायकास्तव सेनाया अभिषिच्यन्तु सप्त वै ॥ १० ॥

महाबाहो! मुझे आपकी बात ठीक जँचती है। अब इस समय जो आवश्यक कर्तव्य है, उसका पालन कीजिये। अपनी सेनाके सात सेनापतियोंको यहाँ अभिषिक्त कीजिये ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम्।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिवम् ॥ ११ ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवं च मागधम्।
एतान् सप्त महाभागान् वीरान् युद्धाभिनन्दिनः ॥ १२ ॥
सेनाप्रणेतॄन् विधिवदभ्यषिञ्चद् युधिष्ठिरः।
सर्वसेनापतिं चात्र धृष्टद्युम्नं चकार ह ॥ १३ ॥
द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर

राजा द्रुपद विराट तथा वि... अभिमन्युकुमार धृष्टद्युम्न पृथ्वीपाल ... शिखण्डी और मत्स्यराज तथा ... इन सब युद्धाभिलाषी महात्मा वीरोंको युधिष्ठिर विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया और धृष्टद्युम्नके सम्पूर्ण सेनाओंका प्रधान सेनापति बना दिया था द्रोणाचार्य का अन्त करनेके लिये अग्निसे ... हुए थे ९६

सर्वोपपन्नेषु तेषु तु समस्तमास्ता महात्मनाम् ॥ १४ ॥
सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनंजयम्

तदनन्तर उन्होंने निद्राविजयी वीर धनंजयको उन समस्त महात्मा और सेनापतियोंका भी अधिपति बना दिया १

अर्जुनस्यापि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् ॥ १५ ॥
संकर्षणानुजः श्रीमान् महाबुद्धिर्जनार्दनः

अर्जुनके भी नेता और उनके घोड़ोंको भी नियन्त्रणमें रखनेवाले बलरामजीके छोटे भाई परम बुद्धिमान् श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण १

तद् दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ १६ ॥
प्राविशद् भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः
सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोल्मुकादिभिः ॥ १७ ॥
रौक्मिणेयेन युक्तश्च आहुकेन च वीर्यवान्
वृष्णिप्रवीरैरपरैरभिमान्यैश्च श्रीमता ॥ १८ ॥
अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः
नीलकौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ॥ १९ ॥
सिंहखेलगतिः श्रीमान् मदरक्तान्तलोचनः

राजन् तदनन्तर उस महान् संहारकारी युद्धको अत्यन्त सन्निकट और प्राय उपस्थित हुआ देख हलधर बलराम अक्रूर आदि ... गद, साम्ब, उल्मुक आदि ... रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न तथा आहुक और ... वृष्णिवंशी अन्य ... प्रमुख वीरोंसे घिरकर ... उनके साथ ... मरुद्गणोंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति सुशोभित हुए ... नीले रेशमी वस्त्र पहने कैलासशिखरके समान गौरवर्ण ... हुए थे २

तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ॥ २० ॥
उदतिष्ठत् तदा पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः
गाण्डीवधन्वा ये चान्ये राजानस्तत्र केचन ॥ २१ ॥

उन्हें देखते ही धर्मराज युधिष्ठिर महातेजस्वी श्रीकृष्ण भयंकर कर्म करनेवाले कुन्तीपुत्र भीमसेन तथा अन्य जो कोई भी राजा वहाँ विद्यमान थे वे सबके सब उठकर खड़े हो गये २०-२१

पूजयांचक्रिरे ते वै समायान्तं हलायुधम्
ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥ २२ ॥

एकत्र ... बलरामजीको आया देख सबने उनका सत्कार किया तदनन्तर पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने अपने हाथसे उनके हाथका स्पर्श किया २२

वासुदेवपुरोगास्तं सर्व एवाभ्यवादयन्
विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाद्य हलायुधः ॥ २३ ॥
युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिंदमः

श्रीकृष्ण आदि सब लोगोंने उन्हें प्रणाम किया ... बूढ़े राजा विराट और द्रुपदको प्रणाम करके शत्रुदमन बलराम युधिष्ठिरके पास बैठे २३

ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥ २४ ॥

फिर उन सब राजाओंके चारों ओर बैठ जानेपर रोहिणीनन्दन बलरामने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए कहा

भवितायं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः
दिष्टमेतद् ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २५ ॥

जान पड़ता है यह महाभयानक और दारुण नरसंहार



होगा ही ... दैवके इस विधानको मैं अटल मानता हूँ अब इसे टाला नहीं जा सकता २५

अस्माद् युद्धात् समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान्
अरोगानक्षतैर्देहैः पश्यामीति मतिर्मम ॥ २६ ॥

इस युद्धसे पार हुए आप सब सुहृदोंको मैं अक्षत शरीरसे युक्त और नीरोग देखूँगा ऐसा मेरा विचार है ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्वमसंशयम् ।
विमर्दश्च महान् भावी मांसशोणितकर्दमः ॥ २७ ॥

इसमें संदेह नहीं कि यहाँ जो क्षत्रियनरेश एकत्र हुए हैं उन सबको कालने अपना ग्रास बनानेके लिये पका लिया है। महान् जनसंहार होनेवाला है, जिसमें रक्त और मांसकी कीच जम जायगी ॥ २७ ॥

उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे ।
सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्तस्व मधुसूदन ॥ २८ ॥
पाण्डवा हि यथास्माकं तथा दुर्योधनो नृपः ।
तस्यापि क्रियतां साह्यं स पर्येति पुनः पुनः ॥ २९ ॥

मैंने एकान्तमें श्रीकृष्णसे बारंबार कहा था कि मधुसूदन ! अपने सभी सम्बन्धियोंके प्रति एक-सा बर्ताव करो; क्योंकि हमारे लिये जैसे पाण्डव हैं, वैसा ही राजा दुर्योधन है। उसकी भी सहायता करो। वह बारंबार अपने यहाँ चक्कर लगाता है ॥ २८-२९ ॥

तच्च मे नाकरोद् वाक्यं त्वदर्थे मधुसूदनः ।
निविष्टः सर्वभावेन धनंजयमवेक्ष्य ह ॥ ३० ॥

परंतु युधिष्ठिर ! तुम्हारे लिये ही मधुसूदन श्रीकृष्णने मेरी उस बातको नहीं माना है। वे अर्जुनको देखकर सब प्रकारसे उन्हींपर निछावर हो गये हैं ॥ ३० ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः ।
तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥ ३१ ॥

मेरा निश्चित विश्वास है कि इस युद्धमें पाण्डवोंकी अवश्य विजय होगी। भारत ! श्रीकृष्णका भी ऐसा ही संकल्प है ॥ ३१ ॥

न चाहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम् ।
ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥ ३२ ॥

मैं तो श्रीकृष्णके बिना इस सम्पूर्ण जगत्की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता; अतः ये केशव जो कुछ करना चाहते हैं, मैं उसीका अनुसरण करता हूँ ॥ ३२ ॥

उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ ।
तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥ ३३ ॥

भीमसेन और दुर्योधन—ये दोनों ही वीर मेरे शिष्य एवं गदायुद्धमें कुशल हैं; अतः मैं इन दोनोंपर एक-सा स्नेह रखता हूँ ॥ ३३ ॥

तस्माद् यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् ।
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान् नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥ ३४ ॥

इसलिये मैं सरस्वती नदीके तटवर्ती तीर्थोंका सेवन करनेके लिये चला जाऊँगा; क्योंकि मैं नष्ट होते हुए कुरुवंशियोंको इस अवस्थामें देखकर उनकी उपेक्षा नहीं कर सकूँगा ॥ ३४ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञाप्य च पाण्डवान् ।
तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३५ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु बलरामजी पाण्डवोंसे विदा ले मधुसूदन श्रीकृष्णको लौटाकर तीर्थयात्राके लिये चले गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि बलरामतीर्थयात्रागमने सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें बलरामजीकी तीर्थयात्राके लिये प्रस्थानविषयक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७ ॥

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मीका सहायता देनेके लिये आना, परंतु पाण्डव और कौरव दोनों पक्षोंके द्वारा कोरा उत्तर पाकर लौट जाना

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।
हिरण्यरोम्णो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥ १ ॥
आकृतीनामधिपतेर्भोजस्यातियशस्विनः ।
दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी समय अत्यन्त यशस्वी दाक्षिणात्य देशके अधिपति भोजवंशी तथा इन्द्रके सखा हिरण्यरोमा नामवाले आकृतियोंके स्वामी महात्मा भीष्मकका सगा पुत्र सम्पूर्ण दिशाओंमें विख्यात रुक्मी पाण्डवोंके पास आया ॥ १-२ ॥

यः किम्पुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः ।
कृत्स्नं शिष्यो धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥ ३ ॥

जिसने गन्धमादननिवासी किम्पुरुषप्रवर द्रुमका शिष्य होकर चारों पादोंसे युक्त सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी ॥ ३ ॥

यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा ।
शार्ङ्गेण च महाबाहुः सम्मितं दिव्यमक्षयम् ॥ ४ ॥

जिस महाबाहुने गाण्डीवधनुषके तेजके समान ही तेजस्वी विजय नामक धनुष इन्द्रदेवतासे प्राप्त किया था। वह दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न धनुष शार्ङ्गधनुषकी समानता करता था ॥ ४ ॥

सौम्येकैकशानि दिव्यानि धनूंषि दिवि धारितम् ।
शार्ङ्गं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः
प्राह तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त विख्यातेवाले देवताओंके ये तीन ही उत्तम दिव्य माने गये हैं । उनमेंसे गाण्डीव धनुष वरुणका, विजय धनुष इन्द्रका तथा शार्ङ्ग नामक दिव्य वैष्णव धनुष भगवान् विष्णुका बताया गया है ॥

धारयामास तद् कृष्णः … वरुणात्स्ययावहम् ।
गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः ॥ ६ ॥

वसुदेवाको भयभीत करनेवाले उस शार्ङ्ग धनुषको भगवान् श्रीकृष्णने धारण किया और वरुणदेवसे प्राप्त इन्द्रकुमार अर्जुनने खाण्डववनको अग्निदेवसे प्राप्त किया था ॥ ६ ॥

दुमाद् रुक्मी महातेजा विजयं समवाप्तवान् ।
संछिद्य भौमस्य पाशान् निहत्य मुरमोजसा ॥ ७ ॥
निर्जित्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले ।
षोडश स्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च ॥ ८ ॥
प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम् ।

महातेजस्वी रुक्मीने द्रुमसे विजय नामक धनुष पाया था । भगवान् श्रीकृष्णने अपने बल और पराक्रमसे मुर दानवके पाशोंका उच्छेद करके भूमिपुत्र नरकासुरको जीतकर वहाँ उसके यहाँसे अदितिके कुण्डल, सोलह हजार स्त्रियों तथा नाना प्रकारके रत्नोंको उपलब्ध किया था । उसी समय उन्होंने शार्ङ्ग नामक उत्तम धनुष भी प्राप्त हुआ था ॥

रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघसमस्वनम् ॥ ९ ॥
विभीषयन्निव जगत् पाण्डवानभ्यवर्तत ।

रुक्मी मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले विजय नामक धनुषको पाकर मानो सम्पूर्ण जगत्‌को भयभीत सा करता हुआ पाण्डवोंके यहाँ आया ॥

नामृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १० ॥
रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता ।

यह वही वीर रुक्मी था, जो अपने बाहुबलके घमंडमें आकर पहले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा किये गये रुक्मिणीके अपहरणको नहीं सह सका था ॥

कृत्वा प्रतिज्ञां नाहत्वा निवर्तिष्ये जनार्दनम् ॥ ११ ॥
ततोऽन्वधावद् वार्ष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।

यह सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ था । उसने यह प्रतिज्ञा करके कि मैं वृष्णिवंशी श्रीकृष्णको मारे बिना अपने नगरको नहीं लौटूँगा, उनका पीछा किया था ॥

सेनया चतुरङ्गिण्या महत्या दूरपातया ॥ १२ ॥
विचित्रायुधवर्मिण्या गङ्गयेव प्रवृद्धया ।

उस समय उसके साथ विचित्र आयुधों और कवचोंसे सुसज्जित दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेमें समर्थ तथा बढ़ी हुई गङ्गाके समान विशाल चतुरंगिणी सेना थी ॥

स समासाद्य वार्ष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १३ ॥
व्यंसितो व्रीडितो राजन् नाजगाम स कुण्डिनम् ।

राजन् ! योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचकर उनसे पराजित होकर वह लज्जित हो गया, फिर कुण्डिनपुरको नहीं गया ॥

यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा ॥ १४ ॥
तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम् ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला रुक्मी जहाँ युद्धमें श्रीकृष्णसे पराजित हुआ था, वहीं उसने भोजकट नामक उत्तम नगर बसाया ॥

सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना ॥ १५ ॥
पुरं तद् भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप ।

नरेश्वर ! बहुत-से हाथी-घोड़ोंवाली विशाल सेनासे सम्पन्न वह भोजकट नामक नगर सम्पूर्ण भूमण्डलमें विख्यात है ॥

स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः ॥ १६ ॥
अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान् क्षिप्रमागमत् ।

महापराक्रमी भोजराज रुक्मी एक अक्षौहिणी विशाल सेनासे घिरा हुआ शीघ्रतापूर्वक पाण्डवोंके पास आया ॥

ततः स कवची खड्गी शरी धन्वी तली रथी ॥ १७ ॥
ध्वजेनादित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम् ।

उसने कवच, खड्ग, धनुष, दस्ताने और बाण धारण किये सूर्यके समान तेजस्वी ध्वजा फहराते हुए रथसे पाण्डवोंकी विशाल सेनामें प्रवेश किया ॥

विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेप्सया ॥ १८ ॥
युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत् ।

वह भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेकी इच्छासे आया था । जब पाण्डवोंको उसके आगमनकी सूचना दी गयी, तब राजा युधिष्ठिरने आगे बढ़कर उसकी अगवानी की और उसका यथायोग्य आदर-सत्कार किया ॥

स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसत्कृतः ॥ १९ ॥
प्रतिपूज्य तु तान् सर्वान् विश्रान्तः सहसैनिकः ।

पाण्डवोंने रुक्मीका विधिपूर्वक आदर-सत्कार करके उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । रुक्मीने भी उन सबको प्रेमपूर्वक अपनाकर सैनिकोंसहित विश्राम किया ॥

उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ २० ॥
सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव ।
करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥ २१ ॥

तदनन्तर वीरोंके बीचमें बैठकर उसने कुन्तीकुमार अर्जुनसे कहा—'पाण्डुनन्दन ! यदि तुम डरे हुए हो तो मैं

युद्धमें तुम्हारी सहायताके लिये आ पहुँचा हूँ । मैं इस महायुद्धमें तुम्हारी वह सहायता करूँगा, जो तुम्हारे शत्रुओंके लिये असह्य हो उठेगी ॥ २१ ॥

न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ।
हनिष्यामि रणे भागं यमं मे दास्यसि पाण्डव ॥ २२ ॥

इस जगत्‌में मेरे समान पराक्रमी दूसरा कोई पुरुष नहीं है । पाण्डुकुमार ! तुम शत्रुसेनाका जो भाग मुझे सौंप दोगे, मैं समरभूमिमें उसका संहार कर डालूँगा ॥ २२ ॥

अस्ति द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः ।
अथवा सर्वे एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ॥ २३ ॥
निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम् ।

मेरे हिस्सेमें द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा वीर भीष्म एवं कर्ण ही क्यों न हों, किंतु वे जीवित नहीं लौटेंगे । अथवा यहाँ पधारे हुए ये सब राजा चुपचाप खड़े रहें, मैं अकेला ही समरभूमिमें तुम्हारे सारे शत्रुओंका वध करके तुम्हें पृथ्वीका राज्य अर्पित कर दूँगा ॥ २३ ॥

इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च संनिधौ ॥ २४ ॥
शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः ।
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजं च पाण्डवम् ॥ २५ ॥
उवाच धीमान् कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम् ।

धर्मराज युधिष्ठिर तथा भगवान् श्रीकृष्णके समीप अन्य सब समागत भूपति सुन रहे थे । रुक्मीके ऐसा कहनेपर परम बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुनने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरकी ओर देखते हुए मित्रभावसे हँसकर कहा— ॥ २४-२५ ॥

कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ॥ २६ ॥
द्रोणं व्यपदिशञ्छिष्यो वासुदेवसहायवान् ।
भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः ॥ २७ ॥

'वीर ! मैं कौरवोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ । विशेषतः महाराज पाण्डुका पुत्र हूँ । आचार्य द्रोणको अपना गुरु बताता हूँ और स्वयं उनका शिष्य कहलाता हूँ । इसके सिवा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हमारे सहायक हैं और मैं अपने हाथमें गाण्डीव धनुष धारण करता हूँ । ऐसी स्थितिमें मैं अपनेको डरा हुआ कैसे कह सकता हूँ ॥ २६-२७ ॥

युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः ।
सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम ॥ २८ ॥

'वीरवर ! कौरवोंकी घोषयात्राके समय जब मैंने महाबली गन्धर्वोंके साथ युद्ध किया था, उस समय कौन-सा मित्र मेरी सहायताके लिये आया था ? ॥ २८ ॥

तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले ।
खाण्डवे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ २९ ॥

'खाण्डववनमें देवताओं और दानवोंसे परिपूर्ण भयंकर युद्धमें जब मैं अपने प्रतिपक्षियोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय मेरा कौन सहायक था ? ॥ २९ ॥

निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः ।
तत्र मे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ ३० ॥

'जब निवातकवच तथा कालकेय नामक दानवोंके साथ छिड़े हुए युद्धमें मैं अकेला ही लड़ रहा था, उस समय मेरी सहायताके लिये कौन आया था ? ॥ ३० ॥

तथा विराटनगरे कुरुभिः सह संगरे ।
युध्यतो बहुभिस्तात कः सहायोऽभवन्मम ॥ ३१ ॥

'इसी प्रकार विराटनगरमें जब कौरवोंके साथ होनेवाले संग्राममें मैं अकेला ही बहुतेरे वीरोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय मेरा सहायक कौन था ? ॥ ३१ ॥

उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
वरुणं पावकं चैव कृपं द्रोणं च माधवम् ॥ ३२ ॥
धारयन् गाण्डिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम् ।
अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिबृंहितः ॥ ३३ ॥
कथमस्मद्विधो ब्रूयाद् भीतोऽस्मीति यशोहरम् ।
वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥ ३४ ॥

'मैंने युद्धमें सफलताके लिये रुद्र, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य तथा भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना की है । मैं तेजस्वी, दृढ एवं दिव्य गाण्डीव धनुष धारण करता हूँ । मेरे पास अक्षय बाणोंसे भरे हुए तरकस मौजूद हैं और दिव्यास्त्रोंके ज्ञानसे मेरी शक्ति बढ़ी हुई है । नरश्रेष्ठ ! फिर मेरे-जैसा पुरुष साक्षात् वज्रधारी इन्द्रसे भी 'मैं डरा हुआ हूँ' यह सुयशका नाश करनेवाला वचन कैसे कह सकता है ? ॥ ३२—३४ ॥

नास्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नास्ति मे ।
यथाकामं यथायोग्यं गच्छ वान्यत्र तिष्ठ वा ॥ ३५ ॥

'महाबाहो ! मैं डरा हुआ नहीं हूँ तथा मुझे सहायककी भी आवश्यकता नहीं है । आप अपनी इच्छाके अनुसार जैसा उचित समझें, अन्यत्र चले जाइये या यहीं रहिये' ॥ ३५ ॥

रुक्मीका उपहास

(संजय उवाच)
तथोक्त्वा वचनं तस्य विजयस्य हि धीमतः ।
विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसंनिभाम् ।
दुर्योधनमुपागच्छत् तथैव भरतर्षभ ॥ ३६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! परम बुद्धिमान् अर्जुनका यह वचन सुनकर रुक्मी अपनी समुद्र-सदृश विशाल सेनाको लौटाकर उसी प्रकार दुर्योधनके पास गया ॥ ३६ ॥

तथैव चाभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः ।
प्रत्याख्यातश्च तेनापि स तदा शूरमानिना ॥ ३७ ॥

दुर्योधनसे मिलकर राजा रुक्मीने उससे भी वैसी ही

रहा था। तब अपनेको शूरवीर माननेवाले दुर्योधनने भी उसकी सहायता लेनेसे इनकार कर दिया।

एवमेव तु महाराज तस्मात् युद्धात् प्रमुखात्
रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिप ॥ ३९ ॥

महाराज! इस युद्धसे दो ही वीर अलग रहे थे—एक तो वृष्णिवंशी रोहिणीनन्दन बलराम और दूसरा राजा रुक्मी ॥

गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा
उपाविशन् पाण्डवेयाः मन्त्राय पुनरेव च ॥ ३९ ॥

बलरामजीके तीर्थयात्रामें और भीष्मकपुत्र रुक्मीके अपने नगरको चले जानेपर पाण्डवोंने पुनः गुप्त मन्त्रणाके लिये बैठक की।

समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला
शुशुभे तारकाचित्रा द्यौश्चन्द्रेणेव भारत ॥ ४० ॥

भारत! राजाओंसे भरी हुई धर्मराजकी वह सभा तारोंसे चित्रित एवं चन्द्रमासे सुशोभित आकाशकी भाँति सुशोभित हुई।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि बलरामतीर्थयात्रागमने अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें बलरामजीका तीर्थयात्राके लिये गमनविषयक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४१ श्लोक हैं)

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय

धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

जनमेजय उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ
किमकुर्वन्त कुरवः कालेनाभिप्रचोदिताः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! जब इस प्रकार कुरुक्षेत्रमें सेनाएँ मोर्चा बाँधकर खड़ी हो गयीं, तब कालप्रेरित कौरवोंने क्या किया?

वैशम्पायन उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ
धृतराष्ट्रो महाराज संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—भरतकुलभूषण महाराज! जब वे सारी सेनाएँ कुरुक्षेत्रमें व्यूहरचनापूर्वक डट गयीं, तब धृतराष्ट्रने संजयसे कहा।

एहि संजय सर्वं मे आचक्ष्वानवशेषतः
सेनानिवेशे यद् वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ३ ॥

संजय! यहाँ आओ और कौरवों तथा पाण्डवोंकी सेनाके पड़ावपर जो कुछ हुआ हो, वह सब मुझे पूर्णरूपसे बताओ।

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम्
यदहं जानमानोऽपि युद्धदोषान् क्षयोदयान् ॥ ४ ॥
तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम्
न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः ॥ ५ ॥

मैं तो समझता हूँ दैव ही प्रबल है, उसके सामने पुरुषार्थ व्यर्थ है; क्योंकि मैं युद्धके दोषोंको अच्छी तरह जानता हूँ, वे घोर नरसंहार उपस्थित करनेवाले हैं। यह भी समझता हूँ, तथापि शठताकी बुद्धि रखनेवाले कपटद्यूत-

खेलनेवाले अपने पुत्रको न तो मैं वशमें कर सकता हूँ और न अपना हित-साधन ही कर पाता हूँ।

भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी
दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते ॥ ६ ॥

सूत! मेरी बुद्धि युद्धके दोषोंको बारंबार देखती और समझती है, परंतु दुर्योधनसे मिलनेपर पुनः वह बदल जाती है।

एवं गते वै यद् भावि तद् भविष्यति संजय
क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः ॥ ७ ॥

संजय! ऐसी दशामें जो कुछ होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा। कहते हैं, युद्धमें शरीरका त्याग करना क्षत्रियोंके लिये धर्म है और इसकी प्रशंसा की गयी है।

संजय उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथेच्छसि
न तु दुर्योधने दोषमिममासक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

संजयने कहा—महाराज! आपने जो प्रश्न पूछा है और आप जैसा चाहते हैं, वह आपके योग्य ही है; परंतु आपको युद्धका सारा दोष दुर्योधनपर ही नहीं मढ़ना चाहिये।

शृणुष्वानवशेषेण वदतो मम पार्थिव
य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः
न स कालं न वा देवानेनसा गन्तुमर्हति ॥ ९ ॥

भूपाल! मैं सारी बातें पूर्णरूपसे बता रहा हूँ, आप सुनिये। जो मनुष्य अपने बुरे आचरणसे अशुभ फल पाता है, वह काल अथवा देवताओंपर दोषारोपण करनेका अधिकारी नहीं है।

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत्
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ १० ॥

महाराज ! जो पुरुष दूसरे मनुष्योंके साथ जैसा निन्द्य नीच व्यवहार करता है, वह [illegible] मरता [illegible] सारहस्य सब लोगोंके लिये मान्य है ।

धिक्कारं मनुजश्रेष्ठ [illegible]
[illegible] ॥

नरश्रेष्ठ ! [illegible] और [illegible] अपमानके शिकार हुए [illegible] यों हित उन पाण्डव ने केवल आपका मुँह ही [illegible] इस लिये हैं ।

हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम् ।
वैशसं समरे वृत्तं यत् तन्मे शृणु सर्वशः ॥

समरमें घोड़ों, हाथियों [illegible] तेजस्वी राजाओंका [illegible] नाश प्राप्त हुआ है, [illegible] ध्यानसे मुझसे सुनिये ।

स्थिरो भूत्वा महाप्राज्ञ सर्वलोकक्षयावहम् ।
यथाभूतं महायुद्धे श्रुत्वा चैकमना भव ।

महाप्राज्ञ ! महायुद्धमें [illegible] लोगोंके [illegible]

सूचित करनेवाला जो-जो वृत्तान्त जैसे-जैसे घटित हुआ है, वह स्थिर होकर सुनिये और सुनकर एकचित्त हो [illegible]

न हीश्वरः कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः ।
अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥ १४ ॥

क्योंकि मनुष्य पुण्य [illegible] शुभाशुभकर्मोंके [illegible] में स्वतन्त्र कर्ता नहीं है; क्योंकि [illegible] अधीन है उसे तो कठपुतलीकी भाँति [illegible] करना पड़ता है ।

केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचिदेव यदृच्छया ।
पूर्वकर्मभिरप्यन्ये त्रैधमेतत् प्रदृश्यते ।
तस्मादनर्थमापन्नः स्थिरो भूत्वा महामते ॥ १५ ॥

कोई ईश्वरकी प्रेरणासे [illegible] करते हैं, कुछ लोग आकस्मिक [illegible] कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं तथा दूसरे [illegible] पूर्वकर्मोंकी प्रेरणासे [illegible] करते हैं । इस प्रकार ये [illegible] त्रिविध [illegible] देखी जाती है । इसलिये [illegible] आप [illegible] स्थिरचित्त होकर [illegible] सुनिये ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि [illegible] एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत सैन्यनिर्याणपर्वमें [illegible] एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ।

उलूकदूतागमनपर्व

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजना और उनसे कहनेके लिये संदेश देना

संजय उवाच

हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! महात्मा पाण्डवोंने जब हिरण्वती नदीके तटपर [illegible] डाल दिया, तब कौरवोंने भी विधिपूर्वक [illegible] अपना [illegible] डाली ।

तत्र दुर्योधनो राजा निवेश्य बलमोजसा ।
सम्मानयित्वा नृपतीन् न्यस्य गुल्मांस्तथैव च ॥ २ ॥

राजा दुर्योधन वहाँ अपनी [illegible] सेना ठहराकर समस्त राजाओंका आदर करके उन सबकी रक्षाके लिये [illegible] टुकड़ियाँ तैनात कर दीं ।

आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चापि सौबलम् ॥ ३ ॥
आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत ।

भारत ! इस प्रकार योद्धाओंकी रक्षाकी व्यवस्था करके राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनिको बुलाकर गुप्त मन्त्रणा की ।

तत्र दुर्योधनो राजा कर्णेन सह भारत ॥ ४ ॥
सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ।
सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ॥ ५ ॥
आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ।

नरश्रेष्ठ भरतनन्दन नरेश्वर ! दुर्योधनने कर्ण, भाई दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनिसे सम्भाषण एवं परामर्श करके उलूकको एकान्तमें बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान् सहसोमकान् ॥ ६ ॥
गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ।
इदं तत् समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ॥ ७ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयंकरम् ।

'द्यूतकुशल शकुनिके पुत्र उलूक ! तुम सोमकों और पाण्डवोंके पास जाओ तथा वहाँ पहुँचकर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके सामने ही उनसे मेरा यह संदेश कहो—'जिसके लिये [illegible] विचार चल रहा था, वह सम्पूर्ण जगत्‌के लिये

सोमक लेकर कौरव-पाण्डवोंका युद्ध अब सिर पर आ पहुँचा है ॥ ७ ॥

यदेतत् कत्थनावाक्यं सञ्जयो महदब्रवीत् ॥ ८ ॥
वासुदेवसहायस्य गर्जतो भ्रातृभिः सह ते।
मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥
यथा च प्रतिज्ञातं तत् सर्वं क्रियतामिति।

कुन्तीकुमार युधिष्ठिर! श्रीकृष्णकी सहायता पाकर भाइयोंके साथ गर्जना करते हुए तुमने संजयसे जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें कही थीं, उन सबको सत्य करके दिखानेका यह अवसर आ गया है। तुमलोगोंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उन सबको पूर्ण करो ॥ ८-१० ॥

ज्येष्ठं तत्र कौन्तेय भूयश्चास्य वचस्तथा ॥ १० ॥

उलूक! तुम मेरी ओरसे कुन्तीके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरके सामने जाकर इस प्रकार कहना—

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः।
कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥ ११ ॥

भरत! तुम तो अपने सभी भाइयों, सोमकों और केकयोंसहित बड़े धर्मात्मा बनते हो। धर्मात्मा होकर अधर्ममें कैसे मन लगा है? ॥ ११ ॥

य इच्छसि जगत् सर्वं नश्यमानं नृशंसवत्।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः ॥ १२ ॥

मेरा तो ऐसा विश्वास था कि तुमने समस्त प्राणियोंको अभयदान दे दिया है, परंतु इस समय तुम एक निर्दयी मनुष्यकी भाँति सम्पूर्ण जगत्का विनाश देखना चाहते हो ॥ १२ ॥

श्रूयते हि पुरा गीतः श्लोकोऽयं भरतर्षभ।
प्रह्लादेनाथ भद्रं ते हृते राज्ये तु दैवतैः ॥ १३ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुम्हारा कल्याण हो। सुना जाता है कि पूर्वकालमें जब देवताओंने प्रह्लादका राज्य छीन लिया था, तब उन्होंने इस श्लोकका गान किया था ॥ १३ ॥

यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुराध्वज इवोच्छ्रितः।
प्रच्छन्नानि च पापानि बैडालं नाम तद् व्रतम् ॥ १४ ॥

देवताओ! साधारण ध्वजकी भाँति जिसकी धर्मध्वजा सदा ऊँचेतक फहराती रहती है, परंतु जिसके द्वारा गुप्तरूपसे पाप भी होते रहते हैं, उसके उस आचरणको बिडालव्रत कहते हैं ॥ १४ ॥

अत्र ते वर्तयिष्यामि आख्यानमिदमुत्तमम्।
कथितं नारदेनेह पितुर्मम नराधिप ॥ १५ ॥

नरेश्वर! इस विषयमें तुम्हें यह उत्तम आख्यान सुनाता हूँ, जिसे नारदजीने मेरे पिताजीसे कहा था ॥ १५ ॥

मार्जारः किल दुष्टात्मा निश्चेष्टः सर्वकर्मसु।
ऊर्ध्वबाहुः स्थितो राजन् गङ्गातीरे कदाचन ॥ १६ ॥

राजन्! यह प्रसिद्ध है कि किसी समय एक दुष्ट बिलाव दोनों भुजाएँ ऊपर किये गङ्गाजीके तटपर खड़ा रहा। वह किसी भी प्राणीके लिये तनिक भी चेष्टा नहीं करता था ॥ १६ ॥

स वै कृत्वा मनःशुद्धिं प्रत्ययार्थं शरीरिणाम्।
करोमि धर्ममित्याह सर्वानेव शरीरिणः ॥ १७ ॥

इस प्रकार समस्त देहधारियोंपर विश्वास जमानेके लिये वह सभी प्राणियोंसे यही कहा करता था कि अब मैं मनकी शुद्धि करके धर्मका आचरण करता हूँ ॥ १७ ॥

तस्य कालेन महता विश्रम्भं जग्मुरण्डजाः।
समेत्य च प्रशंसन्ति मार्जारं तं विशाम्पते ॥ १८ ॥

राजन्! दीर्घकालके बाद उस बिलावपर पक्षियोंने विश्वास कर लिया और वे उसके पास आकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ १८ ॥

पूज्यमानस्तु तैः सर्वैः पक्षिभिः पक्षिभोजनः।
आत्मकार्यं कृतं मेने चर्यायाश्च कृतं फलम् ॥ १९ ॥

पक्षियोंको अपना आहार बनानेवाला वह बिलाव जब उन समस्त पक्षियोंद्वारा अधिक आदर-सत्कार पाने लगा, तब उसने यह समझ लिया कि मेरा काम बन गया और मुझे धर्माचरणका भी अभीष्ट फल प्राप्त हो गया ॥ १९ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य तं देशं मूषिका ययुः।
ददृशुस्तं च ते तत्र धार्मिकं व्रतचारिणम् ॥ २० ॥

तदनन्तर बहुत समयके बाद उस स्थानपर चूहे भी गये और उन्होंने वहाँ व्रतका पालन करनेवाले उस धर्मात्मा बिलावको देखा ॥ २० ॥

कार्येण महता युक्तं दम्भयुक्तेन भारत।
तेषां मतिरियं राजन्नासीत् तत्र विनिश्चये ॥ २१ ॥

भारत! दम्भयुक्त महान् कर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए उस बिलावको देखकर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥

बहुमित्रा वयं सर्वे तेषां नो मातुलो ह्ययम्।
रक्षां करोतु सततं वृद्धबालस्य सर्वशः ॥ २२ ॥

हम सब लोगोंके बहुत-से शत्रु हैं, अतः अब यह बिलाव मामा होकर रहे और हमारे यहाँ जो बूढ़े तथा बालक हैं, उन सबकी सदा रक्षा करता रहे ॥ २२ ॥

उपगम्य तु ते सर्वे बिडालमिदमब्रुवन्।
भवत्प्रसादादिच्छामश्चर्तुं चैव यथासुखम् ॥ २३ ॥
भवान् नो गतिरव्यग्रा भवान् नः परमः सुहृत्।
ते वयं सहिताः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ २४ ॥

यह सोचकर वे सभी उस बिलावके पास गये और इस प्रकार बोले—मामाजी! हम सब लोग आपकी कृपासे सुख-

पूर्वक विचरता चाहते हैं। आप ही इस निर्भय आश्रय हैं और आप ही हमारे परम सुहृद् हैं। हम सब लोग एक साथ सम्मिलित होकर आपकी शरणमें आये हैं।

भवान् धर्मपरो नित्यं भवान् धर्म व्यवस्थितः
स नो रक्ष महाप्राज्ञ नित्यशस्त्विव पक्षपः ॥ ॥

आप सदा धर्मपरायण रहते हैं और धर्ममें ही आपकी स्थिति है। महामते! जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें।

एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्मूषिकैः स विडालकः
प्रत्युवाच ततः सर्वान् मूषिकान् मूषिकान्तकृत् ॥ ॥
द्वयोर्योगं न पश्यामि तपसो रक्षणस्य च
अवश्यं तु मया कार्यं वचनं भवतां हितम् ॥ ५७ ॥

उन समस्त चूहोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर चूहोंके लिये यमराजस्वरूप उस बिलावने उन सबको इस प्रकार उत्तर दिया—मैं तपस्या भी करूँ और तुम्हारी रक्षा भी—इन दोनों कामोंका परस्पर सम्बन्ध मुझे दिखायी नहीं देता है—ये दोनों काम एक साथ नहीं चल सकते हैं; तथापि मुझे तुमलोगोंके हितकी बात भी अवश्य करनी चाहिये।

युष्माभिरपि कर्तव्यं वचनं मम नित्यशः
तपसास्मि परिश्रान्तो दृढं नियममास्थितः ॥ ॥
न चापि गमने शक्तिं काञ्चित् पश्यामि चिन्तयन्
सोऽस्मि नेयः सदा तात नदीकूलमितः परम् ॥

तुम्हें भी प्रतिदिन मेरी एक आज्ञाका पालन करना होगा। मैं तपस्या करके बहुत थक गया हूँ और दृढ़तापूर्वक व्रत-नियमके पालनमें लगा रहता हूँ। बहुत सोचनेपर भी मुझे अपनेमें चलने-फिरनेकी शक्ति नहीं दिखायी देती; अतः तुम्हें सदा मुझे यहाँसे नदीके तटतक पहुँचाना होगा।

तथेति तं प्रतिज्ञाय मूषिका भरतर्षभ
वृद्धबालमथो सर्वे मार्जाराय न्यवेदयन् ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ! 'बहुत अच्छा' कहकर चूहोंने बिलावकी आज्ञाका पालन करनेके लिये हामी भर ली और बूढ़े तथा बालकोंसहित अपना सारा परिवार उस बिलावको सौंप दिया।

ततः स पापो दुष्टात्मा मूषिकानथ भक्षयन्
पीवरश्च सुवर्णश्च दृढबन्धश्च जायते ॥ ३ ॥

फिर तो वह पापी एवं दुष्टात्मा बिलाव प्रतिदिन चूहोंको खा-खाकर मोटा और सुन्दर होने लगा। उसके अङ्गोंकी बनावट बड़ी मजबूत हो गयी।

मूषिकाणां गणश्चात्र भृशं संक्षीयतेऽथ स
मार्जारो वर्धते चापि तेजोबलसमन्वितः ॥ ६२ ॥

इधर चूहोंकी संख्या बड़े वेगसे घटने लगी और यह बिलाव तेज और बलसे सम्पन्न हो प्रतिदिन बढ़ने लगा।

ततस्ते मूषिकाः सर्वे समेत्यान्योन्यमब्रुवन्
मातुलो वर्धते नित्यं वयं क्षीयामहे भृशम् ॥ ६३ ॥

तब चूहे परस्पर मिलकर एक दूसरेसे कहने लगे—भाइयो! क्या कारण है कि मामा तो नित्य मोटे-ताजे होते जा रहे हैं और हमारी संख्या बड़े वेगसे घटती जा रही है?

ततः प्राज्ञतमः कश्चिद् डिण्डिको नाम मूषिकः
अब्रवीद् वचनं राजन् मूषिकाणां महागणम् ॥ ६४ ॥
गच्छतां वो नदीतीरं सहितानां विशेषतः
पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि सहैव मातुलेन तु ॥ ६५ ॥

राजन्! उन चूहोंमें डिण्डिक नामवाला चूहा एक-से अधिक समझदार था। उसने चूहोंके महान् समुदायसे इस प्रकार कहा—तुम सब लोग विशेष रूपसे एक साथ नदीके तटपर जाओ। पीछेसे मैं भी मामाके साथ ही चला आऊँगा।

साधु साध्विति ते सर्वे पूजयाञ्चक्रिरे द्विजम्
चक्रुश्चैव यथान्यायं डिण्डिकस्य वचस्तथा ॥ ६६ ॥

'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर सबने डिण्डिककी बड़ी प्रशंसा की और उसीके कथनानुसार न्यायोचित रूपसे उन्होंने उसके वचनोंका पालन किया।

अविज्ञानात् ततः सोऽथ डिण्डिकं ह्युपभुक्तवान्
ततस्ते सहिताः सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ॥ ६७ ॥

बिलावको चूहोंकी इस कार्यवाहीका कुछ पता नहीं था; अतः वह डिण्डिकको भी खा गया। तदनन्तर एक दिन सब चूहे एक साथ मिलकर आपसमें सलाह करने लगे।

तत्र वृद्धतमः कश्चित् कोलिको नाम मूषिकः
प्राब्रवीद् वचनं राजन् ज्ञातिमध्ये यथातथम् ॥ ६८ ॥

उनमें कोलिक नामवाला एक बहुत बूढ़ा चूहा था। उसने अपने भाई-बन्धुओंके बीच पूरा-पूरा यथार्थ बात बतायी—

न मातुलो धर्मकामश्छद्ममात्रं कृता शिखा
न मूलफलभक्षस्य विष्ठा भवति लोमशा ॥ ६९ ॥

भाइयो! मामाको धर्मकी कामना नहीं है। उसने हम-जैसे लोगोंको धोखा देनेके लिये ही चोटी रख ली है। जो फल-मूल खानेवाला है, उसकी विष्ठामें बाल नहीं होते।

अस्य गात्राणि वर्धन्ते गणश्च परिहीयते
अद्य सप्ताष्टदिवसान् डिण्डिकोऽपि न दृश्यते ॥ ७० ॥

इसके अङ्ग दिनों-दिन हृष्ट-पुष्ट होते जाते हैं और हमारा गण दिन-दिन घटता जा रहा है। आज सात-

बात दिखेंगे कि एकका भी पतन नहीं हो रहा है।

पराक्रमेण ... मुखेन ... [illegible]

विराटं ... त्वा ... यथायथम् ॥ ४ ॥

कौरवोंकी यह बात सुनकर सब बूढ़े भला ... और वह दुरात्मा विराट भी ... यह देखकर जैसे आया था वैसे ... ॥

तथा त्वमपि दुष्प्रज्ञः ... समारूढ़

वारसि ... तथा विराटो मुधिष्ठिर ॥ ५ ॥

दुरात्मन्! तुमने भी इसी प्रकार ... धारण कर रखा है ... तुमने विराटने धर्मोंपलक्षका ढोंग रच रक्खा ... इसी प्रकार तुमने भी ... धर्मोंकी ... बने फिरते हो।

... लिङ्गं ते ... कर्म ...

... सर्वलोकस्य वेदाखोपगमनं ते ॥ ६ ॥

तुम्हारी ... तो कुछ और है परंतु कर्म कुछ और ही दिखायी देता है ... धर्मध्वज और ... लोगोंको दिखानेके लिये पाखण्ड ... है।

त्यक्त्वा ... राजन् ... समाश्रित

कुरु ... सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि न धर्मे ॥ ७ ॥

राजन्! ... तुम ... धर्म ... कर्म करो।

... पृथिवीं लब्ध्वा ...

देहि दानं द्विजातिभ्यः पितृभ्यश्च यथोचितम् ॥ ८ ॥

... अपने बाहुबलसे इस पृथ्वीका राज्य प्राप्त करके तुम ब्राह्मणोंको दान दो और पितरोंको उनका यथोचित ... करो ॥ ४५ ॥

क्लिष्टा ... मातुर्मोदं ... स्थितः

प्रमार्जस्व रणे जित्वा सम्मानं परमावह ॥ ९ ॥

तुम्हारी माता ... कष्ट भोग रही है ... माताके ... आँसू पोंछो और युद्धमें विजय प्राप्त करके परम सम्मानके भागी बनो।

... सुत्रा ... [illegible]

युद्धायाह्वयसे ... ॥ ४७ ॥

हमने केवल ... परंतु हमने प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी ... इसलिये ... दी है कि पाण्डवोंको किसी प्रकार कुपित कर ... युद्ध करनेका अवसर प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

... युद्धायासस्य ... विदुरस्य च

... च पुत्रे दाह ... पुत्रको भय ॥ ४८ ॥

तुम्हारे लिये ही मैंने दुरात्मा विदुरका परित्याग ... किया है ... अपने जलाने आदिकी घटनाका स्मरण कर और अब भी ... जाओ।

यत्र कृष्णमवोचस्त्वं ... इदं सर्वं

... स्थितो राजन् शमाय समरय च ॥ ॥

... समागते ... नराधिप

एतदर्थं मया सर्वं कृतोद्योग युधिष्ठिर ॥ ॥

तुमने ... लाये हुए श्रीकृष्णको ... यह संदेश दिलाया कि राजन्! मैं शान्ति भी ... युद्ध ... के लिये तैयार हूँ ... उस ... यह उपयुक्त अवसर आ गया है ... युधिष्ठिर ... मैंने यह सब कुछ किया है।

किं नु युद्धात् ... क्षत्रियो बहु मन्यते

किं च ... क्षत्रियकुले जातः सम्मानितो भुवि ॥ ॥

... क्षत्रिय युद्धसे ... बढ़कर किस लाभको महत्त्व देता है ... तुमने भी तो क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होकर ... इस भूतलपर ख्याति प्राप्त की है।

द्रोणाचार्यात् ... कृपाच्च ... लब्ध्वा

तुल्ययोनौ समयती वासुदेवं समाश्रित ॥ ॥

... द्रोणाचार्य और कृपाचार्यसे अस्त्र-विद्या प्राप्त करके जाति और ... हो ... फिर भी तुमने ... श्रीकृष्णका आश्रय ले रक्खा है ... फिर ... करना चाहिये।

... वासुदेव च पाण्डवानां ...

... पाण्डवार्थं ... मां प्रति योत्स्य ॥ ॥

उलूक! तुम पाण्डवोंके सामने वासुदेव श्रीकृष्णसे भी कहना ... जनार्दन! अब तुम पूरी तैयारी और ... साथ अपने लिये ... युद्ध करो।

सभामध्ये च यद् रूपं मायया कृतवानसि

तत् तथैव पुनः कृत्वा ... मामभिद्रव ॥ ॥

तुमने ... सभामें ... माया ... दिखायी थी ... उसे पुनः ... धारण करके अर्जुनके साथ मुझपर धावा बोल दो।

इन्द्रजालं च मायां च कुहका वापि भीषणा

आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जना ॥ ॥

इन्द्रजाल माया ... हथियार ... लिये हुए ... क्रोध ... और भी बढ़ा देती है ... डरा नहीं सकतीं।

वयमप्युत्सहेम ... च ... गच्छेम आकाशं

रसातलं विशामोऽपि ऐन्द्रं वा पुरमेव तु ॥ ॥

हम भी मायासे आकाशमें उड़ सकते हैं ... रसातलमें ... इन्द्रपुरीमें भी प्रवेश कर सकते हैं।

दर्शयेम च कस्यचित् सदार्थे सुहृन्मयि
न तु पर्याप्त सिद्धिं सिद्धिमाप्नोति न तु धीमान् ॥ ५७ ॥

इतना ही नहीं, हम भावी पर्वों में बहुत से रूप म प्रकट करके दिखा सकते हैं परंतु इन सब साधनोंसे न तो अपने अभीष्टकी सिद्धि होती है और न अपना शत्रु ही मालवीय बुद्धि अर्थात् भयको प्राप्त हो रहा है ।

मलसीव हि भूतानि धात्रेय इत्यनो यदा
यदू अपीपि च वाण्ड्य आतरागुलान् रमेै ॥ ५८ ॥
घातयित्वा महात्मानि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम्
आत्मानं च मे सर्व सत्यसत्यं भाषितम् ॥ ६० ॥

एकमात्र विमाता ही अपने मानसिक सत्यसमाप्ते समक्ष प्राणियोंके वशमें कर लेता है । भावना तुम जो यह कहा करते थे कि मैं युद्धमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मारकर उनका सारा उत्तम राज्य कुन्तीके पुत्रोंको दे दूँगा तुम्हारा यह सारा भाषण सबने सुन लिया ॥ ५९ ॥

मद्वियोगिनि पार्थेन वैर च सव्यसाचिना
स सत्यसंगरो भूत्वा पाण्डवाय पराक्रमी ॥ ६० ॥

तुमने यह भी कहा था कि कौरवोंके मैं जितना मनोरथ है उन्हें सव्यसाची अब दे साथ तुम्हारा पड़ रहा है इत्यादि ... अब सत्यप्रतिज्ञ होकर पाण्डवोंके लिये पराक्रम करो ॥ ६ ॥

युध्यस्वाद्य वसो यत्त पश्याम पुत्रो भव
यस्तु रात्रुमभिजाय युद्ध पौरुषमास्थितः ॥ ६१ ॥
करोति ह्रियता शोक स जीवति सुजीवितम्

तुम्हें अब प्रसन्नतापूर्वक कह जाओ हम तुम्हारा यह देखती हैं ... ने पुरुषत्वका परिचय दो ... पुरुष शत्रुको अच्छी तरह समझ-बूझकर विग्रह पुरुषार्थका आश्रय ले शत्रुओंको शोकमग्न कर देता है वही श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है ॥ ६ २ ॥

अवकाशान्वयं ते कृष्ण वध्यात सार्थे शहद्गदा ॥ ६२ ॥
आशायाम विजयाय सहितं पञ्चारा सम्प्रहृष्टः

श्रीकृष्ण मैं समझता हूँ संसारमें अकेला तू ही हमारा महान् बल बैठ गया है परंतु अब इस समय हमें मालूम हुआ है कि जो लोग तुम्हारे पूजक हैं वे वास्तवमें पुरुषत्वका चिह्न धारण करनेवाले हिजड़े ही हैं ॥ ६३ ॥

भविष्यो यापि मृषतिमुत्थयि युद्धा करपाल्म ॥ ६३ ॥
सनाथ हथुमे कर्तुं कथमसुरे विशेषतः

मेरे-जैसे सबको तुम्हारे साथ मिलकर वनसे एक संग्रहके साथ लड़नेके लिये कवच धारण करके युद्धभूमिमें उतरना किसी तरह उचित नहीं है ॥ ६ ॥

त च तत्पश्य मात्र महाहिं समभिवाकर्ष ॥ ६४ ॥
कश्यूक महायो भूमि अनभाक्षसमेतवक्तम्

विराटनगरे पार्थ पश्य बद्धो बाहुः पुरा ॥ ६५ ॥
वस्तानो नाम विष्यास्तम्भनमथ हि धीसम्

उलूक उस बिना मूंछेके मर्द (अथवा बोझ ढोनेवाले बैल अधिक खानेवाले अज्ञानी को मूर्ख भीमसेनसे भी बारंबार मेरा यह संदेश कहना कुन्तीकुमार पहले विराटनगरमें जो तू रसोइया बनकर रहा और बल्लवके नामसे प्रसिद्ध हुआ वह सब मेरा ही पुरुषार्थ है ॥ ६४-६६ ॥

प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ॥ ६६ ॥
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते

पहले कौरवसभामें तूने जो प्रतिज्ञा की थी वह मिथ्या नहीं होनी चाहिये यदि तुममें शक्ति हो तो आकर दुःशासनका रक्त पी लेना ॥ ६६ ॥

यद् ब्रवीषि च कौन्तेय धार्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ६७ ॥
निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः

कुन्तीकुमार तुम जो यह कहते हो कि मैं युद्धमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंको वेगपूर्वक मार डालूँगा उसका यह समय आ गया है ॥ ६ २ ॥

त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत ॥ ६८ ॥
क्व युद्धं क्व च भोक्तव्यं युध्यस्व पुरुषो भव

भारत तुम तो खाने-पीनेमें पुरस्कार पानेके योग्य हो कहाँ युद्ध और कहाँ भोजन अतः ही तो युद्ध करो और मर्द बनो ॥ ६८ ॥

शयिष्यसे हतो भूमौ गदामालिङ्ग्य भारत ॥ ६९ ॥
तद् वृथा च सभामध्ये वल्गितं ते वृकोदर

भारत युद्धभूमिमें मरे हुएसे सारे जाकर तुम गदा को छातीसे लगाये सदाके लिये सो जाओगे वृकोदर ! तुमने सभामें आकर जो उछल-कूद मचायी थी वह व्यर्थ ही है ॥ ६९ ॥

उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत ॥ ७० ॥
युध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम्
युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषं च मयि भारत
कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम् ॥ ७१ ॥

उलूक नकुलसे भी कहना भारत तुम मेरे सामने अब स्थिरतापूर्वक युद्ध करो हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे तुम युधिष्ठिरके प्रति अपने अनुरागको और मेरे प्रति द्वेषको तथा द्रौपदीके क्लेशको भी इस दिनों स्मरण करके यहाँ कर लो ॥

ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम ।
युध्यस्वेदानीं रणे यत्त क्लेशान् स्मर पाण्डव ॥ ७२ ॥

उलूक तुम राजाओंके बीच सहदेवसे भी मेरी यह बात कहना पाण्डुनन्दन पहलेके दिये हुए क्लेशोंको याद कर लो और सब ओर होकर रणभूमिमें युद्ध करो ॥

विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टद्युम्नं च पाण्डवम्
न च सूक्ष्मं मर्त्यो वै कर्तव्यं महागुणे ॥ ७३ ॥
तथा पर्यन्तशिखण्डी च युद्धे प्रकाशताम्
अवज्ञाय्योऽयं वसुपतिर्युधि वो विविधं जानताम् ॥ ७४ ॥

तदनन्तर विराट और द्रुपदसे भी मेरी ओरसे कहना — शिष्याने अपने प्रजाकी तुष्टि की है । तथापि परम गुणवान् सेवकोंने भी अपने स्वामियोंको अच्छी तरह परख नहीं पाया । उनके गुण अवगुणको भलीभाँति नहीं पहचाना । इसी प्रकार स्वामियोंने भी सेवकोंको ठीक ठीक नहीं समझा । इसीलिये युधिष्ठिर सम्राट् के योग्य नहीं हैं तो भी तुम दोनों उन्हें अपना राजा मानकर उनकी आज्ञासे युद्धके लिये यहाँ आये हो ॥

ते यूयं संहताः भूत्वा तद्वधाय ममापि च
आत्मार्थं पाण्डवार्थं च प्रयुध्यध्वं मया सह ॥ ७५ ॥

इसलिये तुम लोग संगठित होकर मेरे वधके लिये प्रयत्न करो । अपनी और पाण्डवोंकी भलाईके लिये मेरे साथ युद्ध करो ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम
एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयापि सः ॥ ७६ ॥

फिर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको भी मेरा यह संदेश सुना देना — धृष्टद्युम्न ! यह तुम्हारे योग्य समय प्राप्त हुआ है । तुम्हें आचार्य द्रोणके सामने आना है । मिल जाओगे

द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम्
गुरुवत् सुहृदः पार कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ ७७ ॥

युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके सामने आकर ही तुम यह जान सकोगे कि तुम्हारा परम हित क्या है । जाओ, आगे सुहृदोंके साथ होकर युद्ध करो और गुरुके वधका अत्यन्त दुष्कर पाप करो ॥

शिखण्डिनमथो ब्रूहि उलूक वचनान्मम
स्त्रीति मत्वा महाबाहुर्न हनिष्यति कौरव ॥ ७८ ॥
गाङ्गेयो धन्विनां श्रेष्ठो युध्यस्वाद्य सुनिर्भयः
कुरु कर्म रणे यत्नं पश्यामः पौरुषं तव ॥ ७९ ॥

उलूक ! इसके बाद तुम शिखण्डीसे भी मेरी यह बात कहना — धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कुरुवंशी गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हें स्त्री समझकर नहीं मारेंगे । इसलिये तुम आज निर्भय होकर युद्ध करना और समरभूमिमें यत्नपूर्वक पराक्रम प्रकट करना । हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे ॥

एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत्
धनंजयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ८० ॥

ऐसा कहकर राजा दुर्योधन खिलखिलाकर हँस पड़ा । तत्पश्चात् उलूकसे पुनः इस प्रकार बोला — उलूक ! तुम वासुदेवनन्दन श्रीकृष्णके सामने ही अर्जुनसे पुनः इस प्रकार कहना ।

अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्
अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसि ॥ ८१ ॥

और धनंजय ! या तो तुम हमलोगोंको परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो या हमारे ही हाथों मारे जाकर रणभूमिमें सदाके लिये सो जाओ ॥

राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ १ ॥

पाण्डुनन्दन ! अपने राज्यसे निर्वासित होने, वनमें निवास करने तथा द्रौपदीके अपमानित होनेके क्लेशोंको याद करके अब भी तो मर्द बनो ॥

यदर्थं क्षत्रिया सूते गर्भं तदिदमागतम्
बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम् ।
पौरुषं दर्शयन् युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ॥ ३ ॥

क्षत्राणी जिस लिये पुत्र पैदा करती है, वह सब प्रयोजन सिद्ध करनेका यह उत्तम समय आ पहुँचा है । तुम युद्धमें बल, पराक्रम, शौर्य, अस्त्रसंचालनकी फुर्ती और पुरुषार्थ दिखाते हुए अपने क्रोधको शान्त करो । अपने क्रोधको शान्त कर लो ॥

परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च
हृदयं कस्य न स्फोटेदैश्वर्याद् भ्रंशितस्य च ॥ ४ ॥

जिसे नाना प्रकारका क्लेश दिया गया हो, दीर्घकालके लिये राज्यसे निर्वासित किया गया हो, जो किसी राज्यसे वञ्चित होकर दीनभावको प्राप्त हो गया हो, ऐसे किस स्वाभिमानी पुरुषका हृदय विदीर्ण न हो जायगा ?

कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृध्यतः
आच्छिन्नं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥ ५ ॥

जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, शूरवीर और पराये धनका लोभ न रखनेवाला हो, उसके राज्यको यदि कोई दबा बैठा हो तो वह किस वीरके क्रोधको न भड़का देगा ?

यत्तदुक्तं महद् वाक्यं कर्मणा तद् विभाव्यताम्
अकर्मणा कथितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः ॥ ६ ॥

तुमने जो बड़ी बड़ी बातें कही हैं, उन्हें कार्यरूपमें परिणत करके दिखाओ । बिना कुछ किये केवल बढ़ बढ़कर बातें बनानेवालेको सत्पुरुष कापुरुष मानते हैं ॥

अमित्राणां वशे स्थानं राज्यस्य च पुनर्भवः
द्वावर्थौ युध्यमानस्य तस्मात् कुरुत पौरुषम् ॥ ७ ॥

तुम्हारा स्थान और राज्य शत्रुओंके हाथमें पड़ा है । उसका उद्धार करो । युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके ये दो ही प्रयोजन होते हैं; अतः उनकी सिद्धिके लिये पुरुषार्थ करो ॥

पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम्
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ८ ॥

तुम जूएमें पराजित हुए और तुम्हारी स्त्री द्रौपदीको सभामें लाया गया । अपनेको पुरुष माननेवाले किसी भी मनुष्यको इन बातोंके लिये भारी अमर्ष हो सकता है ॥

द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद् विवासितः
संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ९ ॥

इस प्रकार मनोरंजक शब्दोंसे निर्भय होकर चलते रहे हो और एक कौतुक दूर्योधन [illegible] होकर जाना चाहते हैं।

याज्ञसेनिर्यासव्यक्लेशा वासव च पाण्डव
कृष्णाद्याश्च परिक्लेशा स्मरन् पुरुषो भव

पाण्डुनन्दन [illegible] और द्रौपदीके [illegible] मरके [illegible]

अप्रियाणां च वचनं बहु [illegible] पुनः पुनः
आमर्षे कुरुपत्स्व स्वयमर्षी क्षत्रियम्

[illegible] प्रति [illegible] चाहते हैं इस [illegible] तो [illegible] क्योंकि इस ही योग्य है।

कोपो बलं तथा वीर्यं [illegible]
इह ते दृश्य पार्थ पुत्रवत्स्व पुरुषो

[illegible] और [illegible] और [illegible]

संग्रामे [illegible] कृत्स्न [illegible]
पुत्रस्य [illegible] युद्ध [illegible]

[illegible] करके हो चुके है [illegible] नहीं है [illegible] है [illegible] तुमने अच्छी तरह [illegible] किया [illegible] ही श्रीकृष्ण

[illegible] सव्यसाचिन् [illegible]
[illegible] पावन मानवम्
[illegible] पुरुषो भव

[illegible] क्यों [illegible] इतिहास [illegible] हो [illegible] करके

[illegible] पुत्र [illegible] वधिष्यन्
द्रोण च [illegible] युधि
[illegible] पार्थ [illegible]

[illegible] पुत्र [illegible] [illegible] में [illegible] आप [illegible] हो।

[illegible] युधि [illegible]
युधि [illegible]
द्रोण महायुति पार्थ [illegible]
न हि युद्धे [illegible]

[illegible] आचार्य द्रोण [illegible] और धनुर्वेद [illegible] दोनोंके पारङ्गत पण्डित है [illegible]

समर्थ [illegible] सेनाके [illegible] तथा युद्ध के मैदानमें [illegible] हैं। इन महारथियों द्रोणकी जो तुम [illegible] देखा सकते हो [illegible] है [illegible] नहीं आता है इसी प्रकार तुम्हारे लिये भी [illegible] की [illegible] है।

[illegible] विपक्षेष्वहीन्
पुत्र [illegible]

[illegible] है [illegible] हो [illegible] स्वर्गलोक [illegible] पड़े [illegible]

[illegible] सर्वपाण्डवतश्च [illegible]
[illegible]

[illegible] बाहुबली [illegible] पाण्डव [illegible] लौट [illegible]

[illegible] धार्तराष्ट्र [illegible]
[illegible] भूमिपांसवः

[illegible] द्रोण [illegible] उनके [illegible] हो [illegible] ऐसा कौन भी [illegible] मनुष्य तुम्हें जीवित [illegible] है

किं नु [illegible]
[illegible] राजकं [illegible]
[illegible]
[illegible] शक्तियानाम्
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] पुलिन्द [illegible]

[illegible] उसी प्रकार पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर दिशाओंके [illegible] पुलिन्द [illegible] देखा [illegible] तुम [illegible] नहीं पाते

नागानीकं युधि [illegible]
[illegible]
मा च [illegible]
[illegible]

[illegible] अर्जुन [illegible] आओ [illegible] और [illegible]

असम्भव है। राजा रुक्मके कालमुखसे मरी हुई मेरी सब सेनाको नष्ट कर दिया था। अजमेरीके शीघ्र ही मारे गये हुए दुर्योधनक रूप भी इस युद्धकी इच्छा कैसे रखते हो

महाबाहुविपुलौ वीरा अभिवृत्ता वय ते यम्।
आशंसो हि रणे पार्थ केतु विष्व न भारत॥ ४

भारत! हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारे पक्षमें सभी अच्छे शूर हो। अभिनिवेशका दिया हुआ जिसका धन है। तुम युद्धकालमें उत्तर हम लोगा बढ़ाने वाली है

अवध्यानानो युद्धकाल कल्पसे तुल कि यद्
धर्मात्मा सिद्धिविलासमनात्मसिद्ध्यति अस्थानात्‌ ॥ ६॥

अर्जुन पाते बलाबल युद्ध करो बहुत देशी के बचाते हो विधि अलौकिक युद्धकलेश ही उसकी विधि हो पाती है। बड़ी आत्मनिशाना कालसे इस समयमें पृच्छा नहीं मिल सकती

यदि वा धनाढ्यलोके सिध्येत् यथं भारताय
सर्वे भवेयुः सिद्धार्था बहवो वो हि पुरुषः॥ ७

भारत! यदि जातिही अपनी बड़ी प्रशंसा करनेसे ही सिद्धि हो जाती तब तो सब लोग सिद्धकाम हो जाते क्योंकि यहां कहनेमें कौन दरिद्र और दुर्बल होगा

जानामि ते वासुदेव सहाय
जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्।
जानाम्यहं त्वादृशं नास्ति योद्धा
राज्यं तथा [अस्पष्ट] ॥ ८॥

मैं जानता हूं कि तुम्हारे सहायक वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हैं। मैं यह भी जानता हूं कि तुम्हारा धनुष चार हाथ लंबा गाण्डीव है। मुझे यह भी मालूम है कि तुम्हारे-जैसा दूसरा कोई योद्धा नहीं है, पर सब जानकर भी मैं तुम से इस राज्यका अपहरण करता हूं

न तु पर्यायधर्मेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः
मनसैवानुकूलानि धाता कुरुते वशे॥ ९

कोई भी मनुष्य जातिधर्मके अनुसार सिद्धि नहीं पाता। केवल विधाता ही मानसिक संकल्पसे सबको अपने अनुकूल और अधीन कर देता है

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतां तव
भूयश्चैव प्रशासिष्येऽह निहत्य सबान्धवम्॥ १०

तुम रोते बिलखते रह गये और मैंने तेरह वर्षोंतक तुम्हारा राज्य भोगा। अब भाइयोंसहित तुमको मारकर आगे भी मैं ही इस राज्यका शासन करूंगा

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूत् यत् त्वं दासवशीकृत
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन॥ ११

भाई अर्जुन! जब तुम जुएके दांवपर जीत लिये गये थे उस समय तुम्हारा गाण्डीव धनुष कहां था भीमसेनका बल भी उस समय कहां चला गया था

सगदाद् भीमसेनाद् वा पार्थाद् वापि सगाण्डिवात्
न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद् विना कृष्णामनिन्दिताम्॥ १२॥

गदाधारी भीम तथा गाण्डीवधारी अर्जुनसे भी उस समय तुम्हें अपनी द्रौपदीका सहारा लिये बिना छुटकारा नहीं मिला था

सा वो दास्ये समापन्नान् मोक्षयामास पार्षती
अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान्॥ १३॥

तुम सब लोग अमानुष्योचित दीन दशाको प्राप्त हो दास-भावमें स्थित थे। उस समय द्रुपदकुमारी कृष्णाने ही दासताके कष्टमें पड़े हुए तुम सब लोगोंको छुड़ाया

अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तत्तथ्यमेव तत्
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा॥ १४॥

मैंने जो उन दिनों तुमलोगोंको हिजड़ा या नपुंसक कहा था वह ठीक ही निकला क्योंकि अज्ञातवासके समय विराटनगरमें अर्जुनको अपने सिरपर स्त्रियोंकी भांति वेणी धारण करनी पड़ी

सूदकर्मणि विश्रान्तं विराटस्य महानसे
भीमसेनेन कौन्तेय यत् तु तन्मम पौरुषम्॥ १५

कुन्तीकुमार! तुम्हारे भाई भीमसेनको राजा विराटकी रसोईघरमें रसोइयेका काम करते हुए भारी श्रम उठाना पड़ा था, यह तो मेरा ही पुरुषार्थ है

एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये प्रभु
वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि॥ १६॥

इसी प्रकार सदासे ही क्षत्रियोंने अपने विरोधी क्षत्रियको दण्ड दिया है। इसीलिये तुम्हें भी सिरपर वेणी रखाकर और हिजड़ोंका वेष बनाकर राजाके अन्तःपुरमें कन्याओंको नचानेका काम करना पड़ा

न भयाद् वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन
राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युध्यस्व सह केशवः॥ १७॥

फाल्गुन! श्रीकृष्णके या तुम्हारे भयसे मैं राज्य नहीं लौटाऊंगा। तुम श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो

न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा
आत्तशस्त्रस्य मे संख्ये वहन्ति प्रतिगर्जना॥ १८

माया, इन्द्रजाल अथवा भयानक कुहक भी समरभूमिमें हथियार उठाये हुए मेरे लिये और सिंहनादको ही बढ़ाती है। वे भयभीत नहीं कर सकती हैं

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा
आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश॥ १९

हजारों श्रीकृष्ण और सैकड़ों अर्जुन भी अमोघ बाणों वाले मुझ वीरके पास आकर दसों दिशाओंमें भाग जायंगे

संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम्
तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम्॥ २०

तुम भीष्मके साथ युद्ध करो या सिरसे पहाड़ फोड़ो

था तैमिकोंके अत्यन्त गहरे महासागरको दोनों भुजाओंसे तैरकर पार करो।

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहावेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥ १२१ ॥

हमारे सेनारूपी महासागरमें कृपाचार्य महामत्स्यके समान हैं, विविंशति उसके भीतर रहनेवाला महान् सर्प है, बृहद्बल उसके भीतर उठनेवाले विशाल ज्वारके समान है, भूरिश्रवा तिमिङ्गिल नामक मत्स्यके समान है ॥ १२१ ॥

भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् ।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ १२२ ॥

भीष्म उसके असीम वेग हैं। द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके होनेसे इस सेनासागरमें प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर है। कर्ण और शल्य मत्स्य तथा भँवर का काम करते हैं और काम्बोजराज सुदक्षिण इसके बड़वानल हैं ॥ १२२ ॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं
सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ १२३ ॥

दुःशासन इसमें तीव्र प्रवाहके समान है, शल और शल्य मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध नाग और मकरके समान हैं, जयद्रथ पर्वत है, पुरुमित्र उसकी गम्भीरता है, दुर्मर्षण जल है और शकुनि प्रपात (झरने) का काम देता है ॥ १२३ ॥

शस्त्रौघमक्षय्यमभिप्रवृद्धं
यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ १२४ ॥

भाँति-भाँतिके शस्त्र ही इस सेनासागरके जलप्रवाह हैं, यह अक्षय होनेके साथ ही खूब बढ़ा हुआ है। इसमें प्रवेश करनेपर अधिक थकावटके कारण जब तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी और तुम्हारे समस्त बन्धु मार दिये जायँगे, उस समय तुम्हारे मनको बड़ा संताप होगा ॥ १२४ ॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचे-
र्निवर्तितां पार्थ महीप्रशासनात् ।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया
बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥ १२५ ॥

पार्थ! जैसे अपवित्र मनुष्यका मन स्वर्गकी ओरसे निवृत्त हो जाता है, क्योंकि उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति असम्भव है, उसी प्रकार तुम्हारा मन भी उस समय इस पृथ्वीपर शासन करनेसे निराश होकर निवृत्त हो जायगा। अर्जुन! शान्त होकर बैठ जाओ। राज्य तुम्हारे लिये अत्यन्त दुर्लभ है। जिसने तपस्या नहीं की है, वह जैसे स्वर्ग पाना चाहे, उसी प्रकार तुमने भी राज्यकी अभिलाषा की है ॥ १२५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि दुर्योधनवाक्ये षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें दुर्योधनवाक्यविषयक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६० ॥

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डवोंके शिविरमें पहुँचकर उलूकका भरी सभामें दुर्योधनका संदेश सुनाना

सञ्जय उवाच

सेनानिवेशं सम्प्राप्य कैतव्यः पाण्डवस्य ह ।
समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर जुआरी शकुनिका पुत्र उलूक पाण्डवोंकी छावनीमें जाकर उनसे मिला और युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोला ॥ १ ॥

अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम ।
दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २ ॥

राजन्! आप दूतके वचनोंका मर्म जाननेवाले हैं। दुर्योधनने जो संदेश दिया है, उसे मैं ज्यों-का-त्यों दोहरा दूँगा। उसे सुनकर आपको मुझपर क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः ।
यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरने कहा—उलूक! तुम्हें तनिक भी भय नहीं है। तुम निश्चिन्त होकर लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधनका अभिप्राय सुनाओ ॥ ३ ॥

ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ॥ ४ ॥
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च संनिधौ ।
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥ ५ ॥

संजय कहते हैं—तब वहाँ बैठे हुए तेजस्वी महात्मा पाण्डवों, सृंजयों, मत्स्यों, यशस्वी श्रीकृष्ण तथा पुत्रोंसहित द्रुपद और विराटके समीप समस्त राजाओंके बीचमें उलूकने यह बात कही ॥

उलूक उवाच

इदं त्वामब्रवीद् राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

उलूक बोला—महाराज युधिष्ठिर! महामना धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने कौरववीरोंके समक्ष आपसे यह संदेश कहलाया है, इसे सुनिये ॥ ६ ॥

पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम् ।
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ७ ॥

तुम जूएमें हारे और तुम्हारी पत्नी द्रौपदीको सभामें

कहा गया । इस वचनोंमें सन्देहके पुरुष मानने प्रत्येक मनुष्य बोध कर सकता है । ७

शारद्वतं तु शर्वाणि कनैः विज्ञाय सितासितं
समाचरत विराज[illegible] सुरलमाल्याय चोदित ॥ ८ ॥

न्याय वर्तीय तुम सबसे निर्वासित होकर वनमें हे और एक वर्षतक तुम्हें राजा विराटका दास बनकर रहना पड़ा

यमार्य राज्यहरण वनवास च पाण्डव
दौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ९ ॥

पाण्डुनन्दन तुम अपने भाइयोंके राज्यके अपहरणको वनवासको और द्रौपदीको दिये गये क्लेशको भी याद करके मर्द बनो

यदाद्रक्ष्य च यच्छाम्य भीमसेनेन पाण्डव
दुःशासनस्य रुधिरं पीयमानं यदि द्रक्ष्यसे ॥ १० ॥

पाण्डुपुत्र तुम्हारे भाई भीमसेनने उस समय कुरु सभामें असमर्थ होनेके कारण जो दुर्वचन कहा था उसे याद करके वे आवें और यदि शक्ति हो तो दुःशासनका रक्त पीए

लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्
समः पन्था भृताः सैन्यास्त्वं युध्यस्व सकेशव ॥ ११ ॥

म्यानोंसे अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर निकालकर उन्हें तैयार करके मार्जिक कार्य पूरा हो गया है कुरुक्षेत्रकी भूमि सूख गयी है मार्ग बराबर हो गया है और तुम्हारे भी सब पुष्ट हो चुके हैं अतः कल सबेरेसे ही श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो

असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १२ ॥
एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव

कुन्तीनन्दन भीष्मका सामना किये बिना ही तुम क्यों व्यर्थ बड़ी बातें करते हो कुबुद्धिसे जैसे कोई मन्द एवं असमर्थ पुरुष गन्धमादन पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करे उसी प्रकार तुम भी अपने बारेमें बढ़ी-बढ़ी बातें किया करते हो बातें न बनाओ पुरुष बनो पुरुषत्वका परिचय दो

सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम् ॥ १३ ॥
द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ १४ ॥

पार्थ अत्यन्त दुर्जय वीर सूतपुत्र कर्ण बलवानोंमें श्रेष्ठ शल्य तथा युद्धमें शचीपति इन्द्रके समान पराक्रमी महाबली द्रोणको युद्धमें जीते बिना तुम यहाँ राज्य कैसे लेना चाहते हो १

ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकधरमच्युतम् ॥ १५ ॥
द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा
न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ १६ ॥

आचार्य द्रोण ब्राह्मवेद और धनुर्वेद दोनोंके पारङ्गत विद्वान् हैं वे युद्धका भार वहन करनेमें समर्थ, अक्षोभ्य

सेनाके अग्रभागमें विचरनेवाले तथा समराङ्गणमें कभी पीछे न हटनेवाले हैं पार्थ तुम उन्हीं महातेजस्वी द्रोणको जो जीतनेकी इच्छा करते हो वह व्यर्थ दुःसाहसमात्र है वायुने कभी सुमेरु पर्वतको उखाड़ फेंका हो यह कभी हमारे सुननेमें नहीं आया ६

अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम्
युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद् यथाऽऽत्थ माम् ॥ १७ ॥

तुम जैसा मुझसे कहते हो वैसा ही यदि सम्भव हो जाय तब तो वायु भी सुमेरु पर्वतको उठा ले स्वर्गलोक पृथ्वीपर गिर पड़े अथवा युग ही बदल जाय

को ह्यस्ति जीविताकाङ्क्षी प्राप्येममरिमर्दनम्
गजो वाजी रथो वापि पुनः स्वस्ति गृहान् व्रजेत् ॥ १८ ॥

शत्रुओंको कुचल डालनेवाले इन आचार्यसे भिड़कर कौन ऐसा हाथीसवार घुड़सवार अथवा रथी है जो जीवित रहनेकी इच्छा रखकर कुशलपूर्वक अपने घरको लौट सके

कथमाभ्यामभिध्यातः संसृष्टो दारुणेन वा
रणे जीवन् विमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १९ ॥

भीष्म और द्रोणने जिसे मारनेका निश्चय कर लिया हो अथवा जो युद्धमें इनके भयङ्कर अस्त्रोंसे छू गया हो ऐसा कौन भूतलनिवासी जीवित बच सकता है

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां
न बुध्यसे राजचमूं समेताम्
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां
गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ २० ॥
प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च
शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेश्यै-
र्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ २१ ॥

जैसे देवता स्वर्गकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर दिशाओंके नरेश तथा काम्बोज शक खश शाल्व मत्स्य कुरु और मध्यदेशके सैनिक एवं म्लेच्छ पुलिन्द द्रविड आन्ध्र और काञ्चीदेशीय योद्धा जिस सेनाकी रक्षा करते हैं जो देवताओंकी सेनाके समान दुर्धर्ष एवं सङ्गठित है कौरवराजकी उस समुद्रतुल्य सेनाको क्या तुम कूपमण्डूककी भाँति अच्छी तरह समझ नहीं पाते ?

नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं
गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम्
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये
युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ २२ ॥

मन्दबुद्धि मूढ युधिष्ठिर जिसका वेग युद्धकालमें गङ्गाके वेगके समान बढ़ जाता है और जिसे पार करना असम्भव है नाना प्रकारके जनसमुदायसे भरी हुई मेरी उस विशाल वाहिनीके साथ तथा गजसेनाके बीचमें खड़े हुए मुझ

दुर्योधनके साथ भी तुम युद्धकी इच्छा कैसे रखते हो ? ॥ २२ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अभ्यावृत्य पुनर्जिष्णुमुलूकः प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर उलूक अर्जुनकी ओर मुड़ा और तत्पश्चात् उनसे भी इस प्रकार कहने लगा— ॥ २३ ॥

अकत्थमानो युध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु ।
पर्यायात् सिद्धिरेतस्य नैतत् सिध्यति कत्थनात् ॥ २४ ॥

अर्जुन ! बातें न बनाकर युद्ध करो । बहुत आत्मप्रशंसा क्यों करते हो ? विभिन्न उपायोंसे युद्ध करनेसे ही इसकी सिद्धि हो सकती है । व्यर्थ आत्मप्रशंसा करनेसे इस कार्यमें सफलता नहीं मिल सकती ॥ २४ ॥

यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनंजय ।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्था बहु कत्थेत दुर्गतः ॥ २५ ॥

धनंजय ! यदि जगत्में अपनी झूठी प्रशंसा करनेसे ही अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती, तब तो सब लोग सिद्धकाम हो जाते; क्योंकि बातें बनानेमें कौन दरिद्र और दुर्बल होगा ? ॥ २५ ॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं
जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् ।
जानाम्येतद् त्वादृशो नास्ति योद्धा
जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥ २६ ॥

मैं जानता हूँ कि तुम्हारे सहायक वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हैं । मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे पास चार हाथ लम्बा गाण्डीव धनुष है तथा मुझे यह भी मालूम है कि तुम्हारे जैसा दूसरा कोई योद्धा नहीं है । यह सब जानकर भी मैं तुम्हारे इस राज्यका अपहरण करता हूँ ॥ २६ ॥

न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति मानवः ।
मनसैवानुकूलानि विधाता कुरुते वशे ॥ २७ ॥

कोई भी मनुष्य नामधारणके धर्मद्वारा राज्य नहीं पाता । केवल विधाता ही मानसिक संकल्पमात्रसे सबको अपने अनुकूल और अधीन कर लेता है ॥ २७ ॥

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् ॥ २८ ॥

तुम रोते बिलखते रह गये और मैंने तेरह वर्षोंतक तुम्हारा राज्य भोगा । अब भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके आगे भी मैं ही इस राज्यका शासन करूँगा ॥ २८ ॥

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद् यत् त्वं दासः पणे जितः ।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ २९ ॥

फाल्गुन ! जब तुम जूएके दाँवपर जीतकर दास बना लिये गये, उस समय तुम्हारा गाण्डीव धनुष कहाँ था ? भीमसेनका बल भी उस समय कहाँ चला गया था ? ॥ २९ ॥

सगदाद् भीमसेनाच्च पार्थाच्चैव सगाण्डिवात् ।
न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद् विना कृष्णामनिन्दिताम् ॥ ३० ॥

गदाधारी भीमसेन अथवा गाण्डीवधारी अर्जुनसे भी उस समय तुम्हें सती-साध्वी द्रौपदीका सहारा लिये बिना छुट-कारा नहीं मिल सका था ॥ ३० ॥

सा वो दास्ये समापन्नान् मोक्षयामास पार्षती ।
अमानुष्ये समापन्नान् दास्यकर्मण्यवस्थितान् ॥ ३१ ॥

तुम सब लोग अमानुषोचित दीन दशाको प्राप्त होकर दासभावमें स्थित थे, उस समय उस द्रुपदकुमारी कृष्णाने ही दासताके संकटमें पड़े हुए तुम सब लोगोंको छुड़ाया था ॥ ३१ ॥

अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तान् प्रत्यवेक्ष तत् ।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ३२ ॥

मैंने जो उन दिनों तुमलोगोंको हिजड़ा या नपुंसक कहा था, वह ठीक ही निकला; क्योंकि अज्ञातवासके समय विराटनगरमें अर्जुनको अपने सिरपर स्त्रियोंकी भाँति वेणी धारण करनी पड़ी ॥ ३२ ॥

सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे ।
भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ॥ ३३ ॥

कुन्तीकुमार ! तुम्हारे भाई भीमसेनको राजा विराटके रसोईघरमें रसोइयेके कामसे ही अत्यन्त थककर जो भारी श्रम उठाना पड़ा, यह सब मेरा ही पुरुषार्थ है ॥ ३३ ॥

एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः ।
वेण्यां कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार सदासे ही क्षत्रियोंने अपने विरोधी क्षत्रियको दण्ड दिया है । इसीलिये तुम्हें भी सिरपर वेणी रखाकर और हिजड़ेका वेष बनाकर राजा विराटकी कन्याको नचानेका काम करना पड़ा ॥ ३४ ॥

न भयाद् वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन ।
राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युध्यस्व सहकेशवः ॥ ३५ ॥

फाल्गुन ! श्रीकृष्णके या तुम्हारे भयसे मैं राज्य नहीं लौटाऊँगा । तुम श्रीकृष्णके साथ आकर युद्ध करो ॥ ३५ ॥

न माया ह्येन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा ।
आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ३६ ॥

माया, इन्द्रजाल अथवा भयानक कुहक (जादू) संग्रामभूमिमें हथियार उठाये हुए मुझ दुर्योधनके क्रोध और सिंहनादको ही बढ़ाते हैं (मुझे भयभीत नहीं कर सकते हैं) ॥ ३६ ॥

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ।
आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥ ३७ ॥

हजारों श्रीकृष्ण और सैकड़ों अर्जुन भी अमोघ बाणोंवाले मुझ वीरके पास आकर दसों दिशाओंमें भाग जायँगे ॥ ३७ ॥

संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् ।
तरेम वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥ ३८ ॥

तुम भीष्मके साथ युद्ध करोगा सिरसे पहाड़ फोड़ोगा दोनों भुजाओंसे अत्यन्त गहरे महासागरको पार करोगे ॥ ३८ ॥

शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् ।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिंगिलम् ॥ ३९ ॥

हमारे सैन्यरूपी महासमुद्रमें कृपाचार्य महामत्स्यके समान हैं, विविंशति उसके भीतर महान् सर्पके समान हैं,

दुःशासन उसके भीतर आनेवाले महान् प्रवाहके समान है, भूरिश्रवा शिलीमीन नामक मत्स्यके समान है॥

भीष्मद्रोणमहावेलं द्रोणग्राहदुरासदम्।
कर्णद्रौणिशल्यावर्तं काम्बोजवडवामुखम्॥५४॥

भीष्म उसके असीम वेग हैं, द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके होनेसे उस सैन्यसागरमें प्रवेश करना अत्यन्त दुष्कर है। कर्ण और शल्य मत्स्य तथा भँवरका काम करते हैं और काम्बोजराज सुदक्षिण उसमें बडवानल हैं॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं
सुषेणचित्रायुधनागनक्रम्।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम्॥५५॥

दुःशासन इसके तीव्र प्रवाहके समान है, शल और शल्य मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध नाग और मगरके समान हैं, जयद्रथ पर्वत है, पुरुमित्र इसकी गम्भीरता है, दुर्मर्षण जल है और शकुनि प्रपातका काम देता है॥

शस्त्रौघमक्षय्यमतिप्रवृद्धं
यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति॥५६॥

नाना प्रकारके शस्त्र इस सैन्य-सागरके जलके समान हैं, यह अक्षय होनेके साथ ही खूब बढ़ा हुआ है। इसमें प्रवेश करनेपर अधिक थकावटके कारण जब तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी, तुम्हारे समस्त बन्धु-बान्धव मार दिये जायँगे, उस समय तुम्हारे मनको बड़ा संताप होगा॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचे-
र्निवर्ततां पार्थ महीप्रशासनात्।
प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया
बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना॥५७॥

पार्थ! जैसे अपवित्र मनुष्यका मन स्वर्गकी ओरसे निवृत्त हो जाता है, क्योंकि उसके लिये स्वर्गलोककी प्राप्ति असम्भव है, उसी प्रकार तुम्हारा मन भी इस भूमण्डलके राज्यशासनसे निवृत्त हो जायगा। जैसे तपस्याहीन मनुष्य स्वर्ग पाना चाहे, उसी प्रकार तुमने भी राज्यकी अभिलाषा की है॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकवाक्ये एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें उलूकवाक्यविषयक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१६१॥

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डवपक्षकी ओरसे दुर्योधनको उसके संदेशका उत्तर

सञ्जय उवाच

उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया॥१॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! उलूकने विषधर सर्पके समान क्रोधमें भरे हुए अर्जुनको अपने वाग्बाणोंसे और भी पीड़ा देते हुए दुर्योधनकी कही हुई सारी बातें पुनः कह सुनायीं॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम्।
प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येन प्रधर्षिताः॥२॥

उलूककी बात सुनकर पाण्डवोंको बड़ा रोष हुआ। एक तो वे पहलेसे ही अत्यन्त कुपित हो रहे थे, दूसरे जुआरी शकुनिके बेटेने भी उनका बड़ा तिरस्कार किया॥

नासनेष्ववतिष्ठन्त बाहूंश्चैव विचिक्षिपुः।
आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षाञ्चक्रुः परस्परम्॥३॥

वे आसनोंसे उठकर खड़े हो गये और अपनी भुजाओंको इस प्रकार हिलाने लगे, मानो प्रहार करनेके लिये उद्यत हों। वे विषधर सर्पोंके समान कुपित हो एक-दूसरेकी ओर देखने लगे॥

अवाक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम्।
नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन्॥४॥

भीमसेनने फुफकारते हुए विषधर सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचते हुए सिर नीचा करके लाल नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखा॥

आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाभिहतं भृशम्।
उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत॥५॥

वायुपुत्र भीमसेनको क्रोधसे अत्यन्त पीड़ित और आर्त देख दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्णने उलूकसे मुसकराते हुए-से कहा॥

प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम्।
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत् ते तथास्तु तत्॥६॥

जुआरीके पुत्र उलूक! तुम शीघ्र यहाँसे लौट जाओ और दुर्योधनसे कह दो, 'हमने तुम्हारा संदेश सुना और उसका अर्थ समझकर स्वीकार किया। युद्धके विषयमें जैसा तुम्हारा मत है, वैसा ही हो'॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः केशवो राजसत्तम।
पुनरेव महाप्राज्ञं युधिष्ठिरमुदैक्षत॥७॥

नृपश्रेष्ठ! ऐसा कहकर महाबाहु केशवने पुनः परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरकी ओर देखा॥

सृञ्जयानां च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः।
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च संनिधौ॥८॥
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह।
उलूकोऽप्यर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत्॥९॥

व्यथीविमथित तुका सुहृद बालवत्तदात्मजः।
कृष्णार्जुनयोश्च तान् सर्वान् संजयो वाक्यमब्रवीत्॥ १०॥

फिर उन्होंने भी समस्त युद्धकामी क्षत्रियसमुदाय पाण्डवों श्रीकृष्ण तथा पुत्रोंसहित द्रुपद और विराटके समीप सम्पूर्ण राजाओंकी मण्डलीमें जो बातें कहीं। उनके विषयमें कैसे गद्‌गद कुपित हुए अर्जुनको पुनः अपने वाक्योंसे पीड़ा देते हुए दुर्योधनकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं। साथ ही श्रीकृष्ण आदि अन्य सब लोगोंसे वहाँसे जिन्हें भी उनमें जो जो संदेश दिये थे उन्हें भी उन सबको यथावत् कहके सुना दिया॥ ९॥

कल्मुल्कस्य तु तद् वाक्यं परं शुश्रुवान्नमिषितम्।
श्रुत्वा विद्युद्भ्रमे पार्थो ... वाक्यमथाब्रवीत्॥ ११॥

उस कहे हुए उस परमपुत्र दारुण वचनको सुनकर कुन्तीपुत्र अर्जुनको बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने आपसे अगाधिका यों कहा॥ ११॥

तावद्वस्य तदा दृष्ट्वा पार्थो एतां समितिं नृप।
नाभ्यभाषत महाराज पाण्डवानां महारथाः॥ १२॥

नरेश्वर! अर्जुनकी उस अवस्थाको देखकर राजाओंकी वह समिति तथा पाण्डव महारथी सहन न कर सके॥ १२॥

अधिक्षेपं कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः।
श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाच्चलुर्नृपाः॥ १३॥

राजन्! महात्मा अर्जुन तथा श्रीकृष्णके प्रति आक्षेप पूर्ण वचन सुनकर वे पुरुषसिंह नरवीर रोषसे जल उठे।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः।
केकयाः भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः॥ १४॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः।
भीमसेनश्च विक्रान्तो यमजौ च महारथौ॥ १५॥
उत्पेतुरासनात् सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः।
बाहून् प्रगृह्य रुचिरान् रक्तचन्दनरूषितान्।
अङ्गदैः पारिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान्॥ १६॥
दन्तान् दन्तेषु निष्पिष्य सृक्किणी परिलेलिहन्।

धृष्टद्युम्न शिखण्डी महारथी सात्यकि पाँच भाई केकयराजकुमार राक्षस घटोत्कच द्रौपदीके पाँचों पुत्र अभिमन्यु राजा धृष्टकेतु पराक्रमी भीमसेन तथा महारथी नकुल-सहदेव ये सब-के-सब योद्धा क्रोधसे लाल आँखें किये अपने आसनोंसे उछलकर खड़े हो गये और सुन्दर पारिहार्य (कलाइयोंके गहनों) तथा केयूरोंसे विभूषित एवं लाल चन्दनसे चर्चित अपनी सुन्दर भुजाओंको थामकर दाँतोंसे दाँत पीसते हुए ओठोंके दोनों कोने चाटने लगे॥ १४—१६॥

तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः॥ १७॥
उदतिष्ठत् स वेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव।
उद्वृत्य सहसा नेत्रे दन्तान् कटकटाय्य च॥ १८॥
हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत्।

उनकी आकृति और भावको समझकर कुन्तीपुत्र भीमसेन वहीं वेगसे उठे और क्रोधसे जलते हुए-से सहसा आँखें फाड़-फाड़कर देखते दाँत कटकटाते और हाथ-से हाथ रगड़ते हुए उलूकसे इस प्रकार बोले—॥ १७-१८॥

अशक्तानामिवास्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम्॥ १९॥
श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत् त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत्।

ओ मूर्ख! दुर्योधनने तुझसे जो कुछ कहा है वह तेरा वचन हमने सुन लिया। मानो हम असमर्थ हों और तू हमें प्रोत्साहन देनेके निमित्त यह सब कुछ कह रहा हो॥ १९॥

तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम्॥ २०॥
सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद् वक्ष्यसि सुयोधनम्।
शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः॥ २१॥

मूर्ख उलूक! अब तू मेरी कही हुई दुर्जय बातें सुन और समस्त राजाओंकी मण्डलीमें सूतपुत्र कर्ण और अपने दुरात्मा पिता शकुनिके सामने दुर्योधनको सुना देना॥ २०-२१॥

अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
मर्षितं ते दुराचार तत् त्वं न बहु मन्यसे॥ २२॥

दुराचारी दुर्योधन! हमलोगोंने सदा अपने बड़े भाईको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे तेरे बहुत-से अत्याचारोंको चुपचाप सह लिया है परंतु तू इन बातोंको अधिक महत्त्व नहीं दे रहा है॥ २२॥

प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकाङ्क्षी कुरून् प्रति।
कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता॥ २३॥

बुद्धिमान् धर्मराजने कुलका हित करनेकी इच्छासे शान्ति चाहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको कौरवोंके पास भेजा था॥ २३॥

त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम्।
गच्छस्वाहवमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम्॥ २४॥

परंतु तू निश्चय ही कालसे प्रेरित हो यमलोकमें जाना चाहता है (इसीलिये भलीकी बात नहीं मान रहा)। अच्छा, हमारे साथ युद्धमें चल। कल निश्चय ही युद्ध होगा॥ २४॥

मयापि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते।
स तथा भविता पाप नात्र कार्या विचारणा॥ २५॥

पापात्मन्! मैंने भी तेरा और तेरे भाइयोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है वह उसी रूपमें पूर्ण होगी। इस विषयमें तुझे कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ २५॥

वेलामतिक्रमेत् सद्यः सागरो वरुणालयः।
पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत्॥ २६॥

वरुणालय समुद्र सहसा ही अपनी सीमाका उल्लङ्घन कर जाय और पर्वत भी शीर्ण होकर बिखर जाय परंतु मेरी कही हुई बात झूठी नहीं हो सकती॥ २६॥

सहायस्ते यदि यमः कुबेरो रुद्र एव वा।
यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः।
दुःशासनस्य रुधिरं पाता चास्मि यथेप्सितम्॥ २७॥

ओ दुर्बुद्धे! तेरी सहायताके लिये भगवान् कुबेर यम

नरकमें क्यों न जा पड़ें। पाण्डव अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सब कार्य अवश्य करें। मैं अपनी इच्छाके अनुसार तुम्हारे शासनका एक अवसर चाहता हूँ ॥ २७ ॥

यद्येष प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो प्रतिपत्स्यति।
अपि भीष्म पुरस्कृत्य न नेष्यामि यमक्षयम् ॥ २८ ॥

उस समय यदि भीष्म भी आगे हो तो भी मैं हर्षपूर्वक वीर इस भावसे लड़ता हुआ उनके साथ ही यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ २८ ॥

यच्चास्तत्कृतवान् पार्थो सभायां श्वसन् इति।
यथैतद् भवितं सत्यं तथा चात्मानमात्मने ॥ २९ ॥

मैं क्षत्रियोंकी भाँति [illegible] यह वही है और उसका फल होगा। यह मैं अपनी सौगन्ध खाकर कहता हूँ ॥ २९ ॥

भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवः समर्पितः।
क्रोधसंरक्तनयनस्तस्मै वाक्यमुवाच ह ॥ ३० ॥

भीमसेनका ऐसा सुनकर दुर्योधन [illegible] तब उन्होंने [illegible] कोपसे भाषण [illegible] बात कही ॥ ३० ॥

सौवीरपुत्रसहायकविक्रम [illegible]।
शृणु पार्थ यथो मया प्रज्ञाद्यो हि किम् [illegible] ॥ ३१ ॥

जो [illegible] हम [illegible] है कौरव [illegible] पूर्वकी [illegible] और अपने [illegible] हुआ है ॥ ३१ ॥

नास्त्यत्र भविता [illegible] कदाचित् कुरुषि सह।
धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात् त्वया सह ॥ ३२ ॥

यदि [illegible] सम्बन्ध न होता तो कभी कौरवोंके साथ हम [illegible] ॥ ३२ ॥

न तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रसुतस्य च।
उत्पन्नो वैरपुरुष [illegible] पापकृत् ॥ ३३ ॥

तू सम्पूर्ण [illegible] तथा धृतराष्ट्रके विनाशके लिये पापात्मा [illegible] उत्पन्न हुआ है। तू अपने कुलका [illegible] करनेवाला है ॥ ३३ ॥

[illegible] तात [illegible] पापपूरुष।
अहितानि [illegible] क्रियया [illegible] ॥ ३४ ॥

[illegible] प्रति [illegible] अहित [illegible] करना चाहता है ॥ ३४ ॥

तस्य [illegible] सुदुर्मदम्।
अद्यमायी [illegible] शकुने [illegible] ॥ ३५ ॥
[illegible] शकुनिं [illegible] सर्वसन्निधाम्।

[illegible] मैं शकुनिको [illegible] पहले [illegible] शकुनिका भी [illegible] और [illegible] हो जायगा ॥ ३५ ॥

भीमस्य वचनं श्रुत्वा वासुदेवस्य [illegible] ॥ ३६ ॥
[illegible] फाल्गुनो [illegible] भीमसेनं [illegible]।
भीमसेन न ते [illegible] वैरं त्वया सह ॥ ३७ ॥

[illegible] मुख्येषु [illegible]।

भीमसेन और सहदेवके [illegible] अर्जुनने भीमसेनसे [illegible] आज [illegible] जिनका [illegible] वैर [illegible] गया है [illegible] अर्जुन [illegible] कौरव [illegible] गये हैं [illegible] ॥ ३८ ॥

[illegible] न ते [illegible] पुरुषोत्तम ॥ ३९ ॥
[illegible] युधिष्ठिर [illegible]

[illegible] इस [illegible] बात नहीं कहनी चाहिये [illegible] ॥ ३९ ॥

[illegible] दुर्योधन [illegible] ॥ ४० ॥
धृष्टद्युम्नमुखान् वीरान् [illegible]

[illegible] धृष्टद्युम्न आदि वीर [illegible] ॥ ४० ॥

[illegible] भाषितम् ॥ ४१ ॥
[illegible] वासुदेवस्य [illegible]
[illegible] ॥ ४१ ॥

[illegible] इनके [illegible] श्रीकृष्णकी [illegible] ॥ ४१ ॥

प्रभावाद् वासुदेवस्य [illegible]
[illegible] ॥ ४२ ॥

[illegible] नहीं मिलता ॥ ४२ ॥

भवद्भिः समनुज्ञातं [illegible]
[illegible] सुयोधनम् ॥ ४३ ॥

[illegible] ॥ ४३ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ४४ ॥

[illegible] ॥ ४४ ॥

[illegible] विधिना [illegible] ॥ ४५ ॥

[illegible] ॥ ४५ ॥

[illegible] यथाकालं यथाबलम्

धर्मसंपादनम् [illegible] प्रत्यभाषत ॥ ४६ ॥

तदनन्तर भगवानने उन [illegible] उनकी वर्तमान और प्रसिद्धिके अनुसार अनुमोदित करके शान्त किया और युधिष्ठिरको ऐसे वाक्य [illegible] उसे इस प्रकार कह [illegible]

[illegible] बहि [illegible] सर्वधर्मोपपन्नम्

तदीश्वरः प्रवक्ष्यामि [illegible] शुश्रूषव [illegible] ४७ ॥

[illegible]

[illegible] मैं [illegible]

[illegible] सामपूर्वमिदोदितम्

युधिष्ठिरस्य [illegible] वाक्यं [illegible] भरतर्षभ ॥ ४८ ॥

[illegible]

[illegible] परिमितिं [illegible] ॥ ४९ ॥

[illegible]

[illegible] विपुलं भुजम् ॥ [illegible] ॥

[illegible] उत्कृष्ट [illegible] बताकर [illegible] उस [illegible] उनके [illegible] पाने [illegible] द्रौपदी [illegible] कुन्तिके [illegible] भगवान [illegible] देखने [illegible] बारे [illegible] फिर [illegible] कर्णको [illegible] श्रीकृष्ण [illegible] बोलनेके [illegible] प्रकृत [illegible] अपनी [illegible] पूर्वे [illegible] पुन [illegible] उदाहरण [illegible]

[illegible] कौन्तेय [illegible] शुभ [illegible]

[illegible] युधिष्ठिर [illegible] ॥ ५१ ॥

[illegible] युधिष्ठिरके [illegible] बैठक [illegible] युद्धि [illegible] कहा [illegible]

[illegible] सिद्ध [illegible]

[illegible] ॥ ५२ ॥

[illegible] सदा पुत्रिक [illegible] करता [illegible] और [illegible] पालन करता है और [illegible] शत्रुओंको युद्धके लिये बुलाता है वही पुरुष क्षत्रिय है

[illegible] क्षत्रियो [illegible] इव [illegible]

[illegible] पुरस्तात् [illegible] ॥ ५३ ॥

[illegible] है [illegible] क्षत्रिय होकर और [illegible] युद्धके लिये [illegible] ऐसे लोगोंको [illegible] न [illegible] मानसिक [illegible] और [illegible] हो

[illegible] च कौरव

[illegible] क्षत्रियो [illegible] ॥ ५४ ॥

[illegible] तथा [illegible] और [illegible] ही कुन्तीके [illegible] युद्धके लिये [illegible] ॥ ५५ ॥

[illegible] समाहृतो [illegible]

[illegible] ॥ ५६ ॥

[illegible] युद्धके लिये [illegible] है [illegible] पुरुषार्थ [illegible]

[illegible] ॥ ५७ ॥

[illegible] दुर्योधन [illegible] है [illegible] होकर [illegible] ऐसा [illegible] है

श्रीकृष्ण उवाच

[illegible] सुयोधन

[illegible] पुत्रो भव दुर्मते ॥ ७ ॥

[illegible] भगवान् श्रीकृष्णने कहा [illegible] युद्धभूमिमें [illegible] पुरुषार्थ [illegible] है

[illegible] युद्ध [illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] जो यह समझता है कि कुन्तीके पुत्रोंने श्रीकृष्णसे [illegible] अनुरोध किया है [illegible] युद्ध नहीं [illegible] नहीं [illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ ९ ॥

परन्तु [illegible] लोगोंको [illegible] कर सकता है [illegible] युद्धमें [illegible] नहीं [illegible] है

युधिष्ठिरनियोगात् [illegible]

[illegible] ॥ ६० ॥

[illegible] युधिष्ठिरने [illegible] महात्मा [illegible] युद्ध [illegible] करेगा

[illegible] भूतलम्

[illegible] पुनः ॥ ६१ ॥

अब तू यदि [illegible] और [illegible] अथवा [illegible] है [illegible] भी [illegible] नहीं [illegible] पहुँचा हुआ देखेगा [illegible]

[illegible] भीमसेनस्य [illegible]

[illegible] ॥ ६२ ॥

इसके सिवा तू जो भीमसेनकी कही हुई बातोंको [illegible] है [illegible] ठीक नहीं है [illegible] भीमसेनने [illegible] किया [illegible]

त्वां समीक्ष्ये पार्थो मतिमाञ्जा युधिष्ठिरः
भीमसेनो ... भ्रातृभिः सह ...

पाण्डवोंके विजयी ... धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन तथा ... तुम्हें युद्ध भी ... सके ...

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि ... अध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत ... अध्याय पूरा हुआ

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय

पाँचों पाण्डवों, विराट, द्रुपद, शिखण्डी और धृष्टद्युम्नका संदेश लेकर उलूकका लौटना और उलूककी बात सुनकर दुर्योधनका सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेका आदेश देना

दुर्योधनस्य तद् वाक्यं निशम्य भरत ...
नेत्राभ्यामति ताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत
स कैतव्यमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः
अभ्यभाषत ... प्रगृह्य विपुलं भुजम्

... वचनोंको सुनकर ... भुजाको ... देखा ...

स्वरीर्यं ... समाश्रित्य ... परान्
आह्वयते ... पुरुष उच्यते

... वह ... पुरुष कहलाता है ...

परवीर्यं समाश्रित्य समाह्वयति यः परान्
अशक्तः स्वयमात्मानं ... स पुरुषाधमः

... युद्धमें ... अपने बलके ...
... ऐसा ... पुरुषाधम ... अधम कहा जाता है ...

स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे ... बलवानिव
कापुरुषो मूढ ... होऽस्मानभिगर्जसि

... दूसरोंके ... बलपर ... सम्पन्न बनकर ... और ... आक्षेप करता है ...

यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम्
मरणाय महाप्राज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे

... जो ... सबके ... हितबुद्धि ... पितामह भीष्मको मरनेके लिये युद्धकी दीक्षा दिलाकर अपनी ... बातें करता है ...

भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन
न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि

... दुर्बुद्धि कुलाङ्गार ... तेरा मनोभाव हमने समझ लिया है ... तू समझता है कि पाण्डव ... गङ्गानन्दन भीष्मको नहीं मारेंगे ...

यस्य वीर्यं समाश्रित्य ... विकत्थसे
... हनिष्यामि प्रथमं ... धन्विनाम्

... ऐसा ... दुर्योधनके ... सामने ... भीष्मको ... मारूँगा ... युद्धमें ...

कृपं ... विमुक्त ... तुम्हारे ... हो ...
... यह ... अर्जुनका ... उत्तर ... दे सकता ... तुम्हें ... दर्पके ... भय नहीं है ... भीष्मको ... युद्धमें ही ... और ... सात्यकि ...

युधिष्ठिर ... बातें ...

स दर्पपूर्णः ... समीक्ष्य ते ...
मल्लपर्यायमप्यथ ... ततः परम्

... उलूक तुम ... कहना ... प्रथम ... कुरुवृद्धोंको ... ध्वजके ... अर्जुनके ... मस्तक ... ऊपर ... हुए ...

[illegible] को नहीं देख पाता है [illegible] मैं सबसे पहले तेरे सेना समूहमें [illegible] करके कुरुकुलके [illegible] पुरुष भीष्मजी [illegible] ।

सूर्योदये [illegible] मनीषया
[illegible] रथी [illegible] सत्यसंधम्
[illegible] हि य [illegible] द्रोणेन
भीष्मं [illegible] पातयित्वाभिमानात् ॥ १३ ॥

[illegible] [illegible] हुए [illegible] भीष्म [illegible] गिरे हुए [illegible] ।

[illegible] सुयोधन
[illegible] मया [illegible] ॥ १४ ॥

[illegible] हुए [illegible] दुर्योधन [illegible] हुई [illegible] होता

[illegible] पुत्रवा [illegible]
[illegible] ॥ १[illegible] ॥
[illegible] पाञ्चालेन शतक्रतु
[illegible] सुयोधन ॥ १६ ॥

सुयोधन [illegible] हुए [illegible] विचार वाले [illegible] और [illegible] है [illegible] हो [illegible] देखो ।

अभिमानस्य [illegible]
[illegible] ॥ १७ ॥
[illegible] धर्मविद्वेषणस्य च
[illegible] ॥ १८ ॥
[illegible] च [illegible]
[illegible] सुयोधन ॥ १९ ॥

दुर्योधन [illegible] हुआ [illegible] ।

[illegible] कि [illegible] नराधम
[illegible] मूढ [illegible] देहुमा ॥ २० ॥

मूढ नराधम [illegible] करता है

शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे [illegible] च पातिते
[illegible] पुत्रः [illegible] भविष्यसि ॥ २१ ॥

[illegible] तथा [illegible] पुत्रोंकी [illegible] है [illegible] ।

[illegible] पुत्रवा न सुयोधन
भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ॥ २२ ॥

[illegible] अपने भाइयों और पुत्रों [illegible] याद करेगा ।

न द्वितीया प्रतिज्ञा हि प्रतिजानामि [illegible]
[illegible] भविष्यति ॥ २३ ॥
युधिष्ठिरोऽपि [illegible]
[illegible] सुयोधनम् ॥ २४ ॥

[illegible] प्रतिज्ञा [illegible] नहीं [illegible] युधिष्ठिरने [illegible] इस प्रकार कहा [illegible]

[illegible] त्वमर्हसि
[illegible] २

[illegible] अनुसार [illegible] नहीं [illegible]

[illegible] कौरव्य [illegible] कोऽन्तरितोऽस्यो
किं [illegible] ॥ २५ ॥

[illegible] नहीं [illegible] कुटुम्बीजनोंके [illegible] २६

[illegible] पुरा
[illegible] सुमहत् ॥ २७ ॥

[illegible] ऐसा [illegible] २८

[illegible] वासुदेवस्य न [illegible] ॥ २९ ॥

[illegible] है और [illegible] है

[illegible] सुयोधन [illegible]

[illegible] अपने [illegible] युद्ध [illegible]

मम [illegible] कौरवम् ॥ ३१ ॥
[illegible]

[illegible] दुर्योधनको [illegible] अभिप्राय [illegible] किया [illegible] २

भीमसेन [illegible] ॥ ३० ॥
[illegible] दुर्मते [illegible]

अद्य नैकृतिक पाप कुलाङ्गार सुयोधनम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर भीमसेनके पुत्र राजकुमार उलूकसे यह बात कही— उलूक ! तू दुर्बुद्धि ... पापी तथा दुराचारी दुर्योधनसे मेरी यह बात भी कह देना

सुयोधने च वक्तव्यं पुरे च नागसाह्वये
प्रतिज्ञातं मया नाम्ना सभामध्ये नराधम ॥ ३२ ॥
कर्ताहं तद् वचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते

नराधम ! तुझे ... नरकमें ... निवास करना चाहिये । हस्तिनापुरमें जाकर फिर यह बात कहिये मैंने सभामें जो प्रतिज्ञा की है उसे अवश्य सत्य कर दिखाऊँगा यह बात मैं सत्यकी ... शपथ खाकर तुझसे कहता हूँ ॥ ३२ ॥

दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे ॥ ३३ ॥
सक्थिनी तव भङ्क्त्वा च हत्वा हि तव सोदरान्
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन ॥ ३४ ॥

मैं युद्धमें दुःशासनको मारकर ... और तेरे सारे भाइयोंको मारकर तेरी ... तोड़कर रहूँगा सुयोधन ! मैं इन समस्त धृतराष्ट्रपुत्रोंकी मौत हूँ

सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम्
कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार सारे राजकुमारोंकी मृत्यु ... अभिमन्यु होगा । इसमें संशय नहीं है मैं अपने पराक्रमसे तुझे ... संतुष्ट करूँगा तू मेरी एक बात और सुन ले

हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः
आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥

सुयोधन ! तुझे समस्त भाइयोंसहित मारकर धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते तेरे मस्तकपर मैं पैर रखूँगा

नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते
उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३७ ॥
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथातथम्
तथा कर्तास्मि कौरव्य यथा त्वमनुशासि माम् ॥ ३८ ॥

तदनन्तर सहदेव ... कुमार भी ... प्रकार ... उलूक ! तू कुरुकुल ... धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे कहना ... मैंने तेरी कही हुई सारी बातें यथार्थरूपसे सुन लीं कौरव ! तू मुझे जैसा उपदेश देता है ठीक उसके अनुसार ही मैं सब कुछ करूँगा ॥ ३७-३८ ॥

सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत्
सुयोधन मतिर्या ते वृथैषा ते भविष्यति ॥ ३९ ॥
शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः
इमं च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत् त्वं विकत्थसे ॥ ४० ॥

राजन् ! तदनन्तर सहदेवने भी यह सार्थक वचन कहा— महाराज दुर्योधन ! आज जो तेरी बुद्धि है, यह व्यर्थ हो जायगी । इस समय तू हमारे इस महान् क्लेशको ... दुःखी होकर वर्णन कर रहा है, इसका फल यह होगा कि तू अपने

पुत्र बन्धुओं तथा बन्धुबान्धवोंसहित शोकमें डूब जायगा

विराटद्रुपदौ वृद्धावुलूकमिदमूचतुः
न समस्त नियन्तव्यं साध्वीयं निर्मतिः सदा
दासौ च स्वः कस्य वासीति यस्य ताकहयम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर बूढ़े राजा विराट और द्रुपदने उलूकसे इस प्रकार कहा— उलूक ! तू दुर्योधनसे कहना राजन् ! हम दोनोंका विचार सदा यह रहा है कि हम साधुपुरुषोंके दास हो जायँ । वे दोनों हम विराट और द्रुपद दास हैं या नहीं, इसका निर्णय युद्धमें विजय और पुरुषार्थ ... हो वह देखकर किया जायगा ।

शिखण्डी तु ततो वाक्यमुलूकमिदमब्रवीत्
वक्तव्यो भवता राजा पापेष्वभिरतः सदा ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् शिखण्डीने उलूकसे इस प्रकार कहा— उलूक ! तुम सदा पापोंमें ही तत्पर रहनेवाले अपने राजाके पास जाकर यह बात कहना ॥ ४२ ॥

पश्य त्वं मां रणे राजन् कुर्वाणं कर्म दारुणम्
यस्य वीर्यं समासाद्य मन्यसे विजयं युधि ॥ ४३ ॥
तमहं पातयिष्यामि रथात् तव पितामहम्

राजन् ! तुम समरभूमिमें मुझे भयानक कर्म करते हुए देखना । जिसके पराक्रमका भरोसा करके तुम युद्धमें अपनी विजय हुई मानते हो, तुम्हारे उन पितामहको मैं रथसे मार गिराऊँगा ।

अहं भीष्मवधात् सृष्टो नूनं धात्रा महात्मना ॥ ४४ ॥
सोऽहं भीष्मं हनिष्यामि मिषतां सर्वधन्विनाम्

निश्चय ही महात्मा विधाताने भीष्मका वध करनेके लिये ही मेरी सृष्टि की है । अतः मैं समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते भीष्मको मार डालूँगा ॥ ४४ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि कौन्तेयमुलूकमिदमब्रवीत् ॥ ४५ ॥
सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः
अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ॥ ४६ ॥

इसके बाद द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नने भी राजकुमार उलूकसे यह बात कही— उलूक ! तू राजपुत्र दुर्योधनसे मेरी यह बात कह देना । मैं द्रोणाचार्यको उनके गणों और बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा ॥ ४५-४६ ॥

महतश्च तथा कार्यं पूर्वैश्चरितं महत्
कर्म चाहं तथा कर्म यथा नान्यः करिष्यति ॥ ४७ ॥

मुझे अपने पूर्वजोंके महान् चरित्रका अनुसरण अवश्य करना चाहिये । अतः मैं युद्धमें वह पराक्रम कर दिखाऊँगा, जैसा दूसरा कोई नहीं करेगा ॥ ४७ ॥

तमब्रवीद् धर्मराजः कारुण्यार्थं वचो महत्
नाहं ज्ञातिवधं राजन् काङ्क्षेयं कथंचन ॥ ४८ ॥

तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने करुणावश फिर यह महान् वचन कहा— राजन् ! मैं किसी प्रकार भी अपने कुटुम्बीजनोंका वध नहीं करना चाहता ॥ ४८ ॥

तथैव सोमकान् युद्धे समरोत्थान् समागतान्।
स गच्छस्व चिरं तात उलूक यदि मन्यसे ॥ ४९ ॥
इह च तिष्ठ भद्रं ते वयं हि सह बान्धवाः।

अब युद्धके पूर्व जो कुछ भी होने वाला था, वह हो चुका है; अतः उलूक! तेरी इच्छा हो तो अभी यहाँसे चला जा अथवा यहीं ठहरा रह; क्योंकि हम भी तो भाई-बन्धु ही हैं।

उलूकस्त्वथ ततो राजन् धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥
आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः।

राजन्! तदनन्तर उलूक धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे विदा ले जहाँ राजा दुर्योधन था, वहाँ चला गया।

उलूकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ५१ ॥
अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत्।
वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ॥ ५२ ॥

वहाँ आकर उलूकने अमर्षशील दुर्योधनको अर्जुनका सारा संदेश ज्यों-का-त्यों सुना दिया। इसी प्रकार उसने भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन और धर्मराज युधिष्ठिरके पुरुषार्थपूर्ण बातोंका भी वर्णन किया।

नकुलस्य विराटस्य द्रुपदस्य च भारत।
सहदेवस्य च वचो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः।
केशवार्जुनयोर्वाक्यं यथोक्तं समभाषत ॥ ५३ ॥

भारत! फिर उसने नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके भी बातें ज्यों-की-त्यों कह दीं।

कृतवानथ तु तद् वाक्यं निशम्य भरतर्षभ।
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि भारत ॥ ५४ ॥

भारत! उलूककी वह कथन सुनकर भरतश्रेष्ठ दुर्योधनने दुःशासन, कर्ण तथा शकुनिसे कहा।

आज्ञापयत राजानं बलं मित्रबलं तथा।
यथा प्रागुदयात् सर्वा युक्ता तिष्ठत्यनीकिनी ॥ ५५ ॥

बन्धुओं! अपनी और मित्रोंकी सेनाको ऐसी आज्ञा दे दो कि सबेरे सूर्योदयसे पहले ही सारी सेना युद्धके लिये तैयार होकर मैदानमें डट जाय।

ततः कर्णसमादिष्टा दूताः प्रत्वरिता रथैः।
उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥ ५६ ॥
तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात्।
आज्ञापयन्तो राज्ञस्तान् योगः प्रागुदयादिति ॥ ५७ ॥

तत्पश्चात् कर्णकी आज्ञा पाकर दूत बड़ी उतावलीके साथ रथों, ऊँटों, ऊँटनियों तथा महान् वेगशाली अच्छे-अच्छे घोड़ोंपर सवार हो तीव्र गतिसे सम्पूर्ण सेनामें गये और कर्णके आदेशसे भूपालोंको यह आज्ञा सुनाने लगे कि सूर्योदयसे पहले ही युद्धके लिये तैयार हो जाना चाहिये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि उलूकदूतागमनपर्वणि उलूकदूतवाक्ये त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत उलूकदूतागमनपर्वमें उलूकके लौटनेसे सम्बन्ध रखनेवाला एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डवसेनाका युद्धके मैदानमें जाना और धृष्टद्युम्नके द्वारा योद्धाओंकी अपने अपने योग्य विपक्षियोंके साथ युद्ध करनेके लिये नियुक्ति

सञ्जय उवाच

उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! इधर उलूककी बातें सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें अपनी सेनाको युद्धके लिये प्रस्थान कराया।

पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम्।
चतुर्विधबलां भीमामकम्प्यां पृथिवीमिव ॥ २ ॥

उसमें पैदल, हाथी, रथ और अश्वसमूह भी थे। इस प्रकार वह चतुरङ्गिणी सेना बड़ी भयंकर और पृथ्वीके समान अविचल थी ॥ २ ॥

भीमसेनादिभिर्गुप्तां सार्जुनैश्च महारथैः।
धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥ ३ ॥

अर्जुन और भीमसेन आदि महारथी उसकी रक्षा करते थे। वह दुर्गम सेना धृष्टद्युम्नके अधीन थी और समुद्रके समान स्थिर (प्रशान्त) जान पड़ती थी।

तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः।
द्रोणप्रेप्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नः प्रचकर्ष ह ॥ ४ ॥

उसके आगे-आगे रणदुर्मद पाञ्चालराजकुमार महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न चल रहे थे, जो सदा आचार्य द्रोणसे युद्ध करनेकी इच्छा रखते थे। वे सभी सेनाओंको अपने पीछे खींचे लिये जाते थे।

यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत्।
अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥ ५ ॥

उन्होंने (शिक्षा, बल, शौर्य) सेना बल और उत्साहका विचार करते हुए अपने रथियोंको योग्य प्रतिपक्षियोंके साथ युद्ध करनेका आदेश दिया। अर्जुनको सूतपुत्र कर्णका और भीम-

[illegible]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि [illegible] पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

[illegible]

रथातिरथसंख्यानपर्व

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय

दुर्योधनके पूछनेपर भीष्मका कौरवपक्षके रथी और अतिरथियोंका परिचय देना

[illegible]

वैशम्पायन उवाच

[illegible]

उवाच

[illegible]

सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽसि व्यूहेषु विविधेषु च।
कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा॥ ८॥

मुझे सेनासम्बन्धी प्रत्येक कर्मका ज्ञान है। मैं नाना प्रकारके व्यूहोंके निर्माणमें भी कुशल हूँ। तुम्हारी सेनामें जो वेतनभोगी अथवा वेतन न लेनेवाले मित्रसैनिक हैं, उन सबसे यथायोग्य काम कराना मुझे ज्ञात है॥ ८॥

यात्रायानेषु युद्धेषु लब्धप्रशमनेषु च।
भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः॥ ९॥

महाराज! मैं युद्धके लिये यात्रा करने, युद्ध करने तथा विपक्षीके चलाये हुए अस्त्रोंका प्रतिकार करनेमें जैसे बृहस्पति जानते हैं, उसी प्रकार अच्छी जानकारी रखता हूँ॥ ९॥

व्यूहानां च समारम्भान् दैवगान्धर्वमानुषान्।
तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान् व्येतु ते ज्वरः॥ १०॥

मुझे देवता, गन्धर्व और मनुष्य—तीनोंकी ही व्यूहरचना का ज्ञान है। उनके द्वारा मैं पाण्डवोंको मोहित कर दूँगा। अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये॥ १०॥

सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम्।
यथावच्छास्त्रतो राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ११॥

राजन्! मैं तुम्हारी सेनाकी रक्षा करता हुआ शास्त्रीय विधानके अनुसार यथार्थरूपसे शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा। अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जाय॥ ११॥

दुर्योधन उवाच

विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि।
समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ १२॥

दुर्योधन बोला—महाबाहु गङ्गानन्दन! मैं आपसे सत्य कहता हूँ, मुझे सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंसे भी कभी भय नहीं होता है॥ १२॥

किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैनापत्ये व्यवस्थिते।
द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि॥ १३॥

फिर जब आप-जैसे दुर्धर्ष वीर हमारे सेनापतिके पदपर स्थित हैं तथा युद्धका अभिनन्दन करनेवाले पुरुषसिंह द्रोणाचार्य भी मेरे लिये युद्धभूमिमें उपस्थित हैं, तब तो मुझे भय हो ही कैसे सकता है?॥ १३॥

भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम।
न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम्॥ १४॥

कुरुश्रेष्ठ! जब आप दोनों पुरुषप्रवर मेरी विजयके लिये यहाँ खड़े हैं, तब तो अवश्य ही मेरे लिये देवताओंका राज्य भी दुर्लभ नहीं है॥ १४॥

रथसंख्यां तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा।
तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव॥ १५॥

पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः॥ १६॥

कुरुनन्दन! आप शत्रुओंके तथा अपने पक्षके रथियों और अतिरथियोंकी संख्याको पूर्णरूपसे जानते हैं। अतः मैं भी आपसे इस विषयकी जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ; क्योंकि पितामह! आप शत्रुपक्ष तथा अपने पक्षकी सभी बातोंके ज्ञानमें निपुण हैं। अतः मैं इन सब राजाओंके साथ आपके मुखसे इस विषयको सुनना चाहता हूँ॥ १५-१६॥

भीष्म उवाच

गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले।
ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये॥ १७॥

भीष्म बोले—राजेन्द्र गान्धारीनन्दन! तुम अपनी सेनाके रथियोंकी संख्या सुनो। भूपाल! तुम्हारी सेनामें जो-जो रथी और अतिरथी हैं, उन सबका परिचय देता हूँ॥ १७॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
रथानां तव सेनायां यथामुख्यं तु मे शृणु॥ १८॥

तुम्हारी सेनामें रथियोंके सहस्रों, अनेक लाख और अर्बुदों रथी मौजूद हैं, तथापि उनमें जो प्रधान-प्रधान हैं, उनके नाम मुझसे सुनो॥ १८॥

भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः।
दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसम्मितैः॥ १९॥

सबसे पहले अपने दुःशासन आदि सौ सहोदर भाइयोंके साथ तुम्हीं बहुत बड़े रथी हो॥ १९॥

सर्वे कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः।
रथोपस्थे गजस्कन्धे गदाप्रासासिचर्मणि॥ २०॥

तुम सब लोग प्रहारविशारद तथा छेदन-भेदनमें कुशल हो। रथपर बैठकर और हाथीके कंधेपर बैठकर भी युद्ध कर सकते हो। गदा, प्रास, ढाल और तलवारके संचालनमें भी कुशल हो॥ २०॥

संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः।
इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः॥ २१॥

तुमलोग रथको संचालन और अस्त्रोंके प्रहारमें भी निपुण हो। अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा युद्धका भार उठानेमें भी समर्थ हो। धनुष-बाणकी विद्यामें तो तुमलोग आचार्य द्रोण और कृपाचार्यके सुयोग्य शिष्य हो॥ २१॥

एते हनिष्यन्ति रणे पाञ्चालान् युद्धदुर्मदान्।
कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा मनस्विनः॥ २२॥

धृतराष्ट्रके ये मनस्वी पुत्र पाण्डवोंके साथ वैर बाँधे हुए हैं, अतः युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले पाञ्चाल योद्धाओंको ये समरभूमिमें मार डालेंगे॥ २२॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव।
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान्॥ २३॥

भरतश्रेष्ठ! मैं तो तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाका प्रधान सेनापति ही हूँ। अतः पाण्डवोंको कष्ट देकर शत्रुपक्षके सैनिकोंका संहार करूँगा॥ २३॥

न त्वात्मनो गुणान् वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते।
कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः॥ २४॥

मैं अपने मुखसे अपने ही गुणोंका बखान करना उचित नहीं समझता। तुम तो मुझे जानते ही हो। ... श्रेष्ठ ... तुम्हारे ... भी वीर है।

सर्वसिद्धिं च यत्नेन करिष्यामि न संशयः।
अस्त्रविद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः॥
हनिष्यति चमूं तेषां महेन्द्रो दानवानिव।

वे युद्धमें तुम्हारे कार्यकी अवश्य सिद्धि करेंगे, इसमें संशय नहीं है। बड़े-बड़े शस्त्रवेत्ता भी इन्हें परास्त नहीं कर सकते। इनका आयुध अत्यन्त दृढ़ है और ये दूरतक लक्ष्यको भी मार गिराते हैं। जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार ये भी शत्रुदलकी सेनाका विनाश करेंगे॥

मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः॥ ६॥
स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे।

महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको मैं अतिरथी मानता हूँ, जो प्रत्येक युद्धमें सदा भगवान् श्रीकृष्णसे होड़ लगाये रहते हैं॥

भागिनेयान् निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्तेऽतिरथो मतः।
एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवानां महारथान्॥ ७॥
सागरोर्मिसमानैश्च प्लावयन्निव शात्रवान्।

ये अपने सगे भानजों नकुल-सहदेवको छोड़कर अन्य सभी पाण्डव महारथियोंके साथ युद्ध करेंगे। तुम्हारी सेनाके इन वीर अतिरथीको मैं अतिरथी ही मानता हूँ। ये समुद्रकी लहरोंके समान अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके सैनिकोंको डुबाते हुए-से युद्ध करेंगे॥

भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत्॥ ८॥ ... सेना महा[illegible] रथ ...

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि भीष्मकर्तृकरथातिरथसंख्याने पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें भीष्मके द्वारा रथियों और अतिरथियोंकी गणनाविषयक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६५॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवपक्षके रथियोंका परिचय

भीष्म उवाच

सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः।
तवार्थसिद्धिमाकाङ्क्षन् योत्स्यते समरे परैः॥ १॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! काम्बोजराज सुदक्षिण एक रथीके समान माने गये हैं। वे तुम्हारे कार्यकी सिद्धि चाहते हुए समरभूमिमें शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥

एतस्य रथसिंहस्य तवार्थे राजसत्तम।
पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि॥ २॥

नृपश्रेष्ठ! रथियोंमें सिंहके समान पराक्रमी ये काम्बोजराज तुम्हारे लिये युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रम प्रकट करेंगे और समस्त कौरव इनके पराक्रमको देखेंगे॥

एतस्य रथवंशो हि तिग्मवेगप्रहारिणाम्।
काम्बोजानां महाराज शलभानामिवायतिः॥ ३॥

महाराज! इनके साथ प्रचण्ड वेगसे प्रहार करनेवाले काम्बोजदेशीय रथियोंका समूह है, जो युद्धमें टिड्डीदलोंकी भाँति शत्रुओंका विनाश करनेवाला होगा॥

नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव।
रथवंशेन शत्रूणां कदनं वै करिष्यति॥ ४॥

माहिष्मतीपुरीके निवासी राजा नील भी तुम्हारे दलके एक रथी हैं। इन्होंने नीले रंगका कवच धारण कर रखा है। ये अपने रथसमूहद्वारा शत्रुओंका संहार कर डालेंगे॥

कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मारिष।
योत्स्यते सततं राजंस्तवार्थे कुरुसत्तम॥ ५॥

कुरुश्रेष्ठ! पूर्वकालमें सहदेवके साथ इनकी शत्रुता हो गयी थी। राजन्! ये सदा तुम्हारे शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ समेतौ रथसत्तमौ।
कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ॥ ६॥

अवन्तीदेशके दोनों वीर राजकुमार विन्द और अनुविन्द श्रेष्ठ रथी माने गये हैं। तात! वे युद्धकर्ममें कुशल तथा सुदृढ बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न हैं।

एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः।
गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च भुजच्युतैः॥ ७॥

ये दोनों पुरुषसिंह अपने हाथसे छूटे हुए गदा, प्रास, खड्ग, नाराच तथा तोमरोंद्वारा शत्रुसेनाको दग्ध कर डालेंगे।

युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ।
यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत्॥ ८॥

महाराज! जैसे दो यूथपति गजराज हाथियोंके झुंडमें खेल-सा करते हुए विचरते हैं, उसी प्रकार युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले विन्द और अनुविन्द यमराजके समान विचरण करते हैं।

त्रिगर्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम।
कृतवैराश्च पार्थेन विराटनगरे तदा॥ ९॥

त्रिगर्तदेशीय पाँचों भाइयोंको मैं उदार रथी मानता हूँ। विराटनगरमें दक्षिणगोग्रहके युद्धके समय पाण्डवोंके साथ इनका वैर बढ़ गया था।

मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम्।
गाङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम्॥ १०॥

राजेन्द्र! जैसे मगरमच्छ उत्ताल तरङ्गोंवाली गङ्गाको मथ डालते हैं, उसी प्रकार वे त्रिगर्तदेशीय पाँचों क्षत्रिय वीर पाण्डवोंकी सेनाको विक्षुब्ध कर देंगे।

ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम्।
एते यास्यन्ति समरे संस्मरन्तः पुराकृतम्॥ ११॥
व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह।
दिशो विजयता राजन् श्वेतवाहेन भारत॥ १२॥

महाराज! वे पाँचों भाई रथी हैं और सत्यरथ उनमें प्रधान है। भारत! भीमसेनके छोटे भाई श्वेत घोड़ोंवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने दिग्विजयके समय उनका जो अप्रिय किया था, उस अपराधको याद रखते हुए वे युद्धभूमिमें आगे बढ़कर युद्ध करेंगे।

ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान्।
वरान् वरान् महेष्वासान् क्षत्रियाणां धुरन्धरान्॥ १३॥

वे पाण्डवोंके बड़े-बड़े महारथ धनुर्धर क्षत्रियशिरोमणि वीरोंका सामना करके उन्हें नष्ट करेंगे।

लक्ष्मणस्तव पुत्रस्तु तथा दुःशासनस्य च।
उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वनिवर्तिनौ॥ १४॥

राजन्! आपका पुत्र लक्ष्मण तथा दुःशासनका पुत्र—ये दोनों पुरुषसिंह युद्धसे पलायन करनेवाले नहीं हैं।

तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ।
युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः॥ १५॥

ये दोनों तरुण और सुकुमार राजपुत्र बड़े वेगशाली हैं। अनेक युद्धोंके विशेषज्ञ हैं और सब प्रकारसे सेनानायक होने योग्य हैं।

रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ।
क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत् कर्म करिष्यतः॥ १६॥

कुरुश्रेष्ठ! ये दोनों वीर रथी तो हैं ही, रथियोंमें श्रेष्ठ भी हैं। ये क्षत्रियधर्ममें तत्पर होकर युद्धमें महान् पराक्रम करेंगे।

दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभः।
योत्स्यते समरं प्राप्य स्वेन सैन्येन पालितः॥ १७॥

महाराज! नरश्रेष्ठ दण्डधार भी एक रथी हैं, जो युद्धके लिये आनेपर अपनी सेनासे सुरक्षित होकर लड़ेंगे।

बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः।
रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः॥ १८॥

तात! महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न कोसलदेशके राजा बृहद्बल भी मेरी दृष्टिमें एक रथी हैं और रथियोंमें इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

एष योत्स्यति संग्रामे स्वान् बन्धून् सम्प्रहर्षयन्।
उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः॥ १९॥

ये धृतराष्ट्रपुत्रोंके हितमें तत्पर हो भयंकर अस्त्र-शस्त्र तथा महान् धनुष धारण किये अपने बन्धुओंका हर्ष बढ़ाते हुए संग्राममें युद्ध करेंगे।

कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः।
प्रियान् प्राणान् परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव॥ २०॥

राजन्! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य तो रथयूथपतियोंके भी यूथपति हैं। वे अपने प्यारे प्राणोंकी परवा न करके तुम्हारे शत्रुओंको भस्म कर डालेंगे।

गौतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः।
कार्तिकेय इवाजेयः शरस्तम्बात् सुतोऽभवत्॥ २१॥

जो गौतम महर्षि आचार्य शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य कार्तिकेयकी भाँति सरकंडेसे उत्पन्न हुए हैं और उन्हींकी भाँति अजेय भी हैं।

एष सेनां बहुविधां विविधायुधकार्मुकाम्।
अग्निवत् समरे तात चरिष्यति विमर्दयन्॥ २२॥

तात! ये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं धनुष धारण करनेवाली बहुत-सी सेनाओंको अग्निके समान दग्ध करते हुए समरभूमिमें विचरेंगे।

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय

कौरवपक्षके रथी, महारथी और अतिरथियोंका वर्णन

भीष्म उवाच

शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप।
प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः॥१॥

भीष्मजी कहते हैं—नरेश्वर! यह तुम्हारा मामा शकुनि भी एक रथी है। यह पाण्डवोंसे वैर ठानकर युद्ध करेगा, इसमें संशय नहीं है॥१॥

एतस्य सेना दुर्धर्षा समरेऽप्रतियायिनी।
विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे॥२॥

युद्धमें बढ़कर शत्रुओंका सामना करनेवाली इस शकुनिकी सेना दुर्धर्ष है। इसका वेग वायुके समान है तथा यह विविध आकारवाले अनेक आयुधोंसे विभूषित है॥२॥

द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वेषामति धन्विनाम्।
समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः॥३॥

महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो सभी धनुर्धरोंसे बढ़कर है। यह युद्धमें विचित्र ढंगसे शत्रुओंका सामना करनेवाला, सुदृढ़ अस्त्रोंसे सम्पन्न तथा महारथी है॥३॥

एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः।
शरासनाद् विनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः॥४॥

महाराज! गाण्डीवधारी अर्जुनकी भाँति इसके धनुषसे छूटे हुए बाण परस्पर सटे हुए ही लक्ष्यतक पहुँचते हैं॥४॥

नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः।
निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महायशाः॥५॥

रथियोंमें श्रेष्ठ इस वीर द्रोणपुत्रके महत्त्वकी गणना नहीं की जा सकती। यह महारथी चाहे तो तीनों लोकोंको भस्म कर सकता है॥५॥

क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भृतोऽऽश्रमवासिनाम्।
द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः॥६॥

इसमें क्रोध है, तेज है और आश्रमवासी महर्षियोंके समान तपस्या भी संचित है। इसकी बुद्धि उदार है। द्रोणाचार्यने सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंका ज्ञान देकर इसपर महान् अनुग्रह किया है॥६॥

दोषस्त्वस्य महानेको येनैष भरतर्षभ।
न मे रथो नातिरथो मतः पार्थिवसत्तम॥७॥

किंतु भरतश्रेष्ठ (नृपशिरोमणे)! इसमें एक ही बहुत बड़ा दोष है, जिससे मैं इसे न तो महारथी मानता हूँ और न रथी ही॥७॥

जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः।
न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि॥८॥

इस ब्राह्मणको अपना जीवन बहुत प्रिय है, अतः यह सदा दीर्घायु बना रहना चाहता है (यही इसका दोष है)। अन्यथा दोनों सेनाओंमें इसके समान शक्तिशाली कोई नहीं है॥८॥

हन्यादेकरथेनैव देवानामपि वाहिनीम्।
वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान्॥९॥

यह एकमात्र रथका सहारा लेकर देवताओंकी सेनाका भी संहार कर सकता है। इसका शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं विशाल है। यह अपनी ताली की आवाजसे पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकता है॥९॥

असंख्येयगुणो वीरः प्रहर्ता दारुणद्युतिः।
दण्डपाणिरिवासह्यः कालवत् प्रचरिष्यति॥१०॥

इस वीरमें असंख्य गुण हैं। यह प्रहार करनेमें कुशल और भयंकर तेजसे सम्पन्न है। अतः दण्डधारी कालके समान असह्य होकर युद्धभूमिमें विचरण करेगा॥१०॥

युगान्ताग्निसमः क्रोधात् सिंहग्रीवो महाद्युतिः।
एष भारत युद्धस्य पृष्ठं संशमयिष्यति॥११॥

क्रोधमें यह प्रलयकालकी अग्निके समान जान पड़ता है। इसकी ग्रीवा सिंहके समान है। यह महातेजस्वी अश्वत्थामा महाभारत युद्धके शेषभागका शमन करेगा॥११॥

पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः।
रणे कर्म महत् कर्ता अत्र मे नास्ति संशयः॥१२॥

अश्वत्थामाके पिता द्रोणाचार्य महान् तेजस्वी हैं। ये बूढ़े होनेपर भी नवयुवकोंसे अच्छे हैं। इस युद्धमें ये अवश्य महान् पराक्रम प्रकट करेंगे, इसमें मुझे संशय नहीं है॥१२॥

अस्त्रवेगानिलोद्धूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः।
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः॥१३॥

समरभूमिमें डटे हुए द्रोणाचार्य अग्निके समान हैं। अस्त्रवेगरूपी वायुका सहारा पाकर ये उद्दीप्त होंगे और सेनारूपी घास-फूस तथा ईंधनोंको पाकर प्रज्वलित हो उठेंगे। इस प्रकार प्रज्वलित होकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी सेनाओंको जलाकर भस्म कर डालेंगे॥१३॥

रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः।
भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हितं तव॥१४॥

ये नरश्रेष्ठ भरद्वाजनन्दन रथयूथपतियोंके भी यूथपति हैं। ये तुम्हारे हितके लिये तीव्र पराक्रम प्रकट करेंगे॥१४॥

सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः।
गच्छेदन्तं सृञ्जयानां प्रियस्त्वस्य धनंजयः॥१५॥

सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंके ये आचार्य एवं वृद्ध गुरु हैं। ये सृंजयवंशी क्षत्रियोंका विनाश कर डालेंगे; परंतु अर्जुन इन्हें बहुत प्रिय हैं॥१५॥

नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम्।
हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम्॥१६॥

महापुरुषोंके [illegible] शत्रुओंका [illegible] अस्त्रोंके गुणोंका [illegible] गया है । [illegible] करनेके [illegible] महान् [illegible] करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनको [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] गुरुशिष्य
[illegible] ॥ १७ ॥

[illegible] वे आचार्य द्रोण [illegible] गुणोंका [illegible] [illegible] और उन्हें [illegible] मान [illegible] है ।

[illegible]
[illegible] ॥ १८ ॥

[illegible] द्रोण [illegible] हो [illegible] रण भूमिमें [illegible] हुए [illegible] देवताओं [illegible] और मनुष्योंको [illegible] कर सकता है ।

[illegible] राजन् [illegible]
[illegible] ॥ १९ ॥

राजन् तुम्हारी सेनामें जो [illegible] हैं वे [illegible] [illegible] रथियोंको [illegible] है ।

[illegible] महता [illegible]
[illegible] ॥ २० ॥

[illegible] सेनाके द्वारा शत्रुओंकी [illegible] [illegible] कर [illegible] जैसे [illegible]

[illegible] राजपुत्रो बृहद्बल
[illegible] ॥ २१ ॥

राजन् [illegible] हैं [illegible] उनकी [illegible] हुआ है [illegible] शत्रुओंकी सेनामें [illegible]

[illegible] योधा राजेन्द्र [illegible]
[illegible] ॥ २२ ॥

राजेन्द्र [illegible] विचित्र कवच और [illegible] [illegible] शत्रुओंपर [illegible] हुए [illegible] [illegible]

[illegible] महारथ
[illegible] ॥ २३ ॥

[illegible] पुत्र वृषसेन भी तुम्हारी [illegible] है । [illegible] वृषसेन तुम्हारे [illegible] ॥

[illegible] राजन् [illegible]
[illegible] ॥ २४ ॥

राजन् [illegible] मधुवंशी महा- [illegible] तुम्हारी सेनामें श्रेष्ठ [illegible] हैं । वे तुम्हारे लिये युद्धमें अपने प्राणतक दे डालेंगे ॥

[illegible]
[illegible] ॥ २५ ॥

महाबाहु [illegible] हाथीकी पीठपर बैठकर युद्ध [illegible] कुशल हैं । वे [illegible] [illegible] हुए [illegible]

[illegible] महाराज [illegible]
[illegible] ॥ २६ ॥

[illegible] और [illegible] युद्धमें [illegible] [illegible]

[illegible]
[illegible] ॥ २७ ॥

[illegible] वे [illegible] महान् पराक्रम [illegible] [illegible] युद्ध करनेवाले हैं । वे तुम्हारे शत्रुओंके [illegible] युद्ध [illegible]

[illegible]
[illegible] ॥ २८ ॥

[illegible] हैं वे युद्धमें [illegible] [illegible] हैं [illegible] ॥ २९ ॥

[illegible]
[illegible] रणे ॥ ३० ॥

[illegible] कभी [illegible] नहीं [illegible] [illegible] शत्रुओंको [illegible]

[illegible] महारथ
[illegible] ॥ ३१ ॥

[illegible] युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाने और शत्रुओंके [illegible] [illegible] भी महारथी हैं ।

[illegible]
[illegible] ॥ ३२ ॥

युद्ध [illegible] हुए शत्रुओंपर [illegible] हैं ।

[illegible]
[illegible] ॥ ३३ ॥

[illegible] श्रेष्ठ बलवान् शत्रुओंपर महान् [illegible] दिखाते हैं वे युद्धमें तुम्हारे लिये श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य महान् [illegible]

[illegible] राक्षसेन्द्र [illegible] महाबल
[illegible] ॥ ३४ ॥

[illegible] राक्षसराज [illegible] भी [illegible] राजन् [illegible] करेंगे [illegible] ॥ ३५ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ३६ ॥

मायावी वेगवानके सहयोगपूर्वक युद्धमें लड़नेवाले तथा बलवान् राक्षस शैलोंमें सह रहेंगे यह अत्यन्त साहसपूर्वक (निर्भय होकर) विचरता है ॥ ३४ ॥

अस्त्रयोधिवरो वीरो भगदत्तः प्रतापवान्।
गजाङ्कुशप्रवरो रथे चैव विशारदः ॥ ३५ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरका राजा भगदत्त बड़े वीर और प्रतापी हैं। हाथको काबूमें रखनेवाले अंकुश चलानेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। वे रथयुद्धमें भी कुशल हैं॥३५॥

एतस्य युद्धमभवत् पुरा गाण्डीवधन्वना।
दिवसान् सुबहून् राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः ॥ ३६ ॥

राजन्! पहले इनका साथ गाण्डीवधारी अर्जुनका युद्ध हुआ था। उस समय दोनों अपनी-अपनी विजय चाहते हुए बहुत दिनोंतक लड़ते रहे॥ ३६ ॥

ततः सखायं गान्धारे मानयन् पाकशासनम्।
अकरोत् संविदं तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ३७ ॥

गान्धारीकुमार! तदनन्तर भगदत्तने अपने सखा इन्द्रका सम्मान करते हुए महात्मा पाण्डुनन्दन अर्जुनके साथ संधि कर ली थी॥ ३७ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः।
ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः ॥ ३८ ॥

राजा भगदत्त हाथीकी पीठपर बैठकर युद्ध करनेमें अत्यन्त कुशल हैं। ये ऐरावतपर बैठे हुए देवराज इन्द्रके समान समराङ्गणमें तुम्हारे शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवपक्षके रथियों और अतिरथियोंका वर्णन, कर्ण और भीष्मका रोषपूर्वक संवाद तथा दुर्योधनद्वारा उनका निवारण

भीष्म उवाच

अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरावुभौ।
रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून् विध्वंसयिष्यतः ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—अचल और वृषक—ये साथ रहनेवाले दोनों भाई तुम्हारे रथी हैं, जो तुम्हारे शत्रुओंका विध्वंस कर डालेंगे ॥ १ ॥

बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ।
गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥ २ ॥

गान्धारदेशके ये प्रधान वीर नरश्रेष्ठ, बलवान्, तरुण, दृढ़ क्रोधवाले, प्रहार करनेमें कुशल, देखनेमें सुन्दर तथा महाबली हैं ॥ २ ॥

सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः।
प्रोत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥

परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव।
मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः ॥ ४ ॥

राजन्! यह जो तुम्हारा प्रिय सखा कर्ण है, जो तुम्हें पाण्डवोंके साथ युद्धके लिये सदा उत्साहित करता रहता है और रणक्षेत्रमें सदा अपनी कठोरताका परिचय देता है, बड़ा ही बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाला और नीच है। यह कर्ण तुम्हारा मन्त्री, नेता और बन्धु बना हुआ है। यह अभिमानी तो है ही, तुम्हारा आश्रय पाकर बहुत ऊँचे चढ़ गया है॥ ३-४ ॥

एष नैव रथः पूर्णो नाप्यथातिरथो नृप।
वियुक्तः कवचेनैव सहजेन विचेतनः ॥ ५ ॥

कुण्डलाभ्यां च दिव्याभ्यां वियुक्तः सततं घृणी।
अभिशापाच्च रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ॥ ६ ॥

करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः।
नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ७ ॥

यह कर्ण युद्धभूमिमें न तो रथी है और न अतिरथी ही; क्योंकि यह मूर्ख अपने सहज कवच तथा दिव्य कुण्डलोंसे हीन हो चुका है। यह दूसरोंपर सदा दया करता है। परशुरामजीके अभिशाप और ब्राह्मणके कथनानुसार उपयुक्त उपकरणोंका नाश हो जानेसे भी यह अर्धरथी है। अर्जुनसे भिड़कर यह कदापि जीवित नहीं बच सकता ॥ ५—७ ॥

ततोऽब्रवीत् पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्यास्ति कथंचन ॥ ८ ॥

यह सुनकर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी बोले—आप जैसा कहते हैं, बिलकुल ठीक है। आपका यह कथन कदापि मिथ्या नहीं है ॥ ८ ॥

रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥ ९ ॥

यह प्रत्येक युद्धमें घमंड तो बहुत दिखाता है, परंतु रणसे भागता ही देखा जाता है। कर्ण दयालु और प्रमादी है। इसलिये मेरी रायमें भी यह अर्धरथी ही है ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फुल्ललोचनः।
उवाच भीष्मं राजेन्द्र तुदन् वाग्भिः प्रतोदवत् ॥ १० ॥

यह सुनकर राधानन्दन कर्ण क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा और अपने वचनरूपी चाबुकसे पीड़ा देता हुआ भीष्मसे बोला— ॥ १० ॥

पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि।
अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ॥ ११ ॥

पितामह ! यद्यपि मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है तो भी सदा मुझसे द्वेष रखनेके कारण तुम इसी प्रकार पग-पगपर मुझे अपने बाणोंद्वारा इच्छानुसार कष्ट पहुँचाते रहते हो ॥ ११ ॥

सर्वथापि न शक्तं सर्वं दुर्योधनकृते यदि ।
त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥ १२ ॥

मैं दुर्योधनके कारण यह सब युद्ध कर रहा हूँ, परंतु तुम मुझे मूर्ख और कायरके समान मानते हो ॥ १२ ॥

अपयातोऽसि यो मन्ये मन्ये वै नाम सहाय ।
अवाच्यस्य अपवादस्य न मूढा भवेत् ॥ १३ ॥

तुम मेरे विषयमें जो अवहेलना कर रहे हो इससे सम्पूर्ण जगत्को निःसंदेह ऐसा ही प्रतीत होने लगेगा; क्योंकि सब यही जानते हैं कि महात्मा भीष्म झूठ नहीं बोलते ॥ १३ ॥

कुरुकामप्रियो नित्यं न च राजावबुध्यते ।
स हि नाम अमात्येषु राजस्त्वमसमासु ॥ १४ ॥
तेजोवधमिमं कुर्याद् विभेदयितुमात्मने ।
यथा स्म गुणविज्ञेयात्कराग विकीर्यसि ॥ १५ ॥

तुम कौरवोंका सदा अहित करते हो परंतु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझते हैं। तुम मेरे गुणोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण जिस प्रकार राजाओंको युद्धपर पीड़ित करना चाहते हो वैसा प्रकट तुम्हारे सिवा दूसरा कौन कर सकता है ? इस समय युद्धका अवसर उपस्थित है और समस्त सेनाके उदारचरित राजा एकत्र हुए हैं ऐसे अवसरपर आपसमें भेद (फूट) उत्पन्न करनेकी इच्छा रखकर कौन पुरुष अपने ही पक्षके योद्धाका इस प्रकार तेज और उत्साह नष्ट करेगा ? ॥ १४-१५ ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
महारथत्वं सम्भाव्यं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥ १६ ॥

कौरव ! केवल बड़ी अवस्था हो जाने, बाल पक जाने अधिक धनका संग्रह कर लेने तथा बहुसंख्यक भाई बन्धुओंके होनेसे ही किसी क्षत्रियको महारथी नहीं गिना जा सकता ॥ १६ ॥

बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः ।
धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः ॥ १७ ॥

क्षत्रियजातिमें जो बलमें अधिक हो वही श्रेष्ठ माना गया है। ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके ज्ञानसे, वैश्य अधिक धनसे और शूद्र अधिक आयु होनेसे बड़े माने जाते हैं ॥ १७ ॥

अयोग्यस्य तथा मूढो रागद्वेषसमन्वितः ।
कामाद्रूपाद्यमुक्तो भीष्मः प्राकृतो भवान् ॥ १८ ॥

तुम रागद्वेषसे भरे हुए हो, अतः मोहवश मनमाने ढंगसे रथी-अतिरथियोंका विभाग कर रहे हो ॥ १८ ॥

दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम् ।
त्वद्धितान्तं दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत् तव ॥ १९ ॥

महाबाहु दुर्योधन ! तुम अच्छी तरह विचार करके देखो। ये भीष्म दुर्भावसे दूषित होकर तुम्हारी बुराई कर रहे हैं। तुम इन्हें त्याग दो ॥ १९ ॥

भिन्ना हि सेना नृपते दुःसंधेया भवत्युत ।
मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नानासमुत्थिता ॥ २० ॥

नरेश्वर ! पुरुषसिंह ! एक बार सेनामें फूट पड़ जानेपर उसमें पुनः मेल कराना कठिन हो जाता है। उस दशामें मौलिक (पीढ़ियोंसे चली आनेवाली) सेनाएँ भी हाथसे निकल जाती हैं। फिर जो भिन्न भिन्न स्थानोंसे लोग किसी एक कार्यके लिये उद्यत होकर एकत्र हुए हों उनकी तो बात ही क्या है ? ॥ २० ॥

एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत ।
तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥ २१ ॥

भारत ! इन योद्धाओंमें युद्धके अवसरपर दुविधा उत्पन्न हो गयी है। तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, हमारे तेज और उत्साहको विशेषरूपसे हत्या की जा रही है ॥ २१ ॥

रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः ।
अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २२ ॥

कहाँ रथियोंकी समझना और कहाँ अल्पबुद्धि भीष्म ! मैं अकेला ही पाण्डवोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा ॥ २२ ॥

आसाद्य माममोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश ।
पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥ २३ ॥

मेरे बाण अमोघ हैं। मेरे सामने आकर पाण्डव और पाञ्चाल उसी प्रकार दसों दिशाओंमें भग जायँगे, जैसे सिंहको देखकर बैल भागते हैं ॥ २३ ॥

क्व च युद्धविमर्दो वा मन्त्राः सुव्याहृतानि वा ।
क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालमोहितः ॥ २४ ॥

कहाँ युद्ध, मारकाट और गुप्त मन्त्रणा अच्छी बातें बतानेका काम और कहाँ कालमोहित मन्दबुद्धि भीष्म जिनकी आयु समाप्त हो चुकी है ॥ २४ ॥

स्पर्धते हि सदा नित्यं सर्वेण जगता सह ।
न चान्यं पुरुषं कंचिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥ २५ ॥

ये अकेले ही सदा सम्पूर्ण जगत्के साथ स्पर्धा रखते हैं और मिथ्या ज्ञानके कारण दूसरे किसीको पुरुष ही नहीं समझते हैं ॥ २५ ॥

श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम् ।
न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ॥ २६ ॥

बूढ़ोंकी बातें सुननी चाहिये यह शास्त्रका आदेश है। परंतु जो अधिक बूढ़े हो गये हैं उनकी बातें सुनना उचित नहीं है; क्योंकि वे तो फिर बालकोंके ही समान माने गये हैं ॥ २६ ॥

एकोऽहमेव हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ।
सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥ २७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! मैं इस युद्धमें अकेला ही पाण्डवोंकी सेनाका

विनाश करूँगा, परंतु सारा यश भीष्मको मिल जायगा ।

कृता सेनापतिस्त्वेव त्वया भीष्मो नराधिप ।
सेनापतेर्यशो गन्ता न तु योधान् कथंचन ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! तुमने इन भीष्मको ही सेनापति बनाया है विजयका यश सेनापतिको ही प्राप्त होता है योद्धाओंको कभी प्राप्त नहीं मिलता ॥ २८ ॥

नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन् कथंचन ।
हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ॥ २९ ॥

अतः राजन् ! मैं भीष्मके जीते-जी किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा परंतु भीष्मके मारे जानेपर सम्पूर्ण महारथियोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ २९ ॥

भीष्म उवाच

समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः ।
धार्तराष्ट्रस्य संग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ॥ ३० ॥
तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे ।
मिथोभेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥ ३१ ॥

भीष्मने कहा—सूतपुत्र ! इस युद्धमें दुर्योधनका यह समुद्रके समान अत्यन्त दुस्तर भार मैंने अपने कंधेपर उठाया है । जिसके लिये मैं बहुत वर्षोंसे चिन्तित हो रहा था वह रोमाञ्चकारी भयंकर समय अब आकर उपस्थित हो गया ऐसे अवसरपर मुझे यह पारस्परिक भेद नहीं उत्पन्न करना चाहिये इसीलिये तू अभीतक जी रहा है । ३०-३१ ॥

न त्वहं नाद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव ।
युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ॥ ३२ ॥

सूतकुमार ! यदि ऐसी बात न होती तो मैं वृद्ध होनेपर भी पराक्रम करके आज तुझ बालककी युद्धविषयक श्रद्धा और जीवनकी आशाका एक ही साथ उच्छेद कर डालता ।

जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि विमुञ्चता ।
न मे व्यथाभवत् काचित् त्वं तु मे किं करिष्यसि ॥ ३३ ॥

जमदग्निनन्दन परशुरामने भी उत्तम बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रयोग किया था परंतु वे भी मुझे कोई पीड़ा न दे सके फिर तू तो मेरा क्या ही कर लेगा ! ॥ ३३ ॥

कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् ।
वक्ष्यामि तु त्वां संतप्तो निहीन कुलपांसन ॥ ३४ ॥

नीच कुलाङ्गार ! साधु पुरुष अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा करना कदापि अच्छा नहीं मानते हैं तथापि तेरे व्यवहारसे संतप्त होकर मैं अपनी प्रशंसाकी बात भी कह रहा हूँ । ३४ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयंवरे ।
निर्जित्यैकरथेनैव यत् कन्यास्तरसा हृताः ॥ ३५ ॥

काशिराजके यहाँ स्वयंवरमें समस्त भूमण्डलके क्षत्रिय नरेश एकत्र हुए थे परंतु मैंने केवल एक रथपर ही आरूढ़ होकर उन सबको जीतकर बलपूर्वक काशिराजकी कन्याओंका अपहरण किया था ॥ ३५ ॥

ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः ।
मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥ ३६ ॥

वहाँ जो राजा एकत्र हुए थे वैसे तथा इनसे भी बढ़कर शक्तिशाली हजारों नरेश वहाँ एकत्र थे परंतु मैंने समराङ्गणमें अकेले ही उन सबको सेनासहित परास्त कर दिया था ॥ ३६ ॥

त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान् ।
उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ॥ ३७ ॥

तू वैरका मूर्तिमान् स्वरूप है । तेरे सहारा पाकर कुरुकुलके विनाशके लिये बहुत बड़ा अन्याय उपस्थित हो गया है । अब तू रक्षाका प्रयत्न कर और पुरुषत्वका परिचय दे ॥ ३७ ॥

युध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह ।
द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद् युद्धात् सुदुर्मते ॥ ३८ ॥

दुर्मते ! तू जिसके साथ सदा स्पर्धा रखता है उस अर्जुनके साथ समरभूमिमें युद्ध कर । मैं देखूँगा कि तू इस संग्राममें किस प्रकार बच पाता है ॥ ३८ ॥

तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान् ।
मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर प्रतापी राजा दुर्योधनने भीष्मजीसे कहा—गङ्गानन्दन ! आप मेरी ओर देखिये क्योंकि इस समय महान् कार्य उपस्थित है ॥ ३९ ॥

निश्चीयतामिदं कार्यं मम निःश्रेयसं परम् ।
उभावपि भवन्तौ मे महत् कर्म करिष्यतः ॥ ४० ॥

आप एकाग्रचित्त होकर मेरे परम कल्याणकी बात सोचिये आप और कर्ण दोनों ही मेरा महान् कार्य सिद्ध करेंगे ।

भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान् ।
ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥ ४१ ॥

अब मैं पुनः शत्रुपक्षके श्रेष्ठ रथियों अतिरथियों तथा रथयूथपतियोंके परिचय सुनना चाहता हूँ ॥ ४१ ॥

बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव ।
प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥ ४२ ॥

कुरुनन्दन ! शत्रुओंके बलाबलको सुननेकी मेरी इच्छा है । आजकी रात बीतते ही कल प्रातःकाल यह युद्ध आरम्भ हो जायगा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि कर्णभीष्मविवादे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें कर्ण और भीष्मका विवादविषयक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

पाण्डवपक्षके श्री महारथियों एवं उनकी महिमाका वर्णन

भीष्म उवाच

एते रथास्ते संख्याताः सर्वे पाञ्चालतिरथा नृप।
ये त्वन्ये पाण्डवेयानां राजन् पक्षगता नृपाः ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—नरेश्वर! ये तुम्हारे पक्षके रथी, अतिरथी और अर्धरथी बताये गये हैं। राजन्! अब तुम पाण्डवपक्षके रथियोंका वर्णन सुनो।

यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप।
रथसंख्यां शृणुष्व त्वं सहैभिर्वसुधाधिप ॥ २ ॥

नरेश्वर! यदि पाण्डवोंकी सेनाके रथियोंको जाननेकी तुम्हारे मनमें कौतूहल हो तो इन भूपालोंके साथ तुम उनके रथियोंकी गणना सुनो।

स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः।
अग्निवत् समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥ ३ ॥

तात! कुन्तीका आनन्द बढ़ानेवाले स्वयं पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर एक श्रेष्ठ रथी महारथी हैं। वे समरभूमिमें अग्निके समान सब ओर विचरेंगे, इसमें संशय नहीं है।

भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः।
न तस्यास्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥ ४ ॥
नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः।

राजेन्द्र! भीमसेन तो आठ रथियोंके बराबर हैं। गदा और बाणोंद्वारा किये जानेवाले युद्धमें उनके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है। उनमें दस हजार हाथियोंका बल है। वे बड़े ही मानी तथा अलौकिक तेजसे सम्पन्न हैं।

माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ॥ ५ ॥
अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ।

माद्रीके दोनों पुत्र भी अश्विनीकुमारोंके समान रूपवान् और तेजस्वी हैं। ये दोनों ही पुरुषरत्न रथी हैं।

एते चमूमुखगताः स्मरन्तः क्लेशमुत्तमम् ॥ ६ ॥
रुद्रवत् प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नास्ति संशयः।

ये चारों भाई महान् क्लेशका स्मरण करते हुए सेनाके मुहानेपर रुद्रदेवके समान संहार करते हुए विचरेंगे, इसमें मुझे संशय नहीं है।

सर्वे एव महात्मानः शालस्कन्धा इवोद्गताः ॥ ७ ॥
प्रादेशेनाधिकाः पुम्भिरन्यैस्ते च प्रमाणतः।

ये सभी महात्मा पाण्डव शालवृक्षके स्कन्धोंके समान ऊँचे हैं। उनकी लंबाईका माप अन्य पुरुषोंसे एक बित्ता अधिक है।

सिंहसंहनना सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ॥ ८ ॥
चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः।
ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥ ९ ॥

सभी पाण्डव सिंहके समान सुगठित शरीरवाले और महान् बलवान् हैं। तात! उन सबने ब्रह्मचर्यका पालन किया है। वे सभी तपस्वी और लज्जाशील हैं। पुरुषसिंह पाण्डव व्याघ्रोंके समान बलोत्कट हैं।

जवे प्रहारे सम्मर्दे सर्व एवातिमानुषाः।
सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥ १० ॥

भरतश्रेष्ठ! वे वेग, प्रहार और संघर्षमें अमानुषिक शक्तिसे सम्पन्न हैं। उन सबने दिग्विजयके समय बहुत-से राजाओंपर विजय पायी है।

न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान्।
विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्यपि कौरव ॥ ११ ॥
उद्यन्तुं वा गदां गुर्वीं शरान् वा क्षेप्तुमाहवे।
जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ॥ १२ ॥
बालैरपि भवन्तस्ते सर्व एव विशेषिताः।

कुरुनन्दन! इनके आयुधों, गदाओं और बाणोंका आघात कोई भी नहीं सह सकते हैं। इनके धनुषोंपर न तो कोई इनके अनुसार प्रत्यञ्चा ही चढ़ा पाते हैं, न युद्धमें इनकी भारी गदाको ही उठा सकते हैं और न इनके बाणोंका ही प्रहार कर सकते हैं। वेगमें चलने, लक्ष्य वेध करने, खाने और धूलिक्रीड़ा करने आदिमें उन सबने बाल्यावस्थामें तुम्हें भी परास्त कर दिया था।

एतत् सैन्यं समासाद्य व्यक्तं गच्छति भारत ॥ १३ ॥
विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः।

वे सेनामें आकर उत्कट बलशाली हो गये हैं। युद्धमें आनेपर वे तुम्हारी सेनाका नाश कर डालेंगे। मैं चाहता हूँ, उनसे कभी भी तुम्हारी मुठभेड़ न हो।

एकैकशस्ते सम्भर्तुं हन्युः सर्वान् महीक्षितः ॥ १४ ॥
प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाभवत्।

उनमेंसे एक-एकमें इतनी शक्ति है कि वे समस्त राजाओंका युद्धमें संहार कर सकते हैं। राजेन्द्र! राजसूय यज्ञमें जैसा जो कुछ हुआ था, वह तुमने अपनी आँखों देखा था।

द्रौपद्याश्च परिक्लेशं वाचो वा परुषा गिरः ॥ १५ ॥
ते स्मरन्तः सङ्ग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत्।

राजसभाके समय द्रौपदीको जो महान् क्लेश दिया गया और पाण्डवोंके प्रति कठोर बातें सुनायी गयीं, इन सबको याद करके वे संग्रामभूमिमें रुद्रके समान विचरेंगे।

लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् ॥ १६ ॥
उभयोः सेनयोर्वीरो रथी नास्तीति तादृशः।

लाल नेत्रोंवाले निद्राविजयी अर्जुनके सखा और सहायक नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण हैं। कौरव-पाण्डव दोनों सेनाओंमें अर्जुनके समान वीर रथी दूसरा कोई नहीं है।

न हि देवेषु सर्वेषु नासुरोरगरक्षःसु च ॥ १७ ॥

राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु।
भूतोऽथवा भविष्यो वा धनञ्जयसमो युधि॥१८॥

ध्वजा देखनेवाले देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों तथा यक्षोंमें भी अर्जुनके समान कोई नहीं है, फिर मनुष्योंमें तो हो ही कैसे सकता है? भूत या भविष्यमें भी कोई ऐसा रथी मेरे सुननेमें नहीं आया है॥१७-१८॥

समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः।
वासुदेवश्च यन्ता योद्धा चैव धनञ्जयः॥१९॥

महाराज! बुद्धिमान् अर्जुनका रथ जुता हुआ है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उसके सारथि और युद्धकुशल धनञ्जय रथी हैं॥१९॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाश्वा वातरंहसः।
अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी॥२०॥

दिव्य गाण्डीव धनुष है, वायुके समान वेगशाली अश्व हैं, अभेद्य दिव्य कवच है तथा दो महान् अक्षय तरकस हैं॥२०॥

अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च।
याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः॥२१॥

उनके पास इन्द्र, रुद्र, कुबेर, यम तथा वरुणके अस्त्रोंका समुदाय है, भयंकर दिखायी देनेवाली गदाएँ हैं॥२१॥

वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च।
दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम्॥२२॥
हतान्येकरथेनाजौ कस्तस्य सदृशो रथः।

वज्र आदि भाँति-भाँतिके श्रेष्ठ आयुध भी उनके पास विद्यमान हैं। अर्जुनने युद्धमें एकमात्र रथकी सहायतासे हिरण्यपुरनिवासी सहस्रों दानवोंका संहार किया है। उनके समान दूसरा कौन रथी हो सकता है?

एष हन्याद्धि संरम्भी बलवान् सत्यविक्रमः॥२३॥
तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन्।

यह बलवान्, सत्यपराक्रमी महाबाहु अर्जुन क्रोधमें भरकर तुम्हारी सेनाका संहार कर डालेगा और अपनी सेनाकी रक्षामें तत्पर रहेगा॥२३½॥

अहं चैनं प्रत्युद्यास्यामाचार्यो वा धनञ्जयम्॥२४॥
न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि।
य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद् रथी॥२५॥

मैं अथवा द्रोणाचार्य ही धनञ्जयका सामना कर सकते हैं। राजेन्द्र! दोनों सेनाओंमें तीसरा कोई ऐसा रथी नहीं है, जो बाणोंकी वर्षा करते हुए अर्जुनके सामने जा सके॥२४-२५॥

जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः।
समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान्।
तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभौ च नौ॥२६॥

ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें प्रचण्ड वायुसे प्रेरित महामेघकी भाँति श्रीकृष्णसहित अर्जुन युद्धके लिये तैयार है। वह तरुण और युद्धकुशल है, तथा हम दोनों बूढ़े हो चले हैं॥२६॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा।
काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः॥२७॥
मनोभिः सह सावेगैः स्मृत्वा च पुरातनम्।
सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथा प्रत्यक्षदर्शनात्॥२८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भीष्मजीकी यह बात सुनकर राजाओंको पाण्डवोंकी पूर्वकालकी शक्तिका प्रत्यक्ष देखनेकी भाँति स्मरण करके उनकी सुवर्णमय बाजूबंदोंसे विभूषित चन्दनचर्चित स्थूल भुजाएँ उद्वेगयुक्त मनके साथ ही शिथिल हो गयीं॥२७-२८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि अर्जुनादिरथसंख्याने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें अर्जुन आदि रथियोंकी संख्याका वर्णनविषयक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१६६॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डवपक्षके रथियों और महारथियोंका वर्णन तथा विराट और द्रुपदकी प्रशंसा

भीष्म उवाच

द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः।
वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम॥१॥

भीष्मजी कहते हैं—महाराज! द्रौपदीके पाँचों पुत्र महारथी हैं। विराटपुत्र उत्तरको मैं उदार रथी मानता हूँ॥१॥

अभिमन्युर्महाराज रथयूथपयूथपः।
समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चारिहा॥२॥
लघ्वस्त्रचित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः।
संस्मरन् वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति॥३॥

महाबाहु अभिमन्यु यूथपतियोंके भी यूथपति हैं। वह समरभूमिमें अर्जुन और श्रीकृष्णके समान पराक्रमी है। उसने अस्त्रविद्याकी विशिष्ट शिक्षा प्राप्त की है। वह युद्धकी विचित्र कलाएँ जानता है तथा दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला और मनस्वी है। वह अपने पिताके क्लेशको याद करके अवश्य पराक्रम दिखायेगा॥२-३॥

सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः।
एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः॥४॥

मधुवंशी शूरवीर सात्यकि भी रथ-यूथपतियोंके भी यूथपति हैं। वृष्णिवंशके प्रमुख वीरोंमें ये सात्यकि बड़े ही अमर्षशील हैं। इन्होंने भयको जीत लिया है॥४॥

उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो मतो मम।

युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥ ५ ॥

राजन्! उत्तमौजाको भी मैं उदार रथी मानता हूँ। पराक्रमी युधामन्यु भी मेरे मतसे एक श्रेष्ठ रथी हैं ॥ ५ ॥

एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा।
योत्स्यन्ते ते तनुं त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया ॥ ६ ॥

इनके पास कई हजार रथ, हाथी और घोड़े हैं, जो कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने शरीरका त्याग करके युद्ध करेंगे ॥ ६ ॥

पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत।
अग्निमारुतवद् राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ७ ॥

भारत! राजेन्द्र! वे पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सेनामें प्रवेश करके एक दूसरेको ललकारते हुए आग और वायुकी भाँति विचरेंगे ॥ ७ ॥

अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदावुभौ।
महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥ ८ ॥

बूढ़े राजा विराट और द्रुपद भी युद्धमें अजेय हैं। इन दोनों महापराक्रमी नरश्रेष्ठ वीरोंको मैं महारथी मानता हूँ ॥ ८ ॥

वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ।
यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥ ९ ॥

यद्यपि ये दोनों अवस्थाकी दृष्टिसे बड़े बूढ़े हैं, तथापि क्षत्रियधर्मका आश्रय ले वीरोंके मार्गमें स्थित हो अपनी शक्तिभर युद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे ॥ ९ ॥

सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात्।
आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहपाशसितावुभौ ॥ १० ॥

राजेन्द्र! वे दोनों नरेश वीर्य और बलसे सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषोंके समान बर्तावकारी और महान् धनुर्धर हैं। पाण्डवोंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण वे दोनों उनके स्नेहपाशमें बँधे हुए हैं ॥ १० ॥

कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः।
शूरा वा कातरा वापि भवन्ति कुरुपुङ्गव ॥ ११ ॥

कुरुश्रेष्ठ! कोई कारण पाकर सभी महाबाहु मनुष्य शूर अथवा कायर हो जाते हैं ॥ ११ ॥

एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढभक्तिकौ।
त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या घटितारौ परंतप ॥ १२ ॥

परंतप! दृढतापूर्वक भक्ति रखनेवाले राजा विराट और द्रुपद एकमात्र वीरपथका आश्रय ले चुके हैं। वे अपने प्राणोंका त्याग करके भी पूरी शक्तिसे तुम्हारी सेनाके साथ युद्ध करेंगे ॥ १२ ॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ।
सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १३ ॥

ये दोनों युद्धमें बड़े भयंकर हैं अतः अपने सम्बन्धकी रक्षा करते हुए पृथक् पृथक् अक्षौहिणी सेना साथ लिये महान् पराक्रम करेंगे ॥ १३ ॥

लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत।
प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥ १४ ॥

भारत! महान् धनुर्धर तथा लोकप्रसिद्ध वीर ये दोनों नरेश अपने विश्वास और सम्मानकी रक्षा करते हुए प्राणोंका मोह छोड़कर युद्धभूमिमें महान् पुरुषार्थ प्रकट करेंगे ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७० ॥

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

पाण्डवपक्षके रथी, महारथी एवं अतिरथी आदिका वर्णन

भीष्म उवाच

पाञ्चालराजस्य सुतो राजन् परपुरंजयः।
शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—भरतनन्दन! पाञ्चालराज द्रुपदका पुत्र शिखण्डी शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाला है। उसे मैं युधिष्ठिरकी सेनाका एक प्रमुख रथी मानता हूँ ॥ १ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन् पूर्वसंस्थितिम्।
परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥ २ ॥

भारत! यह तुम्हारी सेनाओंमें अपने पूर्व स्त्रीत्वका नाश तथा उत्तम सुयशका विस्तार करता हुआ बड़े उत्साहसे युद्ध करेगा ॥ २ ॥

एतस्य बहुलाः सेनाः पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः।
तेनासौ रथवंशेन महत् कर्म करिष्यति ॥ ३ ॥

इसके पास पाञ्चालों और प्रभद्रकोंकी बहुत बड़ी सेना है। उस रथसमुदायके द्वारा यह युद्धमें महान् कर्म कर दिखायेगा ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत।
मतो मेऽतिरथो राजन् द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ४ ॥

भारत! समस्त पाण्डवसेनाओंका सेनापति है, द्रोणाचार्यका महारथी शिष्य धृष्टद्युम्न मेरे विचारसे अतिरथी है ॥ ४ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे सूदयन् वै परान् रणे।
भगवानिव संक्रुद्धः पिनाकी युगसंक्षये ॥ ५ ॥

जैसे प्रलयकालमें पिनाकधारी भगवान् रुद्र कुपित होकर प्रजाका संहार करते हैं, उसी प्रकार यह समरांगणमें शत्रुओंका संहार करता हुआ युद्ध करेगा ॥ ५ ॥

एतस्य तद् रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः।
बहुत्वात् सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥ ६ ॥

इसके पास रथियोंकी जो देवसेनाके समान विशाल सेना

है। इनकी सब्या बहुत होनेके कारण ये युद्धमें शत्रुओं-को देखते ही समुद्रके समान बढ़ते हैं॥ ६॥

क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप।
धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नातिकृतश्रमः॥ ७॥

राजेन्द्र! धृष्टद्युम्नका पुत्र क्षत्रधर्मा मेरी समझमें अभी अर्धरथी है। बाल्यावस्था होनेके कारण उसने अस्त्र-विद्यामें अधिक परिश्रम नहीं किया है॥ ७॥

शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः।
धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य ह॥ ८॥

शिशुपालका वीर पुत्र महाधनुर्धर चेदिराज धृष्टकेतु पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका सम्बन्धी एवं महारथी है॥ ८॥

एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत।
महारथानां सुकरं महत् कर्म करिष्यति॥ ९॥

भारत! यह शूरवीर चेदिराज अपने पुत्रके साथ महारथियोंके लिये सुकर महान् पराक्रम कर दिखायेगा॥ ९॥

क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरञ्जय।
क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः॥ १०॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले राजेन्द्र! पाण्डवपक्षमें मेरी समझमें क्षत्रदेव एक श्रेष्ठ रथी है॥ १०॥

जयन्तश्चामितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः।
महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः॥ ११॥
योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः।

जयन्त, अमितौजा और महारथी सत्यजित्—ये पाञ्चालदेशके महामनस्वी वीर महारथी ही हैं। तात! ये सब क्रोधमें भरे हुए गजराजोंकी भाँति समरभूमिमें युद्ध करेंगे॥ ११॥

अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थे महारथौ॥ १२॥
पाण्डवानां सहायार्थं परं शक्त्या यतिष्यतः।

पाण्डवोंके लिये महान् पराक्रम दिखानेवाले पराक्रमी अज और भोज दोनों महारथी हैं। ये युद्धमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर पाण्डवोंकी सहायताके लिये चेष्टा करेंगे॥ १२॥

शीघ्रास्त्राश्चित्रयोधाश्च कृतिनो दृढविक्रमाः॥ १३॥
केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो दृढविक्रमाः।
सर्व एव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः॥ १४॥

राजेन्द्र! शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले, विचित्र रीतिसे युद्धकलामें निपुण और दृढ पराक्रमी जो पाँच भाई केकय राजकुमार हैं, वे सभी उदार रथी माने गये हैं। उन सबकी ध्वजा लाल रंगकी है॥ १३-१४॥

काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चापरो नृपः।
सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः॥ १५॥
सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाहवलक्षणाः।
सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम॥ १६॥

सुकुमार, काशिक, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्व नामसे प्रसिद्ध ये सभी उदार रथी हैं। युद्ध ही इन सबका सौभाग्यसूचक चिह्न है। मैं इन सबको सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता और महामनस्वी मानता हूँ॥ १५-१६॥

वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः।
चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः॥ १७॥

महाराज! वार्धक्षेमिको मैं महारथी मानता हूँ तथा राजा चित्रायुध मेरे विचारसे श्रेष्ठ रथी हैं॥ १७॥

स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः।
चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ।
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम॥ १८॥

चित्रायुध युद्धमें शोभा पानेवाले तथा अर्जुनके भक्त हैं। चेकितान और सत्यधृति—ये दो पुरुषसिंह पाण्डवसेनाके महारथ हैं। मैं इन्हें उदार रथी मानता हूँ॥ १८॥

व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत।
मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः॥ १९॥

भरतनन्दन! महाराज! व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन—ये दो नरश्रेष्ठ भी पाण्डवसेनाके उदार रथी हैं, इसमें संशय नहीं है॥ १९॥

सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः।
यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन वा विभो॥ २०॥
स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः।

राजन्! राजा सेनाबिन्दु, जिसका दूसरा नाम क्रोधहन्ता भी है, प्रभो! वासुदेव श्रीकृष्ण तथा भीमसेनके समान पराक्रमी माना जाता है। वह समरभूमिमें तुम्हारे सैनिकोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध करेगा॥ २०॥

मां द्रोणं च कृपं चैव यथा सम्मन्यते भवान्॥ २१॥
तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः।
काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः॥ २२॥

तुम मुझको, आचार्य द्रोणको तथा कृपाचार्यको जैसा समझते हो, युद्धमें ऐसा ही रखनेवाले रथश्रेष्ठ सेनाबिन्दुको भी समझना चाहिये। शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले प्रशंसनीय नरश्रेष्ठ काश्यको भी तुम्हें वैसा ही मानना चाहिये॥ २१-२२॥

रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरञ्जयः।
अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः॥ २३॥

मेरी दृष्टिमें शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले काशिराजको साधारण अवस्थामें एक रथी समझना चाहिये, परंतु जिस समय ये युद्धमें पराक्रम प्रकट करने लगते हैं, उस समय इन्हें आठ रथियोंके बराबर मानना चाहिये॥ २३॥

सत्यजित् समरश्लाघी द्रुपदस्यात्मजो युवा।
गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः॥ २४॥
पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति।

द्रुपदका तरुण पुत्र सत्यजित् युद्धकी श्लाघा रखने-वाला है। वह धृष्टद्युम्नके समान ही अतिरथीके पदको प्राप्त

कर चुका है। यह पाण्डवोंके बढ़ाविनाशकी इच्छा रखकर युद्धमें महान् कर्म करेगा ॥ २४ ॥

अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान्।
पाञ्चालराजो महावीर्यः पाञ्चालानां धुरंधरः।
रथश्रेष्ठो महेष्वासः पाण्डवानां महारथः ॥ २६ ॥

पाञ्चालराजके पुत्र और महाबली पाञ्चालपति भी एक अन्य महारथी हैं। ये पाण्डवोंके प्रति अनुराग रखने वाले और शूरवीर हैं। इनका धनुष महान् और सुदृढ है। ये पाण्डवसेनाके सम्मानित महारथी हैं ॥ २५-२६ ॥

श्रेणिमान् कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः।
उभावेतावतिरथौ मतौ परपुरंजयौ ॥ २७ ॥

कौरवश्रेष्ठ! राजा श्रेणिमान् और वसुदान—ये दोनों वीर अतिरथी माने गये हैं। ये शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेमें समर्थ हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

भीष्मका पाण्डवपक्षके अतिरथी वीरोंका वर्णन करते हुए शिखण्डी और पाण्डवोंका वध न करनेका कथन

भीष्म उवाच

रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः।
योत्स्यतेऽमरवत् संख्ये परसैन्येषु भारत ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—महाराज! भारत! पाण्डवसेनामें राजा रोचमान महारथी हैं। ये युद्धमें शत्रुसेनाके साथ देवताओंके समान पराक्रम दिखाते हुए युद्ध करेंगे ॥ १ ॥

पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः।
मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥ २ ॥

कुन्तिभोजकुमार राजा पुरुजित् जो भीमसेनके मामा हैं, वे भी महाधनुर्धर और अत्यन्त बलवान् हैं। मैं इन्हें भी अतिरथी मानता हूँ ॥ २ ॥

एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह।
चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुंगवः ॥ ३ ॥

इनका धनुष महान् है। ये अस्त्रविद्याके विद्वान् और युद्धकुशल हैं। रथियोंमें श्रेष्ठ वीर पुरुजित् विचित्र युद्ध करनेवाले और सामर्थ्यशाली हैं ॥ ३ ॥

स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः।
योधाश्चास्य परिख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

जैसे इन्द्र दानवोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध करते हैं, उसी प्रकार ये भी शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे। इनके साथ जो सैनिक आये हैं, वे सब युद्धकी कलामें निपुण और विख्यात वीर हैं ॥ ४ ॥

भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति संगरे।
सुमहत् कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः ॥ ५ ॥

वीर पुरुजित् पाण्डवोंके प्रिय एवं हितमें तत्पर हो अपने भानजोंके लिये युद्धमें महान् कर्म करेंगे ॥ ५ ॥

भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः।
मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥ ६ ॥

महाराज! भीमसेन और हिडिम्बाका पुत्र राक्षसराज घटोत्कच बहुत मायावी है। वह मेरे मतमें रथयूथपतियोंका भी यूथपति है ॥ ६ ॥

योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः।
ये चास्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्तिनः ॥ ७ ॥

तात! उसे युद्ध करना बहुत प्रिय है। अतः वह मायावी राक्षस भूमिमें उत्साहपूर्वक युद्ध करेगा। उसके साथ जो वीर राक्षस उसके वशवर्ती मन्त्री हैं, वे भी युद्ध करेंगे ॥ ७ ॥

एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः।
समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ८ ॥

ये तथा और भी बहुत-से वीर और जो विभिन्न जनपदोंके स्वामी हैं और जिनमें श्रीकृष्ण सबसे प्रधान हैं, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके लिये वहाँ एकत्र हुए हैं ॥ ८ ॥

एते प्राधान्यतो राजन् पाण्डवस्य महात्मनः।
रथाश्चातिरथाश्चैव ये चान्येऽर्धरथा नृप ॥ ९ ॥

राजन्! ये महात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके मुख्य-मुख्य रथी, अतिरथी और अर्धरथी बताये गये हैं ॥ ९ ॥

नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप।
महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ॥ १० ॥

नरेश्वर! देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी किरीटधारी वीर अर्जुनके द्वारा सुरक्षित हुई युधिष्ठिरकी भयंकर सेनाको ये उपर्युक्त वीर समराङ्गणमें संचालन करेंगे ॥ १० ॥

तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः।
योत्स्यामि जयमाकाङ्क्षन्नथवा निधनं रणे ॥ ११ ॥

वीर! मैं युद्धमें विजयकी इच्छा रखनेवाले उन मायावी और विजयाभिलाषी पाण्डववीरोंके साथ विजय अथवा मृत्युकी आकाङ्क्षा लेकर युद्ध करूँगा ॥ ११ ॥

वासुदेवं च पार्थं च चक्रगाण्डीवधारिणौ।
सन्ध्यागताविवार्केन्दू समेष्ये रथसत्तमौ ॥ १२ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन रथियोंमें श्रेष्ठ हैं। वे क्रमशः सुदर्शन चक्र और गाण्डीव धनुष धारण करते हैं। वे सन्ध्याकालीन सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति प्रकाश फैलाकर जब युद्धमें पधारेंगे, उस समय मैं उनका सामना करूँगा ॥ १२ ॥

ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः।
सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥ १३ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके और भी जो-जो उदार रथी सैनिक हैं, उनका और उनकी सेनाओंका मैं युद्धके मुहानेपर सामना करूँगा ॥ १३ ॥

एते रथास्तथातिरथाश्च तुभ्यं
यथाप्रधानं नृप कीर्तिता मया।
तथापरे येऽर्धरथाश्च केचित्
तथैव तेषामपि कौरवेन्द्र ॥ १५ ॥

राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें इन मुख्य-मुख्य रथ और अतिरथियोंका वर्णन किया है। इनके सिवा जो अर्धरथी हैं, उनका भी परिचय दिया है ॥ १५ ॥

अर्जुनो वासुदेवश्च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः।
सर्वांस्तानहमावार्य धारयिष्यामि भारत ॥ १६ ॥

भारत! अर्जुन, श्रीकृष्ण तथा अन्य जो भूपाल हैं, उन सबको मैं आगे बढ़नेसे रोक दूँगा ॥ १६ ॥

पाञ्चाल्यं तु महाबाहो नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥ १७ ॥

परंतु महाबाहो! पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीको बाण चलाते और युद्धमें अपना सामना करते देखकर भी मैं नहीं मारूँगा ॥ १७ ॥

लोकस्तं वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया।
प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्ये धृतव्रतः ॥ १८ ॥

सब जगत् यह जानता है कि मैंने पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे प्राप्त हुए राज्यको त्यागकर ब्रह्मचर्यका व्रत ले रखा है ॥ १८ ॥

चित्राङ्गदं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम्।
विचित्रवीर्यं च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ १९ ॥

माता सत्यवतीके ज्येष्ठ पुत्र चित्राङ्गदको कौरवोंके राज्यपर और बालक विचित्रवीर्यको युवराजके पदपर अभिषिक्त कर दिया था ॥ १९ ॥

देवव्रतत्वं विख्याप्य पृथिव्यां सर्वराजसु।
नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥ २० ॥

सम्पूर्ण भूमण्डलके समस्त राजाओंमें अपने देवव्रत नामकी ख्याति करके मैं कभी न तो किसी स्त्रीको अथवा जो पहले स्त्री रह चुका हो, उस पुरुषको भी नहीं मार सकता ॥ २० ॥

स हि स्त्रीपूर्वको राजन् शिखण्डी यदि ते श्रुतः।
कन्या भूत्वा पुमाञ्जातो न योत्स्ये तेन भारत ॥ २१ ॥

राजन्! सम्भव है, तुम्हारे सुननेमें आया होगा, शिखण्डी पहले स्त्रीरूपमें ही उत्पन्न हुआ था। भारत! पहले कन्या होकर फिर पुरुष हुआ था; इसीलिये मैं उससे युद्ध नहीं करूँगा ॥ २१ ॥

सर्वांस्त्वन्यान् हनिष्यामि पार्थिवान् भरतर्षभ।
यान् समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान् नृप ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ! अन्य सब राजाओंको, जिन्हें मैं युद्धमें पाऊँगा, मारूँगा; परंतु कुन्तीके पुत्रोंका वध कदापि नहीं करूँगा ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि भीष्मकृताम्बोपाख्यानप्रतिज्ञायां द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत रथातिरथसंख्यानपर्वमें भीष्मकी प्रतिज्ञाविषयक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

(अम्बोपाख्यानपर्व)

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

अम्बोपाख्यानका आरम्भ, भीष्मजीके द्वारा काशिराजकी कन्याओंका अपहरण

दुर्योधन उवाच

किमर्थं भरतश्रेष्ठ नैव हन्याः शिखण्डिनम्।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥ १ ॥

दुर्योधनने पूछा—भरतश्रेष्ठ! यदि शिखण्डी धनुष-बाण उठाये समरमें आततायीकी भाँति आपको मारने आ रहा हो, उस समय उसे इस रूपमें देखकर भी आप क्यों नहीं मारेंगे? ॥ १ ॥

पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पञ्चालान् सह सोमकैः।
हनिष्यामीति गाङ्गेय तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

महाबाहु गङ्गानन्दन पितामह! आप पहले कह चुके हैं कि मैं सोमकोंसहित पाञ्चालोंका वध करूँगा (फिर शिखण्डीको क्यों छोड़ रहे हैं?) यह मुझे बताइये ॥ २ ॥

भीष्म उवाच

शृणु दुर्योधन कथां सहैभिर्वसुधाधिपैः।
यदर्थं युधि संप्रेक्ष्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ॥ ३ ॥

भीष्मजीने कहा—दुर्योधन! मैं जिस कारणसे युद्धमें शिखण्डीको देखकर भी नहीं मारूँगा, उसकी कथा कहता हूँ। इन भूमिपालोंके साथ सुनो ॥ ३ ॥

महाराजो मम पिता शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
दिष्टान्तं प्राप धर्मात्मा समये भरतर्षभ ॥ ४ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन्।
चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! मेरे धर्मात्मा पिता लोकविख्यात महाराज शान्तनु यथासमय जब दिवंगत हो गये, उस समय अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए मैंने भाई चित्राङ्गदको इस महान् राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ४-५ ॥

तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः।
विचित्रवीर्यं राजानमभ्यषिञ्चं यथाविधि ॥ ६ ॥

तदनन्तर जब चित्राङ्गदकी भी मृत्यु हो गयी, तब माता सत्यवतीकी सम्मतिसे मैंने विधिपूर्वक विचित्रवीर्यका राजाके पदपर अभिषेक किया ॥ ६ ॥

मयाभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः ।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥ ७ ॥

राजेन्द्र ! छोटे होनेपर भी मेरे द्वारा अभिषिक्त होकर धर्मात्मा विचित्रवीर्य सदा मेरी ही ओर देखा करते थे अर्थात् मेरी सम्मतिसे ही सारा राजकार्य करते थे ॥ ७ ॥

तस्य दारक्रियां तात चिकीर्षुरहमप्युत ।
अनुरूपादिव कुलादित्येव च मनो दधे ॥ ८ ॥

तात ! तब मैंने अपने योग्य कुलसे कन्या लाकर उनका विवाह करनेका निश्चय किया ॥ ८ ॥

तथाश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयंवरे ।
रूपेणाप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा ।
अम्बा चैवाम्बिका चैव तथैवाम्बालिकापरा ॥ ९ ॥

महाबाहो ! उन्हीं दिनों मैंने सुना कि काशिराजकी तीन कन्याएँ हैं, जो रूप और सौन्दर्यमें अनुपम हैं। वे सब स्वयंवर सभामें स्वयं ही पतिका चुनाव करनेवाली हैं। उनके नाम हैं अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका ॥ ९ ॥

राजानश्च समाहूताः पृथिव्यां भरतर्षभ ।
अम्बा ज्येष्ठाभवत् तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ॥ १० ॥
अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी ।
सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरम् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजेन्द्र ! उन तीनोंके स्वयंवरमें भूमण्डलके समस्त राजा आमन्त्रित किये गये थे। उनमें अम्बा सबसे बड़ी थी, अम्बिका मझली थी और राजकन्या अम्बालिका सबसे छोटी थी। मैं उस समय एक ही रथपर सवार हो काशिराजके नगरमें गया ॥ १०-११ ॥

अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः ।
राज्ञश्चैव समाहूतान् पार्थिवान् पृथिवीपते ॥ १२ ॥

महाबाहो ! वहाँ पहुँचकर मैंने वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हुई उन तीनों कन्याओंको देखा। पृथ्वीपते ! वहाँ उस समय आमन्त्रित होकर आये हुए सम्पूर्ण राजाओंपर भी मेरी दृष्टि पड़ी ॥ १२ ॥

ततोऽहं तान् नृपान् सर्वानाहूय समरे स्थितान् ।
रथमारोपयांचक्रे कन्यास्ता भरतर्षभ ॥ १३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर मैंने युद्धके लिये खड़े हुए उन समस्त राजाओंको ललकारकर उन तीनों कन्याओंको अपने रथपर बैठा लिया ॥ १३ ॥

वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा ।
अवोचं पार्थिवान् सर्वानहं तत्र समागतान् ।
भीष्मः शान्तनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः ॥ १४ ॥
ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः ।
प्रसह्य हि नयाम्येष मिषतां वो नराधिपाः ॥ १५ ॥

पराक्रम ही इन कन्याओंका शुल्क है, यह जानकर उन्हें रथपर चढ़ा लेनेके बाद मैंने वहाँ आये हुए समस्त भूपालोंसे कहा— 'नरेन्द्रगण ! शान्तनुपुत्र भीष्म इन राजकन्याओंका अपहरण कर रहा है। तुम सब लोग पूरी शक्ति लगाकर इन्हें छुड़ानेका प्रयत्न करो; क्योंकि मैं तुम्हारे देखते-देखते बलपूर्वक इन्हें लिये जाता हूँ।' इस बातको मैंने बारंबार दुहराया ॥ १४-१५ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ।
योगो योग इति क्रुद्धाः सारथींश्चाप्यचोदयन् ॥ १६ ॥

फिर तो वे महीपाल कुपित हो हाथोंमें हथियार लिये हुए उठ पड़े और अपने सारथियोंको 'रथ तैयार करो, रथ तैयार करो' इस प्रकार आदेश देने लगे ॥ १६ ॥

ते रथैर्मेघसंकाशैर्गजैश्च गजयोधिनः ।
पृष्ठ्यैश्चाश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ॥ १७ ॥

वे राजा हाथियोंके समान विशाल रथों, हाथियों और हृष्ट-पुष्ट अश्वोंपर सवार हो अस्त्र-शस्त्र लिये मुझपर आक्रमण करने लगे। उनमेंसे कितने ही हाथियोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले थे ॥ १७ ॥

ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशाम्पते ।
रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ १८ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर उन सब नरपतियोंने विशाल रथ-समूहद्वारा मुझे सब ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

तानहं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयम् ।
सर्वान् नृपगणांश्चापि देवराडिव दानवान् ॥ १९ ॥

तब मैंने भी बाणोंकी वर्षा करके चारों ओरसे उनकी प्रगति रोक दी और जैसे देवराज इन्द्र दानवोंपर विजय पाते हैं, उसी प्रकार मैंने भी उन सब नरेशोंको जीत लिया ॥ १९ ॥

अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन् भरतर्षभ ।
तेषामापततां चित्रान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर जब उन्होंने आक्रमण किया, तब मैंने प्रज्वलित बाणोंद्वारा हँसते-हँसते उनके सुवर्णभूषित विचित्र ध्वजोंको काट गिराया ॥ २० ॥

एकैकेन हि बाणेन भूमौ पातितवानहम् ।
हयांस्तेषां गजांश्चैव सारथींश्चाप्यहं रणे ॥ २१ ॥

फिर एक-एक बाण मारकर मैंने समरभूमिमें उनके घोड़ों, हाथियों और सारथियोंको भी धराशायी कर दिया ॥ २१ ॥

ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम ।
(प्रतिपत्तुमशक्तास्ते प्रशशंसुश्च पार्थिवाः ।
ततः समादाय ताः कन्या नृपतीनां विसृज्य तान् ॥)
अथाहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः ॥ २२ ॥

मेरे हाथोंकी वह फुर्ती देखकर वे पीछे हटने और भागने लगे। वे सब भूपाल नतमस्तक हो गये और मेरी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् मैं राजाओंको परास्त करके उन सबको वहीं छोड़ तीनों कन्याओंके साथ हस्तिनापुरमें आया ॥ २२ ॥

ततोऽहं ताश्च कन्या वै भ्रातुरर्थाय भारत ।

तच्च कर्म महाबाहो कालयत्वैः त्वयेयुधम् ॥ २५ ॥ नाथि ... मेरे लिये माता सत्यवतीको सौंप दिया और अनन्त महाबाहु भरतनन्दन फिर मैंने उन कन्याओंको सामने ... उनसे ... कहा ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि कन्याहरणे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें कन्याहरणविषयक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

अम्बाका शाल्वराजके प्रति अपना अनुराग प्रकट करके उनके पास जानेके लिये भीष्मसे आज्ञा माँगना

भीष्म उवाच

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ मातरं वीरमातरम्।
अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर मैंने वीरजननी दाशराजकी कन्या माता सत्यवतीके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान्।
विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का इता इति ॥ २ ॥

'माँ! ये काशिराजकी कन्याएँ हैं। ... इनको ... इसलिये मैं समस्त राजाओंको जीतकर ... विचित्रवीर्यके लिये हर लाया हूँ' ॥ २ ॥

ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप।
आह सत्यवती हृष्टा दिष्ट्या पुत्र जितं त्वया ॥ ३ ॥

नरेश्वर! यह सुनकर माता सत्यवतीके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। उन्होंने मेरा मस्तक सूँघकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बेटा! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने विजय पायी' ॥ ३ ॥

सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते।
उवाच वाक्यं सव्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ॥ ४ ॥

सत्यवतीकी अनुमतिसे जब विवाहका समय उपस्थित हुआ, तब काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्रीने कुछ लज्जित होकर मुझसे कहा— ॥ ४ ॥

भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।
श्रुत्वा च वचनं धर्म्यं मह्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ५ ॥

'भीष्म! तुम धर्मके ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हो। मेरी बात सुनकर मेरे प्रति धर्मानुकूल बर्ताव करो ॥ ५ ॥

मया शाल्वपतिः पूर्वं मनसाभिवृतो वरः।
तेन चास्मि वृता पूर्वं रहस्यविदितं पितुः ॥ ६ ॥

'मैं अपने मनसे पहले राजा शाल्वको अपना पति चुन लिया है और उन्होंने भी एकान्तमें मेरा वरण कर लिया है। यह बात मेरे पिताको भी ज्ञात नहीं है ॥ ६ ॥

कथं मामन्यकामां त्वं राजन् शास्त्रमधीत्य वै।
वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन् विशेषतः ॥ ७ ॥

'भीष्म! तुम कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष हो और शास्त्रोंका अध्ययन कर चुके हो; तो भी जो दूसरेको चाहती है, उस मुझ कन्याको अपने घरमें कैसे रख सकोगे? ॥ ७ ॥

एतद् बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ।
यत् क्षमं तन्महाबाहो तदिहारब्धुमर्हसि ॥ ८ ॥

'महाबाहु भरतश्रेष्ठ! अपनी बुद्धिसे मनके द्वारा इस बातका निश्चय करके तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥ ८ ॥

स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशाम्पते।
तस्मान्मां त्वं कुरुश्रेष्ठ समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ९ ॥

'प्रजानाथ! राजा शाल्व निश्चय ही मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। अतः कुरुश्रेष्ठ! तुम्हें मुझे उनके पास जानेकी आज्ञा देनी चाहिये ॥ ९ ॥

कृपां कुरु महाबाहो मयि धर्मभृतां वर।
त्वं हि सत्यव्रतो वीर पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ १० ॥

'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाबाहु वीर! मुझपर कृपा करो; मैंने सुना है कि इस भूतलपर तुम्ही सत्यव्रती हो' ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मवाक्ये चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें भीष्मवाक्यविषयक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७४ ॥

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

अम्बाका शाल्वके यहाँ जाना और उससे परित्यक्त होकर तापसोंके आश्रममें आना, वहाँ शैखावत्य और अम्बाका संवाद

भीष्म उवाच

ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तथा।
मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान् ॥ १ ॥
समनुज्ञासिषं कन्यामम्बां ज्येष्ठां नराधिप।

भीष्मजी कहते हैं—नरेश्वर! तब मैंने माता सत्यवती, मन्त्रियों, ऋत्विजों तथा पुरोहितोंसे पूछकर बड़ी राजकुमारी अम्बाको जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १ ॥

अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम् ॥ २ ॥

वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चानुगता तदा।
अतीत्य च तमध्वानमाससाद नृपं तदा॥ ३॥

सा तमासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत्।
आगताहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महामते॥ ४॥

जाकर वह राजकन्या अम्बा बूढ़े ब्राह्मणोंके संरक्षणमें रहकर शाल्वराजके नगरमें जा पहुँची। उसके साथ उसकी धाय भी थी। उस मार्गको लाँघकर वह राजाके पास पहुँच गयी और शाल्वराजसे मिलकर इस प्रकार बोली—'महाबाहो! महामते! मैं तुम्हारे पास ही आयी हूँ'॥ ३-४॥

(अभिनन्दस्व मां राजन् सदा प्रियहिते रताम्।
प्रतिपद्यस्व मां राजन् धर्मार्थं चैव पार्थिव॥
त्वं हि मत्वा ... ॥

राजन्! मैं सदा तुम्हारे प्रिय और हितमें तत्पर रहनेवाली हूँ, मुझे अपनाकर आनन्दित करो। नरेश्वर! मुझे धर्मानुसार ग्रहण करो; क्योंकि मैंने पहले ही अपने मनमें तुमको वरण किया है और तुमने भी एकान्तमें मेरे साथ विवाहका प्रस्ताव किया था।)

तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशाम्पते।
त्वयान्यपूर्वया नाहं भार्यार्थी वरवर्णिनि॥ ५॥

प्रजानाथ! अम्बाकी बात सुनकर शाल्वराजने मुसकराते हुए-से कहा—'सुन्दरी! तुम पहले दूसरेकी हो चुकी हो; अतः तुम्हारी जैसी स्त्रीके साथ विवाह करनेकी मेरी इच्छा नहीं है॥ ५॥

गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य वै।
नाहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै॥ ६॥

भद्रे! तुम पुनः वहीं भीष्मके ही पास चली जाओ। भीष्मने तुम्हें बलपूर्वक पकड़ लिया था; अतः अब तुम्हें मैं पत्नी बनाना नहीं चाहता॥ ६॥

त्वं हि भीष्मेण निर्जित्य नीता प्रीतिमती तदा।
परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन्॥ ७॥

भीष्मने उस महायुद्धमें समस्त भूपालोंको हराकर तुम्हें जीता था और तुम्हें उठाकर ले जाते समय भी तुम उस समय प्रसन्न ही थी॥ ७॥

नाहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि।
कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत्।
नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन्।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वां कालोऽत्यगादयम्॥ ९॥

वरवर्णिनि! तुम पहले दूसरेकी हो चुकी हो, अतः तुम्हें मैं अपनी पत्नी बनाऊँ, यह मेरी इच्छा नहीं है। जिस नारीपर पहले किसी दूसरे पुरुषका अधिकार हो गया हो, उसे सारी बातोंको ठीक-ठीक जाननेवाला मेरे जैसा राजा, जो दूसरोंको धर्मका उपदेश करता है, कैसे अपने घरमें प्रवेश करायेगा? भद्रे! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। तुम्हारा यह समय व्यर्थ न बीते'॥ ९॥

अम्बा तमब्रवीद् राजन्ननङ्गशरपीडिता।
मैवं वद महीपाल नैतदेवं कथंचन॥ १०॥

नास्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणामित्रकर्शन।
बलान्नीतास्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन्॥ ११॥

राजन्! यह सुनकर कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हुई अम्बा शाल्वराजसे बोली—'भूपाल! तुम किसी तरह भी ऐसी बात मुँहसे न निकालो। शत्रुसूदन! मैं भीष्मके साथ प्रसन्नतापूर्वक नहीं गयी थी। उन्होंने समस्त राजाओंको खदेड़कर बलपूर्वक मेरा अपहरण किया था और मैं रोती हुई ही उनके साथ गयी थी॥ १०-११॥

भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम्।
भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते॥ १२॥

शाल्वराज! मैं निरपराध अबला हूँ, तुम्हारे प्रति अनुरक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो; क्योंकि भक्तोंका परित्याग किसी भी धर्ममें अच्छा नहीं बताया गया है॥ १२॥

साहमामन्त्र्य गाङ्गेयं समरेष्वनिवर्तिनम्।
अनुज्ञाता च तेनैव तवैवाहं गृहमागता॥ १३॥

युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले गङ्गानन्दन भीष्मसे पूछकर उनकी आज्ञा लेकर अत्यन्त उत्कण्ठासे मैं यहाँ आयी हूँ॥ १३॥

न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशाम्पते।
भ्रातृहेतोः समारम्भो भीष्मस्येति श्रुतं मया॥ १४॥

प्रजानाथ! महाबाहु भीष्म मुझे नहीं चाहते। उनका यह सारा प्रयत्न अपने भाईके लिये था, ऐसा मैंने सुना है॥ १४॥

भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप।
प्रादाद् विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे॥ १५॥

नरेश्वर! भीष्म जिन मेरी दो बहिनों अम्बिका और अम्बालिकाको हर ले गये थे, उन्हें उन्होंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यको ब्याह दिया है॥ १५॥

यथा शाल्वपते नान्यं वरं ध्यामि कथंचन।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्ध्नालभे स्वयम्॥ १६॥

पुरुषसिंह शाल्वराज! मैं अपना मस्तक छूकर कहती हूँ कि तुम्हारे सिवा दूसरे किसी वरका मैं किसी प्रकार भी चिन्तन नहीं करती हूँ॥ १६॥

न चान्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता।
सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत् सत्येनात्मानमालभे॥ १७॥

राजेन्द्र शाल्व! मुझपर किसी भी दूसरे पुरुषका पहले भी अधिकार नहीं रहा है। मैं स्वेच्छापूर्वक पहले-पहल तुम्हारी ही सेवामें उपस्थित हुई हूँ। यह मैं सत्य कहती हूँ और इस सत्यके द्वारा ही इस शरीरका स्पर्श करती हूँ॥ १७॥

भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम्।
अनन्यपूर्वां राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणीम्॥ १८॥

विशाललोचन महाराज! मैंने आजसे पहले किसी दूसरे पुरुषको अपना पति नहीं बनाया है। मैं तुम्हारे कृपाकी अभिलाषा रखती हूँ। स्वयं ही अपनी सेवामें उपस्थित हुई मुझ कुमारी कन्याको धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये

तामेव मनसा ध्यात्वा तु शाल्वः काशिपतेः सुताम्
अत्यजत् भरतश्रेष्ठ जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार अनुनय-विनय करती हुई काशिराजकी उस कन्याको शाल्वने उसी प्रकार त्याग दिया, जैसे सर्प पुरानी केंचुलको छोड़ देता है ॥ २१ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तया नृप
नाश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्यायाः भरतर्षभ ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस तरह नाना प्रकारके वचनोंद्वारा बार-बार याचना करनेपर भी शाल्वराजने उस कन्याकी बातोंपर विश्वास नहीं किया ॥ २२ ॥

ततः सा मन्युनाविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता
अब्रवीत् साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥ २३ ॥

तब काशिराजकी वह ज्येष्ठ पुत्री अम्बा क्रोध एवं दुःखसे व्याप्त हो नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई अश्रुगद्गद वाणीमें बोली—

त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र तत्र विशाम्पते
तत्र मे सन्तः शरणं भविष्यन्ति सत्यं यथा ध्रुवम् ॥ २४ ॥

राजन् ! यदि तुम्हारी यही बात है, तो मैं तुमसे परित्यक्त होकर जहाँ कहीं भी जाऊँगी, वहाँ साधु पुरुष मेरे सहायक होंगे ॥ २४ ॥

एवं तां भाषमाणां तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा
परितत्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम् ॥ २५ ॥

कुरुनन्दन ! राजकन्या अम्बा करुणाजनक विलाप करती हुई इसी प्रकार कितनी ही बातें कहती रही; परंतु शाल्वराजने उसे सर्वथा त्याग दिया ॥ २५ ॥

गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत
बिभेमि भीष्मात् सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः ॥ २६ ॥

शाल्वने बारंबार उससे कहा, 'सुन्दरि ! जाओ, जाओ। मैं भीष्मसे डरता हूँ। तुम भीष्मके द्वारा ग्रहण की हुई हो' ॥ २६ ॥

एवमुक्ता तु सा तेन शाल्वेनादीर्घदर्शिना
निश्चक्राम पुराद् दीना रुदती कुररी यथा ॥ २७ ॥

अदूरदर्शी शाल्वके ऐसा कहनेपर अम्बा कुररीकी भाँति दीनभावसे रुदन करती हुई उस नगरसे निकल गयी ॥ २७ ॥

भीष्म उवाच

निष्क्रामन्ती तु नगराच्चिन्तयामास भारत
पृथिव्यां नास्ति युवतिर्विषमस्थतरा मया ॥ २८ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! नगरसे निकलते समय वह दुःखिनी नारी इस प्रकार चिन्ता करने लगी—'इस भूमण्डलमें कोई भी ऐसी युवती नहीं होगी, जो मेरे समान भारी संकटमें पड़ गयी हो ॥ २८ ॥

बान्धवैर्विप्रहीनास्मि शाल्वेन च निराकृता
न च शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम् ॥ २९ ॥

मैं बन्धु-बान्धवोंसे तो दूर हो ही गयी हूँ, राजा शाल्वने भी मुझे त्याग दिया है। अब मैं हस्तिनापुरमें भी

नहीं जा सकती ॥ २९ ॥

अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वमुद्दिश्य कारणम्
किं नु गर्हाम्यथात्मानमथ भीष्मं सुदुर्जयम् ॥ ३० ॥

क्योंकि शाल्वके अनुरागको कारण बताकर मैंने भीष्मसे वहाँ जानेकी आज्ञा ली थी। अब मैं अपनी ही निन्दा करूँ या उस दुर्जय वीर भीष्मको कोसूँ ॥ ३० ॥

अथवा पितरं मूढं यो मेऽकार्षीत् स्वयंवरम्
ममायं स्वकृतो दोषो याहं भीष्मरथात् तदा ॥ ३१ ॥
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे शाल्वार्थं नापतं पुरा

अथवा अपने मूढ पिताकी ही निन्दा करूँ, जिन्होंने मेरा स्वयंवर किया। मेरे द्वारा ही यह दोष बन गया है कि पूर्वकालमें जब वह भयंकर युद्ध चल रहा था, उस समय मैं शाल्वके लिये भीष्मके रथसे नहीं कूद पड़ी ॥ ३१ ॥

तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नास्मि मूढवत्
धिग् भीष्मं धिक् च मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् ॥ ३२ ॥
येनाहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीव प्रचोदिता

उसीका यह फल प्राप्त हुआ है कि मैं एक मूढ़ स्त्रीकी भाँति भारी आपत्तिमें पड़ गयी हूँ। भीष्मको धिक्कार है। मेरे विवेकशून्य मन्दबुद्धि पिताको भी धिक्कार है, जिन्होंने पराक्रमरूपी शुल्क नियत करके मुझे बाजारू स्त्रीकी भाँति बलपूर्वक निकलनेके लिये आज्ञा दी ॥ ३२ ॥

धिङ्मां धिक् शाल्वराजानं धिग् धातारमथापि वा
येषां दुर्नीतिभावेन प्राप्तास्म्यापदमुत्तमाम् ॥ ३३ ॥

मुझे धिक्कार है, शाल्वराजको धिक्कार है और विधाताको भी धिक्कार है, जिनकी दुर्नीतिसे मैं भारी आपत्तिमें फँस गयी हूँ ॥ ३३ ॥

सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः
अनयस्यास्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम ॥ ३४ ॥

मनुष्य सदा वही पाता है, जो उसके भाग्यमें होता है। [illegible] उसका मुख्य कारण [illegible] ॥ ३४ ॥

सा भीष्मे प्रतिकर्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम्
तपसा वा युधा वापि दुःखहेतुः स मे मतः ॥ ३५ ॥

अतः इस समय तपस्या अथवा युद्धके द्वारा भीष्मसे ही [illegible] मुझे उचित दिखायी देता है; क्योंकि मेरे दुःखके प्रधान कारण वे ही हैं ॥ ३५ ॥

को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः
एवं सा परिनिश्चित्य जगाम नगराद् बहिः ॥ ३६ ॥

परंतु कौन ऐसा राजा है, जो युद्धके द्वारा भीष्मको परास्त कर सके।' ऐसा निश्चय करके वह नगरसे बाहर चली गयी ॥ ३६ ॥

आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम्
ततस्तामवसद् रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥ ३७ ॥

उसने पुण्यशील तपस्वी महात्माओंके आश्रममें जाकर वहीं वह रात बितायी। उस आश्रममें तपस्वीलोग सब

ओरसे पैशल उसकी रक्षा की थी ॥ ६ ॥

सावज्ञमेव च पपात सर्वेशास्त्रवित् भारत
विरराजेव महाबाहो निशितेन क्षुरेणितया
काकेन च विसर्गेण च आक्षेपेण च विसर्जनम् ॥ ३७ ॥

महाराज नरनाथनन्दन [illegible] मुखचारणवानी कन्याने अपने ठाकर कैसा हुआ माता पिताको विस्तारपूर्वक उन महात्माओंके पास था किस प्रकार [illegible] और [illegible] सौभाग्ने युद्धदान किया और फिर [illegible] उसे त्याग दिया [illegible] उनको कह सुनायी [illegible]

तत्सर्वं महाबालीद् प्राह्मण संहितव्रत
शैखावत्यस्तपोवृद्ध शास्त्रे चारण्यकं गुरुः ॥ ३८ ॥

उन [illegible] तपस्वी [illegible] शैखावत्य [illegible] शास्त्र [illegible] आरण्यक [illegible] गुरु [illegible]

आर्तां ता प्राह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः
निःश्वसन्ती कन्यां बालां दुःखशोकपरायणाम् ॥ ३९ ॥

महातपस्वी शैखावत्य मुनिने वहाँ सिसकती हुई उस दुःखातुर [illegible]

एवं गते तु किं भद्रे शक्यं कर्तुं तपस्विभिः
आश्रमस्थैर्महाभागे तपोयुक्तैर्महात्मभिः ॥ ४० ॥

भद्रे [illegible] ऐसी दशामें [illegible] आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वी [illegible] महात्मा तुम्हारा क्या सहयोग कर सकते हैं ?

सा त्वेनमब्रवीद् राजन् क्रियतां मदनुग्रहः

प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ॥ ४१ ॥

राजन् तब कन्याने उनसे कहा—भगवन् मुझपर [illegible] कीजिये मैं संन्यासिनी होकर यहाँ कठोर तपस्या करना चाहती हूँ [illegible] ॥ ४ ॥

मयैव यानि कर्माणि पूर्वदेहे तु मूढया
कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत् फलं ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

मुझ मूढ [illegible] ने अपने पूर्वजन्ममें [illegible] किये [illegible] अवश्य ही [illegible] हमारे

नोत्सहे तु पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः
प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ॥ ४३ ॥

[illegible] मैं [illegible] स्वजनोंके यहाँ फिर नहीं लौट सकती क्योंकि राजा शाल्वने मुझे [illegible] त्याग दिया है [illegible] आनन्दशून्य [illegible] हो गया है

उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतकल्मषाः
युष्माभिर्देवसंकाशाः कृपा भवतु वो मयि ॥ ४४ ॥

[illegible] पापरहित देवतुल्य [illegible] आप [illegible] मुझे तपस्याका उपदेश [illegible] मुझपर [illegible] हो।

सा तामाश्वासयत् कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः
सान्त्वयामास कार्यं च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ॥ ४५ ॥

तब शैखावत्य मुनिने [illegible] तथा युक्तियोंद्वारा उस कन्याको आश्वासन देकर [illegible] ब्राह्मणोंके साथ मिलकर उसके कार्यको सिद्ध करनेके लिये [illegible] प्रतिज्ञा की ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि [illegible] पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ [illegible] ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें [illegible]

[illegible] अध्याय पूरा हुआ ॥ [illegible] ॥

([illegible] ([illegible] श्लोक मिलाकर कुल [illegible] श्लोक हैं)

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

[illegible] राजर्षि होत्रवाहन और अकृतव्रणका [illegible] आगमन तथा उनसे अम्बाकी बातचीत

भीष्म उवाच

ततस्ते तापसाः सर्वे कार्यवन्तोऽभवंस्तदा
तां कन्यां चिन्तयन्तो वै किं कार्यमिति धर्मिणः ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—[illegible] उस कन्याके [illegible] चिन्ता करते हुए [illegible] सोचने लगे कि [illegible] करना चाहिये [illegible] कुछ करनेको [illegible]

केचिदाहुः पितुर्वेश्म नीयतामिति तापसाः
केचिदस्मदुपालम्भे मतिं चक्रुर्हि तापसाः ॥ २ ॥

कुछ तपस्वी यह कहने लगे कि इस राजकन्याको इसके पिताके घर पहुँचा दिया जाय कुछ तापसोंने मुझे उलाहना देनेका निश्चय किया ॥ २ ॥

केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे
नेति केचिद् व्यवस्यन्ति प्रत्याख्याता हि तेन सा ॥ ३ ॥

कुछ लोग [illegible] शाल्वराजके पास [illegible] कि [illegible] पर कुछ लोगोंने [illegible] किया कि ऐसा होना [illegible] नहीं है क्योंकि उसने [illegible] कन्याको कोरा उत्तर देकर [illegible] इनकार कर दिया है

एवं गते तु किं शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः
पुनरूचुश्च ते सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥ ४ ॥

[illegible] ऐसी स्थितिमें [illegible] क्या कर सकते हैं ? ऐसा कहकर वे कठोर व्रतका पालन करनेवाले सभी तापस [illegible] फिर बोले

अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः
इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठास्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम्।
तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता॥ ६॥

भद्रे! पर इसके बाद तुम्हारे पिताको तुम्हें रखनेमें सफल होनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम इनसे मिलकर वचन सुनो, तुम्हारा कल्याण हो। वहाँ पिताके पास ही चली जाओ। इसके बाद जो आवश्यक कार्य होगा, उसे तुम्हारे पिता स्वयं कर सकेंगे। कल्याणि! तुम वहाँ सर्वगुणसम्पन्न होकर सुखसे रह सकोगी॥ ६॥

न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेद् भद्रे यथा पिता।
पतिर्वापि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनि॥ ७॥

भद्रे! तुम्हारे लिये पिताका आश्रय जैसा न्यायसंगत है, वैसा दूसरा कोई नहीं है। वरवर्णिनि! नारीके लिये पति अथवा पिता ही गति (आश्रय) है॥ ७॥

गतिः पतिः समस्थाया विषमे तु पिता गतिः।
प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः॥ ८॥

सुखकी परिस्थितिमें नारीके लिये पति आश्रय होता है और संकटकालमें उसके लिये पिताका आश्रय लेना उत्तम है। विशेषतः तुम सुकुमारी हो, अतः तुम्हारे लिये यह प्रव्रज्या (संन्यास) अत्यन्त दुःखमय है॥ ८॥

राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्यास्तव भामिनि।
भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि॥ ९॥
आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे।

भामिनि! एक तो तुम राजकुमारी और दूसरे स्वभावतः सुकुमारी हो, अतः सुन्दरी! यहाँ आश्रममें तुम्हारे रहनेसे अनेक दोष प्रकट हो सकते हैं। पिताके घरमें वे दोष नहीं प्राप्त होंगे॥ ९-१०॥

ततस्त्वन्येऽब्रुवन् वाक्यं तापसास्तां तपस्विनीम्॥ १०॥
त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने।
प्रार्थयिष्यन्ति राजानस्तस्मान्मैवं मनः कृथाः॥ ११॥

तदनन्तर दूसरे तापसोंने उस तपस्विनीसे कहा, 'इस निर्जन गहन वनमें तुम्हें अकेली देखकर कितने ही राजा तुमसे प्रणय-प्रार्थना करेंगे, अतः तुम इस प्रकार तपस्या करनेका विचार न करो'॥ १०-११॥

अम्बोवाच

न शक्यं काशिनगरं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान्।
अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः॥ १२॥

अम्बा बोली—तापसो! अब मेरे लिये पुनः काशिनगरमें पिताके घर लौट जाना असम्भव है; क्योंकि वहाँ मुझे बन्धु-बान्धवोंमें अपमानित होकर रहना पड़ेगा॥ १२॥

उषिता ह्यस्मि बाल्ये तु पितुर्वेश्मनि तापसाः।
नाहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम।
तपस्तप्तुमभीप्सामि तापसैः परिरक्षिता॥ १३॥

तापसो! मैं बाल्यावस्थामें पिताके घर रह चुकी हूँ। आपलोगोंका कल्याण हो। अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी, जहाँ मेरे पिता होंगे। मैं आप तापसोंसे सुरक्षित रहकर तपस्या करना चाहती हूँ॥ १३॥

यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः।
दौर्भाग्यं ब्राह्मणश्रेष्ठास्तस्मात् तप्स्याम्यहं तपः॥ १४॥

ब्राह्मणशिरोमणियो! मैं इसलिये तपस्या करना चाहती हूँ, जिससे परलोकमें भी मुझे इस प्रकार महान् संकट एवं दुर्भाग्यका सामना न करना पड़े। अतः मैं तपस्या ही करूँगी॥ १४॥

भीष्म उवाच

इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु यथातथम्।
राजर्षिस्तद् वनं प्राप्तस्तापसो होत्रवाहनः॥ १५॥

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार वे ब्राह्मण जब यथावत् चिन्तामें मग्न हो रहे थे, उसी समय तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन उस वनमें आ पहुँचे॥ १५॥

ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम्।
पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च॥ १६॥

तब उन सब तापसोंने स्वागत, कुशल-प्रश्न, आसन समर्पण और जल-दान आदि अतिथि-सत्कारके उपचारों द्वारा राजा होत्रवाहनका सत्कार किया॥ १६॥

तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः।
पुनरेव कथां चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः॥ १७॥

जब वे आसनपर बैठकर विश्राम कर चुके, उस समय उनके सुनते हुए ही वे वनवासी तपस्वी पुनः उस कन्याके विषयमें बातचीत करने लगे॥ १७॥

अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराजस्य भारत।
राजर्षिः स महातेजा बभूवोद्विग्नमानसः॥ १८॥

भारत! अम्बा और काशिराजकी वह कथा सुनकर महातेजस्वी राजर्षि होत्रवाहनका चित्त उद्विग्न हो उठा॥ १८॥

तां तथावादिनीं श्रुत्वा दृष्ट्वा च स महातपाः।
राजर्षिः कृपयाऽऽविष्टो महात्मा होत्रवाहनः॥ १९॥

पूर्वोक्त रूपसे दीनतापूर्वक अपना दुःख निवेदन करनेवाली राजकन्याको देखकर और उसकी बात सुनकर महात्मा राजर्षि होत्रवाहन दयासे द्रवित हो गये॥ १९॥

स वेपमान उत्थाय मातुस्तस्याः पिता तदा।
तां कन्यामङ्कमारोप्य पर्याश्वासयत प्रभो॥ २०॥

वे अम्बाके नाना थे। राजन्! वे काँपते हुए उठे और उस राजकन्याको गोदमें बिठाकर उसे सान्त्वना देने लगे॥ २०॥

स तामपृच्छत् कार्त्स्न्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः।
सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत्॥ २१॥

उन्होंने उससे संकटकी सारी बातें आरम्भसे ही पूछीं और अम्बाने भी जो कुछ जैसे हुआ था, वह सारा वृत्तान्त उनसे विस्तारपूर्वक बताया॥ २१॥

ततः स राजर्षिरभूद् दुःखशोकसमन्वितः।
कार्यं च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः॥ २२॥

तब उन महात्मा राजर्षिने दुःख और शोकसे व्याकुल हो अबलासे आवश्यक कर्तव्यका निश्चय किया ॥

अब्रवीद् वेपमानश्च कन्यामार्तां सुदुःखिताम् ।
मा गाः पितृगृहं भद्रे मातुर्जनक आत्मजे ॥ २३ ॥

और अत्यन्त दुःखी हो काँपते हुए ही उन्होंने उस दुःखिनी कन्यासे इस प्रकार कहा—'भद्रे! (यदि) तू पिताके घर (नहीं जाना चाहती हो तो) न जा। मैं तेरी माँका पिता हूँ ॥ २३ ॥

दुःखं छिन्द्यामहं ते वै मयि वर्तस्व पुत्रिके ।
पर्याप्तं ते मनो वत्से यदेवं परिशुष्यसि ॥ २४ ॥

'बेटी! मैं तेरा दुःख दूर करूँगा। तू मेरे पास रह। बच्चे! तेरे मनमें बड़ा संताप है, तभी तो इस प्रकार सूखी जा रही है ॥ २४ ॥

गच्छ मद्वचनाद् रामं जामदग्न्यं तपस्विनम् ।
रामस्ते सुमहद् दुःखं शोकं चैवापनेष्यति ॥ २५ ॥

तू मेरे कहनेसे तपस्वी जमदग्निनन्दन परशुरामजीके पास जा। वे तेरे महान् दुःख और शोकको अवश्य दूर करेंगे ॥ २५ ॥

हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद् वचः ।
तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ॥ २६ ॥

यदि भीष्म उनकी बात नहीं मानेंगे तो वे युद्धमें उन्हें मार डालेंगे। भार्गवश्रेष्ठ परशुराम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हैं। तू उन्हींकी शरणमें जा ॥ २६ ॥

प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः ।
ततस्तु सुस्वरं बाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः ॥ २७ ॥
अब्रवीत् पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम् ।
अभिवाद्य च शिरसा गमिष्ये तव शासनात् ॥ २८ ॥

'वे महातपस्वी राम तुझे न्यायोचित मार्गपर प्रतिष्ठित करेंगे।' यह सुनकर अम्बा बारंबार आँसू बहाती हुई अपने नाना होत्रवाहनको मस्तक नवाकर प्रणाम करके मधुर स्वरसे इस प्रकार बोली—'नानाजी! मैं आपकी आज्ञासे वहाँ अवश्य जाऊँगी' ॥ २७-२८ ॥

अपि नामाद्य पश्येयमार्यं तं लोकविश्रुतम् ।
कथं च तीव्रं दुःखं मे नाशयिष्यति भार्गवः ।
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं यथा यास्यामि तत्र वै ॥ २९ ॥

परंतु मैं आज उन विश्वविख्यात आर्य महात्माका दर्शन किस प्रकार पा सकूँगी और वे भृगुनन्दन परशुरामजी मेरे इस दुःसह दुःखका नाश किस प्रकार करेंगे? मैं यह सब जानना चाहती हूँ, जिससे वहाँ जा सकूँ ॥ २९ ॥

होत्रवाहन उवाच

रामं द्रक्ष्यसि भद्रे त्वं जामदग्न्यं महावने ।
उग्रे तपसि वर्तन्तं सत्यसंधं महाबलम् ॥ ३० ॥

होत्रवाहन बोले—भद्रे! जमदग्निनन्दन परशुराम एक महान् वनमें उग्र तपस्या कर रहे हैं। वे महान् शक्तिशाली और सत्यप्रतिज्ञ हैं। तुझे अवश्य ही उनका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ३० ॥

महेन्द्रे वै गिरिश्रेष्ठे रामो नित्यमुपास्ति ह ।
ऋषयो वेदविद्वांसो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ३१ ॥

परशुरामजी सदा पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र पर रहा करते हैं। वहाँ वेदवेत्ता महर्षि, गन्धर्व तथा अप्सराओंका भी निवास है ॥ ३१ ॥

तत्र गच्छस्व भद्रं ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम ।
अभिवाद्य च तं मूर्ध्ना तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥ ३२ ॥

बेटी! तेरा कल्याण हो, तू वहीं जा और उन दृढ़व्रतधारी तपोवृद्ध महात्माको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके पहले उनसे मेरी बात कहना ॥ ३२ ॥

ब्रूयाश्चैनं पुनर्भद्रे यत् ते कार्यं मनीषितम् ।
मयि संकीर्तिते रामः सर्वं तत् ते करिष्यति ॥ ३३ ॥

भद्रे! तत्पश्चात् तेरे मनमें जो अभीष्ट कार्य है, वह सब उनसे निवेदन करना। मेरा नाम लेनेपर परशुरामजी तेरा सब काम करेंगे ॥ ३३ ॥

मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे ।
जमदग्निसुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥

वत्से! समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीर जमदग्निनन्दन परशुराम मेरे सखा और प्रेमी सुहृद् हैं ॥ ३४ ॥

एवं ब्रुवति कन्यां तु पार्थिवे होत्रवाहने ।
अकृतव्रणः प्रादुरासीद् रामस्यानुचरः प्रियः ॥ ३५ ॥

राजा होत्रवाहन जब राजकन्या अम्बासे इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय परशुरामजीके प्रिय सेवक अकृतव्रण वहाँ प्रकट हुए ॥ ३५ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः ।
स च राजा वयोवृद्धः सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥ ३६ ॥

उन्हें देखते ही वे सहस्रों मुनि तथा सृञ्जयवंशी बूढ़े राजा होत्रवाहन सभी उठकर खड़े हो गये ॥ ३६ ॥

ततो दृष्ट्वा कृतातिथ्यमन्योन्यं ते वनौकसः ।
सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य तम् ॥ ३७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर उनका आदर-सत्कार किया गया। फिर वे वनवासी महर्षि एक दूसरेकी ओर देखते हुए एक साथ उन्हें घेरकर बैठ गये ॥ ३७ ॥

ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः ।
धन्या दिव्याश्च राजेन्द्र प्रीतिहर्षमुदा युताः ॥ ३८ ॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् वे सब प्रेम, हर्ष और आनन्दमें मग्न हो धन्य एवं मनोरम बातचीत करने लगे ॥ ३८ ॥

ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः ।
रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥ ३९ ॥

बातचीत समाप्त होनेपर राजर्षि महात्मा होत्रवाहनने महर्षियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीके विषयमें अकृतव्रणसे पूछा— ॥ ३९ ॥

क्व सम्प्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वरः ॥ ४० ॥

महाबाहु अकृतव्रण! यह समय वेदवेत्ताओंके श्रेष्ठ और मननशील जमदग्निनन्दन परशुरामजीका दर्शन कठिन हो सकता है॥

अकृतव्रण उवाच

जानाम्येव सततं तं कीर्तिपति प्रभो।
सखायो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव॥ ४१॥

अकृतव्रणने कहा—राजन्! परशुरामजी सदा आपकी ही चर्चा किया करते हैं। उनका कहना है कि सृंजयवंशी राजर्षि होत्रवाहन मेरे प्रिय सखा हैं॥ ४१॥

इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम।
द्रष्टास्येनमिहायान्तं तव दर्शनकाङ्क्षया॥ ४२॥

मेरा विचार है कि कल सबेरेतक परशुरामजी यहाँ उपस्थित हो जायँगे। आप भी मिलनेके लिये उत्सुक हैं, अतः यहीं उनका दर्शन कीजियेगा॥ ४२॥

इयं च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता।
कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वेदितुम्॥ ४३॥

राजर्षे! यह कन्या किसलिये वनमें आयी है? यह किसकी पुत्री है और आपकी क्या लगती है? ॥ ४३॥

होत्रवाहन उवाच

दौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता प्रिया।
ज्येष्ठा स्वयंवरे तस्थौ भगिनीभ्यां सहानघ॥ ४४॥
इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता।
अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन॥ ४५॥

होत्रवाहन बोले—प्रभो! यह मेरी प्रिय दौहित्री (नातिन) काशिराजकी पुत्री है। यह अपनी दो छोटी बहिनोंके साथ स्वयंवरमें उपस्थित हुई थी। उनमेंसे यह अम्बा नामसे विख्यात काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री है। तपोधन! इसकी दोनों छोटी बहिनें अम्बिका और अम्बालिका कहलाती हैं॥ ४४-४५॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां ततोऽभवत्।
कन्यानिमित्तं विप्रर्षे तत्रासीदुत्सवो महान्॥ ४६॥

ब्रह्मर्षे! काशीपुरीमें इन कन्याओंके लिये भूमण्डलके समस्त क्षत्रियनरेश एकत्र हुए थे। उस अवसरपर वहाँ महान् उत्सवका आयोजन किया गया था॥ ४६॥

ततः किल महावीर्यो भीष्मः शान्तनवो नृपान्।
अधिक्षिप्य महातेजास्तिस्रः कन्या जहार ताः॥ ४७॥

कहते हैं, उस अवसरपर महातेजस्वी और महापराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्म सब राजाओंको जीतकर इन तीन कन्याओंको हर लाये॥ ४७॥

निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मो गजाह्वयम्।
आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारत॥ ४८॥

शुद्धात्मा भीष्म इन कन्याओंके पति बनने वाले उन समस्त भूपालोंको परास्त करके इन कन्याओंको साथ लिये हस्तिनापुर आये॥ ४८॥

सत्यवत्यै निवेद्याथ विवाहार्थमनन्तरम्।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापयत प्रभुः॥ ४९॥

वहाँ आकर शक्तिशाली भीष्मने सत्यवतीको ये कन्याएँ सौंप दीं और इनके पश्चात् अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यका विवाह करनेकी आज्ञा दे दी॥ ४९॥

ततो वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम्।
अब्रवीत् तत्र गाङ्गेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ॥ ५०॥

द्विजश्रेष्ठ! वहाँ वैवाहिक आयोजन आरम्भ हुआ देख यह कन्या मन्त्रियोंके बीचमें गङ्गानन्दन भीष्मसे बोली—॥ ५०॥

मया शाल्वपतिर्वीरो मनसाभिवृतः पतिः।
न मामर्हसि धर्मज्ञ दातुं भ्रात्रेऽन्यमानसाम्॥ ५१॥

धर्मज्ञ! मैंने मन-ही-मन वीरवर शाल्वराजको अपना पति चुन लिया है। अतः मेरा मन अन्यत्र अनुरक्त होनेके कारण आपको अपने भाईके साथ मेरा विवाह नहीं करना चाहिये॥ ५१॥

तच्छ्रुत्वा वचनं भीष्मः सम्मन्त्र्य सह मन्त्रिभिः।
निश्चित्य विससर्जेमां सत्यवत्या मते स्थितः॥ ५२॥

अम्बाका यह वचन सुनकर भीष्मने मन्त्रियोंके साथ सलाह करके माता सत्यवतीकी सम्मति प्राप्त करके एक निश्चयपर पहुँचकर इस कन्याको छोड़ दिया॥ ५२॥

अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः।
कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत्॥ ५३॥

भीष्मकी आज्ञा पाकर यह कन्या मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हो सौभ विमानके स्वामी राजा शाल्वके पास गयी और वहाँ उस समय इस प्रकार बोली—॥ ५३॥

विसर्जितास्मि भीष्मेण धर्मं मां प्रतिपादय।
मनसाभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ॥ ५४॥

नृपश्रेष्ठ! भीष्मने मुझे छोड़ दिया है, क्योंकि पूर्वकालमें मैंने अपने मनसे आपको ही पति चुन लिया था। अतः आप मुझे धर्मपत्नीरूपमें स्वीकार करें॥ ५४॥

प्रत्याख्याता च शाल्वेन चारित्रस्याभिशङ्किना।
सेयं तपोवनं प्राप्ता तापस्येऽभिरता भृशम्॥ ५५॥

शाल्वराजको इसके चरित्रपर संदेह हुआ, अतः उसने इसकी प्रार्थनाको ठुकरा दिया है। इसीसे यह तपस्यामें अत्यन्त अनुरक्त होकर यहाँ इस तपोवनमें आयी है॥ ५५॥

मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्तनात्।
अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते॥ ५६॥

वंश-परिचय देनेसे मैंने इसको पहचाना है। इस दुःखकी उत्पत्तिमें यह भीष्मको ही कारण मानती है॥ ५६॥

अम्बोवाच

भगवन्नेवमेवैतद् यथाऽऽह पृथिवीपतिः।
शरीरकर्ता मातुर्मे सृञ्जयो होत्रवाहनः॥ ५७॥

अम्बा बोली—भगवन्! जैसा कि मेरी माताके पिता सृंजयवंशी महाराज होत्रवाहनने कहा है, ठीक ऐसी

ही मेरी गति स्थान है ॥ ७ ॥

न तद्वदामि क्षत्रधर्मं प्रतिपत्तुं तपोधन।
अन्याय्यमधर्मं बलवत्या न महाद्युते ॥ ८ ॥

तपोधन! महाद्युते! क्षत्रिय और ब्राह्मणके धर्मको अपने जगतको जानने लिये मेरे पास दूसरा उपाय नहीं है ॥ ८ ॥

यत् तु मां भगवान् गतो वक्ष्यति द्विजसत्तम।
तन्मे कार्यतमं कार्यमिति मे भगवन् मतिः ॥ ९ ॥

भगवन्! द्विजश्रेष्ठ! अब भगवान् परशुराम मुझसे जो कुछ कहेंगे, वही मेरे लिये सबसे बढ़कर कर्तव्य होगा, यही मैंने निश्चय किया है ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि होत्रवाहनवाक्ये षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें होत्रवाहनका वचनविषयक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अकृतव्रण और परशुरामजीकी अम्बासे बातचीत

अकृतव्रण उवाच

दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि।
प्रतिकर्तव्यमबले तत् त्वं वत्से ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

अकृतव्रणने कहा—भद्रे! तुम्हें दुःख देनेवाले दो कारण—भीष्म और शाल्व—उपस्थित हैं। वत्से! तुम इन दोनोंमेंसे किससे बदला लेना चाहती हो, यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो महात्मना।
नियोक्ष्यति महात्मा स रामस्त्वद्धितकाम्यया ॥ २ ॥

भद्रे! यदि तुम्हारा यह विचार हो कि सौभपति शाल्व राजाको ही विवाहके लिये विवश करना चाहिये तो महात्मा परशुराम तुम्हें हितकी इच्छासे उसको अवश्य इस कार्यमें नियुक्त करेंगे ॥ २ ॥

अथापगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छसि धीमता।
रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात् तदपि भार्गवः ॥ ३ ॥

अथवा यदि तुम गङ्गानन्दन भीष्मको बुद्धिमान् परशुरामजीके द्वारा युद्धमें परास्त देखना चाहती हो तो भृगुनन्दन परशुराम यह भी कर सकते हैं ॥ ३ ॥

सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते।
यदत्र ते सुतं कार्यं तदद्यैव विचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥

शुचिस्मिते! सृञ्जयवंशी राजा होत्रवाहनकी बात सुनकर और अपना विचार प्रकट करके अब तुम्हें इस समय जो कर्तव्य प्रतीत हो, उसका आज ही विचार कर लो ॥ ४ ॥

अम्बोवाच

अपनीतास्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता।
नाभिजानाति मे भीष्मो ब्रह्मन् शाल्वगतं मनः ॥ ५ ॥

अम्बा बोली—भगवन्! भीष्म बिना जाने-बूझे मुझे हर लाये थे। ब्रह्मन्! उन्हें इस बातका पता नहीं था कि मेरा मन शाल्वमें अनुरक्त है ॥ ५ ॥

एतद् विचार्य मनसा भवानेव विनिश्चयम्।
विनिश्चिनोतु यद् न्याय्यं विधानं क्रियतां तथा ॥ ६ ॥

इस बातपर मन-ही-मन विचार करके आप ही कुछ निश्चय करें और जो न्यायसंगत प्रतीत हो, वही कार्य करें ॥ ६ ॥

भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथवा पुनः।
उभयोरेव वा ब्रह्मन् युक्तं यत् तत् समाचर ॥ ७ ॥

ब्रह्मन्! कुरुश्रेष्ठ भीष्मके साथ अथवा शाल्वराजके साथ अथवा दोनोंके ही साथ जो उचित कर्तव्य हो, वही करें ॥ ७ ॥

निवेदितं मया ह्येतद् दुःखमूलं यथातथम्।
विधानं तत्र भगवन् कर्तुमर्हसि युक्तितः ॥ ८ ॥

मैंने अपने दुःखके इस मूल कारणको यथार्थरूपसे निवेदन कर दिया। भगवन्! अब आप अपनी युक्तिसे ही इस विषयमें न्यायोचित कार्य करें ॥ ८ ॥

अकृतव्रण उवाच

उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि।
धर्मं प्रति वचो ब्रूषे शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥

अकृतव्रण बोले—भद्रे! तुम जो इस प्रकार धर्मानुकूल बात कहती हो, यही तुम्हारे लिये उचित है। वरवर्णिनि! अब मेरी यह बात सुनो ॥ ९ ॥

यदि त्वामापगेयो वै न नयेद् गजसाह्वयम्।
शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृह्णीयाद् रामचोदितः ॥ १० ॥

भीरु! यदि गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हें हस्तिनापुरमें न ले जाते तो राजा शाल्व परशुरामजीके कहनेपर तुम्हें आदरपूर्वक स्वीकार कर लेते ॥ १० ॥

तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीतासि भामिनि।
संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥ ११ ॥

परंतु भद्रे! भीष्म तुम्हें जीतकर अपने साथ ले गये हैं। भामिनि! इसलिये शाल्वराजके मनमें तुम्हारे प्रति संशय उत्पन्न हो गया है ॥ ११ ॥

भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च।
तस्मात् प्रतिक्रिया कार्या भीष्मे कारयितुं तव ॥ १२ ॥

भीष्मको अपने पुरुषार्थका अभिमान है और वे इस समय अपनी विजयसे उल्लसित हो रहे हैं, अतः भीष्मसे ही बदला लेना तुम्हारे लिये उचित होगा ॥ १२ ॥

अम्बोवाच

ममाप्येष सदा ब्रह्मन् हृदि कामोऽभिवर्तते।
घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव [illegible] ॥ १३ ॥

भीष्मो वा शाल्वराजो वा यस्य वा दोषतः प्रभो।
शाधि तं त्वं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता॥ १४॥

अम्बा बोली — भगवन्! मेरे मनमें भी सदा यह इच्छा बनी रहती है कि मैं युद्धमें भीष्मका वध करूँ। महाबाहो! आप भीष्मको या शाल्वराजको जिसे भी दोषी समझते हों, उसीको दण्ड दीजिये, जिनके कारण मैं अत्यन्त दुःखमें पड़ गयी हूँ॥ १४॥

भीष्म उवाच

एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता॥ १५॥

भीष्मजी कहते हैं — भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार बातचीत करते हुए उन सब लोगोंका वह दिन बीत गया और सुखदायिनी सर्दी-गर्मी और हवासे युक्त वह रात भी व्यतीत हो गयी॥ १५॥

ततो रामः प्रादुरासीज्ज्वलन्निव तेजसा।
शिष्यैः परिवृतो राजञ्जटाचीरधरो मुनिः॥ १६॥

राजन्! तदनन्तर अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए जटावल्कलधारी मुनिवर परशुरामजी वहाँ प्रकट हुए। उस समय उनके शिष्य उन्हें घेरे हुए थे॥ १६॥

धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गी बिभ्रत् परश्वधी।
विरजा राजशार्दूल सोऽभ्ययात् सृञ्जयं नृपम्॥ १७॥

उनके हाथमें धनुष, खड्ग और फरसा था। उनके हृदयमें दीनताका नाम नहीं था। उन्होंने अपने रजोगुणको दूर कर दिया था। वे राजा सृञ्जयके निकट आये॥ १७॥

ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपाः।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सा च कन्या तपस्विनी॥ १८॥

राजन्! उन्हें देखकर वे तपस्वी मुनि, महातपस्वी राजा तथा वह तपस्विनी कन्या — ये सब-के-सब हाथ जोड़कर खड़े हो गये॥ १८॥

पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम्।
अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः॥ १९॥

फिर उन्होंने एकाग्रचित्त होकर मधुपर्कद्वारा भृगुनन्दन परशुरामजीका पूजन किया। विधिपूर्वक पूजित होकर वे उन्हींके साथ वहाँ बैठे॥ १९॥

ततः पूर्वव्यतीतानि कथयन्तौ स्म तावुभौ।
आसातां जामदग्न्यश्च सृञ्जयश्चैव भारत॥ २०॥

भारत! तदनन्तर परशुरामजी और सृञ्जय होत्रवाहन दोनों मित्र पहलेकी बीती बातें कहते हुए एक साथ बैठ गये॥ २०॥

तथा कथान्ते राजर्षिर्भृगुश्रेष्ठं महाबलम्।
उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत्॥ २१॥

बातचीतके अन्तमें राजर्षि होत्रवाहनने महाबली भृगुश्रेष्ठ परशुरामजीसे मधुर वाणीमें उस समय यह अर्थयुक्त वचन कहा —॥ २१॥

रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो।
अस्याः शृणु यथातत्त्वं कार्यं कार्यविशारद॥ २२॥

कार्यकुशल प्रभो परशुराम! यह मेरी पुत्रीकी पुत्री काशिराजकी कन्या है। इसका कुछ कार्य है, उसे आप इसीके मुखसे ठीक-ठीक सुन लें॥ २२॥

परमं कथ्यतां चेति तां रामः प्राह सत्वरम्।
ततः साभ्यगमद् रामं ज्वलन्तमिव पावकम्॥ २३॥
ततोऽभिवाद्य चरणौ रामस्य शिरसा शुभा।
स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता॥ २४॥

'तुम्हें जो कहना हो कहो' इस प्रकार उस कन्याको जब परशुरामजीने प्रेरित किया, तब वह प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी परशुरामजीके पास गयी और उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करके कमलदलके समान मनोहर दोनों हाथोंसे उनका स्पर्श करती हुई सामने खड़ी हो गयी॥ २३-२४॥

रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना।
प्रपेदे शरणं चैव शरण्यं भृगुनन्दनम्॥ २५॥

उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह शोकसे आतुर होकर रोने लगी और सबको शरण देनेवाले भृगुनन्दन परशुरामजीकी शरणमें गयी॥ २५॥

राम उवाच

यथासि सृञ्जयस्यास्य तथा मम नृपात्मजे।
ब्रूहि यत् ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव॥ २६॥

परशुरामजी बोले — राजकुमारी! जैसे तू इन सृञ्जयकी दौहित्री है, उसी प्रकार मेरी भी है। तेरे मनमें जो दुःख है, उसे बता। मैं तेरे कथनानुसार सब काम करूँगा॥ २६॥

अम्बोवाच

भगवञ्छरणं त्वाद्य प्रपन्नास्मि महाव्रत।
शोकपङ्कार्णवाद् घोरादुद्धर त्वं च मां विभो॥ २७॥

अम्बा बोली — भगवन्! आप महान् व्रतधारी हैं। आज मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। प्रभो! इस भयंकर शोक-सागरसे मुझे बचाइये॥ २७॥

भीष्म उवाच

तस्याश्च दृष्ट्वा रूपं च वपुश्चाभिनवं पुनः।
सौकुमार्यं परं चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत्॥ २८॥
किमियं वक्ष्यतीत्येवं विममर्श भृगूद्वहः।
इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाभिपरिप्लुतः॥ २९॥

भीष्मजी कहते हैं — राजन्! उसके सुन्दर रूप, नूतन (तरुण) शरीर तथा परम सुकुमारताको देखकर परशुरामजी चिन्तामें पड़ गये कि न जाने यह क्या कहेगी? उसके प्रति दयाभावसे परिपूर्ण हो भृगुकुलभूषण परशुराम बहुत देरतक उसीके विषयमें विचार करते रहे॥ २८-२९॥

कथ्यतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता।
सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे॥ ३०॥

तदनन्तर परशुरामजीने पुनः यह कहा कि 'तुम अपनी

यह कहो नवीन युवावस्थावाले ममाने उनसे अपना सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया ॥

तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु राजपुत्र्या वचस्तदा।
उवाच न [illegible] विनिश्चित्यार्थविनिश्चयम् ॥ २१ ॥

राजकुमारी अम्बाका यह कथन सुनकर जमदग्निनन्दन परशुरामने क्या करना है इसका विचार करके उस सुन्दर अङ्गोंवाली राजकुमारीसे कहा।

परशुराम उवाच

प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भामिनि।
करिष्यति वचो मह्यं श्रुत्वा च स नराधिपः ॥ २२ ॥

परशुरामजी बोले—भामिनि! मैं कुरुश्रेष्ठ भीष्मके पास संदेश भेजूँगा, नरपति भीष्म सुनते ही मेरी आज्ञाका पालन करेंगे।

न चेत् करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः।
धक्ष्याम्यहं [illegible] सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥ २३ ॥

यदि [illegible] भीष्म मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं युद्धमें अस्त्र [illegible] उसे भस्म कर दूँगा।

अथवा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि न वर्तते।
यावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥ २४ ॥

अथवा राजकुमारी यदि वहाँ जानेका तेरा विचार हो तो मैं [illegible] हो [illegible] वीर [illegible] नियुक्त करूँ [illegible] तेरा [illegible] करूँ।

अम्बोवाच

विसर्जितास्मि भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन।
शाल्वराजगतं भावं मम पूर्वं मनीषितम् ॥ २५ ॥

अम्बा बोली—भृगुनन्दन! शाल्वराजमें मेरा अनुराग है और मैं पहलेसे ही उन्हें [illegible] चाहती हूँ यह सुनते ही भीष्मने मुझे विदा कर दिया था।

सौभराजमुपेत्याहमब्रुवं [illegible] दुर्वचं वचः।
न च मां प्रत्यगृह्णात् स चारित्र्यपरिशङ्कितः ॥ २६ ॥

तब [illegible] पास जाकर मैंने उनसे ऐसी बात कहीं जो [illegible] भी [illegible] कठिन है।

किंतु उन्होंने मुझे अपना स्वीकार करके लिये अवश्य पुरस्कार होता है परंतु मेरे चरित्रपर संदेह हो जानेके कारण उन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया ॥

एतत् सर्वं विनिश्चित्य बुद्ध्या भृगुकुलोद्वह।
यदत्रौपयिकं कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥ २७ ॥

भृगुनन्दन! इन सब बातोंपर बुद्धिपूर्वक विचार करके जो [illegible] है [illegible] आप [illegible]

मम तु व्यसनस्यास्य भीष्मो मूलं महाव्रतः।
येनाहं वशमानीता समुत्क्षिप्य [illegible] तदा ॥ २८ ॥

मेरी इस विपत्तिका मूल कारण महाव्रतधारी भीष्म हैं जिन्होंने उस समय बलपूर्वक मुझे उठाकर रथपर [illegible] लिया और इस प्रकार [illegible] बलात् हस्तिनापुर ले आया।

भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम्।
प्राप्ताहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ॥ २९ ॥

महाबाहु भृगुश्रेष्ठ! आप भीष्मको ही मार डालिये जिनके कारण मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है और मैं इस प्रकार [illegible] अत्यन्त अप्रिय आचरणमें पड़ी हूँ।

स हि लुब्धश्च मानी च जितकाशी च भार्गव।
तस्मात् प्रतिक्रिया कर्तुं युक्ता तस्मै त्वयानघ ॥ ३० ॥

निष्पाप [illegible] भीष्म लोभी [illegible] और विजयोल्लास से [illegible] है अतः आपको उसीसे बदला लेना उचित है।

एष मे क्रियमाणस्य भारतेन तदा विभो।
अभवद्धृदि संकल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

प्रभो! भरतवंशी भीष्मने जबसे मुझे इस दशाको डाल रखा है तभीसे हृदयमें यही संकल्प उठता है कि मैं उस महान् व्रतधारीका वध करा दूँ।

तस्मात् कामं ममाद्येमं राम संवर्तयानघ।
जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः ॥ ३२ ॥

निष्पाप महाबाहु [illegible] आप मेरी इसी कामनाको पूर्ण कीजिये जैसे इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था उसी प्रकार आप भी भीष्मका [illegible] डालिये।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामाम्बासंवादे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम और अम्बाका संवादविषयक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७७ ॥

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

अम्बा और परशुरामजीका संवाद, अकृतव्रणकी सलाह, परशुराम और भीष्मकी रोषपूर्ण बातचीत तथा उन दोनोंका युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें उतरना

भीष्म उवाच

एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो।
उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥ १ ॥

काश्ये न कामं गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि।
ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत् करवाणि ते ॥ २ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! अम्बाने ऐसा कहकर जि

सभी भीष्मको मार डालिये परशुरामजीसे रो-रोकर बार-बार प्रेरणा देनेवाली कन्यासे इस प्रकार कहा—सुन्दरी काशिराजकुमारी मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार किसी वेदवेत्ता ब्राह्मणकी आवश्यकता हो तो उसीके लिये शस्त्र उठाता हूँ; ऐसा कारण हुए बिना इच्छा हुआ हथियार नहीं उठाता अतः इस प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए मैं तेरा दूसरा कौन-सा कार्य करूँ? ॥ २ ॥

याच भाष्मा रामस्य मम शक्ति यथाबलम्
अविष्यतो [illegible] तत् करिष्यामि मा शुच ॥ ३ ॥
अम्बने [illegible] शान्त राम मेरी आज्ञाके अधीन होंगे [illegible] मैं तेरा कार्य करूँगा तू शोक न कर ॥
न [illegible] यदीष्यामि कथंचिदपि भाविनि
ऋते नियोगाद् विप्राणामेष मे समय कृत ॥
भाविनि मैं किसी तरह ब्राह्मणोंकी आज्ञा बिना हथियार नहीं उठाऊँगा यही मेरी प्रतिज्ञा है ॥

अम्बोवाच

मम [illegible] भगवत [illegible] एव [illegible]
तथा भीष्मकृत [illegible] मा चिरम् ॥
अम्बा बोली—भग [illegible] मेरा [illegible] दुःख दूर करें [illegible] भीष्मने [illegible] किया है [illegible] उसे [illegible] शीघ्र नष्ट कीजिये ॥

राम उवाच

काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ
शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति [illegible] मम ॥ ६ ॥
[illegible] परशुराम बोले—काशिराजकी पुत्री [illegible] कर [illegible] भीष्म [illegible] है तथापि [illegible] मेरे कहनेसे वह तेरे चरणोंको अपने मस्तक [illegible] रखेंगे ॥

अम्बोवाच

जहि भीष्मं रणे [illegible] गर्जन्तमसुरं यथा
समाहूतो [illegible] राम मम चेदिच्छसि प्रियम्
प्रतिश्रुतं च यदपि तत् सत्यं कर्तुमर्हसि ॥
अम्बा बोली—राम [illegible] आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो युद्धके लिये आमन्त्रित हो [illegible] असुरकी भाँति [illegible] गर्जनेवाले भीष्मको मार डालिये और [illegible] आपने जो [illegible] कर रक्खी है उसे भी [illegible] कीजिये ॥

भीष्म उवाच

तयो [illegible] संवदतोरेव राजन् रामाम्बयोस्तदा
ऋषि [illegible] परमधर्मात्मा [illegible] इदमब्रवीत्
भीष्मजी कहते हैं [illegible] परशुराम और अम्बामें [illegible] बातें [illegible] हो रही थीं उसी समय [illegible] परम [illegible] ऋषि [illegible] यह वचन [illegible] कहा ॥
शरणागतं महाबाहो कन्यां न परित्यक्तुमर्हसि
यदि [illegible] भीष्मो [illegible] समाहूतस्त्वया मृधे ॥
[illegible] निर्जित [illegible] वचनं [illegible] वा [illegible] ॥
कृतमस्य भवेत् कार्यं कन्याया भृगुनन्दन ॥
महाबाहो [illegible] शरणमें आयी है [illegible] इसका त्याग नहीं करना चाहिये [illegible] भृगुनन्दन [illegible] यदि युद्धमें आपके बुलानेपर भी [illegible] आकर [illegible] पराजय स्वीकार [illegible] आपकी बात [illegible] मान ले [illegible] का कार्य सिद्ध हो जायगा ॥
वाक्यं सत्यं च ते स्याद् भविष्यति [illegible] ॥

म [illegible] ह ५१

इत्युक्तं [illegible] प्रतिज्ञा ते तथा राम महामुने ॥ ११ ॥
जित्वा तु क्षत्रियान् सर्वान् ब्राह्मणेषु प्रतिश्रुता
ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्य शूद्रश्चैव तु [illegible] ॥ १२ ॥
ब्रह्मद्विड् भविता [illegible] वै हनिष्यामीति भार्गव
शरणार्थं प्रपन्नानां भीतानां शरणार्थिनाम् ॥ १३ ॥
न शक्ष्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन् कथंचन
यश्च कृत्स्नं [illegible] विजेष्यति समागतम् ॥ ॥
दीप्तात्मानमहं तं च हनिष्यामीति भार्गव
राम [illegible] ऐसा होनेसे आपकी कही हुई [illegible] भी [illegible] आपने [illegible] क्षत्रियों [illegible] पृथ्वीमें यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि कोई [illegible] अथवा शूद्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करेगा तो मैं उसे [illegible] मार डालूँगा [illegible] अधीन होकर [illegible] शरणमें आये हुए [illegible] विशेष प्रतिज्ञा है [illegible] कोई भी किसी [illegible] सम्पूर्ण [illegible] और [illegible] युद्धमें एकत्र हुए सम्पूर्ण [illegible] क्षत्रियोंको भी [illegible] ऐसे तेजस्वी पुरुषका भी मैं वध कर डालूँगा ॥

स एवं विजयी राम भीष्म कुरुकुलोद्वह
तेन युध्यस्व संग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥ १ ॥
भृगुनन्दन राम [illegible] इस प्रकार कुरुकुलका भार वहन करनेवाले [illegible] भीष्म समस्त क्षत्रियोंपर विजय [illegible] पा चुका है अतः [illegible] महात्मा उसके सामने जाकर युद्ध कीजिये ॥

राम उवाच

स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम
तथैव च करिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते ॥ ॥
परशुरामजी बोले—मुनिश्रेष्ठ मुझे अपनी पहलेकी हुई प्रतिज्ञा [illegible] है [illegible] ऐसा प्रयत्न [illegible] करूँगा ॥
कार्यमेतन्महद् ब्रह्मन् काशिकन्यामनोगतम्
गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः ॥
[illegible] काशिराजकी कन्याके मनमें [illegible] कार्य है [illegible] मैं स्वयं [illegible] कन्याको [illegible] जहाँ भीष्म है ॥
यदि भीष्मो [illegible] न करिष्यति मे वचः
हनिष्याम्येनमुद्रिक्तमिति मे निश्चिता मतिः ॥
यदि युद्धकी [illegible] मेरी बात नहीं [illegible] है ॥
न हि बाणा [illegible] सृष्टास्तिष्ठन्तीह शरीरिणाम्
कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसंगरे ॥
[illegible] चलाये हुए [illegible] देहधारियोंके शरीरमें अटकते नहीं हैं उन्हें विदीर्ण करके [illegible] निकल जाते हैं यह बात तुम्हें पूर्वकालमें क्षत्रियोंके साथ होनेवाले युद्धके समय ज्ञात हो चुकी है ॥

एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महातपाः ॥ २० ॥

ऐसा कहकर महातपस्वी परशुरामजी उन ब्रह्मवादी महर्षियोंके साथ प्रस्थान करनेका विचार करके उसके लिये उद्यत हो गये ॥ २० ॥

ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः ।
हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रतस्थुर्मज्जिघांसया ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् उस रात वहीं रहकर प्रातःकाल सन्ध्योपासन गायत्री-जप और अग्निहोत्र करके वे तपस्वी मुनि मेरा वध करनेकी इच्छासे वहाँसे चले ॥ २१ ॥

अभ्यगच्छत् ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥ २२ ॥

महाराज भरतनन्दन! फिर उन वेदवादी मुनियोंके साथ वे परशुरामजी राजकन्या अम्बाके साथ कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २२ ॥

न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीम् ।
तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥ २३ ॥

वहाँ भृगुश्रेष्ठ परशुरामजीको आगे करके उन सभी तपस्वी महात्माओंने सरस्वती नदीके तटका आश्रय ले वहीं निवास किया ॥ २३ ॥

भीष्म उवाच

ततस्तृतीये दिवसे संदिदेश व्यवस्थितः ।
कुरु प्रियं स मे राजन् प्राप्तोऽस्मीति महाव्रत ॥ २४ ॥

भीष्मजी कहते हैं—तदनन्तर तीसरे दिन (कुरुक्षेत्रकी सीमापर) ठहरकर महाव्रती परशुरामजीने मुझे संदेश दिया—'राजन्! मैं यहाँ आया हूँ, तुम मेरा प्रिय कार्य करो' ॥ २४ ॥

तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्तं महाबलम् ।
अभ्यगच्छं जवेनाशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् ॥ २५ ॥

तेजके भण्डार और महाबली भगवान् परशुरामको अपने राज्यकी सीमापर आया हुआ सुनकर मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ वेगपूर्वक उनके पास गया ॥ २५ ॥

गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः ।
ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥ २६ ॥

राजेन्द्र! उस समय एक गौको आगे करके ब्राह्मणोंसे घिरा हुआ मैं देवताओंके समान तेजस्वी ऋत्विजों तथा पुरोहितोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ २६ ॥

स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
प्रतिजग्राह तां पूजां वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

मुझे अपने समीप आया हुआ देख प्रतापी परशुरामजीने मेरी दी हुई पूजा स्वीकार की और इस प्रकार कहा ॥ २७ ॥

राम उवाच

भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता तदा ।
अकामेन त्वयाऽऽनीता पुनश्चैव विसर्जिता ॥ २८ ॥

परशुरामजी बोले—भीष्म! तुमने किस विचारसे उन दिनों स्वयं कामनारहित होते हुए भी काशिराजकी इस कन्याका अपहरण किया, अपने घर ले आये और फिर इसे निकालकर बाहर किया ॥ २८ ॥

विभ्रंशिता त्वया हीयं धर्मावाप्तेः परावरात् ।
परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहार्हति ॥ २९ ॥

तुमने इस यशस्विनी राजकुमारीको धर्मसे भ्रष्ट कर दिया है। तुम्हारे द्वारा इसका स्पर्श कर लिया गया है। ऐसी दशामें इसे दूसरा कौन ग्रहण कर सकता है? ॥ २९ ॥

प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वया नीतेति भारत ।
तस्मादिमां मन्नियोगात् प्रतिगृह्णीष्व भारत ॥ ३० ॥

भारत! तुम इसे हरकर लाये थे, इसी कारणसे शाल्वने इसके साथ विवाह करनेसे इनकार कर दिया है, अतः अब तुम मेरी आज्ञासे इसे ग्रहण कर लो ॥ ३० ॥

स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम् ।
न युक्तमवमानोऽयं कर्तुं राज्ञां त्वयानघ ॥ ३१ ॥

पुरुषसिंह! तुम्हें ऐसा करना चाहिये, जिससे इस राजकुमारीको स्वधर्मपालनका अवसर प्राप्त हो। अनघ! तुम्हें राजाओंका इस प्रकार अपमान करना उचित नहीं है ॥ ३१ ॥

ततस्तं वै विमनसमुदीक्ष्याहमथाब्रुवम् ।
नाहमेनां पुनर्दद्यां भ्रात्रे ब्रह्मन् कथंचन ॥ ३२ ॥

तब मैंने परशुरामजीको उदास देखकर इस प्रकार कहा—ब्रह्मन्! अब मैं इसका विवाह अपने भाईके साथ किसी प्रकार नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

शाल्वस्याहमिति प्राह पुरा मामेव भार्गव ।
मया चैवाभ्यनुज्ञाता गता सौभपतेः पुरम् ॥ ३३ ॥

भृगुनन्दन! इसने पहले मुझसे आकर कहा कि मैं शाल्वकी हूँ, तब मैंने इसे जानेकी आज्ञा दे दी और यह शाल्वराजके नगरको चली गयी ॥ ३३ ॥

न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थलोभान्न काम्यया ।
क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥ ३४ ॥

मैं भयसे, दयासे, धनके लोभसे तथा किसी कामनासे भी क्षात्रधर्मका त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा स्वीकार किया हुआ व्रत है ॥ ३४ ॥

अथ मामब्रवीद् रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
न करिष्यसि चेदेतद् वाक्यं मे कुरुपुङ्गव ॥ ३५ ॥
हनिष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः ।

यह सुनकर परशुरामजीके नेत्रोंमें क्रोधका भाव व्याप्त हो गया और वे मुझसे इस प्रकार बोले—'नरश्रेष्ठ! यदि तुम मेरी यह बात नहीं मानोगे तो आज मैं मन्त्रियोंसहित तुम्हें मार डालूँगा।' इस बातको उन्होंने बार-बार दुहराया ॥ ३५-३६ ॥

संरम्भादब्रवीद् रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३६ ॥
तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिंदम ।
अयाचं भृगुशार्दूलं न चैवाशाम्यदस्य सः ॥ ३७ ॥

शत्रुदमन दुर्योधन! परशुरामजीने क्रोधभरे नेत्रोंसे

देखते हुए वहाँ [illegible] आकर [illegible] कहो । उस समय मैं जिन [illegible] उन भृगुवंशी महात्माको नमस्कार करके शान्त रहनेके लिये [illegible] रहा; परंतु वे किसी प्रकार शान्त न हो सके ॥ २ ॥

प्रत्यब्रवं तमहं भूयो [illegible]
स्वयं धारयसि किं तद् यत् त्वं युद्धं मयेच्छसि ॥ ३ ॥
इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम्
उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥

तब मैंने उन ब्राह्मणशिरोमणिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर पुनः प्रणाम किया और इस प्रकार कहा— भगवन्! [illegible] आप मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं, बाल्यावस्थामें आपने ही मुझे चार प्रकारके धनुर्वेदकी शिक्षा दी है। महाबाहु भार्गव! मैं तो आपका शिष्य हूँ॥

ततो मामब्रवीद् रामः क्रोधसंरक्तलोचनः
जानीषे मां गुरुं भीष्म गृह्णासीमां न चैव ह ॥ ४ ॥
सुतां काशस्य कौरव्य मत्प्रियार्थं महामते
न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ॥ ५ ॥

तब परशुरामजीने क्रोधसे लाल आँखें करके मुझसे कहा—महामते भीष्म! तुम मुझे अपना गुरु मानते हो; तो मेरा प्रिय करनेके लिये काशिराजकी इस कन्याको ग्रहण नहीं करते हो; किन्तु कुरुनन्दन! ऐसा किये बिना तुम्हें शान्ति नहीं मिल सकती॥

गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः
त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्तारं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

महाबाहो! इसे ग्रहण कर लो और इस प्रकार अपने कुलकी रक्षा करो। तुम्हारे द्वारा अपने स्थानसे भ्रष्ट होनेके कारण इसे पति नहीं मिल रहा है॥

तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरंजयम्
नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥ ७ ॥

ऐसी बातें करते हुए शत्रुनगरविजयी परशुरामजीसे मैंने स्पष्ट कह दिया— ब्रह्मर्षे! अब फिर ऐसा नहीं हो सकता। इस विषयमें आपके परिश्रमसे क्या होगा?

गुरुत्वं त्वयि संप्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम्
प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्ता ह्येषा पुरा मया ॥ ८ ॥

भगवन् जमदग्निनन्दन! आप मेरे प्राचीन गुरु हैं, यह सोचकर ही मैं आपको प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। इस कन्याको तो मैंने पहले ही त्याग दिया था॥

को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमिव स्थिताम्
वासयेत गृहे जानन् स्त्रीणां दोषान् महात्ययान् ॥ ९ ॥

दूसरेके प्रति अनुराग रखनेवाली नारी सर्पिणीके समान भयंकर होती है। कौन ऐसा पुरुष होगा, जो जान-बूझकर उसे कभी भी अपने घरमें स्थान देगा; क्योंकि स्त्रियोंका यह (परपुरुषमें अनुरागरूप) दोष महान् अनर्थका कारण होता है॥

न भयाद् वासवस्यापि धर्मं जह्यां महाद्युते
प्रसीद मा वा यद् वा ते कार्यं तत् कुरु मा चिरम् ॥ १० ॥

महातेजस्वी राम! मैं इन्द्रके भयसे भी धर्मका त्याग नहीं कर सकता। आप प्रसन्न हों या न हों। आपको जो कुछ करना हो, शीघ्र कर डालिये॥

अयं चापि विशुद्धात्मन् पुराणे श्रूयते विभो
मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥ ११ ॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ १२ ॥

विशुद्ध हृदयवाले परम बुद्धिमान् राम! पुराणमें महात्मा मरुत्तका कहा हुआ यह श्लोक सुननेमें आता है कि यदि गुरु भी घमंडमें आकर कर्तव्य और अकर्तव्यको न समझते हुए कुमार्गका आश्रय ले तो उसका भी परित्याग कर दिया जाता है॥

स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया सम्मानितो भृशम्
गुरुवृत्तं न जानीषे तस्माद् योत्स्यामि वै त्वया ॥ १३ ॥

आप गुरु हैं, यह समझकर मैंने प्रेमपूर्वक आपका अधिक-से-अधिक सम्मान किया है; परंतु आप गुरुका बर्ताव नहीं जानते, अतः मैं आपके साथ युद्ध करूँगा॥

गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः
विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥ १४ ॥

एक तो आप गुरु हैं, उसमें भी विशेषतः ब्राह्मण हैं, उसपर भी विशेष बात यह है कि आप तपस्यामें बढ़े-चढ़े हैं; अतः आप-जैसे गुरुको मैं कैसे मार सकता हूँ? यही सोचकर मैंने अबतक आपके ऐसे बर्तावको चुपचाप सह लिया॥

उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत्
यो हन्यात् समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायिनम् ॥ १५ ॥
ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः
क्षत्रियाणां स्थितो धर्मे क्षत्रियोऽस्मि तपोधन ॥ १६ ॥

यदि ब्राह्मण भी क्षत्रियकी भाँति धनुष-बाण उठाकर युद्धमें सामने आ जाय और वह युद्ध करते समय पीठ न दिखाकर भागे नहीं, उस दशामें यदि कोई उसे देखकर रोषपूर्वक मार डाले तो उसे ब्रह्महत्याका दोष नहीं लगता, यह धर्मशास्त्रोंका निर्णय है। तपोधन! मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रियोंके ही धर्ममें स्थित हूँ॥

यो यथा वर्तते यस्मिंस्तथा तस्मिन् प्रवर्तयन्
नाधर्मं समवाप्नोति न चाश्रेयश्च विन्दति ॥ १७ ॥

जो जिसके साथ जैसा बर्ताव करता है, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करनेवाला पुरुष न तो अधर्मको प्राप्त होता है और न अमंगलका ही भागी होता है॥

अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित्
अर्थसंशयमापन्नः श्रेयान् निःसंशयेन सः ॥ १८ ॥

अर्थ (लौकिक कृत्य) और धर्मके विवेचनमें कुशल तथा देश-कालके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष यदि अर्थके विषयमें संशय उत्पन्न होनेपर उसे छोड़कर निःसंदेह हृदयसे केवल धर्मका ही अनुसरण करे तो वह श्रेष्ठ माना गया है॥

यस्मात् सम्मानितेऽप्यस्मिंस्त्वमकार्यं प्रवर्तसे।
तस्माद् योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे ॥ ५५ ॥

राम! आप मुझसे जो काम करानेको कह रहे हैं, वह सर्वथा विरुद्ध है तो भी आप ऐसे कार्य करनेके लिये मुझसे आग्रह नहीं छोड़ रहे हैं, इसलिये महान् समराङ्गणमें आपके साथ युद्ध करूँगा ॥ ५५ ॥

पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चातिमानुषम्।
एवं गतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ॥ ५६ ॥
तत् करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह।
द्वन्द्वे राम यथेष्टं मे सज्जीभव महामुने ॥ ५७ ॥

भार्गव! आप मेरे बाहुबल और अलौकिक पराक्रमको देखिये। ऐसी स्थितिमें भी मैं जो कुछ कर सकता हूँ, उसे अवश्य करूँगा। कुरुक्षेत्रमें चलकर आपके साथ युद्ध करूँगा। महातेजस्वी राम! आप द्वन्द्वयुद्धके लिये इच्छानुसार तैयारी कर लीजिये ॥ ५६-५७ ॥

तत्र त्वं निहतो राम मया शरशतार्दितः।
लप्स्यसे निर्जितांल्लोकाञ्छस्त्रपूतो महारणे ॥ ५८ ॥

राम! उस महान् युद्धमें मेरे सैकड़ों बाणोंसे पीड़ित एवं शस्त्रपूत हो मारे जानेपर आप पुण्य कर्मोंद्वारा जीते हुए दिव्य लोकोंको प्राप्त करेंगे ॥ ५८ ॥

स गच्छ विनिवर्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रिय।
तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥ ५९ ॥

युद्धप्रिय महाबाहु तपोधन! अब आप लौटिये और कुरुक्षेत्रमें ही चलिये। मैं युद्धके लिये वहीं आपके पास आ जाऊँगा ॥ ५९ ॥

अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः।
तत्राहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्तास्मि भार्गव ॥ ६० ॥

भृगुनन्दन परशुराम! जहाँ पूर्वकालमें आपने पिताका श्राद्ध-तर्पण आदि करके शुद्धिका अनुभव किया था, वहीं मैं भी आपको मारकर आत्मशुद्धि करूँगा ॥ ६० ॥

तत्र राम समागच्छ त्वरितं युद्धदुर्मद।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मणब्रुव ॥ ६१ ॥

ब्राह्मण कहलानेवाले रणदुर्मद राम! आप शीघ्र कुरुक्षेत्रमें आइये। मैं वहीं आकर आपका पुरातन दर्प दलन करूँगा ॥ ६१ ॥

यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिषत्सु वै।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥ ६२ ॥

राम! आप जो बहुत बार भरी सभाओंमें अपनी प्रशंसाके लिये यह कहा करते हैं कि मैंने अकेले ही इस संसारके समस्त क्षत्रियोंको जीत लिया था, तो उसका उत्तर सुन लीजिये ॥ ६२ ॥

न तदा जायते भीष्मः क्षत्रियो वापि मद्विधः।
पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया ॥ ६३ ॥

उन दिनों भीष्म अथवा मेरे जैसा दूसरा कोई क्षत्रिय नहीं उत्पन्न हुआ था। तेजस्वी क्षत्रिय तो पीछे उत्पन्न हुए हैं। आप तो घास-फूसमें ही प्रज्वलित हुए हैं (तिनकोंके समान दुर्बल क्षत्रियोंपर ही आपने तेज प्रकट किया है) ॥ ६३ ॥

यस्ते युद्धमयं दर्पं कामं च व्यपनाशयेत्।
सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरंजयः।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥ ६४ ॥

महाबाहो! जो आपकी युद्धविषयक कामना तथा अभिमानको नष्ट कर सके, वह शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला यह भीष्म तो अब उत्पन्न हुआ है। राम! मैं युद्धमें आपका सारा घमण्ड चूर-चूर कर दूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ६४ ॥

भीष्म उवाच

ततो मामब्रवीद् रामः प्रहसन्निव भारत।
दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्धुमिच्छसि संगरे ॥ ६५ ॥

भीष्मजी कहते हैं—भरतनन्दन! तब परशुरामजीने मुझसे हँसते हुए-से कहा—'भीष्म! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम संग्राममें मेरे साथ युद्ध करना चाहते हो ॥ ६५ ॥

अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह।
भाषितं तत् करिष्यामि तत्रागच्छ परंतप ॥ ६६ ॥
तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम्।
जाह्नवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबलाशनम् ॥ ६७ ॥

कुरुनन्दन! यह देखो, मैं तुम्हारे साथ युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें चलता हूँ। परंतप! वहीं आओ। मैं तुम्हारा कहना पूरा करूँगा। वहाँ तुम्हारी माता गङ्गा तुम्हें मेरे हाथसे मरकर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त और कौओं, गृध्रों तथा गीदड़ोंका भोजन बना हुआ देखेगी ॥ ६६-६७ ॥

कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता।
मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥ ६८ ॥

राजन्! तुम दीन हो। आज तुम्हें मेरे द्वारा मारा गया देख सिद्ध-चारणसेवित गङ्गादेवी रुदन करें ॥ ६८ ॥

अतदर्हा महाभागा भगीरथसुता नदी।
या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥ ६९ ॥

यद्यपि भगीरथपुत्री महाभागा गङ्गा नदी यह दुःख देखनेके योग्य नहीं है, तथापि जिन्होंने तुम-जैसे युद्धकामी आतुर एवं मूर्ख पुत्रको जन्म दिया है, उन्हें यह कष्ट भोगना ही पड़ेगा ॥ ६९ ॥

एहि गच्छ मया भीष्म युद्धमद्यैव वर्तताम्।
गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ॥ ७० ॥

युद्धकी इच्छा रखनेवाले मदोन्मत्त भीष्म! आओ, मेरे साथ चलो। भरतश्रेष्ठ कुरुनन्दन! रथ आदि सारी सामग्री साथ ले लो' ॥ ७० ॥

इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरंजयम्।
प्रणम्य शिरसा राजन्नेवमस्त्वित्यथाब्रुवम् ॥ ७१ ॥

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले परशुरामजीको ऐसा कहते देख मैंने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और 'एवमस्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की ॥ ७१ ॥

एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया।
प्रविश्य नगरं चाहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ ७२ ॥

देवा ... प्रजापति पुत्रकी ... युधिष्ठिर
... देवा ... वती ...
दिये किया
... निराश्रय
द्रिजानीम ... पुष्पाह ... शत्रु
... राजा ... पाण्डु
... सर्वोपकरणान्विताम्
... दुर्योधन ...
पुत्र ... पुत्रो ...
महात्मा ... उत्तम ...
माता ... किया ...
... आशीष
... धर्म ...
... सुन
उत्तर ...
... उक्त
... लग्ना
युधिष्ठिर कुन्ती ... पति ...
... निष्फल होत
... पाण्डु ... धनु
पाण्डुर ... भारत ...
... भारत
... गान्धारी
... सुधर्म
... गान्धारि ...
... लोकविभूष
...
... मेरे ... मन
... साक्षात्
कुरुक्षेत्र ... पुत्रको ... भर
... गई
... विशाल
कुरुक्षेत्रके ...
... रणमध्ये
... सर्वतोभाकार ...
... गान्धारी
... तोंने ... महात्
... दिया
... महाप्रताप
... धर्मात्मा ...

... दुर्योधन
... दिव्य ... दिव्य
... सर्व
... रामचरितविभ्रम
... आत्ममनुजम्
... ...
... शत्रुके ...
... कथा
... कस
... दिव्य देखा ...
... प्रभुत्व आदि ...
... उस ... ...
दिव्यानि माल्यानि ...
... दिव्य ...
... माला
... विशेष
... पाण्डुपर्याय
... परिधार्य ...
... आये हुए
... देव ...
... भगवती ...
... गान्धारी ...
... हित ...
गान्धारी ... वर्णो
... कहा ...
... कुरुद्वह
... पुत्र पुत्र
... तुम।
... दिव्य
...
पुत्र ... पार्थिव
... अपत्
... देखा ...
... नेत्र
नहीं ...
... धृतराष्ट्र
... युधिष्ठिर
...
... नहीं ...
...
... कृताञ्जलि
... भरतसह ...
हाथ जोड़ कर गान्धारीको प्रणाम किया और

समयमें जैसी घटना घटित हुई थी, वह सब उससे आद्योपान्त कह सुनाया॥१७॥

यच्च च रामो राजेन्द्र मया पूर्वं प्रसादितः।
काशिराजसुतायाश्च यथा कर्म पुरातनम्॥१८॥

राजेन्द्र! मैंने परशुरामजीसे पहले जो-जो बातें कही थीं तथा काशिराजकी कन्याकी जो पुरानी करतूत थी, उस सबको भी कह दिया॥१८॥

ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी।
मदर्थं तमृषिं वीरं क्षमयामास भार्गवम्॥१९॥

तत्पश्चात् मेरी माता महानदी गङ्गाने परशुरामजीके पास जाकर मेरे लिये उनसे क्षमा माँगी॥१९॥

प्रोवाच चैनं मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत्।
स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्तय।
न हि मे कुरुते काममित्यहं तमुपागमम्॥२०॥

साथ ही यह भी कहा कि 'अपने शिष्यसे युद्ध न कीजिये।' तब याचना करनेवाली मेरी माता गङ्गासे परशुरामजीने कहा, 'तुम पहले भीष्मको ही युद्धसे निवृत्त करो। वह मेरे इच्छानुसार कार्य नहीं कर रहा है। इसीलिये मैंने उसपर चढ़ाई की है'॥२०॥

वैशम्पायन उवाच

ततो गङ्गा सुतस्नेहाद् भीष्मं पुनरुपागमत्।
न चास्याः स चकाराथ वचनं क्रोधमूर्च्छितः॥२१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब गङ्गादेवी पुत्रस्नेहवश पुनः भीष्मके पास आयीं; परंतु भीष्मके नेत्र क्रोधसे व्याप्त हो रहे थे; अतः उन्होंने भी माताका कहना नहीं माना॥२१॥

अथादृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः।
आह्वयामास च पुनर्युद्धाय द्विजसत्तमः॥२२॥

इतनेमें ही भृगुकुलतिलक ब्राह्मणशिरोमणि महातपस्वी धर्मात्मा परशुरामजी दिखायी दिये। उन्होंने सामने आकर युद्धके लिये भीष्मको ललकारा॥२२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयोः कुरुक्षेत्रावतरणे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम और भीष्मका युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें अवतरणविषयक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१७८॥

एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सङ्कल्पनिर्मित रथपर आरूढ परशुरामजीके साथ भीष्मका युद्ध आरम्भ करना

भीष्म उवाच

तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम्।
भूमिष्ठं नोत्सहे योद्धुं भवन्तं रथमास्थितः॥१॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! तब मैं युद्धके लिये खड़े हुए परशुरामजीसे मुसकराता हुआ-सा बोला—'ब्रह्मन्! मैं रथपर बैठा हूँ और आप भूमिपर खड़े हैं। ऐसी दशामें मैं आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता॥१॥

आरोह स्यन्दनं वीर कवचं च महाभुज।
बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि॥२॥

महाबाहो! वीरवर राम! यदि आप समरभूमिमें मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं तो रथपर आरूढ़ होइये और कवच भी बाँध लीजिये'॥२॥

ततो मामब्रवीद् रामः स्मयमानो रणाजिरे।
रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत्॥३॥
सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः।
सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन॥४॥

तब परशुरामजी रणाङ्गणमें किंचित् मुसकराते हुए मुझसे बोले—'कुरुनन्दन भीष्म! मेरे लिये तो पृथ्वी ही रथ है, चारों वेद ही उत्तम अश्वोंके समान मेरे वाहन हैं, वायुदेव ही सारथि हैं और वेदमाताएँ (गायत्री, सावित्री और सरस्वती) ही कवच हैं। इन सबसे आवृत एवं सुरक्षित होकर मैं रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगा'॥३-४॥

एवं ब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः।
शरव्रातेन महता सर्वतः प्रत्यवारयत्॥५॥

गान्धारीनन्दन! ऐसा कहते हुए सत्यपराक्रमी परशुरामजीने मुझे सब ओरसे अपने बाणोंके महान् समुदायद्वारा आवृत कर लिया॥५॥

ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथमध्ये व्यवस्थितम्।
सर्वायुधधरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने॥६॥

उस समय मैंने देखा, जमदग्निनन्दन परशुराम सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित तेजस्वी एवं अद्भुत दिखायी देनेवाले रथपर बैठे हैं॥६॥

मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे।
दिव्याश्वयुजि संनद्धे काञ्चनेन विभूषिते॥७॥

उसका विस्तार एक नगरके समान था। उस पुण्यमय रथका निर्माण उन्होंने अपने मानसिक संकल्पसे किया था। उसमें दिव्य अश्व जुते हुए थे। वह सब प्रकारसे सुसज्जित था॥७॥

कवचेन महाबाहो सोमार्ककृतलक्षणम्।
धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्॥८॥

महाबाहो! परशुरामजीने एक सुन्दर कवच धारण कर रक्खा था, जिसमें चन्द्रमा और सूर्यके चिह्न बने हुए थे। उन्होंने हाथमें धनुष लेकर पीठपर तरकस बाँध रक्खा था और अंगुलियोंकी रक्षाके लिये गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहन रक्खे थे॥८॥

सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः

ब्रह्मा वेदविदस्त्यक्त इवितो भागवस्य ॥ ९ ॥

उस समय युद्धके इच्छुक परशुरामजीके प्रति वक्ता वेदवेत्ता महात्माने उनके सारथिका कार्य सम्पन्न किया।

आह्वयानः स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे। पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गव ॥ १० ॥

परशुरामजी बार बार मुझे पुकारते और युद्धके लिये मेरा आह्वान करते हुए मेरे मनको हर्ष और उत्साह प्रदान कर रहे थे।

तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम्। क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥ ११ ॥

उदयकालिक सूर्यके समान तेजस्वी अजेय महाबली तथा क्षत्रियविनाशक परशुराम अकेले ही युद्धके लिये खड़े थे। अतः मैं भी अकेला ही उनका सामना करनेके लिये गया।

ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु वाहान् निगृह्य वै। अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिर्ऋषिसत्तमम् ॥ १२ ॥

अभ्यगच्छं तदा राममर्चिष्यन् द्विजसत्तमम्। अभिवाद्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥

जब वे तीन बार मेरे ऊपर बाणोंका प्रहार कर चुके तब मैं घोड़ोंको रोककर और धनुष नीचे रखकर उन ब्राह्मणशिरोमणि मुनिवर परशुरामजीका सत्कार करनेके लिये पैदल ही उनके पास गया और विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके यह उत्तम वचन बोला॥ १२-१३॥

योत्स्ये त्वया रणे राम सदृशेनाधिकेन वा। गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्व मे विभो ॥ १४ ॥

'भगवन् परशुराम! आप मेरे समान अथवा मुझसे भी अधिक शक्तिशाली हैं। मेरे धर्मात्मा गुरु हैं। मैं इस रणभूमिमें आपके साथ युद्ध करूँगा। आप मुझे उसके लिये आशीर्वाद दें'॥ १४॥

राम उवाच

एवमेतत् कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छता। धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥ १५ ॥

परशुरामजीने कहा— कुरुश्रेष्ठ! अपनी उन्नतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको ऐसा ही करना चाहिये। महाबाहो! अपनेसे विशिष्ट गुरुजनोंके साथ युद्ध करनेवाले राजाओंका यही धर्म है॥ १५॥

शपेयं त्वां न चेदेवमागच्छेथा विशाम्पते। युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्यमालम्ब्य कौरव ॥ १६ ॥

प्रजानाथ! यदि तुम इस प्रकार मेरे समीप नहीं आते तो मैं तुम्हें शाप दे देता। कुरुनन्दन! तुम धैर्य धारण करके इस रणक्षेत्रमें प्रयत्नपूर्वक युद्ध करो॥ १६॥

न तु ते जयमाशासे त्वां हि जेतुमहं स्थितः। गच्छ युध्यस्व धर्मेण प्रीतोऽस्मि चरितेन ते ॥ १७ ॥

मैं तो तुम्हें विजयसूचक आशीर्वाद नहीं दे सकता; क्योंकि इस समय मैं तुम्हें पराजित करनेके लिये खड़ा हूँ। जाओ, धर्म पूर्वक युद्ध करो। तुम्हारे इस शिष्टाचारसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ॥ १७॥

ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः। प्राध्मापयं रणे शङ्खं पुनर्हेमपरिष्कृतम् ॥ १८ ॥

तब मैं उन्हें नमस्कार करके शीघ्र ही रथपर जा बैठा और रणभूमिमें मैंने पुनः अपने सुवर्णजटित शङ्खको बजाया॥ १८॥

ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत। दिवसान् सुबहून् राजन् परस्परजिगीषया ॥ १९ ॥

राजन्! भरतनन्दन! तदनन्तर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे मेरा तथा परशुरामजीका युद्ध बहुत दिनोंतक चलता रहा॥ १९॥

स मे तस्मिन् रणे पूर्वं प्राहरत् कङ्कपत्रिभिः। षष्ट्या शतैश्च नवभिः शराणामग्निवर्चसाम् ॥ २० ॥

उस युद्धमें उन्होंने ही पहले मेरे ऊपर गीधकी पाँखवाले अग्नितुल्य तेजस्वी नौ सौ साठ बाणोंद्वारा प्रहार किया॥ २०॥

चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशाम्पते। प्रतिरुद्धास्तथैवाहं समरे दंशितः स्थितः ॥ २१ ॥

प्रजानाथ! उन्होंने मेरे चारों घोड़ों तथा सारथिको भी आगे बढ़नेसे रोक दिया तो भी मैं कवच धारण किये उस समरभूमिमें डटा रहा॥ २१॥

नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च विशेषतः। तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् देवताओं और विशेषतः ब्राह्मणोंको नमस्कार करके मैं रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीसे मुसकराता हुआ-सा बोला—॥ २२॥

आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि। भूयस्तु शृणु मे ब्रह्मन् सम्पदं धर्मसंग्रहे ॥ २३ ॥

'ब्रह्मन्! यद्यपि आप मर्यादा छोड़ रहे हैं तो भी मैंने तो आपके आचार्यत्वका सम्मान किया है। धर्मसंग्रहके विषयमें जो मेरा दृष्टिकोण है, उसे आप पुनः सुन लीजिये॥ २३॥

ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत्। तपश्च ते महत् तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥ २४ ॥

'ब्रह्मन्! आपके शरीरमें जो वेद हैं, जो आपका महान् ब्राह्मणत्व है तथा आपने जो बड़ी भारी तपस्या की है, उनके ऊपर मैं बाणोंका प्रहार नहीं कर रहा हूँ॥ २४॥

प्रहरे क्षत्रधर्मस्य यं त्वं राम समाश्रितः। ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥ २५ ॥

'परशुराम! आपने जिस क्षत्रियधर्मका आश्रय ले रखा है, मैं उसीपर प्रहार करता हूँ; क्योंकि ब्राह्मण हथियार उठाते ही क्षत्रियभावको प्राप्त कर लेता है॥ २५॥

पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाह्वोर्बलं मम। एष ते कार्मुकं वीर छिनद्मि निशितेषुणा ॥ २६ ॥

'अब आप मेरे धनुषकी शक्ति और मेरी भुजाओंका बल देखिये। वीर! मैं अपने तीखे बाणसे आपके धनुषको काटे देता हूँ'॥ २६॥

तस्याहं [illegible] विशेषं भरतर्षभ
[illegible] पर्वाणि [illegible] ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् मैंने उनके ऊपर [illegible] एक [illegible] बाण [illegible] फिर और उनके द्वारा उनके धनुषकी [illegible] काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २७ ॥

ततस्त्वन्यान् [illegible] तामान्
[illegible] जामदग्न्यस्य प्रति ॥ २८ ॥

इसी प्रकार [illegible] परशुरामजीके [illegible] और [illegible] दिखाते हुए बाण [illegible] ॥ २८ ॥

[illegible] विषयं [illegible] वायुना [illegible]
चेलुः [illegible] ॥ २९ ॥

[illegible] उनके [illegible] भाँति [illegible] शरीरसे [illegible] बहाते हुए चल दिये ॥ २९ ॥

[illegible] रुधिरं [illegible]
[illegible] ॥ ३० ॥

[illegible] निकलती [illegible] वैसे ही [illegible] ॥ ३० ॥

[illegible] रक्तसंसिक्तः [illegible]
[illegible] राजन् [illegible] ॥ ३१ ॥

[illegible] अशोक [illegible] खिला हुआ [illegible] होता है [illegible] उस [illegible] शोभा हुई ॥ ३१ ॥

[illegible] धनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः
[illegible] ॥ ३२ ॥

[illegible] क्रोधमें भरे हुए परशुरामजीने [illegible] ॥ ३२ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ ३३ ॥

वे नाना प्रकारके [illegible] बाण [illegible] उनका वेग महान् था। वे [illegible] अग्नि [illegible] उन्होंने मुझे कम्पित कर दिया ॥ ३३ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ३४ ॥

तब मैंने [illegible] अपने [illegible] कुपित हो उस युद्धमें [illegible] ॥ ३४ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ३५ ॥

[illegible] अग्नि [illegible] समान [illegible] पीड़ित होकर [illegible] ॥ ३५ ॥

[illegible]
[illegible] भारत ॥ ३६ ॥

भारत ! तब मैं [illegible] और [illegible] ॥ ३६ ॥

[illegible] राजन् [illegible]
[illegible] ॥ ३७ ॥

गुरुर्द्विजातिर्धर्मात्मा [illegible] पीडितः [illegible]

[illegible] इस प्रकार [illegible] ॥ ३७ ॥

[illegible] भारत ॥ ३८ ॥

[illegible] युद्धमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

भारत ! [illegible] फिर [illegible] भगवान् सूर्य [illegible] अस्त हो गये [illegible] युद्ध बंद हो गया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि [illegible] ॥

[illegible]

अशीत्यधिकशततमोऽध्याय
भीष्म और परशुरामका घोर युद्ध

भीष्म उवाच

[illegible] विशाम्पते
[illegible]
[illegible] ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! [illegible] शरीरसे [illegible] बाणोंको निकाल [illegible] ॥ १ ॥

[illegible] युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

[illegible] फिर [illegible] सूर्योदय होनेपर पुनः युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २ ॥

दृष्ट्वा मां तूर्णमायान्तं दर्शितं ... विशिखम्।
अभ्यरोद् रथमास्थाय रामः सर्वं प्रकाशयन् ॥ ३ ॥

मुझे रथपर बैठकर कवच धारण किये शीघ्रतापूर्वक आते देख महाबली परशुरामजीने अपने रथको सुसज्जित किया ॥ ३ ॥

ततोऽहं रामसायकांस्तु दृष्ट्वा समरकाङ्क्षिणम्।
धनुःश्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसावतरं रथात् ॥ ४ ॥

तदनन्तर युद्धकी इच्छावाले परशुरामजीको सामने देखकर मैं अपना श्रेष्ठ धनुष रखकर सहसा रथसे उतर पड़ा ॥ ४ ॥

अभिवाद्य तथैवाहं रथमारुह्य भारत।
युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ॥ ५ ॥

भारत! पूर्ववत् गुरुको प्रणाम करके मैं फिर रथपर आरूढ़ हो युद्धकी इच्छासे परशुरामजीके सामने निर्भय होकर खड़ा हो गया ॥ ५ ॥

ततोऽहं शरवर्षेण महता समवाकिरम्।
स च मां शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर मैंने उनपर बाणोंकी भारी वर्षा की और उन्होंने भी बाणोंकी वर्षा करनेवाले मुझ भीष्मपर बहुत-से बाण बरसाये ॥ ६ ॥

संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव सुतेजितान्।
सम्प्रैषीन्मे शरान् घोरान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् जमदग्निकुमारने पुनः अत्यन्त कुपित होकर मुझपर प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके सदृश तेज किये हुए भयानक बाण चलाये ॥ ७ ॥

तानहं निशितैर्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः।
अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥ ८ ॥

राजन्! तब मैंने सहसा तीखे भल्ल नामक बाणोंद्वारा आकाशमें ही उन बाणोंके सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर दिये। यह क्रिया मैंने बार-बार की ॥ ८ ॥

ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान्।
मयि प्रचोदयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ॥ ९ ॥
अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम्।

इसके पश्चात् प्रतापी परशुरामजीने मुझपर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग आरम्भ किया; परंतु महाबाहो! मैंने उनसे भी अधिक पराक्रम प्रकट करनेकी इच्छा रखकर उन सब अस्त्रोंका दिव्यास्त्रोंद्वारा ही निवारण कर दिया ॥ ९ ॥

ततो दिवि महान्नादः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥ १० ॥
ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान्।
प्रत्याजघ्ने च तद् रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११ ॥

उस समय आकाशमें सब ओर महान् कोलाहल होने लगा। फिर मैंने जमदग्निकुमार परशुरामपर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। भारत! परशुरामजीने गुह्यकास्त्रद्वारा उस अस्त्रको काट दिया ॥ १०-११ ॥

ततोऽस्त्रमहमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान्।
वारुणेनैव तद् रामो वारयामास मे विभुः ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् मैंने मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, किंतु भगवान् परशुरामने वारुणास्त्रद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ १२ ॥

एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्याहमवारयम्।
रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिंदमः ॥ १३ ॥

इस प्रकार मैं परशुरामजीके दिव्यास्त्रोंका निवारण करता और शत्रुओंका दमन करनेवाले दिव्यास्त्रवेत्ता तेजस्वी परशुराम भी मेरे अस्त्रोंका निवारण कर देते थे ॥ १३ ॥

ततो मां सव्यतो राजन् रामः कुर्वन् द्विजोत्तमः।
उरस्यविध्यत् संक्रुद्धो जामदग्न्यो महाबलः ॥ १४ ॥

राजन्! तदनन्तर महाबली द्विजश्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुरामने कुपित हो मुझे दाहिने करके मेरी छातीमें बाण मारा ॥ १४ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ संन्यषीदं रथोत्तमे।
ततो मां कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमपावहत् ॥ १५ ॥

भरतश्रेष्ठ! इससे मैं उस श्रेष्ठ रथपर बैठ गया। उस समय मुझे मूर्च्छित अवस्थामें देखकर सारथि शीघ्र ही अन्यत्र हटा ले गया ॥ १५ ॥

अपयान्तं तथाविद्धं रामबाणप्रपीडितम्।
ततो मामपयान्तं वै भृशं विद्धमचेतसम् ॥ १६ ॥
रामस्यानुचरा हृष्टाः सर्वे दृष्ट्वा विचुक्रुशुः।
अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥ १७ ॥

भारत! परशुरामजीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण मुझे बड़ी व्यथा हुई थी। मैं अचेत और अत्यन्त घायल होकर युद्धभूमिसे दूर हट गया था। इस अवस्थामें मुझे देख परशुरामजीके अकृतव्रण आदि सेवक तथा काशिराजकी कन्या अम्बा बड़े हर्षके साथ कोलाहल करने लगे ॥ १६-१७ ॥

ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाब्रुवम्।
याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् होशमें आनेपर मैंने सारथिसे कहा—सूत! जहाँ परशुरामजी हैं, वहीं चलो। मेरी पीड़ा दूर हो गयी है और मैं युद्धके लिये तैयार हूँ ॥ १८ ॥

ततो मामवहत् सूतो हयैः परमशोभितैः।
नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ ॥ १९ ॥

कुरुनन्दन! तब मेरा सारथि अत्यन्त शोभायमान तथा वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा, जो नाचते हुए-से चल रहे थे, मुझे युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ १९ ॥

ततोऽहं राममासाद्य बाणजालेन कौरव।
अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धं विजिगीषया ॥ २० ॥

कौरव! तदनन्तर मैंने परशुरामजीके पास पहुँचकर अत्यन्त कुपित हो विजयकी इच्छासे उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २० ॥

तानापतत एवासौ रामो बाणानजिह्मगान्।
बाणैरेवाच्छिनत्तूर्णमेकैकं त्रिभिराहवे ॥ २१ ॥

विंशु रामजी तस्याश्च बाणेनाहं शर्वो इत्वा ततो राम शीतारावम महाहवे
आये एक तीन तीन बाणोंसे दुरन्त दिया भवाविकल्पयो विद्या बाणैस्तैर्विचचारिणि
तस्कारे हि सर्वे मम बाणा सुसंशीता चिर पराक्रमसे इससमाने सोम छोडे
मयार्पितैर्भिया क्रिया शतलोऽगृह्य साहसम् अरथ करो
प्रकार तलवारों हुए मेढ और हमारे पार्श्व सर्वे करने
तीखे रणसुरामकी नासक मनि शिव सब तरकार
अथा मह ही उत्तर। शिव
हार अभिमतम् मातलय कहा
मतुत्र महल्लपाय रामबाणादि विनासाथा बाणो आन् प्रसादहे
शुशासकी उन्हें
नेमी इत्य करते मतवाले आहा
मतवाला
तेन त्वभिहतो गाढ धनुर्वेगाय गत हम मृग बाणा शरजालसमाकुल
मुझे मेरे रामो सूर्मी मरता नहीं नतस्तस्मिन् महाद् हयामम
गाढी नरके समय ज्ञानक
भरी और तीपर सूर्ये नहीं तथा प्रभा कुण्ठित
तत रहा सर्वं तत्समाहिते ततो बाणो मया चैव गतकिर्ती
अनन्त तेन वसिष्ठ कोसलने भवेद् ओं शतप्रभा एक बाय
मुहासके भाव युक्त नामक मृत्यो सिरसोसे
हनतार भयसी रहसाकार रामका रहते
करके पकर
तत हिरन्ना आभिद्रुद्रुत वाला प्रबोधाविकभाकुला
तपोधनानले सह कापना कुरुनन्दन महा तत्र समभूता प्रवेदिरे
तत मत परिश्चाय तर्णं आसनस्य त्योंसे नाम पुर
विभिन्नतेत्र प्रयाशीर्विष रथ मिले
कालिदासकी उहा मसा हि धुतामघुहानि
उति बाला पास अर्जुन गत सब हि दोनि दीपख
और इसे दीनक तारुण्य सकुचो मां सूर्यो स्यात मह
इसपर दिव आशीर्वाद हुए अनलना कौरक सभी भवनन्त हुआ
मधुर
देवे
तत हि बाक राम वाय बाणवान् और
विद्ध भीष्म हतो मां बाण सप बालमुद्दे तम रत्नो हारे प्रीतिमेषसी
तदनन्तर होनेसर सगुरामकी सर्वं मौ नुपन ताम बालि
मधुर बाजल विहार सर्वे विरथ नाम
मथक इसोकी भाति पूजित
रहा निपात
मुण्डो मनाह सम्ये पार्थं महावह पद इयन्तु तद् नाम
देना शम्भुहि पूर्णि इव तमस्याकाल कीतौ स्वयाचामार सुपर
राम् हुदने मनुज मूर एक नाम भारतशुद्ध पृथ्वल सम्राठ
बानी पकडी किसके अलमात उद्दिष्ट
मुखकी भाति भया कीनने लेन्

श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे ज्ञातितमोऽध्यायः

श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें रामभीष्मयुद्धविषयक अध्याय पूरा हुआ

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

भीष्म और परशुरामका युद्ध

भीष्म उवाच

आत्मनस्तु ततः सूत हत्वा ... ...
रथयुद्धे तुमुल युद्ध ... ... रतरात

भीष्मजी कहते हैं ... ... दूसरे दिन परशुरामजी
साथ मेरा घोर युद्ध आरम्भ हुआ ... ...

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः
अयोजयत स धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः

फिर तो धर्मात्मा शक्तिशाली परशुरामजी प्रतिदिन अनेक प्रकारके अलौकिक अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे।

तान्यहं तत्प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत
व्यधमं तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान्

भारत ... ...
दुस्त्यज प्राणोंका मोह छोड़कर ... ...

अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा ... ... हतेषु ...
... महातेजा ... समाजे ... ...

... ... उस युद्धमें ... ...

... ... दायोधनोऽरुद्धः
... ...
... ...
... ...

... ... उनका
... ...
... ...
छोड़े हुए थे।

ततोऽहं ... ... भार्गवेण
समापात्य ... ...
... ... भूमौ

ततो वायुः ... पवनः पुण्यगन्धिः

तब मैंने ... ... सूर्यकी भाँति प्रज्वलित होनेवाली देदीप्यमान शक्ति ... ... देखा ... ... उसे भूमिपर गिरा दिया ... ...

... ...
... ...
... ...
... ...

उस दिन ... ...

ततो रथोत्तमं विप्रः ... ...
दिव्यास्त्र ... ...
नानारूपस्तोत्रासन्नैस्तैः ... ...
... ...

... ...

... ...
... ...
... ...
... ...

... ...

... ...
... ...
... ...
... ...

... ... परशुरामने ... ...

... ...
... ...
... ...
... ...

... ... बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी।

... ...
... ...
... ... दिव्यास्त्र ... ...
... ...

... ...

उन गुरुवरपर विविध प्रकारके अस्त्रोंकी झड़ी लगा दी तब राजन्! उस युद्धमें मैंने महात्मा परशुरामजीको कुपित होकर पुनः अनेक अस्त्रोंका प्रहार किया ॥ १२ ॥

तत्र क्षेप्यं ह्यस्त्रजालविमोक्षात्
तीव्रास्तेषु विशिखास्ता प्रदीप्ताः।
सहाविलोकयन्ति मया शरौघैः
हयान् सूतं [illegible] च मम ॥ १३ ॥

[illegible] उन गुरुदेवके [illegible] एवं अत्यन्त [illegible] इस प्रकार उन्होंने [illegible] और घोड़ोंको [illegible] आच्छादित कर दिया ॥ १३ ॥

यथा प्राविश विशिखः सर्वतोऽभूत्
तथा [illegible] ॥
गुरुः [illegible] तथैव नाभे
[illegible] ॥ १४ ॥

तब [illegible] मेरे बाणोंसे [illegible] हो गया [illegible] युद्ध ॥ १४ ॥

तथा वैसे रथको भी उन्होंने उसी प्रकार बाणोंसे भर दिया था और उनके मुखसे [illegible] हो गया था।

[illegible] ॥
शरीरेभ्य प्रवराणां गुरु तथा ।
स [illegible] ॥
[illegible] मुमुचे भूरि रक्तम् ॥ १५ ॥

जब उनकी [illegible] तब मैंने भी गुरुदेवपर बाणसमूहोंकी बौछार आरम्भ कर दी। वे महात्मा मेरे बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अपने शरीरसे अधिकाधिक रक्तकी धारा बहाने लगे।

यथा रामो [illegible] ॥
[illegible] सुसुवा गात्रविघ्नः।
तथा गुरुः [illegible] ॥
[illegible] प्रति यातो महीयान् ॥ १६ ॥

जिस प्रकार परशुरामजी मेरे बाणसमूहोंसे [illegible] थे, उसी प्रकार मैं भी उनके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो रहा था। तदनन्तर सायंकालमें जब सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये, हम दोनोंका युद्ध बंद हो गया ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयुद्धे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

[illegible] श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम और भीष्मका युद्धविषयक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८१ ॥

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्म और परशुरामका युद्ध

भीष्म उवाच

ततः प्रभाते राजेन्द्र सूर्ये विमलतां गते।
भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर प्रातःकाल जब सूर्यदेव उदित होकर प्रकाशमें आ गये, उस समय मेरे साथ परशुरामजीका युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥

ततो भ्रान्ते रथे तिष्ठन् रामः प्रहरतां वरः।
ववर्ष शरजालानि मयि मेघ इवाचले ॥ २ ॥

तत्पश्चात् योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुरामजी स्थिर रथपर खड़े हो गये और पर्वतपर बादलकी भाँति [illegible] उसी प्रकार मेरे ऊपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तेन सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण ताडितः।
अपयातो रथोपस्थान्मनो मम विषादयन् ॥ ३ ॥

उस समय मेरा प्रिय सुहृद् सारथि उन बाणवर्षाओंसे पीड़ित हो मेरे मनको विषादमें डालता हुआ रथकी बैठकसे नीचे गिर गया ॥ ३ ॥

ततः सूतः स मेऽत्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत्।
पृथिव्यां च शराघातान्निपपात मुमोह च ॥ ४ ॥

मेरे सारथिको अत्यन्त मोह छा गया था। वह बाणोंके आघातसे पृथ्वीपर गिरा और अचेत हो गया ॥ ४ ॥

ततः सूतोऽजहात् प्राणान् रामबाणप्रपीडितः।
मुहूर्तादिव राजेन्द्र मां च भीरविशत् तदा ॥ ५ ॥

राजन्! परशुरामजीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण थोड़ी ही देरमें उसने प्राण त्याग दिये। उस समय मेरे मनमें बड़ा भय समा गया ॥ ५ ॥

ततः सूते हते राजन् क्षिपतस्तस्य मे शरान्।
प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसम्मितम् ॥ ६ ॥

उस सारथिके मारे जानेपर मैं असावधान मनसे परशुरामजीके बाणोंको काट [illegible] रहा था, इतनेहीमें परशुरामजीने मुझपर मृत्युके समान भयंकर बाण छोड़ा ॥ ६ ॥

ततः सूतव्यसनिनं विप्लुतं मां स भार्गवः।
शरेणाभ्यहनद् गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ७ ॥

उस समय मैं सारथिकी मृत्युके कारण व्याकुल था। परशुरामजीने अपने सुदृढ़ धनुषको जोर-जोरसे खींचकर मुझपर सामने गहरा आघात किया ॥ ७ ॥

स मे भुजान्तरे राजन् निपत्य रुधिराशनः।
मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥ ८ ॥

राजेन्द्र! वह एक रक्त पीनेवाला बाण मेरी दोनों भुजाओंके बीच (छाती) में घुसकर मुझे साथ लिये-दिये पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ८ ॥

मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ।
मेघवद् व्यनदच्चोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय मुझे मारा गया जानकर परशुराम

रामजी मेघके समान गर्जने लगे। उनके शरीरसे रक्त बह रहा था और वे खिले हुए अशोक वृक्षके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९ ॥

तथा तु पतिते राजन् मयि रामो मुदा युतः।
ननाद सुमहानादं जलदो निनदन्निव ॥ १० ॥

राजन्! इस प्रकार मेरे धराशायी हो जानेपर परशुरामजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मेघकी भाँति गम्भीर स्वरमें महान् कोलाहल मचाया ॥ १० ॥

मम तथाभिवदन् ये तु कुरवः पाण्डवस्त्रियः।
आगता अपि युद्धं तत् द्रष्टुकामा दिदृक्षवः ॥
आर्ति परमिकां जग्मुस्ते तदा पतिते मयि ॥ ११ ॥

वहाँ मेरे पास आये हुए कुरुवंशी लोग उस युद्धको देखनेके इच्छुक थे, उन सबको मेरे गिर जानेपर बड़ा दुःख हुआ ॥ ११ ॥

ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह
द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान्।
ते मां समन्तात् परिवार्य तस्थु-
स्त्वबाहुभिः परिपाल्याजिमध्ये ॥ १२ ॥

राजसिंह! वहाँ गिरनेपर मैंने सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी आठ ब्राह्मणोंको देखा, जो युद्धभूमिमें मुझे सब ओरसे घेरकर अपनी भुजाओंपर ही मेरे शरीरको धारण करके खड़े हो गये ॥ १२ ॥

रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्न भूमिमुपास्पृशम्।
अन्तरिक्षे स्थितो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ॥ १३ ॥

उन ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होनेके कारण मुझे धरतीका स्पर्श नहीं करना पड़ा। मेरे सगे भाई-बन्धुओंकी भाँति उन ब्राह्मणोंने मुझे आकाशमें ही रोक लिया था ॥ १३ ॥

स्वपन्निवान्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः।
ततस्ते ब्राह्मणा राजन्नब्रुवन् परिगृह्य माम् ॥ १४ ॥

राजन्! आकाशमें मैं सोता-सा ठहरा रहा था। उस समय ब्राह्मणोंने मुझपर जलकी बूँदें छिड़की और फिर वे मुझे पकड़कर बोले— ॥ १४ ॥

मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चासकृत्।
ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहसोत्थितः।
मातरं सरितां श्रेष्ठामपश्यं रथमास्थिताम् ॥ १५ ॥

'तुम डरो मत'। सबने एक साथ ही बार-बार कहा, 'तुम्हारा कल्याण हो।' तुम भयभीत न हो। उनके वचनामृतसे तृप्त होकर मैं सहसा उठकर खड़ा हो गया और देखा, मेरे रथपर सरिताओंमें श्रेष्ठ माता गङ्गा बैठी हुई हैं ॥ १५ ॥

हयाश्च मे संगृहीतास्तयाऽऽसन्
महानद्या संयति कौरवेन्द्र।
पादौ जनन्याः प्रतिपूज्य चाहं
तथा पितॄंश्च रथमभ्यरोहम् ॥ १६ ॥

कौरवराज! उस युद्धमें महानदी माता गङ्गाने मेरे घोड़ोंकी बागडोर पकड़ रखी थी। तब मैं माताके चरणोंका तथा पितरोंका पूजन करके रथपर जा बैठा ॥ १६ ॥

ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्करणि च।
तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥ १७ ॥

माताने मेरे रथ, घोड़े तथा अन्य सामग्रियोंकी रक्षा की। तब मैंने हाथ जोड़कर पुनः माताको विदा कर दिया ॥ १७ ॥

ततोऽहं रथमुखम्य हयांस्तान् वातरंहसः।
अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥ १८ ॥

भारत! तदनन्तर मैं उन वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको काबूमें करके जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ युद्ध करने लगा। उस समय दिन प्रायः समाप्त हो चला था ॥ १८ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम्।
अमुञ्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समरभूमिमें मैंने परशुरामजीकी ओर एक प्रबल और वेगवान् बाण चलाया, जो हृदयको विदीर्ण कर देनेवाला था ॥ १९ ॥

ततो जगाम वसुधां मम बाणप्रपीडितः।
जानुभ्यां धनुरुत्सृज्य रामो मोहवशं गतः ॥ २० ॥

मेरे उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित हो परशुरामजी मूर्च्छाके वशीभूत होकर धनुष छोड़ धरतीपर घुटने टेक दिये ॥ २० ॥

ततस्तस्मिन् निपतिते रामे भूरिसहस्रदे।
आवव्रुर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥ २१ ॥

अनेक सहस्र ब्राह्मणोंको बहुत दान करनेवाले परशुरामजीके धरतीपर गिर जानेपर मेघोंने आकाशको ढक लिया ॥ २१ ॥

उल्काश्च शतशः पेतुः सनिर्घाताः सकम्पनाः।
अर्कं च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभिसंवृणोत् ॥ २२ ॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सैकड़ों उल्काएँ होने लगीं, भूकम्प आ गया और सहसा प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवको राहुने आकर ग्रस लिया ॥ २२ ॥

ववुश्च वाताः परुषाश्चलिता च वसुन्धरा।
गृध्रा बलाश्च कङ्काश्च निपेतुर्मुदिता भृशम् ॥ २३ ॥

रूखी हवा चलने लगी, धरती डोलने लगी। गीध, कौए और कङ्क प्रसन्नतापूर्वक टूट पड़े ॥ २३ ॥

दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत्।
अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशनिःस्वनाः ॥ २४ ॥

दिशाओंमें दाह होने लगा, सियार बार-बार भयंकर बोली बोलने लगे, दुन्दुभियाँ बिना बजाये ही जोर-जोरसे बजने लगीं ॥ २४ ॥

उत्पातिकमेतत् सर्वं घोरमासीत् सुदारुणम्।
विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि ॥ २५ ॥

इस प्रकार महात्मा परशुरामजीके मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरते ही ये समस्त उत्पातसूचक अत्यन्त भयंकर अपशकुन होने लगे ॥ २५ ॥

ततो वै सहसोत्थाय रामो मामभ्यवर्तत।
पुनर्युद्धाय कौरव्य विह्वलः क्रोधमूर्च्छितः॥२६॥

कुरुनन्दन! इसी समय परशुरामजी सहसा उठकर क्रोधसे मूर्च्छित एवं विह्वल हो पुनः युद्धके लिये मेरे समीप आ गये।

आददानो महाबाहुः कार्मुकं तालसंनिभम्।
ततो मय्याददत् स रामबाणं प्रवाहयन्॥२७॥
महर्षयः कृपायुक्ताः क्रोधाविष्टोऽथ भार्गवः।
स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम्॥२८॥

परशुराम ताड़के समान विशाल धनुष लिये हुए थे। उन्होंने मेरे लिये बाण हाथमें लिया। तब दयालु महर्षियोंने उन्हें रोक दिया। वह बाण कालाग्निके समान भयंकर था। अमेयस्वरूप भार्गवने कुपित होकर भी मुनियोंके कहनेसे उस बाणका उपसंहार कर लिया॥२७-२८॥

ततो रविर्मन्दमरीचिमण्डलो
जगामास्तं पांसुपुञ्जावगूढः।
निशा व्यगाहत् सुखशीतमारुता
ततो युद्धं पर्यवहारयाव॥२९॥

तदनन्तर धूलके पुञ्जसे आच्छादित हो मन्द किरणोंवाले सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये। रात्रि आ गयी और सुखद शीतल वायु चलने लगी। उस समय हम दोनोंने युद्ध समाप्त कर दिया॥२९॥

एवं राजन्नवहारो बभूव
ततः पुनर्विमलेऽभूत् सुघोरम्।
काल्यं काल्यं विंशतिं वै दिनानि
तथैव चान्यानि दिनानि त्रीणि॥३०॥

राजन्! इस प्रकार प्रतिदिन सन्ध्याके समय युद्ध बंद हो जाता और प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर पुनः अत्यन्त भयंकर संग्राम छिड़ जाता था। इस प्रकार हम दोनोंके युद्ध करते-करते तेईस दिन बीत गये॥३०॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम-भीष्मयुद्धविषयक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१८२॥

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मको अष्टवसुओंसे प्रस्वापनास्त्रकी प्राप्ति

भीष्म उवाच

ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रणम्य शिरसा तदा।
ब्राह्मणानां पितॄणां च देवतानां च सर्वशः॥१॥
नक्तंचराणां भूतानां राजन्यानां विशाम्पते।
शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम्॥२॥

भीष्मजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर मैं रातके समय एकान्तमें शय्यापर जाकर ब्राह्मणों, पितरों, देवताओं, निशाचरों, भूतों तथा राजर्षियोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगा॥१-२॥

जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम्।
अहानि सुबहून्यद्य वर्तते सुमहात्ययम्॥३॥

आज बहुत दिन हो गये, जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ यह मेरा भयंकर और महान् अनिष्टकारक युद्ध चल रहा है॥३॥

न च रामं महावीर्यं शक्नोमि रणमूर्धनि।
विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम्॥४॥

परंतु मैं महाबली महापराक्रमी विप्रवर परशुरामजीको समराङ्गणमें युद्धके मुहानेपर किसी तरह जीत नहीं सकता॥४॥

यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान्।
दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम॥५॥

यदि प्रतापी जमदग्निकुमारको जीतना मेरे लिये सम्भव हो तो प्रसन्न हुए देवगण रात्रिमें मुझे दर्शन दें॥५॥

ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रसुप्तः शरविक्षतः।
दक्षिणेनैव पार्श्वेन प्रभातसमये तदा॥६॥
ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात्।
उत्थापितो धृतश्चैव मा भैरिति च सान्त्वितः॥७॥
त एव मां महाराज स्वप्ने दर्शनमेत्य वै।
परिवार्याब्रुवन् वाक्यं तन्निबोध कुरूद्वह॥८॥

राजेन्द्र! ऐसी प्रार्थना करके बाणोंसे क्षत-विक्षत हुआ मैं रात्रिके अन्तमें प्रभातके समय दाहिनी करवटसे सो गया। महाराज! कुरुश्रेष्ठ! तत्पश्चात् जिन ब्राह्मणशिरोमणियोंने रथसे गिरनेपर मुझे थाम लिया और उठाया था तथा 'डरो मत' ऐसा कहकर सान्त्वना दी थी, उन्हीं लोगोंने मुझे सपनेमें दर्शन दे मेरे चारों ओर खड़े होकर जो बात कही थी, उसे बताता हूँ, सुनो॥६-८॥

उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय भयं तेऽस्ति न किंचन।
रक्षामहे त्वां कौरव्य स्वशरीरं हि नो भवान्॥९॥

गङ्गानन्दन! उठो। भयभीत न होओ। तुम्हें कोई भय नहीं है। कुरुनन्दन! हम तुम्हारी रक्षा करते हैं; क्योंकि तुम हमारे ही शरीर हो॥९॥

न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथंचन।
त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ॥१०॥

जमदग्निकुमार परशुराम तुम्हें किसी प्रकार युद्धमें जीत नहीं सकेंगे। भरतश्रेष्ठ! तुम्हीं समराङ्गणमें परशुरामपर विजय पाओगे॥१०॥

इदमस्त्रं सुदयितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान्।
विदितं हि तवाप्येतत् पूर्वस्मिन् देहधारणे॥११॥
प्राजापत्यं विश्वकृतं प्रस्वापं नाम भारत।

न ह्येतद् वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान् क्वचित् ॥ १२ ॥

भारत! यह प्रस्वाप नामक अस्त्र है, जिसके देवता प्रजापति हैं। विश्वकर्माने इसका आविष्कार किया है। यह तुम्हें भी याद है। इसकी प्रयोगविधि तुम्हें ज्ञात है। जमदग्निनन्दन परशुरामजी भी इस अस्त्रको नहीं जानते हैं। इस भूमण्डलपर कहीं किसी भी पुरुषको इसका ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥

तद् [illegible] महाबाहो क्षिप्रं संयोजयस्व ह।
[illegible] राजेन्द्र स्वप्स्यते तेन भार्गवः ॥ १३ ॥

महाबाहो! इस अस्त्रका स्मरण करो और विशेषरूपसे इसीका प्रयोग करो। [illegible] परशुराम सो जायँगे ॥ १३ ॥

तेन सर्वान् महावीर्यान् प्रस्वापयसि कौरव।
[illegible] ॥ १४ ॥

कुरुनन्दन! उसके प्रभावसे तुम परशुराम आदि सब महावीरोंको [illegible] नहीं होगा ॥ १४ ॥

एवमेतत् [illegible] सत्येन [illegible]
सम्प्रबोधितः [illegible] ॥ १५ ॥

इसलिये मानद! तुम्हें कभी इसका [illegible] करना चाहिये ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मपरशुरामयुद्धे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें भीष्म-परशुराम-युद्धविषयक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८३ ॥

नहीं होगा। तुम्हारे अस्त्रके प्रभावसे पीड़ित होकर जमदग्निकुमार परशुराम युद्धस्थलमें सो जायँगे ॥

[illegible] जित्वा [illegible] पुनरुत्थापयिष्यसि।
[illegible] भीष्म [illegible] ॥ १६ ॥

भीष्म! तदनन्तर अपने उस प्रिय अस्त्रके द्वारा युद्धमें विजयी होकर तुम [illegible] उठा सकोगे ॥

एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते [illegible]
प्रसुप्तं वा मृतं वापि तुल्यं मन्यामहे वयम् ॥ १७ ॥

कुरुनन्दन! प्रातःकाल [illegible] क्योंकि हमलोग सोये अथवा मरे हुएको समान ही समझते हैं ॥ १७ ॥

न च रामस्त्वया [illegible] कदाचिदपि पार्थिव।
[illegible] ॥ १८ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ १९ ॥

[illegible] आरम्भ हो गये। आठ [illegible] मेरे स्वप्नमें [illegible] होते थे ॥

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्याय

भीष्म तथा परशुरामजीका एक दूसरेपर शक्ति और ब्रह्मास्त्रका प्रयोग

भीष्म उवाच

ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत।
तं च संचिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—भारत! तदनन्तर जब रात बीतने पर मेरी नींद खुली, तब [illegible] मुझे बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १ ॥

ततः समभवद् युद्धं मम तस्य च भारत।
तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥ २ ॥

भारत! तदनन्तर मेरा और परशुरामजीका भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो समस्त प्राणियोंके [illegible] रोंगटे खड़े कर देनेवाला और अद्भुत था ॥ २ ॥

ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः।
न्यवारयमहं तच्च शरजालेन भारत ॥ ३ ॥

उस समय भृगुनन्दन परशुरामजीने मुझपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। भारत! तब मैंने अपने बाणसमूहोंसे उस बाणवर्षाको रोक दिया ॥ ३ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पुनरेव महातपाः।
ह्यस्तनेनैव कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि ॥ ४ ॥

तब महातपस्वी परशुराम पुनः [illegible] पहले दिनके क्रोधसे ही कुपित होकर उन्होंने मुझपर शक्ति चलायी ॥ ४ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शां यमदण्डसमप्रभाम्।
ज्वलन्तीमग्निवत् संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥ ५ ॥

उसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान भयंकर था। उसकी प्रभा यमदण्डके समान थी और युद्धस्थलमें अग्निके समान प्रज्वलित हुई वह शक्ति [illegible] चाट रही थी ॥ ५ ॥

ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशगं यथा।
स मामभ्यहनत् तूर्णं जत्रुदेशे कुरूद्वह ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ कुरुकुलरत्न! फिर आकाशवर्ती नक्षत्रके समान उस दिव्य शक्तिने तुरंत आकर मेरे गलेकी हँसलीपर आघात किया ॥ ६ ॥

अथासृगरुणं घोरं गिरेर्गैरिकधातुवत्।
रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजोक्षितम् ॥ ७ ॥

तात! गेरूकी धातु [illegible] परशुरामजीके द्वारा किये हुए उस गहरे आघातसे भयंकर रक्तकी धारा बह चली मानो [illegible] झरना झर रहा हो ॥ ७ ॥

ततोऽहं [illegible] भृगुं क्रोधसमन्वितः
विसृजे मृत्युसंकाशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥ ८ ॥

तब मैंने भी अत्यन्त कुपित हो सर्पविषके समान भयंकर मृत्युतुल्य बाण लेकर परशुरामजीके ऊपर चलाया ॥ ८ ॥

स तेनाभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः
अशोभत महाराज सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ९ ॥

उस बाणसे विप्रवर श्रीपरशुरामजीके ललाटमें चोट पहुँची। महाराज! उस बाणसे वे शिखरयुक्त पर्वतके समान शोभा पाने लगे ॥ ९ ॥

स समावृत्य रामस्तु बाणं कालान्तकोपमम्
संदधे बलवत् कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ १० ॥

तब उन्होंने भी पलटकर काल और यमके समान शत्रुनाशक भयंकर बाण हाथमें लिया और उसे बलपूर्वक खींचकर धनुषपर रखा ॥ १० ॥

स वक्षसि पपाताथ शरो व्याल इव श्वसन्
महीं राजंस्ततश्चाहमगच्छं रुधिराविलः ॥ ११ ॥

राजन्! उनका चलाया हुआ वह बाण फुफकारते हुए सर्पके समान मेरी छातीपर आ लगा और मैं लहूलुहान होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

अवाप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते
प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ १२ ॥

फिर होशमें आनेपर मैंने बुद्धिमान् परशुरामजीके ऊपर प्रज्वलित वज्रके समान एक उज्ज्वल शक्ति चलायी ॥ १२ ॥

सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे
विह्वलश्चाभवद् राजन् वेपथुश्चैनमाविशत् ॥ १३ ॥

वह शक्ति उन ब्राह्मणशिरोमणिकी दोनों भुजाओंके बीचमें जाकर लगी। राजन्! इससे वे विह्वल हो गये और उनके शरीरमें कँपकँपी आ गयी ॥ १३ ॥

तत एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः
अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥ १४ ॥

तब उनके महातपस्वी मित्र अकृतव्रणने उन्हें हृदयसे लगाकर शुभ वचनोंद्वारा अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया ॥ १४ ॥

समाश्वस्तस्तदा रामः क्रोधामर्षसमन्वितः
प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥ १५ ॥

तब महान् व्रतधारी परशुरामजी धैर्ययुक्त हो गये और क्रोधमें भर गये और उन्होंने परम उत्तम ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥ १५ ॥

ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवाहमुत्तमम्
मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥ १६ ॥

तब उस अस्त्रका निवारण करनेके लिये मैंने भी उत्तम ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। मेरा वह अस्त्र प्रलयकालका-सा दृश्य उपस्थित करता हुआ प्रज्वलित हो उठा ॥ १६ ॥

तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः
असम्प्राप्यैव रामं च मां च भारत सत्तम ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ! वे दोनों ब्रह्मास्त्र परशुरामजीतक और मुझतक न पहुँचकर बीचमें ही एक-दूसरेसे भिड़ गये ॥ १७ ॥

ततो व्योम्नि प्रादुरभूत् तेज एव हि केवलम्
भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्तिं विशाम्पते ॥ १८ ॥

प्रजानाथ! फिर तो आकाशमें केवल आग ही आग प्रकट होने लगी। इससे समस्त प्राणियोंको बड़ी पीड़ा हुई ॥ १८ ॥

ऋषयश्च सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत
संतापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोभिपीडिताः ॥ १९ ॥

भारत! उस अस्त्रके तेजसे पीड़ित होकर ऋषि, गन्धर्व तथा देवता भी अत्यन्त संतप्त हो उठे ॥ १९ ॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा
संतप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥ २० ॥

फिर तो पर्वत, वन और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी डोलने लगी। भूतलके समस्त प्राणी संतप्त हो अत्यन्त विषादमें डूब गये ॥ २० ॥

प्रजज्वाल नभो राजन् धूमायन्ते दिशो दश
न स्थातुमन्तरिक्षे च शेकुराकाशगास्तदा ॥ २१ ॥

राजन्! उस समय आकाश जल रहा था। सम्पूर्ण दिशाओंमें धूम व्याप्त हो रहा था। आकाशचारी प्राणी भी आकाशमें ठहर न सके ॥ २१ ॥

ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे
इदमन्तरमित्येव मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥ २२ ॥
प्रस्वापमस्त्रं त्वरितो वचनाद् ब्रह्मवादिनाम्
विचित्रं च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात् तदा ॥ २३ ॥

तदनन्तर देवता, असुर तथा राक्षसोंसहित सम्पूर्ण जगत्‌में हाहाकार मच गया। भारत! यही उपयुक्त अवसर है, ऐसा मानकर मैंने तुरंत ही ब्रह्मवादियोंके कथनानुसार प्रस्वापनास्त्र चलानेका विचार किया। फिर तो उस विचित्र अस्त्रका मेरे मनमें स्मरण हो आया ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि परशुरामभीष्मयुद्धे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें परशुराम और भीष्मका युद्धविषयक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८४ ॥

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवताओंके मना करनेसे भीष्मका प्रस्वापनास्त्रको प्रयोगमें न लाना तथा पितर, देवता और गङ्गाके आग्रहसे भीष्म और परशुरामके युद्धकी समाप्ति

भीष्म उवाच

ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन् महानभूत्
प्रस्वापं भीष्म मा स्राक्षीरिति कौरवनन्दन ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! कौरवनन्दन! तदनन्तर

गई प्रसन्नताका प्रयोग करो प्रकार आश्चर्य और उस समय उन्हें वेदना देने बोले
महान् कौतूहल गया परंतु उन्
अनुशाल्वेव ववता तदस्य प्रभु जाने समीप स्तवस्य नाल एक कार्य वचन
प्रयुञ्जान रयो बाणमसमनी श्री प्रभु हर्ष विशेषतः
तथा मैं भृगुनन्दन परशुराम करके दिलाएँ कह वर्ष किसी प्रकार
अवश्य लिया अपना स्वका प्रयोग साह
करते देख लिये नहीं
विभूति श्री विधि वैभवम् मिथ क्षत्रियस्य मैं बद् युद्ध भृगु
यत मि अवसः प्रयोजन स्क रयो वनस्पर्शीय आज्ञात
सुधी स्वर्ग सद
द्वये नाहम लिये दौड़ मोह
प्रजापनाशक
बालमक ब्रह्माण्ड्या ब्रह्म गुरुवर्य विजिगे बिदुरकानि गुणाहृत
बलवायमान पौरुष्य वह सप बृहस्पतल नाम तथा स्वय
मयी दया कुमये
और माम
उनका अस्मान लिया
तो वहम विधिहान् मानही आमकादि पर्याप्तमेतावद् मह
अयमको राजो बाप दिव बन्द् हिमवन्त महत्वान पर्याप्ति
वेष्ट्र आत् मैंने कायने महाबाहो
ब्रह्मचारी देखा तीव्रता बहता निश्चय वही
प्रकार
वयष्टाऽह अवनाप्त वृहत कुरु पर्याप्समत अद्य नव आरम्भ
प्रदादि क्वान नभ विसर्ज तद् बना
मलनावा स्वर्गी प्रो भीष्म नमो स्वर्ष्टि
कुर्यादिय प्रभु सर्गी दोष नियतस्थ दूषण रिपु
तस्मात प्रति कृत्य वृद्ध स्वाय रामेण श्रीगुरुने पुन
महात्मा पौरुषात्मकं स्वग पि यथाविधि हि
मैं भुवन लिया नाम कुरुणां हुए ब्राह्मण हैं
और युद्धमें भिदुर अव किया
नत रामो हरि सामी और उपदर दशमा
इन्द्र तत्पुरुष विनिर्मार्जित नरदम भीष्म दिया
विशेषदिव श्रीष्मेण युद्धमागधिप
रितयेष बाणम् स्मरस प्रभुक्त
प्रथा छाको लिए
इत्यादि प्राप्त हुए उनके परन्तु लिये
नदब दवो लिय अमाहुतर्मे
उपपद्वान् जामदग्न्य वायु
विपुलकादि बाय मान्यम् यत रवतु तस्मात् यह
तत्र यैव परिवार्य तवयु भीष्म सुतानस्यतमो विष्णु श्रीवर्ण युवक
तत्पुण्यानां सामवदुय ताहा मि नेता नहीं
इसके बाद जामदग्निकुमार परशुराम अपने पिता पितर लिये युद्धो
जामदग्निको उनके अकालित पित बीच मुनिको मेरे समाज आके
देखा अब पितर उन्हें चारों ओरसे रक्षा रहे उस युद्ध रहते अलक

गाङ्गेय शान्तनो पुत्रो वसुरेव महायशाः ॥ १८ ॥
कथं शक्यस्त्वया जेतुं निवर्तस्वेह भार्गव

भृगुनन्दन ! गङ्गा और शान्तनुके ये महायशस्वी पुत्र भीष्म साक्षात् वसु ही हैं। इन्हें तुम कैसे जीत सकते हो ? अतः अब युद्धसे निवृत्त हो जाओ ॥ १८ ॥

अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरंदरसुतो बली ॥ १९ ॥
नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः
सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान्
भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयम्भुवा ॥ २० ॥

पाण्डवश्रेष्ठ [illegible] इन्द्रकुमार महाबली अर्जुन [illegible] होंगे तथा पराक्रमी [illegible] तीनों लोकोंमें सव्यसाची नामसे विख्यात होंगे [illegible] भीष्मकी मृत्युमें कारण बतलाया है ॥ १९-२० ॥

भीष्म उवाच

एवमुक्तः स पितृभिः पितॄन् रामोऽब्रवीदिदम्
नाहं युधि निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ २१ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! पितरोंके ऐसा कहनेपर परशुरामजीने उनसे इस प्रकार कहा—'मैं युद्धमें पीठ नहीं दिखाऊँगा, यह मेरा चिरकालसे व्रत लिया हुआ है ॥ २१ ॥

न निवर्तितपूर्वश्च कदाचिद् रणमूर्धनि
निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात् पितामहाः ॥ २२ ॥
न त्वहं विनिवर्तिष्ये युद्धादस्मात् कथंचन

आजसे पहले भी मैं कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखा चुका हूँ। [illegible] आपलोग [illegible] पहले गङ्गानन्दन भीष्मको ही युद्धसे निवृत्त कीजिये। मैं किसी प्रकार इस युद्धसे पीछे नहीं हटूँगा' ॥ २२ ॥

ततस्ते मुनयो राजन्नृचीकप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥
नारदेन च सहिताः समागम्येदमब्रुवन्
निवर्तस्व रणात् तात मानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ २४ ॥

राजन् ! तब वे ऋचीक आदि मुनि नारदजीके साथ मेरे पास आकर बोले—'तात ! तुम्हीं युद्धसे निवृत्त हो जाओ और द्विजश्रेष्ठ परशुरामजीका मान रक्खो' ॥ २३-२४ ॥

इत्यवोचमहं तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया
मम व्रतमिदं लोके नाहं युद्धात् कथंचन ॥ २५ ॥
विमुखो विनिवर्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः
नाहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नार्थकारणात् ॥ २६ ॥
त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः

तब मैंने क्षत्रियधर्मका ख्याल करके उन महर्षियोंसे कहा—'संसारमें मेरा यह व्रत प्रसिद्ध है कि मैं पीठपर बाणोंकी चोट खाता हुआ कदापि युद्धसे निवृत्त नहीं हो सकता। मेरा यह निश्चित विचार है कि मैं लोभसे, कायरता या दीनतासे, भयसे अथवा किसी स्वार्थके कारण भी क्षत्रियों-के सनातन धर्मका त्याग नहीं कर सकता' ॥ २५-२६ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ॥ २७ ॥
भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे
तथैवात्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः ॥ २८ ॥
स्थिरोऽहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन्
समेत्य सहिता भूयः समरे भृगुनन्दनम् ॥ २९ ॥

राजन् ! ऐसा कहकर मैं पूर्ववत् धनुष-बाण लिये दृढ निश्चयके साथ युद्धमें डटा रहा। [illegible] नारद आदि सब मुनि और मेरी माता गङ्गा [illegible] संगठित होकर पुनः एक साथ मिलकर उस समराङ्गणमें भृगुनन्दन परशुरामजीके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे— ॥ २७-२९ ॥

नावनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ॥ ३० ॥
राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद् द्विजोत्तम
अवध्यो वै त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ॥ ३१ ॥

भृगुनन्दन ! ब्राह्मणोंका हृदय नवनीतके समान कोमल होता है, अतः शान्त हो जाओ। विप्रवर परशुराम ! इस युद्धसे निवृत्त हो जाओ। भार्गव ! तुम्हारे लिये भीष्म और भीष्मके लिये तुम अवध्य हो ॥ ३०-३१ ॥

एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे प्रतिरुध्य रणाजिरम्
न्यासयांचक्रिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार कहते हुए उन सब पितरोंने रणक्षेत्रको घेर लिया और पितरोंने भृगुनन्दन परशुरामसे अस्त्र-शस्त्र रखवा दिया ॥ ३२ ॥

ततोऽहं पुनरेवाथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः
अद्राक्षं दीप्यमानान् वै ग्रहानष्टाविवोदितान् ॥ ३३ ॥

इसी समय मैंने पुनः उन आठों ब्रह्मवादी वसुओंको आकाशमें उदित हुए आठ ग्रहोंकी भाँति प्रकाशित होते देखा ॥ ३३ ॥

ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन् समरे स्थितम्
प्रैहि रामं महाबाहो गुरुं लोकहितं कुरु ॥ ३४ ॥

उन्होंने समरभूमिमें डटे हुए मुझसे प्रेमपूर्वक कहा— 'महाबाहो ! तुम अपने गुरु परशुरामजीके पास जाओ और जगत्‌का कल्याण करो' ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै
लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥ ३५ ॥

अपने सुहृदोंके कहनेसे परशुरामजीको युद्धसे निवृत्त हुआ देख मैंने भी लोकके हितकी कामनासे उन महर्षियोंकी बात मान ली ॥ ३५ ॥

ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः
रामश्चाभ्युत्स्मयन् प्रेम्णा मामुवाच महातपाः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर मैंने परशुरामजीके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय मेरा शरीर बहुत घायल हो गया था। महातपस्वी परशुराम मुझे देखकर मुस्कराये और प्रेम-पूर्वक इस प्रकार बोले— ॥ ३६ ॥

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः

गच्छ भीष्म युद्धेऽस्मिन् तोषितोऽहं महाव्रत ॥२६॥

भीष्म! इस जगत्में भूतलपर विचरनेवाला कोई भी क्षत्रिय तुम्हारे समान नहीं है। जाओ, इस युद्धमें तुमने मुझे बहुत संतुष्ट किया है ॥ २६ ॥

मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः।
उक्तवान् दीनया वाचा मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥ २७ ॥

फिर मेरे सामने ही उन्होंने उस कन्याको बुलाकर उन सब महात्माओंके बीच दीनतापूर्ण वाणीमें उससे कहा ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि युद्धनिवृत्तौ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें युद्धनिवृत्तिविषयक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८५ ॥

षडशीत्यधिकशततमोऽध्याय

अम्बाकी कठोर तपस्या

राम उवाच

प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भामिनि।
यथा मया परं शक्त्या कृतं वै पौरुषं महत् ॥ १ ॥

परशुरामजी बोले—भामिनि! इन सब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है कि मैंने तेरे लिये पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया और महान् पुरुषार्थ दिखाया है ॥ १ ॥

न चैव युधि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्।
विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २ ॥

परंतु इस प्रकार उत्तम अस्त्रोंका प्रदर्शन करके भी मैं शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मसे अपनी अधिक विशिष्टता नहीं दिखा सका ॥ २ ॥

एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम्।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद् वा करोमि ते ॥ ३ ॥

मेरी जो कुछ भी शक्ति थी, वह सब मैंने लगा दी। यही मेरा परम बल है। भद्रे! अब तेरी जहाँ इच्छा हो, चली जा। अथवा बता, तेरा दूसरा कौन-सा कार्य करूँ? ॥ ३ ॥

भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः।
निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥ ४ ॥

अब तू भीष्मकी ही शरणमें जा। तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं है; क्योंकि महान् अस्त्रोंका प्रयोग करके भीष्मने मुझे जीत लिया है ॥ ४ ॥

एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः।
तूष्णीमासीत् तदा कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥ ५ ॥

ऐसा कहकर महामना परशुरामजी लंबी साँस खींचकर चुप हो गये। तब उस कन्याने उन भृगुनन्दनसे कहा ॥ ५ ॥

भगवन्नेवमेवैतद् यथाऽऽह भगवांस्तथा।
अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥ ६ ॥

भगवन्! आपका कहना ठीक है। परम बुद्धिमान् ये उदार भीष्म युद्धमें देवताओंके लिये भी अजेय हैं ॥ ६ ॥

यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्यं कृतं त्वया।
अनिवार्यं रणे वीर्यमस्त्राणि विविधानि च ॥ ७ ॥

आपने अपनी पूरी शक्ति लगाकर पूर्ण उत्साहके साथ मेरा कार्य किया है। युद्धमें ऐसा पराक्रम दिखाया है, जिसे भीष्मके सिवा दूसरा कोई रोक नहीं सकता था। इसी प्रकार आपने नाना प्रकारके दिव्यास्त्र भी प्रकट किये हैं ॥ ७ ॥

न चैष शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः।
न चाहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथंचन ॥ ८ ॥

परंतु अन्ततोगत्वा युद्धमें उनसे बढ़कर विशेषता न दिखा सके। तो भी अब किसी प्रकार पुनः भीष्मके पास नहीं जाऊँगी ॥ ८ ॥

गमिष्यामि तु तत्राहं यत्र भीष्मं तपोधन।
समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥ ९ ॥

भृगुश्रेष्ठ तपोधन! अब मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ रहकर स्वयं ही समरभूमिमें भीष्मको मार गिराऊँ ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना।
तापस्ये धृतसंकल्पा सा मे चिन्तयती वधम् ॥ १० ॥

ऐसा कहकर वह कन्या, जिसके नेत्र क्रोधसे व्याकुल हो रहे थे, मेरे वधका चिन्तन करती हुई तपस्याके लिये दृढ़ संकल्प लेकर वहाँसे चली गयी ॥ १० ॥

ततो महेन्द्रं सह तैर्मुनिभिर्भृगुसत्तमः।
यथाऽऽगतं तथा सोऽगान्मामुपामन्त्र्य भारत ॥ ११ ॥

भारत! तदनन्तर भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी उन महर्षियोंके साथ मुझसे विदा ले जैसे आये थे, वैसे ही महेन्द्र पर्वतपर चले गये ॥ ११ ॥

ततोऽहं रथमारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः।
प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ १२ ॥

यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत।
पुरुषांश्चादिशं प्राज्ञान् कन्यावृत्तान्तकर्मणि ॥ १३ ॥

महाराज! तब मैंने भी रथपर आरूढ़ हो ब्राह्मणोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए नगरमें प्रवेश किया और हस्तिनापुरमें आकर माता सत्यवतीसे सब समाचार यथार्थरूपसे निवेदन किया। माताने भी मेरा अभिनन्दन किया। इसके बाद मैंने कुछ बुद्धिमान् पुरुषोंको उस कन्याके वृत्तान्तका पता लगानेके कार्यमें नियुक्त कर दिया ॥ १२-१३ ॥

दिवसे दिवसे ह्यस्या गतिजल्पितचेष्टितम्।
प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते सदा ॥ १४ ॥

मेरे प्रिय एवं हितमें तत्पर रहनेवाले वे गुप्तचर सदा सावधान रहकर प्रतिदिन उस कन्याकी गतिविधि, बोलचाल और चेष्टाका समाचार मेरे पास पहुँचाया करते थे ॥ १४ ॥

यदैव हि वनं प्रायात् सा कन्या तपसे धृता।

तथैव व्यथितो भीष्मो गतस्नेह इव प्रभा ॥ १५ ॥

जिस दिन वह कन्या तपस्याका निश्चय करके वनमें गयी, उसी दिन मैं व्यथित, दीन और अचेत सा हो गया ॥ १५ ॥

न हि मां क्षत्रियः कश्चिद् वीर्येण व्यजयद् युधि ।
ऋते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥ १६ ॥

तात! जो तपस्याके द्वारा कठोर व्रतका पालन करनेवाले हैं, उन ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणको छोड़कर कोई भी क्षत्रिय मुझे युद्धमें पराक्रमसे नहीं जीत सका है ॥ १६ ॥

अपि चैतन्मया राजन् नारदेऽपि निवेदितम् ।
व्यासे चैव तथा कार्यं तौ चाप्युभौ मामवोचताम् ॥ १७ ॥
न विषादस्त्वया कार्यो भीष्म काशिसुतां प्रति ।
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ॥ १८ ॥

राजन्! मैंने यह वृत्तान्त देवर्षि नारद और महर्षि व्यासजीसे भी निवेदन किया था। उस समय उन दोनोंने मुझसे कहा—'भीष्म! तुम्हें काशिराजकी कन्याके विषयमें विषाद नहीं करना चाहिये। दैवके विधानको पुरुषार्थके द्वारा कौन पलट सकता है?' ॥ १७-१८ ॥

सा तु कन्या महाराज प्रविश्याश्रममण्डलम् ।
यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥ १९ ॥

महाराज! उस कन्याने आश्रममण्डलमें प्रवेश करके यमुनाके तटपर आश्रय ले अलौकिक तपस्या आरम्भ की ॥ १९ ॥

निराहारा कृशा रूक्षा जटिला मलपङ्किनी ।
षण्मासान् वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना ॥ २० ॥

उसने भोजन छोड़ दिया। वह दुबली तथा रूखी हो गयी। सिरपर जटाएँ बढ़ गयीं। उसके अङ्गोंमें मैल और कीचड़ जम गयी। वह तपोधना कन्या छः महीनोंतक केवल वायु पीकर ठूँठे काठकी भाँति निश्चल खड़ी रही ॥ २० ॥

यमुनाजलमाश्रित्य संवत्सरमथापरम् ।
उदवासं निराहारा पारयामास भामिनी ॥ २१ ॥

फिर एक वर्षतक यमुनाके जलमें रहकर बिना कुछ खाये-पीये वह भामिनी जलमें ही रहकर तपस्या करती रही ॥ २१ ॥

शीर्णपर्णेन चैकेन पारयामास सा परम् ।
संवत्सरं तीव्रकोपा पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठिता ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् तीव्र कोपसे युक्त हुई अम्बाने पैरके अँगूठेके अग्रभागपर खड़ी हो अपने आप झड़कर गिरा हुआ केवल एक सूखा पत्ता खाकर एक वर्ष व्यतीत किया ॥ २२ ॥

एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी ।
निवर्त्यमानापि च सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते ॥ २३ ॥

इस प्रकार बारह वर्षोंतक तपस्यामें संलग्न हो उसने पृथ्वी और आकाशको संतप्त कर दिया। उसके भाई-बन्धुओंने आकर उसे उस कठोर व्रतसे निवृत्त करनेकी चेष्टा की, परंतु उन्हें सफलता न मिल सकी ॥ २३ ॥

ततोऽगमद् वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम् ।
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साप्लुताङ्गी दिवानिशम् ।
व्यचरत् काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी ॥ २५ ॥

तदनन्तर वह सिद्धों और चारणोंद्वारा सेवित वत्सदेशकी भूमिमें गयी और वहाँ पुण्यशील तपस्वी महात्माओंके आश्रमोंमें विचरने लगी। वह काशिराजकी कन्या दिन-रात पवित्र तीर्थोंमें स्नान करती और अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र विचरती रहती थी ॥ २४-२५ ॥

नन्दाश्रमे महाराज तथोलूकाश्रमे शुभे ।
च्यवनस्याश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च ॥ २६ ॥
प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह ।
भोगवत्यां महाराज कौशिकस्याश्रमे तथा ॥ २७ ॥
माण्डव्यस्याश्रमे राजन् दिलीपस्याश्रमे तथा ।
रामह्रदे च कौरव्य पैलगर्गस्य चाश्रमे ॥ २८ ॥
एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशाम्पते ।
आप्लावयत गात्राणि व्रतमास्थाय दुष्करम् ॥ २९ ॥

महाराज! कुरुनन्दन! प्रजानाथ! नन्दाश्रम, उलूकाश्रम, च्यवनाश्रम, ब्रह्मस्थान, देवताओंके यज्ञस्थान प्रयाग, देवारण्य, भोगवती, कौशिकाश्रम, माण्डव्याश्रम, दिलीपाश्रम, रामह्रद और पैलगर्गाश्रम—इन सभी तीर्थोंमें उस कठोर व्रतका पालन करनेवाली काशिराजकी कन्याने स्नान किया ॥ २६—२९ ॥

तामब्रवीच्च कौरव्य मम माता जले स्थिता ।
किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेतद् वदस्व मे ॥ ३० ॥

कुरुनन्दन! उस समय मेरी माता गङ्गाने जलमें प्रकट होकर उससे कहा—'भद्रे! तुम किसलिये इतना कष्ट उठा रही हो? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ' ॥ ३० ॥

सैनामथाब्रवीद् राजन् कृताञ्जलिरनिन्दिता ।
भीष्मेण समरे रामो निर्जितश्चारुलोचने ॥ ३१ ॥
कोऽन्यस्तमुत्सहेज्जेतुमुद्यतेषु महीक्षिताम् ।
साहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्स्ये सुदारुणम् ॥ ३२ ॥

राजन्! तब सती साध्वी अम्बाने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे कहा—'चारुलोचने! भीष्मने युद्धमें परशुरामजीको परास्त कर दिया, फिर दूसरा कौन ऐसा राजा है जो धनुष-बाण लेकर खड़े हुए भीष्मको युद्धमें परास्त कर सके? अतः मैं भीष्मके विनाशके लिये अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ ३१-३२ ॥

विचरामि महीं देवि यथा हन्यामहं नृपम् ।
एतद् व्रतफलं देवि परमस्मिन् यथा हि मे ॥ ३३ ॥

देवि! मैं इस भूतलपर विचरती हुई यही खोज रही हूँ कि किस प्रकार राजा भीष्मको मार सकूँ। भगवति! इस व्रतका मेरे लिये यही सर्वोत्तम फल है, जैसा मैंने आपको बताया है ॥ ३३ ॥

ततोऽब्रवीत् सागरगा जिह्मं चरसि भामिनि ।
नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाबले ॥ ३४ ॥

तब तापसलोगोंकी साथ नाकी ... कथा— मानिनि ... पूर्ण ... होती है ... ।

भूयो भीष्मस्य ... कार्ये ... सत्तम् ।
... अवि ... पतिं ... मि ... ॥
सती भक्ति सि सुभ कुटिला ... ।
तुर्मीर्या ... विशेष ... नाशयाम ... ॥

... पदि मैं ... कर ... है ... में ... एक ... यदि ... अगर ... देवी ... सुभ ... ही ... होगा ... स्थानकी सुविधा ... भी ... ।

भीष्ममाकाली ... और ... सर्वभूत ... ।
एवमुक्त्वा ... राजन् ... ॥
... महाभागा ... ।
... कदाचिद् ... ।
... पुन ... ।

... भी ... कारण ... वे ... ।

नौ देवी ... राजन् ... कन्याने ऐसा कहकर ... शाकिनी ... की ... और ... नहीं ... कभी आना ... नहीं ... पी थी ।

सा वत्सम् ... ताप ... लोभात् ततस्ततः
पतित ... पुन ... सुमा ॥ ॥

कुरुनन्दन ... वह कन्या ... थी ... ।

नदी वत्सभूम्या ... भारत
... कुटिला ... ॥ ॥

... कुरु ... नहीं ... बहते ... हुए ... उसके ... और ... आदि ... कन्या ... होकर बहती थी ।

सा कन्या ... तपसा ... ।
नद्यां ... कन्या ... ॥ ॥

... और ... आधे ... कन्या ... हुई ।

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें ... अध्याय पूरा हुआ ।

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

अम्बाका द्वितीय जन्ममें पुन ... कन्या ... महादेवजीसे अभ ... वरकी प्राप्ति तथा उसका चिताकी अग्निमें प्रवेश

भीष्म उवाच

ततस्ते तापसा सर्वे ... ।
... वार्यमाणा ... ॥

भीष्मजी कहते हैं— ... तपस्या ... वत्स ... ।

... कन्या ... तपोवृद्ध ... ।
... भीष्म ... ।

... कन्या ... भीष्मने मुझे ... दिया है ... नहीं ... ।

यथार्थं ... न लोकार्थं तपोधना ।
... भीष्मं ... निश्चय ॥

... यह ... नहीं ... निश्चय है कि भीष्मके मार देनेपर मेरे हृदयको शान्ति मिल जायगी ।

... तु ... पर्वालि ... भीष्मम् ।
... पुमानिव ॥ ५ ॥
... युधि गाङ्गेय निवर्तिष्ये ...
... मया ॥

... कारण ... नहीं ... और ... होकर ... भीष्मको ... हाथमें ... हो ... दिया ।

... प्रतिनिवर्त्य ... ।
... पुत्र ॥ ६ ॥

मुझे ... है ... पुरुष ... ।

... मुझे रोकें नहीं ।

... देवः ... ।
... तेषां महर्षीणां ... तापसीम् ॥ ७ ॥

तब शूलपाणि उमावल्लभ भगवान् शिवने उन महर्षियोंके बीचमें अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट होकर उस तपस्विनीको दर्शन दिया।

छन्द्यमाना वरेणाथ सा वव्रे मत्पराजयम्।
हनिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम्॥ १॥

फिर इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहे जानेपर उसने मेरी पराजयका वर माँगा। तब महादेवजीने उस मनस्विनीसे कहा—'तू अवश्य भीष्मका वध करेगी'॥ १॥

ततः सा पुनरेवाथ कन्या रुद्रमुवाच ह।
उपपद्येत् कथं देव स्त्रियो युधि जयो मम॥ २॥

यह सुनकर उस कन्याने भगवान् रुद्रसे पुनः पूछा—'देव! मैं तो स्त्री हूँ, मुझे युद्धमें विजय कैसे प्राप्त हो सकती है?॥ २॥

स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुमापते।
प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपराजयः॥ ३॥

उमापते! स्त्री होनेके कारण मेरा मन सर्वथा शान्त है। परंतु आपने मुझे भीष्मपराजयका वर दिया है॥ ३॥

यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज।
यथा हन्यां समागम्य भीष्मं शान्तनवं युधि॥ ४॥

वृषभध्वज! आप ऐसा कीजिये, जिससे आपका वह वर सत्य हो और मैं युद्धमें सामने जाकर शान्तनुनन्दन भीष्मको मार सकूँ'॥ ४॥

तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः।
न मे वागनृतं प्राह सत्यं भद्रे भविष्यति॥ ५॥

तब वृषभध्वज महादेवने उस कन्यासे कहा—'भद्रे! मेरी वाणी कभी झूठ नहीं बोलती। अतः मेरी बात सत्य होकर रहेगी॥ ५॥

हनिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे।
स्मरिष्यसि च तत् सर्वं देहमन्यं गता सती॥ ६॥

तुम युद्धमें भीष्मको मारोगी और पुरुषत्व भी प्राप्त कर लोगी। दूसरा शरीर धारण करनेपर भी तुम्हें इन सब बातोंकी स्मृति बनी रहेगी॥ ६॥

द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः।
शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसम्मतः॥ ७॥

तुम द्रुपदके कुलमें उत्पन्न हो महारथी वीर बनोगी। शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेकी कलामें निपुण और विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले सम्मानित योद्धा होओगी॥ ७॥

यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद् भविष्यति।
भविष्यसि पुमान् पश्चात् कस्माच्चित्कालपर्ययात्॥ ८॥

कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा। तुम कुछ कालके पश्चात् कन्यासे पुरुष हो जाओगी'॥ ८॥

एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः।
पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवान्तरधीयत॥ ९॥

ऐसा कहकर जटाजूटधारी वृषभध्वज महादेवजी उन सब ब्राह्मणोंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ९॥

ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता।
समाहृत्य वनात् तस्मात् काष्ठानि वरवर्णिनी॥ १०॥
चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम्।
प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन चेतसा॥ ११॥
उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविवेश हुताशनम्।
ज्येष्ठा काशिसुता राजन् यमुनामभितो नदीम्॥ १२॥

तदनन्तर उन महर्षियोंके देखते-देखते उस अनिन्द्य सुन्दरी कन्याने उस वनसे बहुत-सी लकड़ियाँ लाकर एक विशाल चिता बनायी और उसमें आग लगा दी। महाराज! जब आग प्रज्वलित हो गयी, तब वह क्रोधसे जलते हुए हृदयसे 'भीष्मके वधके लिये' ऐसा कहकर उस अग्निमें प्रवेश कर गयी। राजन्! इस प्रकार काशिराजकी वह ज्येष्ठ पुत्री यमुनाके तटपर चितामें जलकर भस्म हो गयी॥ १०—१२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि अम्बातपस्यायां सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें अम्बाकी तपस्याविषयक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८७॥

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अम्बाका राजा द्रुपदके यहाँ कन्याके रूपमें जन्म, राजा तथा रानीका उसे पुत्ररूपमें प्रसिद्ध करके उसका नाम शिखण्डी रखना

दुर्योधन उवाच

कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा पुरा तदा।
पुरुषोऽभवद् युधि श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

दुर्योधनने पूछा—गङ्गानन्दन पितामह! शिखण्डी पहले कन्यारूपमें उत्पन्न होकर फिर पुरुष कैसे हो गया? यह मुझे बताइये॥ १॥

भीष्म उवाच

भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः।
महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशाम्पते॥ २॥

भीष्मजीने कहा—महाराज राजेन्द्र! राजा द्रुपदकी प्यारी पटरानीके कोई पुत्र नहीं था॥ २॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः।
अपत्यार्थं महाराज तोषयामास शङ्करम्॥ ३॥

महाराज! इसी समय राजा द्रुपदने संतानकी प्राप्तिके लिये भगवान् शङ्करको संतुष्ट किया।

अस्मद्वधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः ।
ऋते कन्यां महादेव पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥
भगवन् पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रतिचिकीर्षया ।
इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥ ५ ॥
निवर्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।

द्रुपदने मेरे वधके लिये पुत्र पानेका निश्चित संकल्प लेकर उग्र तपस्या की थी। उन्होंने महादेवजीसे यह कहते हुए प्रार्थना की कि 'महादेव! मुझे कन्या नहीं, पुत्र प्राप्त हो। भगवन्! मैं भीष्मसे बदला लेनेके लिये पुत्र चाहता हूँ।' यह सुनकर देवाधिदेव महादेवजीने कहा—'भूपाल! तुम्हें एक कन्या प्राप्त होगी, जो फिर पुरुष हो जायगी। अब तुम लौट जाओ। मैंने जो कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता'॥ ४-५ ॥

स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥ ६ ॥
कृतो यत्नो महादेवस्तपसाऽऽराधितो मया ।
कन्या भूत्वा पुमान् भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना ॥ ७ ॥
पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः ।
न तदन्यद्धि भविता भवितव्यं हि तत् तथा ॥ ८ ॥

तब राजा द्रुपद नगरको लौट गये और अपनी पत्नीसे इस प्रकार बोले—'देवि! मैंने बड़ा प्रयत्न किया, तपस्याके द्वारा महादेवजीकी आराधना की। तब उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—पहले तुम्हें पुत्री होगी, फिर वही पुरुष बन जायगी। मैंने बार-बार अनुनय करके उनसे पुत्रके लिये याचना की; परंतु भगवान् शिवने इसे दैवका विधान बतलाया है और कहा है—यह बदल नहीं सकता, जो होना है, वही होगा' ॥ ६-८ ॥

ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी ।
पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं प्रविवेश ह ॥ ९ ॥
लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
पार्षतस्य महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् ॥ १० ॥
ततो दधार सा देवी गर्भं राजीवलोचना ।

तदनन्तर राजा द्रुपदकी मनस्विनी रानीने नियमपूर्वक रहकर ऋतुकालमें द्रुपदके साथ समागम किया और लौकिक विधिसे गर्भाधान संस्कार होनेके पश्चात् यथासमय गर्भ धारण किया। राजन्! जैसा कि मुझसे नारदजीने कहा था, द्रुपदकी कमलनयनी रानीने इसी प्रकार गर्भ धारण किया ॥ ९-१० ॥

तां स राजा प्रियां भार्यां द्रुपदः कुरुनन्दन ॥ ११ ॥
पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्यचरत् तदा ।
सर्वानभिप्रायकृतान् भार्यालभत कौरव ॥ १२ ॥

कुरुनन्दन! महाबाहु द्रुपदने भावी पुत्रके प्रति स्नेह होनेके कारण अपनी प्यारी पत्नीकी बड़ी सुख-सुविधाके साथ सेवा की। कुरुनन्दन! उस समय रानीको जिन-जिन वस्तुओंकी इच्छा हुई, वे सब उसके सामने प्रस्तुत की गयीं ॥ ११-१२ ॥

अपुत्रस्य सतो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः ।
यथाकालं तु सा देवी महिषी द्रुपदस्य ह ॥ १३ ॥
कन्यां प्रवररूपां तु प्राजायत नराधिप ।

नरेश्वर! पुत्रहीन राजा द्रुपदकी उस महारानीने यथासमय एक परम सुन्दरी कन्याको जन्म दिया ॥ १३ ॥

अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य मनस्विनी ॥ १४ ॥
ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो ह्येष ममेति वै ।

राजेन्द्र! उस पुत्रहीन राजाकी मनस्विनी रानीने यह घोषणा करा दी कि 'यह मेरा पुत्र है' ॥ १४ ॥

ततः स राजा द्रुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ॥ १५ ॥
पुत्रवत् पुत्रकार्याणि सर्वाणि समकारयत् ।
रक्षणं चैव मन्त्रस्य महिषी द्रुपदस्य सा ॥ १६ ॥
चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत ।
न च तां वेद नगरे कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥ १७ ॥

नरेन्द्र! इसके बाद राजा द्रुपदने छिपाकर रक्खी हुई उस कन्याके सभी संस्कार पुत्रके ही समान कराये। द्रुपदकी रानीने सब प्रकारसे प्रयत्न करके इस रहस्यको गुप्त रक्खा। वह उस कन्याको पुत्र कहकर ही पुकारती थी। उस नगरमें केवल द्रुपदको छोड़कर दूसरा कोई नहीं जानता था कि यह कन्या है ॥ १५-१७ ॥

श्रद्दधानो हि तद्वाक्यं देवस्याद्भुततेजसः ।
छादयामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

जिनका तेज कभी क्षीण नहीं होता, उन महादेवजीके वचनोंमें श्रद्धा रखनेके कारण राजा द्रुपदने उस कन्याको छिपाये रक्खा और पुत्र होनेकी घोषणा कर दी ॥ १८ ॥

जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवः ।
पुंवद् विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः ॥ १९ ॥

राजाने उसके सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार पुरुषोचित विधानसे ही करवाये। लोग उसे शिखण्डी के नामसे जानते थे ॥ १९ ॥

अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य च ।
ज्ञातवान् देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा ॥ २० ॥

केवल मैं गुप्तचर, देवर्षि नारदके कथन, महादेवजीके वरदान तथा अम्बाकी तपस्यासे ही शिखण्डीके कन्या होनेका वृत्तान्त जान गया था ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्ड्युत्पत्तौ अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें शिखण्डीकी उत्पत्तिविषयक एक सौ अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८८ ॥

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्याय

शिखण्डीका विवाह तथा उसके स्त्री होनेका समाचार पाकर उसके श्वशुर दशार्णराजका महान् कोप

भीष्म उवाच

चकार यत्नं द्रुपदः सुतायाः सर्वकर्मसु।
ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परंतप ॥ १ ॥

भीष्म कहते हैं—तदनन्तर द्रुपदने अपनी पुत्रीको लेखनविद्या और शिल्पविद्या आदि सभी कार्योंकी श्रेष्ठता प्राप्त करानेके लिये विशेष प्रयत्न किया ॥ १ ॥

इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणशिष्यो बभूव ह।
तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी ॥ २ ॥
चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत् तदा।
ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम्।
स्त्रियं मत्वा तदा चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥ ३ ॥

राजेन्द्र! भरतश्रेष्ठ! शिखण्डी बाणविद्यामें आचार्य द्रोणका शिष्य हुआ। महाराज! शिखण्डीकी सुन्दरी माताने राजा द्रुपदको प्रेरित किया कि वे उसका पुत्रके लिये ब्याह करें। वह अपनी कन्याका पुत्रके समान ब्याह करना चाहती थी। द्रुपदने देखा, मेरी कन्या अब युवती हो गयी तो भी अबतक वह स्त्री ही बनी हुई है (उसमें अभीतक पुरुषत्व नहीं आ सका) इससे पत्नीसहित उनके मनमें बड़ी चिन्ता हुई ॥ २-३ ॥

द्रुपद उवाच

कन्या ममेयं सम्प्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी।
मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥ ४ ॥

द्रुपद बोले—देवि! मेरी यह कन्या युवावस्थाको प्राप्त होकर मेरा शोक बढ़ा रही है। मैंने भगवान् शङ्करके कथनपर विश्वास करके अबतक इसके कन्याभावको छिपा रखा था ॥ ४ ॥

भार्योवाच

न तन्मिथ्या महाराज भविष्यति कथंचन।
त्रैलोक्यकर्ता कस्माद्धि वृथा वक्तुमिहार्हति ॥ ५ ॥
यदि ते रोचते राजन् वक्ष्यामि शृणु मे वचः।
श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथाः स्वां मतिं पृषतात्मज ॥ ६ ॥

भार्या बोली—महाराज! भगवान् शिवका दिया हुआ वर किसी तरह मिथ्या नहीं होगा। भला तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले भगवान् झूठी बात कैसे कह सकते हैं। राजन्! यदि आपको अच्छा लगे तो कहूँ। मेरी बात सुनिये। पृषतनन्दन! उसे सुनकर अपनी बुद्धिके अनुसार पालन करें ॥ ५-६ ॥

क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद् दारसंग्रहः।
सत्यं भवति तद् वाक्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ७ ॥

मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि महादेवका वचन सत्य होगा। अतः आप प्रयत्नपूर्वक शास्त्रीय विधिके अनुसार इसका कन्याके साथ विवाह कर दें ॥ ७ ॥

ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन् कार्येऽथ दम्पती।
वरयांचक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार निश्चय करके दोनों पति-पत्नीने दशार्णराजकी पुत्रीका अपने पुत्रके लिये वरण किया ॥ ८ ॥

ततो राजा द्रुपदो राजसिंहः
सर्वान् राज्ञः कुलतः संनिशाम्य।
दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां
शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥ ९ ॥

तदनन्तर राजाओंमें सिंहके समान राजा द्रुपदने समस्त राजाओंके कुल आदिका परिचय सुनकर दशार्णराजकी ही पुत्रीका शिखण्डीके लिये वरण किया ॥ ९ ॥

हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः।
स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने ॥ १० ॥

दशार्णदेशके राजाका नाम हिरण्यवर्मा था। भूपाल हिरण्यवर्माने शिखण्डीको अपनी कन्या दे दी ॥ १० ॥

स च राजा दशार्णेषु महानासीत् सुदुर्जयः।
हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः ॥ ११ ॥

दशार्णदेशका वह राजा हिरण्यवर्मा महान्, दुर्जय और दुर्धर्ष वीर था। उसके पास विशाल सेना थी। उसका हृदय भी विशाल था ॥ ११ ॥

कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम।
यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी ॥ १२ ॥
कृतदारः शिखण्डी च काम्पिल्यं पुनरागमत्।
न च सा वेद तां कन्यां कंचित् कालं स्त्रियं किल ॥ १३ ॥

नृपश्रेष्ठ! हिरण्यवर्माकी पुत्री भी युवावस्थाको प्राप्त थी और द्रुपदकी कन्या शिखण्डिनी भी युवती हो गयी थी। विवाहकार्य सम्पन्न हो जानेपर पत्नीसहित शिखण्डी पुनः काम्पिल्यनगरमें आया। दशार्णराजकी कन्याने कुछ ही दिनोंमें यह जान लिया कि शिखण्डी भी स्त्री ही है ॥ १२-१३ ॥

हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तां तु शिखण्डिनीम्।
धात्रीणां च सखीनां च व्रीडमाना न्यवेदयत्।
कन्यां पाञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम् ॥ १४ ॥

हिरण्यवर्माकी पुत्रीने शिखण्डीके स्त्री होनेका समाचार धायों और सखियोंसे लजाते-लजाते कह सुनाया। उसने यह बताया कि पाञ्चालराजके पुत्र शिखण्डी वास्तवमें पुरुष नहीं हैं ॥ १४ ॥

ततस्ता राजशार्दूल धात्र्यो दाशार्णिकास्तदा।
जग्मुरार्तिं परां प्रेष्याः प्रेषयामासुरेव च ॥ १५ ॥

राजसिंह! यह सुनकर दशार्णदेशकी धायोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने यह समाचार सूचित करनेके लिये बहुत-सी दासियोंको दशार्णराजके यहाँ भेजा ॥ १५ ॥

ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वं न्यवेदयन्।
विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुक्रोध पार्थिवः ॥ १६ ॥

ये दक्षिणा दशार्णराजको सब बात ठीक-ठीक बताती हुई बोलीं कि राजा द्रुपदने पुत्र कहकर मेरा ब्याह किया है। यह सुनकर दशार्णराज अत्यन्त कुपित हो उठे॥

हिरण्यवर्मणि महत्याप पुत्रम् राजकुले तदा।
शिखण्डिनं पुत्रं [illegible] नैषादिराधमम् ॥ ४॥

महाराज [illegible] दशार्णराजसे पुरुषकी ही भाँति [illegible] पुत्रका पिता [illegible] [illegible] अच्छा [illegible]

तत कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषाद् [illegible] [illegible] ॥

तदनन्तर [illegible] कुछ दिनोंमें [illegible] समाचार सुनकर हिरण्यवर्मा [illegible] [illegible] [illegible] दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः
दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशनम्

तदनन्तर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ततो द्रुपदमासाद्य दूतः [illegible]
एक एकान्तमुत्सार्य [illegible] [illegible]

हिरण्यवर्माका यह दूत द्रुपदके पास पहुँचकर उनको एकान्तमें ले जाकर केवल उन्हींसे इस प्रकार बोला—

वञ्चयित्वा राजन् राजानमसि दुर्मते।
अभिजनात् प्रकृतिमे विप्रलब्धस्त्वयानघ ॥ १ ॥

'दशार्णराज आपके [illegible] [illegible] दिया है। आपके द्वारा किये गये अपमानसे उनका रोष बहुत बढ़ गया है। उन्होंने आपके कहनेके लिये यह सन्देश भेजा है॥'

यस्मात् त्वया मे [illegible] [illegible] [illegible]
तस्मात् [illegible] [illegible] वञ्चितवानसि ॥ २२ ॥

तस्याद्य विपुलतमस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते।
एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥ २३ ॥

[illegible] तुमने जो मेरा अपमान किया है, वह निश्चय ही तुम्हारा [illegible] परिचय है। तुमने मोहवश [illegible] [illegible] पुत्रीके साथ विवाह किया [illegible] तुम्हें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सहित तुम्हें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि हिरण्यवर्मदूतागमने अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्यवर्माके आक्रमणके भयसे घबराये हुए द्रुपदका अपनी महारानीसे सकटनिवारणका उपाय पूछना

भीष्म उवाच

एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप।
चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्तत भारती ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन्! दूतके ऐसा कहनेपर राजा द्रुपद चोरकी भाँति पकड़े गये। उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकली॥

स यत्नमकरोत् तीव्रं सम्बन्धिष्वनुसान्त्वने।
दूतैर्मधुरसम्भाषैर्नैतदस्तीति सन्दिशन् ॥ २ ॥

उन्होंने मधुरभाषी दूतोंके द्वारा यह सन्देश देकर कि 'ऐसी बात नहीं है' आपको धोखा नहीं दिया गया है [illegible] सम्बन्धीको समझानेका सुन्दर प्रयत्न किया॥

स राजा भूय एवाथ ज्ञात्वा तत्त्वमथागमत्।
कन्येति पाञ्चालसुतां त्वरमाणो विनिर्ययौ ॥ ३ ॥

[illegible] इसके बाद पुनः [illegible] [illegible] [illegible] गयी कि पाञ्चालकी सन्तान कन्या ही है, यह बात ठीक जान ली, तब उसने शीघ्र ही [illegible] [illegible] आक्रमण करनेका निश्चय किया॥

ततः सम्प्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम्।
दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात् तदा ॥ ४ ॥

तदनन्तर राजाने धायोंके कथनानुसार अपनी कन्याको धोखा दिये जानेका समाचार अमिततेजस्वी [illegible] [illegible]

तत्र समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तम।
अभियाने मतिं चक्रे द्रुपदं प्रति भारत ॥ ५ ॥

भारत! इसके बाद राजाओंमें श्रेष्ठ हिरण्यवर्माने सैन्य-समाज [illegible] [illegible] [illegible] द्रुपदपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया॥

ततः सम्मन्त्रयामास मन्त्रिभिः स महीपतिः।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥ ६ ॥

राजेन्द्र! फिर राजा हिरण्यवर्माने अपने मन्त्रियोंके साथ बैठकर पाञ्चालराज द्रुपदके विषयमें कि मुझे पाञ्चालनरेशके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये॥

तत्र वै निश्चितं तेषामभूद् राज्ञां महात्मनाम्।
तथ्यं भवति चेदेतत् कन्या राजन् शिखण्डिनी ॥ ७ ॥

बद्ध्वा पाञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहम्।
अन्यं पाञ्चालराजानं पाञ्चालेषु निधाय वै।
घातयिष्याम नृपतिं पाञ्चालं सशिखण्डिनम् ॥ ८ ॥

वहाँ महामना मित्र राजाओंका यह निश्चय [illegible] हुआ कि राजन्! यदि यह बात सिद्ध हुई कि शिखण्डी वास्तवमें पुत्र नहीं कन्या है तो हमलोग पाञ्चालराजको कैद करके अपने घर ले आयेंगे और पाञ्चालदेशके राज्यपर दूसरे किसी राजाको बिठाकर शिखण्डीसहित द्रुपदको मरवा डालेंगे॥

अथ तथाभूतमाज्ञाय पुनर्दूतान् नराधिप ।
प्रास्थापयत् सरम्भाय विहन्मीति स्थिरो भव ॥ १० ॥

फिर दूतोंके मुखसे उस समाचारको यथार्थ जानकर राजा हिरण्यवर्माने द्रुपदके पास दूत भेजा । फिर कहा (सावधान हो जाओ) मैं कुछ ही दिनोंमें तुम्हारा नाश कर डालूँगा ॥ १० ॥

भीष्म उवाच

स हि प्रकृत्या वै भीतः किल्बिषी च नराधिप ।
अथ तीव्रमनुप्राप्तो द्रुपदः पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजा द्रुपद उन दिनों स्वभावसे ही भीरु थे । फिर उनसे अपराध भी बन गया था । अतः उन्होंने बड़े भारी भयका अनुभव किया ॥ ११ ॥

विसृज्य दूतान् दाशार्णे द्रुपदः शोकमूर्च्छितः ।
समेत्य भार्यां रहिते वाक्यमाह नराधिप ॥ १२ ॥

राजा द्रुपदने दशार्णराजके पास दूतोंको भेजकर शोकसे अधीर हो एक एकान्त स्थानमें अपनी पत्नीसे मिलकर इस विषयमें बातचीत करनेकी इच्छा की ॥ १२ ॥

भयेन महताऽऽविष्टो हृदि शोकेन चाहतः ।
पाञ्चालराजो दयितां मातरं वै शिखण्डिनः ॥ १३ ॥

पाञ्चालराज द्रुपदके मनमें बड़ा भारी भय समा गया था । वे शोकसे पीड़ित थे । अतः उन्होंने अपनी प्यारी पत्नी शिखण्डीकी मातासे इस प्रकार कहा— ॥ १३ ॥

अभियास्यति मां कोपात् सम्बन्धी सुमहाबलः ।
हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥ १४ ॥

देवि ! मेरे महाबली सम्बन्धी हिरण्यवर्मा क्रोधमें भरकर अपनी विशाल सेना साथ ले मुझपर आक्रमण करेंगे ॥ १४ ॥

किमिदानीं करिष्यावो मूढौ कन्यामिमां प्रति ।
शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशङ्कितः ॥ १५ ॥

इस समय हम दोनों क्या करें ? इस कन्याके मामलेमें केवल हमलोग किंकर्तव्यविमूढ हो रहे हैं । सम्बन्धीके मनमें यह शंका दृढमूल हो गयी है कि तुम्हारा पुत्र शिखण्डी वास्तवमें कन्या है ॥ १५ ॥

इति सञ्चिन्त्य यत्नेन समित्रः सबलानुगः ।
वञ्चितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति ॥ १६ ॥
किमत्र तथ्यं सुश्रोणि मिथ्या किं ब्रूहि शोभने ।
श्रुत्वा त्वत्तः शुभं वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा ॥ १७ ॥

यह सोचकर वे ऐसा मानने लगे हैं कि मेरे साथ धोखा किया गया है और इसलिये वे अपने मित्रों, सेनाओं तथा सेवकोंसहित आकर मुझे बलपूर्वक उखाड़ फेंकना चाहते हैं । सुश्रोणि ! यहाँ क्या सत्य है और क्या झूठ ? शोभने ! इस बातको तुम्हीं बताओ । तुम्हारे मुखसे निकले हुए शुभ वचन को सुनकर मैं वैसा ही करूँगा ॥ १६-१७ ॥

अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी ।
त्वं च राज्ञि महत् कृच्छ्रं सम्प्राप्ता वरवर्णिनि ॥ १८ ॥

रानी ! मेरा जीवन संशयमें पड़ गया है, यह शिखण्डिनी भी बालिका ही है । सुन्दरि ! तुम भी महान् संकटमें पड़ गयी हो ॥ १८ ॥

सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ।
तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यमाशु शुचिस्मिते ॥ १९ ॥

सुश्रोणि ! मैं पूछ रहा हूँ । सबके संकटसे छुटकारेके लिये कोई उत्तम उपाय बताओ । शुचिस्मिते ! मैं उस उपायको शीघ्र ही काममें लाऊँगा ॥ १९ ॥

शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः ।
कृपयाहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ॥ २० ॥

सुन्दर अङ्गोंवाली महारानी ! तुम शिखण्डीके विषयमें भय मत करो । मैं न्याय करके वही काम करूँगा, जो वस्तुतः हितकर होगा । मैं स्वयं पुत्रधर्मसे वञ्चित हो गया हूँ ॥ २० ॥

मया दाशार्णको राजा वञ्चितः स महीपतिः ।
तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्धितम् ॥ २१ ॥

और मैंने दशार्णदेशके महाराज हिरण्यवर्माको भी वञ्चित किया है । अतः महाभागे ! इस अवसरपर तुम्हारी दृष्टिमें जो हितकारक कार्य हो, उसे बताओ । मैं उसका अनुष्ठान करूँगा ॥ २१ ॥

जानतापि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै ।
प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ २२ ॥

यद्यपि राजा द्रुपद सब कुछ जानते थे तो भी दूसरे लोगोंको अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये महारानीसे स्पष्ट रूपसे पूछा । उनके प्रश्न करनेपर रानीने राजाको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि द्रुपदप्रश्ने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें द्रुपदप्रश्नविषयक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९० ॥

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रुपदपत्नीका उत्तर, द्रुपदके द्वारा नगररक्षाकी व्यवस्था और देवाराधन तथा शिखण्डिनीका वनमें जाकर स्थूणाकर्ण नामक यक्षसे अपने दुःखनिवारणके लिये प्रार्थना करना

भीष्म उवाच

ततः शिखण्डिनो माता यथातत्त्वं नराधिप ।
आचचक्षे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम् ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—महाबाहु नरेश्वर ! तब शिखण्डीकी माताने अपने पतिसे यथार्थ बात बताते हुए कहा—महाबाहु ! शिखण्डी पुत्र नहीं, शिखण्डिनी नामवाली कन्या है ॥ १ ॥

अपुत्रया मया राजन् सपत्नीनां भयादिदम्।
कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदिता ॥ २ ॥

राजन्! पुत्रहीन होनेके कारण मैंने अपनी सौतोंके भयसे इस कन्या शिखण्डिनीके जन्म लेनेपर भी इसे पुत्र ही बताया ॥ २ ॥

त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्यानुमोदितम्।
पुत्रकर्म कृतं चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ॥ ३ ॥

नरश्रेष्ठ! आपने भी प्रेमवश मेरे इस कथनका अनुमोदन किया और महाराज! कन्या होनेपर भी आपने इसका पुत्रोचित संस्कार किया ॥ ३ ॥

भार्या चोढा त्वया राजन् दशार्णाधिपतेः सुता।
मया च प्रत्यभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात्।
कन्या भूत्वा पुमान् भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ॥ ४ ॥

राजन्! मेरे ही कथनानुसार विवाहके समय आपने दशार्णराजकी पुत्रीको पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण किया। महादेवजीके वरदानरूप वचनपर दृष्टि रखनेके कारण मैंने भी इसके बालकके पुत्र होनेकी घोषणा की थी। महादेवजीने कहा था कि पहले कन्या होगी, फिर वह पुत्र हो जायगा; इसीलिये इस कामकी ओरसे उपेक्षा की गयी ॥ ४ ॥

एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः
सर्वं तत्त्वं मन्त्रविद्भ्यो निवेद्य।
मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन्
यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥ ५ ॥

यह सुनकर यज्ञसेन द्रुपदने मन्त्रियोंसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। राजन्! तत्पश्चात् प्रजाकी रक्षाके लिये जैसी व्यवस्था उचित है, उसके लिये उन्होंने पुनः मन्त्रियोंके साथ गुप्त मन्त्रणा की ॥ ५ ॥

सम्बन्धकं चैव समर्थ्य तस्मिन्
दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्र।
स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथावन्
मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥ ६ ॥

नरेन्द्र! यद्यपि राजा द्रुपदने स्वयं ही दशार्णराजके साथ सम्बन्ध जोड़कर उन्हें धोखा दिया था, तथापि एकाग्रचित्तसे मन्त्रणा करके वे एक निश्चयपर पहुँच गये ॥ ६ ॥

स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत।
गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन! राजेन्द्र! यद्यपि वह नगर स्वभावसे ही सुरक्षित था, तथापि उस विपत्तिके समय उसको सब प्रकारसे सजाकर उन्होंने उसकी रक्षाके लिये विशेष व्यवस्था की ॥ ७ ॥

आर्तिं च परमां राजा जगाम सह भार्यया।
दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ! दशार्णराजके साथ विरोध उत्पन्न हो जानेसे पत्नीसहित राजा द्रुपदको बड़ा दुःख हुआ ॥ ८ ॥

कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद् विग्रहो महान्।
इति संचिन्त्य मनसा दैवतान्यर्चयत् तदा ॥ ९ ॥

अपने सम्बन्धीके साथ मेरा महान् युद्ध कैसे टल जाय, यह मन-ही-मन विचार करके उन्होंने देवताओंकी अर्चना आरम्भ कर दी ॥ ९ ॥

तं तु दृष्ट्वा तदा राजन् देवी देवपरं तदा।
अर्चां प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

राजन्! उन्हें देवाराधनमें तत्पर हो देवार्चना करते देख महारानीने इस प्रकार कहा— ॥ १० ॥

देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्या साधुमता सदा।
किमु दुःखार्णवं प्राप्य तस्मादर्चयतां गुरून् ॥ ११ ॥
दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणम्।
अग्नयश्चापि हूयन्तां दाशार्णप्रतिषेधने ॥ १२ ॥

देवताओंकी आराधना साधु पुरुषोंके लिये सदा ही सत्य (सफल) मानी गयी है। फिर जो दुःखके समुद्रमें डूबा हुआ हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है? अतः आप गुरुजनों और सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करके प्रचुर दक्षिणा दीजिये और दशार्णराजको लौटानेके लिये अग्नियोंमें होम करें ॥ ११-१२ ॥

अयुद्धेन निवृत्तिं च मनसा चिन्तय प्रभो।
देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद् भविष्यति ॥ १३ ॥

प्रभो! आप मन-ही-मन यह चिन्तन कीजिये कि दशार्णराज बिना युद्ध किये ही लौट जायँ। देवताओंके कृपाप्रसादसे यह सब कुछ सिद्ध हो जायगा ॥ १३ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया पृथुललोचन।
पुरस्यास्याविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥ १४ ॥

विशाललोचन नरेश! आपने इस नगरकी रक्षाके लिये मन्त्रियोंके साथ जैसा विचार किया है, वैसा कीजिये ॥ १४ ॥

दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिध्यति पार्थिव।
परस्परविरोधाद्धि सिद्धिरस्ति न चैतयोः ॥ १५ ॥

भूपाल! पुरुषार्थसे संयुक्त होनेपर ही दैव विशेषरूपसे सफल होता है। दैव और पुरुषार्थमें परस्पर विरोध होनेपर इन दोनोंकी ही सिद्धि नहीं होती ॥ १५ ॥

तस्माद् विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह।
अर्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशाम्पते ॥ १६ ॥

राजन्! अतः आप मन्त्रियोंके साथ नगरकी रक्षाके लिये आवश्यक व्यवस्था करके इच्छानुसार देवताओंकी अर्चना कीजिये ॥ १६ ॥

एवं सम्भाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ।
शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १७ ॥
ततः सा चिन्तयामास मत्कृते दुःखिताविमौ।
इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ॥ १८ ॥

इन दोनोंको इस प्रकार शोकमग्न होकर वार्तालाप करते देख उनकी तपस्विनी पुत्री शिखण्डिनी लज्जित-सी होकर इस

प्रकार चिन्ता करने लगी—ये मेरे माता और पिता दोनों मेरे ही कारण दुःखी हो रहे हैं। ऐसा सोचकर उसने प्राण त्याग देनेका विचार किया ॥ १७-१८ ॥

एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा।
निर्जगाम गृहं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥

इस प्रकार संकल्प मनमें करके देनेका निश्चय करके वह अत्यन्त शोकमग्न हो घर छोड़कर निर्जन एवं गहन वनमें चली गयी ॥ १९ ॥

यक्षेणर्द्धिमता राजन् स्थूणाकर्णेन पालितम्।
तद्भयादेव च जनो विसर्जयति तद्वनम् ॥ २० ॥

राजन्! वह वन समृद्धिशाली यक्ष स्थूणाकर्णके द्वारा सुरक्षित था। इसीके भयसे साधारण लोगोंने उस वनमें आना-जाना छोड़ दिया था ॥ २० ॥

तत्र च स्थूणभवनं सुधामृत्तिकलेपनम्।
लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥ २१ ॥

उसमें स्थूणका एक विशाल भवन था, जो चूना और मिट्टीसे लिपा हुआ था। उसका परकोटा और फाटक बहुत ऊँचे थे। उससे खसकी सुगन्धसे पूर्ण धूमकी धूम उठती रहती थी ॥ २१ ॥

तत्प्रविश्य शिखण्डी सा द्रुपदस्यात्मजा नृप।
अनश्नाना बहुतिथं शरीरमुपशोषयत् ॥ २२ ॥

उस भवनमें प्रवेश करके द्रुपदपुत्री शिखण्डीने बहुत दिनोंतक उपवास करके शरीरको सुखा डाला ॥ २२ ॥

दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मार्दवसंयुतः।
किमर्थोऽयं तवारम्भः करिष्ये ब्रूहि मा चिरम् ॥ २३ ॥

स्थूणाकर्ण यक्षने उसे इस अवस्थामें देखा। देखकर उसके हृदयमें कोमल भाव उदय हुआ फिर उसने पूछा—भद्रे! तुम्हारा यह उपवास-व्रत किसलिये है? अपना प्रयोजन शीघ्र बताओ। मैं उसे पूर्ण करूँगा ॥ २३ ॥

अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह।
करिष्यामीति वै क्षिप्रं प्रत्युवाचाथ गुह्यकः ॥ २४ ॥

यह सुनकर उसने यक्षसे बार-बार कहा—वह तुम्हारे लिये असम्भव है। तब यक्षने बार-बार उत्तर दिया—मैं तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण कर दूँगा ॥ २४ ॥

धनेश्वरस्यानुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे।
अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ २५ ॥

राजकुमारी! मैं कुबेरका सेवक हूँ, मुझमें वर देनेकी शक्ति है। तुम्हारी जो भी इच्छा हो, बताओ। मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे दूँगा ॥ २५ ॥

ततः शिखण्डी तत्सर्वमखिलेन न्यवेदयत्।
तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥ २६ ॥

भरतनन्दन! तब शिखण्डीने उस यक्षप्रवर स्थूणाकर्णसे सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताया ॥ २६ ॥

शिखण्ड्युवाच

अपुत्रो मे पिता यक्ष न चिरान्नाशमेष्यति।
अभियास्यति सक्रोधो दशार्णाधिपतिर्हि तम् ॥ २७ ॥

शिखण्डिनी बोली—यक्ष! मेरे पिता पुत्रहीन हैं, अब शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे; क्योंकि दशार्णराज कुपित होकर उनपर आक्रमण करेंगे ॥ २७ ॥

महाबलो महोत्साहः स हेमकवचो नृपः।
तस्माद् रक्षस्व मां यक्ष मातरं पितरं च मे ॥ २८ ॥

सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले वे राजा महाबली और महान् उत्साही हैं—यक्ष! तुम मेरी, माता-पिताकी और मेरी भी उनसे रक्षा करो ॥ २८ ॥

प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिशमो मम।
भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥ २९ ॥

यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम।
तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक ॥ ३० ॥

गुह्यक! महायक्ष! तुमने मेरे दुःखनिवारणकी प्रतिज्ञा की है। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारी कृपासे एक श्रेष्ठ पुरुष हो जाऊँ। जबतक वह राजा हिरण्यवर्मा हमारे नगरपर आक्रमण नहीं कर रहा है, तभीतक मुझपर कृपा करो ॥ २९-३० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि स्थूणाकर्णसमागमे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें स्थूणाकर्णके साथ शिखण्डिनीकी भेंटविषयक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९१ ॥

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

शिखण्डीको पुरुषत्वकी प्राप्ति, द्रुपद और हिरण्यवर्माकी प्रसन्नता, स्थूणाकर्णको कुबेरका शाप तथा भीष्मका शिखण्डीको न मारनेका निश्चय

भीष्म उवाच

शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाथ स यक्षो भरतर्षभ।
प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः ॥ १ ॥

भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव।
भद्रे कामं करिष्यामि समयं तु निबोध मे ॥ २ ॥

(स्वं ते पुंस्त्वं प्रदास्यामि स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यसि ते।)
किंचित्कालान्तरे दास्ये पुंलिङ्गं स्वमिदं तव।
आगन्तव्यं त्वया काले सत्यं चैव वदस्व मे ॥ ३ ॥

भीष्म कहते हैं—भरतश्रेष्ठ कौरव! शिखण्डिनीकी यह बात सुनकर दैवप्रेरित यक्षने मन-ही-मन कुछ सोचकर

यक्ष—भद्रे ! तुम जैसा चाहती हो वैसा ही मैं करूँगा परंतु यह मेरे गुप्त रहना चाहिये । तथापि मैं तुम्हारे इच्छा पूर्ण करूँगा । इस विषयमें मेरी यह शर्त है उसे सुनो ।
मैं तुम्हें अपना पुरुषत्व दूँगा और तुम्हारा स्त्रीत्व स्वयं धारण करूँगा किंतु कुछ ही कालके लिये अपना यह पुरुषत्व तुम्हें दूँगा । उस निश्चित समयके भीतर ही तुम्हें मेरा पुरुषत्व लौटानेके लिये यहाँ आ जाना चाहिये । इसके लिये तुम सत्य प्रतिज्ञा करो ॥ ३ ॥

प्रभुः संकल्पसिद्धोऽस्मि कामचारी विहङ्गमः ।
मत्प्रसादात् पुरं चैव त्राहि बन्धूंश्च केवलान् ॥ ४ ॥

मैं सिद्ध संकल्प सामर्थ्यशाली इच्छानुसार सर्वत्र विचरने वाला तथा आकाशमें भी चलनेवाला यक्ष हूँ । तुम मेरी कृपासे केवल अपने नगर और बन्धु-बान्धवोंकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यामि तदेव पार्थिवात्मजे ।
सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव ॥ ५ ॥

राजकुमारी ! मैं तुम्हारा स्त्रीत्व धारण करूँगा । तुम मुझसे सत्य प्रतिज्ञा करो; तब मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा ॥ ५ ॥

शिखण्डिन्युवाच

प्रतिदास्यामि भगवन् पुंलिङ्गं तव सुव्रत ।
किंचित्कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ॥ ६ ॥

शिखण्डिनी बोली—भगवन् ! सुव्रत ! मैं आपका पुरुषत्व लौटा दूँगी । निशाचर ! आप कुछ ही समयतक मेरा स्त्रीत्व धारण करें ॥ ६ ॥

प्रतियाते दशार्णे तु पार्थिवे हेमवर्मणि ।
कन्यैव हि भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ॥ ७ ॥

दशार्णदेशके स्वामी राजा हिरण्यवर्माके लौट जानेपर मैं फिर कन्या ही हो जाऊँगी और आप पुरुष हो जायँगे ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच

इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप ।
अन्योन्यस्याभिसंदेहे तौ संक्रामयतां ततः ॥ ८ ॥

स्त्रीलिङ्गं धारयामास स्थूणो यक्षोऽथ भारत ।
यक्षरूपं च तद् दीप्तं शिखण्डी प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥

भीष्मजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार बात करके उन दोनोंने परस्पर प्रतिज्ञा कर ली तथा उन दोनोंने एक दूसरेके शरीरमें अपने अपने पुरुषत्व और स्त्रीत्वका संक्रमण करा दिया । भारत ! स्थूणाकर्ण यक्षने तब शिखण्डिनीके स्त्रीत्वको धारण कर लिया और शिखण्डिनीने यक्षका प्रकाशमान पुरुषत्व प्राप्त कर लिया ॥ ८-९ ॥

ततः शिखण्डी पाञ्चाल्यः पुंस्त्वमासाद्य पार्थिव ।
विवेश नगरं हृष्टः पितरं च समासदत् ॥ १० ॥

राजन् ! इस प्रकार पुरुषत्व पाकर पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी बड़े हर्षके साथ नगरमें आया और अपने पितासे मिला ॥ १० ॥

यथावृत्तं तु तत् सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य तत् ।
द्रुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत् परम् ॥ ११ ॥

उसने जो कुछ जैसे हुआ था, वह सब राजा द्रुपदसे कह सुनाया । उसकी यह बात सुनकर राजा द्रुपदको अपार हर्ष हुआ ॥ ११ ॥

सभार्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा ।
ततः सम्प्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृप ॥ १२ ॥

पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धत्तां मे भवानिति ।

पत्नीसहित उनको भगवान् महेश्वरके दिये हुए वरका स्मरण हो आया । तदनन्तर राजा द्रुपदने दशार्णराजके पास दूत भेजा और यह कहलाया कि मेरा पुत्र पुरुष है आप मेरे इस कथनपर विश्वास करें ॥ १२ ॥

अथ दशार्णको राजा सहसाभ्यागमत् तदा ॥ १३ ॥
पाञ्चालराजं द्रुपदं दुःखशोकसमन्वितः ।

इधर दशार्णराज दुःख और शोकमें डूबे हुए सहसा पाञ्चालराज द्रुपदके पास आ पहुँचे ॥ १३ ॥

ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्तदा ॥ १४ ॥
प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम् ।

काम्पिल्य नगरमें पहुँचकर दशार्णराजने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दूत बनाकर भेजा ॥ १४ ॥

ब्रूहि मद्वचनाद् दूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम् ॥ १५ ॥
यद् वै कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते ।
फलं तस्य धियस्त्वद्य द्रक्ष्यसे नात्र संशयः ॥ १६ ॥

और कहा—दूत ! मेरे कथनानुसार तुम पाञ्चालोंमें अधम उस राजासे कहिये, दुर्बुद्धे ! तुमने जो अपनी कन्याके लिये मेरी कन्याका वरण किया था, उस अपराधका फल तुम्हें आज देखना पड़ेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १५-१६ ॥

एवमुक्तस्तु तेनासौ ब्राह्मणो राजसत्तम ।
दूतः प्रयातो नगरं दाशार्णनृपचोदितः ॥ १७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! दशार्णराजका यह संदेश पाकर और उन्हींकी प्रेरणासे दूत बनकर वे ब्राह्मणदेवता काम्पिल्य नगरमें आये ॥ १७ ॥

तत आसादयामास पुरोधा द्रुपदं पुरे ।
तस्मै पाञ्चालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम् ॥ १८ ॥
प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखण्डिना ।
तां पूजां नाभ्यनन्दत् स वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १९ ॥

नगरमें आकर उन पुरोहितदेवताने महाराज द्रुपदसे मिलकर बातें कीं । राजेन्द्र ! पाञ्चालराजने शिखण्डीके साथ उन पुरोहितको अर्घ्य तथा गौ भेंट की; किंतु उन्होंने उस पूजाको ग्रहण नहीं किया और इस प्रकार कहा ॥ १८-१९ ॥

यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा काञ्चनवर्मणा ।
यत् तेऽहमधमाचार दुहित्रार्थेऽभिवञ्चितः ॥ २० ॥
तस्य पापस्य करणात् फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।
देहि युद्धं नरपते ममाद्य रणमूर्धनि ॥ २१ ॥

उत्सादयिष्यामि ते सद्यः सामात्यं ससुतबान्धवम्

राजन्! दशार्णराज हिरण्यवर्माने जो संदेश दिया है, उसे सुनिये— 'खोटी बुद्धिवाले नरेश! तुम्हारी पुत्रीके द्वारा मैं ठगा गया हूँ। यह बात तुमने ठीक नहीं किया है। अतः उसका फल भोगो। नरेश्वर! युद्धके मैदानमें आकर मुझे युद्धका अवसर दो। मैं तुम्हें पुत्र और मन्त्रियोंसहित तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित उखाड़ फेंकूँगा' ॥ २२ ॥

तदुपालम्भसंयुक्तं श्रावयित्वा पितुर्वचः ॥ २२ ॥
दूतमर्पितवान् पाञ्चाल्ये मन्त्रिमध्ये पुरोहितः

इस प्रकार पुरोहितने मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए राजा द्रुपदसे दशार्णराजका कहा हुआ उपालम्भयुक्त संदेश सुनाया ॥ २३ ॥

अथाब्रवीद् भरतश्रेष्ठ द्रुपदः प्रणयान्वितः ॥ २३ ॥
यदाह मां भवान् ब्रह्मन् सम्बन्धिवचनाद् वचः
अस्योत्तरं प्रतिवचो दूतो राज्ञे वदिष्यति ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब राजा द्रुपद प्रेमसे विनीत हो गये और इस प्रकार बोले— 'ब्रह्मन्! आपने मेरे सम्बन्धीके कथनानुसार जो बात मुझे सुनायी है, इसका उत्तर मेरा दूत राजाके पास जाकर सुनायेगा' ॥ २४ ॥

ततः सम्प्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने
हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर द्रुपदने भी महामना हिरण्यवर्माके पास वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणको दूत बनाकर भेजा ॥ २५ ॥

समागम्य तु राज्ञा स दशार्णाधिपतिना तदा
तद् वाक्यमाददे राजन् यदुक्तं द्रुपदेन ह ॥ २६ ॥

राजन्! उन्होंने दशार्णनरेशके पास जाकर द्रुपदने जो कुछ कहा था, वह सब दुहरा दिया ॥ २६ ॥

आगमः क्रियतां व्यक्तं कुमारो वै सुतो मम
मिथ्यैतदुक्तं केनापि तन्न श्रद्धेयमित्युत ॥ २७ ॥

राजन्! आप आकर स्वयं परीक्षा कर लें, मेरा यह कुमार पुत्र है (कन्या नहीं)। आपसे किसीने झूठे ही आकर कन्या होनेकी बात कह दी है, जो विश्वास करनेके योग्य नहीं है' ॥ २७ ॥

ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा
विमर्शयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः।
सम्प्रेषयामास सुचारुरूपाः
शिखण्डिनं स्त्री पुमान् वेति वेत्तुम् ॥ २८ ॥

राजा द्रुपदका यह उत्तर सुनकर हिरण्यवर्माने कुछ विचार किया और अत्यन्त मनोहर रूपवाली कुछ श्रेष्ठ युवतियोंको यह जाननेके लिये भेजा कि शिखण्डी स्त्री है या पुरुष ॥ २८ ॥

ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा
प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम्।
शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र
दशार्णराजाय महानुभावम् ॥ २९ ॥

कौरवराज! उन भेजी हुई युवतियोंने वास्तविक बात जानकर राजा हिरण्यवर्माको बड़ी प्रसन्नताके साथ सब कुछ बता दिया। उन्होंने दशार्णराजको यह विश्वास दिला दिया कि शिखण्डी महान् प्रभावशाली पुरुष है ॥ २९ ॥

ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमानथ
सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वासमुवास ह ॥ ३० ॥

इस प्रकार परीक्षा करके राजा हिरण्यवर्मा बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने सम्बन्धीसे मिलकर बड़े हर्ष और आनन्दके साथ वहाँ निवास किया ॥ ३० ॥

शिखण्डिने च मुदितः प्रादाद् वित्तं जनेश्वरः
हस्तिनोऽश्वांश्च गाश्चैव दास्योऽथ बहुलास्तथा ॥ ३१ ॥

राजाने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने जामाता शिखण्डीको भी बहुत-से हाथी, घोड़े, गाय, धन और दासियाँ दीं ॥ ३१ ॥

पूजितश्च प्रतिययौ निर्भर्त्स्य तनयां किल।
विनीतकिल्बिषे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे।
प्रतियाते दशार्णे तु हृष्टरूपा शिखण्डिनी ॥ ३२ ॥

इतना ही नहीं, उन्होंने झूठी खबर भेजनेके कारण अपनी पुत्रीको भी झिड़कियाँ दीं। फिर वे राजा द्रुपदसे सम्मानित होकर लौट गये। अपराध-निवृत्त हो प्रसन्नचित्त हुए दशार्णराज हिरण्यवर्माके प्रसन्नतापूर्वक लौट जानेपर शिखण्डिनीको भी बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३२ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः
लोकयात्रां प्रकुर्वाणः स्थूणस्यागान्निवेशनम् ॥ ३३ ॥

उधर कुछ कालके पश्चात् नरवाहन कुबेर लोकोंमें भ्रमण करते हुए स्थूणाकर्णके घरपर आये ॥ ३३ ॥

स तद्गृहस्योपरि वर्तमान
आलोकयामास धनाधिगोप्ता।
स्थूणस्य यक्षस्य निवेशनं तत्
स्वलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रम् ॥ ३४ ॥
लाजैश्च गन्धैश्च तथा वितानै-
रभ्यर्चितं धूपनधूपितं च।
ध्वजैः पताकाभिरलंकृतं च
भक्ष्यान्नपेयामिषदत्तहोमम् ॥ ३५ ॥

उसके घरके ऊपर आकाशमें स्थित हो धनाध्यक्ष कुबेरने उसका भली-भाँति अवलोकन किया। स्थूणाकर्ण यक्षका वह भवन विचित्र हारोंसे सजाया गया था। खसकी और अन्य सुगन्धित पदार्थोंकी सुगन्धसे भी अर्चित तथा चँदोवोंसे सुशोभित था। उसमें सब ओर धूपकी सुगन्ध फैली हुई थी। अनेकानेक ध्वज और पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। वहाँ भक्ष्य, भोज्य, पेय आदि सभी वस्तुएँ बिखरी थीं और विविध द्रव्योंद्वारा होम किया जाता था। यक्षराज कुबेरने उस भवनमें प्रवेश किया ॥ ३४-३५ ॥

तद् स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलंकृतम्
मणिरत्नसुवर्णानां मालाभिः परिपूरितम् ॥ ३६ ॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यं सिक्तसम्मृष्टशोभितम्

स्थानमीदृक् यक्षपतिस्तावत् वाक्यमनुमोदमान ॥ ३७ ॥
स्वलङ्कृतमिदं वेश्म त्वमुमयासीदति कथम्
मोदयति मा चैव कथमल्प न मन्दधी ॥ ३८ ॥

कुबेरने उनके निवासस्थानको जब उमाके गुणोंसहित अति रत्न तथा सुवर्णकी मालाओंसे परिपूर्ण और उनके पुष्पोंकी सुगन्धसे व्याप्त तथा झाड़-बुहार और धो-पोंछ देनेके कारण शोभासम्पन्न देखकर उमाके अन्तःपुरके सेवकोंसे पूछा ... यह भवन तो मेरे प्रकारसे सजाया हुआ दिखायी देता है। इससे सिद्ध है कि यह परम ही है, तथापि यह मुझे मेरा नहीं जान पड़ता क्यों नहीं है ॥ ३८ ॥

वाक्यावसाने स मन्यमानो नोपसर्पति
तस्मात् तस्मै मया वाच्यं याति मामिति ॥ ३९ ॥

यह मन्दबुद्धि क्या मुझे आप हुआ जानकर भी मेरे निकट नहीं आ रहा है? इसलिये उसे मरना उचित दण्ड देना चाहिये, ऐसा मेरा विचार है ॥ ३९ ॥

वचो उत्तु

कुपथस्थ कुत्र वाक्यं यक्षो अन्तःशिखरस्थित
तथा निर्गमिष्ये कर्मिकस्थित् साक्षात् कुबेरस्तत्क्षणम् ॥ ४० ॥
आहारीलुब्धस्य यस्य क्रोधभूयो तिष्ठत पृष्ठ
नोपसर्पति तन्नाथी यक्षाच श्रीसरूपवान् ॥ ४१ ॥

कहोंने कहा—राजन्! मालूम होता है कि यह बातचीत इन्द्रियोंको आसक्ति स्वरूप हुई है। उनका किया विचार व तथा इन्होंने अपना पुरुषत्व दे दिया है और उनका स्त्रीत्व ग्रहण कर लिया है। इसके कारण अब बहुत ही वह पहले ही रहता है। संभवतः इसके कारण ही वे तुम्हारा आदर पास नहीं आ रहे हैं ॥ ४१ ॥

गन्धवाह् मारुताद् राजन् स्थूणोत्पत्त समर्पति
कुम्भ कुरु यथान्याय विमानस्थितं तिष्ठत ॥ ४२ ॥

महाराज! इसी कारण स्थूणाकर्ण आपके सामने नहीं उपस्थित हो रहे हैं। यह सुनकर आप जैसा उचित समझें करें। अब आपका विचार नहीं हम पालन करेंगे ॥ ४२ ॥

अहो! पश्य वपुः इति तस्यो यक्षाधिपोऽब्रवीत्
कर्णादिभिः निग्रहः तस्य सत्कृतस्य पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

तब यक्षराजने कहा—स्थूणाकर्णको यहीं तुरंत ले आओ। मैं उसे दण्ड दूँगा ... यह बात उन्होंने बार-बार दुहरायी ॥ ४३ ॥

सोऽभ्यागच्छत यक्षस्त्रमातुल पृच्छ्यमानोऽपि
स्त्रीरूपो महाराज तस्थौ वीडासमन्वित ॥ ४४ ॥

राजन्! इस प्रकार कुबेरके बार-बार बुलानेपर वह महाराज यह स्त्रीरूपधारी स्थूणाकर्ण लज्जित होकर उनके सामने खड़ा हो गया ॥ ४४ ॥

ते शशापाथ संक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन
एवमेव भवत्वद्य पापस्य गुह्यकाः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन! उसे इस रूपमें देखकर कुबेर अत्यन्त कुपित हो उठे और शाप देते हुए बोले—गुह्यको! इस पापी स्थूणाकर्णका यह स्त्रीत्व अब ऐसा ही बना रहे ॥ ४६ ॥

ततोऽब्रवीद् यक्षपतिर्महात्मा
यस्मादद्यावमन्येह यक्षान्
शिखण्डिने लक्षणं पापबुद्धे
स्त्रीलक्षणं चाग्रहीः पापकर्मन् ॥ ४६ ॥
अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धे यस्मादेतत् त्वया कृतम्
तस्मादद्य प्रभृत्येव स्त्री त्वं स च पुमांस्तथा ॥ ४७ ॥

तदनन्तर महात्मा यक्षराजने उससे कहा—पापबुद्धि और पापाचारी यक्ष! तूने यक्षोंका तिरस्कार करके शिखण्डीको अपना पुरुषत्व दे दिया और उसका स्त्रीत्व ग्रहण कर लिया है। दुर्बुद्धे! तूने जो यह अभूतपूर्व काम कर डाला है, इसके कारण आजसे तू स्त्री ही बना रहे और शिखण्डी पुरुषरूपमें ही रह जाय ॥ ४७ ॥

ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल
स्थूणस्यार्थे कुरुष्वान्तं शापस्येति पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

तब यक्षोंने अनुनय विनय करके स्थूणाकर्णके लिये कुबेरको प्रसन्न किया और बार-बार प्रार्थनापूर्वक कहा—भगवन्! इस शापका अन्त कीजिये ॥ ४८ ॥

ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचानुगामिनः
सर्वान् यक्षगणांस्तात शापस्यान्तचिकीर्षया ॥ ४९ ॥

तात! तब महात्मा यक्षराजने स्थूणाकर्णके अनुगामी समस्त यक्षगणोंसे उसके शापका अन्त कर देनेकी इच्छासे इस प्रकार कहा— ॥ ४९ ॥

शिखण्डिनि हते यक्षाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यते
स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः ॥ ५० ॥
इत्युक्त्वा भगवान् देवो यक्षराजः सुपूजितः
प्रययौ सहितः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः ॥ ५१ ॥

यक्षो! शिखण्डीके मारे जानेपर यह स्थूणाकर्ण फिर अपना रूप प्राप्त कर लेगा। अतः अब इस निर्भय हो जाना चाहिये। ऐसा कहकर महामना भगवान् यक्षराज कुबेर उन यक्षोंद्वारा पूजित होकर निमेषमात्रमें ही अभीष्ट स्थानपर पहुँच जानेवाले उन अपने सेवकोंके साथ वहाँसे चल गये ॥ ५१ ॥

स्थूणस्तु शापं सम्प्राप्य तत्रैव न्यवसत् तदा
समये चागमत् तूर्णं शिखण्डी तं क्षपाचरम् ॥ ५२ ॥

उस समय कुबेरका शाप पाकर स्थूणाकर्ण वहीं रहने लगा। शिखण्डी पूर्वनिश्चित समयपर उस निशाचर स्थूणाकर्णके पास तुरंत आ गया ॥ ५२ ॥

सोऽभिगम्याब्रवीद् वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति
तमब्रवीत् ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

उसके निकट जाकर शिखण्डीने कहा—भगवन्! मैं वादेके अनुसार उपस्थित हूँ। तब स्थूणाकर्णने उससे बार-बार कहा—मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ५३ ॥

आर्जवेनागतं दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम्

सर्वमेव यथावृत्तमाचख्युर्हि शिखण्डिने ॥ ५४ ॥

राजकुमार शिखण्डीको बतलाया कि जैसा हुआ था, उससे अपने अनुसार सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया ॥ ५४ ॥

यक्ष उवाच

कृतो वैश्रवणेनाहं त्वत्कृते पार्थिवात्मज। गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान् यथासुखम् ॥ ५५ ॥

यक्षने कहा—राजकुमार! तुम्हारे लिये ही कुबेरने मुझे शाप दे दिया है। अब जाओ, इच्छानुसार सारे जगत्‌में सुखपूर्वक विचरो ॥ ५५ ॥

दिष्टमेतत् पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम्। गमनं तव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम् ॥ ५६ ॥

मैं इसे अपना प्रारब्ध ही समझता हूँ। मेरे पास तुम्हारा यहाँसे जाना और उसी समय कुबेरका यहाँ आकर दर्शन देना हुआ, यह दैवका ही विधान है ॥ ५६ ॥

भीष्म उवाच

एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत। प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महता युतः ॥ ५७ ॥

भीष्म कहते हैं—भारत! स्थूणाकर्णके ऐसा कहनेपर शिखण्डी बड़े हर्षके साथ अपने नगरको लौट आया ॥ ५७ ॥

पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः। द्विजातीन् देवताश्चैव चैत्यानथ चतुष्पथान् ॥ ५८ ॥

द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना। मुदं च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः ॥ ५९ ॥

फिर प्रसन्नचित्त होकर द्रुपदने अपने पुत्र शिखण्डीके साथ नाना प्रकारके बहुमूल्य उपचार द्वारा देवताओं, ब्राह्मणों, चैत्य वृक्षों तथा चौराहोंका पूजन किया। बन्धु-बान्धवोंसहित उन्हें महान् हर्ष प्राप्त हुआ ॥ ५८-५९ ॥

शिष्यार्थं प्रददौ चापि द्रोणाय कुरुपुङ्गव। शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥ ६० ॥

महाराज! कुरुश्रेष्ठ! द्रुपदने अपने पुत्र शिखण्डीको, जो पहले कन्याके रूपमें उत्पन्न हुआ था, द्रोणाचार्यको सेवामें धनुर्वेदकी शिक्षाके लिये सौंप दिया ॥ ६० ॥

प्रतिपेदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मजः। शिखण्डी सह युष्माभिर्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार तुमलोगोंके साथ ही शिखण्डी तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने भी चारों पादोंसे युक्त धनुर्वेदका अध्ययन किया ॥ ६१ ॥

मम त्वेतच्चरास्तात यथावत् प्रत्यवेदयन्। जडान्धबधिराकारा ये युक्ता द्रुपदे मया ॥ ६२ ॥

मैंने द्रुपदके नगरमें कुछ गुप्तचर नियुक्त कर दिये थे, जो मूक, अन्धे और बहरेके समान बने रहते थे। उन्होंने मुझे यह सब समाचार ठीक-ठीक बताया था ॥ ६२ ॥

एवमेष महाराज स्त्रीपुमान् द्रुपदात्मजः। स सम्भूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥ ६३ ॥

महाराज! कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार यह रथियोंमें उत्तम द्रुपदकुमार शिखण्डी पहले स्त्रीरूपमें उत्पन्न होकर पीछे पुरुष हुआ था ॥ ६३ ॥

ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बा नामेति विश्रुता। द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥ ६४ ॥

भरतश्रेष्ठ! काशिराजकी ज्येष्ठ कन्या जो अम्बा नामसे विख्यात थी, वही द्रुपदके कुलमें शिखण्डीके रूपमें उत्पन्न हुई है ॥ ६४ ॥

नाहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम्। मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाप्युत ॥ ६५ ॥

यदि यह हाथमें धनुष लेकर युद्धकी इच्छासे मेरे सामने आ जाय तो मैं न तो दो घड़ी भी इसकी ओर देखूँगा और न इसपर प्रहार ही करूँगा ॥ ६५ ॥

व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम्। स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चापि स्त्रीनाम्नि स्त्रीस्वरूपिणि ॥ ६६ ॥

न मुञ्चेयमहं बाणानिति कौरवनन्दन।

कौरवनन्दन! मेरा यह व्रत सदा सम्पूर्ण भूमण्डलमें प्रसिद्ध है कि जो स्त्री हो, पहले स्त्री रहकर पुरुष हुआ हो, जिसका नाम स्त्रीके समान हो तथा जिसका रूप स्त्रीके समान हो, ऐसे लोगोंपर मैं बाण नहीं छोड़ सकता ॥ ६६ ॥

न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ॥ ६७ ॥

एतत् तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः। ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥ ६८ ॥

तात! मैं इस कारणसे भी शिखण्डीको नहीं मार सकता। शिखण्डीके जन्मका यह यथार्थ वृत्तान्त मैं जानता हूँ। अतः यह समरभूमिमें यदि आततायी होकर आवे तो भी मैं इसे नहीं मारूँगा ॥ ६७-६८ ॥

यदि भीष्मः स्त्रियं हन्यात् सन्तः कुर्युर्विगर्हणम्। नैनं तस्माद्धनिष्यामि दृष्ट्वापि समरे स्थितम् ॥ ६९ ॥

यदि भीष्म स्त्रीका वध करे तो साधु पुरुष उसकी निन्दा करेंगे; अतः शिखण्डीको समरभूमिमें खड़ा देखकर भी मैं इसे नहीं मारूँगा ॥ ६९ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा। मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥ ७० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सब सुनकर कुरुवंशी राजा दुर्योधनने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर भीष्मके लिये शिखण्डीका वध न करना उचित ही मान लिया ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्डिपुंस्त्वप्राप्तौ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें शिखण्डीको पुरुषत्वकी प्राप्तिविषयक एक सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७०½ श्लोक हैं)

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्याय

दुर्योधनके पूछनेपर भीष्म आदिके द्वारा अपनी अपनी शक्तिका वर्णन

संजय उवाच

प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब वह रात बीती और प्रभात हुआ, उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने सारी सेनाके बीचमें पुनः पितामह भीष्मसे पूछा ॥ १ ॥

पाण्डवेयस्य गाङ्गेय यदेतत् सैन्यमुद्यतम् ।
प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥ २ ॥
भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः ।
लोकपालसमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमम् ॥ ३ ॥
अप्रधृष्यमनावार्यमुद्धूतमिव सागरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥ ४ ॥

गङ्गानन्दन! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी यह जो सेना युद्धके लिये उद्यत है, इसमें बहुत-से पैदल, हाथीसवार और घुड़सवार भरे हुए हैं। यह सेना बड़े-बड़े महारथियोंसे परिपूर्ण है। लोकपालोंके समान बलशाली एवं महाधनुर्धर भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न आदि वीर इस सेनाकी रक्षा करते हैं। यह उमड़ते हुए समुद्रके समान दुर्धर्ष प्रतीत होती है। इसे आगे बढ़नेसे रोकना असम्भव है। देवता भी इस महान् युद्धमें इस सेना-समुद्रको क्षुब्ध नहीं कर सकते ॥ २—४ ॥

केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते ।
आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः ॥ ५ ॥
कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः ।
दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥ ६ ॥

महातेजस्वी गङ्गानन्दन! आप कितने समयमें इस सेनाका विनाश कर सकते हैं? महाधनुर्धर आचार्य द्रोण, महाबली कृपाचार्य, युद्धकी श्लाघा रखनेवाले कर्ण तथा द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामा कितने समयमें इस सेनाका संहार कर सकते हैं; क्योंकि मेरी सेनामें आप सभी लोग दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता हैं ॥ ५-६ ॥

एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे ।
हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ॥ ७ ॥

महाबाहो! मैं यह जानना चाहता हूँ। इसके लिये मेरे हृदयमें सदा अत्यन्त कौतूहल बना रहता है; अतः आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच

अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत् पृथिवीपते ।
बलाबलममित्राणां तेषां यदिह पृच्छसि ॥ ८ ॥

भीष्मजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ! पृथ्वीपते! तुम जो शत्रुओंके बलाबलके विषयमें पूछ रहे हो, यह तुम्हारे योग्य ही है ॥ ८ ॥

शृणु राजन् मम रणे या शक्तिः परमा भवेत् ।
शस्त्रवीर्यं रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥ ९ ॥

राजन्! महाबाहो! युद्धमें मेरी जो सबसे अधिक शक्ति है और मेरे अस्त्रोंका तथा दोनों भुजाओंका जितना बल है, वह सब बतलाता हूँ, सुनो ॥ ९ ॥

आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः ।
मायायुद्धेन मायावी इत्येतद् धर्मनिश्चयः ॥ १० ॥

साधारण व्यक्तिके साथ सरलतापूर्वक ही युद्ध करना चाहिये और जो मायावी है, उसका सामना मायायुद्धसे ही करना चाहिये—यही धर्मशास्त्रका निश्चय है ॥ १० ॥

हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम् ।
दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्राग्याह्निकं मम ॥ ११ ॥

महाभाग! मैं प्रतिदिन पाण्डवोंकी सेनाके एक भागको अपने दैनिक भागके रूपमें कल्पित करके उसका वध कर सकता हूँ ॥ ११ ॥

योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते ।
सहस्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम ॥ १२ ॥

महाद्युते! दस हजार योद्धाओं तथा एक हजार रथियोंको मैंने अपना एक भाग मान रखा है ॥ १२ ॥

अनेनाहं विधानेन संनद्धः सततोत्थितः ।
क्षपयेयं महत् सैन्यं कालेनानेन भारत ॥ १३ ॥

भारत! इस विधानसे मैं निरन्तर उद्यत और सन्नद्ध होकर इस विशाल सेनाका इतने ही समयमें नाश कर सकता हूँ ॥ १३ ॥

मुञ्चेयं यदि वास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः ।
शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ॥ १४ ॥

भारत! यदि मैं युद्धमें स्थित होकर लाखों वीरोंका वध करनेवाले महान् अस्त्रोंका प्रयोग करूँ तो एक महीनेमें पाण्डवोंकी सारी सेनाको नष्ट कर सकता हूँ ॥ १४ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वा भीष्मस्य तद् वाक्यं राजा दुर्योधनस्तदा ।
पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम् ॥ १५ ॥
आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ १६ ॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र! भीष्मका यह वचन सुनकर राजा दुर्योधनने आङ्गिरस ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे पूछा—'आचार्य! आप कितने समयमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सैनिकोंका संहार कर सकते हैं?' यह प्रश्न सुनकर द्रोणाचार्य हँसते हुए-से बोले ॥ १५-१६ ॥

स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः ।
शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७ ॥

महाबाहो! अब तो मैं बूढ़ा हो गया। मेरी प्राणशक्ति और चेष्टा मन्द हो गयी है, तो भी अपने शस्त्रोंकी अग्निसे पाण्डवोंकी विशाल वाहिनीको भस्म कर डालूँगा।

एवं भीष्मः शक्तस्तावदारोपेति मतिर्मम।
यथा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम्॥ ॥

जैसे शान्तनुनन्दन भीष्म एक मासमें पाण्डवसेनाका विनाश कर सकते हैं, उसी प्रकार मैं भी उतने ही समयमें यह कर सकता हूँ, ऐसा मेरा विश्वास है। यही मेरी सबसे बड़ी शक्ति है और यही मेरा अधिक-से-अधिक बल है।

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम्॥१९॥

कृपाचार्यने दो महीनोंमें पाण्डवसेनाके संहारकी बात कही। परंतु अश्वत्थामाने दस ही दिनोंमें शत्रुसेनाके संहारकी प्रतिज्ञा कर ली।

कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्।
तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः॥२०॥

जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह।
न हि तावद् रणे पार्थं बाणखड्गधनुर्धरम्॥२१॥
वासुदेवसमायुक्तं रथेनायान्तमाहवे।
समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे।
शक्यमेवं च भूयोऽपि त्वया वक्तुं यथेष्टतः॥२२॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मादिशक्तिकथने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें भीष्म आदिकी शक्तिका वर्णनविषयक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१९३॥

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा अपनी और अपने सहायकोंकी तथा युधिष्ठिरकी भी शक्तिका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान् भ्रातॄनुपह्वरे।
आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत्॥१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ जनमेजय! कौरव सेनामें जो बातचीत हुई थी, उसका समाचार पाकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको एकान्तमें बुलाकर इस प्रकार कहा।

युधिष्ठिर उवाच

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम।
ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम्॥२॥
दुर्योधनः किलापृच्छदापगेयं महाव्रतम्।
केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो॥३॥

युधिष्ठिर बोले—धृतराष्ट्रपुत्रकी सेनामें जो मेरे गुप्तचर नियुक्त हैं, उन्होंने मुझे यह समाचार दिया है कि बीती हुई रात्रिमें दुर्योधनने महान् व्रतधारी गङ्गानन्दन भीष्मसे यह प्रश्न किया था कि प्रभो! आप पाण्डवोंकी सेनाका कितने समयमें संहार कर सकते हैं?॥२-३॥

मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः।
तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रत्यजानत॥४॥
गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम्।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्॥५॥

भीष्मजीने धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह उत्तर दिया कि मैं एक महीनेमें पाण्डव-सेनाका विनाश कर सकता हूँ। ... द्रोणाचार्यने भी उतने ही समयमें ... कृपाचार्यने इससे दूना समय बताया ... महान् अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामाने दस रातमें ... प्रतिज्ञा की है॥४-५॥

तथा दिव्यास्त्रवित् कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि।
पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं स सैन्यं प्रतिजज्ञिवान्॥६॥

... कौरवसभामें पूछे जानेपर ... कर्णने पाँच दिनोंमें सेनाके संहारकी प्रतिज्ञा की है॥६॥

तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः।
कालेन कियता शत्रून् क्षपयेरिति फाल्गुन॥७॥

अतः अर्जुन! मैं भी तुम्हारा ... सुनना चाहता हूँ। ... तुम कितने समयमें शत्रुओंको नष्ट कर सकते हो?॥७॥

एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनंजयः।
वासुदेवं समालोक्य वचनं प्रत्यभाषत॥८॥

राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर निद्राविजयी अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखकर यह बात कही—॥८॥

सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः।
असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः॥९॥

महाराज! निःसंदेह ये सभी महात्मा ... अस्त्रविद्याके विद्वान् तथा विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले हैं। ... दिनोंमें शत्रुसेनाको मार सकते हैं, इसमें संशय नहीं है॥९॥

अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम्।
हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान्॥१०॥

अमरानपि लोकांस्त्रीन् सर्वान् स्थावरजङ्गमान्।
भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः॥ ११॥

परंतु इससे आपके मनमें संताप नहीं होना चाहिये ... ऐसा मेरा विश्वास है।

यत् तद् घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम।
कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते॥ १२॥

भगवान् ... द्वन्द्वयुद्धके समय मुझे ... प्रदान किया था, वह मेरे पास मौजूद है।

यद् युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन्।
प्रयुङ्क्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्तते॥ १३॥

पुरुषसिंह! प्रलयकालमें ... संहार करते समय भगवान् पशुपति जिस अस्त्रका प्रयोग करते हैं, वही ... मेरे पास विद्यमान है।

तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः।
न च द्रोणसुतो राजन् कुत एव तु सूतजः॥ १४॥

राजन्! उसे न तो गङ्गानन्दन भीष्म जानते हैं, न द्रोणाचार्य जानते हैं, न कृपाचार्य जानते हैं और न द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ही इसका पता है; फिर सूतपुत्र कर्ण तो इसे जान ही कैसे सकता है?

न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम्।
आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान्॥ १५॥

परंतु युद्धमें साधारण मनुष्योंको दिव्यास्त्रोंद्वारा मारना उचित नहीं है ... सरलतापूर्ण युद्धके द्वारा ही शत्रुओंको जीतेंगे।

तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तव पार्थिव।
सर्वे दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः॥ १६॥

राजन्! ये सभी पुरुषसिंह जो हमारे सहायक हैं, दिव्यास्त्रोंका ज्ञान रखते हैं और सभी युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले हैं॥

वेदान्तावभृथस्नाताः सर्वे एतेऽपराजिताः।
निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव॥ १७॥

इन सबने वेदान्तका अध्ययन करके यज्ञान्त-स्नान किया है। ये सभी कभी पराजित न होनेवाले वीर हैं। पाण्डुनन्दन! ये लोग समरभूमिमें देवताओंकी सेनाको भी नष्ट कर सकते हैं॥

शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ॥ १८॥
विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि।

शिखण्डी, सात्यकि, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, भीमसेन, दोनों भाई नकुल-सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा तथा राजा विराट और द्रुपद भी युद्धमें भीष्म और द्रोणाचार्यकी समानता रखनेवाले हैं॥

शङ्खश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः॥ १९॥
पुत्रोऽस्याञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः।
शैनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः॥ २०॥

महाबाहु शङ्ख, महाबली घटोत्कच, महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न ... पुत्र अञ्जनपर्वा तथा समरकुशल महाबाहु सात्यकि—ये सभी आपके सहायक हैं॥

अभिमन्युर्महाबाहुर्द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः।
स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि वा॥ २१॥

महाबाहु अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी आपके साथ हैं ही। आप स्वयं भी तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हैं॥

क्रोधाद् यं पुरुषं पश्येस्त्वं वासवसमद्युते।
स क्षिप्रं न भवेद् व्यक्तमिति त्वां वेद्मि कौरव॥ २२॥

इन्द्रके समान तेजस्वी कुरुनन्दन! आप क्रोधपूर्वक जिस पुरुषको देख लें, वह तत्काल ही नष्ट हो जायगा। आपके इस प्रभावको मैं जानता हूँ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि ... चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥

१ ... [illegible] ... ४

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्याय

कौरवसेनाका रणके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः।
दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान् प्रति॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे प्रेरित हो सब राजा पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके लिये चले॥

आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः।
गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्य हुताग्नयः॥ २॥

सबने स्नान करके पवित्र हो माला और श्वेत वस्त्र धारण किये, अग्निमें आहुतियाँ दीं। फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर ध्वजाओंसे सुशोभित हुए॥ २॥

सर्वे महाबला शूराः सर्वे सुसंशितव्रताः
सर्वे यज्ञकृतश्चैव सर्वे बाहुबलास्तथा ॥ ३ ॥

वे सभी बेदमन्त्र ... उत्तम रीतिसे व्रतका पालन करनेवाले थे। सभी यज्ञकारी तथा युद्ध विद्याके सुप्रसिद्ध थे।

महत्सेनु नरेन्द्राणाम् [illegible] महाबला
[illegible] ॥ ४ ॥

वे महाबली वीर युद्धमें उत्तम ... आकर ... बैठ गये ... उन सबका चित्त एकाग्र था और वे सभी एक दूसरेका प्रिय ... करते थे।

[illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible] और [illegible] ... आगे बढ़ चले।

[illegible]
[illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] शकुनि [illegible]
[illegible] ॥ ७ ॥
[illegible] महाबलाः
[illegible] द्वितीये निवेशपुरे ॥ [illegible] ॥

[illegible] त्रिपुरास [illegible] शकुनि [illegible] पूर्व और उत्तर दिशामें ... एक शिविर ... शिविर और ... महाबली भीष्म ... सेना ... आगे ... दूसरे ... इसमें सुसज्जित होकर ...

कृतवर्मा सह [illegible] महारथः
दुर्योधनाय [illegible] ॥ ९ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥

सेनापति कृतवर्मा ... महाराज दुर्योधन ... भूरिश्रवा ... शल्य ... दुर्योधन ... करके उसके पीछे-पीछे (युद्धके लिये सेनामें) चले।

ते समेत्य [illegible] धार्तराष्ट्रा महाबलाः
कुरुक्षेत्रस्य [illegible] दक्षिणाः ॥ १ ॥

[illegible] महाबली ... आरिहे

दुर्योधनस्तु [illegible] कुरुक्षेत्रे के ... पहुँचे ...
दुर्योधनस्तु शिबिरं [illegible] भारत
यथैव हस्तिनपुरं द्वितीयं समलङ्कृतम् ॥ १२ ॥
न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिबिरस्य वा
कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥ १३ ॥

भारत! दुर्योधनने अपने ... निवासस्थान ... दूसरे हस्तिनापुर ... राजेन्द्र! ... निवास ... शिबिर और हस्तिनापुर नगरमें ... अन्तर है ... नहीं ... थे।

तादृशान्येव दुर्गाणि [illegible] महीपतिः
[illegible] सहस्रशः ॥ १४ ॥

... राजाओंके लिये ... बनवाये ...

पञ्चयोजनमुत्सृज्य [illegible]
सेनानिवेशास्ते [illegible] ॥ [illegible] ॥

... सैनिकोंके ... छावनी ... पाँच योजन ... गयी।

तत्र ते पृथिवीपालाः [illegible]
विविशुः शिबिराण्याशु द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥ १६ ॥

... राजा ... हजार ... अनुसार ...

तथा तु [illegible] राजा दुर्योधनः [illegible]
व्यादिदेश [illegible] ॥ १७ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥

... उन ... मनुष्योंके ... और ... थी ... होता था।

[illegible]
सर्वाँल्लोकान् कौरव्य [illegible] ॥ १९ ॥

... मनुष्य आते ... दुर्योधन ... देखभाल करता था।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि [illegible] कौरवसैन्य[illegible] ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत [illegible] कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थानविषयक [illegible] अध्याय पूरा हुआ ॥ [illegible] ॥

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्याय

पाण्डव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धृष्टद्युम्नमुखान् वीरांश्चोदयामास भारत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इसी प्रकार कुन्तीनन्दन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न आदि वीरोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम् ।
सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथादिशत् ॥ २ ॥

चेदि, काशि और करूषदेशोंके अधिनायक दृढ़ पराक्रमी शत्रुनाशक सेनापति धृष्टकेतुको भी प्रस्थान करनेका आदेश दिया ॥ २ ॥

विराटं द्रुपदं चैव युयुधानं शिखण्डिनम् ।
पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३ ॥

विराट, द्रुपद, सात्यकि, शिखण्डी तथा महाधनुर्धर पाञ्चाल वीर युधामन्यु और उत्तमौजा—इन सबको भी आज्ञा दी ॥ ३ ॥

ते शूराश्चित्रवर्माणस्तप्तकुण्डलधारिणः ।
आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः ॥ ४ ॥
अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव ।

वे महाधनुर्धर शूरवीर विचित्र कवच और तपाये हुए सोनेके कुण्डल धारण किये घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई यज्ञवेदियोंकी अग्नि तथा आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ग्रहोंकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

अथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभः ॥ ५ ॥
दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः ।
सेना युधिष्ठिरः [illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] समाज्ञाप्य भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ।
गजाश्वमनुजानां च ये च शिल्पोपजीविनः ॥ ७ ॥

तदनन्तर यथायोग्य सम्पूर्ण सेनाका सत्कार करके नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने उन सैनिकोंको प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी और सेना तथा सम्पूर्ण सैनिकोंके लिये उत्तम भोजन-सामग्री प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी। उन्होंने हाथी, घोड़े, मनुष्य और शिल्पजीवी पुरुषों—सबके लिये भोजन प्रस्तुत करनेका आदेश दिया ॥ ५–७ ॥

अभिमन्युं बृहन्तं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नमुखानेतान् प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ॥ ८ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्न आदिके साथ अभिमन्यु, बृहन्त तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सबको प्रथम सेनादलके साथ भेजा ॥ ८ ॥

भीमं च युयुधानं च पाण्डवं च धनंजयम् ।
द्वितीयं प्रेषयामास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

भीमसेन, सात्यकि तथा पाण्डुनन्दन अर्जुनको युधिष्ठिरने द्वितीय सेनादलके साथ भेजा ॥ ९ ॥

भाण्डं समारोपयतां चरतां सम्प्रधावताम् ।
हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ १० ॥

कहीं हर्षमें भरे हुए कुछ योद्धा सामग्रियोंसे लदी गाड़ी चलाते, कुछ इधर-उधर घूमते और कुछ लोग सब ओर दौड़ लगाते थे। उन सबका कोलाहल मानो स्वर्गलोकतक छू रहा था ॥ १० ॥

स्वयमेव ततः पश्चाद् विराटद्रुपदान्वितः ।
तथापरैर्महीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् राजा विराट और द्रुपदके साथ दूसरे भूपालोंसहित स्वयं राजा युधिष्ठिर चले ॥ ११ ॥

भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नेन पालिता ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १२ ॥

भयंकर धनुर्धरोंसे भरी हुई और धृष्टद्युम्नके द्वारा सुरक्षित वह सेना उस समय कहीं स्थिर और कहीं चलती हुई [illegible] गङ्गाके समान दिखायी देती थी ॥ १२ ॥

ततः पुनरनीकानि व्ययोजयत बुद्धिमान् ।
मोहयन् धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिश्चयम् ॥ १३ ॥

थोड़ी दूर जाकर बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रके पुत्रोंके बौद्धिक निश्चयमें भ्रम उत्पन्न करनेके लिये अपनी सेनाओंका पुनः व्यूह बनाया ॥ १३ ॥

द्रौपदेयान् महेष्वासानभिमन्युं च पाण्डवः ।
नकुलं सहदेवं च सर्वांश्चैव प्रभद्रकान् ॥ १४ ॥
दश चाश्वसहस्राणि द्विसाहस्रांश्च दन्तिनः ।
अयुतं च पदातीनां रथाः पञ्चशतास्तथा ॥ १५ ॥
भीमसेनं च दुर्धर्षं प्रथमं प्रादिशद् बलम् ।

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने द्रौपदीके महाधनुर्धर पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, समस्त प्रभद्रक वीर, दस हजार घुड़सवार, दो हजार हाथीसवार, दस हजार पैदल तथा पाँच सौ रथी—इनको प्रथम दुर्धर्ष दलके रूपमें भीमसेनकी अध्यक्षतामें दे दिया ॥ १४-१५ ॥

मध्यमे च विराटं च जयत्सेनं च पाण्डवः ॥ १६ ॥
महारथौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ ॥ १७ ॥
अन्वयातां तदा मध्ये वासुदेवधनंजयौ ।

बीचके दलमें राजाने विराट, जयत्सेन तथा पाञ्चालदेशीय महारथी युधामन्यु और उत्तमौजाको रखा। ये दोनों गदा और धनुष धारण किये थे। दोनों ही (युधामन्यु और उत्तमौजा) बड़े पराक्रमी और मनस्वी थे। उस समय इस सेनाके मध्यभागमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन सेनाके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ १६–१७½ ॥

बभूवुरतिसंरब्धाः कृतप्रहरणा नराः ॥ १८ ॥
तेषां विंशतिसाहस्रा ध्वजाः शूरैरधिष्ठिताः ।

पञ्च नागसहस्राणि रथश्चाष्ट सर्वशः ॥ १९ ॥

उस समय जो योद्धा बहुत कम युद्ध कर चुके थे … आवेशमें भरे हुए थे, उनकी संख्या हजार … पीछे … चौबन्ध और बैठे हुए थे। इन … पाँच हाथ … गजारोही तथा … रथी भी थे ॥ १९ ॥

पदातयश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः।
सहस्रशोऽन्वयुः पश्चात् अग्रतश्च सहस्रशः ॥ २० ॥

धनुष बाण खड्ग और गदा धारण करनेवाले जो वीर सैनिक थे, वे सहस्रोंकी संख्यामें सेनाके आगे और पीछे चलते थे ॥ २० ॥

युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेव बलार्णवे।
तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्यवस्थिताः ॥ २१ ॥

जिस सेना … राजा युधिष्ठिर थे, उसमें बहुत-से भूमिपाल उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते थे ॥ २१ ॥

तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च।
तथा रथसहस्राणि पदातीनां च भारत ॥ २२ ॥

भारत! उसमें एक हजार हाथीसवार, दस हजार घुड़सवार, एक हजार रथी और कई सहस्र पैदल सैनिक थे ॥ २२ ॥

चेकितानः स्वसैन्येन महता पार्थिवर्षभ।
धृष्टकेतुश्च चेदीनां प्रणेता पार्थिवो ययौ ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ! अपनी विशाल सेनाके साथ चेकितान तथा चेदिराज धृष्टकेतु भी उन्हींके साथ जा रहे थे ॥ २३ ॥

सात्यकिश्च महेष्वासो वृष्णीनां प्रवरो रथः।
वृतः शतसहस्रेण रथानां प्रणुदन् बली ॥ २४ ॥

वृष्णिवंशके प्रमुख महारथी महान् धनुर्धर बलवान् सात्यकि एक लाख रथियोंसे घिरकर शत्रुओंका मर्दन करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ २४ ॥

क्षत्रदेवब्रह्मदेवौ रथस्थौ पुरुषर्षभौ।
जघनं पालयन्तौ च पृष्ठतोऽनुप्रजग्मतुः ॥ २५ ॥

क्षत्रदेव और ब्रह्मदेव ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ रथारूढ़ हो सेनाके पिछले भागकी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ २५ ॥

शकटापणवेशाश्च यानं युग्यं च सर्वशः।
तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ॥
फल्गु सर्वं कलत्रं च यत्किंचित् कृशदुर्बलम् ॥ २६ ॥
कोशसंचयवाहांश्च कोष्ठागारं तथैव च।
गजानीकेन संगृह्य शनैः प्रायाद् युधिष्ठिरः ॥

इसके सिवा और भी बहुत-से छकड़े, … दुकानें, … सवारियाँ, … तथा हाथी … थे। … अनेक … धीरे-धीरे प्रस्थान किया ॥ २६ ॥

अ … मनुष्य … और उनके … योद्धा … युधिष्ठिर … चल रहे थे ॥ २७ ॥

तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य वा विभुः ॥ २८ ॥

रथा विंशतिसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः।
हयानां दश कोट्यश्च महतां किङ्किणीकिनाम् ॥ २९ ॥

गजा विंशतिसाहस्रा ईषादन्ताः प्रहारिणः।
कुलीना भिन्नकरटा मेघा इव विसर्पिणः ॥ ३० ॥

उनके पीछे सत्यधृति, युद्धदुर्मद सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान तथा काशिराजके सामर्थ्यशाली पुत्र विभु जा रहे थे। इन सबके अनुगमन करनेवाले बीस हजार रथी … घुँघुरुओंसे सुशोभित … करोड़ … घोड़े, … बीस हजार … प्रहार करनेवाले, … कुलीन और मेघोंकी भाँति … हाथी भी … ॥ २८–३० ॥

षष्टिर्नागसहस्राणि दशान्यानि च भारत।
युधिष्ठिरस्य यान्त्यन्ये युधि सेना महात्मनः ॥ ३१ ॥

क्षरन्त इव जीमूताः प्रभिन्नकरटामुखाः।
राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२ ॥

भारत! … हजार … महात्मा युधिष्ठिरके साथ … हजार हाथी और थे, जो … बरसानेवाले बादलोंकी भाँति अपने गण्डस्थलसे मदकी धारा बहाते थे … चलते-फिरते पर्वतोंकी भाँति … युधिष्ठिरका अनुसरण कर रहे थे ॥ ३१-३२ ॥

एवं तस्य बलं भीमं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः।
यदाश्रित्याथ युयुधे धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार बुद्धिमान् कुन्तीपुत्रके पास … एक … सेना थी, जिसका आश्रय लेकर वे धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे … रहे थे ॥ ३३ ॥

ततोऽन्ये शतशः पश्चात् सहस्रायुतशो नराः।
नदन्तः प्रययुस्तेषामनीकानि सहस्रशः ॥ ३४ ॥

इन … के अतिरिक्त … पीछे … पैदल मनुष्य … सेनाएँ … चली … जा रही थीं ॥ ३४ ॥

तत्र भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च।
व्यनदन्त सहस्राणि सहस्रायुतशो नराः ॥ ३५ ॥

… उस समय … सहस्रों … मनुष्य हर्ष और उत्साहसे भरकर … थे … शंखोंकी ध्वनि कर रहे थे ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अम्बोपाख्यानपर्वणि पाण्डवसैन्यनिर्याणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत उद्योगपर्वके अन्तर्गत अम्बोपाख्यानपर्वमें पाण्डवसेनाप्रस्थानविषयक एक सौ छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९६ ॥

उद्योगपर्व सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप् छन्द (अन्य बड़े छन्द	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके	कुल योग
		अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक—६६७८	(७८)	१० [illegible]	६६[illegible]
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक—१ [illegible]	(१)	[illegible]	[illegible]
	उद्योगपर्वकी सम्पूर्ण श्लोक-संख्या		[illegible]

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

भीष्मपर्व

(जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व)

प्रथमोऽध्याय

कुरुक्षेत्रमें उभय पक्षके सैनिकोंकी स्थिति तथा युद्धके नियमोंका निर्माण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्य सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उन लीलाओंका संकलन करनेवाले महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये।

जनमेजय उवाच

कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः।
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः॥ १॥

जनमेजयने पूछा—मुने! कौरव, पाण्डव और सोमकवीरों तथा नाना देशोंसे आये हुए अन्य महामना नरेशोंने वहाँ किस प्रकार युद्ध किया? ॥ १॥

वैशम्पायन उवाच

यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः।
कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु तत् पृथिवीपते॥ २॥

वैशम्पायनजीने कहा—पृथ्वीनाथ! कौरव, पाण्डव और सोमकोंने तपोभूमि कुरुक्षेत्रमें जिस प्रकार युद्ध किया था, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ २॥

अवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः।
कौरवानभ्यवर्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः॥ ३॥

सोमकोंसहित पाण्डव तथा कौरव दोनों महाबली थे। वे एक दूसरेको जीतनेकी आशासे कुरुक्षेत्रमें उतरकर आमने-सामने डटे हुए थे ॥ ३॥

वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।
आशंसन्तो जयं युद्धे वधं वाभिमुखा रणे॥ ४॥

वे सब-के-सब वेदाध्ययनसे सम्पन्न और युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे। संग्राममें विजयकी आशा रखकर रणभूमिमें बलपूर्वक एक दूसरेके सम्मुख खड़े थे ॥ ४॥

अभियाय च दुर्धर्षां धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः॥ ५॥

इधरसे पाण्डवपक्षके योद्धा अपने-अपने सैनिकोंके सहित दुर्योधनकी दुर्धर्ष सेनाके सम्मुख जाकर पश्चिमभागमें पूर्वाभिमुख होकर ठहर गये थे।

समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिबिराणि सहस्रशः।
कारयामास विधिवत् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ६॥

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने समन्तपञ्चक क्षेत्रसे बाहर यथायोग्य हजारों शिविर बनवाये थे ॥ ६॥

शून्येव पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता।
निरश्वपुरुषा चासीद् रथकुञ्जरवर्जिता॥ ७॥

उस समय यह सारी पृथ्वी ऐसी जान पड़ती थी, मानो सूनी हो गयी हो; क्योंकि वहाँ बालक और वृद्ध ही शेष रह गये थे। सारी पृथ्वी घोड़े, हाथी, रथ और तरुण पुरुषोंसे हीन-सी हो रही थी ॥ ७॥

यावत् तपति सूर्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम्।
तावदेव समावृत्तं बलं पार्थिवसत्तम॥ ८॥

नृपश्रेष्ठ! सूर्यदेव जम्बूद्वीपके जितने भूभागमें तपते हैं, उतनी दूरीकी सेना वहाँ युद्धके लिये आ गयी थी।

एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम्।
पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान् वनानि च॥ ९॥

वहीं सब वर्णोंके लोग एक ही स्थानपर एकत्र थे। युद्धभूमिका घेरा कई योजन लम्बा था। उन सब वीरोंने वहाँके अनेक प्रदेशों, नदियों, पर्वतों और वनोंको चारों ओरसे घेर लिया था।

तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ।
आदिदेश सवाहानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम्॥ १०॥

जनमेजय! राजा युधिष्ठिरने सेना और सवारियोंसहित

उन सबके लिये उत्तमोत्तम भोजन प्रस्तुत करनेका आदेश दे दिया था ॥ १० ॥

शस्त्राणि विविधान्यस्य तेषां राजा युधिष्ठिरः ।
पद्मयेशी वैदित्यस्य ध्वजैयोऽवमित्युत ॥ ११ ॥
अभिज्ञानानि सर्वेषां संग्रामाभरणानि च ।
योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥ १२ ॥

राजन् ! शत्रुता समय युधिष्ठिरने उन सबके सैनिक लिये नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका भी प्रबन्ध कर दिया था। युद्धकाल उपस्थित होनेपर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने सभी सैनिकोंके पहचानके लिये उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकारके संकेत और आभूषण दे दिये थे जिससे यह जान पड़े कि वह पाण्डव पक्षका सैनिक है ॥ ११-१२ ॥

दृष्ट्वा व्यूहं तु पार्थस्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पाण्डवम् ॥ १३ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुनके व्यूहकी व्यवस्था देखकर महामना दुर्योधनने समस्त भूपालोंके साथ पाण्डवसेनाके विरुद्ध अपनी सेनाकी व्यूहरचना की ॥ १३ ॥

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १४ ॥

उसके मस्तकपर श्वेत छत्र तना हुआ था। वह एक हजार हाथियोंके बीचमें अपने भाइयोंसे घिरा हुआ था ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पञ्चाला युद्धनन्दिनः ।
दध्मुः प्रीता महाशङ्खान् भेरीश्च मधुरस्वनाः ॥ १५ ॥

दुर्योधनको देखकर युद्धका अभिनन्दन करनेवाले पाञ्चाल सैनिक बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नतापूर्वक बड़े-बड़े शङ्ख तथा मधुर ध्वनि करनेवाली भेरियोंको बजाने लगे ।

ततः प्रहृष्टां स्वां सेनामभिवीक्ष्याथ पाण्डवाः ।
बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

तदनन्तर अपनी सेनाको हर्ष और उल्लाससे भरी हुई देख समस्त पाण्डवोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ तथा पराक्रमी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥

ततो हर्षं समाजग्मुर्वासुदेवधनंजयौ ।
दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शङ्खौ रथे स्थितौ ॥ १७ ॥

उस समय एक ही रथपर बैठे हुए पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन आनन्दमग्न होकर अपने दिव्य शङ्खोंको बजाने लगे ॥ १७ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः ।
श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ १८ ॥

पाञ्चजन्य और देवदत्त दोनों शङ्खोंकी ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षके बहुतसे सैनिक भयके मारे मल-मूत्र करने लगे ॥ १८ ॥

यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः ।
त्रसेयुर्निनदं श्रुत्वा तथासीत् तद्बलं तदा ॥ १९ ॥

जैसे गरजते हुए सिंहकी आवाज सुनकर दूसरे वन्य पशु भयभीत हो जाते हैं उसी प्रकार उन दोनोंका सिंहनाद सुनकर कौरवसेनाका उत्साह शिथिल पड़ गया— वह खिन्न-सी हो गयी थी ॥ १९ ॥

उदतिष्ठद् रजो भौमं न प्राज्ञायत किंचन ।
अन्तर्धीयत आदित्यः सैन्येन रजसाऽऽवृते ॥ २० ॥

धरतीसे धूल उड़कर आकाशमें छा गयी । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था । सेनाकी धूलसे सहसा आच्छादित हो जानेके कारण सूर्य अस्त हो गयेसे जान पड़ते थे ॥ २० ॥

ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान् ।
दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥

उस समय वहाँ मेघ सब दिशाओंमें समस्त सैनिकोंपर मांस और रक्तकी वर्षा करने लगे । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ २१ ॥

वायुस्ततः प्रादुरभूनीचैः शर्करकर्षणः ।
विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥

तदनन्तर वहाँ नीचेसे बालू तथा कंकड़ खींचकर सब ओर बिखेरनेवाली बड़े वेगकी वायु चली, जिसने सैकड़ों हजारों सैनिकोंको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

उभे सैन्ये तु राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम् ।
कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३ ॥

राजेन्द्र ! कुरुक्षेत्रमें युद्धके लिये अत्यन्त हर्षोल्लासमें भरी हुई दोनों सेनाएँ उस समय दो विक्षुब्ध महासागरोंके समान एक दूसरेके सामने खड़ी थीं ॥ २३ ॥

तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु संगमः ।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४ ॥

उन दोनों सेनाओंका वह अद्भुत समागम प्रलयकाल आनेपर परस्पर मिलनेवाले दो समुद्रोंके समान जान पड़ता था ॥ २४ ॥

शून्याऽऽसीत् पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता ।
निरश्वपुरुषा चासीद् रथकुञ्जरवर्जिता ॥ २५ ॥
तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः ।

कौरवोंद्वारा एकत्र करके लाये हुए उस सेनासमूहसे सारी पृथ्वी मनुष्योंसे सूनी-सी हो गयी थी । उसमें केवल बालक और बूढ़े ही शेष रह गये थे । सारी वसुधा घोड़े, हाथी, रथ और तरुण पुरुषोंसे हीन-सी हो गयी थी ॥

ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥ २६ ॥
धर्मांश्च स्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर कौरव, पाण्डव तथा सोमकोंने परस्पर मिलकर युद्धके सम्बन्धमें कुछ नियम बनाये । युद्धसम्बन्धी मर्यादा स्थापित की ॥ २६½ ॥

निवृत्ते चैव नो युद्धे प्रीतिश्च स्यात् परस्परम् ॥ २७ ॥
यथापूर्वं यथायोगं न च स्याच्छलनं पुनः ।

नियम इस प्रकार — बाहु युद्धके होनेपर उनका आपसमें इस तरह प्रेम बना रहे, उस समय पुन विरोधिक किसी साथ कुशल युद्ध नहीं करना ही हो चाहिये।

वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम्।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः।
अश्वेनाश्वी पदातिश्च पदातेनैव भारत॥

जो वाग्युद्धमें प्रवृत्त हों उनके साथ वाक् ही का युद्ध किया जाय, जो सेनासे बाहर निकल गये उनका वध कदापि न किया जाय, भारत! रथीको रथीके साथ ही युद्ध करना चाहिये, इसी प्रकार हाथीसवारके हाथीसवार, घुड़सवारके घुड़सवार तथा पैदलके साथ पैदल ही युद्ध करे।

यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथावयः।
समाभाष्य प्रहर्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले॥

विश्वासी शेखी उस उनका बल हो तथा विपत्तिमें जिससे पीठ फेरा हो, पहले ऊपर वार किया हो या विश्वास करता हो, जो युद्धमें व्याकुल हुआ हो उसपर प्रहार करना उचित नहीं।

परेण सह संयुक्तः प्रमत्तो विमुखस्तथा।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कथंचन॥

जो दूसरेके साथ युद्ध कर रहा हो उसपर आक्रमण करना न, जो पीठ दिखाकर भागता हो और जिसके शस्त्र नष्ट और कवच गये हों उनको शत्रुओंको कदापि मारना नहीं।

न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्तव्यं कथंचन॥

सारथि, रथके घोड़े, हथियार पहुँचानेवाले, भेरी और शंख बजानेवाले — इनपर भी किसी प्रकार प्रहार न करे।

एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम्॥

इस प्रकार नियम करके कौरव, पाण्डव और सोमक एक दूसरेको देखते हुए अत्यन्त विस्मित हुए।

निविश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः।
हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः॥

तदनन्तर महात्मा पुरुषश्रेष्ठ अपने अपने स्थानपर ठहरकर सेनाओंसहित प्रसन्नचित्त होकर एवं उत्साहसे भर गये।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि सैन्यशिबिरे प्रथमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें सैन्यशिविरनिवेश नामक अध्याय पूरा हुआ॥

द्वितीयोऽध्याय

वेदव्यासजीके द्वारा संजयको दिव्य दृष्टिका दान तथा भयसूचक उत्पातोंका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततः पूर्वापरे सन्ध्ये समीक्ष्य भगवानृषिः।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः॥
भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान् भूतभव्यभविष्यवित्॥
वैचित्रवीर्यं राजानं स रहस्यं ब्रवीदिदम्।
शोचमानमार्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा॥

वैशम्पायनजी कहते हैं — तब सब समाचार पूर्व और पश्चिम दिशामें प्रातःकाल और सन्ध्याके समय दोनों ओरकी सेनाओंको देखकर भूत भविष्य और वर्तमानको जाननेवाले सम्पूर्ण वेदज्ञाताओंमें श्रेष्ठ भरतवंशियोंके पितामह सत्यवतीनन्दन महर्षि भगवान् व्यास जो होनेवाले भयानक युद्धके परिणामको प्रत्यक्ष देख रहे थे, विचित्रवीर्यनन्दन राजा धृतराष्ट्रके पास आये। उस समय अपने पुत्रोंके अन्यायका चिन्तन करते हुए शोकमग्न एवं आर्त हो रहे राजासे उन्होंने एकान्तमें कहा।

व्यास उवाच

राजन् परीतकालास्ते पुत्राश्चान्ये च पार्थिवाः।
ते हनिष्यन्ति संग्रामे समासाद्येतरेतरम्॥

व्यासजी बोले — राजन्! तुम्हारे पुत्र तथा अन्य राजाओंका काल आ पहुँचा है, वे युद्धमें एक दूसरेसे भिड़कर मरेंगे।

तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्सु च भारत।
कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः॥

कालके वशी होकर नष्ट होनेवाले इन सब राजाओंको कालका परिवर्तन समझकर शोक मत करना।

यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेनान् विशाम्पते।
चक्षुर्ददानि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय॥

राजन्! यदि युद्धभूमिमें इन सबको तुम देखना चाहो तो तुम्हें नेत्र प्रदान करूँ, फिर तुम यहाँ ही बैठे बैठे युद्धका सारा हाल अपनी आँखों देखो।

धृतराष्ट्र उवाच

न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम।
युद्धमेतत् त्वशेषेण शृणुयां तव तेजसा॥ ७॥

धृतराष्ट्रने कहा—ब्रह्मर्षिप्रवर! मुझे अपने कुटुम्बीजनोंका यह वध देखना अच्छा नहीं लगता। परंतु आपके प्रभावसे इस युद्धका सारा वृत्तान्त सुन सकूँ, ऐसी कृपा आप अवश्य कीजिये॥ ७॥

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति।
वराणामीश्वरो व्यासः संजयाय वरं ददौ॥ ८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! धृतराष्ट्र युद्धको अपनी आँखों देखना तो नहीं चाहता, परंतु उसका पूरा समाचार सुनना चाहता है। यह जानकर वर देनेमें समर्थ उन व्यासजीने संजयको वर देते हुए कहा—॥ ८॥

एष ते संजयो राजन् युद्धमेतद् वदिष्यति।
एतस्य सर्वं संग्रामे न परोक्षं भविष्यति॥ ९॥

महाराज! यह संजय आपको इस युद्धका सब समाचार बताया करेगा। सम्पूर्ण संग्राममें कोई ऐसी बात नहीं होगी, जो इसके प्रत्यक्ष न हो॥ ९॥

चक्षुषा संजयो राजन् दिव्येनैष समन्वितः।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति॥ १०॥

महाराज! संजय दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न होकर सर्वज्ञ हो जायगा और तुम्हें युद्धकी बात बतायेगा॥ १०॥

प्रकाशं वाप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि।
मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति संजयः॥ ११॥

कोई भी बात प्रकट हो या अप्रकट, दिनमें हो या रातमें अथवा वह मनमें ही क्यों न सोची गयी हो, संजय सब कुछ जान लेगा॥ ११॥

नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः।
गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद् विमोक्ष्यते॥ १२॥

इसे कोई हथियार नहीं काट सकता। इसे परिश्रमसे थकावट भी नहीं होगी। गवल्गणका पुत्र यह संजय इस युद्धसे जीवित बच जायगा॥ १२॥

अहं च कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः॥ १३॥

भरतश्रेष्ठ! मैं इन समस्त कौरवों और पाण्डवोंकी कीर्तिका तीनों लोकोंमें विस्तार करूँगा। तुम शोक न करो॥ १३॥

दिष्टमेतत् पुरा चैव नात्र शोचितुमर्हसि।
न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः॥ १४॥

नरश्रेष्ठ! यह दैवका विधान है। इसे कोई मेट नहीं सकता। अतः इसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जहाँ धर्म है, उसी पक्षकी विजय होगी॥ १४॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् कुरूणां प्रपितामहः।
पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह॥ १५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर कुरुकुलके पितामह महाभाग भगवान् व्यास पुनः धृतराष्ट्रसे बोले—

इह युद्धे महाराज भविष्यति महान् क्षयः।
तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये॥ १६॥

महाराज! इस युद्धमें महान् नरसंहार होगा, क्योंकि मुझे इस समय ऐसे ही भयदायक अपशकुन दिखायी देते हैं॥ १६॥

श्येना गृध्राश्च काकाश्च कङ्काश्च सहिता बकैः।
सम्पतन्ति वनान्तेषु समवायांश्च कुर्वते॥ १७॥

बाज, गीध, कौवे, कङ्क और बगुले वृक्षोंके अग्रभाग पर आकर बैठते तथा अपना समूह एकत्र करते हैं॥ १७॥

अभ्यग्रं च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः।
क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम्॥ १८॥

निर्दयं चाभिवाशन्तो भैरवा भयवेदिनः।
कङ्काः प्रयान्ति मध्येन दक्षिणामभितो दिशम्॥ १९॥

ये पक्षी अत्यन्त आनन्दित होकर युद्धस्थलको बहुत निकट जाकर देखते हैं। इससे सूचित होता है कि मांसभक्षी पशु-पक्षी आदि प्राणी हाथियों और घोड़ोंके मांस खायेंगे। भयकी सूचना देनेवाले कङ्क पक्षी कठोर स्वरमें बोलते हुए बीचसे होकर दक्षिण दिशाकी ओर जाते हैं॥ १८-१९॥

उभे पूर्वापरे सन्ध्ये नित्यं पश्यामि भारत।
उदयास्तमने सूर्यं कबन्धैः परिवारितम्॥ २०॥

भारत! मैं प्रातः और सायं दोनों सन्ध्याओंके समय उदय और अस्तकालमें सूर्यदेवको प्रतिदिन कबन्धोंसे घिरा हुआ देखता हूँ॥ २०॥

श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः।
त्रिवर्णाः परिघाः सन्धौ भानुमावारयन्त्युत॥ २१॥

सन्ध्याके समय सूर्यमण्डलको तिरंगे बादल ढक लेते थे। उनमें श्वेत और लाल रंगके दोनों किनारे थे और बीचमें काला रंग दिखायी देता था। उनके साथ बिजलियाँ भी चमक रही थीं॥ २१॥

ज्वलितार्केन्दुनक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षपम्।
अहोरात्रं मया दृष्टं तत् क्षयाय भविष्यति॥ २२॥

मुझे दिन और रातका समय ऐसा दिखायी दिया है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा और तारे प्रज्वलित जान पड़ते थे। दिन और रातमें कोई विशेष अन्तर नहीं दिखायी देता था। यह लक्षण भय लानेवाला होगा॥ २२॥

अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले॥ २३॥

कार्तिककी पूर्णिमाको चन्द्रमाके प्रकाशन नीलकमलके समान रंगवाले

में चन्द्रमा प्रभाहीन होनेके कारण दृष्टिगोचर नहीं। तो पाता मा तब उसकी चन्द्र की अग्निके समान प्रतीत होती थी ॥

सम्पतन्ति विहगा घोरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः।
राजानो राजपुत्राश्च शूरा परिघबाहवः ॥ २४ ॥

इससे यह जान पड़ता है कि परिघके समान मोटी भुजाओंवाले बहुत-से शूरवीर नरेश तथा राजकुमार मारे जाकर पृथ्वीको आच्छादित करके रणभूमिमें शयन करेंगे ॥ २४ ॥

मध्यरात्रे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः।
प्रणादं युध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये ॥ २५ ॥

सूअर और बिलाव रातमें आपसमें लड़ते और भयानक गर्जना करते हैं। यह बात मुझे प्रतिदिन दिखायी देती है ॥ २५ ॥

देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च।
वमन्ति रुधिरं चास्यैः स्विद्यन्ति प्रपतन्ति च ॥ २६ ॥

देवताओंकी मूर्तियाँ काँपती, हँसती, मुखसे खून उगलती, खिन्न होती और गिर पड़ती हैं ॥ २६ ॥

अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशाम्पते।
अयुक्ताश्च प्रवर्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २७ ॥

भारत! दुन्दुभियाँ बिना बजाये बज उठती हैं और क्षत्रियोंके बड़े-बड़े रथ बिना जोते ही चल पड़ते हैं ॥ २७ ॥

कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा।
सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः ॥ २८ ॥

कोकिल, शतपत्र, नीलकण्ठ, भास (चील), शुक, सारस तथा मयूर भयंकर बोली बोलते हैं ॥ २८ ॥

गृहीतशस्त्राभरणा वर्मिणो वाजिपृष्ठगाः।
अरुणोदये प्रदृश्यन्ते शतशः शलभव्रजाः ॥ २९ ॥

घोड़ेकी पीठपर बैठे हुए सवार हाथोंमें ढाल-तलवार लिये चीत्कार कर रहे हैं। अरुणोदयके समय टिड्डियोंके सैकड़ों दल सब ओर उड़ते दिखायी देते हैं ॥ २९ ॥

उभे सन्ध्ये प्रकाशेते दिशां दाहसमन्विते।
पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥ ३० ॥

दोनों सन्ध्याएँ दिग्दाहसे युक्त दिख रही हैं। भारत! बादल धूल और मांसकी वर्षा करता है ॥ ३० ॥

या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता।
अरुन्धती तयाप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥ ३१ ॥

राजन्! जो तीनों लोकोंमें पतिव्रताओंकी शिरोमणिके रूपमें प्रसिद्ध हैं, उन्होंने वसिष्ठको अपने पीछे कर दिया है ॥ ३१ ॥

रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजन् शनैश्चरः।
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद् भयम् ॥ ३२ ॥

महाराज! शनैश्चर ग्रह रोहिणीको पीड़ा देता हुआ खड़ा है। चन्द्रमाका चिह्न मिट-सा गया है। इससे सूचित होता है कि भविष्यमें महान् भय प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥

अनभ्रे च महाघोरं स्तनितं श्रूयते स्वनः।
वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ३३ ॥

बिना बादलके ही आकाशमें बड़ी भयंकर गर्जना सुनायी देती है। रोते हुए वाहनोंकी आँखोंसे आँसुओंकी बूँदें गिर रही हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि व्यासवाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें व्यासवाक्यविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्याय

व्यासजीके द्वारा अमङ्गलसूचक उत्पातों तथा विजयसूचक लक्षणोंका वर्णन

व्यास उवाच

खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः।
अनार्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—राजन्! गायोंके गर्भसे गदहे पैदा होते हैं। पुत्र माताओंके साथ रमण करते हैं। वनोंमें वृक्ष बिना ऋतुके फूल और फल प्रकट करते हैं ॥ १ ॥

गर्भिण्यो राजपुत्र्यश्च जनयन्ति विभीषणान्।
क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि एकत्राश्नन्ति परस्परम् ॥ २ ॥

गर्भवती स्त्रियाँ पुत्रको जन्म न देकर अपने गर्भसे भयंकर जीवोंको पैदा करती हैं। मांसभक्षी पशु भी पक्षियोंके साथ परस्पर मिलकर एक ही जगह आहार ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः।
द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ॥ ३ ॥
जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः।

तीन सींग, चार नेत्र, पाँच पैर, दो मूत्रेन्द्रिय, दो मस्तक, दो पूँछ और अनेक दाढ़ोंवाले अमङ्गलमय पशु जन्म लेते तथा मुँह फैलाकर अमङ्गलसूचक वाणी बोलते हैं ॥ ३ ॥

त्रिपदाः शिखिनस्तार्क्ष्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ॥ ४ ॥
तथैवान्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम्।
वैनतेयान् मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ॥ ५ ॥

गरुड़ पक्षीके मस्तकपर शिखा और तीन पैर हैं। उसके तीन पैर तथा चार दाढ़ें दिखायी देती हैं। इसी प्रकार अन्य जीव भी देखे जाते हैं। वेदवादी ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ तुम्हारे नगरमें गरुड़ और मोर पैदा करती हैं ॥ ४-५ ॥

गोवत्सं वडवा सूते श्वा सृगालं महीपते।
कृकलासान् करभाश्चैव शुकांश्चाशुभवादिनः ॥ ६ ॥

भूचाल। गायें गदहोंको जन्म देती हैं। कुतियाके पेटसे सियार पैदा होता है। भी पुत्रोंको जन्म देती हैं और दोनों ही अशुभसूचक चेष्टाएँ करने लगे हैं॥६॥

स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः ।
ता जातमात्रा नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥ ७ ॥

कुछ स्त्रियाँ एक ही साथ चार-चार या पाँच-पाँच कन्याएँ पैदा करती हैं। वे कन्याएँ पैदा होते ही नाचती, गाती तथा हँसती हैं॥७॥

पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च ।
नृत्यन्ति परिगायन्ति वेदयन्तो महद् भयम् ॥ ८ ॥

समस्त नीच जातियोंके घरोंमें उत्पन्न हुए कुबड़े आदि बालक भी महान् भयकी सूचना देते हुए घोर-अट्टहास करते, गाते और नाचते हैं॥८॥

प्रतिमाश्चालिखन्त्यन्ये सशस्त्राः कालचोदिताः ।
अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥ ९ ॥

वे सब कालसे प्रेरित हो हाथोंमें हथियार लिये प्रतिमाएँ लिखते और बनाते हैं। छोटे-छोटे बच्चे हाथमें डंडा लिये एक दूसरेपर धावा करते हैं॥९॥

उपरुन्धन्ति कृत्वा च नगराणि युयुत्सवः ।
पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥ १० ॥

और कृत्रिम नगर बनाकर परस्पर युद्धकी इच्छा रखते हुए उन नगरोंको घेरकर मिट्टीमें मिला देते हैं। वृक्षोंपर कमल, उत्पल और कुमुद आदि जलीय पुष्प पैदा होते हैं॥१०॥

विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाप्युपशाम्यति ।
अभीक्ष्णं कम्पते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ११ ॥

चारों ओर भयंकर आँधी चल रही है। धूलका उड़ना शान्त नहीं हो पाता। धरती बारंबार काँप रही है तथा राहु सूर्यके निकट जा रहा है॥११॥

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।
अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२ ॥

केतु चित्राका अतिक्रमण करके स्वातीपर स्थित हो रहा है*। उसकी विशेषरूपसे कुरुकुलके विनाशपर ही दृष्टि है॥१२॥

धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति ।
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३ ॥

अत्यन्त भयंकर धूमकेतु पुष्य नक्षत्रपर आक्रमण करके वहीं स्थित हो रहा है। यह महान् उपग्रह दोनों सेनाओंका घोर अमंगल करेगा॥१३॥

मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः ।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४ ॥

मंगल वक्र होकर मघा नक्षत्रपर स्थित है। बृहस्पति श्रवण नक्षत्रपर विराजमान है तथा सूर्यपुत्र शनि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रपर पहुँचकर उसे पीड़ा दे रहा है॥१४॥

शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ।
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥ १५ ॥

शुक्र पूर्वाभाद्रपदपर आरूढ हो प्रकाशित हो रहा है और सब ओर घूमकर परिघ नामक उपग्रहके साथ उत्तराभाद्रपदापर दृष्टि लगाये हुए है॥१५॥

श्यावो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः ।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६ ॥

केतु नामक उपग्रह धूमयुक्त अग्निके समान प्रज्वलित हो इन्द्रदेवतासम्बन्धी तेजस्वी ज्येष्ठा नक्षत्रपर जाकर स्थित है॥१६॥

ध्रुवः प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्तते ।
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ ।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७ ॥

चित्रा और स्वातीके बीचमें स्थित हुआ क्रूर ग्रह राहु सदा वक्र होकर रोहिणी तथा चन्द्रमा और सूर्यको पीड़ा पहुँचाता है तथा अत्यन्त प्रज्वलित होकर ध्रुवकी बायीं ओर जा रहा है, जो घोर अनिष्टका सूचक है॥१७॥

वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥ १८ ॥

अग्निके समान कान्तिमान् मंगल ग्रह बारंबार (जिसमें स्थित हो उस नक्षत्रसे आगे बढ़कर फिर) वक्र होकर ब्रह्मराशि (बृहस्पतियुक्त श्रवण नक्षत्र) को पूर्णतया आवृत करके स्थित है॥१८॥

सर्वसस्यप्रतिच्छन्ना पृथिवी फलमालिनी ।
पञ्चशीर्षा यवाश्चैव शतशीर्षाश्च शालयः ॥ १९ ॥

(इसका प्रभाव लोकोंपर प्रत्यक्ष पड़ रहा है) पृथ्वी सब प्रकारके अनाजों और पौधोंसे आच्छादित है, फलकी मालाओंसे अलंकृत है। जौमें पाँच-पाँच और धानमें सौ-सौ बालें लग रही हैं॥१९॥

प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत् ।
ता गावः प्रस्नुता वत्सैः शोणितं प्रक्षरन्त्युत ॥ २० ॥

जो सम्पूर्ण जगत्में प्रधान मानी जाती हैं, जिनपर यह समस्त जगत् निर्भर है, वे गौएँ बछड़ोंके पिन्हानेपर स्तनोंसे खून बहाती हैं॥२०॥

निश्चेरुरपिधानेभ्यः खड्गाः प्रज्वलिता भृशम् ।
व्यक्तं पश्यन्ति शस्त्राणि संग्रामं समुपस्थितम् ॥ २१ ॥

धनुषोंसे ज्वालाएँ निकलने लगी हैं, खड्ग अत्यन्त प्रज्वलित हो उठे हैं। मानो सम्पूर्ण अस्त्र-

* राहु और केतु सदा एक दूसरेसे सातवीं राशिपर स्थित होते हैं; किन्तु जब अशुभ ग्रहोंके प्रभावसे एक राशिपर आ जाते हैं, तब वे महान् अमंगलके सूचक होते हैं। यहाँ इसी बातको लक्ष्य करके कहा गया है कि केतु राहुके निकट पहुँचे... अतिक्रमण करके आ गया है। फिर केतुके पास पहुँचनेसे महान् दुर्योग बन गया है।

फलके वह देखे गये हैं कि समान उत्पन्न हुए नहीं हैं ॥ २२ ॥

अभिशस्तौ यथा भासं ... अम्लानकाकुलकान् च

कबन्धानां च भ्रान्ता च भविष्यति महाभय ॥ २२ ॥

ब्राह्मणोंकी बकरी ... और ... काम्मिनी अग्निमें समान जल ही गयी हैं अतः निश्चय ही महान् भय उपस्थित होगा ॥ २२ ॥

पृथिवी शोणितावर्ता ध्वजोडुपसमाकुला।
कुरूणां वैशसे राजन् पाण्डवैः सह भारत ॥ २३ ॥

राजन्! भरतनन्दन! कौरव तथा पाण्डवोंके हिंसात्मक संग्राममें आरम्भ होनेवाला है। उस समय यहाँकी धरतीपर रक्तकी नदियाँ बह चलेंगी, उनमें शोणितकी ही ... और उन नदियोंके ऊपर छोटी-छोटी डोंगियोंके स्थान ध्वज और रथ दिखायी देंगे ॥ २३ ॥

दिक्षु प्रज्वलितास्याश्च व्याहरन्ति मृगद्विजाः।
अत्याहितं दर्शयन्तो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २४ ॥

सब दिशाओंमें पशु और पक्षी प्रज्वलित मुखवाले होकर ... बोल रहे हैं। ... महान् भयकी सूचना दे रहे हैं ॥ २४ ॥

एकपक्षाक्षिचरणः शकुनिः खचरो निशि।
रौद्रं वदति संरब्धः शोणितं छर्दयन्निव ॥ २५ ॥

रातमें एक आँख, एक पैर और एक पंखवाला पक्षी आकाशमें विचरता है और कुपित होकर भयंकर बोली बोलता है। उसकी बोली ऐसी जान पड़ती है, मानो वह खून वमन कर रहा हो ॥ २५ ॥

ग्रहौ ताम्रारुणशिखौ प्रज्वलन्ताविव सम्प्रति।
सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्य वै प्रभाम् ॥ २६ ॥

इस समय ... उदार सप्तर्षियोंकी प्रभा भी फीकी पड़ती जाती है ॥ २६ ॥

संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥ २७ ॥

संवत्सर एक राशिपर रहनेवाले दो प्रकाशमान ग्रह बृहस्पति और शनैश्चर विशाखा नक्षत्रके निकट आ गये हैं ॥ २७ ॥

चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम्।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८ ॥

(इस पक्षमें दो तिथियोंका क्षय होनेके कारण) एक ही दिन त्रयोदशी तिथिमें चन्द्रमा और सूर्य दोनोंको राहुने ग्रस लिया है। अतः ... ये दोनों ग्रह प्रजाका संहार चाहते हैं ॥ २८ ॥

अशोभिता दिशः सर्वाः पांसुवर्षैः समन्ततः।
उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् ॥ २९ ॥

चारों ओर धूलकी वर्षा होनेसे सम्पूर्ण दिशाएँ शोभाहीन हो गयी हैं। उत्पातसूचक भयंकर मेघ रातमें रक्तकी वर्षा करते हैं ॥ २९ ॥

कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते।
अभीक्ष्णवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३० ॥

राजन्! ... तीक्ष्ण ... कृत्तिका नक्षत्रको पीड़ा दे रहा है। बारंबार धूमकेतुका आश्रय लेकर प्रचण्ड आँधी उठती रहती है ॥ ३० ॥

विषमं जनयन्त्येत आक्रन्दजननं महत्।
त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशाम्पते।
गृध्रः सम्पतते शीर्षं जनयन् भयमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

यह महान् युद्ध एवं ... का सूचक है। राजन्! अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तीन भागोंमें बटनेसे ... नक्षत्रोंके तीन समुदाय होते हैं। ... गृध्र ... महान् भयकी सूचना ... ॥ ३१ ॥

चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्।
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम्।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासे त्रयोदशीम् ॥ ३२ ॥

एक पक्षमें चौदह, पंद्रह और सोलह दिन ... किंतु इस पक्षमें तेरह ही दिनमें अमावास्या आ गयी है। ऐसा पहले कभी हुआ है, इसका मुझे स्मरण नहीं है। एक ही महीनेमें तेरह दिनोंके भीतर चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण दोनों लग गये ॥ ३२ ॥

अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः।
मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्।
शोणितैर्वक्त्रसम्पूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार अप्रसिद्ध पर्वमें ग्रहण लगनेके कारण ये सूर्य और चन्द्रमा प्रजाका विनाश करनेवाले होंगे। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको ... मांसकी वर्षा हुई थी। उस समय राक्षस मुँह भरकर रक्त पीते रहे तो भी ... तृप्त नहीं होते थे ॥ ३३ ॥

प्रतिस्रोतोऽवहन्नद्यः सरितः शोणितोदकाः।
फेनायमानाः कूपाश्च नर्दन्ति वृषभा इव ॥ ३४ ॥

कहीं-कहीं नदियोंके जल रक्तके समान लाल हो गये हैं और उनकी धारा उलटी ओरको बहने लगी है। कुओंके फेन ऊपरको उठ रहे हैं, मानो वृषभ उछल रहे हों ॥ ३४ ॥

पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शुष्काशनिविमिश्रिताः ।
अद्य चापि निशां व्युष्टामुदयं समवाप्स्यथ ॥ ३५ ॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ सूखी अशनिके समान प्रकाशित होनेवाली उल्काएँ गिर रही हैं। आजकी रात बीतनेपर सबेरेसे ही तुमलोगोंको अपने अन्यायका फल मिलने लगेगा ॥ ३५ ॥

विभिः तमसा महदन्धकारमिव सर्वतोदिशम् ।
अन्योन्यमुपतिष्ठन्ति महर्षयः ॥ ३६ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार व्याप्त होनेके कारण बड़े-बड़े महर्षि अपने घरसे निकले हुए महर्षियोंके एक दूसरेके पास उपस्थित हो इन उत्पातोंके सम्बन्धमें इस प्रकार प्रकट किया है ॥ ३६ ॥

भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् ।
कैलासमन्दराभ्यां तु तथा हिमवता गिरेः ॥ ३७ ॥
सहस्रशो महाशब्दं शिखराणि पतन्ति च ।

सब कहते हैं, यह भूमि सहस्रों भूमिपालोंका रक्तपान करेगी। कैलास, मन्दराचल तथा हिमालयसे सहस्रों प्रकारके भयानक शब्द प्रकट होते हैं और उनके शिखर भी टूट-टूटकर गिर रहे हैं ॥ ३७ ॥

महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक् ।
वेलामुद्वर्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥

भूकम्प होनेके समय पृथक्-पृथक् चारों समुद्र वृद्धिको प्राप्त होकर वसुधाको क्षोभ उत्पन्न करते हुए अपनी सीमाको लाँघते हुए-से जान पड़ते हैं ॥ ३८ ॥

वृक्षान् प्रमथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करवर्षिणः ।
पतन्ति चैत्यवृक्षाश्च ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ३९ ॥

कंकड़ और पत्थर बरसानेवाली भयानक आँधियाँ उठकर वृक्षोंको उखाड़े डालती हैं। गाँवों तथा नगरोंमें वृक्ष और चैत्यवृक्ष प्रचण्ड आँधियों तथा बिजलीके आघातोंसे टूटकर गिर रहे हैं ॥ ३९ ॥

पीतलोहितनीलश्च ज्वलत्याहितो द्विजैः ॥ ४० ॥
वामार्चिः शुभगन्धश्च पुष्पवर्णश्च पावकः ।
स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणलोगोंके आहुति देनेपर प्रज्वलित हुई अग्नि काली, लाल और पीले रंगकी दिखायी देती है। उसकी लपटें वामावर्त होकर उठ रही हैं। उससे दुर्गन्ध निकलती है और वह भयानक शब्द प्रकट करती रहती है। राजन्! स्पर्श, गन्ध तथा रस—इन सबकी स्थिति विपरीत हो गयी है ॥ ४१ ॥

धूमायन्ते ध्वजा राज्ञः कम्पमाना मुहुर्मुहुः ।
मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षाणि च भेर्योऽथ पटहास्तथा ॥ ४२ ॥

राजाओंके ध्वज बारम्बार कम्पित होकर धूमा छोड़ते हैं। ढोल-नगाड़े अङ्गारोंकी वर्षा करते हैं ॥ ४२ ॥

प्रासादशिखराग्रेषु समुत्पतन्ति समन्ततः ।
वायसाः ... अपसव्यं वाशन्ति ... ॥ ४३ ॥

फल-फूलसे सम्पन्न वृक्षोंकी शिखाओंपर चारों ओरसे घूम-घूमकर गरदन और कौए बैठते हैं और भयंकर काँव-काँवका कोलाहल करते हैं ॥ ४३ ॥

पक्वापक्वेति सुभृशं वाशन्ते वयांसि च ।
निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय पृथिवीक्षिताम् ॥ ४४ ॥

बहुतसे पक्षी 'पक्व-पक्व' (पको-पको) बारम्बार बोला उच्चारण करते और ध्वजाओंके अग्रभागमें छिपते हैं। यह भयावह राजाओंके विनाशका सूचक है ॥ ४४ ॥

ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च व्यालान् वेपथुसंयुताः ।
दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाप्लुताः ॥ ४५ ॥

दुष्ट हाथी काँपते और चिन्ता करते हुए सबके सब मल-मूत्र त्याग कर रहे हैं, मानो अत्यन्त दीन हो रहे हैं और सम्पूर्ण गजराज पसीनेसे भींग रहे हैं ॥ ४५ ॥

एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम् ।
यथा लोकः समुच्छेदं नायं गच्छेत भारत ॥ ४६ ॥

भारत! यह सुनकर (और उसपर परिणामका विचार करके) तुम इस समयके अनुकूल ऐसा कोई उपाय करो जिससे यह संसार विनाशको न प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच

पितुर्वचो निशम्यैतद् धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।
दिष्टमेतत् पुरा मन्ये भविष्यति न संशयः ॥ ४७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपने पिता व्यासजीका यह वचन सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—पिताजी! मैं तो इस दुर्निमित्त दैवका विधान मानता हूँ कि यह नरसंहार होना ही है ॥ ४७ ॥

राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे ।
वीरलोकं समासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ॥ ४८ ॥

यदि राजालोग क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्धमें मारे जायँगे तो वीरलोकको प्राप्त होकर केवल सुखके भागी होंगे ॥

इह कीर्तिं परे लोके दीर्घकालं महत् सुखम् ।
प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ४९ ॥

वे पुरुषसिंह इस महायुद्धमें प्राणोंका परित्याग करके इहलोकमें कीर्ति तथा परलोकमें दीर्घकालतक महान् सुख प्राप्त करेंगे ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो मुनिस्तेन कवीन्द्रो राजसत्तम ।
धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत् परम् ॥ ५० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! अपने पुत्र

शुद्धबुद्धि इस प्रकार यथार्थ बात कहकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महर्षि व्यास कुछ देरतक बड़े मौन चिन्तामग्न बने रहे ॥ ५० ॥

स मुहूर्तं ततो ध्यात्वा पुनरेवाब्रवीद् वचः ।
असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षिपते जगत् ॥ ५१ ॥
सृजते च पुनर्लोकान् नेह विद्यति शाश्वतम् ।

दो घड़ीतक चिन्तन करनेके बाद वे पुनः इस प्रकार बोले—महाराज ! इसमें संशय नहीं है कि काल ही इस जगत्‌का संहार करता है और वही पुनः इन सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करता है। यहाँ कोई वस्तु सदा रहनेवाली नहीं है ॥ ५१-५२ ॥

ज्ञातीनां च कुरूणां च सम्बन्धिसुहृदां तथा ॥ ५२ ॥
धर्म्यं देशय पन्थानं समर्थो ह्यसि वारणे ।
क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाप्रियम् ॥ ५३ ॥

राजन् ! तुम अपने भाई-बन्धु कौरवों तथा सम्बन्धियों तथा हितैषी-सुहृदोंको धर्मानुकूल मार्गका उपदेश करो; क्योंकि तुम उन सबको रोकनेमें समर्थ हो। जाति-वधको अत्यन्त नीच कर्म बताया गया है। वह मुझे अत्यन्त अप्रिय है; तुम यह अप्रिय कार्य न करो ॥ ५२-५३ ॥

कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते ।
न वधः पूज्यते वेदे हितं नैतत् कथंचन ॥ ५४ ॥

महाराज ! यह काल तुम्हारे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ है। वेदमें हिंसाकी प्रशंसा नहीं की गयी है। हिंसासे किसी प्रकार हित नहीं हो सकता ॥ ५४ ॥

हन्यात् स एनं यो हन्यात् कुलधर्मं स्वकां तनुम् ।
कालेनोत्पथगन्तासि शक्ये सति यथा पथि ॥ ५५ ॥

कुलधर्म अपने शरीरके ही समान है। जो इस कुलधर्मका नाश करता है, उसे वह धर्म ही नष्ट कर देता है। जबतक सब कुछ सम्भव है (अबतक तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति नहीं आयी है), तबतक तुम कालसे प्रेरित होकर ही धर्मकी अवहेलना करके कुमार्गपर चल रहे हो, जैसा कि बहुधा लोग किसी आपत्तिमें पड़कर ही करते हैं ॥ ५५ ॥

कुलस्यास्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम् ।
अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशाम्पते ॥ ५६ ॥

नरेश्वर ! तुम्हारे कुलका तथा अन्य बहुत-से राजाओंका विनाश करनेके लिये यह तुम्हारे राज्यके रूपमें अनर्थ ही प्राप्त हुआ है ॥ ५६ ॥

लुप्तधर्मा परं शक्त्या धर्मं दर्शय वै सुतान् ।
किं ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्बिषम् ॥ ५७ ॥

तुम्हारा धर्म अत्यन्त लुप्त हो गया है। अपने पुत्रोंको धर्मका मार्ग दिखलाओ। दुर्धर्ष वीर ! तुम्हें राज्य लेकर क्या करना है जिसके लिये अपने ऊपर पापका बोझ लाद रहे हो ॥

यशो धर्मं च कीर्तिं च पालयन् स्वर्गमाप्स्यसि ।
लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः ॥ ५८ ॥

तुम मेरी बात मानकर यश, धर्म और कीर्तिका पालन करते हुए स्वर्ग प्राप्त कर लोगे। पाण्डवोंको उनके राज्य प्राप्त हों और समस्त कौरव आपसमें संधि करके शान्त हो जायँ ॥ ५८ ॥

एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यवैचक्षणं पुनः ॥ ५९ ॥

विप्रवर व्यासजी जब इस प्रकार उपदेश दे रहे थे उसी समय बातचीतमें चतुर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने बीचमें ही उनकी बात काटकर उनसे इस प्रकार कहा ॥ ५९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यथा भवान् वेत्ति तथैव वेत्ता
भावाभावौ विदितौ मे यथार्थौ ।
स्वार्थे हि सम्मुह्यति तात लोको
मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि ॥ ६० ॥

धृतराष्ट्र बोले—तात ! जैसा आप जानते हैं, उसी प्रकार मैं भी इन बातोंको समझता हूँ। भाव और अभावका यथार्थ तत्त्व मुझे भी ज्ञात है, तथापि यह संसार अपने स्वार्थके लिये मोहमें पड़ा रहता है। मुझे भी साधारण व्यक्ति ही समझें।

प्रसादये त्वामतुलप्रभावं
त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः ।
न चापि ते वशगा मे महर्षे
न चाधर्मं कर्तुमर्हो हि मे त्वम् ॥ ६१ ॥

आपका प्रभाव अनुपम है। आप हमारे आश्रय, मार्गदर्शक तथा धीर पुरुष हैं। मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। तात ! मेरी बुद्धि भी अधर्म करना नहीं चाहती; क्या करूँ ! मेरे पुत्र मेरे वशमें नहीं हैं ॥ ६१ ॥

त्वं हि धर्मप्रवृत्तीनां परा कीर्तिश्च भारती ।
कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चासि पितामहः ॥ ६२ ॥

आप ही हम भरतवंशियोंकी धर्ममें प्रवृत्ति, यश तथा कीर्तिके हेतु हैं। आप कौरवों और पाण्डवों—दोनोंके माननीय पितामह हैं ॥ ६२ ॥

व्यास उवाच

वैचित्रवीर्य नृपते यत् ते मनसि वर्तते ।
अभिधत्स्व यथाकामं छेत्तास्मि तव संशयम् ॥ ६३ ॥

व्यासजी बोले—विचित्रवीर्यकुमार ! नरेश्वर ! तुम्हारे मनमें जो संदेह है, उसे अपनी इच्छाके अनुसार प्रकट करो। मैं तुम्हारे संशयका निवारण करूँगा ॥ ६३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यानि लिङ्गानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम् ।
तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—भगवन् ! युद्धमें विजय पानेवाले लोगोंको जो शुभ लक्षण दीख पड़ते हैं, उन सबको यथार्थरूपसे सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ ६४ ॥

भारत उवाच

प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः
प्रदक्षिणावर्तशिखो विधूमः ।
पुण्या गन्धाश्चाहुतीनां प्रवान्ति
जयस्यैतद् भाविनो रूपमाहुः ॥ ६५ ॥

व्यासजीने कहा—अग्निकी प्रभा निर्मल हो, उसकी लपटें ऊपरकी ओर उठें, वह दक्षिणावर्त होकर उठे और धूम न रहे, साथ ही उसमें दी हुई आहुतियोंसे पवित्र सुगन्ध वायुमें मिलकर सर्वत्र व्याप्त होती रहे—यह भावी विजयका लक्षण बताया गया है ॥ ६५ ॥

गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च
शङ्खा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र ।
विशुद्धरश्मिस्तपनः शशी च
जयस्यैतद् भाविनो रूपमाहुः ॥ ६६ ॥

जिस पक्षमें शङ्खों और मृदङ्गोंकी ध्वनि गम्भीर एवं जोर-जोरसे हो रही हो तथा जिसके लिये सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें विशुद्ध प्रतीत होती हों, उनके लिये यह भावी विजयका शुभ लक्षण बताया है ॥ ६६ ॥

इष्टा वाचः पृष्ठतो वायसानां
सम्प्रस्थितानां च गमिष्यतां च ।
ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन्
ये त्वग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ ६७ ॥

जिनके प्रस्थित होनेपर अथवा प्रस्थानके लिये उद्यत होनेपर कौओंकी बोली मनोहर सुनायी देती है, उनका विजय सूचित होती है। राजन्! जो कौए पीछे बोलते हैं, वे मानो सिद्धिकी सूचना देते हुए शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़नेके लिये प्रेरित करते हैं और जो सामने बोलते हैं, वे मानो युद्धमें जानेसे रोकते हैं ॥ ६७ ॥

कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः
शुकाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च यत्र ।
प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति संख्ये
ध्रुवं जयं तत्र वदन्ति विप्राः ॥ ६८ ॥

जहाँ शुभ वचन बोलनेवाले पक्षी तथा राजहंस, शुक, क्रौञ्च और शतपत्र (कठफोड़वा) आदि पक्षी सैनिकोंकी प्रदक्षिणा करते हैं, ब्राह्मण लोग उस पक्षकी युद्धमें निश्चितरूपसे विजय होती है, यह जानकारोंका कथन है ॥ ६८ ॥

अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च
मुखप्रसादैर्हेमवर्णैश्च नॄणाम् ।
भ्राजिष्मती दुष्प्रतिप्रेक्षणीया
येषां चमूस्ते विजयन्ति शत्रून् ॥ ६९ ॥

अलङ्कार, कवच, ध्वजा, मनुष्योंके मुखकी प्रसन्नता तथा उनके सुवर्णतुल्य कान्तिसे जिनकी सेना अत्यन्त शोभायमान होती है तथा शत्रुओंको जिनकी सेनाकी ओर देखना भी कठिन जान पड़ता है, वे अवश्य अपने शत्रुओंपर विजय पाते हैं ॥ ६९ ॥

हृष्टा वाचस्तथा सत्त्वं योधानां यत्र भारत ।
न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥ ७० ॥

भारत! जिस पक्षके योद्धाओंकी बातें हर्ष और उत्साहसे परिपूर्ण होती हैं, मन प्रसन्न रहता है तथा जिनके कण्ठमें पड़ी हुई पुष्पमालाएँ कुम्हलाती नहीं हैं, वे युद्धरूपी महासागरसे पार हो जाते हैं ॥ ७० ॥

इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः ।
पश्चात् संसाधयन्त्यर्थं पुरस्ताच्च प्रतिषेधिकाः ॥ ७१ ॥

जिस पक्षके योद्धा शत्रुकी सेनामें प्रवेश करनेकी इच्छा रखते हैं अथवा उसमें प्रवेश कर लेनेपर अभीष्ट वचन (मैं तुझे अभी मार गिराता हूँ इत्यादि शौर्यसूचक बातें) बोलते हैं और अपने पराक्रमका परिचय देते हैं, वे पीछे प्राप्त होनेवाली अपनी विजयको पहलेसे ही निश्चित कर लेते हैं। इसके विपरीत जिनके मुखसे शत्रुसेनामें प्रवेश करते समय सामनेसे निषेधसूचक वचन सुनायी पड़ते हैं, उनकी पराजय होती है ॥ ७१ ॥

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाश्चाविकृताः शुभाः ।
सदा हर्षश्च योधानां जयतामिति लक्षणम् ॥ ७२ ॥

जिनके शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि निर्विकार एवं शुभ होते हैं तथा जिन योद्धाओंके हृदयमें सदा हर्ष और उत्साह बना रहता है, उनके लिये वह विजयसूचक शुभ लक्षण है ॥ ७२ ॥

अनुगा वायवो वान्ति तथाभ्राणि वयांसि च ।
अनुप्लवन्ति मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंषि च ॥ ७३ ॥
एतानि जयमानानां लक्षणानि विशाम्पते ।
भवन्ति विपरीतानि मुमूर्षूणां जनाधिप ॥ ७४ ॥

राजन्! हवा जिनके अनुकूल चलती है, बादल और पक्षी भी जिनके अनुकूल होते हैं और जिनके पीछे-पीछे जलकी वर्षा किये चलते हैं तथा इन्द्रधनुष भी जिन्हें अनुकूल दिखायी देता है, उन विजयी वीरोंके लिये ये विजयके शुभ लक्षण हैं। जनेश्वर! मरणासन्न मनुष्योंको इसके विपरीत अशुभ लक्षण दिखायी देते हैं ॥ ७३-७४ ॥

अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।
हर्षो योधगणस्यैकं जयलक्षणमुच्यते ॥ ७५ ॥

सेना छोटी हो या बड़ी, उसमें सम्मिलित होनेवाले योद्धाओंका एकमात्र हर्ष ही निश्चितरूपसे विजयका लक्षण बताया जाता है ॥ ७५ ॥

एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि ।
तं दीर्णमनुदीर्यन्ते योधाः शूरतमा अपि ॥ ७६ ॥

यदि सेनामें एक सैनिक भी उत्साहहीन होकर पीछे हट जाता है तो वह सारी सेनाको भी भयभीत कर देता है। देखा-देखी अत्यन्त शूरवीर सैनिक

भी भाग देता है (उसके भागनेमें कारण बन जाता है)। उस सेनाके पलायन करनेपर बड़े-बड़े शूरवीर सैनिक भी भागनेको विवश होते हैं ॥ ७६ ॥

दुर्निवार्यतमा चैव प्रभग्ना महती चमूः।
अपामिव महावेगस्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ७७ ॥

जब बड़ी भारी सेना भागने लगती है, तब उसको भागे हुए मृगोंके झुण्ड तथा नीचेकी भूमिकी ओर बहनेवाले जलके महान् वेगकी भाँति रोकना अत्यन्त कठिन है ॥ ७७ ॥

नैव शक्या समाधातुं संनिपाते महाचमूः।
दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥ ७८ ॥

भरतनन्दन! विशाल सेनामें जब भगदड़ मच जाती है, तब उसे समझा-बुझाकर रोकना कठिन हो जाता है। सेना भाग रही है, इतना सुनकर ही बड़े-बड़े युद्धविशारद विद्वान् भी भागने लगते हैं ॥ ७८ ॥

भीतान् भग्नान् सम्प्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्धते।
प्रभग्ना सहसा राजन् दिशो विद्रवते चमूः ॥ ७९ ॥

राजन्! भयभीत होकर भागते हुए सैनिकोंको देखकर अन्य योद्धाओंका भय बहुत अधिक बढ़ जाता है। फिर तो सहसा सारी सेना छिन्न-भिन्न होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगती है ॥ ७९ ॥

नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः।
संहत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः।
उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥ ८० ॥

उस समय बहुत-से शूरवीर भी उस विशाल वाहिनीको रोककर खड़ा नहीं कर सकते। इसलिये बुद्धिमान् राजाको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर साम आदि उपायोंके द्वारा अपनी विशाल चतुरङ्गिणी सेनाको विशेष उत्साहपूर्वक स्थिर रखनेका यत्न करे ॥ ८० ॥

उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्यमम्।
जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्पते ॥ ८१ ॥

राजन्! साम-दानरूप उपायसे जो विजय प्राप्त होती है, उसे श्रेष्ठ बताया गया है। भेदनीतिके द्वारा शत्रुओंमें फूट डालकर जो विजय प्राप्त की जाती है, वह मध्यम है तथा युद्धके द्वारा मार-काट मचाकर जो शत्रुको पराजित किया जाता है, वह सबसे निम्नश्रेणीकी विजय है ॥ ८१ ॥

महादोषः संनिपातस्ततो व्यय उदाहृतः।
परस्परज्ञाः संहृष्टास्त्यक्तप्राणाः सुनिश्चिताः ॥ ८२ ॥
पञ्चाशदपि ये शूरा मथ्नन्ति महतीं चमूम्।
अथवा पञ्च षट् सप्त विजयन्त्यनिवर्तिनः ॥ ८३ ॥

युद्ध महान् पापका भण्डार है। उन दोषोंमें सबसे प्रधान है जनसंहार। यदि एक दूसरेको जाननेवाले हर्ष और उत्साहसे भरे हुए, कहीं भी आसक्त न होकर विजय प्राप्तिका दृढ़ निश्चय रखनेवाले तथा प्रोत्साहन पाकर पचास वीर भी हों तो वे बड़ी भारी सेनाको धूलमें मिला देते हैं। यदि पाँच, छः या सात ही योद्धा हों तो वे भी निश्चितरूपसे विजयी होते हैं ॥ ८२-८३ ॥

न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम्।
दृष्ट्वा सुपर्णोपचितिं महतीमपि भारत ॥ ८४ ॥

भारत! सुन्दर पंखोंवाले विनतानन्दन गरुड विशाल सेनाका भी विनाश होता देखकर अधिक जनसमूहकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥ ८४ ॥

न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः।
अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चात्र परायणम्।
जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ ८५ ॥

सदा अधिक सेना होनेसे ही विजय नहीं होती है। युद्धमें जीत प्रायः अनिश्चित होती है। उसमें दैव ही सबसे बड़ा सहारा है। जो संग्राममें विजयी होते हैं, वे ही कृतकार्य होते हैं ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें अनिष्टसूचक उत्पातों तथा विजयसूचक लक्षणोंका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयके द्वारा भूमिके महत्त्वका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते।
धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर महर्षि व्यासजी चले गये। धृतराष्ट्र भी उनके पूर्वोक्त वचन सुनकर कुछ देरतक अपने मनमें विचार करते रहे ॥ १ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः।
संजयं संशितात्मानमपृच्छद् भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ! दो घड़ीतक ध्यान करनेके पश्चात् बारंबार लंबी साँस खींचते हुए उन्होंने विशुद्ध अन्तःकरणवाले संजयसे पूछा— ॥ २ ॥

अस्यार्थे सुमहीपाला शूरा युद्धाभिनन्दिनः।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्ति शरैरुच्चावचैरिह॥३॥
पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम्।
न च शाम्यन्ति निघ्नन्तो वर्धयन्तो यमक्षयम्॥४॥
भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम्।
मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाचक्ष्व संजय॥५॥

संजय! इसीका पालन करनेवाले ये शूरवीर इस भूमिके लिये ही अपना जीवन निछावर करके युद्धका अभिनन्दन करते और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा एक दूसरेपर घातक प्रहार करते हैं। इस भूतलके ऐश्वर्यको लेना ही चाहते हुए वे एक दूसरेको सहन नहीं कर पाते हैं। परस्पर प्रहार करते हुए यमलोककी जनसंख्या बढ़ाते हैं; परंतु शान्त नहीं होते हैं। अतः मैं ऐसा मानता हूँ कि यह भूमि बहुतसे गुणोंसे विभूषित है। इसलिये संजय! तुम मुझसे इस भूमिके गुणोंका ही वर्णन करो॥३–५॥

बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
कोट्यश्च लोकवीराणां समेताः कुरुजाङ्गले॥६॥

कुरुक्षेत्रमें इस समय कई हजार, लाख, करोड़ और अरबों वीर एकत्र हुए हैं॥६॥

देशानां च परीमाणं नगराणां च संजय।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः॥७॥

संजय! ये लोग जहाँ-जहाँसे आये हैं, उन देशों और नगरोंका यथार्थ परिमाण मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ॥७॥

दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा।
प्रसादात् तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्यामिततेजसः॥८॥

क्योंकि तुम अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षि व्यासजीके प्रसादसे दिव्य बुद्धिरूपी प्रदीपसे प्रकाशित ज्ञानदृष्टिसे सम्पन्न हो गये हो॥८॥

संजय उवाच

यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान् वक्ष्यामि ते गुणान्।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ॥९॥

संजयने कहा—महाप्राज्ञ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे इस भूमिके गुणोंका वर्णन करूँगा। भरतश्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। आप शास्त्रदृष्टिसे इस विषयको देखिये और समझिये॥९॥

द्विविधानीह भूतानि त्रसानि स्थावराणि च।
त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः॥१०॥

राजन्! इस पृथ्वीपर दो प्रकारके प्राणी उपलब्ध हैं—स्थावर और जङ्गम। जङ्गम प्राणियोंकी उत्पत्तिके तीन स्थान हैं—अण्डज, स्वेदज और जरायुज॥१०॥

त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजञ्जरायुजाः।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये॥११॥

राजन्! जङ्गम प्राणियोंमें जरायुज श्रेष्ठ माने गये हैं। जरायुजोंमें भी मनुष्य और पशु उत्तम हैं॥११॥

नानारूपाणि बिभ्राणास्तेषां भेदाश्चतुर्दश।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः॥१२॥

वे नाना प्रकारकी आकृतियाले होते हैं। राजन्! उनके चौदह भेद हैं, जो वेदोंमें बताये गये हैं। भूपाल! उन्हींमें यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है॥१२॥

ग्रामस्थाः पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चारण्यवासिनाम्।
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनाभिजीवनम्॥१३॥

ग्रामवासी पशु और मनुष्योंमें मनुष्य श्रेष्ठ है और वनवासी पशुओंमें सिंह श्रेष्ठ है। समस्त प्राणियोंका जीवन-निर्वाह एक दूसरेके सहयोगसे होता है॥१३॥

उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः॥१४॥

स्थावरोंको उद्भिज्ज कहते हैं। उनकी पाँच ही जातियाँ हैं—वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार (बाँस आदि)। ये सब तृणजातिके हैं॥१४॥

एषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु।
चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता॥१५॥

ये उन्नीस प्रकारके प्राणी हैं। इनके साथ पाँच महाभूतोंको मिला लेनेपर इनकी संख्या चौबीस हो जाती है। गायत्रीके भी चौबीस ही अक्षर होते हैं। इसलिये इन चौबीस भूतोंको भी लोकसम्मत गायत्री कहा गया है॥१५॥

य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोकान्न प्रणश्यति॥१६॥

भरतश्रेष्ठ! जो लोग इस सर्वगुणसम्पन्न पुण्यमयी गायत्रीको यथार्थरूपसे जानता है, वह कभी नष्ट नहीं होता॥१६॥

अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा॥१७॥
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्तारण्याः स्मृता नृप।

नरेश्वर! उपर्युक्त चौदह प्रकारके जरायुज प्राणियोंमें सात वनवासी पशु माने गये हैं और ग्रामवासी भी सात ही हैं। सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, गज, रीछ और वानर—ये सात वनवासी पशु माने गये हैं।

गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः॥१८॥
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः।
एते वै पशवो राजन् ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥१९॥

गाय, बकरी, भेड़, मनुष्य, घोड़े, खच्चर और गदहे—इन सात पशुओंको साधु पुरुषोंने ग्रामवासी कहा है। राजन्! इस प्रकार ये ग्रामवासी और वनवासी मिलकर कुल चौदह पशु कहे गये हैं॥१७–१९॥

भूमौ हि जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव परायणम्॥२०॥

कारण है वह भूमिपर ही उत्पन्न होता है और भूमिमें ही विलीन होता है। भूमि ही सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा और भूमि ही सबका परम आश्रय है।

यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
तत्राभिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम्॥ २१॥

जिसके अधिकारमें भूमि है, उसीके अधिकारमें सम्पूर्ण चराचर जगत् है। इसीलिये भूमिके प्रति आसक्त होकर राजालोग एक-दूसरेको मारते हैं।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भूमिगुणवर्णनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

पञ्चमहाभूतों तथा सुदर्शनद्वीपका संक्षिप्त वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि संजय।
तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! नदियों, पर्वतों तथा जनपदोंके और दूसरे भी जो पदार्थ इस भूतलपर आश्रित हैं, उन सबके नाम बताओ॥ १॥

प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या अपि सर्वशः।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च संजय॥ २॥

प्रमाणवेत्ता संजय! तुम सारी पृथ्वीका पूरा प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाईका माप) मुझे बताओ। साथ ही काननोंका भी वर्णन करो॥ २॥

संजय उवाच

पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात्।
जगत्स्थितानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः॥ ३॥

संजय बोले—महाराज! इस पृथ्वीपर जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब संक्षेपसे पाँच महाभूतरूप हैं। इसीलिये मनीषी पुरुष उन्हें सम कहते हैं॥ ३॥

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः॥ ४॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि—ये पाँच महाभूत हैं। आकाशसे लेकर भूमितक ये सब भूत उत्तरोत्तर गुणोंकी अधिकतासे युक्त हैं। उनमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर भूतोंमें एक-एक गुण अधिक होते हैं। इन सब भूतोंमें भूमिकी प्रधानता है॥ ४॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः॥ ५॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचोंको तत्त्ववेत्ता महर्षियोंने पृथ्वीका गुण बताया है॥ ५॥

चत्वारोऽप्सु गुणा राजन् गन्धस्तत्र न विद्यते।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु॥ ६॥

राजन्! जलमें चार ही गुण हैं। उसमें गन्ध नहीं है। तेजके शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण हैं। वायुके शब्द और स्पर्श दो ही गुण हैं और आकाशका एकमात्र शब्द ही गुण है॥ ६॥

एते पञ्च गुणा राजन् महाभूतेषु पञ्चसु।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः॥ ७॥

राजन्! ये पाँच गुण सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयभूत पाँच महाभूतोंमें रहते हैं। उन्हींमें समस्त प्राणी प्रतिष्ठित हैं॥ ७॥

अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा॥ ८॥

ये पाँचों गुण जब साम्यावस्थामें रहते हैं, तब एक-दूसरेसे संयुक्त नहीं होते हैं॥ ८॥

यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम्।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा॥ ९॥

जब ये विषमभावको प्राप्त होते हैं, तब एक-दूसरेसे मिल जाते हैं। उस समय ही देहधारी प्राणी अपने शरीरोंसे युक्त होते हैं, अन्यथा नहीं॥ ९॥

आनुपूर्व्याद् विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः।
सर्वाण्यपरिमेयानि तदेषां रूपमैश्वरम्॥ १०॥

ये सब भूत क्रमसे नष्ट होते और क्रमसे ही उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी आदिके क्रमसे (कारणमें) लय होता है और आकाश आदिके क्रमसे इनका प्रादुर्भाव होता है। ये सब अपरिमेय हैं; इनका रूप ईश्वरकृत है॥ १०॥

तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते॥

भिन्न-भिन्न लोकोंमें पाञ्चभौतिक धातु दृष्टिगोचर होते हैं। मनुष्य तर्कके द्वारा उनके प्रमाणोंका प्रतिपादन करते हैं।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥ ११॥

परंतु जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हें तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। जो प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका स्वरूप है॥ ११॥

सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन।
परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः॥ १२॥

कुरुनन्दन! अब मैं सुदर्शन नामक द्वीपका वर्णन

१ का कानन

करूँगा । महाराज ! यह द्वीप चक्रकी भाँति गोलाकार स्थित है ।

नदीजलप्रतिच्छन्नं पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः ।
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवत् ।
लवणेन समुद्रेण समन्तात् परिवारितम् ॥ १५ ॥

यह नाना प्रकारकी नदियोंके जलसे आच्छादित, मेघके समान उज्ज्वल पर्वतोंसे सुशोभित, भाँति-भाँतिके नगरों, रमणीय जनपदों तथा फल-फूलसे भरे हुए वृक्षोंसे विभूषित है । यह द्वीप भाँति-भाँतिकी सम्पदाओं तथा धन-धान्यसे सम्पन्न है । इसे सब ओरसे लवणसमुद्रने घेर रखा है ।

यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ।
एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥ १६ ॥

जैसे पुरुष दर्पणमें अपना मुख देखता है, उसी प्रकार सुदर्शनद्वीप चन्द्रमण्डलमें दिखायी देता है ॥ १६ ॥

द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान् ।
सर्वौषधिसमावापैः सर्वतः परिबृंहितः ॥ १७ ॥

इसके दो अंशोंमें पिप्पल और दो अंशोंमें महान् शश दृष्टिगोचर होता है । इसके सब ओर सम्पूर्ण ओषधियोंका समुदाय फैला हुआ है ॥ १७ ॥

आपस्ततोऽन्या विज्ञेया शेषः संक्षेप उच्यते ।
[illegible] उच्यते समासेन महाराज शृणु ॥ १८ ॥

इसके अतिरिक्त सब भाग जलमय समझना चाहिये । इससे भिन्न जो भाग है, वह संक्षेपसे बताया जाता है । उस संक्षेपको मैं अभी बतलाता हूँ, आप सुनिये ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भूम्यादिगुणवर्णने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भूमि आदि तत्त्वोंके गुणोंका वर्णनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

सुदर्शनद्वीपके वर्ष, पर्वत, मेरुगिरि, गङ्गानदी तथा शशाकृतिका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

उक्तो द्वीपस्य संक्षेपो विधिवद् बुद्धिमंस्त्वया ।
तत्त्वज्ञश्चासि सर्वस्य विस्तरं ब्रूहि संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—बुद्धिमान् संजय ! तुमने सुदर्शनद्वीपका विधिपूर्वक थोड़ेमें ही वर्णन कर दिया । परंतु तुम तो सबके तत्त्वको जाननेवाले हो; अतः इस सम्पूर्ण द्वीपका विस्तारके साथ वर्णन करो ॥ १ ॥

यावान् भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे ।
तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम् ॥ २ ॥

चन्द्रमाके शश-चिह्नमें भूमिका जितना अवकाश दृष्टिगोचर होता है, उसका प्रमाण बताओ । तत्पश्चात् पिप्पलस्थानका वर्णन करना ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स राज्ञा तु संजयो वाक्यमब्रवीत् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रके इस प्रकार पूछनेपर संजयने कहना आरम्भ किया ॥ २½ ॥

संजय उवाच

प्रागायता महाराज षडेते वर्षपर्वताः ।
अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ३ ॥

संजय बोले—महाराज ! पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैले हुए ये छः वर्षपर्वत हैं, जो दोनों ओर पूर्व तथा पश्चिम समुद्रमें घुसे हुए हैं ॥ ३ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः ।
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतश्च शशिसंनिभः ॥ ४ ॥
सर्वधातुविनद्धश्च शृङ्गवान् नाम पर्वतः ।
एते वै पर्वता राजन् सिद्धचारणसेविताः ॥ ५ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—हिमवान्, हेमकूट, पर्वतश्रेष्ठ निषध, वैदूर्यमणिमय नीलगिरि, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल श्वेतगिरि तथा सब प्रकारकी धातुओंसे सम्पन्न होकर विचित्र शोभा धारण करनेवाला शृङ्गवान् पर्वत । राजन् ! ये छः पर्वत सिद्धों तथा चारणोंके निवासस्थान हैं ॥ ४-५ ॥

तेषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! इनके बीचका विस्तार सहस्रों योजन है । वहाँ भिन्न-भिन्न वर्ष (खण्ड) हैं और उनमें बहुत-से पवित्र जनपद हैं ॥ ६ ॥

वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥ ७ ॥

उनमें सब ओर नाना जातियोंके प्राणी निवास करते हैं । उनमेंसे यह भारतवर्ष है । इसके बाद हिमालयसे उत्तर हैमवतवर्ष है ॥ ७ ॥

हेमकूटात् परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते ।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ८ ॥
प्रागायतो महाबाहो माल्यवान् नाम पर्वतः ।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ९ ॥

हेमकूट पर्वतसे आगे हरिवर्ष बताया जाता है । महाबाहो ! नीलगिरिसे दक्षिण और निषधपर्वतसे उत्तर पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैला हुआ माल्यवान् नामक पर्वत है । माल्यवान्‌से आगे गन्धमादन पर्वत है ॥ ८-९ ॥

परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ १० ॥

इन दोनोंके बीचमें मध्यभागमें सुवर्णमय मेरुपर्वत है जो प्रातःकालके सूर्यके समान प्रकाशमान तथा धूमरहित अग्निके समान कान्तिमान् है॥ १०॥

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः।
अधस्ताच्चतुराशीतिर्योजनानां महीपते॥ ११॥

उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। राजन्! वह नीचे भी चौरासी हजार योजनतक पृथ्वीके भीतर घुसा हुआ है॥ ११॥

ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् च लोकानावृत्य तिष्ठति।
तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो॥ १२॥

प्रभो! मेरुपर्वत ऊपर-नीचे तथा अगल-बगल सम्पूर्ण लोकोंको आवृत करके खड़ा है। उसके पार्श्वभागमें ये चार द्वीप बसे हुए हैं॥ १२॥

भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥ १३॥

भारत! उनके नाम ये हैं—भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप तथा उत्तरकुरु। उत्तरकुरु द्वीपमें पुण्यात्मा पुरुषोंका निवास है॥ १३॥

विहगः सुमुखो नाम सुपर्णस्यात्मजः किल।
स वै विचिन्तयामास सौवर्णान् प्रेक्ष्य वायसान्॥ १४॥
मेरुरुत्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम्।
अविशेषकरो यस्मात् तस्मादेनं त्यजाम्यहम्॥ १५॥

एक समय पक्षिराज गरुड़के पुत्र सुमुखने मेरुपर्वतपर सुनहरे रंगके कौओंको देखकर सोचा कि यह सुमेरुपर्वत उत्तम, मध्यम तथा अधम पक्षियोंमें कुछ भी अन्तर नहीं रहने देता है। इसलिये मैं इसको त्याग दूँगा। ऐसा विचार करके वे वहाँसे अन्यत्र चले गये॥ १४-१५॥

तमादित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणम्॥ १६॥

ज्योतिर्मय ग्रहोंमें सर्वश्रेष्ठ सूर्यदेव, नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा तथा वायुदेव भी प्रदक्षिणक्रमसे मेरुगिरिकी परिक्रमा करते रहते हैं॥ १६॥

स पर्वतो महाराज दिव्यपुष्पफलान्वितः।
भवनैरावृतः सर्वैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः॥ १७॥

महाराज! वह पर्वत दिव्य पुष्पों और फलोंसे सम्पन्न है। वहाँके सभी भवन जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित हैं। उनसे घिरे हुए उस पर्वतकी बड़ी शोभा होती है॥ १७॥

तत्र देवगणा राजन् गन्धर्वासुरराक्षसाः।
अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वशः॥ १८॥

राजन्! उस पर्वतपर देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा अप्सराएँ सदा क्रीडा करती रहती हैं॥ १८॥

तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः।
समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः॥ १९॥

वहाँ ब्रह्मा, रुद्र तथा देवराज इन्द्र एकत्र हो पर्याप्त दक्षिणावाले नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं॥ १९॥

तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हहा हुहूः।
अभिगम्यामरश्रेष्ठान् स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः॥ २०॥

उस समय तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, हाहा और हूहू नामक गन्धर्व उन देवेश्वरोंके पास जाकर भाँति-भाँतिके स्तोत्रों-द्वारा उनकी स्तुति करते हैं॥ २०॥

सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः।
तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वणि पर्वणि॥ २१॥

राजन्! आपका कल्याण हो। महात्मा सप्तर्षिगण तथा प्रजापति कश्यप प्रत्येक पर्वके समय सदा वहाँ पधारते हैं॥ २१॥

तस्यैव मूर्धन्युशना काव्यो दैत्यैर्महीपते।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः॥ २२॥

भूपाल! उस मेरुपर्वतके ही शिखरपर दैत्योंके साथ शुक्राचार्य निवास करते हैं। ये सब रत्न तथा ये रत्नमय पर्वत शुक्राचार्यके ही अधिकारमें हैं॥ २२॥

तस्मात् कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति॥ २३॥

भगवान् कुबेर उन्हींसे धनका चतुर्थ भाग प्राप्त करके उसका उपभोग करते हैं और उस धनका सोलहवाँ भाग मनुष्योंको देते हैं॥ २३॥

पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमान्वितम्।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम्॥ २४॥

सुमेरुपर्वतके उत्तर भागमें समस्त ऋतुओंके फूलोंसे भरा हुआ दिव्य एवं रमणीय कर्णिकार (कनेर पुष्पोंका) वन है, जहाँ शिलाओंके समूह संचित हैं॥ २४॥

तत्र साक्षात् पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः।
उमासहायो भगवान् रमते भूतभावनः॥ २५॥
कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत् पादावलम्बिनीम्।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्द्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः॥ २६॥

वहाँ दिव्य भूतोंसे घिरे हुए साक्षात् भूतभावन भगवान् पशुपति पैरोंतक लटकनेवाली कनेरके फूलोंकी दिव्य माला धारण किये भगवती उमाके साथ विहार करते हैं। वे अपने तीनों नेत्रोंद्वारा ऐसा प्रकाश फैलाते हैं, मानो तीन सूर्य उदित हुए हों॥ २५-२६॥

तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः॥ २७॥

उग्र तपस्वी एवं उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सत्यवादी सिद्ध पुरुष ही वहाँ उनका दर्शन करते हैं। दुराचारी पापियोंको भगवान् महेश्वरका दर्शन नहीं हो सकता॥ २७॥

तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर।
विश्वरूपापरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना॥ २८॥
पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा।

शुक्लपीत प्रवेशेन हरे चामृतम। शुभे ॥ २९ ॥

नरेश्वर ! उस मेरुपर्वतके निचले दुष्पर्ष चमत्र नामक वालाली विद्युता अपरिमित पवित्रताशालिनी भगवान् वास पादके समान बन्द करनेवाली परम पुण्यात्मा पुण्योदरा सेवित, शुभसलिला पुण्यमयी मनोरमी गङ्गा बड़े प्रकाशवाली सुन्दर चन्द्रपुष्पकी मिलती है ॥ २८-२९ ॥

तथा कुशद्वीपः पुष्पाः स ह्रदः। अब्राडोदयम् ।

तौ मारयमानस तदा कुर्वन्तौ पयतेरपि ॥ ३० ॥

तामी वर्णसम्पन्नाय हिरण्योक दिनकरकृतम्।

यह पवित्र कुण्ड स्वयं गङ्गाजीने ही प्रकट किया है जो अपनी अगाध जलराशिके कारण समुद्रके समान जान पड़ता है। जिसे पहले ऊपर धारण करना पर्वतोंके लिये भी कठिन था, उन्हीं गङ्गाकी वेगवाली अनवरत् विष पड़ क्षत्र वर्षोतक मस्तकपर शंकरजीने धारण किये थे ॥ ३०३ ॥

मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो महीपते ॥ ३१ ॥

जम्बूखण्डस्तु तत्रैव सुमहान् नन्दनोपमः।

आयुर्दश सहस्राणि यत्रैषां नृप भारत ॥ ३२ ॥

राजन्! मेरुके पश्चिम भागमें केतुमाल द्वीप है, वहीं अत्यन्त विशाल जम्बूखण्ड नामक प्रदेश है जो नन्दनकानने समान मनोहर जान पड़ता है। भारत! वहाँके निवासियोंकी आयु दस हजार वर्षोंकी होती है ॥ ३१-३२ ॥

सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः।

अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ ३३ ॥

वहाँके पुरुष सुवर्णके समान कान्तिमान् और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं। उन्हें कभी रोग और शोक नहीं होते। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है ॥ ३३ ॥

जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः।

गन्धमादनशृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥ ३४ ॥

संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः।

वहाँ तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं। गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर गुह्यकोंके स्वामी कुबेर राक्षसोंके साथ रहते और अप्सराओंके समुदायोंके साथ आमोद-प्रमोद करते हैं ॥ ३४ ॥

गन्धमादनपार्श्वेषु परेष्वपरगण्डिकाः ॥ ३५ ॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां परमायुषः।

गन्धमादनके समीपवर्ती पर्वतोंपर दूसरी-दूसरी नदियाँ हैं, वहाँ निवास करनेवाले लोगोंकी आयु ग्यारह हजार वर्षोंकी होती है ॥ ३५ ॥

तत्र कृष्णा नराः राजंस्तेजोयुक्ता महाबलाः।

स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ॥ ३६ ॥

राजन्! वहाँके पुरुष कृष्णवर्ण, तेजस्वी और महाबली होते हैं तथा सभी स्त्रियाँ कमलके समान कान्तिमती और देखनेमें अत्यन्त मनोरम होती हैं ॥ ३६ ॥

नीलात् परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम्।

वर्षमैरावतं राजन् नानाजनपदावृतम् ॥ ३७ ॥

नील पर्वतसे उत्तर श्वेतवर्ष और श्वेतवर्षसे उत्तर हिरण्यकवर्ष है। तत्पश्चात् शृङ्गवान् पर्वतसे आगे ऐरावत नामक वर्ष है। राजन्! वह अनेकों जनपदोंसे भरा हुआ है ॥ ३७ ॥

धनुःसंस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे।

इलावृतं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥ ३८ ॥

महाराज! दक्षिण और उत्तरके क्रमशः भारत और ऐरावत नामक दो वर्ष धनुषकी दो कोटियोंके समान स्थित हैं और बीचमें पाँच वर्ष (श्वेत, हिरण्यक, इलावृत, हरिवर्ष तथा हैमवत) हैं। इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है ॥

उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः।

आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३९ ॥

भारतसे आरम्भ करके ये सभी वर्ष आयुके प्रमाण, आरोग्य, धर्म, अर्थ और काम—इन सभी दृष्टियोंसे गुणोंमें उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं ॥ ३९ ॥

समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत।

एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ॥ ४० ॥

भारत! इन सब वर्षोंमें निवास करनेवाले प्राणी परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं। महाराज! इस प्रकार यह सारी पृथ्वी पर्वतोंद्वारा स्थिर की गयी है ॥ ४० ॥

हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः।

यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते ॥ ४१ ॥

राजन्! विशाल पर्वत हेमकूट ही कैलास नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ कुबेर गुह्यकोंके साथ आनन्द विहार करते हैं ॥

अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति।

हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥ ४२ ॥

कैलासके उत्तर मैनाक है और उसके भी उत्तर दिव्य तथा महान् मणिमय पर्वत हिरण्यशृङ्ग है ॥ ४२ ॥

तस्य पार्श्वे महद् दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम्।

रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥ ४३ ॥

दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः।

उसीके पास विशाल, दिव्य, उज्ज्वल तथा काञ्चनमयी बालुकाओंसे सुशोभित रमणीय बिन्दुसरोवर है, जहाँ राजा भगीरथने भागीरथी गङ्गाका दर्शन करनेके लिये बहुत वर्षोंतक निवास किया था ॥ ४३ ॥

यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥ ४४ ॥

तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः।

वहाँ बहुत-से मणिमय यूप तथा सुवर्णमय चैत्य (महल) शोभा पाते हैं। वहीं यज्ञ करके महायशस्वी इन्द्रने सिद्धि प्राप्त की थी ॥ ४४ ॥

यत्र भूतपतिर्देवः सर्वलोकैः समावृतः ॥ ४५ ॥
उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ॥ ४६ ॥

उसी स्थानपर सब ओर सम्पूर्ण जगत्के लोग कोलाहल ... तेजस्वी भगवान् भूतनाथकी उपासना करते हैं। नर नारायण, ब्रह्मा, मनु और पाँचवें भगवान् शिव वहाँ सदा स्थित रहते हैं ॥ ४५-४६ ॥

तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।
ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥

ब्रह्मलोकसे उतरकर त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गङ्गा पहले उस बिन्दुसरोवरमें ही प्रतिष्ठित हुई। वहींसे उनकी सात धाराएँ विभक्त हुई हैं ॥ ४७ ॥

वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥ ४८ ॥

उन धाराओंके नाम इस प्रकार हैं—वस्वौकसारा, नलिनी, पावनी, सरस्वती, जम्बूनदी, सीता, गङ्गा और सिन्धु ॥ ४८ ॥

अचिन्त्या दिव्यसंकल्पा प्रभोरेषैव संविधिः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ ४९ ॥

यह ... धाराओंका प्रादुर्भाव ... के लिये भगवान्‌का ही अचिन्त्य एवं दिव्य सुन्दर विधान है। जहाँ लोग कल्पके अन्ततक यज्ञोंद्वारा परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥

दृश्यादृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्त गङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ५० ॥

इन सात धाराओंमें जो सरस्वती नामकी धारा है, वह कहीं प्रत्यक्ष दिखायी देती है और कहीं अदृश्य हो जाती है। ये सात दिव्य गङ्गाएँ तीनों लोकोंमें विख्यात हैं ॥ ५० ॥

रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णे च तपोवनम् ॥ ५१ ॥

हिमालयपर राक्षस, हेमकूटपर गुह्यक तथा निषधपर्वतपर सर्प और नाग निवास करते हैं। गोकर्ण तो तपोवन है ॥ ५१ ॥

देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा ।
शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसंचरः ॥ ५२-५३ ॥

श्वेतपर्वत सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंका निवासस्थान बताया जाता है। निषधगिरिपर गन्धर्व तथा नीलगिरिपर ब्रह्मर्षि निवास करते हैं। महाराज! शृङ्गवान् पर्वत तो केवल देवताओंकी ही विहारभूमि है ॥ ५२-५३ ॥

इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ५४ ॥

राजेन्द्र! इस प्रकार स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण प्राणी इन सात वर्षोंमें विभागपूर्वक स्थित हैं ॥ ५४ ॥

तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ॥ ५५ ॥

उनकी अनेक प्रकारकी दैवी और मानुषी समृद्धि देखी जाती है। उसकी गणना असम्भव है। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उस पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करना चाहिये ॥ ५५ ॥

सा वै पृष्टा महाराज दृश्यते शशवत् स्थिता ।
यां तु पृच्छसि मा राजन् दिव्यामेतां शशाकृतिम् ।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे ।
कर्णौ तु नागद्वीपं च कश्यपद्वीपमेव च ॥ ५६ ॥

इस प्रकार ... जो द्वीप ... दो भागोंमें विभक्त होकर चन्द्रमण्डलमें प्रतिबिम्बित हो खरगोशकी-सी आकृतिमें दृष्टिगोचर होता है ... आपने जो पूछा ... इस शशाकृति या खरगोशकी-सी आकृतिके विषयमें ... उसका वर्णन करता हूँ। ... दक्षिण और उत्तरमें स्थित भारत और ऐरावत नामक ... वर्ष ... हैं, वे ही ... नागद्वीप और कश्यपद्वीप ... उसके दोनों कान हैं ॥ ५६ ॥

ताम्रपर्णः शिरो राजन् श्रीमान् मलयपर्वतः ।
एतद् द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥ ५७ ॥

राजन्! ताम्रवर्णके पत्तों और फूलोंसे युक्त शोभाशाली मलयपर्वत ही इसका सिर है। इस प्रकार यह ... द्वीप ... शशके आकारमें दृष्टिगोचर होता है ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें पृथ्वी आदिके परिमाणका विवरणविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ५७½ श्लोक हैं)

सप्तमोऽध्याय

उत्तर कुरु, भद्राश्ववर्ष तथा माल्यवान्‌का वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच
मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाचक्ष्व संजय ।
निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—परम बुद्धिमान् संजय! तुम मेरुके उत्तर तथा पूर्व भागमें जो कुछ है, उसका पूर्ण रूपसे वर्णन करो। साथ ही माल्यवान् पर्वतके

विषयमें भी जानते योग्य बातें बताओ ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे।
उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥ २ ॥

वैशम्पायनने कहा—राजन्! नीलगिरिसे दक्षिण तथा मेरुपर्वतके उत्तर भागमें पवित्र उत्तर कुरुवर्ष है, जहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं ॥ २ ॥

तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥

वहाँके वृक्ष सदा फूल और फलसे सम्पन्न होते हैं और उनके फल बड़े मधुर एवं स्वादिष्ट होते हैं। उस देशके सभी पुष्प सुगन्धित और फल सरस होते हैं ॥ ३ ॥

सर्वकामफलास्तत्र केचिद् वृक्षा जनाधिप।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥ ४ ॥
ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं ह्यमृतोपमम्।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ५ ॥

नरेश्वर! वहाँके कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता हैं। राजन्! दूसरे क्षीरी नामवाले वृक्ष हैं जो सदा षड्‌विध रसोंसे युक्त एवं अमृतके समान स्वादिष्ट दुग्ध बहाते रहते हैं। उनके फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं ॥ ४-५ ॥

सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥ ६ ॥

जनेश्वर! वहाँकी सारी भूमि मणिमयी है। वहाँ की सूक्ष्म बालुके कण हैं वे सब सुवर्णमय हैं। उस भूमिपर कीचड़का कहीं नाम भी नहीं है उसका स्पर्श सभी ऋतुओंमें सुख दायक होता है। वहाँके सुन्दर सरोवर अत्यन्त मनोरम होते हैं। उनका स्पर्श सुखद जान पड़ता है ॥ ६ ॥

देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥ ७ ॥

वहाँ देवलोकसे भूमण्डलपर आये हुए पुण्यात्मा मनुष्य ही जन्म ग्रहण करते हैं। वे सभी उत्तम कुलमें उत्पन्न और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं ॥ ७ ॥

मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसंनिभम् ॥ ८ ॥

वहाँ स्त्री-पुरुषोंके जोड़े भी उत्पन्न होते हैं। स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं। उत्तरकुरुके निवासी क्षीरी वृक्षोंके अमृततुल्य दूध पीते हैं ॥ ८ ॥

मिथुनं जायमानं वै समं तच्च प्रवर्धते।
तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ॥ ९ ॥

वहाँ स्त्री-पुरुषोंके जोड़े एक ही साथ उत्पन्न होते और साथ-साथ बढ़ते हैं। उनके रूप, गुण और वेष सब एक-से होते हैं ॥ ९ ॥

एकैकमनुरक्तं च चक्रवाकसमं विभो।
निरामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ १० ॥

प्रभो! वे चकवा-चकवीके समान सदा एक दूसरेके अनुकूल बने रहते हैं। उत्तरकुरुके लोग सदा नीरोग और प्रसन्नचित्त रहते हैं ॥ १० ॥

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।
जीवन्ति ते महाराज न चान्योन्यं जहत्युत ॥ ११ ॥

महाराज! वे ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। एक दूसरेका कभी त्याग नहीं करते ॥ ११ ॥

भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः।
तान् निर्हरन्तीह मृतान् दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥ १२ ॥

वहाँ भारुण्ड नामके महाबली पक्षी हैं जिनकी चोंचे बड़ी तीखी होती हैं। वे वहाँके मरे हुए लोगोंकी लाशें उठा ले जाते और कन्दराओंमें फेंक देते हैं ॥ १२ ॥

उत्तराः कुरवो राजन् व्याख्यातास्ते समासतः।
मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥ १३ ॥

राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे संक्षेपमें उत्तरकुरुवर्षका वर्णन किया। अब मैं मेरुके पूर्वभागमें स्थित भद्राश्ववर्षका यथावत् वर्णन करूँगा ॥ १३ ॥

तस्य पूर्वाभिषेकं तु भद्राश्वस्य विशाम्पते।
भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ १४ ॥

प्रजानाथ! भद्राश्ववर्षके शिखरपर भद्रशाल नामक एक वन है तथा वहाँ कालाम्र नामक महान् वृक्ष भी है ॥ १४ ॥

कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः।
द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः ॥ १५ ॥

महाराज! कालाम्र वृक्ष बहुत ही सुन्दर और एक योजन ऊँचा है। उसमें सदा फूल और फल लगे रहते हैं। सिद्ध और चारण पुरुष उसका सदा सेवन करते हैं ॥ १५ ॥

तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः।
स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ १६ ॥

वहाँके पुरुष श्वेत कान्तिमान् हैं। वे तेजस्वी और महान् बलवान् हुआ करते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ कुमुद पुष्पके समान गौर वर्णवाली सुन्दरी तथा देखनेमें प्रिय होती हैं ॥ १६ ॥

चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।
चन्द्रशीतलगात्र्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७ ॥

उनकी अङ्गकान्ति एवं वर्ण चन्द्रमाके समान है। उनके मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर होते हैं। उनका एक-एक अङ्ग चन्द्ररश्मियोंके समान शीतल प्रतीत होता है। वे नृत्य और गीतकी कलामें कुशल होती हैं ॥ १७ ॥

दश वर्षसहस्राणि तत्रायुर्भरतर्षभ।
कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वहाँके लोगोंकी आयु दस हजार वर्षकी होती है । वे चाँदके समान कान्तिवाले तथा बलवान होते हैं ॥

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ॥ १९ ॥

नीलगिरिके दक्षिण और निषधके उत्तर सुदर्शन नामक एक विशाल जामुनका वृक्ष है, जो सदा स्थिर रहनेवाला है ॥

सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ॥ २० ॥

यह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला, पवित्र तथा सिद्धों और चारणोंसे सेवित है । उसीके नामपर यह सनातन द्वीप जम्बूद्वीपके नामसे विख्यात है ॥

योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ ।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृगनुमेदिनीम् ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वृक्षराज जम्बूकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है । वह उत्तम वृक्ष सर्वलोकविख्यात तथा आकाशको छूता हुआ-सा प्रतीत होता है ॥

अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्च च ।
परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ॥ २२ ॥

उसके फलोंकी परिधि ... ढाई हजार अरत्नि है । वे पकनेपर अपने-आप फूटकर गिर जाते हैं । उन फलोंकी चौड़ाई भी इतनी ही मानी गयी है ॥

पतमानानि तान्युर्वीं कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
मुञ्चन्ति च रसं राजंस्तस्मिन् रजतसंनिभम् ॥ २३ ॥

राजन् ! वे फल पृथ्वीपर गिरते समय भारी धमाकेकी आवाज करते हैं और उनसे चाँदीके समान ... रस बहता रहता है ॥

तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप ।
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान् कुरून् ॥ २४ ॥

जनेश्वर ! जामुनके फलोंका वह रस नदीके रूपमें परिणत होकर मेरुगिरिकी परिक्रमा करता हुआ उत्तरकुरुवर्षमें पहुँच जाता है ॥

तत्र तेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप ।
तस्मिन् फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ॥ २५ ॥

राजन् ! उस फलके रसको पी लेनेपर वहाँके निवासियोंके मनमें पूर्ण शान्ति और प्रसन्नता रहती है । उन्हें पिपासा अथवा वृद्धावस्था कभी नहीं सताती है ॥

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भास्वरं तु तत् ॥ २६ ॥

... जम्बू नदीसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है, जो देवताओंका आभूषण है । ... वह बहुत चमकीला होता है ॥

तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा ॥ २७ ॥

वहाँके लोग प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् होते हैं । माल्यवान् पर्वतके शिखरपर सदा अग्निदेव प्रज्वलित दिखायी देते हैं ॥

नाम्ना संवर्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ ।
तत्र माल्यवतः शृङ्गे पूर्वे पूर्वान्तगण्डिका ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ... वह संवर्तक नामक कालाग्नि है । माल्यवान् पर्वतके पूर्व शिखरपर पूर्वगण्डिका नदी ... प्रवाहित होती है ॥

योजनानां सहस्राणि पञ्चषण्माल्यवानथ ।
महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २९ ॥

माल्यवान् पर्वतका विस्तार पाँच-छः हजार योजन है । वहाँ सुवर्णके समान कान्तिवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥

ब्रह्मलोकाच्च्युताः सर्वे सर्वे च ब्रह्मवादिनः ।
तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः ।
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ति दिवाकरम् ॥ ३० ॥

... वे सब ब्रह्मलोकसे आये हुए पुण्यात्मा मनुष्य हैं । उन सबका समस्त प्राणियोंके प्रति साधुतापूर्ण बर्ताव होता है । वे ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते और कठोर तपस्या करते हैं । फिर समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर जाते हैं ॥

षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ।
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ॥ ३१ ॥

उनमेंसे छाछठ हजार मनुष्य भगवान् सूर्यको चारों ओरसे घेरकर अरुणके आगे-आगे चलते हैं ॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च ।
आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥ ३२ ॥

छाछठ हजार वर्षोंतक सूर्यदेवके तापसे तपकर वे अन्तमें चन्द्रमण्डलमें प्रवेश कर जाते हैं ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें माल्यवान्‌का वर्णनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

रमणक, हिरण्यक, शृङ्गवान् पर्वत तथा ऐरावतवर्षका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च संजय ।
आचक्ष्व मे यथातत्त्वं ये च पर्वतवासिनः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुम सभी वर्षों और पर्वतोंके

यहाँसे लेकर ... श्लोकोंमें ... वर्णन आता है ।

नाम बताओ और जो उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले हैं उनकी स्थितिका भी यथावत् वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

दक्षिणेन तु श्वेतस्य नीलस्यैवोत्तरेण तु ।
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २ ॥
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ।
निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ३ ॥

संजय बोले—राजन्! श्वेतके दक्षिण और नीलके उत्तर रमणक नामक वर्ष है। वहाँ जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वे उत्तम कुलमें उत्पन्न और देखनेमें अत्यन्त प्रिय होते हैं। वहाँके सब मनुष्य शत्रुओंसे रहित होते हैं ॥ २-३ ॥

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जीवन्ति ते महाराज नित्यं मुदितमानसाः ॥ ४ ॥

महाराज! रमणकवर्षके मनुष्य सदा प्रसन्नचित्त होकर साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं ॥ ४ ॥

दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ५ ॥

नीलके दक्षिण और निषधके उत्तर हिरण्मय वर्ष है, जहाँ हैरण्वती नदी बहती है ॥ ५ ॥

यत्र चायं महाराज पक्षिराट् पतगोत्तमः ।
यक्षानुगा महाराज धनिनः प्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥
महाबलास्तत्र जना राजन् मुदितमानसाः ।

महाराज! वहीं पक्षियोंमें श्रेष्ठ पक्षिराज गरुड़ निवास करते हैं। वहाँके सब मनुष्य यक्षके उपासक, धनवान्, प्रियदर्शन, महाबली तथा प्रसन्नचित्त होते हैं ॥ ६ ॥

एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ ७ ॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।

जनेश्वर! वहाँके लोग साढ़े बारह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥ ७ ॥

शृङ्गाणि वै शृङ्गवतस्त्रीण्येव मनुजाधिप ॥ ८ ॥
एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् ।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥

मनुजेश्वर! शृङ्गवान् पर्वतके तीन ही शिखर हैं। उनमेंसे एक मणिमय है, दूसरा अद्भुत सुवर्णमय है और तीसरा अनेक भवनोंसे सुशोभित सर्वरत्नमय है ॥ ८-९ ॥

तत्र स्वयंप्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥ १० ॥
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गवतः परम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्ति मानवाः ॥ ११ ॥

वहाँ स्वयंप्रभा नामवाली शाण्डिली देवी नित्य निवास करती हैं। जनेश्वर! शृङ्गवान् पर्वतके उत्तर समुद्रके निकट ऐरावत नामक वर्ष है। अतः इन शिखरोंसे संयुक्त यह वर्ष सबसे श्रेष्ठ और उत्तम है। वहाँ सूर्यदेव ताप नहीं देते हैं और न वहाँके मनुष्य बूढ़े ही होते हैं ॥ १०-११ ॥

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवावृतः ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ १२ ॥

नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा वहाँ ज्योतिर्मय होकर सब ओर व्याप्त-सा रहता है। वहाँके मनुष्य कमलकी-सी कान्ति तथा वर्णवाले होते हैं। उनके विशाल नेत्र कमलदलके समान सुशोभित होते हैं ॥ १२ ॥

पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
अनिष्पन्दाः सुगन्धाश्च निराहारा जितेन्द्रियाः ॥ १३ ॥

वहाँके मनुष्योंके शरीरसे विकसित कमलदलोंके समान सुगन्ध प्रकट होती है। उनके शरीरसे पसीना नहीं निकलता। उनके शरीरसे सुगन्ध फैलती रहती है। वे आहार न करनेवाले और जितेन्द्रिय होते हैं ॥ १३ ॥

देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ १४ ॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम ।

नरेश्वर! वे सब-के-सब देवलोकसे च्युत होकर आये हुए होते हैं। उनमें रजोगुणका सर्वथा अभाव होता है। भरतभूषण नरेश्वर! वे तेरह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥ १४ ॥

क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ।
हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकात्मके ॥ १५ ॥
अष्टचक्रं हि तद् यानं भूतयुक्तं मनोजवम् ।
अग्निवर्णं महातेजा जाम्बूनदविभूषितम् ॥ १६ ॥

इसी प्रकार क्षीरसागरके उत्तर भागमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ वे सुवर्णमय रथपर विराजमान हैं। उस रथमें आठ पहिये लगे हैं। वह मनके समान वेगशाली है। उसका नाम कान्तिमान् है। वह परम तेजस्वी तथा जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित है ॥ १५-१६ ॥

स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ ।
संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्ता कारयिता तथा ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ! वे सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान् विष्णु ही सम्पूर्ण प्राणियोंका संक्षेप और विस्तार करते हैं। वे ही करनेवाले और करानेवाले हैं ॥ १७ ॥

पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च पार्थिव ।
स यज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ॥ १८ ॥

राजन्! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश सब कुछ वे ही हैं। वे ही समस्त प्राणियोंके लिये यज्ञस्वरूप हैं। अग्नि उनका मुख है ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः संजयेन धृतराष्ट्रो महामनाः ।
ध्यानमन्वगमद् राजा पुत्रान् प्रति जनाधिप ॥ १९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! संजयके ऐसा कहनेपर महामना धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके लिये चिन्ता करने लगे।

स चिन्तयित्वा तु नृपः पुनरेवाब्रवीद् वचः।
असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत्॥ २०॥

कुछ देरतक मन-ही-मन विचार करनेके बाद वे फिर बोले—सूतपुत्र! इसमें संदेह नहीं कि काल ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करता है॥ २०॥

सृजते च पुनः सर्वं विद्यते नेह शाश्वतम्।
नरो नारायणश्चैव सर्वज्ञः सर्वभूतहृत्॥ २१॥
देवा वैकुण्ठमित्याहुर्विष्णुरित्यपरे विभुम्॥ २२॥

फिर वही सबकी सृष्टि करता है। यहाँ कुछ भी सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। भगवान् नर और नारायण सर्वज्ञ और सम्पूर्ण भूतोंके सुहृद् हैं। देवता उन्हें वैकुण्ठ और मनुष्य उन्हें सर्वव्यापी विष्णु कहते हैं॥ २१-२२॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवमोऽध्याय

भारतवर्षकी नदियों, देशों तथा जनपदोंके नाम और भूमिका महत्त्व

धृतराष्ट्र उवाच

यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्च्छितं बलम्।
यत्रातिमात्रं लुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम॥ १॥
यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः।
एतन्मे तत्त्वमाचक्ष्व त्वं हि मे बुद्धिमान् मतः॥ २॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! यह जो भारतवर्ष है, जिसमें यह विशाल सेना युद्धके लिये एकत्र हुई है, जिसके लिये मेरा पुत्र दुर्योधन अत्यन्त लालायित है, जिसे पानेके लिये पाण्डुके पुत्र भी लोलुप हो रहे हैं तथा जिसके प्रति मेरा मन भी बहुत आसक्त है, उस भारतवर्षका तुम यथार्थरूपसे वर्णन करो; क्योंकि इस विषयमें मेरी दृष्टिमें तुम्हीं सबसे अधिक बुद्धिमान् हो॥ १-२॥

संजय उवाच

न तत्र पाण्डवा गृद्धाः शृणु राजन् वचो मम।
गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः॥ ३॥

संजयने कहा—राजन्! आप मेरी बात सुनिये। इस भारतवर्षके लिये पाण्डवलोग लोलुप नहीं हैं। दुर्योधन तथा सुबलपुत्र शकुनि ही इसके लिये लालायित हुए हैं॥ ३॥

अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः।
ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम्॥ ४॥

विभिन्न देशोंके शासक दूसरे-दूसरे क्षत्रिय नरेश भी, जो इस भारतवर्षके प्रति लुब्ध हैं, एक-दूसरेके उत्कर्षको सहन नहीं कर पाते हैं॥ ४॥

अत्र ते वर्णयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च॥ ५॥

भारत! अब मैं यहाँ आपसे उस भारतवर्षका वर्णन करता हूँ, जो देवराज इन्द्र और वैवस्वत मनुका प्रिय देश है॥ ५॥

पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च॥ ६॥
तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा॥ ७॥
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च॥ ८॥
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्॥ ९॥

राजन्! दुर्धर्ष महाराज! वेनकुमार पृथु, महात्मा इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, उशीनरपुत्र शिबि, ऋषभ, इलानन्दन पुरूरवा, राजा नृग, कुशिक, महात्मा गाधि, सोमक और दिलीप तथा अन्य जो महाबली क्षत्रिय नरेश हुए हैं, उन सभीको भारतवर्ष बहुत प्रिय रहा है॥ ६-९॥

तत् ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमरिंदम।
शृणु मे गदतो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ १०॥

शत्रुदमन नरेश! मैं उसी भारतवर्षका यथावत् वर्णन करूँगा। आपने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह बताता हूँ, सुनिये॥ १०॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥ ११॥

इस भारतवर्षमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं॥ ११॥

तेषां सहस्रशो राजन् पर्वतास्तु समीपतः।
अभिज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः॥ १२॥

राजन्! इनके आसपास और भी हजारों अविज्ञात पर्वत हैं, जो सार वस्तुओंसे युक्त, विस्तृत और विचित्र शिखरोंसे सुशोभित हैं॥ १२॥

अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः।
आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो॥ १३॥
नदीः पिबन्ति बहुला गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम्।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्॥ १४॥

शतद्रुं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम्।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम्॥ १५॥
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम्।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि॥ १६॥
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम्।
करीषिणीं चित्रवहां चित्रसेनां च निम्नगाम्॥ १७॥

इनके सिवा और भी सहस्रों अप्रसिद्ध नदियाँ हैं, जिनका जल भारतवर्षके मानवोंके प्राण बने हुए हैं। कुरुनन्दन! भारतवर्षकी बहुत-सी नदियाँ हैं, उनमेंसे कुछके नाम बताता हूँ, सुनिये — गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, महानदी, शतद्रु, चन्द्रभागा, महानदी यमुना, दृषद्वती, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, वेत्रवती, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा, इक्षुला, कृमि, करीषिणी, चित्रवहा, चित्रसेना ॥ १२—१७ ॥

गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम्।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम्॥ १८॥
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च।
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा॥ १९॥
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि॥ २०॥

गोमती, धूतपापा, महानदी वन्दना, कौशिकी, त्रिदिवा, कृत्या, निचिता, लोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिशा, शरावती, पयोष्णी, वेणा, भीमरथी, कावेरी, चुलुका, वाणी और शतबला ॥ १८—२० ॥

नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप।
पवित्रां कुण्डलां सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम्॥ २१॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा।
पलाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम्॥ २२॥
करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम्।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा॥ २३॥
पुरावतीमनुष्णां च शैब्यां कापीं च भारत।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम्॥ २४॥

नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पलाशिनी, पापहरा, महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी, असिक्नी, महानदी कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, घृतवती, पुरावती, अनुष्णा, शैब्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या और महानदी कुशधारा ॥ २१—२४ ॥

सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरवतीमपि।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम्॥ २५॥
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम्।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम्॥ २६॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुचीरामम्बुवाहिनीम्।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम्॥ २७॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिस्रावां महापगाम्॥ २८॥
शीघ्रां च पिच्छलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम्।
कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम्॥ २९॥
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम्।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि॥ ३०॥

सदाकान्ता, शिवा, वीरवती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, महानदी पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुचीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, महानदी तुङ्गवेणा, विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, हरिस्रावा, महापगा, शीघ्रा, पिच्छला, भारद्वाजी नदी, कौशिकी नदी, शोणा, बाहुदा, चन्द्रमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्वती, यवक्षा, रोही तथा जाम्बूनदी ॥ २५—३० ॥

सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम्।
नीलां धृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम्॥ ३१॥
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्ध्वनिम्।
एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप॥ ३२॥

सुनसा, तमसा, दासी, वसा, वराणसी, नीला, धृतवती, महानदी पर्णाशा, मानवी, वृषभा, ब्रह्ममेध्या, बृहद्ध्वनि — ये तथा और भी बहुत-सी बड़ी नदियाँ हैं ॥ ३१-३२ ॥

सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम्।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत॥ ३३॥
चित्रोपलां चित्ररथां मञ्जुलां वाहिनीं तथा।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोषां चापि महानदीम्॥ ३४॥
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम्।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम्॥ ३५॥
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम्।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत॥ ३६॥

भारत! सदा निरामया कृष्णा, मन्दगा, मन्दवाहिनी, ब्राह्मणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रोपला, चित्ररथा, मञ्जुला, वाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरणी, महानदी कोषा, शुक्तिमती, अनङ्गा, वृषसाह्वया, लोहित्या, करतोया, वृषका, कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, मन्दाकिनी, सुपुण्या तथा गङ्गा — इन सब नदियोंके जल भारतवासी पीते हैं ॥ ३३—३६ ॥

विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ३७॥

राजन्! पूर्वोक्त सभी नदियाँ सम्पूर्ण विश्वकी माताएँ हैं। ये सब-की-सब महान् पुण्य फल देनेवाली हैं। इनके सिवा सैकड़ों और हजारों ऐसी नदियाँ हैं, जो लोगोंके परिचयमें नहीं आयी हैं ॥ ३७ ॥

इत्येताः सरितो राजन् समाख्याता यथास्मृति।
अत ऊर्ध्वं जनपदान् निबोध गदतो मम ॥ ३८ ॥

राजन्! यहाँतक मैंने स्मरणशक्तिके अनुसार नदियोंके नाम बताये हैं। इसके बाद अब मैं भारतवर्षके जनपदोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ ३८ ॥

तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥ ३९ ॥
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तयः कान्तिकोसलाः।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ४० ॥
उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरंधराः ॥ ४१ ॥
गोधा मद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः।
जठराः कुकुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥ ४२ ॥
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः।
गोमन्ता मन्दकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः ॥ ४३ ॥
अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः।
अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केरलम् ॥ ४४ ॥

भारत! ये कुरु-पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय-जांगल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्ति, कोसल, चेदि, मत्स्य, करूष, भोज, सिन्धु, पुलिन्द, उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, पञ्चाल, कोसल, नैकपृष्ठ, धुरन्धर, गोधा, मद्रकलिंग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुकुर, दशार्ण, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य तथा मल्ल— ॥ ३९—४४ ॥

वारवास्यापवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः।
विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥ ४५ ॥
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा माहिकाः शशिकास्तथा ॥ ४६ ॥
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः।
अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्ममण्डलाः ॥ ४७ ॥
अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष।
उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८ ॥
कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः।
अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९ ॥
बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः।
समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥ ५० ॥

मल्लराष्ट्र, केरल, वारवास्य, अपवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यकृल्लोम, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, माहिक, शशिक, बाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पञ्चाल, चर्ममण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, स्वराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कक्ष, सामुद्रनिष्कुट, बहुसंख्यक अन्ध्र, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर, प्रावृषेय तथा भार्गव— ॥ ४५—५० ॥

पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदेष्टा यामुनास्तथा।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥ ५१ ॥
दुगूलाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा।
तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यकागुणाः ॥ ५२ ॥
तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥ ५३ ॥
अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा।
दार्वी च वानवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४ ॥
बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः।
वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥ ५५ ॥
वनायवो दशापार्श्वा रोमाणः कुशबिन्दवः।
कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥ ५६ ॥
किराता बर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
औड्रा म्लेच्छाः सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष ॥ ५७ ॥

पुण्ड्र, भर्ग, किरात, सुदेष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैर्ऋत, दुगूल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोसल, तीरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमान्, सुकन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवल, बाह्लिक, दार्वी, वानव, दर्व, वातज, आमरथ, उरग, बहुवाद्य, सुदामा, सुमल्लिक, वध्र, करीषक, कुलिन्द, उपत्यक, वनायु, दश, पार्श्व, रोमाण, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकक्ष, जाङ्गल, कुरुवर्णक, किरात, बर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, औड्र, म्लेच्छ, सैसिरिध्र और पार्वतीय आदि जनपद हैं ॥ ५१—५७ ॥

अथापरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः ॥ ५८ ॥
कर्णाटका माहिषका विकल्पा मूषकास्तथा।
झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननाः ॥ ५९ ॥
कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः।
समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ६० ॥
ध्वजिन्युत्सवसंकेतास्त्रिगर्ताः शाल्वसेनयः।
व्यूकाः कोकबकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ॥ ६१ ॥
तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह।
मालवा वल्लवाश्चैव तथैवापरवल्लवाः ॥ ६२ ॥
कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डलाः करटास्तथा।
मूषकास्तनबालाश्च सनीपा घटसृञ्जयाः ॥ ६३ ॥

अहिकाः पाशिवाटाश्च तथा सुलगाश्चकाः ।
ऋषिका विदर्भाः काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ६४ ॥
उत्तराश्चापरे म्लेच्छा जना भरतसत्तम ।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥ ६५ ॥

भरतश्रेष्ठ! अब जो दक्षिण दिशाके अन्यान्य जनपद हैं, उनका वर्णन सुनिये—द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, कौकुट्टक, चोल, कोङ्कण, मालव, नर, समङ्ग, करक, कुकुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सव, संकेत, त्रिगर्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकबक, प्रोष्ठ, समवेगवशा, विन्ध्यचुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, बल्लव, अपरवल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, स्तनबाल, सनीप, घट, सृञ्जय, अठिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदर्भ, काक, तङ्गण, परतङ्गण, उत्तर और क्रूर म्लेच्छ, यवन, चीन, तथा काम्बोज—ये सब जनपद हैं। यहाँ भयानक म्लेच्छ जातियाँ निवास करती हैं ॥ ५८—६५ ॥

सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६ ॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥ ६७ ॥
खाशीराश्चान्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वराः ।
आत्रेयाः सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिकाः ॥ ६८ ॥
प्रोषकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः ।
तोमरा हन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥ ६९ ॥

सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमण, चीन, दशमालिक, क्षत्रियोंके उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रोंके कुल, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पशु, खाशीर, अन्तचार, पह्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक, कलिङ्ग, किरात जातियोंके जनपद, तोमर, हन्यमान और करभञ्जक इत्यादि ॥ ६६—६९ ॥

एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः संकीर्तिता विभो ॥ ७० ॥

राजन्! ये तथा और भी पूर्व और उत्तर दिशाके जनपद यहाँ संक्षेपसे बताये हैं ॥ ७० ॥

यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ।
दुह्येद् धेनुः कामधुक् च भूमिः सम्यगनुष्ठिता ॥ ७१ ॥

अपने गुण और बलके अनुसार यदि अच्छी तरह इस भूमिका पालन किया जाय तो यह कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली कामधेनु बनकर धर्म, अर्थ और काम तीनोंके महान् फलकी प्राप्ति कराती है ॥ ७१ ॥

तस्यां गृध्यन्ति राजानः शूरा धर्मार्थकोविदाः ।
ते त्यजन्त्याहवे प्राणान् वसुगृद्धास्तरस्विनः ॥ ७२ ॥

इसीलिये धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण शूरवीर नरेश इस भूमिकी अभिलाषा रखते हैं और धनके लोभमें आसक्त हो वेगपूर्वक युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग कर देते हैं ॥ ७२ ॥

देवमानुषकायानां कामं भूमिः परायणम् ।
अन्योन्यस्यावलुम्पन्ति सारमेया यथामिषम् ॥ ७३ ॥
राजानो भरतश्रेष्ठ भोक्तुकामा वसुन्धराम् ।
न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित् ॥ ७४ ॥

देवताओंके शरीरों तथा मनुष्योंके शरीरोंके लिये यह भूमि उनका परम आश्रय होती है। भरतश्रेष्ठ! जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ेके लिये परस्पर लड़ते और एक दूसरेको नोचते हैं, उसी प्रकार राजा लोग वसुधाको भोगनेकी इच्छा रखकर आपसमें लड़ते-झगड़ते रहते हैं, किंतु आजतक किसीकी कामनाओंकी तृप्ति नहीं हुई ॥ ७३-७४ ॥

तस्मात् परिग्रहे भूमेर्यतन्ते कुरुपाण्डवाः ।
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥

भारत! इस असन्तोषके ही कारण कौरव और पाण्डव साम, दान, भेद और दण्डके द्वारा सम्पूर्ण वसुधाको अधिकारमें करनेके लिये यत्न करते हैं ॥ ७५ ॥

पिता भ्राता च पुत्राश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव ।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शिनी ॥ ७६ ॥

नरश्रेष्ठ! यदि भूमिकी भलीभाँति रक्षा की जाय तो यह सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये पिता, माता, पुत्र, आकाश और स्वर्ग भी बन जाती है ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतवर्षदेशविभागकथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भारतवर्षके देशविभागका वर्णन विषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्याय

भारतवर्षमें युगोंके अनुसार मनुष्योंकी आयु तथा गुणोंका निरूपण

धृतराष्ट्र उवाच

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च ।
प्रमाणमायुषः सूत फलं चापि शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च संजय ।

आयुश्च मे विस्तरेण हरिवर्षे तथैव च ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! तुम भारतवर्ष और हैमवत वर्षके प्राणियोंकी आयुका प्रमाण, बल तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमानके शुभाशुभ फल बतलाओ। साथ ही हरिवर्षका भी विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्धन ॥ ३ ॥

संजयने कहा—कुरुकुलकी वृद्धि करनेवाले भरतश्रेष्ठ ! भारतवर्षमें चार युग होते हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ॥ ३ ॥

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो।
संक्षेपाद् द्वापरस्याथ ततस्तिष्यं प्रवर्तते ॥ ४ ॥

प्रभो ! पहले सत्ययुग होता है, फिर त्रेतायुग आता है, तत्पश्चात् द्वापरयुग बीतनेपर कलियुगकी प्रवृत्ति होती है ॥ ४ ॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम।
आयुः संख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥ ५ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! सत्ययुगमें मनुष्यके आयुकी संख्या चार हजार वर्ष है ॥ ५ ॥

तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

मनुजेश्वर ! त्रेतामें मनुष्यकी आयु तीन हजार वर्षोंकी बतायी गयी है। द्वापरमें लोगोंकी आयु दो हजार वर्षोंकी है। वही इस समय भूतलपर स्थित है ॥ ६ ॥

न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन् भरतर्षभ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्ते च तथा जाता म्रियन्ति च ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस कलियुगमें आयुप्रमाणकी कोई मर्यादा नहीं है। यहाँ लोग गर्भमें भी मरते हैं और नवजात शिशु भी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः।
प्रजायन्ते च जायन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

जाता कृतयुगे राजन् धनिनः प्रियदर्शनाः।
प्रजायन्ते च जायन्ते मुनयो वै तपोधनाः ॥ ९ ॥

राजन् ! सत्ययुगमें महाबली, महान् सत्त्वगुणसम्पन्न, बुद्धिमान्, धनवान् और प्रियदर्शन मनुष्य उत्पन्न होते हैं और सैकड़ों तथा हजारों सन्तानोंको जन्म देते हैं। उस समय तपस्वी मुनि भी उत्पन्न होते हैं ॥ ८-९ ॥

महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः।
प्रियदर्शना वपुष्मन्तो महावीर्या धनुर्धराः ॥ १० ॥

वरार्हा युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसत्तमाः।
त्रेतायां क्षत्रिया राजन् सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥ ११ ॥

राजन् ! इसी प्रकार त्रेतायुगमें समस्त भूमण्डलके क्षत्रिय महान् उत्साही, महात्मा, धर्मात्मा, सत्यवादी, प्रियदर्शन, सुन्दर शरीरवाले, महापराक्रमी, धनुर्धर, युद्धमें वर पानेके योग्य, शूरशिरोमणि तथा चक्रवर्ती सम्राट् उत्पन्न होते हैं ॥ १०-११ ॥

सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदा वै द्वापरे नृप।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परवधैषिणः ॥ १२ ॥

नृप ! द्वापरमें सभी वर्णोंके लोग महान् उत्साही, पराक्रमी और एक दूसरेके वधकी इच्छावाले होते हैं ॥ १२ ॥

तेजसाल्पेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषा नृप।
लुब्धाश्चानृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भारत ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! कलियुगमें थोड़े तेजवाले, क्रोधी, लोभी और असत्यवादी मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायासूया तथैव च।
तिष्ये भवति भूतानां रागो लोभश्च भारत ॥ १४ ॥

भारत ! कलियुगके प्राणियोंमें ईर्ष्या, मान, क्रोध, माया, दोष-दृष्टि, राग तथा लोभ आदि दोष रहते हैं ॥ १४ ॥

संक्षेपो वर्तते राजन् द्वापरेऽस्मिन् नराधिप।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥ १५ ॥

नरेश्वर ! इस द्वापरमें भी गुणोंकी न्यूनता होती है। भारतवर्षकी अपेक्षा हैमवत तथा हरिवर्षमें उत्तरोत्तर अधिक गुण हैं ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतवर्षे युगानुगतायुरादिकथने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वमें भारतवर्षमें युगानुसार आयु आदिका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

(भूमिपर्व)

एकादशोऽध्याय

शाकद्वीपका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह संजय।
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमने यहाँ जम्बूखण्डका यथावत् वर्णन किया है। अब तुम इसके विस्तार और परिमाणको ठीक-ठीक बताओ।

समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शन।
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च संजय ॥ २ ॥

संजय! समुद्रके सम्पूर्ण परिमाणको भी अच्छी तरह समझाकर कहो। इसके बाद मुझसे शाकद्वीप और कुशद्वीपका वर्णन करो ॥ २ ॥

शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च।
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥ ३ ॥

गवल्गणकुमार संजय! इसी प्रकार शाल्मलिद्वीप, क्रौञ्चद्वीप तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं राहुसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातोंका यथार्थरूपसे प्रतिपादन करो ॥ ३ ॥

संजय उवाच

राजन् सुबहवो द्वीपा यैरिदं संततं जगत्।
सप्त द्वीपान् प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ॥ ४ ॥

संजय बोले—राजन्! बहुत-से द्वीप हैं, जिनसे सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। अब मैं आपके आज्ञानुसार सात द्वीपोंका तथा चन्द्रमा, सूर्य और राहुका वर्णन करूँगा ॥ ४ ॥

अष्टादश सहस्राणि योजनानि विशाम्पते।
षट् शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥ ५ ॥
लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६ ॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः।
सिद्धचारणसंकीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥ ७ ॥

राजन्! जम्बूद्वीपका विस्तार पूरे १८६०० योजन है। इसके चारों ओर जो खारे पानीका समुद्र है, उसका विस्तार जम्बूद्वीपकी अपेक्षा दूना माना गया है। उसके तट पर तथा उसमें बहुत-से देश और जनपद हैं। उसके भीतर नाना प्रकारके मणि और मूँगे हैं, जो उसकी विचित्रता सूचित करते हैं। अनेक प्रकारके धातुओंसे अद्भुत प्रतीत होनेवाले बहुसंख्यक पर्वत उस समुद्रकी शोभा बढ़ाते हैं। सिद्धों तथा चारणोंसे भरा हुआ वह क्षारसमुद्र मण्डलाकार है ॥ ५—७ ॥

शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव।
शृणु मे त्वं यथान्यायं ब्रुवतः कुरुनन्दन ॥ ८ ॥

राजन्! अब मैं शाकद्वीपका यथावत् वर्णन आरम्भ करता हूँ। कुरुनन्दन! मेरे इस न्यायोचित कथनको ध्यानपूर्वक सुनिये ॥ ८ ॥

जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स नराधिप।
विष्कम्भेण महाराज सागरोऽपि विभागशः ॥ ९ ॥

महाराज! नरेश्वर! वह द्वीप विस्तारकी दृष्टिसे जम्बूद्वीपके परिमाणसे दूना है। भरतश्रेष्ठ! उसका समुद्र भी विभागपूर्वक उससे दूना ही है ॥ ९ ॥

क्षीरोदो भरतश्रेष्ठ येन संपरिवारितः।
तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः ॥ १० ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समुद्रका नाम क्षीरसागर है, जिसने उस द्वीपको सब ओरसे घेर रखा है। वहाँ पवित्र जनपद हैं। वहाँ निवास करनेवाले मनुष्योंकी मृत्यु नहीं होती ॥ १० ॥

कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते।
शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावद् भरतर्षभ ॥ ११ ॥
उक्त एष महाराज किमन्यत् कथयामि ते।

फिर वहाँ दुर्भिक्ष तो हो ही कैसे सकता है? उस द्वीपके निवासी क्षमाशील और तेजस्वी होते हैं। भरतश्रेष्ठ महाराज! इस प्रकार शाकद्वीपका संक्षेपसे यथावत् वर्णन किया गया है। अब आपसे और क्या कहूँ? ॥ ११½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह संजय ॥ १२ ॥
उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः।

धृतराष्ट्र बोले—महाबुद्धिमान् संजय! तुमने शाकद्वीपका संक्षेपसे यथावत् वर्णन किया है। अब उसका पूरा विस्तारके साथ यथार्थ वर्णन करो ॥ १२½ ॥

संजय उवाच

तथैव पर्वता राजन् सप्तात्र मणिभूषिताः ॥ १३ ॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु।

संजय बोले—राजन्! शाकद्वीपमें भी मणियोंसे विभूषित सात पर्वत हैं। वहाँ रत्नोंकी खानें बहुत-सी नदियाँ भी हैं। उनके नाम सुझसे सुनिये ॥ १३½ ॥

अतीव गुणवत् सर्वं तत्र पुण्यं जनाधिप ॥ १४ ॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते।
प्रागायतो महाराज मलयो नाम पर्वतः ॥ १५ ॥

जनेश्वर! वहाँका सब कुछ परम पवित्र और अत्यन्त गुणकारी है। वहाँका प्रधान पर्वत है मेरु, जो देवर्षियों तथा गन्धर्वोंसे सेवित है। महाराज! दूसरे पर्वतका नाम मलय है, जो पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैला हुआ है ॥ १४-१५ ॥

ततो मेघाः प्रवर्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः।
ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥ १६ ॥

मेघ वहींसे उत्पन्न होते हैं, फिर वे सब ओर फैलकर सबकी वर्षा करनेमें समर्थ होते हैं। कुरुनन्दन! उसके बाद जलधार नामक महान् पर्वत है ॥ १६ ॥

ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्।
ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले जनेश्वर ॥ १७ ॥

जनेश्वर! इन्द्र वहाँसे सदा उत्तम जल ग्रहण करते हैं। इसीलिये वर्षाकालमें वे सर्वत्र जल बरसानेमें समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥

उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥ १८ ॥

उसी द्वीपमें उच्चतम रैवतक पर्वत है, जहाँ आकाशमें रेवती नामक नक्षत्र नित्य प्रतिष्ठित है। यह ब्रह्माजीका रचा हुआ विधान है ॥ १८ ॥

उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः
नगमेश्वर प्राहुः श्रीमानुन्नतविग्रह ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! उसके उत्तर भागमें श्याम नामक महान् पर्वत है जो नूतन मेघके समान श्याम वर्णसे युक्त है । उसकी ऊँचाई बहुत है । उसके शिखर पर ईश्वर रहते हैं ।

यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः जनपदेश्वर
जनपदेश्वर ! वहाँ रहनेसे ही वहाँकी प्रजा श्यामताको प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सुमहान् संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं संजय त्वया
प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूतपुत्र संजय ! तुमने आज मुझसे महान् संदेहजनक बात कही है । भला वहाँ सारी प्रजा श्यामवर्णको कैसे प्राप्त हो गयी ? ॥ २० ॥

संजय उवाच

सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन
गौरः कृष्णश्च वर्णौ द्वौ तयोर्वर्णान्तरं नृप ॥ २१ ॥
श्यामो यस्मात् प्रवृत्तो वै तत् ते वक्ष्यामि भारत
आस्तेऽत्र भगवान् कृष्णस्तत्कान्त्या श्यामतां गताः ॥ २२ ॥

संजयने कहा—महाराज कुरुनन्दन ! सम्पूर्ण द्वीपोंमें गौर, कृष्ण तथा इन दोनों वर्णोंके मिश्रित रूपमें देखा जाता है । भारत ! यह वर्ण जिस कारणसे प्रकट होकर दूसरोंमें भी व्याप्त हुआ है, वह आपको बताता हूँ । वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं । अतः उन्हींकी कान्तिसे वह स्थान भी श्याम वर्णका हुआ है । मैं आपसे इसके आगेकी बात भी प्रकाशित करता हूँ ॥ २१-२२ ॥

ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः
केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्तते ॥ २३ ॥

कौरवराज ! श्यामगिरिके बाद दुर्गशैल नामक पर्वत है । उसके बाद केसर पर्वत है, जहाँसे चली हुई वायु केसरकी सुगन्ध लिये रहती है ॥ २३ ॥

तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः
वर्षाणि तेषु कौरव्य सम्प्रोक्तानि मनीषिभिः ॥ २४ ॥

इन सब पर्वतोंका विस्तार पूर्वके पर्वतोंसे क्रमशः दूना बताया गया है । कुरुनन्दन ! मनीषी पुरुषोंने उन पर्वतोंके समीप सात वर्ष बताये हैं ॥ २४ ॥

महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदोत्तरः
जलधारो महाराज सुकुमार इति स्मृतः ॥ २५ ॥

महामेरु पर्वतके पार्श्व महाकाश वर्ष है । जलद या कुमुदोत्तर वर्ष है । महाराज ! जलधार गिरिका पार्श्ववर्ती वर्ष सुकुमार कहलाता है ॥ २५ ॥

रैवतस्य तु कौमारः श्यामस्य मणिकाञ्चनः
केसरस्याथ मोदाकी परेण तु महापुमान् ॥ २६ ॥

रैवतक पर्वतका कुमार वर्ष तथा श्यामगिरिका मणिकाञ्चन वर्ष है । इसी प्रकार केसरके पार्श्ववर्ती वर्षका नाम मोदाकी बताते हैं । उसके आगे महापुमान नामक एक वर्ष है ॥ २६ ॥

परिवार्य तु कौरव्य दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च
जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥ २७ ॥
शाको नाम महाराज प्रजा तस्य महानुगा
यत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते यत्र शंकरः ॥ २८ ॥

यह उस द्वीपको सब ओरसे और चौड़ाईसे घेरकर स्थित है । महाराज ! उसके बीचमें शाक नामक एक बड़ा भारी वृक्ष है जो जम्बूद्वीपके समान ही विशाल है । महाराज ! वहाँकी प्रजा सदा उस वृक्षके ही आश्रित रहती है । वहीं बड़े पवित्र जनपद हैं । उस द्वीपमें भगवान् शंकरकी आराधना की जाती है ॥ २७-२८ ॥

तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च
धार्मिकाश्च प्रजा राजंश्चत्वारोऽतीव भारत ॥ २९ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! वहाँ सिद्ध, चारण और देवता जाते हैं । वहाँके चारों वर्णोंकी प्रजा अत्यन्त धार्मिक होती है ॥ २९ ॥

वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते
दीर्घायुषो महाराज जरामृत्युविवर्जिताः ॥ ३० ॥

सभी वर्णके लोग वहाँ सदा अपने अपने वर्णोचित कर्मोंका पालन करते हैं । वहाँ कोई चोर नहीं दिखायी देता । महाराज ! उस द्वीपके निवासी दीर्घायु तथा जरा और मृत्युसे रहित होते हैं ॥ ३० ॥

प्रजास्तत्र विवर्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता ॥ ३१ ॥

जैसे वर्षाऋतुमें समुद्रगामिनी नदियाँ बढ़ जाती हैं, उसी प्रकार वहाँकी समस्त प्रजा सदा वृद्धिको प्राप्त होती रहती है । उस द्वीपमें अनेक पवित्र जलवाली नदियाँ बहती हैं । वहाँ गङ्गा भी अनेक धाराओंमें विभक्त देखी जाती हैं ॥ ३१ ॥

सुकुमारी कुमारी च शीताशी वेणिका तथा
महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥ ३२ ॥
चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम
तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन ! भरतश्रेष्ठ ! उस द्वीपमें सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला तथा चक्षुर्वर्धनिका आदि पवित्र जलवाली नदियाँ बहती हैं ॥ ३२-३३ ॥

सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥ ३४ ॥
शक्यन्ते परिसंख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः
तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ ३५ ॥

वहाँ लाखों ऐसी नदियाँ हैं जिनसे जल लेकर इन्द्र वर्षा करते हैं । उनके नाम और परिमाणकी संख्या बताना

व्याधि ही नहीं अनुभव है । वे सभी बड़े विर्यो परम पुण्यवान् हैं । उन द्वीपमें लोगोंका भविष्य चार पतिव्रत अवस्था हैं ॥

महाजन मनसा चैव आलस्य सम्प्रणाशया ।
सततं साधुसम्पूजिता स्वकर्मनिरताः शुभ ॥ १६ ॥

उनके मन इस प्रकार हैं । वहाँ मन मानव तथा समान लोकाः उनमें ... कार्यमें ... ब्राह्मण निवास करते हैं । वे सब वेद अपने कर्तव्यका पालनमें तत्पर रहते हैं ॥

अत्रापि तु प्रजाश्च धार्मिकाः सर्वलक्षणाः ।
सततं च महाराज ब्रह्मधर्मोपवर्तिनः ॥ १७ ॥
सत्यकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थसंश्रिताः ।

महाराज ! वहाँके लोग सत्य कामनाओंसे ... देनेवाले कार्योंका पालन किया करते हैं । वहाँ के निवासी वेदस्तुतियोंसे जीवन-निर्वाह करते हैं । वे सर्वसौभाग्यसम्पन्न, शूर, धर्म और अर्थको समझनेवाले एवं धर्मनिष्ठ होते हैं ॥

अत्रास्तु मन्त्रवा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥ १८ ॥

मनुष्य कामनाओंसे शून्य रहते हैं । वे भी धर्मात्मा होते हैं ॥

न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दाण्डिकः ।
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! वहाँ न कोई राजा है, न दण्ड है और न दण्ड देनेवाला है; क्योंकि लोग धर्मके ज्ञाता हैं और स्वधर्मपालनके ही प्रभावसे एक-दूसरेकी रक्षा करते हैं ॥ १९ ॥

एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ।
एतावच्च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ २० ॥

महाराज ! महान् तेजस्वी शाकद्वीपके सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है और इतना ही सुनना चाहिये ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भूमिपर्वमें शाकद्वीपवर्णनविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

कुश, क्रौञ्च और पुष्कर आदि द्वीपोंका तथा राहु, सूर्य एवं चन्द्रमाके प्रमाणका वर्णन

संजय उवाच

उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥ १ ॥

संजय बोले—महाराज ! कुरुनन्दन ! इसके बादवाले द्वीपोंके विषयमें जो बातें सुनी जाती हैं, उन्हें आप मुझसे सुनिये ॥ १ ॥

घृतोदः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथान्यो जलसागरः ॥ २ ॥

वहाँ एक समुद्र घृतसे भरा है, फिर दधिमण्डोदक समुद्र है, फिर सुरा और जलका सागर है ॥ २ ॥

परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥ ३ ॥

महाराज ! इन समुद्रोंसे घिरे हुए सभी द्वीप और पर्वत उत्तरोत्तर दुगुने विस्तारवाले हैं ॥ ३ ॥

गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! मध्यम द्वीपमें गौर नामक मैनसिलका एक महान् पर्वत है और पश्चिममें कृष्ण पर्वत है, जो नारायणका सखा (विस्तृत) है ॥ ४ ॥

तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रजापतिमुपासीनः प्रजानां व्यदधात् सुखम् ॥ ५ ॥

वहाँ भगवान् केशव दिव्य रत्नोंकी रक्षा करते और वे प्रजापतिकी उपासना करते हुए प्रसन्न हुए, उन्होंने प्रजाओंको उत्तम सुख दिया है ॥ ५ ॥

कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य ह ।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! कुशद्वीपमें कुशका एक स्तम्भ है, जिसकी उस जनपदमें रहनेवाले लोग पूजा करते हैं । उसी प्रकार शाल्मलिद्वीपमें शाल्मलि (सेमर) वृक्षकी पूजा की जाती है ॥ ६ ॥

क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः ।
सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥ ७ ॥

क्रौञ्चद्वीपमें महाक्रौञ्च नामक पर्वत है, जो रत्नोंकी खान है । महाराज ! वहाँ चारों वर्णोंके लोग सदा उसकी पूजा करते हैं ॥ ७ ॥

गोमन्तः पर्वतो राजन् सुमहान् सर्वधातुकः ।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान् कमललोचनः ॥ ८ ॥
मोक्षिभिः संस्तुतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।

राजन् ! वहाँ गोमन्त नामक विशाल पर्वत है, जो सम्पूर्ण धातुओंसे सम्पन्न है । वहाँ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले उपासकोंसे घिरे हुए, सबके स्वामी श्रीमान् कमलनयन भगवान् नारायण नित्य निवास करते हैं ॥ ८-९ ॥

कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ।
सुधामा नाम दुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! कुशद्वीपमें सुधामा नामसे प्रसिद्ध दूसरा सुवर्णमय पर्वत है, जो मूँगोंसे भरा हुआ और दुर्गम है ॥

द्युतिमान् नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥ १० ॥

चतुर्थं पुष्कलात् तस्य पञ्चमस्तु कुशेशयः
षष्ठो हरिगिरिर्नाम सप्तमो पर्वतोत्तमः ॥ ॥

क्रौञ्च नामक दीप पर्वत है चौथा पुष्कल, पाँचवा कुशेशय और छठा हरि गिरि है वे ह कुशद्वीपके श्रेष्ठ पर्वत हैं ।

तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सप्तमावधि
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥

इन पर्वतोंकेबी का विस्तार क्रमसे उत्तरोत्तर दूना बताया गया है कुशद्वीपके पहले खण्डका नाम औद्भिद है दूसरेका नाम वेणुमण्डल है ॥

तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम्
धृतिमत् पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ २ ॥

तीसरेका नाम सुरथाकार चौथेका कम्बल पाँचवें धृतिमत् और छठे खण्डका नाम प्रभाकर है ।

सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षपर्वताः
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ ४ ॥
विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ॥

सातवाँ खण्ड कापिल कहलाता है ये सात वर्षपर्वत हैं पृथ्वीपते इन सबमें देवता गन्धर्व तथा मनुष्य आनन्द विहार करते हैं उनमेंसे किसीकी मृत्यु नहीं होती है नरेश्वर वहाँ लुटेरे अथवा म्लेच्छजातिके लोग नहीं हैं ।

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव
कथितेष्वेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥ १६ ॥

मनुजेश्वर इन सभी द्वीपोंके लोग प्रायः गोरे और सुकुमार होते हैं अब मैं शेष द्वीपोंका परिचय दे रहा हूँ ।

क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः १७

महाराज मैंने जैसा सुना है वैसा सुनाता हूँ क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक महान् पर्वत है ।

क्रौञ्चात् परो वामनको वामनादन्धकारकः
अन्धकारात् परो राजन् मैनाकः पर्वतोत्तमः ८ ॥
मैनाकात् परतो राजन् गोविन्दो गिरिरुत्तमः
गोविन्दात् परतो राजन् निविडो नाम पर्वतः ॥ १९ ॥

राजन् क्रौञ्चके बाद वामन पर्वत है वामनके बाद अन्धकार और अन्धकारके बाद मैनाक नामक श्रेष्ठ पर्वत है राजन् मैनाकके बाद उत्तम गोविन्द गिरि है गोविन्दके बाद निविड नामक पर्वत है ।

परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्धन
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २ ॥

कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले महाराज इन पर्वतोंके बीचका विस्तार क्रमसे दूना होता गया है उनमें जो देश बसे हुए हैं उनका परिचय देता हूँ सुनिये

क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः
मनोऽनुगात् परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥ २१ ॥

क्रौञ्चपर्वतके निकट कुशल नामक देश है वामन पर्वतके पास मनोनुग देश है कुरुकुलश्रेष्ठ मनोनुगके बाद उष्ण देश बसा है

उष्णात् परः प्रावरकः प्रावरादन्धकारकः
अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ २२ ॥

उष्णके बाद प्रावरक प्रावरकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद मुनिदेश बताया गया है ।

मुनिदेशात् परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥ २३ ॥
एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः

मुनिदेशके बाद जो देश है उसे दुन्दुभिस्वन कहते हैं वह सिद्धों और चारणोंसे भरा हुआ है जनेश्वर वहाँके लोग प्रायः गौर होते हैं महाराज ये सभी देश देवताओं और गन्धर्वोंसे सेवित हैं ।

पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ॥ २४ ॥

पुष्करद्वीपमें पुष्कर नामक पर्वत है जो मणियों तथा रत्नोंसे भरा हुआ है

तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः
तं पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥ २ ॥
वाग्भिर्मनोऽनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप

वहाँ स्वयं भगवान् ब्रह्मा नित्य निवास करते हैं जनेश्वर सम्पूर्ण देवता और महर्षि मनोऽनुकूल वाणी द्वारा उनकी पूजा करते हुए सदा उन्हींकी उपासना में लगे रहते हैं

जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥ २६ ॥
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजा हि दमेन च ॥ २७ ॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः

जम्बूद्वीपसे अनेक प्रकारके रत्न अन्यान्य सब द्वीपोंमें वहाँकी प्रजाओंके उपयोगके लिये भेजे जाते हैं कुरुश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य सत्य और इन्द्रियसंयमके सम्बन्धसे उन सब द्वीपों की प्रजाओंके आरोग्य और आयुका प्रमाण जम्बूद्वीपकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूना माना गया है २

एको जनपदो राजन् द्वीपेष्वेतेषु भारत
उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥ २ ॥

भरतवंशी नरेश इन द्वीपोंमें एक ही जनपद है जिन द्वीपोंमें अनेक जनपद बताये गये हैं उनमें भी एक प्रकारका ही धर्म देखा जाता है २८

ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः ।
द्वीपानेतान् महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥ २९ ॥

महाराज! स्वयं ईश्वर प्रजापति ही हाथमें दण्ड लेकर इन द्वीपोंकी रक्षा करते हुए इनमें नित्य निवास करते हैं ॥ २९ ॥

स राजा स शिवो राजन् स पिता स पितामहः ।
गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ ३० ॥

नरश्रेष्ठ! प्रजापति ही वहाँके राजा हैं। वे कल्याणस्वरूप होकर सबका कल्याण करते हैं। राजन्! वे ही पिता और पितामह हैं। जड़से लेकर पण्डिततक समस्त प्रजाकी वे ही रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥

भोज्यं चात्र च कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम् ।
सिद्धमेव महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ॥ ३१ ॥

महाबाहु कुरुनन्दन! वहाँकी प्रजाओंके पास सदा पका पकाया भोजन स्वयं उपस्थित हो जाता है और उसीको खाकर वे लोग रहते हैं ॥ ३१ ॥

ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
चतुरस्रा महाराज त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ॥ ३२ ॥

उसके बाद समा नामवाली लोकोंकी बस्ती देखी जाती है। महाराज! वह चौकोर बनी हुई है। उसमें तैंतीस मण्डल हैं ॥ ३२ ॥

तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः ।
दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन! भरतश्रेष्ठ! वहाँ लोकविख्यात वामन, ऐरावत, सुप्रतीक और अञ्जन—ये चार दिग्गज रहते हैं ॥ ३३ ॥

सुप्रतीकस्तथा राजन् प्रभिन्नकरटामुखः ।
तस्याहं परिमाणं तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ ३४ ॥
असंख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ।

राजन्! इनमेंसे सुप्रतीक नामक गजराजके गण्डस्थलसे मद बहता रहता है, उसका परिमाण कितना है यह मैं नहीं बता सकता। वह नीचे-ऊपर तथा अगल-बगलमें सब ओर फैला हुआ है। वह असंख्य है ॥ ३४½ ॥

तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि ॥ ३५ ॥
असम्बद्धा महाराज तान् निगृह्णन्ति ते गजाः ।
पुष्करैः पद्मसंकाशैर्वर्ष्मवद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३६ ॥
शतधा पुनरेवाशु ते तान् मुञ्चन्ति नित्यदा ।
श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥ ३७ ॥
आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः ।

वहाँ सम्पूर्ण दिशाओंसे खुली हवा चलती है। उसे वे चारों दिग्गज ग्रहण करके रोक रखते हैं। फिर वे विकसित कमलके समान परम कान्तिमान् सूँड़के अग्रभागसे उस हवाको सैकड़ों भागोंमें करके तुरंत ही सब ओर छोड़ते हैं, महाराज! फिर श्वास लेते हुए दिग्गजोंके द्वारा छोड़ी हुई वायु जब यहाँ आती है, तभी प्रजा जीवन धारण करती है ॥ ३५—३७½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

परो वै विस्तरोऽत्यर्थं त्वया संजय कीर्तितः ॥ ३८ ॥
दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि संजय ।

धृतराष्ट्र बोले—संजय! तुमने द्वीपोंकी स्थितिका विस्तारपूर्वक अच्छी तरह वर्णन किया है। अब जो अन्तिम विषय—सूर्य, चन्द्रमा तथा राहुका प्रमाण बतलाना शेष रह गया है, उसका वर्णन करो ॥ ३८½ ॥

संजय उवाच

उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहान् मे शृणु तत्त्वतः ॥ ३९ ॥
स्वर्भानुः कौरवश्रेष्ठ यावदेष प्रमाणतः ।
परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ॥ ४० ॥

संजयने कहा—महाराज! मैंने द्वीपोंका वर्णन तो कर दिया। अब ग्रहोंका यथार्थ वर्णन सुनिये। कौरवश्रेष्ठ! राहु जितना बड़ा है, वह बतलाता हूँ। महाराज! सुना है कि राहु ग्रह मण्डलाकार है ॥ ३९-४० ॥

योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशास्य वै ।
परिणाहेन षट्त्रिंशद् विपुलत्वेन चानघ ॥ ४१ ॥

निष्पाप नरेश! राहु ग्रहका व्यासगत विस्तार बारह हजार योजन है और उसकी परिधिका विस्तार छत्तीस हजार योजन है ॥ ४१ ॥

षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥ ४२ ॥

वीरवर! विद्वान् उसकी विपुलता (मोटाई) छः हजार योजनकी बताते हैं। राजन्! चन्द्रमाका व्यास ग्यारह हजार योजन है ॥ ४२ ॥

विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ।
एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥ ४३ ॥

कुरुश्रेष्ठ! उसकी परिधि या मण्डलका विस्तार तैंतीस हजार योजन बताया गया है और महात्मा शीतरश्मि चन्द्रमाका वैपुल्यगत विस्तार (मोटाई) उनसठ सौ योजन है ॥ ४३ ॥

सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चान्ये कुरुनन्दन ।
विष्कम्भेण ततो राजन् मण्डलं त्रिंशतं समम् ॥ ४४ ॥
अष्टपञ्चाशतं राजन् विपुलत्वेन चानघ ।
श्रूयते परमोदारः पतङ्गोऽसौ विभावसुः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन! सूर्यका व्यासगत विस्तार दस हजार योजन है और उसकी परिधि या मण्डलका विस्तार तीस हजार योजन है तथा उनकी मोटाई अट्ठावन सौ योजनकी है। अनघ! इस प्रकार श्रीसम्पन्न परम उदार भगवान् सूर्यके

विविध विस्तारका वर्णन सुना जाता है ॥ ४४-४६ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं विशिष्टप्रमिद भारत ...

सर्वसुखायतां महाराज ॥ ५६ ॥

श्रुत्वेदं ते महाराज धृतराष्ट्र शान्तिमाप्नुहि ॥ ५७ ॥

सर्वमुक्तं यथान्यायं ...

राजन्! यहाँ भूमिका वर्णन किया गया। इन दोनोंके अधिक विस्तार अनेक कारण ... यह ... पर्वत और चन्द्रमाकी सम्भावित ... होता है। महाराज! आपके ... के अनुसार ... इसीके विषयमें ... बताया गया है। ये सभी बातें मैंने आपके सामने यथार्थरूपसे उपस्थित की हैं। अतः आप शान्ति धारण कीजिये और ...

यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सविशेषमिदं जगत् ॥ ५८ ॥

तदाश्वासय ... पुत्रं दुर्योधनं नृप ...

इस जगत्का वर्णन किया है ... किस प्रकार हुआ है, ये सब बातें मैंने ... रीतिसे बतायी हैं। अतः ... अब अपने पुत्र दुर्योधनकी ओर निश्चिन्त हो ...

पुण्यं च भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोऽनुगम् ॥ ५९ ॥

श्रीमान् भवति राजन्य सिद्धार्थः साधुसम्मतः।

आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥ ६० ॥

नरश्रेष्ठ! जो राजा इस भूमिपर्वको मनोयोगपूर्वक सुनता है, वह श्रीमान् ... सिद्ध-मनोरथ तथा साधु पुरुषोंद्वारा सम्मानित होता है और उसकी आयु, बल, कीर्ति तथा तेज की वृद्धि होती है ॥ ६० ॥

यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः।

प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ६१ ॥

भूपाल! जो मनुष्य ... व्रतका पालन करता हुआ ... इस पर्वको सुनता है, उसके ... और पितामह तृप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्तामहे वयम्।

पूर्वं प्रवर्तितं पुण्यं तत् सर्वं श्रुतवानसि ॥ ६२ ॥

राजन्! जिसमें हमलोग निवास करते हैं और जहाँ ... पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह वही भारतवर्ष है। आपने उसका पूरा-पूरा वर्णन सुन लिया है ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि ... द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भूमिपर्वमें ... बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

(श्रीमद्भगवद्गीतापर्व)

त्रयोदशोऽध्याय

संजयका युद्धभूमिसे लौटकर धृतराष्ट्रको भीष्मकी मृत्युका समाचार सुनाना

वैशम्पायन उवाच

अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्य भारत।

प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १ ॥

ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः।

आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर एक दिनकी बात है कि भूत, वर्तमान और भविष्य सब घटनाओंको प्रत्यक्ष देखनेवाले गवल्गणपुत्र विद्वान् संजयने युद्धभूमिसे लौटकर सहसा चिन्तामग्न धृतराष्ट्रके पास आकर दुःखी होकर भरतवंशियोंके पितामह भीष्मके युद्धभूमिमें मारे जानेका समाचार बताया ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

संजयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ।

हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ ३ ॥

संजय बोले—महाराज! मैं संजय हूँ। आपको नमस्कार है। भरतश्रेष्ठ! ... भरतवंशियोंके पितामह और महाराज शान्तनुके पुत्र भीष्मजी आज युद्धमें मारे गये ॥ ३ ॥

ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम्।

शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥

... समस्त योद्धाओंके शिरोमणि और सम्पूर्ण धनुर्धरोंके आश्रय थे, वे ही कुरुकुलके पितामह भीष्म आज बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ४ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाकरोत्।

स शेते निहतो राजन् संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥

राजन्! आपके पुत्र दुर्योधनने जिनके बाहुबलका भरोसा करके जूएका खेल किया था, वे भीष्म शिखण्डीके हाथसे मारे जाकर रणभूमिमें शयन करते हैं ॥ ५ ॥

यः सर्वान् पृथिवीपालान् समवेतान् महामृधे।

जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥

जामदग्न्यं रणे रामं योऽयुध्यदपराजितः।

न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ ७ ॥

जिन महारथी वीर भीष्मने काशिराजकी नगरीमें एकत्र हुए समस्त भूपालोंको अकेले ही रथपर बैठकर महान् युद्धमें परास्त कर दिया था, जिन्होंने रणभूमिमें जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ निर्भय होकर युद्ध किया था और जिन्हें

परशुरामजी भी मार न सके, वे ही भीष्म आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये ॥ ७ ॥

महेन्द्रसदृशं वीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमम् ॥ ८ ॥

जो वीर्यमें देवराज इन्द्रके समान, स्थिरतामें हिमालयके समान, गम्भीरतामें समुद्रके तुल्य और सहनशीलतामें पृथ्वीके समान थे ॥ ८ ॥

शरदंष्ट्रं धनुर्वक्त्रं खड्गजिह्वं दुरासदम् ।
नरसिंहं पितरं ते पाञ्चाल्येन निपातितम् ॥ ९ ॥

जो मनुष्योंमें सिंहके समान थे, बाण ही जिनकी दाढ़ें थीं, धनुष जिनका फैला हुआ मुख था, तलवार ही जिनकी जिह्वा थी और इसीलिये जिनके पास पहुँचना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था, वे ही आपके पिता भीष्म आज पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीके द्वारा मार गिराये गये ॥ ९ ॥

पाण्डवानां महत् सैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १० ॥
परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ११ ॥

जैसे गौओंका झुंड सिंहको देखते ही भयसे व्याकुल हो उठता है, उसी प्रकार जिन्हें युद्धमें हथियार उठाये देख पाण्डवोंकी विशाल वाहिनी भयसे उद्विग्न होकर काँपने लगती थी, वे ही शत्रुसेनासंहारक भीष्म दस दिनोंतक आपकी सेनाका संरक्षण करके अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट करते हुए अन्तमें सूर्यकी भाँति अस्ताचलको चले गये ॥ १०-११ ॥

यः स शक्र इवाक्षोभ्यो वर्षन् बाणान् सहस्रशः ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १२ ॥
स शेते निष्टनन् भूमौ वातरुग्ण इव द्रुमः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् यथा नार्हः स भारत ॥ १३ ॥

जिन्होंने इन्द्रकी भाँति क्षोभरहित होकर हजारों बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रतिदिन दस हजार योद्धाओंका संहार करके दस दिनोंमें एक अर्बुद सेनाका नाश कर डाला, वे ही आज आँधीके उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति घायल होकर युद्धभूमिमें सो रहे हैं। भरतवंशी नरेश! यह सब आपकी दुर्मन्त्रणाका फल है। भीष्मजी इस दुर्दशाके योग्य नहीं थे ॥ १२-१३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि भीष्मवधपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें भीष्मवधपर्वविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्याय

धृतराष्ट्रका विलाप करते हुए भीष्मजीके मारे जानेकी घटनाको विस्तारपूर्वक जाननेके लिये संजयसे प्रश्न करना

धृतराष्ट्र उवाच

कथं कुरूणामृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना ।
कथं रथात् स न्यपतत् पिता मे वासवोपमः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष और मेरे पितातुल्य भीष्म शिखण्डीके हाथसे कैसे मारे गये? वे इन्द्रके समान पराक्रमी थे, वे रथसे कैसे गिरे? ॥ १ ॥

कथमासंश्च मे पुत्रा हीना भीष्मेण संजय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ २ ॥

संजय! जिन्होंने अपने पिताके सन्तोषके लिये आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया और जो देवताओंके समान बलवान् थे, उन भीष्मसे रहित होकर आज हमारे पुत्रोंकी कैसी अवस्था हुई है? यह बताओ ॥ २ ॥

तस्मिन् हते महासत्त्वे महेष्वासे महाबले ।
महारथे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तदा ॥ ३ ॥

महाज्ञानी, महाधनुर्धर, महाबली और महान् रथी नरश्रेष्ठ भीष्मजीके मारे जानेपर तुम्हारे मनकी कैसी अवस्था हुई? ॥ ३ ॥

आर्तिः परा माविशति यतः शंससि मे हतम् ।
कुरूणामृषभं वीरमकम्प्यं पुरुषर्षभम् ॥ ४ ॥

संजय! तुम कहते हो कि अकम्प्य वीर पुरुषसिंह कुरुश्रेष्ठ भीष्मजी मारे गये, इसे सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ ४ ॥

के तं यान्तमनुप्रेयुः के चास्यासन् पुरोगमाः ।
केऽतिष्ठन् के न्यवर्तन्त केऽभ्यवर्तन्त संजय ॥ ५ ॥

संजय! जिस समय वे युद्धके लिये अग्रसर हुए थे, उस समय उनके पीछे कौन गये थे? आगे कौन थे? कौन डटे रहे? कौन लौट गये? और किन लोगोंने उनका अनुसरण किया? ॥ ५ ॥

के शूरा रथशार्दूलमच्युतं क्षत्रियर्षभम् ।
रथानीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ६ ॥

किन शूरवीरोंने शत्रुसेनामें प्रवेश करते समय रथियोंमें सिंहके समान अच्युत क्षत्रियशिरोमणि भीष्मजीके पीछे सहसा पहुँचकर उनका अनुसरण किया? ॥ ६ ॥

यस्तमोऽर्क इवापोहन् परसैन्यममित्रहा ।
सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥ ७ ॥

जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार शत्रुसूदन भीष्म शत्रुसेनाका नाश करते थे। जिनका तेज सहस्र किरणोंवाले सूर्यके समान था, जिन्होंने शत्रुओंको भयभीत कर रक्खा था ॥ ७ ॥

अकरोद् दुष्करं कर्म रणे जम्बूसुतेषु च ।
प्रसह्य …… पराक्रमम् ॥ ८ ॥
कृतिनं तं दुराधर्षं सम्यगस्त्रनिदर्शने ।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ९ ॥

जिन्होंने युद्धमें शत्रुवीरोंपर दुष्कर आक्रमण किया था तथा जो उनकी सेनाका निरन्तर संहार कर रहे थे उन अस्त्रविद्याके ज्ञाता दुर्जय वीर भीष्मजीको किन्होंने रोका है वे कौन हैं? संजय! तुम तो उनके पास ही थे पाण्डवोंने युद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मको किस प्रकार आगे बढ़नेसे रोका? ॥

विक्षोभयन्तमनीकानि बाहुद्रुमम् अपराजितम् ।
…… घोरसंनिविष्टं तुमुलम् ॥ १० ॥
कथमेनं पुरुषव्याघ्रं दुर्निवारमपराजितम् ।
…… ॥ ११ ॥

वे शत्रुपक्षकी सेनाओंका निरन्तर उच्छेद करते थे धनुष ही जिनकी दाढ़ थी धनुष ही खुला हुआ मुख था बाण ही जिनकी जिह्वा थी उन भयानक एवं दुर्जय पुरुषसिंह भीष्मको कुन्तीनन्दन अर्जुनने युद्धमें कैसे मार गिराया? यद्यपि भीष्म इस प्रकार मारे जानेके योग्य नहीं थे। वे शक्तिशाली और पराक्रमसम्पन्न थे ॥ १०-११ ॥

रथाधिरूढमुग्रं तु परमास्त्रं रणोत्तमे ।
परेषामुत्तमाङ्गानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥ १२ ॥

वे उत्तम रथपर बैठकर भयंकर धनुष और भयानक बाण लिये शत्रुओंके मस्तकोंको बाणोंद्वारा काट-काटकर उनके ढेर लगा रहे थे ॥ १२ ॥

पाण्डवानां महत् सैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतकार्मुकम् ।
कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥ १३ ॥

पाण्डवोंकी विशाल सेना दुर्धर्ष कालाग्निके समान धनुष लिये युद्धके लिये उद्यत देख सदा काँपने लगती थी ॥ १३ ॥

परिकृष्य स सेनां तु दशरात्रमनीकहा ।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १४ ॥

वे ही मधुसूदन भीष्म दस दिनोंतक शत्रुओंकी सेनाका संहार करते हुए अत्यन्त दुष्कर पराक्रम दिखाकर सूर्यकी भाँति अस्त हो गये ॥ १४ ॥

यः स शक्र इवाक्षय्यं वर्षं शरमयं सृजन् ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १५ ॥
स शेते निष्टनन् भूमौ वातरुग्ण इव द्रुमः ।
मम दुर्मन्त्रितेनाजौ यथा नार्हति भारत ॥ १६ ॥

जिन्होंने इन्द्रके समान युद्धमें दस दिनोंतक अक्षय बाणोंकी वर्षा करके रथ करोड़ (एक अरब) योद्धाओंका संहार कर डाला था, वे ही भरतवंशी वीर भीष्म मेरी कुमन्त्रणाके कारण आँधीसे उखाड़े गये वृक्षकी भाँति युद्धमें आहत होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, वे कदापि इसके योग्य नहीं थे ॥ १५-१६ ॥

यस्य शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी ।
प्रहर्तुमशकत्तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ १७ ॥

उन शान्तनुनन्दन भीष्म तो बड़े भयंकर पराक्रमी थे, उन्हें सामने देखकर पाण्डवसेना उनपर प्रहार कैसे कर सकी? ॥

कथं भीष्मेण संग्रामे अकुर्वन् फाल्गुनादयः ।
कथं च नाजयन् भीष्मो द्रोणे जीवति संजय ॥ १८ ॥

संजय! पाण्डवोंने भीष्मके साथ संग्राम कैसे किया? द्रोणाचार्यके जीते-जी भीष्म विजयी कैसे नहीं हो सके? ॥

कृपे संनिहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥ १९ ॥

जब युद्धमें कृपाचार्य तथा भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य दोनों ही उनके निकट थे, तो भी योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीष्म कैसे मारे गये ॥ १९ ॥

कथं चातिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ २० ॥

भीष्म तो युद्धमें देवता लोगोंके लिये भी दुर्जय एवं अतिरथी थे, फिर पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीके हाथसे वे किस प्रकार मारे गये? ॥ २० ॥

यः स्पर्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम् ।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोद्भवम् ।
संजयाचक्ष्व मे वीरं येन शर्म न विद्महे ॥ २२ ॥

जो रणभूमिमें महाबली जमदग्निनन्दन परशुरामसे भी टक्कर लेनेकी सदा इच्छा रखते थे जिनका पराक्रम इन्द्रके समान था और परशुरामजी भी जिन्हें पराजित न कर सके थे, संजय! महारथियोंके कुलमें उत्पन्न हुए वे महावीर भीष्म समराङ्गणमें किस प्रकार मारे गये, यह मुझे बताओ; क्योंकि मुझे शान्ति नहीं मिल रही है ॥ २१-२२ ॥

मामकाः के महेष्वासा नाजहुः संजयाच्युतम् ।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

संजय! कभी युद्धमें पीछे न हटनेवाले भीष्मजीका मेरे पक्षके किन महाधनुर्धरोंने साथ नहीं छोड़ा? दुर्योधनकी आज्ञा पाकर किन-किन वीरोंने उन्हें सब ओरसे घेर रखा था? ॥

यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः ।
कच्चिन्न कुरवः सर्वे नाजहुः संजयाच्युतम् ॥ २४ ॥

संजय! जब शिखण्डी आदि समस्त पाण्डव वीरोंने भीष्मपर आक्रमण किया, उस समय समस्त कौरवोंने कहीं अच्युत भीष्मका साथ छोड़ तो नहीं दिया था? ॥ २४ ॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५ ॥

अवश्य ही मेरा यह हृदय लोहेके समान सुदृढ़ है तभी तो पुरुषसिंह भीष्मको मारा गया सुनकर विदीर्ण नहीं होता है ॥ २५ ॥

यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ २६ ॥

जिन दुर्धर्ष वीर भरतश्रेष्ठ भीष्ममें सत्य, मेधा और नीति—ये तीन अप्रमेय शक्तियाँ थीं, वे युद्धमें कैसे मारे गये? ॥ २६ ॥

मौर्वीघोषस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान्।
धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥ २७ ॥

वे युद्धमें महान् मेघके समान उठे हुए थे। धनुषकी टंकार ही उनकी गर्जना थी, बाण ही उनके लिये वर्षाकी बूँदें थीं और धनुषका महान् शब्द ही बिजलीकी गड़गड़ाहट का भयंकर शब्द था ॥ २७ ॥

योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान् सपाञ्चालान् ससृञ्जयान्।
निघ्नन् पररथान् वीरो दानवानिव वज्रभृत् ॥ २८ ॥

वीरवर भीष्मने शत्रुपक्षके रथियों—कुन्तीकुमारों पाञ्चालों तथा सृञ्जयोंको मारते हुए उनपर उसी प्रकार बाणोंकी बौछार की, जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं ॥ २८ ॥

इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम्।
कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥ २९ ॥

उनका धनुष बाण आदि अस्त्रसमूह भयंकर एवं दुर्गम समुद्रके समान था। बाण ही उसमें ग्राह थे, धनुष लहरोंके समान जान पड़ता था। वह अक्षय, द्वीपरहित, चञ्चल तथा नौका आदि तैरनेके साधनोंसे शून्य था ॥ २९ ॥

गदासिमकराकीर्णं हयावर्तं गजाकुलम्।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ३० ॥

गदा और खड्ग आदि ही उसमें मगरके समान थे। वह अश्वरूपी भँवरोंसे व्याप्त प्रतीत होता था। उसमें हाथी ग्राहोंके समान प्रतीत होते थे। पैदल सेना उसमें मछलियोंके समान जान पड़ती थी तथा शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस समुद्रकी गर्जना थी ॥ ३० ॥

हयान् गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून्।
निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥ ३१ ॥

भीष्मजी उस समुद्रमें शत्रुपक्षके हाथियों, घोड़ों, पैदलों तथा बहुसंख्यक रथोंको वेगपूर्वक डुबो रहे थे। वे समरभूमिमें शत्रुवीरोंके प्राणोंका अपहरण करनेवाले थे ॥ ३१ ॥

विदह्यमानं कोपेन तेजसा च परंतपम्।
वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥

क्रोध और तेजसे प्रज्वलित होते हुए शत्रुतापी भीष्मको जैसे तट समुद्रको रोक देता है, उसी प्रकार किन वीरोंने आगे बढ़नेसे रोका था? ॥ ३२ ॥

भीष्मो यदकरोत् कर्म समरे संजयारिहा।
दुर्योधनहितार्थाय के तस्यास्य पुरोऽभवन् ॥ ३३ ॥
केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं भीष्मस्यामिततेजसः।
पृष्ठतः के परान् वीरानुपासेधन् यतव्रताः ॥ ३४ ॥

संजय! भीष्मने दुर्योधनके हितके लिये समरभूमिमें जो पराक्रम किया था, वह अद्भुत है। उस समय कौन योद्धा उनके आगे थे? किन किन वीरोंने अमिततेजस्वी भीष्मके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा की थी? किन योद्धाओंने दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हुए उनके पीछेकी ओर रहकर शत्रुपक्षके वीरोंको आगे बढ़नेसे रोका था? ॥ ३३-३४ ॥

के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके।
केऽरक्षन्नुत्तरं चक्रं वीरा वीरस्य युध्यतः ॥ ३५ ॥

कौन कौनसे वीर निकटसे भीष्मकी रक्षा करते हुए उनके आगे खड़े थे? और किन वीरोंने युद्धमें लगे हुए शूरशिरोमणि भीष्मके बायें पहियेकी रक्षा की थी? ॥ ३५ ॥

वामे चक्रे वर्तमानाः केऽघ्नन् संजय सृञ्जयान्।
अग्रतोऽग्र्यमनीकेषु केऽभ्यरक्षन् दुरासदम् ॥ ३६ ॥

संजय! उनके बायें चक्रकी रक्षामें तत्पर होकर किन किन योद्धाओंने सृञ्जयोंका विनाश किया था? सबसे आगे रहकर सेनाके अग्रभागमें दुर्जय वीर भीष्मकी सब ओरसे रक्षा की थी? ॥ ३६ ॥

पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम्।
समूहे के परान् वीरान् प्रत्ययुध्यन्त संजय ॥ ३७ ॥

संजय! किन लोगोंने दुर्गम मार्गमें आगे बढ़ते हुए उनके पार्श्वभागका संरक्षण किया था? और किन्होंने उस सैन्यसमूहमें आगे रहकर वीरतापूर्वक शत्रुयोद्धाओंका सामना किया था? ॥ ३७ ॥

रक्ष्यमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते।
दुर्जयानामनीकानि नाजयंस्तरसा युधि ॥ ३८ ॥

जब मेरे पक्षके शूरवीर उनकी रक्षा करते थे और वे भी उन वीरोंकी रक्षामें तत्पर थे, तब भी उन सब लोगोंने मिलकर शत्रुपक्षकी दुर्जय सेनाओंको वेगपूर्वक परास्त नहीं कर दिया? ॥ ३८ ॥

सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठिप्रजापतेः।
कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः संजय पाण्डवाः ॥ ३९ ॥

संजय! भीष्मजी सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीके समान थे, पाण्डव उनके ऊपर कैसे प्रहार कर सके? ॥ ३९ ॥

यस्मिन् द्वीपे समाश्वस्य युध्यन्ते कुरवः परैः।
तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि संजय ॥ ४० ॥

संजय! जिन द्वीपस्वरूप भीष्मजीके आश्रयमें निर्भय एवं निश्चिन्त होकर समस्त कौरव शत्रुओंके साथ युद्ध करते थे, उन्हीं नरश्रेष्ठ भीष्मको तुम मारा गया बता रहे हो, यह कितने दुःखकी बात है! ॥ ४० ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः।
न पाण्डवानगणयत् कथं स निहतः परैः ॥ ४१ ॥

जिनके पराक्रमका आश्रय लेकर जिसप्रकार देवताओंने मनपसंद पुत्र पाण्डवोंको युद्ध नहीं जयका था व शत्रुओंद्वारा किस प्रकार मारे गये

यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहायार्थे युयुत्सुभिः ।
काङ्क्षितो दानवान् घ्नद्भिः पिता मम महाव्रतः ॥ ४२ ॥
यस्मिञ्जाते महावीर्ये शान्तनुर्लोकविश्रुतः ।
शोकं दैन्यं च दुःखं च प्राजहात् पुत्रलक्ष्मणि ॥ ४३ ॥
प्रज्ञा परायणं प्राज्ञं सद्धर्मनिरतं शुचिम् ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥ ४४ ॥

इसके बाद है दानवोंके प्रहार करनेवाले सम्पूर्ण देवताओंने जिन मेरे महान् व्रतधारी पिता शान्तनुनन्दन भीष्मजीको अपना सहायक बनानेकी अभिलाषा की थी, जिन महापराक्रमी पुत्ररत्नके जन्म लेनेसे लोकविख्यात महाराज शान्तनुने शोक, दीनता और दुःखको सदाके लिये त्याग दिया था, जो उत्तम आश्रयस्वरूप बुद्धिमान्, स्वधर्मपरायण, पवित्र और वेदवेदाङ्गोंके तत्त्वज्ञ माने गये हैं, उन्हीं भीष्मको तुम मारा गया कैसे बता रहे हो ? ॥ ४२—४४ ॥

सर्वास्त्रविनयोपेतं शान्तं दान्तं मनस्विनम् ।
हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥ ४५ ॥

जो सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रोंके ज्ञानसे सम्पन्न, शान्त, जितेन्द्रिय और मनस्वी थे, उन शान्तनुनन्दन भीष्मको मारा गया सुनकर मुझे यह विश्वास हो गया कि अब हमारी शेष सेना मारी गयी ॥ ४५ ॥

धर्माद्धर्मो बलवान् सम्प्राप्त इति मे मतिः ।
यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ ४६ ॥

आज मुझे निश्चितरूपसे ज्ञात हुआ कि धर्मसे अधर्म ही बलवान् है; क्योंकि पाण्डव अपने वृद्ध गुरुजनकी हत्या करके राज्य लेना चाहते हैं ॥ ४६ ॥

जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः ।
अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः ॥ ४७ ॥
तमिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम् ।
हतं शंससि मे भीष्मं किं नु दुःखमतः परम् ॥ ४८ ॥

पूर्वकालमें अम्बाके लिये उद्यत हो सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुराम युद्ध करनेके लिये आये थे, परंतु भीष्मने उन्हें परास्त कर दिया था। वही इन्द्रके समान पराक्रमी तथा सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भीष्मको तुम मारा गया बता रहे हो। इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ॥ ४७-४८ ॥

असकृत् क्षत्रियव्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः ।
जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिघातिना ॥ ४९ ॥
न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वीर परशुरामजीने अनेक बार समस्त क्षत्रियोंको युद्धमें परास्त किया था,

उनसे भी जो मारे न जा सके थे, वे ही परम बुद्धिमान् भीष्म आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये ॥ ४९ ॥

तस्मान्नूनं महावीर्याद् भार्गवाद् युद्धदुर्मदात् ॥ ५० ॥
तेजोवीर्यबलैर्भूयाञ्शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ५१ ॥
परमास्त्रविदं वीरं जघान भरतर्षभम् ।

इससे जान पड़ता है कि महापराक्रमी युद्धदुर्मद परशुरामजीकी अपेक्षा भी तेज, पराक्रम और बलमें द्रुपदकुमार शिखण्डी ही बहुत बढ़ा-चढ़ा है, जिसने सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण, परमास्त्रवेत्ता और शूरवीर विद्वान् भरतश्रेष्ठ भीष्मको मार डाला है ॥ ५०-५१ ॥

के वीरास्तममित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥ ५२ ॥
शंस मे तद् यथा चासीद् युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः ।
योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य संजय ॥ ५३ ॥

उस समय युद्धमें शत्रुहन्ता भीष्मजीके साथ कौन-कौन-से वीर थे ? तथा पाण्डवोंके साथ भीष्मका कैसा युद्ध हुआ ? यह मुझे बताओ। संजय ! जैसे पतिहीना स्त्री शोचनीय हो जाती है, उसी प्रकार वीरोंसे रहित हुई मेरे पुत्रकी सेना विधवाके समान शोचनीय हो गयी है ॥ ५२-५३ ॥

अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद् बलं मम ।
पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन् महाहवे ॥ ५४ ॥
परासक्ते च वस्तस्मिन् कथमासीन्मनस्तदा ।

जैसे ग्वालेके बिना गौओंका समुदाय इधर-उधर भटकता फिरता है, उसी प्रकार अब मेरी सेना उद्भ्रान्त हो रही होगी। महान् युद्धके समय जिनमें सम्पूर्ण जगत्‌का परम पुरुषार्थ प्रकट दिखायी देता था, वे ही भीष्म जब परलोकके पथिक हो गये, उस समय तुमलोगोंके मनकी अवस्था कैसी हुई थी ? ॥ ५४ ॥

जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवास्मासु संजय ॥ ५५ ॥
घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम् ।
अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः ॥ ५६ ॥

संजय ! आज जीवित रहनेपर भी हमलोगोंमें कैसा सामर्थ्य है ? अपने महापराक्रमी लोकधर्मपरायण पिता भीष्मजीको युद्धमें मरवाकर हम उसी तरह शोकमें डूब गये हैं, जैसे पार जानेकी इच्छावाले लोग अगाध जलमें नावको डूबती देखकर दुःखी होते हैं ॥ ५५-५६ ॥

भीष्मे हते भृशं दुःखान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम संजय ॥ ५७ ॥
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ।

मैं समझता हूँ कि भीष्मजीके मारे जानेपर मेरे बेटे दुःखके कारण अत्यन्त शोकमग्न हो गये होंगे। संजय ! मेरा हृदय निश्चय ही लोहेका बना हुआ है, जो पुरुषसिंह भीष्मको मारा गया सुनकर भी विदीर्ण नहीं हो रहा है ॥ ५७ ॥

यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥ ५८ ॥

अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।

जिन दुष्कर तथा दुर्धर्ष वीर शिरोमणिमें अस्त्र, बुद्धि और नीति तीन अप्रमेय शक्तियाँ थीं वे युद्धमें कैसे मारे गये ?॥

न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥ ५९ ॥
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद् विमुच्यते ।

जान पड़ता है कि अस्त्र, शौर्य, तपस्या, बुद्धि, धैर्य तथा त्यागके द्वारा भी कोई मनुष्य छूट नहीं सकता है

कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः ॥ ६० ॥
यत्र शान्तनवं भीष्मं हतं शंससि संजय ।

संजय ! निश्चय ही कालकी शक्ति बहुत बड़ी है सम्पूर्ण जगत्‌के लिये वह दुर्लङ्घ्य है जिसके अधीन होनेके कारण तुम शान्तनुनन्दन भीष्मको मारा गया बता रहे हो ॥ ६० ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तो महद् दुःखमचिन्तयम् ॥ ६१ ॥
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छान्तनुनन्दनात् ।

मुझे शान्तनुनन्दन भीष्मसे अपने पुत्रोंके परित्राणकी बड़ी आशा थी इस समय अपने पुत्रके शोकमें संतप्त होकर मैं महान् दुःखसे चिन्तित हो उठा हूँ ॥ ६१ ॥

यदाऽऽदित्यमिवापश्यत् पतितं भुवि संजय ॥ ६२ ॥
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत ।

संजय ! जब दुर्योधनने शान्तनुनन्दन भीष्मको सूर्यके समान पृथ्वीपर गिरा देखा तब उसने क्या सोचा ?॥

नाहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या संजय चिन्तयन् ॥ ६३ ॥
शेषं किंचित् प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् ।

संजय ! जब मैं अपनी बुद्धिसे विचार करके देखता हूँ तो अपने तथा शत्रुपक्षके राजाओंमेंसे किसीका भी जीवन इस युद्धमें शेष रहता नहीं दिखायी देता है ॥ ६३ ॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः सम्प्रदर्शितः ॥ ६४ ॥
यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ।

ऋषियोंने क्षत्रियोंका यह धर्म अत्यन्त कठोर निश्चित किया है जिसमें रहते हुए पाण्डव शान्तनुनन्दन भीष्मको मारकर राज्य लेना चाहते हैं ॥ ६४ ॥

वयं वा राज्यमिच्छामो घातयित्वा महाव्रतम् ॥ ६५ ॥
क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नापराध्यन्ति पुत्रकाः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु संजय ॥ ६६ ॥
पराक्रमः परं शक्त्या तच्च तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

अथवा हम भी तो उन महाव्रती भीष्मको मरवाकर ही राज्य लेना चाहते हैं ? क्षत्रियधर्ममें स्थित हुए मेरे सम्बन्धी कुन्तीकुमारोंका कोई अपराध नहीं है । संजय ! दुःसह आपत्तिके समय श्रेष्ठ पुरुषको यही करना चाहिये जो भीष्मजीने किया है कि वह शक्तिके अनुसार अधिक-से-अधिक पराक्रम करे । यह गुण भीष्मजीमें पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित था ॥ ६५-६६ ॥

अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ६७ ॥

कथं शान्तनवं तात पाण्डुपुत्रा न्यपातयन् ।
कथं युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः ॥ ६८ ॥

भीष्मजी शत्रुसेनाका संहार कर रहे थे । वे लज्जाशील और अपराजित थे । तात ! ऐसे भीष्मको पाण्डवोंने कैसे मार गिराया ? उन महात्मा वीरोंने किस प्रकार सेनाएँ संगठित कीं और किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ६७-६८ ॥

कथं वा निहतो भीष्मः पिता संजय मे परैः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ६९ ॥
दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् ।

संजय ! शत्रुओंने मेरे ताउजी पिता भीष्मका किस प्रकार वध किया ? दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन तथा सुबलपुत्र जुआरी शकुनिने भीष्मजीके मारे जानेपर क्या-क्या कहा ?

यच्छरीरैरुपस्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥ ७० ॥
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम् ।
प्राविशन् कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम् ॥ ७१ ॥
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः ।

संजय ! जहाँ मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके शरीर बिछे हुए थे, जहाँ बाण, शक्ति, बड़े-बड़े खड्ग और तोमररूपी पासे फेंके जाते थे, उस युद्धरूप भयानक द्यूतसभामें जो प्राणोंकी बाजी लगाकर खेला जाता था, उन भयानक द्यूतसभामें किन-किन मन्दबुद्धि जुआरियोंने प्रवेश किया था ? वहाँ प्राणोंकी बाजी लगायी गयी थी वह भयंकर द्यूतक्रीडा किन-किन नरश्रेष्ठ वीरोंने खेला था ? ॥ ७०-७१ ॥

के जयन्त जितास्तत्र कृतलक्ष्याः निपातिताः ॥ ७२ ॥
अन्ये भीष्माच्छान्तनवात् तन्ममाचक्ष्व संजय ।

संजय ! शान्तनुनन्दन भीष्मके सिवा उस युद्धमें कौन-कौन हार रहे थे किन-किन लोगोंकी विजय हुई तथा कौन-कौन वीर लक्ष्य बनकर मार गिराये गये ? यह सब मुझे बताओ ॥ ७२ ॥

न हि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ॥ ७३ ॥
पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम् ।
आर्तिर्मे हृदयं रूढा महती पुत्रहानिजा ॥ ७४ ॥
त्वं हि मे सर्पिषेवाग्निमुद्दीपयसि संजय ।

युद्धभूमिमें शोभा पानेवाले भयंकर पराक्रमी अपने ताऊ देवव्रत भीष्मको मारा गया सुनकर मेरे हृदयमें शान्ति नहीं रह गयी है । उनके मारे जानेसे मेरे पुत्रोंकी जो हानि होनेवाली है उसके कारण मेरे मनमें भारी व्यथा जाग उठी है । संजय ! तुम अपने वचनरूपी घृतकी आहुति डालकर मेरे उस चिन्तारूपी अग्निको और भी उद्दीप्त कर रहे हो ॥ ७३-७४ ॥

महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥ ७५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं शोचन्ति मम पुत्रकाः ।
श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ ७६ ॥

जिन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌में विख्यात इस युद्धके महान् भारको अपनी भुजाओंपर उठा रखा था, उन्हीं भीष्मजीको मारा गया देख मेरे पुत्र भारी शोकमें पड़ गये होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं दुर्योधनके द्वारा प्रकट किये हुए उन दुःखोंको सुनूँगा ॥ ७६ ॥

तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद् वृत्तं तत्र संजय।
यद् वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याबुद्धिसम्भवम् ॥ ७७ ॥
अपनीतं सुनीतं वा यद् तन्ममाचक्ष्व संजय।

इसलिये संजय! युद्धमें वहाँका सारा वृत्तान्त मुझसे कहो। मूर्ख दुर्योधनके अज्ञानके कारण उस युद्धमें जो कुछ भी न्यायकी दृष्टिसे जो भी कार्य सम्पादित हुआ हो, उन सबका वर्णन करो।

यद् कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥ ७८ ॥
तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाप्यशेषतः।

विजयकी इच्छा रखनेवाले अस्त्रविद्याविशारद भीष्मजीने उस युद्धमें अपनी तेजस्विताके अनुरूप जो-जो कर्म किया हो, वह सभी पूर्णरूपसे मुझे बताओ।

तथा तदभवद् युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥
क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाभवत् ॥ ८० ॥

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका वह युद्ध जिस समय जिस क्रमसे और जिस रूपमें हुआ था, वह सब कहो।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें धृतराष्ट्रका प्रश्नविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्याय

संजयका युद्धके वृत्तान्तका वर्णन आरम्भ करना—दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये समुचित व्यवस्था करनेका आदेश

संजय उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथार्हसि।
न तु दुर्योधने दोषमिममासक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज! आपने जो ये बारम्बार अनेक प्रश्न किये हैं, वे आपके उचित और आपके योग्य ही हैं; परंतु यह सारा दोष आपको दुर्योधनके ही माथे नहीं मढ़ना चाहिये ॥ १ ॥

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः।
एनसा तेन नान्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥ २ ॥

जो मनुष्य अपने दुष्कर्मोंके कारण अशुभ फल भोग रहा हो, उसे उस पापके लिये दूसरेपर शंका नहीं करनी चाहिये ॥ २ ॥

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत्।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ ३ ॥

महाराज! जो मनुष्य मनुष्योंमें सबके साथ निन्दित व्यवहार करता है, वह निन्दित कर्म करनेके कारण सब लोगोंके लिये मार डालने योग्य है ॥ ३ ॥

निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया।
अनुभूतः सहामात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥ ४ ॥

पाण्डव आप सबके द्वारा किये गये अपमान एवं कपटपूर्ण बर्तावको अच्छी तरह जानते थे, तथापि उन्होंने केवल आपकी ओर देखकर—आपके द्वारा न्यायोचित बर्ताव होनेकी आशा रखकर दीर्घकालतक अपने मन्त्रियोंसहित वनमें रहकर क्लेश भोगा और सब कुछ सहन किया ॥ ४ ॥

हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम्।
प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥ ५ ॥
शृणु तत् पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः।
दिष्टमेतत् पुरा नूनमेवंभावि नराधिप ॥ ६ ॥

भूपाल! मैंने हाथियों, घोड़ों तथा अमिततेजस्वी राजाओंके विषयमें जो कुछ अपनी आँखों देखा है और योगबलसे जिसका साक्षात्कार किया है, वह सब वृत्तान्त सुनिये; परंतु अपने मनको शोकमें न डालिये। नरेश्वर! निश्चय ही दैवका यह सारा विधान पहलेसे ही ऐसा हो चुका है ॥ ५-६ ॥

नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते।
यस्य प्रसादाद् दिव्यं मे प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
दृष्टिश्चातीन्द्रिया राजन् दूराच्छ्रवणमेव च।
परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥ ८ ॥
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा।
शस्त्रैरसङ्गो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥ ९ ॥
शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम्।
भरतानामभूद् युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥ १० ॥

राजन्! जिनके कृपाप्रसादसे मुझे यह उत्तम दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है, इन्द्रियातीत विषयको भी प्रत्यक्ष देखनेवाली दृष्टि मिली है, दूरसे भी सब कुछ सुननेकी शक्ति, दूसरेके मनकी बातको समझ लेनेकी योग्यता, भूत और भविष्यका ज्ञान, उल्लङ्घन करके विपरीत मार्गपर चलनेवाले मनुष्योंकी उत्पत्तिका ज्ञान, आकाशमें चलनेकी शुभ शक्ति तथा युद्धके समय अस्त्रोंसे अपने शरीरके अछूते रहनेका अद्भुत चमत्कार आदि ये सब महात्मा व्यासजीके वरदानसे मेरे लिये सम्भव हुए हैं, उन्हीं आपके पिता पराशरनन्दन बुद्धिमान् व्यासजीको नमस्कार करके भरतवंशियोंके इस अत्यन्त अद्भुत, विचित्र एवं रोमाञ्चकारी युद्धका वर्णन आरम्भ करता हूँ।

आप सुझसे यह सब युद्ध जिस प्रकार हुआ था वह विस्तारपूर्वक सुनें ॥ ७-१० ॥

तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विभागशः।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥

महाराज ! जब समस्त सेनाएँ शास्त्रीय विधिके अनुसार व्यूह-रचनापूर्वक अपने स्थानमें खड़ी होकर युद्धके लिये तैयार हो गयीं, उस समय दुर्योधनने दुःशासनसे कहा ॥ ११ ॥

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः।
अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ १२ ॥

दुःशासन ! तुम भीष्मजीकी रक्षा करनेवाले रथोंको शीघ्र तैयार कराओ। समस्त सेनाओंको भी शीघ्र उनकी रक्षाके लिये तैयार हो जानेकी आज्ञा दो ॥ १२ ॥

अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिन्तितः।
पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥ १३ ॥

मैं वर्षोंसे जिसके लिये चिन्तित था, वह यह सेनासहित कौरव-पाण्डवोंका महान् समागम मेरे सामने उपस्थित हो गया है ॥ १३ ॥

नातः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात्।
हन्याद् गुप्तो ह्यसौ पार्थान् सोमकांश्च ससृञ्जयान् ॥ १४ ॥

इस समय युद्धमें भीष्मजीकी रक्षासे बढ़कर दूसरा कोई कार्य मैं आवश्यक नहीं मानता; क्योंकि वे सुरक्षित रहें तो कुन्तीके पुत्रों, सोमकवंशियों तथा सृञ्जयोंको भी मार सकते हैं ॥ १४ ॥

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद् वर्ज्यो रणे मम ॥ १५ ॥

विशुद्ध हृदयवाले पितामह भीष्म मुझसे कह चुके हैं कि मैं शिखण्डीको युद्धमें नहीं मारूँगा; क्योंकि सुननेमें आया है कि वह पहले स्त्री था। इसलिये वह युद्धमें मेरे लिये त्याज्य है ॥ १५ ॥

तस्माद् भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः।
शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः ॥ १६ ॥

इसलिये मेरा विचार है कि इस समय हमें विशेषरूपसे भीष्मजीकी रक्षामें ही तत्पर रहना चाहिये। मेरे सारे सैनिक शिखण्डीको मार डालनेका प्रयत्न करें ॥ १६ ॥

तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः।
सर्वशस्त्रास्त्रकुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥ १७ ॥

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशाओंके योद्धा जो सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके संचालनमें कुशल हैं, वही पितामह (भीष्म)की रक्षा करें ॥ १७ ॥

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं महाबलम्।
मा सिंहं जम्बुकेनेव घातयामः शिखण्डिना ॥ १८ ॥

यदि महाबली सिंह भी अरक्षित दशामें हो तो उसे एक भेड़िया भी मार सकता है। हम चाहते हैं कि सियारके समान शिखण्डीके द्वारा सिंहरूपी भीष्मको न मरवा दें ॥ १८ ॥

वामं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम्।
गोप्तारौ फाल्गुनस्यैतौ फाल्गुनोऽपि शिखण्डिनः ॥ १९ ॥

अर्जुनके बायें पहियेकी रक्षा युधामन्यु और दाहिनेकी रक्षा उत्तमौजा कर रहे हैं। अर्जुनको ये दो रक्षक प्राप्त हैं और अर्जुन शिखण्डीकी रक्षा कर रहे हैं ॥ १९ ॥

संरक्ष्यमाणः पार्थेन भीष्मेण च विवर्जितः।
यथा न हन्याद् गाङ्गेयं दुःशासन तथा कुरु ॥ २० ॥

अतः दुःशासन ! भीष्मसे उपेक्षित तथा अर्जुनसे सुरक्षित होकर शिखण्डी जिस प्रकार गङ्गानन्दन भीष्मको न मार सके, वैसा प्रयत्न करो ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि दुर्योधनदुःशासनसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें दुर्योधन-दुःशासन-संवादविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

दुर्योधनकी सेनाका वर्णन

सञ्जय उवाच

ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान्।
क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर रात्रिके बीतनेपर सवेरा होते ही 'रथ जोतो, युद्धके लिये तैयार हो जाओ।' इस प्रकार जोर-जोरसे बोलनेवाले राजाओंका महान् कोलाहल सब ओर छा गया ॥ १ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सिंहनादैश्च भारत।
हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा ॥ २ ॥

गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जताम्।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि, वीरोंके सिंहनाद, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथके पहियोंकी घरघराहट, हाथियोंके गरजने तथा गरजते हुए योद्धाओंके सिंहनाद करने, ताल ठोंकने और जोर-जोरसे बोलने आदिकी तुमुल ध्वनि सब ओर व्याप्त हो गयी ॥ २-३ ॥

उदतिष्ठन्महाराज सर्वं युक्तमशेषतः।
सूर्योदये महत् सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४ ॥

महाराज ! सूर्योदय होते होते कौरवों और पाण्डवोंकी वह सारी विशाल सेना सम्पूर्णरूपसे युद्धके लिये तैयार हो उठी ॥ ४ ॥

राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च।
दुष्प्रधृष्याणि चास्त्राणि शस्त्राणि कवचानि च ॥ ५ ॥

राजेन्द्र! आपके पुत्रों तथा पाण्डवोंके दुर्जय सेना-व्यूह तथा ध्वज चमक उठे ॥ ५ ॥

ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत।
त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ६ ॥

भारत! तब सूर्योदयके प्रकाशमें आपकी और शत्रुओंकी सारी सेनाएँ शस्त्रोंसे सुसज्जित तथा अत्यन्त विशाल दिखायी देने लगीं ॥ ६ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः।
विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥ ७ ॥

जाम्बूनद नामक सुवर्णसे विभूषित हाथी और रथ बिजलियोंसहित मेघोंकी घटाके समान प्रकाशमान दिखायी देते थे ॥ ७ ॥

रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः।
अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥ ८ ॥

बहुसंख्यक रथोंकी सेनाएँ अनेक नगरोंके समान दिखायी देती थीं। उनके बीच आपके ताऊ भीष्मजी पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८ ॥

धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः।
योधाः प्रहरणैः शुभ्रैः स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥ ९ ॥

आपकी सेनाके योद्धा धनुष, ऋष्टि, खड्ग, गदा, शक्ति और तोमर आदि चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंके साथ अपनी-अपनी सेनाओंमें खड़े थे ॥ ९ ॥

गजा रथाः पदाताश्च तुरगाश्च विशाम्पते।
व्यतिष्ठन् वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥

प्रजानाथ! हाथी, रथ, पैदल और घुड़सवार सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें जालके समान व्यूह बनाकर खड़े थे ॥ १० ॥

ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः।
स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥ ११ ॥

अपने और शत्रुओंके अनेक प्रकारके ऊँचे उठे ध्वज हजारोंकी संख्यामें फहराते दिखायी देते थे ॥ ११ ॥

काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः।
अर्चिष्मन्तो व्यरोचन्त गजारोहाः सहस्रशः ॥ १२ ॥

सुवर्णमय आभूषण धारण किये मणियोंसे अलंकृत हजारों हाथीसवार प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १२ ॥

... महेन्द्रध्वजसंनिभाः।
सन्नद्धास्ते महीपाला ददृशुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १३ ॥

जैसे इन्द्रभवनमें देवराज इन्द्रके ध्वज फहराते रहते हैं, उसी प्रकार कौरव-पाण्डवसेनाके ध्वज भी फहरा रहे थे। दोनों सेनाओंके प्रमुख वीर युद्धकी अभिलाषा रख कर कवच आदिसे सुसज्जित दिखायी दे रहे थे ॥ १३ ॥

उद्यतायुधनिस्त्रिंशा बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः ॥ १४ ॥

उनके हथियार उठे हुए थे। वे हाथोंमें दस्ताने और पीठपर तरकस बाँधे सेनाके मुहानेपर खड़े हुए भूपालगण अद्भुत शोभा पा रहे थे। उनकी आँखें बैलोंकी आँखोंके समान बड़ी-बड़ी दिखायी देती थीं ॥ १४ ॥

शकुनिः सौबलः शल्यः सैन्धवोऽथ जयद्रथः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ १५ ॥
श्रुतायुधश्च कालिङ्गो जयत्सेनश्च पार्थिवः।
बृहद्बलश्च कौसल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १६ ॥
दशैते पुरुषव्याघ्राः शूराः परिघबाहवः।
अक्षौहिणीनां पतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ १७ ॥

सुबलपुत्र शकुनि, शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, कलिङ्गराज श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, कोसलनरेश बृहद्बल तथा सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये दस पुरुषसिंह शूरवीर अक्षौहिणी सेनाओंके अधिनायक थे। इनकी भुजाएँ परिघोंके समान मोटी थीं। इन सबने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी थीं ॥ १५—१७ ॥

एते चान्ये च बहवो दुर्योधनवशानुगाः।
राजानो राजपुत्राश्च नीतिमन्तो महाबलाः ॥ १८ ॥
सन्नद्धाः समदृश्यन्त स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः।

ये तथा और भी दूसरे बहुत-से नीतिज्ञ महाबली राजा और राजकुमार दुर्योधनके वशमें रहकर कवच आदिसे सुसज्जित हो अपनी-अपनी सेनाओंमें खड़े दिखायी देते थे ॥ १८ ॥

बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे बलिनो युद्धशालिनः ॥ १९ ॥
हृष्टा दुर्योधनस्यार्थे ब्रह्मलोकाय दीक्षिताः।
समर्था दश वाहिनीः परिगृह्य व्यवस्थिताः ॥ २० ॥

वे सभी बलवान् और युद्धभूमिमें शोभित होनेवाले थे और सबने दुर्योधनके हितके लिये बड़े हर्ष और उत्साहके साथ ब्रह्मलोककी दीक्षा ले ली थी। वे सामर्थ्यशाली दस वीर अपनी दस अक्षौहिणी सेनाओंको लेकर युद्धके लिये तैयार खड़े थे ॥ १९-२० ॥

एकादशी धार्तराष्ट्री कौरवाणां महाचमूः।
अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शान्तनवोऽग्रणीः ॥ २१ ॥

ग्यारहवीं धृतराष्ट्रपुत्रोंकी कौरवोंकी विशाल सेना थी, जो समस्त सेनाओंके आगे खड़ी थी और जिसके अग्रभागमें शान्तनुनन्दन भीष्म थे ॥ २१ ॥

श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम्।
अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् ॥ २२ ॥

उनके सिरपर सफेद पगड़ी शोभा पाती थी। उनके कंधे भी सफेद ही थे। उन्होंने अपने अङ्गोंमें श्वेत कवच धारण कर रखा था। महाराज! सर्वदा ही पीछे न हटनेवाले उन भीष्मजीको मैंने अपनी शान्तकान्तिके कारण नये उदित चन्द्रमाके समान सुशोभित देखा ॥ २२ ॥

हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम्।
श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥ २३ ॥
सृञ्जयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।

भीष्मजीके चाँदीके बने हुए सुन्दर रथपर विराजमान थे, उनकी तालचिह्नित सुवर्णमयी ध्वजा आकाशमें फहरा रही थी। उस समय कौरवों, पाण्डवों तथा धृष्टद्युम्न आदि महाधनुर्धर सृञ्जयवंशियोंने उन्हें सफेद बादलोंमें छिपे हुए सूर्यदेवके समान देखा ॥ २३ ॥

जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः।

धृष्टद्युम्न आदि समस्त सृञ्जय उन्हें देखकर बारंबार उद्विग्न हो उठते थे, ठीक उसी तरह जैसे मुँह बाये हुए सिंहको देखकर छोटे मृग अपने व्याकुल हो उठते हैं ॥ २४ ॥

एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव ॥ २५ ॥
पाण्डवानां तथा सप्त महापुरुषपालिताः।

भूपाल! आपकी ये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ तथा पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी सेनाएँ श्रेष्ठ पुरुषोंसे सुरक्षित हो उत्तम शोभासे सम्पन्न दिखायी देती थीं ॥ २५ ॥

उन्मत्तमकरावर्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥ २६ ॥
युगान्ते समुपेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव।

वे दोनों सेनाएँ प्रलयकालमें एक दूसरेसे मिलनेवाले उन दो समुद्रोंके समान दृष्टिगोचर हो रही थीं, जिनमें मतवाले मगर और भँवर उठते हैं तथा जिनमें बड़े-बड़े ग्राह भरे रहते हैं ॥ २६ ॥

नैव नस्तादृशो राजन् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः।
अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः ॥ २७ ॥

राजन्! कौरवोंकी इतनी बड़ी सेनाका ऐसा संगठन मैंने पहले कभी न तो देखा था और न सुना ही था ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सेना-वर्णनविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

कौरवमहारथियोंका युद्धके लिये आगे बढ़ना तथा उनके व्यूह, वाहन और ध्वज आदिका वर्णन

सञ्जय उवाच

यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! श्रीकृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासने जैसा कहा था, उसीके अनुसार सब राजा कुरुक्षेत्रमें एकत्र हुए थे ॥ १ ॥

मघाविषयगः सोमस्तद् दिनं प्रत्यपद्यत।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥ २ ॥

उस दिन चन्द्रमा मघा नक्षत्रपर था। आकाशमें सात महाग्रह अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी दे रहे थे ॥ २ ॥

द्विधाभूत इवादित्य उदये प्रत्यदृश्यत।
ज्वलन्त्या शिखया भूयो भानुमानुदितो दिवि ॥ ३ ॥

उदयकालमें सूर्य दो भागोंमें बँटा हुआ-सा दिखायी देता था। साथ ही वह आकाशमें प्रज्वलित ज्वालाओंसे व्याप्त होकर उदित हुआ था ॥ ३ ॥

ववाशिरे च दीप्तायां दिशि गोमायुवायसाः।
लिप्समानाः शरीराणि मांसशोणितभोजनाः ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें दाह-सा हो रहा था और मांस तथा रक्तका आहार करनेवाले गीदड़ और कौए मनुष्योंके शवोंकी इच्छासे भयंकर शब्द कर रहे थे ॥ ४ ॥

अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः।
भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतौ ॥ ५ ॥
जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिंदमौ।
युयुधाते तवार्थाय यथा स समयः कृतः ॥ ६ ॥

कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्म तथा भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य—ये दोनों शत्रुदमन महारथी प्रतिदिन सबेरे उठकर मनको वशमें रखते हुए यही आशीर्वाद देते थे कि 'पाण्डवोंकी जय हो'। परंतु वे जैसी प्रतिज्ञा कर चुके थे, उसके अनुसार आपके लिये ही पाण्डवोंके साथ युद्ध करते थे ॥ ५-६ ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव।
समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

उस दिन सम्पूर्ण धर्मोंके विशेषज्ञ आपके ताऊ देवव्रत भीष्मजी सब राजाओंको बुलाकर उनसे इस प्रकार बोले— ॥ ७ ॥

इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायापावृतं महत्।
गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ॥ ८ ॥

'क्षत्रियो! यह युद्ध तुम्हारे लिये स्वर्गका खुला हुआ

विशाल द्वार है। तुमलोग इसके द्वारा इन्द्र तथा ब्रह्माजीका सालोक्य प्राप्त करो॥८॥

पन्था वः प्राक्तनः सर्वः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः।
सम्भावयत चात्मानमव्यग्रमनसो युधि॥९॥

यह तुम्हारे पूर्वजों, पूर्वजोंद्वारा स्वीकार किया हुआ सनातन मार्ग है। तुम सब लोग शान्तचित्त होकर युद्धमें धीरताका परिचय देते हुए अपने-आपको सुयश और सम्मान का भागी बनाओ॥९॥

नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः।
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः॥१०॥

नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष और नृग ऐसे ही कर्मोंद्वारा सिद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट लोकोंमें गये हैं॥१०॥

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद् व्याधिमरणं गृहे।
यदाजौ निधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः॥११॥

क्षत्रिय घरमें रहकर रोग आदिसे मरना क्षत्रियके लिये अधर्म माना गया है। वह युद्धमें लोहेके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा आघात पाकर जो मृत्युको अङ्गीकार करता है, वही उसका सनातन धर्म है॥११॥

एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ।
निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः॥१२॥

भरतश्रेष्ठ! भीष्मके ऐसा कहनेपर वे सभी भूपाल श्रेष्ठ रथोंद्वारा अपनी सेनाकी शोभा बढ़ाते हुए युद्धके लिये प्रस्थित हुए॥१२॥

स तु वैकर्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः।
न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ॥१३॥

भरतभूषण! इस युद्धमें भीष्मने मन्त्रियों और बन्धुओंसहित कर्णसे अस्त्र-शस्त्र रखवा दिये थे॥१३॥

अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः।
निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश॥१४॥

इसलिये आपके पुत्र और अन्य नरेश बिना कर्णके ही अपने सिंहनादसे दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए युद्धके लिये निकले॥१४॥

श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः।
तान्यनीकान्यशोभन्त रथैरथ पदातिभिः॥१५॥

उस समय श्वेत छत्रों, पताकाओं, ध्वजों, हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिकोंसे उन सेनाओंकी बड़ी शोभा हो रही थी॥१५॥

भेरीपणवशब्दैश्च पटहानां च निःस्वनैः।
रथनेमिनिनादैश्च बभूवाकुलिता मही॥१६॥

भेरी, पणव, दुन्दुभि आदि बाजोंकी ध्वनियों तथा रथके पहियोंके घर्घर शब्दोंसे वहाँकी सारी भूमि व्याप्त हो रही थी॥१६॥

काञ्चनाङ्गदकेयूरैः कार्मुकैश्च महारथाः।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त जङ्गमा इव पर्वताः॥१७॥

सोनेके बाजूबंद और केयूर नामक बाहुभूषण तथा धनुष धारण किये महारथी वीर जंगम पर्वतोंके समान सुशोभित हो रहे थे॥१७॥

तालेन महता भीष्मः पञ्चतारेण केतुना।
विमलादित्यसंकाशस्तस्थौ कुरुचमूपतिः॥१८॥

कौरवसेनाके प्रधान सेनापति भीष्म भी ताड़ और पाँच तारोंके चिह्नसे युक्त विशाल ध्वजा-पताकासे सुशोभित रथपर आ बैठे। उस समय वे निर्मल तेजोमय सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे॥१८॥

ये त्वदीया महेष्वासा राजानो भरतर्षभ।
अवर्तन्त यथादेशं राजञ्छान्तनवस्य ते॥१९॥

भरतश्रेष्ठ! महाराज! आपकी सेनाके राजा महाधनुर्धर भूपाल शान्तनुनन्दन भीष्मकी आज्ञाके अनुसार चलते थे॥१९॥

स तु गोवासनः शैब्यः सहितः सर्वराजभिः।
ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना।
पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः॥२०॥
अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलाङ्गूलकेतनः।

गोवासनदेशके राजा शैब्य सम्पूर्ण राजाओंके साथ राजोचित गजराजपर आरूढ़ हो युद्धके लिये चले। कमलके समान कान्तिमान् अश्वत्थामा सिंहकी पूँछके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले रथपर आरूढ़ हो सबसे आगे रहकर चलने लगे॥२०॥

श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः॥२१॥
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः।
एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः॥२२॥
स्यन्दनैर्वरवर्णाभैर्भीष्मस्यासन् पुरोगमाः।

श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा तथा महारथी विकर्ण—ये सात महाधनुर्धर वीर सुन्दर रथोंपर आरूढ़ हो द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आगे करके भीष्मके आगे-आगे चल रहे थे॥२१-२२॥

तेषामपि महाशोभा शोभयन्तो रथोत्तमान्॥२३॥
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः।

इन सबके जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए ऊँचे ध्वज इनके श्रेष्ठ रथोंकी शोभा बढ़ाते हुए अत्यन्त प्रकाशित हो रहे थे॥२३॥

जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता॥२४॥
केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह।

आकाशवर्ती ग्रहोंके समान ... सुवर्णमयी वेदी और धनुषके चिह्नसे युक्त थे ॥ २४ ॥

अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षता ॥ २५ ॥
महाराज दुर्योधनस्यासीन्नागो मणिमयो ध्वजः

महाराज! लाखों सैनिकोंकी सेनाको अपने साथ लेकर चलनेवाले दुर्योधनका मणिमय महान् ध्वज नागचिह्नसे विभूषित था ॥ २५ ॥

तस्य पौरवकालिङ्गौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २६ ॥
क्षेमधन्वा सुमित्रश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः

पौरव, कलिङ्गराज, काम्बोजराज सुदक्षिण, क्षेमधन्वा तथा सुमित्र—ये दुर्योधनके आगे-आगे चल रहे थे ॥ २६ ॥

स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च
प्रकर्षन्निव सेनाग्रं मागधश्च कृपो ययौ ॥ २७ ॥

वृषभचिह्नित ध्वजावाले बहुमूल्य रथपर बैठे हुए कृपाचार्य तथा मगधराज सेनाके अग्रभागको आगे लिये जा रहे थे ॥ २७ ॥

तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना
शारदाम्बुदसंकाशं प्राच्यानामभवद् बलम् ॥ २८ ॥

अङ्गराज तथा मनस्वी कृपाचार्यसे सुरक्षित पूर्वदेशीय वीरोंकी वह विशाल वाहिनी शरत्कालके बादलोंके समान शोभा पाती थी ॥ २८ ॥

अनीकप्रमुखे तिष्ठन् वराहेण महायशाः
शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥ २९ ॥

महायशस्वी राजा जयद्रथ वराहके चिह्नसे युक्त रजतमय ध्वज-पताकाके साथ सुशोभित हो सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ २९ ॥

शतं रथसहस्राणां तस्यासन् वशवर्तिनः
अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥ ३० ॥

उनके अधीन एक लाख रथ, आठ हजार हाथी और साठ हजार घुड़सवार थे ॥ ३० ॥

तत् सिन्धुपतिना राजन् पालितं ध्वजिनीमुखम्
अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद् बलम् ॥ ३१ ॥

सिन्धुराजके द्वारा सुरक्षित अनन्त रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई वह विशाल सेना अद्भुत शोभा पा रही थी ॥ ३१ ॥

षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च
पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥ ३२ ॥

कलिङ्गदेशके राजा श्रुतायु अपने मित्र केतुमान्के साथ साठ हजार रथ और दस हजार हाथियोंको साथ लिये युद्धके लिये चले ॥ ३२ ॥

तस्य पर्वतसंकाशा व्यरोचन्त महागजाः
यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥ ३३ ॥

यन्त्र, तोमर, तूणीर तथा पताकाओंसे सुशोभित उनके पर्वताकार गजराज बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३३ ॥

शुशुभे केतुमुख्येन पादपेन कलिङ्गकः
श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥ ३४ ॥

कलिङ्गराजके श्रेष्ठ ध्वजपर अग्निका चिह्न बना हुआ था। वह श्वेत छत्र और चँवरसे तथा पदक (स्वर्णहार) से विभूषित हो बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ३४ ॥

केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमाङ्कुशम्
आस्थितः समरे राजन् मेघस्थ इव भानुमान् ॥ ३५ ॥

राजन्! केतुमान् भी विचित्र एवं विशाल अङ्कुशवाले गजराजपर आरूढ़ हो समरभूमिमें खड़ा हुआ मेघोंकी घटाके ऊपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवके समान जान पड़ता था ॥ ३५ ॥

तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः
भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥ ३६ ॥
गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार श्रेष्ठ गजराजपर आरूढ़ हो राजा भगदत्त भी वज्रधारी इन्द्रके समान अपने तेजसे उद्दीप्त हो युद्धके लिये आगे बढ़ रहे थे। अवन्तिदेशके राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी भगदत्तके समान ही तेजस्वी थे। वे दोनों भाई हाथीकी पीठपर बैठकर केतुमान्के पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ ३६-३७ ॥

स रथानीकवान् व्यूहो हस्त्यङ्गोत्तमशीर्षवान्
वाजिपक्षः पतन्नुग्रः प्राहसत् सर्वतोमुखः ॥ ३८ ॥

राजन्! रथसमूहोंसे युक्त उस सेनाका भयंकर व्यूह सर्वतोमुखी था। वह हँसता हुआ-सा जान पड़ता था। हाथी उस व्यूहके अङ्ग थे, राजाओंका समुदाय ही उसका मस्तक था और घोड़े उसके पंख जान पड़ते थे ॥ ३८ ॥

द्रोणेन विहितो राजन् राज्ञा शान्तनवेन च
तथैवाचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेण च ॥ ३९ ॥

द्रोणाचार्य, राजा दुर्योधन, शान्तनुनन्दन भीष्म, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा, बाह्लीक और कृपाचार्यने उस सर्वतोमुख व्यूहका निर्माण किया था ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्याय

कौरवसेनाका कोलाहल तथा भीष्मके रक्षकोंका वर्णन

संजय उवाच

ततो मुहूर्तात् तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर दो ही घड़ीमें युद्धकी इच्छावाले योद्धाओंका भयंकर कोलाहल सुनायी देने लगा, जो हृदयको कँपा देनेवाला था॥ १॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्वारणानां च बृंहितैः।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुंधरा॥ २॥

शङ्ख और दुन्दुभियोंके घोष, हाथियोंके चिग्घाड़ने और रथोंके पहियोंकी घरघराहटसे यह पृथ्वी फटी-सी जा रही थी॥ २॥

हयानां हेषमाणानां योधानां तत्र गर्जताम्।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनापूरितं तदा॥ ३॥

हिनहिनाते हुए घोड़ों और गर्जना करते हुए योद्धाओंके कोलाहलसे एक ही क्षणमें सारी पृथ्वी और आकाश गूँज उठा॥ ३॥

पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे॥ ४॥

दुर्धर्ष राजन्! आपके पुत्रों और पाण्डवोंकी सेनाएँ एक दूसरेसे भिड़कर काँपने लगीं॥ ४॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः॥ ५॥

उस रणभूमिमें सुवर्णभूषित रथ और हाथी बिजलियोंसहित मेघोंके समान सुशोभित दिखायी देते थे॥ ५॥

ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः॥ ६॥

नरेश्वर! आपकी सेनाके नाना प्रकारके ध्वज और सोनेके बाजूबंद धारण करनेवाले योद्धा प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ६॥

स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव॥ ७॥

भारत! अपने और शत्रुपक्षके योद्धाओंके ध्वज इन्द्रभवनमें फहरानेवाले इन्द्रध्वजोंके समान दिखायी देते थे॥ ७॥

काञ्चनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः।
संनद्धाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः॥ ८॥

अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् सुवर्णमय कवच धारण किये वीर सैनिक अग्नि और सूर्यके ही तुल्य प्रकाशित दीख रहे थे॥ ८॥

कुरुयोधवरा राजन् विचित्रायुधकार्मुकाः।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशाः पताकिनः॥ ९॥

राजन्! कौरवसेनाके श्रेष्ठ योद्धा विचित्र आयुध और धनुष धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें विविध आयुध उठे हुए थे। वे ध्वजा-पताका लिये युद्धके लिये उद्यत थे॥ ९॥

ऋषभाक्षा महेष्वासाश्चमूमुखगता नृप।
पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप।
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा॥ १०॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः॥ ११॥
रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः।

नरेश्वर! आपके पुत्र दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्ण, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा और शल—ये बैलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले महाधनुर्धर सेनाके मुहानेपर खड़े होकर भीष्मजीकी रक्षा कर रहे थे। इनके अनुयायी बीस हजार रथी थे॥ १०-११॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥ १२॥
शाल्वा मत्स्यास्तथाम्बष्ठास्त्रिगर्ताः केकयास्तथा।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः॥ १३॥
द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः।
महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम्॥ १४॥

अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, केकय, सौवीर, कितव तथा पूर्व, पश्चिम और उत्तर प्रदेशोंके निवासी मालव—ये बारह जनपदोंके क्षत्रिय शूरवीर और प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करनेवाले थे। ये सब विशाल रथसमुदायके द्वारा पितामह भीष्मकी रक्षा करते थे॥ १२—१४॥

अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम्।
मागधो येन नृपतिस्तद्रथानीकमन्वयात्॥ १५॥

इनके पीछे वेगशाली हाथियोंकी दस हजार सेना लेकर मगधनरेश उस रथसेनाके साथ चल रहे थे॥ १५॥

रथानां चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम्।
अभवन् वाहिनीमध्ये शतानामयुतानि षट्॥ १६॥

उस सेनामें रथोंके पहियों और हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेवाले साठ लाख सैनिक थे॥ १६॥

पादाताश्चाग्रतोऽगच्छन् धनुश्चर्मासिपाणयः।
अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः॥ १७॥

कई लाख पैदल सैनिक, जो हाथोंमें धनुष, ढाल और तलवार लिये हुए थे, सेनाके आगे-आगे चल रहे थे। वे नखर और प्रासोंसे भी युद्ध करनेमें कुशल थे॥ १७॥

अक्षौहिण्यो दशैका च नव पुत्रस्य भारत।
महद्दृश्यत महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा ॥ १८ ॥

भरत ! महाभाग ! आपके पुत्रकी वे ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ यमुनासे मिली हुई गङ्गाके समान दिखायी देती थीं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमोऽध्याय

व्यूहनिर्माणके विषयमें युधिष्ठिर और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा वज्रव्यूहकी रचना, भीमसेनकी अध्यक्षतामें सेनाका आगे बढ़ना

धृतराष्ट्र उवाच

अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढा दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः ॥ १ ॥
यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्।
कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरी ग्यारह अक्षौहिणियोंको व्यूहाकारमें खड़ी हुई देख पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने उनका सामना करनेके लिये अपनी थोड़ी-सी सेनाद्वारा किस प्रकार व्यूह-रचना की ? जो मनुष्य, देवता, गन्धर्व और असुर सभीकी व्यूह-निर्माण विधिको जानते हैं, उन भीष्मजीके सामने कुन्तीकुमारने किस तरह अपनी सेनाका व्यूह बनाया ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः।
अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनंजयम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! आपकी सेनाओंको व्यूहाकारमें खड़ी हुई देख धर्मात्मा पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा— ॥ ३ ॥

महर्षेर्वचनात् तात वेदयन्ति बृहस्पतेः।
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून् ॥ ४ ॥

तात ! महर्षि बृहस्पतिके वचनसे यह ज्ञात होता है कि यदि थोड़ेसे योद्धा हों तो उन्हें संगठित करके युद्ध करना चाहिये और यदि सैनिक अधिक हों तो उन्हें इच्छानुसार फैलाकर खड़ा करे ॥ ४ ॥

सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह।
अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ ५ ॥

थोड़ेसे सैनिकोंको बहुतोंके साथ युद्ध करनेके लिये सूचीमुख नामक व्यूह बनाना हो सकता है और हमारी सेना शत्रुओंसे बहुत कम है ही ॥ ५ ॥

एतद् वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव।
तच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः ॥ ६ ॥

पाण्डुनन्दन ! महर्षिके इस कथनपर विचार करके तुम भी अपनी सेनाका व्यूह बनाओ। धर्मराजकी यह बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ६ ॥

एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम्।
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ ७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! मैं आपके लिये अविचल एवं दुर्जय वज्रव्यूहकी रचना करता हूँ, जिसका आविष्कार वज्रधारी इन्द्रने किया है ॥ ७ ॥

यः स वात इवोद्धूतः समरे दुःसहः परैः।
स नः पुरो योत्स्यति वै भीमः प्रहरतां वरः ॥ ८ ॥

जो समरभूमिमें प्रचण्ड वायुकी भाँति उठकर शत्रुओंके लिये दुःसह हो उठते हैं, वे योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन हमारे आगे रहकर युद्ध करेंगे ॥ ८ ॥

तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन् पुरुषसत्तमः।
अग्रेऽग्रणीर्यास्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥ ९ ॥

पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन युद्धके विविध उपायोंके ज्ञानमें निपुण हैं। वे हमारी सेनाके अगुआ होकर शत्रुसेनाके तेजको नष्ट करते हुए युद्ध करेंगे ॥ ९ ॥

यं दृष्ट्वा पार्थिवाः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः।
निवर्तिष्यन्ति सम्भ्रान्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा ॥ १० ॥

जैसे सिंहको देखते ही क्षुद्र मृग भयभीत होकर भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे दुर्योधन आदि समस्त भूपाल भयभीत होकर पीछे लौट जायँगे ॥ १० ॥

तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयम्।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं देवराजमिवामराः ॥ ११ ॥

जैसे देवता देवराजका आश्रय लेकर निर्भय हो जाते हैं, उसी प्रकार हमलोग योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेनका आश्रय लेंगे। वे हमारे लिये परकोटेका काम करेंगे। फिर हमें कहींसे कोई भय नहीं रह जायगा ॥ ११ ॥

न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम्।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥ १२ ॥

भगार हैं पुत्र नहीं भवकर
नब प्रा करनवाले
और देवलोक हल कर कर
भीम नामक विख्यात् बलसार थी द्वन्द्वम्
चरत् नगल महता मति प्रयोग्
कय पूछ प्र नकि विव
हुई
हाथोंसे
समुद्रका करे केवल
कमी
यत तिष्ठन्ति सामोत्पा प्रेक्षन्तास्ते जन मित्र
धृतराष्ट्र त्रा हरि बाभसुत्र
भीमसे वहापस्य महाबल
हित
बार नव
तुन मतन
तथा समरसञ्चानि भारत
अयवहा कू भि पर्व
भारत देने उस तमे
नवो भनुजु नमन उस
।दर मित्र
वायुभ महाबाहुस्तथा बलं नजय
मृत्युद्वामि बलान्याशु प्रययौ पाण्डु तस्य
हाव भनु कहकर
उस्य
क्ष्यस्थान् कुरून् बहून् पाण्डवा नह
गजून पुत्र तानि सम्न्याम बद्ध
भाने दम
मना हुई द्वारा
त्रि भरे कुल मेश मोवर हा
भी सेनाप्रणीको धृष्टद्युम्नश्च वीयवान
कुल सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च चित्र
पाण्डवोंका मेरे रके मार्ग चलते इनके
मत्कमी धृष्टद्युम्न नकुल महादेव तथा धैर्यवान्
धृष्टद्यु
विराटश्च ततः सम्राट् राजान्यक्षौहिणीपतिः
आहनि मध्ये पुत्रस्य सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः
ततस्य राजा विराट अपने इनों और सेनाके साथ
एक अक्षौहिणी लेकर भीमसेनके पृष्ठ भागकी
कर रहे

मतकरस्तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती
रक्षा करी द्रौपदेय की प्रा पुत्र ते तरस्विनः
भय कुरु-
सहदेव अभिमन्यु
चहना
धृष्टद्युम्नसुत पहलेन गामा
सहि पुत्र द्यु महामुख्य प्रभद्र
पाद मनु महा दुष्य अनल सेना पुने
रक्षा रहा
शिखण्डी पक्षा दुर्मेनाधिरथिता
पत्ना थी भरतवंश
अत नहु
लिये अभत नागो कह
पृष्ठ इष्य तात् युयुधानो राज
रक्ष पाञ्च युधामन्युत्तमौजा
अत महाबली कालके बाल वीर
युधाम और उत्तमौजा अज मरे इसी चलते
मध्ये तु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर
शंकड़ि कुञ्जरमत्तवल्लद्विरः
बाद लिके सम दिया और माताके
यशोनी नाक कुन्तीपु युधिष्ठिर सैनाकी
पवित
अक्षौहिणी पर आत्मा कमेका महाबल्ला
विराटेश्च पचाल् उपक्ष्मा स्वामी
कुरूर लिये
विराटके
दि तत्रा बलकालप्रपुत्र
जा भधरा लात् रोध्वास ध्वजा
कड़ वैर मालिक केल दूसरे विभूषित
सवामी नव और नानुमाक प्रमाद प्रकाशित
सु एवं तदा पवनात् धृष्टद्युम्ना महारथ
अग्रहरि सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत् युधिष्ठिरम्
तदनन्तर महारथी धृष्टद्युम्न तीनों हजार रथ
इनों और पुत्रोंके सिंह त्रा विष्ठिरकी रक्षा
करन लगे
रथोंवाला पार्थो रथेषु विपुलान् ध्वजान्
अभिभूयमहावलवको रथे तस्यौ महास्वारे

राजन्! आपके तथा शत्रुओंके व्यूहोंमें जो अनुपम विशाल सेनाएँ खड़ी थीं, उन सबको तिरस्कृत करके केवल अर्जुनके रथपर एकमात्र महान् कपि उपस्थित दिखायी देता था ॥ २९ ॥

पादातबहुलस्याग्रतो गजाश्वरथवाहिपावकः ।
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥ ३० ॥

भीमसेनकी रक्षाके लिये उनके आगे कई लाख हाथीसवार, रथी तथा पैदल सैनिक चल रहे थे ॥ ३० ॥

वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः ।
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाचलाः ॥ ३१ ॥
क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः ।
राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥ ३२ ॥

राजा युधिष्ठिरके पीछे वर्षाकालके मेघोंके समान दस हजार गजराज चल रहे थे। उनके गण्डस्थलसे मदकी धारा बह रही थी। वे सोनेकी जालीदार झूलोंसे प्रकाशित होकर पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनके कमलके समान सुगन्ध निकलती थी और वे सभी बहुमूल्य थे ॥ ३१-३२ ॥

भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन् परिघोपमाम् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३३ ॥

दुर्जय वीर महामनस्वी भीमसेन हाथमें परिघके समान भयंकर गदा लिये उस विशाल सेनाको साथ लिये जा रहे थे ॥ ३३ ॥

तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् ।
न शेकुः सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३४ ॥

उस समय सूर्यकी भाँति उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था। वे अपनी सेनाको तपाते-से जा रहे थे। निकट आनेपर समस्त योद्धा उनकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ न हो सके ॥ ३४ ॥

वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ।
चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥ ३५ ॥

यह वज्रनामक व्यूह सब ओरसे भयरहित तथा सब ओर मुखवाला था। उसकी ध्वजाके निकट सुवर्णभूषित धनुष बिजलीके समान प्रकाशित होता था। यह गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा सुरक्षित था ॥ ३५ ॥

यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥ ३६ ॥

पाण्डवलोग जिस व्यूहकी रचना करके आपकी सेनाका सामना करनेके लिये खड़े थे, वह उनके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण मनुष्यलोकमें अजेय था ॥ ३६ ॥

संध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रावात् सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३७ ॥

सूर्योदयके समय जब दोनों सेनाएँ संध्योपासना कर रही थीं, उस समय बिना बादलके ही पानीकी बूँदोंके साथ हवा चलने लगी और उसके साथ मेघकी-सी गर्जना भी होती थी ॥ ३७ ॥

विष्वग्वातास्तथा वान्ति नीचैः शर्करकर्षिणः ।
रजश्चोद्धूयमानं तु तमसाच्छादयज्जगत् ॥ ३८ ॥

सब ओर नीचे-नीचे बालू और कंकड़ बरसाती हुई तीव्र वायु बह रही थी। उस समय इतनी धूल उड़ी कि सम्पूर्ण जगत् अन्धकारसे आच्छादित हो गया ॥ ३८ ॥

पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ ।
उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३९ ॥

भरतश्रेष्ठ! पूर्व दिशाकी ओर मुख करके एक भारी उल्का गिरी और उदय होते हुए सूर्यसे टकराकर बड़े जोरके शब्दके साथ बिखर गयी ॥ ३९ ॥

अथ सज्जीयमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ।
निष्प्रभोऽभ्युदितः सूर्यः सघोषं भूश्चचाल ह ॥ ४० ॥

भरतश्रेष्ठ! जब सेनाएँ युद्धके लिये सुसज्जित हो रही थीं, उस समय सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और भारी आवाजके साथ धरती काँपने लगी ॥ ४० ॥

व्यशीर्यत सनादा च तदा भरतसत्तम ।
निर्घाता बहवो राजन् दिक्षु सर्वासु चाभवन् ॥ ४१ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय पृथ्वी मानो फटी जा रही है, ऐसा प्रतीत होता था। राजन्! सम्पूर्ण दिशाओंमें अनेक बार वज्रपातके समान भयानक शब्द प्रकट हुए ॥ ४१ ॥

प्रादुरासीद् रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किंचन ।
ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥ ४२ ॥
किङ्किणीजालबद्धानां काञ्चनस्रग्वराम्बरैः ।
महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥ ४३ ॥
सर्वं झणझणीभूतमासीत् तालवनेष्विव ।

तीव्र वेगसे धूलकी वर्षा होने लगी। कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। सहसा वायुके वेगसे ध्वज हिलने लगे। पताका सहित वे ध्वज सूर्यके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उनमें सोनेके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे सजाया गया था। उनमें छोटी-छोटी घंटियोंके जाल लगे हुए थे, जिनसे मधुर शब्द हो रहे थे। इस प्रकार उन महान् ध्वजोंके शब्दसे ताड़के जंगलोंकी भाँति उस रणभूमिमें सब ओर झन-झनकी आवाज हो रही थी ॥ ४२-४४ ॥

एष ते पुत्रसैन्यानां पाण्डवा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ ३४ ॥
व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
जगत्सद इव मत्ता ते योधाना प्रवरर्षभ ॥ ३५ ॥
बहूत्सवो भीमसेनं ... व्यवस्थितम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार युद्धसे आनन्दित होनेवाले पुरुषसिंह पाण्डव आपके पुत्रकी वाहिनीके सामने व्यूह बनाकर खड़े थे और हमारे योद्धाओंकी दल और सेना भी कुचलते देते थे। बलवान् भीमसेनको आगे खड़ा देख हमारी सारी सेना भयभीत हो रही थी ॥ ३४—३६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि पाण्डवसैन्यव्यूहे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें पाण्डवसेनाके व्यूहनिर्माणविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्याय

दोनों सेनाओंकी स्थिति तथा कौरवसेनाका अभियान

धृतराष्ट्र उवाच

सूर्योदये संजय के नु पूर्वं
युयुत्सवो हृष्यमाणा इवासन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे
पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सूर्योदयके समय किस पक्षके योद्धा युद्धकी इच्छासे अधिक हर्षका अनुभव करते हुए-से जान पड़ते थे? भीष्मके नेतृत्वमें स्थित मेरे पुत्र मेरे सैनिक अथवा भीमसेनकी कमानमें आनेवाले पाण्डव सैनिक, इनमेंसे कौन अधिक प्रसन्न थे? ॥ १ ॥

केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू
केषां सेनां श्वापदा व्याभषन्त ।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः
सर्वं ह्येतद् ब्रूहि तत्त्वं यथावत् ॥ २ ॥

चन्द्रमा, सूर्य और वायु किनके प्रतिकूल थे? किनकी सेनाओंको देखकर हिंसक जन्तु भयंकर शब्द करते थे? किस पक्षके नवयुवकोंके मुखकी कान्ति प्रसन्न थी? ये सब बातें तुम मुझे ठीक-ठीक बताओ ॥ २ ॥

संजय उवाच

उभे सेने तुल्यमिवोपयाते
उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र ।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे
तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥ ३ ॥

संजयने कहा—नरेन्द्र! दोनों ही सेनाएँ समानरूपसे आगे बढ़ रही थीं। दोनोंके व्यूहमें खड़े हुए सैनिक हर्षसे उल्लसित थे। दोनों ही सेनाएँ वनश्रेणियोंके समान विचित्र प्रतीत होती थीं और दोनों ही हाथी, रथ और घोड़ोंसे भरी हुई थीं ॥ ३ ॥

उभे सेने बृहती भीमरूपे
तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये ।

तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे
तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे ॥ ४ ॥

भारत! दोनों सेनाएँ विशाल, भयंकर और दुःसह थीं। दोनों ही स्वर्गपर विजय पानेके लिये रची गयी थीं तथा दोनोंमें ही सत्पुरुषोंका समुदाय था ॥ ४ ॥

पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः ।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां
देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५ ॥

आपके पुत्र कौरवोंका मुख पश्चिम दिशाकी ओर था और कुन्तीके पुत्र पाण्डव युद्ध करनेके लिये पूर्वाभिमुख खड़े थे। कौरवसेना दैत्यराजकी सेनाके समान जान पड़ती थी और पाण्डववाहिनी देवराज इन्द्रकी सेनाके समान शोभित हो रही थी ॥ ५ ॥

चचार वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां
धार्तराष्ट्राञ्श्वापदा व्याहरन्त ।
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रान्
न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥ ६ ॥

पाण्डवसेनाके पीछेकी ओरसे हवा चल रही थी और आपके पुत्रोंको देखकर हिंसक जन्तु बोल रहे थे। आपके पुत्रकी सेनामें जो हाथी थे, वे पाण्डवपक्षके गजराजोंके मदकी तीव्र गन्ध नहीं सहन कर पाते थे ॥ ६ ॥

दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं
सुवर्णकक्ष्यं जातबलं प्रभिन्नम् ।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां
संस्तूयमानो बन्दिमागधैश्च ॥ ७ ॥

दुर्योधन कमलके समान कान्तिवाले मदस्रावी बलवान् गजराजपर बैठा था, जिसकी कमरमें सोनेकी रस्सी कसी हुई थी। वह कौरवसेनाके मध्यभागमें खड़ा था और बन्दी तथा मागधजन उसकी स्तुति कर रहे थे ॥ ७ ॥

चन्द्रप्रभं श्वेतमथातपत्रं
सौवर्णकक्ष्यं प्रावहति नागमाह्वे ।
स सर्वतः शकुनिः पर्वतीयैः
सार्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः ॥ ८ ॥

उसके मस्तकपर चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्वेत छत्र लगा हुआ था और उसके सामने सोनेकी माला सुशोभित हो रही थी । गान्धारराज शकुनि गान्धारदेशके पर्वतीय योद्धाओंके साथ आकर दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर चल रहा था ॥ ८ ॥

भीष्मस्तदा सर्वसैन्यस्य वृद्धः
श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सशङ्खः ।
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन
श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशः ॥ ९ ॥

हमारी सम्पूर्ण सेनाके अग्रभागमें बूढ़े पितामह भीष्म थे । उनके सिरपर श्वेत पगड़ी, श्वेत छत्र और श्वेत पताका थी । उनके धनुष और शङ्ख भी श्वेत ही थे । वे श्वेत शैलके समान प्रकाशित होनेवाले श्वेत घोड़ों और श्वेत ध्वजसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ९ ॥

तस्य सैन्ये धार्तराष्ट्राश्च सर्वे
बाह्लीकानामेकदेशश्च शलः ।
ये चाम्बष्ठाः क्षत्रिया ये च सिन्धौ
तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः ॥ १० ॥

उनकी सेनामें आपके सभी पुत्र, बाह्लीकोंमेंसे एक दल शल और अम्बष्ठ, क्षत्रिय, सिन्धु तथा पञ्चनद देशके शूरवीर क्षत्रिय विद्यमान थे ॥ १० ॥

शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा
द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्त्वः ।
आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां
पश्चाच्चमूमिन्द्र इवाभियाति ॥ ११ ॥

उनके पीछे प्रायः समस्त राजाओंके गुरु उदार हृदयवाले महात्मा द्रोणाचार्य हाथमें धनुष लिये लाल घोड़ोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथमें बैठकर भूमिपालोंकी सेना सुरक्षित किये जा रहे थे ।

वार्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये
भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च ।
शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चापि सर्वे
गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः ॥ १२ ॥

वृद्धक्षत्रपुत्र जयद्रथ, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, शाल्व और मत्स्यदेशीय क्षत्रिय तथा सब भाई केकयराजकुमार युद्धकी इच्छासे हाथियोंके समूहोंके साथ ले समस्त सेनाके मध्यभागमें स्थित थे ॥ १२ ॥

शारद्वतश्चोत्तरधूरुदारो
महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी ।
शकैः किरातैर्यवनैः पह्लवैश्च
सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति ॥ १३ ॥

महान् धनुर्धर और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले गौतम वंशीय महात्मा कृपाचार्य सेनाके अग्रभाग धारण करके शक, किरात, यवन तथा पह्लव देशोंके साथ कौरवसेनाके उत्तर भागमें होकर चल रहे थे ॥ १३ ॥

महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं
सुराष्ट्रकैरध्युषितैरात्तशस्त्रैः ।
बृहद्बलं कृतवर्माभिगुप्तं
बलं त्वदीयं दक्षिणेनाभियाति ॥ १४ ॥

हाथमें हथियार लिये सुरक्षित सुराष्ट्रदेशके वीरों तथा वृष्णि और भोजवंशके महारथियोंद्वारा पालित विशाल सेना कृतवर्माद्वारा सुरक्षित होकर आपकी सेनाके दक्षिण भागमें होकर युद्धके लिये यात्रा कर रही थी ॥ १४ ॥

संशप्तकानामयुतं रथानां
मृत्युर्जयो वार्जुनस्येति सृष्टाः ।
येनार्जुनस्तेन राजन् कृतास्त्राः
प्रयाता वै ते त्रिगर्ताश्च शूराः ॥ १५ ॥

या तो हम अर्जुनपर विजय प्राप्त करेंगे अथवा हमारी मृत्यु हो जायगी, ऐसी प्रतिज्ञा करके दस हजार संशप्तक रथी तथा अस्त्रविद्याके ज्ञाता त्रिगर्तदेशीय शूरवीर जिस ओर अर्जुन थे, उसी ओर चल पड़े थे ॥ १५ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तव भारत ।
नागे नागे रथशतं शतं चाश्वा रथे रथे ॥ १६ ॥

भारत ! आपकी सेनामें एक लाखसे अधिक हाथी थे । एक-एक हाथीके साथ सौ-सौ रथ थे और एक-एक रथके साथ सौ-सौ घोड़े थे ॥ १६ ॥

अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः ।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत ॥ १७ ॥

प्रत्येक अश्वके पीछे दस-दस धनुर्धर और प्रत्येक धनुर्धरके साथ सौ-सौ पैदल सैनिक नियुक्त किये गये थे जो ढाल-तलवार लिये रहते थे । भरतनन्दन ! इस प्रकार भीष्मजीने आपकी सेनाओंका व्यूह रचा था ॥ १७ ॥

अव्यूहन्मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणीः ॥ १८ ॥
महारथौघविपुलः समुद्र इव पर्वणि ।
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ॥ १९ ॥

शान्तनुनन्दन सेनापति भीष्म प्रत्येक दिन मानुष, दैव, गान्धर्व और आसुर प्रणालीके अनुसार व्यूह-रचना करके सेनाके अग्रभागमें स्थित होते थे । भीष्मद्वारा रचित कौरव

सेनाका यह व्यूह महारथियोंके समुदायसे सम्पन्न हो समुद्रके समान गर्जना करता था। दुर्धर्ष उसका पूरा विस्तार था॥

अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र
भीमा त्वदीया न तु पाण्डवानाम्।
तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां
यस्या नेतारौ केशवश्चार्जुनश्च॥ २०॥

नरेन्द्र! आपकी सेना अनन्त रूपवाली एवं भयंकर थी, पाण्डवोंकी सेना वैसी नहीं थी; परंतु मैं तो उसी सेनाको विशाल और दुर्जय मानता हूँ, जिसके नेता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं॥२०॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें सैन्यवर्णनविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

एकविंशोऽध्याय

कौरवसेनाको देखकर युधिष्ठिरका विषाद करना और श्रीकृष्णकी कृपासे ही विजय होती है, यह कहकर अर्जुनका उन्हें आश्वासन देना

सञ्जय उवाच

बृहतीं धार्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम्।
विषादमगमद् राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धके लिये उद्यत हुई दुर्योधनकी विशाल सेनाको देखकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें विषाद छा गया॥१॥

व्यूहं भीष्मेण चाभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः।
अभेद्यमिव सम्प्रेक्ष्य विषण्णोऽर्जुनमब्रवीत्॥ २॥

भीष्मने जिस व्यूहकी रचना की थी, उसका भेदन करना असम्भव था। उसे अभेद्य-सा देखकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी आकृति फीकी पड़ गयी और वे अर्जुनसे बोले॥२॥

धनंजय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे।
धार्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः॥ ३॥

महाबाहु धनंजय! जिनकी ओरसे पितामह भीष्म युद्ध करनेवाले हैं, उन धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ हम रणक्षेत्रमें कैसे युद्ध कर सकते हैं?॥३॥

अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणामित्रकर्षिणा।
कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा॥ ४॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले महातेजस्वी भीष्मने शास्त्रीय विधिके अनुसार यह अक्षोभ्य एवं अभेद्य व्यूह बनाया है॥४॥

ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण।
कथमस्मान्महाव्यूहादुद्यानं नो भविष्यति॥ ५॥

शत्रुसूदन अर्जुन! हमलोग सेनासहित इस समय संशयमें पड़ गये हैं। इस महान् व्यूहसे हमारा उद्धार कैसे होगा?॥५॥

अथार्जुनोऽब्रवीत् पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम्॥ ६॥

राजन्! तब शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुनने आपकी सेनाको देखकर विषादमें पड़े हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—॥६॥

प्रज्ञयाभ्यधिकाञ्छूरान् गुणयुक्तान् बहूनपि।
जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशाम्पते॥ ७॥

प्रजानाथ! अल्पसंख्यक बुद्धिमान् उत्तम गुणोंसे युक्त तथा बहुसंख्यक शूरवीरोंको भी जिस प्रकार जीत लेते हैं, उसे बताता हूँ, सुनिये॥७॥

तत्र ते कारणं राजन् प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव॥ ८॥

राजन्! आप दोषदृष्टिसे रहित हैं, अतः आपको वह युक्ति बताता हूँ। पाण्डुनन्दन! उसे देवर्षि नारद, भीष्म तथा द्रोणाचार्य जानते हैं॥८॥

एतमेवार्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत्।
पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन् दिवौकसः॥ ९॥

कहते हैं, पूर्वकालमें जब देवासुरसंग्राम हो रहा था, उस समय इसी विषयको लेकर पितामह ब्रह्माजीने इन्द्र आदि देवताओंसे इस प्रकार कहा था॥९॥

न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च॥ १०॥

विजयकी इच्छावाले वीर अपने बल और पराक्रमसे वैसी विजय नहीं पाते, जैसी कि सत्य, सज्जनता, धर्म तथा उत्साहसे प्राप्त कर लेते हैं॥१०॥

त्यक्त्वाधर्मं च लोभं च मोहं चोद्यममास्थिताः।
युध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः॥ ११॥

देवताओ! अधर्म, लोभ और मोह त्यागकर उद्यमका आश्रय ले अहंकारशून्य होकर युद्ध करो; क्योंकि जहाँ धर्म है, उधर ही विजय होती है॥११॥

यत्र राजन् विजानीहि ध्रुवोऽत्रापि रथे जयः ।
तथा तु नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२ ॥

राजन्! इसी निश्चयके अनुसार आप भी यह निश्चय जान लें कि युद्धमें हमारी विजय अवश्यम्भावी है। जैसा कि नारदजीने कहा है, जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥

गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽन्वेति माधवम् ।
तद् यथा विजयश्चास्य सन्नतिश्चापरो गुणः ॥ १३ ॥

विजय तो श्रीकृष्णका एक गुण है; अतः वह उनके पीछे-पीछे चलता है। जैसे विजय उनका गुण है, उसी प्रकार विनय भी उनका द्वितीय गुण है ॥



अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः ।
पुरुषः सनातनतमो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४ ॥

भगवान् गोविन्दका तेज अनन्त है। वे शत्रुसमुदायमें भी कभी व्यथित नहीं होते; क्योंकि वे सनातन पुरुष परमात्मा हैं। अतः जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥

पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः ।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत् के जयन्त्विति ॥ १५ ॥

ये श्रीकृष्ण कहीं भी प्रतिहत न होनेवाले बाणोंसे युक्त हैं। इनका कोई अन्त नहीं है। पूर्वकालमें इन्होंने श्रीहरिरूपसे प्रकट हो गर्जना करते हुए देवताओं और असुरोंसे पूछा था—'किनकी जय हो?'

अनु कृष्णं जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम् ।
त्वत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥

उस समय जिन लोगोंने उत्तर दिया कि 'कृष्ण! हम आपको साथ लेकर विजयी हों', उन्हींकी जीत हुई। इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपासे ही इन्द्र आदि देवताओंने त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया है ॥

तस्य ते न व्यथां कांचिदिह पश्यामि भारत ।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः ॥ १७ ॥

अतः भारत! मैं आपके लिये किसी प्रकारकी व्यथा या चिन्ता होनेका कारण नहीं देखता; क्योंकि देवेश्वर तथा विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्ण आपके लिये विजयकी आशा करते हैं ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें युधिष्ठिर-अर्जुन-संवादविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरकी रणयात्रा, अर्जुन और भीमसेनकी प्रशंसा तथा श्रीकृष्णका अर्जुनसे कौरवसेनाको मारनेके लिये कहना

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत् ।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ महाराज! तब युधिष्ठिरने भीष्मजीकी सेनाका सामना करनेके लिये अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करके उसे युद्धके लिये प्रेरित किया ॥

यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ।
स्वर्गं परमभीप्सन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर पाण्डवोंने उत्तम युद्धके द्वारा उत्तम स्वर्गलोककी इच्छा रखकर शास्त्रोक्त रीतिसे युद्धके अनुसार अपनी सेनाका व्यूह निर्माण किया ॥

मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना ।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥

व्यूहके मध्यभागमें सव्यसाची अर्जुनद्वारा सुरक्षित शिखण्डीकी सेना थी और अग्रभागमें भीमसेनद्वारा रक्षित धृष्टद्युम्न विचरण कर रहे थे ॥

अनीकं दक्षिणं राजन् युयुधानेन पालितम् ।
श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४ ॥

राजन्! उस व्यूहके दक्षिण भागकी रक्षा इन्द्रके समान धनुर्धर सात्वतशिरोमणि श्रीमान् सात्यकि कर रहे थे ॥

महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु
सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् ।

युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं
समास्थितो नागकुलस्य मध्ये ॥

राजा युधिष्ठिर हाथियोंकी सेनाके बीचमें खड़े एक सुन्दर गजपर आरूढ़ हुए थे जो देखनेमें पर्वतके समान जान पड़ता था। उसपर सब आवश्यक सामग्री रक्खी गयी थी। भाँति-भाँतिके सुवर्ण तथा रत्नोंसे विभूषित होनेके कारण उस हाथीकी विचित्र शोभा हो रही थी। उसमें सुवर्णमय [illegible] तथा रस्सियाँ लगी हुई थीं ॥ ५ ॥

अभ्युच्छ्रितं कुन्दशलाकशुभ्रं
सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्ति
महर्षयः संस्तुतिभिर्नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

उस समय किसी सेवकने युधिष्ठिरके ऊपर हाथीके दाँतकी बनी हुई शलाकाओंसे युक्त श्वेत छत्र लगा रक्खा था, जिसकी बड़ी शोभा हो रही थी। कुछ महर्षिगणोंने नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा महाराज युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए उनकी प्रदक्षिणा की ॥ ६ ॥

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो
ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम्।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिः
समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥ ७ ॥

शास्त्रोंके विद्वान् पुरोहित, ब्रह्मर्षि और सिद्धगण जप, मन्त्र तथा उत्तम ओषधियोंद्वारा उन्हें सब ओरसे शुभ मङ्गलमय आशीर्वाद देते हुए शत्रुओंके संहारका शुभ आशीर्वाद देने लगे ॥ ७ ॥

ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च
फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान्।
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा
कुर्वन् ययौ शक्र इवामरेभ्यः ॥ ८ ॥

उस समय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी कुरुश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिर ब्राह्मणोंको वस्त्र, गौ, फल, फूल और स्वर्णमय आभूषण [illegible] दान करते हुए आगे बढ़े ॥ ८ ॥

सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः
परार्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः।
रथोऽर्जुनस्याग्निरिवार्चिमाली
विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः ॥ ९ ॥

अर्जुनका रथ ज्वालामालाओंसे युक्त अग्निके समान शोभा पा रहा था। उसमें सूर्यकी आकृतिके सहस्रों चक्र चित्रित थे। सैकड़ों क्षुद्र घण्टिकाएँ लगी थीं। बहुमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्णसे भूषित होनेके कारण उस रथकी विचित्र शोभा हो रही थी। उसमें श्वेत घोड़े जुते थे और सुन्दर पहिये लगे थे ॥ ९ ॥

तमास्थितः केशवसंगृहीतं
कपिध्वजं गाण्डिवबाणपाणिः।
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां
न विद्यते नो भविता कदाचित् ॥ १० ॥

उसकी बागडोर श्रीकृष्णके हाथमें थी। उसकी ध्वजापर कपिराज हनुमान् विराजमान थे। गाण्डीव धनुष और बाण हाथमें लिये हुए अर्जुन उस रथपर आरूढ़ थे। भगवान् श्रीकृष्णने उनकी बागडोर सँभाल रक्खी थी। अर्जुनके समान धनुर्धर इस भूतलपर न तो कोई है और न होगा ॥ १० ॥

उद्वर्तयिष्यंस्तव पुत्रसेना-
मतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम्।
अनायुधो यः सुभुजो भुजाभ्यां
नराश्वनागान् युधि भस्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

महाराज! जो सुन्दर भुजाओंवाले भीमसेन बिना आयुधके केवल भुजाओंसे ही युद्धमें मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको भस्म कर सकते हैं, उन्होंने ही आपके पुत्रोंकी सेनाका संहार करनेके लिये अत्यन्त रौद्ररूप धारण कर रक्खा है ॥ ११ ॥

स भीमसेनः सहितो यमाभ्यां
वृकोदरो वीररथस्य गोप्ता।
तं प्रेक्ष्य मत्तर्षभसिंहखेलं
लोके महेन्द्रप्रतिमानकल्पम् ॥ १२ ॥

समीक्ष्य सेनाग्रगतं दुरासदं
प्रविव्यथुः पङ्कगता इव द्विपाः।
वृकोदरं वारणराजदर्पं
योधास्त्वदीया भयविग्नसत्त्वाः ॥ १३ ॥

[illegible] ॥ १२-१३ ॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं राजपुत्रं दुरासदम्।
अब्रवीद् भरतश्रेष्ठं गुडाकेशं जनार्दनः ॥ १४ ॥

उस समय सेनाके मध्यभागमें खड़े हुए दुर्जय वीर निद्राविजयी भरतश्रेष्ठ राजकुमार अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा ॥ १४ ॥

वासुदेव उवाच

य एष रोषात् प्रतपन् बलस्थो
यो नः सेनां सिंह इवेक्षते च।
स एष भीष्मः कुरुवंशकेतु-
र्येनाहृतास्त्रिंशतो वाजिमेधाः ॥ १५ ॥

भगवान् वासुदेव बोले—धनंजय ! देखो, अपनी सेनाके मध्यभागमें स्थित हो रोषपूर्वक देखते हैं और सिंहके समान हमारी सेनाकी ओर देखते हैं, वे ही कुरुकुलकेतु भीष्म हैं, जिन्होंने अबतक तीन सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ॥

एतान्यनीकानि महानुभाव
गूहन्ति मेघा इव रश्मिमन्तम् ।
एतानि हत्वा पुरुषप्रवीर
काङ्क्षस्व युद्धं भरतर्षभेण ॥ १६ ॥

जैसे बादल अंशुमाली सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार ये सारी सेनाएँ इन महानुभाव भीष्मजीको आच्छादित किये हुए हैं । नरवीर अर्जुन ! तुम पहले इन सेनाओंको मारकर भरतकुलभूषण भीष्मजीके साथ युद्धकी अभिलाषा करो ॥ १६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीकृष्णार्जुनसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्याय

अर्जुनके द्वारा दुर्गादेवीकी स्तुति, वरप्राप्ति और अर्जुनकृत दुर्गास्तवनके पाठकी महिमा

सञ्जय उवाच

धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—दुर्योधनकी सेनाको युद्धके लिये उपस्थित देख श्रीकृष्णने अर्जुनके हितके लिये इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो ! तुम युद्धके सम्मुख खड़े हो । पवित्र होकर शत्रुओंको पराजित करनेके लिये दुर्गादेवीकी स्तुति करो ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

एवमुक्तोऽर्जुनः संख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात् पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

सञ्जय कहते हैं—परम बुद्धिमान् भगवान् वासुदेवके द्वारा रणभूमिमें इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर कुन्तीकुमार अर्जुन रथसे नीचे उतरकर दुर्गादेवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच

नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि ।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥

अर्जुन बोले—मन्दराचलपर निवास करनेवाली सिद्धोंकी सेनानेत्री आर्ये ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है । तुम्हीं कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिङ्गला, भद्रकाली और महाकाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हो; तुम्हें बारम्बार प्रणाम है । दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेके कारण तुम चण्डी कहलाती हो, भक्तोंको संकटसे तारनेके कारण तारिणी हो, तुम्हारे शरीरका दिव्य वर्ण बहुत ही सुन्दर है । मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ ४-५ ॥

कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६ ॥

महाभागे ! तुम्हीं सौम्य और सुन्दर रूपवाली पूजनीया कात्यायनी हो और तुम्हीं विकराल रूपधारिणी काली हो । तुम्हीं विजया और जया नामसे विख्यात हो । मोरपंखकी तुम्हारी ध्वजा है । नाना प्रकारके आभूषण तुम्हारे अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि ।
गोपेन्द्रस्यानुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥

तुम भयंकर त्रिशूल, खड्ग और खेटक आदि आयुधोंको धारण करती हो । नन्दगोपके वंशमें तुमने अवतार लिया था, इसलिये गोपेश्वर श्रीकृष्णकी तुम छोटी बहिन हो; परंतु गुण और प्रभावमें श्रेष्ठ हो ॥ ७ ॥

महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥

महिषासुरका रक्त बहाकर तुम्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी । तुम कुशिकगोत्रमें अवतार लेनेके कारण कौशिकी नामसे भी प्रसिद्ध हो । तुम पीताम्बर धारण करती हो । जब तुम शत्रुओंको देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख चक्रवाकके समान उद्दीप्त हो उठता है । युद्ध तुम्हें बहुत ही प्रिय है । मैं तुम्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और सुधूम्राक्षी आदि नाम धारण करनेवाली देवि ! तुम्हें अनेक बार नमस्कार है ॥ ९ ॥

वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं संनिहितालये ॥ १० ॥

तुम वेदोंकी श्रुति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है। वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं। तुम्हीं जातवेदा अग्निकी शक्ति हो। जम्बू, कटक और चैत्यवृक्षोंमें तुम्हारा नित्य निवास है॥१०॥

त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम्।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि॥११॥

तुम समस्त विद्याओंमें ब्रह्मविद्या और देहधारियोंकी महानिद्रा हो। भगवति! तुम कार्तिकेयकी माता हो। दुर्गम स्थानोंमें वास करनेवाली दुर्गा हो॥११॥

स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती।
सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते॥१२॥

सावित्रि! स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेदमाता तथा वेदान्त—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं॥१२॥

स्तुतासि त्वं महादेवि विशुद्धेनान्तरात्मना।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद् रणाजिरे॥१३॥

महादेवि! मैंने विशुद्ध हृदयसे तुम्हारा स्तवन किया है। तुम्हारी कृपासे इस रणाङ्गणमें मेरी सदा ही जय हो॥१३॥

कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान्॥१४॥

माँ! तुम घोर जंगलमें, भयपूर्ण दुर्गम स्थानोंमें, भक्तोंके घरोंमें तथा पातालमें भी नित्य निवास करती हो। युद्धमें दानवोंको हराती हो॥१४॥

त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च।
संध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा॥१५॥

तुम्हीं जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री, श्री, संध्या, प्रभावती, सावित्री और जननी हो॥१५॥

तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी।
भूतिर्भूतिमतां संख्ये वीक्ष्यसे सिद्धचारणैः॥१६॥

तुष्टि, पुष्टि, धृति तथा सूर्य-चन्द्रमाको बढ़ानेवाली दीप्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं ऐश्वर्यवानोंकी विभूति हो। युद्धभूमिमें सिद्ध और चारण तुम्हारा दर्शन करते हैं॥१६॥

संजय उवाच

ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला।
अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याग्रतः स्थिता॥१७॥

संजय कहते हैं—राजन्! अर्जुनके इस भक्तिभावको लक्ष्य करके मनुष्योंपर सदा स्नेह रखनेवाली माता दुर्गा अन्तरिक्षमें भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयीं और इस प्रकार बोलीं॥१७॥

देव्युवाच

स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यसि पाण्डव।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान्॥१८॥
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम्।

देवीने कहा—पाण्डुनन्दन! तुम थोड़े ही समयमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे। दुर्धर्ष वीर! तुम तो साक्षात् नर हो। ये साक्षात् नारायण तुम्हारे सहायक हैं। तुम रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये अजेय हो। साक्षात् इन्द्र भी तुम्हें परास्त नहीं कर सकते॥१८॥

इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनान्तरधीयत॥१९॥
लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः।
आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम्॥२०॥

ऐसा कहकर वरदायिनी देवी दुर्गा वहाँ क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं। वह वरदान पाकर कुन्तीकुमार अर्जुनको अपनी विजयका विश्वास हो गया। फिर वे अपने परम सुन्दर रथपर आरूढ़ हुए॥१९-२०॥

कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।

फिर एक रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने दिव्य शङ्ख बजाये॥२०½॥

य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः॥२१॥
यक्षरक्षःपिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा।

जो मनुष्य सबेरे उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यक्ष, राक्षस और पिशाचोंसे कभी भय नहीं होता॥२१½॥

न चापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः॥२२॥
न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि।
विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥२३॥

शत्रु तथा सर्प आदि विषैले दाँतोंवाले जीव भी उसकी कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते। राजकुलसे भी उसे कोई भय नहीं होता है। इसका पाठ करनेसे विवादमें विजय प्राप्त होती है और बँधा हुआ मनुष्य बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥२२-२३॥

दुर्गं तरति चावश्यं तथा चोरैर्विमुच्यते।
संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम्॥२४॥

वह दुर्गम संकटसे अवश्य पार हो जाता है और चोर भी उसे छोड़ देते हैं। वह संग्राममें सदा विजयी होता और विशुद्ध लक्ष्मी प्राप्त करता है॥२४॥

आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद् वर्षशतं तथा।
एतद् दृष्टं प्रसादात् तु मया व्यासस्य धीमतः॥२५॥

इसका पाठ करनेवाला पुरुष आरोग्य और बलसे सम्पन्न हो सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहता है। यह

एवं परम बुद्धिमान् भगवान् व्यासजीके कृपाप्रसादसे मैंने प्रत्यक्ष देखा है ॥ २५ ॥

मोहादेतौ न जानन्ति नरनारायणावुभौ ।
तव पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मन्युवशानुगाः ॥ २६ ॥

राजन्! आपके सभी दुरात्मा पुत्र क्रोधके वशीभूत हो मोहवश यह नहीं जानते हैं कि ये श्रीकृष्ण और अर्जुन ही साक्षात् नर-नारायण ऋषि हैं ॥ २६ ॥

प्राप्तकालमिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः ।
द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथानघः ।
अवारयंस्तव सुतं न चासौ तद् गृहीतवान् ॥ २७ ॥

वे कालपाशसे बद्ध होनेके कारण इस समयोचित बातको कानोंसे भी नहीं सुनते। वेदव्यास, नारद, कण्व तथा पापशून्य परशुरामने तुम्हारे पुत्रको बहुत रोका था, परंतु उसने उनकी बात नहीं मानी ॥ २७ ॥

यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ २८ ॥

जहाँ न्यायोचित धर्म, तेज और कान्ति है, जहाँ ह्री, श्री और बुद्धि है तथा जहाँ धर्म विद्यमान है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ विजय है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि दुर्गास्तोत्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें दुर्गास्तोत्रविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

सैनिकोंके हर्ष और उत्साहके विषयमें धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

धृतराष्ट्र उवाच

केषां प्रहृष्टास्तत्राग्रे योधा युध्यन्ति संजय ।
उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! उस समय किस पक्षके योद्धा सबसे पहले हर्षमें भरकर आगे युद्धमें प्रवृत्त हुए? किनके मनमें उत्साह भरा था और कौन-कौन मनुष्य दीन एवं अचेत हो रहे थे? ॥ १ ॥

के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय! हृदयको कम्पित कर देनेवाले संग्राममें किन्होंने पहले प्रहार किया, मेरे पुत्रोंने या पाण्डवोंने? यह मुझे बताओ ॥ २ ॥

कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥ ३ ॥

किसकी सेनाओंमें सुगन्धित पुष्पमाला आदिका प्रादुर्भाव हुआ? किस पक्षके गर्जते हुए योद्धाओंकी वाणी उदारतापूर्ण और उत्साहयुक्त थी? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा ।
स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ ४ ॥

संजयने कहा—राजन्! दोनों ही सेनाओंके योद्धा उस समय हर्षमें भरे हुए थे। उभयपक्षमें ही सुगन्ध और पुष्पहारोंका प्रादुर्भाव हुआ था ॥ ४ ॥

संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ ।
संसर्गात् समुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! संगठित, व्यूहबद्ध तथा युद्धविषयक उत्साहसे उद्यत हुए रणसागरोंके परस्पर भिड़नेपर जो मुठभेड़ हुई, उस समय बड़ी भारी मारकाट मची थी ॥ ५ ॥

वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः ।
शूराणां रणशूराणां गर्जतामितरेतरम् ।
उभयोः सेनयो राजन् महान् व्यतिकरोऽभवत् ॥ ६ ॥

राजन्! शङ्ख और भेरी आदि बाजोंका सम्मिलित भयंकर शब्द तथा एक दूसरेपर गर्जन-तर्जन करनेवाले रणवीर शूरोंके सिंहनादसे मिलकर दोनों सेनाओंमें महान् कोलाहल एवं संघर्ष होने लगा ॥ ६ ॥

अन्योन्यं वीक्षमाणानां योधानां भरतर्षभ ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥ ७ ॥

भरतभूषण! एक-दूसरेकी ओर देखनेवाले योद्धाओं, गर्जते हुए हाथियों और हर्षमें भरी हुई सेनाओंका तुमुल नाद बड़ा भयानक हो रहा था ॥ ७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि सैन्यहर्षोत्साहकथने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें युद्धहर्षोत्साहसंवादविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रथमोऽध्याय)

दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान वीरों एवं शङ्खध्वनिका वर्णन तथा स्वजनवधके पापसे भयभीत हुए अर्जुनका विषाद

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमें एकत्रित, युद्धकी इच्छावाले मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया?



संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजय बोले—उस समय राजा दुर्योधनने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवोंकी सेनाको देखकर और द्रोणाचार्यके पास जाकर यह वचन कहा—

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

हे आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रोंकी इस बड़ी भारी सेनाको देखिये।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

इस सेनामें बड़े-बड़े धनुषोंवाले तथा युद्धमें भीम और अर्जुनके समान शूरवीर सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र—ये सभी महारथी हैं ॥ ४—६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अपने पक्षमें भी जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये। आपकी जानकारीके लिये मेरी सेनाके जो-जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ।

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

आप—द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

और भी मेरे लिये जीवनकी आशा त्याग देनेवाले बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और सब-के-सब युद्धमें चतुर हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

भीष्मपितामहद्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकारसे अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन लोगोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

इसलिये सब मोर्चोंपर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आपलोग सभी निःसन्देह भीष्मपितामहकी ही सब ओरसे रक्षा करें ॥

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

तब कौरवोंमें वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्मने उस दुर्योधनके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वरसे सिंहकी दहाड़के समान गरजकर शङ्ख बजाया ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

इसके पश्चात् शङ्ख और नगारे तथा ढोल, मृदङ्ग और नरसिंघे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

इसके अनन्तर सफेद घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुनने भी अलौकिक शङ्ख बजाये ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण महाराजने पाञ्चजन्य नामक, अर्जुनने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेवने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शङ्ख बजाये ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥

श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि तथा राजा द्रुपद एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु—इन सभीने, हे राजन्! सब ओरसे अलग-अलग शङ्ख बजाये ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

और उस भयानक शब्दने आकाश और पृथ्वीको भी गुंजाते हुए धार्तराष्ट्रोंके यानी आपके पक्षवालोंके हृदय विदीर्ण कर दिये ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

हे राजन्! इसके बाद कपिध्वज अर्जुनने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र-सम्बन्धियोंको देखकर, उस शस्त्र चलनेकी तैयारीके समय धनुष उठाकर हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराजसे यह वचन कहा—हे अच्युत! मेरे रथको दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा कीजिये ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

और जबतक कि मैं युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओंको भली प्रकार देख न लूँ कि इस युद्धरूप व्यापारमें मुझे किन-किनके साथ युद्ध करना योग्य है, तबतक उसे खड़ा रखिये ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

दुर्बुद्धि दुर्योधनका युद्धमें हित चाहनेवाले जो-जो ये राजालोग इस सेनामें आये हैं, इन युद्ध करनेवालोंको मैं देखूँगा ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

संजय बोले—हे धृतराष्ट्र! अर्जुनद्वारा इस प्रकार कहे हुए महाराज श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों सेनाओंके बीचमें भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने तथा सम्पूर्ण राजाओंके सामने उत्तम रथको खड़ा करके इस प्रकार कहा कि हे पार्थ! युद्धके लिये जुटे हुए इन कौरवोंको देख* ॥

* 'कौरवोंको देख' इन शब्दोंका प्रयोग करके भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि इस सेनामें जितने लोग हैं, सब कुरुवंशी होनेके नाते तुम्हारे आत्मीय स्वजन ही हैं। उनको तुम अच्छी तरह देख लो। भगवान्‌के इसी कथनसे अर्जुनके मनमें छिपे हुए कुटुम्बस्नेहको प्रकट कर दिया, मानो अर्जुनको निमित्त बनाकर लोककल्याणके लिये स्वयं भगवान्‌ने ही उनके हृदयमें ऐसी भावना उत्पन्न कर दी, जिससे उन्होंने युद्ध करनेसे इन्कार कर दिया और उसके फलस्वरूप साक्षात् भगवान्‌के मुखारविन्दसे त्रिलोकपावन दिव्य गीतामृतकी ऐसी परम मधुर धारा बह निकली, जो अनन्त कालतक अगणित जीवोंका परम कल्याण करती रहेगी।

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।

इसके बाद पृथापुत्र अर्जुनने उन दोनों ही सेनाओंमें स्थित ताऊ-चाचोंको, दादों-परदादोंको, गुरुओंको, मामाओंको, भाइयोंको, पुत्रोंको, पौत्रोंको तथा मित्रोंको, ससुरोंको और सुहृदोंको भी देखा ॥

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥ २७ ॥
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

उन उपस्थित सम्पूर्ण बन्धुओंको देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणासे युक्त होकर शोक करते हुए यह वचन बोले ॥

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! युद्धक्षेत्रमें डटे हुए युद्धके अभिलाषी इस स्वजनसमुदायको देखकर मेरे अङ्ग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीरमें कम्प एवं रोमाञ्च हो रहा है ॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

हाथसे गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहनेको भी समर्थ नहीं हूँ ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

हे केशव! मैं लक्षणोंको भी विपरीत ही देख रहा हूँ तथा युद्धमें स्वजन-समुदायको मारकर कल्याण भी नहीं देखता ॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखोंको ही। हे गोविन्द! हमें ऐसे राज्यसे क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगोंसे और जीवनसे भी क्या लाभ है ॥

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ये सब धन और जीवनकी आशाको त्यागकर युद्धमें खड़े हैं ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, पौत्र, साले तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन! मुझे मारनेपर भी अथवा तीनों लोकोंके राज्यके लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता; फिर पृथ्वीके लिये तो कहना ही क्या है?

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों*को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

अतएव हे माधव! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि अपने ही कुटुम्बको मारकर हम कैसे सुखी होंगे?

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको और मित्रोंसे विरोध करनेमें पापको नहीं देखते, तो भी हे जनार्दन! कुलके नाशसे उत्पन्न दोषको जाननेवाले हमलोगोंको इस पापसे हटनेके लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये?

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलके नाशसे सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्मके नाश हो जानेपर सम्पूर्ण कुलमें पाप भी बहुत फैल जाता है•॥

---

* वसिष्ठस्मृतिमें आततायीके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते आततायिनः ॥ (३। १९)

आग लगानेवाला, विष देनेवाला, हाथमें शस्त्र लेकर मारनेको उद्यत, धन हरण करनेवाला, जमीन छीननेवाला और स्त्रीका हरण करनेवाला—ये छहों ही आततायी हैं।

• नींव हेतु पड़ते हैं जिनके कारण मनुष्य अधर्मसे बचता है और धर्मको सुरक्षित रखनेमें समर्थ होता है—(इसका

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥ ४१॥

हे कृष्ण! पापके अधिक बढ़ जानेसे कुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और हे वार्ष्णेय! स्त्रियोंके दूषित हो जानेपर वर्णसंकर उत्पन्न होता है॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥ ४२॥

वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पणसे वंचित इनके पितरलोग भी अधोगतिको प्राप्त होते हैं॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥ ४३॥

इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥ ४४॥

हे जनार्दन! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्योंका अनिश्चित कालतक नरकमें वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद् राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ ४५॥

हा! शोक! हमलोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करनेको तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुखके लोभसे स्वजनोंको मारनेके लिये उद्यत हो गये हैं॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ ४६॥

यदि मुझ शस्त्ररहित एवं सामना न करनेवालेको शस्त्र हाथमें लिये हुए धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें मार डालें तो वह मारना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥ ४७॥

संजय बोले—रणभूमिमें शोकसे उद्विग्न मनवाले अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुषको त्यागकर रथके पिछले भागमें बैठ गये॥

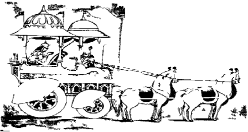
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥ भीष्मपर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें अर्जुनविषादयोग नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥ भीष्मपर्वमें पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

जब समाजका पालन कुलधर्मावलोंके दुरुपयोगके कारण राज्यका कानून और धार्मिक तथा आर्थिक शक्तिकी व्यवस्था इनमें ईश्वर और धर्म सर्वथा सत्य होनेपर भी वे सर्वथा भिन्न चलते हैं, ... राज्यके कानून प्रभावसे ही मर्यादा होती है, जिनके हाथोंमें अधिकार होता है, वे उन्हें मान नहीं मानते। धार्मिक तथा आर्थिक शक्तिकी व्यवस्था अधिकार मर्यादित करनेमें हुआ करती है। एक कुल मर्यादा ही यहाँ वस्तु है, जिसका सम्बन्ध सारे कुटुम्बके साथ रहता है। जिस समय या कुलमें परम्परासे चली आई पूर्व कुल और श्रेष्ठ मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं, वह समाज या कुल बिना लगामके घोड़ेकी तरह स्वेच्छाचारी हो जाता है। स्वेच्छाचार किसी भी नियमको सहन नहीं कर सकता, वह मनुष्यको उच्छृङ्खल बना देता है। जिस समाजके मनुष्योंमें इस प्रकारकी उच्छृङ्खलता आ जाती है, उस समाज या कुलमें स्वाभाविक ही सर्वत्र पाप छा जाता है।

प्रत्येक अध्यायकी समाप्तिपर जो उपर्युक्त पुष्पिका दी गयी है, इसमें श्रीमद्भगवद्गीताका माहात्म्य और प्रभाव ही प्रकट किया गया है। ... भगवान्के पवित्र नाम हैं; गीता ... स्वयं श्रीभगवान्के द्वारा गायी जानेके कारण इसका नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। इसमें उपनिषदोंका सारतत्त्व संगृहीत है और यह स्वयं भी उपनिषद् है, इससे इसको 'उपनिषद्' कहा गया है। निर्गुण निराकार परमात्माके परमतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाली होनेके कारण इसका नाम 'ब्रह्मविद्या' है और जिस कर्मयोगका योगके नामसे वर्णन हुआ है, उस निष्कामभावपूर्ण कर्मयोगका तत्त्व बतलानेवाली होनेसे इसका नाम 'योगशास्त्र' है। यह साक्षात् परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण और भक्तवर अर्जुनका संवाद है और इसके प्रत्येक अध्यायमें परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले योगका वर्णन है, इसीसे इसके लिये 'श्रीकृष्णार्जुनसंवादे' ... 'योगो नाम' कहा गया है।

शरणागत अर्जुन



कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्

षड्विंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीताया द्वितीयोऽध्याय)

अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हुए भगवान्‌के द्वारा नित्यानित्य वस्तुके विवेचनपूर्वक सांख्ययोग कर्मयोग एवं स्थितप्रज्ञकी स्थिति और महिमाका प्रतिपादन

सम्बन्ध—पहले अध्यायमें गीताके उपदेशकी प्रस्तावनाके रूपमें दोनों सेनाओंके महारथियोंका और उनकी शङ्खध्वनिका वर्णन करके अर्जुनका रथ दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ा करनेकी बात कही गयी। उसके बाद दोनों सेनाओंमें स्थित स्वजनसमुदायको देखकर शोकसे मोहित अर्जुनके युद्धसे निवृत्त हो जानेकी और शस्त्रोंको छोड़कर विषाद करते हुए बैठ जानेकी बात कहकर उस अध्यायकी समाप्ति की गयी। ऐसी स्थितिमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे क्या बात कही और किस प्रकार उन्हें युद्धके लिये पुनः तैयार किया, यह सब बतलानेकी आवश्यकता होनेपर सञ्जय अर्जुनकी स्थितिका वर्णन करते हुए दूसरे अध्यायका आरम्भ करते हैं—

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥१॥

सञ्जय बोले—उस प्रकार करुणासे व्याप्त और आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उस अर्जुनके प्रति भगवान् मधुसूदनने यह वचन कहा॥१॥

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! तुझे इस असमयमें यह मोह किस हेतुसे प्राप्त हुआ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा आचरित है, न स्वर्गको देनेवाला है और न कीर्तिको करनेवाला ही है॥२॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥३॥

इसलिये हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परन्तप! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा॥३॥

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥४॥

अर्जुन बोले—हे मधुसूदन! मैं रणभूमिमें किस प्रकार बाणोंसे भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यके विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि हे अरिसूदन! वे दोनों ही पूजनीय हैं॥४॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥५॥

इसलिये इन महानुभाव गुरुजनोंको न मारकर मैं इस लोकमें भिक्षाका अन्न भी खाना कल्याणकारक समझता हूँ; क्योंकि गुरुजनोंको मारकर भी इस लोकमें रुधिरसे सने हुए अर्थ और कामरूप भोगोंको ही तो भोगूँगा॥५॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अपना निश्चय प्रकट कर देनेपर भी जब अर्जुनको संतोष नहीं हुआ और अपने निश्चयमें शङ्का उत्पन्न हो गयी, तब वे फिर कहने लगे—

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥६॥

हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना—इन दोनोंमेंसे कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे। और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे मुकाबलेमें खड़े हैं।



कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥७॥

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये ।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

क्योंकि भूमिमें निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओंके स्वामीपनेको प्राप्त होकर भी मैं उस उपायको नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूर कर सके ।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

संजय बोले—हे राजन् ! निद्राको जीतनेवाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीगोविन्द भगवान्‌से 'युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये ।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १० ॥

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओंके बीचमें शोक करते हुए उस अर्जुनको हँसते हुए-से यह वचन बोले ।

सम्बन्ध—उपर्युक्त प्रकारसे चिन्तातुर अर्जुनने जब भगवान्‌के शरण होकर अपने महान् शोककी निवृत्तिका उपाय पूछा और यह कहा कि इस लोक और परलोकका राज्यसुख इस शोककी निवृत्तिका उपाय नहीं है, तब अर्जुनको अधिकारी समझकर उसके शोक और मोहको सदाके लिये नष्ट करनेके उद्देश्यसे भगवान् पहले नित्य और अनित्य वस्तुके विवेचनपूर्वक सांख्ययोगकी दृष्टिसे भी युद्ध करना कर्तव्य है, ऐसा प्रतिपादन करते हुए सांख्यनिष्ठाका वर्णन करते हैं ।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते ।

सम्बन्ध—पहले भगवान् आत्माकी नित्यता और निर्विकारताका प्रतिपादन करके आत्माके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध करते हैं ।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता (अर्थात् जैसे कुमार, युवा और जरा-अवस्थारूप स्थूल शरीरका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है, वैसे ही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होनारूप सूक्ष्म शरीरका विकार भी अज्ञानसे ही आत्मामें भासता है, इसलिये तत्त्वको जाननेवाला धीर पुरुष इस विषयमें नहीं मोहित होता) ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रिय और विषयोंके संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिये हे भारत ! उनको तू सहन कर ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुखको समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयोंके संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य होता है ।

सम्बन्ध—ग्यारहवें श्लोकसे भगवान्‌ने आत्माकी नित्यता और निर्विकारताका प्रतिपादन किया तथा चौदहवें श्लोकमें शरीर और इन्द्रियोंके संयोगको अनित्य बतलाया; किंतु आत्मा क्यों नित्य है और यह संयोग क्यों अनित्य है, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया, अतएव इस बातको समझानेके लिये नित्य और अनित्य वस्तुके विवेचनकी रीति बतलानेके लिये भगवान् कहते हैं ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है । इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है ।*

* तत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंद्वारा 'असत्' और 'सत्' का विवेचन करके यह निश्चय कर लिया है कि जिस वस्तुका परिवर्तन और नाश होता है, जो सदा नहीं रहती, वह असत् है—अर्थात् असत् वस्तुका विद्यमान रहना सम्भव नहीं और जिसका परिवर्तन और नाश किसी भी अवस्थामें किसी भी निमित्तसे नहीं होता, जो सदा विद्यमान रहती है, वह सत् है—अर्थात् सत्‌का कभी अभाव होता ही नहीं—यही तत्त्वदर्शी पुरुषोंद्वारा उन दोनोंका तत्त्व देखा जाना है ।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥१७॥

नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्—दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशीका विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥१७॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥१८॥

इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर[१]॥१८॥

सम्बन्ध—अर्जुन यह समझ रहे थे कि मैं इनको मारनेवाला हूँ और ये मेरे द्वारा मारे जायँगे, इस भ्रमको दूर करनेके लिये भगवान् इस श्लोकमें आत्माको अवध्य बतलाते हैं—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥

जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा वास्तवमें न तो किसीको मारता है और न किसीके द्वारा मारा जाता है॥१९॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥

यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता*॥२०॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥२१॥

हे पृथापुत्र अर्जुन! जो पुरुष इस आत्माको नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है?॥२१॥

सम्बन्ध—यहाँ यह शङ्का होती है कि आत्माका जो एक शरीरसे सम्बन्ध छूटकर दूसरे शरीरसे सम्बन्ध होता है, उसमें उसे कष्ट तो होता ही है; अतः उसके लिये शोक करना कैसे अनुचित है? इसपर कहते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥२२॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है†॥२२॥

सम्बन्ध—आत्माका स्वरूप दुर्विज्ञेय होनेके कारण पुनः तीन श्लोकोंद्वारा प्रकारान्तरसे उसकी नित्यता, निराकारता और निर्विकारताका प्रतिपादन करते हुए भगवान् उसके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध करते हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥२३॥

इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता॥२३॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥२४॥

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है॥२४॥

---

१. यहाँ 'देहाः' पद बहुवचनान्त और 'शरीरिणः' पद एकवचनान्त प्रयोग करके भगवान्‌ने समस्त शरीरोंमें एक ही आत्माका प्रतिपादन किया गया है। अभिप्राय यह है कि व्यावहारिक दृष्टिसे सब शरीरोंको धारण करनेवाले उनमें स्थित आत्मा भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें एक है; जैसे निद्रावस्थामें स्वप्नकी सृष्टिमें एक पुरुषके सिवा कोई वस्तु नहीं होती, स्वप्नसे जगनेपर वह पुरुष एक ही रह जाता है, वैसे ही यहाँ भी समस्त नानात्व भ्रमजनित है; वास्तवमें कोई नानात्व नहीं रहता।

* इस श्लोकमें छहों विकारोंका अभाव दिखलाया गया है। 'न जायते' (जन्मता नहीं) कहकर उत्पत्तिरूप विकारका अभाव बतलाया है। 'भूत्वा भूयः न भविता' अर्थात् यह जन्म लेकर फिर सत्तावाला नहीं होता बल्कि स्वभावसे ही सत् है; इस कथनसे अस्तित्वरूप विकारका, 'पुराणः' (चिरकालीन और सदा एकरस रहनेवाला) कहकर वृद्धिरूप विकारका, 'शाश्वतः' (सदा एक-सा रहनेवाला) कहकर विपरिणामका, 'नित्यः' (अविनाशी) कहकर क्षयका और 'शरीरके नाश होनेपर भी इसका नाश नहीं होता'—यह कहकर विनाशरूप विकारका अभाव दिखलाया है।

† वास्तवमें अचल और असीम होनेके कारण आत्माका किसी भी हालतमें आना-जाना नहीं होता; परन्तु जैसे घड़ेको एक मकानसे दूसरे मकानमें ले जानेके समय उसके भीतरके आकाशका अर्थात् घटाकाशका भी घड़ेके सम्बन्धसे गमनागमन-सा प्रतीत होता है, वैसे ही सूक्ष्म शरीरका गमनागमन होनेसे उसके सम्बन्धसे आत्मामें भी गमनागमनकी प्रतीति होती है। अतएव लोगोंको समझानेके लिये आत्मामें गमनागमनकी औपचारिक कल्पना की जाती है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करनेको योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है॥

सम्बन्ध—उपर्युक्त श्लोकोंमें भगवान्‌ने आत्माको अजन्मा और अविनाशी बतलाकर उसके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध किया। अब दो श्लोकोंद्वारा आत्माको औपचारिकरूपसे जन्मने-मरनेवाला माननेपर भी उसके लिये शोक करना अनुचित है, ऐसा सिद्ध करते हैं—

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

किन्तु यदि तू इस आत्माको सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरनेवाला मानता हो, तो भी हे महाबाहो! तू इस प्रकार शोक करनेको योग्य नहीं है॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

क्योंकि इस मान्यताके अनुसार जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है और मरे हुएका जन्म निश्चित है।● इससे भी इस बिना उपायवाले विषयमें तू शोक करनेको योग्य नहीं है॥

सम्बन्ध—अब अगले श्लोकमें यह सिद्ध करते हैं कि प्राणियोंके शरीरोंको लेकर भी शोक करना नहीं बनता—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है?॥

सम्बन्ध—आत्मतत्त्व अत्यन्त दुर्बोध होनेके कारण उसे समझानेके लिये भगवान्‌ने उपर्युक्त श्लोकोंद्वारा भिन्न-भिन्न प्रकारसे उसके स्वरूपका वर्णन किया, अब उसी श्लोकमें उस आत्मतत्त्वके दर्शन, वर्णन और श्रवणकी अलौकिकता और दुर्लभताका निरूपण करते हैं—

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

कोई एक महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी भाँति देखता है† और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्वका आश्चर्यकी भाँति वर्णन करता है‡ तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्यकी भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता॥§

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

हे अर्जुन! यह आत्मा सबके शरीरोंमें सदा ही अवध्य है। इस कारण सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये तू शोक करनेको योग्य नहीं है॥

सम्बन्ध—यहाँतक भगवान्‌ने सांख्ययोगके अनुसार अनेक युक्तियोंद्वारा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सम, निर्विकार और अकर्ता आत्माके एकत्व, नित्यत्व, अविनाशित्व आदिका प्रतिपादन करके तथा शरीरोंको मरणधर्मशील बतलाकर आत्माके या शरीरोंके लिये अथवा शरीर और आत्माके वियोगके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध किया। साथ ही प्रसंगवश आत्माको जन्मने-मरनेवाला माननेपर भी शोक करनेके अनौचित्यका प्रतिपादन किया और अर्जुनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी। अब सात श्लोकोंद्वारा क्षात्रधर्मके अनुसार शोक करना अनुचित सिद्ध करते हुए अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हैं—

आत्माको अविकार्य कहकर अव्यक्त प्रकृतिसे उसकी विलक्षणताका प्रतिपादन किया गया है। अभिप्राय यह है कि जैसे इन्द्रियाँ और अन्तःकरण बुद्धिके विषय हैं, वे उसको तथा प्रकृतिको विषय नहीं कर सकते, इसलिये प्रकृति भी अव्यक्त और अचिन्त्य है; किंतु वह निर्विकार नहीं है, उसमें विकार होता है और आत्मामें कभी किसी भी अवस्थामें विकार नहीं होता। अतएव प्रकृतिसे आत्मा अत्यन्त विलक्षण है।

● भगवान्‌का यह कथन उन अज्ञानियोंकी दृष्टिसे है, जो आत्माका जन्मना-मरना नित्य मानते हैं। उनके मतानुसार जो मरणधर्मा है, उसका जन्म होना निश्चित ही है; क्योंकि उस मान्यतामें किसीकी मुक्ति नहीं हो सकती। किंतु वास्तविक सिद्धान्तमें मुक्ति मानी गयी है, उसमें आत्माको जन्मने-मरनेवाला भी नहीं माना गया है; जन्मना-मरना सब अज्ञानजनित है।

† जैसे मनुष्य लौकिक दृश्य वस्तुओंको मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा इदंबुद्धिसे देखता है, आत्म-दर्शन वैसा नहीं है। आत्माका देखना अद्भुत और अलौकिक है; उस एकमात्र केवल आत्मतत्त्वसे भिन्न किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं रहती। उस समय आत्मा स्वयं अपनेद्वारा ही अपनेको देखता है, उस दर्शनमें द्रष्टा, दृश्य और दर्शनकी त्रिपुटी नहीं रहती; इसलिये यह देखना आश्चर्यकी भाँति है।

‡ जितने भी उदाहरणोंसे आत्मतत्त्व समझाया जाता है, उनमेंसे कोई भी उदाहरण पूर्णरूपसे आत्मतत्त्वको समझानेवाला नहीं है; उसके किसी एक अंशको ही उदाहरणोंद्वारा समझाया जाता है; क्योंकि आत्माके सदृश अन्य कोई वस्तु है ही नहीं, इस अवस्थामें कोई भी उदाहरण पूर्णरूपसे कैसे लागू हो सकता है? तथापि बहुत-से आवश्यक शब्दोंद्वारा महापुरुष उसका संकेत करते हैं, यही उसका आश्चर्यकी भाँति वर्णन करना है। आत्मतत्त्व वाणीका अविषय होनेके कारण स्पष्ट शब्दोंमें वाणीद्वारा उसका कथन नहीं हो सकता।

§ जिसके अन्तःकरणमें पूर्ण श्रद्धा और आस्तिकभाव नहीं होता, जिसकी बुद्धि शुद्ध और सूक्ष्म नहीं होती—ऐसा मनुष्य इस आत्मतत्त्वको सुनकर भी संशय और विपरीत भावनाके कारण इसके स्वरूपको यथार्थ नहीं समझ सकता। अतएव इस आत्मतत्त्वका समझना अनधिकारीके लिये बड़ा ही दुर्लभ है।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

तथा अपने धर्मको देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है यानी तुझे भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

हे पार्थ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके द्वाररूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही पाते हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

किंतु यदि तू इस धर्मयुक्त युद्धको नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्तिको खोकर पापको प्राप्त होगा ॥ ३३ ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

तथा सब लोग तेरी बहुत कालतक रहनेवाली अपकीर्तिका भी कथन करेंगे और माननीय पुरुषके लिये अपकीर्ति मरणसे भी बढ़कर है ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

और जिनकी दृष्टिमें तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुताको प्राप्त होगा, वे महारथीलोग तुझे भयके कारण युद्धसे हटा हुआ मानेंगे ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

तेरे वैरीलोग तेरे सामर्थ्यकी निन्दा करते हुए तुझे बहुत-से न कहनेयोग्य वचन भी कहेंगे; उससे अधिक दुःख और क्या होगा? ॥ ३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

या तो तू युद्धमें मारा जाकर स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा संग्राममें जीतकर पृथ्वीका राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन! तू युद्धके लिये निश्चय करके खड़ा हो जा ॥ ३७ ॥

सम्बन्ध—उपर्युक्त श्लोकोंमें भगवान्‌ने युद्धका फल राज्यसुख या स्वर्गकी प्राप्ति बतलाकर फिर अर्जुनको युद्धके लिये आज्ञा दी; किन्तु अर्जुनने तो पहले ही कह दिया था कि इस लोकके राज्यकी तो बात ही क्या है, मैं त्रिलोकीके राज्यके लिये भी अपने कुटुम्बका नाश नहीं करना चाहता; अतः यदि अर्जुनकी अपनी इच्छा हो तो उसको किस प्रकार युद्ध करना चाहिये, यह बात अगले श्लोकमें बतलायी जाती है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥

सम्बन्ध—यहाँतक भगवान्‌ने सांख्ययोगके सिद्धान्तसे तथा क्षात्रधर्मकी दृष्टिसे युद्धका औचित्य सिद्ध करके अर्जुनको समतापूर्वक युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी। अब वैदिक सिद्धान्तसे युद्धका औचित्य सिद्ध करनेके लिये कर्मयोगका महत्त्व कहते हैं—

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोगके* विषयमें सुन—जिस बुद्धिसे युक्त हुआ तू कर्मोंके बन्धनको भलीभाँति त्याग देगा अर्थात् सर्वथा नष्ट कर डालेगा ॥ ३९ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार कर्मयोगका महत्त्व बतलानेके लिये उसका स्वरूप फिर कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है† और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है‡ ॥ ४० ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार कर्मयोगका महत्त्व बतलाकर अब उसका आचरण करनेकी विधि बतलानेके लिये पहले उस कर्मयोगमें परम आवश्यक जो स्थिर समबुद्धि है, उसका और कर्मयोगमें बाधक जो सकाम मनुष्योंकी भिन्न-भिन्न बुद्धियाँ हैं, उनका भेद बतलाते हैं—

---

* इन श्लोकोंमें बुद्धिके एषा और इमाम्—ये दो विशेषण देकर यह दिखलाया गया है कि इस अध्यायके श्लोकोंमें कही हुई समत्वबुद्धि सांख्ययोगके अनुसार [illegible] और आगेके श्लोकोंसे कर्मयोगके अनुसार कहना आरम्भ करते हैं।

† इससे यह बात दिखलायी गयी है कि जहाँ कामनायुक्त कर्म होता है, वहाँ अच्छे-बुरे फलकी भावना होती है; इसमें कामनाका सर्वथा अभाव है इसलिये इसका [illegible] अर्थात् किसी प्रकारका फल भी नहीं होता।

‡ भाव यह है कि निष्कामभावसे [illegible] परिणाम [illegible] उद्धार करता है [illegible] किया न तो नष्ट होता है और न उसका कर्म दूसरा फल ही हो सकता है। अन्तमें [illegible] त्याग कर ही देता है।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन! इस कर्मयोगमें निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है; किंतु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं॥ ४१॥

सम्बन्ध—अब तीन श्लोकोंमें सकामभावसे कर्म करनेवाले सकाम मनुष्योंके स्वभाव, सिद्धान्त और उनकी बुद्धिका वर्णन करते हैं—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥ ४४ ॥

हे अर्जुन! जो भोगोंमें तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफलके प्रशंसक वेदवाक्योंमें ही प्रीति रखते हैं, जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है—ऐसा कहनेवाले हैं, वे अविवेकीजन इस प्रकारकी जिस पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त वाणीको कहा करते हैं, जो कि जन्मरूप कर्मफल देनेवाली एवं भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारकी बहुत-सी क्रियाओंका वर्णन करनेवाली है, उस वाणीद्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी परमात्मामें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती॥ ४२—४४॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ ४५ ॥

हे अर्जुन! वेद उपर्युक्त प्रकारसे तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं; इसलिये तू उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित, नित्यवस्तु परमात्मामें स्थित, योग-क्षेमको न चाहनेवाला* और स्वाधीन अन्तःकरणवाला हो॥ ४५॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ ४६ ॥

सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त हो जानेपर छोटे जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्मको तत्त्वसे जाननेवाले ब्राह्मणका समस्त वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रह जाता है†॥ ४६॥

सम्बन्ध—इस प्रकार समबुद्धिरूप कर्मयोगका और उसके फलका महत्त्व बतलाकर अब दो श्लोकोंमें भगवान् कर्मयोगका स्वरूप बतलाते हुए अर्जुनको कर्मयोगमें स्थित होनेके लिये कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ ४७ ॥

तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है‡, उसके फलोंमें कभी नहीं§। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो×॥ ४७॥

* अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम 'योग' है और प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है। सर्वस्वका त्याग कर देनेके बाद भी शरीरनिर्वाहके लिये मनुष्यको योगक्षेममें वासना रहा करती है; अतएव उस वासनाका भी सर्वथा त्याग करनेके लिये यहाँ अर्जुनको 'निर्योगक्षेम' होनेको कहा गया है।

† इस श्लोकका अभिप्राय यह है कि जब मनुष्यको अत्यन्त महान् अगाध और सुखकारक जलाशय मिल जाता है, उसको जैसे जलके लिये बावड़ी-कुएँ-तालाब आदि छोटे-छोटे जलाशयोंसे कोई प्रयोजन नहीं रहता, वैसे ही जिसको आनन्दमय पूर्णब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, उस ब्रह्मज्ञानीको फिर कर्मोंके फलरूप भोगोंसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता; वह सर्वथा पूर्णकाम और निःस्पृह हो जाता है।

‡ जैसे सरकारके द्वारा किसी भवनादिके बनने या उसकी रक्षाके लिये अथवा उसमें नाना प्रकारके काम करने और उनके प्रयोग करनेका अधिकार दिया जाता है और उसी समय उनके प्रयोगके नियम भी स्पष्ट कर दिये जाते हैं, उसके अनुसार यदि वह मनुष्य उस अधिकारका दुरुपयोग करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है और उसका अधिकार भी छीन लिया जाता है; वैसे ही भगवान्‌के द्वारा मनुष्य-शरीरमें उसके गुण और कर्मोंके अनुसार सिद्धि और दूसरोंका हित करनेके लिये मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके सहित यह मनुष्य-शरीर देकर इसके द्वारा नवीन कर्म करनेका अधिकार दिया गया है। अतः जो इस अधिकारका सदुपयोग करता है, वह तो परमात्माके अनुकूल परमपदको प्राप्त हो जाता है और जो दुरुपयोग करता है, वह दण्डका भागी होता है तथा उससे यह अधिकार छीन लिया जाता है अर्थात् उसे पुनः शूकर-कूकरादि योनियोंमें ढकेल दिया जाता है। इसलिये मनुष्यको इस अधिकारका सदुपयोग करना चाहिये।

§ मनुष्य कर्मोंका फल पाने में कभी किसी प्रकार भी स्वतन्त्र नहीं है। उसके कौन-से कर्मका क्या फल होगा और वह फल उसको किस जन्ममें और किस प्रकार प्राप्त होगा—इसका न तो उसको कुछ पता है और न वह अपनी इच्छानुसार समयपर उसे प्राप्त कर सकता है, अथवा न उससे बच ही सकता है। मनुष्य चाहता कुछ और है, और होता कुछ और ही है।

× मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा किये हुए शास्त्रविहित कर्मोंमें और उनके फलमें ममता, आसक्ति, कामना आदि

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

हे धनंजय ! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्य-कर्मोंको कर । समत्व ही योग कहलाता है ।

तात्पर्य इस प्रकार [illegible] सकाम [illegible] समत्वरूप बुद्धियोगका [illegible] करते हुए [illegible] है ।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

इस समत्वरूप बुद्धियोगसे सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणीका है । इसलिये हे धनंजय ! तू समबुद्धिमें ही रक्षाका उपाय ढूँढ़ अर्थात् बुद्धियोगका ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फलके हेतु बननेवाले अत्यन्त दीन हैं ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है । इससे तू समत्वरूप योगमें लग जा; यह समत्वरूप योग ही कर्मोंमें कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है ।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

क्योंकि समबुद्धिसे युक्त ज्ञानीजन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलको त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे मुक्त हो निर्विकार परमपदको प्राप्त हो जाते हैं ।

[illegible]

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

जिस कालमें तेरी बुद्धि मोहरूप दलदलको भलीभाँति पार कर जायगी, उस समय तू सुने हुए और सुननेमें आनेवाले इस लोक और परलोकसम्बन्धी सभी भोगोंसे वैराग्यको प्राप्त हो जायगा ।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

[illegible] कामना करता हुआ कर्मोंके फलका हेतु बनता है, क्योंकि जो मनुष्य [illegible] होता है, उसीको उन कर्मोंका फल मिलता है ।

* [illegible] कर्तव्यकर्म करनेके लिये कहकर भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि केवल सिद्धि और असिद्धिमें ही समत्व [illegible] नहीं चलेगा, बल्कि [illegible] करते समय भी तुमको किसी भी पदार्थमें, कर्ममें या उसके फलमें अथवा किसी भी प्राणीमें [illegible] समभावसे स्थित रहना चाहिये ।

[illegible] आसक्ति और कामनाका त्याग करके समबुद्धिपूर्वक कर्तव्यकर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, उस कर्मयोगका वाचक यहाँ 'बुद्धियोग' पद है, क्योंकि [illegible] इस बुद्धिसे [illegible] भगवान्‌ने कर्मयोगका वर्णन आरम्भ किया है [illegible] बुद्धियुक्त पुरुषकी प्रशंसा करके अर्जुनको [illegible] है और यह कहा गया है कि बुद्धियुक्त मनुष्य [illegible] प्राप्त हो जाता है ([illegible]) [illegible] भी यहाँ 'बुद्धियोगात्' पदका अर्थ कर्मयोग ही है ।

† [illegible] किये हुए जितने भी पुण्यकर्म और [illegible] रहते हैं, उन सबका समबुद्धिसे युक्त कर्मयोगी इसी लोकमें त्याग देता है अर्थात् [illegible] उन समस्त कर्मोंसे मुक्त हो जाता है [illegible] कुछ भी [illegible] नहीं रहता [illegible] नहीं दे सकते ।

[illegible] राग-द्वेष आदि [illegible] कर्मोंका [illegible] विकारोंका और समस्त [illegible] अभाव है, जो इस प्रकृति और प्रकृतिके कार्यसे सर्वथा अतीत है, जो भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न भगवान्‌का परम धाम है, जहाँ पहुँचे हुए मनुष्य वापस नहीं लौटते, उस परम धामको 'अनामय' पद कहते हैं ।

‡ इस लोक और परलोकके जितने भी [illegible] देखने, सुनने और अनुभव [illegible] हैं, उनमें [illegible] है और भविष्यमें जो देखे, सुने और अनुभव किये जा सकते हैं [illegible] हेतु और अनित्य [illegible] जो आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाता है, यही उनसे वैराग्यका प्राप्त होना है ।

१ इस लोक और परलोकके [illegible] भाँति-भाँतिके वचनोंके सुननेसे बुद्धिमें विक्षेप आ जाती है, उसके कारण वह एक निश्चयपर [illegible] नहीं टिक सकती [illegible] कुछ ही समय बाद दूसरी बातको अच्छी समझने लगती है । ऐसी विक्षिप्त और अनिश्चयात्मिका बुद्धिको यहाँ 'श्रुतिविप्रतिपन्ना बुद्धि' कहा गया है ।

लौकिक-वैदिक वचनोंको सुननेसे विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मामें अचल और स्थिर ठहर जायगी, तब तू योगको प्राप्त हो जायगा अर्थात् तेरा परमात्मासे नित्य संयोग हो जायगा ॥ ५३ ॥

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने यह बात कही कि जब तुम्हारी बुद्धि परमात्मामें स्थिर हो जायगी, तब तुम परम योगको प्राप्त हो जाओगे; इसपर परमात्माको प्राप्त स्थितप्रज्ञ सिद्धयोगीके लक्षण और आचरण जाननेकी इच्छासे अर्जुन पूछते हैं—

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

अर्जुन बोले—हे केशव! समाधिमें स्थित परमात्माको प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुषका क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है? ॥ ५४ ॥

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें अर्जुनने भगवान्‌से चार बातें पूछी हैं, उन चारों बातोंका उत्तर भगवान्‌ने अध्यायकी समाप्तिपर्यन्त दिया है। बीचमें प्रसङ्गवश दूसरी बातें भी आ गयी हैं। इस श्लोकमें भगवान् अर्जुनके पहले प्रश्नका उत्तर संक्षेपमें देते हैं—

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको* भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही संतुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ॥ ५५ ॥

सम्बन्ध—अब दो श्लोकोंमें स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है? इस दूसरे प्रश्नका उत्तर दिया जाता है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है† ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है‡ ॥ ५७ ॥

सम्बन्ध—अब स्थितप्रज्ञ कैसे बैठता है? इस तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

और कछुवा सब ओरसे अपने अङ्गोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५८ ॥

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें कछुएका दृष्टान्त देते हुए स्थितप्रज्ञ कैसे बैठता है, इस प्रश्नका उत्तर...

---

* शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि अनुकूल पदार्थोंके प्राप्त होनेकी और प्रतिकूल पदार्थोंके नाश हो जानेकी जो राग-द्वेषजनित सूक्ष्म कामना है, जिसका लक्षण विकसित नहीं होता, उसे 'वासना' कहते हैं। किसी अनुकूल वस्तुके अभावका बोध होनेपर जो चित्तमें ऐसा भाव होता है कि अमुक वस्तुकी आवश्यकता है, उसके बिना काम नहीं चलेगा—इस अभावरूप कामनाका नाम 'स्पृहा' है। यह कामनाका अपेक्षा विकसित रूप है। जिस अनुकूल वस्तुका अभाव होता है, उसके मिलनेकी और प्रतिकूल विनाशकी जो न किसीकी प्रबल कामनाका नाम 'इच्छा' है; यह कामनाका और भी विकसित रूप है और स्त्री, पुत्र, धन आदि पदार्थ अपेक्षा प्राप्त हुए हों उनसे अधिकाधिक मिलनेकी इच्छा है, उसको 'तृष्णा' कहते हैं। यह कामनाका बहुत स्थूल रूप है। इन सबका सर्वथा त्याग कर देना ही सम्पूर्ण कामनाओंका भलीभाँति त्याग करना है।

† इससे स्थिरबुद्धि योगीके अन्तःकरण और वाणीमें आसक्ति, भय और क्रोधका सर्वथा अभाव दिखलाया गया है। अभिप्राय यह है कि किसी भी स्थितिमें किसी भी घटनासे उसके अन्तःकरणमें न तो किसी प्रकारकी आसक्ति उत्पन्न हो सकती है, न किसी प्रकारका भय ही हो सकता है और न क्रोध ही हो सकता है। इस कारण उसकी वाणी भी आसक्ति, भय और क्रोधसे रहित, शान्त और मधुर होती है।

‡ इससे यह भाव दिखलाया गया है कि उपर्युक्त शुभाशुभ वस्तुओंमेंसे किसी भी शुभ अर्थात् अनुकूल वस्तुका संयोग होनेपर स्थिरबुद्धि योगीके अन्तःकरणमें चित्तविक्षेपमात्र भी हर्षका विकार नहीं होता (गीता ५।२०), इस कारण उसकी वाणी भी हर्षके विकारसे सर्वथा शून्य होती है; वह किसी भी अनुकूल वस्तु या प्राणीकी हर्षपूर्वक स्तुति नहीं करता। एवं स्थिरबुद्धि योगीको अत्यन्त प्रतिकूल वस्तुके साथ संयोग होनेपर भी उसके अन्तःकरणमें चित्तविक्षेपमात्र भी द्वेषभाव नहीं उत्पन्न होता। उसका अन्तःकरण प्रत्येक वस्तुकी प्राप्तिमें सम, शान्त और निर्विकार रहता है (गीता ५।२०)। इस कारण वह किसी भी प्रतिकूल वस्तु या प्राणीकी द्वेषपूर्ण निन्दा नहीं करता।

इसीके लिये अब प्रकारसे विषय आसक्तिके इन्द्रियसंयमकी आवश्यकता दिखलाते हैं

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ ५९॥

इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी तो आसक्ति भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है॥*

आसक्तिका नाश और इन्द्रियसंयम नहीं होनेसे क्या हानि है? इसपर कहते हैं

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ ६०॥

हे अर्जुन! आसक्तिका नाश न होनेके कारण ये प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलात्कारसे हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ६१॥

इसलिये साधकको चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे, क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं उसीकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

इस प्रकार मनसहित इन्द्रियोंको वशमें न करनेसे क्या हानि है? यह बात कहते हैं

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ ६२॥

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ ६३॥

क्रोधसे अत्यन्त मूढभाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है।

भगवान् इस प्रकार मनसहित इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाले मनुष्यके पतनका क्रम बतलाकर अब साधनद्वारा स्थित पुरुषको जैसे प्रसाद प्राप्त होता है, वह कहते हैं। मनसहित इन्द्रियाँ वशमें होनेपर वे अन्तःकरणकी विषयोंमें विचरण करनेवाले साधकको किस प्रकार और प्रसाद प्राप्त कराती हैं

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ ६४॥

परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा† विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी

---

* परमात्मा एक ऐसी अद्भुत अलौकिक दिव्य आकर्षक वस्तु है जिसके प्राप्त होनेपर इतनी तल्लीनता और तन्मयता होती है कि अपना आपा भी भूल जाता है, फिर किसी दूसरी वस्तुका चिन्तन कौन करे। इसीलिये परमात्माके साक्षात्कारसे आसक्तिके सर्वथा निवृत्त होनेकी बात कही गयी है।

उपर्युक्त श्लोकोंमें तो राग-द्वेषका अत्यन्त अभाव बतलाया। और यह राग-द्वेष इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको बात बताकर राग-द्वेषको सर्वथा अनर्थकी भावना बताया गयी है; जैसे भगवान्के भावीयन प्रसंगमें इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन तीनोंको ही कामका अधिष्ठान कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन्द्रियोंमें राग-द्वेष रहनेपर भी मन या बुद्धिमें सूक्ष्मरूपसे राग-द्वेष रह सकते हैं; परंतु उपर्युक्त श्लोकोंमें अन्य प्रकार सर्वथा समस्त स्थितबुद्धि पुरुषमें राग-द्वेषका सर्वथा अभाव बतलाया गया है, यहाँ केवल इन्द्रियोंमें ही राग-द्वेषके अभावकी बात नहीं है।

† यद्यपि बाह्य विषयोंका त्याग भी भगवत्प्राप्तिमें सहायक है, परंतु जबतक इन्द्रियोंका संयम और राग-द्वेषका त्याग न हो, तबतक केवल बाह्य विषयोंके त्यागसे विषयोंकी पूर्ण निवृत्ति नहीं हो सकती और न कोई सिद्धि ही प्राप्त होती है तथा ऐसी बात भी नहीं है कि बाह्य विषयोंका त्याग किये बिना इन्द्रियसंयम हो ही नहीं सकता, क्योंकि भगवान्की पूजा, सेवा, जप और विवेक-वैराग्य आदि दूसरे उपायोंसे सहज ही इन्द्रियसंयम हो सकता है।

इसी प्रकार इन्द्रियसंयम भी भगवत्प्राप्तिमें सहायक है, परंतु इन्द्रियोंके राग-द्वेषका त्याग हुए बिना केवल इन्द्रिय-संयमसे विषयोंकी पूर्णतया निवृत्ति होकर साधकको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती और ऐसी बात भी नहीं है कि बाह्य विषय-त्याग तथा इन्द्रियसंयम हुए बिना इन्द्रियोंके राग-द्वेषका त्याग हो ही नहीं सकता। भगवान्के स्वभाव और विचारद्वारा सांसारिक भोगोंकी अनित्यताका भाव होनेसे तथा ईश्वरकृपा और भजन-ध्यान आदिसे विषयोंमें इन्द्रियोंके राग-द्वेषका त्याग हो जाता है। उसके लिये बाह्य विषयोंका त्याग और इन्द्रियसंयम अनायास अपने-आप हो जाता है। जिसकी इन्द्रियोंमें विषयोंमें राग-द्वेष नहीं है, वह पुरुष यदि बाह्यरूपसे विषयोंका त्याग न करे तो विषयोंमें विचरण करता हुआ ही परमात्माको प्राप्त कर सकता है; इसलिये इन्द्रियोंका राग-द्वेषसे रहित होना ही मुख्य है।

सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है ॥ ६५ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

उस प्रसन्नतामें (निर्मल चित्तमें) इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है ॥ ६५ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार मन और इन्द्रियोंको वशमें करके बिना राग-द्वेषके इन्द्रियोंद्वारा व्यवहार करनेवाले साधकको सुख-शान्ति और स्थिरबुद्धि प्राप्त होनेकी बात कहकर अब दो श्लोकोंद्वारा इससे विपरीत जिसके मन-इन्द्रिय जीते हुए नहीं हैं, ऐसे विषयासक्त मनुष्यमें सुख-शान्तिका अभाव दिखलाकर विषयोंके संगसे उसकी बुद्धिके विचलित हो जानेका प्रकार बतलाते हैं—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है ? ॥ ६६ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

क्योंकि जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु हर लेती है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है‡ ॥ ६७ ॥

तस्माद् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

इसलिये हे महाबाहो ! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं§, उसीकी बुद्धि स्थिर है ॥ ६८ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो रात्रिके समान है, उस नित्य

---

* मन और इन्द्रियोंद्वारा बिना राग-द्वेषके व्यवहार करनेसे साधकका अन्तःकरण शुद्ध और स्वच्छ हो जाता है, इस कारण उसमें आध्यात्मिक सुख और शान्तिका अनुभव होता है। गीता ... सुख और शान्तिको प्रसाद कहते हैं।

† इससे यह दिखलाया गया है कि परम आनन्द और शान्तिके समुद्र परमात्माका चिन्तन न होनेके कारण अयुक्त मनुष्यका चित्त निरन्तर विक्षिप्त रहता है, उसमें राग-द्वेष, काम-क्रोध और लोभ-ईर्ष्या आदिके कारण हर समय जलन और व्याकुलता बनी रहती है, अतएव उसको शान्ति नहीं मिलती।

‡ यहाँ नौकाके स्थानमें बुद्धि है, वायुके स्थानमें जिसके साथ मन रहता है वह इन्द्रिय है, अन्तःकरणरूप जलाशय समुद्र है और जलके स्थानमें शब्दादि समस्त विषयोंका समुदाय है। जलमें अपने लक्ष्यकी ओर जाती हुई नौकाको प्रबल वायु दो प्रकारसे विचलित करती है—या तो उसे पथभ्रष्ट करके जलकी भीषण तरंगोंमें भटकाती है या अगाध जलमें डुबो देती है; इसी प्रकार जिसके वशमें इन्द्रियाँ नहीं हैं, ऐसा मनुष्य यदि अपनी बुद्धिको परमात्माके स्वरूपमें निश्चल करना चाहता है तो भी उसकी इन्द्रियाँ उसके मनको आकर्षित करके उसकी बुद्धिको दो प्रकारसे विचलित करती हैं। इन्द्रियोंका बुद्धिरूप नौकाको परमात्मासे हटाकर नाना प्रकारके भोगोंकी प्राप्तिका उपाय सोचनेमें लगा देना, उसे भीषण तरंगोंमें भटकाना है और पापोंमें प्रवृत्त करके उसका अधःपतन करा देना, उसे डुबो देना है। परंतु जिसके मन और इन्द्रिय वशमें रहते हैं, उसकी बुद्धिको वे विचलित नहीं करते, वर इन्द्रियरूप नौकाको परमात्माके पास पहुँचानेमें सहायता करते हैं। चौंसठवें और पैंसठवें श्लोकोंमें यही बात कही गयी है।

§ श्रोत्रादि समस्त इन्द्रियोंके जितने भी शब्दादि विषय हैं, उन विषयोंमें बिना किसी रुकावटके प्रवृत्त हो जाना इन्द्रियोंका स्वभाव है; क्योंकि अनादिकालसे जीव इन इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता आया है, इस कारण इन्द्रियोंकी उनमें आसक्ति हो गयी है। इन्द्रियोंकी इस स्वाभाविक प्रवृत्तिको सर्वथा रोक देना, उनमें विषयलोलुपताको परिवर्तित कर देना, उनकी विषयलालसाका अभाव कर देना और मन-बुद्धिको विचलित करनेकी शक्ति न रहने देना—यही उनको उनके विषयोंसे सर्वथा निगृहीत कर लेना है। इस प्रकार जिसकी इन्द्रियाँ वशमें की हुई होती हैं, वह पुरुष जब ध्यानकालमें इन्द्रियोंकी क्रियाओंका त्याग कर देता है, उस समय उसकी कोई भी इन्द्रिय न तो किसी भी विषयको ग्रहण कर सकती है और न अपनी सूक्ष्म वृत्तियोंद्वारा मनमें विक्षेप ही उत्पन्न कर सकती है। उस समय वे सर्वथा शान्त-सी हो जाती हैं और व्यवहारकालमें जब वह देखना, सुनना आदि इन्द्रियोंकी क्रिया करता रहता है, उस समय वे बिना आसक्तिके नियमित रूपसे यथायोग्य शब्दादि विषयोंका ग्रहण करती हैं। किसी भी विषयमें उनकी आसक्ति नहीं रह सकती, वे मनका ही अनुसरण करती हैं। विषयासक्त पुरुष ... के लिये जिस इन्द्रियके द्वारा जिस शास्त्रसम्मत विषयका ग्रहण करना उचित समझता है, वही इन्द्रिय उसे ही ... उसी विषयका ...

आनन्दरूप परमात्माकी महिमामें स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें सब प्राणी जागते हैं, परमात्मतत्त्वको जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है॥ ६९॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥ ७०॥

जैसे नाना नदियोंके जल सब ओरसे परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं,‡ वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं॥ ७०॥

प्रश्न—स्थितप्रज्ञ कैसे चलता है? अर्जुनका यह चौथा प्रश्न परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषके विषयमें ही था, किंतु यह प्रश्न आचरणविषयक होनेके कारण उसके उत्तरमें श्लोक ५५ से यहाँतक जिस प्रकार साधारण मनुष्य स्थितप्रज्ञ बन सकता है, कैसे नहीं बन सकता और जब मनुष्य स्थितप्रज्ञ हो जाता है उस समय उसकी कैसी स्थिति होती है—यह सब कहे जा चुके। अब आगे दो श्लोकोंमें स्थितप्रज्ञ पुरुषके आचरणका फल बतलाते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ ७१॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है,§ वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है॥ ७१॥

प्रहण करती है, उसके विपरीत कोई भी इन्द्रिय किसी भी विषयका ग्रहण नहीं कर सकती। इस प्रकार जो इन्द्रियोंपर पूर्ण आधिपत्य कर लेता है, उनकी स्वच्छन्दताका सर्वथा नाश करके उनको अपने अनुकूल बना लेता है, वही इस श्लोकमें इन्द्रियोंके निग्रहके मन आदिसे सिद्ध होता है।

* जैसे प्रकाशमें एक आँखोंवाला मनुष्य अन्धकारका न देखता है, वैसे ही अज्ञानी अज्ञानके परदेसे अन्धकारमें पड़ा विवेक-विज्ञानके प्रकाशके अभाव तथा अनेक कारण अविवेकी मनुष्य परमप्रकाश नित्य परमानन्दमय परमात्माको नहीं देख पाता। उस परमात्माका साक्षात् प्रकाशित होनेसे ही परम शान्ति और नित्य आनन्दका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वह परमात्मा दिनकी भाँति प्रकाशमय है। वह भी परमात्मामें सुख तथा रहस्य और तत्त्वको न जाननेवाले सांसारिक लोगोंके लिये रात्रिके समान है। जो स्थितप्रज्ञ पुरुषका उस नित्य सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें प्रत्यक्ष करके निरन्तर स्थित रहता है, वही पुरुष उस सम्पूर्ण प्राणियोंकी रात्रिमें जागता है।

† जिस रात्रिमें लगे हुए मनुष्योंका सम्बन्ध ही सुख मनुष्यका कहा रहता है, परमात्माको जाननेवाले महापुरुषका एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं रहती। वह सभी इस दृश्य जगत्को स्वप्नके समान मायामय देखता है, अतएव उसके लिये समस्त सांसारिक भोग और विषयानन्द रात्रिके समान है।

‡ यद्यपि समुद्रकी उपमा देकर स्थितप्रज्ञ पुरुषकी वास्तविक स्थितिका पूर्णतया वर्णन करना सम्भव नहीं है, तथापि उपमाद्वारा उस स्थितिके किसी अंशका लक्ष्य कराया जा सकता है। अतः समुद्रकी उपमासे यह भाव समझना चाहिये कि जिस प्रकार समुद्र अथाह जलसे परिपूर्ण हो रहा है, उसी प्रकार स्थितप्रज्ञ आनन्दसे परिपूर्ण है। जैसे समुद्रको जलकी आवश्यकता नहीं है, वैसे ही स्थितप्रज्ञ पुरुषको भी किसी सांसारिक सुख-भोगकी तनिक-मात्र भी आवश्यकता नहीं है। यह सर्वथा आप्तकाम है। जिस प्रकार समुद्रकी स्थिति अचल है, भारी-से-भारी आँधी-तूफान आनेपर या नाना प्रकारसे नदियोंके जलप्रवाह उसमें प्रविष्ट होनेपर भी वह अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता, मर्यादाका त्याग नहीं करता, उसी प्रकार परमात्माके स्वरूपमें स्थित योगीकी स्थिति भी सर्वथा अचल होती है। बड़े-से-बड़े सांसारिक सुख-दुःखोंका संयोग-वियोग होनेपर भी उसकी स्थितिमें जरा भी अन्तर नहीं पड़ता। वह सच्चिदानन्दघन परमात्मामें नित्य निरन्तर अटल और एकरस स्थित रहता है।

§ मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके सहित शरीरमें जो साधारण अज्ञानी मनुष्योंका आत्माभिमान रहता है, जिसके कारण वे शरीरको ही अपना स्वरूप मानते हैं, अपनेको शरीरसे भिन्न नहीं समझते, उस देहाभिमानका नाम अहंकार है। उससे सर्वथा रहित हो जाना ही 'अहंकाररहित' हो जाना है।

मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके सहित शरीरमें, उनके द्वारा होनेवाले कर्मोंमें, पुत्र, स्त्री और बन्धु-बान्धवोंमें तथा गृह, धन, ऐश्वर्य आदि पदार्थोंमें, अपने द्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें और उन कर्मोंके फलरूप समस्त भोगोंमें साधारण मनुष्य अपना सम्बन्ध है, इसी भावका नाम ममता है और इससे सर्वथा रहित हो जाना ही 'ममतारहित' हो जाना है।

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनके [illegible] देनेके अनन्तर अब [illegible] पुरुषकी स्थितिका [illegible] हुए इस [illegible] उपसंहार करते हैं—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

अर्जुन! यह ब्रह्मको प्राप्त हुए पुरुषकी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्त कालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।

इति श्रीमहाभारते [illegible] श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ [illegible] श्रीभीष्मपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत [illegible] श्रीमद्भगवद्गीतारूप [illegible] ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् [illegible] श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें सांख्ययोग नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ [illegible] छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीमद्भगवद्गीतायां तृतीयोऽध्यायः

ज्ञानयोग और कर्मयोग आदि समस्त साधनोंके अनुसार कर्तव्यकर्म करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन एवं स्वधर्मपालनकी महिमा तथा काम नामक [illegible] का वर्णन

[illegible]

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥

अर्जुन बोले—जनार्दन! यदि आपको कर्मकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर केशव! मुझे भयंकर कर्ममें क्यों लगाते [illegible]

[illegible]

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ २॥

आप मिले हुए-से वचनोंसे मेरी बुद्धिको मानो मोहित कर रहे हैं। इसलिये उस एक बातको निश्चित करके कहिये जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ॥ २॥

[illegible]—इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् उनको निश्चित [illegible] पहलेसे उनके [illegible] हुए यह दिखलाते हैं कि मेरे वचन [illegible] मिले हुए नहीं हैं [illegible] हैं।

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३॥

श्रीभगवान् बोले—हे निष्पाप! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरेद्वारा पहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्ययोगियोंकी निष्ठा तो ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्ठा कर्मयोगसे* होती है॥ ३॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥ ४॥

मनुष्य न तो कर्मोंका आरम्भ किये बिना निष्कर्मताको यानी योगनिष्ठाको प्राप्त होता है और न कर्मोंके केवल त्यागमात्रसे सिद्धि यानी सांख्यनिष्ठाको ही प्राप्त होता है॥ ४॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ ५॥

निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्यसमुदाय

* भगवान्‌के वचनोंके [illegible] बुद्धिमानकी अपेक्षा कर्म [illegible] है। बुद्धिमें ही [illegible] कर [illegible] अर्जुनने [illegible] भगवान् [illegible] मौनी [illegible] और [illegible] बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य-पापोंको यहीं छोड़ देता है (गीता [illegible]) [illegible] कर्मोंका [illegible] बुद्धियुक्त [illegible] कर्मोंमें [illegible] (गीता [illegible]) [illegible] इसके [illegible] (गीता [illegible]) [illegible] (गीता [illegible]) [illegible] (गीता [illegible]) आदि वचनोंसे उन्होंने [illegible] समझी [illegible] वचनोंमें [illegible]।

[illegible] (गीता [illegible]) [illegible] मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण क्रियाओंमें [illegible] अभिमानसे रहित [illegible] किसी भी क्रियामें या उसके फलमें [illegible] [illegible] (गीता [illegible])—यह सांख्यनिष्ठा है।

[illegible] और पारिवारिक [illegible] कर्मोंका [illegible] अनुष्ठान [illegible] कर्मोंमें [illegible] आसक्ति और कामनाका [illegible] सिद्धि और असिद्धिमें [illegible] (गीता [illegible]) [illegible] कर्मों और आसक्ति [illegible] होकर [illegible] (गीता [illegible])—यह कर्मयोगकी निष्ठा है। [illegible] अभिमान [illegible] और [illegible] कर्म और उनका फल भगवान्‌के [illegible] (गीता [illegible]) [illegible] आज्ञा और प्रेरणाके अनुसार उनकी [illegible] कर्मोंमें [illegible] आसक्ति या कामना [illegible] प्रत्येक क्रियामें [illegible] निरन्तर [illegible] चिन्तन करते रहना (गीता [illegible])—यह भक्तिप्रधान कर्मयोगकी निष्ठा है।

[illegible] कर्म और कर्मोंका त्याग [illegible] यह भाव निकलता है कि [illegible] लिये विहित कर्मोंका [illegible] निष्ठाकी प्राप्तिमें बाधक है [illegible] किन्तु केवल [illegible] सिद्धि [illegible] त्याग करके [illegible] होना आवश्यक है [illegible] कर्मोंका [illegible] त्याग [illegible] नहीं है [illegible] और [illegible] लिये [illegible] कर्मोंका त्याग [illegible] विशेष है।

मर्यादानुसार चेष्टामात्र सम्बन्ध हुआ कर्म करनेके लिये बाध्य किया जाता है।

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें यह बात कही गयी कि कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रहता, इसपर यह शङ्का होती है कि इन्द्रियोंकी क्रियाओंको हठसे रोककर मनुष्य कर्मोंका त्याग कर सकता है, इसपर कहते हैं—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

जो मूढबुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥

किंतु हे अर्जुन! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियोंद्वारा कर्मयोगका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

सम्बन्ध—अर्जुनने जो यह पूछा था कि आप मुझे घोर कर्ममें क्यों लगाते हैं, उसका उत्तर देते हुए भगवान् तीन श्लोकोंमें अर्जुनको विहित कर्म करनेके लिये आज्ञा देते हैं—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

सम्बन्ध—यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि शास्त्रविहित यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्म भी तो बन्धनके हेतु माने गये हैं, फिर कर्म करनेवाला मुक्त कैसे होगा? इसपर कहते हैं—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

यज्ञके निमित्त किये जानेवाले कर्मोंसे अतिरिक्त दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ ही यह मनुष्यसमुदाय कर्मोंसे बँधता है। इसलिये हे अर्जुन! तू आसक्तिसे रहित होकर उस यज्ञके निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्यकर्म कर।

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने यह बात कही कि यज्ञके निमित्त किये जानेवाले कर्म मनुष्यको बन्धनमें नहीं डालते; इसपर यह जिज्ञासा होती है कि [illegible] किसको कहते हैं और उसे करना चाहिये क्यों? इसलिये ब्रह्माजीके वचनोंका प्रमाण देकर मनुष्यको कर्तव्यकर्म करनेकी आवश्यकता इन श्लोकोंमें बतलानेके लिये पहले ब्रह्माजीके वचनोंका प्रसङ्ग कहते हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंको

यद्यपि गुणातीत ज्ञानी पुरुषका गुणोंसे उनके कार्योंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, अतः वह गुणोंके वशमें होकर कर्म करता है, यह कहना नहीं बन सकता; तथापि मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ [illegible] गुणोंसे ही उनका उत्पत्ति होती है, इसलिये उनके द्वारा स्वभावसे ही लोक-व्यवहारानुसार क्रियाका होना अनिवार्य है। इसलिये यह गुणोंका कार्य होनेसे गुणोंसे अतीत नहीं है, बल्कि उस ज्ञानीका शरीर सर्वथा अतीत हो जाता है गुणातीत हो जाता है।

यहाँ 'कर्मेन्द्रियाणि' शब्द पारिभाषिक नहीं है; इसलिये जिनके द्वारा मनुष्य बाहरसे क्रिया करता है, जो शब्दादि विषयोंका ग्रहण करता है, उन श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण तथा वाणी [illegible] उपस्थ और इन सभी इन्द्रियोंका वाचक है; क्योंकि गीतामें वागादि पाँच इन्द्रियोंके लिये कहीं भी 'कर्मेन्द्रिय' शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। इनके सिवा यहाँ कर्मेन्द्रियोंका वाचक वाणी आदि पाँच इन्द्रियाँ मान लेनेसे कान, नेत्र आदि इन्द्रियोंको रोकनेकी बात शेष रह जाती है और उनके रह जानेसे मिथ्याचारीका लक्षण भी पूरा नहीं बनता। तथा वाणी आदि इन्द्रियोंको रोककर श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे वह क्या करता है, यह बात भी एक बतलानी आवश्यक हो जाती है।

यहाँ 'विशिष्यते' पदका अभिप्राय कर्मयोगीको पूर्वश्लोकमें वर्णित मिथ्याचारीकी अपेक्षा ही श्रेष्ठ बतलाना नहीं है; क्योंकि पूर्वश्लोकमें वर्णित मिथ्याचारी तो आसुरी सम्पदावाला दम्भी है, उसकी अपेक्षा तो सकामभावसे विहित कर्म करनेवाला मनुष्य भी बहुत श्रेष्ठ है; फिर दैवी सम्पदायुक्त कर्मयोगीको मिथ्याचारीकी अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाना तो किसी वेश्याकी अपेक्षा सती स्त्रीको श्रेष्ठ बतलानेकी भाँति कर्मयोगीकी स्तुतिमें निन्दा करनेके समान है। अतः यहाँ यही मानना ठीक है कि 'विशिष्यते' पद कर्मयोगीको सर्वश्रेष्ठ बतलाकर उसकी प्रशंसा करता है।

इस श्लोकमें भगवान्‌ने अर्जुनके उस प्रश्नका निराकरण किया है, जिसमें अर्जुनने यह शङ्का किया था कि भगवान्‌के मतमें कर्म करनेकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है। अभिप्राय यह है कि कर्तव्यकर्म करनेसे मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा कर्तव्यकर्मोंका त्याग करनेसे वह पापका भागी होता है; इस लिये आलस्य और प्रमादसे [illegible] आसक्तिसे प्राप्त होता है। गीता [illegible] अतः कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना सर्वथा श्रेष्ठ है।

देखकर उनसे कहा कि तुमलोग हम सबके द्वारा इन्द्रियों [illegible] अब होओ और यह सब तुमलोगोंका [illegible] महान् [illegible] हो।



मुक्त हो जाते हैं और वे पापीलोग भगवा [illegible] करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं [illegible] पापका ही खाते हैं।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

तुमलोग इस यज्ञ द्वारा [illegible] उन्नत करो और [illegible] देवता तुमलोगोंको उन्नत [illegible] प्रकार [illegible] एवं दूसरेको उन्नत करते हुए [illegible] हो जाओगे।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥

[illegible] बढ़ाये हुए देव [illegible] बिना मा[illegible] ही इन्द्रिय भोग [illegible] जो [illegible] देवताओंके द्वारा [illegible] भोगोंको [illegible] बिना [illegible] है [illegible] है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

[illegible] बचे हुए अन्नको [illegible] पुरुष सब पापोंसे

भावार्थ—यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि [illegible] [illegible] मूर्तिपूजक [illegible] कि [illegible] [illegible] प्रतिपादन

समस्त मनुष्योंके लिये सब आत्म [illegible] और परिस्थितियोंके [illegible] [illegible] इन्द्रिय [illegible] [illegible] शुद्ध [illegible] [illegible] हो [illegible] है उसका नाम यज्ञ है।

[illegible] प्रकार [illegible] एक दूसरेको उनका [illegible] [illegible] सेवा पूजा [illegible] [illegible] [illegible] देवताओंकी सेवा पूजा [illegible] [illegible] [illegible] पहुँचाते

देवताओंको तृप्ति [illegible] मनुष्योंका सुख पहुँचानेके लिये उनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके निमित्त [illegible] [illegible] सहित सबकी पुष्टि [illegible] [illegible] आदि मनुष्योंकी [illegible] मनुष्योंसे [illegible] देवताओंका [illegible] बिना उनका [illegible] [illegible] है [illegible] है।

सृष्टिकालमें सृष्टिकर्ताने [illegible] और सृष्टिके जीवोंका [illegible] [illegible] परस्पर सम्बन्ध है देवता सृष्टि [illegible] मनुष्य और अन्य प्राणी [illegible] [illegible] होती है देवता [illegible] [illegible] [illegible] और हित चाहते हैं मनुष्य कर्मोंके द्वारा सबकी सेवा करते हैं और [illegible] [illegible] [illegible] लिये रहते हैं [illegible] अधिकार [illegible] कारण सबकी पुष्टिका दायित्व मनुष्यपर है इसलिये मनुष्य [illegible] कर्मोंके द्वारा सबकी सेवा करता है [illegible] [illegible] है इस लिये मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह जो कुछ भी कमावे उसमें [illegible] [illegible] क्योंकि वह सबकी सहायता और सहयोगसे ही कमाता है इसीलिये जो यज्ञ [illegible] बचे हुए [illegible] अर्थात् [illegible] प्राप्य भाग देकर उससे बचे हुए अन्नको खाता है [illegible] [illegible] [illegible] है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ १४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ १५॥

सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है, वृष्टि यज्ञसे होती है और यज्ञ विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है। कर्मसमुदायको तू वेदसे उत्पन्न और वेदको अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ जान। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञमें प्रतिष्ठित है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ १६॥

हे पार्थ! जो पुरुष इस लोकमें इस प्रकार परम्परासे प्रचलित सृष्टिचक्रके अनुकूल नहीं बरतता, अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, वह इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है।*

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ १७॥

परन्तु जो मनुष्य आत्मामें ही रमण करनेवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मामें ही सन्तुष्ट हो, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है।†

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ १८॥

क्योंकि उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता।

सम्बन्ध—यहाँतक भगवान्‌ने अनेक हेतुओंसे यह बात सिद्ध की कि अर्जुनको अपने कर्तव्यकर्मका पालन करना चाहिये; अब उस कर्तव्यका पालन किस प्रकार करना चाहिये, इसका निर्देश करते हुए भगवान् कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ १९॥

इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्यकर्मको भलीभाँति करता रह। क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥ २०॥

जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे।‡ इसलिये तथा लोकसंग्रहको देखते हुए भी तू कर्म करनेके ही योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है।§

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ने अर्जुनको लोकसंग्रहकी ओर देखते हुए कर्मोंका करना उचित बतलाया, इसपर यह जिज्ञासा

---

*मनुष्यके द्वारा की जानेवाली शास्त्रविहित क्रियाओंसे यज्ञ होता है, यज्ञसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न होता है, अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, पुनः उन प्राणियोंमेंसे ही अन्तर्गत मनुष्योंके द्वारा किये हुए कर्मोंसे यज्ञ और यज्ञसे वृष्टि होती है; इस तरह यह सृष्टिचक्र परम्परासे चलता आ रहा है।

†उपर्युक्त विशेषणोंसे युक्त महापुरुष परमात्माको प्राप्त है, अतएव उसके समस्त कर्तव्य समाप्त हो चुके हैं, वह कृतकृत्य हो गया है; क्योंकि मनुष्यके लिये जितना भी कर्तव्यका विधान किया गया है, उन सबका उद्देश्य केवलमात्र एक परम कल्याणस्वरूप परमात्माको प्राप्त करना है। अतएव वह उद्देश्य जिसका पूर्ण हो गया, उसके लिये कुछ भी करना शेष नहीं रहता, उसके कर्तव्यकी समाप्ति हो जाती है।

‡राजा जनककी भाँति ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग करके केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही कर्म करनेवाले अश्वपति, इक्ष्वाकु, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि जितने भी महापुरुष हो चुके हैं, वे सब प्रधान प्रधान महापुरुष आसक्तिरहित कर्मोंके द्वारा ही परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे तथा और भी आजतक बहुत-से महापुरुष ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग करके कर्मयोगद्वारा परमात्माको प्राप्त कर चुके हैं; यह कोई नयी बात नहीं है। अतः यह परमात्माकी प्राप्तिका स्वतन्त्र और निश्चित मार्ग है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है।

इसके अतिरिक्त कर्मोंद्वारा जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, उसे परमात्माकी कृपासे तत्त्वज्ञान अपने-आप मिल जाता है (गीता ४।३८) तथा कर्मयोगयुक्त मुनि तत्काल ही परमात्माको प्राप्त हो जाता है (गीता ५।६)—इस बातसे भी इसकी स्वतन्त्रता सिद्ध होती है।

§समस्त प्राणियोंके भरण-पोषण और रक्षणका दायित्व मनुष्यपर है, अतः अपने वर्ण, स्वभाव, आश्रम और

होते हैं कि वे कर्मोंके किस प्रकार लोकसंग्रह होता है? इस बातको समझानेके लिये कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ २१॥

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है*॥ २१॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ २२॥

हे अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ॥ २२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ २३॥

क्योंकि हे पार्थ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मोंमें न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं॥ २३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ २४॥

इसलिये यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और मैं संकरताका करनेवाला होऊँ तथा इस समस्त प्रजाको नष्ट करनेवाला बनूँ‡॥ २४॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥ २५॥

हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान् भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे§॥ २५॥

विधिपूर्वक अनुष्ठान [illegible] आचरण [illegible] स्थापित रखना [illegible] आवश्यक है।

[illegible] अनुसार [illegible] उचित है [illegible] अनुसार कर्म करते रहना उचित है [illegible] किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

* श्रेष्ठ पुरुष स्वयं आचरण करके और [illegible] प्रामाणिक कर देता है [illegible] मनुष्यको [illegible] करना चाहिये [illegible] मनुष्य चेष्टा करने लग जाते हैं।

बहुत लोग [illegible] मानते हैं [illegible] किस प्रकार [illegible] उसी प्रकार करते [illegible] नहीं [illegible] स्वार्थ और [illegible] लोक [illegible] करनेकी रीति [illegible] सभी सावधानीके साथ विधिवत् [illegible] भी असावधानी नहीं करता।

‡ जिस समय वर्णाश्रमके [illegible] लोगोंमें [illegible] प्रकारकी [illegible] आती है [illegible] मनुष्य [illegible] और [illegible] एक दूसरेका नाश [illegible] सुख [illegible] विधवाओं [illegible] इस प्रकार [illegible] नयी-नयी दैवी विपत्तियाँ भी आने लगती हैं, जिनके कारण [illegible] और [illegible] नष्ट हो जाती हैं [illegible] महामारी [illegible] अनावृष्टि [illegible] और [illegible] उत्पात होने लगते हैं। इससे समस्त प्रजाका विनाश हो जाता है। अतः भगवान्‌ने यहाँ [illegible] यह भाव दिखलाया है कि यदि मैं शास्त्रविहित [illegible] कर्मोंका त्याग कर दूँ तो मुझे [illegible] लोगोंको [illegible] सबका [illegible] बनना पड़े।

§ स्वाभाविक स्नेह, आसक्ति और अभिलाषा [illegible] माता अपने पुत्रका जिस प्रकार [illegible] उत्साह और तत्परताके साथ लालन-पालन करती है, [illegible] इसी तरह जिन मनुष्योंकी कर्मोंमें और उनसे प्राप्त होनेवाले भोगोंमें स्वाभाविक आसक्ति होती है और उनका विधान करनेवाले शास्त्रोंमें [illegible] होता है, वह जिस प्रकार [illegible] श्रद्धा और विधिपूर्वक शास्त्रविहित कर्मोंका [illegible] करता है, उस प्रकार जिनकी शास्त्रोंमें श्रद्धा और शास्त्रविहित कर्मोंमें [illegible] नहीं है, वे मनुष्य नहीं कर सकते। [illegible]

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥ २६॥

परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रविहित कर्मोंमें आसक्तिवाले अज्ञानियोंकी बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मोंमें अश्रद्धा उत्पन्न न करे, किंतु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म भलीभाँति करता हुआ उनसे भी वैसे ही करवावे॥ २६॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥ २७॥

वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं, तो भी जिसका अन्तःकरण अहंकारसे मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है॥ २७॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥ २८॥

परंतु हे महाबाहो! गुणविभाग और कर्मविभागके तत्त्वको जाननेवाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं, ऐसा समझकर उनमें आसक्त नहीं होता॥ २८॥

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥ २९॥

प्रकृतिके गुणोंसे अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणोंमें और कर्मोंमें आसक्त रहते हैं, उन पूर्णतया न समझनेवाले मन्दबुद्धि अज्ञानियोंको पूर्णतया जाननेवाला ज्ञानी विचलित न करे॥ २९॥

सम्बन्ध—[illegible]

—[illegible] गीता ३।[illegible]

—[illegible]

[illegible] आसक्ति और [illegible] शास्त्रविहित कर्मोंका विधिपूर्वक [illegible] अनुष्ठान करना चाहिये।

[illegible]

† वास्तवमें आत्माका कर्मोंसे [illegible] न होनेपर भी अज्ञानी मनुष्य [illegible] अहंकारसे [illegible] कर्मोंका कर्ता मान लेता है—अर्थात् मैं निश्चय करता हूँ, मैं [illegible] करता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं देखता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ, सोता हूँ, चलता हूँ, इत्यादि प्रकारसे हरेक क्रियाको अपने द्वारा की हुई समझता है।

‡ त्रिगुणात्मक मायाके कार्यरूप पाँच महाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और शब्दादि पाँच विषय—इन सबके समुदायका नाम गुणविभाग है और इनकी परस्पर चेष्टाओंका नाम कर्मविभाग है। इन गुणविभाग और कर्मविभागसे आत्माको पृथक् अर्थात् निर्लेप जानना ही इनका तत्त्व जानना है।

§ कर्मोंमें लगे हुए अधिकारी सकाम मनुष्योंको [illegible] ऐसा उपदेश देकर शास्त्रविहित कर्मोंसे हटाना या उनमें उनकी श्रद्धा और विश्वास कम कर देना उचित नहीं है; क्योंकि ऐसा करनेसे उनके पतनकी सम्भावना है।

१ [illegible] कर्मोंके बिना [illegible] नहीं रह सकता। (गीता ३। ५)

७—[illegible] कर्मोंका त्याग [illegible] विषयोंका चिन्तन [illegible] मिथ्याचार है। (गीता ३। ६)

८ मन-इन्द्रियोंको [illegible] विषयासक्तिरहित कर्म [illegible] श्रेष्ठ है। (गीता ३। ७)

९—कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। (गीता ३। ८)

[illegible]—बिना कर्म किये [illegible] निर्वाह भी नहीं हो सकता। (गीता ३। ८)

—[illegible] [illegible] नहीं [illegible] (गीता ३। ९)

[illegible]

[illegible] (गीता ३। ११)

१० [illegible] (गीता ३। १३)

११—[illegible] (गीता ३। १६)

१२ [illegible]

१३—[illegible] (गीता ३। २०)

१४ [illegible] (गीता ३। २५)

१५ [illegible] (गीता ३। २६)

१६—[illegible] (गीता ३। २८)

१७ [illegible] (गीता ३। २९)

१८ [illegible] (गीता ३। २५)

१९ —[illegible] कर्मोंका त्याग [illegible] उपदेश देकर [illegible] (गीता ३। २६)

—[illegible] महापुरुषका उचित है कि विहित कर्मोंका [illegible] (गीता ३। २९)

इस प्रकार कर्मोंकी [illegible] प्रतिपादन करके [illegible] भगवान् अर्जुनको [illegible]

[illegible]

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ ३०॥

मुझ अन्तर्यामी परमात्मामें [illegible] सम्पूर्ण कर्मोंको [illegible] आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध कर।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥ ३१॥

[illegible] मनुष्य [illegible] अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥ ३२॥

परंतु जो मनुष्य [illegible] इन मूर्खोंको तू सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित [illegible]

[illegible]

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ ३३॥

* [illegible] और [illegible] सर्वज्ञ [illegible] चिन्तन करते [illegible] सर्वाधार [illegible] परम सुहृद् [illegible] इन्द्रियोंसहित शरीर [illegible] कर्मोंको और [illegible] समझना और [illegible] कुछ भी करनेकी [illegible] नहीं है [illegible] मैं तो केवल निमित्तमात्र—इस प्रकार [illegible] भगवान्‌के अधीन [illegible] कर्मोंको [illegible] न रखकर [illegible] समस्त कर्मोंको भगवान्‌में समर्पण कर देना है।

सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं*। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है, फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा।

सम्बन्ध—इस प्रकार मनुष्यके प्रकृतिके अनुसार कर्म करने वाले हैं तो फिर मनुष्य कल्याणके लिये क्या करे—इस जिज्ञासापर कहते हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ ३४॥

इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।

सम्बन्ध—यह अर्जुनके मनमें यह बात आ सकती है कि मैं यह युद्धरूप घोर कर्म न करके यदि भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करता हुआ शान्तिमय कर्मोंमें लगा रहूँ तो सम्भव है राग-द्वेषसे छूट सकता हूँ, फिर आप मुझे युद्ध करनेके लिये क्यों कहते हैं? इसपर भगवान् कहते हैं—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ३५॥

अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है†। अपने धर्ममें तो मरना भी कल्याणकारक है‡ और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।

सम्बन्ध—मनुष्यका स्वधर्मपालन करनेमें ही कल्याण है, परधर्मका नहीं। फिर मनुष्य अपना कल्याण चाहते हुए भी क्यों पापोंमें प्रवृत्त हो जाता है, यह जाननेकी इच्छासे अर्जुन पूछते हैं—

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ ३६॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?

---

* इससे यह भाव दिखलाया गया है कि जिस प्रकार गङ्गा आदि नदियोंका जल स्वाभाविक ही समुद्रकी ओर बहता है, उनके प्रवाहको हठपूर्वक रोका नहीं जा सकता, उसी प्रकार प्राणी अपनी-अपनी प्रकृतिके अधीन होकर प्रकृतिके प्रवाहमें पड़े हुए प्रकृतिकी ओर जा रहे हैं; इसलिये हठपूर्वक मनुष्य सर्वथा कर्मोंका त्याग नहीं कर सकता। हाँ, जिस तरह नदीके प्रवाहका एक ओरसे दूसरी ओर घुमा दिया जा सकता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने उद्देश्यको परिवर्तन करके उस प्रवाहकी चालको बदल सकता है; अतः राग-द्वेष छोड़कर उन कर्मोंको परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक बना सकता है।

† जिस प्रकार नाना प्रकारके व्यापार करनेके लिये गाँवमें जाकर विष मिलाकर खाद्य-पदार्थ बेचनेवाले लुटेरोंका और ठग आदि भेष बनाकर कर्मकाण्डी आदि बनकर उनके द्वारा अपनी जीविका चलानेवाले मनुष्य सुन्दरता, प्रलोभन देकर अपनी बातोंमें फँसा लेते और उसे अपने गन्तव्य स्थानकी ओर न जाने देकर विपरीत रास्तेपर ले जाते और उसका सर्वस्व लूटकर उसे गहरे गड्ढेमें गिरा देते हैं, उसी प्रकार ये राग-द्वेष कल्याणमार्गमें आगे बढ़नेवाले साधकको विषयोंका भोग दिखलाकर उसके मन और इन्द्रियोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं और उनकी विवेकशक्तिको नष्ट करके तथा उसे सांसारिक विषयभोगोंके सुखका प्रलोभन देकर पापाचारमें प्रवृत्त कर देते हैं। इससे उसका साधनक्रम नष्ट हो जाता है और परिणाममें वह घोर नरकोंमें पड़कर भयानक दुःखोंका उपभोग करता रहता है।

‡ वैश्य और क्षत्रिय आदिकी अपेक्षा ब्राह्मणके विशेष धर्मोंमें अहिंसादि सद्गुणोंकी बहुलता है; गृहस्थकी अपेक्षा संन्यास आश्रमके धर्मोंमें सद्गुणोंकी बहुलता है। इसी प्रकार शूद्रकी अपेक्षा वैश्य और क्षत्रियके कर्म अधिक गुणयुक्त हैं। अतः यह भाव समझना चाहिये कि जो कर्म गुणयुक्त हो और जिसका अनुष्ठान भी पूर्णतया किया गया हो, किंतु वह अनुष्ठान करनेवालेके लिये विहित न हो, दूसरेके लिये ही विहित हो, वैसे परधर्मकी अपेक्षा गुणरहित स्वधर्म ही अति उत्तम है। जैसे देखनेमें कुरूप और गुणहीन होनेपर भी अपना पति ही पतिव्रता स्त्रीके लिये कल्याणप्रद है, उसी प्रकार देखनेमें सद्गुणोंसे हीन होनेपर तथा अनुष्ठानमें अङ्ग-वैगुण्य हो जानेपर भी जिसके लिये जो कर्म विहित है, वही उसके लिये कल्याणकर है; फिर जो स्वधर्म सर्वगुणसम्पन्न है और जिसका साङ्गोपाङ्ग पालन किया जाता है, उसकी विशेषतामें तो कहना ही क्या है।

§ किसी प्रकारकी आपत्ति आनेपर मनुष्य अपने धर्मसे न डिगे और उसका पालन करता हुआ मर भी जाय तो वह मरना भी उसके लिये कल्याणकारक हो जाता है।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

श्रीभगवान् बोले—रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला [illegible] अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

भाव—यहाँ [illegible] कि यह काम मनुष्यको किस प्रकार [illegible] [illegible] करता है।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥

जिस प्रकार धुएँसे अग्नि और मैलसे दर्पण ढका जाता है तथा जिस प्रकार जेरसे गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस कामके द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥

और [illegible] इस अग्निके समान कभी न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियोंके नित्य वैरीके द्वारा मनुष्यका ज्ञान ढका हुआ है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—ये सब इसके वासस्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञानको आच्छादित करके जीवात्माको मोहित करता है।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

इसलिये हे अर्जुन! तू पहले इन्द्रियोंको वशमें करके इस ज्ञान और विज्ञानका नाश करनेवाले महान् पापी कामको अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे पर यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं; इन इन्द्रियोंसे पर मन है, मनसे भी पर बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त पर है वह आत्मा है॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥४२॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥४३॥

इस प्रकार बुद्धिसे पर अर्थात् सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ भीष्मपर्वणि तु सप्तविंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतारूप उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्ररूप श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें कर्मयोग नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ भीष्मपर्वमें सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

काम अपनी मोहिनी शक्तिके द्वारा [illegible] द्वारा [illegible] बना रहता है [illegible] इसके [illegible] ज्ञान [illegible] में साधनोंमें बाधा पहुँचाता रहता है, इसी कारण [illegible] नहीं हो पाते [illegible] इसको [illegible] नाश [illegible] बतलाया गया है।

आत्मा सबका आधार, अत्यन्त प्रकाशक और पर तथा सूक्ष्म, व्यापक, बलवान् और नित्य [illegible] होनेके कारण उसे [illegible] पर कहा गया है।

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और जीव—इन सभीका [illegible] आत्मा है। [illegible] इन्द्रियोंकी [illegible] लिये इन्द्रियोंसे [illegible] है [illegible] शरीर [illegible] जीवात्मा [illegible] करनेवाला है। [illegible] मन और बुद्धि [illegible] बलवान् [illegible] है [illegible] किया [illegible] है। इसीलिये [illegible] मन और आत्माको [illegible] बुद्धि [illegible] है।

भगवान्‌ने [illegible] इसके [illegible] अभ्यास और वैराग्य—[illegible] बतलाये हैं [illegible] प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें [illegible] राग-द्वेष [illegible] रहता है। [illegible] इन्द्रियोंका [illegible] राग-द्वेष [illegible] अवसर [illegible] बुद्धिसे विचार करना [illegible] राग-द्वेष [illegible] बुद्धि [illegible] इन्द्रियोंके [illegible] दुःख और दोषोंका बार-बार दर्शन कराकर [illegible] उत्पन्न [illegible] वैराग्य है और [illegible] समय [illegible] परमेश्वरके चिन्तनमें [illegible] और [illegible] परमेश्वरका [illegible] बार नियुक्त करना अभ्यास है।

[illegible] ही आत्मा [illegible] है [illegible] को मार सकता है। [illegible] और [illegible] स्वतन्त्र और [illegible] है [illegible] और जैसे [illegible] वैसे ही आत्मा भी [illegible] बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके अधीन [illegible] अनुभूति दे रहा है। [illegible] बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ [illegible] काम [illegible] उसे [illegible] रहता है। अतएव यह आवश्यक है कि आत्मा अपने [illegible] और [illegible] बुद्धि, मन और इन्द्रियोंको वशमें करे [illegible] ही [illegible] सकता है। [illegible] लिये यही तरीका है। इसलिये बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके कामको मारना चाहिये।

अष्टाविंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीतायां चतुर्थोऽध्याय:)

सगुण भगवान्‌के प्रभाव, निष्काम कर्मयोग तथा योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमाका वर्णन करते हुए विविध यज्ञों एवं ज्ञानकी महिमाका वर्णन

सम्बन्ध—तीसरे अध्यायमें भगवान्‌ने चौथे श्लोकसे लेकर उनतीसवें श्लोकतक अनेक प्रकारसे विहित कर्म करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन करके तीसवें श्लोकमें भक्तिप्रधान कर्मयोगकी विधिसे ममता, आसक्ति और कामनाका सर्वथा त्याग करके भगवदर्पणबुद्धिसे कर्म करनेकी आज्ञा दी और इकतीसवेंसे पैंतीसवें श्लोकतक उस सिद्धान्तके अनुसार कर्म करनेवालोंकी प्रशंसा और न करनेवालोंकी निन्दा करके राग-द्वेषसे रहित होकर स्वधर्मपालनपर जोर दिया; फिर छत्तीसवें श्लोकमें अर्जुनके पूछनेपर सैंतीसवेंसे अन्ततक कामको पापोंका कारण बतलाकर उसे मारनेके लिये कहकर अध्यायकी समाप्ति की। अब उस कर्मयोगकी परम्परा बतलाकर उसकी अनादिता सिद्ध करते हुए कहते हैं—

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥१॥

श्रीभगवान् बोले—मैंने इस अविनाशी योगको सूर्यसे कहा था, सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा॥१॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥२॥

हे परन्तप अर्जुन! इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना; किन्तु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया॥२॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥३॥

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है; क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखनेयोग्य विषय है†॥३॥

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥४॥

अर्जुन बोले—आपका जन्म तो अर्वाचीन—अभी हालका है और सूर्यका जन्म बहुत पुराना है अर्थात् कल्पके आदिमें हो चुका था। तब मैं इस बातको कैसे समझूँ कि आपहीने कल्पके आदिमें सूर्यसे यह योग कहा था?॥४॥

गीताके दूसरे अध्यायमें उनचालीसवें श्लोकसे कर्मयोगका वर्णन आरम्भ करके भगवान्‌ने उस अध्यायके अन्ततक कर्मयोगका भलीभाँति प्रतिपादन किया, तीसरे अध्यायमें भी उसका अनेक प्रकारसे प्रतिपादन किया गया। इसके सिवा इस योगकी परम्परा बतलाकर भगवान्‌ने यहाँ सूर्य और मनु आदिके नाम गिनाये हैं; वे भी इसके अधिकारी ही हैं। इससे भी यही योग इस प्रकरणका अभिप्राय ही मानना उचित प्रतीत होता है।

* परमात्माकी आज्ञारूप जो धर्म, कर्तव्य, नीति आदि जितने भी नियम हैं, सभी नित्य हैं; उनका कभी अभाव नहीं होता। जब परमेश्वर नित्य हैं तब उनके नीतिरूप नियम भी अनित्य नहीं हो सकते। जब जगत्‌का महाप्रलय होता है, तब उसके साथ ये नियम भी प्रकट हो जाते हैं और जब जगत्‌का प्रलय होता है, उस समय नियमोंका भी तिरोभाव हो जाता है; परन्तु उनका अभाव कभी नहीं होता। इस प्रकार इस कर्मयोगकी अनादिता सिद्ध करनेके लिये इस श्लोकमें उसे अविनाशी कहा गया है। अतएव यहाँ यह बात नहीं मानी कि यह योग बहुत कालसे नष्ट हो गया; इसका यह अभिप्राय समझना चाहिये कि बहुत समयसे इस पृथ्वीलोकमें उसका तत्त्व समझनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंका अभाव-सा हो गया है, इस कारण यह अप्रकाशित हो गया है, अर्थात् इस लोकमें तिरोहित हो गया है; यह नहीं कि उसका अभाव हो गया है।

† इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि यह योग सब प्रकारके दुःखोंसे और बन्धनोंसे छुड़ाकर परमानन्दस्वरूप मुझ परमेश्वरको सुगमतापूर्वक प्राप्त करा देनेवाला है, इसलिये अत्यन्त ही उत्तम और बहुत ही गोपनीय है; इसके सिवा इसका यह भाव भी है कि अर्जुन! तुम्हारे प्रति प्रेम होनेके कारण उसे उत्पन्न करनेवाला और वही योग मैंने तुमसे कहा है, तू मेरा भक्त है—यह समझकर मैंने तो अपना ईश्वरभाव प्रकट किया है, यह भी रहस्यकी बात है।

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले—परंतप अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—[illegible]

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ ॥ ६ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार भगवान्‌के मुखसे [illegible] सुननेपर यह जिज्ञासा होती है कि आप किस-किस समय और किस लिये [illegible] इस प्रकार अवतार धारण करते हैं ? इसपर भगवान् दो श्लोकोंमें [illegible] बतलाते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और [illegible]

* [illegible]

[illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

[illegible]

१ [illegible]

२ [illegible]

स्थापना करनेके लिये ही युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

है भगवान् और [illegible] ही जिनका [illegible] हो गया है, ऐसे [illegible] पुरुषोंका [illegible] नहीं [illegible] है

● [illegible]

यद्यपि [illegible]

† [illegible]

भगवान् [illegible]

[illegible] गीता [illegible]

गीता [illegible]

गीता [illegible]

[illegible] गीता [illegible]

[illegible] है।

[illegible] है।

जो भगवान्‌की शरण ग्रहण कर लेते हैं, उनका उद्धार [illegible] हो जाता है, [illegible] है। [illegible]

पहले भी जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्यप्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ ११॥

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ;† क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं‡॥

सम्बन्ध—यदि यह बात है, तो फिर लोग भगवान्‌को न भजकर अन्य देवताओंकी उपासना क्यों करते हैं? इसपर कहते हैं—

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥ १२॥

इस मनुष्यलोकमें कर्मोंके फलको चाहनेवाले लोग देवताओंका पूजन किया करते हैं; क्योंकि उनको कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ १३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह, गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है।§ इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्मका कर्ता होनेपर

करनेके लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता और जो सब कुछ भगवान्‌का समझकर उनकी आज्ञाका पालन करनेके उद्देश्यसे उनकी सेवारूप कर्मोंको ही समस्त कर्म करते हैं—उन पुरुषोंका वाचक 'ज्ञानतपसा' पद है।

• यहाँ [illegible] प्रसङ्ग नहीं है, [illegible] है तथा पूर्व श्लोकमें भगवान्‌के जन्म-कर्मोंको दिव्य समझनेका फल भगवान्‌की प्राप्ति बतलाया गया है, उसीके प्रसङ्गमें यह श्लोक है। इस कारण यहाँ 'ज्ञानतपसा' का अर्थ आत्मज्ञान न मानकर भगवान्‌के जन्म-कर्मोंकी दिव्यताका ज्ञान ही माना गया है। इस ज्ञानरूप तपके प्रभावसे मनुष्य का भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो जाता है, उसके समस्त पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं, अन्तःकरणमें सब प्रकारके दुर्गुणोंका सर्वथा अभाव हो जाता है और [illegible] वह भगवान्‌के समान [illegible] हो जाता है तथा वह कभी भगवान्‌से अलग नहीं होता, उसको भगवान् सदा ही प्रत्यक्ष रहते हैं—यही उन भक्तोंका ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हो जाना है।

† इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि मेरे भक्तोंके अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न होते हैं, अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भक्त मेरे पृथक्-पृथक् रूप मानते हैं और अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मेरा भजन-स्मरण करते हैं, अतएव मैं भी उनको उनकी भावनाके अनुसार उन उन रूपोंमें ही दर्शन देता हूँ तथा वे जिस प्रकार भिन्न-भिन्न भावसे मेरी उपासना करते हैं, मैं उनसे उसी प्रकार और उसी भावसे ही व्यवहार करता हूँ। जो मेरा चिन्तन करता है उसका मैं चिन्तन करता हूँ, जो मेरे लिये व्याकुल होता है उसके लिये मैं भी व्याकुल हो जाता हूँ, जो मेरा वियोग सहन नहीं कर सकता, मैं भी उसका वियोग नहीं सहन कर सकता; जो मुझे अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, मैं भी उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर देता हूँ; जो ग्वाल-बालोंकी भाँति मुझे अपना सखा मानकर मेरा भजन करते हैं, उनके साथ मैं मित्रके जैसा व्यवहार करता हूँ; जो नन्द-यशोदाकी भाँति पुत्र मानकर मेरा भजन करते हैं, उनके साथ पुत्रके जैसा बर्ताव करके उनका कल्याण करता हूँ; इसी प्रकार रुक्मिणीकी तरह पति समझकर भजनेवालोंके साथ पति-जैसा, हनुमान्‌की भाँति स्वामी समझकर भजनेवालोंके साथ स्वामी-जैसा और गोपियोंकी भाँति माधुर्यभावसे भजनेवालोंके साथ प्रियतम बनकर उनसे बर्ताव करके मैं उनका कल्याण करता हूँ और उनको दिव्य लीला-रसका अनुभव कराता हूँ।

‡ इससे भगवान्‌ने यह दिखलाया है कि लोग मेरा अनुसरण करते हैं, इसलिये यदि मैं इस प्रकार प्रेम और सौहार्दका बर्ताव करूँगा तो दूसरे लोग भी मेरी देखा-देखी एक दूसरेके साथ यथायोग्य प्रेम और सुहृदताका बर्ताव करेंगे। अतएव इस नीतिका जगत्‌में प्रचार करनेके लिये भी ऐसा करना मेरा कर्तव्य है।

§ अनादि कालसे जीवोंके जो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं हो गया है, उन्हींके अनुसार उनमें यथायोग्य सत्त्व, रज और तमोगुणकी न्यूनाधिकता होती है। भगवान् जब सृष्टि-रचनाके समय मनुष्योंका निर्माण करते हैं, तब उन उन गुण और कर्मोंके अनुसार उन्हें ब्राह्मणादि वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि देव, पितर और तिर्यक् आदि दूसरी-दूसरी योनियोंकी रचना भी भगवान् जीवोंके गुण और कर्मोंके अनुसार ही करते हैं। इसलिये इस सृष्टि-रचनादि कर्मोंमें भगवान्‌की किंचिन्मात्र भी विषमता नहीं है। यही भाव दिखलानेके लिये यहाँ यह बात कही गयी है कि मेरे द्वारा चारों वर्णोंकी रचना उनके गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक की गयी है।

आजकल लोग यह पूछा करते हैं कि ब्राह्मणादि वर्णोंको जन्मसे मानना चाहिये या कर्मसे? इसका

भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्ता ही जान *

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥ १४॥

क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥ १५॥

पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं †, इसलिये तू भी पूर्वजोंद्वारा सदासे किये जानेवाले कर्मोंको ही कर ‡

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १६॥

कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? इस प्रकार इसका निर्णय करनेमें बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिये वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भलीभाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभसे अर्थात् कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा §।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥ १७॥

कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्मका

उत्तर यह हो सकता है कि यद्यपि जन्म और कर्म दोनों ही वर्णके अङ्ग हैं, अनेक कारण उनकी पृथकता या एकता ही होती है, तु इन दोनोंमें प्रधानता जन्मकी है। इसलिये जन्मसे ही ब्राह्मणादि वर्णोंका विभाग मानना चाहिये; क्योंकि यदि माता-पिता एक वर्णके हों और किसी प्रकारसे भी उनमें व्यतिक्रम न आवे तो स्वभाव ही कर्मोंमें भी ... एकता नहीं आती, परन्तु माहात्म्य, आहारदोष और कुसंग शिक्षा आदिके कारणोंसे कर्मोंमें कुछ व्यतिक्रम भी हो जाय तो जन्मसे वर्ण मानकर वर्ण-रक्षा हो सकती है, तथापि कर्मशुद्धिकी कम आवश्यकता नहीं है। कर्मके सर्वथा नष्ट हो जानेपर वर्णकी रक्षा बहुत ही कठिन हो जाती है। अतः विवाह और खान-पानादि व्यवहारके लिये तो जन्म-की प्रधानता तथा कल्याणकी प्राप्तिमें कर्मकी प्रधानता माननी चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण होनेपर भी यदि उसके कर्म शास्त्रोचित नहीं हैं तो उसका कल्याण नहीं हो सकता तथा शास्त्रमें सबसे नीचा समझे जानेवाले ... और अन्त्ये भी यदि शास्त्रोचित कर्मादि कम करता है और उससे अपना ... करता है तो कल्याणका भागी होता है।

* इससे भगवान्‌ने कर्मोंमें लिप्तताका भाव प्रकट किया गया है। अभिप्राय यह है कि भगवान्‌का किसी भी कर्ममें राग-द्वेष या अभिमान नहीं होता, ... ही उन कर्मोंमें ममता आदि है; उनमें ... उनकी महिमा ही प्रकट करती है। इस कारण ... भगवान्‌ उन कर्मोंके कर्ता ... भगवान् ... हैं, कर्मोंसे उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ...

† उपर्युक्त प्रकारसे अनुसार यह समझ लेना है कि जिन ... भी ... अपना ... आसक्ति ही है, उन कर्मोंसे उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; उनके कर्मोंमें ... अभिमान भी नहीं है; ... किंचिन्मात्र भी आसक्ति, ममता या कामना नहीं है; अतएव उनको वे कर्म बाँधनेमें नहीं आ सकते—यही ... उपर्युक्त प्रकारसे तत्त्वसे जानना है और इस प्रकार ... भगवान्‌की ही भाँति ममता, आसक्ति, कामना और अहंकारके बिना केवल लोकसंग्रहके लिये ही होते हैं, इसीलिये वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।

‡ जो मनुष्य जन्म-मरणरूप संसारबन्धनसे मुक्त होकर परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त करना चाहता है, जो सांसारिक भोगोंको दुःखमय और क्षणभङ्गुर समझकर उनसे विरक्त हो गया है और जिसे इस लोक या परलोकके भोगोंकी इच्छा नहीं है, उसे मुमुक्षु कहते हैं। अर्जुन भी मुमुक्षु थे और कर्मबन्धनसे भयभीत होकर स्वधर्मरूप कर्तव्यकर्मका त्याग करना चाहते थे; अतएव भगवान्‌ने इन श्लोकोंमें पूर्वकालके मुमुक्षुओंका उदाहरण देकर यह बात समझायी है कि कर्मोंका त्याग देनेमात्रसे मनुष्य उनके बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकता; इसी कारण पूर्वकालके मुमुक्षुओंने भी मेरी, कर्मोंकी दिव्यताका तत्त्व समझकर मेरी ही भाँति कर्मोंमें ममता, आसक्ति, फलेच्छा और अहंकारका त्याग करके निष्कामभावसे अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार उनका आचरण ही किया है।

§ साधारण मनुष्य यही जानते हैं कि शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंका नाम कर्म है, किंतु इतना जान लेनेमात्रसे कर्म-का रहस्य नहीं जाना जा सकता; क्योंकि उनके आचरणमें भावका भेद होनेसे उनके स्वरूपमें भेद हो जाता है। अतः अपने अधिकारके अनुसार कर्तव्य-कर्मोंका आचरणमें लानेके लिये कर्मोंके रहस्यको समझना चाहिये।

स्वरूप भी जानना चाहिये* तथा विकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये†; क्योंकि कर्मकी गति गहन है ॥ १७ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार श्रोताके मनमें कर्मका तत्त्व जाननेकी उत्कण्ठा उत्पन्न करनेके लिये कर्मतत्त्वको गहन बतलाकर अब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् कर्मका तत्त्व समझाते हैं—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

जो मनुष्य कर्ममें अकर्म देखता है और जो अकर्ममें कर्म देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान् है और वह योगी समस्त कर्मोंको करनेवाला है‡।

सम्बन्ध—इस प्रकार कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मदर्शनरूप महत्त्वपूर्ण बातका अब पाँच श्लोकोंमें भिन्न-भिन्न शैलीसे स्पष्टीकरण करनेके लिये कर्म करते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहनेवाले सिद्ध और साधक पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन करके उस विषयको स्पष्ट करते हैं—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं§ तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप

---

* साधारणतः मनुष्य यही समझते हैं कि मन, वाणी और शरीरद्वारा की जानेवाली क्रियाओंका स्वरूपसे त्याग कर देना ही अकर्म यानी कर्मोंसे रहित होना है; किंतु इतना समझ लेनेमात्रसे अकर्मका यथार्थ तत्त्व नहीं जाना जा सकता; क्योंकि भावके अनुसार अकर्म भी कर्म या विकर्मके रूपमें बदल जाता है। अतः किस भावसे किस प्रकार की हुई कौन-सी क्रिया या उसके त्यागका नाम अकर्म है एवं किस स्थितिमें किस मनुष्यको किस प्रकार उसका आचरण करना चाहिये—इस बातको भलीभाँति समझकर पालन करना चाहिये।

† साधारणतः झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि पापकर्मोंका नाम ही विकर्म है—यह प्रसिद्ध है; पर इतना जान लेनेमात्रसे विकर्मका स्वरूप यथार्थ नहीं जाना जा सकता; क्योंकि शास्त्रके तत्त्वको न जाननेवाले अज्ञानी मनुष्य भी पाप मान लेते हैं और पापको भी पुण्य मान लेते हैं। वर्ण, आश्रम और अधिकारके भेदसे जो कर्म एकके लिये विहित होनेसे कर्तव्य कर्म है, वही दूसरेके लिये निषिद्ध होनेसे पाप यानी विकर्म बन जाता है—जैसे यज्ञ करना ब्राह्मणके लिये विहित कर्म है, किंतु वही शूद्रके लिये निषिद्ध कर्म है; ऐसे ही दान लेना, यज्ञ कराना और वेद पढ़ाना आदि जीविकाके कर्म ब्राह्मणके लिये धर्मरूप हैं, किंतु दूसरे वर्णोंके लिये पाप हैं। जैसे शूद्रके लिये यथायोग्य सेवा करना और गृहस्थके लिये ऋतुकालमें स्वपत्नीगमन करना धर्म है, किंतु संन्यासीके लिये आचरण और कामिनीका दर्शन-स्पर्श करना भी पाप है। अतः झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि जो सबके लिये निषिद्ध हैं तथा अधिकारभेदसे जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये निषिद्ध हैं—उन सबका त्याग करनेके लिये विकर्मके स्वरूपको भलीभाँति समझना चाहिये।

‡ यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार जीविका और शरीरनिर्वाहसम्बन्धी जितने भी शास्त्रविहित कर्म हैं—उन सबमें आसक्ति, फलेच्छा, ममता और अहंकारका त्याग कर देनेसे वे इस लोक या परलोकमें सुख-दुःखादि फल भुगतानेके और पुनर्जन्मके हेतु नहीं बनते, बल्कि मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंका नाश करके उसे संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले होते हैं; इस रहस्यको समझना ही कर्ममें अकर्म देखना है। इस प्रकार कर्ममें अकर्म देखनेवाला मनुष्य आसक्ति, फलेच्छा और ममताके त्यागपूर्वक ही विहित कर्मोंका यथायोग्य आचरण करता है; अतः वह कर्म करता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता। इसलिये वह मनुष्योंमें बुद्धिमान् है, वह परमात्माको प्राप्त है, इसलिये योगी है और उसे कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रहता—वह कृतकृत्य हो गया है, इसलिये वह समस्त कर्मोंको करनेवाला है।

क्रियामात्रमें मन, वाणी और शरीरके व्यापारको त्याग देनेका ही नाम अकर्म है; यह त्यागरूप अकर्म भी आसक्ति, फलेच्छा, ममता और अहंकारपूर्वक किया जानेपर पुनर्जन्मका हेतु बन जाता है; इतना ही नहीं, कर्तव्य कर्मोंकी अवहेलना-से या दम्भाचरणके लिये किया जानेपर तो वह विकर्म (पाप) के रूपमें बदल जाता है—इस रहस्यको समझना ही अकर्ममें कर्म देखना है।

§ धन, पुत्र, स्त्री, मकान, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्ग-सुख आदि इस लोक और परलोकके जितने भी विषय (पदार्थ) हैं, उनमेंसे किसीकी किंचिन्मात्र भी इच्छा करनेका नाम 'कामना' है तथा किसी विषयको ममता, आसक्ति, राग-द्वेष एवं रमणीय बुद्धिसे स्मरण करनेका नाम 'संकल्प' है। कामना संकल्पका कार्य है और संकल्प उसका कारण है; विषयोंका स्मरण करनेसे ही उनमें आसक्ति होकर कामनाकी उत्पत्ति होती है (गीता २। ६२)। जिन कर्मोंमें किसी वस्तुके संयोग-वियोगकी किंचिन्मात्र भी कामना नहीं है, जिनमें ममता, आसक्ति और अहंकारका सर्वथा अभाव है और जो केवल लोक-संग्रहके लिये चेष्टामात्र किये जाते हैं—वे सब कर्म कामना और संकल्पसे रहित हैं।

अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥ २० ॥

जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है,† वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

जिसका अन्तःकरण और इन्द्रियोंके सहित शरीर जीता हुआ है और जिसने समस्त भोगोंकी सामग्रीका परित्याग कर दिया है, ऐसा आशारहित पुरुष केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको नहीं प्राप्त होता।‡

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा सन्तुष्ट रहता है,¶ जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है — ऐसा सिद्धि और असिद्धिमें सम रहनेवाला§ कर्मयोगी कर्म

---

* जैसे अग्निद्वारा भुने हुए बीज केवल नाममात्रके बीज रह जाते हैं, उनमें अङ्कुरित होनेकी शक्ति नहीं रहती, उसी प्रकार ज्ञानरूप अग्निके द्वारा जो समस्त कर्मोंमें फल उत्पन्न करनेकी शक्तिका सर्वथा नाश हो जाता है — यही उन कर्मोंका ज्ञानरूप अग्निमें भस्म हो जाना है।

यहाँ अभिप्राय यह दिखलाया गया है कि ममता, अहङ्कार और वासनारहित पुरुष मनुष्य जो कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करके भी कर्मबन्धनसे मुक्त नहीं हो सकता और वह निष्काम पुरुष ममतारहित कर्मोंको करता हुआ भी उनके बन्धनमें नहीं पड़ता।

† आसक्तिका सर्वथा त्याग करके शरीरमें अहङ्कार और ममतासे सर्वथा रहित हो जाना और किसी भी सांसारिक वस्तु या मनुष्यके आश्रित न होना अर्थात् अमुक वस्तु या मनुष्यसे ही मेरा निर्वाह होता है, यही आधार है, इसके बिना काम ही नहीं चल सकता — इस प्रकारके भावोंका सर्वथा अभाव हो जाना ही निराश्रय हो जाना है। ऐसा हो जानेपर मनुष्यको किसी भी सांसारिक पदार्थकी किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं रहती, वह पूर्णकाम हो जाता है। उसे परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जानेके कारण वह निरन्तर सन्तुष्ट बना रहता है। उसकी स्थितिमें किसी भी घटनासे कभी कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता — यही उसका नित्यतृप्त हो जाना है।

जिस मनुष्यको किसी भी सांसारिक वस्तुकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, जो किसी भी कर्मसे या मनुष्यसे किसी प्रकारका भोग प्राप्त करनेकी किंचिन्मात्र भी आशा या इच्छा नहीं रखता, जिसने सब प्रकारकी इच्छा, कामना, वासना आदिका सर्वथा त्याग कर दिया है, उसे निराशी कहते हैं। जिसका अन्तःकरण और समस्त इन्द्रियोंसहित शरीर वशमें है — अर्थात् जिसके मन और इन्द्रियाँ उसके जीते हुए होनेके कारण उनपर शब्दादि विषयोंके संगका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता और जिसके मनमें भी भोग या उनकी स्पृहा है न उनकी चाहना है, वह चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, यतचित्तात्मा है और जिसने किसी भी वस्तुमें ममता नहीं है तथा जिसने समस्त भोग-सामग्रियोंके संग्रहका भली भाँति त्याग कर दिया है, वह संन्यासी हो अथवा त्यक्तसर्वपरिग्रह है ही। इसके सिवा जो गृहस्थ उसमें आसक्तिका भी यदि उपर्युक्त प्रकारसे परित्यागका त्याग कर देता है तो वह भी त्यक्तसर्वपरिग्रह है।

‡ उपर्युक्त पुरुषको न तो शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे होनेवाला प्रत्यवायरूप पाप लगता है और न शरीर-निर्वाहके लिये की जानेवाली क्रियाओंमें होनेवाले पापोंसे ही उसका सम्बन्ध होता है। यही उसका पाप को प्राप्त न होना है।

¶ अनिच्छासे या परेच्छासे प्रारब्धानुसार जो अनुकूल या प्रतिकूल पदार्थकी प्राप्ति होती है, उस यदृच्छालाभ है। उस यदृच्छालाभमें सदा ही आनन्द मानना, न किसी अनुकूल पदार्थकी प्राप्ति होनेपर उसमें राग करना, उसके बने रहनेकी या बढ़नेकी इच्छा करना और न प्रतिकूलकी प्राप्तिमें द्वेष करना, उसके नष्ट हो जानेकी इच्छा करना — इस प्रकार दोनोंको ही प्रारब्ध या भगवान्‌का विधान समझकर निरन्तर शान्त और प्रसन्नचित्त रहना — यही यदृच्छालाभमें सदा सन्तुष्ट रहना है।

§ यज्ञ, दान और तप आदि किसी भी कर्तव्यकर्मका निर्विघ्नतासे पूर्ण हो जाना उसकी सिद्धि है और किसी प्रकार विघ्न-बाधाके कारण उसका पूर्ण न होना ही असिद्धि है। इसी प्रकार जिस उद्देश्यसे कर्म किया जाता है, उस उद्देश्यका पूर्ण हो जाना सिद्धि है और पूर्ण न होना ही असिद्धि है। इस प्रकारकी सिद्धि और असिद्धिमें भेदबुद्धिका न होना अर्थात् सिद्धिमें हर्ष और आसक्ति आदि तथा असिद्धिमें द्वेष और शोक आदि विकारोंका न होना, दोनोंमें एक-सा सम रहना ही सिद्धि और असिद्धिमें सम रहना है।

करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता॥*

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥२३॥

जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गयी है, जो देहाभिमान और ममतासे रहित हो गया है, जिसका चित्त निरन्तर परमात्माके ज्ञानमें स्थित रहता है—ऐसा केवल यज्ञसम्पादनके लिये कर्म करनेवाले मनुष्यके सम्पूर्ण कर्म भलीभाँति विलीन हो जाते हैं॥

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें यह बात कही गयी कि यज्ञके लिये कर्म करनेवाले पुरुषके समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं; वहाँ केवल अग्निमें पुरोडाश आदि करना ही यज्ञ है और उसका सम्पादन करनेके लिये की जानेवाली क्रिया ही यज्ञार्थ क्रिया कहलाती है, इतनी ही बात नहीं है; इसी बातको सुस्पष्ट करनेके लिये अब भगवान् सात श्लोकोंमें भिन्न-भिन्न योगियोंद्वारा किये जानेवाले परमात्माकी प्राप्तिके साधनरूप शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्मोंका भिन्न-भिन्न यज्ञोंके नामसे वर्णन करते हैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥२४॥

जिस यज्ञमें अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ताके द्वारा ब्रह्मरूप अग्निमें आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है†—उस ब्रह्मकर्ममें स्थित रहनेवाले योगीद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है‡॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥२५॥

दूसरे योगीजन देवताओंके पूजनरूप यज्ञका ही भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं§ और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्निमें अभेददर्शनरूप यज्ञके द्वारा ही आत्मरूप यज्ञका हवन किया करते हैं×॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥२६॥

अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियोंको संयम

---

* जिस प्रकार केवल शरीर-निर्वाहके लिये कर्मोंका आचरण करनेवाले परिग्रहरहित त्यागी पुरुष कर्मोंका आचरण न करनेपर भी फल न भोगनेके पापसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार समत्वयुक्त विहित कर्मोंका अनुष्ठान करके भी वह उनसे नहीं बँधता।

† अपने-अपने आश्रम और परिस्थितिके अनुसार जिस मनुष्यका जो शास्त्रविहित विहित कर्तव्य है, वही उसके लिये यज्ञ है। उस शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्मका पालन करनेके उद्देश्यसे ही जो कर्मोंका करना है, अर्थात् किसी प्रकारके स्वार्थका सम्बन्ध न रखकर केवल लोकसंग्रहके लिये यज्ञकी परम्परा सुरक्षित रखनेके लिये ही जो कर्मोंका आचरण करना है, वही यज्ञके लिये कर्मोंका आचरण करना है।

उपर्युक्त प्रकारसे कर्म करनेवाले पुरुषके कर्म, उनके बीजभूत राग-द्वेष और वासना, इनका नाश हो जाता है; वस्तु जिस सामग्रीके द्वारा आगमें डालकर जलाया हुआ नाश हो जाता है और उस सामग्रीका प्रतिपक्ष भी भस्म कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि और अभिमानके सम्बन्धसे अभिन्न भावसे किये हुए कर्म पूर्वसंचित समस्त कर्मोंके सहित विलीन हो जाते हैं; फिर उनका किसी प्रकारका कोई फल देनेकी शक्ति नहीं रहती।

‡ इस यज्ञमें स्रुवा, हवि, हवन करनेवाला और हवनरूप क्रिया आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं होतीं; ऐसा यज्ञ करनेवाले योगीकी दृष्टिमें सब कुछ ब्रह्म ही होता है; क्योंकि वह बिना मन, बुद्धि, इन्द्रियोंद्वारा समस्त जगत्‌को ब्रह्म समझनेका अभ्यास करता है; उसका अवलम्बन करके ब्रह्मकर्ममें स्थित योगी किसी भी वस्तुको ब्रह्मसे भिन्न नहीं समझता, सबको ब्रह्मरूप ही देखता है; इसलिये उसकी उसमें किसी प्रकारकी भी भेदबुद्धि नहीं रहती।

§ ब्रह्मा, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र और वरुणादि जो शास्त्रसम्मत देव हैं—उनके लिये हवन करना, उनकी पूजा करना, उनके मन्त्रका जप करना, उनके निमित्त दान देना और ब्राह्मण-भोजन करवाना आदि समस्त कर्मोंका फलाकाङ्क्षा त्यागकर बिना स्वार्थ आसक्ति और फलकामनाके केवल परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शास्त्रविहित अनुष्ठान पूर्णतया अनुष्ठान करना ही देवताओंके पूजनरूप यज्ञका भलीभाँति अनुष्ठान करना है।

× अनादिसिद्ध अज्ञानके कारण जीवात्मा और परमात्माका भेद अनादिकालसे प्रतीत हो रहा है; इस अज्ञानजनित भेद-प्रतीतिको शास्त्रके अभ्याससे मिटा देना अर्थात् शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे सुने हुए तत्त्वज्ञानका निरन्तर मनन और निदिध्यासन करके नित्य विज्ञानानन्दघन गुणातीत परब्रह्म परमात्मामें अभेदभावसे आत्माको एक कर देना, विलीन कर देना ही ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञके द्वारा यज्ञका हवन करना है।

इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं* और दूसरे योगी लोग शब्दादि समस्त विषयोंको इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन किया करते हैं† ॥ २६ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको ज्ञानसे प्रकाशित आत्मसंयमयोगरूप अग्निमें हवन किया करते हैं‡ ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

कई पुरुष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करनेवाले हैं§, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करनेवाले हैं× तथा दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करनेवाले हैं और कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त

---

* श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—इन पाँचों इन्द्रियोंका व्यवहार करते—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि विषयोंको भीतर [illegible] इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर [illegible] अग्निमें हवन करना है [illegible]

† [illegible] द्वारा निन्दा और स्तुतियों या अन्य किसी प्रकारके अनुकूल या प्रतिकूल शब्दोंको सुनते हुए, नेत्रोंके द्वारा अच्छे-बुरे दृश्योंको देखते हुए, जिह्वाके द्वारा अनुकूल और प्रतिकूल [illegible] ग्रहण करते [illegible] इसी प्रकार अन्य समस्त इन्द्रियोंद्वारा भी प्रारब्धके अनुसार [illegible] समस्त विषयोंका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विकारोंका न [illegible] इन्द्रियोंको [illegible] [illegible] उनको [illegible] न करना—यही शब्दादि विषयोंका इन्द्रियरूप अग्नियोंमें हवन करना है।

‡ इस श्लोकमें ज्ञानयोगी [illegible] मनोनिग्रहपूर्वक इन्द्रियोंको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और चलना फिरना आदि तथा प्राणोंकी [illegible] और हिलना डुलना आदि समस्त क्रियाओंका [illegible] [illegible] हो जाना है—यही [illegible] इन्द्रियोंकी और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंका हवन करना है।

§ अपने अपने [illegible] अनुसार न्यायसे प्राप्त द्रव्यका ममता, आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करके यथायोग्य लोकसेवामें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मन्दिर, धर्मशाला आदि बनवाना, भूखे, अनाथ, रोगी, दुःखी, असमर्थ, भिक्षु आदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] औषध, पुस्तक आदि वस्तुओंद्वारा सेवा करना, [illegible] [illegible] [illegible] भूमि [illegible] आभूषण आदि पदार्थोंका यथायोग्य [illegible] [illegible] अनुसार दान करना—इसी तरह अन्य सब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करना 'द्रव्ययज्ञ' है।

× परमात्माकी प्राप्तिके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मौन धारण करना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शास्त्रविधिके अनुसार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 'तपोयज्ञ' है।

+ यहाँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही अनुष्ठान किया करते हैं।

[illegible] नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अङ्ग हैं।

किसी भी प्राणीको किसी प्रकार किंचिन्मात्र कभी कष्ट न देना (अहिंसा), हितकारी [illegible] [illegible] प्रिय शब्दोंमें यथार्थभाषण (सत्य), किसी प्रकारसे भी किसीके स्वत्व—हकका न चुराना और न छीनना (अस्तेय), मन, वाणी और शरीरसे सम्पूर्ण अवस्थाओंमें सदा सर्वदा सब प्रकारके मैथुनोंका त्याग करना (ब्रह्मचर्य) और [illegible] अतिरिक्त भोग्य सामग्रीका कभी संग्रह न करना (अपरिग्रह)—इन पाँचोंका नाम 'यम' है।

सब प्रकारसे बाहर और भीतरकी पवित्रता रखना (शौच), [illegible] [illegible] [illegible] आदिके प्राप्त होनेपर सदा [illegible] रहना (सन्तोष), एकादशी आदि व्रत उपवास करना (तप), कल्याणप्रद शास्त्रोंका अध्ययन तथा ईश्वरके नाम और गुणोंका कीर्तन करना (स्वाध्याय), समस्त ईश्वरके अर्पण करके उसकी आज्ञाका पालन करना (ईश्वरप्रणिधान)—इन पाँचोंका नाम 'नियम' है।

आनन्दस्वरूप पुरुष आत्मस्वरूप परमात्मामें हवन करनेवाले हैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं † वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं‡ तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करनेवाले प्राणायामपरायण पुरुष प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणोंको प्राणोंमें ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले और

सुखपूर्वक स्थिरतासे बैठनेका नाम आसन है। आसन अनेक प्रकारके हैं। उनमेंसे आत्मसंयम चाहनेवाले पुरुषके लिये सिद्धासन, पद्मासन और स्वस्तिकासन—ये तीन बहुत उपयोगी माने गये हैं। इनमेंसे कोई-सा भी आसन हो, परंतु मेरुदण्ड, मस्तक और ग्रीवाको सीधा अवश्य रखना चाहिये और दृष्टि नासिकाग्रपर अथवा भृकुटीमें (भ्रूमध्यमें) रखनी चाहिये। आलस्य न सतावे तो आँखें मूँदकर भी बैठ सकते हैं। जो पुरुष जिस आसनसे सुखपूर्वक दीर्घकालतक बैठ सके, उसके लिये वही आसन उत्तम है।

बाहरी वायुका भीतर प्रवेश करना श्वास है और भीतरकी वायुका बाहर निकलना प्रश्वास है। इन दोनोंके रुकनेका नाम प्राणायाम है।

देश, काल और संख्याकी मात्राके सम्बन्धसे बाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भवृत्ति—ये तीनों प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—जो इन्द्रियोंके बाहरी विषय हैं और चित्तादि जो अन्तःकरणके विषय हैं, उनका त्याग करके—उनकी उपेक्षा करके अर्थात् विषयोंका चिन्तन न करनेसे स्वाभाविक होनेवाला जो अवरोध होता है, उसका नाम चतुर्थ प्राणायाम है।

अपने-अपने विषयोंके संयोगसे रहित होनेपर इन्द्रियोंका चित्तके स्वरूपमें तदाकार-सा हो जाना प्रत्याहार है।

स्थूल-सूक्ष्म या बाह्य-आभ्यन्तर किसी एक ध्येय स्थानमें चित्तको बाँध देना, स्थिर कर देना या लगा देना धारणा कहलाता है।

चित्तवृत्तिका गङ्गाके प्रवाहकी भाँति या तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपसे ध्येय वस्तुमें ही लगातार चलना ध्यान कहलाता है।

जब ध्यान करते-करते चित्त ध्येयाकारको प्राप्त हो जाता है और ध्याता स्वयं भी अपनेको भूल जाता है, ध्येयसे भिन्न अपने-आपका भी ज्ञान नहीं रह जाता है, उस स्थितिका नाम समाधि है।

• जिस साधनमें भगवान्‌के स्वरूप, उनके गुण, प्रभाव और चरित्रोंका तथा उनके नामका निरन्तर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रवण-मनन है, उन शास्त्रोंका अध्ययन करना, भगवान्‌की स्तुतिका पाठ करना, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करना तथा वेद और शास्त्रोंका अध्ययन करना स्वाध्याय है। इस स्वाध्याय भगवान्‌के विषयमें ज्ञान तथा ममता आसक्ति और कामनासे रहित किये जानेसे स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ कहलाता है। इस इसमें स्वाध्याय शब्द ज्ञान-यज्ञका समास करके यह अर्थ निकलता है कि स्वाध्याय यज्ञ भी ज्ञानयज्ञ ही है। इसलिये गीतामें स्वाध्यायको भी भगवान्‌ने ज्ञानयज्ञ नाम दिया है। गीता ९।७०

† उपर्युक्त प्राणायाममें यहाँ अभिप्रायसे अपानवायु है और इसी स्थानीय प्राणवायु है। अतएव यह समझना चाहिये कि जिसे पूरक प्राणायाम कहते हैं, वहाँ यहाँ अपानवायुमें प्राणवायुका हवन करना है, क्योंकि जब साधक पूरक प्राणायाम करता है, तब बाहरकी वायुको नासिकाद्वारा खींचता है, तब वह बाहरकी वायु हृदयमें स्थित प्राणवायुके साथ उसके नाभिदेशमें होकर अपानमें विलीन हो जाता है। इस भावसे बारम्बार बाहरकी वायुको भीतर ले जाकर वहीं रोका जाता है, इसलिये इसे आभ्यन्तर कुम्भक भी कहते हैं।

इस दूसरे प्राणायाममें यहाँ अभिप्रायसे प्राणवायु है और इसी स्थानीय अपानवायु है। यह समझना चाहिये कि जिसे रेचक प्राणायाम कहते हैं, वहाँ यहाँ प्राणवायुमें अपानवायुका हवन करना है, क्योंकि जब साधक रेचक प्राणायाम करता है तो वह भीतरकी वायुको नासिकाद्वारा बाहर निकालता है, उस समय पहले हृदयमें स्थित प्राणवायु बाहर आकर स्थित हो जाती है, पीछेसे अपानवायु आकर उसमें विलीन होती है। इस भावसे बारम्बार भीतरकी वायुको बाहर निकालकर वहीं रोका जाता है, इसलिये इसे बाह्य कुम्भक भी कहते हैं।

‡ जिस प्राणायाममें प्राण और अपान इन दोनोंकी गति रोक दी जाती है अर्थात् न तो पूरक प्राणायाम किया जाता है और न रेचक, किंतु प्राण और अपानको रोक करके प्राण-अपान आदि सब वायुभेदोंको अपने-अपने स्थानोंमें ही रोक दिया जाता है—वहाँ यहाँ प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणोंको प्राणोंमें हवन करना है। इस साधनको

यज्ञोंको जाननेवाले हैं।* ३०

सम्बन्ध—इस प्रकार यज्ञ करनेवाले साधकोंकी प्रशंसा करके अब उन यज्ञोंका फल बतलाते हुए और न करनेसे होनेवाली हानि दिखलाकर भगवान् उपर्युक्त यज्ञोंके यज्ञ करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन करते हैं—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥ ३१॥

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञसे बचे हुए अमृतका अनुभव करनेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।† और यज्ञ न करनेवाले पुरुषके लिये तो यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है?‡ ३१

सम्बन्ध—पहले चौबीसवें श्लोकसे लेकर यहाँ तक जो [illegible] बतलाये, उन सबको [illegible] भगवान् अर्जुनको [illegible] करते हुए इस प्रकरणका उपसंहार करते हैं—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥ ३२॥

इसी प्रकार और भी बहुत तरहके यज्ञ वेदकी वाणीमें विस्तारसे कहे गये हैं। उन सबको तू मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाद्वारा सम्पन्न होनेवाले जान,§ इस प्रकार तत्त्वसे जानकर उनके अनुष्ठानद्वारा तू कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जायगा। ३२

सम्बन्ध—यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि इन यज्ञोंमेंसे कौन-सा यज्ञ श्रेष्ठ है? इसपर भगवान् कहते हैं—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥ ३३॥

हे परन्तप अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते हैं।¶

बाहरकी वायुको भीतर ले जाकर रोका जाता है और [illegible] भीतरकी वायुको बाहर निकालकर [illegible] अपने-अपने स्थानोंमें स्थित प्राणापानोंको वहीं रोक दिया जाता है, इसलिये इसे केवल कुम्भक कहते हैं।

* इस अध्यायमें चौबीसवें श्लोकसे लेकर यहाँतक जिन यज्ञकर्ताओंके साधनरूप यज्ञोंका वर्णन हुआ है, वे सभी ममता, आसक्ति और फलेच्छासे रहित होकर उपर्युक्त साधनोंका अनुष्ठान करके उनके द्वारा पूर्वसंचित कर्मबन्धनरूप समस्त शुभाशुभ कर्मोंका नाश कर डालते हैं; इसलिये वे यज्ञके तत्त्वको जाननेवाले हैं।

† यहाँ भगवान्‌ने उपर्युक्त यज्ञोंसे बचकर परमात्माकी प्राप्तिके साधनरूप ज्ञान, समता, प्रसन्नता, शान्ति आदि ऐसे भावोंको भी लक्ष्य किया है [illegible] उपर्युक्त [illegible] अनुष्ठान करनेसे साधकोंका अन्तःकरण शुद्ध होकर उसमें वे समताके [illegible] होते हैं। [illegible] यहाँ उनको अमृत [illegible] कहा गया है, क्योंकि यह अमृतस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति [illegible] उस विशुद्ध भावका [illegible] विलक्षण ज्ञान ही यहाँ उस अमृतका अनुभव करना है।

‡ जो मनुष्य उपर्युक्त यज्ञोंमेंसे या इनके सिवा [illegible] भी [illegible] साधनरूप [illegible] किसी है, उनमेंसे कोई-सा भी यज्ञ [illegible] प्रकार भी नहीं करता, उसका यह लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक तो कैसे सुखदायक हो सकता है? [illegible] यह भाव दिखलाया गया है कि उपर्युक्त साधनोंका अधिकार पाकर भी उनमें न लगनेके कारण उसको शान्ति न मिलनेकी तो बात ही नहीं, सुख भी नहीं मिलता और दुःखोंका [illegible] मनुष्य शरीरमें भी कभी शान्ति नहीं मिलती।

§ यहाँ जिन साधनरूप यज्ञोंका वर्णन किया गया है एवं [illegible] और भी जितने [illegible] यज्ञ शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं, वे सभी मन, इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाद्वारा ही होते हैं। उनमें किसी-किसी [illegible] क्रियाका मन और इन्द्रियोंसे एवं किसी क्रियाका मन, इन्द्रिय और शरीर [illegible] इन तीनोंसे [illegible] कोई भी यज्ञ नहीं है, जिसका इन तीनोंमेंसे किसीके साथ सम्बन्ध न हो। इसलिये साधकको चाहिये कि जिस साधनमें इन्द्रिय और शरीरकी क्रियाका या [illegible] आदि मनकी क्रियाका त्याग किया जाता है, उस त्यागरूप साधनको भी कर्म ही समझे और उसे भी फल, कामना, आसक्ति तथा ममतासे रहित होकर ही करे, नहीं तो वह भी बन्धनका हेतु बन सकता है।

¶ जिस यज्ञमें द्रव्यकी अर्थात् सांसारिक वस्तुकी प्रधानता हो, उसे द्रव्यमय यज्ञ कहते हैं। अतः अग्निमें घृत, चावल, जौ, तिल, दूध, दही आदि हविष्य पदार्थोंका तथा चन्दन, कपूर, धूप और सुगन्धयुक्त ओषधियाँ आदि हविका विधिपूर्वक हवन करना, दान देना, परोपकारके लिये कुआँ, बावली, तालाब, धर्मशाला आदि बनवाना, बलिवैश्वदेव करना आदि जितने सांसारिक पदार्थोंसे सम्पन्न होनेवाले शास्त्रविहित शुभकर्म हैं—वे सब द्रव्यमय यज्ञके अन्तर्गत हैं तथा [illegible] विवेक, विचार और आध्यात्मिक ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले साधन हैं, वे सब ज्ञानयज्ञके अन्तर्गत हैं।

उपर्युक्त प्रकरणमें जितने प्रकारके साधनरूप यज्ञ बतलाये गये हैं, एवं इनके सिवा और भी जितने शुभ कर्म-

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ ३४॥

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥ ३५॥

जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन! जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें* और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा†॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥ ३६॥

यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा‡॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ ३७॥

क्योंकि हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनोंको भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्ममय कर देता है§॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ ३८॥

इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है×॥

[illegible] गीता [illegible] में [illegible] दिखलाया है कि [illegible] यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेना है।

[illegible] श्रद्धा और [illegible] पूछना [illegible] है।

श्रद्धा [illegible] सेवा [illegible] मानसिक [illegible] चेष्टा [illegible]।

* महापुरुषोंका [illegible] सम्पूर्ण [illegible] भूतोंको [illegible] देखता है। [illegible]

[illegible] भूतोंको सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखना [illegible] है। [illegible] परमात्मामें [illegible] प्राप्ति और परमात्मामें [illegible] हो जाना भी कहते हैं।

‡ यहाँ भगवान्‌ने [illegible] है कि तुम ज्ञानमें पापी नहीं हो [illegible] गीता [illegible] पापी [illegible] नौकाके द्वारा उस समुद्रसे [illegible] पार भी [illegible] नहीं सकते।

§ इस जन्म और जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्मोंके संस्कार अन्तःकरणमें संचित रहते हैं, उनका नाम संचित कर्म है। उनमेंसे जो वर्तमान जन्ममें फल देनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं, उनका नाम प्रारब्ध कर्म है और वर्तमान समयमें किये जानेवाले कर्मोंको क्रियमाण कहते हैं। उपर्युक्त तत्त्वज्ञानरूप अग्निके प्रकट होते ही समस्त पूर्वसंचित कर्मोंका अभाव हो जाता है। मन, बुद्धि और शरीरसे आत्माका अत्यन्त सम्बन्ध न रहनेके कारण उन मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा प्रारब्ध भोगोंका सम्बन्ध होते हुए भी उन भोगोंके कारण उसके अन्तःकरणमें हर्ष-शोक आदि विकार नहीं हो सकते। इस कारण वे भी उसके लिये नष्ट हो जाते हैं तथा क्रियमाण कर्मोंमें उसका कर्तृत्वाभिमान तथा ममता, आसक्ति और वासना न रहनेके कारण उनके संस्कार नहीं बनते, इसलिये वे कर्म वास्तवमें कर्म ही नहीं हैं। इस प्रकार उसके समस्त कर्मोंका नाश हो जाता है।

× कितने ही कालतक कर्मयोगका आचरण करते-करते जब [illegible] जिसका अन्तःकरण स्वच्छ हो गया है, जो कर्मयोगमें भलीभाँति सिद्ध हो गया है [illegible] अपने-आप उस ज्ञानका प्रकाश हो जाता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थसे अवश्य भ्रष्ट हो जाता है।† ऐसे संशययुक्त मनुष्यके लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है‡ ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥ ४१ ॥

हे धनंजय! जिसने कर्मयोगकी विधिसे समस्त कर्मोंका परमात्मामें अर्पण कर दिया है§ और जिसने विवेकद्वारा समस्त संशयोंका नाश कर दिया है,× ऐसे वशमें किये हुए अन्तःकरणवाले पुरुषको कर्म नहीं बाँधते+ ॥ ४१ ॥

* [illegible]

[illegible]

† [illegible]

[illegible]

‡ [illegible]

§ [illegible] ([illegible]) [illegible]

× [illegible]

+ [illegible]

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥ ४२॥

इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू हृदयमें स्थित इस अज्ञानजनित अपने संशयका विवेकज्ञानरूप तलवारद्वारा छेदन करके समत्वरूप कर्मयोगमें स्थित हो जा और युद्धके लिये खड़ा हो जा॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥ भीष्मपर्वणि तु अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके श्रीमद्भगवद्गीतापर्वके अन्तर्गत ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें ज्ञानकर्मसंन्यासयोग नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥ भीष्मपर्वमें अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीमद्भगवद्गीतायां पञ्चमोऽध्यायः

सांख्ययोग, निष्कामकर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन

सम्बन्ध—तीसरे और चौथे अध्यायमें अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखसे अनेकों बार कर्मयोगकी प्रशंसा सुनी और उसके सम्पादनकी प्रेरणा तथा आज्ञा पायी। साथ ही यह भी सुना कि 'कर्मयोगके द्वारा भगवत्स्वरूपका तत्त्वज्ञान अपने-आप ही हो जाता है' (गीता ४।३८)। चौथे अध्यायके अन्तमें भी उन्हें भगवान्के द्वारा कर्मयोगके सम्पादनकी ही आज्ञा मिली; परंतु बीच-बीचमें उन्होंने भगवान्के श्रीमुखसे ही 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' (गीता ४।२४), 'ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति' (गीता ४।२५), 'तद्विद्धि प्रणिपातेन' (गीता ४।३४) आदि श्लोकोंद्वारा ज्ञानयोग अथवा कर्मसंन्यासकी भी प्रशंसा सुनी। इससे अर्जुन यह निश्चय नहीं कर सके कि इन दोनोंमेंसे मेरे लिये कौन-सा साधन श्रेष्ठ है। अतएव अब भगवान्के श्रीमुखसे ही उसका निर्णय करानेके उद्देश्यसे अर्जुन उनसे प्रश्न करते हैं—

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥ १॥

अर्जुन बोले— हे कृष्ण! आप कर्मोंके संन्यासकी और फिर कर्मयोगकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनोंमेंसे जो एक मेरे लिये भलीभाँति निश्चित कल्याणकारक साधन हो, उसको कहिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥ २॥

श्रीभगवान् बोले— कर्मसंन्यास और कर्मयोग— ये दोनों ही परम कल्याणके करनेवाले हैं, परंतु उन दोनोंमें

* अज्ञानका कारण अविवेक है, अतः विवेकद्वारा अविवेकका नाश होते ही उसके साथ-साथ संशयका भी नाश हो जाता है। इसका स्थान हृदय यानी अन्तःकरण है, अतः विनाश्य वस्तुका आधार बताते हैं। उसके लिये इसका नाश करना सहज है।

अर्जुनके ज्ञान कहनेमें उत्तम विचारक था, उनकी निश्चयात्मिका मोहके कारण कुछ दबी हुई थी, इसीसे वे अपने कर्तव्यका निश्चय नहीं कर सकते थे और भाइयोंका युद्धका त्याग करनेके लिये तैयार हो गये थे। इसीलिये भगवान् यहाँ उन्हें उनके हृदयमें स्थित संशयका विवेकद्वारा छेदन करनेके लिये कहते हैं।

† सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर ऐसा समझना कि 'गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं' (गीता ३।२८) तथा निरन्तर परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे स्थित रहना और सर्वदा सर्वत्र समबुद्धि रखना (गीता [illegible])—यही ज्ञानयोग है—यही कर्मसंन्यास है। गीताके चौथे अध्यायमें इसी प्रकारके ज्ञानयोगकी प्रशंसा की गयी है और उसीके आधारपर अर्जुनका यह प्रश्न है।

‡ मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनके अभिमानका और शरीर तथा समस्त संसारमें अहंता-ममताका पूर्णतया त्याग ही 'संन्यास' शब्दका अर्थ है। चौथे और पाँचवें श्लोकोंमें भगवान्ने भी इसी अर्थका भलीभाँति स्पष्टीकरण भी कर दिया है। अतएव यहाँ 'संन्यास' शब्दका अर्थ 'सांख्ययोग' ही मानना युक्त है।

सौ कर्मसंन्याससे कर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है* ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है† ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोगको मूर्खलोग पृथक्-पृथक् फल देनेवाले कहते हैं न कि पण्डितजन; क्योंकि दोनोंमेंसे एकमें भी सम्यक् प्रकारसे स्थित पुरुष दोनोंके फलरूप परमात्माको प्राप्त होता है‡ ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है§। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

परन्तु हे अर्जुन ! कर्मयोगके बिना संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनका त्याग प्राप्त होना कठिन है× और भगवत्स्वरूपको मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है+ ॥ ६ ॥

* कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी सदा संन्यासी ही है; वह सुखपूर्वक अनायास ही संसारबन्धनसे छूट जाता है (गीता); उसे शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है (गीता); भगवान् उसकी रक्षा करते हैं (गीता) और कर्मयोगका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उद्धार कर देता है (गीता)। किंतु सांख्ययोगका साधन कर्मयोगका साधन किये बिना प्राप्त होना भी कठिन है (गीता)। इन्हीं सब कारणोंसे सांख्ययोगकी अपेक्षा कर्मयोगको श्रेष्ठ बतलाया गया है।

† कर्मयोगी न किसीसे द्वेष करता है और न किसी वस्तुकी आकाङ्क्षा करता है; वह द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो जाता है। वास्तवमें संन्यास भी इसी स्थितिका नाम है। ... अतएव यहाँ कर्मयोगीको नित्यसंन्यासी कहकर भगवान् उसका यह भाव प्रकट करते हैं कि वह कर्म करते हुए भी सदा संन्यासी ही है और सुखपूर्वक अनायास ही कर्मबन्धनसे छूट जाता है।

‡ सांख्ययोग और कर्मयोग दोनों ही परमात्माके यथार्थ ज्ञानद्वारा परमात्माकी प्राप्तिमें हेतु हैं। इस प्रकार दोनोंका फल एक होनेपर भी जो लोग कर्मयोगका दूसरा फल मानते हैं और सांख्ययोगका दूसरा, वे फलभेदकी कल्पना करके दोनों साधनोंको पृथक्-पृथक् माननेवाले लोग बालक हैं; क्योंकि दोनों साधनप्रणालियोंमें भेद होनेपर भी फलमें एकता होनेके कारण वस्तुतः दोनोंमें एकता ही है। दोनों निष्ठाओंका फल एक ही है। अतएव यह कहना उचित ही है कि एकमें पूर्णतया स्थित पुरुष दोनोंके फलको प्राप्त कर लेता है। गीताके तेरहवें अध्यायके चौबीसवें श्लोकमें भी भगवान्‌ने दोनोंको ही आत्मसाक्षात्कारके स्वतन्त्र साधन माना है।

§ जैसे किसी मनुष्यको भारतवर्षसे अमेरिकाको जाना है, तो वह यदि ठीक रास्तेसे होकर पूर्व-ही-पूर्व दिशामें जाता रहे तो भी अमेरिका पहुँच जायगा और पश्चिम-ही-पश्चिमकी ओर चलता रहे तो भी अमेरिका पहुँच जायगा। वैसे ही सांख्ययोग और कर्मयोगकी साधनप्रणालीमें परस्पर भेद होनेपर भी जो मनुष्य किसी एक साधनमें दृढ़तापूर्वक लगा रहता है, वह दोनोंके ही एकमात्र परम लक्ष्य परमात्मातक पहुँच ही जाता है।

× जो मुमुक्षु पुरुष यह मानता है कि सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च स्वप्नके सदृश मिथ्या है, एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, यह सारा प्रपञ्च मायासे उसी ब्रह्ममें अध्यारोपित है, वस्तुतः दूसरी कोई सत्ता है ही नहीं; परन्तु उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, उसमें राग-द्वेष तथा काम-क्रोधादि दोष वर्तमान हैं, वह यदि अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्मयोगका आचरण न करके केवल अपनी मान्यताके भरोसेपर ही सांख्ययोगके साधनमें लगना चाहता है तो उसे ज्ञाननिष्ठा सहज ही नहीं प्राप्त हो सकती।

+ जो सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि-असिद्धिमें समभाव रखते हुए आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करके भगवदाज्ञानुसार समस्त कर्तव्यकर्मोंका आचरण करता है और सदा भक्तिपूर्वक नाम, गुण और प्रभावसहित श्रीभगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन करता है, वह भक्तियुक्त कर्मयोगका साधक मुनि भगवान्‌की दयासे परमात्मसाक्षात्कारके द्वारा शीघ्र ही परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

जिसका मन अपने वशमें है, जो जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरणवाला है और सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता* ॥ ७ ॥

नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन् स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपञ्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥

तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी† तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखोंको खोलता और मूँदता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थोंमें बरत रही हैं—इस प्रकार समझकर निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ‡ ॥ ८-९ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार सांख्ययोगीके साधनका स्वरूप बतलाकर अब दसवें और ग्यारहवें श्लोकोंमें कर्मयोगीके साधनका फलसहित स्वरूप बतलाते हैं—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके§ और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलसे कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥ ११ ॥

कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्यागकर अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं× ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥

कर्मयोगी कर्मोंके फलका त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामनाकी प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है+ ॥ १२ ॥

* मन और इन्द्रियाँ यदि साधकके वशमें न हों तो उनकी स्वाभाविक ही विषयोंमें प्रवृत्ति होती है और अन्तःकरणमें उनका राग-द्वेषादि बना रहता है, तबतक निर्लिप्त और सर्वत्र समभाव रहना कठिन होता है; अतएव जबतक मन और इन्द्रियाँ भलीभाँति वशमें न हो जायँ और अन्तःकरण पूर्णरूपसे परिशुद्ध न हो जाय, तबतक सर्वथा वास्तविक कर्मयोगी नहीं कहा जा सकता। इसीलिये यह कहा गया है कि जिसमें ये सब बातें हों, वही पुरुष कर्मयोगी है और उसीको शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति होती है।

† सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च मायामय और अनित्य होनेके कारण मृगतृष्णाके जल या स्वप्नके संसारकी भाँति मायामय है, केवल एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही सत्य है; उसीमें यह सारा प्रपञ्च मायासे अध्यारोपित है। इस प्रकार नित्यानित्य वस्तुके तत्त्वको समझकर जो पुरुष निरन्तर निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें अभिन्नभावसे स्थित रहता है, वही तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी है।

‡ जैसे स्वप्नसे जगा हुआ मनुष्य समझता है कि स्वप्नकालमें स्वप्नके शरीर, मन, प्राण और इन्द्रियोंद्वारा मुझे जिन क्रियाओंके होनेकी प्रतीति होती थी, वास्तवमें न तो वे क्रियाएँ होती थीं और न उनके साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध ही था; वैसे ही तत्त्वको समझकर निर्विकार अक्रिय परमात्मामें अभिन्नभावसे स्थित सांख्ययोगीको भी ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण और मन आदिके द्वारा लोकदृष्टिसे की जानेवाली देखने-सुनने आदिकी समस्त क्रियाओंको करते समय यही समझना चाहिये कि ये सब मायामय मन, प्राण और इन्द्रिय ही अपने-अपने मायामय विषयोंमें विचर रहे हैं। वास्तवमें न तो कुछ हो रहा है और न मेरा इनसे कुछ सम्बन्ध ही है।

§ ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमानुकूल अर्थोपार्जनसम्बन्धी और खान-पानादि शरीरनिर्वाहसम्बन्धी जितने भी शास्त्रविहित कर्म हैं, उन सबमें ममताका सर्वथा त्याग करके, सब कुछ भगवान्‌का समझकर, उन्हींके लिये उन्हींकी आज्ञा और इच्छाके अनुसार, जैसे वे कराएँ वैसे ही कठपुतलीकी भाँति करना—परमात्मामें सब कर्मोंका अर्पण करना है।

× कर्मप्रधान कर्मयोगी मन, बुद्धि, शरीर और इन्द्रियोंमें ममता नहीं रखते और आसक्ति, स्वार्थसे सर्वथा रहित होकर निष्कामभावसे ही समस्त कर्माचरण करते रहते हैं।

+ कामनाभावसे किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप बार-बार देव-मनुष्यादि योनियोंमें भटकना ही बन्धन है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

अन्तःकरण जिसके वशमें है, ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारोंवाले शरीररूप घरमें सब कर्मोंको मनसे त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है ॥ १३ ॥

सम्बन्ध—जब कि आत्मा वास्तवमें कर्म करनेवाला भी नहीं है और इन्द्रियादिसे करवानेवाला भी नहीं है तो फिर सब मनुष्य अपनेको कर्मोंका कर्ता क्यों मानते हैं और न करनेवाला क्यों नहीं मानते हैं? इसपर कहते हैं—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

परमेश्वर मनुष्योंके न तो कर्तापनकी, न कर्मोंकी और न कर्मफलके संयोगकी ही रचना करते हैं; किंतु स्वभाव ही बर्त रहा है ॥ १४ ॥

सम्बन्ध—जो मनुष्य परमेश्वर कर्मोंको और कर्मोंके फलको भगवान्‌के अर्पण करते हैं, उनके शुभाशुभ कर्मोंका फल क्या भगवान् ग्रहण करते हैं? इस जिज्ञासापर कहते हैं—

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसीके पापकर्मको और न किसीके शुभकर्मको ही ग्रहण करता है; किंतु अज्ञानके द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसीसे सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं ॥ १५ ॥

* स्वरूपसे सब कर्मोंका त्याग करके शरीरधारी मनुष्यको शरीरयात्रा भी नहीं चल सकती, इसलिये मनसे—विवेकबुद्धिके द्वारा कर्तृत्व-कारयितृत्वका त्याग करना ही सांख्ययोगीका त्याग है।

† मनुष्योंके जो कर्म उत्पन्न होते हैं, वे भगवान्‌के बनाये हुए नहीं हैं। अज्ञान मनुष्य अहंकारके कारण होकर अपनेको उनका कर्ता मान लेता है (गीता ३। २७)। मनुष्योंके कर्मोंकी रचना भगवान् नहीं करते। इस कथनका यह भाव है कि अमुक शुभ या अशुभ कर्म अमुक मनुष्यको करना पड़ेगा, ऐसी रचना भगवान् नहीं करते; क्योंकि यदि ऐसी रचना भगवान् करते तो विधि-निषेधात्मक शास्त्र ही व्यर्थ हो जाय—उनकी कोई सार्थकता ही नहीं रहे। कर्मफलके संयोगकी रचना भी भगवान् नहीं करते। इस कथनका यह भाव है कि संयोग तथा सम्बन्ध मनुष्यका ही अज्ञानका बाँधा हुआ है; कोई भी आत्मामात्र उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता और वह स्वभावसे आसक्त होकर अपना सम्बन्ध कर्मोंके साथ जोड़ लेता है।

यदि इन तीनोंकी रचना भगवान्‌के द्वारा ही हुई होती तो मनुष्य कभी भी उनसे छूट ही नहीं सकता, उनके उद्धारका कोई उपाय ही नहीं रह जाता। अतः यह बात समझनी चाहिये कि अपना कल्याण पूर्वोक्त साधनोंसे अपने-आप करना (गीता ५। ८-९) या भगवान्‌के अर्पण करना (गीता ५। १०) अथवा सांख्ययोगके द्वारा सब कर्मोंको मनसे त्याग देना (गीता ५। १३) कर्मोंसे छूटनेका मार्ग है। यहाँ यह भाव दिखलाया गया है कि परमेश्वर मनुष्योंके कर्तापन, कर्म और कर्मफलसंयोगकी रचना नहीं करते।

‡ इस कथनका यह अभिप्राय है कि इन तीनोंकी रचना सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंके कार्यरूप स्वभावसे होती है। स्वभाव शब्द यहाँ मनुष्योंके पूर्वकृत कर्मोंके संस्कारोंका वाचक है। इन संस्कारोंसे ही प्रवृत्ति होती है, इसलिये प्रकृति अर्थात् स्वभाव ही सब कुछ करता है। प्रकृति अनादि है। इसीसे उनमें कर्तृभाव उत्पन्न होता है अर्थात् अहंकारसे मोहित होकर वे अपनेको उनका कर्ता मानते हैं (गीता ३। २७)। वस्तुतः इन सब और उनके फलोंसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है।

§ भगवान् इच्छासे रहित (गीता ४। १४; ९। २८। २९) और सर्वथा आप्तकाम होनेसे सर्वव्यापी परमेश्वर किसीके शुभ या अशुभ कर्मोंको ग्रहण नहीं करते। यद्यपि समस्त कर्म उन्हींकी शक्तिसे मनुष्योंद्वारा किये जाते हैं, मनुष्योंको शक्ति, बुद्धि और इन्द्रियाँ आदि उनके कर्मानुसार वे ही प्रदान करते हैं, तथापि वे उनके द्वारा किये हुए कर्मोंका ग्रहण नहीं करते अर्थात् स्वयं उन कर्मोंके फलके भागी नहीं बनते।

× यहाँ यह शंका होती है कि यदि परमात्मा मनुष्योंके या परमेश्वरके कर्मोंसे और उनके फलसे कोई सम्बन्ध नहीं है, तो फिर सब मनुष्य यह क्यों मानते हैं कि अमुक कर्म मैंने किया है, यह मेरा कर्म है, मुझे इसका फल मिलेगा? इसी शंकाका निराकरण करनेके लिये कहते हैं कि अनादिसिद्ध अज्ञानके द्वारा यथार्थ ज्ञान ढका हुआ है। इसीलिये वे अपने और परमेश्वरके स्वरूपका तथा कर्मोंके तत्त्वको न जाननेके कारण अपनेको और ईश्वरको कर्मों और कर्मफलोंसे सम्बद्ध मानकर मोहित हो रहे हैं।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

परंतु जिनका वह अज्ञान परमात्माके तत्त्वज्ञानद्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्माको प्रकाशित कर देता है* ॥ १६ ॥

सम्बन्ध—ज्ञानके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति होती है, यह बात संक्षेपमें कहकर अब उन्नीसवें श्लोकतक ज्ञानयोगद्वारा परमात्माको प्राप्त होनेका उपाय तथा परमात्माको प्राप्त सिद्ध पुरुषके लक्षण बतलाते हैं। विशेषतः ... परमात्माकी प्राप्ति बतलाते हैं—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

जिनका मन तद्रूप हो रहा है†, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है‡ और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है§, ऐसे तत्परायण पुरुष॥ ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर+ अपुनरावृत्तिको अर्थात् परम गतिको प्राप्त होते हैं।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैंऽ।

* जिस प्रकार सूर्य अन्धकारका सर्वथा नाश करके समस्त पदार्थोंको प्रकाशित कर देता है, वैसे ही यथार्थ ज्ञान भी अज्ञानका सर्वथा नाश करके परमात्माके स्वरूपको भलीभाँति प्रकाशित कर देता है। जिनको यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, वे फिर किसी भी अवस्थामें मोहित नहीं होते।

† 'ध्यानयोग' या 'आनन्दघन' का अभ्यास करनेवालोंको चाहिये कि आचार्य और शास्त्रके उपदेशसे सम्पूर्ण जगत्को मायामय और एक सच्चिदानन्दघन परमात्माको ही सत्य वस्तु समझकर तथा सम्पूर्ण अनात्मवस्तुओंके चिन्तनको सर्वथा छोड़कर मनको परमात्माके स्वरूपमें निश्चल स्थित करनेके लिये उनके आनन्दमय स्वरूपका मनन कर बार-बार आनन्दकी आवृत्ति करता हुआ ऐसी धारणा करे कि पूर्ण आनन्द, अपार आनन्द, शान्त आनन्द, घन आनन्द, अचल आनन्द, ध्रुव आनन्द, नित्य आनन्द, बोधस्वरूप आनन्द, ज्ञानस्वरूप आनन्द, परम आनन्द, महान् आनन्द, अनन्त आनन्द, सम आनन्द, अचिन्त्य आनन्द, चिन्मय आनन्द, एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण है, आनन्दसे भिन्न अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। इस प्रकार निरन्तर मनन करते-करते सच्चिदानन्दघन परमात्मामें मनका अभिन्नभावसे निश्चल हो जाना मनका तद्रूप होना है।

‡ उपर्युक्त प्रकारसे मनके तद्रूप हो जानेपर बुद्धिमें सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपका प्रत्यक्षके सदृश निश्चय हो जाता है। उस निश्चयके अनुसार निदिध्यासन करते-करते जब बुद्धिकी भिन्न सत्ता न रहकर उसका सच्चिदानन्दघन परमात्मामें तदाकार हो जाता है, यही बुद्धिका तद्रूप हो जाना है।

§ मन-बुद्धिके परमात्मामें तदाकार हो जानेपर साधककी दृष्टिमें आत्मा और परमात्माके भेदभावका नाश हो जाता एवं ध्याता, ध्यान और ध्येयकी त्रिपुटीका अभाव होकर एकमात्र वस्तु सच्चिदानन्दघन परमात्माका ही रह जाना निष्ठित होना अर्थात् परमात्मामें एकीभावसे स्थित होना है।

॥ उपर्युक्त प्रकारसे आत्मा और परमात्माके भेदभावका नाश हो जानेपर जब परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीकी सत्ता नहीं रहती, तब मन, बुद्धि, प्राण और सब कुछ परमात्मस्वरूप ही हो जाते हैं। इस प्रकार सच्चिदानन्दघन परमात्माके साक्षात् अभेदरूपसे उनमें एकता प्राप्त कर लेना ही तत्परायण हो जाना है।

\+ उपर्युक्त प्रकारके साधनसे प्राप्त यथार्थ ज्ञानके द्वारा जिनके समस्त विकार और पापसमूह सर्वथा नष्ट हो गये हैं, जिनमें उन पापोंका लेशमात्र भी नहीं रहा है, वे सब प्रकारके पापोंसे रहित हुए पुरुष हैं।

फिर इसको प्राप्त होकर योगी पुनः नहीं लौटता, जिसको 'अव्यक्त', 'अक्षर', 'परम गति' के नामसे कहा है; गीतामें जिसका वर्णन 'अव्यक्त', 'अक्षर', 'परम गति', 'परम धाम' और 'दिव्य परम पुरुष' के नामसे आया है, उस यथार्थ ज्ञानके फलरूप परमात्माको प्राप्त होना ही अपुनरावृत्तिको प्राप्त होना है।

ऽ तत्त्वज्ञानी सिद्ध पुरुषोंका विषमभाव सर्वथा नष्ट हो जाता है; उनकी दृष्टिमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीकी सत्ता नहीं रहती, इसलिये उनका सर्वत्र समभाव हो जाता है। इसी बातको समझानेके लिये मनुष्योंमें उत्तम-से-उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण, नीच-से-नीच चाण्डाल एवं पशुओंमें उत्तम गौ, मध्यम हाथी और नीच-से-नीच कुत्तेका उदाहरण देकर उनके समभावका दिग्दर्शन कराया गया है। इन सब जातियोंके साथ व्यवहारमें विषमता दृष्टिगोचर होनेपर ...

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥१९॥

जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया अर्थात् वे सदाके लिये जन्म-मरणसे छूटकर जीवन्मुक्त हो गये; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं*॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥२०॥

जो पुरुष प्रियको प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रियको प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि, संशयरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें एकीभावसे नित्य स्थित है†॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥२१॥

बाहरके विषयोंमें‡ आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला साधक आत्मामें स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है§; तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके ध्यानरूप योगमें अभिन्नभावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है×॥२१॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥२२॥

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं

जानी पड़ती है [illegible] मनुष्यके लिये [illegible] नहीं हो सकती [illegible] ही रहता है [illegible] नहीं होता।

[illegible] भेद [illegible] प्रेम और आत्मभावकी दृष्टिसे [illegible] नहीं रहती [illegible]

* [illegible] समभाव [illegible] इसलिये जिनका मन समभावमें स्थित है [illegible] स्थित है।

† जो काम मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके अनुकूल होता है [illegible] उसे प्रिय कहते हैं [illegible] उद्विग्न भी दुःखी नहीं होता।

‡ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि जो इन्द्रियोंके विषय हैं [illegible] उनकी आसक्तिको बिल्कुल नष्ट कर डाला है [illegible] सर्वथा उपरति हो गयी है, वह पुरुष बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित [illegible] कहलाता है।

§ इन्द्रियोंके भोगोंमें ही सुख माननेवाले मनुष्योंको वह ध्यानजनित सुख नहीं मिल सकता [illegible] वस्तुतः सुख है ही नहीं, सुखका केवल आभासमात्र है [illegible] अपेक्षा भी उत्कर्षका सुख तो बहुत कम है [illegible] वह तो इन सबसे बढ़कर है [illegible]

× उपर्युक्त [illegible] जो पुरुष इन्द्रियोंके [illegible] परमात्माके ध्यानकी [illegible] अभिन्नभावसे स्थित कहते हैं।

* [illegible] सच्चिदानन्दघन अविनाशी परमात्मा ही [illegible] सुख है [illegible] करते-करते उस परमात्माको जो अभिन्नभावसे प्रत्यक्ष कर लेता है, वही उसका अनुभव करता है।

[illegible] है और [illegible] अनित्य है [illegible] बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ २३॥

[illegible]

[illegible] प्राप्त हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है॥ २३॥

सम्बन्ध—[illegible] विषयभोगोंको क्षणिक और दुःखोंका कारण [illegible] सिद्ध कर चुके हैं। अब ऐसे [illegible] स्थिति [illegible] कहा जाता है—

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥ २४॥

[illegible] ही सुखवाला है × आत्मामें ही [illegible]

• [illegible] कारण समझता है और [illegible] नाना प्रकारके भयानक दुःख और यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

विषयभोगोंमें मग्न मनुष्य [illegible] स्त्री-पुत्रादि भोगोंको सुखका कारण समझता है [illegible] परिणाममें [illegible] नाना प्रकारके [illegible] और नरक [illegible] भोगने पड़ते हैं।

इसके अतिरिक्त [illegible] देखता है [illegible] उसके [illegible] लगता है।

[illegible]

इससे यह बतलाया गया है कि शरीर नाशवान् है [illegible] इसलिये [illegible] चाहिये।

[illegible] इसी प्रकार मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके प्रतिकूल विषयोंकी प्राप्ति होनेपर [illegible] उसका नाम क्रोध है [illegible]

× यहाँ 'अन्तः' शब्द [illegible] परमात्माका वाचक है [illegible] है कि जो पुरुष [illegible] परमात्मामें ही [illegible] रमता है [illegible]

रमण करनेवाला है* तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है † वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी‡ शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है§।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥ २५॥

जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञानके द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्मको प्राप्त होते हैं॥ २५॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥ २६॥

काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओरसे शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है॥ २६॥

सम्बन्ध—[illegible] और [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥ २७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥ २८॥

[illegible] विषयभोगोंको न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटीके बीचमें स्थित करके [illegible]

* जो बाह्य विषयभोगोंमें [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परमात्मामें ही [illegible] है अर्थात् परमानन्दस्वरूप [illegible] [illegible] [illegible] चिन्तन करता रहता है, वह अन्तरात्माराम अर्थात् आत्मामें ही रमण करनेवाला कहलाता है।

† परमात्मा सम्पूर्ण ज्योतियोंकी भी परम ज्योति है। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] पुरुष निरन्तर अभिन्नभावसे [illegible] परमात्माका अनुभव करता [illegible] [illegible] जिसकी दृष्टिमें एक विज्ञानानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसी भी बाह्य दृश्य वस्तुकी भिन्न सत्ता नहीं रह गयी है, वही अन्तर्ज्योति अर्थात् आत्मामें ही ज्ञानवाला है।

‡ सांख्ययोगका साधन करनेवाला [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निरन्तर अभिन्नभावसे परमात्माका चिन्तन करता करता ब्रह्मरूप हो जाता है, उसका [illegible] [illegible] कोई भिन्न अस्तित्व नहीं रहता, तब इस साधककी अन्तिम स्थितिको प्राप्त [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] एकीभावको प्राप्त कहलाता है।

§ शान्त ब्रह्म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और अभिन्नभावसे उसकी [illegible] प्राप्ति है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है। इसीको परम शान्तिकी प्राप्ति, [illegible] [illegible] प्राप्ति [illegible] और परमगतिकी प्राप्ति कहते हैं।

× इस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अन्तःकरणमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तत्त्वका नाश हो जाता है, फिर उस पुरुषके अन्तःकरणमें [illegible] [illegible] नहीं रह [illegible]

यहाँ '[illegible]' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परमात्माके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, इसलिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] द्वारा परमात्माको प्राप्त [illegible] [illegible] मानना उचित है।

परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंके अनुभवमें ऊपर नीचे, बाहर भीतर, यहाँ वहाँ [illegible] [illegible] विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही विद्यमान हैं, [illegible] अतिरिक्त परमात्माके सिवा अन्य कोई भी पदार्थ [illegible] [illegible] है, इसी भावसे कहा गया है कि उनके लिये सब ओरसे [illegible] परिपूर्ण है।

विवेक और वैराग्यके द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और दुःखोंके कारण [illegible] उनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—उनकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बाहर निकाल देना है।

नेत्रोंके द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है और [illegible] [illegible] [illegible] आलस्य और निद्राके [illegible] [illegible] [illegible] है, इसीलिये नेत्रोंकी दृष्टिको भृकुटीके बीचमें स्थित करनेको कहा गया है।

तथा नासिकामें विचरनेवाले प्राण और अपानवायुको सम करके* जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं† ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि‡ इच्छा, भय और क्रोधसे रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है§ ॥ २७-२८ ॥

सम्बन्ध—जो मनुष्य इस प्रकार मन-इन्द्रियोंके संयमद्वारा कर्मयोग, सांख्ययोग या ध्यानयोगका साधन करनेमें अपनेको असमर्थ समझता हो, ऐसे साधकके लिये सुगमतासे परमपदकी प्राप्ति करानेवाले भक्तियोगका संक्षेपमें वर्णन करते हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला×, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ भीष्मपर्वणि तु एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें कर्मसंन्यासयोग नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥ भीष्मपर्वमें उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

---

* प्राण और अपानकी स्वाभाविक गति विषम है, कभी तो [illegible] नासिकाके [illegible] और कभी [illegible] नासिकामें [illegible] चलता है [illegible]। इस प्रकार विषमभावसे विचरनेवाले प्राण और अपानकी गतिको दोनों नासिकाओंमें समानभावसे कर देना उनको सम करना है। यही उनका सुषुम्णामें चलना है। सुषुम्णा नाड़ीमें चलनेके समय [illegible] प्राण और अपानकी गति बहुत ही सूक्ष्म और शान्त रहती है, तब मनकी चञ्चलता और अशान्ति अपने-आप ही नष्ट हो जाती है और वह सहज ही परमात्माके ध्यानमें लग जाता है।

† इन्द्रियाँ चाहे जब, चाहे जिस विषयमें स्वच्छन्द चली जाती हैं, मन [illegible] चञ्चल रहता है और [illegible] छोड़ना ही नहीं चाहता [illegible] एक सम निश्चयात्मक [illegible] वह इन्द्रिय, मन और बुद्धि [illegible] विवेक और वैराग्यपूर्वक अभ्यासद्वारा इन्हें वशमें कर लेना [illegible] जीतना कहा जाता है।

‡ मुनि मननशीलको कहते हैं। जो पुरुष ध्यान [illegible] परमात्माके [illegible] इस निश्चय होनेके कारण [illegible] परमात्माका ही मनन करता रहता है, वही मुनि है।

§ जो महापुरुष उपर्युक्त साधनोंद्वारा इच्छा, भय और क्रोधसे सर्वथा रहित हो गया है, वह ज्ञानस्वरूप या [illegible] शरीर रहते या शरीर छूट जानेपर सभी अवस्थाओंमें सदा मुक्त ही है। [illegible] उसने सर्वथा मुक्तस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो चुका है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

× अहिंसा, सत्य आदि धर्मोंका पालन, देवता, ब्राह्मण, माता-पिता आदि गुरुजनोंका सेवन-पूजन, दीन-दुःखी गरीब और पीड़ित जीवोंकी [illegible] और आदरयुक्त सेवा और उनके दुःखनाशके लिये किये जानेवाले उपर्युक्त [illegible] दान आदि जितने भी शुभ कर्म हैं, सभीका समावेश 'यज्ञ' और 'तप' शब्दोंमें समझना चाहिये। भगवान् सबके आत्मा हैं (गीता [illegible]), अतएव देवता, ब्राह्मण, दीन-दुःखी आदिके रूपमें स्थित होकर भगवान् ही समस्त सेवा-पूजादि ग्रहण कर रहे हैं; इसलिये वे ही समस्त यज्ञ और तपोंके भोक्ता हैं (गीता [illegible])। इस प्रकार समझना ही भगवान्‌को यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला समझना है।

इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमराज आदि जितने भी लोकपाल हैं तथा विभिन्न ब्रह्माण्डोंमें अपने-अपने ब्रह्माण्डका नियमन करनेवाले जितने भी ईश्वर हैं, भगवान् उन सभीके स्वामी और महान् ईश्वर हैं। इसलिये श्रुतिमें कहा है—'तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्' 'उन ईश्वरोंके भी परम महेश्वरको' [illegible] अपनी अनिर्वचनीय मायाशक्तिद्वारा भगवान् अपनी लीलासे ही सम्पूर्ण अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हुए सबको यथायोग्य नियन्त्रणमें रखते हैं और ऐसा करते हुए भी वे सबसे ऊपर ही रहते हैं। इस प्रकार भगवान्‌को सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, सर्वाध्यक्ष और सर्वेश्वरेश्वर समझना ही उन्हें 'सर्वलोकमहेश्वर' समझना है।

भगवान् स्वाभाविक ही बिना कारण, अनुग्रह करके सबका हित करनेकी व्यवस्था करते हैं और बार-बार अवतीर्ण होकर नाना प्रकारके ऐसे विचित्र चरित्र करते हैं, जिन्हें गा-गाकर ही लोग तर जाते हैं। उनकी प्रत्येक क्रियामें जगत्‌का हित भरा रहता है। भगवान् जिनको मारते या दण्ड देते हैं, उनपर भी दया ही करते हैं। उनका कोई भी विधान दया और प्रेमसे रहित नहीं होता। इसीलिये भगवान् सब भूतोंके सुहृद् हैं।

जो पुरुष इस बातको जान लेता है और विश्वास कर लेता है कि भगवान् मेरे अहैतुक प्रेमी हैं, वे जो कुछ भी करते हैं, मेरे मङ्गलके लिये ही करते हैं; वह प्रत्येक अवस्थामें जो कुछ भी होता है, उसको दयामय परमेश्वरका प्रेम और दयासे ओतप्रोत मङ्गलविधान समझकर सदा ही प्रसन्न रहता है। इसलिये उसे अटल शान्ति मिल जाती है। उसकी शान्तिमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित होनेका कोई कारण ही नहीं रह जाता।

त्रिंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीताया षष्ठोऽध्याय)

निष्काम कर्मयोगका प्रतिपादन करते हुए आत्मोद्धारके लिये प्रेरणा तथा मनोनिग्रहपूर्वक ध्यानयोग एवं योगभ्रष्टकी गतिका वर्णन

सम्बन्ध—पाँचवें अध्यायके आरम्भमें अर्जुनने [illegible] 'कर्मसंन्यास' और 'कर्मयोग' इन दोनोंमेंसे [illegible] एक [illegible] कल्याणकारक है—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अर्जुनको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं।

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥१॥

श्रीभगवान् बोले—जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है,† वह संन्यासी तथा योगी है‡ और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है,§ तथा केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी नहीं है।×

सम्बन्ध—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दोनों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रतिपादन करते हैं।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन॥२॥

हे अर्जुन! जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसीको तू

---

* [illegible]

† अपने अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

‡ ऐसा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और कर्मयोग दोनों ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दोनों ही [illegible] [illegible] [illegible] है।

§ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] क्योंकि उसने केवल अग्निका ही त्याग किया है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं किया।

× [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दोष वर्तमान हैं, वह भी [illegible] योगी नहीं है; क्योंकि उसने भी केवल [illegible] क्रियाओंका ही त्याग किया है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आदिका त्याग नहीं किया।

योग नहीं होता; क्योंकि संकल्पोंका त्याग न करनेवाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

योगमें आरूढ़ होनेकी इच्छावाले मननशील पुरुषके लिये योगकी प्राप्तिमें निष्कामभावसे कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ़ हो जानेपर उस योगारूढ़ पुरुषका जो सर्वसंकल्पोंका अभाव है, वही कल्याणमें हेतु कहा जाता है ॥ ३ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—[illegible] प्रेरित करते हुए भगवान् मनुष्यका कर्तव्य बतलाते हैं—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

---

* यहाँ संन्यास शब्दका अर्थ है मनके द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओंमें कर्तापनका भाव मिटाकर केवल परमात्मामें ही अभिन्न भावसे स्थित हो जाना [illegible] यह सांख्ययोगकी पराकाष्ठा है तथा योग शब्दका अर्थ है ममता, आसक्ति और कामनाके त्यागद्वारा होनेवाली कर्मयोगकी पराकाष्ठारूप नैष्कर्म्य सिद्धि [illegible] इन दोनों ही साधनोंसे [illegible] प्राप्त होता है [illegible] इस प्रकार दोनोंमें ही समस्त संकल्पोंका त्याग है और दोनोंका एक ही फल है; इसलिये दोनोंकी एकता की गयी है।

† [illegible] अधिकार और [illegible] मन वशमें हो [illegible] और [illegible] त्याग करके [illegible] योगारूढ़ अवस्थाकी प्राप्तिमें हेतु है। इसीलिये गीताके तीसरे अध्यायके [illegible] श्लोकमें भी कहा है कि कर्मोंका आरम्भ किये बिना मनुष्य [illegible] अर्थात् योगारूढ़-अवस्थाको नहीं प्राप्त हो सकता।

‡ [illegible] द्वारा [illegible] हो जानेपर ही [illegible] संकल्पोंका [illegible] स्वभाव होता है। इसके अतिरिक्त कर्मोंका स्वरूपसे त्याग तो भी नहीं सकता [illegible] सर्वसंकल्पोंका अभाव माना गया है।

§ यह [illegible] त्याग [illegible] अथवा त्याग कहा है। यदि [illegible] ही [illegible] योगारूढ़ अवस्था [illegible] हो जाय, इसके अतिरिक्त गीताके चौथे अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें भगवान्‌ने [illegible] कहा है कि जिस महापुरुषके समस्त कर्म कामना और संकल्पसे रहित हैं [illegible] उसे पण्डित कहते हैं, और यहाँ [illegible] पुरुषकी ऐसी प्रशंसा की गयी है [illegible] योगारूढ़ कहा है—[illegible] नहीं कहा जा सकता [illegible] सकता कि संकल्परहित पुरुषके द्वारा कर्म नहीं होते [illegible] सिद्ध होता है कि संकल्पोंके त्यागका अर्थ [illegible] क्रियाओंका त्याग नहीं है। ममता, आसक्ति और कामनापूर्वक जो [illegible] सांसारिक विषयोंका चिन्तन किया जाता है, उसे संकल्प कहते हैं। ऐसे संकल्पोंका पूर्णतया त्याग ही सर्वसंकल्पसंन्यास है।

[illegible] मन [illegible] संसारका अर्थ [illegible] कामनापूर्वक [illegible] सकाम [illegible] तथा [illegible] आदि [illegible] सब भी सामग्री [illegible] कहा गया है।

[illegible] और [illegible] आदि [illegible] दुःखमय [illegible] करना और उनके फलस्वरूप मनुष्य शरीरके [illegible] वञ्चित होकर पुनः सूकर-कूकरादि योनियोंमें जन्म धारण करना अपनेको अधोगतिमें डालना है।

मनुष्यको कभी भी यह नहीं समझना चाहिये कि प्रारब्ध बुरा है, इसलिये मेरी उन्नति होगी ही नहीं; उसका उत्थान पतन प्रारब्धके अधीन नहीं है, उसीके हाथमें है। मनुष्य अपने स्वभाव और कर्मोंमें जितना ही अधिक सुधार कर लेता है, वह उतना ही उन्नत होता है। स्वभाव और कर्मोंका सुधार ही उन्नति या उत्थान है तथा इसके विपरीत स्वभाव और कर्मोंमें दोषोंका बढ़ना ही अवनति या पतन है।

+ जो अपने उद्धारके लिये चेष्टा करता है, वह आप ही अपना मित्र है और जो इसके विपरीत करता है, वही अपना शत्रु है; इसलिये अपनेसे भिन्न दूसरा कोई भी अपना मित्र या शत्रु नहीं है।

जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है,* उस जीवात्माका तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें बर्तता है†॥६॥

सम्बन्ध—जिसने मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको जीत लिया है, वह आप ही अपना मित्र क्यों है? इस बातको स्पष्ट करनेके लिये अब उसके लक्षण बतलाते हैं—

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥७॥

सरदी-गरमी और सुख-दुःखादिमें तथा मान और अपमानमें जिसके अन्तःकरणकी वृत्तियाँ भलीभाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुषके ज्ञानमें सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं अर्थात् उसके ज्ञानमें परमात्माके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं॥७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥८॥

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है,‡ जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है, ऐसे कहा जाता है॥८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥९॥

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें,§ धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समान भाव रखनेवाला¶ अत्यन्त श्रेष्ठ है॥९॥

सम्बन्ध—यह बात निश्चित होती है कि जितात्मा पुरुषको ध्यानयोगका अभ्यास नित्य करना चाहिये, वह किस साधनद्वारा परमात्माको शीघ्र प्राप्त कर सकता है, इसलिये ध्यानयोगका प्रकरण आरम्भ करते हैं—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥१०॥

मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थानमें स्थित होकर आत्माको निरन्तर परमात्मामें लगावे॥१०॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥११॥

* परमात्माकी प्राप्तिके लिये मनुष्य जिन साधनोंमें प्रवृत्त होता है, इन्द्रिय और मनका उनमें अनायास ही लग जाना और उनसे विपरीत मार्गकी ओर ताकतक भी नहीं, तब समझना चाहिये कि वे जीते जा चुके हैं।

† जबतक मनुष्य स्वयं मन, इन्द्रिय आदिके वश होकर दुःखरूप शत्रुओंकी भाँति अपने ही कल्याणसाधनके विपरीत आचरण करता है, वह अपना ममता, राग-द्वेष, कामना, क्रोध, लोभ आदि कारण प्रमाद, आलस्य और विषय-भोगोंमें फँसकर पाप कर्मोंके बन्धनमें पड़ जाता है, इस प्रकार अपने ही कल्याणके विरुद्ध आचरण करके अपने लिये महान् दुःख उत्पन्न करता है, यही उसकी शत्रुताका आचरण करना है।

‡ जो एकरस रहते हुए भी किसी भी स्थितिमें अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता, जिसके अन्तःकरणमें कभी भी विकार उत्पन्न नहीं होता और जो सदा-सर्वदा सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है, उसे कूटस्थ कहते हैं।

§ सम्बन्ध और उपकार आदिकी अपेक्षा न करके बिना ही कारण स्वभावतः प्रेम और हित करनेवाले सुहृद् कहलाते हैं तथा परस्पर प्रेम और एक-दूसरेका हित करनेवाले मित्र कहलाते हैं; किसी निमित्तसे दुःख पहुँचानेकी इच्छा या चेष्टा करनेवाला वैरी है और स्वभावसे ही प्रतिकूल आचरण करनेवाला द्वेष्य कहलाता है। पक्षपात न करनेवाले उदासीन, दोनोंका हित चाहनेवाले मध्यस्थ तथा अपने सम्बन्धी बन्धु कहते हैं।

¶ उपर्युक्त अत्यन्त विलक्षण स्वभाववाले मित्र, वैरी, साधु और पापी आदिके आचरण, स्वभाव और व्यवहारके भेदका जिसपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, जिसकी बुद्धिमें किसी समय किसी भी परिस्थितिमें किसी भी निमित्तसे राग-द्वेषमूलक भेदभाव नहीं आता, वही समबुद्धियुक्त पुरुष है।

भोग-सामग्रीके संग्रहका नाम परिग्रह है; जो उससे रहित हो उसे अपरिग्रह कहते हैं। वह यदि गृहस्थ हो तो किसी भी वस्तुका ममतापूर्वक संग्रह न रखे और यदि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी हो तो स्वरूपसे भी किसी प्रकारका भोगसामग्रीका संग्रह न करे। ऐसे पुरुष किसी भी आश्रममें हों, अपरिग्रही ही हैं।

शुद्ध भूमिमें * जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसनको स्थिर स्थापन करके ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

उस आसनपर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

काया, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर† अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखता हुआ ॥ १३ ॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित‡, भयरहित§ तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला× सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे ॥ १४ ॥

* ध्यानयोगका साधन करनेके लिये ऐसा स्थान होना चाहिये जो स्वभावसे ही शुद्ध हो और झाड़-बुहारकर, लीप-पोतकर अथवा धो-पोंछकर स्वच्छ और निर्मल बना लिया गया हो। गङ्गा, यमुना या अन्य किसी पवित्र नदीका तीर, पर्वतकी गुफा, देवालय, तीर्थस्थान अथवा बगीचे आदि पवित्र वायुमण्डलयुक्त स्थानोंमेंसे जो सुगमतासे प्राप्त हो सकता हो और स्वच्छ, पवित्र तथा एकान्त हो—ध्यानयोगके लिये साधकको ऐसा ही कोई एक स्थान चुन लेना चाहिये।

† नाभिसे ऊपर और गलेसे नीचेके भागका नाम 'काया' है, गलेका नाम 'ग्रीवा' है और उससे ऊपरके अङ्गका नाम 'सिर' है। कमर या पेटको आगे-पीछे या दाहिने-बायें किसी ओर न झुकाना, अर्थात् रीढ़की हड्डीको सीधी रखना, गलेको भी किसी ओर न झुकाना और सिरको भी इधर-उधर न घुमाना—इस प्रकार तीनोंको एक सूतमें सीधा रखते हुए, किसी भी अङ्गको जरा भी न हिलने-डुलने देना—यही इन तीनोंको 'सम' और 'अचल' धारण करना है। ध्यानयोगके साधनमें निद्रा, आलस्य, विक्षेप एवं शीतोष्णादि द्वन्द्व विघ्न माने गये हैं। इन दोषोंसे बचनेके लिये यह बहुत ही अच्छा उपाय है। काया, सिर और गलेको सीधा तथा नेत्रोंको खुला रखनेसे आलस्य और निद्राका आक्रमण नहीं हो सकता। नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि लगाकर इधर-उधर अन्य वस्तुओंको न देखनेसे बाह्य विक्षेपोंकी सम्भावना नहीं रहती और आसनके दृढ़ होनेसे शीतोष्णादि द्वन्द्वोंसे भी बाधा होनेका भय नहीं रहता। इसलिये ध्यानयोगका साधन करते समय इस प्रकार आसन लगाकर बैठना बहुत ही उपयोगी है।

‡ ब्रह्मचर्यका तात्त्विक अर्थ दूसरा होनेपर भी वीर्यधारण उसका एक प्रधान अर्थ है और यहाँ वीर्यधारण अर्थ ही प्रसङ्गानुकूल भी है। मनुष्यके शरीरमें वीर्य ही एक ऐसी अमूल्य वस्तु है, जिसका भलीभाँति संरक्षण किये बिना शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक—किसी प्रकारका भी बल न तो प्राप्त होता है और न उसका संचय ही होता है। इसीलिये ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित होनेके लिये कहा गया है।

§ ध्यान करते समय साधकको निर्भय रहना चाहिये। मनमें जरा भी भय रहेगा तो एकान्त और निर्जन स्थानमें स्वाभाविक ही चित्तमें विक्षेप हो जायगा। इसलिये साधकको उस समय मनमें यह दृढ़ धारणा कर लेनी चाहिये कि परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं और सर्वव्यापी होनेके कारण यहाँ भी सदा हैं ही, उनके रहते किसी बातका भय नहीं है। यदि कदाचित् प्रारब्धवश ध्यान करते-करते मृत्यु हो जाय तो उसमें भी परिणाममें परम कल्याण ही होगा।

× ध्यान करते समय मनमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक और काम-क्रोध आदि दूषित वृत्तियोंको तथा सांसारिक सङ्कल्प-विकल्पोंको सर्वथा दूर कर देना एवं वैराग्यके द्वारा अन्तःकरणको सर्वथा निर्मल और शान्त कर लेना—यही 'प्रशान्तात्मा' होना है।

ध्यान करते समय साधकको निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदि विघ्नोंसे बचनेके लिये खूब सावधान रहना चाहिये। ऐसा न करनेसे मन और इन्द्रियाँ उसे धोखा देकर ध्यानमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित कर सकते हैं। इसी बातको दिखलानेके लिये 'युक्तः' विशेषण दिया गया है।

इस प्रकार न रुकना और रोकते-रोकते भी बलात्कारसे विषयोंमें चले जाना मनका स्वभाव है। इस मनको भलीभाँति रोके बिना ध्यानयोगका साधन नहीं बन सकता। इसलिये ध्यानयोगीको चाहिये कि वह ध्यान करते समय मनको बाह्य विषयोंसे भलीभाँति हटाकर परम हितैषी, परम सुहृद्, परम प्रेमास्पद परमेश्वरके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझकर सम्पूर्ण जगत्से प्रेम हटाकर एकमात्र उन्हींको अपना ध्येय बनावे और अनन्यभावसे चित्तको उन्हींमें लगानेका अभ्यास करे।

इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि मुझको ही परम गति, परम ध्येय, परम आश्रय और परम महेश्वर तथा सबसे बढ़कर प्रियतम मानकर निरन्तर मेरे ही आश्रित रहना और मुझीको अपना एकमात्र परम रक्षक, सहायक, स्वामी तथा जीवन, प्राण और सर्वस्व मानकर मेरे प्रत्येक विधानमें सदा सन्तुष्ट रहना—यही मेरे (भगवान्‌के) परायण होना है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥ १५॥

वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्माको निरन्तर मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ मुझमें रहनेवाली परमानन्दकी पराकाष्ठारूप शान्तिको प्राप्त होता है*†॥ १५॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥ १६॥

हे अर्जुन! यह योग‡ न तो बहुत खानेवालेका, न बिलकुल न खानेवालेका, न बहुत शयन करनेके स्वभाववालेका और न सदा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है§॥ १६॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ १७॥

दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका¶, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका** और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका†† ही सिद्ध होता है॥ १७॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥ १८॥

अत्यन्त वशमें किया हुआ चित्त जिस कालमें परमात्मामें ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस कालमें सम्पूर्ण भोगोंसे स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है॥ १८॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥ १९॥

जिस प्रकार वायुरहित स्थानमें स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्माके ध्यानमें लगे हुए

---

* उपर्युक्त प्रकारसे मन-बुद्धिके द्वारा निरन्तर [illegible] अभिन्नभावसे परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करना और उसमें अभिन्नभावसे [illegible] हो जाना ही [illegible] ध्यानयोग है।

† जिस नैष्ठिकी शान्तिको गीता [illegible] शान्ति [illegible] और [illegible] कहा है और जिसका परमेश्वरकी प्राप्ति, परम दिव्य पुरुषकी प्राप्ति, परम गति आदि नामोंसे वर्णन किया गया है, वह शान्ति [illegible] आनन्दकी अवधि है और वह [illegible] परम सुहृद् आनन्दनिधि भगवान् [illegible] नित्य-निरन्तर [illegible] अभिन्नभावसे [illegible] ध्यानयोगका साधक उसी शान्तिको प्राप्त करता है।

‡ योग शब्द उस ध्यानयोगका वाचक है जो सम्पूर्ण दुःखोंका अत्यन्त नाश करनेवाला और परमानन्द और शान्तिके समुद्र परमेश्वरकी प्राप्ति करा देनेवाला है।

§ उचित मात्रामें नींद ली जाय तो [illegible] दूर होकर शरीरमें ताजगी आती है, परन्तु यही नींद यदि आवश्यकतासे अधिक ली जाय तो उससे तमोगुण बढ़ जाता है, जिससे अवसर आलस्य घेरे रहता है और स्थिर होकर बैठनेमें [illegible] होता है। [illegible] अधिक सोनेमें [illegible] अमूल्य समय भी व्यर्थ जाता है। इसी प्रकार सदा जागते रहनेसे [illegible] रहती है, [illegible] इन्द्रिय और प्राण शिथिल हो जाते हैं, शरीरमें कई प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

¶ खाने-पीनेकी वस्तुएँ ऐसी होनी चाहिये जो अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार न्याय और [illegible] द्वारा प्राप्त हों, शास्त्रानुकूल सात्त्विक हों, [illegible] और [illegible] रुचिकर [illegible] और पचनेमें सहायता देनेवाली हों। उनका परिमाण भी उतना ही परिमित होना चाहिये जितना अपनी शक्ति, स्वास्थ्य और साधनकी दृष्टिसे हितकर एवं आवश्यक हो। इसी प्रकार घूमना-फिरना भी उतना ही चाहिये जितना अपने लिये आवश्यक और हितकर हो।

** वर्ण, आश्रम, अवस्था, स्थिति और [illegible] के अनुसार जिसके लिये शास्त्रमें जो [illegible] कर्म हैं, उन्हींका नाम कर्म है। उन कर्मोंमें [illegible] करता है [illegible] ईश्वर-भक्ति, देव-पूजन, [illegible] अध्ययन-अध्यापन [illegible] आदि कर्म और शौच-स्नानादि [illegible] सभी कर्म [illegible] होने चाहिये जो शास्त्रविहित हों, न्यायसंगत हों, जिनसे किसीका अहित न करते हों [illegible] पहुँचाने या किसीपर [illegible] [illegible] होना चाहिये जितना जिसके लिये आवश्यक है [illegible] आवश्यकतानुसार यथायोग्य किया जाय। ऐसा करनेसे शरीर, इन्द्रिय और मन स्वस्थ रहते हैं और ध्यानयोग सुखपूर्वक सिद्ध होता है।

†† दिनमें सोना [illegible] रातके समय पहले तथा पिछले पहरमें जागना और बीचके दो पहरोंमें सोना साधारणतया इसीको उचित सोना-जागना माना जाता है।

योगीके जीते हुए चित्तकी कही गयी है॥

सम्बन्ध—इस प्रकार आत्मयोगकी अन्तिम स्थितिसे युक्त हुए पुरुषके ... उसके बाद इन तीन श्लोकोंमें आत्मसाक्षात्कार ... पुरुषकी स्थितिका वर्णन करते हैं—

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥ २०॥

योगके अभ्याससे निरुद्ध चित्त जिस अवस्थामें उपराम हो जाता है † और जिस अवस्थामें परमात्माके ध्यानसे शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा परमात्माको साक्षात् करता हुआ ‡ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही सन्तुष्ट रहता है॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥ २१॥

इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है § उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ २२॥

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उसके अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता × और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

---

* यहाँ 'दीप' शब्द प्रकाशमय दीपशिखाका वाचक है। दीपशिखा जितनी अधिक प्रकाशमान और स्थिर होती है, इसलिये उसीके साथ मनकी समानता है। जैसे वायु ... स्थानमें दीपशिखा हिलती-डुलती नहीं, उसी प्रकार वशमें किया हुआ चित्त भी ध्यानकालमें सब प्रकारसे सुरक्षित होकर हिलता-डुलता नहीं, वह अविचल दीपशिखाकी भाँति समभावसे प्रकाशित रहता है।

† जिस समय योगीका चित्त परमात्माके स्वरूपमें सब प्रकारसे निरुद्ध हो जाता है, उस समय उसका चित्त संसारसे सर्वथा उपरत हो जाता है; फिर उसके अन्तःकरणमें संसारके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

‡ एक विज्ञान-आनन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा ही है, उसके सिवा कोई वस्तु है ही नहीं, केवल एकमात्र वही परिपूर्ण है; उसका यह ज्ञान भी उसीको है, क्योंकि वही आनन्दमय है। वह सनातन, निर्विकार, असीम, अपार, अचल, अचल और अनन्त है। मन, बुद्धि, अहंकार, द्रष्टा, दृश्य, दर्शन आदि जो कुछ भी हैं, सब उस ब्रह्ममें ही आरोपित हैं और वस्तुतः ब्रह्मरूप ही हैं। वह आनन्दमय है और अकथनीय है। उसका वह आनन्दमय स्वरूप भी आनन्दमय है। वह आनन्दस्वरूप पूर्ण है, नित्य है, सनातन है, अज है, अविनाशी है, परम है, चरम है, सत् है, चेतन है, विज्ञानमय है, कूटस्थ है, अचल है, ध्रुव है, अनामय है, बोधमय है, अनन्त है और शान्त है। इस प्रकार उसके आनन्दस्वरूपका चिन्तन करते हुए बार-बार ऐसी दृढ़ धारणा करते रहना चाहिये कि उस आनन्दमयके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। यदि कोई संकल्प उठे तो उसे भी आनन्दमयमें ही विलीन करना। आनन्दमय ही संकल्पका आनन्दमयमें ही विलीन कर दे। इस प्रकार धारणा करते-करते जब समस्त संकल्प आनन्दमय बोधस्वरूप परमात्मामें विलीन हो जाते हैं और एक आनन्दघन परमात्माके अतिरिक्त किसी भी संकल्पका अस्तित्व नहीं रह जाता, तब साधककी आनन्दमय परमात्मामें अचल स्थिति हो जाती है। इस प्रकार नित्य-निरन्तर ध्यान करते-करते साधकको भगवान्‌की समता तथा सब ... अखण्ड ... हो जाती है; तब सभी कुछ समतामय और परम शान्तिमय अनुभव होने लगता है। यह साधकको सम्यक् ... परमात्माका साक्षात्कार प्राप्त ही हो जाता है।

§ परमात्माके ध्यानसे होनेवाला सात्त्विक सुख भी इन्द्रियोंसे अतीत, बुद्धिग्राह्य और अक्षय सुखके हेतु होनेसे अन्य सांसारिक सुखोंकी अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण है; किंतु वह केवल ध्यानकालमें ही रहता है, सदा नहीं रहता और वह विकारी तो मन उसका विषय होता है। इसलिये उसे आत्यन्तिक या अक्षय सुख नहीं कहा जा सकता। परमात्माका स्वरूपभूत जो सुख है वह आत्यन्तिक सुखका भाव है, अर्थात् वह उससे अलग नहीं होता।

× इस स्थितिमें योगीको परमानन्द और परमशान्तिके निधान परमात्माकी प्राप्ति हो जानेसे वह पूर्णकाम हो जाता है। उसकी दृष्टिमें इस लोक और परलोकके मनुष्य, देव, पितृलोकोंका राज्य और ऐश्वर्य, सिद्धियोंका ज्ञान और बड़ाई आदि जितने भी सांसारिक सुखके साधन हैं, सभी क्षणभंगुर, अनित्य, नाशवान्, तुच्छ और नगण्य हो जाते हैं। अतः वह संसारकी किसी भी वस्तुको प्राप्त करनेयोग्य ही नहीं मानता, फिर अधिक माननेकी तो गुंजाइश ही कहाँ है?

शस्त्रोंद्वारा शरीरका काटा जाना, असह्य दुःसह सर्दी-गरमी, वर्षा और बिजली आदिसे होनेवाली शारीरिक पीड़ा, अति उत्कट रोगजनित व्यथा, प्रियसे भी प्रिय वस्तुका अचानक वियोग और सम्पूर्ण अकारण ही महान् अपमान, तिरस्कार और निन्दा आदि जितने भी महान् दुःखोंके कारण हैं, सब एक साथ उपस्थित होकर भी उसको उसकी स्थितिसे जरा भी नहीं डिगा सकते।

सम्बन्ध—चौथे [illegible] श्लोकसे लेकर बाईसवें श्लोकतक परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस स्थितिके महत्त्व और लक्षणोंका वर्णन किया गया, अब उस स्थितिका नाम [illegible] बतलाते हुए उसे प्राप्त करनेके लिये प्रेरणा करते हैं—

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥ २३॥

जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये।* वह योग न उकताए हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे† निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है॥ २३॥

सम्बन्ध—अब दो श्लोकोंमें उसी स्थितिकी प्राप्तिके लिये [illegible] ध्यानयोगका साधन करनेकी विधि बतलाते हैं—

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥ २४॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥ २५॥

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको निःशेषरूपसे त्यागकर‡ और मनके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सभी ओरसे भलीभाँति रोककर× क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो+ तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे॥ २४-२५॥

* [illegible] और इसका सम्बन्ध अर्थात् इसका [illegible] अनादि [illegible] है [illegible] जन्म-मरणरूप दुःखोंकी प्राप्तिमें एक कारण है। इस साधनके द्वारा उसका अभाव हो जानेपर ही दुःखोंका भी सदाके लिये अभाव हो जाता है। अतः [illegible] (गीता ६ [illegible]) [illegible] स्थितिका वर्णन किया गया है। [illegible] प्राप्त करनेके लिये [illegible] पुरुषोंके [illegible] उसका लक्षण [illegible] और साधनकी विधिको भलीभाँति जानना चाहिये।

† साधनका फल तत्काल न होनेके कारण थोड़ा-सा साधन करनेपर [illegible] भाव [illegible] है कि न जाने यह काम कबतक पूरा होगा [illegible] —इसीका नाम 'निर्विण्णता' [illegible] है। ऐसे [illegible] रहित जो धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त है, उसे 'अनिर्विण्णचित्त' कहते हैं। [illegible] अपने चित्तसे निर्विण्णतारूप दोषको सर्वथा दूर कर देना चाहिये।

‡ [illegible] विश्वास और [illegible] साधक है [illegible] उसका विधान करनेवाले शास्त्रोंमें [illegible] और [illegible] श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये।

§ सम्पूर्ण कामनाओंका [illegible] त्याग [illegible] है [illegible] किसी भी [illegible] इच्छा, स्पृहा, वासना, आशा या तृष्णा न रहने देना [illegible] भी विकार [illegible] त्याग है [illegible] अर्थात् विविधाकारसे [illegible] भी [illegible] जाती है। ऐसे ही कामनाओंका त्याग [illegible] कर देना कामनाका निःशेष त्याग है।

× ग्यारहवेंसे लेकर तेरहवें श्लोकतक [illegible] अनुसार [illegible] साधकको [illegible] चाहिये कि वह विवेक और वैराग्ययुक्त [illegible] मनके द्वारा [illegible] इन्द्रियोंको [illegible] विषयोंसे [illegible] इन्द्रियसमुदायको भलीभाँति रोकना है।

+ [illegible] कभी [illegible] भोगोंकी [illegible] चीज [illegible] है [illegible] और वैराग्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको सांसारिक भोगोंकी अनित्यता और दुःखरूपता समझाकर और [illegible] परम [illegible] नरकादि यातनाओंका भय दिखलाकर उसे [illegible] कर देना चाहिये। यही [illegible] उपरतिको प्राप्त होना है।

साधक जब ध्यान करने बैठे, उस समय [illegible] द्वारा जब उसका मन परमात्मामें स्थिर हो जाय, तब फिर ऐसा सावधान रहे कि जिसमें मन एक क्षणके लिये भी परमात्मासे हटकर दूसरे विषयमें न जा सके। साधककी यह सावधानी सम्पादनमें बड़ी सहायक होती है। प्रतिदिन ध्यान करते-करते ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़े, त्यों-ही-त्यों [illegible] और भी सावधानीके साथ कहीं न जाने देकर [illegible] विशेष [illegible] रखें। फिर मनमें किसी वस्तुकी स्फूर्ति हो, उसका कल्पनामात्र [illegible] हटा ही देना है। इस प्रकार चित्तमें स्फुरित [illegible] करके [illegible]

साधक—यदि किसी साधकका चित्त पूर्वाभ्यासवश कदाचित् देवताओं और [illegible] तो क्या करना चाहिये इस जिज्ञासापर कहते हैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ २६॥

यह स्थिर न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें विचरता है, उस-उस विषयसे रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मामें ही निरुद्ध करे॥ २६॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ २७॥

क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको उत्तम आनन्द प्राप्त होता है॥ २७॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ २८॥

वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दका अनुभव करता है॥ २८॥

अब पाँच श्लोकोंमें [illegible] का वर्णन करते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ २९॥

सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है॥ २९॥

शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी क्रियाका भी त्याग कर दे [illegible] ध्यानका निग्रह करनेवाली [illegible] वृत्ति रह जाती [illegible] शुभ और शुद्ध है, परन्तु [illegible] साथ करना चाहिये [illegible] सबके बाद वह अपने आप ही शान्त हो जाती है। [illegible] जो कुछ बच रहता है, वही अचिन्त्य तत्त्व है [illegible] और समस्त उपाधियोंसे रहित अकेला ही परिपूर्ण है [illegible] चिन्तन [illegible] मन, बुद्धि [illegible] अभाव करनेवाली वृत्तिका भी अभाव करके अचिन्त्य-तत्त्वमें स्थित हो जाना ही [illegible] चिन्तन है।

* [illegible] साधकको [illegible] विषयोंमें [illegible] ही वहीं [illegible] और [illegible] साथ [illegible] बार-बार विषयोंसे हटा-हटाकर उसे परमात्मामें [illegible] अभ्यास करे। [illegible] और वैराग्यके प्रभावसे [illegible] चञ्चलता तथा विक्षेपसे रहित होकर [illegible] स्थिर और [illegible] हो गया है, ऐसे योगीको प्रशान्तमना कहते हैं।

[illegible] रजोगुणसे ही उत्पत्ति होती है। गीता [illegible] रजोगुणका कार्य भी है। अतएव जो पुरुष इन सबसे रहित है, उसीका वाचक शान्तरजसम् पद है।

[illegible] सच्चिदानन्दघन [illegible] इस प्रकारका अभ्यास करते-करते साधककी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें दृढ़ स्थिति हो जाती है [illegible] अभिन्नभावसे [illegible] कहते हैं।

[illegible] देहाभिमान नहीं रहता [illegible] स्वरूपमें [illegible] स्थिति हो जाती है, तब उसको [illegible] प्राप्ति सुख [illegible] है।

‡ [illegible] आत्यन्तिक सुख और [illegible] अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें [illegible] गया है।

§ सच्चिदानन्द [illegible] निर्गुण निराकार [illegible] अभिन्नभावसे स्थिति हो गयी है, ऐसे ही [illegible] यहाँ [illegible] पद है। [illegible] गीताके [illegible] अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें [illegible] के नामसे तथा [illegible] श्लोकमें [illegible] कहा गया है।

× गीताके [illegible] अध्यायमें अठारहवें और इसी अध्यायके [illegible] श्लोकोंमें [illegible] वर्णन [illegible] है, उसी प्रकारसे वह योगी उसके साथ [illegible] सम्पूर्ण [illegible] एक ही [illegible] आत्माको देखता है, यही उसका सबमें समभावसे देखना है।

एक अद्वितीय [illegible] परमात्मा ही सत्य तत्त्व है, उससे भिन्न यह सम्पूर्ण जगत् कुछ भी नहीं

सम्बन्ध—इस प्रकार सर्वव्यापीका साधन करनेवाले योगी का और उसके सर्वत्र समदर्शनका अन्तिम स्थिति बतलानेके बाद अब परिस्थितिका साधन करनेवाले योगीकी अन्तिम स्थितिका और उसके साथ अनन्यदर्शनका वर्णन करते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है*, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता† ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर‡ सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है§, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है× ॥ ३१ ॥

---

* इस श्लोककी भलीभाँति समझकर [illegible] भिन्न होकर भी स्वप्नमें [illegible] सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक अद्वितीय आत्माको ही [illegible] देखता है, अर्थात् एक अद्वितीय आत्मा ही इन सबके रूपमें दीख रहा है, वास्तवमें उससे भिन्न अन्य कुछ है ही नहीं। इस बातको जो भलीभाँति अनुभव करता है वही सम्पूर्ण भूतोंमें आत्माको देखता है। [illegible] जैसे स्वप्नसे जगा हुआ मनुष्य [illegible] नाना प्रकारकी [illegible] अपने ही [illegible] देखता है, वैसे ही देखता सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है। [illegible] आत्मामें भिन्न देखनेकी बात न कहकर केवल देखनेके लिये ही कहा।

जैसे बादलमें आकाश और आकाशमें बादल हैं, वैसे ही सम्पूर्ण भूतोंमें भगवान् वासुदेव हैं और वासुदेवमें सम्पूर्ण भूत हैं—इस प्रकार अनुभव करना सम्पूर्ण भूतोंमें वासुदेवको और वासुदेवमें सम्पूर्ण भूतोंको देखना है। क्योंकि सम्पूर्ण चराचर जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है, अतएव वे ही इसके महाकारण हैं। [illegible] आकाशके बिना बादल रह ही क्या [illegible] (गीता [illegible]

[illegible]

† अभिप्राय यह है कि [illegible] देखनेवाला भक्त और भगवान्‌का [illegible] हो जाता है।

‡ [illegible] भिन्न स्थितिको [illegible] में स्थित होना कहते हैं।

§ जैसे [illegible] एक भगवान् ही परिपूर्ण हैं—इस प्रकार जानना और प्रत्यक्ष देखना ही सब भूतोंमें स्थित भगवान्‌को भजना है।

× जिस पुरुषको भगवान् श्रीवासुदेवकी प्राप्ति हो गयी है, उसको [illegible] सब कुछ वासुदेव ही दिखलायी देता है। ऐसी अवस्थामें उस भक्तके शरीर, मन और वाणी जो कुछ भी क्रियाएँ होती हैं उसकी दृष्टिसे सब भगवान्‌के ही साथ होती हैं। वह हाथोंसे किसीकी सेवा करता है तो वह भगवान्‌की ही सेवा करता है, किसीको मधुर वाणीसे सुख पहुँचाता है तो वह भगवान्‌को ही सुख पहुँचाता है, किसीको देखता है तो वह भगवान्‌को ही देखता है, किसीके साथ कहीं जाता है तो वह भगवान्‌के साथ भगवान्‌की ओर ही जाता है। इस प्रकार वह जो कुछ भी करता है, सब भगवान्‌में ही और भगवान्‌के ही साथ करता है। इसीलिये यह कहा गया है कि वह सब प्रकारसे बरतता हुआ (सब कुछ करता हुआ) भी भगवान्‌में ही बरतता है।

[illegible]

सम्बन्ध—इस प्रकार ध्यानयोगद्वारा भगवान्‌को प्राप्त हुए पुरुषके महत्त्वका प्रतिपादन करके अब [illegible] प्राप्त हुए पुरुषके [illegible] प्रतिपादन करते हैं—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ ३२॥

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है* और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है॥ ३२॥

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्॥ ३३॥

अर्जुन बोले—हे मधुसूदन! जो यह योग आपने समभावसे कहा है, मनके चञ्चल होनेसे मैं इसकी नित्य स्थितिको नहीं देखता हूँ॥ ३३॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ ३४॥

क्योंकि हे श्रीकृष्ण! यह मन बड़ा चञ्चल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान् है। इसलिये उसका वशमें करना मैं वायुको रोकनेकी भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ॥ ३४॥

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ ३५॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाबाहो! निःसंदेह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है; परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास[1] और वैराग्यसे[2] वशमें होता है॥ ३५॥

---

* जैसे मनुष्य अपने सारे अङ्गोंमें अपने आत्माको समभावसे देखता है, वैसे ही सम्पूर्ण चराचर संसारमें अपने आत्माको समभावसे देखना—अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखना है।

[illegible] कारण [illegible] अपने [illegible] लिये दूसरा कुछ रहता ही नहीं। इसलिये जैसे मनुष्य अपने आपको कभी किसी प्रकार जरा भी दुःख पहुँचाना नहीं चाहता तथा स्वाभाविक ही निरन्तर सुख पानेके लिये ही [illegible] करता रहता है [illegible] कभी [illegible] मानकर [illegible] चाहता है, न [illegible] करता है और न [illegible] अभिमान ही करता है [illegible] किये बिना रहा ही नहीं जाता। यह [illegible] सहज स्वभाव होता है, ठीक [illegible] किसी प्रकार किञ्चित् भी दुःख न पहुँचाकर सदा उनके सुखके लिये सहज स्वभावसे ही चेष्टा करता है।

[illegible] आदि [illegible] कहा गया है।

[illegible] विषयोंमें प्रधान कारण है—[illegible] राग-द्वेष [illegible] ममता [illegible] इसीलिये [illegible] नाशक माना गया है।

मन [illegible] मनुष्यके [illegible] सब [illegible] भी मन भी शरीर और इन्द्रियोंको विक्षुब्ध [illegible] रहता है।

यह [illegible] रहता है [illegible]

जैसे [illegible] मनमानी करता ही रहता है, वैसे ही [illegible] द्वारा बार-बार [illegible] मन विषयोंका [illegible] नहीं चाहता।

जैसे [illegible] द्वारा [illegible] कठिन है, [illegible] और [illegible] रोकना भी अत्यन्त कठिन है।

[1] मनको किसी लक्ष्य विषयमें तदाकार करनेके लिये उसे अन्य विषयोंसे खींच-खींचकर बार-बार उस विषयमें लगानेके लिये किये जानेवाले प्रयत्नका नाम ही अभ्यास है। यह अभ्यास [illegible] मन लगानेका है। [illegible] परमात्माको [illegible] बार-बार [illegible] करना [illegible] है। इसका विस्तार [illegible] देखना चाहिये।

[2] इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण पदार्थोंमें [illegible] सर्वथा [illegible] पूर्णतया [illegible] जाता है, तब उसे 'वैराग्य' कहते हैं।

सम्बन्ध—यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि मनको वशमें न किया जाय तो क्या हानि है, इसपर भगवान् कहते हैं—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ ३६॥

जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है* और वशमें किये हुए मनवाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा† साधनसे उसका प्राप्त होना सहज है—यह मेरा मत है॥ ३६॥

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें मनको वशमें करने पर [illegible] यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि जिसका मन वशमें नहीं है, किंतु योगमें श्रद्धा होनेके कारण जो भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करता है, उसकी साधनकालमें मृत्यु हो जाय तो उसकी क्या गति होती है? इसलिये फिर अर्जुन पूछते हैं—

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥ ३७॥

अर्जुन बोले—हे श्रीकृष्ण! जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है, किंतु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अन्तकालमें योगसे विचलित हो गया है‡, ऐसा साधक योगकी सिद्धिको अर्थात् भगवत्साक्षात्कारको न प्राप्त होकर किस गतिको प्राप्त होता है?

वैराग्यकी प्राप्तिके लिये अनेकों साधन हैं, उनमेंसे कुछ ये हैं—

संसारके पदार्थोंमें विचारके द्वारा रमणीयता, प्रेम और सुखका अभाव देखना।

उन्हें जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि आदि दुःख-दोषोंसे युक्त, अनित्य और भयदायक मानना।

१ भगवान् और भागवतोंके यथार्थ तत्त्वका विवेचन करनेवाले सत्-शास्त्रोंका अध्ययन करना।

परम वैराग्यवान् पुरुषोंका सङ्ग करना, उनके अभावमें उनके [illegible] चित्र और चरित्रोंका स्मरण-मनन करना।

मरघटमें पड़े हुए [illegible] शरीरों और [illegible] देखकर [illegible] क्षणभङ्गुर समझना।

१. एकमात्र भगवान् ही अनन्त, अद्वितीय [illegible] मनोहर पर्याय [illegible]

प्रेमी अधिकारी पुरुषोंके द्वारा भगवान्के [illegible] रूप, प्रभाव, प्रेम, रहस्य तथा उनके लीला-चरित्रोंका एवं दिव्य सौन्दर्य-माधुर्यका बार-बार श्रवण करना, उन्हें मानना और उनपर पूर्ण श्रद्धा करके मुग्ध होना।

* जो अभ्यास और वैराग्यके द्वारा अपने मनको वशमें नहीं कर लेता, उसके मनपर राग-द्वेषका अधिकार रहता है और राग-द्वेषकी प्रेरणासे वह उसकी भाँति विषयोंमें ही इधर-उधर [illegible] रहता है। जब मन भोगोंमें इतना आसक्त होता है, तब उसकी बुद्धि भी [illegible] अस्थिर ही बनी रहती है। [illegible] अवस्थामें उसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

† मनके वशमें हो जानेपर चित्तकी चञ्चलता, प्रमाद, आलस्य और [illegible] दूर हो जाते हैं। वह मौन, शान्त और स्थिर हो जाता है। फिर उसे जब, जहाँ और जितनी देरतक लगाया जाय, चुपचाप लगा रहता है। यही मनके वशमें हो जानेकी पहचान है।

‡ मनके वशमें हो जानेके बाद भी यदि प्रयत्न न किया जाय [illegible] न किया जाय तो [illegible] प्राप्ति अपने-आप नहीं हो जाती; अतः प्रयत्न की आवश्यकता सिद्ध करनेके लिये ही प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधनसे योगका प्राप्त होना सहज बतलाया गया है।

[illegible] जिसका मन वशमें नहीं है [illegible] होकर [illegible] हुआ है, वही यहाँ अर्जुनके [illegible] है। इस कारण जिसका मन [illegible] रहा है, ऐसे साधकके लक्षणोंको [illegible] किया गया है।

सब प्रकारके [illegible] परमात्मामें ही है [illegible] यहाँ [illegible] है।

§ यहाँ [illegible] शब्द [illegible] आदि सभी [illegible] है। इसीसे [illegible] विचलित हो जाता है और इस प्रकार मनके विचलित होनेमें [illegible] आसक्ति, कामना, शरीरकी पीड़ा और रोगोंकी आदि अनेकों कारण हो सकते हैं।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो ! क्या वह भगवत्प्राप्तिके मार्गमें मोहित और आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादलकी भाँति दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता ? *

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मेरे इस संशयको सम्पूर्णरूपसे छेदन करनेके लिये आप ही योग्य हैं; क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस संशयका छेदन करनेवाला मिलना सम्भव नहीं है † ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश होता है और न परलोकमें ही; क्योंकि हे प्यारे ! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता ‡ ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके लोकोंको अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकोंको प्राप्त होकर उनमें बहुत वर्षोंतक निवास करके फिर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है § ॥ ४१ ॥

सम्बन्ध—साधारण योगभ्रष्ट पुरुषोंकी गति बतलाकर अब आसक्तिरहित उच्च श्रेणीके योगभ्रष्ट पुरुषोंकी विशेष गतिका वर्णन करते हैं—

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोकोंमें न जाकर ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेता है; परंतु इस प्रकारका जो यह जन्म है, सो संसारमें निःसन्देह अत्यन्त दुर्लभ है × ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

वहाँ उस पहले शरीरमें संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोगको अर्थात् समबुद्धिरूप योगके संस्कारोंको अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभावसे वह फिर परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करता है ॥ ४३ ॥

सम्बन्ध—अब श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाले योगभ्रष्ट

---

* यहाँ अर्जुनका अभिप्राय यह है कि जीवनभर कर्मफलका त्याग करके कर्म करनेसे स्वर्गादि भोग तो उसे मिलते नहीं और अन्त समयमें परमात्मासे अतिरिक्त भावमें मन विचलित हो जानेके कारण भगवत्प्राप्ति भी नहीं होती। अतएव जैसे बादलका एक टुकड़ा उससे पृथक् होकर पुनः दूसरे बादलसे संयुक्त न होनेपर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, वैसे ही वह साधक स्वर्गादि लोक और परमात्मा—दोनोंकी प्राप्तिसे वञ्चित होकर नष्ट तो नहीं हो जाता यानी उसकी कहीं अधोगति तो नहीं होती ?

† यहाँ अर्जुन भगवान्‌में अपना विश्वास प्रकट करते हुए प्रार्थना कर रहे हैं कि आप सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सम्पूर्ण धर्मोंके निर्माता और नियन्ता साक्षात् परमेश्वर हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अनन्त जीवोंके समस्त गतिविधि रहस्यका आपको पूरा पता है और समस्त लोक-लोकान्तरोंकी विविधमें होनेवाली समस्त घटनाएँ आपके लिये सदा ही प्रत्यक्ष हैं। ऐसी अवस्थामें योगभ्रष्ट पुरुषोंकी गतिका वर्णन करना आपके लिये बहुत ही आसान बात है। जब आप स्वयं यहाँ उपस्थित हैं, तब मैं और किससे पूछूँ और वस्तुतः आपके सिवा इस रहस्यको दूसरा बतला ही कौन सकता है ? अतएव कृपापूर्वक आप ही इस रहस्यको खोलकर मेरे संशयका छेदन कीजिये।

‡ जो साधक अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक कल्याणका साधन करता है, उसकी किसी भी कारणसे कभी शूकर कूकर और कीट पतंग आदि नीच योनियोंकी प्राप्ति या कुम्भीपाक आदि नरकोंकी प्राप्तिरूप दुर्गति नहीं हो सकती।

§ ममतारहित अनासक्तभावसे ध्यानयोग और कल्याण आदिका साधन करनेवाला जिस पुरुषका मन विक्षेप आदि दोषोंसे या विषयासक्ति अथवा रोगादिके कारण अन्तकालमें अकस्मात् विचलित हो जाता है, उसे योगभ्रष्ट कहते हैं।

योगभ्रष्ट पुरुषोंमें जिनके मनमें विषयासक्ति होती है, वे तो स्वर्गादि लोकोंमें जाते हैं और फिर पवित्र धनियोंके घरोंमें जन्म लेते हैं; परन्तु जो वैराग्यवान् पुरुष होते हैं, वे न तो किन्हीं लोकोंमें जाते हैं और न उन्हें अतिरिक्त घरोंमें ही जन्म लेना पड़ता है, वे तो सीधे ज्ञानवान् सिद्ध योगियोंके घरोंमें ही जन्म लेते हैं। पूर्वकथित योगभ्रष्टोंसे इनको पृथक् करनेके लिये 'अथवा' का प्रयोग किया गया है।

× ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जो योगकी शिक्षा मिल सकती है, उतनी स्वर्गमें, श्रीमानोंके घरमें अथवा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती। योगियोंके कुलमें तदनुकूल वातावरणके प्रभावसे मनुष्य प्रारम्भिक जीवनमें ही योगसाधनमें लग सकता है। दूसरी बात यह है कि ज्ञानीके कुलमें जन्म लेनेवाला अज्ञानी नहीं रहता—यह सिद्धान्त श्रुतियोंसे भी समर्थित है। इसीलिये ऐसे जन्मको अत्यन्त दुर्लभ बतलाया गया है।

पुरुषकी श्रेष्ठता दिखलाते हुए योगको जाननेकी इच्छाका महत्त्व बतलाते हैं—

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥ ४४॥

वह श्रीमानोंके घरमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहलेके अभ्यासके ही निःसन्देह भगवान्‌की ओर आकर्षित किया जाता है तथा समबुद्धिरूप योगका जिज्ञासु भी वेदमें कहे हुए सकामकर्मोंके फलको उल्लङ्घन कर जाता है।* ४४

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥ ४५॥

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी† तो पिछले अनेक जन्मोंके संस्कारबलसे इसी जन्ममें संसिद्ध होकर‡ सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो फिर तत्काल ही परमगतिको प्राप्त हो जाता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥ ४६॥

योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; इससे हे अर्जुन! तू योगी हो। ४६

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें योगीकी प्रशंसा करके भगवान्‌ने अर्जुनको योगी बननेके लिये कहा, किंतु ध्यानयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग आदि साधनोंमेंसे अर्जुनको कौन-सा साधन करना चाहिये, इस बातका स्पष्टीकरण नहीं किया; अतः अब भगवान् अपनेमें अनन्यप्रेम करनेवाले भक्त योगीकी प्रशंसा करते हुए अर्जुनको अपनी ओर आकर्षित करते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ ४७॥

---

* जो योगका जिज्ञासु है, योगमें श्रद्धा रखता है और उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, वह मनुष्य भी वेदोक्त सकामकर्मोंके फलस्वरूप इस लोक और परलोकके भोगजनित सुखोंके पार पहुँच जाता है तो फिर जन्म-जन्मान्तरसे साधनका अभ्यास करनेवाले योगभ्रष्ट पुरुषोंके विषयमें तो कहना ही क्या है।

† तैंतालीसवें श्लोकमें यह बात कही गयी है कि योगियोंके कुलमें जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पुरुष उस जन्ममें योगसिद्धिकी प्राप्तिके लिये अधिक प्रयत्न करता है; उसीको उसी योगीको परमगतिकी प्राप्ति बतलानी बाकी है, इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ 'योगी' को प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला बतलाया गया है; क्योंकि उसके प्रयत्नका फल वहाँ उस श्लोकमें नहीं बतलाया गया था, उसे यहाँ बतलाया गया है।

‡ पिछले अनेक जन्मोंमें किया हुआ अभ्यास और इस जन्मका अभ्यास दोनों ही उसे योगसिद्धिमें यानी अन्तःकरणकी पराकाष्ठारूप सिद्धिमें हेतु हैं; क्योंकि पूर्व संस्कारोंके बलसे ही वह विशेष प्रयत्नके साथ इस जन्ममें साधनका अभ्यास करके साधनकी पराकाष्ठाको प्राप्त करता है।

§ शास्त्रविहित क्रिया करनेवालोंका नाम ही 'कर्मी' है; इसमें क्रियाकी प्रधानता है। तपस्वियोंमें क्रियाकी प्रधानता नहीं, मन और इन्द्रियोंके संयमकी प्रधानता है और शास्त्रज्ञानियोंमें शास्त्रीय बौद्धिक आलोचनाकी प्रधानता है। इसी विभिन्नताको ध्यानमें रखकर यहाँ तपस्वी और शास्त्रज्ञानीका अलग-अलग निर्देश किया गया है।

१ गीताके चौथे अध्यायमें पचीसवेंसे तीसवें श्लोकतक यज्ञरूप साधनोंके विस्तारसे वर्णन करते समय जो साधन बतलाये गये हैं, उनके अतिरिक्त और भी भगवत्प्राप्तिके भिन्न-भिन्न साधनोंका सकाम वर्णन किया गया है। उन सबकी पराकाष्ठाका नाम 'योग' होनेके कारण विभिन्न साधन करनेवाले बहुत प्रकारके योगी हो सकते हैं, उन सभी प्रकारके योगियोंका ग्रहण करनेके लिये यहाँ 'योगिनाम्' पदके साथ 'अपि' पदका प्रयोग करके 'सर्वेषाम्' विशेषण दिया गया है।

इससे भगवान् यह दिखलाते हैं कि मुझको ही सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान् और महान् प्रियतम मान लेनेसे जिसका मुझमें अनन्य प्रेम हो गया है और इसलिये जिसका मन-बुद्धिरूप अन्तःकरण अचल, अटल और अनन्यभावसे मुझमें ही स्थित हो गया है, उसके अन्तःकरणको यहाँ 'मद्गतान्तरात्मा' या 'मुझमें लगा हुआ अन्तरात्मा' कहते हैं।

२ जो भगवान्‌की सत्तामें, उनके अवतारोंमें, उनके वचनोंमें, उनके अचिन्त्यानन्त दिव्य गुणोंमें तथा नाम और लीलामें एवं उनकी महिमा, शक्ति, प्रभाव और ऐश्वर्य आदिमें प्रत्यक्षके सदृश पूर्ण और अटल विश्वास रखता है, उसे 'श्रद्धावान्' कहते हैं।

४ सब प्रकार और सब ओरसे अपने मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगाकर परम श्रद्धा और प्रेमके साथ चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते प्रत्येक क्रिया करते अथवा एकान्तमें स्थित रहते निरन्तर श्रीभगवान्‌का भजन-ध्यान करते रहना ही 'भजते' का अर्थ है।

५ यहाँ 'मद्गत' पद निर्विशेष ब्रह्म, शक्ति, देवताओं और तेज आदिसे परम आश्रय, सौन्दर्य, माधुर्य और

सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है*।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ भीष्मपर्वणि तु त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके श्रीमद्भगवद्गीतापर्वके अन्तर्गत ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें आत्मसंयमयोग नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥ भीष्मपर्वमें तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

(श्रीमद्भगवद्गीताया सप्तमोऽध्यायः)

ज्ञान विज्ञान, भगवान्‌की व्यापकता, अन्य देवताओंकी उपासना एवं भगवान्‌को प्रभावसहित न जाननेवाले लोगोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमाका कथन

सम्बन्ध—छठे अध्यायके अन्तिम श्लोकमें भगवान्‌ने कहा कि—'श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको भजता है, वह सब प्रकारके योगियोंमें उत्तम योगी है।' परंतु भगवान्‌के समग्र रूप और प्रभावको मनुष्य जानता नहीं तबतक उसके द्वारा भगवान्‌का निरन्तर भजन होना बहुत कठिन है; अतः इसे जाननेकी भी आवश्यकता है। इसलिये अब भगवान् अपने गुण, प्रभावके सहित समग्र स्वरूपका तथा अनेक प्रकारोंसे युक्त भक्तिका [illegible] करनेके लिये सातवें अध्यायका आरम्भ करते हैं और पहले श्लोकमें अर्जुनको उसे सुननेके लिये सावधान करते हुए उसके कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ! अनन्यप्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त तथा अनन्यभावसे मेरे परायण होकर योगमें लगा हुआ† तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप मुझको संशयरहित जानेगा‡ उसको सुन।

मैं ऐश्वर्य, अनन्त, समग्र, परम दयालु, परम सुहृद्, परम प्रेमी, दिव्य, अखिलानन्दस्वरूप, नित्य, सत्य, अज और अविनाशी, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, अचिन्त्य, महत्त्वमें महिमान्वित, [illegible] लीलाकारी, लीलामात्रसे सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाला तथा साकार, निराकार, सगुण, निर्गुणरूप समग्र पुरुषोत्तम भगवान् हूँ।

* भगवान् यहाँपर अपने प्रेमी भक्तोंकी महिमाका वर्णन करते हुए मानो कहते हैं कि यद्यपि मुझे तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी आदि सभी प्यारे हैं और इन सबसे भी वे योगी मुझे अधिक प्यारे हैं, जो मेरी ही प्राप्तिके लिये साधन करते हैं; परंतु जो मेरे समग्ररूपको जानकर मुझसे अनन्य प्रेम करता है, केवल मुझको ही अपना परम प्रेमास्पद मानकर किसी बातकी अपेक्षा, आकाङ्क्षा और परवा न रखकर अपने अन्तरात्माको दिन-रात मुझमें ही लगाये रखता है, वह मेरा अपना है, मेरा ही है, उसको लेकर मेरा विश्वास और मेरा है, जो मेरा विश्वास है; वही मेरा श्रेष्ठ है, इसलिये मेरे मतमें वही सर्वोत्तम भक्त है और वही सर्वोत्तम योगी है।

इस लोक और परलोकके किसी भी भोगमें अति किञ्चित् मनकी तनिक भी आसक्ति नहीं रह गयी है तथा जिसका मन न जो सब प्रकारसे एकमात्र परम प्रेमास्पद सर्वगुणसम्पन्न परमेश्वरमें इतना अधिक आसक्त हो गया है कि उसके क्षणभरके वियोगमें परम व्याकुल हो जानेवाले मनुष्यकी तरह [illegible] भी भगवान्‌के वियोगको [illegible] सहन नहीं कर सकता, वह 'मय्यासक्तमनाः' है।

जो पुरुष संसारके सब आश्रयोंका त्याग करके समस्त आश्रय और भरोसोंको छोड़कर एकमात्र भगवान्‌पर ही निर्भर करता है और सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को ही परम आश्रय तथा परम गति मानकर सब प्रकारसे उन्हींके भरोसेपर सदाके लिये निश्चिन्त हो गया है, वह 'मदाश्रय' है।

† मन और बुद्धिको अभ्यासपूर्वक भगवान्‌में स्थिर करके निरन्तर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक उनका चिन्तन करना ही योगमें लगना है।

‡ भगवान् नित्य हैं, सत्य हैं, सनातन हैं; वे सर्वगुणसम्पन्न, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वाधार और सर्वात्म

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञान* को सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जाननेयोग्य शेष नहीं रह जाता†॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है‡ और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है§॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी—इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा× अर्थात् मेरी जड प्रकृति है और हे महाबाहो! इससे दूसरीको, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

हे अर्जुन! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत्‌का

हूँ तथा सब ही अपनी योगमायासे जगत्‌को धारण-प्रकट करता हूँ। वस्तुतः उनके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। व्यक्त अव्यक्त और सगुण निर्गुण सब मैं ही हूँ। इस प्रकार मुझ भगवान्‌के स्वरूपको विज्ञान और अर्थतत्त्वको समझ लेना ही मुझ भगवान्‌को तत्त्वसहित जानना है।

* भगवान्‌के निर्गुण निराकार तत्त्वके प्रभाव, माहात्म्य और रहस्यसहित यथार्थ ज्ञानको ज्ञान कहते हैं, इसी प्रकार उनके सगुण निराकार और दिव्य साकार तत्त्वके लीला, रहस्य, गुण, महत्त्व और प्रभावसहित यथार्थ ज्ञानका नाम विज्ञान है।

† ज्ञान और विज्ञानके द्वारा भगवान्‌के समग्र स्वरूपकी भलीभाँति उपलब्धि हो जाती है, यह विश्व भगवान्‌के समग्र रूपका एक क्षुद्र-सा अंशमात्र है। जब मनुष्य भगवान्‌को समग्ररूपसे जान लेता है, तब स्वभावतः ही उसके लिये कुछ भी जानना बाकी नहीं रह जाता।

‡ भगवत्कृपासे मनुष्यशरीर प्राप्त होनेपर भी जन्म-जन्मान्तरके संस्कारोंके कारण अत्यन्त आसक्ति और भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेमका अभाव या कमी रहनेके कारण अधिकांश मनुष्य तो इस मार्गकी ओर बढ़ते ही नहीं। जिनके पूर्वजन्मकृत शुभ होते हैं, भगवान्, महापुरुष और शास्त्रोंमें जिनकी कुछ श्रद्धा-भक्ति होती है तथा पूर्वपुण्योंके पुञ्ज और भगवत्कृपासे जिनका ज्ञान है, हजारों मनुष्योंमेंसे कोई एक ही इस मार्गमें प्रवृत्त होकर यत्न करता है।

§ भगवान्‌का तत्त्व जानना सहज नहीं है, उसके मार्गमें आसक्ति और दुर्गुण आदिके कारण नाना प्रकारके विघ्न भी आते ही रहते हैं। अतएव यत्न करनेवालोंमें भी विरले ही ऐसे निकलते हैं जिनकी श्रद्धा-भक्ति और साधना पूर्ण होती है और उससे भगवत्कृपा भी प्राप्त होती है, वे ही तत्त्वसे भगवान्‌को जान पाते हैं।

× गीताके तेरहवें अध्यायमें भगवान्‌ने जिसे क्षेत्र कहा है, उसीको यहाँ आठ भेदोंमें विभक्त बतलाया है। यह अपरा प्रकृति जड तथा बद्ध होनेके कारण ज्ञाता चेतन जीवरूपा परा प्रकृतिसे सर्वथा भिन्न और निकृष्ट है, यही संसारकी हेतुरूप है और इसीके द्वारा जीवका बन्धन होता है, इसीलिये इसका नाम अपरा प्रकृति है।

समस्त जीवोंके शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण तथा भोग्यवस्तुएँ और भोगस्थानरूप यह सम्पूर्ण जगत् जड प्रकृतिका कार्य है, ऐसा यह जगत्‌रूप जड तत्त्व चेतन आत्माके अधीन है, अतः उन्होंने इसे धारण कर रखा है।

स्थावर और जंगम जितने भी छोटे-बड़े सजीव प्राणी हैं, उन सभी प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि इन जड (अपरा) और परा चेतन प्रकृतियोंके संयोगसे ही होती है, इसलिये उनकी उत्पत्तिमें ये ही दोनों कारण हैं। यही बात गीताके तेरहवें अध्यायके छब्बीसवें श्लोकमें क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके संयोगसे कही गयी है।

प्रभव तथा प्रलय हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत्‌का मूलकारण हूँ॥६॥

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥७॥

हे धनंजय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है।* यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।†

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥८॥

हे अर्जुन! मैं जलमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें ओंकार हूँ, आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ॥८॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥९॥

मैं पृथ्वीमें पवित्र‡ गन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तप हूँ॥९॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥१०॥

हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ॥१०॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥११॥

हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतोंमें धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल काम हूँ॥+

सम्बन्ध—इस प्रकार प्रधान-प्रधान वस्तुओंमें साररूपसे अपनी व्यापकता बतलाते हुए भगवान्‌ने [illegible] अपनी सर्वव्यापकता और सर्वरूपता सिद्ध कर दी। अब सबको [illegible] संक्षेपमें [illegible] उपसंहार करते हैं—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥१२॥

और भी जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं, उन सबको

---

* जैसे बादल आकाशसे उत्पन्न होते हैं, आकाशमें रहते हैं और आकाशमें ही विलीन हो जाते हैं तथा आकाश ही उनका एकमात्र कारण और आधार है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान्‌से ही उत्पन्न होता है, भगवान्‌में ही स्थित है और भगवान्‌में ही विलीन हो जाता है। भगवान् ही इसके एकमात्र महान् कारण और परम आधार हैं।

† जैसे सूतकी डोरीमें उसी सूतकी गाँठें लगाकर उन्हें मनियोंके स्थानमें माला बना लेते हैं और जैसे उस डोरीमें और गाँठोंके मनियोंमें सर्वत्र केवल सूत ही व्याप्त रहता है, उसी प्रकार यह समस्त संसार भगवान्‌में गुँथा हुआ है। भगवान् ही इसमें ओतप्रोत हैं।

‡ शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—इस प्रकरणमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका प्रसङ्ग है। इस बातको स्पष्ट करनेके लिये गन्धके साथ 'पवित्र' शब्द जोड़ा गया है।

[illegible] जीवन कहते हैं। भगवान् ही समस्त चराचर प्राणियोंके परम आधार हैं और उन्हींसे सबकी सत्ता है, अतएव वे ही सबके जीवन हैं।

सम्पूर्ण पदार्थोंका [illegible] अन्तःकरणकी जो निश्चय करनेवाली शक्ति है, उसे बुद्धि कहते हैं। जिनमें यह बुद्धि अधिक होती है, उन्हें बुद्धिमान् कहते हैं। यह बुद्धिशक्ति भगवान्‌की अपरा प्रकृतिका ही अंश है। इसी प्रकार [illegible] प्रभाव डालनेवाली शक्तिविशेषका नाम तेजस् है, यह तेजस्तत्त्व जिसमें विशेष होता है, उसे तेजस्वी कहते हैं। यह तेज भी भगवान्‌की अपरा प्रकृतिका ही एक अंश है। इसलिये भगवान्‌ने इन दोनोंको अपना स्वरूप बतलाया है।

+ जिस बलमें कामना, राग, अहंकार तथा क्रोधादिका संयोग है, उस बलका वर्णन आसुरी सम्पदामें किया गया है (गीता १६। [illegible]) [illegible] वह आसुर बल है और उससे [illegible] नहीं है (गीता [illegible])। इसी प्रकार धर्म-विरुद्ध काम भी आसुरी सम्पदाका प्रधान गुण होनेसे समस्त अनर्थोंका मूल (गीता [illegible]) नरकका द्वार और [illegible] है (गीता [illegible])। काम-रागयुक्त बल [illegible] और धर्मविरुद्ध काम [illegible] हैं; निष्काम विशुद्ध बल और विशुद्ध काम ही भगवान्‌का स्वरूप है।

तू मुझसे ही होनेवाले हैं* ऐसा जान परन्तु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं†।

सम्बन्ध—भगवान्‌ने यह दिखलाया कि समस्त जगत् मुझसे ही उत्पन्न है और मुझसे ही व्याप्त है। यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि इस प्रकार सब कुछ भगवान् ही होनेपर भी लोग भगवान्‌को क्यों नहीं पहचानते? इसपर भगवान् कहते हैं—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥ १३॥

गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस इन तीनों प्रकारके भावोंसे यह सब संसार—प्राणिसमुदाय मोहित हो रहा है, इसीलिये इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको नहीं जानता‡॥ १३॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ १४॥

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं§॥ १४॥

सम्बन्ध—भगवान्‌के शरणागत पुरुष मायासे तरकर भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं, तब यह प्रश्न उठता है कि जब ऐसी बात है, तब सब लोग निरन्तर आपका भजन क्यों नहीं करते? इसपर भगवान् कहते हैं—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ १५॥

मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, ऐसे आसुर स्वभावको धारण किये हुए, मनुष्योंमें नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ़लोग मुझको नहीं भजते॥ १५॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ १६॥

किंतु हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्मवाले

---

* मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषय, तन्मात्राएँ, महाभूत और समस्त गुण अवगुण तथा कर्म आदि जितने भी भाव हैं, सभी सात्त्विक, राजस और तामस भावोंके अन्तर्गत हैं। इन समस्त पदार्थोंका विकास और विनाश भगवान्‌की अव्यक्त प्रकृतिसे होता है और वह प्रकृति भगवान्‌की है अतः भगवान्‌से भिन्न नहीं है। उन्हीं भगवान्‌की प्रकृतिके द्वारा सबका सृजन, विस्तार और उपसंहार होता रहता है। इस प्रकार जान लेना ही [illegible] भगवान्‌से होनेवाला समझना है।

† जैसे आकाशसे उत्पन्न होनेवाले बादलोंमें आकाश भरा हुआ है, परन्तु आकाशमें उनका अभाव निर्लिप्त है। बादल आकाशमें सदा नहीं रहते और अन्तमें उनका समूल नाश भी निश्चय ही होता है। [illegible] बादलोंके न रहनेपर भी सदा रहता है। [illegible] यह भी आकाश ही है। [illegible] वस्तुतः बादल भी आकाशसे भिन्न नहीं हैं। [illegible] आकाश किसी समय भी बादलोंमें नहीं है, वह तो सदा अपने-आपमें ही स्थित है। इस प्रकार यह [illegible] भगवान् भी समस्त त्रिगुणमय सात्त्विक, राजस और तामस भाव हैं; तथापि वास्तवमें वे गुण भगवान्‌में नहीं हैं और भगवान् उनमें नहीं हैं। भगवान् तो सर्वथा और सर्वदा गुणातीत हैं तथा नित्य अपने-आपमें ही स्थित हैं।

‡ भगवान्‌के सम्बन्धमें दूसरोंसे सुनकर—जानकर कि मनुष्य भगवान्‌के स्वभाव, महत्त्व और तत्त्वके अनुसार अनित्य और दुःखरूप इन त्रिगुणमय भावोंको ही नित्य और सुखका हेतु समझकर इनसे सम्बन्ध [illegible] और सुख उपलब्धिमें सदा तत्पर रहता है, राजस-तामस भोगोंमें ही [illegible] पूर्वक अनन्य [illegible] लगा [illegible] सकता और उनके चिन्तन और सेवनमें संलग्न रहता है। इस कारण उसका चित्त [illegible] इनको [illegible] परमात्मा-की प्राप्ति करने और जाननेके सिवा जीवनका अन्य कोई कर्तव्य या लक्ष्य है, यह नहीं समझता। इसलिये वह इन सबसे परे अतीत अविनाशी परमात्माको नहीं जान सकता।

§ जो एकमात्र भगवान्‌को ही अपना परम आश्रय, परम गति, परम प्रिय और परम प्राप्य मानते हैं तथा सब कुछ भगवान्‌का है और भगवान्‌के ही लिये है, ऐसा समझकर जो शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, गृह, कीर्ति आदिमें ममता और आसक्तिका त्याग करके उन सबको भगवान्‌की ही पूजाकी सामग्री बनाकर तथा भगवान्‌के रचे हुए विधानमें सदा संतुष्ट रहकर भगवान्‌की आज्ञाके पालनमें तत्पर और भगवान्‌के स्मरणपरायण होकर अपनेको सब प्रकारसे भगवान्‌में ही लगाये रखते हैं, वे भगवान्‌के भक्त कहलाते हैं।

जन्म-जन्मान्तरसे शुभकर्म करते-करते जिनका स्वभाव शुद्ध होकर शुभकर्मशील बन गया है और पूर्व-संस्कारोंके बलसे अथवा महात्माओंके प्रभावसे जो इस जन्ममें भी भगवदाज्ञानुसार शुभकर्म ही करते हैं, उन शुभकर्म करनेवालोंको 'सुकृती' कहते हैं।

वाले अर्थार्थी* आर्त† जिज्ञासु‡ और ज्ञानी§—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं ॥ १६ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७ ॥

उनमें भी नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥

सम्बन्ध—इसलिये ज्ञानी भक्तको सबसे श्रेष्ठ और अत्यन्त प्रिय बतलाया। इसपर यह शङ्का हो सकती है कि क्या दूसरे भक्त श्रेष्ठ और प्रिय नहीं हैं? इसपर भगवान् कहते हैं—

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

ये सभी उदार हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है ॥ १८ ॥

---

* स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्ग-सुख आदि इस लोक और परलोकके भोगोंमेंसे जिसके मनमें एकको या बहुतोंकी कामना है, परंतु कामनापूर्तिके लिये जो केवल भगवान्पर ही निर्भर करता है और इसके लिये श्रद्धा और विश्वासके साथ भगवान्का भजन करता है, वह अर्थार्थी भक्त है। सुग्रीव, विभीषणादि भक्त अर्थार्थी माने जाते हैं। इनमें ध्रुवका मुख्य नाम लिया जाता है।

† जो शारीरिक या मानसिक संताप, विपत्ति, शत्रुभय, रोग, अपमान, चोर, डाकू और आततायियोंके अथवा हिंस्र जानवरोंके आक्रमण आदिसे घबराकर उनसे छूटनेके लिये पूर्ण विश्वासके साथ हृदयकी अविचल श्रद्धासे भगवान्का भजन करता है, वह 'आर्त' भक्त है। आर्त भक्तोंमें गजराज, जरासन्धके बंदी राजागण आदि बहुत-से भक्त आते हैं; परंतु द्रौपदीका नाम मुख्यतया लिया जाता है।

‡ धन, स्त्री, पुत्र, गृह आदि वस्तुओंकी और रोग-संकटादिसे छूटनेकी इच्छा न करके एकमात्र परमात्माको तत्त्वसे जाननेकी इच्छासे ही जो एकनिष्ठ होकर भगवान्की भक्ति करता है (गीता), उस कल्याणकामी भक्तको जिज्ञासु कहते हैं। जिज्ञासु भक्तोंमें परीक्षित् आदि अनेकोंके नाम हैं, परंतु उद्धवजीका नाम विशेष प्रसिद्ध है।

§ जो परमात्माको प्राप्त कर चुके हैं, जिनकी दृष्टिमें एक परमात्मा ही रह गये हैं—परमात्माके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं और इस प्रकार परमात्माको प्राप्त कर लेनेसे जिनकी समस्त कामनाएँ निःशेषरूपसे समाप्त हो चुकी हैं, तथा ऐसी स्थितिमें जो सहज भावसे ही परमात्माका भजन करते हैं, वे ज्ञानी हैं (गीता)। गीताके नवें अध्यायके तेरहवें श्लोकमें तथा अध्यायके तीसरे और पाँचवें अध्यायके श्लोकमें बतलाया गया है वे निष्काम अनन्य प्रेमी साधक भक्त भी ज्ञानी भक्तके अन्तर्गत हैं। ऋषियोंमें शुकदेवजी, सनकादि, नारदजी और भीष्मजी आदि प्रसिद्ध हैं। उद्धव महाराज भी ज्ञानी भक्त माने जाते हैं।

¶ सदा शरीर और प्राण-मनसे सर्वथा छूटकर जो अनन्यभावसे नित्य-निरन्तर केवल भगवान्में ही स्थित है उसे नित्ययुक्त कहते हैं और जो भगवान्में ही हेतुरहित और अविरल प्रेम करता है उसे एकभक्ति कहते हैं। ऐसा भगवान्के तत्त्वको यथार्थ जाननेवाला ज्ञानी भक्त अन्य सबसे उत्तम है।

जिन्होंने इस लोक और परलोकके समस्त प्रिय, सुखप्रद तथा साधारणतः मनुष्योंकी दृष्टिमें दुर्लभ-से-दुर्लभ माने जानेवाले भोगों और सुखोंकी समस्त अभिलाषाओंका भगवान्के लिये त्याग कर दिया है, उनकी दृष्टिमें भगवान्का कितना महत्त्व है और उनको भगवान् कितने प्यारे हैं—दूसरे किसीके द्वारा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिये भगवान् कहते हैं कि ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और जिनको भगवान् अतिशय प्रिय हैं, वे भगवान्को भी अतिशय प्रिय होंगे ही।

॥ इस प्रकारके भक्त इस बातको भलीभाँति निश्चय कर चुके हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वेश हैं, परम दयालु हैं और परम सुहृद् हैं; हमारी आशा और आकांक्षाओंकी पूर्ति एकमात्र उन्हींसे हो सकती है। ऐसा मान और जानकर वे अन्य सब प्रकारके आश्रयोंका त्याग करके अपने जीवनको भगवान्के ही भजन-स्मरण, पूजन और सेवा आदिमें लगाये रखते हैं; उनकी एक भी चेष्टा ऐसी नहीं होती जो भगवान्के विधानमें तनिक भी त्रुटि लानेवाली हो; इसलिये भक्तोंको उदार कहा गया है।

इस कथनसे भगवान् यह भाव दिखला रहे हैं कि ज्ञानी भक्तमें और मुझमें कुछ भी अन्तर नहीं है। भक्त है सो मैं हूँ और मैं हूँ सो भक्त है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है*, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है १ ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग अपने स्वभावसे प्रेरित होकर† उस-उस नियमको धारण करके‡ अन्य देवताओंको भजते हैं अर्थात् पूजते हैं§ ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी श्रद्धाको मैं उसी देवताके प्रति स्थिर करता हूँ ॥ २१ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२ ॥

वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और उस देवतासे मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको निःसन्देह प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३ ॥

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों×का वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं+ ॥ २३ ॥

सम्बन्ध—जब भगवान् इतने बड़े और दयामय हैं कि जिस किसी प्रकारसे भी भजनेवालेको अपनी प्राप्ति करा ही देते हैं, तो फिर सभी लोग उनको क्यों नहीं भजते? इस जिज्ञासापर कहते हैं—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परम भावको

जिस अवस्थामें मनुष्य भगवान्‌का ज्ञानी भक्त बन जाता है, वही उसके बहुत-से जन्मोंके अन्तका जन्म है; क्योंकि भगवान्‌को इस प्रकार तत्त्वसे जान लेनेके पश्चात् उसका पुनः जन्म नहीं होता, वही उसका अन्तिम जन्म होता है।

१ भगवान्‌ने इसी अध्यायके दूसरे श्लोकमें विज्ञानसहित जिस ज्ञानके जाननेकी प्रशंसा की थी, जिस प्रेमी भक्तने उस विज्ञानसहित ज्ञानको प्राप्त कर लिया है, तथा तीसरे श्लोकमें जिसके लिये कहा है कि कोई एक ही मुझे तत्त्वसे जानता है, उसीके लिये यहाँ 'ज्ञानवान्' शब्दका प्रयोग हुआ है। इसीलिये अठारहवें श्लोकमें भगवान्‌ने उसको अपना स्वरूप बतलाया है।

* सम्पूर्ण जगत् भगवान् वासुदेवका ही स्वरूप है, वासुदेवके सिवा और कुछ है ही नहीं—इस तत्त्वका संशय और भ्रमरहित अनुभव हो जाना और उसीमें नित्य स्थित रहना—यही 'सब कुछ वासुदेव है' इस प्रकारसे भगवान्‌का भजन करना है।

† जन्म-जन्मान्तरमें किये हुए कर्मोंके संस्कारोंका समूह होता है और उन संस्कारसमूहसे जो प्रकृति बनती है, उसे स्वभाव कहा जाता है। स्वभाव प्रत्येक जीवका भिन्न होता है। उस स्वभावके अनुसार जो अलग-अलग भिन्न-भिन्न देवताओंके पूजन करनेकी भिन्न-भिन्न इच्छा उत्पन्न होती है, उसीको स्वभावसे प्रेरित होना कहते हैं।

‡ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, इन्द्र, मरुत्, यमराज और वरुण आदि शास्त्रोक्त देवताओंको भगवान्‌से भिन्न समझकर, जिस देवताकी जिस उद्देश्यसे की जानेवाली उपासनामें जप, ध्यान, पूजन, नमस्कार, न्यास, हवन, व्रत, उपवास आदिके जो-जो भिन्न-भिन्न नियम हैं, उन-उन नियमोंको धारण करके अर्थात् उनका भलीभाँति पालन करते हुए उन देवताओंकी आराधना करना ही उस-उस नियमको धारण करके अन्य देवताओंको भजना है।

§ देवताओंकी सत्तामें, उनके प्रभाव और गुणोंमें तथा पूजा-प्रकार और उनके फलमें पूर्ण विश्वास करके श्रद्धापूर्वक जिस देवताकी जैसी मूर्तिका विधान हो, उसकी वैसी ही धातु, काष्ठ, मिट्टी, पाषाण आदिकी मूर्ति या चित्रपटकी विधिपूर्वक स्थापना करके अथवा मनके द्वारा मानसिक मूर्तिका निर्माण करके जिस मन्त्रकी जितनी संख्याके जपपूर्वक जिन सामग्रियोंसे जैसी पूजाका विधान हो, उसी मन्त्रकी उतनी ही संख्या जपकर उन्हीं सामग्रियोंसे उसी विधानसे पूजा करना, देवताओंके निमित्त अग्निमें आहुति देकर यज्ञादि करना, उनका ध्यान करना, स्तव करना, अग्नि आदि अन्य देवताओंका पूजन करना और इन सबको यथाविधि नमस्कारादि करना—यही देवताओंके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना है।

× देवोपासक सकामभावोंके वशमें होकर अन्य देवताओंको भगवान्‌से पृथक् मानकर भोगप्राप्तिके लिये उनकी उपासना करते हैं, इसलिये उनको मेरे भक्तोंकी अपेक्षा भिन्न श्रेणीके और अल्पबुद्धि कहा गया है।

+ भगवान्‌के नित्य दिव्य परमधाममें निरन्तर भगवान्‌के समीप निवास करना अथवा अभेदभावसे भगवान्‌में एकरूपसे प्रविष्ट हो जाना—दोनोंहीका नाम भगवत्प्राप्ति है।

न जाननेवाले पुरुष मन-इन्द्रियोंसे परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी भाँति जन्मकर व्यक्तिभावको प्राप्त हुआ मानते हैं*॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥ २५॥

क्योंकि अपनी योगमायासे छिपा हुआ‡ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय† मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ २६॥

हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ§, परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता॥ २६॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप॥ २७॥

क्योंकि हे भरतवंशी अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञताको प्राप्त हो रहे हैं×॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥ २८॥

परन्तु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं+॥

* अपनी अनन्त दयालुता और शरणागतवत्सलताके कारण जगत्‌के प्राणियोंको अपनी शरणागतिका महत्त्व देनेके लिये ही भगवान् अपने अजन्मा, अविनाशी और महेश्वर स्वभाव तथा सामर्थ्यसे सहित ही ... रूपमें प्रकट होते हैं और अपनी अलौकिक लीलाओंसे जगत्‌के प्राणियोंको परमानन्दके महान् सागरमें निमग्न कर देते हैं। भगवान्‌का यही नित्य अनुत्तम और परम भाव है, इसको न समझना ही उनके अनुत्तम अविनाशी परमभावको न जानना है।

भगवान्‌के निर्गुण सगुण दोनों ही रूप नित्य और दिव्य हैं। मनुष्यादिके सदृश उनका प्रादुर्भाव होना ही जन्म है और अन्तर्धान हो जाना ही परमधामगमन है। अन्य प्राणियोंकी भाँति प्रारब्धकर्मवश विनाशरूप जन्म-मरण उनके नहीं होते। इस रहस्यको न जाननेके कारण बुद्धिहीन मनुष्य समझते हैं कि जैसे अन्य सब प्राणी जन्मसे पहले अव्यक्त थे अर्थात् उनकी कोई सत्ता नहीं थी, अब जन्म लेकर व्यक्त हुए हैं, इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी जन्मके पहले नहीं थे, अब मनुष्यरूपमें जन्म लेकर व्यक्त हुए हैं। अन्य मनुष्योंमें और इनमें अन्तर ही क्या है, अर्थात् कोई भेद नहीं है। यही बुद्धिहीन मनुष्यका भगवान्‌को अव्यक्तसे व्यक्त हुआ मानना है।

† यहाँ 'लोक' पदका प्रयोग केवल भगवान्‌के भक्तोंको छोड़कर शेष सभी मनुष्यों—सभी श्रेणीके साधारण अज्ञानी मनुष्यसमुदायके लिये किया गया है।

‡ गीताके चौथे अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान्‌ने जिसको 'आत्ममाया' कहा है, जिस योगशक्तिसे भगवान् दिव्यगुणोंसे युक्त रहते हुए मनुष्यादि रूपोंमें प्रकट होते हुए भी लोकदृष्टिमें जन्म धारण करनेवाले साधारण मनुष्य-से ही प्रतीत होते हैं, उसी योगशक्तिका नाम 'योगमाया' है। उसके आवरणसे समस्त जगत् आवृत नहीं होता, तथापि जैसे लोगोंकी दृष्टि बादलोंसे आवृत हो जानेके कारण ऐसा कहा जाता है कि सूर्य बादलोंसे ढक गया, उसी प्रकार यहाँ भगवान्‌का योगमायासे छिपा रहना बताया है।

§ यहाँ भगवान् यह कहते हैं कि देवता, मनुष्य, पशु और कीट-पतङ्गादि जितने भी भूत—चराचर प्राणी हैं, वे सब अनन्त पूर्व अनादि कल्प-कल्पान्तरोंमें कब किन-किन योनियोंमें किस प्रकार उत्पन्न होकर कैसे रहे थे और उन्होंने क्या-क्या किया था तथा वर्तमान कल्पमें कौन कहाँ किस योनिमें किस प्रकार उत्पन्न होकर क्या कर रहे हैं और भविष्य कल्पोंमें कौन कहाँ किस प्रकार रहेंगे—इन सब बातोंको मैं जानता हूँ। ज्ञानदृष्टिमें भगवान्‌के लिये भूत, भविष्य और वर्तमानकालका भेद नहीं है, उनके ज्ञानस्वरूपमें सभी कुछ वर्तमानवत् प्रत्यक्ष है।

× जिनको भगवान्‌ने मनुष्यके कल्याणमार्गमें विघ्न डालनेवाले शत्रु 'परिपन्थी' बतलाया है (गीता ३।३४) और काम-क्रोधके नामसे (गीता ३।३७) जिनको पापोंमें हेतु तथा मनुष्यका वैरी कहा है, उन्हीं राग-द्वेषका यहाँ इच्छा और द्वेषके नामसे वर्णन किया है। इन इच्छा-द्वेषसे जो हर्ष-शोक और सुख-दुःखादि द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, वे सब जीवोंके अज्ञानको दृढ़ करनेमें कारण होते हैं, इसलिये उन्हींका नाम 'द्वन्द्वरूप मोह' है।

+ भगवान्‌को ही सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सबके आत्मा और परम पुरुषोत्तम समझकर बुद्धिसे उनके तत्त्वका निश्चय करना, मनसे उनके गुण, प्रभाव, स्वरूप और लीला-रहस्यका चिन्तन, वाणीसे उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, सिरसे उनको नमस्कार, हाथोंसे उनकी पूजा और दीन-दुःखी प्राणियोंकी सेवा, नेत्रोंसे उनकी मूर्तिके दर्शन, चरणोंसे उनके मन्दिर और तीर्थोंमें जाना तथा अपनी समस्त वस्तुओंको निष्कामभावसे केवल उन्हींके अर्पण करके, इस प्रकार केवल उन्हींका हो रहना—यही 'सब प्रकारसे उनको भजना' है।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद् विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥

जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ ३०॥

जो पुरुष अधिभूत और अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित मुझे अन्तकालमें भी जानते हैं, वे युक्तचित्तवाले पुरुष मुझे जानते हैं, अर्थात् प्राप्त हो जाते हैं॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥ भीष्मपर्वणि तु एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें श्रीमद्भगवद्गीतारूप उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रमें श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें ज्ञानविज्ञानयोग नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥ भीष्मपर्वमें इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीमद्भगवद्गीतायामष्टमोऽध्यायः

ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादि विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर एवं भक्तियोग तथा शुक्ल और कृष्ण मार्गोंका प्रतिपादन

सम्बन्ध—सातवें अध्यायके आरम्भमें भगवान्‌ने [illegible] अर्जुनको [illegible] सुननेके लिये कहा था [illegible] और उसको कहनेकी प्रतिज्ञा [illegible]; फिर [illegible] अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ—इन छहोंका नाम लेकर [illegible] भगवान्‌के समग्ररूपको [illegible] जाननेवाले [illegible]; अतएव इन [illegible] विषयोंको समझनेके लिये भगवान्‌से सात प्रश्न करते हैं।

अर्जुन उवाच

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥ १॥

अर्जुनने कहा—हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नामसे क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते हैं?॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥ २॥

हे मधुसूदन! यहाँ अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीरमें कैसे है? तथा युक्तचित्तवाले पुरुषोंद्वारा अन्त समयमें आप किस प्रकार जाननेमें आते हैं?॥

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥ ३॥

यहाँ भगवान् यह कह रहे हैं कि जो साधक सब विषयोंके भावोंको छोड़कर [illegible] मेरा ही आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें ही मन-बुद्धिको लगाये रखते हैं, वे मेरे परम [illegible] करनेवाले हैं।

उन्तीसवें श्लोकमें वर्णित ब्रह्म, जीवसमुदायरूप अध्यात्म, [illegible] तथा उपर्युक्त [illegible] अधिभूत, हिरण्यगर्भरूप अधिदैव और अन्तर्यामीरूप अधियज्ञ—सब एक भगवान्‌के ही स्वरूप [illegible] समग्र रूप है। अध्यायके आरम्भमें भगवान्‌ने इसी समग्र रूपके बतलानेकी प्रतिज्ञा की थी। फिर [illegible] मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है, सात्त्विक, राजस और तामस भाव सब मुझसे ही होते हैं और उन्नीसवें [illegible] सब कुछ वासुदेव ही है, कहकर इसी समग्रका वर्णन किया है तथा यहाँ भी उपर्युक्त शब्दोंसे इसीका वर्णन करके उपसंहार किया गया है। [illegible] अर्थात् [illegible] सभी [illegible] ही हैं। वे ही ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ—सब कुछ वासुदेव ही हैं। इस प्रकार [illegible] समग्र ब्रह्मको या भगवान्‌को जानना है।

श्रीभगवान्‌ने कहा—परम अक्षर 'ब्रह्म' है,* अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म'† नामसे कहा जाता है तथा भूतोंके भावको उत्पन्न करनेवाला जो त्याग है,‡ वह 'कर्म' नामसे कहा गया है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥ ४॥

उत्पत्ति-विनाशधर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत‖ हैं, हिरण्मय पुरुष अधिदैव§ है और हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीरमें मैं वासुदेव ही अन्तर्यामीरूपसे अधियज्ञ हूँ।×

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

सम्बन्ध—यहाँ यह बात कही गयी कि अन्तकालमें स्मरण करते हुए शरीर छोड़नेवाला मुझको ही प्राप्त होता है; इसपर यह जिज्ञासा होती है कि केवल भगवान्‌के स्मरणके सम्बन्धमें ही यह विशेष नियम है या सभीके सम्बन्धमें है; इसपर कहते हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ ६॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।Δ

---

* अक्षरके साथ 'परम' विशेषण देकर भगवान् यह बतलाते हैं कि गीताके [illegible] अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें [illegible] यहाँ 'ब्रह्म' शब्द निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्माका वाचक है, वेद, ब्रह्मा और प्रकृतिका वाचक नहीं।

† 'स्वो भावः स्वभावः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार अपने ही भावका नाम स्वभाव है। अविनाशी भगवान्‌की चेतन परा प्रकृतिरूप आत्मतत्त्व ही, जो आत्मा-शब्दवाच्य शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धिरूप अपरा प्रकृतिका अधिष्ठाता हो जाता है, उसे 'अध्यात्म' कहते हैं। भगवान्‌ने गीताके सातवें अध्यायके उन्तीसवें श्लोकमें 'कृत्स्न' विशेषणके साथ जो 'अध्यात्म' शब्दका प्रयोग किया है, उसका अर्थ चेतन जीवसमुदाय समझना चाहिये।

‡ 'भूत' शब्द चराचर प्राणियोंका वाचक है; इन भूतोंके भावका उद्भव और अभ्युदय जिस त्यागसे होता है, जो सृष्टि-स्थितिका आधार है, उस 'त्याग' का नाम ही 'कर्म' है। महाप्रलयमें विश्वके समस्त प्राणी अपने-अपने कर्म-संस्कारोंके साथ भगवान्‌में विलीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें भगवान् जब यह संकल्प करते हैं कि 'मैं एक ही बहुत हो जाऊँ' तब पुनः उनकी उत्पत्ति होती है। भगवान्‌का यह 'आदि संकल्प' ही अचेतन प्रकृतिरूप योनिमें चेतनरूप बीजकी स्थापना करना है; यही महान् विसर्जन है और इसी विसर्जन 'त्याग' का नाम 'विसर्ग' है।

‖ क्षरा प्रकृति और उसके परिणामसे उत्पन्न जो विनाशशील तत्त्व है, जिसका प्रतिक्षण क्षय होता है, उसका नाम 'अधिभूत' है। इसीको गीताके तेरहवें अध्यायमें 'क्षेत्र' (शरीर) के नामसे और पंद्रहवें अध्यायमें 'क्षर' पुरुषके नामसे कहा गया है।

§ 'पुरुष' शब्द यहाँ 'प्रथम पुरुष' का वाचक है; इसीको सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ, प्रजापति या ब्रह्मा कहते हैं। सब [illegible] सम्पूर्ण विश्वका यही [illegible] है; समस्त देवता इसीके अङ्ग हैं; यही सबका अधिष्ठाता, अधिपति और उत्पादक है; इसीसे इसका नाम 'अधिदैव' है।

× अर्जुनने दो बातें पूछी थीं—'अधियज्ञ कौन है?' और 'वह इस शरीरमें कैसे है?' दोनों प्रश्नोंका भगवान्‌ने एक ही साथ उत्तर दे दिया है। भगवान् ही सब यज्ञोंके भोक्ता और प्रभु हैं (गीता) और समस्त यज्ञोंके विधाता वे ही हैं (गीता) तथा वे ही अन्तर्यामीरूपसे सबके अंदर व्याप्त हैं; इसलिये वे कहते हैं कि 'इस शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे अधियज्ञ मैं स्वयं ही हूँ।'

यहाँ अन्तकालका विशेष महत्त्व प्रकट किया गया है। अतः भगवान्‌के कहनेका यहाँ यह भाव है कि जो सदा-सर्वदा मेरा अनन्यचिन्तन करते हैं उनकी तो बात ही क्या है, जो इस मनुष्य-जन्मके अन्तिम क्षणतक भी मेरा चिन्तन करते हुए शरीर त्यागकर जाते हैं, उनको भी मेरी प्राप्ति हो जाती है।

अन्तकालमें भगवान्‌का स्मरण करनेवाला मनुष्य किसी भी देश और किसी भी कालमें क्यों न मरे एवं पहलेके उसके आचरण चाहे जैसे भी क्यों न रहे हों, उसे भगवान्‌की प्राप्ति निःसन्देह हो जाती है; इसमें जरा भी शङ्का नहीं है।

□ ईश्वर, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष, मकान, जमीन आदि जितने भी चेतन और जड पदार्थ हैं, उन सबका नाम 'भाव' है। अन्तकालमें किसी भी पदार्थका चिन्तन करना, उस भावका स्मरण करना है।

Δ अन्तकालमें प्रायः उसी भावका स्मरण होता है, जिस भावसे चित्त सदा भावित होता है। पूर्वसंस्कार, [illegible] कामना, भय और अध्ययन आदिके प्रभावसे मनुष्य जिस भावका बार-बार चिन्तन करता है, वह,

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। * इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा†॥ ७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशस्वरूप दिव्य पुरुषको अर्थात् परमेश्वरको ही प्राप्त होता है‡॥ ८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता§, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यरूप परम पुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है॥ ९-१०॥

उसीसे भावित हो जाता है तथा मरनेके बाद सूक्ष्मरूपसे अन्य शरीरमें अङ्कित हुए उस भावसे भावित होता-होता समयपर उस भावको पूर्णतया प्राप्त हो जाता है। किसी मनुष्यका [illegible] फोटो [illegible] जाता है, उस समय वह मनुष्य जिस प्रकारसे स्थित होता है, उसका वैसा ही चित्र उतर जाता है। इसी प्रकार अन्तकालमें मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसे ही स्वरूप [illegible] अन्तःकरणमें अङ्कित हो जाता है। [illegible] सहकारी पदार्थोंकी सहायता पाकर उस भावसे भावित होता हुआ वह समयपर स्थूलरूपको प्राप्त हो जाता है।

यहाँ अन्तःकरण ही कैमराका प्लेट है, उसमें होनेवाला स्मरण ही प्रतिबिम्ब है और अन्य सूक्ष्म शरीरकी प्राप्ति ही चित्र खिंचना है। अतएव जैसे चित्र खिंचवानेवाला सावधान रहता है और [illegible] की बात मानकर [illegible] हिलने-डुलनेसे चित्र बिगड़ जाता है, वैसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंका चित्र उतारनेवाले भगवान् मनुष्यको सावधान करते हैं कि तुम्हारा फोटो अन्तकालमें उतरनेवाला है, पता नहीं वह समय कब आ जाय, अतः तुम सावधान हो जाओ, नहीं तो चित्र बिगड़ जायगा। यहाँ निरन्तर परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करना ही सावधान रहना है और परमात्माको छोड़कर अन्य किसीका चिन्तन करना ही असावधान [illegible] चित्रका बिगड़ना है।

* जो भगवान्‌के गुण, प्रभाव [illegible] भलीभाँति जाननेवाला अनन्यप्रेमी भक्त है, जो सम्पूर्ण जगत्‌को भगवान्‌के द्वारा ही रचित और [illegible] भगवान्‌से अभिन्न या भगवान्‌की लीलाको समझता है [illegible] प्राणियोंकी भाँति [illegible] भगवान्‌के [illegible] निरन्तर [illegible] कर्तव्य कर्म करता रहता [illegible] तथा जिसका [illegible] भगवान्‌में मुख्य प्रेम हो गया है, वह निष्काम भावसे [illegible] भगवान्‌के लिये ही [illegible] अनुसार कर्म करता है, वह भी निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करता हुआ [illegible] सकता है [illegible] करता है और [illegible] वह भी [illegible] भगवान्‌का स्मरण करते हुए [illegible] हो सकता है।

† बुद्धिसे भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य और स्वरूपको समझकर परमेश्वरमें [illegible] निश्चय कर लेना और मनसे अनन्य श्रद्धा-प्रेमपूर्वक गुण, प्रभावके सहित भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करते रहना—यही मन-बुद्धिका भगवान्‌में अर्पित कर देना है।

‡ [illegible] अभ्यास [illegible] ध्यानके अभ्यासका नाम अभ्यासयोग है। ऐसे अभ्यासयोगके द्वारा जो चित्त [illegible] निरन्तर भगवान्‌में ही लगा रहता है, उसे 'अभ्यासयोगयुक्त' कहते हैं।

§ इसी अध्यायके चौथे श्लोकमें जिसको 'अधियज्ञ' कहा है और सातवें श्लोकमें जिसका स्मरण करनेको कहा गया है, भगवान्‌के उस सगुण निराकार और साकार [illegible] स्वरूपका यहाँ दिव्य परम पुरुष कहा गया है। उसका चिन्तन करते-करते उसे सर्वशक्तिमान् जानकर उसके साथ तद्रूप हो जाना ही उसको प्राप्त होना है।

¶ परमेश्वर अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंके शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार शासन करनेवाले होनेसे सबके नियन्ता हैं।

सम्बन्ध—पिछले श्लोकोंमें भगवान्‌का चिन्तन करते-करते मरनेवालेके सामान्य अनुयायी गतिका संक्षेपमें वर्णन किया गया। फिर आठवें श्लोकसे दसवें श्लोकतक सगुण निराकार दिव्य पुरुषका चिन्तन करनेवाले योगियोंकी अन्तकालीन स्थिति फलसहित बतलायी। अब ग्यारहवें श्लोकसे तेरहवें श्लोकतक परम अक्षर निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करने-वाले योगियोंकी अन्तकालीन गतिका वर्णन करनेके लिये पहले उस अक्षर ब्रह्मकी प्रशंसा करते हुए उसे बतलानेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं*, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं†, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा॥११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥१३॥

सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर‡ तथा मनको हृद्देशमें स्थिर करके§, फिर उस जीते हुए मनके द्वारा प्राणको मस्तकमें स्थापित करके, परमात्मसम्बन्धी योगधारणामें स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गतिको प्राप्त होता है×॥१२-१३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥१४॥

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ॥१४॥

* वेदके जाननेवाले महात्मा पुरुष कहते हैं कि यह 'अक्षर' है अर्थात् यह एक ऐसा महान् तत्त्व है जिसका किसी भी अवस्थामें कभी भी किसी भी कारणसे नाश नहीं होता, यह सदा निर्विकार, एकरस और एकरूप रहता है। गीताके बारहवें अध्यायमें तीसरे श्लोकमें जिस अक्षर अचिन्त्य स्वरूपका कथन है, यहाँ भी वह उपर्युक्त अक्षर है।

† ब्रह्मचर्यका वास्तविक अर्थ है 'ब्रह्ममें अथवा ब्रह्मके मार्गमें विचरण करना'। जिन आचरणोंसे ब्रह्मप्राप्तिके मार्गमें अग्रसर हुआ जा सकता है, उनका आचरण करना—यही ब्रह्मचर्यका स्वरूप है। सब प्रकारसे वीर्यकी रक्षा करना भी इसीके अन्तर्गत है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम आदि सभी आश्रमोंके लिये अपने-अपने अधिकारके अनुसार सभी ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये।

यहाँ भगवान्‌ने यह प्रतिज्ञा की है कि उपर्युक्त वाक्योंमें जिस परम अक्षरका निर्देश किया गया है, वह क्या है और किस प्रकार साधन करनेवाला मनुष्य उसको प्राप्त होता है—यह बात मैं तुम्हें संक्षेपसे कहूँगा।

यहाँ अलौकिक तत्त्वमें प्रवेश हो जाना, यह सच्चिदानन्दघन निर्गुण निराकार ब्रह्मका वाचक है।

‡ आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा आदि दस इन्द्रियाँ हैं, इनके द्वारा विषयोंका ग्रहण होता है, इसलिये इनको द्वार कहते हैं। इनके अतिरिक्त इनके गोलकोंको भी द्वार कहते हैं। इन इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर, शब्द, स्पर्श, रूप आदिकी भावना भी न करके सब विषयोंको भी भीतरसे हटा देना ही इन्द्रियोंके द्वारोंका संयम करना है।

§ नाभि और कण्ठके बीचका स्थान, जिसे हृदयकमल भी कहते हैं और जो मन तथा प्राणोंका निवासस्थान माना गया है, हृद्देश है और इधर-उधर भटकनेवाले मनको सब विषयोंसे हटाकर हृदयमें निरुद्ध कर देना ही उसको हृद्देशमें स्थिर करना है।

× निर्गुण निराकार ब्रह्मको अभेदभावसे प्राप्त हो जाना परम गतिको प्राप्त होना है। इसीको सदाके लिये आवागमनसे मुक्त होना, मुक्तिलाभ करना, मोक्षको प्राप्त होना अथवा निर्वाण ब्रह्मको प्राप्त होना कहते हैं।

जिसका चित्त अन्य किसी भी वस्तुमें न लगकर निरन्तर अनन्य प्रेमके साथ केवल परम प्रेमी परमेश्वरमें ही लगा रहता हो, उसे 'अनन्यचेता' कहते हैं।

यहाँ 'माम्' पद सगुण साकार पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका वाचक है। परन्तु जो श्रीविष्णु और श्रीराम या भगवान्‌के दूसरे स्वरूपको माननेवाले हैं, उनके लिये वह भी वही है। परम प्रेम और श्रद्धाके साथ निरन्तर भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान अथवा उनके नाम, गुण, प्रभाव और लीला आदिका चिन्तन करते रहना ही उनका स्मरण करना है।

\+ अनन्यभावसे भगवान्‌का चिन्तन करनेवाले किसी भक्तका भगवान्‌के वियोगसे नहीं, इस प्रकारका जो नित्य

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ १५॥

परम सिद्धिको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखोंके घर एवं क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते॥ १५॥

[illegible]

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ १६॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परन्तु हे कुन्तीपुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता; क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादिके लोक कालके द्वारा सीमित होनेसे अनित्य हैं॥ १६॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥ १७॥

ब्रह्माका जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाला और रात्रिको भी एक हजार चतुर्युगीतककी अवधिवाली जो पुरुष तत्त्वसे जानते हैं, वे योगीजन कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं॥ १७॥

[illegible]

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

§ [illegible] पुनरावर्ती कहते हैं।

× यहाँ [illegible] दिव्य युगोंका वाचक है। [illegible] चतुर्युगी [illegible] कलियुग [illegible] देवताओंके [illegible] एक वर्ष देवताओंका एक दिन-रात [illegible] दिव्य वर्ष [illegible] ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक दिव्य युग होता है [illegible] महायुग और चतुर्युग भी कहते हैं। [illegible] कलियुग [illegible] हजार [illegible] वर्ष होते हैं।

इसे दूसरी तरह [illegible] हमारे युगोंके [illegible] परिमाण इस प्रकार है—

कलियुग—४३२००० वर्ष
द्वापरयुग—८६४००० वर्ष (कलियुगसे दुगुना)
त्रेतायुग—१२९६००० वर्ष (कलियुगसे तिगुना)
सत्ययुग—१७२८००० वर्ष (कलियुगसे चौगुना)
कुल योग—४३२०००० वर्ष

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥ १८॥

सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें ही लीन हो जाते हैं॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ १९॥

हे पार्थ! वही यह भूतसमुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृतिके वशमें हुआ रात्रिके प्रवेशकालमें लीन होता है और दिनके प्रवेशकालमें फिर उत्पन्न होता है॥ १९॥

अव्यक्त—अर्थात् [illegible]

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ २०॥

उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो

---

१ एक दिव्य युग हुआ, ऐसे एक हजार दिव्य युगोंका अर्थात् हमारे ४३२ (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है।

मनुस्मृति प्रथम अध्यायमें [illegible] विषयका विशद वर्णन है। ब्रह्माके [illegible] का [illegible] और [illegible] [illegible] दिन [illegible] ब्रह्माका एक महीना, ऐसे बारह महीनोंका एक वर्ष और ऐसे सौ वर्षोंकी ब्रह्माकी पूर्णायु होती है। ब्रह्माके [illegible] परिमाण बतलाकर भगवान् यह भाव दिखलाते हैं कि इस प्रकार ब्रह्माका जीवन और उनका लोक भी सीमित तथा कालकी अवधिवाला है, इसलिये वह भी अनित्य ही है और जब वही अनित्य है तब उस [illegible] और उसमें [illegible] अनित्य हैं, इसमें तो कहना ही क्या है।

२ देव, मनुष्य, तिर्यक्, पशु, [illegible] आदि [illegible] भी [illegible] देहधारी [illegible] प्राणी हैं, उन सबको व्यक्ति कहते हैं।

प्रकृतिका जो सूक्ष्म स्वरूप है, जिसको ब्रह्माका सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं, स्थूल पञ्चमहाभूतोंके उत्पन्न होनेसे पूर्वकी जो स्थिति है, उस सूक्ष्म अवस्था प्रकृतिका नाम यहाँ अव्यक्त है।

ब्रह्माके दिनके आरम्भमें अर्थात् जब ब्रह्मा अपनी सुषुप्ति [illegible] [illegible] अवस्थाको स्वीकार करते हैं, तब उस सूक्ष्म प्रकृतिमें विकार उत्पन्न होता है और वह स्थूलरूपमें परिणत हो जाती है। तब उस स्थूलरूपमें परिणत प्रकृतिके साथ सब प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार भिन्न-भिन्न शरीरोंमें सम्बद्ध हो जाते हैं। यही व्यक्तियोंका उत्पन्न होना है।

३ एक हजार दिव्य युगोंकी अवधिवाला [illegible] समाप्त [illegible] [illegible] सुषुप्ति अवस्थाको स्वीकार करते हैं, उस प्रथम क्षणका नाम ब्रह्माकी रात्रिका आरम्भ-काल है।

उस समय स्थूलरूपमें परिणत प्रकृति सूक्ष्म अवस्थाको प्राप्त हो जाती है और समस्त देहधारी प्राणी भिन्न-भिन्न स्थूल शरीरोंसे रहित होकर प्रकृतिकी सूक्ष्म अवस्थामें स्थित हो जाते हैं। यही उस अव्यक्तमें समस्त व्यक्तियोंका लय होना है।

४ अव्यक्तमें लीन हो जानेपर भूतगण न तो मुक्त होते हैं और न उससे भिन्न [illegible] [illegible] हैं। इसीलिये ब्रह्माकी रात्रि समाप्त होते ही वे सब पुनः अपने-अपने गुण और कर्मोंके अनुसार यथायोग्य स्थूल शरीरोंको प्राप्त करके प्रकट हो जाते हैं।

इस प्रकार यह भूतसमुदाय अनादिकालसे उत्पन्न हो-होकर लय होता चला आ रहा है। ब्रह्माकी आयुके सौ वर्ष पूरे होनेपर जब ब्रह्माका शरीर भी मूल प्रकृतिमें लीन हो जाता है और उसके साथ-साथ ये सब भूतसमुदाय भी उसीमें लीन हो जाते हैं (गीता ९। ७), तब भी इनके इस चक्रका अन्त नहीं आता। ये उसके बाद भी उसी तरह पुनः पुनः उत्पन्न होते रहते हैं (गीता ९। ८)। जबतक प्राणियोंको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक वे बार-बार इसी प्रकार उत्पन्न हो-होकर प्रकृतिमें लीन होते रहेंगे।

यहाँ ब्रह्माके दिन-रातका वर्णन होनेसे यह समझना चाहिये कि ब्रह्मा ही समस्त प्राणियोंको उनके गुण-कर्मानुसार शरीरोंसे सम्बद्ध करके बार-बार उत्पन्न करते हैं। महाप्रलयके बाद जिस समय ब्रह्माकी उत्पत्ति नहीं होती, उस समय तो सृष्टिकी रचना स्वयं भगवान् करते हैं; परन्तु ब्रह्माके उत्पन्न होनेके बाद सबकी रचना ब्रह्मा ही करते हैं।

गीताके नवें अध्यायमें (श्लोक ७ में) और चौदहवें अध्यायमें (श्लोक ३, ४) जो सृष्टिरचनाका वर्णन है, वह महाप्रलयके बाद महासर्गके आदिकालका है और यहाँका वर्णन ब्रह्माकी रात्रिके (प्रलयके) बाद ब्रह्माके दिनके (सर्गके) आरम्भ-कालका है।

[illegible] भाव है, वह परम दिव्य पुरुष [illegible] है [illegible] नहीं होता।

सम्बन्ध—[illegible] परम दिव्य पुरुषको प्राप्त [illegible] उपासना [illegible] सगुण-साकार भगवान् श्रीकृष्णका [illegible] बतलाया गया है [illegible] दिखलाते हैं—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ २१॥

जो अव्यक्त 'अक्षर'† इस नामसे कहा गया है, उसी अक्षरनामक अव्यक्तभावको परम गति‡ कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्त भावको प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते, वह मेरा परम धाम है§॥ २१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ २२॥

[illegible] जिस परमात्माके अन्तर्गत× सर्वभूत हैं और जिस [illegible] यह सब जगत् परिपूर्ण है, [illegible] परम पुरुष तो अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है॥ २२॥

सम्बन्ध—[illegible] अर्जुनके [illegible] भगवान्‌ने [illegible] मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] मार्गोंका [illegible] बतलाते हैं—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥ २३॥

[illegible] जिस कालमें [illegible] शरीर त्यागकर गये हुए [illegible]

* [illegible] बतलाया गया है [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] नहीं [illegible] अविनाशी और [illegible] है, [illegible] सनातन [illegible] और [illegible] नहीं होता।

† जिसे [illegible] अक्षर [illegible] परम दिव्य पुरुष [illegible] कहा है [illegible] अव्यक्त और अक्षर कहा है।

‡ [illegible] प्राप्त [illegible] है [illegible] नहीं रह जाता। [illegible] परम अक्षर [illegible] गया है।

§ अभिप्राय यह है कि [illegible] भेद [illegible] इसी तरह [illegible] मेद [illegible] नहीं है [illegible] किया गया है [illegible] है।

× जैसे वायु, तेज, जल और पृथ्वी—चारों भूत आकाशके अन्तर्गत हैं, आकाश ही उनका [illegible] कारण और आधार है, उसी प्रकार [illegible] परमेश्वरके ही अन्तर्गत हैं, परमेश्वर ही [illegible] है और परमेश्वरके ही आधारपर स्थित है तथा [illegible] आकाश [illegible] है, वैसे ही [illegible] परमेश्वरसे व्याप्त है। यही बात गीताके नवम अध्यायके चौथे, पाँचवें और छठे श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक दिखलायी गयी है।

+ [illegible] परमेश्वरमें ही सब कुछ समर्पण करके [illegible] सदा [illegible] और [illegible] अनन्य भक्ति है। इस अनन्य-भक्तिके द्वारा साधक [illegible] परमेश्वरके [illegible] और [illegible] जानकर [illegible] हो जाता है और [illegible] शीघ्र ही [illegible] प्राप्त कर लेता है।

÷ यहाँ 'काल' शब्द [illegible] है [illegible] भिन्न-भिन्न देवताओंका [illegible] अभिमानी [illegible]

योगीजन● तो वापस न लौटनेवाली गतिको और जिस कालमें गये हुए वापस लौटनेवाली गतिको ही प्राप्त होते हैं उस कालको अर्थात् दोनों मार्गोंको कहूँगा ॥ २३ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

है क्योंकि इस अध्यायके प्रकरणमें कालमें [illegible] और [illegible] हो सकती [illegible] और सत्ताईसवें श्लोकमें [illegible] हो नहीं मन्दवाचक [illegible] इसके सिवा अग्नि [illegible] और धूम पद भी [illegible] नहीं [illegible] और [illegible] आये हुए [illegible] मानना उचित नहीं होता इसी लिये यहाँ [illegible] शब्दका [illegible] देवताओंसे [illegible] मान लेना ही ठीक है। [illegible] दिन शुक्लपक्ष और उत्तरायणके [illegible] हो है क्योंकि [illegible] [illegible] देवताओंके [illegible] है [illegible] मरनेवाला योगी [illegible] [illegible] और [illegible] है [illegible] चाहिये कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] चाहिये कि [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] है।

● [illegible] यह बात समझनी चाहिये कि [illegible] [illegible] दूसरी [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] नहीं है।

यहाँ [illegible] अग्नि [illegible] और अग्नि [illegible] अग्नि-अभिमानी देवताका वाचक है। [illegible] [illegible] देवताको [illegible] है [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] अधिकार है तथा [illegible] [illegible] [illegible] काम है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपने अधिकारमें [illegible] [illegible] [illegible] देवताके [illegible] [illegible] देवताके [illegible] देता है।

२. [illegible] यह दिनके अभिमानी देवताका वाचक है। इसका स्वरूप अग्नि [illegible] अधिक दिव्य प्रकाशमय है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वायुमण्डलका [illegible] है [illegible] इसका अधिकार है और [illegible] अभिमानी देवताके [illegible] देना ही इसका काम है। [illegible] [illegible] मरता है तो [illegible] अपने अधिकारमें [illegible] [illegible] [illegible] अभिमानी देवताके अधीन कर देता है।

३. शुक्ल [illegible] शुक्लपक्षाभिमानी देवताका वाचक है। [illegible] दिनके अभिमानी देवतासे भी अधिक दिव्य प्रकाशमय है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] इसका अधिकार है और उत्तरायण-[illegible] [illegible] [illegible] अपने सीमाके पार [illegible] उत्तरायणके अभिमानी देवताके अधीन कर देना इसका काम है। यह भी [illegible] [illegible] [illegible] अधिकार में आता है तो उत्तरायणका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उत्तरायण आता है तो तुरंत ही अपनी सीमाके पार करके उत्तरायण अभिमानी देवताके [illegible] सौंप देता है।

४. [illegible] महीनोंमें सूर्य उत्तर दिशाकी [illegible] चलते रहते हैं, उस समयको उत्तरायण कहते हैं। उस उत्तरायण कालाभिमानी देवताका वाचक यहाँ [illegible] उत्तरायणम् पद है। इसका स्वरूप शुक्लपक्षाभिमानी देवतासे भी बढ़कर दिव्य प्रकाशमय है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] है [illegible] इसका अधिकार है और उत्तरायण-[illegible] [illegible] [illegible] अधिकारको अपनी सीमाके पार करके उपनिषदोंमें वर्णित (छान्दोग्य उ० [illegible] तथा ५ [illegible] २ बृहदारण्यक उ० ६ । २ । १५) संवत्सरके अभिमानी देवताके पास पहुँचा देना इसका काम है। वहाँसे [illegible] [illegible] [illegible] देवता [illegible] [illegible] [illegible] चन्द्राभिमानी देवताके अधिकारमें और [illegible] विद्युत्-अभिमानी देवताके अधिकारमें पहुँचा देते हैं। फिर वहाँसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाते हैं और [illegible] उनका भगवान्‌से मिलन हो जाता है।

[illegible] रहे कि इस वर्णनमें आया हुआ चन्द्र शब्द इस दीखनेवाले चन्द्रलोकका और उसके अभिमानी देवताका वाचक नहीं है।

जिस मार्गमें क्रमशः अग्नि अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायण [illegible] महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥ २५॥

इस श्लोकमें ब्रह्मविद् पद [illegible] निर्गुण ब्रह्मको या सगुण परमेश्वरके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको जानने और आचार्योंके उपदेशानुसार [illegible] परोक्षभावसे 'ब्रह्मवेत्ता' [illegible] का वाचक है [illegible] यह पद [illegible] परमात्माके प्राप्त [illegible] महात्माओंका [illegible] नहीं है, क्योंकि उनके लिये एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेका [illegible] उपयुक्त नहीं है [illegible] [illegible] [illegible] बृहदारण्यक उप [illegible] [illegible] छान्दोग्य उप [illegible] बृहदारण्यक उप

[illegible] क्योंकि उनके प्राण उत्क्रमण नहीं [illegible] यहीं लीन हो जाते हैं [illegible] ब्रह्म ही होकर ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

[illegible] सगुण [illegible] वाचक है [illegible] [illegible] मिलनेवाले [illegible] परम धाम [illegible] वैकुण्ठ [illegible] [illegible] सत्यलोकके [illegible] परमात्मा [illegible] ही उसको प्राप्त होता है।

यहाँ सूर्य [illegible] भूमिमानी देवताका [illegible] अभिमानी देवताका वाचक है। [illegible] [illegible] है, अग्नि अभिमानी देवताके [illegible] पृथ्वीके [illegible] [illegible] [illegible] अधिकार है तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] वह [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] अभिमानी देवताको सौंप देता है और वो [illegible] करता है [illegible] [illegible] अभिमानी देवताके [illegible] कर देता है।

[illegible] रात्रि [illegible] [illegible] [illegible] देवताका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अभिमानी देवताका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] रहता है [illegible] [illegible] अधिकार रहता है और जिस समय वहाँ रात्रि [illegible] है [illegible] अभिमानी देवताका [illegible] रहता है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सीमाके पार [illegible] [illegible] अभिमानी देवताके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपने अधिकारके पार करके [illegible] देवताको [illegible] देता है।

कृष्णपक्षाभिमानी देवताका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] होता है कि [illegible] [illegible] [illegible] शुक्लपक्ष रहता है, वहाँ शुक्लपक्षाभिमानी देवताका अधिकार रहता है और जहाँ कृष्णपक्ष रहता है, वहाँ कृष्णपक्षाभिमानी देवताका अधिकार रहता है। दक्षिणायन [illegible] [illegible] [illegible] देवताके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अधिकारी [illegible] [illegible] अधिकारमें आता है [illegible] [illegible] [illegible] अधिकारसे [illegible] और वो दक्षिणायनके समय आता है [illegible] [illegible] [illegible] अपने अधिकारके पार करके दक्षिणायनाभिमानी देवताके पास पहुँचा देता है।

जिन [illegible] महीनोंमें सूर्य दक्षिण दिशाकी ओर चलते रहते [illegible] [illegible] [illegible] उनके अभिमानी देवताका वाचक यहाँ दक्षिणायनम् पद है। इसका [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] देवताओंके लोकोंमें [illegible] [illegible] दिन और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अधिकार है [illegible] [illegible] ही है कि उत्तरायणके [illegible] महीनोंमें [illegible] अभिमानी देवताका वहाँ अधिकार रहता है और दक्षिणायनके [illegible] महीनोंमें इसका अधिकार रहता है। दक्षिणायन मार्गसे [illegible] जानेवाले साधकोंको अपने अधिकारसे पार करके [illegible] पितृलोकाभिमानी देवताके अधिकारमें [illegible] देना इसका काम है। वहाँसे पितृलोकाभिमानी देवता साधकको आकाशाभिमानी देवताके पास और वह आकाशाभिमानी देवता चन्द्रमाके लोकमें पहुँचा देता है। छान्दोग्य उप

जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है, रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है और दक्षिणायनके छः महीनोंका अभिमानी देवता है [illegible] मरकर गया हुआ सकाम कर्म करनेवाला योगी उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गया हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको‡ प्राप्त होकर स्वर्गमें अपने शुभ कर्मोंका फल भोगकर वापस आता है॥ २५॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥ २६॥

क्योंकि जगत्‌के ये दो प्रकारके—शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एकके द्वारा गया हुआ [illegible] जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परम गतिको प्राप्त होता है और दूसरेके द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है अर्थात् जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है॥ २६॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥ २७॥

हे पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गोंको तत्त्वसे जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण हे अर्जुन!

बृहदारण्यक उप० [illegible] ६ [illegible] चन्द्रमाका [illegible] उत्पत्तिमात्र है [illegible] विज्ञान [illegible] प्रकाशमान [illegible] सम्बन्धसे उन [illegible] सभी [illegible] चाहिये।

[illegible] ध्यान रहे कि [illegible] उत्तरायणकी [illegible] वह पितृलोक [illegible] पितृलोक [illegible] है [illegible] अन्तरिक्षके अन्त [illegible] है और [illegible] पन्द्रह [illegible] दिन और [illegible] रात [illegible] होती है।

‡ [illegible] पुण्यकर्म करनेवाला पुरुष भी अपनी [illegible] भोगोंकी प्राप्तिका निश्चय करता है [illegible] उसे भी योगी कहना उचित है [illegible] पुरुष [illegible] स्वर्ग [illegible] काल [illegible] निवास करके वापस लौटते हैं [illegible] उनको योगी कहना उचित ही है। यहाँ योगी शब्दका प्रयोग करके यह बात भी दिखलायी गयी है कि [illegible] पुर्नजन्म [illegible] सकाम [illegible] नहीं हैं [illegible] उन्हीं लोगोंको प्राप्त [illegible] अधिकारी [illegible] कर्म करनेवाले [illegible] हैं। गीता [illegible] ९। [illegible] आदि।

‡ चन्द्रमाके [illegible] अभिमानी [illegible] प्रकाशमय है [illegible] प्रकाशमय [illegible] ज्योति है और [illegible] चन्द्रमाकी [illegible] प्राप्त [illegible] है [illegible] उस लोकमें [illegible] प्रकाशमय दिव्य देवशरीर पाकर [illegible] पुण्यकर्मोंका फलस्वरूप [illegible] भोगोंको भोगता है।

§ चन्द्रमाको [illegible] प्राप्त होकर [illegible] नियत समय [illegible] बाद [illegible] पुण्यकर्मोंके क्षयसे वापस आ जाता है [illegible] लौटता है [illegible] उनका [illegible] हो जाते हैं [illegible] पाकर [illegible] पड़ता है [illegible] चन्द्रलोक [illegible] आता है [illegible] वायुरूप हो जाता है, फिर धूमके आकारमें परिणत हो जाता है, धूमसे बादलमें आता है [illegible] मेघ बनता है [illegible] [illegible] होता है [illegible] आदि [illegible] प्रविष्ट होता है [illegible] उनके द्वारा पुरुषके [illegible] स्त्रीकी योनिमें [illegible] है और [illegible] कर्मानुसार [illegible] जन्म ग्रहण करता है। छान्दोग्य उप० [illegible] ६। बृहदारण्यक उप० [illegible]

§ [illegible] भगवान् [illegible] मनुष्यको [illegible] अपने तथा देवताओंके लोकोंमें [illegible] देते हैं [illegible] दोनोंमेंसे किसी एक मार्गके द्वारा [illegible] है [illegible] दोनों मार्गोंका [illegible] है [illegible] इसीलिये इनको [illegible] कहा है। यद्यपि महाप्रलयमें [illegible] लीन हो जाते हैं [illegible] भी लीन हो जाते हैं, तथापि [illegible] सृष्टि [illegible] पहलेकी भाँति ही इनका पुनः निर्माण हो जाता है [illegible] कोई बाधा नहीं है।

× अर्थात् इसी अध्यायके [illegible] वें श्लोकके अनुसार अर्चिमार्गसे गया हुआ योगी

÷ अर्थात् इसी अध्यायके [illegible] वें श्लोकके अनुसार धूममार्गसे गया हुआ सकाम कर्मयोगी।

[illegible] लगा हुआ भी मनुष्य इन मार्गोंका तत्त्व न जाननेके कारण [illegible] इस लोक या परलोकके भोगोंमें आसक्त होकर [illegible] जाता है [illegible] मोहित होना है। किंतु जो इन दोनों मार्गोंके तत्त्वको जानता है [illegible] ब्रह्मलोकपर्यन्त समस्त लोकोंके भोगोंको [illegible] और दुःखरूप [illegible] किसी भी [illegible] भोगोंमें आसक्त नहीं होता [illegible] परमेश्वरकी प्राप्तिके ही [illegible] रहता है। [illegible] मोहित न होना है।

[illegible] ... योगी पुरुष इस रहस्यको तत्त्वसे जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ, तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है, उन सबको निःसन्देह उल्लङ्घन कर जाता है और सनातन परम पदको प्राप्त होता है ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ भीष्मपर्वणि तु द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें [illegible] नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ [illegible] ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(श्रीमद्भगवद्गीतायां नवमोऽध्यायः)

ज्ञान विज्ञान और जगत्की उत्पत्तिका, आसुरी और दैवी सम्पदावालोंका, प्रभावसहित भगवान्के स्वरूपका, सकाम निष्काम उपासनाका एवं भगवद्भक्तिकी महिमाका वर्णन

[illegible]

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

[illegible]

श्रीभगवान् बोले—तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको पुनः भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ २॥

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

सम्बन्ध—उस विज्ञानसहित ज्ञानकी इतनी महिमा है, तो फिर [illegible] इसका साधन भी बड़ा सुगम है, तो फिर सभी मनुष्य इसके अनुसार साधन क्यों नहीं करते? इस जिज्ञासापर भगवान् कहते हैं—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ ३॥

हे परन्तप! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकोंमें भगवान्‌ने जिस विज्ञानसहित ज्ञानका [illegible] करनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसका माहात्म्य वर्णन किया [illegible]

करना चाहता है कि [illegible] ही यह [illegible] निःकुल न [illegible] कहते हैं?

* इस श्लोकमें 'अशुभ' शब्द समस्त दुःखोंका, उनके हेतुभूत कर्मोंका, दुर्गुणोंका, जन्म-मरणरूप संसार-बन्धनका और इन सबके कारणरूप अज्ञानका वाचक है। इन सबसे सदाके लिये सम्पूर्णतया छूट जाना और परमानन्दस्वरूप परमेश्वरको प्राप्त हो जाना ही 'अशुभसे मुक्त' होना है।

संसारमें जितनी भी ज्ञात और अज्ञात विद्याएँ हैं, यह उन सबका राजा है। जिसने इस विद्याका यथार्थ अनुभव कर लिया है, उसके लिये फिर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। इसलिये इसे 'राजविद्या' कहा गया है।

इसमें भगवान्‌के सगुण, निर्गुण और साकार, निराकार स्वरूपका तत्त्व, उनके गुण, प्रभाव और महत्त्वका, उनकी उपासनाकी विधिका और उसके फलका भलीभाँति निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान्, अपना [illegible] रहस्य खोलकर यह बात बतला दिया है कि मैं ही [illegible] तुम्हारे साथ [illegible] हूँ, [illegible] इस नवका आधार, [illegible] और साक्षात् पुरुषोत्तम हूँ; तुम सब प्रकारसे मेरी शरण आ जाओ। इस प्रकारका परम गोपनीय रहस्य [illegible] जैसे [illegible] परम [illegible] भगवान् [illegible] सामने [illegible] उसकी है, इसलिये [illegible] नहीं। इसलिये इसे 'राजगुह्य' कहा गया है।

† यह उपदेश इतना पावन करनेवाला है कि जो कोई भी इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन और इसके अनुसार आचरण करता है, वह उसके समस्त [illegible] अन्तःकरणको समूल नाश करके उसे सदाके लिये परम विशुद्ध बना देता है। इसीलिये इसे 'पवित्र' कहा गया है।

विज्ञानसहित इस ज्ञानका [illegible] अन्यान्य फलोंकी भाँति अदृष्ट नहीं है। साधक ज्यों-ज्यों इसकी ओर आगे बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उसके दुर्गुण, दुराचार और [illegible] इत्यादि [illegible] उसे परम शान्ति और परम सुखका स्वयं अनुभव होने लगता है कि [illegible] हो जाते हैं, वह तत्काल ही परम सुख और परम शान्तिरूप समुद्र [illegible] परम [illegible] और [illegible] साक्षात् [illegible] है। इसलिये यह 'प्रत्यक्षावगम' है।

[illegible] अधिकार [illegible] है [illegible] एक बार पाकर अनेक बार यदि [illegible] अभ्यास न किया जाय तो [illegible] है [illegible] नहीं होता। [illegible] इसके अतिरिक्त इसका फल भी अविनाशी है। इसलिये इसे 'अव्यय' कहा गया है।

‡ इसमें न तो किसी [illegible] बाहरी [illegible] आवश्यकता है और न कोई [illegible] ही करना पड़ता है। [illegible] साधकको [illegible] इसमें साधकोंको शान्ति और सुखका अनुभव होने लगता है। इसलिये इसे साधन करनेमें बड़ा सुगम बतलाया है।

§ जिस श्लोकमें विज्ञानसहित ज्ञानका माहात्म्य बतलाया गया है और [illegible] अश्रद्धासे [illegible] वाचक है [illegible] विशेषण सहित 'धर्मस्य' पद है। इस प्रकरणमें वर्णन किये हुए भगवान्‌के स्वरूप, प्रभाव, गुण और महत्त्वको, उनकी प्राप्तिके उपायको और उसके फलको सत्य न मानकर, उसमें असम्भावना और विपरीत भावना करना और उसे केवल रोचक उक्ति समझना आदि जो विपरीत भावनाएँ हैं—वे जिनमें हों, वे ही श्रद्धारहित पुरुष हैं।

था, अब उसका आरम्भ करते हुए वे सबसे पहले उसके तत्त्व [illegible] लक्षणके प्रभावका वर्णन करते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् जलसे बरफके सदृश परिपूर्ण है* और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं† किंतु वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूँ ‡ ॥ ४ ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं§, किंतु मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है ॥ ५ ॥

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु

गीताके सातवें अध्यायके तीस श्लोकोंमें जिसे अधिभूत [illegible] आठवें और दसवें श्लोकोंमें [illegible] श्लोकोंमें [illegible] तीसरे और इक्कीसवें श्लोकोंमें [illegible] परम [illegible] उसी परमात्माको यहाँ निराकार स्वरूपमें [illegible] अव्यक्तमूर्तिना पदका प्रयोग हुआ है।

* [illegible] बरफ जलसे [illegible] उसी प्रकार [illegible] समझना चाहिये।

† जैसे आकाशसे वायु, तेज, जल [illegible] और [illegible] उसी प्रकार यह सारा विश्व इसकी रचना करनेवाले [illegible] परमेश्वरके [illegible] स्थित कहलाता है।

देखा [illegible] [illegible]

इस [illegible] यह [illegible] है।

‡ यहाँ सब भूत वे समस्त शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि [illegible] और [illegible] सहित समस्त चराचर प्राणियोंको कहा गया है। भगवान् ही अपनी प्रकृतिको स्वीकार करके समस्त [illegible] उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं। उन्होंने ही इस [illegible] अपने किसी अंशमें धारण कर रक्खा है [illegible] और [illegible] वे ही उनके गति [illegible] स्थान [illegible] और [illegible] सारी स्थिति भगवान्‌के अधीन है। इसीलिये सब भूतोंको भगवान्‌में स्थित बतलाया गया है।

§ [illegible] भगवान् समस्त [illegible] व्याप्त होनेपर भी भगवान् [illegible] अलिप्त और [illegible] नाश होनेपर भी [illegible] नाश होकर [illegible] रहते हैं [illegible] नाश नहीं होता [illegible] नहीं है [illegible] अपनी महिमामें [illegible] कि [illegible] मुझमें स्थित नहीं हूँ, अर्थात् मैं अपने आपमें ही स्थित हूँ।

सबके उत्पादक और सबमें व्याप्त रहते हुए [illegible] निर्लिप्त रहने की जो अतुल प्रभावशाली शक्ति है [illegible] ईश्वरीय [illegible] इस श्लोकद्वारा प्रतिपादन किया गया है [illegible] ईश्वरीय [illegible] देखनेके लिये कहा है।

यहाँ भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि अर्जुन! तुम मेरी [illegible] आकाशमें [illegible] भाँति समस्त जगत् मुझमें [illegible] है और नहीं भी है। [illegible] आधार [illegible] है [illegible] नहीं रहता [illegible] नहीं है [illegible] आकाश नहीं है। इसी प्रकार यह सारा जगत् [illegible] उत्पन्न है और मैं [illegible] उसका आधार हूँ [illegible] स्थित है, परन्तु ऐसा होते हुए भी मैं उससे सर्वथा अतीत हूँ। वे मुझमें सदा नहीं रहते, इसलिये वे मुझमें स्थित नहीं [illegible] मनुष्योंकी दृष्टिमें जगत् है [illegible] कुछ मुझमें ही है [illegible] नहीं [illegible] साक्षात् हो जाता है [illegible] मुझसे भिन्न [illegible] नहीं [illegible] मुझमें यह जगत् नहीं है।

+ वास्तवमें भगवान् इस समस्त जगत्‌से अतीत हैं [illegible] यह भूतोंमें स्थित नहीं है [illegible] कहा गया है।

सदा आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पद्वारा उत्पन्न होनेसे सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जान ॥ ६ ॥

सम्बन्ध—[illegible] भगवान्‌ने [illegible] सम्पूर्ण भूतोंको अपनेमें स्थित [illegible] बतलाया [illegible] भूतोंका [illegible] किये जाते हैं—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे अर्जुन! कल्पोंके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृतिमें लीन होते हैं और कल्पोंके आदिमें उनको मैं फिर रचता हूँ ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

अपनी प्रकृतिको अंगीकार करके स्वभावके बलसे परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदायको बार-बार उनके कर्मोंके अनुसार रचता हूँ ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार [illegible] करते हुए भी भगवान् [illegible] क्यों नहीं बँधते [illegible] बतलाते हैं—

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

हे अर्जुन! उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनके सदृश स्थित मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बाँधते ॥ ९ ॥

---

* आकाशकी भाँति भगवान्‌का [illegible] निराकार, अनन्त, अपार और निर्विकार तथा [illegible] भाँति [illegible] [illegible] उन्हींमें स्थित और उन्हींसे [illegible] है। [illegible] उत्पत्ति [illegible] आकाशमें ही [illegible] [illegible] आकाशमें स्थित [illegible] है, तब ऐसा होनेपर भी आकाशका [illegible] और [illegible] [illegible] है [illegible] उससे अतीत है, उसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और [illegible] आधार [illegible] भगवान् [illegible] है, तथापि भगवान् उन [illegible] अतीत हैं और [illegible] अभाव है।

[illegible] बुद्धि [illegible] और [illegible] सहित चराचर प्राणियोंका [illegible] है।

[illegible] एक [illegible] है और उतनी ही बड़ी उसकी रात्रि होती है। [illegible] दिनका [illegible] ब्रह्माकी आयु [illegible] [illegible] कालका वाचक [illegible] है, यही कल्पोंका [illegible] है [illegible]?

[illegible] जो [illegible] मूल प्रकृति है, जिस गीताके चौदहवें अध्यायके तीसरे-चौथे श्लोकोंमें 'महद्ब्रह्म' कहा है [illegible] और प्रधान भी कहते हैं। [illegible] प्रकृति [illegible] है [illegible] [illegible] भगवान्‌ने [illegible] अपनी प्रकृति बतलाया है [illegible] [illegible] इन्द्रिय, मन, बुद्धि [illegible] सहित समस्त प्राणियोंका प्रकृतिमें लय हो जाना—अर्थात् उनके गुणकर्मोंके [illegible] [illegible] प्रकृतिमें स्थित हो जाना ही [illegible] प्रकृतिको प्राप्त होना है।

[illegible] ब्रह्माके [illegible] चराचर [illegible] हुआ [illegible] जीवोंके कर्मोंका फल [illegible] विचार [illegible] रहता है [illegible] उस कालका वाचक [illegible] है [illegible] [illegible] भगवान्‌का [illegible] उत्पत्तिके लिये [illegible] प्राणियोंका [illegible] उत्पन्न कर देना है, यही उनका [illegible] रचना है।

§ सृष्टि-रचनादि कार्यके लिये भगवान्‌का जो शक्तिरूप अपने अन्दर स्थित प्रकृतिको धारण करना है, वही उसे अंगीकार करना है।

× भिन्न-भिन्न प्राणियोंका जो अपने-अपने गुण और कर्मोंके अनुसार बना हुआ स्वभाव है, वही उनकी प्रकृति है। भगवान्‌की प्रकृति समष्टि प्रकृति है और जीवोंकी प्रकृति उन्हींकी एक अंशभूता व्यष्टि प्रकृति है। उस व्यष्टि प्रकृतिके परवश [illegible] उसके [illegible] होना है। यह भगवान्‌ने उनको बार-बार रचनेकी बात [illegible] दिखलायी है कि जबतक जीव अपनी उस प्रकृतिके वशमें रहते हैं, तबतक मैं उनको बार-बार इसी प्रकार [illegible] उनके भिन्न-भिन्न गुणकर्मोंके अनुसार [illegible] योनियोंमें उत्पन्न करता रहता हूँ।

+ [illegible] उत्पत्ति, पालन और [illegible] आदिके निमित्त भगवान्‌के द्वारा जितने भी कर्म होते हैं, उन कर्मों

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद् विपरिवर्तते॥ १०॥

हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे प्रकृति चराचरसहित सर्वजगत्‌को रचती है और इस हेतुसे ही यह संसारचक्र घूम रहा है।

सम्बन्ध—[illegible]

और सबका सुहृद और प्रभावका तत्त्व [illegible] तो फिर [illegible] मनुष्य [illegible] निन्दा करते हैं?

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ ११॥

मेरे परम भावको न जाननेवाले मूढ़लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वरको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझ परमेश्वरको साधारण मनुष्य मानते हैं।

[illegible] किसी प्रकार भी आसक्त न होना—आसक्तिरहित रहना है और [illegible] प्रकृतिद्वारा प्राणियोंके गुणकर्मानुसार उनकी [illegible] कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर [illegible] इन कर्मोंमें [illegible] इसी कारण [illegible]

* जिस प्रकार [illegible] अपने [illegible] पृथ्वीके साथ [illegible] बीजोंमें [illegible] उसी प्रकार भगवान् अपनी [illegible] (गीता १४। ३) इस प्रकार [illegible] नाना प्रकारके [illegible] उत्पन्न कर देती है।

यहाँ भगवान्‌ने [illegible] यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि [illegible] भगवान् [illegible] उन्हींके द्वारा जगत्‌की रचना [illegible] प्रकृति [illegible] यह बात याद रखनी चाहिये कि [illegible] भगवान्‌का [illegible] नहीं सकता [illegible] जगत्‌की रचना करता हूँ और [illegible] प्रकृति जगत्‌की रचना करती है [illegible] कहा गया है।

[illegible] समझकर [illegible] प्रकट हुआ है।

† [illegible] अर्जुन [illegible] कहा [illegible] तात्पर्य [illegible] अनेकों [illegible] मनुष्यरूपमें अवतार [illegible] का न समझना और इसपर विश्वास न करना ही [illegible] परम भावको न जानना है।

‡ महाभारतमें भीष्मपर्वके [illegible] अध्यायमें बतलाया है—

[illegible] भगवान् वासुदेव सबके पूजनीय हैं। उन महान् [illegible] वासुदेवको मनुष्य समझकर कभी उनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। ये ही परम गुह्य, परम पद, परम ब्रह्म और परम यशःस्वरूप हैं। ये ही अक्षर हैं, अव्यक्त हैं, सनातन हैं, परम तेज हैं, परम सुख हैं और परम सत्य हैं। देवता, इन्द्र और मनुष्य किसीको भी उन अमितपराक्रमी प्रभु वासुदेवको मनुष्य मानकर उनका अनादर नहीं करना चाहिये। जो मूढ़ लोग उन हृषीकेशको मनुष्य बतलाते हैं, वे नराधम हैं। जो मनुष्य इन महात्मा योगेश्वरको मनुष्यशरीरी मानकर इनका अनादर करते हैं और जो इन चराचरके आत्मा [illegible] भगवान्‌को नहीं पहचानते वे तामसी प्रकृतिवाले हैं। [illegible] और [illegible] भगवान्‌का अपमान करता है, वह [illegible] नरकमें पड़ता है।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिको ही धारण किये रहते हैं॥

सम्बन्ध—भगवान्‌के प्रभावको न जाननेवाले आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्योंकी निन्दा करके अब भगवान्‌के प्रभावको जाननेवाले दैवी प्रकृतिवाले भक्तोंके लक्षण बतलाते हैं—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

परंतु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

भगवान्‌के प्रभावको न जाननेवाले आसुर मनुष्य जो भी निष्काम आचार करते रहते हैं उनकी कभी पूर्ति नहीं होती (गीता १६ । १०) इसलिये उनको 'मोघाशा' कहते हैं।

यज्ञ, दान और तप आदि विधानसे न करके जो मनुष्य शास्त्रविधिका त्याग करके अश्रद्धापूर्वक जो कामनासे सकाम कर्म करते हैं उन कर्मोंका उन्हें इस लोक या परलोकमें कुछ भी फल नहीं मिलता (गीता १६ । २३; १७ । २८) इसीलिये उनको 'मोघकर्माणः' कहा गया है।

३ जिनका ज्ञान तात्त्विक अर्थसे शून्य हो और युक्तियुक्त न हो (गीता १८ । २२) उनको 'मोघज्ञानाः' कहते हैं।

• राक्षसोंकी भाँति बिना ही कारण दूसरोंका अनिष्ट करना और ... अहंकारका आधार है उन स्वभावको 'राक्षसी' कहते हैं; काम और लोभके परायण होकर अपने सुखके लिये दूसरोंका अनिष्ट पहुँचाना और उनका स्वत्व हरण करना 'आसुरी' प्रकृति है और प्रमाद या मोहके कारण किसी भी प्राणीको दुःख पहुँचाना ही 'मोहिनी' प्रकृति कहलाती है। ऐसे पुरुष भगवान्‌के लिये चेष्टा न करना और उनकी उपासना न करके कल्याण ही नष्ट करते हैं। भगवान्‌के प्रभावको न जाननेवाले मनुष्य प्रायः ऐसा ही करते हैं, इसीलिये उनको इन प्रकृतियोंके आश्रित बतलाया है।

यहाँ 'महात्मा' पद का प्रयोग उन निष्काम अनन्यभावसे भगवद्भजनके लिये किया गया है जो भगवान्‌के सदा लगे रहते हैं और उनका सात्त्विक स्वभाव होता है।

† दैव अर्थात् भगवत्सम्बन्धी स्वभाव रखनेवाले और उनकी प्राप्ति तथा देवता—इन सभी सद्‌गुण और आचरण हैं गीताके सोलहवें अध्यायमें पहलेसे तीसरे श्लोकतक जिनका अभय आदि छब्बीस नामोंसे वर्णन किया गया है उन सबको भक्तिमान् धारण कर लेते हैं, वे दैवी प्रकृतिके आश्रित होते हैं।

‡ 'अक्षर' पद यहाँ भगवान्‌के सगुण स्वरूपका वाचक है। उस सगुण परमेश्वरसे ही शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, महाभूतों और समस्त संसार अखिल जगत्‌का बारंबार उत्पत्ति और संहार होता है (गीता ७ । ६ ; ९ । ४ - ६)—इस तत्त्वको समझकर भगवान्‌को सब भूतोंका आदि समझना है और वे भगवान् अव्यक्त तथा अविनाशी हैं, जगत्‌के रचयिता और अधिष्ठाता होते हुए भी मनुष्य आदि प्राणियोंकी भाँति उनका शरीर नष्ट नहीं होता (गीता ...) इस बातको यथार्थ समझना ही भगवान्‌को अविनाशी समझना है।

§ जिनका मन भगवान्‌के सिवा अन्य किसी भी वस्तुमें नहीं लगता और भगवान्‌का भी भगवान्‌का वियोग जिनको असह्य प्रतीत होता है, वे ही अनन्यभावसे निरन्तर भगवान्‌का भजन करते रहते हैं।

५ सततम्, यह पद कीर्तन-नमस्कार आदि सबका है; भाव यह है कि कीर्तन नमस्कारादि सब उपासनाके ही अङ्ग होनेके कारण प्रत्येकके साथ भी इसका सम्बन्ध है। अभिप्राय यह है कि भगवान्‌के प्रेमी भक्त कभी कीर्तन करते हुए, कभी नमस्कार करते हुए, कभी सेवा आदि करते हुए तथा सदा सर्वदा भगवान्‌का चिन्तन करते हुए निरन्तर उनकी उपासना करते रहते हैं।

६ 'यतन्तः' पदका यह भाव है कि वे प्रेमी भक्त भगवान्‌की पूजा भक्तोंको भगवत्स्वरूप समझकर उनकी सेवा और भगवान्‌के भक्तोंद्वारा भगवान्‌के गुण, प्रभाव और चरित्र आदिका श्रवण आदि उत्साह और तत्परताके साथ करते रहते हैं।

७ भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंके निश्चय उनकी श्रद्धा, उनके विचार और नियम—सभी अत्यन्त दृढ़ होते हैं; बड़ी-से-बड़ी विपत्तियाँ और प्रबल विघ्नोंके समूह भी उन्हें अपने साधन और विचारसे विचलित नहीं कर सकते, इसी लिये उनको 'दृढव्रताः' (दृढ़ निश्चयवाले) कहा गया है।

८ जो सबके सिरमें उठते-बैठते, सोते-जागते और सब कुछ करते समय तथा एकान्तमें ध्यान करते समय निरन्तर

मेरे ध्यानमें युक्त होकर अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं‡।

सम्बन्ध—भगवान्‌के गुण, प्रभाव आदिको तत्त्वसे जाननेवाले महात्माओंके भजनका प्रकार बतलाकर अब भिन्न-भिन्न प्रकारकी उपासनाका प्रकार बतलाते हैं—

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ १५॥

दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्मका ज्ञानयज्ञके द्वारा अभिन्नभावसे पूजन करते हुए भी मेरी उपासना करते हैं§ और दूसरे मनुष्य बहुत प्रकारसे स्थित मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वरकी पृथक्भावसे उपासना करते हैं×।

सम्बन्ध—समस्त विश्वकी उत्पत्ति भगवान्‌से ही होती है—यह बात समझानेके लिये भगवान् इस श्लोकमें प्रतिपादन करते हैं कि सब कुछ मेरा ही स्वरूप है—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ १६॥

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, ओषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ।

निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करते रहते हैं, उन्हें 'नित्ययुक्त' कहते हैं।

* कथा, व्याख्यान आदिके द्वारा भगवान्‌के सामने भक्तरूपसे गुण, प्रभाव, महिमा और चरित्र आदिका वर्णन करना, भजन अथवा दूसरे बहुत-से लोगोंके साथ मिलकर भगवान्‌का नाम सम्पूर्ण मनसहित उच्च स्वरसे कीर्तन करना और स्तव, स्तोत्र तथा सुन्दर दोहे, पद आदिसे भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करना आदि भगवान्‌के गुणगानसम्बन्धी सभी प्रकार कीर्तनके अन्तर्गत हैं।

† भगवान्‌के सन्निधिमें जाकर अथवा विग्रहरूप भगवान्‌का, अपने परम श्रद्धास्पद भगवान्‌की प्रतिमा या चित्रपटका, भगवान्‌के नामोंका, भगवान्‌के चरण और चरणपादुकाओंका, या समस्त भगवत्स्वरूप समझकर भगवान् विराजित हैं—ऐसा जानकर सबको यथायोग्य विनयपूर्वक श्रद्धा-भक्तिके साथ दण्डवत् होकर मन, वाणी और शरीरद्वारा नमस्कार करना—यही भगवान्‌को प्रणाम करना है।

‡ श्रद्धा और अनन्य प्रेमके साथ पूर्वोक्त साधनोंका निरन्तर करते रहना ही अनन्यभावसे भगवान्‌की उपासना करना है।

§ गीताके तीसरे अध्यायके तीसरे श्लोकमें जिस सांख्ययोगका वर्णन है, यहाँ भी 'ज्ञानयज्ञ' का वही लक्षण है। उसके अनुसार शरीर, इन्द्रिय और मनद्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंमें गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं—ऐसा समझकर कर्तापनके अभिमानसे रहित रहना, सम्पूर्ण दृश्यवर्गको मृगतृष्णाके जलके समान या स्वप्नकी सृष्टिके सदृश अनित्य समझना तथा एक सच्चिदानन्दघन निर्गुण निराकार परब्रह्म परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी सत्ता न मानकर निरन्तर उसीका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करते हुए उस सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें नित्य अभिन्नभावसे स्थित रहनेका अभ्यास करते रहना—यही ज्ञानयज्ञके द्वारा पूजन करते हुए उसकी उपासना करना है।

× समस्त विश्व उन भगवान्‌से ही उत्पन्न हुआ है और भगवान् ही इसमें व्याप्त हैं। अतः भगवान् स्वयं ही विश्वरूपमें स्थित हैं। इसलिये चन्द्र, सूर्य, अग्नि, इन्द्र और वरुण आदि विभिन्न देवता एवं और भी जितने प्राणी हैं, भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। ऐसा मानकर जो उन सबकी अपने कर्मोंद्वारा यथायोग्य निष्कामभावसे सेवा-पूजा करना है (गीता १८।४६), यही बहुत प्रकारसे स्थित भगवान्‌के विराट्स्वरूपकी पृथक्भावसे उपासना करना है।

श्रौत कर्मको 'क्रतु' कहते हैं।

पञ्चमहायज्ञादि स्मार्त कर्म 'यज्ञ' कहलाते हैं।

१. पितरोंके निमित्त प्रदान किया जानेवाला अन्न 'स्वधा' कहलाता है।

अग्निसे यहाँ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि आदि सभी प्रकारके अग्नि समझने चाहिये।

\+ अभिप्राय यह कि यज्ञ, श्राद्ध आदि शास्त्रीय शुभकर्मोंमें उपयोगमें आनेवाले जितने भी मन्त्र, जिनके द्वारा कर्म किये जाते हैं, वे मन्त्र तथा मन, वाणी, शरीरसे होनेवाली तत्सम्बन्धी समस्त चेष्टाएँ—ये सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

इस सम्पूर्ण जगत्‌का धाता अर्थात् धारण करनेवाला एवं कर्मोंके फलको देनेवाला, पिता, माता, पितामह, जाननेयोग्य*, पवित्र ओंकार† तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, सबकी उत्पत्ति-प्रलयका हेतु, स्थितिका आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ, वर्षाका आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ। हे अर्जुन! मैं ही अमृत और

* यह चराचर प्राणियोंके सहित समस्त विश्व भगवान्‌से ही उत्पन्न हुआ है, भगवान् ही इसके [illegible] हैं, इसलिये भगवान्‌ने अपनेको इसका [illegible] कहा है।

† जिन [illegible] अर्थात् [illegible] सृष्टिकी रचना होती है, उनको भी [illegible] करनेवाले भगवान् ही हैं, इसीलिये उन्होंने अपनेको इसका पितामह बतलाया है।

‡ यह अत्यन्त विशुद्ध है और महत्त्व [illegible] पवित्र [illegible] भी विशुद्ध बना देते हैं, भगवान् परम पवित्र हैं, [illegible] भगवान्‌के [illegible] और [illegible] मनुष्य परम पवित्र हो जाता है।

§ [illegible] नाम है [illegible] गीताके आठवें अध्यायके तेरहवें श्लोकमें [illegible] तथा [illegible] लिये कहा गया है। [illegible] भगवान्‌ने अपनेको ओंकार बतलाया है।

× ऋक्, साम और यजु—ये तीनों वेद [illegible] वेदोंका प्राकट्य भगवान्‌से हुआ है तथा [illegible] वेदोंमें भगवान्‌का ज्ञान [illegible] है, इसलिये इन वेदोंको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] भगवान् ही हैं, इसीलिये उन्होंने अपनेको गति कहा है। [illegible] परमा गति [illegible] आदि नाम भी इसीके हैं।

[illegible] उसे प्रभुः कहते हैं। [illegible] और [illegible] दूसरा कोई भी नहीं है। [illegible] एकमात्र प्रभु [illegible] है।

[illegible]

अर्थात् [illegible] मैं [illegible] और [illegible] भाव [illegible] है। इसीलिये भगवान्‌ने अपनेको शरण कहा है।

भगवान् समस्त प्राणियोंका बिना ही कारण [illegible] परम हितैषी और उनके साथ अतिशय प्रेम करनेवाले [illegible] हैं, इसलिये [illegible] सुहृत् कहा है।

जिसका कभी नाश न हो, [illegible] कहते हैं। भगवान् [illegible] अविनाशी कारण हैं, [illegible] इसीसे उनको अव्यय बीज कहा है। [illegible]

[illegible]

जिसमें कोई वस्तु बहुत दिनोंके लिये रक्खी जाती हो, उसे निधान कहते हैं। महाप्रलयमें समस्त प्राणियोंके सहित [illegible] किसी एक [illegible] भाँति बहुत [illegible] सूक्ष्म [illegible] स्थित रहती है, इसलिये भगवान्‌ने अपनेको निधान कहा है।

Ω इस श्लोकमें जितने भी शब्द आये हैं, [illegible] विशेषण हैं। अतः इस श्लोकमें पूर्व [illegible] अहम् पदका प्रयोग नहीं किया गया।

∆ इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि अपनी [illegible] समस्त जगत्‌को [illegible] और [illegible] प्रदान करनेवाला तथा [illegible] आदि [illegible] एक [illegible] मेरे [illegible] यथासमय यथायोग्य [illegible] मैं ही [illegible] हूँ।

B [illegible] एक [illegible] ही हैं, [illegible] हो [illegible] लिये [illegible] हुए ही

सम्बन्ध है और सत्-असत् भी मैं ही हूँ†॥१९॥

सम्बन्ध—[illegible] अपने समग्र रूपका [illegible] वर्णन करके [illegible] समस्त विश्वको अपना स्वरूप बतलाया [illegible] इत्यादि [illegible] परंतु [illegible] पृथक्-पृथक् [illegible] प्रति न होकर [illegible] है। [illegible] अब दो श्लोकोंमें [illegible] वर्णन करते हैं—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥

तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकामकर्मोंको करनेवाले [illegible] पुरुष [illegible] प्राप्ति चाहते हैं; वे पुरुष अपने पुण्योंके फलरूप स्वर्गलोकको प्राप्त होकर स्वर्गमें दिव्य देवताओंके भोगोंको भोगते हैं॥२०॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥२१॥

वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकामकर्मका आश्रय लेनेवाले और भोगोंकी कामनावाले पुरुष बार-बार आवागमनको प्राप्त होते हैं, अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकमें आते हैं॥२१॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥२२॥

जाता है। इसीलिये भगवान्‌ने अपनेको 'अमृत' कहा है और इसीलिये ज्ञानी भी 'अमृत' कहते हैं।

* सबका नाश करनेवाले 'काल' का नाम 'मृत्यु' कहते हैं। [illegible] बाहर करनेके लिये [illegible] जाते हैं, वे [illegible] भी काल हैं। इसीलिये भगवान्‌ने 'मृत्यु' को अपना स्वरूप बतलाया है।

† जिसका कभी अभाव नहीं होता, उस अविनाशी आत्माको 'सत्' कहते हैं और नाशवान् अनित्य वस्तुमात्रका नाम 'असत्' है। इन्हीं दोनोंको गीताके पंद्रहवें अध्यायमें 'अक्षर' और 'क्षर' पुरुषके नामसे कहा गया है। ये दोनों ही भगवान्‌से अभिन्न हैं, इसलिये भगवान्‌ने सत् और असत्‌को अपना स्वरूप बताया है।

‡ ऋक्, यजु और साम—इन तीनों वेदोंका 'त्रयी' [illegible] किया जाता है। इन तीनों वेदोंमें वर्णित नाना प्रकारके यज्ञोंकी विधि और [illegible] करनेवाले मनुष्योंको 'त्रैविद्य' कहते हैं। यज्ञोंमें सोमलताके [illegible] विधि [illegible] है, उस विधिसे सोमपान करनेवालोंको 'सोमपा' कहते हैं। उपर्युक्त [illegible] विधिपूर्वक अनुष्ठान [illegible] पाप नष्ट हो गये हैं, उनको 'पूतपापाः' कहते हैं। [illegible] तीनों विशेषण [illegible] विधिपूर्वक अनुष्ठान किया करते [illegible]।

§ यहाँ पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप [illegible] इन सबको लक्ष्य करके [illegible] प्रयोग किया गया है। [illegible] समझना चाहिये।

× [illegible] विशाल [illegible] वस्तुओंका [illegible] और [illegible] तथा मानसिक शक्ति और परमायु आदि [illegible] अधिक [illegible] और महान् है, इसीलिये उसको 'विशाल' कहा गया है।

+ [illegible] मनुष्य [illegible] भगवान्‌की [illegible] नहीं करते [illegible] उपर्युक्त [illegible] आश्रय लेते हैं। इसी कारण उनके कर्मोंका फल अनित्य है और इसीलिये उन्हें फिर मर्त्यलोकमें लौटना पड़ता है।

¶ जिनका भगवान्‌के [illegible] प्रेम [illegible] भगवान्‌में ही [illegible] और अनन्य प्रेम हो गया है, [illegible] जिनका भगवान्‌से भिन्न दूसरा कोई भी उपास्यदेव नहीं है और जो भगवान्‌को ही परम आश्रय, परम गति और परम प्रेमास्पद मानते हैं—ऐसे [illegible] विशेषण [illegible] है।

किंतु जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं,* उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम† मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥२३॥

हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धासे युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं; किंतु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है‡॥२३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥२४॥

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ§; परंतु वे मुझ परमेश्वरको तत्त्वसे नहीं जानते, इसीसे गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं॥२४॥

सम्बन्ध—भगवान्‌के भक्त पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते और अन्य देवताओंके उपासक पुनर्जन्मको प्राप्त होते हैं, इसका क्या कारण है? इस जिज्ञासापर उपास्यके स्वरूप और उपासकके भावसे उपासनाके फलमें भेद होनेका नियम बतलाते हैं—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥२५॥

देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं×, भूतोंको पूजने-

* एकमात्र भगवान् पुरुषोत्तमके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझकर, चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते और एकान्तमें साधन करते, सब समय निरन्तर अविच्छिन्नरूपसे उनका चिन्तन करते हुए, उन्हींकी आज्ञानुसार निष्कामभावसे उन्हींकी प्रसन्नताके लिये चेष्टा करते रहना—यही उनका चिन्तन करते हुए भजन करना है।

† भगवान्‌की प्राप्तिका नाम 'योग' और भगवत्प्राप्तिके निमित्त किये हुए साधनकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है। अतः भगवत्प्राप्तिके लिये जो साधन उन्हें प्राप्त है, भगवान्‌के विघ्न-बाधाओंसे बचाकर उसकी रक्षा करना और जिस साधनकी कमी है उसकी पूर्ति करके स्वयं अपनी प्राप्ति करा देना—यह उन भक्तोंका योगक्षेम चलाना है। भक्त प्रह्लादका जीवन इसका सुन्दर उदाहरण है; हिरण्यकशिपुद्वारा उनके भजनमें बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित किये जानेपर भी सब प्रकारसे भगवान्‌ने उनकी रक्षा करके अन्तमें उन्हें अपनी प्राप्ति करा दी।

जो पुरुष भगवान्‌के ही परायण होकर अनन्यचित्तसे उनका प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करते हुए ही सब काम करते हैं, अन्य किसी भी विषयकी कामना, आशा और चिन्ता नहीं करते, उनके जीवननिर्वाहका भार भी भगवान्‌पर रहता है; अतः वे सर्वशक्तिमान् सबके सुहृद् परमसुहृद् भगवान् ही उनका सब प्रकारका लौकिक और पारमार्थिक सब प्रकारका योगक्षेम चलाते हैं।

‡ वेद-शास्त्रोंमें वर्णित देवता, उनकी उपासना और सकामविधिमें आस्तिक्य उनके फलपर, जिनका आदरपूर्वक दृढ़ विश्वास है उनको यहाँ 'श्रद्धासे युक्त' कहा गया है और इस विशेषणसे यह भाव निकलता है कि जो बिना श्रद्धाके दम्भपूर्वक यज्ञादि कर्मोंद्वारा देवताओंका पूजन करते हैं, वे इस श्रेणीमें नहीं आ सकते, उनकी गणना तो आसुरी प्रकृतिके मनुष्योंमें है।

जिन कामनाओंकी सिद्धिके लिये जिस देवताकी पूजाका शास्त्रमें विधान है, उस देवताकी आज्ञानुसार यज्ञादि कर्मोंद्वारा श्रद्धापूर्वक पूजा करना 'दूसरे देवताओंकी पूजा करना' है। समस्त देवता भी भगवान्‌के ही अङ्गभूत हैं, भगवान् ही सबके स्वामी हैं और वस्तुतः भगवान् ही उनके रूपमें प्रकट हैं—इस तत्त्वको न जानकर उन देवताओंको भगवान्‌से भिन्न समझकर सकामभावसे जो उनकी पूजा करना है, यही भगवान्‌की अविधिपूर्वक पूजा है।

§ यज्ञ, दान और तप आदि जितने भी शुभ कर्म हैं, उन सबका फल भोगनेवाले जितने भी देवता हैं, वे सब भगवान्‌के ही अङ्ग हैं तथा भगवान् ही उन सबके आत्मा हैं (गीता १०।२०) अतः उन देवताओंके रूपमें भगवान् ही समस्त यज्ञादि कर्मोंके भोक्ता हैं। भगवान् ही अपनी योगशक्तिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हुए सबको यथायोग्य नियममें चलाते हैं; वे ही इन्द्र, वरुण, यमराज, प्रजापति आदि जितने भी लोकपाल और देवतागण हैं, उन सबके स्वामी हैं; इसीलिये वही सबके प्रभु अर्थात् महेश्वर हैं (गीता ५।२९)।

× देवताओंकी पूजा करना, उनकी तृप्तिके लिये बतलाये हुए नियमोंका पालन करना, उनके निमित्त शास्त्रविहित अनुष्ठान करना, उनके मन्त्रका जप करना और उनके निमित्त ब्राह्मण-भोजन कराना इत्यादि सभी बातें देवताओंके व्रत हैं। इनका पालन करनेवाले मनुष्योंको अपनी उपासनाके फलस्वरूप जो उन देवताओंके लोकोंकी, उनके सदृश भोगोंकी अथवा उनके जैसे रूपकी प्राप्ति होती है, यही देवोंको प्राप्त होना है।

अपने पूर्वजोंको प्राप्त होते हैं* और मेरा पूजन करनेवाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसीलिये मेरे भक्तोंका पुनर्जन्म नहीं होता।

सम्बन्ध—भगवान्की भक्तिका अनायास ... महान् फल होनेपर भी उसके साधनमें कोई कठिनता नहीं है, बल्कि उसका साधन बहुत ही सुगम है—यही बात दिखलानेके लिये भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ २६॥

जो कोई भक्त† मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका

* पितरोंके लिये यथाविधि श्राद्ध-तर्पण करना, उनके निमित्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना, हवन करना, जप करना, पाठ-पूजा करना तथा उनके लिये प्रायश्चित्त करवाते हुए व्रत और नियमोंका पालन करना आदि पितरोंकी पूजा है और जो मनुष्य सकामभावसे इन कर्मोंका पालन करते हैं, वे मरनेके बाद पितृलोकमें जाते हैं और वहाँ जाकर उन पितरोंके-जैसे स्वरूपको प्राप्त करके उनके-जैसा भोग भोगते हैं। यही पितरोंको प्राप्त होना है। वे भी अधिक-से-अधिक देवताओं या दिव्य पितरोंकी आयुपर्यन्त ही वहाँ रह सकते हैं। अन्तमें उनका भी पुनरागमन होता है।

यहाँ देव और पितरोंकी पूजाका निषेध नहीं समझना चाहिये। देव-पितृ-पूजा तो यथाविधि अपने-अपने वर्णाश्रमके अधिकारानुसार सबको अवश्य ही करनी चाहिये। परंतु वह पूजा यदि सकामभावसे होती है तो उसका अधिक-से-अधिक फल देकर नष्ट हो जाती है और यदि कल्याणबुद्धिसे भगवदाज्ञा मानकर या भगवत्पूजा समझकर की जाती है तो वह भगवत्प्राप्तिरूप कल्याण करनेवाली होती है। इसलिये यही समझना चाहिये कि देव-पितृपूजन तो अवश्य ही करें, परंतु उसमें निष्कामभाव रखनेका यत्न करें।

• जो प्रेत और भूतगणोंकी पूजा करते हैं, उनकी पूजाके निमित्त मन्त्रोंका जप करते हैं, उनके लिये हवन या दान आदि करते हैं, इससे गुणोंके वश उन उन भूत-प्रेतादिके समान रूप और भोग आदिको प्राप्त होना है। यही उनको प्राप्त होना है। भूत-प्रेतोंकी पूजा तामसी है तथा अहित फल देनेवाली है, इसलिये उसको नहीं करना चाहिये।

† जो पुरुष भगवान्‌के सगुण निराकार अथवा साकार—किसी भी रूपका सेवन-पूजन और सदा ध्यान आदि करते हैं, अनन्य भावसे उनके शरण होते हैं, उनके नामका जप करते हैं, गुणानुवाद सुनते और गाते हैं तथा इसी प्रकार भगवद्भक्ति-विषयक अनेक प्रकारके साधन करते हैं, वे भगवान्‌का पूजन करनेवाले भक्त हैं और उनका भगवान्‌के दिव्य लोकमें जाना, भगवान्‌के समीप रहना, उनके-जैसे ही दिव्य रूपको प्राप्त होना अथवा उनमें लीन हो जाना—यही भगवान्‌को प्राप्त होना है।

पत्र, पुष्प आदि कोई भी वस्तु जो प्रेमपूर्वक समर्पण की जाती है, उसे भक्त्युपहृत कहते हैं। इसके प्रयोगसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि बिना प्रेमके दी हुई वस्तुको मैं स्वीकार नहीं करता और वहाँ प्रेम होता है, तथा जिसको मुझे वस्तु अर्पण करनेमें और मेरे द्वारा उसके स्वीकार हो जानेमें सच्चा आनन्द होता है, वहाँ उस भक्तके द्वारा अर्पण की हुई वस्तु बहुत प्रेमसे स्वीकार कर लेता हूँ।

इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि इस प्रकार उस भोले प्रेमपूर्वक समर्पण की हुई वस्तुओंको मैं स्वयं उस भक्तके सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट होकर खा लेता हूँ, अर्थात् जब मनुष्यादिके समान अवतीर्ण होकर संसारमें विचरता हूँ तब तो उसके यहाँ पहुँचकर और अन्य समयमें उस भक्तके इच्छानुसार रूपमें प्रकट होकर उसकी दी हुई वस्तुका भोग लगाकर उसे कृतार्थ कर देता हूँ।

‡ इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि किसी भी वर्ण, आश्रम और जातिका कोई भी मनुष्य पत्र, पुष्प एक बार आदि मेरे अर्पण कर सकता है। धन, जन, आयु, जाति, गुण और विद्या आदिके कारण मेरी किसीमें भेदबुद्धि नहीं है। उसका ही अनन्य भावसे विदुर और शबरी आदिकी भाँति सर्वथा शुद्ध और प्रेमपूर्ण होना चाहिये।

§ यहाँ पत्र, पुष्प, फल और जलका नाम लेकर यह भाव दिखलाया गया है कि जो वस्तु साधारण मनुष्योंको बिना किसी परिश्रम और व्ययके अनायास मिल सकती है—ऐसी कोई भी वस्तु भगवान्‌के अर्पण की जा सकती है। भगवान् पूर्णकाम होनेके कारण वस्तुके भूखे नहीं हैं, उनको तो केवल प्रेमकी ही आवश्यकता है। तुच्छ-से-तुच्छ साधारण-से-साधारण मनुष्यद्वारा अर्पण की हुई छोटी-से-छोटी वस्तु भी भगवान् सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, यह उनकी कैसी महत्ता है! इस भावसे भावित होकर प्रेमविह्वल चित्तसे किसी भी वस्तुसे भगवान्‌के सत्कार करना ही भक्तिपूर्वक भगवान्‌के अर्पण करना है।

प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ॥*

सम्बन्ध—यदि ऐसी ही बात है तो मुझे क्या करना चाहिये इसपर कहते हैं। भगवान् अर्जुनको उनका कर्तव्य बतलाते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ २७॥

हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है,† वह सब मेरे अर्पण कर॥ २७॥

सम्बन्ध—इस प्रकार समस्त कर्मोंको मेरे अर्पण करनेसे क्या होगा, इस जिज्ञासापर कहते हैं—

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ २८॥

इस प्रकार, जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा॥ २८॥

* जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो, उसे 'प्रयतात्मा' कहते हैं। इसका प्रयोग करके भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि यदि अर्पण करनेवालेका भाव शुद्ध न हो तो बाहरसे चाहे कितने ही आडम्बरके साथ चाहे कितनी उत्तम-से-उत्तम सामग्री मुझे अर्पण की जाय, मैं उसे कभी स्वीकार नहीं करता। मैंने दुर्योधनका निमन्त्रण अस्वीकार करके भाव शुद्ध होनेके कारण विदुरके घरपर जाकर प्रेमपूर्वक भोजन किया, सुदामाके चिउड़ोंका बड़ी रुचिके साथ भोग लगाया, द्रौपदीकी बटलोईमें बचे हुए पत्तेको खाकर उसको तृप्त कर दिया, गजेन्द्रद्वारा अर्पण किये हुए पुष्पको भी वहाँ पहुँचकर स्वीकार किया, शबरीकी कुटियापर जाकर उसके दिये हुए फलोंका भोग लगाया और रन्तिदेवका जल भी स्वीकार करके उसे कृतार्थ किया। इसी प्रकार प्रत्येक भक्तकी प्रेमपूर्वक अर्पण की हुई वस्तुको मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

† इसमें भगवान्‌ने सब प्रकारके कर्तव्य कर्मोंका समाहार किया है। अभिप्राय यह है कि यज्ञ, दान और तपके अतिरिक्त जीविकानिर्वाहके लिये किये जानेवाले कर्म, व्यापार और लोकव्यवहारके कर्म तथा ईश्वरकी भक्ति, ध्यान आदि जितने भी शास्त्रीय कर्म हैं, उन सबका समावेश 'यत्करोषि' में, शरीरपालनके निमित्त किये जानेवाले खान-पान आदि कर्मोंका 'यदश्नासि' में, हवन और यज्ञसम्बन्धी समस्त कर्मोंका 'यज्जुहोषि' में, सेवा और दानसम्बन्धी समस्त कर्मोंका 'ददासि' में और संयम तथा तपसम्बन्धी समस्त कर्मोंका समावेश 'यत्तपस्यसि' में किया गया है। (गीता ७ ...)

‡ साधारण मनुष्यकी उन कर्मोंमें ममता और आसक्ति होती है तथा वह उनमें फलकी कामना रखता है। अतएव समस्त कर्मोंमें ममता, आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग कर देना और यह समझना कि समस्त जगत् भगवान्‌का है, मेरे मन, बुद्धि, शरीर तथा इन्द्रिय भी भगवान्‌के हैं और मैं स्वयं भी भगवान्‌का हूँ, इसलिये मेरेद्वारा जो कुछ भी यज्ञादि कर्म किये जाते हैं, वे सब भगवान्‌के ही हैं। कठपुतलीको नचानेवाले सूत्रधारकी भाँति भगवान् ही मुझसे यह सब कुछ करवा रहे हैं, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ—ऐसा समझकर जो भगवान्‌के आज्ञानुसार भगवान्‌की ही प्रसन्नताके लिये निष्कामभावसे उपर्युक्त कर्मोंका करना है, वही उन कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना है।

पहले किसी दूसरे उद्देश्यसे किये हुए कर्मोंको पीछेसे भगवान्‌को अर्पण करना, कर्म करते-करते बीचमें ही भगवान्‌के अर्पण कर देना, कर्म समाप्त होनेके साथ-साथ भगवान्‌के अर्पण कर देना अथवा कर्मोंका फल ही भगवान्‌के अर्पण करना—इस प्रकारका अर्पण करना भी भगवान्‌के ही अर्पण करना है, परंतु ऐसा करते-करते ही उपर्युक्त प्रकारसे पूर्णतया समर्पण होता है।

यहाँ 'संन्यासयोग' पद सांख्ययोग अर्थात् ज्ञानयोगका वाचक नहीं है, किंतु पूर्वश्लोकके अनुसार समस्त कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण कर देना ही यहाँ 'संन्यासयोग' है। इसलिये ऐसे संन्यासयोगसे जिसका आत्मा युक्त हो, जिसके मन और बुद्धिमें पूर्वश्लोकके कथनानुसार समस्त कर्म भगवान्‌के अर्पण करनेका भाव सुदृढ़ हो गया हो, उसे 'संन्यासयोगयुक्तात्मा' समझना चाहिये।

§ भिन्न-भिन्न शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार स्वर्ग, नरक और पशु, पक्षी एवं मनुष्यादि योनियोंके भीतर नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेना तथा सुख-दुःख भोग करना—यही शुभाशुभ फल है। इसीको कर्मबन्धन कहते हैं; क्योंकि कर्मोंका फल भोगना ही कर्मबन्धनमें पड़ना है। उपर्युक्त प्रकारसे समस्त कर्म भगवान्‌के अर्पण कर देनेवाला मनुष्य कर्मबन्धनरूप पुनर्जन्मसे और सुख-दुःखोंके भोगसे मुक्त हो जाता है, यही शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाना है। इसके बाद भगवान्‌के परम पदमें पहुँच जाना या इसी जन्ममें भगवान्‌को प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेना ही उन कर्मबन्धनोंसे मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त होना है।

सम्बन्ध—२९वें श्लोकमें भगवान्‌की भक्ति करनेवालेको भगवान्‌की प्राप्ति होती है, दूसरोंको नहीं होती—इस कथनसे भगवान्‌में विषमताके दोषकी आशङ्का हो सकती है; अतएव उसका निराकरण करते हुए भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ २९॥

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है;* परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं,† वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ ३०॥

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी‡ अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।§ अर्थात् उसने भली भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है॥

* इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि मैं ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे समानभावसे व्याप्त हूँ; अतएव मेरा सबमें समभाव है। किसीमें भी मेरा राग-द्वेष नहीं है; इसलिये वास्तवमें मेरा कोई भी अप्रिय या प्रिय नहीं है।

† भगवान्‌के साकार या निराकार किसी भी रूपका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना, उनके नाम, गुण, प्रभाव, महिमा और लीला-चरित्रोंका श्रवण, मनन और कीर्तन करना, उनको नमस्कार करना, पत्र, पुष्प आदि अनेक सामग्रियोंद्वारा उनकी प्रेमपूर्वक पूजा करना और अपने समस्त कर्म उनके समर्पण करना आदि सभी क्रियाओंका नाम भक्तिपूर्वक भगवान्‌को भजना है।

जो पुरुष इस प्रकार भगवान्‌को भजते हैं, भगवान् भी उनको वैसे ही भजते हैं। वे जैसे भगवान्‌को नहीं भूलते, वैसे ही भगवान् भी उनको नहीं भूल सकते—यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने उनको अपनेमें बतलाया है। उन भक्तोंका विशुद्ध अन्तःकरण भगवत्प्रेमसे परिपूर्ण हो जाता है, इससे उनके हृदयमें भगवान् सदा सर्वत्र प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं—यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने अपनेको उनमें बतलाया है।

जैसे समभावसे सब जगह प्रकाश देनेवाला सूर्य दर्पण आदि स्वच्छ वस्तुओंमें प्रतिबिम्बित होता है, काष्ठादिमें नहीं होता, तथापि उसमें विषमता नहीं है; वैसे ही भगवान् भी भक्तोंमें प्रकट हैं, दूसरोंमें नहीं; किन्तु इससे उनमें विषमता नहीं है, यह तो भक्तिकी ही महिमा है।

‡ 'अपि' देकर अभिप्राय यह है कि सदाचारी और साधारण पापियोंका मेरा भजन करनेसे उद्धार हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या है, मेरे भजनसे अतिशय दुराचारीका भी उद्धार हो सकता है।

'चेत्' अव्यय 'यदि' के अर्थमें है। इसका प्रयोग करके भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि प्रायः दुराचारी मनुष्योंकी विषयोंमें और पापोंमें आसक्ति रहनेके कारण वे मुझमें प्रेम करके मेरा भजन नहीं करते; तथापि किसी पूर्व शुभ संस्कारकी जागृति, भगवत्कृपापूर्ण वातावरण, शास्त्रके अध्ययन और महात्मा पुरुषोंके सत्सङ्गसे मेरे गुण, प्रभाव, महत्त्व और रहस्यका श्रवण करनेसे यदि कदाचित् दुराचारी मनुष्यकी मुझमें श्रद्धा-भक्ति हो जाय और वह मेरा भजन करने लगे तो उसका भी उद्धार हो जाता है।

‡ जिसके आचरण अत्यन्त दूषित हों, खान-पान और व्यवहार भ्रष्ट हों, अपना स्वभाव, आसक्ति और बुरे आचरण किये होनेके कारण जो दुराचारोंका त्याग न कर सकता हो, उस मनुष्यको अतिशय दुराचारी समझना चाहिये। ऐसे मनुष्यका जो भगवान्‌के गुण, प्रभाव आदिको सुनने और समझनेसे ... एकमात्र भगवान्‌का ही आश्रय लेकर अविचल श्रद्धा-प्रेमपूर्वक ... भजन करना है, यही उसका अनन्यभाक् होना है। इस प्रकार भगवान्‌का मन लगाकर उनके स्वरूपका चिन्तन करना, नाम, गुण, महिमा और प्रभावका श्रवण, मनन और कीर्तन करना, उनको नमस्कार करना, पत्र-पुष्प आदि यथेष्ट वस्तु ... अर्पण करके उनका पूजन करना तथा उनके लिये कुछ शुभ कर्मोंका भगवान्‌के समर्पण करना है—यही अनन्यभाक् होकर भगवान्‌का भजन करना है।

§ जिसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि भगवान् पतितपावन, परम सुहृद्, सर्वशक्तिमान्, सबके स्वामी और ... हैं, एवं उनका भजन करना ही मनुष्यजीवनका परम कर्तव्य है; ... समस्त पाप और पापवासनाओंका समूल नाश होकर भगवत्कृपासे मुझको अपने-आप ही भगवत्प्राप्ति हो जायगी—यह बहुत ही उत्तम और यथार्थ निश्चय है। भगवान् कहते हैं कि जिसका ऐसा निश्चय है, वह मेरा भक्त है और मेरी भक्तिके प्रतापसे वह शीघ्र ही पूर्ण धर्मात्मा हो जायगा। अतएव उसे पापी या दुष्ट न मानकर साधु ही मानना उचित है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ ३१॥

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। * हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान † कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता‡॥ ३१॥

सम्बन्ध—अब दो श्लोकोंमें भगवान् अपनी शुद्ध भक्तिके अत्यन्त होनेकी विलक्षणता अपनेमें अत्यन्त विलक्षणसे युक्त शरणागतिरूप भक्तिका महत्त्व प्रतिपादन करके अर्जुनको भजन करनेकी आज्ञा देते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ ३२॥

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि

---

* इससे यह बात कही गयी है कि वह सब प्रकारके दुर्गुण और दुराचारोंसे रहित होकर शीघ्र ही मोक्षमें अत्यन्त पहले दूसरे और तीसरे श्लोकोंमें वर्णित दैवी सम्पदासे युक्त हो जाता अर्थात् भगवान्‌की प्राप्तिका पात्र बन जाना ही धर्मात्मा बन जाना है और जो सदा रहनेवाली शान्ति है, जिसकी एक बार प्राप्ति हो जानेपर फिर कभी अभाव नहीं होता, जिसे नैष्ठिकी शान्ति (गीता ५।१२), निर्वाणपरमा शान्ति (गीता ६।१५) और परा शान्ति (गीता १८।६२) कहते हैं, परमेश्वरकी प्राप्तिरूप उस शान्तिको प्राप्त हो जाना ही सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होना है।

† इसके प्रयोगसे भगवान् यह भाव दिखलाते हैं कि अर्जुन! मैंने जो तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा और भक्तका यह महत्त्व बतलाया है, उसमें तुम्हें किंचिन्मात्र भी संशय न रखकर उसे सर्वथा सत्य समझना और दृढ़तापूर्वक धारण कर लेना चाहिये।

‡ यहाँ भगवान्‌के कहनेका यह अभिप्राय है कि मेरे भक्तका क्रमशः उत्थान ही होता रहता है, पतन नहीं होता। अर्थात् वह न तो अपनी स्थितिसे कभी गिरता है और न उसको नीच योनि या नरकादिकी प्राप्तिरूप दुर्गतिकी ही प्राप्ति होती है, वह पूर्व स्वभावके अनुसार समस्त दुर्गुण-दुराचारोंसे सर्वथा रहित होकर शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

§ यहाँ 'अपि' का प्रयोग करके [illegible] भगवत्प्राप्तिके लिये जाति-सम्बन्धी असमानताका अभाव दिखलाया है। भगवान्‌के कथनका यहाँ यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी अपेक्षा हीन समझे जानेवाले भी वैश्य और शूद्र एवं उनसे भी हीन समझे जानेवाले चाण्डाल आदि कोई भी हों, सब उनमें भेद बुद्धि नहीं है, मेरी शरण होकर जो कोई भी मुक्त सकते हैं, उन्हींको परम गति मिल जाती है।

¶ दुराचारियोंके पापोंके कारण या पूर्वकी पापबुद्धिसे उत्पन्न होनेवाली जातियोंको 'पापयोनि' माना गया है। इनके सिवा शास्त्रोंके अनुसार हूण, भील, खस, यवन आदि म्लेच्छ जातिके मनुष्य भी पापयोनि ही माने जाते हैं। यहाँ 'पापयोनि' शब्द इन्हीं सबका वाचक है। भगवान्‌की भक्तिके लिये किसी जाति या वर्णके लिये कोई रुकावट नहीं है। वहाँ तो शुद्ध प्रेमकी आवश्यकता है। श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्। भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥ (११।१४।२१)

'हे उद्धव! संतोंका परमप्रिय आत्मा मैं एकमात्र श्रद्धा-भक्तिसे ही वशीभूत होता हूँ। मेरी भक्ति चाण्डालोंको भी पवित्र कर देती है।'

यहाँ 'पापयोनयः' पदको स्त्री, वैश्य और शूद्रोंका विशेषण नहीं मानना चाहिये; क्योंकि वैश्योंकी गणना द्विजोंमें की गयी है। उनको वेद पढ़नेका और यज्ञादि वैदिक कर्मोंके करनेका शास्त्रमें पूर्ण अधिकार दिया गया है। अतः द्विज होनेके कारण वैश्योंको पापयोनि कहना नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त छान्दोग्योपनिषद्‌में जहाँ जीवोंकी कर्मानुसार गतिका वर्णन है, वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि—

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। (छान्दोग्य उ० ५।१०।७)

उन जीवोंमें जो इस लोकमें रमणीय आचरणवाले अर्थात् पुण्यात्मा होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनि—ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनिको प्राप्त करते हैं और जो इस लोकमें कपूय—अधम आचरणवाले अर्थात् पापकर्मी होते हैं, वे अधम योनि अर्थात् कुत्तेकी, सूकरकी या चाण्डालकी योनिको प्राप्त करते हैं।

इससे यह सिद्ध है कि वैश्योंकी गणना पापयोनिमें नहीं की जा सकती। अब रही स्त्रियोंकी बात—सो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी स्त्रियोंका अपने पतियोंके साथ यज्ञादि वैदिक कर्मोंमें अधिकार माना गया है; इस कारणसे उनको भी पापयोनि कहना नहीं बन सकता। इससे यहाँ कहना तो यह होगा कि भगवान्‌की भक्तिसे पापयोनियोंके भी

चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गतिको ही प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥ ३३॥

फिर इसमें कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन मेरी शरण होकर परम गतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर ॥ ३३ ॥

सम्बन्ध—पिछले श्लोकमें भगवान्‌ने अपने भजनका महत्त्व दिखलाकर अर्जुनको भजन करनेके लिये कहा। अतएव अब भगवान् भजनका प्रकार बतलाते हुए अध्यायकी समाप्ति करते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ३४॥

परमगति मिलनेकी बात कही कि पापयोनिमें ... और जो भक्तिके महत्त्वको प्रकट करती है, ऐसे लोगोंका ... करके भी ... मानना ही ठीक प्रतीत होता है; क्योंकि भागवतमें बतलाया है—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

जिनके आश्रित भक्तोंका आश्रय लेकर किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि अधम जातिके लोग तथा इनके सिवा और भी बड़े-से-बड़े पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं, उन जगत्प्रभु भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

* ... अर्थात् उनके प्रत्येक वचनमें श्रद्धा रखना, उनके नाम, रूप, गुण, लीला आदिका निरन्तर श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करते रहना, उनमें अपनी ममता ... प्रभु आदि ... श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन करना, उन्हें नमस्कार करना, उनकी आज्ञाका पालन करना और समस्त कर्म उन्हींके समर्पण कर देना आदि भगवान्‌की शरण होना है।

'किं' और 'पुनः' पदका प्रयोग करके भगवान्‌ने यह भी दिखलाया है कि जब उपर्युक्त अत्यन्त दुराचारी (९।३०) और चाण्डाल आदि नीच जातिके मनुष्य भी (९।३२) मेरा भजन करके परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं, तब फिर जिनके आचार-व्यवहार और कुल अत्यन्त उत्तम हैं, ऐसे मेरे भक्त पुण्यशील ब्राह्मण और राजर्षिगण मेरी शरण होकर परम गतिको प्राप्त हो जायँ—इसमें तो कहना ही क्या है।

यहाँ 'पुण्याः' पदका सम्बन्ध ब्राह्मण और राजर्षि दोनोंके ही साथ है; क्योंकि यहाँ भक्तिके ही कारण उनको परम गतिकी प्राप्ति बतलायी गयी है।

† मनुष्यदेह बहुत ही दुर्लभ है, यह बड़े पुण्यबलसे और खास करके भगवान्‌की कृपासे मिलता है और मिलता है केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही। इस शरीरको पाकर जो भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करता है, उसीका मनुष्य-जीवन सफल होता है। जो इसमें सुख खोजता है, वह तो अपने लक्ष्यसे पतित ही हो जाता है; क्योंकि यह सर्वथा सुखरहित है, इसमें कहीं सुखका लेश भी नहीं है। जिन विषयभोगोंके सम्बन्धसे मनुष्य सुखका अनुभव करता है, वह बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाला होनेके कारण वस्तुतः दुःखरूप ही है। अतएव इसको सुखरूप न समझकर यह जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मिला है, उस उद्देश्यको शीघ्र-से-शीघ्र प्राप्त कर लेना चाहिये; क्योंकि यह शरीर क्षणभङ्गुर है, पता नहीं किस क्षण इसका नाश हो जाय। इसलिये सावधान हो जाना चाहिये, न इसे सुखरूप समझकर विषयोंमें फँसना चाहिये और न इसे नित्य समझकर भजनमें देर ही करना चाहिये। कदाचित् अपनी असावधानीमें यह व्यर्थ ही नष्ट हो गया तो फिर सिवा पछतानेके कुछ भी उपाय हाथमें नहीं रह जायगा। श्रुति कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (केनोपनिषद्)

'यदि इस मनुष्यजन्ममें परमात्माको जान लिया तब तो ठीक है और यदि उसे इस जन्ममें नहीं जाना, तब तो बड़ी भारी हानि है।'

इसीलिये भगवान् कहते हैं कि ऐसे शरीरको पाकर नित्य-निरन्तर मेरा भजन ही करो, क्षणभर भी मुझे मत भूलो।

* जिन परमेश्वरके सगुण, निर्गुण, निराकार, साकार आदि अनेक रूप हैं, जो विष्णुरूपसे सबका पालन करते हैं, ब्रह्मारूपसे सबकी रचना करते हैं और रुद्ररूपसे सबका संहार करते हैं; जो भगवान् युग-युगमें मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि दिव्य रूपोंमें अवतीर्ण होकर भाँति-भाँतिकी विचित्र लीलाएँ करते हैं; जो भक्तोंकी इच्छाके अनुसार

मुझमें मनवाला हो,* मेरा भक्त बन,† मेरा पूजन करनेवाला हो,‡ मुझको प्रणाम कर।§ इस प्रकार आत्माको× मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा+॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥ भीष्मपर्वणि तु त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें राजविद्याराजगुह्ययोग नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥ भीष्मपर्वमें तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

निर्गुण रूपमें प्रकट होकर उनको भक्ति द्वारा प्राप्त करते हैं—अब समस्त जगत्के कर्ता, सबके स्वामी, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सबके परम सुहृद्, परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान्‌का वाचक यहाँ 'माम्' पद है।

* भगवान् ही सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वातीत, सर्वमय, निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यके समुद्र और परम प्रेमस्वरूप हैं—इस प्रकार भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यका यथार्थ परिचय हो जानेसे जब साधकका यह निश्चय हो जाता है कि एकमात्र भगवान् ही हमारे परम प्रेमास्पद हैं, तब जगत्‌की किसी भी वस्तुमें उसकी जरा भी रमणीय-बुद्धि नहीं रह जाती। ऐसी अवस्थामें संसारके किसी दुर्लभ-से-दुर्लभ भोगमें भी उसके चित्तको कोई आकर्षण नहीं रहता। जब इस प्रकारकी स्थिति हो जाती है, तब लोक और परलोककी समस्त वस्तुओंसे उसका मन सर्वथा हट जाता है और वह अनन्य तथा परम प्रेम और श्रद्धाके साथ निरन्तर भगवान्‌का ही चिन्तन करता रहता है। भगवान्‌का यह प्रेमपूर्ण चिन्तन ही उसके प्राणोंका आधार होता है, वह क्षणमात्रके लिये भी उनकी विस्मृतिको सहन नहीं कर सकता। जिसकी ऐसी स्थिति हो जाती है, उसीको भगवान्‌में मनवाला कहते हैं।

† भगवान् ही सर्वगति हैं, वे ही एकमात्र सत्ता और स्वामी हैं, वे ही परम आश्रय और परम आत्मीय रक्षक हैं, ऐसा मानकर उन्हींपर निर्भर हो जाना, उनके प्रत्येक विधानमें सदा ही सन्तुष्ट रहना, उनकी आज्ञाका अनुसरण करना, भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला आदिके श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदिमें अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको नियुक्त रखना और उन्हींकी प्रीतिके लिये प्रत्येक कार्य करना—इसीका नाम भगवान्‌का भक्त बनना है।

‡ भगवान्‌के मन्दिरोंमें जाकर उनके मङ्गलमय विग्रहका यथाविधि पूजन करना, सुविधानुसार अपने-अपने घरोंमें यथास्थान भगवान्‌की मूर्ति स्थापित करके उसका विधिपूर्वक श्रद्धा और प्रेमके साथ पूजन करना, अपने हृदयमें या अन्तरिक्षमें अपने सामने भगवान्‌की मानसिक मूर्ति स्थापित करके उसकी मानस-पूजा करना, उनके वचनोंका, उनकी लीलाभूमिका और विग्रह आदिका आदर-सत्कार करना, उनकी सेवाके कार्योंमें अपनेको लगा देना, निष्कामभावसे यज्ञादिके अनुष्ठानके द्वारा भगवान्‌की पूजा करना, माता, पिता, ब्राह्मण, साधु, महात्मा और गुरुजनोंमें तथा अन्य समस्त प्राणियोंमें भगवान्‌को ही व्याप्त समझकर या अन्तर्यामीरूपसे भगवान् सबमें व्याप्त हैं, ऐसा जानकर उनकी यथायोग्य पूजा, आदर-सत्कार करना और तन-मन-धनसे सबको यथायोग्य सुख पहुँचानेकी और उनका हित करनेकी यथोचित चेष्टा करना—ये सभी क्रियाएँ भगवान्‌की पूजा ही कहलाती हैं।

§ भगवान्‌के साकार या निराकार रूपको, उनकी मूर्तिको, चित्रपटको, उनके चरण, चरणपादुका या चरणचिह्नोंको, उनके नाम, रहस्य, प्रेम, प्रभाव और उनकी मधुर लीलाओंके वर्णनसे पूर्ण ग्रन्थोंको तथा माता, पिता, ब्राह्मण, गुरु, साधु, सन्त और महापुरुषोंको तथा विश्वके समस्त प्राणियोंको भगवान्‌का स्वरूप समझकर या अन्तर्यामीरूपसे उनको सबमें व्याप्त जानकर श्रद्धा-भक्तिसहित मन, वाणी और शरीरके द्वारा यथायोग्य साष्टाङ्ग प्रणाम करना—यही भगवान्‌को नमस्कार करना है।

× यहाँ 'आत्मा' शब्द मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके सहित शरीरका वाचक है, उसे उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌में लगा देना ही आत्माको उनमें युक्त करना है।

+ इस प्रकार मनुष्य भगवान्‌को समर्पण कर देना और भगवान्‌को ही अपना परम आश्रय और अनन्य लक्ष्य मान लेना भगवत्परायण होना है।

इसी प्रकारके साधनोंसे ही भगवान्‌का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाना, भगवान्‌के तत्त्वको जानकर उनमें प्रवेश कर जाना अथवा भगवान्‌के दिव्य धाममें जाना, उनके समीप रहना, उनके-जैसे रूप आदिको प्राप्त कर लेना—ये सभी भगवत्प्राप्ति ही हैं।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः)

भगवान्‌की विभूति और योगशक्तिका तथा प्रभावसहित भक्तियोगका कथन, अर्जुनके पूछनेपर भगवान्‌द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका पुनः वर्णन

सम्बन्ध—नौवें अध्यायमें भगवान्‌ने विज्ञानसहित ज्ञानका जो वर्णन किया था, उसका बहुत गम्भीर हो जानेके कारण अब पुनः उसी विषयको दूसरे प्रकारसे भलीभाँति समझानेके लिये दसवें अध्यायका आरम्भ किया जाता है। यहाँ पहले श्लोकमें भगवान् पूर्वोक्त विषयको ही पुनः कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥१॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाबाहो! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचनको सुन,* जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखनेवालेके लिये हितकी इच्छासे कहूँगा॥१॥

सम्बन्ध—पहले श्लोकमें भगवान्‌ने जिस विषयको कहनेकी प्रतिज्ञा की है, उसका वर्णन आरम्भ करते हुए वे पहले दो श्लोकोंमें योगशक्तिरूप प्रभावके सहित अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हैं—

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥२॥

मेरी उत्पत्तिको अर्थात् लीलासे प्रकट होनेको न देवतालोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं;† क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका भी आदिकारण हूँ‡॥२॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३॥

जो मुझको अजन्मा अर्थात् वास्तवमें जन्मरहित, अनादि§ और लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है॥३॥

प्रीयमाणाय विशेषणसे यह भाव दिखलाया है कि हे अर्जुन! तुम्हारा मुझमें अतिशय प्रेम है, मेरे वचनोंको तुम अमृततुल्य समझकर अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमके साथ सुनते हो। इसीलिये मैं बिना प्रसंगके बिना पूछे भी तुम्हारे सामने अपने परम गोपनीय गुण, प्रभाव और तत्त्वका रहस्य बार-बार खोल रहा हूँ। इसमें तुम्हारा प्रेम ही कारण है।

* इस अध्यायमें भगवान्‌ने अपने गुण, प्रभाव और तत्त्वका रहस्य समझानेके लिये जो उपदेश दिया है, वही 'परम वचन' है और उसे फिरसे सुननेके लिये कहकर भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि मेरी भक्तिका तत्त्व अत्यन्त ही गहन है, अतः उसे बार-बार सुनना परम आवश्यक मानकर बड़े सावधानीके साथ श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सुनना चाहिये।

१. सुरगणाः पद एकादश रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य, उनचास मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्र आदि जितने भी शास्त्रोक्त देवताओंके समुदाय हैं—उन सबका वाचक है।

२. महर्षयः पदको महान् महर्षियोंका वाचक समझना चाहिये।

† भगवान्‌का अपनी अलौकिक योगमायासे जगत्‌का उद्भव, पालन और संहार करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कररूपमें प्रकट होना; धर्मके उत्थान तथा नाना प्रकारकी लीलाओंके द्वारा जगत्‌के प्राणियोंके उद्धारके लिये श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि दिव्य मङ्गलविग्रह प्रकट करना; भक्तोंको दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ करनेके लिये उनके इच्छानुरूप नाना रूपोंमें तथा लीलावैचित्र्यकी अनन्त धारा प्रवाहित करनेके लिये समस्त विश्वके रूपमें जो प्रकट होना है—उसीका वाचक यहाँ 'प्रभव' शब्द है। उसे देवतागण और महर्षिलोग नहीं जानते, इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि मैं किस-किस समय किन-किन रूपोंमें किन-किन हेतुओंसे किस प्रकार प्रकट होता हूँ—इसके रहस्यको साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, अलौकिक शक्तिसम्पन्न देवता और महर्षिलोग भी यथार्थरूपसे नहीं जानते।

‡ इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि जिन देवता और महर्षियोंसे इस सारे जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, वे सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं; उनका निमित्त और उपादान कारण मैं ही हूँ और उनमें जो विद्या, बुद्धि, शक्ति, तेज आदि प्रभाव हैं—वे सब भी उन्हें मुझसे ही मिले हैं।

§ भगवान् अपनी योगमायासे नाना रूपोंमें प्रकट होते हुए भी अजन्मा हैं (गीता ४।६)। अन्य जीवोंकी भाँति उनका जन्म नहीं होता। वे अपने भक्तोंको सुख देने और धर्मकी स्थापना करनेके लिये केवल जन्मधारणकी लीला किया करते हैं—इस बातको श्रद्धा और विश्वासके साथ ठीक-ठीक समझ लेना तथा इसमें जरा भी संदेह न करना—यही भगवान्

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च॥४॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः॥५॥

निश्चय करनेकी शक्ति, यथार्थ ज्ञान, असम्मूढता, क्षमा,* सत्य, इन्द्रियोंका वशमें करना, मनका निग्रह तथा सुख-दुःख,‡ उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय§ तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप,× दान,+ कीर्ति और अपकीर्ति—ऐसे ये प्राणियोंके नाना प्रकारके भाव मुझसे ही होते हैं।

की अवस्था जानता है तथा भग... अर्थात् महत्तत्त्व हैं उनका आदि कोई नहीं है वे नित्य हैं तथा मुझसे हैं, अन्य दार्शोंकी भाँति उनका किसी कालविशेषमें आरम्भ नहीं हुआ है। इस तत्त्वको श्रद्धा और विश्वासके साथ ठीक-ठीक समझ लेना—भगवान्‌को अनादि जानना है। एवं जितने भी देवलोकोंमें तीनों लोकोंके इन्द्र, वरुण, यम, प्रजापति आदि लोकपाल हैं, भगवान् उन सबके महान् ईश्वर हैं; वे ही सबके नियन्ता, प्रेरक कर्ता, हर्ता तथा प्रकारसे सबका भरण-पोषण और रक्षा करनेवाले सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं। इस बातको श्रद्धापूर्वक संशयरहित ठीक-ठीक समझ लेना भगवान्‌को लोकोंका महान् ईश्वर जानना है।

* कर्तव्य-अकर्तव्य, ग्राह्य-अग्राह्य और भले-बुरे आदिका निर्णय करके निश्चय करनेवाली जो वृत्ति है उसे 'बुद्धि' कहते हैं।

२ किसी भी पदार्थको यथार्थ जान लेना 'ज्ञान' है; यहाँ 'ज्ञान' शब्द साधारण ज्ञानसे लेकर भगवान्‌के स्वरूपज्ञान तक सभी प्रकारके ज्ञानका वाचक है।

३ भोगासक्त मनुष्योंके नित्य और सुखरूप प्रतीत होनेवाले समस्त सांसारिक भोगोंको अनित्य, क्षणिक और दुःखरूप समझकर उनमें मोहित न होना—यही 'असम्मोह' है।

किसी भी प्राणीको किसी भी समय किसी भी प्रकारसे मन, वाणी या शरीरके द्वारा जरा भी कष्ट न पहुँचानेके भावको 'अहिंसा' कहते हैं।

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, मित्र-शत्रु आदि जितने भी विषम पदार्थ और घटना आदि विषमताके हेतु माने जाते हैं उन सबमें निरन्तर राग-द्वेषरहित समबुद्धि रहनेके भावको 'समता' कहते हैं।

१ जो कुछ भी प्राप्त हो जाय, उसे प्रारब्धका भोग या भगवान्‌का विधान मानकर सदा संतुष्ट रहनेके भावको 'तुष्टि' कहते हैं।

* बुरा चाहना, बुरा करना, धनादि हर लेना, अपमान करना, आघात पहुँचाना, कड़ी बात कहना या गाली देना, निन्दा या चुगली करना, आग लगाना, विष देना, मार डालना और किसी प्रकारसे अनिष्ट, क्षति पहुँचाना आदि जितने भी अपराध हैं, इनमेंसे एक या अधिक किसी प्रकारका भी अपराध करनेवाला कोई भी प्राणी क्यों न हो, अपनेमें बदला लेनेका पूर्ण सामर्थ्य रहनेपर भी उससे उस अपराधका किसी प्रकार भी बदला लेनेकी इच्छाका सर्वथा त्याग कर देना और उस अपराधके कारण उसे इस लोक या परलोकमें कोई भी दण्ड न मिले, ऐसा भाव होना 'क्षमा' है।

† इन्द्रिय और अन्तःकरणद्वारा जो बात जिस रूपमें देखी, सुनी और अनुभव की गयी हो, ठीक उसी रूपमें दूसरोंको समझानेके उद्देश्यसे हितकर प्रिय शब्दोंमें उसको प्रकट करना 'सत्य' है।

‡ 'सुख' शब्द यहाँ प्रिय (अनुकूल) वस्तुके संयोगसे और अप्रिय (प्रतिकूल)के वियोगसे होनेवाले सब प्रकारके सुखोंका वाचक है। इसी प्रकार प्रियके वियोगसे और अप्रियके संयोगसे होनेवाले आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—सब प्रकारके दुःखोंका वाचक यहाँ 'दुःख' शब्द है।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि प्राणियोंके निमित्तसे प्राप्त होनेवाले क्लेशोंको आधिभौतिक; अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, वज्रपात और अकाल आदि दैवीप्रकोपसे होनेवाले क्लेशोंको आधिदैविक और शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरणमें किसी प्रकारके रोगसे होनेवाले क्लेशोंको आध्यात्मिक दुःख कहते हैं।

§ सर्वसाधारणमें व्याप्त चराचर जगत्‌का उत्पन्न होना 'भव' है, प्रलयकालमें उसका लीन हो जाना 'अभाव' है। किसी प्रकारकी हानि या मृत्युके कारणको देखकर अन्तःकरणमें उत्पन्न होनेवाले भावका नाम 'भय' है और सर्वत्र एक परमेश्वरको व्याप्त समझ लेनेसे अथवा अन्य किसी कारणसे भयका जो सर्वथा अभाव हो जाना है, वह 'अभय' है।

× स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट सहन करना 'तप' है।

\+ अपने हककी वस्तुओंको हितके लिये वितरण करना 'दान' है।

इस श्लोकसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि विभिन्न प्राणियोंके उनकी प्रकृतिके अनुसार उपर्युक्त प्रकारसे जितने भी विभिन्न भाव होते हैं, वे सब मुझसे ही होते हैं; अर्थात् वे सब मेरी ही सहायता, शक्ति और सत्तासे होते हैं।

महर्षय सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥
तथा मत्स्वायम्भुव आदि चौदह मनु—ये मुझसे भावसे

सनत्कुमार' पूर्वे से सबसे पहले होनेवाले सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चारोंको लेना चाहिये। ये भी भगवान्के ही स्वरूप हैं और ब्रह्माजीके मन संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं। भागवतमें कहा है—

स तप्तेर्विविधलोकसिसृक्षया ये चत्वारः सनाद्यास्तथा च ब्रह्म स्तोत्रभूत,
मानुषकल्पुषविनाशमित्युत्सृजत सम्यक् प्रकार मुनये तदनन्तरात्मा।
(श्रीमद्भागवत २। ७। ५)

'मैंने विविध प्रकारके लोकोंकी उत्पत्ति करनेकी इच्छासे जो सबसे पहले तप किया, उस मेरी तपस्यासे ही भगवान् स्वयं सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार सनन्नामवाले रूपोंमें प्रकट हुए और पूर्वकल्पमें प्रलयकालके समय जो आत्मतत्त्वका ज्ञान नष्ट हो गया था, उसका इन्होंने भलीभाँति उपदेश किया जिससे उन मुनियोंने अपने हृदयमें आत्मतत्त्वका साक्षात्कार किया।'

* सप्तर्षियोंके लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

एतान् भावानधीयाना ये चैते ऋषयो मताः। सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः॥
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः। वृद्धाः प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये॥
(वायुपुराण ६१। ९३)

'सातों ऋषि सातों गुणोंसे युक्त होनेके कारण सप्तर्षि कहे जाते हैं। वे ऋषि सात गुण ये हैं—इन ऋषियोंमें दीर्घायु, मन्त्रकर्ता, ऐश्वर्यवान्, दिव्यदृष्टियुक्त, गुण, विद्या और आयुमें वृद्ध, धर्मका प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करनेवाले और गोत्र चलानेवाले हैं। ऐसे सातों गुणोंसे युक्त सात ऋषियोंको ही सप्तर्षि कहते हैं। इन्हींसे प्रजाका विस्तार होता है और धर्मकी व्यवस्था चलती है।'

यहाँ जिन सप्तर्षियोंका वर्णन है, उन्हें भगवान्‌ने महर्षि कहा है और उन्हें मनसे उत्पन्न बतलाया है। इसलिये यहाँ उन्हींका लक्ष्य है जो ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हैं। ऐसे सप्तर्षियोंका उल्लेख महाभारत शान्तिपर्वमें मिलता है। इनके सिवा ब्राह्मण, भरम पुत्र, परमेश्वरके विशालबौद्धिक प्रजापति कहा है—

मरीचिरङ्गिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। वसिष्ठ इति सप्तैते मानसा निर्मिता हि ते॥
एते वेदविदो मुख्या वेदाचार्याश्च कल्पिताः। प्रवृत्तिधर्मिणश्चैव प्राजापत्ये च कल्पिताः॥
(महा० शान्ति० ३४०। ६९-७०)

'मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ—ये सातों महर्षि तुम्हारे (ब्रह्माजीके) मनसे ही रचे गये हैं। ये सातों वेदवेत्ता हैं। इनको मैंने मुख्य वेदाचार्य बनाया है। ये प्रवृत्तिमार्गका संचालन करनेवाले हैं और (मेरे ही द्वारा) प्रजापतिके कर्ममें नियुक्त किये गये हैं।'

इस कल्पके वर्तमानमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके सप्तर्षि यही हैं। इसलिये ... अतएव यहाँ सप्तर्षियोंसे इन्हींको ग्रहण करना चाहिये।

† ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनुके अधिकारकालको मन्वन्तर कहते हैं। इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है। मनुष्योंकी वर्षगणनाके हिसाबसे एक मन्वन्तर तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्षोंसे और दिव्य वर्षगणनाके हिसाबसे आठ लाख बावन हजार वर्षोंसे कुछ अधिक कालका होता है। (विष्णुपुराण १। ३)

पुराणोंमें मन्वन्तर आदिका जो वर्णन है, उसके अनुसार इस प्रकार समझना चाहिये—

मनुष्योंका ४३२० ... वर्षोंका अथवा देवताओंके १२००० वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है। इसीको महायुग कहते हैं। ऐसी इकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें सत्ययुगके मानकी अर्थात् १७२८००० वर्षकी सन्धि होती है। मन्वन्तर बीतनेपर यह सन्ध्या होती है, उस समय सारी पृथ्वी जलमें डूब जाती है। प्रत्येक कल्पमें (ब्रह्माके एक दिनमें) चौदह मन्वन्तर अपनी-अपनी सन्ध्याओंके मानके सहित होते हैं। इनके सिवा कल्पके प्रारम्भमें भी एक सत्ययुगके मानकी सन्ध्या होती है। इस प्रकार एक कल्पमें चौदह मनुओंमें ७१ चतुर्युगोंके अतिरिक्त सत्ययुगके मानकी १५ सन्ध्याएँ होती हैं। ७१ महायुगोंके मानसे १४ मनुओंमें ९९४ महायुग होते हैं और सत्ययुगके

चतुर्दश मनु ये मेरे मनसे उत्पन्न हुए हैं,* जिनकी संसारमें यह सम्पूर्ण प्रजा है ॥ ६ ॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥
जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूतिको और योग

मानवी १२ लाखवर्षोंका काल पूरा ४ महायुगोंके समान हो जाता है। दोनोंका योग मिलानेपर पूरे एक हजार महायुग या दिव्ययुग बीत जाते हैं।

इस हिसाबसे निम्नलिखित कोष्ठकके द्वारा इसको समझिये—

	सौरमान या मानव वर्ष	देवमान या दिव्य वर्ष
एक चतुर्युगी (महायुग या दिव्ययुग)	४३२००००	१२०००
इकहत्तर चतुर्युगी	३०६७२००००	८५२०००
सन्धि	१७२८०००	४८००
मन्वन्तरकी चौदह सन्ध्या	२४१९२०००	६७२००
सन्धिसहित एक मन्वन्तर	३०८४४८०००	८५६८००
चौदह सन्ध्यासहित चौदह मन्वन्तर	४३१८२७२०००	११९९५२००
कल्पकी सन्धिसहित चौदह मन्वन्तर या एक कल्प	४३२०००००००	१२००००००

ब्रह्माजीका जितना दिन है उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि है। इस अहोरात्रिके मानसे ब्रह्माजीकी परमायु एक सौ वर्ष है। इसे 'पर' कहते हैं। इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं। यह उनके ५१ वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। वर्तमान कल्पके आरम्भसे अबतक स्वायम्भुव आदि छः मन्वन्तर अपनी-अपनी सन्ध्याओंसहित बीत चुके हैं, कल्पकी सन्ध्यासमेत सात सन्ध्याएँ बीत चुकी हैं। वर्तमान सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके २७ चतुर्युग बीत चुके हैं। इस समय अट्ठाईसवें चतुर्युगके कलियुगका सन्ध्याकाल चल रहा है। (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार श्लोक १५ से २४ देखिये)।

इस २०१२ वि० तक कलियुगके ५०५७ वर्ष बीते हैं। कलियुगके आरम्भमें ३६००० वर्ष सन्ध्याकालका मान होता है। इस हिसाबसे अभी कलियुगकी सन्ध्याके ३०९४३ और वर्ष बीतने बाकी हैं।

प्रत्येक मन्वन्तरमें धर्मकी व्यवस्था और लोकरक्षणके लिये भिन्न-भिन्न सप्तर्षि होते हैं। एक मन्वन्तरके बीत जानेपर जब मनु बदल जाते हैं, तब उन्हींके साथ सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनुपुत्र भी बदल जाते हैं। वर्तमान कल्पके मनुओंके नाम ये हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि।

श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके पहले, पाँचवें और तेरहवें अध्यायोंमें इनका विस्तारसे वर्णन पढ़ना चाहिये। विभिन्न पुराणोंमें इनके नामभेद मिलते हैं। यहाँ ये नाम श्रीमद्भागवतके अनुसार दिये गये हैं।

चौदह मनुओंका एक कल्प बीत जानेपर इन मनु भी बदल जाते हैं।

* ये सभी भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेम रखनेवाले हैं, यही भाव दिखलानेके लिये इनको 'मद्भावाः' कहा गया है तथा इनकी जो ब्रह्माजीसे उत्पत्ति होती है, वह वस्तुतः भगवान्‌से ही होती है, क्योंकि स्वयं भगवान् ही जगत्‌की रचनाके लिये ब्रह्मारूप धारण करते हैं। अतएव ब्रह्माके मनसे उत्पन्न होनेवालोंको भगवान्‌के मनसे उत्पन्न होनेवाले कहनेमें कोई विरोधकी बात नहीं है।

१ भगवान्‌की जो अनन्यभक्ति है (गीता ११।५५) जिसे अव्यभिचारिणी भक्ति (गीता १३।१०) और 'अव्यभिचारी भक्तियोग' (गीता १४।२६) भी कहते हैं, उस 'अविचल भक्तियोग' का वाचक यहाँ 'अविकम्पेन' विशेषणके सहित 'योगेन' पद है और उसमें संलग्न रहना ही उससे युक्त हो जाना है।

† इसी अध्यायके चौथे, पाँचवें और छठे श्लोकोंमें भगवान्‌से जिन बुद्धि आदि भावोंकी और महर्षि आदिकी उत्पत्ति बतलायी है, तथा गीताके सातवें अध्यायमें 'जलमें मैं रस हूँ' (७।८) एवं नवें अध्यायमें 'क्रतु मैं हूँ' 'यज्ञ मैं हूँ' (९।१६) इत्यादि श्लोकोंमें जिन-जिन पदार्थों, भावों और देवता आदिका वर्णन किया है—उन सबका वाचक 'विभूति' शब्द है।

सविकल्प तत्त्वसे जानता है † वह निश्चल भक्तियोगसे युक्त हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—भगवान्‌के प्रभाव और विभूतिसहित स्वरूपका ज्ञान अविचल भक्तियोगकी प्राप्ति बतलायी गयी, अब दो श्लोकोंमें उस भक्तियोगकी प्राप्ति बतलाते हैं—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है, इस प्रकार समझकर‡ श्रद्धा और भक्तिसे युक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं§ ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा

---

* भगवान्‌की जो अलौकिक शक्ति है, जिसे देवता और महर्षिगण भी पूर्णरूपसे नहीं जानते (गीता १० । २), जिसके कारण सब सात्त्विक, राजस और तामस भावोंके भगवान् निमित्तोपादान कारण होनेपर भी भगवान् सदा उनसे न्यारे बने रहते हैं और यह कहा जाता है कि न तो वे भाव भगवान्‌में हैं और न भगवान् ही उनमें हैं (गीता ७ । १२; ९ । ४-५), जिस शक्तिसे सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार आदि समस्त कर्म करते हुए भगवान् सम्पूर्ण जगत्‌का नियमन करते हैं, जिसके कारण वे समस्त लोकोंके महान् ईश्वर, समस्त भूतोंके सुहृद्, समस्त यज्ञादिके भोक्ता, सर्वाधार और सर्वशक्तिमान् हैं, जिस शक्तिसे भगवान् इस समस्त जगत्‌को अपने एक अंशमें धारण किये हुए हैं (गीता १० । ४२) और युग-युगमें अपनी इच्छानुसार विभिन्न कार्योंके लिये अनेक रूप धारण करते हैं तथा सब कुछ करते हुए भी समस्त कर्मोंसे सम्पूर्ण जगत्‌से एवं जन्मादि समस्त विकारोंसे सर्वथा निर्लेप रहते हैं और गीताके नवम अध्यायके पाँचवें श्लोकमें जिसको 'ऐश्वर योग' कहा गया है, उस अद्भुत शक्ति (प्रभाव) का वाचक यहाँ 'योग' शब्द है।

† इस प्रकार समस्त जगत् भगवान्‌की ही रचना है और सब उन्हींके एक अंशमें स्थित हैं, इसलिये जगत्‌में जो भी वस्तु शक्तियुक्त प्रतीत हो, जहाँ भी कुछ विशेषता दिखलायी दे, वहाँ—अथवा समस्त जगत्‌को ही भगवान्‌की विभूति अर्थात् उन्हींका स्वरूप समझना एवं उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌को समस्त जगत्‌के कर्ता-हर्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वाधार, परम दयालु, सबके सुहृद् और सर्वान्तर्यामी मानना—यही भगवान्‌की विभूति और योगको तत्त्वसे जानना है।

‡ भगवान्‌के ही योगबलसे यह सृष्टिचक्र चल रहा है, उन्हींकी शासन-शक्तिसे सूर्य, चन्द्रमा, तारागण और पृथ्वी आदि नियमपूर्वक घूम रहे हैं, उन्हींके शासनसे समस्त प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म धारण करके अपने-अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं—इस प्रकारसे भगवान्‌को सबका नियन्ता और प्रवर्तक समझना ही सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌से चेष्टा करता है, यह समझना है।

§ उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌को सम्पूर्ण जगत्‌का कर्ता, हर्ता और सर्वशक्तिमान् भगवान् मानते हुए श्रद्धा और प्रेमपूर्वक मन, बुद्धि और समस्त इन्द्रियोंद्वारा निरन्तर भगवान्‌का स्मरण और सेवन करना ही भगवान्‌को निरन्तर भजना है।

भगवान्‌को ही अपना परम प्रेमी, परम सुहृद्, परम आत्मीय, परम गति और परम प्रिय समझनेके कारण जिनका चित्त अनन्यभावसे भगवान्‌में लगा हुआ है (गीता ८ । १४), भगवान्‌के सिवा किसी भी वस्तुमें जिनकी प्रीति, आसक्ति या सम्बन्धबुद्धि नहीं है, जो सदा-सर्वदा ही भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, लीला और स्वरूपका चिन्तन करते रहते हैं और जो शास्त्रविधिके अनुसार काम करते हुए उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते-जागते, व्यवहारकालमें और ध्यानकालमें कभी क्षणमात्र भी भगवान्‌को नहीं भूलते, ऐसे नित्य निरन्तर चिन्तन करनेवाले भक्तोंके लिये ही यहाँ भगवान्‌ने 'मच्चित्ताः' विशेषणका प्रयोग किया है।

१. जिनका जीवन और इन्द्रियोंकी समस्त चेष्टाएँ केवल भगवान्‌के ही लिये हैं, जिनको भगवान्‌का ही आधार है, जो भगवान्‌के लिये ही प्राण धारण करते हैं, खाना-पीना, चलना-फिरना, सोना-जागना आदि जितनी भी चेष्टाएँ हैं, उन सबमें जिनका अपना कुछ भी प्रयोजन नहीं रह गया है, जो सब कुछ भगवान्‌के लिये ही करते हैं, उनके लिये भगवान्‌ने 'मद्गतप्राणाः' का प्रयोग किया है।

२. भगवान्‌में श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले प्रेमी भक्तोंका जो अपने-अपने अनुभवके अनुसार भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, लीला, माहात्म्य और रहस्यको परस्पर नाना प्रकारकी युक्तियोंसे समझानेकी चेष्टा करना है—यही परस्पर भगवान्‌का बोध कराना है।

कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं† और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं‡ ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकारसे भजन करनेवाले भक्तोंके प्रति भगवान् क्या करते हैं, अब दो श्लोकोंमें यह बतलाते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १० ॥

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले§ भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ× जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ+।

सम्बन्ध—सातवें अध्यायके पहले श्लोकमें [illegible] सुननेके लिये भगवान्‌ने अर्जुनको आज्ञा दी थी तथा दूसरे श्लोकमें जिस विज्ञानसहित ज्ञानको पूर्ण[illegible] कहनेकी प्रतिज्ञा की थी, [illegible] आरम्भ किया [illegible] अध्यायमें [illegible] अर्जुनके प्रश्न [illegible] भगवान्‌ने [illegible] किन्तु वहाँ कहनेकी [illegible] पूरी नहीं हुई। इसलिये [illegible] भगवान्‌ने [illegible] विज्ञानसहित ज्ञानका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करके [illegible] विषयको [illegible] [illegible] दूसरे [illegible] श्लोकसे [illegible] पहले श्लोकोंमें जिस विषयको [illegible] [illegible] पाँच श्लोकोंद्वारा [illegible] [illegible] भक्तिपूर्वक [illegible] और [illegible] श्लोकोंमें भक्तियोगके द्वारा [illegible]

---

* श्रद्धा [illegible] भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, लीला और तत्त्वका कीर्तन और श्रवण करना तथा [illegible] द्वारा [illegible] करना और उनकी स्तुति करना आदि सब भगवान्‌का कथन करना है।

† प्रत्येक क्रिया करते हुए निरन्तर परम आनन्दका अनुभव करना ही नित्य संतुष्ट रहना है। इस प्रकार [illegible] रहनेवाले भक्तकी शान्ति, आनन्द और संतोषका कारण केवल भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, लीला और तत्त्वका [illegible] श्रवण, मनन और कीर्तन तथा [illegible] आदि ही होता है। सांसारिक वस्तुओंसे उसके आनन्द और संतोषका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

‡ भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, लीला, स्वरूप, तत्त्व और रहस्यको यथायोग्य श्रवण, मनन और कीर्तन करते हुए [illegible] उनकी रुचि, आज्ञा और संकेतके अनुसार केवल उनमें प्रेम होनेके लिये ही प्रत्येक क्रिया करते हुए मनके द्वारा उनके [illegible] निरन्तर प्रेमपूर्वक उनके दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप आदि क्रीडा करते रहना—यही भगवान्‌में निरन्तर रमण करना है।

§ इससे यह भाव दिखलाया है कि पूर्वश्लोकमें भगवान्‌ [illegible] भक्तोंका वर्णन हुआ है, वे भोगोंकी कामनाके लिये भगवान्‌की [illegible] नहीं हैं, किन्तु किसी प्रकारका भी फल न चाहकर केवल निष्काम अनन्य प्रेमभावपूर्वक ही भगवान्‌का उक्त श्लोकमें कहे हुए प्रकारसे निरन्तर भजन करनेवाले हैं।

× भगवान्‌के [illegible] प्रभाव और महत्त्वादिके सहित [illegible] निर्गुण-निराकार तत्त्वको तथा [illegible] रहस्य, महत्त्व और प्रभाव आदिके सहित सगुण निराकार [illegible] साकार तत्त्वको यथार्थरूपसे समझनेकी शक्ति प्रदान करना है—यही बुद्धि [illegible] तत्त्वज्ञानरूप [illegible] योगका प्रदान करना है।

[illegible] जिसके द्वारा प्रभाव और महिमा आदिके सहित निर्गुण निराकार [illegible] रहस्य, महत्त्व और प्रभाव आदिके सहित सगुण निराकार और साकार-तत्त्वका [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] आदि दोषोंसे रहित [illegible] बोध [illegible] [illegible] [illegible] है।

\+ अनादिसिद्ध अज्ञानसे उत्पन्न जो आवरणशक्ति है—जिसके कारण मनुष्य भगवान्‌के गुण, प्रभाव और तत्त्वको यथार्थ नहीं जानता, उसको यहाँ अज्ञानजनित अन्धकार कहा है। [illegible] [illegible] भगवान्‌के इस कथनका अभिप्राय यह है कि मैं सबके हृदयदेशमें [illegible] सदा-सर्वदा स्थित रहता हूँ, तो भी लोग मुझे अपनेमें स्थित नहीं जानते। इसी कारण मैं उनका अज्ञानजनित अन्धकार नाश नहीं कर सकता; परंतु मेरे प्रेमी भक्त मुझे अपना अन्तर्यामी समझते हुए पूर्वश्लोकोंमें कहे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरा भजन करते हैं, इस कारण उनके अज्ञानजनित अन्धकारका मैं सहज ही नाश कर देता हूँ।

के सकने हुए अर्जुन मन और भगवान्का नाम [illegible] और [illegible] व्याख्यामें [illegible] कथाकारको [illegible] और भगवान्की प्रति पर देवताओं मुनियोंकी प्रति [illegible] कर उस विषयका उपसंहार कर दिया। [illegible] भगवान्की विभूति और योगके तत्त्वको जानना कल्याणकारी परम उपायक है, अतः [illegible] श्लोकोंमें अर्जुन पहले भगवान्की स्तुति करके भगवान्से उनकी योगशक्ति और विभूतियोंका विस्तारसहित वर्णन करनेके लिये प्रार्थना करते हैं—

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥ १२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥ १३॥

अर्जुन बोले—आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं,* क्योंकि आपको सब ऋषिजन† सनातन दिव्य पुरुष एवं देवोंका भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि‡ नारद तथा असित और देवल [illegible]

---

* ऋषिरित्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ। एतत् संनियतस्तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः॥
[illegible] [illegible] ऋषित्वं [illegible] स्मृतः॥
(वायुपुराण ५ [illegible])

'ऋषि' धातु गमन, ज्ञान, श्रवण, सत्य और तप—इन अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। ये सब बातें जिसके अंदर एक साथ निश्चित रूपसे हों, उसीका नाम ब्रह्माने 'ऋषि' रखा है। तात्पर्य यह कि 'ऋष्' धातुसे ही 'ऋषि' शब्दकी निष्पत्ति हुई है और आदिकालमें चूँकि यह ऋषिवर्ग स्वयं उत्पन्न होता है, इसीलिये इसकी 'ऋषि' संज्ञा है।

* इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि जिन निर्गुण परमात्माको 'परं ब्रह्म' कहते हैं, वे आपके ही स्वरूप हैं तथा आपका जो निजधाम है, वह भी सच्चिदानन्दमय दिव्य और आपसे अभिन्न होनेके कारण आपका ही स्वरूप है तथा आपके नाम, गुण, प्रभाव, लीला और तत्त्वोंके श्रवण, मनन और कीर्तन आदि सबको परम पवित्र करनेवाले हैं, इसलिये आप 'परम पवित्र' हैं।

† यहाँ 'ऋषिजन' शब्दसे मार्कण्डेय, अङ्गिरा आदि समस्त ऋषियोंको समझना चाहिये। अपनी मान्यताके समर्थनमें अर्जुन उनके कथनका प्रमाण दे रहे हैं। अभिप्राय यह है कि वे लोग आपको सनातन, नित्य एकरस रहनेवाले, सब विकाररहित, दिव्य—स्व प्रकाश और ज्ञानस्वरूप, सबके आदिदेव तथा अजन्मा, उत्पत्तिरूप विकारसे रहित और सर्वव्यापी बतलाते हैं; अतः आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

परम धर्मात्मा महापुरुष पितामह भीष्मजीने भी दुर्योधनसे भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव बतलाते हुए कहा है—

'भगवान् वासुदेव सब देवताओंके भी देवता और उनसे श्रेष्ठ हैं, ये ही धर्म हैं, धर्मज्ञ हैं, वरद हैं, सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं और ये ही कर्ता, कर्म और स्वयम्भू हैं। भूत, भविष्यत्, वर्तमान, सन्ध्या, दिशाएँ, आकाश और सब नियमोंको इन्हीं जनार्दनने रचा है। इन महात्मा, अविनाशी प्रभुने ऋषि, [illegible] तपस्वी, सृष्टि करनेवाले प्रजापतियोंको रचा। सब प्राणियोंके आश्रय सङ्कर्षणको भी इन्होंने ही रचा। लोक जिनको 'अनन्त' कहते हैं और जो [illegible] सारी पृथ्वीको धारण कर रक्खा है, वे शेषनाग भी इन्हींसे उत्पन्न हैं। ये ही वायु, पृथिवी और जलके कर्ता [illegible] धारण करनेवाले हैं, ये ही सबके माता, पिता हैं, इनसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। ये ही देवताओंके परम देवरूप हैं और सब लोकोंके स्वामी हैं। मुनिगण इन्हें हृषीकेश कहते हैं, ये ही आचार्य, पिता और गुरु हैं। ये श्रीकृष्ण जिसपर प्रसन्न होते हैं, उसे अक्षय लोककी प्राप्ति होती है। भय प्राप्त होनेपर जो इन भगवान् केशवकी शरण जाता है और इनकी स्तुति करता है, वह मनुष्य परम सुखको प्राप्त होता है। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें चले जाते हैं, वे कभी मोहको नहीं प्राप्त होते। महान् भय सङ्कटमें डूबे हुए लोगोंकी भी भगवान् जनार्दन नित्य रक्षा करते हैं।' (महा० भीष्म० ६७)

‡ देवर्षिके लक्षण ये हैं—

देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षयः शुभाः॥
देवर्षयस्तथान्ये च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्। भूतभव्यभवज्ञानं सत्याभिव्याहृतं तथा॥
सम्बुद्धास्तु स्वयं ये तु सम्बद्धा ये च वै स्वयम्। तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भे यैश्च प्रणोदितम्॥
मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात् सर्वगाश्च ये। इत्येते ऋषिभिर्युक्ता देवद्विजनृपास्तु ये॥
(वायुपुराण ६१। ८८—९१)

जिनका देवलोकमें निवास है, उन्हें शुभ देवर्षि समझना चाहिये। इनके सिवा वैसे ही जो दूसरे और भी देवर्षि हैं, उनके लक्षण कहता हूँ। भूत, भविष्यत् और वर्तमानका ज्ञान होना तथा सब प्रकारसे सत्य बोलना—देवर्षिका लक्षण

महर्षि तथा ब्रह्मर्षि व्यास भी कहते हैं* और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं† ॥ १३ ॥	हे केशव ! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस सबको मैं सत्य मानता हूँ§। हे भगवन् ! ×आपके लीलामय स्वरूपको न तो दानव जानते हैं न देवता ही+॥
सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव । न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥	

* जो तत्त्व मन्त्रोंमेंसे ज्ञानकी मात्रा हैं तथा जो सर्व अपनी इच्छासे ही सर्वत्र सम्बद्ध हैं, जो अपनी तपस्याके कारण इस संसारमें विख्यात हैं, जिन्होंने ब्रह्मादिको आगेसे ही उपदेश दिया है, जो मन्त्रोंके द्रष्टा हैं और देवता (सर्वदेवों) के पास सर्वत्र उन लोकोंमें बिना किसी बाधाके आ-जा सकते हैं और जो सदा ऋषियोंसे घिरे रहते हैं, वे देवता ब्राह्मण और राजा—ये सभी देवर्षि हैं।

देवर्षि व्यक्तोंके हैं जिनमेंसे कुछके नाम ये हैं—

देवर्षी धर्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ बालखिल्याः क्रतोः पुत्राः कर्दमः पुलहस्य तु ।
पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ ऋषन्ति देवान् यस्मात्ते तस्माद् देवर्षयः स्मृताः ॥

(वायुपुराण ६१ । ८३-८४)

धर्मके दोनों पुत्र नर और नारायण, क्रतुके पुत्र बालखिल्य ऋषि, पुलहके पुत्र कर्दम, पर्वत और नारद तथा कश्यपके दोनों ब्रह्मवादी पुत्र असित और वत्सार—ये चूँकि देवताओंको अपने वशमें रखते हैं, इसलिये इन्हें देवर्षि कहते हैं।

• देवर्षि नारद, असित, देवल और व्यास—ये चारों ही भगवान्‌के यथार्थ तत्त्वको जाननेवाले उनके महान् प्रेमी भक्त और परम ज्ञानी महर्षि हैं; ये अपने समयके बहुत ही सम्मान्य तथा महान् सत्यवादी पुरुष माने जाते हैं, इसीसे इनके नाम खास तौरसे लिये गये हैं और भगवान्‌की महिमा तो ये नित्य ही गाया करते हैं। इनका जीवनका प्रधान कार्य है भगवान्‌की महिमाका ही विस्तार करना। महाभारतमें भी इनके तथा अन्यान्य ऋषि महर्षियोंके भगवान्‌की महिमा गानके कई प्रसंग आते हैं।

† इस कथनसे अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि केवल उपर्युक्त महर्षिलोग ही कहते हों, यह बात नहीं है; स्वयं आप भी मुझसे अपने अनुपमेय प्रभावकी बात इस समय भी कह रहे हैं (गीता ७ । ७ से १२ तक, ९ । ४ से ११ तक, २९ । ७ से १२ तक, ९ । ४ से और ६ से ८ तक तथा १० । २-३); अतः मैं जो आपको साक्षात् परमेश्वर मानता हूँ, यह ठीक ही है।

‡ ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों शक्तियोंको क्रमशः क, अ और ईश (केश) कहते हैं और ये तीनों जिसके अनुयायी स्वरूप हों, उसे केशव कहते हैं।

§ गीताके चौथे अध्यायके आरम्भसे लेकर इस अध्यायके ग्यारहवें श्लोकतक भगवान्‌ने जो अपने गुण, प्रभाव, स्वरूप, महिमा, रहस्य और ऐश्वर्य सम्बन्धी बात कही है, जिनसे श्रीकृष्णका अलौकिक साक्षात् परमेश्वर स्वीकार करना सिद्ध होता है—उन सबका समर्थन करते हुए अर्जुनने सत्य और ऋत कहा है; तथा भगवान् श्रीकृष्णको समस्त जगत्‌के कर्ता, हर्ता, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्, सबके आदि, सबके नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, देवोंके भी देव, सच्चिदानन्दघन साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा समझना और उनके उपदेशको सत्य मानना तथा उनमें किंचिन्मात्र भी सन्देह न करना—इन सब वचनोंमें सत्य मानता है।

× विष्णुपुराणमें कहा है

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

(६ । ५ । ७४)

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य—इन छःोंका नाम भग है; ये सब जिसमें हों, उसे भगवान् कहते हैं। वहीं यह भी कहा है

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

(६ । ५ । ७८)

उत्पत्ति और प्रलयको, प्राणियोंके आने और जानेको तथा विद्या और अविद्याको जो जानता है, उसे भगवान् कहना चाहिये। इसलिये यहाँ अर्जुन श्रीकृष्णको 'भगवन्' सम्बोधन देकर यह भाव दिखलाते हैं कि आप सर्वैश्वर्यसम्पन्न और सर्वज्ञ साक्षात् परमेश्वर हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

+ जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेके लिये, धर्मकी स्थापना और भक्तोंको दर्शन देकर उनका उद्धार

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

हे भूतोंको उत्पन्न करनेवाले ! हे भूतोंके ईश्वर ! हे देवोंके देव ! हे जगत्‌के स्वामी ! हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपनेसे अपनेको जानते हैं॥†

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

इसलिये आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियोंको सम्पूर्णतासे कहनेमें समर्थ हैं, जिन विभूतियोंके द्वारा आप इन सब लोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं ॥

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन् मया ॥ १७ ॥

हे योगेश्वर ! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और हे भगवन् ! आप किन-किन भावोंमें मेरेद्वारा चिन्तन करने योग्य हैं‡ ?

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

हे जनार्दन§ ! अपनी योगशक्तिको और विभूतिको फिर भी विस्तारपूर्वक कहिये, क्योंकि आपके अमृतमय वचनोंको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती× अर्थात् सुननेकी उत्कण्ठा बनी ही रहती है ।

सम्बन्ध—अर्जुनके द्वारा योग और विभूतियोंका विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन करनेके लिये प्रार्थना की जानेपर, भगवान् पहले अपने विस्तारकी अनन्तता बतलाकर प्रधानतासे अपनी विभूतियोंका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं जो मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं, उनको तेरे लिये प्रधानतासे कहूँगा; क्योंकि मेरे विस्तारका अन्त नहीं है ।

बतलाते हुए देवता, योगी, सिद्ध महर्षि और गन्धर्व, दानव भी लीलामय स्वरूपको नहीं जानते—यह कहकर अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि भगवान्‌के नाना रूप धारण करनेकी शक्ति, लीलामय तथा इन्द्रियातीत विलक्षण रूप धारण करनेवाले देवताओंको भी जानते न लीलामय रूपको उनके भावको अनेकों दिव्य शक्ति और बुद्धिसे उनके निमित्त और उनकी लीलाओंके रहस्यको नहीं जान सकते, फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ।

* यहाँ अर्जुनने इन पाँच सम्बोधनोंका प्रयोग करके यह भाव दिखलाया है कि आप समस्त प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, उनके नियन्ता, सबके पूज्य, सबका पालन एवं शासन करनेवाले तथा अक्षर और क्षर—दोनोंसे उत्तम साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् हैं ।

† इस कथनसे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आप समस्त जगत्‌के आदि हैं, आपके गुण, प्रभाव, लीला, माहात्म्य और रूप आदि अलौकिक हैं; इस कारण आपके गुण, प्रभाव, लीला, माहात्म्य, रहस्य और स्वरूप आदिको कोई भी दूसरा पुरुष पूर्णतया नहीं जान सकता, स्वयं आप ही अपने प्रभाव आदिको जानते हैं ।

‡ भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें किस प्रकारसे निरन्तर चिन्तन करते रहनेसे भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझा जा सकता है, इसके सम्बन्धमें अर्जुन पूछ रहे हैं ।

§ सभी मनुष्य अपनी-अपनी इच्छित वस्तुओंके लिये जिनसे याचना करते हैं, उन्हें 'जनार्दन' कहते हैं ।

× इससे अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि आपके वचनोंमें ऐसी माधुरी भरी है, उनका आनन्दमयी वह सुधाधारा बह रही है, जिसका पान करते-करते मन कभी अघाता ही नहीं; इस दिव्य अमृतका जितना ही पान किया जाता है, उतनी ही उसकी प्यास बढ़ती ही जाती है । मन करता है कि यह अमृतमय रस निरन्तर ही पीता रहूँ ।

जब सारा जगत् भगवान्‌का स्वरूप है, तब साधारणतया तो सभी वस्तुएँ उन्हींकी विभूति हैं; अतः वे सब-के-सब दिव्य विभूति नहीं हैं । दिव्य विभूति उन्हीं वस्तुओं या प्राणियोंको समझना चाहिये जिनमें भगवान्‌के तेज, बल, विद्या, ऐश्वर्य, कान्ति और शक्ति आदिका विशेष विकास हो । भगवान् यहाँ ऐसी ही विभूतियोंके लिये कहते हैं कि मेरी ऐसी विभूतियाँ अनन्त हैं, अतएव उनका तो पूरा वर्णन हो ही नहीं सकता; उनमेंसे जो प्रधान-प्रधान हैं, यहाँ मैं उन्हींका वर्णन करूँगा ।

जिसमें अनन्त पदार्थों, भावों और विभिन्न जातीय प्राणियोंका विस्तार है, इन सबका यथाविधि निर्माण और संचालन करनेके लिये महामहिम भगवान्‌के महान् नियमके द्वारा विभिन्नजातीय पदार्थों, भावों और जीवोंके विभिन्न शक्ति विभाग कर दिये गये हैं और उन सबका ठीक नियमानुसार सृजन, पालन तथा संहारका कार्य चलता रहे—इसके लिये प्रत्येक समष्टि-विभागके अधिकारी नियुक्त हैं । जैसे ब्रह्मा, वासिष्ठ, इन्द्र, यम, विशेषरूप, कश्यप, विशुद्धदेव, मनु और

सम्बन्ध—अब अपनी प्रकृतिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण अनुक्रमसे क्रमपूर्वक अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ* तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ†।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहमं शशी ॥ २१ ॥

मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु‡ और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ§ तथा मैं उनचास वायुदेवताओंका तेज×

यक्ष आदि इन्हीं अधिष्ठाताओंकी विभिन्न नाम हैं। इनके मूर्त और अमूर्त दोनों ही रूप माने गये हैं। ये सभी भगवान्‌की विभूतियाँ हैं।

एव च देवा मनव [illegible] इत्यादि वचनसे विभूतियोंका विस्तारपूर्वक [illegible]

(श्रीविष्णुपुराण १।)

सभी देवता, ऋषि, मनु, प्रजापति तथा जो मनुके पुत्र हैं और जो ये देवताओंके अधिपति इन्द्र हैं—वे सभी भगवान् विष्णुकी ही विभूतियाँ हैं।

गुडाका निद्राको कहते हैं। उसके स्वामीको गुडाकेश कहते हैं। यहाँ अर्जुनको गुडाकेश नामसे सम्बोधित करके यह भाव दिखलाते हैं कि तुम निद्रापर विजय प्राप्त कर चुके हो। [illegible] उपदेशको [illegible] करके [illegible] भी जीत सकते हो।

* समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित जो 'चेतना' है जिसको 'जीवात्मा', 'प्रकृति' और 'चेतन' भी कहते हैं। गीता [illegible]

१ उसीको यहाँ सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा बतलाया है। वह भगवान्‌का ही अंश होनेके कारण गीता [illegible] प्रभुका स्वरूप ही है। गीता [illegible] इसीलिये भगवान्‌ने कहा है कि वह आत्मा मैं हूँ।

† 'भूत' शब्दसे यहाँपर समस्त देहधारी प्राणी समझने चाहिये। वे सब प्राणी भगवान्‌से ही उत्पन्न होते हैं, उन्हींमें स्थित हैं और प्रलयकालमें भी उन्हींमें लीन होते हैं। भगवान् ही सबके मूल कारण और आधार हैं—यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने अपनेको उन सबका आदि, मध्य और अन्त बतलाया है।

‡ अदितिके धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु नामक बारह पुत्रोंको द्वादश आदित्य कहते हैं—

धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च। भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा॥
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते। जघन्यजस्तु सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः॥

(महा० आदि० ६५। १५-१६)

इनमें जो विष्णु हैं, वे सबके राजा हैं और अन्य सबसे श्रेष्ठ हैं। इसीलिये भगवान्‌ने विष्णुको अपना स्वरूप बतलाया है।

§ सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली और अग्नि आदि जितने भी प्रकाशमान पदार्थ हैं, उन सबमें सूर्य प्रधान है; इसलिये भगवान्‌ने समस्त ज्योतियोंमें सूर्यको अपना स्वरूप बतलाया है।

× उनचास वायुओंके नाम ये हैं—सत्त्वज्योति, आदित्य, सत्यज्योति, तिर्यग्ज्योति, सज्योति, ज्योतिष्मान्, हरित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, सत्यमित्र, अभिमित्र, हरिमित्र, कृत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिप, ईदृक्, अन्यादृक्, यादृक्, प्रतिकृत्, ऋक्, समिति, संरम्भ, ईदृक्ष, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस, समिता, समिदृक्ष, प्रतिदृक्ष, मरुति, सरत, देव, दिश, यजुः, अनुदृक्, साम, मानुष और विश्। (वायुपुराण ६७।

१ [illegible]) वायुपुराण तथा अन्यान्य पुराणोंमें कुछ नामभेद पाये जाते हैं, परंतु 'मरीचि' नाम कहीं भी नहीं मिला है। इसीलिये 'मरीचि' को वायु न मानकर समस्त मरुद्गणोंका तेज या किरणें मान गया है।

दक्षकन्या मरुत्वतीके उत्पन्न पुत्रोंको भी मरुद्गण कहते हैं। हरिवंश [illegible] भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोंमें भिन्न-भिन्न नामोंसे तथा विभिन्न प्रकारसे इनकी उत्पत्तिके वर्णन पुराणोंमें मिलते हैं।

दितिपुत्र अप्रमत्त मरुद्गण दिति देवीके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण [illegible] उन देवोंके ही कारण इनका नाशसे विनाश नहीं हो सका था। इसलिये उनके इस तेजको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

और नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥

मैं वेदोंमें सामवेद हूँ, देवोंमें इन्द्र हूँ, इन्द्रियोंमें मन हूँ और भूतप्राणियोंकी चेतना [illegible] हूँ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

मैं [illegible] रुद्रोंमें शंकर हूँ और [illegible]

[illegible] यक्ष और राक्षसोंमें धनका स्वामी कुबेर हूँ, मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत हूँ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥

[illegible]

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥

मैं महर्षियोंमें भृगु और [illegible] अक्षर अर्थात् [illegible]

[illegible] और [illegible] जितने [illegible] उन सबमें [illegible] और [illegible] प्रधान [illegible] है, इसलिये यह उनका भगवान्‌का [illegible] कहा गया है।

[illegible]

[illegible] भगवान् [illegible] अपना स्वरूप बतलाते हैं।

[illegible] अनुभव [illegible] है

[illegible] भगवान् अपना [illegible] बतलाते हैं।

[illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इनमें [illegible] तथा [illegible] और [illegible] इसलिये उन्हें भगवान् अपना स्वरूप कहा।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] और [illegible] है।

[illegible] तथा [illegible] और [illegible]

[illegible] इसलिये भगवान्‌ने उसको अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] और [illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible] और [illegible]

है, इसलिये भगवान्‌ने उसको अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] प्रधान [illegible] नाम है

[illegible]

[illegible]

ओङ्कार हूँ। सब प्रकारके यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय पहाड़ हूँ॥

मैं सब वृक्षोंमें पीपलका वृक्ष हूँ, देवर्षियोंमें नारद मुनि, गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिल मुनि हूँ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्। ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः। मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश॥

ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः। [illegible]

(वायुपुराण)

[illegible]

[illegible]

घोड़ोंमें अमृतके साथ उत्पन्न होनेवाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियोंमें ऐरावत नामक हाथी* और मनुष्योंमें राजा मुझको जान† ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

मैं शस्त्रोंमें वज्र‡ और गौओंमें कामधेनु हूँ। शास्त्रोक्त रीतिसे सन्तानकी उत्पत्तिका हेतु कामदेव हूँ और सर्पोंमें सर्पराज वासुकि हूँ ॥ २८ ॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

मैं नागोंमें शेषनाग और जलचरोंका अधिपति वरुण देवता हूँ और पितरोंमें अर्यमा नामक पितर तथा शासन करनेवालोंमें यमराज मैं हूँ ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न [illegible] उनमें सिद्ध करता है [illegible] सिद्ध हैं जिनमें भगवान् कपिल प्रधान हैं [illegible] साक्षात् ईश्वरके अवतार हैं [illegible] इसीलिये भगवान्ने उनको सिद्धोंमें [illegible] अपना स्वरूप बतलाया है।

* समस्त हाथियोंके राजा [illegible] ऐरावत हाथी इन्द्रका वाहन है [illegible] इसकी उत्पत्ति भी उच्चैःश्रवा घोड़ेकी भाँति समुद्रमन्थनसे हुई थी [illegible] इसलिये इसको भगवान्ने अपना स्वरूप बतलाया है।

† [illegible] मनुष्योंमें [illegible] राजा [illegible] इसलिये [illegible] अपना स्वरूप बतलाया है।

‡ [illegible] इसलिये [illegible] अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] इसलिये इसको भगवान्ने अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] इसलिये भगवान्ने उसको अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] और [illegible] इसलिये भगवान्ने उनको अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] इसलिये इनको भगवान्ने अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] और [illegible] इसलिये भगवान्ने इनको अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] इसलिये इनको भगवान्ने अपना स्वरूप बतलाया है।

मैं दैत्योंमें प्रह्लाद* और गणना करनेवालोंका समय हूँ तथा पशुओंमें मृगराज सिंह† और पक्षियोंमें गरुड़ हूँ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥ ३१॥

मैं पवित्र करनेवालोंमें वायु और शस्त्रधारियोंमें श्रीराम‡ हूँ तथा मछलियोंमें मगर× और नदियोंमें श्रीभागीरथी गङ्गाजी हूँ+॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥ ३२॥

हे अर्जुन! सृष्टियोंका आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ। मैं विद्याओंमें अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और परस्पर विवाद करनेवालोंका तत्त्व-निर्णयके लिये किया जानेवाला वाद हूँ॥

* दितिके वंशजोंको दैत्य कहते हैं। उन सबमें प्रह्लाद उत्तम माने गये हैं; क्योंकि वे सर्वसद्गुणसम्पन्न, परम भक्तिमान् और भगवान्‌के परम श्रद्धालु विश्वासी अनन्य प्रेमी भक्त हैं तथा [illegible] इसलिये भगवान्‌ने उनको अपना स्वरूप बतलाया है।

† सिंह पशुओंका राजा माना गया है। [illegible] सबसे बलवान्, तेजस्वी, शूरवीर और साहसी होता है; इसलिये भगवान्‌ने सिंहको अपनी विभूतियोंमें लिया है।

‡ विनताके पुत्र गरुड़जी पक्षियोंके राजा और [illegible] बड़े होनेके कारण पक्षियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। साथ ही ये भगवान्‌के वाहन [illegible] और अत्यन्त पराक्रमी हैं; इसलिये गरुड़को भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

§ [illegible] श्रीरामचन्द्र [illegible] भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि [illegible] भिन्न-भिन्न प्रकारके [illegible] श्रीरामसे और मुझमें कोई अन्तर नहीं है, स्वयं मैं ही श्रीरामरूपसे अवतीर्ण होता हूँ।

× जितने प्रकारके [illegible] उन सबमें मगर बहुत [illegible] और बलवान् होता है; इसी विशेषताके कारण मछलियोंमें मगरको भगवान्‌ने अपनी विभूति बतलाया है।

+ [illegible] अर्थात् श्रीभागीरथी गङ्गाजी समस्त नदियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। ये श्रीभगवान्‌के चरणोंसे उत्पन्न परम पवित्र हैं। पुराण और इतिहासोंमें इनका [illegible] माहात्म्य बतलाया गया है। आध्यात्मरामायणमें कहा है—

[illegible]
[illegible]

[illegible] महर्षियोंकी आज्ञासे [illegible] भगवान्‌के चरणोंसे [illegible] परिणत [illegible] हो गया [illegible] होकर [illegible] भगवान्‌की [illegible] पवित्र [illegible] रही है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि एक बार भगवान् विष्णु [illegible] प्रकट होकर [illegible] और [illegible] गङ्गारूप हो गये थे। [illegible] गङ्गाजीका अत्यन्त माहात्म्य है। इसी लिये भगवान्‌ने गङ्गाको अपना स्वरूप बतलाया है।

अध्यात्मविद्या [illegible] उस विद्याको कहते हैं जिसका [illegible] है, जो आत्मतत्त्वका प्रकाश करती है और जिसके प्रभावसे [illegible] साक्षात्कार हो जाता है। [illegible] विद्याएँ भी [illegible] इन [illegible] अज्ञानका [illegible] नहीं [illegible] और [illegible] होता है। [illegible] ब्रह्मविद्या [illegible] सदाके लिये छूट जाती है और परमात्माके स्वरूपका यथार्थ साक्षात्कार हो जाता है। इसीसे यह सबसे श्रेष्ठ है और इसीलिये भगवान्‌ने इसको अपना स्वरूप बतलाया है।

§ शास्त्रार्थके तीन [illegible] होते हैं—जल्प, वितण्डा और वाद। उचित-अनुचितका विचार छोड़कर अपने पक्षके मण्डन और दूसरेके पक्षका खण्डन करनेके लिये जो विवाद किया जाता है, उसे जल्प कहते हैं; केवल दूसरेके पक्षका खण्डन करनेके लिये किये जानेवाले विवादको वितण्डा कहते हैं; और जो तत्त्वनिर्णयके उद्देश्यसे शुद्ध नीयतसे किया जाता है, उसे वाद कहते हैं। जल्प और वितण्डासे [illegible] क्रोध, हिंसा और अभिमानादि दोषोंकी उत्पत्ति होती है तथा वादसे सत्यके निर्णय और कल्याण-मार्गमें सहायता प्राप्त होती है। जल्प और वितण्डा त्याज्य हैं तथा वाद [illegible] आवश्यकता होनेपर ग्राह्य है। इसी विशेषताके कारण भगवान्‌ने वादको अपनी विभूति बतलाया है।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः॥ ३३॥

मैं अक्षरोंमें अकार* हूँ और समासोंमें द्वन्द्व† नामक समास हूँ। अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल‡ तथा सब ओर मुखवाला विराट्स्वरूप, सबका धारण-पोषण करनेवाला भी मैं ही हूँ॥ ३३॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥ ३४॥

मैं सबका नाश करनेवाला मृत्यु और उत्पन्न होनेवालोंका उत्पत्ति-हेतु हूँ§ तथा स्त्रियोंमें कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ×॥ ३४॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः॥ ३५॥

तथा गायन करनेयोग्य श्रुतियोंमें मैं बृहत्साम+ और छन्दोंमें गायत्री छन्द÷ हूँ तथा महीनोंमें

---

* स्वर और व्यञ्जन आदि जितने भी अक्षर हैं, उन सबमें अकार सबका आदि है और वह सबमें व्याप्त है; इसलिये भगवान्‌ने उसको अपना स्वरूप बतलाया है।

† संस्कृत-व्याकरणके अनुसार समास चार हैं— अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व। पूर्वपदप्रधान अव्ययीभाव, उत्तरपदप्रधान तत्पुरुष और अन्यपदप्रधान बहुव्रीहि है। द्वन्द्व समासमें दोनों पदोंकी प्रधानता होनेके कारण वह अन्य समासोंसे श्रेष्ठ है; इसलिये भगवान्‌ने उसको अपनी विभूति बतलाया है।

‡ कालके तीन भेद हैं—

१. समय— सापेक्ष काल।

२. प्रकृति— जब सारा जगत् लीन होता है, उस समय जिसमें समस्त प्रकृतिकी साम्यावस्था रहती है, उसे प्रकृतिरूप काल कहते हैं।

३. नित्य शाश्वत कालातीत परमात्मा।

समयवाचक स्थूल कालकी अपेक्षा तो बुद्धिकी समझमें न आनेवाला प्रकृतिरूप काल सूक्ष्म और पर है तथा उस प्रकृतिरूप कालसे भी परमात्मरूप काल अत्यन्त सूक्ष्म, परातिपर और परम श्रेष्ठ है। परमात्मरूप काल ही प्रकृति और समस्त कालका भी नियमन करनेवाला है, जिसका कभी क्षय नहीं होता, इसीलिये उसको अक्षय काल कहा गया है; क्योंकि वह नित्य, अविनाशी सनातन परमात्मा ही है।

§ जिस प्रकार मृत्युरूप होकर भगवान् सबका नाश करते हैं, उसी प्रकार सबको उत्पन्न भी करते हैं; इस प्रकार भगवान् ही उनका पुनः पुनः उद्भव करनेवाले हैं। इसलिये उन्होंने अपनेको उत्पत्ति-हेतु कहा है।

× स्वायम्भुव मनुकी कन्या प्रसूतिके गर्भसे दक्ष प्रजापतिकी चौबीस कन्याएँ हुई थीं, जिनमें कीर्ति, मेधा, धृति, स्मृति और क्षमा उत्तम हैं। इनमें कीर्ति, मेधा और धृतिका विवाह धर्मसे हुआ तथा स्मृतिका महर्षि अङ्गिराके साथ और क्षमाका महर्षि पुलहके साथ विवाह हुआ। महर्षि भृगुकी कन्याका नाम श्री है; ये उत्तम स्त्रियाँ जिन गुणोंके नामसे प्रसिद्ध हैं— उन भिन्न-भिन्न गुणोंकी ये अधिष्ठातृदेवता हैं तथा इनके नाम भी उन्हीं गुणोंके अनुसार हैं; इसलिये भगवान्‌ने इनको अपनी विभूति बतलाया है।

\+ सामवेदमें बृहत्साम एक गीतिविशेष है। इसके द्वारा परमेश्वरकी इन्द्ररूपमें स्तुति की गयी है। अतिरात्र यागमें यही पृष्ठस्तोत्र है तथा सामवेदमें रथन्तर आदि सामोंमें बृहत्साम (बृहत् नामक साम) प्रधान होनेसे उसे सबमें श्रेष्ठ है; इसी कारण यहाँ भगवान्‌ने बृहत्सामको अपना स्वरूप बतलाया है।

÷ वेदोंकी जितनी भी छन्दोबद्ध ऋचाएँ हैं, उन सबमें गायत्रीकी ही प्रधानता है। श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराण आदि शास्त्रोंमें जगह-जगह गायत्रीकी महिमा भरी है।

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात् काममीप्सितम्। गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी॥
गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्। हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे॥
(शङ्खस्मृति १२। २४-२५)

मत्स्योंमें और जलचरोंमें वरुण मैं हूँ,
यत्र [illegible] [illegible]
ययोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥
मैं छल करनेवालोंमें जुआ हूँ और प्रभावशाली पुरुषोंका प्रभाव हूँ। मैं जीतनेवालोंका विजय हूँ, निश्चय करनेवालोंका

निश्चय और सात्त्विक पुरुषोंका सात्त्विक भाव हूँ ॥ ३६ ॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥
वृष्णिवंशियोंमें वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तथा पाण्डवोंमें धनंजय अर्थात् तू, मुनियोंमें

गायत्रीकी उपासना करनेवाला द्विज [illegible] लोकको प्राप्त हो जाता है [illegible] वह देखा है। गायत्री [illegible] वेदोंकी माता और पापोंका नाश करनेवाली है। [illegible] तथा [illegible] गायत्रीसे बढ़कर पवित्र करनेवाली दूसरा मन्त्र नहीं है। गायत्री देवी [illegible] विश्वेदेवाके [illegible] महात्म्य [illegible] तथा [illegible] है।

[illegible] न [illegible] परं [illegible] परं [illegible]

(बृहत्पराशरसंहिता)

महाभारतमें [illegible] नहीं है। श्रीविष्णुभगवान्‌के [illegible] दिखता नहीं है और गायत्रीसे बढ़कर [illegible] हुआ न होगा।

गायत्रीकी इस श्रेष्ठताके कारण ही भगवान्‌ने उसको अपना स्वरूप बतलाया है।

• महाभारतप्रभृति महीनोंमें [illegible] मार्गशीर्ष ही आरम्भ [illegible] [illegible] और [illegible] यह [illegible] [illegible] है तथा इस मासमें किये हुए [illegible] [illegible] बतलाया गया है [illegible] [illegible] है [illegible] है। [illegible] [illegible] इस प्रकार अन्यान्य मासोंकी अपेक्षा इसमें कई विशेषताएँ हैं इसलिये भगवान्‌ने इसको [illegible] स्वरूप बतलाया है।

[illegible] सब ऋतुओंमें श्रेष्ठ और [illegible] गया है। इसमें बिना [illegible] [illegible] और नवीन पत्तों [illegible] पुष्पोंसे [illegible] हो जाते हैं। इसमें न अधिक [illegible] रहती है और [illegible] इस ऋतुमें प्रायः सभी प्राणियोंको आनन्द होता है। इसलिये भगवान्‌ने इसको अपना स्वरूप बतलाया है।

‡ [illegible] [illegible] और नीच जितने भी चोर और पदार्थ हैं [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उनमें भगवान्‌की सत्ता और शक्तिका विशेष विकास है।

इस विशेषताके कारण जिस जिस [illegible] पदार्थ [illegible] [illegible] हो [illegible] उस उसमें भगवान्‌का ही चिन्तन करना चाहिये। इसी अभिप्रायसे छल करनेवालोंमें जुएको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उद्देश्यसे नहीं, क्योंकि भगवान्‌ने भी महान् जूए और [illegible] [illegible] [illegible] इसी [illegible] [illegible] [illegible] अपना स्वरूप बतलाया है। [illegible] अभिप्राय [illegible] है कि कोई भी मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनुष्य [illegible] [illegible] इसके [illegible] जो [illegible] है [illegible] [illegible] है।

— ये चारों ही गुण [illegible] [illegible] इसलिये भगवान्‌ने इनको अपना [illegible] बतलाया है। इन चारोंके अलग [illegible] [illegible] [illegible] दिखलाया है कि [illegible] प्राणियोंमें [illegible] [illegible] प्रभाव है वह भगवान्‌का ही है। जो मनुष्य उन चारों [illegible] [illegible] अभिमान करता है वह भूल करता है। इसी प्रकार विजय प्राप्त करनेवालोंका विजय, निश्चय करनेवालोंका निश्चय और सात्त्विक पुरुषोंका सात्त्विक भाव— ये सब गुण भी मेरे ही हैं। इसी दृष्टिसे अभिमान करना भी बड़ी भारी भूल है। इसके अतिरिक्त इस कथनमें यह भाव भी है कि जिन जिनमें उपर्युक्त गुण हों, उनमें भगवान्‌को लेकर [illegible] उनको श्रेष्ठ मानना चाहिये।

× इस कथनसे भगवान्‌ने अपनी और अवतारोंकी एकता दिखलायी है। कहनेका भाव यह है कि मैं [illegible] अविनाशी सब भूतोंका महेश्वर, [illegible] पुरुषोत्तम हूँ, वही वासुदेवरूप [illegible] [illegible] प्रकट हुआ हूँ (गीता [illegible] ६)।

+ अर्जुन ही सब पाण्डवोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। इसका कारण यह है कि [illegible] [illegible] अर्जुन [illegible]

वेदव्यास* और कवियोंमें शुक्राचार्य कवि† भी मैं ही हूँ ॥ ३७ ॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

मैं दमन करनेवालोंका दण्ड अर्थात् दमन करनेकी शक्ति हूँ‡, जीतनेकी इच्छावालोंकी नीति§ हूँ, गुप्त रखने योग्य भावोंका रक्षक मौन× हूँ और ज्ञानवानोंका तत्त्वज्ञान मैं ही हूँ ॥ ३८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत् स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

और हे अर्जुन ! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण+ है, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित हो ॥ ३९ ॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

हे परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है, मैंने अपनी विभूतियोंका यह विस्तार तो तेरे लिये एकदेशसे अर्थात् संक्षेपसे कहा है ॥ ४० ॥

सम्बन्ध—[illegible] प्रकृति और योगशक्तिका वर्णन करनेकी प्रार्थना की थी, [illegible] सब [illegible] बतलाते हैं—

भगवान्‌के साथ रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त वे भगवान्‌के परम प्रिय सखा और उनके अनन्य प्रेमी भक्त हैं। इसलिये अर्जुनको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

नरस्त्वमसि दुर्धर्ष हरिर्नारायणो ह्यहम् । काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषी ॥
अनन्यः पार्थ मत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च ।

(महा० वन० १२ । ४७)

'हे दुर्धर्ष अर्जुन ! तू भगवान् नर है और मैं स्वयं हरि नारायण हूँ; हम दोनों एक समय नर और नारायण ऋषि होकर इस लोकमें आये थे; इसलिये हे अर्जुन ! तू मुझसे अलग नहीं है और इसी प्रकार मैं तुझसे अलग नहीं हूँ।'

* भगवान्‌के स्वरूपका और वेदादि शास्त्रोंका मनन करनेवालोंको 'मुनि' कहते हैं। भगवान् वेदव्यास समस्त वेदोंका भलीभाँति चिन्तन करके उनका विभाग करनेवाले, महाभारत, पुराण आदि अनेक शास्त्रोंके रचयिता, भगवान्‌के अंशावतार और सर्वगुणसम्पन्न हैं; अतएव मुनिमण्डलमें उनकी प्रधानता होनेसे भगवान्‌ने उन्हें अपना स्वरूप बतलाया है।

† जो पण्डित और बुद्धिमान् हो, उसे 'कवि' कहते हैं। शुक्राचार्यजी भार्गवोंके अधिपति, सब विद्याओंमें विशारद, नीतिके रचयिता, संजीवनी विद्याके जाननेवाले और कवियोंमें प्रधान हैं; इसलिये इनको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

[illegible] है; उसका ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है; इसलिये उसको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

‡ दमन करनेवालोंकी [illegible] शक्तियाँ हैं, उनमें दण्ड [illegible] उच्छृङ्खल मनुष्योंको पापाचारसे रोककर सत्कर्ममें प्रवृत्त करता है। [illegible] द्वारा ही वश होकर भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायक बन सकते हैं। [illegible] इसलिये [illegible] राजा और शासक आदि न्याययुक्त दमन करनेवालोंकी [illegible] दमनशक्तिको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

§ नीति [illegible] न्याययुक्त [illegible]—से ही मनुष्यकी इच्छा सिद्ध होती है। जिस राज्यमें नीति नहीं रहती, अनीतिका [illegible] हो जाता है, वह राज्य भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। अतएव नीति [illegible] विजयका प्रधान उपाय है; इसलिये विजय चाहनेवालोंकी नीतिको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

× जितने भी गुप्त रखने योग्य भाव हैं, वे मौनसे ही गुप्त रह सकते हैं; बोलना बंद किये बिना उनका गुप्त रखना कठिन है। इस प्रकार गोपनीय भावोंके रक्षक मौनकी प्रधानता होनेसे मौनको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है।

\+ भगवान् ही समस्त चराचर भूत प्राणियोंके परम आधार हैं और उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है; अतएव वे ही सबके बीज या महान् कारण हैं। इसीसे सातवें अध्यायके दसवें श्लोकमें उन्हें सब भूतोंका 'सनातन बीज' और नवम अध्यायके अठारहवें श्लोकमें 'अविनाशी बीज' बतलाया गया है। इसीलिये भगवान्‌ने उनको यहाँ अपना स्वरूप बतलाया है।

इससे भगवान्‌ने यह बात दिखलायी है कि चर या अचर जितने भी प्राणी हैं, उन सबमें मैं व्याप्त हूँ, कोई भी प्राणी मुझसे रहित नहीं है; अतएव समस्त प्राणियोंको मेरा स्वरूप समझकर और मुझे उनमें व्याप्त समझकर जहाँ भी तुम्हारा मन जाय, वहीं तुम मेरा चिन्तन करते रहो। इस प्रकार अर्जुनके 'किन-किन भावोंमें चिन्तन करना चाहिये' (गीता १० । १७) इस प्रश्नका भी इससे उत्तर हो जाता है।

यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ ४१॥

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान॥ ४१॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ ४२॥

अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥ भीष्मपर्वणि तु चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें विभूतियोग नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥ भीष्मपर्वमें चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

श्रीमद्भगवद्गीताया एकादशोऽध्यायः

विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना, भगवान् और संजय द्वारा विश्वरूपका वर्णन, अर्जुनद्वारा भगवान्‌के विश्वरूपका देखा जाना, भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्‌की स्तुति प्रार्थना, भगवान्‌द्वारा विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके दर्शनकी महिमा और केवल अनन्य भक्तिसे ही भगवान्‌की प्राप्तिका कथन

सम्बन्ध—गीताके दसवें अध्यायके सातवें श्लोकतक भगवान्‌ने अपनी विभूति तथा योगशक्तिका और उसके जाननेके माहात्म्यका कथन करके ग्यारहवें श्लोकतक भक्तियोग और उसके फलका निरूपण किया। इसपर बारहवेंसे अठारहवें श्लोकतक अर्जुनने भगवान्‌की स्तुति करके उनसे दिव्य विभूतियोंका और योगशक्तिका विस्तृत वर्णन करनेके लिये प्रार्थना की; तब उन्नीसवेंसे चालीसवें श्लोकतक अपनी विभूतियोंका वर्णन समाप्त करके अन्तमें योगशक्तिका प्रभाव बतलाते हुए समस्त ब्रह्माण्डको अपने एक अंशसे धारण किया हुआ कहकर अध्यायका उपसंहार किया। इसपर अर्जुनके मनमें उस महान् स्वरूपको, जिसके एक अंशमें समस्त विश्व स्थित है, प्रत्यक्ष देखनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी। इसलिये इस अध्यायके आरम्भमें पहले चार श्लोकोंमें भगवान्‌की और उनके उपदेशकी प्रशंसा करते हुए अर्जुन उनसे विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना करते हैं—

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत् त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥

जिस किसी भी प्राणी या वस्तुमें उपर्युक्त ऐश्वर्य, शोभा, कान्ति, शक्ति, बल, तेज अथवा अन्य किसी प्रकारके गुण आदि बल-वैभव या इनमेंसे कोई भी हो, प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक वस्तुको भगवान्‌के तेजका अंश समझना हो उसकी भगवान्‌के तेजके अंशकी अभिव्यक्ति समझना है।

अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार बिजलीकी शक्तिसे कहीं रोशनी हो रही है, कहीं पंखे चल रहे हैं, कहीं जल निकल रहा है, कहीं एंजिनोंमें धू-धू करके गाड़ियाँ चल रही हैं, इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न कार्य हो रहे हैं; परंतु यह निश्चय है कि जहाँ-जहाँ ये कार्य हो रहे हैं, वहाँ-वहाँ बिजलीका ही प्रभाव काम कर रहा है, अतएव यह बिजलीकी ही व्यापक अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार जिस प्राणी या वस्तुमें जो कुछ भी विशेषता दिखलायी पड़ती है, उसमें भगवान्‌के ही तेजके अंशकी अभिव्यक्ति समझनी चाहिये।

इस कथनसे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि 'तुम्हारे पूछनेपर मैंने प्रधान-प्रधान विभूतियोंका वर्णन तो कर दिया, किंतु इतना ही जानना यथेष्ट नहीं है। सार बात यह है जो मैं अब तुम्हें बतला रहा हूँ; इसको तुम अच्छी प्रकार समझ लो, फिर सब कुछ अपने-आप ही समझमें आ जायगा। उसके बाद तुम्हारे लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहेगा।'

मन, इन्द्रिय और शरीरसहित समस्त चराचर प्राणी तथा भोगसामग्री, भोगस्थान और समस्त लोकोंके सहित इस ब्रह्माण्डको भगवान्‌के किसी एक अंशमें उन्होंकी योगशक्तिसे धारण किया हुआ है; यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने इस ब्रह्माण्डके सम्पूर्ण विस्तारको अपनी योगशक्तिके एक अंशसे धारण किया हुआ बतलाया है।

गीताके दसवें अध्यायके आरम्भमें प्रेम-सहित भगवान्‌ने 'अर्जुन! तुम्हारा मुझमें अत्यन्त प्रेम है, इसलिये मैं फिर

अर्जुन बोले—मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन* अर्थात् उपदेश कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥ २॥

क्योंकि हे कमलनेत्र! मैंने आपसे भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है†॥ २॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥ ३॥

हे परमेश्वर! आप अपनेको जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है; परंतु हे पुरुषोत्तम! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे युक्त ऐश्वर्य-रूपको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ×॥ ३॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥ ४॥

बातें तुम्हारे हितके लिये कह रहा हूँ, ऐसा कहकर अपना जो अलौकिक प्रभाव सुनाया, उसे सुनकर अर्जुनको महर्षियोंकी कही हुई बातोंका स्मरण हो आया। अर्जुनके हृदयपर भगवत्कृपाकी मुहर लग गयी। वे भगवत्कृपाके अपूर्व दर्शन कर आनन्दमुग्ध हो गये; क्योंकि भगवत्कृपाके प्रभावसे ... जबतक मनुष्य भगवत्कृपाको परमानन्दमें अभिहित ही रहता है, भगवत्कृपाके प्रभावसे वह भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यको नहीं जान सकता। ... तब उसे भगवत्कृपाका ही प्रत्यक्ष भान होता है और वह प्रत्यक्ष यह समझ जाता है कि जो कुछ हो रहा है सब भगवान्‌के आज्ञानुसार ही हो रहा है; तब उसका हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है और वह पुकार उठता है—'ओहो! भगवन्! मैं किसी भी योग्य नहीं हूँ, मैं तो सर्वथा अनधिकारी हूँ; यह सब तो आपकी अनुकम्पा ही लीला है।' ऐसे ही कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे अर्जुन कह रहे हैं कि भगवन्! आपने जो कुछ भी महत्त्व और प्रभावकी बातें सुनायी हैं, मैं उनका पात्र नहीं हूँ; आपने अनुग्रह करनेके लिये ही अपना यह परम गोपनीय रहस्य मुझको सुनाया है। 'मदनुग्रहाय' पदके प्रयोगका यही अभिप्राय है।

* सातवेंसे नवेंतक उक्त अध्यायतक विज्ञानसहित ज्ञानके कहनेकी प्रतिज्ञा करके भगवान्‌ने जो अपने गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और स्वरूपका तत्त्व और रहस्य समझाया है—उस सभी उपदेशका वाचक यहाँ 'परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन' है। भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें भगवान्‌ने स्पष्टरूपसे यह बतलाया है कि मैं श्रीकृष्ण जो तुम्हारे सामने विराजित हूँ, वही समस्त जगत्‌का कर्ता, हर्ता, निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार, मायातीत, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वर हूँ। उन प्रकरणोंको भगवान्‌ने परम गुह्य बतलाया है। अतएव यहाँ उन्हीं विशेषणोंका लक्ष्य करके अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि आपका यह उपदेश वास्तवमें ही परम गोपनीय है।

† अर्जुन जो भगवान्‌के गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और स्वरूपको पूर्णतया नहीं जानते थे—यही उनका मोह था। अब तात्त्विक उपदेशके द्वारा भगवान्‌के गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य, रहस्य और स्वरूपको कुछ समझकर वे यह मान गये हैं कि श्रीकृष्ण ही साक्षात् परमेश्वर हैं—यही उनके मोहका नष्ट होना है।

‡ इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि केवल भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयकी ही बात मैंने सुनी हो, ऐसी बात नहीं है; आपकी जो अविनाशी महिमा है, अर्थात् आप समस्त विश्वका सृजन, पालन और संहार आदि करते हुए भी वास्तवमें अकर्ता हैं; सबका नियमन करते हुए भी उदासीन हैं; सर्वव्यापी होते हुए भी उन-उन वस्तुओंके गुण-दोषोंसे सर्वथा निर्लिप्त हैं; शुभाशुभ कर्मोंका सुख-दुःखरूप फल देते हुए भी निर्दयता और विषमताके दोषसे रहित हैं; प्रकृति, काल और समस्त लोकपालोंके स्वामी, प्रकट होकर सबका नियमन करनेवाले सर्वशक्तिमान् भगवान् हैं—इस प्रकारके माहात्म्यको भी उन-उन प्रकरणोंमें बार-बार सुना है।

§ 'परमेश्वर' सम्बोधनसे अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि आप ईश्वरोंके भी महान् ईश्वर हैं और सर्वसमर्थ हैं; अतएव मैं आपके जिस ऐश्वर्य-रूपके दर्शन करना चाहता हूँ, उसके दर्शन आप सहज ही करा सकते हैं।

× ज्ञान और समस्त ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि ईश्वरीय गुण और प्रभाव जिसमें प्रत्यक्ष दिखलायी देते हों तथा सारा विश्व जिसके एक अंशमें हो, ऐसे रूपको यहाँ 'ऐश्वररूप' बतलाया है और उसीको मैं देखना चाहता हूँ, इस कथनसे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि ऐसा अद्भुत रूप मैंने कभी नहीं देखा। आपके मुखसे उसका वर्णन सुनकर (गीता ... ४२) उसे देखनेकी मेरी मनमें अत्यन्त उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गयी है। उस रूपके दर्शन करके मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा—मैं ऐसा समझता हूँ।

हे प्रभो ! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है, ऐसा आप मानते हैं तो हे योगेश्वर ! उस अविनाशी स्वरूपका मुझे दर्शन कराइये*॥ ४ ॥

सम्बन्ध—अब महाबाहु और पार्थ आदि अर्जुनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तीन श्लोकोंमें भगवान् अपने विश्वरूपका वर्णन करते हुए उसे देखनेके लिये अर्जुनको आज्ञा देते हैं—

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ ! अब तू मेरे सैकड़ों हजारों नाना प्रकारके और नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले अलौकिक रूपोंको देख† ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! तू मुझमें आदित्योंको अर्थात् अदितिके द्वादश पुत्रोंको, आठ वसुओंको, एकादश रुद्रोंको, दोनों अश्विनीकुमारोंको और उनचास मरुद्गणोंको देख‡ तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपोंको देख§ ॥ ६ ॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! अब इस मेरे शरीरमें एक जगह स्थित चराचरसहित सम्पूर्ण जगत्‌को देख× तथा और भी जो कुछ

* यहाँ 'योगेश्वर' सम्बोधनसे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आप सम्पूर्ण योगोंके स्वामी हैं, जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अन्तर्यामी रूपसे सबका नियमन करनेवाले होनेके कारण सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; इसलिये यदि मैं आपके उस रूपके दर्शनका सुयोग्य अधिकारी नहीं हूँ तो भी आप कृपापूर्वक अपने सामर्थ्यसे मुझे सुयोग्य अधिकारी बना सकते हैं।

† इस कथनमें अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि मेरे मनमें आपके उस रूपके दर्शनकी बड़ी भारी उत्कण्ठा है; आप अन्तर्यामी हैं, देख लें—जान लें कि मेरी यह उत्कण्ठा सच्ची और उत्कट है या नहीं। यदि आप उस उत्कण्ठाको सच्ची पावें तब तो समझें कि मैं उस रूपके दर्शनका अधिकारी हो सकता हूँ; क्योंकि आप वाञ्छाकल्पतरु हैं, अपने भक्तकी इच्छा ही देखते हैं, अन्य योग्यताको नहीं देखते; इसलिये उचित समझें तो कृपा करके अपने उस रूपके दर्शन मुझे कराइये।

'नानाविधानि' पद बहुतसे भेदोंका वाचक है। इसका प्रयोग करके भगवान्‌ने विश्वरूपमें दीखनेवाले रूपोंके भाविरूप में भी अनेकता प्रकट की है; अर्थात् देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि समस्त चराचर जीवोंके नाना भेदोंको अपनेमें देखनेके लिये कहा है।

१ अलौकिक और आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिव्य कहाती हैं। 'दिव्यानि' पदका प्रयोग करके भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि मेरे शरीरमें दिखलायी देनेवाले ये भिन्न-भिन्न प्रकारके आकृति रूप सब-के-सब दिव्य हैं।

'वर्ण' शब्द लाल, पीले, काले आदि भिन्न-भिन्न रंगोंका और 'आकृति' शब्द अंगोंकी बनावटका वाचक है। भिन्न रंगोंके रूप और उनके अंगोंकी बनावट पृथक्-पृथक् अनेकों प्रकारकी हों, उसको 'नानावर्णाकृति' कहते हैं। उन्हींके लिये 'नानावर्णाकृतीनि' पदका प्रयोग हुआ है।

‡ इनका नाम लेकर भगवान्‌ने सभी देवताओंको अपने विराट् रूपमें देखनेके लिये अर्जुनको आज्ञा दी है। इनमें से आदित्य और मरुद्गणोंका वर्णन गीताके दशम अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें तथा वसु और रुद्रोंका तेईसवें श्लोकमें आ चुका है। इसलिये यहाँ उनका विस्तार नहीं किया गया है। अश्विनीकुमार दोनों भाई देववैद्य हैं। ये दोनों सूर्यकी पत्नी संज्ञासे उत्पन्न माने जाते हैं (विष्णुपुराण ३। २। ७; अग्निपुराण २७३। १४)। कहीं इनको कश्यपके औरस पुत्र और अदितिके गर्भसे उत्पन्न (वाल्मीकीय रामायण, अरण्य० १४। १४) तथा कहीं ब्रह्माके कानोंसे उत्पन्न भी माना गया है (वायुपुराण ६५। ५७)। इन्हीं दोनोंको यहाँ 'अश्विनौ' पदसे कहा गया है।

यहाँ अर्जुनको 'गुडाकेश' नामसे सम्बोधित करके भगवान् यह भाव दिखलाते हैं कि तुम निद्राके स्वामी हो, अतः सावधान होकर मेरे रूपको भली भाँति देखो, ताकि किसी प्रकारका संशय या भ्रम न रह जाय।

§ इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि तुमने मेरे जिस रूपके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की है, उसे दिखलानेमें जरा भी विलम्ब नहीं कर रहा हूँ; इच्छा प्रकट करते ही मैं अभी दिखला रहा हूँ।

× पशु, पक्षी, कीट, पतंग और देव, मनुष्य आदि चलने-फिरनेवाले प्राणियोंको चर कहते हैं तथा पहाड़, वृक्ष आदि एक जगह स्थिर रहनेवालोंको अचर कहते हैं। ऐसे समस्त प्राणियोंके तथा उनके शरीर, इन्द्रिय, भोगस्थान और भोग-सामग्रियोंके सहित समस्त ब्रह्माण्डका वाचक यहाँ चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् शब्द है। इससे भगवान्‌ने अर्जुनको यह दिखलाया है कि तुम मेरे शरीरके एक अंशमें इस समस्त जगत्‌को स्थित देखो। अर्जुनको

देखना चाहता हो सो देख* ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार तीन श्लोकोंमें बार-बार अपना अद्भुत रूप देखनेके लिये आज्ञा देनेपर भी जब अर्जुन भगवान्‌के रूपको नहीं देख सके, तब अर्जुनको न देख सकनेका कारण जानते हुए भगवान् अर्जुनको दिव्यदृष्टि देनेकी इच्छा करके कहते हैं—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

परन्तु मुझको तू इन अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखनेमें निःसन्देह समर्थ नहीं है; इसीसे मैं तुझे दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ; उससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको† देख ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—अर्जुनको दिव्य दृष्टि देकर भगवान्‌ने किस प्रकारका अपना दिव्य विराट् स्वरूप दिखलाया था, अब उस बातको धृतराष्ट्रसे सञ्जय बतलाते हैं—

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! महायोगेश्वर और सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान्‌ने‡ इस प्रकार कहकर उसके बाद अर्जुनको परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया§ ॥ ९ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

अनेक मुख और नेत्रोंसे युक्त × अनेक अद्भुत

भगवान्‌ने गीताके दसवें अध्यायके अन्तिम श्लोकमें जो यह बात कही थी कि मैं इस समस्त जगत्‌को एक अंशमें धारण किये स्थित हूँ, उसी बातको यहाँ उन्होंने प्रत्यक्ष दिखलाया है।

* इस कथनसे भगवान्‌ने यह दिखलाया है कि इस वर्तमान सम्पूर्ण जगत्‌को देखनेके अतिरिक्त और भी जो कुछ भविष्य आदिके सूचक कोई दृश्य अपने और दूसरोंके सम्बन्धमें अथवा जो कुछ भी भूत, भविष्य और वर्तमानकी घटनाएँ देखनेकी तुम्हारी इच्छा हो, उन सबको तुम इस समय मेरे शरीरके एक अंशमें प्रत्यक्ष देख सकते हो।

† भगवान्‌ने अर्जुनको विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अपने योगबलसे एक प्रकारकी योगशक्ति प्रदान की थी, जिसके प्रभावसे अर्जुनमें अलौकिक सामर्थ्यका प्रादुर्भाव हो गया था और उस दिव्य रूपको देख सकनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो गयी थी; इसी योगशक्तिका नाम दिव्य दृष्टि है। यही दिव्य दृष्टि श्रीवेदव्यासजीने सञ्जयको भी दी थी। अर्जुनको जिस रूपके दर्शन हुए थे, वह दिव्य था; उसे भगवान्‌ने अपनी अद्भुत योगशक्तिके द्वारा प्रकट करके अर्जुनको दिखलाया था, अतः उसके देखनेमें ही भगवान्‌के अद्भुत योगशक्तिके दर्शन भी हो जाते थे।

‡ सञ्जयके इस कथनका भाव यह है कि श्रीकृष्ण कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, ये बड़े-से-बड़े योगेश्वर और सब पापों तथा दुःखोंका नाश करनेवाले साक्षात् परमेश्वर हैं। उन्होंने अर्जुनको अपना जो दिव्यरूप दिखलाया था, जिसका वर्णन करके मैं अभी आपको सुनाऊँगा, वह रूप बड़े-से-बड़े योगी भी नहीं दिखला सकते। उसे तो एकमात्र स्वयं परमेश्वर ही दिखला सकते हैं।

§ भगवान्‌ने अपना जो विराट् स्वरूप अर्जुनको दिखलाया था, वह अलौकिक, दिव्य, सर्वश्रेष्ठ और तेजोमय था; साधारण जगत्‌की भाँति पाञ्चभौतिक धातुओंसे बना हुआ नहीं था। भगवान्‌ने अपने परम प्रिय भक्त अर्जुनपर अनुग्रह करके अपना अद्भुत प्रभाव समझानेके लिये ही अपनी अद्भुत योगशक्तिके द्वारा उस रूपको प्रकट करके दिखलाया था।

¶ चन्दन आदि जो लौकिक गन्ध हैं, उनसे विलक्षण अलौकिक गन्धको दिव्य गन्ध कहते हैं। ऐसे दिव्य गन्धका अनुभव प्राकृत इन्द्रियोंसे न होकर दिव्य इन्द्रियोंद्वारा ही किया जा सकता है। विराट्‌के समस्त अङ्गोंमें इस प्रकारका अत्यन्त मनोहर दिव्य गन्ध लगा हो, उसको दिव्यगन्धानुलेपन कहते हैं।

१ भगवान्‌के उस विराट्‌रूपमें उपर्युक्त प्रकारसे मुख, नेत्र, आभूषण, शस्त्र, माला, वस्त्र और गन्ध आदि सभी आश्चर्यजनक थे, इसलिये उन्हें सर्वाश्चर्यमय कहा गया है।

२ जो प्रकाशमय और पूज्य हो, उसे 'देव' कहते हैं।

× अर्जुनने भगवान्‌का जो रूप देखा, उसके प्रधान नेत्र तो चन्द्रमा और सूर्य बतलाये गये हैं (गीता ...); उसके अंदर दिखलायी देनेवाले और भी असंख्य विभिन्न मुख और नेत्र थे, इसीसे भगवान्‌को अनेक मुखों और नेत्रोंसे युक्त बतलाया गया है।

दर्शनीयाले* बहुतसे दिव्य भूषणोंसे युक्त† और बहुतसे दिव्य शस्त्रोंको हाथोंमें उठाये हुए‡ दिव्य माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए§ और दिव्य गन्धका सारे शरीरमें लेप किये हुए, सब प्रकारके आश्चर्योंसे युक्त, सीमारहित और सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वरको अर्जुनने देखा।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥ १२॥

आकाशमें हजार सूर्योंके एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्माके प्रकाशके सदृश कदाचित् ही हो×॥ १२॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥ १३॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने उस समय अनेक प्रकारसे विभक्त अर्थात् पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण जगत्‌को देवोंके देव श्रीकृष्ण भगवान्‌के उस शरीरमें एक जगह स्थित देखा+॥ १३॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥ १४॥

उसके अनन्तर वे आश्चर्यसे चकित और पुलकित शरीर÷ अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्माको श्रद्धा-भक्तिसहित सिरसे प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोलेΔ॥ १४॥

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ १५॥

---

* भगवान्‌के उस विराट् रूपमें अर्जुनने ऐसे असंख्य अलौकिक विचित्र दृश्य देखे थे, इसी कारण उनके लिये यह विशेषण दिया गया है।

† जो गहने लौकिक गहनोंसे विलक्षण, तेजोमय और अलौकिक हों, उन्हें 'दिव्य' कहते हैं; तथा जो रूप ऐसे असंख्य दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो, उसे 'अनेकदिव्याभरण' कहते हैं।

‡ जो अस्त्र-शस्त्र अलौकिक तथा तेजोमय हों, उनको 'दिव्य' कहते हैं—जैसे भगवान्‌के सुदर्शन चक्र, गदा और धनुष आदि हैं। इस प्रकारके असंख्य दिव्य शस्त्र भगवान्‌ने अपने हाथोंमें उठा रखे थे।

§ विश्वरूप भगवान्‌ने अपने गलेमें बहुत-सी सुन्दर-सुन्दर तेजोमय अलौकिक मालाएँ धारण कर रखी थीं, तथा वे अनेक प्रकारके बहुत ही उत्तम तेजोमय अलौकिक वस्त्रोंसे सुसज्जित थे; इसलिये उनके लिये यह विशेषण दिया गया है।

× इसके द्वारा विराट्स्वरूप भगवान्‌के दिव्य प्रकाशकी विलक्षणता बतलायी गयी है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार हजारों तारे एक साथ उदय होकर भी सूर्यकी समानता नहीं कर सकते, उसी प्रकार हजार सूर्य यदि एक साथ आकाशमें उदय हो जायँ तो उनका प्रकाश भी उस विराट्स्वरूप भगवान्‌के प्रकाशकी समानता नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि सूर्योंका प्रकाश अनित्य, भौतिक और सीमित है, परंतु विराट्स्वरूप भगवान्‌का प्रकाश नित्य, दिव्य, अलौकिक और असीमित है।

\+ यहाँ यह भाव दिखलाया गया है कि देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग और वृक्ष आदि भेदोंवाले पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और पाताल आदि भिन्न-भिन्न स्थान एवं उनके भोग्य, भोग-स्थान, भोग-सामग्रियोंके भेदसे विभाग-युक्त समस्त ब्रह्माण्डको अर्जुनने भगवान्‌के शरीरके एक देशमें देखा। दसवें अध्यायके अन्तमें भगवान्‌ने जो यह बात कही थी कि इस सम्पूर्ण जगत्‌को मैं एक अंशसे धारण किये हुए स्थित हूँ, उसीको यहाँ अर्जुनने प्रत्यक्ष देखा।

÷ इस कथनका अभिप्राय यह है कि भगवान्‌के उस रूपको देखकर अर्जुनको इतना महान् हर्ष और आश्चर्य हुआ जिसके कारण उसी क्षण उनका समस्त शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने इससे पूर्व भगवान्‌का ऐसा ऐश्वर्यपूर्ण स्वरूप कभी नहीं देखा था, इसलिये इस अलौकिक रूपको देखते ही उनके हृदयपटलपर सहसा भगवान्‌के अपरिमित प्रभावका कुछ-कुछ अनुभव हो गया, भगवान्‌का कुछ प्रभाव उनकी समझमें आया। इससे उनके हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही।

Δ अर्जुनने जब भगवान्‌का ऐसा अनन्त आश्चर्यमय दृश्योंसे युक्त परम प्रकाशमय और असीम ऐश्वर्यसम्पन्न महान् स्वरूप देखा, तब इससे वे इतने प्रभावित हुए कि उनके मनमें जो पूर्व जीवनकी मित्रताका एक भाव था, वह सहसा सिकुड़-सा हो गया, भगवान्‌की महिमाके सामने वे अपनेको अत्यन्त तुच्छ समझने लगे। भगवान्‌के प्रति उनके हृदयमें अत्यन्त पूज्यभाव जाग्रत् हो गया और उस पूज्यभावके जगाने चिनगारीकी तरह भक्ति उत्पन्न करके उनके मस्तकको उसी क्षण भगवान्‌के चरणोंमें टिका दिया और वे हाथ जोड़कर बड़े ही विनम्रभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्‌का स्तवन करने लगे।

अर्जुन बोले—हे देव! मैं आपके शरीरमें सम्पूर्ण देवोंको तथा अनेक भूतोंके समुदायोंको, कमलके आसनपर विराजित ब्रह्माको, महादेवको और सम्पूर्ण ऋषियोंको तथा दिव्य सर्पोंको देखता हूँ*†॥१५॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥१६॥

हे सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन्! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा सब ओरसे अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके न अन्तको देखता हूँ, न मध्यको और न आदिको ही॥१६॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥१७॥

आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओरसे प्रकाशमान तेजके पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्यके सदृश ज्योतियुक्त, कठिनतासे देखे जानेयोग्य और सब ओरसे अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ॥१७॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥१८॥

आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत्के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्मके रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है‡॥१८॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥१९॥

---

* ब्रह्मा और शिव देवोंके भी देव हैं तथा ईश्वरकोटिमें हैं, इसलिये उनके नाम विशेषरूपसे लिये गये हैं। एकदेशमें कमलके आसनपर विराजित बतलाकर अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि मैं भगवान् विष्णुकी नाभिसे निकले हुए कमलपर विराजित ब्रह्माको देख रहा हूँ, अर्थात् उनके साथ आपके विष्णुरूपको भी आपके शरीरमें देख रहा हूँ।

† यहाँ स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—तीनों लोकोंके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंके नाम लेकर वर्णन करके अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि मैं त्रिभुवनात्मक समस्त विश्वको आपके शरीरमें देख रहा हूँ।

यहाँ अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आप ही इस समस्त विश्वके कर्ता-धर्ता और सबको अपने भीतर धारण करनेवाले त्रिगुणमय सबके अधीश्वर हैं और यह समस्त विश्व वस्तुतः आपका ही स्वरूप है, आप ही इसके निमित्त और उपादान कारण हैं।

१ अर्जुनको तो भगवान्ने उन रूपको देखनेके लिये ही दिव्य दृष्टि दी थी और उन्हींके द्वारा वे उसको देख रहे थे; इस कारण दूसरोंके लिये दुर्निरीक्ष्य होनेपर भी उनके लिये ऐसी बात नहीं थी।

इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आपके गुण, प्रभाव, शक्ति और स्वरूप अनन्त हैं; अतः उनको कोई भी प्राणी किसी भी उपायसे पूर्णतया नहीं जान सकता।

जिस सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माको मुमुक्षु पुरुष जाननेकी इच्छा करते हैं, जिसके जाननेके लिये जिज्ञासु साधक नाना प्रकारके साधन करते हैं, गीताके आठवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें जिस परम अक्षरको ब्रह्म बतलाया गया है, उसी परम तत्त्वस्वरूप सच्चिदानन्दघन निर्गुण-निराकार परमात्माका वाचक यहाँ 'वेदितव्यम्' और 'परमम्' विशेषणोंके सहित 'अक्षरम्' पद है।

जो सदासे चला आता हो और सदा रहनेवाला हो, उस सनातन वैदिक धर्मको शाश्वतधर्म कहते हैं। भगवान् बार-बार अवतार लेकर उस धर्मकी रक्षा करते हैं, इसलिये भगवान्को अर्जुनने शाश्वतधर्मगोप्ता कहा है।

‡ यहाँ अर्जुनने यह बतलाया है कि जिसका कभी नाश नहीं होता—ऐसे समस्त जगत्के हर्ता, कर्ता, सर्वशक्तिमान्, सम्पूर्ण विकारोंसे रहित सनातन परम पुरुष साक्षात् परमेश्वर आप ही हैं।

६ इस अध्यायके सोलहवें श्लोकमें अर्जुन भगवान्के विराट् रूपको असीम बतला ही चुके हैं, फिर यहाँ उसे 'अनादिमध्यान्त' कहनेका भाव यह है कि वह उत्पत्ति आदि छः विकारोंसे रहित नित्य है। यहाँ 'आदि' शब्द उत्पत्तिका, 'मध्य' उत्पत्ति और विनाशके बीचमें होनेवाले स्थिति, वृद्धि और क्षय, परिणाम—इन चारों भावविकारोंका और 'अन्त' शब्द विनाशरूप विकारका वाचक है। ये तीनों जिसमें न हों, उसे अनादिमध्यान्त कहते हैं।

७ यहाँ अर्जुनने भगवान्को 'अनन्तवीर्य' कहकर यह भाव दिखलाया है कि आपके बल, वीर्य और सामर्थ्य की कहीं कोई भी सीमा नहीं है।

आपको आदि, अन्त और मध्यसे रहित, अनन्त सामर्थ्यसे युक्त, अनन्त भुजावाले,* चन्द्र-सूर्यरूप नेत्रोंवाले,† प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेजसे इस जगत्‌को संतप्त करते हुए देखता हूँ॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥ २०॥

हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं; तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूपको देखकर तीनों लोक अति व्यथाको प्राप्त हो रहे हैं॥

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥ २१॥

वे ही देवताओंके समूह आपमें प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणोंका उच्चारण करते हैं‡ तथा महर्षि और सिद्धोंके समुदाय 'कल्याण हो' ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं§॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥ २२॥

जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरोंका समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धोंके

---

* इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आपके इस विराट् रूपमें मैं जिस ओर देखता हूँ, उसी ओर मुझे अगणित भुजाएँ दिखलायी दे रही हैं।

† इससे अर्जुन यह अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि आपके इस विराट्‌रूपमें मुझे चन्द्र और सूर्य आपके नेत्ररूप दिखलायी दे रहे हैं। उनमें जो आनन्द प्रदान गुण है उस गुणपर नेत्रोंके समान मैं चन्द्रमा और सूर्यको देख रहा हूँ।

समस्त विश्वके महान् आत्मा होनेसे भगवान्‌को 'महात्मन्' कहा है।

१ 'सुरसङ्घा' शब्दके साथ 'अमी' पदका प्रयोग करके अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि मैं जब स्वर्गलोकमें गया था तब वहाँ जिन-जिन देवसमुदायोंको मैंने देखा था—वे ही आज देख रहा हूँ कि वे ही आपके इस विराट् रूपमें प्रवेश कर रहे हैं।

‡ इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि जो बचे हुए जितने भी देवता भयभीत बहुत देरतक बचे रहनेकी सम्भावना न जानकर डरके मारे हाथ जोड़कर आपके नाम और गुणोंका बखान करते हुए आपको प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

§ इससे अर्जुनने यह व्यक्त किया है कि महर्षि भृगु आदि महर्षियों और कपिलादि सिद्धगणोंके जितने भी विभिन्न समुदाय हैं, वे आपके तत्त्वको यथार्थ जाननेवाले होनेके कारण आतङ्कित नहीं हो रहे हैं। वे समस्त जगत्‌के कल्याणके लिये प्रार्थना करते हुए अनेकों स्तोत्रोंके द्वारा श्रद्धा और प्रेमपूर्वक आपका स्तवन कर रहे हैं—ऐसा मैं देख रहा हूँ।

२ जो उष्ण अन्न खाते हों उनको 'ऊष्मपा' कहते हैं। मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायके दो सौ सैंतीसवें श्लोकमें कहा है कि पितरलोग गरम अन्न ही खाते हैं। अतएव यहाँ 'ऊष्मपा' पद पितरोंके समुदायका वाचक समझना चाहिये। पितरोंके नाम भेद आदि दसवें अध्यायके उन्तीसवें श्लोककी टिप्पणीमें बतलाये जा चुके हैं।

४ कश्यपजीकी पत्नी मुनि और प्राधासे तथा अरिष्टासे गन्धर्वोंकी उत्पत्ति मानी गयी है। ये राग-रागिनियोंके ज्ञानमें निपुण हैं और देवलोककी वाद्य-नृत्यकलामें कुशल समझे जाते हैं। यक्षोंकी उत्पत्ति महर्षि कश्यपकी खसा नामक पत्नीसे मानी गयी है। भगवान् शङ्करके गणोंमें भी यक्षलोग हैं। इन यक्षोंके और अन्य राक्षसोंके राजा कुबेर माने जाते हैं। देवताओंके विरोधी दैत्य, दानव और राक्षसोंको असुर कहते हैं। कश्यपजीकी दितिसे उत्पन्न होनेवाले दैत्य और दनुसे उत्पन्न होनेवाले दानव कहलाते हैं। राक्षसोंकी उत्पत्ति विभिन्न प्रकारसे हुई है। कपिल आदि सिद्धगणोंको 'सिद्ध' कहते हैं। इन सबके विभिन्न अनेकों समुदायोंका वाचक यहाँ 'गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः' पद है।

× ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु और उनचास मरुद्गण—इन चार प्रकारके देवताओंके समूहोंका वर्णन तो

समुदाय हैं, वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं ॥२२॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥२३॥

हे महाबाहो! आपके बहुत मुख और नेत्रोंवाले, बहुत हाथ, जंघा और पैरोंवाले, बहुत उदरोंवाले और बहुत-सी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त विकराल महान् रूपको देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ॥२३॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥२४॥

क्योंकि हे विष्णो![1] आकाशको स्पर्श करनेवाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णोंसे युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रोंसे युक्त आपको देखकर भयभीत अन्तःकरणवाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ॥२४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसंनिभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥२५॥

दाढ़ोंके कारण विकराल और प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित आपके मुखोंको देखकर मैं दिशाओंको नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिये हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों[2]॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः॥२६॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः॥२७॥

वे सभी धृतराष्ट्रके पुत्र राजाओंके समुदायसहित आपमें

गीताके दसवें अध्यायके इक्कीसवें और तेईसवें श्लोकोंकी टिप्पणीमें तथा अश्विनीकुमारोंका प्रसङ्ग ... विवरण किया जा चुका है, वहीं देखना चाहिये। मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, यान, चित्ति, हय, नय, हंस, नारायण, प्रभव और विभु—ये बारह साध्यदेवता हैं—

मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो यानश्च वीर्यवान्।
चित्तिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा।
प्रभवोऽथ विभुश्चैव साध्या द्वादश जज्ञिरे॥
(वायुपुराण ६६ । ...)

और क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, धुनि, कुरुवान्, प्रभवान् और रोचमान—ये दस विश्वेदेव हैं।

विश्वेदेवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः।
क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो धुनिस्तथा।
कुरुवान् प्रभवांश्चैव रोचमानश्च ते दश॥
(वायुपुराण ६६ । ३१-३२)

१ भगवान्को विष्णु नामसे सम्बोधित करके अर्जुन यह दिखलाते हैं कि आप साक्षात् विष्णु ही पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए हैं; अतः आप मेरी व्याकुलताको दूर करनेके लिये इस विकरालरूपका उपसंहार करके विष्णुरूपसे प्रकट हो जाइये।

२ यहाँ अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि आप समस्त देवताओंके स्वामी, सर्वव्यापी और सबके आधार परमेश्वर हैं, इस बातको तो मैंने पहलेसे ही सुन रखा था और मेरा विश्वास भी था कि आप ऐसे ही हैं। अब मैंने आपका यह विराटरूप प्रत्यक्ष देख लिया, अब तो आपके ऐश्वर्य और प्रभावके विषयमें कोई सन्देह ही नहीं रह गया। अब प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करनेका यह भाव है कि अभी आपका प्रभाव तो मैंने प्रत्यक्ष देख ही लिया, परन्तु आपके इस विराटरूपको देखकर मेरी बड़ी ही शोचनीय दशा हो रही है; मेरा सुख, शान्ति और धैर्य सभी जाता रहा है, यहाँतक कि मुझे दिशाओंका भी ज्ञान नहीं रह गया है। अतएव दया करके अब आप अपने इस विराटरूपको शीघ्र समेट लीजिये।

३ भीष्म, द्रोण और कर्ण—ये तीनों अर्जुनकी दृष्टिमें अजेय ... प्रयोग करके अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि जिनको मैं दुर्जय समझता था, वे भी आपके विकराल मुखोंमें प्रवेश कर नष्ट हो रहे हैं।

प्रवेश कर रहे हैं* और भयानक विकराल दाढ़ोंवाले उन आपके मुखोंमें बड़े वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरोंसहित आपके दाँतोंके बीचमें लगे हुए दीख रहे हैं†।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥

जैसे नदियोंके बहुत-से जलके प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्रके ही सम्मुख दौड़ते हैं अर्थात् समुद्रमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे नरलोकके वीर भी आपके प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं‡।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥ २९॥

जैसे पतंग मोहवश नष्ट होनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें अतिवेगसे दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाशके लिये आपके मुखोंमें अतिवेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं§। २

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो॥ ३०॥

आप उन सम्पूर्ण लोकोंको प्रज्वलित मुखोंद्वारा ग्रास करते हुए सब ओरसे बार-बार चाट रहे हैं। हे विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत्‌को तेजके द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है। ३

सम्बन्ध—अर्जुनने तीसरे और चौथे श्लोकोंमें भगवान्‌के जिस ऐश्वर्यमय रूपका दर्शन करानेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की थी, उसीके अनुसार भगवान्‌ने अपना विश्वरूप अर्जुनको दिखलाया; परंतु भगवान्‌के इस भयानक उग्र रूपको देखकर अर्जुन बहुत डर गये और उनके मनमें इस बातके जाननेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी कि ये श्रीकृष्ण वस्तुतः कौन हैं तथा इस महान् उग्र रूपके द्वारा अब ये क्या करना चाहते हैं। इसलिये वे भगवान्‌से पूछ रहे हैं—

* इससे अर्जुनने यह दिखलाया है कि केवल धृतराष्ट्रपुत्रोंको ही मैं आपके अंदर प्रविष्ट होते नहीं देख रहा हूँ, उन्होंके साथ मैं उन सब राजाओंके समुदायको भी आपके अंदर प्रवेश करते देख रहा हूँ, जो दुर्योधनकी सहायता करनेके लिये आये थे।

† पितामह भीष्म और गुरु द्रोण कौरवसेनाके प्रधानतम महान् योद्धा थे। अर्जुनकी दृष्टिमें इनका पराजय होना या मरना मारा जाना बहुत ही कठिन था। यहाँ उन दोनोंके नाम लेकर अर्जुन यह कह रहे हैं कि 'भगवन्! दूसरोंके लिये तो कहना ही क्या है, मैं देख रहा हूँ, भीष्म और द्रोण-सरीखे महान् योद्धा भी आपके भयानक विकराल मुखोंमें प्रवेश कर रहे हैं।'

‡ इस श्लोकमें उन भीष्म-द्रोणादि श्रेष्ठ शूरवीर पुरुषोंके प्रवेश करनेका वर्णन किया गया है, जो भगवान्‌की प्राप्तिके लिये साधन कर रहे थे तथा बिना किसी ही इच्छाके युद्धमें प्रवृत्त होना पड़ा था और जो युद्धमें मरकर भगवान्‌को प्राप्त करनेवाले थे। इसी कारण उनको 'नरलोकवीर' कहा गया है। वे लौकिक युद्धमें जैसे महान् वीर थे, वैसे ही भगवत्प्राप्तिके साधनरूप आध्यात्मिक युद्धमें भी काम आदि शत्रुओंके साथ बड़ी वीरतासे लड़नेवाले थे। उनके प्रवेशमें नदी और समुद्रका दृष्टान्त देकर अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि जैसे नदियोंके जल स्वाभाविक ही समुद्रकी ओर दौड़ते हैं और अन्तमें अपने नाम-रूपको त्यागकर समुद्र ही बन जाते हैं, वैसे ही ये शूरवीर भक्तजन भी आपकी ओर मुख करके दौड़ रहे हैं और आपके अंदर अभिन्नभावसे प्रवेश कर रहे हैं।

यहाँ मुखोंके साथ 'अभिविज्वलन्ति' विशेषण देकर यह भाव दिखलाया गया है कि जैसे समुद्र सब ओरसे जल-ही-जल भरा रहता है और नदियोंके जल उसमें प्रवेश करते ही उसके साथ एकरूप हो जाते हैं, वैसे ही आपके सब मुख भी सब ओरसे प्रकाशमय ज्योतिर्मय हैं और उनमें प्रवेश करनेवाले शूरवीर भक्तजन भी आपके मुखोंकी महान् ज्योतिमें उनके प्रकाशरूपी स्वरूपसे ज्योतिर्मय हो आपमें एकताको प्राप्त हो रहे हैं।

§ इस श्लोकमें पिछले श्लोकमें बतलाये हुए नरवीरोंसे भिन्न उन समस्त साधारण लोगोंके प्रवेशका वर्णन किया गया है, जो इच्छापूर्वक युद्ध करनेके लिये आये थे। इसीलिये प्रज्वलित अग्नि और पतंगोंका दृष्टान्त देकर अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि जैसे मोहमें पड़े हुए पतंग नष्ट होनेके लिये ही इच्छापूर्वक बड़े वेगसे उड़-उड़कर अग्निमें प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी आपके प्रभावको न जाननेके कारण मोहमें पड़े हुए हैं और अपना नाश करनेके लिये ही पतंगोंकी भाँति दौड़-दौड़कर आपके मुखोंमें प्रविष्ट हो रहे हैं।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥ ३१॥

मुझे बतलाइये कि आप उग्ररूपवाले कौन हैं? हे देवोंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो। आप प्रसन्न होइये। आदिपुरुष आपको मैं विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ; क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्तिको नहीं जानता*॥ ३१॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् अपने उग्ररूप धारण करनेका कारण बतलाते हुए [illegible] कहते हैं—

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥ ३२॥

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ†। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ‡। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धालोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा§॥ ३२॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनके प्रश्नका उत्तर देकर अब भगवान् दो श्लोकोंद्वारा युद्धके लिये [illegible] अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हुए आज्ञा देते हैं—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

अतएव तू उठ! यश प्राप्त कर और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग। ×ये सब शूरवीर

* इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि यह इतना भयानक रूप—जिसमें भीष्मपितामह और द्रोण आदि तमाम योद्धा नष्ट होते दिखलायी दे रहे हैं—आप मुझे किसलिये दिखला रहे हैं तथा अब किस प्रकारकी लीला आप करना चाहते हैं—इस रहस्यको मैं नहीं जानता, अतएव अब आप कृपा करके इसी रहस्यको खोलकर बतलाइये।

† इस कथनसे भगवान्ने अर्जुनके उस प्रश्नका उत्तर दिया है, जिसमें अर्जुनने यह जानना चाहा था कि आप कौन हैं। भगवान्के कथनका अभिप्राय यह है कि मैं सम्पूर्ण जगत्‌का सृजन, पालन और संहार करनेवाला साक्षात् परमेश्वर हूँ। अतएव इस समय मुझको तुम इन सबका संहार करनेवाला साक्षात् काल समझो।

‡ इस कथनसे भगवान्ने अर्जुनके उस प्रश्नका उत्तर दिया है, जिसमें अर्जुनने यह कहा था कि मैं आपकी प्रवृत्तिको नहीं जानता। भगवान्के कथनका अभिप्राय यह है कि इस समय मेरी सारी चेष्टा इन सब लोगोंका नाश करनेके लिये ही हो रही है; इसीसे मैंने अपने कालस्वरूपके [illegible] विराट् रूपके अंदर तुम्हें इनको नाशको प्राप्त होते हुए प्रत्यक्ष दिखलाया है।

§ इस कथनसे भगवान्ने यह दिखलाया है कि तुम जिन ताऊ, चाचे, मामे और भाई आदि आत्मीय स्वजनोंको युद्धके लिये तैयार देखकर [illegible] कायरताका भाव आ गया है और उनके कारण तुम जो युद्धसे हटना चाहते हो—यह उचित नहीं है; क्योंकि यदि तुम युद्ध करके इनको न भी मारोगे, तब भी ये बचेंगे नहीं; इनका तो नाश हो निश्चित है। [illegible] इनके नाशके लिये प्रवृत्त हूँ; तब [illegible] इनको बचा नहीं सकता। इसलिये तुम्हारा युद्धसे हटना व्यर्थ है, तुम्हें युद्ध [illegible] अनुसार युद्धमें प्रवृत्त होना ही उचित है।

इससे यह [illegible] अनुमान हुआ [illegible] तुम न मारोगे तो भी ये तो मरेंगे ही; ऐसा [illegible] नहीं जा सकता। इसीलिये भगवान्ने यह केवल [illegible] विषयमें कहा है। इसके सिवा अर्जुनको उत्साहित करनेके लिये जो भगवान्के द्वारा ऐसा कहा जाना युक्तिसंगत है। भगवान् मानो यह समझा रहे हैं कि इन युद्धके [illegible] मर ही चुके हैं, उन्हें मारनेमें तुम्हें कोई परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

¶ 'भगवान्' के साथ 'उठ' क्रियाका प्रयोग करके भगवान्ने यह भाव दिखलाया है कि यदि तुम्हारे युद्ध न करनेपर भी ये सब नहीं बचेंगे [illegible] तब तुम्हारे लिये युद्ध करना ही सब प्रकारसे लाभप्रद है। अतएव तुम किसी प्रकारसे भी युद्धसे हटो मत, उत्साहके साथ खड़े हो जाओ।

× इससे भगवान्ने यह भाव दिखलाया है कि इस युद्धमें तुम्हारी विजय निश्चित है, अतएव शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न महान् साम्राज्य उपलब्ध करो और सुखसे उसे भोगो। इस अवसरको हाथसे न जाने दो।

पहलेहीसे मेरे ही द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन्! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा॥३३॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥३४॥

द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओंको तू मार।† भय मत कर।‡ निस्सन्देह तू युद्धमें वैरियोंको जीतेगा। इसलिये युद्ध कर॥३४॥

सम्बन्ध—इस प्रकार भगवान्‌के मुखसे सब बातें सुननेके बाद अर्जुनकी कैसी परिस्थिति हुई और उन्होंने क्या किया—इस जिज्ञासापर संजय कहते हैं—

* जो बायें हाथसे भी बाण चला सकता हो, उसे 'सव्यसाची' कहते हैं। यहाँ भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि तुम तो दोनों ही हाथोंसे बाण चलानेमें अत्यन्त निपुण हो, तुम्हारे लिये इन शूरवीरोंपर विजय प्राप्त करना कौन-सी बड़ी बात है। फिर इन सबको तो वस्तुतः तुम्हें मारना ही क्या है; तुमने प्रत्यक्ष देख ही लिया कि ये सब-के-सब योद्धा पहलेहीसे मारे हुए हैं। तुम्हारा तो सिर्फ नाममात्र होगा। अतएव अब तुम इन्हें मारनेमें जरा भी हिचको मत, मरे हुएको मारना जैसे सहज ही है; तुम तो केवल निमित्तमात्र बन जाओ।

निमित्तमात्र बननेके लिये कहनेका एक भाव यह भी है कि इन्हें मारनेपर तुम्हें किसी प्रकारका पाप होगा, इसकी भी सम्भावना नहीं है; क्योंकि तुम तो क्षात्रधर्मके अनुसार कर्तव्यरूपसे प्राप्त युद्धमें इन्हें मारनेमें एक निमित्तमात्र बनते हो। इससे पापकी बातसे दूर रही, तुम्हारा द्वारा उलटा धर्मपालन ही होगा। अतएव तुम्हें अपने मनमें किसी प्रकारका संकोच न रखकर, अहंकार और ममतासे रहित होकर उत्साहपूर्वक युद्धमें ही प्रवृत्त होना चाहिये।

† द्रोणाचार्य धनुर्वेद तथा अन्यान्य शस्त्रास्त्र-प्रयोगकी विद्याके अत्यन्त पारंगत और युद्धकलामें बड़े निपुण थे; यह बात प्रसिद्ध थी कि जबतक उनके हाथमें शस्त्र रहेगा, तबतक उन्हें कोई भी मार नहीं सकता। इस कारण अर्जुन उन्हें अजेय समझते थे और साथ ही गुरु होनेके कारण अर्जुन उनको मारना पाप भी मानते थे। भीष्मपितामहकी स्वेच्छा-मृत्यु प्रसिद्ध थी। [illegible] उन्होंने परास्त कर दिया था। साथ ही पिता शान्तनुका उन्हें यह वरदान था कि उनकी बिना इच्छाके मृत्यु भी उन्हें नहीं मार सकेगी। इन सब कारणोंसे अर्जुनकी यह धारणा थी कि पितामहपर विजय प्राप्त करना सहज काम नहीं है; इसीके साथ-साथ वे पितामहको अपने हाथों मारना पाप भी समझते थे। उन्होंने कई बार कहा भी है कि मैं इन्हें नहीं मारना चाहता।

जयद्रथ स्वयं बड़े वीर थे और भगवान् शङ्करका भक्त होनेके कारण उनसे दुर्लभ वरदान पाकर अत्यन्त दुर्जय हो गये थे; फिर दुर्योधनके बहनोई होनेके नाते [illegible] भी बनाते थे। स्वाभाविक ही मोहवश और आत्मीयताके कारण अर्जुन उन्हें भी मारनेमें हिचकते थे।

कर्णको भी अर्जुन किसी प्रकार भी अपनेसे कम वीर नहीं मानते थे। [illegible] और परशुरामजीके द्वारा [illegible] ब्रह्मास्त्रविद्याका इन्होंने अभ्यास किया था।

इसीलिये इन चारोंके पृथक्-पृथक् नाम लेकर और इनके अतिरिक्त भगदत्त, भूरिश्रवा और शल्यप्रभृति जिन-जिन योद्धाओंको अर्जुन बहुत बड़े वीर [illegible] विजय प्राप्त करना आसान नहीं समझते थे, उन सबका लक्ष्य कराते हुए उन सबको भगवान्‌ने मारे हुए बतलाकर और उन्हें मारनेके लिये आज्ञा देकर भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि तुमको विजयपर या [illegible] किसी प्रकारका भी सन्देह नहीं करना चाहिये; ये सभी मेरेद्वारा मारे हुए हैं। साथ ही इस बातको भी स्पष्ट कर दिया है कि तुम जो इन गुरुजनोंको मारनेमें पापकी आशङ्का करते थे, वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि धर्मशास्त्रानुसार इन्हें मारनेमें तो तुम निमित्त बनोगे, इससे तुम्हें कोई भी पाप नहीं होगा, वर धर्मका ही पालन होगा; अतएव उठो और इनपर विजय प्राप्त करो।

‡ इससे भगवान्‌ने अर्जुनको आश्वासन दिया है कि मेरे उग्ररूपको देखकर तुम जो डरसे व्याकुल और व्यथित हो रहे हो, यह ठीक नहीं है; मैं तुम्हारा प्रिय वही कृष्ण हूँ, इसलिये तुम न तो व्यथा ही करो और न डरते ही रहो।

§ अर्जुनके मनमें जो इस बातकी शङ्का थी कि न जाने युद्धमें हम जीतेंगे या हमारे ये शत्रु ही हमको जीतेंगे (गीता २। ६), उस शङ्काको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने ऐसा कहा है। भगवान्‌के कथनका अभिप्राय यह है कि युद्धमें निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी, इसलिये तुम्हें उत्साहपूर्वक युद्ध करना चाहिये।

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य॥३५॥

संजय बोले—केशव भगवान्‌के इस वचनको सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रति गद्गद वाणीसे बोला—॥३५॥

सम्बन्ध—अब छत्तीसवेंसे छियालीसवें श्लोकतक अर्जुन भगवान्‌का स्तवन, नमस्कार और क्षमायाचनासहित प्रार्थना करते हैं—

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥३६॥

अर्जुन बोले—हे अन्तर्यामिन्! यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभावके कीर्तनसे जगत् अति हर्षित हो रहा है और अनुरागको भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षसलोग दिशाओंमें भाग रहे हैं और सब सिद्धगणोंके समुदाय नमस्कार कर रहे हैं॥३६॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥३७॥

हे महात्मन्! ब्रह्माके भी आदिकर्ता और सबसे बड़े आपके लिये वे कैसे नमस्कार न करें; क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं॥३७॥

अर्जुनके मस्तकपर देवराज इन्द्रका दिया हुआ सूर्यके समान प्रकाशमान दिव्य मुकुट सदा रहता था, इसीसे उनका एक नाम 'किरीटी' पड़ गया था।

स्वयं अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरकुमारसे कहा है—

पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः। किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम्॥

(महा० विराट० ४४। ७)

---

* इससे संजयने यह भाव दिखलाया है कि श्रीकृष्णके उग्र रूपको देखकर अर्जुन इतने व्याकुल हो गये कि भगवान्‌के इस प्रकार आश्वासन देनेपर भी उनका डर दूर नहीं हुआ, इसलिये वे डरसे काँपते हुए ही भगवान्‌से उस रूपका संवरण करनेके लिये प्रार्थना करने लगे।

† इससे संजयने यह भाव दिखलाया है कि भगवान्‌के अत्यन्त देवस्वरूप भावोंको देखकर उस रूपके प्रति अर्जुनकी बड़ी सम्मान बुद्धि हो गयी थी और वे डरे हुए तो थे ही, इसलिये वे हाथ जोड़े हुए बार-बार भगवान्‌को नमस्कार और प्रणाम करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

‡ इसका अभिप्राय यह है कि अर्जुन जब भगवान्‌की स्तुति करने लगे, तब आश्चर्य और भयके कारण उनका हृदय भरा-सा हो गया, नेत्रोंमें जल भर आया, कण्ठ रुक गया और इसी कारण उनकी वाणी गद्गद हो गयी। फलतः उनका उच्चारण अस्पष्ट और करुणापूर्ण हो गया।

§ भगवान्‌के द्वारा प्रकट की हुई दिव्यताको केवल अर्जुन ही वह सब देख रहे थे, सारा जगत् नहीं। जगत्‌का हर्षित और अनुरक्त होना, राक्षसोंका डरकर भागना और सिद्धोंका नमस्कार करना—ये सब उस विराट् रूपके ही अङ्ग हैं। अभिप्राय यह है कि यह दृश्य अर्जुनको दिखलायी देनेवाले विराट् रूपका ही है, बाहरी जगत्‌का नहीं। उनको भगवान्‌का जो विराट् रूप दीखता था, उसीके अन्दर ये सब दृश्य दिखलायी पड़ रहे थे, इसीसे अर्जुनने ऐसा कहा है।

× यहाँ 'महात्मन्', 'अनन्त', 'देवेश' और 'जगन्निवास'—इन चार सम्बोधनोंका प्रयोग करके अर्जुनने यह भाव व्यक्त किया है कि आप समस्त चराचर प्राणियोंके महान् आत्मा हैं, अन्तरहित हैं, आपके रूप, गुण और प्रभाव आदिकी सीमा नहीं है; आप देवताओंके भी स्वामी हैं और समस्त जगत्‌के एकमात्र परमाधार हैं, यह सारा जगत् आपमें ही स्थित है तथा आप इसमें व्याप्त हैं; अतएव इन सबका आपको नमस्कार आदि करना सब प्रकारसे उचित ही है।

जिसका कभी अभाव नहीं होता, उस अविनाशी आत्माको 'सत्' और नाशवान् अनित्य वस्तुमात्रको 'असत्' कहते हैं; इसलिये गीताके सातवें अध्यायमें परा और अपरा प्रकृति तथा पन्द्रहवें अध्यायमें अक्षर और क्षर पुरुष कहा गया है। इनसे परे परम अक्षर सच्चिदानन्दघन परमात्मतत्त्व है। अर्जुन आपने नमस्कारादिके औचित्यको सिद्ध करते हुए कह रहे हैं कि वह सब आपका ही स्वरूप है; अतएव आपको नमस्कार आदि करना सब प्रकारसे उचित है।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥ ३८॥

आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत्‌के परम आश्रय और जाननेवाले* तथा जाननेयोग्य† और परम धाम‡ हैं। हे अनन्तरूप§! आपसे यह सब जगत् व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है×॥ ३८॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥ ३९॥

आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजाके स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्माके भी पिता हैं। आपके लिये हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो!! आपके लिये फिर भी बार-बार नमस्कार! नमस्कार!!॥ ३९॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥ ४०॥

हे अनन्त सामर्थ्यवाले! आपके लिये आगेसे और पीछेसे भी नमस्कार! हे सर्वात्मन्! आपके लिये सब ओरसे ही नमस्कार हो।+ क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं॥ ४०॥

सम्बन्ध—इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति और प्रणाम करके अब भगवान्‌के गुण, प्रभाव और तत्त्वको यथार्थ न जाननेके कारण बातचीत और व्यवहारमें किये गये अपराधोंको क्षमा करनेके लिये भगवान्‌से अर्जुन प्रार्थना करते हैं—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥ ४१॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।

---

* इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आप भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंकी समस्त बातोंको यथार्थ रूपसे जाननेवाले सबके ज्ञाता हैं; इसलिये आप सर्वज्ञ हैं, आपसे बढ़कर सर्वज्ञ कोई नहीं है (गीता ७। २६)।

† इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि जो जाननेके योग्य है, जिसको जानना मनुष्यजन्मका परम उद्देश्य है, गीताके तेरहवें अध्यायके बारहवेंसे सत्रहवें श्लोकतक जिस ज्ञेय तत्त्वका वर्णन किया गया है—वह साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर आप ही हैं।

‡ इससे अर्जुनने यह बतलाया है कि जो मुक्त पुरुषोंकी परम गति है, जिसे प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं लौटता, वह साक्षात् परम धाम आप ही हैं (गीता ८। २१)।

§ इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आपके रूप असीम और अगणित हैं, उनका पार कोई पा ही नहीं सकता।

× इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि सारे विश्वके प्रत्येक परमाणुमें आप व्याप्त हैं, इसका कोई भी स्थान आपसे रहित नहीं है।

इस कथनसे अर्जुनने यह दिखलाया है कि समस्त जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले कश्यप, दक्षप्रजापति तथा मरीचि आदिके पिता ब्रह्मा उनके पितामह हैं और उन ब्रह्माको भी उत्पन्न करनेवाले आप हैं। इसलिये आप सबके प्रपितामह हैं, इसलिये भी आपको नमस्कार करना सर्वथा उचित ही है।

'सहस्रकृत्वः' पदके सहित बार-बार 'नमः' पदके प्रयोगसे यह भाव समझना चाहिये कि अर्जुन भगवान्‌के प्रति श्रद्धा और भक्तिके कारण हजारों बार नमस्कार करनेपर अघाते ही नहीं हैं, वे उनको नमस्कार ही करना चाहते हैं।

+ 'सर्व' नामसे सम्बोधित करके अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आप सबके आत्मा, सर्वव्यापी और सर्वरूप हैं; इसलिये मैं आपको आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें—सभी ओरसे नमस्कार करता हूँ।

अर्जुन इस कथनसे भगवान्‌की व्यापकता सिद्ध करते हैं। उनका भाव यह है कि आपने इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है; जिसमें सूक्ष्म या सूक्ष्मतम परमाणु भी ऐसी कोई वस्तु या स्थान नहीं है, जहाँ और जिसमें आप न हों; अतएव सब कुछ आप ही हैं। वास्तवमें आपसे पृथक् जगत् कोई वस्तु ही नहीं है, यही मेरा निश्चय है।

प्रेम, प्रमाद और विनोद—इन तीन कारणोंसे मनुष्य व्यवहारमें किसीके मानापमानका खयाल नहीं रखता। प्रेममें नियम नहीं रहता, प्रमादमें भूल होती है और विनोदमें वाणीकी यथार्थताका सुरक्षित रहना कठिन हो जाता है। किसी सम्मान्य पुरुषके अपमानमें ये तीनों कारण मिलकर भी हेतु हो सकते हैं और पृथक्-पृथक् भी। इसलिये 'प्रेम' और 'प्रमाद'—इन कारणोंके विषयमें पिछले श्लोकमें अर्जुन कह चुके हैं, यहाँ 'अवहासार्थम्' पदसे तीसरे कारण 'विनोद-व्यवहार'का वर्णन किया गया है।

एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ ४२॥

आपके इस प्रभावको न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं ऐसा मानकर प्रेमसे अथवा प्रमादसे भी मैंने हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे! इस प्रकार जो कुछ बिना सोचे-समझे हठात् कहा है* और हे अच्युत! आप जो मेरे द्वारा विनोदके लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादिमें अकेले अथवा उन सखाओंके सामने भी अपमानित किये गये हैं—वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ†॥ ४२॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥ ४३॥

आप इस चराचर जगत्‌के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं; हे अनुपम प्रभाववाले! तीनों लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है‡॥ ४३॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥ ४४॥

अतएव हे प्रभो! मैं शरीरको भलीभाँति चरणोंमें निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वरको

उसके महत्त्व और रहस्यको जिसका कभी ध्यान न हो उसे 'अच्युत' कहते हैं।

* इससे अर्जुनने यह भाव दिखलाया है कि आपकी अलौकिक और अपार महिमाके न जाननेके कारण ही मैंने आपको अपनी बराबरीका मित्र मान रक्खा था, इसीलिये मैंने बातचीतमें कभी आपके महान् गौरव और उपयुक्त महत्त्वका ख्याल नहीं रक्खा। अतः प्रेम या प्रमादसे मेरे द्वारा निश्चय ही बड़ी भूल हुई, जो [illegible] देवता और महर्षिगण जिन आपके चरणोंकी वन्दना करना अपना सौभाग्य समझते हैं, मैंने उन आपके साथ बराबरीका बर्ताव किया।

प्रभो! कहाँ आप और कहाँ मैं! मैं इतना मूढ़मति हो गया कि आप परम पूजनीय परमेश्वरको मैं अपना मित्र ही मानता रहा और किसी भी आदरसूचक विशेषणका प्रयोग न करके नाम लिया [illegible] यादव और सखे आदि कहकर आपको तिरस्कारपूर्वक पुकारता था।

† यहाँ अर्जुन कह रहे हैं कि प्रभो! आपका स्वरूप और महत्त्व अचिन्त्य है, उसको पूर्णरूपसे तो कोई भी नहीं जान सकता। किसीको उसका थोड़ा-सा ज्ञान होता है तो वह आपकी कृपासे ही होता है। यह आपका परम अनुग्रह ही था कि मैं जो पहले आपके प्रभावको नहीं जानता था और इसीलिये आपका अनादर किया करता था—अब आपके प्रभावको कुछ-कुछ जान सका हूँ। अवश्य ही ऐसी बात नहीं है कि मैंने आपका सारा प्रभाव जान लिया है; [illegible] मैं तो उतना भी नहीं समझ पाया हूँ जितना आपने इस समय मुझे समझाना चाहा है। [illegible] मुझे यह भलीभाँति मालूम हो गया है कि आप सर्वशक्तिमान्, साक्षात् परमेश्वर हैं। मैंने जो आपको अपनी बराबरीका मित्र मानकर आपसे जैसा बर्ताव किया, उसे मैं अपराध मानता हूँ और उन समस्त अपराधोंके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

‡ इस कथनसे अर्जुनने भगवान्‌का अतिशय प्रभाव बतलाते हुए यह दिखलाया है कि [illegible] समस्त चराचर जगत् आपहीसे उत्पन्न है; अतएव आप ही इसके पिता हैं। [illegible] आप सबसे बड़े गुरु हैं। उन सबमें सबकी अपेक्षा बड़े ब्रह्माजी हैं; [illegible] उनका प्रादुर्भाव होता है और वे ही आपके [illegible] समर्थ पुरुष हैं। उन ब्रह्माजीके द्वारा सबको यथायोग्य शिक्षा देते हैं, परन्तु हे प्रभो! वे ब्रह्माजी भी आपहीसे उत्पन्न होते हैं और उनको [illegible] ज्ञान भी आपहींसे मिलता है। अतएव हे परमेश्वर! सबसे बड़े [illegible] और सबके परम [illegible] आप ही हैं। [illegible] देवताओं और महर्षियोंसे पूजा प्राप्त है इन देवताओं और महर्षियोंके परम पूज्य तथा [illegible] भी आप ही हैं। [illegible] वन्दनीय [illegible] आदि देवता और वसिष्ठादि महर्षि [illegible] आपके [illegible] पूजा [illegible] पा जाते हैं वे अपनेको भाग्यवान् समझते हैं। [illegible] इसलिये मुझ [illegible] अपराधोंको क्षमा करना आपके लिये सभी प्रकारसे उचित है।

२ 'भगवान्' पदका प्रयोग करके अर्जुन यह कह रहे हैं कि आप इस प्रकारके महान् और प्रभावसे युक्त हैं, अतएव मुझ-जैसे दीन अपराधीपर दया करके प्रसन्न होना तो [illegible] आपका स्वभाव ही है।

प्रसन्न करनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। हे देव! पिता जैसे पुत्रके, सखा जैसे सखाके और पति जैसे प्रियतमा पत्नीके अपराध सहन करते हैं—वैसे ही आप भी मेरे अपराधको सहन करने योग्य हैं† ॥ ४४॥

सम्बन्ध—इस प्रकार भगवान्‌से अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करके अब अर्जुन दो श्लोकोंमें भगवान्‌से चतुर्भुजरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना करते हैं—

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥ ४५॥

मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूपको देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भयसे अति व्याकुल भी हो रहा है; इसलिये आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूपको ही मुझे दिखलाइये‡। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये॥ ४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥ ४६॥

मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूँ¶। इसलिये हे विश्वस्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुजरूपसे प्रकट होइये×॥ ४६॥

---

* जो मनका नियमन करनेवाले स्वामी हों, उन्हें 'ईश' कहते हैं और जो क्रीडा करनेवाले हों, उन्हें 'देव' कहते हैं। इन दोनों विशेषणोंका प्रयोग करके अर्जुन यह भाव दिखलाते हैं कि हे प्रभो! आप समस्त जगत्‌का नियमन करनेवाले लोकपाल इन्द्र, आदित्य, वरुण, कुबेर और यमराज आदि [illegible] देवताओंको भी अपने नियममें रखनेवाले तथा उनके एकमात्र महेश्वर हैं और आपके गुण, गौरव तथा प्रभावका इतना विस्तार है कि [illegible] जगत् सदा [illegible] आपका स्तवन करता रहे तब भी उसका पार नहीं पा सकता। इसलिये आप ही वस्तुतः स्तुतिके योग्य हैं। मुझमें न तो इतना ज्ञान है और न शक्ति ही रह गयी है कि जिससे मैं स्तवन करके आपको प्रसन्न कर सकूँ। मैं अतीव अज्ञ आपका क्या स्तवन करूँ? मैं [illegible] आपके प्रभावके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहूँगा वह वास्तवमें आपके प्रभावको घटानेवाला ही होगा। अतः मैं तो बस, इस शरीरसे ही दण्डकी भाँति आपके चरणप्रान्तमें लोटकर—समस्त अङ्गोंके द्वारा आपको प्रणाम करके आपकी चरणधूलिके द्वारा ही आपकी प्रसन्नता प्राप्त करना चाहता हूँ। आप कृपा करके मेरे सब अपराधोंको क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न हो जाइये।

† यहाँ अर्जुन यह प्रार्थना कर रहे हैं कि जैसे अज्ञानमें प्रमादवश किये हुए पुत्रके अपराधोंको पिता क्षमा करता है, हँसी-मजाकमें किये हुए मित्रके अपराधको मित्र सहता है और प्रेमवश किये हुए प्रियतमा पत्नीके अपराधोंको पति क्षमा करता है, वैसे ही मेरे तीनों ही प्रकारोंसे किये हुए समस्त अपराधोंको आप क्षमा कीजिये।

‡ इससे अर्जुनने यह भाव व्यक्त किया है कि आपका जो वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाला देवरूप अर्थात् विष्णुरूप है, मुझको उसी चतुर्भुजरूपके दर्शन कराइये। यहाँ 'देवरूप' पदका प्रयोग होनेसे भी यह बात नहीं मानी जा सकती कि भगवान्‌का जो मनुष्याकार रूप है, उसीको दिखलानेके लिये अर्जुन प्रार्थना कर रहे हैं, [illegible] यह रूप ही [illegible] बिना [illegible] भी स्वयमेव हो जाता है।

§ अर्जुनने इससे यह भाव दिखलाया है कि आपके इस [illegible] रूपको जब मैं आश्चर्यचकित [illegible] भाव और प्रभावकी ओर देखकर विचार करता हूँ तब मुझे बड़ा भारी हर्ष होता है कि अहा! मैं बड़ा ही भाग्यवान् हूँ, जो साक्षात् परमेश्वरकी मुझ तुच्छपर इतनी अपार दया और ऐसा अनुग्रह है कि जिससे वे कृपा करके मुझको अपना यह अलौकिक रूप दिखला रहे हैं; परंतु इसीके साथ जब आपकी भयानक विकराल मूर्तिकी ओर मेरी दृष्टि जाती है, तब मेरा मन भयसे व्याकुल हो उठता है और मैं अत्यन्त व्याकुल हो जाता हूँ।

॥ अर्जुन भगवान्‌को हजारों हाथोंवाले विराट्स्वरूपमें [illegible] चतुर्भुज होनेके लिये अर्जुन 'सहस्रबाहो' और 'विश्वमूर्ते' [illegible] सम्बोधन करते हैं।

¶ महाभारत युद्धमें भगवान्‌ने शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी और [illegible] अपने हाथोंमें चाबुक और घोड़ोंकी लगाम थामे विराजमान थे। परंतु इस समय अर्जुन भगवान्‌के इस विशुद्ध रूपको देखनेसे पहले उस चतुर्भुज रूपको देखना चाहते हैं जिसके हाथोंमें गदा और चक्रादि हैं।

× यदि चतुर्भुज रूप श्रीकृष्णका स्वाभाविक रूप होता तो फिर 'तथैव' और 'तेनैव' कहनेकी

सम्बन्ध—अर्जुनकी प्रार्थनापर अब भगवान् दो श्लोकोंमें अपने विश्वरूपकी [illegible] और [illegible] करके अर्जुनको [illegible] देखनेके लिये कहते हैं—

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे यह मेरा परम तेजोमय, [illegible] आदि और सीमारहित विराट् रूप तुझको दिखलाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसीने पहले नहीं देखा था।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥४८॥

[illegible] भी [illegible] अतः [illegible] देखनेकी [illegible] वह [illegible] भी [illegible] था [illegible] इतना ही कहना पर्याप्त होता कि मैं अभी कुछ देर पहले था [illegible] नहीं दिखलाऊँ।

पिछले श्लोकमें [illegible] कहा गया है जो आगे [illegible] श्लोकमें [illegible] से सर्वथा [illegible] लगता है [illegible] सिद्ध है कि [illegible] श्रीविष्णुका ही कथन किया गया है।

[illegible] भूप और [illegible] फिर [illegible] मानुषरूप दिखलाया [illegible] सिद्ध होता है।

[illegible] दिखलाया गया है कि [illegible] और फिर [illegible] श्रीकृष्णका चतुर्भुज [illegible] फिर [illegible] यदि यह कहा जाय कि [illegible] लिये ऐसा कहा गया है तो [illegible] विश्वरूपकी [illegible] भी [illegible] आता है कि [illegible] श्रीविष्णुरूपके दर्शनकी ही आकांक्षा रही है।

विराट् [illegible] महिमा [illegible] श्लोकमें [illegible] इत्यादि [illegible] फिर [illegible] भी [illegible] है यदि [illegible] विराट् रूपकी महिमा है तो [illegible] कि [illegible] दिखलाना [illegible] चतुर्भुज देवरूप दिखलाया और [illegible] दिखलाया [illegible]।

इस अध्यायके [illegible] श्लोकोंमें [illegible] भगवान्‌को सम्बोधित किया है इससे भी [illegible] चतुर्भुज [illegible] प्रतीत होती है।

इन हेतुओंसे यही सिद्ध होता है कि यहाँ अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे चतुर्भुज विष्णुरूप दिखलानेके लिये प्रार्थना कर रहे हैं।

[illegible] भगवान् [illegible] कि मेरे [illegible] विराट् स्वरूप [illegible] नहीं हो सकता [illegible] दर्शन [illegible] उसी समय होते [illegible] भी [illegible] [illegible] ही दूसरेको नहीं। अतएव इस रूपका दर्शन प्राप्त करना बड़े सौभाग्यकी बात है।

यद्यपि [illegible] माताको अपने मुखमें और [illegible] विराट् रूपके दर्शन कराये थे, परन्तु उनमें और अर्जुनको दिखलाये हुए इस विराट् रूपमें बहुत अन्तर है। [illegible] भिन्न-भिन्न [illegible] अर्जुनको भगवान्‌ने [illegible] दर्शन कराया उसमें भीष्म और द्रोण आदि शूरवीर [illegible] मुखोंमें [illegible] ऐसा चित्र अब भगवान्‌ने पहले कभी किसीको नहीं दिखलाया था।

वेद-यज्ञादिके [illegible] दान [illegible] तप तथा अन्यान्य विभिन्न प्रकारकी क्रियाओंका अधिकार मनुष्ययोनिमें ही है और मनुष्ययोनिमें ही जीव भिन्न-भिन्न प्रकारके नवीन कर्म करके [illegible] अधिकार प्राप्त करता है। [illegible] लोक तो प्रधानतया भोगस्थान ही हैं। मनुष्यलोकका ही [illegible] दूसरा [illegible] है। अभिप्राय यह है कि जब मनुष्यलोकमें भी [illegible] दूसरा कोई भगवान्‌के इस रूपको नहीं देख सकता, तब [illegible] और बिना किसी साधनके कोई नहीं देख सकता—इसमें तो कहना ही क्या है।

हे अर्जुन! मनुष्यलोकमें इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं न वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, न दानसे, न क्रियाओंसे और न उग्र तपोंसे ही तेरे अतिरिक्त दूसरेके द्वारा देखा जा सकता हूँ॥ ४८॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य॥ ४९॥

मेरे इस प्रकारके इस विकराल रूपको देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिये और मूढ़भाव भी नहीं होना चाहिये। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला होकर उसी मेरे इस शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूपको फिर देख॥ ४९॥

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥ ५०॥

सञ्जय बोले—वासुदेव भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूपको दिखलाया और फिर महात्मा श्रीकृष्णने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुनको धीरज दिया॥ ५०॥

---

* वेदवेत्ता अधिकारी आचार्यके द्वारा साङ्गोपाङ्ग वेदोंको पढ़कर उन्हें भलीभाँति समझ लेनेका नाम 'वेदाध्ययन' है। यज्ञ-क्रियामें सुनिपुण याज्ञिक पुरुषोंकी सेवामें रहकर उनके द्वारा यज्ञविधियोंको जानना और उन्हींकी अध्यक्षतामें विधिवत् किये जानेवाले यज्ञोंको प्रत्यक्ष देखकर यज्ञसम्बन्धी समस्त क्रियाओंको भलीभाँति जान लेना 'यज्ञका अध्ययन' है।

धन, सम्पत्ति, अन्न, जल, विद्या, गौ, पृथ्वी आदि किसी भी अपने स्वत्वकी वस्तुका दूसरोंके सुख और हितके लिये प्रसन्न हृदयसे [illegible] दे देना है—इसका नाम 'दान' है।

श्रौत-स्मार्त यज्ञादिका अनुष्ठान और अपने-अपने वर्णाश्रमके धर्मका पालन करनेके लिये किये जानेवाले समस्त शास्त्रविहित कर्मोंको 'क्रिया' कहते हैं।

कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत, विभिन्न प्रकारके कठोर नियमोंका पालन, मन और इन्द्रियोंका विषय और बलपूर्वक दमन तथा भयानक कष्टोंको शारीरिक या मानसिक कठिन कष्टोंका सहन अथवा शास्त्रविधिके अनुसार की जानेवाली अन्य विभिन्न प्रकारकी तपस्याएँ—इन्हीं सबका नाम 'उग्र तप' है।

इन सब साधनोंके द्वारा भी अपने विश्वरूपके दर्शनको असम्भव बतलाकर भगवान्‌ने इस रूपकी महत्ता प्रकट करते हुए यह कहा है कि इस प्रकारसे मेरा यह [illegible] विश्वरूप किसीके द्वारा देखा नहीं जा सकता; उसी रूपको तुम मेरी प्रसन्नता और कृपासे प्रत्यक्ष देख रहे हो—यह तुम्हारा महान् सौभाग्य है। इस समय तुम्हें जो भय, दुःख और मोह हो रहा है—यह उचित नहीं है।

[illegible] पहले तो विश्वरूप भी भगवान् श्रीकृष्णका ही है और यह भी उनका स्वकीय ही है तथा भगवान् [illegible] रहते थे वह भी श्रीकृष्णका [illegible] उनका स्वकीय ही है। किंतु यहाँ [illegible] दोनोंसे भिन्न [illegible] होना चाहिये, क्योंकि विश्वरूप [illegible] देखकर [illegible] अतएव उस दिखलाने की तो वहाँ कल्पना भी नहीं [illegible] और मानुषरूपमें [illegible] आवश्यकता [illegible] दिखलाना [illegible] मनुष्यरूप है वह तो [illegible] अर्जुनके सामने रहता ही [illegible] अर्जुन देख ही रहे थे। अतएव यहाँ [illegible] विशेषण और दर्शयामास क्रियाके प्रयोगसे यही भाव प्रतीत होता है कि [illegible] प्रकट किये हुए [illegible] मनुष्यरूप [illegible] विश्वरूपसे भिन्न जो नित्य वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाला भगवान्‌का दिव्य चतुर्भुज निजी रूप है—उसीको देखनेके लिये अर्जुनने प्रार्थना की थी और वही रूप भगवान्‌ने उनको दिखलाया।

† भगवान् श्रीकृष्ण महाराज वसुदेवजीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं और सबमें निवास करते हैं, इसलिये उनका नाम 'वासुदेव' है।

‡ जिनका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् हो, उन्हें 'महात्मा' कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सबके महान् आत्मा हैं, इसलिये वे महात्मा हैं। कहनेका अभिप्राय यह है कि अर्जुनको अपने चतुर्भुज रूपका दर्शन करानेके पश्चात् महात्मा श्रीकृष्णने सौम्य अर्थात् परम शान्त श्यामसुन्दर मनुष्यरूपसे युक्त होकर भयसे व्याकुल हुए अर्जुनको धैर्य दिया।

सञ्जय—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके अपने [illegible] चतुर्भुजरूपके दर्शन देनेके पश्चात् जब स्वाभाविक मनुष्यरूपमें होकर [illegible] अर्जुनको आश्वासन [illegible]—

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

अर्जुन बोले—हे जनार्दन! आपके इस अति शान्त मनुष्यरूपको देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त हो गया हूँ॥*

सम्बन्ध—इस प्रकार मनुष्यरूप [illegible] सुनकर भगवान् [illegible] चतुर्भुजरूप देखकर [illegible] दुर्लभता और उसकी महिमा कहते हैं—

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

श्रीभगवान् बोले—मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है, यह सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। देवता भी सदा इस रूपके दर्शनकी आकाङ्क्षा करते रहते हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है, इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।†

सम्बन्ध—यदि उपर्युक्त उपायोंसे आपके दर्शन नहीं हो सकते तो किस उपायसे हो सकते हैं? इसपर कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४ ॥

परन्तु हे परन्तप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

भगवान्‌का [illegible] यह बहुत ही मधुर, सुन्दर और [illegible] भगवान्‌के [illegible] नहीं [illegible] मनुष्यरूपका [illegible] 'सौम्यम्' और 'मानुषम्' इन दोनों विशेषणोंका प्रयोग किया गया है।

* इससे अर्जुनने यह [illegible] कि मेरा मोह, भ्रम और भय दूर हो गया [illegible] मैं अपनी [illegible] स्थितिमें [illegible] हो गया हूँ [illegible] भय और व्याकुलता [illegible] इन्द्रिय और शरीरमें उत्पन्न हो गये थे, उन सबके दूर हो [illegible] मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया हूँ।

'सुदुर्दर्शम्' विशेषण देकर भगवान्‌ने अपने चतुर्भुज [illegible] दर्शनकी दुर्लभता और उसकी महत्ता दिखलायी है तथा 'इदम्' पद [illegible] चतुर्भुजरूपका [illegible] भगवान् [illegible] चतुर्भुज [illegible] दिव्य [illegible] मेरा अनन्य भक्त होता है और [illegible] सकता [illegible] है।

† [illegible] और [illegible] श्लोकोंमें [illegible] कहा गया है [illegible] तथा [illegible] यह बात कही गयी है कि [illegible] और [illegible] इसका यह भाव [illegible] है कि [illegible] चतुर्भुज [illegible] अन्य [illegible] हो सकते हैं और न [illegible]

[illegible] कोई विरोधकी बात नहीं है [illegible] भगवान्‌के [illegible] अनन्यभक्ति [illegible] है [illegible] अनन्य भक्तिका [illegible] भगवान्‌ने [illegible] श्लोकमें यह [illegible] है कि अनन्य भक्तिके द्वारा [illegible] और प्राप्त करना सम्भव है [illegible] भगवान्‌की प्राप्ति [illegible] भगवान्‌का दर्शन [illegible] भगवान्‌के दर्शन तो [illegible] भगवान्‌के शरण होकर [illegible] भक्तको ही होते हैं।

‡ भगवान्‌में ही अनन्य प्रेम होजाना तथा अपने मन, इन्द्रिय और शरीर [illegible] धन [illegible] आदि सर्वस्वको भगवान्‌के

सम्बन्ध—अनन्य भक्तिके द्वारा भगवान्‌को देखना, जानना और एकीभावसे प्राप्त करना सुलभ बतलाया जानेके बाद अब अनन्य भक्तिका स्वरूप जाननेकी आकांक्षा होनेपर अनन्य भक्तके लक्षणोंका वर्णन किया जाता है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ ५५॥

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह अनन्य भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है*॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥ भीष्मपर्वणि तु पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतारूप उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रविषयक श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें विश्वरूपदर्शनयोग नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥ भीष्मपर्वमें पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

समझकर भगवान्‌के लिये भगवान्‌की ही सेवामें सबको लगा देना—यही अनन्य भक्ति है। इस अनन्य भक्तिको ही भगवान्‌के देखने आदिमें हेतु बतलाया गया है।

यद्यपि ज्ञानयोगके द्वारा भी निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति बतलायी गयी है और वह सर्वथा सत्य है, परन्तु ज्ञानयोगके द्वारा सगुण-साकार भगवान्‌के दिव्य चतुर्भुज रूपके भी दर्शन हो जाते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ज्ञानयोगके द्वारा साकाररूपमें दर्शन देनेके लिये भगवान् बाध्य नहीं हैं। यहाँ प्रकरण भी सगुण भगवान्‌के दर्शनका ही है। अतएव यहाँ केवल अनन्य भक्तिको ही भगवद्दर्शन आदिमें हेतु बतलाना उचित ही है।

१. जो मनुष्य स्वार्थ, ममता और आसक्तिको छोड़कर, सब कुछ भगवान्‌का समझकर, अपनेको केवल निमित्तमात्र मानता हुआ यज्ञ, दान, तप और खान-पान, व्यवहार आदि समस्त शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंको निष्कामभावसे भगवान्‌की ही प्रसन्नताके लिये भगवान्‌के आज्ञानुसार करता है—वह 'मत्कर्मकृत्' अर्थात् भगवान्‌के लिये भगवान्‌के कर्मोंका करनेवाला है।

२. जो भगवान्‌को ही परम आश्रय, परम गति, एकमात्र शरण लेने योग्य, सर्वोत्तम, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्, सबके सुहृद्, परम आत्मीय और अपना सर्वस्व समझता है तथा उनके किये हुए प्रत्येक विधानमें सदा सुप्रसन्न रहता है—वह 'मत्परम' अर्थात् भगवान्‌के परायण है।

३. भगवान्‌में अनन्य प्रेम होनेके कारण जो भगवान्‌में ही तन्मय होकर नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव और लीला आदिका श्रवण, कीर्तन और मनन आदि करता रहता है; इनके बिना जिसे क्षणभर भी चैन नहीं पड़ता और जो भगवान्‌के दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ निरन्तर लालायित रहता है—वह 'मद्भक्त' अर्थात् भगवान्‌का भक्त है।

४. शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन, कुटुम्ब तथा मान-बड़ाई आदि जितने भी इस लोक और परलोकके भोग्य पदार्थ हैं, उन सबमें जिसकी किंचिन्मात्र भी आसक्ति नहीं रह गयी है, भगवान्‌को छोड़कर जिसका किसीमें भी प्रेम नहीं है—वह 'सङ्गवर्जित' अर्थात् आसक्तिरहित है।

५. समस्त प्राणियोंको भगवान्‌का ही स्वरूप समझने अथवा सबमें एकमात्र भगवान्‌को व्याप्त समझनेके कारण किसीके द्वारा कितना भी विपरीत व्यवहार किया जानेपर भी जिसके मनमें विकार नहीं होता तथा जिसका किसी भी प्राणीमें किंचिन्मात्र भी द्वेष या वैरभाव नहीं रह गया है—वह 'सर्वभूतेषु निर्वैर' अर्थात् समस्त प्राणियोंमें वैरभावसे रहित है।

* इस कथनका भाव पिछले चौवनवें श्लोकके अनुसार सगुण भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन कर लेना, उनको भली भाँति तत्त्वसे जान लेना और उनमें प्रवेश कर जाना है।

षट्त्रिंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीतायां द्वादशोऽध्यायः)

साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय तथा भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन

सम्बन्ध—दूसरे अध्यायसे लेकर छठे अध्यायतक जगह-जगह निर्गुण ब्रह्मकी और सगुण भगवान्‌की उपासनाकी प्रशंसा की है। सातवें अध्यायसे ग्यारहवें अध्यायतक तो विशेषरूपसे सगुण भगवान्‌की उपासनाका महत्त्व दिखलाया है। इसीके साथ [illegible] अध्यायमें [illegible] आठवें अध्यायमें [illegible] तथा और भी कई जगह निर्गुणकी उपासनाका महत्त्व भी दिखलाया है। आखिर ग्यारहवें अध्यायके अन्तमें सगुण भगवान्‌की अनन्य भक्तिका फल भगवत्प्राप्ति बतलाकर [illegible] अन्तिम श्लोकमें सगुण-साकार स्वरूप भगवान्‌के भक्तकी विशेषरूपसे बड़ाई की। इसपर अर्जुनके मनमें यह जिज्ञासा हुई कि निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी और सगुण-साकार भगवान्‌की उपासना करनेवाले दोनों प्रकारके उपासकोंमें उत्तम कौन है?

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां* पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥१॥

अर्जुन बोले—जो अनन्यप्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकारसे निरन्तर आपके भजन-ध्यानमें लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वरको और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मको ही अतिश्रेष्ठ भावसे भजते हैं—उन दोनों प्रकारके उपासकोंमें अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥२॥

श्रीभगवान् बोले—मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं†, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं॥२॥

सम्बन्ध—पूर्वश्लोकमें सगुण-साकार परमेश्वरके उपासकोंको उत्तम योगवेत्ता बतलाया गया, इसपर यह जिज्ञासा हो सकती है कि तो क्या निर्गुण-निराकार ब्रह्मके उपासक श्रेष्ठ योगवेत्ता नहीं हैं? इसपर कहते हैं—

* त्वाम्—यद्यपि यहाँ भगवान् श्रीकृष्णका वाचक है, तथापि भिन्न-भिन्न अवतारोंमें भगवान्‌ने जितने सगुण रूप धारण किये हैं तथा दिव्य धाममें जो भगवान्‌का सगुण रूप विराजमान है, जिसे अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार लोग अनेकों रूपों और नामोंसे बतलाते हैं—उन सबको 'त्वाम्' पदका वाचक मानना चाहिये; क्योंकि वे सभी भगवान् श्रीकृष्णसे अभिन्न [illegible] सगुण भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करते हुए परम श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे समस्त इन्द्रियोंको उनकी सेवामें लगा देना है [illegible] ही निरन्तर भजन-ध्यानमें लगे रहकर उनकी श्रेष्ठ उपासना करना है।

अक्षरम्—निराकारके साथ अव्यक्तम् पद यहाँ निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका वाचक है। यद्यपि जीवात्माको भी अक्षर [illegible] कहा जा सकता है, पर अर्जुनके प्रश्नका [illegible] नहीं है; क्योंकि उसके उपासक [illegible] उसकी [illegible] विधान भी नहीं किया है।

भगवान्‌की [illegible] उनके अवतारोंमें [illegible] आदिमें [illegible] का अनुष्ठान भी [illegible] विधान है—[illegible] इस प्रकार जो भक्तजन निरन्तर [illegible] श्रद्धासे युक्त होता है।

† गोपियोंकी भाँति [illegible] प्रेमास्पद [illegible] भगवान्‌में अपनी [illegible] करके उनके गुण, प्रभाव और स्वरूपका [illegible] प्रेमपूर्वक चिन्तन करते रहना [illegible] करके निरन्तर उनके [illegible] स्थित रहते हुए उनको भजना है। श्रीमद्भागवतमें [illegible] कहा है—

[illegible] दोहनेऽवहनने [illegible]
[illegible] ([illegible] ४४ । १)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥ ३॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ ४॥

परंतु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे (अभिन्नभावसे) ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं†॥ ३-४॥

सम्बन्ध—इस प्रकार निर्गुण-उपासना और उसके फलका प्रतिपादन कर देनेके पश्चात् अब देहाभिमानियोंके लिये उसकी कठि-नता दिखलाते हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ ५॥

उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें परिश्रम विशेष है‡; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है§॥ ५॥

जो गौओंका दूध दुहते [illegible] कूटके समान [illegible] सबके [illegible] ... उसके [illegible] लगने और [illegible] देने आदि कर्मोंके करते समय [illegible] आदि [illegible] द्वारा श्रीकृष्णका ध्यान किया करती हैं—इस प्रकार सदा श्रीकृष्णमें ही चित्त लगाये रखनेवाली वे व्रजवासिनी नारियाँ धन्य हैं।

जिसका निर्देश नहीं किया जा सकता हो, किसी भी युक्ति या उपमासे जिसका स्वरूप समझाया या बतलाया नहीं जा सकता हो, उसे 'अनिर्देश्य' कहते हैं।

जो किसी भी इन्द्रियका विषय न हो अर्थात् जो इन्द्रियोंद्वारा जाननेमें न आ सके, जिसका कोई रूप या आकृति न हो, उसे 'अव्यक्त' कहते हैं।

जो हलन-चलनकी क्रियासे सर्वथा रहित हो, उसे 'अचल' कहते हैं।
जो नित्य और निश्चित हो, जिसकी सत्तामें किसी प्रकारका संशय न हो और जिसका कभी अभाव न हो, उसे 'ध्रुव' कहते हैं।

इससे यह भाव समझना है कि उपर्युक्त प्रकारसे निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी उपासना करनेवालोंकी कहीं भेदबुद्धि नहीं रहती, समस्त जगत्‌में एक ब्रह्मसे भिन्न किसीकी सत्ता न रहनेके कारण उनकी सब जगह समबुद्धि हो जाती है।

* जिस प्रकार अविवेकी मनुष्य अपने हितमें रत रहता है, उसी प्रकार उन निर्गुण-उपासकोंका सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव हो जानेके कारण वे समानभावसे उनके हितमें रत रहते हैं।

† इस कथनसे भगवान्‌ने ब्रह्मको अपनेसे अभिन्न बतलाते हुए यह कहा है कि उपर्युक्त उपासनाका फल जो निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति है, वह मेरी ही प्राप्ति है; क्योंकि वह मुझसे भिन्न नहीं है और मैं उससे भिन्न नहीं हूँ। वह ब्रह्म मैं ही हूँ, यही भाव भगवान्‌ने गीताके चौदहवें अध्यायके सत्ताईसवें श्लोकमें 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' अर्थात् मैं ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हूँ—इस कथनसे दिखलाया है।

‡ पूर्व श्लोकोंमें जिन निर्गुण-उपासकोंका वर्णन है, उन निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंको परिश्रम अधिक है, यह कहकर भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि निर्गुण ब्रह्मका तत्त्व बड़ा ही गहन है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, स्थिर और सूक्ष्म होती है, तथा शरीरमें अभिमान नहीं होता, वही उस तत्त्वको समझ सकता है; साधारण मनुष्योंकी समझमें यह नहीं आता। इसलिये निर्गुण-उपासकके साधनके आरम्भकालमें परिश्रम अधिक होता है।

§ उपर्युक्त कथनसे भगवान् पूर्वार्द्धमें बतलाये हुए परिश्रमका हेतु दिखलाते हैं। अभिप्राय यह है कि देहमें अभिमान रहते निर्गुण ब्रह्मका तत्त्व समझमें आना बहुत कठिन है, इसलिये जिनका शरीरमें अभिमान है, उनको ऐसी स्थिति बड़े परिश्रमसे प्राप्त होती है।

|| गीताके छठे अध्यायके चौबीसवेंसे सत्ताईसवें श्लोकतक निर्गुण उपासनाका प्रकार बतलाकर अट्ठाईसवें श्लोकमें उस प्रकारका साधन करनेवालेको सुखपूर्वक परमात्मप्राप्तिरूप अत्यन्त आनन्दका अनुभव होना बतलाया है, वह कथन जिसके पाप नष्ट हो गये हैं, रजोगुण और तमोगुण शान्त हो गये हैं, जो 'ब्रह्मभूत' हो गया है अर्थात् जो ब्रह्मसे अभिन्न भावसे स्थित हो गया है—ऐसे पुरुषके लिये है, देहाभिमानियोंके लिये नहीं।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥ ६॥

परन्तु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ ७॥

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

सम्बन्ध—इस प्रकार पूर्वश्लोकोंमें निर्गुण-उपासनाकी अपेक्षा सगुण-उपासनाकी सुगमताका प्रतिपादन किया गया। इसलिये अब भगवान् अर्जुनको उसी प्रकार मन-बुद्धि लगाकर सगुण-उपासना करनेकी आज्ञा देते हैं—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥ ८॥

मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको लगा। इसके अनन्तर तू मुझमें ही निवास करेगा× इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

* भक्ति भौतिक दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर भी भक्त प्रह्लादकी भाँति भगवान्‌पर निर्भर और निर्विकार रहना, उन दुःखोंको भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर परमानन्द ही समझना तथा भगवान्‌को ही परम प्रेमी, परम गति, परम सुहृद् और सब प्रकारसे शरण लेनेयोग्य समझकर अपने आपको भगवान्‌के समर्पण कर देना—यही भगवान्‌के परायण होना है।

† कर्मोंके करनेमें अपनेको पराधीन समझकर भगवान्‌की आज्ञा और संकेतके अनुसार समस्त शास्त्रानुकूल कर्म करते रहना, उन कर्मोंमें न तो ममता और आसक्ति रखना और न उनके फलमें किसी प्रकारका सम्बन्ध रखना, प्रत्येक क्रियामें ऐसा ही भाव रखना कि मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ, मेरी कुछ भी कर्तृत्व शक्ति नहीं है, भगवान् ही अपने इच्छानुसार मुझसे कठपुतलीकी भाँति समस्त कर्म करवा रहे हैं—यही समस्त कर्मोंका भगवान्‌के समर्पण करना है।

‡ एक परमेश्वरके सिवा मेरा कोई नहीं है, वे ही मेरे सर्वस्व हैं, ऐसा समझकर जो भगवान्‌में स्वार्थरहित तथा अत्यन्त श्रद्धायुक्त अनन्य प्रेम करना है, जिस प्रेममें स्वार्थ, अभिमान और व्यभिचारका जरा भी दोष नहीं है, जो सर्वथा पूर्ण और अटल है, जिसका किंचित् अंश भी भगवान्‌से भिन्न वस्तुमें नहीं है और जिसके कारण क्षणमात्रकी भी भगवान्‌की विस्मृति असह्य हो जाती है—उस अनन्य प्रेमको 'अनन्य भक्तियोग' कहते हैं और ऐसे भक्तियोगद्वारा निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करते हुए जो उनके गुण, प्रभाव और लीलाओंका श्रवण, कीर्तन, उनके नामोंका उच्चारण और जप आदि करना है—यही अनन्य भक्तियोगके द्वारा भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करते हुए उनको भजना है।

§ इस संसारमें सभी कुछ मृत्युमय है, इसमें पैदा होनेवाली एक भी चीज ऐसी नहीं है, जो कभी क्षणभरके लिये भी मृत्युके करालगालसे बची हो। जैसे समुद्रमें असंख्य लहरें उठती रहती हैं, वैसे ही इस अपार संसार-सागरमें अनवरत जन्म-मृत्युकी तरंगें उठा करती हैं। समुद्रकी लहरोंकी गणना चाहे हो जाय, पर जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक भविष्यमें जीवको कितनी बार जन्मना और मरना पड़ेगा—इसकी गणना नहीं हो सकती। इसीलिये इसको 'मृत्युरूप संसार-सागर' कहते हैं।

जो भक्त मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगाकर निरन्तर भगवान्‌की उपासना करते हैं, उनको भगवान् तत्काल ही जन्म-मृत्युसे सदाके लिये छुड़ाकर अपनी प्राप्ति करा देते हैं, अथवा उनके साथ अपने परम धाममें ले जाते हैं। अर्थात् जैसे केवट किसीको नौकामें चढ़ाकर नदीसे पार कर देता है, वैसे ही भगवान् नौकारूप बनकर भक्तको अपने साथ बैठाकर उनकी समस्त कठिनाइयों और विघ्नोंको दूर करके बहुत शीघ्र अनायास ही संसार-समुद्रसे पार करके परमधाममें ले जाते हैं। भगवान्‌का अपने भक्तको मृत्युरूप संसार-सागरसे पार कर देना है।

× भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको यथार्थरूपसे समझकर उनके स्वरूपको ही अपना परम लक्ष्य मानना और अपने हृदयमें उनके नाम, गुण, प्रभाव और आचरणको भलीभाँति समझकर उनका सदा-सर्वदा और सर्वत्र आदरपूर्वक बुद्धिसे धारण करना, भगवान्‌के परम प्रेममय पुरुषोत्तमरूपके अतिरिक्त अन्य समस्त विषयोंसे आसक्ति और ममता हटाकर मनको केवल उन्हींमें तन्मय कर देना और नित्य-निरन्तर अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनका चिन्तन करते रहना—यही मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगाना है। इस प्रकार जो अपने मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगा देता है, वह शीघ्र ही भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है।

इसलिये भगवान्‌के गुण, प्रभाव और लीलाके तत्त्व और रहस्यको जाननेवाले महापुरुषोंका सङ्ग, उनके गुण और आचरणोंका अनुकरण तथा भोग, आलस्य और प्रमादको छोड़कर उनके बतलाये हुए मार्गका विश्वासपूर्वक तत्परताके साथ अनुसरण करना चाहिये।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय॥९॥

यदि तू मनको मुझमें अचल स्थापन करनेके लिये समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन! अभ्यासरूप योगके द्वारा मुझको प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर*॥९॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥१०॥

यदि तू उपर्युक्त अभ्यासमें भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करनेके ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मोंको करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको ही

* भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भगवान्‌में नाना प्रकारकी युक्तियोंसे चित्तको स्थापन करनेका जो बार-बार प्रयत्न किया जाता है उसे अभ्यासयोग कहते हैं। मन भगवान्‌के जिस नाम, रूप, गुण और लीला आदिमें न लगकर श्रद्धा और प्रेम हो, उसीमें केवल भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे ही बार-बार मन लगानेके लिये प्रयत्न करना अभ्यासयोगके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त करनेकी इच्छा करना है।

भगवान्‌में मन लगानेके साधन शास्त्रोंमें अनेकों प्रकारके बतलाये गये हैं। उनमेंसे निम्नलिखित कतिपय साधन सर्वसाधारणके लिये विशेष उपयोगी प्रतीत होते हैं—

सूर्यके सामने आँखें मूँदनेपर मनके द्वारा सर्वत्र समभावसे व्याप्त एक प्रकाशका पुंज प्रतीत होता है। उससे भी हजारों गुना अधिक प्रकाशका पुंज भगवत्स्वरूपमें है। इस प्रकार मनसे निश्चय करके परमात्माके उस तेजोमय स्वरूपमें चित्त लगानेके लिये बार-बार चेष्टा करना।

जैसे दियासलाईमें अग्नि व्यापक है, वैसे ही भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं—यह समझकर जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ ही गुण और प्रभावसहित सर्वशक्तिमान् परम प्रेमास्पद परमेश्वरके स्वरूपका प्रेमपूर्वक पुनः-पुनः चिन्तन करते रहना।

जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँसे उसे हटाकर भगवान् विष्णु, शिव, राम और कृष्ण आदि जो भी अपने इष्टदेव हों, उनकी मानसिक या धातु आदिसे निर्मित मूर्तिमें अथवा चित्रपटमें या उनके नाम-जपमें श्रद्धा और प्रेमके साथ पुनः-पुनः मन लगानेका प्रयत्न करना।

भ्रमरके गुंजारकी तरह एकतार ओंकारकी ध्वनि करते हुए उस ध्वनिमें परमेश्वरके स्वरूपका पुनः-पुनः चिन्तन करना।

स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासके साथ-साथ भगवान्‌के नामका जप नित्य निरन्तर होता रहे, इसके लिये प्रयत्न करना।

परमात्माके नाम, रूप, गुण, चरित्र और प्रभावके रहस्यको जाननेके लिये तद्विषयक शास्त्रोंका पुनः-पुनः अभ्यास करना।

७ गीताके चौथे अध्यायके २९ वें श्लोकके अनुसार प्राणायामका अभ्यास करना।

इनमेंसे कोई-सा भी अभ्यास यदि श्रद्धा और विश्वास तथा लगनके साथ किया जाय तो क्रमशः सम्पूर्ण पापों और विघ्नोंका नाश होकर अन्तमें भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये बड़े उत्साह और तत्परताके साथ अभ्यास करना चाहिये। साधकोंकी स्थिति, अधिकार तथा साधनकी गतिके तारतम्यसे फलकी प्राप्तिमें देर-सबेर हो सकती है। अतएव शीघ्र फल न मिले तो कठिन समझकर, ऊबकर या आलस्यके वश होकर न तो उसे अभ्यासको छोड़ना ही चाहिये और न उसमें किसी प्रकारकी ही आने देनी चाहिये, बल्कि उसे बढ़ाते रहना चाहिये।

† इस श्लोकमें कहे हुए 'मत्कर्म' शब्दसे उन कर्मोंको समझना चाहिये जो केवल भगवान्‌के लिये ही होते हैं या भगवत्सेवा-पूजाविषयक होते हैं तथा जिन कर्मोंमें अपना जरा भी स्वार्थ, ममत्व और आसक्ति आदिका सम्बन्ध नहीं होता। गीताके ग्यारहवें अध्यायके अन्तिम श्लोकमें भी 'मत्कर्मकृत्' पदमें 'मत्कर्म' शब्द आया है, वहाँ भी उसकी व्याख्या की गयी है। एकमात्र भगवान्‌को ही अपना परम आश्रय और परम गति मानना और केवल उन्हींकी प्रसन्नताके लिये परम श्रद्धा और अनन्य प्रेमके साथ मन, वाणी और शरीरसे उनकी सेवा-पूजा आदि तथा यज्ञ, दान और तप आदि शास्त्रविहित कर्मोंको अपना कर्तव्य समझकर निरन्तर करते रहना—यही उन कर्मोंके परायण होना है।

प्राप्त होगा॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥११॥

यदि मेरी प्राप्तिरूप योगके आश्रित होकर उपर्युक्त साधनको करनेमें भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करनेवाला होकर सब कर्मोंके फलका त्याग कर॥११॥

* इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि इस प्रकार कर्मोंका करना भी मेरी प्राप्तिका एक स्वतन्त्र और सुगम साधन है। जैसे भजन-ध्यानरूपी साधन करनेवालोंको मेरी प्राप्ति होती है, वैसे ही मेरे लिये कर्म करनेवालोंको भी मैं प्राप्त हो सकता हूँ। [illegible] मेरे लिये कर्म करना पूर्वोक्त साधनोंकी अपेक्षा किसी अंशमें भी निम्न श्रेणीका साधन नहीं है।

इस अध्यायमें सर्वकर्मोंमें अभ्यासयोग बतलाया गया है और भगवान्‌में मन-बुद्धि लगानेके लिये जितने भी साधन हैं, [illegible] आ जाते हैं—इस कारण वहाँ [illegible] होनेके लिये अलग कहनेकी आवश्यकता नहीं है और [illegible] भक्तियुक्त कर्मयोगका वर्णन है, उसमें भगवान्‌का आश्रय है और [illegible] भगवान्‌में ही होते हैं। [illegible] उसमें जो प्रधानता [illegible] होनेके लिये अलग कहना अपेक्षणीय नहीं है। [illegible] इस श्लोकमें [illegible] सर्वकर्मफलत्याग रूप कर्मयोगका साधन बतलाया गया है। इसमें मन-बुद्धिको वशमें रखे बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि यथायोग्य सबका व्यावहारिक कर्म करते हुए यदि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और शरीर आदि वशमें न हों तो उनकी भोगोंमें ममता, आसक्ति और कामना हो जाना बहुत ही सहज है और ऐसा होनेपर सर्वकर्मफलत्याग रूप साधन बन नहीं सकता। इसीलिये यहाँ 'यतात्मवान्' पदका प्रयोग करके मन-बुद्धि आदिको वशमें रखनेके लिये विशेष सावधान किया गया है।

† [illegible] तप, दान और वर्णाश्रमानुसार जीविका तथा शरीरनिर्वाहके लिये किये जानेवाले शास्त्रसम्मत सभी कर्मोंको यथायोग्य करते हुए, इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिरूप [illegible] उनमें ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग [illegible] देना ही सब कर्मोंका फलत्याग करना है।

[illegible] कथनानुसार समस्त कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना, [illegible] कथनानुसार भगवान्‌के लिये भगवत्सम्बन्धी कर्मोंको करना तथा [illegible] श्लोकके कथनानुसार समस्त कर्मोंके फलका त्याग करना—ये तीनों ही कर्मयोग हैं और तीनोंका ही फल परमेश्वरकी प्राप्ति है, अतएव फलमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। केवल साधकोंकी प्रकृति [illegible] उनके [illegible] भेद किया गया है। समस्त कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण करना और भगवान्‌के लिये [illegible] कर्म करना—इन दोनोंमें तो भक्तिकी प्रधानता है, सर्वकर्मफलत्यागमें केवल फलत्यागकी प्रधानता है। यही इनका मुख्य भेद है।

सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण कर देनेवाला पुरुष समझता है कि मैं भगवान्‌के हाथकी कठपुतली हूँ, मुझमें कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं है। मेरे मन, बुद्धि और इन्द्रियादि जो कुछ हैं—सब भगवान्‌के हैं और भगवान् ही इनसे अपने इच्छानुसार [illegible] कर्म करवाते हैं। उन कर्मोंसे और उनके फलसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। [illegible] [illegible] उसमें भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

[illegible] कर्म करनेवाला [illegible] पूर्वोक्त [illegible] नहीं समझता कि मैं कुछ [illegible] करते हैं, भगवान् ही मुझसे सब कुछ करवाते हैं। वह यह समझता है कि भगवान् [illegible] सुहृद् हैं, उनकी सेवा करना और उनकी आज्ञाका पालन करना ही मेरा परम कर्तव्य है। अतएव वह [illegible] मानकर उनकी सेवाके उद्देश्यसे [illegible] उनकी आज्ञाके अनुसार यज्ञ, दान और तप, वर्णाश्रमके अनुकूल आजीविका और शरीरनिर्वाहके तथा भगवान्‌की पूजा-सेवादिके कर्मोंमें लगा रहता है। उसकी प्रत्येक क्रिया भगवान्‌के आज्ञानुसार और भगवान्‌की ही सेवाके उद्देश्यसे होती है (गीता [illegible])। इन कर्मोंमें और उनके फलोंमें उसकी आसक्ति और कामनाका अभाव होकर उसे शीघ्र ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

केवल सब कर्मोंके फलका त्याग करनेवाला पुरुष न तो यह समझता है कि मुझसे भगवान् कर्म करवाते हैं और न यही समझता है कि मैं भगवान्‌के लिये समस्त कर्म करता हूँ। वह यह समझता है कि कर्म करनेमें ही मनुष्यका अधिकार है, उसके फलमें नहीं (गीता २। ४७ से ५१ तक)। अतः किसी प्रकारके फलकी न चाहकर यज्ञ, दान, तप, सेवा तथा वर्णाश्रमके अनुसार जीविका और शरीरनिर्वाहके खान-पान आदि समस्त शास्त्रविहित कर्मोंको करता है। मेरा कर्तव्य

सम्बन्ध—इन श्लोकोंमें भगवान्‌ने ध्यानका फलसहित वर्णन करके बतलाया कि ध्यानयोगके साधनका अनुष्ठान होनेसे दूसरा साधन ... कर्मफलत्याग ... साधन हो सकता है कि कर्मफलत्याग सब साधनोंमें सुगम और ... अपेक्षा श्रेष्ठ है, इसलिये अब उसकी ... महिमा करते हैं—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥१२॥

मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है*

है। अतएव वह सबका कर्मोंके फलका इस लोक और परलोकके भोगोंमें ममता, आसक्ति और कामनाका सर्वथा त्याग कर देता है, इससे उसमें राग-द्वेषका सर्वथा अभाव होकर उसे शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार तीनोंके ही साधनका [illegible] एक फल होनेपर भी साधकोंकी योग्यता, स्वभाव और साधन-प्रणालीमें भेद होनेके कारण तीन प्रकारके साधन अलग-अलग बतलाये गये हैं।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि झूठ, कपट, व्यभिचार, हिंसा और चोरी आदि निषिद्ध कर्म त्यागमें सम्मिलित नहीं हैं। भोगोंमें आसक्ति और उनकी कामना होनेके कारण ही ऐसे पापकर्म होते हैं और उनके फलस्वरूप मनुष्यका सब तरहसे पतन हो जाता है। इसीलिये उनका स्वरूपसे ही सर्वथा त्याग कर देना आवश्यक माना है और जब वैसे कर्मोंका ही सर्वथा निषेध है, तब उनके फलत्यागका तो प्रसंग ही कैसे आ सकता है?

भगवान्‌ने पहले मन-बुद्धिको अपनेमें लगानेके लिये कहा, फिर अभ्यासयोग बतलाया, तदनन्तर मदर्थ कर्म करनेके लिये कहा और अन्तमें सर्वकर्मफलत्यागके लिये आज्ञा दी और एकमें असमर्थ होनेपर दूसरेका आचरण करनेके लिये कहा। भगवान्‌का इस प्रकारका यह क्रम न तो फलकी दृष्टिसे है, क्योंकि सभीका एक ही फल भगवत्प्राप्ति है और न एककी अपेक्षा दूसरेको सुगम बतलानेके लिये है; क्योंकि उपर्युक्त साधन एक-दूसरेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर सुगम नहीं हैं। जो साधन एकके लिये सुगम है, वही दूसरेके लिये कठिन हो सकता है। इन चारोंसे यह समझाया जाता है कि इन चारों साधनोंका कथन केवल अधिकारिभेदसे ही किया गया है।

जिस पुरुषमें सगुण भगवान्‌के प्रेमकी प्रधानता है, जिसकी भगवान्‌में स्वाभाविक श्रद्धा है, उनके गुण, प्रभाव और रहस्यकी बातें तथा उनकी लीलाका कीर्तन जिसको स्वभावसे ही प्रिय लगता है, ऐसे पुरुषके लिये इस अध्यायके आठवें श्लोकमें बतलाया हुआ साधन सुगम और उपयोगी है।

जिस पुरुषका भगवान्‌में स्वाभाविक प्रेम तो नहीं है, किंतु श्रद्धा होनेके कारण जो हठपूर्वक साधन करके भगवान्‌में मन लगाना चाहता है—ऐसी प्रकृतिवाले पुरुषके लिये इस अध्यायके नवें श्लोकमें बतलाया हुआ साधन सुगम और उपयोगी है।

जिस पुरुषकी सगुण परमेश्वरमें श्रद्धा है तथा यज्ञ, दान, तप आदि कर्मोंमें जिसका स्वाभाविक प्रेम है और भगवान्‌की प्रतिमादिकी सेवा-पूजा करनेमें जिसकी श्रद्धा है—ऐसे पुरुषके लिये इस अध्यायके दसवें श्लोकमें बतलाया हुआ साधन सुगम और उपयोगी है।

जिस पुरुषका सगुण साकार भगवान्‌में स्वाभाविक प्रेम और श्रद्धा नहीं है, जो ईश्वरके स्वरूपको केवल सर्वव्यापी निराकार मानता है, व्यावहारिक और लोकहितके कर्म करनेमें ही जिसका स्वाभाविक प्रेम है—ऐसे पुरुषके लिये इस श्लोकमें बतलाया हुआ साधन सुगम और उपयोगी है।

* यहाँ 'अभ्यास' शब्द इस अध्यायके नवें श्लोकमें बतलाये हुए अभ्यासयोगका नहीं, अभ्यासमात्रका वाचक है अर्थात् शास्त्रश्रवण, प्राणायाम, मनोनिग्रह, स्तोत्रपाठ, वेदाध्ययन, भगवन्नाम-जप आदिके लिये बार-बार की जानेवाली ऐसी चेष्टाओंका नाम यहाँ अभ्यास है, जिसमें न तो विवेकज्ञान है, न ध्यान है और न कर्मफलत्याग ही है। अभिप्राय यह है कि नवें श्लोकमें जो योग सहित अभ्यास और विवेकज्ञानका फल भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है, वह इसमें नहीं है; क्योंकि ये दोनों जिसके अन्तर्गत हों, ऐसे अभ्यासके साथ ज्ञानकी तुलना करना और उसकी अपेक्षा सामान्य रहित ज्ञानको श्रेष्ठ बतलाना नहीं बन सकता।

इसी प्रकार यहाँ 'ज्ञान' शब्द भी शास्त्र और आचार्यसे उत्पन्न उस विवेकज्ञानका वाचक है, जिसके द्वारा मनुष्य आत्मा और परमात्माके स्वरूपको तथा भगवान्‌के गुण, प्रभाव, लीला आदिको समझता है एवं इसी प्रकार भोगोंकी अनित्यता आदि अन्य आध्यात्मिक बातोंको भी समझता है, परंतु जिसके साथ न तो अभ्यास है, न ध्यान है और न कर्म-

ध्यानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है † क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है ‡

सम्बन्ध—पहलेके श्लोकोंमें भगवान्‌की प्राप्तिके लिये अलग अलग साधन बतलाकर अब उन साधनोंके द्वारा परमेश्वरको प्राप्त हुए सिद्ध भक्तोंके लक्षण आठ श्लोकोंमें बतलाये जाते हैं

[illegible] मान ही है क्योंकि वे सब जिसके अन्तर्गत हो उस ज्ञानके साथ सम्पूर्ण ध्यान भी समावेशके साधन तुलनात्मक विवेचन करना और उसकी अपेक्षा ध्यानको तथा कर्मफलके त्यागको श्रेष्ठ बतलाना नहीं बन सकता।

उपर्युक्त अभ्यास और ज्ञान दोनों ही अपने अपने स्थानमें भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं अतः भक्ति और निष्कामभावसे उनका यदि दोनोंके द्वारा ही मनुष्य भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है तथापि दोनोंकी परस्पर तुलना की जानेपर तो अभ्यासकी अपेक्षा ज्ञान ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है विवेकहीन अभ्यास भगवत्प्राप्तिमें उतना सहायक नहीं हो सकता जितना कि अभ्यासहीन विवेकज्ञान सहायक हो सकता है क्योंकि वह भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे युक्त है यही बात दिखलानेके लिये यहाँ अभ्यासकी अपेक्षा ज्ञानको श्रेष्ठ बतलाया है

* यहाँ 'ध्यान' शब्द भी [illegible] पहलेके श्लोकोंमें वर्णित [illegible] केवल [illegible] वाचक है अर्थात् [illegible] भगवान्‌के साकार या निराकार किसी भी स्वरूपमें [illegible] केवल मन-बुद्धिको स्थिर कर देनेको यहाँ ध्यान कहा गया है इसमें न तो पूर्वोक्त विवेकज्ञान है और न भगवान्‌की [illegible] निष्कामभाव ही है अतः समझना चाहिये कि उन ध्यानयोगोंमें जो समस्त कर्मोंको भगवान्‌के समर्पण कर देना भगवान्‌को ही परम प्राप्य समझना और अनन्य प्रेमसे भगवान्‌का ध्यान करना—ये सब भाव भी सम्मिलित हैं वे इसमें नहीं हैं [illegible] भगवान्‌में मन लगाकर [illegible] निष्कामभावसे किया जानेवाला जो ध्यानयोग है उसमें विवेकज्ञान और कर्मफलत्याग दोनोंका समावेश है अतः उसके साथ विवेकज्ञानकी तुलना करना और उसकी अपेक्षा कर्मफलके त्यागको श्रेष्ठ बतलाना नहीं बन सकता

उपर्युक्त विवेकज्ञान और ध्यान—दोनों ही भक्तिपूर्वक और निष्कामभावसे किये जानेपर परमात्माकी प्राप्ति करा देनेवाले हैं इसलिये दोनों ही भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं परन्तु दोनोंकी परस्पर तुलना करनेपर ध्यान और अभ्याससे रहित ज्ञानकी अपेक्षा विवेकरहित ध्यान ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है क्योंकि बिना ध्यान और अभ्यासके केवल विवेकज्ञान [illegible] उतना सहायक नहीं हो सकता जितना बिना विवेकज्ञानके केवल ध्यानसे हो सकता है ध्यानद्वारा चित्त स्थिर होनेपर चित्तकी मलिनता और चंचलताका नाश होता है परन्तु केवल ज्ञानकी [illegible] वैसा नहीं होता यह भाव दिखलानेके लिये ज्ञानसे ध्यानको श्रेष्ठ बतलाया गया है

† ग्यारहवें श्लोकमें जो [illegible] का स्वरूप बतलाया गया है उसीका वाचक कर्मफलत्याग है [illegible] बतलाया हुआ ध्यान भी परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक है [illegible] मनुष्यकी ममता और आसक्तिका नाश नहीं हो सकता तबतक उसे परमात्माकी प्राप्ति सहज ही नहीं हो सकती [illegible] परमात्माकी प्राप्तिमें उतना सहायक नहीं हो सकता जितना कि बिना ध्यानके भी समस्त कर्मोंमें फल और आसक्तिका त्याग हो सकता है

‡ [illegible] कर्मयोग [illegible] तुलनात्मक विवेचन है [illegible] साधनोंमें कर्मफलत्याग [illegible] निष्कामभावसे [illegible] है [illegible] विवेचन [illegible] नहीं तो कर्मफलत्याग [illegible] दिखलानेके लिये अभ्यास ज्ञान और ध्यान [illegible] साधक [illegible] अलग [illegible] किये जाते हैं और किसी [illegible] अपेक्षा दूसरे [illegible] सात्त्विक और निष्कामभावसे [illegible] श्रेष्ठ भी है उनकी अपेक्षा कर्मफलके त्यागको मानवकी [illegible] श्रेष्ठ बतलाया गया है अभिप्राय यह है कि आध्यात्मिक उन्नतिमें क्रियाकी अपेक्षा भावका ही अधिक महत्त्व है [illegible] अनुसार [illegible] दान [illegible] तथा [illegible] निषेधकी क्रिया प्राणायाम जप-पाठ वेद पठन नाम-जप आदि अभ्यासकी क्रिया [illegible] और [illegible] द्वारा आध्यात्मिक बातोंको जाननेके लिये तत्त्वविवेचन क्रिया और मनको स्थिर करनेके लिये [illegible] क्रिया—ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होनेपर भी इनमेंसे वही श्रेष्ठ है जिसके साथ कर्मफलत्याग [illegible] निष्कामभाव है क्योंकि निष्कामभावसे परमात्माकी प्राप्ति होती है अतः कर्मफलका त्याग ही श्रेष्ठ है फिर चाहे वह किसी भी [illegible] क्रियाके साथ क्यों न हो वही क्रिया दीखनेमें साधारण होनेपर भी सर्वश्रेष्ठ हो जाती है

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है*, तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम† और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है‡; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है§, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है× और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है+—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला÷ मेरा भक्त मुझको प्रिय हैऽ ॥ १३-१४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

---

* भक्तिके साधकोंमें आरम्भसे ही मैत्री और दयाके भाव विशेषरूपसे रहते हैं, इसलिये सिद्धावस्थामें भी उनके स्वभाव और व्यवहारमें वे अधिक दीख पड़ते हैं। जैसे भगवान्‌में हेतुरहित अपार दया और प्रेम आदि रहते हैं, वैसे ही उनके सिद्ध भक्तोंमें भी इनका रहना उचित ही है।

† यहाँ सुख-दुःख हर्ष-शोकके हेतुओंके वाचक हैं न कि हर्ष-शोकके; क्योंकि सुख-दुःखसे उत्पन्न होनेवाले विकारों का नाम हर्ष-शोक है। साधारण मनुष्योंकी सुखमें आसक्ति होती है, इस कारण सुखकी प्राप्तिमें उनको हर्ष होता है और दुःखमें उनको द्वेष होता है, इसलिये उसकी प्राप्तिमें उनको शोक होता है। परन्तु ज्ञानी भक्तका सुख और दुःखमें समभाव हो जानेके कारण किसी भी अवस्थामें उसके अन्तःकरणमें हर्ष-शोक आदि विकार नहीं होते। श्रुतिमें भी कहा है—'हर्षशोकौ जहाति' (कठोपनिषद्) अर्थात् ज्ञानी पुरुष हर्ष-शोकोंका सर्वथा त्याग कर देता है। प्रारब्ध-भोगके अनुसार शरीरमें रोग हो जानेपर उसको वेदनारूप दुःखका बोध तो होता है और शरीर स्वस्थ होनेपर उसमें पीड़ाके अभावका बोधरूप सुख भी होता है, किंतु राग-द्वेषका अभाव होनेके कारण हर्ष और शोक उसे नहीं होते। इसी तरह किसी भी अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थ या घटनाके संयोग-वियोगमें किसी प्रकारसे भी उसको हर्ष-शोक नहीं होते, यही उसका सुख-दुःखमें सम रहना है।

‡ अपना अपकार करनेवालेको किसी प्रकारका दण्ड देनेकी इच्छा न रखकर उसे अभय देनेवालेको क्षमावान् कहते हैं। भगवान्‌के ज्ञानी भक्तोंमें क्षमाभाव भी असीम रहता है। क्षमाकी व्याख्या गीताके दसवें अध्यायके चौथे श्लोककी टिप्पणीमें विस्तारसे की गयी है।

§ भक्तियोगके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त हुए ज्ञानी भक्तको यहाँ 'योगी' कहा गया है। ऐसा भक्त परमानन्दके स्वरूप और अनन्त आनन्दके भण्डार भगवान्‌को प्रत्यक्ष कर लेता है, इस कारण वह सदा ही संतुष्ट रहता है। उसे किसी समय किसी भी अवस्थामें किसी भी वस्तुके अभावमें असंतोषका अनुभव नहीं होता, क्योंकि वह पूर्णकाम है। यही उसका निरन्तर संतुष्ट रहना है।

× इससे यह भाव दिखलाया है कि भगवान्‌के ज्ञानी भक्तोंका मन और इन्द्रियोंसहित शरीर सदा ही उनके वशमें रहता है, वे कभी मन और इन्द्रियोंके वशमें नहीं हो सकते, इसीसे उनमें किसी प्रकारके दुर्गुण और दुराचारकी सम्भावना नहीं होती।

+ जिसने बुद्धिके द्वारा परमेश्वरके स्वरूपका भलीभाँति निश्चय कर लिया है, जिसे सर्वत्र भगवान्‌का प्रत्यक्ष अनुभव होता है तथा जिसकी बुद्धि सुख-दुःख आदिके [illegible] कभी किसी प्रकार विचलित नहीं हो सकती, उसको दृढ़निश्चयी कहते हैं।

÷ मनसे निरन्तर भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन और बुद्धिसे उसका निश्चय करते-करते मन और बुद्धिका भगवान्‌के स्वरूपमें तद्रूप हो जाना ही उनको भगवान्‌में अर्पण करना है।

ऽ जो उपर्युक्त लक्षणोंसे सम्पन्न है, जिसका भगवान्‌में अतिशय और अनन्य प्रेम है, जिसकी भगवान्‌के साथ अटल स्थिति है, जिसका कभी भगवान्‌से वियोग नहीं होता, जिसके मन-बुद्धि भगवान्‌के अर्पित हैं, भगवान् ही जिसके जीवन, धन, प्राण एवं सर्वस्व हैं, जो भगवान्‌के ही हाथकी कठपुतली है—ऐसे सिद्ध भक्तको भगवान् अपना प्रिय बतलाते हैं।

१ पूर्वश्लोकमें केवल दूसरे प्राणीसे उसे उद्वेग नहीं होता, इतना ही कहा गया है। इससे लोकव्यवहारमें उद्वेगकी निवृत्ति तो हुई, किंतु भाग्यवश और स्वेच्छासे प्राप्त घटना और पदार्थमें भी तो मनुष्यको उद्वेग होता है; इसलिये अन्तमें पुनः उद्वेगसे मुक्त होनेकी बात कहकर भगवान् यह सिद्ध कर रहे हैं कि उसको कभी किसी प्रकार भी उद्वेग नहीं होता।

जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता* और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता† तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है‡ वह भक्त मुझको प्रिय है ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित§, बाहर-भीतरसे शुद्ध×, चतुर+, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है÷, वह सब आरम्भोंका त्यागी○ मेरा भक्त मुझको प्रिय है ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥

जो न कभी हर्षित होता है, Δ न द्वेष करता

* सर्वत्र भगवद्बुद्धि होनेके कारण भक्त स्वयं मूर्तिमान् दया बना रहता है, इसलिये उसके द्वारा किसीको दुःख, संताप, भय और क्षोभ पहुँच ही नहीं सकता, बल्कि उसके द्वारा तो सबकी सेवा और परम हित ही होते हैं। अतएव उसकी ओरसे किसीको कभी उद्वेग नहीं होना चाहिये। यदि दूसरेसे किसी व्यक्तिको उद्वेग होता है तो उसमें उस व्यक्तिके अपने अज्ञानजनित राग, द्वेष और ईर्ष्यादि दोष ही प्रधान कारण हैं, भगवद्भक्त नहीं; क्योंकि जो दया और प्रेमकी मूर्ति है एवं दूसरोंका हित करना ही जिसका स्वभाव है, ऐसा परम दयालु प्रेमी समतायुक्त भक्त तो किसीके उद्वेगका कारण हो ही नहीं सकता।

† ज्ञानी भक्तको भी प्रारब्धके अनुसार दूसरोंके द्वारा निमित्त तो प्राप्त हो सकते हैं, परंतु उसमें राग-द्वेषका सर्वथा अभाव हो जानेके कारण बड़े-से-बड़े दुःखकी प्राप्तिमें भी वह विचलित नहीं होता (गीता ६। २२); इसीलिये ज्ञानी भक्तको किसी भी प्राणीसे उद्वेग नहीं होता।

‡ अभिप्राय यह है कि साधारण मनुष्यको अपने अभिलषित मान, बड़ाई और धन आदि पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर जिस तरह हर्ष होता है, उसी तरह अपने ही समान या अपनेसे अधिक दूसरोंको भी उन पदार्थोंकी प्राप्ति होते देखकर प्रसन्नता होनी चाहिये; किंतु प्रायः ऐसा न होकर अज्ञानके कारण लोगोंको उलटा अमर्ष होता है और यह अमर्ष विवेकशील पुरुषोंके चित्तमें भी देखा जाता है। इसी तरह नीति और धर्मके विरुद्ध पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर उद्वेग तथा नीति और धर्मके अनुकूल भी दुःखप्रद पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर या उसकी आशङ्कासे भय होता देखा जाता है। दूसरोंकी तो बात ही क्या, मुमुक्षु पुरुष भी कभी-कभी विचलित हो जाता है। किंतु भगवान्के ज्ञानी भक्तकी सर्वत्र समबुद्धि हो जाती है और वह सम्पूर्ण क्रियाओंको भगवान्की लीला समझता है। इस कारण ज्ञानी भक्तको न अमर्ष होता है, न उद्वेग होता है और न भय ही होता है—यह भाव दिखलानेके लिये ऐसा कहा गया है।

§ परमात्माको प्राप्त भक्तका किसी भी वस्तुसे किञ्चित् भी प्रयोजन नहीं रहता, अतएव उसे किसी पदार्थकी किञ्चिन्मात्र भी इच्छा, स्पृहा, अथवा वासना नहीं रहती; वह पूर्णकाम हो जाता है। यह भाव दिखलानेके लिये उसे आकाङ्क्षासे रहित कहा है।

× भगवान्के भक्तमें पवित्रताकी पराकाष्ठा होती है। उसके मन, बुद्धि, इन्द्रिय, उसके आचरण और शरीर आदि इतने पवित्र हो जाते हैं कि उसके साथ वार्तालाप होनेपर तो कहना ही क्या है—उसके दर्शन और स्पर्शमात्रसे ही दूसरे लोग पवित्र हो जाते हैं। ऐसा भक्त जहाँ निवास करता है, वह स्थान पवित्र हो जाता है और उसके सङ्गसे वहाँका वायुमण्डल, जल, स्थल आदि सब पवित्र हो जाते हैं।

+ जिस उद्देश्यकी सफलताके लिये मनुष्यशरीरकी प्राप्ति हुई है, उस उद्देश्यको पूरा कर लेना ही यथार्थ चतुरता है।

÷ शरीरमें रोग आदिका होना, प्रिय पुत्र आदिका वियोग होना और धन या आदिकी हानि होना, इत्यादि दुःखके हेतु तो प्रारब्धके अनुसार उसे प्राप्त होते हैं, परंतु इन सबके होते हुए भी उसके अन्तःकरणमें किसी प्रकारका शोक नहीं होता।

○ जगत्में जो कुछ भी हो रहा है—सब भगवान्की लीला है, सब उनकी मायाशक्तिका खेल है; वे जिससे जब जैसा करवाना चाहते हैं, वैसा ही करवा लेते हैं। मनुष्य मिथ्या ही ऐसा अभिमान कर लेता है कि अमुक कर्म मैं करता हूँ, मेरी ऐसी सामर्थ्य है, इत्यादि। पर भगवद्भक्त भक्त इस रहस्यको भलीभाँति समझ लेता है, इससे वह सदा भगवान्के हाथकी कठपुतली बना रहता है। भगवान् उसको जब जैसा नचाते हैं, वह प्रसन्नतापूर्वक वैसे ही नाचता है। अपना तनिक भी अभिमान नहीं रखता और अपनी ओरसे कुछ भी नहीं करता, इसलिये वह लोकदृष्टिमें सब कुछ करता हुआ भी वास्तवमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होनेके कारण 'सब आरम्भोंका त्यागी' ही है।

Δ भक्तके लिये सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, परम दयालु भगवान् ही सबसे प्रिय वस्तु हैं और वह उन्हें सदाके लिये प्राप्त है, अतएव वह सदा-सर्वदा परमानन्दमें स्थित रहता है। संसारकी किसी वस्तुमें उसका किञ्चिन्मात्र भी राग-द्वेष नहीं होता; इस कारण लोकदृष्टिसे होनेवाले किसी प्रिय वस्तुके संयोगसे या अप्रियके वियोगसे उसके अन्तःकरणमें कभी किञ्चिन्मात्र भी हर्षका विकार नहीं होता।

है,* न शोक करता है,† न कामना करता है,‡ तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है,§ वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है ॥ १७ ॥

जो शत्रु-मित्रमें× और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है ॥ १८ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

---

* भक्तको सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌का स्वरूप दीखता है, इसलिये उसका किसी भी वस्तु या प्राणीमें कभी किसी भी कारणसे द्वेष नहीं हो सकता। उसके अन्तःकरणमें द्वेषभावका सदाके लिये सर्वथा अभाव हो जाता है।

† अनिष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें और इष्टके वियोगमें प्राणियोंको शोक हुआ करता है। भगवद्भक्तको लीलामय परम दयालु परमेश्वरकी दयासे भरे हुए विधानमें कभी प्रतिकूलता प्रतीत ही नहीं होती। अतः उसे शोक कैसे हो सकता है?

‡ भक्तको साक्षात् भगवान्‌की प्राप्ति हो जानेसे वह सदाके लिये आप्तकाम और परम शान्तिसे युक्त होकर पूर्णकाम हो जाता है। उसके मनमें कभी किसी वस्तुके अभावका अनुभव होता ही नहीं; इसलिये उसके अन्तःकरणमें सांसारिक वस्तुओंकी आकांक्षा होनेका कोई कारण ही नहीं रह जाता।

§ यज्ञ, दान, तप और वर्णाश्रमके अनुसार जीविका तथा शरीर-निर्वाहके लिये किये जानेवाले शास्त्रविहित कर्मोंका वाचक यहाँ 'शुभ' शब्द है और झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि पापकर्मोंका वाचक 'अशुभ' शब्द है। भगवान्‌का ज्ञानी भक्त इन दोनों प्रकारके कर्मोंका त्यागी होता है; क्योंकि उसके शरीर, इन्द्रिय और मनके द्वारा किये जानेवाले समस्त शुभ कर्मोंको वह भगवान्‌के समर्पण कर देता है। उनमें उसकी किंचिन्मात्र भी ममता, आसक्ति या फलेच्छा नहीं रहती, इसीलिये वे कर्म कर्म ही नहीं माने जाते (गीता ४।२०) और राग-द्वेषका अभाव हो जानेके कारण पापकर्म उसके द्वारा होते ही नहीं; इसलिये उसे शुभ और अशुभ कर्मोंका त्यागी कहा गया है।

संसारमें मनुष्यको जो आसक्ति होती है, वही समस्त अनर्थोंका मूल है। यद्यपि मनुष्य स्वभावसे सम्बन्ध भी रहे, किंतु मनमें आसक्ति नहीं रह जाती तो ऐसे सम्बन्धसे विशेष हानि नहीं हो सकती। पद्मपत्रमें जलकी भाँति निर्लेप रहकर आसक्तिरहित सबमें रहनेपर भी कोई हानि नहीं है। ऐसा आसक्तिका त्यागी ही यहाँ 'सङ्गविवर्जित' है।

× यद्यपि भक्तकी दृष्टिमें उसका कोई शत्रु-मित्र नहीं होता, तो भी लोग अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मूर्खतावश भक्तके द्वारा अपना अनिष्ट होता हुआ समझकर या उसका स्वभाव अपने अनुकूल न दीखनेके कारण अथवा ईर्ष्यावश उसमें शत्रुभावका भी आरोप कर लेते हैं। ऐसे ही दूसरे लोग अपनी भावनाके अनुसार उसमें मित्रभावका आरोप कर लेते हैं; परंतु सम्पूर्ण जगत्‌में सर्वत्र भगवान्‌के दर्शन करनेवाले भक्तका सबमें समभाव ही रहता है। उसकी दृष्टिमें शत्रु-मित्रका किंचित् भी भेद नहीं रहता, वह तो सदा सबके साथ परम प्रेमका ही व्यवहार करता रहता है। सबको भगवान्‌का स्वरूप समझनेसे सबकी सेवा करना ही उसका स्वभाव बन जाता है। जैसे वृक्ष अपनेको काटनेवाले और सींचनेवाले दोनोंको ही छाया, फल और फूल आदिके द्वारा सेवा करनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं करता, वैसे ही भक्तमें भी किसी तरहका भेदभाव नहीं रहता। मनुष्यका सम्मान उसकी अपेक्षा न अधिक महत्त्व रखता है। उसकी दृष्टिमें भगवान्‌से भिन्न कुछ भी न रहनेसे उसमें भेदभावकी आशंका ही नहीं रहती; इसलिये उसे शत्रु-मित्रमें सम कहा गया है।

मान, अपमान, सर्दी-गरमी, सुख-दुःख आदि अनुकूल और प्रतिकूल द्वन्द्वोंका मन, इन्द्रिय और शरीरके साथ सम्बन्ध होनेसे उनका अनुभव होते हुए भी भगवद्भक्तके अन्तःकरणमें राग-द्वेष या हर्ष-शोक आदि किसी तरहका किंचिन्मात्र भी विकार नहीं होता, वह सदा सम रहता है।

जो भक्त अपना सर्वस्व भगवान्‌के अर्पण कर चुके हैं, जिनके घर, द्वार, शरीर, विद्या, बुद्धि आदि सभी कुछ भगवान्‌के हो चुके हैं, फिर वे चाहे ब्रह्मचारी हों या गृहस्थ, वानप्रस्थ हों या संन्यासी हों, वे अनिकेत ही हैं। जैसे शरीरमें अहंता, ममता और आसक्ति न होनेपर शरीरमें रहते हुए भी ज्ञानीको 'विदेह' कहा जाता है—वैसे ही जिनकी घरमें ममता और आसक्ति नहीं है, वे घरमें रहते हुए भी बिना घरवाले—'अनिकेत' ही हैं।

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला *, मननशील † और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है ‡ तथा रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है §, वह स्थिरबुद्धि ¶ भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है ×।

---

* भगवान्‌के भक्तका अपने नाम और शरीरमें किंचिन्मात्र भी अभिमान या ममत्व नहीं रहता। इसलिये न तो उसको स्तुतिसे हर्ष होता है और न निन्दासे किसी प्रकारका शोक ही होता है। उसका दोनोंमें ही समभाव रहता है। सर्वत्र भगवद्‌बुद्धि हो जानेके कारण स्तुति करनेवालों और निन्दा करनेवालोंमें भी उसकी कभी भी भेद-बुद्धि नहीं होती। यही उसका निन्दा-स्तुतिको समान समझना है।

† गुण केवल वाणीसे ही नहीं बोलता, मनसे भी बोलता रहता है। विषयोंका अनवरत चिन्तन ही मनका निरन्तर बोलना है। भक्तका चित्त भगवान्‌में इतना संलग्न हो जाता है कि उसमें भगवान्‌के सिवा दूसरेकी स्मृति ही नहीं होती, वह सदा-सर्वदा भगवान्‌के ही मननमें लगा रहता है। यही वास्तविक मौन है। बोलना न बोलना [illegible] मनसे विषयोंका चिन्तन होता रहे, ऐसा मौन वास्तवमें मौन है। मनको निर्विषय करने तथा वाणीको परिशुद्ध और भक्त बनानेके उद्देश्यसे किया जानेवाला वाक्‌-मौन भी साधन-रूप होता है, परन्तु यहाँ भगवत्प्राप्त सिद्ध भक्तके लक्षणोंका वर्णन है। उसकी वाणी तो स्वाभाविक ही विशुद्ध और संयत है। उसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें केवल वाणीका ही मौन है, बल्कि उस भक्तकी वाणीसे तो प्रायः निरन्तर भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन ही हुआ करता है, जिससे जगत्‌का परम उपकार होता है। इसके सिवा भगवान् अपना भक्तिका प्रचार भी भक्तोंद्वारा ही करवाया करते हैं। अतः वाणीसे मौन रहनेवाला भगवान्‌का प्रिय भक्त होता है और बोलनेवाला नहीं होता, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। गीताके अठारहवें अध्यायके अड़सठवें और उनहत्तरवें श्लोकोंमें भगवान्‌ने गीताके प्रचार करनेवालेको अपना सबसे प्रिय कार्य करनेवाला कहा है। वह महत्कार्य वाणीसे मौनीसे नहीं हो सकता। इसके सिवा गीताके सत्रहवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें मानसिक तपके लक्षणोंमें भी 'मौन' शब्द आया है। यदि भगवान्‌का 'मौन' शब्दका अर्थ वाणीका मौन अभीष्ट होता तो वे उसे वाणीके तपके प्रकरणमें कहते, परन्तु ऐसा नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध है कि मुनिभावरूप मनन ही मौन है और यह मुनिभाव जिसमें होता है, वही मौनी या मननशील है। वाणीका मौन मनुष्य हठसे भी कर सकता है। उसमें कोई विशेष महत्त्वकी बात भी नहीं है। अतः यहाँ 'मौन' शब्दका अर्थ वाणीका मौन न मानकर मनकी मननशीलता ही मानना उचित है। वाणीका संयम तो इसके अन्तर्गत आप ही आ जाता है।

‡ भक्त अपने परम प्रेमास्पद भगवान्‌को बढ़कर कभी किसी भी वस्तुको नहीं समझता। बाहरी वस्तुओंके आने-जानेसे उसकी बुद्धिमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं होता। प्रारब्धानुसार सुख-दुःखादिके हेतुभूत जो कुछ भी पदार्थ उसे प्राप्त होते हैं, वह उन्हींमें सन्तुष्ट रहता है।

§ भक्तको भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हो जानेके कारण उसके सम्पूर्ण संशय समूल नष्ट हो जाते हैं। उसका निश्चय अटल और निश्चल होता है। अतः वह साधारण मनुष्योंकी भाँति काम, क्रोध, लोभ, मोह या भय आदि विकारोंके वशमें होकर धर्म या भगवान्‌के स्वरूपसे कभी विचलित नहीं होता।

× उपर्युक्त सभी लक्षण परमभक्तोंके हैं तथा सभी शास्त्रानुकूल भी हैं, परन्तु स्वभाव आदिके भेदसे भक्तोंके भी गुण और आचरणोंमें थोड़ा-बहुत अन्तर रह जाना स्वाभाविक है। इसमें सभी लक्षण एकमें ही मिलना [illegible] आवश्यक है। [illegible] और शान्ति सभीमें होते हैं तथा राग-द्वेष, [illegible] हर्ष-शोक आदि विकार किसीमें [illegible] ही [illegible]। इसीलिये इन श्लोकोंमें पुनरुक्ति पायी जाती है। विचार [illegible] पाँच विभागोंमें कही गयी है, और प्रत्येक विभागमें राग-द्वेष और हर्ष-शोक आदिका अभाव क्रमसे मिलता है। पहले विभागमें 'अद्वेष्टा' से द्वेषका [illegible] निर्मम [illegible] और [illegible] सन्तुष्ट [illegible] से हर्ष-शोकका अभाव बतलाया गया [illegible] सम, [illegible] दूसरे विभागमें [illegible] इससे [illegible] द्वेष और हर्ष-शोकका अभाव अपने-आप सिद्ध हो जाता है। तीसरे [illegible] से द्वेषका और [illegible] से हर्ष-शोकका अभाव बतलाया है। चौथेमें 'न काङ्क्षति' से रागका, 'न द्वेष्टि' से द्वेषका, 'न हृष्यति' तथा 'न शोचति' से हर्ष-शोकका अभाव बतलाया है। इस प्रकार [illegible] विभागमें 'सङ्गविवर्जित' तथा [illegible] से द्वेषका और 'सन्तुष्टो येन केनचित्' से हर्ष-शोकका अभाव दिखलाया है। [illegible] भी इस प्रकरणमें दो बार आया है। इसमें यह है कि राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारोंका अभाव और समता तथा शान्ति तो सभीमें समानरूपसे हैं। अन्यान्य लक्षणोंमें स्वभाव-भेदसे कुछ भेद भी हो सकता है। इसी भेदके कारण भगवान्‌ने भिन्न-भिन्न श्रेणियोंमें विभक्त करके भक्तोंके लक्षणोंको यहाँ पाँच बार पृथक्-पृथक् बतलाया है। इनमेंसे किसी एक विभागके अनुसार भी सब लक्षण जिसमें पूर्ण हों, वही भगवान्‌का प्रिय भक्त है।

सम्बन्ध—भगवान्‌को प्राप्त हुए सिद्ध भक्तोंके लक्षण बतला-कर अब उन लक्षणोंको आदर्श मानकर बड़ा उत्साहके साथ उनका भली-भाँति सेवन करनेवाले परम श्रद्धालु शरणागत भक्तोंकी प्रशंसा करनेके लिये उनको अपना अत्यन्त प्रिय बतला-कर भगवान् इस अध्यायका उपसंहार करते हैं—

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

परंतु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतको निष्काम प्रेम-भावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं‡ ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ भीष्मपर्वणि तु षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके श्रीमद्भगवद्गीतापर्वके अन्तर्गत ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें भक्तियोग नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥ भीष्मपर्वमें छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

इससे यह सिद्ध होता है कि भक्तियोग अथवा ज्ञानयोग आदि किसी भी साधनसे परम सिद्धिको प्राप्त कर लेनेके पश्चात् भी उनकी वास्तविक स्थितिमें या प्राप्त किये हुए परम तत्त्वमें तो कोई अन्तर नहीं रहता, किंतु स्वभावकी भिन्नताके कारण आचरणोंमें कुछ भेद रह सकता है; अतएव तेरहवें अध्यायके सातवेंसे ग्यारहवें श्लोकतक उन लक्षणोंको … ११ इस प्रकरणसे भी यही सिद्ध होता है कि इन लक्षणोंके आचरण और भावमें ज्ञानोत्तरकालमें भी भेद रहता है।

ममता, अहंता और राग-द्वेष, हर्ष-शोक, काम-क्रोध आदि अज्ञानजनित विकारोंका अभाव तथा समता और परम शान्ति—ये लक्षण तो सभीमें समानभावसे पाये जाते हैं; किंतु मैत्री और करुणा ये भक्तिमार्गसे भगवान्‌को प्राप्त हुए महापुरुषमें विशेषरूपसे रहते हैं। मनसहित शरीर और कर्मोंमें उपरामता—यह ज्ञानमार्गसे परम पदको प्राप्त महात्माओंमें विशेषरूपसे रहती है। इसी प्रकार मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए आसक्तिरहित भावसे कर्मोंमें लगे रहना यह लक्षण विशेषरूपसे कर्मयोगके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त हुए पुरुषोंमें रहता है।

गीताके दूसरे अध्यायके चौवनवेंसे बहत्तरवें श्लोकतक जिनके ही लक्षणोंको कर्मयोगके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त हुए पुरुषके तथा चौदहवें अध्यायके बाईसवेंसे पचीसवें श्लोकतक ज्ञानयोगके द्वारा परमात्माको प्राप्त हुए गुणातीत पुरुषके लक्षण बतलाये गये हैं और यहाँ तेरहवेंसे उन्नीसवें श्लोकतक भक्तियोगके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

* सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के अवतारोंमें, वचनोंमें एवं उनके गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और चरित्रादिमें श्रीप्रत्यक्षके सदृश सम्मानपूर्वक विश्वास रखना ही 'श्रद्धा' है। परम प्रेमी और परम दयालु भगवान्‌को ही परम गति, परम आश्रय एवं अपने प्राणोंके आधार, सर्वस्व मानकर उन्हींपर निर्भर और उनके किये हुए विधानमें प्रसन्न रहनेवालेको 'मत्परायण' पुरुष कहते हैं।

† भगवद्भक्तोंके उपर्युक्त लक्षण ही वस्तुतः मानवधर्मका सच्चा स्वरूप है; इसलिये इनको अमृत-तुल्यकी उपमा दी है; क्योंकि इनके पालनसे साधक सदाके लिये मृत्युसे रहित हो जाता है और उसे अमृतस्वरूप भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। इसी बातको स्पष्ट समझानेके लिये यहाँ इस लक्षणसमुदायका नाम 'धर्म्यामृत' रखा गया है।

‡ जिन सिद्ध भक्तोंको भगवान्‌की प्राप्ति हो चुकी है, उनमें तो उपर्युक्त लक्षण स्वाभाविक ही रहते हैं; इसलिये उनमें इन गुणोंका होना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। परंतु जिन साधक भक्तोंको भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए हैं, तो भी वे भगवान्‌पर विश्वास करके परम श्रद्धाके साथ तन, मन, धन सर्वस्व भगवान्‌के अर्पण करके उन्हींके शरण हो जाते हैं तथा भगवान्‌के दर्शनोंके लिये निरन्तर उन्हींका निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक चिन्तन करते रहते हैं और उच्च श्रेणीके उपर्युक्त लक्षणोंके अनुसार ही अपना जीवन बिताना चाहते हैं—बिना प्रत्यक्ष दर्शन हुए भी केवल विश्वासपर उनका इतना निर्भर हो जाना विशेष महत्त्वकी बात है; ऐसे प्रेमी भक्तोंको सिद्ध भक्तोंकी अपेक्षा भी 'अतिशय प्रिय' कहना उचित ही है।

सप्तत्रिंशोऽध्याय:

(श्रीमद्भगवद्गीतायां त्रयोदशोऽध्याय:)

ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और प्रकृति-पुरुषका वर्णन

सम्बन्ध—गीताके बारहवें अध्यायके आरम्भमें अर्जुनने सगुण और निर्गुणके उपासकोंकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न किया था, उसका उत्तर देते हुए भगवान्‌ने दूसरे श्लोकमें संक्षेपसे सगुण उपासकोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करके तीसरेसे पाँचवें श्लोकतक निर्गुण उपासनाका स्वरूप, उसका फल और देहाभिमानियोंके लिये उसके अनुष्ठानमें कठिनताका निरूपण किया। तदनन्तर छठेसे बीसवें श्लोकतक सगुण उपासनाका महत्त्व, फल, प्रकार और भगवद्भक्तोंके लक्षणोंका वर्णन करते-करते ही अध्यायकी समाप्ति हो गयी; निर्गुणका तत्त्व, महिमा और उसकी प्राप्तिके साधनोंको विस्तारपूर्वक नहीं समझाया गया। अतएव निर्गुण-निराकारका तत्त्व अर्थात् ज्ञानयोगका विषय भलीभाँति समझानेके लिये तेरहवें अध्यायका आरम्भ किया जाता है। इसमें पहले भगवान् क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (आत्मा)के लक्षण बतलाते हैं—

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! यह शरीर 'क्षेत्र'* इस नामसे कहा जाता है; और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ'† इस नामसे उनके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानीजन कहते हैं।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

हे अर्जुन! तू सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मुझे ही जान‡ और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकारसहित प्रकृतिका और पुरुषका जो तत्त्वसे जानना है, वह ज्ञान है—ऐसा मेरा मत है।

सम्बन्ध—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका पूर्ण ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है, ऐसा कहकर अब भगवान् उस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्त्वको भलीभाँति विभागपूर्वक समझानेके लिये प्रस्ताव करते हैं—

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्।

* जैसे खेतमें बोये हुए बीजोंका उनके अनुरूप फल समयपर प्रकट होता है, वैसे ही इस शरीरमें बोये हुए कर्म-संस्काररूप बीजोंका फल भी समयपर प्रकट होता रहता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रतिक्षण क्षय होता रहता है। इसलिये भी इसे 'क्षेत्र' कहते हैं और इसीलिये गीताके पंद्रहवें अध्यायके सोलहवें श्लोकमें इसको 'क्षर' पुरुष कहा गया है।

† इससे भगवान्‌ने अन्तरात्मा द्रष्टाका लक्षण बतलाया है। मन, बुद्धि, इन्द्रिय, महाभूत और इन्द्रियोंके विषय आदि जितना भी ज्ञेय (जाननेमें आनेवाला दृश्यवर्ग) है—सब-का-सब विनाशी, परिवर्तनशील है। केवल आत्मा उस सब दृश्यवर्गसे सर्वथा विलक्षण है; वह उसका ज्ञाता है, उसमें अनुस्यूत है और उसका अधिष्ठाता है। इसीलिये इसे 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं। इसी ज्ञाता चेतन आत्माको गीताके सातवें अध्यायमें 'परा प्रकृति' (७। ५), आठवें अध्याय (८। ३) और पंद्रहवें अध्यायमें 'अक्षर पुरुष' (१५। १६) कहा गया है। यह आत्मतत्त्व बड़ा ही गहन है, इसीलिये भगवान्‌ने भिन्न-भिन्न प्रकरणोंके द्वारा कहीं प्रकृतिरूपसे, कहीं अनुपलक्षणात्मक और कहीं पुरुषात्मक नामसे इसका वर्णन किया है। वास्तवमें आत्मा विकारोंसे सर्वथा रहित, अविनाशी, नित्य, निर्विकार एवं चेतन ज्ञानस्वरूप है।

‡ इससे आत्मा और परमात्मा की एकताका प्रतिपादन किया गया है। आत्मा और परमात्मामें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं है, प्रकृतिके संगसे भेद-सा प्रतीत होता है। इसीलिये गीताके दूसरे अध्यायमें चौबीसवें और पचीसवें श्लोकोंमें आत्माके लक्षणका वर्णन करते हुए जिन शब्दोंका प्रयोग किया है, बारहवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें निर्गुण निराकार परमात्माके लक्षणोंका वर्णन करते समय भी प्रायः उन्हींके भावोंके द्योतक शब्दोंका प्रयोग किया गया है।

१. 'तत्' पदसे भगवान्‌ने क्षेत्रका स्वरूप बतलानेका संकेत किया है और उसे पाँचवें श्लोकमें बतलाया है।

२. 'यादृक्' पदसे क्षेत्रका स्वभाव बतलानेका संकेत किया है और उसका वर्णन छब्बीसवें और सत्ताईसवें श्लोकोंमें समस्त भूतोंकी उत्पत्ति-विनाशशील बतलाकर किया है।

३. 'यद्विकारि' पदसे क्षेत्रके विकारोंका वर्णन करनेका संकेत किया है और उनका वर्णन छठे श्लोकमें किया है।

४. जिन पदार्थोंके समुदायका नाम 'क्षेत्र' है, उनमेंसे कौन पदार्थ किससे उत्पन्न हुआ—यह बतलानेका संकेत 'यतः' पदसे किया है और उसका वर्णन उन्नीसवें श्लोकके उत्तरार्धमें तथा बीसवेंके पूर्वार्धमें किया गया है।

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारोंवाला है और जिस कारणसे जो हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाववाला है—वह सब संक्षेपमें मुझसे सुन ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—तीसरे श्लोकमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्त्वको संक्षेपमें सुननेके लिये भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है—अब उसके विषयमें ऋषि, वेद और ब्रह्मसूत्रकी महिमा प्रकट करके भगवान् ऋषि, वेद और ब्रह्मसूत्रको आदर देते हैं

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व ऋषियोंद्वारा बहुत प्रकारसे कहा गया है और विविध वेदमन्त्रोंद्वारा भी विभागपूर्वक कहा गया है तथा भलीभाँति निश्चय किये हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा भी कहा गया है ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥†

* इस अध्यायके आरम्भमें पहले श्लोकमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका लक्षण बतलानेका संकेत किया गया है और [illegible] उनके स्वरूप एवं वास्तविक दोनों [illegible] वर्णन किया गया है [illegible] लोकोंमें उसे अनादि बीजोंके [illegible] स्वरूप बतलाया गया है [illegible] तथा [illegible] उनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय किया गया है।

[illegible] क्षेत्रका प्रभाव बतलानेके लिये संकेत किया गया है और उसे इक्कीसवें श्लोकतक बतलाया गया है।

२ [illegible] विशेषणके सहित [illegible] [illegible] [illegible] समस्त उपनिषद् और भिन्न-भिन्न शास्त्रोंका भी इन्हींके अन्तर्गत समझ लेना चाहिये।

४ ब्रह्मसूत्र [illegible] वेदान्तदर्शन के जो [illegible] सूत्ररूप पद हैं [illegible] प्रतीत होता है क्योंकि उसमें [illegible] [illegible] है कि श्रुति-स्मृति आदिमें वर्णित जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका तत्त्व ब्रह्मसूत्रके पदोंद्वारा युक्तिपूर्वक समझाया गया है, उसका निर्देश भी भगवान् यहाँ [illegible] कर रहे हैं।

* [illegible] और [illegible] ऋषियोंने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ [illegible] [illegible] मन्त्रोंने और पुराण-इतिहासोंमें बहुत प्रकारसे वर्णन करके विचारपूर्वक समझाया है [illegible] बहुत-से [illegible] भगवान् कहते हैं।

[illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है—गीताके सातवें अध्यायके चौथे श्लोकमें [illegible] भूमि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के नामसे वर्णन हुआ है। [illegible] [illegible] यह [illegible] है।

† इन्हीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी आता है जैसे—

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥

(सांख्यकारिका)

अर्थात् एक मूल प्रकृति है, [illegible] किसीकी विकृति नहीं है; महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धतन्मात्रा)—ये सात प्रकृति-विकृति हैं अर्थात् ये सातों [illegible] कारण होनेसे प्रकृति भी हैं और मूल प्रकृतिके कार्य होनेसे विकृति भी हैं; पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन—ये ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत—ये सोलह केवल विकृति—विकार हैं, ये किसीकी प्रकृति अर्थात् कारण नहीं हैं। इनमें ग्यारह इन्द्रियाँ तो अहंकारके तथा पाँच स्थूल महाभूत पञ्चतन्मात्राओंके कार्य हैं; किंतु पुरुष न किसीका कारण है और न किसीका कार्य है, वह सर्वथा असङ्ग है।

योगदर्शनमें कहा है—'विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि' [illegible] विशेष यानी पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, एक मन और पाँच स्थूल भूत; अविशेष यानी अहंकार और पञ्चतन्मात्राएँ; लिङ्गमात्र यानी महत्तत्त्व और अलिङ्ग यानी मूल प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व गुणोंकी अवस्थाविशेष हैं, इन्हींको 'दृश्य' कहते हैं।

योगदर्शनमें जिसको 'दृश्य' कहा है, उसीको गीतामें 'क्षेत्र' कहा गया है।

पाँच महाभूत, अहंकार*, बुद्धि† और मूल प्रकृति‡ भी तथा दस इन्द्रियाँ§, एक मन× और पाँच इन्द्रियोंके विषय+ अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ॥ ५ ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ ६॥

तथा इच्छा, द्वेष S, सुख A, दुःख B, स्थूल देहका पिण्ड, चेतना C और धृति D—इस प्रकार विकारोंके सहित यह क्षेत्र संक्षेपमें कहा गया E ॥ ६ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार क्षेत्रके स्वरूप और उसके विकारोंका वर्णन करनेके बाद अब उस [illegible] क्षेत्र और क्षेत्रज्ञको जो जानना है, वही [illegible] ज्ञान है—इस [illegible] द्वारा वर्णन करते हैं—

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥ ७॥

* यह समष्टि मनका कारणरूप एक भेद है। अहंकार ही [illegible] और उसका [illegible] कारण है तथा महत्तत्त्वका कार्य है, इसीको 'अहंभाव' भी कहते हैं। यहाँ 'अहंकार' शब्द उसीका वाचक है।

† जिसे 'महत्तत्त्व' (महान्) और 'समष्टि बुद्धि' भी कहते हैं, जो समष्टि अन्तःकरणका एक भेद है, निश्चय ही जिसका लक्षण है—उसको यहाँ 'बुद्धि' कहा गया है।

‡ यहाँ 'अव्यक्त' का अर्थ मूल प्रकृति समझना चाहिये। जो महत्तत्त्व आदि समस्त पदार्थोंकी कारणरूपा है, सांख्यशास्त्रमें जिसका 'प्रधान' कहते हैं, भगवान्‌ने गीताके चौदहवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें जिसको 'महद्ब्रह्म' कहा है तथा इस अध्यायके उन्नीसवें श्लोकमें जिसको 'प्रकृति' नाम दिया गया है।

§ वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पैर), उपस्थ और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं तथा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, ये सब मिलकर दस इन्द्रियाँ हैं। इन सबका कारण अहंकार है।

× यहाँ 'मन' शब्दसे उस मनको ही बतलाया गया है जो समष्टि अन्तःकरणकी मनन करनेवाली शक्ति-विशेष है, संकल्प-विकल्प ही जिसका लक्षण है। यह भी अहंकारका कार्य है।

\+ यहाँ 'पाँच इन्द्रियोंके विषयों' से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध समझना चाहिये, जो कि पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके स्थूल विषय हैं। ये सूक्ष्म भूतोंके कार्य हैं।

\+ जिन पदार्थोंको मनुष्य सुखके हेतु और दुःखनाशक समझता है, उनको प्राप्त करनेकी जो आसक्तियुक्त कामना है—जिसके [illegible] तृष्णा, आशा, लालसा और स्पृहा आदि अनेकों भेद हैं—उसीका वाचक यहाँ 'इच्छा' शब्द है।

S जिन पदार्थोंको मनुष्य दुःखके हेतु या सुखमें बाधक समझता है, उनमें जो विरोध-बुद्धि होती है, उसका नाम 'द्वेष' है। इसके स्थूलरूप वैर, ईर्ष्या, घृणा और क्रोध आदि हैं।

A अनुकूलकी प्राप्ति और प्रतिकूलकी निवृत्तिसे अन्तःकरणमें जो प्रसन्नताकी वृत्ति होती है, उसका नाम 'सुख' है।

B प्रतिकूलकी प्राप्ति और अनुकूलके वियोगसे जो अन्तःकरणमें व्याकुलता होती है, जिसे व्यथा भी कहते हैं—उसका वाचक 'दुःख' है।

C अन्तःकरणकी जो ज्ञान-शक्ति है, जिसके द्वारा प्राणी सुख-दुःख और समस्त पदार्थोंका अनुभव करते हैं, जिसे गीताके दसवें अध्यायके बाईसवें श्लोकमें 'चेतना' कहा गया है, उसीका वाचक यहाँ 'चेतना' है। यह भी अन्तःकरणकी वृत्तिविशेष है, अतएव इसकी भी गणना क्षेत्रके विकारोंमें की गयी है।

D गीताके अठारहवें अध्यायके तैंतीसवें, चौंतीसवें और पैंतीसवें श्लोकोंमें जिस धारणशक्तिके सात्त्विक, राजस और तामस—तीन भेद किये गये हैं, उसीका वाचक यहाँ 'धृति' है। अन्तःकरणका विकार होनेसे इसकी गणना भी क्षेत्रके विकारोंमें की गयी है।

E पाँचवें श्लोकमें विकारोंसहित क्षेत्रका संक्षेपमें वर्णन हो गया, अर्थात् पाँचवें श्लोकमें क्षेत्रका स्वरूप [illegible] बतला दिया गया और छठेमें उसके विकारोंका वर्णन संक्षेपमें कर दिया गया।

१ अपनेको श्रेष्ठ, सम्माननीय, पूज्य या बहुत बड़ा समझना एवं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, पूजा आदिकी इच्छा करना अथवा बिना ही इच्छा किये इन सबके प्राप्त होनेपर प्रसन्न होना—यह मानित्व है। इन सबका न होना ही 'अमानित्व' है।

२ मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और पूजाके लिये, धनादिके लोभसे या किसीको ठगनेके अभिप्रायसे अपनेको धर्मात्मा, दानशील, भगवद्भक्त, ज्ञानी या महात्मा विख्यात करना और बिना ही हुए धर्मपालनका आडम्बर, दम्भ, पाखण्ड आदि।

[illegible] २—१२—

श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना*, क्षमाभाव†, मन-वाणी आदिकी सरलता‡, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा§, बाहर-भीतरकी शुद्धि×, अन्तःकरणकी स्थिरता+ और मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह÷

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥ ८॥

इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहंकारका भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करनाऽ॥ ८॥

भोगलालसा या उच्छृंखलतासे अथवा अन्य किसी भी प्रकारके गुणका ढोंग करना—'दम्भित्व' है; इसके सर्वथा अभावका नाम 'अदम्भित्व' है।

* किसी भी प्राणीको मन, वाणी या शरीरसे किसी प्रकार भी कभी कष्ट देना—मनसे किसीका बुरा चाहना; वाणीसे किसीको गाली देना, कठोर वचन कहना, किसीकी निन्दा करना या अन्य किसी प्रकारके दुःखदायक और अहितकारक वचन कहना; शरीरसे किसीको मारना, कष्ट पहुँचाना या किसी प्रकारसे भी हानि पहुँचाना आदि—ये सभी हिंसाके भेद हैं; इन सबके सर्वथा अभावका नाम 'अहिंसा' है अर्थात् किसी भी प्राणीको किसी प्रकार भी न सताना है।

† अपना अपराध करनेवालेके लिये किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव मनमें न रखना, उसके बदलेमें उसे इस लोक या परलोकमें दण्ड मिले—ऐसी इच्छा न रखना, और अपने अपराधीको वस्तुतः अपराधी ही न मानकर उसे सर्वथा क्षमा देना 'क्षमाभाव' है। सोलहवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें इसकी कुछ विस्तारसे व्याख्या की गयी है।

‡ जिस साधकमें मन, वाणी और शरीरकी सरलताका भाव पूर्णरूपसे आ जाता है, वह सबके साथ सरलताका व्यवहार करता है; उसमें कुटिलताका सर्वथा अभाव हो जाता है, अर्थात् उसके व्यवहारमें दाव-पेंच, कपट या टेढ़ापन जरा भी नहीं रहता; वह बाहर और भीतरसे सदा समान और सरल रहता है।

§ विद्या और सदुपदेश देनेवाले गुरुका नाम 'आचार्य' है; ऐसे गुरुके पास रहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरके द्वारा सब प्रकारसे उनको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना, नमस्कार करना, उनकी आज्ञाओंका पालन करना और उनके अनुकूल आचरण करना आदि 'आचार्योपासन' यानी गुरुसेवा है।

× सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी शुद्धि होती है; उस द्रव्यसे उपार्जित अन्नसे आहारकी शुद्धि होती है; यथायोग्य शुद्ध बर्तावसे आचरणोंकी शुद्धि होती है और जल-मिट्टी आदिके द्वारा प्रक्षालनादि क्रियासे शरीरकी शुद्धि होती है। यह सब बाहरकी शुद्धि है। राग-द्वेष और छल-कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका स्वच्छ हो जाना भीतरकी शुद्धि है। दोनों ही प्रकारकी शुद्धियोंको 'शौच' कहते हैं।

+ बड़े-से-बड़े कष्ट, विपत्ति, भय या दुःखके आ पड़नेपर भी विचलित न होना; एवं काम, क्रोध, भय या लोभ आदिसे किसी प्रकार भी अपने धर्म और कर्तव्यसे जरा भी न डिगना तथा मन और बुद्धिमें किसी तरहकी चंचलताका न रहना 'अन्तःकरणकी स्थिरता' है।

÷ यहाँ 'आत्मा' से अन्तःकरण और इन्द्रियोंके सहित शरीरको समझना चाहिये; अतः इन सबको भलीभाँति अपने वशमें कर लेना ही इनका 'निग्रह' करना है।

इस लोक और परलोकके जितने भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप विषयपदार्थ हैं—अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा जिनका भोग किया जाता है और अज्ञानके कारण जिनको मनुष्य सुखके हेतु समझता है, किंतु वास्तवमें जो दुःखके कारण हैं—उन सबमें प्रीतिका सर्वथा अभाव हो जाना 'इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम्' है।

मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर—इन सबमें जो 'अहम्' बुद्धि हो रही है—अर्थात् अज्ञानके कारण जो इन अनात्मवस्तुओंमें आत्मबुद्धि हो रही है—इस देहाभिमानका सर्वथा अभाव हो जाना 'अनहंकार' कहलाता है।

ऽ जन्मका दुःख सहज नहीं है; पहले तो असहाय जीवको माताके गर्भमें लंबे समयतक अति मलिनतामें रहना होता है; फिर जन्मके समय योनिद्वारसे निकलनेमें असह्य वेदना भोगनी पड़ती है। नाना प्रकारकी योनियोंमें बार-बार जन्म ग्रहण करनेमें ये जन्म-दुःख होते हैं। मृत्युकालमें भी महान् कष्ट होता है; जिस शरीर और घरमें आजीवन ममता रही, उसे बलात्कारसे छोड़कर जाना पड़ता है। मरणासन्नके निकट बैठनेवालोंको भी उसकी शारीरिक पीड़ाको देखकर उस समयकी यन्त्रणाका बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। बुढ़ापेकी यन्त्रणा भी कम नहीं होती; इन्द्रियाँ शिथिल और शक्तिहीन हो जाती

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

पुत्र, स्त्री, घर और धन आदिमें आसक्तिका अभाव, ममताका न होना तथा प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना ॥ ९ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मुझ परमेश्वरमें अनन्य योगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना ॥ १० ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको ही देखना—यह सब ज्ञान है और जो इससे

है, शरीर जर्जर हो जाता है, समस्त अंग शिथिल हो जाते हैं ... ऐसी अवस्थामें जो कष्ट होता है, वह बड़ा ही भयानक होता है। इसी प्रकार रोगावस्थाकी पीड़ामें भी दुःसह पीड़ा होती है। अनेक प्रकारके नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। पराधीनता ... निरन्तर ... यही सब जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिके दुःख हैं। इन दुःखोंका बारंबार स्मरण करना और इनपर विचार करना ही इनमें दुःखोंको देखना है।

जन्म, मृत्यु, जरा आदि प्राप्त होते हैं—यह ... परिणाम ... ही दोष है। इसीका बारंबार विचार करना इनमें दोषोंको देखना है।

* यहाँ आसक्ति ... इन्द्रियोंके अर्थोंमें वैराग्य ... कही गयी ... पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि पदार्थोंके साथ मनुष्यका विशेष सम्बन्ध होनेके कारण प्रायः इनमें उसकी विशेष आसक्ति होती है, इसलिये इनमें आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जानेकी बात विशेषरूपसे पृथक् कही गयी है।

२ अहंकारके अभावके या पूर्वश्लोकमें अहंकार पदमें आ चुका है, इसीलिये यहाँ 'अनभिष्वङ्गः' पदसे ममताका अभाव किया गया है।

३ अनुकूलके संयोग और प्रतिकूलके वियोगमें चित्तमें हर्ष आदि न होना तथा प्रतिकूलके संयोग और अनुकूलके वियोगमें किसी प्रकारके शोक, भय और क्रोध आदिका न होना—सदा ही निर्विकार, एकरस, सम रहना—इसको प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें समचित्तता कहते हैं।

जहाँ किसी प्रकारका हल्ला-गुल्ला या भीड़-भाड़ न हो, जहाँ दूसरा कोई न रहता हो, जहाँ रहनेमें किसीको भी आपत्ति या क्षोभ न हो, जहाँ किसी प्रकारकी गंदगी न हो, जहाँ काँटे-कंकड़ और कूड़ा-कर्कट न हो, जहाँका प्राकृतिक दृश्य सुन्दर हो, जल, वायु और वातावरण निर्मल और पवित्र हों, किसी रोगकी बीमारी न हो, हिंसक प्राणियोंका और हिम का अभाव हो और जहाँ स्वाभाविक ही सात्त्विकताके परमाणु भरे हों—ऐसे देवालय, तपोभूमि, गंगा आदि पवित्र नदियोंके तट और पवित्र वन, गिरि-गुहा आदि निर्जन एकान्त और शुद्ध देशको 'विविक्तदेश' कहते हैं तथा ऐसे स्थानमें निवास करना ही उसका सेवन करना है।

५ यहाँ 'जनसंसदि' पद प्रमादी और विषयासक्त सांसारिक मनुष्योंके समुदायका वाचक है। ऐसे लोगोंके समुदायको साधनमें सब प्रकारसे बाधक समझकर उससे विरक्त रहना ही उसमें प्रेम नहीं करना है। ज्ञानी महात्मा और साधक पुरुषोंका संग तो साधनमें सहायक होता है, अतः उनके समुदायका वाचक यहाँ 'जनसंसदि' नहीं समझना चाहिये।

* भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं और वे ही हमारे स्वामी, शरण लेने योग्य, परम गति, परम आश्रय, माता-पिता, भाई-बन्धु, परम हितकारी, परम आत्मीय और सर्वस्व हैं, उनको छोड़कर हमारा अन्य कोई भी नहीं है—इस भावसे जो भगवान्‌के साथ अनन्य सम्बन्ध है, उसका नाम 'अनन्य योग' है तथा इस प्रकारके सम्बन्धसे केवल भगवान्‌में ही अटल और पूर्ण विशुद्ध प्रेम करके निरन्तर भगवान्‌का ही भजन, ध्यान करते रहना ही अनन्य योगके द्वारा भगवान्‌में अव्यभिचारिणी भक्ति करना है।

† आत्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी है; उससे भिन्न जो नाशवान्, जड़, विकारी और परिवर्तनशील वस्तुएँ प्रतीत होती हैं, वे सब अनात्मा हैं, आत्माका उनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है—इस प्रकार आत्मतत्त्वको भलीभाँति समझ लेना ही अध्यात्मज्ञान है और बुद्धिमें ठीक वैसा ही दृढ़ निश्चय करके मनसे उस आत्मतत्त्वका नित्य-निरन्तर मनन करते रहना 'अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थित रहना' है।

‡ तत्त्वज्ञानका अर्थ है—सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा; क्योंकि तत्त्वज्ञानसे उन्हींकी प्राप्ति होती है। उन सच्चिदानन्दघन गुणातीत परमात्माको सर्वत्र समभावसे नित्य-निरन्तर अनुभव करते रहना ही उस अर्थका दर्शन करना है।

§ 'अमानित्वम्' से लेकर 'तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्' तक जिनका वर्णन किया गया है, वे सभी ज्ञानप्राप्तिके साधन हैं

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥१२॥

सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ १३॥

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है;† क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।‡

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥ १४॥

वह सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है§ तथा आसक्तिरहित होनेपर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और निर्गुण होनेपर भी गुणोंको भोगनेवाला है।×

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ १५॥

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।Δ ॥ १५॥

---

* यह श्लोक श्वेताश्वतरोपनिषद् (३। १६) में अक्षरशः आया है।

† वह परब्रह्म परमात्मा सब ओर हाथवाला है, अतः कहीं भी कोई भी वस्तु भक्तिपूर्वक उसे ... ग्रहण करनेमें समर्थ है; इसी तरह वह सब जगह पैरवाला है, कहीं भी भक्त उसके चरणोंमें नमस्कारादि करते हैं, वह वहीं उसे स्वीकार कर लेता है; वह सब जगह आँखवाला है, उससे कुछ भी छिपा नहीं है; वह सब जगह सिर-वाला है, जहाँ कहीं भी भक्तलोग उसका सत्कार करनेके उद्देश्यसे पुष्प आदि उसके मस्तकपर चढ़ाते हैं, वे सब सीधे उसपर चढ़ते हैं; वह सब जगह मुखवाला है, अतः भक्त जहाँ भी उसको खानेकी वस्तु समर्पण करते हैं, वह वहीं उस वस्तुको स्वीकार कर सकता है; अर्थात् वह केवलरूप परमात्मा सबका साक्षी, सब कुछ देखनेवाला तथा सबकी पूजा और भोग स्वीकार करनेकी शक्तिवाला है; वह परमात्मा सब जगह सुननेकी शक्तिवाला है; जहाँ कहीं भी उसके भक्त उसकी स्तुति करते हैं या उससे प्रार्थना अथवा याचना करते हैं, उन सबको वह भलीभाँति सुनता है।

‡ आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका कारण होनेसे उनको व्याप्त किये हुए स्थित है, उसी प्रकार वह ब्रह्मरूप परमात्मा भी इस चराचर जीवसमुदायसहित समस्त जगत्‌का कारण होनेसे सबको व्याप्त किये हुए स्थित है, अतः यह सब कुछ उसीसे परिपूर्ण है।

§ अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें जो उसको सब जगह हाथ-पैरवाला और सब जगह इन्द्रियोंवाला बतलाया गया है, उससे यह बात नहीं समझनी चाहिये कि वह भी परमात्मा अन्य जीवोंकी भाँति हाथ आदि इन्द्रियोंवाला है; वह इस प्रकारकी इन्द्रियोंसे सर्वथा रहित होते हुए भी सब जगह उनका कार्य करनेमें और विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ है, इसलिये उसको सब जगह सब इन्द्रियोंवाला और सब इन्द्रियोंसे रहित कहा गया है। श्रुतिमें भी कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। (श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। १९)

'वह परमात्मा बिना पैरोंवाले ही सबसे वेगवाला और ग्रहण करनेवाला है तथा बिना नेत्रोंके देखता और बिना कानोंके ही सुनता है।'

अतएव उसका स्वरूप अलौकिक है, इस वर्णनमें यही बात समझायी गयी है।

× अभिप्राय यह है कि वह परमात्मा सब गुणोंका भोक्ता होते हुए भी अन्य जीवोंकी भाँति प्रकृतिके गुणोंसे लिप्त नहीं है; वह वास्तवमें गुणोंसे सर्वथा अतीत है, तो भी प्रकृतिके सम्बन्धसे समस्त गुणोंका भोक्ता है, यही उसकी अलौकिकता है।

श्रुतिमें भी कहा है— तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ (ईशोपनिषद् ५) अर्थात् वह चलता है और नहीं भी चलता है, वह दूर भी है और समीप भी है, वह इस सम्पूर्ण जगत्‌के भीतर भी है और इस सबके बाहर भी है।

वह परमात्मा चराचर भूतोंके बाहर और भीतर भी है, इससे कोई यह बात न समझ ले कि चराचर भूत उससे भिन्न होंगे, इसीको स्पष्ट करनेके लिये कहते हैं कि चराचर भूत भी वही है; अर्थात् जैसे बरफके बाहर-भीतर भी जल है और स्वयं बरफ भी वस्तुतः जल ही है—उसमें जल और बरफ दो नहीं हैं, उसी प्रकार यह समस्त चराचर जगत् उस परमात्माका ही स्वरूप है, उससे भिन्न नहीं है।

जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित परमाणुरूप जल साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता—उनके लिये वह दुर्विज्ञेय है, उसी प्रकार वह सर्वव्यापी परमात्मा भी उस परमाणुरूप जलकी अपेक्षा भी अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता; इसलिये वह अविज्ञेय है।

Δ सम्पूर्ण जगत्‌के भीतर और बाहर ऐसी कोई भी जगह नहीं है, जहाँ परमात्मा न हो; इसलिये वह [illegible]

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ १६॥

वह परमात्मा विभागरहित एक रूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है*; तथा वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और रुद्ररूपसे संहार करनेवाला तथा ब्रह्मारूपसे सबको उत्पन्न करनेवाला है॥ १६॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ १७॥

वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति† एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य‡ है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है§॥ १७॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥ १८॥

इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जाननेयोग्य परमात्माका स्वरूप संक्षेपसे कहा गया×। मेरा भक्त इसको तत्त्वसे जानकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है+॥ १८॥

सम्बन्ध—इस अध्यायके तीसरे श्लोकमें भगवान्‌ने क्षेत्रके विषयमें जो बातें सुननेके लिये कहा था, उनका वर्णन करके अब क्षेत्रज्ञके विषयमें कहना आरम्भ करते हुए पहले प्रकृति और पुरुषकी अनादिता तथा विकार और गुणोंको प्रकृतिजन्य बतलाते हैं—

जनोंसे भी है और दूरसे भी दूर है, क्योंकि जो मनुष्य दूर और समीप नहीं है, उन सभी स्थानोंमें वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा सदा ही परिपूर्ण है। इसलिये उस तत्त्वको समझनेवाले श्रद्धालु मनुष्योंके लिये वह परमात्मा अत्यन्त समीप है और अश्रद्धालुके लिये अत्यन्त दूर है।

* इस श्लोकमें उस जाननेयोग्य परमात्माके एकत्वका प्रतिपादन किया गया है। अभिप्राय यह है कि जैसे महाकाश वास्तवमें विभागरहित है, तो भी भिन्न-भिन्न घड़ोंके सम्बन्धसे विभक्त-सा प्रतीत होता है, वैसे ही परमात्मा वास्तवमें विभागरहित है, तो भी समस्त चराचर प्राणियोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे पृथक्-पृथक्के सदृश स्थित-सा प्रतीत होता है; किंतु यह भिन्नता केवल प्रतीतिमात्र ही है। वास्तवमें वह परमात्मा एक है और वह सर्वत्र परिपूर्ण है।

यहाँ 'तमसः' पद अन्धकार और अज्ञान अर्थात् मायाका वाचक है और वह परमात्मा स्वयं ज्योति तथा ज्ञानस्वरूप है; अन्धकार और अज्ञान उसके निकट नहीं रह सकते। इसलिये उसे मायासे अत्यन्त परे—इससे सर्वथा रहित बतलाया गया है।

२. उसे पुनः जोर देकर यह भाव दिखलाया गया है कि जिस क्षेत्रज्ञके वर्णनसे श्लोकसे प्रकरण आरम्भ किया गया है, उस परमात्माका ज्ञान प्राप्त कर लेना ही इस मनुष्य-शरीरका परम कर्तव्य है। इस ज्ञानकी प्राप्तिका एकमात्र साधन परमात्मा ही है। अतएव उसका तत्त्व जाननेके लिये साधनोंका पूर्णरूपसे उपयोग करना चाहिये, अपने अमूल्य जीवनको सांसारिक भोगोंमें लगाकर नष्ट नहीं कर डालना चाहिये।

† चन्द्रमा, सूर्य, विद्युत्, तारे आदि जितनी भी बाह्य ज्योतियाँ हैं; बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ आदि जितनी आध्यात्मिक ज्योतियाँ हैं, तथा विभिन्न लोकों और वस्तुओंके अधिष्ठातृ-देवतारूप जो देवगण हैं—उन सबका प्रकाशक वह परमात्मा है तथा उन सबमें जितनी प्रकाशनशक्ति है, वह भी उसी परमात्माके प्रकाशका एक अंशमात्र है।

‡ अभिप्राय यह है कि पूर्वोक्त अमानित्वादि ज्ञान-साधनोंके द्वारा तत्त्वज्ञानसे वह जाना जाता है।

§ वह परमात्मा सब जगह समान भावसे परिपूर्ण होते हुए भी हृदयमें उसकी विशेष अभिव्यक्ति है। जैसे सूर्यका प्रकाश सब जगह समानरूपसे फैला रहनेपर भी दर्पण आदिमें उसके प्रतिबिम्बकी विशेष अभिव्यक्ति होती है एवं सूर्यमुखी शीशेमें उसका तेज अत्यन्त प्रकट होकर अग्नि उत्पन्न कर देता है, अन्य पदार्थोंमें उस प्रकारकी अभिव्यक्ति नहीं होती, उसी प्रकार हृदय उस परमात्माकी उपलब्धिका स्थान है। अतएव हृदयमें तो वह प्रत्यक्ष ही प्रकट है। यही बात समझानेके लिये उसका सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित बतलाया गया है।

× इस अध्यायके पाँचवें और छठे श्लोकोंमें विकारोंसहित क्षेत्रके स्वरूपका वर्णन किया गया है, सातवेंसे ग्यारहवें श्लोकतक ज्ञानके नामसे ज्ञानके बीस साधनोंका और बारहवेंसे सत्रहवेंतक ज्ञेय अर्थात् जाननेयोग्य परमात्माके स्वरूपका वर्णन किया गया है।

+ क्षेत्रको प्रकृतिका कार्य तथा विकारी, अनित्य और नाशवान् समझना; ज्ञानके साधनोंको भलीभाँति धारण करना और उनके द्वारा भगवान्‌के निर्गुण, सगुण रूपको भलीभाँति समझ लेना—यही क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेयको जानना है तथा इस प्रकार परमात्माको जान लेना ही भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त हो जाना है।

[illegible] और आत्मतत्त्व [illegible] वर्णन [illegible] किया गया। [illegible] अब [illegible] का और [illegible] कार्य [illegible] होता है [illegible] मुख्य [illegible] पुरुष [illegible] प्रकरण [illegible] है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥ १९ ॥

प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको ही अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारोंको तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थोंको भी प्रकृतिसे ही उत्पन्न जान।

[illegible] है, [illegible] ॥ [illegible] करके [illegible] सुखदुःख [illegible] और [illegible] सुख [illegible] करते हैं, [illegible] वर्णन किया गया है—

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

[illegible] और करणको उत्पन्न करनेमें हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखोंके भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें हेतु कहा जाता है §।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

प्रकृतिमें स्थित ही × [illegible] प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही इस

इसी अध्यायके [illegible] श्लोकोंमें [illegible] आदि विकारोंका वर्णन किया गया है—उन सबका वाचक यहाँ 'विकारान्' पद है। [illegible] सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंका और इनसे उत्पन्न समस्त जड पदार्थोंका वाचक 'गुणान्' पद है। इन दोनोंको प्रकृतिसे उत्पन्न [illegible] यह भाव दिखलाया है कि सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंका नाम प्रकृति नहीं है, [illegible] ये तीनों गुण [illegible] उससे उत्पन्न होते हैं। [illegible] इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये भगवान्‌ने गीताके चौदहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें सत्त्व, रज और तम—इन प्रकार तीनों गुणोंको [illegible] प्रकृतिसम्भव बतलाया है।

यहाँ 'प्रकृति' शब्द ईश्वरकी अनादिसिद्ध मूल प्रकृतिका वाचक है। [illegible] अध्यायके [illegible] श्लोकमें इसीको [illegible] नामसे कहा गया है, [illegible] और [illegible] नामसे और इसी अध्यायके [illegible] श्लोकमें [illegible] नामसे भी इसीका वर्णन है। [illegible] यहाँ [illegible] अध्यायमें [illegible]—[illegible] बुद्धि, अहंकार और पञ्चमहाभूतादि [illegible] प्रकृति [illegible] है और यहाँ केवल मूल प्रकृति [illegible] है।

[illegible] जीवात्मा अर्थात् प्रकृतिस्थ [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है, [illegible] अनादि सिद्ध है और इसी प्रकार ईश्वरकी शक्ति यह प्रकृति भी अनादिसिद्ध है—ऐसा समझना चाहिये।

‡ आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, [illegible] शब्द, स्पर्श, [illegible] रस और गन्ध—ये पाँचों इन्द्रियोंके विषय, इन [illegible] वाचक [illegible] है; बुद्धि, अहंकार और मन—ये तीनों अन्तःकरण; श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण—ये पाँचों [illegible] [illegible] और गुदा—ये पाँचों कर्मेन्द्रियाँ [illegible] [illegible] शब्द हैं। [illegible] सब प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं, प्रकृति ही इनका उपादान कारण है; क्योंकि प्रकृतिसे महत्तत्त्व, [illegible] [illegible] पाँच सूक्ष्म महाभूत, मन और दस इन्द्रियाँ तथा पाँच सूक्ष्म महाभूतोंसे पाँचों इन्द्रियोंके शब्दादि पाँचों स्थूल विषयोंकी उत्पत्ति [illegible] है। सांख्यकारिकामें भी कहा है—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः । तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥

(सांख्यकारिका)

प्रकृतिसे महत्तत्त्व—समष्टिबुद्धि, [illegible] बुद्धितत्त्वसे [illegible] अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ, एक मन और दस इन्द्रियाँ—इन सोलह [illegible] उत्पत्ति हुई [illegible] उन सोलहमेंसे [illegible] तन्मात्राओंसे पाँच स्थूल भूतोंकी उत्पत्ति हुई।

[illegible] तन्मात्राओंको [illegible] पाँच सूक्ष्म महाभूतोंके नामसे [illegible] है और [illegible] स्थूल भूतोंके [illegible] पाँच इन्द्रियोंके विषयोंका नाम [illegible] है, इतना ही भेद है।

§ प्रकृति जड है, उसमें भोक्तापनकी सम्भावना नहीं है और पुरुष असङ्ग है; इसलिये उसमें भी वास्तवमें भोक्तापन नहीं है। प्रकृतिके सङ्गसे ही पुरुषमें भोक्तापनकी प्रतीति होती है और यह प्रकृति-पुरुषका सङ्ग अनादि है। इसलिये यहाँ पुरुषको सुख-दुःखोंके भोक्तापनमें हेतु यानी निमित्त माना गया है।

× प्रकृतिसे बने हुए स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंमेंसे किसी भी शरीरके साथ सम्बन्ध रहते जीवात्मा

जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है ।

सम्बन्ध—इस प्रकार प्रकृतिस्थ पुरुषके स्वरूपका वर्णन करने के बाद अब जीवात्मा और परमात्माकी एकता करते हुए आत्माके गुणातीत स्वरूपका वर्णन करते हैं—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

इस देहमें स्थित यह आत्मा वास्तवमें परमात्मा ही है । वही साक्षी होनेसे उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता, ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—ऐसा कहा गया है ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

इस प्रकार पुरुषको और गुणोंके सहित प्रकृतिको जो मनुष्य तत्त्वसे जानता है वह सब प्रकारसे कर्तव्य कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता ॥ २३ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार गुणोंके सहित प्रकृतिके और पुरुषके तत्त्व-का महत्त्व सुनकर यह इच्छा हो सकती है कि ऐसा ज्ञान कैसे होता है । इसलिये अब दो श्लोकोंद्वारा भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके लिये तत्त्वज्ञानके भिन्न-भिन्न साधनोंका प्रतिपादन करते हैं—

का सम्बन्ध रहता है तबतक वह प्रकृतिमें स्थित 'प्रकृतिस्थ' कहलाता है । अतएव यहाँ आगे प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रहता है, तबतक वह प्रकृतिजनित गुणोंका भोक्ता है ।

* मनुष्यसे लेकर उससे ऊँची जितनी भी देवादि योनियाँ हैं, सब सत्-योनियाँ हैं और मनुष्यसे नीची जितनी भी पशु, पक्षी, वृक्ष और लता आदि योनियाँ हैं वे असत् हैं । सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंके साथ जो जीवका अनादिसिद्ध सम्बन्ध है एवं उनके कार्यरूप सांसारिक पदार्थोंमें जो आसक्ति है, वही गुणोंका सङ्ग है । जिस मनुष्यकी जिस गुणमें या उसके कार्यरूप पदार्थमें आसक्ति होगी, उसकी वैसी ही वासना होगी, वासनाके अनुसार ही अन्तकालमें स्मृति होगी और उसीके अनुसार उसे पुनर्जन्म प्राप्त होगा । इसीलिये यहाँ अच्छी-बुरी योनियोंकी प्राप्तिमें गुणोंके सङ्गको कारण बतलाया गया है ।

† प्रकृतिजनित शरीरोंकी उपाधिसे जो चेतन आत्मा अज्ञानके कारण जीवभावको प्राप्त-सा प्रतीत होता है, वह केवल वास्तवमें इस उपाधिसे सर्वथा रहित परमात्मा ही है, क्योंकि उस परमात्मामें और क्षेत्रज्ञमें वस्तुतः किसी प्रकारका भेद नहीं है । केवल शरीररूप उपाधिसे ही भेदकी प्रतीति हो रही है ।

‡ इस कथनसे इस बातका प्रतिपादन किया गया है कि भिन्न-भिन्न निमित्तोंसे एक ही सर्वव्यापी परमात्मा भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है, वस्तुतः उसमें किसी प्रकारका भेद नहीं है ।

§ जितने भी पृथक्-पृथक् क्षेत्रज्ञोंकी प्रतीति होती है, सब उस एक परब्रह्म परमात्माके ही अभिन्न स्वरूप हैं; प्रकृतिके सङ्गसे उनमें भिन्नता-सी प्रतीत होती है, वस्तुतः कोई भेद नहीं है और वह परमात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और अविनाशी तथा प्रकृतिसे सर्वथा अतीत है—इस बातको संशयरहित यथार्थ समझ लेना एवं एकीभावसे उस सच्चिदानन्दघनमें नित्य स्थित हो जाना ही 'पुरुषको तत्त्वसे जानना' है । तीनों गुण प्रकृतिसे उत्पन्न हैं, यह समस्त विश्व प्रकृतिका ही पसारा है और यह नाशवान्, क्षणभङ्गुर और अनित्य है—इस रहस्यको समझ लेना ही 'गुणोंके सहित प्रकृतिको तत्त्वसे जानना' है ।

× यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—किसी भी वर्णमें एवं ब्रह्मचर्यादि किसी भी आश्रममें रहता हुआ तथा उन-उन वर्णाश्रमोंके लिये शास्त्रोंमें विधान किये हुए समस्त कर्मोंको यथायोग्य करता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता ।

यहाँ 'सर्वथा वर्तमान' का अर्थ निषिद्ध कर्म करता हुआ नहीं समझना चाहिये; क्योंकि आत्मतत्त्वको जानने वाले ज्ञानीमें काम-क्रोधादि दोषोंका सर्वथा अभाव हो जानेके कारण (गीता ५ । २६) उसके द्वारा निषिद्ध कर्मोंका बनना सम्भव नहीं है । इसीलिये उसके आचरण जगत्में प्रमाणरूप माने जाते हैं (गीता ३ । २१) । पापोंमें मनुष्यकी प्रवृत्ति काम-क्रोधादि अवगुणोंके कारण ही होती है, भगवान्ने पूछनेपर अर्जुनको तीसरे अध्यायके सैंतीसवें श्लोकमें इस बातको स्पष्टरूपसे कह भी दिया है ।

+ प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको जान लेनेके साथ ही पुरुषका प्रकृतिसे सम्बन्ध टूट जाता है, क्योंकि प्रकृति और पुरुषका संयोग अज्ञानजनित और केवल काल्पनिक कहा गया है । जबतक प्रकृति और पुरुषका पूर्णज्ञान नहीं होता, तभीतक पुरुषका प्रकृतिसे और उसके गुणोंसे सम्बन्ध रहता है और तभीतक उसका बार-बार नाना योनियोंमें जन्म होता है (गीता १३ । २१) । अतएव इनका तत्त्व जान लेनेके बाद पुनर्जन्म नहीं होता ।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं*; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा† और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा‡ देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं ॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

परंतु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं§, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार परमात्मसम्बन्धी उपदेशको भिन्न-भिन्न साधनोंका प्रतिपादन करके अब ... पहले ... कहा था, उसके अनुसार भगवान् क्षेत्रक्षेत्रज्ञ ... उत्पत्ति विनाशशील ... का ... समझाकर ... उत्पन्न ... बतलाते हैं—

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

हे अर्जुन! यावन्मात्र जितने भी स्थावर-जङ्गम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही उत्पन्न जान×॥ २६ ॥

---

* गीताके छठे अध्यायमें ... बतलायी हुई विधिके अनुसार शुद्ध और एकान्त स्थानमें उपयुक्त आसनपर निश्चलभावसे बैठकर इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर, मनको वशमें करके तथा एक परमात्माके सिवा दृश्यमात्रको भूलकर निरन्तर परमात्माका चिन्तन करना ध्यान है। इस प्रकार ध्यान करते रहनेसे बुद्धि शुद्ध हो जाती है और उस विशुद्ध सूक्ष्म बुद्धिसे जो हृदयमें सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार किया जाता है, वही ध्यानद्वारा आत्मासे आत्मामें आत्माको देखना है।

परन्तु भगवान् सगुण-निराकारका और सगुण-साकारका ध्यान करनेवाले साधक भी यदि इस प्रकारका फल चाहते हों तो उनको भी भगवत्कृपासे निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है।

† सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जल अथवा स्वप्नकी सृष्टिके सदृश मायामात्र हैं; इसलिये मायाके कार्यरूप समस्त गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं—ऐसा समझकर मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हो जाना तथा सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे नित्य स्थित रहते हुए एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा अन्य किसीके भी भिन्न सत्ताको न समझना—यह 'सांख्ययोग' नामक साधन है और इसके द्वारा जो आत्मा और परमात्माके अभेदका प्रत्यक्ष होकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका अभिन्न भावसे प्राप्त हो जाना है, वही सांख्ययोगके द्वारा आत्माको आत्मामें देखना है।

यह साधन साधनचतुष्टयसम्पन्न अधिकारियोंके द्वारा ही सुगमतासे किया जा सकता है। इसका विस्तार 'गीतातत्त्व-विवेचनी' में देखना चाहिये।

‡ यहाँ 'कर्मयोग' शब्दसे दूसरे अध्यायमें चालीसवेंसे त्रेपनवें श्लोकतक समत्वरूप कर्मयोगका वर्णन किया गया है, उसका वाचक यहाँ 'कर्मयोग' है। अर्थात् आसक्ति और कामनाका सर्वथा त्याग करके सिद्धि और असिद्धिमें समत्व रखते हुए शास्त्रानुसार निष्कामभावसे अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार सब प्रकारके विहित कर्मोंका अनुष्ठान करना कर्मयोग है और इसके द्वारा जो सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माका अभिन्नभावसे प्राप्त हो जाना है, वही कर्मयोगके द्वारा आत्माको आत्मामें देखना है।

§ बुद्धिकी मन्दताके कारण जो लोग पूर्वोक्त ध्यानयोग, सांख्ययोग और कर्मयोग—इनमेंसे किसी भी साधनको भलीभाँति नहीं समझ पाते, ऐसे साधकोंका वाचक यहाँ 'अन्ये' और 'अजानन्तः' विशेषणके सहित आया गया है।

तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंके आदेश प्राप्त करके अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमके साथ जो तदनुसार शुभ लक्षणोंकी भाँति उनके अनुसार आचरण करना ही यहाँ दूसरोंसे सुनकर उपासना करना है।

तेईसवें श्लोकमें जो बात 'न स भूयोऽभिजायते' से और चौबीसवेंमें जो बात 'आत्मनि आत्मानं पश्यन्ति' से कही है, वही बात यहाँ 'मृत्युं अतितरन्ति' से कही गयी है।

× इस अध्यायके पाँचवें श्लोकमें जिन चौबीस तत्त्वोंके समुदायको क्षेत्रका स्वरूप बतलाया गया है, गीताके सातवें अध्यायके चौथे-पाँचवें श्लोकोंमें जिसको 'अपरा प्रकृति' कहा गया है, वही क्षेत्र है; और उसको जो जाननेवाला है,

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ २७॥

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समभावसे स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है॥ २७॥*

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम्॥ २८॥

क्योंकि जो पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपनेद्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता,† इससे वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ २८॥

सम्बन्ध—इस प्रकार नित्य विज्ञानस्वरूप आत्माको सम्यक् समभावसे देखनेका महत्त्व और उसका फल बतलाकर अब उसके अकर्तापनको देखनेवालेकी महिमा कहते हैं—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति॥ २९॥

और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिके द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्माको अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है॥‡ २९॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३०॥

जिसको गीताके सातवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें 'परा प्रकृति' कहा गया है, वह चेतन तत्त्व ही 'क्षेत्रज्ञ' है। उसका जो अज्ञानी पुरुषका ... नाना भिन्न-भिन्न सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंके साथ सम्बन्ध होता है, यही क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका संयोग है और उसके होते ही जो भिन्न-भिन्न योनियोंद्वारा भिन्न-भिन्न आकृतियोंमें प्राणियोंका प्रकट होना है, यही उनका उत्पन्न होना है।

* यहाँ 'परमेश्वर' शब्द प्रकृतिसे सर्वथा अतीत उस निर्विकार चेतन तत्त्वका वाचक है, जिसका वर्णन क्षेत्रज्ञके साथ एकता करते हुए इसी अध्यायके बाईसवें श्लोकमें 'उपद्रष्टा', 'अनुमन्ता', 'भर्ता', 'भोक्ता', 'महेश्वर' और 'परमात्मा' के नामसे किया गया है। समस्त प्राणियोंके जितने भी शरीर हैं, जिनके सम्बन्धसे वे विनाशशील कहे जाते हैं, उन समस्त शरीरोंमें उनके वास्तविक स्वरूपभूत एक ही अविनाशी निर्विकार चेतनतत्त्व परमात्माको जो विनाशशील बादलोंमें आकाशकी भाँति समभावसे स्थित और नित्य देखना है—यही उस परमेश्वरको समस्त प्राणियोंमें विनाशरहित और समभावसे स्थित देखना है।

† एक ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा सर्वत्र समभावसे स्थित है, अज्ञानके कारण ही भिन्न-भिन्न शरीरोंमें उसकी भिन्नता प्रतीत होती है—वस्तुतः उसमें किसी प्रकारका भेद नहीं है—इस तत्त्वको भलीभाँति समझकर प्रत्यक्ष कर लेना ही समस्त प्राणियोंमें स्थित परमेश्वरको सम देखना है। जो इस तत्त्वको नहीं जानते, उनका देखना सम देखना नहीं है; क्योंकि उनकी सबमें विषमबुद्धि होती है। वे किसीको अपना प्रिय हितैषी और किसीको अप्रिय तथा अहित करनेवाला समझते हैं एवं अपने आपको दूसरोंसे भिन्न एकदेशीय मानते हैं। अतएव वे शरीरोंके जन्म और मरणको अपना जन्म और मरण माननेके कारण बार-बार नाना योनियोंमें जन्म लेकर मरते रहते हैं; यही उनका अपनेद्वारा अपनेको नष्ट करना है। परंतु जो पुरुष उपर्युक्त प्रकारसे एक ही परमेश्वरको समभावसे स्थित देखता है, वह न तो अपनेको उस परमेश्वरसे भिन्न समझता है और न इन शरीरोंसे अपना कोई सम्बन्ध ही मानता है। इसलिये वह शरीरोंके विनाशसे अपना विनाश नहीं देखता और इसीलिये वह अपने द्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता। अभिप्राय यह है कि उसकी स्थिति सर्वत्र अविनाशी सच्चिदानन्दघन परमात्मामें अभिन्नभावसे हो जाती है, अतएव वह सदाके लिये जन्म-मरणसे छूट जाता है।

‡ गीताके तीसरे अध्यायके सत्ताईसवें, अट्ठाईसवें और चौदहवें अध्यायके उन्नीसवें श्लोकोंमें समस्त कर्मोंको गुणोंद्वारा किये जाते हुए बतलाया गया है; तथा पाँचवें अध्यायके आठवें, नवें श्लोकोंमें सब इन्द्रियोंका इन्द्रियोंके विषयोंमें बरतना कहा गया है और यहाँ सब कर्मोंको प्रकृतिद्वारा किये जाते हुए देखनेकी बात कही है। इस प्रकार तीन प्रकारसे कहनेका तात्पर्य एक ही है; क्योंकि सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिके ही कार्य हैं तथा समस्त इन्द्रियाँ और मन, बुद्धि आदि एवं इन्द्रियोंके विषय—ये सब भी गुणोंके ही विस्तार हैं। अतएव इन्द्रियोंका इन्द्रियोंके विषयोंमें बरतना, गुणोंका गुणोंमें बरतना और गुणोंद्वारा समस्त कर्मोंको किये जाते हुए बतलाना भी सब कर्मोंको प्रकृतिद्वारा ही किये जाते हुए बतलाना है। अतः यहाँ कर्तापनके अभिमानका अभाव दिखलाया है।

आत्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और सब प्रकारके विकारोंसे रहित है। प्रकृतिसे उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; वास्तवमें वह न किसी भी कर्मका कर्ता है और न कर्मोंके फलका भोक्ता ही है—इस तत्त्वको आत्मभावसे अनुभव कर लेना आत्माको अकर्ता समझना है; तथा जो ऐसा देखता है, वही यथार्थ देखता है।

जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है* उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ ३० ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अध्यायके आदिसे परमात्माको समभावसे स्थित, निर्विकार और अकर्ता बतलाकर अब यह शंका होती है कि समस्त शरीरोंमें रहता हुआ भी आत्मा उन दोषोंसे निर्लिप्त और अकर्ता कैसे रह सकता है? इस शंकाका निवारण करनेके लिये भगवान् इस अध्यायके अन्ततक तीन श्लोकोंद्वारा आत्माके प्रभावका वर्णन करते हैं—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन! अनादि होनेसे और निर्गुण होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित होनेपर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है† ॥ ३१ ॥

सम्बन्ध—शरीरमें स्थित होनेपर भी आत्मा क्यों नहीं लिप्त होता, इसपर कहते हैं—

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होनेके कारण देहके गुणोंसे लिप्त नहीं होता‡ ॥ ३२ ॥

सम्बन्ध—इसी प्रकार स्थित होनेपर भी आत्मा कर्ता क्यों नहीं है, इसपर कहते हैं—

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है× ॥ ३३ ॥

---

* जैसे स्वप्नसे जगा हुआ मनुष्य स्वप्नकालमें दिखलायी देनेवाले समस्त प्राणियोंके नानात्वको अपने आपमें ही देखता है और यह भी समझता है कि उन सबका विस्तार मुझसे ही हुआ था, वस्तुतः स्वप्नकी सृष्टिमें मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था, एक मैं ही अपने-आपको अनेक रूपोंमें देख रहा था—इसी प्रकार जो समस्त प्राणियोंको केवल एक परमात्मामें ही स्थित और उसीसे सबका विस्तार देखता है, वही ठीक देखता है और इस प्रकार देखना ही सबको एकमें स्थित और उसी एकसे सबका विस्तार देखना है।

इस अध्यायके सत्ताईसवें श्लोकमें जिसको 'परमेश्वर', अट्ठाईसवेंमें 'ईश्वर', उनतीसवेंमें 'आत्मा' और तीसवेंमें 'ब्रह्म' कहा गया है, उसीको यहाँ 'परमात्मा' बतलाया गया है; अर्थात् इन सबकी अभिन्नता (एकता) बतलानेके लिये यहाँ 'अयम्' पदका प्रयोग किया गया है।

† जिसका कोई आदि यानी कारण न हो एवं जिसकी किसी भी कालमें नयी उत्पत्ति न हुई हो और जो सदासे ही हो, उसे 'अनादि' कहते हैं। प्रकृति और उसके गुणोंसे जो सर्वथा अतीत हो, गुणोंमें और गुणोंके कार्यसे जिसका किसी कालमें और किसी भी अवस्थामें वास्तविक सम्बन्ध न हो, उसे 'निर्गुण' कहते हैं। अतएव यहाँ 'अनादि' और 'निर्गुण'—इन दोनों शब्दोंका प्रयोग करके यह दिखलाया गया है कि जिसका प्रकरण चल रहा है, वह आत्मा 'अनादि' और 'निर्गुण' है, इसलिये वह अकर्ता, निर्लिप्त और अव्यय है—जन्म, मृत्यु आदि छः विकारोंसे सर्वथा अतीत है।

‡ जैसे आकाश बादलोंमें स्थित होनेपर भी उनका कर्ता नहीं बनता और उनसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही आत्मा कर्मोंका कर्ता नहीं बनता और शरीरोंसे लिप्त भी नहीं होता।

§ आकाशके दृष्टान्तसे आत्माकी निर्लेपता सिद्ध की गयी है। अभिप्राय यह है कि जैसे आकाश वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें सब जगह व्याप्त रहते हुए भी उनके गुण-दोषोंसे किसी तरह भी लिप्त नहीं होता, वैसे ही आत्मा भी इन शरीरोंमें सब जगह व्याप्त रहते हुए भी अत्यन्त सूक्ष्म और गुणोंसे सर्वथा अतीत होनेके कारण बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरके गुण-दोषोंसे जरा भी लिप्तायमान नहीं होता।

× इस श्लोकमें रवि (सूर्य) का दृष्टान्त देकर आत्मामें अकर्तापनकी और 'रवि' शब्दके साथ 'एक' विशेषण देकर आत्माके एकत्वभावकी सिद्धि की गयी है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार एक ही सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा समस्त क्षेत्रको—(इसी अध्यायके पाँचवें और छठे श्लोकोंमें विकारसहित जिसके नामसे क्षेत्रके स्वरूपका वर्णन किया गया है) उस समस्त जडवर्गरूप सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है। सूर्यसे जैसे सबकी चेष्टा होती है तथा भिन्न-भिन्न अन्तःकरणोंके सम्बन्धसे भिन्न-भिन्न शरीरोंमें उसका भिन्न-भिन्न प्राकट्य होता-सा देखा जाता है, ऐसा होनेपर भी यह आत्मा सूर्यकी भाँति न तो उनके कर्मोंको करनेवाला और न करानेवाला ही होता है तथा न देहादिके विकारोंसे

सम्बन्ध—तीसरे श्लोकमें जिन [illegible] बातोंको सुननेका [illegible] संकेत किया था, उनका वर्णन करके अब इस अध्याय[illegible] [illegible] उपदेशको भलीभाँति समझानेके [illegible] [illegible] फल बतलाते हुए अध्यायका उपसंहार करते हैं—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ ३४॥

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको जो पुरुष ज्ञाननेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥ भीष्मपर्वणि तु सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें [illegible] क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥ भीष्मपर्वमें सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अष्टात्रिंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीतायां चतुर्दशोऽध्यायः)

ज्ञानकी महिमा और प्रकृति पुरुषसे जगत्‌की उत्पत्तिका, सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंका, भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं गुणातीत पुरुषके लक्षणोंका वर्णन

सम्बन्ध—गीताके तेरहवें अध्यायमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके लक्षणोंका निर्देश करके, उन दोनोंके ज्ञानको ही ज्ञान बतलाया और उसके अनुसार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्वरूप और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वर्णन किया। [illegible] [illegible] प्रकृति-पुरुषका [illegible] [illegible] कारण तीनों गुणोंको [illegible] बतलाया और [illegible] यह बात भी कही कि पुरुषके बार-बार अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म होनेमें गुणोंका संग ही हेतु है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है वे जीवात्माको कैसे शरीरोंमें बाँधते हैं, किस गुणके संगसे किस योनिमें जन्म होता है, गुणोंसे छूटनेका [illegible] [illegible] [illegible] है, गुणोंसे छूटे

होनेसे ही मुक्त होता है, यह अविनाशी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निर्विकार, सम और निरञ्जन [illegible] रहता है।

* इस अध्यायके दूसरे श्लोकमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहा है और तीसरे, [illegible] [illegible] श्लोकोंमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होती है। इस श्लोकमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परिणामी और अनित्य है तथा क्षेत्रज्ञ [illegible] [illegible] [illegible] निर्विकार [illegible] नित्य अविनाशी [illegible] शुद्ध ज्ञानस्वरूप और एक है। इस प्रकार दोनोंमें विलक्षणता होनेके कारण क्षेत्रज्ञ क्षेत्रसे सर्वथा भिन्न है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रतीत होती है, वह अज्ञानमूलक है; वास्तवमें क्षेत्रज्ञका उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यही ज्ञानचक्षुके द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको जानना है।

इस श्लोकमें 'भूत' शब्द प्रकृतिके कार्यरूप समस्त [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] वाचक है [illegible] [illegible] प्रकृतिसे सर्वथा मुक्त हो जाना ही 'भूतप्रकृतिमोक्ष' है तथा [illegible] [illegible] [illegible] और क्षेत्रज्ञके भेदको जाननेके साथ-साथ जो क्षेत्रज्ञका प्रकृतिसे अलग होकर अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रतिष्ठित हो जाना है, यही कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त हो जानेको जानना है।

अभिप्राय यह है कि जैसे स्वप्नमें मनुष्यको किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही जानेसे यह मालूम हो जाता है कि यह स्वप्न है, अतः अपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उत्पन्न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वैसे ही ज्ञानयोगीका क्षेत्र और क्षेत्रज्ञकी विलक्षणताका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समझ लेता है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] स्थित हो जाता ही [illegible] मुक्त होना है। यही उसका कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको जानना है।

हुए पुरुषोंके लक्षण और आचरण कैसे होते हैं—ये प्रश्न अर्जुनके [illegible] समझते हैं [illegible] इसलिये इसका [illegible] चौदहवें अध्यायका आरम्भ किया गया है [illegible] चौदहवें अध्यायमें [illegible] विस्तारपूर्वक समझाते हैं

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥१॥

श्रीभगवान् बोले—ज्ञानोंमें भी अति उत्तम उस परम ज्ञानको मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसारसे मुक्त होकर परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥२॥

इस ज्ञानको आश्रय करके [illegible] मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए पुरुष सृष्टिके आदिमें पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकालमें भी व्याकुल नहीं होते‡॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥३॥

हे अर्जुन! मेरी महत्-ब्रह्मरूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतोंकी योनि है अर्थात् गर्भाधानका स्थान है§ और मैं उस योनिमें चेतन-समुदायरूप गर्भको स्थापन करता हूँ×। उस जड-चेतनके संयोगसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥४॥

हे अर्जुन! नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, प्रकृति तो उन [illegible]

श्रुति-स्मृति-पुराण आदिमें विभिन्न विषयोंको समझानेके लिये जो नाना प्रकारके बहुत-से उपदेश हैं, उन [illegible] 'ज्ञानानाम्' पद है। उनमेंसे प्रकृति और पुरुषके स्वरूपका विवेचन करके पुरुषके वास्तविक स्वरूपको प्रत्यक्ष करा देनेवाला जो तत्त्वज्ञान है, यहाँ भगवान् उसी ज्ञानका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। यह ज्ञान [illegible] सत्यको प्रत्यक्ष करानेवाला और जीवात्माको प्रकृतिके सम्बन्धसे छुड़ाकर सदाके लिये मुक्त कर देनेवाला है, इसलिये उस ज्ञानको अन्यान्य ज्ञानोंकी अपेक्षा उत्तम और पर (अत्यन्त उत्कृष्ट) बतलाया गया है।

• यहाँ 'मुनिजन' शब्दसे [illegible] साधनद्वारा परम सिद्धिरूप [illegible] समझना चाहिये तथा जिसको [illegible] प्राप्ति कहते हैं जिसका वर्णन 'परम शान्ति', 'आत्यन्तिक सुख' और 'अपुनरावृत्ति' आदि अनेक नामोंसे किया गया है [illegible] फिर कोई वापस नहीं लौटता—यहाँ मुनिजनोंद्वारा प्राप्त की जानेवाली 'परम सिद्धि' भी वही है।

[illegible] सिद्धि गता' से जो बात कही गयी है, इस श्लोकमें 'मम साधर्म्यमागताः' से भी वही कही गयी है। अभिप्राय यह है कि भगवान्‌के निर्गुण स्वरूपको अभेदभावसे प्राप्त हो जाना ही भगवान्‌के साधर्म्यको प्राप्त होना है।

इस प्रकरणमें वर्णित ज्ञानके अनुसार प्रकृति और पुरुषके स्वरूपको समझकर गुणोंके सहित प्रकृतिसे सर्वथा अतीत हो जाना और निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें अभिन्नभावसे स्थित हो जाना ही इस ज्ञानका [illegible] है।

‡ इससे भगवान्‌ने यह दिखलाया है कि इस अध्यायमें बतलाये हुए ज्ञानका आश्रय लेकर तदनुसार साधन करके जो पुरुष परमात्माके स्वरूपको अभेदभावसे प्राप्त हो चुके हैं, वे मुक्त पुरुष [illegible] महासर्गके आदिमें पुनः उत्पन्न होते हैं और न प्रलयकालमें पीड़ित ही होते हैं [illegible] उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता।

§ समस्त जगत्‌की कारणरूपा जो मूल प्रकृति है, जिसे अव्यक्त और प्रधान भी कहते हैं, उस प्रकृतिका [illegible] महत् [illegible] विशेषणके सहित ब्रह्म नाम है [illegible] यह भाव दिखलाया है कि [illegible] समस्त प्राणियोंके विभिन्न शरीरोंका यही उपादान-कारण है और यही समष्टिका आधार है।

× महाप्रलयके समय स्वरूपसे [illegible] शरीरसहित [illegible] स्थित जीवसमुदायको [illegible] महासर्गके आदिमें प्रकृतिके साथ विशेष सम्बन्ध करा देना है, यही उस चेतनसमुदायरूप गर्भको प्रकृतिरूप योनिमें स्थापन करना है।

उपर्युक्त जड-चेतनके संयोगसे जो भिन्न-भिन्न आकृतियोंमें सब प्राणियोंका स्थूलरूपसे प्रकट होना है, यही उनकी उत्पत्ति है।

+ यहाँ 'मूर्ति' शब्द देव, मनुष्य, राक्षस, पशु, पक्षी आदि नाना प्रकारके भिन्न-भिन्न वर्ण और आकृति वाले शरीरोंके सहित [illegible] प्राणियोंका वाचक है। उन प्राणियोंका स्थूलरूपसे प्रकट होना ही उनका [illegible] होना है।

उनकी गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीजको स्थापन करनेवाला पिता हूँ॥*॥

सम्बन्ध—जीवोंके नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म लेनेकी बात तो चौथे श्लोकतक कही गयी, किंतु वहाँ गुणोंकी कोई बात नहीं आयी; इसलिये अब यह बतलाते हैं कि जीवका किस कारणसे अच्छी योनियोंमें और किस कारणसे बुरी योनियोंमें जन्म होता है— इन सब बातोंको स्पष्ट करनेके लिये इस प्रकरणका आरम्भ करते हुए भगवान् अब पहले उन तीनों गुणोंकी प्रकृतिसे उत्पत्ति और उनके विभिन्न नाम बतलाकर फिर उनके लक्षण और उनके द्वारा जीवात्माके बाँधे जानेका प्रकार पृथक्-पृथक् वर्णन करते हैं—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ ५॥

हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुण† अविनाशी जीवात्माको शरीरमें बाँधते हैं॥५॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥ ६॥

हे निष्पाप! उन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण तो निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है‡, वह सुखके सम्बन्धसे और ज्ञानके सम्बन्धसे अर्थात् उसके अभिमानसे बाँधता है×॥६॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ ७॥

हे अर्जुन! रागरूप रजोगुणको कामना और आसक्तिसे उत्पन्न जान+। वह इस जीवात्माको कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्धसे बाँधता है÷॥७॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥ ८॥

हे अर्जुन! सब देहाभिमानियोंको मोहित करनेवाले^ तमोगुणको तो अज्ञानसे उत्पन्न जानB। वह इस

---

* इससे भगवान्‌ने यह दिखलाया है कि जब सब मूर्तियोंके जो सूक्ष्म-स्थूल शरीर हैं वे सब प्रकृतिके अंशसे बने हुए हैं और उन सबमें जो चेतन आत्मा है वह मेरा अंश है। उन दोनोंके सम्बन्धसे समस्त मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं; अतएव प्रकृति उनकी माता है और मैं पिता हूँ।

अभिप्राय यह है कि गुण तीन हैं—सत्त्व, रज और तम उनके नाम हैं और तीनों परस्पर भिन्न हैं। ये तीनों गुण प्रकृतिके कार्य हैं एवं समस्त जड पदार्थ इन्हीं तीनोंका विस्तार है।

† जिसका शरीरमें अभिमान है, उसीपर इन गुणोंका प्रभाव पड़ता है और वास्तवमें जीवात्मा तो सब प्रकारके विकारोंसे रहित और अविनाशी है, अतएव उसका बन्धन हो ही नहीं सकता; अनादिसिद्ध अज्ञानके कारण उसने बन्धन मान रक्खा है। इन तीनों गुणोंका जो अपने अनुरूप भोगोंमें और शरीरोंमें उसका ममत्व, आसक्ति और अभिमान उत्पन्न कर देना है—यही इन तीनों गुणोंका उसको शरीरमें बाँध देना है।

‡ सत्त्वगुणका स्वरूप सर्वथा निर्मल है, उसमें किसी भी प्रकारका कोई दोष नहीं है; इसी कारण यह प्रकाशक और अनामय है। उसके बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें प्रकाशकी वृद्धि होती है एवं दुःख, विक्षेप, दुर्गुण और दुराचारोंका नाश होकर शान्तिकी प्राप्ति होती है।

× सुख शब्द यहाँ गीताके अठारहवें अध्यायके छत्तीसवें और सैंतीसवें श्लोकोंमें जिसके लक्षण बतलाये गये हैं उस 'सात्त्विक सुख' का वाचक है। उस सुखकी प्राप्तिके समय जो 'मैं सुखी हूँ' इस प्रकार अभिमान हो जाता है तथा 'ज्ञान' बोधशक्तिका नाम है; उसके प्रकट होनेपर जो 'मैं ज्ञानी हूँ' ऐसा अभिमान हो जाता है—यह उसे गुणातीत अवस्थासे वञ्चित रख देता है। अतः यही सत्त्वगुणका जीवात्माको सुख और ज्ञानके सम्बन्धसे बाँधना है।

+ कामना और आसक्तिसे रजोगुण बढ़ता है तथा रजोगुणसे कामना और आसक्ति बढ़ती है। इनका परस्पर बीज और वृक्षकी भाँति अन्योन्य सम्बन्ध है। इनमें रजोगुण बीजस्थानीय और कामना, आसक्ति आदि वृक्षस्थानीय हैं। बीज पहले भी उत्पन्न होता है, तथापि वृक्षका कारण भी बीज ही है। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ रजोगुणसे कामनादिकी उत्पत्ति और यहाँ कामनादिसे रजोगुणकी उत्पत्ति बतलायी गयी है।

÷ इन सब कर्मोंको मैं करता हूँ, इनमें कर्तापनके इस अभिमानपूर्वक 'मुझे इसका अमुक फल मिलेगा' ऐसा मानकर कर्मोंके और उनके फलोंके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेनेका नाम 'कर्मसङ्ग' है। इसके द्वारा रजोगुणका जो इस जीवात्माको जन्म-मृत्युरूप संसारमें बनाये रखना है, यही उसका कर्मसङ्गके द्वारा जीवात्माको बाँधना है।

^ अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें ज्ञानशक्तिका अभाव करके उनमें मोह उत्पन्न कर देना ही तमोगुणका सब देहाभिमानियोंको मोहित करना है।

B इस अध्यायके सत्रहवें श्लोकमें जो अज्ञानकी उत्पत्ति तमोगुणसे बतलायी है और यहाँ तमोगुणको अज्ञानसे उत्पन्न

भीतात्माको प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा बाँधता है॥८॥

सम्बन्ध—इस प्रकार सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंका स्वरूप और उनके द्वारा जीवात्माके बाँधे जानेका प्रकार बतलाकर अब उन तीनों गुणोंका स्वाभाविक व्यापार बतलाते हैं—

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत॥ ९॥

हे अर्जुन! सत्त्वगुण सुखमें लगाता है* और रजोगुण कर्ममें† तथा तमोगुण तो ज्ञानको ढककर प्रमादमें भी लगाता है‡§।

सम्बन्ध—सत्त्व आदि तीनों गुण जिस समय अपने-अपने कार्योंमें जीवको नियुक्त करते हैं, उस समय वे ऐसा करनेमें किस प्रकार समर्थ होते हैं—यह बात अगले श्लोकमें बतलाते हैं—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥ १०॥

हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सत्त्वगुण×, सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्त्वगुण और रजोगुणको दबाकर तमोगुण होता है अर्थात् बढ़ता है।

सम्बन्ध—इस प्रकार अन्य दो गुणोंको दबाकर प्रत्येक गुणके बढ़नेकी बात कही गयी; अब प्रत्येक गुणकी वृद्धिके लक्षण

बतलाया गया। इसका अभिप्राय यह है कि तमोगुणसे अज्ञान बढ़ता है और अज्ञानसे तमोगुण बढ़ता है। इन दोनोंमें भी बीज और वृक्षकी भाँति अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अज्ञान बीजस्थानीय है और तमोगुण वृक्षस्थानीय है।

* अन्तःकरण और इन्द्रियोंकी व्यर्थ चेष्टाका तथा शास्त्रविहित कर्तव्यपालनमें अवहेलनाका नाम 'प्रमाद' है। कर्तव्य कर्मोंमें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमताका नाम 'आलस्य' है तथा तन्द्रा और सुषुप्ति—इन सबका नाम 'निद्रा' है। इन सबके द्वारा जो तमोगुणका इस जीवात्माको वृत्तियोंके व्यवधानसे चकित करके कल्याणकारी साधनोंमें कठिनाई करता है—यही उसका प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा जीवात्माको बाँधना है।

† सुख शब्द यहाँ सात्त्विक सुखका वाचक है और ... और सत्त्वगुणका भी इस मनुष्यको सांसारिक भोगों और चेष्टाओंसे तथा प्रमाद, आलस्य और निद्रासे हटाकर भगवच्चिन्तन आदिके द्वारा सात्त्विक सुखसे संयुक्त कर देना है—यही उसको सुखमें लगाना है।

‡ 'कर्म' शब्द यहाँ इस लोक और परलोकके भोगरूप फल देनेवाले शास्त्रविहित सकामकर्मोंका वाचक है। नाना प्रकारके भोगोंकी इच्छा उत्पन्न करके उनकी प्राप्तिके लिये उन कर्मोंमें मनुष्यको बाध्य कर देना ही रजोगुणका मनुष्यको उन कर्मोंमें लगाना है।

§ जब तमोगुण बढ़ता है, तब वह कभी तो मनुष्यकी कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करनेवाली विवेकशक्तिको नष्ट कर देता है और कभी अन्तःकरण और इन्द्रियोंकी चेतनाको नष्ट करके निद्राकी वृत्ति उत्पन्न कर देता है—यही उसका मनुष्यके ज्ञानको आच्छादित करना है और कर्तव्यपालनमें अवहेलना करके व्यर्थ चेष्टाओंमें नियुक्त कर देना प्रमादमें लगाना है।

× रजोगुणके कार्य लोभ, प्रवृत्ति और भोगवासनादि तथा तमोगुणके कार्य निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदिको दबाकर जब सत्त्वगुणका ज्ञान, प्रकाश और सुख आदिको उत्पन्न कर देना है, वही रजोगुण और तमोगुणको दबाकर सत्त्वगुणका बढ़ जाना है।

जिस समय सत्त्वगुण और तमोगुणकी प्रवृत्तियोंको रोककर रजोगुण अपना कार्य आरम्भ करता है, उस समय शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें चञ्चलता, अशान्ति, लोभ, भोगवासना और नाना प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्ति आदि उनके इच्छा उत्पन्न हो जाती है—यही सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुणका बढ़ जाना है।

जिस समय सत्त्वगुण और रजोगुणकी प्रवृत्तियोंको रोककर तमोगुण अपना कार्य आरम्भ करता है, उस समय शरीर, इन्द्रियों और अन्तःकरणमें मोह आदि बढ़ जाते हैं और प्रमादमें प्रवृत्ति हो जाती है, वृत्तियाँ विवेकशून्य हो जाती हैं—यही सत्त्वगुण और रजोगुणको दबाकर तमोगुणका बढ़ना है।

A गुणोंकी वृद्धिमें निम्नलिखित दस हेतु श्रीमद्भागवतमें बतलाये हैं—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च। ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥

([illegible])

'शास्त्र, जल, सन्तान, देश, काल, कर्म, योनि, चिन्तन, मन्त्र और संस्कार—ये दस गुणोंके हेतु हैं' अर्थात् गुणोंके बढ़ानेवाले हैं। अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त पदार्थ जिस गुणसे युक्त होते हैं, उसी उसी गुणको बढ़ा देते हैं।

सम्बन्ध—इस प्रकार दूसरे गुणोंको दबाकर बढ़े हुए सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धिके लक्षण बतलाये जाते हैं—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥ ११॥

जिस समय इस देहमें तथा अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें चेतनता और विवेकशक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है॥ †

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥ १२॥

हे अर्जुन! रजोगुणके बढ़नेपर लोभ, प्रवृत्ति, स्वार्थबुद्धिसे कर्मोंका सकामभावसे आरम्भ, अशान्ति और विषयभोगोंकी लालसा—ये सब उत्पन्न होते हैं॥ ‡

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥ १३॥

हे अर्जुन! तमोगुणके बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें अप्रकाश, कर्तव्य-कर्मोंमें अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरणकी मोहिनी वृत्तियाँ—ये सब ही उत्पन्न होते हैं॥ §

सम्बन्ध—इस प्रकार तीनों गुणोंकी वृद्धिके भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाकर अब दो श्लोकोंमें उन गुणोंमेंसे किस गुणकी वृद्धिके समय मरकर मनुष्य किस गतिको प्राप्त होता है, यह बतलाया जाता है—

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते॥ १४॥

जब यह मनुष्य सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होता है,× तब तो उत्तम कर्म करनेवालोंके निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होता है॥

---

* अभिप्राय यह है कि सत्त्वगुणकी वृद्धिका अवसर मनुष्य-शरीरमें ही मिल सकता है और इसी शरीरमें सत्त्वगुणकी सहायतासे मनुष्य मुक्तिलाभ कर सकता है। दूसरी योनियोंमें ऐसा अधिकार नहीं है।

† शरीरमें चेतनता, हलकापन तथा इन्द्रिय और अन्तःकरणमें निर्मलता और चेतनाकी अधिकता हो जाना ही प्रकाश का उत्पन्न होना है एवं सत्-असत् या कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करनेवाली विवेकशक्तिका जाग्रत् हो जाना ज्ञान का उत्पन्न होना है। जिस समय प्रकाश और ज्ञान इन दोनोंका प्रादुर्भाव होता है, उस समय अपने-आप ही चारों ओरसे प्रसन्न होकर मनमें शान्ति और सुख-शान्तिकी बाढ़-सी आ जाती है तथा राग-द्वेष, दुःख-शोक, चिन्ता, भय, चंचलता, निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदिका अभाव-सा हो जाता है। उस समय मनुष्यको सावधान होकर अपना मन भगवत्-चिन्तनमें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये, तभी सत्त्वगुणकी प्रवृत्ति अधिक समय ठहर सकती है। अन्यथा उसकी उपेक्षा कर देनेसे शीघ्र ही तमोगुण या रजोगुण उसे दबाकर अपना कार्य आरम्भ कर सकते हैं।

‡ जिसके कारण मनुष्य प्रतिक्षण धनकी वृद्धिके उपाय सोचता रहता है, अपने धन सम्पत्तिका प्रचुर मात्रामें संग्रह होनेपर भी उसका त्याग नहीं करता एवं अच्छे कर्मोंमें उसका व्यय करना नहीं चाहता तथा दूसरेके धनको भी अधिकार करनेकी इच्छा या चेष्टा करने लगता है, उस मनकी इच्छाका नाम 'लोभ' है। नाना प्रकारके कर्म करनेके लिये मानसिक भावोंका जाग्रत् होना 'प्रवृत्ति' है। उन कर्मोंको सकामभावसे करने लगना उनका 'आरम्भ' है। मनकी चंचलताका नाम 'अशान्ति' है और किसी भी प्रकारके सांसारिक पदार्थोंको पानेके लिये लालसाका जागना 'स्पृहा' है। रजोगुणकी वृद्धिके समय इन लोभ आदि भावोंका प्रादुर्भाव होना ही उनका उत्पन्न हो जाना है।

§ मनुष्यके इन्द्रिय और अन्तःकरणमें दीप्तिका अभाव हो जाना ही अप्रकाश का उत्पन्न होना है। कोई भी काम अच्छा नहीं लगता, केवल पड़े रहकर ही समय बिताने की इच्छा होना ही अप्रवृत्ति का उत्पन्न होना है। शरीर और इन्द्रियोंद्वारा व्यर्थ चेष्टा करते रहना और कर्तव्यपालनमें अवहेलना करना ही प्रमाद का उत्पन्न होना है। अन्तःकरणमें किसी बातकी स्मृति न रहना तथा स्वप्न या सुषुप्ति-अवस्थाका प्राप्त हो जाना एवं विवेकशक्तिका अभाव हो जाना, किसी विषयको समझनेकी शक्ति न रहना, यह सब मोह का उत्पन्न होना है। ये सब लक्षण तमोगुणकी वृद्धिके समय उत्पन्न होते हैं। अतएव इनमेंसे कोई-सा भी लक्षण अपनेमें देखा जाय, तब मनुष्यको समझना चाहिये कि तमोगुण बढ़ा हुआ है।

देहभृत्, पदका प्रयोग करके यह भाव दिखलाया गया है कि जो देहधारी हैं, जिनकी शरीरमें ममता और अहंता है, उन्हींकी गुणोंके सम्बन्धसे भिन्न-भिन्न गतियाँ होती हैं। जिनका शरीरमें अभिमान नहीं है, ऐसे जीवन्मुक्त महात्माओंका आवागमन नहीं होता।

× इस अवस्थामें होनेवाली मनुष्यकी स्थितिका दिग्दर्शन किया जाता है। जिसकी सात्त्विक स्थिति दूसरे गुणोंसे होती हुई

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥१५॥

रजोगुणके बढ़नेपर मृत्युको प्राप्त होकर* कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है तथा तमोगुणके बढ़नेपर मरा हुआ† मनुष्य कीट, पशु आदि मूढ़योनियोंमें उत्पन्न होता है।

सम्बन्ध—सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंकी वृद्धिमें मरनेके भिन्न-भिन्न फल बतलाये गये; इससे यह जाननेकी इच्छा होती है कि इस प्रकार कभी किसी गुणकी और कभी किसी गुणकी वृद्धि क्यों होती है। इसपर कहते हैं—

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥१६॥

श्रेष्ठ कर्मका तो सात्त्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल‡ कहा है; राजस कर्मका फल दुःख§ एवं तामस कर्मका फल अज्ञान× कहा है।

सम्बन्ध—इस प्रकार कर्मोंके अनुसार सत्त्व, रज और तमोगुणकी वृद्धिके लक्षणोंका कथन किया गया; इससे यह जाननेकी इच्छा होती है कि ज्ञान आदिकी उत्पत्तिका कारण आदि गुणोंकी वृद्धिके लक्षण क्यों माने गये। अतएव कर्मोंकी ... ज्ञान आदिकी उत्पत्तिका कारण आदि गुणोंको बतलाते हैं—

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥१७॥

सत्त्वगुणसे ज्ञान+ उत्पन्न होता है और रजोगुणसे निःसन्देह

भी सात्त्विक गुणकी वृद्धिमें मृत्यु हो जाती है, ऐसे मनुष्योंके जिस प्रकार पूर्व स्वभाव आदि किसी कारणसे सत्त्वगुण बढ़ जाता है—अर्थात् जिस समय ग्यारहवें श्लोकके वर्णनानुसार उसके समस्त शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें प्रकाश और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, उस समय स्थूल शरीरसे मन, इन्द्रियों और प्राणोंके सहित जीवात्माका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाना ही सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होना है।

* सात्त्विक और तामस पुरुषके भी हृदयमें जिस समय बारहवें श्लोकके अनुसार लोभ, प्रवृत्ति आदि राजस भाव बढ़े हुए होते हैं, उस समय जो स्थूल शरीरसे मन, इन्द्रियों और प्राणोंके सहित जीवात्माका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है, यही रजोगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होना है।

† जिस समय सात्त्विक और राजस पुरुषके भी हृदयमें तेरहवें श्लोकके अनुसार अप्रकाश, अप्रवृत्ति और प्रमाद आदि तामस भाव बढ़े हुए हों, उस समय जो स्थूल शरीरसे मन, इन्द्रियों और प्राणोंके सहित जीवात्माका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाना है, यही तमोगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होना है।

सात्त्विक, राजस और तामस—तीनों प्रकारके कर्म मनुष्यके अन्तःकरणमें संचित रहते हैं। उनमेंसे जिस समय जैसे कर्मोंका प्रादुर्भाव होता है, वैसे ही सात्त्विक आदि भाव बढ़ते हैं और उन्हींके अनुसार गुणोंकी वृद्धि होती है; क्योंकि उनका कारण ... गुणोंकी वृद्धि और उसीके अनुसार पुनर्जन्म और पूर्व कर्मोंका आरम्भ, इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है।

‡ जो शास्त्रविहित कर्म ... निष्कामभावसे किये जाते हैं, उन सात्त्विक कर्मोंके संस्कारोंसे अन्तःकरणमें जो ज्ञान-वैराग्यादि निर्मल भावोंका प्रादुर्भाव होता रहता है, तथा परलोकमें भी दुःख और दोषोंसे रहित दिव्य प्रकाशमय लोकोंकी प्राप्ति होती है, वही उन कर्मोंका सात्त्विक और निर्मल फल है।

§ जो कर्म भोगोंकी प्राप्तिके लिये अहंकारपूर्वक बहुत परिश्रमके साथ किये जाते हैं (गीता १८।२४), वे राजस हैं। ऐसे कर्मोंके करते समय तो परिश्रमरूप दुःख होता ही है; परन्तु उनके बाद भी वे दुःख ही देते रहते हैं। उनके संस्कारोंसे अन्तःकरणमें बार-बार भोग, कामना, लोभ और प्रवृत्ति आदि राजस भाव स्फुरित होते हैं—जिनसे मन विक्षिप्त होकर अशान्ति और दुःखसे भर जाता है। उन कर्मोंके फलस्वरूप जो भोग प्राप्त होते हैं, वे भी अज्ञानसे सुखरूप दीखनेपर भी वस्तुतः दुःखरूप ही होते हैं और उन भोगोंके लिये जो बार-बार जन्म-मरणके चक्करमें पड़े रहना पड़ता है, वह तो महान् दुःख है ही।

× जो कर्म बिना सोचे-समझे मूढ़तापूर्वक किये जाते हैं और जिनमें हिंसा आदि दोष भरे रहते हैं (गीता १८।२५) वे तामस हैं। उनके संस्कारोंसे अन्तःकरणमें मोह बढ़ता है और मरनेके बाद जिन योनियोंमें तमोगुणकी अधिकता है—ऐसी मूढ़योनियोंकी प्राप्ति होती है; यही उनका फल अज्ञान है।

+ यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे यह समझना चाहिये कि ज्ञान, प्रकाश और सुख, शान्ति आदि सभी सात्त्विक भावोंकी उत्पत्ति सत्त्वगुणसे होती है।

तथा तमोगुणसे प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ १८॥

सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही रहते हैं और तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित तामस पुरुष अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोंको तथा नरकोंको प्राप्त होते हैं।

सम्बन्ध—[illegible] कहाँ कि गुणोंके सङ्गसे ही इस मनुष्यको अच्छी-बुरी योनियोंकी प्राप्ति [illegible] है [illegible] गुणोंके [illegible] मनुष्योंकी [illegible] प्रतिपादन किया गया। [illegible] कि मनुष्यको [illegible] रजोगुणका [illegible] चाहिये और उनको [illegible] सत्त्वगुणका भी [illegible] गुणातीत होनेका उपाय और गुणातीत अवस्थाका फल [illegible] कहते हैं—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ १९॥

जिस समय द्रष्टा तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥ २०॥

यह पुरुष शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप इन तीनों गुणोंको उल्लङ्घन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हुआ परमानन्दको प्राप्त होता है।

* यहाँ [illegible] यह समझना चाहिये कि लोभ, प्रवृत्ति, आसक्ति, कामना, स्वार्थपूर्वक कर्मोंका आरम्भ आदि सभी [illegible] रजोगुणसे होती है।

† महाभारत, अश्वमेधपर्वके उन्तालीसवें अध्यायमें [illegible] भी इसीसे मिलता-जुलता है।

‡ चौदहवें और पंद्रहवें श्लोकोंमें तो [illegible] गुणोंमें स्वाभाविक स्थितिके होते हुए भी मरणकालमें जिस गुणकी वृद्धिमें मृत्यु होती है, उसीके अनुसार [illegible] कही गयी है और यहाँ [illegible] स्वाभाविक [illegible] गुणोंसे है, उनकी [illegible] किया गया है। इसलिये [illegible] तमोगुणके कार्योंमें स्थित [illegible] मनुष्यको नरकादिकी [illegible] भी [illegible] है।

§ मनुष्य स्वाभाविक तो अपनेको शरीरधारी समझकर कर्ता और भोक्ता बना रहता है, परंतु जिस समय [illegible] और [illegible] विवेक [illegible] उस समयका कथन यहाँ किया गया है।

× [illegible] अन्तःकरण और प्राण आदिकी [illegible] खाना-पीना, [illegible] और व्यवहार आदि सभी स्वाभाविक चेष्टाओंके होते समय [illegible] निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें [illegible] स्थित रहता हुआ यो [illegible] समझता है कि गुणोंके अतिरिक्त अन्य कोई कर्ता नहीं है; गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं [illegible] इन्द्रियाँ [illegible] इन्द्रियोंके विषयोंमें बरत रही हैं (गीता [illegible]) [illegible] गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं (गीता [illegible]) मेरा इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है—यही गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्ता न देखना है।

[illegible] निर्गुण-निराकार [illegible] उससे [illegible] सच्चिदानन्दघन ब्रह्मसे भिन्न किसी भी [illegible] न रहना और सर्वत्र एवं सदा [illegible] केवल [illegible] हो जाना ही [illegible] जानना है। ऐसी स्थितिके बाद वह सच्चिदानन्दघन [illegible] हो जाता है [illegible] भगवान्‌के स्वरूपको प्राप्त होना है।

+ [illegible] और उनका सम्बन्ध [illegible] सत्त्वगुणसे सम्बन्ध बना रहे तो वह भी मुक्तिमें बाधक होकर पुनर्जन्मका कारण बन सकता है। अतएव [illegible] भी त्याग देना चाहिये। आत्मा वास्तवमें [illegible] है, गुणोंके साथ उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; तथापि भी अनादिसिद्ध अज्ञानसे इनके साथ सम्बन्ध माना हुआ है, उस सम्बन्धको ज्ञानके द्वारा तोड़ देना और अपनेको निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्मसे अभिन्न और गुणोंसे सर्वथा सम्बन्धरहित समझ लेना अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव कर लेना ही गुणोंसे अतीत हो जाना अथवा तीनों गुणोंको उल्लङ्घन करना है।

Δ जन्म और मरण तथा बाल्य, युवा और वृद्ध-अवस्था आदिरूपी [illegible] आधि और व्याधि आदि सब प्रकारके दुःख भी इन्द्रिय, मन और प्राण आदिके समाहाररूप शरीरमें ही व्याप्त रहते हैं [illegible] शरीरसे सर्वथा सम्बन्धरहित हो जाता है, जन्म, मृत्यु, जरा और दुःखोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है तथा जो अमृतस्वरूप सच्चिदानन्दघन

सम्बन्ध—इस प्रकार जीवन-अवस्थामें ही तीनों गुणोंसे अतीत होकर मनुष्य अमृतको प्राप्त हो जाता है—इस रहस्ययुक्त वचनको सुनकर गुणातीत पुरुषके लक्षण, आचरण और गुणातीत बननेके उपाय जाननेकी इच्छासे अर्जुन पूछते हैं—

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते॥ २१॥

अर्जुन बोले—इन तीनों गुणोंसे अतीत पुरुष किन-किन लक्षणोंसे युक्त होता है और किस प्रकारके आचरणोंवाला होता है तथा हे प्रभो! मनुष्य किस उपायसे इन तीनों गुणोंसे अतीत होता है?

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनके पूछनेपर भगवान् अब लक्षण और आचरण विषयक दो प्रश्नोंका उत्तर चार श्लोकोंद्वारा देते हैं—

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥ २२॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा तमोगुणके कार्यरूप मोहको* भी न तो प्रवृत्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकाङ्क्षा करता है।†

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ २३॥

जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता‡ और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है× एवं उस स्थितिसे कभी विचलित

महात्माको भक्तिभावसे सराहना कर ... उनके भगवद्भावकी प्राप्ति ... कहा गया है—यही यहाँ अमृतका अनुभव करना है।

* गुणातीत पुरुषके अंदर ज्ञान, शान्ति और आनन्द नित्य रहते हैं, उनका कभी अभाव नहीं होता। इसलिये यहाँ सत्त्वगुणके कार्योंमें केवल प्रकाशके विषयमें कहा है कि उसके शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें जब सत्त्वगुणकी प्रकाशवृत्तिका प्रादुर्भाव हो जाता है तो गुणातीत पुरुष उससे द्वेष नहीं करता और जब तिरोभाव हो जाता है तो पुनः उसके आगमनकी इच्छा नहीं करता। उसके प्रादुर्भाव और तिरोभावमें सदा ही उसकी एक-सी स्थिति रहती है।

नाना प्रकारके कर्म करनेकी स्फुरणाका नाम प्रवृत्ति है। इसके सिवा लोभ, स्पृहा और आसक्ति आदि रजोगुणके भाव हैं, वे गुणातीत पुरुषमें नहीं होते। क्योंकि आरम्भ गुणातीतके शरीर-इन्द्रियोंद्वारा भी होता है, यह प्रवृत्ति अनायास ही हो जाती है, अतः यहाँ रजोगुणके कार्योंमें केवल प्रवृत्ति ही ली गयी है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी स्फुरणा और क्रियाके प्रादुर्भाव और तिरोभावमें सदा ही उसकी एक-सी ही स्थिति रहती है।

† अन्तःकरणकी जो मलिन वृत्ति है, जिसमें मनुष्यका जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंका ज्ञान होता है तथा शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें सत्त्वगुणके कार्य प्रकाशका अभाव-सा हो जाता है, उसका नाम मोह है। निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदि तमोगुणके भाव हैं, उनका गुणातीतमें अभाव हो जाता है, इसलिये यहाँ तमोगुणके कार्योंमें केवल मोहके प्रादुर्भाव और तिरोभावमें राग-द्वेषका अभाव बतलाया गया है। अभिप्राय यह है कि जब गुणातीत पुरुषके शरीरमें तन्द्रा, स्वप्न या निद्रा आदि तमोगुणकी वृत्तियाँ व्याप्त होती हैं, तब गुणातीत उनसे द्वेष नहीं करता और जब वे निवृत्त हो जाती हैं तब वह उनके पुनरागमनकी इच्छा नहीं करता। दोनों अवस्थाओंमें ही उसकी स्थिति सदा एक-सी रहती है।

गुणातीत पुरुषका तीनों गुणोंसे और उनके कार्यरूप शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण एवं समस्त पदार्थों और अवस्थाओंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहनेके कारण वह उदासीनके सदृश स्थित कहा जाता है।

‡ जिन जीवोंका गुणोंके साथ सम्बन्ध है, उनको ये तीनों गुण उनकी इच्छा न होते हुए भी बलात्कारसे नाना प्रकारके कर्मोंमें और उनके फल-भोगोंमें लगा देते हैं एवं उनको सुखी-दुःखी बनाकर विशेष बन्धन कर देते हैं तथा अनेकों योनियोंमें भटकाते रहते हैं। परंतु जिसका इन गुणोंसे सम्बन्ध नहीं रहता, उसपर इन गुणोंका कोई प्रभाव नहीं रह जाता। गुणोंके कार्यरूप शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणकी अवस्थाओंका परिवर्तन तथा नाना प्रकारके सांसारिक पदार्थोंका संयोग-वियोग होते रहनेपर भी वह अपनी स्थितिमें सदा निर्विकार एकरस रहता है। यही उसका गुणोंद्वारा विचलित नहीं किया जाना है।

× इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्राण आदि तथा ... और शब्दादि सब विषय—ये सभी गुणोंके ही विस्तार हैं। अतएव इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदिका जो अपने-अपने विषयोंमें विचरना है—यह गुणोंका ही गुणोंमें बरतना है।

नहीं होता ● ॥२३॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥२४॥

जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला,† मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला‡ और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है§ ॥२४॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥२५॥

जो मान और अपमानमें सम है× मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है+ एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है— ॥२५॥

इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आत्मा नित्य, चेतन, सबका आधार, सदा एकरस, सच्चिदानन्दघन है—इस प्रकार निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्मामें अभिन्नभावसे स्थित होनेके लिये नित्य स्थित हो जाता है। यही 'गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं' यह समझकर परमात्मामें स्थित रहना है।

● गुणातीत पुरुषको गुण विचलित नहीं कर सकते, इतना ही बात नहीं है; वह स्वयं भी अपनी स्थितिसे कभी किसी भी कारणसे विचलित नहीं होता।

† साधारण मनुष्योंकी स्थिति प्रकृतिके कार्यरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन प्रकारके शरीरोंमेंसे किसी एकमें रहती ही है, अतः वे स्वस्थ नहीं हैं; किंतु प्रकृतिस्थ हैं और ऐसे पुरुष ही प्रकृतिज गुणोंको भोगनेवाले हैं (गीता १३। २१)। इसलिये वे सुख-दुःखमें सम नहीं हो सकते। गुणातीत पुरुषका प्रकृति और उसके कार्यसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, अतएव वह 'स्वस्थ' है—अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें स्थित है। इसलिये शरीर और मन आदिमें सुख और दुःखोंके आविर्भाव और तिरोभाव होते रहनेपर भी गुणातीत पुरुषका उनसे कुछ भी सम्बन्ध न रहनेके कारण वह उनके द्वारा सुखी-दुःखी नहीं होता, उसकी स्थिति सदा सम ही रहती है। यही उसका सुख-दुःखमें समान भाव है।

‡ जो पदार्थ शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके अनुकूल हो तथा उनका पोषक, सहायक एवं सुखदायक हो, वह लोकदृष्टिसे प्रिय कहलाता है और जो पदार्थ उनके प्रतिकूल हो, उनका नाशक, विरोधी एवं दुःख पहुँचानेवाला हो, वह लोकदृष्टिसे अप्रिय माना जाता है। साधारण मनुष्योंको प्रिय वस्तुके संयोगमें और अप्रियके वियोगमें राग और हर्ष तथा अप्रियके संयोगमें और प्रियके वियोगमें द्वेष और शोक होते हैं; किंतु गुणातीतमें ऐसा नहीं होता, वह सदा-सर्वदा राग-द्वेष और हर्ष-शोकसे सर्वथा अतीत रहता है।

§ किसीके सम्बन्धमें उसके दोषोंका कथन करना 'निन्दा' है और गुणोंका बखान करना 'स्तुति' है। इन दोनोंका सम्बन्ध—अधिकतर नामसे और कुछ शरीरसे है। गुणातीत पुरुषका शरीर और उसके नामसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध न रहनेके कारण उसे निन्दा या स्तुतिके कारण शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता।

गुणातीत पुरुषके शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे जो कुछ भी शास्त्रानुकूल क्रियाएँ प्रारब्धानुसार लोकसंग्रहके लिये अर्थात् लोगोंको बुरे मार्गसे हटाकर अच्छे मार्गमें लगानेके उद्देश्यसे हुआ करती हैं, उन सबमें वह किंचित् अहंकार भी नहीं रखता। यही भाव दिखलानेके लिये उसे 'सर्वारम्भपरित्यागी' कहा है।

× मान और अपमानका सम्बन्ध अधिकतर शरीरसे है। अतः जिनका शरीरमें अभिमान है, वे साधारण मनुष्य मानमें राग और अपमानमें द्वेष करते हैं, इससे उनको मानमें हर्ष और अपमानमें शोक होता है तथा वे मान करनेवालोंके साथ प्रेम और अपमान करनेवालोंसे वैर भी करते हैं। परंतु गुणातीत पुरुषका शरीरसे कुछ भी सम्बन्ध न रहनेके कारण न तो शरीरका मान होनेसे उसे हर्ष होता है और न अपमान होनेसे शोक ही होता है। उसकी दृष्टिमें जिसका मानापमान होता है और जिनके द्वारा होता है एवं जो मान-अपमानरूप कार्य है—ये सभी मायिक और स्वप्नवत् हैं; अतएव मान-अपमानसे उसमें किंचिन्मात्र भी राग-द्वेष और हर्ष-शोक नहीं होते। यही उसका मान और अपमानमें सम रहना है।

+ यद्यपि गुणातीत पुरुषका अपनी ओरसे किसी भी प्राणीमें मित्र या शत्रुभाव नहीं होता, इसलिये उसकी दृष्टिमें कोई मित्र अथवा वैरी नहीं है; तथापि लोग अपनी भावनाके अनुसार उसमें मित्र और शत्रुभावकी कल्पना कर लेते हैं; किंतु वह दोनों पक्षवालोंमें समभाव रखता है। उसके द्वारा बिना राग-द्वेषके ही यथायोग्य सबके हितकी चेष्टा हुआ करती है। वह किसीका भी बुरा नहीं चाहता और उसकी क्रियाओंमें भी भेदबुद्धि नहीं होती। यही उसका मित्र और वैरीके पक्षोंमें सम रहना है।

◆ अभिप्राय यह है कि इस अध्यायके बाईसवें, तेईसवें, चौबीसवें और पचीसवें श्लोकोंमें जिन लक्षणोंका वर्णन किया गया

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनके दो प्रश्नोंका उत्तर देकर अब गुणातीत बननेके [illegible] उपाय जाननेकी इच्छा होनेपर भगवान् उसके तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं— [illegible]

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ २६॥

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगके द्वारा मुझको निरन्तर भजता है, वह भी इन तीनों गुणोंको भलीभाँति लाँघकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है।

सम्बन्ध—[illegible] [illegible]

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥ २७॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

† गुणातीत होनेके बाद ही मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है [illegible] नहीं रहता [illegible] उसको ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

[illegible]

१ [illegible]

१ [illegible]

क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य धर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं हूँ॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥ भीष्मपर्वणि तु अष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके श्रीमद्भगवद्गीतापर्वके अन्तर्गत ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें गुणत्रयविभागयोग नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥ भीष्मपर्वमें अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

(श्रीमद्भगवद्गीतायां पञ्चदशोऽध्यायः)

संसारवृक्षका, भगवत्प्राप्तिके उपायका, जीवात्माका, प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका तथा क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तमके तत्त्वका वर्णन

सम्बन्ध—गीताके चौदहवें अध्यायमें पाँचवेंसे अठारहवें श्लोकतक तीनों गुणोंके स्वरूप, उनके कार्य एवं उनकी बन्धनकारिताका और बँधे हुए मनुष्योंकी उत्तम, मध्यम और अधम गति आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन करके उन्नीसवें और बीसवें श्लोकोंमें उन गुणोंसे रहित होनेका उपाय और फल बतलाया। फिर अर्जुनके पूछनेपर बाईसवेंसे पचीसवें श्लोकतक गुणातीत पुरुषके लक्षणों और आचरणोंका वर्णन करके छब्बीसवें श्लोकमें सगुण परमेश्वरके अव्यभिचारी भक्तियोगको गुणोंसे अतीत होकर ब्रह्मप्राप्तिके लिये योग्य बननेका सरल उपाय बतलाया। अतएव भगवान्‌में अनन्य प्रेमरूप अव्यभिचारी भक्तियोगकी प्राप्ति करानेके उद्देश्यसे अब उन सगुण परमेश्वर पुरुषोत्तम भगवान्‌के गुण, प्रभाव और स्वरूपका एवं गुणोंसे अतीत होनेमें प्रधान साधन वैराग्य और भगवत्-शरणागतिका वर्णन करनेके लिये पन्द्रहवें अध्यायका आरम्भ किया जाता है। यहाँ पहले संसारमें वैराग्य उत्पन्न करानेके उद्देश्यसे तीन श्लोकोंद्वारा संसारका वर्णन वृक्षके रूपमें करते हुए वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा उसका छेदन करनेके लिये कहते हैं—

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ १॥

यहाँ ब्रह्मका विवेचनके सहित परीक्षा कर दी है। उसे ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अपनेको बतलाकर भगवान्ने यह भाव दिखलाया है कि वह मेरी अलौकिक शक्ति होनेके कारण मेरा ही स्वरूप है, क्योंकि इस प्रकार आचरण करनेवाला किसी अन्य वस्तुको न पाकर मुझको ही प्राप्त होता है।

* गीताके छठे अध्यायके इक्कीसवें श्लोकमें 'आत्यन्तिक सुख' के नामसे और अट्ठाईसवें श्लोकमें 'अत्यन्त सुख' के नामसे कहा गया है, उसी नित्य परमानन्दको यहाँ 'ऐकान्तिक सुख' अर्थात् अखण्ड एकरस आनन्द कहा गया है। उसका आश्रय प्रतिष्ठा अपनेको बतलाकर भगवान्ने यह भाव दिखलाया है कि वह नित्य परमानन्द मेरा ही स्वरूप है, मुझसे भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं है, उसकी प्राप्ति मेरी ही प्राप्ति है।

१ 'मूल' शब्द कारणका वाचक है। इस संसारवृक्षकी उत्पत्ति और इसका विस्तार आदिपुरुष नारायणसे ही हुआ है, यह बात चौथे श्लोकमें और अन्यत्र भी स्थान-स्थानपर कही गयी है। वे आदिपुरुष परमेश्वर नित्य, अनन्त और सबके आधार हैं एवं सगुणरूपसे सबसे ऊपर नित्य धाममें निवास करते हैं, इसलिये 'ऊर्ध्व' नामसे कहे जाते हैं। यह संसारवृक्ष उन्हीं मायापति सर्वशक्तिमान् परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसको 'ऊर्ध्वमूल' अर्थात् ऊपरकी ओर मूलवाला कहते हैं। अभिप्राय यह है कि अन्य साधारण वृक्षोंका मूल तो नीचे जमीनके अंदर रहा करता है, पर इस संसारवृक्षका मूल ऊपर है—यह बड़ी अलौकिक बात है।

२ संसारवृक्षकी उत्पत्तिके समय सबसे पहले ब्रह्माका उद्भव होता है, इस कारण ब्रह्मा ही इसकी प्रधान शाखा हैं। ब्रह्माका लोक आदिपुरुष नारायणके नित्यधामकी अपेक्षा नीचे है एवं ब्रह्माका अधिकार भी भगवान्‌की अपेक्षा नीचा है—ब्रह्मा उन आदिपुरुष नारायणसे ही उत्पन्न होते हैं और उन्हींके आधारमें रहते हैं—इसलिये इस संसारवृक्षको 'नीचेकी ओर शाखावाला' कहा है।

श्रीभगवान् बोले—आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपलवृक्षको अविनाशी कहते हैं*, तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं†—उस संसाररूप वृक्षको जो पुरुष मूलसहित तत्त्वसे जानता है, वह वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है‡॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥

उस संसारवृक्षकी तीनों गुणोंरूप जलके द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय-भोगरूप कोंपलोंवाली§ देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ× नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्ययोनिमें कर्मोंके अनुसार बाँधनेवाली अहंता-ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकोंमें व्याप्त हो रही हैं॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

इस संसारवृक्षका स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहाँ विचारकालमें नहीं पाया जाता; क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है+। इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले÷ संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर—

* यद्यपि यह संसारवृक्ष परिवर्तनशील होनेके कारण न तो नित्य, अविनाशी और अक्षय है तो भी इसका प्रवाह अनादिकालसे चला आता है, इसके प्रवाहका अन्त भी देखनेमें नहीं आता; इसलिये इसको अव्यय अर्थात् अविनाशी कहते हैं; क्योंकि इसका मूल सर्वशक्तिमान् परमेश्वर नित्य अविनाशी है। किंतु वास्तवमें यह संसारवृक्ष अविनाशी नहीं है; यदि यह अविनाशी होता तो [illegible] इसलिये यह कहा जाता कि इसका जैसा स्वरूप बतलाया गया है, वैसा उपलब्ध नहीं होता और न इसका वैराग्यरूप शस्त्रके द्वारा [illegible] ही काटना बतलाया जाता।

† पत्ते वृक्षकी शाखासे उत्पन्न होकर वृक्षकी रक्षा और वृद्धि करनेवाले होते हैं; वेद भी इस संसाररूप वृक्षकी मुख्य शाखारूप ब्रह्मासे प्रकट हुए हैं और वेदविहित कर्मोंसे ही संसारकी वृद्धि और रक्षा होती है, इसलिये पत्तोंके स्थानमें वेदोंको कहा गया है।

‡ इससे यह भाव दिखलाया गया है कि जो मनुष्य मूलसहित इस संसारवृक्षको इस प्रकार तत्त्वसे जानता है कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी मायासे उत्पन्न यह संसार वृक्षकी भाँति उत्पत्ति-विनाशशील और क्षणिक है, अतएव इसकी चमक-दमकमें न फँसकर इसको उत्पन्न करनेवाले सर्वशक्ति परमात्माको जानना चाहिये और ऐसा समझकर संसारसे विरक्त और उपरत होकर जो भगवान्की शरण ग्रहण कर लेता है, वही वास्तवमें वेदोंको जाननेवाला है; क्योंकि समस्त वेदोंमें इस वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य भगवान्को ही बतलाया है।

मनुष्यशरीरमें नये कर्मोंका अधिकार है, एवं मनुष्यशरीरके द्वारा अहंता, ममता और वासनापूर्वक किये हुए कर्म बन्धनके हेतु माने गये हैं; इसलिये ये मूल मनुष्ययोनिमें कर्मानुसार बाँधनेवाले हैं। दूसरी सभी योनियाँ भोगयोनियाँ हैं, उनमें कर्मोंका अधिकार नहीं है; अतः वहाँ अहंता, ममता और वासनारूप मूल होनेपर भी वे कर्मानुसार बाँधनेवाले नहीं बनते।

§ अच्छी और बुरी शाखाओंकी वृद्धि गुणोंके द्वारा होती है (गीता १४।१८) [illegible] और प्रतिदिन [illegible] दोनों गुणोंके ही परिणाम हैं; यह भाव समझानेके लिये उन शाखाओंको गुणोंके द्वारा बढ़ी हुई कहा है और उन शाखाओंके देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनियोंमें [illegible] शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँचों विषयोंके उपभोगको ही यहाँ कोंपल बतलाया गया है।

× ब्रह्मलोकसे लेकर पातालपर्यन्त जितने भी लोक और उनमें निवास करनेवाली योनियाँ हैं, वे ही सब इस संसारवृक्षकी बहुत-सी शाखाएँ हैं।

+ इससे यह भाव दिखलाया गया है कि इसकी यह अवस्था कब और कैसे हुई, इससे आरम्भ हुई और कबतक रहेगी, [illegible] स्थितिकालमें भी यह निरन्तर परिवर्तित होता रहता है; जो रूप पहले क्षणमें है, वह दूसरे क्षणमें नहीं रहता; इस प्रकार इस संसारवृक्षका आदि, अन्त और स्थिति—तीनों ही उपलब्ध नहीं होते।

÷ इस संसारवृक्षके जो अहंता, ममता और वासनारूप मूल हैं, वे अनादिकालसे पुष्ट होते रहनेके कारण अत्यन्त दृढ़ हो गये हैं; अतएव उन मूलोंको अति दृढ़ मूलोंके रूपमें बतलाया गया है। विवेकद्वारा समस्त संसारको नाशवान् और क्षणिक समझकर इस लोक और परलोकके भी सुख, धन, मकान तथा मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्ग

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥ ४॥

उसके पश्चात् उस परम-पदरूप परमेश्वरको भलीभाँति खोजना चाहिये*, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसारमें नहीं आते और जिस परमेश्वरसे इस पुरातन संसार-वृक्षकी प्रवृत्ति विस्तारको प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष नारायणके मैं शरण हूँ—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निदिध्यासन करना चाहिये॥ ४॥

सम्बन्ध—अब उपर्युक्त प्रकारसे आदिपुरुष परमेश्वरकी शरण होकर उसको प्राप्त हो जानेवाले पुरुषोंके लक्षण बतलाते हैं—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥ ५॥

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है[१], जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है[२], जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है[३] और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं[४]—वे सुख-दुःखनामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त† ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं॥ ५॥

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम॥ ६॥

जिस परमपदको प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसारमें नहीं आते, उस स्वयंप्रकाश परमपदको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही‡; वही मेरा परमधाम है॥ ६॥

आदि समस्त भोगोंमें सुख, प्रीति और रमणीयताका न भासना—उनमें आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जाना ही दृढ़ वैराग्य है, उसीका नाम यहाँ 'असङ्गशस्त्र' है। इस अपार प्रभाववाले संसारको स्वप्नवत् समझकर उसके चिन्तनका त्याग कर देना—उससे उपरत हो जाना ही एवं अहंता, ममता और वासनारूप मूलोंका उच्छेद कर देना है—यही उस दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रके द्वारा समूल उच्छेद करना है।

* इस अध्यायके पहले श्लोकमें जिसे 'ऊर्ध्व' कहा गया है, गीताके चौदहवें अध्यायके सत्ताईसवें श्लोकमें जिसको 'ब्रह्म' कहा गया है एवं अन्यान्य स्थलोंमें जिसको कहीं परम पद, कहीं अव्यय पद और कहीं परम गति तथा कहीं परम धामके नामसे भी कहा है, उसीको यहाँ 'परम पद' के नामसे कहते हैं। उस सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर परमेश्वरको प्राप्त करनेकी इच्छासे बार-बार उसके गुण और प्रभावके सहित स्वरूपका मनन और निदिध्यासनद्वारा अनुसन्धान करते रहना ही उस परम पदको खोजना है। तथा उपर्युक्त प्रकारसे उसका अनुसन्धान करनेके लिये अपने अंदर जरा भी अभिमान न आने देकर और सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी शरण लेकर—उसका अनन्य आश्रय लेकर उसीपर पूर्ण विश्वासपूर्वक निर्भर हो जाना चाहिये।

१ जो मनुष्य ऐश्वर्य, भोग, विद्या, बुद्धि आदिके सम्बन्धसे अपने अंदर तनिक भी बड़प्पनकी भावना नहीं रखते तथा जिनका मान, बड़ाई या प्रतिष्ठासे तथा अविवेक और भ्रम आदि तमोगुणके भावोंसे लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रह गया है—ऐसे पुरुषोंको 'निर्मानमोहा' कहते हैं।

२ जिनको इस लोक और परलोकके भोगोंमें जरा भी आसक्ति नहीं रह गयी है, जिनको भोगोंका सम्बन्ध होनेपर भी जिनके अन्तःकरणमें किसी प्रकारका विकार नहीं हो सकता—ऐसे पुरुषोंको 'जितसङ्गदोषा' कहते हैं।

३ 'अध्यात्म' शब्द यहाँ परमात्माके स्वरूपका वाचक है; अतएव परमात्माके स्वरूपमें जिनकी नित्य स्थिति हो गयी है, जिनका क्षणमात्रके लिये भी परमात्मासे वियोग नहीं होता और जिनकी स्थिति सदा अटल बनी रहती है—ऐसे पुरुषोंको 'अध्यात्मनित्या' कहते हैं।

४ जिनकी सब प्रकारकी कामनाएँ सर्वथा नष्ट हो गयी हैं, जिनमें इच्छा, कामना, तृष्णा या वासना आदि लेशमात्र भी नहीं रह गयी है—ऐसे पुरुषोंको 'विनिवृत्तकामाः' कहते हैं।

† शीत-उष्ण, प्रिय-अप्रिय, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा—इत्यादि द्वन्द्वोंको सुख और दुःखके हेतु होनेसे 'सुख-दुःखसंज्ञक' कहा गया है। इन सबसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध न रहना अर्थात् किसी भी द्वन्द्वके संयोग-वियोगमें कभी भी राग-द्वेष, हर्ष-शोकादि विकारका न होना ही उन द्वन्द्वोंसे सर्वथा मुक्त होना है।

‡ समस्त जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि एवं वे जिनको देखते हैं—वे चक्षु, मन और वाणी कोई भी उस परम पदको प्रकाशित नहीं कर सकते। इनके अतिरिक्त और भी जितने प्रकाशक तत्त्व माने गये हैं उनमेंसे भी कोई या सब मिलकर भी उस परम पदको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि वे सब उसीके प्रकाशसे—उसीकी सत्ता-स्फूर्तिसे किसी अंशमें स्वयं प्रकाशित होते हैं। (गीता १५। १२)

परम धाम है॥ ६॥

सम्बन्ध—पहलेसे तीसरे श्लोकतक संसार-वृक्ष नामसे इस [illegible] वर्णन किया [illegible] जीवरूप [illegible] पुरुषके [illegible] द्वारा [illegible] अर्थात् [illegible] हुए [illegible] मनुष्य [illegible] पुरुषोत्तम [illegible] होती है [illegible] जीवात्मा [illegible] है और [illegible] कैसे जाता है [illegible] जीवका स्वरूप बतलाते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ ७॥

इस देहमें यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही इन प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको‡ आकर्षण करता है।

सम्बन्ध—यह जीवात्मा [illegible] इन्द्रियोंका [illegible] किस प्रकार [illegible] आकर्षण करता है [illegible] इन्द्रियोंके [illegible] है [illegible] स्पष्टरूपसे [illegible] है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥ ८॥

वायु [illegible] स्थानसे [illegible] ग्रहण करके [illegible] है [illegible] ही देहादिका स्वामी जीवात्मा भी [illegible] शरीरका [illegible] उसमें [illegible] इन्द्रियोंको ग्रहण करके [illegible] शरीरको [illegible] जाता है जिसमें जाता है ॥

---

* [illegible] इस [illegible] किसी [illegible] वही परम धाम [illegible] है और नहीं [illegible] भी कहते हैं [illegible] गीता [illegible] इत्यादि वचन [illegible] हुई श्रुति कहती है

[illegible] सूर्याकार्याम् [illegible] आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् [illegible] विश्व [illegible] यत्र [illegible] निवर्तन्ते [illegible]

[illegible] उप० [illegible]

'जहाँ सूर्य नहीं तपता, जहाँ वायु नहीं चलता, जहाँ चन्द्रमा नहीं प्रकाशित होता, जहाँ तारे नहीं चमकते, जहाँ अग्नि नहीं जलता, जहाँ मृत्यु नहीं [illegible] करने [illegible] वहाँ जाकर वापस नहीं लौटते—वह [illegible] परमानन्द [illegible] सनातन [illegible] शान्ति [illegible] प्राप्त होता है।'

जीवात्मामें [illegible] जीवात्मा [illegible] है [illegible] कारण [illegible] स्वभावके [illegible] अन्तर्भाव है [illegible] मन [illegible] है।

जैसे [illegible] आकाशमें [illegible] आकाश [illegible] और [illegible] विभाग [illegible] होने लगता है और [illegible] भिन्न आकाश महाकाशका अंश माना जाता है [illegible] प्रकार [illegible] विभागरहित [illegible] भी [illegible] और उन शरीरोंमें स्थित जीव उसका अंश माना जाता है [illegible] नवीन नहीं [illegible] है वहाँ भाव [illegible] भगवान् [illegible] है।

‡ पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन [illegible] ही [illegible] कर्मेन्द्रियोंका भी बिना ज्ञानेन्द्रियोंके नहीं चलता इसलिये यहाँ [illegible] इन्द्रियोंका [illegible] कर्मेन्द्रियोंका इनमें अन्तर्भाव [illegible]

२ जीवात्माको ईश्वर कहकर भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि वह [illegible] बुद्धि [illegible] इन्द्रियोंका [illegible] और स्वामी है इसीलिये इनको आकर्षित करनेमें समर्थ है।

[illegible] मन [illegible] बुद्धि [illegible] है और पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच [illegible] ज्ञानेन्द्रियोंमें है [illegible] सूक्ष्मशरीरका बोधक है।

§ [illegible] स्थूलशरीर है [illegible] सूक्ष्मशरीर है और वायुके स्थानमें जीवात्मा है [illegible] वायु [illegible] एक स्थानसे [illegible] दूसरे स्थानमें ले जाता है उसी प्रकार जीवात्मा भी [illegible] मन बुद्धि और [illegible] समुदायरूप सूक्ष्मशरीरको एक स्थूलशरीरसे निकाल कर दूसरे स्थूलशरीरमें ले जाता है।

यद्यपि जीवात्मा परमात्माका ही अंश होनेके कारण वस्तुतः नित्य और अचल है उसका कहीं आना-जाना नहीं

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारेसे ही विषयोंका सेवन करता है।*

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

शरीरको छोड़कर जाते हुएको अथवा शरीरमें स्थित हुएको अथवा विषयोंको भोगते हुएको इस प्रकार तीनों गुणोंसे युक्त हुएको भी अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले विवेकशील ज्ञानी ही तत्त्वसे जानते हैं।†

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥

यत्न करनेवाले योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित इस आत्माको तत्त्वसे जानते हैं‡; किंतु जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहनेपर भी इस आत्माको नहीं जानते।§

सम्बन्ध—[illegible] [illegible] प्रकाशित नहीं कर सकते और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सम्बन्धसे [illegible] [illegible] [illegible] है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है, उसको तू मेरा ही तेज जान।×

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

और मैं ही पृथ्वीमें प्रवेश करके अपनी शक्तिसे सब भूतोंको धारण करता हूँ+ और रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

* वास्तवमें आत्मा न तो कर्ता है और न उसका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है; किंतु प्रकृति और उसके कार्यके साथ जो उसका अज्ञानसे अनादि सम्बन्ध माना हुआ है, उसके कारण वह कर्ता-भोक्ता बना हुआ है। [illegible] [illegible] [illegible] है—'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' (कठोपनिषद् [illegible]) अर्थात् मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे युक्त [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहते हैं।

† [illegible] है।

‡ जिनका [illegible] [illegible] शुद्ध है और [illegible] [illegible] है तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] करते रहते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करनेवाले योगीजन हैं तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तत्त्वसे जानते हैं।

§ जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है अर्थात् न तो निष्काम कर्म [illegible] द्वारा [illegible] शुद्ध बनानेकी चेष्टा न करके यदि केवल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रयत्न करते रहें तो भी उसके तत्त्वको नहीं समझ सकते।

× सूर्य, चन्द्रमा और अग्निमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि इन तीनोंमें और [illegible] [illegible] देखता है—इसमें तेज [illegible] और [illegible] सम्पूर्ण प्रकाशित करनेकी जो कुछ भी शक्ति है—वह मेरे ही [illegible] [illegible] [illegible] है। इसीलिये [illegible] श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है कि सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये सब मेरे स्वरूपको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं हैं।

+ इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि इस पृथ्वीमें जो भूतोंको धारण करनेकी शक्ति प्रतीत होती है तथा

चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण ओषधियोंको अर्थात् वनस्पतियोंको पुष्ट करता हूँ* ॥१३॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥१४॥

मैं ही सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला प्राण और अपानसे संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकारके अन्नको पचाता हूँ†॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥१५॥

मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है‡ और सब वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ§ तथा वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ॥

सम्बन्ध—पहलेसे यहाँ तक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुरुषके रहस्योंका और [illegible] पुरुषोत्तमका वर्णन करते हैं—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥१६॥

इस संसारमें नाशवान् और अविनाशी भी ये दो प्रकारके पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है×॥

इसी प्रकार और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही पृथ्वीमें प्रविष्ट [illegible] [illegible] [illegible] समस्त प्राणियोंको धारण करता हूँ।

* [illegible] पालन करता हूँ।

† [illegible] पचाता हूँ।

‡ [illegible] उत्पन्न करता है।

§ इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि [illegible]

× इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही है।

+ जिन दोनों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) और इस अध्यायमें पहले [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिखलाया है कि दोनों परस्पर [illegible] [illegible] हैं [illegible]

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥१७॥

इन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा—इस प्रकार कहा गया है॥१७॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥१८॥

क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ॥१८॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥१९॥

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है॥१९॥

भूतोंके [illegible] स्थूल, सूक्ष्म और कारण [illegible] शरीरोंका वाचक है और 'कूटस्थ' शब्द [illegible] आत्माका वाचक है [illegible] इसलिये इसे 'कूटस्थ' कहा है [illegible] इसलिये यह 'अक्षर' है।

• 'उत्तम पुरुष' नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त [illegible] पुरुषोत्तम भगवान्‌का वाचक है [illegible] पूर्वोक्त क्षर और अक्षर दोनों पुरुषोंसे विलक्षण और अत्यन्त श्रेष्ठ है।

† [illegible] निर्विकार [illegible] 'पुरुषोत्तम' [illegible]

[illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible] 'पुरुषोत्तम' [illegible]

‡ [illegible]

[illegible]

२ इस अध्यायमें क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—इन प्रकार तीन भागोंमें विभक्त [illegible] उत्तम पुरुषोत्तमका [illegible]

§ [illegible] पुरुषोत्तम [illegible] निर्गुण-सगुण—गुणातीत और [illegible] पुरुषोत्तम मानना है।

× [illegible] पुरुषोत्तम [illegible] प्रेमास्पद [illegible] चिन्तन करना [illegible] सब प्रकारसे भजना है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ । [illegible] ॥ हे निष्पाप ! इस प्रकार यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र [illegible] द्वारा कहा गया, इसको तत्त्वसे जानकर

एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत ॥ [illegible] मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ [illegible] भीष्मपर्वणि [illegible] ऊनचत्वारिंशोऽध्याय

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें [illegible] ब्रह्मविद्या [illegible] श्रीकृष्णार्जुन [illegible] पुरुषोत्तमयोग नामक पन्द्रहवाँ [illegible] पूरा [illegible] भीष्मपर्वमें उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

चत्वारिंशोऽध्याय

श्रीमद्भगवद्गीताया षोडशोऽध्याय

फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन तथा शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्रके अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा

[illegible]

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

श्रीभगवान् बोले — [illegible] भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी [illegible] निर्मलता, [illegible] ज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर [illegible] दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान तथा इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता ॥

भगवान् [illegible] प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको [illegible] ऐसे [illegible] हरेक [illegible] सामने इस प्रकारसे [illegible] नहीं करता, [illegible] तुम्हें भी [illegible] इस रहस्यको नहीं कहना चाहिये।

भगवान्‌ने अर्जुनको यहाँ [illegible] यह बात दिखलायी कि तुम्हारे अन्दर [illegible] नहीं है, तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध और निर्मल है, अतः तुम मेरे इस गुह्यतम उपदेशको सुनने [illegible] पात्र हो।

इस अध्यायमें वर्णित भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व और स्वरूपको [illegible] भलीभाँति समझकर [illegible] पुरुषोत्तम [illegible] मनुष्य [illegible] भगवान्‌को अपरोक्षभावसे प्राप्त कर लेता है, वही [illegible] बुद्धिमान् अर्थात् ज्ञानवान् हो जाता है और समस्त कर्मोंको पूर्ण कर [illegible] प्राप्त हो जाता है, कृतकृत्य हो जाता है।

अपने धर्मका पालन करनेके लिये [illegible] सहन करके जो अन्तःकरण और इन्द्रियोंको तपाना है [illegible] नाम [illegible] है। [illegible] प्रकारके [illegible] शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपका विवरण है — वही [illegible]

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ २॥

मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवाले पर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्ति न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव १॥ २॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ ३॥

तेज *, क्षमा, धैर्य †, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो हे अर्जुन! दैवी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं ‡॥ ३॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥ ४॥

उनका निर्देश नहीं है, क्योंकि ये अहिंसा, सत्य, शौच, स्वाध्याय और आर्जव आदि [illegible] लक्षणोंके [illegible] निरूपण हुए हैं, वहाँ उनका अलग वर्णन किया गया है।

किसी भी प्राणीको कभी कहीं भी लोभ, मोह या क्रोधपूर्वक अधिक मात्रामें, मध्य मात्रामें या थोड़ा-सा भी किसी प्रकारका कष्ट देना, दूसरेसे दिलवाना या कोई किसीको कष्ट देता हो तो उसका अनुमोदन करना—हर हालतमें हिंसा है। इस प्रकारकी हिंसाका किसी भी निमित्तसे मन, वाणी, शरीरद्वारा न करना अर्थात् मनसे किसीका बुरा न चाहना, वाणीसे किसीको न तो गाली देना, न कठोर वचन कहना और न किसी प्रकारके हानिकारक वचन ही कहना तथा शरीरसे किसीको मारना, न कष्ट पहुँचाना और न किसी प्रकारकी हानि ही पहुँचाना आदि—इन सबका नाम 'अहिंसा' है।

[illegible] गुणोंमें बरत रहे हैं [illegible] कर्मोंमें कुछ भी [illegible] नहीं है [illegible] भगवान् ही अपनी इच्छानुसार मेरे मन, वाणी और शरीरसे सब कर्म करवा रहे हैं, मुझमें न अपने-आप कुछ करनेकी शक्ति है और न मैं कुछ करता ही हूँ—ऐसा मानकर कर्तृत्व-अभिमानका त्याग करना ही त्याग है [illegible] अहंकार, ममता [illegible] का नाम भी त्याग है [illegible] नाम भी त्याग कहा जा सकता है।

दूसरेके दोष देखना या उन्हें लोगोंमें प्रकट करना अथवा किसीकी निन्दा या चुगली करना 'पिशुनता' है। इसके सर्वथा अभावका नाम 'अपैशुन' है।

[illegible] दुःखी देखकर उसके दुःखसे दुःखित [illegible] किसी प्रकारसे [illegible] बिना ही निःस्वार्थ [illegible] उस दुःखी मनुष्यका [illegible] है, उसे 'दया' कहते हैं। [illegible] दुःखको [illegible] है और उसके दुःख [illegible] है, यह अहिंसा और दयाका भेद है।

[illegible] वाणी भी [illegible] कर्मोंका [illegible] उसका अतिशय [illegible] है, उसे [illegible] कहते हैं।

हाथ [illegible] हिलाना, तिनके तोड़ना, जमीन कुरेदना, बेमतलब बकते रहना [illegible] आदि हाथ [illegible] वाणी और मनकी व्यर्थ चेष्टाओंका नाम चपलता है। इसीको [illegible] कहते हैं। इसके सर्वथा अभावको अचापल कहते हैं।

* श्रेष्ठ पुरुषोंकी उस शक्तिविशेषका नाम तेज है, जिसके कारण उनके सामने विषयासक्त और नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः अन्यायाचरणसे रुककर उनके कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

† भारी-से-भारी आपत्ति, भय या [illegible] उपस्थित होनेपर भी विचलित न होना, काम, क्रोध, भय या लोभसे किसी प्रकार भी अपने धर्म और कर्तव्यसे विमुख न होना 'धैर्य' है।

‡ इस अध्यायके पहले श्लोकसे लेकर इस श्लोकतक पूर्वार्द्धतक [illegible] श्लोकोंमें छब्बीस लक्षणोंके रूपमें उस दैवी-सम्पद्‌का [illegible] और गुणसमूहका ही वर्णन किया गया है। अतः ये सब लक्षण जिसमें स्वभावसे विद्यमान हों अथवा जिसने साधनद्वारा प्राप्त कर लिये हों, वही पुरुष दैवी-सम्पदासे युक्त है।

१ अपना बड़प्पन, पूजा और प्रतिष्ठाके लिये, धनादिके लोभसे या किसीको ठगनेके अभिप्रायसे अपनेको धर्मात्मा, भगवद्भक्त, ज्ञानी या महात्मा प्रसिद्ध करना अथवा दिखाऊ धर्मपालनका, दानशीलताका, भक्तिका, ज्ञान-उपदेशादिका ढोंग रचना और किसी भी बातसे अपनेको [illegible] ढोंगका नाम 'दम्भ' है।

हे पार्थ! दम्भ*, घमण्ड और अभिमान† तथा क्रोध‡, कठोरता§ और अज्ञान× भी—ये सब आसुरी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं+॥४॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥५॥

दैवी-सम्पदा मुक्तिके लिये और आसुरी-सम्पदा बाँधनेके लिये मानी गयी है। इसलिये हे अर्जुन! तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुआ है॥५॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥६॥

हे अर्जुन! इस लोकमें भूतोंकी सृष्टि यानी मनुष्यसमुदाय दो ही प्रकारका है, एक तो दैवी प्रकृतिवाला और दूसरा आसुरी प्रकृतिवाला। उनमेंसे दैवी प्रकृतिवाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्यसमुदायको भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन॥६॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥७॥

आसुर-स्वभाववाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनोंको ही नहीं जानते। इसलिये उनमें न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है॥७॥

---

* विद्या, धन, कुटुम्ब, जाति, अवस्था, बल और ऐश्वर्य आदिके सम्बन्धसे जो मनमें गर्व होता है, जिसके कारण मनुष्य दूसरोंको तुच्छ समझकर उनकी अवहेलना करता है, उसका नाम 'दर्प' है।

† अपनेको श्रेष्ठ, बड़ा या पूज्य समझना, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी इच्छा करना एवं इनके प्राप्त होनेपर प्रसन्न होना 'अभिमान' है।

‡ बुरी आदत, अथवा क्रोधी स्वभावके कारण या किसीके द्वारा अपना तिरस्कार, अपकार या निन्दा किये जानेपर, मनके विरुद्ध कार्य होनेपर, किसीके द्वारा दुर्वचन सुननेपर या किसीका अन्याय देखकर—इत्यादि किसी भी कारणसे अन्तःकरणमें जो उत्तेजना हो जाती है, जिसके कारण मनुष्यके मनमें प्रतिहिंसाके भाव जाग्रत् हो उठते हैं, नेत्रोंमें लाली आ जाती है, होठ फड़कने लगते हैं, मुखकी आकृति भयानक हो जाती है, बुद्धि मारी जाती है और कर्तव्यका निश्चय नहीं रह जाता—इस वृत्तिका नाम 'क्रोध' है।

§ कोमलताके अत्यन्त अभावका नाम 'कठोरता' है। किसीको गाली देना, कटु वचन कहना, ताना मारना आदि वाणीकी कठोरता है; विनय, नमस्कार आदिका न करना शरीरकी कठोरता है तथा क्षमा और दयाके विरुद्ध प्रतिहिंसा और क्रूरताके भावको मनकी कठोरता कहते हैं।

× सत्य-असत्य और धर्म-अधर्म आदिको यथार्थ न समझना या उलटा समझ लेना ही यहाँ 'अज्ञान' है।

+ इस श्लोकमें दम्भ और अभिमानादि आसुरी सम्पदाके लक्षण बतलाये गये हैं; अतः इस प्रकारके दोषोंको भी विस्तारसे आसुरी सम्पदाके गुण समझना चाहिये।

इस अध्यायमें पहलेसे लेकर तीसरे श्लोकतक जो लक्षण बतलाये गये हैं, वे दैवी सम्पदाके हैं; इस प्रकार भगवान्ने दैवी सम्पदाका वर्णन किया गया है, उसका विस्तार इस अध्यायमें अन्य स्थलोंमें भी है—ऐसा मानकर यहाँ संक्षेपमें कहा गया है।

यहाँ सृष्टि कहते हैं भूतोंकी सृष्टिका; यहाँ अभिप्राय मनुष्यसमुदायका वर्णन किया गया है तथा इस अध्यायमें मनुष्योंके लक्षण बतलाये गये हैं, इसी कारण यहाँ 'भूतसर्गौ' पदका अर्थ मनुष्यसमुदाय किया गया है।

ऽ मनुष्योंके दो समुदायोंमेंसे जो सात्त्विक है, वह तो दैवी प्रकृतिवाला है और जो रजोमिश्रित तमःप्रधान है, वह आसुरी प्रकृतिवाला है। राजसी और तामसी प्रकृतिवाले मनुष्योंका यहाँ आसुरी प्रकृतिवाले समुदायमें अन्तर्भाव समझना चाहिये।

ॐ जिस कर्मके आचरणसे इस लोक और परलोकमें मनुष्यका यथार्थ कल्याण होता है, वही कर्तव्य है; मनुष्यको उसीमें प्रवृत्त होना चाहिये और जिस कर्मके आचरणसे अकल्याण होता है, वह अकर्तव्य है; उससे निवृत्त होना चाहिये। भगवान्ने यहाँ यह भाव दिखलाया है कि आसुर-स्वभाववाले मनुष्य इस कर्तव्य-अकर्तव्य-सम्बन्धी प्रवृत्ति और निवृत्तिको बिल्कुल नहीं समझते, इसलिये जो कुछ उनके मनमें आता है, वही करने लगते हैं।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ ८॥

वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वरके, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न है, अतएव केवल काम ही इसका कारण है। इसके सिवा और क्या है*?

सम्बन्ध—ऐसे नास्तिक सिद्धान्तके माननेवालोंके स्वभाव और आचरण कैसे होते हैं? इस जिज्ञासापर अब भगवान् अगले चार श्लोकोंमें उनके लक्षणोंका वर्णन करते हैं—

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥ ९॥

इस मिथ्या ज्ञानको अवलम्बन करके—जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है, वे सबका अपकार करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत्‌के नाशके लिये ही समर्थ होते हैं†।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥ १०॥

वे दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली कामनाओंका आश्रय लेकर अज्ञानसे मिथ्या सिद्धान्तोंको ग्रहण करके और भ्रष्ट आचरणोंको धारण करके‡ संसारमें विचरते हैं।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ ११॥

तथा वे मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओंका आश्रय लेनेवाले, विषयभोगोंके भोगनेमें तत्पर रहनेवाले और इतना ही सुख है, इस प्रकार माननेवाले§ होते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ १२॥

वे आशाकी सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोधके परायण होकर विषय-भोगोंके लिये अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थोंका संग्रह करनेकी चेष्टा करते रहते हैं×।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥ १३॥

वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथको प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जायगा।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥ १४॥

वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओंको भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्यको भोगनेवाला हूँ। मैं सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और बलवान् तथा सुखी हूँ+।

---

* यहाँ आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्योंके मतका वर्णन किया गया है। वे लोग ऐसा मानते हैं कि न तो इस चराचर जगत्‌का भगवान् या कोई धर्माधर्म ही आधार है, तथा न इसकी कोई नित्य सत्ता है, अर्थात् न तो जन्मसे पहले या मरनेके बाद किसी भी जीवका अस्तित्व है एवं न कोई इसका रचनेवाला, नियामक और शासक ईश्वर ही है।

† नास्तिक सिद्धान्तवाले मनुष्य आत्माको नहीं मानते, वे केवल देहवादी या भौतिकवादी ही होते हैं। इससे उनका स्वभाव भ्रष्ट हो जाता है, उनकी किसी भी सत्कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती। उनकी बुद्धि भी अत्यन्त मन्द होती है। वे जो कुछ निश्चय करते हैं, सब केवल भोग-सुखकी दृष्टिसे ही करते हैं। उनका मन निरन्तर लोगोंका अहित करनेकी बात ही सोचा करता है। वे अपना भी अहित ही करते हैं तथा मन, वाणी, शरीरसे चराचर जीवोंको दुःख देने और उनका नाश करनेवाले बड़े-बड़े भयानक कर्म ही करते रहते हैं।

‡ जिनके खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल, व्यवसाय-वाणिज्य, देन-लेन और बर्ताव-व्यवहार आदि शास्त्रविरुद्ध और भ्रष्ट होते हैं, वे भ्रष्ट आचरणोंवाले कहे जाते हैं।

§ असुर-स्वभाववाले मनुष्य मरण-पर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओंकी पूर्तिके लिये भाँति-भाँतिकी चिन्ताओंमें लगे रहते हैं। उनका मन कभी किसी विषयकी आशामें लटकता है, कभी किसीमें चिपटता है और कभी किसीमें अटकता है। इस प्रकार आशाओंके बन्धनसे वे कभी छूटते ही नहीं। इसीसे उनको सैकड़ों आशाओंकी फाँसियोंसे बँधे हुए कहा गया है।

× विषय-भोगोंके उद्देश्यसे जो काम-क्रोधका अवलम्बन करके अन्यायपूर्वक अर्थात् चोरी, ठगी, डाका, झूठ, कपट, छल, दम्भ, मार-पीट, कूटनीति, जूआ, धोखेबाजी, विष-प्रयोग, झूठे मुकदमे और भय-प्रदान आदि शास्त्रविरुद्ध उपायोंके द्वारा दूसरोंके धनादिको हरण करनेकी चेष्टा करना है—यही विषय-भोगोंके लिये अन्यायसे अर्थ-संचय करनेका प्रयत्न करना है।

+ इससे यह भाव दिखलाया गया है कि अज्ञानके साथ ही वे मानमें भी चूर रहते हैं। इससे ऐसा समझते हैं कि जगत्‌में हमसे बड़ा कौन है? हम जिसे चाहें मार दें, बचा दें, जिसकी चाहें उन्नति कर दें या रोक दें। सारे जगत्‌के हम मालिक हैं—हम सर्वथा स्वतन्त्र हैं, सब कुछ हमारे ही हाथोंमें तो है, हमारे सिवा दूसरा कौन ऐश्वर्यवान् है?

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले मोहरूप जालसे समावृत और विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त आसुरलोग महान् अपवित्र नरकमें गिरते हैं *॥ १५-१६ ॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

वे अपने-आपको ही श्रेष्ठ माननेवाले घमण्डी पुरुष धन और मानके मदसे युक्त होकर केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा पाखण्डसे शास्त्रविधिरहित यजन करते हैं ॥ १७ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

वे अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादिके परायण और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष अपने और दूसरोंके शरीरमें स्थित मुझ अन्तर्यामीसे द्वेष करनेवाले होते हैं ॥ १८ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार सातवेंसे अठारहवें श्लोकतक आसुरी स्वभाववाले मनुष्योंके दुर्गुण और दुराचारोंका वर्णन करके अब उन दुर्गुण-दुराचारोंसे युक्त मनुष्योंकी निन्दा करते हुए भगवान् दो श्लोकोंमें उनकी दुर्गतिका वर्णन करते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही डालता हूँ ॥ १९ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

हे अर्जुन! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं ॥ २० ॥

सम्बन्ध—आसुर स्वभाववाले मनुष्योंको बार-बार आसुरी योनियोंके और घोर नरकोंकी प्राप्ति होनेकी बात सुनकर यह जिज्ञासा हो सकती है कि उनके लिये इस दुर्गतिसे बचकर परम गतिको प्राप्त करनेका क्या उपाय है? इसपर कहते हैं—

सारे ऐश्वर्योंके स्वामी हमीं तो हैं। सारे ऐश्वर्योंके ईश्वर परम पुरुष भी तो हमीं हैं। सबको हमारी ही पूजा करनी चाहिये। हम केवल ऐश्वर्यके स्वामी ही नहीं, समस्त ऐश्वर्यका भोग भी करते हैं। हमने अपने जीवनमें कभी विफलताका अनुभव किया ही नहीं; हमने जहाँ जो काम करना चाहा, वहीं सफलताने हमारा अनुगमन किया; हम सब प्रकारसे सिद्ध हैं। भविष्यमें होनेवाली बातोंको हम पहलेसे ही जान जाते हैं; हम सब कुछ जानते हैं; कोई बात हमसे छिपी नहीं है। इतना ही नहीं, हम बड़े बलवान् हैं; हमारे मनोबल या शारीरिक बलका इतना प्रभाव है कि जो कोई उसका सहारा लेता है, वही उसपर विजय पा लेता है। इन्हीं सब कारणोंसे हम परम सुखी हैं। संसारके सारे सुख सदा हमारी सेवा करते हैं और करते रहेंगे।

* अभिप्राय यह है कि ऐसे मनुष्य कामोपभोगके लिये नाना प्रकारके पाप करते हैं और उनका फल भोगनेके लिये उन्हें विष्ठा, मूत्र, रुधिर, पीब आदि गंदी वस्तुओंसे भरे हुए भयानक कुम्भीपाक, रौरवादि घोर नरकोंमें गिरना पड़ता है।

† अपने ही मनसे अपने-आपको सब बातोंमें सर्वश्रेष्ठ, सम्माननीय, उच्च और पूज्य मानते हैं, वे आत्म-सम्भावित हैं।

‡ इस का कारण किसीके नाम—कर्मोंकी किसी दूसरोंकी भाँति न किसका व्यवहार नहीं करना ये सब हैं।

दूसरोंके दोष देखना, देखकर उनकी निन्दा करना, उनके गुणोंका खण्डन करना और गुणोंमें दोषारोपण करना एवं भगवान् और सत्पुरुषोंमें भी दोष देखते रहना—इन सब दोषोंसे युक्त मनुष्योंको 'अभ्यसूयक' कहते हैं।

¶ सभीके अन्दर अन्तर्यामीरूपसे परमेश्वर स्थित हैं; अतः किसीसे विरोध या द्वेष करना, किसीका अहित करना और किसीको दुःख पहुँचाना अपने और दूसरोंके शरीरमें स्थित परमेश्वरसे ही द्वेष करना है।

‖ सिंह, बाघ, सर्प, बिच्छू, सूअर, कुत्ते और कौए आदि जितने भी पशु, पक्षी और कीट हैं—ये सभी आसुरी योनियाँ हैं।

§ मनुष्ययोनिमें जीवको भगवत्प्राप्तिका अधिकार है, इस अधिकारको प्राप्त होकर भी जो मनुष्य इस बातको भूलकर, दैव-सम्पत्तिका आश्रय न लेकर आसुर-स्वभावका अवलम्बन करते हैं, वे मनुष्य-शरीरको मुक्त होकर पाकर भी भगवान्‌को नहीं पा सकते—यही भाव दिखलानेके लिये भगवान्‌ने 'अप्राप्य' पदका प्रयोग किया है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ २१॥

काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये*॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥ २२॥

हे अर्जुन! इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है†, इससे वह परमगतिको जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है॥

[illegible]

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ २३॥

जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परमगतिको और न सुखको ही‡॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ २४॥

इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रविधिसे नियत कर्म ही करनेयोग्य है§॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥ भीष्मपर्वणि तु चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥ भीष्मपर्वमें चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

---

* स्त्री, पुत्र आदि समस्त पदार्थोंकी कामनाका नाम 'काम' है; इस कामनाके वशीभूत होकर ही मनुष्य चोरी, व्यभिचार और अभक्ष्य-भक्षणादि नाना प्रकारके पाप करते हैं। मनके विपरीत होनेपर [illegible] उत्पन्न होती है, उसका नाम 'क्रोध' है; क्रोधके आवेशमें मनुष्य हिंसा-प्रतिहिंसा आदि [illegible] पाप करते हैं। धनादि विषयोंकी अत्यन्त बढ़ी हुई [illegible] लोभी मनुष्य उचित अवसरपर धनका त्याग नहीं कर सकता एवं अनुचित रूपसे भी उपार्जन और संग्रह करनेमें लगा रहता है; इसके कारण उनके द्वारा झूठ, कपट, चोरी और विश्वासघात आदि बड़े-बड़े पाप बन जाते हैं। [illegible] आचरण और भावोंमें गिरने लगता है; काम, क्रोध और लोभके कारण [illegible] उनका शारीरिक पतन हो जाता है; मन बुरे विचारोंसे भर जाता है, बुद्धि बिगड़ जाती है, [illegible] और इसके फलस्वरूप उनके वर्तमान जीवनके सुख, शान्ति और [illegible] नरकोंकी प्राप्ति होती है। इसीलिये इन तीनों दोषोंको नरकके द्वार और आत्माका नाश करनेवाला बतलाया गया है।

† काम, क्रोध और लोभ [illegible] आसुरी सम्पदाका त्याग करके शास्त्रप्रतिपादित सद्गुण और सदाचाररूप दैवी सम्पदाका निष्कामभावसे सेवन करना ही कल्याणके लिये आचरण करना है।

‡ वेद और वेदोंके आधारपर रचे हुए स्मृति, पुराण, इतिहासादि सभी शास्त्र हैं। [illegible] व्यवहार [illegible] कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान करानेवाला शास्त्र है। [illegible] बुद्धिसे [illegible] मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि किसीकी भी इच्छाविशेषको लेकर आचरण करता है, वह शास्त्रविधिका त्यागकर मनमाना आचरण करता है। [illegible] कहीं भी सुख नहीं मिलता, अर्थात् परमगति नहीं मिलती—इतनी ही बात नहीं है; लौकिक अणिमादि सिद्धि और स्वर्गप्राप्तिरूप सिद्धि भी नहीं मिलती एवं संसारमें सात्त्विक सुख भी नहीं मिलता।

§ इससे यह भाव दिखलाया गया है कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—इसकी व्यवस्था श्रुति, वेदमूलक स्मृति और पुराण-इतिहासादि शास्त्रोंसे प्राप्त होती है। अतएव इस विषयमें मनुष्यको मनमाना आचरण न करके शास्त्रोंको ही प्रमाण मानना चाहिये; अर्थात् इन शास्त्रोंमें जिन कर्मोंके करनेका विधान है, उनको करना चाहिये और जिनका निषेध है, उन्हें नहीं करना चाहिये।

तथा उन शास्त्रविहित शुभ कर्मोंका आचरण भी निष्कामभावसे ही करना चाहिये; क्योंकि शास्त्रोंमें निष्कामभावसे किये हुए शुभ कर्मोंको ही [illegible] हेतु बतलाया है।

एकचत्वारिंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीताया सप्तदशोऽध्याय)

श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करनेवालोंका वर्णन, आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद तथा ॐ तत् सत्‌के प्रयोगकी व्याख्या

सम्बन्ध—सोलहवें अध्यायके आरम्भमें श्रीभगवान्‌ने निष्कामभावसे सेवन किये जानेवाले शास्त्रविहित गुण और आचरणोंका दैवीसम्पदाके नामसे वर्णन करके फिर शास्त्रविरुद्ध आसुरी सम्पत्तिका कथन किया। साथ ही आसुर स्वभाववाले पुरुषोंको नरकोंमें गिरानेकी बात कही और यह बतलाया कि काम, क्रोध, लोभ ही आसुरी सम्पदाके प्रधान अवगुण हैं और ये तीनों ही नरकोंके द्वार हैं; इनका त्याग करके जो आत्मकल्याणके लिये साधन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। इसके अनन्तर यह कहा कि जो शास्त्रविधिका त्याग करके मनमाना आचरण करता है, उसे सिद्धि, सुख और परम गति नहीं मिलती। इसपर अर्जुनके मनमें यह जिज्ञासा हुई कि जो लोग शास्त्रविधिका त्याग करके मनमाना आचरण करते हैं, उनका कल्याण नहीं होता, यह तो ठीक ही है; परन्तु ऐसे लोग भी तो हो सकते हैं जो शास्त्रविधिको न जाननेके कारण अथवा अन्य किसी कारणवश शास्त्रविधिका त्याग करते हुए भी यज्ञ-पूजादि शुभकर्म श्रद्धापूर्वक करते हैं, उनकी क्या स्थिति होती है? इस जिज्ञासासे अर्जुन पूछते हैं—

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ १॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे युक्त हुए देवादिका पूजन करते हैं,* उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी किंवा तामसी?†

---

* यद्यपि शास्त्रविधिके त्यागकी बात सोलहवें अध्यायके तेईसवें श्लोकमें भी आ चुकी है और यहाँ भी वही है, पर इन दोनोंके भावमें बड़ा अन्तर है। वहाँ अवहेलनापूर्वक किये जानेवाले शास्त्रविधिके त्यागका वर्णन है और यहाँ न जाननेके कारण होनेवाले शास्त्रविधिके त्यागका है। उनको तो शास्त्रकी परवा ही नहीं है, वे अपनी मनमानीमें ही अपना कल्याण मानते हैं; इसीलिये वहाँ उनको कामाचारी कहा गया है। परन्तु यहाँ उनको श्रद्धान्वित कहा है, अतः इन लोगोंमें श्रद्धा है। जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ अवहेलना नहीं हो सकती। इन लोगोंको परिस्थिति और वातावरणकी प्रतिकूलतासे, अवकाशके अभावसे अथवा परिश्रम तथा अध्ययन आदिकी कमीसे शास्त्रविधिका ज्ञान नहीं होता और इस अज्ञानके कारण ही इनके द्वारा उसका त्याग होता है।

† जो शास्त्रको न जाननेके कारण शास्त्रविधिका त्याग करके श्रद्धापूर्वक पूजन आदि करनेवाले हैं, वे कैसे स्वभाववाले हैं—दैव स्वभाववाले या आसुर स्वभाववाले? इसका स्पष्टीकरण पहले नहीं हुआ, अतः उसीको समझनेके लिये अर्जुनका यह प्रश्न है कि ऐसे लोगोंकी स्थिति सात्त्विकी है अथवा राजसी या तामसी? अर्थात् वे दैवीसम्पदावाले हैं या आसुरीसम्पदावाले?

शास्त्रके विवेचनसे यह पता लगता है कि संसारमें निम्नलिखित पाँच प्रकारके मनुष्य हो सकते हैं—

(१) जिनमें श्रद्धा भी है और जो शास्त्रविधिका पालन भी करते हैं, ऐसे पुरुष दो प्रकारके हैं—एक तो निष्कामभावसे कर्मोंका आचरण करनेवाले और दूसरे सकामभावसे कर्मोंका आचरण करनेवाले। निष्कामभावसे आचरण करनेवाले दैवीसम्पदायुक्त सात्त्विक पुरुष मोक्षको प्राप्त होते हैं। इनका वर्णन जगह-जगह गीताके अध्यायोंमें आया है ... सकामभावसे आचरण करनेवाले सत्त्वमिश्रित राजस पुरुष सिद्धि, सुख तथा स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होते हैं। इनका वर्णन गीताके दूसरे अध्यायके बयालीसवें, तैंतालीसवें और चौवालीसवें; नवें अध्यायके बीसवें, इक्कीसवें और ... तथा इस अध्यायके ग्यारहवें, अठारहवें और इक्कीसवें श्लोकोंमें है।

(२) जो लोग शास्त्रविधिका किसी अंशमें पालन करते हुए यज्ञ, दान, तप आदि कर्म तो करते हैं, परन्तु जिनमें श्रद्धा नहीं होती, उन पुरुषोंके कर्म असत् (निष्फल) होते हैं, उन्हें इस लोक और परलोकमें उन कर्मोंका कुछ भी फल नहीं होता। इसका वर्णन गीताके इस अध्यायके अट्ठाईसवें श्लोकमें किया गया है।

(३) जो लोग अज्ञताके कारण शास्त्रविधिका तो त्याग करते हैं, परन्तु जिनमें श्रद्धा है, ऐसे पुरुष श्रद्धाके भेदसे

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—मनुष्योंकी वह शास्त्रीय संस्कारोंसे रहित केवल स्वभावसे उत्पन्न श्रद्धा सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी—ऐसे तीनों प्रकारकी ही होती है। उसको तू मुझसे सुन।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।* ३

प्रश्न—इसके अनुसार मनुष्योंकी निष्ठाका लक्षण मालूम हुआ, इससे यह बात जानी जा सकती है कि वैसे मनुष्योंकी पहचान कैसे हो कि कौन किस निष्ठावाला है, इसपर भगवान् कहते हैं—

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

सात्त्विक पुरुष देवोंको पूजते हैं,† राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको‡ तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणोंको§ पूजते हैं।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

सात्त्विक भी होते हैं और राजस तथा तामस भी। इनकी गति भी इनके स्वभावके अनुसार ही होती है। इसका वर्णन इस अध्यायके दूसरे, तीसरे तथा चौथे श्लोकोंमें किया गया है।

जो लोग न तो शास्त्रको मानते हैं और न जिनमें श्रद्धा ही है, इससे जो काम, क्रोध और लोभके वश होकर अपना मनमाना जीवन बिताते हैं, वे आसुरी-स्वभाववाले लोग नरकोंमें गिरते हैं तथा नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं। उनका वर्णन गीताके सोलहवें अध्यायके सातवें श्लोकसे बीसवें श्लोकतकमें विस्तारपूर्वक है तथा इस अध्यायके पाँचवें और छठे इन दो श्लोकोंमें है।

जो लोग कर्मोमें श्रद्धा होनेके कारण शास्त्रविधिका त्याग करते हैं और अपनी इच्छासे उन्हें जो मनमाना करना है, वही करते हैं, उन स्वेच्छाचारी पुरुषोंमें जितना कर्म शास्त्रनिषिद्ध होता है, उसके कारण पुरुषोंको तो नरकादि दुर्गतियोंकी प्राप्ति होती है और विहित कर्म अच्छे होते हैं, उन पुरुषोंके शास्त्रविधिका त्याग कर देनेके कारण उनसे भी फल नहीं मिलता। इसका वर्णन गीताके सोलहवें अध्यायके तेईसवें श्लोकमें किया गया है। ध्यान रहे कि इनके द्वारा जो पापकर्म किये जाते हैं, उनका फल—निषिद्ध योनियोंकी प्राप्ति और नरकोंकी प्राप्ति—अवश्य होता है।

इन पाँच प्रकारके मनुष्योंमें तामसमें प्रमादजनक जिन श्लोकोंका संकेत किया गया है, उनके अतिरिक्त अन्यान्य श्लोकोंमें भी इनका वर्णन है, परन्तु यहाँ उन सबका उल्लेख करनेसे बहुत विस्तार हो जाता, इसलिये नहीं किया गया।

या श्रद्धा इस जन्मके कर्म-संस्कारोंसे होती है उसे शास्त्रजा कहते हैं और जो पूर्वजन्मकी तथा इस जन्मके कर्मोंके संस्कारानुसार स्वाभाविक होती है, वह स्वभावजा कहलाती है।

* पुरुषका वास्तविक स्वरूप तो गुणातीत ही है, परन्तु यहाँ उस पुरुषकी बात है जो प्रकृतिमें स्थित है और प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुणोंसे सम्बद्ध है; क्योंकि गुणजन्य भेद प्रकृतिस्थ पुरुष में ही सम्भव है। जो गुणोंसे परे है उसमें तो गुणोंके भेदकी कल्पना ही नहीं हो सकती। यहाँ भगवान् यह बतलाते हैं कि जिसकी अन्तःकरणके अनुरूप जैसी सात्त्विकी, राजसी या तामसी श्रद्धा होती है—वैसी ही उस पुरुषकी निष्ठा या स्थिति होती है; अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा है, वही उसका स्वरूप है। इससे भगवान्ने श्रद्धा, निष्ठा और स्वरूपकी एकता करते हुए, उनकी कौन-सी निष्ठा है, अर्जुनके इस प्रश्नका उत्तर दिया है।

† अभिप्राय यह है कि देवताओंको पूजनेवाले मनुष्य सात्त्विक हैं—सात्त्विकी निष्ठावाले हैं। देवताओंसे यहाँ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, यम, अश्विनीकुमार और विश्वेदेव आदि शास्त्रोक्त देव समझने चाहिये।

यहाँ देवपूजनरूप क्रिया सात्त्विक होनेके कारण उसे करनेवालोंको सात्त्विक बतलाया है, परन्तु पूर्ण सात्त्विक तो वही है जो सात्त्विक क्रियाके निष्कामभावसे करता है।

‡ यहाँ कुबेरादि और राक्षसोंसे राहु-केतु आदि समझना चाहिये।

§ मरनेके बाद जो पाप-कर्मवश भूत-प्रेतादिके वायुप्रधान देहको प्राप्त होते हैं, वे भूत-प्रेत कहलाते हैं।

जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मनःकल्पित घोर तपको तपते हैं तथा दम्भ और अहंकारसे युक्त* एवं कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं;

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥६॥

जो शरीररूपसे स्थित भूतसमुदायको और अन्तःकरणमें स्थित मुझ परमात्माको भी कृश करनेवाले हैं,† उन अज्ञानियोंको तू आसुर-स्वभाववाले जान॥६॥

[illegible] त्रिविध स्वाभाविक श्रद्धाका तथा घोर [illegible] करनेवाले [illegible] आसुर [illegible] शरीरका [illegible] अर्जुनको [illegible] देते हैं—

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥७॥

भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकारका प्रिय होता है। वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं।‡ उनके इस पृथक्-पृथक् भेदको तू मुझसे सुन॥७॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥८॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले§, रसयुक्त[1], चिकने[2] और स्थिर रहनेवाले[3] तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय[4]—ऐसे आहार[5] अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं॥८॥

---

* जिसमें नाना प्रकारके आडम्बरोंसे शरीर और इन्द्रियोंको कष्ट पहुँचाया जाता है और जिसका स्वरूप बड़ा भयानक होता है, इस प्रकारके शास्त्रविरुद्ध मनमाना तप करनेवाले मनुष्योंमें श्रद्धा नहीं होती। वे लोगोंको ठगनेके लिये और उनपर रोब जमानेके लिये पाखण्ड रचते हैं तथा बड़े अहंकारसे पूर्ण रहते हैं। इसीसे उन्हें दम्भ और अहंकारसे युक्त कहा गया है।

पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, दस इन्द्रियाँ और पाँच इन्द्रियोंके विषय—इन तेईस तत्त्वोंके समूहका नाम 'भूतग्राम' है।

† शरीरको क्षीण और दुर्बल करना तथा [illegible] भूतसमुदायको [illegible] और परमात्माको कृश करना है, क्योंकि उनके हृदयमें आत्मरूपसे परमात्मा ही स्थित हैं।

‡ मनुष्य जैसा आहार करता है, वैसा ही उसका अन्तःकरण बनता है और अन्तःकरणके अनुरूप ही श्रद्धा भी होती है। आहार शुद्ध होगा तो उसके परिणामस्वरूप अन्तःकरण भी शुद्ध होगा। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' (छान्दोग्य ७।२६।२) अन्तःकरणकी शुद्धिसे ही [illegible] शुद्ध और [illegible] शुद्ध होंगे। अतएव इस प्रसङ्गमें आहारका विवेचन करके यह भाव दिखलाया गया है कि [illegible] जो आहार जिसको प्रिय होता है, वह उसी गुणवाला होता है। [illegible] विषय [illegible] गया है। [illegible] उसकी पहचान हो सकती है। [illegible] समझ लेनी चाहिये।

१ दूध, घी आदि [illegible] पदार्थोंको 'रस्य' कहते हैं।

२ मक्खन, घी तथा सात्त्विक पदार्थोंसे निकाले हुए तेल आदि स्नेहयुक्त पदार्थोंको 'स्निग्ध' कहते हैं।

३ जिन पदार्थोंका सार बहुत कालतक शरीरमें स्थिर रह सकता है, ऐसे ओज उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंको 'स्थिर' कहते हैं।

४ गंदे और अपवित्र [illegible] जो देखते ही मनमें सात्त्विक रुचि उत्पन्न करनेवाले हैं, ऐसे पदार्थोंको 'हृद्य' कहते हैं।

५ भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—इन चार प्रकारके खानेयोग्य पदार्थोंको 'आहार' कहते हैं।

§ (१) आयुका अर्थ है उम्र या जीवन; जीवनकी अवधिका बढ़ जाना आयुका बढ़ना है।

(२) सत्त्वका अर्थ है बुद्धि; बुद्धिका निर्मल, तीक्ष्ण एवं यथार्थ तथा सूक्ष्मदर्शिनी होना ही सत्त्वका बढ़ना है।

(३) बलका अर्थ है सत्कार्यमें सफलता प्राप्त करानेवाली मानसिक और शारीरिक शक्ति; इस शक्तिका बढ़ना ही बलका बढ़ना है।

(४) मानसिक और शारीरिक रोगोंका नष्ट होना ही आरोग्यका बढ़ना है।

(५) हृदयमें संतोष, सात्त्विक प्रसन्नता और पुष्टिका होना तथा मुखादि शरीरके अङ्गोंमें शुद्ध भावजनित चिह्नोंका प्रकट होना सुख है; इसकी वृद्धि सुखका बढ़ना है।

(६) चित्तवृत्तिका प्रेमभावसम्पन्न हो जाना और बाहरसे प्रीतिके चिह्नोंका प्रकट होना ही प्रीतिका बढ़ना है।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ ९॥

कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ राजस पुरुषको प्रिय होते हैं।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ १०॥

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥ ११॥

जो शास्त्रविधिसे नियत, यज्ञ करना ही कर्तव्य है—इस प्रकार मनको समाधान करके, फल न चाहनेवाले पुरुषोंद्वारा किया जाता है, वह सात्त्विक है।

उपर्युक्त आयु, बुद्धि और बल आदिको बढ़ानेवाले जो दूध, घी, शाक, फल, चीनी, गेहूँ, जौ, चना, मूँग और चावल आदि सात्त्विक आहार हैं, उन सबका [illegible] यह लक्षण किया गया है।

* नीम, करेला आदि [illegible] हैं; इमली आदि खट्टे हैं; [illegible] [illegible] अति उष्ण हैं; [illegible] मिर्च आदि तीखे हैं; भाड़में भूने हुए अनाज रूखे हैं और [illegible] पदार्थ दाहकारक हैं।

उपर्युक्त पदार्थोंके खानेके समय गले आदिमें [illegible] होना, [illegible] आदिका जलना, दाँतोंका [illegible] [illegible] होना, आँखों और नाकोंमें पानी आ जाना, हिचकी आना आदि जो कष्ट होते हैं, उन्हें दुःख कहते हैं; [illegible] जो [illegible] होता है उसे चिन्ता कहते हैं और खानेके बाद [illegible] उत्पन्न होते हैं, उन्हें 'रोग' कहते हैं। इन सबके [illegible] दुःख, चिन्ता और रोग [illegible] हैं; इसलिये इन्हें दुःख, चिन्ता और रोगोंको उत्पन्न करनेवाले कहा है। अतएव इनका त्याग करना उचित है।

'यातयाम' अर्थात् अधपका उन [illegible] पदार्थोंको [illegible] चाहिये जो पूरी तरहसे पके न हों अथवा जिनके सिद्ध [illegible] [illegible] [illegible] हो।

इसी प्रकरणमें 'पर्युषित' शब्द बासी अन्नका वाचक [illegible] गया है। 'यातयामम्' का अर्थ एक पहर पहलेका बना भोजन मान लेनेसे 'बासी' [illegible] [illegible] [illegible] नहीं रह जाती, यह सोचकर ही 'यातयामम्' का अर्थ अधपका किया गया है।

अग्नि आदिके संयोगसे [illegible] अथवा मौसिम बीत जाने आदिके कारणोंसे जिन खाद्य पदार्थोंका रस सूख गया हो, उसे सारे [illegible] आदिका रस सूख जाता है, उनको 'गतरस' कहते हैं।

खानेकी जो वस्तुएँ स्वभावसे ही दुर्गन्धयुक्त हों, जैसे प्याज, लहसुन आदि अथवा जिनमें किसी क्रियासे दुर्गन्ध उत्पन्न कर दी गयी हो, उन वस्तुओंको 'पूति' कहते हैं।

[illegible] दिनके बनाये हुए भोजनको 'पर्युषित' या बासी कहते हैं। उन पदार्थोंको भी बासी समझना चाहिये जिनमें बहुत समय बीत जानेके कारण विकार उत्पन्न हो गया हो।

अपने या दूसरेके भोजन कर लेनेपर बची हुई जूठी चीजोंको 'उच्छिष्ट' कहते हैं।

मांस, मछली, अंडे आदि हिंसामय और शराब-ताड़ी आदि निषिद्ध मादक वस्तुएँ, जो स्वभावसे ही अपवित्र हैं, अथवा जिनमें किसी प्रकारके संसर्गसे [illegible] [illegible] वस्तु, स्थान, पात्र या व्यक्ति [illegible] [illegible] और अन्यायसे उपार्जित अन्न, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जो हों, उन सब वस्तुओंको 'अमेध्य' कहते हैं। ऐसे पदार्थ देवपूजनमें भी निषिद्ध [illegible] हैं। इनके सिवा गाँजा, भाँग, अफीम, तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, [illegible] आसव और [illegible] दवाइयाँ आदि तमोगुण उत्पन्न करनेवाली जितनी भी खान-पानकी वस्तुएँ हैं—सभी अपवित्र हैं।

यज्ञ करनेवाले जो पुरुष उस यज्ञसे स्त्री, पुत्र, धन, मकान, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, विजय या स्वर्ग आदिकी प्राप्ति एवं किसी प्रकारके अनिष्टकी निवृत्तिरूप इस लोक या परलोकके किसी प्रकारके सुखभोग या दुःख-निवृत्तिकी कुछ भी इच्छा नहीं करते, उनका वाचक 'अफलाकाङ्क्षिभिः' पद है। गीता [illegible]

देवता आदिके उद्देश्यसे घृतादिके द्वारा अग्निमें हवन करना या अन्य किसी प्रकारसे किसी भी वस्तुका [illegible] करके किसीको सन्तोष [illegible] करना 'यज्ञ' कहलाता है।

अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार जिस मनुष्यके लिये शास्त्रोंमें जिसका विधान है, उसको अवश्य करना चाहिये।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ १२॥

परन्तु हे अर्जुन! केवल दम्भाचरणके लिये अथवा फलको भी दृष्टिमें रखकर जो यज्ञ किया जाता है, उस यज्ञको तू राजस जान*॥ १२॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥ १३॥

शास्त्रविधिसे हीन, अन्नदानसे रहित, बिना मन्त्रोंके, बिना दक्षिणाके और बिना श्रद्धाके किये जानेवाले यज्ञको तामस यज्ञ कहते हैं॥ १३॥

सम्बन्ध—इस प्रकार तीन तरहके यज्ञके लक्षण बतलाकर अब तपके स्वरूपका प्रकरण आरम्भ करते हुए पहले शारीरिक तपके लक्षण बतलाते हैं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ १४॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता†, सरलता‡, ब्रह्मचर्य§ और अहिंसा×—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है+॥ १४॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ १५॥

ऐसे शास्त्रविहित कर्तव्यरूप यज्ञका न करना भगवान्‌के आदेशका उल्लङ्घन करना है, इस प्रकार यह परलोक लिये मनमें एवं निश्चय करके निष्कामभावसे जो यज्ञ किया जाता है, वही यज्ञ सात्त्विक होता है।

* जो यज्ञ किसी फलप्राप्तिके उद्देश्यसे किया गया है, वह शास्त्रविहित और श्रद्धापूर्वक किया हुआ होनेपर भी राजस है एवं जो दम्भपूर्वक किया जाता है, वह भी राजस है; फिर जिसमें ये दोनों दोष हों, उसके राजस होनेमें तो कहना ही क्या है?

१ जो यज्ञ शास्त्रविहित न हो या जिसके सम्पादनमें शास्त्रविधिकी कमी हो, अथवा जो शास्त्रोक्त विधानकी अवहेलना करके मनमाने ढंगसे किया गया हो, उसे 'विधिहीन' कहते हैं।

२ जो यज्ञ शास्त्रोक्त ब्राह्मणभोजन आदि अन्नदानसे रहित हो, जिसमें अन्नदान हुआ ही न हो या विधिवत् न हुआ हो, अथवा अन्नदानमें त्रुटि रह गयी हो—उस यज्ञको 'असृष्टान्न' कहते हैं।

* ब्रह्मा, महादेव, सूर्य, चन्द्रमा, दुर्गा, अग्नि, वरुण, यम, इन्द्र आदि जितने भी शास्त्रोक्त देवता हैं—शास्त्रोंमें जिनके पूजनका विधान है—उन सबका वाचक यहाँ 'देव' शब्द है। 'द्विज' शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंका वाचक होनेपर भी यहाँ केवल ब्राह्मणोंके लिये प्रयुक्त है, क्योंकि शास्त्रानुसार ब्राह्मण ही सबके पूज्य हैं। 'गुरु' शब्द यहाँ माता, पिता, आचार्य, वृद्ध एवं अपनेसे जो वर्ण, आश्रम, आयु और गुण आदिमें किसी प्रकार भी बड़े हों, उन सबका वाचक है। तथा 'प्राज्ञ' शब्द यहाँ परमेश्वरके स्वरूपको भलीभाँति जाननेवाले महात्मा ज्ञानी पुरुषोंका वाचक है। इन सबका यथायोग्य आदर-सत्कार करना, इनको नमस्कार करना, दण्डवत्-प्रणाम करना, इनके चरण धोना, इन्हें चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि समर्पण करना, इनकी यथासाध्य सब प्रकारसे सेवा करना और इन्हें सुख पहुँचानेकी उचित चेष्टा करना आदि इनका पूजन करना है।

† यहाँ 'शौच' शब्द शारीरिक शौचका वाचक है, क्योंकि वाणी और मनकी शुद्धिका वर्णन अलग किया गया है। जल-मृत्तिकादिके द्वारा शरीरको स्वच्छ और पवित्र रखना तथा शरीरसम्बन्धी समस्त चेष्टाओंका पवित्र होना ही शारीरिक शौच है।

‡ यहाँ शरीरकी अकड़ और ऐंठ आदि वक्रताके त्यागका नाम सरलता है।

§ यहाँ 'ब्रह्मचर्य' शब्द शरीरसम्बन्धी सब प्रकारके मैथुनोंके त्याग और भलीभाँति वीर्य धारण करनेका वाचक है।

× शरीरद्वारा किसी भी प्राणीको कहीं भी किसी प्रकारसे कभी किंचिन्मात्र भी कष्ट न पहुँचानेका नाम ही यहाँ 'अहिंसा' है।

\+ उपर्युक्त क्रियाओंमें शरीरकी प्रधानता है अर्थात् इनमें शरीरका घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये इन्द्रियोंके सहित शरीरको उसके समस्त दोषोंका नाश करके पवित्र बना देनेवाली हैं; इसलिये इन सबको शारीरिक तप कहते हैं।

१ जो वचन किसीके भी मनमें जरा भी उद्वेग उत्पन्न करनेवाले न हों तथा निन्दा या चुगली आदि दोषोंसे सर्वथा रहित हों, उन्हें 'अनुद्वेगकर' कहते हैं। जैसा देखा, सुना और अनुभव किया हो, ठीक वैसा-का-वैसा ही भाव दूसरेको समझानेके लिये जो यथार्थ वचन बोले जायँ, उनको 'सत्य' कहते हैं। जो सुननेवालेको प्रिय लगते हों तथा कटुता, रूखापन, तीखापन, ताना और अपमानके शब्द आदि दोषोंसे सर्वथा रहित हों, ऐसे प्रेमयुक्त, मीठे, सरल और शान्त वचनोंको 'प्रिय' कहते हैं तथा जिनसे परिणाममें सबका हित होता हो, जो हिंसा, द्वेष, डाह और वैरसे सर्वथा शून्य हों

को प्रतीत न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है, वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणके भावोंकी भली-भाँति पवित्रता, इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

फलको न चाहनेवाले योगी पुरुषोंद्वारा परम श्रद्धासे किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्विक कहते हैं ॥ १७ ॥

सम्बन्ध—अब राजस तपके लक्षण बतलाते हैं

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

और प्रेम, दया तथा माधुर्यसे भरे हों, उनको हित कहते हैं । ऐसे सत्यके उपयुक्त सभी गुणोंसे सम्पन्न हो, एवं जो आत्मवर्णन, परनिन्दाकी सब प्रकारके दोषोंसे रहित हो, उसी वाणीके उच्चारणको व्यावहारिक तप कहा जा सकता है ।

विषाद, भय, चिन्ता, क्रोध, व्याकुलता, उद्विग्नता आदि दोषोंसे रहित होकर मनकी प्रसन्नता, हर्ष और शोक रहितसे युक्त हो जाना ही मनका प्रसाद है ।

क्रूरता, द्वेष, हिंसा, प्रतिहिंसा, कठोरता, निर्दयता आदि तापकारक दोषोंसे सर्वथा शून्य होकर मनका सदा-सर्वदा शान्त और शीतल बने रहना ही सौम्यत्व है ।

मनका निरन्तर भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, स्वरूप, लीला और नाम आदिके चिन्तनमें या ब्रह्मविचारमें लगा रहना ही मौन है ।

अन्तःकरणकी चञ्चलताका सर्वथा नाश होकर उसका स्थिर तथा अच्छी प्रकार अपने वशमें हो जाना ही आत्मविनिग्रह है ।

अन्तःकरणमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर, ईर्ष्या-वैर, घृणा-तिरस्कार, असूया, अभिमान, प्रमाद, व्यर्थ विचार, इष्टविरोध और अनिष्टचिन्तन आदि दुर्भावोंका सर्वथा नाश हो जाना और इनके विरोधी दया, क्षमा, प्रेम, विनय आदि उत्तम भावोंका सदा विकसित रहना भावसंशुद्धि है ।

जो मनुष्य इस लोक या परलोकके किसी प्रकारके भी सुखभोग अथवा दुःखकी निवृत्तिरूप फलकी कभी किसी भी कारणसे किंचिन्मात्र भी कामना नहीं करता, उसे 'अफलाकाङ्क्षी' कहते हैं और जिसके मन, बुद्धि और इन्द्रिय अनायास निरुद्ध तथा 'युक्त' हो गये हैं तथा कभी किसी भी प्रकारसे उस साधनसे विचलित नहीं हो सकते, जिसमें आस्तिकता सहज स्वभाव हो गया है, उसे युक्त कहते हैं । उपर्युक्त तीन प्रकारका तप जब ऐसे निष्काम पुरुषोंद्वारा किया जाता है, तभी वह पूर्ण सात्त्विक होता है ।

• शास्त्रोंमें उपर्युक्त तपका जो कुछ भी महत्त्व, प्रभाव और स्वरूप बतलाया गया है, उसपर आदरपूर्वक प्रत्यक्षसे भी बढ़कर सम्मानपूर्वक एवं विश्वास होना 'परम श्रद्धा' है और ऐसी श्रद्धासे युक्त होकर बड़े-से-बड़े विघ्नोंकी या कष्टोंकी कुछ भी परवा न करके न अविचलित रहते हुए अत्यन्त आदर और उत्साहपूर्वक उपर्युक्त तपका आचरण करते रहना ही 'उसे परम श्रद्धासे करना' है ।

† अभिप्राय यह है कि शरीर, वाणी और मनसम्बन्धी उपर्युक्त तप ही सात्त्विक हो सकते हैं, साथ ही यह भी दिखलाया है कि यद्यपि ये तप स्वरूपसे तो सात्त्विक हैं, परन्तु ये पूर्ण सात्त्विक तब होते हैं, जब इस श्लोकमें बतलाये हुए भावसे किये जाते हैं ।

उनमें यथार्थ आस्था न होनेपर भी लोगोंको धोखा देकर किसी प्रकारका स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये तपस्वीकासा सौंग बनाकर जो किसी लौकिक या शास्त्रीय तपका केवल दिखलानेभरके लिये आचरण किया जाता है, उसे दम्भसे तप करना कहते हैं ।

जिस फलकी प्राप्तिके लिये उसका अनुष्ठान किया जाता है, उसका प्राप्त होना या न होना निश्चित नहीं है, इसलिये उसे 'अध्रुव' कहा है और जो कुछ फल मिलता है, वह भी सदा नहीं रहता, उसका शीघ्र ही नाश हो जाता है, इसलिये उसे 'चल' कहा है ।

जो तप सत्कार, मान और पूजाके लिये तथा अन्य किसी स्वार्थके लिये भी स्वभावसे या पाखण्डसे किया जाता है, वह अनिश्चित एवं क्षणिक फलवाला तप यहाँ राजस कहा गया है।

[illegible] जो तामस तपके लक्षण बतलाते हैं [illegible]

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्॥ १९॥

जो तप मूढतापूर्वक हठसे मन, वाणी और शरीरको पीड़ाके सहित अथवा दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये किया जाता है—वह तप तामस कहा गया है।

[illegible]—तीन प्रकारके [illegible] सात्त्विक दानके लक्षण बतलाते हैं—

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ २०॥

दान देना ही कर्तव्य है—ऐसे भावसे जो दान देश तथा काल और पात्रके प्राप्त होनेपर [illegible] न करनेवालेके प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

* [illegible] प्रसिद्धि [illegible] प्रकार [illegible] सारे [illegible] उनकी [illegible] —उनका नाम सत्कार है। [illegible] पूजा करना [illegible] आदर [illegible] नाम पूजा है। [illegible] मान और पूजाके लिये [illegible] [illegible]

[illegible] मानकर [illegible] करनेको [illegible] है उसे मूढग्राह कहते हैं।

† [illegible]

‡ [illegible] अवस्था और परिस्थितिके अनुसार [illegible] [illegible] सात्त्विक है।

§ जिस देश, काल [illegible] [illegible]

× जिसके पास [illegible] [illegible]

+ जिसका अपने [illegible] [illegible] चाहिये।

गी० त० [illegible]

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद् दानं राजसं स्मृतम्॥ २१॥

किंतु जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारके प्रयोजनसे अथवा फलको दृष्टिमें रखकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है॥ २१॥

अदेशकाले यद् दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ २२॥

जो दान बिना सत्कारके अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें और कुपात्रके प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है॥ २२॥

[illegible]

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ २३॥

ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये॥ २३॥

[illegible]

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥ २४॥

इसलिये वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामको उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं॥ २४॥

[illegible]

‡ जिस देश-कालमें दान देना आवश्यक नहीं है अथवा जहाँ दान देना शास्त्रमें निषिद्ध किया है, वे देश और काल दानके लिये अयोग्य हैं।

जिन मनुष्योंको दान देनेकी आवश्यकता नहीं है तथा जिनको दान देनेका शास्त्रमें निषेध है, [illegible] पापाचारी, कपटवेषधारी, हिंसा करनेवाले, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले, दूसरोंकी जीविकाका छेदन करनेवाले, [illegible] मद्य-मांस आदि अभक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करनेवाले, चोरी, व्यभिचार आदि नीच कर्म करनेवाले तथा कुमार्गी और नास्तिक आदि सभी कुपात्र लिये जाते हैं।

जिस परमात्मासे प्रथम कर्ता, कर्म और करणविधिकी उत्पत्ति हुई है, उस भगवान्‌के वाचक ॐ, तत् और सत्—ये तीनों नाम हैं; अतः इनके उच्चारणमात्रसे उन सबकी अङ्ग-पूर्ति हो जाती है। अतएव प्रत्येक कर्मके आरम्भमें परमात्माके नामोंका उच्चारण करना परम आवश्यक है।

§ यहाँ 'ब्राह्मण' शब्द ब्राह्मण आदि समस्त प्रजाका, 'वेद' शब्द सभी वेदोंका, 'यज्ञ' शब्द यज्ञ, तप, दान आदि समस्त शास्त्रविहित कर्तव्यकर्मोंका वाचक है।

जिस परमेश्वरसे यज्ञ, दानादि कर्मोंकी उत्पत्ति हुई है, उसका नाम होनेके कारण ओंकारके उच्चारणसे उन कर्मोंका अङ्गवैगुण्य दूर हो जाता है तथा वे पवित्र और कल्याणप्रद हो जाते हैं। यह भगवान्‌के नामकी अपार महिमा है।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥

तत् अर्थात् 'तत्' नामसे कहे जानेवाले परमात्माका ही यह सब है—इस भावसे फलको न चाहकर नाना प्रकारकी यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याणकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा की जाती हैं॥*

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

'सत्'—इस प्रकार यह परमात्माका नाम सत्यभावमें† और श्रेष्ठभावमें‡ प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें भी§ 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है× और उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक 'सत्'—ऐसे कहा जाता है+॥ २७॥

सम्बन्ध—इस प्रकार श्रद्धायुक्त किये हुए शास्त्रविहित कर्मोंका महत्त्व बतलाया गया, उसे सुनकर यह जिज्ञासा होती है कि जो शास्त्रविहित कर्म बिना श्रद्धाके किये जाते हैं, उनका क्या फल होता है? इसपर भगवान् इस अध्यायका उपसंहार करते हुए कहते हैं—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही÷॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ भीष्मपर्वणि तु एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥ भीष्मपर्वमें इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

इसीलिये वेदोक्त मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक महर्षि कर्म करनेके अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके यज्ञ, दान, तप आदि सभी शास्त्रविहित शुभ कर्म सदा ॐकारके उच्चारणपूर्वक ही होते हैं।

* जो विहित कर्म करनेवाले साधारण मनुष्य हैं, वे उनका फल या अपना ममत्व त्याग नहीं करते, किंतु जो कल्याणकामी मनुष्य हैं, जिनको परमेश्वरकी प्राप्तिके सिवा अन्य किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, वे समस्त कर्म अहंता, ममता, आसक्ति और फलकामनाका सर्वथा त्याग करके केवल परमेश्वरके ही लिये उनकी आज्ञानुसार किया करते हैं।

† 'सद्भाव' कहते हैं नित्य भावको अर्थात् जिसका अस्तित्व सदा रहता है, उस अविनाशी तत्त्वका वाचक है और वही परमात्माका स्वरूप है, इसलिये उसे 'सत्' नामसे कहा जाता है।

‡ अन्तःकरणके जो शुद्ध और श्रेष्ठभाव हैं, उनका वाचक पद 'साधुभाव' है; वे परमात्माकी प्राप्तिमें हेतु हैं, इसलिये उनमें परमेश्वरके 'सत्' नामका प्रयोग किया जाता है अर्थात् उन्हें 'सद्भाव' कहा जाता है।

§ जो शास्त्रविहित करनेयोग्य शुभ कर्म हैं, वे निष्कामभावसे किये जानेपर परमात्माकी प्राप्तिमें हेतु हैं, इसलिये उनमें परमात्माके 'सत्' नामका प्रयोग किया जाता है अर्थात् उन्हें सत्कर्म कहा जाता है।

× यज्ञ, तप और दानसे यहाँ सात्त्विक यज्ञ, तप और दानका निर्देश किया गया है तथा उनमें जो श्रद्धा और प्रेमपूर्वक आस्तिक बुद्धि है, जिसे निष्ठा भी कहते हैं, उसका वाचक यहाँ 'स्थिति' पद है। वह स्थिति परमेश्वरकी प्राप्तिमें हेतु है, इसलिये वह 'सत्' है।

+ जो कोई भी कर्म केवल भगवान्‌के आज्ञानुसार उन्हींके लिये किया जाता है, जिसमें कर्ताका जरा भी स्वार्थ नहीं रहता, ऐसा कर्म कर्ताके अन्तःकरणको शुद्ध बनाकर उसे परमेश्वरकी प्राप्ति करा देता है, इसलिये वह 'सत्' है।

'यत्' पदसे यहाँ निषिद्ध कर्मोंका ग्रहण नहीं है; क्योंकि निषिद्ध कर्मोंके करनेमें श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं है और उनका फल भी श्रद्धापर निर्भर नहीं है। उनको करनेवाले भी जो मनुष्य हैं, जिनकी शास्त्र, महापुरुष और ईश्वरमें श्रद्धा नहीं होती, जिनका विश्वास नहीं है, उनको भी पापकर्मोंका दुःखरूप फल अवश्य ही मिलता है। अतः यहाँ यज्ञ, दान और तपरूप शुभ क्रियाओंके साथ-साथ आया हुआ 'यत्' इत्यादि पद उन्हीं सात्त्विक क्रियाओंका वाचक है।

÷ हवन, दान और तप तथा अन्यान्य शुभ कर्म श्रद्धापूर्वक किये जानेपर ही मनुष्यको शुद्धिमें और इस लोक या परलोकके फल देनेमें समर्थ होते हैं; बिना श्रद्धाके किये हुए शुभ कर्म व्यर्थ हैं। इसीसे उनको 'असत्' और वे इस लोक या परलोकमें कहीं भी लाभदायक नहीं हैं—ऐसा कहा है।

द्विचत्वारिंशोऽध्याय

(श्रीमद्भगवद्गीतायामष्टादशोऽध्याय)

त्यागका, सांख्यसिद्धान्तका, फलसहित वर्ण-धर्मका, उपासनासहित ज्ञाननिष्ठाका, भक्तिसहित निष्काम कर्मयोगका एवं गीताके माहात्म्यका वर्णन

[illegible]

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन॥१॥

अर्जुन बोले—हे महाबाहो! हे अन्तर्यामिन्! हे वासुदेव! मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वको पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूँ*॥१॥

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥२॥

श्रीभगवान् बोले—कितने ही पण्डितजन तो काम्य कर्मोंके† त्यागको संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचारकुशल पुरुष सब कर्मोंके फलके त्यागको‡ त्याग कहते हैं॥२॥

* अर्जुनके प्रश्नका यह भाव है कि संन्यास (ज्ञानयोग) का क्या स्वरूप है, उसमें कौन-कौनसे भाव और कर्म सहायक एवं कौन-कौनसे बाधक हैं, [illegible] साधन किस प्रकार किया जाता है; इसी प्रकार त्याग [illegible] का क्या स्वरूप है, [illegible] साधन किस प्रकार होता है [illegible] कौन-से हैं तथा लौकिक और शास्त्रीय कर्म करते हुए भक्तिसहित एवं भक्तिप्रधान कर्मयोगका साधन किस प्रकार किया जाता है—इन सब बातोंको भी मैं भलीभाँति जानना चाहता हूँ।

[illegible]

† स्त्री, पुत्र, धन और स्वर्गादि प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये और रोग-संकटादि अनिष्टकी निवृत्तिके लिये यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि जितने शुभ कर्मोंका शास्त्रोंमें विधान किया गया है—ऐसे शुभ कर्मोंका नाम 'काम्यकर्म' है।

‡ ईश्वरकी भक्ति, देवताओंका पूजन, माता-पितादि गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रमके अनुसार आजीविकाद्वारा गृहस्थका निर्वाह एवं शरीरसम्बन्धी खान-पान इत्यादि जितने भी शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म हैं, उनके अनुष्ठानसे प्राप्त होनेवाले जो स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गसुख आदि जितने भी इस लोक और परलोकके भोग हैं—उन सबकी कामनाका सर्वथा त्याग कर देना ही 'सब कर्मोंके फलका त्याग करना' है।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कई एक विद्वान् ऐसा कहते हैं कि कर्ममात्र दोषयुक्त हैं, इसलिये त्यागनेके योग्य हैं* और दूसरे विद्वान् यह कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागनेयोग्य नहीं हैं†।

सम्बन्ध—इस प्रकार संन्यास और त्यागके विषयमें विद्वानोंके भिन्न-भिन्न मत बतलाकर अब भगवान् त्यागके विषयमें अपना निश्चय बतलाना आरम्भ करते हैं—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन! संन्यास और त्याग, इन दोनोंमेंसे पहले त्यागके विषयमें तू मेरा निश्चय सुन। क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेके योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्य कर्तव्य है‡; क्योंकि यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

इसलिये हे पार्थ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको तथा और भी सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको आसक्ति और फलोंका त्याग करके अवश्य करना चाहिये; यह मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है§।

सम्बन्ध—अब तीन श्लोकोंमें क्रमसे पूर्वोक्त तीन प्रकारके त्यागके लक्षण बतलाते हैं—

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

(निषिद्ध और काम्य कर्मोंका तो स्वरूपसे त्याग करना उचित ही है) परन्तु नियत कर्मका स्वरूपसे त्याग उचित

---

* आरम्भ किये कर्मोंमें कुछ-न-कुछ पापका सम्बन्ध हो जाता है, अतः [illegible] कर्म भी सर्वथा निर्दोष नहीं हैं। इस भावको लेकर ही विद्वानोंका यह कहना है कि कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको विहित, निषिद्ध और काम्य आदि सभी कर्मोंका स्वरूपसे त्याग कर देना चाहिये।

† दूसरे विद्वानोंके मतमें यज्ञ, दान और तपरूप कर्म शास्त्रोंमें अवश्यकर्तव्य कहे हैं; [illegible] इन कर्मोंके विधिपूर्वक किये जानेपर आरम्भमें [illegible] पापकी शान्ति हो जाती है, अतः [illegible] पाप नहीं है। इसलिये कल्याणकी इच्छावाले मनुष्योंको [illegible] स्वरूपसे त्याग नहीं करना चाहिये।

[illegible] ॥

‡ शास्त्रमें जो-जो कर्म [illegible] जिस वर्ण और आश्रमके अनुसार जिस मनुष्यके लिये जिस समय जिस प्रकार यज्ञ, दान और तप करनेके लिये कहा गया है, उसका उसको त्याग नहीं करना चाहिये, यानी [illegible] अवहेलना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इस प्रकारके कर्मोंका [illegible] इसलिये इन कर्मोंका [illegible] अवश्य करना चाहिये।

§ भगवान्‌के कथनका भाव यह है कि ऊपर दिखलाये हुए [illegible] ठीक नहीं हैं; क्योंकि [illegible] कर्मोंका स्वरूपसे त्याग कर देनेपर भी [illegible] मनुष्यकी ममता, आसक्ति और कामना [illegible] बन्धनके हेतु बन जाते हैं। [illegible] कर देनेपर भी उन कर्मोंमें ममता और आसक्ति रह जानेसे वे बन्धनके हेतु हो सकते हैं। [illegible] ममता, आसक्ति और फलकामनाका त्याग किये बिना यदि [illegible] त्याग कर दिया जाय तो [illegible] मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त नहीं हो सकता [illegible] इसी प्रकार यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको करते रहनेपर भी यदि उनमें आसक्ति और उनके फलकी कामनाका त्याग न किया जाय तो वे बन्धनके हेतु बन जाते हैं। इसलिये उक्त विद्वानोंके बतलाये हुए [illegible] मनुष्य कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता; क्योंकि कर्म स्वरूपसे बन्धनकारक नहीं हैं, उनके साथ ममता, आसक्ति और फलका सम्बन्ध ही बन्धनकारक है। अतः कर्मोंमें जो ममता और फलासक्तिका त्याग है, वही वास्तविक त्याग है; क्योंकि इस प्रकारका त्याग करनेवाला मनुष्य समस्त कर्मबन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

नहीं है। इसलिये मोहके कारण उसका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है †॥ ७॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥ ८॥

जो कुछ कर्म है वह सब दुःखरूप ही है—ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेशके भयसे कर्तव्य-कर्मोंका त्याग कर दे ‡ तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्यागके फलको किसी प्रकार भी नहीं पाता §॥ ८॥

कार्यमित्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ ९॥

हे अर्जुन! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है—वही सात्त्विक त्याग माना गया है ×॥ ९॥

सम्बन्ध—उपर्युक्त प्रकारसे सात्त्विक त्याग करनेवाले पुरुषका निषिद्ध और काम्य कर्मोंका त्याग और कर्तव्यकर्मोंका करना किस भावसे होता है, इस जिज्ञासापर सात्त्विक त्यागी पुरुषकी अन्तिम स्थितिके लक्षण बतलाते हैं—

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ १०॥

जो मनुष्य अकुशल कर्मसे तो द्वेष नहीं करता + और कुशल कर्ममें आसक्त नहीं होता—वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त

* वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थितिकी अपेक्षासे जिस मनुष्यके लिये जो यज्ञ, दान, तप, अध्ययन-अध्यापन, उपदेश, युद्ध, प्रजापालन, पशुपालन, कृषि, व्यापार, सेवा और खान-पान आदि जो-जो कर्म शास्त्रोंमें अवश्यकर्तव्य बतलाये गये हैं, उनको नियत कर्म कहते हैं। उन कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेवाला मनुष्य अपने कर्तव्यका पालन न करनेके कारण पापका भागी होता है; क्योंकि इससे कर्मोंकी परम्परा टूट जाती है और समस्त जगत्‌में विप्लव हो जाता है (गीता ३। २३-२४)। इसलिये नियत कर्मोंका स्वरूपसे त्याग उचित नहीं है।

† मोहवश नियत कर्मोंके त्यागको मुक्तिका हेतु समझकर त्याग करना मोहमूलक होनेके कारण तामस त्याग है। इस त्यागसे मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त नहीं होता, विपरीत करनेसे मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह तो प्रत्यवायका हेतु होनेसे उसका अधःपतन भी आवश्यक है।

‡ यज्ञ, दान, तप आदि शास्त्रविहित कर्मोंके अनुष्ठानमें मन, इन्द्रिय और शरीरको परिश्रम होता है, अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं, बहुत-सी सामग्री एकत्र करनी पड़ती है, शरीरके आरामका त्याग करना पड़ता है, व्रत, उपवास आदि करके कष्ट सहन करना पड़ता है और बहुत-से नियमोंका पालन करना पड़ता है—इस कारण समस्त कर्मोंको दुःखरूप समझकर मन, इन्द्रिय और शरीरके परिश्रमसे बचनेके लिये तथा आरामसे रहनेकी इच्छासे जो यज्ञ, दान और तप आदि शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग करना है, वही उनको दुःखरूप समझकर शारीरिक क्लेशके भयसे उनका त्याग करना है।

§ जबतक मनुष्यका मन, इन्द्रिय और शरीरमें ममता और आसक्ति रहती है, तबतक वह किसी प्रकार भी कर्मबन्धनसे मुक्त नहीं हो सकता। अतः यह राजस त्याग नाममात्रका ही त्याग है, असल त्याग नहीं है। इसलिये कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको ऐसा त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि मन, इन्द्रिय और शरीरके आराममें आसक्ति होना रजोगुणका कार्य है। अतएव ऐसा त्याग करनेवाला मनुष्य त्यागके वास्तविक फलको, जो कि समस्त कर्मबन्धनोंसे छूटकर परमात्माको पा लेना है, नहीं पाता।

× वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थितिकी अपेक्षासे जिस मनुष्यके लिये जो-जो कर्म शास्त्रमें अवश्यकर्तव्य बतलाये गये हैं, वे सभी कर्म ही नियत कर्म हैं। निषिद्ध और काम्य कर्म नियत कर्म नहीं हैं। नियत कर्मोंको न करना भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन करना है। इस भावसे भावित होकर उन कर्मोंमें और उनके फलरूप इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंमें ममता, आसक्ति और कामनाका सर्वथा त्याग करके उत्साहपूर्वक विधिवत् उनका करते रहना ही सात्त्विक त्याग है; क्योंकि कर्मोंमें, फलरूप इस लोक और परलोकके भोगोंमें आसक्ति और कामनाका त्याग ही वास्तविक त्याग है। त्यागका परिणाम कर्मोंसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिये और वह परिणाम ममता, आसक्ति और कामनाके त्यागसे ही हो सकता है—केवल स्वरूपसे कर्मोंका त्याग करनेसे नहीं।

+ शास्त्रनिषिद्ध पाप और काम्यकर्म सभी अकुशल कर्म हैं; क्योंकि पापकर्म तो मनुष्यको नाना प्रकारकी नीच योनियोंमें और नरकमें गिरानेवाले हैं एवं काम्यकर्म भी फलभोगके लिये पुनर्जन्म देनेवाले हैं। सात्त्विक त्यागीमें राग-द्वेषका सर्वथा अभाव हो जानेके कारण वह जो निषिद्ध और काम्यकर्मोंका त्याग करता है, वह द्वेषबुद्धिसे नहीं करता, किंतु लोकसंग्रहके लिये उनका त्याग करता है।

÷ शास्त्रविहित नित्य-नैमित्तिक यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्म निष्कामभावसे किये जानेपर मनुष्यके पूर्वकृत

पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान् और सच्चा त्यागी है ॥ १०॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्यके द्वारा सम्पूर्णतासे सब कर्मोंका त्याग किया जाना शक्य नहीं है,† इसलिये जो कर्मफलका त्यागी है, वही त्यागी है—यह कहा जाता है‡ ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥

कर्मफलका त्याग न करनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका तो अच्छा, बुरा और मिला हुआ—ऐसे तीन प्रकारका फल मरनेके पश्चात् अवश्य होता है§; किंतु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल किसी कालमें भी नहीं होता× ॥ १२ ॥

सम्बन्ध—पहले श्लोकमें अर्जुनने संन्यास और त्यागका तत्त्व अलग-अलग जाननेकी इच्छा प्रकट की थी। [illegible] दूसरे और [illegible] श्लोकोंमें [illegible] विद्वानोंके भिन्न-भिन्न [illegible] चौथे श्लोकसे [illegible] त्यागका [illegible] संन्यासका [illegible] कर्मोंमें निर्दिष्ट [illegible] बतलाते हैं—

[illegible] सात्त्विक त्याग [illegible] कर्मफलकी [illegible] उपयुक्त शुभ कर्मोंका विधिवत् अनुष्ठान करता है [illegible] करना मनुष्यका कर्तव्य है—इस प्रकार ममता, आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करके [illegible] अनुष्ठान करता है।

* [illegible] पुरुष संशयरहित है [illegible] है कि [illegible] इसीलिये वह बुद्धिमान् है और वही सच्चा त्यागी है।

† कोई भी देहधारी मनुष्य बिना कर्म किये रह नहीं सकता (गीता ३ [illegible]) [illegible] नहीं हो सकता (गीता २ [illegible] ८) [illegible] अपनी परिस्थितिके [illegible] खाना-पीना, सोना, जागना, [illegible] और [illegible] पड़ता। अतएव [illegible] कर्मोंका सर्वथा त्याग किया जाना सम्भव नहीं है।

‡ जो [illegible] कर्मोंका [illegible] उन कर्मोंमें और उनके फलमें ममता, आसक्ति और कामनाका [illegible] वही सच्चा त्यागी है।

उसके इन्द्रियोंकी क्रियाओंका [illegible] नहीं है तथा [illegible] और [illegible] लगती नहीं है।

§ जिन्होंने अपने द्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें और उनके फलमें ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग नहीं किया है, [illegible] और [illegible] कर्मोंका [illegible] या अन्य किसी [illegible] कर्मोंका जो [illegible] और [illegible] प्राप्ति या नरकोंकी प्राप्ति अथवा अन्य किसी प्रकारके दुःखोंकी प्राप्ति—वह बुरा फल है। [illegible] प्राप्त होना और [illegible] वह मिश्रित फल है।

[illegible] इसीलिये ऐसे मनुष्य [illegible] रहते हैं।

× कर्मोंमें और उनके फलमें ममता, आसक्ति और कामनाका जिन्होंने सर्वथा त्याग कर दिया है, [illegible] श्लोकमें त्यागीके नामसे जिनके लक्षण बतलाये गये हैं, गीताके [illegible] अध्यायमें [illegible] और [illegible] दोनों पदोंका प्रयोग किया गया है तथा [illegible] अध्यायमें [illegible] जिनको [illegible] ऐसे कर्मयोगियोंको यहाँ 'संन्यासी' कहा गया है।

इस प्रकार [illegible] त्याग कर देनेवाले त्यागी मनुष्य [illegible] करते हैं [illegible] उनमें फल उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती तथा इस प्रकार [illegible] पूर्वसंचित समस्त शुभाशुभ कर्मोंका भी नाश हो जाता है (गीता ४। २४)। इस कारण उनके [illegible] किसी भी कर्मका किसी प्रकारका भी फल किसी भी अवस्थामें जीते हुए या मरनेके बाद कभी नहीं होता। वे कर्मबन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके ये पाँच हेतु कर्मोंका अन्त करनेके लिये उपाय बतलानेवाले [illegible] में कहे गये हैं, उनको तू मुझसे भलीभाँति जान ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १४ ॥

इस विषयमें अर्थात् कर्मोंकी सिद्धिमें अधिष्ठान* और कर्ता† तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके करण‡ एवं नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ§ और [illegible] ही पाँचवाँ हेतु दैव× है ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

मनुष्य+ मन, वाणी और शरीरसे शास्त्रानुकूल[1] अथवा विपरीत[2] जो कुछ भी कर्म करता है, उसके ये पाँचों+ कारण हैं ॥ १५ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार सांख्ययोगके सिद्धान्तसे समस्त कर्मोंकी सिद्धिके अधिष्ठानादि [illegible] कर्मोंका कोई सम्बन्ध नहीं है, [illegible] जो मनुष्य [illegible] है, वह [illegible]।

कृत नाम कर्मोंका है [illegible] गया हो, [illegible] है। [illegible] सांख्य [illegible] ज्ञानका [illegible] है, इसलिये [illegible] वाले [illegible] है और [illegible] पूर्ण [illegible] समस्त कर्मोंका [illegible] बतलायी गयी हो।

[illegible] सभी प्रकारके कर्मोंका वाचक है। [illegible] उसीकी सिद्धि है।

* अधिष्ठान शब्द यहाँ मुख्यतासे करण और क्रियाके आधाररूप शरीरका वाचक है, किंतु गौणरूपसे यज्ञादि कर्मोंमें तद्विषयक क्रियाके आधाररूप भूमि आदिका वाचक भी माना जा सकता है।

† यहाँ कर्ता शब्द [illegible] पुरुषका वाचक है, [illegible] गीताके [illegible] भोक्ता बतलाया गया है।

‡ मन, बुद्धि और अहंकार भीतरके करण हैं तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय—ये दस बाहरके करण हैं। इनके सिवा [illegible] आदि [illegible] हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मोंके करनेमें जितने भी भिन्न-भिन्न द्वार [illegible] हैं, उन सबको यहाँ करण कहा जा सकता है।

§ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमन करना, हाथ-पैर आदि अंगोंका संचालन, श्वासोंका आना-जाना, आँखोंको खोलना और मूँदना, मनमें संकल्प-विकल्पोंका होना आदि जितनी भी हलचलरूप चेष्टाएँ हैं, वे ही नाना प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ हैं।

× पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारोंको दैव कहते हैं, प्रारब्ध भी इसीके अन्तर्गत है।

[1] वर्ण, आश्रम, प्रकृति और परिस्थितिके भेदसे जिसके लिये जो कर्म कर्तव्य माने गये हैं—उन शास्त्रानुकूल [illegible] यज्ञ, दान, तप, विद्याध्ययन, युद्ध, कृषि, गोरक्षा, व्यापार, सेवा आदि समस्त शास्त्रविहित कर्मोंका वाचक यहाँ 'न्याय्यम्' पद है।

[2] वर्ण, आश्रम, प्रकृति और परिस्थितिके भेदसे जिसके लिये जिन कर्मोंके करनेका शास्त्रोंमें निषेध किया गया है तथा जो कर्म नीति और धर्मके प्रतिकूल हैं, ऐसे असत्यभाषण, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, मद्यपान, अभक्ष्य-भक्षण आदि समस्त पापकर्मोंका वाचक यहाँ 'विपरीतम्' पद है।

\+ मनुष्य शरीरसे ही जीव पुण्य और पापरूप नवीन कर्म कर सकता है। अन्य सब भोगयोनियाँ हैं। उनमें पूर्वकृत कर्मोंका फल भोगा जाता है, नवीन कर्म करनेका अधिकार नहीं है।

\+ यहाँ मन, वाणी और शरीरद्वारा किये जानेवाले जितने भी पुण्य और पापरूप कर्म हैं—जिनका फल जन्म-जन्मान्तरमें जीवको भोगना पड़ता है—उन सबके ये पाँचों कारण हैं। इनमेंसे किसी एकके न रहनेसे कर्म नहीं बन सकता। इसीलिये बिना कर्तापनके किया जानेवाला कर्म वास्तवमें कर्म नहीं है।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥१६॥

परन्तु ऐसा होनेपर भी जो मनुष्य अशुद्धबुद्धि होनेके कारण उस विषयमें यानी कर्मोंके होनेमें केवल शुद्धस्वरूप आत्माको कर्ता समझता है, वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता॥१६॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥१७॥

जिस पुरुषके अन्तःकरणमें 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थोंमें और कर्मोंमें लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकोंको मारकर भी वास्तवमें न तो मारता है और न पापसे बँधता है॥१७॥

सम्बन्ध—इस प्रकार [illegible]

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः॥१८॥

ज्ञाता, ज्ञान और [illegible]

[illegible] और [illegible] नहीं है [illegible]

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

§ [illegible]

[illegible] (गीता ४। [illegible]) [illegible]

× [illegible]

है और कर्ता, करण तथा क्रिया—यह तीन प्रकारका कर्म-संग्रह है*॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥ १९॥

गुणोंकी संख्या करनेवाले† शास्त्रमें ज्ञान और कर्म तथा कर्ता गुणोंके भेदसे तीन-तीन प्रकारसे ही कहे गये हैं, उनको भी तू मुझसे भलीभाँति सुन॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ २०॥

जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तू सात्त्विक जान‡॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥ २१॥

किंतु जो ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके नाना भावोंको अलग-अलग जानता है, उस ज्ञानको तू राजस जान§॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥ २२॥

परंतु जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीरमें ही सम्पूर्णके सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्तिवाला, तात्त्विक अर्थसे रहित और तुच्छ है—वह तामस कहा गया है×॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥ २३॥

निश्चय करता है, उसका नाम 'ज्ञाता' है और जिस अमुक साधनका निश्चय करता है, उसका नाम 'ज्ञेय' है। इन तीनोंका सम्बन्ध ही मनुष्यको कर्ममें प्रवृत्त करनेवाला है; क्योंकि जब अधिकारी मनुष्य ज्ञानद्वारा यह निश्चय कर लेता है कि अमुक-अमुक साधनद्वारा अमुक प्रकारसे अमुक वस्तुकी प्राप्तिके लिये अमुक कर्म मुझे करना है, तभी उस कर्ममें प्रवृत्ति होती है।

* [illegible] आदि समस्त क्रियाओंको करनेवाले प्रकृतिस्थ पुरुषको 'कर्ता' कहते हैं; उसके जिन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा उपर्युक्त सब क्रियाएँ की जाती हैं, उनका नाम 'करण' और उपर्युक्त समस्त क्रियाओंका नाम 'कर्म' है। इन तीनोंके संयोगसे ही कर्मका संग्रह होता है; क्योंकि जब मनुष्य स्वयं कर्ता बनकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा क्रिया करके किसी कर्मको करता है, तभी कर्म बनता है—इसके बिना कोई भी कर्म नहीं बन सकता। इसी अध्यायके चौदहवें श्लोकमें जो कर्मकी सिद्धिमें अधिष्ठानादि पाँच हेतु बतलाये गये हैं, उनमेंसे अधिष्ठान और दैवको छोड़कर शेष तीनोंका कर्म-संग्रहमें नाम लिया गया है।

† जिस शास्त्रमें सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके सम्बन्धसे समस्त पदार्थोंके भिन्न-भिन्न भेदोंकी गणना की गयी हो, ऐसे शास्त्रका वाचक 'गुणसंख्याने' पद है। अतः उसमें बतलाये हुए गुणोंके भेदसे तीन-तीन प्रकारसे ज्ञान, कर्म और कर्ताके गुणोंके भेद बतलाकर भगवान्‌ने उस शास्त्रका इस विषयमें आदर किया है और कहे जानेवाले उपदेशको ध्यानपूर्वक सुननेके लिये अर्जुनको सावधान किया है।

ध्यान रहे कि ज्ञाता और कर्ता अलग तत्त्व नहीं हैं; इसलिये भगवान्‌ने ज्ञाताके भेद अलग नहीं बतलाये हैं तथा करणके भेद बुद्धि और धृतिके नामसे पृथक् भेद, गुणोंके अनुसार आगे बतलायेंगे; इस कारण यहाँ पूर्वोक्त छः हेतुओंमेंसे तीनके ही भेद पहले बतलानेका संकेत किया है।

‡ जिस प्रकार आकाशतत्त्वको जाननेवाला पुरुष घड़ा, सकोरा, मकान, गुफा, स्वर्ग, पाताल और समस्त वस्तुओंके सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें एक ही आकाशतत्त्वको देखता है, वैसे ही लौकिक दृष्टिसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेवाले समस्त चराचर प्राणियोंमें [illegible] अनुभवके द्वारा एक अद्वितीय अविनाशी निर्विकार ज्ञानस्वरूप परमात्मभावको विभागरहित समभावसे व्याप्त देखना ही सात्त्विक ज्ञान है।

§ और पशु, पक्षी, मनुष्य, राक्षस और देवता आदि जितने भी प्राणी हैं, उन सबमें आत्माको उनके शरीरोंकी आकृतिके भेदसे और स्वभावके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारके अनेक और अलग-अलग समझना ही राजस ज्ञान है।

× जिस विपरीत ज्ञानके द्वारा मनुष्य प्रकृतिके कार्यरूप शरीरको ही अपना स्वरूप समझ लेता है और ऐसा समझकर उस क्षणभङ्गुर नाशवान् शरीरमें सर्वस्वकी भाँति आसक्त रहता है, अर्थात् उसके सुखसे सुखी एवं उसके दुःखसे दुःखी होता है तथा उसके नाशसे ही अपना नाश मानता है, आत्माको उससे भिन्न या सर्वव्यापी नहीं समझता—वह ज्ञान वास्तवमें ज्ञान नहीं है। इसलिये भगवान्‌ने इस श्लोकमें 'ज्ञान' पदका प्रयोग भी नहीं किया है; क्योंकि यह विपरीत ज्ञान वास्तवमें अज्ञान ही है।

१. नियत कर्मकी व्याख्या इसी अध्यायके सातवें श्लोकमें देखनी चाहिये।

२. यहाँ 'सङ्ग' नाम आसक्तिका नहीं है; क्योंकि आसक्तिका अभाव 'अरागद्वेषतः' पदसे अलग बतलाया गया है।

जो कर्म शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ और कर्तापनके अभिमानसे रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुषद्वारा बिना राग-द्वेषके किया गया हो*—वह सात्त्विक कहा जाता है† ॥ २३ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

परन्तु जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त होता है‡ तथा भोगोंको चाहनेवाले पुरुषद्वारा या अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है§ ॥ २४ ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है ✕ ॥ २५ ॥

इसलिये यहाँ जो कर्तापनके अभिमानसे रहित कर्मोंका वर्णन है, उसका नाम सात्त्विक समझना चाहिये।

* क्योंकि परलोक इस लोकको भी ... जिनके भी मोह हैं, उनमें ममता और आसक्तिका अभाव हो जानेके कारण किसीको किंचिन्मात्र भी उन भोगोंकी आवश्यकता नहीं रहती है, वे किसी भी कर्मका फल नहीं चाहते। जो अपने लिये किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं समझता, ऐसे पुरुषद्वारा ... राग-द्वेषके बिना केवल लोकसंग्रहके लिये होते हैं—उन कर्मोंका बिना राग-द्वेषके किया हुआ कर्म कहते हैं।

† इसी अध्यायके नवें श्लोकमें वर्णित सात्त्विक त्यागमें इस सात्त्विक कर्मका यह विशेषता है कि इसमें कर्मोंमें अभिमानका और राग-द्वेषका भी अभाव दिखलाया गया है, किंतु वहाँ इनका स्पष्ट शब्दोंमें आसक्ति और फलेच्छाका त्याग ही बतलाया गया है। वास्तवमें दोनोंका ही फल तत्त्वज्ञानके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति है; यह दोनों साधनोंका फल है।

‡ जो पुरुष समस्त कर्म—स्त्री, पुत्र, धन, मकान, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि इस लोक और परलोकके भोगोंके लिये ही करता है, उसे भोगोंको चाहनेवाला पुरुष कहते हैं।

२ जिस मनुष्यमें शरीरमें अभिमान है और जो अपनेको कर्मोंका कर्ता समझता है तथा 'मैं अमुक कर्मका करनेवाला हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है, मैं क्या कर सकता हूँ' इस प्रकारके भाव रखनेवाला और वाणीद्वारा इस तरहकी बात करनेवाला है, उसको 'अहंकारयुक्त पुरुष' कहते हैं।

‡ सात्त्विक कर्ममें और राजस कर्ममें यह भेद है कि सात्त्विक कर्मोंके कर्तामें अहंकार नहीं होता और कर्मोंमें कर्तापन नहीं रहता, अतः उसे किसी भी क्रियामें किसी प्रकारका परिश्रम या क्लेशका बोध नहीं होता। इसलिये उसके कर्म आयासयुक्त नहीं हैं; किंतु राजस कर्मके कर्ताका शरीरमें अहंकार रहनेके कारण वह प्रत्येक परिश्रम और दुःखोंसे सदा दुःखी होता है। इसी कारण उसे प्रत्येक क्रियामें परिश्रमका बोध होता है। इसके सिवा सात्त्विक कर्मोंके कर्ताद्वारा केवल शास्त्रदृष्टिसे कर्तव्यरूपसे प्राप्त हुए कर्म ही किये जाते हैं, अतः उसके द्वारा कर्मोंका विस्तार नहीं होता; किंतु राजस कर्मके कर्तामें आसक्ति और कामनाकी प्रेरणासे अपनी इच्छानुसार नये-नये कर्मोंका आरम्भ करता रहता है, इससे उसके कर्मोंका बहुत विस्तार हो जाता है। इस कारण यहाँ 'बहुलायासम्' कर्मोंको राजस बतलाया गया है।

§ जिस पुरुषमें भोगोंकी कामना और अहंकार दोनों हैं, उसके द्वारा किये हुए कर्म राजस हैं, इसमें तो कहना ही क्या है; किंतु इनमेंसे किसी एक दोषसे युक्त पुरुषद्वारा किये हुए कर्म भी राजस ही हैं।

✕ किसी भी कर्मका आरम्भ करनेसे पहले अपनी बुद्धिसे विचार करके जो यह सोच लेना है कि अमुक कर्म करनेसे उसका भावी परिणाम अमुक प्रकारसे सुखकी प्राप्ति या अमुक प्रकारसे दुःखकी प्राप्ति होगा—यह उसके अनुबन्धका यानी परिणामका विचार करना है। तथा जो यह सोचना है कि अमुक कर्ममें इतना धन व्यय करना पड़ेगा, इतने बलका प्रयोग करना पड़ेगा, इतना समय लगेगा, अमुक अंशमें धर्मकी हानि होगी और अमुक-अमुक प्रकारकी दूसरी हानियाँ होंगी—यह क्षयका यानी हानिका विचार करना है और जो यह सोचना है कि अमुक कर्मके करनेसे अमुक मनुष्योंको या अन्य प्राणियोंको अमुक प्रकारसे इतना कष्ट पहुँचेगा, अमुक मनुष्योंका या अन्य प्राणियोंका जीवन नष्ट होगा—यह हिंसाका विचार करना है। इसी तरह जो यह सोचना है कि अमुक कर्म करनेके लिये इतने सामर्थ्यकी आवश्यकता है, अतः इसे पूरा करनेकी सामर्थ्य हममें है या नहीं—यह पौरुषका यानी सामर्थ्यका विचार करना है। इन चारोंका परिणाम, हानि, हिंसा और पौरुष—इन चारोंका या चारोंमेंसे किसी एकका विचार न करके केवल मोहसे कर्मका आरम्भ करना ही तामस कर्म है।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥

जो कर्ता संगरहित, अहंकारके वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है—वह सात्त्विक कहा जाता है ॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

जो कर्ता आसक्तिसे युक्त, कर्मोंके फलको चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोकसे लिप्त है—वह राजस कहा गया है ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोऽनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा जो कुछ भी कर्म किये जाते हैं, उनमें और उनके फलरूप मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंमें जिसकी किंचिन्मात्र भी ममता, आसक्ति और कामना नहीं है—उस मनुष्यको 'मुक्तसङ्ग' कहते हैं।

मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर—इन अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धि न रहनेके कारण जो किसी भी कर्ममें कर्तापनका अभिमान नहीं करता तथा इसी कारण जो आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्योंकी भाँति 'मैंने अमुक कार्य सिद्ध कर लिया है, अमुकको और सिद्ध कर लूँगा; मैं ईश्वर हूँ, भोगी हूँ, बलवान् हूँ, सुखी हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है; मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा' (गीता १६। १३—१५) इत्यादि अहंकारके वचन कहनेवाला नहीं है, किंतु सरलतापूर्वक अभिमानशून्य वचन बोलनेवाला है, उस मनुष्यको 'अनहंवादी' कहते हैं।

* शास्त्रविहित स्वधर्मपालनरूप किसी भी कर्मका करनेमें बड़े-से-बड़े विघ्न-बाधाओंके उपस्थित होनेपर भी विचलित न होना ... ऐसा समझकर कि ... कर्म करनेकी आवश्यकता है, उसी कर्मको न छोड़ना, किंतु धैर्यपूर्वक उसको करते रहना और कर्मसिद्धि चाहनेवाला मनुष्य करता है, उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक उसे करनेके लिये उत्सुक रहना ... ऐसा ... पुरुष ... मनुष्य ... सिद्ध होनेपर ... हर्षित ... और ... शोक ... सदा सम रहता है, ऐसा समतायुक्त पुरुष ही 'निर्विकार' है।

३ जिस मनुष्यकी कर्मोंमें और उनके फलरूप इस लोक और परलोकके भोगोंमें ममता और आसक्ति है—उस मनुष्यको 'रागी' कहते हैं।

जो कर्मोंके फलरूप स्त्री, पुत्र, धन, मकान, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि इस लोक और परलोकके नाना प्रकारके भोगोंकी इच्छा करता रहता है, ऐसे स्वार्थपरायण पुरुषको 'कर्मफलप्रेप्सु' कहते हैं।

धनादि पदार्थोंमें आसक्ति रहनेके कारण जो न्यायसे प्राप्त अवसरपर भी अपनी शक्तिके अनुरूप धनका व्यय नहीं करता तथा न्याय-अन्यायका विचार न करके सदा धनसंग्रहकी इच्छा रखता है, यहाँतक कि दूसरोंके स्वत्वको हड़पनेकी भी इच्छा रखता है और वैसी ही चेष्टा करता है, ऐसे मनुष्यको 'लुब्ध' कहते हैं।

६ जिस किसी भी प्रकारसे दूसरोंको कष्ट पहुँचाना ही जिसका स्वभाव है, जो अपनी अभिलाषाकी पूर्तिके लिये काम करते समय अपने आराम तथा भोगके लिये दूसरोंको कष्ट देता रहता है, उस हिंसापरायण मनुष्यको 'हिंसात्मक' कहते हैं।

७ जो न तो शास्त्रविधिके अनुसार जल-मृत्तिकादिसे शरीर और वस्त्रादिको शुद्ध रखता है और न यथायोग्य बर्ताव करके अपने आचरणोंको ही शुद्ध रखता है, किंतु भोगोंमें आसक्त होकर नाना प्रकारके भावोंकी प्राप्तिके लिये छल-कपट और मदाचारका त्याग कर देता है—ऐसे मनुष्यको 'अशुचि' कहते हैं।

जिसके मन और इन्द्रियाँ वशमें किये हुए नहीं हैं, बल्कि जो स्वयं उनके वशीभूत हो रहा है तथा जिसमें श्रद्धा और आस्तिकताका अभाव है, उस पुरुषको 'अयुक्त' कहते हैं।

जिसको किसी प्रकारकी शिक्षा नहीं मिली है, जिसका स्वभाव बालकके समान है, जिसको अपने कर्तव्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है, जिसके अन्तःकरण और इन्द्रियोंका सुधार नहीं हुआ है—ऐसे संस्काररहित स्वाभाविक मूर्खको 'प्राकृत' कहते हैं।

जो कर्ता अयुक्त, शिक्षासे रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला तथा शोक करनेवाला, आलसी और दीर्घसूत्री × है—वह तामस कहा जाता है।+

प्रश्न—इस प्रकार [illegible] सात्त्विक मन को बाहर बतलानेके लिये और उनके विरोधी [illegible] का त्याग करानेके लिये [illegible] ज्ञान, कर्म और कर्ताके सात्त्विक आदि तीन-तीन भेद [illegible] बुद्धि और धृतिके भी [illegible] सात्त्विक और तामस, इस प्रकार तीन-तीन भेद बतलानेकी प्रस्तावना करते हुए कहते हैं—

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय॥ २९॥

हे धनंजय! अब तू बुद्धिका और धृतिका भी गुणोंके अनुसार तीन प्रकारका भेद मेरे द्वारा सम्पूर्णतासे विभागपूर्वक कहा जानेवाला सुन—॥ २९॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ ३०॥

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको [illegible]

---

* जिसका स्वभाव अत्यन्त कठोर है, जिसमें विनयका सर्वथा अभाव है, जो सदा ही घमण्डमें चूर रहता है, दूसरेके सामने कभी [illegible] नहीं करता, ऐसे मनुष्यको 'स्तब्ध' कहते हैं।

† जो धूर्तोंको [illegible] मन ही मन दूसरोंका अनिष्ट करनेके लिये [illegible] रहता है, ऐसे मनुष्यको [illegible] कहते हैं।

‡ नाना प्रकारसे दूसरोंकी जीविकामें बाधा पहुँचाना ही जिसका स्वभाव है, ऐसे मनुष्यको दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला कहते हैं।

§ जिसका रात-दिन शोक करते रहनेका स्वभाव है [illegible] किसी भी शास्त्रीय या व्यावहारिक कर्तव्यकर्ममें जिसकी प्रवृत्ति और उत्साह नहीं होता [illegible] और इन्द्रियोंमें आलस्य भरा रहता है—वह मनुष्य [illegible] है।

× जो किसी कार्यका आरम्भ करके बहुत कालतक उसे पूरा नहीं करता [illegible] इस प्रकार विचार करते-करते एक [illegible] थोड़े-से समयमें हो जानेवाले कामके लिये बहुत समय निकाल देता है और फिर भी उसे पूरा नहीं कर पाता—ऐसे शिथिल प्रकृतिवाले मनुष्यको 'दीर्घसूत्री' कहते हैं।

+ जिस पुरुषमें उपर्युक्त समस्त लक्षण घटते हों या उनमेंसे किसी [illegible] उसे तामस कर्ता समझना चाहिये।

बुद्धि शब्द यहाँ निश्चय करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्तिविशेषका वाचक है [illegible] बुद्धिके सात्त्विक, राजस और तामस—तीन भेद बतलाये गये हैं [illegible] बुद्धि [illegible] ज्ञान [illegible] वर्णन किया गया है [illegible] तीन भेद बतलाये जाते हैं।

धृति [illegible] धारण करनेकी शक्तिविशेषका वाचक है [illegible] मनुष्य किसी भी क्रिया या भावको इसी शक्तिके द्वारा दृढ़तापूर्वक धारण करता है [illegible] धृतिके भी [illegible] तीन भेद बतलाये गये हैं।

A. [illegible] ममता, आसक्ति, अहंकार और फलेच्छाका त्याग करके परमात्माकी प्राप्तिके लिये उनकी उपासनाका तथा शास्त्रविहित यज्ञ, दान और तप आदि शुभ कर्मोंका अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार [illegible] कर्मोंका और शरीरसम्बन्धी खान-पान आदि कर्मोंका [illegible] परमात्माकी प्राप्ति [illegible] है—वह प्रवृत्तिमार्ग है और राजा जनक, अम्बरीष, महर्षि वसिष्ठ और याज्ञवल्क्य आदिकी भाँति उसे ठीक-ठीक समझकर उसके अनुसार चलना ही उसको यथार्थ जानना है।

B. समस्त कर्मोंका और भोगोंका बाहर-भीतरसे सर्वथा त्याग करके [illegible] परमात्माकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारकी [illegible] विरक्त होकर [illegible] ममता और आसक्तिके [illegible] निरन्तर श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना या केवल भगवान्‌के भजन [illegible] ध्यान—इस प्रकार जो परमात्माको प्राप्त करनेका मार्ग है, उसका नाम निवृत्तिमार्ग है और [illegible]

कर्तव्य और अकर्तव्यको *, भय और अभयको † तथा बन्धन और मोक्षको‡ यथार्थ जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है ॥ ३० ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

हे पार्थ ! मनुष्य जिस बुद्धिके द्वारा धर्म और अधर्मको § तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है ॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! जो तमोगुणसे घिरी हुई बुद्धि अधर्मको भी 'यह धर्म है' ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य

कर्तव्य और अकर्तव्य — इन दोनोंको भलीभाँति ठीक-ठीक समझकर उसके अनुसार चलना ही उसको यथार्थ जानना है।

* वर्ण, आश्रम, प्रकृति और परिस्थिति तथा देश-कालकी अपेक्षासे जिसके लिये जिस समय जो कर्म करना उचित है, वही उसके लिये कर्तव्य है और जिस समय जिसके लिये जिस कर्मका त्याग उचित है, वही उसके लिये अकर्तव्य है। इन दोनोंको भलीभाँति समझ लेना—अर्थात् किसी भी कर्मके सामने आनेपर यह मेरे लिये कर्तव्य है या अकर्तव्य, इस बातका यथार्थ निर्णय कर लेना ही कर्तव्य और अकर्तव्यको यथार्थ जानना है।

† किसी दुःखप्रद वस्तुके या घटनाके उपस्थित हो जानेपर या उसकी सम्भावना होनेपर मनुष्यके अन्तःकरणमें जो एक आकुलतापूर्ण कम्पवृत्ति होती है, उसे भय कहते हैं और इससे विपरीत जो भयके अभावकी वृत्ति है, उसे अभय कहते हैं। इन दोनोंके तत्त्वको भलीभाँति समझकर निर्भय हो जाना ही भय और अभय—इन दोनोंको यथार्थ जानना है।

‡ शुभाशुभ कर्मोंके सम्बन्धसे जो जीवको अनादि कालसे निरन्तर परवश होकर जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकना पड़ रहा है, यही बन्धन है और सत्सङ्ग-प्रभावसे कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगादि साधनोंमेंसे किसी साधनके द्वारा भगवत्कृपासे समस्त शुभाशुभ कर्मबन्धनोंसे छूटकर परमात्माको प्राप्त हो जाना ही मोक्ष है।

§ अहिंसा, सत्य, दया, शान्ति, ब्रह्मचर्य, शम, दम, तितिक्षा तथा यज्ञ, दान, तप एवं अध्ययन, अध्यापन, प्रजापालन, कृषि, पशुपालन और सेवा आदि जितने भी वर्ण-आश्रमके अनुसार शास्त्रविहित शुभ कर्म हैं—जिन आचरणोंका फल शास्त्रोंमें इस लोक और परलोकके सुख-भोग बतलाया गया है तथा जो दूसरोंके हितके कर्म हैं—उन सबका नाम धर्म है एवं झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, दम्भ, अभक्ष्यभक्षण आदि जितने भी पापकर्म हैं, जिनका फल शास्त्रोंमें दुःख बतलाया है, उन सबका नाम अधर्म है। किस समय किस परिस्थितिमें कौन-सा कर्म धर्म है और कौन-सा कर्म अधर्म है—इसका ठीक-ठीक निर्णय करनेमें बुद्धिका कुण्ठित हो जाना या संशययुक्त हो जाना आदि इन दोनोंको यथार्थ न जानना है।

× वर्ण, आश्रम, प्रकृति, परिस्थिति तथा देश और कालकी अपेक्षासे जिस मनुष्यके लिये जो शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म है, वह उसके लिये कार्य है और जिसके लिये शास्त्रमें जिस कर्मको न करनेयोग्य निषिद्ध बतलाया है, उसके लिये उसको न करना ही उचित है—वह उसके लिये अकार्य है। ... शास्त्रनिषिद्ध कर्म तो सबके लिये अकार्य हैं ही; किंतु शास्त्रविहित शुभ कर्मोंमें भी किसीके लिये कोई कर्म कार्य होता है और किसीके लिये कोई अकार्य। जैसे शूद्रके लिये सेवा करना कार्य है और यज्ञ, वेदाध्ययन आदि करना अकार्य है; संन्यासीके लिये विवेक, वैराग्य, शम, दमादिका साधन कार्य है और यज्ञ-दानादिका आचरण अकार्य है; ब्राह्मणके लिये यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना, वेद पढ़ना-पढ़ाना कार्य है और नौकरी करना अकार्य है; वैश्यके लिये कृषि, गोरक्षा और वाणिज्यादि कार्य है और दान लेना आदि अकार्य है। इसी तरह स्वर्गादिकी कामनावाले मनुष्यके लिये काम्य-कर्म कार्य हैं और मुमुक्षुके लिये अकार्य हैं; विरक्त ब्राह्मणके लिये संन्यास ग्रहण करना कार्य है और भोगासक्तके लिये अकार्य है। इससे यह सिद्ध है कि शास्त्रविहित धर्म होनेसे ही वह सबके लिये कर्तव्य नहीं हो जाता। इस प्रकार धर्म-अधर्म भी होते हैं और अकार्य भी; यही धर्म-अधर्म और कार्य-अकार्यका भेद है। किसी भी कर्मके करनेका या त्यागनेका अवसर आनेपर अमुक कर्म मेरे लिये कर्तव्य है या अकर्तव्य, मुझे कौन-सा कर्म किस प्रकार करना चाहिये और कौन-सा नहीं करना चाहिये—इसका ठीक-ठीक निर्णय करनेमें जो बुद्धिका किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना या संशययुक्त हो जाना है—यही कर्तव्य और अकर्तव्यको यथार्थ न जानना है।

+ जिस बुद्धिसे मनुष्य धर्म-अधर्म और कार्य-अकार्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सकता, वह बुद्धि इसी प्रकार अन्यान्य बातोंका भी ठीक-ठीक निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होती; वह रजोगुणके सम्बन्धसे विवेकमें अप्रतिष्ठित, विक्षिप्त और अस्थिर रहती है; इसी कारण वह राजसी है।

÷ ईश्वरनिन्दा, वेदनिन्दा, शास्त्रविरोध, माता-पिता-गुरु आदिका अपमान, वर्णाश्रमधर्मके प्रतिकूल आचरण

सम्पूर्ण पदार्थोंको भी विपरीत मान लेती है*, वह बुद्धि तामसी है ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ ३३ ॥

हे पार्थ ! जिस अव्यभिचारिणी धारणशक्तिसे मनुष्य ध्यानयोगके द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको धारण करता है, वह धृति सात्त्विकी है ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

परंतु हे पृथापुत्र अर्जुन ! फलकी इच्छावाला मनुष्य जिस धारणशक्तिके द्वारा अत्यन्त आसक्तिसे धर्म, अर्थ और कामोंको धारण करता है†, वह धारणशक्ति राजसी है ॥ ३४ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥

हे पार्थ ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धारणशक्तिके द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दुःखको तथा उन्मत्तताको भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है‡, वह धारणशक्ति तामसी है ॥ ३५ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार [illegible] बुद्धि और धृतिके सात्त्विक, राजस और तामस—तीन-तीन भेद बतलाकर अब जिसके लिये मनुष्य [illegible] करता है, उस सुखके भी सात्त्विक, राजस और तामस—इस प्रकार तीन भेद क्रमसे बतलाते हैं—

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब तू [illegible] सुखको [illegible]

मानना, इसी प्रकार [illegible] अन्यायसे [illegible] और पर-[illegible] आदि निषिद्ध पापकर्मोंको धर्म मान लेना, तथा [illegible] ईश्वरपूजन, देवताओंका [illegible], वर्णाश्रमानुसार आचरण, माता-पिता आदि गुरुजनोंकी [illegible] पालन, सत्य, अहिंसा और परोपकार आदि शास्त्रविहित पुण्यकर्मोंको अधर्म मानना—यही अधर्मको धर्म और धर्मको अधर्म मानना है।

* अधर्मको धर्म मान लेनेकी भाँति ही [illegible] अनित्यको नित्य और [illegible] आदि जितने भी विपरीत ज्ञान हैं, वे सब अन्य पदार्थोंको विपरीत मान लेनेके अन्तर्गत हैं।

† किसी भी क्रिया, भाव या वृत्तिको धारण करनेकी [illegible] स्थिर रखनेकी जो शक्ति-विशेष है, जिसके द्वारा धारण की हुई [illegible] विचलित नहीं होते [illegible] उस शक्तिका नाम धृति है, परंतु [illegible] नाना विषयोंको धारण करता रहता है, तबतक [illegible] अव्यभिचारिणी नहीं होती [illegible] स्थिर कर लेता है उस समय वह अव्यभिचारिणी हो जाती है [illegible] धारण करता है [illegible] अव्यभिचारिणी होती है [illegible] मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको [illegible] रोक रखता है, सात्त्विक धृति है।

‡ आसक्ति [illegible] धृतिके द्वारा धर्मका पालन करता है एवं [illegible] कामोंको और [illegible] होनेवाले भोगोंको [illegible] धृतिके द्वारा अर्थ और कामोंको धारण करता है।

जिसकी बुद्धि अत्यन्त मन्द और मलिन हो, जिसके [illegible] आदि भाव भरे हों—ऐसे दुष्टबुद्धि मनुष्यको 'दुर्मेधा' कहा है।

§ निद्रा और तन्द्रा आदि जो मन और इन्द्रियोंका [illegible] बनानेवाला भाव है, उन सबका नाम निद्रा है। धन आदि पदार्थोंके नाशकी, मृत्युकी, दुःखप्राप्तिकी [illegible] अथवा इसी तरह अन्य किसी प्रकारके [illegible] और अनिष्ट [illegible] को एक आकुलता और [illegible] होती है, उसका नाम भय है। मनमें होनेवाली नाना प्रकारकी दुश्चिन्ताओंका नाम शोक है; उसके द्वारा जो इन्द्रियोंमें [illegible] हो जाता है, उसे दुःख कहते हैं, यह शोकका ही स्थूल भाव है तथा धन, जन और बल आदिके कारण होनेवाली [illegible] और दुराचारादि [illegible] उसे मद कहते हैं, इसीका नाम गर्व, घमण्ड और उन्मत्तता भी है। इन सबको तथा प्रमाद आदि अन्यान्य तामस भावोंको जो धारणशक्ति दूर हटानेकी चेष्टा न करके इनमें डुबाये रखती है, वही धृतिके द्वारा इनको न छोड़ना अर्थात् धारण किये रहना है।

इस जिस सुखमें साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादिके अभ्याससे रमण करता है* और जिससे दुःखोंके अन्तको प्राप्त हो जाता है†, जो ऐसा सुख है, वह आरम्भकालमें यद्यपि विषके तुल्य प्रतीत होता है‡, परन्तु परिणाममें अमृतके तुल्य है§; इसलिये वह परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला सुख× सात्त्विक कहा गया है॥ ३६-३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्॥ ३८॥

जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह पहले—भोगकालमें अमृतके तुल्य प्रतीत होनेपर भी परिणाममें विषके तुल्य है; इसलिये वह सुख राजस कहा गया है+॥ ३८॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥ ३९॥

जो सुख भोगकालमें तथा परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न सुख÷ तामस कहा गया है॥ ३९॥

* मनुष्यको इस सुखका अनुभव तभी होता है, जब वह इस लोक और परलोकके समस्त भोग-सुखोंको क्षणिक समझकर उन समस्त भोगोंकी इच्छाका त्याग करके निरन्तर परमात्माके स्वरूपका चिन्तनका अभ्यास करता है (गीता [illegible]); बिना साधनके इसका अनुभव नहीं हो सकता—यही भाव दिखलानेके लिये इस सुखके 'जिसमें अभ्याससे रमण करता है' यह लक्षण किया गया है।

† जिस सुखमें रमण करनेवाला मनुष्य आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक सब प्रकारके दुःखोंके सम्बन्धसे सदाके लिये छूट जाता है, जिस सुखके अनुभवका फल निरतिशय सुखस्वरूप सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति बतलाया गया है (गीता [illegible])—वही सात्त्विक सुख है।

‡ जिस प्रकार बालक अपने माता-पिताकी विद्याकी महिमा सुनकर विद्याभ्यासकी चेष्टा करता है, पर उसके महत्त्वका यथार्थ अनुभव न होनेके कारण आरम्भकालमें [illegible] उसे बहुत कठिन और कष्टप्रद प्रतीत होता है, उसी प्रकार सात्त्विक सुखके लिये अभ्यास करनेवाले मनुष्यको भी विषयोंका त्याग करके [illegible] विषके तुल्य प्रतीत होता है; यही सात्त्विक सुखका आरम्भकालमें विषके तुल्य होना है।

§ जब सात्त्विक सुखकी प्राप्तिके लिये साधन करते-करते साधकको उस ध्यानजनित सुखका अनुभव होने लगता है, तब उसे वह अमृतके तुल्य प्रतीत होता है। उस समय उसके सामने समस्त भोग-सुख तुच्छ, नगण्य और दुःखरूप प्रतीत होने लगते हैं।

× उपर्युक्त प्रकारसे अभ्यास करते-करते निरन्तर परमात्माका ध्यान करनेसे अन्तःकरण अच्छी तरह स्वच्छ हो जानेपर इस सुखका अनुभव होता है; इसलिये इस सुखको परमात्मविषयक बुद्धिके प्रसादसे उत्पन्न होनेवाला बतलाया गया है।

+ जब मनुष्य मनसहित इन्द्रियोंद्वारा किसी विषयका सेवन करता है, तब वह उसे आसक्तिके कारण अत्यन्त प्रिय मालूम होता है। उस समय वह उसके सामने किसी भी अन्य सुखको कोई चीज नहीं समझता। परन्तु यह राजस सुख वास्तवमें सुख नहीं है; वस्तुतः विषयोंकी कामना [illegible] उनकी प्राप्ति न होनेपर अभावसे दुःखका अनुभव होता है तथा उनके वियोगके समय भी अत्यन्त दुःख होता है। इसलिये विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाला यह क्षणिक सुख वास्तवमें सब प्रकारसे दुःखरूप ही है। तथापि जैसे रोगी मनुष्य आसक्तिके कारण स्वादके लोभसे परिणामका विचार न करके कुपथ्यका सेवन करता है और परिणाममें रोग बढ़ जानेसे दुःखी होता है या मर भी जाता है, उसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य भी मूर्खता और आसक्तिवश परिणामका विचार न करके सुखबुद्धिसे विषयोंका सेवन करता है और परिणाममें अनेकों प्रकारसे अति भीषण [illegible] दुःख भोगता है (गीता ५। २२)।

÷ निद्राके समय मन और इन्द्रियोंकी क्रिया बंद हो जानेके कारण थकावटसे होनेवाले दुःखका अभाव होनेसे तथा मन और इन्द्रियोंको विश्राम मिलनेसे जो सुखकी प्रतीति होती है, वह निद्राजनित सुख जितनी देरतक निद्रा रहती है, उतनी ही देरतक रहता है, निरन्तर नहीं रहता—इस कारण क्षणिक है। इसके अतिरिक्त उस समय मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें ज्ञानशक्तिका अभाव हो जाता है, किसी भी वस्तुका अनुभव करनेकी शक्ति नहीं रहती। इस कारण वह सुख भोगकालमें आत्माको यानी अन्तःकरण और इन्द्रियोंको तथा इनके अभिमानी पुरुषको मोहित करनेवाला है। और इस सुखकी आसक्तिके कारण परिणाममें मनुष्यको अज्ञानमय वृक्ष, पहाड़ आदि जड योनियोंमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है; अतएव यह परिणाममें भी आत्माको मोहित करनेवाला है।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥४०॥

पृथ्वीमें या आकाशमें अथवा देवताओंमें तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी सत्त्व नहीं है, जो प्रकृतिसे उत्पन्न इन तीनों गुणोंसे रहित हो॥४०॥

सम्बन्ध—[illegible]

[illegible]

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥४१॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा शूद्रोंके कर्म स्वभावसे उत्पन्न गुणोंद्वारा विभक्त किये गये हैं॥४१॥

[illegible]

* 'सत्त्व' शब्द यहाँ [illegible] प्रकारके प्राणियों और समस्त पदार्थोंका वाचक है। [illegible] तीनों गुणोंसे रहित हो, [illegible]

† ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों ही द्विज हैं। [illegible]

‡ [illegible]

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

अन्तःकरणका निग्रह करना, इन्द्रियोंका दमन करना, धर्मपालनके लिये कष्ट सहना, बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना, वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रखना, वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना—ये सब-के-सब ही ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शूरवीरता†, तेज‡, धैर्य§, चतुरता× और युद्धमें न भागना+, दान देना और स्वामिभाव÷—ये सब-के-सब ही

१ मन मनको अपने वशमें करके उसे विक्षेपरहित—शान्त बना लेना तथा सांसारिक विषयोंके चिन्तनका त्याग कर देना शम है।

२ समस्त इन्द्रियोंको वशमें कर लेना तथा वशमें की हुई इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर परमात्माकी प्राप्तिके साधनोंमें लगाना दम है।

३ स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहन करना—अर्थात् अहिंसादि महाव्रतोंका पालन करना, भोग-सामग्रियोंका त्याग करके सादगीसे रहना, एकादशी आदि व्रत-उपवास करना और वनमें निवास करना—ये सब 'तप' के अन्तर्गत हैं।

४ मन, इन्द्रिय और शरीरको तथा उनके द्वारा की जानेवाली क्रियाओंको पवित्र रखना, उनमें किसी प्रकारकी अशुद्धिको प्रवेश न होने देना ही 'शौच' है। इसका विस्तार सोलहवें अध्यायके तीसरे श्लोककी टिप्पणीमें है।

५ दूसरोंके द्वारा किये हुए अपराधोंको क्षमा कर देनेका नाम 'क्षान्ति' है। गीताके दसवें अध्यायके चौथे श्लोककी टिप्पणीमें इसका विस्तार है।

६ मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना अर्थात् मनमें किसी प्रकारका दुराग्रह और ऐंठ नहीं रखना, जैसा मनका भाव हो, वैसा ही इन्द्रियोंद्वारा प्रकट करना, इसके अतिरिक्त शरीरमें भी किसी प्रकारकी ऐंठ न रखना—यह सब 'आर्जव' के अन्तर्गत है।

७ वेद-शास्त्रोंके अर्थपूर्वक अध्ययन-अध्यापन करनेका और उनमें कहे हुए उपदेशको भलीभाँति समझनेका नाम 'ज्ञान' है।

८ वेद-शास्त्रोंमें बतलाये हुए और महापुरुषोंसे सुने हुए साधनोंद्वारा परमात्माके स्वरूपका साक्षात्कार कर लेनेका नाम 'विज्ञान' है।

९ वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक—इन सबकी सत्तामें पूर्ण विश्वास रखना, वेद-शास्त्रोंके और महापुरुषोंके वचनोंको यथार्थ मानना और धर्मपालनमें दृढ़ विश्वास रखना—ये सब 'आस्तिकता' के लक्षण हैं।

* ब्राह्मणमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है, इस कारण उपर्युक्त कर्मोंमें उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उसका स्वभाव उपर्युक्त कर्मोंके अनुकूल होता है, इस कारण उपर्युक्त कर्मोंके करनेमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता नहीं होती। इन कर्मोंमें बहुत-से सामान्य धर्मोंका भी वर्णन हुआ है; इससे यह समझना चाहिये कि क्षत्रिय आदि अन्य वर्णोंके ये स्वाभाविक कर्म तो नहीं हैं, परंतु परमात्माकी प्राप्तिमें सबका अधिकार है; अतएव उनके लिये ये यत्नसाध्य हैं।

† बड़े-से-बड़े बलवान् शत्रुका न्यायपूर्वक सामना करनेमें भय न करना तथा न्यायानुकूल युद्ध करनेके लिये सदा ही उत्साहित रहना और युद्धके समय साहसपूर्वक गम्भीरतासे लड़ते रहना 'शूरवीरता' है। भीष्म, अर्जुन आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

‡ जिस शक्तिके प्रभावसे मनुष्य दूसरोंका दबाव न मानकर किसीके अन्यायाचरणको कभी सहन नहीं करता और दूसरे लोग उसके प्रतिकूल व्यवहार करनेसे डरते हैं, उस शक्तिका नाम 'तेज' है। इसको प्रताप और प्रभाव भी कहते हैं।

§ बड़े-से-बड़ा संकट उपस्थित हो जानेपर, युद्धस्थलमें शरीरपर भयानक भारी चोट लग जानेपर, अपने पुत्र-पौत्रादिके मर जानेपर, सर्वस्वका नाश हो जानेपर या इसी तरह अन्य किसी प्रकारकी भारी-से-भारी विपत्ति आ पड़नेपर भी व्याकुल न होना और अपने कर्तव्यपालनसे कभी विचलित न होकर न्यायानुकूल कर्तव्यपालनमें संलग्न रहना—इसीका नाम 'धैर्य' है।

× परस्पर झगड़ा करनेवालोंका न्याय करनेमें, अपने कर्तव्यका निर्णय और पालन करनेमें, युद्ध करनेमें तथा मित्र, वैरी और मध्यस्थोंके साथ यथायोग्य व्यवहार करने आदिमें जो कुशलता है, उसीका नाम 'चातुर्य' है।

\+ युद्ध करते समय भारी-से-भारी संकट आ पड़नेपर भी पीठ न दिखलाना, वहाँ न्यायपूर्वक सामना करके सच्ची शूरवीरताका परिचय देते रहना और प्राणोंकी परवा न करके युद्धमें डटे रहना ही युद्धमें न भागना है। इसी धर्मको जानते हुए वीर बालक अभिमन्युने सात महारथियोंसे अकेले युद्ध करके प्राण दे दिये, किंतु हार नहीं मानी (महा० द्रोण० ४९। १२)।

÷ शासनके द्वारा लोगोंको अन्यायाचरणसे रोककर सदाचारमें प्रवृत्त करना, दुराचारियोंको दण्ड देना, लोगोंकी

करनेवाले स्वाभाविक कर्म हैं० ॥ ४३ ॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

खेती†, गोपालन‡ और क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार§ ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं तथा सब वर्णोंकी सेवा करना× शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है ॥ ४४ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार चारों वर्णोंके स्वाभाविक कर्मोंका वर्णन करके अब उन स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतापूर्वक लगकर और उन कर्मोंके द्वारा किस प्रकार मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है—यह बात दो श्लोकोंमें बतलाते हैं—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

अपनी आज्ञाका न्यायपूर्वक पालन करवाना तथा समस्त प्रजाका ... प्रकार निःस्वार्थभावसे प्रेमपूर्वक पुत्रकी भाँति उनकी रक्षा और पालन करना ... स्वाभाविक है।

• उपर्युक्त कर्मोंमें क्षत्रियोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, इनका पालन करनेमें उन्हें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं होती। इन कर्मोंमें भी जो युद्धि, दान आदि सामान्य धर्म हैं उनमें सबका अधिकार होनेके कारण वे अन्य वर्णवालोंके लिये बाधक या परधर्म नहीं हैं, किंतु वे उनके स्वाभाविक कर्म नहीं हैं, इसी कारण ... उनके लिये बतलाया है।

† पृथ्वीमें हल चलाकर गेहूँ, जौ, चने, मूँग, धान, मक्का, उड़द, इख्ख, कपास आदि समस्त खाद्य पदार्थोंके बीज और नाना प्रकारकी ओषधियोंको और इसी प्रकार देवता, मनुष्य और पशु आदिके उपयोगमें आनेवाली अन्य पवित्र वस्तुओंको न्यायानुकूल उत्पन्न करनेका नाम 'कृषि' यानी खेती करना है।

‡ गाय आदि चौपायोंको अपने घरमें रखना, उनको जंगलमें चराना, घरमें भी यथावश्यक चारा देना, जल पिलाना तथा व्याघ्र आदि हिंसक जीवोंसे उनको बचाना; उनसे दूध, दही, घृत आदि पदार्थोंको उत्पन्न करके उन पदार्थोंसे लोगोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करना और उनके बदलेमें प्राप्त धनसे अपनी गृहस्थीके सहित उन जीवोंका भलीभाँति न्यायपूर्वक निर्वाह करना 'गौरक्ष्य' भी गोपालन है। पशुओंमें 'गो' प्रधान है तथा मनुष्यमात्रके लिये सबसे अधिक उपकारी पशु भी गो ही है, इसलिये भगवान्‌ने यहाँ 'पशुपालनम्' शब्दका प्रयोग न करके उसके बदलेमें 'गौरक्ष्यम्' शब्दका प्रयोग किया है। अतएव यह समझना चाहिये कि मनुष्यके उपयोगी भैंस, ऊँट, घोड़े और हाथी आदि अन्यान्य पशुओंका पालन करना भी वैश्यका कर्म है। अवश्य ही गोपालन उन सबकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है।

§ मनुष्योंके और देवता, पशु, पक्षी आदि अन्य समस्त प्राणियोंके उपयोगमें आनेवाली समस्त पवित्र वस्तुओंको धर्मानुकूल खरीदना और बेचना तथा आवश्यकतानुसार उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँचाकर लोगोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करना 'वाणिज्य' यानी क्रय-विक्रयरूप व्यवहार है। वाणिज्य करते समय वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें तौल-नाप और गिनती आदिसे कम दे देना या अधिक ले लेना, वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी वस्तु मिलाकर अच्छीके बदले खराब दे देना या खराबके बदले अच्छी ले लेना, नफा, आढ़त और दलाली आदि ठहराकर उससे अधिक लेना या कम देना, इसी तरह किसी भी व्यापारमें झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीका या अन्य किसी प्रकारके अन्यायका प्रयोग करके दूसरोंके स्वत्वको हरण लेना—ये सब वाणिज्यके दोष हैं। इन सब दोषोंसे रहित जो सत्य और न्याययुक्त पवित्र वस्तुओंका खरीदना और बेचना है, वही क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार है। तुलाधारने इस व्यापारसे ही सिद्धि प्राप्त की थी (महाभारत शान्तिपर्व)।

× उपर्युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंकी सेवा, उनकी आज्ञाओंका पालन करना, घरमें जल भर देना, स्नान करा देना, उनके जीवन-निर्वाहके कार्योंमें सुविधा कर देना, दैनिक कार्यमें यथायोग्य सहायता करना, उनके पशुओंका पालन करना, उनकी वस्तुओंको सावधानीके साथ रखना, कपड़े साफ करना, क्षौरकर्म करना आदि जितने भी सेवाके कार्य हैं, उन सबका करके उनको संतुष्ट रखना; अथवा सबके काममें आनेवाली वस्तुओंको कारीगरीके द्वारा तैयार करके उन वस्तुओंसे उनकी सेवा करके अपनी जीविका चलाना—ये सब 'परिचर्यात्मक' यानी सब वर्णोंकी सेवा करनारूप शूद्रके कर्म हैं।

समस्त प्राणियोंका लक्षित्य कारण है, गायु वर्जित है, तत्व मेरा है और चरण शूद्र है। सबमें एक ही समान शरीरके चार आवश्यक अङ्ग हैं और एक-दूसरेकी सहायतासे सुरक्षित और जीवित हैं। पुष्ट या अङ्गभङ्ग हो सकते हैं; इनमेंसे किसीकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। न इनमें ऊँच-नीचकी कल्पना है। अपने-अपने स्थान और कार्यके अनुसार सभी बड़े हैं। ... उचित सामञ्जस्य ... और शूद्र ... पूर्ण ... है।

अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको तू सुन।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ ४६॥

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके* मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है†।

प्रश्न—पूर्वश्लोकमें यह बात कही गयी कि मनुष्य अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा परमेश्वरकी पूजा करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है; इसपर यह शङ्का होती है कि यदि कोई क्षत्रिय अपने युद्धादि कर्मोंको छोड़कर ब्राह्मणोंकी भाँति अध्यापनादि शान्तिमय कर्मोंसे अपना निर्वाह करके परमात्माको प्राप्त करना चाहे या इसी तरह कोई वैश्य या शूद्र अपने कर्मोंको नीची श्रेणीके कर्म समझकर उनका त्याग कर दे और अन्य वर्णोंकी वृत्तिसे अपना निर्वाह करके भगवान्‌की प्राप्तिका प्रयत्न करे तो उचित है या नहीं? इसपर दूसरेके धर्मकी अपेक्षा स्वधर्मको श्रेष्ठ बतलाकर अब उसका निर्णय करते हैं—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ ४७॥

अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे‡

एक ही धागेमें या मालाओंकी तरह एक ही परमात्मामें ओतप्रोत [illegible] अपनी-अपनी योग्यता और योग्यताके अनुसार बँटे हुए अपने-अपने एक एक आवश्यक कर्तव्यपालनमें लगे रहते हैं, वैसे ही चारों वर्ण [illegible] आवश्यक द्वारा [illegible] के द्वारा केवल भगवान्‌के द्वारा और उन सात्त्विक आचरणके द्वारा एक दूसरेका हित करते हुए, समाजकी रक्षा करते हुए परम सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं।

* भगवान् इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सबके प्रेरक, सबके आत्मा, सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापी हैं; यह सारा जगत् उन्हींकी रचना है और वे स्वयं ही अपनी योगमायासे जगत्‌के रूपमें प्रकट हुए हैं; अतएव यह सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌का है, मेरे शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा मेरे द्वारा जो कुछ भी यज्ञ, दान आदि स्वधर्मोचित कर्म किये जाते हैं—वे सब भी भगवान्‌के हैं और मैं स्वयं भी भगवान्‌का ही हूँ; समस्त देवताओंके एवं अन्य प्राणियोंके आत्मा होनेके कारण वे ही समस्त कर्मोंके भोक्ता हैं (गीता [illegible])—परम श्रद्धा और विश्वासके साथ इस प्रकार समझकर कर्मोंमें ममता, आसक्ति और फलेच्छाका सर्वथा त्याग करके भगवान्‌की आज्ञानुसार उन्हींकी प्रसन्नताके लिये अपना कर्तव्य पालन करते हुए अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा समस्त जगत्‌की सेवा करना—समस्त प्राणियोंको सुख पहुँचाना ही अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा परमेश्वरकी पूजा करना है।

† प्रत्येक मनुष्य चाहे वह किसी भी वर्ण या आश्रममें स्थित हो, अपने कर्मोंसे भगवान्‌की पूजा करके परम सिद्धिरूप परमात्माको प्राप्त कर सकता है। परमात्माको प्राप्त करनेमें सबका समान अधिकार है। अपने शम, दम आदि कर्मोंको उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌के समर्पण करके उनके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला ब्राह्मण जिस पदको प्राप्त होता है, अपने शूरवीरता आदि कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला क्षत्रिय भी उसी पदको प्राप्त होता है; उसी प्रकार अपने कृषि आदि कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला वैश्य तथा अपने सेवा-सम्बन्धी कर्मोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला शूद्र भी उसी परमपदको प्राप्त होता है। अतएव कर्मबन्धनसे छूटकर परमात्माको प्राप्त करनेका यह बहुत ही सुगम मार्ग है। इसलिये मनुष्यको उपर्युक्त भावसे अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा परमेश्वरकी पूजा करनेका अभ्यास करना चाहिये।

वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थितिकी अपेक्षासे जिस मनुष्यके लिये जो कर्म विहित है, उसके लिये वही स्वधर्म है। झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, ठगी, व्यभिचार आदि निषिद्ध कर्म तो किसीके भी स्वधर्म नहीं हैं और काम्यकर्म भी किसीके लिये अवश्यकर्तव्य नहीं हैं; इस कारण उनकी गणना यहाँ किसीके स्वधर्मोंमें नहीं है। इनको छोड़कर जिस वर्ण और आश्रमके जो विशेष धर्म बतलाये गये हैं, जिनमें दूसरे वर्ण और आश्रमवालोंका अधिकार नहीं है, वे तो उन-उन वर्ण-आश्रमवालोंके अलग-अलग स्वधर्म हैं ही और जिन कर्मोंमें द्विजमात्रका अधिकार बतलाया गया है, वे वेदाध्ययन और यज्ञादि कर्म द्विजोंके लिये स्वधर्म हैं तथा जिनमें सभी वर्णाश्रमोंके स्त्री-पुरुषोंका अधिकार है, वे ईश्वरभक्ति, सत्यभाषण, माता-पिताकी सेवा, इन्द्रियोंका संयम, ब्रह्मचर्यपालन और विनय आदि सामान्य धर्म सबके स्वधर्म हैं।

‡ जो धर्म गुणयुक्त हो और जिसका अनुष्ठान भी पूर्णतया किया गया हो, किंतु वे अनुष्ठान करनेवालेके लिये विहित न हों, दूसरोंके लिये ही विहित हों—ऐसे गुणयुक्त आचरित कर्मोंकी अपेक्षा स्वधर्म, जैसे ब्राह्मण और क्षत्रियके [illegible] ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियके धर्मोंमें अहिंसादि सद्गुणोंकी न्यूनता है, इसी प्रकार शूद्रकी अपेक्षा वैश्य और क्षत्रियके धर्म गुणयुक्त हैं; ऐसे परधर्मकी अपेक्षा गुणरहित स्वधर्म श्रेष्ठ है। यह बात है कि जैसे देखनेमें कुरूप और गुणरहित होनेपर भी बच्चेके लिये अपनी ही माताका सेवन करना कल्याणप्रद है, उसी

गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है * क्योंकि स्वभावसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्मको करता हुआ मनुष्य पापको नहीं प्राप्त होता† ॥ ४७ ॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ ४८ ॥

अतएव हे कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्मको‡ नहीं त्यागना चाहिये, क्योंकि धूएँसे अग्निकी भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे युक्त हैं§ ॥ ४८ ॥

सम्बन्ध—[illegible] सांख्ययोगका [illegible] कर्मयोगका [illegible] स्वरूप और उसकी [illegible] निर्णय करके उस कर्मयोगके [illegible] उसका फल [illegible] बतलाया, किंतु वहाँ संन्यासके प्रकरणमें यह बात नहीं कही कि संन्यासका क्या फल होता है और उसके द्वारा [illegible] अधिकारी [illegible] सहित सांख्ययोगका किस प्रकार साधन करना चाहिये। अब यहाँ [illegible] सहित विवेक और [illegible] अनुकूल [illegible] साधन करनेकी विधि और [illegible] फल बतलानेके लिये पुनः सांख्ययोगका प्रकरण आरम्भ करते हैं—

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥ ४९ ॥

सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्तःकरणवाला पुरुष सांख्ययोगके द्वारा उस परम

[illegible] देखनेमें गुणोंसे हीन होनेपर भी तथा उसके अनुष्ठानमें अङ्गवैगुण्य हो जानेपर भी जिसके लिये जो कर्म विहित है वही उसके लिये कल्याणकर है।

* [illegible] युद्ध करना और दुष्टोंको दण्ड देना आदि है, उसमें अहिंसा और शान्ति आदि गुणोंकी कमी मालूम होती है। इसी तरह वैश्यके कृषि आदि कर्मोंमें भी हिंसा आदि दोषोंकी बहुलता है, इस कारण ब्राह्मणोंके [illegible] कर्मोंकी अपेक्षा वे भी [illegible] गुणहीन हैं एवं शूद्रोंके कर्म वर्णों और द्विजातियोंकी अपेक्षा भी निम्न श्रेणीके हैं। [illegible] उन कर्मोंके [illegible] कुछ छूट जाना भी [illegible] है। उपर्युक्त प्रकारसे स्वधर्ममें गुणोंकी कमी रहनेपर भी वह गुणयुक्त परधर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

† [illegible] हिंसादि दोष का [illegible] पाप लगते हैं, किंतु अपने स्वाभाविक कर्मोंका [illegible] आचरण करते समय उनमें जो आनुषङ्गिक हिंसादि पाप बन जाते हैं वे उसको नहीं लगते।

‡ वर्ण, आश्रम, स्वभाव और परिस्थितिकी अपेक्षासे जिसके लिये जो कर्म बतलाये गये हैं, उसके लिये वे ही सहज कर्म हैं। अतएव इस अध्यायमें [illegible] स्वभाव [illegible] नियत कर्म [illegible] और स्वाभाविक कर्मके नामसे कहा है, उन्हींको यहाँ 'सहज' कहा गया है।

§ [illegible] जो स्वाभाविक कर्म दोषोंसे युक्त हों उनका त्याग न करना चाहिये—इसमें तो कहना ही क्या है। [illegible] हिंसादि दोषोंका मिश्रण दीखता हो, वे भी शास्त्रविहित एवं न्यायोचित होनेके कारण दोषयुक्त दीखनेपर भी वस्तुतः दोषयुक्त नहीं हैं। इसलिये उन कर्मोंका भी त्याग नहीं करना चाहिये।

§ जिस प्रकार धूएँसे अग्नि ओतप्रोत रहती है, धूआँ अग्निसे सर्वथा अलग नहीं हो सकता—उसी प्रकार आरम्भ मात्र दोषसे ओतप्रोत हैं। क्रियामात्रमें किसी-न-किसी प्रकारसे किसी-न-किसी प्राणीकी हिंसा हो जाती है; क्योंकि संन्यास आश्रममें भी शौच, स्नान और भिक्षाटनादि कर्मद्वारा किसी-न-किसी अंशमें प्राणियोंकी हिंसा होती ही है और ब्राह्मणके यज्ञादि कर्मोंमें भी आरम्भकी बहुलता होनेसे क्षुद्र प्राणियोंकी हिंसा होती है। इसलिये किसी भी वर्ण-आश्रममें कर्म करना [illegible] दोषरहित नहीं है और कर्म किये बिना कोई रह नहीं सकता (गीता ३। ५)। इस कारण [illegible] देहधारी भी कुछ-न-कुछ कर्म तो मनुष्यको करना ही पड़ेगा, तब फिर जो कुछ करेगा वही दोषयुक्त होगा। इसीलिये [illegible] है वह दोषयुक्त है—ऐसा समझकर मनुष्यको [illegible] त्याग नहीं करना चाहिये, बल्कि उनमें ममता, आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करके उनका न्यायपूर्वक आचरण करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध होकर उसे शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

× अन्तःकरण और इन्द्रियोंके सहित शरीरमें 'अहं' द्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें तथा समस्त भोगों और चराचर प्राणियोंके सहित समस्त संसारमें जिसकी आसक्तिका सर्वथा अभाव हो गया है, जिसके मन-बुद्धिमें कहीं किंचिन्मात्र भी ममता नहीं रही है—वह 'सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला' है। जिसकी स्पृहाका सर्वथा अभाव हो गया है, जिसको किसी भी सांसारिक वस्तुकी किंचिन्मात्र भी परवा नहीं रही है, उसे 'स्पृहारहित' कहते हैं और जिसका इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरण अपने वशमें किया हुआ है, उसे 'जीते हुए अन्तःकरणवाला' कहते हैं। जो उपर्युक्त तीनों गुणोंसे सम्पन्न होता है, वही मनुष्य सांख्ययोगके द्वारा परमात्माके यथार्थ ज्ञानको प्राप्त कर सकता है।

नैष्कर्म्यसिद्धिको प्राप्त होता है।*॥ ४९॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा॥ ५०॥

जो कि ज्ञानयोगकी परा निष्ठा है, उस नैष्कर्म्यसिद्धिको† जिस प्रकारसे प्राप्त होकर मनुष्य ब्रह्मको प्राप्त होता है‡, उस प्रकारको हे कुन्तीपुत्र! तू संक्षेपमें ही मुझसे समझ।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥ ५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ ५२॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ५३॥

विशुद्ध बुद्धिसे युक्त§ तथा हलका, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयोंका त्याग करके एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला× सात्त्विक धारणशक्तिके द्वारा अन्तःकरण और इन्द्रियोंका संयम करके+ मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेषको सर्वथा नष्ट करकेA भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके निरन्तर ध्यानयोगके परायण रहनेवालाB ममता

---

* ज्ञानयोग ... सभी साधनोंका स्वरूप बतलाकर इस श्लोकमें उसका फल बतलाया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि कर्मफलसे सर्वथा छूटकर सच्चिदानन्दघन निर्विकार परमात्माके यथार्थ ज्ञानको प्राप्त हो जाना ही यही परम नैष्कर्म्यसिद्धि है, जिसको संन्यासके द्वारा प्राप्त किया जाता है।

† जो ज्ञानयोगकी अन्तिम स्थिति है, जिसको परा भक्ति और तत्त्वज्ञान भी कहते हैं, जो समस्त साधनोंकी अवधि है, जो पूर्वश्लोकमें नैष्कर्म्यसिद्धि के नामसे कही गयी है, वही यहाँ 'सिद्धि' के नामसे तथा 'ज्ञानकी निष्ठा' के नामसे कही गयी है।

‡ नित्य निर्विकार निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्माका वाचक यहाँ 'ब्रह्म' पद है और उसमें इस प्रकार एकत्वमें स्थित होकर अभिन्नभावसे उसमें प्रविष्ट हो जाना ही उसको प्राप्त होना है।

जो साधनके उपयुक्त अनायास पचनेवाले सात्त्विक पदार्थोंका (गीता १७। ८) अपनी प्रकृति, आवश्यकता और शक्तिके अनुरूप नियमित और परिमित भोजन करता है, ऐसे युक्त आहार करनेवाले (गीता ६। १७) पुरुषको 'लघ्वाशी' कहते हैं।

§ पूर्वोक्त सात्त्विक दोषोंसे रहित जिसका अन्तःकरण हो, वह विशुद्ध बुद्धिसे युक्त कहलाता है।

× जहाँका वायुमण्डल पवित्र हो, जहाँ बहुत लोगोंका आना-जाना न हो, जो स्वभावसे ही एकान्त और स्वच्छ हो या झाड़-बुहारकर और धोकर जिसे स्वच्छ बना लिया गया हो—ऐसे नदीतट, देवालय, वन और पहाड़की गुफा आदि स्थानोंमें निवास करना ही 'एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करना' है।

+ इन्द्रियों और अन्तःकरणका उनके विषयोंसे सम्बन्ध-विच्छेद कर देना ही उनका संयम करना है।

मन, वाणी और शरीरसे इच्छानुसारिणी तथा बुद्धिके विपरीत कार्य करनेकी शक्तिका अभाव कर देना ही उनको वशमें कर लेना है।

A इस लोक या परलोकके किसी भी भोगमें, किसी भी प्राणीमें तथा किसी भी घटना, क्रिया अथवा अवस्थामें किंचिन्मात्र भी आसक्ति या द्वेष न रहने देना राग-द्वेषका सर्वथा नाश कर देना है।

B शरीर, इन्द्रियों और अन्तःकरणमें जो आत्मबुद्धि है, जिसके कारण मनुष्य मन, बुद्धि और शरीरद्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें अपनेको कर्ता मान लेता है, उसका नाम 'अहंकार' है। अन्यायपूर्वक बलात्कारसे जो दूसरोंपर प्रभुत्व जमानेका साहस है, उसका नाम 'बल' है। धन, जन, विद्या, जाति और शारीरिक शक्ति आदिके कारण होनेवाला जो गर्व है, उसका नाम 'दर्प' यानी घमण्ड है। इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिकी कामनाका नाम 'काम' है। अपने मनके प्रतिकूल आचरण करनेवालेपर और नीतिविरुद्ध व्यवहार करनेवालेपर जो अन्तःकरणमें उत्तेजनाका भाव उत्पन्न होता है—जिसके कारण मनुष्यके नेत्र लाल हो जाते हैं, होठ फड़कने लगते हैं, हृदयमें जलन होने लगती है और मुख विकृत हो जाता है—उसका नाम 'क्रोध' है। भोगबुद्धिसे सांसारिक भोगसामग्रियोंके संग्रहका नाम 'परिग्रह' है। अतएव इन सबका त्याग करके पूर्वोक्त प्रकारसे सात्त्विक बुद्धिके द्वारा मन-इन्द्रियोंकी क्रियाओंको रोककर एकमात्र ध्यानयोगका अभ्यास करके नित्य निरन्तर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका अभिन्नभावसे चिन्तन करना (गीता ६। २५) तथा उठते-बैठते, सोते-जागते एवं शौच-स्नान, खान-पान आदि आवश्यक क्रिया करते समय भी नित्य निरन्तर सच्चिदानन्दका चिन्तन करते रहना एवं उसीको सबसे बढ़कर परम कर्तव्य समझना 'ध्यानयोगके परायण रहना' है।

[illegible] और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका पात्र होता है ॥ ५१—५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है ‡ । ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी परा भक्तिको प्राप्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

उस परा भक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ और जितना हूँ ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है × तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

[illegible] — [illegible] कर्मयोग-का और [illegible] उपसंहार [illegible] किन्तु इस [illegible] मुझमें [illegible] कर्तव्य है। अतएव अर्जुनको [illegible] कहते हैं—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा

---

* मन और इन्द्रियोंके सहित शरीरमें [illegible] समस्त प्राणियोंमें [illegible] भोगोंमें एवं [illegible] और [illegible] त्याग कर देना ही [illegible] है।

† जिसके अन्तःकरणमें [illegible] अभाव हो गया है और [illegible] शान्ति और शुद्ध सात्त्विक [illegible] है, वह [illegible] शान्तियुक्त कहा जाता है।

‡ [illegible] सच्चिदानन्दघन [illegible] स्थित हो जाता है [illegible] किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं रहती [illegible] — मैं ब्रह्म हूँ [illegible]) [illegible] — [illegible] महापुरुषोंके अनुसार [illegible] अटल स्थिति हो जाती है, ऐसे [illegible] गीताके पाँचवें अध्यायके [illegible] श्लोकमें और छठे अध्यायके [illegible] श्लोकोंमें भी इस स्थितिवाले योगीको [illegible] कहा है।

१ [illegible] और [illegible] हो तथा निरन्तर शुद्ध प्रसन्न रहता हो उसे [illegible] कहते हैं।

‡ [illegible] नहीं रहती, अतएव [illegible] के साथ [illegible] संयोग-वियोग होनेसे [illegible] नहीं, इस कारण वह किसी भी [illegible] किसी भी कारणसे [illegible] भी चिन्ता या शोक नहीं करता और वह पूर्णकाम हो जाता है, इसलिये वह कुछ भी नहीं चाहता।

§ [illegible] परानिष्ठा [illegible] कहते हैं, [illegible] भक्ति [illegible] है।

× इस पदसे [illegible] आदि होनेके [illegible] सर्वव्यापी [illegible] निर्गुण-निराकार [illegible] सगुण निराकार और सगुण साकार [illegible] है। [illegible] निराकारसे साकार कैसे होता है और पुनः साकारसे निराकार [illegible] कुछ भी [illegible] उसके लिये [illegible] नहीं रहता।

+ परमात्माके [illegible] और उनकी प्राप्तिमें [illegible] परमात्माके [illegible] और उनमें अभिन्न [illegible] होते हैं। [illegible] उनके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होनेके साथ ही उनकी प्राप्ति हो जाती है।

१ [illegible] और [illegible] अनुसार जितने भी [illegible] कर्तव्यकर्म हैं, [illegible] और [illegible] के नामसे किया गया है तथा जो [illegible] और [illegible] अनुकूल हैं—उन सबका वाचक यहाँ 'सर्वकर्माणि' पद है।

+ समस्त कर्मोंका और उनके [illegible] समस्त [illegible] आश्रय [illegible] ही आश्रित हो गया है, जो सभी मन-इन्द्रियोंसहित शरीरके [illegible] किये जानेवाले समस्त कर्मोंको और उनके [illegible] भगवान्‌के अर्पण करके उन सबसे ममता, आसक्ति और कामना [illegible] भगवान्‌के ही परायण हो गया है, भगवान्‌को ही अपना परम आश्रय [illegible] और [illegible] भगवान्‌के [illegible] रहता है—किसी भी [illegible] और किसी भी [illegible] कभी हर्ष-शोक नहीं करता, सदा भगवान्‌पर ही निर्भर रहता है, [illegible] की ही [illegible] है।

करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको● प्राप्त हो जाता है†॥ ५६ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके‡ तथा समबुद्धिरूप योगको§ अवलम्बन करके मेरे परायण× और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो+।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ ५८ ॥

उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त संकटोंको अनायास ही पार कर जायगा÷ और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थसे भ्रष्ट हो जायगाA।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह मान रहा है कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा'B तेरा यह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबर्दस्ती युद्धमें लगा देगाC।

● जो सनातन है और सदा रहता है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, वह सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म भगवान् [illegible] परम प्राप्य है, इसलिये उसे 'परम पद' कहा गया है। इसीको [illegible] श्लोकोंमें 'सिद्धि', [illegible] 'सिद्धि' और 'परमा गति' आदि नामसे कहा है।

† भगवान्‌की समस्त परिवार और समस्त [illegible] सम्बन्धी [illegible] निरन्तर परमात्माका ध्यान [illegible] परमात्माका प्राप्त करता है [illegible] समस्त कर्मोंको सदा करता हुआ भी [illegible] परमात्माको प्राप्त हो जाता है; [illegible] नहीं होता।

‡ अपने मन, इन्द्रिय और शरीरके द्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंको और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त वस्तुओंको भगवान्‌का समझकर उन सबमें ममता, आसक्ति और कामनाका सर्वथा त्याग कर देना तथा मुझमें कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं है, भगवान् ही सब प्रकारकी शक्ति प्रदान करके मेरे द्वारा अपने इच्छानुसार समस्त कर्म करवाते हैं, मैं कुछ भी नहीं करता—ऐसा समझकर भगवान्‌के आज्ञानुसार [illegible] निमित्तमात्र बनकर समस्त कर्मोंका कठपुतलीकी भाँति करते रहना—यही समस्त कर्मोंको मनसे भगवान्‌में अर्पण कर देना है।

§ सिद्धि और असिद्धिमें, सुख और दुःखमें, लाभ और हानि इत्यादि समस्त पदार्थों और प्राणियोंमें जो समबुद्धि है, उसका 'बुद्धियोग' कहते हैं।

× भगवान्‌को ही अपना परम प्राप्य, परम गति, परम हितैषी, परम प्रिय और परमाश्रय मानना, उनके विधानमें सदा ही संतुष्ट रहना और उनकी प्राप्तिके साधनोंमें तत्पर रहना भगवान्‌के परायण होना है।

+ [illegible] भगवान्‌के [illegible] भगवान्‌के सिवा अन्य किसीमें किंचिन्मात्र भी प्रेमका सम्बन्ध न रखकर अनन्य प्रेमपूर्वक [illegible] भगवान्‌का ही चिन्तन करते रहना, [illegible] उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और समस्त कर्म करते समय भी निरन्तर मनसे भगवान्‌के दर्शन करते रहना—यही निरन्तर भगवान्‌में चित्तवाला होना है।

÷ निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले [illegible] और कुछ भी नहीं करना पड़ेगा; मेरी दयाके प्रभावसे अनायास ही तुम्हारे इस लोक और परलोकके समस्त दुःख टल जायँगे; तुम सब प्रकारके दुर्गुण और दुराचारोंसे रहित होकर सदाके लिये जन्म-मरणरूप महान् संकटसे मुक्त हो जाओगे और मुझ नित्य आनन्दघन परमेश्वरको प्राप्त कर लोगे।

A यहाँ भगवान् अर्जुनसे पहले यह कह चुके हैं कि तुम मेरे भक्त हो (गीता [illegible]) और यह भी कह चुके हैं कि मेरे भक्तका विनाश नहीं होता (गीता [illegible]); और यहाँ यह कहते हैं कि तुम नष्ट हो जाओगे अर्थात् तुम्हारा पतन हो जायगा। इसमें विरोध मालूम होता है। किन्तु भगवान्‌ने स्वयं ही उपर्युक्त वाक्यमें 'चेत्' शब्दका प्रयोग करके इस विरोधका समाधान कर दिया है। अभिप्राय यह है कि भगवान्‌के भक्तका कभी पतन नहीं होता, यह ध्रुव सत्य है और यह भी सत्य है कि अर्जुन भगवान्‌के परम भक्त हैं; इसलिये भगवान्‌की बात न सुनें, उनकी आज्ञाका पालन न करें—यह हो ही नहीं सकता। किन्तु इतनेपर भी यदि अहंकारके वशमें होकर भगवान्‌की आज्ञाकी अवहेलना कर दें तो फिर भगवान्‌के भक्त नहीं समझे जा सकते, इसलिये फिर उनका पतन होना भी युक्तिसंगत ही है।

B पहले भगवान्‌के द्वारा युद्ध करनेकी आज्ञा दी जानेपर (गीता २। [illegible]) भी अर्जुनने भगवान्‌से यह कहा था कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' (गीता २। [illegible])। उसी बातको स्मरण कराते हुए भगवान् कहते हैं कि तुम जो यह मानते हो कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', तुम्हारा यह मानना केवल अहंकारमात्र है; युद्ध न करना तुम्हारे हाथकी बात नहीं है।

C पूर्व-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्मोंके संस्कार जो वर्तमान जन्ममें स्वभावरूपसे प्रादुर्भूत हुए हैं, उनके समुदायको

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥

हे कुन्तीपुत्र! जिस कर्मको तू मोहके कारण करना नहीं चाहता, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मसे बँधा हुआ परवश होकर करेगा ॥ ६० ॥

प्रश्न—'स्वभावजेन' विशेषणके सहित 'स्वेन कर्मणा' पद [illegible] अधीन [illegible] ही सकती है कि [illegible] नहीं सकता है [illegible]

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

हे अर्जुन! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है ॥ ६१ ॥

प्रकृति यानी स्वभाव कहते हैं [illegible] अधिकारीके अनुसार [illegible] होता है और [illegible] भिन्न भिन्न मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी प्रवृत्ति हुआ करती है। [illegible] यह अभिप्राय है कि [illegible] तुम्हारी इच्छा न होनेपर भी [illegible] युद्ध करना [illegible] तुमसे युद्ध किये बिना नहीं रहा जायगा। [illegible]

अर्जुनकी [illegible] अर्जुनके युद्धमें [illegible] यह भाव दिखलाते हैं कि [illegible] इसलिये तुमसे युद्ध किये बिना नहीं रहा जायगा।

* [illegible] नहीं है।

† [illegible] यह भाव दिखलाया है कि [illegible] इसलिये यदि मेरी आज्ञाके अनुसार [illegible] तो कर्मबन्धनसे मुक्त होकर मुझे प्राप्त हो जाओगे, नहीं तो [illegible]

जिस प्रकार [illegible] कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर [illegible] अर्थात् परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

‡ [illegible] ईश्वर [illegible] हृदयमें स्थित [illegible] ईश्वर भी समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित है।

§ समस्त प्राणियोंको उनके पूर्वार्जित कर्म-संस्कारोंके अनुसार फल भुगतानेके लिये बार-बार नाना योनियोंमें [illegible] करना तथा भिन्न-भिन्न पदार्थों, क्रियाओं और प्राणियोंसे उनका [illegible] करना और उनके स्वभाव (प्रकृति) के अनुसार [illegible] उन प्राणियोंको [illegible] भ्रमण कराना है।

यहाँ यदि कोई यह कहे कि कर्म करनेमें और न करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है या परतन्त्र? यदि परतन्त्र है तो किसके परतन्त्र है—प्रकृतिके या स्वभावके अथवा ईश्वरके? क्योंकि [illegible] और [illegible] के और स्वभावके अधीन [illegible] तथा इस श्लोकमें ईश्वरके अधीन बतलाया है [illegible]

सम्बन्ध—यहाँ यह प्रश्न उठता है कि कर्मोंका स्वरूपसे त्याग न करके मनुष्यको क्या करना चाहिये, इसपर भगवान् कहते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥६२॥

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा*। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा†॥६२॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनको भक्तिप्रधान कर्मयोगका उपदेश देकर अब भगवान् उस उपदेशका उपसंहार करते हुए कहते हैं—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥६३॥

इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया। अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञानको पूर्णतया

न करनेमें मनुष्य परतन्त्र है, इसीलिये यह कहा गया है कि कोई भी प्राणी क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता (गीता ३।५)। मनुष्यका जो कर्म करनेमें अधिकार बतलाया गया है, उसका अभिप्राय भी उसको स्वतन्त्र बतलाना नहीं है, बल्कि उसका उत्तरदायित्व बतलाना ही है; क्योंकि वहाँ कर्मोंके फलमें अधिकारका निषेध किया गया है तथा मनुष्यको प्रकृतिके अधीन बतलाना, स्वभावके अधीन बतलाना और ईश्वरके अधीन बतलाना—ये तीनों बातें एक ही हैं, क्योंकि स्वभाव और प्रकृति तो एक ही वस्तु हैं और ईश्वर सबका नियन्ता होते हुए भी निर्लिप्त रहते हुए ही जीवोंको प्रकृतिके अनुसार उनके स्वाभाविक कर्मोंमें नियुक्त करते हैं; इसलिये ईश्वरके अधीन कहनेका अभिप्राय प्रकृतिके ही अधीन बतलाना है। दूसरे पक्षमें ईश्वर ही प्रकृतिके स्वामी और प्रेरक हैं, इस कारण प्रकृतिके अधीन बतलाना भी ईश्वरके ही अधीन बतलाना है।

इससे कोई यह कहे कि यदि मनुष्य सर्वथा ही परतन्त्र है तो फिर उसके उद्धारका क्या उपाय है और उसके लिये कर्तव्य-अकर्तव्यका विधान बतलानेवाले शास्त्रोंकी क्या आवश्यकता है, तो कहना है कि कर्तव्य-अकर्तव्यका विधान करनेवाले शास्त्र मनुष्यके उन स्वाभाविक कर्मोंको छुड़ानेके लिये या उनसे शास्त्रविरुद्ध कर्म करवानेके लिये नहीं हैं; किंतु उन कर्मोंको करनेमें जो राग-द्वेषके वशमें होकर वह अन्याय कर लेता है, उस अन्यायको रोककर उसे न्यायपूर्वक कर्तव्यकर्मोंमें लगानेके लिये हैं। इसलिये मनुष्य कर्म करनेमें स्वभावके परतन्त्र होते हुए भी उस स्वभावका सुधार करनेमें स्वतन्त्र नहीं है**। अतएव यदि वह शास्त्र और महापुरुषोंके उपदेशसे सचेत होकर प्रकृतिके प्रेरक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी शरण ग्रहण कर ले और राग-द्वेषादि विकारोंका त्याग करके शास्त्रविधिके अनुसार न्यायपूर्वक अपने स्वाभाविक कर्मोंको निष्कामभावसे करता हुआ अपना जीवन बिताने लगे तो उसका उद्धार हो सकता है।

* भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व और स्वरूपका श्रद्धापूर्वक निश्चय करके भगवान्‌को ही परम प्राप्य, परम गति, परम आश्रय और सर्वस्व समझना तथा उनको अपना स्वामी, भर्ता, प्रेरक, रक्षक और परम हितैषी समझकर सब प्रकारसे उनपर निर्भर और निर्भय हो जाना एवं सब कुछ भगवान्‌का समझकर और भगवान्‌को सर्वव्यापी जानकर समस्त कर्मोंमें ममता, अभिमान, आसक्ति और कामनाका त्याग करके भगवान्‌की आज्ञानुसार अपने कर्मोंद्वारा समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित परमेश्वरकी सेवा करना; जो कुछ भी दुःख-सुखके भोग प्राप्त हों, उनको भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर सदा ही संतुष्ट रहना; भगवान्‌के किसी भी विधानमें कभी किञ्चिन्मात्र भी असंतुष्ट न होना; मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग करके भगवान्‌के सिवा किसी भी सांसारिक वस्तुमें ममता और आसक्ति न रखना; अतिशय श्रद्धा और अनन्य प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नाम, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और स्वरूपका निरन्तर श्रवण, चिन्तन और कथन करते रहना—ये सभी भाव तथा क्रियाएँ सब प्रकारसे परमेश्वरकी शरण ग्रहण करनेके अन्तर्गत हैं।

† उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेवाले भक्तपर परम दयालु, परम सुहृद्, सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी अपार दयाका स्रोत बहने लगता है—वे उसके समस्त दुर्गुणों और पापोंका सदाके लिये नाश कर देते हैं। इस प्रकार भक्तका जो समस्त दुर्गुणों और समस्त बन्धनोंसे छूटकर सदाके लिये परमानन्दसे युक्त हो जाना और सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म सनातन परमेश्वरको प्राप्त हो जाना है, यही परमेश्वरकी कृपासे परम शान्तिको और सनातन परम धामको प्राप्त हो जाना है।

‡ भगवान्‌ने गीताके दूसरे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकसे आरम्भ करके यहाँतक अर्जुनको अपने गुण, प्रभाव, तत्त्व और स्वरूपका रहस्य भलीभाँति समझानेके लिये जितनी बातें कही हैं—उन सबका उपदेशका वाचक यहाँ 'ज्ञान' शब्द है। वह सारा का-सारा उपदेश भगवान्‌का प्रत्यक्ष ज्ञान करानेवाला है; इसलिये उसका नाम ज्ञान रक्खा गया है। संसारमें और शास्त्रोंमें जितने भी गुप्त रखनेयोग्य रहस्यके विषय माने गये हैं, उन सबमें भगवान्‌के गुण, प्रभाव और स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करा देनेवाला उपदेश सबसे बढ़कर गुप्त रखनेयोग्य माना गया है; इसीलिये इस उपदेशका महत्त्व समझानेके

मर्शीभांति विचारकर जैसे चाहता है वैसे ही कर ॥ ६३ ॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अर्जुनको सारे [illegible] विचार करके [illegible] करनेके लिये कहकर भी जब अर्जुन कुछ भी [illegible] नहीं दिया और वे अपनेको [illegible] कर्तव्य निश्चय [illegible] तब [illegible] स्वयं ही [illegible] कहने लगे—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ ६४॥

सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन।[*] तू मेरा अतिशय प्रिय है,[†] इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा ॥ ६४ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ ६५॥

हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो,[‡] मेरा भक्त बन,[×] मेरा पूजन करनेवाला हो[+] और मुझको प्रणाम

लिये और यह बात समझानेके लिये कि [illegible] इन बातोंको [illegible] करना चाहिये, इस [illegible] अत्यन्त गोपनीय बतलाया गया है।

* गीताके दूसरे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकसे [illegible] आरम्भ करके भगवान्ने अर्जुनको [illegible] और कर्मयोग इन दोनों ही साधनोंके अनुसार [illegible] युद्ध करना उचित बताया (गीता २ । [illegible] १ । ३ । ८ । ११ । ३ । २८) [illegible] भगवान्की शरणमें आने [illegible] करनेके लिये कहा [illegible] युद्ध [illegible] सावधान करनेके लिये [illegible] और [illegible] हृदयमें स्थित [illegible] बतलाया [illegible] करनेके लिये कहा, इसपर भी जब अर्जुन कुछ नहीं बोला [illegible] उपदेशका महत्त्व दिखलाकर इस बातको पुनः [illegible] विचार करनेके लिये अर्जुनको सावधान करते हुए पहलेमें भगवान्ने [illegible] कि जैसे [illegible] और [illegible] आदि [illegible] शरणमें [illegible] इसकी अपेक्षा [illegible] उसीका पालन करो [illegible] और जो कुछ [illegible] वही करो।

† भगवान्ने [illegible] अर्जुनको जितनी बातें कही [illegible] सभी [illegible] गुप्त [illegible] हैं। [illegible] उनको [illegible] भगवान् [illegible] स्वरूप [illegible] बतलाया है [illegible] गुण, प्रभाव [illegible] और ऐश्वर्यको प्रकट [illegible] ही [illegible] बतलाकर, [illegible] सगुण, निर्गुण परमेश्वर [illegible] इस प्रकार [illegible] अर्जुनको अपना भजन करनेके लिये और अपनी शरणमें आनेके लिये कहा है [illegible] गुह्य [illegible] गया है [illegible] ११ [illegible] गीता २ । ३४ । १२ । ६ । ७ । ८ । ९ । ७) [illegible] यहाँ [illegible] कहनेका [illegible] है कि [illegible] उपदेशमें भी [illegible] गुह्य रखने [illegible] बात है [illegible] तुम्हें [illegible] कहूँगा।

‡ [illegible] भगवान्के [illegible] अपना [illegible] करनेके लिये [illegible] विचार करनेको कह [illegible] कहा [illegible] अर्जुनके मनमें उदासी [illegible] भगवान् [illegible] कि [illegible] नहीं है [illegible] हूँ [illegible] भगवान् [illegible] अपना [illegible] हैं कि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, तुम्हारा और मेरा [illegible] सम्बन्ध [illegible] है [illegible] तुम किसी [illegible] मत करो।

§ भगवान्को [illegible] सर्वशक्तिमान् [illegible] सर्वज्ञ तथा अतिशय [illegible] और ऐश्वर्य आदि गुणोंके समुद्र समझकर [illegible] मनको [illegible] हो जाना [illegible] भी भगवान्की [illegible] न [illegible] भगवान्में मनवाला होना है।

× भगवान्को ही एकमात्र अपना [illegible] परम गति और परम आश्रय समझकर सर्वथा उनके अधीन हो जाना, [illegible] भी अपनी स्वतन्त्रता न [illegible] सब प्रकारसे उनपर निर्भर रहना, उनके प्रत्येक विधानमें सदा ही संतुष्ट रहना और उनके [illegible] तथा उनमें [illegible] श्रद्धापूर्वक अनन्य प्रेम करना भगवान्का भक्त बनना है।

+ गीताके नवें अध्यायके छब्बीसवें श्लोकके कथनानुसार पत्र, पुष्पादिसे श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक भगवान्‌के विग्रहका पूजन करना, [illegible] आवाहन करके उनकी मानसिक पूजा करना [illegible] और उनके [illegible] आदर-सम्मान करना तथा सबमें भगवान्‌को [illegible] समझकर या समस्त प्राणियोंको भगवान्‌का स्वरूप समझकर उनकी यथायोग्य सेवा-पूजा, आदर-सत्कार करना आदि सब भगवान्‌की पूजा करनेके अन्तर्गत है।

ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा † यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ ‡ क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है॥ ६५॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ ६६॥

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा॰ मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा + तू शोक मत कर॥ ६६॥

सम्बन्ध—इस प्रकार भगवान् [illegible]

---

* जिन परमेश्वरके सगुण निर्गुण, निराकार-साकार आदि अनेक रूप हैं, जो अर्जुनके सामने श्रीकृष्णरूपमें प्रकट होकर गीताके उपदेश सुना रहे हैं, [illegible] मनमें [illegible] और [illegible] उद्धार [illegible] सर्वशक्तिमान्, [illegible] अन्तर्यामी [illegible] पुरुषोत्तम भगवान्‌का [illegible] तथा [illegible] गुण, प्रभाव और [illegible] समस्त प्राणियोंमें [illegible] भगवान्‌को नमस्कार करना है।

† [illegible] भगवान्‌की प्राप्ति [illegible] इसमें तो कहना ही क्या है [illegible] क्योंकि [illegible] गीताके [illegible] अध्यायमें [illegible] बतलाया है [illegible]

‡ [illegible] भगवान्‌ [illegible] मनुष्योंका विश्वास [illegible] कहा है कि मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ।

§ [illegible] गीताके [illegible] अध्यायमें [illegible] भगवान्‌की [illegible] नहीं

॰ गीताके [illegible] अध्यायके अन्तिम [illegible] इस अध्यायके [illegible] परम [illegible] परम सुहृद्, परम [illegible] भगवान्‌के [illegible] एकमात्र परमेश्वरकी शरणमें जाना है।

+ [illegible] —जितने [illegible] मनुष्य [illegible] नाना योनियोंमें घूम रहा है [illegible] मुक्त कर देना है [illegible] तीसरे अध्यायमें [illegible] मुक्त कर दूँगा [illegible] गया है।

गीताके [illegible] अध्यायके [illegible] उपदेशका उपसंहार किया था [illegible] भगवान्‌ने [illegible] गीताके [illegible] श्लोकमें [illegible] ही [illegible] मुक्त [illegible] भगवत्साक्षात्कार ही गीताका मुख्य उद्देश्य है।

सम्बन्ध—इस प्रकार उपदेशका उपसंहार और उसका माहात्म्य बतलानेके लिये पहले अनधिकारीके लक्षण बतलाकर उसे गीताका उपदेश सुनानेका निषेध करते हैं—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ ६७॥

तुझे यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी कालमें न तो तपरहित मनुष्यसे कहना चाहिये, न भक्तिरहितसे और न बिना सुननेकी इच्छावालेसे ही कहना चाहिये; तथा जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है, उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिये*॥ ६७॥

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ ६८॥

जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त† गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें‡ कहेगा§, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है×॥ ६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ ६९॥

उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं÷॥ ६९॥

---

* इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि तुम मेरे अतिशय प्रेमी भक्त और दैवी सम्पदासे युक्त हो, इसलिये [illegible] तुम्हारे हितके लिये तुम्हें यह उपदेश दिया है। अतः जो मनुष्य स्वधर्मपालनरूप तप करनेवाला न हो, उस मनुष्यको मेरे गुण, प्रभाव और तत्त्वको बतलानेवाला यह गीताशास्त्र नहीं सुनाना चाहिये।

तथा जिसका मुझ परमेश्वरमें विश्वास और प्रेम भी पूज्यभाव नहीं है, [illegible] ऐसे मनुष्यको भी यह अत्यन्त गोपनीय गीताशास्त्र नहीं सुनाना चाहिये।

इसी प्रकार जो तप और भक्तिसे युक्त [illegible] किन्तु गीताशास्त्रमें श्रद्धा और प्रेम न होनेके कारण उसे सुनना नहीं चाहता, उसे भी [illegible] नहीं सुनाना चाहिये; क्योंकि ऐसा मनुष्य उसको ग्रहण नहीं कर सकता [illegible]।

एवं जो [illegible] मुझमें दोषदृष्टि करनेवाला है, ऐसे मनुष्यको तो [illegible] नहीं सुनाना चाहिये; क्योंकि वह मेरे गुण, प्रभाव और स्वरूपको न समझकर [illegible] अधिक पापका भागी होगा।

† यह उपदेश मनुष्योंको [illegible] परम गुह्य और रहस्ययुक्त है।

‡ इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है कि [illegible] गुण, प्रभाव और तत्त्वको [illegible] मेरे भक्त ही [illegible] अधिकारी हैं [illegible]।

§ मेरे भक्तोंमें कहनेका अभिप्राय [illegible] गुण, प्रभाव और स्वरूपकी [illegible] गीताशास्त्रका पठन-पाठन करना [illegible] अर्थको भलीभाँति प्रकट करना और [illegible] गीताके उपदेशके अनुसार [illegible] भगवान्‌में परम प्रेम करके भगवान्‌के भक्तोंमें गीताका कथन करना है।

× इससे भगवान्‌ने यह भाव दिखलाया है [illegible] उसको प्राप्त होता है; इसलिये मेरी प्राप्ति चाहनेवाले अधिकारी भक्तोंको इस गीताशास्त्रका कथन तथा प्रचार अवश्य करना चाहिये।

÷ यहाँ भगवान् यह बतलाते हैं कि [illegible] जितने भी मेरे प्रिय कार्य हैं, उन सबसे बढ़कर मेरे भक्तोंको मेरे भक्तोंमें [illegible] मुझे अधिक प्रिय है। [illegible] श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मेरे भक्तोंमें [illegible] बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला है, उससे बढ़कर दूसरा कोई नहीं [illegible] उससे बढ़कर मेरा कोई प्रिय कार्य करनेवाला नहीं है, [illegible] किंतु उससे बढ़कर मेरा प्यारा काम करनेवाला कोई हो सकेगा, यह भी सम्भव नहीं है। इसलिये मेरी प्राप्तिके लिये

सम्बन्ध—इस प्रकार उपर्युक्त दो श्लोकोंमें गीताशास्त्रका भक्तिपूर्वक भक्तोंमें विस्तार करनेका फल और माहात्म्य बतलाया, किंतु सभी मनुष्य इस कार्यको नहीं कर सकते, इसलिये जिसमें ... इसलिये अब गीताशास्त्रके अध्ययनका माहात्म्य बतलाते हैं—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥७०॥

जो पुरुष इस धर्ममय* हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा† उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ‡से पूजित होऊँगा—ऐसा मेरा मत है॥७०॥

सम्बन्ध—इस प्रकार गीताशास्त्रके अध्ययनका माहात्म्य बतलाकर अब जो मनुष्य अध्ययन करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये केवल श्रवणका फल बतलाते हैं—

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥७१॥

जो मनुष्य§ श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टिसे रहित होकर इस गीताशास्त्रका श्रवण भी करेगा× वह भी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालोंके श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होगा+॥७१॥

सम्बन्ध—इस प्रकार गीताशास्त्रके कथन, श्रवण और अध्ययनका माहात्म्य बतलाकर अब भगवान् स्वयं सब कुछ जानते हुए भी अर्जुनको सचेत करनेके लिये उससे उसकी स्थिति पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥७२॥

हे पार्थ! क्या इस (गीताशास्त्र) को तूने एकाग्रचित्तसे श्रवण किया? और हे धनञ्जय! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया? ÷॥७२॥

भी साधन हैं। उन सबमें यह भक्तिपूर्वक मेरे भक्तोंमें मेरे गुणोंका विस्तार करनारूप साधन सर्वोत्तम है—ऐसा समझकर सब भक्तोंको यह कार्य करना चाहिये।

* यह साक्षात् परमेश्वरके द्वारा कहा हुआ शास्त्र है, इस कारण इसमें जो कुछ उपदेश दिया गया है, वह सब धर्मसे ओतप्रोत है।

† गीताका मनन ... भगवान्‌के वचनोंको इस गीताशास्त्रका कथन ... पाठ करना, अर्थका विचार करना ... [illegible] ... आदि सभी अध्ययन शब्दके अन्तर्गत हैं।

अध्ययनका यह ... [illegible] ... उससे भी अधिक लाभ है।

‡ इस गीताशास्त्रका अध्ययन करनेसे मनुष्यको मेरे गुण, प्रभाव और तत्त्वका ज्ञान हो जाता है; अतः इस गीताशास्त्रका अध्ययन करना ज्ञानयज्ञके द्वारा मेरा पूजन करना है, क्योंकि सभी यज्ञोंका अन्तिम फल भगवान्‌के तत्त्वको यथार्थ जान लेना है और वह फल इस ... से सहज ही मिल जाता है।

§ जिसका अभी इस गीताशास्त्रका अध्ययन करनेमें अधिकार नहीं है, वह तो मनुष्य ... नहीं है, क्योंकि उसका मनुष्यजन्म व्यर्थ जा रहा है, इस कारण वह मनुष्यरूपमें पशुके ही तुल्य है।

× भगवान्‌के वचनोंमें और उनके गुण, प्रभाव ... गीताशास्त्र साक्षात् भगवान्‌की वाणी है, इसमें जो कुछ भी कहा गया है सब सत्य है—इस प्रकार विश्वासपूर्वक मानना और उसके अनुसार विचार करके दम्भ और कुटिल भाव त्यागकर ... श्रद्धासे युक्त होकर गीताशास्त्रका श्रवण करना है और श्रवण करते समय ... भगवान्‌के वचनोंमें किसी प्रकारका दोष खोज न करना—यह दोषदृष्टिसे रहित होकर उसका श्रवण करना है।

\+ जो अश्वमेधादि उत्तम कर्मानुसार इस गीताशास्त्रको दूसरोंका अध्ययन करता है तथा जो भगवान्‌के आदेशके अनुसार श्रवण करता है, उस मनुष्यको भी ... वह इसको श्रद्धापूर्वक श्रवणमात्र भी कर लेता है, वह भी उत्तम कर्मोंके किये हुए पशु-पक्षी आदि सब योनियोंसे और नरकोंसे छूटकर इन्द्र लोकसे लेकर भगवान्‌के परमधामपर्यन्त अपने भाव और श्रद्धाके अनुरूप भिन्न-भिन्न लोकोंको प्राप्त हो जाता है।

÷ भगवान्‌का इस प्रकार अभिप्राय यह है कि मैंने जो उपदेश दिया है, यदि तुमने उसको मनसे सावधानीसे ही साक्षात् परमेश्वर हूँ, तू मेरी ही शरणमें आ जा इत्यादि बात कहा था, इसलिये तुमने मेरे उपदेशको भलीभाँति ध्यानपूर्वक सुन तो लिया है न? क्योंकि यदि कहीं तुमने उसपर ध्यान न दिया होगा तो तुमने निःसन्देह बड़ी भूल की है।

ऽ भगवान्‌का यह अभिप्राय है कि जिस मोहसे युक्त होकर तुम अपने स्वजनोंको मारनेको पापकर्म समझ रहे थे (गीता १।३७) उस कर्मको अधर्मका कारण मानते थे (गीता १।३६ से ४४) और उसका परित्याग करके भिक्षाके अन्नसे जीवन बिताना श्रेयस्कर समझते थे (गीता २।५) तथा किसी प्रकार युद्ध न करनेका निश्चय कर लिया था (गीता २।९) और अपने कर्तव्यका निश्चय नहीं कर पाते थे (गीता २।७)—तुम्हारा वह अज्ञानजनित मोह

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥७३॥

अर्जुन बोले—हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा॥७३॥

सञ्जय—इस प्रकार [illegible] भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके संवादरूप गीताशास्त्रका उपसंहार करते हुए [illegible] संजय [illegible] प्रकट करते हैं—

सञ्जय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्॥७४॥

सञ्जय बोले—इस प्रकार मैंने श्रीवासुदेवके और महात्मा अर्जुनके इस अद्भुत रहस्ययुक्त रोमांचकारक संवादको सुना॥७४॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्॥७५॥

श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रत्यक्ष सुना है॥७५॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥७६॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त कल्याणकारक और अद्भुत संवादको पुनः पुनः स्मरण करके मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ॥७६॥

अब तक हो गया या नहीं? यदि मेरे उपदेशको तुमने ध्यानपूर्वक सुना है तो तुम्हारा मोह नष्ट हो जाना चाहिये और यदि तुम्हारा मोह नष्ट नहीं हुआ है तो यही मानना पड़ेगा कि तुमने [illegible] उपदेशको एकाग्रचित्तसे नहीं सुना।

यहाँ भगवान्‌ने [illegible] यह [illegible] है कि मनुष्यको [illegible] बड़ी सावधानीके साथ एकाग्रचित्तसे [illegible] करना चाहिये और [illegible] अन्तःकरणमें [illegible] उसको यह समझना चाहिये कि अबतक मैं भगवान्‌के उपदेशका रहस्य नहीं समझ सका हूँ, अतः पुनः [illegible] और विवेकपूर्वक विचार करना आवश्यक है।

* अर्जुनके कहनेका [illegible] है कि [illegible] आपने मेरे [illegible] मुझपर बड़ी भारी दया की है, आपके उपदेशको सुननेसे मेरा अज्ञानजनित मोह सर्वथा नष्ट हो गया है अर्थात् आपके गुण, प्रभाव [illegible] यथार्थ न जाननेके कारण [illegible] होकर मैं [illegible] आपकी आज्ञाके [illegible] (गीता २ [illegible]) और बन्धु-बान्धवोंके [illegible] व्याकुल हो रहा था (गीता [illegible]) वह सब मोह अब सर्वथा नष्ट हो गया है तथा [illegible] गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य [illegible] पूर्ण स्मृति प्राप्त हो गयी है और [illegible] मैं [illegible] हो गया हूँ, मेरा कुछ भी [illegible] नहीं रहा है। अब आपके गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और [illegible] [illegible] विषयमें [illegible] किंचिन्मात्र भी संशय नहीं रहा है। [illegible] अब कुछ भी करना शेष नहीं रहा। अतएव आपके वचनानुसार [illegible] लिये युद्ध [illegible] आप कहेंगे [illegible] वैसा ही करूँगा।

† [illegible] भगवान् [illegible] अर्जुनके [illegible] रहस्य [illegible] करनेवाले महात्माओं [illegible] द्वारा यह उपदेश दिया गया है, इस कारण यह [illegible] महत्त्वका है तथा यह उपदेश [illegible] और [illegible] है, इसमें मनुष्यका भगवान्‌के दिव्य अलौकिक गुण [illegible] और [illegible] समस्तका पूर्ण ज्ञान हो जाता है तथा मनुष्य [illegible] जैसे-जैसे सुनता और समझता है, वैसे ही वैसे हर्ष और आश्चर्यके कारण उसका शरीर पुलकित हो जाता है, उसको समस्त शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है।

‡ [illegible] कहनेका अभिप्राय यह है कि भगवान् व्यासजीने [illegible] मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान कर [illegible] वाली समस्त घटनाओंको देखने, सुनने और समझनेकी अद्भुत शक्ति प्रदान की है, उन्हींके कारण आज मुझे भगवान्‌का यह दिव्य उपदेश सुननेके लिये मिला, नहीं तो मुझे ऐसा सुयोग कैसे मिलता।

§ भगवान्‌की प्राप्तिके उपायभूत कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग और भक्तियोग आदि साधनोंका इसमें भलीभाँति वर्णन किया गया है तथा यह स्वयं भी अर्थात् श्रद्धापूर्वक इसका पाठ भी परमात्माकी प्राप्ति [illegible] होनेसे योगरूप ही है।

× [illegible] कहनेका यह भाव है कि भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका दिव्य [illegible] यह गीताशास्त्र अध्ययन-अध्यापन, श्रवण, मनन और कथन आदि करनेवाले मनुष्यका परम पवित्र [illegible] कल्याण करनेवाला तथा भगवान्‌के आश्चर्यमय गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य, तत्त्व, रहस्य और स्वरूपका [illegible] है [illegible] पवित्र दिव्य एवं अलौकिक है। इस उपदेशने मेरे हृदयको इतना आकर्षित कर लिया है कि अब मुझे दूसरी कोई बात ही अच्छी नहीं लगती, मेरे मनमें बार-बार उस उपदेशकी स्मृति हो रही है और उसके [illegible] आवेशमें मैं अतीव हर्षका अनुभव कर रहा हूँ, प्रेम और हर्षसे व्याकुल विह्वल हो रहा हूँ।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥७७॥

हे राजन्! श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण रूपको भी पुनः पुनः स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ*॥

सम्बन्ध—इस प्रकार अपनी स्थितिका वर्णन करते हुए गीताके उपदेशकी और भगवान् श्रीकृष्णकी स्मृतिका माहात्म्य प्रकट करके अब संजय धृतराष्ट्रसे पाण्डवोंकी विजयकी निश्चित सम्भावना प्रकट करते हुए इस अध्यायका उपसंहार करते हैं—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥७८॥

हे राजन्! जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है†॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ भीष्मपर्वणि तु द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें ब्रह्मविद्या एवं योगशास्त्ररूप श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद्, श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें मोक्षसंन्यासयोग नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ भीष्मपर्वमें बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् [illegible] परमेश्वर पुरुषोत्तम सर्वान्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य वाणी है। यह अनन्त रहस्योंसे पूर्ण है। परम दयामय भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही किसी अंशमें इसका रहस्य समझमें आ सकता है। जो पुरुष परम श्रद्धा और प्रेममयी विशुद्ध भक्तिसे अपने हृदयको भरकर भगवद्गीताका मनन करते हैं, वे ही भगवत्-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करके गीताके स्वरूपका किसी अंशमें अनुभव कर सकते हैं। अतएव अपना कल्याण चाहनेवाले नर-नारियोंको उचित है कि वे भक्तवर अर्जुनको आदर्श मानकर अपनेमें अर्जुनके से दैवी गुणोंका अर्जन करते हुए श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गीताका श्रवण, मनन और अध्ययन करें एवं भगवान्‌के आज्ञानुसार यथायोग्य तत्परताके साथ साधन में लग जायँ। जो पुरुष इस प्रकार करते हैं, उनके अन्तःकरणमें नित्य नये-नये परमानन्दमय अनुपम और दिव्य भावोंकी स्फुरणा होती रहती है तथा वे [illegible] एवं होकर भगवान्‌की अलौकिक कृपासुधाका रसास्वादन करते हुए शीघ्र ही भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं।

---

* भगवान् श्रीकृष्णके गुण, प्रभाव और [illegible] महिमा, नाम और माहात्म्य, श्रवण, मनन, कीर्तन, दर्शन और स्पर्श आदिके द्वारा उनके [illegible] किसी प्रकारका भी [illegible] करनेसे [illegible] समस्त पापोंसे, अज्ञानका और दुःखोंका हरण कर लेते हैं तथा वे अपने भक्तोंके मनको चुरानेवाले हैं, इसलिये उन्हें 'हरि' कहते हैं।

जिस भगवान्‌के आश्चर्यमय दिव्य विश्वरूपका भगवान्‌ने अर्जुनको दर्शन कराया था और जिसके दर्शनका महत्त्व भगवान्‌ने ग्यारहवें अध्यायके अड़तालीसवें और तिरपनवें श्लोकोंमें स्पष्ट बतलाया है, उसी विराट् स्वरूपको लक्ष्य करके संजय यह कह रहे हैं कि भगवान्‌का वह रूप मेरे चित्तसे उतरता ही नहीं, उसे मैं बार-बार स्मरण करता रहता हूँ और मुझे बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है कि भगवान्‌के अतिशय दुर्लभ [illegible] दिव्य स्वरूप दर्शन मुझे कैसे हो गया। मेरा तो ऐसा कुछ भी पुण्य नहीं था जिससे मुझे ऐसे अद्भुत दर्शन हो सकते। यह तो मेरे ऊपर भगवान्‌की अहैतुकी दया ही कारण है। साथ ही उस रूपके अलावा अद्भुत दृश्योंको और घटनाओंको याद कर-करके भी मुझे बड़ा आश्चर्य होता है तथा उन्हें बार-बार याद करके मैं हर्ष और प्रेममें विह्वल भी हो रहा हूँ। मेरे आनन्दका पारावार नहीं है।

† यहाँ संजयके कहनेका अभिप्राय यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण समस्त योगेश्वरोंके स्वामी हैं, वे अपनी योगशक्तिसे क्षणमात्रमें समस्त जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार कर सकते हैं। वे साक्षात् नारायण भगवान् श्रीकृष्ण जिस धर्मराज युधिष्ठिरके सहायक हैं, उनकी विजयमें क्या बाधा है?

इसके सिवा अर्जुन भी नर ऋषिके अवतार, भगवान्‌के प्रिय सखा और गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले महान् वीर पुरुष हैं। वे भी अपने बड़े भाई युधिष्ठिरकी विजयके लिये कटिबद्ध हैं। अतः उनकी विजयमें दूसरा कौन बाधक बन सकता है? क्योंकि जहाँ धर्म रहता है, भगवान् उसके साथ ही रहते हैं—उसी प्रकार जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन रहते हैं, वहाँ सम्पूर्ण शोभा, सारा ऐश्वर्य और अचल न्याय—धर्म—ये सब उनके साथ-साथ रहते हैं और फिर जहाँ धर्म रहता है, उन्हींकी विजय होती है। अतः पाण्डवोंकी विजयमें किसी प्रकारकी शंका नहीं है। यदि अब भी तुम अपना कल्याण चाहते हो तो अपने पुत्रोंको समझाकर पाण्डवोंसे सन्धि कर लो।

(भीष्मवधपर्व)

त्रिचत्वारिंशोऽध्याय

गीताका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरका भीष्म, द्रोण, कृप और शल्यसे अनुमति लेकर युद्धके लिये तैयार होना।

वैशम्पायन उवाच

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता ॥ १ ॥

गीताका अध्ययन ही भलीभाँति करना चाहिये—अन्य बहुत-से शास्त्रोंके संग्रह करनेकी क्या आवश्यकता है? गीताका ही अच्छी तरह गान (श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन, मनन और धारण) करना चाहिये, क्योंकि यह स्वयं पद्मनाभ भगवान्‌के साक्षात् मुखकमलसे निकली हुई है ॥ १ ॥

सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥ २ ॥

गीता सर्वशास्त्रमयी है (गीतामें सब शास्त्रोंके सार तत्त्वका समावेश है)। भगवान् श्रीहरि सर्वदेवमय हैं। गङ्गा सर्वतीर्थमयी है और मनु (उनका धर्मशास्त्र) सर्ववेदमय हैं ॥ २ ॥

गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते ।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३ ॥

गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द—इन चार गकारयुक्त नामोंको हृदयमें धारण कर लेनेपर मनुष्यका फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता ॥ ३ ॥

षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत् सप्तषष्टिं तु संजयः ॥ ४ ॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ।

इस गीतामें छः सौ बीस श्लोक भगवान् श्रीकृष्णने कहे हैं, सत्तावन श्लोक अर्जुनके कहे हुए हैं, सड़सठ श्लोक संजयने कहे हैं और एक श्लोक धृतराष्ट्रका कहा हुआ है, यह गीताका मान बताया जाता है ॥ ४ ॥

भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥ ५ ॥

महाभारतरूपी अमृतोपम सर्वस्व गीताका मन्थन करके उसका सार निकालकर श्रीकृष्णने अर्जुनके मुखमें (कानोंद्वारा अन्तर्बुद्धिमें) डाल दिया है ॥ ५ ॥*

संजय उवाच

ततो धनंजयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् ।
पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ ६ ॥
पाण्डवाः सोमकाश्चैव ये चैषामनुयायिनः ।
दध्मुः प्रमुदिताः शङ्खान् वीराः सागरसम्भवान् ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अर्जुनको गाण्डीव धनुष और बाण धारण किये देख पाण्डव महारथियोंने तथा उनके अनुयायी सैनिकोंने पुनः बड़े जोरसे सिंहनाद किया। साथ ही उन सभी वीरोंने प्रसन्नतापूर्वक समुद्रसे प्रकट होनेवाले शङ्खोंको बजाया ॥ ६-७ ॥

ततो भेर्यश्च पेश्यश्च क्रकचा गोविषाणिकाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त ततः शब्दो महानभूत् ॥ ८ ॥

तदनन्तर भेरी, पेशी, क्रकच और नरसिंहे आदि बाजे सहसा बज उठे। इससे वहाँ महान् शब्द गूँजने लगा ॥ ८ ॥

तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनेश्वर ।
सिद्धचारणसङ्घाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥ ९ ॥
ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद् वैशसं महत् ॥ १० ॥

नरेश्वर! उस समय देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध, चारण तथा महाभाग महर्षिगण इन्द्रको आगे करके उस भीषण मारकाटको देखनेके लिये एक साथ वहाँ आये ॥ ९-१० ॥

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते ।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ११ ॥
विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् ।
अवरुह्य रथात् तूर्णं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥
पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥ १३ ॥

राजन्! तदनन्तर राजा युधिष्ठिर समुद्रके समान उन दोनों सेनाओंको युद्धके लिये उपस्थित और चञ्चल हुई देख कवच खोलकर अपने उत्तम आयुधोंको नीचे डाल दिया और रथसे शीघ्र उतरकर वे पैदल ही हाथ जोड़े पितामह भीष्मको लक्ष्य करके चल दिये। धर्मराज युधिष्ठिर मौन एवं पूर्वाभिमुख हो शत्रुसेनाकी ओर चले गये ॥ ११—१३ ॥

तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
अवतीर्य रथात् तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ १४ ॥
वासुदेवश्च भगवान् पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ।
तथा मुख्याश्च राजानस्तमन्वीयुः समुत्सुकाः ॥ १५ ॥

कुन्तीपुत्र धनंजय उन्हें शत्रुसेनाकी ओर जाते देख

* चतुर्थ और पञ्चम श्लोक किन्हीं-किन्हीं प्रतियोंमें नहीं हैं और किन्हीं में हैं।

करके रथसे उतर पड़े और भाइयोंसहित उनके पीछे-पीछे जाने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके पीछे गये तथा उन्होंके चित्त लगाये रहनेवाले प्रधान राजा भी उत्सुक होकर उनके साथ गये।

अर्जुन उवाच

किं ते व्यवसितं राजन् यदस्मानपहाय वै।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम्॥ ६॥

अर्जुनने पूछा—राजन्! आपने क्या निश्चय किया है कि हमलोगोंको छोड़कर आप पूर्वाभिमुख हो पैदल ही शत्रु-सेनाकी ओर चल दिये हैं?

भीमसेन उवाच

क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातॄनुत्सृज्य पार्थिव॥ ७॥

भीमसेनने भी पूछा—महाराज! पृथ्वीनाथ! कवच और आयुध नीचे डालकर भाइयोंको छोड़कर कवच आदिसे सुसज्जित हुई शत्रु-सेनाकी ओर कहाँ जा रहे हैं?

नकुल उवाच

एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत।
भीर्मे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान् क्व नु॥ ८॥

नकुलने पूछा—भारत! आप मेरे बड़े भाई हैं। आपके इस प्रकार शत्रु-सेनाकी ओर पैदल जानेसे मेरे हृदयको पीड़ित कर रहा है। बताइये, आप कहाँ जायँगे?

सहदेव उवाच

अस्मिन् रणसमूहे वै वर्तमाने महाभये।
युद्धाय क्व नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप॥ ९॥

सहदेवने पूछा—नरेश्वर! इस रणक्षेत्रमें जहाँ शत्रु-समूह युद्धके लिये डटा हुआ है और महान् भय उपस्थित है, आप हमें छोड़कर शत्रुओंकी ओर कहाँ जा रहे हैं?

संजय उवाच

एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दन।
नोवाच वाग्यतः किंचिद् गच्छत्येव युधिष्ठिरः॥ १०॥

संजय कहते हैं—राजन्! भाइयोंके इस प्रकार कहनेपर भी कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले राजा युधिष्ठिर उनसे कुछ नहीं बोले। चुपचाप चलते ही गये।

तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः।
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव॥ ११॥

तब परम बुद्धिमान् महात्मा भगवान् वासुदेवने उन चारों भाइयोंसे हँसते हुए-से कहा—इनका अभिप्राय मुझे ज्ञात हो गया है।

एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च।
अनुमान्य गुरून् सर्वान् योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः॥ १२॥

ये राजा युधिष्ठिर भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्य—इन समस्त गुरुजनोंसे आज्ञा लेकर शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे।

श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूनननुमान्य यः।
युध्यते स भवेद् व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः॥ १३॥

सुना जाता है कि प्राचीन कालमें जो गुरुजनोंकी अनुमति लिये बिना युद्ध करता था, वह निश्चय ही उन माननीय गुरुजनोंकी दृष्टिसे गिर जाता था।

अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युध्येन्महत्तरैः।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम॥ १४॥

जो शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार माननीय गुरुजनोंसे आज्ञा लेकर युद्ध करता है, उसकी उस युद्धमें अवश्य विजय होती है, ऐसा मेरा विश्वास है।

एवं ब्रुवति कृष्णे तु धार्तराष्ट्रचमूं प्रति।
[illegible] सर्वे प्रेक्षन्ते स्म युधिष्ठिरम्॥
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन्॥ १५॥

जब भगवान् श्रीकृष्ण ये बातें कह रहे थे, उस समय दुर्योधनकी सेनाकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरको सब लोग [illegible] देख रहे थे। वहाँ महान् हाहाकार हो रहा था; [illegible] दूसरे लोग [illegible] चुप हो गये।

दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
मिथः [illegible] कुलपांसनः॥ १६॥

[illegible] दूर [illegible] देख दुर्योधनके सैनिक आपसमें [illegible] युधिष्ठिर [illegible] कुल [illegible] की भावना [illegible] ही है।

व्यक्तं भीत इवाभ्येति राजासौ भीष्ममन्तिकम्।
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः॥ १७॥

ऐसा स्पष्ट ही दिखायी दे रहा है कि यह राजा युधिष्ठिर भयभीतकी भाँति भाइयोंसहित भीष्मजीके निकट शरण लेनेके लिये [illegible] रहा है।

धनंजये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे।
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम्॥ २०॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन, वृकोदर भीम तथा नकुल-सहदेव [illegible] रक्षक होते हुए युधिष्ठिरके मनमें भय कैसे हो गया?

न नूनं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथिते भुवि।
यथास्य हृदयं भीतमल्पसत्त्वस्य संयुगे॥ २९॥

निश्चय ही यह भूमण्डलमें विख्यात क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न नहीं हुआ है। इसका मानसिक बल अत्यन्त अल्प है, इसीलिये युद्धके अवसरपर इसका हृदय इतना भयभीत है॥ २९॥

ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान्।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह॥ ३०॥

तदनन्तर वे सब सैनिक कौरवोंकी प्रशंसा करने लगे और प्रसन्नचित्त हो हर्षमें भरकर अपने वस्त्र हिलाने लगे।

व्यनिन्दन्त तथा सर्वे योधास्तत्र विशाम्पते।
युधिष्ठिरं ससोदर्यं सहितं केशवेन हि॥ ३१॥

प्रजानाथ! वहाँके वे सब योद्धा भाइयों तथा श्रीकृष्णसहित युधिष्ठिरकी विशेषरूपसे निन्दा करते थे॥ ३१॥

ततस्तत् कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम्।
निःशब्दमभवत् तूर्णं पुनरेव विशाम्पते॥ ३२॥

राजन्! इस प्रकार युधिष्ठिरको धिक्कार देकर सारी कौरव-सेना पुनः शीघ्र ही चुप हो गयी॥ ३२॥

किं नु वक्ष्यति राजासौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति।
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति॥ ३३॥

सब लोग मन-ही-मन सोचने लगे कि यह राजा क्या कहेगा और भीष्मजी क्या उत्तर देंगे? युद्धकी श्लाघा रखनेवाले भीमसेन तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी क्या कहेंगे?॥ ३३॥

विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत्।
उभयोः सेनयो राजन् युधिष्ठिरकृते तदा॥ ३४॥

राजन्! दोनों ही सेनाओंमें युधिष्ठिरके विषयमें महान् संशय उत्पन्न हो गया था। सब सोचते थे कि राजा युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं॥ ३४॥

स विगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम्।
भीष्ममेवाभ्ययात् तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः॥ ३५॥

बाण और शक्तियोंसे भरी हुई शत्रुकी सेनामें घुसकर भाइयोंसे घिरे हुए युधिष्ठिर तुरंत ही भीष्मजीके पास जा पहुँचे॥ ३५॥

तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम्॥ ३६॥

वहाँ जाकर उन पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने अपने दोनों हाथोंसे पितामहके चरणोंको दबाया और युद्धके लिये उपस्थित हुए उन शान्तनुनन्दन भीष्मसे इस प्रकार कहा॥ ३६॥



युधिष्ठिर उवाच

आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह।
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय॥ ३७॥

युधिष्ठिर बोले—दुर्धर्ष वीर पितामह! मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ, हमें आपके साथ युद्ध करना है। तात! इसके लिये आप मुझे आज्ञा और आशीर्वाद प्रदान करें॥

भीष्म उवाच

यद्येवं नाभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत॥ ३८॥

भीष्मजी बोले—पृथ्वीपते! भरतकुलनन्दन! महाराज! यदि इस युद्धके अवसरपर तुम इस प्रकार मेरे पास नहीं आते तो मैं तुम्हें पराजित होनेके लिये शाप दे देता॥

प्रीतोऽस्मि पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव।
यत् तेऽभिलषितं चान्यत् तदवाप्नुहि संयुगे॥ ३९॥

पाण्डुनन्दन! पुत्र! अब मैं प्रसन्न हूँ और तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम युद्ध करो और विजय पाओ। इसके सिवा और भी जो तुम्हारी अभिलाषा हो, वह इस युद्धभूमिमें प्राप्त करो॥ ३९॥

व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकाङ्क्षसि।
एवंगते महाराज न तवास्ति पराजयः॥ ४०॥

पार्थ! वर माँगो। तुम हमसे क्या चाहते हो? महाराज! ऐसी स्थितिमें तुम्हारी पराजय नहीं होगी॥ ४०॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥ ४१॥

महाराज! पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है; यह सच्ची बात है। मैं कौरवोंके द्वारा अर्थसे बँधा हुआ हूँ ॥ ४३ ॥

अतस्त्वां क्लीबवद् वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन।
हृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ४४ ॥

कुरुनन्दन! इसीलिये आज मैं तुम्हारे सामने नपुंसकके समान वचन बोलता हूँ। कौरव! दुर्योधनने धनके द्वारा मेरा भरण-पोषण किया है, इसलिये मैं उसका पक्ष लेकर युद्ध करनेके लिये विवश हूँ। बोलो, तुम क्या चाहते हो? ॥ ४४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम नित्यशः।
युध्यस्व कौरवस्यार्थे ममैष सततं वरः ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर बोले—महामते! आप सदा मेरे हितकी बात सोचते हुए मुझे अच्छी सलाह दें और दुर्योधनके लिये युद्ध करें; मैं सदा यही वर चाहता हूँ ॥ ४५ ॥

भीष्म उवाच

राजन् किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे ब्रूहि यत् ते विवक्षितम् ॥ ४६ ॥

भीष्म बोले—राजन्! कुरुनन्दन! मैं यहाँ तुम्हारी क्या सहायता करूँ? युद्ध तो मैं इच्छानुसार तुम्हारे शत्रुओंकी ओरसे ही करूँगा। अतः बताओ, तुम क्या कहना चाहते हो? ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम्।
एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर बोले—पितामह! आप किसीसे पराजित होनेवाले नहीं हैं, फिर मैं आपको युद्धमें कैसे जीत सकूँगा? यदि आप मेरे कल्याणकी बात सोचते हों तो मेरे हितकी सलाह दीजिये ॥ ४७ ॥

भीष्म उवाच

न तं पश्यामि कौन्तेय यो मां युध्यन्तमाहवे।
विजयेत पुमान् कश्चिदपि साक्षाच्छतक्रतुः ॥ ४८ ॥

भीष्मने कहा—कुन्तीनन्दन! मैं ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धभूमिमें युद्ध करते समय मुझे पराजित कर सके। युद्धभूमिमें कोई पुरुष, चाहे वह साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, मुझे परास्त नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हन्त पृच्छामि तस्मात् त्वां पितामह नमोऽस्तु ते।
वधोपायं ब्रवीहि त्वमात्मनः समरे परैः ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिर बोले—पितामह! आपको नमस्कार है। इसलिये अब मैं आपसे पूछता हूँ, आप युद्धमें शत्रुओंद्वारा अपने मारे जानेका उपाय बताइये ॥ ४९ ॥

भीष्म उवाच

न शत्रुं तात पश्यामि समरे यो जयेत माम्।
न तावन्मृत्युकालोऽपि पुनरागमनं कुरु ॥ ५० ॥

भीष्म बोले—बेटा! संग्राममें युद्ध करते समय मुझे जीत सके, ऐसे किसी वीरको मैं नहीं देखता। अभी मेरी मृत्युका समय भी नहीं आया है। अतः अपने इस प्रश्नका उत्तर लेनेके लिये फिर कभी आना ॥ ५० ॥

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन।
शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्य च ॥ ५१ ॥
प्रायात् पुनर्महाबाहुराचार्यस्य रथं प्रति।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन सहसोदरः ॥ ५२ ॥
स द्रोणमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ५३ ॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन! तब महाबाहु युधिष्ठिरने भीष्मजीकी आज्ञा शिरोधार्य की और पुनः उन्हें प्रणाम करके वे सब सेनाओंके देखते-देखते बीचसे होकर भाइयोंसहित आचार्य द्रोणके रथकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर राजाने उन्हें प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की और उन दुर्धर्ष आचार्यसे अपने हितकी बात पूछी ॥ ५१—५३ ॥



आमन्त्रये त्वां भगवन् योत्स्ये विगतकल्मषः।
कथं जयेयं रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥ ५४ ॥

भगवन्! मैं आपसे पूछता हूँ, किस प्रकार आपके

साथ मिलकर इस पराजित होकर युद्ध करूँ। विजय आपकी आज्ञासे मैं समस्त शत्रुओंको किस प्रकार जीत सकूँ॥

द्रोण उवाच

यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः॥ ४३॥

द्रोणाचार्य बोले—महाराज! यदि युद्धका निश्चय कर लेनेके बाद तुम इस समय मेरे पास नहीं आते तो मैं तुम्हें सब प्रकारसे पराजय होनेके लिये शाप दे देता॥ ४३॥

तद् युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयानघ।
अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि॥ ४४॥

निष्पाप युधिष्ठिर! मैं तुमसे संतुष्ट हूँ। तुमने मेरा आदर किया है; मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, जाओ युद्ध करो और विजय प्राप्त करो॥ ४४॥

करवाणि च ते कामं ब्रूहि यत् त्वमभिकाङ्क्षसि।
एवंगते महाराज युद्धादन्यत् किमिच्छसि॥ ४५॥

महाराज! मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा। तुम्हारा अभीष्ट मनोरथ क्या है? बताओ। इस परिस्थितिमें मैं तुम्हारी ओरसे युद्ध तो कर नहीं सकता। उसे छोड़कर तुम क्या चाहते हो?॥ ४५॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥ ४६॥

पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है। महाराज! यह सच्ची बात है कि मैं कौरवोंके द्वारा अर्थसे बँधा हुआ हूँ॥ ४६॥

ब्रवीम्येतत् क्लीबवत् त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि।
योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया॥ ४७॥

इसीलिये आज नपुंसककी तरह तुमसे पूछता हूँ, तुम युद्धके सिवा और क्या चाहते हो? मैं दुर्योधनके लिये युद्ध करूँगा, परंतु जीत तुम्हारी ही चाहूँगा॥ ४७॥

युधिष्ठिर उवाच

जयमाशास्व मे ब्रह्मन् मन्त्रयस्व च मद्धितम्।
युध्यस्व कौरवस्यार्थे वर एष वृतो मया॥ ४८॥

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! आप मेरी विजय चाहें और मेरे हितकी सलाह देते रहें; युद्ध दुर्योधनकी ओरसे ही करें। यही वर मैंने आपसे माँगा है॥ ४८॥

द्रोण उवाच

ध्रुवस्ते विजयो राजन् यस्य मन्त्री हरिस्तव।
अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून् विजेष्यसे॥ ४९॥

द्रोणाचार्यने कहा—राजन्! तुम्हारी विजय तो निश्चित है; क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे मन्त्री हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम युद्धमें शत्रुओंको उनके प्राणोंसे वियुक्त कर डालोगे॥ ४९॥

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।
युध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते॥ ५०॥

जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय है। कुन्तीकुमार! जाओ, युद्ध करो और भी पूछो, तुम्हें क्या बताऊँ?॥ ५०॥

युधिष्ठिर उवाच

पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु यन्मेऽभिकाङ्क्षितम्।
कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम्॥ ५१॥

युधिष्ठिर बोले—द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे पूछता हूँ, आप मेरे मनोवाञ्छित प्रश्नको सुनिये। आप कभी भी पराजित होनेवाले नहीं हैं, फिर आपको मैं युद्धमें कैसे जीतूँ?॥ ५१॥

द्रोण उवाच

न तेऽस्ति विजयस्तावद् यावद् युध्याम्यहं रणे।
ममाशु निधने राजन् यतस्व सह सोदरैः॥ ५२॥

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! मैं जबतक रणभूमिमें युद्ध करूँगा, तबतक तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। तुम अपने भाइयोंसहित ऐसा यत्न करो, जिससे शीघ्र मेरी मृत्यु हो जाय॥ ५२॥

युधिष्ठिर उवाच

हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदात्मनः।
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते॥ ५३॥

युधिष्ठिर बोले—महाबाहु आचार्य! इसलिये आप अपने वधका उपाय मुझे बताइये। आपको नमस्कार है। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करके यह प्रश्न कर रहा हूँ॥ ५३॥

द्रोण उवाच

न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद् रणे स्थितम्।
युध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम्॥ ५४॥

द्रोणाचार्य बोले—तात! जब मैं रणभूमिमें खड़ा होकर कुपित हो बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्धमें लग जाऊँ, उस समय मुझे मार सके, ऐसे किसी शत्रुको नहीं देख रहा हूँ॥ ५४॥

ऋते प्रायगतं राजन् न्यस्तशस्त्रमचेतनम्।
हन्यान्मां युधि योधानां सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ५५॥

राजन्! जब मैं हथियार डालकर अचेत-सा हो मरणान्त उपवासके लिये बैठ जाऊँ, उस अवस्थाके सिवा और किसी समय कोई मुझे नहीं मार सकता। उसी अवस्थामें कोई श्रेष्ठ योद्धा मुझे मार सकता है, यह मैं तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ॥ ५५॥

शस्त्रं चाहं रणे जह्यां श्रुत्वा सुमहदप्रियम्।
श्रद्धेयवाक्यात् पुरुषादेतत् सत्यं ब्रवीमि ते॥ ५६॥

यदि मैं ऐसे निश्चयपर पहुँचे हुए तुमको युद्धभूमिमें का-अत्यन्त अधिक नमस्कार सुन तू ता इच्छित गौरे शाप देता । यह मैं तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ ॥ ५६ ॥

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः ।
अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥ ५७ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! परम बुद्धिमान् द्रोणाचार्यकी यह बात सुनकर उनका सम्मान करके राजा युधिष्ठिर कृपाचार्यके पास गये ॥ ५७ ॥

सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
उवाच दुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ५८ ॥

उन्हें नमस्कार करके उनकी परिक्रमा करनेके पश्चात् वक्ताओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने दुर्धर्ष वीर कृपाचार्यसे कहा— ॥ ५८ ॥



अनुमानये त्वां योत्स्येऽहं गुरो विगतकल्मष ।
जयेयं च रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वयानघ ॥ ६९ ॥

निष्पाप गुरुदेव ! मैं सम्बन्धित वचन आपसे साथ युद्ध कर सकूँ, इसके लिये आपकी अनुमति चाहता हूँ । आपका आदेश पाकर मैं समस्त शत्रुओंको संग्राममें जीत सकता हूँ ॥ ६९ ॥

कृप उवाच

यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ७० ॥

कृपाचार्य बोले—महाराज ! यदि युद्धका निश्चय कर लेनेपर तुम मेरे पास नहीं आते तो मैं तुम्हारी सर्वथा पराजयके लिये तुम्हें शाप दे देता ॥ ७० ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ७१ ॥

पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है । महाराज ! यह सच्ची बात है । मैं कौरवोंके द्वारा अर्थसे बँधा हुआ हूँ ॥ ७१ ॥

तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः ।
अतस्त्वां क्लीबवद् ब्रूमि युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ७२ ॥

महाराज ! मैं निश्चय कर चुका हूँ कि मुझे उन्हींके लिये युद्ध करना है। अतः तुमसे नपुंसककी तरह पूछ रहा हूँ कि तुम युद्धकामनाको छोड़कर मुझसे और क्या चाहते हो ? ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हन्त पृच्छामि ते तस्मादाचार्य शृणु मे वचः ।
इत्युक्त्वा व्यथितो राजा नोवाच गतचेतनः ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर बोले—आचार्य ! इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ । आप मेरी बात सुनिये । इतना कहकर राजा युधिष्ठिर व्यथित और अचेत-से होकर उनसे कुछ भी बोल न सके ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच

तं गौतमः प्रत्युवाच विज्ञायास्य विवक्षितम् ।
अवध्योऽहं महीपाल युध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ७४ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन् ! कृपाचार्य यह समझ गये कि युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं, अतः उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा—राजन् ! मैं अवध्य हूँ । जाओ, युद्ध करो और विजय प्राप्त करो ॥ ७४ ॥

प्रीतस्त्वेऽभिगमनेनाहं जयं तव नराधिप ।
आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७५ ॥

नरेश्वर ! तुम्हारे इस आगमनसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं सदा उठकर तुम्हारी विजयके लिये शुभकामना करूँगा । यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ७५ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य विशाम्पते ।
अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥ ७६ ॥

महाराज ! प्रजानाथ ! कृपाचार्यकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिर उनकी अनुमति ले जहाँ मद्रराज शल्य थे, उस ओर चले गये ॥ ७६ ॥

स शल्यमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ७७ ॥

दुर्जय वीर शल्यको प्रणाम करके उनकी परिक्रमा करनेके पश्चात् राजा युधिष्ठिरने अपने हितकी यह बात कही— ॥



अनुमानये त्वां दुर्धर्ष योत्स्ये विगतकल्मषः।
जयेयं तु यथा राजंस्तन्ममाख्याहि रिपून् ॥ ७८ ॥

दुर्धर्ष वीर! मैं पापरहित रह निष्पाप रहकर आप के साथ युद्ध करूँगा, इसके लिये आपकी अनुमति चाहता हूँ। राजन्! आपकी आज्ञा पाकर मैं समस्त शत्रुओंको युद्धमें जीत सकता हूँ ॥

शल्य उवाच

यदि मां नाभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः।
शपेयं त्वा महाराज पराभावाय ते ॥ ७९ ॥

शल्य बोले—महाराज! यदि युद्धका निश्चय कर लेने पर तुम मेरे पास नहीं आते तो मैं तुम्हें तुम्हारी पराजयके लिये तुम्हें शाप दे देता ॥

तुष्टोऽस्मि पूजितश्चास्मि यत्काङ्क्षसि तदस्तु ते।
अनुजानामि चैव त्वां युध्यस्व लभ च जयम् ॥

अब मैं संतुष्ट हूँ, तुमने मेरा बड़ा सम्मान किया, तुम जो चाहते हो वह पूर्ण हो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम युद्ध करो और विजय प्राप्त करो ॥

ब्रूहि चैव परं वीर केनार्थः किं ददामि ते।
अथैवं गते महाराज युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ८१ ॥

वीर! तुम कुछ और बताओ किस प्रकार तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। मैं तुम्हें क्या दूँ? महाराज! इस परिस्थितिमें युद्धविषयक सहयोगको छोड़कर तुम मुझसे और क्या चाहते हो?

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ८२ ॥

पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका दास नहीं है। महाराज! यह सच्ची बात है कि कौरवोंने अर्थके द्वारा मुझे बाँध रखा है ॥

अतस्त्वां क्लीबवद् वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन।
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत् किमिच्छसि ॥ ८३ ॥

इसलिये मैं तुमसे नपुंसककी भाँति कह रहा हूँ। कुरुनन्दन! तुम युद्धके सिवा और क्या चाहते हो? मेरा भरण-पोषण कौरवोंके धनसे हुआ है, अतः मैं तुम्हारे पक्षमें युद्ध नहीं करूँगा ॥

युधिष्ठिर उवाच

मन्त्रयस्व महाप्राज्ञ नित्यं मद्धितमुत्तमम्।
कामं युध्यस्व परस्यार्थे वरमेतद् वृणोम्यहम् ॥ ८४ ॥

युधिष्ठिर बोले—महाप्राज्ञ! मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि आप प्रतिदिन मेरे हितकी सलाह मुझे देते रहें, आपकी इच्छाके अनुसार युद्ध दूसरेके लिये करें ॥

शल्य उवाच

किमत्र ब्रूहि साह्यं ते करोमि नृपसत्तम।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ८५ ॥

शल्य बोले—नृपश्रेष्ठ! बताओ, इस विषयमें मैं तुम्हारी क्या सहायता करूँ? कौरवोंने धनके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लिया है, अतः मैं इच्छानुसार युद्ध तो मैं तुम्हारे विपक्षी की ओरसे ही करूँगा ॥

युधिष्ठिर उवाच

स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः।
सूतपुत्रस्य संग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥ ८६ ॥

युधिष्ठिर बोले—मामाजी! मेरे युद्धके लिये उद्योग के समय उन दिनों आपने मुझे जो वर दिया था, वही वर आज भी मेरे लिये आवश्यक है। आप युद्धमें सूतपुत्रके साथ युद्ध हो, उस समय आप उसका उत्साह नष्ट करना। यह बात पहले भी मैं निवेदन कर चुका हूँ कि उस युद्धमें आप अर्जुनके साथ युद्ध करनेवाले सूतपुत्रके तेजका विनाश करनेके लिये अवश्य नियुक्त करना ॥

शल्य उवाच

सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम्।
गच्छ युध्यस्व विस्रब्धः प्रतिजाने जयं तव ॥ ८७ ॥

शल्य बोले—कुन्तीनन्दन! तुम्हारा यह अभीष्ट मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। जाओ, निश्चिन्त होकर युद्ध करो। मैं तुम्हारी विजयकी प्रतिज्ञा करता हूँ ॥

संजय उवाच

अनुमान्याथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम्।
निर्जगाम महासैन्याद् भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ८८ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपने बड़ोंसे आज्ञा लेकर महाराज युधिष्ठिर भाइयोंसहित उन्हींकी अनुमति ले अपनी विशाल सेनासे बाहर निकल आये।

वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम ह।
तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे महामतिः ॥ ८९ ॥

इसी समय वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण उस युद्धमें राधानन्दन कर्णके पास गये और पाण्डवोंके हितके लिये उससे इस प्रकार बोले—

श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात् किल न योत्स्यसे।
अस्मान् वरय राधेय यावद् भीष्मो न हन्यते ॥ ९० ॥

कर्ण! मैंने सुना है, तुम भीष्मसे द्वेष होनेके कारण युद्ध नहीं करोगे। राधानन्दन! जबतक भीष्म मारे नहीं जाते हैं, तबतक हमलोगोंका साथ ग्रहण कर लो।

हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यसि संयुगम्।
धार्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत् समम् ॥ ९१ ॥

राधेय! जब भीष्म मारे जायँ, उसके बाद तुम यदि ठीक समझो तो युद्धमें पुनः दुर्योधनकी सहायताके लिये चले जाना।

कर्ण उवाच

न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ९२ ॥

कर्णने कहा—केशव! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं दुर्योधनका हितैषी हूँ। उसके लिये अपने प्राण निछावर किये बैठा हूँ। अतः मैं उसका अप्रिय कदापि नहीं करूँगा ॥ ९२ ॥

संजय उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत।
युधिष्ठिरपुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः ॥ ९३ ॥

संजय कहते हैं—भरतनन्दन! कर्णकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण लौट आये और युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंसे जा मिले।

अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत् पाण्डवाग्रजः।
योऽस्मान् वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ॥ ९४ ॥

तदनन्तर ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने सेनाके बीचमें खड़े होकर पुकारा—जो कोई वीर सहायताके लिये हमारे पक्षमें आना स्वीकार करे, उसे मैं भी स्वीकार करूँगा ॥ ९४ ॥

अथ तान् समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत्।
प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ९५ ॥

तब सबकी ओर देखकर युयुत्सुने पाण्डवोंकी ओर देखकर प्रसन्नचित्त हो धर्मराज कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—

अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान्।
युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ ९६ ॥

महाराज! निष्पाप नरेश! यदि आप मुझे स्वीकार करें तो मैं आपलोगोंके लिये युद्धमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे युद्ध करूँगा ॥ ९६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान्।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥ ९७ ॥

युधिष्ठिर बोले—युयुत्सो! आओ, आओ, हम सब लोग मिलकर तुम्हारे इन मूर्ख भाइयोंसे युद्ध करेंगे। यह बात हम और भगवान् श्रीकृष्ण सभी कह रहे हैं ॥ ९७ ॥

वृणोमि त्वां महाबाहो युध्यस्व मम कारणात्।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ९८ ॥

महाबाहो! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ, तुम मेरे लिये युद्ध करो। राजा धृतराष्ट्रकी वंशपरम्परा तथा पिण्डोदक-क्रिया तुमपर ही अवलम्बित दिखायी देती है ॥ ९८ ॥

भजस्वास्मान् राजपुत्र भजमानान् महाद्युते।
न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ९९ ॥

महातेजस्वी राजकुमार! हम तुम्हें अपनाते हैं, तुम भी हमें स्वीकार करो। अत्यन्त क्रोधी दुर्बुद्धि दुर्योधन अब इस जगत्‌में जीवित नहीं रहेगा ॥ ९९ ॥

संजय उवाच

ततो युयुत्सुः कौरव्यान् परित्यज्य सुतांस्तव।
(स सत्यमिति सम्भाव्य युधिष्ठिरवचस्तदा।)
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥ १०० ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर युयुत्सु युधिष्ठिरकी बातको सत्य मानकर आपके पुत्र कौरवोंको छोड़कर डंका पीटता हुआ पाण्डवोंकी सेनामें चला गया।

(अभवद् धार्तराष्ट्रस्य कुलक्षयकरं तदा।
सत्यसन्धं विना सर्वे युद्धाय कृतनिश्चयम् ॥)

यह देखकर आपके पुत्रकी सेनामें भय छा गया।

ततो युधिष्ठिरो राजा सम्प्रहृष्टः सहानुजः।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत् कनकोज्ज्वलम् ॥ १०१ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः सोनेका बना हुआ चमकीला कवच धारण किया।

प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे रथान् स्वान् पुरुषर्षभाः।
ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ १०२ ॥

फिर वे सभी श्रेष्ठ पुरुष अपने-अपने रथपर आरूढ़ हुए। इसके बाद उन्होंने पुनः शत्रुओंके मुकाबिलेमें पहलेकी भाँति ही अपनी सेनाकी व्यूह-रचना की ॥ १०२ ॥

अवादयन् दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान्।
सिंहनादांश्च विविधान् विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥ १०३ ॥

इन श्रेष्ठ पुरुषोंने सैकड़ों दुन्दुभियाँ और नगारे बजाये तथा अनेक प्रकारसे सिंहनाद किये ॥ ९८ ॥

रथस्थान् पुरुषव्याघ्रान् पाण्डवान् प्रेक्ष्य पार्थिवाः।
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा ॥ ९९ ॥

पुरुषसिंह पाण्डवोंको पुनः रथपर बैठे देख धृष्टद्युम्न आदि राजा बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९९ ॥

गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान् मानयतां तदा।
दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥ १०० ॥

माननीय पुरुषोंका सम्मान करनेवाले पाण्डवोंके उस गौरवको देखकर सब भूपाल उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ १०० ॥

सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम्।
दयां च ज्ञातिषु परां कथयाञ्चक्रिरे नृपाः ॥ १०१ ॥

तब वहाँ राजालोग महात्मा पाण्डवोंके सौहार्द, समयोचित कर्तव्यके पालन तथा कुटुम्बीजनोंके प्रति उनके परम दयाभावकी चर्चा करने लगे ॥ १०१ ॥

साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षिणीः ॥ १०२ ॥

यशस्वी पाण्डवोंके लिये सब ओरसे उनकी स्तुति-प्रशंसासे भरी हुई साधु-साधुकी बातें निकलने लगीं। उनकी ऐसी पवित्र वाणी सुननेको मिलती थी, जो मन और हृदयके हर्षको बढ़ानेवाली थी ॥ १०२ ॥

म्लेच्छाश्चार्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तदा।
वृत्तं तत् पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०३ ॥

वहाँ जिन म्लेच्छों और आर्योंने पाण्डवोंका वह बर्ताव देखा और सुना, वे सब गद्गदकण्ठ होकर रोने लगे ॥ १०३ ॥

ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्चैव सर्वशः।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान् दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥ १०४ ॥

तदनन्तर हर्षमें भरे हुए उन मनस्वी पुरुषोंने सैकड़ों और हजारों बड़ी-बड़ी भेरियाँ तथा गोदुग्धके समान श्वेत शङ्ख बजाये ॥ १०४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि युधिष्ठिरादिसम्मानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें युधिष्ठिर आदिका सम्मानविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके तीन श्लोक मिलाकर कुल १०७ श्लोक हैं)

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डवोंके प्रथम दिनके युद्धका आरम्भ

धृतराष्ट्र उवाच

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवास्तु किम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार जब मेरे पुत्रों और पाण्डवोंने अपनी-अपनी सेनाओंकी व्यूहरचना कर ली, तब वहाँ उनमेंसे पहले किन्होंने प्रहार किया, कौरवोंने या पाण्डवोंने? ॥ १ ॥

संजय उवाच

भ्रातृभिः सहितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन्! भाइयोंसहित आपका पुत्र दुर्योधन भीष्मको आगे करके सेनासहित आगे बढ़ा ॥ २ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३ ॥

इसी प्रकार समस्त पाण्डव भी भीमसेनको आगे करके भीष्मके साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखकर प्रसन्न मनसे आगे बढ़े ॥ ३ ॥

क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः ॥ ४ ॥

उभयोः सेनयो राजंस्ततस्तेऽस्मान् समाद्रवन्।
वयं प्रतिनदन्तस्तानभवत् तुमुलं महत् ॥ ५ ॥

फिर तो दोनों सेनाओंमें सिंहनाद, किलकिलाशब्द, क्रकच नामक बाजे, भेरी, मृदङ्ग और ढोल आदि बाजोंकी ध्वनि तथा घोड़ों और हाथियोंके गर्जनेके शब्द गूँजने लगे। पाण्डव सैनिक हमलोगोंपर टूट पड़े और हमलोगोंने भी सिंहनाद करते हुए उनपर धावा बोल दिया। इस प्रकार भयानक महान् युद्ध होने लगा ॥ ४-५ ॥

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये
समागमे पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः
प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ ६ ॥

भीषण मारकाटसे युक्त उस महान् संग्राममें आपके पुत्रों तथा पाण्डवोंकी विशाल सेनाएँ वायुसे हिलाये गये वनोंकी भाँति शङ्ख और मृदङ्गकी ध्वनिसे काँपने लगीं।

नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलाना-
मभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां
वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ७ ॥

उनकी हाथियों, घोड़ों तथा रथोंसे भरी हुई उभय पक्षकी सेनाएँ उस समय प्रलयकालके मेघोंके समान गरजती हुई एक दूसरीके सम्मुख और समीप आयीं। उस समय वायुसे ग्रस्त समुद्रकी भाँति उनका भयंकर कोलाहल सब ओर गूँजने लगा ॥ ७ ॥

तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद् गोवृषो यथा ॥ ८ ॥

उस रोमांचकारी भयंकर शब्दके प्रकट होते ही महाबाहु भीमसेन साँडकी भाँति गर्जने लगे ॥ ८ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम्।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत् ॥ ९ ॥

भीमसेनकी वह गर्जना शङ्ख और दुन्दुभियोंके गम्भीर घोष, हाथियोंके चिग्घाड़नेकी आवाज तथा सैनिकोंके सिंहनादको भी दबाकर सब ओर सुनायी देने लगी ॥ ९ ॥

हयानां हेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः।
सर्वानभ्यभवच्छब्दान् भीमस्य नदतः स्वनः ॥ १० ॥

सेना दलोंमें हजारों घोड़े [illegible] हिनहिना रहे थे; परंतु गर्जना करते हुए भीमसेनका शब्द उन सब शब्दोंको दबाकर ऊपर उठ गया था ॥ १० ॥

तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः।
जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम् ॥ ११ ॥

वे मेघके समान गम्भीर स्वरसे गर्जन-तर्जन कर रहे थे। उनका शब्द इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान भयानक था। उस सिंहनादको सुनकर आपके समस्त सैनिक सहम उठे थे ॥ ११ ॥

वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
शब्देन तस्य वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ १२ ॥

जैसे सिंहकी आवाज सुनकर दूसरे वन्य पशु भयभीत हो जाते हैं, उसी प्रकार वीर भीमसेनकी गर्जनासे भयभीत हो घोड़े-हाथी आदि समस्त वाहन मल-मूत्र करने लगे ॥ १२ ॥

दर्शयन् घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन्।
विभीषयंस्तव सुतान् भीमसेनः समभ्ययात् ॥ १३ ॥

महान् मेघके समान अपनी भयंकर रूपको प्रकट करते और गर्जते तथा आपके पुत्रोंको डराते हुए भीमसेन कौरवसेनापर चढ़ आये ॥ १३ ॥

तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन्।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १४ ॥

महान् धनुर्धर भीमसेनको आते देख दुर्योधनके भाइयों (तथा अन्य वीरों) ने घेरे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार बाणसमूहोंसे उन्हें आच्छादित करते हुए सब ओरसे घेर लिया ॥ १४ ॥

दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मुखो दुःसहः शलः।
दुःशासनश्चातिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृप ॥ १५ ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः।
आददाना नाराचान् निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ १७ ॥
(अथ तं पाण्डुसेनायाः प्रतिवृत्य पृथिवीक्षित ॥)

नरेश्वर! आपके पुत्र दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, शल, अतिरथी दुःशासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज तथा पराक्रमी भूरिश्रवा—ये सभी वीर अपने बड़े-बड़े धनुषोंको हिलाते और चमकती हुई बिजलीसहित मेघोंके समान गर्जते हुए केंचुल छोड़कर निकले हुए विषधर सर्पोंके समान नाराच हाथमें लिये (भीमसेनको घेरकर) खड़े हो गये ॥ १५—१७ ॥

अथ तान् द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १८ ॥
धार्तराष्ट्रान् प्रतिययुरर्दयन्तः शितैः शरैः।
वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥ १९ ॥

तदनन्तर द्रौपदीके पाँचों पुत्र, महारथी अभिमन्यु, नकुल, सहदेव तथा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न—ये सभी योद्धा वज्रके समान महान् वेगशाली तीखे बाणोंद्वारा पर्वत-शिखरोंकी भाँति धृतराष्ट्रपुत्रोंको पीड़ा देते हुए उनपर चढ़ आये ॥ १८-१९ ॥

तस्मिन् प्रथमसंग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने।
तावकानां परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ २० ॥

उस प्रथम संग्राममें जब धनुषकी प्रत्यञ्चा और हथेलीका भयानक शब्द हो रहा था, उस समय आपके तथा पाण्डवोंके सैनिकोंमेंसे कोई भी युद्धसे विमुख नहीं हुआ ॥ २० ॥

लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ।
निमित्तवेधिनां चैव शरानुत्सृजतां भृशम् ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय मैंने द्रोणाचार्यके उन शिष्योंकी फुर्ती देखी। वे वहाँ तीव्र गतिसे बाण छोड़कर और लक्ष्यको बींध डालते थे ॥ २१ ॥

नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा।
विनिश्चेरुः शरा दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात् ॥ २२ ॥

वहाँ टंकार करते हुए धनुषोंके शब्द कभी शान्त नहीं होते थे। आकाशसे नक्षत्रोंके समान उन धनुषोंसे चमकीले बाण प्रकट हो रहे थे ॥ २२ ॥

सर्वे त्वन्ये महीपालाः प्रेक्षका इव भारत।
ददृशुर्दर्शनीयं तं भीमं ज्ञातिसमागमम् ॥ २३ ॥

भरतनन्दन! दूसरे सब राजालोग उस कुटुम्बीजनोंके भयंकर दर्शनीय संग्रामको दर्शककी भाँति देखने लगे ॥ २३ ॥

ततस्ते [illegible] परस्परकृतागसः
अन्योन्यसमरे राजन् व्यायच्छन्त महात्मनः

राजन्! [illegible] वे सभी एक दूसरेका अपराध कर चुके थे [illegible] आनेसे वे सभी महामनस्वी [illegible] और एक दूसरेके प्रति [illegible] युद्धमें विजयी होनेके लिये विशेष परिश्रम करते थे

[illegible]
[illegible] ॥

हाथी घोड़े और रथोंसे भरी हुई कौरव [illegible] वे [illegible] [illegible] [illegible] भूमिमें [illegible] थी

ततस्ते पार्थिवाः [illegible] प्रगृहीतशरासनाः
[illegible] [illegible] युयुधुः [illegible]

तदनन्तर भरतके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे अन्य राजा भी [illegible] [illegible] ॥ [illegible]

युधिष्ठिरेण चादिष्टः पार्थिवास्ते सहस्रशः
विनदन्तः समाजग्मुः पुत्रस्य तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥

इसी प्रकार युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर [illegible] गर्जना करते हुए आपके पुत्रकी [illegible] पड़े

उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः
अन्तर्धीयत चादित्यः सैन्येन रजसा वृतः ॥ [illegible] ॥

[illegible] सेनाकी धूलसे आच्छादित [illegible]

प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्तिनामपि
नात्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समदृश्यत ॥ २९ ॥

[illegible] युद्ध करते [illegible] और कुछ [illegible] फिर लौट आते थे [illegible] और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें [illegible] नहीं दिखायी देता था

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये
अतिसर्वाण्यनीकानि पिता ते [illegible] ॥ ३० ॥

[illegible] भयानक तुमुल युद्ध [illegible] [illegible] भीष्म [illegible] समस्त सेनाओंके [illegible] तेजसे प्रकाशित हो रहे थे

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि युद्धारम्भे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें [illegible] चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका [illegible] श्लोक मिलाकर कुल ३० ½ श्लोक हैं)

पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय

उभय पक्षके सैनिकोंका द्वन्द्व-युद्ध

सञ्जय उवाच

पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशाम्पते
प्रावर्तत महारौद्रं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं [illegible] [illegible] [illegible] प्रथम [illegible] भयानक युद्ध [illegible] अत्यन्त उत्तेजक [illegible] था

कुरूणां सृञ्जयानां च जिगीषूणां परस्परम्
सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीं च नादयन् ॥ २ ॥

कौरव और सृञ्जयवीर भी एक दूसरेको जीतनेकी इच्छा रखकर सिंहोंके समान गर्जना [illegible] उनका [illegible] पृथ्वी और आकाशको प्रतिध्वनित कर रहा था

आसीत् किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह
जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्जताम् ॥ ३ ॥

उस ओर [illegible] [illegible] [illegible] किलकिल शब्द गूँज उठा एक दूसरेके प्रति गर्जना करनेवाले शूरवीरोंके सिंहनाद होने लगे

तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ
पत्तीनां पादशब्दाश्च वाजिनां च महास्वनः ॥ ४ ॥

तोत्त्राङ्कुशनिपातश्च [illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible] तुमुले लोमहर्षणे
बभूव [illegible] ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ! [illegible] [illegible] [illegible] घोड़ोंकी [illegible] और अङ्कुशोंके आघातका [illegible] हथियारोंकी झनकार [illegible] एक दूसरेपर धावा करनेवाले गजराजोंके घण्टानाद—ये सब शब्द मिलकर ऐसी भयानक आवाज प्रकट करने लगे [illegible] रोंगटे खड़े कर देनेवाली थी [illegible] [illegible] होने लगी जो मेघोंकी गर्जनाके [illegible] पड़ती थी ॥ ४–६ ॥

ते मनः क्रूरमास्थाय समभित्यक्तजीविताः
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्वे एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ७ ॥

वे समस्त कौरव सैनिक अपने मनको कठोर करके

[illegible] करते हुए [illegible] भ्रमण करने लगे ॥ ७ ॥

अथ शान्तनवो राजन्नभ्यधावद् धनंजयम्।
अर्जुनं समरे घोरं कालान्तकयमोपमम् ॥ ८ ॥

राजन्! तदनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म उस युद्धभूमिमें काल तथा मृत्युके समान भीषण एकमात्र अर्जुनकी ओर दौड़े ॥ ८ ॥

अर्जुनोऽपि महातेजा गाङ्गेयं लोकविश्रुतम्।
अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि ॥ ९ ॥

उधरसे महातेजस्वी अर्जुन भी समरमें लोकविख्यात गाम्भीर्यशाली [illegible] गङ्गानन्दन भीष्मकी ओर दौड़े ॥ ९ ॥

तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ।
[illegible] ॥ १० ॥

वे दोनों कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर थे और एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छा रखते थे। महाबली भीष्म युद्धमें अर्जुनको जीतनेका प्रयत्न करके भी उन्हें विचलित न कर सके ॥ १० ॥

तथैव पाण्डवो राजन् भीष्मं नाकम्पयद् युधि।
सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ११ ॥

राजन्! इसी प्रकार पाण्डुनन्दन अर्जुन भी भीष्मको युद्धमें विचलित न कर सके। दूसरी ओर महाधनुर्धर सात्यकिने कृतवर्मापर धावा किया ॥ ११ ॥

तयोः समभवद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम् ॥ १२ ॥
आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम्।

उन दोनोंमें बड़ा भयंकर रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। सात्यकिने कृतवर्माको और कृतवर्माने सात्यकिको भयंकर बाणोंसे घायल करते हुए एक दूसरेको बहुत पीड़ा पहुँचायी ॥ १२ ॥

तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ॥ १३ ॥
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ।

वे दोनों महाबली वीर बाणोंसे व्याप्त सम्पूर्ण अङ्गोंसे वसन्त ऋतुमें खिले हुए दो पुष्पयुक्त पलाश वृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १३ ॥

अभिमन्युर्महेष्वासो बृहद्बलमयोधयत् ॥ १४ ॥
ततः कोसलको राजा अभिमन्योर्विशाम्पते।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत् ॥ १५ ॥

अभिमन्युने महान् धनुर्धर बृहद्बलके साथ युद्ध किया। प्रजानाथ! कोसलनरेश बृहद्बलने उस युद्धमें अभिमन्युके ध्वजको काट दिया और सारथिको मार गिराया ॥ १४-१५ ॥

सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥ १६ ॥

महाराज! अपने रथके सारथिके मारे जानेपर क्रुद्ध हुए अभिमन्यु कुपित हो उठे और उन्होंने बृहद्बलको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १६ ॥

अथापराभ्यां भल्लाभ्यां पीताभ्यामरिमर्दनः।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ॥ १७ ॥
अन्योन्यं च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम्।

तत्पश्चात् शत्रुमर्दन अभिमन्युने अन्य दो तीखे भल्लोंमेंसे एक बाणसे बृहद्बलका ध्वज काट दिया और दूसरेसे उसके पार्श्वरक्षक सारथिको मार गिराया। फिर वे दोनों कुपित हो एक-दूसरेको बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ १७ ॥

मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम् ॥ १८ ॥
भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत्।

युद्धमें अभिमानी, घमंडी और वैर करनेवाले महारथी आपके पुत्र दुर्योधनसे भीमसेन युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ॥ १९ ॥
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे।

वे दोनों नरश्रेष्ठ महाबली वीर कुरुकुलके प्रधान व्यक्ति थे। उस युद्धके प्राङ्गणमें एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १९ ॥

तौ वीक्ष्य तु महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ ॥ २० ॥
विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत।

भारत! वे दोनों महामनस्वी अस्त्रविद्याके विद्वान् तथा विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे। उन्हें देखकर समस्त प्राणियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २० ॥

दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम् ॥ २१ ॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः।

दुःशासनने आगे बढ़कर मर्मभेदी बहुसंख्यक तीखे बाणोंद्वारा महाबली नकुलको घायल कर दिया ॥ २१ ॥

तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम् ॥ २२ ॥
चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ २३ ॥

भारत! तब माद्रीकुमार नकुलने भी हँसते हुए-से तीखे बाण मारकर दुःशासनके धनुष-बाण और ध्वजको काट गिराया और पचीस बाण मारकर उसे घायल कर दिया ॥ २२-२३ ॥

पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे।
तुरगांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैवाभ्यपातयत् ॥ २४ ॥

इसके बाद आपके दुर्धर्ष पुत्रने उस महायुद्धमें नकुलके घोड़ोंको अपने बाणोंद्वारा काट डाला और ध्वजको भी काट गिराया ॥ २४ ॥

दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम्।
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥ २५ ॥

महाराज ! सहदेव उस महासमरमें अपनी विजयके लिये बड़ा प्रयत्न कर रहे थे। उन्हें आपके पुत्र दुर्मुखने आगे बढ़कर अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया ॥ २५ ॥

सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महात्मनः।
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥ २६ ॥

तब वीरवर सहदेवने उस महायुद्धमें अत्यन्त तीखे बाणके द्वारा दुर्मुखके सारथिको मार गिराया ॥ २६ ॥

तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ।
वारयेतां शरौघैस्तु कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २७ ॥

वे दोनों दुर्धर्ष वीर समरभूमिमें एक दूसरेसे भिड़कर परस्पर बाणसमूहोंकी वर्षा करके एक दूसरेको आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ २७ ॥

युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजमभ्यधावत।
तस्य मद्राधिपश्चापि द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २८ ॥

स्वयं राजा युधिष्ठिरने मद्रराज शल्यपर आक्रमण किया। तब मद्रराजने युधिष्ठिरके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ २८ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अन्यत् कार्मुकमादाय वेगवद् बलवत्तरम् ॥ २९ ॥
ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः सन्नतपर्वभिः।
छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३० ॥

तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा वेगशाली एवं अत्यन्त प्रबल धनुष ले लिया और झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा मद्रराज शल्यको ढक दिया। फिर कुपित होकर कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २९-३० ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत।
तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ॥ ३१ ॥
त्रिधा चिच्छेद समरे धृष्टद्युम्नस्य कार्मुकम्।

भरतनन्दन ! तब धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया। तब द्रोणने अत्यन्त कुपित हो उस युद्धमें धृष्टद्युम्नके शत्रुओंके प्राण लेनेवाले सुदृढ़ धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३१ ॥

शरं चैव महाघोरं कालदण्डमिवापरम् ॥ ३२ ॥
प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत।

तदनन्तर उस युद्धस्थलमें उन्होंने द्वितीय कालदण्डके समान भयंकर बाण चलाया, वह बाण धृष्टद्युम्नके शरीरमें धँस गया ॥ ३२ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश ॥ ३३ ॥
द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम् ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर चौदह बाणोंद्वारा उस युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यको घायल कर दिया। फिर तो वे दोनों एक दूसरेपर अत्यन्त कुपित हो भीषण संग्राम करने लगे ॥ ३३-३४ ॥

सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि।
प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३५ ॥

महाराज ! वेगशाली शङ्खने उस युद्धमें वेगवान् वीर भूरिश्रवापर धावा किया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ३५ ॥

तस्य स दक्षिणं वीरो निर्बिभेद रणे भुजम्।
सौमदत्तिस्तथा शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत् ॥ ३६ ॥

वीर शङ्खने रणभूमिमें भूरिश्रवाकी दाहिनी भुजा विदीर्ण कर डाली। फिर भूरिश्रवाने भी शङ्खके कंधेकी हँसलीपर बाण मारा ॥ ३६ ॥

तयोः समभवद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते।
दृप्तयोः समरे तूर्णं वृत्रवासवयोरिव ॥ ३७ ॥

राजन् ! उस रणभूमिमें इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति उन दोनों अभिमानी वीरोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ ३७ ॥

बाह्लीकं तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशाम्पते।
अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः ॥ ३८ ॥

प्रजानाथ ! रणक्षेत्रमें कुपित हुए बाह्लीकपर अपरिमित आत्मबलसे सम्पन्न महारथी धृष्टकेतुने क्रोधपूर्वक आक्रमण किया ॥ ३८ ॥

बाह्लीकस्तु रणे राजन् धृष्टकेतुममर्षणम्।
शरैर्बहुभिरानर्च्छत् सिंहनादमथानदत् ॥ ३९ ॥

राजन् ! अमर्षशील बाह्लीकने समराङ्गणमें बहुत-से बाणोंद्वारा धृष्टकेतुको पीड़ा दी और सिंहके समान गर्जना की ॥ ३९ ॥

चेदिराजस्तु संक्रुद्धो बाह्लीकं नवभिः शरैः।
विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ४० ॥

तब चेदिराज धृष्टकेतुने अत्यन्त कुपित होकर जैसे मतवाला हाथी दूसरे मतवाले गजराजपर हमला करता है, उसी प्रकार तुरंत ही नौ बाण मारकर उस युद्धभूमिमें बाह्लीकको घायल कर दिया ॥ ४० ॥

तौ तत्र समरे क्रुद्धौ नर्दन्तौ च पुनः पुनः।
समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकबुधाविव ॥ ४१ ॥

उस रणभूमिमें वे दोनों वीर परस्पर कुपित हो रोषमें भरे हुए मङ्गल और बुधकी भाँति बारंबार गर्जते हुए युद्ध कर रहे थे ॥ ४१ ॥

राक्षसं रौद्रकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः।
अलम्बुषं प्रत्युदियाद् बलं शक्र इवाहवे ॥ ४२ ॥

जैसे इन्द्रने युद्धमें बल नामक दानवपर चढ़ाई की थी, उसी प्रकार क्रूरकर्मा घटोत्कचने भयंकर कर्म करनेवाले अलम्बुष नामक राक्षसपर आक्रमण किया ॥ ४२ ॥

घटोत्कचस्ततः क्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम्।
नवत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्दारयामास भारत ॥ ४३ ॥

नरश्रेष्ठ! घटोत्कचने भी युद्धमें तीखे बाणोंद्वारा उस महाबली राक्षस अलम्बुषको पीड़ित कर दिया

अलम्बुषस्तु समरे भैमसेनिं महाबलम्।
बहुधा दारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५४ ॥

तब अलम्बुषने भी महाबली भीमसेनपुत्र घटोत्कचको अनेक बाणोंद्वारा समराङ्गणमें कुछ घायल कर दिया ॥ ५४ ॥

व्यभ्राजेतां ततस्तौ तु समरे शरविक्षतौ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ५५ ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें महाबली बलासुर और इन्द्र परस्पर भिड़े थे, उसी प्रकार वे दोनों एक दूसरेके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो अलम्बुष और घटोत्कच अद्भुत शोभा प्राप्त कर रहे थे ॥ ५५ ॥

शिखण्डी समरे राजन् द्रौणिमभ्युद्ययौ बली।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमुपस्थितम् ॥ ५६ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विद्ध्वा व्यकम्पयत्।
शिखण्ड्यपि ततो राजन् द्रोणपुत्रमताडयत् ॥ ५७ ॥
सायकेन सुपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च।
तौ जघ्नतुस्तदान्योन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे ॥ ५८ ॥

राजन्! तत्पश्चात् शिखण्डीने पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामापर धावा किया। तब अश्वत्थामाने कुपित हो एक तीखे नाराचके द्वारा सामने खड़े हुए शिखण्डीको अत्यन्त घायल करके कम्पित कर दिया। महाराज! तब शिखण्डीने भी पैने तथा चमकीले तीखे सायकसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको गहरी चोट पहुँचायी। तदनन्तर वे दोनों अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा एक दूसरेपर प्रहार करने लगे —

भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः।
अभ्ययात् त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५९ ॥

राजन्! सेनापति विराटने शूरवीर भगदत्तपर उतावलीके साथ आक्रमण किया। फिर तो उन दोनोंमें युद्ध होने लगा

विराटो भगदत्तं तु शरवर्षेण भारत।
अभ्यवर्षत् सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाचलम् ॥ ६० ॥

भारत! विराटने अत्यन्त कुपित होकर भगदत्तपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो मेघ पर्वतपर जलकी वृष्टि करता हो

भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम्।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ६१ ॥

तब जैसे बादल उगे हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार भगदत्तने उस रणभूमिमें बाणोंकी वर्षाद्वारा पृथ्वीपति विराटको आच्छादित कर दिया

बृहद्बलं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ।
तं कृपः शरवर्षेण छादयामास भारत ॥ ६२ ॥
गौतमं केकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याभ्यपूरयत्।

भरतनन्दन! केकयराज बृहद्बलपर शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने आक्रमण किया और बाणोंकी वर्षासे उन्हें ढक दिया। केकयराजने भी कुपित होकर कृपाचार्यको बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया

तावन्योन्यं हयान् हत्वा धनुश्छित्त्वा च भारत ॥ ६३ ॥
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ।
तयोस्तदभवद् युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥ ६४ ॥

भारत! वे दोनों वीर एक दूसरेके घोड़ोंको मार तथा धनुष काटकर रथहीन हो अमर्षमें भरकर तलवारसे युद्ध करनेके लिये आमने-सामने डट गये। फिर तो उन दोनोंमें अत्यन्त भयंकर एवं दारुण युद्ध होने लगा

द्रुपदस्तु ततो राजन् सैन्धवं वै जयद्रथम्।
अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परंतप ॥ ६५ ॥

राजन्! दूसरी ओर शत्रुओंको ताप देनेवाले द्रुपदने बड़े हर्षके साथ सिन्धुराज जयद्रथपर धावा किया। जयद्रथ भी हर्षमें भरा था

ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः।
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥ ६६ ॥

तत्पश्चात् सिन्धुराज जयद्रथने समराङ्गणमें तीन बाणोंद्वारा द्रुपदको गहरी चोट पहुँचायी। द्रुपदने भी बदलेमें उसे बींध डाला

तयोस्तदभवद् युद्धं घोररूपं सुदारुणम्।
ईक्षणप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥ ६७ ॥

दोनोंका वह अत्यन्त भयंकर युद्ध शुक्र और मङ्गलके युद्धकी भाँति देखनेवालोंके नेत्रोंको प्रिय लगनेवाला था

विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम्।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ६८ ॥

भारत! आपके पुत्र विकर्णने वेगशाली घोड़ोंद्वारा महाबली सुतसोमपर धावा किया। तत्पश्चात् उनमें भारी युद्ध होने लगा

विकर्णः सुतसोमं तु विद्ध्वा नाकम्पयच्छरैः।
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६९ ॥

विकर्ण समरमें बाणोंसे सुतसोमको घायल करके भी उन्हें कम्पित न कर सका। इसी प्रकार सुतसोम भी विकर्णको विचलित न कर सके। उन दोनोंका यह पराक्रम अद्भुत-सा प्रतीत हुआ

सुशर्माणं नरव्याघ्रश्चेकितानो महारथः ।
अभ्ययुध्यत् सुसंक्रुद्धः पत्त्याकारी पराक्रमी ॥ ६० ॥

नरश्रेष्ठ पराक्रमी महारथी चेकितानने पाण्डवोंके लिये अत्यन्त कुपित होकर सुशर्मासे भिड़ गया ॥ ६० ॥

सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम् ।
महता शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ६१ ॥

महाराज ! सुशर्माने भारी बाण-वर्षा द्वारा महारथी चेकितानको युद्धमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६१ ॥

चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे ।
प्राच्छादयत् तमिषुभिर्महामेघ इवाचलम् ॥ ६२ ॥

तब चेकितानने भी रोषमें भरकर उस महायुद्धमें अपने बाणोंकी वर्षासे सुशर्माको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे महामेघ पर्वतको जलसे आच्छादित कर देता है ॥ ६२ ॥

शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तं सिंह इव द्विपम् ॥ ६३ ॥

राजेन्द्र ! पराक्रमी शकुनि पराक्रमसम्पन्न प्रतिविन्ध्यपर टूट पड़ा, ठीक उसी तरह जैसे मतवाला सिंह किसी हाथीपर आक्रमण करता है ॥ ६३ ॥

यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः ।
व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवम् ॥ ६४ ॥

जिस प्रकार इन्द्र संग्रामभूमिमें किसी दानवको विदीर्ण करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिरके पुत्र प्रतिविन्ध्यने अत्यन्त कुपित होकर सुबलपुत्र शकुनिको अपने तीखे बाणोंसे बेध डाला ॥ ६४ ॥

शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे ।
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६५ ॥

युद्धमें अपनेको बेधनेवाले प्रतिविन्ध्यको भी परम बुद्धिमान् शकुनिने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६५ ॥

सुदक्षिणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम् ।
श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥ ६६ ॥

राजेन्द्र ! काम्बोजदेशके राजा पराक्रमी महारथी सुदक्षिणपर रणभूमिमें श्रुतकर्माने आक्रमण किया ॥ ६६ ॥

सुदक्षिणस्तु समरे साहदेविं महारथम् ।
विद्ध्वा नाकम्पयत वै मैनाकमिव पर्वतम् ॥ ६७ ॥

तब सुदक्षिणने समराङ्गणमें सहदेवपुत्र महारथी श्रुतकर्माको घायल कर दिया तो भी वह उन्हें कम्पित न कर सका। वे मैनाक पर्वतकी भाँति अविचल भावसे खड़े रहे ॥ ६७ ॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद् दारयन्निव सर्वशः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर श्रुतकर्माने कुपित होकर महारथी काम्बोजराजको सब ओरसे विदीर्ण-सा करते हुए अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा भलीभाँति पीड़ित किया ॥ ६८ ॥

इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिंदमम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परंतपः ॥ ६९ ॥

दूसरी ओर शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनपुत्र इरावान्ने युद्धमें कुपित होकर शत्रुदमन श्रुतायुपर धावा किया। श्रुतायु भी प्रयत्नपूर्वक उनका सामना कर रहा था ॥ ६९ ॥

आर्जुनिस्तस्य समरे हयान् हत्वा महारथः ।
ननाद बलवन्नादं तत् सैन्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ७० ॥

अर्जुनके उस महारथी पुत्र इरावान्ने रणक्षेत्रमें श्रुतायुके घोड़ोंको मारकर बड़े जोरसे गर्जना की और उसकी सेनाको बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ७० ॥

श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान् ।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ७१ ॥

यह देख श्रुतायुने भी कुपित होकर रणभूमिमें अर्जुनपुत्र इरावान्के घोड़ोंको अपनी गदाकी चोटसे मार डाला। तदनन्तर उन दोनोंमें घोर घमासान युद्ध होने लगा ॥ ७१ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम् ।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ७२ ॥

अवन्तिदेशके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने सेना और पुत्रसहित वीर महारथी कुन्तिभोजके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ ७२ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम् ।
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७३ ॥

वहाँ मैंने उन दोनोंका अद्भुत और भयंकर पराक्रम देखा। वे दोनों ही बहुत बड़ी विशाल वाहिनीके साथ स्थिरतापूर्वक खड़े होकर एक दूसरेका सामना कर रहे थे ॥ ७३ ॥

अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् ।
कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७४ ॥

अनुविन्दने कुन्तिभोजपर गदासे आघात किया। तब कुन्तिभोजने भी तुरंत ही अपने बाणसमूहोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया ॥ ७४ ॥

कुन्तिभोजसुतश्चापि विन्दं विव्याध सायकैः ।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७५ ॥

साथ ही कुन्तिभोजके पुत्रने विन्दको भी अपने बाणोंसे घायल कर दिया। विन्दने भी बदलेमें कुन्तिभोजपुत्रको घायल कर दिया। वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ७५ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान् पञ्च मारिष ।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७६ ॥

आर्य ! पाँच भाई केकय-राजकुमारोंने सेनासहित समरभूमिमें अपनी विशाल वाहिनीके साथ पाँच भाई गान्धारदेशीय वीरोंके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ ७६ ॥

वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम्
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥ ७७ ॥
उत्तरश्चापि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः

आपके पुत्र वीरबाहुने विराटके पुत्र श्रेष्ठ रथी उत्तरके साथ युद्ध किया और उसे तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया। उत्तरने भी वीरबाहुको अपने तीखे बाणोंका लक्ष्य बनाकर बेध डाला ॥ ७७ ॥

चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८ ॥
तथैव शरवर्षेण उलूकं समविध्यत
उलूकश्चापि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥ ७९ ॥

राजन्! चेदिराजने समराङ्गणमें उलूकपर धावा किया और उसे अपने बाणोंकी वर्षासे बींध डाला। तो ही उलूकने भी पंखयुक्त तीखे बाणोंद्वारा चेदिराजको चोट पहुँचायी ॥ ७८-७९ ॥

तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं विशाम्पते
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ।

प्रजानाथ! फिर उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। किसीसे पराजित न होनेवाले वे दोनों वीर अत्यन्त कुपित होकर एक-दूसरेको विदीर्ण किये देते थे ॥

एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम्
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥ ८१ ॥

इस प्रकार उस घमासान युद्धमें आपके और पाण्डव पक्षके रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके हजारों योद्धाओंमें द्वन्द्व-युद्ध चल रहा था ॥ ८१ ॥

मुहूर्तमिव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम्
तत उन्मत्तवद् राजन् न प्राज्ञायत किंचन ॥ ८२ ॥

महाराज! दो घड़ीतक तो वह युद्ध देखनेमें बड़ा मनोरम प्रतीत हुआ। फिर उन्मत्तकी भाँति विकट युद्ध चलने लगा। उस समय किसीको कुछ पता नहीं चलता था ॥ ८२ ॥

गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ
अश्वोऽश्वं समभिप्रायात् पदातिश्च पदातिनम् ॥ ८३ ॥

उस समरभूमिमें हाथी हाथीके साथ भिड़ गया, रथीने रथीपर आक्रमण किया, घुड़सवार घुड़सवारपर चढ़ आया और पैदलने पैदलके साथ युद्ध किया ॥ ८३ ॥

ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत
शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥ ८४ ॥

कुछ ही देरमें उस संग्राममें शूरवीर सैनिकोंका एक दूसरेसे भिड़कर अत्यन्त दुर्धर्ष एवं घमासान युद्ध होने लगा ॥ ८४ ॥

तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः
अपश्यन्त रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥ ८५ ॥

वहाँ आये हुए देवर्षियों, सिद्धों और चारणोंने भूतलपर होनेवाले उस युद्धको देवासुर-संग्रामके समान भयंकर देखा ॥ ८५ ॥

ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चापि मारिष
अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८६ ॥

आर्य! तदनन्तर हजारों हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल सैनिक द्वन्द्व-युद्धके पूर्वोक्त क्रमका उल्लङ्घन करके सभी सबके साथ युद्ध करने लगे ॥ ८६ ॥

तत्र तत्र प्रदृश्यन्त रथवारणपत्तयः
सादिनश्च नरव्याघ्र युध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८७ ॥

नरश्रेष्ठ! जहाँ-तहाँ दृष्टि जाती, वहीं रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदल सैनिक बारंबार युद्ध करते दिखायी देते थे ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें द्वन्द्व-युद्धविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डवसेनाका घमासान युद्ध

सञ्जय उवाच

राजञ्छतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम्
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत् ते वक्ष्यामि भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतवंशी नरेश! उस रणभूमिमें जहाँ-तहाँ लाखों पैदल सैनिकोंका मर्यादाशून्य युद्ध चल रहा था, वह सब आपको बता रहा हूँ, सुनिये ॥ १ ॥

न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्रमौरसम्
न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥ २ ॥

उस समय न पुत्र पिताको पहचानता था, न पिता अपने औरस पुत्रको, भाई भाईको जानता था न मामा अपने भानजेको ॥ २ ॥

न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३ ॥

न भानजे मामाको पहचानते थे न मित्र मित्रको। उस समय पाण्डव-योद्धा कौरव-सैनिकोंके साथ इस प्रकार युद्ध करते थे, मानो उनमें किसी भूत आदिका आवेश हो गया हो ॥ ३ ॥

रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन् रथैः
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥ ४ ॥

कुछ गजारोही वीर अपने रथोंद्वारा शत्रुपक्षकी रथसेना पर टूट पड़े। भारत! कितने ही रथोंके जुए विपक्षी रथोंके जुओंसे ही टकराकर टूट गये ॥ ४ ॥

रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः ।
सामन्तैः सहिताः केचित् परस्परजिघांसवः ॥ ५ ॥
न शेकुश्चलितुं केचित् सन्निपत्य रथा रथैः ।

रथोंके ईषादण्ड और कूबर भी सामने आये हुए रथोंके ईषादण्ड और कूबरोंसे भिड़कर टूक-टूक हो गये। एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छा रखनेवाले कितने ही रथ दूसरे रथोंसे आमने-सामने भिड़कर एक पग भी इधर-उधर न जा सके ॥ ५-६ ॥

प्रभिन्नास्तु महाकाया सन्निपत्य गजा गजैः ॥ ६ ॥
बहुधादारयन् क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम् ।

मदकी धारा बहानेवाले विशालकाय गजराज दूसरे हाथियोंसे टक्कर लेते हुए अपने दाँतोंके आघातसे एक दूसरेको नाना प्रकारसे विदीर्ण करने लगे ॥ ७ ॥

सतोरणपताकैश्च वारणा वरवारणैः ॥ ७ ॥
अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः ।
दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥ ८ ॥

महाराज! कितने ही हाथी तोरण और पताकाओंसहित सामनेसे आनेवाले बड़े-बड़े वेगशाली गजराजोंसे भिड़कर उनके दाँतोंके आघातसे अत्यन्त पीड़ित हो आतुर स्वरमें चिग्घाड़ रहे थे ॥ ७-८ ॥

अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्राङ्कुशसमाहताः ।
अप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां सम्मुखाभिमुखा ययुः ॥ ९ ॥

जिन्हें अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ मिली थीं तथा जिनका मद अभी प्रकट नहीं हुआ था, वे हाथी तोत्र और अंकुशोंकी चोट खाकर सम्मुख खड़े हुए मदमत्त गजराजोंके सामने जाकर डट गये ॥ ९ ॥

प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित् तत्र महागजाः ।
क्रौञ्चवन्निनदं कृत्वा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ १० ॥

कुछ महान् गजराज मदमत्त हाथियोंसे उलझकर क्रौञ्च पक्षीकी भाँति चीत्कार करते हुए सब दिशाओंमें भाग गये ॥ १० ॥

सम्यक् प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः ॥ ११ ॥
प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ।
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ १२ ॥

अच्छी तरह शिक्षा पाये हुए कितने ही हाथी तथा जिनके गण्डस्थल और मुखसे मद चू रहा था, ऐसे श्रेष्ठ गजराज ऋष्टि, तोमर और नाराचोंसे विद्ध होकर मर्म विदीर्ण हो जानेके कारण चिग्घाड़ने और प्राणशून्य हो धराशायी होकर गिर पड़ते थे। कितने ही भयंकर चीत्कार करते हुए सब दिशाओंमें भाग जाते थे ॥ ११-१२ ॥

गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः ।
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥ १३ ॥
गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः ।
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥ १४ ॥
प्रगृहीतैः सुसंरब्धा धावमानास्ततस्ततः ।
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥

महाराज! हाथियोंके पैरोंकी रक्षा करनेवाले योद्धा, जिनकी छाती चौड़ी थी, जो प्रहार करनेमें कुशल थे, अत्यन्त क्रोधमें भरकर इधर-उधर दौड़ रहे थे और हाथोंमें लिये हुए ऋष्टि, धनुष, चमकीले फरसे, गदा, मूसल, भिन्दिपाल, तोमर, लोहेके परिघ तथा तीखी धारवाली चमचमाती तलवार आदि आयुधोंद्वारा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छा किये दिखायी देते थे ॥ १३-१५ ॥

राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः ।
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १६ ॥

परस्पर धावा करनेवाले शूरवीरोंकी चमकीली तलवारें मनुष्योंके रक्तसे भीगी हुई देखी जाती थीं ॥ १६ ॥

अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः ।
संजज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ १७ ॥

वीरोंकी भुजाओंसे घुमाकर चलायी हुई तलवारें जब शत्रुओंके मर्मस्थलपर पड़ती थीं, उस समय उनका भयंकर शब्द सुनायी पड़ता था ॥ १७ ॥

गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः ।
दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः ॥ १८ ॥
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् ।
शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥ १९ ॥

उस युद्धस्थलमें गदा और मूसलके आघातसे कितने ही मनुष्योंके अंग भंग हो गये थे, कितने ही अच्छी तलवारोंके आघातसे छिन्न-भिन्न हो रहे थे और कितनोंके शरीर हाथियोंके दाँतोंसे विदीर्ण हो गये थे। कितनोंको हाथियोंने कुचल दिया था। इस प्रकार समस्त मनुष्योंके समुदाय जहाँ-तहाँ एक दूसरेको पुकार रहे थे। भारत! उनके भयंकर आर्तनाद प्रेतोंके कोलाहलकी भाँति सबके कानोंमें पड़ रहे थे ॥ १८-१९ ॥

हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः ।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिविद्रुताः ॥ २० ॥

चँवर और कलँगीसे सुशोभित हंस-तुल्य श्वेत एवं महान् वेगशाली घोड़ोंपर बैठे हुए कितने ही घुड़सवार एक दूसरेपर धावा कर रहे थे ॥ २० ॥

तैर्विमुक्ता महाप्रासा जाम्बूनदविभूषणाः ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥ २१ ॥

उनके द्वारा सताये हुए सुवर्णभूषित निषाद और उस सारथिके शिकारी महावत (मारे) जाकर धराशायी हो रहे थे ॥ २१ ॥

बाहुरीराजमानौ केचित्कृत्तपुत्र भल्लेन स्थानात्।
शिरांस्यापतिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः ॥ २२ ॥

कितने ही वीर पुरुषवाले गजोंके अधमाग पाया करके बड़े-बड़े रथोंपर गिर पड़े और रथोंके भल्ल काट देते थे । २२ ।

बहूनपि हयारोहान् भल्लैः सततपर्वभिः ।
रथी अपात सम्प्राप्य बाणवेगेन भागशान् ॥ २३ ॥

इसी प्रकार एक-एक रथी झुकी गाँठवाले भल्ल नामक बाणोंद्वारा निशाने और उन बहुत-से घुड़सवारोंको धराशायी कर डालता था । २३ ॥

नमन्तेऽतिशयावाक्षिप्य तुरगान् राजा ।
फर्फरैव विमुक्तानि मन्ता कनकभूषणा ॥ २४ ॥

मूतन मेघके समान शोभा पानेवाले स्वर्णभूषित उनवाले हाथी बहुत-से घोड़ोंको सूंडसे उठा-उठाकर वहीं दौड़ डालते थे ॥ २४ ॥

पालम्बमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः ।
प्रासैर्विनिहता केचिद् विनेदुः परमातुराः ॥ २५ ॥

कितने ही हाथी प्रासोंकी चोट खाकर कुम्भस्थल और पार्श्वभागोंमें विदीर्ण हो जानेसे अत्यन्त आतुर हो चीत्कार मचा रहे थे ॥ २५ ॥

सौभाग्यशाहिन तथा काश्चिद्युगमध्ये वरवारणाः ।
सहस्रा विक्षिपुरुत्व सकुला भैरवं सन्ति ॥ २६ ॥

बहुत-से बड़े-बड़े हाथी कितने ही उपस्थित घोड़ोंको वहीं कुचलकर सहसा भयंकर युद्धमें लगे थे

साभ्यारोहान् विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान् राजा ।
रथौघानभिमृद्नन्त सध्वजानभिचक्रमुः ॥ २७ ॥

कितने ही हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागसे घुड़सवारोंसहित घोड़ोंको उछालकर ध्वजाओंसहित रथसमूहोंको रौंदते हुए रणभूमिमें विचर रहे थे ॥ २७ ॥

पुंस्त्वादतिमदत्वाच्च केचित् तत्र महागजाः ।
साश्वारोहान् हयान् जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥ २८ ॥

वहाँ कितने ही महान् गज मदोन्मत्त तथा पुष्ट होनेके कारण सूँड़ों और पैरोंसे सवारों और घुड़सवारोंका संहार कर डालते थे ॥ २८ ॥

अभ्याहतैश्च समरे हस्तिभिर्हस्तिभिरेव च ।
अश्विभगेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वपि च वारणान् ।
कश्चिद्गुणा विमलास्तीक्ष्णाः पार्श्वेषु भुजगोपमाः ॥ २९ ॥

युद्धमें गुरुजनोंकी ओर गजयोधियोंके चलाये हुए निर्मल तीखे तथा सर्पोंके समान भयंकर तोमर हाथियोंके उनके अंगोंमें और पार्श्वभागमें धँस जाते थे ॥ २९ ॥

नरपाश्वविसृष्टान् निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
निपेतुर्विमला शक्त्यो वक्त्रोल्का इव दारुणाः ॥ ३० ॥
महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।

योद्धाओंकी भुजाओंसे चलायी हुई निर्मल शक्तियाँ मनुष्यों और घोड़ोंके कवच तथा लोहमय कवचको भी विदीर्ण करके धरतीपर गिर जाती थीं । प्रजानाथ ! वहाँ गिरते समय वे भयंकर शक्तियाँ बड़ी-बड़ी उल्काओंके समान प्रज्वलित होती थीं ॥ ३०½ ॥

द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि ॥ ३१ ॥
विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजग्मुः परान् रणे ।

जो चमकीली तलवार पहले चीतों अथवा व्याघ्रोंके चमड़ेकी बनी हुई म्यानोंमें बंद रहती थीं उन्हें उन म्यानोंसे निकालकर उनके द्वारा वीर एक रणभूमिमें शत्रुओंका वध कर रहे थे ॥ ३१½ ॥

अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ॥ ३२ ॥
विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः ।

कितने ही योद्धा ढाल, तलवार तथा फरसे लिये हुए उछलते, कूदते और क्रोधपूर्वक गर्जते और शत्रुके आक्रमण करते तथा उसके पार्श्वभाग चीर करके उसे विदीर्ण करने आदिके कैसे दिखाते हुए शत्रुओंपर टूट पड़ते थे ॥ ३२½ ॥

कश्चिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान् करैः ॥ ३३ ॥
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ।

उपर चमकती और गर्जन करनेवाले कितने ही हाथी घोड़ोंसहित रथोंको अपनी सूँड़से खींचकर सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ रहे थे ॥ ३३½ ॥

शरावभिन्ना दिशा केचित् सम्भिन्नास्तु परश्वधैः ॥ ३४ ॥
हस्तिभिर्मृदिता केचित् क्षुण्णाश्चापि तुरङ्गमैः ।
रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ३५ ॥

कुछ मनुष्य बाणोंसे विदीर्ण होकर पड़े थे, कितने ही फरसोंसे छिन्न-भिन्न हो रहे थे, कितनोंको हाथियोंने कुचल डाला था, कितने ही घोड़ोंकी टापसे कुचल गये थे, कितनोंके शरीर रथके पहियोंसे कट गये थे और कितने ही फरसोंसे मारे गये थे ॥ ३४-३५ ॥

व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान् ।
पुत्रानन्ये पितृनन्ये भ्रातॄंश्च सह बान्धवैः ॥ ३६ ॥
मातुलान् भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे ।

राजन् ! रणभूमिमें जहाँ-तहाँ गिरे हुए घायल मनुष्य अपने कुटुम्बीजनोंको पुकार रहे थे । कुछ बेटोंको कुछ पिताओंको कुछ भाई-बन्धुओंको कुछ मामा-भानजोंको

और कुछ लोग दूसरोंके द्वारा उखाड़कर फिर रहे थे ॥ ३६ ॥

विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ॥ ३७ ॥
बाहुभिश्चापरे छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः ।
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥ ३८ ॥

भारत ! बहुतोंकी आँतें बाहर निकल पड़ी थीं, कितनोंकी जाँघें टूट गयी थीं, कितनोंकी भुजाएँ कट गयी थीं और कितनोंकी पसलियाँ फट गयी थीं। ऐसी अवस्थामें प्यासे पीड़ित हो जीवनकी इच्छासे वे क्रन्दन करते देखे गये ॥ ३७-३८ ॥

तृषा परिगताः केचिदल्पसत्त्वा विशाम्पते ।
भूमौ निपतिताः सङ्ख्ये मृगयाञ्चक्रिरे जलम् ॥ ३९ ॥

प्रजानाथ ! कुछ लोग पृथ्वीपर पड़े थे। उनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी और वे पिपासासे पीड़ित हो युद्धभूमिमें ही जलकी खोज कर रहे थे ॥ ३९ ॥

रुधिरौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत ।
व्यनिन्दन् भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च सङ्गतान् ॥ ४० ॥

भरतनन्दन ! बहुत-से योद्धा रक्तसे लथपथ हो कष्ट पाते हुए अपनी तथा एकत्र हुए आपके पुत्रोंकी अत्यन्त निन्दा करते थे ॥ ४० ॥

अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम् ।
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ॥ ४१ ॥

माननीय महाराज ! दूसरे शूरवीर क्षत्रिय आपसमें वैर बाँधे हुए उस भयानक अवस्थामें भी न तो हथियार छोड़ते थे और न क्रन्दन ही करते थे ॥ ४१ ॥

तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम् ।
आदश्य दशनैश्चापि क्रोधात् स्वदशनच्छदम् ॥ ४२ ॥
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ते च परस्परम् ।

वे बार-बार दाँतोंसे ओठ चबाकर क्रोधपूर्वक भौंहें टेढ़ी करके एक-दूसरेकी ओर देखते और हर्षमें भरकर जहाँ-तहाँ परस्पर एक-दूसरेको ललकारते थे ॥ ४२ ॥

अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्ताः व्रणपीडिताः ॥ ४३ ॥
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्त्वा महाबलाः ।

दूसरे महाबली योद्धा, जो मनसे अत्यन्त दृढ़ थे, बाणोंसे पीड़ित और घावोंसे कष्ट पाते हुए भी चुपचाप पड़े थे। वे अपनी पीड़ा प्रकाशित नहीं करते थे ॥ ४३ ॥

अन्ये च विरथाः शूराः रथमन्यस्य संयुगे ॥ ४४ ॥
प्रार्थयाना निपतिता संक्षुण्णा वरवारणैः ।
अशोभन्त महाराज सपुष्पा इव किंशुकाः ॥ ४५ ॥

महाराज ! कुछ वीर पुरुष अपना रथ नष्ट हो जानेके कारण युद्धमें दूसरेका रथ माँग रहे थे, इतनेमें ही बड़े-बड़े गजराजोंने उन्हें कुचल दिया। उस समय वे खूनसे लथपथ हो फूले हुए पलाशके वृक्षके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४४-४५ ॥

सम्बभूवुरनीकेषु बहवो भैरवस्वनाः ।
वर्तमाने तथा भीमे तस्मिन् वीरवरक्षये ॥ ४६ ॥
निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
स्वस्रीयो मातुलं चापि स्वस्रीयं चापि मातुलः ॥ ४७ ॥
सखा सखायं च तथा सम्बन्धी बान्धवं तथा ।

इस भयानक नरसंहारमें सब सेनाओंमें बड़े भयंकर शब्द हो रहे थे। उस युद्धमें पिताने पुत्रको, पुत्रने पिताको, भानजेने मामाको, मामाने भानजेको, मित्रने मित्रको तथा सम्बन्धीने बन्धु-बान्धवोंको मार डाला ॥ ४६-४७½ ॥

एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥ ४८ ॥
वर्तमाने तथा तस्मिन् निर्मर्यादे भयानके ।
भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥ ४९ ॥

इस प्रकार उस मर्यादाशून्य भयानक संग्राममें कौरवोंका पाण्डवोंके साथ घोर युद्ध हो रहा था। उस समय भीष्मके पास पहुँचकर पाण्डवोंकी सारी सेना काँपने लगी ॥ ४८-४९ ॥

केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ ।
राजतेन महाबाहुरुच्छ्रितेन महारथे ॥
बभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा ॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! महाबाहु भीष्म अपने विशाल रथपर चाँदीके बने हुए पाँच तारोंसे युक्त तालचिह्नित ध्वजके द्वारा मेरुके शिखरपर स्थित हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि प्रथमयुद्धदिवसे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें पहले दिनका युद्धविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्याय

भीष्मके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध, शल्यके द्वारा उत्तरकुमारका वध और श्वेतका पराक्रम

सञ्जय उवाच

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे ।
वर्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये ॥ १ ॥
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः ।
भीष्मं गुप्तपुरस्ताच्च तथा पुत्रेण चोदिताः ॥ २ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन् ! उस भयानक

दिनका पूर्वभाग जब प्रायः व्यतीत हो गया, तब भयंकर वीरोंका विनाश करनेवाले उस भयानक संग्राममें प्रमुख वीर भी मारे जाते हुए कुलरूपी कुमारमें अन्य और निमित्तसे वहाँ आकर भीष्मकी रक्षा कर रहे थे ॥

पातयित्वैव पञ्चभिर्भरतर्षभ ।
वाम्बुवालामनीषमपि विव्यथाते महात्मनः ॥

इन पाँच अतिरथी वीरोंसे सुरक्षित महारथी भीष्मजीने पाण्डवोंकी सेनाओंमें प्रवेश किया ॥

वेदिध्वजविचित्रेषु पताकासु च भारत ।
भीष्मस्य बहुधा तालमलक्ष्यत केतुरुच्छ्रितः ॥

भारत! वेदि, शक्ति, कलश तथा पताकाओंसे विभूषित हुए भीष्मका तालचिह्नित ध्वज पताकाओंवाला रथ अनेक दिखायी देने लगा ॥

स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान् ।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥

युद्धमें कूदे हुए भीष्मजीने अत्यन्त वेगशाली भल्लोंद्वारा शत्रुओंके मस्तक, रथ और युग तथा ध्वज काट-काटकर गिराने लगे ॥

कृत्वा रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ ।
महामात्रान् बाहुगांश्च ममर्द तलध्वनिः ॥

भरतश्रेष्ठ! उनके मार्गोंपर शूल रख कर रहे उनके मार्गोंसे महाबलोंमें जाते हुए हाथी अत्यन्त आतनाद करने लगे ॥

अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद् भीष्मरथं प्रति ॥
आमुक्तकवचचित्रध्वजः कर्णिकारध्वजेन तु ।
समवर्तत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥

यह देख अभिमन्यु अत्यन्त कुपित हो पिङ्गलवर्णके घोड़ोंसे जुते हुए रथपर आरूढ़ होकर भीष्मके रथकी ओर दौड़ा। उसका वह कर्णिकारके चिह्नसे युक्त स्वर्णनिर्मित विचित्र ध्वजसे सुशोभित था। उन्होंने भीष्मपर तथा उनकी रक्षाके लिये आये हुए उन श्रेष्ठ रथियोंपर भी आक्रमण किया ॥

स तालकेतोस्तीक्ष्णाग्रैः केतुमाहत्य पत्रिणा ।
भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चानुचरैः सह ॥

वीर अभिमन्युने तीखे बाणसे उस तालचिह्नित ध्वजको बेध डाला और भीष्म तथा उनके अनुगामी रथियोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥

छत्रमौर्वीमथैकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः ।
विद्ध्वा दशभिरासाद्य प्रतिपन्महारथम् ॥

उन्होंने एक बाणसे कृतवर्माको और पाँच बाणोंसे शल्यको

बाणोंसे घायल करके तीखी धारवाले नौ बाणोंसे प्रतिज्ञा करते हुए भीष्मको बींध डाला ॥

पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक् प्रणिहितेन च ।
ध्वजमेकेन विव्याध आत्मानुपरिवर्तिनम् ॥

तत्पश्चात् धनुषको खूब तानकर छोड़े गये मनोयोगसे चलाये हुए एक बाणके द्वारा उनके सुवर्णभूषित ध्वजको भी काट डाला ॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना ।
जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नतपर्वणा ॥

इसके बाद झुकी हुई गाँठवाले तथा सब प्रकारके आवरणोंका भेदन करनेवाले एक भल्लके द्वारा दुर्मुखके सारथिका मस्तक धड़से अलग कर दिया ॥

धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम् ।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः ।
जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः ॥

साथ ही कृपाचार्यके स्वर्णभूषित धनुषको भी तेज धारवाले भल्लसे काट गिराया फिर तब ... कुपित हुए महारथी अभिमन्यु अत्यन्त कुपित हो तीखी नोकवाले बाणोंसे भीष्मकी रक्षा करनेवाले उन महारथियोंको भी घायल कर दिया ॥

तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ।
लब्धलक्ष्यतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः ।
सत्त्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनंजयम् ॥

अभिमन्युके हाथोंकी यह फुर्ती देखकर देवताओंको भी बड़ा हर्ष हुआ। अर्जुनकुमारके इस लक्ष्यभेदी बाणसंधानसे भीष्म आदि सभी रथियोंने उन्हें साक्षात् अर्जुनके समान शक्तिशाली समझा ॥

तस्य लाघवमार्गस्थमलातसमदर्शनम् ।
दिशः पर्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥

अभिमन्युका धनुष गाण्डीवके समान टंकारध्वनि करता हुआ, बाणोंकी फुर्ती दिखानेके अद्भुत मार्ग और सीधे लक्ष्यपर अलातचक्रके समान मण्डलाकार प्रकाशित हो रहा था। वह सब दिशाओंमें घूम रहा था ॥

तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः ।
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा ॥ ७

अर्जुनकुमार अभिमन्युको पाकर शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले भीष्मने समरभूमिमें नौ शीघ्रगामी महावेगशाली बाणोंद्वारा तुरंत ही उन्हें बेध दिया ॥

ध्वजं चास्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥ ८

साथ ही उस महातेजस्वी वीरके ध्वजके भी तीन बाणोंसे काट गिराया। इतना ही नहीं, नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले भीष्मके तीन बाणोंसे अभिमन्युने सारथिको भी मार डाला ॥ १८ ॥

तथैव कृतवर्माणं च कृपं शल्यं च मारिष।
विद्ध्वा नाकम्पयत् कार्ष्णिर्मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १९ ॥

आर्य! इसी प्रकार कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा शल्य उस मनस्वी बालकको बाणोंसे बींधकर भी अर्जुनकुमारको मैनाक पर्वतकी भाँति किंचित् भी कम्पित न कर सके ॥ १९ ॥

स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रैर्महारथैः।
ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्चरथान् प्रति ॥ २० ॥

दुर्योधनके उन महारथियोंसे घिर जानेपर भी शूरवीर अर्जुनकुमार उन पाँचों रथियोंपर बाणवर्षा करता रहा ॥ २० ॥

ततस्तेषां महास्त्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः।
ननाद बलवान् कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजञ्छरान् ॥ २१ ॥

उस समय अपने बाणोंकी वर्षासे उन सबके महान् अस्त्रोंका निवारण करके बलवान् अर्जुनकुमार अभिमन्युने भीष्मपर बाणोंका प्रहार करते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २१ ॥

तत्रास्य सुमहद् राजन् बाह्वोर्बलमदृश्यत।
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥ २२ ॥

राजन्! उस समय समरभूमिमें प्रयत्नपूर्वक अपने बाणोंद्वारा भीष्मको पीड़ा देते हुए अभिमन्युकी भुजाओंका महान् बल स्पष्ट देखा गया ॥ २२ ॥

पराक्रान्तस्य तस्यैवं भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान्।
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युताञ्छरान् ॥ २३ ॥

तब भीष्मने भी उस पराक्रमी वीरपर बाणोंका प्रहार किया, परंतु अभिमन्युने रणभूमिमें भीष्मके धनुषसे छूटे हुए समस्त बाणोंको काट डाला ॥ २३ ॥

ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः।
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २४ ॥

अभिमन्युके बाण अमोघ थे। उस वीरने समराङ्गणमें नौ बाणोंद्वारा भीष्मके ध्वजको काट गिराया। यह देख सब लोग उच्च स्वरसे कोलाहल कर उठे ॥ २४ ॥

स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः।
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥ २५ ॥

भरतनन्दन! वह रजतनिर्मित स्वर्णभूषित ऊँचा ताल-चिह्नसे युक्त भीष्मका ध्वज सुभद्राकुमारके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥

स तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ।
दृष्ट्वा भीमो नदत्युच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ! अभिमन्युके बाणोंसे कटकर गिरे हुए उस ध्वजको देखकर भीमसेनने सुभद्राकुमारका हर्ष बढ़ाते हुए उच्चस्वरसे गर्जना की ॥ २६ ॥

अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च।
प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन् महाबलः ॥ २७ ॥

तब महाबली भीष्मने उस अत्यन्त भयंकर संग्राममें बहुत-से महान् दिव्यास्त्र प्रकट किये ॥ २७ ॥

ततः शरसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः।
अवाकिरदमेयात्मा तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २८ ॥

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न प्रपितामह भीष्मने सुभद्राकुमारपर हजारों बाणोंकी वर्षा की। वह एक अद्भुत-सी घटना प्रतीत हुई ॥ २८ ॥

ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः।
रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः ॥ २९ ॥
विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशाम्पते ॥ ३० ॥

राजन्! तब पुत्रसहित विराट, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, भीमसेन, पाँचों भाई केकय राजकुमार तथा सात्यकि—ये पाण्डवपक्षके महान् धनुर्धर दस महारथी अभिमन्युकी रक्षाके लिये रथोंद्वारा तुरंत वहाँ दौड़े आये ॥ २९-३० ॥

तेषां जवेनापततां भीष्मः शान्तनवो रणे।
पाञ्चाल्यं त्रिभिरानर्च्छत् सात्यकिं नवभिः शरैः ॥ ३१ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मने रणभूमिमें वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले उन दसों महारथियोंमेंसे धृष्टद्युम्नको तीन और सात्यकिको नौ बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१ ॥

पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च।
ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा ॥ ३२ ॥

फिर धनुषको पूरी तरहसे खींचकर छोड़े हुए एक पैने क्षुर नामक बाणसे भीमसेनकी ध्वजा काट डाली ॥ ३२ ॥

जाम्बूनदमयः श्रीमान् केसरी स नरोत्तम।
पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात् ॥ ३३ ॥

नरश्रेष्ठ! भीमसेनका वह सुवर्णमय सुन्दर ध्वज सिंहके चिह्नसे युक्त था। वह भीष्मके द्वारा कट जानेपर रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ३३ ॥

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा भीष्मं शान्तनवं रणे।
कृपमेकेन विव्याध कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥

तब भीमसेनने उस रणक्षेत्रमें शान्तनुनन्दन भीष्मको तीन बाणोंसे घायल करके कृपाचार्यको एक और कृतवर्माको आठ बाणोंसे बेध दिया ॥ ३४ ॥

प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना।
अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः ॥ ३५ ॥

इसी समय विगने बलसे [illegible] केयूर [illegible] किया उस समय हार्दिक्य [illegible] हो विद्युत्कुमार उसने महारथके स्वामी राजा [illegible] पास किया

तस्य [illegible] अर्धचन्द्रेण रथे
[illegible] विचार [illegible] धारप्रतिम [illegible]

यह [illegible] वहां [illegible]
उस समय [illegible] अपने [illegible] उनके [illegible] रोक दिया

ततः क्रुद्धः स नागेन्द्रो द्रुतत [illegible]
[illegible] चतुरो हयान्

[illegible] और
[illegible] वाहन करनेवाले चारों [illegible] मार डाला

स हताश्वे रथे तिष्ठन् [illegible]
[illegible] शक्तिं चिक्षेप [illegible]

[illegible] रथपर बैठे हुए [illegible] एक शक्ति [illegible]
[illegible] राजकुमार उसपर [illegible]

तथा विच्छिन्नधनुषा [illegible] विपुलं शरम्
स [illegible] मुक्तांश्च शतोमरः

[illegible] उसकी [illegible]
[illegible] उनके हाथ [illegible] और तोमर
[illegible] गिर गये [illegible]
[illegible] गिर पड़े

[illegible] रथोत्तमात्
तस्य [illegible] महाबलम्

[illegible] हाथमें [illegible] लेकर [illegible]
और [illegible]
उन्होंने [illegible]

छिन्नमस्य [illegible]
[illegible] पपात [illegible]

[illegible] गया [illegible]
[illegible] भयंकर [illegible]
[illegible] भूमिपर गिरा और [illegible]

[illegible] महाराजो नराधिप
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं [illegible]

[illegible] वह [illegible] करके [illegible] हुआ ही
[illegible]

उत्तरं [illegible] वैराटिश्चोत्तरं तदा
[illegible] सहितं दृष्ट्वा [illegible]
[illegible]

[illegible] और [illegible] कृतवर्माके [illegible] देख [illegible] बोलते [illegible]
[illegible]

स विस्फार्य महच्चापं [illegible] ८४
[illegible] शल्यं महारथिः [illegible]

[illegible] उसने [illegible]
[illegible] शल्यको मार [illegible]
[illegible] उत्तर धारण किया

महता रथवंशेन समन्तात् परिवारितः
मुमोच [illegible] प्रति

[illegible] [illegible]
[illegible]

[illegible] ८५
[illegible]
[illegible]

[illegible] हाथीके [illegible]
[illegible]
[illegible] उन्हें
[illegible]

बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः
तथा [illegible] महाबलाः
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ८६

[illegible] नाम [illegible] बृहद्बल
[illegible] पुत्र [illegible] अवन्तिके
राजकुमार विन्द और अनुविन्द [illegible] तथा
[illegible] पुत्र [illegible]

नानावर्णविचित्राणि धनूंषि [illegible]
विस्फार्य [illegible] तोयदैरिव विद्युतः

[illegible] अपने [illegible] विचित्र
[illegible] दिखायी [illegible]

ते तु बाणमयं वर्षं [illegible]
[illegible] जलम्

[illegible] आरम्भ
कर [illegible] उड़ाये हुए
[illegible] रहे हों

ततः क्रुद्धो महेष्वासः [illegible]
धनूंषि [illegible]

उस समय महान् धनुर्धर सेनापति श्वेतने कुपित होकर
[illegible] उन सातों
रथियोंके धनुष काटकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये

निकृत्यान्येष तानि स्म समदृश्यन्त भारत।
ततस्ते तु निमेषार्धात् प्रत्यपश्यन् धनूंषि च ॥ ५३ ॥
सात चैव प्रयन्तश्च श्वेतस्याश्वानपातयत्।
ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सन्नतपर्वभिः।
निचकर्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम् ॥ ५४ ॥

भारत! वे सातों धनुष कटकर सातों ही टुकड़े हो गये। तदनन्तर उन सबने आधे निमेषमें ही दूसरे धनुष ले लिये और श्वेतके चारों घोड़ोंको मार गिराया। तब अमेय आत्मबलसे युक्त महाबाहु श्वेतने पुनः झुकी हुई गाँठवाले भल्ल मारकर उन धनुर्धरोंके धनुष काट दिये ॥ ५३-५४ ॥

ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः।
रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान् रवान् ॥ ५५ ॥

अपने विशाल धनुषोंके कट जानेपर उन सात महारथियोंने बड़ी उतावलीके साथ रथशक्तियाँ हाथमें ले लीं और भयंकर गर्जना की ॥ ५५ ॥

असृजन्त भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति।
ततस्ता ज्वलिता राजन् महोल्का इव निःसृताः ॥ ५६ ॥

भरतश्रेष्ठ! वे सातों शक्तियाँ प्रज्वलित हो श्वेतके रथकी ओर बड़ी भारी उल्काओंके समान जाती हुई उसके पास जाकर गिरीं ॥ ५६ ॥

आगता वज्रनिर्घोषास्तीव्रवेगाः सुदारुणाः।
ता समस्ताः शरैः सप्तभिश्चिच्छेद महारथः ॥ ५७ ॥
प्रहितश्चेद् भरतश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति।

राजन्! उन्हें सम्पूर्ण आते देख महारथी श्वेतने पहले सात भल्लोंसे उन शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर भरतश्रेष्ठ! उसने रुक्मरथ (शल्य) को वेगपूर्वक एक बाण चलाया, जो विशेष रूपसे गतिशील था और उसने शल्यपर प्रहार किया ॥ ५७ ॥

तस्य देहे निपतिता बाणो वज्रातिगो महान् ॥ ५८ ॥
ततो रुक्मरथो राजन् बाणवेगेन मोहितः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत् ॥ ५९ ॥

वज्रसे भी अधिक प्रभावशाली वह महान् बाण रुक्मरथके शरीरपर जा गिरा। राजन्! उस बाणसे अत्यन्त घायल होकर रुक्मरथ अपने रथकी बैठकमें जा बैठा तथा अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥ ५८-५९ ॥

स विसंज्ञो विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः।
अपोवाह स संभ्रान्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ६० ॥

उस अचेत और अनमने हुए उसे जल्दी करके सारथि भी घबराहटमें पड़कर सबके देखते-देखते वहाँ रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ ६० ॥

ततोऽन्यान् षट् समादाय श्वेतो हेमविभूषितान्।
तेषां चक्रे महाबाहुर्ध्वजाग्राण्यपि सायकैः ॥ ६१ ॥

तब महाबाहु श्वेतने सुवर्णभूषित छः बाण लेकर उन छहों रथियोंके ध्वजोंके अग्रभाग काट गिराये ॥ ६१ ॥

हयांश्च तेषां निर्भिद्य सारथींश्च परंतपः।
शरैश्चैतान् समाकीर्य शल्यस्य रथं प्रति ॥ ६२ ॥

परंतप! फिर उनके घोड़ों और सारथियोंको विदीर्ण करके उनके शरीरोंमें भी बहुत-से बाण मार दिये। इसके बाद वह शल्यके रथपर धावा किया ॥ ६२ ॥

ततो हलहलाशब्दस्तव सैन्येषु भारत।
दृष्ट्वा सेनापतिं तूर्णं यान्तं शल्यरथं प्रति ॥ ६३ ॥

भारत! तब सेनापति श्वेतको शीघ्रतापूर्वक शल्यके रथकी ओर जाते देख आपकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ६३ ॥

ततो भीष्मं पुरस्कृत्य तव पुत्रो महाबलः।
वृतश्च सर्वसैन्येन प्रायाच्छ्वेतरथं प्रति ॥ ६४ ॥
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मद्रराजममोचयत्।

तब आपके महाबली पुत्र दुर्योधनने भीष्मजीको आगे करके सम्पूर्ण सेनाके साथ श्वेतके रथपर चढ़ाई की और मृत्युके मुखमें पड़े हुए मद्रराज शल्यको छुड़ा लिया ॥ ६४ ॥

ततो युद्धं समभवत् तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६५ ॥
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम्।

तदनन्तर आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें भयंकर रोमांचकारी युद्ध होने लगा। रथ, रथ और हाथीसे हाथी गुथ गये ॥ ६५ ॥

सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ॥ ६६ ॥
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते।
एतेषु नरसिंहेषु चेदिमत्स्येषु चैव ह।
ववर्ष शरवर्षाणि कुरुवृद्धः पितामहः ॥ ६७ ॥

पाण्डवपक्षकी ओरसे सुभद्राकुमार अभिमन्यु, भीमसेन, महारथी सात्यकि, केकयराजकुमार, राजा विराट तथा द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न—ये पुरुषसिंह और चेदि एवं मत्स्यदेशके क्षत्रिय युद्ध कर रहे थे। कुरुकुलके वृद्ध पुरुष पितामह भीष्मने इन सबपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ६६-६७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतयुद्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें श्वेतयुद्धविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्याय

श्वेतका महाभयंकर पराक्रम और भीष्मके द्वारा उसका वध

धृतराष्ट्र उवाच

एवं श्वेते महेष्वासे प्राप्ते शल्यरथं प्रति।
कुरवः पाण्डवेयाश्च किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥
भीष्मः शान्तनवः किं वा तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार महान् धनुर्धर श्वेतके राजा शल्यके रथके समीप पहुँच जानेपर कौरवों तथा पाण्डवोंने क्या किया? अथवा शान्तनुनन्दन भीष्मने कौन सा पुरुषार्थ किया? मेरे पूछनेके अनुसार ये सब बातें मुझसे कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच

राजञ्छतसहस्राणि तत्र क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ २ ॥
श्वेतं सेनापतिं शूरं पुरस्कृत्य महारथाः।
राज्ञो बलं दर्शयन्तस्तव पुत्रस्य भारत ॥ ३ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य त्रातुमैच्छन्महारथाः।
अभ्यवर्तन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ४ ॥
जिघांसन्तो युधां श्रेष्ठं तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्।

संजय कहते हैं—राजन्! पाण्डवपक्षके लाखों क्षत्रिय शिरोमणि महारथी वीर सेनापति शूरवीर श्वेतको आगे करके आपके पुत्र दुर्योधनको अपना बल दिखाते हुए शिखण्डीको आगे रखकर भीष्मके सुवर्णभूषित रथपर चढ़ आये। भारत! वे महारथी शिखण्डीकी रक्षा करना चाहते थे। इसलिये उन्हें मारनेकी इच्छावाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीष्मपर उन्होंने धावा किया। उस समय बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया।

तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि महावैशसमद्भुतम् ॥ ५ ॥
तावकानां परेषां च यथा युद्धमवर्तत।

आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें जो महान्, भयंकर युद्ध जिस प्रकार हुआ, उसका उसी रूपमें आपसे वर्णन करता हूँ ॥ २—५ ॥

तत्राकरोद् रथोपस्थान् शून्यान् शान्तनवो बहून् ॥ ६ ॥
तत्राद्भुतं महच्चक्रे शरैरार्च्छद् रथोत्तमान्।
समावृणोच्छरैरर्कमर्कतुल्यप्रतापवान् ॥ ७ ॥

उस युद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मने बहुत-से रथियोंकी बैठकोंको रथियोंसे शून्य कर दिया। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कार्य किया। उन्होंने बाणोंद्वारा बहुत-से श्रेष्ठ रथियोंको बहुत पीड़ा दी। वे सूर्यके समान तेजस्वी थे। उन्होंने अपने बाणोंद्वारा सूर्यदेवको भी आच्छादित कर दिया ॥ ६-७ ॥

नुदन् समन्तात् समरे रश्मिवान् यथा तमः।
तेनाजौ प्रेषिता राजन् शराः शतसहस्रशः ॥ ८ ॥
क्षत्रियान्तकराः संख्ये महावेगा महाबलाः।
शिरांसि पातयामासुर्वीराणां शतशो रणे ॥ ९ ॥

जैसे सूर्य उदित होकर अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार वे सब ओर समरभूमिमें शत्रुसेनाओंका संहार कर रहे थे। राजन्! उनके द्वारा चलाये हुए महान् वेग और बलसे सम्पन्न क्षत्रियसंहारक लाखों बाणोंने रणभूमिमें सैकड़ों वीरोंके मस्तक काट गिराये ॥ ८-९ ॥

गजान् कण्टकसंनाहान् वज्रेणेव शिलोच्चयान्।
रथा रथेषु संसक्ता व्यदृश्यन्त विशाम्पते ॥ १० ॥

उन बाणोंने काँटेदार कवच धारण किये हुए हाथियोंको भी वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी कर दिया। प्रजानाथ! उस समय रथ रथोंसे सटे हुए दिखायी देते थे ॥ १० ॥

एके हयाः पर्यवहन् सरथं सतुरङ्गमम्।
युवानं निहतं वीरं लम्बमानं सकार्मुकम् ॥ ११ ॥

कितने ही घोड़े अकेले ही रथको लिये हुए दूर भाग रहे थे और उनपर मरा हुआ नवयुवक वीर रथी धनुषके साथ ही लटक रहा था ॥ ११ ॥

उदीर्णाश्च हया राजन् वहन्तस्तत्र तत्र ह।
बद्धखड्गनिषङ्गाश्च विध्वस्तशिरसो हताः ॥ १२ ॥
शतशः पतिता भूमौ वीरशय्यासु शेरते।

राजन्! बहुत-से घोड़े उन रथोंको लिये इधर-उधर घूम रहे थे। कमरमें तलवार और तरकस बाँधे हुए सैकड़ों बलवान् वीर मस्तक कट जानेसे प्राणशून्य होकर गिरकर वीरोचित शय्याओंपर शयन कर रहे थे ॥ १२½ ॥

परस्परेण धावन्तः पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ १३ ॥
उत्थाय च प्रधावन्तो द्वन्द्वयुद्धमवाप्नुवन्।
पीडिताः पुनरन्योन्यं लुठन्तो रणमूर्धनि ॥ १४ ॥

एक दूसरेपर धावा करनेवाले कितने ही सैनिक गिर पड़ते और फिर उठकर खड़े हो जाते थे। खड़े होकर वे दौड़ते और परस्पर द्वन्द्वयुद्ध करने लगते थे। फिर आपसके प्रहारोंसे पीड़ित हो वे युद्धके मुहानेपर ही गिरकर लोटने लगते थे ॥ १३-१४ ॥

सचापाः सनिषङ्गाश्च जातरूपपरिष्कृताः।
विसृष्टायुधवीराश्च शतशः परिपीडिताः ॥ १५ ॥
तेन तेनाभ्यधावन्त विसृजन्तश्च भारत।

भारत! सैकड़ों वीर धनुष और तरकस लिये सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो कितने ही विपक्षी योद्धाओंपर विविध प्रकारके शस्त्रोंका प्रहार करके स्वयं भी शत्रुओंके प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे और स्वयं भी अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते

हुए विचित्र मालोंसे हस्य उत्तम आभा दीख पड़ते थे ॥ १६ ॥

जज्ञे गजा [illegible] हतसादिन ॥ १७ ॥
[illegible] विद्रुतास्तत्र समन्तात् ।

[illegible] हाथी जब बेहोश होते थे, तब वे विकल [illegible] जाते थे। इसी प्रकार सवाररहित रथी लोग और [illegible] पर पड़ा हुए अपने को खींचते हुए विचलित [illegible] ॥

सम्भग्नान्नत्यन्त [illegible] मार्गे ॥ १७ ॥
हतसादयश्च [illegible] पताका [illegible] रथा ।

[illegible] हाथी [illegible] यशस्वी [illegible] सवार भाग भाग [illegible] पड़ते थे ॥ १८ ॥

युध्यमानस्य सुमहान् शब्दः [illegible] ॥ १८ ॥
धनु [illegible] प्रतियुध्यतः ।
गात्रस्पर्शेन योधानां व्यक्तास्त परिपन्थिनाम् ॥ १९ ॥

उस समय रणभूमिमें [illegible] कि कुछ [illegible] था। केवल अनुपसी [illegible] ही यह जाना जाता था कि प्रतिद्वन्द्वी युद्ध कर रहा है। कितने ही योद्धा दूसरे योद्धाओंके शरीरका स्पर्श करके ही यह समझ पाते थे कि यह शत्रु-दलका है ॥ १९ ॥

युध्यमाने शरैः राजन् [illegible] ।
अन्योन्यं वीरसहायो शब्दमूले अदे कृत ॥ २० ॥

राजन्! [illegible] धनुषकी टंकार और हथेलीका [illegible] कुछ भी यह समझ पाता था कि कौन किसके द्वारा युद्ध कर रहा है। [illegible] भी यह कुछ सुनायी नहीं देता था ॥

शब्दायमाने समरे पटहे [illegible] ।
युध्यमानस्य समरे कुर्वता [illegible] ॥ २१ ॥
नाश्रौष नामगोत्राणि कीर्तनं च परस्परम् ।

[illegible] आपसमें नाम और गोत्र [illegible] सुनायी नहीं पड़ता था ॥

भीमचापच्युतैर्बाणैः [illegible] सुखम् ॥ २२ ॥
परस्परेण वीराणां मनांसि [illegible] ।

युद्धमें भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे समस्त योद्धा पीड़ित हो रहे थे। उन बाणोंने परस्पर सभी वीरोंके हृदय कम्पित कर दिये थे ॥ २३ ॥

तस्मिन्नत्याकुले युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ २४ ॥
पिता पुत्रं च समरे [illegible] ।

वह युद्ध अत्यन्त भयंकर रोमांचकारी तथा व्याकुल कर देनेवाला था। उसमें पिता अपने पुत्रको भी पहचान नहीं पाता था ॥ २४ ॥

चक्रे भग्ने युगे छिन्ने एकधुर्ये हये हते ॥ २५ ॥
आक्षिप्तः स्यन्दनाद् वीरः ससारथिरजिह्मगैः ।

[illegible] उस घोड़े [illegible] और [illegible] वीर [illegible] मारा गया। [illegible] योद्धा रथ सहित [illegible] ॥

पत्र [illegible] समरं सर्वे वीराश्च विरथीकृताः ॥ २५ ॥
[illegible] समन्ततः ।

[illegible] और [illegible] ॥ २६ ॥

गजो हतः शिरश्छिन्नं मर्म भिन्नं हयो हतः ॥ २६ ॥
[illegible] भीष्मे निघ्नति शात्रवान् ॥

[illegible] मारा गया, किसीका [illegible] और [illegible] घोड़ा ही मार डाला गया। जब भीष्म शत्रुओंका संहार कर रहे थे, उस समय (उनके [illegible]) कोई भी ऐसा सिपाही नहीं बचा जो व्याकुल न हुआ हो ॥ २६ ॥

श्वेतः कुरूणामकरोत् क्षयं तस्मिन् महाहवे ॥ २७ ॥
राजपुत्रान् रथोदारान् [illegible] ।

इसी प्रकार उस महायुद्धमें श्वेत भी कौरवोंका संहार कर रहे थे। उन्होंने सैकड़ों श्रेष्ठ रथी राजकुमारोंका संहार कर डाला ॥ २७ ॥

चिच्छेद रथिनां बाणैः शिरांसि [illegible] ॥ २८ ॥

[illegible] रथियोंके मस्तक काट [illegible] ॥

साङ्गदा [illegible] धनूंषि च समन्ततः ।
[illegible] तूणीराणि धुराणि च ॥ २९ ॥

[illegible] बार-बार [illegible] बाजूबंद [illegible] ॥ २९ ॥

उत्तमाङ्गानि च महान्ति [illegible] ।
तूणीराणां रथीनां नरैर्महद्भिश्च भारत ॥ ३० ॥
वाजिना [illegible] हता [illegible] भारत ।

राजन्! [illegible] और [illegible] भी उनके बाणोंसे व्यथित हो गये। भरतनन्दन! [illegible] रथों और [illegible] सैकड़ों [illegible] गिराये ॥ ३० ॥

वयं श्वेतभयाद् भीता विहाय रथसत्तमम् ॥ ३१ ॥

अश्वत्थामानमासाद्य शिखण्डी पर्यवारयत् ।
शस्त्रपाणिमतिक्रम्य कुरूणां कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥
भीष्मं शान्तनवं युद्धे शिखण्डी पर्यवारयत् ।

कुरुनन्दन! इस भाँति वे सब लोग महारथी भीष्मको अकेला छोड़कर भाग खड़े हुए। इसीलिये उस समय शान्तनुनन्दन भीष्म वहाँ अकेले ही कौरव सेनाके बाण बरसाते हुए पाण्डवोंपर टूट पड़े और सूर्यकी भाँति शान्तनुनन्दन भीष्मको देख रहे थे ॥ ३२ ॥

अर्चिष्मांस्तु दीप्तसमये भीष्मो ज्वलनसप्रभः ॥ ३३ ॥
एकाकी विचरंस्तत्र गिरिर्मेरुरिवाचलः ।

उस महान् समरांगणमें प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी भीष्म ही अकेले विचरते हुए मेरुपर्वतकी भाँति वहाँ अविचलभावसे खड़े रहे ॥ ३३ ॥

व्यराजत तथा भीष्मः सर्वतः शिखिशोभितः ॥ ३४ ॥
शराचिर्भिरिवादित्यः प्रकाशञ्ज्योतिषां गणान् ।

जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार भीष्म सबकी चेतनाको हरनेवाले अपने बाणरूपी किरणोंसे प्रकाशित हो रहे थे। किरणोंसे सुशोभित सूर्यकी भाँति भीष्म बाणरूपी रश्मियोंसे शोभा पाते हुए वहाँ खड़े थे ॥ ३४ ॥

स युद्धेषु महेष्वासः शात्रवाणां विनिघ्नता ॥ ३५ ॥
निघ्नञ्छत्रूनसौ चक्रे वज्रपाणिरिवासुरान् ।

जैसे वज्रपाणि इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार महाधनुर्धर भीष्म उस समरांगणमें शत्रुओंका विनाश करते हुए बारंबार पाण्डवयोद्धाओंका वध कर रहे थे ॥ ३५ ॥

ते वध्यमाना भीष्मेण प्राद्रवन्त महाहवे ॥ ३६ ॥
अपूर्णमिव ते यूथाः युद्धभूमिषु शात्रवम् ।

महासमरमें भीष्मजीके बाणोंसे विद्ध हुए शत्रुओंकी भाँति भयभीत होकर रणभूमिमें अत्यन्त भयंकर हो रहे थे। उनकी मार खाकर पाण्डव सैनिक भाग गये ॥ ३६ ॥

तमेवमुपलक्ष्यैके दृष्ट्वा युद्धे परंतप ॥ ३७ ॥
दुर्योधनप्रियेयुक्ताः पाण्डवान् परिशङ्कयन् ।
जीवितं दुस्त्यजं त्यक्त्वा भयं च सुमहाहवे ॥ ३८ ॥

परंतप! इस प्रकार युद्धस्थलमें कौरव योद्धाओंद्वारा सारा बल एकमात्र भीष्म ही उत्साहित और प्रफुल्ल हो पाण्डवोंको युद्धमें मारते हुए शोक, मोह और भय छोड़कर उस महासमरमें दुर्योधनके प्रिय कार्यमें जुट गये ॥ ३७-३८ ॥

महत्यामास सैन्यानि पाण्डवानां पितामहः ।
प्रहसन्नस्त्रनिर्मुक्तैः शितैः वैवस्वतस्य ॥ ३९ ॥
बहून् सेनापतीन् भीष्मः समरे व्यसनार्जयत् ।

राजन्! भीष्मजीने पाण्डवोंके बहुतसे सैनिकोंको मार गिराया। आपके पिता देवव्रतने उस भयंकर रणक्षेत्रमें सेनापति हमलोगोंपर प्रहार कर रहे हैं तब वे युद्धमें उनका सामना करनेके लिये गये ॥ ३९ ॥

न भीष्मं शरजालेन महता समवाकिरत् ॥ ४० ॥
एवं चापि तथा भीष्मः शरौघैः समवाकिरत् ।

राजन्! उस समय अर्जुनने बाणोंके महान् जालसे भीष्मको ढक दिया। तब भीष्मजी भी बाणसमूहोंद्वारा उनपर बाणवर्षा करने लगे ॥ ४० ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मदमत्ताविव महाद्विपौ ॥ ४१ ॥
अन्योन्यमभिवर्तन्तौ कुञ्जराविव सम्भृतौ ।

वे दोनों वीर गर्जते हुए दो साँड़ों अथवा उन्मत्त हुए दो हाथियोंकी भाँति क्रोधमें भरे हुए दो गजराजोंके समान एक-दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ४१ ॥

अन्योन्यमपि संरब्धौ मघवान् नमुचिं पुरा ॥ ४२ ॥
भीष्मः पार्थेन युयुधे परस्परवधैषिणौ ।

तदनन्तर वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ भीष्म और अर्जुन अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक-दूसरेके वधकी इच्छासे युद्ध करने लगे ॥ ४२ ॥

धनञ्जयं निर्विद्य भीष्मः पाण्डवमनीकिनीम् ॥ ४३ ॥
इमं पश्यत सङ्ग्रामे यदि शक्तो न वारयेत् ।

यदि रणमें पाण्डुनन्दन अर्जुन रक्षा न करते तो भीष्मजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक ही दिनमें उनकी सेनाका संहार कर डालते ॥ ४३ ॥

पितामहं ततो दृष्ट्वा रथेन विमुखीकृतम् ॥ ४४ ॥
प्रहृष्टाः पाण्डवा जग्मुः पुरस्ते विमनाऽभवत् ।

तदनन्तर पितामह भीष्मजीको अर्जुनके द्वारा युद्धसे विमुख देख पाण्डवोंकी सेना बड़ी प्रसन्न हुई, परंतु आपका पुत्र दुर्योधन मन-ही-मन उदास हो गया ॥ ४४ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः ॥ ४५ ॥
समभ्ययात् पाण्डवानीकमभ्यद्रवत संयुगे ।

तब दुर्योधनने कुपित हो समस्त राजाओं तथा सेनाके साथ रणभूमिमें पाण्डव-सेनापर आक्रमण किया ॥ ४५ ॥

दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः ॥ ४६ ॥
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ।

दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य तथा विविंशति आपके पुत्रकी प्रेरणासे आकर भीष्मजीकी रक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः ॥ ४७ ॥
पाण्डवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे ।
एकतो माद्रीपुत्राभ्यां तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ ४८ ॥
नाजय्यत महत्येन वायुपूर्णानि सागरः ।

दुर्योधन आदि सब राजाओंके द्वारा पाण्डवसेनाको युद्धमें मारी जाती देख वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण भीष्मको छोड़कर आपके

पुत्रकी सेनाका इसी प्रकार वेगपूर्वक विनाश आरम्भ किया जैसे आग अपनी ज्वालाओंसे सूखे घासको जला डालती है।

प्राणायिनाशं राजन् वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ५५ ॥
आवल्गन् सहसा मूर्ध्ना यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ।

राजन्! विराटपुत्र श्वेत उस समय क्रोधसे मूर्च्छित हो रहे थे। वे आवेशमें आकर बड़े वेगसे फिर सहसा वहीं जा पहुँचे, जहाँ भीष्म खड़े थे ॥ ५५½ ॥

तौ समापेततू राजन् शरदीप्तौ महाबलौ ॥ ७ ॥
अन्योन्यं महात्मानौ सिंहाविव सुसंरब्धौ ।
अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ ॥ १ ॥

महाराज! वे दोनों महाबली महामना वीर बाणोंसे उद्दीप्त हो एक दूसरेके वधकी इच्छासे भयंकर आक्रमण करते और एक दूसरेके साथ युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः
पराक्रमं ततस्तस्य पराक्रम्य पराक्रमी ॥ २ ॥
तरसा वारयामास मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।

श्वेतने धनुष लेकर सात बाणोंसे भीष्मको घायल किया। तब पराक्रमी भीष्मने पराक्रम करके उस पराक्रमीके पराक्रमको बलपूर्वक रोक दिया, मानो किसी मतवाले हाथीने दूसरे मतवाले हाथीको रोक दिया हो ॥ ३½ ॥

श्वेतः शान्तनवं भूयः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३ ॥
विव्याध पञ्चविंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ।

तदनन्तर श्वेतने पुनः झुकी हुई गाँठवाले पचीस बाणोंसे शान्तनुनन्दन भीष्मको बींध डाला, वह एक अद्भुत-सी घटना हुई।

तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ४५ ॥
स विद्धस्तेन बलवान् नाकम्पत यथाचलः ।

तब शान्तनुनन्दन भीष्मने भी दस बाण मारकर श्वेतको घायल किया। उनके बाणोंसे घायल होकर भी बलवान् श्वेत विचलित नहीं हुआ। वह पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा रहा ॥ ४६ ॥

वैराटिः समरे क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ॥ ७ ॥
आजघान ततो भीष्मं श्वेतः क्षत्रियपुङ्गवः ।

तदनन्तर क्षत्रियकुलभूषण विराटकुमार श्वेतने युद्धमें कुपित हो धनुषको जोर जोरसे खींचकर भीष्मपर पुनः बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ ५६ ॥

प्रहस्य तस्य तान् श्वेतः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ४६ ॥
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य नवभिर्दशभिः शरैः ।

इसके बाद उन्होंने हँसकर अपने मुँहके दोनों कोनोंको चाटते हुए नौ बाण मारकर भीष्मके धनुषके दस टुकड़े कर दिये ॥ ५६½ ॥

संधाय विशिखं चैव ततः लोमवाहिनम् ॥ ५७ ॥
उन्ममाथ ततस्तालं ध्वजशीर्षे महात्मनः ।

फिर विशाखायुक्त पंखयुक्त बाणका संधान करके उसके द्वारा महात्मा भीष्मके ध्वजचिह्नरूप तालवृक्षको काट गिराया ॥ ७ ॥

केतुं निपतितं दृष्ट्वा भीष्मस्य तनयास्तव ॥ ८ ॥
हतं भीष्ममसंप्राप्तं श्वेतस्य वशमागतम् ।

भीष्मके ध्वजको नीचे गिरा देख आपके पुत्रोंने उन्हें श्वेतके वशमें पड़कर मरा हुआ ही मान लिया ॥ ८½ ॥

पाण्डवाश्चापि संहृष्टा दध्मुः शङ्खान् मुदा युताः ॥ ९ ॥
भीष्मस्य पतितं केतुं दृष्ट्वा तालं महात्मनः ।

महात्मा भीष्मके तालध्वजको धराशायी हुआ देख पाण्डव भी हर्षसे उल्लसित हो प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख बजाने लगे ॥ ५९½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रोधात् स्वमनीकमचोदयत् ॥ ६० ॥
यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समन्ततः ।
मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति ॥ ६१ ॥
भीष्मः शान्तनवः शूरस्तथा सत्यं ब्रवीमि वः ।

तब दुर्योधनने क्रोधपूर्वक अपनी सेनाको आदेश दिया 'वीरो! सावधान होकर सब ओरसे भीष्मजीकी रक्षा करते हुए उन्हें घेरकर खड़े हो जाओ। कहीं ऐसा न हो कि ये हमारे देखते-देखते श्वेतके हाथों मारे जायँ। मैं तुमलोगोंको सत्य कहता हूँ कि शान्तनुनन्दन भीष्म महान् शूरवीर हैं' ॥ ६०-६१½ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ॥ ६२ ॥
बलेन चतुरङ्गेण गाङ्गेयमभ्यपालयन् ।

राजाकी यह बात सुनकर सब महारथी बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आये और चतुरङ्गिणी सेनाद्वारा गङ्गानन्दन भीष्मकी रक्षा करने लगे ॥ ६२ ॥

बाह्लीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत ॥ ६३ ॥
जलसंधो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।
त्वरमाणास्त्वरायुक्ताः परिवार्य समन्ततः ॥ ६४ ॥
शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन् ।

भारत! बाह्लीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसंध, विकर्ण, चित्रसेन और विविंशति—ये सब-के-सब बड़ी उतावलीके साथ शीघ्रता करते हुए चारों ओरसे भीष्मजीको घेरकर खड़े हो गये और श्वेतके ऊपर भयंकर शस्त्र-वर्षा करने लगे ॥ ६३-६४½ ॥

तान् क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः ॥ ६५ ॥
अवारयदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

तब अपरिमित आत्मबलसे सम्पन्न महारथी श्वेतने कुपित हो हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए बड़ी उतावलीके साथ तीखे बाणोंद्वारा उन सबको रोक दिया ॥ ६५½ ॥

स निवार्य तु तान् सर्वान् केसरी कुञ्जरानिव ॥ ६६ ॥
महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुरच्छिनत् ।

जैसे सिंह हाथियोंके समूहको आगे बढ़नेसे रोक देता है उसी प्रकार उन सभी महारथियोंको रोककर अपने बाणसमूह द्वारा उन्होंने भीष्मका धनुष काट दिया ॥ ६६ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीष्मः शान्तनवो युधि ॥ ६७ ॥
ध्वजं विव्याध राजेन्द्र कङ्कपत्रैः शितैः शरैः ।

राजेन्द्र ! तब शान्तनुनन्दन भीष्मने दूसरा धनुष लेकर युद्धस्थलमें [illegible]

ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिराशुगैः ॥ ६८ ॥
विव्याध समरे राजन् सर्वलोकस्य पश्यतः ।

राजन् ! तब सेनापतिने कुपित हो उस समरभूमिमें बहुत-से [illegible] भीष्मको घायल कर दिया ॥ ६८½ ॥

ततः प्रव्यथितो राजा भीष्मः [illegible] ॥ ६९ ॥
[illegible] सर्वलोकस्य [illegible] युधि वै तदा ।
[illegible] सुमहाशस्य [illegible] ॥ ७० ॥

[illegible] ॥ ६९-७० ॥

न वीरं वारितुं शक्ता [illegible] ।
[illegible] मन्यन्ते [illegible] ॥ ७१ ॥

[illegible] भीष्मको कुपित कर दिया [illegible] ॥ ७१ ॥

ततः क्रोधपरो [illegible] ।
[illegible] निवर्तितवान् ॥ ७२ ॥

[illegible] ॥ ७२ ॥

एवं प्रति महाराज व्यसृजत् सायकान् बहून् ।
[illegible] भीष्मस्य रथिना [illegible] ॥ ७३ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पुनरेव शितेन च ।

महाराज ! उन्होंने इस प्रकार बहुत-से बाणोंकी वर्षा [illegible] ॥ ७३½ ॥

उत्सृज्य कार्मुकं तत्तु गाङ्गेयो रोषमूर्च्छितः ॥ ७४ ॥
अन्यत् [illegible] विपुलं बलवत्तरम् ।
[illegible] विपुलान् भल्लान् [illegible] शिलाशितान् ॥ ७५ ॥
चतुर्भिश्च [illegible] ।
ध्वजं द्वाभ्यां तु चिच्छेद [illegible] ॥ ७६ ॥
शिरश्चिच्छेद भल्लेन [illegible] ।

राजन् ! यह देख महातेजस्वी भीष्मने क्रोधसे मूर्च्छित हो [illegible] ॥ ७४—७६ ॥

[illegible] स [illegible] महाबलः ॥ ७७ ॥
[illegible] व्याकुलं समपद्यत ।

[illegible] ॥ ७७ ॥

[illegible] ॥ ७८ ॥
[illegible] निर्वाणैः शरमध्ये [illegible] ।

[illegible] ॥ ७८ ॥

स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः ॥ ७९ ॥
[illegible] ।

[illegible] ॥ ७९ ॥

ततः शान्तिं [illegible] महाभयात् ॥ ८० ॥
[illegible]
[illegible] भीष्मः शान्तनवः [illegible] ॥ ८१ ॥

[illegible] ॥ ८०-८१ ॥

तिष्ठध्वं [illegible] मा भुतय भय ।
[illegible] भीष्मं युधि [illegible] ॥ ८२ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ८३ ॥

[illegible] ॥ ८२-८३ ॥

हाहाकारो महानासीत् पुत्राणां ते विशाम्पते ।
दृष्ट्वा शक्तिं महाघोरां [illegible] ॥ ८४ ॥
[illegible] निर्मुक्तोरगसंनिभाम् ।

राजन् ! उसके हाथसे छूटकर कालदण्डके समान प्रकाशित होनेवाली और केंचुल छोड़कर निकली हुई सर्पिणी की भाँति भयका भय उत्पन्न करनेवाली उस शक्तिको देखकर आपके पुत्र दुर्योधनके महान् हाहाकार मच गया ॥ ८४ ॥

कालदण्डमिवोत्सृष्टं सहसा राजन् मोहोत्कोचनमन्तरात् ॥ ८५ ॥
ज्वलन्तीमन्तरिक्षस्थां ज्वालाभिरिव संवृताम् ।
समुद्धमानमिवोदग्रां दिवं विश देवमनस्तय ॥ ८६ ॥
सर्वाश्वनिपातसमाभिव शक्तिं विच्छन्न परिहिता ।

राजन् ! वह शक्ति आकाशसे सहसा बड़ी उल्कासी गिरी। अन्तरिक्षमें ज्वालाओंसे घिरी हुई प्रज्वलित शक्तिको देखकर भयभीत हुए देवताओंकी गति



रुक गयी। उन्होंने अपने रथ पर उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ८५-८६ ॥

ततः प्रावर्तत वीरा निशिता निशितैः शरैः ॥ ८७ ॥
उग्रयुतां शस्त्रं तावक भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उत्तम सुवर्णसे जड़ी हुई उस शक्तिको बाणोंसे पैने बाणोंसे नष्ट हुई देख आपके पुत्र हर्षसे भरे और जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे ॥ ८७ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८८ ॥
प्रहसन्निव वेगेन कर्तव्यं नाभ्यजानत ।
क्रोधसम्मूर्च्छितो राजन् वैराटिः प्रहसन्निव ॥ ८९ ॥
गदां प्रगृह्य सहसा भीष्मस्य निधनं प्रति ।

अपनी शक्तिको इस प्रकार विफल हुई देख विराटपुत्र उत्तर क्रोधसे मूर्च्छित हो गये। उन्होंने उनकी जिनेचलाशक्तिको

रुप कर दिया था वह उन्हें अपना कर्तव्य मालूम न रहा। उन्होंने हँसते उत्साहित हो हुए उसी भीष्मको मार डालनेके लिये हाथमें गदा उठा ली ॥ ८८-८९ ॥

प्राधावत रणं तस्य कृष्णपाणिरिवान्तकः ॥ ९० ॥
भीष्म साक्षादिवोद्यम्य जलौघ इव वेगवान् ।

उस समय उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वे दण्डपाणि यमराजके समान जान पड़ते थे। जैसे महान् जलप्रवाह किसी पर्वतपर टकराता हो, उसी प्रकार वे गदा लिये भीष्मकी ओर दौड़े ॥ ९०-९१ ॥

तस्य वेगमसह्यं तं मत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ ९१ ॥
प्रहारविप्रमोक्षार्थं सहसा धरणीं गतः ।

प्रतापी भीष्म उनके वेगको असह्य समझकर उस प्रहारसे बचनेके लिये सहसा पृथ्वीपर कूद पड़े ॥ ९१ ॥

उत्तरः क्रोधसमाविष्टो भ्रामयित्वा तु तां गदाम् ॥ ९२ ॥
रथे भीष्मस्य चिक्षेप यथा देवो महेश्वरः ।

उत्तरने क्रोधमें भरकर उस गदाको आकाशमें घुमाकर भीष्मके रथपर फेंक दिया, मानो महेश्वरने गदाका प्रहार किया हो ॥ ९२ ॥

तया भीष्मविनाशिन्या स रथो भस्मसात्कृतः ॥ ९३ ॥
सध्वजः सह सूतेन साश्वः सयुगबन्धुरः ।

भीष्मको मार डालनेके लिये चलायी हुई उस गदाके आघातसे ध्वज, सारथि, घोड़े, जूआ और धुरा आदिके साथ वह सारा रथ चूर-चूर हो गया ॥ ९३ ॥

विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः ॥ ९४ ॥
अभ्यधावन्त संहृष्टाः शल्यप्रभृतयो रथाः ।

रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मको रथहीन हुआ देख शल्य आदि उत्तम महारथी एक साथ दौड़े ॥ ९४ ॥

ततः स्यन्दनमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः ॥ ९५ ॥
शनैरभ्यगाद्भीष्मः बाहूनां अभिसत्तम ।

तब दूसरे रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करते हुए खिन्नचित्त भीष्म उदासमनसे धीरे-धीरे उत्तरकी ओर चले ॥ ९५ ॥

ततोऽभिमुखतो भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम् ॥ ९६ ॥
आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसम्भवाम् ।
भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्नं कुरुष्व वै ॥ ९७ ॥
एष ह्यस्य जये कालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना ।

इसी बीचमें भीष्मने अपने हितसे सम्बन्ध रखनेवाली एक दिव्य एवं गम्भीर आकाशवाणी सुनी — 'महाबाहु भीष्म ! शीघ्र प्रयत्न करो। इस उत्तरके विजयका जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने यही समय निश्चित किया है' ॥ ९६-९७ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदूतेन भाषितम् ॥ ९८ ॥
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा वधे तस्य मनो दधे ।

मेघकुलका कहा हुआ यह वचन सुनकर भीष्मजीका मन प्रसन्न हो गया और उन्होंने उसके मन्तव्य विचार किया ॥

विमथ रथिनां श्रेष्ठ श्वेत सङ्ख्ये [illegible] ।
सात्वतकुलमध्यगतान् परीप्सन्तो महारथाः ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मको रणभूमिमें वीर [illegible] देख उनकी रक्षा करनेके लिये एक साथ बहुत-से महारथी दौड़े आये ।

सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
कैकेयो धृष्टकेतुश्च अभिमन्युश्च वीर्यवान् ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं— सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, केकयराजकुमार, धृष्टकेतु तथा पराक्रमी अभिमन्यु ।

पतन्तमाशु [illegible] द्रोणाचार्यकृतो रथः ।
[illegible] ॥

इन सबको आते देख अमेय शक्तिशाली द्रोणाचार्य, शल्य तथा कृपाचार्यके साथ आकर उनकी गति रोक दी, मानो किसी पर्वतने जलके प्रवाहको अवरुद्ध कर दिया हो ।

स विद्धेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
श्वेतः खड्गमथादाय भीष्मस्य धनुरच्छिनत् ॥

तदनन्तर महामना पाण्डवोंके अवरुद्ध हो जानेपर श्वेतने तलवार लेकर भीष्मका धनुष काट दिया ।

सोऽपास्य धनुश्छिन्नं तदाशु पितामहः ।
देवदूतवचः श्रुत्वा वधे तस्य मनो दधे ॥

उस कटे हुए धनुषको फेंककर पितामह भीष्मने देवदूतके कथनपर ध्यान देकर श्वेतके वधका निश्चय किया ।

ततः प्रयतमानस्तु पिता देवव्रतस्तव ।
अन्यत् कार्मुकमादाय त्वरमाणो महारथः ॥
क्षणेन सज्जमकरोच्छक्रचापसमप्रभम् ।

तदनन्तर आपके पिता महारथी देवव्रतने जल्दी दूसरा धनुष लेकर वहाँ विचरते भ्रमते हुए ही क्षणभरमें उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी । वह इन्द्रधनुषके समान प्रकाशित हो रहा था ।

पिता ते भरतश्रेष्ठ श्वेतं दृष्ट्वा महारथैः ।
वृतं तं मनुजव्याघ्रैर्भीमसेनपुरोगमैः ॥
आपतन्तं गाङ्गेयः श्वेतं सेनापतिं द्रुतम् ।

भरतश्रेष्ठ! आपके पिता गङ्गानन्दन भीष्मने भीमसेन आदि महारथियोंसे घिरे हुए सेनापति श्वेतको देखकर उनपर तुरंत धावा किया ॥

अभ्यगच्छत् ततो भीष्मो भीमसेनं प्रतापवान् ॥ ७१ ॥
प्रत्यजन्त्ये विविधैर्बाणैः सेनायां समहारथः ।

उस समय गङ्गानन्दन भीष्मने सामने आते देख प्रतापी महारथी भीष्मने उन्हें साठ बाणोंसे घायल कर दिया ।

अभिमन्युं च समरे पिता देवव्रतस्तव ॥
आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः सन्नतपर्वभिः ।

उस समरभूमिमें आपके पिता भरतश्रेष्ठ भीष्म झुकी हुई गाँठवाले तीन बाणोंसे अभिमन्युको चोट पहुँचायी ॥

सात्यकिं च शतेनाजौ भरतानां पितामहः ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या कैकेयं चापि पञ्चभिः ।

साथ समरे महेष्वासान् पिता देवव्रतस्तव ॥
वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाभिदुद्रुवे ।

भरतवंशियोंके उन पितामहने युद्धस्थलमें सौ बाणोंसे सात्यकि, बीस बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्नको और पाँच बाणोंसे केकयराजकुमारको घायल कर दिया । इस प्रकार आपके पिता भीष्मने अपने भयंकर बाणोंद्वारा उन महाधनुर्धर महारथियोंको रोककर पुनः श्वेतपर ही आक्रमण किया ॥

ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम् ॥
विकृष्य बलवान् भीष्मः समाधत्त दुरासदम् ।
ब्रह्मास्त्रेण सुसंयुक्तं तं शरं लोमवाहिनम् ॥

तदनन्तर महाबली भीष्मने धनुषको खींचकर उसके ऊपर मृत्युके समान भयंकर भारी-से-भारी लक्ष्यको बेधनेमें समर्थ उत्तम और दुःसह पंखयुक्त बाण रक्खा । फिर उस बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके छोड़ दिया ॥

देवगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसाः ।
स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः ॥
जगाम धरणीं बाणो महाशनिरिव ज्वलन् ।

उस समय देवताओं, गन्धर्वों, पिशाचों, नागों तथा राक्षसोंने भी देखा, वह बाण महान् वज्रके समान प्रज्वलित हो उठा और अमित बलशाली श्वेतके कवच तथा हृदयको छेदकर धरतीमें समा गया ॥

अस्तं गच्छन् यथा ऽऽदित्यः प्रभामादाय सत्वरः ।
एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह ॥

जैसे सूर्य अस्त होते समय अपनी प्रभा साथ लेकर चले जाते हैं, उसी प्रकार वह बाण श्वेतके शरीरसे उनके प्राण लेकर चला गया ॥

तं भीष्मेण नरव्याघ्रं तथा विनिहतं युधि ॥
प्रपतन्तमपश्याम गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ।

भीष्मके द्वारा मारे गये नरश्रेष्ठ श्वेतको युद्धस्थलमें हमने टूटकर गिरे हुए पर्वतके शिखरके समान पड़ा देखा ॥

अशोचन् पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः ॥ ४१ ॥
प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चापि सर्वशः ।

उस समय पाण्डव पक्षके क्षत्रिय महारथी शोकमें डूब गये और आपके पुत्र तथा सब कौरव बहुत प्रसन्न हुए ।

महारथी पाण्डव तथा अन्य दूसरे नृपति शोकसे लिये रोदन करने लगे। इधर आपके पुत्र मन ही मन हर्षसे उल्लसित हो उठे ॥ ११६ ॥

ततो नु शान्तवो राजन्नयुक्त्वा रथं निशन्तिरम् । ११७ ।
वादित्रनिनदैर्घोरैर्नृत्यन्ति स्म समन्ततः ।

राजन्! श्वेतको मारा गया देख भीष्म युद्ध में शान्तनु-नन्दन ... बाजोंकी ... ध्वनिके साथ ... ओर नाचने लगा ॥ ११७ ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे श्रीभीष्मापराजिता ॥ ११८ ॥
नाकेतना महेष्वासाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ।

... भूमिमें योद्धा पाण्डवों श्रीभीष्मके द्वारा महाधनुर्धर श्वेतके मारे जानेपर शिखण्डी आदि महाधनुर्धर रथी ... ॥ ११९ ॥

ततो धनञ्जयो राजन् वार्ष्णेयश्चापि सर्वशः ॥ १२० ॥
अवहारं शनैश्चक्रुर्निहते पार्थिवर्षभे ।
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ॥ १२० ॥

राजन्! तब सेनापति श्वेतके मारे जानेके कारण अर्जुन और श्रीकृष्णने धीरे-धीरे अपनी सेनाको युद्धभूमिसे पीछे हटा लिया। भारत! फिर आपकी और पाण्डवोंकी सेना भी उस समय युद्धसे विरत हो गयी ॥ ११९-१२० ॥

तावकानां परेषां च नदतां च मुहुर्मुहुः ।
पार्था विमनसो भूत्वा न्यविशन्त महारथाः ।
चिन्तयन्तो वधं घोरं द्वैरथेन परंतपाः ॥ १२१ ॥

उस समय आपके और शत्रुओंके सैनिक भी बारंबार गर्जना कर रहे थे। उस द्वैरथ युद्धमें जो भयंकर संहार हुआ था, उसके लिये चिन्ता करते हुए शत्रुओंको संताप देनेवाले महारथी पाण्डव उदास मनसे शिबिरमें लौट आये ॥ १२१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्वेतवधे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें श्वेतवधविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय

शङ्खका युद्ध, भीष्मका प्रचण्ड पराक्रम तथा प्रथम दिनके युद्धकी समाप्ति

धृतराष्ट्र उवाच

श्वेते सेनापतौ तात संग्रामे निहते परैः ।
किमकुर्वन्महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—तात! सेनापति श्वेतके शत्रुओंद्वारा युद्धस्थलमें मारे जानेपर महान् धनुर्धर पाञ्चालों और पाण्डवोंने क्या किया ॥ १ ॥

सेनापतिं समाकर्ण्य श्वेतं युधि निपातितम् ।
तदर्थं यतता चापि परेषां प्रकृतापि तम् ॥ २ ॥
मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं संजय शृण्वतः ।
प्रत्युपकारं चिन्तयतो लज्जा प्राप्नोति मे न हि ॥ ३ ॥
स हि वीरोऽनुरक्तश्च वृद्धः कुरुपतिस्तथा ।

संजय! सेनापति श्वेत युद्धमें मारे गये उनकी रक्षाके लिये प्रयत्न करनेवाले भी शत्रुओंको पराजय करना पड़ा, यह सब अपने पक्षकी विजय हुई है यह बात सुनकर मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। शत्रुओंके प्रतीकारका उपाय सोचते हुए मुझे अपने पक्षके द्वारा की गयी अलौकिक कारण करके भी लज्जा नहीं आती है। वे बूढ़े वीर कुरुराज भीष्म हमारा सदा अनुराग रखते हैं (इस कारण ही उन्होंने शत्रुके साथ ऐसा व्यवहार किया होगा) ॥ २-३ ॥

कृत वैरं सदा तेन पितुः पुत्रेण धीमता ॥ ४ ॥
तस्योद्वेगभयाच्चापि संश्रितः पाण्डवान् पुरा ।

उस बुद्धिमान् विराटपुत्र श्वेतने अपने पिताके साथ सदा वैर रखा था। इस कारण पिताके द्वारा उद्वेग प्राप्त होनेके भयसे उसने पहले ही पाण्डवोंकी शरण ले ली थी ॥ ४-५ ॥

सर्वं बलं परित्यज्य दुर्गं संश्रित्य तिष्ठति ॥ ५ ॥
पाण्डवानां प्रतापेन दुर्गं देशं निवेश्य च ।
सपत्नान् सततं बाधन्नार्यवृत्तिमनुष्ठितः ॥ ६ ॥

राजा ... वह सारी सेनाका परित्याग करके (अपनी रक्षाके लिये) दुर्गमें छिपा रहता था। फिर पाण्डवोंके प्रतापसे दुर्गम प्रदेशका आश्रय लेकर निरन्तर शत्रुओंको बाधा पहुँचाते हुए सदा आर्योचित सत्कर्म करने लगा ॥ ५-६ ॥

आश्चर्यं वै सदा तेषां पुरा राजा सुदुर्मतिः ।
ततो युधिष्ठिरे भक्तः कथं संजय सूदितः ॥ ७ ॥

क्योंकि दुर्योधनने अपने भाव विरोध करनेवाले उन पाण्डवोंके प्रति अपनी बुद्धिमें दुर्भाव रख रखा है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसा शूरवीर श्वेत जो युधिष्ठिरका बड़ा भक्त था, मारा कैसे गया? ॥ ७ ॥

प्रक्षिप्तः संमतः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधमः ।
न युद्धं रोचयेद् भीष्मो न चाचार्यः कथंचन ॥ ८ ॥
न कृपो न च गान्धारी नाहं संजय रोचये ।

मेरा पुत्र दुर्योधन क्षुद्र स्वभावका है। वह मन आदि का प्रिय तथा नीच बुद्धिवाला है। मेरी दृष्टिमें यह समस्त पुरुषोंमें अधम है। (इसीलिये उसके मनमें युद्धके

मिले आया है)। संजय! मैं भीष्म द्रोणाचार्य कृपाचार्य तथा गान्धारी—इनमेंसे कोई भी युद्ध नहीं चाहता था ॥ ९ ॥

न वासुदेवो वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ ९ ॥
न भीमो नाप्युभौ चैव यमौ पुरुषर्षभौ।

वृष्णिवंशी भगवान् वासुदेव पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन तथा पुरुषरत्न नकुल-सहदेव भी युद्ध नहीं पसंद करते थे ॥ ९½ ॥

वार्यमाणो मया नित्यं गान्धार्या विदुरेण च ॥ १० ॥
जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना।
दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि संजय ॥ ११ ॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत्।
दुःशासनस्य च तथा पाण्डवान् नान्वचिन्तयत् ॥ १२ ॥

मैंने गान्धारीने और विदुरने तो सदा ही उसे मना किया है, जमदग्निनन्दन परशुरामने तथा महात्मा व्यासजीने भी उसे युद्धके संकल्पसे रोका है, तथापि वह पापी दुर्योधन कर्ण, शकुनि तथा दुःशासनके मतमें आकर सदा युद्धका ही निश्चय रखता आया है। उसने पाण्डवोंको कभी कुछ नहीं समझा ॥ १०—१२ ॥

तस्याहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु संजय।
कर्णस्य च विनाशेन भीष्मस्य निधनेन च ॥ १३ ॥
सात्यकिः कृष्णसहितः पार्थः किमकरोद् युधि।

संजय! मेरा तो विश्वास है कि दुर्योधनपर घोर संकट आनेवाला है। बताओ, कर्णके मारे जाने और भीष्मके धराशायी होनेसे आनन्दमें भरे हुए श्रीकृष्णसहित अर्जुनने युद्धस्थलमें क्या किया? ॥ १३½ ॥

फल्गुनादि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥ १४ ॥
स हि शूरश्च कौन्तेयः क्षिप्रकारी धनंजयः।
मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां प्रमथिष्यति ॥ १५ ॥

तात! अर्जुनसे मुझे अधिक भय बना रहता है और यह भय कभी शान्त नहीं होता; क्योंकि कुन्तीनन्दन अर्जुन शूरवीर तथा शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला है। मैं समझता हूँ कि वह अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंके शरीरोंको मथ डालेगा ॥ १४-१५ ॥

ऐन्द्रिरिन्द्रानुजसमो महेन्द्रसदृशो बले।
अमोघक्रोधसंकल्पो दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥ १६ ॥

इन्द्रकुमार अर्जुन भगवान् विष्णुके समान पराक्रमी और महेन्द्रके समान बलवान् हैं। उनका क्रोध और संकल्प कभी व्यर्थ नहीं होता। उन्हें देखकर तुमलोगोंके मनमें क्या विचार उठा था? ॥ १६ ॥

तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः।
इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन् समितिंजयः ॥ १७ ॥
वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः।
स हस्तावापरुग्णेषुर्घोषं चक्रे महारथः ॥ १८ ॥

अर्जुन वेदज्ञ, शूरवीर, अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, इन्द्रास्त्रका ज्ञाता, अमेय आत्मबलसे सम्पन्न, वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाला और संग्राममें सदा विजय पानेवाला है। वह इस पृथ्वीपर अमोघ अस्त्रोंका प्रयोग करता है, जिनका स्पर्श वज्रके समान कठोर है। महारथी अर्जुन अपने हाथमें सदा तलवार खींचे ही रहता है और उसका प्रहार बड़ा भयंकर होता है ॥ १७-१८ ॥

स संजय महाप्राज्ञो द्रुपदस्यात्मजो बली।
धृष्टद्युम्नः किमकरोद् भीष्मे युधि निपातिते ॥ १९ ॥

संजय! द्रुपदके परम बुद्धिमान् पुत्र बलवान् धृष्टद्युम्नने युद्धमें भीष्मके मारे जानेपर क्या किया? ॥ १९ ॥

पुरा धर्षणदुःखेन वधेन च चमूपतेः।
मन्ये मया समाना[illegible] पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २० ॥

पहले भी कौरवोंद्वारा पाण्डवोंका अपमान हुआ है उसका तथा सेनापतिके वधसे महामना पाण्डवोंके हृदयकी आग भी अब जगी होगी, यह मेरा विश्वास है ॥ २० ॥

तेषां क्रोधं विनिर्वाच्य भयं मे तु न विद्यते न च।
न शान्तिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि।
कथं चाभूद् महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व संजय ॥ २१ ॥

दुर्योधनके कारण पाण्डवोंके मनमें जो क्रोध है, उसका चिन्तन करके मुझे न तो दिनमें शान्ति मिलती है न रातमें ही। संजय! वह महायुद्ध किस प्रकार हुआ? यह सब मुझे बताओ ॥ २१ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवापनयो महान्।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ २२ ॥

संजयने कहा—राजन्! स्थिर होकर सुनिये। इस युद्धमें होनेवाले सारे महान् अन्याय आपके ही हैं। इनका सारा दोष आप दुर्योधनपर ही नहीं मढ़ना चाहिये ॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृगयं नृप।
नद्यामग्नौ गृहे दीप्ते कूपस्य खननं तथा ॥ २३ ॥

जैसे पानीके बह निकल जानेपर पुल बाँधनेका प्रयास किया जाय अथवा घरमें आग लग जानेपर उसे बुझानेके लिये कुआँ खोदनेकी चेष्टा की जाय, उसी प्रकार आपकी यह समझ है ॥ २३ ॥

वृत्ते पूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे।
तावकानां परेषां च पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २४ ॥

उस भयंकर दिनके पूर्वभागका अधिकांश व्यतीत हो जानेपर आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें पुनः युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २४ ॥

द्रोणेन तु निरुद्धस्तु चक्षुर्विराटस्य चमूपतिम् ।
कृतवर्मा न सहितः शल्यमवारयत् ॥ २८ ॥
यद्धु कोपात् प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव ।

विराटके सेनापति श्वेतको द्रोणने और कृतवर्मा ... की इच्छाके साथ रथपर बैठा हुआ देख पड़ा क्रोधसे जल उठा, मानो अग्निमें घीकी आहुति पड़ गयी हो ॥ २८ ॥

स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ २९ ॥
सम्यगास्थाय समरे शालः मत्ताधिप युधि ।

उस समय तीन इन्द्रधनुषके समान अपने विशाल धनुषको तानकर बलवान् महारथ श्वेतने सबसे पहले मद्रराज शल्यको उत्तर दिया ॥ २९ ॥

महता रथवंशेन समन्तात् परिवारितः ॥ ३० ॥
सृजन् बाणमयं वर्षं मत्ताधिपस्य प्रति ।

विराटके सेनापति द्वारा नर श्रेष्ठ श्वेत विशाल रथसमूहसे घिरे हुए मद्रराज शल्यपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ ३१ ॥
तावकास्तत्र सहिताः शल्यमावव्रुः ।
मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ २९ ॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले श्वेतको आता देख आपके पुत्र शल्यकी रक्षाके लिये उसके पास जा पहुँचे, मानो वे मृत्युके दाढ़ोंमें पड़ गये हों ॥ २८-२९ ॥

बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः ।
तथा रुक्मरथो राजन् पुत्रः शल्यस्य मारिष ॥ ३० ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ३१ ॥

राजन्! उस समय आपके पक्षके योद्धा—कोसलनरेश बृहद्बल, मगधदेशीय जयत्सेन, राजा शल्यका प्रतापी पुत्र रुक्मरथ, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण तथा बृहत्क्षत्रके पुत्र सिन्धुराज जयद्रथ ॥ ३०-३१ ॥

नानाधातुविचित्राणि कार्मुकाणि महात्मनाम् ।
विस्फारितान्यदृश्यन्त तोयदेष्विव विद्युतः ॥ ३२ ॥

इन महामनस्वी वीरोंके खींचे हुए अनेक धातुओंसे चित्रित धनुष बादलोंमें बिजलियोंके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ।

ते तु बाणमयं वर्षं श्वेतमूर्ध्नि न्यपातयन् ।
निदाघान्तेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम् ॥ ३३ ॥

उन सबने श्वेतके मस्तकपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें वायुद्वारा उठाये हुए मेघ पर्वतपर जल बरसा रहे हों ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः ।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ममर्द पृतनापतिः ॥ ३४ ॥

उस समय महान् धनुर्धर सेनापति श्वेतने कुपित होकर तेज किये हुए सात भल्लोंद्वारा उन सबके धनुषोंको काटकर उन्हें मसल डाला ॥ ३४ ॥

ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा ।
तालमात्रं धनुर्गृह्य श्वेतमभ्यद्रवद् रणे ॥ ३५ ॥

तदनन्तर महाबाहु भीष्मने मेघके समान गर्जना करके ताड़के बराबर धनुष लेकर श्वेतपर धावा किया ।

समुद्यम्य धनुः श्रेष्ठं महद्बाणं महाबलम् ।
अभ्यधावत पाण्डवी सेना कालमिवान्तकं भी ॥ ३६ ॥

उस समय अपने रथपर बैठे हुए श्रीभीष्मजी युद्धके लिये उद्यत होकर कालके समान भयंकर उनके आगे-आगे पाण्डवोंकी सेना भागने लगी ॥ ३६ ॥

ततोऽर्जुनः समर्ध्याशु शङ्खमध्मापयत् पुरः ।
भीष्माय प्रेषयामास तथा युद्धमभूत् ततः ॥ ३७ ॥

इसके बाद अर्जुनने शीघ्रतापूर्वक शङ्ख बजाया । उसके बाद अनेक ... भीष्मको ... पहुँचे और भीष्मजीका हाथी ... की रचना की ... युद्ध आरम्भ हुआ ॥

तद्युद्धमभवत् घोरं महान्तं योधानां युधि दुर्जयम् ।
तेजस्तेजसि सम्पृक्तमित्येव विस्मये ययुः ॥ ३८ ॥

उस समय दोनों दलोंके योद्धाओंमें बड़ा भारी महान् घोर युद्ध हुआ । तेजसे तेज टकरा रहा है यह सोचकर सब लोग बड़े विस्मयमें पड़ गये ॥ ३८ ॥

अथ शल्यो ... महारथान् ।
शङ्खस्य ... ॥ ३९ ॥

उस समय राजा शल्यने रथमें बैठे सब वीरोंको ... पाण्डुपुत्र ... भाग गये ॥ ३९ ॥

स हताश्वाद् रथात् तूर्णं ... विद्रुत ।
शैक्यस्य च रथं प्राप्य पुत्र शाल्विमधिष्ठितम् ॥ ४० ॥

उन्होंने घोड़ोंके मारे जानेपर रथसे कूदकर ... उसके पास पहुँच गये ... तथा पुत्र शाल्वके रथपर जा बैठे ॥ ४० ॥

ततो भीष्मरथात् तूर्णमुत्पतन्ति पतत्रिणः ।
वैवस्वतिश्च मूर्धानि सर्वतः समवाकिरन् ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् भीष्मके रथसे ... पंखयुक्त बाण शीघ्रतापूर्वक उड़ने लगे, जिन्होंने उनके और आकाश सबको आच्छादित कर दिया ॥ ४१ ॥

पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च महारथान् ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः ॥ ४२ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीष्म पाञ्चाल, मत्स्य, केकय तथा प्रभद्रक वीरोंको अपने बाणोंसे मार-मारकर गिराने लगे ॥ ४२ ॥

उत्कृत्य समरे राजन् पाण्डवान् सव्यसाचिनम् ।
अभ्यद्रवत पाञ्चाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम् ॥ ४३ ॥
प्रिय सम्बन्धिनं राजञ्छरानवकिरन् बहून् ।

राजन् ! भीष्मने समरभूमिमें मत्स्यराज विराटको छोड़कर सेनासे घिरे हुए पाञ्चालराज द्रुपदपर धावा किया और अपने प्रिय सम्बन्धीपर बहुतसे बाणोंकी वर्षा की ॥ ४३½ ॥

अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥ ४४ ॥
शराग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह ।

जैसे शीतऋतु बीत जानेपर वनमें लगे हुए दावानलसे वन दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार द्रुपदकी सारी सेनाएँ भीष्मके बाणोंसे दग्ध दिखायी देने लगीं ॥ ४४½ ॥

अत्यतिष्ठद् रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ४० ॥
मध्यंदिने यथाऽऽदित्यं तपन्तमिव भास्करम् ।
न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुम् ॥ ४६ ॥

उस समय भीष्म रणभूमिमें धूमरहित अग्निके समान खड़े थे। जैसे दुपहरीमें अपने तेजसे तपते हुए सूर्यकी ओर देखना कठिन है, उसी प्रकार पाण्डवसेनाके सैनिक भीष्मकी ओर दृष्टिपात करनेमें भी असमर्थ हो गये ॥ ४५-४६ ॥

वीक्षाञ्चक्रुः समन्तात् ते पाण्डवा भयपीडिताः ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥ ४७ ॥

पाण्डव योद्धा भयसे पीड़ित हो सब ओर देखने लगे, परंतु सर्दीसे पीड़ित हुई गौओंकी भाँति उन्हें अपना कोई रक्षक नहीं मिला ॥ ४७ ॥

सा तु यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरपीडिता ।
सिंहेनेव विनिर्भिन्ना दुद्रुवुर्गौरिव गोपते ॥ ४८ ॥

गङ्गानन्दन भीष्मके बाणोंसे पीड़ित हुई युधिष्ठिरकी (सेना विच्छिन्न-विध्वस्त) सिंहके द्वारा भगायी हुई गौओंके समान व्याकुल होने लगी ॥ ४८ ॥

हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते ।
हाहाकारो महानासीत् पाण्डुसैन्येषु भारत ॥ ४९ ॥

भारत ! पाण्डव-सेनाके सैनिक बहुतसे मार गये, बहुत-से भाग गये, कितने ही घायल हो गये और कितने ही उत्साहशून्य हो गये। इस प्रकार पाण्डवसेनामें बड़ा हाहाकार मच गया था ॥ ४९ ॥

ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ५० ॥

उस समय शान्तनुनन्दन भीष्म अपने धनुषको खींचकर गोल बना रहे थे और उससे विषैले सर्पोंकी भाँति भयंकर प्रज्वलित अग्रभागवाले बाणोंकी निरन्तर वर्षा करते थे ॥ ५० ॥

शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्यादिश्य भारत ॥ ५१ ॥

भारत ! नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले भीष्म सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंका जाल-सा फैलाकर पाण्डव रथियोंको चुन-चुनकर उनका नाम ले-लेकर मारते थे ॥ ५१ ॥

ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः ।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन ॥ ५२ ॥

इस प्रकार सारी सेना मथित हो उसका व्यूह भंग हो गया और सूर्य अस्ताचलको चले गये। उस समय अँधेरेमें कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ ५२ ॥

भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे ।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ५३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस महान् युद्धमें भीष्मका वेग अधिकाधिक प्रचण्ड होता जा रहा था। यह देख कुन्तीके पुत्रोंने अपनी सेनाओंको युद्धभूमिसे पीछे हटा लिया ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि प्रथमयुद्धदिवसावहारे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें प्रथम दिनके युद्धमें सेनाका शिविरको लौटनाविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरकी चिन्ता, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा आश्वासन, धृष्टद्युम्नका उत्साह तथा द्वितीय दिनके युद्धके लिये क्रौञ्चारुणव्यूहका निर्माण

सञ्जय उवाच

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ ।
भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥ १ ॥
धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः ॥ २ ॥
शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीद् राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥

सञ्जय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! प्रथम दिनके युद्धके बाद पाण्डव-सेना पीछे हटा दी गयी, भीष्मजीका युद्धविषयक उत्साह बढ़ता ही गया और दुर्योधन हर्षातिरेकसे उल्लसित

है उस समय अत्यन्त दुःखित हुए युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों और सम्पूर्ण राजाओंके साथ तुरंत भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और अत्यन्त शोकमें मग्न हो भीष्मका पराक्रम देखकर अपनी पराजयके लिये चिन्ता करते हुए भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले— ॥ ३ ॥

कृष्ण पश्य महेष्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवानलम्॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण! देखिये, महान् धनुर्धर और भयंकर पराक्रमी भीष्म अपने बाणोंद्वारा मेरी सेनाको उसी प्रकार दग्ध कर रहे हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें बढ़ी हुई आग घास-फूसको जलाकर भस्म कर डालती है ॥ ४ ॥

कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम्।
लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवानलम्॥ ५ ॥

जैसे अग्निदेव प्रज्वलित होकर हविष्यकी आहुति ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार ये महामना भीष्म अपनी बाणरूपी जिह्वासे मेरी सेनाको चाटते जा रहे हैं। हमलोग कैसे इनकी ओर देख सकेंगे—किस प्रकार इनका सामना कर सकेंगे? ॥ ५ ॥

एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम्।
दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम्॥ ६ ॥

धनुष लिये हुए इन महाबली पुरुषसिंह भीष्मको देखकर और समरभूमिमें इनके बाणोंसे आहत होकर मेरी सारी सेना भागने लगती है ॥ ६ ॥

शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च संयुगे।
वरुणः पाशभृद् वापि कुबेरो वा गदाधरः॥ ७ ॥
न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः।

संग्राममें कुपित हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, पाशधारी वरुण अथवा गदाधारी कुबेर भी कदाचित् जीते जा सकते हैं, परंतु महातेजस्वी महाबली भीष्मको जीतना असम्भव है ॥ ७ ॥

सोऽहमेवंगते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवः॥ ८ ॥
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद् भीष्ममासाद्य केशव।

केशव! ऐसी दशामें मैं तो अपनी बुद्धिकी दुर्बलताके कारण भीष्मसे टक्कर लेकर भीष्मरूपी अगाध जलराशिमें बिना नौकाके डूबा जा रहा हूँ ॥ ८ ॥

वनं यास्यामि वार्ष्णेय श्रेयो मे तत्र जीवितुम्॥ ९ ॥
न त्विमान् पृथिवीपालान् दातुं भीष्माय मृत्यवे।

वार्ष्णेय! अब मैं वनको चला जाऊँगा। वहीं जीवन बिताना मेरे लिये कल्याणकारी होगा। इन भूपालोंको मृत्युरूपी भीष्मकी मृत्युके मुँहमें डालनेमें कोई भलाई नहीं है ॥ ९ ॥

क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित्॥ १० ॥
यथानलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः।
विनाशायैव गच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण! महान् अस्त्रवेत्ता भीष्म मेरी सारी सेनाका संहार कर डालेंगे। जैसे पतंगे मरनेके लिये ही जलती आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार मेरे समस्त सैनिक अपने विनाशके लिये ही भीष्मके समीप जाते हैं ॥ ११ ॥

क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी।
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः॥ १२ ॥

वार्ष्णेय! राज्यके लिये पराक्रम करके मैं सब प्रकारसे क्षीण होता जा रहा हूँ। मेरे वीर भ्राता बाणोंसे पीड़ित होकर अत्यन्त कृश होते जा रहे हैं ॥ १२ ॥

मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद् राज्याद् भ्रष्टास्तथा सुखात्।
जीवितं बहु मन्येऽद्य जीवितं ह्यद्य दुर्लभम्॥ १३ ॥

ये भ्रातृस्नेहवश मेरे कारण मेरे लिये राज्य और सुखसे वञ्चित हो दुःख भोग रहे हैं। इस समय मैं इनके और अपने जीवनको ही बहुत अच्छा समझता हूँ; क्योंकि अब जीवन भी दुर्लभ है ॥ १३ ॥

जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम्।
न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव॥ १४ ॥

केशव! जीवनके शेष भागमें मैं दुष्कर तपस्या करूँगा; परंतु रणक्षेत्रमें इन मित्रोंका वध नहीं कराऊँगा ॥ १४ ॥

रथान् मे बहुसाहस्रान् दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः।
घातयत्यनिशं भीष्मः प्रवराणां प्रहारिणाम्॥ १५ ॥

महाबली भीष्म अपने दिव्य अस्त्रोंद्वारा मेरे पक्षके श्रेष्ठ प्रहार करनेवाले कई सहस्र रथियोंका निरन्तर संहार कर रहे हैं ॥ १५ ॥

किं नु कृत्वा हितं मे स्याद् ब्रूहि माधव मा चिरम्।
मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम्॥ १६ ॥

माधव! शीघ्र बताइये, क्या करनेसे मेरा हित होगा? सव्यसाची अर्जुनको तो मैं इस युद्धमें मध्यस्थ (उदासीन) के समान देख रहा हूँ ॥ १६ ॥

एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येष महाभुजः।
केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन्॥ १७ ॥

एकमात्र महाबाहु भीमसेन ही क्षत्रिय-धर्मका विचार करता हुआ केवल बाहुबलके भरोसे अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहा है ॥ १७ ॥

गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः।
करोत्यसुकरं कर्म गजाश्वरथपत्तिषु॥ १८ ॥

महामना भीमसेन उत्साहपूर्वक अपनी वीरघातिनी गदाके द्वारा रथ, घोड़े, मनुष्य और हाथियोंपर अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट कर रहा है ॥ १८ ॥

तालध्वज स्तथ कश्चु परदीन्नाथ [illegible] प्रिय
भार्गवेन युद्धेन वीर वसवानाहि
मानसोप श्रीकृष्ण तह युद्ध
युद्ध किया वह भीष्म उनको
वसु [illegible] विना

पतितःशायित् [illegible] ऽप्यवध्यम् वासुदेवश्च
निवहामलान् भीष्मेण युद्धे महामना
[illegible] आपक अर्जुन दिव्यास्त्र शस्त्र
वध महात्मा भीष्म [illegible] होत
युद्ध [illegible] उत्तम

दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य [illegible] महात्म
धक्ष्यन्ति सर्वान् सपदि [illegible] युधि
मना और [illegible]
तत्पर युद्ध [illegible]

कृष्ण भीष्म सत्यम संहितं व्यवर्धं
[illegible] नून [illegible] पराक्रम
श्रीकृष्ण भीष्म [illegible] पक्षर [illegible]
गमाओं तथ [illegible] [illegible]
उनका पराक्रम [illegible]
होगा

एवम् महाभाग पांचयत्तं महात्मनम्
भीष्म [illegible] सत्ये [illegible] धनुः यथा
[illegible]
निकालिए [illegible]
[illegible] बुला देता

तव प्रसादाद् गोविन्द पाण्डव जितशत्रुः
[illegible] [illegible]
[illegible] आदर
[illegible] वरन [illegible]

एवमुक्त्वा ततो पार्थो व्यवस्थाप्य महामना
निरपत्नमना भूत्वा [illegible]
प्रसेन्दर्भ तमसा [illegible] [illegible]
अब्रवीत् तत्र गोविन्दो [illegible] सर्वपाण्डवान्
[illegible] [illegible]
बहुत देरा ध्यान
युधिष्ठिर [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] हुए [illegible]
मा शुचो भरतश्रेष्ठ धर्मविद्यतवंसि
यस्य भ्रातर सत्यसन्धेषु धार्मिक
अहं [illegible] साल्यकिस्य महायशा

विराटद्रुपदौ वर्मी धृष्टद्युम्नश्च पाद
तम सर्वपाण्डवे राजाओ राजसत्तम
त्वत्प्रसाद् प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशाम्पते
भारत [illegible] सर्व लोक का राज तुम्हारे
[illegible]
भीमसेन नकुल धृष्टद्युम्न करनेवाला
महाबलशाली [illegible] विराट द्रुपद [illegible] धृष्टद्युम्न
[illegible] [illegible] आदर [illegible] प्रतीक्षा
[illegible]

अथ वाक्य विस्त्र हितकाम प्रिये
[illegible] धृष्टद्युम्नो महान
महारथी [illegible] आकर
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
शिखण्डी महाबाहो भीष्मस्य भ्रम कल
[illegible] सर्वे [illegible] युधिष्ठिर
[illegible] [illegible]
[illegible] भीष्म [illegible] [illegible]

एवं पुरुषा ततो राजा धृष्टद्युम्न महारथम्
अब्रवीत् समितौ तस्या वासुदेवस्य श्रृण्वत
[illegible] युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण [illegible]
[illegible] [illegible]
धृष्टद्युम्न निबोधस्व यत् त्वा वक्ष्यामि मारिष
नातिक्रम्य भव तथ वचन मम भाषितम्
[illegible] धृष्टद्युम्न [illegible] कुछ कहता
[illegible] [illegible] उल्लङ्घन
[illegible]

भवा नार्दसेनाप्य वासुदेव सम्मित
[illegible] यथा नित्य देवानामभवत् पुरा
तथा त्वमपि पाण्डवा सेनानी पुरुषर्षभ
[illegible] [illegible] श्रीकृष्ण [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो धार्मिकाणां महारथः
साधु [illegible] [illegible] महर्षिभिः
युधिष्ठिरमब्रवीत् राजा धृष्टद्युम्न महाबलम्
युधिष्ठिर [illegible] सुनकर [illegible] पाण्डव और
[illegible] धृष्टद्युम्न [illegible] [illegible] [illegible] उनके

इन वचनोंकी व्यवस्था करते हुए ... धर्मराज युधिष्ठिर पुनः महाबली धृष्टद्युम्न

स त्वं पुरुषव्याघ्र विक्रम्य जहि तान् रणे
मम ... प्रयुयोत्स्यामि आस ... शान्ति
महाविभो ... वीरेन्द्रान् ... शान्त
ये चान्ये पृथिवीपाला प्रधाना पुरुषर्षभ

पुरुषसिंह ... पराक्रम ... नाम
... भीम ... दिए ... क्रूर ... नरश्र
लड़ते ... वीर ... तथा ... स
... ... पाण्डवीरो

उद्यमान समाज् धृष्टद्युम्नो प्रभाषत
वह प्रोत्साहक पार्थ विहित धनु ... पुनः
रण भीष्म इन ... सा ... धर्म
मर्यादाय वण इमान् प्रतियात्स्याि ... पार्थिव

भाग

... ... धृष्ट ... ... फिर
... ... भाव
... द्रोणाचार्य
मिमानी

अथोत्सव ... ...युक्त मद
समुत्तम ... पार्थ ... पुरुषर्षभ
समयत्तान् ... पार्थ ... पुन ... ...

... ...
... ...
दुर्योधन ...
कुन्तीपुत्र ... ... दुर्योधन
मुद्र

व्यूह क्रौञ्चो नाम ... ...
... ... वीर्

... ... व्यूह
... ... हर
इन्द्र

... प्रतिव्यूह परमा ... ...
... राजा ... कुरुभि सह

... नाम ... ...
... ...
... ...

यथोक्त ... विष्णुप्रवाक्षता यथा
... विधिमा व्यूहमार्गविचक्षण
... सर्वसन्यानाये के ४८

जैसे बहुत ... भगवान् विष्णु ... करते हुए उसी
... ... पूर्वोक्त ... ... व्यूहरचना
... धृष्टद्युम्न बृहस्पतिजी ... ... काम
सुनकर ... नाम व्यूह निर्माण किया
... ...

आदित्यपथगः ... केतुस्तस्याद्भुतमन्तर
शासनात् पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा

... ...
... ...

... ...
... ...
... ...
... ...
... ...

... ...
... ...
बभूव ... ...

... ...
... ...
... ... उसी
... ... शोभा

... ...
... ...
... ...
... ...

... ...
... ...
... ...
... ...
... ...

... ...
... ...
... ... ५५
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...

इसके पीछे पीछे तथा निकटके स्थानमें राजा युधिष्ठिर खड़े हुए। शैनेय और धृष्टद्युम्न क्रौञ्चव्यूहके दोनों पक्षभागमें व्यवस्थित किये गये। द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु और महारथी सात्यकि तथा पिशाच, दरद, पुण्ड्र, कुण्डीविष, मारुत, धेनुक, तङ्गण, परतङ्गण, बाह्लिक, तित्तिर, चोल तथा पाण्ड्य इन जनपदोंके योद्धा दाहिने पक्षका आश्रय लेकर खड़े हुए ॥ ४८–५१½ ॥

अग्निवेश्यास्तु हुण्डाश्च मालवा दानभारयः ॥ ५२ ॥
शबरा उद्भसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ।
नकुलः सहदेवश्च वामं पार्श्वं समाश्रिताः ॥ ५३ ॥

अग्निवेश्य, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्भस और वत्स देशके योद्धा नकुलके सैनिकोंके साथ तथा नकुल और सहदेवने वाम पक्षका आश्रय लिया ॥ ५२-५३ ॥

रथानामयुतं पक्षौ शिरस्तु नियुतं तथा ।
पृष्ठमर्बुदमेवासीत् सहस्राणि च विंशतिः ॥ ५४ ॥
ग्रीवायां नियुतं चापि सहस्राणि च सप्ततिः ।

उस क्रौञ्चव्यूहके पंखभागोंमें दस हजार, सिरोभागमें एक लाख, पृष्ठभागमें एक अर्बुद बीस हजार तथा ग्रीवाभागमें एक लाख सत्तर हजार रथ मौजूद थे ॥ ५४½ ॥

पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः ॥ ५५ ॥
जग्मुः परिवृता राजन् ज्वलन्त इव पर्वताः ।

राजन्! क्रौञ्चके पक्ष, कोटि, प्रपक्ष तथा पक्षान्तभागोंमें हाथियोंके समूह जलते हुए पर्वतोंके समान चल रहे थे ॥ ५५½ ॥

जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥ ५६ ॥
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।

राजा विराट केकयराजकुमारोंके साथ उस व्यूहके जघन (कटिप्रदेश)की रक्षा करते थे। काशिराज और शैब्य भी तीस हजार रथियोंके साथ उनकी रक्षामें तत्पर थे ॥ ५६½ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥ ५७ ॥
सूर्योदयनमिच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।

भारत! इस प्रकार पाण्डव क्रौञ्च नामक महाव्यूहकी रचना करके सूर्योदयकी प्रतीक्षा करते हुए युद्धके लिये कवच आदिसे सुसज्जित हो खड़े हो गये ॥ ५७½ ॥

तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महान्ति च ।
श्वेतच्छत्राण्यशोभन्त वारणेषु रथेषु च ॥ ५८ ॥

उनके हाथियों और रथोंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशमान निर्मल एवं महान् श्वेतछत्र शोभा पा रहे थे ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौञ्चव्यूहनिर्माणे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें क्रौञ्चव्यूहनिर्माणविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ६०½ श्लोक हैं)

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कौरव-सेनाकी व्यूह रचना तथा दोनों दलोंमें शङ्खध्वनि और सिंहनाद

सञ्जय उवाच

क्रौञ्चं ततो महाव्यूहमभेद्यं तनयस्तव ।
व्यूढं दृष्ट्वा महाघोरं पार्थेनामिततेजसा ॥ १ ॥
आचार्यमुपसंगम्य कृपं शल्यं च पार्थिव ।
सौमदत्तिं विकर्णं च अश्वत्थामानमेव च ॥ २ ॥
दुःशासनादीन् भ्रातॄन् स सर्वानेव च भारत ।
अन्यांश्च सुबहून् शूरान् युद्धाय समुपागतान् ॥ ३ ॥
प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! उस अत्यन्त भयंकर अभेद्य क्रौञ्चव्यूहको अमिततेजस्वी अर्जुनके द्वारा व्यवस्थित देख कर आपका पुत्र दुर्योधन आचार्य द्रोण, कृप, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, अश्वत्थामा और दुःशासन आदि सब भाइयों तथा युद्धके लिये आये हुए अन्य बहुसंख्यक शूरवीरोंके पास जाकर उन सबका हर्ष बढ़ाता हुआ यह समयोचित वचन बोला—



१. यहाँ 'नियुत' शब्द एक लाखका वाचक लिया गया है। किन्हीं-किन्हींके मतमें 'नियुत' दस लाखको भी कहते हैं। २. इस श्लोकके ... मधुर कहते हैं। ३. ... ४. ... ५. पक्षके भीतरके छोटे-छोटे पंख।

योद्धा हैं। आप सब लोग नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगमें कुशल तथा युद्धकी कलामें निपुण हैं ॥ ३ ॥

एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः ।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः ॥ ४ ॥

अतः आप सभी महारथी हैं। आपमेंसे एक-एक योद्धा भी सेनासहित पाण्डवोंका वध करनेमें समर्थ हैं; फिर सब लोग मिलकर उन्हें परास्त करें, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ४ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ ६ ॥
संस्थानाः शूरसेनाश्च वेणिकाः कुकुरास्तथा ।
आरेवकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७ ॥
शत्रुंजयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च ।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ।
चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पाणिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः ॥ ९ ॥

भीष्मपितामहके द्वारा सुरक्षित हमारी यह सेना सब प्रकारसे अजेय है, परंतु भीमसेनके द्वारा सुरक्षित इन पाण्डवोंकी यह सेना जीतनेमें सुगम है। अतः मेरी राय है कि संस्थान, शूरसेन, वेणिक, कुकुर, आरेवक, त्रिगर्त, मद्रक तथा यवन आदि देशोंके लोग शत्रुंजय, दुःशासन, वीर विकर्ण, नन्द, उपनन्द, चित्रसेन तथा पाणिभद्रक योद्धाओंके साथ अपनी सेनाको आगे रखते हुए भीष्मजीकी ही रक्षा करें ॥ ५—९ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनवचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः ।
तथेत्येव कृपा ऊचुस्ते द्रोणमुख्यास्तमब्रुवन् ॥

संजय कहते हैं—महाराज! दुर्योधनकी यह बात सुनकर द्रोण आदि सभी महारथियों तथा राजाओंने 'तथास्तु' कहकर उनकी बात मान ली।

ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष ।
अप्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधनम् ॥ १० ॥

आर्य! तदनन्तर भीष्म, द्रोण तथा आपके पुत्रोंने मिलकर पाण्डवोंके मुकाबलेमें महान् व्यूह बनाया, जो पाण्डव-सैनिकोंको बाधा देनेमें समर्थ था ॥ १० ॥

भीष्मः सैन्येन महता समन्तात् परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन् महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥ ११ ॥

तदनन्तर बहुत बड़ी सेनासे सब ओरसे घिरे हुए भीष्म देवराज इन्द्रकी भाँति विशाल वाहिनी साथ लिये आगे-आगे चले ॥ ११ ॥

तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशाम्पते ॥ १२ ॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहितः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥ १३ ॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।

उनके पीछे प्रतापी वीर महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने युद्धके लिये प्रस्थान किया। महाराज! उस समय कुन्तल, दशार्ण, मगध, विदर्भ, मेकल तथा कर्णप्रावरण आदि देशोंके सैनिकोंके साथ गान्धार, सिन्धु, सौवीर, शिबि तथा वसाति देशोंके वीर क्षत्रिय युद्धमें शोभा पानेवाले भीष्मजीकी रक्षा करने लगे ॥ १२-१३ ॥

शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा शर्मिलकोसलैः ॥ १५ ॥
दरदैश्चूचुपैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६ ॥

शकुनि अपनी सेनाके साथ रहकर द्रोणाचार्यकी रक्षा करने लगा। तत्पश्चात् अपने भाइयोंसहित राजा दुर्योधन बड़े हर्षमें भरकर अश्वातक, विकर्ण, अम्बष्ठ, कोसल, दरद, शक, क्षुद्रक तथा मालव आदि देशोंके योद्धाओंके साथ सुबलपुत्र शकुनिकी सेनाकी रक्षा करने लगा ॥ १४—१६ ॥

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १७ ॥
सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थिताः ॥ १८ ॥

भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द—ये सब वामपार्श्वमें रहकर रक्षा कर रहे थे। सोमदत्तकुमार भूरि, सुशर्मा, काम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु तथा अच्युतायु—ये दक्षिणभागमें स्थित होकर सेनाकी रक्षा कर रहे थे ॥ १७-१८ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥

अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा सात्वतवंशी कृतवर्मा अपनी विशाल सेनाके साथ कौरवसेनाके पृष्ठभागमें खड़े होकर उसकी रक्षा करते थे ॥ १९ ॥

पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् नानादेश्या जनेश्वराः ।
केतुमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् केतुमान्, वसुदान, काशिराजकुमार अभिभू तथा अन्य अनेक देशोंके नरेश पृष्ठरक्षक थे ॥ २० ॥

ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत ।
दध्मुः शङ्खान् मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन् ॥ २१ ॥

भारत! तदनन्तर आपकी सेनाके समस्त सैनिक हर्षसे उल्लसित हो प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २१ ॥

तेषां श्रुत्वा ... ततः पुत्र कुरुपितामह
सिंहनादं विनद्यान्यं शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥

... कुरु ... पितामह ... नादी ...
भीष्मने ... ... शङ्ख बजाया ...

तत शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥

... ... नाना ...
आदि ... ... बाजे ...
शब्द ... ...

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥

... ...
भगवान् श्रीकृष्ण ... ...
... ...

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥

हृषीकेश ... ...
... भीमसेन ... ...

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥

... राजा युधिष्ठिर अनन्तविजय नामक शङ्ख ...
... ... नामक शङ्ख बजाया ...

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥

श्री ... ...
... ...

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥

... ... विराट
... ... वाले
... ... महानाद ...

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

... ...
... ...
... ...

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि कौरवपाण्डवसेनाव्यूहरचनायां ... ऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें कौरव-पाण्डवोंकी सेनाकी व्यूहरचनासे सम्बन्ध रखनेवाला ... अध्याय पूरा हुआ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीष्म और अर्जुनका युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार मेरे और शत्रुपक्षके सैनिकोंकी व्यूह-रचना हो जानेपर उन श्रेष्ठ योद्धाओंने किस प्रकार युद्ध आरम्भ किया?

संजय उवाच

समं व्यूढेष्वनीकेषु संनद्धरुचिरध्वजम् ।
अपारमिव संदृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥

तेषां मध्ये स्थितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् युध्यध्वमिति दंशिताः ॥

संजयने कहा—राजन्! आपके पुत्रोंने पाण्डवोंके ...

... ... युधिष्ठिर
... ... एक
... ...
... और ... ...
... ...
... ... दुर्योधन आप ... ... प्रकार
... ... वीरो युद्ध आरम्भ करो ...

ते मनः क्रूरमास्थाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्वं एवोच्छ्रितध्वजाः ॥

उन ... ... कठोर बनाकर प्राणोंका मोह छोड़ ... ... पाण्डवोंपर आक्रमण किया ...

ततो युद्धं समभवत् तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥

जिस समय सभी पाण्डवों और सैनिकोंमें भयंकर घमासान युद्ध होने लगा। उसमें उभय पक्षके रथ और हाथी एक दूसरेसे गुथ गये ॥ ५ ॥

सुवर्णतनुत्रा रविरश्मिभिर्भाता सकम्पपुङ्खाः सुतेजसः ।
अभिविष्टुरकुम्भाश्च नागेषु च हयेषु च ॥ ६ ॥

रविकिरणोंसे प्रकाशित हुए सुवर्णमय पंखयुक्त तेजस्वी बाण बड़ी भी कुपित न होकर हाथियों और घोड़ोंपर पड़ने लगे ॥ ६ ॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः ।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥ ७ ॥
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभितः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ९ ॥

इस प्रकार युद्ध आरम्भ हो जानेपर भयंकर पराक्रमी एवं कुरुकुलके प्रभावशाली वृद्ध पितामह महाबाहु भीष्म धनुष उठाये कवच धारण किये आगे बढ़े और अभिमन्यु, भीमसेन, महारथी सात्यकि, केकय, विराट, धृष्टद्युम्न, इन सब नरवीरोंपर और चेदि तथा मत्स्यदेशीय योद्धाओंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७—९ ॥

अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन् वीरसमागमे ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद् व्यतिकरो महान् ॥ १० ॥

वीरोंके इस समागममें व्यूह टूट गया और सभी सेनाओंका आपसमें महान् सम्मिश्रण हो गया ॥ १० ॥

सादिनो ध्वजिनश्चैव हता प्रवरवाजिनः ।
विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ११ ॥

घुड़सवार, ध्वजधारी तथा उत्तम घोड़े मारे गये। पाण्डवोंकी रथसेना भागकर तितर-बितर हो गयी ॥ ११ ॥

अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीत् क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ १२ ॥
एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥ १३ ॥

तब नरश्रेष्ठ अर्जुनने महारथी भीष्मको देखकर भगवान् श्रीकृष्णसे कुपित होकर कहा—'वार्ष्णेय! जहाँ पितामह भीष्म हैं, वहाँ चलिये। अन्यथा ये अत्यन्त कोपमें भरकर निश्चय ही मेरी सारी सेनाका विनाश कर डालेंगे; क्योंकि इस समय ये दुर्योधनके हितमें तत्पर हैं ॥ १२-१३ ॥

एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥ १४ ॥
पञ्चालान् निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।
सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन ॥ १५ ॥

जनार्दन! सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले भीष्मके द्वारा सुरक्षित हो ये द्रोण, कृप, शल्य, विकर्ण तथा दुर्योधन आदि समस्त धृतराष्ट्रपुत्र मिलकर पांचालोंका संहार कर डालेंगे। अतः सेनाकी रक्षाके लिये मैं भीष्मका वध करूँगा' ॥ १४-१५ ॥

तमब्रवीद् वासुदेवो यत्तो भव धनंजय ।
एष त्वा प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ १६ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'धनंजय! सावधान हो जाओ। अभी तुम्हें भीष्मके रथके निकट पहुँचाये देता हूँ' ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् ।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर ॥ १७ ॥

जनेश्वर! ऐसा कहकर श्रीकृष्णने उस विश्वविख्यात रथको भीष्मके रथके निकट पहुँचा दिया ॥ १७ ॥

चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥ १८ ॥
महता मेघनादेन रथेनादित्यतेजसा ।
विनिघ्नन् कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥
आयाच्छरञ्छीघ्रं सुहृदां हर्षवर्धनः ।

उस रथपर बहुत-सी पताकाएँ फहरा रही थीं। उसमें बगुलेके समान श्वेत रंगवाले घोड़े जुते हुए थे। उसके ऊपर ऊँचा ध्वज फहरा रहा था, जिसपर अत्यन्त भयंकर वानर गर्जना करता था। उस रथकी घर्घराहट मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर थी तथा उसका तेज (कान्ति) सूर्यके समान था। उस दिव्य रथपर आरूढ़ हो पाण्डुनन्दन अर्जुन कौरवसेना और शूरसेनोंका संहार करते हुए सुहृदोंका हर्ष बढ़ाते हुए शीघ्रतापूर्वक भीष्मके पास जा पहुँचे ॥ १८-१९½ ॥

तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २० ॥
त्रासयन्तं रणे शूरान् मर्दयन्तं च सायकैः ।
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः ॥ २१ ॥
सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।

मदस्रावी हाथीके समान वेगसे आते और युद्धस्थलमें शूरवीरोंको त्रास देते हुए बाणोंद्वारा उनका मर्दन करते हुए अर्जुनको आते देख जयद्रथ आदि राजाओं तथा पूर्वदेशीय, सौवीर और केकय देशके योद्धाओंसे सुरक्षित शान्तनुनन्दन भीष्म सहसा अर्जुनकी ओर बढ़े ॥ २०-२१½ ॥

को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ॥ २२ ॥
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति ।

महाराज! कुरुकुलके पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य तथा

[illegible] किया [illegible] रथी हैं जो [illegible] अर्जुनका [illegible] गये ॥ २ ॥

ततो भीष्मो महाराज [illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] समवस्थितम् ।
द्रौपदेयाः पञ्चभिः [illegible] ॥ ४ ॥
दुर्योधनस्तु [illegible] शरैः ।
[illegible] पञ्चभिः ॥ ५ ॥
[illegible] पाण्डवम् ।

[illegible] महारथी भीष्मने [illegible] अर्जुनको [illegible] ॥ ३–५ ॥

स सर्वतो महेष्वासः [illegible] शरैः ।
न [illegible] महाबाहुर्भीमसेन इवाचलः ॥ ६ ॥

इस [illegible] महाबाहु अर्जुन [illegible] नहीं हुए [illegible] ॥ ६ ॥

स भीष्मं पञ्चविंशत्या [illegible] शरैः ॥ ७ ॥
द्रोणं सप्तत्या [illegible] विशिखैः शरैः ।
[illegible] राजानं चैव पञ्चभिः ॥ ८ ॥
[illegible] किरीटी [illegible] ॥

[illegible] भीष्मको [illegible] कृपाचार्यको [illegible] दुर्योधनको [illegible] ॥ ७-८ ॥

तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च [illegible] ॥ ९ ॥

[illegible] सात्यकि, विराट, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और अभिमन्यु—इन सबने [illegible] उनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९ ॥

ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम् ।
अभ्यवर्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः ॥ १० ॥

तदनन्तर [illegible] भीष्मका प्रिय करनेमें लगे हुए महाधनुर्धर द्रोणाचार्यपर सोमकोंसहित धृष्टद्युम्नने आक्रमण किया ॥ १० ॥

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो राजन् [illegible] ॥ ११ ॥
[illegible] निशितैर्बाणैस्तस्मिन्[illegible] ॥

राजन्! उस रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने पाण्डुनन्दन अर्जुन [illegible] गर्जने लगे ॥ ११ ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सहितानां महात्मनाम् ॥ १२ ॥
प्रविव्यधुः [illegible] प्रतापवान् ।
[illegible] ॥ १३ ॥
[illegible] महात्मनाम् ।
ततः दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वर ॥ १४ ॥
पीडयमानं [illegible] पार्थेन संयुगे ।

[illegible] पुरुषसिंह अर्जुन [illegible] भीष्मसे [illegible] ॥ १२–१४ ॥

एष पाण्डुसुतस्तात [illegible] सहितो बली ॥ १५ ॥
[illegible] मूलं न [illegible] ।
त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे ॥ १६ ॥

[illegible] गङ्गानन्दन! [illegible] ॥ १५-१६ ॥

[illegible] न कुप्यति रणे पार्थो [illegible] सदा मम ॥ १७ ॥
स त्वया कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फाल्गुनः ।

[illegible] ॥ १७ ॥

एवमुक्तस्ततो राजन् पिता देवव्रतस्तव ॥ १८ ॥
धिक् [illegible] ।

[illegible] पिता भीष्म [illegible] अर्जुनपर [illegible] ॥ १८ ॥

उभौ [illegible] राजन् [illegible] ॥ १९ ॥
[illegible] शङ्खान् [illegible] सहिते ।

[illegible] उन दोनोंके [illegible] हुए [illegible] ॥ १९ ॥

द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः ॥ २० ॥
परिवार्य रणे भीष्मं [illegible] युद्धाय समास्थिताः ।

आर्य! उस समय अश्वत्थामा, दुर्योधन और आपके पुत्र विकर्ण—ये सभी महाधनुर्धर भीष्मको घेरकर युद्धके लिये खड़े थे ॥ ४६ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ ४७ ॥
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत ।

इसी प्रकार समस्त पाण्डव भी अर्जुनको सब ओरसे घेरकर महायुद्धके लिये वहाँ डटे हुए थे। फिर उनमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ ४७ ॥

गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानच्छन्नवभिः शरैः ॥ ४८ ॥
अर्जुनस्तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्मर्मभेदिभिः ।

गङ्गानन्दन भीष्मने उस रणभूमिमें नौ बाणोंसे अर्जुनको घायल कर दिया। तब अर्जुनने भी उन्हें रणमें दस मर्मभेदी बाणोंसे बींध डाला ॥ ४८ ॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ॥ ४९ ॥
अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्यावारयद् दिशः ।

तदनन्तर युद्धकी श्लाघा रखनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुनने अच्छी तरह छोड़े हुए एक हजार बाणोंद्वारा भीष्मको सब ओरसे रोक दिया ॥ ४९ ॥

शरजालं ततस्तत् तु शरजालेन पार्थिव ॥ ५० ॥
वारयामास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तदा ।

महाराज! उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मने अर्जुनके उस बाणसमूहको अपने बाणसमूहसे निवारण कर दिया ॥ ५० ॥

उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ ॥ ५१ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

वे दोनों वीर अत्यन्त हर्षमें भरकर युद्धका अभिनन्दन करनेवाले थे। दोनों ही एक-दूसरेके प्रहारका बदला चुकाना चाहते थे, अतः समानभावसे युद्ध करने लगे ॥ ५१ ॥

भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि संघशः ॥ ५२ ॥
शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः ।

भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूह अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखरे दिखायी देने लगे ॥ ५२ ॥

तथैवार्जुनमुक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥ ५३ ॥
गाङ्गेयशरनुन्नानि न्यपतन्त महीतले ।

इसी प्रकार अर्जुनके छोड़े हुए बाणसमूह गङ्गानन्दन भीष्मके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ५३ ॥

अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ ५४ ॥
भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध नवभिः शरैः ।

अर्जुनने पचीस तीखे बाणोंसे मारकर भीष्मको पीड़ित कर दिया। फिर भीष्मने भी समराङ्गणमें नौ तीखे बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध लिया ॥ ५४ ॥

अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ ॥ ५५ ॥
रथेषां रथचक्रे च चिक्रीडतुररिंदमौ ।

वे दोनों शत्रुओंका दमन करनेवाले तथा अत्यन्त बलवान् थे और एक-दूसरेके घोड़ों, ध्वजाओं, रथके ईषादण्ड तथा पहियोंको बाणोंसे बींधकर खेल-सा करने लगे ॥ ५५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ५६ ॥
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।

महाराज! तदनन्तर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीष्मने कुपित होकर तीन बाणोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ५६ ॥

भीष्मचापच्युतैस्तैस्तु निर्विद्धो मधुसूदनः ॥ ५७ ॥
विरराज रणे राजन् सपुष्प इव किंशुकः ।

राजन्! भीष्मके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंसे विद्ध होकर भगवान् मधुसूदन रणभूमिमें खिले हुए पलाशके वृक्षके समान शोभा पाने लगे ॥ ५७ ॥

ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ॥ ५८ ॥
सारथिं कुरुवृद्धस्य निर्बिभेद त्रिभिः शरैः ।

श्रीकृष्णको घायल हुआ देख अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने तीन बाणोंद्वारा कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भीष्मके सारथिको बींध डाला ॥ ५८ ॥

यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति ॥ ५९ ॥
न शक्नुतां तदान्योन्यमभिसंधातुमाहवे ।

इस प्रकार वे दोनों वीर एक-दूसरेके वधके लिये प्रयत्न कर रहे थे, परंतु युद्धमें वे परस्पर आघात (चोट पहुँचाने) में सफल न हो सके ॥ ५९ ॥

मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ ६० ॥
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात् ।

वे दोनों अपने सारथियोंकी सामर्थ्य तथा फुर्तीके कारण नाना प्रकारके विचित्र मण्डल तथा आगे बढ़ने और पीछे हटनेकी क्रियाएँ दिखाने लगे ॥ ६० ॥

अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम् ॥ ६१ ॥
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः ।

राजन्! वे दोनों एक-दूसरेपर प्रहार करनेके लिये छिद्र ढूँढ़ते हुए बार-बार पैंतरे बदलते थे ॥ ६१ ॥

उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शङ्खशब्दं च चक्रतुः ॥ ६२ ॥
तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ ।

वे दोनों महारथी सिंहनादसे मिले हुए धनुषकी टंकार करते और परस्पर बाणोंकी वर्षा करते रहे थे ॥ ५६ ॥

तयोः शब्दनिनादेन रथनेमिस्वनेन च ॥ ५७ ॥
दारिता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च

उनके शब्दोंकी ध्वनि तथा रथके पहियोंकी घरघराहटसे पृथ्वी सहसा विदीर्ण-सी होकर काँपने और आर्तनाद करने लगी ॥ ५७ ॥

नैतयोरन्तरं कश्चिद् ददृशे भरतर्षभ ॥ ५८ ॥
बलिनौ युद्धदुर्धर्षावन्योन्यसदृशावुभौ

भरतश्रेष्ठ ! ये दोनों वीर बलवान्, युद्धमें दुर्जय तथा एक-दूसरेके अनुरूप थे। अतः युद्धमें कोई भी उनमेंसे किसीका अन्तर न देख सका ॥ ५८ ॥

चिह्नमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः ॥ ५९ ॥
तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिह्नमात्रेण जज्ञिरे

उस समय कौरवोंने भीष्मको तालध्वज आदि चिह्नोंसे ही पहचाना और पाण्डवोंने भी कपिध्वज आदि चिह्नोंसे ही पार्थकी पहचान की ॥ ५९ ॥

तयोर्नृवरयोः पुत्र तादृशं वै पराक्रमम् ॥ ६० ॥
विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे

भारत ! उस समरांगणमें उन दोनों नरश्रेष्ठ पुरुषोंके ऐसे पराक्रमको देखकर सम्पूर्ण प्राणी बड़े विस्मयमें पड़ गये ॥ ६० ॥

न तयोर्विवरं कश्चिद् रणे पश्यति भारत ॥ ६१ ॥
धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद् वृजिनं क्वचित्

भरतनन्दन ! जैसे कोई धर्मनिष्ठ पुरुषमें कहीं कोई पाप नहीं देख पाता, उसी प्रकार युद्धमें उन दोनों योद्धाओंका छिद्र नहीं देख पाता था ॥ ६१ ॥

उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः ॥ ६२ ॥
प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे

दोनों ही बाणसमूहोंसे एक दूसरेको आच्छादित होकर अदृश्य हो जाते और फिर शीघ्र ही प्रकाशमें आ जाते थे ॥ ६२ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाश्चारणाश्च महर्षिभिः ॥ ६३ ॥
अन्योन्यं प्रत्यभाषन्त तयोर्दृष्ट्वा पराक्रमम्
न शक्यौ युधि संरब्धौ जेतुमेतौ कथंचन ॥ ६४ ॥
सदेवासुरगन्धर्वैर्लोकैरपि महारथौ

वहाँ आये हुए देवता, गन्धर्व, चारण और महर्षिगण उन दोनोंका पराक्रम देखकर आपसमें कहने लगे कि ये दोनों महारथी रोषमें भरे हुए हैं। अतः ये देवता, असुर और गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा भी किसी प्रकार जीते नहीं जा सकते ॥ ६३-६४ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेषु युद्धमेतन्महाद्भुतम् ॥ ६५ ॥
नैतादृशानि युद्धानि भविष्यन्ति कथंचन
न हि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ॥ ६६ ॥
सधनुश्च सरथश्च साश्वः प्रवपन् सायकान् रणे

यह अत्यन्त अद्भुत युद्ध सम्पूर्ण लोकोंके लिये आश्चर्य-जनक बना है। भविष्यमें ऐसे युद्ध होनेकी किसी प्रकार भी सम्भावना नहीं है। बुद्धिमान् पार्थ रणभूमिमें भीष्मको कदापि जीत नहीं सकते; क्योंकि वे समरभूमिमें रथ, घोड़े और धनुषबाणोंके सहित उपस्थित हो बाणोंकी वर्षा करते जा रहे हैं ॥ ६५-६६ ॥

तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ॥ ६७ ॥
न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम्
आलोकादपि युद्धं हि सममेतद् भविष्यति ॥ ६८ ॥

इसी प्रकार भीष्म भी युद्धमें देवताओंके लिये भी दुर्जय धनुर्धर पाण्डुपुत्र अर्जुनको समरमें परास्त नहीं कर सकते। ये दोनों जबतक यहाँ रहेंगे, तबतक इस लोकमें यह युद्ध समान रूपसे ही चलता रहेगा ॥ ६७-६८ ॥

इति स्म वाचोऽश्रूयन्त प्रोच्चरन्त्यस्ततस्ततः ॥
गाङ्गेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशाम्पते ॥ ६९ ॥

प्रजानाथ ! इस प्रकार रणभूमिमें भीष्म और अर्जुनकी स्तुतिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें इधर-उधर लोगोंके मुखसे निकलती और सुनायी देती थीं ॥ ६९ ॥

त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत ॥
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ७० ॥

भारत ! उस समय वहाँ उन दोनों वीरोंके पराक्रम करते समय युद्धस्थलमें आपके और पाण्डवोंके योद्धा भी एक दूसरेको मार रहे थे ॥ ७० ॥

शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः ॥
शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥ ७१ ॥
उभयोः सेनयोर्वीरा न्यकृन्तन्त परस्परम् ॥

तीखी धारवाले खड्ग, चमचमाते हुए फरसे, अन्य अनेक प्रकारके बाणों तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा दोनों सेनाओंके वीर एक दूसरेको काट रहे थे ॥ ७१ ॥

वर्तमाने तदा घोरे तस्मिन् युद्धे सुदारुणे ॥
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन् महानासीत् समागमः ॥ ७२ ॥

राजन् ! जहाँ एक ओर इस प्रकार भयानक तथा अत्यन्त दारुण युद्ध चल रहा था, वहीं दूसरी ओर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें भयंकर मुठभेड़ हो रही थी ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म और अर्जुनका युद्धविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर ७२½ श्लोक हैं)

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय

धृष्टद्युम्न तथा द्रोणाचार्यका युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चापि पार्षतः।
उभौ समीयतुर्यत्तौ तन्ममाचक्ष्व संजय॥१॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! महाधनुर्धर द्रोणाचार्य तथा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ये दोनों वीर किस प्रकार प्रयत्नपूर्वक आपसमें युद्ध करते थे, यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो।

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादपि संजय।
यत्र शान्तनवो भीष्मो नातरद् युधि पाण्डवम्॥२॥

मैं तो पुरुषार्थसे अधिक प्रबल प्रारब्धको ही मानता हूँ और इसीपर विश्वास रखता हूँ, जिसके अनुसार शान्तनुनन्दन भीष्म युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुनसे पार न पा सके॥२॥

भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्याल्लोकांश्चराचरान्।
स कथं पाण्डवं युद्धे नातरत् संजयौजसा॥३॥

संजय! भीष्म रणभूमिमें कुपित हो जायँ तो वे चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको मार सकते हैं। फिर वे अपने पराक्रमद्वारा युद्धमें पाण्डुकुमार अर्जुनसे क्यों न पार पा सके?॥३॥

संजय उवाच

शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत् सुदारुणम्।
न शक्यः पाण्डवो जेतुं देवैरपि सवासवैः॥४॥

संजयने कहा—राजन्! पाण्डवोंको तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं जीत सकते। अब आप इस अत्यन्त भयंकर युद्धका वृत्तान्त स्थिर होकर सुनिये॥४॥

द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्॥५॥

द्रोणाचार्यने अपने तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नको घायल कर दिया और उनके सारथिको भल्लके द्वारा मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया॥५॥

तस्याथ चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः।
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष॥६॥

आर्य! क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने चार उत्तम बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको भी बहुत पीड़ा दी॥६॥

धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः।
विव्याध प्रहसन् वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥७॥

तब धृष्टद्युम्नने हँसकर नब्बे पैने बाणोंसे द्रोणाचार्यको घायल कर दिया और कहा—'खड़े रहो, खड़े रहो'॥७॥

ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान्।
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम्॥८॥

तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न प्रतापी द्रोणाचार्यने पुनः अमर्षशील धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंसे ढक दिया॥८॥

आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया।
शक्राशनिसमस्पर्शं कालदण्डमिवापरम्॥९॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नका अन्त कर डालनेकी इच्छासे उन्होंने एक भयंकर बाण हाथमें लिया, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान कठोर था॥९॥

हाहाकारो महानासीत् सर्वसैन्येषु भारत।
तमिषुं संधितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे॥१०॥

भरतनन्दन! युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा उस बाणका संधान होता देख सम्पूर्ण सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया॥१०॥

तत्राद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम्।
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः॥११॥

उस समय मैंने वहाँ धृष्टद्युम्नका अद्भुत पराक्रम देखा। वह वीर समराङ्गणमें अकेला ही पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा था॥११॥

तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः।
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह॥१२॥

अपने लिये मृत्युरूप होकर आते हुए उस भयंकर तेजस्वी बाणको देखकर धृष्टद्युम्नने उसको काट गिराया और द्रोणाचार्यपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥१२॥

तत उदक्रोशन् सर्वे पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
धृष्टद्युम्नेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम्॥१३॥

धृष्टद्युम्नका किया हुआ वह अत्यन्त दुष्कर कर्म देखकर पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चाल वीर हर्षसे कोलाहल कर उठे॥१३॥

ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम्।
द्रोणस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेप स पराक्रमी॥१४॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यकी मृत्यु चाहनेवाले पराक्रमी वीर धृष्टद्युम्नने उनके ऊपर सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे भूषित अत्यन्त वेगशालिनी शक्ति चलायी॥१४॥

तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम्।
त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव॥१५॥

उस सुवर्णभूषित शक्तिको सहसा आती देख द्रोणाचार्यने समरभूमिमें हँसते-हँसते उसके तीन टुकड़े कर दिये॥१५॥

शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
सर्वां शरशतैर्भित्त्वा द्रोणः प्रति जगर्ज ह ॥ १६ ॥

कौरव! अपनी शक्तिको नष्ट हुई देख प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यपर पुनः बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १६ ॥

शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १७ ॥

तब महायशस्वी द्रोणने उस बाणवर्षाका निवारण करके द्रुपदपुत्रके धनुषको बीचसे ही काट डाला ॥ १७ ॥

स छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः।
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥ १८ ॥

धनुष कट जानेपर महायशस्वी बलवान् वीर धृष्टद्युम्नने समरभूमिमें द्रोणाचार्यपर लोहेकी बनी हुई एक भारी गदा चलायी ॥ १८ ॥

सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद् द्रोणजिघांसया।
तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य विक्रमम् ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्यको मार डालनेकी इच्छासे वेगपूर्वक छोड़ी हुई वह गदा बड़े वेगसे चली; परंतु वहाँ हमलोगोंने उस समय द्रोणाचार्यका अद्भुत पराक्रम देखा ॥ १९ ॥

लाघवाद् व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम्।
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम् ॥ २० ॥
भल्लान् सुनिशितान् पीतान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २१ ॥

उन्होंने बड़ी फुर्तीसे उस स्वर्णभूषित गदाको व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार उस गदाको निष्फल करके द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नपर सुवर्णमय पंखोंसे युक्त अत्यन्त तीखे भल्ल चलाये; वे भल्ल धृष्टद्युम्नका कवच छेदकर उसका रक्त पीने लगे ॥ २०-२१ ॥

अथान्यद् धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महामनाः।
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२ ॥

तब महामना धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर युद्धमें पराक्रम करके पाँच बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ।
वसन्तसमये राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २३ ॥

राजन्! उस समय वे दोनों नरश्रेष्ठ लहूलुहान होकर वसन्त ऋतुमें खिले हुए दो पलाश वृक्षोंकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ २३ ॥

अमर्षितस्ततो राजन् पराक्रम्य चमूमुखे।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २४ ॥

राजन्! तब उस सेनाके अग्रभागमें क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने पराक्रम प्रकट करते हुए पुनः धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया ॥ २४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः सन्नतपर्वभिः।
अभ्यवर्षदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाचलम् ॥ २५ ॥

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने जिसका धनुष कट गया था, उस धृष्टद्युम्नपर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो मेघ किसी पर्वतपर जलकी बूँदें बरसा रहा हो ॥ २५ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च।
ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथाच्छिनत् ॥ २७ ॥

साथ ही उन्होंने भल्ल मारकर धृष्टद्युम्नके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया और चार तीखे बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको भी मार गिराया। फिर वे समराङ्गणमें जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने दूसरा भल्ल मारकर उसके हाथसे छूटे धनुषको भी काट डाला ॥ २६-२७ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवारोहत् ख्यापयन् पौरुषं महत् ॥ २८ ॥
तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥

इस प्रकार धनुष कट जाने और घोड़े तथा सारथिके मारे जानेपर रथहीन धृष्टद्युम्न हाथमें गदा लेकर उतरने लगा। भारत! इसलिये कि वह अपने महान् पौरुषका परिचय दे सके; परंतु द्रोणाचार्यने तुरंत ही बाण मारकर रथसे उतरने के पहले ही उसकी गदाको भी गिरा दिया। यह एक अद्भुत सी घटना हुई ॥ २८-२९ ॥

ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत्।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ ३० ॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकाङ्क्षया।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर सुन्दर भुजाओंवाले बलवान् वीर धृष्टद्युम्नने चमकीली सौ चन्द्राकार फूलियोंसे युक्त तेजस्वी और विशाल ढाल तथा दिव्य एवं विशाल खड्ग हाथमें लेकर द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे उनके ऊपर वेगपूर्वक आक्रमण किया, ठीक उसी तरह, जैसे मांसका अभिलाषी सिंह वनमें किसी मतवाले हाथीपर धावा करता है ॥ ३०-३१ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम्।
लाघवं चास्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥ ३२ ॥

भारत! उस समय हमने वहाँ द्रोणाचार्यका अद्भुत पुरुषार्थ, अस्त्रप्रयोग, बाहुबल तथा फुर्ती देखा ॥ ३२ ॥

यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम्।
न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ ३३ ॥

उन्होंने अपने बाणोंकी वर्षासे द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको बहुत आगे बढ़नेसे रोक दिया। अतः वे पाण्डव सेनाके मध्य युद्धमें द्रोणाचार्यके पासतक न पहुँच सके ॥ ३४ ॥

निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः।
स्वबाहुबलमास्थायाक्षिपत् द्रुतहस्तवान् ॥ ३५ ॥

द्रोणाचार्यके रोके गये महारथी धृष्टद्युम्न सिंहके समान पुरुषकी भाँति अपनी भुजाओंके बलका आश्रय ले शत्रुओंका विनाश करने लगे ॥ ३५ ॥

ततो भीमो महाबाहुः सहसाभ्येत्य पार्षतम्।
साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ ३६ ॥

तब पाण्डुनन्दन वीर महाबाहु भीम सहसा समरमें महामना धृष्टद्युम्नकी सहायता करनेके लिये आ पहुँचे ॥ ३६ ॥

स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन् विव्याध सप्तभिः।
पावकार्कसमप्रख्यैः सायकैस्तु महारथः ॥ ३७ ॥

राजन्! उन्होंने सात पैने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया और धृष्टद्युम्नको अपने रथपर बिठा लिया ॥ ३७ ॥

ततो दुर्योधनो राजन् भानुमन्तमचोदयत्।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ ३८ ॥

महाराज! तब दुर्योधनने विशाल सेनासे युक्त भानुमान्‌को द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये प्रेरित किया ॥ ३८ ॥

ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर।
भानुमन्तं पुरस्कृत्य भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३९ ॥

जनेश्वर! तब कलिङ्गोंकी वह विशाल सेना भानुमान्‌को आगे करके भीमसेनपर टूट पड़ी ॥ ३९ ॥

पाञ्चाल्यमथ संत्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥ ४० ॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्नको छोड़कर युद्धस्थलमें विराट और द्रुपद इन दोनों बूढ़े नरेशोंको आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ४० ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात्।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ४१ ॥
कलिङ्गानां च समरे भीमस्य च महात्मनः।
जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयानकम् ॥ ४२ ॥

उधर धृष्टद्युम्न भी उस समराङ्गणमें धर्मराज युधिष्ठिरके पास जा पहुँचे। तत्पश्चात् युद्धभूमिमें कलिङ्गदेशीय योद्धाओं तथा महामना भीमसेनका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ, जो सम्पूर्ण जगत्‌का विनाश करनेवाला, घोर रूपधारी एवं भयानक था ॥ ४१-४२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृष्टद्युम्नदुर्योधनयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें धृष्टद्युम्न और दुर्योधनका युद्धविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्याय

भीमसेनका कलिङ्गों और निषादोंसे युद्ध, भीमसेनके द्वारा शक्रदेव, भानुमान् और केतुमान्‌का वध तथा उनके बहुत-से सैनिकोंका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रतिसमादिष्टः कलिङ्गो वाहिनीपतिः।
कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! दुर्योधनकी आज्ञा पाकर सेनापति कलिङ्गराजने अद्भुत पराक्रमी महाबली भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया? ॥ १ ॥

चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवान्तकम्।
योधयामास समरे कलिङ्गः सह सेनया ॥ २ ॥

भीमसेन गदा लेकर युद्धभूमिमें विचरते हैं, उस समय वे दण्डधारी यमराजके समान जान पड़ते हैं। उनके साथ सेनासहित कलिङ्गराजने किस प्रकार युद्ध किया? ॥ २ ॥

संजय उवाच

पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः।
महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद् भीमरथं प्रति ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजेन्द्र! आपके पुत्रकी आज्ञा पाकर अपनी विशाल सेनासे सुरक्षित हो महाबली कलिङ्गराज भीमसेनके रथकी ओर बढ़ा ॥ ३ ॥

तामापतन्तीं महतीं कलिङ्गानां महाचमूम्।
रथनागाश्वकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥ ४ ॥
भीमसेनः कलिङ्गानामार्च्छद् भारत वाहिनीम्।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः ॥ ५ ॥

भारत! रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे भरी हुई कलिङ्गोंकी उस विशाल वाहिनीको हाथोंमें बड़े-बड़े आयुध लिये आती देख भीमसेनने चेदिदेशीय सैनिकोंके साथ भीमसेनने उसे बाणोंद्वारा पीड़ित करना आरम्भ किया। साथ ही युद्धके लिये आते हुए निषादराजकुमार केतुमान्‌पर भी चोट पहुँचायी ॥ ४-५ ॥

ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राजा केतुमता सह।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु॥

तब राजा श्रुतायुने क्रोधमें भरकर केतुमान्के साथ रणक्षेत्रमें भीमसेनके पास आया। उस समय चेदिदेशीय सैनिकोंने सेनाका व्यूह बनाकर ही खड़े थे।

रथैरनेकसाहस्रैः कलिङ्गानां जनाधिप।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान्।
भीमसेनं रणे राजन् समन्तात् पर्यवारयत्॥

राजन्! कलिङ्गोंके कई सहस्र रथों और दस हजार हाथियोंके साथ निषादोंसहित केतुमान्ने उस रणक्षेत्रमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया।

चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपदानुगाः।
अभ्यवर्तन्त सहसा निषादान् सह राजभिः॥
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम्।

तब भीमसेनके पदचिह्नोंपर चलनेवाले चेदि, मत्स्य तथा करूषदेशके क्षत्रियोंने समरभूमिमें निषादों एवं उनके राजाओंपर आक्रमण किया। फिर दोनों दलोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा।

प्रजानन्त योधाः स्वान् परस्परजिघांसया।
घोरमासीत् ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः।
यथेन्द्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया॥

महाराज! जैसे एक इन्द्रका भारी दानवसेनाके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार भीमसेनका शत्रुओंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। उस समय योद्धा एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे अपने-परायेको नहीं पहचान पाते थे।

तस्य सैन्यस्य संग्रामे युध्यमानस्य भारत।
बभूव सुमहाञ्शब्दः सागरस्येव गर्जतः॥

भारत! समरभूमिमें युद्ध करती हुई कलिङ्ग-सेनाका महान् कोलाहल समुद्रकी गर्जनाके समान हो रहा था।

अन्योन्यस्य तदा योधा निकृन्तन्तो विशाम्पते।
महीं चक्रुश्चितां सर्वां शशलोहितसंनिभाम्॥

राजन्! उस समय सब योद्धाओंने छिन्न-भिन्न होकर परस्पर एक-दूसरेको काटते हुए वहाँकी सारी भूमिको अपनी रक्तरंजित लाशोंसे पाट दिया। वह भूमि खरगोशके रक्तकी भाँति लाल दिखायी देने लगी।

योधांश्च स्वान् परांश्चापि नाभ्यजानन् जिघांसया।
स्वानप्याददते स्वाश्च शूराः समरदुर्जयाः॥

परम दुर्जय शूरवीर सैनिक शत्रुओंको मार डालनेकी अभिलाषासे अपने और परायेको नहीं जान पाते थे। अपने ही पक्षके वीर अपने ही सैनिकोंको मारने लगते थे।

विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह।
कलिङ्गैः सह चेदीनां निषादैश्च विशाम्पते॥

राजन्! इस प्रकार यहाँ थोड़े-से चेदि सैनिकोंका बहुसंख्यक कलिङ्गों और निषादोंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ।

कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः।
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः॥

महाबली चेदि सैनिक यथाशक्ति पुरुषार्थ प्रकट करके भीमसेनको छोड़कर भाग चले।

सर्वैः कलिङ्गैरासन्नः संनिवृत्तेषु चेदिषु।
स्वबाहुबलमास्थाय न न्यवर्तत पाण्डवः॥
न चचाल रथोपस्थाद् भीमसेनो महाबलः।

चेदिदेशीय सैनिकोंके पलायन कर जानेपर समस्त कलिङ्गोंसे घिरे हुए भी महाबली पाण्डुनन्दन भीमसेन अपने बाहुबलका भरोसा करके पीछे नहीं लौटे और रथके बैठनेके स्थानसे विचलित हुए बिना ही

शितैरवाकिरद् बाणैः कलिङ्गानां वरूथिनीम्।
कलिङ्गस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः।
शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः॥

कलिङ्गसेनापर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे। महाधनुर्धर कलिङ्गराज और उसका महारथी पुत्र शक्रदेव दोनों पाण्डुनन्दन भीमसेनपर बाणोंका प्रहार करने लगे।

ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन् रुचिरं धनुः।
योधयामास कालिङ्गान् स्वबाहुबलमाश्रितः॥

तब महाबाहु भीम अपने बाहुबलका आश्रय लेकर सुन्दर धनुषको कम्पित करते हुए कलिङ्गोंके साथ युद्ध करने लगे।

शक्रदेवस्तु समरे विसृजन् सायकान् बहून्।
अश्वाञ्जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः॥

शक्रदेवने समरभूमिमें बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए उन बाणोंद्वारा भीमसेनके घोड़ोंको मार डाला।

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् भीमसेनमरिंदमम्।
शक्रदेवोऽभिदुद्राव तप्तैश्च निशितैः शरैः॥

शत्रुदमन भीमसेनके घोड़े मारे गये, तो भी वे रथपर ही खड़े रहे। यह देखकर शक्रदेव तीखे बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनकी ओर दौड़ा।

भीमस्योपरि राजेन्द्र शक्रदेवो महाबलः।
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा॥

राजेन्द्र! जैसे वर्षाऋतुमें बादल पानीकी बूँद

बरसाता है उसी प्रकार महाबली शक्रदेव भीमसेनके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ २२ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् भीमसेनो महाबलः ॥ २३ ॥
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।

जिसके घोड़े मार गये थे, उसी रथपर खड़े रहकर महाबली भीमसेनने शक्रदेवको लक्ष्य करके लोहेकी बनी हुई अपनी भारी गदा चलायी ॥ २३ ॥

स तया निहतो राजन् कलिङ्गस्य सुतो रथात् ॥ २४ ॥
सध्वजः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ।

राजन्! उस गदाकी चोट खाकर कलिङ्गराजकुमार प्राणशून्य हो अपने सारथि और ध्वजके साथ ही रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥

हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कलिङ्गानां जनाधिपः ॥ २५ ॥
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद् दिशः ।

अपने पुत्रको मारा गया देख कलिङ्गराजने कई हजार रथोंद्वारा भीमसेनकी सम्पूर्ण दिशाओंको रोक लिया ॥ २५ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्गुर्वी त्यक्त्वा महागदाम् ॥ २६ ॥
निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षुः कर्म दारुणम् ।
चर्म चाप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ।

तब महाबाहु भीमसेनने अत्यन्त भयानक कर्म करनेकी इच्छासे उस भारी और विशाल गदाको छोड़कर भयानक खड्ग हाथमें ले लिया। पुरुषरत्न नरेश्वर! साथ ही उन्होंने बैलके चमड़ेकी बनी हुई अनुपम ढाल भी हाथमें ले ली, जिसमें सोनेके बने हुए नक्षत्र और अर्धचन्द्राकार फूलियाँ जड़ी हुई थीं ॥ २६-२७ ॥

कालिङ्गस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य च ॥ २८ ॥
प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ।
प्राहिणोद् भीमसेनाय वधाकाङ्क्षी जनेश्वरः ॥ २९ ॥

इधर क्रोधमें भरे हुए कलिङ्गराजने धनुषकी प्रत्यञ्चाको रगड़कर सर्पके समान विषैला एक भयंकर बाण हाथमें लिया और भीमसेनके वधकी इच्छासे उनपर चलाया ॥ २८-२९ ॥

तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् ।
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥ ३० ॥
उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ।

राजन्! भीमसेनने अपने विशाल खड्गसे उसके वेगपूर्वक चलाये हुए तीखे बाणके दो टुकड़े कर दिये और कलिङ्गोंकी सेनाको भयभीत करते हुए हर्षसे भरकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३० ॥

कालिङ्गोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे ॥ ३१ ॥
तोमरान् प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ।

तब कलिङ्गराजने युद्धस्थलमें अत्यन्त कुपित हो भीमसेनपर तुरंत ही चौदह तोमरोंका वार किया, जिन्हें सानपर चढ़ाकर तेज किया गया था ॥ ३१ ॥

तानप्राप्तान् महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः ॥ ३२ ॥
चिच्छेद सहसा राजन्नसम्भ्रान्तो वरासिना ।

राजन्! उन तोमरोंको अभी भीमसेनतक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि महाबाहु पाण्डुकुमारने बिना किसी घबराहटके अपनी उत्तम तलवारसे सहसा उन्हें आकाशमें ही काट डाला ॥ ३२ ॥

निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान् वै चतुर्दश ॥ ३३ ॥
भानुमन्तमभिप्रैक्षत् प्राद्रवत् पुरुषर्षभः ।

इस प्रकार पुरुषरत्न भीमसेनने रणक्षेत्रमें उन चौदह तोमरोंको काटकर भानुमान्‌पर धावा किया ॥ ३३ ॥

भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण च्छादयन् ॥ ३४ ॥
ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ।

यह देख भानुमान्‌ने अपने बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको आच्छादित करके आकाशको प्रतिध्वनित करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३४ ॥

न तं स ममृषे भीमः सिंहनादं महारणे ॥ ३५ ॥
ततः स्वरेण महता विननाद महास्वनम् ।
तेन शब्देन वित्रस्ता कलिङ्गानां वरूथिनी ॥ ३६ ॥

भीमसेन उस महासमरमें भानुमान्‌की वह गर्जना न सह सके। उन्होंने और भी अधिक जोरसे सिंहके समान महागर्जना आरम्भ किया। उनकी उस गर्जनासे कलिङ्गोंकी वह विशाल वाहिनी भयभीत हो उठी ॥ ३५-३६ ॥

न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ।
ततो भीमो महाराज नदित्वा विपुलं स्वनम् ॥ ३७ ॥
सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ।
आरुरोह ततो मध्ये नागराजस्य मारिष ॥ ३८ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय कलिङ्गसेनाने भीमसेनको युद्धमें मनुष्य नहीं, देवता समझा। आर्य! तदनन्तर महाबाहु भीमसेन जोर-जोरसे गर्जना करके हाथमें तलवार लिये वेगपूर्वक उछलकर गजराजके दाँतोंपर पैर रखकर उसकी पीठपर चढ़ गये ॥ ३७-३८ ॥

ततो मुमोच कालिङ्गः शक्तिं ताञ्चाच्छिनद् द्विधा ।
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमपातयत् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर कलिङ्गराजकुमारने उनपर शक्ति चलायी, किंतु भीमसेनने उसके दो टुकड़े कर दिये और

अपने विशाल गजके [illegible] शरीरको [illegible]



सोऽन्तरायुधिनं हत्वा गजपुत्रमविक्रमम्
पुरः भारतस्य स्कन्धे [illegible] ॥ ५ ॥

इस प्रकार [illegible] होकर युद्ध करनेवाले [illegible] कुमारको [illegible] भीमसेन [illegible] अपनी [illegible] तलवारसे उस हाथीके [illegible]

छिन्नस्कन्धः स विनदन् पपात गजयूथपः
[illegible] सिन्धुवेगेन [illegible] ॥ ॥

[illegible] गजयूथपति [illegible] हुआ [illegible] भग्न होकर गिरनेवाले [illegible] स्थान [illegible] हो गया

[illegible] भारत भीमसेन
[illegible] मूर्ध्नि [illegible] ॥ ५२ ॥

[illegible] उछलकर [illegible] भीमसेन उस [illegible] नीचे [illegible] हो गये

स खड्गं [illegible] मार्गान्बहून् पातयन् गजान्
[illegible] मार्गैर्बहुभिः [illegible] ॥

फिर [illegible] और [illegible] हाथियोंको गिराते हुए अनेक मार्गोंमें विचरण करने [illegible] समय [illegible] अलातचक्रकी भाँति [illegible] दिखाया

[illegible] नागेषु रथानीकेषु [illegible]
पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन्शोणितोक्षितः ॥ ५४ ॥

[illegible] भीमसेन [illegible] हाथियों रथ और [illegible] समूहोंमें घुसकर [illegible] हाथ [illegible] हुए [illegible] और [illegible]

[illegible] भीमो [illegible] बलोत्कटः
छिन्दन्रथेभ्यो रथिनः [illegible] च महाबलः ॥ ५५ ॥

[illegible] महान् [illegible] भीमसेन शत्रुओंके [illegible] उनके शरीर और मस्तक काटते हुए बाज पक्षीकी तरह रणभूमिमें विचरने लगे [illegible]

[illegible] सपुंखं [illegible]
[illegible] शत्रुणा [illegible] ॥ ५६ ॥
[illegible]

[illegible] होकर युद्ध करनेवाले योद्धाओं और [illegible] तीखी धारवाली तलवारसे काटते हुए [illegible] और [illegible] उनके [illegible] संहार कर [illegible] दिखा दिया

[illegible] समाद्रवन् ॥ ५७ ॥
[illegible] विचरन्तं महाहवे

[illegible] हुए [illegible] और [illegible] भीमसेन [illegible] तलवार लिये [illegible] प्रकार [illegible] विचरते [illegible] देख [illegible]

[illegible] सुगामि च ॥ ५८ ॥
[illegible] बलवान् [illegible]

[illegible] रथों [illegible] और [illegible] रथियोंको भी [illegible]

भीमसेनोऽचरन् मार्गान् सुबहून् [illegible] ॥ ५९ ॥
[illegible]
[illegible] च [illegible] ॥ ॥

उस समय पाण्डुनन्दन [illegible] मार्गोंपर विचरते हुए [illegible] आविद्ध [illegible] आदि [illegible]

[illegible] महात्मा
[illegible] निपातुकः [illegible] ॥

पाण्डुनन्दन महात्मा भीमसेनके [illegible] हाथियों [illegible] हो उन [illegible] और [illegible] हुए आघातसे [illegible] धरती पर [illegible] पड़े

[illegible] आविद्ध [illegible] आकाश [illegible] उद्भ्रान्त [illegible] तलवार [illegible] नाम [illegible] सम्पात [illegible] लगाये [illegible] शत्रुओंको [illegible] [illegible]

त्रिधाप्रभग्नदशनम् भिन्नकुम्भमथापरे
विचेलुः शम्पयेवाशनि अन्यत्रापीरा मारुता ॥ ५९ ॥
भित्त्वा कुर्वा च तथा विनदन्तो महागजान्

भरतनन्दन ! कुछ गजराजोंके दाँत भी दूँतक भागमें कट गये, कुछ कुम्भस्थल फट गये और ... गये । उस अवस्थामें ... उन्होंने ... भयानक आवाज ... कुछ गजराज और अन्य ... गिर गये ... पृथ्वीपर गिर ... ।

विस्फारयामास गजान् गजान् महामात्रशिखास्म च
परिस्तोमान् विविधांश्च कल्याणांश्च ध्वजान्
महामात्रस्य ... पताका ... शस्त्राणि
तूणीरांश्च यन्त्राणि विविधानि धनूंषि च
भिन्दिपालानि शूलानि तोमराणि चाङ्कुशान्
खड्गांश्च विविधान् राजन् ... तथा
पतन्ति ... सह सर्वाणि ॥ ६० ॥

राजन् ! ... हाथी ... उन ... आर महावत ... गिर ... हाथियोंके ... पर ... हुए विचित्र ... हाथी ... कुछ ... सोनेकी मालाएँ ... हाथ और ... गजराज ... अंकुश ... अनेक प्रकारके बाण ... तोमर ... भिन्दिपाल, तोमर, अंकुश ... भूमिपर ... गये ।

हुए हैं ... ॥ ६१ ॥

क्षिप्रतयावरुध्यानीहतपादाभि ... बलम्
आसीत् भूमि समाकीर्णा पतितैः पर्वतैरिव ॥

... हाथियोंके ... कटकर ... गये ... समरभूमि ... ।

विमृद्य महतीं सेनां महारथाः महाबल
व्यधावत् ... कलिङ्गानामासाद्य ... मनुजे
तत् ... युद्धे ... तेषां च भारत

भारत ! इस प्रकार महाबली भीमसेन ... बड़े-बड़े गजराजों ... दूसरे ... विनाश ... उन्होंने ... बहुत-से ... और ... इस प्रकार भीमसेन ... मनुष्यों ... युद्ध ... घोर ... ।

... पताकानि ... ॥ ६१ ॥
परिस्तोमाथ ... महामन्त्र
... ॥ ६० ॥
... महाहवे

... महा ... ... जोत ... पीठ ... राजा ... आदि ... विचित्र ... दिखायी देते थे ।

... ॥ ६१ ॥
... कुसुमैरिव

... ... ।

... महात्म्य ... ॥ ६२ ॥
... ।

... ।

... ॥ ६३ ॥
... ।

... ।

स जघान ... कालिङ्गं ... ॥ ६४ ॥
... ।
... ॥ ६५ ॥

... ।

... ।
... ॥ ६६ ॥
... भीमसेनस्तु ... ।

... ।

... ॥ ६७ ॥
... भीमसेन ... ।

... ।

... ॥ ६८ ॥
भीमसेनमनया ... ।

उन्हें मारा देख उस समय भानुमान्‌के ... कलिङ्गराज श्रुतायु भीमसेनकी ... ओर ... ।

स्वलिङ्गश्चाभिहतस्त्रलोकाक्रान्त इव द्विपः ॥ ६९ ॥
भीमसेनं महाबाहुं ... ।

कलिङ्गराजके साथ ने आकर दो भीमसेन ... सारे गये हुए हाथीके समान ... ने पीछे आकृति पतन ... ।

कथायोधि समाहृत्य गदा ... ॥ ७० ॥
भीम सत्यहृत्याश्च रथेन समवारयत्

इन्हीं समय भीमसेनके नर्श ... मुहूर्तभरमें रथ लेकर ... भीमसेन ... उन्होंने ... सम्पूर्ण कर दिया ।

तमापतन्तं एव तूर्णं कौन्तेय ... ॥ ७१ ॥
कलिङ्गमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्

पश्चात् कुन्तीकुमार भीमसेन ... उस समय ... हो कलिङ्गराजकी ओर ... आगे ... रहा ... कहा ।

ततः श्रुतायुर्बलवान् भीमाय निशितान् शरान् ॥ ७२ ॥
प्रेषयामास सक्रुद्धो त्वरयन् पाणिलाघवात्

तब बलवान् श्रुतायुने कुपित हो अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए बड़े वेगसे बाण भीमसेनपर चलाये ।

स धर्मुकास्तोऽत्युग्रान्निर्विद्धः शितैः शरैः ॥ ७३ ॥
समाहतो महाराज कलिङ्गेन महात्मना
संचुक्रुधे भृशं भीमो दण्डाहत इवोरगः ॥ ७४ ॥

महाराज ... महात्मा कलिङ्गराजके द्वारा ... धनुष पुनः छोड़े हुए बाणोंसे ... घायल हो ... सर्प की भाँति अत्यन्त कुपित हो उठे ।

क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद् बलिनां वरः
कलिङ्गमवधीत् पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥ ७५ ॥

... भीमसेनने ... धनुष खींचकर ... सात ... बाणोंसे कलिङ्गराजको घायल कर दिया ।

क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिङ्गस्य महाबलौ
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद् यमसादनम् ॥ ७६ ॥

तदनन्तर दो क्षुर नामक बाणोंसे कलिङ्गराजके चक्ररक्षक महाबली सत्यदेव तथा सत्यको यमलोक पहुँचा दिया ।

ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद् यमसादनम् ॥ ७७ ॥

इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न भीमने तीन तीखे नाराचोंद्वारा रणक्षेत्रमें केतुमान्‌को मारकर उसे यमलोक भेज दिया ।

ततः कलिङ्गाः संक्रुद्धा भीमसेनममर्षणम्
अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ७८ ॥

तब कलिङ्गदेशी सम्पूर्ण क्षत्रियोंने कई हजार सैनिकोंके साथ ... युद्धके लिये उद्यत हो अमर्षशील भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ।

ततः शक्तिगदाखड्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः
कलिङ्गाश्च ततो राजन् भीमसेनमवाकिरन् ॥ ७९ ॥

तदनन्तर उस समय कलिङ्गयोद्धा भी ... शक्ति, गदा, खड्ग, तोमर, ऋष्टि तथा फरसोंकी वर्षा करने लगे ।

संनिवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम्
गदामादाय तरसा सम्पत्य महाबलः ॥
भीमः सप्त शतान् वीरान् नयद् यमसादनम्
पुनश्चैव द्विसाहस्रान् कलिङ्गानरिमर्दनः ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाभवत्

... उठी हुई ... बाणवर्षाको रोककर ... हाथमें गदा ले ... महाबली ... वेगसे ... पड़े और ... भीमसेनने ... सात सौ वीरोंको यमलोक ... फिर दो हजार कलिङ्गोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया । ... अद्भुत-सा प्रतीत हुई ।

एवं स तान्यनीकानि कलिङ्गानां पुनः पुनः ॥ ८२ ॥
बिभेद समरे वीरः प्रेक्ष्य भीष्मं महाव्रतम्

इस प्रकार भीमसेनने महाव्रती भीष्मको ओर देखते हुए कलिङ्गोंकी सेनाको बार-बार समरभूमिमें छिन्न-भिन्न किया ।

हतारोहाश्च मातङ्गाः पाण्डवेन कृता रणे ॥ ८३ ॥
विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥ ८४ ॥

रणभूमिमें पाण्डुनन्दन भीमने ... सवारोंके मारे जानेपर ... हाथी ... भागने लगे ... अपनी ही सेनाओंको कुचलते हुए ... बाणोंकी पीड़ासे व्याकुल हो ... करने लगे ।

ततो भीमो महाबाहुः शङ्खं दध्मौ महास्वनम्
सर्वकालिङ्गसैन्यानां मनांसि समकम्पयत् ।
मोहश्चापि कलिङ्गानामाविवेश परंतप ॥ ८६ ॥

तदनन्तर महाबली महाबाहु भीमसेनने खड्ग हाथमें लिये हुए अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े जोरसे शङ्ख बजाया ।

परंतप ! उस शङ्खनादके द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण कलिङ्गोंके हृदयमें कम्प पैदा किया और उन सबपर बड़ा भारी मोह छा गया ।

शाकटस्य च भैम्यानि पातयानि च सर्वशः ।
शौक्रिक समरे राजन् गजशृङ्गेषु सर्वशः ॥ ८७ ॥
मार्गाणि बहुल् विचरता धावता च ततस्ततः ।
मुहुर्मुहुस्ततः चैव सम्मोहः समपद्यत ॥ ८८ ॥

राजन् ! ... समरभूमिमें गजमानके समान अनेक मार्गों पर विचरते और इधर-उधर दौड़ते हुए भीमसेनको सामने उपस्थित सैनिक और पाणि पर पर काटने लगे । तब उस समय उनकी गजपर मोह छा गया ॥ ८७-८८ ॥

भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत ।
क्षोभ्यमाणमसम्बाधं ग्राहेणेव महत् सरः ॥ ८९ ॥

जैसे महान् तालाब किसी ग्राहके द्वारा मथित होकर क्षुब्ध हो उठता है, उसी प्रकार उन सारी सेना भीमसेनके भयसे ... मथित होकर भयसे व्याकुल हो काँपने लगी ॥

त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाद्भुतकर्मणा ।
पुनरावर्तमानेषु विद्रुतेषु च संकुशः ॥ ९० ॥
सर्वपाञ्चालयोधेषु पाण्डुपुत्रो ध्वजिनीपतिः ।
अब्रवीत् स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥ ९१ ॥

अद्भुतकर्म भीमसेनके द्वारा भयभीत उन दिन कौरव कलिङ्ग एवं गजमान योद्धा सब दल बनाकर भागने और भाग भागकर पुनः लौटने लगे तब पाञ्चालसेनापति द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने अपने समस्त सैनिकोंसे कहा— वीरो (उत्साहके साथ) युद्ध करो ॥ ९०-९१ ॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखण्डिप्रमुखा गणाः ।
भीममेवाभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥ ९२ ॥

सेनापतिका वचन सुनकर शिखण्डी आदि महारथी प्रहार कुशल रथियोंकी सेनाके साथ भीमसेनका ही अनुसरण करने लगे ॥ ९२ ॥

धर्मराजश्च तान् सर्वानुपजग्राह पाण्डवः ।
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥ ९३ ॥

तत्पश्चात् पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर मेघोंकी घटाके समान हाथियोंकी विशाल सेना साथ लिये पीछेसे आकर उन सबकी सहायता करने लगे ॥ ९३ ॥

एवं संचोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः ।
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषवृतः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नने अपनी सारी सेनाओंको युद्धके लिये प्रेरित करके श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षाका काम आरम्भ किया ॥ ९४ ॥

न हि पाञ्चालराजस्य लोके कश्चन विद्यते ।
भीमसात्यकयोरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥ ९५ ॥

संसारमें पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नके लिये भीम और सात्यकिको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं था जो प्राणोंसे भी बढ़कर हो ॥ ९५ ॥

सोऽपश्यच्च कलिङ्गेषु चरन्तमरिसूदनम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥ ९६ ॥

शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले वीरविनाशक द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने महाबाहु भीमसेनको कलिङ्गोंके बीच शत्रुसंहार करते देखा ॥

ननर्द बहुधा राजन् हृष्टश्चासीत् परंतपः ।
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥ ९७ ॥

राजन् ! उन्हें देखते ही परंतप धृष्टद्युम्नके हृदयमें हर्षकी सीमा न रही । वे बारंबार गर्जना करने लगे । उन्होंने समराङ्गणमें शङ्ख बजाया और सिंहनाद किया ॥ ९७ ॥

स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते ।
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥ ९८ ॥

कबूतरके समान रंगवाले घोड़ोंसे जुते हुए और सोनेसे जड़े हुए धृष्टद्युम्नके सुवर्णभूषित रथपर कचनारके वृक्षके चिह्नसे युक्त ध्वजा फहराती देख भीमसेनको बड़ा आश्वासन मिला ॥

धृष्टद्युम्नस्तु तं दृष्ट्वा कलिङ्गैः समभिद्रुतम् ।
भीमसेनममेयात्मा त्राणायाजौ समभ्ययात् ॥ ९९ ॥

कलिङ्गोंने भीमसेनपर धावा किया है यह देखकर अनन्त आत्मबलसे सम्पन्न धृष्टद्युम्न भीमसेनकी रक्षाके लिये युद्धस्थलमें उनके पास जा पहुँचे ॥ ९९ ॥

तौ दूरात् सात्यकिर्दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
कलिङ्गान् समरे वीरौ योधयन्तौ मनस्विनौ ॥ १०० ॥

उस समराङ्गणमें मनस्वी वीर धृष्टद्युम्न और भीमसेनको कलिङ्गोंके साथ युद्ध करते देखा था वे मनस्वी सात्यकि दूरसे ही उनके ... युद्ध करते लगे ॥ १०० ॥

स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः ।
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ १०१ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ पुरुषप्रवर सात्यकिने वहाँ बड़े वेगसे पहुँचकर भीमसेन और धृष्टद्युम्नके पृष्ठभागकी रक्षाका काम सँभाला ॥

स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आस्थितो रौद्रमात्मानं जघान समरे परान् ॥ १०२ ॥

उन्होंने धनुष हाथमें लेकर भयंकर पराक्रम प्रकट करते हुए अपने रौद्र स्वरूपका आश्रय ले कलिङ्गोंका वध किया । १०२ ॥

कलिङ्गप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमाम् ।
रुधिरस्यन्दिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीम् ॥ १०३ ॥

भीमसेनने वहाँ रक्तकी नदी प्रकट कर दी जो कलिङ्गोंके शरीरोंसे उत्पन्न हुई थी । उसमें मांस और शोणितकी ही कीच थी । वह नदी रक्तकी ही धारा बहा रही थी ॥ १०३ ॥

अन्तरेण कलिङ्गानां पाण्डवानां च वाहिनीम् ।
तां संततार दुष्पारां भीमसेनो महाबलः ॥ १०४ ॥

कलिङ्ग और पाण्डव-सेनाके बीचमें बहनेवाली उस दुस्तर नदीको महाबली भीमसेन अपने पराक्रमसे पार कर गये।

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप।
कालोऽयं भीमरूपेण कलिङ्गैः सह युध्यते॥

राजन्! भीमसेनको इस प्रकार आगे बढ़ते देख आपके सैनिक पुकार-पुकारकर कहने लगे—'यह साक्षात् काल भीमसेनके रूपमें प्रकट होकर कलिङ्गोंके साथ युद्ध कर रहा है'।

ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे।
अभ्ययात् त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः॥

तदनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म रणभूमिमें उस कोलाहलको सुनकर अपनी सेनाको सब ओरसे व्यूहबद्ध करके बड़ी उतावलीके साथ भीमसेनपर चढ़ आये।

तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम्॥

यह देख सुवर्णभूषित रथपर बैठे हुए भीष्मपर सात्यकि, भीमसेन तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—ये तीनों ही टूट पड़े।

परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे।
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्च्छुरञ्जसा॥

उन सब लोगोंने रणभूमिमें गङ्गानन्दन भीष्मको वेगपूर्वक घेरकर तीन-तीन भयंकर बाणोंद्वारा तत्काल ही पीड़ा पहुँचायी।

प्रत्यविध्यत तान् सर्वान् पिता देवव्रतस्तव।
यतमानान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥

उस समय आपके पितृतुल्य भीष्मने महान् युद्धके लिये प्रयत्न करनेवाले उन सभी महाधनुर्धर योद्धाओंको सीधे जानेवाले तीन-तीन बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया।

ततः शरसहस्रेण संनिवार्य महारथान्।
हयान् काञ्चनसंनाहान् भीमस्य न्यहनच्छरैः॥

तदनन्तर हजारों बाणोंकी वर्षा करके उन तीनों महारथियोंको रोककर भीष्मने भीमसेनके सुवर्णमय कवचवाले घोड़ोंको भी अपने बाणोंसे मार डाला।

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् भीमसेनः प्रतापवान्।
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति॥

अश्वोंके मारे जानेपर भी उसी रथपर खड़े हुए प्रतापी भीमसेनने भीष्मजीके रथपर बड़े वेगसे शक्ति चलायी।

अप्राप्तामेव तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव।
त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत॥

नरेश्वर! आपके पितृतुल्य भीष्मने उस शक्तिको अपने पास आनेसे पहले ही समरभूमिमें उसके तीन टुकड़े कर डाले और वह धरतीपर बिखर गयी।

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान् गदाम्।
भीमसेनो रथात् तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ॥

नरश्रेष्ठ! तब बलवान् भीमसेन शैक्यायस (लोहे)-की बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर तुरंत उस रथसे कूद पड़े।

सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया।
गाङ्गेयसारथिं तूर्णं पातयामास सायकैः॥

साथ ही सात्यकिने भीमसेनका प्रिय करनेकी इच्छासे भीष्मके सारथिको अपने बाणद्वारा मार गिराया।

भीष्मस्तु निहते तस्मिन् सारथौ रथिनां वरः।
वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात्॥

सारथिके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मको उनके वायुके समान वेगशाली घोड़े रणभूमिसे बाहर भगा ले गये।

भीमसेनस्ततो राजन्नपनीते महाव्रते।
प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन् कक्षमिवैधितः॥

राजन्! महान् व्रतधारी भीष्मके हट जानेपर भीमसेन सूखे घास-फूसको जलानेवाली प्रज्वलित अग्निके समान अपने तेजसे प्रकाशित होने लगे।

स हत्वा सर्वकालिङ्गान् सेनामध्ये व्यतिष्ठत।
नैनमभ्युत्सहन् केचित् तावका भरतर्षभ॥

वे भीमसेन सम्पूर्ण कलिङ्गोंका संहार करके सेनाके मध्यभागमें खड़े थे। भरतश्रेष्ठ! आपके पक्षके किसी भी योद्धाका साहस न हुआ कि उनका सामना करे।

धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः।
पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम्॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न उन यशस्वी भीमसेनको अपने रथपर बिठाकर सब सेनाओंके देखते-देखते दूर हटा ले गये।

सम्पूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ।
धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकिम्॥

भरतश्रेष्ठ! पाञ्चालों और मत्स्योंसे पूजित भीमसेन धृष्टद्युम्नको हृदयसे लगाकर सात्यकिसे मिले।

अब्रवीद् भीमसेनं तु सात्यकिः सत्यविक्रमः।
प्रहर्षयन् यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः॥

उस समय सत्यपराक्रमी यदुकुलसिंह सात्यकिने धृष्टद्युम्नके सामने ही भीमसेनका हर्ष बढ़ाते हुए उनसे इस प्रकार कहा—

दिष्ट्या कलिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान्।
शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः॥

वीरवर! यह सौभाग्यकी बात है कि कलिङ्गराज भानुमान्, राजकुमार केतुमान्, कलिङ्गदेशीय शक्रदेव तथा अन्य

युद्धस्थलमें कलिङ्गसैनिक आपके द्वारा युद्धमें मारे गये

छत्रध्वजपताकाभिः ... रणसंकुलम्।
महाधनुर्धरान् ... धीरयोधनिषेवितम्॥
महाव्यूहं कलिङ्गानामेकेन मृदितं त्वया।
भारत ! ... अपनी ही भुजा ... और पराक्रम
कलिङ्गोंके महान् व्यूह ... देखा
जिसमें ... हाथी और ... उसका
अधिक ... विजय ... युद्धमें विष ...
बहुतेरे ... महात्मा ... ६५
एवमुक्त्वा शिनिनप्ता भीमसेनमरिंदम।
इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीयदिवसे ... चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें दूसरे दिनके युद्धमें कलिङ्गवधविषयक
चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

रथात् रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम्॥
... दमन करनेवाले ... सात्यकि ... मौका ... रथपर
... दमन करनेवाले ... सात्यकि ... भीमसेनके रथपर ... उनका हृदयसे लगा लिया॥
ततः पुनारथमारुह्य पुनरेव महारथः।
तावकानवधीत् क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत्॥
तत्पश्चात् ... महारथी सात्यकिने पुनः अपने
रथपर ... भीमसेनका बल बढ़ाते ... आपके सैनिकोंका
संहार ...

—०००—

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अभिमन्यु और अर्जुनका पराक्रम तथा दूसरे दिनके युद्धकी समाप्ति

संजय उवाच

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये॥
द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः॥

संजय कहते हैं—भारत ! उस दिन जब पूर्वाह्णका अधिकांश बीत गया और बहुत-से रथ, हाथी, ... और ... मारे गये, तब उस समय पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अकेले ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, शल्य तथा महामनस्वी कृपाचार्य—इन तीन महारथियोंके साथ युद्ध करने लगा॥

स लोकविदितानश्वान् निजघान महाबलः।
द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः॥

महाबली पाञ्चाल-राजकुमारने दस तीखे बाणोंसे ... लोकविख्यात घोड़ोंको मार डाला॥

ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः॥

वाहनोंके मारे जानेपर अश्वत्थामा तुरंत ही शल्यके रथपर जा बैठा और वहींसे धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥

धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत।
सौभद्रोऽभ्यपतत् तूर्णं विकिरन् विशिखाञ्छितान्॥

भरतनन्दन ! धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके साथ भिड़ा हुआ देख सुभद्राकुमार अभिमन्यु भी ... तीखे बाण बिखेरता ... आ पहुँचा॥

स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभः॥

... पुरुषश्रेष्ठ अभिमन्युने शल्यको पचीस, कृपाचार्यको नौ और अश्वत्थामाको आठ बाणोंसे बींध डाला॥

आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा।
शल्यो द्वादशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः॥

... तब अश्वत्थामाने तुरंत ही एक बाणसे अभिमन्युको घायल कर दिया। तत्पश्चात् शल्यने बारह और कृपाचार्यने तीन ... बाण ...॥

लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम्।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत॥

... आपका पौत्र लक्ष्मण ... सुभद्राकुमार अभिमन्यु ... और ... उसपर ... चढ़ आया, फिर दोनोंमें युद्ध आरम्भ हो गया॥

दौर्योधनिस्तु संक्रुद्धः सौभद्रं नवभिः शरैः।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्॥

राजन् ! शत्रुओंका ... दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मणने ... कुपित हो समरभूमिमें नौ बाणोंसे अभिमन्युको बींध डाला, वह एक अद्भुत-सी बात हुई॥

अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ।
शरैः पञ्चशता राजन् क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत॥

महाराज ! महाबाहु ! यह देख शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर अभिमन्यु अत्यन्त कुपित हो उठा और अपने भाई लक्ष्मणको तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १० ॥

लक्ष्मणोऽपि पुनस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा ।
मुष्टिदेशे महाराज ततउच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ११ ॥

राजन् ! तब लक्ष्मणने भी पुनः एक बाण मारकर उसके धनुषको जहाँ मुट्ठी लगायी जाती है, वहींसे काट दिया। यह देख आपके सैनिक जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे ॥ ११ ॥

तं विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥ १२ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा विचित्र धनुष हाथमें लिया, जो अत्यन्त वेगशाली था ॥ १२ ॥

तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ १३ ॥

वे दोनों पुरुषरत्न वहाँ युद्धभूमिमें एक-दूसरेके अपराधका प्रतिकार करनेकी इच्छा रखकर युद्धमें लगे हुए थे और पैने बाणोंद्वारा एक-दूसरेको घायल कर रहे थे ॥ १३ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् ।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात् तत्र जनेश्वर ॥ १४ ॥

तब प्रजापालक राजा दुर्योधन अपने महारथी पुत्रको आपके पौत्र अभिमन्युद्वारा पीड़ित देखकर वहाँ जा पहुँचा ॥ १४ ॥

संनिवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः ।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १५ ॥

आपके पुत्र दुर्योधनके उधर लौटनेपर सभी राजाओंने विशाल रथसमूहद्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको सब ओरसे घेर लिया ॥ १५ ॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः ।
न स्म विव्यथते राजन् कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ १६ ॥

राजन् ! अभिमन्यु श्रीकृष्णके समान पराक्रमी था। वह युद्धमें दुर्जय उन शूरवीरोंसे घिर जानेपर भी व्यथित या विचलित नहीं हुआ ॥ १६ ॥

सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनंजयः ।
अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥ १७ ॥

इसी समय अर्जुन सुभद्राकुमारको वहाँ युद्धमें संलग्न देख अपने पुत्रकी रक्षाके लिये बड़े वेगसे दौड़ आये ॥ १७ ॥

ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम् ॥ १८ ॥

तब भीष्म और द्रोण आदि सभी कौरवपक्षीय नरेश रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनाओंके साथ एक साथ अर्जुनपर चढ़ आये ॥ १८ ॥

उद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथपत्तिभिः ।
दिवाकरपथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥ १९ ॥

उस समय हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धरतीकी तीव्र धूल सहसा सूर्यके मार्गतक पहुँचकर सब ओर व्याप्त दिखायी देने लगी ॥ १९ ॥

तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च ।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ २० ॥
प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ।

उस समय हजारों हाथी और सैकड़ों भूमिपाल अर्जुनके बाणोंके पथमें आकर किसी प्रकार आगे न बढ़ सके। समस्त प्राणी आर्तनाद करने लगे और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया ॥ २० ॥

कुरूणामनयस्तत्र समदृश्यत दारुणः ॥ २१ ॥
नाप्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः ।
प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शरसङ्घैः किरीटिनः ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय कौरवोंका अत्यन्त दुःखद एवं भयंकर अन्यायका परिणाम प्रत्यक्ष दिखायी देने लगा। किरीटधारी अर्जुनके बाणसमूहोंसे सब कुछ आच्छादित हो जानेके कारण आकाश, दिशा, पृथ्वी और सूर्य किसीका भी भान नहीं होता था ॥ २१-२२ ॥

सादितध्वजनागाश्च हताश्वा विरथा रथाः ।
विप्रद्रुतरथाः केचिद् दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥ २३ ॥

उस रणभूमिमें कितने ही रथ टूट गये, बहुतेरे हाथी मार डाले गये, कितने ही रथियोंके घोड़े मार डाले गये और कितने ही रथयूथपतियोंके रथ भागते दिखायी दिये ॥ २३ ॥

विरथा रथिनश्चान्ये धावमानाः समन्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः साङ्गदैर्भुजैः ॥ २४ ॥

अन्यान्य बहुत-से रथी रथहीन होकर अङ्गदभूषित भुजाओंमें आयुध धारण किये जहाँ-तहाँ चारों ओर दौड़ते देखे जाते थे ॥ २४ ॥

हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दन्तिनः ।
अर्जुनस्य भयाद् राजन् समन्ताद् विप्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥

महाराज ! अर्जुनके भयसे घुड़सवार घोड़ोंको और हाथीसवार हाथियोंको छोड़कर सब ओर भाग चले ॥ २५ ॥

रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनसायकैः ॥ २६ ॥

वहाँ समरभूमिमें नरेशगण अर्जुनके बाणोंसे कटकर रथों, हाथियों और घोड़ोंसे गिरे और गिराये जाते हुए दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ २६ ॥

सगदायुधपतान् वाहन सर्वाङ्गांश्च विशाम्पते
समासाद्य समुपीडयद् सशश्चान् सशस्त्रसजान ॥ २७ ॥
सञ्जुहाव धन्वाकस्य तत तथाकुले कृणाम
निवहत शरैकर्मैः पीड्य वसुरधारयन् ॥ ॥

प्रजानाथ अर्जुनने उस [illegible] धारण किया था उन्होंने अपने [illegible] की ऊपर उठ हुए भुजाओंको जिनमें गदा [illegible] आदि [illegible] ये काट गिराया

परिघाणां प्रतीनां मुद्गराणा च मारिष
प्रासानां भिन्दिपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे ॥ २८
परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत
वर्मणा [illegible] काञ्चनानां च भूमिप ॥
ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः
छत्राणां हेमदण्डानां तोत्राणां च भारत ॥
प्रतोदानां च [illegible] कशानां चैव मारिष
राशयः तत्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥ ३२

आय [illegible] उस रणभूमिमें गिरे हुए [illegible] सिर [illegible] प्रास भिन्दिपाल [illegible] तीखे तोमर [illegible] विभूषित छत्र [illegible] चाबुक कोड़े [illegible] ढेर के ढेर बिखरे दिखायी देते थे ।

नासीत् तत्र पुमान् कश्चित् तव सैन्यस्य भारत
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात् कथञ्चन ॥ ३३ ॥

भारत [illegible] सेनामें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था जो समरमें शूरवीर अर्जुनका सामना [illegible] किसी प्रकार आगे बढ़ सका ।

यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशाम्पते
स सङ्ख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥ ३४

प्रजानाथ युद्धभूमिमें जो जो [illegible] अर्जुनका [illegible] था उसे [illegible] दिया जाता था।

तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ ३५ ॥

तदनन्तर आपके सब योद्धा भाग और भागने लग [illegible] देख अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णने अपने श्रेष्ठ शङ्ख बजाये ।

तद् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव
अब्रवीत् समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥ ३६ ॥

कौरव-सेनाको इस प्रकार भागती देख [illegible] भूमिमें खड़े

हुए आपके [illegible] भीष्मने [illegible] आचार्य द्रोणसे मुस्कराते हुए [illegible]

एष पाण्डुसुतो वीरः कृष्णेन सहितो बली
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद् धनञ्जय ॥ ३७ ॥

यह श्रीकृष्णसहित बलवान् वीर पाण्डुकुमार अर्जुन [illegible] यह दशा [illegible] रहा है जैसी उसे करनी चाहिये।

न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथञ्चन
यथास्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ ३८ ॥

[illegible] इस समय अर्जुन [illegible] दिखायी दे रहा है

न निवर्तयितुं चापि शक्येयं महती चमूः
अन्योन्यप्रेक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३९ ॥

[illegible] नहीं लौटायी जा सकती [illegible] एक दूसरेकी देखा-देखी भागी जा रही है

एष चास्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान् प्रतिपद्यते
चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥ ४० ॥

ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के नेत्रोंकी ज्योति [illegible] मानो [illegible] गिरिराज अस्ताचल पर पहुँच रहे हैं

तत्रावहारं सम्प्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथञ्चन ॥ ४१ ॥

अतः नरश्रेष्ठ मैं [illegible] सब सैनिकोंको युद्धसे [illegible] हम सभी योद्धा थके-माँदे और डरे हुए हैं अतः इस समय [illegible] युद्ध नहीं कर [illegible]

एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम्
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥ ४२ ॥

आचार्यप्रवर द्रोणसे ऐसा कहकर महारथी भीष्मने आपके [illegible] सैनिकोंको युद्धभूमिसे लौटा लिया

ततः सूर्यास्तमयान्मान्य प्राप्ते सन्ध्यासमागमे
अवहारं प्राप्य [illegible] पुनः पुनः ॥
प्रययुः शिबिराण्येव धनञ्जययशस्कृताः
पाण्डवाश्चाप्यसंयान्त मनुजेन्द्रो महात्मना ॥)

तदनन्तर [illegible] हाथी और घोड़ोंसहित [illegible] पाण्डव [illegible] विजय पाकर बारंबार सिंहनाद करने लगे [illegible] महारथी [illegible] अर्जुनको आगे करके शिबिरकी ओर चल दिये

नत्वोऽवहारं सम्प्राप्ता तत्र तेषां च भारत ।
भरत गच्छति सूर्येऽभूत् सम्प्राप्ते च कर्मणि ॥

भारत ! इस प्रकार सूर्यके अस्ताचलको चले जाने पर सम्पूर्ण श्रेष्ठ भाइयों और पाण्डवोंकी सेनाएँ लौट आयीं ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसावहारे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें द्वितीय युद्धदिवसमें सेनाको लौटानेसे सम्बन्ध रखनेवाला पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तीसरे दिन—कौरव-पाण्डवोंकी व्यूह रचना तथा युद्धका आरम्भ

सञ्जय उवाच

प्रभातायां तु शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत ॥ १ ॥

संजयने कहा—भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब शान्तनुनन्दन भीष्मने अपनी सेनाको युद्धभूमिमें चलनेका आदेश दिया ।

गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा ।
पुत्राणां ते जयाकाङ्क्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २ ॥

उस समय कुरुकुलके पितामह शान्तनुकुमार भीष्मने आपके पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले गरुड नामक महान् व्यूहकी रचना की ।

गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव ।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३ ॥

स्वयं आपके ताऊ भीष्म उस व्यूहके अग्रभागमें चोंचके स्थानपर खड़े हुए । आचार्य द्रोण और यदुवंशी कृतवर्मा दोनों नेत्रोंके स्थानपर स्थित हुए ।

अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ ।
त्रैगर्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुतौ ॥ ४ ॥

यशस्वी वीर अश्वत्थामा और कृपाचार्य सिरोभागमें खड़े हुए । इनके साथ त्रिगर्त, केकय और वाटधान भी युद्धभूमिमें उपस्थित थे ।

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥ ५ ॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां संनिवेशिताः ।

आर्य ! भूरिश्रवा, शल, शल्य और भगदत्त ग्रीवाभागमें खड़े किये गये । इन्हींके साथ सिन्धु, सौवीर तथा पञ्चनद देशके योद्धा भी थे ।

पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥ ६ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजाश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ ७ ॥

अवन्तीके विन्द और अनुविन्द, काम्बोजोंके साथ राजा दुर्योधन पृष्ठभागमें स्थित था । महाराज ! शूरसेन योद्धा उस महाव्यूहके पुच्छभागमें खड़े थे ।

मागधाश्च कलिङ्गाश्च दाशेरकगणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ८ ॥

मगध और कलिङ्गदेशके योद्धा दाशेरकगणोंके साथ कवच धारण करके व्यूहके दाहिने पंखके स्थानमें स्थित हुए ।

कारूषाश्च विकुञ्जाश्च मुण्डाः कौण्डीवृषास्तथा ।
बृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः ॥ ९ ॥

कारूष, विकुञ्ज, मुण्ड और कुण्डीवृष आदि योद्धा राजा बृहद्बलके साथ बायें भागमें खड़े हुए ।

व्यूढं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं सव्यसाची परंतपः ।
धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे ॥ १० ॥
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहं तमतिदारुणम् ।
दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत ॥ ११ ॥

शत्रुओंको ताप देनेवाले सव्यसाची अर्जुनने कौरव सेनाकी वह व्यूहरचना देखकर युद्धभूमिमें धृष्टद्युम्नके साथ अपनी सेनाका अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाया । उसके दाहिने शिखरपर भीमसेन सुशोभित हुए ।

नानाशस्त्रौघसम्पन्नैर्नानादेश्यैर्नृपैर्वृतः ।
तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ १२ ॥

उनके साथ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न विभिन्न देशोंके नरेश भी थे । भीमसेनके पीछे ही राजा विराट और महारथी द्रुपद खड़े हुए ।

तदनन्तरमेवासीन्नीलो नीलायुधैः सह ।
नीलादनन्तरं चैव धृष्टकेतुर्महाबलः ॥ १३ ॥

उनके बाद वीर धनुर्धारी चेकितान आदि राजा खड़े थे और पीछे महाबली धृष्टकेतु खड़े हुए ॥

चेकितानश्च राजेन्द्र धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाञ्चाल्यश्च प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥
मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत।
नकुलः सहदेवश्च गजानीकेन संवृतः ॥ ९ ॥

भारत! धृष्टद्युम्न साथ तीर्थ सात्यकि आदि और शैब्य आदि वीरोंके साथ ही वे धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चाल और प्रभद्रकगण उस विशाल सेनाके मध्य भागमें युद्धके लिये खड़े हुए। हाथियोंकी सेनासे घिरे हुए महाराज युधिष्ठिर भी वहाँ थे ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः।
अभिमन्युस्ततः शूर इरावांश्च ततः परम् ॥

राजन्! तदनन्तर सात्यकि और द्रौपदीके पाँचों पुत्र थे। उनके बाद शूरवीर अभिमन्यु और अभिमन्युके बाद इरावान् थे ॥

भैमसेनिस्ततो राजन् केकयाश्च महारथाः।
ततोऽभूद् द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ॥
सर्वस्य प्रमन्ता गोप्ता ... जनार्दनः ॥

नरेश्वर! इरावानके बाद भीमसेनपुत्र घटोत्कच तथा महारथी केकय खड़े हुए। तत्पश्चात् मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्जुन उस व्यूहके वाम पार्श्वका आश्रय लेकर खड़े हुए, जिनके रक्षक सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥ १८ ॥
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षे ये च संगताः।

इस प्रकार पाण्डवोंने आपके पुत्रों तथा उनके पक्षमें आये हुए अन्यान्य भूपालोंके वधके लिये इस महाव्यूहकी रचना की ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ १९ ॥
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम्।

तदनन्तर एक दूसरेपर प्रहार करते हुए आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंका युद्ध आरम्भ हो गया, जिसमें रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये ॥

हस्त्यश्वानां रथौघानां तत्र तत्र निकाम्यते ॥ २० ॥
समुत्पतन्ति ... निपतन्ति परस्परम्।

महाराज! जहाँ-तहाँ रथों और घोड़ोंके समूह एक दूसरेपर टूटते और प्रहार करते दिखायी देते थे ॥

धावतां च रथौघानां निघ्नतां च पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः।
दिवस्पृक् नरवीराणां निघ्नतामितरेतरम्।
सम्प्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत ॥ २२ ॥

भारत! दौड़ते तथा पृथक्-पृथक् प्रहार करते हुए रथसमूहोंका ... दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित और भयंकर हो गया। आपके और पाण्डवोंके भयानक युद्धमें परस्पर आघात-प्रत्याघात करनेवाले नरवीरोंका भयानक शब्द आकाशमें व्याप्त हो रहा था ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे परस्परव्यूहरचनायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें तीसरे दिनके युद्धमें परस्पर व्यूहरचनाविषयक

... छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय

उभय पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध

सञ्जय उवाच

ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेषु परेषु च।
धनंजयो रथानीकमवधीत् तव भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भारत! आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंकी व्यूहरचना सम्पन्न हो जानेपर अर्जुनने आपके रथियोंकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥

शरैरतिरथो युद्धे पातयन् रथयूथपान्।
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ॥ २ ॥
धार्तराष्ट्रा रणे यत्नात् पाण्डवान् प्रत्ययोधयन्।

वे अतिरथी वीर अर्जुन युद्धमें अपने बाणोंद्वारा मुख्य-मुख्य रथयूथपतियोंको गिराने लगे। प्रलयकालमें कालके समान उन कुन्तीकुमार अर्जुनके द्वारा मारे जानेवाले आपके सैनिक यत्नपूर्वक पाण्डवोंके साथ युद्ध करते रहे ॥ २ ॥

प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३ ॥
एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां वरूथिनीम्।
बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चाभज्यन्त संयुगे ॥ ४ ॥

वे उज्ज्वल यशकी इच्छा रखते थे ...

निश्चय करके कि अब मृत्यु ही हमें युद्धसे निवृत्त कर सकती है एकाग्रचित्त होकर डटे हुए थे। उन्होंने युद्धमें ऐसी तत्परता दिखायी कि बार-बार पाण्डव-सेनाको तितर-बितर कर दिया।

वृत्तशिरस्त्राणमात्मानं परित्यज्य च [illegible]
पाण्डवैः कौरवैश्चैव न प्राज्ञायत किंचन

तदनन्तर उस विकट युद्धमें आघात और पुनः [illegible] करते हुए पाण्डवों तथा कौरवोंके सैनिकोंको कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था।

यथादितः रजसा भौमं छादयानं दिवाकरम्।
न दिशः प्रदिशो वापि तत्र जज्ञुः कथंचन॥

धूलसे ढकी पृथ्वी उड़ी [illegible] सूर्य [illegible] आच्छादित हो गये। दिशाओं और प्रदिशाओंका कुछ भी पता नहीं चलता था। वैसी दशामें [illegible] युद्धके [illegible] किसीपर प्रहार करें।

अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे
वर्तते स्म तदा युद्धं [illegible] **विशाम्पते॥ ७॥**

प्रजानाथ! उस रणक्षेत्रमें अनुमानसे, संकेतोंसे तथा नाम और गोत्रोंके उच्चारणसे अपने या शत्रुपक्षका निश्चय करके भयानक युद्ध हो रहा था।

न व्यूहो भिद्यते तत्र कौरवाणां कथंचन
रक्षितः सत्यसंधेन भारद्वाजेन संयुगे॥ [illegible]

सत्यप्रतिज्ञ भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यसे सुरक्षित होनेके कारण कौरवोंका व्यूह किसी प्रकार भंग न हो सका।

तथैव पाण्डवानां च रक्षितः सव्यसाचिना
नाभिद्यत महाव्यूहो भीमेन च सुरक्षितः॥ [illegible]

इसी तरह सव्यसाची अर्जुन और भीमसे सुरक्षित पाण्डवोंके महाव्यूहका भी भेदन न हो सका।

सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः।
उभयोः सेनयो राजन् व्यतिषक्तरथद्विपाः॥ [illegible]

राजन्! वहाँ सेनाके अग्रभागसे भी निकलकर व्यूह छोड़कर और [illegible] युद्ध करते थे। राजन्! दोनों सेनाओंके रथ और हाथी परस्पर भिड़ गये।

हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म महाहवे
ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च प्रासैरपि च संयुगे॥ [illegible]

उस [illegible] घुड़सवार घुड़सवारोंको चमकीली ऋष्टियों और प्रासोंद्वारा मार गिराते थे।

रथी रथिनमासाद्य शरैः कनकभूषणैः
पातयामास समरे तस्मिन्नतिभयङ्करे॥ [illegible]

[illegible] यह जगत् आगन्तुक भयंकर हो रहा था, उसमें रथी रथीको [illegible] सुवर्णभूषित बाण मार गिराता था।

गजारोहा गजारोहान् नाराचशरतोमरैः
संसक्तान् पातयामासुस्तव तेषां च सर्वशः॥ [illegible]

आपके और पाण्डवपक्षके हाथीसवार अपने विपक्षी हाथीसवारोंपर नाराच, बाण और तोमरोंका प्रहार करके उन्हें मार गिराते थे।

कश्चिदुत्पत्य समरे वरवारणमास्थितः
केशपक्षे परामृश्य जहार समरे शिरः॥

[illegible] योद्धा रणभूमिमें उछलकर बड़े-बड़े हाथियोंपर चढ़ जाता और विपक्षी योद्धाकी चोटी पकड़कर उसका सिर [illegible] लेता था।

अन्ये द्विरदरदाग्रनिर्भिन्नहृदया रणे
वमन्तश्च रुधिरं वीरा निःश्वसन्तः समन्ततः॥

दूसरे वीर पुरुष हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागसे [illegible] वक्षःस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण [illegible] और मुँहसे खून वमन करते हुए युद्धमें लंबी साँस खींच रहे थे।

कश्चित् करिविषाणस्थो वीरो रणविशारदः
प्रावेपच्छक्तिनिर्भिन्नो गजशिक्षाप्रदर्शितः॥

कोई रणविशारद वीर हाथीके दाँतोंपर सवार होकर युद्ध कर रहा था, हाथीकी शिक्षा और [illegible] दिखाता हुआ [illegible] शक्तिके आघातसे घायल हो [illegible] काँपने लगा।

पत्तिसङ्घा रणे पत्तीन् भिन्दिपालपरश्वधैः
न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः॥

हर्ष और उत्साहमें भरे हुए पैदल सैनिक एक-दूसरेका अपराध करके भिन्दिपालों और फरसोंद्वारा [illegible] शत्रुपक्षके पैदलोंको मार गिराते थे।

रथी च समरे राजन्नासाद्य गजयूथपम्
सगजं पातयामास गजी च रथिनां वरम्॥

राजन्! उस रणभूमिमें कोई रथी किसी गजयूथपतिसे भिड़ जाता और हाथीसहित उसे मार गिराता था, उसी प्रकार गजारोही भी रथियोंमें श्रेष्ठ वीरका वध कर देता था।

रथिनं च हयारोहः प्रासेन भरतर्षभ
पातयामास समरे रथी च हयसादिनम्॥

भरतश्रेष्ठ! इस संग्राममें घुड़सवार रथीको तथा रथी घुड़सवारको प्रासद्वारा मारकर धराशायी कर देता था।

पद्मानि रथिनः स्वस्थे रथी चापि पदातिनम् ।
न्यवारयत्तिसते शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि ॥ ६ ॥

दोनों ही सेनाओंमें रथ रथियोंको और रथी पैदल सैनिकोंको तीखे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा आगे बढ़नेसे रोकते थे ॥ ६ ॥

गजारोहा हयारोहान् पातयाञ्चक्रिरे तदा ।
हयारोहा गजारोहान् तद्‌द्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥

हाथीसवार घुड़सवारोंको और घुड़सवार हाथीसवारोंको मार गिराते थे। वह अद्भुत-सा प्रतीत होता था ॥ ७ ॥

गजारोहवरैश्चापि तत्र तत्र पदातयः ।
पातिता समदृश्यन्त तथापि गजयोधनैः ॥ ८ ॥

उस रणक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ गजारोहियोंद्वारा गिराये हुए पैदल और पैदलोंद्वारा गिराये हुए हाथीसवार दिखायी देते थे ॥ ८ ॥

पत्तिसङ्घा हयारोहैः सादिसङ्घाश्च पत्तिभिः ।
पात्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥

घुड़सवारोंद्वारा पैदलोंके समूह और पैदलोंद्वारा घुड़सवारोंके समूह सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें गिराये जाते हुए दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

ध्वजैस्तत्रापविद्धैश्च कार्मुकैस्तोमरैस्तथा ।
प्रासैस्तथा गदाभिश्च परिघैः कम्पनैस्तथा ॥ १० ॥
शक्तिभिः कवचैश्चित्रैः कणपैरङ्कुशैरपि ।
निस्त्रिंशैर्विमलैश्चापि स्वर्णपुङ्खैः शरैस्तथा ॥ ११ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च कम्बलैश्च महाधनैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामभिरिव चित्रिता ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ! वहाँ इधर-उधर गिरे हुए ध्वज, धनुष, तोमर, प्रास, गदा, परिघ, कम्पन, शक्ति, विचित्र कवच, कणप, अंकुश, चमचमाते हुए खड्ग, सुवर्णमय पंखवाले बाण, झूल, गद्दी और बहुमूल्य कम्बलोंद्वारा आच्छादित हुई वहाँकी भूमि मानो भाँति-भाँतिके पुष्पहारोंसे चित्रित-सी जान पड़ती थी ॥ १०—१२ ॥

नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ १३ ॥

उस महासमरमें मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंकी लाशें पड़ी हुई थीं। मांस और रक्तकी कीचड़ जम गयी थी। वहाँकी भूमिमें चलना असम्भव हो गया था ॥ १३ ॥

प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः ।
दिशश्च विमलाः सर्वाः सम्बभूवुर्जनेश्वर ॥ १४ ॥

जनेश्वर! रणभूमिमें बहे हुए रक्तसे सिंचकर धरतीकी धूल बैठ गयी और सारी दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥ १४ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥ १५ ॥

भारत! उस समय जगत्‌के विनाशकी सूचना देनेवाले असंख्य कबन्ध चारों ओर उठने लगे ॥ १५ ॥

तस्मिन् युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रत्यदृश्यन्त रथिनो धावमानाः समन्ततः ॥ १६ ॥

उस अत्यन्त दारुण और भयंकर युद्धमें रथी योद्धा चारों ओर दौड़ते दिखायी देते थे ॥ १६ ॥

ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौबलः ॥ [illegible] ॥
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः ।
पाण्डवानामनीकानि बभञ्जुः स्म पुनः पुनः ॥ [illegible] ॥

तदनन्तर भीष्म, द्रोण, सिन्धुराज जयद्रथ, पुरुमित्र, जय, भोज, शल्य और शकुनि—ये सिंहतुल्य पराक्रमी रणदुर्जय वीर [illegible] बारम्बार भंग करने लगे ॥ [illegible] ॥

तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत ॥ [illegible] ॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान् सर्वराजभिः ।
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥ [illegible] ॥

भारत! इसी प्रकार भीमसेन, राक्षस घटोत्कच, सात्यकि, चेकितान तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र [illegible] देवता दानवोंको खदेड़ते हैं, उसी प्रकार समस्त राजाओं सहित आपके पुत्रों और सैनिकोंको रणभूमिमें भगाने लगे ॥ [illegible] ॥

तथा ते समरेऽन्योन्यं निघ्नन्तः क्षत्रियर्षभाः ।
रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥ [illegible] ॥

रणभूमिमें एक-दूसरेको [illegible] श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर [illegible] हो भयानक रूपधारी दानवोंके समान सुशोभित होते थे ॥ [illegible] ॥

विनिर्जित्य रिपून् वीराः सेनयोरुभयोरपि ।
व्यदृश्यन्त महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥ [illegible] ॥

दोनों सेनाओंके वीर शत्रुओंको जीतकर आकाशमें चमकते हुए विशाल ग्रहोंके समान दिखायी देते थे ॥ [illegible] ॥

ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अभ्ययात् पाण्डवान् युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर आपका पुत्र दुर्योधन सहस्रों रथियोंके साथ पाण्डवों तथा राक्षस घटोत्कचके साथ युद्ध करनेके लिये वहाँ आया ॥ १७ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे सहसा सैन्यसंवृताः।
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिंदमौ॥ १८॥

इसी प्रकार विशाल सेनासे युक्त समस्त पाण्डव भी युद्धके लिये तैयार खड़े हुए द्रोणाचार्य और भीष्मसे भिड़नेके लिये आगे बढ़े ॥ १८ ॥

किरीटी प्रययौ क्रुद्धः स्वकान् पार्थिवोत्तमान्।
आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं प्रभुम् ॥ २० ॥

क्रोधमें भरे हुए किरीटधारी अर्जुन एक ओर गये हुए राजाओंका सामना करनेके लिये गये। अभिमन्यु और सात्यकिने शकुनिपर आक्रमण किया ॥ १९ ॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः।
तावकानां परेषां च समरे विजयैषिणाम् ॥ २० ॥

इस प्रकार युद्धमें विजय चाहनेवाले आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें पुनः रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें युद्धका तीसरा दिन विषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पाण्डव-वीरोंका पराक्रम, कौरवसेनामें भगदड़ तथा दुर्योधन और भीष्मका संवाद

सञ्जय उवाच

ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥

सञ्जयने कहा—राजन्! तदनन्तर वे समस्त भूपाल रणभूमिमें अर्जुनको देखते ही कुपित हो उठे और उन्होंने अनेक सहस्र रथियोंके साथ उन्हें सब ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत।
शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥ २ ॥

भरतनन्दन! उन राजाओंने रथसमूहद्वारा अर्जुनको कोष्ठबद्ध करके उनके ऊपर अनेक सहस्र बाणोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ २ ॥

शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह।
प्रासान् परश्वधांश्चैव मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३ ॥
चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति।

वे क्रोधमें भरकर युद्धमें अर्जुनके रथपर चमकती हुई तीखी शक्ति, गदा, परिघ, प्रास, फरसे, मुद्गर और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३½ ॥

शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवायतिम् ॥ ४ ॥
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः।

टिड्डीदलोंकी श्रेणीके समान अस्त्र-शस्त्रोंकी उस वर्षाको अर्जुनने स्वर्णभूषित बाणोंद्वारा सब ओरसे रोक दिया ॥ ४½ ॥

तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ॥ ५ ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः।
साधु साध्विति राजेन्द्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥ ६ ॥

राजेन्द्र! अर्जुनकी वह अलौकिक फुर्ती देख देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा राक्षस साधु-साधु (बहुत अच्छा, बहुत अच्छा) कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५-६ ॥

सात्यकिं चाभिमन्युं च महत्या सेनया सह।
गान्धाराः समरे शूरा रुरुधुः सहसौबलाः ॥ ७ ॥

उधर विशाल सेनाके साथ आये हुए सात्यकि और अभिमन्युपर समरभूमिमें सुबलके पुत्रोंसहित गान्धारदेशीय शूरवीरोंने आक्रमण किया ॥ ७ ॥

तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम्।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥ ८ ॥

वहाँ जाते ही क्रोधमें भरे हुए सुबलपुत्रोंने युद्धस्थलमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा सात्यकिके श्रेष्ठ रथको तिल-तिल करके काट डाला ॥ ८ ॥

सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयावहे।
अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ९ ॥

तब शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि उस समय छिड़े हुए भयंकर संग्राममें अपना टूटा हुआ रथ छोड़कर तुरंत ही अभिमन्युके रथपर जा बैठे ॥ ९ ॥

तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीम्।
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥

फिर एक ही रथपर बैठे हुए वे दोनों वीर झुकी हुई गाँठवाले पैने बाणोंसे तुरंत ही सुबलपुत्र शकुनिकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १० ॥

द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम्।
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार एक ओरसे आकर युद्धके लिये सदा उद्यत

करनेवाले द्रोणाचार्य और भीष्मने बहुत-सी सेनाओंसे युक्त तीव्र मार्गोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरकी सेनाका विनाश आरम्भ कर दिया ॥ ११ ॥

ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
अभिपेतुः सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ १२ ॥

तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेवने समस्त सेनाओंके देखते-देखते द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥ १२ ॥

तदासीत् सुमहद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत् सुदारुणम् ॥ १३ ॥

जैसे पूर्वकालमें अत्यन्त भयंकर देवासुर-संग्राम हुआ था, उसी प्रकार वहाँ अत्यन्त भयानक रोमांचकारी युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥

कुर्वाणौ सुमहत् कर्म भीमसेनघटोत्कचौ।
(दुर्योधनस्य महतीं द्रावयामास वाहिनीम्।)
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावभ्यवारयत् ॥ १४ ॥

दूसरी ओर भीमसेन और घटोत्कचने महान् पराक्रम प्रदर्शित करते हुए दुर्योधनकी विशाल वाहिनीको खदेड़ना आरम्भ किया। उस समय दुर्योधनने सामने आकर उन दोनोंको रोक दिया ॥ १४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम्।
अतीत्य पितरं युद्धे यद् युध्यत भारत ॥ १५ ॥

भारत! वहाँ हमने हिडिम्बाकुमार घटोत्कचका अद्भुत पराक्रम देखा। वह रणक्षेत्रमें पिताको भी लाँघकर युद्धमें बढ़कर पराक्रम प्रकट करते हुए युद्ध कर रहा था ॥ १५ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम्।
हृद्यविध्यत् पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ १६ ॥

क्रोधमें भरे हुए पाण्डुनन्दन भीमसेनने हँसते हुए-से एक बाण मारकर अमर्षशील दुर्योधनकी छाती छेद डाली ॥ १६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ १७ ॥

तब उस बाणके गहरे आघातसे पीड़ित हो राजा दुर्योधन रथकी बैठकमें बैठ गया और उसे मूर्छा आ गयी ॥ १७ ॥

तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः।
अपोवाह रणाद् राजंस्ततः सैन्यमभज्यत ॥ १८ ॥

राजन्! उसे अचेत हुआ जानकर उसका सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रणभूमिसे बाहर ले गया। फिर तो उसकी सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ १८ ॥

ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः।
निघ्नन् भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥ १९ ॥

तब चारों ओर भागती हुई उस कौरव-सेनापर तीखे बाणोंका प्रहार करते हुए भीमसेन उसे पीछेसे खदेड़ने लगे ॥ १९ ॥

पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः।
द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः ॥ २० ॥
जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः।

दूसरी ओरसे रथियोंमें श्रेष्ठ द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा धर्मपुत्र युधिष्ठिर शत्रु-सेनाका विनाश करनेवाले तीखे बाणों-द्वारा द्रोणाचार्य और भीष्मके देखते-देखते कौरव-सेनाको पीड़ित करते हुए उसका वध करने लगे ॥ २०½ ॥

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ॥ २१ ॥
नाशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ।

महाराज! उस युद्धस्थलमें आपके पुत्रकी भागती हुई सेनाको महारथी द्रोण और भीष्म भी रोक न सके ॥ २१½ ॥

वार्यमाणं च भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २२ ॥
विद्रवत्येव तत् सैन्यं पश्यतोर्द्रोणभीष्मयोः।

महामना भीष्म और द्रोणके रोकनेपर भी उनके देखते-देखते वह सेना भागती ही चली जा रही थी ॥ २२½ ॥

ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः ॥ २३ ॥
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ।
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥ २४ ॥

उधर हजारों रथी जब इधर-उधर भाग रहे थे, उसी समय एक रथपर बैठे हुए अभिमन्यु और सात्यकि सुबल-पुत्रकी सेनाका समरभूमिमें सब ओरसे संहार करने लगे।

शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ।
अमावास्यां गतौ यद्वत् सोमसूर्यौ नभस्तले ॥ २५ ॥

उस अवसरपर (एक रथमें बैठे हुए) सात्यकि और अभिमन्यु उसी प्रकार शोभा पा रहे थे, जैसे अमावास्या तिथिको आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा एक ही स्थानमें सुशोभित होते हैं ॥ २५ ॥

अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तव सैन्यं विशाम्पते।
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥ २६ ॥

प्रजानाथ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए अर्जुन आपकी सेनापर उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है ॥ २६ ॥

वध्यमाना ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे।
दुद्राव कौरवी सेना विषादभयकम्पिता ॥ २७ ॥

तब पार्थके बाणोंसे समरभूमिमें मारी जाती हुई कौरव-सेना विषाद और भयसे काँपती हुई इधर-उधर भाग चली ॥ २७ ॥

द्रवतस्तान् समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ।
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥ २८ ॥

उस योद्धामण्डल मनुष्योंको देख दुर्योधनका हित चाहनेवाले महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य उन्हें रोकने लगे ॥ २८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा समाश्वास्य पितामहम्।
न्यवर्तयत तद् सैन्यं प्रयमानं समन्ततः ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! इसी बीचमें राजा दुर्योधनकी मूर्छा दूर हो गयी और उसने आश्वस्त होकर भागी जाती हुई सेनाको पुनः लौटाया ॥ २९ ॥

यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत।
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥ ३० ॥

भारत ! आपका पुत्र दुर्योधन जहाँ-जहाँ जिस-जिस क्षत्रिय महारथीको भागते देखता, वहाँ-वहाँसे उन्हें लौटा लाता था ॥ ३० ॥

तान् निवृत्तान् समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरे जनाः।
अन्योन्यस्पर्धया राजँल्लज्जयाऽऽवस्थिरे ॥ ३१ ॥

राजन् ! उन सबको लौटते देख दूसरे लोग भी एक दूसरेकी स्पर्धा तथा लज्जाके कारण ठहर गये ॥ ३१ ॥

पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद् विशाम्पते।
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥ ३२ ॥

महाराज ! पुनः लौटते हुए उन सैनिकोंका महान् वेग चन्द्रोदयके समय बढ़ते हुए महासागरके समान जान पड़ता था ॥ ३२ ॥

संनिवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः।
अब्रवीत् त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः ॥ ३३ ॥

तब उन सबको लौटा हुआ देख राजा दुर्योधन तुरंत ही शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जाकर बोला— ॥ ३३ ॥



पितामह निबोधेदं यत् त्वा वक्ष्यामि भारत।
नानुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥ ३४ ॥
द्रोणे चास्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने।
कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद् वरूथिनी ॥ ३५ ॥

पितामह भरतनन्दन ! मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ उसे सुनिये। कुरुनन्दन ! आपके अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके और महाधनुर्धर कृपाचार्यके पुत्रों और सुहृदोंसहित जीते-जी जो मेरी सेना भाग रही है, इसे मैं आपलोगोंके योग्य नहीं मानता ॥ ३४-३५ ॥

न पाण्डवान् प्रतिबलांस्तव मन्ये कथंचन।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ३६ ॥

मैं किसी तरह यह नहीं मान सकता कि पाण्डव संग्राममें आपके द्रोणाचार्य कृपाचार्यके और अश्वत्थामाके जोड़के बलवान् हैं ॥ ३६ ॥

अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह।
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥ ३७ ॥

वीर पितामह ! निश्चय ही पाण्डव आपके कृपापात्र हैं, तभी तो मेरी सेनाका वध हो रहा है और आप चुपचाप उसकी ओर देख रहे हैं ॥ ३७ ॥

सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन् पूर्वमेव समागमे।
न योत्स्ये पाण्डवान् संख्ये नापि पार्षतसात्यकी ॥ ३८ ॥

महाराज ! यदि पाण्डवोंपर दया ही करनी थी तो आप युद्ध आरम्भ होनेके पहले ही मुझे यह बता देते कि मैं संग्राममें पाण्डुपुत्रोंसे, धृष्टद्युम्न और सात्यकिसे भी युद्ध नहीं करूँगा ॥ ३८ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च।
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥ ३९ ॥

उस अवस्थामें आपका, आचार्यका तथा कृपाचार्यका वचन सुनकर मैं कर्णके साथ उसी समय अपना कर्तव्य निश्चय कर लेता ॥ ३९ ॥

यदि नाहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे।
विक्रमेणानुरूपेण युध्यतां पुरुषर्षभौ ॥ ४० ॥

यदि युद्धमें आप दोनोंको मेरा परित्याग करना उचित नहीं जान पड़ता हो तो द्रोणाचार्य और आप दोनों श्रेष्ठ पुरुष अपने योग्य पराक्रम प्रकट करते हुए युद्ध कीजिये ॥ ४० ॥

एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन् वै मुहुर्मुहुः।
अब्रवीत् तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ४१ ॥

यह सुनकर भीष्म बारंबार हँसकर क्रोधसे आँखें फाड़ते हुए आपके पुत्रसे बोले— ॥ ४१ ॥

बहुशो हि मया राजंस्तथ्यमुक्तं हितं वचः।
अजेयाः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ४२ ॥

राजन् ! मैंने तुमसे अनेक बार यह सत्य और हितकी बात बतायी है कि युद्धमें पाण्डवोंको इन्द्र आदि देवता भी जीत नहीं सकते ॥ ४२ ॥

यत् तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम।
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिर! तो भी युद्धमें जो कुछ किया जा सकता है, उसे आज यथाशक्ति करूँगा। तुम आज भाइयोंसहित देखो ॥ ४८ ॥

अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान् सह बन्धुभिः ।
सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ४९ ॥

आज मैं अकेला ही सबके देखते-देखते सेना और बन्धुओंसहित समस्त पाण्डवोंको आगे बढ़नेसे रोकूँगा ॥ ४९ ॥

एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर ।
दध्मुः शङ्खान् मुदा युक्ता भेरीः संजघ्निरे भृशम् ॥ ५० ॥

जनेश्वर! भीष्मके ऐसा कहनेपर आपके पुत्र आनन्दमग्न होकर बड़े जोरसे शङ्ख बजाने और डंका पीटने लगे ॥ ५० ॥

पाण्डवा अपि ते राजञ्छ्रुत्वा तं निनदं महत् ।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च मुरजांश्चाप्यनादयन् ॥ ५१ ॥

राजन्! उस महान् सिंहनादको सुनकर पाण्डव भी शङ्ख, ढोल तथा नगाड़े बजाने लगे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीयदिवसयुद्धे भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें तीसरे दिनके युद्धमें भीष्म और दुर्योधनका संवादविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका [illegible] श्लोक मिलाकर कुल ५१ श्लोक हैं)

एकोनषष्टितमोऽध्याय

भीष्मका पराक्रम, श्रीकृष्णका भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना, अर्जुनकी प्रतिज्ञा और उनके द्वारा कौरवसेनाकी पराजय, तृतीय दिवसके युद्धकी समाप्ति

धृतराष्ट्र उवाच

प्रतिज्ञाते तु भीष्मेण तस्मिन् युद्धे सुदारुणे ।
क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः ॥ १ ॥
भीष्मः किमकरोत् तत्र पाण्डवेयेषु संजय ।
पितामहे वा पाञ्चालास्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब मेरे पुत्रने भीष्मको विशेष दुःखी एवं कुपित कर दिया, तब उन्होंने उस युद्धमें पाण्डवोंके प्रति क्या किया? तथा पाञ्चालोंने पितामह भीष्मके प्रति क्या किया? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चापि दिवाकरे ॥ ३ ॥
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ॥ ४ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रैश्च सर्वशः ॥ ५ ॥

संजयने कहा—भारत! उस दिनका पूर्वाह्णकाल अधिकांश व्यतीत हो गया। सूर्यदेव पश्चिम दिशामें जाकर स्थित हुए और विजयको प्राप्त हुए महात्मा पाण्डव खुशी मनाने लगे। उस समय सब धर्मोंके विशेषज्ञ आपके ताऊ भीष्मजीने वेगशाली अश्वोंद्वारा पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण किया। उनके साथ विशाल सेना चली और आपके पुत्र सब ओरसे उनकी रक्षा करने लगे ॥ ३—५ ॥

प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात् तव भारत ॥ ६ ॥

भारत! तदनन्तर आपके अन्यायसे हमलोगोंका पाण्डवोंके साथ रोमाञ्चकारी भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६ ॥

धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाभिहन्यताम् ।
महान् समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥ ७ ॥

उस समय वहाँ टंकारते हुए धनुषों और हथेलियोंके आघातका महान् शब्द ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वत विदीर्ण हो रहे हों ॥ ७ ॥

तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव ।
स्थितोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दाः श्रूयन्त सर्वशः ॥ ८ ॥

खड़ा रह, मैं खड़ा हूँ, इसे बींध डालो, लौटो, स्थिरभावसे खड़े रहो, मैं खड़ा हूँ, प्रहार करो—ये शब्द सब ओर सुनायी पड़ते थे ॥ ८ ॥

काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च ।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूत् स्वनः ॥ ९ ॥

सोनेके कवचों, किरीटों और ध्वजाओंपर गिरते हुए अस्त्र-शस्त्रोंका शब्द ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतोंपर शिलाएँ गिर रही हों ॥ ९ ॥

पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः ।
व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥

सैकड़ों और हजारों कटे हुए मस्तक तथा आभूषणभूषित भुजाएँ पृथ्वीपर गिरकर छटपटाने लगीं ॥ १० ॥

हृतोत्तमाङ्गाः केचित् तु तथैवोद्यतकार्मुकाः ।
प्रगृहीतायुधाश्चापि तस्थुः पुरुषसत्तमाः ॥ ११ ॥

पुत्रा मति आर समर
नाग अन्य
रहे
प्राकारं महाव्यं कनी रथिनागिनी
मात्स्यहृदि मानसा तिलकमा
वराश्वमातङ्गसमाकुल सैन्यमध्य नाग
परला विस्मयुक्ता गुणमायायुक्तविनी

रष्ट्र युक्त शाति युद्धमेकाकान्नाथ
यथा मेघ माला गाण्डवा नागसे
भारत पाण्डव
मोहन
और
व्यालीद् ग्रहपदानामं योधयुधि निवासिन
राजमा धनिनर्मी नाथविशुद्धविनाकूल
पवाहे नाम
नागेर
आये गणा
विवार्ये कवचधि निरन्तरलाख्य मतिच
शृणुध तद् ध्यास्य सारथ्रैव नभागतम्
मानस नवाल दर्पण
वर
पाद्युनुर भांति

विनिर्भित शर विद्याधरागणसर्वभित
अमीत सम नाकसध्यधाम वर्षिता
कुरु नीत जनवला
पाद्य निवर
पुत्र नाद नाग
तान ध्यान सत्य धनस्य मम मातु
मा मा त्वयोन्यत्ये पुत्रपु पतिता त्ये
दिन योद्धा विभि निरन्य प्रवीर आन
नाव सवाना पुकार नाग प्रान मन
व ते मामा पुत्र क्षोभप्त
यथा भेदि त्वमावच्छरिकं भीतोऽसि यास्यसि
विमोऽद्य समरे भैरिमि नाम्ये विमुक्तस्तु

गत्वे निव दिव्या भरे थ्रो
श्रोथो नाग सामर्थ्ये नया

नग और नानसधा नि मन्डलकामुक
मुमा वाजान कैलासान्नाथांसीसिप्यामिव
कवाच नुपर नकार
नागक

कार्तिवाक्याकुत निशा मद धनुआल
प्रधान धापसर्वधानादित्य अन्न

कुम्भद गजाक्षयोद्भवान मातिगाधन
अन्यान्नमपतद् गजाकार नव सह हतवान
अवान
मान
अमह स्मार शुर पाण्ड्वा सुक्षय नह
अनेकगात्रनतांच्य सबधवध्यन्त क्रत्वांत्
इत्यादि सेना
नाव प्रमार नाम निय
प्रसाद अला
मायाकृत्वात्मर्माणिव भीष्म सम मंगिर
मुपनना निर्वि वधूर प्रभाग्य तदनुजाम
सेना एवा रणभूमी भीष्मद्रोणे
निशा जिन
लोकाक

प्रीत्या समानानन्यं निसिनया पुत्र धन्य
यथ सर्वे शुर गाङ्गला मन्यहतस्त
नकार नकान
रंगीन दिशाम प्रकार मनभूमिमा धूलीर
महान भीम आर्या
वैवस्वतस्माला वर्तमानास्यानि बोधितुम्
विधिवालेत् यहाननि भीष्मावस्थितम् वहुत्
नाम नर्द नाग मन
जेन भीष्मवीच धनुषस पूर्व पुत्र तत्सम्याम सावको
देखने
कुर्वाणा समरे कर्म सुदयान पाविनीम्
व्याक्षेण रूप तव नदा बहुविधा बहु
समागुतेन येन प्रयत्न तिलक तव

रुधिर अर्जुन   उसका
भीष्म आयुधरूपमय विनाश
प्रकाश प्रकाशने
प्रकाशी
शस्त्रा इव गजान् व्यतीत विभिन्ना धृता
भीष्मास्त्रनिर्भिन्नकुशा विनाशाय महाप्रभा
निधानाम   संग्राम   भारत
हाथ   आगये

हि माया युद्ध कभिन्नत्मीर् भीष्मस्य पुन
नानाशस्त्रयुतेषु   वसुदेवात्मजपुत्रवीर्य
युद्धमें मनुष्य   प्यार
प्रियका

मध्याह्नयन्तः भीष्मा विनिर्मितात् बहुधनिम
निपातनस्य वर्णेन सुमहान् पतनिनाथ
गजाश्वरथसमूह   सायक

विजय   मध्य   बाण
गम्भीर

शीर्णानि गजाश्वाः पतिताश्च   क्षति
रोदन   मुक्त   मान। किर
पाण्डवे
प्यार
और   महत्प्रायाम्भमानि मु
युद्धमद्य   मध्य पतिता बुद्धि कम्पन

पार्थिव योद्धा
मन   भयराजस्य वाच्यमानम् महात्मन्
भीष्मेणातुलवीर्येण व्यतीपात   तथाथ
इधर अर्जुन
दुः   युधिष्ठिरकी   विनाश वाहिनी भागी भाग्य
गदी
माधवस्त्र महासेना   रथानाम् सारिथ्या
वचसा वासुदेवस्य वाक्यस्याय शिरस हम
उनकी सब गति   पाण्डव
श्रीकृष्ण अर्जुन और शिखण्डीके देखते-देखते करने लगी

कामपालनापि भीष्म प्रथमशस्त्र महा
भारतयुक्त धारयितु भीष्मबाणगतिविवर
भीष्मकी
इधर व्यास   सेवने

तमुत्तमवीर्य   यथामा महात्म
अमरव्याघ्र महाराज   धाव
राजन्   मारा   गाधर

नाविहलनोत्साहम्   पविता अक्रूरस्य
पताके पाण्डुपुत्राणां हाहाकारमहत्तम्
सबना
प्रहार
न्याय   नीतर   प्रहार
रणयात्रा दिना दुःख दुःखेन विजय नन्दा
प्रिय मनाप वागमने कमला गन्धर्वलालन
युद्ध   दौरर   पुत्रका पुत्र

बाह   स्नाहुपुत्रस्य   महा
विशु   भयपतन प्रत्यक्षरुपन्न भारत
दारुण
नह   कुलविनाशप्रलयमुक्तानरस्थयुपमम्
दृश्यो पाण्डुपुत्रस्य संग्रामनाश तदा
अभ्याम   देवन
अथा पार्थ बीभत्सु मुख्य समुत्तान
पाण्डु

प्रकार
भगवान
काल सबसान   कदाचित्
प्रहरस्व अस्त्याग   धर्मात्मा विमुखेन
दुर्बल   मित्रत
किन्तु
विमूढ़   स्नेहका
यत् मया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्
सानुबन्धान् हनिष्यामि मां योत्स्यन्ति संयुगे ॥ ४४ ॥

इति तद् कुरु कौन्तेय यस्य वाक्यमरिंदम
बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं समन्ततः
नहीं तुम्हें
आत्मभूमि उपस्थ

ऋषिवर
वचिसत्य

कुमार
इषुभस्त्र महौजा पश्य यौधि वहं
तू हि भीष्म नाम तालवर्णमिवालयम्
प्रयाता प्रयत्नव निहाल भुकुमता

युधिष्ठिर
विराज
आज
पश्य प्राणुम सुतम भगवय
योद्धव्य यदा भीष्मा तेन गच्छेम्
पालयिष्यामि दुर्विज्ञायम्
वसुदेव युक्त
भगवन हाथ
यादेव
कौशिक आज कुरुकुल

उवाच
ततश्चक्रमे राजप्रवराल तापयामास मारिष
यदा भीष्मस्य राजन् रोहेषु रथिनरथिन
नत्र वहन —भगवन दुःख

धरावन

ततस्ताः पुनराहु युधिष्ठिरस्य
वसु पार्थ महाबाहु भीष्मायानमहित
गाडीव
लोहा वध किर्ण
आती
ततो भिय दध्मौ मिवदद् वीर मुहु
धनञ्जयरथ शीघ्र शार्ङ्गधन्विनि
नाना भीष्म नवना
अर्जुन पीतरत्नक सयांसी

वनेन रथसारथ तहय कवसारथि
हारयौवन महावा सहजां महारथे

शस्त्र धानगा हेत विन्यैक हस्ति

वासुदेवस्य बलमासाद्य भयमास्थाय महावान्
योऽपायामास गानस्याद विचित्रान् भीष्मसायकैः
रक्षितात्रि भगवान श्रीकृष्ण तीव्र चक्राह्वमे
चढ़ो दारुण कटारि
भाव
पार्थो धनूंषि विच्य ध्वजं ज्वलनम्
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा निमि
इतन मरन कटी
सौम भीष्मस भरतो
धीमान
चकार पुनरन्यमहद् धनु
निमिषान्तरम सत्य चित्रा तत्र
सम्भव भीष्म सहसा

चिन्त तदा पार्थो अनुबन्धविस्फारयन्
अथाश्य नर्पन युद्धमिच्छन् धनुर्धरम्
धरसाव धनुषो
दाना टंको

ततो ततः पूर्वज पश्य शान्तना सुत
पाय महाव साधु पाण्डुनन्दन
त्वय्येव कन हन् कम भगवान
पार्थ विश्वमुख पुष्प कुरु गुरु मया सह
मनुज पाके
विमान
युगपाणी
कुम्भ

इति पार्थ शम्भा पद्मपृष्ठमारुह्य
मुमा समरे वारं शान पाण्डव मति
तीक्ष्ण अर्जुनको करत
चिन्ते गुढ़जाल
रथको आस्य क्रिया
अथद्रावत् वासुदेवो हयाना बलम्
पान्द् कुरुवंशावतंसक महाघनदात्रशस्त्रम्
तीक्ष्ण चढ़ेल दारुण बनवान अबने
हरिण भीष्मके शरीरों अन्य रूप
कुछ बड़ी कुलाके दर्शनकार पचाने

ततः भीष्मस्तु सुहृद वासुदेवधनंजय
विव्याध विशिखवाय सव्यसाचम् भारत
नमति पिता कुरु
अह नाम ताहत
युद्धभाते कल्याणी भीष्मशरविक्षतौ
गोवृषाविव गर्जन्तौ वपावलिखिताङ्कितौ
पिता सप्ताने दिश कृष्ण
युन माधवे भार भिन
विनय सम्पृष संयं

पुनश्चापि सुतर दान
कृष्णावाप्युविशरभ्यादभ्यप्म उत्सवालयदविशा
तपश्चा गेरा निधान हाकर
नाव कृष्ण वीर बुन
दिशा गाज अधरक
व्याप्य स्तोदस कमवामान
मुहुरभ्यवद्यन् धीर हृन्य स्तनवन् नग
हन्त गतल
हृगन आत ति
युतन् कृष्णव
ततस्तु कृष्ण सम बहु भीष्मपराक्रमम्
समीक्ष्य महात्मा पायस्य संयुगम्
भीष्म सन्दधीय युजल्तपिता युधि
प्रातरतमिवादि वनामार्ग समय
घरान् गत चिकित्सन गृह्णुयुषसमिषवन्
युगान्तमिव युय भीष्म युधिष्ठिर यत
उन
गाम
दास पुत्र
और शत्रु
युधिष्ठि
त्राकित तिया

अमुष्यमात्मा भगवान् केशव परवीरहा
अचिन्त्यपभयात्मा नाभि योधिष्ठिर बलम्
पतन्मा एवं भीष्म नाशयद् केशव शलवान्
विमुञ्चन्पुनुगान् युद्ध सवलान् मासगुणान
देव अन्न समरीराका पयसेनान
अमन्यमान भगवान् श्रीकृष्ण मह सव
मन मन विमार किया युधिष्ठि नाथ अशिल्प
धिन्या महस्त्र भी रणभूमिमें दिसने समूह

दैत्य और दानव भाग हमा औ
नवकालदिन पाण्डवों युद्ध पलायन यमना हिंद कौन
याग
प्रभवे महासत्व पाण्डवमध्य महात्मा
पतो कौरव्यातृणा प्रभास्वान् भीष्म मामकान्
प्राद्रवन्ति रणे शूरा प्रवान् पितामह
स्पोऽह भीष्म महत्याय पाण्डवानामय वशित
तथा युद्ध विदित महा
स्वलोक प्रभव भीष्मत
हैव विशुद्धात्मा कला गर्जन
राज दिया सम्ब
भिवर भाग्य
भास्करा विलोकनात्मि पाण्डवानां महामनाम्
अनुला हि शक्तिरिवनयममवाडपि स्थु
करस्य नाभिज्ञानानि रणे भीष्मस्य विशाल
प्रसाद पाण्डव भागे युद्ध
बुन युद्धन नाल व्यास भीष्मके
तैल नहीं साम
रहा
तथा विमलपत्राक्ष भूय एव पितामह
प्रययाचान्येन सकुद सहान् रथस्य प्रति
भगवान् श्रीकृष्ण प्रहार पतन करते मत
आय कुपित हुए तबह भीष्मका अर्जुनका वरद पुन
हुत बाण चलाए
तथा बहुत्वाद् तु ततः हताशा
विशाख सब विहिता वसुधा
वात्स्यदिश दिश भूमि
भास्करा पर गदिमाली
वायुश्च वलाहस्तु सभूमा
दिशश्च मुनिला यथ
रघ्वे दार मूल दिशाए
उमि दवाने
पौरिष
गजान मधुर

राजा विराटस्य धर्म
भूरिश्रवा कृतवर्मा द्रुपद
युधामन्युरुत्तमौजाश्च राजा
चित्रायुधश्चित्र सुदक्षिणश्च
प्राग्ज्योतिष सौवीरराजश्च साध
वसातय क्षुद्रकमालवाश्च
किरीटि त्वरमाणाभिसत्व
विदिशा त्रस्तवशा यथा

गेण हैरव रूप मूर्तिः रूपवान
कनामत नानु हद वि अनु
विन मन्दिरा पुर कौरवान नैतीय भविष्याम
वमाति भुरक और बाण गभी नाराज दनभीष्मके
आदे अनुसर पान रूप द्वितीय भागे अकुलता
भावना करके मि मन जाव

वालिवालालपैतदान
मनकमाहसकर्मकृत
किरीटिन नागर्विविधमाण
दिव्य मा बाणपूपरक्ष

नानव बन गोपधारी अनुरूप
मध्य रविवासहि नितोव मजल
वसतिए मी ..

गलसनु बहुकुलमसुरथो
पराक्रमागत्यर्थं समर्थान्
अभिवृत शलका वर्धितः
दिनिमिषीर अभिमान गुणम् ॥

कथाप ये बाण
माल बालमात रूप कर्णाटि रूप और अकुर
भी अकर निरोगक रूप मि नहीं

न ता पताक लि महाभनुरभ
निमिषवी महामादिम
नवाव म स्वयमधाकुलता
निम्पुरमा युद्धविकृतसन्ध ॥

नव नाथ मान मैना
नाय पुन नाथ भी सर्व
मैं प्रजविचार नाथ रत

विशीर्णमाला वरत्नध्वजीय
श्रीभ्यन वित्र मितालयथाधम
युधिष्ठिरनावधमभिप्रकृत
मावाय महाय निमिषवीय

युधिष्ठिर महारथी और महाओकिनयात्र
विन विनत मान और नए मनुष्य योद्धाओंको
मनचीन कर दिया इस प्रकार युधिष्ठिर सनिकोंको
भागते देख शिविवासी वह और सत्यजीत उनसे कहा

कथ क्षत्रिया यासवत् नैव भन
सत्य पुरस्तात् कथित पुराणैः
मा का प्रतिज्ञा स्वजन प्रवीरा
स्व धीरधर्मं परिरक्षणवाभ्याम्

क्षत्रियो ! कहा जा रहे हो ? प्राचीन महापुरुषोंद्वारा यह
बात क्षत्रियोंका धर्म नहीं बताया गया है। वीरो ! अपनी
प्रतिज्ञा छोड़ो अपने वीर मनोहर पालन करो।

मान मालवमालकतो नियाम्य
नाम्युमुख्यान द्रुपद समस्तान्
पारथ्य द्रुतं सृदुकुलना च
भीष्म न लभ्ये समुत्थितमानाम्
अमूर्यमाव वा तथा महात्मा
वराभित्य धनंजयतावका
उवाच वाक्यमभिप्रशस्त
वैश्यां कुरुक्षताल समागान

..... कौरवान् अब गजाम
गद और भाग रूका और इस प्रकार कथ दिया कि
अद्य कौशल्या माना कर गया और
वैराग्य अविक शूरे बहु मत मेव
कर गुरु कुमारे भगवान नेताने महाराज
मनवार शीर् मारा सके उन्होंने सम्मान
रिवीक आक्रमण जब अपनी और
मान्यकिजी दूर करो

य यान्ति ते यान्तु शिविविवीर
दृष्टि मिया महावन तर्हि यान्तु
भीष्म र्धात् पदय निखिलमान
द्रोण च मत्स्य सर्वजमतान् ॥

शिविचान मान
महा मान नई
शोक मर नर गया तुम अभे मान
तृप्ति महारथमणी पिय गांधारक मन
निमात

से रथी माल्यन कौरवाणा
कुलाय मु नन रण च कलिङ्गान्
नवबात् महा गगाहेतुक
मल हस्तिसाम महारथमण

मानस मान विस्मयात् वहाँ महारेगल
मार पूर मुख कृष्णके हाथम जो मैं पूरा नक
अन्या का न न मता तथापि भीष्मके प्राण
हराया

निहत्य भीष्म नगण तथा जौ
द्रोण च शल्यं रथवर्गीयो
प्रीतिं करिष्यामि धनंजयस्य
राजाम भीमस्य सत्यजितोत्र ॥

महाबली महारथविशिष्ट भीष्म और द्रोण इन
दोनों और सहायकोंको युद्धमें मारकर कुरु राजा
युधिष्ठिर भीमसेन या नकुल-सहदेवको प्रीति करूँ

निहत्य सर्वान् भूतराष्ट्रपुत्रा
नारदर्शिनो यो च सर्वमुख्यान्
सरमेन पाञ्चालमाहात्म्यानु
समागमैष्यामहाय ॥ ९८ ॥ ७ ॥

दुर्योधनके भाई युद्धमें गया उनके पक्षमें लगे हुए श्री
शेष योद्धाओंको मारकर मैं प्रसन्नतापूर्वक आज अजातशत्रु
राजा युधिष्ठिरको राज्य प्रदान करूँ ।

उवाच

इतीदमुक्त्वा स महानुभाव
ससार ... निशितं पुरातनम्
सुदर्शनं ... विनिर्मलमायतमेव
... स्वबाहुनाह

सञ्जय कहते हैं ... ऐसा कहकर ... वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने
... पुरातन ... तीक्ष्ण ... सुदर्शनचक्रका स्मरण
किया ... उसके ... हाथमें ... हजार
... सुदृढ़ ...

... सुनाभ ... वज्रकल्पक्षुर
सुपक्ष्म ... वज्रानलश्यामम्
सुरासुरमुख्य ... तेज
... विपुलं च बाहुः
... महात्मा
... कृष्ण प्रगृह्य भीष्मम्
... समुत्थितः
... सिंहो ... मातङ्गं ... म्

उन ... नाभि ... सुन्दर ... हजार
... ...
... ... समुत्पन्न ... जान ... तेज की
... ...
... ...
... ...
... ...
युद्धस्थलमें भीष्म

सोऽभिपत्य ... प्रसादी
... ...
... ...
... ... स ... भिविराजमान

... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
आकाशमें बिजली ... ... श्यामघन ... शोभा हो
रहा हो

सुदर्शनं ... ...
... सुभुजोरुमण्डलम्

यथादित्य ... ...
... ... नारायणनाभिजातम्
श्रीकृष्णकी सुन्दर ... ... सुशोभित
... ... मानो
... ... सूर्य
... ...
... ...
... ...
... ... प्रबुद्ध
... नारायणबाहुनालम्
... ... विकसित
... ... हो
... ... महान्
... ... श्रीकृष्ण
... ... थी

... ...
... ... समीक्ष्य
... ... विनदु
... कुरूनामित्र विमलपिनाः

... ...
... ...
... ...

... ...
... ...
... ...
... ...
... ... मानो
... ... और ...
... ...
... ...

... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...

एह्येहि देवेश जगन्निवास
नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे ॥ ९६ ॥
प्रसह्य मां पातय लोकनाथ
रथोत्तमाद् भूतशरण्य संख्ये ॥ ९७ ॥

जगन्निवास देवेश्वर! आइये, आइये। हाथमें चक्र लिये हुए माधव! आपको नमस्कार है। सबको शरण देनेवाले लोकनाथ! आज युद्धभूमिमें बलपूर्वक इस उत्तम रथसे मुझे मार गिराइये ॥ ९७ ॥

त्वया हतस्यापि ममाद्य कृष्ण
श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके।
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ
लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात् ॥ ९८ ॥

श्रीकृष्ण! आज आपके हाथसे मारे जानेपर भी मेरा इहलोक और परलोकमें भी सब प्रकार कल्याण होगा। अन्धक और वृष्णिकुलके रक्षक वीर! आपके इस आक्रमणसे तीनों लोकोंमें मेरा गौरव बढ़ गया है ॥ ९८ ॥

रथात् समाप्लुत्य ततस्तु पार्थो-
ऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम्।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं
बाहू हरेर्व्यायतपीनबाहुः ॥ ९९ ॥

यह सुनकर ही ... महाबाहु अर्जुन भी रथसे कूदकर श्रीकृष्णके पीछे दौड़े और निकट जाकर भगवान्की दोनों बाँहें पकड़ लीं ... ॥ ९९ ॥

निगृह्यमाणश्च तदाऽऽदिदेवो
भृशं सरोषः किल चात्मयोगी।
आदाय वेगेन जगाम विष्णु-
र्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥ १०० ॥

अर्जुनके पकड़नेपर भी आत्मयोगी आदिदेव श्रीकृष्ण बहुत रोषमें भरे हुए थे; अतः जैसे आँधी किसी एक वृक्षको लिये चली जाय, उसी प्रकार भगवान् विष्णु अर्जुनको लिये हुए ही बड़े वेगसे आगे बढ़ने लगे ॥ १०० ॥

पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ
भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम्।
बलान्निजग्राह हरिं किरीटी
पदेऽथ राजन् दशमे कथंचित् ॥ १०१ ॥

राजन्! तब किरीटधारी अर्जुनने भीष्मके निकट बड़े वेगसे जाते हुए श्रीहरिके चरणोंको बलपूर्वक पकड़ लिया और किसी प्रकार दसवें कदमपर पहुँचते-पहुँचते उन्हें रोका ॥ १०१ ॥

अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं
प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति
गतिर्भवान् केशव पाण्डवानाम् ॥ १०२ ॥

जब श्रीकृष्ण खड़े हो गये, तब सुवर्णकी विचित्र माला धारण करनेवाले अर्जुनने प्रसन्न हो उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'केशव! आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। प्रभो! आप ही पाण्डवोंके आश्रय हैं ॥ १०२ ॥

न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं
पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां
त्वयाहमिन्द्रानुज सम्प्रयुक्तः ॥ १०३ ॥

केशव! अब मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कर्तव्यपालनका त्याग नहीं करूँगा। यह बात मैं अपने पुत्रों और भाइयोंकी शपथ खाकर कहता हूँ। उपेन्द्र! आपकी आज्ञा मिलनेपर मैं अवश्य कौरवोंका अन्त कर डालूँगा' ॥ १०३ ॥

ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्मै
जनार्दनः प्रीतमना निशम्य।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य
रथं सचक्रः पुनराररोह ॥ १०४ ॥

अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा और ... सुनकर भगवान् श्रीकृष्णका मन प्रसन्न हो गया। वे कुरुश्रेष्ठ अर्जुनका प्रिय करनेके लिये ... चक्र लिये हुए पुनः रथपर जा बैठे ॥ १०४ ॥

स तानभीशून् पुनराददानः
प्रगृह्य शङ्खं द्विषतां निहन्ता।
विनादयामास ततो दिशश्च
स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥ १०५ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने पुनः घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और पाञ्चजन्य शङ्ख लेकर उसकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित कर दिया ॥ १०५ ॥

व्याविद्धनिष्काङ्गदकुण्डलं तं
रजोविकीर्णाञ्चितपक्ष्मनेत्रम्।
विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशङ्खं
विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥ १०६ ॥

उस समय श्रीकृष्णके कण्ठका हार, भुजाओंके बाजूबंद और कानोंके कुण्डल हिल रहे थे। उनके बरौनीयुक्त नेत्रोंमें धूल भरी हुई थी। उनकी दन्तावली शुद्ध थी और उन्होंने अपने हाथमें शङ्ख ले रखा था। इस अवस्थामें श्रीकृष्णको देखकर कौरवपक्षके प्रमुख वीर कोलाहल कर उठे ॥ १०६ ॥

मृदङ्गभेरीपणवप्रणादा
नेमिस्वना दुन्दुभिनि स्वनाश्च ।
संसिञ्जनानाम् धनूंषि तथा
सर्वेषामनीकेषु तदा कुरूणाम् ॥ १०७ ॥

उसके बाद कौरवोंके समूहमें [illegible] मृदङ्ग, भेरी, पणव तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी [illegible] रथके पहियोंकी घरघराहट सुनायी देने लगी [illegible] ॥ १०७ ॥

गाण्डीवनिर्घोष [illegible]
अगाम पार्थस्य तथा दिशश्च ।
अन्मुख [illegible] प्रसस्रुः
सर्वा दिशः पाण्डवलाञ्छनाः ॥ १०८ ॥

अर्जुनके गाण्डीव धनुषका [illegible] उनके बाणोंसे [illegible] दिशाओंमें फैल गया [illegible] ॥ १०८ ॥

स कौरवाणामधिपा [illegible]
भीष्मस्य भूरिश्रवसा च सार्धम् ।
अभ्युद्ययावुद्यतबाणपाणिं
[illegible] धूमकेतुः ॥ १०९ ॥

[illegible] दुर्योधन हाथमें धनुष बाण लिये [illegible] अर्जुनके सामने आया [illegible] भीष्म और भूरिश्रवा भी दुर्योधनका साथ दिया ॥ १०९ ॥

अथार्जुनाय प्रतिगृह्य कल्पान्
भूरिश्रवा सप्त सुवर्णपुङ्खान् ।
दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं
शल्यो गदां शान्तनवश्च शक्तिम् ॥ ११० ॥

तदनन्तर भूरिश्रवाने [illegible] सात सुवर्णमय पंखवाले बाण अर्जुनपर चलाये, दुर्योधनने भयंकर वेगवाले तोमरका प्रहार किया [illegible] और शान्तनुनन्दन भीष्मने शक्ति चलायी ॥ ११० ॥

स सप्तभिः सप्त शरप्रवेकान्
संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् ।
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं
क्षुरेण तत् तोमरमुन्ममाथ ॥ १११ ॥

अर्जुनने सात बाणोंसे भूरिश्रवाके छोड़े हुए सातों बाणोंको काटकर तीखे क्षुरसे दुर्योधनकी भुजाओंसे छूटे हुए उस तोमरको भी नष्ट कर दिया ॥ १११ ॥

ततः शुभामापततीं स शक्तिं
विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम् ।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां
द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥ ११२ ॥

तदनन्तर वीर अर्जुनने [illegible] भीष्मजीकी छोड़ी हुई [illegible] शक्ति और मद्रराजके हाथोंसे छूटी हुई गदाको दो बाणोंसे काट गिराया ॥ ११२ ॥

ततो भुजाभ्यां बलवद् विकृष्य
चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत् सुघोरं
प्रादुश्चकाराद्भुतमन्तरिक्षे ॥ ११३ ॥

तदनन्तर अर्जुनने [illegible] विचित्र गाण्डीव धनुषको [illegible] खींचकर अत्यन्त भयंकर माहेन्द्र अस्त्रको [illegible] प्रकट किया [illegible] ॥ ११३ ॥

तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा
सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान् ।
शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णै-
र्निवारयामास किरीटमाली ॥ ११४ ॥

फिर किरीटधारी महात्मा महाधनुर्धर अर्जुनने उस उत्तम अस्त्रके द्वारा [illegible] निर्मल अग्निके समान [illegible] बाणसमूहोंसे कौरवोंकी समस्त सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११४ ॥

शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता
रथान् ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून् ।
निकृत्य देहान् विविशुः परेषां
नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥ ११५ ॥

अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाण [illegible] रथ, ध्वजाके अग्रभाग, धनुष और बाहुओंको काटकर [illegible] राजाओं, गजराजों तथा घोड़ोंके शरीरोंमें घुसने लगे ॥ ११५ ॥

ततो दिशश्चानुदिशश्च पार्थः
शरैः सुधारैः समरे वितत्य ।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां
किरीटमाली व्यथयाञ्चकार ॥ ११६ ॥

तदनन्तर किरीटधारी अर्जुनने [illegible] दिशाओं और कोणोंको [illegible] बाणोंसे आच्छादित करके गाण्डीव धनुषकी टंकारसे कौरवोंके मनमें भारी व्यथा उत्पन्न कर दी ॥ ११६ ॥

तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते
शङ्खस्वना दुन्दुभिनि स्वनाश्च ।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिःस्वनेन
बभूवुरुग्राश्च रथप्रणादाः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार [illegible] भयंकर युद्धमें शङ्खध्वनि, दुन्दुभि ध्वनि तथा योद्धाओं और रथके पहियोंके भयंकर शब्द गाण्डीव धनुषकी टंकारके सामने दब गये ॥ ११७ ॥

गाण्डीवशब्दं महता विदित्वा
विषादयाभ्यमनुष्या मनीषाः ।
पाञ्चालपाण्डौ दृष्ट्वा च
रुक् वैशमाजग्मुरतीवसख्या ॥११८॥

तब उस गाण्डीव धनुषको पहचानकर राजा विराट आदि प्रमुख वीर और वीरवर पाञ्चालराज द्रुपद—ये सभी उत्साहित होकर उस स्थानपर आ गये ॥ ११८ ॥

सर्वाणि सैन्यानि तु भावयन्ति
यतो यतो गाण्डिवजः प्रणादः ।
नमस्यन्ति स्मातिमेव जग्मु
न तत्रकोऽप्यभिससार कश्चित् ॥११९॥

जहाँ जहाँ गाण्डीव धनुषकी टंकार होती थी, वहाँ-वहाँ आपके सारे सैनिक मस्तक टेक देते थे। कोई भी उनके प्रतिकूल आक्रमण नहीं करता था ॥ ११९ ॥

तस्मिन् सुघोरे नृपसम्प्रहारे
हताः प्रवीराः ससवाजिसूताः ।
गजाश्च नाराचनिपातताडिता
महापताका शुभरुक्मकक्ष्याः ॥१२०॥

परीतसत्त्वाः सहसा निपेतुः
किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः ।
दृढं हताः पत्रिभिरुग्रवेगैः
पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः ॥१२१॥

राजाओंके उस भयानक संग्राममें रथ और सारथि सहित बड़े-बड़े वीर मारे गये। सुन्दर सुनहरे रस्सोंसे कसे हुए बड़ी-बड़ी पताकाओंवाले हाथी नाराचोंकी मारसे पीड़ित हो गिरे और सहसा धराशायी हो गये। कुन्तीकुमार अर्जुनके भयंकर वेगवाले तीखे एवं चमकीले भल्लोंसे गहरी चोट पहुँचनेपर कवच और शरीर नष्ट हो जानेसे कौरव सैनिक सहसा प्राणशून्य होकर गिर जाते थे ॥ १२०-१२१ ॥

निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला
ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु ।
पदातिसङ्घाश्च रथाश्च सङ्ख्ये
हयाश्च नागाश्च धनंजयेन ॥१२२॥

बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्त्वा
विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम् ।
ऐन्द्रेण तेनास्त्रवरेण राजन्
महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥१२३॥

युद्धके मुहानेपर जिनके यन्त्र कट गये और इन्द्रकील नष्ट हो गये थे, ऐसे बड़े-बड़े ध्वज छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे। उस संग्राममें अर्जुनके बाणोंसे घायल पैदलोंके समूह, रथ, घोड़े और हाथी शीघ्र ही गतप्राण होकर अपने अङ्गोंको पकड़े हुए पृथ्वीपर गिरने लगे। राजन्! उस महान् ऐन्द्रास्त्रसे रणभूमिमें सभी सैनिकोंके शरीर और कवच छिन्न-भिन्न हो गये ॥ १२२-१२३ ॥

ततः शरौघैर्निशितैः किरीटिना
नृदेहशस्त्रक्षतलोहितोदा ।
नदी सुघोरा नरमेदफेना
प्रवर्तिता तत्र रणाजिरे वै ॥१२४॥

उस समय समराङ्गणमें किरीटधारी अर्जुनने तीखे बाणसमूहोंद्वारा योद्धाओंके शरीरोंमें लगे हुए आघातसे निकलनेवाले रक्तकी एक भयंकर नदी बहा दी, जिसमें मनुष्योंकी मेद फेनके समान जान पड़ती थी ॥ १२४ ॥

वेगेन सातीव पृथुप्रवाहा
प्रसूतनागाश्वशरीररोधा ।
नरान्त्रमज्जोच्छ्रितमांसपङ्का
प्रभूतरक्षोगणभूतसेविता ॥१२५॥

वह नदी बड़े वेगसे बह रही थी। उसका प्रवाह दूर तक फैला हुआ था। मरे हुए हाथी और घोड़ोंके शरीर उसके तटके समान प्रतीत होते थे। मनुष्योंकी आँतें, मज्जा और मांस कीचड़के समान थे। बहुत-से राक्षस और भूतगण उसका सेवन करते थे ॥ १२५ ॥

शिरःकपालाकुलकेशशाद्वला
शरीरसंघातसहस्रवाहिनी ।
विशीर्णनानाकवचोर्मिसंकुला
नराश्वनागास्थिनिकृत्तशर्करा ॥१२६॥

मुर्दोंकी खोपड़ियोंपर जो केश थे, वे ही सेवारका भ्रम उत्पन्न करते थे। सहस्रों शरीर उसमें बह जानेवाले समान बह रहे थे। छिन्न-भिन्न होकर बिखरे हुए कवच उसमें लहरोंके समान जान पड़ते थे। मनुष्य, घोड़ों और हाथियोंकी कटी हुई हड्डियाँ [illegible] बालू और कंकड़का काम दे रही थीं ॥ १२६ ॥

श्ववृकगृध्रक्षतराक्षसैः
काकक्रव्यादगणैरुपद्रुताम् ।
उपेतकूलां ददृशुर्मनुष्याः
क्रूरां महावैतरणीप्रकाशाम् ॥१२७॥

उसके दोनों किनारोंपर कुत्ते, भेड़िये, गीध और कङ्क तथा राक्षस एवं अन्यान्य मांसभक्षी जन्तु निवास करते थे। उस भयानक नदीको लोगोंने महावैतरणीके समान देखा ॥ १२७ ॥

प्रवर्तितामर्जुनबाणसङ्घै-
र्मेदोवसासृक्प्रवहां सुभीमाम् ।
हतप्रवीरा च तथैव दृष्ट्वा
सेना कुरूणामथ फाल्गुनेन ॥१२८॥

* ये जन्तु विशेष करके छोड़े जाते हैं

ते वेदितश्चाल्पकरूपमात्स्वा
पार्थाश्च सर्वे सहिता प्रणेदु ।
प्रथमनात्मा पुरुषप्रवीरा
सतामसमन्त हृतवीरयोधान् ॥११९॥

तदनन्तर समस्त पाण्डव उस युद्धमें विजयी हुए। [illegible] और इस प्रकार कौरवसेनाके प्रधान-प्रधान वीर अर्जुनके द्वारा मारे गये। [illegible] और [illegible] तथा [illegible] हुए [illegible] वीर विजय पानेके निमित्त कौरवयोद्धाओंको भयभीत करते हुए एक साथ सिंहनाद करने लगे ॥ ११९ ॥

हतमर्थीपारि बलानि दृष्ट्वा
किरीटिना शत्रुभयावहेन ।
विनाशभ्य मना ध्वजिनीपतिना
सिंहो मृगाणामिव यूथसङ्घम् ॥१२०॥
विनेदतुस्तावतिहर्षयुक्तौ
गाण्डीवधन्वा च जनार्दनश्च ।

शत्रुओंको भय देनेवाले किरीटधारी अर्जुनके द्वारा कौरवसेनाके प्रमुख वीरोंको मारे गये देख पाण्डवपक्षके वीरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई थी। गाण्डीवधारी अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण पूर्वोक्त यूथोंको भयभीत करनेवाले सिंहके समान कौरवसेनापतियोंकी सारी सेनाको भगाकर स्वयं अत्यन्त हर्षमें भरकर गर्जना करने लगे ॥ १२०३ ॥

ततो रविं संहृतरश्मिजालं
दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ॥१२१॥
तदा प्रसक्तं विपुलं च घोरं
नक्षत्रमुत्पाद्य युगान्तकल्पम् ।
अथापयाने कुरवः सभीताः
सहैव दुर्योधनवाहिनीनाम् ॥१२२॥
सन्ध्यां समासाद्य सहैव सम्यक्
विभावसौ लोहितराजियुक्तम् ।

तदनन्तर सूर्यदेव अपनी किरणोंको समेटकर अस्ताचलको जाने लगे। तब शस्त्रोंके आघातसे क्षत-विक्षत अङ्गोंवाले भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, बाह्लीक तथा अन्य कौरवयोद्धाओंने [illegible] हुई विभावसुको देखकर [illegible] अत्यन्त [illegible] दुःखी हो [illegible] विचारे आरम्भ [illegible] युद्धभूमिसे लौट लिया ॥ १२१-१२२३ ॥

अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके
विजित्य शत्रूंश्च धनंजयोऽपि ॥१२३॥
ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च
समाप्तकर्मा शिबिरं निशायाम् ।

इधर अर्जुन भी शत्रुओंको जीतकर एवं लोकमें सुयश और कीर्ति पाकर भाइयों तथा राजाओंके साथ अपना कार्य समाप्त करके रात्रिके आरम्भमें अपने शिविरको लौट गये ॥ १२३३ ॥

ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां
निशामुखे घोरतमः प्रणादः ॥१२४॥
रणे रथानामयुतं निहत्य
हता गजाः सप्तशतानि चैव ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे
निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च ॥१२५॥
महत् कृतं कर्म धनंजयेन
कर्तुं यथा नार्हति कश्चिदन्यः ।

उस समय रात्रिके आरम्भमें कौरवोंका बड़ा भयंकर कोलाहल होने लगा। वे आपसमें कहने लगे—आज अर्जुनने रणक्षेत्रमें दस हजार रथियोंका विनाश करके सात सौ हाथी मार डाले हैं। प्राच्य, सौवीर, क्षुद्रक और मालव समस्त क्षत्रियगणोंको मार गिराया है। धनंजयने जो महान् पराक्रम किया है, उसे दूसरा कोई वीर नहीं कर सकता ॥ १२४-१२५३ ॥

श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा
तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ॥१२६॥
द्रोणः कृपः सैन्धवबाह्लिकौ च
भूरिश्रवाः शल्यशलौ च राजन् ।
अन्ये च योधाः शतशः समेताः
स्वेन बाहुबलेन रणे किरीटिना ॥१२७॥
स्वबाहुवीर्येण जिताः सभीष्माः
किरीटिना लोकमहारथेन ।

राजन्! श्रुतायु, अम्बष्ठपति राजा, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोण, कृप, जयद्रथ, बाह्लीक, भूरिश्रवा, शल्य और शल—ये तथा और भी सैकड़ों योद्धा, जो भीष्मके साथ थे, विश्वविख्यात महारथी किरीटधारी अर्जुनके द्वारा रणभूमिमें अपने बाहुबलसे परास्त किये गये हैं ॥ १२६-१२७३ ॥

इति ब्रुवन्तः शिबिराणि जग्मुः
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥१२८॥
उल्कासहस्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैः
विभ्राजमानैश्च तथा प्रदीपैः ।
किरीटिवित्रासितसर्वयोधा
चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम् ॥१२९॥

भारत! उपर्युक्त बातें कहते हुए आपके समस्त सैनिक

रुकते थी हुए ... तथा प्रकाशमान दीपोंके तथा ... उनका ... हो ... अवसर्प ... समान
अपने ... हरिमें ... कौरवोंकाके ... किया

इति श्रीमहाभारते भीष्म ... भीष्मवध पर्वणि तृतीय ... दिवसावहारोऽध्याय

१९ ... नमः ... दि ... विशाल दि ... कौरव

... दाक्षिणात्य अधिक पाठका ... श्लोक मिला कर कुल ... है

षष्टितमोऽध्याय

पाँचवे दिन—दोनों सेनाओंके व्यूहनिर्माण तथा भीष्म और अर्जुनका द्वन्द्व-युद्ध

सं

व्युष्टा निशा भारत भारतानां
अनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा
ययौ सपत्नान् ... शान्तकोपो
वृत: समग्रेण बलेन भीष्म:

सञ्जय कहते हैं भारत ... सेनाओंके आगे ... प्रभात ... शत्रुओंपर ... महात्मा भीष्म ... सारी सेनासे घिरकर ... करनेके लिये ... उनके मनमें ... क्रोध ... रहा था

द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च
तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ
जयद्रथश्चातिबलो ... बलौघै
नृपास्तथान्ये प्रययु समन्तात्

... दुर्योधन ... बाह्लिक
... जयद्रथ
... राजा

स महद्भिर्महामात्रै
... राजन्
... राजपुत्र
... आजानि

... रही

तस्मिन् ... दिवसे
... महारथा
... चित्र ... भा
महानागकुलाः ... विरेजु

... सम्राज्य ... कौरवोंकी ... विशाल ... रही

सा वाहिनी शान्तनवेन गुप्ता
महारथवारणवाजिभिश्च
बभौ सविद्युत्स्तनयित्नुकल्पा
जलागमे द्यौरिव जालमेघा

शान्तनुनन्दन भीष्मजीके ... विशाल वाहिनी बड़े बड़े रथों हाथियों और घोड़ोंसे भरी ... शोभा ... वर्षाकालमें ... आकाश ... पड़ती ... हो

ततो रणायाभिमुखी प्रयाता
प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता
सेना महोग्रा सहसा कुरूणां
वेगो यथा भीम इवापगाया

तदनन्तर नदीके भयानक ... कौरवोंकी ... अर्जुन ... शान्तनुनन्दन भीष्मसे रक्षित हो रणके लिये ... गयी

व्यालम्बनानाविधगूढसारं
गजाश्वपादातरथौघपक्षम्
व्यूहं महामेघसमं महात्मा
ददर्श दूरात् कपिराजकेतु

उधर ... अर्जुन ... अनेक प्रकारके ... महान् ... विस्तार ... बहुत ... मेघके समान ... है

विनिर्ययौ ... रथेन
नरर्षभ: श्वेतहयेन वीर:
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा
वधे धृत: सर्वसपत्नयूनाम्

... और ... सवार ... नरश्रेष्ठ अर्जुन ... आरूढ हो शत्रुओंके सामने चले

सुपक्षरः सोवरवत्पुरेण
यस्य यदूनामृषभोऽस्य मध्ये ।
कपिध्वजः प्राप्य विचेरुराजौ
स्यदैव पुत्रैस्तव कौरवाणाम् ॥ ९ ॥

जिसके रथ पर [illegible] गरुड़ [illegible] उसी तरह बड़ी वेगसे चलता दिखायी देता था, [illegible] मनोहर दिखायी देती है तथा यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण जिसका सञ्चालन करते थे, उस वानरध्वज [illegible] युद्धभूमिमें उपस्थित देख [illegible] सम्पूर्ण [illegible] सैनिक विषादमग्न हो गये ॥

प्रव्यथता गुरुमुत्तायुधेन
किरीटिना लाघवमहारथेन ।
स भूरिराजः [illegible]
अश्वसमरव्याकुलम् ॥ १० ॥

लोकविख्यात [illegible] किरीटधारी अर्जुन [illegible] लेकर जिसे [illegible] आ रहे थे और [illegible] भाग [illegible] उस [illegible] आपके सैनिकोंने देखा ॥

यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराजा
व्यूहः कृतः कौरवनन्दनेन ।
तथा न भूतो भुवि मानुषेषु
न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च ॥ ११ ॥

कुरुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरने पहले दिन जैसा व्यूह बनाया था वैसा ही व्यूह भी था। वैसा व्यूह इस भूतलपर मनुष्योंमें न तो पहले कभी देखा गया था और न कभी सुना ही गया था ॥

ततो ययौ देशमुखाय तन्नु
पाञ्चाल्यमुख्या सह वृष्णिमुख्यैः ।
ततः समन्तेऽशसमाहतानि
भयेऽरिसङ्घाधि विनेदुराजौ ॥ १२ ॥

तदनन्तर सेनाओंकी आज्ञाके अनुसार यथोचित स्थान पर पहुँचकर पाञ्चाल और वृष्णि [illegible] [illegible] उन [illegible] [illegible] [illegible] एक साथ बज उठीं ॥ १२ ॥

शङ्खस्वनास्तूर्यरवस्वनाश्च
सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः ।
ततः सबाणानि महास्वनानि
विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः ॥ १३ ॥

सभी सेनाओंमें शङ्खनाद, तूर्यनाद (बाजोंकी ध्वनि) तथा वीरोंके सिंहनादसहित [illegible] शब्द होने लगे। फिर वीरोंके द्वारा खींचे जानेवाले बाणसहित धनुषका महान् टङ्कार शब्द गूँज उठे ॥ १३ ॥

क्षणेन भेरीपणवप्रणादा
नदन्ति शङ्खमहास्वनाश्च ।
तच्छङ्खशब्दावृतमन्तरिक्ष-
मुद्धूतभौमद्रुतरेणुजालम् ॥ १४ ॥

[illegible] भेरी और पणव आदिके नाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

महानुभावाश्च तत्र प्रकाश-
मालोक्य नीरं महमाभिपन्नु ।
रथी रथेनाभिहत ससूतं
पपात साश्वः सरथः सकेतुः ॥ १५ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] रथी [illegible] [illegible] सारथि, घोड़े और [illegible] गिर पड़े ॥ १५ ॥

गजो गजेनाभिहतः पपात
पदातिना चाभिहतः पदातिः ।
आवर्तमानान्यभिवर्तमाने
घोरैः हतान्यश्वकुलान्यशेषात् ॥
प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि
सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः ॥ १६ ॥
सुवर्णतारागणभूषितानि
सूर्यप्रभाभानि शरावराणि ।
विदार्यमाणानि परश्वधैश्च
प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम् ॥ १७ ॥

हाथी हाथीके [illegible] और पैदल पैदलके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १६-१७ ॥

गजविषाणवरप्रसत्कृत्ता
कश्चित् ससूता रथिनः प्रपेतुः ।
गजर्षभाश्चापि रथर्षभेण
निपातिता बाणहता पृथिव्याम् ॥ १८ ॥

[illegible] हाथियोंके दाँतों और सूँड़के आघातसे रथयूथ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १८ ॥

गजौघवेगोद्धतसादितानाम्
श्रुत्वा निषेदुः सहसा मनुष्या ।

पार्थस्य　सादिपदातियूथा

विपन्नगात्रावयवाश्च तत्र ॥ १९ ॥

हाथियोंके बैठनेके कुचलकर कितने ही घुड़सवार और पैदल मुख हार गये । वे उनके दाँतों और नीचेके अङ्गोंसे कुचल-कर हताहत हो रहे थे । सहसा उनकी आर्त चीत्कार युद्ध का भयानक अनुष्योंको वहा शोर होता था ।

सम्भ्रान्तनागाश्वरथे　मुहूर्ते

महाहवे　सादिपदातियूनाम् ।

महारथे　सम्परिवार्यमाणं

ददृशु भीष्मं कपिराजकेतुम् ॥ २० ॥

उस मुहूर्तमें जब कि घुड़सवार और पैदल मुकाबले फिरते भाग रहे थे तथा हाथी घोड़े और रथ सभी अत्यन्त घबराहटमें पड़ गये थे, महारथियोंसे घिरे हुए भीष्म ने वानरचिह्नसे युक्त ध्वजवाले अर्जुनको देखा ॥ २० ॥

तं पञ्चतालोच्छ्रितताललकेतु

सदश्ववेगाद्भुतवीर्ययानम् ।

महास्त्रबाणाशनिदीप्तिमन्तं

किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत् ॥ २१ ॥

भीष्मका ध्वज पाँच तालवृक्षोंके चिह्नसे और ऊँचा था । उनके रथमें अच्छे घोड़े जुते हुए थे जिनके वेगसे वह रथ अद्भुत शक्तिशाली बना रहता था । उसपर आरूढ़ होकर शान्तनुनन्दन भीष्मने किरीटधारी अर्जुनपर धावा किया जो वज्र और अशनि जैसे महान् दिव्यास्त्रोंसे दीप्तिमान हो रहे थे ॥ २१ ॥

तथैव　शक्रप्रतिमप्रभावं

द्रोणः कृपश्चैव शल्यश्च विविंशतिश्च ।

कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च

दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् ॥ २२ ॥

राजन् ! इसी प्रकार इन्द्रके समान प्रभावशाली अर्जुनपर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, विविंशति, दुर्योधन तथा भूरिश्रवाने भी आक्रमण किया ।

ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य

सर्वास्त्रवित् काञ्चनचित्रवर्मा ।

जवेन शूरोऽभिससार सर्वा-

स्तानर्जुनस्यात्मसुतोऽभिमन्युः ॥ २३ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, सोनेके विचित्र कवच धारण करनेवाले शूरवीर अर्जुनपुत्र अभिमन्यु रथ-सेनाके प्रमुख भागसे वेगपूर्वक वहाँ पहुँचकर उन समस्त कौरव महारथियोंपर धावा किया ॥ २३ ॥

तेषां महास्त्राणि महारथानां

महाकृतार्चिर्विनिहत्य कार्ष्णिः ।

बभौ　महामन्त्रहुतार्चिमाली

सदोगतः सन् भगवानिवाग्निः ॥ २४ ॥

अर्जुनकुमारका पराक्रम दूसरोंके लिये असह्य था । वह उन कौरव महारथियोंके बड़े बड़े अस्त्रोंका नाश करके यज्ञ मण्डपमें महान् मन्त्रोंद्वारा हविष्यकी आहुति पाकर प्रज्वलित हुई ज्वालामालाओंसे प्रकाशित भगवान् अग्निदेवके समान शोभा पाने लगा ॥ २४ ॥

ततः स तूर्णं रुधिरौघफेनां

कृत्वा नदीमाशु रणे रिपूणाम् ।

जगाम सौभद्रमतीत्य भीष्मो

महारथं पार्थमदीनसत्त्वः ॥ २५ ॥

तदनन्तर उदार शक्तिशाली भीष्म रणभूमिमें तुरंत ही शत्रुओंके रक्तकी फेन रूप तरङ्गोंसे भरी नदी बहाकर सुभद्राकुमार अभिमन्युको लाँघकर महारथी अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

ततः प्रहस्याद्भुतविक्रमेण

गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन ।

विपाठजालेन महास्त्रजालं

विनाशयामास किरीटमाली ॥ २६ ॥

तब किरीटधारी अर्जुनने हँसकर अद्भुत पराक्रम दिखाते हुए गाण्डीव धनुषसे छोड़े और सिलपर रगड़कर तेज किये हुए विपाठ नामक बाणोंके समूहसे भीष्मके बड़े बड़े अस्त्रोंके समुदायको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ २६ ॥

तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणा-

मसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ।

भीष्मं महात्मा अभिववर्ष तूर्णं

शरौघजालैर्विमलैश्च भल्लैः ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् अनासक्त कर्म करनेवाले वानरध्वज महात्मा अर्जुनने सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भीष्मपर तुरंत ही निर्मल भल्लों तथा बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २७ ॥

तथैव　भीष्मादहतमन्तरिक्षं

महास्त्रजालं कपिराजकेतुः ।

विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया

दिवाकरेणेव तमोऽभिभूतम् ॥ २८ ॥

इसी प्रकार आपके सैनिकोंने देखा कि आकाशमें वानरध्वज अर्जुनके चलाये हुए महान् अस्त्रसमूहको भीष्मजीने अपने बाणोंसे उसी प्रकार छिन्न भिन्न कर दिया है, जैसे भगवान् सूर्य अन्धकारराशिको नष्ट कर देते हैं ॥ २८ ॥

एवंविधं　कार्मुकभीमनादं

मदीनवत् सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् ।

दरणा लोक कुरुष्वजाताम्

तत्र इच्छ भीष्मवधअध्याय

उस युद्धस्थलमें भेद भ्रम और लड़नेमें मनुष्योंको भयंकर वाले ... दर्शन होकर-युद्ध होने लगा, जिसे कौरव ... सारे तथा कुरु लोगोंने भी देखा

इति श्रीमहाभा... भीष्मप... भीष्मवधपर्वणि भीष्मयुद्धदर्शने षष्टितमो ध्याय

इस प्रकार श्रीमहाभारत भी ... अध्याय भीष्मपर्व ... अतुल्य ... युद्धमें ... तथा साठवाँ अध्याय पूरा

एकषष्टितमोऽध्याय

अभिमन्युका पराक्रम और धृष्टद्युम्नद्वारा शलके पुत्रका वध

सञ्जय उवाच

द्रौणिर्भूरिश्रवा शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं समयोधयन् ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन तथा शलके पुत्रने सुभद्राकुमार अभिमन्युको भारी सहायता रोका

संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा

जैसे गजों तथा पाँच हाथियोंसे सिंहका बच्चा हो उसी प्रकार सुभद्राकुमार अभिमन्यु उन अत्यन्त तेजस्वी पाँच पुरुषसिंहोंसे अकेला ही युद्ध कर रहा ... यह सब वहाँ सब लोगोंने प्रत्यक्ष

नाभिलक्ष्यतया कश्चिच्छौर्ये ... परः क्रमे
बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नास्त्रे नापि च लाघवे

अस्त्र ... शौर्य ... पराक्रम ... दिखाने अस्त्रोंका प्रयोग करने तथा शीघ्रता ... अभिमन्यु की समानता कर सके

तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिंदमम्
दृष्ट्वा पार्थो रणे यत्तः सिंहनादमथाकरोत्

अपने पुत्र शत्रुदमन अभिमन्युको युद्धमें ... प्रकार पराक्रम करते देख कुन्तीपुत्र अर्जुनने ... सिंहनाद किया

पीडयानं तु तत् सैन्यं पौत्रं तव विशाम्पते
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात् पर्यवारयन्

प्रजानाथ राजेन्द्र ! आपके पौत्र अभिमन्युको कौरव सेनाको पीड़ा देते देख आपके ही निकटवर्ती सब ओरसे घेर लिया

ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत्
प्रत्युद्ययौ स सौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥ ६

शत्रुओंको दीन बना देनेवाले सुभद्राकुमारने

दैन्यरहित होकर अपने तेज और बलसे कौरवसेनापर धावा किया

तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम्
व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः ॥ ७

समरभूमिमें शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए अभिमन्युका विशाल धनुष ... सूर्यके समान प्रकाशित रहा था

स द्रौणिमिषुणैकेन विद्ध्वा शल्यं च पञ्चभिः
ध्वजं सांयमनेश्चापि सोऽष्टाभिरपातयत् रणे

उसने ... एक ... और ... पाँच बाणोंसे ... आठ बाणोंसे ... ध्वज

रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना
शितेनोरगसंकाशां पत्रिणा विजहार ताम् ॥ ॥

फिर ... चलायी हुई ... विभूषित ... वाले ... भिन्न भिन्न कर डाला

शल्यस्य च महाघोरानस्यतः समरे शरान्
... भारत ... फाल्गुनि
... जघान चतुरो हयान् ॥ ॥

... बाणोंका ... कर दिये ... अर्जुनकुमार अभिमन्युने ... उसके ... और उनकी ... लेकर ... चारों घोड़ोंको मार गिराया

भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः
नाभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलाश्रयम् ॥ ॥

भूरिश्रवा ... शल्य, अश्वत्थामा, सांयमनि और शल — ये ... पाँचों ... भरे हुए ... तथापि अभिमन्युके बाहुबलका ... रोक सके

ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः
पञ्चत्रिंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ ॥
धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥ १६ ॥

गजेन्द्र जब आपके पुत्र दुर्योधनने प्रेरित होकर नियमों तथा वेगशालिता महावेगसे चलीस हजार घोड़ोंद्वारा शत्रुओंपर टूट पड़े एकनेवाले युधिष्ठिर फिरो आये अनुसार उस लिया । व गज व गज शत्रुओंके साथ चला और गद सवारों सहित नाश किये जाय थे ॥ १३ ॥

तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षितौ महारथौ ।
दृष्ट्वा गजान् पाञ्चाल्य शालाञ्चतिरोचनम् ॥ १४ ॥
स सहायोऽपि तानेव ससहस्रेषुभिश्चिनुः ।
चरितिभिः पतितिभिश्च पुन शलाञ्चदशा ॥ १५ ॥
धनुर्भिस्करणसज्जुष्टा नाभिरिता न वाहिनीम् ।
ययो न महारथौ वेगवान् परंतप ॥ १६ ॥

शकुनस्य नरेश सिंहपूर्व महारथी अर्जुन और अभिमन्युको गजवाहनने घिर पुत्र देख पाञ्चालराजकुमार रोमवाले धृष्टद्युम्न हजार हाथियोंसे और ४ तथा गेंदा हाथी युद्धमें घन पैदलोंके विरुद्ध आगे निकाले वाहिनीको आगे उनसे तथा महारथी शत्रुओं ध्वज धनेसे हुए बढ़े और मारगयी कायर चर आए ॥ १६ ॥

तेन कार्मिकेतः गुणमनोक हयमत्तमाः ।
सरवव्यूहवाहनाः ग्रासनमासदन्महाभारत ॥ १७ ॥

तुरंग बाहुर वाहक वानरादिः शत्रुवीरधृष्टद्युम्नसे मुर्गापन युद्ध बेर मेरा वृद्धके लिये उगा ही रहा गोगा मानो नहीं उसका तथा हाथीसवार और पैदलसार सभी मारा गया था ॥ १७ ॥

सा ऽद्रुतगमगुम थान प्रयान्ताक्तपधात ।
बिभि गागान् वालेनतुमुल व्यतर्यवन् ॥ १८ ॥

पाञ्चालराज और उनके धृष्टद्युम्नने अर्जुन लाकर वर्ते हुए कृपाचार्यको उन पर धा स्टीरण तीन बाण मारे ॥

तत स मद्रकाराज्य वश्चवृषभिः शरे ।
पञ्चस्य अभयाता भल्लेन कृतवर्मणा ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् दस बाणा मन्द्रराज दस बाणोंवाले मार कर सुत दी पड़े अ र द्वारा उनकाभाव उतार मारे मार डाला ॥ १ ॥

कृतस्यापि कृताद् पौरवस्य महामने ।
अथार विमला धनुः नाराचस्य परन्तप ॥ २० ॥

इसके बाद पाञ्चलोंको सेना दलवाले पाण्डवज्ञानसिन निश्चय वाहवाने नाम महामन पौरवके पुत्र दमनको भी मार डाला ॥ २ ॥

ततः सात्यकिने पुत्र सश्चास्य युधायुधेन ।
अभिचरन् विशालाक्षाणैः अभिमत्स्य सापविद्म् ॥ २१ ॥

तब गान्धार पुत्र तीन बाणोंसे शत्रुजय धृष्टद्युम्नको और उस नाराचद्वारा त्यागपत्रियोंको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

ततोऽतिविद्धो महेष्वासः सुकिणी परिमाजितः ।
भल्लेन सुधारिश्येन शिवाकर्तारस्य कार्मुकम् ॥ २३ ॥

इस प्रकार अपने वाले होकर अपने मुख दोनों वालोंको चाटने हुए महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने अत्यन्त तीखे भल्लसे शल्यके धनुषको काट दिया ॥ २२ ॥

अयोत पत्रविद्यात्वा क्षिप्रमेव समार्पयत् ।
अदकालस्याचार्यद् राजा तुमीनो पार्थिमात्यी ॥ २३ ॥

राजन् तत्काल होने नीम ही पचीस बाणोंसे शल्यपुत्रको आहत कर दिया तथा उनके घोड़ों एवं दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी तत्पुत्र मुचम दार दिया ॥ २८ ॥

स हतावश्वो रथे तिष्ठन् ददृशे अस्तर्षभ ।
पुत्र सात्यमने पुत्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥ २४ ॥

अनन्तर विनाश नीड़े मार दिए गए थे उसी रथपर खड़े हुए महात्मा पुत्रको महामना धृष्टद्युम्नके पुत्रको देखा ॥

स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पन्नगमिवमानव्ह्यद् रथादथ पुरुषर्षभ ॥ २५ ॥

तब पुरुषश्रेष्ठ शल्यपुत्र उनके हो एक अत्यन्त भयंकर लोहेकी उत्तम तलवार हाथमें ले बैठे ही रथपर बैठे पराशल्यपुत्र पुरुषकी ओर चला ॥ २६ ॥

स महीमिभिधावसन् मत्स्य् बलन्निमान्यगम् ।
आत्मावतर्जनिलितः कालात्सृष्टमिवान्तकम् ॥ २६ ॥
शीघ्रमालामिवादित्य मत्तवारणविक्रमम् ।
अदृश्यत पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नको बर्सते ॥ २७ ॥

तब युद्धमें पाण्डव तथा राजकुमार धृष्टद्युम्नने उनको दहाड़के समान प्रकाश और सूर्य समान दीप्तिमान शत्रु पुरुषको आते देखा एक महान् सामानी बलवान् आकाशसे गिरते हुए यम तथा उनको भांग हुए मृत्युके समान जान पड़ता था उनके हाथमें नङ्गी तलवार थी ॥

तस्य च आत्मद्वाराद् शत्रोरुत्तममिभावन ।
शितानि स्त्रीहस्तस्य शास्त्रवरण्यसिम् ॥ २८ ॥
बालवर्षालसिनस्य तथाध्यासुवेषुष ।
स्यन्दनं पेञ्चात्सिं कृत्वा शिरसेव गदया शिर ॥ २९ ॥

वह शिखामनी तलवार धारण कर रहा था । उसके हाथमें तीखी तलवार थी । उसने अपने अङ्गोंमें कवच धारण कर रक्खा था वह बालक बलको लाकर अत्यन्त निकट आ पहुँचा था । उस समय पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने क्रुद्ध होकर कोपपूर्वक गदासे आघात करके उसके मस्तकको विदीर्ण कर दिया ॥ २८-२९ ॥

तस्य राजन् शिरश्छित्त्वा मुकुटं च सकुण्डलम्।
कृतवान् कनके हस्तस्य वेगेन न्यपतद् भुवि॥३०॥

राजन्! उनके मारे जानेपर शरीरसे चमकीला कवच और बाणसे अभिमन्युने उनके सिरका भाग भी भूमिपर गिरा दिया॥३०॥

स निहत्य महावेगः स लेभे परमां मुदम्।
पुत्रं पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः॥३१॥

पाञ्चालराजके भयानक पराक्रमी पुत्र महात्मा धृष्टद्युम्न मद्रदेशके महाबलवान् राजकुमारको मारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए॥३१॥

तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे।
हाहाकारो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष॥३२॥

आर्य! उस महाधनुर्धर महारथी राजकुमारके मारे जानेपर आपकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया॥३२॥

ततः क्रोधसमाविष्टः शल्यो दृष्ट्वा निहतमात्मजम्।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम्॥३३॥

अपने पुत्रको मारा गया देख रणमदमत्त राजा

कुपित होकर रणदुर्मद पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नपर बड़े वेगसे धावा किया॥३३॥

तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ।
ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा॥३४॥

युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वे दोनों शूरवीर उस समराङ्गणमें एक दूसरेसे भिड़ गए। कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंके समस्त भूपाल उनका युद्ध देखने लगे॥३४॥

ततः आवाहमानं क्रुद्धः पार्षतस्तं महारथः।
आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥३५॥

तब जैसे महावत किसी महान् गजराजको अंकुशोंसे मारे उसी प्रकार धृष्टद्युम्नको क्रोधपूर्वक तीन बाणोंसे घायल किया॥३५॥

तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत॥३६॥

इसी प्रकार युद्धमें शोभा पानेवाले शल्यने भी कुपित होकर शूरवीर धृष्टद्युम्नकी छातीपर प्रहार किया। फिर तो वहाँ भयंकर युद्ध छिड़ गया॥३६॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसयुद्धे शाल्यवधे एकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें चौथे दिनके युद्धमें शल्यपुत्रका वधविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥६१॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३६½ श्लोक हैं)

द्विषष्टितमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्न और शल्य आदि दोनों पक्षके वीरोंका युद्ध तथा भीमसेनके द्वारा गजसेनाका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय।
यत् सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन वध्यते॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—सञ्जय! मैं पुरुषार्थकी अपेक्षा भी दैवको ही प्रधान मानता हूँ, जिससे मेरे पुत्र दुर्योधनकी सेना पाण्डवोंकी सेनाद्वारा मारी जा रही है॥१॥

नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान्॥२॥

तात! तुम प्रतिदिन मेरे ही सैनिकोंके मारे जानेकी बात कहते हो और पाण्डवोंको सदा व्यग्रतारहित तथा हर्षोल्लाससे परिपूर्ण बताते हो॥२॥

हीनान् पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय।
पातितान् पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि॥३॥

सञ्जय! आजकल मेरे पुत्र और सैनिक पुरुषार्थसे हीन हो रहे हैं और शत्रुओंने उन्हें धराशायी किया एवं मार डाला है। प्रतिदिन वे शत्रुओंके हाथसे मारे ही जा रहे हैं। उनके सम्बन्धमें तुम सदा ऐसे ही समाचार देते हो॥३॥

युध्यमानान् यथाशक्ति घटमानाञ्जयं प्रति।
पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयन्ते चैव मामकाः॥४॥

मेरे पक्षके वीर विजयके लिये यथाशक्ति चेष्टा करते और जूझते हैं तो भी पाण्डव ही विजयी होते हैं और मेरे पुत्रोंकी ही पराजय होती है॥४॥

सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च।
अश्रोष्यामि सततं तात दुःसहानि बहूनि च॥५॥

तात! इस प्रकार मैं दुर्योधनके कारण सदा अत्यन्त दुःसह एवं तीव्र दुःखकी बहुत-सी बातें सुनता रहूँगा॥५॥

तमुपायं न पश्यामि जीयेरन् येन पाण्डवाः।
मामका विजयं युद्धे प्राप्नुयुर्येन सञ्जय॥६॥

सञ्जय! मैं ऐसा कोई उपाय नहीं देखता जिससे पाण्डव हार जायँ और मेरे पुत्रोंको युद्धमें विजय प्राप्त हो॥६॥

सञ्जय उवाच

क्षयं मनुष्यदेहानां गजवाजिरथक्षयम्।
शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवैवापनयो महान्॥७॥

सञ्जयने कहा—राजन्! उस युद्धमें वायलशरीरोंका भारी संहार हुआ है। हाथी, घोड़े और मनुष्योंका भी विनाश देखा गया है। यह सब आप स्थिर होकर सुनिये। यह आपके ही महान् अन्यायका फल है ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु शल्येन पीडितो नवभिः शरैः।
पीडयामास संक्रुद्धो मद्राधिपतिमायसैः ॥ ८ ॥

शल्यने नौ बाणोंसे पीड़ित होकर धृष्टद्युम्न अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने लोहेके बने हुए बाणोंसे मद्रराज शल्यको बहुत पीड़ा पहुँचायी ॥ ९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम्।
न्यवारयत यत्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम् ॥ ९ ॥

वहाँ हमलोगोंने धृष्टद्युम्नका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने समरभूमिमें शोभा पानेवाले राजा शल्यको तुरंत ही आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥

नान्तरं ददृशे कश्चित् तयोश्च रथिनोस्तदा।
मुहूर्तमिव तद् युद्धं तयोः सममिवाभवत् ॥ १० ॥

उस समय उन दोनों महारथियोंमें पराक्रमकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था। दो घड़ीतक दोनोंमें समान-सा युद्ध होता रहा ॥ १० ॥

ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥

महाराज! तदनन्तर राजा शल्यने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके पीले रंगके तीखे भल्लसे धनुष काट दिया ॥ ११ ॥

अथैनं शरवर्षेण छादयामास संयुगे।
गिरिं जलागमे यद्वज्जलदा जलवृष्टिभिः ॥ १२ ॥

[illegible] ॥ १२ ॥

अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते।
अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति ॥ १३ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नके पीड़ित होनेपर क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने मद्रराज शल्यके रथपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ १३ ॥

ततो मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्यातिकोपनः।
आर्तायनिममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः ॥ १४ ॥

मद्रराजके रथके निकट पहुँचकर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अनन्त आत्मबलसे सम्पन्न अर्जुनकुमारने अपने पैने बाणोंद्वारा ऋतायनपुत्र राजा शल्यको घायल कर दिया ॥

तावकास्तु ततो राजन् परीप्सन्तोऽर्जुनिं रणे।
मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्यावतस्थिरे ॥ १५ ॥

राजन्! तब आपके पुत्र रणभूमिमें अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत वहाँ आये और मद्रराज शल्यके रथको चारों ओरसे घेरकर युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ १५ ॥

दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥ १६ ॥
सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥ १७ ॥

भरतनन्दन! आपका भला हो। दुर्योधन, विकर्ण, दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत तथा पुरुमित्र—ये आपके पुत्र मद्रराजके रथकी रक्षा करते हुए युद्धभूमिमें डटे हुए थे ॥ १६-१७ ॥

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८ ॥
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशाम्पते।
अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः ॥ १९ ॥

आपके इन दस महारथी पुत्रोंका क्रोधमें भरे हुए भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदीकुमार, पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव तथा अर्जुनकुमार अभिमन्यु—इन दस महारथियोंने सामना किया। प्रजानाथ! वे सब नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार कर रहे थे ॥ १८-१९ ॥

अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः।
ते वै समेयुः समरे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ २० ॥

राजन्! वे सब एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखकर हर्ष और उत्साहके साथ शत्रुओंका सामना करते थे। आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप ही ये सब योद्धा आपसमें भिड़ गये थे ॥ २० ॥

तस्मिन् दारुणे युद्धे वर्तमाने महाभये।
तावकानां परेषां च प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥ २१ ॥

[illegible] महारथी [illegible] युद्धमें लगे हुए थे। [illegible] आपके और पाण्डवोंके [illegible] दर्शक बनकर देख रहे थे ॥ २१ ॥

शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः।
अन्योन्यमभिनर्दन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २२ ॥

किंतु आपके और पाण्डवोंके वे महारथी वीर एक-दूसरेपर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए गर्जना और युद्ध करते थे ॥ २२ ॥

ते यत्ता जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योन्यं जिघांसवः।
अन्योन्यमभिमर्षन्तः स्पर्धमानाः परस्परम् ॥ २३ ॥

उस समय उन सबमें क्रोध भरा हुआ था। सभी एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखते थे। सदा परस्पर स्पर्धा रखते थे और सभी सबको कुचलनेकी चेष्टा करते थे ॥ २३ ॥

अन्योन्यस्पर्धया राजन्नागाय महता प्रिय ।
महत्यपि विमुञ्चन्तः समन्तेनुपमर्पिण ॥ २४ ॥

महाराज ! वे सब आपकी कुबकी माद्रनयु च परस्पर स्पर्धा रखनेके कारण बड़ भड़े थे । २४ दूसरे पति आक्रमण करते हुए वे भयंकर प्रहार करते हुए आपस प्रस्तावन करते थे ॥ २४ ॥

दुर्योधनस्तु समरो धृष्टद्युम्नं महारणे ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिः समरे युधाम् ॥ २५ ॥

दुर्योधनने कुपित होकर उस महासमरमें आते बार तीखे बाणोंद्वारा उन ही धृष्टद्युम्नको घायल किया ॥ २५ ॥

दुर्मर्षणस्तु विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहः सप्तभिः ॥ २६ ॥
विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिश्च शतानीकस्तथा ।
तान् प्रत्यविध्यद् राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापन ॥ २७ ॥
एकैकं पञ्चविंशत्या द्रावयन् वाजिसत्तमम् ।

दुःशासनने बीस, चित्रसेनने पाँच, दुर्मुखने नौ, दुःसहने सात, विविंशतिने पाँच तथा दुःशासनने तीन बाणोंसे उन्हें घायल किया । राजेन्द्र ! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नने अपनी फुर्ती दिखाते हुए दुर्योधन आदिमेंसे प्रत्येकको पचीस-पचीस बाणोंसे घायल किया ॥ २६-२७ ॥

सत्यवान् च समरे पुरुमित्रं च भारत ॥ २८ ॥
अभिमन्युरविध्यत् तु दशभिर्दशभिः शरैः ।

भारत ! अभिमन्युने समरभूमिमें सत्यव्रत और पुरुमित्रको दस-दस बाणोंसे पीड़ित किया ॥ २८ ॥

माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ ॥ २९ ॥
छादयेतां शरव्रातैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

माताको आनन्दित करनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेवने अपने मामा शल्यको पैने बाणोंसे आच्छादित कर दिया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ २९ ॥

ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ ॥ ३० ॥
शरैर्बहुभिराच्छन्नौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः ॥ ३१ ॥

महाराज ! रथियोंमें श्रेष्ठ दोनों भानजे प्रतिकार करना चाहते थे तो भी शल्यने उन्हें बहुत-से बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया, परंतु उनके बाणोंसे आच्छादित होनेपर भी नकुल-सहदेव विचलित नहीं हुए ॥ ३०-३१ ॥

अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
विधित्सुः कलहस्यान्तं गदां जग्राह पाण्डवः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनने दुर्योधनको देखकर कलहका अन्त कर डालनेकी इच्छासे गदा उठा ली ॥ ३२ ॥

समुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पुत्रास्ते प्राद्रवन् भयात् ॥ ३३ ॥

गदा उठाये हुए महाबाहु भीमसेनको शिखरयुक्त कैलास पर्वतके समान उपस्थित देख आपके पुत्र भयसे भाग चले ॥ ३३ ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो मागधं समचोदयत् ।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ३४ ॥

तब दुर्योधनने कुपित होकर मगधराजको दस हजार वेगशाली हाथियोंकी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रेरित किया ॥ ३४ ॥

गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः ।
मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ३५ ॥

उस गजसेनाके साथ मगधराजको आगे करके राजा दुर्योधनने भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ३५ ॥

आपतन्तं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः ।
गदापाणिरवारोहद् रथात् सिंह इवोन्नदन् ॥ ३६ ॥

उस गजसेनाको आते देख भीमसेन हाथमें गदा लेकर सिंहके समान गर्जना करते हुए रथसे उतर पड़े ॥ ३६ ॥

अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अभ्यधावद् गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३७ ॥

लोहेकी बनी विशाल एवं भारी गदा लेकर वे मुँह बाये हुए कालके समान उस गजसेनापर टूट पड़े ॥ ३७ ॥

स गजान् गदया निघ्नन् व्यचरत् समरे बली ।
भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः ॥ ३८ ॥

बलवान् महाबाहु भीमसेन वज्रधारी इन्द्रके समान गदासे हाथियोंका संहार करते हुए समराङ्गणमें विचरने लगे ॥ ३८ ॥

तस्य नादेन महता मनोहृदयकम्पिना ।
व्यत्यवर्तन्त संहत्य गजा भीमस्य गर्जतः ॥ ३९ ॥

मन और हृदयको कम्पित करनेवाले गर्जते हुए भीमसेनकी उस भीषण गर्जनासे सब हाथी एकत्र हो भयके मारे निश्चेष्ट एवं जड़वत् हो गये ॥ ३९ ॥

ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४० ॥
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान् ।
अभ्यवर्षन्त धावन्तो मेघा इव गिरीन् यथा ॥ ४१ ॥

तदनन्तर द्रौपदीके पाँचों पुत्र, महारथी अभिमन्यु, नकुल-सहदेव तथा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न—ये सब लोग भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षा करते हुए हाथियोंपर उसी प्रकार दौड़-दौड़ कर बाण-वर्षा करने लगे, जैसे बादल पर्वतोंपर पानीकी वर्षा करते हैं ॥ ४०-४१ ॥

क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैश्चाञ्जलिकैः शितैः ।
न्यहरन्नुत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम् ॥ ४२ ॥

पहलवान हाथी धुरा सहित पीछे हटकर भयभीत होकर नीचे गिरने लगे। … सारथि … भयानक रूप से … गिराने लगा।

शिरोभिः पतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः।
काञ्चनाङ्गदयुक्तैश्च … पृथिवी …

उनके सिर … भुजाओं और भुजाओं सहित हाथ गिरने … पड़ता मानो … हो।

सुनोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः।
अदृश्यन्तान्ववागेषु द्रुमा भग्नशिखा इव॥

… हाथियों की पीठपर बैठे हुए … जैसे टूटी हुई शिखावाले वृक्ष दिखायी देते हों, वैसे ही वे हाथियों पर दिखायी दे रहे थे।

पुष्पपुष्पहतानन्यांस्तथा … मतङ्गजान्।
पतत … पार्थिवा महामना॥

मारे गये … हाथियों के … और … हाथी गिर गये … हाथी गिर और गिराये गये।

… महीपाल गजानीकमपोथयत्।
प्रेक्षमाणाः समरे … इव …

… अभिमन्यु के … विशाल हाथियों को … दिया।

… महाबलम्।
जघानार्जुनपुत्रश्च … पर्यविध्यत॥ ४७॥

… उस दिन … …

तथार्जुनिरभिनयत् … परपुरञ्जय।
… गजानीकं … इव …

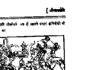
… अर्जुनपुत्र अभिमन्यु … दिखायी … …

निपात्य तद् गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः।
व्यचरत् समरे क्रुद्धः … गिरीनिव॥ ४८॥

उधर पाण्डुनन्दन भीमसेन भी … युद्धस्थलमें … हाथियोंको … युद्धभूमिमें विचरने लगा।

एकप्रहाराभिहतान् भीमसेनेन दन्तिनः।
अपश्याम रणे तस्मिन् गिरीन् वज्रहतानिव॥

… युद्धभूमिमें इसने तरह के मारे हुए हाथी



… उसी प्रकार एक ही प्रहारसे … हाथियोंको भी …

भग्नदन्तान् भग्नकरान् भग्नसक्थांश्च वारणान्।
भग्नपृष्ठान् … निहतान् पर्वतोपमान्॥
… विमुखान् समरे …
विधुतान् भयसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान्॥

कितनोंके दाँत टूट गये, कितनोंकी सूँड कट गयी, कितनों की जाँघें टूट गयीं, कितनोंकी पीठ टूट गयी और कितने ही पर्वतोंके समान विशालकाय गजराज मारे गये। कुछ चिग्घाड़ रहे थे, कुछ युद्धभूमिसे विमुख होकर भाग रहे थे और कुछ भयसे व्याकुल होकर मल-मूत्र कर रहे थे। … सबको …

भीमसेनस्य मार्गेषु पतितान् पर्वतोपमान्।
… गजान् …

भीमसेनके मार्गोंमें उनके द्वारा मारे गये पर्वतोपम हाथी पड़े दिखायी दिये। … हाथियोंको मैंने … फेन वमन करते देखा।

वमन्तो रुधिरं चान्ये भिन्नकुम्भा महागजाः।
विह्वलन्तो गता भूमिं शैला इव धरातले॥

कितने ही विशालकाय हाथी … और उनके कुम्भस्थल फट गये … खूनसे लथपथ … पर्वतोंके समान …

मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः।
व्यचरत् समरे भीमो दण्डपाणिरिवान्तकः॥

भीमसेनका सारा शरीर … रक्तसे भीग गया था … हाथमें गदा लिये दण्डपाणि यमराजके समान युद्धभूमिमें विचर रहे थे।

गजानां रुधिराक्लिन्नां गदां बिभ्रद् वृकोदरः।
घोरः प्रतिभयश्चासीत् पिनाकीव पिनाकधृक्॥

हाथियोंके समूहसे घिरे हुए ... कारण लिये भीमसेन विनाशकारी भगवान् रुद्रके समान घोर एवं भयंकर दिखायी देते थे ॥ ५६ ॥

वध्यमानास्तु घोरेण भीमसेनेन दन्तिनः ।
सहसा प्राद्रवन् शिष्टा मृद्नन्तश्च वाहिनीम् ॥ ५७ ॥

मोर्चेपर भेजे हुए भीमसेन हाथियोंका नाश करने लगे, तब उनके द्वारा अत्यन्त कष्ट पाकर बचे हुए हाथी अपनी सेनाको कुचलते हुए सहसा युद्धस्थलसे भाग चले ॥ ५७ ॥

तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः ।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवामराः ॥ ५८ ॥

जैसे देवता वज्रधारी इन्द्रकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सुभद्राकुमार आदि महारथी योद्धा युद्धमें लगे हुए महाधनुर्धर वीर भीमसेनकी सब ओरसे रक्षा करते थे ॥ ५८ ॥

शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितो गजशोणितैः ।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥ ५९ ॥

खूनसे सनी हुई गदा लिये तथा हाथियोंके रक्तसे भीगे हुए रौद्ररूपधारी भीमसेन यमराजके समान दिखायी देते थे ॥ ५९ ॥

व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत ।
ददृशाम रणे भीमं नृत्यन्तमिव शङ्करम् ॥ ६० ॥

भारत ! भीमसेन गदा लेकर सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यायाम कर रहे थे । समराङ्गणमें भीमको हमलोगोंने ताण्डव नृत्य करते हुए भगवान् शङ्करके समान देखा था ॥ ६० ॥

यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥ ६१ ॥

महाराज ! भीमसेनकी भारी और भयंकर गदा यमदण्डके समान कठोर थी । उससे शत्रुओंका संहार होता था । प्रहार करनेपर उससे इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान आवाज होती थी ॥ ६१ ॥

विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ ६२ ॥

उसमें केश और मज्जा लिपटी हुई थी तथा वह खूनसे लथपथ हो रही थी । उस गदाको हमने प्रलयकालमें पशुओं (जीवों) का संहार करनेवाले क्रोधी रुद्रदेवके पिनाकके समान समझा था ॥ ६२ ॥

यथा पशूनां संघातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत् ।
तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत् ॥ ६३ ॥

जैसे चरवाहा पशुओंके झुंडको डंडेसे हाँकता है, उसी प्रकार भीमसेन गदासे हाथियोंकी सेनाको हाँक रहे थे ॥ ६३ ॥

गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन् कुञ्जरास्तव ॥ ६४ ॥

महाराज ! भारी गदाकी मार और बाणोंकी मार पड़नेपर आपकी सेनाके वे हाथी अपने ही सैनिकोंको कुचलते हुए भाग चले ॥ ६४ ॥

महावात इवाभ्राणि विधमित्वा स वारणान् ।
अतिष्ठत् तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥ ६५ ॥

जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न करके उड़ा देती है, उसी प्रकार भीमसेन उस भयंकर युद्धमें हाथियोंकी सेनाको नष्ट करके श्मशानभूमिमें त्रिशूलधारी भगवान् शंकरके समान खड़े थे ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसे भीमयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें चौथे दिन भीमसेनका युद्धविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्याय

युद्धस्थलमें प्रचण्ड पराक्रमकारी भीमसेनका भीष्मके साथ युद्ध तथा सात्यकि और भूरिश्रवाकी मुठभेड़

संजय उवाच

गते तस्मिन् गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! हाथियोंकी उस सेनाके मारे जानेपर आपके पुत्र दुर्योधनने समस्त सैनिकोंको आज्ञा दी कि 'सब मिलकर भीमसेनको मार डालो' ॥ १ ॥

ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन् भीमसेनं नदन्तं भैरवान् रवान् ॥ २ ॥

तदनन्तर आपके पुत्रकी आज्ञासे समस्त सेनाएँ भैरव गर्जना करती हुई भीमसेनपर टूट पड़ीं ॥ २ ॥

तं बलौघमपर्यन्तं देवैरपि दुरुत्सहम् ।
आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥ ३ ॥

वह सेना अपार थी और देवताओंके लिये भी दुःसह थी । पूर्णिमाको उठे हुए समुद्रके समान उसका पार पाना कठिन था ॥ ३ ॥

रथनागाश्वकलिलं शङ्खदुन्दुभिनादितम् ।
अनन्तरथपादातं रजसा सर्वतो वृतम् ॥ ४ ॥

वह सेना असंख्य रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई थी । शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे कोलाहलपूर्ण हो रही थी ।

उसमें रथ और पैदल की गणना नहीं जाती जा सकती थी तथा उस सेनामें गज और अश्व व्याप्त हो रही थी ॥ ४ ॥

स भीमसेनं सागरे महोदधिमिवाकरम्।
सेनासागरमक्षोभ्य वेलेव समवारयत् ॥ ५ ॥

दूसरे महासागरके समान उस अक्षोभ्य सैन्यसमुद्रका युद्धमें भीमसेनने वस्त्रदेवकी भाँति रोक दिया ॥ ५ ॥

तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः।
भीमसेनस्य समरे राजन् कर्मातिमानुषम् ॥ ६ ॥

राजन्! उस समय समरभूमिमें हमलोग ने महात्मा पाण्डुनन्दन भीमसेनका अत्यन्त आश्चर्यमय अतिमानुष कर्म देखा था ॥ ६ ॥

उदीर्णान् पार्थिवान् सर्वान् साश्वान् सरथकुञ्जरान्।
असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत् ॥ ७ ॥

घोड़े हाथी तथा रथसहित जितने भी भूपाल वहाँ आये थे उन सबको भीमसेनने बिना किसी घबराहटके रोक दिया ॥ ७ ॥

स संवार्य बलौघांस्तान् गदया रथिनां वरः।
अतिष्ठत् तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाचलः ॥ ८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन उन सारे सैन्यसमूहोंको गदाद्वारा रोककर उस भयंकर युद्धमें मेरु पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े रहे ॥ ८ ॥

तस्मिन् सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ९ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च शिखण्डी च महाबलः।
न प्राजहन् भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥ १० ॥

उस महान् भयंकर तथा अत्यन्त दारुण समयके प्राप्त होनेपर भी भीमसेनको उनके भाई, पुत्र, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु और अपराजित वीर शिखण्डी—ये कोई भी छोड़कर नहीं गये ॥ ९-१० ॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वी प्रगृह्य महतीं गदाम्।
अभ्यधावत् तावकान् योधान् दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ११ ॥

तदनन्तर फौलादकी बनी हुई विशाल एवं भारी गदा हाथमें लेकर भीमसेन दण्डपाणि यमराजकी भाँति आपके सैनिकोंपर टूट पड़े ॥ ११ ॥

पोथयन् रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाभिभूः।
व्यचरत् समरे भीमो युगान्ते पावको यथा ॥ १२ ॥
विनिघ्नन् समरे सर्वान् युगान्ते कालवद् विभुः।

फिर वे प्रभावशाली बलवान् पाण्डुनन्दन रथियों और घोड़ोंके समूहोंको नष्ट करते अपनी भुजाओंके वेगसे रथोंके समुदायको खींचते और नष्ट करते हुए प्रलयकालके कालरूप की भाँति समरभूमिमें विचरने लगे ॥ १२½ ॥

ऊरुवेगेन सङ्कर्षन् रथजालानि कर्षयन् ॥ १३ ॥
प्रमर्दन् गजान् सर्वान् नड्वलानीव कुञ्जरः।

पाण्डुनन्दन भीम अपने पैरोंके वेगसे रथसमूहोंको खींचकर नष्ट कर रहे थे और कौरव दल सारी सेनाको उसी प्रकार मथ डालते थे जैसे हाथी नरकुलको रौंद डालता है ॥ १३½ ॥

मृद्नन् रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ १४ ॥
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः।
गदया व्यधमत् सर्वान् वातो वृक्षानिवौजसा ॥ १५ ॥
भीमसेनो महाबाहुस्तव पुत्रस्य वै बले।

महाबाहु भीमसेन रथियोंको रथोंसे, गजयोधाओंको हाथियोंसे, घुड़सवारोंको घोड़ोंकी पीठसे और भूमिपर पैदलोंको कुचलते हुए गदासे आपके पुत्रकी सेनामें सब योद्धाओंको उसी प्रकार नष्ट कर रहे थे, जैसे हवा अपने वेगसे वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है ॥ १४-१५ ॥

सा गदा ह्यश्वनागानां निघ्नतीव तदाभवत् ॥ १६ ॥
मज्जास्थिमेदोमांसेन रुधिरेण च दिग्धिका।

हाथियों और घोड़ोंका वध करनेवाली उनकी वह गदा मज्जा, चर्बी, मांस और रक्तमें सनकर बड़ी भयानक दिखायी देती थी ॥ १६ ॥

तत्र तत्र हतैश्चापि मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १७ ॥
रणाङ्गणं तदभवन्मृत्योराघातसंनिभम्।

जहाँ-तहाँ मरकर गिरे हुए मनुष्य, हाथी और घोड़ोंसे वह सारी रणभूमि मृत्युके निवासस्थानकी भाँति प्रतीत होती थी ॥ १७ ॥

पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ १८ ॥
यमदण्डोपमामुग्रामिन्द्राशनिसमस्वनाम्।
ददृशुर्भीमसेनस्य रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १९ ॥

भीमसेनकी उस महाभयानिकी भयंकर गदाको लोगोंने प्रलयकालमें पशुओं (जीवों) का संहार करनेवाले रुद्रके पिनाक और यमदण्डके समान भयंकर देखा। उसकी आवाज इन्द्रके वज्रके समान थी ॥ १८-१९ ॥

आविध्यतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः।
बभौ रूपं महाघोरं कालस्येव युगक्षये ॥ २० ॥

अपनी गदाको घुमाते हुए महात्मा कुन्तीकुमार भीमका स्वरूप प्रलयकालके यमराजके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था ॥ २० ॥

स तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः।
दृष्ट्वा मृत्युमिवायान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥ २१ ॥

इस विशाल सेनाको बारंबार भगानेवाले भीमसेनको मौतके समान सामने आते देख समस्त योद्धाओंका मन

उधड़ता ही जाता था ॥ २१ ॥

यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥ २२ ॥

भारत ! भीमसेन गदा उठाकर जिस-जिस ओर देखते थे, उधर-उधरकी सारी सेनाओंमें दरार पड़ जाती थी (सारे सैनिक भयभीत होकर भाग जाते थे) ॥ २२ ॥

प्रभञ्जन्तं बलौघानि बलेनाप्रतिमं नृप ।
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २३ ॥
तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीतमहागदम् ।
दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात् ॥ २४ ॥

अपने बलसे सेनाको विदीर्ण करनेवाले भीमसेन मुँह फैलाये हुए कालके समान सेनाओंको ग्रसते जा रहे थे । उस समय बड़ी भारी गदा उठाये हुए भयंकर पराक्रमी भीमसेनको देखकर भीष्मजी सहसा वहाँ पहुँचे ॥ २३-२४ ॥

महता मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ।
छादयञ्छरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २५ ॥

वे सूर्यके समान तेजस्वी तथा मेघोंके समान गम्भीर घोषसे युक्त विशाल रथपर आरूढ़ हो बरसते हुए मेघके समान बाणोंकी वर्षासे सबको आच्छादित करते हुए वहाँ आये थे ॥ २५ ॥

तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षितः ॥ २६ ॥

मुँह फैलाये हुए यमराजके समान भीष्मजीको आते देख महाबाहु भीमसेन अमर्षमें भरकर उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ २६ ॥

तस्मिन् क्षणे सात्यकिः सत्यसंधः
शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत् पितामहम् ।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ २७ ॥

उस समय शिनिप्रवर सत्यप्रतिज्ञ वीर सात्यकि अपना सुदृढ़ धनुष ले शत्रुओंका संहार करते और आपके पुत्रकी सेनाको कम्पित करते हुए पितामह भीष्मपर चढ़ आये ॥ २७ ॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैः
शरान् वमन्तं शिनिपुङ्गवं तदा ।
नाशक्नुवन् वारयितुं तदानीं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥ २८ ॥

भारत ! चाँदीके समान श्वेत घोड़ोंवाले और सुन्दर पंखयुक्त बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिको उस समय आपके समस्त सैनिक रोक न सके ॥ २८ ॥

अविध्यदेनं निशितैः पृषत्कै-
रलम्बुषो राक्षसोऽसौ तदानीम् ।
शरैश्चतुर्भिः प्रतिविध्य तं च
नप्ता शिनेरभ्यपतद् रथेन ॥ २९ ॥

उस समय अलम्बुष नामक राक्षसने उन्हें पैने बाणोंसे घायल किया । तब शिनिके पौत्र भी उस राक्षसको चार बाणोंसे बींधकर रथके द्वारा भीष्मपर धावा किया ॥ २९ ॥

तमापतन्तं वृष्णिवरं निशम्य
न शक्नुमस्ते परिवर्जमानम् ।
सम्प्राद्रवन्त कुरुपुङ्गवाश्च
हुं हुं पुनर्जग्मुरन्ये प्रणादम् ॥ ३० ॥

पांशुमण्डलैश्च शरवर्षैरवन्तः
मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः ।
तथापि न वारयितुं स शक्तो
मध्यन्दिने सूर्यमिवातपन्तम् ॥ ३१ ॥

वृष्णिवंशके उस श्रेष्ठ वीरको आक्रमण करते देख कौरववीर उसे रोक न सके; वे बार-बार गर्जना कर रहे थे । जैसे वर्षाकालमें मेघ पर्वतपर जलकी धारा बरसाते हैं, उसी प्रकार आपके योद्धा उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, परंतु दोपहरके तपते हुए सूर्यकी भाँति उन्हें रोक न सके ॥ ३०-३१ ॥

न तत्र कश्चिदविषण्ण आसी-
दृते राजन् सोमदत्तस्य पुत्रात् ।
स वै समादाय धनुर्महात्मा
भूरिश्रवा भारत योद्धुकाङ्क्षी ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा रथान् स्वान् व्यपनीयमानान्
प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन् ॥ ३३ ॥

राजन् ! उस समय वहाँ सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाके सिवा दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं था, जो विषादमग्न न हुआ हो । भारत ! सोमदत्तकुमार महामना भूरिश्रवा अपने रथियोंको भागते देखकर भयंकर वेगशाली धनुष ले युद्धकी इच्छासे सात्यकिपर चढ़ाई की ॥ ३२-३३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सात्यकिभूरिश्रवःसमागमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें सात्यकि और भूरिश्रवाका समागमविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेन और घटोत्कचका पराक्रम, कौरवोंकी पराजय तथा चौथे दिनके युद्धकी समाप्ति

सञ्जय उवाच

ततो भूरिश्रवा राजन् सात्यकिं नवभिः शरैः।
प्राविध्यद् भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥ १॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! तब भूरिश्रवाने अत्यन्त कुपित होकर सात्यकिको नौ बाणोंसे उसी प्रकार बींध डाला, जैसे महावत गजराजको अङ्कुशोंद्वारा पीड़ित किया जाता है॥ १॥

कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः संनतपर्वभिः।
अवाकिरदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः॥ २॥

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सब लोगोंके देखते-देखते कुरुवंशी भूरिश्रवाको ढक दिया॥ २॥

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात् पर्यवारयत्॥ ३॥

यह देख भाइयोंसहित राजा दुर्योधनने युद्धके लिये उद्यत होकर भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा आरम्भ कर दी॥ ३॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात् सुमहौजसः॥ ४॥

उसी प्रकार महान् तेजस्वी समस्त पाण्डव भी युद्धमें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले सात्यकिको सब ओरसे घेरकर समराङ्गणमें डट गये॥ ४॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत।
दुर्योधनमुखान् सर्वान् पुत्रांस्ते पर्यवारयत्॥ ५॥

भारत! क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने गदा उठाकर आपके दुर्योधन आदि सब पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ५॥

रथैरनेकसाहस्रैः क्रोधामर्षसमन्वितः।
नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम्॥ ६॥
विव्याध निशितैः षड्भिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।

तब क्रोध और अमर्षसे भरे हुए आपके पुत्र नन्दकने कई हजार रथियोंके साथ आकर शिलापर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त छः बाणोंसे महाबली भीमसेनको बींध डाला॥ ६½॥

दुर्योधनस्तु समरे भीमसेनं महाबलम्॥ ७॥
आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्निशितैस्त्रिभिः।

कुपित हुए दुर्योधनने भी महाबली भीमसेनकी उस युद्धमें उनकी छातीमें तीन पैने बाण मारे॥ ७½॥

ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः॥ ८॥
आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत्।

तब महाबाहु महाबली भीमसेन अपने श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो गये और सारथि विशोकसे इस प्रकार बोले—॥ ८½॥

एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्रा महाबलाः॥ ९॥
मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि।

ये महाबली महारथी शूरवीर धृतराष्ट्रपुत्र अत्यन्त कुपित हो युद्धमें मुझे ही मारनेके लिये उद्यत हो रहे हैं॥ ९½॥

मनोरथश्च मेऽद्यायं विहितो यत्सुयोधनः॥ १०॥
यत्कारणं सुमहतः कोऽहं पश्यामि सोदरान्।

सूत! मेरे मनमें बहुत वर्षोंसे जिसका चिन्तन हो रहा था, वह मनोरथ आज सफल होना चाहता है; क्योंकि इस समय यहाँ मैं दुर्योधनके भाइयोंको देख रहा हूँ॥ १०½॥

यत्र लोके समुत्पन्ना रेणवो रथनेमिभिः॥ ११॥
अयं स्थास्यति संनद्धो हि धनुर्दिशं दिगन्तरे।
तत्र तिष्ठति संनद्धः स्वयं राजा सुयोधनः॥ १२॥

विशोक! जहाँ रथके पहियोंसे उड़ी हुई धूल आकाशमें छा रही है और दिशाओंमें फैल रही है, वहाँ स्वयं राजा दुर्योधन कवच आदिसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये खड़ा है॥ ११-१२॥

भ्रातरश्चास्य संनद्धाः कुलपुत्रा महाबलाः।
एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः॥ १३॥
तस्मादश्वानमायत्तान् सम्यगेव यच्छ सारथे।

उसके कुलीन और महाबली भाई भी वहीं कवच धारण किये खड़े हैं। आज तुम्हारे देखते-देखते मैं इन सबका विनाश कर डालूँगा, इसमें संशय नहीं है। अतः सारथे! तुम सावधान होकर संग्राममें मेरे घोड़ोंको काबूमें रखना॥ १३½॥

एवमुक्त्वा तव सुतान् पार्थो विव्याध संयुगे॥ १४॥
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः।
नन्दकं च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ १५॥

राजन्! ऐसा कहकर कुन्तीकुमार भीमने सुवर्णभूषित दस तीखे बाणोंद्वारा आपके पुत्र दुर्योधनको बींध डाला और नन्दककी छातीमें भी तीन बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी॥ १४-१५॥

स तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम्।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत॥ १६॥

यह देख दुर्योधनने साठ बाणोंसे महाबली भीमसेनको घायल करके अन्य तीन पैने बाणोंसे सारथि विशोकको भी घायल कर दिया॥ १६॥

भीमस्य च रथे राजन् धनुश्छिन्देद् भास्वरम्
सुविशेषे कृता तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैरमर्षित

राजन् । इसके बाद दुर्योधनने युद्धमें तीन अन्य ... तीखे भल्लोंद्वारा मारे हुए भीम ... बलवी धनुष ... काटकर दिया

समरे प्रेक्ष्य महाराज विशल्य तु वृकोदरम्
पीडितं निशितैस्तीक्ष्णैः पुत्रस्त्व निवार
अनुष्णगात्रः सरूप धनुर्दिव्यं परन्तपम्
पुत्रस्य ते महाराज बधाय अमर्षे
समाधत्त सुतयुक्त सुरुप ... निवारयितुम्
तेन विव्याध सुतीक्ष्णं काकुत्स्थसमम्

आरत महाराज ... समताहुत ... तीखे बाणोंद्वारा ... किया हो ... मन ... उन्होंने कुपित होकर ... धनु ... पत्री
किया हाथ ... नमक फिर ... पुनः हाथ किर
अत्यन्त कुपित होकर ... हीने ... धनुष ... ओर ... और ... बाण द्वारा बाण हुए धनुष उसका धनुष

सोऽपविद्ध धनुश्छित्त्वा पुत्रस्ते मोहमूर्च्छितः
अन्यत् कार्मुकमादाय सत्वरं वेगवत्तरम्

राजन् ... धनुष ... पुनः ... धनुष ... नाथ ... वृद्धि ... जग ... धनुषको ... भी ... गाली हुए ... धनुष ... किया

स्वर्ण विचित्रं घोरं कालदण्डसमप्रभम्
तेनाजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे

फिर ... उस काल और ... पुन ... ... बाण ... और ... गर्जते नह ... हाथ

स गाढविद्धो व्यथित स्यन्दनोपस्थ आविशत्
स निषण्णो रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह

... ... पारोनी ... भीमसेन ... घरो ... धनुर ... पाण्डव

दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः
अमृष्यमाणा संक्रुद्धा पाण्डवाना महारथाः

भीमसेनको ... ... पीड़ित ... देख अभिमन्यु आदि

ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम्
पातयामासुरव्यग्रा पुत्रस्य तव मूर्धनि

फिर ... लोग ... आपके पुत्र ... किया
होकर तेजस्वी शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा प्रारम्भ कर

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः
दुर्योधनं विव्याध पुनर्विंशत्या च पत्रिभिः

तब ... बोले हैं—

... ... युद्धमें ... पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध ... युक्तपुत्र ... ... दानवन ... ... समापति ... ... भीमसेन ... भीमो ... युद्धमें ... ...

पुत्रास्तु ... ... भीमस्य महाराज ... ... विविधा ... ...

... ...

घोड़े तथा सात सारथियोंसहित नौ राजकुमारोंको मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३५ ॥

भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव ॥ ३६ ॥
पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद् यमसादनम् ।

राजन्! तत्पश्चात् भीमसेनने हँसते हुए-से आपके दो पुत्र भीम और भीमरथको भी मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ३६ ॥

ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ॥ ३७ ॥
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद् यमसादनम् ।

इसके बाद उस महासमरमें भीमसेनने सम्पूर्ण सेनाओंके देखते-देखते सुलोचनको क्षुरप्रसे मारकर यमलोकका अतिथि बना दिया ॥ ३७ ॥

पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ॥ ३८ ॥
शेषा येऽन्येऽभवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः ।
विप्रद्रुता दिशो राजन् वध्यमाना महात्मना ॥ ३९ ॥

राजन्! वहाँ जो आपके अन्य पुत्र शेष थे, वे भीमसेनका पराक्रम देखकर उनके भयसे पीड़ित हो उन महात्मा पाण्डुकुमारके बाणोंकी मार खाते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ३८-३९ ॥

ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव महारथान् ।
एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान् महारथान् ॥ ४० ॥
यथाप्रधानान् यथाज्येष्ठान् यथा शूरांश्च सङ्गतान् ।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत मा चिरम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्मने सब महारथियोंसे कहा— 'ये भयंकर धनुष धारण करनेवाले भीमसेन युद्धमें कुपित होकर सामने आये हुए प्रधान, ज्येष्ठ और शूरवीर महारथी धृतराष्ट्रपुत्रोंको मार गिराते हैं। अतः तुम सब लोग मिलकर इन्हें शीघ्र पकड़ो' ॥ ४०-४१ ॥

एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम् ॥ ४२ ॥

उनके ऐसा कहनेपर दुर्योधनके सभी सैनिक कुपित हो महाबली भीमसेनपर टूट पड़े ॥ ४२ ॥

भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशाम्पते ।
अभ्यपतत् सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ४३ ॥

प्रजानाथ! राजा भगदत्त मदकी धारा बहानेवाले गजराजपर आरूढ़ हो सहसा उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ भीमसेन खड़े थे ॥ ४३ ॥

आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलाशितैः ।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥ ४४ ॥

युद्धमें आते ही उन्होंने शिलापर तेज किये हुए बाणोंसे भीमसेनको ढककर अदृश्य कर दिया, मानो मेघने सूर्यको ढक लिया हो ॥ ४४ ॥

अभिमन्युमुखास्तत्र तु नासृष्यन्त महारथाः ।
भीमस्याच्छादनं सङ्ख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥ ४५ ॥

ते तत्र शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् ।
गजं च शरवृष्ट्या तु बिभिदुस्ते समन्ततः ॥ ४६ ॥

उस समय अभिमन्यु आदि महारथी भीमसेनका इस प्रकार बाणोंसे ढका जाना सहन न कर सके। वे अपने बाहुबलका आश्रय ले चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्हें रोकने लगे। उन्होंने अपनी बाणोंकी वृष्टिसे भगदत्तके हाथीको भी सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ४५-४६ ॥

स शस्त्रवृष्ट्याभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः ।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन् नानालिङ्गैः सुतेजितैः ॥ ४७ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद् रणे ।
गभस्तिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४८ ॥

राजन्! जो नाना प्रकारके चिह्न धारण करनेवाले और अच्छी तरह तेज किये हुए थे, उन समस्त महारथियोंद्वारा की हुई अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे अत्यन्त घायल होकर प्राग्ज्योतिषनरेशका वह हाथी रक्तकी धारासे नहा उठा और युद्धस्थलमें देखने ही योग्य हो गया। उस समय वह सूर्यकी किरणोंसे गुँथे हुए महान् मेघके समान शोभा पा रहा था ॥ ४७-४८ ॥

स चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः ।
अभ्यधावत तान् सर्वान् कालोत्सृष्ट इवान्तकः ॥ ४९ ॥
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम् ।

मदकी धारा बहानेवाला वह गजराज भगदत्तसे प्रेरित हो कालप्रेरित यमराजके समान दुगुना वेग धारण करके अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कँपाता हुआ उन सब महारथियोंकी ओर दौड़ा ॥ ४९ ॥

तस्य तत् सुमहद् रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ॥ ५० ॥
असह्यं मन्यमानास्ते नातिप्रमनसोऽभवन् ।

उसका वह विशाल रूप देखकर सब महारथी उसे असह्य मानकर उदास हो गये ॥ ५० ॥

ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ ५१ ॥
आजघान महाराज शरेणानतपर्वणा ।

महाराज! तदनन्तर राजा भगदत्तने कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले बाणसे भीमसेनकी छातीमें चोट पहुँचायी।

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ॥ ५२ ॥
मूर्च्छयाभिपरीताङ्गो ध्वजयष्टिं समाश्रयत् ।

राजा भगदत्तके द्वारा इस प्रकार अत्यन्त घायल किये गये महाधनुर्धर महारथी भीमसेन मूर्च्छासे व्याप्त हो ध्वजका डंडा पकड़कर बैठ गये ॥ ५१-५२ ॥

तांस्तु भीतान् समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्च्छितम् ॥ ५३ ॥
ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान् ।

उन सब महारथियोंको भयभीत और भीमसेनको मूर्च्छित हुआ देख प्रतापी भगदत्तने बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ५३ ॥

ततो घटोत्कचो राजन् प्रेक्ष्य भीमं तथागतम् ॥ ५४ ॥

सकुद्धो [illegible] [illegible]स्त्वैरावणकुलोत्थम् ।

राजन्! तदनन्तर [illegible] [illegible] अत्यन्त कुपित हो गया ॥ ४ ॥

स [illegible] मायां भीमरूपां [illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] विमलार्थाय [illegible] ।

ऐरावतं समारुह्य स वै मायाकृतं [illegible] ॥ ६ ॥

([illegible])

फिर उसने [illegible] अत्यन्त दारुण माया प्रकट की। वह आधे निमेषमें ही [illegible] [illegible] हुआ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आया था ॥ ६ ॥

तस्य चान्येऽपि दिङ्नागा [illegible] ।

[illegible] महाकायाः [illegible] ॥ ७ ॥

अथ [illegible] [illegible] समधिष्ठिताः ।

उसके पीछे [illegible] वाहन और उनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ७ ॥

[illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] महावल[illegible] ।

राजन्! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] ॥ ९ ॥

[illegible] तु [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था ।

ते चान्ये चोदिता नागा [illegible] ॥ १० ॥

परिपेतुः [illegible] ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] विषाणैरभ्यपीडयन् ॥ ११ ॥

स [illegible] ।

[illegible] सुमहन्[illegible] ॥ १२ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] ॥ ११-१२ ॥

तस्य [illegible] सुघोरं भीमनिःस्वनम् ।

श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद् द्रोणं राजानं च सुयोधनम् ॥ १३ ॥

[illegible] [illegible] ॥ १३ ॥

एष युध्यति [illegible] [illegible] ।

भगदत्तो [illegible] [illegible] ॥ १४ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ॥ १४ ॥

[illegible] [illegible] ।

[illegible] कालमृत्युसमावुभौ ॥ १५ ॥

[illegible] [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] ॥

श्रूयते चैव [illegible] महास्वनः ।

हस्तिनश्चैव [illegible] ॥ १६ ॥

[illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] ॥ १६ ॥

तस्य [illegible] परिरक्षितुम् ।

[illegible] [illegible] ॥ १७ ॥

[illegible] [illegible] ॥ १७ ॥

[illegible] [illegible] प्रयामहे ।

[illegible] ॥ १८ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] ।

युद्धं [illegible] ॥ १९ ॥

[illegible] और [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] ।

[illegible] ॥ २० ॥

[illegible] ।

[illegible] [illegible] ॥ २० ॥

[illegible] युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २१ ॥

[illegible] पाण्डवैः [illegible] ।

उन्हें [illegible] युधिष्ठिर आदि पाण्डवों तथा [illegible] [illegible] ॥ २१ ॥

नीलरत्नालङ्कारसमन्वित प्रभायुक्त
नगर महान विस्तारमहार्णव
प्रान्त

युक्त
भीम नगर भूषा प्रासादभावन

नष्ट स्था नगर
प्रान्त समस्तविश्व माध्यताम्

तुर्या वज्रधरा नगम
नग भाग्यवाहना
स्थापत्य नित्य नवविहंगा
पुद
पुन्नग कुञ्ज
यान
(पिका)

तत्र वीजनपर्वशिखि
पुर नागर पर्व सह

वि प्रम
उभय नाग वज्रभयवर्जिता

नित्य नित्र चाल जितवासिन
नगाधान शाङ्ग मुख
यान विनत कुञ्जित
अङ्ग

सुख प्रवाल अलंकार
पाल पुण्या महत्य नवधम्

मातङ्ग प्रकार दिन दिगम्बर कोलाहल
भाग रैत पाण्डवों पुत्र जाना रहा
भास्तु मत्तमातङ्ग यथु प्रविर सम्भ्
श्रीमत्सर्वज्ञ निवासालय अनन्तराय पताकिता
निवास अरण्यकालमें पाण्डवोंने
दर्शन नित्य नित्य

शिखरवातावृत्त पाण्डुपुत्रा महारथा
पुत्र सुमनसा भूप तथा स्वस्तिरिर
नारी द्वारे वार्षा विद्या
तथापि प्रसन्न चित्त होकर अपने शिविर

पुरस्कृता महार श्रीमत्सोमराटाकरौ
पुत्र अक्षनद्वान्यान्य मुखा कमला युता
नम्भ्र विनिपात मानमनुपवर्जनिविस्थित
विजयवाह्य कुशला विशिखाश्वानुलि स्वन
प्राप भीम निष्क आये वरदाय
करते हुए वासवदत्तोंके बड़ी प्रसन्नताके
नाना प्रकार महोत्सव करते हुए श्री उन
अपने वार्ताकी ध्वनि तथा रक्षों
मि

अर्जुनस्य महाप्राज्ञ कमलपत्राक्ष भविनीम
प्रद्युम्नाद्य पुत्रस्य मार्षिय
प्रयाता शिविरायच निवासकाले पाण्डव
तन्न महा पाण्डव
आज सौम्
नृप

दुर्योधनस्तु कर्णनीर्तिना भ्रातृपथेन
मुहुत सम्पधामा यापयातिसमाकुल
दुर्योधन वीर
भाग तथा व्याकुल
दीनव

ततः कृत्वा विधिं तस्य दिविश्रय विधि
प्रयाप्य विस्मयकामा अनुप्यामनकर्षित
निश्चित मावन्तर लक्ष्मी करते
भाग आनेत्र पाण्डवास नारी
तथा

सर्व पिथवधर्म पुत्र चतु शत श्लाम
आरम्भ निष्क युद्धिष्ठिर दशमें अध्याय पूरा हुआ
समाप्त अधिक पाठके श्लोक कार हुए श्लोक हैं

पञ्चषष्टितमोऽध्याय

धृतराष्ट्र ... के ... पाण्डवोंकी ... पर ...
... की हुई भगवत् ... का

धृतराष्ट्र उवाच

भय ... सुमहत्तात विस्मयश्चैव सञ्जय
श्रुत्वा पाण्डुकुमाराणां कर्म ... सुदुष्करम्
पुत्राणां ... पराभवं श्रुत्वा ...
किं ... सूत ...

...
पुत्र विदुरवाक्यानि ... मम
यथा हि ...

...
यत्र भीष्ममुखान् ...
पाण्डवानामनीकेषु ... प्रहरिष्यति

... महामात्र ...
...

... पुनः पुनः ...

...
...
...

हिं ...
समुद्धृत्य ... भुजाभ्यां ...

पुत्राणां ...
पालयिष्यति ... भीष्मो ...

...
पुत्र ...

...
...

... भीष्मस्त्वं ...
...
...
विमुच्य महामात्र मम पुत्रेषु सञ्जय

...

...
मम ...
...

कालस्य

कारणसे विजयकी निश्चय कीजिये। पाण्डवोंमें न कोई मन्त्र का प्रभाव है और न कोई वैसी माया ही वे करते हैं ॥ १५ ॥

नैव ते विभीषिकां कांचिद् राजन् कुर्वन्ति पाण्डवाः।
युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमन्तश्च संयुगे ॥ १६ ॥

राजन्! पाण्डवलोग युद्धमें किसी विभीषिकाका प्रयोग नहीं करते। अर्थात् किसी को डराकर अधीन नहीं होते। वे न्यायपूर्वक युद्ध करते हैं। शक्तिशाली तो वे हैं ही ॥ १६ ॥

धर्मेण सर्वकार्याणि जीवितादीनि भारत।
आरभन्ते सदा पार्थाः प्रार्थयाना महद् यशः ॥ १७ ॥

भारत! कुन्तीके पुत्र जीवन-निर्वाह आदिके सभी कार्य सदा धर्मपूर्वक ही आरम्भ करते हैं। कारण कि वे बाहुबलसे अपना महान् यश फैलाना चाहते हैं ॥ १७ ॥

ते युद्धान्नानिवर्तन्ते धर्मोपेता महाबलाः।
श्रिया परमया युक्ता यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १८ ॥

वे युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं। धर्मसे सम्पन्न होनेके कारण ही वे महाबली और उत्तम सम्पत्तिसे युक्त हैं। जहाँ धर्म होता है, उसी पक्षकी विजय होती है ॥ १८ ॥

तेनावध्या रणे पार्था जययुक्ताश्च पार्थिव।
तव पुत्रा दुरात्मानः पापेष्वभिरताः सदा ॥ १९ ॥
निष्ठुरा हीनकर्माणस्तेन हीयन्ति संयुगे।

महाराज! धर्मके ही कारण कुन्तीके पुत्र युद्धमें अवध्य और विजयी हो रहे हैं। इधर आपके दुरात्मा पुत्र सदा पापोंमें ही तत्पर रहते हैं। निर्दय होनेके साथ ही निकृष्ट कर्म भी करते हैं। इसीलिये युद्धस्थलमें उन्हें हानि उठानी पड़ती है ॥ १९½ ॥

सुबहूनि नृशंसानि पुत्रैस्तव जनेश्वर ॥ २० ॥
निकृतानीह पाण्डूनां नीचैरिव यथा नरैः।
सर्वं च तदनादृत्य पुत्राणां तव किल्बिषम् ॥ २१ ॥
सापह्नवाः सदैवासन् पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
न चैतान् बहु मन्यन्ते पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ २२ ॥

जनेश्वर! आपके पुत्रोंने नीच मनुष्योंकी भाँति पाण्डवोंके प्रति बहुत-से क्रूरतापूर्ण बर्ताव तथा छल-कपट किये हैं, परंतु आपके पुत्रोंके उन सारे अपराधोंको भुलाकर पाण्डव सदा उन दोषोंपर पर्दा ही डालते आये हैं। पाण्डुके बड़े भाई महाराज! इधर भी आपके पुत्र उन पाण्डवोंको अधिक आदर नहीं देते हैं ॥ २०—२२ ॥

तस्य पापस्य सततं क्रियमाणस्य कर्मणः।
सम्प्राप्तं सुमहद् घोरं फलं प्राप्तं जनेश्वर ॥ २३ ॥

जनेश्वर! निरन्तर किये जानेवाले उसी पाप-कर्मका इस समय यह अत्यन्त भयंकर फल प्राप्त हुआ है ॥ २३ ॥

स त्वं भुङ्क्ष्व महाराज सपुत्रः ससुहृज्जनः।
नावबुध्यसि यद् राजन् वार्यमाणः सुहृज्जनैः ॥ २४ ॥

महाराज! आप सुहृदोंके मना करनेपर भी जो ध्यान नहीं देते हैं, इससे अब स्वयं ही पुत्रों और सुहृदोंसहित अपनी अनीतिका फल भोगिये ॥ २४ ॥

विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना।
तथा मया चाप्यसकृद् वार्यमाणो न बुध्यसे ॥ २५ ॥

विदुर, भीष्म तथा महात्मा द्रोणने और मैंने भी बार-बार आपको मना किया है, किंतु आप कभी समझ नहीं पाते थे ॥ २५ ॥

वाक्यं हितं च पथ्यं च मर्त्यः पथ्यमिवौषधम्।
पुत्राणां मतमास्थाय जितान् मन्यसि पाण्डवान् ॥ २६ ॥

जैसे मरणासन्न मनुष्य हितकारी औषधको भी त्याग देता है, उसी प्रकार आपने हमलोगोंके कहे हुए लाभकारी और हितकर वचनोंको भी ठुकरा दिया। एवं अब आपने पुत्रोंकी बातोंमें आकर यह मान रखा है कि हमने पाण्डवोंको जीत लिया ॥ २६ ॥

शृणु भूयो यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति ॥ २७ ॥
तत् तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिंदम।

भरतश्रेष्ठ! आप पाण्डवोंकी विजय और अपनी पराजयका जो कारण पूछते हैं, उसके विषयमें यथार्थ बात सुनिये। शत्रुदमन! मैंने जैसा सुन रखा है, वह आपको बताऊँगा ॥ २७½ ॥

दुर्योधनेन सम्पृष्ट एतमर्थं पितामहः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा भ्रातॄन् रणे सर्वान् निर्जितान् सुमहारथान्।
शोकसम्मूढमनसो निशाकाले स्म कौरव ॥ २९ ॥
पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह।
यदब्रवीत् सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥ ३० ॥

दुर्योधनने यही बात पितामह भीष्मसे पूछी थी। महाराज! युद्धमें अपने समस्त महारथी भाइयोंको पराजित हुआ देख आपके पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधनका हृदय शोकसे मोहित हो गया। उसने रातमें महाज्ञानी पितामह भीष्मके पास विनयपूर्वक जाकर जो कुछ पूछा था, वह बताता हूँ, सुनिये ॥ २८—३० ॥

दुर्योधन उवाच

द्रोणश्च त्वं च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ३१ ॥
भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान्।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ३२ ॥

दुर्योधनने पूछा—पितामह! आप, द्रोणाचार्य, शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, हृदिकपुत्र कृतवर्मा, काम्बोजराज सुदक्षिण, भूरिश्रवा, विकर्ण तथा पराक्रमी भगदत्त—ये सब महारथी कहे जाते हैं। सभी कुलीन और युद्धके लिये अपना शरीर निछावर करनेको तैयार हैं ॥ ३१-३२ ॥

अप्यलोकानपि लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः।
यत्कारणं समस्तानां मातिष्ठन्तः पराभवे ॥ ३३ ॥

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि आप तथा द्रोण जैसे मेरे वीर तो तीनों लोकोंपर भी विजय पानेमें समर्थ हो सकते हैं, परंतु पाण्डवोंके पराक्रमके सामने आप सब लोग टिक नहीं पाते हैं। इसका क्या कारण है? ॥ ३३ ॥

तन्मे महाबाहो आख्यातव्यमाचक्ष्व कुरूद्वह।
यं समाश्रित्य कौन्तेया जयन्त्यस्मान् क्षणे क्षणे ॥ ३४ ॥

इस विषयमें मुझे बड़ा भारी संदेह है। अतः मेरे प्रश्नके अनुसार आप उसका उत्तर दीजिये। किसका आश्रय लेकर वे कुन्तीके पुत्र क्षण-क्षणमें हमलोगोंपर विजय पा रहे हैं ॥ ३४ ॥

भीष्म उवाच

शृणु राजन् वचो मह्यं यथा वक्ष्यामि कौरव।
बहुशश्च ममोक्तोऽसि न च मे तत् त्वया कृतम् ॥ ३५ ॥

भीष्मजीने कहा—कुरुनन्दन! नरेश्वर! मेरी बात सुनो। इस विषयमें जो यथार्थ बात है, उसे बताता हूँ। मैंने अनेक बार बहुत-सी तुमसे ये बातें कही हैं, परंतु तुमने उन्हें माना नहीं है ॥ ३५ ॥

क्रियतां पाण्डवैः सार्धं शमो भरतसत्तम।
एतत् क्षेममहं मन्ये पृथिव्यास्तव चा विभो ॥ ३६ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। प्रभो! इसीमें मैं तुम्हारा और भूमण्डलका कल्याण समझता हूँ ॥ ३६ ॥

भुञ्जेमां पृथिवीं राजन् भ्रातृभिः सहितः सुखी।
दुर्हृदस्तापयन् सर्वान् नन्दयंश्चापि बान्धवान् ॥ ३७ ॥

राजन्! तुम अपने समस्त शत्रुओंको संताप और बन्धु-बान्धवोंका आनन्द बढ़ाते हुए भाइयोंके साथ मिलकर सुखी रहो और इस पृथ्वीका राज्य भोगो ॥ ३७ ॥

न च मे क्रोशतस्तात श्रुतवानसि वै पुरा।
तदिदं समनुप्राप्तं यत् पाण्डूनवमन्यसे ॥ ३८ ॥

तात! इस तरहकी बातें मैंने पहले पुकार-पुकारकर कही हैं, परंतु तुमने उन बातोंको अनसुनी कर दिया है। तुम जो पाण्डवोंका अपमान करते आये हो, आज उसीका यह फल प्राप्त हुआ है ॥ ३८ ॥

यश्च हेतुरजय्यत्वे तेषामक्लिष्टकर्मणाम्।
तं शृणुष्व महाबाहो मम कीर्तयतः प्रभो ॥ ३९ ॥

महाबाहो! प्रभो! अनायास ही महान् कर्म करनेवाले पाण्डवोंके अजेय होनेमें जो हेतु है, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ३९ ॥

नास्ति लोकेषु तद् भूतं भविता नो भविष्यति।
यो जयेत् पाण्डवान् सर्वान् पालिताञ्छार्ङ्गधन्वना ॥ ४० ॥
(सासुरासुरमर्त्येषु यो विजेतुमलं हरिम् ।)

लोकोंमें ऐसा कोई प्राणी न हुआ है, न है और न होगा, जो शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित इन सब पाण्डवोंपर विजय पा सके तथा देवता, असुर और मनुष्योंमें ऐसा भी कोई नहीं है, जो उन भगवान् श्रीहरिको यथार्थरूपसे जान सके ॥ ४० ॥

यत् तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः।
पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथातथम् ॥ ४१ ॥

तात धर्मज्ञ! पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंने मुझसे जो पुराणसम्बन्धी यथार्थ बातें कही हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो ॥ ४१ ॥

पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः।
पितामहमुपासेदुः पर्वते गन्धमादने ॥ ४२ ॥

पहलेकी बात है, समस्त देवता और महर्षि गन्धमादन पर्वतपर आकर पितामह ब्रह्माजीके पास बैठे ॥ ४२ ॥

तेषां मध्ये समासीनः प्रजापतिरपश्यत।
विमानं जाज्वलद् भासा स्थितं प्रवरमम्बरे ॥ ४३ ॥

उन सबके बीचमें बैठे हुए प्रजापति ब्रह्माने आकाशमें खड़ा हुआ एक श्रेष्ठ विमान देखा, जो अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा था ॥ ४३ ॥

ध्यानेनावेद्य तद् ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम्।
नमश्चकार हृष्टात्मा परमं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥

अपने मनको संयममें रखनेवाले ब्रह्माजीने ध्यानद्वारा यथार्थ बात जानकर हाथ जोड़ लिये और प्रसन्नचित्त होकर उन परम पुरुष परमेश्वरको नमस्कार किया ॥ ४४ ॥

ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम्।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम् ॥ ४५ ॥

ऋषि तथा देवता ब्रह्माजीको खड़े (और हाथ जोड़े) हुए देख स्वयं भी उस परम अद्भुत तेजका दर्शन करते हुए हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ४५ ॥

यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥ ४६ ॥

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परम धर्मज्ञ जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने उन तेजोमय परम पुरुषका यथावत् पूजन करके उनकी स्तुति की ॥ ४६ ॥

विश्वावसुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो
विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च।
विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्माद्
योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥ ४७ ॥

प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्वको आच्छादित करनेवाले विश्वस्वरूप और विश्वके स्वामी हैं। विश्वमें सब ओर आपकी सेना है। यह विश्व आपका कर्म है। आप सबको अपने

नय कहलाते हैं [illegible] लिये आप [illegible] आपसे कहते हैं आप [illegible] करते हैं मैं आप [illegible] आता हूँ

जय विश्व महादेव जय लोकहिते रत
जय वागीश्वर विभो [illegible]

[illegible] महादेव आपके [illegible] कल्पिमें [illegible] परम [illegible] [illegible] पाठक आदि भी [illegible] अत

[illegible] महाशक्ति जय [illegible]
[illegible] जय सौम्यात्मा [illegible]
[illegible] जय [illegible]
नारायण [illegible] जय [illegible]

आपका ना[illegible] [illegible] हुई है आप [illegible] [illegible] हो [illegible] नाम आपकी जय हो [illegible] है [illegible] [illegible] आप [illegible] आपका [illegible] नारायण आपको [illegible] है आपकी जय

जय [illegible] विश्वमूर्ते [illegible]
विश्वम्भर महाबाहो जय [illegible]

आप [illegible] [illegible] आपसे [illegible] आपकी जय हो [illegible] महाप्रभु [illegible] आपकी जय हो

महात्मन् [illegible] हरिकेश विभो जय
हरिवास [illegible] विश्वधामाभिलाष्य

आप [illegible] और [illegible] करने [illegible] आदि [illegible] आपकी जय हो [illegible] विश्व आधार [illegible] और [illegible]

[illegible] त्रिपर्वेन्द्रिय सन्मित्र
[illegible] गम्भीर [illegible]

[illegible] आपका [illegible] है आपके रहनेका स्थान अतीव अनन्त है आप [illegible] हैं आपके सभी [illegible] हैं आपकी [illegible] नहीं है, आप आत्मस्वरूपके [illegible] गम्भीर और सबोंकी कामनाएं पूर्ण करनेवाले हैं आपकी जय हो

[illegible] विभो [illegible]
[illegible] विश्वपाल ॥ ५४ ॥

[illegible] अनन्तबोधस्वरूप हैं शिव हैं और [illegible] आपको [illegible] नहीं है आप [illegible] हैं आप [illegible] और [illegible] हैं

गुणात्मन् [illegible] भूमभाग
भूतात्म लोकतत्त्वज्ञ जय भूमिभावन ॥ ॥

[illegible] आप [illegible] हुआ [illegible] है और जो [illegible] है [illegible] आदि [illegible] आपकी

[illegible] महाभाग कल्पस्वरूप [illegible]
[illegible] जय [illegible] जनप्रिय

आप [illegible] है [illegible] [illegible] है [illegible] करने [illegible] होता है [illegible] आपकी जय

[illegible] कामद [illegible]
[illegible] पुरातन [illegible] ७ ॥

[illegible] आप ही [illegible] उत्पत्तिके स्थान [illegible] और [illegible] आप ही हैं

प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल
आत्मभूत महाबाहो [illegible] जय [illegible] ॥

[illegible] और [illegible] आप ही हैं [illegible] आपकी जय हो

[illegible] दिव [illegible]
मूर्तावांश्च [illegible] ॥

[illegible] आपके [illegible] और द्युलोक [illegible] है [illegible] आपका [illegible] और [illegible]

[illegible] धर्मात्मक [illegible]
तेजांसि [illegible] स्वेदसम्भवा ॥ ६० ॥

[illegible] है [illegible] आपका [illegible] वायु [illegible] और [illegible] है

अश्विनी [illegible] नित्य देवी [illegible] सरस्वती
[illegible] जिह्वा [illegible] ॥ ६१ ॥

अश्विनीकुमार [illegible] और सरस्वती देवी आपकी जिह्वा हैं [illegible] आपकी [illegible] हैं [illegible] आपकी [illegible] [illegible] हुआ है ॥ ॥

न संख्यातं त्वयि तत्त्व न तेजो न पराक्रमम्
न बलं योगयोगीश जानीमस्ते न सम्भवम्

योगेश्वर! हम तो आपकी संख्या जानते हैं, न परिमाण। आपके तेज, पराक्रम और बलका भी हमें पता नहीं है। हम यह भी नहीं जानते कि आपका आविर्भाव कैसे होता है।

भ्रूकुटिनिर्मितस्त्वं देव विश्वमेतत् त्वया कृतम्
अर्थयाम यदा विष्णो परमेश महेश्वरम्
ब्रह्मणो देवगन्धर्वा महर्षयः सपन्नगाः
पिशाचा मानुषाश्चैव मृगपक्षिसरीसृपाः
एवमादि मया सृष्टं पृथिव्यां त्वत्प्रसादजम्

देव! हम तो आपकी उपासनामें लगे रहते हैं। आपके नियमोंका पालन करते हुए आपकी ही [illegible] हम सदा आप परमेश्वरकी [illegible] करते हैं। आपकी ही कृपासे मैंने पृथ्वीपर ब्रह्मर्षि, देवता, गन्धर्व, राक्षस, नाग, पिशाच, मनुष्य, मृग, पक्षी और कीड़े-मकोड़े आदिकी सृष्टि की है।

पद्मनाभ विशालाक्ष कृष्ण दुःखप्रणाशन
त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वं नेता त्वं जगद्गुरुः
त्वत्प्रसादेन देवेश सुखिनो विबुधाः सदा

पद्मनाभ! विशाललोचन! दुःखहारी श्रीकृष्ण! आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रय और नेता हैं। आप ही जगत्‌के गुरु हैं। देवेश्वर! आपकी कृपा-दृष्टिसे ही देवता सदा सुखी रहते हैं।

पृथिवी निर्भया देव त्वत्प्रसादात् सदाभवत्
तस्माद् भव विशालाक्ष यदुवंशविवर्धनः

देव! आपकी ही कृपासे पृथ्वी निर्भय हुई है; इसलिये विशाललोचन! आप पुनः पृथ्वीपर यदुवंशमें अवतार लेकर उसकी कीर्ति बढ़ाइये।

धर्मसंस्थापनार्थाय दैतेयानां वधाय च
जगतो धारणार्थाय विज्ञाप्यं कुरु मे विभो

प्रभो! धर्मकी स्थापना, दैत्योंका वध और जगत्‌की रक्षाके लिये हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिये।

यत् तत् परमकं गुह्यं त्वत्प्रसादादिदं विभो
वासुदेव तदेतत् ते मयोद्गीतं यथातथम् ॥

वासुदेव! आप ही भगवान् परमेश्वर हैं। आपका जो परम गुह्य यथार्थ स्वरूप है, उसीका यहाँ हम लोगोंने आपकी कृपासे ही गान किया है।

सृष्ट्वा संकर्षणं देवं स्वयमात्मानमात्मना
कृष्ण त्वमात्मनास्राक्षीः प्रद्युम्नं चात्मसम्भवम् ॥ ७० ॥

श्रीकृष्ण! आपने आप ही स्वयं अपने आपको ही संकर्षणरूपमें प्रकट करके [illegible] प्रद्युम्नकी सृष्टि की है।

प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धं त्वं विदुर्विष्णुमव्ययम्
अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम्

प्रद्युम्नसे आपने ही उस अनिरुद्धको प्रकट किया है, जिन्हें ज्ञानीजन अविनाशी विष्णुरूपमें जानते हैं। उन विष्णुरूप अनिरुद्धने ही मुझ लोकधाता ब्रह्माकी सृष्टि की है।

वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवास्मि विनिर्मितः
तस्माद् याचामि लोकेश चतुरात्मानमात्मना
विभज्य भागशोऽऽत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥ ७२ ॥

प्रभो! इस प्रकार आपने ही मेरी सृष्टि की है। आपसे अभिन्न होनेके कारण मैं भी वासुदेवस्वरूप हूँ। लोकेश्वर! इसलिये मैं याचना करता हूँ कि आप अपने आपको ही चार भागोंमें विभक्त करके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार रूपोंमें मनुष्य-शरीर ग्रहण कीजिये।

तत्रासुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै
धर्मं स्थाप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यसि तत्त्वतः ॥ ७३ ॥

वहाँ सब लोकोंके सुखके लिये असुरोंका वध करके धर्मकी स्थापना कीजिये और उत्तम यश पाकर आप पुनः अपने पारमार्थिक स्वरूप योगसे युक्त हो जाइये।

त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चामितविक्रम
तैस्तैश्च नामभिर्युक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥ ७४ ॥

अमितपराक्रमी परमेश्वर! ब्रह्मर्षि और देवगण आपके [illegible] भिन्न-भिन्न नामोंद्वारा आपके परमात्मस्वरूपका गान करते रहते हैं।

स्थिताश्च सर्वे त्वयि भूतसंघाः
कृत्वाऽऽश्रयं त्वां वरदं सुबाहो
अनादिमध्यान्तमपारयोगं
लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥ ७५ ॥

सुबाहो! आप वरदायक प्रभुका ही आश्रय लेकर समस्त प्राणिसमुदाय आपमें ही स्थित है। ब्राह्मणलोग आपको आदि, मध्य और अन्तसे रहित, किसी सीमासे अनन्त, सम्पूर्ण तथा लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये सेतुस्वरूप बताते हैं।

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि विश्वोपाख्याने [illegible]ऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शान्तिपर्वके अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्वमें विश्वोपाख्यानविषयक [illegible] अध्याय पूरा हुआ ॥ [illegible] ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके [illegible] श्लोक मिलाकर कुल ७५ श्लोक हैं)

षट्षष्टितमोऽध्यायः

नारायणावतार श्रीकृष्ण एवं नरावतार अर्जुनकी महिमाका प्रतिपादन

भीष्म उवाच

ततः स भगवान् देवो लोकानामीश्वरेश्वरः।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा॥ १॥

भीष्मजी कहते हैं— राजन्! तब लोकेश्वरोंके भी ईश्वर विश्वरक्षक भगवान्‌ने स्नेहमधुर गम्भीर वाणीमें ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा—

विदितं तात योगान्मे सर्वमेतत् तवेप्सितम्।
तथा तद् भवितेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ २॥

'तात! तुम्हारे मनमें जैसी इच्छा है, वह सब मुझे योगबलसे ज्ञात हो गयी है। उसके अनुसार ही सब कार्य होगा।' ऐसा कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये।

ततो देवर्षिगन्धर्वा विस्मयं परमं गताः।
कौतूहलपराः सर्वे पितामहमथाब्रुवन्॥ ३॥

तब देवता, ऋषि और गन्धर्व सभी बड़े विस्मयमें पड़े। उन सबने अत्यन्त उत्सुक होकर पितामह ब्रह्माजीसे कहा—



को न्वयं यो भगवता प्रणम्य विनयाद् विभो।
वाग्भिः स्तुतो वरिष्ठाभिः श्रोतुमिच्छाम तं वयम्॥ ४॥

प्रभो! आपने विनयपूर्वक प्रणाम करके श्रेष्ठ वचनोंद्वारा जिनकी स्तुति की है, ये कौन थे? हम उनके विषयमें सुनना चाहते हैं॥ ४॥

एवमुक्तस्तु भगवान् प्रत्युवाच पितामहः।
देवब्रह्मर्षिगन्धर्वान् सर्वान् मधुरया गिरा॥ ५॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् ब्रह्माने उन सम्पूर्ण देवताओं, ब्रह्मर्षियों और गन्धर्वोंसे मधुर वाणीमें कहा—

यत् तत् परं भविष्यं च भवितव्यं च यत् परम्।
भूतात्मा च प्रभुश्चैव ब्रह्म यच्च परं पदम्॥ ६॥
तेनास्मि कृतसंवादः प्रसन्नेन सुरर्षभाः।
जगतोऽनुग्रहार्थाय याचितो मे जगत्पतिः॥ ७॥
मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले॥ ८॥

श्रेष्ठ देवताओ! जो परम तत्त्व है, भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों जिनके ही स्वरूप हैं तथा जो इन सबसे विलक्षण हैं, जिन्हें सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा, सर्वशक्तिमान् प्रभु कहा गया है, जो परम ब्रह्म और परम पदके नामसे विख्यात हैं, उन्हीं परमात्माने मुझे दर्शन देकर मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बातचीत की है। मैंने उन जगदीश्वरसे सम्पूर्ण जगत्‌पर कृपा करनेके लिये यह प्रार्थना की है कि 'प्रभो! आप वासुदेव नामसे विख्यात होकर कुछ कालतक मनुष्यलोकमें रहें और असुरोंके वधके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हों'॥ ६—८॥

संग्रामे निहता ये ते दैत्यदानवराक्षसाः।
त इमे नृषु सम्भूता घोररूपा महाबलाः॥ ९॥

जो-जो दैत्य, दानव तथा राक्षस संग्रामभूमिमें मारे गये थे, वे मनुष्यलोकमें उत्पन्न हुए हैं और अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके बैठे हैं।

तेषां वधार्थं भगवान् नरेण सहितो वशी।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले॥ १०॥

उन सबका वध करनेके लिये सबको वशमें करनेवाले भगवान् नारायण नरके साथ मनुष्ययोनिमें अवतीर्ण होकर भूतलपर विचरेंगे।

नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती॥ ११॥

ऋषियोंमें श्रेष्ठ जो पुरातन महर्षि अमित तेजस्वी नर और नारायण हैं, वे एक साथ मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होंगे।

अजेयौ समरे यत्तौ सहितावमरैरपि।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी॥ १२॥

युद्धभूमिमें यदि वे विजयके लिये प्रयत्नशील हों तो सम्पूर्ण देवता भी उन्हें परास्त नहीं कर सकते। मूढ़ मनुष्य उन नर-नारायण ऋषियोंको नहीं जान सकेंगे॥ १२॥

सत्यात्मसम्भवः सुराः सर्वस्य जगतः प्रभुः ।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं तथा इन भगवान्‌का मैं पुत्र हूँ। तुम सब लोगोंको उन सर्वलोकमहेश्वर भगवान् वासुदेवकी आराधना करनी चाहिये ॥ १३ ॥

तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित् सुरसत्तमाः ।
नावज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥

सुरश्रेष्ठगण! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन महापराक्रमी भगवान् वासुदेवका 'ये मनुष्य हैं' ऐसा समझकर अनादर नहीं करना चाहिये ॥ १४ ॥

एतत् परमकं गुह्यमेतत् परमकं पदम् ।
एतत् परमकं ब्रह्म एतत् परमकं यशः ॥ १५ ॥
एतदक्षरमव्यक्तमेतत् वै शाश्वतं महः ।

ये भगवान् ही परम गुह्य हैं। ये ही परम पद हैं। ये ही परम ब्रह्म हैं। ये ही परम यश हैं और ये ही अक्षर, अव्यक्त एवं सनातन तेज हैं ॥ १५½ ॥

एतत् पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥ १६ ॥
एतत् परमकं तेज एतत् परमकं सुखम् ।
एतत् परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥ १७ ॥

ये ही पुरुष नामसे कहे जाते हैं, किंतु इनका यथार्थ रूप जाना नहीं जा सकता। ये ही विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीके द्वारा परम सुख, परम तेज और परम सत्य कहे गये हैं ॥ १६-१७ ॥

तस्मात् सेन्द्रैः सुरैः सर्वैर्लोकैश्चामितविक्रमः ।
नावज्ञेयो वासुदेवो मानुषोऽयमिति प्रभुः ॥ १८ ॥

इसलिये ये मनुष्य हैं, ऐसा समझकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं तथा सम्पूर्ण मनुष्योंको अमित पराक्रमी भगवान् वासुदेवकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये ॥ १८ ॥

यश्च मानुषमात्रोऽयमिति ब्रूयात् स मन्दधीः ।
हृषीकेशमवज्ञानात् तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य इन्द्रियोंके स्वामी इन भगवान् वासुदेवको केवल मनुष्य कहता है, वह मूढ है। भगवान्‌की अवहेलना करनेके कारण उसे अधम कहा गया है ॥ १९ ॥

योगिनं तं महात्मानं प्रविष्टं मानुषीं तनुम् ।
अवमन्येद् वासुदेवं तमाहुस्तामसं जनाः ॥ २० ॥

भगवान् वासुदेव साक्षात् परमात्मा हैं और योगशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण उन्होंने मानवशरीरमें प्रवेश किया है। जो उनकी अवहेलना करता है, उसे ज्ञानी पुरुष तमोगुणी बताते हैं ॥ २० ॥

देवं चराचरात्मानं श्रीवत्साङ्कं सुवर्चसम् ।
पद्मनाभं न जानाति तमाहुस्तामसं बुधाः ॥ २१ ॥

जो चराचरस्वरूप श्रीवत्सचिह्नित उत्तम कान्तिसे सम्पन्न भगवान् पद्मनाभको नहीं जानता, उसे विद्वान् पुरुष तमोगुणी बताते हैं ॥ २१ ॥

किरीटकौस्तुभधरं मित्राणामभयंकरम् ।
अवजानन् महात्मानं घोरे तमसि मज्जति ॥ २२ ॥

जो किरीट और कौस्तुभमणि धारण करनेवाले तथा मित्रों (भक्तजनों) को अभय देनेवाले हैं, उन परमात्माकी अवहेलना करनेवाला मनुष्य घोर नरकमें डूबता है ॥ २२ ॥

एवं विदित्वा तत्त्वार्थं लोकानामीश्वरेश्वरः ।
वासुदेवो नमस्कार्यः सर्वलोकैः सुरोत्तमाः ॥ २३ ॥

सुरश्रेष्ठगण! इस प्रकार तात्त्विक वस्तुको समझकर सब लोगोंको लोकेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करना चाहिये ॥ २३ ॥

भीष्म उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् देवान् सर्षिगणान् पुरा ।
विसृज्य सर्वभूतात्मा जगाम भवनं स्वकम् ॥ २४ ॥

भीष्मजी कहते हैं—दुर्योधन! देवताओं तथा ऋषियोंसे ऐसा कहकर सर्वभूतात्मा भगवान् ब्रह्माने उन सबको विदा कर दिया। फिर वे अपने लोकको चले गये ॥ २४ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽप्सरसोऽपि च ।
कथां तां ब्रह्मणा गीतां श्रुत्वा प्रीता दिवं ययुः ॥ २५ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीकी कही हुई उस पवित्र कथाको सुनकर देवता, गन्धर्व, मुनि और अप्सराएँ—ये सभी प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चले गये ॥ २५ ॥

एतच्छ्रुतं मया तात ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
वासुदेवं कथयतां समवाये पुरातनम् ॥ २६ ॥

तात! एक समय पुण्यात्मा ऋषियोंका समाज जुटा हुआ था। उसमें वे भगवान् वासुदेवकी कथा कह रहे थे। उन्हींके मुखसे मैंने यह सनातन कथा सुनी है ॥ २६ ॥

रामस्य जामदग्न्यस्य मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
व्यासनारदयोश्चापि सकाशाद् भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ! इसके सिवा जमदग्निनन्दन परशुराम, बुद्धिमान् मार्कण्डेय, व्यास तथा नारदजीसे भी मैंने यह बात सुनी है ॥ २७ ॥

एतमर्थं च विज्ञाय श्रुत्वा च प्रभुमव्ययम् ।
वासुदेवं महात्मानं लोकानामीश्वरेश्वरम् ॥ २८ ॥
(जानामि भरतश्रेष्ठ कृष्णं नारायणं प्रभुम् ।)

भरतकुलभूषण! इस विषयको सुनकर और समझकर मैं वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको अविनाशी प्रभु परमात्मा लोकेश्वरोंका ईश्वर और सर्वशक्तिमान् नारायण जानता हूँ ॥ २८ ॥

यस्यासावात्मजो ब्रह्मा सर्वस्य जगतः पिता ।

कथं च वासुदेवोऽवमन्तव्योऽयं मानवैः ॥ २० ॥

सम्पूर्ण जगत्के पिता ब्रह्मा जिनके पुत्र हैं, वे भगवान् वासुदेव मनुष्योंके लिये अवहेलनीय तथा तुच्छ कैसे हो सकते हैं ॥ २० ॥

वारितोऽसि मया तात मुनिभिर्वेदपारगैः।
मा गच्छ संयुगं तेन वासुदेवेन धन्विना।
मा पाण्डवैः सार्धमिति तच्च मोहान्न बुध्यसे।
मन्ये त्वां राक्षसं क्रूरं तथा चासि तमोवृतः ॥ २१ ॥

तात! वेदोंके पारंगत विद्वान् महर्षियोंने तथा मैंने तुमको मना किया था कि तुम धनुर्धर भगवान् वासुदेवके साथ विरोध न करो, पाण्डवोंके साथ भी युद्ध न छेड़ो; परंतु मोहवश तुमने इन बातोंका कोई मूल्य नहीं समझा। मैं समझता हूँ, तुम कोई क्रूर राक्षस हो; क्योंकि राक्षसोंकी ही भाँति तुम्हारी बुद्धि सदा तमोगुणसे आच्छन्न रहती है ॥ २१ ॥

यस्माद् द्विषसि गोविन्दं पाण्डवं च धनंजयम्।
नरनारायणौ देवौ कोऽन्यो द्विष्याद्धि मानवः ॥ २२ ॥

तुम भगवान् गोविन्द तथा पाण्डुनन्दन अर्जुनसे द्वेष करते हो, जो कि साक्षात् नर और नारायण देव हैं। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य उनसे द्वेष कर सकता है ॥ २२ ॥

तस्माद् ब्रवीमि ते राजन्नेष वै शाश्वतोऽव्ययः।
सर्वलोकमयो नित्यः शास्ता धाता धरो ध्रुवः ॥ २३ ॥

राजन्! इसलिये तुमसे कह रहा हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण सनातन, अविनाशी, सर्वलोकमय, नित्य, शासक, धारण करनेवाले एवं अविचल हैं ॥ २३ ॥

यो धारयति लोकांस्त्रीन् चराचरगुरुः प्रभुः।
योद्धा जयश्च जेता च सर्वप्रकृतिरीश्वरः ॥ २४ ॥

वे चराचरगुरु भगवान् श्रीहरि तीनों लोकोंको धारण करते हैं। वे ही योद्धा हैं, वे ही विजय हैं और वे ही विजयी हैं। सबके कारणभूत परमेश्वर भी वे ही हैं ॥ २४ ॥

राजन् सत्त्वमयो ह्येष तमोरागविवर्जितः।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ २५ ॥

राजन्! ये श्रीहरि सत्त्वस्वरूप और तम एवं रागसे रहित हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है ॥ २५ ॥

तस्य माहात्म्ययोगेन योगेनात्मन एव च।
धृताः पाण्डुसुता राजन् जयश्चैषां भविष्यति ॥ २६ ॥

उनके माहात्म्ययोगसे तथा आत्मयोगसे पाण्डव सुरक्षित हैं। राजन्! इसीलिये इनकी विजय होगी ॥ २६ ॥

श्रेयोयुक्तां सदा बुद्धिं पाण्डवानां दधाति यः।
बलं चैव रणे नित्यं भयेभ्यश्चैव रक्षति ॥ २७ ॥

वे पाण्डवोंको सदा कल्याणकारी बुद्धि प्रदान करते हैं, युद्धमें बल देते हैं और भयसे नित्य उनकी रक्षा करते हैं ॥ २७ ॥

स एष शाश्वतो देवः सर्वगुह्यमयः शिवः।
वासुदेव इति ज्ञेयो यन्मां पृच्छसि भारत ॥ २८ ॥

भारत! जिनके विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे हो, वे सनातन देवता सर्वगुह्यमय कल्याणस्वरूप परमात्मा ही वासुदेव नामसे जानने योग्य हैं ॥ २८ ॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षणैः।
सेव्यतेऽभ्यर्च्यते चैव नित्ययुक्तैः स्वकर्मभिः ॥ २९ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्तम लक्षणसे युक्त हो अपने-अपने कर्मोंद्वारा नित्य तत्पर होकर उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा-पूजा करते हैं ॥ २९ ॥

द्वापरस्य युगस्यान्ते आदौ कलियुगस्य च।
सात्वतं विधिमास्थाय गीतः संकर्षणेन यः ॥ ३० ॥

(कृष्णेति नाम्ना विख्यातः इस श्लोक का स्मरण है।)

द्वापरयुगके अन्त और कलियुगके आदिमें संकर्षणने विधिपूर्वक जिनकी महिमाका गान किया है, वे ही श्रीकृष्णरूपमें प्रकट होकर इस लोककी रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥

स एष सर्वं सुरमर्त्यलोकं
समुद्रकक्ष्यान्तरिताः पुरीश्च।
युगे युगे मानुषं चैव वासं
पुनः पुनः सृजते वासुदेवः ॥ ३१ ॥

भगवान् वासुदेव ही युग-युगमें देवलोक, मर्त्यलोक तथा समुद्रसे घिरी हुई द्वारका आदि पुरीका निर्माण करते हैं और वे ही बारंबार मनुष्यलोकमें अवतार ग्रहण करते हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें विश्वोपाख्यानविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३२ श्लोक हैं)

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा

दुर्योधन उवाच

वासुदेवो महद् भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते।
तस्यागमं प्रतिष्ठां च ज्ञातुमिच्छे पितामह॥१॥

दुर्योधनने पूछा—पितामह! वासुदेव श्रीकृष्णको सम्पूर्ण लोकोंमें महान् बताया जाता है; अतः मैं उनकी उत्पत्ति और स्थितिके विषयमें जानना चाहता हूँ॥१॥



भीष्म उवाच

वासुदेवो महद् भूतं सर्वदैवतदैवतम्।
न परं पुण्डरीकाक्षाद् दृश्यते भरतर्षभ॥२॥

भीष्मजीने कहा—भरतश्रेष्ठ! वासुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वास्तवमें महान् हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके भी देवता हैं। कमलनयन श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है॥२॥

मार्कण्डेयश्च गोविन्दं कथयत्यद्भुतं महत्।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः॥३॥
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत्।

मार्कण्डेयजी भगवान् गोविन्दके विषयमें अत्यन्त अद्भुत बातें कहते हैं। वे भगवान् ही सर्वभूतमय हैं और वे ही सबके आत्मस्वरूप महात्मा पुरुषोत्तम हैं। आरम्भमें इन्हीं परमात्माने जल, वायु और तेज—इन तीन भूतों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि की थी॥३॥

स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः॥४॥
अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः।
सर्वतेजोमयो देवो योगात् सुष्वाप तत्र ह॥५॥

सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर इन भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीदेवीकी सृष्टि करके जलमें शयन किया। वे महात्मा पुरुषोत्तम सर्वतेजोमय देवता योगशक्तिसे उस जलमें सोये॥४-५॥

मुखतः सोऽग्निमसृजत् प्राणाद् वायुमथापि च।
सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः॥६॥

उन अच्युतने अपने मुखसे अग्निकी, प्राणसे वायुकी तथा मनसे सरस्वतीदेवी और वेदोंकी रचना की॥६॥

एष लोकान् ससर्जादौ देवांश्चर्षिगणैः सह।
निधनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ॥७॥

इन्होंने ही पहले आदिकालमें सम्पूर्ण लोकों तथा ऋषियोंसहित देवताओंकी रचना की थी। ये ही प्रलयके अधिष्ठान और मृत्युस्वरूप हैं। प्रजाकी उत्पत्ति और विनाश इन्हींसे होते हैं॥७॥

एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः।
एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयंप्रभुः॥८॥

ये परमात्मा धर्मज्ञ, धर्मस्वरूप, वरदायक तथा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले हैं। ये ही कर्ता, कार्य, आदिदेव तथा स्वयं समर्थ हैं॥८॥

भूतं भव्यं भविष्यच्च पूर्वमेतदकल्पयत्।
उभे संध्ये दिशः खं च नियमांश्च जनार्दनः॥९॥

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी सृष्टि भी पूर्वकालमें इन्हींके द्वारा हुई है। इन जनार्दनने ही दोनों संध्याओं, दिशाओं, आकाश तथा नियमोंकी रचना की है॥९॥

ऋषींश्चैव हि गोविन्दस्तपश्चैवाभ्यकल्पयत्।
स्रष्टारं जगतश्चापि महात्मा प्रभुरव्ययः॥१०॥

महात्मा अविनाशी प्रभु गोविन्दने ही ऋषियों तथा तपस्याकी रचना की है। जगत्स्रष्टा प्रजापतिको भी उन्होंने ही उत्पन्न किया है॥१०॥

अग्रजं सर्वभूतानां संकर्षणमकल्पयत्।
तस्मान्नारायणो जज्ञे देवदेवः सनातनः॥११॥

उन पुरातन परमात्मा श्रीकृष्णने पहले सम्पूर्ण भूतोंके अग्रज संकर्षणको प्रकट किया। उनसे सनातन देवाधिदेव नारायणका प्रादुर्भाव हुआ॥११॥

नाभौ पद्मं बभूवास्य सर्वलोकस्य सम्भवात्।
ततः पितामहो जातस्तस्माज्जातास्त्विमाः प्रजाः॥१२॥

भगवान्‌की नाभिसे कमल प्रकट हुआ। सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके स्थानभूत उस कमलसे पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीसे ये सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं ॥

शेषं चाकल्पयद् देवमनन्तं विश्वरूपिणम्।
यो धारयति भूतानि धरां चेमां सपर्वताम् ॥ १३ ॥

जो सम्पूर्ण भूतोंको तथा पर्वतोंसहित इस पृथ्वीको धारण करते हैं, जिन्हें विश्वरूपी अनन्तदेव तथा शेष कहा गया है, उन्हें भी उन परमात्माने ही उत्पन्न किया है ॥

ध्यानयोगेन विप्राश्च तं विदन्ति महौजसम्।
कर्णस्रोतोद्भवं चापि मधुं नाम महासुरम् ॥ १४ ॥
तमुग्रमुग्रकर्माणमुग्रां बुद्धिं समास्थितम्।
ब्रह्मणोऽपचितिं कुर्वन् जघान पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

ब्राह्मणलोग ध्यानयोगके द्वारा उन्हीं परम तेजस्वी वासुदेवका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जलशायी नारायणके कानसे मधु नामक महान् असुर उत्पन्न हुआ था। वह मधु बड़ा ही उग्र स्वभावका तथा क्रूरकर्मा था। उसने अत्यन्त भयंकर बुद्धिका आश्रय लिया था। इसलिये ब्रह्माजीका सम्मान करते हुए भगवान् पुरुषोत्तमने मधुको मार डाला था।

तस्य तात वधादेव देवदानवमानवाः।
मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥ १६ ॥

तात! मधुका वध करनेके कारण ही देवता, दानव, मनुष्य तथा ऋषिगण जनार्दनको मधुसूदन कहते हैं ॥

वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभुः।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ॥ १७ ॥

वे ही भगवान् समय-समयपर वराह, नृसिंह और वामनके रूपमें प्रकट हुए हैं। ये श्रीहरि ही समस्त प्राणियोंके पिता और माता हैं ॥

परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति।
मुखतः सोऽसृजद् विप्रान् बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा ॥ १८ ॥
वैश्यांश्चाप्यूरुतो राजन् शूद्रान् वै पादतस्तथा।

इन कमलनयन भगवान्‌से बढ़कर दूसरा कोई तत्त्व न हुआ है, न होगा। राजन्! इन्होंने अपने मुखसे ब्राह्मणों, दोनों भुजाओंसे क्षत्रियों, जाँघोंसे वैश्यों और पैरोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया है ॥

तपसा नियतो देवं विधानं सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥
ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च।
योगभूतं परिचरन् केशवं महदाप्नुयात् ॥ २० ॥

जो मनुष्य तपस्यामें तत्पर हो, मन-इन्द्रियोंका संयम करते हुए अमावास्या और पूर्णिमाको उनका ध्यान करता है, वह सम्पूर्ण देहधारियोंके आश्रय, ब्रह्मस्वरूप एवं योगस्वरूप भगवान् केशवकी आराधना करता है, वह परम पदको प्राप्त कर लेता है ॥

केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः।
एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥ २१ ॥

नरेश्वर! सम्पूर्ण लोकोंके पितामह भगवान् श्रीकृष्ण परम तेज हैं। मुनिजन इन्हें हृषीकेश कहते हैं ॥

एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम्।
कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाक्षया जिताः ॥ २२ ॥

इस प्रकार इन भगवान् गोविन्दको तुम आचार्य, पिता और गुरु समझो। भगवान् श्रीकृष्ण जिसके ऊपर प्रसन्न हो जायँ, वह अक्षय लोकोंपर विजय पा जाता है ॥

यश्चैवैनं भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत्।
सदा नरः पठंश्चेदं स्वस्तिमान् स सुखी भवेत् ॥ २३ ॥

जो मनुष्य भयके समय इन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेता है और सदा इस स्तुतिका पाठ करता है, वह सुखी एवं कल्याणका भागी होता है ॥

ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः।
भये महति मग्नांश्च पाति नित्यं जनार्दनः ॥ २४ ॥

जो मानव भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। भगवान् जनार्दन महान् भयमें निमग्न उन मनुष्योंकी सदा रक्षा करते हैं ॥

स तं युधिष्ठिरो ज्ञात्वा याथातथ्येन भारत।
सर्वात्मना महात्मानं केशवं जगतीपतिम्।
प्रपन्नः शरणं राजन् योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ २५ ॥

भरतवंशी नरेश! इस बातको अच्छी तरह समझकर राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण हृदयसे योगोंके स्वामी सर्वसमर्थ जगदीश्वर एवं महात्मा भगवान् केशवकी शरण ली है ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें विश्वोपाख्यानविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

---

* केशव नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'कः' ब्रह्मा, 'ईशः' रुद्र, ये दोनों जिसके वशमें रहें

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मभूतस्तोत्र तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महत्ता

भीष्म उवाच

शृणु चेदं महाराज ब्रह्मभूतस्तवं मम।
ब्रह्मर्षिभिश्च देवैश्च यः पुरा कथितो भुवि॥१॥

भीष्मजी कहते हैं—महाराज दुर्योधन! पूर्वकालमें पृथ्वीपर ब्रह्मर्षियों तथा देवताओंने इनका जो ब्रह्मभूत स्तोत्र कहा है, उसे तुम मुझसे सुनो॥१॥

साध्यानामपि देवानां देवदेवेश्वरः प्रभुः।
लोकभावनभावज्ञ इति त्वां नारदोऽब्रवीत्॥२॥

प्रभो! आप साध्यगण और देवताओंके भी स्वामी एवं देवदेवेश्वर हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के हृदयके भावोंको जाननेवाले हैं। आपके विषयमें नारदजीने ऐसा ही कहा है॥२॥

भूतं भव्यं भविष्यं च मार्कण्डेयोऽभ्युवाच ह।
यज्ञं त्वां चैव यज्ञानां तपश्चापि तपस्विनाम्॥३॥

मार्कण्डेयजीने आपको भूत, भविष्य और वर्तमान स्वरूप बताया है। वे आपको यज्ञोंका यज्ञ और तपस्वियोंका भी सारभूत तप स्वीकार करते हैं॥३॥

देवानामपि देवं च त्वामाह भगवान् भृगुः।
पुराणं चैव परमं विष्णो रूपं तवेति च॥४॥

भगवान् भृगुने आपको देवताओंका भी देवता कहा है। विष्णो! आपका रूप अत्यन्त पुरातन और उत्कृष्ट है॥४॥

वासुदेवो वसूनां त्वं शक्रं स्थापयिता तथा।
देवदेवोऽसि देवानामिति द्वैपायनोऽब्रवीत्॥५॥

प्रभो! आप वसुओंमें वासुदेव तथा इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर स्थापित करनेवाले हैं। देव! आप देवताओंके भी देवता हैं। महर्षि द्वैपायन आपके विषयमें ऐसा ही कहते हैं॥५॥

पूर्वे प्रजानिसर्गे च दक्षमाहुः प्रजापतिम्।
स्रष्टारं सर्वलोकानामङ्गिरास्त्वां ततोऽब्रवीत्॥६॥

प्रथम प्रजासृष्टिके समय आपको ही दक्ष प्रजापति कहा गया है। आप ही सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा हैं—इस प्रकार अङ्गिरा मुनि आपके विषयमें कहते हैं॥६॥

अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम्।
देवास्त्वत्सम्भवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत्॥७॥

अव्यक्त प्रधान आपके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, व्यक्त महत्तत्त्व आदि कार्यवर्ग आपके मनमें स्थित है तथा सम्पूर्ण देवता भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, ऐसा असित और देवलका कथन है॥७॥

शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी धृता।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः॥८॥

एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नराः।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चासि सत्तमः॥९॥

आपके मस्तकसे द्युलोक और भुजाओंसे भूलोक व्याप्त है। तीनों लोक आपके उदरमें स्थित हैं। आप ही सनातन पुरुष हैं। तपस्यासे शुद्ध अन्तःकरणवाले महात्मा पुरुष आपको ऐसा ही जानते हैं। आत्मसाक्षात्कारसे तृप्त हुए ज्ञानी महर्षियोंकी दृष्टिमें भी आप सबसे श्रेष्ठ हैं॥८-९॥

राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम्।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन॥१०॥

मधुसूदन! जो सम्पूर्ण धर्मोंमें प्रधान और युद्धमें कभी पीठ दिखानेवाले नहीं हैं, उन उदार राजर्षियोंके परम आश्रय भी आप ही हैं॥१०॥

इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान् पुरुषोत्तमः।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः॥११॥

इस प्रकार सनत्कुमार आदि योगवेत्ता महात्मा भगवान् पुरुषोत्तमकी सदा ही स्तुति और पूजा करते हैं॥११॥

एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च प्रकीर्तितः।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम्॥१२॥

तात दुर्योधन! इस तरह विस्तार और संक्षेपसे मैंने तुम्हें भगवान् केशवकी यथार्थ महिमा बतायी है। अब तुम अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका भजन करो॥१२॥

संजय उवाच

पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव।
केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान्॥१३॥

संजय कहते हैं—महाराज! भीष्मजीके मुखसे यह पवित्र आख्यान सुनकर तुम्हारे पुत्रने भगवान् श्रीकृष्ण तथा महारथी पाण्डवोंको बहुत महत्त्वशाली समझा॥१३॥

तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शान्तनवः पुनः।
माहात्म्यं ते श्रुतं राजन् केशवस्य महात्मनः॥१४॥
नरस्य च यथातत्त्वं यन्मां त्वं पृच्छसे नृप।

राजन्! उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मजीने पुनः दुर्योधनसे कहा—नरेश्वर! तुमने महात्मा केशव तथा नरस्वरूप अर्जुनका यथार्थ माहात्म्य, जिसके विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे थे, मुझसे अच्छी तरह सुन लिया।

यदर्थं नृषु सम्भूतौ नरनारायणावुभौ॥१५॥
अवध्यौ च यथा वीरौ संयुगेष्वपराजितौ।
यथा च पाण्डवा राजन्नगम्या युधि कस्यचित्॥१६॥

ऋषि नर और नारायण जिस उद्देश्यसे मनुष्योंमें

अतीव शुद्ध हैं। ये दोनों अपराजित वीर जिस प्रकार युद्धमें अजेय हैं उसी प्रकार पाण्डव भी किसी प्रकार संसारमें किसीसे जीते नहीं जा सकते। यह सब विषय तुमने अच्छी तरह सुन लिया ॥ १५-१६ ॥

प्रीतिमान् हि दृढं कृष्णः पाण्डवेषु यशस्विषु।
तस्माद् ब्रवीमि राजेन्द्र शमो भवतु पाण्डवैः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्ण यशस्वी पाण्डवोंपर बहुत प्रसन्न हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि पाण्डवोंके साथ तुम्हारी संधि हो जाय ॥ १७ ॥

पृथिवीं भुङ्क्ष्व सहितो भ्रातृभिर्बलिभिर्वशी।
नरनारायणौ देवाववज्ञाय नशिष्यसि ॥ १८ ॥

वे तुम्हारे बलवान् भाई हैं। तुम अपने मनको वशमें रखते हुए उनके साथ मिलकर पृथ्वीका राज्य भोगो। भगवान् नर-नारायण (अर्जुन और श्रीकृष्ण) की अवहेलना करके तुम नष्ट हो जाओगे ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा तव पिता तूष्णीमासीद् विशाम्पते।
व्यसर्जयच्च राजानं शयनं च विवेश ह ॥ १९ ॥

प्रजानाथ! ऐसा कहकर आपके ताऊ भीष्मजी चुप हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने राजा दुर्योधनको विदा किया और स्वयं शयन करने चले गये ॥ १९ ॥

राजा च शिबिरं प्रायात् प्रणिपत्य महात्मने।
शिश्ये च शयने शुभ्रे तां रात्रिं भरतर्षभ ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ! राजा दुर्योधन भी महात्मा भीष्मको प्रणाम करके अपने शिविरमें चला आया और अपनी शुभ्र शय्यापर सो गया ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें विश्वोपाख्यानविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

कौरवोंद्वारा मकरव्यूह तथा पाण्डवोंद्वारा श्येनव्यूहका निर्माण एवं पाँचवें दिनके युद्धका आरम्भ

सञ्जय उवाच

व्युषितायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! वह रात बीतनेपर जब सूर्योदय हुआ, तब दोनों ओरकी सेनाएँ आमने-सामने आकर युद्धके लिये डट गयीं ॥ १ ॥

अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः।
ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥ २ ॥
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राजन् दुर्मन्त्रिते तव।
व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः सम्प्रयुद्धाः प्रहारिणः ॥ ३ ॥

सभी एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अत्यन्त क्रोधमें भरकर विरोधी सेनापर आक्रमण किया। राजन्! आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप आपके पुत्र और पाण्डव एक-दूसरेको देखकर कुपित हो व्यूह-रचना करके अपने प्रहारोंका सामना करने [illegible] और [illegible] परस्पर प्रहार करनेको उद्यत हो गये ॥ २-३ ॥

अरक्षन्मकरव्यूहं भीष्मो राजन् समन्ततः।
तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन् व्यूहमात्मनः ॥ ४ ॥

राजन्! भीष्म सेनाका मकरव्यूह बनाकर सब ओरसे उसकी रक्षा करने लगे। इसी प्रकार पाण्डवोंने भी अपने व्यूहकी रक्षा की ॥ ४ ॥

(अजातशत्रुः शत्रूणां मर्माणि समवस्थितम्।
श्येनव्यूहं व्यूहराजं भीष्मस्य प्रत्यगात् स्वयम् ॥
स हि तस्य सुविहितं [illegible] भारत।
मकरस्तु महाव्यूहस्तत्र पुरस्य भीषणः ॥
तत्र पार्थेन भीमेन द्रौपदीसुतसात्यकः।
यथायुद्धं [illegible] तत्र युद्ध ॥)

स निर्ययौ रथानीकं पिता देवव्रतस्तव।
महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः ॥ ५ ॥

तब अजातशत्रु युधिष्ठिरने भीम [illegible] आदिके साथ शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाले श्येनव्यूहकी रचना करके शत्रुओंके सामने अपनी सेना खड़ी कर दी। भारत! अभिमन्यु उसमें रहते हुए उसी श्येनव्यूहका विशेष परिचय था। आपके बुद्धिमान् पुत्रकी सेनाका मकरनामक महाव्यूह निर्मित हुआ था। द्रोणाचार्यकी अनुमति लेकर उनके साथ वहाँ सेनाके द्वारा उस व्यूहकी रचना की थी। फिर पाण्डुकुमार भीमने व्यूहकी विधिके अनुसार निर्मित हुए उस महाव्यूहका सब भी अनुमोदन किया था। महाराज! रथियोंमें श्रेष्ठ आपके ताऊ भीष्म विशाल रथसेनासे घिरे हुए युद्धके लिये निकले ॥ ५ ॥

इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागमवस्थिताः।
रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥ ६ ॥

फिर यथाभाग खड़े हुए रथी, पैदल, हाथीसवार और

पुत्रकार गण हस सूर्यमेव अनुगामन करते हुए मत दिये।

जग्मुः शुभ्रानुगताल सर्वे पाण्डवा हि यशस्विनः ।
श्येनेन व्यूहराजेन तेनाभ्येत्य सयुगे ॥ ७ ॥
अशोभन्त मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः ।
नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ८ ॥

यशुशीको युद्धके लिये उद्यत हुए देख महाबली पाण्डव युद्धमें भजन व्यूहराज श्येनके रूपमें सगठित हो शोभा पाने लगे। उस व्यूहके मुखभागमें महाबली भीमसेन शोभा पा रहे थे। नेत्रोंके स्थानमें दुर्धर्ष वीर शिखण्डी तथा धृष्टद्युम्न पुरस्थल लड़े थे ॥ ७-८ ॥

शीर्षं तस्याभवद् वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विधुन्वन् गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत् तदा ॥ ९ ॥

शिरोभागमें सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि और ग्रीवाभागमें गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुन खड़े हुए ॥ ९ ॥

अक्षौहिण्या समं तत्र वामपक्षोऽभवत् तदा ।
महात्मा द्रुपदः श्रीमान् सह पुत्रेण संयुगे ॥ १० ॥

पुत्रसहित श्रीमान् महात्मा द्रुपद एक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्धमें वाम पक्षके स्थानमें खड़े थे ॥ १० ॥

दक्षिणश्चाभवत् पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चापि वीर्यवान् ॥ ११ ॥

एक अक्षौहिणी सेनाके अधिपति कैकय दाहिने पक्षमें स्थित हुए। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और पराक्रमी सुभद्राकुमार अभिमन्यु पृष्ठभागमें खड़े हुए ॥ ११ ॥

पृष्ठे समभवच्छ्रीमान् स्वयं राजा युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभ्यां सहितो धीमान् यमाभ्यां चारुविक्रमः ॥ १२ ॥

उत्तम पराक्रमी स्वयं श्रीमान् वीर राजा युधिष्ठिर अपने दोनों भाई नकुल और सहदेवके साथ पृष्ठभागमें ही सुशोभित हुए ॥ १२ ॥

प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तदा ।
भीष्ममासाद्य संग्रामे छादयामास सायकैः ॥ १३ ॥

तदनन्तर भीमसेन रणक्षेत्रमें प्रवेश करके मकरव्यूहके मुखभागमें खड़े हुए भीष्मको अपने सायकोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १३ ॥

ततो भीष्मो महास्त्राणि पातयामास भारत ।
मोहयन् पाण्डुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे ॥ १४ ॥

भारत! तब उस महासमरमें पाण्डवोंकी उस व्यूहबद्ध सेनाको मोहित करते हुए भीष्म उसपर बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ १४ ॥

सम्मुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनंजयः ।
भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि ॥ १५ ॥

उस समय अपनी सेनाको मोहित होती देख अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ युद्धके मुहानेपर एक हजार बाणोंकी वर्षा करके भीष्मको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

प्रतिसंवार्य चास्त्राणि भीष्ममुक्तानि संयुगे ।
स्वेनानीकेन हृष्टेन युद्धाय समुपस्थितः ॥ १६ ॥

युद्धमें भीष्मके छोड़े हुए सम्पूर्ण अस्त्रोंका निवारण करके हर्षमें भरी हुई अपनी सेनाके साथ वे युद्धके लिये उपस्थित हुए ॥ १६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत ।
पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वर ॥ १७ ॥
भ्रातॄणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः ।
आचार्य सततं हि त्वं हितकामो ममानघ ॥ १८ ॥

तब बलवानोंमें श्रेष्ठ महारथी राजा दुर्योधनने पहले जो अपनी सेनाका घोर संहार हुआ था, उसको दृष्टिमें रखते हुए और युद्धमें भाइयोंके मारे जानेका स्मरण करते हुए, भारद्वाज द्रोणाचार्यसे कहा—निष्पाप आचार्य! आप सदा ही मेरा हित चाहनेवाले हैं ॥ १७-१८ ॥

वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम् ।
देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ॥ १९ ॥
किमु पाण्डुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
स तथा कुरु भद्रं ते यथा वध्यन्ति पाण्डवाः ॥ २० ॥

हमलोग आप तथा पितामह भीष्मकी शरण लेकर देवताओंको भी संग्राममें जीतनेकी अभिलाषा रखते हैं, इसमें संशय नहीं है। फिर जो बल और पराक्रममें हीन हैं, उन पाण्डवोंको जीतना कौन बड़ी बात है। आपका कल्याण हो। आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे पाण्डव मारे जायँ ॥ १९-२० ॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष ।
(अभ्यगच्छत् तदा [illegible] ।)

आर्य! आपके पुत्र दुर्योधनके ऐसा कहनेपर द्रोणाचार्य युद्धभूमिमें डटे और [illegible] राजा दुर्योधनसे [illegible]

द्रोण उवाच

चालयिष्यन्न जानीषे पाण्डवानां पराक्रमम् ।
न शक्या हि रणे जेतुं पाण्डवा हि महाबलाः ॥
यथाबलं यथावीर्यं कर्म कुर्याम ते हि ते ।

द्रोणाचार्यने कहा—तुम नादान हो। पाण्डवोंका पराक्रम कैसा है, यह नहीं जानते। महाबली पाण्डवोंको युद्धमें जीतना असम्भव है, तथापि मैं अपने बल और पराक्रमके अनुसार तुम्हारा कार्य कर सकता हूँ।

सञ्जय उवाच

इत्युक्त्वा ते सुतं राजन् [illegible] वाहिनीम् ।
अभिनद् पाण्डवानीकं [illegible] ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रको ऐसा कहकर द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाकी ओर चले। [illegible] सात्यकिके देखते-देखते पाण्डवसेनाका विनाश करने लगे॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत।
तयोः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम्॥ २२॥

भारत! उस समय सात्यकिने आगे बढ़कर द्रोणाचार्यको रोका। फिर तो उन दोनोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥

शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान्।
[illegible] ॥ २३॥

प्रतापी द्रोणाचार्यने युद्धमें कुपित होकर सात्यकिके गले-की हँसलीमें [illegible] बाणोंद्वारा प्रहार किया॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत।
संरक्षन् सात्यकिं राजन् द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात्॥ २४॥

राजन्! तब भीमसेनने कुपित होकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे सात्यकिकी रक्षा करते हुए आचार्यको अपने बाणोंसे बींध डाला॥

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष।
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयाञ्चक्रिरे शरैः॥ २५॥

आर्य! तदनन्तर द्रोणाचार्य, भीष्म तथा शल्य तीनोंने कुपित होकर भीमसेनको युद्धस्थलमें अपने बाणोंसे ढक दिया॥

तत्राभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान्॥ २६॥

महाराज! तब वहाँ क्रोधमें भरे हुए अभिमन्यु और द्रौपदीके पुत्रोंने अस्त्र-शस्त्र उठाये खड़े हुए उन सब कौरव महारथियोंको तीखे बाणोंसे घायल कर दिया॥

द्रोणभीष्मौ तु संक्रुद्धावापतन्तौ महाबलौ।
प्रत्युद्ययौ शिखण्डी तु महेष्वासो महाहवे॥ २७॥

उस समय कुपित होकर आक्रमण करते हुए महाबली द्रोणाचार्य और भीष्मका उस महासमरमें महान् धनुर्धर शिखण्डीने सामना किया॥

प्रगृह्य बलवद् वीरो धनुर्जलदनिःस्वनम्।
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं छादयानो दिवाकरम्॥ २८॥

उस वीरने मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले अपने धनुषको मजबूतीसे पकड़कर बड़ी शीघ्रताके साथ इतने बाणों-की वर्षा की कि सूर्य भी आच्छादित हो गये॥

शिखण्डिनं समासाद्य भरतानां पितामहः।
अवर्जयत संग्रामं स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मरन्॥ २९॥

भरतकुलके पितामह भीष्मने शिखण्डीके सामने पहुँचकर उसके स्त्रीत्वका बारंबार स्मरण करते हुए युद्ध [illegible] कर दिया॥

ततो द्रोणो महाराज अभ्यद्रवत तं रणे।
रक्षमाणस्तदा भीष्मं तव पुत्रेण चोदितः॥ ३०॥

महाराज! यह देखकर द्रोणाचार्य युद्धमें आपके पुत्रकी प्रेरणासे भीष्मकी रक्षाके लिये शिखण्डीकी ओर दौड़े॥

शिखण्डी तु समासाद्य द्रोणं शस्त्रभृतां वरम्।
अवर्जयत संत्रस्तो युगान्ताग्निमिवोल्बणम्॥ ३१॥

शिखण्डी प्रलयकालकी [illegible] अग्निके समान शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर भयसे [illegible] युद्ध छोड़कर भाग दिया॥

ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशाम्पते।
जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद् यशः॥ ३२॥

प्रजानाथ! तदनन्तर आपका पुत्र दुर्योधन महान् यशकी इच्छा रखता हुआ भारी विशाल सेनाके साथ भीष्मके पास पहुँचकर उनकी रक्षा करने लगा॥

तथैव पाण्डवा राजन् पुरस्कृत्य धनंजयम्।
भीष्ममेवाभ्यवर्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम्॥ ३३॥

राजन्! इसी प्रकार पाण्डव भी विजय-प्राप्तिके लिये दृढ़ निश्चय करके अर्जुनको आगे करके भीष्मपर ही टूट पड़े॥

तद् युद्धमभवद् घोरं देवानां दानवैरिव।
जयमाकाङ्क्षतां संख्ये यशश्च सुमहाद्भुतम्॥ ३४॥

उस युद्धमें विजय और अद्भुत यशकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डवोंका और [illegible] उसी प्रकार भयंकर युद्ध हुआ, जैसे देवताओंका दानवोंके साथ हुआ था॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धारम्भे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें पाँचवें दिनके युद्धका आरम्भविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३४½ श्लोक हैं)

सप्ततितमोऽध्यायः

भीष्म और भीमसेनका घमासान युद्ध

संजय उवाच

अभवत् तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा।
भीमसेनभयादिच्छन् पुत्रांस्तारयितुं तव॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! आपके पुत्रोंको भीम-सेनके भयसे बचानेकी इच्छा रखकर उस दिन शान्तनुनन्दन भीष्मने बड़ा भयंकर युद्ध किया॥ १॥

पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो व्यवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥ २ ॥

पूर्वाह्न-कालमें कौरव-पाण्डव योद्धाओंका वह महाभयंकर युद्ध आरम्भ हुआ, जो बड़े-बड़े शूरवीरोंका विनाश करने वाला था । २ ॥

तस्मिन्नाकुलसम्पाते वर्तमाने महाभये ।
अभवत् तुमुलः शब्दः संस्पृशन् गगनं महत् ॥ ३ ॥

उस अत्यन्त भयानक नाशकारी युद्धमें बड़ा भयंकर कोलाहल होने लगा, जिसने अनन्त आकाशको गुँजा दिया ॥ ३ ॥

नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलः समपद्यत ॥ ४ ॥

चिग्घाड़ते हुए बड़े बड़े गजराजों, हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा भेरी और शङ्खोंकी ध्वनिसे भयानक कोलाहल छा गया ॥

युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥ ५ ॥

जैसे बड़े-बड़े साँड़ गोशालाओंमें गरजते हुए एक दूसरेसे भिड़ जाते हैं, उसी प्रकार पराक्रमी और महाबली सैनिक विजयके लिये युद्धकी इच्छा रखकर गरजते हुए एक दूसरेसे लड़ने लगे ॥ ५ ॥

शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशे बभूव भरतर्षभ ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समरभूमिमें तीखे बाणोंसे गिराये जाने वाले मस्तकोंकी वर्षा होने लगी, मानो आकाशसे पत्थरोंकी वृष्टि हो रही है । ६ ॥

कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च ।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतवंशी नरेश ! कुण्डल और पगड़ी धारण करनेवाले तथा सुवर्णमय मुकुट आदिसे उद्भासित होनेवाले अगणित मस्तक कटकर धरतीपर पड़े दिखायी देते थे ॥ ७ ॥

विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चान्यैरभवच्छादिता मही ॥ ८ ॥

सारी पृथ्वी बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई लाशों, धनुष तथा हस्ताभरणोंसहित कटी हुई दोनों भुजाओंसे पट गयी थी ॥

कवचोपहितैर्गात्रैर्हस्तैश्च समलंकृतैः ।
मुखैश्च चन्द्रसंकाशै रक्तान्तनयनैः शुभैः ॥ ९ ॥
गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैश्च भूपते ।
आसीत् सर्वा समास्तीर्णा मुहूर्तेन वसुन्धरा ॥ १० ॥

भूपाल ! दो ही घड़ीमें सारी वसुधा कवचधारी शरीरों, आभूषणोंसे विभूषित हाथों, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखों, जिनके अन्तभागमें कुछ-कुछ लाली थी ऐसे सुन्दर नेत्रों तथा हाथी घोड़े और मनुष्योंके सम्पूर्ण अङ्गोंसे ढक गयी थी ॥ ९-१० ॥

रजोमेघैश्च तुमुलैः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिभिः ।
आयुधानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥ ११ ॥

धूलके बादल छा रहे थे । उनमें अस्त्र-शस्त्ररूपी बिजलियोंकी प्रभा देखी जाती थी । धनुष आदि आयुधोंका जो गम्भीर घोष होता था, वह मेघगर्जनाके समान प्रतीत होता था । ११ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ।
प्रावर्तत कुरूणां च पाण्डवानां च भारत ॥ १२ ॥

भारत ! कौरवों और पाण्डवोंका वह भयानक युद्ध बड़ा ही कटु और रक्तको पानीकी तरह बहानेवाला था ॥ १२ ॥

तस्मिन् महाभये घोरे तुमुले लोमहर्षणे ।
ववृषुः शरवर्षाणि क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ १३ ॥

उस महान् भयदायक, घोर एवं रोमाञ्चकारी युद्धमें रणदुर्मद क्षत्रिय बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १३ ॥

आक्रोशन् कुञ्जरास्तत्र शरवर्षप्रतापिताः ।
तावकानां परेषां च संयुगे भरतर्षभ ॥ १४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! बाणोंकी वर्षासे पीड़ित हुए आपके और पाण्डवोंके हाथी उस युद्धमें चिग्घाड़ मचा रहे थे । १४ ॥

संरब्धानां च वीराणां धीराणाममितौजसाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन ॥ १५ ॥

क्रोधमें भरे हुए अमित तेजस्वी धीर वीरोंके धनुषोंकी टंकारसे वहाँ कुछ भी सुनायी नहीं पड़ता था ॥ १५ ॥

उत्थितेषु कबन्धेषु सर्वतः शोणितोदके ।
समरे पर्यधावन्त नृपा रिपुवधोद्यताः ॥ १६ ॥

चारों ओरसे केवल कबन्ध (बिना सिरके शरीर) उठे थे । रक्तका प्रवाह पानीके समान बह रहा था । शत्रुओंका वध करनेके लिये उद्यत हुए नरेशगण समरभूमिमें चारों ओर दौड़ लगा रहे थे ॥ १६ ॥

शक्त्यसिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः ।
निजघ्नुः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ १७ ॥

परिघके समान मोटी भुजाओंवाले अमित तेजस्वी शूर वीर योद्धा शक्ति, खड्ग और गदाओंद्वारा रणक्षेत्रमें एक दूसरेको मार रहे थे ॥ १७ ॥

बभ्रमुः कुञ्जरास्तत्र शरैर्विद्धा निरङ्कुशाः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १८ ॥

जिनके सवार मारे गये थे, वे अङ्कुशरहित गजराज बाणविद्ध होकर वहाँ इधर-उधर चक्कर काट रहे थे । सवारोंके मारे जानेसे घोड़े भी बाणोंसे पीड़ित हो चारों ओर दौड़ लगा रहे थे ॥ १८ ॥

उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः ।
तावकानां परेषां च योधा भरतसत्तम ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपके और शत्रुपक्षके कितने ही योद्धा [illegible] आपसमें [illegible] हो [illegible] रहे थे ।

[illegible] च भारत ।
[illegible] सह ॥ १९ ॥
[illegible] च [illegible]
[illegible] भीष्म[illegible] ॥ २० ॥

भारत ! भीष्म और पाँचवें उन रथियोंसे गिरे हुए [illegible] हुए [illegible] [illegible] जाते [illegible] दिखायी दे रहे थे ।

[illegible]
[illegible] तत्र तत्र [illegible] ॥ २१ ॥

[illegible] हाथियों [illegible] दृष्टिगोचर हो रहे थे ।

[illegible]
[illegible] परस्पर तत्र [illegible] ॥ २२ ॥

[illegible] गये थे ।

अपरे [illegible] निपुण[illegible] युधि
[illegible] भारते [illegible] ॥ २३ ॥

कितने ही [illegible] युद्धमें [illegible] ।

[illegible] के [illegible] परस्पर [illegible] अनेक प्रकारके [illegible] दिखाते हुए [illegible] ।

[illegible]
अन्योन्य[illegible] सह ॥ २४ ॥

[illegible] आपके और [illegible] पाण्डवोंके [illegible] युद्ध [illegible] ।

[illegible] भूतले
[illegible] तत्र तत्र [illegible] ॥ २५ ॥

तदनन्तर कुछ लोग [illegible] कुछ [illegible] जा रहे थे और कितने ही गिरकर [illegible] रहे थे । इस प्रकार तब [illegible] युद्ध [illegible] था ।

[illegible]
[illegible] ॥ २६ ॥

कितने ही [illegible] हाथमें मुकुट [illegible] दूसरोंको मार [illegible] ।

ततो दुर्योधनो राजा [illegible]
युद्ध[illegible] रणे भीष्मं [illegible]

उस [illegible] राजा दुर्योधन ने युद्धमें भीष्मको आगे करके पाण्डवोंपर आक्रमण किया ।

[illegible] सर्वे परिवार्य [illegible]
भीष्म[illegible] युद्ध[illegible] ॥ २७ ॥

[illegible] पाण्डवोंने भी भीम[illegible] भीष्मपर धावा किया । फिर दोनों पक्षोंमें भयंकर युद्ध होने लगा ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि [illegible]

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें [illegible] अध्याय पूरा हुआ ।

[illegible]तितमोऽध्याय

भीष्म, अर्जुन आदि योद्धाओंका घमासान युद्ध

सञ्जय उवाच

[illegible]
[illegible] ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! [illegible] भीष्मके साथ [illegible] हुआ [illegible] ।

[illegible] धनुषो [illegible]
[illegible] ॥ २ ॥

[illegible] और [illegible] सुनकर तथा अर्जुनके [illegible] देखकर [illegible] ।

[illegible]
[illegible] ॥ ३ ॥

[illegible]
[illegible] ॥ ४ ॥

महाराज ! अर्जुनका [illegible] समान [illegible] उदित हुए [illegible] इस प्रकार [illegible] अर्जुनके [illegible] देखा

विधुन्वन् मकमहत्या [illegible] नाविवान्
दशकुर्गाणिव बोधा [illegible] महामृधे

महाराज [illegible] पाते [illegible] योद्धाओंने [illegible] [illegible] धनुष [illegible] भीतर [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] सविद्युत्स्तनयित्नुमान्
[illegible] [illegible] सर्वा [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

दिशः [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] सह [illegible]
[illegible] भीष्म [illegible] रणे

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हि [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] युद्ध [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शरण देनेवाले प्रतीत हुए

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] भूमौ [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] भारत

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] सहित [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] भीष्म [illegible] [illegible]

भीष्म [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

आवन्त्यः कालिकेयेन भीमसेनेन संयुगे ।
अजातशत्रुर्मद्राणामधिपेन यशस्विना ॥ २० ॥
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत ।

फिर अवन्तीनरेश कालिकेयके साथ, शिशुपालनन्दन भीमसेनके साथ तथा पुत्रों और मन्त्रियोंसहित अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर यशस्वी मद्रराज शल्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ २०½ ॥

विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ॥ २१ ॥
मत्स्याश्च दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशाम्पते ।
द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २२ ॥
द्रौणिना समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना ।

प्रजानाथ ! विकर्ण सहदेवके साथ और चित्रसेन शिखण्डीके साथ भिड़ गये । मत्स्यदेशीय योद्धाओंने दुर्योधन और शकुनिका सामना किया । द्रुपद, चेकितान और महारथी सात्यकि—ये अश्वत्थामासहित महामना द्रोणसे भिड़ गये ॥ २१-२२½ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च युधामन्युमभिद्रुतौ ॥ २३ ॥
एवं प्रवृत्तान्यासन् हि ह्यश्वनागरथानि च ।
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः ॥ २४ ॥

कृपाचार्य और कृतवर्मा इन दोनोंने युधामन्युपर धावा किया । इस प्रकार अपने-अपने योद्धाओंको आगे बढ़ाकर तथा हाथी एवं रथोंको घुमाकर समस्त सैनिक इधर और युद्ध करने लगे ॥ २३-२४ ॥

निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसाऽऽवृताः ।
प्रादुरासन् महोल्काश्च सनिर्घाता विशाम्पते ॥ २५ ॥

प्रजानाथ ! बिना बादलके ही तीव्र बिजलियाँ चमकने लगीं, सम्पूर्ण दिशाएँ धूलसे भर गयीं और गगनसे वज्रपातकी सी आवाजके साथ बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरने लगीं ॥ २५ ॥

प्रादुर्भूतो महावातः पांसुवर्षं पपात च ।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥ २६ ॥

बड़े जोरकी आँधी उठ गयी । धूलकी वर्षा होने लगी । सेनाके द्वारा उड़ायी हुई धूलसे आकाशमें सूर्यदेव छिप गये ॥ २६ ॥

प्रमोहः सर्वसैन्यानामतीव समपद्यत ।
रजसा चाभिभूतानामस्त्रजालैश्च तुद्यताम् ॥ २७ ॥

उस समय समस्त सैनिकोंपर बड़ा भारी मोह छा गया; क्योंकि वे धूलसे तो ढके ही थे, अस्त्रोंके समुदायसे भी पीड़ित हो रहे थे ॥ २७ ॥

वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम् ।
संघातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत ॥ २८ ॥

वीरोंकी भुजाओंसे छूटकर सब प्रकारके आवरणों (कवच आदि) का भेदन करनेवाले बाणसमूहोंके कारण आकाश सब ओर घोर हो रहे थे ॥ २८ ॥

प्रकाशं चक्रुराकाशमुद्यतानि भुजोत्तमैः ।
नक्षत्रविमलाभानि शस्त्राणि भरतर्षभ ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उत्तम भुजाओंद्वारा ऊपर उठाये हुए नक्षत्रोंके समान निर्मल कान्तिवाले चमकीले शस्त्र आकाशमें प्रकाश फैला रहे थे ॥ २९ ॥

आर्षभाणि विचित्राणि रुक्मजालावृतानि च ।
संपेतुर्दिक्षु सर्वासु चर्माणि भरतर्षभ ॥ ३० ॥

भरतभूषण ! सोनेकी जालीसे ढकी और ऋषभचर्मकी बनी हुई विचित्र ढालें सम्पूर्ण दिशाओंमें गिर रही थीं ॥ ३० ॥

सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्यमानानि सर्वतः ।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च ॥ ३१ ॥

सूर्यके समान कान्तिवाले खड्गोंसे सब ओर काटकर गिराये जानेवाले शरीर और मस्तक सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ३१ ॥

भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः ।
हताश्वाः पृथिवीं जग्मुस्तत्र तत्र महारथाः ॥ ३२ ॥

कितने ही महारथियोंके रथोंके पहिये, धुरे और भीतरकी बैठक टूट-फूटकर नष्ट हो गयी, बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खण्डित होकर गिर गयीं, घोड़े मार दिये गये और वे महारथी स्वयं भी मारे जाकर यत्र-तत्र पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३२ ॥

परिपेतुर्हयाश्चात्र केचिच्छस्त्रक्षता भृशम् ।
रथान् विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु ॥ ३३ ॥

उस युद्धस्थलमें कितने ही घोड़े अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे घायल होकर अपने रथियोंके मारे जानेके बाद भी रथ खींचते हुए भागते और गिर पड़ते थे ॥ ३३ ॥

शराहता भिन्नदेहा बद्धयोक्त्रा हयोत्तमाः ।
युगानि पर्यकर्षन्त तत्र तत्र स्म भारत ॥ ३४ ॥

भारत ! कितने ही उत्तम घोड़ोंके शरीर बाणोंसे आहत होकर छिन्न-भिन्न हो गये थे, तो भी रस्सोंमें बँधे हुए वे रथोंके जुओंको इधर-उधर खींचते रहते थे ॥ ३४ ॥

अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः ।
एकेन बलिना राजन् वारणेन विमर्दिताः ॥ ३५ ॥

राजन् ! कितने ही रथारोही युद्धस्थलमें एक ही महाबली गजराजके द्वारा घोड़ों और सारथियोंसहित कुचले हुए दिखायी देते थे ॥ ३५ ॥

गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे ।
संनिपाते बलौघानां वीतमभ्याददे तदा ॥ ३६ ॥

उस सेनाओंके भीषण मार-काट मची हुई थी और बहुत-से हाथी गन्धयुक्त मदस्रावकी गन्ध सूँघकर उसी

वे सबके सब निर्बल हाथियोंको भी मार गिरानेके लिये पर्याप्त होते थे ॥ ३६ ॥

ततो मदातैमहामात्रैर्निपतद्भिर्गतायुधैः ।
वसुन्धरोत्कृत्तैस्तथा नाराचाभिहतैर्गजैः ॥ ३७ ॥

तोमरोंसहित मस्तकहीन होकर गिरे हुए महावतों और नाराचोंकी मारसे मरकर गिरनेवाले हाथियोंसे वह रणभूमि आच्छादित हो गयी थी ॥ ३७ ॥

ततिपतन्ते चर्चोपाद्या ग्रीवनिवरपतने ।
निपेतुर्युधि सम्भग्ना सयोधाः सध्वजा गजाः ॥ ३८ ॥

सैनिकसमुहोंके उन भीषण समयमें आगे बढ़ते हुए बड़े बड़े हाथियोंने टकराकर युद्धमें कितने ही हाथ उठाये हाथी तथा भग्न हो जानेके कारण सवारों और ध्वजोंसहित गिर जाते थे ॥ ३८ ॥

नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे ।
व्यदृश्यन्त महाराज सम्भग्ना रथकूबराः ॥ ३९ ॥

महाराज ! उस युद्धमें कितने ही हाथियोंके द्वारा विशाल सर्पोंके समान सूँड़ोंसे खींचकर फेंके हुए रथोंके जुए और कूबर चूर चूर होकर गिरे देखे जाते थे ॥ ३९ ॥

विशीर्णरथजालाश्च केशेष्वाक्षिप्य दन्तिभिः ।
द्रुमशाखा इवाविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ॥ ४० ॥

कितने ही दन्तार हाथी रथसमूहोंको तोड़-फोड़कर उनमें बैठे हुए रथियोंको उनके केश पकड़कर खींच लेते और वृक्षकी शाखाकी भाँति उन्हें घुमाकर धरतीपर दे मारते थे इस प्रकार उस युद्धमें उन रथियोंकी धज्जियाँ उड़ जाती थीं ॥ ४० ॥

रथांश्च रथान् युद्धे समासाद्य परस्परम् ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ॥ ४१ ॥

कितने ही बड़े-बड़े गजराज रणभूमिमें घुमकर युद्धमें उलझे हुए रथोंको पकड़ लेते और सब प्रकारके शब्दोंका अनुसरण करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें उन रथोंको खींचे फिरते थे ॥

तेषां तथा कर्षतां तु गजानां रूपमाबभौ ।
सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार रथों और रथियोंको खींचनेवाले उन हाथियोंका स्वरूप ऐसा जान पड़ता था, मानो वे तालाबमें वहाँ उगे हुए कमलोंका समूह खींच रहे हों ॥ ४२ ॥

एवं संछादितं तत्र बभूवायोधनं महत् ।
सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः ॥ ४३ ॥

इस तरह घुड़सवारों, पैदलों और ध्वजोंसहित महारथियोंके शरीरोंसे वह विशाल युद्धस्थल पट गया था ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ४४½ श्लोक हैं)

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध

सञ्जय उवाच

शिखण्डी सह मत्स्येन विराटेन विशाम्पते ।
भीष्ममाशु महेष्वासमाससाद सुदुर्जयम् ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! मत्स्यराज विराटके साथ मिलकर शिखण्डीने अत्यन्त दुर्जय महाधनुर्धर भीष्मपर शीघ्रतापूर्वक चढ़ाई की ॥ १ ॥

द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासं महाबलम् ।
राजानं सैन्धवं चैव बाह्लीकं च महारथम् ॥ २ ॥

उस समय अर्जुनने उस रणभूमिमें महाधनुर्धर एवं महाबली द्रोण, कृपाचार्य, विकर्ण तथा अन्यान्य बहुत-से शूरवीर नरेशोंको बाणोंद्वारा पीड़ा पहुँचायी ॥ २ ॥

सैन्धवं च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः ।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान् भूमिपर्षभ ॥ ३ ॥

पुत्रं च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःसहं चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत ॥ ४ ॥

नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंसहित महाधनुर्धर सिंधुराज जयद्रथ, पूर्व और दक्षिणके भूमिपालोंपर तथा आपके अमर्षशील पुत्र महाधनुर्धर दुर्योधन एवं दुःसहपर भीमसेनने आक्रमण किया ॥ ३-४ ॥

सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ ॥ ५ ॥

सहदेवने शकुनि और महारथी उलूक—इन दोनों दुर्जय महाधनुर्धर पिता-पुत्रोंपर धावा किया ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः ।
समवर्तत संग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव ॥ ६ ॥

महाराज ! आपके पुत्रद्वारा ठगे गये महारथी राजा

तु [illegible] संग्राममें [illegible] आक्रमण किया

महौघवांस्तु नकुलः सूरसेनाश्चौ युधि
विराधेषु [illegible] समुत्सवान् [illegible] ॥ ७ ॥

महौजस्वी नकुलने [illegible] सारथीको [illegible] सेनाके साथ युद्ध [illegible]

मत्स्यस्तत्र [illegible] शूरः प्रत्येकयाह
साल्वाधिपतिं [illegible] सौभराज महारथ ॥

[illegible]

धृष्टद्युम्नः समरे राजन्सुत [illegible]
आक्रमन्निव शतानीकः समरे [illegible]
दुर्जयो रथानीकं मनुष्याणा [illegible] ॥ ९

धृष्टद्युम्न [illegible] और [illegible] रथी शतानीक [illegible] आक्रमण [illegible]

सैनापत्ये [illegible] धृष्टद्युम्नो महाबलः
द्रोणेन समरे राजन् [illegible] ॥

[illegible] श्रीमान् [illegible] इस सारथि [illegible] होगया [illegible]

एवमेते महेष्वासास्तावकाः पाण्डवैः सह
समेत्य समरे शूराः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ११

प्रकार आपके [illegible] शूरवीर योद्धा पाण्डवों के [illegible] युद्ध [illegible]

मध्यन्दिनगते सूर्ये नभस्याकुलतां गते
कुरवः पाण्डवाश्चैव निजघ्नुरितरेतरम् ॥ १२ ॥

[illegible] आकाश [illegible] दूसरको [illegible]

ध्वजिनो हेमचित्राङ्गा विचरन्तो रणाजिरे
सपताका [illegible] रेजुर्वैयाघ्रपरिवारणा ॥ १३

समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम्
बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम् ॥ १४ ॥

[illegible] और [illegible] रथी विचरते एक [illegible] सुवर्णभूषित हो विविध शोभा धारण [illegible] [illegible] हुआ था [illegible] एक दूसरेको [illegible] विजय [illegible] और उनका [illegible] सब ओर गूंज रहा था ।

तत्राद्भुतमपश्याम सम्प्रहारं सुदारुणम्
यदकुर्वन् रणे शूराः सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ १५ ॥

नैव खं न दिशो राजन् न सूर्यं शत्रुतापन
विदिशो वापि पश्याम शरैर्मुक्तैः समन्ततः ॥ १६ ॥

राजन् [illegible] और [illegible] रणभूमि [illegible] [illegible] दिशाएँ [illegible] उस समय [illegible] सब ओर [illegible] ।

शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथायताम्
निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाः प्रभाः ॥ १७ ॥

[illegible] शक्तियों [illegible] तोमर [illegible] तलवारों [illegible] नील [illegible] [illegible]

कवचानां विचित्राणां भूषणानां प्रभास्तथा
खं दिशः प्रदिशश्चैव भासयामासुरोजसा ॥ १८ ॥

[illegible] कवचों [illegible] आभूषणों [illegible] दिशाओं [illegible] प्रकाशित कर [illegible]

वपुर्भिश्च नरेन्द्राणां चन्द्रसूर्यसमप्रभैः
विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणक्षितिः ॥ १९

[illegible] और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले राजाओंके शरीरोंसे [illegible] शोभा [illegible]

रथसङ्घाश्च नरव्याघ्राः समायान्तश्च संयुगे
विरेजुः समरे राजन् ग्रहा इव नभस्तले ॥ २० ॥

[illegible] और [illegible] युद्धमें [illegible] उसी प्रकार शोभा [illegible] आकाशमें [illegible] सुशोभित होते हैं।

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलम्
अवारयत सङ्क्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ २१ ॥

[illegible] भीष्मने कुपित होकर सब [illegible] देखते देखते महाबली भीमसेनको रोक दिया।

ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः
अभ्यघ्नन् समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः ॥ २२ ॥

उस समय [illegible] तेज [illegible] [illegible] भीष्मके [illegible] भीमसेनको चोट पहुँचाने लगे ॥ २२ ॥

तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः
क्रुद्धाशीविषसङ्काशां प्रेषयामास भारत ॥ २३ ॥

भारत ! तब महाबली भीमसेनने [illegible]

पिरकर उसके समान भयंकर मशालेवाशीतिनी शक्ति भाल्य पर छोड़ी ॥२३॥

तामापतन्तीं सहसा वज्रकल्पां दुरासदाम्।
चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २४ ॥

उसकी सोंकेका डंडा सुवर्णका बना हुआ था। उसको नष्ट करना बहुत ही कठिन था। उसे सहसा आते देख भीष्मने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा युद्धभूमिमें काट गिराया। २४ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥ २५ ॥

भारत! तदनन्तर एक पीले और पानीदार भल्ल से उन्होंने भीमसेनके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ २५ ॥

(अपास्य तु धनुश्छिन्नं भीमसेनो महाबलः।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद् भीष्मं शान्तनवं युधि ॥)

महाबली भीमसेनने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष ले बहुत-से बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें शान्तनुनन्दन भीष्मको अत्यन्त पीड़ा दी ।

सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे।
आकर्णपूर्णैर्निशितैः शरैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥ २६ ॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत् पितरं ते जनेश्वर।

जनेश्वर! तत्पश्चात् उस युद्धमें सात्यकिने शीघ्र ही आपके ताऊ भीष्मके पास पहुँचकर धनुषको कानतक खींचकर चलाये हुए बहुत-से तीखे एवं तेजस्वी बाणोंद्वारा उन्हें बहुत पीड़ा दी ॥

ततः संधाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम् ॥ २७ ॥
वार्ष्णेयस्य रथाद् भीष्मः पातयामास सारथिम्।

तब भीष्मने अत्यन्त भयंकर तीखा बाण संधान करके सात्यकिके रथसे उनके सारथिको मार गिराया ॥ २७ ॥

तस्याश्वाः प्रद्रुता राजन् निहते रथसारथौ ॥ २८ ॥

राजन्! रथ-सारथिके मारे जानेपर सात्यकिके घोड़े वहाँसे भाग चले ॥ २८ ॥

तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य निःस्वनस्तुमुलोऽभवत् ॥ २९ ॥

मन और वायुके समान वेगशाली वे घोड़े जिधर राह मिली उधर ही दौड़ने लगे। इससे सारी सेनामें कोलाहल मच गया ॥ २९ ॥

हाहाकारश्च संजज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम्।
अभ्याद्रवत गृह्णीत हयान् यच्छत धावत ॥ ३० ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति।

महात्मा पाण्डवोंकी सेनामें हाहाकार होने लगा। अरे! दौड़ो, पकड़ो, घोड़ोंको रोको, भागो। सात्यकिके रथकी ओर इस तरहका शब्द गूँजने लगा ॥ ३०½ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३१ ॥
न्यहनत् पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा।

इसी बीचमें शान्तनुनन्दन भीष्मने पाण्डव सेनाका उसी प्रकार विनाश आरम्भ किया जैसे वृत्रहन्ता इन्द्र आसुरी सेनाका संहार करते हैं ॥ ३१½ ॥

ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ॥ ३२ ॥
स्थिरां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाभिदुद्रुवुः।

भीष्मके द्वारा पीड़ित हुए पाञ्चाल और सोमक युद्धका दृढ़ निश्चय लेकर भीष्मकी ही ओर दौड़े ॥ ३२½ ॥

धृष्टद्युम्नमुखाश्चापि पार्थाः शान्तनवं रणे ॥ ३३ ॥
अभ्यधावञ्जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।

धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव पक्षके योद्धा आपके पुत्रकी सेनाको जीतनेकी इच्छासे युद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मपर ही चढ़ आये। ३३½ ।

तथैव कौरवा राजन् भीष्मद्रोणमुखास्तदा ॥ ३४ ॥
अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्तत ॥ ३५ ॥

राजन्! इसी प्रकार भीष्म, द्रोण आदि कौरव योद्धा भी बड़े वेगसे पाण्डव-सेनापर टूट पड़े। फिर तो दोनोंमें घमासान युद्ध होने लगा ॥ ३४-३५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें पाँचवें दिनके युद्धसे सम्बन्ध रखनेवाला बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १ श्लोक मिलाकर कुल ३६½ श्लोक हैं)

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

विराट-भीष्म, अश्वत्थामा-अर्जुन, दुर्योधन-भीमसेन तथा अभिमन्यु और लक्ष्मणके द्वन्द्वयुद्ध

संजय उवाच

विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्च्छन्महारथम्।
विव्याध तुरगांश्चास्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महारथी राजा विराटने तीन बाण मारकर महारथी भीष्मको पीड़ित किया और तीन ही बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ १ ॥

त प्रत्यविध्यद् बाणैर्भीष्म सात्यकम [illegible]
[illegible] महाबल ॥ २ ॥

तब महाधनुर्धर महाबली तथा [illegible] नामने [illegible] मार कर [illegible] दिया

द्रौणिर्भीष्मविधत्वात [illegible]
[illegible] शस्त्रान्तर ॥ ३ ॥

[illegible] धनुष [illegible] वाले [illegible] अश्वत्थामा [illegible] अर्जुन [illegible] दिया

कार्मुक तस्य चिच्छेद फाल्गुन [illegible]
[illegible] तीक्ष्णैः [illegible] शत्रुकर्शन ॥ ४ ॥

तब [illegible] फाल्गुनने [illegible] अर्जुनने [illegible] धनुष काट दिया और [illegible] तीन [illegible] बाणों [illegible] कर दिया।

सोऽन्यत्[illegible] धनुरादाय [illegible]
[illegible]
[illegible] विद्धीन [illegible]
वासुदेव च [illegible] विव्याध परमेषुभि ॥ ५ ॥

[illegible] मूर्च्छित होकर [illegible] अर्जुनको और [illegible] घायल कर दिया ॥ ६ ॥

तत [illegible] कृष्णेन सह फाल्गुन
[illegible] पुनः पुनः ॥ ७ ॥
[illegible]
गाण्डीवधन्वा [illegible]
[illegible]
तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद् द्रौणि बलवता [illegible] ॥ ८ ॥

तब श्रीकृष्णसहित अर्जुनने [illegible] बारंबार [illegible] गाण्डीवधारी [illegible] अर्जुनने उन [illegible] अश्वत्थामाको घायल किया।

तस्य ते कवच भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे
न विव्यथे च [illegible] द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ॥ ९ ॥

[illegible] उसका कवच [illegible] उस युद्धस्थलमें उसके शरीरका रक्त [illegible] गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा [illegible] फिर अश्वत्थामा [illegible] व्यथित नहीं हुआ।

तथैव च [illegible] द्रौणि [illegible]
[illegible] महाव्रतम् ॥ ११ ॥

[illegible] द्रोणकुमार [illegible] विचलित नहीं हुआ [illegible] महान् [illegible]

तस्य तद् सुमहत् कर्म [illegible] कुरुसत्तमा
[illegible] ॥ १२ ॥

[illegible] युद्धभूमिमें [illegible] श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंका [illegible] कौरवोंने [illegible] प्रशंसा की।

([illegible]
[illegible] भारत)

[illegible] अर्जुनने भी [illegible]

[illegible]
[illegible] द्रोणात् [illegible] ॥ १३ ॥

[illegible]

[illegible] द्रोणस्यापि प्रिय सुत
[illegible] ॥ १४ ॥
[illegible]
कृपा [illegible] ॥ १५ ॥

[illegible]

द्रौणि [illegible] कौन्तेय [illegible]
युयुधे [illegible] पराक्रमी ॥ १६ ॥

तदनन्तर [illegible] कुन्तीकुमार पराक्रमी अर्जुन [illegible] ॥ १६ ॥

दुर्योधनस्तु [illegible]
भीमसेन [illegible] समार्पयत् ॥ १७ ॥

दुर्योधनने [illegible] ॥ १७ ॥

भीमसेन [illegible]
[illegible] ॥ १८ ॥

भावर्षावतिनेत्रलोकचैवनपक्तिरर्जयानी
भविष्यात् तूर्णमन्वाश कुमाराश महोरसि ॥ १७ ॥

इसके बाद मीमत्तन अत्यन्त क्रोधसे जल उठे । उन्होंने ७८ विचित्र धनुष हाथमें लिया जो अत्यन्त सुदृढ़ और नाराचोंसे प्राण लेनेमें समर्थ था । उसके ऊपर उन्होंने इस डोरी चढ़ा रक्खी फिर धनुषको कानतक खींचकर वे बाण छोड़ दिये । उन बाणोंने अनेकांत कवचान् उस वीरके बाणाद्वारा भीमसेन बिना किसी व्यवधानके तुरंत ही सुकुमार कुमारकी अत्यन्त गहरी चोट पहुँचायी ॥ १८-१९ ॥

तस्य भ्रातृव्यसनं हतो शौर्ये समर्थितम मणि
रक्ताङ्गरसि वा सूर्यो प्रदीप्तेव समावृत ॥ २० ॥

दुर्योधनकी आंखमें २६ मणि शोभा पाती थी जो युवराजक रक्तसे विशेष हुए थे वह भांगधनके आगम आक्रान्त होकर जल रही थी । उस समय बड़ा शोभा पा रहा था । सूर्य जैसे हुए मानो सुशोभित होते हैं ॥ २० ॥

सुमन्त्र तथा तेजस्वी श्रीमत्सेन ताडित
नासूयत यथा नागसालैर्नाम महोत्कट ॥ २१ ॥

भीमसेनके आघात पीड़ित होकर शत्रुका भी समय पूरा उसके द्वारा फिर सपे आगसे इसी प्रकार नहा गए जैसे मतवाले हाथी कानक बाणसे । आघात नहीं सहन करता है ।

तत शरैर्महाबाहु रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
भीम विव्याध मातुलस्यापि वत्सपातीम ॥ २२ ॥

तदनन्तर उसके पास पासकर पाण्डवके दास तूर्ण तुरंत महाकलेश राजाके योधमें मारकर इस तरह ओर बींध डाला और फिर मौर्याने अभिमन्युको मार डाला ।

तौ युध्यमानौ समरे समामद्धाविवाग्नि ।
पुत्रौ ते देवगन्धानां व्याघ्रेन्द्रौ महाबली ॥ २३ ॥

अब समराङ्गणमें परस्पर युद्ध करते अत्यन्त एक विजय हुए आगसे दोनों महाबली पुत्र दुःशासन और भीमसेन देवताओंके समान शोभा पाने लगे । २३

चित्रसेन मत्स्याश सौभद्र परवीरहा ।
अविध्यद् दशभिर्वाणै पुरुमित्रं च सप्तभि ॥ २४ ॥

शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले सुभद्राकुमार अभिमन्युने चित्रसेनको दस और पुरुमित्रको सात बाणोंसे बींध डाला ॥ २४ ॥

सत्यव्रतं च सप्तत्या विद्ध्वा शक्रसमो युधि ।
नृत्यन्निव रणे वीरः आर्तिं नः समजीजनत् ॥ २५ ॥

युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी वीर अभिमन्युने सत्य सप्तति बाणोंसे घायल करके रणाङ्गणमें नृत्य सा करते हुए इन सब लोगोंको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ २५ ॥

तं प्रत्यविध्यद् दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः ।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥ २६ ॥

तब चित्रसेनने दस सत्यव्रतने नौ और पुरुमित्रने सात बाणोंसे मारकर अभिमन्युको घायल कर दिया ॥ २६ ॥

स विद्धो विक्षरन् रक्तं शत्रुसंवारणं महत् ।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमाशुगैः ॥ २७ ॥

उन बाणोंके द्वारा घायल होकर अपने शरीरसे रक्त बहाते हुए अभिमन्युने चित्रसेनके शत्रुनिवारक महान् एवं विचित्र धनुषको काट गिराया ॥ २७ ॥

भित्त्वा चास्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् ।
ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ॥ २८ ॥
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ।
ताश्च सर्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित् ॥ २९ ॥

साथ ही उसके कवचको छिन्न-भिन्न करके उसकी छातीमें भी एक बाण मारा । तदनन्तर आपके वीर एवं महारथी राजकुमार कुपित हो युद्धमें एकत्र हो अनेक अभिमन्युको पैने बाणोंसे बींधने लगे, परंतु उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता अभिमन्युने अपने पैने बाणोंद्वारा उन सबको घायल कर दिया ॥ २८-२९ ॥

तस्य दृष्ट्वा तु तत् कर्म परिवव्रुः सुतास्तव ।
दहन्तं समरे सैन्यं वने कक्षं यथोल्बणम् ॥ ३० ॥

जैसे बढ़ी हुई आग वनमें सूखे घास-फूसको अनायास ही जलाकर भस्म कर डालती है, उसी प्रकार अभिमन्यु उस समराङ्गणमें कौरवसेनाको दग्ध कर रहा था । उसके इस महान् कर्मको देखकर आपके पुत्रोंने उसे सब ओरसे घेर लिया ॥ ३० ॥

अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकम् ।
अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि शातयन् ॥ ३१ ॥

महाराज ! आपकी सेनाका संहार करता हुआ सुभद्राकुमार अभिमन्यु ग्रीष्म ऋतुमें प्रज्वलित हुए प्रचण्ड अग्निके समान शोभा पा रहा था ॥ ३१ ॥

तत् तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशाम्पते ।
लक्ष्मणोऽभ्यपतत् तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे ॥ ३२ ॥

प्रजानाथ ! उसका वह पराक्रम देखकर आपका पौत्र लक्ष्मण तुरंत ही युद्धमें सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ३२ ॥

अभिमन्युस्तु सङ्क्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
विव्याध विशिखैः षड्भिः सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ ३३ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने उत्तम लक्षणोंसे युक्त

क्षणाच्छो ॥ और उसके सारथिको तीन तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ३३ ॥

तथैव लक्ष्मणो राजन् सौभद्रं निशितैः शरैः ।
अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३४ ॥

राजन्! इसी प्रकार लक्ष्मणने भी सुभद्राकुमारको अपने तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। महाराज! वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३४ ॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः ।
अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥

यह देख महाबली सुभद्राकुमारने लक्ष्मणके चारों घोड़ों और सारथिको मारकर तीखे बाणोंद्वारा उसपर भी आक्रमण किया ॥ ३५ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठँल्लक्ष्मणः परवीरहा ।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ३६ ॥

शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले लक्ष्मणने उस अश्वहीन रथपर खड़े-खड़े ही क्रोधमें भरकर अभिमन्युके रथकी ओर एक शक्ति चलायी ॥ ३६ ॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम् ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम् ॥ ३७ ॥

उस भयंकर एवं दुर्जय सर्पिणीके समान शक्तिको सहसा अपनी ओर आती देख अभिमन्युने तीखे बाणोंद्वारा उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३७ ॥

ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा ।
अपोवाह रथेनाजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३८ ॥

तब कृपाचार्य सब सैनिकोंके देखते-देखते लक्ष्मणको अपने रथपर बिठाकर युद्धभूमिसे बाहर अन्यत्र हटा ले गये ॥ ३८ ॥

ततः समाकुले तस्मिन् वर्तमाने महाभये ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर उस महाभयंकर संग्राममें जब घमासान युद्ध होने लगा, तब एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले योद्धा परस्पर टूट पड़े ॥ ३९ ॥

तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः ।
जुह्वन्तः समरे प्राणान् निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ४० ॥

आपके और पाण्डवपक्षके महाधनुर्धर महारथी वीर समराङ्गणमें प्राणोंकी आहुति देते हुए एक दूसरेको मारने लगे ॥ ४० ॥

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥

कवच और रथसे रहित हो धनुष कट जानेपर अपने बाल खोले हुए कितने ही सृञ्जय वीर कौरवोंके साथ केवल भुजाओंद्वारा मल्लयुद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ ४२ ॥

तब महाबली महाबाहु भीष्म अत्यन्त कुपित हो दिव्यास्त्रोंद्वारा महात्मा पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ ४२ ॥

हतेश्वरैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः ।
रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ४३ ॥

उस समय वहाँ सवार और जिनके स्वामी मारे गये थे, वे हाथी, घोड़े, मनुष्य, रथी और घुड़सवारोंकी लाशोंसे सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४४ श्लोक हैं)

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

सात्यकि और भूरिश्रवाका युद्ध, भूरिश्रवाद्वारा सात्यकिके दस पुत्रोंका वध, अर्जुनका पराक्रम तथा पाँचवें दिनके युद्धका उपसंहार

संजय उवाच

अथ राजन् महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
विकृष्य चापं समरे भारसाधनमुत्तमम् ॥ १ ॥
प्रामुञ्चत् पुङ्खसंयुक्ताञ्छरानाशीविषोपमान् ।

संजय कहते हैं—राजन्! महाबाहु सात्यकि युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। उन्होंने युद्धमें भार सहन करनेमें समर्थ और उत्तम धनुषको खींचकर विषधर सर्पोंके समान पंखयुक्त बाण छोड़ने आरम्भ किये ॥ १ ॥

प्रगाढं लघु चित्रं च दर्शयन् हस्तलाघवम् ॥ २ ॥
(तस्य नादं सुसंयुद्धे पूर्वेण महतेजसः)

बाणोंको छोड़ते समय सात्यकिने अपने हस्तलाघवका परिचय दिया, जिसे उन्होंने युक्तिपूर्वक अपने दृढ़ अभ्याससे सीखा था ॥ २ ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः ।
आददानस्य भूयश्च संदधानस्य चापरान् ॥ ३ ॥
क्षिपतश्च परानस्य रणे शत्रून् विनिघ्नतः ।
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥ ४ ॥

जब वे धनुषको खींचते, दूसरे-दूसरे बाण छोड़ते, फिर नये-नये बाण हाथमें लेते, धनुषपर रखते, उन्हें शत्रुओंपर चलाते और उनका संहार करते थे, उस समय वर्षा करनेवाले मेघके समान उनका स्वरूप अत्यन्त अद्भुत दिखायी देता था ॥ ३-४ ॥

तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः ।
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥

भारत ! उस समय उन्हें युद्धमें बढ़ते देख राजा दुर्योधनने उनका सामना करनेके लिये दस हजार रथियोंकी सेना भेजी ॥ ५ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान परमेष्वासो दिव्येनास्त्रेण वीर्यवान् ॥ ६ ॥

परम धनुर्धर पराक्रमी सत्यपराक्रमी सात्यकिने उन सभी महाधनुर्धर योद्धाओंको अपने दिव्यास्त्रके द्वारा मार डाला ॥ ६ ॥

स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥ ७ ॥

यह भयंकर कर्म करके फिर धनुष लिये वीर सात्यकिने युद्धस्थलमें भूरिश्रवापर आक्रमण किया ॥ ७ ॥

स हि संदृश्य सेनां तां युयुधानेन पातिताम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ८ ॥

सात्यकिने अपनी सेनाको मार गिराया है, यह देखकर कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले भूरिश्रवा अत्यन्त कुपित हो उनकी ओर दौड़े ॥ ८ ॥

इन्द्रायुधसवर्णं तु स विस्फार्य महद् धनुः ।
व्यसृजद् वज्रसंकाशाञ्छरानाशीविषोपमान् ॥ ९ ॥
सहस्रशो महाराज दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

उन्होंने विशाल धनुष इन्द्रधनुषके समान बहुरंगा था । महाराज ! उस धनुषको खींचकर भूरिश्रवाने अपने हस्तलाघवका परिचय देते हुए वज्रके समान दुःसह और विषधर सर्पोंके तुल्य भयंकर सहस्रों बाण छोड़े ॥ ९½ ॥

शरांस्तान् मृत्युसंस्पर्शान् सात्यकेस्तु पदानुगाः ॥ १० ॥
न विषेहुस्तदा राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
विहाय समरे राजन् सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ ११ ॥

उन बाणोंका स्पर्श मृत्युके तुल्य था । राजन् ! उस समय सात्यकिके साथ आये हुए सैनिक उन बाणोंका वेग न सह सके । नरेश्वर ! युद्धभूमिमें वे रणदुर्मद सात्यकिको वहीं छोड़कर सब ओर भाग निकले ॥ १०-११ ॥

तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः ।
महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः ॥ १२ ॥
समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे ।
ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे ॥ १३ ॥

सात्यकिके दस महाबलवान् पुत्र थे । उनके कवच, आयुध और ध्वज सभी विचित्र थे । वे सब के सब महारथी कहे जाते थे । वे युद्धस्थलमें यूपचिह्नित ध्वजवाले महारथी भूरिश्रवाको देखकर उनके पास आये और अत्यन्त क्रोधयुक्त हो उनसे इस प्रकार बोले— ॥ १२-१३ ॥

भो भो कौरवदायाद सहास्माभिर्महाबल ।
एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा ॥ १४ ॥

महाबली कौरवपुत्र ! आओ, इस संग्रामभूमिमें हम सब लोगोंके साथ अथवा पृथक् पृथक् एक-एकके साथ युद्ध करो ॥ १४ ॥

अस्मान् वा त्वं पराजित्य यशः प्राप्नुहि संयुगे ।
वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं दास्यामहे पितुः ॥ १५ ॥

या तो तुम युद्धमें हमें पराजित करके यश प्राप्त करो अथवा हम तुम्हें परास्त करके पिताजीको प्रसन्नता प्रदान करेंगे ॥ १५ ॥

एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः ।
वीर्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान् दृष्ट्वा समुपस्थितान् ॥ १६ ॥

तब उन शूरवीरोंके ऐसा कहनेपर अपने पराक्रमकी श्लाघा करनेवाले महाबली नरश्रेष्ठ भूरिश्रवा उन्हें युद्धके लिये उपस्थित देख उनसे इस प्रकार बोले— ॥ १६ ॥

साध्विदं कथ्यते वीरा यद्येवं मतिरद्य वः ।
युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे ॥ १७ ॥

वीरो ! यदि तुम्हारा ऐसा विचार है तो तुमलोगोंने यह बड़ी अच्छी बात कही है । तुम सब लोग एक साथ सावधान होकर यत्नपूर्वक युद्ध करो । मैं इस रणभूमिमें तुम सब लोगोंको मार गिराऊँगा ॥ १७ ॥

एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः ।
महता शरवर्षेण अभ्यवर्षन्नरिंदमम् ॥ १८ ॥

भूरिश्रवाके ऐसा कहनेपर शीघ्रता करनेवाले उन महाधनुर्धर वीरोंने बड़ी भारी बाणवर्षा करते हुए शत्रुदमन भूरिश्रवापर आक्रमण किया ॥ १८ ॥

सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १९ ॥

महाराज ! अपराह्णकालमें उस समराङ्गणमें एकत्र हुए बहुत-से वीरोंके साथ एक योद्धाका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १९ ॥

तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरवर्षैरवाकिरन् ।
प्रावृषीव महाशैलं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ २० ॥

नरेश्वर ! जैसे मेघ वर्षाकालमें महापर्वतको भिगोते

रहता है, उसी प्रकार उन सबने मिलकर रथियोंमें श्रेष्ठ एकमात्र भूरिश्रवाके बाणोंकी वर्षा असह्य थी ॥ २० ॥

नैतेषु मुक्तबाणास्ते योधान् यमपथं गतान् ।
सौमदत्तेर्महाराज ... महारथ ॥ २१ ॥

उनके छोड़े हुए समस्त और नतपर्व ... होनेवाले बाणोंने अपना काम पूरा कर ... महारथी भूरिश्रवाके बिना किसी परसरहित क्षेमयुक्त प्रदर्शित था ।

तदद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् ।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत् ॥ २२ ॥

वहाँ हम सबने सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाका अद्भुत पराक्रम देखा। वह अकेला होनेपर भी बहुत-से वीरोंके साथ निर्भय-सा युद्ध करता था ॥ २२ ॥

विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन् महारथाः ।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥ २३ ॥

राजन्! उन दस महारथियोंने वह बाणोंकी वर्षा करके महाबाहु भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेरकर उसे मार डालनेकी तैयारी की ॥ २३ ॥

सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत ।
चिच्छेद समरे राजन् युध्यमानो महारथी ॥ २४ ॥

महारथी वीरवर उस समय क्रोधमें भरे हुए भूरिश्रवाने उन महारथियोंके साथ युद्ध करते हुए ही रणभूमिमें उनके धनुष काट डाले ॥ २४ ॥

अथैषां छिन्नधनुषां शरैः संनतपर्वभिः ।
चिच्छेद समरे राजञ्छिरांसि भरतर्षभ ॥ २५ ॥

भरतश्रेष्ठ! इसके बाद धनुष कट जानेपर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे समरभूमिमें उनके मस्तक भी काट गिराये ॥ २५ ॥

ते हता न्यपतन् राजन् वज्रभग्ना इव द्रुमाः ।
तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् रणे पुत्रान् महाबलान् ॥ २६ ॥
वार्ष्णेयो विनदन् राजन् भूरिश्रवसमभ्ययात् ।

राजन्! वे सभी वीर वज्रके मारे हुए वृक्षोंकी भाँति रणभूमिमें मरकर गिर पड़े। उन महाबली पुत्रोंको संग्राममें मारा गया देख वीरवर सात्यकिने गर्जना करते हुए वहाँ भूरिश्रवापर आक्रमण किया ॥ २६½ ॥

रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबली ॥ २७ ॥
तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः ।
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥ २८ ॥

वे दोनों महाबली महारथी अपने रथके द्वारा दूसरेके रथको पीड़ा देने लगे। उन्होंने आपसमें एक दूसरेके रथ और घोड़ोंका नाश कर दिया। इस प्रकार रथहीन हुए वे दोनों महारथी उछलते-कूदते हुए एक-दूसरेका सामना करने लगे ॥ २७-२८ ॥

प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ ।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २९ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह हाथमें बड़ी-बड़ी तलवारें और सुन्दर ढाल लिये युद्धके लिये उद्यत होकर बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ २९ ॥

(ततः खड्गौ सुविमलौ ... परस्परम् ।
पीडितौ खड्गधाराभ्यां ... क्षितौ ... ॥
शुशुभाते महावीर्यौ ... ।
... पुष्पिताविव किंशुकौ ॥)

वे तलवारोंकी मारसे एक दूसरेको अत्यन्त ... करने लगे। ... दोनोंके शरीर रक्तसे ... गये। उनके ... खिले हुए पलाशवृक्षोंकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥

ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
भीमसेनस्त्वरन् राजन् रथमारोपयत् तदा ॥ ३० ॥

राजन्! तदनन्तर श्रेष्ठ खड्ग धारण करनेवाले सात्यकिके पास पहुँचकर भीमसेनने उस समय तुरंत उन्हें अपने रथपर बिठा लिया ॥ ३० ॥

तवापि तनयो राजन् भूरिश्रवसमाहवे ।
आरोपयद् रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ३१ ॥

महाराज! इसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनने भी युद्धमें सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते भूरिश्रवाको तुरंत अपने रथपर चढ़ा लिया ॥ ३१ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम् ।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय क्रोधमें भरे हुए पाण्डव उस युद्धमें महारथी भीष्मके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनंजयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान् निजघान महारथान् ॥ ३३ ॥

जब सूर्य अस्ताचलके पास पहुँचकर लाल हो चले, उस समय अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ पचीस हजार महारथियोंको मार डाला ॥ ३३ ॥

ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे ।
सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥ ३४ ॥

वे सब-के-सब दुर्योधनकी आज्ञासे अर्जुनका संहार करनेके लिये आये थे। परंतु वे उस समय आगमें गिरे हुए पतंगोंकी भाँति उनके पास पहुँचते ही नष्ट हो गये ॥ ३४ ॥

ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर भगुरियोंमें प्रवीण नकुल और देवमदेवके वीर अभिमन्यु आदि पुत्रोंने युद्ध महारथी [illegible] साथ कौरवोंने युद्धके लिये खड़े हो गये [illegible]

ततस्तिमिर्य काले तु सूर्य[illegible]

सहसा तत्र सम्पाला प्रमोद समजायत [illegible]

इसी समय सूर्य प्रकाशवान [illegible] भारत [illegible] सैनिकोंपर मोह

[illegible]

सम्पादने महाराज सैन्यानां [illegible]

महाराज तब आपके वाक्य [illegible] पाये गया अपनी

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इस [illegible]

दाक्षिणात्य अधिक पाठ [illegible] श्लोक [illegible] श्लोक है

मैदानसे पीछे हटा लिया। उनके वाहन बहुत थक गये

पाण्डवानां कुरूणां च [illegible]

ते सैन्ये मुदमास्थिते यथातु [illegible] निवेशनम्

पाण्डवों और कौरवोंकी [illegible] दोनों ही [illegible] अपनी [illegible] गयीं

ततः [illegible] शिविरं गत्वा न्यविशन्त भारत

पाण्डवाः कुरवश्च सार्धं कुरुवद्य यथाविधि

भारत [illegible] पाण्डव और कौरव [illegible] विधिपूर्वक विश्राम करने लगे

पञ्चसप्ततितमोऽध्याय

छठे दिनके युद्धके आरम्भमें पाण्डव तथा कौरवसेनाका क्रमशः मकरव्यूह एवं क्रौञ्चव्यूह बनाकर युद्धमें प्रवृत्त होना।

सञ्जय उवाच [illegible] युधिष्ठिर [illegible]

महारथी [illegible] व्यूह [illegible] मकरव्यूह [illegible] लिये आज्ञा

[illegible] कुरुसत्तम [illegible]

व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः

सञ्जय कहते हैं [illegible] वितीत होने [illegible] कौरव और पाण्डव पुनः युद्धके लिये [illegible]

तत्र शब्दो महानासीत् तव तेषां च भारत

युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम्

सन्नह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत

शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत्

भारत [illegible] और पाण्डव पक्षके सैनिकोंमें बड़ा कोलाहल [illegible] जोतने [illegible] हाथियोंको सुसज्जित [illegible] कवच [illegible] बाँधने [illegible] वाहनों [illegible] और दुन्दुभियोंकी ध्वनि [illegible] और [illegible] हो रही थी [illegible] सम्मिलित [illegible] सब ओर [illegible]

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत

व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुतापनम्

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नसे कहा [illegible] शत्रुओंको [illegible] मकरव्यूहकी रचना [illegible]

एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः

व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वर

[illegible] युधिष्ठिरके [illegible] महारथी धृष्टद्युम्न [illegible] मकरव्यूह [illegible] लिये आज्ञा

शिरोऽभूद् द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनंजयः

चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः

उसके मस्तकके [illegible] राजा द्रुपद [illegible] महारथी नकुल और सहदेव नेत्रोंके स्थानमें [illegible]

तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः

सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः

सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः

महाराज [illegible] महाबली भीमसेन उसके मुखकी [illegible] सुभद्राकुमार अभिमन्यु द्रौपदीके पाँच पुत्र [illegible] सात्यकि और धर्मराज युधिष्ठिर उस मकरव्यूहके ग्रीवाभागमें स्थित हुए [illegible]

पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः

धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः

[illegible]

केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः

धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान्

दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे

सब भाई केकयराजकुमार उनके वामभागमें खड़े थे। नरश्रेष्ठ धृष्टकेतु और पराक्रमी चेकितान—ये व्यूहके दाहिने भागमें स्थित होकर उसकी रक्षा करते थे ॥ १० ॥

पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान् महारथः ।
कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः ॥ ११ ॥

महाराज ! उसके दोनों पैरोंकी जगह महारथी श्रीमान् कुन्तिभोज और विशाल सेनासहित शतानीक खड़े थे ॥ ११ ॥

शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली ।
इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥ १२ ॥

सोमकोंसे घिरा हुआ महाधनुर्धर शिखण्डी और बलवान् इरावान्—ये दोनों उस मकरव्यूहके पुच्छभागमें खड़े थे ॥ १२ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥ १३ ॥

महाराज ! भरतनन्दन ! इस प्रकार उस महान् मकरव्यूहकी रचना करके पाण्डव कवच बाँधकर सूर्योदयके समय पुनः युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ १३ ॥

कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ।
समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्चित्रैः शस्त्रैश्च विमलैः शितैः ॥ १४ ॥

ऊँची-ऊँची ध्वजाओं, छत्रों तथा चमकीले एवं तीखे अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंकी चतुरङ्गिणी सेनाके साथ पाण्डवोंने कौरवोंपर शीघ्रतापूर्वक आक्रमण किया ॥ १४ ॥

व्यूहं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
क्रौञ्चेन महता राजन् प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥ १५ ॥

राजन् ! आपके ताऊ देवव्रत ने पाण्डवोंका वह व्यूह देखकर उसके मुकाबिलेमें अपनी सेनाको महान् क्रौञ्चव्यूहके रूपमें संगठित किया ॥ १५ ॥

तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरास्तां नरेश्वर ॥ १६ ॥

उसकी चोंचके स्थानमें महाधनुर्धर द्रोणाचार्य सुशोभित हुए । नरेश्वर ! अश्वत्थामा और कृपाचार्य नेत्रोंके स्थानमें खड़े हुए ॥ १६ ॥

कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरबाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १७ ॥

काम्बोज और बाह्लिकदेशके उत्तम सैनिकोंके साथ सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ नरप्रवर कृतवर्मा व्यूहके शिरोभागमें स्थित हुए ॥ १७ ॥

ग्रीवायां शूरसेनस्तु तव पुत्रश्च मारिष ।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १८ ॥

आर्य ! महाराज ! राजा शूरसेन तथा आपका पुत्र दुर्योधन—ये दोनों बहुत-से राजाओंके साथ क्रौञ्चव्यूहके ग्रीवाभागमें स्थित हुए ॥ १८ ॥

प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः ।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥ १९ ॥

नरश्रेष्ठ ! मद्र, सौवीर और केकय योद्धाओंके साथ विशाल सेनासे घिरे हुए प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त उस व्यूहके वक्षःस्थलमें स्थित हुए ॥ १९ ॥

स्वसैन्येन च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥ २० ॥

प्रस्थलाधिपति (त्रिगर्तराज) सुशर्मा कवच धारण करके अपनी सेनाके साथ व्यूहके वाम पक्षका आश्रय लेकर खड़े थे ॥ २० ॥

तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥ २१ ॥

भारत ! तुषार, यवन, शक और चूचुपदेशके सैनिक व्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर स्थित हुए ॥ २१ ॥

श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥ २२ ॥

आर्य ! श्रुतायु, शतायु तथा सोमदत्तकुमार भूरिश्रवा—ये परस्पर एक दूसरेकी रक्षा करते हुए व्यूहके जघनभागमें स्थित हुए ॥ २२ ॥

ततो युद्धाय संजग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥ २३ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् सूर्योदयकालमें पाण्डवोंने कौरवोंके साथ युद्धके लिये उनकी सेनापर आक्रमण किया । फिर तो वहाँ भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २३ ॥

प्रतीयू रथिनो नागा नागांश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहान् हयारोहा रथिनश्चापि सादिनः ॥ २४ ॥

रथियोंकी ओर हाथी और हाथियोंकी ओर रथी बढ़े । घुड़सवारोंपर रथारोही तथा रथारोहियोंपर घुड़सवार चढ़ आये ॥ २४ ॥

सारथिं च हयान् राजन् रथिनश्च महारणे ।
हस्त्यारोहान् हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा ॥ २५ ॥

राजन् ! उस महायुद्धमें घुड़सवार योद्धा घुड़सवारों तथा रथियोंपर भी चढ़ दौड़े । इसी प्रकार सवारोंसहित हाथीसवारों तथा रथियोंपर भी टूट पड़े ॥ २५ ॥

रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चापि पत्तिभिः ।
अन्योन्यं समरे राजन् प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥ २६ ॥

रथी और घुड़सवार दोनों ही पैदल योद्धाओंपर आक्रमण करने लगे । राजन् ! इस प्रकार अमर्षमें भरे हुए वे समस्त सैनिक एक दूसरेपर धावा करने लगे ॥ २६ ॥

भीमसेनार्जुनयमैर्धर्मराजेन चाभिभो
शुशुभे पाण्डवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥ २७ ॥

भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा अन्य महारथियोंसे सुरक्षित हुई पाण्डव-सेना नक्षत्रोंसे रात्रिकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥

तथा भीष्मकृपद्रोणशल्यदुर्योधनादिभिः
तथापि न बभौ सेना सहितैरिव सत्तम ॥

इस प्रकार भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और दुर्योधन आदिसे घिरी हुई आपकी सेना पहलेके समान शोभा पा नहीं थी ॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥

पराक्रमी कुन्तीकुमार भीमसेनने द्रोणाचार्यको देखकर वेगशाली घोड़ोंद्वारा द्रोणकी सेनापर धावा किया ॥

द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः
विव्याध समरश्लाघी मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥

युद्धकी श्लाघा करनेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्यने रणभूमिमें कुपित हो भीमसेनके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके नौ बाणोंसे घायलकर दिया ॥

दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ३० ॥

तब युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा अत्यन्त आहत होकर भीमसेनने उनके सारथिको यमलोक भेज दिया ॥

स संगृह्य स्वयं वाहान् भारद्वाजः प्रतापवान्
व्यधमत् पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवानलः ॥ ३१ ॥

तब प्रतापी द्रोणाचार्य स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें रखकर आगसे हुए रूईके ढेरकी भाँति पाण्डव-सेनाका उसी प्रकार संहार करने लगे जैसे आग रूईके ढेरको नष्ट कर डालती है ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमाः
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपरायणाः ॥ ३३ ॥

तब नरश्रेष्ठ सृंजय और केकय द्रोणाचार्य तथा भीष्मकी मार खाकर शत्रुओंसे भागने लगे ॥

तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम्
मुमोह तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना ॥ ३४ ॥

इस प्रकार भीम और अर्जुनके बाणोंसे क्षत-विक्षत हुई आपकी सेना जहाँ-की-तहाँ मूर्छित होने लगी ॥

अभिद्यन्त तथा व्यूहास्तस्मिन् वीरवरक्षये
आसीद् व्यतिकरो घोरस्तव तेषां च भारत ॥ ३५ ॥

भारत! बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस युद्धमें दोनों सेनाओंके व्यूह टूट गये और आपके तथा पाण्डवोंके सैनिकोंका भयंकर सम्मिश्रण हो गया ॥

अद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥ ३६ ॥

भरतनन्दन! हमने आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ अद्भुत पराक्रम देखा था; वे सब-के-सब एक लक्ष्यमें संलग्न होकर युद्ध कर रहे थे ॥

प्रतिसंवार्य चास्त्राणि तेऽन्योन्यस्य विशाम्पते
युयुधुः पाण्डवाश्चैव कौरवाश्च महारथाः ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ! महारथी कौरव तथा पाण्डव एक-दूसरेके अस्त्र-शस्त्रोंका निवारण करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसयुद्धसमाप्तौ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें छठे दिनके युद्धकी समाप्तिविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रकी चिन्ता

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं परम्
व्यूढमेवं यथाशास्त्रममोघं चैव संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! इस प्रकार हमारी सेना अनेक गुणोंसे सम्पन्न है। अनेक अङ्गोंसे युक्त और अनेक प्रकारसे संगठित है तथा शास्त्रीय विधिसे उसकी व्यूहरचना की गयी है। अतः यह अमोघ (विजय पानेमें विफल न होनेवाली) है ॥ १ ॥

हृष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामं च नः सदा
प्रह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥

हमारी यह सेना हमलोगोंपर सदा प्रसन्न और अनुरक्त रहनेवाली है। इसमें विनय भरा है, निर्दोषता रहती आयी है। यह किसी भी व्यसनमें नहीं पड़ी है। पूर्वकालमें इसका पराक्रम देखा जा चुका है ॥ २ ॥

नातिवृद्धमबालं च न कृशं न च पीवरम्
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥

इसमें न कोई अत्यन्त बूढ़ा है न बालक है न अत्यन्त दुबला है और न अत्यन्त मोटा ही है। इसमें तीव्र वेग करनेवाले काम करने वाले लोग हैं। इस सेनाका प्रत्येक सैनिक बलवान् योद्धा और नीरोग है।

नात्यक्षमाद्यदस्त्र न बहुशस्त्रपरिग्रहम्।
असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम्॥ ५॥

यहा सभी बल अस्त्र शस्त्र धारण कर रक्खा है। अनेक प्रकारके बहु शस्त्र अस्त्रोंका संग्रह किया गया है। वहाँका एक एक योद्धा खड्गयुद्ध, मल्लयुद्ध और गदायुद्धमें कुशल है।

प्रासर्ष्टितोमरेष्वासौ परिघेष्वायसेषु च।
भिन्दिपालेषु शक्तीषु मुसलेषु च सर्वदा॥
कम्पनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः।
क्षेपणीयेषु चित्रेषु कुलिशेषु च सत्तम॥ ६॥

ये सैनिक प्रास, ऋष्टि, तोमर, लोहमय परिघ, भिन्दि पाल, शक्ति, मूसल, कम्पन, चाप, कणप आदि बड़ों पर चलाने योग्य विविध अस्त्रोंका सुन्दर प्रयोग करनेकी कलामें कुशल तथा कुलिशमें भी सब प्रकारसे सक्षम हैं।

अवरोहे च विद्यासु व्यायामे च हतक्षमम्।
अक्षमपद्यविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम्॥ ७॥

हमारी इस सेनाके मनुष्योंका बल अनुपम माना है। इसके सैनिकोंने व्यायाम अस्त्र शस्त्र आदि अभ्यास में भी अधिक परिश्रम किया है। ये शस्त्रचलानेमें तथा रथ-चालनमें सभी विद्याओंमें पारङ्गत हैं।

अथेदं पयसन्दे सरण सान्वरप्लुते।
सम्यक् प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम्॥ ८॥

ये हाथी घोड़े आदि सवारियोंपर रहने चलने आगे आने पीछेमें ही दृढ़ चढ़ने अच्छी तरह प्रहार करने चढ़ाई करने और पीछे हटनेमें भी कुशल हैं।

नागाश्वरथयानेषु बहुधा सुपरीक्षितम्।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम्॥ ९॥

हाथी घोड़े रथ आदिकी सवारियोंद्वारा इनकी परीक्षा करनेके लिये अनेक बार परीक्षा की जा चुकी है। परीक्षा करके प्रत्येक सैनिकको उसकी योग्यताके अनुकूल यथोचित वेतन दिया गया है।

न गोष्ठ्या नोपजापेन न च बन्धुनिमित्ततः।
न सौहृदबलेनापि नाकुलीनपरिग्रहैः॥ १०॥

इसमें किसीको किसीकी गोष्ठीसे प्रेरणा, उपजाप-अनुचित उपकार करके भाई-बन्धु होनेके कारण सौहार्दवश अथवा कुलीनता न होनेके कारण सेनामें सम्मिलित नहीं किया गया है, जो

कुलीन नहीं है ऐसे लोगोंका भी इस सेनामें संग्रह नहीं हुआ है।

सुसमृद्धमनार्यं च गुणसम्पत्तिसम्पदम्।
यशोऽभ्यासमूर्च्छितं बलवत् च मनस्वि च॥ ११॥

मेरी सेनामें जो लोग हैं, वे सब धनवान् शिक्षक और श्रेष्ठ हैं। उनके पास सब तरहकी भाई-बन्धु भी दूर हैं। इन्हींका सदा जो आदर विशेष उपकार किया गया है, वे सभी यशस्वी और मनस्वी हैं।

सज्जनस्तु मर्यादैर्बहुशो यश्चमभि
लोकपालोपमबलः पालितं लोकविश्रुतम्॥ १२॥

तात! जिनके साथ और युद्धमें कई बार देखा गया है, ऐसे मुख्य मुख्य लोकपालोंके समान पराक्रमी हैं। इस सेनाका सञ्चालन होता है यह सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है।

बहुभिः क्षत्रियमुख्यैः पृथिव्या लोकसम्मतैः
असकृदभिगम्य चमतुः स्वयं समवदानुतः॥ १३॥

ये अपनी वीरताके लिये भूमण्डलमें विख्यात तथा लोकमें सम्मानित हैं। बहुतसे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी इच्छासे ही सेना और सवारोंके साथ इसमें आ गये हैं। उनके द्वारा यह सेना सुरक्षित है।

महादधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः।
अपृथैः पक्षिसङ्काशैः रथाश्वैश्च समावृतम्॥ १४॥

इसकी दशा महासागरके समान सब ओरसे भरी हुई है। इसमें वेग पक्षियोंके समान तीव्रगतिवाले घोड़े रथ और हाथी इस प्रकार आकर मिलते हैं, जैसे समुद्रमें सब ओरसे नदियाँ आकर मिलती हैं।

व्यायामोद्यतम् भीमं शस्त्रनीर्णसमाकुलम्।
होयज्वलितसाहसिकरसंप्लुतसमाकुलम्॥ १५॥

नाना प्रकारके योद्धा हैं इस सेनासागरके जल हैं, वाहन ही उसमें उठती हुई छोटी बड़ी तरङ्गें हैं। इसकी लहरें खड्ग गदा शक्ति बाण और चाप आदि अस्त्र-शस्त्र जल-जन्तुओंके समान भरे पड़े हैं।

ध्वजभूषणसम्बाधं रत्नपट्टसुसंवृतम्।
परिधावद्भिरत्यर्थं वायुवेगविकम्पितम्॥ १६॥
अप्रमेयमिव कुर्वन्तं सागरमिव महत्।

ध्वज और आभूषणोंसे भरी हुई यह सेना रत्नजटित वस्त्रोंसे व्याप्त है। दौड़ते हुए घोड़ोंसे जो इस सेनाका कम्पन होता है, वही वायुवेगसे इस समुद्रका कम्पन है। सागरके समान यह विशाल सेना देखनेमें अपार है और निरन्तर गर्जन करती रहती है॥ १६॥

द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं कृपेण च महात्मना । १७ ॥
कृतवर्मासहायं च जयद्रथसुरक्षितम्
भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाह्लिकैः ॥ १८ ॥
गुप्तं प्रवीरैर्लोकस्य सारवद्भिर्महात्मभिः
यदहन्यत संग्रामे दैवमत्र पुरातनम् ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य और कृतवर्मा कृपाचार्य दुःशासन जयद्रथ भगदत्त विकर्ण अश्वत्थामा शकुनि तथा बाह्लिक आदि प्रमुख वीरों तथा अन्य शक्तिशाली महामनस्वी वीरों द्वारा मेरी सेना सदा सुरक्षित रहती है तो भी सेना भी यदि संग्राममें मारी गयी तो इसमें प्रारब्धका पुरातन प्रारब्ध ही कारण है ॥ १७—१९ ॥

नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवन्तो हि मानुषाः
ऋषयो वा महाभागाः पुराणा भुवि संजय ॥ २० ॥

संजय! इस भूतलपर इतनी बड़ी सेनाका जमाव मनुष्योंने कभी नहीं देखा होगा अथवा प्राचीन महाभाग ऋषियोंने भी नहीं देखा होगा ॥ २० ॥

ईदृशोऽपि बलौघस्तु संयुक्तः शस्त्रसम्पदा
वध्यते यत्र संग्रामे किमन्यद् भागधेयतः ॥ २१ ॥

इतना बड़ा सैन्यसमुदाय शस्त्रसम्पत्तिसे संयुक्त होनेपर भी यदि संग्राममें विनष्ट हो रहा है तो इसमें भाग्यके सिवा और क्या कारण हो सकता है ॥ २१ ॥

विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति हि संजय
यत्रेदृशं बलं घोरं पाण्डवान्नातरद् युधि ॥ २२ ॥

संजय! यह सब कुछ मुझे विपरीत जान पड़ता है कि ऐसा भयंकर सैन्यसमूह भी यहाँ युद्धमें पाण्डवोंसे पार नहीं पा सका ॥ २२ ॥

पाण्डवार्थाय नियतं देवास्तत्र समागताः
युध्यन्ते मामकं सैन्यं यद्वध्यन्ति संजय ॥ २३ ॥

संजय! निश्चय ही पाण्डवोंके लिये देवता आकर मेरी सेनाके साथ युद्ध करते हैं तभी तो वह प्रतिदिन मारी जा रही है ॥ २३ ॥

उक्तो हि विदुरेणाह हितं पथ्यं च संजय
न च गृह्णाति तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ २४ ॥
तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः
आसीद् यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५ ॥

विदुरजी नित्य ही हित और लाभकी बातें बताते थे परंतु मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनने नहीं माना। तात! मैं समझता हूँ महात्मा विदुर सर्वज्ञ हैं इसीलिये पहले ही उनकी बुद्धिमें ये सब बातें आ गयी थीं। आज जो कुछ प्राप्त हुआ है वह पहले ही उनकी दृष्टिमें आ गया था ॥ २४-२५ ॥

अथवा भाव्यमेवं हि संजयैतेन सर्वथा
पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत् तथा नैतदन्यथा ॥ २६ ॥

संजय! अथवा यह सब प्रकारसे ऐसा ही होनेवाला था। विधाताने जो पहलेसे रच रखा है वह उसी रूपमें होता है उसे कोई बदल नहीं सकता ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें धृतराष्ट्रकी चिन्ताविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

भीमसेन धृष्टद्युम्न तथा द्रोणाचार्यका पराक्रम

संजय उवाच

आत्मदोषात् त्वया राजन् प्राप्तं व्यसनमीदृशम्
न हि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ॥ १ ॥
यानि त्वं दृष्टवान् राजन् धर्मसंकरकारिते
तव दोषात् पुरा वृत्तं द्यूतमेतद् विशाम्पते ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपने अपने ही दोषसे यह संकट प्राप्त किया है। भरतश्रेष्ठ! जिन धर्म और अधर्मके सम्मिश्रणसे उत्पन्न दोषोंको आप देखते थे उन्हें दुर्योधन नहीं देख सका था। प्रजानाथ! आपके अपराधसे ही पहले द्यूतक्रीडाकी घटना घटी थी ॥ १-२ ॥

तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः
त्वमेवाद्य फलं भुङ्क्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना ॥ ३ ॥

तथा आपके ही दोषसे अब पाण्डवोंके साथ युद्ध आरम्भ हुआ। आपने स्वयं ही पाप किया है अतः उसका फल आप भोगिये ॥ ३ ॥

आत्मनैव कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते
इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥ ४ ॥

राजन्! इहलोक अथवा परलोकमें अपने किये हुए कर्मका फल अपने आपको ही भोगना पड़ता है अतः आपको यथायोग्य फल प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥

तस्माद् राजन् स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत्
शृणु युद्धं यथावृत्तं शंसतो मे नराधिप ॥ ५ ॥

राजन्! नरेश्वर! इस महान् संकटको पाकर भी स्थिरतापूर्वक युद्धका यथावत् वृत्तान्त जैसा मैं कह रहा हूँ सुनिये

भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्त्वा महाचमूम्।
नाराचान् ततो वीरः समर्पेत् दुर्योधनात्मजान् ॥ ६ ॥

वीर भीमसेनने तीखे बाणोंसे आपकी विशाल सेनाको विदीर्ण करके दुर्योधनके सभी भाइयोंपर आक्रमण किया ॥ ६ ॥

दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम्।
जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम् ॥ ७ ॥
चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च।
एतानन्यांश्च सुबहून् समीपस्थान् महारथान् ॥ ८ ॥
धार्तराष्ट्रान् सुसंक्रुद्धान् दृष्ट्वा भीमो महाबलः।
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥ ९ ॥

दुःशासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुचित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण तथा कर्ण—ये तथा और भी बहुत-से आपके जो महारथी पुत्र समीप खड़े थे, उन्हें कुपित देखकर महाबली भीमसेनने समरभूमिमें भीष्मके द्वारा सुरक्षित विशाल सैन्यदलमें प्रवेश किया ॥ ७—९ ॥

अथाह्वयन्त संप्रेक्ष्य प्रविष्टं तमुखं सर्वे नृपा तु।
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥ १० ॥

भीमसेनको सेनाके भीतर प्रविष्ट हुआ देख उन सब योद्धाओंने आपसमें कहा कि हमलोग इन्हें जीवित ही पकड़ कर बंदी बना लें ॥ १० ॥

स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः।
प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥ ११ ॥

ऐसा निश्चय करके उन सब भाइयोंने कुन्तीकुमार भीमसेनको घेर लिया, मानो प्रजाके संहारकालमें सूर्यदेवको बड़े-बड़े क्रूर ग्रहोंने घेर रखा हो ॥ ११ ॥

संप्राप्य मध्यं व्यूहस्य न भीः पाण्डवमाविशत्।
यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य दानवान् ॥ १२ ॥

कौरव-व्यूहके भीतर पहुँच जानेपर भी पाण्डुनन्दन भीमसेनको तनिक भी भय नहीं हुआ। जैसे देवासुरसंग्राममें दानवोंकी सेनामें घुसनेपर देवराज इन्द्रको भयका स्पर्श नहीं होता है ॥ १२ ॥

ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो।
छादयानं शरैर्घोरैस्तमेकं परिवव्रिरे ॥ १३ ॥

प्रभो! तदनन्तर भयानक बाणोंकी वर्षा करते हुए सैकड़ों-हजारों रथियोंने युद्धके लिये उद्यत होकर उन अकेले भीमसेनको घेर लिया ॥ १३ ॥

स तेषां प्रवरान् योधान् हस्त्यश्वरथसादिनः।
जघान समरे शूरो धार्तराष्ट्रानचिन्तयन् ॥ १४ ॥

शूरवीर भीमसेन आपके पुत्रोंकी तनिक भी परवा न करते हुए हाथी, घोड़े एवं रथपर बैठकर युद्ध करनेवाले कौरवोंके मुख्य-मुख्य योद्धाओंको समरभूमिमें मारने लगे ॥ १४ ॥

तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम्।
समस्तानां वधे राजन् मतिं चक्रे महामनाः ॥ १५ ॥

राजन्! उन्हें कैद करनेकी इच्छावाले शत्रुओंके उस निश्चयको जानकर महामना भीमसेनने उन सबके वधका विचार कर लिया ॥ १५ ॥

ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः।
जघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघं महार्णवम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर पाण्डुनन्दन भीमसेन हाथमें गदा ले रथको त्यागकर उस विशाल सेनारूपी समुद्रको गदासे ध्वंस करने लगे ॥ १६ ॥

(गदया भीमसेनेन ताडिता वारणोत्तमाः।
भिन्नकुम्भा महाकाया भिन्नपृष्ठकटास्तथा ॥
छिन्नगात्रा समारोहाः शेरते पर्वता इव।

भीमसेनकी गदाके आघातसे बड़े-बड़े विशालकाय गजराजोंके कुम्भस्थल फट गये, पृष्ठभाग विदीर्ण हो गये तथा उनका एक-एक अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया और उन्हें अकस्मात् वे गजारोहीसहित धराशायी हो गये मानो पर्वत ढह गये हों ॥

रथाश्च भग्नाभिहतास्तथैव शतशो रणे।
कुञ्जराश्च सादिनश्चैव पत्तयश्च भारत।

भारत! उन्होंने उस रणक्षेत्रमें सैकड़ों रथोंको अपने गदाप्रहारसे छिन्न-भिन्न करके तोड़ डाला। घोड़ों, घुड़सवारों तथा पैदलोंको भी कुचल डाला ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ॥
यदेकः समरे राजन् बहुभिः समयोधयत्।
बलाद्‌दसे प्रजाः सर्वा दण्डपाणिरिवान्तकः ॥)

राजन्! उस युद्धमें हमलोगोंने भीमसेनका अद्भुत पराक्रम देखा। जैसे दण्डधारी यमराज हाथमें दण्ड लिये समस्त प्रजाका संहार करते हैं, उसी प्रकार वे अकेले आपके बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥

भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ १७ ॥

भीमसेनके कौरवसेनामें प्रवेश करनेपर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न भी द्रोणाचार्यको छोड़कर बड़े वेगसे उस स्थानपर गये जहाँ शकुनि युद्ध कर रहा था ॥ १७ ॥

निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥ १८ ॥

वहाँ आपकी विशाल सेनाको आगे बढ़नेसे रोककर नरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें भीमसेनके सूने रथके पास जा पहुँचे ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम्।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना भृशमातुरः ॥ १९ ॥

महाराज! भीमसेनके सारथि विशोकको समरभूमिमें अकेला खड़ा देख धृष्टद्युम्न मन-ही-मन बहुत दुःखी और व्यथित हो गये।

अपृच्छद् बाष्पसंरुद्धो गिरा गद्गदया तदा।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥ २० ॥

वे उसी नाम लेते और आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठ से पूछने लगे—'विशोक! मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भीम कहाँ गये?' इतना कहते-कहते वे बहुत दुःखी हो गये ॥ २० ॥

विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः प्रतापवान् ॥ २१ ॥
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद् बलमहार्णवम्।

तब विशोकने हाथ जोड़कर धृष्टद्युम्नसे कहा—'प्रभो! पराक्रमी और बलवान् पाण्डुनन्दन मुझे यहीं खड़ा करके कौरवोंके इस सैन्यसागरमें घुस गये हैं ॥ २१ ॥

मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः ॥ २२ ॥
प्रतिपालय मां सूत नियम्याश्वान् मुहूर्तकम्।
यावदेतान् निहन्म्याशु य इमे मद्वधोद्यताः ॥ २३ ॥

जाते समय पुरुषसिंह भीमसेनने मुझसे प्रेमपूर्वक यह बात कही कि 'सूत! तुम दो घड़ीतक इन घोड़ोंको रोककर यहीं मेरी प्रतीक्षा करो। जबतक कि मैं जो लोग मेरा वध करनेके लिये उद्यत हैं, इन्हें अभी मार न डालूँ ॥ २२-२३ ॥

ततो दृष्ट्वा प्रधावन्तं गदाहस्तं महाबलम्।
सर्वेषामेव सैन्यानां संघर्षः समजायत ॥ २४ ॥

तदनन्तर गदा हाथमें लिये महाबली भीमसेनको धावा करते देख सम्पूर्ण सैनिकोंमें होड़-सी लग गयी ॥ २४ ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके।
भित्त्वा राजन् महाव्यूहं प्रविवेश सुहृत्तव ॥ २५ ॥

राजन्! इस भयानक एवं तुमुल युद्धमें भीमसेन इस महाव्यूहका भेदन करके इसके भीतर प्रवेश कर गये थे ॥ २५ ॥

विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥ २६ ॥

विशोककी यह बात सुनकर महाबली द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने उस समराङ्गणमें उससे इस प्रकार कहा ॥ २६ ॥

न हि मे विद्यतेऽद्यापि जीवितेऽपि प्रयोजनम्।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ २७ ॥

सारथे! युद्धमें भीमसेनको छोड़कर और पाण्डवोंसे स्नेह तोड़कर अब मेरे जीवनसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २७ ॥

यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति।
एकायनगते भीमे मयि चावस्थिते युधि ॥ २८ ॥

भीम एकमात्र युद्धके पथपर बढ़ गये हैं और मैं भी युद्धस्थलमें उपस्थित हूँ। ऐसी दशामें यदि भीमके बिना ही लौट जाऊँ तो क्षत्रिय समाज मुझे क्या कहेगा? ॥ २८ ॥

अस्वस्ति तस्य कुर्वन्ति देवाः साग्निपुरोगमाः।
यः सहायान् परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥ २९ ॥

जो अपने सहायकोंको छोड़कर स्वयं कुशलपूर्वक घरको लौट आता है, उसका इन्द्र आदि देवता अनिष्ट करते हैं ॥ २९ ॥

मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः।
भक्तोऽस्मान् भक्तिमांश्चाहं तमप्यरिनिषूदनम् ॥ ३० ॥

महाबली भीम मेरे सखा और सम्बन्धी हैं। वे हम लोगोंके भक्त हैं और मैं भी उन शत्रुसूदन भीमका भक्त हूँ ॥ ३० ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः।
निघ्नन्तं मामरीन् पश्य दानवानिव वासवम् ॥ ३१ ॥

अतः मैं भी वहीं जाऊँगा, जहाँ भीमसेन गये हैं। देखो, जैसे इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार मैं भी शत्रुओंका विनाश कर रहा हूँ ॥ ३१ ॥

एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत।
भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः ॥ ३२ ॥

भारत! ऐसा कहकर वीरवर धृष्टद्युम्न भीमसेनके जाते हुए मार्गसे कौरवसेनाके भीतर गये। उस मार्गपर गदाके मारे हुए हाथी पड़े थे ॥ ३२ ॥

स ददर्श ततो भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम्।
वातो वृक्षानिव बलात् प्रभञ्जन्तं रणे रिपून् ॥ ३३ ॥

उस समय कुछ दूर जाकर धृष्टद्युम्नने शत्रुसेनाको दग्ध करते हुए भीमसेनको देखा। जैसे आँधी वृक्षोंको बलपूर्वक तोड़ देती या उखाड़ फेंकती है, उसी प्रकार भीमसेन भी रणभूमिमें शत्रुओंका संहार कर रहे थे ॥ ३३ ॥

ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा।
पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥ ३४ ॥

समराङ्गणमें भीमसेनके मारे हुए रथी, घुड़सवार, पैदल और महावतोंसहित हाथी बड़े जोरसे आर्तनाद कर रहे थे ॥ ३४ ॥

हाहाकारश्च संजज्ञे तव सैन्यस्य मारिष।
वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥ ३५ ॥

आर्य! विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले विद्वान् भीमसेनके द्वारा मारी जाती हुई आपकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ३५ ॥

ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम्।
अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परंतप ॥ ३६ ॥

धनुर्धरोंको सन्ताप देनेवाले थोद्धा। तदनन्तर आयोंके साथ उनका कौरव-सैनिक भीमसेनको सब ओरसे घेरकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए बिना किसी भयके उनपर जा टूटे ॥ ३६ ॥

अभिद्रुत दानवमूर्ता वरिष्ठ
समन्ततः सायकशर लोकवरिष्ट ।
सैन्येन घोरेण सुसंहितेन
दृष्ट्वा बली पार्थिवो भीमसेनम् ॥ ३७ ॥
अथोपयाताद्भुतमप्रमेयतमाः
पद्मानि कोपादिव समन्ततम् ।
समाश्वासयन् पाण्डवो भीमसेन
मद्भुतकर्ता सकलरिपोन्तकाले ॥ ३८ ॥

जिसके निकलने और समान, कुमारकुमार प्रद्युम्नने देखा—राजाओंकी सेना चारों ओरसे भीमसेनपर सब ओरसे धावा हो रहा है। अश्वत्थामा सब हाथ हुई भयकर रुकावटे उन पर आक्रमण किया है। यह देखकर प्रद्युम्न भीमसेनको आश्वासन देते हुए उनके पास गये। उनका प्रत्येक अङ्ग बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहा था। वे पैदल ही कोधमें लिए उनके रहे थे और गदा हाथमें लिये प्रलयकालके यमराजके समान जान पड़ते थे ॥ ३७-३८ ॥

विदार्यमाणेन च सायकैर् तूर्णं
मारोप्यमाणस्ततः पश्ये महात्मा ।
मुक्तः परिष्वज्य स भीमसेन
माश्वासयामास स शत्रुमध्ये ॥ ३९ ॥

महात्मा प्रद्युम्नने तुरंत ही उन्हें अपने रथपर बिठा लिया और उनके शरीरमें धँसे हुए बाणोंको निकाल दिया। शत्रुओंके बीचमें ही भीमसेनको छातीसे लगाकर उन्हें पूर्ण सान्त्वना दी ॥ ३९ ॥

आतृप्तयोऽस्य तथापि युद्ध
स्तस्मिन् विमर्दे महति प्रवृत्ते ।
अथ दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्र
स्त्वागतो भीमसेनेन सार्धम् ॥ ४० ॥
न याम सर्वे महता बलेन
मा नो रिपुः स पराभवोऽयम् ।

वह महान् संग्राम आरम्भ होनेपर आपका पुत्र दुर्योधन महारथीके पास आकर बोला—यह द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न आकर भीमसेनसे मिल गया है। हम सब लोग बहुत बड़ी सेनाके साथ इसपर आक्रमण करें जिससे हमारा और तुम्हारा यह शत्रु हम लोगोंकी इस सेनाको हानि पहुँचानेका विचार न कर सके ॥ ४०-४१ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं सममुद्यतास्ता
स्तेनाहतास्ते कोपिता धार्तराष्ट्राः ॥ ४१ ॥
वधाय नियोगवशमुपगता
द्रुपदस्ये क्षेपकाः पार्थिवमुख्याः ।
समुद्यतचापासि धनूंषि वीरा
उग्रा नेमिनिर्घोषैः सविस्मयास्ततः ॥ ४२ ॥

दुर्योधनका यह वचन सुनकर आपके सभी वीर पुत्र, जो धृष्टद्युम्नका आगमन नहीं सह सके थे, बड़े भाईकी आज्ञासे प्रेरित हो प्रलयकालके भयंकर केतुओंकी भाँति हाथमें आयुध लिये धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये उनपर टूट पड़े। उन्होंने अपने हाथोंमें धनुष बाण ले रक्खे थे और वे रथके पहियोंकी घरघराहटके साथ-साथ धनुषकी टंकारसे भी कँपाते हुए उनको मारकर फैल गये थे ॥ ४१-४२ ॥

शरैर्ववर्षुर् द्रुपदस्य पुत्रं
यथाम्बुदा भूधरं वारिधाराः ।
निहत्य नाराचैरपि शूरैः सुतीक्ष्णै
र्न विव्यथे समरे चित्रयोधी ॥ ४३ ॥

जैसे मेघ पर्वतपर जलकी बूँदें बरसाते हैं, उसी प्रकार वे द्रुपदकुमारपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। परंतु विचित्र युद्ध करनेवाले धृष्टद्युम्न उस समरांगणमें अपने पैने बाणोंद्वारा उन सबको आहत घायल करके रत्तीभर भी व्यथित नहीं हुए ॥ ४३ ॥

समभ्युदीर्णांश्च तवात्मजांस्तथा
निशाम्य वीरानभित स्थितान् रणे ।
जिघांसुरुग्रः द्रुपदात्मजो युवा
प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथ ॥ ४४ ॥

युद्धमें सामने खड़े हुए आपके वीर पुत्रोंको आगे बढ़ते और प्रबल होते देख नवयुवक महारथी द्रुपदकुमारने उनके वधके लिये भयंकर प्रमोहनास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४४ ॥

क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन्
दैत्येषु यद्वत् समरे महेन्द्रः ।
ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीरा
प्रमोहनास्त्राहततुद्धिसत्त्वाः ॥ ४५ ॥

राजन्! जैसे युद्धमें देवराज इन्द्र दैत्योंपर कुपित होते हैं, उसी प्रकार आपके पुत्रोंपर धृष्टद्युम्नका कोप बहुत बढ़ा हुआ था। उनके मोहनास्त्रके प्रयोगसे अपनी चेतना और धैर्य खोकर आपके नरवीर पुत्र रणभूमिमें मोहित हो गये ॥

प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे
सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् ।
परीतकालानिव नष्टसंज्ञान्
मोहोपेतांस्तव पुत्रान् निशम्य ॥ ४६ ॥

आपके पुत्रोंको मोहसे युक्त एवं मरे हुएके समान अचेत हुआ देख समस्त कौरव-सैनिक हाथी घोड़े तथा रथसहित

उस ओर भाग चले ॥ ४६ ॥

तथैव निमेषे काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
द्रुपदं विशिखैस्तस्य शरैर्विमनसं व्यधात् ॥ ४७ ॥

इसी समय दूसरी ओर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने द्रुपदके पास आकर उनको तीन बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४७ ॥

सोऽतिविद्धस्ततो राजन् रणे द्रोणेन पार्थिव ।
अपायाद् द्रुपदो राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥

राजन्! उस रणभूमिमें द्रोणके द्वारा अत्यन्त घायल हो जाने पर राजा द्रुपद पहलेके वैरका स्मरण करते हुए वहाँसे दूर हट गये ॥ ४८ ॥

जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ॥ ४९ ॥

द्रुपदको जीतकर प्रतापी द्रोणाचार्यने अपना शङ्ख बजाया। उस शङ्खनादको सुनकर समस्त सोमक क्षत्रिय अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ ४९ ॥

अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ॥ ५० ॥

तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी द्रोणाचार्यने सुना कि आपके पुत्र रणभूमिमें प्रमोहनास्त्रसे मोहित होकर पड़े हैं ॥ ५० ॥

ततो द्रोणो महाराज त्वरितोऽभ्याययौ रणात् ।
तत्रापश्यन्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥
धृष्टद्युम्नं च भीमं च विचरन्तौ महारणे ।
मोहाविष्टांश्च ते पुत्रानपश्यत् स महारथः ॥ ५२ ॥

महाराज! यह सुनते ही महाधनुर्धर प्रतापी भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य तुरंत उस युद्धस्थलसे चलकर वहाँ आ पहुँचे। आकर उन महारथीने देखा कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन उस महायुद्धमें विचर रहे हैं और आपके पुत्र मोहाविष्ट होकर पड़े हुए हैं ॥ ५१-५२ ॥

ततः प्रज्ञास्त्रमादाय मोहनास्त्रं व्यशातयत् ।
अथ प्रत्यागतप्राणास्तव पुत्रा महारथाः ॥ ५३ ॥

तब उन्होंने प्रज्ञास्त्र लेकर उसके द्वारा मोहनास्त्रका नाश कर दिया। इससे आपके महारथी पुत्रोंमें पुनः चेतनाशक्ति लौट आयी ॥ ५३ ॥

पुनर्युद्धाय समरे प्रययुर्भीमपार्षतौ ।
ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान् ॥ ५४ ॥
गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि ।
सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः ॥ ५५ ॥
प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु न हि शुद्ध्यति मे मनः ।

वे समरभूमिमें पुनः युद्धके लिये भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नकी ओर चले। तब राजा युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंको बुलाकर कहा—'पूरी शक्ति लगाकर युद्धस्थलमें भीमसेन और धृष्टद्युम्नके पथका अनुसरण करो। अभिमन्यु आदि बारह वीर महारथी कवच आदिसे सुसज्जित हो भीमसेन और धृष्टद्युम्नका समाचार प्राप्त करें। मेरा मन उनके विषयमें निश्चिन्त नहीं हो रहा है' ॥ ५४—५६ ॥

त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्तयोधिनः ॥ ५६ ॥
बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः ।
मध्यन्दिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिरकी ऐसी आज्ञा पाकर पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले वे पुरुषाभिमानी समस्त शूरवीर 'बहुत अच्छा' कहकर दोपहर होते होते वहाँसे चल दिये ॥ ५६-५७ ॥

केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः ॥ ५८ ॥
ते कृत्वा समरे व्यूहं सूचीमुखमरिंदमाः ।
बिभिदुर्धार्तराष्ट्राणां तद् रथानीकमाहवे ॥ ५९ ॥

अभिमन्युको आगे करके विशाल सेनासे घिरे हुए पाँच केकयराजकुमार, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और पराक्रमी धृष्टकेतु—ये शत्रुओंका दमन करनेवाले शूरवीर सूचीमुख नामक समरव्यूह बनाकर आपके पुत्रोंकी उस सेनाकी रथसेनाको विदीर्ण करने लगे ॥ ५८-५९ ॥

तान् प्रयातान् महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥ ६० ॥
न संधारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ।
मदमूर्च्छान्वितात्मानं प्रमदेवाध्वनि स्थिता ॥ ६१ ॥

नरेश्वर! आपकी सेना भीमसेनके भयसे व्याकुल और धृष्टद्युम्नके बाणोंसे मोहित हो रही थी। अतः आक्रमण करनेवाले अभिमन्यु आदि महाधनुर्धर वीरोंको वह रोकनेमें समर्थ न हो सकी। मद और मूर्छासे बेसुध हुई मतवाली स्त्रीकी भाँति वह मार्गमें चुपचाप खड़ी रही ॥ ६०-६१ ॥

तेऽभियाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥ ६२ ॥

सुवर्णनिर्मित ध्वजाओंसे सुशोभित होनेवाले वे महाधनुर्धर वीर धृष्टद्युम्न और भीमसेनकी रक्षाके लिये बड़े वेगसे दौड़े ॥ ६२ ॥

तौ च दृष्ट्वा महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ॥ ६३ ॥

वे दोनों महान् शूरवीर धृष्टद्युम्न और भीमसेन भी अभिमन्यु आदि वीरोंको सहायताके लिये आते देख हर्ष और उत्साहमें भर गये और आपकी सेनाका विनाश करने लगे ॥ ६३ ॥

(द्रोणमिष्वस्त्रकुशलं सर्वविद्यासु पारगम् ।)
धृष्टद्युम्नस्ततस्तस्य पाञ्चाल्यो गुरुमव्ययम् ।
नाशासत वधं वीरः पुत्राणां तव भारत ॥ ६४ ॥

भरत ! पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने धनुर्वेदमें कुशल और समस्त विद्याओंके पारंगत विद्वान् अपने गुरु द्रोणाचार्यको पास आया देख आपके पुत्रोंके वधकी इच्छा छोड़ दी ॥ ६४ ॥

ततो रथं समारोप्य केकयस्य वृकोदरम् ।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम् ॥ ६५ ॥

फिर भीमसेनको केकयके रथपर बिठाकर क्रोधमें भरे हुए धृष्टद्युम्नने अस्त्रविद्याके पारगामी विद्वान् द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ६५ ॥

तस्याभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
क्रुद्धश्चिच्छेद भल्लेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥ ६६ ॥

तब शत्रुओंका नाश करनेवाले प्रतापी द्रोणाचार्यने कुपित होकर अपनी ओर आनेवाले धृष्टद्युम्नके धनुषको एक बाणसे तुरंत काट दिया ॥ ६६ ॥

अन्यांश्च शतशो बाणान् प्रेषयामास पार्षते ।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन् ॥ ६७ ॥

उसके बाद दुर्योधनके हितके लिये स्वामीके अन्नका विचार करते हुए धृष्टद्युम्नपर और भी सैकड़ों बाण चलाये ॥ ६७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर पत्थरपर रगड़कर तेज किये हुए सोनेकी पाँखवाले बीस बाणोंसे द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ ६८ ॥

तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदामित्रकर्शनः ।
हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६९ ॥
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत ।
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ७० ॥

तब शत्रुसूदन द्रोणाचार्यने पुनः धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया और चार उत्तम सायकोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको तुरंत ही यमराजके भयंकर लोकमें भेज दिया। भरत ! फिर एक भल्लके द्वारा उनके सारथिको भी मृत्युके हवाले कर दिया ॥ ६९-७० ॥

हताश्वात् स रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥ ७१ ॥

घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर महारथी महाबाहु धृष्टद्युम्न तुरंत उस रथसे कूद पड़े और अभिमन्युके विशाल रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ७१ ॥

ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ७२ ॥

तदनन्तर भीमसेन और धृष्टद्युम्नके देखते-देखते रथ, हाथी और घुड़सवार सहित सारी पाण्डव-सेना काँपने लगी ॥ ७२ ॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेनामिततेजसा ।
नाशक्नुवन् वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ॥ ७३ ॥

अमिततेजस्वी आचार्य द्रोणके द्वारा अपनी सेनाका व्यूह भंग हुआ देख वे सम्पूर्ण महारथी प्रयत्न करनेपर भी उसे रोकनेमें सफल न हो सके ॥ ७३ ॥

वध्यमानं तु तत् सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः ।
व्यभ्रमत् तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवार्णवः ॥ ७४ ॥

द्रोणाचार्यके पैने बाणोंसे पीड़ित हुई वह सेना विक्षुब्ध महासागरके समान वहीं चक्कर काटने लगी ॥ ७४ ॥

तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे तावकं बलम् ।
दृष्ट्वाऽऽचार्यं सुसंक्रुद्धं दहन्तं रिपुवाहिनीम् ।
चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥ ७५ ॥

द्रोणाचार्यको अत्यन्त कुपित होकर शत्रुसेनाको दग्ध करते और पाण्डव-सेनाको भागते देख आपके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ । भारत ! आपके सभी योद्धा सब ओरसे द्रोणाचार्यको साधुवाद देने लगे ॥ ७५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे द्रोणपराक्रमे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धमें द्रोणपराक्रमविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ½ श्लोक मिलाकर कुल ७५½ श्लोक हैं)

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

उभय पक्षकी सेनाओंका संकुल युद्ध

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा मोहात् प्रत्यागतस्तदा ।
शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर (मोहरहित होकर) मोहसे जागनेपर राजा दुर्योधनने युद्धसे पीछे न हटनेवाले भीमसेनको पुनः बाणोंकी वर्षासे रोक दिया ॥

वनीभूतस्ततस्तेषां तव पुत्रा महारथाः ।
परिवार्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥ २ ॥

फिर आपके सभी महारथी पुत्र समरभूमिमें उपस्थित होकर पूर्ववत् उत्साहके साथ भीमसेनके साथ युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

भीमसेनोऽपि समरे सम्प्राप्य स्वरथं पुनः ।
समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवात्मजः ॥ ३ ॥

महाबाहु भीमसेन भी समरभूमिमें पुनः अपने रथपर सवार हो उधर ही चल दिये, जिधर आपका पुत्र दुर्योधन गया था ॥ ३ ॥

प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।
सज्यं शरासनं संख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम् ॥ ४ ॥

उन्होंने युद्धस्थलमें शत्रुओंके प्राण लेनेवाले महान् वेगशाली सुदृढ़ धनुषको लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और अनेक बाणोंद्वारा आपके पुत्रको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम् ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥ ५ ॥

तब राजा दुर्योधनने महाबली भीमसेनके मर्मस्थलमें अत्यन्त तीखे बाणसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ५ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना ।
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनोत्क्षिप्य कार्मुकम् ॥ ६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स तथा शुशुभे राजा गिरिः शृङ्गैरिवोच्छ्रितैः ॥ ७ ॥

आपके धनुर्धर पुत्रके द्वारा उसने धनुष चढ़ाया भयानक पीड़ित हो महाधनुर्धर भीमसेन क्रोधसे लाल आँखें करके वेगपूर्वक धनुषको खींचा और तीन बाणोंसे दुर्योधनकी दोनों भुजाओं तथा छातीमें चोट पहुँचायी। इन बाणोंद्वारा राजा दुर्योधन तीन शिखरोंसे युक्त गिरिराजकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ ६-७ ॥

तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम् ।
दुर्योधनानुजाः सर्वे शूरा सन्त्यक्तजीविताः ॥ ८ ॥
संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्मणः ।
निश्चयं मनसा कृत्वा निग्रहीतुं प्रचक्रमुः ॥ ९ ॥

क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंको समरभूमिमें एक दूसरेपर प्रहार करते देख दुर्योधनके सभी शूरवीर छोटे भाई प्राणोंका मोह छोड़कर भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनको कैद करनेके विषयमें जो कुछ पहले सलाह की थी, उसको याद करके दृढ़ निश्चय करके उन्हें पकड़नेका उद्योग करने लगे ॥ ८-९ ॥

तानापतत एवाजौ भीमसेनो महाबलः ।
प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रतिगजानिव ॥ १० ॥

महाराज ! उन्हें युद्धमें आक्रमण करते देख जैसे हाथी अपने विरोधी हाथियोंकी ओर दौड़ता है उसी प्रकार महाबली भीमसेन उनकी अगवानीके लिये आगे बढ़े ॥ १० ॥

भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समार्पयत् ।
चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः ॥ ११ ॥

नरेश्वर ! महायशस्वी और तेजस्वी भीमसेन अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए थे। उन्होंने आपके पुत्र चित्रसेनपर एक नाराचके द्वारा प्रहार किया ॥ ११ ॥

तथेतरांस्तव सुतांस्ताडयामास भारत ।
शरैर्बहुविधैः संख्ये रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥

भारत ! इसी प्रकार रणभूमिमें भीमसेनने सुवर्णमय पंखवाले और तेज धारवाले नाना प्रकारके बाणोंद्वारा उन्होंने आपके अन्य पुत्रोंको भी पीड़ित किया ॥ १२ ॥

ततः संस्थाप्य समरे स्वान्यनीकानि सर्वशः ।
अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः ॥ १३ ॥
प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः ।
प्रत्युद्ययुर्महाराज तव पुत्रान् महाबलान् ॥ १४ ॥

महाराज ! तदनन्तर अपनी सेनाओंको सब प्रकारसे समरभूमिमें स्थापित करके अभिमन्यु आदि बारह महारथियोंने जिन्हें धर्मराज युधिष्ठिरने भेजा था, आपके महाबली पुत्रोंपर धावा किया ॥ १३-१४ ॥

दृष्ट्वा रथस्थांस्ताञ्छूरान् सूर्याग्निसमतेजसः ।
सर्वानेव महेष्वासान् भ्राजमानाञ्छ्रिया वृतान् ॥ १५ ॥
महाहवे दीप्यमानान् सुवर्णमुकुटोज्ज्वलान् ।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥ १६ ॥

रथपर बैठे हुए शूरवीर सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी महाधनुर्धर उत्तम शोभासे सम्पन्न, सुवर्णमय मुकुटसे प्रकाशित तथा देदीप्यमान और महान् संग्राममें प्रकाशित थे। उन महारथियोंको देखकर आपके महाबली पुत्र भीमसेनको छोड़कर युद्धसे दूर हट गये ॥ १५-१६ ॥

तान् नामृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति ।
अन्वीय च पुनः सर्वांस्तव पुत्रानपीडयत् ॥ १७ ॥

परंतु वे जीवित लौट गये, यह बात भीमसेनसे नहीं सही गयी। उन्होंने पुनः आपके उन सब पुत्रोंका पीछा करके उन्हें अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ १७ ॥

अथाभिमन्युं समरे भीमसेनेन सङ्गतम् ।
पार्षतेन च सम्प्रेक्ष्य तव सैन्ये महारथाः ॥ १८ ॥
दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः ।
भृशमश्वैः प्रजविभिः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥ १९ ॥

तदनन्तर उस रणभूमिमें अभिमन्युको भीमसेन तथा

कुरुकुमारो घिरा हुआ देख आपकी सेनाके दुर्योधन आदि महारथी हाथोंमें धनुष लिये अत्यन्त वेगशाली अश्वोंद्वारा वहाँ जा पहुँचे जहाँ वे बारह पाण्डव-पक्षीय महारथी विद्यमान थे ॥ १८-१९ ॥

ततस्तदभवद् युद्धं महाराज प्रावर्तत महारणम् ।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत ॥ २० ॥

महाराज ! भरतनन्दन ! तब आपके बलवान् सैनिकों और पाण्डव-पक्षके सैनिकोंमें वहाँ भारी युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २० ॥

अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान् हत्वा महाजवे ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ २१ ॥

अभिमन्युने उस महायुद्धमें विकर्णके घोड़ोंको मारकर उस विकर्णको भी पचीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २१ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः ।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भास्वरम् ॥ २२ ॥

भरतवंशी राजा ! घोड़ोंके मारे जानेपर महारथी विकर्ण अपना रथ छोड़कर चित्रसेनके रथपर जा बैठा ॥ २२ ॥

स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुरुवर्धनौ ।
आर्जुनिः शरजालेन च्छादयामास भारत ॥ २३ ॥

भरतनन्दन ! अभिमन्युने एक रथपर बैठे हुए उन दोनों कुरुवंशी भाइयोंको अपने बाणोंके जालसे आच्छादित कर दिया ॥ २३ ॥

चित्रसेनो विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः ।
विव्याधतेन चाकम्पत् कार्ष्णिर्मेरुरिव स्थितः ॥ २४ ॥

चित्रसेन और विकर्णने भी लोहेके पाँच बाणोंसे अभिमन्युको बींध डाला । उस आघातसे अर्जुनकुमार अभिमन्यु विचलित नहीं हुआ । मेरु पर्वतकी भाँति अविचल खड़ा रहा ॥ २४ ॥

दुःशासनस्तु समरे केकयान् पञ्च मारिष ।
योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥

आर्य ! राजेन्द्र ! दुःशासनने समरभूमिमें पाँच केकय राजकुमारोंके साथ युद्ध किया । वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ २५ ॥

द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्योधनमवारयन् ।
शरैराशीविषाकारैः पुत्रं तव विशाम्पते ॥ २६ ॥

प्रजानाथ ! युद्धमें कुपित हुए द्रौपदीके पाँच पुत्रोंने विषधर सर्पोंके समान आकारवाले अपने बाणोंद्वारा आपके पुत्र दुर्योधनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २६ ॥

पुत्रोऽपि तव दुर्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान् रणे ।
सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥

राजन् ! तब आपके दुर्धर्ष पुत्रने भी तीखे सायकोंद्वारा रणभूमिमें द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंपर पृथक्-पृथक् प्रहार किया ॥

तैश्चापि विद्धः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः ।
गिरिः प्रस्रवणैर्यद्वद् गैरिकादिविमिश्रितैः ॥ २८ ॥

फिर उनके द्वारा भी अत्यन्त घायल किये जानेपर वह रक्तसे नहा उठा और गेरू आदि धातुओंसे मिश्रित झरनोंके जलसे युक्त पर्वतकी भाँति शोभा पाने लगा ॥

भीष्मोऽपि समरे राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कालयामास बलवान् पालः पशुगणानिव ॥ २९ ॥

राजन् ! तदनन्तर बलवान् भीष्म भी समरभूमिमें पाण्डवसेनाको उसी प्रकार खदेड़ने लगे, जैसे चरवाहा पशुओंको हाँकता है ॥ २९ ॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद् विशाम्पते ।
दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्यारीन् विनिघ्नतः ॥ ३० ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर शत्रुओंका संहार करते हुए अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार सेनाके दक्षिण भागमें प्रकट हुई ॥ ३० ॥

उत्तस्थुः समरे तत्र कबन्धानि समन्ततः ।
कुरूणां चैव सैन्येषु पाण्डवानां च भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! वहाँ समरमें कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंमें सब ओर कबन्ध उठ खड़े हुए ॥ ३१ ॥

शोणितोदं शरावर्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् ।
रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥ ३२ ॥

वह सेना एक समुद्रके समान थी । रक्त ही वहाँ जलके समान था; बाणोंकी भँवर उठती थी । हाथी द्वीपके समान जान पड़ते थे और घोड़े तरंगोंकी शोभा धारण करते थे । रथरूपी नौकाओंद्वारा नरश्रेष्ठ वीर उस सैन्यसागरको पार करते थे ॥ ३२ ॥

छिन्नहस्ता विकवचा विशिरस्काश्च संयुगे ।
ददृशुस्ते पतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥

वहाँ सैकड़ों और हजारों नरश्रेष्ठ धरतीपर पड़े दिखायी देते थे । उनमेंसे कितनोंके हाथ कट गये थे, कितने ही कवचहीन हो गये थे और बहुतोंके मस्तक छिन्न-भिन्न हो गये थे ॥ ३३ ॥

निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥ ३४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मरकर गिरे हुए मतवाले हाथी खूनसे लथपथ हो रहे थे । उनसे ढकी हुई वहाँकी भूमि पर्वतोंसे व्याप्त-सी जान पड़ती थी ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत ।
न तत्रासीत् पुमान् कश्चिद् यो युद्धं नाभिकाङ्क्षति ॥ ३५ ॥

भारत ! हमने वहाँ आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंका अद्भुत उत्साह देखा। वहाँ ऐसा कोई पुरुष नहीं था जो युद्ध न चाहता हो ॥ २५ ॥

एवं युयुधिरे वीरा प्रार्थयाना महद् यशः।
तावका पाण्डवैः सार्धमाकाङ्क्षन्तो जयं युधि ॥ २६ ॥

इस प्रकार महान् यशकी अभिलाषा रखते और युद्धमें विजय चाहते हुए आपके वीर सैनिक पाण्डवोंके साथ युद्ध करते थे ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें छठे दिनके युद्धसे सम्बन्ध रखनेवाला अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्याय

भीमसेनके द्वारा दुर्योधनकी पराजय अभिमन्यु और द्रौपदीपुत्रोंका धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध तथा छठे दिनके युद्धकी समाप्ति

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे।
संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर जब सूर्यदेव पर लाली छाने लगी उस समय संग्रामके लिये उत्साह रखनेवाले राजा दुर्योधनने भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धावा किया ॥ १ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम्।
भीमसेनः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

अपने पक्के वैरी नरवीर दुर्योधनको आते देख भीमसेनका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे उससे इस प्रकार बोले ॥ २ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो वर्षपूगाभिकाङ्क्षितः।
अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥

दुर्योधन ! मैं बहुत वर्षोंसे जिसकी अभिलाषा और प्रतीक्षा कर रहा था, वही यह अवसर आज प्राप्त हुआ है। यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं जाता तो आज तुझे अवश्य मार डालूँगा ॥ ३ ॥

अद्य कुन्त्याः परिक्लेशं वनवासं च कृत्स्नशः।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणेष्यामि हते त्वयि ॥ ४ ॥

माता कुन्तीको जो कष्ट उठाना पड़ा है, हमने वनवासका जो कष्ट भोगा है और सभामें द्रौपदीको जो अपमानका दुःख सहन करना पड़ा है, उन सबका बदला आज मैं तुझे मारकर चुका लूँगा ॥ ४ ॥

यत् त्वं पुरा मत्सरी भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे।
तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम् ॥ ५ ॥

गान्धारीपुत्र ! पूर्वकालमें डाह रखकर तू जो हम पाण्डवोंका तिरस्कार करता आया है, उसी पापके फलस्वरूप यह संकट तेरे ऊपर आया है; तू आज आँख खोलकर देख ले ॥ ५ ॥

कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च यत् पुरा।
अचिन्त्य पाण्डवान् कामाद् यथेष्टं कृतवानसि ॥ ६ ॥
याचमानं च यन्मोहाद् दाशार्हमवमन्यसे।
उलूकस्य समादेशं यद् ददासि च हृष्टवत् ॥ ७ ॥
तेन त्वां निहनिष्यामि सानुबन्धं सबान्धवम्।
समीकरिष्ये तत् पापं यत् पुरा कृतवानसि ॥ ८ ॥

पहले कर्ण और शकुनिके बहकावेमें आकर पाण्डवोंको कुछ भी न गिनते हुए जो तूने इच्छानुसार मनमाना बर्ताव किया है, भगवान् श्रीकृष्ण सन्धिके लिये याचना करने आये थे, परंतु तूने मोहवश जो उनका भी तिरस्कार किया और बड़े हर्षमें भरकर उलूकके द्वारा जो हमें यह संदेश दिया था कि तुम मुझे और मेरे भाइयोंको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो, उसके अनुसार तुझ अहंकारी तथा सगे-सम्बन्धियों-सहित अवश्य मार डालूँगा। पहले तूने जो-जो पाप किये हैं, उन सबका बदला चुकाकर बराबर कर दूँगा' ॥ ६—८ ॥

एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चासकृत्।
समादाय शरान् घोरान् महाशनिसमप्रभान् ॥ ९ ॥

ऐसा कहकर भीमसेनने अपने भयंकर धनुषको बारंबार घुमाकर उसे खींचा और वज्रके समान तेजस्वी भयंकर बाणोंको उसपर रखा ॥ ९ ॥

षड्विंशतिमथ क्रुद्धो मुमोचाशु सुयोधने।
ज्वलिताग्निशिखाकारान् वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥ १० ॥

वे सीधे जानेवाले बाण वज्र तथा प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान जान पड़ते थे। उनकी संख्या छब्बीस थी। कुपित हुए भीमसेनने उन सबको शीघ्रतापूर्वक दुर्योधनपर छोड़ दिया ॥ १० ॥

ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे।
चतुर्भिरश्वाञ्जवनाननयद् यमसादनम् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् भीमसेनने दो बाणोंसे दुर्योधनका धनुष काट दिया, दोसे उसके सारथिको पीड़ित किया और चार

बाणोंसे उसके वेगशाली घोड़ोंको यमलोक भेज दिया ॥ ११ ॥

क्षुराभ्यां च सुविशिष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दनः ।
चाप चिच्छेद समरे राजसत्तस्य सत्तम ॥ १२ ॥

नरश्रेष्ठ ! फिर शत्रुमर्दन भीमने अनुपम धारवाले तीखे छोड़े हुए दो बाणोंद्वारा समरभूमिमें राजा दुर्योधनके धनुषको काट दिया ॥ १२ ॥

ध्वजमिषुं तथा चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम् ।
छित्त्वा तस्य महाशोभं पुत्रस्य पश्यतः ॥ १३ ॥

इसके बाद अपनी प्रभासे प्रकाशित होनेवाले उसके उत्तम ध्वजको दो बाणोंसे खण्डित कर दिया । आपके पुत्रके देखते-देखते उस ध्वजको काटकर भीमसेन उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगा ॥ १४ ॥

रथात्तस्य ध्वजः श्रीमान् नानारत्नविभूषितः ।
पपात सहसा भूमौ विद्युज्जलधरादिव ॥ १४ ॥

दुर्योधनके नाना रत्नविभूषित रथसे वह शोभाशाली ध्वज सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो मेघोंकी घटासे भूषित बिजली गिरी हो ॥ १४ ॥

ज्वलन्तं सूर्यसंकाशं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ १५ ॥

कुरुराज दुर्योधनके उस सूर्यके समान प्रकाशित नाग चिह्नित मणिमय सुन्दर ध्वजको कटकर गिरते समय समस्त राजाओंने देखा ॥ १५ ॥

अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।
आजघान रणे वीरः स्मयन्निव महारथः ॥ १६ ॥

इसके बाद महारथी भीमने मुसकराते हुए-से रणभूमिमें वीरवर दुर्योधनको दस बाणोंसे उसी तरह घायल किया जैसे महावत अङ्कुशोंसे महान् गजराजको पीड़ा देता है ॥

ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः ।
दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ १७ ॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ सिन्धुराज महारथी जयद्रथने कुछ सत्पुरुषोंके साथ आकर दुर्योधनके पृष्ठभागकी रक्षाका भार सँभाला ॥ १७ ॥

कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम् ।
आरोपयद् रथं राजन् दुर्योधनममर्षणम् ॥ १८ ॥

राजन् ! इसी प्रकार रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने अमर्षमें भरे हुए अमित तेजस्वी कुरुवंशी दुर्योधनको अपने रथपर चढ़ा लिया ॥ १८ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे ।
निषसाद रथोपस्थे राजन् दुर्योधनस्तदा ॥ १९ ॥

नरेश्वर ! भीमसेनने उस युद्धमें दुर्योधनको बहुत घायल कर दिया था । अतः उस समय वह व्यथासे व्याकुल होकर रथके पिछले भागमें जा बैठा ॥ १९ ॥

परिवार्य ततो भीमं जेतुकामा जयद्रथः ।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्याधात् दिशः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् जयद्रथने भीमसेनको जीतनेकी इच्छा रखकर कई हजार रथोंके द्वारा उन्हें घेर लिया और उनकी सम्पूर्ण दिशाओंको अवरुद्ध कर दिया ॥ २० ॥

धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान् ।
केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन् ॥ २१ ॥

महाराज ! तभी धृष्टकेतु, पराक्रमी अभिमन्यु, पाँच केकयराजकुमार तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र आपके पुत्रोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥

चित्रसेनं सुचित्रं च चित्राश्वं चित्रदर्शनम् ।
चारुचित्रं सुचारुं च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ २२ ॥
अष्टावेतान् महेष्वासान् सुकुमारान् यशस्विनः ।
अभिमन्युस्तु राजन् समन्तात् पर्यवारयत् ॥ २३ ॥

उस समय चित्रसेन, सुचित्र, चित्राश्व, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्द और उपनन्द इन आठ यशस्वी सुकुमार एवं महाधनुर्धर वीरोंको अभिमन्युने रथद्वारा चारों ओरसे घेर लिया ॥ २२-२३ ॥

आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महामनाः ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः शितैः सन्नतपर्वभिः ॥ २४ ॥

उस समय महामना अभिमन्युने तुरंत ही झुकी हुई गाँठवाले पाँच-पाँच तीखे बाणोंद्वारा प्रत्येकको बींध डाला ॥

वज्रमृत्युप्रतिमैर्विचित्रायुधनिःसृतैः ।
असहन्तस्तु ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम् ॥ २५ ॥
ववर्षुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाम्बुदाः ।

वे सभी बाण विचित्र धनुषद्वारा छोड़े गये थे और सब के सब वज्र एवं मृत्युके तुल्य भयंकर थे । उन बाणोंके आघातको आपके पुत्र सहन न कर सके । उन सबने मिलकर रथियोंमें श्रेष्ठ सुभद्राकुमार अभिमन्युपर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ की मानो बादल मेरुगिरिपर जलकी वर्षा कर रहे हों ॥ २६ ॥

स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ २६ ॥
अभिमन्युर्महाराज तावकान् समकम्पयत् ।
यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान् ॥ २७ ॥

महाराज ! अभिमन्यु अस्त्रविद्याका ज्ञाता और युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाला है । उसने समरभूमिमें बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी आपके सैनिकोंमें कँपकँपी उत्पन्न कर

थी। ठीक उसी तरह जैसे देवासुर संग्राममें वज्रधारी इन्द्र ने बड़े-बड़े असुरोंको भारत पीड़ित कर दिया था ॥ २६-२७ ॥

विकर्णस्य ततो भल्लान् प्रेषयामास भारत।
चतुरश्च रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ॥ २८ ॥
स तैर्विकर्णस्य रथात् पातयामास वीर्यवान्।
ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाहवे ॥ २९ ॥

भारत! तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी अभिमन्युने विकर्णके ऊपर विषधर सर्पोंके समान भयंकर भल्ल चलाये और उनके द्वारा विकर्णके रथसे उसके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको मार गिराया। उस समय वह युद्धमें नृत्य-सा कर रहा था ॥ २८-२९ ॥

पुनश्चान्यान् महाबाणान् पीतानकुण्ठाग्रान् शिलाशितान्।
प्रेषयामास सौभद्रो विकर्णाय महाबलः ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् उस महाबली वीरने अत्यन्त कुपित हो शान पर चढ़ाकर तेज किये हुए अकुण्ठित धारवाले बाण विकर्णपर चलाये ॥ ३० ॥

ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः।
भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ॥ ३१ ॥

उन बाणोंमें कंक और मोरके पंख लगे हुए थे। वे विकर्णके शरीरको विदीर्ण करके धरतीमें घुस गये और वहाँसे भी निकलकर प्रज्वलित सर्पोंकी भाँति दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ३१ ॥

ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले।
विकर्णरुधिरक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥ ३२ ॥

उन बाणोंके पुंख और अग्रभाग सुवर्णके थे। वे विकर्णके रुधिरसे भीगे हुए बाण पृथ्वीपर मानो रक्त वमन करते हुए-से दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ३२ ॥

विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवान्ये सहोदराः।
अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान् रथान् ॥ ३३ ॥

विकर्णको घायल हुआ देख उसके दूसरे भाइयोंने युद्धभूमिमें अभिमन्यु आदि रथियोंपर धावा किया ॥ ३३ ॥

अभियात्वा तथैवान्यान् स्यन्दनान् सूर्यवर्चसः।
अविध्यन् समरेऽन्योन्यं संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥ ३४ ॥

वे रण-दुर्मद युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। उन्होंने दूसरे-दूसरे रथियोंपर भी जो अभिमन्युकी ही भाँति सूर्यके समान तेजस्वी थे आक्रमण किया। फिर वे सब लोग क्रोधमें भरकर एक दूसरेको अपने बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ३४ ॥

दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३५ ॥

दुर्मुखने श्रुतकर्माको सात शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घायल करके एकसे उसका ध्वज काट डाला और सात बाणोंसे उसके सारथिको घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

अश्वाञ्जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान् वातरंहसः।
जघान षड्भिरासाद्य सारथिं चाभ्यपातयत् ॥ ३६ ॥

उसके घोड़े वायुके समान वेगशाली तथा सोनेकी जालीसे आच्छादित थे। दुर्मुखने उन घोड़ोंको छः बाणोंसे मार डाला और सारथिको भी रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ३६ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठञ्छ्रुतकर्मा महारथः।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३७ ॥

महारथी श्रुतकर्माने घोड़ोंके मारे जानेपर भी उसी रथपर खड़ा रह और अत्यन्त क्रोधमें भरकर उसने दुर्मुखपर प्रज्वलित उल्काके समान एक शक्ति चलायी ॥ ३७ ॥

सा दुर्मुखस्य विमलं वर्म भित्त्वा यशस्विनः।
विदार्य प्राविशद् भूमिं दीप्यमाना स्वतेजसा ॥ ३८ ॥

वह शक्ति अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थी। उसने यशस्वी दुर्मुखके चमकीले कवचको फाड़ डाला। फिर वह उसको चीरती हुई धरतीमें समा गयी ॥ ३८ ॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महाबलः।
पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत् स्वकम् ॥ ३९ ॥

महाबली सुतसोमने अपने भाई श्रुतकर्माको युद्धमें रथहीन हुआ देख सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उसे अपने रथपर चढ़ा लिया ॥ ३९ ॥

श्रुतकीर्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव।
अभ्ययात् समरे राजन् हन्तुकामो यशस्विनम् ॥ ४० ॥

राजन्! इसी प्रकार वीरवर श्रुतकीर्तिने कुरुभूमिमें आपके यशस्वी पुत्र जयत्सेनको मार डालनेकी इच्छासे उस पर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महात्मनः।
चिच्छेद समरे तूर्णं जयत्सेनः सुतस्तव ॥ ४१ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत।

भारत! श्रुतकीर्ति जब बड़े जोर-जोरसे धनुष खींचकर अपने विशाल धनुषकी गम्भीर टंकार फैला रहा था, उसी समय रणभूमिमें आपके पुत्र जयत्सेनने हँसते हुए-से एक तीखे क्षुरप्रद्वारा उसका धनुष काट दिया ॥ ४१½ ॥

तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ॥ ४२ ॥
अभ्यपतत तेजस्वी सिंहवन्निनदन् मुहुः।

अपने भाईका धनुष कटा हुआ देख तेजस्वी शतानीक बारम्बार सिंहके समान गर्जना करता हुआ वहाँ आ पहुँचा ॥ ४२½ ॥

शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ४३ ॥

विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः
ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः ॥ ४४ ॥

शतानीकने महासमरभूमिमें अपने धनुषको जोरसे खींचकर शीघ्रतापूर्वक दस बाण मारकर जयत्सेनको घायल कर दिया फिर उसने मदस्रावी गजराजके समान बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ४४ ॥

अथान्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् समस्त आवरणोंका भेदन करनेमें समर्थ दूसरे तीखे बाणद्वारा शतानीकने जयत्सेनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४५ ॥

तथा तस्मिन् वर्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके
चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४६ ॥

उसके इस प्रकार करनेपर अपने भाईके पास खड़ा हुआ दुष्कर्ण क्रोधसे व्याकुल हो उठा उसने समरभूमिमें नकुलपुत्र शतानीकका धनुष काट दिया ॥ ४६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय भारसाहमनुत्तमम्
समादत्त शरान् घोरान् शतानीको महाबलः ॥ ४७ ॥

तब महाबली शतानीकने भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा उत्तम धनुष लेकर उसपर भयंकर बाणोंका अनुसंधान किया ॥ ४७ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति चामन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः
मुमोचास्मै शितान् बाणाञ्ज्वलितान् पन्नगानिव ॥ ४८ ॥

फिर भाईके सामने दुष्कर्णसे 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहकर उसके ऊपर प्रज्वलित सर्पोंके समान तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥ ४८ ॥

ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष
विव्याध समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ४९ ॥

आर्य! तदनन्तर एक बाणसे उसके धनुषको काट दिया दो से उसके सारथिको घायल कर दिया और सात बाणोंसे उस युद्धस्थलमें स्वयं दुष्कर्णको भी तुरंत घायल कर दिया ॥ ४९ ॥

अश्वान् मनोजवांश्चास्य कल्माषान् वीतकल्मषः
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान् द्वादशभिः शरैः ॥ ५० ॥

दुष्कर्णके घोड़े मन और वायुके समान वेगशाली थे उनका रंग चितकबरा था शतानीकने बारह तीखे बाणोंसे उन सब घोड़ोंको भी तुरंत मार डाला ॥ ५० ॥

अथापरेण भल्लेन सुमुक्तेनाशुपातिना
दुष्कर्णं सुदृढं क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम् ॥ ५१ ॥
स पपात हतो भूमौ वज्राहत इव द्रुमः

तत्पश्चात् सबको शीघ्र गिरानेवाले एक दूसरे भल्ल नामक बाणका उत्तम रीतिसे प्रयोग करके क्रोधमें भरे हुए शतानीकने दुष्कर्णकी छातीमें अत्यन्त गहरा आघात किया इससे दुष्कर्ण वज्रके मारे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५१ ॥

दुष्कर्णं व्यथितं दृष्ट्वा पञ्च राजन् महारथाः ॥ ५२ ॥
जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्यवारयन्

राजन्! दुष्कर्णको मारा गया देख पाँच महारथियोंने शतानीकको मार डालनेकी इच्छासे उसे सब ओरसे घेर लिया ॥ ५२ ॥

छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम् ॥ ५३ ॥
अभ्यधावन्त संरब्धाः केकयाः पञ्च सोदराः

उनके बाणसमूहोंसे यशस्वी शतानीकको आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए पाँच भाई केकयराजकुमारोंने उन सबपर धावा किया ॥ ५३ ॥

तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः ॥ ५४ ॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज गजा इव महागजान्

महाराज! उन्हें आते देख आपके महारथी पुत्र उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े जैसे हाथी दूसरे हाथियोंसे भिड़नेके लिये आगे बढ़ते हैं ॥ ५४ ॥

दुर्मुखो दुर्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा ॥ ५५ ॥
शत्रुंजयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धा यशस्विनः
प्रत्युद्याता महाराज केकयान् भ्रातरः समम् ॥ ५६ ॥

नरेश्वर! दुर्मुख दुर्जय युवा वीर दुर्मर्षण शत्रुंजय तथा शत्रुसह—ये सब-के-सब यशस्वी वीर क्रोधमें भरकर पाँचों भाई केकयोंका सामना करनेके लिये एक साथ आगे बढ़े ॥ ५५-५६ ॥

रथैर्नगरसंकाशैर्हयैर्युक्तैर्मनोजवैः
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतैः ॥ ५७ ॥
वरचापधरा वीरा विचित्रकवचध्वजाः
विविशुस्ते परं सैन्यं सिंहा इव वनाद् वनम् ॥ ५८ ॥

उनके रथ नगरोंके समान प्रतीत होते थे उनमें मनके समान वेगशाली घोड़े जुते हुए थे नाना प्रकारके रंगवाली और विचित्र पताकाएँ उन्हें अलंकृत कर रही थीं उन रथोंपर आरूढ़ सुन्दर धनुष धारण किये विचित्र कवच और ध्वजोंसे सुशोभित उन वीरोंने शत्रुकी सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे सिंह एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करता है ॥ ५७-५८ ॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ५९ ॥

फिर तो एक दूसरेपर प्रहार करते हुए उन सभी महा-

रथियोंमें भयानक सघर्ष युद्ध होने लगा। रथोंसे रथ और हाथियोंसे हाथी भिड़ गये ॥ ५९ ॥

अन्योन्यमसकृद् राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ।
मुहूर्तात्समभिद्रुत्य बहुसंकुलं सुदारुणम् ॥ ६० ॥

राजन्! एक दूसरेपर प्रहार करनेवाले उन महारथियोंका वह युद्ध यमलोककी वृद्धि करनेवाला था। दो घड़ी बादतक उन सब वीरोंने बड़ा भयंकर युद्ध किया ॥

रथिनः सादिनश्चैव व्यवतिष्ठन्त सर्वशः ।
तत्र शान्तनवः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६१ ॥
पाण्डवानामसेनां तां भीष्मस्तेषां महात्मनाम् ।
पाञ्चालानां च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६२ ॥

उसमें रथी रथी और घुड़सवार सावधान होकर विचरते थे। तब शान्तनुनन्दन भीष्मने कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उन महामना वीरोंकी सेनाका विनाश कर डाला। पाञ्चालोंकी सेनाको तिनकी ही भाँति उन्होंने अपने बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया ॥ ६१-६२ ॥

वध भित्त्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृत्वावहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ॥ ६३ ॥

नरेश्वर! महाधनुर्धर भीष्म इस प्रकार पाण्डवसेनाका संहार करके अपनी समस्त सेनाओंको युद्धसे लौटाकर अपने शिविरको चले गये ॥ ६३ ॥

(भाराधयामासतुर्वीरौ धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
कौरवाणामनीकानि शरैः समन्ततोऽपि ॥)

इसी प्रकार धृष्टद्युम्न और भीमसेन—इन दोनों वीरोंने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा कौरवसेनाओंका विनाश कर डाला ॥

धर्मराजोऽपि सम्प्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय संहृष्टः शिबिरं ययौ ॥ ६४ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्न और भीमसेन दोनोंसे मिलकर उनका मस्तक सूँघा और बड़े हर्षके साथ अपने शिविरको प्रस्थान किया ॥ ६४ ॥

(नकुलो वासुदेवश्च कौरवाणामनीकिनीम् ।
हत्वा विसृज्य च शरैः शिबिरायैव जग्मतुः ॥)

नकुल और भगवान् श्रीकृष्ण भी कौरवसेनाको बाणोंद्वारा मारकर तथा रणभूमिसे लौटकर शिविरको ही चल दिये।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसावहारे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें छठे दिनके युद्धमें सेनाका शिविरको लौटना नामक उन्नासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ६६ श्लोक हैं)

अशीतितमोऽध्याय

भीष्मद्वारा दुर्योधनको आश्वासन तथा सातवें दिनके युद्धके लिये कौरवसेनाका प्रस्थान

सञ्जय उवाच

अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः ।
जग्मुः स्वशिबिराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! आपसमें एक दूसरेका अपराध करनेवाले वे सभी शूरवीर खूनसे लथपथ हो अपने शिविरोंको ही चले गये ॥ १ ॥

विश्रम्य च यथान्यायं पूजयित्वा परस्परम् ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त भूयो युद्धचिकीर्षया ॥ २ ॥

यथोचित विश्राम करके एक दूसरेकी प्रशंसा करते हुए वे लोग पुनः युद्ध करनेकी इच्छासे तैयार दिखायी देने लगे ॥ २ ॥

ततस्तव सुतो राजंश्चिन्तयाभिपरिप्लुतः ।
विस्रवच्छोणितक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम् ॥ ३ ॥

राजन्! तदनन्तर आपके पुत्र दुर्योधनने, जिसका शरीर बहते हुए रक्तसे भीगा हुआ था, चिन्तामग्न होकर पितामह भीष्मके पास जाकर इस प्रकार पूछा— ॥ ३ ॥

सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि
व्यूढानि सम्यग् बहुलध्वजानि ।
विदार्य हत्वा च निपीड्य शूरा-
स्ते पाण्डवानां त्वरिता महारथाः ॥ ४ ॥

दादाजी! हमारी सेनाएँ अत्यन्त भयंकर तथा रौद्ररूप धारण करनेवाली हैं। उनकी व्यूहरचना भी अच्छे ढंगसे की जाती है। इन सेनाओंमें ध्वजोंकी संख्या बहुत अधिक है। तथापि शूरवीर पाण्डव महारथी उनमें प्रवेश करके तुरंत हमारे सैनिकोंको विदीर्ण करते, मारते और पीड़ा देकर चले जाते हैं ॥ ४ ॥

सम्मोह्य सर्वान् युधि कीर्तिमन्तो
व्यूहं च तं मकरं वज्रकल्पम् ।

प्रविश्य भीमेन रणे हुतेऽस्मि
घोरे ह्यनीकं सुमहत्प्रमथ्य ।

युद्धमें भाइयोंको हताहत करके अपनी भारी सेनाका विनाश कराते देखिये भीमसेनने वज्रके समान दुर्भेद्य मत व्यूहमें प्रवेश करके मृत्युतुल्य भयंकर व्यूहोंद्वारा मुझे युद्धस्थलमें मार डाला है ॥

कुरुष्व नस्त्वं रिपुघ्न भयेश राजन्
स्वस्थो भविष्ये न लभे हि शान्तिमद्य ।
इच्छे प्रसादात् तव सत्यसंध
प्राप्तुं जयं पाण्डवेयान् प्रहन्तुम् ॥

राजन् भीष्मजी! दुर्योधन बोले—मैं भयसे व्याकुल हो गया हूँ, आज मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। सत्यप्रतिज्ञ पितामह! मैं आपकी कृपासे पाण्डवोंको हराना और उनपर विजय पाना चाहता हूँ ॥

तेनैवमुक्तः प्रहसन् महात्मा
दुर्योधनं मन्युगतं विदित्वा ।
तं प्रत्युवाचाविमना मनस्वी
गङ्गासुतः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ७ ॥

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर और उसे क्रोधमें भरा हुआ जानकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ मनस्वी महात्मा गङ्गानन्दन भीष्मने धीर-चित्तसे हँसते हुए प्रसन्न मनसे उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥



बलेन सर्वेण विगाह्य सेनां
सर्वात्मना तव राजपुत्र ।
इच्छामि दातुं विजयं सुखं च
न चात्मानं छादयेऽहं त्वदर्थे ॥ ८ ॥

राजकुमार! मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर महान् प्रयत्नके साथ पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके तुम्हें विजय और सुख देना चाहता हूँ। तुम्हारे लिये अपने आपको छिपाकर नहीं रखता हूँ ॥

एते तु रौद्रा बहवो महात्मा
यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः ।
ये पाण्डवानां समरे सहायाः
जितक्लमा रोषविषं वमन्ति ॥ ९ ॥

ये जो समरभूमिमें पाण्डवोंके सहायक हुए हैं, उनमें बहुत-से महारथी और अत्यन्त भयंकर, परम शौर्यसम्पन्न, अस्त्रविद्याके विद्वान् तथा यशस्वी हैं। इन्होंने थकावटको जीत लिया है और ये इस समय रोषरूपी विष उगल रहे हैं ॥

ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं
वीर्योन्नताः कृतवैरास्त्वया च ।
अहं ह्येतान् प्रतियोत्स्यामि राजन्
सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर ॥ १० ॥

बल-पराक्रममें बढ़े-चढ़े और तुम्हारे साथ वैर बाँधे हुए हैं, इन्हें सहसा पराजित नहीं किया जा सकता है। राजन्! वीरवर! मैं पूर्ण शक्तिसे अपने प्राणोंकी परवा छोड़कर पाण्डवोंकी सेनाके साथ युद्ध करूँगा ॥

रणे तवार्थाय महानुभाव
न जीवितं रक्ष्यतमं ममाद्य ।
सर्वांस्तवार्थाय सदेवदैत्यान्
लोकान् दहेयं किमु शात्रवांस्तान् ॥ ११ ॥

महानुभाव! तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये आज युद्धमें मुझे अपने जीवनकी रक्षा भी अत्यन्त आवश्यक नहीं जान पड़ती है। मैं तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये देवताओं सहित समस्त लोकोंको भी दग्ध कर सकता हूँ; फिर शत्रुओंकी तो बात ही क्या है ॥

तान् पाण्डवान् योधयिष्यामि राजन्
प्रियं च ते सर्वमहं करिष्ये ।
श्रुत्वैव चैतत् परमं तदानीं
दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥ १२ ॥

राजन्! मैं उन पाण्डवोंसे युद्ध करूँगा और तुम्हारा सम्पूर्ण प्रिय कार्य सिद्ध करूँगा। उस समय भीष्मजीकी यह बात सुनते ही दुर्योधनका मन प्रसन्न हो गया ॥

सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो
निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान् ।
तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्राग्
रथाश्वपादातगजायुतानि ॥ १३ ॥

तदनन्तर दुर्योधनने हर्षमें भरकर सम्पूर्ण राजाओं तथा सारी सेनाओंसे कहा—युद्धके लिये निकलो। राजा दुर्योधनकी आज्ञा पाकर सहस्रों हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथोंसे भरी हुई वे सारी सेनाएँ तुरंत रणभूमिके लिये प्रस्थित हुईं ॥ १३ ॥

महार्हरूपाणि तु तानि राजन्
महान्ति नानाविधशस्त्रवन्ति।
विरेजुराजौ नानाव्यवसितानि
विरेजुराजौ तव राजन् बलानि ॥ १५ ॥

महाराज! आपके व विराट ... नाना ... अत्यन्त सम्पन्न हो अत्यन्त ... उसमें भरी हुई थीं ... हाथी और पैदलोंके युद्धमें ... गर्जना करती हुई उन सेनाओंकी बड़ी शोभा होती थी ॥ १५ ॥

शशाङ्कविच्छिन्नदीप्ताः
ध्वजिनी सुवर्णचित्रकवचा ...
रथौघपदातशताश्वमत्ता
प्रयाति राजी विविधाम् तनुर्ना ॥ १६ ॥

समुत्क्षिप्त ... नरवाजिवर्णाः
रजो ... सुपरस्मीन्
रेजु ... पताका ... स्फर्श ...
वातेरिता ... समन्तात् ॥ १७ ॥

आपके सैनिकोंके ... और ... पैदल, हाथी और ... युद्ध ... उठी हुई धूल ... आच्छादित करके ... होने लगी ... और हाथियोंपर ... पताकाएँ ... की शोभा पा रही थीं ॥ १६-१७ ॥

भागराज ... तत्र राजन्
मेघौघजाल विपुल ...
धनूषि विचित्राणि सुसम्प्रयुक्ता
... समन्तात् ॥ १८ ॥

राजन्! ... आकाशमें ... बादलोंकी ... समान ... दिखायी देते ... उनके ... सुन्दर ... थे ॥ १८ ॥

धनूंषि विस्फार्यतां नृपाणां
बभूव शब्दस्तुमुलोऽतिघोरः।
विमर्दतां ...
... महारथिनाम् ॥ १९ ॥

उस समय ... में ... और ... धनुषोंकी टंकारसे ... युद्धस्थलमें ... भयंकर शब्द हो रहा था ॥ १९ ॥

नदद्भिरत्यर्थं बहुलप्रवर्षैः
... समुद्रैः
बभूव सैन्यं रिपुसैन्यघातम्
युगान्तकालोपधिनिभं नदन्तीम् ॥ २० ॥

राजन्! ... और ... नाना ... उनका ... उस ... युद्ध ... प्रतीत होती थी ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म-दुर्योधन संवादविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

सातवें दिनके युद्धमें कौरव पाण्डव सेनाओंका मण्डल और वज्रव्यूह बनाकर भीषण संघर्ष

सञ्जय उवाच

स्थाप्यमास तव पुत्राणां व्यूहमतिविशालम्
मण्डलं भरतश्रेष्ठ ... ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! ... आपके पुत्रके ... विशाल ... मण्डलव्यूह ... रचना की ॥ १ ॥

अथ द्रोणश्च शल्यश्च कृतवर्मा च सात्वतः
... सौबलः ॥ २ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लीकः सह बाह्लिकैः
त्रिगर्तराजो बलवान् मागधश्च सुदुर्जयः ॥ ३ ॥

बृहद्बलश्च कौसल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः
रथाश्च बहुसाहस्राः शोभमाना महाध्वजाः ॥ ४ ॥
... हया राजन् ...
गजेन्द्राश्च महाबलाः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥ ५ ॥
पादाताश्च तथा शूरा ...
नानादेशसमुत्पन्नास्तत्र ... योद्धुमुद्यताः ॥ ६ ॥

राजन्! ... द्रोणाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, ... अश्वत्थामा, विकर्ण, ... शकुनि, अवन्ति देशके ... विन्द-अनुविन्द, ... बाह्लीक ... बाह्लीकवंशी ... त्रिगर्तराज ... मगध ...

एवं कोमलरथैर्युक्त, विचित्र विविधरूप तथा विशाल ध्वजाओंवाले परम सुन्दर दस हजार रथ, युद्धस्थलमें देखे जानेवाले मदकी धारा बहानेवाले मदोन्मत्त गजराज और भाँति-भाँतिके आयुध एवं ध्वज धारण करनेवाले विभिन्न देशोंके शूरवीर पैदल सैनिक तुम्हारे लिये युद्ध करनेको उद्यत हैं ॥ ६ ॥

एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ।
देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः ॥ ७ ॥

ये तथा और भी बहुत-से वीर सैनिक हैं, जिन्होंने तुम्हारे लिये अपना जीवन निछावर कर दिया है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि ये सब मिलकर युद्धभूमिमें देवताओंको भी जीतनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥

अवश्यं हि मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा ।
अशक्या पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ८ ॥

राजन्! मुझे सदा तुम्हारे हितकी बात बतानी चाहिये, इसीलिये कहता हूँ, पाण्डवोंको इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी जीत नहीं सकते ॥ ८ ॥

वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः ।
सर्वथाहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव ॥ ९ ॥

राजेन्द्र! एक तो वे स्वयं इन्द्रके समान पराक्रमी हैं, दूसरे भगवान् श्रीकृष्ण उनके सहायक हैं। (अतः उन्हें जीतना असम्भव है तथापि) मैं सर्वथा तुम्हारे वचनका पालन करूँगा ॥ ९ ॥

पाण्डवान् समरे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः ।
एवमुक्त्वा ददावस्मै विशल्यकरणीं शुभाम् ॥ १० ॥
ओषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाभवत् तदा ।

पाण्डवोंको मैं युद्धमें जीतूँगा अथवा पाण्डव ही मुझे पराजित कर देंगे। ऐसा कहकर भीष्मजीने दुर्योधनको विशल्यकरणी नामक शुभ एवं शक्तिशालिनी ओषधि प्रदान की। उस समय उसके प्रभावसे दुर्योधनके शरीरसे लगे हुए बाण आघातोंसे निकल गये और वह आघातजनित पीड़ासे मुक्त हो गया ॥ १० ॥

ततः प्रभाते विमले स्वेनानीकेन वीर्यवान् ॥ ११ ॥
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः ।
मण्डलं मनुजश्रेष्ठो नानाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें व्यूहविशारद नरश्रेष्ठ बलवान् भीष्मने अपनी सेनाके द्वारा स्वयं ही मण्डल नामक व्यूहका निर्माण किया, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न था ॥ ११-१२ ॥

सम्पूर्णं योधमुख्यैश्च तथा दन्तिपदातिभिः ।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् परिवारितम् ॥ १३ ॥

वह व्यूह हाथी और पैदल आदि मुख्य-मुख्य योद्धाओंसे भरा हुआ था। कई सहस्र रथोंने उसे सब ओरसे घेर रखा था ॥ १३ ॥

अश्ववृन्दैर्महद्भिश्च ऋष्टितोमरधारिभिः ।
नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाश्वा रथे रथे ॥ १४ ॥
अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः ।

यह व्यूह ऋष्टि और तोमर धारण करनेवाले अश्वारोहियोंके महान् समुदायसे भरा था। एक-एक हाथीके पीछे सात-सात रथ, एक-एक रथके साथ सात-सात घुड़सवार, एक-एक घुड़सवारके पीछे दस-दस धनुर्धर और एक-एक धनुर्धरके साथ दस-दस ढाल लिये रहनेवाले योद्धा खड़े थे ॥ १४½ ॥

एवं व्यूहं महाराज तव सैन्यं महारथैः ॥ १५ ॥
स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम् ।

महाराज! इस प्रकार महारथियों द्वारा व्यूहबद्ध होकर आपकी सेना महायुद्धके लिये खड़ी थी और भीष्म युद्धस्थलमें उसकी रक्षा करते थे ॥ १५½ ॥

दशाश्वानां सहस्राणि दन्तिनां च तथैव च ॥ १६ ॥
रथानामयुतं चापि पुत्राश्च तव दंशिताः ।
चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन् पितामहम् ॥ १७ ॥

उसमें दस हजार घोड़े, उतने ही हाथी और दस हजार रथ तथा आपके चित्रसेन आदि शूरवीर पुत्र कवच धारण करके पितामह भीष्मकी रक्षा कर रहे थे ॥ १६-१७ ॥

रक्ष्यमाणश्च तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥ १८ ॥

उन वीरोंसे भीष्म सुरक्षित थे और भीष्मसे उन सबकी रक्षा हो रही थी। वहाँ कवच आदिसे सुसज्जित महाबली नरेश युद्धके लिये तैयार दिखायी देते थे ॥ १८ ॥

दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः ।
व्यभ्राजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ १९ ॥

कवचधारी राजा दुर्योधन भी युद्धस्थलमें रथपर आरूढ़ हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो देवराज इन्द्र स्वर्गमें अपनी दिव्य प्रभासे प्रकाशित हो रहे हों ॥ १९ ॥

ततः शब्दो महानासीत् पुत्राणां तव भारत ।
रथघोषश्च विपुलो वादित्राणां च निःस्वनः ॥ २० ॥

भारत! तदनन्तर आपके पुत्रोंका महान् सिंहनाद सुनायी देने लगा। साथ ही रथों और बाजोंका गम्भीर घोष भी गूँज उठा ॥ २० ॥

भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ।
मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातिनाम् ॥ २१ ॥

भीष्मने युद्धस्थलमें कौरव सैनिकोंका सागरसदृश व्यूह बनाया था। वह सागर-सदृश महाव्यूह दुर्भेद्य होनेके साथ ही शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था ॥ २१ ॥

संयत्तं कुरुमुख्येन गाङ्गेयेनाभिरक्षितम् ।
भयदं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम् ॥ २२ ॥
स्वयं युधिष्ठिरो राजा पार्थ्यं व्यूहमथाकरोत् ।

राजन्! उस रणभूमिमें नर और उन गूढ़ोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्जय था। कौरवोंके परम दुर्जय महाव्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने स्वयं अपनी सेनाके लिये शृङ्गाटकव्यूहका निर्माण किया ॥ २२ ॥

तथा व्यूहेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः ॥ २३ ॥
रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथाकरन् ।

इस प्रकार दोनों ओरकी व्यूहरचना हो जानेपर यथास्थान खड़े हुए रथी और घुड़सवार आदि सब योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ २३ ॥

बिभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २४ ॥
इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः ।

तदनन्तर प्रहार करनेमें कुशल शूरवीर सैनिक एक दूसरेके व्यूहको तोड़ने और परस्पर युद्ध करनेकी इच्छासे सेनासहित आगे बढ़े ॥ २४ ॥

भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रोणिश्चापि शिखण्डिनम् ॥ २५ ॥
स्वयं दुर्योधनो राजा पार्षतं समुपाद्रवत् ।

द्रोणाचार्यने विराटपर और अश्वत्थामाने शिखण्डीपर धावा किया। स्वयं राजा दुर्योधनने द्रुपदपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

नकुलः सहदेवश्च मद्रराजमभीयतुः ॥ २६ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्तमभिद्रुतौ ।

नकुल और सहदेवने अपने मामा मद्रराज शल्यपर धावा किया। अवन्तीके विन्द और अनुविन्दने इरावान्‌पर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

सर्वे नृपास्तु समरे फाल्गुनं प्रत्ययोधयन् ॥ २७ ॥
भीमसेनो रणे यत्तो हार्दिक्यं समुपाद्रवत् ।

समस्त राजाओंने समरभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध किया। भीमसेनने युद्धमें प्रयत्नशील हो कृतवर्मापर आक्रमण किया ॥ २७ ॥

चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभुः ॥ २८ ॥
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत् ।

राजन्! शक्तिशाली अर्जुनकुमार अभिमन्युने समरभूमिमें आपके तीन पुत्र चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षणके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ २८½ ॥

प्राग्ज्योतिषं महेष्वासं हैडिम्बो राक्षसोत्तमः ॥ २९ ॥
अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।

महाधनुर्धर प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तपर हिडिम्बाकुमार राक्षसराज घटोत्कचने बड़े वेगसे आक्रमण किया, मानो एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीपर टूट पड़ा हो ॥ २९ ॥

अलम्बुषस्ततो राजन् सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३० ॥
ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत् ।

राजन्! फिर राक्षस अलम्बुषने युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले सेनासहित सात्यकिपर क्रोधपूर्वक धावा किया ॥ ३० ॥

भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत् ॥ ३१ ॥
श्रुतायुषं तु राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

भूरिश्रवाने रणभूमिमें यत्नपूर्वक धृष्टकेतुके साथ युद्ध छेड़ दिया। धर्मपुत्र युधिष्ठिरने राजा श्रुतायुपर धावा किया ॥ ३१ ॥

चेकितानस्तु समरे कृपमेवान्वयोधयत् ॥ ३२ ॥
शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम् ।

चेकितानने समरमें कृपाचार्यके ही साथ युद्ध छेड़ दिया। शेष योद्धा प्रयत्नपूर्वक महारथी भीष्मका ही सामना करने लगे ॥ ३२ ॥

ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनंजयम् ॥ ३३ ॥
शक्तितोमरनाराचगदापरिघपाणयः ।

तदनन्तर उन राजसमूहोंने कुन्तीपुत्र धनंजयको सब ओरसे घेर लिया। उन सबके हाथोंमें शक्ति, तोमर, नाराच, गदा और परिघ आदि आयुध शोभा पा रहे थे ॥ ३३½ ॥

अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३५ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर वृष्णिनन्दन श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'माधव! युद्धस्थलमें दुर्योधनकी इन सेनाओंको देखिये, व्यूहविद्याके विद्वान् महात्मा गङ्गानन्दनने इनका व्यूह रचा है ॥ ३४-३५ ॥

युद्धाभिकामान् शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥ ३६ ॥

माधव! युद्धकी इच्छा रखनेवाले और कवच धारण करके आये हुए इन शूरवीरोंको देखिये। केशव! भाइयोंसहित इन त्रिगर्तराजको देखिये ॥ ३६ ॥

अद्यैतान् पातयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३७ ॥

जनार्दन! यदुश्रेष्ठ! ये जो रणाङ्गणमें मुझसे युद्ध करना चाहते हैं, मैं इन सबको आज आपके देखते-देखते नष्ट कर दूँगा' ॥ ३७ ॥

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान् प्रति ॥ ३८ ॥

तथा उन्होंने कुपित होकर अर्जुनके ऊपर उनको प्रत्यकार हाथ पग और सिरपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३८ ॥

तेऽपि न समन्ततः शरवर्षैरपूरयन् ।
उद्यम्य पारिवाराभिरपि ... ॥ ३९ ॥

जैसे बादल वर्षा ऋतुमें जलकी धारा बरसाते हैं, उसी प्रकार वे महारथी ... अर्जुनका ... ॥ ३९ ॥

ततस्तद्बाणवर्षं महानामीत् तथा तस्य विशाम्पते ।
आयमाने रणे कृष्णे शरद्वृष्टौ महात्मने ॥ ४० ॥

प्रजानाथ! उन महापुरुषोंने श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे आच्छादित कर दिया, उसका ... बड़ा ... हो गया ॥ ४० ॥

देवा देवगन्धर्वाश्च गन्धर्वाश्च महोरगाः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथागतौ ॥ ४१ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस अवस्थामें देखकर देवताओं, देवर्षियों, गन्धर्वों और नागोंको महान् आश्चर्य हुआ ॥ ४१ ॥

ततः कृष्णार्जुनौ राजन् शङ्खौ प्रदध्मतुर्वरौ ।
तथा ... विजयस्य पराक्रमम् ॥ ४२ ॥

राजन्! तब अर्जुनने कुपित होकर ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया। उस समय हमलोगोंने अर्जुनका अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ४२ ॥

शस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यद्व्यवारयत् ।
न च तत्रास्त्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद् विशाम्पते ॥ ४३ ॥

उन्होंने अपने बाणसमूहोंद्वारा शत्रुओंकी की हुई बाण-वर्षाको रोक दिया। महाराज! उस समय वहाँ कोई भी योद्धा ऐसा नहीं रह गया था जो उनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न न हो गया हो ॥ ४३ ॥

तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा ।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चान्यान् पार्थो विव्याध मारिष ॥ ४४ ॥

आर्य! कुन्तीकुमार अर्जुनने उन सहस्रों राजाओं, घोड़ों तथा हाथियोंमेंसे किन्हींको दो और किन्हींको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४४ ॥

ते हन्यमानाः पार्थेन भीष्मं शान्तनवं ययुः ।
अगाधे मज्जमानानां भीष्मः ... तदा ॥ ४५ ॥

अर्जुनकी मार खाकर वे सब-के-सब शान्तनुनन्दन भीष्मकी शरणमें गये। उस समय अगाध विपत्ति समुद्रमें डूबते हुए सैनिकोंके लिये भीष्म नौका बन गये ॥ ४५ ॥

आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम् ।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः ॥ ४६ ॥

महाराज! वहाँ आते हुए उन भागे हुए सैनिकोंसे आपकी सेनाका व्यूह भङ्ग हो गया और वह आँधीसे विक्षुब्ध हुए महासागरकी भाँति विक्षुब्ध हो उठी ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनसे डरकर कौरवसेनाका भागना, द्रोणाचार्य और विराटका युद्ध, विराटपुत्र शङ्खका वध, शिखण्डी और अश्वत्थामाका युद्ध, सात्यकि द्वारा अलम्बुषकी पराजय, धृष्टद्युम्नके द्वारा दुर्योधनकी हार तथा भीमसेन और कृतवर्माका युद्ध

सञ्जय उवाच

तथा प्रयाते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि ।
भग्नेषु चापि वीरेषु पाण्डवेन महात्मना ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार संग्राम आरम्भ होनेपर महात्मा पाण्डुनन्दन अर्जुनसे पराजित हो सुशर्मा युद्धभूमिसे दूर हो गया और अन्यान्य वीर भी भाग खड़े हुए ॥ १ ॥

क्षुभ्यमाणे बले तूर्णं सागरप्रतिमे तव ।
प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥ २ ॥

आपकी समुद्र-जैसी विशाल वाहिनीमें हलचल मच गयी। उस समय गङ्गानन्दन भीष्मने शीघ्रतापूर्वक अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वास्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥

राजा दुर्योधनने रणभूमिमें अर्जुनका पराक्रम देखकर बड़ी उतावलीके साथ निकट जा उन सब राजाओंसे कहा ॥ ३ ॥

तेषां तु प्रमुखे शूरं युध्यमानं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४ ॥

उन योद्धाओंके सम्मुख सारी सेनाके बीचमें शूरवीर महाबली युद्धपरायण भीष्मको अत्यन्त हर्ष प्रदान करता हुआ सा दुर्योधन यों बोला— ॥ ४ ॥

एष भीष्मः शान्तनवो खेदयन्मे धनञ्जयम्।
सर्वांस्तान् कुरुशार्दूलस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५ ॥

प्यारे ! ये शान्तनुनन्दन कुरुश्रेष्ठ भीष्म अपना जीवन निछावर करके सम्पूर्ण पाण्डव अर्जुन आदि सब युद्ध करना चाहते हैं ।५।

स प्रयातु रथो वीर सर्वसैन्येन भारतम्।
समयात् समरे सर्वे शान्तनवं पितामहम् ॥ ६ ॥

सारी सेनाके साथ युद्धके लिये यात्रा करते हुए वीर पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजी आप सब लोग मुकाबला करें ।६।

पार्थस्तिग्मरथमुख्याय तु ताः सर्वाश्चापि चमूस्तदा।
सरोषमभ्यगाद् राजन् शान्तनवं पितामहम् ॥ ७ ॥

महाराज ! बहुत अच्छा कहकर राजाओंकी वे समस्त सेनाएँ पितामह भीष्मके पास गयीं ।७।

ततः प्रयात स्वहस्ते भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम्।
रणे भारतमायान्तमासमसाद महाबलः ॥ ८ ॥

तदनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म युद्धभूमिमें महाबली अर्जुनके सामने गये। भरतवंशी भीष्मको आते देख महाबली अर्जुन उनके पास जा पहुँचे ॥ ८ ॥

महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना।
महता मेघनादेन रथेनातिविराजता ॥ ९ ॥

वे जिस रथपर आरूढ़ थे। उसमें बड़े-बड़े श्वेत अश्व जुते हुए थे। उसके रथपर भयंकर वानरसे उपलक्षित ध्वज फहरा रहा था और उसका घर्घराहट मेघके समान गम्भीर शब्द हो रहा था।

समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम्।
अभवत् तुमुलो नादो भयाद् दृष्ट्वा किरीटिनम् ॥ १० ॥

किरीटधारी अर्जुनको युद्धमें समीप आता देख आपकी सारी समस्त सेनाओंके मुखसे भयानक हाहाकार प्रकट होने लगा। ॥

अभीषुहस्तं कृष्णं च दृष्ट्वाऽऽदित्यमिवापरम्।
मध्यंदिनगतं संख्ये न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ११ ॥

हाथमें बागडोर लिये मध्याह्नकालके दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको युद्धभूमिमें उपस्थित देख कौरव सैनिक उन्हें भर आँख देख भी न सके ॥ ११ ॥

तथा शान्तनवं भीष्मं श्वेताश्वं श्वेतकार्मुकम्।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं श्वेतं ग्रहमिवोदितम् ॥ १२ ॥

इसी प्रकार श्वेत घोड़ों तथा श्वेत धनुषवाले शान्तनुनन्दन भीष्मको श्वेत ग्रहके समान उदित देख पाण्डव-सैनिक उनकी ओर न देख सके ॥ १२ ॥

स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः सुमहात्मभिः।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च तथान्यैश्च महारथैः ॥ १३ ॥

महात्मा त्रिगर्तोंने भाई-भाइयों, पुत्रों तथा अन्य महारथियोंके साथ संगठित होकर भीष्मको सब ओरसे घेर रक्खा था ।१३।

भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा।
ध्वजं चास्य शरेणाजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे ॥ १४ ॥

दूसरी ओर द्रोणाचार्यने मत्स्यराज विराटको युद्धमें एक बाणसे बींध डाला तथा एक बाणसे उनका ध्वज और एकसे धनुष काट डाला ॥ १४ ।

तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनीपतिः।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम् ॥ १५ ॥

सेनापति विराटने वह कटा हुआ धनुष फेंककर बड़े वेगसे दूसरा सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया, जो भार सहन करनेमें समर्थ था । १५ ।

शरांश्चाशीविषाकारान् ज्वलितान् पन्नगानिव।
द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ॥ १६ ॥

उन्होंने उसके द्वारा प्रज्वलित सर्पोंकी भाँति विषैले नागोंकी-सी आकृतिवाले बाण लेकर तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यको और चार बाणोंसे उनके घोड़ोंको बींध डाला ।१६।

ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य पञ्चभिः।
धनुरेकेषुणाविध्यत् तत्राक्रुध्यद् द्विजर्षभः ॥ १७ ॥

फिर एक बाणसे ध्वजको, पाँच बाणोंसे सारथिको और एकसे धनुषको बींध डाला। इससे द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको बड़ा क्रोध हुआ ।१७।

तस्य द्रोणोऽवधीदश्वाञ्छरैः संनतपर्वभिः।
अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर द्रोणने झुकी हुई गाँठवाले आठ बाणोंद्वारा विराटके घोड़ोंको और एक बाणसे सारथिको मार डाला ॥

स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः।
आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः ॥ १९ ॥

सारथि और घोड़ोंके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ विराट अपने रथसे तुरंत कूद पड़े और पुत्रके रथपर आरूढ़ हो गए। १९ ।

ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥ २० ॥

अब उन दोनों पिता-पुत्रोंने एक ही रथपर बैठकर महान् बाणवर्षाके द्वारा द्रोणाचार्यको बलपूर्वक आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २० ॥

भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम्।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वर ॥ २१ ॥

राजन्! तब द्रोणाचार्यने कुपित होकर युद्धभूमिमें विषधर सर्पके समान एक भयंकर बाण शङ्खपर शीघ्रतापूर्वक चलाया॥ २१ ॥

स गत्वा हृदयं भित्त्वा पीत्वा शोणितमाहवे।
जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रो रणच्छदः ॥ २२ ॥

वह बाण शङ्खकी छाती छेदकर रणभूमिमें उसका रक्त पीकर धरतीमें समा गया। उस समय वह बाण खूनसे भीगकर लाल हो रहा था॥ २२ ॥

स पपात रथात् तूर्णं भारद्वाजशराहतः।
धनुरुत्सृज्य बाणांश्च पितुरेव समीपतः ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यके बाणोंसे आहत होकर शङ्ख पिताके पास ही धनुष-बाण छोड़कर तुरंत ही रणभूमिमें गिर पड़ा॥ २३ ॥

हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद् भयात्।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ २४ ॥

अपने पुत्रको मारा गया देख मुँह बाये हुए कालके समान भयंकर द्रोणाचार्यको समरभूमिमें छोड़कर विराट भयके मारे भाग गये॥ २४ ॥

भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम्।
व्यधमत् समरे राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥

तब द्रोणाचार्यने रणभूमिमें तुरंत ही पाण्डवोंकी विशाल वाहिनीको विदीर्ण करना आरम्भ किया। सैकड़ों-हजारों वीर धराशायी हो गये॥ २५ ॥

शिखण्डी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैराशुगैस्त्रिभिः ॥ २६ ॥

महाराज! दूसरी ओर शिखण्डीने युद्धभूमिमें अश्वत्थामाके पास पहुँचकर तीन शीघ्रगामी नाराचोंद्वारा उसकी भौंहोंके मध्यभागमें आघात किया॥ २६ ॥

स बभौ रथशार्दूलो ललाटगतैस्त्रिभिः।
शिखरैः काञ्चनमयैर्मेरुस्त्रिभिरिवोच्छ्रितैः ॥ २७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा ललाटमें लगे हुए उन तीनों बाणोंके द्वारा तीन ऊँचे सुवर्णमय शिखरोंसे युक्त मेरुपर्वतके समान शोभा पाने लगा॥ २७ ॥

अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमेषार्धाच्छिखण्डिनः।
सूतं ध्वजमथो राजंस्तुरगानायुधानि च ॥ २८ ॥
शरैर्बहुभिरुद्दिश्य पातयामास संयुगे।

राजन्! तदनन्तर क्रोधमें भरे अश्वत्थामाने आधे निमेषमें बहुत-से बाणोंद्वारा शिखण्डीके ध्वज, सारथि, घोड़ों और अस्त्रोंको रणभूमिमें काट गिराया॥ २८½ ॥

स हताश्वाद् रथात् तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमः ॥ २९ ॥
खड्गमादाय सुशितं विमलं च शरावरम्।
श्येनवद् व्यचरत् क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः ॥ ३० ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुतापन शिखण्डी घोड़ोंके मारे जानेपर उस रथसे तुरंत कूद पड़ा और तीखी एवं चमचमाती तलवार और ढाल लेकर कुपित हुए बाज पक्षीकी भाँति सब ओर विचरने लगा॥ २९-३० ॥

सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे।
नान्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३१ ॥

महाराज! तलवार लेकर युद्धमें विचरते हुए शिखण्डीका कोई भी छिद्र अश्वत्थामाको नहीं दिखायी दिया। वह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ ३१ ॥

ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ।
प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब परम क्रोधी अश्वत्थामाने समरभूमिमें शिखण्डीपर कई हजार बाणोंकी वर्षा की॥ ३२ ॥

तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम्।
असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनां वरः ॥ ३३ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीने समरभूमिमें होनेवाली उस अत्यन्त भयंकर बाण-वर्षाको तीखी धारवाली तलवारसे काट डाला॥ ३३ ॥

ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम्।
चर्माच्छिनदसिं चास्य खण्डयामास संयुगे ॥ ३४ ॥

तब अश्वत्थामाने सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित शिखण्डीकी परम सुन्दर ढाल और चमकीली तलवारको युद्धस्थलमें टूक-टूक कर दिया॥ ३४ ॥

शितैस्तु बहुशो राजंस्तं च विव्याध पत्रिभिः।
शिखण्डी तु ततस्तस्य खड्गमाविध्य सायकैः ॥ ३५ ॥
आविध्य व्यसृजत् तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम्।
तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम् ॥ ३६ ॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम्।
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः ॥ ३७ ॥

राजन्! तत्पश्चात् पंखयुक्त तीखे बाणोंद्वारा शिखण्डीको भी बहुत घायल कर दिया। अश्वत्थामाद्वारा सायकोंकी मारसे खण्डित किये हुए उस तलवारको शिखण्डीने घुमाकर तुरंत ही उसके ऊपर फेंक दिया। वह खड्ग प्रज्वलित सर्पके समान प्रकाशित हो उठा। अपने ऊपर आते हुए प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी उस खड्गको अश्वत्थामाने युद्धमें अपना हस्तलाघव दिखाते हुए सहसा काट डाला। तत्पश्चात्

बहुत-से तीखे बाणोंद्वारा उसने शिखण्डीको भी घायल कर दिया ॥ ३६—३७ ॥

शिखण्डी तु भृशं राजन् वध्यमानः शितैः शरैः ।
अपाक्रामद् रणं तूर्णं सात्यकिस्तु महात्मनः ॥ ३८ ॥

राजन्! अश्वत्थामाके तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर शिखण्डी तुरंत ही महात्मा सात्यकिके रथपर चला गया ॥

सात्यकिश्चापि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः ॥ ३९ ॥

इधर बलवानोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने भी अत्यन्त कुपित होकर अपने तीखे बाणोंद्वारा युद्धभूमिमें क्रूर राक्षस अलम्बुषको बींध डाला ॥ ३९ ॥

राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत ।
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः ॥ ४० ॥

भारत! तब राक्षसराज अलम्बुषने रणभूमिमें अर्धचन्द्र बाणसे सात्यकिके धनुषको काट दिया और उनको बाणोंका प्रहार करके उन्हें भी घायल कर दिया ॥ ४० ॥

मायां च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत् ।
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम् ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् उसने राक्षसी माया फैलाकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की। उस समय हमने सात्यकिका अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ४१ ॥

नासम्भ्रमद् यत् समरे वध्यमानः शितैः शरैः ।
ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत ॥ ४२ ॥
विजयाद् यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना ।

भारत! वे समरभूमिमें तीखे बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी घबराये नहीं। उन वार्ष्णेय सात्यकिने अर्जुनसे विद्या सीखकर जो यश पाया था, उस ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४२ ॥

तदस्त्रं भस्मसात् कृत्वा मायां तां राक्षसीं तदा ॥ ४३ ॥
अलम्बुषं शरैर्घोरैरभ्याकिरत सर्वतः ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४४ ॥

उस समय उस दिव्यास्त्रने उस राक्षसी मायाको भस्मसात् करके अलम्बुषके ऊपर सब ओरसे भयंकर बाणोंकी उसी प्रकार वर्षा आरम्भ की, जैसे वर्षाऋतुमें मेघ पर्वतपर जलकी धारायें गिराता है ॥ ४३-४४ ॥

तत् तथा पीडितं तेन माधवेन यशस्विना ।
प्रदुद्राव भयाद् रक्षस्त्यक्त्वा सात्यकिमाहवे ॥ ४५ ॥

यशस्वी मधुवंशी सात्यकिके द्वारा इस प्रकार पीड़ित होनेपर वह राक्षस भयके मारे युद्धस्थलमें उन्हें छोड़कर भाग गया ॥

तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि ।
शैनेयः प्राणदद् जित्वा योधानां तव पश्यताम् ॥ ४६ ॥

जिस इन्द्र भी युद्धमें हरा नहीं सकते थे, उसी राक्षसराज अलम्बुषको जीतकर शैनेयने आपके योद्धाओंके देखते-देखते बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ४६ ॥

न्यहनत् तावकांश्चापि सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
निशितैर्बहुभिर्बाणैस्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकिने बहुसंख्यक तीखे बाणोंद्वारा आपके अन्य योद्धाओंको भी मारना आरम्भ किया। उस समय वे भयसे पीड़ित हो सब ओर भागने लगे ॥ ४७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्यात्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नो महाराज पुत्रं तव जनेश्वरम् ॥ ४८ ॥
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः ।

महाराज! इसी बीच द्रुपदके बलवान् पुत्र धृष्टद्युम्नने आपके पुत्र राजा दुर्योधनको रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४८ ॥

स च्छाद्यमानो विशिखैर्धृष्टद्युम्नेन भारत ॥ ४९ ॥
विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो जनेश्वर ।
धृष्टद्युम्नं च समरे तूर्णं विव्याध पत्रिभिः ॥ ५० ॥
षष्ट्या च त्रिंशता चैव तदद्भुतमिवाभवत् ।

भरतनन्दन राजेन्द्र! जनेश्वर! धृष्टद्युम्नके बाणोंसे आच्छादित होनेपर भी आपके पुत्र दुर्योधनके मनमें व्यथा नहीं हुई। उसने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको तुरंत ही नब्बे बाणोंसे घायल कर दिया। वह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ ४९-५० ॥

तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ५१ ॥
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महारथः ।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः ॥ ५२ ॥

आर्य! तब महाबली पाण्डव सेनापतिने भी कुपित होकर दुर्योधनका धनुष काट दिया और शीघ्रतापूर्वक उसके चारों घोड़ोंको भी मार डाला। तत्पश्चात् अत्यन्त तीखे सात बाणोंद्वारा तुरंत ही दुर्योधनको घायल कर दिया ॥ ५१-५२ ॥

स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद् बली ।
पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत् पार्षतं प्रति ॥ ५३ ॥

घोड़े मारे जानेपर बलवान् महाबाहु दुर्योधन अपने रथसे कूद पड़ा और तलवार उठाकर धृष्टद्युम्नकी ओर पैदल ही दौड़ा ॥ ५३ ॥

शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः ।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत् स्वकम् ॥ ५४ ॥

उन दोनोंके छोड़े हुए महान् वेगशाली सुवर्णभूषित बाणोंने सब ओरसे पहुँचकर इरावान्‌को आच्छादित कर दिया ॥ २० ॥

इरावांस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरौ तौ महारथौ।
ववर्ष शरवर्षेण सारथी चाप्यपातयत् ॥ २१ ॥

तब इरावान्‌ने भी रणक्षेत्रमें कुपित होकर उन दोनों महारथी बन्धुओंपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी और उनके सारथियोंको मार गिराया ॥ २१ ॥

हतसूतौ रथौ भूमौ तयोः पश्य तु सारथी।
तथा प्रदुद्राव दिशः ... ॥ २२ ॥

सारथियोंके व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर जानेके पश्चात् उन रथोंके घोड़े भयभीत होकर भागने लगे और इस प्रकार वह रथ सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ने लगा ॥ २२ ॥

तौ स जित्वा महाराज अर्जुनस्यात्मजस्तदा।
पौरुषं ख्यापयन् सर्वं तव सैन्यमभिद्रवत् ॥ २३ ॥

महाराज! इरावान्‌ अर्जुनका पुत्र था। उसने विन्द और अनुविन्दको जीतकर अपने पुरुषार्थका परिचय देते हुए तुरंत ही आपकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया ॥ २३ ॥

सा वध्यमाना समरे धार्तराष्ट्री महाचमूः।
वेगान् बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥ २४ ॥

युद्धस्थलमें इरावान्‌से पीड़ित होकर आपकी विशाल सेना विषपान किये हुए मनुष्यकी भाँति नाना प्रकारसे व्याकुलता प्रकट करने लगी ॥ २४ ॥

हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत्।
रथेनादित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः ॥ २५ ॥

दूसरी ओर राक्षसराज महाबली घटोत्कचने सूर्यके समान तेजस्वी एवं ध्वजयुक्त रथके द्वारा भगदत्तपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः।
यथा वज्रधरः पूर्वं संग्रामे तारकामये ॥ २६ ॥

जैसे पूर्वकालमें तारकामय संग्राममें वज्रधारी इन्द्र ऐरावत नामक हाथीपर आरूढ़ होकर युद्धके लिये गये थे, उसी प्रकार इस महायुद्धमें प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी राजा भगदत्त एक गजराजपर चढ़कर आये थे ॥ २६ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च समागताः।
विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः ॥ २७ ॥

वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये हुए देवताओं, गन्धर्वों तथा ऋषियोंको भी यह समझमें नहीं आता था कि घटोत्कच और भगदत्तमें पराक्रमकी दृष्टिसे क्या अन्तर है ॥ २७ ॥

यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान्।
तथैव समरे राजन् द्रावयामास पाण्डवान् ॥ २८ ॥

जैसे देवराज इन्द्रने दानवोंको भयभीत किया था, उसी प्रकार भगदत्तने पाण्डवसैनिकोंको भयभीत करके भगाना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

तेन विद्राव्यमाणास्ते पाण्डवाः सर्वतो दिशम्।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त स्वेष्वनीकेषु भारत ॥ २९ ॥

भारत! भगदत्तके द्वारा खदेड़े हुए पाण्डव-सैनिक सम्पूर्ण दिशाओंमें भागते हुए अपनी सेनाओंमें भी कहीं कोई रक्षक नहीं पाते थे ॥ २९ ॥

भैमसेनिं रथस्थं तु तत्रापश्याम भारत।
शेषा विमनसो भूत्वा प्राद्रवन्त महारथाः ॥ ३० ॥

भरतनन्दन! उस समय वहाँ हमलोगोंने केवल भीमपुत्र घटोत्कचको ही रथपर स्थिरभावसे बैठा देखा। शेष महारथी खिन्नचित्त होकर वहाँसे भाग खड़े हुए थे ॥ ३० ॥

निवृत्तेषु तु पाण्डूनां पुनः सैन्येषु भारत।
आसीन्निष्टानको घोरस्तव सैन्यस्य संयुगे ॥ ३१ ॥

भारत! जब पाण्डवोंकी सेनाएँ पुनः युद्धभूमिमें लौट आयीं, तब रणक्षेत्रमें आपकी सेनाके भीतर घोर हाहाकार होने लगा ॥ ३१ ॥

घटोत्कचस्ततो राजन् भगदत्तं महारणे।
शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाम्बुदः ॥ ३२ ॥

राजन्! उस समय उस महायुद्धमें घटोत्कचने अपने बाणोंद्वारा भगदत्तको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल मेरु पर्वतको ढक देता है ॥ ३२ ॥

निहत्य तान् शरान् राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान्।
भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ३३ ॥

राजा भगदत्तने घटोत्कचके धनुषसे छूटे हुए उन सभी बाणोंको नष्ट करके तुरंत ही रणक्षेत्रमें घटोत्कचके सभी मर्मस्थानोंपर प्रहार किया ॥ ३३ ॥

स ताड्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः।
न विव्यथे राक्षसेन्द्रो भिद्यमान इवाचलः ॥ ३४ ॥

झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा आहत होकर भी विदीर्ण किये जानेवाले पर्वतकी भाँति राक्षसराज घटोत्कच व्यथित एवं विचलित नहीं हुआ ॥ ३४ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान् स चतुर्दश।
प्रेषयामास समरे तांश्चिच्छेद स राक्षसः ॥ ३५ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरके नरेशने कुपित हो उस राक्षसपर चौदह तोमर चलाये, परंतु उसने समरभूमिमें उन सबको काट दिया ॥ ३५ ॥

स तानिषूंस्तथा महाबाहुर्लोकवान् निशितैः शरैः ।
अभ्यहनत् च विव्याध लाक्षया पञ्चभिरेभिः ॥ ३६ ॥

उन तोमरोंको तीखे बाणोंसे काटकर महाबाहु म्लेच्छने कमलमुकुट पत्थर बाणोंद्वारा भगदत्तको भी घायल कर दिया॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा महद्धस्तिवरं भारत ।
तस्यावमानममृष्यन् वधाय प्रेषयामास सायकैः ॥ ३७ ॥

भारत ! तब राजा प्राग्ज्योतिष (भगदत्त) ने हाथी युद्धमें उस युद्धमें अपने प्राग्ज्योतिष म्लेच्छके नाम। पाठी भी मार गिराया ॥ ३७ ॥

स हताश्वे रथे तिष्ठन् गजस्येन्द्र प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ३८ ॥

घोड़ोंके मारे जानेपर भी उसी रथपर खड़े हुए प्रतापी राजकुमार म्लेच्छने भगदत्तके हाथीपर बड़े वेगसे शक्ति का प्रहार किया ॥ ३८ ॥

तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवर्णिनीम् ।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः तां ज्वलितां महीरिणीम् ॥ ३९ ॥

उस शक्तिमें सोनेका डंडा लगा हुआ था। वह अत्यन्त कान्तिमती थी। उसे सहसा आती देख राजा भगदत्तने उसके तीन टुकड़े कर डाले। फिर वह पृथ्वीपर बिखर गयी॥

ततः शिखण्डिनं [illegible] मैत्रिनं प्रावृत्तत् भयात् ।
[illegible] पूर्वं समुचितैस्तलसत्तमः ॥ ४० ॥

अपनी आँखोंको कानी हुई देखकर [illegible] म्लेच्छ समझकर अपने उसी प्रकार भाग गया जैसे पूर्वकालमें देवराज इन्द्रके साथ युद्धमें समय दैत्यराज नमुचि रणभूमिसे भागा था। ४०।

स विद्राव्य रणे शूरं [illegible] ।
[illegible] समरे वीर [illegible] च ॥ ४१ ॥
[illegible] समरे सेना सम्ममर्द [illegible] ।
यथा वनगजो राजन् मृद्नन्नलिनीं पद्मिनीम् ॥ ४२ ॥

राजन्! [illegible] अपने पौरुष लिये [illegible] था पवन और समराज भी इस वीरको रणभूमिमें परास्त नहीं कर सकते थे। उसीको वहाँ रणक्षेत्र में जीतकर भागदत्तका वह हाथी [illegible] उसी प्रकार [illegible] जैसे [illegible] हाथी सरोवरमें कमलिनियोंको रौंदता हुआ विचरता है। ४१-४२ ॥

[illegible] समरे [illegible] ।
[illegible] पाण्डुनन्दनौ ॥ ४३ ॥

दूसरी ओर महाराज [illegible] अपने भाई नकुल और सहदेवसे उलझे हुए थे। उन्होंने पाण्डुकुलको आनन्दित करनेवाले भाइयोंको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं हतय सत्तमम् ।
अवारयच्छरैः [illegible] यथा विहङ्गम् ॥ ४४ ॥

सहदेवने समरभूमिमें आते मामाको युद्धमें [illegible] देखकर जैसे बादल सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित करके आगे बढ़नेसे रोक दिया।

छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपोऽभवत् ।
तयोश्चाप्यभवत् प्रीतिरतुला नादयन्त्यात् ॥ ४५ ॥

[illegible] बाणसमूहोंसे आच्छादित होकर भी [illegible] प्रसन्न ही हुए। मामाके नाते नकुल और सहदेवके मनमें भी उनके प्रति अनुपम प्रेमका भाव था ॥ ४५ ॥

ततः [illegible] समरे [illegible] महारथः ।
(भवत विच्याध [illegible] धनुर्धरैरिव मारिष ।
[illegible] भारत ॥
[illegible] ॥)
[illegible] राजन्नुर्भिः सायकैः ॥ ४६ ॥
प्रेषयामास समरे [illegible] प्रति ।
हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः ॥ ४७ ॥
[illegible] यथाविध ।

भारत! तब महारथी [illegible] समरभूमिमें हँसकर एक बाणसे नकुलके धनुषको और दूसरेसे उनके [illegible] दिया। [illegible] उन्हें बाणोंसे आच्छादित [illegible] उनके सारथिको भी मार गिराया। [illegible] फिर उन्होंने उस युद्धमें चार [illegible] नकुलके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। घोड़ोंके मारे जानेपर महारथी नकुल उस रथसे तुरंत ही कूदकर अपने भाई सहदेवके ही रथपर जा चढ़े ॥ ४६-४७ ॥

एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ॥ ४८ ॥
महाराजस्य [illegible] ।

तदनन्तर एक ही रथपर बैठे हुए उन दोनों शूरवीरोंने धारण [illegible] धनुषको खींचकर रणभूमिमें [illegible] को तुरंत ही आच्छादित कर दिया ॥ ४८ ॥

स छाद्यमानो बहुभिः शरैः [illegible] ॥ ४९ ॥
[illegible] नाकम्पत यथाचलः ।
[illegible] शत्रुकर्षिः जगाम ह ॥ ५० ॥

अपने भानजोंके चलाये हुए झुकी हुई गाँठवाले बहु [illegible] बाणोंसे [illegible] होनेपर भी [illegible] भाति अविचल खड़े रहे, कम्पित या विचलित नहीं हुए। उन्होंने इसते हुए [illegible] को [illegible] कर दिया। ४९-५०

सहदेवस्तथा क्रुद्धः [illegible] वीर्यवान् ।
[illegible] प्रेषयामास भारत ॥ ५१ ॥

भारत! तब पराक्रमी सहदेवने कुपित होकर एक बाण हाथमें लिया और [illegible] लक्ष्य करके चला दिया॥

स शरैः प्रेषितस्तेन नाकदाविस्येव मत्तम्
गदापाणिर्विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ५१ ॥

उनके द्वारा चलाया हुआ वह बाण गदा और बाहुके ... वेगपूर्वक था । वह गदाधारीको विदीर्ण करके पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ५१ ॥

स गदाविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः ।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥ ५२ ॥

महाराज ! उससे गहरा आघात पाकर अत्यन्त व्यथित होकर महारथी शल्य रथके पिछले भागमें जा बैठे और मूर्छित हो गये ॥ ५२ ॥



न विरथं निपतितं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्य नकुलो युधि ।
अपोवाह रथेनाजौ यन्ता तमभिवीक्षितम् ॥ ५४ ॥

युद्धस्थलमें नकुल और सहदेवद्वारा पीड़ित होकर उन्हें अपने रथपर गिरा हुआ देख सारथि रथद्वारा रणभूमिसे बाहर हटा ले गया ॥ ५४ ॥

दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्रः पराङ्मुखम् ।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५५ ॥

मद्रराजके रथको युद्धसे विमुख हुआ देख आपके सभी पुत्र मन-ही-मन दुःखी हो सोचने लगे कि अब मद्रराजका जीवन शेष नहीं है ॥ ५५ ॥

निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं च नेदतुः ॥ ५६ ॥

रणमें माद्रीपुत्र पुत्रोंने अपने मामाको परास्त करके प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ ५६ ॥

अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशाम्पते ।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवामरौ ॥ ५७ ॥

राजन् ! जैसे इन्द्र देव और उपेन्द्रदेव दैत्योंकी सेनाको मार भगाते हैं, उसी प्रकार नकुल-सहदेव हर्षमें भरकर आपकी सेनाको खदेड़ने लगे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५८ श्लोक हैं)

चतुरशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरसे राजा श्रुतायुका पराजित होना, युयुत्सु, चेकितान और कृपाचार्यका मूर्च्छित होना, भूरिश्रवाके धृष्टकेतुका और अभिमन्युसे चित्रसेन आदिका पराजित होना एवं सुशर्मा आदिसे अर्जुनका युद्धारम्भ

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य चोदयामास वाजिनः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब सूर्यदेव दिनके मध्यभागमें आ गये, तब राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुको देखकर उनकी ओर अपने घोड़ोंको बढ़ाया ॥ १ ॥

अभ्यधावत् ततो राजा श्रुतायुषमरिंदमम् ।
विनिघ्नन् सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

उस समय झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे सायकोंद्वारा शत्रुदमन श्रुतायुको घायल करते हुए राजा युधिष्ठिरने उन पर धावा किया ॥ २ ॥

स संवार्य रणे राजा प्रेषितान् धर्मसूनुना ।
शरान् सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समार्पयत् ॥ ३ ॥

तब महाधनुर्धर राजा श्रुतायुने युद्धमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके चलाये हुए बाणोंको निष्फल करके उन कुन्तीकुमारको सात बाण मारे ॥ ३ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

संग्राममें वे बाण महात्मा युधिष्ठिरके शरीरमें उनके प्राणोंको ढूँढ़ते हुए-से कवच छेदकर घुस गये और उनका रक्त पीने लगे ॥ ४ ॥

पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना ।
रणे नाराचकेनाजौ राजानं हृद्यविध्यत ॥ ५ ॥

महात्मा श्रुतायुके बाणोंसे घायल होकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने रणक्षेत्रमें नाराच नामक एक बाण चलाकर राजा श्रुतायुकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ५ ॥

अथापरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः ।
रथादपाहरत् तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने भल्ल नामक दूसरे बाणसे महात्मा श्रुतायुके ध्वजको काटकर बड़े ही वेगसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६ ॥

केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः ।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णैः राजन् विव्याध सप्तभिः ॥ ७ ॥

राजन्! ध्वजको गिरा हुआ देख राजा श्रुतायुने सात तीखे बाणोंद्वारा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

ततः क्रोधात् प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
यथा युगान्ते भूतानि दिधक्षुरिव पावकः ॥ ८ ॥

तब तो धर्मपुत्र युधिष्ठिर प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको जला डालनेकी इच्छावाले अग्निदेवके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे ॥ ८ ॥

क्रुद्धं तु पाण्डवं दृष्ट्वा देवगन्धर्वराक्षसाः ।
प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाप्यभूज्जगत् ॥ ९ ॥

महाराज! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको कुपित देख देवता, गन्धर्व और राक्षस व्यथित हो उठे तथा सारा जगत् भी व्याकुल हो गया ॥ ९ ॥

सर्वेषां चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम् ।
त्रीँल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै ॥ १० ॥

उस समय समस्त प्राणियोंके मनमें यह विचार उठा कि आज निश्चय ही ये राजा युधिष्ठिर कुपित होकर तीनों लोकोंको भस्म कर डालेंगे ॥ १० ॥

ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत् ।
लोकानां नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥ ११ ॥

नरेश्वर! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके कुपित होनेपर उस समय सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये देवता तथा ऋषिलोग बड़ा स्वस्तिवाचन करने लगे ॥ ११ ॥

स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
दधारात्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसंनिभम् ॥ १२ ॥

उन्होंने क्रोधसे व्याप्त हो मुखके दोनों कोनोंको चाटते हुए अपने शरीरको प्रलयकालके सूर्यके समान भयानक बना लिया ॥ १२ ॥

ततः सैन्यानि सर्वाणि तावकानि विशाम्पते ।
निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥ १३ ॥

प्रजानाथ भरतनन्दन! उस समय आपकी सारी सेनाएँ वहाँ अपने जीवनसे निराश हो गयीं ॥ १३ ॥

स तु धैर्येण तं कोपं संनिवार्य महायशाः ।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ १४ ॥

परंतु महायशस्वी युधिष्ठिरने धैर्यपूर्वक अपने क्रोधको रोक दिया और श्रुतायुके विशाल धनुषको जहाँ उसे मुट्ठीसे पकड़ा जाता है, उसी जगहसे काट दिया ॥ १४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे ।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १५ ॥
सत्वरं च रणे राजंस्तस्य वाहान् महात्मनः ।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः ॥ १६ ॥

राजन्! धनुष कट जानेपर महाबली राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुकी छातीमें नाराचसे प्रहार किया। फिर उन्होंने समस्त सेनाओंके देखते-देखते रणभूमिमें महात्मा श्रुतायुके घोड़ोंको तुरंत मार डाला और उसके सारथिको भी शीघ्र ही बाणोंसे मार गिराया ॥ १५-१६ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम् ।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥ १७ ॥

घोड़ोंके मारे जानेपर युद्धमें राजा युधिष्ठिरके पुरुषार्थका भी अवलोकन करके श्रुतायु उस समय रथ छोड़कर भाग गया ॥ १७ ॥

तस्मिञ्जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे ।
दुर्योधनबलं राजन् सर्वमासीत् पराङ्मुखम् ॥ १८ ॥

राजन्! समरमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरद्वारा महाधनुर्धर श्रुतायुके पराजित होनेपर दुर्योधनकी सारी सेना पीठ दिखाकर भागने लगी ॥ १८ ॥

एतत् कृत्वा महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥ १९ ॥

महाराज! ऐसा पराक्रम करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर मुँह फैलाये हुए कालके समान आपकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १९ ॥

चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥ २० ॥

उधर वृष्णिवंशी चेकितानने रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यको सब सेनाओंके देखते-देखते अपने सायकोंसे आच्छादित कर दिया ॥ २० ॥

संनिवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि ।
चेकितानं रणे यत्तं राजन् विव्याध पत्रिभिः ॥ २१ ॥

राजन्! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने युद्धमें उन सब

घावोंको कुचलकर राजसभाके साथ युद्ध करनेवाले चेकितान की पसलीमें बाणोंसे चोट पहुँचायी ॥ २१ ॥

अथापरेण भल्लेन धनुश्छित्त्वास्य मारिष।
सारथिं चास्य समरे शितास्त्रैर्न्यपातयत् ॥ २२ ॥

आर्य ! फिर दूसरे भल्लसे उसका धनुष काट दिया और अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए समरमें उसके सारथि को भी मार गिराया ॥ २२ ॥

अश्वांश्चास्यावधीद् राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी।
सोऽवप्लुत्य रथात् तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ॥ २३ ॥

राजन् ! तदनन्तर चेकितानके चारों घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी कृपाचार्यने मार डाला। तब सात्वतवंशी चेकितानने रथसे कूदकर तुरंत ही गदा हाथमें ले ली ॥ २३ ॥

स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः।
गौतमस्य हयान् हत्वा सारथिं च न्यपातयत् ॥ २४ ॥

गदाधारियोंमें श्रेष्ठ चेकितानने उस वीरघातिनी गदासे कृपाचार्यके घोड़ोंको मारकर उनके सारथिको भी धराशायी कर दिया ॥ २४ ॥

भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश।
ते शराः सात्वतं भित्त्वा प्राविशन् धरणीतलम् ॥ २५ ॥

तब कृपाचार्यने भूमिपर ही खड़े होकर चेकितानको सोलह बाण मारे। वे बाण चेकितानको छेदकर धरतीमें समा गये ॥ २५ ॥

चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम्।
गौतमस्य वधाकाङ्क्षी वृत्रस्येव पुरंदरः ॥ २६ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए चेकितानने कृपाचार्यके वधकी इच्छासे उनपर पुनः उसी गदाका प्रहार किया, जैसे इन्द्र वृत्रासुरपर प्रहार करते हैं ॥ २६ ॥

तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम्।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥ २७ ॥

उस निर्मल एवं लोहेकी बनी हुई विशाल गदाको अपने ऊपर आती देख कृपाचार्यने अनेक सहस्र बाणोंद्वारा दूर गिरा दिया ॥ २७ ॥

चेकितानस्ततः खड्गं कोशादुद्धृत्य भारत।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥ २८ ॥

भारत ! तब चेकितानने क्रोधपूर्वक तलवार म्यानसे खींच ली और बड़ी फुर्तीके साथ कृपाचार्यपर धावा किया ॥ २८ ॥

गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्यासिं सुसंयतः।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥

राजन् ! तब देख कृपाचार्यने भी धनुष फेंककर तलवार हाथमें ले ली और पूरी सावधानीके साथ वे बड़े वेगसे चेकितानकी ओर दौड़े ॥ २९ ॥

तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं संततक्षतुः ॥ ३० ॥

वे दोनों ही बलवान् थे। दोनोंने ही उत्तम खड्ग धारण कर रखे थे। अतः अपनी उन अत्यन्त तीखी तलवारोंसे वे एक दूसरेको काटने लगे ॥ ३० ॥

निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् तलवारोंसे घायल होकर वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ समस्त प्राणियोंसे सेवित भूमिपर गिर पड़े ॥ ३१ ॥

मूर्च्छयाभिपरीताङ्गौ व्यायामेन च मोहितौ।
ततोऽभ्यधावद् वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ॥ ३२ ॥
चेकितानं तथाभूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदम्।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥

उनके सारे अङ्गोंमें मूर्च्छा व्याप्त हो रही थी। दोनों ही अधिक परिश्रमके कारण अचेत हो गये थे। उस समय युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले चेकितानको वैसी अवस्थामें पड़ा देख सौहार्दके नाते करकर्ष बड़े वेगसे दौड़ा और सम्पूर्ण सेनाके देखते-देखते उसने उन्हें अपने रथपर चढ़ा लिया ॥ ३२-३३ ॥

तथैव शकुनिः शूरः स्यालस्तव विशाम्पते।
आरोपयद् रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम् ॥ ३४ ॥

प्रजानाथ ! इसी प्रकार आपके साले शूरवीर शकुनिने रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यको शीघ्र ही अपने रथपर बैठा लिया ॥ ३४ ॥

सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः।
नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन् विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥

राजन् ! दूसरी ओर महाबली धृष्टकेतुने क्रोधमें भरकर नब्बे बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक भूरिश्रवाकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ३५ ॥

सौमदत्तिरुरःस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत।
मध्यंदिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥ ३६ ॥

महाराज ! छातीमें धँसे हुए उन बाणोंसे भूरिश्रवा उसी प्रकार शोभा पाने लगा, जैसे दोपहरके समय सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अधिक प्रकाशित होता है ॥ ३६ ॥

भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम्।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥ ३७ ॥

तब भूरिश्रवाने समरभूमिमें उत्तम सायकोंद्वारा महारथी धृष्टकेतुके घोड़ों और सारथिको मारकर उन्हें रथहीन कर दिया ॥ ३७ ॥

विरथं चैनमालोक्य हताश्वं हतसारथिम्।
महता शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ॥ ३८ ॥

भूरिश्रवाने धृष्टकेतुके घोड़े और सारथिको मार डाले तथा तीन बाणोंसे उसकी छातीको भी मारी चोट पहुँचाकर घायल कर दिया ॥ ३८ ॥

स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः ।
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ॥ ३९ ॥

आर्य ! तब महामना धृष्टकेतु उस रथको छोड़कर शतानीकके रथपर जा बैठे ॥ ३९ ॥

चित्रसेनो विकर्णश्च राजन् दुर्मर्षणस्तथा ।
रथिनो हेमसंनाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥ ४० ॥

राजन् ! इसी समय चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षण इन तीन रथियोंने सोनेके कवच धारणकर सुभद्राकुमार अभिमन्युपर धावा किया ॥ ४० ॥

अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत ।
शरीरस्य यथा राजन् वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ४१ ॥

राजन् ! तब उनके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ, ठीक उसी तरह जैसे शरीरका वात, पित्त और कफ—इन तीनों धातुओंके साथ युद्ध होता रहता है।

विरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन् महाहवे ।
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन् भीमवचस्तदा ॥ ४२ ॥

राजन् ! उस महासमरमें आपके पुत्रोंको रथहीन करके पुरुषसिंह अभिमन्युने उस समय भीमसेनकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके उनका वध नहीं किया ॥ ४२ ॥

ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः ।
संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥ ४३ ॥
प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम् ॥ ४४ ॥
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।

तदनन्तर हाथी, घोड़े और रथपर बैठे हुए सैकड़ों राजाओंसे घिरे हुए भीष्म जो युद्धमें देवताओंके लिये भी दुर्जय थे, आपके पुत्रोंकी रक्षाके लिये एकमात्र बालक महारथी अभिमन्युको लक्ष्य करके तीव्र गतिसे आगे बढ़े। यह देख श्वेतवाहन कुन्तीकुमार अर्जुनने वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ ४३-४४ ॥

चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः ॥ ४५ ॥
एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय ॥ ४६ ॥

हृषीकेश ! जहाँ ये बहुतसे रथ खड़े हैं, उधर ही अपने घोड़ोंको हाँकिये। माधव ! ये अस्त्रविद्याके विद्वान् तथा रणदुर्मद बहुसंख्यक शूरवीर जिस प्रकार हमारी सेनाका विनाश न कर सकें, उसी तरह आप रथको वहाँ ले चलिये ॥ ४५-४६ ॥

एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनामितौजसा ।
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ ४७ ॥

अमित तेजस्वी कुन्तीकुमार अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर वृष्णिकुलनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने युद्धमें श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथको आगे बढ़ाया ॥ ४७ ॥

निष्टानको महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ।
यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान् प्रति ॥ ४८ ॥

आर्य ! रणभूमिमें क्रुद्ध हुए अर्जुन जब आपके सैनिकोंकी ओर बढ़ रहे थे, उस समय आपकी सेनामें बड़े जोरसे हाहाकार होने लगा ॥ ४८ ॥

समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान् भीष्मरक्षिणः ।
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥

राजन् ! कुन्तीकुमार अर्जुनने भीष्मकी रक्षा करनेवाले उन राजाओंके पास जाकर सुशर्मासे इस प्रकार कहा— ॥ ४९ ॥

जानामि त्वां युधि श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम् ।
पर्यायस्याद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ५० ॥
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ।

वीर ! मैं जानता हूँ, तुम योद्धाओंमें श्रेष्ठ और पहलेसे ही अत्यन्त वैर रखनेवाले हो। तुमलोगोंने जो अन्याय किया है, उसका यह अत्यन्त भयंकर फल आज प्राप्त हुआ है, इसे देखो। आज मैं तुम्हें तुम्हारे पहलेके मरे हुए पितामहोंका दर्शन कराऊँगा ॥ ५० ½ ॥

एवं संजल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुतापिनः ॥ ५१ ॥
श्रुत्वापि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः ।
न चैनमब्रवीत् किंचिच्छुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ५२ ॥

ऐसा कहते हुए शत्रुतापी अर्जुनके कठोर वचनको सुनकर भी रथयूथपति सुशर्मा उनसे भला या बुरा कुछ भी न बोला ॥ ५१-५२ ॥

अभिगम्यार्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः ।
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥ ५३ ॥
परिवार्यार्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः ।
शरैः संछादयामास मेघैरिव दिवाकरम् ॥ ५४ ॥

और बहुतसे राजाओंसे घिरे हुए उस महारथीने आपके पुत्रोंके साथ उस युद्धमें वीर अर्जुनके सामने जाकर उन्हें आगे, पीछे और पार्श्व भाग—सब ओरसे घेर लिया और जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार बाणोंसे अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ५३-५४ ॥

तत्र प्रवृत्तः सुमहान् संग्रामः शोणितोदकः ।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ॥ ३३ ॥

भारत ! तदनन्तर आपके योद्धाओं और पाण्डवोंमें खूनकी धारा बहानेवाला महान्, भयंकर [illegible] युद्ध होने लगा ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि मध्याह्नयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें दोपहरके युद्धमें [illegible] विषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनका पराक्रम, पाण्डवोंका भीष्मपर आक्रमण, युधिष्ठिरका शिखण्डीको उपालम्भ और भीमका पुरुषार्थ

संजय उवाच

स तथ्यमानस्तु शरैर्धनंजयः
पदा हतो नाग इव श्वसन् बली ।
बाणेन बाणेन महारथानां
चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार शत्रुओंके बाणोंसे आहत होकर बलवान् अर्जुन पैरोंसे कुचले हुए सर्पकी भाँति क्रोधसे लंबी साँस खींचने लगे। उन्होंने बलपूर्वक प्रत्येक बाण मारकर युद्धमें सभी महारथियोंके धनुष काट डाले ॥ १ ॥

संछिद्य चापानि च तानि राज्ञां
तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन ।
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा
निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः ॥ २ ॥

रणभूमिमें उन पराक्रमी राजाओंके धनुषोंको क्षणभरमें काटकर महात्मा अर्जुनने उनका पूर्णतः संहार कर देनेके [illegible] एक ही साथ उनको अपने बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २ ॥

निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धा-
स्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन् ।
विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा
गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः ॥ ३ ॥

राजन् ! इन्द्रपुत्र अर्जुनके द्वारा ताडित होकर सभी नरेश खूनसे लथपथ हो युद्धभूमिमें गिर पड़े। उनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे, मस्तक कटकर दूर जा गिरे थे, कवच और शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे और वे अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे थे ॥ ३ ॥

महीं गताः पार्थबलाभिभूता
विचित्ररूपा युगपद् विनेशुः ।
दृष्ट्वा हतांस्तान् युधि राजपुत्रां-
स्त्रिगर्तराजः प्रययौ रथेन ॥ ४ ॥

पार्थके बलसे अभिभूत होकर वे विचित्र रूपवाले राज[illegible] कुमार एक साथ ही पृथ्वीपर गिरकर नष्ट हो गये। तब राजपुत्रोंको युद्धमें मारा गया देख त्रिगर्तराज सुशर्मा रथके द्वारा अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥

तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा
द्वात्रिंशदन्येऽप्यपतन्त पार्थम् ।
तथैव ते सम्परिवार्य पार्थं
विकृष्य चापानि महारवाणि ॥ ५ ॥

अवीवृषन् बाणमहौघवृष्ट्या
यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः ।
सम्पीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या
धनंजयस्तान् युधि जातरोषः ॥ ६ ॥

उन रथियोंके जो दूसरे-दूसरे बत्तीस पृष्ठरक्षक थे, वे भी कुन्तीपुत्र अर्जुनपर टूट पड़े। इसी प्रकार उन सबने अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर महान् टङ्कार ध्वनि करनेवाले अपने धनुष खींचे और जैसे मेघ पर्वतपर जलधाराओंकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वृष्टि करने लगे। उनकी बाणवर्षासे पीड़ित होकर युद्धस्थलमें अर्जुनके हृदयमें बड़ा भारी रोष हुआ ॥ ५-६ ॥

षष्ट्या शरैः संयति तैलधौतै-
र्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् ।
षष्टिं रथांस्तान् प्रविजित्य संख्ये
धनंजयः प्रीतमना यशस्वी ॥ ७ ॥

अथात्वरद् भीष्मवधाय जिष्णु-
र्बलानि राजन् समरे निहत्य ।

उन्होंने रणक्षेत्रमें तेलके धोये हुए साठ बाण मारकर उन पृष्ठरक्षकोंका भी संहार कर दिया। इस प्रकार युद्धभूमिमें उन साठ रथियोंको जीतकर और कौरव-सेनाओंका समरमें संहार करके प्रसन्नचित्त हुए यशस्वी विजयी अर्जुनने भीष्मके वधके लिये शीघ्रता की ॥ ७½ ॥

त्रिगर्तराजो निहतान् समीक्ष्य
महारथांस्तानथ बन्धुवर्गान् ॥ ८ ॥

रथेन पुरस्कृत्य महाधिपातान्
अभ्यक्त पार्थ त्वरितो वधाय

महाबाहु अर्जुनके द्वारा अपने सम्मुख होकर मारा गया देख त्रिगर्तराज सुशर्मा, सत्यजितोंको युद्धके लिये आगे करके तुरंत ही अर्जुनका वध करनेके लिये उनके सामने आया।

अभिद्रुत वाणयुतान् परिष्य
धनंजय भीष्मशिखण्डिमुख्यः ॥ ११ ॥
अभ्युद्ययुस्ते शितबाणहस्ता
दिदिक्षिपन्तो रथसङ्घास्ता

अर्जुनको भीष्म भी अर्जुनपर आक्रमण होते देख शिखण्डी आदि हाथमें उनकी रक्षा करनेके लिये तीखे बाण हाथमें लिये आगे बढ़े

पार्थोऽपि तान् आपततः समीक्ष्य
त्रिगर्तराजः सहितान् नृवीरान् ॥ १२ ॥
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः पृषत्कैः
भीष्मं यियासुर्युधि सत्वराव
दुर्योधन सैन्धवादीन् राज ॥ १३ ॥

इधर धनुर्धर अर्जुन भी त्रिगर्तराजके साथ उन वीरोंको आते देख समरभूमिमें गाण्डीव धनुषसे छोड़े हुए तीखे बाणोंद्वारा उन्हें नष्ट करके भीष्मजीके पास जाना चाहते थे। इतनेहीमें उन्होंने युद्धस्थलमें खड़ा दुर्योधन और सिन्धुराज जयद्रथ आदिको देखा

आवारयिष्णूनभिवारयित्वा
मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो
जयद्रथादींश्च नृपान् महौजा ॥ १४ ॥
ययौ ततो भीष्ममसौ मनस्वी
गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः

दुर्योधन और जयद्रथ आदि वीर अर्जुनको रोकनेके प्रयत्नमें लग थे। अतः उस समय अनन्त पराक्रमी एवं महातेजस्वी वीर अर्जुनने दो घड़ीतक बलपूर्वक युद्ध करके उन सबको रोक दिया। तत्पश्चात् राजा दुर्योधन और जयद्रथ आदि नरेशोंको वहीं छोड़कर मनस्वी बलवान् एवं मनस्वी अर्जुन हाथमें धनुष-बाण ले युद्धस्थलमें गङ्गानन्दन भीष्मकी ओर चल दिये ॥ १४ ॥

(भीष्मोऽपि युद्धे समरे हताशान्
स पाण्डवानां रथिनोऽवरोधात्
विहाय समासयुतो धनञ्जय
अयोध पार्थो पुनराजगाम ॥)

भीष्म भी उस समय विमाके विशाल एवं उदार पाण्डव

रथियोंको युद्धस्थलमें अपने सामने देखते हुए भी उन सबको छोड़कर वहाँ गये हुए अर्जुनके पास आये ॥

युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्मा
समाययौ त्वरितो जातकोपः ॥ १३ ॥
मद्राधिपं समभित्याज्य संख्ये
स्वभागमाप्तं तमनन्तकीर्तिः
सार्धं स माद्रीसुतभीमसेनै-
र्भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय ॥ १४ ॥

इस समय उग्रतेज महापराक्रमी अनन्तकीर्ति महात्मा युधिष्ठिर भी युद्धमें अपने भागमें प्राप्त हुए महाराज शल्यको छोड़कर नकुल, सहदेव और भीमसेनके साथ क्रोध पूर्वक तुरंत वहाँसे चल दिये और युद्धके लिये शान्तनुनन्दन भीष्मके पास जा पहुँचे

तैः सम्प्रयुक्तैः स महारथाग्र्यै-
र्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा
समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः ॥ १५ ॥

महारथियोंमें श्रेष्ठ समस्त पाण्डव संगठित होकर वहाँ आ पहुँचे थे तो भी उनसे समराङ्गणमें विचित्र युद्ध करनेवाले महापुरुष शान्तनुनन्दन महात्मा भीष्मको व्यथा नहीं हुई

अथैत्य राजा युधि सत्यसंधो
जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी
चिच्छेद चापानि महारथानां
प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् उग्रबलशाली अत्यन्त भयङ्कर सत्यप्रतिज्ञ और मनस्वी राजा जयद्रथने उनके सामने आकर अपने उत्तम धनुष द्वारा बलपूर्वक उन महारथियोंके धनुष काट डाले ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च
पार्थं तथा कृष्णं युधि संरब्धचेताः
दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा
जघान बाणैरनलप्रकाशैः ॥ १७ ॥

क्रोधरूपी विष धारण करनेवाले महामनस्वी दुर्योधनने युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल-सहदेव, अर्जुन तथा श्रीकृष्णपर युद्धमें कुपित हो अग्निके समान तेजस्वी बाणोंका प्रहार किया

कृपेण शल्येन शलेन चैव
तथा विभो चित्रसेनेन चाजौ
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपै-
र्देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः ॥ १८ ॥

प्रभो! जैसे क्रोधमें भरे हुए दैत्यगण एकत्र हो देवताओंपर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार कृपाचार्य, शल्य, शल एवं तथ

शिखण्डीने युद्धस्थलमें शान्तनुनन्दन भीष्मको मारकर अपनी सत्यवादी प्रतिज्ञाको सफल कर दिखाना चाहा ॥ १८ ॥

छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा
शिखण्डिनं प्रेक्ष्य च आजमीढः ।
अजातशत्रुः समरे महात्मा
शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम् ॥ १९ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मने जब शिखण्डीका धनुष काट दिया* तब समराङ्गणमें अजातशत्रु महात्मा युधिष्ठिर शिखण्डीकी ओर देखकर कुपित हो उठे और उससे क्रोधपूर्वक इस प्रकार बोले— ॥ १९ ॥

उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मा
मह् हनिष्यामि महाव्रतं तम् ।
भीष्मं शरैर्विमलार्कवर्णैः
सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ २० ॥
त्वया च नैनां सफलां करोषि
देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे ।
मिथ्याप्रतिज्ञो भव मा च वीर
रक्ष स्वधर्मं स्वकुलं यशश्च ॥ २१ ॥

वीर ! तुमने अपने पिताके सामने प्रतिज्ञापूर्वक मुझसे यह कहा था कि मैं महान् व्रतधारी भीष्मको निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी बाणसमूहोंद्वारा अवश्य मार डालूँगा, यह बात मैं सत्य कहता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा करके भी तुम इस प्रतिज्ञाको सफल नहीं करते हो। कारण कि युद्धमें देवव्रत भीष्मका वध नहीं कर रहे हो। झूठी प्रतिज्ञा करने वाला न बनो। अपने धर्म, कुल और यशकी रक्षा करो ॥

विलोकय भीष्मं युधि भीमवेगं
सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसङ्घान् ।
शरौघजालैरतितिग्मवेगैः
कालं यथा मृत्युकृतं क्षणेन ॥ २२ ॥

देखो ! जैसे यमराज क्षणभरमें उपस्थित होकर जगत्‌के देहधारियोंका विनाश कर देते हैं, उसी प्रकार ये युद्धमें भयंकर वेगशाली भीष्म अत्यन्त प्रचण्ड वेगशाली बाणसमूहोंद्वारा मेरी समस्त सेनाओंको किस प्रकार संतप्त कर रहे हैं ॥ २२ ॥

निकृत्तचापः समरेऽनपेक्षः
पराजितः शान्तनवेन राज्ञा ।
विहाय बन्धूनथ सोदरांश्च
क्व यास्यसे नानुरूपं तवेदम् ॥ २३ ॥

तुम्हें शान्तनुनन्दन भीष्मने युद्धमें धनुष काटकर तुम्हें पराजित कर दिया, फिर भी तुम उनकी ओरसे निरपेक्ष हो रहे हो। भाई-बन्धुओं और सहोदर भाइयोंको छोड़कर कहाँ जाओगे ? यह कायरता तुम्हारे अनुरूप नहीं है ॥ २३ ॥

दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं
भग्नं च सैन्यं द्रवमाणमेवम् ।
भीतोऽसि नूनं द्रुपदस्य पुत्र
तथा हि ते मुखवर्णोऽप्रहृष्टः ॥ २४ ॥

द्रुपदकुमार ! अनन्त पराक्रमी भीष्मको तथा उनके द्वारा इस प्रकार छिन्न-भिन्न होकर भागती हुई मेरी इस सेनाको देखकर निश्चय ही तुम डर गये हो; क्योंकि तुम्हारे मुखकी कान्ति कुछ ऐसी ही अप्रसन्न दिखायी देती है ॥ २४ ॥

आज्ञायमाने च धनंजयेऽपि
महाहवे सम्प्रसक्ते नृवीरे ।
कथं हि भीष्मात् प्रथितः पृथिव्यां
भयं त्वमद्य प्रकरोषि वीर ॥ २५ ॥

वीर ! नरवीर अर्जुन कहाँ महायुद्धमें फँसे हुए हैं, उनका इस समय पता नहीं है। ऐसे समयमें तुम भूमण्डलके विख्यात वीर होकर भीष्मसे भय कैसे कर रहे हो ? ॥ २५ ॥

स धर्मराजस्य वचो निशम्य
रूक्षाक्षरं विप्रलापानुबन्धम् ।
प्रत्यादेशं मन्यमानो महात्मा
प्रतत्वरे भीष्मवधाय राजन् ॥ २६ ॥

राजन् ! धर्मराजके इस वचनमें अनेक कठोर अक्षर भरे हुए थे। उनके द्वारा उन्होंने विलापकी ही बातें विपरीत बातें कही थीं तथापि उस वचनको सुनकर महामना शिखण्डीने इसे अपने लिये उपदेश माना और तुरंत ही भीष्मका वध करनेके लिये उद्यत हो गया ॥ २६ ॥

तमापतन्तं महता जवेन
शिखण्डिनं भीष्ममभिद्रवन्तम् ।
निवारयामास हि शल्य एनं
महास्त्रेण घोरेण सुदुर्जयेन ॥ २७ ॥

शिखण्डीको बड़े वेगसे आते और भीष्मपर धावा करते देख शल्यने अत्यन्त दुर्जय एवं भयंकर अस्त्रसे उसे रोक दिया।

स चापि दृष्ट्वा समुदीर्यमाण-
मस्त्रं युगान्ताग्निसमप्रभावम् ।
न सम्मुमोह द्रुपदस्य पुत्रो
राजन् महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ॥ २८ ॥

राजन् ! प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी उस अस्त्रको प्रकट हुआ देखकर देवराज इन्द्रके समान प्रभाव-

* भीष्मपितामहने शिखण्डीके आगे आकर अपना धनुष ही काट दिया था, उनके शरीरपर कोई बाण नहीं किया। अतः कोई दोष नहीं है।

शत्रौ कुरुकुमार विकमी मस्तक नहीं । २

तस्यैव च तथैव महाधनुष्मान्
महारथेन्द्रस्य अतिशयभ्रमम् ।
अथाहवे नारायणसम्पन्नस्य
शिरश्चकर्तायोगम् प्रतिघातस्य ॥ १९ ॥

वह महाधनुर्धर वीर जाने बलोहाय उसके अवाध निवारण करता हुआ वहीं डटा रहा। फिर शिखण्डीने उसके मस्तक प्रतिभाव करोलाने अस प्रकार बाणद्वारा बाणमें लिया

सारथ्यानक्षेण विकार्यमाण
समया हुता वसु सर्वदिशाम्
भीमस्तु राजन् समरे महात्मा
धनुष्मत् विद्ध धनुर्यमेव जाति ॥ २० ॥
छिन्नधनुस्तु पाण्डुसुतस्य वीरो
युधिष्ठिरस्यक्रमीदस्य राज

आकाशमें लगे हुए देवताओं तथा लोगोंने आर्य हुए राजाओंने देखा धर्मभीष्म दिव्यास्त्र धनुषका प्रत्येक विदीर्ण हो रहा है समान महाधनुर्धर भीम भी न युद्धस्थलमें अवलीढ़ कुरुनन्दन पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने विविध धनुष और भालोंको चलाकर वर्षा करने लगे । १ ३

तत समुत्क्षिप्य धनु सवाणं
युधिष्ठिर वीक्ष्य अथाभिसृत्य ॥ २१ ॥
महा प्रगृह्याभिपपात सक्ष्ये
अथाहवे भीमसेन पक्ष्यति

तब धनुषबाण चलाकर आगे बढ़े हुए युधिष्ठिरको देखकर भीमसेन गदा लेकर युद्धमें दल ही राजा जयद्रथ पर टूट पड़े । २ ३

समादाय सहसा जयद्रथ
अभ्यद्रुत्य समरे भीमसेनम् ॥ २२ ॥
विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पै
शितैः शरैः पञ्चशतैः समन्तात्

इस प्रकार सहसा हाथमें गदा लिये भीमसेनको वेगपूर्वक आते देख जयद्रथने यमदण्डके समान भयंकर पाँच सौ तीखे बाणोंद्वारा सब ओरसे उन्हें घायल कर दिया । २ ३

अचिन्तयित्वा स शरान् स्ववीर्ये
वृकोदर क्रोधपरीतचेताः २३
जघान वाहान् समरे समन्तात्
पारावतान् सिन्धुराजस्य संख्ये

वेगशाली भीमसेन उनके बाणोंकी कोई परवा न करके कुद्ध मन-ही-मन क्रोधसे जल उठे उसका, उन्होंने समर भूमिमें सिन्धुराजके कबूतरके समान रंगवाले घोड़ोंको मार डाला ॥ ११३ ॥

ततोऽभिवीक्ष्याप्रतिमप्रभाव
स्तवाहमात्मजस्त्वरमाणो रथेन ॥ २४ ॥
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तु
समुद्यतास्त्र सुरराजकल्प

यह देखकर आपका अनुपम प्रभावशाली पुत्र देवराज इन्द्रके समान दुर्योधन भीमसेनको मार डालनेके लिये हथियार उठाये बड़ी उतावलीके साथ रथके द्वारा वहाँ आ पहुँचा । २ ३

भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य
प्रत्युद्ययौ गदया तर्जयान ॥ २५ ॥

तब भीमसेन भी सहसा सिंहनाद करके गदाद्वारा गर्जन तर्जन करते हुए उसकी ओर चले

(समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां
दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात्

स कौरव शकुनि सानुजश्च
दृष्ट्वा भीमं युद्धमेतं भयार्ताः ॥

नोदोंके मारे क्रोध अवसर उस रथको छोड़कर गया शकुनि अपने बन्धु तथा छोटे भाइयोंसहित कुरुनन्दन दुर्योधन भी वहीं चला गया भीमसेनको देखकर जयद्रथका मन भयसे व्याकुल हो गया था वह भयसे पीड़ित हो गया था

भीमोऽप्यथैन सहसा विनद्य
समुद्यतो गदया हन्तुकाम
स कौरव तत्र युद्ध विचिन्त्य
दुर्योधन सानुजं रोषयुक्त ॥)

भीमसेन भी शकुनि और भाइयोंसहित आपके पुत्र दुर्योधनको देखकर रोषमें भर गये और सहसा गर्जना करके गदाद्वारा उन सबको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े

समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां
दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात्
विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं
जग्मुः शरैः परिहर्तुकामाः ॥ २६ ॥

अपक्रमास्तुमुले सुदारुणे
सुदारुणे भारत मोहनीये
अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो
महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ॥ २७ ॥

यमदण्डके समान भयंकर उस गदाको उठी हुई देख समस्त कौरव तुम्हारे पुत्रको वहीं छोड़कर गदाके उस आघातसे बचनेके लिये चारों ओर भाग गये भारत मोहमें डालनेवाले उस अत्यन्त भीषण एवं भयंकर जनसंहारमें उस महागदाको आती देख केवल चित्रसेनका चित्त किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं हुआ था । २६ २७

रथं समुत्सृज्य पदातिराजौ
प्रगृह्य खड्गं विपुलं च चर्म

नवपञ्चक सिंह ध्वजमव्ययम्
आपतन्तं भूमिमिव भूमिरेवम् ॥ ३८ ॥

राजन्! वह उसने रथको छोड़कर हाथमें बहुत बड़ी ढाल और तलवार ले करके दिव्यरूपसे विकसित भाति युद्ध पथा और वैसा ही विपन्न हुआ युद्धस्थलमें पृथ्वीपर लोटने लगा ॥ ३८ ॥

गदामपि सा आप्य रथ सुविष
सायक समुत्क विनिहरम नरस्य ।
जगाम भूमि ज्वलिता महोल्का
प्रज्वलनवरान्गामिव सम्प्रपाती ॥ ४० ॥

वह गदा भी विपक्षको विविध प्रकार चूर्णित करके उस वेदी और सारथिसहित चूर-चूर करके आकाशसे टूटकर पृथ्वीपर गिरनेवाली जलती हुई विशाल उल्काके समान रथ भूमिमें जा गिरी ॥ ४१ ॥

आश्चर्यभूतं सुमहत् त्वदीया
दृष्ट्वैव तद् भारत सम्प्रहृष्टाः ।
सर्वे दिनेषु साहिता समन्तात्
पुपूजिरे तव पुरुषप्रवीरम् ॥ ४२ ॥

भारत! इस समय आपके समस्त सैनिक विजयकारक यह महान् आश्चर्यकारक दृश्य देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वे सभी सब ओरसे एक साथ आकर पुरुष वीरकी प्रशंसा और सराहना करने लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें सातवें दिनके युद्धका वर्णन
सम्बन्धी पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके नाम श्लोक मिलाकर कुल ५१ श्लोक हैं)

षडशीतितमोऽध्यायः

भीष्म और युधिष्ठिरका युद्ध, धृष्टद्युम्न और सात्यकिके साथ विन्द और अनुविन्दका संग्राम, द्रोण आदिका पराक्रम और सातवें दिनके युद्धकी समाप्ति

सञ्जय उवाच

विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम् ।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! रथहीन हुए अपने यशस्वी भाई चित्रसेनको साथ लेकर आपके पुत्र विकर्णने उसे अपने रथपर चढ़ा लिया ॥ १ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम् ।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ २ ॥

जब इस प्रकार भयंकर और घमासान युद्ध होने लगा, उसी समय शान्तनुनन्दन भीष्मने तुरंत ही राजा युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २ ॥

ततः सरथनागाश्वाः समकम्पन्त सृञ्जयाः ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ॥ ३ ॥

यह देख रथ, हाथी और घोड़ोंसहित सृञ्जय काँप उठे। उन्होंने युधिष्ठिरको मौतके मुखमें पड़ा हुआ ही समझा ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ॥ ४ ॥

कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर भी नकुल और सहदेवके साथ महाधनुर्धर पुरुषसिंह शान्तनुनन्दन भीष्मका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन् पाण्डवो युधि ।
भीष्मं संछादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५ ॥

जैसे मेघ सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें हजारों बाणोंकी वर्षा करते हुए पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भीष्मको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

तेन सम्यक् प्रणीतानि शरजालानि मारिष ।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥

माननीय नरेश! उनके द्वारा अच्छी तरह चलाये हुए सैकड़ों और हजारों बाणोंके समूहको गङ्गानन्दन भीष्मने ग्रहण कर लिया (अपने बाणोंद्वारा विफल कर दिया) ॥ ६ ॥

तथैव शरजालानि भीष्मेणास्तानि मारिष ।
आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ॥ ७ ॥

आर्य! इसी प्रकार भीष्मके चलाये हुए बाणसमूह भी आकाशमें पक्षियोंके झुंडके समान दिखायी देने लगे ॥ ७ ॥

निमेषार्धेन कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि ।
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥ ८ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मने युद्धस्थलमें आधे निमेषमें ही

पृथक्-पृथक् बाणोंका जाल-सा बिछाकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को आच्छादित कर दिया ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः ।
नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम् ॥ ९ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने कुरुवंशी महात्मा भीष्मपर विषधर सर्पके समान नाराच प्रहार किया ॥ ९ ॥

असम्प्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः ।
चिच्छेद समरे राजन् भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम् ॥ १० ॥

राजन्! परंतु महारथी भीष्मने युधिष्ठिरके धनुषसे छूटे हुए उस नाराचको अपने पास पहुँचनेसे पहले ही समरभूमिमें एक क्षुरप्रद्वारा काट गिराया ॥ १० ॥

तं तु छित्त्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसम्मितम् ।
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान् काञ्चनभूषणान् ॥ ११ ॥

इस प्रकार रणभूमिमें कालके समान भयंकर उस नाराच को काटकर भीष्मने कौरवराज युधिष्ठिरके सुवर्णभूषित घोड़ोंको मार डाला ॥ ११ ॥

(हताश्वे तु रथे तिष्ठन्धर्मात्मा त्वरया ... ।
... ॥
विमुच्य समरे भीष्मं शरैः ... ॥)

घोड़ोंके मारे जानेपर भी उसी रथपर खड़े हुए धर्मात्मा युधिष्ठिरने भीष्मपर शक्ति चलायी। कालदण्डके समान तीखी उस शक्तिको सहसा अपनी ओर आती देख भीष्मने कुपित हो तीखे बाणोंद्वारा उसे रणभूमिमें काट गिराया।

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

तदनन्तर जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथका त्याग करके धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत ही महामना नकुलके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ १२ ॥

यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा ।
शरैः संछादयामास भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥

उस समय रणभूमिमें नकुल और सहदेवको पाकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले भीष्मने अत्यन्त कुपित हो उन्हें बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १३ ॥

तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ ।
जगामाथ परां चिन्तां भीष्मस्य वधकाङ्क्षया ॥ १४ ॥

महाराज! नकुल और सहदेवको भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित देख युधिष्ठिर अपने मनमें भीष्मके वधकी इच्छा लेकर गहन विचार करने लगे ॥ १४ ॥

ततो युधिष्ठिरो वश्यान् राज्ञस्तान् समचोदयत् ।
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् ॥ १५ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने अपने वशवर्ती राजाओं तथा सुहृद्गणोंको यह आदेश दिया कि तुम सब लोग मिलकर शान्तनुनन्दन भीष्मको मार डालो ॥ १५ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥ १६ ॥

तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरका यह कथन सुनकर समस्त राजाओंने विशाल रथसमूहके द्वारा पितामह भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १६ ॥

स समन्तात् परिवृतः पिता देवव्रतस्तव ।
चिक्रीड धनुषा राजन् पातयानो महारथान् ॥ १७ ॥

राजन्! सब ओरसे घिरे हुए आपके ताऊ देवव्रत बड़े-बड़े महारथियोंको धराशायी करते हुए धनुषके द्वारा क्रीड़ा करने लगे ॥ १७ ॥

तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि ।
मृगमध्यं प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने ॥ १८ ॥

जैसे सिंहका बच्चा वनमें मृगोंके झुंडमें घुसकर खेल कर रहा हो, उसी प्रकार कुन्तीकुमारोंने युद्धमें विचरते हुए कुरुवंशी भीष्मको वहाँ देखा ॥ १८ ॥

तर्जयानं रणे शूरांस्त्रासयानं च सायकैः ।
दृष्ट्वा त्रस्ता महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥ १९ ॥

महाराज! वे रणभूमिमें वीरोंको डाँटते और बाणोंके द्वारा उन्हें त्रास देते थे। जैसे मृगोंके समूह सिंहको देखकर डर जाते हैं, उसी प्रकार सब राजा भीष्मको देखकर भयभीत हो गये ॥ १९ ॥

रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् ।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः ॥ २० ॥

जैसे वायुकी सहायतासे घास-फूसको जलानेकी इच्छावाली अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार भरतवंशके सिंह भीष्मको रणभूमिमें क्षत्रियोंने अत्यन्त तेजस्वी देखा ॥ २० ॥

शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे ।
तालेभ्य इव पक्वानि फलानि कुशलो नरः ॥ २१ ॥

भीष्म युद्धस्थलमें रथियोंके मस्तक काट-काटकर उसी प्रकार गिराने लगे, मानो कोई कुशल मनुष्य ताड़के वृक्षोंसे पके हुए फलोंको गिरा रहा हो ॥ २१ ॥

पततां च महाराज शिरसां धरणीतले ।
बभूव तुमुलः शब्दः पतताम् अश्मनामिव ॥ २२ ॥

महाराज! भूतलपर धमाधम गिरते हुए मस्तकोंका आकाशसे पृथ्वीपर पड़नेवाले पत्थरोंके समान भयंकर शब्द हो रहा था ॥ २२ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये।
एकैकमेव सैन्यानामासीद् व्यतिकरो महान्॥ २३॥

उस भयानक एवं घमासान युद्धके होते समय सभी सेनाओंमें आपसमें बड़ी उथल-पुथल हो गयी॥ २३॥

छिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम्।
एकैकेन समागम्य युद्धायैवावतस्थिरे॥ २४॥

उन सबके व्यूह भंग हो जानेपर भी सम्पूर्ण क्षत्रिय परस्पर एक-एकको ललकारते हुए युद्धके लिये डटे ही रहे॥ २४॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम्।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २५॥

शिखण्डी भरतवंशके पितामह भीष्मके पास पहुँचकर उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा और बोला—'खड़ा रह, खड़ा रह'॥ २५॥

अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे।
प्रययौ सृञ्जयान् क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखण्डिनः॥ २६॥

किंतु भीष्मने शिखण्डीके स्त्रीत्वका चिन्तन करके युद्धमें उसकी अवहेलना कर दी और सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंपर क्रोधपूर्वक आक्रमण किया॥ २६॥

सृञ्जयास्तु ततो हृष्टा दृष्ट्वा भीष्मं महारणे।
सिंहनादांश्च विविधांश्चक्रुः शङ्खविमिश्रितान्॥ २७॥

तब सृञ्जयगण उस महायुद्धमें हर्ष और उत्साहसे भरे हुए भीष्मको देखकर शङ्खध्वनिके साथ नाना प्रकारसे सिंहनाद करने लगे॥ २७॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्।
अपरां दिशमास्थाय स्थिते सवितरि प्रभो॥ २८॥

प्रभो! जब सूर्य पश्चिम दिशामें ढलने लगे, उस समय युद्धका रूप और भी भयंकर हो गया। रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये॥ २८॥

धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः॥ २९॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न तथा महारथी सात्यकि ये दोनों शक्ति और तोमरोंकी वर्षासे कौरवसेनाको अत्यन्त पीड़ा देने लगे॥ २९॥

शस्त्रैश्च बहुभी राजञ्जघ्नतुस्तावकान् रणे।
ते हन्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ॥ ३०॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा न त्यजन्ति स्म संयुगम्।
यथोत्साहं तु समरे निजघ्नुस्तावका रणे॥ ३१॥

राजन्! उन दोनोंने युद्धमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा आपके सैनिकोंका संहार करना आरम्भ किया। भरतश्रेष्ठ! उनके द्वारा समरमें मारे जाते हुए आपके सैनिक युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका सहारा लेकर ही संग्राम छोड़कर भाग नहीं रहे थे। आपके योद्धा भी रणभूमिमें पूर्ण उत्साहके साथ शत्रुओंका संहार करते थे॥ ३०-३१॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् तावकानां महात्मनाम्।
वध्यतां समरे राजन् पार्षतेन महात्मना॥ ३२॥

राजन्! महात्मा धृष्टद्युम्न समराङ्गणमें जब आपके योद्धाओंका वध कर रहे थे, उस समय उन महामनस्वी वीरोंका आर्तनाद बड़े जोरसे सुनायी देता था॥ ३२॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ॥ ३३॥

आपके सैनिकोंका वह घोर आर्तनाद सुनकर अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द धृष्टद्युम्नका सामना करनेके लिये उपस्थित हुए॥ ३३॥

तौ तस्य तुरगान् हत्वा त्वरमाणौ महारथौ।
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम्॥ ३४॥

उन दोनों महारथियोंने बड़ी उतावलीके साथ धृष्टद्युम्नके घोड़ोंको मारकर उन्हें भी अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया॥ ३४॥

अवप्लुत्याथ पाञ्चाल्यो रथात् तूर्णं महाबलः।
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः॥ ३५॥

तब महाबली धृष्टद्युम्न तुरंत ही अपने रथसे कूदकर महात्मा सात्यकिके रथपर शीघ्रतापूर्वक चढ़ गये॥ ३५॥

ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः।
आससाद समरे क्रुद्धावावन्त्यौ स परंतपौ॥ ३६॥

तदनन्तर विशाल सेनासे घिरे हुए राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंको संताप देनेवाले और क्रोधमें भरे हुए विन्द-अनुविन्दपर आक्रमण किया॥ ३६॥

तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष।
विन्दानुविन्दौ समरे परिवार्योपतस्थिवान्॥ ३७॥

मान्यवर! इसी प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन भी सम्पूर्ण उद्योगसे समरभूमिमें विन्द और अनुविन्दकी रक्षाके लिये उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ा हो गया॥ ३७॥

अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवासुरान्॥ ३८॥

क्षत्रियशिरोमणि अर्जुन भी अत्यन्त कुपित होकर क्षत्रियोंके साथ समरभूमिमें उसी प्रकार युद्ध करते थे, जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरोंके साथ करते हैं॥ ३८॥

द्रोणस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत् तव।
व्यधमत् सर्वपाञ्चालांस्तूलराशिमिवानलः॥ ३९॥

आपके पुत्रका प्रिय करनेवाले द्रोणाचार्य भी युद्धमें कुपित

लेकर समस्त पाण्डवोंका विनाश करने लगे मानो साक्षात् अग्नि देवता जला रहे हों ॥ ३९ ॥

दुर्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तव विशाम्पते।
परिवार्य रणे भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! आपके दुर्योधन आदि पुत्र रणक्षेत्रमें भीष्मको घेरकर पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे।
चकाङ्क्षीत् त्वरमाणः सर्वानित्वरयन्निति भारत ॥ ४१ ॥

भारत ! तदनन्तर जब सूर्यदेव सन्ध्याकी लालीसे रँगने लगे, तब राजा दुर्योधनने आपके सभी योद्धाओंसे कहा—जल्दी करो ॥ ४१ ॥

युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम्।
अस्तं गिरिमथारूढे अप्रकाशति भास्करे ॥ ४२ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी।
गोमायुगणसंकीर्णा क्षणेन क्षणदामुखे ॥ ४३ ॥

फिर वे सब योद्धा वेगसे युद्ध करते हुए दुष्कर पराक्रम प्रकट करने लगे। इतनेमें ही सूर्य अस्ताचलको चले गये और उनका प्रकाश नष्ट हो गया। इस प्रकार सन्ध्या होते-होते क्षणभरमें रक्तके प्रवाहसे परिपूर्ण भयानक नदी बह चली और उसके ऊपर गीदड़ोंकी भीड़ जमा हो गयी ॥ ४२-४३ ॥

शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम्।
घोरमायोधनं जज्ञे भूतसंघसमाकुलम् ॥ ४४ ॥

भैरव रव करनेवाली अमङ्गलमयी सियारिनों तथा भूतगणोंसे व्याप्त होकर वह युद्धका मैदान अत्यन्त भयानक हो गया ॥ ४४ ॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथान्ये पिशिताशिनः।
समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४५ ॥

चारों ओर राक्षस, पिशाच तथा अन्य मांसाहारी जन्तु सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें दिखायी देने लगे ॥ ४५ ॥

अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन् राज्ञस्तान् सपदानुगान्।
विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥ ४६ ॥

तदनन्तर अर्जुन राजा दुर्योधनके पीछे चलनेवाले सुशर्मा आदिको सेनामें पराजित करके अपने शिविरको चले गये ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तथा।
ययौ स्वशिबिरं राजा निशायां सेनया वृतः ॥ ४७ ॥

कुरुकुलनन्दन राजा युधिष्ठिर भी रात होनेपर सेनासे घिरे हुए दोनों भाई नकुल-सहदेवके साथ अपने शिविरमें पधारे ॥ ४७ ॥

भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान् रथान्।
अवजित्य ततः संख्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥ ४८ ॥

राजेन्द्र ! रथ भीमसेन भी दुर्योधन आदि रथियोंको युद्धमें जीतकर शिविरको लौट गये ॥ ४८ ॥

दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे।
भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिबिरं प्रति ॥ ४९ ॥

राजा दुर्योधन भी महायुद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मको घेरकर तुरंत ही अपने शिविरकी ओर गया ॥ ४९ ॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः।
परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ५० ॥

द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य तथा यदुवंशी कृतवर्मा—ये सारी सेनाको घेरकर अपने शिविरकी ओर चल दिये ॥ ५० ॥

तथैव सात्यकी राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
परिवार्य रणे योधान् ययतुः शिबिरं प्रति ॥ ५१ ॥

राजन् ! इसी प्रकार सात्यकि और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न भी युद्धमें अपने योद्धाओंको घेरकर शिविरकी ओर प्रस्थित हुए ॥ ५१ ॥

एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परंतप ॥ ५२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज ! इस प्रकार रातके समय आपके योद्धा पाण्डवोंके साथ अपने-अपने शिविरमें लौट आये ॥ ५२ ॥

ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा।
न्यविशन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥ ५३ ॥

महाराज ! तदनन्तर पाण्डव तथा कौरव अपने शिविरमें जाकर आपसमें एक दूसरेकी प्रशंसा करते हुए विश्राम करने लगे ॥ ५३ ॥

रक्षां कृत्वा ततः शूरा न्यस्य गुल्मान् यथाविधि।
अपनीय च शल्यानि स्नात्वा च विविधैर्जलैः ॥ ५४ ॥
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयन्तश्च वन्दिभिः।
गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ॥ ५५ ॥

तदनन्तर उन शूरवीरोंने सब ओर सैनिक गुल्मोंको[*] नियुक्त करके विधिपूर्वक अपने-अपने शिविरोंकी रक्षाकी व्यवस्था की। फिर अपने शरीरसे बाणोंको निकालकर नाना भाँतिके जलसे स्नान करके स्वस्तिवाचन कराया। तत्पश्चात् वन्दीजनोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे यशस्वी वीर गीत और बाजोंके शब्दोंसे क्रीडा-विनोद करने लगे ॥ ५४-५५ ॥

मुहूर्तादिव तत् सर्वमभवत् स्वर्गसंनिभम्।
न हि युद्धकथां काञ्चित् तत्राकुर्वन् महारथाः ॥ ५६ ॥

[*] गुल्मका मान है—सेनाका इतना बड़ा दस्ता, जिसमें ९ हाथी, ९ रथ, २७ घुड़सवार और ४५ पैदल शामिल होते हैं।

...सब युद्धसे विश्राम पा... उस समय वहाँ महारथियोंमें युद्धकी कोई बातचीत नहीं थी।

ते प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्ततरे भृशम्।
हस्त्यश्वरथबहुले रात्रौ प्रशान्तेऽपि बभूवतु ॥ ७८ ॥

नरेश्वर! जिनमें हाथी और घोड़ोंकी अधिकता थी, उन दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें उस समय परिश्रमसे चूर-चूर हो रहे थे। रातके समय वे दोनों सेनाएँ सो गयीं, उस समय न देखने योग्य हो गयीं ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवसयुद्धावहारे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें सातवें दिनके युद्धमें सेनाओंका शिविरको लौटना नामक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ५८½ श्लोक हैं)

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

आठवें दिन व्यूहबद्ध कौरव-पाण्डव-सेनाओंकी रणयात्रा और उनका परस्पर घमासान युद्ध

सञ्जय उवाच

परिणाम्य निशां तां तु सुखसुप्ता जनेश्वराः।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! नरेश्वर कौरव और पाण्डव सुखपूर्वक सोकर वह रात बिताकर पुनः युद्धके लिये निकले ॥ १ ॥

ततः शब्दो महानासीत् सैन्ययोरुभयोर्नृप।
निर्गच्छमानयोः संख्ये सागरप्रतिमो महान् ॥ २ ॥

महाराज! वे दोनों सेनाएँ जब युद्धके लिये शिविरसे बाहर निकलने लगीं, उस समय समराङ्गणमें महासागरके गर्जनके समान महान् कोलाहल होने लगा ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै नृप ॥ ३ ॥
एकीभूताः सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचमूम्।
व्यूहाय विदधू राजन् पाण्डवान् प्रति दंशिताः ॥ ४ ॥

नरेश्वर! तदनन्तर राजा दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म तथा द्रोणाचार्य—ये सब सावधान एवं एकत्र होकर पाण्डवोंसे युद्ध करनेके लिये कवच बाँधकर कौरवोंकी विशाल सेनाकी व्यूह रचना करने लगे ॥ ३-४ ॥

भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशाम्पते।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥ ५ ॥

प्रजानाथ! आपके ताऊ भीष्मने समुद्रके समान विशाल एवं भयंकर महाव्यूहका निर्माण किया, जिसमें हाथी घोड़े आदि वाहन उत्ताल तरङ्गोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ५ ॥

अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥ ६ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म सम्पूर्ण सेनाओंके आगे-आगे चले। उनके साथ मालवा, दक्षिण प्रान्त तथा अवन्तीदेशके योद्धा थे ॥ ६ ॥

ततोऽनन्तरमेवासीद् भारद्वाजः प्रतापवान्।
पुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥ ७ ॥

उनके पीछे पुलिन्द, पारद, क्षुद्रक तथा मालवदेशीय वीरोंके साथ प्रतापी द्रोणाचार्य थे ॥ ७ ॥

द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्।
मागधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते ॥ ८ ॥

प्रजानाथ! द्रोणके पीछे मगध, कलिङ्ग और पिशाच सैनिकोंके साथ प्रतापी राजा भगदत्त सावधान होकर चल रहे थे ॥ ८ ॥

प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः ॥ ९ ॥

प्राग्ज्योतिषपुरनरेशके पीछे कोसलनरेश राजा बृहद्बल थे, जो मेकल, कुरुविन्द तथा त्रिपुराके सैनिकोंके साथ थे ॥ ९ ॥

बृहद्बलात् ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥

बृहद्बलके बाद शूरवीर त्रिगर्त थे, जो प्रस्थलके अधिपति थे। उनके साथ बहुसंख्यक काम्बोज और हजारों यवन योद्धा थे ॥ १० ॥

द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्तादनु भारत।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम् ॥ ११ ॥

भारत! त्रिगर्तराजके पीछे वेगशाली वीर अश्वत्थामा चल रहे थे, जो अपने सिंहनादसे समस्त भूतलको निनादित कर रहे थे ॥ ११ ॥

तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा।
द्रौणेरनन्तरं प्रायात् सोदर्यैः परिवारितः ॥ १२ ॥

अश्वत्थामाके पीछे सम्पूर्ण सेना एवं भाइयोंसे घिरे हुए राजा दुर्योधन चल रहा था ॥ १२ ॥

दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥ १३ ॥

दुर्योधनके पीछे कलिङ्गदेशके राजा चल रहे थे। इस प्रकार वह सेनाके समान महाव्यूह युद्धके लिये प्रस्थान कर रहा था।

वेदुमान् वसुदानश्च पौत्रः काश्यस्य वा विभो।
महासत्त्वा विचरन्ति महार्हाणि धनूंषि च ॥ ४ ॥

इनके उस सेनामें बहुत-से धनुर्धर और ये सब योद्धा थे, जो विचित्र रंगके बहुमूल्य कवच और धनुष धारण किये हुए थे।

स तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत् तूर्णं पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ॥

राजन्! आपके सैनिकोंकी वह व्यूहरचना देखकर महारथी युधिष्ठिरने तुरंत ही शत्रुसंतापी धृष्टद्युम्नसे कहा।

पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम्।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम् ॥ १६ ॥

महाधनुर्धर द्रुपदकुमार! देखो, शत्रुसेनाका व्यूह सागरके समान बनाया गया है। तुम भी उसके मुकाबिलेमें शीघ्र ही अपनी सेनाका व्यूह बना लो।

ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम्।
शृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम् ॥ १७ ॥

महाराज! तदनन्तर क्रूर स्वभाववाले धृष्टद्युम्नने अत्यन्त दारुण शृङ्गाटक नामक व्यूह बनाया, जो शत्रुके व्यूहका विनाश करनेवाला था।

शृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा [illegible] ॥ ॥

उसके दोनों शृङ्गोंके स्थानमें भीमसेन और महारथी सात्यकि कई हजार रथियों, घुड़सवारों और पैदलोंके साथ मौजूद थे।

नाभ्यामभून्नरश्रेष्ठः श्वेताश्वः कपिध्वजः।
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥

श्वेतवाहन नरश्रेष्ठ अर्जुन उस व्यूहके नाभिस्थानमें खड़े हुए, जिनके सारथि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण थे। मध्यभागमें राजा युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव थे।

अथेतरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः।
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥

इनके बाद सेनासहित अनेक महाधनुर्धर नरेश, जो व्यूहशास्त्रके विद्वान् थे, उन्होंने उस व्यूहके शेष भागको पूरा किया था।

अभिमन्युस्ततः पश्चाद् विराटश्च महारथः।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ २१ ॥

उस व्यूहके पिछले भागमें अभिमन्यु, महारथी विराट, हर्षमें भरे हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा राक्षस घटोत्कच विद्यमान थे।

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
अतिष्ठन् समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः ॥ २२ ॥

भारत! इस प्रकार शूरवीर पाण्डव अपनी सेनाके इस महाव्यूहका निर्माण करके युद्धकी कामना और विजयकी अभिलाषा रखनेवाले शूरवीर उस रणभूमिमें खड़े थे।

भेरीशब्दाश्च विमिश्राः शङ्खशब्दाश्च भारत।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैः सुघोरास्तु दिशो दिशः ॥ २३ ॥

उस समय रणभेरियोंके शब्द ही थे। उनके निकट शब्दोंसे मिले हुए शङ्खनाद तथा सबकी ताल ठोंकने और उच्चस्वरसे पुकारने आदिके शब्दोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठी थीं।

ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम्।
नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ २४ ॥

राजन्! तदनन्तर सभी शूरवीर समरभूमिमें डटकर परस्पर एक-दूसरेको एकटक नेत्रोंसे देखने लगे ॥ २४ ॥

मनसाभिमुखं मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम्।
युद्धाय समवर्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥ ॥

नरेन्द्र! पहले उन योद्धाओंने एक-दूसरेको नाम ले-लेकर पुकारा, फिर युद्धके लिये परस्पर आक्रमण किया।

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम्।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर आपके और शत्रुपक्षके सैनिक एक-दूसरेपर घातक प्रहार करने लगे। उस समय उनमें अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध होने लगा।

नाराचा निशिता [illegible] सम्पतन्ति स्म भारत।
व्यात्ताननाभयकरा उरगा इव सङ्घशः ॥ २७ ॥

भारत! उस युद्धमें तीखे नाराच मुँह बाये हुए भयंकर सर्पोंके समान झुंड-के-झुंड गिर रहे थे।

निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः।
अम्बुदेभ्यो यथा राजन् भ्राजमाना शतह्रदाः ॥ २८ ॥

राजन्! [illegible] तेलमें धोयी हुई चमकीली शक्तियाँ [illegible] मेघोंसे गिरनेवाली बिजलियोंके समान [illegible] गिर रही थीं।

गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषिताः।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः ॥ २९ ॥

सुवर्णभूषित निर्मल लोहपत्रोंसे मढ़ी हुई सुन्दर गदाएँ

पर्वत-शिखरोंके समान बड़ा विशाल दिखायी देता था ॥ २९ ॥

निस्त्रिंशाश्च व्यराजन्त विमलाम्बरसंनिभाः ।
मायभान्ति विचित्राणि शस्त्राणि भारत ॥ ३० ॥
ददृशाम्बर रणे राजन् पतमानानि सर्वशः

भारत ! स्वच्छ आकाशके समान चमकती हुई तलवारें और नाना प्रकारके विचित्र शस्त्र सब ओर गिरते दिखायी देते थे । राजन् ! वहाँ वे शोभा पा रहे थे ॥ ३० ॥

तस्मिन्नेव समरे भाने शुभ्रवासे नराधिप ॥ ३१ ॥
काञ्चनीव यथा हेमपुष्पसमे समुत्थे ।

नरेश्वर ! उस संग्राममें ध्वजपताकाएँ सुवर्णमय पुष्पोंके समान शोभा पा रही थीं । उस समय परस्पर युद्धके लिये उद्यत हुई सेनाएँ सुवर्णमयी मालाके समान शोभा हो रही थीं ॥

अभ्युद्ययाव समरं तेऽन्योन्यं वै समाहताः ॥ ३२ ॥

वे कौरव-पाण्डव समरमें एक दूसरेपर आघात करने लगे ॥ ३२ ॥

रथास्तु रथिभिर्युक्ते प्रविश्य परस्पराहवे ।
युयुधुः सहितास्तत्र पार्थिवसत्तमाः ॥ ३३ ॥

वहाँ रथी रथियोंसे ही उस महायुद्धमें भिड़कर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥

दन्तिनो युध्यमानास्तु समपेतुः पादचारिणः ।
दन्तेषु भग्नाश्चापरे न्यपतन् विषाणाग्रैः ॥ ३४ ॥

भारत ! परस्पर जूझते हुए हाथियोंके दाँतोंसे आहत होकर दूसरे हाथी भी धराशायी हो जाते थे ॥ ३४ ॥

प्रासैरभिहताः केचिद् नाराचैश्च समन्ततः ।
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गमिवाहताः ॥ ३५ ॥

कितने ही हाथी प्रासोंसे घायल होकर पर्वत-शिखरोंके समान गिरते और हाथियोंकी चोटोंसे गिरते दिखायी देते थे ॥ ३५ ॥

पादाताः समवर्तन्त निघ्नन्तश्च परस्परम् ।
विचित्रकवचधराः शूराः प्रासतोमरधारिणः ॥ ३६ ॥

बहुत-से शूरवीर पैदल सैनिक एक दूसरेपर प्रहार करते हुए विचित्र पराक्रम दिखा रहे थे ॥ ३६ ॥

अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः ।
अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार कौरव तथा पाण्डव सैनिक रणभूमिमें एक दूसरेसे भिड़कर नाना प्रकारके भयंकर अस्त्रोंद्वारा विपक्षियोंको यमलोक पहुँचाने लगे ॥ ३७ ॥

ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन् ।
अभ्यागमद् रणे पाण्डून् धनुःशब्देन मोहयन् ॥ ३८ ॥

तदनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म अपने रथकी घरघराहटसे दिशाओंको गुँजाते और धनुषकी टंकारसे लोगोंको मोहित करते हुए रणभूमिमें पाण्डवोंपर चढ़ आये ॥ ३८ ॥

पाण्डवानां रथाश्चापि नदन्तो भैरवस्वनम् ।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३९ ॥

उस समय धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव महारथी भी भयानक गर्जना करते हुए युद्धके लिये सन्नद्ध होकर उनका सामना करनेको गये ॥ ३९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ॥ ४० ॥

भारत ! फिर तो आपके और पाण्डवोंके योद्धाओंमें परस्पर भयानक युद्ध छिड़ गया । पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथी एक दूसरेसे गुथ गये ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धारम्भे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें आठवें दिनके युद्धका आरम्भविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्याय

भीष्मका पराक्रम, भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके आठ पुत्रोंका वध तथा दुर्योधन और भीष्मकी युद्धविषयक बातचीत

संजय उवाच

भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जैसे तपते हुए सूर्यकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार उस समय भीष्म उस समरमें कुपित हो सब ओर अपना प्रताप प्रकट करने लगे, उस समय पाण्डवलोग उनकी ओर देख न सके ॥ १ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥ २ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञासे समस्त सेनाएँ गङ्गानन्दन भीष्मपर टूट पड़ीं, जो अपने तीखे बाणोंसे शत्रुसैनिकोंका मर्दन कर रहे थे ॥ २ ॥

स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान् सह सृञ्जयान्।
पाञ्चालांश्च महेष्वासान् पातयामास सायकैः ॥ ३ ॥

युद्धकी श्लाघा रखनेवाले भीष्म अपने बाणोंके द्वारा सोमक, सृञ्जय और पाञ्चाल महाधनुर्धरोंको रणभूमिमें गिराने लगे ॥ ३ ॥

ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह।
भीष्ममेवाभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम् ॥ ४ ॥

भीष्मके द्वारा मारे जाते हुए वे सोमक (सृञ्जय) और पाञ्चाल भी मृत्युका भय छोड़कर तुरंत भीष्मपर ही टूट पड़े ॥ ४ ॥

स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि।
चिच्छेद सहसा राजन् बाहूनथ शिरांसि च ॥ ५ ॥

राजन्! वीर शान्तनुनन्दन भीष्म उस युद्धमें सहसा उन रथियोंकी भुजाओं और मस्तकोंको काट-काटकर गिराने लगे ॥ ५ ॥

विरथान् रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम् ॥ ६ ॥

आपके ताऊ देवव्रतने बहुतेरे रथियोंको रथहीन कर दिया। घोड़ोंसे घुड़सवारोंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे ॥ ६ ॥

निर्मनुष्यांश्च मातङ्गाञ्शयानान् पर्वतोपमान्।
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान् ॥ ७ ॥

महाराज! हमने देखा, भीष्मके अस्त्रसे मोहित होकर बहुत-से पर्वताकार हाथी रणभूमिमें पड़े हैं और उनके पास कोई मनुष्य नहीं है ॥ ७ ॥

न तत्रासीत् पुमान् कश्चित् पाण्डवानां विशाम्पते।
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद् भीमसेनान्महाबलात् ॥ ८ ॥

प्रजानाथ! उस समय वहाँ रथियोंमें श्रेष्ठ महाबली भीमसेनके सिवा पाण्डवपक्षका दूसरा कोई पुरुष नहीं रह गया था ॥ ८ ॥

स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे।
ततो निष्टानको घोरो भीष्मभीमसमागमे ॥ ९ ॥
बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः।
तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथानदन् ॥ १० ॥

वे ही युद्धमें भीष्मका सामना करते हुए उनपर बाणोंका प्रहार कर रहे थे। भीष्म और भीमसेनके युद्ध होते समय सम्पूर्ण सेनाओंमें बड़ा भयंकर कोलाहल मच गया और पाण्डव हर्षमें भरकर जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ९-१० ॥

ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः।
भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥ ११ ॥

जिस समय युद्धमें यह जनसंहार हो रहा था, उसी समय राजा दुर्योधन अपने भाइयोंसे घिरा हुआ वहाँ आ पहुँचा और भीष्मकी रक्षा करने लगा ॥ ११ ॥

भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः।
प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन् द्रवमाणे समन्ततः ॥ १२ ॥

इसी समय रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेनने भीष्मके सारथिको मार डाला। फिर तो उनके घोड़े उस रथको लेकर रणभूमिमें चारों ओर दौड़ लगाने लगे ॥ १२ ॥

(चचार युधि गजेन्द्रान् भीमो भीमपराक्रमः।
सुनाभस्य युधा वै भीमस्यासुमुपाद्रवत् ॥
जघान निशितैर्बाणैर्भीमं विव्याध सर्वशः।
भीमसेनं सुनाभस्तु दारुणं नतपर्वणा ॥)
सुनाभस्य शरेणाशु शिरश्चिच्छेद भारत।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद् युधि ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् भयंकर पराक्रमी भीमसेन युद्धमें सब ओर विचरने लगे। उस समय आपके पुत्र सुनाभने भीमसेनपर आक्रमण किया और उन्हें बाण मारकर घायल कर दिया। भारत! तब भीमसेनने अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे सुनाभका सिर काट लिया। वह मारा जाकर रणभूमिमें गिर पड़ा ॥ १३ ॥

हते तस्मिन् महाराज तव पुत्रे महारथे।
नामृष्यन्त रणे शूरा भ्रातरः सप्त संयुगे ॥ १४ ॥

महाराज! आपके उस महारथी पुत्रके मारे जानेपर उसके सात शूरवीर भाई युद्धमें यह न सह सके ॥ १४ ॥

आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः ॥ १५ ॥
पाण्डवं चित्रसंनाहा विचित्रकवचध्वजाः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामा अरिंदमम् ॥ १६ ॥

आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और दुर्जय विशालाक्ष—ये विचित्र कवच और ध्वजाओंसे सुशोभित हो युद्धकी इच्छासे शत्रुदमन भीमसेनपर टूट पड़े ॥ १५-१६ ॥

महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः।
नवभिर्वज्रसंकाशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥ १७ ॥

जैसे वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने नमुचिपर प्रहार किया था, उसी प्रकार महोदरने समरभूमिमें वज्रके समान नौ बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥ १७ ॥

आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चापि पञ्चभिः।
नवत्या कुण्डधारस्तु विशालाक्षस्तु पञ्चभिः ॥ १८ ॥

अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम्।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद् भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥

महाराज! अपराजितने उस समय बहुत-से बाणोंसे पराजित न होनेवाले महाबली महारथी भीमसेनको घायल कर दिया। उन्हें बहुत-से बाणोंद्वारा पीड़ित किया ॥ १९ ॥

तथा पण्डितकश्चैव त्रिभिर्बाणैः समार्पयत्।
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥ २० ॥

पण्डितकने उस युद्धमें तीन बाणोंसे भीमसेनको घायल कर दिया। तब भीम उस रणक्षेत्रमें शत्रुओंद्वारा किये हुए प्रहारको सहन न कर सके ॥ २० ॥

धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्षणः।
शिरश्चिच्छेद समरे शरेणानतपर्वणा ॥ २१ ॥
अपराजितस्य सुनसं तथा पुष्पस्य सत्वरम्।

उन शत्रुसूदन भीमने बायें हाथसे अनुपम अपना धनुष दबाकर झुकी हुई गाँठवाले बाणसे युद्धस्थलमें अपराजितका सुन्दर नासिकासे युक्त मस्तक काट डाला।

पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥ २२ ॥
अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम्।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥

भीमसेनके द्वारा पराजित हुए अपराजितका सिर कटकर भूमिपर गिर पड़ा। तब उन्होंने दूसरे भल्लसे महारथी कुण्डधारको सब लोगोंके देखते-देखते मृत्युलोकमें भेज दिया ॥ २२-२३ ॥

ततः पुनरमेयात्मा प्रसंधाय शिलीमुखम्।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥ २४ ॥

भारत! तब भीमने अमेयात्मा भीमने समरमें पुनः एक बाणका संधान करके उसे पण्डितकपर चलाया ॥ २४ ॥

स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम्।
यथा नरं निहत्याशु भुजगः कालचोदितः ॥ २५ ॥

जैसे कालप्रेरित सर्प किसी मनुष्यको डँसकर तुरंत बिलमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह बाण पण्डितकको मारकर धरतीमें समा गया ॥ २५ ॥

विशालाक्षशिरश्छित्त्वा पातयामास भूतले।
त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन् क्लेशं पुरातनम् ॥ २६ ॥

उदारचेता भीमसेनने पूर्व क्लेशको स्मरण करके तीन बाणोंद्वारा विशालाक्षका मस्तक काटकर धरतीपर गिरा दिया ॥ २६ ॥

महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे।
विव्याध समरे राजन् स हतो न्यपतद् भुवि ॥ २७ ॥

राजन्! तत्पश्चात् उन्होंने महाधनुर्धर महोदरकी छातीमें एक नाराचसे प्रहार किया। उससे मारा जाकर वह युद्धमें धरतीपर गिर पड़ा ॥ २७ ॥

आदित्यकेतोः केतुं च छित्त्वा भल्लेन संयुगे।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत ॥ २८ ॥

भारत! तदनन्तर भीमने एक भल्लसे आदित्यकेतुकी ध्वजा काटकर अत्यन्त तीखे भल्लसे उसका मस्तक भी काट दिया ॥ २८ ॥

बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणानतपर्वणा।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥

इसके बाद क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे मारकर बह्वाशीको यमलोक भेज दिया ॥ २९ ॥

प्रदुद्रुवुस्ततस्त्वन्ये पुत्रास्तव विशाम्पते।
मन्यमाना हि तत् सत्यं सभायां तस्य भाषितम् ॥ ३० ॥

प्रजानाथ! तब आपके दूसरे पुत्र भीमसेनके द्वारा सभामें की हुई उस प्रतिज्ञाको सत्य मानकर वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ३० ॥

ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः।
अब्रवीत् तावकान् योधान् भीमोऽयं युधि वध्यताम् ॥ ३१ ॥

भाइयोंके मरनेसे राजा दुर्योधनको बड़ा कष्ट हुआ। उसने आपके समस्त सैनिकोंको आज्ञा दी कि इस भीमसेनको युद्धमें मार डालो ॥ ३१ ॥

एवमेते महेष्वासाः पुत्रास्तव विशाम्पते।
भ्रातॄन् संदृश्य निहतान् प्रास्मरंस्ते हि तद्वचः ॥ ३२ ॥
यदुक्तवान् महाप्राज्ञः क्षत्ता हितमनामयम्।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दिव्यदर्शिनः ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ! इस प्रकार ये आपके महाधनुर्धर पुत्र अपने भाइयोंको मारा गया देख उन बातोंको याद करने लगे, जिन्हें महाज्ञानी विदुरने कहा था। वे सोचने लगे, दिव्यदर्शी विदुरने हमारे कुशल एवं हितके लिये जो बात कही थी, वह आज निकट आ गयी ॥ ३२-३३ ॥

लोभमोहसमाविष्टः पुत्रप्रीत्या जनाधिप।
न बुध्यसे पुरा यत् तत् तथ्यमुक्तं वचो महत् ॥ ३४ ॥

नरेश्वर! आपने अपने पुत्रोंके प्रति स्नेहके कारण लोभ और मोहके वशीभूत हो विदुरजीके उस सत्य एवं हितकर महत्त्वपूर्ण वचनपर पहले ध्यान नहीं दिया ॥ ३४ ॥

तथैव हि वधार्थाय पुत्राणां पाण्डवो बली।
नूनं जातो महाबाहुर्यथा हन्ति स्म कौरवान् ॥ ३५ ॥

उनके कथनानुसार ही बलवान् पाण्डुपुत्र महाबाहु भीम आपके पुत्रोंके वधका कारण बनते जा रहे हैं और उसी प्रकार वे कौरवोंका वध कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे।
दुःखेन महताऽऽविष्टो विललाप सुदुःखितः ॥ २६ ॥

उस समय राजा दुर्योधन युद्धभूमिमें भीष्मके पास जाकर महान् दुःखसे व्याकुल हो अत्यन्त शोकमग्न होकर विलाप करने लगा ॥ २६ ॥

निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि।
यतमानास्तथान्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः ॥ २७ ॥

पितामह! भीमसेनने युद्धमें मेरे शूरवीर भाइयोंको मार डाला और दूसरे भी समस्त सैनिक विजयके लिये पूरा प्रयत्न करते हुए भी उनके हाथसे मारे जा रहे हैं ॥ २७ ॥

भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्मानुपेक्षते।
सोऽहं कापथमारूढः पश्य दैवमिदं मम ॥ २८ ॥

आप मध्यस्थ बने रहकर सदा हमलोगोंकी उपेक्षा करते हैं। मैं बुरे रास्तेपर चढ़ आया हूँ। मेरे इस दुर्भाग्यको देखिये ॥ २८ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् साश्रुलोचनः ॥ २९ ॥

यह क्रूरतापूर्ण वचन सुनकर आपके ताऊ भीष्म आँसू बहाते हुए वहाँ दुर्योधनसे इस प्रकार बोले ॥ २९ ॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च।
गान्धार्या च यशस्विन्या तत् त्वं तात न बुद्धवान् ॥ ३० ॥

तात! मैंने, द्रोणाचार्यने, विदुरने तथा यशस्विनी गान्धारी देवीने भी पहले ही यह सब बात कह दी थी; परंतु तुमने इसपर ध्यान नहीं दिया ॥ ३० ॥

समयश्च मया पूर्वं कृतो वै शत्रुकर्शन।
नाहं युधि नियोक्तव्यो नाप्याचार्यः कथंचन ॥ ३१ ॥

शत्रुसूदन! मैंने पहले ही यह निश्चय प्रकट कर दिया था कि तुम्हें मुझे या आचार्यको युद्धमें किसी प्रकार भी नहीं लगाना चाहिये; (क्योंकि हमलोगोंका कौरवों तथा पाण्डवोंके प्रति समान स्नेह है) ॥ ३१ ॥

यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे।
हनिष्यति रणे नित्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३२ ॥

मैं तुमसे यह सत्य कहता हूँ कि भीमसेन धृतराष्ट्रके जिस-जिस पुत्रको युद्धमें अपने सामने आया हुआ देख लेंगे, उसे प्रतिदिन निश्चय ही मार डालेंगे ॥ ३२ ॥

स त्वं राजन् स्थिरो भूत्वा रणे कृत्वा दृढां मतिम्।
योधयस्व रणे पार्थान् स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ ३३ ॥

अतः राजन्! तुम स्थिर होकर युद्धके विषयमें अपना दृढ़ निश्चय बना लो और स्वर्गको ही अन्तिम आश्रय मानकर कुन्तीपुत्र पाण्डवोंके साथ युद्ध करो ॥ ३३ ॥

न शक्याः पाण्डवा जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः।
तस्माद् युद्धे स्थिरां कृत्वा मतिं युध्यस्व भारत ॥ ३४ ॥

भारत! इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी पाण्डवोंको जीत नहीं सकते। अतः युद्धके लिये पहले अपनी बुद्धिको स्थिर कर लो, उसके बाद युद्ध करो ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

एकोननवतितमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका घमासान युद्ध और भयंकर जनसंहार

धृतराष्ट्र उवाच

दृष्ट्वा मे निहतान् पुत्रान् बहूनेकेन संजय।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! एकमात्र भीमसेनके द्वारा युद्धमें मेरे बहुत-से पुत्र मारे गये, यह देखकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यने क्या किया? ॥ १ ॥

अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति संजय।
मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम् ॥ २ ॥

मेरे पुत्र प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं। सूत! मेरा तो ऐसा विश्वास है कि हमलोग सर्वथा अत्यन्त दुर्भाग्यके मारे हुए हैं ॥ २ ॥

यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत।
यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः।
अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ४ ॥
अन्येषां चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम।
यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद् भागधेयतः ॥ ५ ॥

दुर्योधनके अधीन होनेके कारण ही मेरे पुत्र हारते जा रहे हैं, विजयी नहीं हो रहे हैं। जहाँ भीष्म, द्रोण, महामना कृपाचार्य, वीरवर भूरिश्रवा, भगदत्त, अश्वत्थामा तथा युद्धसे पीठ न दिखानेवाले अन्य शूरवीरोंके बीचमें रहकर भी मेरे पुत्र प्रतिदिन संग्राममें मारे जाते हैं, वहाँ दुर्भाग्यके

किया और क्या कारण हो सकता है ? ॥ १-५ ॥

न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत।
वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ॥ ६ ॥
गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया।
नाबुध्यत पुरा मोहात् तस्य प्राप्तमिदं फलम् ॥ ७ ॥
यद् भीमसेनः समरे पुत्रान् मम विचेतसः।
अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम् ॥ ८ ॥

मूर्ख दुर्योधनने पहले मेरी कही हुई बातोंपर ध्यान नहीं दिया। तात ! मैंने भीष्मने विदुरने तथा गान्धारीने भी सदा हितकी इच्छासे दुर्बुद्धि दुर्योधनको बार बार मना किया, परंतु मोहवश पूर्वकालमें इसकी ये बातें उसकी समझमें नहीं आयीं। उसीका यह फल उसे प्राप्त हुआ है, जिससे भीमसेन समराङ्गणमें कुपित होकर मेरे मूर्ख पुत्रोंको प्रतिदिन यमलोक भेज रहा है ॥ ६-८ ॥

सञ्जय उवाच

इदं तत् समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम्।
न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हितं तदा ॥ ९ ॥

सञ्जयने कहा—प्रभो ! उस समय आपने जो विदुरजीके कहे हुए उत्तम एवं हितकारक वचनको नहीं सुना (सुनकर भी उसपर ध्यान नहीं दिया) उसीका यह फल प्राप्त हुआ है।

निवारय सुतान् द्यूतात् पाण्डवान् मा द्रुहेति च।
सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत् तदेव च ॥ १० ॥
न शुश्रूषसि यद् वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम्।
तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधुभाषितम् ॥ ११ ॥

उन्होंने कहा था कि आप अपने पुत्रोंको जूआ खेलनेसे रोकिये। पाण्डवोंसे द्रोह न कीजिये। आपका हित चाहने वाले अन्यान्य सुहृदोंने भी बारम्बार ये ही बातें कही थीं परंतु जैसे मरणासन्न पुरुषको हितकारक ओषधि अच्छी नहीं लगती उसी प्रकार आप उन हितकर वचनोंको सुनना भी नहीं चाहते थे। अब श्रेष्ठ विदुरने जैसा बताया था वैसा ही परिणाम आपके सामने आया है ॥ १०-११ ॥

विदुरद्रोणभीष्माणां तथान्येषां हितैषिणाम्।
अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः ॥ १२ ॥

विदुर, द्रोण, भीष्म तथा अन्य हितैषियोंके हितकर वचनोंको न माननेके कारण इन कौरवोंका विनाश हो रहा है।

तदेतत् समनुप्राप्तं पूर्वमेव विशाम्पते।
तस्मात् त्वं शृणु तत्त्वेन यथा युद्धमवर्तत ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! यह सब तो पहलेसे ही प्राप्त है। अब आप जिस प्रकार युद्ध हुआ, उसका यथावत् समाचार सुनिये ॥ १३ ॥

मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत।
लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १४ ॥

राजन् ! उस दिन दोपहर होते होते बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ गया, जो सम्पूर्ण जगत्के योद्धाओंका विनाश करनेवाला था। वह सब मैं कह रहा हूँ, सुनिये ॥ १४ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात्।
संरब्धान्यभ्यधावन्त भीष्ममेव जिघांसया ॥ १५ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरके आदेशसे क्रोधमें भरी हुई उनकी सारी सेनाएँ भीष्मपर ही टूट पड़ीं। वे भीष्मको मार डालना चाहती थीं ॥ १५ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १६ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा महारथी सात्यकि इन सबने अपनी सेनाओंके साथ भीष्मपर ही आक्रमण किया।

विराटो द्रुपदश्चैव सहितौ सर्वसोमकैः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम् ॥ १७ ॥

राजा विराट और द्रुपद सम्पूर्ण सोमकोंसहित युद्धमें महारथी भीष्मपर ही चढ़ आये ॥ १७ ॥

केकया धृष्टकेतुश्च कुन्तिभोजश्च दंशितः।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १८ ॥

नरेश्वर ! केकय, धृष्टकेतु और कवचधारी कुन्तिभोज इन सबने अपनी सेनाके साथ भीष्मपर ही धावा किया।

अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान्।
दुर्योधनसमादिष्टान् राज्ञः सर्वान् समभ्ययुः ॥ १९ ॥

अर्जुन, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और पराक्रमी चेकितान ये दुर्योधनके भेजे हुए समस्त राजाओंपर चढ़ आये ॥ १९ ॥

अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः।
भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेऽभ्यधावन्त कौरवान् ॥ २० ॥

शूरवीर अभिमन्यु, महारथी घटोत्कच तथा क्रोधमें भरे हुए भीमसेन इन सबने कौरवोंपर धावा किया ॥ २० ॥

त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥ २१ ॥

राजन् ! पाण्डवोंने तीन दलोंमें विभक्त होकर कौरवोंका वध आरम्भ किया। इसी प्रकार कौरव भी रणभूमिमें शत्रुओंका नाश करने लगे ॥ २१ ॥

द्रोणस्तु रथिनां श्रेष्ठान् सोमकान् सृञ्जयैः सह।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम् ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्यने कुपित हो सोमकों और सृञ्जयोंको यमलोक भेजनेके लिये क्रोधपूर्वक उनपर धावा बोल दिया ॥ २२ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् सृञ्जयानां महात्मनाम्।
वध्यतां समरे राजन् भारद्वाजेन धन्विना ॥ २३ ॥

राजन् ! नकुल और सहदेवको पुत्रोंसहित मारे जाते हुए महामना शत्रुओंका महान् आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥ २३ ॥

द्रोणेन निहतास्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे।
विनिकृत्ता व्यदृश्यन्त व्याधिभिर्विविधा नरा इव ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्यके मारे हुए बहुत-से क्षत्रिय रणभूमिमें व्याधिग्रस्त मनुष्योंकी भाँति छटपटाते हुए दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

कूजतां क्रन्दतां चैव स्तनतां चैव भारत।
अनिशं शुश्रुवे शब्दः क्षुत्क्लिष्टानां नृणामिव ॥ २५ ॥

भारत ! भूखसे पीड़ित मनुष्योंकी भाँति घायल होकर कराहते, क्रन्दन करते और आर्तनाद करते हुए योद्धाओंका शब्द निरन्तर सुनायी देता था ॥ २५ ॥

तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवापरः ॥ २६ ॥

इसी प्रकार महाबली भीमसेन क्रोधमें भरे हुए दूसरे कालके समान कौरव सैनिकोंका घोर संहार करने लगे ॥ २६ ॥

वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे।
प्रावर्तत नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी ॥ २७ ॥

उस महायुद्धमें परस्पर मार-काट करनेवाले सैनिकोंकी रक्तराशिको प्रवाहित करनेवाली एक भयंकर नदी बह चली ॥ २७ ॥

स संग्रामो महाराज घोररूपोऽभवन्महान्।
कुरूणां पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २८ ॥

महाराज ! कौरवों और पाण्डवोंका यह घोर महासंग्राम यमलोककी वृद्धि करनेवाला था ॥ २८ ॥

ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २९ ॥

उस युद्धमें विशेष वेगशाली भीमसेनने कुपित हो हाथियोंकी सेनापर धावा करके उन्हें काल-के गालमें भेजना आरम्भ किया ॥ २९ ॥

तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः।
पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च विनेदुश्च दिशो दश ॥ ३० ॥

भारत ! वहाँ भीमके नाराचोंसे पीड़ित हुए हाथी गिरने, चिग्घाड़ने बैठ जाने अथवा दसों दिशाओंमें भागकर चिल्लाने लगते थे ॥ ३० ॥

छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष।
क्रौञ्चवद् व्यनदन् भीताः पृथिवीमधिशेरते ॥ ३१ ॥

आर्य ! सूँड़ तथा दूसरे दूसरे अङ्गोंके कट जानेसे हाथी भयभीत हो क्रौञ्च पक्षीकी भाँति चीत्कार करते और धराशायी हो जाते थे ॥ ३१ ॥

नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ।
ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः ॥ ३२ ॥

वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः।

नकुल और सहदेवने घुड़सवारोंकी सेनापर आक्रमण किया। राजन् ! उन घोड़ोंने सोनेकी कलँगी तथा सोनेके ही अन्यान्य आभूषण धारण किये थे। वे सब सैकड़ों और सहस्रोंकी संख्यामें मरकर गिरते दिखायी देते थे ॥ ३२-३३ ॥

पतद्भिस्तुरगै राजन् समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ३३ ॥

निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः।
हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥ ३४ ॥

राजन् ! वहाँ गिरते हुए घोड़ोंसे सारी पृथ्वी पट गयी। किन्हींकी जीभ निकल आयी थी, कोई लंबी साँस खींच रहे थे, कोई धीरे-धीरे अव्यक्त शब्द करते और कितनोंके प्राण निकल गये थे। नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार विभिन्न रूपवाले घोड़ोंसे आच्छादित होनेके कारण उस पृथ्वीकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ ३३-३४ ॥

अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ३५ ॥

भारत ! प्रजानाथ ! जहाँ-तहाँ अर्जुनके द्वारा युद्धमें मारे गये राजाओंसे भरी हुई वह रणभूमि बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ ३५ ॥

रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैश्छिन्नैश्च महायुधैः।
चामरैर्व्यजनैश्चैव छत्रैश्च सुमहाप्रभैः ॥ ३६ ॥

हारैर्निष्कैः सकेयूरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
उष्णीषैरपविद्धैश्च पताकाभिश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥

अनुकर्षैः शुभै राजन् योक्त्रैश्चैव सरश्मिभिः।
संछन्ना वसुधा भाति वसन्ते कुसुमैरिव ॥ ३८ ॥

राजन् ! टूटे हुए रथ, कटे हुए ध्वज, छिन्न-भिन्न हुए बड़े-बड़े आयुध, चँवर, व्यजन, अत्यन्त प्रकाशमान छत्र, सोनेके हार, केयूर, कुण्डलमण्डित मस्तक, गिरे हुए शिरोभूषण (पगड़ी आदि), पताका, सुन्दर अनुकर्ष *, जोत और लगाम आदिसे आच्छादित हुई वह समरभूमि ऐसी जान पड़ती थी मानो वसन्त ऋतुमें रंग-बिरंगे भाँति-भाँतिके पुष्प गिरे हुए हों ॥ ३६-३८ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डूनामपि भारत।
क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे ॥ ३९ ॥

अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि।
ततोऽपरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः ॥ ४० ॥

भारत ! शान्तनुनन्दन भीष्म, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—इनके कुपित होनेसे पाण्डव सैनिकोंका भी इस प्रकार यह संहार हुआ था। पाण्डव पक्षके वीरोंके कुपित होनेसे आपके योद्धाओंका भी इसी प्रकार विनाश हुआ था ॥ ३९-४० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सहासंकुलयुद्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

* रथके नीचे लगनेवाली लकड़ी जो बन्धन करते हैं, जिससे उसमें पहिये रहते हैं।

नवतितमोऽध्यायः

इरावान्‌के द्वारा शकुनिके भाइयोंका तथा राक्षस अलम्बुषके द्वारा इरावान्‌का वध

संजय उवाच

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये।
शकुनिः सौबलः श्रीमान् पाण्डवान् समुपाद्रवत्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! उस समय बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह भयंकर संग्राम चल रहा था। उसी समय सुबलपुत्र श्रीमान् शकुनिने पाण्डवोंपर आक्रमण किया॥ १॥

तथैव सात्वतो राजन् हार्दिक्यः परवीरहा।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानामनीकिनीम्॥ २॥

राजेन्द्र! इसी प्रकार शत्रुवीरोंका विनाश करनेवाले सात्वतवंशी कृतवर्माने उस संग्राममें पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण किया॥ २॥

ततः काम्बोजमुख्यानां नदीजानां च वाजिनाम्।
आरट्टानां महीजानां सिन्धुजानां च सर्वशः॥ ३॥
वनायुजानां शुभ्राणां तथा पर्वतवासिनाम्।
वाजिनो बहुभिः संख्ये समन्तात् परिवारयन्॥ ४॥
ये चापरे तित्तिरजा जवना वातरंहसः।
सुवर्णालंकृतैरेतैर्वर्मवद्भिः सुकल्पितैः॥ ५॥
हयैर्वातजवैर्मुख्यैः पाण्डवस्य सुतो बली।
अभ्यवर्तत तत् सैन्यं हृष्टरूपः परंतपः॥ ६॥

तदनन्तर काम्बोज देशके अच्छे घोड़े, दरियाई घोड़े, मही, सिन्धु, वनायु, आरट्ट तथा पर्वतीय प्रान्तोंमें होनेवाले सुन्दर घोड़े—इन सबकी बहुत बड़ी सेनाके द्वारा [illegible] शत्रुओंको संताप देनेवाला पाण्डुनन्दन अर्जुनका बलवान् पुत्र इरावान् हर्षमें भरकर रणभूमिमें कौरवोंकी उस सेनापर चढ़ आया। उसके साथ तित्तिर प्रदेशके घोड़े भी मौजूद थे, जो वायुके समान वेगशाली थे। वे सब-के-सब सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे, उनके शरीरोंमें कवच बँधे हुए थे और उन्हें सुन्दर साज-बाजसे सुसज्जित किया गया था। वे सभी घोड़े अच्छी जातिके तथा वायुके तुल्य शीघ्रगामी थे॥ ३—६॥

अर्जुनस्य सुतः श्रीमानिरावान् नाम वीर्यवान्।
सुतायां नागराजस्य जातः पार्थेन धीमता॥ ७॥

अर्जुनका बलवान् पुत्र श्रीमान् इरावान् नागराज ऐरावतकी पुत्रीके गर्भसे बुद्धिमान् अर्जुनद्वारा उत्पन्न किया गया था॥ ७॥

ऐरावतेन सा दत्ता ह्यनपत्या महात्मना।
पत्यौ हते सुपर्णेन कृपणा दीनचेतना॥ ८॥
भार्यार्थं तां च जग्राह पार्थः कामवशानुगाम्।
एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः॥ ९॥

नागराजकी वह पुत्री संतानहीन थी। उसके मनोनीत पतिको गरुड़ने मार डाला था, जिससे वह असहाय, दीन एवं दयनीय हो रही थी। [illegible] ऐरावतने उसे अर्जुनको अर्पित किया और अर्जुनने उसको भार्यारूपमें ग्रहण किया था। इस प्रकार यह अर्जुनपुत्र उत्पन्न हुआ था। वह सदा मातृकुलमें ही रहा॥ ८-९॥

स नागलोके संवृद्धो मात्रा च परिरक्षितः।
पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद् दुरात्मना॥ १०॥

वह नागलोकमें ही माताद्वारा पाला-पोसा और बढ़ाया गया और सब प्रकारसे वहाँ उसकी रक्षा की गयी थी। उसके चाचा दुरात्मा [illegible] अर्जुनके प्रति द्वेष होनेके कारण उस पुत्रको त्याग दिया था॥ १०॥

रूपवान् बलसम्पन्नो गुणवान् सत्यविक्रमः।
इन्द्रलोकं जगामाशु श्रुत्वा तत्रार्जुनं गतम्॥ ११॥

इरावान् भी रूपवान्, बलवान्, गुणवान् और सत्यपराक्रमी था। वह जब उसने सुना कि मेरे पिता अर्जुन इस समय इन्द्रलोकमें गये हुए हैं, तब वह शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचा॥ ११॥

सोऽभिगम्य महाबाहुः पितरं सत्यविक्रमम्।
अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृताञ्जलिः॥ १२॥
न्यवेदयत चात्मानमर्जुनस्य महात्मनः।
इरावानस्मि भद्रं ते पुत्रश्चाहं तव प्रभो॥ १३॥
मातुः समागमो यश्च तत् सर्वं प्रत्यवेदयत्।
तच्च सर्वं यथावृत्तमनुसस्मार पाण्डवः॥ १४॥

उस सत्यपराक्रमी महाबाहु वीरने अपने पिताके पास पहुँचकर शान्तभावसे उन्हें प्रणाम किया और विनयपूर्वक हाथ जोड़ महात्मा अर्जुनके समक्ष अपना परिचय देते हुए

यहाँ मूलमें '[illegible]' पद है। व्याकरणके अनुसार '[illegible]' का [illegible] नहीं [illegible] है। अतः यहाँ '[illegible]' [illegible] है। [illegible] पति [illegible] [illegible] है। [illegible] विवाह [illegible] है। [illegible] यह कि जिसके लिये [illegible] किया गया है, वह [illegible] पति ही विवाहका [illegible] है। विवाहके [illegible] पति [illegible] है। [illegible] नागकन्याके मनोनीत पतिको गरुड़ने मार डाला था, इसीलिये [illegible] अनुसार उसका अर्जुनके साथ सम्बन्ध हुआ और [illegible] अर्जुनने [illegible] स्वीकार किया।

बोला— प्रभो ! आपका कल्याण हो ! मैं आपका ही पुत्र इरावान् हूँ ।' उसकी माताके साथ अर्जुनका जो समागम हुआ था, वह सब उसने निवेदन किया । पाण्डुनन्दन अर्जुनको वह सब वृत्तान्त यथावत्‌रूपसे स्मरण हो आया ॥ १२-१४ ॥

परिष्वज्य सुतं चापि आत्मनः सदृशं गुणैः ।
प्रीतिमानभवत् पार्थो देवराजनिवेशने ॥ १५ ॥

गुणोंमें अपने ही समान उस पुत्रको हृदयसे लगाकर अर्जुन वहाँ इन्द्रभवनमें बड़े प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥

सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप ।
प्रीतिपूर्वं महाबाहुः स्वकार्यं प्रति भारत ॥ १६ ॥

नरेश्वर ! भरतनन्दन ! उन दिनों देवलोकमें अर्जुनने महाबाहु इरावान्‌को बड़े प्रेमसे अपना कार्य करनेका आदेश दिया ॥ १६ ॥

युद्धकाले त्वयास्माकं साह्यं देयमिति प्रभो ।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल इहागतः ॥ १७ ॥

'युद्धके समय तुम हमारी सहायता करना ।' यह आदेश पाकर इरावान्‌ने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे स्वीकार किया और अब युद्धके अवसरपर यहाँ आया है ॥ १७ ॥

कामवर्णजवैरश्वैर्बहुभिः संवृतो नृप ।
ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः ॥ १८ ॥

नरेश्वर ! इरावान्‌के साथ इच्छानुसार रंग तथा वेगवाले बहुत-से घोड़े मौजूद थे । वे घोड़े सुवर्णमय शिरोभूषण धारण करनेवाले तथा अनेक रंगोंके थे और मनके समान वेगशाली थे ॥ १८ ॥

उत्पेतुः सहसा राजन् हंसा इव महोदधौ ।
ते त्वदीयान् समासाद्य हयसंघान् महाजवान् ॥ १९ ॥
क्रोडैः क्रोडानभिघ्नन्तो घोणाभिश्च परस्परम् ।
निपेतुः सहसा राजन् सुवेगाभिहता भुवि ॥ २० ॥

राजन् ! वे घोड़े सहसा महासागरमें उड़नेवाले हंसोंके समान उछलने लगे और आपके महान् वेगशाली अश्वोंके समुदायमें पहुँचकर उनकी छातियोंमें अपनी छाती तथा नासिकाओंसे उनकी नासिकाओंपर चोट करने लगे । वे सहसा वेगपूर्वक टकराकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १९-२० ॥

निपतद्भिस्तथा तैश्च हयसंघैः परस्परम् ।
शुश्रुवे दारुणः शब्दः सुपर्णपतने यथा ॥ २१ ॥

वे अश्वोंके समूह परस्पर टकराकर जब गिरते थे, उस समय गरुड़के वेगपूर्वक उतरनेके समान भयंकर शब्द सुनायी देता था ॥ २१ ॥

तथैव तावका राजन् समेत्यान्योन्यमाहवे ।
परस्परवधं घोरं चक्रुस्ते हयसादिनः ॥ २२ ॥

राजन् ! इसी प्रकार आपके और पाण्डवोंके घुड़सवार युद्धमें एक दूसरेसे भिड़कर आपसमें भयंकर मार-काट मचाते थे ॥ २२ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम् ।
उभयोरपि संशान्ता हयसंघाः समन्ततः ॥ २३ ॥

इस प्रकार अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध छिड़ जानेपर दोनों दलोंके अश्वसमूह सब ओर नष्ट हो गये ॥ २३ ॥

प्रक्षीणसायकाः शूरा निहताश्वाः श्रमातुराः ।
विलयं समनुप्राप्तास्तक्षमाणाः परस्परम् ॥ २४ ॥

शूरवीर योद्धा बाण नष्ट हो जानेसे, घोड़ोंके मारे जानेसे तथा परिश्रमसे पीड़ित हो परस्पर मार-काट करते हुए विनष्ट हो गये ॥ २४ ॥

ततः क्षीणे हयानीके किंचिच्छेषे च भारत ।
सौबलस्यात्मजाः शूरा निर्गता रणमूर्धनि ॥ २५ ॥

भारत ! इस प्रकार जब युद्ध घोड़ोंकी सेना नष्ट हो गयी और उसका थोड़ा-सा भाग ही अवशिष्ट रह गया, उस अवसरपर शकुनिके शूरवीर भाई युद्धके मुहानेपर निकले ॥ २५ ॥

वायुवेगसमस्पर्शाञ्जवे वायुसमांस्तथा ।
आरुह्य शीलसम्पन्नान् वयःस्थांस्तुरगोत्तमान् ॥ २६ ॥
गजो गवाक्षो वृषकश्चर्मवानार्जवः शुकः ।
षडेते बलसम्पन्ना निर्ययुर्महतो बलात् ॥ २७ ॥

जिनका स्पर्श वायुके समान सुखद था, जो वेगमें भी वायुकी समानता करते थे, ऐसे उत्तम स्वभाववाले तरुण अवस्थावाले उत्तम घोड़ोंपर सवार हो गज, गवाक्ष, वृषक, चर्मवान्, आर्जव और शुक—ये छः बलवान् वीर उस विशाल सेनासे बाहर निकले ॥ २६-२७ ॥

वार्यमाणाः शकुनिना स्वैश्च योधैर्महाबलैः ।
संनद्धा युद्धकुशला रौद्ररूपा महाबलाः ॥ २८ ॥

यद्यपि शकुनिने उन्हें मना किया, अपने महाबली योद्धाओंने भी उन्हें रोका, तथापि युद्धकुशल महाबली रौद्ररूपधारी कवचधारी वे कवच आदिसे सुसज्जित हो युद्धके लिये निकल पड़े ॥ २८ ॥

तदनीकं महाबाहो भित्त्वा परमदुर्जयम् ।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः ॥ २९ ॥
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः ।

महाबाहो ! उस समय रणदुर्मद गान्धारदेशीय वीरोंने विजय अथवा स्वर्गकी अभिलाषा रखकर विशाल सेनाके साथ पाण्डवोंकी परम दुर्जय व्यूहका भेदन करके हर्ष और उत्साहसे परिपूर्ण हो उसके भीतर प्रवेश किया ॥ २९½ ॥

तान् प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान् ॥ ३० ॥

आजघान समरे योधान् विविधान् धावनायुधान्।
पश्यतो धार्तराष्ट्रस्य योधाः शकुनिपाश्च ते ॥ ३१ ॥
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा कीर्तिर्विभीषणम्।

तब उन्हें देखके ओर प्रवित हुआ [illegible] इरावान्ने भी समरभूमिमें मतवाले अस्त्र शस्त्रवाले अपने विविध योद्धाओंसे कहा योद्धो तुम सब लोग सवारमें इनकी नीति [illegible] जिससे दुर्योधन वे सबल योद्धा [illegible] और [illegible] मार डालो [illegible] ३२

बाढमित्येवमुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः ॥ ३८ ॥
जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्जयं समरे परैः।

तब [illegible] ऐसा [illegible] है। कहकर इरावान्के समस्त सैनिकोंने जहाँ कौरवोंके सैन्यसमूहको भी समराङ्गणमें दूसरोंके लिये दुर्जय था मार डाला। ३३ ॥

तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम् ॥ ३३ ॥
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्यात्मजा रणे।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥

अपनी सेनाको समरभूमिमें सबकी सेनाद्वारा मार गिरायी गयी देख सुबलके सभी पुत्र इसे सह न सके। उन्होंने इरावान्पर धावा करके उसे सब ओरसे घेर लिया। ३३ ४।

ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम्।
ते शूराः पर्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ३५ ॥

[illegible] वे तीखे प्रासोंसे मारते और एक दूसरेको बढ़ावा देते हुए इरावान्पर [illegible] पड़े तथा उन्हें अत्यन्त व्याकुल करने लगे ॥ ३५ ॥

इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः।
स्रवता रुधिरेणाक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः ॥ ३६ ॥

उन [illegible] प्रासोंसे [illegible] विदीर्ण होकर इरावान् खूनसे लथपथ हो गया। अङ्कुशोंसे घायल हुए हाथीके समान व्याकुल हो गया ॥ ३६ ॥

उरस्यपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद् राजन् न विव्यथे ॥ ३७ ॥

राजन्! वह अकेला था और उसपर प्रहार करनेवाले की संख्या बहुत थी। वह आगे-पीछे और अगल-बगल में अत्यन्त घायल हो गया था तो भी धैर्यके कारण व्यथित नहीं हुआ। ३७ ॥

इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान् निशितैः शरैः।
मोहयामास समरे विद्ध्वा परपुरंजयः ॥ ३८ ॥

अब इरावान्को भी बड़ा क्रोध हुआ। शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले उस वीरने समरभूमिमें तीखे बाणोंद्वारा बींधकर उन सबको मूर्छित कर दिया ॥ ३८ ॥

प्रासानुद्धृत्य तरसा स्वशरीरादरिंदमः।
तैरेव ताडयामास सुबलस्यात्मजान् रणे ॥ ३९ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले इरावान्ने अपने शरीरमें धँसे हुए प्रासोंको निकालकर उन्हींके द्वारा रणभूमिमें सुबल-पुत्रोंपर प्रहार किया ॥ ३९ ॥

निकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम्।
पदातिस्तूर्णमागच्छज्जिघांसुः सौबलान् युधि ॥ ४० ॥

तदनन्तर उसने तीखी तलवार और ढाल लेकर इरावान् ने युद्धमें सुबलपुत्रोंको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत उनके ऊपर पैदल ही धावा किया ॥ ४० ॥

ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः ॥ ४१ ॥

तदनन्तर सुबलपुत्रोंमें प्राणशक्ति [illegible] और आये [illegible] होनेपर पुनः क्रोधमें भर गये और इरावान्पर टूट पड़े ॥ ४१ ॥

इरावानपि खड्गेन दर्शयन् पाणिलाघवम्।
अभ्यवर्तत तान् सर्वान् सौबलान् बलदर्पितः ॥ ४२ ॥

इरावान् भी बलके अभिमानमें भरा हुआ था। अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाता हुआ तलवारके द्वारा उन समस्त सुबलपुत्रोंका सामना करने लगा ॥ ४२ ॥

लाघवेनाथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
अन्तरं नाभ्यपद्यन्त चरन्तः शीघ्रगामिनः ॥ ४३ ॥

वह अत्यन्त फुर्तीसे पैंतरे बदल रहा था और वे सभी सुबलपुत्र शीघ्रगामी घोड़ोंपर विचर रहे थे तो भी वे अवसर उसको अवेश कोई विशेष न पा सके ॥ ४३ ॥

भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः।
परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः ॥ ४४ ॥

तदनन्तर इरावान्को भूमिपर स्थित देख फिर सभी सुबलपुत्र उसे घेरकर सर्वथा उसको बंदी बनानेकी चेष्टा करने लगे ॥ ४४ ॥

अथाभ्याशगतानां स खड्गेनामित्रकर्शनः।
अपहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत ॥ ४५ ॥

तब शत्रुसूदन इरावान्ने निकट आनेपर कभी दाहिने और कभी बायें हाथसे तलवार घुमाकर उसके द्वारा शत्रुओंके अङ्गोंको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ४५ ॥

आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि विभूषितान्।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा भूमौ गतासवः ॥ ४६ ॥

उन सबके आयुधों और भूषणभूषित भुजाओंको भी उसने काट डाला। इस प्रकार अङ्ग अङ्ग कट जानेसे वे प्राणशून्य हो भूतलपर गिर पड़े ॥ ४६ ॥

वृषभस्तु महाराज बहुधा विपरिक्षतः।
अमुच्यत महारौद्रात् तस्माद् वीरवरान्तकात्॥ ४७॥

महाराज! वृषभ बहुत घायल हो गया था, तो भी वीरोंका उच्छेद करनेवाले उस महाभयंकर युद्धसे जीवित बच गया॥ ४७॥

तान् सर्वान् पतितान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्तदा।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम्॥ ४८॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिंदमम्।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै॥ ४९॥

उन सबको मारा गया देख दुर्योधन भयभीत हो उठा और वह अत्यन्त रोषमें भरकर भयंकर दीखनेवाले राक्षस ऋष्यशृङ्गपुत्र (अलम्बुष) के पास दौड़ा गया। वह राक्षस शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ, मायावी और महान् धनुर्धर था। बकासुरके वधके कारण वह भीमसेनका वैरी बन गया था॥ ४८-४९॥

पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली।
मायावी विप्रियं घोरमकार्षीन्मे बलक्षयम्॥ ५०॥

उसके पास जाकर दुर्योधनने कहा—'वीर! देखो, यह अर्जुनका बलवान् पुत्र बड़ा मायावी है। इसने मेरी सेनाका संहार करके मेरा बड़ा अप्रिय किया है॥ ५०॥

त्वं च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः।
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि॥ ५१॥

तात! तुम भी इच्छानुसार चलनेवाले तथा मायामय अस्त्रके प्रयोगमें कुशल हो। कुन्तीकुमार भीमने तुम्हारे साथ वैर भी किया है। अतः तुम युद्धमें इस इरावान्‌को अवश्य मार डालो'॥ ५१॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः।
प्रययौ सिंहनादेन यत्रार्जुनसुतो युवा॥ ५२॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वह भयानक दिखायी देनेवाला राक्षस सिंहनाद करता हुआ जहाँ नवयुवक अर्जुनकुमार इरावान् था, उस स्थानपर गया॥ ५२॥

आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः।
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तैः स्वैरनीकैः समावृतः॥ ५३॥
हतशेषैर्महाराज द्विसाहस्रैर्हयोत्तमैः।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम्॥ ५४॥

उसके साथ निर्मल प्रास नामक अस्त्रसे युद्ध करनेवाले समरकुशल तथा प्रहार करनेमें समर्थ वीरोंसे युक्त बहुत-सी सेनाएँ थीं। उसकी मरी सेनाके घुड़सवारोंसे घिरा हुआ वह समरभूमिमें महाबली इरावान्‌को मार डालनेकी इच्छासे युद्धस्थलमें गया। महाराज! मरनेसे बचे हुए दो हजार उत्तम घोड़े उसके साथ थे॥ ५३-५४॥

इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी।
हन्तुकामममित्रघ्नं राक्षसं प्रत्यवारयत्॥ ५५॥

शत्रुओंका नाश करनेवाला पराक्रमी इरावान् भी क्रोधमें भरा हुआ था। उसने उसे मारनेकी इच्छा रखनेवाले उस राक्षसको बड़ी उतावलीके साथ निवारण किया॥ ५५॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः।
त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे॥ ५६॥

इरावान्‌को आते देख उस महाबली राक्षसने शीघ्रतापूर्वक मायाका प्रयोग आरम्भ किया॥ ५६॥

तेन मायामया क्लृप्ता हयास्तावन्त एव हि।
स्वारूढा राक्षसैर्घोरैः शूलपट्टिशधारिभिः॥ ५७॥

उसने मायामय उतने ही घोड़े उत्पन्न किये, जिनपर शूल और पट्टिश धारण करनेवाले भयंकर राक्षस सवार थे॥ ५७॥

ते संरब्धाः समागम्य द्विसाहस्राः प्रहारिणः।
अचिराद् गमयामासुः प्रेतलोकं परस्परम्॥ ५८॥

वे दो हजार प्रहारकुशल योद्धा रोषमें भरकर आगे बढ़े और इरावान्‌के सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार दोनों ओरके योद्धाओंने एक-दूसरेपर प्रहार करके शीघ्र ही एक दूसरेको यमलोक पहुँचा दिया॥ ५८॥

तस्मिंस्तु निहते सैन्ये तावुभौ युद्धदुर्मदौ।
संग्रामे व्यवतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवौ॥ ५९॥

इस प्रकार जब दोनों ओरकी सेनाएँ मारी गयीं, तब युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले वे दोनों वीर इरावान् तथा अलम्बुष राक्षस ही युद्धभूमिमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान डटे रहे॥ ५९॥

आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम्।
इरावान् क्रोधसंरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः॥ ६०॥

रणदुर्मद राक्षसको अपनी ओर आता देख महाबली इरावान् भी क्रोधमें भरकर उसकी ओर दौड़ पड़ा॥ ६०॥

समभ्याशगतस्यास्य तस्य खड्गेन दुर्मतेः।
चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च सत्वरम्॥ ६१॥

जब वह दुर्बुद्धि राक्षस बहुत निकट आ गया, तब इरावान्‌ने अपनी तलवारसे उसके देदीप्यमान धनुष और भाथेको शीघ्र ही काट डाला॥ ६१॥

स निकृत्तं धनुर्दृष्ट्वा खं जवेन समाविशत्।
इरावन्तमभिक्रुद्धं मोहयन्निव मायया॥ ६२॥

धनुषको कटा हुआ देख वह राक्षस क्रोधमें भरे हुए इरावान्‌को अपनी मायासे मोहित-सा करता हुआ बड़े वेगसे आकाशमें उड़ गया॥ ६२॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य इरावानपि राक्षसम्।
विमोहयित्वा मायाभिस्तस्य गात्राणि सायकैः॥ ६३॥

चिच्छेद समरश्लाघी कामरूपो दुरासदम् ।
तथा स राक्षसस्तस्य जातो रूपी पुनः पुनः ॥ ६४ ॥
सम्भूय तदा राजन् समवाप च यौवनम् ।
माया हि सहजा तेषां वयो रूपं च कामजम् ॥ ६५ ॥

तब इरावान‌ने भी [illegible] राक्षसको अपनी [illegible] जिस-जिस [illegible] भी पुनः [illegible] महाराज ! [illegible] होता है और [illegible] ॥ ६४-६५ ॥

एवं तद् राक्षसस्याङ्गं छिन्नं छिन्नं व्यरोहत ।
इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ॥ ६६ ॥
परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः ।

इस प्रकार [illegible] पुनः [illegible] ॥ ६६ ॥

स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इवाद्रुमः इरावता ॥ ६७ ॥
राक्षसो व्यनदद् घोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।

बलवान् इरावान‌के फरसेसे छिन्न-भिन्न हुआ वह घोर राक्षस [illegible] करने लगा । [illegible] भयंकर [illegible] ॥ ६७ ॥

परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ६८ ॥
ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगं च संयुगे ।
आर्ष्यशृङ्गिस्ततो दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ॥ ६९ ॥
कृत्वा घोरं महद् रूपं ग्रहीतुमुपचक्रमे ।
अर्जुनस्य सुतं वीरमिरावन्तं यशस्विनम् ॥ ७० ॥

परशुसे [illegible] बहुत [illegible] युद्धमें अत्यन्त क्रोध और वेग प्रकट किया । [illegible] भयंकर एवं विशाल रूप धारण करके अर्जुनके वीर एवं यशस्वी पुत्र इरावान‌को [illegible] आरम्भ किया ।

संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम् ।
तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ ७१ ॥
इरावानपि संक्रुद्धो मायां स्रष्टुं प्रचक्रमे ।

युद्धके मुहाने [illegible] योद्धाओंके देखते-देखते यह इरावान‌को पकड़ना चाहता था । उस दुरात्मा राक्षसकी वैसी माया देखकर क्रोधमें भरे हुए इरावान‌ने भी मायाका प्रयोग आरम्भ किया ॥ ७१-७२ ॥

तस्य क्रोधाभिभूतस्य समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ७२ ॥
योऽन्वयो मातृकस्तस्य स एनमभिपेदिवान् ।

समरमें पीठ न दिखानेवाला वह वीर जब क्रोधमें [illegible] युद्ध कर रहा था, उसी समय उसके माताके [illegible] समुदाय उसकी सहायताके लिये वहाँ आ पहुँचा ॥

स नागैर्बहुभी राजन् सर्वतः संवृतो रणे ॥ ७३ ॥
दधार सुमहद् रूपमनन्त इव भोगवान् ।

राजन् ! [illegible] बहुतेरे नागोंसे घिरे हुए इरावान‌ने [illegible] शेषनागके समान [illegible] धारण कर लिया ॥ ७३ ॥

ततो बहुविधैर्नागैश्छादयामास राक्षसम् ॥ ७४ ॥
छाद्यमानस्तु नागैः स ध्यात्वा वै राक्षसपुङ्गवः ।
सौपर्णं रूपमास्थाय भक्षयामास पन्नगान् ॥ ७५ ॥

[illegible] राक्षसको [illegible] राक्षसराज [illegible] गरुड़का रूप धारण करके [illegible] सारे नागोंको [illegible] आरम्भ किया ॥ ७४-७५ ॥

मायया भक्षिते तस्मिन्नन्वये तस्य मातृके ।
विमोहितमिरावन्तमवधीद् राक्षसोऽसिना ॥ ७६ ॥

जब [illegible] मायासे [illegible] मातृकुलके सब नागोंको भक्षण कर लिया, तब मोहित हुए इरावान‌को तलवारसे मार डाला ॥ ७६ ॥

सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम् ।
इरावतः शिरो रक्षः पातयामास भूतले ॥ ७७ ॥

इरावान‌का कमल और चन्द्रमाके समान कान्तिमान्, तथा कुण्डल और मुकुटसे मण्डित मस्तकको काटकर राक्षसने पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ७७ ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे राक्षसेनार्जुनात्मजे ।
विशोकाः समपद्यन्त धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार राक्षसद्वारा अर्जुनके वीर पुत्र इरावान‌के मारे जानेपर राजा दुर्योधनसहित आपके सभी पुत्र शोकरहित हो गये ॥ ७८ ॥

तस्मिन् महति संग्रामे तादृशे भैरवे पुनः ।
महान् व्यतिकरो घोरः सेनयोः समपद्यत ॥ ७९ ॥

फिर तो उस भयंकर एवं महान् संग्राममें दोनों सेनाओंमें [illegible] भयंकर मारकाट होने लगी ॥ ७९ ॥

गजा हया पदाताश्च विमिश्रा दन्तिभिर्हताः ।
रथाश्च दन्तिनश्चैव पत्तिभिस्तत्र सूदिताः ॥ ८० ॥

तथा पतितपर्यीकाश्च तुरगाश्च महामृधे रणे ।
रथिभिर्निहतैः राजंस्तत्र नेदा च सकुले ॥ १ ॥

राजन्! आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंके उस संग्राममें घोड़े, हाथी, रथ और उनके सवार मारे गये। बहुत-से घोड़े और हाथियोंके मारे जानेसे और उनके ऊपर हाथियोंके गिरनेसे तथा घुड़सवारोंके शरीरोंसे रणभूमि भर गयी ॥ १ ॥

अन्योन्यमाशुकर्माणि निहत्य पुत्रमौरसम्
उद्यान समरे शूरान् राजसान् भीष्मरक्षितान् ॥ २ ॥

अपने पुत्र और सैनिकोंके साथ भीष्म पाण्डवोंके साथ युद्ध करते हुए, सहोदर भाइयोंके तथा पितृ-पुत्रोंके सहित वीरोंका संहार करते थे ॥ २ ॥

तथैव तावकाः राजन् सूतपाश्च महारथाः
युद्धन् समरे प्राणान् निहन्तुं निरन्तरम् ॥ ३ ॥

राजन्! इसी प्रकार आपके पुत्र और पाण्डवोंके सब वीर रणभूमिमें प्राणोंकी आहुति देते हुए युद्ध कर रहे थे ॥ ३ ॥

मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः
बाहुभिः समयुध्यन्त समवेताः परस्परम् ॥ ४ ॥

कितने ही योद्धा बाल बिखेरे, कवच और रथसे रहित तथा धनुष कट जानेपर भुजाओंसे ही परस्पर युद्ध करते थे ॥ ४ ॥

तथा मर्माभिर्भीष्मो निजघान महारथान्
कम्पयन् समरे सेनां पाण्डवानां परंतप ॥ ५ ॥

दूसरी ओर शत्रुओंको संताप देनेवाले भीष्म समराङ्गणमें अपने बाणोंसे पाण्डव-सेनाको कम्पित करते हुए महारथियोंका वध करने लगे ॥ ५ ॥

तेन यौधिष्ठिरे सैन्ये बहवो मानवा हताः
दन्तिनः सादिनश्चैव रथिनोऽथ हयास्तथा ॥ ६ ॥

उन्होंने युधिष्ठिरकी सेनाके बहुत-से मनुष्यों, हाथियों, घुड़सवारों, रथियों और घोड़ोंका भी संहार कर डाला ॥ ६ ॥

तत्र भारत भीष्मस्य रणे दृष्ट्वा पराक्रमम्
अत्यद्भुतमपश्याम शक्रस्येव पराक्रमम् ॥ ७ ॥

भारत! हमने उस युद्धमें भीष्मका इन्द्रके समान अत्यन्त अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ७ ॥

तथैव भीमसेनस्य पार्षतस्य च भारत
रौद्रमासीद् रणे युद्धं सात्वतस्य च धन्विनः ॥ ८ ॥

भारत! इसी प्रकार भीमसेन, धृष्टद्युम्न तथा धनुर्धर सात्यकिका भी अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रान्तं पाण्डवान् भयमाविशत्
एक एव रणे शक्तो हन्तुं सर्वांश्च सैनिकान् ॥ ९ ॥
किं पुनः पृथिवीशूरैर्योधव्रातैः समावृतः
इत्यब्रुवन् महाराज रणे द्रोणेन पीडिताः ॥ १० ॥

द्रोणाचार्यका पराक्रम देखकर तो पाण्डवोंके मनमें भय समा गया। महाराज! वे युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यसे पीड़ित हो कहने लगे कि 'आचार्य तो अकेले ही समस्त सैनिकोंका वध करनेमें समर्थ हैं; फिर जब वे भूमण्डलके विख्यात शूरवीर योद्धाओंके समुदायसे घिरे हुए हैं, तब तो उनकी विजयके लिये कहना ही क्या है' ॥ ९-१० ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे भरतर्षभ
उभयोः सेनयोः शूरा नामृष्यन्त परस्परम् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस भयंकर संग्राममें दोनों सेनाओंके शूरवीर एक-दूसरेको सहन नहीं कर सके ॥ ११ ॥

आविष्टा इव युध्यन्ते रक्षोभूता महाबलाः
तावकाः पाण्डवेयाश्च संरब्धास्तात धन्विनः ॥ १२ ॥

तात! आपके और पाण्डवोंके महाबली धनुर्धर वीर भूताविष्टकी भाँति रोषमें भरकर राक्षसोंके समान बनकर एक-दूसरेसे युद्ध करते थे ॥ १२ ॥

न स्म पश्यामहे कंचिद् यः प्राणान् परिरक्षति
संग्रामे दैत्यसंकाशे तस्मिन् वीरवरक्षये ॥ १३ ॥

हे वीरोंका विनाश करनेवाले उस दैत्योंके युद्ध-समान संग्राममें हमने किसीको ऐसा नहीं देखा, जो अपने प्राणोंकी रक्षा करता हो ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें आठवें दिनके युद्धसे सम्बन्ध रखनेवाला नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्याय

घटोत्कच और दुर्योधनका भयानक युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

इरावन्तं तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः
संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इरावान्‌को संग्राममें मारा गया देख महारथी कुन्तीपुत्रोंने क्या किया? यह मुझसे कहो ॥ १ ॥

ददर्श तु निहत सदान वीक्ष राक्षस
व्यनन्द् सुमहानाद अमर्ष तवीरव्य
सजय बाले— युद्
भी नरा दृष
गिहन रने

बलसमय हाथे पधिजी लागर
सर्पगतवला राक्षस ल तन
रिप दिवार्वत प्रशिक्षतय
नरा
और हन्ते
धन्दि
ल्दो
युध्य सुमहानाद तव सायन्य
उठलन्न् मम पद् पयु स्व
भाग नाद वर्ष
दिख मद
भक्ता
सम एव भारत गा वा सर्वत
सवाग समयह तहभी गज
आतक नभि
हाँ को माँ अपपूर्ण बैठ

वर्तीय मुख्यात सम
ज्वलित भुग्मुख रूप दा समीप
वा अस ह
आजग्मान सुत्कव्य वदगालनयनमोपम
नहर
अप्सक समन
भीतक शौक मांस
भार मा धन बड़ का आर
नाका कि

मायणाम समरूप्य महदुष्व भीमदर्शनम्
सबल भयात् श मयहरो विमुखोऽभवत्
नन्दन बोलने दिखायी देनेवाल उस
राक्षसको अाकार कादे देव उसके भवसे अपनी सेना
साथ बुद्धमें विमुख होकर भाग चले

हतो दुर्योधनो हाक्रमपुपद्य त्
मनुष्य विपुल चाप सिंहवद् विनदन् मुहु
तब राजा दुर्योधनने विशाल धनुष लेकर बारंबार सिंहके
समान गर्जना करते हुए वहां पहुँचकर धावा किया

वृषनोऽनुय वै ना कि पयनोपम
कुञ्जरै रासायरैश्च वनानधि स्वयम्
नाग नाग
इव नाक राजा
समापल म प्रेक्ष मजानीकेन महता
युधमान राज युधां स ति तिर
महा पुन
दुर आन
तत प्रवृत्त यु सुमु
नर स्म
वा वाह
बल
गजानीक दृष
आश्चर्य वंश सत् गात्रमातम
कि नस
योधो उनकी
सहस्रा विविधान ना नयु
स्वपिता त्वतिन्नम्ना गजयधि
भिन्दिपालसमया मु
वकलापाश प्रासान सजान्मुन्न काकाञ्च
दैत्यगणोद्भि
मेर गता
नया
विनाद मन

भिन्नकुम्भान विनिपिनान् भिन्नगात्रा न्
पतमान महारा यमानान् निशा च
हाय यबराजोक
कुम शरीर
हो श्री नख भिन ति हो

तेषु प्रणीयमानेषु भग्नेषु गजयोधिषु
दुर्योधनो महाराज राक्षसान् समुपाद्रवत्
अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मन
महाराज प्रकार आवेशियोंके भाग एवं न
जानेपर दुर्योधनको अमर्षके श्री हो अपने जीवनका
मो छोड़कर उन राक्षसोंपर धावा कि
मुमोच निशितान् बाणान् राक्षसेषु परंतप
अवधीच महेष्वास प्रधानांस्तत्र पाण्डवान्

धनुर्धरोंको त्रास देनेवाले वीरवर महाधनुर्धर दुर्योधनने राक्षसेन्द्र नीली बाणोंका प्रहार किया और उसमें प्रधान प्रधान राक्षसोंको मार डाला

सङ्कुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव
चोदयन् महाशैलं विन्दुर्ह्याह समर्पितम्
शरैरनुमिश्रनुगो निर्भत्स्य महारथ

नरेन्द्र क्रोध भरते महाबली पुत्र दुर्योधनने समस्त सेना विद्युद्विह और प्रतापी वीर

नत पुनर्मेघाम्भा शम्बर दुरासदम्
मुमोच भरतश्रेष्ठ निशाचरांश्च प्रति

पत्र यत्र बहु दुर्धर्ष
निशा महाव ज्ञार पार का ...

तत चक्रं हत चर्म पुत्रस्य तत्र मारि
गतोत्कचाभि उत्थाप अमर्षसमिद्धा

... आत्म ...
मार

स विस्फार्य महाचापमिं विनद्य ...
अभिदुद्राव तत्र पार्थ ...

गौतम

तमापतन्तमुद्वीक्ष्य ...
विस्फार्य महाराज पुत्रा गौ...

... ...
अति यथा ...

अथाब्रवीत् कु... नत
अद्यानृण्यं गमिष्यामि पितृणां मातुरेव च

... ... हैडिम्बस्तु ...
हत ... मानस ... ... यें ... युद्धविशारद ... भाग पूत

ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः
यच्च ते पाण्डवा राजञ्छलद्यूते पराजिताः
यच्चैव द्रौपदी कृष्णा ... रजस्वला
सभामानीय दुर्बुद्धे बहुधा क्लेशिता त्वया
तव च प्रियकामेन आश्रमस्था दुरात्मना
सैन्धवेन परामृष्टा परिभूय पितॄन् मम
एतेषामवमानानामन्येषां च कुलाधम
अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम्

... ... द्रौपदी ... करके
... ... है आपने उन पितरों
और ... ... जिन्हें
... ... महा

दूर ... ...
... ... राजकुमार
... ...
... इच्छा
... ...

... ... कुलाधम
... ... अस्त्रशस्त्रोंका और
... ...

एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद् विस्फार्य कार्मुकम्
सन्दश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन्
शरवर्षेण महता दुर्योधनमवाकिरत्
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः

... हिडिम्बाकुमारने दाँतोंसे ओठ चबाते और
... ... दुर्योधनको ... ... विशाल धनुष
... ...
... ... मेघ ... हिमवान् ...

भारत मिलता
हैडिम्बस्तु ... ...

द्विनवतितमोऽध्याय

घटोत्कचका ... एवं द्रोण आदि प्रमुख वीरोंके साथ भयंकर युद्ध

ततस्तद् ... तु ... दानववीरे
... युधि राजेन्द्रो ... महा...
सञ्जय ... ...
उस ... विशाल ... दुर्धर्ष ...
धारण किया ... ... अपने ...
पार गया

... ...
... ...
... ... भयंकर ... ... हुए
... ... आपका पुत्र दुर्योधन
... ...
सुमोच निशितास्तीक्ष्णान् नाराचान् पञ्चविंशतिम्

[illegible] उसने [illegible] उत्तम [illegible] गदा [illegible]

[illegible] परिप्लुतः ।
[illegible]
भूरिश्रवसि [illegible] राक्षसम् ॥

[illegible]

ते सर्वे [illegible] विविधैः [illegible]
[illegible] द्रौपदेया [illegible]
[illegible]

[illegible] घटोत्कचको [illegible] और [illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible] और दूसरे [illegible] के टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥

चतुर्भिश्च [illegible] महात्मनः ।
[illegible]

[illegible] घटोत्कचने [illegible]

[illegible] विशिखैस्तैः [illegible] च ।
[illegible] महाराज राजपुत्रं [illegible]

राजेन्द्र ! [illegible]

[illegible] दिया ॥

स [illegible]
[illegible] राजसत्तमः ॥

[illegible]

[illegible] मुहुर्मुहुः ॥

[illegible]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि [illegible] द्विनवतितमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें घटोत्कचका [illegible] अध्याय पूरा हुआ ॥

[illegible] अधिक [illegible] श्लोक मिलाकर कुल [illegible] श्लोक हैं ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

घटोत्कचकी रक्षाके लिये आये हुए भीम आदि शूरवीरोंके साथ कौरवोंका युद्ध और उनका पलायन

सञ्जय उवाच

विमुखीकृत्य सर्वांस्तु [illegible] युधि राक्षसः ।
[illegible] दुर्योधनमुपाद्रवत् ॥

सञ्जय कहते हैं—[illegible] राक्षस युद्धस्थलमें [illegible] दुर्योधनको [illegible]

[illegible] राजानं [illegible]
[illegible]

[illegible] राजा दुर्योधनको [illegible] और [illegible]

[illegible] महारथाः ।

[illegible] सिंहसङ्घवत् ॥

[illegible]

[illegible] समन्ताद् [illegible]
[illegible]

[illegible] और घटोत्कचपर [illegible] आरम्भ कर दी ॥

[illegible] समन्ताद् [illegible] ॥

उस समय उस राक्षसके बड़े आकार ... अङ्कुशकी मार खाये हुए हाथीकी भाँति व्यथित हो उठा और ... हो गया ... आकाशमें ... और उसने बड़ा ...

व्यनदत् सुमहानादं जीमूत इव शारदः।
दिशश्च विदिशश्चैव नादयन् भैरवस्वनः ॥ ६ ॥

आकाशमें स्थित होकर शरद्-ऋतुके बादलकी भाँति वह ... भयंकर स्वरसे अन्तरिक्ष, दिशाओं तथा विदिशाओंको गुँजाता हुआ घोर-घोरसे गर्जना करने लगा ॥ ६ ॥

राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः।
उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिंदमम् ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! राक्षसका वह भयानक नाद सुनकर राजा युधिष्ठिरने शत्रुदमन भीमसेनसे इस प्रकार कहा— ॥ ७ ॥

युध्यते राक्षसो नूनं भगदत्तमहारथ।
यथास्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवं स्वनम् ॥ ८ ॥

... यह राक्षस निश्चय ही महारथी भगदत्तके साथ युद्ध कर रहा है; क्योंकि ... भयंकर गर्जना करते हुए इसका ... सुनायी देता है ... नहीं जान पड़ता है ॥ ८ ॥

अतिभारं च पश्यामि तस्मिन् राक्षसपुङ्गवे।
पितामहश्च संक्रुद्धः पाञ्चालान् हन्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥

मैं उस राक्षसशिरोमणिपर ... बड़ा भार देख रहा हूँ ... पितामह भी ... कुपित हो ... पाञ्चालोंको मारनेके लिये उद्यत हैं ॥ ९ ॥

तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः।
एतच्छ्रुत्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् ॥ १० ॥
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम्।

उनकी रक्षाके लिये अर्जुन शत्रुओंके साथ युद्ध कर रहे हैं। महाबाहो! इस प्रकार ये दो कार्य उपस्थित हैं ... तुम जाओ और अत्यन्त संशयमें पड़े हुए हिडिम्बाकुमारकी रक्षा करो' ॥ १० ॥

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः ॥ ११ ॥
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन् सर्वपार्थिवान्।

भाईके इस आदेशको सुनकर भीमसेन सिंहनादसे सम्पूर्ण नरेशोंको भयभीत करते हुए बड़ी उतावलीके साथ वहाँसे चल दिये ॥ ११ ॥

वेगेन महता राजन् पर्वकाले यथोदधिः ॥ १२ ॥
तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥ १३ ॥
अभिमन्युमुखाश्चैव द्रौपदेया महारथाः।
क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्रधर्मा तथैव च ॥ १४ ॥
अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमास्थितः।
महता रथवंशेन हैडिम्बं पर्यवारयन् ॥ १५ ॥

राजन्! जैसे पूर्णिमाको समुद्र बड़े वेगसे बढ़ता है, उसी प्रकार वे भी अत्यन्त वेगसे आगे बढ़े। उनके पीछे सत्यधृति, रणदुर्मद सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराजके पुत्र अभिभू, अभिमन्यु आदि योद्धा, द्रौपदीके पाँचों महारथी पुत्र, पराक्रमी क्षत्रदेव, क्षत्रधर्मा तथा अनूपदेशके राजा नील, जिनके साथ अपनी सेना भी मौजूद थी—इन सब वीरोंने विशाल रथसेनाके साथ हिडिम्बाकुमार घटोत्कचको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १२—१५ ॥

कुञ्जरैश्च सदा मत्तैः षट्सहस्रैः प्रहारिभिः।
अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ १६ ॥

सदा मदमत्त रहनेवाले प्रहारकुशल छः हजार गजराजोंके साथ आकर उपर्युक्त वीर एक साथ ही राक्षसराज घटोत्कचकी रक्षा करने लगे ॥ १६ ॥

सिंहनादेन महता नेमिघोषेण चैव हि।
खुरशब्दनिपातैश्च कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ १७ ॥

वे ... अपने सिंहनादसे, रथके पहियोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी टापोंके ... महान् शब्दसे इस वसुधाको कम्पित कर रहे थे ॥ १७ ॥

तेषामापततां श्रुत्वा शब्दं तं तावकं बलम्।
भीमसेनभयोद्विग्नं विवर्णवदनं तथा ॥ १८ ॥

... आनेवाले ... कोलाहल सुनकर ... भीमसेनके भयसे उद्विग्न हुए आपके सैनिकोंके मुख उदास हो गये ॥ १८ ॥

परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम्।
ततः प्रववृते युद्धं तत्र तेषां महात्मनाम् ॥ १९ ॥
तावकानां परेषां च संग्रामे अनिवर्तिनाम्।

महाराज! उस समय आपकी सेना ... वे घटोत्कचको छोड़कर ... युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले आपके तथा शत्रुपक्षके उन महामनस्वी योद्धाओंमें ... युद्ध छिड़ गया ॥ १९ ॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥ २० ॥
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे।

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़ते और एक दूसरेकी ओर दौड़ते हुए उभय पक्षके महारथी भीषण युद्ध करने लगे ॥ २० ॥

व्यतिषक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम् ॥ २१ ॥
हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह।

भीरु मनुष्योंको भय देनेवाला वह ... अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो ... घुड़सवार हाथीसवारोंसे और पैदल रथियोंके साथ भिड़ गये ॥ २१ ॥

अन्योन्यं समरे राजन् प्रार्थयानाः समन्ततः ॥ २२ ॥
सहसा चाभवत् तीव्रं सन्निपातान्महद् रजः ।
गजाश्वनरपादातैः पवनेनोद्धतं महत् ॥ २३ ॥

राजन्! वे समराङ्गणमें एक दूसरेसे लड़ते हुए युद्ध कर रहे थे। उस समय उस सेनामें सहसा बड़ी भारी धूल उड़ी जो हाथी घोड़े और पैदलोंके पैर तथा रथके पहियोंके धक्केसे उठायी गयी थी ॥ २२-२३ ॥

धूम्रारुणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत् ।
नैव स्वे न परे राजन् समजानन् परस्परम् ॥ २४ ॥

महाराज! काले और लाल रंगकी उस दुःसह धूलने समस्त रणभूमिको ढक लिया। उस समय अपने और शत्रु पक्षके योद्धा एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे ॥ २४ ॥

पिता पुत्रं न जानाति पुत्रो वा पितरं तथा ।
निर्मर्यादे तथाभूते वैशसे लोमहर्षणे ॥ २५ ॥

उस मर्यादारहित रोमाञ्चकारी भयानक संहारमें पिता पुत्रको और पुत्र पिताको नहीं पहचान रहा था ॥ २५ ॥

शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां च गर्जताम् ।
सुमहानभवच्छब्दः प्रेतानामिव भारत ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ! शस्त्रोंके आघात और मनुष्योंकी गर्जनाका महान् शब्द भूत प्रेतोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ २६ ॥

गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।
प्रावर्तत नदी तत्र केशशैवलशाद्वला ॥ २७ ॥

हाथी घोड़े और मनुष्योंके रक्त और आँतोंकी एक भयंकर नदी बह चली, जिसमें केश सेवार और घासके समान जान पड़ते थे ॥ २७ ॥

नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां पततां रणे ।
शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दः पततामश्मनामिव ॥ २८ ॥

मनुष्योंके शरीरोंसे रणभूमिमें कटकर गिरते हुए मस्तकोंका महान् शब्द पत्थरोंकी वर्षाके समान जान पड़ता था ॥ २८ ॥

विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च छिन्नगात्रैश्च वारणैः ।
अश्वैः सम्भिन्नदेहैश्च संकीर्णाभूद् वसुन्धरा ॥ २९ ॥

बिना सिरके मनुष्यों, कटे हुए अङ्गवाले हाथियों तथा छिन्न भिन्न शरीरवाले घोड़ोंसे वहाँकी सारी भूमि पट गयी थी ॥ २९ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिधावन्त सम्प्रहारार्थमुद्यताः ॥ ३० ॥

नाना प्रकारके शस्त्रोंको चलाते और एक दूसरेकी ओर दौड़ते हुए महारथी परस्पर युद्धके लिये उद्यत थे ॥ ३० ॥

हया हयान् समासाद्य प्रेषिता हयसादिभिः ।
समाहत्य रणेऽन्योन्यं निपेतुर्गतजीविताः ॥ ३१ ॥

घुड़सवारोंद्वारा प्रेरित हुए घोड़े घोड़ोंसे भिड़कर आपसमें टक्कर लेकर प्राणशून्य हो रणभूमिमें गिर पड़ते थे ॥ ३१ ॥

नरा नरान् समासाद्य क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ।
उरांस्युरोभिरन्योन्यं समाश्लिष्य निजघ्निरे ॥ ३२ ॥

मनुष्य मनुष्योंपर आक्रमण करके अत्यन्त क्रोधसे लाल आँखें किये छातीसे छाती भिड़ाकर एक दूसरेको मारने लगे ॥ ३२ ॥

प्रेषिताश्च महामात्रैर्वारणाः परवारणैः ।
सम्प्रहारं विषाणाग्रैर्वारणानेव संयुगे ॥ ३३ ॥

महावतोंके द्वारा आगे बढ़ाये हुए हाथी विपक्षी हाथियोंसे टक्कर लेकर युद्धस्थलमें अपने दाँतोंके अग्रभागसे हाथियोंपर ही चोट करते थे ॥ ३३ ॥

ते जातरुधिरापीडाः पताकाभिरलंकृताः ।
संसक्ताः प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३४ ॥

उस समय अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए और परस्पर भिड़े हुए वे हाथी पताकाओंसे अलंकृत होनेके कारण बिजलीसहित मेघोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३४ ॥

केचिद् भिन्ना विषाणाग्रैर्भिन्नकुम्भाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त गर्जमाना घना इव ॥ ३५ ॥

कितने ही हाथी दाँतोंके अग्रभागसे विदीर्ण हो गये थे। कितनोंके कुम्भस्थल तोमरोंकी मारसे फट गये थे और वे गरजते हुए बादलोंके समान चीत्कार करते हुए इधर उधर भाग रहे थे ॥ ३५ ॥

केचिद्धस्तैर्द्विधा छिन्नैश्छिन्नगात्रास्तथापरे ।
निपेतुस्तुमुले तस्मिंश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३६ ॥

कितने हाथी सूँड़ोंके दो टुकड़े हो जानेसे और कितनोंके सारे अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये थे; वे हाथी पंख कटे पर्वतोंके समान उस भयानक युद्धमें धराशायी हो रहे थे ॥ ३६ ॥

पार्श्वैस्तु दारितैरन्ये वारणैर्वरवारणाः ।
मुमुचुः शोणितं भूरि धातूनिव महीधराः ॥ ३७ ॥

बहुत-से श्रेष्ठ हाथी दूसरे हाथियोंके आघातसे पार्श्वभाग विदीर्ण हो जानेके कारण उसी प्रकार प्रचुरमात्रामें अपना रक्त बहा रहे थे, जैसे पर्वत गेरु आदि धातुओंसे मिश्रित झरने बहाते हैं ॥ ३७ ॥

नाराचनिहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ३८ ॥

कुछ हाथी नाराचोंकी मारसे घायल हो गये थे और कितनोंके गण्डस्थलोंमें तोमर धँसे हुए थे और वे सबके सब चीत्कार करते हुए इधर उधर दौड़ रहे थे। उस समय वे बिना शिखरके पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥ ३८ ॥

केचित् क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः ।
रथान् हयान् पदातींश्च ममृदुः शतशो रणे ॥ ३९ ॥

कितने ही महाराज पराक्रम आपसमें लड़ते हुए प्रेमके कारण शत्रु नहीं जाते ... उत्तम रणभूमिमें सैकड़ों हाथी और रथ दिखायी दे रहे थे।

तथा तत्र हयाश्चैवासिन सादिनोऽपरे।
तेन तेनाभ्यवर्तन्त कुर्वन्तो व्याकुलं दिशः॥

इसी प्रकार घुड़सवार द्वारा घास ... सैनिकोंके चालक किये हुए घोड़े सम्पूर्ण दिशाओंको व्याकुल करते हुए भर ... भाग रहे थे।

रथिनो रथिभिः सार्धं कुञ्जराः सह कुञ्जरैः।
यथा शक्ति समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत्॥

कितने ही युद्धमें अपने शरीरोंको निछावर करते हुए भारी शक्ति लगाकर निर्भयकी भांति सब पराक्रम प्रकट कर रहे थे।

स्वयंवर इवाकीर्णे प्राक्रीडंस्तत्र ...।
मार्गमाणा यशो राजन् स्वर्गं वा युद्धशालिनः॥ ४२॥

राजन्! युद्धमें शोभा पानेवाले वीर यश अथवा स्वर्ग पानेकी इच्छासे स्वयंवरकी भांति उस युद्धमें एक दूसरेपर प्रहार कर रहे थे।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे।
धार्तराष्ट्रं महत् सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम्॥

इस प्रकार चलनेवाले रोंगटे खड़े कर देनेवाले उस संग्राममें दुर्योधनकी विशाल सेना प्रायः युद्धसे विमुख होकर भाग गयी।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिनवतितमोऽध्यायः॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ।

चतुर्नवतितमोऽध्याय

दुर्योधन और भीमसेनका एवं अश्वत्थामा और राजा नीलका युद्ध तथा घटोत्कचकी मायासे मोहित होकर कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम्।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिंदमम्॥

संजय कहते हैं—राजन्! अपनी विशाल भारी सेनाको नष्ट होते देख ... राजा दुर्योधनने शत्रुदमन भीमसेनपर धावा किया।

प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम्।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत्॥

उस इन्द्रके वज्रकी भांति भयानक टंकार करनेवाले विशाल धनुषको हाथमें लेकर पाण्डुनन्दन भीमसेनपर बाणोंकी भारी वर्षा आरम्भ की।

अर्धचन्द्रं च संधाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम्।
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं रोषसमन्वितः॥

इतना ही नहीं, उसने कुपित होकर पंखयुक्त अत्यन्त तीखे अर्धचन्द्राकार बाणका प्रयोग करके भीमसेनके धनुषको काट दिया।

तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः।
संदधे निशितं बाणं गिरीणामपि दारणम्॥

फिर उसीको उपयुक्त अवसर समझकर महारथी दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ एक तीखे बाणका संधान किया, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाला था।

तेनोरसि महाबाहुर्भीमसेनमताडयत्।
स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन्।
समालम्बे ध्वजं श्रीमान् हेमपरिष्कृतम्॥

राजन्! उस बाणद्वारा दुर्योधनने भीमसेनकी छातीमें चोट पहुँचायी। उससे अत्यन्त घायल होकर भीमसेन व्यथित हो उठे और मुखके दोनों कोनोंको चाटते हुए उन्होंने अपने सुवर्णभूषित ध्वजका सहारा लिया।

तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः।
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः॥

भीमसेनको इस प्रकार व्यथितचित्त देखकर घटोत्कच जलानेकी इच्छावाले अग्निदेवकी भांति क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा।

अभिमन्युमुखाश्चैव पाण्डवानां महारथाः।
समभ्यधावन् क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः॥

फिर अभिमन्यु आदि पाण्डव महारथी बड़े वेगसे राजा दुर्योधनको ललकारते हुए उसकी ओर दौड़े।

सम्प्रेक्ष्य तानापततः संक्रुद्धांस्तान् महारथान्।
भारद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं तावकानां महारथान्॥
क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत।
संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे॥

क्रोधमें भरे हुए इन समस्त योद्धाओंको वेगपूर्वक धावा

करते देख द्रोणाचार्यने आपके महाधनुर्धर वीरों (पुत्रों) से 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर कहा—वीरो! युद्धमें महान् प्राणघातकी ओर बढ़े हुए राजा दुर्योधनकी रक्षा करो ॥ १० ॥

एतच्छ्रुत्वा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ ११ ॥
भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन् ।
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः ॥ १२ ॥
नदन्तो भैरवान् नादान् कम्पयन्तश्च भूमिपान् ।

ये महाधनुर्धर पाण्डव महारथी कुपित हो भीमसेनको आगे करके दुर्योधनपर धावा कर रहे हैं और विजयकी इच्छा रखकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए भयंकर गर्जना करते तथा भूमिपालोंको कँपाते हैं ॥ ११-१२ ॥

तद्वचस्त्वथ श्रुत्वा सौमदत्तिपुरोगमाः ॥ १३ ॥
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ।

आचार्यका यह वचन सुनकर भूरिश्रवा आदि आपके प्रमुख योद्धाओंने पाण्डवसेनापर आक्रमण किया ॥ १३ ॥

कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥ १४ ॥

कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ, बृहद्बल तथा अवन्तीके राजकुमार महाधनुर्धर विन्द और अनुविन्द—इन सबने दुर्योधनको उसकी रक्षाके लिये घेर लिया ॥ १४ ॥

ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसया ॥ १५ ॥

वे बीस कदम आगे बढ़कर प्रहार करने लगे। फिर पाण्डव तथा कौरव योद्धा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद् विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ १६ ॥

कौरव महारथियोंसे पूर्वोक्त बात कहनेके पश्चात् महाबाहु भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने अपने विशाल धनुषको खींचकर भीमसेनको छब्बीस बाण मारे ॥ १६ ॥

भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ १७ ॥

साथ ही उन महाबाहुने उनके ऊपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो वर्षाकालमें मेघ पर्वतपर जलकी धारा गिरा रहा हो ॥ १७ ॥

तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।
त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥ १८ ॥

तब महाबली महाधनुर्धर भीमसेनने भी बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यकी बायीं पसलीमें दस बाण मारकर उन्हें घायल कर दिया ॥ १८ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत ।
प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १९ ॥

भरतनन्दन! उन बाणोंसे उन्हें गहरा आघात लगा था। वे वयोवृद्ध तो थे ही; सहसा व्यथित एवं अचेत होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये ॥ १९ ॥

गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ ॥ २० ॥

आचार्य द्रोणको अत्यन्त पीड़ित देख स्वयं राजा दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों अत्यन्त कुपित हो भीमसेनपर टूट पड़े ॥ २० ॥

तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ २१ ॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाचलः ।

प्रलयकालीन यमराजके समान उन दोनों महाधनुर्धरोंको आक्रमण करते देख महाबाहु भीमसेन तुरंत ही गदा हाथमें ले रथसे कूद पड़े और पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ २१ ॥

समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥ २२ ॥
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥ २३ ॥

उन्होंने हाथमें जो भारी गदा उठायी थी, वह रणभूमिमें यमदण्डके समान भयानक जान पड़ती थी। शिखरयुक्त कैलासपर्वतके समान गदा उठाये हुए भीमसेनको देखकर दुर्योधन और अश्वत्थामाने एक साथ उनपर धावा किया ॥ २२-२३ ॥

तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ ।
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः ॥ २४ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ उन दोनों वीरोंको एक साथ शीघ्रतापूर्वक आते देख भीमसेन भी उतावले होकर बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े ॥ २४ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥ २५ ॥

क्रोधमें भरे हुए भयंकर दिखायी देनेवाले भीमसेनको देखकर कौरव महारथी बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर दौड़े ॥ २५ ॥

भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।
नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन् ॥ २६ ॥

द्रोणाचार्य आदि सभी योद्धा भीमसेनके वधकी इच्छासे

उनकी छातीपर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंका प्रहार करने लगे ॥ २६ ॥

अर्दिताः पाण्डवाः सर्वे पीड्यमाना महात्मना ।
न शेकुः समरे द्रष्टुं द्रौणायनिं महाबलम् ॥ २७ ॥
अभिमन्युमुखास्तत्र पाण्डवानां महारथाः ।
अश्वत्थामानमभ्यघ्नन् प्राणांस्त्यक्त्वा युयुत्सवः ॥

वे सब एक साथ होकर चारों ओरसे पाण्डुकुमार भीमसेनको पीड़ा देने लगे । महाराज भीमसेनका सहित और अन्य पाण्डवोंके समरमें पड़ा रण अभिमन्यु आदि पाण्डव महारथी अपने युद्धका प्राणोंका मोह छोड़कर उनकी रक्षाके लिये दौड़ आये ॥ २७-२८ ॥

अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा ।
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् ॥ २९ ॥

अनूप देशका राजा वीर नील भीमसेनका प्रिय सखा था । उसकी अङ्गकान्ति श्याम मेघके समान सुन्दर थी । उसने अत्यन्त कुपित होकर अश्वत्थामापर आक्रमण किया ॥ २९ ॥

स्पर्धते हि सदोत्साही नित्यं द्रोणसुतेन सः ।
स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ॥ ३० ॥
यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ।
विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयंकरम् ॥ ३१ ॥
येन लोकत्रयं क्रोधात् त्रासितं स्वेन तेजसा ।

वह महाधनुर्धर वीर प्रतिदिन होनेवाले युद्धमें अश्वत्थामाके साथ स्पर्धा रखता था । महाराज ! उसने अपने विशाल धनुषको खींचकर एक पङ्खयुक्त बाणसे अश्वत्थामाको उसी प्रकार घायल कर दिया, जैसे इन्द्रने पूर्वकालमें देवताओंके लिये भयंकर विप्रचित्ति नामक दुर्धर्ष दानवको घायल किया था । उस दानवने अपने क्रोध एवं तेजसे तीनों लोकोंको संतप्त कर रखा था ॥ ३०-३१½ ॥

तथा नीलेन निर्भिन्नः सुपुङ्खेन पतत्रिणा ॥ ३२ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः ।

नीलके छोड़े हुए उस पङ्खयुक्त बाणसे विदीर्ण होकर अश्वत्थामाके शरीरसे रक्तका स्रोत बह चला । इससे अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३२½ ॥

स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ३३ ॥
दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः ।

तदनन्तर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने इन्द्रके वज्रकी भाँति टंकार करनेवाले अपने विचित्र धनुषको खींचकर नीलको मार डालनेका विचार किया ॥ ३३½ ॥

ततः संधाय विमलान् भल्लान् कर्मारमार्जितान् ॥ ३४ ॥
जघान चतुरो वाहान् सारथिं ध्वजमेव च ।
सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् उसने लोहारके माँजे हुए कई चमकीले भल्लोंको धनुषपर रखकर उनमेंसे चार भल्लोंद्वारा उसने नीलके चारों घोड़ोंको और ध्वज एवं सारथिको मार डाला । फिर सातवें भल्लसे नीलकी छातीमें प्रहार किया ॥ ३४-३५ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ॥ ३६ ॥
घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो भ्रातृभिः परिवारितः ।
अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३७ ॥
तथेतरे चाभ्यधावन् राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।

उस बाणसे अधिक घायल हो जानेके कारण व्यथित हो राजा नील रथके पिछले भागमें बैठ गये । नीलमेघके समान श्याम वर्णवाले राजा नीलको मूर्च्छित हुआ देख अपने भाई-बन्धुओंसे घिरा हुआ घटोत्कच अत्यन्त कुपित हो युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा । उसके साथ ही दूसरे-दूसरे रणदुर्मद राक्षसोंने भी उसपर धावा किया ॥ ३६-३७ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ३८ ॥
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजात्मजः ।

देखनेमें अत्यन्त भयंकर राक्षस घटोत्कचको आता देख तेजस्वी अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ उसपर आक्रमण किया ॥ ३८½ ॥

निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान् भीमदर्शनान् ॥ ३९ ॥
येऽभवन्नग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः ।

उसने कुपित हो उन भयंकर राक्षसोंको मारना आरम्भ किया, जो घटोत्कचके आगे खड़े होकर क्रोधपूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥ ३९½ ॥

विमुखांश्चैव तान् दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः ॥ ४० ॥
अक्रुध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः ।

अश्वत्थामाके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा पराङ्मुख हुए उन राक्षसोंको भागते देख विशालकाय भीमसेनकुमार घटोत्कच कुपित हो उठा ॥ ४०½ ॥

प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥ ४१ ॥
मोहयन् समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः ।

तत्पश्चात् उस मायावी राक्षसराजने समराङ्गणमें अश्वत्थामाको मोहित करते हुए अत्यन्त दारुण एवं घोर माया प्रकट की ॥ ४१½ ॥

तावकास्तावकाः सर्वे मत्स्या विमुखीकृताः ॥ ४२ ॥
अन्योन्यं समपश्यन्त निकृत्ता मेदिनीतले ।
विचेष्टमाना रुधिरैः शोणितेन परिप्लुताः ॥ ४३ ॥
द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।
प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाः स्म कौरवाः ॥ ४४ ॥
विध्वस्ता रथिनः सर्वे गजाश्चापि निपातिताः ।
हयाश्चैव हयारोहाः संनिकृत्ताः सहस्रशः ॥ ४५ ॥

तब उस महासमरमें आपके सभी सैनिक युद्धसे विमुख हो गये। उन्होंने एक दूसरेको तथा द्रोण, दुर्योधन, शल्य और अश्वत्थामाको भी इस प्रकार देखा—सब-के-सब छिन्न-भिन्न हो पृथ्वीपर गिरकर छटपटा रहे हैं और खूनसे लथपथ होकर दयनीय दशाको पहुँच गये हैं। कौरवोंके जो महान् धनुर्धर एवं प्रधान वीर हैं, प्रायः वे सभी रथी छिन्न-भिन्न हो गये हैं। सब हाथी मार गिराये गये हैं तथा हजारों घोड़े और घुड़सवार टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े हैं ॥ ४२—४५ ॥

तद् दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिबिरं प्रति ।
ममाकाङ्क्षतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ॥ ४६ ॥
युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे ।
घटोत्कचप्रयुक्तेति नातिष्ठन्त विमोहिताः ॥ ४७ ॥

यह सब देखकर आपकी सेना शिविरकी ओर भाग चली। राजन्! उस समय मैं और देवव्रत भीष्म भी पुकार-पुकारकर कह रहे थे—वीरो! युद्ध करो। भागो मत। रणभूमिमें तुम जो कुछ देख रहे हो, यह घटोत्कचद्वारा रची हुई राक्षसी माया है। परंतु वे अचेत होनेके कारण ठहर न सके ॥ ४६-४७ ॥

नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः ।
ततश्च प्रद्रुतान् दृष्ट्वा जयं प्राप्तांश्च पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान् प्रचक्रिरे ।

वे इतने डर गये थे कि हम दोनोंकी बातोंपर विश्वास नहीं करते थे। उन्हें भागते देख विजयी पाण्डव घटोत्कचके साथ सिंहनाद करने लगे ॥ ४८½ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः समन्तान्नेदिरे भृशम् ॥ ४९ ॥
एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ ५० ॥

चारों ओर शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे जोर-जोरसे बजने लगे। इस प्रकार सूर्यास्तके समय दुरात्मा घटोत्कचके खदेड़ी गयी आपकी सारी सेना सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गयी ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसावहारे घटोत्कचयुद्धे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें आठवें दिनके युद्धकी समाप्तिके अवसरपर घटोत्कचयुद्धविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

दुर्योधनके अनुरोध और भीष्मजीकी आज्ञासे भगदत्तका घटोत्कच, भीमसेन और पाण्डवसेनाके साथ घोर युद्ध

संजय उवाच

तस्मिन् महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा ।
(पराजयं राक्षसेन नामृष्यत परंतपः ।)
गाङ्गेयमुपसंगम्य विनयेनाभिवाद्य च ॥ १ ॥
तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।
घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥ २ ॥
कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।

संजय कहते हैं—महाराज! शत्रुओंको संताप देनेवाला राजा दुर्योधन उस महान् युद्धमें एक राक्षसके द्वारा प्राप्त हुई अपनी पराजयको नहीं सह सका। उसने गङ्गानन्दन भीष्मजीके पास जाकर उन्हें विनीतभावसे प्रणाम करनेके पश्चात् सारा वृत्तान्त यथावत्‌रूपसे कह सुनाया। उस दुर्धर्ष वीरने बारंबार लम्बी साँस खींचकर घटोत्कचकी विजय और अपनी पराजयकी कथा कही ॥ १-२½ ॥

अब्रवीच्च तदा राजन् भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ३ ॥
भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।
पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥ ४ ॥

राजन्! फिर उसने कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्मसे कहा—प्रभो! जैसे मेरे शत्रु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका आश्रय लेकर युद्ध करते हैं, उसी प्रकार मैंने केवल आपका सहारा लेकर पाण्डवोंके साथ भयंकर युद्ध छेड़ा है ॥ ३-४ ॥

एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।
निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परंतप ॥ ५ ॥

परंतप! मेरे साथ ही मेरी ये प्रसिद्ध ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ आपकी आज्ञाके अधीन हैं ॥ ५ ॥

सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।
घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा प्रतिभाशाली होनेपर भी तुम्हें भीमसेन आदि पाण्डवोंने अनेकबार स्थान लेकर युद्धमें परास्त कर दिया है ॥ ६ ॥

तस्मै बहूनि गात्राणि शुष्कवृक्षमिवानलः ।
यदिच्छसि महाभाग त्वत्प्रसादात् परंतप ॥ ७ ॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह ।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तस्मै कर्तुं त्वमर्हसि ॥

महात्मा ... आज मुझे ... जलाकर भस्म कर रही है। इसी प्रकार वह अपमान मेरे ... रहा है। शत्रुओंको संताप देनेवाले पितामह ! मैं आपकी कृपासे स्वयं ही उस नीच एवं दुष्ट राक्षसको मारना चाहता हूँ। आपका सहारा लेकर उसपर विजय पाना चाहता हूँ। अतः आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण करें ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनका यह वचन सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने इस प्रकार कहा ॥

शृणु राजन् मम वचो यत् त्वा वक्ष्यामि कौरव ।
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परंतप ॥

राजन् ! कुरुनन्दन ! मैं तुमसे जो कहता हूँ, मेरे उस वचनको ध्यान देकर सुनो। शत्रुओंको ताप देनेवाले महाराज ! तुम्हें किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये, यह सुनो ॥

आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिंदम ।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदानघ ॥

तात ! शत्रुदमन ! तुम युद्धमें सदा अपनी रक्षा करो। अनघ ! तुम्हें सदा धर्मराज युधिष्ठिरके ही साथ युद्ध करना चाहिये ॥

अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमृच्छति ॥ २ ॥

अर्जुन, नकुल, सहदेव अथवा भीमसेनके साथ भी तुम युद्ध कर सकते हो। राजधर्मको सामने रखकर यह कहा गया है कि राजा राजाके ही साथ युद्ध करता है ॥

(अहं तु त्वं च ... राजन् हैडिम्बं दुरात्मना ।
अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथः ॥ ३ ॥
तव च भ्रातरः शूरा दुःशासनपुरोगमाः ।
त्वदर्थं प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥ ४ ॥

राजन् ! तुम्हें दुरात्मा घटोत्कचके साथ कदापि युद्ध नहीं करना चाहिये। मैं, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सात्वतवंशी कृतवर्मा, शल्य, भूरिश्रवा, महारथी विकर्ण तथा दुःशासन आदि तुम्हारे भाई—ये सब लोग तुम्हारे लिये उस महाबली राक्षससे युद्ध करेंगे ॥

रौद्रे तस्मिन् राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान् ।
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपालः पुरंदरसमो युधि ।

यदि तुम उस भयंकर राक्षसराज घटोत्कचपर तुम्हारा अधिक रोष है तो उस दुष्टके साथ युद्ध करनेके लिये राजा भगदत्त जायँ; क्योंकि युद्धमें ये इन्द्रके समान पराक्रमी हैं ॥

एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥
समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।

इतना कहकर बोलनेमें कुशल भीष्मने राजाधिराज दुर्योधनके सामने ही भगदत्तसे यह बात कही ॥

गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥ १७ ॥
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

महाराज ! तुम शीघ्र ... हिडिम्बाकुमारका सामना करनेके लिये जाओ और ... सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते प्रयत्नपूर्वक उसे रणभूमिमें आगे बढ़नेसे रोको ॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १८ ॥
तव दिव्यानि चास्त्राणि विक्रमश्च परंतप ।
समागमश्च बहुभिः पुरासुरैः परंतप ॥ १९ ॥

जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने तारकासुरको आगे बढ़नेसे रोक दी थी, उसी प्रकार तुम भी क्रूरकर्मा राक्षसको रोको। परंतप ! तुम्हारे पास दिव्य अस्त्र हैं। तुममें पराक्रम भी महान् है और पूर्वकालमें बहुत-से देवताओंके साथ तुम्हारा युद्ध भी हो चुका है ॥

त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेनाभिसंवृतो राजन् जहि राक्षसपुंगवम् ॥ २० ॥

नृपश्रेष्ठ ! इस महायुद्धमें घटोत्कचका सामना करनेवाले योद्धा केवल तुम्हीं हो। राजन् ! तुम अपनी ही सेनासे घिरे रहकर उस राक्षसशिरोमणि घटोत्कचको मार डालो ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २१ ॥

सेनापति भीष्मका यह वचन सुनकर राजा भगदत्त सिंहनाद करके तुरंत ही शत्रुओंका सामना करनेके लिये चल दिये ॥

तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २२ ॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत ॥ २३ ॥
चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।

भारत ! गर्जते हुए मेघके समान राजा भगदत्तको आक्रमण करते देख भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, सत्यधृति, क्षत्रदेव, चेदिराज धृष्टकेतु, वसुदान

और दशार्णराज—ये सभी राजा हाथी पर बैठकर अकेले भीमसेनका सामना करनेके लिये आये ॥

सुप्रतीकेन नागेन भगदत्तोऽभ्युपाद्रवत् ॥ ४ ॥
तत समभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम्
पाण्डवानां भगदत्तेन नागराजविवर्धनम् ॥ २ ॥

भगदत्तने भी सुप्रतीक नामक हाथीपर आरूढ होकर उनपर धावा किया। फिर तो पाण्डवोंका भगदत्तके साथ घोर एवं भयानक युद्ध होने लगा। वह युद्ध गजराजोंका संहार करनेवाला था ॥

अप्सुला रथिभिर्भीमा भीमसेना सुतेजसा
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २५ ॥

रथियों द्वारा प्रयुक्त हुए भयंकर तेजस्वी बाण हाथियों और रथों पर गिरने लगे ॥

प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः
परस्परं समासाद्य संनिपेतुरभीतवत् ॥ ७ ॥

जिनके मस्तकसे मदकी धारा बहती थी, वे महावतों द्वारा संचालित मतवाले हाथी एक दूसरेसे भिड़कर निर्भीक होकर परस्पर टकराते थे ॥

महाभ्रा इव सरभसा विषाणाग्रैर्महाहवे
विभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ ८ ॥

उस महायुद्धमें वे हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागों तथा मूसलोंसे परस्पर भिड़कर एक दूसरेको विदीर्ण करने लगे ॥

हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ ९ ॥

चामरभूषित अश्व प्रासधारी सवारोंसे संचालित हो तुरंत ही एक दूसरेपर टूट पड़े ॥

पादाताश्च पदात्यौघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥

उस समय पैदल सिपाही पैदलोंद्वारा शक्ति और तोमरोंसे घायल हो सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें धराशायी हो रहे थे ॥

रथिनश्च रथैस्तत्र कर्णिनालीकसायकैः
निहत्य समरे वीरान् सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ११ ॥

रथारूढ रथी वीर रथोंपर आरूढ हो कर्णी, नालीक और सायकोंद्वारा समरमें वीरोंका वध करके सिंहनाद कर रहे थे ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे
अभ्यद्रवन्महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत् ॥ १२ ॥

जब इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयानक संग्राम चल रहा था, उसी समय महाधनुर्धर भगदत्तने भीमसेनपर धावा किया ॥

कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम्
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वतः ॥ १३ ॥

वे जिस हाथीपर आरूढ थे, उसके कुम्भस्थलसे मदकी सात धाराएँ गिर रही थीं। वह सब ओरसे झरने बहानेवाले पर्वतके समान जान पड़ता था ॥

किरञ्छरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः
ऐरावतस्थो मघवान् वारिधारा इवानघ ॥ १४ ॥

निष्पाप नरेश! भगदत्त सुप्रतीकके पीठपर बैठकर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते थे, मानो देवराज इन्द्र ऐरावत पर आरूढ हो जलकी धारा गिरा रहे हों ॥

स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृष्यम्बुधरो यथा ॥ १५ ॥

जैसे वर्षा ऋतुमें बादल पर्वतपर जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार राजा भगदत्त भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्हें पीड़ित करने लगे ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान् परःशतान्
निजघान महेष्वासः संक्रुद्धः शरवृष्टिभिः ॥ १६ ॥

तब महाधनुर्धर भीमसेनने अत्यन्त कुपित हो अपने बाणोंकी वर्षासे हाथीके पैरोंकी रक्षा करनेवाले सैकड़ों योद्धाओंको मार गिराया ॥

तान् दृष्ट्वा निहतान् क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान्
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥ १७ ॥

उन सबको मारा गया देख प्रतापी भगदत्तने कुपित हो उस गजराजको भीमसेनके रथकी ओर बढ़ाया ॥

स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिंदमम् ॥ १८ ॥

उनके द्वारा प्रेरित होकर वह गजराज धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति शत्रुदमन भीमसेनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः
अभ्यवर्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ १९ ॥

उसे आते देख भीमसेन आदि पाण्डव महारथी भीमसेनके आगे उसका सामना करनेके लिये चारों ओरसे आ गये ॥

केकयाश्चाभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः
दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ २० ॥
चेदिपश्चित्रकेतुश्च संक्रुद्धाः सर्व एव ते
उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ॥ २१ ॥
तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात् पर्यवारयन्

आर्य! केकयराजकुमार, अभिमन्यु, द्रौपदीके सभी पुत्र, शूरवीर दशार्णराज, क्षत्रदेव, चेदिराज धृष्टकेतु तथा

चित्रवेदु—ये सभी महाबली वीर योद्धाओंमें मानकर अपने उत्तम दिव्यास्त्रोंका प्रकाश करते हुए उस एकमात्र हाथीको क्रोध पूर्वक चारों ओरसे नष्टकर रहे हो गये

स भिन्नो बहुभिर्बाणैर्निर्भिन्नाङ्गो महाद्विप ॥ ४२ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाद्रिराट्

अनेक बाणोंसे घायल हुआ वह महान् गज रक्तसे लथपथ होकर गेरु आदि धातुओंसे विचित्र दिखायी देनेवाले गिरि राजके समान सुशोभित हुआ है

दशार्णाधिपतिश्चापि गजं भूमिधरोपमम् ॥ ४३ ॥
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम्

तदनन्तर दशार्णदेशके राजा भी एक पर्वताकार हाथी पर आरूढ़ हो भगदत्तके हाथीकी ओर दौड़े

तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ॥ ४४ ॥
दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम्

समरभूमिमें आते और आगे हुए उस हाथीको गज राज सुप्रतीकने उसी प्रकार रोक दिया जैसे तटकी भूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोके रहती है ॥ ४४ ॥

वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मन ॥ ४५ ॥
साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयान्यपूजयन्

महामना दशार्णनरेशके गजराजको रोका गया देख पाण्डव सैनिक भी साधु-साधु कहकर सुप्रतीककी प्रशंसा करने लगे

ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान् वै नृपोत्तम ॥ ४६ ॥
प्राहिणोत् तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम

नृपश्रेष्ठ तदनन्तर प्राग्ज्योतिषनरेशने कुपित होकर दशार्णनरेशके हाथीको सामने चौदह तोमर

वर्म मुक्त्वा तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ॥ ४७ ॥
विदार्य प्राविशन् क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगा

वे सब बाणोंमें श्रेष्ठ थे। जो उस हाथीके ऊपर पड़े हुए सुवर्णभूषित कवचको छिन्न-भिन्न करके शीघ्र ही उसके शरीरमें घुस गये ॥ ४७ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः

भरतश्रेष्ठ उन तोमरोंसे अत्यन्त घायल हो वह हाथी व्यथित हो उठा उसका मद उतर गया और वह बड़े वेगसे लौटकर और-और रहा है

स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन् भैरवं रवम् ॥ ४९ ॥
सम्मर्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा

जैसे वायु अपनी शक्तिसे वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है, उसी प्रकार वह हाथी भयानक स्वरसे चिग्घाड़ता और अपनी ही सेनाको रौंदता हुआ बड़े वेगसे भाग चला ॥ ४९ ॥

तस्मिन् पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ॥ ५० ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवावतस्थिरे

उस हाथीके पराजित हो जानेपर भी पाण्डव महारथी उच्च स्वरसे सिंहनाद करके युद्धके लिये ही डटे रहे ॥ ५० ॥

ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ॥ ५१ ॥
किरन्तो विविधान् बाणाञ्छस्त्राणि विविधानि च

तदनन्तर पाण्डवयोद्धा भीमसेनको आगे करके नाना प्रकारके बाणों तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए भगदत्त पर टूट पड़े

तेषामापततां राजन् सङ्क्रुद्धानाममर्षिणाम् ॥ २ ॥
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद् गतसाध्वसः
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥ ३ ॥

राजन्! क्रोध और अमर्षमें भरकर आक्रमण करनेवाले उन पाण्डवयोद्धाओंका घोर सिंहनाद सुनकर महाधनुर्धर भगदत्तने अमर्षवश निर्भय हो अपने हाथीको उनकी ओर बढ़ाया

अङ्कुशाङ्गुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि
तस्मिन् क्षणे समभवत् संवर्तक इवानलः ॥ ४ ॥

उस समय अंकुशों और पैरके अंगूठोंसे प्रेरित हो वह गजराज युद्धस्थलमें प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा

रथसङ्घांस्तथा नागान् हयांश्च सह सादिभिः
पादातांश्च सुसङ्क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥
अमृद्नात् समरे राजन् सम्प्रधावंस्ततस्ततः

राजन्! उस हाथीने अत्यन्त कुपित होकर रथसमूहों, हाथियों, घुड़सवारों सहित घोड़ों तथा सैकड़ों हजारों पैदल सिपाहियोंको भी समरभूमिमें इधर-उधर दौड़ते हुए कुचल डाला

तेन सङ्क्षोभ्यमाणं तु पाण्डवानां बलं महत् ॥ ६ ॥
सञ्चुकोच महाराज चर्मेवाग्नौ समाहितम्

महाराज! उस हाथीके द्वारा आलोडित होकर पाण्डवोंकी वह विशाल सेना आगपर रक्खे हुए चमड़ेकी भाँति संकुचित हो गयी है

भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥ ७ ॥
घटोत्कचोऽथ सङ्क्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत्

बुद्धिमान् भगदत्तके द्वारा अपनी सेनाको भागती हुई

हुए देख भगदत्तने अत्यन्त कुपित होकर भीमसेनपर धावा किया ॥ ५८ ॥

विसृष्टं पवनेनेव राजन् दीप्तास्यो दीप्ततेजसम्
कुपित्वा विनिर्भिद्य कृत्वा दारुणं प्रज्वलितम्

राजन्! उस समय वह अत्यन्त भयंकर रूप धनाधार तेजसे प्रज्वलित था। उसकी आकृति विकट एवं निष्ठुर दिखायी देती थी तथा मुख और [illegible] उद्‌भासित एवं प्रकाशित हो रहे थे।

अभ्यद्रवन्त विपुलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥ ५९ ॥
वाम विमोक्तुं सहसा विशोक च महाबल

उस महाबली विशोकने हाथीके मार डालनेकी इच्छा से एक विशाल त्रिशूल हाथमें लिया जो पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाला था। फिर सहसा उसे चला दिया।

स त्रिशूलं निकृत्याशु समन्तात् परिवेष्टितम् ॥ ६० ॥
तमापतन्तं सहसा वज्रं प्राग्ज्योतिषो नृप
चिच्छेद भवि नीलनाभमग्र क्षुरप्रेणाथ ॥ ६१ ॥

वह त्रिशूल चारों ओरसे अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था। उसे सहसा अपने ऊपर आते देख प्राग्ज्योतिषपुरके नरेश भगदत्तने अत्यन्त भयंकर तीखे और सुन्दर एक अर्धचन्द्राकार बाण चलाया।

चिच्छेद सम्यगस्त्रेण तेन बाणेन वेगवान्
तत्पपात द्विधा छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥ ६२ ॥
महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता

उन वेगशाली राजाने उस बाणसे उस महान् त्रिशूलको काट डाला। वह सुवर्णभूषित त्रिशूल दो टुकड़ोंमें कटकर आकाशकी ओर चला गया तथा इन्द्रके हाथसे छूटकर आकाशसे गिरे हुए महान् वज्रके समान सुशोभित हुआ ॥ ६३ ॥

शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृत्तं च पार्थिव ॥ ६३ ॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाग्निशिखोपमाम्
चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ६४ ॥

त्रिशूलको दो टुकड़ोंमें कटकर गिरा हुआ देख राजा भगदत्तने अग्निकी लपटोंके सदृश तथा सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एक महाशक्ति हाथमें ली और उसे राक्षसपर चला दिया। फिर बोले—खड़ा रह, खड़ा रह।

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थां ह्यशनीमिव
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ॥ ६५ ॥

आकाशमें प्रकाशित होनेवाली अशनि वज्र के समान उस महाशक्तिको गिरती हुई देख राक्षस घटोत्कचने उछलकर तुरंत ही उसे पकड़ लिया और सिंहके समान गर्जना की ॥ ६५ ॥

बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६६ ॥

भारत! फिर अनेक ही राजा भगदत्तके देखते देखते उस शक्तिको घुटनेपर रखकर तोड़ डाला। वह एक अद्भुत बात हुई।

तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा
दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चापि विस्मिताः ॥ ६७ ॥

महाबली राक्षसके द्वारा किये गये इस महान् कर्मको देखकर आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और मुनि बड़े विस्मित हुए।

पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन् ॥ ६८ ॥

महाराज! भीमसेन आदि पाण्डवोंने भी साधु-साधु कहकर अपने [illegible] पृथ्वीको गुंजा दिया।

न तु मृष्यत् महात्मानं प्रहृष्टानां महास्वनम्
नामृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ६९ ॥

हर्षमें भरे हुए उन महात्मा वीरोंका वह सिंहनाद सुनकर महाधनुर्धर प्रतापी राजा भगदत्त सह न सके।

स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम्
तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ॥ ७० ॥

उन्होंने इन्द्रके वज्रकी भाँति प्रकाशित होनेवाले अपने विशाल धनुषको खींचकर पाण्डव महारथियोंको वेगपूर्वक डाँट बतायी।

विसृजन् विमलांस्तीक्ष्णान् नाराचाञ्ज्वलनप्रभान्
भीमसेनं शिलाग्रेण नाराचेन ननाद ह ॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले निर्मल और तीखे नाराचोंका प्रहार करते हुए उन्होंने एक नाराचके द्वारा भीमसेनको घायल किया और नौ बाणोंसे राक्षस घटोत्कचको घोंप डाला।

अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान् पञ्चभिस्तथा
पूर्णायतविसृष्टेन शरेणानतपर्वणा ॥ ७२ ॥

बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाहवे
पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७३ ॥

फिर तीन बाणोंसे अभिमन्युको और पाँचसे केकय राजकुमारोंको घायल किया। तत्पश्चात् धनुषको अच्छी तरह खींचकर छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले बाणके द्वारा उन्होंने युद्धमें क्षत्रदेवकी दाहिनी बाँह काट डाली। उसके कटते ही सहसा उनका बाणसहित उत्तम धनुष पृथ्वीपर गिर पड़ा।

द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत्
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरंगमान् ॥ ७४ ॥

इसके बाद भगदत्तने तीखे बाणोंसे पुत्रोंको ... आच्छादित कर दिया और क्रोधपूर्वक भीमसेनके घोड़ोंको मार डाला।

ध्वजं केसरिणं चास्य चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः।
निर्बिभेद त्रिभिश्चान्यैः सारथिं चास्य पत्रिभिः ॥ ७५ ॥

फिर तीन बाणोंसे उनके सिंहचिह्नित ध्वजको काट दिया और अन्य तीन पंखयुक्त बाण मारकर उनके सारथिको भी विदीर्ण कर डाला।

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्।
विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७६ ॥

भरतश्रेष्ठ! भगदत्तके द्वारा युद्धमें अधिक घायल होकर भीमसेनका सारथि विशोक व्यथित हो उठा और रथके पिछले भागमें जा बैठा।

ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः।
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ७७ ॥

इस प्रकार रथहीन होनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीमसेन हाथमें गदा लेकर उस उत्तम रथसे बड़े वेगसे कूद पड़े।

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम्।
तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७८ ॥

भारत! शृंगयुक्त पर्वतके समान उन्हें गदा उठाये देख आपके सैनिकोंके मनमें घोर भय समा गया।

एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः।
आजगाम महाराज निघ्नञ्छत्रून् सहस्रशः ॥ ७९ ॥
यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ।
प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥ ८० ॥

महाराज! इसी समय श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे पाण्डुनन्दन अर्जुन सहस्रों शत्रुओंका संहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वे दोनों पुरुषसिंह महाबली पिता-पुत्र भीमसेन और घटोत्कच भगदत्तके साथ युद्ध कर रहे थे।

दृष्ट्वा तु पाण्डवो भ्रातॄन् युध्यमानान् महारथान्।
त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्रायुध्यत् किरञ्छरान् ॥ ८१ ॥

भरतश्रेष्ठ! पाण्डुनन्दन अर्जुन अपने महारथी भाइयोंको युद्ध करते देख स्वयं भी बाणोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही युद्धमें प्रवृत्त हो गये।

ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः।
सेनामचोदयत् क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥ ८२ ॥

तब महारथी राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई अपनी सेनाको शीघ्र ही युद्धके लिये प्रेरित किया।

तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम्।
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः ॥ ८३ ॥

श्वेत घोड़ोंवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन सहसा आती हुई कौरवोंकी उस विशाल सेनापर बड़े वेगसे टूट पड़े।

भगदत्तश्च समरे तेन नागेन भारत।
विमृद्नन् पाण्डवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ८४ ॥

भारत! भगदत्तने भी समरभूमिमें उस हाथीके द्वारा पाण्डवसेनाको कुचलते हुए युधिष्ठिरपर धावा किया।

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं भगदत्तस्य मारिष।
पञ्चालैः पाण्डवैश्चैव केकयैश्चोद्यतायुधैः ॥ ८५ ॥

आर्य! उस समय हथियार उठाये हुए पाञ्चालों, पाण्डवों तथा केकयोंके साथ भगदत्तका बड़ा भारी युद्ध हुआ।

भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ।
आश्रावयद् यथावृत्तमिरावद्वधमुत्तमम् ॥ ८६ ॥

भीमसेनने भी समरभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको इरावान्‌के वधका यथावत् वृत्तान्त अच्छी तरह सुना दिया।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

(इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें आठवें दिनके युद्धविषयक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ।)

एकिकायसे अधिक पाठका ... श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं।

षण्णवतितमोऽध्याय

इरावान्‌के वधसे अर्जुनका दुःखपूर्ण उद्गार, भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके नौ पुत्रोंका वध, अभिमन्यु और अम्बष्ठका युद्ध, युद्धकी भयानक स्थितिका वर्णन तथा आठवें दिनके युद्धका उपसंहार

संजय उवाच

पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनंजयः।
दुःखेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन् पन्नगो यथा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! अपने पुत्र इरावान्‌के वधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनको बड़ा दुःख हुआ। वे सर्पके समान लंबी साँस खींचने लगे।

अब्रवीत् समरे राजन् वासुदेवमिदं वचः।
इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा ॥ २ ॥

नरेश्वर ! तब उन्होंने रणभूमिमें भगवान् वासुदेवसे इस प्रकार कहा—भगवन् ! निश्चय ही महाज्ञानी विदुर पहले ही यह सब देख चुके थे ॥ २ ॥

कुरूणां पाण्डवानां च क्षयः घोरो महामते ।
इह लब्धो विदुषा तात भूतपूर्वं जनेश्वरम् ॥ ३ ॥

कौरवों और पाण्डवोंका यह भयंकर विनाश परम बुद्धिमान् विदुरजी बहुत पहले ही जान गये थे। इसीलिये उन्होंने राजा धृतराष्ट्रको मना किया था ॥ ३ ॥

अन्ये च बहवो वीरा संग्रामे मधुसूदन ।
निहता कौरवैः संख्ये तथास्माभिश्च कौरवाः ॥ ४ ॥

मधुसूदन ! और भी बहुत-से वीरोंको संग्राममें कौरवोंने मारा और हमने कौरव सैनिकोंका संहार किया ॥ ४ ॥

अर्थहेतोर्नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म कुत्सितम् ।
धिगर्थान् यत्कृते होवं क्रियते ज्ञातिसंक्षयः ॥ ५ ॥

नरश्रेष्ठ ! धनके लिये यह कुत्सित कर्म किया जा रहा है। धिक्कार है उस धनको, जिसके लिये इस प्रकार जाति भाइयोंका विनाश किया जाता है ॥ ५ ॥

अधनस्य मृतं श्रेयो न च ज्ञातिवधाद् धनम् ।
किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातीन् समागतान् ॥ ६ ॥

धनहीन मनुष्यका निर्धन रहकर मर जाना अच्छा है परंतु जाति भाइयोंके वधसे धन प्राप्त करना कदापि अच्छा नहीं है। कृष्ण ! हम यहाँ आये हुए इन जाति भाइयोंको मारकर क्या प्राप्त कर लेंगे ॥ ६ ॥

दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च ।
क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ॥ ७ ॥

दुर्योधनके अपराधसे और सुबलपुत्र शकुनि तथा कर्णकी कुमन्त्रणासे ये क्षत्रिय मारे जा रहे हैं ॥ ७ ॥

इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन ।
कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम् ॥ ८ ॥

महाबाहु मधुसूदन ! राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनसे पहले जो याचना की थी, वही उत्तम पक्ष था, यह बात अब मेरी समझमें आ रही है ॥ ८ ॥

राज्यार्धं पञ्च वा ग्रामान् नाकार्षीत् स च दुर्मतिः ।
दृष्ट्वा हि क्षत्रियान् शूरान् शयानान् धरणीतले ॥ ९ ॥
निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ।

युधिष्ठिरने आधा राज्य अथवा पाँच गाँव माँगे थे, परंतु दुर्बुद्धि दुर्योधनने उनकी माँग पूरी नहीं की। आज क्षत्रिय वीरोंको रणभूमिमें सोते देख मैं अपनी अधिक निन्दा करता हूँ। क्षत्रियोंकी इस जीविकाको धिक्कार है ॥ ९½ ॥

अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे ॥ १० ॥
युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ।

मधुसूदन ! रणक्षेत्रमें ये क्षत्रिय मुझे असमर्थ समझेंगे, परंतु इन जाति भाइयोंके साथ युद्ध करना मुझे अच्छा नहीं लगता है ॥ १०½ ॥

संनोदय हयाञ्शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ॥ ११ ॥
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।

(तथापि मैं आपके आदेशानुसार युद्ध करता रहूँ) आप शीघ्र ही अपने घोड़ोंको दुर्योधनकी सेनाकी ओर हाँकिये, जिससे इन दोनों भुजाओंद्वारा अपार सैन्यसमुद्रको पार करूँ ॥ ११½ ॥

नायं क्लीबयितुं कालो विद्यते माधव क्वचित् ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
चोदयामास तानश्वान् पाण्डुरान् वातरंहसः ॥ १३ ॥

माधव ! यह नपुंसकता अब दिखानेका अवसर नहीं है। अर्जुनके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका विनाश करनेवाले केशवने वायुके समान वेगशाली उन श्वेत घोड़ोंको आगे बढ़ाया ॥ १२-१३ ॥

अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १४ ॥

भारत ! तदनन्तर जैसे पूर्णिमाके दिन वायुके वेगसे उद्वेलित हुए समुद्रका महान् कोलाहल सुनायी पड़ता है, उसी प्रकार आपकी सेनामें महान् कोलाहल प्रकट हुआ ॥ १४ ॥

अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥ १५ ॥

महाराज ! अपराह्णकालमें पाण्डवोंके साथ भीष्मका भीषण संग्राम आरम्भ हुआ, जिसमें मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर घोष हो रहा था ॥ १५ ॥

ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा ॥ १६ ॥

राजन् ! तब आपके पुत्र जैसे वसुगण इन्द्रको घेरकर खड़े होते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेरकर रणभूमिमें भीमसेनपर टूट पड़े ॥ १६ ॥

ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
भगदत्तः सुशर्मा च धनंजयमुपाद्रवन् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् शान्तनुनन्दन भीष्म, रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य, भगदत्त और सुशर्माने अर्जुनपर धावा किया ॥ १७ ॥

हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ ।
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवस्थितः ॥ १८ ॥

कृतवर्मा और बाह्लीक सात्यकिपर टूट पड़े। राजा अम्बष्ठने अभिमन्युका सामना किया ॥ १८ ॥

शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १९ ॥

महाराज ! शेष अन्य महारथियोंने अवशिष्ट महारथियोंको रोक

महारथियोंपर आक्रमण किया । फिर तो उनमें घोर एवं भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ।

भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव ॥ २ ॥

जनेश्वर ! जैसे घीकी आहुति देनेसे अग्निदेव प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार रणक्षेत्रमें आपके पुत्रोंको देखकर भीमसेन क्रोधसे जल उठे ।

पुत्रास्तु तव कौन्तेय छादयाञ्चक्रिरे शरैः ।
प्रावृषीव महाराज जलदाः इव पर्वतम् ॥

महाराज ! आपके पुत्रोंने कुन्तीनन्दन भीमको अपने बाणोंसे उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे वर्षाऋतुमें बादल पर्वतको जलधाराओंसे ढक लेते हैं ।

स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशाम्पते ।
सृक्किणी संलिहन् वीरः शार्दूल इव दर्पितः ॥ २ ॥
व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद् गतजीवितः ॥ ३ ॥

प्रजानाथ ! भरतनन्दन ! आपके पुत्रोंद्वारा बारंबार बाणोंकी वर्षासे आच्छादित किये जानेपर क्रोधसे अपने मुहके कोनोंको चाटते हुए सिंहके समान गर्वीला भीमसेनने एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रके द्वारा आपके पुत्र व्यूढोरस्कको मार गिराया । उसकी जीवनलीला समाप्त हो गयी ।

अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु ।
अपातयत् कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् जैसे सिंह छोटेसे मृगको दबोच लेता है, उसी प्रकार भीमसेनने दूसरे पानीदार तीखे भल्लसे आपके पुत्र कुण्डलीको धराशायी कर दिया ।

ततः सुनिशितान् पीतान् समादत्त शिलीमुखान् ।
स सम्यक् त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥

आर्य ! इसके बाद भीमने बड़ी उतावलीके साथ बहुत-से तीखे और पानीदार बाण हाथमें लिये और आपके पुत्रोंको लक्ष्य करके छोड़ दिये ।

प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥ ६ ॥

सुदृढ धनुर्धर भीमसेनके द्वारा चलाये हुए उन बाणोंने आपके बहुत-से महारथी पुत्रोंको मारकर रथोंसे नीचे गिरा दिया ।

अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् ॥ ७ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु तथा कनकध्वज ॥ ७ ॥

प्रपतन्त स्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ ।
वसन्ते पुष्पशबला सचूता प्रपतिता इव ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे सभी वीर वहाँ गिरकर वसन्त ऋतुमें धराशायी हुए पुष्पयुक्त आमवृक्षोंकी भाँति सुशोभित हो रहे थे ।

ततः प्रदुद्रुवुः शेषाः पुत्रास्तव महाहवे ।
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥ ९ ॥

तब उस महायुद्धमें आपके शेष पुत्र महाबली भीमसेनको कालके समान मानकर वहाँसे भाग चले ।

द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
यथाद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद् व्यकिरच्छरैः ॥ १० ॥

उस समय युद्धस्थलमें आपके पुत्रोंको दग्ध करते हुए वीर भीमसेनपर द्रोणाचार्यने भी उसी प्रकार सब ओर बाणोंकी वर्षा आरम्भ की, जैसे बादल पर्वतपर जलकी धाराएँ गिराते हैं ।

तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत् सुतांस्तव ॥ ११ ॥

महाराज ! उस समय हमने कुन्तीपुत्र भीमका अद्भुत पराक्रम देखा । यद्यपि द्रोणाचार्य बाणोंकी वर्षा करके उन्हें रोक रहे थे, तो भी उन्होंने आपके पुत्रोंको मार डाला ।

यथा गोवृषभो वर्षं संधारयति खात् पतत् ।
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमधारयत् ॥ १२ ॥

जैसे साँड़ आकाशसे गिरती हुई जलधाराको अपने ऊपर शान्तभावसे धारण और सहन करता है, उसी प्रकार भीमसेन द्रोणाचार्यकी छोड़ी हुई बाण-वर्षाको धारण कर रहे थे ।

अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
यत् पुत्रांस्तेऽवधीत् संख्ये द्रोणं चैव न्यवारयत् ॥ १३ ॥

महाराज ! भीमसेनने उस युद्धस्थलमें आपके पुत्रोंका वध तो किया ही, द्रोणाचार्यको भी आगे बढ़नेसे रोक रखा था । यह उन्होंने अद्भुत पराक्रम किया ।

पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडार्जुनपूर्वजः ।
मृगेष्विव महाराज चरन् व्याघ्रो महाबलः ॥ १४ ॥

राजन् ! जैसे महाबली व्याघ्र मृगोंमें विचरता हो, उसी प्रकार भीमसेन आपके वीर पुत्रोंके साथ खेल रहे थे ।

यथा हि पशुमध्यस्थो द्रावयेत पशून् वृकः ।
वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद् रणे ॥ १५ ॥

जैसे भेड़िया पशुओंके बीचमें रहकर भी उन्हें चिन्तित

का सकता है उसी प्रकार भी रणभूमिमें आपके पुत्रोंको मार रहे थे ।

आर्जुनिर्भगदत्तस्य कौरव्यस्य महात्मनः ।
पाञ्चाल्यं रक्षन् युद्धे धारयामास दुर्जयम् ॥ ४ ॥

दूसरी ओर महाधनुर्धर भीष्म भगदत्त और कृप नाम तीनों महारथी युद्धमें तेजसे आगे बढ़नेवाले पाण्डुकुमार अर्जुनको विचलित न कर सके थे ।

सात्यकिस्तमथ सवाध नैषा सोऽतिरथो रथे
मद्राधिपस्य सैन्येषु प्रेषयामास सत्वरम्

परंतु अतिरथी वीर अर्जुनने रणभूमिमें उनके अस्त्रोंका अस्त्रोंद्वारा निवारण करके आपकी सेनाके प्रमुख वीरोंको यमराजके पास भेज दिया

अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम्
विरथं रथिनां श्रेष्ठं धारयामास सायकैः

अभिमन्युने भी लोकविख्यात (राजा अम्बष्ठको) सायकोंद्वारा रथहीन करके आगे बढ़ने दिया

विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं वसुधाधिप ॥
असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः ॥

यशस्वी सुभद्राकुमार अभिमन्युसे पीड़ित एवं रथहीन होकर वह अम्बष्ठ अपने रथसे कूद पड़ा और महामना सुभद्राकुमारपर उन्होंने रणक्षेत्रमें तलवार चलायी फिर महाबली वीर कृतवर्माके रथपर जा चढ़े

आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः
लाघवाद् व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा

युद्धके पैंतरोंको जाननेमें कुशल तथा शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारने अपनी ओर आती हुई अम्बष्ठकी तलवारको अपनी फुर्तीके कारण निष्फल कर दिया

व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा
साधु साध्विति सैन्यानां प्रणादोऽभूद् विशाम्पते

प्रजानाथ! उस समय रणक्षेत्रमें अम्बष्ठकी चलायी हुई तलवारको सुभद्राकुमारद्वारा निष्फल की गयी देख समस्त सैनिकोंके मुखसे निकली हुई साधु-साधु वाह वाह की ध्वनि गूंज उठी

धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन्
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्न आदि अन्य महारथी आपकी सेनाके साथ तथा आपके प्रमुख सैनिक पाण्डव-सेनाके साथ युद्ध करते रहे।

तत्राक्रन्दो महानासीत् तव तेषां च भारत
घ्नतां परस्परं राजेन्द्र सैनिकानां सुदारुणम्

निघ्नतां दृढमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥ ७८ ॥

भारत! राजेन्द्र! एक दूसरेपर सुदृढ़ प्रहार और दुष्कर पराक्रम करनेवाले आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें अत्यन्त भयंकर महान् आर्तनाद होने लगा

अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वाक्षिप्य मारिष
नखैर्दन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ ७९ ॥

कितने ही शूरवीर उस रणक्षेत्रमें एक दूसरेके केश पकड़कर नखों, दाँतों, मुक्कों और घुटनोंसे प्रहार करते हुए युद्ध करते थे ।

तलैश्चैवाथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः
विवरं प्राप्य चान्योन्यमनयन् यमसादनम् ॥ ८० ॥

अवसर पाकर थप्पड़ों, तलवारों तथा सुदृढ़ भुजाओंद्वारा भी एक दूसरेको यमलोक पहुँचा देते थे ।

न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा
व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥ ८१ ॥

उस युद्धमें पिताने पुत्रको और पुत्रने पिताको मार डाला। वहाँ सब मनुष्य व्याकुल हो गये थे। वे सभी लोग युद्ध कर रहे थे ।

रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष
हतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥ ८२ ॥

आर्य! रणक्षेत्रमें मारे गये योद्धाओंके सुवर्णमय पृष्ठसे विभूषित सुन्दर धनुष और बहुमूल्य तरकस जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे ।

जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशितैः शरैः
तैलधौतान् व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमान् ॥ ८३ ॥

सोने और चाँदीके पंखोंसे युक्त तथा तेलमें धोये हुए तीखे बाण केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान सुशोभित होते थे ।

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान्
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम् ॥ ८४ ॥

हमने देखा कि रणभूमिमें धनुर्धर वीरोंकी तलवारें और ढालें फेंकी पड़ी हैं। तलवारोंमें हाथीदाँतकी मूठें लगी थीं और उनमें सुवर्णजटित मुकुट लगा हुआ था। इसी प्रकार ढालोंमें सुवर्णमय विचित्र तारक चिह्न दिखायी देते थे ।

सुवर्णविकृतप्रासान् पट्टिशान् हेमभूषितान्
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ८५ ॥

सुवर्णभूषित प्रास, स्वर्णजटित पट्टिश, सोनेकी बनी हुई ऋष्टियाँ तथा स्वर्णभूषित चमकीली शक्तियाँ यत्र-तत्र पड़ी हुई थीं

सुवर्णजालैः पतिता मुक्ताजालानि शुभ्राणि च ।
परिस्तोमाः पतिताश्चैव भिन्निभिन्नानि सर्वशः ॥ ५२ ॥

राजन् ! वहाँ सुन्दर ध्वज पड़े थे। भारी मूल्यवाले परिष पड़िया और भिन्दिपाल भी इधर-उधर बिखरे दिखायी देते थे।

पतितान् विविधाकारानाजिमध्ये हंसवर्णान्।
कुथा बहुविधाकारा आभरणानि च ॥ ५३ ॥

नाना प्रकारके विचित्र एवं स्वर्णभूषित अङ्कुश गिरे हुए थे। हाथियोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले भाँति-भाँतिके कम्बल तथा चँवर और व्यजन भी जहाँ-तहाँ गिरे दिखायी देते थे ॥

नानाविधानि शस्त्राणि प्रमृह्य पतिता नराः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः ॥ ५४ ॥

भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्रोंको हाथोंमें लेकर प्राणहीन पड़े हुए महारथी मनुष्य जीवितके समान दिखायी देते थे।

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।
गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नरा क्षितौ ॥ ५५ ॥

कितनोंके शरीर गदाकी चोटसे चूर-चूर हो गये थे, कितनोंके मस्तक मूसलोंकी मारसे फट गये थे तथा कितने ही मनुष्य घोड़े, हाथी एवं रथोंसे कुचल गये थे। वे सभी वहाँ पृथ्वीपर प्राणहीन होकर सो गये थे ॥ ५५ ॥

तथैवाश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा।
संछन्ना वसुधा राजन् पर्वतैरिव सर्वशः ॥ ५६ ॥

राजन्! इसी प्रकार घोड़े, हाथी और मनुष्योंके मृत शरीरोंसे ढकी हुई वसुधा ऐसी जान पड़ती थी, मानो पर्वतोंसे ढक गयी हो ॥ ५६ ॥

समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥ ५७ ॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिस्तथैव च ।
शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ५८ ॥

उस समराङ्गणमें गिरे हुए शक्ति, ऋष्टि, बाण, तोमर, खड्ग, पट्टिश, प्रास, लोहेके भाले, फरसे, परिघ, भिन्दिपाल तथा शतघ्नी (तोप) और अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा छिन्न-भिन्न हुए शरीरोंसे वहाँकी पृथ्वी पट गयी थी।

विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही ॥ ५९ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले महाराज! वहाँ रणभूमिपर कुछ लोग ऐसे गिरे थे, जिनके मुँहसे शब्द नहीं निकल पाता था। कुछ लोग थे, जो बहुत थोड़ा बोल पाते थे। कुछ लोग खूनसे लथपथ हो रहे थे और बहुत-से लोग प्राणहीन हो चुके थे। इन सबके द्वारा वहाँकी भूमि मानो पट गयी थी ॥ ५९ ॥

सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ६० ॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
पातितैर्वृषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ॥ ६१ ॥

भारत! रणभूमिमें गिरे हुए वेगशाली वीरोंकी दस्तानों और केयूरोंसे युक्त चन्दनचर्चित भुजाओंसे, हाथीकी सूँड़के समान प्रतीत होनेवाली छिन्न-भिन्न हुई जाँघोंसे तथा उत्तम चूडामणि (मुकुट) से आबद्ध कुण्डलमण्डित मस्तकोंसे वहाँकी भूमि अद्भुत शोभा पा रही थी ॥ ६०-६१ ॥

कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः ।
रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवानलैः ॥ ६२ ॥

खूनसे लथपथ होकर इधर-उधर बिखरे हुए सुवर्णमय कवचोंसे वह युद्धभूमि ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो वहाँ जिनकी ज्वाला शान्त हो गयी है, ऐसी आग जगह-जगह पड़ी हो ॥

विप्रविद्धैः कलापैश्च पतितैश्च शरासनैः ।
विप्रकीर्णैः शरैश्चैव रुक्मपुङ्खैः समन्ततः ॥ ६३ ॥

चारों ओर तरकस गिरे पड़े थे, धनुष गिरे थे और सोनेके पंखवाले बाण बिखरे हुए थे ॥ ॥

रथैश्च बहुधा भग्नैः किङ्किणीजालभूषितैः ।
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥ ६४ ॥

सब ओर घुँघुरुओंकी जालीसे विभूषित टूटे-फूटे रथ पड़े थे। बाणोंसे मारे गये घोड़े जिनकी जीभ बाहर निकल आयी थी, खूनसे लथपथ हो गिरे थे ॥ ६४ ॥

अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि ।
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥ ६५ ॥

अनुकर्ष, पताका, उपासङ्ग, ध्वज तथा बड़े-बड़े वीरोंके श्वेत महाशङ्ख बिखरे पड़े थे ॥ ६५ ॥

स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही।
नानारूपैरलंकारैः प्रमदेवाभ्यलंकृता ॥ ६६ ॥

जिनकी सूँड़ें कट गयी थीं, ऐसे सोये पड़े हुए हाथियोंसे भरी हुई वह रणभूमि भाँति-भाँतिके अलंकारोंसे अलंकृत युवतीके समान सुशोभित हो रही थी ॥

दन्तिभिश्चापरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥

कुछ दूसरे हाथी प्रास लग जानेके कारण गहरी व्यथासे युक्त हो बारंबार सूँड़ द्वारा शब्द करते और पानीके फव्वारे छोड़ते थे ॥

विबभौ तद् रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाचलैः ।
नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ॥ ६८ ॥
वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ।

उनके कारण वह युद्धस्थल बहते हुए झरनेवाले

कमलोंसे युक्त-सा प्रतीत होता था। वहाँ नाना प्रकारके उज्ज्वल कम्बल, हाथियोंके झूल तथा वैदूर्यमणिके दण्डवाले सुन्दर अङ्कुश गिरे हुए थे ॥ ६८-६९ ॥

घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ॥ ६९ ॥
विपाटितविचित्राभिः कुथाभी राङ्कवैस्तथा।
ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ॥ ७० ॥

चारों ओर गजराजोंके घण्टे पड़े हुए थे। हाथियोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले फटे हुए विचित्र कम्बल और अंकुश सब ओर गिरे हुए थे। उनके विचित्र आभूषण और सुनहरे रस्से भी जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े थे ॥ ६९-७० ॥

यन्त्रैश्च बहुधा छिन्नैस्तोमरैश्चापि काञ्चनैः।
अश्वानां रेणुकपिलै रुक्मच्छन्नैरुरश्छदैः ॥ ७१ ॥
सादिनां भुजगैश्छिन्नैः पतितैः साङ्गदैस्तथा।
प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिश्च ऋष्टिभिः ॥ ७२ ॥

अनेक टुकड़ोंमें कटे हुए यन्त्र, सुवर्णमय तोमर, धूलसे कपिल वर्णके दिखायी देनेवाले अश्वोंके स्वर्णजटित सुनहरे कवच, बाजूबंदसहित घुड़सवारोंके कटकर गिरे हुए भुजदण्ड, तीखे प्रास और चमकीली ऋष्टि तथा भाँति-भाँतिकी पगड़ियाँ छिन्न-भिन्न होकर यत्र-तत्र पड़ी थीं ॥ ७१-७२ ॥

उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः।
विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥ ७३ ॥
अश्वास्तरपरिस्तोमै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा।
नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥ ७४ ॥

जहाँ-तहाँ गिरे हुए विचित्र उष्णीष (पगड़ी आदि) बाणोंकी वर्षा, स्वर्णभूषित नाना प्रकारके बाण, घोड़ोंकी जीन, झूल और उनकी पीठपर बिछाये जानेवाले रङ्कु नामक मृगोंके रोएँसे बने हुए कम्बल, जो रौंदे जा चुके थे, राजाओंके बहुमूल्य विचित्र चूड़ामणि तथा मस्तकोंपर धारण किये जानेवाले मुकुट आदि विविध वस्तुएँ सब ओर बिखरी पड़ी थीं ॥ ७३-७४ ॥

छत्रैस्तथापविद्धैश्च चामरव्यजनैरपि।
पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ७५ ॥
कॢप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः।
अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ॥ ७६ ॥
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवासीद् वसुंधरा।

इधर-उधर गिरे हुए राजाओंके छत्र, चँवर, व्यजन और वीरोंके मनोहर कुण्डलोंसे विभूषित, कमल एवं चन्द्रमाके समान कान्तिमान् तथा छँटी हुई मूछोंवाले एवं अलंकृत कटे हुए मस्तक, जिनमें सोनेके सुन्दर कुण्डल जगमगा रहे थे, सब ओर फैले हुए पड़े थे। महाराज! इन सब वस्तुओंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि ग्रहों और नक्षत्रोंसे भरे हुए आकाशके समान विचित्र शोभा धारण कर रही थी ॥ ७५-७६½ ॥

एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत ॥ ७७ ॥
परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे।

भारत! इस प्रकार आपकी और पाण्डवोंकी वे दोनों विशाल सेनाएँ युद्धमें एक-दूसरीसे भिड़कर रौंदी जा रही थीं ॥ ७७½ ॥



तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥ ७८ ॥
रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ ७९ ॥

भरतनन्दन! जब सभी सैनिक थककर परास्त और कुचले-से हो गये, तब रात हो गयी। उस समय हमें अपने सैनिक नहीं दिखायी देते थे। तब कौरवों और पाण्डवोंने अपनी-अपनी सेनाको युद्धभूमिसे लौटनेका आदेश दे दिया ॥ ७८-७९ ॥

रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥ ८० ॥

फिर उस महाभयानक अत्यन्त रौद्र रूपवाले प्रदोषकालमें कौरव तथा पाण्डव एक साथ अपनी सेनाओंको लौटाकर यथासमय शिविरोंमें जा पहुँचे और विश्राम करने लगे ॥ ८० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें आठवें दिनके युद्धमें सेनाका शिविरमें लौटनेसे सम्बन्ध रखनेवाला छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ८०½ श्लोक हैं)

सप्तनवतितमोऽध्यायः

दुर्योधनका अपने मन्त्रियोंसे सलाह करके भीष्मसे पाण्डवोंको मारने अथवा कर्णको युद्धके लिये आज्ञा देनेका अनुरोध करना

सञ्जय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः।
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः॥ १॥
समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम्।
कथं पाण्डुसुता युद्धे जेतव्याः सगणा इति॥ २॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, आपका पुत्र दुःशासन तथा दुर्जय वीर सूतपुत्र कर्ण—ये सभी मिलकर अभीष्ट विषयपर गुप्त परामर्श करने लगे। उनकी मन्त्रणाका मुख्य विषय यह था कि पाण्डवोंको उनके गणोंसहित युद्धमें कैसे जीता जा सकता है॥ १-२॥



ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम्॥ ३॥

तब राजा दुर्योधनने सूतपुत्र कर्ण तथा महाबली शकुनिको सम्बोधित करके उन सब मन्त्रियोंसे कहा—॥ ३॥

द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे।
न पार्थान् प्रतिबाधन्ते न जाने तत्र कारणम्॥ ४॥

मित्रो! आचार्य द्रोण, भीष्म, कृप, शल्य तथा भूरिश्रवा—ये लोग युद्धमें कुन्तीके पुत्रोंको कभी आगे बढ़नेसे नहीं रोकते हैं। इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं जानता॥ ४॥

अवध्यमानास्ते चापि क्षपयन्ति बलं मम।
सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे॥ ५॥

वे पाण्डव स्वयं अवध्य रहकर मेरी सेनाका संहार कर रहे हैं। कर्ण! इस प्रकार मेरी सेना तथा अस्त्र-शस्त्रोंका युद्धमें क्षय होता चला जा रहा है॥ ५॥

(तथापि युद्धविमुखोऽद्यापि क्षितिपाल हि पाण्डवैः।
द्रोणस्य प्रमुखे वीरा हतास्ते भ्रातरो मम।
भीमसेनेन गाङ्गेय मम चाप्यनुपश्यतः॥)

भगवान् भी मुझसे मुँह मोड़कर बैठ गये हो, ऐसा लगता है; क्योंकि वीर पाण्डवोंने द्रोणाचार्यके सामने ही मेरे वीर भाइयोंको मार डाला। भीमसेनने भीष्म और मेरे देखते-देखते मेरे भाइयोंका वध किया है।

निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्दैवतैरपि।
सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे॥ ६॥

पाण्डव शूरवीर और देवताओंके लिये भी अवध्य हैं। उन्होंने मुझे अपमानित किया है। मैं जीवनके संशयमें पड़ गया हूँ। अब युद्धमें मैं कैसे उनपर प्रहार करूँगा?॥ ६॥

(एवमुक्तस्तु राधेयो दुर्योधनमरिंदमम्।)
तमब्रवीन्महाराज सूतपुत्रो नराधिपम्॥

यह सुनकर शत्रुदमन दुर्योधनसे सूतपुत्र कर्णने इस प्रकार कहा।

कर्ण उवाच

मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव॥ ७॥
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात्।

कर्ण बोला—भरतश्रेष्ठ! शोक न करो। मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा। शान्तनुनन्दन भीष्म शीघ्र ही महायुद्धसे हट जायँ॥ ७॥

निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत॥ ८॥
अहं पार्थान् हनिष्यामि सहितान् सर्वसोमकैः।
पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप॥ ९॥

भारत! गङ्गानन्दन भीष्मके युद्धसे निवृत्त होकर अस्त्र-शस्त्र रख देनेपर मैं भीष्मके देखते-देखते युद्धमें समस्त सोमकोंसहित कुन्तीपुत्रोंको एक साथ मार डालूँगा। यह मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ॥ ८-९॥

पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै।
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान् महारथान्॥ १०॥

भीष्म सदा ही पाण्डवोंपर दया करते हैं। अतः युद्धमें इन महारथियोंको जीतनेमें सर्वथा असमर्थ हैं॥ १०॥

अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः।
स कथं पाण्डवान् युद्धे जेष्यते तात संगतान्॥ ११॥

तात! भीष्म युद्धमें अभिमान रखनेवाले तथा सदा युद्धको प्रिय माननेवाले हैं, तथापि पाण्डवोंपर दया रखनेके कारण वे उन सबको संग्राममें कैसे जीत सकेंगे?॥ ११॥

स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति।
अनुमान्य गुरुं वृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत॥ १२॥

भारत! अब तुम शीघ्र ही यहाँसे भीष्मजीके शिविरमें जाकर उन पूजनीय वृद्ध पितामहको राजी करके उनसे हथियार रखवा दो॥ १२॥

व्यपक्रान्ते ततो भीष्मे निहतान् पश्य पाण्डवान्।
सौबलेन रणे राजन् ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ १३ ॥

राजन्! भीष्मके हथियार डाल देनेपर आप पाण्डवोंको सेना और सगे-सम्बन्धियोंसहित युद्धमें मारा गया देखेंगे ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव।
अब्रवीद् भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥ १४ ॥
अनुयात्रं यथा सर्वं सज्जीभवति सर्वदा।
दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥ १५ ॥

कर्णके ऐसा कहनेपर आपके पुत्र दुर्योधनने वहाँ अपने भाई दुःशासनसे इस प्रकार कहा—'दुःशासन! तुम शीघ्र इस प्रकारसे ऐसी व्यवस्था करो, जिससे साथ जानेवाले सब आवश्यक तैयारी सम्पन्न हो जाय' ॥ १४-१५ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजन् कर्णमाह जनेश्वरः।
अनुमान्य रणे भीष्ममितोऽहं द्विपदां वरम् ॥ १६ ॥
आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिंदम।
अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे ॥ १७ ॥

राजन्! दुःशासनसे ऐसा कहकर जनेश्वर दुर्योधनने कर्णसे कहा—'शत्रुदमन! मैं मनुष्योंमें श्रेष्ठ भीष्मको युद्धमें हटनेके लिये राजी करके अभी तुम्हारे पास लौट आता हूँ। फिर भीष्मके हट जानेपर तुम युद्धमें शत्रुओंपर प्रहार करना' ॥ १६-१७ ॥

निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशाम्पते।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैर्देवैरिव शतक्रतुः ॥ १८ ॥

प्रजानाथ! तदनन्तर आपका पुत्र दुर्योधन तुरंत ही अपने भाइयोंके साथ शिविरसे बाहर निकला, मानो देवताओंके साथ इन्द्र अपने भवनसे बाहर आये हों ॥ १८ ॥

ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम्।
आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा ॥ १९ ॥

उस समय भाई दुःशासनने आकर सिंहके समान पराक्रमी नृपश्रेष्ठ दुर्योधनको घोड़ेपर चढ़ाया ॥ १९ ॥

अङ्गदी बद्धमुकुटो हस्ताभरणवान् नृप।
धार्तराष्ट्रो महाराज विबभौ स पथि व्रजन् ॥ २० ॥

नरेश्वर! महाराज! मस्तकपर मुकुट, भुजाओंमें अंगद तथा हाथोंमें कड़े आदि आभूषण धारण किये मार्गपर जाता हुआ आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी शोभा पा रहा था ॥ २० ॥

भाण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च।
अनुलिप्तः परार्घ्येन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २१ ॥

उसने शिरीषपुष्प एवं सुवर्णके समान पीतवर्णवाले बहुमूल्य सुगन्धित चन्दनका लेप लगा रखा था ॥ २१ ॥

अरजोऽम्बरसंवीतः सिंहखेलगतिर्नृप।
शुशुभे विमलार्चिष्मान् नभसीव दिवाकरः ॥ २२ ॥

राजन्! उसके शरीरपर स्वच्छ निर्मल वस्त्र शोभा पा रहा था। वह सिंहके समान मस्तानी चालसे चलता था और अपनी निर्मल प्रभाके कारण आकाशमें प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ २२ ॥

तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिबिरं प्रति।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥ २३ ॥
भ्रातरश्च महेष्वासास्त्रिदशा इव वासवम्।

भीष्मके शिविरकी ओर जाते हुए पुरुषसिंह दुर्योधनके पीछे-पीछे सम्पूर्ण जगत्‌के महाधनुर्धर श्रेष्ठ नरेश तथा विशाल धनुष धारण करनेवाले उसके भाई उसी प्रकार जा रहे थे, जैसे इन्द्रके पीछे देवता चलते हैं ॥ २३½ ॥

हयानन्ये समारुह्य गजानन्ये च भारत ॥ २४ ॥
रथैरन्ये नरश्रेष्ठ परिवव्रुः समन्ततः।

भरत! कुछ लोग घोड़ोंपर और कुछ लोग हाथियोंपर सवार थे। दूसरे लोग रथोंपर आरूढ़ हो सब ओरसे उसको घेरकर चल रहे थे ॥ २४½ ॥

आत्तशस्त्राश्च सुहृदो रक्षणार्थं महीपतेः ॥ २५ ॥
प्रादुर्बभूवुः सहिताः शक्रस्येवामरा दिवि।

राजा दुर्योधनकी रक्षाके लिये उसके सुहृद् अस्त्र-शस्त्र लेकर उसी प्रकार उसके साथ हो गये, जैसे स्वर्गमें देवता इन्द्रकी रक्षाके लिये उनके साथ रहते हैं ॥ २५½ ॥

स पूज्यमानः कुरुभिः कौरवाणां महाबलः ॥ २६ ॥
प्रययौ सदनं राजा गाङ्गेयस्य यशस्विनः।
अन्वीयमानः सततं सोदरैः परिवारितः ॥ २७ ॥

इस प्रकार कौरवोंसे पूजित हो महाबली कौरवराज दुर्योधन यशस्वी गंगानन्दन भीष्मके शिविरमें गया। उस समय उसके सगे भाई उसे सब ओरसे घेरकर उसके साथ-साथ चल रहे थे ॥ २६-२७ ॥

दक्षिणं दक्षिणः काले सम्भृत्य स्वभुजं तदा।
हस्तिहस्तोपमं शैक्षं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ २८ ॥
प्रगृह्णन्नञ्जलीन् नृणामुद्यतान् सर्वतो दिशः।
शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥ २९ ॥

उदार स्वभाववाले राजा दुर्योधनने उस समय हाथीकी सूँडके समान विशाल तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षामें निपुण अपनी दाहिनी भुजाको ऊपर उठाकर सम्पूर्ण दिशाओंमें उठी हुई विभिन्न देशके निवासी मनुष्योंकी प्रणामाञ्जलियोंको स्वीकार करते हुए उनकी मधुर बातें सुनीं ॥ २८-२९ ॥

संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः।
पूजयानश्च तान् सर्वान् सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ३० ॥
(एवं स ययौ राजा सर्वसैन्यसमावृतः।)

सम्पूर्ण जगत्के अधीश्वर महायशस्वी राजा दुर्योधन सम्पूर्ण सेनाओंसे घिरकर सूतों और मागधोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता और उन लोगोंका समादर करता हुआ (भीष्मके शिविरकी ओर) आगे बढ़ता गया ॥ ३० ॥

प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचितैः।
परिवव्रुर्महाराजं प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३१ ॥

सुवासित तेलसे भरे हुए सोनेके जलते दीपक लिये बहुतसे सेवक महाराज दुर्योधनको सब ओरसे घेरकर चल रहे थे ॥ २१ ॥

स तैः परिवृतो राजा प्रदीप्तैः काञ्चनैः शुभैः ।
शुशुभे चन्द्रमा युक्तो दीप्तैरिव महाग्रहैः ॥ २२ ॥

उन सुवर्णमय प्रदीपोंसे घिरकर प्रकाशित होनेवाला राजा दुर्योधन दीप्तिमान् महाग्रहोंसे युक्त चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ २२ ॥

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
प्रोत्सारयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतो दिशम् ॥ २३ ॥

सुनहरी पगड़ी धारण करके हाथोंमें बेंत और झाँझर लिये कञ्चुकी सिपाही धीरे-धीरे सब ओरसे लोगोंकी भीड़को हटाते हुए चल रहे थे ॥ २३ ॥

सम्प्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम् ।
अवतीर्य हयाच्चापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वर ॥ २४ ॥
अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने ।
काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ २५ ॥

जनेश्वर ! राजा दुर्योधन भीष्मके सुन्दर निवासस्थानके निकट पहुँचकर घोड़ेसे उतर पड़ा और भीष्मजीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके बहुमूल्य बिछौनोंसे युक्त सर्वतोभद्र नामक सुवर्णमय सिंहासनपर बैठ गया ॥ २४-२५ ॥

उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।
त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ॥ २६ ॥
उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ।
किमु पाण्डुसुतान् वीरान् ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ २७ ॥
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो ।
जहि पाण्डुसुतान् वीरान् महेन्द्र इव दानवान् ॥ २८ ॥

उसने नेत्रोंमें आँसू भरकर हाथ जोड़े हुए गद्गद कण्ठसे भीष्मजीसे इस प्रकार कहा—'शत्रुसूदन ! हम लोग आपका आश्रय लेकर युद्धके मैदानमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा असुरोंको भी जीतनेका उत्साह रखते हैं, फिर मित्रों और बन्धु-बान्धवोंसहित वीर पाण्डवोंको जीतना कौन बड़ी बात है। अतः प्रभो ! गङ्गानन्दन ! आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये। जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार आप वीर पाण्डवोंको मार डालिये ॥ २६—२८ ॥

अहं सर्वान् महाराज निहनिष्यामि सोमकान् ।
पञ्चालान् केकयैः सार्धं करूषांश्चेति भारत ॥ २९ ॥
त्वद्वचः सत्यमेवास्तु जहि पार्थान् समागतान् ।
सोमकांश्च महेष्वासान् सत्यवाग्भव भारत ॥ ३० ॥

भरतनन्दन महाराज ! 'मैं केकयोंसहित समस्त सोमकों, पाञ्चालों और करूषोंको मार डालूँगा' आपकी यह बात सच हो। यहाँ आये हुए कुन्तीपुत्रों और महाधनुर्धर सोमकोंका वध कीजिये और अपनी बातको सत्य कीजिये ॥ २९-३० ॥

दयया यदि वा राजन् द्वेष्यभावान्मम प्रभो ।
मन्दभाग्यतया वापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥ ३१ ॥
अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
स जेष्यति रणे पार्थान् ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ३२ ॥

महाराज ! यदि पाण्डवोंके प्रति दयाभाव अथवा मेरे दुर्भाग्यवश मेरे प्रति द्वेषभाव रखनेके कारण आप पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं तो युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णको युद्धके लिये आज्ञा दे दीजिये। वह सुहृदों और बान्धवोंसहित कुन्तीपुत्रोंको अवश्य जीत लेगा ॥ ३१-३२ ॥

स एवमुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तदा ।
नोवाच वचनं किंचिद् भीष्मं सत्यपराक्रमम् ॥ ३३ ॥

सत्यपराक्रमी भीष्मसे ऐसा कहकर आपका पुत्र राजा दुर्योधन उस समय और कुछ नहीं बोला ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मं प्रति दुर्योधनवाक्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्मके प्रति दुर्योधनका वचनविषयक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ३५½ श्लोक हैं)

अष्टनवतितमोऽध्याय

भीष्मका दुर्योधनको अर्जुनका पराक्रम बताना और भयंकर युद्धके लिये प्रतिज्ञा करना तथा प्रातःकाल दुर्योधनके द्वारा भीष्मकी रक्षाकी व्यवस्था

सञ्जय उवाच

वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो नोवाचाप्रियमण्वपि ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! आपके पुत्र दुर्योधनके वाग्बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर महामना भीष्मको महान् दुःख हुआ, परंतु उन्होंने उससे कोई अप्रिय बात भी नहीं कही ॥ १ ॥

स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः ।
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया ॥ २ ॥

वे दुःख और रोषसे युक्त हो दीर्घकालतक कुछ सोचते हुए सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचते रहे। वाग्बाणरूपी अङ्कुशसे पीड़ित होकर वे हाथीके समान व्याकुल हो उठे थे ॥ २ ॥

उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ।
सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः ॥ ३ ॥

भारत! फिर क्रोधसे दोनों आँखें चढ़ाकर लोकश्रेष्ठ भीष्म इस प्रकार देखने लगे, मानो देवताओं, असुरों और गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालेंगे ॥

अब्रवीत् तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि ॥ ४ ॥
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम्।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तवैव प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥

फिर आपके पुत्रको सान्त्वना देते हुए उन्होंने इस प्रकार कहा—बेटा दुर्योधन! तुम इस प्रकार वाग्बाणोंसे मुझे क्यों छेद रहे हो? मैं तो यथाशक्ति पराक्रम दिखाकर पाण्डवोंको जीतनेकी चेष्टा करता हूँ और तुम्हारे प्रिय साधनमें लगा हुआ हूँ। इतना ही नहीं, तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे मैं समराग्निमें अपने प्राणोंको होम देनेके लिये भी उद्यत हूँ ॥ ४-५ ॥

यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत्।
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६ ॥

परंतु तुम्हें याद होगा, जब शूरवीर पाण्डुनन्दन अर्जुनने युद्धमें देवराज इन्द्रको पराजित करके खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया था, वही उनकी अजेयताका पूरा प्रमाण है ॥ ६ ॥

यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा।
अमोचयत् पाण्डुपुत्रः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७ ॥

महाबाहो! जब गन्धर्वलोग तुम्हें बलपूर्वक पकड़ ले गये थे, उस समय भी पाण्डुपुत्र अर्जुनने ही तुम्हें छुड़ाया था। उनके अतुल पराक्रमको समझनेके लिये वह दृष्टान्त पर्याप्त होगा ॥ ७ ॥

द्रवमाणेषु शूरेषु सोदर्येषु तथा प्रभो।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥

प्रभो! उस अवसरपर तुम्हारे ये शूरवीर भाई और राधानन्दन सूतपुत्र कर्ण भी मैदान छोड़कर भाग गये थे, वह अर्जुनकी अद्भुत शक्तिका पर्याप्त उदाहरण है ॥ ८ ॥

यच्च नः सहितान् सर्वान् विराटनगरे तदा।
एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ९ ॥

उन दिनों विराटनगरमें हम सब लोग एक साथ युद्धके लिये डटे हुए थे, परंतु अर्जुनने अकेले ही हमलोगोंपर आक्रमण किया था, यह उनकी अपरिमित शक्तिका पर्याप्त उदाहरण है ॥ ९ ॥

द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे।
वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥

अर्जुनने क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यको तथा मुझे भी युद्धमें परास्त करके हमारे वस्त्र छीन लिये थे। यह उनकी अजेयताका पर्याप्त प्रमाण है ॥ १० ॥

तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथापि च।
गोग्रहे जितवान् पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ११ ॥

पूर्वकालमें उसी गोग्रहके अवसरपर पाण्डुकुमारने महाधनुर्धर अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यको भी परास्त कर दिया था। यह दृष्टान्त उन्हें जाननेके लिये पर्याप्त है ॥ ११ ॥

विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम्।
उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १२ ॥

उन दिनों सदा अपने पुरुषत्वका अभिमान रखनेवाले कर्णको भी जीतकर अर्जुनने उसके वस्त्र छीनकर उत्तराको अर्पित किये थे, यह दृष्टान्त पर्याप्त होगा ॥ १२ ॥

निवातकवचान् युद्धे वासवेनापि दुर्जयान्।
जितवान् समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥

जिन्हें परास्त करना इन्द्रके लिये भी कठिन था, उन निवातकवचोंको अर्जुनने युद्धमें परास्त कर दिया था। उनकी अलौकिक शक्तिको समझनेके लिये यह दृष्टान्त पर्याप्त होगा ॥ १३ ॥

को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा।
यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥
वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः।
सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥ १५ ॥

विश्वरक्षक शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले अनन्तशक्ति, सृष्टि और संहारके एकमात्र कर्ता देवाधिदेव सनातन परमात्मा सर्वेश्वर भगवान् वासुदेव जिनकी रक्षा करनेवाले हैं, उन वेगशाली वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनको युद्धमें कौन जीत सकता है ॥ १४-१५ ॥

उक्तोऽसि बहुशस्तात नारदाद्यैर्महर्षिभिः।
त्वं तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥ १६ ॥

तात सुयोधन! यह बात नारद आदि महर्षियोंने तुमसे बहुत बार कही है, परंतु तुम मोहवश कहने और न कहने योग्य बातको समझते ही नहीं हो ॥ १६ ॥

मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान् वृक्षान् पश्यति काञ्चनान्।
तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यसि ॥ १७ ॥

गान्धारीनन्दन! जैसे मरणासन्न मनुष्य सभी वृक्षोंको सुनहरे रंगका देखता है, उसी प्रकार तुम भी सब कुछ विपरीत ही देख रहे हो ॥ १७ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पाण्डवैः सह सृञ्जयैः।
युध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ १८ ॥
(अवध्याः पाण्डवा येन देवैरपि सवासवैः।)

तुमने स्वयं ही पाण्डवों तथा सृञ्जयोंके साथ महान् वैर ठाना है। अतः अब तुम्हीं युद्ध करो। हम सब लोग देखते हैं। तुम स्वयं पुरुषत्वका परिचय दो। पाण्डवोंको तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं जीत सकते ॥ १८ ॥

अहं तु सोमकान् सर्वान् सपाञ्चालान् समागतान्।
निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥ १९ ॥

शिखण्डी पुरुषसिंह ! मैं केवल शिखण्डीको छोड़कर युद्धमें आये हुए समस्त सोमकों और पाञ्चालोंको मार डालूँगा ॥ १९ ॥

तैर्वाहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम्।
तान् वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥ २० ॥

या तो उन्हींके हाथों युद्धमें मारा जाकर मैं यमलोकको चला जाऊँगा अथवा उन्हींको समराङ्गणमें मारकर मैं तुम्हें हर्ष प्रदान करूँगा ॥ २० ॥

पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि।
वरदानात् पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २१ ॥

शिखण्डी पहले राजभवनमें स्त्रीके रूपमें उत्पन्न हुआ था, फिर वरदानसे पुरुष हो गया; अतः मेरी दृष्टिमें तो यह स्त्री शिखण्डिनी ही है ॥ २१ ॥

तमहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत।
यासौ प्राङ्निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २२ ॥

भारत ! मेरे प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी मैं उसे नहीं मारूँगा। जिसे विधाताने पहले स्त्री बनाया था, वह शिखण्डिनी आज भी मेरी दृष्टिमें स्त्री ही है ॥ २२ ॥

सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्ता महारणम्।
यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत् स्थास्यति मेदिनी ॥ २३ ॥

गान्धारीनन्दन ! अब तुम सुखसे जाकर सो जाओ। कल मैं बड़ा भीषण युद्ध करूँगा, जिसकी चर्चा जबतक यह पृथ्वी रहेगी तबतक लोग करते रहेंगे ॥ २३ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥ २४ ॥

जनेश्वर ! भीष्मके ऐसा कहनेपर आपका पुत्र दुर्योधन अपने उन गुरुजनको मस्तक नवाकर प्रणाम करनेके पश्चात् अपने शिविरको चला गया ॥ २४ ॥

आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम्।
प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयंकरः ॥ २५ ॥

वहाँ आकर शत्रुओंका विनाश करनेवाले राजा दुर्योधनने लोगोंको तथा महान् जनसमुदायको तुरंत विदा कर दिया और स्वयं शिविरके भीतर प्रवेश किया ॥ २५ ॥

प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव।
प्रभातायां तु शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान् नृपान् ॥ २६ ॥
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥ २७ ॥

भूपाल ! वहाँ जाकर राजाने सुखसे शयन किया और सबेरा होनेपर उसने प्रातःकाल उठकर राजाओंको यह आज्ञा दी—'राजाओ ! तुम सब लोग सेनाको युद्धके लिये तैयार करो। आज पितामह भीष्म रणभूमिमें कुपित होकर सोमकोंका संहार करेंगे' ॥ २६-२७ ॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु।
मन्यमानः स तं राजन् प्रत्यादेशमिवात्मनः ॥ २८ ॥

राजन् ! रातमें दुर्योधनके अनेक प्रकारसे विलापको सुनकर भीष्मने यह समझ लिया कि अब दुर्योधन मुझे युद्धमें लगाना चाहता है ॥ २८ ॥

निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम्।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ २९ ॥

इससे उनके मनमें बड़ा खेद हुआ। भीष्मने पराधीनताकी भूरि-भूरि निन्दा करके रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे देरतक दीर्घकालतक विचार किया ॥ २९ ॥

इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम्।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥ ३० ॥

महाराज ! गङ्गानन्दन भीष्मने क्या सोचा है ? इस बातको संकेतसे समझकर दुर्योधनने दुःशासनसे कहा ॥ ३० ॥

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाभिचोदय ॥ ३१ ॥

दुःशासन ! तुम शीघ्र ही भीष्मकी रक्षा करनेवाले रथ [illegible] बाईस सेनाओंको उनके पास शीघ्र भेज दो ॥ ३१ ॥

इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम्।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चागमः ॥ ३२ ॥

आज वह अवसर प्राप्त हुआ है, जिसके लिये हम बहुत वर्षोंसे विचार करते आ रहे हैं। आज सेनासहित पाण्डवोंका वध तथा राज्यका लाभ होगा ॥ ३२ ॥

तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम्।
स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात् पार्थांश्च संयुगे ॥ ३३ ॥

इस स्थितिमें मैं भीष्मकी रक्षाको ही अपना प्रधान कर्तव्य समझता हूँ। वे सुरक्षित रहनेपर हमारे सहायक होंगे और समरभूमिमें कुन्तीपुत्रोंका वध कर सकेंगे ॥ ३३ ॥

अब्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
स्त्रीपूर्वको ह्यसौ राजंस्तस्माद् वर्ज्यो मया रणे ॥ ३४ ॥

विशुद्ध अन्तःकरणवाले महात्मा भीष्मने मुझसे कहा है कि 'राजन् ! मैं शिखण्डीको नहीं मार सकता, क्योंकि वह पहले स्त्रीरूपमें उत्पन्न हुआ था और इसीलिये युद्धमें मुझे उसका परित्याग कर देना है' ॥ ३४ ॥

लोकस्तद् वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया।
राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान् पुरा ॥ ३५ ॥

महाबाहो ! सारा संसार यह जानता है कि मैंने पूर्वकालमें पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे [illegible] राज्य तथा स्त्रियोंका परित्याग कर दिया था ॥ ३५ ॥

मैव त्वाहं सिंह्य आतु न श्रीकृष्ण काम्पयन्
हन्यां युधि नरव्याघ्र सत्यमेतद् ब्रवीमि ते
नरव्याघ्र ! मैं इसे किसी प्रकार अपना जो पहले स्त्री रहा उस पुरुषको भी किसी प्रकार युद्धमें मार नहीं सकता तुमसे सत्य कहता हूँ।
अयं श्रीकृष्णके राजसिंहशिखण्डी यदि ते श्रुत
उद्योगे कथितं यत्तत् तथा जाता शिखण्डिनी
कन्या भूत्वा पुमाञ्जातः स च मां योधयिष्यति
तस्याहं प्रमुखे बाणान् न मुञ्चेयं कथंचन
राजन् ! तुमने भी सुना होगा यह शिखण्डी इस लोकमें पैदा था यह बात मैंने तुमसे युद्धकी तयारीके समय कह दी थी प्रकार कन्यारूपमें उत्पन्न हुआ शिखण्डी पहले था होकर अब पुरुष हो गया है वह पुरुष बना हुआ शिखण्डी यदि मुझसे युद्ध करेगा तो उसके ऊपर किसी प्रकार भी बाण नहीं चलाऊँगा।
युद्धे हि क्षत्रियस्तात पाण्डवानां जयैषिणः
सर्वानन्यान् हनिष्यामि सम्प्राप्तान् रणमूर्धनि
तात ! पाण्डव दलके दूसरे जो जो विजयाभिलाषी क्षत्रिय युद्धमें मुझसे सामने आयेंगे उन सबको मारूँगा।
एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित्
तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम्
भरतश्रेष्ठ ! शास्त्रोंके ज्ञाता गङ्गानन्दन भीष्म इस प्रकार कहते हैं। अतः युद्धभूमिमें सब प्रकारसे भीष्मकी रक्षा ही अपना मुख्य कार्य मानता।
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं महाबलम्
मा वृकेणेव गाङ्गेयं घातयेम शिखण्डिना
यदि भेड़ियेद्वारा सिंहकी रक्षा नहीं की जाय तो उसे वह भेड़िया मार सकता है। हम इस भेड़ियेके समान शिखण्डीके हाथ सिंहके समान भीष्मका वध न होने दें।
मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः
यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन् गुप्ते ध्रुवो जयः
अतः उनकी रक्षाके लिये आवश्यक व्यवस्था करो। शकुनि शल्य कृपाचार्य द्रोणाचार्य और विविंशति—ये लोग सावधान होकर गङ्गानन्दन भीष्मकी रक्षा करें। उनके जीवित रहनेपर हमारी विजय निश्चित है।
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा
सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन्

उस समय दुर्योधनकी यह बात सुनकर उन सब वीरोंने बड़ी विशाल सेनाद्वारा गङ्गानन्दन भीष्मको सब ओरसे घेर लिया।

पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा
कम्पयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥ ४४ ॥

भारत ! आपके पुत्र भी भीष्मको चारों ओरसे घेरकर प्रसन्नतापूर्वक चले। उस समय भूलोक और स्वर्गलोकको भी कँपा रहे थे। पाण्डवोंके मनमें क्षोभ उत्पन्न कर रहे थे।

ते रथैः सुसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः
परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः

समस्त कौरव महारथी सुदृढ़ रथों और हाथियोंके साथ कवच धारण करके भीष्मकी रक्षाके लिये खड़े हो गये।

यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम्
सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम्

जिस प्रकार देवासुर संग्राममें समस्त देवताओंने वज्रधारी इन्द्रकी रक्षा की थी, उसी प्रकार सब कौरव योद्धा महारथी भीष्मकी रक्षा करने लगे।

ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् ॥
सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ॥ ४७ ॥
गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः
रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथास्माभिर्विवर्जितः
यथा भीष्मं न नो हन्याद् दुःशासन तथा कुरु

तब राजा दुर्योधनने अपने भाईसे पुनः इस प्रकार कहा— अर्जुनके रथके बायें पहियेकी रक्षा युधामन्यु और दाहिने पहियेकी रक्षा उत्तमौजा करते हैं। इस प्रकार अर्जुनके ये दो रक्षक हैं और अर्जुन भी शिखण्डीकी रक्षा करते हैं। अर्जुनसे सुरक्षित और हमलोगोंसे उपेक्षित होकर शिखण्डी हमारे भीष्मको जिस प्रकार मार न सके, वैसी व्यवस्था करो।

भ्रातुस्तद् वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया

अपने भाईकी यह बात सुनकर आपका पुत्र दुःशासन भीष्मको आगे करके सेनाके साथ आगे बढ़ा।

भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम्
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह

भीष्मको रथसमूहसे घिरा हुआ देख रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने धृष्टद्युम्नसे कहा—

शिखण्डिनं नरव्याघ्र भीष्मस्य प्रमुखे नृप
स्थापयस्वाद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताहमित्युत

नरेश्वर पाञ्चालराजकुमार ! आज तुम नरश्रेष्ठ शिखण्डीको भीष्मके सामने उपस्थित करो। उसकी रक्षा मैं करूँगा।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि श्रीमद्दुर्योधनवाक्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म-दुर्योधनसंवादविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।
दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ... १ श्लोक है

एकोनशततमोऽध्याय

वें दिनके युद्धके लिये उभयपक्षकी सेनाओंकी व्यूहरचना और के सामान युद्धका आ विनाशसूचक उत्पातोंका वर्णन

सञ्जय उवाच

का रात्र्यामतीतायां भीष्मः वयी सह संलपन्
व्यूह कालहतं महद् व्यूहं स्वसैन्यस्य मन
सञ्जय कहते हैं—महाराज
भीष्म तथा दिनिमत्त वार जि सी
बना सजवीय वस गान व्यूह गति

कृपश्च कृतवर्मा व्यवस्य शल्य
शकुनि सान्द्रपुत्राश्च कम्बोजश्च सुदक्षिण
भीष्मेण सहिता सर्वे पुत्रैश्च तव रत
जग्मुः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुख स्थिताः
भार कृपाचार्य तथा हार्दिक्य शकुनि
त्रिगर्तराज राजा नरेश
तथा तथा आ
हुके प्रमुख

द्रोणो भूरि श्रवा शल्यो भगदत्तश्च विश
स्थिता पक्षमासित्य स्थिता व्यूहस्य पृष्ठि
अश्व तथा
तथा सात्यक नाहित तथा

अश्वत्थामा सोमदत्तश्चावन्त्यौ महारथौ
महत्या सेनया युक्ता वाम पक्षमपालयन्
थाना अथ
महार प्रभृति दक्षिण भाग
पूरा वाम भाग रक्षा

दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृत
व्यूहमध्ये स्थितो राजन् पाण्डवान् प्रतिभासत
महाराज तथा नेप भारे
अपि स्थित सावा व्यूहमध्य
रथसे स्थित व्यूह में अवस्थान।

अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महा
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दक्षिणौ
सर्वसैन्यस्य अलम्बुष महारथी राजा मन
पृष्ठ व्यूहके तथा व्यूहके भाग

एवं तैस्तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावका
सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाग्नयः
भारत प्रकार व्यूहरचना करके आपके
पुत्र तथा शुलसि प्रज्वलित अग्निके समान
दृष्टिगोचर हो रहे

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डव
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिता
राजा पाण्डुपुत्र भीम दोनों
सी सहदेव व्यूहके अग्रभागमें
हुए

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः
धृष्टद्युम्न राजा महारथी सात्यकि बहु
विनाश करनेवाले विशाल सेनाके साथ व्यूहमें
खड़े थे

शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान्
स्थ रणे महाराज महत्या सेनया वृताः
महाराज शिखण्डी तथा पराक्रमी महाबाहु
राजन तथा साथ सबसे पीछे
युद्ध सब सात व्यापार

अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः
धाना तथोत्कचो युयुधानश्च वीर्यवान्
कथा व्यस्थिता युद्धाय दंशिता
महाधनुर हुए महा धनुष
राज राजा युधामन्यु और पाँचों
कवच बद्ध कर कवच धारण करके युद्धके लिये

एवं ते अपि महाबाहु प्रतिव्यूहा सुदुर्जयम्
पाण्डवा समरे शूरा स्थिता युद्धाय भारत
प्रकार शूर पाण्डव सम्मुख अत्यन्त
दुर व्यूह रचकर युद्धके लिये
खड़े

तावकास्तु रणे यत्ता सहसेना नराधिप
अभ्युद्ययू रणे पार्थान् भीष्मं कृत्वाग्रतो नृप
तथैव पाण्डवा राजन् भीमसेनपुरोगमाः
आपकी सेनाके योद्धा अपनी अपनी सेनाओंके
साथ युद्धके लिये उद्यत भीष्मको करके पाण्डवोंपर
आक्रमण किया राजन भीमसेन आदि पाण्डवोंने
भी आपकी सेनापर आक्रमण किया

भीष्मं योधमुख्यांश्च समन्तात् विजयैषिणः ।
दध्मुः सिंहनादांश्च शङ्खान् क्रकचान् गोविषाणिकाः ॥
भेरीमृदङ्गपणवान् नादयन्तश्च पुष्करान् ।
पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ १८ ॥

महाराज! भीष्मके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाले विजयाभिलाषी पाण्डव सिंहनाद, किलकिल शब्द, शङ्खध्वनि करते तथा ककच, गोसींग, भेरी, मृदङ्ग, पणव तथा पुष्कर आदि बाजोंको बजाते तथा भैरव गर्जना करते हुए कौरवसेनापर चढ़ आये ॥ १७-१८ ॥

भेरीमृदङ्गशङ्खानां दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
उत्क्रुष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः ॥ १९ ॥
वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः ।
सहसैवाभिसंक्रुद्धास्तदाऽऽसीत् तुमुलं महत् ॥ २० ॥

भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि एवं उत्कृष्ट सिंहनाद करना तथा अनेक प्रकारसे उछलना-कूदना करते हुए हमलोगोंने भी बड़ी उतावलीके साथ अत्यन्त क्रुद्ध हो सहसा उनपर आक्रमण किया और उनकी गर्जनाका उत्तर हम भी अपनी गर्जनाद्वारा ही देने लगे। उस समय उभयपक्षके सैनिकोंमें महान् युद्ध होने लगा ॥ १९-२० ॥

ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥ २१ ॥

दोनों पक्षके योद्धा एक-दूसरेपर धावा करते हुए अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगे। उस समय जो महान् कोलाहल हुआ, उससे सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ २१ ॥

पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः ।
सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥ २२ ॥

पक्षी अत्यन्त घोर शब्द करते हुए आकाशमें चक्कर काटने लगे। सूर्य यद्यपि प्रभासे उदित हुआ था, तथापि उस समय निस्तेज हो गया ॥ २२ ॥

ववुश्च तुमुला वातास्तुमुलं शंसन्तः सुमहद् भयम् ।
घोराश्च घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे ॥ २३ ॥

महान् भयकी सूचना देनेवाली भयानक वायु बहने लगी। घोर [illegible] भयानक शब्द सुनाने लगीं। सियारिनें अशुभ बोली बोलने लगीं ॥ २३ ॥

वेदयन्त्यो महाराज महद् वैशसमागतम् ।
दिशः प्रज्वलिता राजन् पांसुवर्षं पपात च ॥ २४ ॥

रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च ।
रुदतां वाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २५ ॥

महाराज! वे गीदड़ियाँ सिरपर आये हुए विकट हिंसाकी सूचना दे रही थीं। राजन्! दिशाएँ जलती-सी प्रतीत होने लगीं। धूल और [illegible] वर्षा होने लगी। रक्तमिश्रित हड्डियाँ बरसने लगीं तथा रोते हुए वाहनोंके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे ॥ २४-२५ ॥

सुस्रुवुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशाम्पते ।
अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २६ ॥
रक्षसां पुरुषादानां नदतां भैरवान् रवान् ।

प्रजानाथ! वे वाहन चिन्तामें पड़कर मल-मूत्र करने लगे। भरतश्रेष्ठ! भयंकर गर्जना करनेवाले नरभक्षी राक्षसोंके महान् शब्द सुनायी पड़ते थे, किंतु उनके बोलनेवाले अदृश्य थे ॥ २६ ॥

सम्पतन्तश्च दृश्यन्ते गोमायुबकवायसाः ॥ २७ ॥
श्वानश्च विविधैर्नादैर्भषन्तस्तत्र मारिष ।

नाना प्रकारके गीदड़, बगले और कौए टूटे पड़ते थे और कुत्ते भी नाना प्रकारके शब्दोंमें भूँकते देखे जाते थे ॥ २७ ॥

ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहत्य दिवाकरम् ।
निपेतुः सहसा भूमौ वेदयन्त्यो महद् भयम् ॥ २८ ॥

बड़ी-बड़ी प्रज्वलित उल्काएँ सूर्यसे टकराकर महान् भयकी सूचना देती हुई सहसा पृथ्वीपर गिर रही थीं ॥ २८ ॥

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये
समागमे पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः ।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः
प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ २९ ॥
नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलाना-
मभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां
वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ३० ॥

उस समय महासमरमें पाण्डव तथा कौरवदलकी विशाल सेनाएँ शङ्ख और मृदङ्गकी ध्वनियोंसे उसी प्रकार काँप रही थीं, जैसे वायुके वेगसे समूचा वनप्रान्त हिलने लगता है। उस अमङ्गलजनक मुहूर्तमें नरेशों, हाथियों और अश्वोंसे परिपूर्ण हो परस्पर आक्रमण करती हुई उभय पक्षकी उन विशाल सेनाओंका भयंकर कोलाहल वायुसे विक्षुब्ध हुए महासागरोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ २९-३० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि परस्परसम्मुखसैन्यसमुत्पातदर्शने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें परस्पर सम्मुख आयी हुई सेनाओं तथा उत्पातोंका वर्णनविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

शततमोऽध्याय

द्रौपदीके पाँचों पुत्रों और अभिमन्युका राक्षस अलम्बुषके साथ घोर युद्ध एवं अभिमन्युके द्वारा नष्ट होते हुई कौरवसेनाका युद्धभूमिसे पलायन

अभिमन्यु ... सोदर्य पितामहसुतकोस
अभिद्रुद्राव तरस्वी पुर्वोधनवलं महत्

... बहुत है ... भीष्म ...
अभिम ... सिंह ... युधमें नहीं मिलता ... वह

विक्रिण्डारवचापि मार्गशत रथास्वयुत
शीकु ... मतर मज सौभद्रमरिसूदनम्
क्रोधरूप हर्मिव प्रविशन्त महावनम्
शाार्दूलिप ... सेनाम्भागरमक्षकम्
नियापितुमप्याशे लग्नीया कुरुसत्तम

... सम्मान
सायकों ...
... महामानस ... था
... कुछि ... ते
... कुरु
... तीर नहीं

तेज मुक्ता ... शत्रुनिबर्हणा
अभियानतयम्बुग्णैव ... सैनिकानम्

... अभिमन्यु छोड़ ... दिया

यमदग्निनोस्मात् प्रदीप्ताग्नि ... विषमाम्
सौभद्र समरे क्रुद्ध ... मागतम्

... यद्यपि मृत ... कुरु ... और ... विषय मर्दक ... अलकर ... था।

अलम्बुष ... हयाश्वैव ... गजारोहाश्च ... फाल्गुनि

... और हाथि ... रथियोंको ... कर ...

लब्ध लक्ष कुमार वर्म महत सम्वे महीपात
पुत्रगजीनि ... शरमुख फाल्गुनिम
... भिमन्युको ... भूरिश्रवा को



नायकीवनि सौभद्रो द्रावयमाण भारत
... भामका ... विभुम्
... अपनी ... देते ... भीमसेनको ... दिया

तम विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत
... द्रुम ... हव प्रिया

... अभिमन्युक द्वारा मारेहो जाती हुई आपकी ... स्थिति ... विवीने ...

विनाय सहसैन्यानि नायकानि ...
अभिमन्यु ... विधुमोऽग्निरिव ...

... सैनायोंको ... अभि ... प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशित हो गया

तम तावका राजन् विषेश्वरि ...
प्रदीप्त पावक ... पतङ्गा कालचोदिता

राजन् आपके ... अभिमन्युका वेग नहीं ... अत्यन्त ... अभिमन्यु ... नहीं सह सके ... हो ... नहीं राजा आपके सैनिकोंको ...

प्रहरन् सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः ।
अदृश्यत महेष्वासः शक्रो दैत्यगणेष्विव ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण शत्रुओंपर प्रहार करता हुआ पाण्डव महारथी महाधनुर्धर अभिमन्यु दैत्योंके दलमें इन्द्रके समान दिखायी दे रहा था ॥ १२ ॥

हेमपृष्ठं धनुस्तस्य ददृशे विचरद् दिशः ।
तोयदेषु यथा राजन् राजमाना शतह्रदा ॥ १३ ॥

राजन् ! अभिमन्यु धनुषका सुवर्णमय पृष्ठभाग बादलमें बिजलीकी भाँति शोभा पा रहा था और वह सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरण करता हुआ [illegible] सा सुशोभित होता था ॥ १३ ॥

शराश्च निशिताः पीताः निश्चरन्ति स्म संयुगे ।
वनात् फुल्लद्रुमाद् राजन् भ्रमराणामिव व्रजाः ॥ १४ ॥

युद्धस्थलमें उसके धनुषसे छूटे और चमचमाते हुए तीखे बाण इस प्रकार [illegible] खिले हुए वृक्षोंवाले वनसे भ्रमरोंके समूह निकल रहे हों ॥ १४ ॥

तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः ।
रथेन मेघघोषेण ददृशुर्नान्तरं जनाः ॥ १५ ॥

महामना सुभद्राकुमार अभिमन्यु मेघके समान गम्भीर घोषवाले रथके द्वारा पूर्ववत् रणभूमिमें विचरता रहा। लोगोंने उसमें और [illegible] कोई अन्तर नहीं देखा ॥ १५ ॥

मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च सबृहद्बलम् ।
सैन्धवं च महेष्वासो व्यचरल्लघु सुष्ठु च ॥ १६ ॥

महाधनुर्धर अभिमन्यु कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल और सिन्धुराज जयद्रथ [illegible] और शीघ्र गतिसे सब ओर विचरता रहा ॥ १६ ॥

मण्डलीकृतमेवास्य धनुः पश्याम मारिष ।
सूर्यमण्डलसंकाशं तपतस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥

मारिष ! आपकी सेनाको भस्म करते हुए उस अभिमन्युके धनुषको हम सदा सूर्यमण्डलके सदृश मण्डलाकार हुआ ही देखते थे ॥ १७ ॥

तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूरं प्रतपन्तं शरोत्तमैः ।
द्विफल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥ १८ ॥

उत्तम बाणोंसे संताप देते हुए उस वेगशाली वीरको देखकर समस्त शूरवीर क्षत्रिय उसके कर्मोंद्वारा यह मानने लगे कि इस लोकमें दो अर्जुन हो गये हैं ॥ १८ ॥

तेनार्दिता महाराज भारती सा महाचमूः ।
बभ्रमत् तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ १९ ॥

महाराज ! अभिमन्युसे पीड़ित हुई भरतवंशियोंकी वह विशाल सेना मदोन्मत्त युवतीकी भाँति वहीं चक्कर काटती रही ॥ १९ ॥

द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान् ।
नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥ २० ॥

मयासुरको जीतकर इन्द्रकी भाँति अभिमन्युने उस विशाल सेनाको भगाकर और महारथियोंको कम्पित करके अपने सुहृदोंको आनन्दित किया ॥ २० ॥

तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २१ ॥

[illegible] युद्धमें भगाये जाते हुए आपके सैनिक [illegible] भयानक आर्तनाद करने लगे ॥ २१ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य मारिष ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ २२ ॥
दुर्योधनस्तदा राजा आर्जुनिं प्रत्यभाषत ।
पुत्रस्तेऽतिमहाबाहो द्वितीय इव फाल्गुन ॥ २३ ॥

[illegible] आपकी सेनाका वह भयानक आर्तनाद पूर्णिमाके दिन वायुके वेगसे उद्वेलित [illegible] समुद्रकी गर्जनाके समान था। उसे सुनकर राजा दुर्योधनने [illegible] अर्जुनपुत्र अभिमन्युके [illegible] महाबाहो [illegible] द्वितीय अर्जुनके समान [illegible] है [illegible] ॥ २२-२३ ॥

चमूं द्रावयते क्रोधाद् वृत्रो देवचमूमिव ।
तस्य चान्यं न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥ २४ ॥
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठ सर्वविद्यासु पारगम् ।

[illegible] क्रोधपूर्वक सेनाको [illegible] भगा रहा है। [illegible] युद्धमें उसका कोई दूसरा बड़ा औषध नहीं दिखायी देता [illegible] ॥ २४ ॥

स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे ॥ २५ ॥
वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।

[illegible] तुम शीघ्र जाकर युद्धमें सुभद्राकुमार वीर अभिमन्युका वध करो और हमलोग भीष्म तथा द्रोणाचार्यको आगे करके अर्जुनको मार डालेंगे ॥ २५ ॥

स एवमुक्तो बलवान् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।
नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ २७ ॥

आपके पुत्र दुर्योधनके ऐसा कहनेपर उसकी आज्ञासे बलवान् एवं प्रतापी राक्षसराज अलम्बुष [illegible] वर्षाकालके मेघकी भाँति और जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ समरभूमिमें [illegible] ॥ २६-२७ ॥

तस्य शब्देन महता पाण्डवानां बलं महत् ।
प्राचलत् सर्वतो राजन् वातोद्धूत इवार्णवः ॥ २८ ॥

राजन् ! उसके महान् सिंहनादसे वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रकी

[illegible] पाण्डवोंकी विशाल सेनाको [illegible] मानो [illegible] ॥ २८ ॥

बध्यमानं महाराज तत्तत्र सौभद्रेण भीषिता ।
विद्रुता प्राद्रवन् [illegible] ॥ २९ ॥

महाराज! उसके [illegible] भयभीत हो [illegible] [illegible] कर [illegible] भाग खड़े हुए ॥ २९ ॥

[illegible] पुनः पुनः प्रगृह्य [illegible] धनुः ।
[illegible] रथानीकं [illegible] ॥ ३० ॥

अभिमन्यु भी [illegible] [illegible] [illegible] उस [illegible] [illegible] ॥ ३० ॥

तत [illegible] सम्प्रास्यैवार्जुनिं रथा ।
[illegible] द्रुतयायमस्य [illegible] ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् [illegible] युद्धमें अभिमन्यु [illegible] [illegible] ॥ ३१ ॥

ता [illegible] तथा पाण्डवानां महाचमूम् ।
प्राद्रुवन्त्यो रणे [illegible] यथा [illegible] ॥ ३२ ॥

इस प्रकार पीड़ित [illegible] पाण्डवोंकी विशाल [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३२ ॥

विप्र[illegible] [illegible] सैन्यस्य मारिष ।
[illegible] घोररूपेण [illegible] मधुरो ॥ ३३ ॥

आप [illegible] [illegible] ॥ ३३ ॥

तत [illegible] पाण्डवानां महाचमूम् ।
[illegible] रणे रक्षो [illegible] ॥ ३४ ॥

उस समय राक्षसने [illegible] [illegible] पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाको [illegible] आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

सा वध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी ।
रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥ ३५ ॥

उस घोर राक्षसके द्वारा उस प्रकार मारी जाती हुई वह पाण्डवसेना भयके मारे रणभूमि [illegible] भाग चली ॥ ३५ ॥

प्रमृद्य च रणे सेना
पद्मिनीं वारणो यथा ।
ततोऽभिदुद्राव रणे
द्रौपदेयान् महाबलान् ॥ ३६ ॥

जैसे हाथी कमलमण्डित सरोवरको मथ डालता है, उसी प्रकार रणभूमिमें पाण्डवसेनाको रौंदकर अलम्बुषने द्रौपदीपुत्रोंपर धावा किया ॥ ३६ ॥

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
राक्षसं दुद्रुवुः सर्वे ग्रहाः पञ्च रविं यथा ॥ ३७ ॥

द्रौपदीके पाँचों पुत्र महान् धनुर्धर तथा प्रहार करनेमें कुशल थे। उन्होंने [illegible] [illegible] उसी [illegible] [illegible] मानो पाँच ग्रह सूर्यदेवपर आक्रमण कर रहे हों ॥ ३७ ॥

वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥ ३८ ॥

[illegible] उन बलवान् द्रौपदीपुत्रोंद्वारा वह श्रेष्ठ राक्षस उसी प्रकार पीड़ित होने लगा, जैसे भयानक प्रलयकाल [illegible] चन्द्रमा पाँच ग्रहोंसे पीड़ित होते हैं ॥ ३८ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो बिभेद निशितैः शरैः ।
[illegible] ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् महाबली प्रतिविन्ध्यने पूरा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उस राक्षसको विदीर्ण कर डाला ॥ ३९ ॥

स तैर्भिन्नतनुत्राणः [illegible] ।
[illegible] महान् ॥ ४० ॥

[illegible] [illegible] [illegible] अलम्बुषकी [illegible] शोभा हुई [illegible] [illegible] [illegible] हो रहा हो ॥ ४० ॥

विव्यधे स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
आर्जुनिः [illegible] राजन् [illegible] ॥ ४१ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४१ ॥

ततस्तु [illegible] पञ्च [illegible] महाहवे ।
[illegible] ॥ ४२ ॥

[illegible] [illegible] उस [illegible] [illegible] अलम्बुषको [illegible] कर दिया ॥ ४२ ॥

स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः [illegible] ।
[illegible] राजेन्द्र चुकोपे ॥ ४३ ॥

राजन्! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अलम्बुष [illegible] अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ४३ ॥

[illegible] महाराज मुहूर्तमथ मारिष ।
प्रविवेश [illegible] [illegible] महात्मने ॥ ४४ ॥

महाराज! [illegible] [illegible] अत्यन्त आहत और पीड़ित हो अलम्बुष [illegible] भारी मोह (मूर्च्छा) में डूबा रहा ॥ ४४ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः।
चिच्छेद सायकास्तेषां ध्वजमस्यैव कार्मुकम्॥

तदनन्तर होशमें आकर वह दूने क्रोधसे जल उठा। फिर उसने उनके बाणों, ध्वज और धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

चकर्त पञ्चभिर्बाणैस्तथा सायकेन सारथिम्।
अलम्बुषो रथोपस्थे कृतवानिव महारथः॥

उसके बाद उसने उन्हें पाँच बाणोंसे घायल करते हुए महारथी अलम्बुषने मुसकराते हुए एक-एकको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल किया।

त्वरमाणः सुसंरब्धः पातेषां महात्मनाम्।
जघान राक्षसः क्रुद्धः सर्वांश्च महाबलः॥

फिर अत्यन्त उतावली करते हुए क्रोधमें भरे महाबली राक्षसने कुपित हो उन महामनस्वी वीरोंको और सारथियोंको मार डाला।

चिच्छेद च सुसंरब्धः पुनरस्त्रमाणि सुसंशितान्।
शरवर्षं विधायाशु शतशोऽथ सहस्रशः॥

इसके बाद पुनः कुपित हो उसने तीखे बाणोंकी वर्षा करके सैकड़ों और हजारों बाणोंद्वारा उनको भारी चोट पहुँचायी।

विरथांश्च महेष्वासान् कृत्वा तत्र स राक्षसः।
अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः॥

महाधनुर्धर वीरोंको रथहीन करके युद्धमें उन्हें मार डालनेकी इच्छासे वह निशाचर राक्षस बड़े वेगसे उनकी ओर धावा किया।

तानर्दितान् रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना।
दृष्ट्वार्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत्॥

उस दुरात्मा राक्षसके द्वारा युद्धमें उन पाँचों द्रौपदीपुत्रोंको पीड़ित हुए देख अर्जुनकुमार अभिमन्युने पुनः उसके ऊपर आक्रमण किया।

तयोः समभवद् युद्धं वृत्रवासवयोरिव।
ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः॥

फिर इन्द्र और वृत्रासुरके समान उन दोनोंमें युद्ध होने लगा। आपके और पाण्डवपक्षके सभी महारथी उस युद्धको देखने लगे।

समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परम्।
महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ॥
परस्परमवेक्षन्तौ कालानलसमौ युधि।
तथा समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोः पुरा॥

महाराज! उस महायुद्धमें क्रोधसे उद्दीप्त होकर परस्पर भिड़े हुए वे दोनों महाबली वीर क्रोधसे लाल आँखें किये एक-दूसरेकी ओर कालाग्निके समान देखने लगे। उनका वह घोर संग्राम अन्तमें कटु परिणाम प्रकट करनेवाला था। पूर्वकालमें देवासुर संग्राममें जैसे इन्द्र और शम्बरासुरका भयंकर युद्ध हुआ था, वैसा ही उनमें भी हुआ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि आर्ष्यशृङ्ग्यभिमन्युसमागमे शततमोऽध्यायः॥ १००॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें अलम्बुष और अभिमन्युका समागमविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १००॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका एक श्लोक मिलाकर कुल ... श्लोक हैं)

एकाधिकशततमोऽध्याय

अभिमन्युके द्वारा अलम्बुषकी पराजय, अर्जुनके साथ भीष्मका युद्ध तथा सात्यकि, अश्वत्थामा और द्रोणाचार्यके साथ सात्यकिका युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

आर्जुनिं समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथान्।
अलम्बुषः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत संजय॥
आर्श्यशृङ्गिं कथं चैव सौभद्रः परवीरहा।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन यथावृत्तं स्म संयुगे॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! समरमें बड़े-बड़े महारथियोंका संहार करनेवाले शूरवीर अर्जुनकुमार अभिमन्युके साथ राक्षस अलम्बुषने किस प्रकार युद्ध किया? इसी प्रकार शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले सुभद्राकुमारने राक्षस अलम्बुषके साथ कैसे युद्ध किया? युद्धस्थलमें जब दोनोंमें सामना हुआ, तब वहाँ जो भी वृत्तान्त हो, वह मुझे ठीक-ठीक बताओ।

धनंजयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संयुगे।
भीमो वा रथिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः॥
नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं कुशलो ह्यसि संजय॥

उस युद्धमें अर्जुनने मेरी सेनाओंके साथ क्या किया? रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन अथवा राक्षस घटोत्कच या नकुल, सहदेव अथवा महारथी सात्यकिने क्या किया? संजय! वह सब मुझे बतलाओ; क्योंकि तुम इन बातोंके बतानेमें कुशल हो।

संजय उवाच

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम्।

यथाभूद् राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष ॥ ५ ॥
अर्जुनस्य यथा संख्ये भीष्मस्येह च पाण्डव ।
नकुलः सहदेवश्च यथा चक्रे पराक्रमम् ॥ ६ ॥
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणमुखास्तदा ।
अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ७ ॥

संजयने कहा—राजन्! मैं तुम्हें उस रोमांचकारी युद्धका वर्णन करूँगा, जो राक्षसराज अलम्बुष और सुभद्राकुमार अभिमन्युमें हुआ था तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन, भीष्म, नकुल और सहदेवने युद्धमें जिस प्रकार पराक्रम किया और उसी प्रकार भीष्म, द्रोण आदि आपके सभी योद्धाओंने निर्भय होकर अद्भुत और विचित्र कर्म किये—वह सब भी मुझसे सुनिये ॥ ५—७ ॥

अलम्बुषस्तु समरे अभिमन्युं महारथम् ।
विनद्य सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

अलम्बुषने समरभूमिमें महारथी अभिमन्युको बारंबार डाँटते हुए बड़े जोरसे गर्जना करके 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए बड़े वेगसे उसपर धावा किया ॥ ८½ ॥

अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद् विनदन् मुहुः ॥ ९ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।

इसी प्रकार वीर अभिमन्युने भी बारंबार सिंहनाद करते हुए अपने पिताके अत्यन्त वैरी महाधनुर्धर अलम्बुषपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ९½ ॥

ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नररक्षसौ ॥ १० ॥
रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ ।

फिर वे दोनों मनुष्य तथा राक्षस वीर और युद्ध ही युद्धस्थलमें एक दूसरेसे भिड़ गये। दोनों ही रथियोंमें श्रेष्ठ थे, अतः देवता और दानवकी भाँति रथोंद्वारा एक-दूसरेका सामना करने लगे ॥ १०½ ॥

मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रज्ञश्च फाल्गुनिः ॥ ११ ॥

राक्षसराज अलम्बुष मायावी था और अर्जुनकुमार अभिमन्युको दिव्यास्त्रोंका ज्ञान था ॥ ११ ॥

ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः ।
आर्ष्यशृङ्गिं रणे विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ १२ ॥

महाराज! तदनन्तर अर्जुनपुत्र अभिमन्युने तीन तीखे सायकोंसे अलम्बुषको घायल करके पुनः पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२ ॥

अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः ।
हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १३ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए अलम्बुषने भी नौ शीघ्रगामी बाणोंद्वारा अर्जुनपुत्र अभिमन्युकी छातीमें उसी प्रकार वेगपूर्वक प्रहार किया, जैसे अंकुशद्वारा गजराजपर प्रहार किया जाता है ॥ १३ ॥

ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः ।
अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत ॥ १४ ॥

भारत! तत्पश्चात् शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले निशाचरने एक हजार बाण मारकर युद्धस्थलमें अर्जुनके पुत्रको पीड़ित कर दिया ॥ १४ ॥

अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ।
विभेद निशितैर्बाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि ॥ १५ ॥

इससे क्रुद्ध होकर अभिमन्युने राक्षसराज अलम्बुषकी चौड़ी छातीमें झुकी हुई गाँठवाले नौ पैने बाण मारे ॥ १५ ॥

ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्मसु ।
स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः ॥ १६ ॥
पुष्पितैः किंशुकै राजन् संस्तीर्ण इव पर्वतः ।

वे बाण उस राक्षसके शरीरको विदीर्ण करके उसके मर्मस्थानोंमें धँस गये। राजन्! उन बाणोंसे सम्पूर्ण अंगोंके क्षत-विक्षत हो जानेपर राक्षसराज अलम्बुष खिले हुए पलाशके वृक्षोंसे भरे हुए पर्वतकी भाँति सुशोभित होने लगा ॥ १६½ ॥

संदधानश्च तान् बाणान् हेमपुङ्खान् महाबलः ॥ १७ ॥
विबभौ राक्षसश्रेष्ठः सज्वाल इव पर्वतः ।

सुवर्णमय पंखवाले उन बाणोंको अपने अंगोंमें धारण किये महाबली राक्षसराज अलम्बुष अग्निकी ज्वालाओंसे युक्त पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था ॥ १७½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज आर्ष्यशृङ्गिरमर्षणः ॥ १८ ॥
महेन्द्रप्रतिमं कार्ष्णिं छादयामास पत्रिभिः ।

महाराज! तब अमर्षशील अलम्बुषने कुपित होकर देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनकुमारको पंखवाले बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १८½ ॥

तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः ॥ १९ ॥
अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम् ।

उसके छोड़े हुए यमदण्डके समान भयंकर एवं तीखे बाण अभिमन्युके शरीरको छेदकर धरतीमें समा गये ॥ १९½ ॥

तथैवार्जुनिना मुक्ताः शराः कनकभूषणाः ॥ २० ॥
अलम्बुषं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।

उसी प्रकार अभिमन्युके छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाण भी अलम्बुषको विदीर्ण करके पृथ्वीमें समा गये ॥ २०½ ॥

सौभद्रस्तु रणे रक्षः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २१ ॥
चक्रे विमुखमासाद्य मयं शक्र इवाहवे ।

जैसे इन्द्र युद्धस्थलमें मयासुरको विमुख कर देते हैं, उसी प्रकार सुभद्राकुमार अभिमन्युने रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा मारकर उस राक्षसको युद्धसे विमुख कर दिया ॥ २१½ ॥

विमुखं च ततो रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा ॥ २२ ॥

प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनाम् ।

फिर समराङ्गणमें शत्रुसे पीड़ित एवं विमुग्ध हुए राक्षसने शत्रुओंको तपानेवाली अपनी (अन्धकारमयी) तामसी महामाया प्रकट की ॥ २२ ॥

ततस्ते तमसा सर्वे हृता ह्यासन् महीपते ॥ २३ ॥
नाभिमन्युमपश्यन्त नैव स्वान् न परान् रणे ।

महीपते! तब वे सब-के-सब योद्धा अन्धकारसे आच्छादित हो गये। वे न तो रणक्षेत्रमें अभिमन्युको देख पाते थे और न अपने तथा शत्रुपक्षके सैनिकोंको ही ॥ २३ ॥

अभिमन्युश्च तद् दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ॥ २४ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः ।
ततः प्रकाशमभवज्जगत् सर्वं महीपते ॥ २५ ॥

यह भयंकर एवं महान् अन्धकार देखकर कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले अभिमन्युने अत्यन्त उग्र भास्करास्त्रको प्रकट किया। राजन्! इससे सम्पूर्ण जगत्‌में प्रकाश छा गया ॥ २४-२५ ॥

तां चाभिजघ्निवान् मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ।
संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तम ॥ २६ ॥
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः ।

इस प्रकार महापराक्रमी अभिमन्युने उस दुरात्मा राक्षसकी मायाको नष्ट कर दिया और अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें राक्षसराजको आच्छादित कर दिया ॥ २६ ॥

बह्वीस्तथान्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ॥ २७ ॥
सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः ।

उस राक्षसने और भी बहुत-सी भिन्न-भिन्न मायाओंका प्रयोग किया; परंतु सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता अमेयात्मा अर्जुनकुमारने उन सबका निवारण कर दिया ॥ २७ ॥

हन्यमानं ततो रक्षो वध्यमानं च सायकैः ॥ २८ ॥
रथं तत्रैव संत्यज्य प्राद्रवन्महतो भयात् ।

उसकी माया नष्ट हो गयी और बाणोंकी मार खाता हुआ वह राक्षस अलम्बुष भयभीत हो अपने रथको वहीं छोड़कर भाग गया ॥ २८ ॥

तस्मिन् विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ॥ २९ ॥
आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं सम्ममर्द ह ।
मदान्धो वन्यनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव ॥ ३० ॥

कूटयुद्ध करनेवाले उस राक्षसके पराजित हो जानेपर अर्जुनकुमार अभिमन्युने तुरंत ही समराङ्गणमें आपकी सेनाका उसी प्रकार मर्दन आरम्भ किया, जैसे मदान्ध जंगली गजराज कमलोंसे भरी हुई पुष्करिणीको मथ डालता है ॥ २९-३० ॥

ततः शान्तनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाभिविद्रुतम् ।
महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर अपनी सेनाको भागती हुई देख शान्तनुनन्दन भीष्मजीने बड़ी भारी बाण-वर्षा करके सुभद्राकुमार अभिमन्युको रोक दिया ॥ ३१ ॥

कोष्ठीकृत्य च तं वीरं धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढम् ॥ ३२ ॥

फिर आपके महारथी पुत्रोंने वीर अभिमन्युको घेरेमें ले लिया और युद्धस्थलमें उस अकेलेको बहुत-से योद्धा बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल करने लगे ॥ ३२ ॥

स तेषां रथिनां वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥ ३३ ॥
उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च ।
रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥

वीर अभिमन्यु अपने पिता अर्जुनके समान पराक्रमी था। बल और पराक्रममें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी समानता करता था। सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ उस वीरने रणक्षेत्रमें उन कौरव रथियोंके साथ अपने पिता और मामा दोनोंके सदृश अनेक प्रकारका पराक्रम प्रकट किया ॥ ३३-३४ ॥

ततो धनंजयो वीरो विनिघ्नंस्तव सैनिकान् ।
आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर अमर्षमें भरे हुए वीर अर्जुन आपके सैनिकोंका संहार करते हुए अपने पुत्रकी रक्षाके लिये आगे बढ़कर भीष्मके पास आ पहुँचे ॥ ३५ ॥

तथैव समरे राजन् पिता देवव्रतस्तव ।
आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ३६ ॥

राजन्! जैसे राहु सूर्यपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार आपके पितृव्य देवव्रत भीष्मने रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुनपर धावा किया ॥ ३६ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव जनेश्वर ।
परिवव्रू रणे भीष्मं गुप्त्यर्थं समन्ततः ॥ ३७ ॥

जनेश्वर! तब रथ, हाथी और घोड़ोंसे सम्पन्न आपके पुत्र रणक्षेत्रमें भीष्मको सब ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ ३७ ॥

तथैव पाण्डवा राजन् परिवार्य धनंजयम् ।
रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! इसी प्रकार पाण्डव भी अर्जुनको सब ओरसे घेरकर कवच आदिसे सुसज्जित हो महायुद्धके लिये तैयार हो गये ॥ ३८ ॥

शारद्वतस्ततो राजन् भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ ३९ ॥

राजन् ! उस समय भीष्मके सामने खड़े हुए अर्जुनको कृपाचार्यने पचीस बाण मारे ॥ ४९ ॥

प्रत्युद्गम्याथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः ।
पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ५० ॥

जैसे सिंह हाथीपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार सात्यकिने आगे बढ़कर पाण्डुनन्दन अर्जुनका प्रिय करनेके लिये कृपाचार्यको अपने तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ५० ॥

गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः ।
हृदि विव्याध संक्रुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ५१ ॥

तब कृपाचार्यने भी अत्यन्त कुपित हो बड़ी उतावलीके साथ सात्यकिकी छातीमें कङ्कपत्रविभूषित नौ बाण मारकर उन्हें घायल कर दिया ॥ ५१ ॥

शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धः ...... वेगवान् ।
गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम् ॥ ५२ ॥

तब वेगशाली सात्यकिने भी कोपमें भरकर अपने धनुषको झुकाया और तुरंत ही उसपर कृपाचार्यका अन्त करनेवाला बाण रक्खा ॥ ५२ ॥

तमापतन्तं वेगेन शक्रशनिसमद्युतिम् ।
द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः ॥ ५३ ॥

उस बाणका प्रकाश इन्द्रके वज्रके समान था। उसे वेगसे आते देख परम क्रोधी अश्वत्थामाने अत्यन्त कुपित हो उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ ५३ ॥

समुत्सृज्याथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरः ।
अभ्यद्रवद् रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ॥ ५४ ॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने कृपाचार्यको छोड़कर जैसे आकाशमें राहु चन्द्रमापर आक्रमण करता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें अश्वत्थामापर धावा किया ॥ ५४ ॥

तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत ।
अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ॥ ५५ ॥

भारत ! उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सात्यकिके धनुषके दो टुकड़े कर दिये और धनुष कट जानेपर उन्हें बाणोंकी मारसे पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ ५५ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् ।
द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५६ ॥

महाराज ! तब सात्यकिने दूसरा शत्रुनाशक एवं भारसाधन धनुष लेकर साठ बाणोंद्वारा अश्वत्थामाकी भुजाओं तथा छातीको घायल कर डाला ॥ ५६ ॥

स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः ।
निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ५७ ॥

इससे अत्यन्त घायल और व्यथित होकर मूर्च्छित हो ध्वजका सहारा ले वह दो घड़ीतक रथके पिछले भागमें बैठा रहा ॥ ५७ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समार्पयत् ॥ ५८ ॥

तत्पश्चात् प्रतापी द्रोणपुत्र होशमें आकर कुपित हो समरभूमिमें सात्यकिको नाराचसे घायल कर दिया ॥ ५८ ॥

शैनेयं स तु निर्भिद्य प्राविशद् धरणीतलम् ।
वसन्तकाले बलवान् बिलं सर्पशिशुर्यथा ॥ ५९ ॥

वह नाराच सात्यकिको विदीर्ण करके वसन्त ऋतुमें बलवान् सर्पके बच्चेकी भाँति धरतीमें समा गया ॥ ५९ ॥

तथापरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम् ।
चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह ॥ ६० ॥

इसके बाद दूसरे भल्लसे समरभूमिमें अश्वत्थामाने सात्यकिके उत्तम ध्वजको काट गिराया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ६० ॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत ।
निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ६१ ॥

भारत ! महाराज ! जैसे वर्षा ऋतुमें बादल सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार उसने पुनः भयंकर बाणोंद्वारा सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ६१ ॥

सात्यकिश्च महाराज शरजालं निहत्य तत् ।
द्रौणिमभ्यकिरत् तूर्णं शरजालैरनेकधा ॥ ६२ ॥

नरेश्वर ! उस समय सात्यकिने भी उस बाणसमूहको नष्ट करके तुरंत ही अश्वत्थामाके ऊपर अनेक प्रकारके बाणों का जाल-सा बिछा दिया ॥ ६२ ॥

तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा ।
विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ॥ ६३ ॥

फिर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सात्यकिने मेघोंकी घटासे मुक्त हुए सूर्यकी भाँति द्रोणपुत्रको संतप्त करना आरम्भ किया ॥ ६३ ॥

शराणां च सहस्रेण पुनरेव समुद्यतः ।
सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः ॥ ६४ ॥

महाबली सात्यकिने पुनः एक हजार बाणोंकी वर्षा करके उसको ढक दिया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ६४ ॥

दृष्ट्वा पुत्रं तथा ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम् ।
अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ६५ ॥

जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रस लेता है, उसी प्रकार सात्यकि के द्वारा अपने पुत्रको ग्रस्त हुआ देख प्रतापी द्रोणाचार्यने उनपर धावा किया ॥ ६५ ॥

विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे ।
परीप्सन् स्वसुतं राजन् वार्ष्णेयेनाभिपीडितम् ॥ ६६ ॥

राजन् ! उस महायुद्धमें सात्यकिद्वारा पीड़ित हुए

अपने पुत्रकी रक्षा करनेके लिये आचार्यने भीम बाणसे उन्हें घायल कर दिया ॥ ५६ ॥

सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम्।
द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः ॥ ५७ ॥

तब सात्यकिने रणक्षेत्रमें गुरुपुत्र महारथी अश्वत्थामाको छोड़कर पूर्णतः लोहेके बने हुए बीस बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींध डाला ॥ ५७ ॥

तदनन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः।
अभ्यद्रवद् रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः ॥ ५८ ॥

इसी समय शत्रुओंको संताप देनेवाले अमेय आत्मबलसे सम्पन्न महारथी कुन्तीपुत्र अर्जुन युद्धस्थलमें कुपित हो द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥ ५८ ॥

ततो द्रोणश्च पार्थश्च समेयातां महामृधे।
यथा बुधश्च शुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥ ५९ ॥

महाराज! तत्पश्चात् द्रोणाचार्य और अर्जुन उस महासमरमें एक दूसरेसे भिड़ गये, मानो आकाशमें बुध और शुक्र एक दूसरेपर आक्रमण कर रहे हों ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुषसात्यकियुद्धे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें अलम्बुष और सात्यकि आदिका युद्धविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्याय

द्रोणाचार्य और सुशर्माके साथ अर्जुनका युद्ध तथा भीमसेनके द्वारा गजसेनाका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

कथं द्रोणो महेष्वासः पाण्डवश्च धनंजयः।
समीयतू रणे यत्तौ तावुभौ पुरुषर्षभौ ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! महाधनुर्धर द्रोण और पाण्डुनन्दन अर्जुन—इन दोनों पुरुषसिंहोंने रणक्षेत्रमें किस प्रकार प्रयत्नपूर्वक एक दूसरेका सामना किया? ॥ १ ॥

प्रियो हि पाण्डवो नित्यं भारद्वाजस्य धीमतः।
आचार्यश्च रणे नित्यं प्रियः पार्थस्य संजय ॥ २ ॥

सूत! बुद्धिमान् बुद्धिमान् द्रोणाचार्यको पाण्डुपुत्र अर्जुन सदा ही प्रिय लगते हैं और अर्जुनको भी आचार्य द्रोण सदा ही प्रिय रहे हैं ॥ २ ॥

तावुभौ रथिनौ संख्ये दृप्तौ सिंहाविवोत्कटौ।
कथं समीयतुर्यत्तौ भारद्वाजधनंजयौ ॥ ३ ॥

उस दिन रणभूमिमें दो प्रचण्ड सिंहोंकी भाँति हर्ष और उत्साहमें भरे हुए वे दोनों रथी द्रोणाचार्य और अर्जुन किस प्रकार प्रयत्नपूर्वक एक दूसरेसे युद्ध करते थे? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

न द्रोणः समरे पार्थं जानीते प्रियमात्मनः।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज! समरभूमिमें द्रोणाचार्य अर्जुनको अपना प्रिय नहीं समझते हैं और अर्जुन भी क्षत्रियधर्मको सामने रखकर युद्धस्थलमें गुरुको अपना प्रिय नहीं मानते हैं ॥ ४ ॥

न क्षत्रिया रणे राजन् वर्जयन्ति परस्परम्।
निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥ ५ ॥

राजन्! क्षत्रियलोग रणक्षेत्रमें आपसमें किसीको नहीं छोड़ते हैं। वे पिता और भाइयोंके साथ भी मर्यादाशून्य होकर युद्ध करते हैं ॥ ५ ॥

रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः।
नाचिन्तयत् तान् बाणान् पार्थचापच्युतान् युधि ॥ ६ ॥

भारत! उस रणक्षेत्रमें अर्जुनने द्रोणाचार्यको तीन बाणोंसे घायल किया, परंतु अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यने कुछ भी नहीं गिना ॥ ६ ॥

शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे।
स प्रजज्वाल रोषेण गहनेऽग्निरिवोर्जितः ॥ ७ ॥

तब अर्जुनने समरभूमिमें अपने बाणोंकी वर्षासे पुनः द्रोणाचार्यको ढक दिया। यह देख वे रोषसे जल उठे, मानो वनमें दावानल प्रज्वलित हो उठा हो ॥ ७ ॥

ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः संनतपर्वभिः।
छादयामास राजेन्द्र नचिरादेव भारत ॥ ८ ॥

भरतनन्दन! राजेन्द्र! तब द्रोणाचार्यने युद्धमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे अर्जुनको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत्।
द्रोणस्य समरे राजन् पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ९ ॥

राजन्! तदनन्तर दुर्योधनने सुशर्माको समरभूमिमें द्रोणाचार्यके पृष्ठभागकी रक्षाके लिये प्रेरित किया ॥ ९ ॥

त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।
छादयामास समरे पार्थं बाणैरयोमुखैः ॥ १० ॥

उसकी आज्ञा पाकर त्रिगर्तराज सुशर्माने भी समरमें

१ बाहर भीतर सब तरफसे लोहेके बने हुए।

भीमसेनके भानजेको अपना प्रतिपक्षी मानकर बाणोंसे अर्जुनको ढक दिया ॥ १० ॥

ताश्च मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे ।
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥

महाराज ! जैसे शरद्ऋतुमें आकाशमें हंस पङ्क्तिबद्ध दिखायी देते हैं, उसी प्रकार उन बाणोंके छोड़े हुए बाण आकाशमें सुशोभित हो रहे थे ॥ ११ ॥

ते शरा प्राप्य कौन्तेयं समन्तात् विविशुः प्रभो ।
फलभारेण यद्वद् वृक्षाग्रं विहङ्गमाः ॥ १२ ॥

प्रभो ! वे बाण सब ओरसे कुन्तीकुमार अर्जुनके ऊपर पड़कर उनके शरीरमें उसी प्रकार घुसने लगे, जैसे फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षपर पक्षी बैठ रहे हों ॥ १२ ॥

अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः ।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने सिंहनाद करके समराङ्गणमें पुत्रसहित त्रिगर्तराज सुशर्माको अपने बाणोंका निशाना बनाया ॥ १३ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये ।
पार्थमेवाभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥ १४ ॥

जैसे प्रलयकालमें काल समस्त प्राणियोंका संहार करता है, उसी प्रकार अर्जुनकी मार खाकर भी वे मरनेका निश्चय करके पुनः अर्जुनपर ही टूट पड़े ॥ १४ ॥

मुमुचुः शरवृष्टिं च फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षेण पाण्डवः ॥ १५ ॥
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाचलः ।

उन्होंने पाण्डुनन्दन अर्जुनके रथपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । राजेन्द्र ! अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे उस बाणवर्षाको उसी प्रकार ग्रहण किया, जैसे पर्वत जलकी वर्षाको धारण करता है ॥ १५ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥ १६ ॥
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ॥ १७ ॥

उस युद्धमें हमने अर्जुनके हाथोंकी अद्भुत फुर्ती देखी, जैसे हवा बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार बहुत-से योद्धाओंद्वारा की हुई उस दुःसह बाणवर्षाका उन्होंने अकेले ही निवारण कर दिया ॥ १६-१७ ॥

कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः ।
अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान् प्रति भारत ॥ १८ ॥
मुमोचास्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ।
प्रादुरासीत् ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ॥ १९ ॥
पातयन् वै तरुगणान् विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् ।

महाराज ! अर्जुनके उस कर्मको देखकर और दानव सभी संतुष्ट हुए । भारत ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने युद्धके मुहानेपर त्रिगर्त सेनाओंको लक्ष्य करके वायव्यास्त्रका प्रयोग किया । फिर तो आकाशको क्षुब्ध कर देनेवाली वायु प्रकट हुई, जो वृक्षोंको गिराने और सैनिकोंको नष्ट करने लगी ॥ १८-१९ ॥

ततो द्रोणोऽभिवीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ॥ २० ॥
शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह ।

महाराज ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने अत्यन्त भयंकर वायव्यास्त्रको देखकर उसका निवारण करनेके लिये भयानक शैलास्त्रका प्रयोग किया ॥ २० ॥

द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप ॥ २१ ॥
प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्चाभवन् दिशः ।

नरेश्वर ! द्रोणाचार्यके द्वारा युद्धमें उस शैलास्त्रका प्रयोग होनेपर वायु शान्त हो गयी और सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं ॥ २१ ॥

ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ॥ २२ ॥
निरुत्साहान् रणे चक्रे विमुखान् विपराक्रमान् ।

तब वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनने त्रिगर्तराजके रथसमूहोंको रणभूमिमें पराक्रमशून्य, उत्साहहीन एवं युद्धसे विमुख कर दिया ॥ २२ ॥

ततो दुर्योधनो राजा कृपश्च रथिनां वरः ॥ २३ ॥
अश्वत्थामा ततः शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकः सह बाह्लिकैः ॥ २४ ॥
महता रथवंशेन पार्थस्यावारयन् दिशः ।

तब रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा, शल्य, काम्बोजराज सुदक्षिण, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा बाह्लीकोंसहित बाह्लिक—इन सबने विशाल रथसेनाके द्वारा सब ओरसे उनकी सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके उनकी सारी गतियोंको रोक दिया ॥ २३-२४ ॥

तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ॥ २५ ॥
गजानीकेन भीमस्य ताववारयतां दिशः ।

इसी प्रकार भगदत्त तथा महाबली श्रुतायुने हाथियोंकी सेनाद्वारा भीमसेनकी सम्पूर्ण दिशाओंको रोक लिया ॥ २५ ॥

भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते ॥ २६ ॥
शरौघैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् ।

प्रजानाथ ! भूरिश्रवा, शल और शकुनिने तीखे और चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करके माद्रीकुमार नकुल और सहदेवको रोका ॥ २६ ॥

भीष्मस्तु सहितः सर्वैर्धार्तराष्ट्रैः ससैनिकैः ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ।

भीष्मने हस्तिसेनासहित आपके पूर्वोक्त माथ स्वारिया होकर युद्धमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास जाकर उन्हें बाणोंसे घेर लिया ॥

आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ॥ २ ॥
लेलिहन् सृक्किणी वीरः सुमहाजिरेव काननम्

राजन्! उस गजसेनाको आती देख कुन्तीपुत्र भीमसेन अपने दोनों होठोंको चाटने लगे ॥ २ ॥

भीमस्तु रथिना श्रेष्ठो ... महाहवे ॥ ९ ॥
नवाप्रत्युत्थ रथात् तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत्

तदनन्तर उस महासमरमें रथियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन गदा लेकर तुरंत रथसे कूद पड़े और आपकी सेनाओंको भयभीत करने लगे ॥

तमुदीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः ॥ १० ॥
परिवव्रुः सं यत्ता भीमसेनं समन्ततः

गदा हाथमें लिये हुए भीमसेनको देखकर उन हाथीसवार सैनिकोंने उन्हें यत्नपूर्वक चारों ओरसे घेर लिया ॥

गजमध्यमनुप्राप्तः पाण्डवः स व्यराजत ॥ ११ ॥
मेघजालस्य महतो यथा मध्यगतो रविः

उन गजसेनाके बीचमें पहुँचे हुए पाण्डुनन्दन भीमसेन महान् मेघसमूहके मध्यमें स्थित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥

व्यधमत् स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः ॥ १२ ॥
महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव सततम्

पाण्डवश्रेष्ठ भीमसेनने अपनी गदाकी चोटसे हाथी सवारोंकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, जैसे वायु महान् मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥

ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः ॥ १३ ॥

आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव

बलवान् भीमसेनके द्वारा मारे जाते हुए वे हाथी युद्धभूमिमें गर्जते हुए बादलोंके समान आर्तनाद करने लगे ॥

बहुधा दारितश्चैव विषाणैस्तत्र दन्तिभिः ॥ १४ ॥
फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि

हाथियोंके दाँतोंसे अनेक स्थानोंमें विदीर्ण हुए भीमसेन युद्धके मुहानेपर खिले हुए अशोक वृक्षके समान शोभा पा रहे थे ॥

विषाणे दन्तिनं गृह्य निर्विषाणमथाकरोत् ॥ १५ ॥
विषाणेन च तेनैव कुम्भे अभ्याहत्य दन्तिनम्
पातयामास समरे दण्डहस्त इवान्तकः ॥ १६ ॥

उन्होंने किसी दन्तार हाथीका दाँत पकड़कर उखाड़ लिया और उस हाथीको दन्तहीन बना दिया, फिर उसी दाँतके द्वारा उसके कुम्भस्थलपर प्रहार करके दण्डधारी यमराजकी भाँति समरभूमिमें मार गिराया ॥

शोणिताक्तां गदां बिभ्रन्मेदोमज्जाकृतच्छविः
कृताङ्गदः शोणितेन रुद्रवत् प्रत्यदृश्यत ॥ १७ ॥

रक्तसे सनी हुई गदा लेकर मेदा और मज्जासे लथपथ अपनी देहमें रक्तका अङ्गराग लगाये हुए भीमसेन रुद्रके समान दिखायी देते थे ॥

एवं ते वध्यमानास्तु हतशेषा महागजाः
प्राद्रवन्त दिशो राजन् विमृद्नन्तः स्वकं बलम् ॥ १८ ॥

राजन्! इस प्रकार भीमसेनकी मार खाकर मरनेसे बचे हुए महान् गज अपनी ही सेनाको रौंदते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगे ॥

द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद् भरतर्षभ
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ! सब ओर भागते हुए उन महान् गजोंके कारण दुर्योधनकी सारी सेना युद्धभूमिसे विमुख हो गयी ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमपराक्रमे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीमसेनका पराक्रम [illegible] एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्याय

उभय पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और रक्तमयी रणनदीका वर्णन

सञ्जय उवाच

मध्यंदिने महाराज सङ्ग्रामः समपद्यत
लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सोमकैः ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! दोपहर होते-होते भीष्म का सोमकोंके साथ लोकविनाशक भयंकर संग्राम होने लगा ॥

गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम्
व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्मने सैकड़ों और हजारों तीखे बाणोंकी वर्षा करके पाण्डवोंकी विशाल सेनाको नष्ट करना आरम्भ किया ॥ २ ॥

सम्ममर्द च तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव
धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥ ३ ॥

राजन् ! ... शत्रुओंके समूहका वध करते हुए आपके योद्धाओंका मर्दन करते हैं, उसी प्रकार आपके ताऊ देवव्रतने उस सेनाका रौद्र ...॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा।
भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम्॥ ४ ॥

तब धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विराट और द्रुपदने समरभूमिमें महारथी भीष्मके पास पहुँचकर उन्हें बाणोंसे घायल करना आरम्भ किया ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा विराटं च त्रिभिः शरैः।
द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत॥ ५ ॥

भारत ! तदनन्तर भीष्मने विराट और धृष्टद्युम्नको तीन बाणोंसे घायल करके द्रुपदपर नाराचका प्रहार किया ॥ ५ ॥

तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणामित्रकर्षिणा।
चुक्रुधुः समरे राजन् पादस्पृष्टा इवोरगाः॥ ६ ॥

राजन् ! शत्रुसूदन भीष्मके द्वारा घायल हुए वे धनुर्धर वीर पैरसे कुचले हुए सर्पोंकी भाँति समराङ्गणमें अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ६ ॥

शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम्।
स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नास्मै प्राहरदच्युतः॥ ७ ॥

शिखण्डीने भरतवंशियोंके पितामह भीष्मको बींध डाला, परंतु ... वे अपनी मर्यादासे च्युत न होनेवाले भीष्मने उसपर प्रहार नहीं किया ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधादग्निरिव ज्वलन्।
पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्न रणक्षेत्रमें क्रोधसे अग्निकी भाँति जल उठे। उन्होंने तीन बाणोंसे पितामह भीष्मकी भुजाओं और छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ८ ॥

द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याध सायकैः॥ ९ ॥

द्रुपदने पचीस, विराटने दस और शिखण्डीने पचीस बाणोंद्वारा भीष्मको घायल कर दिया ॥ ९ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज शोणितौघपरिप्लुतः।
वसन्ते पुष्पशबलो रक्ताशोक इवाबभौ॥ १० ॥

महाराज ! उनके बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेके कारण वे रक्तप्रवाहसे नहा उठे और वसन्त ऋतुमें पुष्पोंसे भरे हुए रक्त अशोककी भाँति शोभा पाने लगे ॥ १० ॥

तान् प्रत्यविध्यद् गाङ्गेयस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष॥ ११ ॥

आर्य ! उस समय गङ्गानन्दन भीष्मने उन सबको तीन-तीन सीधे जानेवाले बाणोंसे घायल कर दिया और एक भल्लके द्वारा द्रुपदका धनुष काट दिया ॥ ११ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः सुशितै रणमूर्धनि॥ १२ ॥

तब उन्होंने दूसरा धनुष हाथमें लेकर युद्धके मुहानेपर पाँच तीखे बाणोंद्वारा भीष्मको और तीन बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ १२ ॥

तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः।
केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः॥ १३ ॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः।
रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः॥ १४ ॥

महाराज ! भीमसेन, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, पाँचों भाई केकयराजकुमार, सात्वतवंशी सात्यकि, युधिष्ठिर आदि पाण्डव-वीर तथा धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल-वीर द्रुपदकी रक्षाके लिये गङ्गानन्दन भीष्मपर टूट पड़े ॥ १३-१४ ॥

तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः।
प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप॥ १५ ॥

नरेश्वर ! इसी प्रकार आपके समस्त सैनिक भीष्मकी रक्षाके लिये उद्यत हो पाण्डवसेनापर चढ़ आये ॥ १५ ॥

तत्रासीत् सुमहद् युद्धं तव तेषां च संकुलम्।
नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम्॥ १६ ॥

तब वहाँ उन सबके पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथी सवारोंमें अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध होने लगा, जो यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ १६ ॥

रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद् यमसादनम्।
तथेतरान् समासाद्य नरनागाश्वसादिनः॥ १७ ॥

रथी रथीका सामना करके उसे यमलोक पहुँचा देता था। इसी प्रकार हाथीसवार और घुड़सवारोंने भी एक-दूसरेसे भिड़कर ... ॥ १७ ॥

अनयन् परलोकाय शरैः संनतपर्वभिः।
अस्त्रैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशाम्पते॥ १८ ॥

प्रजानाथ ! उस युद्धस्थलमें जहाँ-तहाँ योद्धा झुकी हुई गाँठवाले बाणों तथा नाना प्रकारके भयंकर अस्त्रोंद्वारा अपने विपक्षियोंको परलोकका अतिथि बनाने लगे ॥ १८ ॥

रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा।
विप्रद्रुताश्वाः समरे दिशो जग्मुः समन्ततः॥ १९ ॥

कितने ही रथ रथियों और सारथियोंसे शून्य हो भागते हुए घोड़ोंके साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें चक्कर काटने लगे ॥ १९ ॥

मृद्नन्तस्ते नरान् राजन् हयांश्च सुबहून् रणे।
वातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः॥ २० ॥

राजन् ! वे रथ उस रणक्षेत्रमें आपके बहुत-से पैदल

मनुष्यों तथा घोड़े जलते हुए हाथीके समान दीख रहे थे और [illegible] समान हतित [illegible] हो रहे थे।

रथिनश्च रथैर्हीना धर्मिणश्चाश्वा युता
कु० लोचनीयेन तथ निष्काङ्क विभूषणा
देवपुत्रसमा सर्वे शौर्य शकसमा युधि
ऋद्ध्या वश्रवणं याति बधेन च बृहस्पतिम्
सर्वलोकेश्वरा शूरास्तत्र विशाम्पते
विप्रद्रुता व्यदृश्यन्त प्राकृता [illegible]

प्रजानाथ [illegible] कोई [illegible] गये तथा कुण्डल और पगड़ी धारण किये [illegible] दिखायी [illegible] उन सबने कवचोंको त्यागकर [illegible] और [illegible] वस्त्र धारण कर रखे [illegible] देवकुमारोंके तथा सुन्दर और [illegible] मान [illegible] युद्धमें कुबेर और [illegible] बृहस्पतिके भी [illegible] [illegible] और [illegible] ही [illegible] भांति [illegible] गये [illegible]

द्विरदाश्च [illegible] हीना [illegible]
सुहृन्तः [illegible] स्ववशं [illegible]

[illegible] किन ही हजार हाथी अपने [illegible] रहित हो अपनी ही [illegible] कुचलते हुए प्रत्येक [illegible] [illegible]

वर्मभिस्तत्रवैस्तैश्च [illegible] वारिणः
छत्रैः सितैर्हेमदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः
विप्रविद्धैर्विभाव्यन्ते वनस्पतौ यथा
नवमेघप्रतीकाशा जलदोपमनि स्वनाः

माननीय महाराज [illegible] विचित्र [illegible] कवच [illegible] सफेद छत्र [illegible] चामर [illegible] और [illegible] गर्जते हुए मेघोंके समान वे हाथी [illegible] लिये हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ते दिखायी देते।

तथैव दन्तिभिर्हीना गजारोहा विशाम्पते
प्रधावन्तोऽन्वदृश्यन्त तव तेषां च संकुले

प्रजानाथ [illegible] हाथियोंसे रहित हाथीसवार आपके और शत्रुओंके [illegible] इधर उधर दौड़ते दिखायी देते।

नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान् हेमभूषितान्
वातायमानानद्राक्ष शतशोऽथ सहस्रशः

अनेक देशोंमें उत्पन्न सुवर्णभूषित और वायुके समान वेगशाली सैकड़ों और हजारों घोड़ोंको हमने रणभूमिमें भागते देखा है।

अश्वारोहान् हतैरश्वैर्गृहीतासीन् समन्ततः
द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे

रण युद्धमें हुए घुड़सवारोंको देख जो योद्धोंके मारे जाने हाथमें तलवार लिये सब ओर भागते और शत्रुओंद्वारा [illegible] देखे गये।

गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे
ययौ विमृद्य तरसा पदातीन् वाजिनस्तथा

महायुद्धमें एक भागते हुए दूसरे हाथीके पास [illegible] अपने वेग [illegible] पैदल सैनिकों तथा घोड़ोंको कुचलता [illegible] [illegible]

तथा [illegible] राजन् प्रममाथ रथान् रणे
रथश्चैव समासाद्य पतितांस्तुरगान् भुवि

राजन् [illegible] प्रकार [illegible] एक हाथी बहुत [illegible] रथोंको [illegible] और [illegible] घोड़ोंको [illegible] जाते।

व्यमृद्नन् समरे राजंस्तुरगाश्च नरान् रणे
एवं बहुविधा राजन् प्रममन्थुः परस्परम्

[illegible] समरभूमिमें [illegible] हाने मनुष्योंको [illegible] प्रकार [illegible] अनेक बार [illegible] कुचलते [illegible]

तस्मिन् रौद्रे तथा युद्धे वर्तमाने महाभये
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्त्रतरङ्गिणी

महाभयंकर घोर युद्धमें रक्त आदि और [illegible] हुए एक भयानक नदी बह चली।

अस्थिसंघातसम्बाधा केशशैवलशाद्वला
रथह्रदा शरावर्ता हयमीना दुरासदा

[illegible] हड्डियोंके समूहरूपी शिलाखण्डों भरी थी [illegible] सिर [illegible] और [illegible] उसमें [illegible] कुण्ड और बाण भवर [illegible] होते [illegible] [illegible] दुर्गम [illegible]

शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला
कवचोष्णीषफेनाढ्या धनुर्वेगासिकच्छपा

[illegible] [illegible] पत्थरोंके टुकड़ोंके [illegible] हाथी उसमें विशाल ग्राहके समान जान पड़ते कवच और पगड़ी फेनराशिके समान [illegible] ही [illegible] वेगयुक्त प्रवाह और [illegible] ही वहां [illegible] समान प्रतीत होते थे।

पताकाध्वजवृक्षाढ्या मर्त्यकूलापहारिणी
क्रव्यादहंससंकीर्णा यमराष्ट्रविवर्धनी

[illegible] और [illegible] [illegible] वृक्षोंके समान जान पड़ती थी। मनुष्योंकी [illegible] ही [illegible] किनारे थे जिन्हें वह अपने [illegible] तोड़-फोड़कर बहा रही थी। मांसाहारी जन्तु ही उसके आस-पास [illegible] समान भरे हुए [illegible] वह नदी यमराजके राज्यको बढ़ा रही थी।

ता नदीं क्षत्रियाः शूरा रथनागहयप्लवैः ।
प्रतेरुर्बहवो राजन् भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥ ३७ ॥

राजन्! बहुत-से शूरवीर महारथी क्षत्रिय नौकाके समान घोड़े, रथ, हाथी आदिका आश्रय ले भयरहित हो उस नदीके पार जा रहे थे ॥ ३७ ॥

अपोवाह रणे भीरून् कश्मलेनाभिसंवृतान् ।
यथा वैतरणी प्रेतान् प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ३८ ॥

जैसे वैतरणी नदी मरे हुए प्राणियोंको यमराजके नगरमें पहुँचाती है, उसी प्रकार यह रक्तकी नदी डरपोक और कायरोंको मूर्च्छित करके रणभूमिसे दूर बहाने लगी ॥ ३८ ॥

प्राक्रोशन् क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद् वैशसं महत् ।
दुर्योधनापराधेन गच्छन्ति क्षत्रियाः क्षयम् ॥ ३९ ॥

वहाँ खड़े हुए क्षत्रिय वह अत्यन्त भयंकर मार-काट देखकर यह पुकार पुकारकर कहते थे कि दुर्योधनके अपराधसे ही सारे क्षत्रिय विनाशको प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३९ ॥

गुणवत्सु कथं द्वेषं धार्तराष्ट्रो जनेश्वरः ।
कृतवान् पाण्डुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥ ४० ॥

पापात्मा राजा धृतराष्ट्रने लोभसे मोहित होकर गुणवान् पाण्डवोंसे द्वेष क्यों किया ॥ ४० ॥

एवं बहुविधा वाचः श्रूयन्ते स्म परस्परम् ।
पाण्डवस्तवसंयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः ॥ ४१ ॥

महाराज! इस प्रकार वहाँ परस्पर कही हुई पाण्डवोंकी प्रशंसा तथा आपके पुत्रोंकी अत्यन्त भयंकर निन्दासे युक्त नाना प्रकारकी बातें सुनायी पड़ती थीं ॥ ४१ ॥

ता निशम्य तदा वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः ।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ४२ ॥

भीष्मं द्रोणं कृपं चैव शल्यं चोवाच भारत ।
युध्यध्वमनहंकाराः किं चिरं कुरुथेति च ॥ ४३ ॥

भारत! तब सम्पूर्ण योद्धाओंके मुखसे निकली हुई उन बातोंको सुनकर सम्पूर्ण लोकोंका अपराध करनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनने भीष्म, द्रोण, कृप और शल्यसे कहा— आपलोग अहंकारशून्य होकर युद्ध करें। विलम्ब क्यों कर रहे हैं? ॥ ४२-४३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
अक्षद्यूतकृतं राजन् सुघोरं वैशसं तदा ॥ ४४ ॥

राजन्! तदनन्तर कौरवोंका पाण्डवोंके साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा, जो जूएके कारण उत्पन्न हुआ था और जिसमें बड़ी भारी मार-काट मच रही थी ॥ ४४ ॥

यत् पुरा न निगृह्णासि वार्यमाणो महात्मभिः ।
वैचित्रवीर्य तस्येदं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ४५ ॥

विचित्रवीर्यनन्दन महाराज धृतराष्ट्र! पूर्वकालमें महात्मा पुरुषोंके मना करनेपर भी जो आपने उनकी बातें नहीं मानीं, उसीका यह भयंकर फल प्राप्त हुआ है, इसे देखिये ॥ ४५ ॥

न हि पाण्डुसुता राजन् ससैन्याः सपदानुगाः ।
रक्षन्ति समरे प्राणान् कौरवा वापि संयुगे ॥ ४६ ॥

राजन्! सेना और सेवकोंसहित पाण्डव अथवा कौरव समरभूमिमें अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं करते हैं। प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

एतस्मात् कारणाद् घोरो वर्तते स्वजनक्षयः ।
दैवाद् वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्नृप ॥ ४७ ॥

पुरुषसिंह! नरेश्वर! इस कारणसे अथवा दैवकी प्रेरणासे या आपके ही अन्यायसे होनेवाले इस युद्धमें स्वजनोंका घोर संहार हो रहा है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय, कौरव-पाण्डव सैनिकोंका घोर युद्ध, अभिमन्युसे चित्रसेनकी, द्रोणसे द्रुपदकी और भीमसेनसे बाह्लीककी पराजय तथा सात्यकि और भीष्मका युद्ध

संजय उवाच

अर्जुनस्तान् नरव्याघ्र सुशर्मानुगतान् नृपान् ।
अनयत् प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! पुरुषसिंह अर्जुन अपने तीखे बाणोंसे सुशर्माके अनुगामी नरेशोंको यमलोक भेजने लगे ॥ १ ॥

सुशर्मापि ततो बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे ।
वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः ॥ २ ॥

तब सुशर्माने भी युद्धस्थलमें अनेक बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको घायल कर दिया। फिर उसने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको सत्तर और अर्जुनको नौ बाण मारे ॥ २ ॥

तान् निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः ।

सुदामाणो रथो यस्माद् प्रहिंसाय पराक्रमम् ॥ ३ ॥

यह देख कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुनने अपने बाणसमूहोंद्वारा सुशर्माको रोककर रणक्षेत्रमें उसके योद्धाओंको यमलोक पहुँचाना आरम्भ किया ॥ ३ ॥

ते वध्यमाना पार्थेन कालेनेव युगक्षये
व्यद्रवन्त रणे राजन् भये जाते महारथाः ॥ ४ ॥

राजन्! जैसे युगान्तमें साक्षात् काल प्रजाका संहार करता है, उसी प्रकार रणक्षेत्रमें अर्जुनके द्वारा मारे जाते हुए वे महारथी भयके मारे मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ ४ ॥

उत्सृज्य तुरगान् केचिद् रथान् केचिच्च मारिष
गजानन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५ ॥

आर्य! कुछ लोग घोड़ोंको, कुछ दूसरे लोग रथोंको और दूसरे लोग हाथियोंको छोड़कर दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ५ ॥

अपरे तु तदाऽऽदाय वाजिनागरथान् रणे
त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशाम्पते ॥ ६ ॥
पादाताश्चापि शस्त्राणि समुत्सृज्य महाहवे
निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥ ७ ॥

प्रजानाथ! दूसरे योद्धा रथ, घोड़े और हाथियोंको साथ लेकर बड़ी उतावलीके साथ भागे। भरतनन्दन! उस महायुद्धमें पैदल सिपाही भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंको फेंककर उनकी कोई अपेक्षा न रखकर जिधर-तिधर भागने लगे ॥ ६-७ ॥

वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा
तथान्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥ ८ ॥

त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा अन्य श्रेष्ठ नरेशोंने भी बारंबार उन्हें रोकनेका प्रयत्न किया, तथापि वे सैनिक युद्धमें ठहर न सके ॥ ८ ॥

तद् बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः ॥ ९ ॥
सर्वोद्योगेन महता धनंजयमुपाद्रवत्
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते ॥ १० ॥

प्रजानाथ! उस सेनाको भागती देख आपका पुत्र दुर्योधन रणभूमिमें भीष्मको आगे करके सम्पूर्ण सेनाओंके साथ महान् प्रयत्नपूर्वक धनंजयपर धावा किया। प्रजानाथ! उसने त्रिगर्तराजके जीवनकी रक्षाके लिये ऐसा किया ॥ ९-१० ॥

स एकः समरे तस्थौ किरन् बहुविधाञ्छरान्
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः शेषा वि प्रद्रुता नराः ॥ ११ ॥

केवल दुर्योधन ही अपने समस्त भाइयोंके साथ नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करता हुआ रणभूमिमें खड़ा रहा। शेष सब मनुष्य भाग गये ॥ ११ ॥

तथैव पाण्डवा राजन् सर्वोद्योगेन दंशिताः
प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ॥ १२ ॥

राजन्! उसी प्रकार पाण्डव भी कवच बाँधकर सम्पूर्ण उद्योगके साथ अर्जुनकी रक्षाके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ भीष्म खड़े थे ॥ १२ ॥

ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥ १३ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनका भयंकर पराक्रम जानते हुए वे लोग हाहाकार करते और उत्साह दिखाते हुए सब ओरसे भीष्मपर आक्रमण करने लगे ॥ १३ ॥

ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानामनीकिनीम्
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः ॥ १४ ॥

तदनन्तर तालचिह्नित ध्वजवाले शूरवीर भीष्मने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे युद्धमें पाण्डवसेनाको आच्छादित कर दिया ॥ १४ ॥

एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ १५ ॥

महाराज! तदनन्तर समस्त कौरव एकत्र संगठित होकर दोपहर होते-होते पाण्डवोंके साथ घोर युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन् बाणान् सहस्रशः ॥ १६ ॥

शूरवीर सात्यकि कृतवर्माको पाँच बाणोंसे घायल करके समरभूमिमें सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए खड़े रहे ॥ १६ ॥

तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चास्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥

इसी प्रकार राजा द्रुपदने द्रोणाचार्यको पैने बाणोंसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंसे बींध डाला और पाँच बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ १७ ॥

भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीकं प्रपितामहम्
विद्ध्वा ननाद सुमहच्छार्दूल इव कानने ॥ १८ ॥

भीमसेनने अपने प्रपितामह राजा बाह्लीकको बाणोंद्वारा घायल करके वनमें सिंहके समान बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १८ ॥

आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन् बाणान् सहस्रशः ॥ १९ ॥

अर्जुनकुमार अभिमन्युको चित्रसेनने बहुत-से बाणोंद्वारा घायल कर दिया था, तो भी शूरवीर अभिमन्यु सहस्रों बाणोंकी वर्षा करता हुआ युद्धभूमिमें डटा रहा ॥ १९ ॥

चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम्
समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ॥ २० ॥

यथा दिवि महाघोरौ राजन् बुधशनैश्चरौ।

उनमें ऐसे बाणोंसे समराङ्गणमें चित्रसेनको अत्यन्त घायल कर दिया। राजन्! जैसे आकाशमें दो भयंकर ग्रह बुध और शनैश्चर सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार वे महान् वीर चित्रसेन और अभिमन्यु रणभूमिमें शोभा पा रहे थे ॥ २०॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः ॥ २१ ॥
ननाद बलवान् नादं सौभद्रः परवीरहा।

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमार अभिमन्युने चित्रसेनके चारों घोड़ोंको मारकर नौ बाणोंसे उसके सारथिको भी नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २१ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः ॥ २२ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते।

महाराज! घोड़ोंके मारे जानेपर महारथी चित्रसेन तुरंत रथसे कूद पड़ा और दुर्मुखके रथपर आरूढ़ हो गया ॥ २२ ॥

द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा शरैः संनतपर्वभिः ॥ २३ ॥
सारथिं चास्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी।

पराक्रमी द्रोणाचार्यने भी झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे द्रुपदको घायल करके बड़ी उतावलीके साथ उनके सारथिको भी बींध डाला ॥ २३ ॥

पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे ॥ २४ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन्।

इस प्रकार युद्धके मुहानेपर द्रोणाचार्यसे पीड़ित हो राजा द्रुपद पूर्व वैरका स्मरण करते हुए शीघ्रगामी घोड़ोंद्वारा वहाँसे भाग गये ॥ २४ ॥

भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम् ॥ २५ ॥
व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

भीमसेनने दो ही घड़ीमें सारी सेनाके देखते-देखते राजा बाह्लीकको घोड़े, सारथि तथा रथसे शून्य कर दिया ॥ २५ ॥

ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ॥ २६ ॥
अवप्लुत्य ततो वाहाद् बाह्लीकः पुरुषोत्तमः।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे ॥ २७ ॥

महाराज! नरश्रेष्ठ बाह्लीक बड़ी घबराहटमें पड़ गये। उनका जीवन अत्यन्त संशयमें पड़ गया। उस अवस्थामें वे रथसे कूदकर तुरंत ही उस महायुद्धमें लक्ष्मणके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ २६-२७ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम् ॥ २८ ॥

राजन्! दूसरी ओर उस महायुद्धमें सात्यकिने कृतवर्माको रोककर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए पितामह भीष्मपर धावा किया ॥ २८ ॥

स विद्ध्वा भारतं षष्ट्या निशितैर्लोमवाहिभिः।
ननर्तेव रथोपस्थे विधुन्वानो महद् धनुः ॥ २९ ॥

सात्यकि अपने विशाल धनुषको हिलाते हुए रथकी बैठकमें नृत्य करते हुए-से जान पड़ते थे। उन्होंने तीखे बाणोंद्वारा भरतवंशी पितामह भीष्मको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाथ पितामहः।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥ ३० ॥

पितामहने लोहेकी बनी हुई एक विशाल शक्ति सात्यकिपर चलायी, जो सुवर्णजटित, अत्यन्त वेगशालिनी तथा नागकन्याके समान आकारवाली एवं सुन्दर थी ॥ ३० ॥

तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम्।
व्यंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः ॥ ३१ ॥

उस मृत्युके तुल्य दुर्जय शक्तिको सहसा आती देख महायशस्वी सात्यकिने अपनी फुर्तीके कारण उसको व्यर्थ कर दिया ॥ ३१ ॥

अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा।
न्यपतद् धरणीपृष्ठे महोल्केव महाप्रभा ॥ ३२ ॥

वह परम भयंकर शक्ति सात्यकितक न पहुँचकर अत्यन्त तेजस्विनी बड़ी भारी उल्काके समान पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३२ ॥

वार्ष्णेयस्तु ततो राजन्
स्वां शक्तिं कनकप्रभाम्।
वेगवद् गृह्य चिक्षेप
पितामहरथं प्रति ॥ ३३ ॥

राजन्! तब सात्यकिने भी अपनी सुवर्णके समान कान्तिवाली शक्ति लेकर उसे बड़े वेगसे पितामह भीष्मके रथपर चलाया ॥ ३३ ॥

वार्ष्णेयभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे।
अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ॥ ३४ ॥

उस महासमरमें सात्यकिकी भुजाओंके वेगसे चलायी हुई वह शक्ति अत्यन्त वेगसे भीष्मकी ओर चली, मानो कालरात्रि मनुष्यकी ओर जा रही हो ॥ ३४ ॥

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत।
क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां सा व्यशीर्यत मेदिनीम् ॥ ३५ ॥

भरतनन्दन! भीष्मने सहसा अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको दो तीखे क्षुरप्रोंद्वारा काटकर दो टुकड़े कर दिया। वह छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३५ ॥

छित्त्वा शक्तिं तु गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्शत्रुकर्षणः ॥ ३६ ॥

[illegible] हैं ... [illegible] ... [illegible] लोग युद्धभूमिमें भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया [illegible] ॥

नरव्याघ्रास्तथा पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज
परिवार्य रणे भीष्मं [illegible]

[illegible] ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
पाण्डवानां कुरूणां च समरे विजयैषिणाम्॥

[illegible] युद्ध ... [illegible] ... कौरवों पाण्डवोंमें परस्पर घोर युद्ध [illegible] ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि [illegible] चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें [illegible] ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्याय

दुर्योधनका दुःशासनको भीष्मकी रक्षाके लिये आदेश, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवके द्वारा शकुनिकी घुड़सवार-सेनाकी पराजय तथा शल्यके साथ उन सबका युद्ध

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम्।
यथा मेघा महाराज तपान्ते दिवि भास्करम्॥
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत।

सञ्जय कहते हैं— [illegible] ... [illegible] ... उन्हें [illegible] पाण्डवोंने युद्धभूमिमें घेर लिया [illegible] ... दुर्योधनने दुःशासनसे कहा— ॥

एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शत्रुनिषूदनः।
छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद् भरतर्षभ॥

[illegible] ... [illegible] ... महाधनुर्धर [illegible] पाण्डवोंने चारों ओरसे घेर लिया है ॥

तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः।
रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः॥
निहन्यात् समरे यत्तान् पाञ्चालान् पाण्डवैः सह।

वीर! तुम्हें उन महात्मा भीष्मकी रक्षा करनी चाहिये। युद्धमें सुरक्षित [illegible] हमारे पितामह भीष्म समराङ्गणमें विजयके लिये [illegible] पाण्डवोंसहित पाञ्चालोंको [illegible] डालेंगे ॥

तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम्।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः॥

अतः इस समय मैं भीष्मजीकी रक्षा ही प्रधान [illegible] ... [illegible] महाधनुर्धर भीष्म हमलोगोंके रक्षक हैं ॥

स भवान् सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम्।
समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु॥

अतः तुम सारी सेना साथ लेकर युद्धभूमिमें दुष्कर कर्म करनेवाले पितामह भीष्मको घेरकर [illegible] उनकी रक्षा करो ॥

एवमुक्तस्तु समरे पुत्रो दुःशासनस्तव।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः॥

[illegible] ... दुर्योधनके [illegible] ... आपका पुत्र दुःशासन भीष्मको [illegible] और [illegible] महती सेनाके [illegible] उनकी रक्षा करने लगा ॥

ततः शतसहस्राणां हयानां सुबलात्मजः।
विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम्॥
दर्पितानां सुवेगानां बलस्थानां पताकिनाम्।
शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः॥

तब सुबलपुत्र शकुनि [illegible] ... [illegible] साथ ... [illegible] ... वेगशाली [illegible] युद्धकुशल [illegible] ... [illegible] ... बलवान् ... [illegible] ... [illegible] ... थे, [illegible] ... घुड़सवारोंके साथ ... ॥

नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम्।
न्यवारयन्नरश्रेष्ठान् परिवार्य समन्ततः॥

राजन् ! शकुनि नकुल सहदेव तथा धर्मराज युधिष्ठिर—इन तीनों श्रेष्ठ पुरुषोंको सब ओरसे घेरकर बाणोंसे आगे बढ़नेसे रोकने लगा ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम् ।
अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां विनाशने ॥ ११ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनने पाण्डवोंका विनाश करनेके लिये दस हजार घुड़सवार सैनिक और भेजे ॥ ११ ॥

ते प्रविष्टमहावेगैरश्वैः शीघ्रैरिवाहवे ।
(जगुर्मस महात्मानः शकुनिं सुबलात्मजम् ।
सैन्यं सुमहदावीवोरश्वैर्भीमैरिव वाजिभिः ॥)

गधकर वेगसे चलनेवाले उन घोड़ोंसे युक्त वह सेना रणभूमिमें प्रवेश करके धूलसे भर गयी... उस समय वहाँ महात्मा सुबलपुत्र शकुनि युधिष्ठिर आदि तथा सुबलपुत्र शकुनि... ॥ १५ ॥

राजन् ! उन घोड़ोंकी टापोंसे आहत होकर वह धरती काँपने और मेघके समान शब्द करने लगी ॥ १८ ॥

खुरशब्दश्च सुमहान् वाजिनां शुश्रुवे तदा ।
महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ १३ ॥

उस समय घोड़ोंकी टापोंका महान् शब्द सुनायी दे रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतपर बाँसोंका महान् वन जल रहा हो ॥ १३ ॥

उदतिष्ठन्महद् रजो भूमितलात् तथा ।
दिवाकररथं प्राप्य छादयामास भास्करम् ॥ १४ ॥

वहाँ भूतलसे उठकर ऊपरको उड़ती हुई बहुत बड़ी धूल सूर्यके रथतक पहुँचकर उन्हें आच्छादित कर दिया ॥ १४ ॥

क्षोभयद्भिश्च तैस्तत्र तुरगैर्वेगवत्तरैः ।
निपतद्भिर्महावेगैर्हयैरिव महद् सरः ॥ १५ ॥

उन वेगशाली घोड़ोंने पाण्डव-सेनाको उसी प्रकार क्षुब्ध कर दिया, जैसे महान् वेगवाले हंस किसी विशाल सरोवरमें घुसकर जलको मथ डालते हैं ॥ १५ ॥

(दुर्योधनस्य तत् सैन्यं व्याकुलीकृतम् ।)
हेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किंचन ।

वायुके समान वेगशाली उन घोड़ोंने पाण्डव-सेनाको व्याकुल कर दिया । उनकी हिनहिनाहटकी आवाजसे दूसरा कोई शब्द नहीं सुनायी पड़ता था ॥ १६ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १६ ॥
प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम् ।
प्रावृट्काले महावेगं वायुं शैलमिवाचलम् ॥ १७ ॥
पौर्णमास्यामिवोद्वृत्तं यथा वेला महोदधेः ।

महाराज ! तब राजा युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवने समराङ्गणमें घुड़सवारोंका वेग रोक दिया, जैसे वर्षाकालमें महान् वेगशाली वायुको अचल पर्वत रोक देता है, अथवा जैसे पूर्णिमाके दिन उमड़े हुए महासागरको उसकी तटभूमि रोक देती है ॥ १६-१७ ॥

ततस्ते रथिनो राजन् शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि कायेभ्यो हयसादिनाम् ।

राजन् ! तत्पश्चात् उन रथी वीरोंने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा घुड़सवारोंके मस्तक काट डाले ॥ १८ ॥

ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥ १९ ॥
नागैरिव महानागा यथा स्युर्गिरिगह्वरे ।

महाराज ! उन सुदृढ़ धनुर्धरोंके हाथसे मारे जाकर वे घुड़सवार पृथ्वीपर उसी प्रकार गिर पड़े, जैसे पर्वतकी कन्दरामें बड़े-बड़े हाथियोंसे मारे गये हाथी गिरते हैं ॥ १९ ॥

तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ।

वे पाण्डव वीर भी सब दिशाओंमें विचरते हुए तीखे प्रासों और झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा शत्रुओंके मस्तक काटने लगे ॥ २० ॥

अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥ २१ ॥
अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः ।

भरतश्रेष्ठ ! ऋष्टियोंद्वारा मारे गये घुड़सवार अपने मस्तकोंको उसी प्रकार गिराने लगे, जैसे बड़े-बड़े वृक्ष अपने फल गिराते हैं ॥ २१ ॥

ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निषूदिताः ॥ २२ ॥
पतिताः पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।

राजन् ! सवारोंसहित वहाँ मारे गये घोड़े सब ओर गिरे और गिराये जाते दिखायी देते थे ॥ २२ ॥

वध्यमाना हयास्ते तु प्राद्रवन्त भयार्दिताः ॥ २३ ॥
यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ।

जैसे सिंहका सामना पड़ जानेपर मृग भयभीत हो अपने प्राण बचानेके लिये भागते हैं, उसी प्रकार मारे जाते हुए वे घोड़े भयसे व्याकुल हो प्राण लेकर भागने लगे ॥ २३ ॥

पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून् महाहवे ॥ २४ ॥
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुरुत्कटाः ।

महाराज ! पाण्डव उस महासमरमें शत्रुओंको जीतकर शङ्ख फूँकने और नगाड़े पीटने लगे ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम् ॥ २५ ॥
अब्रवीद् भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः ।

भरतश्रेष्ठ ! तब अपनी सेनाको पराजित देख दुर्योधनने दीन होकर मद्रराज शल्यसे इस प्रकार कहा— ॥ २५ ॥

एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो धर्मात्मा सहितो रणे ॥ २६ ॥
पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयते प्रभो ।
न चास्य महाबाहो वर्तते भयमव्ययम् ॥ २७ ॥
त्वं हि मत्प्रसादात्सर्वमसहायपराक्रम ।

महाबाहो ! ये ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर नकुल और सहदेवको साथ लेकर रणभूमिमें आपलोगोंके देखते-देखते मेरी सेनाको खदेड़ रहे हैं । प्रभो ! महाबाहो ! वैसे तो आपका पराक्रम अकेले ही अद्भुत है, तथापि इस समय आप भी युधिष्ठिरका आगे बढ़ना रोकिये, क्योंकि आपका बल और पराक्रम असह्य समझा जाता है ॥ २३ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो वाक्यं श्रुत्वा स्वयं ततः ॥ २८ ॥
न च यावत् धनुष्पाणिर्न राजा युधिष्ठिरः ।

राजन् ! आपके पुत्रकी यह बात सुनकर प्रतापी राजा शल्य रथसमूहके साथ जहाँ राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे, वहाँ जा पहुँचे ॥ २८ ॥

तमापतन्तं सहसा शल्यस्य सुमहद् बलम् ॥ २९ ॥
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ।
मद्रराजं न समरे धर्मराजो महारथः ॥ ३० ॥

उस समय महान् जलप्रवाहके समान आते हुए राजा शल्यकी उस विशाल वाहिनीको तथा स्वयं मद्रराजको भी पाण्डुपुत्र महारथी धर्मराज युधिष्ठिरने उस महान् वेगशाली प्रवाहके समान बढ़कर भूमिमें रोक दिया ॥ २९-३० ॥

द्वावपि मातुलेयौ तौ तदा वीरौ रणान्तरे ।
नकुलं सहदेवं च न समभिजिहाते ॥ ३१ ॥

उसके बाद राजा शल्यने युद्धमें दो भानजे वीर नकुल और सहदेवको भी तीखे बाणोंद्वारा घायल करके रोक दिया ॥ ३१ ॥

मद्रराजोऽपि तान् सर्वान् समरेषु शिलाशितैः ।
युधिष्ठिरं पुनः सप्तत्या विव्याध विशिखैः शरैः ॥ ३२ ॥

तब मद्रराज शल्यने भी उनको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया । फिर युधिष्ठिरको उन्होंने सत्तर तीखे बाण मारे ॥ ३२ ॥

माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ तावुभावभ्यवारयत् ।
(पुनः स च मद्राधिपो राजानं युधिष्ठिरम् ।)

फिर दोनों माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवको भी उन्होंने घायल कर दिया तथा अनेक बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको भी पुनः चोट पहुँचायी ॥ ३३ ॥

ततो भीष्मो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ ३४ ॥
मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
अभ्यधावत संग्रामे युधिष्ठिरमरिंदमः ॥ ३५ ॥

तब शत्रुदमन महाबाहु भीष्मने रणभूमिमें राजा युधिष्ठिरको मृत्युके मुखमें पड़े हुएके समान मद्रराजके रथके समीप पहुँचा हुआ देखकर युद्धके लिये वहाँ धावा किया ।

(आपतन्तं च भीष्मं तु मद्रराजसमावृतम् ।
सपत्राकैर्नीलाश्वैर्नाराचैर्दिवि ॥
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्येन महता वृतौ ।
राजानमभ्यपद्येतां शत्रुघ्नौ ॥)

भीष्मजीको आते देख, आपके पुत्र पास आ गये और रथयात्रा का विरोध करनेमें लग गये । दोनों महान् आक्रमण करते हुए पहुँचे । तब भीष्म और द्रोणाचार्य सेनासहित महारथी विशाल सेनासे आवृत हो धर्मराजके पास पहुँच गये ।

ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
अपरां दिशमास्थाय द्योतमाने दिवाकरे ॥ ३५ ॥

तदनन्तर जब सूर्यदेव पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर अस्ताचलको जा रहे थे, उस समय दोनों सेनाओंमें अत्यन्त दारुण महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

षडधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मके द्वारा पराजित पाण्डवसेनाका पलायन और भीष्मको मारनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको अर्जुनका रोकना

सञ्जय उवाच
राजा विराट सम्पूर्ण कुन्तीपुत्रो निशितैः सायकैः शरैः ।
अवध्यन रणे पार्थान् सहसेनान् समन्ततः ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं— महाराज ! तब आपके ताऊ देवव्रत युधिष्ठिर को तथा पाण्डवोंको तीखे बाणोंसे सेनासहित कुन्तीकुमारोंको सब ओरसे घायल करने लगे ॥ १ ॥

भीमं द्वादशभिर्विद्ध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः ।
नकुलं च त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २ ॥

युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाणैरुरसि मार्गणैः।

उन्होंने भीमसेनको बारह, सात्यकिको नौ, नकुलको तीन और सहदेवको सात बाणोंसे घायल करके राजा युधिष्ठिरकी दोनों भुजाओं और छातीमें बारह बाण मारे ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा ननाद सुमहाबलः ॥ ३ ॥
तं द्वादशभिर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः।
धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत् पितामहम्।

तदनन्तर धृष्टद्युम्नको भी घायल करके महाबली भीष्म सिंहके समान गर्जना की। तब नकुलने बारह, सात्यकिने तीन, धृष्टद्युम्नने सत्तर, भीमसेनने सात तथा युधिष्ठिरने बारह बाण मारकर पितामह भीष्मको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु सात्यकिं विद्ध्वा भीमसेनमविध्यत ॥ ५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः।

द्रोणाचार्यने पहले सात्यकिको घायल करके फिर भीमसेनको बींध डाला। उन्होंने एक-एकको यमदण्डके समान भयंकर पाँच-पाँच तीखे बाण मारे ॥ ५ ॥

तौ च तं प्रत्यविध्येतां शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६ ॥
तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम्।

तब उन दोनोंने भी झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे ब्राह्मणशिरोमणि द्रोणको उसी प्रकार घायल किया, जैसे महावत अंकुशोंसे महान् गजराजको पीड़ित करते हैं ॥ ६ ॥

सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ७ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः।
संग्रामे नाजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ८ ॥

सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति देशके योद्धा शत्रुओंके तीखे बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी समरभूमिमें भीष्मको छोड़कर नहीं भागे ॥ ७-८ ॥

तथैवान्ये महीपाला नानादेशसमागताः।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार विभिन्न देशोंसे आये हुए अन्य भूपाल भी हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये पाण्डवोंपर आक्रमण करने लगे ॥ ९ ॥

तथैव पाण्डवा राजन् परिवव्रुः पितामहम्।
स समन्तात् परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥ १० ॥
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन् परान्।

राजन्! पाण्डवोंने भी पितामह भीष्मको घेर लिया। चारों ओरसे रथसमूहोंद्वारा घिरे हुए अपराजित वीर भीष्म गहन वनमें लगायी हुई आगके समान शत्रुओंको दग्ध करते हुए प्रज्वलित हो उठे ॥ १० ॥

रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ॥ ११ ॥
शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान्।

रथ ही उनके लिये अग्निशालाके समान था। धनुष आगकी लपटके समान प्रकाशित होता था। खड्ग, शक्ति और गदा आदि अस्त्र-शस्त्र समिधाका काम कर रहे थे। बाण चिनगारियोंके समान थे। इस प्रकार भीष्मरूपी अग्नि वहाँ क्षत्रियशिरोमणियोंको दग्ध करने लगी ॥ ११ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद् बलम्।
अपातयद् ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥ १३ ॥

उन्होंने स्वर्णमय पंख, गीधकी पाँख तथा उत्तम तेजवाले कर्णी, नालीक और नाराच नामक बाणोंद्वारा उस सेनाको आच्छादित कर दिया। तीखे बाणोंसे ध्वजों और रथियोंको भी मार गिराया ॥ १२-१३ ॥

मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान्।
निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजानश्वांश्च संयुगे ॥ १४ ॥
अकरोत् स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीष्मने रथसमूहोंको मूँड़े हुए तालवनके समान कर दिया। राजन्! युद्धभूमिमें उन्होंने रथों, हाथियों और घोड़ोंको मनुष्योंसे रहित कर दिया ॥ १४ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ १५ ॥
निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत।
अमोघा ह्यपतन् बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ॥ १६ ॥

उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी। भारत! उसे सुनकर समस्त प्राणी काँप उठते थे। भरतश्रेष्ठ! आपके ताऊ भीष्मके बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते थे ॥ १५-१६ ॥

नासज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः।
हतान् वीरान् रथान् राजन् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ॥ १७ ॥
वातायमानान् पश्याम ह्रियमाणान् रणाजिरे।

राजन्! भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाण कवचोंमें नहीं अटकते थे (उन्हें छिन्न-भिन्न करके भीतर घुस जाते थे)। महाराज!

[illegible] [illegible] [illegible] देख जिनके [illegible] [illegible] [illegible] रथ वेग से [illegible] [illegible] पहिये [illegible] हुए [illegible] मारने [illegible] [illegible] [illegible] गये थे

पतितैर्वीरैश्चलवाला ध्वजैश्चापि [illegible] ॥
महारथैः समाकीर्णा कुलपुत्रैस्तनुत्यजैः
अपरावर्तिभिः [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुई थी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] महारथा [illegible] सहस्रशः ॥ २१ ॥

[illegible] [illegible] महारथ [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २२ ॥
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] ॥ २३ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] विनिपातितैः ॥ २४ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] और अनेक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गयी थी

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २५ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] मार दिये गये थे [illegible] हाथी और घोड़े [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] महारथान् ॥ २६ ॥
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] महात्मनाम् ॥ २७ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]

[illegible] [illegible] ॥ २८ ॥
[illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २९ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] पाण्डुपुत्रस्य [illegible] ॥ ३० ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पाण्डुपुत्र [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३१ ॥
[illegible] पाण्डुपुत्रस्य [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] युधिष्ठिरने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३२ ॥
[illegible] पार्थ [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अर्जुनसे कहा

[illegible] [illegible] [illegible] पार्थ [illegible] [illegible] ॥ ३३ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अभिलाषा और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यदि तुम [illegible] [illegible] नहीं हो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३३ ॥

[illegible] पुरा [illegible] वीर [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३४ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ३५ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इति तत् कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिंदम ॥ ३६ ॥
क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ।

वीर ! तात ! पूर्वकालमें विराटनगरके भीतर जब समस्त राजा एकत्र हुए थे, उनके समक्ष और सबके समीप जो तुमने यह कहा था कि मैं युद्धमें जो मेरा सामना करने आयेगा, दुर्योधनके उन भीष्म, द्रोण आदि समस्त सैनिकोंको उनके सम्बन्धियोंसहित मार डालूँगा। कुन्तीनन्दन ! अपने उस कथनको सत्य कर दिखाओ। क्षात्रधर्मका स्मरण करके चिन्ता छोड़कर युद्ध करो ॥ ३४—३६½ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥ ३७ ॥
अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने मुँह नीचे किये तिरछी दृष्टिसे देखते हुए अनिच्छुककी भाँति उनसे इस प्रकार कहा ॥ ३७½ ॥

अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम् ॥ ३८ ॥
दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ।

प्रभो ! अवध्य महापुरुषोंका वध करके नरकसे भी बढ़कर निन्दनीय राज्य प्राप्त करूँ अथवा वनवासके कष्ट भोगूँ—इन दोनोंमेंसे मेरे लिये पुण्यदायक क्या है ॥ ३८ ॥

चोदयाश्वान् यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥ ३९ ॥
पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् ।

अच्छा, जहाँ भीष्म हैं, उसी ओर घोड़ोंको बढ़ाइये। आज मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। कुरुकुलके वृद्ध पितामह दुर्धर्ष वीर भीष्मको मार गिराऊँगा ॥ ३९ ॥

ततोऽश्वान् रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ॥ ४० ॥
यतो भीष्मस्ततो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिमानिव ।

राजन् ! तब भगवान् श्रीकृष्णने चाँदीके समान श्वेत रंगवाले घोड़ोंको उसी ओर हाँका, जहाँ सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य भीष्म युद्ध कर रहे थे ॥ ४० ॥

ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ।

महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनको भीष्मके साथ युद्ध करनेके लिये उद्यत देख युधिष्ठिरकी वह भागती हुई विशाल सेना पुनः लौट आयी ॥ ४१½ ॥

ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद् विनदन् मुहुः ॥ ४२ ॥
धनंजयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ।

तब बारंबार सिंहनाद करते हुए कुरुश्रेष्ठ भीष्मने अर्जुनके रथपर शीघ्र ही बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४२½ ॥

क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ॥ ४३ ॥
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ।

भारत ! एक ही क्षणमें बाणोंकी उस भारी वर्षासे घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित उनका वह रथ ऐसा आच्छन्न हो गया कि उसका कुछ पता ही नहीं चलता था ॥ ४३½ ॥

वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः ॥ ४४ ॥
चोदयामास तानश्वान् वितुन्नान् भीष्मसायकैः ।

भगवान् श्रीकृष्ण बिना किसी घबराहटके धैर्य धारण कर भीष्मके बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए उन घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक हाँक रहे थे ॥ ४४ ॥

ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ॥ ४५ ॥
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा शितैः शरैः ।

तब कुन्तीकुमारने मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले अपना दिव्य धनुष हाथमें लेकर तीखे बाणोंद्वारा भीष्मका धनुष काट गिराया ॥ ४५ ॥

स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद् धनुः ॥ ४६ ॥
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ।

धनुष कट जानेपर आपके ताऊ कुरुकुलनन्दन भीष्मने पुनः दूसरा विशाल धनुष हाथमें ले पलक मारते-मारते उसपर प्रत्यंचा चढ़ा दी ॥ ४६ ॥

विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४७ ॥
अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ।

तदनन्तर मेघके समान गम्भीर स्वरवाले उस धनुषको उन्होंने दोनों हाथोंसे खींचा। इतनेमें कुपित हुए अर्जुनने उनके उस धनुषको भी काट दिया ॥ ४७ ॥

तस्य तत् पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ॥ ४८ ॥
साधु पार्थ महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ।

शान्तनुनन्दन भीष्मने अर्जुनकी उस फुर्तीकी बड़ी सराहना की और कहा—'महाबाहु पार्थ ! साधु-साधु। कुन्तीनन्दन ! तुम धन्य हो।' ॥ ४८ ॥

साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥ ४९ ॥
समाभाष्यैनमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
मुमोच समरे भीष्मः शरान् पार्थरथं प्रति ॥ ५० ॥

महाबाहो ! कुन्तीकुमार ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, तुम्हें साधुवाद ! ऐसा कहकर भीष्मने पुनः दूसरा सुन्दर धनुष लेकर समराङ्गणमें अर्जुनके रथकी ओर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४९-५० ॥

अदर्शयद् वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान् कुर्वञ्छरांस्तस्य मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंके हाँकनेमें अपनी अद्भुत शक्ति दिखायी। वे भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाते हुए भीष्मके बाणोंको व्यर्थ करते जा रहे थे ॥ ५१ ॥

([illegible] ।
भीष्मसायकान् [illegible] ॥

वार्ष्णेय युधि राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत्
पार्थस्तु कुरुकुल शिरसाभ्यर्दितम्
अवर्षद् बाणवर्षेण योद्धुमभिमुखो रणे ।
तावुभौ युधि दुर्धर्षौ युयुधाते परस्परम् ॥

युद्धस्थलमें भगवान् श्रीकृष्ण कुशलतापूर्वक रथसंचालन करते दिखायी दिये। राजेन्द्र! भीष्म अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्धमें पार्थके ऊपर बारंबार बाणोंकी वर्षा करते रहे। यह अद्भुत-सी बात थी। फिर अर्जुनने भी युद्धके लिये अपने सामने खड़े हुए भीष्मपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। वे दोनों रणदुर्मद वीर एक दूसरेसे युद्ध करने लगे ॥

युयुधाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ५२ ॥

उस समय युद्धपरिषद् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही भीष्मके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। वे दो साँड़ोंके समान सींगोंके प्रहारसे सुशोभित हो रहे थे ॥

भीष्मोऽपि च सुसंक्रुद्धः कृष्णपार्थौ शरोत्तमैः
अभ्यधावत् समरे मूर्ध्नि सिंहवद् विनदन् मुहुः ॥

तत्पश्चात् भीष्मने भी रणक्षेत्रमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने बाणोंद्वारा अर्जुनके मस्तकपर आघात किया। उसके बाद वे बारंबार सिंहके समान गर्जना करने लगे ॥

वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम्
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥ ५३ ॥
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः
वरान् वरान् विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥ ५४ ॥
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अर्जुन मन्द गतिसे युद्ध कर रहे हैं, वे भीष्मके प्रति कोमलता दिखा रहे हैं और उधर भीष्म युद्धमें दोनों सेनाओंके मध्यभागमें खड़े हो निरन्तर बाणोंकी वर्षा करते हुए दोपहरके सूर्यके समान तप रहे हैं, पाण्डव-सेनाके चुने हुए उत्तमोत्तम वीरोंको मार रहे हैं और युधिष्ठिरकी सेनामें प्रलयकाल-सा दृश्य उपस्थित कर रहे हैं ॥ ५३—५५ ॥

नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५५ ॥
उत्सृज्य रजतप्रख्यान् हयान् पार्थस्य मारिष
वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात् ॥ ५६ ॥
अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद् विनदन् मुहुः ॥ ५७ ॥

तब शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले महाबाहु माधवसे यह सहन नहीं हुआ। आर्य! वे योगेश्वर भगवान् वासुदेव चाँदीके समान श्वेत रंगवाले अर्जुनके घोड़ोंको छोड़कर उस विशाल रथसे कूद पड़े और केवल भुजाओंका ही आयुध लिये हाथमें चाबुक उठाये बारंबार सिंहनाद करते हुए बलवान् एवं तेजस्वी श्रीहरि भीष्मकी ओर बड़े वेगसे दौड़े ॥ ५६-५७ ॥

दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः
क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥ ५८ ॥

सम्पूर्ण जगत्के स्वामी अमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण क्रोधसे लाल आँखें करके भीष्मका वध करनेकी इच्छा लेकर दौड़े, मानो अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको विदीर्ण-से कर रहे थे ॥

ग्रसन्निव च चेतांसि तावकानां महाहवे
दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यन्तमन्तिके ॥ ५९ ॥
हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत्
अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात् तदा ॥ ६० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण उस महायुद्धमें आपके पुत्र और सैनिकोंकी चेतनाको लुप्त-सी करते जा रहे थे। महाराज! उस समय भगवान् श्रीकृष्णको भीष्मके पास पहुँचनेके लिये उद्यत देख उन सब सैनिकोंके मुखसे जोर-जोरसे यह शब्द सुनायी देने लगा कि 'भीष्म मारे गये, भीष्म मारे गये' ॥ ५९-६० ॥

पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः
शुशुभे विद्रवन् भीष्मं विद्युन्माली यथाम्बुदः ॥ ६१ ॥

रेशमी पीताम्बर धारण किये इन्द्रनीलमणिके समान श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण भीष्मकी ओर दौड़ते समय ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो विद्युन्मालासे अलंकृत श्याम मेघ आ रहा हो ॥ ६१ ॥

स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम्
अभिदुद्राव वेगेन विनदन् यादवर्षभः ॥ ६२ ॥

यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण बारंबार गर्जना करते हुए भीष्मकी ओर उसी प्रकार वेगसे झपटे, जैसे सिंह गजराजपर और गोयूथका स्वामी साँड़ दूसरे साँड़पर आक्रमण करता है ॥ ६२ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे
असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद् धनुः ॥ ६३ ॥

उस महासमरमें कमलनयन श्रीकृष्णको आते देख भीष्म उस रणक्षेत्रमें तनिक भी भयभीत न होकर अपने विशाल धनुषको खींचने लगे ॥ ६३ ॥

उवाच चैनं गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ ६४ ॥

तथा भ्रान्तिरहित चित्तसे भगवान् गोविन्दको सम्बोधित करके बोले— 'आइये, आइये कमलनयन! देवदेव! आपको नमस्कार है ॥ ६४ ॥

मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे
त्वया हि देव संग्रामे हतस्यापि ममानघ ॥ ६५ ॥

श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।

परात्पर परमेश्वर ! इस महासमरमें आज युद्ध करके गिराइये । देव ! श्रीकृष्ण ! आपके द्वारा युद्धमें मारे जानेपर भी संसारमें सब ओर मेरा परम कल्याण ही होगा ॥ ६५ ॥

सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ॥ ६६ ॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ ।

गोविन्द ! आज इस युद्धमें मैं तीनों लोकोंद्वारा सम्मानित हो गया । अनघ ! मैं आपका दास हूँ । आप अपनी इच्छाके अनुसार मुझपर प्रहार कीजिये ॥ ६६ ॥

अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ॥ ६७ ॥
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ।

इधर महाबाहु अर्जुन श्रीकृष्णके पीछे-पीछे दौड़ पड़े । उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें पकड़कर काबूमें कर लिया ॥ ६७ ॥

निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥ ६८ ॥
जगाम चैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।

अर्जुनके द्वारा पकड़े जानेपर भी कमलनयन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें लिये-दिये ही बड़े वेगसे आगे बढ़ने लगे ॥ ६८ ॥

पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ॥ ६९ ॥
निजग्राह हृषीकेशं कथञ्चिद् दशमे पदे ।

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनने बलपूर्वक भगवान्‌के दोनों पैर पकड़ लिये और इस प्रकार दसवें कदमपर जाते-जाते किसी प्रकार हृषीकेशको रोक लिया ॥ ६९ ॥

तत एनमुवाचार्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ॥ ७० ॥
निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः परवीरहा ।
निवर्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि ॥ ७१ ॥

उस समय श्रीकृष्णके नेत्र क्रोधसे व्याकुल हो रहे थे और वे फुफकारते हुए सर्पके समान लंबी साँस खींच रहे थे । उनसे सखा अर्जुन आर्तभावसे प्रेमपूर्वक बोले— महाबाहो ! लौटिये । अपनी प्रतिज्ञाको झूठी न कीजिये ॥ ७०-७१ ॥

यत् त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव ।
मिथ्यावादीति लोकस्त्वां कथयिष्यन्ति माधव ॥ ७२ ॥

केशव ! आपने पहले जो यह कहा था कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' उस वचनकी रक्षा कीजिये । अन्यथा माधव ! लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे ॥ ७२ ॥

ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम् ।
शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च ॥ ७३ ॥

केशव ! यह सारा भार मुझपर है । मैं अपने शस्त्र, सत्य और सुकृतकी शपथ खाकर कहता हूँ कि पितामहका वध करूँगा ॥ ७३ ॥

अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन ।
अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महाव्रतम् ॥ ७४ ॥
तारापतिमिवापूर्णमन्तकाले यदृच्छया ।

शत्रुसूदन ! मैं शत्रुओंका अन्त कर डालूँगा । देखिये, आज ही मैं दुर्धर्ष वीर महाव्रती भीष्मको उनके अन्तिम कालकी इच्छाके अनुसार गिराता हूँ ॥ ७४ ॥

माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ ७५ ॥
(अप्रियं किञ्चिदुक्त्वा पार्थस्य विचिन्तयन् ।)
न किंचिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः ।

महात्मा अर्जुनकी यह बात सुनकर उनके पराक्रमको जानते हुए भगवान् श्रीकृष्ण मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने क्रोधको न बोलकर पुनः रथपर जा बैठे ॥ ७५ ॥

तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः ॥ ७६ ॥
ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाचलौ ।

पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन जब रथपर बैठ गये, उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मने उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो मेघ दो पर्वतोंपर जलकी धारा गिरा रहा हो ॥ ७६ ॥

प्राणानादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तव ॥ ७७ ॥
गभस्तिभिरिवादित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये ।

राजन् ! आपके पिता भीष्म उसी प्रकार पाण्डव योद्धाओंके प्राण लेने लगे, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य अपनी किरणोंद्वारा तेज हर लेते हैं ॥ ७७ ॥

यथा कुरूणां सैन्यानि बभञ्जुर्युधि पाण्डवाः ॥ ७८ ॥
तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ।

महाराज ! जैसे युद्धमें पाण्डवोंने कौरव-सेनाओंको भग्न किया था, उसी प्रकार आपके पिता भीष्मने भी पाण्डव-सेनाको भगा दिया ॥ ७८ ॥

हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ॥ ७९ ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
मध्यंगतमिवादित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ॥ ८० ॥

भारत ! सेनाके मारे जाने और भाग जानेसे पाण्डव उत्साहहीन और अचेत-से हो रहे थे । वे अपने तेजसे तपते हुए मध्याह्नकालीन सूर्यकी भाँति युद्धमें अनुपम वीर भीष्मकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं पाते थे ॥ ७९-८० ॥

ते वध्यमाना भीष्मेण कालेनेव युगक्षये ।
कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुषविक्रमम् ॥ ८१ ॥
वीक्षाञ्चक्रुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ।

महाराज ! भीष्मके द्वारा मारे जाते हुए पाण्डव सैनिक और अलौकिक पराक्रम प्रकट करनेवाले भीष्मको भयसे पीड़ित होकर देख रहे थे ॥ ८१ ॥

तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत ॥ ८२ ॥
प्राकम्पन्त महाराज गावः पङ्कगता इव ।
पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्बला बलिना रणे ॥ ८३ ॥

भारत ! भागती हुई पाण्डव-सेनाएँ कीचड़में फँसी हुई गायोंकी भाँति किसीको अपना रक्षक नहीं पाती थीं। नरेश्वर! भूमिमें बलवान् भीष्मके द्वारा कुचली गयी चींटियोंकी भाँति मसली जाने लगीं ॥ ८२-८३ ॥

महारथं भारत दुष्प्रधर्षं
शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।
भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते
शरार्चिषं सूर्यमिवातपन्तम् ॥ ८४ ॥

भारत ! महारथी भीष्म अविचलभावसे खड़े होकर बाणोंकी वर्षा करते और पाण्डव पक्षीय नरेशोंको संताप देते थे। बाणरूपी किरणावलियोंसे सुशोभित और सूर्यकी भाँति तपते हुए भीष्मकी ओर वे देख भी नहीं पाते थे ॥ ८४ ॥

विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेनां
गतोऽपराह्णः सहस्ररश्मेः ।
ततो बलानां श्रमकर्शितानां
मनोऽवहारं प्रति सम्बभूव ॥ ८५ ॥

भीष्म पाण्डव-सेनाका जब इस प्रकार मर्दन कर रहे थे, उसी समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित भगवान् सूर्य अस्ताचलको चले गये। उस समय परिश्रमसे थकी हुई सब सेनाओंके मनमें यही इच्छा हो रही थी कि अब युद्ध बंद हो जाय ॥ ८५ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें नवें दिनके युद्धकी समाप्तिविषयक एक सौ छःवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ... श्लोक मिलाकर कुल ८५ श्लोक हैं)

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

नवें दिनके युद्धकी समाप्ति, रातमें पाण्डवोंकी गुप्त मन्त्रणा तथा श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंका भीष्मसे मिलकर उनके वधका उपाय जानना

सञ्जय उवाच

युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
संध्या समभवद् घोरा नापश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंके युद्ध करते समय ही सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और भयंकर संध्याकाल आ गया। फिर हमलोगोंने युद्ध नहीं देखा ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा संध्यां संदृश्य भारत ।
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥ २ ॥
(निवृत्तोत्साहमत्यर्थं पीडितं शरविक्षतम् ।)
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥ ३ ॥
सोमकांश्च जितान् दृष्ट्वा निरुत्साहान् महारथान् ।
(निशामुखं च सम्प्रेक्ष्य घोररूपं भयानकम् ।)
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ॥ ४ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने देखा कि संध्या हो गयी, भीष्मके द्वारा गहरी चोट खाकर मेरे सैनिक भयसे व्याकुल हो हथियार डाल दिये हैं, कितने ही तो उत्साह नहीं रह गया है। सारी सेना बाणोंकी मारसे अत्यन्त पीड़ित हो गयी है। कितने ही सैनिक युद्धसे विमुख हो भागने लग गये हैं। उधर महारथी भीष्म क्रोधमें भरकर युद्धस्थलमें सबको पीड़ा दे रहे हैं। सोमकवंशी महारथी पराजित होकर अपना उत्साह खो बैठे हैं और घोररूप भयानक प्रदोषकाल आ पहुँचा है। इन सब बातोंपर विचार करके राजा युधिष्ठिरने सेनाको युद्धसे लौटा लेनेकी इच्छा की ॥ १-४ ॥

(वध जयेन भीष्म वै महाभयानकम् ।
वृद्धिं स्वीकिरिरस्तु ततः राजा युधिष्ठिरः ॥)

महाराज ! भीष्मसे जय पानेकी इच्छा छोड़कर राजा युधिष्ठिरने अपने शिविरमें लौटनेका विचार किया।

ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत् तदा ॥ ५ ॥

इसके बाद महाराज युधिष्ठिरने अपनी सेनाको लौटा लिया। इसी प्रकार आपकी सेना भी उस समय युद्धस्थलसे शिविरकी ओर लौट गयी ॥ ५ ॥

ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः ।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ६ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार संग्राममें क्षत-विक्षत हुए वे सब महारथी सेनाको लौटाकर शिविरमें विश्राम करने लगे ॥ ६ ॥

भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः ।
नालभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥ ७ ॥

पाण्डव भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। उन्हें समराङ्गणमें भीष्मके पराक्रमका चिन्तन करते हुए शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ७ ॥

भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान् सृञ्जयांस्तथा ।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८ ॥

न्यविशन्त कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपाः समन्ततः ।

भारत ! भीष्म जी जब रणभूमिमें सृञ्जयों तथा पाण्डवोंको रोककर आपके पुत्रोंद्वारा प्रशंसित और अभिनन्दित हो अपनी सेनामें चले गये, तब कौरवोंके साथ शिविरमें गये ॥ ८½ ॥

ततो रात्रिः समभवत् सर्वभूतप्रमोहिनी ॥ ९ ॥
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १० ॥

तत्पश्चात् समस्त प्राणियोंको मोहमें डालनेवाली रात्रि आ गयी। उस भयंकर रात्रिके आरम्भकालमें वृष्णि [illegible] दुर्धर्ष सृञ्जय और पाण्डव मन्त्रणाके लिये एक साथ बैठे ॥ १० ॥

आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः ।
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ॥ ११ ॥

उस समय वे महाबली वीर समयानुसार अपनी भलाईके उपायपर शान्तचित्तसे विचार करने लगे । वे सभी लोग मन्त्रणा करके किसी निश्चयपर पहुँचनेमें कुशल थे ॥ ११ ॥

(इतिश्चाब्रवीत् तथा भीष्म [illegible])
ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥

उनमें यह विचार होने लगा कि हम भीष्मजीका सामना कैसे करें और किस प्रकार इस युद्धमें विजय प्राप्त करें । नरेश्वर ! उस समय राजा युधिष्ठिर चिरकालतक मन्त्रणा करके भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखकर यह बात कही ॥ १२ ॥

कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ! देखिये, भयंकर पराक्रमी महात्मा भीष्म हमारी सेनाको उसी प्रकार कुचल रहे हैं, जैसे हाथी नरकुलके जंगलको रौंद डालता है ॥ १३ ॥

(मम माधव सैन्येषु [illegible] ।
कथं यास्याम दुर्धर्षं [illegible] विधीयताम् ॥
[illegible] नान्या [illegible] ।
न युद्धं रोचते मह्यं भीष्मेण सह माधव ।
हन्ति भीष्मो महावीर्यो मम सैन्यं च संयुगे ॥)

माधव ! इनके द्वारा जब हमारी सेनाका संहार हो रहा है, तब ऐसी अवस्थामें हम इनके साथ किस प्रकार युद्ध करें ? यह किस प्रकार हमारा भला हो, यह उपाय कीजिये । माधव ! आप ही हमारे आश्रय हैं । हम दूसरे किसीका सहारा नहीं लेते । हमें भीष्मजीके साथ युद्ध करना अच्छा नहीं लगता है । महावीर भीष्म युद्धस्थलमें हमारी सेनाका संहार करते चले जा रहे हैं ।)

न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥

ये प्रज्वलित अग्निके समान बाणोंकी लपटोंसे हमारी सेनाको चाटते (नष्ट करते) जा रहे हैं, इसलिये हम इन महात्माकी ओर देख भी नहीं पा रहे हैं ॥ १४ ॥

यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः ।
तथा भीष्मो रणे कृष्ण तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥
गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन् निशिताञ्छरान् ।

जैसे महानाग तक्षक अपने प्रचण्ड विषके कारण भयंकर प्रतीत होता है, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए प्रतापी भीष्म युद्धस्थलमें जब हाथमें धनुष लेकर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगते हैं, उस समय अपने तीखे अस्त्रोंके कारण वे अत्यन्त भयानक जान पड़ते हैं ॥ १५½ ॥

शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट् ॥ १६ ॥
वरुणः पाशभृच्चापि सगदो वा धनेश्वरः ।
न तु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥ १७ ॥

समराङ्गणमें क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, पाशधारी वरुण अथवा गदाधारी कुबेरको भी जीता जा सकता है, परंतु इस महासमरमें कुपित भीष्मको पराजित करना असम्भव है ॥ १६-१७ ॥

सोऽहमेवंगते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे ।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद् भीष्ममासाद्य संयुगे ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण ! ऐसी स्थितिमें मैं अपनी बुद्धिकी दुर्बलताके कारण युद्धस्थलमें भीष्मके सामने पड़कर शोकके समुद्रमें डूबा जा रहा हूँ ॥ १८ ॥

वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम् ।
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा ॥ १९ ॥

दुर्धर्ष श्रीकृष्ण ! अब मैं वनमें चला जाऊँगा । वहाँ जाना ही मेरे लिये कल्याणकारी होगा । युद्ध मुझे अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि भीष्म सदा ही हमारे सैनिकोंका विनाश करते जा रहे हैं ॥ १९ ॥

यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन् ।
एकतो मृत्युमभ्येति तथाहं भीष्ममीयिवान् ॥ २० ॥

जैसे पतंग प्रज्वलित अग्निकी ओर दौड़ा जाकर एकमात्र मृत्युको ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार हमने भी भीष्मपर आक्रमण करके मृत्युका ही वरण किया है ॥ २० ॥

क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः ॥ २१ ॥

वार्ष्णेय ! राज्यके लिये पराक्रम करते-करते मैं क्षीण होता जा रहा हूँ । मेरे शूरवीर भाई बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं ॥ २१ ॥

मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद् राज्याद् भ्रष्टास्तथा वनम् ।
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन ॥ २२ ॥

मधुसूदन ! मेरे लिये भ्रातृस्नेहवश ये भाई राज्यसे वञ्चित हुए और वनमें भी गये । मेरे ही कारण कृष्णाको सभामें अपमानका कष्ट भोगना पड़ा ॥ २२ ॥

जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम्।
जीवितस्याद्य देवेश चरिष्ये धर्ममुत्तमम्॥ २३॥

इस समय मैं जीवनको ही बहुत मानता हूँ। आज तो जीवन भी दुर्लभ हो रहा है। अतः जीवनके जितने दिन शेष हैं, उनके द्वारा मैं उत्तम धर्मका ही आचरण करूँगा॥ २३॥

यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव।
स्वधर्मस्याविरोधेन हितं व्याहर केशव॥ २४॥

केशव! यदि भाइयोंसहित मुझपर आपका अनुग्रह है तो मुझे स्वधर्मके अनुकूल और हितकारक सलाह दीजिये॥ २४॥

ततः श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद् बहुविस्तरम्।
प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम्॥ २५॥

करुणासे प्रेरित होकर कहे हुए युधिष्ठिरके वे विस्तृत वचन सुनकर श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए कहा।

धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः॥ २६॥

धर्मपुत्र! सत्यप्रतिज्ञ कुन्तीकुमार! विषाद न कीजिये। आपके भाई बड़े ही शूरवीर, दुर्जय तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं॥ २६॥

अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ।
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ॥ २७॥

अर्जुन और भीमसेन वायु तथा अग्निके समान तेजस्वी हैं। माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी पराक्रममें देवराज इन्द्रके समान हैं॥ २७॥

मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद् योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव।
त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे॥ २८॥

पाण्डुनन्दन! महाराज! आप सौहार्दवश मुझे भी आज्ञा दीजिये। मैं भीष्मके साथ युद्ध करूँगा। आपकी आज्ञा मिल जानेपर मैं इस महासमरमें क्या नहीं कर सकता॥ २८॥

हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम्।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः॥ २९॥

यदि अर्जुन भीष्मको मारना नहीं चाहते हैं तो मैं युद्धमें पुरुषप्रवर भीष्मको ललकारकर दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रोंके देखते-देखते मार डालूँगा॥ २९॥

यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव।
हन्तास्म्येकरथेनाद्य कुरुवृद्धं पितामहम्॥ ३०॥

पाण्डुनन्दन! यदि भीष्मके मारे जानेपर ही आपको अपनी विजय दिखायी देती है तो मैं एकमात्र रथकी सहायतासे आज कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्मको मार डालूँगा॥ ३०॥

पश्य मे विक्रमं राजन् महेन्द्रस्येव संयुगे।
विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात्॥ ३१॥

राजन्! युद्धमें इन्द्रके समान मेरा पराक्रम देखिये। मैं बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रहार करनेवाले भीष्मको रथसे मार गिराऊँगा॥ ३१॥

यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः।
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते॥ ३२॥

जो पाण्डवोंका शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है, इसमें संदेह नहीं है। जो आपके सुहृद् हैं, वे मेरे हैं और जो मेरे सुहृद् हैं, वे आपके ही हैं॥ ३२॥

तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते॥ ३३॥

राजन्! आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी और शिष्य हैं। मैं अर्जुनके लिये अपना मांस भी काटकर दे दूँगा।

एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत्।
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम्॥ ३४॥

ये पुरुषसिंह अर्जुन भी मेरे लिये अपने प्राणोंतकका परित्याग कर सकते हैं। तात! हमलोगोंमें यह प्रतिज्ञा हो चुकी है कि हम एक-दूसरेको संकटसे उबारेंगे॥ ३४॥

स मां नियुङ्क्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहम्।
प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत् तत् पार्थेन पूर्वतः॥ ३५॥
घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य संनिधौ।
परिरक्ष्यमिदं तावद् वचः पार्थस्य धीमतः॥ ३६॥

राजेन्द्र! आप मुझे युद्धके कार्यमें नियुक्त कीजिये। मैं आपका योद्धा बनूँगा। पहले उपप्लव्यनगरमें सब लोगोंके सामने अर्जुनने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं गङ्गानन्दन भीष्मका वध करूँगा, बुद्धिमान् पार्थके उस वचनकी रक्षा करना मेरे लिये आवश्यक है॥ ३५-३६॥

अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः।
अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे॥ ३७॥

अर्जुनने जिस बातके लिये प्रतिज्ञा की हो, उसको पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है, इसमें संशय नहीं है अथवा रणक्षेत्रमें अर्जुनके लिये यह बहुत थोड़ा भार है॥ ३७॥

स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरंजयम्।
अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः॥ ३८॥

वे शत्रुनगरपर विजय पानेवाले भीष्मको युद्धमें अवश्य मार डालेंगे। कुन्तीपुत्र अर्जुन उद्यत हो जायँ तो युद्धमें असम्भव कार्य भी करके दिखा सकते हैं॥ ३८॥

त्रिदशान् वा समुद्युक्तान् सहितान् दैत्यदानवैः।
निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप॥ ३९॥

नरेश्वर! दैत्यों और दानवोंसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी अर्जुन युद्धमें मार सकते हैं, फिर भीष्मको मारना कौन बड़ी बात है॥ ३९॥

विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवितः।
भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नावबुध्यते॥ ४०॥

महापराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्म तो इसके विपरीत

पक्षका भरण करनेवाले और मतहीन हैं। इनके जीवनके दिन अब बहुत थोड़े रह गये हैं, तथापि यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि ये अपने कर्तव्यको नहीं समझ रहे हैं॥ ४०॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव।
सर्वे ह्येते न पर्याप्तास्तव वेगविधारणे॥ ४१॥

युधिष्ठिरने कहा—महाबाहो! माधव! आप जैसा कहते हैं, ठीक ऐसी ही बात है। ये सब कौरव आपका वेग धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ४१॥

नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेव यथेप्सितम्।
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान् पक्षे व्यवस्थितः॥ ४२॥

पुरुषसिंह! निश्चय ही जिसके पक्षमें आप खड़े हैं, वह मैं अपना सारा अभीष्ट मनोरथ अवश्य पूर्ण कर लूँगा॥ ४२॥

सेन्द्रानपि रणे देवाञ्जयेयं जयतां वर।
त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महाहवे॥ ४३॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ गोविन्द! आपको रक्षकके रूपमें पाकर मैं युद्धमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको भी जीत सकता हूँ; फिर महासमरमें भीष्मको जीतना कौन बड़ी बात है॥ ४३॥

न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वार्थगौरवात्।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव॥ ४४॥

माधव! मैं अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये आपको असत्यवादी नहीं बना सकता। आप युद्ध किये बिना ही पूर्वोक्त सहायता करते रहिये॥ ४४॥

समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण माधव।
मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथंचन॥ ४५॥
दुर्योधनार्थे योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो।

मेरी भीष्मजीके साथ एक शर्त हो चुकी है। उन्होंने कहा है कि 'मैं युद्धमें तुम्हारे हितके लिये सलाह दे सकता हूँ, परंतु तुम्हारी ओरसे किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। युद्ध तो मैं केवल दुर्योधनके लिये ही करूँगा।' प्रभो! यह बिलकुल सच्ची बात है॥ ४५॥

स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव॥ ४६॥
तस्माद् देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः।
भवता सहिताः सर्वे पृच्छाम मधुसूदन॥ ४७॥

अतः माधव! भीष्मजी मुझे राज्य और मन्त्र (हितकर सलाह) दोनों देंगे। इसलिये मधुसूदन! हम सब लोग पुनः आपके साथ देवव्रत भीष्मके पास चलकर उनसे उनके वधका उपाय पूछें॥ ४६-४७॥

तद् वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम्।
रुचिते सर्वे वार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम्॥ ४८॥

वृष्णिनन्दन! हम सब लोग एक साथ कुरुवंशी भीष्मके पास चलें और उनसे सलाह पूछें॥ ४८॥

स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्माञ्जनार्दन।
यथा स वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्तास्मि संयुगे॥ ४९॥

जनार्दन! वे हमारे हितकी सच्ची बात बतायेंगे। श्रीकृष्ण! वे जैसा कहेंगे, युद्धमें वैसा ही करूँगा॥ ४९॥

स नो जयस्य दाता च मन्त्रस्य च दृढव्रतः।
बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम्॥ ५०॥

दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले भीष्मजी हमारे लिये विजय और सलाह भी दे सकते हैं। बाल्यावस्थामें जब हम पितृहीन हो गये थे, उस समय उन्होंने ही हमारा पालन-पोषण किया था॥ ५०॥

तं चेत् पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव।
पितुः पितरमिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥ ५१॥

माधव! तथापि मैं अपने पिताके भी पिता और प्रिय वृद्ध पितामह भीष्मको मारना चाहता हूँ। क्षत्रियकी जीविकाको धिक्कार है॥ ५१॥

संजय उवाच

ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम्।
रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम्॥ ५२॥

संजय कहते हैं—महाराज! तब भगवान् श्रीकृष्णने कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे कहा—महाप्राज्ञ राजेन्द्र! आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है॥ ५२॥

देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनापि निर्दहेत्।
गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः॥ ५३॥

देवव्रत भीष्म युद्धकुशल हैं। वे दृष्टिपातमात्रसे शत्रुको भस्म कर सकते हैं। अतः गङ्गानन्दन भीष्मसे उनके वधका उपाय पूछनेके लिये अवश्य उनके पास चलिये॥ ५३॥

वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः।
ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम्॥ ५४॥
गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत।
स नो दास्यति यं मन्त्रं तेन योत्स्यामहे परान्॥ ५५॥

विशेषतः आपके पूछनेपर वे अवश्य सच्ची बात बतायेंगे। अतः हम सब लोग मिलकर कुरुकुलके वृद्ध पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मसे उनकी सलाह पूछनेके लिये वहाँ चलें और भारत! उनसे हितकारक मन्त्रणा पूछें। वे आपको जो मन्त्रणा देंगे, उसीके द्वारा हमलोग शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे॥ ५४-५५॥

एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान्॥ ५६॥

वे वीर पाण्डव इस प्रकार सलाह करके सब एक साथ

मिलकर अपने पिता पाण्डुके भी पितृतुल्य भीष्मपितामहके पास गये। उनके साथ पाँचों भाई तथा वसुदेवनन्दन भगवान् वासुदेव भी थे ॥ ७६ ॥

विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति।
प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रतिपेदिरे ॥ ७७ ॥

उन सबने अस्त्र-शस्त्र और कवच उतार दिये थे। वे भीष्मके शिविरमें प्रवेश करके उनकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्होंने भीष्मको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ ७७ ॥

पूजयित्वा महाराज पाण्डवा भरतर्षभम्।
प्रणम्य शिरसा चैव भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥ ७८ ॥

महाराज! पाण्डवोंने भरतश्रेष्ठ भीष्मकी पूजा करते हुए उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और उन्हींकी शरण ली ॥ ७८ ॥

तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः।
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनंजय ॥ ७९ ॥
स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा।
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम् ॥ ८० ॥
(युष्मत्प्रियार्थं तु मया विस्रब्धा मा विशङ्कथ।)
सर्वात्मनापि कर्तास्मि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम्।

उस समय कुरुकुलके पितामह महाबाहु भीष्मने उन सब लोगोंसे कहा—'वृष्णिनन्दन! आपका स्वागत है। धनंजय! तुम्हारा स्वागत है। धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन और नकुल-सहदेवका भी स्वागत है। आज मैं तुम सब लोगोंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला कौन-सा कार्य करूँ? पुत्रो! यदि अभीष्ट कार्य अत्यन्त दुष्कर हो तो भी मैं सम्पूर्ण हृदयसे उसे पूर्ण करूँगा ॥ ७९-८० ॥

तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ॥ ८१ ॥
उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः।

गङ्गानन्दन भीष्म जब बारंबार इस प्रकार प्रेमपूर्वक कह रहे थे, उस समय राजा युधिष्ठिरने दीनचित्त होकर प्रेमपूर्वक यह बात कही ॥ ८१ ॥

कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥ ८२ ॥

सर्वज्ञ! युद्धमें हमारी जीत कैसे हो? हम किस प्रकार राज्य प्राप्त करें? ॥ ८२ ॥

प्रजानां संक्षयो न स्यात् कथं तन्मे वद प्रभो।
भवान् हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥ ८३ ॥

प्रभो! हमारी प्रजाका संहार न हो, यह कैसे सम्भव हो सकता है? कृपया यह सब मुझे बताइये। आप स्वयं ही हमें अपने वधका उपाय बताइये ॥ ८३ ॥

भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम्।
न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥ ८४ ॥

वीर! समरभूमिमें आपका वेग हम कैसे सह सकते हैं? कुरुकुलके वृद्ध पितामह! आपमें कोई छोटा-सा भी छिद्र (दोष) नहीं दिखायी देता है ॥ ८४ ॥

मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा।
आददानं संदधानं विकर्षन्तं धनुर्न च ॥ ८५ ॥
पश्यामस्त्वा महाबाहो रथे सूर्यमिवापरम्।

आप युद्धमें सदा मण्डलाकार धनुषके साथ ही दृष्टिगोचर होते हैं। महाबाहो! आप रथपर दूसरे सूर्यके समान विराजमान होकर कब बाण हाथमें लेते हैं, कब धनुषपर रखते हैं और कब उसकी डोरीको खींचते हैं, यह सब हम लोग नहीं देख पाते हैं ॥ ८५ ॥

रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥ ८६ ॥
कोऽन्य उत्सहते जेतुं त्वां पुमान् भरतर्षभ।

शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले भरतश्रेष्ठ! आप रथ, अश्व, पैदल मनुष्य और हाथियोंका भी संहार करनेवाले हैं। कौन पुरुष आपको जीतनेका साहस कर सकता है? ॥ ८६ ॥

वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥ ८७ ॥
क्षयं नीता हि पृतना भवता महती मम।

आपने युद्धक्षेत्रमें बाणोंकी वर्षा करके भारी संहार मचा रखा है। इससे मेरी विशाल सेना आपके द्वारा नष्ट हो चुकी है ॥ ८७ ॥

यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भवेन्मम ॥ ८८ ॥
मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह।

पितामह! हमलोग युद्धमें किस प्रकार आपको जीत सकें, किस प्रकार हमें विपुल राज्यकी प्राप्ति हो सके और किस प्रकार मेरी सेना भी सकुशल रह सके, वह उपाय मुझे बताइये ॥ ८८ ॥

ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डुपूर्वज ॥ ८९ ॥
न कथंचन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे।
युष्मासु भवति क्षेमं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९० ॥

तब पाण्डुके पितृतुल्य शान्तनुकुमार भीष्मजीने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—'कुन्तीकुमार! मेरे जीते जी युद्धमें किसी प्रकार तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ८९-९० ॥

निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः।
क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ॥ ९१ ॥

पाण्डवो! यदि युद्धके द्वारा मैं किसी प्रकार जीत लिया जाऊँ, तभी तुमलोग संग्राममें विजयी हो सकोगे। यदि युद्धमें विजय चाहते हो तो मुझपर शीघ्र ही (घातक) प्रहार करो ॥ ९१ ॥

अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम्।
एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥ ९२ ॥
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम्।

कुन्तीकुमार ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ । तुम सुखपूर्वक मेरे ऊपर प्रहार करो । मैं तुम्हारे लिये यह उपयोगी बात मानता हूँ कि तुम्हें मेरे द्वारा स्वजनोंका नाश हो गया फिर मेरे मारे जानेपर सारी कौरव-सेना मारी हुई ही है । अतः ऐसा ही करो (मुझे मार डालो) ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥ ७३ ॥
भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवान्तकम् ।

युधिष्ठिरने कहा—पितामह ! हमलोग युद्धमें दण्डधारी यमराजकी भाँति क्रोधमें भरे हुए आपको किस प्रकार जीत सकें, वह उपाय हमें बताइये ॥ ७३ ॥

शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ॥ ७४ ॥
न भवान् समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।

वज्रधारी इन्द्र, वरुण और यम—इन सबको जीता जा सकता है; परंतु आपको तो समरभूमिमें इन्द्र आदि देवता और असुर भी नहीं जीत सकते ॥ ७४ ॥

भीष्म उवाच

सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ॥ ७५ ॥
नाहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ॥ ७६ ॥

भीष्मने कहा—महाबाहो पाण्डुनन्दन ! तुम जैसा कहते हो, यह सत्य है । जबतक मेरे हाथमें शस्त्र होगा और मैं सुन्दर धनुष लेकर युद्धके लिये सावधान एवं प्रयत्नशील रहूँगा, तबतक इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी संग्राममें मुझे जीत नहीं सकते ॥ ७५-७६ ॥

ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः ।
निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥ ७७ ॥
द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि ।
स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रके ॥ ७८ ॥
अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ।

जब मैं अस्त्र-शस्त्र रख दूँ, उस अवस्थामें ये महारथी मुझे मार सकते हैं । जिसने शस्त्र नीचे डाल दिया हो, जो गिर पड़ा हो, जो कवच और ध्वजसे शून्य हो गया हो, जो भयभीत होकर भागता हो अथवा 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह रहा हो, जो स्त्री हो, स्त्रीके समान नाम रखता हो, विकल हो, जो अपने पिताका इकलौता पुत्र हो अथवा जो नीच जातिका हो, ऐसे मनुष्यके साथ युद्ध करना मुझे अच्छा नहीं लगता है ॥ ७७-७८½ ॥

इमं मे शृणु राजेन्द्र संकल्पं पूर्वचिन्तितम् ॥ ७९ ॥
अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कथंचन ।

राजेन्द्र ! मैंने पहलेसे सोचे हुए एक संकल्पको सुनो । किसी अमाङ्गलिक ध्वजको अमङ्गलसूचक चिह्नसे युक्त देखकर मैं कभी उसके साथ युद्ध नहीं कर सकता ॥ ७९½ ॥

य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ॥ ८० ॥
शिखण्डी समराकाङ्क्षी शूरश्च समितिंजयः ।
यथाभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात् पुंस्त्वं समागतः ॥ ८१ ॥

राजन् ! तुम्हारी सेनामें जो यह द्रुपदपुत्र महारथी शिखण्डी है, वह समरभूमिमें अमर्षशील, शौर्यसम्पन्न तथा युद्धविजयी है । वह पहले स्त्री था फिर पुरुषभावको प्राप्त हुआ है ॥ ८०-८१ ॥

जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद् यथातथम् ।
अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ८२ ॥
मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः ।

ये सारी बातें जैसे हुई हैं, वह सब तुमलोग भी जानते हो । शूरवीर अर्जुन समरभूमिमें कवच धारण करके शिखण्डीको आगे रखकर मुझपर तीखे बाणोंद्वारा आक्रमण करें ॥ ८२½ ॥

अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन् स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ॥ ८३ ॥
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथंचन ।

शिखण्डीकी ध्वजा अमङ्गलके चिह्नसे युक्त है तथा विशेषतः वह पहले स्त्री रहा है, इसलिये मैं हाथमें बाण लिये रहनेपर भी किसी प्रकार उसपर प्रहार नहीं करना चाहता ॥ ८३½ ॥

तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनंजयः ॥ ८४ ॥
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद् भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! इसी अवसरसे लाभ उठाकर पाण्डुपुत्र अर्जुन मुझे शीघ्र ही बाणोंद्वारा सब ओरसे घायल करें ॥ ८४½ ॥

न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद् यः समुद्यतम् ॥ ८५ ॥
ऋते कृष्णान्महाभागात् पाण्डवाद् वा धनंजयात् ।

मैं महाभाग भगवान् श्रीकृष्ण अथवा पाण्डुपुत्र धनंजयके सिवा दूसरे किसीको तीनों लोकोंमें ऐसा नहीं देखता, जो युद्धके लिये उद्यत होनेपर मुझे मार सके ॥ ८५½ ॥

एष तस्मात् पुरोधाय कंचिदन्यं ममाग्रतः ॥ ८६ ॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।
मां पातयतु बीभत्सुरेवं ते विजयो ध्रुवम् ॥ ८७ ॥

इसलिये यह अर्जुन अस्त्र-शस्त्र तथा सुन्दर धनुष हाथमें लेकर युद्धमें सावधानीसे प्रयत्नशील हो और उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त किसी पुरुषको अथवा शिखण्डीको मेरे सामने खड़ा करके स्वयं बाणोंद्वारा मुझे मार गिराये । इसी प्रकार तुम्हारी निश्चितरूपसे विजय हो सकती है ॥ ८६-८७ ॥

एतत् कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत ।
ततोऽसि धार्तराष्ट्रांश्च हत्वा सर्वान् समागतान् ॥ ८८ ॥

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! तुम

मेरे ऊपर जैसे बाण चलाती है, वैसी ही नीतिका प्रयोग करो वैसा करके ही तुम रणक्षेत्रमें आये हुए सम्पूर्ण कुरुकुलश्रेष्ठ एवं उनके सैनिकोंको मार सकते हो।

संजय उवाच

ते तु ज्ञात्वा मतं पार्थाः जग्मुः स्वशिबिरं प्रति।
अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम्॥ ९॥

संजय कहते हैं—राजन्! यह सब जानकर कुन्तीके सभी पुत्र कुरुकुलके वृद्ध पितामह महात्मा भीष्मको प्रणाम करके अपने शिविरकी ओर चले गये।

तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते।
अर्जुनो दुःखसंतप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत्॥ १०॥

महाराज! भीष्म परलोककी दीक्षा ले चुके थे। उन्होंने जब पूर्वोक्त बात कही, तब अर्जुन दुःखसे संतप्त एवं लज्जित होकर श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—

गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता।
पितामहेन संग्रामे कथं योत्स्यामि माधव॥ ११॥

माधव! कुरुकुलके वृद्ध गुरुजन, विशुद्ध बुद्धि, मतिमान् पितामह भीष्मसे मैं संग्राममें कैसे युद्ध करूँगा?

क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः।
पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः॥ १२॥

वासुदेव! बचपनमें खेलते समय मैंने अपने धूलि-धूसर शरीरसे उन महामनस्वी महात्माको सदा दूषित किया है।

यस्याहमधिरुह्याङ्कं बालः किल गदाग्रज।
तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः॥ १३॥
नाहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत।
इति मामब्रवीद् बाल्ये यः स वध्यः कथं मया॥ १४॥

गदाग्रज! कहते हैं, मैं बचपनमें अपने पिता महात्मा पाण्डुके भी पिताजी भीष्मजीकी गोदमें चढ़कर जब उन्हें 'तात' कहकर पुकारता था, उस समय उस बाल्यावस्थामें वे मुझसे इस प्रकार कहते थे—'भरतनन्दन! मैं तुम्हारा तात नहीं, तुम्हारे पिताका तात हूँ'। वे ही वृद्ध पितामह मेरे द्वारा मारने योग्य कैसे हो सकते हैं?

कामं वध्यतु सैन्यं मे नाहं योत्स्ये महात्मना।
जयो वास्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे॥ १५॥

भले ही वे मेरी सेनाका नाश कर डालें, मेरी विजय हो अथवा मृत्यु, परंतु मैं उन महात्मा भीष्मके साथ युद्ध नहीं करूँगा। अथवा श्रीकृष्ण! आप क्या ठीक समझते हैं?

(कथमस्मद्विधः कृष्ण जानन् धर्मं सनातनम्।
न्यस्तशस्त्रे च वृद्धे च प्रहरेद्धि पितामहे॥)

श्रीकृष्ण! सनातन धर्मको जाननेवाला मेरे-जैसा पुरुष हथियार डालकर बैठे हुए अपने बूढ़े पितामहपर प्रहार कैसे करेगा?

वासुदेव उवाच

प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे।
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि॥ १६॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—विजयी कुन्तीकुमार! तुम क्षत्रियधर्ममें स्थित हो। युद्धमें तुम पहले भीष्मके वधकी प्रतिज्ञा करके अब उन्हें कैसे नहीं मारोगे?

पातयैनं रथात् पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम्।
नाहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति॥ १७॥

पार्थ! तुम युद्धदुर्मद क्षत्रियवर भीष्मको रथसे मार गिराओ। रणक्षेत्रमें गङ्गानन्दन भीष्मको मारे बिना तुम्हारी विजय नहीं होगी।

दृष्टमेतत् पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम्।
यद् दृष्टं हि पुरा पार्थ तत् तथा न तदन्यथा॥ १८॥

यह बात देवताओंने पहलेसे ही देख रखी है कि भीष्म इसी प्रकार यमलोकको जायँगे। पार्थ! जिसे देवता पहले देख चुके हैं, वह उसी प्रकार होगा। उसमें कोई उलट-फेर नहीं होगा।

न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवान्तकम्।
त्वदन्यः शक्नुयात् योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम्॥ १९॥

दुर्धर्ष वीर भीष्म मुँह फैलाये हुए कालके समान भयंकर हैं। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई, भले ही वह साक्षात् वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, उनके साथ युद्ध नहीं कर सकता।

जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम।
यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः॥ २०॥

अतः तुम स्थिर होकर भीष्मको मारो और मेरी यह बात सुनो, जिसे पूर्वकालमें महाबुद्धिमान् बृहस्पतिजीने देवराज इन्द्रसे कहा था।

ज्यायांसमपि चेद् वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्।
आततायिनमायान्तं हन्याद् घातकमात्मनः॥ २१॥

कोई बड़े-से-बड़ा, बूढ़ा, गुणवान् और सम्माननीय पुरुष ही क्यों न हो, यदि शस्त्र उठाकर अपना वध करनेके लिये आ रहा हो तो उस आततायीको अवश्य मार डालना चाहिये।

शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनंजय।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चानसूयुभिः॥ २२॥

अर्जुन! यह क्षत्रियोंका निश्चित सनातन धर्म है। उन्हें किसीके प्रति दोषदृष्टि न रखकर सदा युद्ध, प्रजाओंकी रक्षा और यज्ञ करते रहने चाहिये।

अर्जुन उवाच

शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम्।
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते॥ २३॥

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण! शिखण्डी निश्चय ही

भीष्मकी मृत्युका कारण होगा; क्योंकि भीष्म उस पाञ्चाल-राजकुमारको देखते ही तुरंत युद्धसे निवृत्त हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

तं वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥ १०४ ॥

अतः हम सब लोग उनके सामने शिखण्डीको खड़ा करके इसी उपायद्वारा गङ्गानन्दन भीष्मको मार गिरायेंगे, यही मेरा विचार है ॥ १०४ ॥

अहमन्यान् महेष्वासान् वारयिष्यामि सायकैः।
शिखण्ड्यपि युधा श्रेष्ठं भीष्ममेवाभियोधयेत् ॥ १०५ ॥

मैं बाणोंद्वारा अन्य महाधनुर्धरोंको रोकूँगा। शिखण्डी भी योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीष्मसे युद्ध ही करे ॥ १०५ ॥

श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
कन्या ह्येषा पुरा भूत्वा पुरुषः समपद्यत ॥ १०६ ॥

कुरुकुलके प्रधान वीर भीष्मका यह निश्चय है कि मैं शिखण्डीको नहीं मारूँगा; क्योंकि यह पहले कन्यारूपमें उत्पन्न होकर पीछे पुरुष हुआ है ॥ १०६ ॥

(अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा भीष्मस्य पार्थसंयुतम्।
अनुमेनुर्महात्मानः पाण्डवाः सहमाधवाः ॥)

अर्जुनका भीष्मसे सम्बन्ध रखनेवाला यह वचन सुनकर श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उस समय इस निश्चयके अनुसार उनका सारी चिन्ता दूर हो गयी ॥

इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः।
अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः।
शयनानि यथास्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः ॥ १०७ ॥

ऐसा निश्चय करके श्रीकृष्णसहित पाण्डव मन-ही-मन प्रसन्न हो महात्मा भीष्मसे विदा लेकर चले गये और उन पुरुषशिरोमणियोंने अपनी-अपनी शय्याओंका आश्रय लिया ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसावहारे भीष्मवधोपायकथने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें नवें दिनके युद्धका उपसंहार विषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल १०९ श्लोक हैं)

अष्टाधिकशततमोऽध्याय

दसवें दिन उभय पक्षकी सेनाका रणके लिये प्रस्थान तथा भीष्म और शिखण्डीका समागम एवं अर्जुनका शिखण्डीको भीष्मका वध करनेके लिये उत्साहित करना

धृतराष्ट्र उवाच

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावत् संयुगे।
पाण्डवाश्च कथं भीष्मं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! शिखण्डीने युद्धमें गङ्गानन्दन भीष्मपर किस प्रकार आक्रमण किया और पाण्डवोंने भी भीष्मपर किस तरह चढ़ाई की? यह सब मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥ २ ॥
ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! तदनन्तर सूर्योदय होनेपर रणभेरियाँ बज उठीं, मृदङ्ग और ढोल पीटे जाने लगे, दहीके समान श्वेत रंगवाले शङ्ख सब ओर बजाये जाने लगे। उस समय समस्त पाण्डव शिखण्डीको आगे करके युद्धके लिये शिविरसे बाहर निकले ॥ २-३ ॥

कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद् विशाम्पते ॥ ४ ॥

महाराज! प्रजानाथ! उस दिन शिखण्डी समस्त शत्रुओंका संहार करनेवाला व्यूह बनाकर सारी सेनाओंके आगे खड़ा हुआ ॥ ४ ॥

चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनंजयौ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान् ॥ ५ ॥

उस समय भीमसेन और अर्जुन शिखण्डीके रथके पहियोंकी रक्षा करने लगे। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और पराक्रमी सुभद्राकुमार अभिमन्यु उसके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगे ॥ ५ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात् पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ६ ॥

सात्यकि और चेकितान भी उनके साथ थे। पाञ्चालोंसे सुरक्षित महारथी धृष्टद्युम्न उन सबके पीछे रहकर उनकी रक्षा करते थे ॥ ६ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः।
प्रययौ सिंहनादेन नादयन् भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिर नकुल-सहदेवके साथ अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए युद्धके लिये चले ॥ ७ ॥

विराटस्तु ततः पश्चात् स्वेन सैन्येन संवृतः।
द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८ ॥

उनके पीछे अपनी सेनाके साथ राजा विराट चले गये। महाराज! विराटके पीछे द्रुपदने धावा किया ॥ ८ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्।
जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत ॥ ९ ॥

भारत! इनके बाद पाँचों भाई केकय तथा पराक्रमी धृष्टकेतु—ये पाण्डवसेनाके जघनभागकी रक्षा करने लगे ॥ ९ ॥

एवं व्यूह्य महासैन्यं पाण्डवास्तव वाहिनीम्।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १० ॥

इस प्रकार पाण्डवोंने अपनी विशाल सेनाकी व्यूह-रचना करके संग्राममें अपने जीवनका मोह छोड़कर आपकी सेनापर धावा किया ॥ १० ॥

तथैव कुरवो राजन् भीष्मं कृत्वा महारथम्।
अग्रतः सर्वसैन्यानां प्रययुः पाण्डवान् प्रति ॥ ११ ॥

राजन्! इसी प्रकार कौरवोंने भी महारथी भीष्मको सब सेनाओंके आगे करके पाण्डवोंपर चढ़ाई की ॥ ११ ॥

पुत्रैस्तव दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः।
(प्रययौ पाण्डवानीकं भीष्मः शान्तनुनन्दनः ।)
ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चास्य महाबलः ॥ १२ ॥

दुर्धर्ष वीर शान्तनुनन्दन भीष्म आपके महाबली पुत्रोंसे सुरक्षित हो पाण्डवोंकी सेनाकी ओर बढ़े। उनके पीछे महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और महाबली अश्वत्थामा चले ॥ १२ ॥

भगदत्तस्ततः पश्चाद् गजानीकेन संवृतः।
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥ १३ ॥

इन दोनोंके पीछे हाथियोंकी विशाल सेनासे घिरे हुए राजा भगदत्त चले। कृपाचार्य और कृतवर्माने भगदत्तका अनुसरण किया ॥ १३ ॥

काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात् सुदक्षिणः।
मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्बलः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् बलवान् काम्बोजराज सुदक्षिण, मगधदेशीय जयत्सेन तथा सुबलपुत्र बृहद्बल चले ॥ १४ ॥

तथैवान्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः।
जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत ॥ १५ ॥

भारत! इसी प्रकार सुशर्मा आदि अन्य महाधनुर्धर राजाओंने आपकी सेनाके जघनभागकी रक्षा का भार सँभाला ॥ १५ ॥

दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि।
आसुरानकरोद् व्यूहान् पैशाचानथ राक्षसान् ॥ १६ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्म युद्धमें प्रतिदिन असुर, पिशाच तथा राक्षसव्यूहोंका निर्माण किया करते थे ॥ १६ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
अन्योन्यं निघ्नतां राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १७ ॥

भारत! (उस दिन भी व्यूह-रचनाके बाद) आपके और पाण्डवोंके सैनिकोंमें युद्ध आरम्भ हुआ। राजन्! परस्पर घातक प्रहार करनेवाले उन वीरोंका युद्ध यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ १७ ॥

अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्छरान् ॥ १८ ॥

अर्जुन आदि कुन्तीकुमारोंने शिखण्डीको आगे करके युद्धमें नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ भीष्मपर चढ़ाई की ॥ १८ ॥

तत्र भारत भीमेन ताडितास्तावका रणे।
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९ ॥

भारत! वहाँ भीमसेनके द्वारा बाणोंसे ताड़ित हुए आपके सैनिक खूनसे लथपथ होकर परलोकगामी होने लगे ॥ १९ ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः।
तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा ॥ २० ॥

नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकिने आपकी सेनापर धावा करके उसे बलपूर्वक पीड़ित किया ॥ २० ॥

ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ।
नाशक्नुवन् वारयितुं पाण्डवानां महद् बलम् ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ! आपके सैनिक रणभूमिमें मारे जाने लगे। वे पाण्डवोंकी विशाल सेनाको रोक न सके ॥ २१ ॥

ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः।
सम्प्राद्रवद् दिशो राजन् काल्यमानं महारथैः ॥ २२ ॥

तब महारथी वीरोंद्वारा सब ओरसे मारी और खदेड़ी जाती हुई आपकी सेना सब दिशाओंमें भाग चली ॥ २२ ॥

त्रातारं नाध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ।
वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सृञ्जयैस्तथा ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ! पाण्डवों और सृञ्जयोंके तीखे बाणोंसे घायल होनेवाले आपके सैनिकोंको कोई रक्षक नहीं मिलता था ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

पीडितं स्वबलं दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी।
यदकार्षीद् रणे क्रुद्धस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! कुन्तीकुमारोंके द्वारा अपनी सेनाको पीड़ित हुई देख युद्धमें कुपित हुए पराक्रमी भीष्मने क्या किया? यह मुझे बताओ ॥ २४ ॥

कथं वा पाण्डवान् युद्धे प्रत्युद्यातः परंतप ।
शिखण्डिनं समासाद्य [illegible] ॥ २५ ॥

संजय ! शत्रुओंको संताप देनेवाले वीरवर भीष्मने युद्धस्थलमें सोमकोंका संहार करते हुए उस समय पाण्डवोंपर किस प्रकार आक्रमण किया? यह सब मुझे बताओ ॥ २५ ॥

संजय उवाच

नाचक्षे ते महाराज यदकार्षीत् पिता तव ।
पीडिते नाम पुत्रस्य सैन्ये पाण्डवसृञ्जयैः ॥ २६ ॥

संजयने कहा—महाराज ! पाण्डवों तथा सृञ्जयोंद्वारा आपके पुत्रकी सेनाके पीड़ित होनेपर आपके ताऊ भीष्मने जो कुछ किया था, वह सब आपको बता रहा हूँ ॥ २६ ॥

प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अभ्यवर्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २७ ॥

पाण्डुके बड़े भाई ! शूरवीर पाण्डव मनमें हर्ष और उत्साह भरकर आपके पुत्रकी सेनाका संहार करते हुए आगे बढ़े ॥ २७ ॥

तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम् ।
नामृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः ॥ २८ ॥

नरेन्द्र ! उस समय मनुष्य, हाथियों और घोड़ोंके उस विनाशको रणभूमिमें शत्रुओंद्वारा [illegible] अपनी सेनाके संहारको भीष्मजी नहीं सह सके ॥ २८ ॥

स पाण्डवान् महेष्वासः पञ्चालांश्च ससृञ्जयान् ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २९ ॥
अभ्यवर्षत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।

वे महाधनुर्धर दुर्जय वीर भीष्म अपने जीवनका मोह छोड़कर पाण्डवों, पाञ्चालों तथा सृञ्जयोंपर तीखे नाराच, वत्सदन्त और अञ्जलिक आदि बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥

स पाण्डवानां प्रवरान् पञ्च राजन् महारथान् ॥ ३० ॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्नाद् वारयामास सायकैः ।

राजन् ! वे अस्त्र-शस्त्र लेकर पाण्डवपक्षके पाँच श्रेष्ठ महारथियोंको रणक्षेत्रमें बाणोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक निवारण करने लगे ॥ ३०½ ॥

नानाशस्त्रास्त्रवर्षैस्तान् वीर्यामर्षप्रवेरितैः ॥ ३१ ॥
निजघ्ने समरे क्रुद्धो हत्वा चैव गजान् बहून् ।

उन्होंने बल और क्रोधसे प्रेरित हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाद्वारा रणक्षेत्रमें उन पाँचों महारथियोंको मार डाला और कुपित होकर असंख्य हाथी-घोड़ोंका भी संहार कर डाला ॥ ३१½ ॥

रथिनोऽपातयद् राजन् रथेभ्यः पुरुषर्षभः ॥ ३२ ॥
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यः पदातींश्च समागतान् ।
गजारोहान् गजेभ्यश्च परेषां व्यदधद् भयम् ॥ ३३ ॥

राजन् ! पुरुषश्रेष्ठ भीष्मने कितने ही रथियोंको रथोंसे, घुड़सवारोंको घोड़ोंकी पीठोंसे, सामने आये हुए पैदल सिपाहियोंको धराशायी कर दिया तथा हाथीसवारोंको हाथियोंसे मार गिराया और शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न कर दिया ॥ ३२-३३ ॥

तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम् ।
पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवासुराः ॥ ३४ ॥

समरभूमिमें फुर्ती दिखानेवाले एकमात्र महारथी भीष्मपर समस्त पाण्डवोंने उसी प्रकार धावा किया, जैसे असुर वज्रधारी इन्द्रपर आक्रमण करते हैं ॥ ३४ ॥

शक्राशनिसमस्पर्शान् विमुञ्चन् निशिताञ्छरान् ।
दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं संधारयन् वपुः ॥ ३५ ॥

भीष्म इन्द्रके वज्रके समान दुःसह स्पर्शवाले तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए और अपने भयंकर रूप धारण किये सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी देते थे ॥ ३५ ॥

मण्डलीकृतमेवास्य नित्यं धनुरदृश्यत ।
संग्रामे युध्यमानस्य शक्रचापोपमं महत् ॥ ३६ ॥

समरभूमिमें युद्ध करते हुए भीष्मका इन्द्रधनुषके समान विशाल धनुष सदा मण्डलाकार ही दिखायी देता था ॥ ३६ ॥

तद् दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशाम्पते ।
विस्मयं परमं प्राप्ताः पितामहमपूजयन् ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ ! समरमें भीष्मके उस पराक्रमको देखकर आपके पुत्र बड़े विस्मयमें पड़ गये और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३७ ॥

पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ।
युध्यमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवामराः ॥ ३८ ॥

उस समय कुन्तीके पुत्र खिन्नचित्त होकर रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए आपके ताऊ शूरवीर भीष्मको उसी प्रकार देखने लगे, जैसे देवता विप्रचित्ति नामक दानवको देखते हैं ॥ ३८ ॥

न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
दशमेऽहनि सम्प्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः ।
अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ ३९-४० ॥

मुँह बाये हुए कालके समान भीष्मको रोक न सके। दसवाँ दिन आनेपर भीष्म जैसे दावानल वनको जला देती है, उसी प्रकार शिखण्डीकी रथसेनाको तीखे बाणोंसे जलाने लगे ॥ ३९-४० ॥

तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे ।
आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवान्तकम् ॥ ४१ ॥

तब शिखण्डीने तीन बाणोंसे भीष्मकी छातीमें प्रहार किया। उस समय वे काल[illegible] यमराज तथा क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान जान पड़ते थे ॥ ४१ ॥

स तेनातिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनम् ।
अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

शिखण्डीके द्वारा घायल होनेपर भी भीष्म उसकी ओर देखकर अत्यन्त कुपित हो फिर [illegible] बोले—

कामं प्रहर वा मा वा नैव त्वा योत्स्ये कथंचन।
यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव हि त्वं शिखण्डिनी ॥ ४३ ॥

अरे! तू इच्छानुसार प्रहार कर या न कर, मैं तेरे साथ किसी तरह युद्ध नहीं करूँगा। विधाताने जिस रूपमें तुझे उत्पन्न किया था, तू वही शिखण्डिनी है ॥ ४३ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्च्छितः।
उवाचेदं तदा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४४ ॥

उनकी यह बात सुनकर शिखण्डी क्रोधसे मूर्च्छित-सा हो गया और अपने मुखके कोनोंको चाटता हुआ भीष्मसे इस प्रकार बोला ॥ ४४ ॥

जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयंकरम्।
मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ॥ ४५ ॥

'क्षत्रियविनाशक महाबाहु भीष्म! मैं आपको जानता हूँ। मैंने सुना है कि आपने जमदग्निनन्दन परशुरामजीके साथ भी युद्ध किया था ॥ ४५ ॥

दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं मया च बहुशः श्रुतः।
जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याहं त्वया सह ॥ ४६ ॥

आपका यह दिव्य प्रभाव बहुत बार मेरे सुननेमें आया है। आपके [illegible] प्रभावको जानता हुआ भी मैं आज आपके साथ युद्ध करूँगा ॥ ४६ ॥

पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम।
अद्य त्वा योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ॥ ४७ ॥

नरश्रेष्ठ! पुरुषप्रवर! आज पाण्डवोंका और अपना भी प्रिय करनेके लिये मैं रणभूमिमें [illegible] आपके साथ सामना करूँगा ॥ ४७ ॥

ध्रुवं च त्वा हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः।
एतच्छ्रुत्वा वचो मह्यं यत् क्षमं तत् समाचर ॥ ४८ ॥

मैं आपके सामने सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आज आपको निश्चय ही मार डालूँगा। मेरी यह बात सुनकर आपको जो कुछ करना हो, वह कीजिये ॥ ४८ ॥

काममभ्यस वा मा वा न मे जीवन् प्रमोक्ष्यसे।
सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोऽयं समितिंजय ॥ ४९ ॥

युद्धविजयी भीष्मजी! आप इच्छानुसार प्रहार कीजिये या न कीजिये; परंतु आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेंगे। अब इस जगत्‌को अच्छी तरह देख लीजिये' ॥ ४९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः।
अविध्यत रणे भीष्मं प्रणुन्नं वाक्यसायकैः ॥ ५० ॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर शिखण्डीने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा भीष्मको घायल कर दिया, जिन्हें वह पहले ही वचनरूपी बाणोंसे पीड़ित कर चुका था ॥ ५० ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः।
कालोऽयमिति संचिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत् ॥ ५१ ॥

उसकी उस बातको सुनकर महारथी सव्यसाची अर्जुनने यह सोचकर कि [illegible] शिखण्डीको इस प्रकार कहा ॥ ५१ ॥

अहं त्वामनुयास्यामि परान् विद्रावयन् शरैः।
अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ ५२ ॥

वीर! मैं बाणोंद्वारा शत्रुओंको भगाता हुआ सदा तुम्हारा साथ दूँगा। तुम क्रोधपूर्वक भयंकर पराक्रमी भीष्मपर चढ़ाई करो ॥ ५२ ॥

न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः।
तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद् भीष्ममभिद्रव ॥ ५३ ॥

महाबाहो! युद्धमें महाबली भीष्म तुम्हें पीड़ा नहीं दे सकते; अतः आज प्रयत्नपूर्वक इनपर धावा करो ॥ ५३ ॥

अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष।
अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥ ५४ ॥

आर्य! यदि समरभूमिमें भीष्मको मारे बिना लौट जाओगे तो मेरे सहित तुम इस संसारमें उपहासके पात्र बन जाओगे ॥ ५४ ॥

नावहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे।
तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥ ५५ ॥

वीर! इस महासमरमें जैसे भी हमलोग लोगोंमें हँसीके पात्र न बनें, वैसा प्रयत्न करो। रणभूमिमें पितामह भीष्मको मार डालो ॥ ५५ ॥

अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल।
वारयन् रथिनः सर्वान् साधयस्व पितामहम् ॥ ५६ ॥

महाबली वीर! मैं इस युद्धमें सब रथियोंको रोककर सदा तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। तुम पितामहको मार डालो ॥ ५६ ॥

द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाथ सुयोधनम्।
चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ ५७ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
भगदत्तं तथा शूरं मागधं च महाबलम् ॥ ५८ ॥
सौमदत्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम्।
त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥ ५९ ॥
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम्।

मैं द्रोणाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ, अवन्तीके राजकुमार

विन्द-अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, शूरवीर भगदत्त, महाबली मागधराज, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, राक्षस अलम्बुष तथा त्रिगर्तराज सुशर्मा—ये रणक्षेत्रमें सब महाधनुर्धर सम उसी प्रकार रोक रक्खा, जैसे हवा पर्वत चट्टानको आगे बढ़ने नहीं देती है ॥ ७७–९९ ॥

कुरुश्रेष्ठ सहितानां सर्वांत युध्यमानान् महाबलान् । निवार्य पाण्डवांश्चापि रणे माधवप्रमुखान् पितामहम् ॥ १०० ॥

युद्धमें एक साथ लगे हुए महाबली कौरवों और पाण्डवोंको भी मैं युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दूँगा । तुम पितामहकी भीष्मकी रक्षाका काम सिद्ध करो ॥ १०१ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मशिखण्डीसमागमे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म और शिखण्डीका समागमविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल १०२ श्लोक हैं)

नवाधिकशततमोऽध्यायः

भीष्म और दुर्योधनका संवाद तथा भीष्मके द्वारा लाखों सैनिकोंका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावत् पितामहम् ।
पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीने समरभूमिमें कुपित होकर नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले धर्मात्मा पितामह गङ्गानन्दन भीष्मपर किस प्रकार धावा किया था ?

केऽरक्षन् पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधाः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महारथाः ॥ २ ॥

पाण्डवसेनाके किन किन वीर महारथियोंने अस्त्र उठाकर विजयकी अभिलाषासे उस शीघ्रताके समय अपनी शीघ्रकारिताका परिचय देते हुए शिखण्डीकी रक्षा की थी ॥ २ ॥

कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन् दशमेऽहनि ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सहसृञ्जयैः ॥ ३ ॥

महापराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्मने उस दसवें दिन पाण्डवों तथा सृंजयोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया था ? ॥ ३ ॥

न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिना ।
कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः ॥ ४ ॥

रणक्षेत्रमें शिखण्डीने भीष्मपर आक्रमण किया, यह मुझसे सहन नहीं हो रहा है । कहीं उनका रथ तो नहीं टूट गया था अथवा बाणोंका प्रहार करते समय उनके धनुषके टुकड़े टुकड़े तो नहीं हो गये थे ? ॥ ४ ॥

संजय उवाच

नाशीर्यत धनुश्चास्य रथभङ्गो न चाप्यभूत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ ५ ॥
निघ्नतः समरे शत्रून् शरैः संनतपर्वभिः ।

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें युद्ध करते समय भीष्मके न तो धनुषके ही टुकड़े-टुकड़े हुए थे और न उनका रथ ही टूटा था । वे समरभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा शत्रुओंका संहार करते जा रहे थे ॥ ५½ ॥

अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ॥ ६ ॥

तथा दन्तिगणा राजन् हयाश्चैव सुसज्जिताः ।
अभ्ययुर्युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥ ७ ॥

राजन् ! आपके कई लाख महारथी, हाथी और घोड़े सुसज्जित हो पितामहको आगे करके युद्धके लिये बढ़ रहे थे ॥ ७ ॥

यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चापि समितिंजयः ।
पार्थानामकरोद् भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ८ ॥

कुरुनन्दन ! युद्धविजयी भीष्म अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार रणक्षेत्रमें कुन्तीपुत्र सेनाका निरन्तर संहार कर रहे थे ॥ ८ ॥

युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं परान् शरैः ।
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं सर्व एवाभ्यवारयन् ॥ ९ ॥

बाणोंद्वारा शत्रुओंका संहार करते हुए महाधनुर्धर भीष्म युद्ध कर रहे थे, उस समय पाण्डवोंसहित पाञ्चाल उन्हें रोक न सके ॥ ९ ॥

दशमेऽहनि सम्प्राप्ते ततापारिं शितैः शरैः ।
कीर्यमाणाः शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥

दसवाँ दिन प्राप्त होनेपर भीष्मने शत्रुसेनाको अपने पैने बाणोंद्वारा सैकड़ों और हजारों टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १० ॥

न हि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
अशक्नुवन् रणे जेतुं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ ११ ॥

पाण्डुके बड़े भाई राजन् ! पाण्डवलोग पाशधारी यमराजके समान महाधनुर्धर भीष्मको युद्धमें जीतनेमें किसी प्रकार भी समर्थ न हो सके ॥ ११ ॥

अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनंजयः ।
त्रासयन् रथिनः सर्वान् बीभत्सुरपराजितः ॥ १२ ॥

महाराज ! तदनन्तर किसीसे परास्त न होनेवाले और सव्यसाची (दोनों हाथोंसे बाण चलानेवाले) धनंजय अर्जुन समस्त रथियोंको भयभीत करते हुए उनके निकट आये ॥ १२ ॥

सिंहवद् विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन् मुहुः ।
शरौघान् विसृजन् पार्थो व्यचरत् कालवद् रणे ॥ १३ ॥

वे युद्धोन्मत्त सिंहके समान उत्साहसे गर्जना करते हुए बारंबार अपने धनुषकी कोटि, सींगोंके अग्रभाग और बाहुओंकी ध्वनि करते हुए रणभूमिमें कालके समान विचरते थे ॥

तस्य शब्देन वित्रस्ता वाहिनी भरतर्षभ ।
सिंहस्येव मृगा राजन् व्यद्रवन्त महाभयात् ॥ १४ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! जैसे सिंहकी दहाड़से भयभीत होकर मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार अर्जुनके सिंहनादसे सहमकर आपके सैनिक महान् भयके कारण भागने लगे ॥ १४ ॥

प्रयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वदीयं बलमीदृशम् ।
दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद् भृशपीडितः ॥ १५ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुनको आगे बढ़ते और आपकी सेनाको पीड़ित होती देख दुर्योधन अत्यन्त पीड़ित होकर भीष्मसे बोला ॥ १५ ॥

एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ।
दहते मामकान् सर्वान् कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ १६ ॥

तात! श्रीकृष्णके साथ यह बलवान् पाण्डुपुत्र अर्जुन मेरे सारे सैनिकोंको उसी प्रकार दग्ध कर रहा है, जैसे दावानल वनको ॥ १६ ॥

पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः ।
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥ १७ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ गङ्गानन्दन! देखिये, मेरी सेनाएँ सब ओर भाग रही हैं और अर्जुन युद्धस्थलमें उन्हें खदेड़ रहे हैं ॥ १७ ॥

यथा पशुगणान् पालः संकालयति कानने ।
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले पितामह! जैसे चरवाहा जंगलमें पशुओंको हाँकता है, उसी प्रकार मेरी यह सेना अर्जुनके द्वारा हाँकी जा रही है ॥ १८ ॥

धनंजयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः ।
भीमोऽप्येष दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥ १९ ॥

धनंजयके बाणोंसे आहत हो व्यूह भङ्ग करके इधर-उधर भागनेवाली मेरी सेनाको ये दुर्धर्ष वीर भीमसेन भी खदेड़ रहे हैं ॥ १९ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम ॥ २० ॥

सात्यकि, चेकितान, पाण्डु और माद्रीके पुत्र नकुल-सहदेव और पराक्रमी अभिमन्यु भी मेरी सेनाको भगा रहे हैं ॥ २० ॥

धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे ॥ २१ ॥

धृष्टद्युम्न तथा शूरवीर राक्षस घटोत्कचने भी सहसा इस महासमरमें आकर मेरी सेनाको मार भगाया है ॥ २१ ॥

वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः ।
नान्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥ २२ ॥
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम ।
पर्याप्तस्तु भवान् क्षिप्रं पीडितानां गतिर्भव ॥ २३ ॥

भारत! इन सब महारथियोंद्वारा मारी जाती हुई अपनी सेनाके लिये युद्धमें ठहरने या भागनेके लिये आपके सिवा दूसरा कोई आश्रय नहीं दिखता। देवताओंके समान पराक्रमी पुरुषसिंह! आप ही उसका सामना करनेमें समर्थ हैं, अतः हम पीड़ितोंके लिये आप शीघ्र ही आश्रयदाता होइये ॥ २२-२३ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मवान् ॥ २४ ॥
तव संधारयन् पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः ।
दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते ॥ २५ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! दुर्योधनके ऐसा कहने पर आपके ताऊ शान्तनुनन्दन देवव्रतने दो घड़ीतक कुछ चिन्तन करनेके पश्चात् अपना एक निश्चय करके आपके पुत्र दुर्योधनको सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—प्रजानाथ दुर्योधन! सुस्थिर होकर इधर ध्यान दो ॥ २४-२५ ॥

पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल ।
हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥
संग्रामाद् व्यपयातव्यमेतत् कर्म ममाह्निकम् ।
इति तत् कृतवांश्चाहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २७ ॥

महाबली नरेश! पूर्वकालमें मैंने तुम्हारे लिये यह प्रतिज्ञा की थी कि दस हजार महामनस्वी क्षत्रियोंका वध करके ही मुझे संग्रामभूमिसे हटना होगा और यह मेरा दैनिक कर्म होगा। भरतश्रेष्ठ! जैसा मैंने कहा था, वैसा अबतक करता आया हूँ ॥ २६-२७ ॥

अद्य चापि महत् कर्म प्रकरिष्ये महाबल ।
अहं वाद्य हतः शेष्ये हनिष्ये वाद्य पाण्डवान् ॥ २८ ॥

महाबली वीर! आज भी मैं महान् कर्म करूँगा। या तो आज मैं ही मारा जाकर रणभूमिमें सो जाऊँगा या पाण्डवोंका ही संहार करूँगा ॥ २८ ॥

अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं महत् ।
भर्तृपिण्डकृतं राजन् निहतः पृतनामुखे ॥ २९ ॥

पुरुषसिंह! नरेश्वर! तुमने मेरा जो पालन-पोषण किया है, उसका मुझपर ऋण है। आज युद्धके मुहानेपर मारा जाकर मैं तुम्हारे उस ऋणको उतार दूँगा ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान् प्रतपञ्छरैः ।
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ३० ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर सुभट वीर भीष्मने क्षत्रियोंका नाश करते हुए पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण किया ॥

अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
आदीप्तमिव सूर्यं पाण्डवाः समवारयन् ॥ ३१ ॥

सेनाके मध्यभागमें स्थित हुए किरणसमूहसे युक्त सूर्यके समान कुपित भीष्मको पाण्डव सैनिक रोकने लगे ॥ ३१ ॥

दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयञ्छक्तिमात्मनः ।
राजन् शतसहस्राणि सोऽवधीत् कुरुनन्दनः ॥ ३२ ॥

राजन् ! कुरुनन्दन भीष्मने दसवें दिन अपनी शक्तिका परिचय देते हुए लाखों पाण्डवसैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ३२ ॥

पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः ।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांशुभिः ॥ ३३ ॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा पृथ्वीका जल सोख लेते हैं, उसी प्रकार भीष्मजीने पांचालोंमें जो श्रेष्ठ महारथी राजकुमार थे, उन सबके तेज हर लिये ॥ ३३ ॥

हत्वा दश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
सारोहाणां महाराज हयानां चायुतं तथा ॥ ३४ ॥
पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३५ ॥

महाराज ! सवारोंसहित दस हजार वेगशाली हाथियों, उतने ही घोड़ों और घुड़सवारों तथा दो लाख पैदल सैनिकोंको नरश्रेष्ठ भीष्मने रणभूमिमें धूमरहित अग्निकी भाँति प्रज्वलित हो उठे ॥ ३४-३५ ॥

न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् ।
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३६ ॥

उत्तरायणका आश्रय लेकर तपते हुए सूर्यकी भाँति प्रतापी भीष्मकी ओर पाण्डवोंमें कोई देखनेमें समर्थ न हो सके ॥ ३६ ॥

ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः ।
वधायाभ्यद्रवन् भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥ ३७ ॥

महाधनुर्धर भीष्मके बाणोंसे पीड़ित हो अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए पाण्डव तथा सृंजय महारथी भी उनके वधके लिये टूट पड़े ॥ ३७ ॥

स युध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवावृतः ॥ ३८ ॥

बहुत-से योद्धाओंके साथ अकेले युद्ध करते हुए शान्तनुनन्दन भीष्म उस समय बाणोंसे आच्छादित हो मेघोंके समूहसे आवृत हुए महान् पर्वत मेरुकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ३८ ॥

पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं समन्तात् पर्यवारयन् ।
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ ३९ ॥

राजन् ! आपके पुत्रोंने विशाल सेनाके साथ आकर गङ्गानन्दन भीष्मको सब ओरसे घेर लिया । तत्पश्चात् वहाँ विकट युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दशमदिवसयुद्धे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म-दुर्योधनसंवादविषयक एक सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनके प्रोत्साहनसे शिखण्डीका भीष्मपर आक्रमण और दोनों सेनाओंके प्रमुख वीरोंका परस्पर युद्ध तथा दुःशासनका अर्जुनके साथ घोर युद्ध

सञ्जय उवाच

अर्जुनस्तु रणे राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥ १ ॥
न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथंचन ।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! रणभूमिमें भीष्मका पराक्रम देखकर अर्जुनने शिखण्डीसे कहा—वीर ! तुम पितामहका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो । आज भीष्मजीसे तुम्हें किसी प्रकार भय नहीं करना चाहिये । मैं अपने पैने बाणोंद्वारा इनको उत्तम रथसे मार गिराऊँगा ॥ १-२ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुनने शिखण्डीसे ऐसा कहा, तब उसने पार्थकी उस बातको सुनकर गङ्गानन्दन भीष्मपर धावा किया ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् सौभद्रश्च महारथः ।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ४ ॥

राजन् ! अर्जुनकी यह बात सुनकर धृष्टद्युम्न तथा सुभद्राकुमार महारथी अभिमन्यु—ये दोनों वीर हर्ष और उत्साहमें भरकर भीष्मकी ओर दौड़े ॥ ४ ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५ ॥

दोनों वृद्ध नरेश विराट और द्रुपद तथा कवचधारी कुन्तिभोज भी आपके पुत्रके देखते-देखते गङ्गानन्दन भीष्मपर टूट पड़े ॥ ५ ॥

नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान्।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते ॥ ६ ॥
समभ्यधावन् गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्।

प्रजानाथ! नकुल, सहदेव, पराक्रमी धर्मराज युधिष्ठिर तथा दूसरे समस्त सैनिक अर्जुनका उपर्युक्त वचन सुनकर भीष्मजीकी ओर दौड़े चले गये ॥ ६½ ॥

प्रत्युद्ययुस्तावकास्तु समेतास्तान् महारथान् ॥ ७ ॥
यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु।

इस प्रकार एकत्र हुए पाण्डव महारथियोंपर आपके पुत्रोंने भी जिस प्रकार अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार आक्रमण किया, वह सब बताता हूँ, सुनिये ॥ ७½ ॥

चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ॥ ८ ॥
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा।

महाराज! चित्रसेनने भीष्मके पास पहुँचनेकी इच्छा रखनेवाले चेकितानका सामना किया, मानो व्याघ्रका बच्चा वृषभका सामना कर रहा हो ॥ ८½ ॥

धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ॥ ९ ॥
त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत्।

राजन्! कृतवर्माने भीष्मजीके निकट पहुँचकर युद्धके लिये उतावलीपूर्वक प्रयत्न करनेवाले धृष्टद्युम्नको रोका ॥ ९½ ॥

भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् ॥ १० ॥
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत्।

महाराज! भीमसेन भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर गङ्गानन्दन भीष्मका वध करना चाहते थे; परंतु सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाने आकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १०½ ॥

तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान् बहून् ॥ ११ ॥
विकर्णो वारयामास इच्छन् भीष्मस्य जीवितम्।

इसी प्रकार शूरवीर नकुल बहुत-से बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, परंतु भीष्मके जीवनकी रक्षा चाहनेवाले विकर्णने उन्हें रोक दिया ॥ ११½ ॥

सहदेवं तथा राजन् यान्तं भीष्मरथं प्रति ॥ १२ ॥
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि।

राजन्! युद्धस्थलमें भीष्मके रथकी ओर जाते हुए सहदेवको कुपित हुए शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने रोक दिया ॥ १२½ ॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम् ॥ १३ ॥
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद् बली।

भीष्मकी मृत्यु चाहनेवाले क्रूरकर्मा महाबली राक्षस भीमसेनकुमार घटोत्कचपर बलवान् दुर्मुखने आक्रमण किया ॥ १३½ ॥

सात्यकिं समरे यान्तं राजपुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥
(भीष्मस्य वधमिच्छन्तमाम्बष्ठकोऽतिवीर्यवान्।)

सात्यकिको समरभूमिमें भीष्मका वध चाहनेवाले सात्यकिको युद्धके लिये आते देख आपके पुत्र दुर्योधनने रोका ॥

अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति।
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥ १५ ॥

महाराज! भीष्मके रथकी ओर जाते हुए अभिमन्युको काम्बोजराज सुदक्षिणने रोका ॥ १५ ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १६ ॥

भारत! एक साथ आये हुए शत्रुमर्दन वृद्ध नरेश विराट और द्रुपदको अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर रोक दिया ॥ १६ ॥

तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम्।
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १७ ॥

भीष्मके वधकी अभिलाषा रखनेवाले ज्येष्ठ पाण्डव धर्मपुत्र युधिष्ठिरको युद्धमें द्रोणाचार्यने यत्नपूर्वक रोका ॥ १७ ॥

अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश ॥ १८ ॥
दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे।

महाराज! दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए वेगशाली वीर अर्जुन युद्धमें शिखण्डीको आगे करके भीष्मको मारना चाहते थे। उस समय महाधनुर्धर दुःशासनने युद्धमें आकर उन्हें रोका ॥ १८½ ॥

अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान् ॥ १९ ॥
भीष्मस्याभिमुखान् यातान् वारयामासुराहवे।

राजन्! इसी प्रकार आपके अन्य योद्धाओंने भीष्मके सम्मुख जाते हुए पाण्डव महारथियोंको युद्धमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १९½ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशत पुनः पुनः ॥ २० ॥
अभिद्रवत संरब्धा भीष्ममेकं महाबलम्।
एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दनः ॥ २१ ॥
अभिद्रवत मा भैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः।
अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ॥ २२ ॥
किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः।

धृष्टद्युम्न अपने सैनिकोंको बारंबार पुकार पुकारकर कहने लगे—'वीरो! तुम सब लोग उत्साहित होकर एकमात्र महाबली भीष्मपर आक्रमण करो। ये कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले अर्जुन रणक्षेत्रमें भीष्मपर चढ़ाई करते हैं। तुम भी उनपर टूट पड़ो। डरो मत। भीष्म तुमलोगोंको नहीं पा सकेंगे। इन्द्र भी समराङ्गणमें अर्जुनके साथ युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकते; फिर ये धैर्य और शक्तिसे शून्य भीष्म रणक्षेत्रमें उनका सामना कैसे कर सकते हैं? अब इनका जीवन थोड़ा ही शेष रह गया है' ॥ २०—२२½ ॥

इति सैन्यमासाद्य पुत्रास्ते पाण्डवानां महारथाः ॥ २६
मध्यप्राप्तस्य सहसा माहेयस्य रथं प्रति

मैं समझता हूँ कि वह सम्राट् युधिष्ठिर पाण्डव आपकी सेनाका इसमें अत्र महासंग्राम भीष्मके ऊपर टूट पड़े

महाव्यूहमासाद्य समरे कार्याधान प्रलयानिव ॥ ८
मध्यासवन्त सहसा... पुत्रपौत्राः

युद्धमें प्रलयकालीन अग्निके समान जलते हुए उन वीरोंको आपकी सेनाके श्रेष्ठ पुरुषोंने और हमें भस्म कर रोक

दुःशासनो महाराज भय त्यक्त्वा महारथः ॥
भीष्मस्य जीवितान्वेषी धनंजयमुपाद्रवत्

महाराज ! आपके दुःशासनने भी भय छोड़कर भीष्मकी जीवन-रक्षाके लिये धनंजयपर धावा किया

तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ९ ॥
अभ्यद्रवन्त समरे तव पुत्रान् महारथाः

इसी प्रकार शूरवीर पाण्डव आपके पुत्रोंसे युद्धमें गङ्गानन्दन भीष्मके रथकी ओर बढ़ते हुए आपके पुत्रोंपर आक्रमण किया

तत्राद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशाम्पते ७
दुःशासनरथं प्राप्य यत् पार्थो नात्यवर्तत

प्रजानाथ ! वहाँ हमने यह अद्भुत और विचित्र बात यह देखी कि अर्जुन दुःशासनके रथके पास पहुँचकर आगे न जा सके

यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् ॥
तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत्

जैसे तटकी भूमि विक्षुब्ध जलवाले महासागरको रोके रहती है, उसी प्रकार आपके पुत्रने क्रोधमें भरे हुए अर्जुनको रोक दिया था

उभौ तौ रथिनौ श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयौ ॥
उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत
तथा तौ जातसंरम्भावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ २
दुःशासनार्जुनौ वीरौ सुरेन्द्रमयसंनिभौ
समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा

भारत ! वे दोनों रथियोंमें श्रेष्ठ और दुर्जय वीर थे। दोनों ही कान्ति और दीप्तिमें चन्द्रमा और सूर्यके समान जान पड़ते थे और भारत ! दुःशासन तथा अर्जुन दोनों वीर मयासुर एवं इन्द्रके समान बलशाली थे। वे दोनों रोषमें भरकर एक दूसरेके वधकी अभिलाषा रखते थे। उस महायुद्धमें वे इसी प्रकार एक दूसरेसे भिड़े हुए थे, जैसे पूर्वकालमें मयासुर और इन्द्र आपसमें लड़ते थे। २

दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ३ ॥
वासुदेवं च विंशत्या ताडयामास संयुगे

महाराज ! दुःशासनने तीन बाणोंद्वारा पाण्डुनन्दन अर्जुनको और बीस बाणोंसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको युद्धमें घायल किया। ३

ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ॥ ३ ॥
दुःशासनं शतेनाजौ नाराचानां समार्पयत्

श्रीकृष्णको पीड़ित हुआ देख अर्जुनको क्रोध उमड़ आया और उन्होंने दुःशासनको युद्धमें सौ नाराच मारकर घायल कर दिया

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ३ ॥
पञ्चेव पन्नगा राजंस्तटाक इव ... पयः

नाराच बाणोंने दुःशासनका कवच छिन्न-भिन्न करके उसका खून पी लिया, मानो पाँच सर्प तालाबमें घुस गये हों

दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः संनतपर्वभिः ४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब दुःशासनने कुपित होकर अर्जुनके ललाटमें झुकी हुई गाँठवाले तीन बाण मारे

ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे
यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यर्थमुच्छ्रितैः ॥ ५ ॥

महाराज ! ललाटमें धँसे हुए उन बाणोंसे पाण्डुनन्दन अर्जुन युद्धमें ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित मेरुपर्वतके समान अत्यन्त शोभा पाने लगे

सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना
व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ६

आपके धनुर्धर पुत्रके द्वारा युद्धमें अधिक घायल किये जाकर महाधनुर्धर अर्जुन खिले हुए पलाश वृक्षके समान शोभा पाने लगे

दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः
पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुरुग्रो निशाकरम् ७

तदनन्तर कुपित हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनने दुःशासनको उसी प्रकार पीड़ा देने लगे, जैसे पूर्णिमाके दिन अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ उग्र राहु चन्द्रमाको पीड़ा देता है

पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशाम्पते
विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः

प्रजानाथ ! बलवान् अर्जुनके द्वारा पीड़ित होनेपर आपके पुत्रने शिलापर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा समराङ्गणमें कुन्तीकुमारको बींध डाला

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा रथं चास्य त्रिभिः शरैः
आजघान ततः पश्चात् पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥ ९

अर्जुनने तीन बाणोंसे दुःशासनके धनुषको काटकर उसके रथको छिन्न-भिन्न करके आपके पुत्रको पैने बाणोंसे अच्छी तरह घायल किया

सोऽभ्यगात् फाल्गुनं क्रुद्धो भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४० ॥

तब दुःशासनने दूसरा धनुष ले भीष्मके सामने खड़े होकर अर्जुनकी दोनों भुजाओं और छातीमें पचीस बाण मारे ॥ ४० ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः ।
अमर्षयद् विशिखान् घोरान् यमदण्डसमान् बहून् ॥ ४१ ॥

महाराज! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने कुपित हो दुःशासनपर यमदण्डके समान भयंकर बहुत-से बाण चलाये ॥ ४१ ॥

अप्राप्तानेव तान् बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥

परंतु आपके पुत्रने अर्जुनके प्रयत्नशील होते हुए भी उन बाणोंको अपने पास आनेके पहले ही काट डाला। यह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ ४२ ॥

पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत् तनयस्तव ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान् संधाय कार्मुके ॥ ४३ ॥
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।

बाणोंको काटनेके पश्चात् आपके पुत्र दुःशासनने अर्जुनको पैने बाणोंद्वारा बींध डाला। तब रणभूमिमें अर्जुनने कुपित होकर अपने धनुषपर स्वर्णमय पंखवाले तथा शिलापर रगड़कर तेज किये हुए बाणोंका संधान किया और उन्हें दुःशासनपर चलाया ॥ ४३½ ॥

न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः ॥ ४४ ॥
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत ।

महाराज भरतनन्दन! जैसे हंस तालाबमें पहुँचकर उसके भीतर गोता लगाते हैं, उसी प्रकार वे बाण महामना दुःशासनके शरीरमें धँस गये ॥ ४४½ ॥

पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥ ४५ ॥
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत् ।
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत् तदा ॥ ४६ ॥

इस प्रकार महामना पाण्डुनन्दन अर्जुनके द्वारा पीड़ित होकर आपका पुत्र दुःशासन युद्धमें अर्जुनको छोड़कर तुरंत ही भीष्मके रथके पास चला गया। उस समय अगाध समुद्रमें डूबते हुए दुःशासनके लिये भीष्मजी द्वीप हो गये ॥ ४५-४६ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते ।
अवारयत् ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४७ ॥
शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रः पुरंदरम् ।
निर्बिभेद महाकायो विव्यथे नैव चार्जुनः ॥ ४८ ॥

प्रजानाथ! तदनन्तर होशमें आनेपर आपके पराक्रमी एवं शूरवीर पुत्र दुःशासनने पुनः अत्यन्त तीखे बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको रोका, मानो वृत्रासुरने इन्द्रकी गतिको अवरुद्ध कर दिया हो। महाकाय दुःशासनने अर्जुनको अपने बाणोंसे भिन्न-भिन्न कर दिया, परंतु वे तनिक भी व्यथित नहीं हुए ॥ ४७-४८ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासनसमागमे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें अर्जुन और दुःशासनका युद्धविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १० श्लोक मिलाकर कुल ५८ श्लोक हैं)

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव पक्षके प्रमुख महारथियोंके द्वन्द्वयुद्धका वर्णन

संजय उवाच

सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाभ्युद्यतं रणे ।
आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धस्थलमें कवचधारी सात्यकिको भीष्मपर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत देख महाधनुर्धर राक्षस अलम्बुषने आकर उन्हें रोका ॥ १ ॥

माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।
आजघान रणे राजन् प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥

राजन्! भरतनन्दन! यह देख मधुवंशी सात्यकिने अत्यन्त कुपित हो उस रणक्षेत्रमें राक्षस अलम्बुषको हँसते हुए-से नौ बाण मारे ॥ २ ॥

तथैव राक्षसो राजन् माधवं नवभिः शरैः ।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥

राजेन्द्र! तब उस राक्षसने भी अत्यन्त कुपित होकर मधुवंशी सात्यकिको नौ बाणोंसे पीड़ित किया ॥ ३ ॥

शैनेयः शरसंघं तु प्रेषयामास संयुगे ।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४ ॥

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मधुवंशी सात्यकिका कोप बहुत बढ़ गया और समरभूमिमें उन्होंने राक्षसपर बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ४ ॥

ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥ ५ ॥

तदनन्तर राक्षसने सत्यपराक्रमी महाबाहु सात्यकिको तीखे सायकोंसे बींध डाला और सिंहके समान गर्जना की ॥ ५ ॥

माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा ।
धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी जहास च ननाद च ॥ ६ ॥

उस समय राक्षसके द्वारा रणभूमिमें रोके जाने और अत्यन्त घायल होनेपर भी मधुवंशी तेजस्वी सात्यकि हँसते और गर्जना करते रहे ॥ ६ ॥

भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः ।
ताडयामास समरे तोत्त्रैरिव महागजम् ॥ ७ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए भगदत्तने रणभूमिमें मधुवंशी सात्यकिको समरभूमिमें उसी प्रकार पीड़ित किया, जैसे महावत अंकुशोंद्वारा महान् गजराजको पीड़ा देता है ॥ ७ ॥

विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः ।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान् संनतपर्वणः ॥ ८ ॥

तब रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने युद्धमें उस राक्षसको छोड़कर प्राग्ज्योतिषपुरनरेश भगदत्तपर झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाण चलाये ॥ ८ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद् धनुः ।
चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९ ॥

तब सिद्धहस्त प्राग्ज्योतिषपुरनरेशने सात्यकिके विशाल धनुषको सौ धारवाले भल्लद्वारा काट डाला ॥ ९ ॥

अथान्यद् धनुरादाय वेगवत् परवीरहा ।
भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

तब शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले सात्यकिने दूसरा वेगशाली धनुष लेकर रणभूमिमें कुपित हुए भगदत्तको तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ १० ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम् ॥ ११ ॥
यमदण्डोपमां घोरां चिक्षेप परमाहवे ।

इस प्रकार अत्यन्त घायल होकर महाधनुर्धर भगदत्त अपने मुखके दोनों कोने चाटने लगा। फिर उसने उस महायुद्धमें सोने और वैदूर्य मणियोंसे विभूषित लोहेकी बनी हुई सुदृढ़ एवं यमदण्डके समान भयंकर शक्ति चलायी ॥ ११½ ॥

तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम् ॥ १२ ॥
सात्यकिः समरे राजंस्त्रिधा चिच्छेद सायकैः ।

उसके बाहुबलसे प्रेरित होकर समरभूमिमें सहसा अपने ऊपर गिरती हुई उस शक्तिके सात्यकिने बाणोंद्वारा तीन टुकड़े कर दिये ॥ १२½ ॥

सा पपात तदा भूमौ महोल्केव हतप्रभा ॥ १३ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ।
महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १४ ॥

तब वह शक्ति प्रभाहीन हुई बड़ी भारी उल्काके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। प्रजानाथ! शक्तिको नष्ट हुई देख आपके पुत्रने विशाल रथसेनाके द्वारा सात्यकिको रोका ॥ १३-१४ ॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम् ।
दुर्योधनो भृशं हृष्टो भ्रातॄन् सर्वानुवाच ह ॥ १५ ॥

वृष्णिवंशी महारथी सात्यकिको रथसेनाद्वारा घिरा हुआ देख दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ और अपने समस्त भाइयोंसे कहा— ॥ १५ ॥

तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि ।
न जीवन् प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद् रथव्रजात् ॥ १६ ॥

कौरवो! तुम ऐसा प्रयत्न करो (जिससे इस रथसमूहमें आये हुए सात्यकि हमारे इस महान् रथसमूहसे जीवित न निकलने पावे) ॥ १६ ॥

तस्मिन् हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद् बलम् ।
तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ॥ १७ ॥
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मस्याभिमुखं रणे ।

सात्यकिके मारे जानेपर मैं पाण्डवोंकी विशाल सेनाको मरी हुई ही मानता हूँ। दुर्योधनके इस वचनको स्वीकार करके महारथियोंने भीष्मजीके सामने सात्यकिके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ १७½ ॥

(अभिमन्युं तदाऽऽयान्तं भीष्मायाभ्युद्यतं वधे)
काम्बोजराजो बलवान् वारयामास सायकैः ॥ १८ ॥

इसी प्रकार भीष्मके वधके लिये उद्यत होकर आगे हुए अभिमन्युको बलवान् काम्बोजराजने बाणोंद्वारा रोक दिया ॥ १८ ॥

आर्जुनिर्नृपतिं विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन् विव्याध तं नृप ॥ १९ ॥

राजन्! नरेश्वर! काम्बोजराजको झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाणोंसे अभिमन्युने घायल करके पुनः चौंसठ बाण मारकर उन्हें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १९ ॥

सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चास्य नवभिरिच्छन् भीष्मस्य जीवितम् ॥ २० ॥

तदनन्तर भीष्मजीके जीवनकी रक्षा चाहनेवाले काम्बोजराज सुदक्षिणने अभिमन्युको पुनः पाँच बाण मारे और नौ बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ २० ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहत् तयोस्तत्र समागमे ।
यदाभ्यधावद् गाङ्गेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः ॥ २१ ॥

जब शत्रुसूदन शिखण्डीने गङ्गानन्दन भीष्मपर धावा किया था, उस समय उन दोनों (अभिमन्यु और सुदक्षिण) का परस्पर बड़ा भारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ २१ ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥ २२ ॥

बूढ़े राजा महारथी विराट और द्रुपद दुर्योधनकी उस

निशान मेनाको खेलते हुए अत्यन्त क्रोधमें भरकर युद्धस्थलमें भीष्मपर चढ़ आये । २२ ।

अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समायाद् युधि सत्तम ।
तत्र प्रावर्तत युद्धं तयोरत्यद्भुत भारत ॥ २३ ॥

तब रणभूमिमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा रणभूमिमें कुपित होकर आया । भारत ! फिर अश्वत्थामा विराट और द्रुपदके साथ भारी युद्ध छिड़ गया ॥ २३ ॥

विराटो द्रुपदश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पाञ्चाल्यमत्स्यौ शैनेयं प्रतिविव्याधतुः शरैः ॥ २४ ॥

अश्वत्थामा महान् क्रोध करके राजा विराट तथा द्रुपदके रथोंको बाणोंसे ढक दिया तथा महाधनुर्धर अश्वत्थामाके मस्तक तक सहस्रों बाणोंसे घायल किया । २४ ।

द्रुपदश्च विविधानैर्विव्याध विविधैः शरैः ।
गुरुपुत्रं समासाद्य महाबली महाधनुः ॥ २५ ॥
सम्प्रयाताः नरव्याघ्रौ तु विव्याध बहुभिः शरैः ।
विराटद्रुपदौ वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥ २६ ॥

उस समय द्रुपदने भी तीन तीखे बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको घायल कर दिया । इस प्रकार प्रहार करते हुए उन दोनों महाबली नरेशोंको अश्वत्थामाने अनेक बाणोंद्वारा बींध डाला । विराट और द्रुपद दोनों वीर भीष्मका वध करनेके लिये उद्यत थे । २५-२६ ।

तत्राद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत् ।
यद् द्रौणिबाणान् घोरान् सम्यवारयतां युधि ॥ २७ ॥

राजन् ! वहाँ हमलोगोंने उन वृद्ध नरेशोंका यह अद्भुत एवं महान् पराक्रम देखा कि वे युद्धमें अश्वत्थामाके भयंकर बाणोंका निवारण करते जा रहे थे । २७ ।

सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् ॥ २८ ॥

इसी प्रकार आक्रमण करनेवाले सहदेवको शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने आकर रोका, ठीक वैसे ही जैसे जंगलमें एक मतवाला हाथीपर मतवाला गजराजने आक्रमण किया हो । २८ ।

कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम् ।
आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः ॥ २९ ॥

शूरवीर कृपाचार्यने समरभूमिमें महारथी माद्रीकुमार सहदेवको सुवर्णभूषित सत्तर बाणोंद्वारा तुरंत घायल कर दिया ॥ २९ ॥

तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥ ३० ॥

तब माद्रीकुमार सहदेवने भी अपने बाणोंद्वारा उनका धनुष दो टुकड़े कर दिये और धनुष कट जानेपर उन्हें नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् ।
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः ॥ ३१ ॥
आजघानोरसि क्रुद्ध इच्छन् भीष्मस्य जीवितम् ।

तदनन्तर भीष्मके जीवनकी रक्षा चाहनेवाले कृपाचार्यने समराङ्गणमें भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा धनुष लेकर अत्यन्त हर्ष तथा क्रोधसे भरकर माद्रीकुमारकी छातीमें दस तीखे बाण मारे । ३१ ।

तथैव पाण्डवो राजन् कृपमत्यन्तमर्षणम् ॥ ३२ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकाङ्क्षया ।
तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं भयावहम् ॥ ३३ ॥

राजन् ! इसी प्रकार पाण्डुकुमार सहदेवने भी कुपित हो भीष्मके वधकी इच्छासे अमर्षशील कृपाचार्यकी छातीमें अपने बाणोंद्वारा प्रहार किया । उन दोनोंमें वह युद्ध भयानक और परम भयंकर हो गया । ३२-३३ ॥

नकुलं तु रणे क्रुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः ।
विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन् भीष्मं महाबलम् ॥ ३४ ॥

दूसरी ओर शत्रुओंको संताप देनेवाले विकर्णने युद्धमें महाबली भीष्मकी रक्षा करते हुए क्रोधमें भरकर साठ बाणोंद्वारा नकुलको घायल कर दिया । ३४ ।

नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता ।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ॥ ३५ ॥

आपके बुद्धिमान् पुत्र विकर्णद्वारा अत्यन्त घायल होकर नकुलने भी सतहत्तर बाणोंसे विकर्णको क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तत्र तौ नरव्याघ्रौ भीष्महेतोः परंतपौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ ३६ ॥

जैसे गोशालामें दो साँड़ आपसमें लड़ते हों, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों पुरुषसिंह वीर विकर्ण और नकुल भीष्मके लिये एक-दूसरेपर घातक प्रहार कर रहे थे ॥

घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम् ।
दुर्मुखः समरं प्रायाद् भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३७ ॥

उस समय पराक्रमी दुर्मुखने समरभूमिमें भीष्मकी रक्षाके लिये रणमें घटोत्कचपर आक्रमण किया, जो युद्धके मैदानमें आपकी सेनाका संहार करता हुआ आगे बढ़ रहा था ॥ ३७ ॥

हैडिम्बस्तु रणे राजन् दुर्मुखं शत्रुतापनम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा ॥ ३८ ॥

राजन् ! उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले दुर्मुखको क्रोधमें भरे हुए हिडिम्बाकुमारने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ३८ ॥

भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः ।
षष्ट्या वीरो नदन् हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥

और युयुत्सुने वनपुर अनला करते हुए अपने तीखी निकाले बाणोद्वारा मल्लोके पुत्र श्वेतकाको पुढरे घुहानेमें खड़ा बाणोंसे बीच

धृष्टद्युम्न तथा उवाच भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम्
हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठ महारथ

इसी प्रकार भीष्म वधके लिये आते हुए वेगोंसे बीच धृष्टद्युम्नको महारथी कृतवर्माने रोक दिया

हार्दिक्य पार्षत नापि विद्धः पञ्चभिरायसैः
पुन पञ्चाशता तूर्ण तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्

कृतवर्माने तुरत द्रुपदकुमार हाथके हुए पांच बाणोंसे बींधकर फिर ... बाण मारे ... कहा तहा ... ॥

आजघ्नतु महाबाहु पावन महारथम्
यत पायसारजन हार्दिक्य अभि शार
निहत्याथ निशितैलोहैः पञ्चत्र शिलाय

तब महाबाहु कृतवर्माने पाण्य धृष्टद्युम्नको मारी घोर ... धृष्टद्युम्नने काय भूमि गंधे आनेवाले बाण ...
किया

ततो समभवद् युद्ध भीष्मद्रोणमहाहवम्
अन्योन्यमभिरावे पुत्रः सेया वृत्रवासवयो

भाग भीष्मद्रोण निमित्त महान् सामयी वृत्रासुर इन्द्रके समान वीरोंका युद्ध होने लगा जिसमें वृत्रा ... अनेक ... समान

भीमसेन तथा उवाच भीष्म प्रति महारथम्
भूरिश्रवा त्यपायान्तूर्ण तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्
महारथी ... और आते हुए
भूरिश्रवाने तुरंत आक्रमण
किया

सोमदत्तिरथो भीमसङ्ग्रामे स्तनान्तरे
नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे

तदनन्तर सोमदत्तकुमारने युद्धस्थलमें सुवर्ण ... युक्त बाणसे तीखे नाराचद्वारा भीम छातीमें प्रहार किया

उरःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान्
स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम

इसके छातीमें लगे हुए ... महातेजस्वी भीमसेन वैसे सुशोभित ... जैसे पूर्वकालमें कार्तिकेयकी शक्तिसे क्रौञ्च पर्वतकी शोभा हुई

तौ शरान् सूर्यसंकाशान् कर्मारपरिमार्जितान्
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते भृशं भी

क्रोधमें ... हुए दोनों ... पुत्र एक दूसरेपर ... द्वारा ... बाण बरसाने ... करते हुए ... समान तेजस्वी बाणोंका प्रहार

भीमो भीष्मवधाकाङ्क्षी सौमदत्तिं महारथम्
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम्
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे

भीमसेन भीष्मके वधकी इच्छा रखकर महारथी भूरिश्रवा ... भूरिश्रवा ... विजय चाहता पाण्डुपुत्र ... दोनों युद्धमें एक दूसरेका अस्त्र ... प्रतीकार ... हुए लड़

युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम्
भीष्मायाभिमुखं यान्तं भारद्वाजो न्यवारयत्
तस्य मेघस्वनं श्रुत्वा रथघोषं ...

और कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर विशाल ... ... द्रोण ... ... दोनों

विव्यथुः समरे ... प्रभद्रका ... राजन् ... मत्स्यानीक ... मारिष

राजन् द्रोणाचार्यके ... ... गजना ... ... मत्स्य और प्रभद्रक ... घोर ... करा

सा चमूर्महती राजन् पाण्डुपुत्रस्य संयुगे
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात् पदम्

युद्धस्थलमें पाण्डुपुत्र ... की ... विशाल सेना ... द्रोणाचार्यके ... ... कदम भी

चित्रसेनं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर
चरन्तं ... सुत ... युद्धमभिमन्युः

भीष्मके ... ... मेरे आपके पुत्र ... लिया

भीष्मद्रोणौ ... पराक्रमी
चेकितानं ... राजन्या वारयामास
तथैव चेकितानोऽपि ...
तव युद्धमासीत् सुमहत् तयोस्तत्र समागमे

पराक्रमी ... भीष्म ... लिये राजा ... दिया ... भार ... पूरे ... ... जब ... ... चेकितानने ... गति रोक ... दोनोंमें ... ... युद्ध होने लगा

अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तव भारत
विमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्द

भरतनन्दन! वहाँ बारंबार गर्जना करके अर्जुनने आपके पुत्रको युद्धसे विमुख करके आपकी सेनाको रौंद डाला ॥)

दु:शासनोऽपि परया शक्त्या [illegible]।
तत्र भीष्मं न मे हन्यादिति निश्चित्य भारत ॥ ५७ ॥

भारत! उस समय दु:शासन भी यह निश्चय करके कि किसी प्रकार हमारे भीष्मको मार न सके, पूरी शक्ति लगाकर अर्जुनसे लोहा लेता रहा ॥ ५७ ॥

(पार्थोऽपि समरे राजन् दु:शासनमथाहवत्।
विद्धवान् बहुधा युद्धे पार्थवाणैरजिह्मगैः ॥
प्रमुखे स्थापिता सेना दृष्ट्वा पार्थपराक्रमम्।
पुत्राश्च तावका तेन पार्थेनामिततेजसा ॥)

राजन्! अर्जुनने भी समरमें दु:शासनको अपने बाणोंसे बहुत घायल किया। सीधे जानेवाले अर्जुनके बाणोंसे आपके पुत्र बार-बार घायल होकर सामने खड़ी सेनाको देखकर आपकी सारी सेना व्याकुल हो उठी। अमित तेजस्वी अर्जुनने उन सबको पीड़ित किया।

सा चम्वस्तावका सर्वे पुत्रस्य तव वाहिनी।
लोडयामास रथिभिः अर्जुनोऽत्र तथैव भारत ॥ ५८ ॥

भरतनन्दन! उस संग्राममें आपके पुत्रकी सारी सेनाको वहाँ सब रथियोंसहित अर्जुनने छिन्न-भिन्न कर डाला था ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ६ श्लोक मिलाकर कुल ६१ श्लोक हैं)

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका अश्वत्थामाको अशुभ शकुनोंकी सूचना देते हुए उसे भीष्मकी रक्षाके लिये धृष्टद्युम्नसे युद्ध करनेका आदेश देना

सञ्जय उवाच

अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १ ॥
विधुन्वानो धनु:श्रेष्ठं द्रावयाणो महारथान्।
पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥ २ ॥
निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान्।
प्रतपन्तमनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत ॥ ३ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर महाधनुर्धर, मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और नरश्रेष्ठ महाबली तथा गुणवान् निमित्तज्ञ द्रोणाचार्य मतवाले हाथियोंको भी रोक देनेवाले विशाल धनुषको हाथमें लेकर उसे खींचते और शत्रुओंकी सेनाको [illegible] उनकी पाण्डवोंकी सेनामें प्रवेश करके सब ओर बुरे निमित्त (शकुन) देखकर शत्रुसेनाको संताप देते हुए पुत्र अश्वत्थामासे इस प्रकार कहा ॥ १—३ ॥

अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः।
जिघांसु: समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥ ४ ॥

'तात! यही वह दिन है, जब कि महाबली अर्जुन समरभूमिमें भीष्मको मार डालनेकी इच्छासे महान् प्रयत्न करेगा ॥ ४ ॥

उत्पतन्ति हि मे बाणा धनु: प्रस्फुरतीव च।
योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः ॥ ५ ॥

मेरे बाण तरकससे उछले पड़ते हैं, धनुष फड़क उठता है। अस्त्र मेरे प्रयोगमें आनेके लिये उतावले हो रहे हैं और मेरे मनमें क्रूरकर्म करनेका संकल्प हो रहा है ॥ ५ ॥

दिक्षु शान्तासु घोराणि व्याहरन्ति मृगद्विजाः।
नीचैर्गृध्रा निलीयन्ते भारतानां चमूं प्रति ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें पशु और पक्षी अत्यन्त भयंकर बोली बोल रहे हैं। गीध नीचे आकर भरतवंशियोंकी सेनामें छिप रहे हैं ॥ ६ ॥

नष्टप्रभ इवादित्य: सर्वतो लोहिता दिशः।
रसते व्यथते भूमि: कम्पतीव च सर्वश: ॥ ७ ॥

सूर्यकी प्रभा मन्द-सी पड़ गयी है। सम्पूर्ण दिशाएँ लाल हो रही हैं। पृथ्वी सब ओरसे आर्तनाद-सा करती, व्यथित और कम्पित-सी हो रही है ॥ ७ ॥

कङ्का गृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहु:।
शिवाश्चैवाशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद् भयम् ॥ ८ ॥
(पश्चात्सिते भयत्रस्ता दीप्तास्याभिमुखी रवम् ।)

कङ्क, गीध और बगले बारंबार बोल रहे हैं। अमङ्गलमयी भयंकर गीदड़ियाँ महान् भयकी सूचना देती हुई सूर्यकी ओर मुँह करके भयानक बोली बोला करती हैं और उनका मुख प्रज्वलित-सा जान पड़ता है ॥ ८ ॥

पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलात्।
सकबन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥

सूर्यमण्डलके मध्यभागसे बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरी हैं। कबन्धयुक्त परिघ सूर्यको चारों ओरसे घेरकर स्थित है ॥

परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत्।
वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १० ॥

चन्द्रमा और सूर्यके चारों ओर भयंकर घेरा पड़ने लगा है जो क्षत्रियोंके शरीरका विनाश करनेवाला घोर भयकी सूचना दे रहा है। १० ॥

देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः।
कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च ॥ ११ ॥

कौरवराज दुर्योधनके देवालयोंकी देवमूर्तियाँ हिलती, हँसती, नाचती तथा रोती जान पड़ती हैं। ११ ॥

अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम्।
अवाक्शिराश्च भगवानुदतिष्ठत चन्द्रमाः ॥ १२ ॥

सारे ग्रह सूर्यको वामावर्त करके उनके अमङ्गल लक्षणोंको सूचना दे रहे हैं। भगवान् चन्द्रमा अपने दोनों कोनोंको नीचे करके उदित हुए हैं। १२ ॥

वपूंषि च नरेन्द्राणां विगतानीव लक्षये।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः ॥ १३ ॥

राजाओंके शरीरोंमें श्रीहीनता देख रहा हूँ। दुर्योधनकी सेनाओंमें जो योद्धा कवच धारण करके स्थित हैं, उनकी शोभा नहीं हो रही है। १३ ॥

सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान्।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥ १४ ॥

दोनों सेनाओंमें सब ओर पाञ्चजन्य शङ्खका गम्भीर घोष और गाण्डीव धनुषकी टङ्कार-ध्वनि सुनायी देती है। १४ ॥

ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे।
अपास्यान्यान् रणे योधानभ्येष्यति पितामहम् ॥ १५ ॥

इससे यह निश्चय जान पड़ता है कि अर्जुन युद्धस्थलमें उत्तम अस्त्रोंका आश्रय ले दूसरे योद्धाओंको दूर हटाकर पितामह भीष्मके पास पहुँच जायगा। १५ ॥

हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः।
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥ १६ ॥

महाबाहो! भीष्म और अर्जुनके युद्धका विचार करके मेरे रोंगटे खड़े हो रहे हैं और मन शिथिल-सा होता जा रहा है। १६ ॥

तं चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम्।
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्यायोधनं गतः ॥ १७ ॥

शठतापूर्ण बुद्धि रखनेवाले उस पापात्मा पाञ्चाल राजकुमार शिखण्डीको यहाँ रणमें आगे करके कुन्तीकुमार अर्जुन भीष्मसे युद्ध करनेके लिये गये हैं। १७ ॥

अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाहं हन्यां शिखण्डिनम्।
स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥ १८ ॥

भीष्मने पहले ही यह कह दिया था कि मैं शिखण्डीको नहीं मारूँगा, क्योंकि विधाताने इसे स्त्री ही बनाया था। फिर भाग्यवश यह पुरुष हो गया। १८ ॥

अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः।
न चामङ्गलिके तस्मिन् प्रहरेदापगासुतः ॥ १९ ॥

इसके सिवा द्रुपदका यह महाबली पुत्र अपनी ध्वजामें अमङ्गलसूचक चिह्न धारण करता है। अतः उस अमाङ्गलिक शिखण्डीपर गङ्गानन्दन भीष्म कभी प्रहार नहीं करेंगे। १९ ॥

एतद् विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम्।
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥

यह सब बात जब मैं विचार करता हूँ, तब मेरी बुद्धि अत्यन्त शिथिल हो जाती है। आज अर्जुनने पूरी तैयारीके साथ रणभूमिमें कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भीष्मजीपर धावा किया है। २० ॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चार्जुनसङ्गतः।
मम चास्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिरका क्रोध करना, भीष्म और अर्जुनका परस्पर भिड़ना और मेरा अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगके लिये उद्यत होना—ये तीनों बातें निश्चय ही प्रजाओंके अमङ्गलकी सूचना देनेवाली हैं। २१ ॥

मनस्वी बलवाञ्छूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः।
दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्र-विद्याके पण्डित, शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले, दूरतक बाण चलानेवाले, सुदृढ़ बाणोंका प्रहार करनेवाले तथा शकुनोंके परिणामको जाननेवाले हैं। २२ ॥

अजेयः समरे चापि देवैरपि सवासवैः।
बलवान् बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥ २३ ॥

इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उन्हें युद्धमें पराजित नहीं कर सकते। वे बलवान्, बुद्धिमान्, क्लेशोंपर विजय पानेवाले और योद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं। २३ ॥

विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः।
तस्य मार्गं परिहरन् द्रुतं गच्छ यतव्रत ॥ २४ ॥

उन्हें युद्धमें सदा विजय प्राप्त होती है। पाण्डुनन्दन अर्जुनके अस्त्र बड़े भयंकर हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुत्र! इसलिये तुम उनका मार्ग छोड़कर शीघ्र भीष्मजीकी रक्षाके लिये चले जाओ। २४ ॥

पश्याद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत्।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥ २५ ॥
कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः संनतपर्वभिः।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च ॥ २६ ॥

देखो इस महाघोर संग्राममें आज यह कैसा महान् जन संहार हो रहा है। सुवर्णमय स्वर्णाङ्गद भूषणधारी महान् धनुष लेकर सूर्य हुई मालवाले बार्णोद्धार सिद्धि किये जा रहे हैं। इनके अनुगामी तोमर और पट्टिश हमारे हाथसे किये जा रहे हैं।

मालवात् विमलालीकपा शकस्यायां कम्बोजवाल।
वैजयन्त्याः समागला स्मृत्योन निर्दिष्टिना ॥ ७ ॥

पार्थके रथ सुवर्णमण्डित होनेके कारण सुन्दर कान्तिसे प्रकाशित होनेवाली सोनी लहिरका और हाथियोंपर चलती हुई अपनी पताका सेनामें मेरे हुए किरीटधारी अर्जुनके द्वारा छिन्न भिन्न की जा रही है।

नाय सरक्षितु काल मत्तमान् मुखोपसर्पीविधि
याहि सर्वां पुरस्कृत्य यतासे विजयाय च

वेग आश्रित महाप्र नाविका नालनेत्र पुरुषोंके लिये यह अपने प्राणोंकी रक्षाका अवसर नहीं है। तुम सब लोग मारने ममता छोड़ और निःशंक आगेके विजयप्राप्ति के साथ चलो

रथनागाश्वपादातं महावरा सुदुर्गमम्।
रथेन लघ्वमनहौ नरसेव कपिध्वज ॥ ९ ॥

यह युद्ध एक महाघोर और भयानक युग नदीके समान है। उसमें रथ हाथी और घोड़े भरे हैं। कपिध्वज अर्जुन रथरूपी नौकाके द्वारा इसे पार कर रहे हैं।

ब्रह्मण्यता बाणो दृढ़ सत्यश्च धरित महान्
इदेव हयारौ पार्थे श्वेता यस्य धनञ्जय ॥ १०

भीमसेनश्च बलवान् माद्रीपुत्र च पाण्डवौ
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ११

यथा वेदमूर्तिकुमार युधिष्ठिरमें ही धर्मात्मीके प्रति भक्ति इन्द्रियसंयम दान तप और सत्य सदाचार आदि सद्गुण दिखायी देते हैं। जिनके सहायक नरेन्द्र अर्जुन बलवान् भीम तथा माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव-जैसे भाई मिले हैं एवं वृष्णिनन्दन भगवान् वासुदेव जिनके सहायक और रक्षक बनकर सदा साथ रहते हैं।

तस्यैव मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः
तपोदृग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतीम् ॥ १२

उन युधिष्ठिर दुर्योधनका शरीर उन्हींकी तपस्यासे दग्ध हो गया है और इसकी भारती सेनाको उन्हींकी क्रोधाग्नि जलाकर भस्म किये देती है।

एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः
दारयन् सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥ १३ ॥

देखो भगवान् वासुदेवकी शरणमें रहनेवाले ये अर्जुन कौरवोंकी सम्पूर्ण सेनाओंको सब ओरसे विदीर्ण करते हुए इधर ही आते दिखायी देते हैं।

एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना
महोर्मिनद्धं सुमहत् तिमिनेव महाजलम् ॥ १४

जैसे तिमि नामक महामत्स्य उत्ताल-तरंगोंसे युक्त महासागरके जलको क्षुब्ध कर डालता है, उसी प्रकार किरीटधारी अर्जुनके द्वारा मथित हो यह कौरव सेना विक्षुब्ध होती दिखायी देती है।

हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥ १५ ॥

सेनाके मुख भागमें हाहाकार और किलकिलाहटके शब्द सुनायी देते हैं। तुम द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नका सामना करनेके लिये जाओ और मैं युधिष्ठिरपर आक्रमण करूँगा।

दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्यामिततेजसः
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ १६

अमित तेजस्वी राजा युधिष्ठिरके व्यूहके भीतर प्रवेश करना समुद्रके भीतर प्रवेश करनेके समान बहुत कठिन है; क्योंकि उसके चारों ओर अतिरथी वीर खड़े हैं।

सात्यकिश्चाभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ
पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥ १७ ॥

सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन और नकुल-सहदेव नरेश्वर राजा युधिष्ठिरकी रक्षा कर रहे हैं।

उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्गतः
एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ १८ ॥

वह देखो भगवान् विष्णुके समान श्याम और महान् शाल वृक्षके समान ऊँचा अभिमन्यु द्वितीय अर्जुनके समान सेनाके आगे आगे चल रहा है।

उत्तमास्त्राणि चाधत्स्व गृहीत्वा च महद् धनुः
पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥ १९ ॥

तुम अपने उत्तम अस्त्रोंको धारण करो और विशाल धनुष लेकर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा भीमसेनके साथ युद्ध करो।

को हि नेच्छेत् प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः
क्षत्रधर्मं तु सम्प्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम् ॥ २० ॥

अपना प्यारा पुत्र नित्य निरन्तर जीवित रहे, यह कौन नहीं चाहता है? तथापि क्षत्रिय धर्मका विचार करके मैं तुम्हें इस कार्यमें नियुक्त कर रहा हूँ।

एष चापि रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम्।
युद्धेषु सदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥ २१ ॥

तात! ये भीष्म रणक्षेत्रमें यमराज और वरुणके समान पराक्रम दिखाते हुए पाण्डवोंकी विशाल सेनाको भस्म कर रहे हैं।

(युद्धं समन्तुमुदाततरैव भारताः ।
महारथे महाराज धर्मराजसमीपगाः ॥)

महाराज! आपके पुत्रको इस प्रकार आदेश देकर प्रतापी द्रोणाचार्य इन महापुरुषोंके साथ युद्ध करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

(इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें द्रोणाचार्य और दुर्योधनका संवादविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥)

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

कौरवपक्षके दस प्रमुख महारथियोंके साथ अकेले घोर युद्ध करते हुए भीमसेनका अद्भुत पराक्रम

सञ्जय उवाच

भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणो युवा ।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २ ॥

सञ्जय कहते हैं—राजन्! भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, सिन्धुराज जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षण—ये दस वीर भीमसेनके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १-२ ॥

महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
भीष्मस्य समरे राजन् प्रार्थयाना महद् यशः ॥ ३ ॥

नरेश्वर! इनके साथ अनेक देशोंसे आयी हुई विशाल सेना मौजूद थी। ये समरभूमिमें भीष्मजीके महान् यशको बढ़ाना चाहते थे ॥ ३ ॥

शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥ ४ ॥

शल्यने नौ बाणोंसे भीमसेनको घायल किया। फिर कृतवर्माने तीन और कृपाचार्यने नौ बाण मारे ॥ ४ ॥

चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयन् ॥ ५ ॥

आर्य! फिर चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्तने भी दस-दस बाण मारकर भीमसेनको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ६ ॥
दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ।

फिर सिन्धुराज जयद्रथने तीन और अवन्तीके विन्द और अनुविन्दने पाँच-पाँच तथा दुर्मर्षणने बीस बाणोंद्वारा पाण्डुनन्दन भीमसेनको चोट पहुँचायी ॥ ६½ ॥

स तान् सर्वान् महाराज राजमानान् पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
प्रवीरान् सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान् महारथान् ।
अविध्यत् समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥ ८ ॥

महाराज! तब शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले पाण्डुकुमार वीर भीमसेनने सम्पूर्ण जगत्‌के इन प्रमुख वीरों तथा आपके महारथी पुत्रोंको पृथक्-पृथक् बाण मारकर समराङ्गणमें घायल कर दिया ॥ ७-८ ॥

सप्तभिः शल्यमाविध्यत् कृतवर्माणमष्टभिः ।
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥ ९ ॥

भारत! भीमसेनने शल्यको सात और कृतवर्माको आठ बाणोंसे बींध डाला। फिर कृपाचार्यके बाणसहित धनुषको बीचसे ही काट दिया ॥ ९ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ १० ॥

धनुष कट जानेपर उन्होंने पुनः सात बाणोंसे कृपाचार्यको घायल किया। फिर विन्द और अनुविन्दको तीन-तीन बाण मारे ॥ १० ॥

दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः ।
विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥ ११ ॥
विद्ध्वा भीमोऽनदद् हृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः ।

तत्पश्चात् दुर्मर्षणको बीस, चित्रसेनको पाँच, विकर्णको दस तथा जयद्रथको पाँच बाणोंसे घायल करके भीमसेन बड़े हर्षके साथ गर्जना करने लगे। फिर उन्होंने जयद्रथको पुनः तीन बाणोंसे घायल किया ॥ ११ ॥

अथान्यद् धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ १२ ॥
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः ।

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर रोषपूर्वक चलाये हुए दस तीखे बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥ १२½ ॥

स विद्धो दशभिर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महाद्विपः ॥ १३ ॥
(ज्वलनाद् भास्वरः शूर सिंहवद् व्यसृजद् ध्वनिम् ।)

जैसे महान् गजराज अंकुशोंसे ताड़ित होकर चिग्घाड़ उठता है, उसी प्रकार उन दस बाणोंसे घायल होकर शूरवीर भीमसेनने क्रुद्ध होकर सिंहके समान गर्जना की ॥ १३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे ॥ १४ ॥

महाराज! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए प्रतापी भीमसेनने रणक्षेत्रमें कृपाचार्यको अनेक बाणोंद्वारा घायल किया ॥ १४ ॥

सुनाभस्य तथाभ्यास्य सारथिं च शिलि शरैः
महिषोऽमकुलोत्तस्य कालान्तकसमद्युति ॥ १५ ॥

इसके बाद प्रलयकालीन यमराजके समान तेजस्वी भीमसेनने तीन बाणोंद्वारा सिन्धुराज जयद्रथके घोड़ों तथा सारथिको यमलोक भेज दिया

हतास्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः
शराभिर्भेदे निशितान् भीमसेनस्य संयुगे ॥ १६ ॥

तब उस अश्वहीन रथसे तुरंत ही कूदकर महारथी जयद्रथने युद्धस्थलमें भीमसेनके ऊपर बहुतसे तीखे बाण चलाये

तस्य भीमो धनुर्मध्ये क्षुराभ्यां चिच्छेद मारिष
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥ १७ ॥

माननीय भरतश्रेष्ठ! उस समय भीमसेनने दो भल्ल मारकर महामना सिन्धुराज जयद्रथके धनुषको काट दिया

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥ १८ ॥

राजन्! धनुष कट जाने तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुआ जयद्रथ तुरंत ही चित्रसेनके रथपर जा चढ़ा

अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः
महारथाञ्छरैर्विद्ध्वा वारयित्वा च मारिष ॥ १९ ॥
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः

माननीय नरेश! पाण्डुनन्दन भीमसेनने रणक्षेत्रमें यह अद्भुत कर्म किया कि सब महारथियोंको बाणोंसे घायल करके रोक दिया और सब लोगोंके देखते-देखते सिन्धुराजको रथहीन कर दिया ॥ १९ ॥

तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ॥ २० ॥
स संधाय शरांस्तीक्ष्णान् कर्मारपरिमार्जितान्
भीमं विव्याध समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥

उस समय राजा शल्य भीमसेनके उस पराक्रमको न सह सके। उन्होंने लोहारके माँजे हुए पैने बाणोंका संधान करके समरभूमिमें भीमसेनको बींध डाला और कहा—ठहरो, ठहरो ॥ २० ॥

कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान्
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥ २२ ॥
दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान्
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिंदमाः ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् कृपाचार्य, कृतवर्मा, पराक्रमी भगदत्त, अवन्तीके विन्द और अनुविन्द, चित्रसेन, दुर्मर्षण, विकर्ण और पराक्रमी सिन्धुराज जयद्रथ—शत्रुओंका दमन करनेवाले इन वीरोंने राजा शल्यकी रक्षाके लिये भीमसेनको तुरंत ही घायल कर दिया ॥ २२-२३ ॥

स च तान् प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः
शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनर्दशभिरेव च ॥ २४ ॥

फिर भीमसेनने भी उन सबको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया। इसके बाद उन्होंने शल्यको पहले सत्तर और फिर दस बाणोंसे बींध डाला ॥ २४ ॥

तं शल्यो नवभिर्भित्त्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः
सारथिं चास्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि ॥ २५ ॥

यह देख शल्यने भीमसेनको पहले नौ बाणोंसे विदीर्ण करके फिर पाँच बाणोंद्वारा घायल किया। साथ ही एक भल्लसे उनके सारथिके भी मर्मस्थानोंमें अत्यन्त चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान्
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥

उस समय प्रतापी भीमसेनने अपने सारथि विशोकको अत्यन्त घायल हुआ देख तीन बाणोंसे मद्रराज शल्यकी भुजाओं तथा छातीमें प्रहार किया ॥ २६ ॥

तथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः
ताडयामास समरे सिंहवद् विननाद च ॥ २७ ॥

इसी प्रकार तथा अन्य महाधनुर्धर वीरोंको उन्होंने तीन-तीन सीधे जानेवाले बाणोंसे समरभूमिमें मारा और सिंहके समान गर्जना की ॥ २७ ॥

ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम्
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥ २८ ॥

तब उन सभी महाधनुर्धरोंने यत्नपूर्वक युद्धकुशल पाण्डुपुत्र भीमसेनके मर्मस्थानोंमें तीन-तीन बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ २८ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे
पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाम्बुदैः ॥ २९ ॥

उनके द्वारा अत्यन्त घायल होनेपर भी महाधनुर्धर भीमसेन बादलोंकी बरसायी हुई जलधाराओंसे पर्वतकी भाँति तनिक भी व्यथित एवं विचलित नहीं हुए ॥ २९ ॥

स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः
मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा महायशाः ॥ ३० ॥
कृपं च नवभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा समन्ततः
प्राग्ज्योतिषं शतेनाजौ राजन् विव्याध सायकैः ॥ ३१ ॥

राजन्! तब क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंके महारथी महायशस्वी भीमसेनने मद्रराज शल्यको तीन और कृपाचार्यको नौ बाणोंद्वारा रणभूमिमें अत्यन्त घायल करके प्राग्ज्योतिष

लेकर भाइयोंकी सेनाको बाणोंद्वारा समरभूमिमें पीड़ा पहुँचाया ॥ ३०-३१ ॥

ततस्तु समरे धारं सायकस्य महात्मना ।
क्षुरेण क्षुरतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति भीमसेनने अत्यन्त तीखे क्षुरके द्वारा महात्मा कृतवर्माके बलयुक्त धनुषको काट डाला ॥ ३२ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परंतप ॥ ३३ ॥

तब शत्रुओंको संताप देनेवाले कृतवर्माने दूसरा धनुष लेकर भीमसेनकी दोनों भौंहोंके मध्यभागमें नाराचके द्वारा प्रहार किया ॥ ३३ ॥

भीमस्तु समरे विद्ध्वा शल्यं नवभिरायसैः ।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रमुखान् रथान् ।
तेऽपि तं समरे राजन् विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् भीमसेनने समराङ्गणमें लोहेके बने हुए नौ बाणोंसे राजा शल्यको घायल करके तीन बाणोंसे भगदत्तको, आठसे कृतवर्माको और दो-दो बाणोंद्वारा कृपाचार्य आदि रथियोंको बींध डाला। राजन्! फिर उन्होंने भी अपने तीखे बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः ।
मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान् विचचार गतव्यथः ॥ ३६ ॥

उन महारथियोंद्वारा सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित किये जानेपर भी भीमसेन उन्हें तिनकोंके समान मानकर व्यथारहित हो विचरण करने लगे ॥ ३६ ॥

ते चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशितान् शरान् ।
प्रेषयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ उन योद्धाओंने भी व्यग्रतारहित हो भीमसेनपर सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें तीखे बाण चलाये ॥ ३७ ॥

तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
चिक्षेप समरे वीर स्वर्णदण्डां महामते ॥ ३८ ॥

महामते! उस समरभूमिमें वीर महारथी भगदत्तने भीमसेनपर स्वर्णमय दण्डसे विभूषित एक महावेगशालिनी शक्ति चलायी ॥ ३८ ॥

तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे ॥ ३९ ॥

सिन्धुदेशके राजा महाबाहु जयद्रथने तोमर और पट्टिश चलाया। राजन्! कृपाचार्यने शतघ्नीका प्रयोग किया तथा राजा शल्यने युद्धस्थलमें एक बाण मारा ॥ ३९ ॥

अथान्ये च महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥ ४० ॥

इनके सिवा दूसरे धनुर्धर वीरोंने भी भीमसेनको लक्ष्य करके बलपूर्वक पाँच-पाँच बाण चलाये ॥ ४० ॥

तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणानिलात्मजः ।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४१ ॥

परंतु वायुपुत्र भीमसेनने एक क्षुरप्रके आघातसे चलाये हुए तोमरके दो टुकड़े कर दिये। फिर तीन बाण मारकर पट्टिशको तिलके डंठलके समान टूक-टूक कर डाला ॥ ४१ ॥

स बिभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महारथः ॥ ४२ ॥
शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।

तत्पश्चात् कङ्कपत्रयुक्त नौ बाणोंद्वारा शतघ्नीको छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके बाद महारथी भीमसेनने मद्रराजके चलाये हुए बाणको काटकर रणभूमिमें भगदत्तकी चलायी हुई शक्तिके भी सहसा टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४२ ॥

तथेतरान् शरान् घोरान् शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधा चिच्छेद संयुगे ।
तांश्च सर्वान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा अन्यान्य योद्धाओंके चलाये हुए भयंकर बाणसमूहोंको भी युद्धमें शोभा पानेवाले भीमसेनने काटकर एक-एकके तीन-तीन टुकड़े कर दिये। इस प्रकार शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्रोंका निवारण करके भीमसेनने उन सभी महाधनुर्धर वीरोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४३-४४ ॥

ततो धनंजयस्तत्र वर्तमाने महारणे ।
आजगाम रथेनाजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ॥ ४५ ॥
निघ्नन्तं समरे शत्रून् योधयानं च सायकैः ।

इस उस महासमरमें महारथी भीमसेनको जो समरभूमिमें बाणोंद्वारा शत्रुओंका संहार करते हुए उनके साथ युद्ध कर रहे थे, देखकर रथके द्वारा अर्जुन भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ४५ ॥

तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ ॥ ४६ ॥
न शशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः ।

उन दोनों महामनस्वी पाण्डव बन्धुओंको एकत्र हुआ देख आपकी सेनाके श्रेष्ठ पुरुषोंने वहाँ अपनी विजयकी आशा त्याग दी ॥ ४६ ॥

अथार्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान् ॥ ४७ ॥
भीष्मस्य निधनाकाङ्क्षी पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
आससाद रणे वीरांस्तावकान् दश भारत ॥ ४८ ॥

[illegible] उस रणक्षेत्रमें [illegible] भाव युद्ध [illegible] रहे थे [illegible] महारथी [illegible] भीष्मके [illegible] आदि [illegible] किये था हुये ४८

ये च भीम रणे राजन् योधयन्तो महारथाः
श्रीमत्सु [illegible] भीमसेन [illegible] ४९

राजन्! जो [illegible] रणक्षेत्रमें भीमसेनके साथ युद्ध करते हुए खड़े थे [illegible] अर्जुन भीमका [illegible] करनेकी [illegible] दिया

ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत्
अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ॥

राजा दुर्योधनने [illegible] अर्जुन और भीमसेन [illegible] सुशर्माको प्रेरित [illegible]

सुशर्मन् गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः ।
जहि पाण्डुसुतावेतौ धनंजयवृकोदरौ ॥ ॥

[illegible] सुशर्मन्! तुम [illegible] सेनाके साथ शीघ्र जाओ और अर्जुन तथा भीमसेन इन दोनों पाण्डुकुमारोंको मार डालो'

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य त्रैगर्तः प्रस्थलाधिपः
अभिद्रुत्य रणे भीमार्जुनौ धन्विनौ ॥ ॥
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् पर्यवारयत्
तत प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह ॥ ॥

[illegible] यह बात सुनकर प्रस्थलके स्वामी त्रिगर्तराज सुशर्माने [illegible] भीमसेन और अर्जुन दोनों धनुर्धरोंको [illegible] रथोंद्वारा सब ओरसे घेर लिया [illegible] अर्जुनका [illegible] युद्ध होने लगा।

इति [illegible] भीष्मपर्वणि [illegible] वध पर्वणि [illegible] अध्याय [illegible]

[illegible]

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्याय

कौरवपक्षके प्रमुख महारथियोंके साथ युद्धमें भीमसेन और अर्जुनका अद्भुत पुरुषार्थ

[illegible] रथ [illegible] अर्जुनका [illegible] भीमसेनको [illegible] बाण द्वारा वेगपूर्वक बींध डाला

संजय उवाच

अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम्
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः

संजय कहते हैं—[illegible] रणभूमिमें विजय [illegible] महारथी [illegible] अर्जुनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे [illegible] दिया

सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत
प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम्
चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च
दुर्मर्षणं च राजेन्द्र आवन्त्यौ च महारथौ ॥
एकैकं त्रिभिरानर्च्छत् कङ्कबर्हिणवाजितैः

उसके बाद सुशर्मा और कृपाचार्यको भी तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला [illegible] प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त, सिंधुराज जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण, कृतवर्मा, दुर्मर्षण तथा महारथी विन्द और अनुविन्द [illegible] प्रत्येकको [illegible] तीन-तीन बाण द्वारा [illegible] पीड़ा दी।

शरैरतिरथो युद्धे पीडयन् वाहिनीं तव ॥
जयद्रथो रथे पार्थं भित्त्वा भारत सायकैः
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥

तत्पश्चात् अतिरथी वीर अर्जुनने युद्धमें आपकी सेनाको बाणसमूहोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित कर दिया [illegible] चित्रसेन-

[illegible] भीमसेनको [illegible]

शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः
विव्याधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः ॥

[illegible] फिर [illegible] कृपाचार्य [illegible] शल्यने भी [illegible] मर्मभेदी बाणोंद्वारा अर्जुनको [illegible] घायल किया

चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशाम्पते
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः ॥ ७
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष

[illegible] प्रजानाथ! चित्रसेन आदि आपके पुत्रोंने [illegible] युद्धस्थलमें तुरंत ही पाँच-पाँच तीखे बाणोंद्वारा अर्जुन और भीमसेनको घायल कर दिया [illegible]

तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ
अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद् बलम् ॥

[illegible] वहाँ रथियोंमें श्रेष्ठ भरतकुलभूषण कुन्तीकुमार भीमसेन और अर्जुनने समरभूमिमें त्रिगर्तोंकी विशाल सेनाको पीड़ित कर दिया

सुशर्मापि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः ॥ ॥
ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद् बलम्

इधर सुशर्माने भी रणक्षेत्रमें नौ शीघ्रगामी बाणोंद्वारा

शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले शल्यके शरीरमें विद्युत् वेगवाले बाणोंसे आघात करते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया।

सव्ये रथिनः शूराः भीमसेनधनञ्जयौ।
दिव्यास्त्राणि विसृजन्तौ शरवर्षाणि सिंहवत्॥

इसी प्रकार अन्य शूरवीर महारथियोंने भीमसेन और अर्जुनको बाणसमूहसे ढकनेवाले बाणोंद्वारा बींध डाला।

मेघ रथिनः सव्ये निःसृतौ भरतर्षभौ।
कौरवाणां रणोद्धुरौ चि रूपे व्यदृश्यताम्॥

समस्त दिशाओं तक नेत्र... हुए भरतभूषण उदार महान् कुन्तीकुमार भीमसेन और अर्जुन निज दिखायी देते।

नामधेयेषु तथा सव्ये सहायाश्च महोत्कटौ
बाणो ... इच्छा ... करनेवाले ... बड़े प्रभाव और ... रथमुपि

छित्वा धनूंषि शूराणां शरौघः बहुधा रथ
पात ... वीरौ शरार्ता जृम्भताम्

वीरों ... मनुष्य धनुष ... उनके सामनेवाले विमान

रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च हतास्त्था
गजाश्च समारोहाः पेतुरुव्यां महाहवे

महामना ... रथी ...

रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निपातिताः
दृश्यन्ते बहवो राजन् पर्याप्ता सम्भ्रमाः

राजन्! ... हल और घुड़सवार ... नाचे ... और ... घोड़े और कतराते हुए दिखायी देते

हतैर्गजपदात्योघैर्वाजिभिश्च निषूदितैः
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी

मारा मरकर ... हुए हाथियों पैदल सिपाहियों घोड़ों तथा टूटे हुए ... रथोंद्वारा पृथ्वी आच्छादित गयी

छत्रैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः
चामरैर्हेमदण्डैश्च समास्तीर्यत मेदिनी
अङ्गदैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत
छत्राभिश्च कश्याभिश्च समास्तीर्यत मेदिनी

भारत! अनेक टुकड़ोंमें कटकर गिरे हुए छत्रों ध्वजाओं स्वर्णमय दण्डवाले विभूषित चामरों फेंके हुए अंकुशों बाजूबंद ... और ... वहाँकी भूमि ढक गयी

केयूरैरङ्गदैर्हारै ...पर्यस्तैः

कुण्डलैर्मणिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी
उष्णीषैश्चूडिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि

केयूर ... तथा मणिसहित कुण्डल आदि ... गये ... मोतियोंकी ... जालियों आदि आदि ... तथा चामर और व्यजन ... पृथ्वी ... आच्छादित गयी

तत्र तत्रापविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः
ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी

वहाँ ... अंक चन्दनचर्चित भुजाओं ... जाँघें ... बिछ गयी

तत्राद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम्
शरैः संवार्य तान् वीरान् यद् जघान महाबलः

वहाँ अर्जुनका अद्भुत पराक्रम देखा ... वीरोंको ... बाणोंसे रोककर ... महाबली ... गयाद्या ... विक्रम

पुत्रस्तु तव ... दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम्
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः

रथी दुर्योधन भीष्मके ... अनुचर ... पराक्रम ... इच्छासे भीष्मके पास ... पहुँचा

कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाजहुः युगं तदा

... कृपाचार्य कृतवर्मा सिन्धुराज जयद्रथ तथा ... विन्द और अनुविन्द ... युद्धभूमि नहीं छोड़ा

ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे

... भीमसेन तथा अर्जुन ... कौरवोंकी सेना ... खदेड़ने लगे

ततः बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च
धनंजयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः

... भूमिपाल ... मिलकर हुए अर्जुनके रथपर ... अनेक अयुत ... बाणोंकी वर्षा करने लगे

ततस्तान् शरजालेन संनिवार्य महारथान्
पार्थः समन्तात् समरे प्रेषयामास मृत्यवे

अर्जुनने ओरसे बाणोंका जाल बिछाकर ... भूमिपालोंको रोक दिया और उन्हें मृत्युके लोकमें भेज दिया।

शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः संनतपर्वभिः

महारथी ... खेलते हुए क्रुद्ध ... समरभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा अर्जुनकी छातीमें भारी चोट पहुँचायी।

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं च पञ्चभिः ।
अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिभिर्विव्याध मर्मणि ॥ २७ ॥

यह देखकर अर्जुनने पाँच बाणोंसे उसके धनुष और दस्तानेको काटकर तीन बाणोंद्वारा उसके मर्मस्थलोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥ २८ ॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २९ ॥

महाराज ! फिर मद्रराजने भी भार सहनेमें समर्थ दूसरा धनुष लेकर रणभूमिमें अर्जुनपर रोषपूर्वक तीन बाणोंद्वारा प्रहार किया । वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको पाँच बाणोंसे घायल करके उन्होंने भीमसेनकी भुजाओं तथा छातीमें नौ बाण मारे ॥ २८-२९ ॥

ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ ३० ॥
यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
कौरव्यस्य महात्मानौ जघ्नतुः सुमहाचमूम् ॥ ३१ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर दुर्योधनकी आज्ञा पाकर द्रोण तथा महारथी मगधनरेश उसी स्थानपर आये, जहाँ पाण्डुकुमार अर्जुन और भीमसेन—ये दोनों महारथी दुर्योधनकी विशाल सेनाका संहार कर रहे थे ॥ ३०-३१ ॥

जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि ।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मगधराज जयत्सेनने युद्धके मैदानमें भयानक अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले भीमसेनको आठ पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ३२ ॥

तं भीमो दशभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३३ ॥

तब भीमसेनने जयत्सेनको दस बाणोंसे बींधकर फिर पाँच बाणोंसे घायल कर दिया और एक भल्ल मारकर उसके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ३३ ॥

उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः ।
मागधोऽपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

फिर तो उसके घबराये हुए घोड़े चारों ओर भागने लगे और इस प्रकार वह मगधदेशका राजा सभी सेनाके देखते-देखते रणभूमिसे दूर हटा दिया गया ॥ ३४ ॥

द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।
विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिरायसैः ॥ ३५ ॥

इसी समय द्रोणाचार्यने अवसर देखकर लोहेके बने हुए पैंसठ पैने बाणोंद्वारा भीमसेनको बींध डाला ॥ ३५ ॥

तं भीमं समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे ।
विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत ॥ ३६ ॥

भारत ! तब युद्धकी स्पृहा रखनेवाले भीमसेनने भी रणभूमिमें पिताके समान पूजनीय गुरु द्रोणाचार्यको पैंसठ भल्लोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ३६ ॥

अर्जुनस्तु सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
व्यधमत् तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथानिलः ॥ ३७ ॥

इधर अर्जुनने लोहेके बने हुए बहुत-से बाणोंद्वारा सुशर्माको घायल करके जैसे वायु महान् मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार उसकी सेनाकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ ३७ ॥

ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः ।
समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनंजयौ ॥ ३८ ॥

तब भीष्म, राजा दुर्योधन और कोसलनरेश बृहद्बल—ये तीनों अत्यन्त कुपित होकर भीमसेन और अर्जुनपर चढ़ आये ॥ ३८ ॥

तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन् रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार शूरवीर पाण्डव तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—ये रणक्षेत्रमें मुँह फैलाये हुए यमराजके समान प्रतीत होनेवाले भीष्मपर टूट पड़े ॥ ३९ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महाव्रतात् ॥ ४० ॥

शिखण्डीने भरतकुलके पितामह भीष्मके निकट पहुँचकर उन महाव्रती भीष्मसे प्राप्त होनेवाले भयको त्यागकर बड़े हर्षके साथ उनपर धावा किया ॥ ४० ॥

युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
अयोधयन् रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयैः ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर आदि कुन्तीपुत्र रणभूमिमें शिखण्डीको आगे करके समस्त सृञ्जयोंके साथ ले भीष्मके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४१ ॥

तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान् योधयन्ति स्म संयुगे ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार आपके समस्त योद्धा नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले भीष्मको युद्धमें आगे रखकर शिखण्डी आदि पाण्डव महारथियोंका सामना करने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कौरवाणां भयावहम् ।
तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति ॥ ४३ ॥

तदनन्तर वहाँ भीष्मकी विजयके उद्देश्यसे कौरवोंका पाण्डवोंके साथ भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४३ ॥

तावकानां जये भीष्मो ग्लह आसीद् विशाम्पते ।
तत्र हि द्यूतमाक्रान्तं विजयायेतराय वा ॥ ४४ ॥

---

१. जयत्सेन नामके दो व्यक्ति प्रतीत होते हैं, एक पाण्डव-पक्षमें और दूसरे कौरवपक्षमें रहे होंगे।

महाराज ! उस युद्धस्थलमें आपके पुत्रोंकी ओरसे विजयके लिये भीष्मको ही दाँवपर लगाया था। इस प्रकार वह विजय अथवा पराजयके लिये एक ... उपस्थित हो गया।

बृहद्युम्नस्तु राजेन्द्र सर्वसैन्यान्यचोदयत्।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं मा भैष्ट रथसत्तमाः ॥ ७५ ॥

राजेन्द्र ! उस समय धृष्टद्युम्नने अपनी समस्त सेनाओंको प्रेरणा देते हुए कहा—'श्रेष्ठ रथियो ! गङ्गानन्दन भीष्मपर धावा करो। उनसे तनिक भी भय न मानो।'

सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी।
भीष्मं समभ्ययात् तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ७६ ॥

सेनापतिका यह वचन सुनकर पाण्डवोंकी विशाल वाहिनी उस महासमरमें प्राणोंका मोह छोड़कर तुरंत ही भीष्मकी ओर बढ़ चली ॥ ७६ ॥

भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम्।
आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः ॥ ७७ ॥

महाराज ! रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने भी अपने ऊपर आती हुई उस विशाल सेनाको युद्धके लिये उसी प्रकार ग्रहण किया, जैसे तटभूमिको महासागर ... ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मार्जुनसमागमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्याय: ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म और अर्जुनका समागमविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ½ श्लोक मिलाकर कुल ७७½ श्लोक हैं)

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्याय:

भीष्मके आदेशसे युधिष्ठिरका उनपर आक्रमण तथा कौरव-पाण्डव-सैनिकोंका भीषण युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

कथं शान्तनवो भीष्मो दशमेऽहनि संजय।
अयुध्यत महावीर्यैः पाण्डवैः सहसृञ्जयैः ॥ १ ॥
कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान् प्रत्यवारयन्।
आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याहवशोभिनः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! दसवें दिन महापराक्रमी शान्तनुनन्दन भीष्मने पाण्डवों तथा सृंजयोंके साथ किस प्रकार युद्ध किया तथा कौरवोंने पाण्डवोंको युद्धमें किस प्रकार रोका ? युद्धमें शोभा पानेवाले भीष्मके उस महायुद्धका वृत्तान्त मुझसे कहो ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

कुरवः पाण्डवैः सार्धं यथायुध्यन्त भारत।
यथा च तदभूद् युद्धं तत् तु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भारत ! कौरवोंने पाण्डवोंके साथ जो युद्ध किया और जिस प्रकार वह युद्ध हुआ, वह सब मैं बताता हूँ ॥ ३ ॥

प्रापिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिना।
अहन्यहनि सम्प्राप्तास्तावकानां महारथाः ॥ ४ ॥

किरीटधारी अर्जुनने प्रतिदिन अपने उत्तम अस्त्रोंद्वारा रणभूमिमें आये हुए आपके महारथियोंको परलोक पहुँचाया है ॥ ४ ॥

यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चापि समितिंजयः।
पार्थानामकरोद् भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ५ ॥

इसी प्रकार युद्धविजयी कुरुकुलनन्दन भीष्मने भी सदा अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार युद्धमें कुन्तीपुत्रोंके सैनिकोंका संहार किया है ॥ ५ ॥

कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं परंतप।
अर्जुनं च सपाञ्चाल्यं संशयो विजयेऽभवत् ॥ ६ ॥

परंतप ! एक ओरसे कौरवोंसहित भीष्म युद्ध कर रहे थे और दूसरी ओरसे पाञ्चालोंसहित अर्जुन उनका सामना कर रहे थे, यह देखकर सबके मनमें संदेह हो गया कि किस पक्षकी विजय हो ॥ ६ ॥

दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे।
अवर्तत महारौद्रः सततं समितिक्षयः ॥ ७ ॥

दसवें दिन भीष्म और अर्जुनके उस युद्धमें निरन्तर महाभयंकर जनसंहार होने लगा ॥ ७ ॥

तस्मिन्नयुतशो राजन् भूयश्च स परंतपः।
भीष्मः शान्तनवो योधाञ्जघान परमास्त्रवित् ॥ ८ ॥

राजन् ! उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता तथा शत्रुओंको ताप देनेवाले शान्तनुनन्दन भीष्मने उस युद्धमें कई अयुत योद्धाओंका संहार कर डाला ॥ ८ ॥

येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव।
ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्तिनः ॥ ९ ॥

भूपाल ! जिनके नाम और गोत्र प्रायः अज्ञात थे तथा जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते थे, वे शूरवीर वहाँ भीष्मके हाथों मारे गये ॥ ९ ॥

दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम्।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परंतप ॥ १० ॥

परंतप ! इस प्रकार दस दिनोंतक धर्मात्मा भीष्म पाण्डवसेनाको संतप्त करके अन्ततोगत्वा अपने जीवनसे ही ऊब गये ॥ १० ॥

स शिष्य धर्ममन्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखो रणे ।
न हन्यां मानवश्रेष्ठान् संग्रामे सुबहूनिति ॥ ११ ॥
चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

अब वे रणक्षेत्रमें उपयुक्त रहकर शीघ्र ही अपने वधकी इच्छा करने लगे। महाराज! आपके ताऊ महाबाहु देवव्रतने यह सोचकर कि अब मैं संग्राममें बहुसंख्यक श्रेष्ठ मानवोंका वध न करूँ, अपने निकटवर्ती पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले— ॥ ११-१२ ॥

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
शृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण शास्त्रोंके निपुण विद्वान् महाज्ञानी तात युधिष्ठिर! मैं तुम्हें धर्मके अनुकूल तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाली एक बात बता रहा हूँ, तुम मेरे उस वचनको सुनो ॥ १३ ॥

निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनानेन भारत ।
घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून् प्राणिनो रणे ॥ १४ ॥

तात भरतनन्दन! अब मैं इस देहसे ऊब गया हूँ, क्योंकि रणभूमिमें बहुतेरे प्राणियोंका वध करते हुए ही मेरा समय बीता है ॥ १४ ॥

तस्मात् पार्थं पुरोधाय पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा ।
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥

इसलिये यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अर्जुन तथा पांचालों और सृंजयोंको आगे करके मेरे वधके लिये प्रयत्न करो ॥ १५ ॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
भीष्मं प्रति ययौ राजा संग्रामे सह सृञ्जयैः ॥ १६ ॥

भीष्मके इस अभिप्रायको जानकर सत्यदर्शी पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर रणभूमिमें सृंजयोंको साथ ले भीष्मकी ओर आगे बढ़े ॥ १६ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम् ॥ १७ ॥
अभिद्रवत युध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
रक्षिता सत्यसंधेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥ १८ ॥

राजन्! उस समय भीष्मकी यह बात सुनकर धृष्टद्युम्न और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपनी सेनाको आज्ञा दी— 'वीरो! आगे बढ़ो। युद्ध करो और संग्राममें भीष्मपर विजय पाओ। तुम सब लोग शत्रुविजयी सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनसे सुरक्षित हो ॥ १७-१८ ॥

अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः ।
भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥

ये महाधनुर्धर सेनापति धृष्टद्युम्न तथा भीमसेन भी समराङ्गणमें निश्चय ही तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे ॥ १९ ॥

न वो भीष्माद् भयं किंचिदस्त्यद्य युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २० ॥

सृंजयवीरो! आज तुम युद्धमें भीष्मसे तनिक भी भय न करो। हम शिखण्डीको आगे करके भीष्मपर अवश्य ही विजय पायेंगे ॥ २० ॥

ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा संजग्मुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २१ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनंजयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥ २२ ॥

तब वे पाण्डव दसवें दिन ऐसा ही करनेकी प्रतिज्ञा करके ब्रह्मलोकको अपना लक्ष्य बनाकर क्रोधसे मूर्च्छित हो शिखण्डी तथा पाण्डुपुत्र अर्जुनको आगे करके आगे बढ़े और भीष्मको मार गिरानेका महान् प्रयत्न करने लगे ॥ २१-२२ ॥

ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सहपुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३ ॥

तदनन्तर आपके पुत्रकी आज्ञा पाकर नाना देशोंके स्वामी महाबली नरेशगण अपनी विशाल सेनासहित द्रोण तथा अश्वत्थामाके साथ आगे बढ़े ॥ २३ ॥

दुःशासनश्च बलवान् सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयांचक्रिरे तदा ॥ २४ ॥

उस समय वे सब वीर और भाइयोंसहित बलवान् दुःशासन समरभूमिमें खड़े हुए भीष्मकी रक्षा करने लगे ॥ २४ ॥

ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान् योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥

तदनन्तर आपके पक्षके शूरवीर सैनिक महाव्रती भीष्मको आगे करके रणभूमिमें शिखण्डी आदि पाण्डवसैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ २५ ॥

चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २६ ॥

वानरध्वज किरीटधारी अर्जुनने चेदि तथा पाञ्चालदेशके वीरोंके साथ शिखण्डीको आगे करके शान्तनुनन्दन भीष्मपर चढ़ाई की ॥ २६ ॥

द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।
अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥

सात्यकि अश्वत्थामाके साथ, धृष्टकेतु पौरवके साथ तथा मन्त्रियोंसहित दुर्योधनके साथ अभिमन्यु युद्ध करने लगा ॥ २७ ॥

विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमासाद्य परंतप ॥ २८ ॥

परंतप! सेनासहित विराटने सैनिकोंसहित वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथपर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरने महाधनुर्धर मद्रराज शल्य तथा उनकी सेनापर धावा किया। सब ओरसे सुरक्षित हुए भीमसेन हाथियोंकी सेनापर टूट पड़े ॥ २९ ॥

अमृष्यमाणस्तत्राणि सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
द्रौणिं प्रति ययौ यत्र पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥ ३० ॥

तदनन्तर समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर अमर्षमें भरकर भाइयोंसहित धृष्टद्युम्नने बलपूर्वक आक्रमण किया ॥ ३० ॥

कर्णिकारध्वजश्चैव सिंहकेतुमरिंदमम् ।
प्रत्युद्ययौ च सौभद्रो राजपुत्रो बृहद्बलम् ॥ ३१ ॥

कर्णिकारके चिह्नसे युक्त ध्वजवाले सुभद्राकुमार अभिमन्युने सिंहचिह्नित ध्वजावाले शत्रुदमन राजकुमार बृहद्बलपर आक्रमण किया ॥ ३१ ॥

शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनंजयम् ।
राजभिः समरे सार्धमभिपेतुर्जिघांसया ॥ ३२ ॥

शिखण्डी तथा पाण्डुपुत्र अर्जुनपर आपके पुत्रोंने राजाओंको साथ लेकर युद्धमें आक्रमण किया। वे उन दोनोंको मार डालना चाहते थे ॥ ३२ ॥

तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३ ॥

इस प्रकार उन दोनों सेनाओंके वीर जब अत्यन्त भयानक पराक्रम प्रकट करने लगे और समस्त सैनिक इधर-उधर दौड़ने लगे, उस समय यह सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ३३ ॥

तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥ ३४ ॥

भारत! आपके और शत्रुपक्षके सैनिक युद्धमें शान्तनुनन्दन भीष्मको देखकर विरोधी सैनिकोंके साथ गुथकर युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥

ततस्तेषां प्रयतानामन्योन्यमभिधावताम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३५ ॥

भरतनन्दन! एक दूसरेपर धावा करनेवाले उन प्रयत्नशील योद्धाओंका महान् कोलाहल सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥ ३५ ॥

शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
सिंहनादैश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥ ३६ ॥

शङ्खों और दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनि तथा हाथियोंकी गर्जनाके साथ सैनिकोंका सिंहनाद बड़ा भयंकर जान पड़ता था ॥ ३६ ॥

सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा ।
वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७ ॥

उस समय सब राजाओंकी चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाली प्रभा वीरोंके अङ्गद और किरीटोंके साथ ही फीकी पड़ गयी ॥ ३७ ॥

रजोमेघास्तु संजज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः ।
धनुषां चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥

धूल मेघोंकी भाँति छा गयी। उसमें अस्त्र-शस्त्रोंकी चमक बिजलीकी प्रभाके समान व्याप्त हो रही थी। धनुषोंकी टंकारध्वनि अत्यन्त भयंकर प्रतीत हुई ॥ ३८ ॥

बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः ।
रथघोषश्च संजज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥ ३९ ॥

बाणों, शङ्खों तथा भेरियोंके सम्मिलित शब्द और रथोंके घर्घर शब्द सुनायी देने लगे। भारत! दोनों सेनाओंमें रथोंकी घरघराहट भी दूरतक सुनायी पड़ी ॥ ३९ ॥

प्रासशक्त्यृष्टिसंघैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् ।
निष्प्रकाशमिवाकाशं सेनयोः समपद्यत ॥ ४० ॥

दोनों सेनाओंके प्रास, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंके समुदायसे भरा हुआ सारा आकाश प्रकाशहीन-सा जान पड़ता था ॥ ४० ॥

अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे ।
कुञ्जरान् कुञ्जरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ॥ ४१ ॥

उस महासमरमें रथी और घोड़े एक दूसरेपर टूटे पड़ते थे। हाथी हाथियोंको और पैदल पैदल सिपाहियोंको मार रहे थे ॥ ४१ ॥

तदासीत् सुमहद् युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह! जैसे मांसके टुकड़ेके लिये दो बाज लड़ते हैं, उसी प्रकार वहाँ भीष्मके लिये कौरवोंका पाण्डवोंके साथ बड़ा भारी युद्ध हो रहा था ॥ ४२ ॥

तयोः समागमो घोरो बभूव युधि भारत ।
अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे ॥ ४३ ॥

उस महासमरमें एक दूसरेके वधकी इच्छावाले एवं विजयाभिलाषी दोनों सेनाओंका बड़ा भयंकर संग्राम हुआ ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोत्साहे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्मका उत्साहविषयक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव महारथियोंके द्वन्द्वयुद्धका वर्णन तथा भीष्मका पराक्रम

संजय उवाच

अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।
महत्या सेनया युक्तो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! भीष्मजीको पराजित करनेके लिये पराक्रमी अभिमन्युने विशाल सेनासहित आये हुए आपके पुत्रके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ १ ॥

दुर्योधनस्ततो राजन् कार्ष्णिं नवभिराशुगैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २ ॥

दुर्योधनने क्रोधमें भरे हुए बाणोंसे अभिमन्युकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। फिर कुपित होकर उसने उन्हें तीन बाण और मारे ॥ २ ॥

तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरामिव स्वसाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने रणक्षेत्रमें दुर्योधनके रथपर एक भयंकर शक्ति चलायी, जो मृत्युकी बहिन-सी प्रतीत होती थी ॥ ३ ॥

तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशाम्पते ।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४ ॥
तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! उस भयंकर शक्तिको सहसा अपनी ओर आती देख आपके महारथी पुत्र दुर्योधनने एक क्षुरप्रके द्वारा उसके दो टुकड़े कर डाले। उस शक्तिको गिरी हुई देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अर्जुनकुमारने दुर्योधनकी छाती तथा भुजाओंमें चोट पहुँचायी ॥ ४-५ ॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।
दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर भरतकुलके महारथी वीर अभिमन्युने पुनः दुर्योधनकी छातीमें दस भयानक बाण मारे ॥ ६ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं चित्ररूपं च भारत ।
इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनोंका वह भयंकर युद्ध विचित्र एवं सम्पूर्ण इन्द्रियोंको आनन्द देनेवाला था। समस्त भूपाल उस युद्धकी प्रशंसा करते थे ॥ ७ ॥

भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च ।
युयुधाते रणे वीरौ सौभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥ ८ ॥

भीष्मके वध और अर्जुनकी विजयके लिये उस युद्धमें सुभद्राकुमार अभिमन्यु और कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन वे दोनों वीर युद्ध कर रहे थे ॥ ८ ॥

सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परंतप ॥ ९ ॥

दूसरी ओर शत्रुओंको संताप देनेवाले ब्राह्मणशिरोमणि द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने कुपित हो युद्धमें अत्यन्त वेगशाली सात्यकिको लक्ष्य करके उनकी छातीमें एक नाराचसे प्रहार किया ॥ ९ ॥

शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत ।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १० ॥

भारत ! तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न सात्यकिने भी गुरुपुत्र अश्वत्थामाके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें नौ कङ्कपत्रयुक्त बाण मारे ॥ १० ॥

अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः ।
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ११ ॥

अश्वत्थामाने समरभूमिमें सात्यकिको पहले नौ बाणोंसे घायल करके फिर तुरंत ही तीस बाणोंद्वारा उनकी भुजाओं तथा छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः ।
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः ॥ १२ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके द्वारा अत्यन्त घायल होकर महायशस्वी महाधनुर्धर सात्यकिने तीन बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया ॥ १२ ॥

पौरवो धृष्टकेतुं च शरैराच्छाद्य संयुगे ।
बहुधा दारयांचक्रे महेष्वासं महारथः ॥ १३ ॥

महारथी पौरवने युद्धमें महाधनुर्धर धृष्टकेतुको बाणोंद्वारा आच्छादित करके अनेक प्रकारसे घायल किया ॥ १३ ॥

तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः ।
त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाशु महाभुजः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार महारथी महाबाहु धृष्टकेतुने युद्धस्थलमें तीस बाणोंद्वारा पौरवको भी तुरंत ही घायल कर दिया ॥ १४ ॥

पौरवस्तु धनुश्छित्त्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ १५ ॥

तब महारथी पौरवने धृष्टकेतुके धनुषको काटकर बड़े जोरसे सिंहनाद किया और उन्हें पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ १५ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः ।
आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ १६ ॥

महाराज ! धृष्टकेतुने दूसरा धनुष लेकर तिहत्तर तीखे शिलीमुख बाणोंद्वारा पौरवको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १६ ॥

तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ ।
महता शरवर्षेण परस्परमविध्यताम् ॥ १७ ॥

ऐसे महाधनुर्धर, महाबली और महारथी वीर एक दूसरेको युद्धमें भारी बाणवर्षाद्वारा घायल कर रहे थे ॥ १७ ॥

अन्योन्यस्य धनुश्छित्त्वा हयान् हत्वा च भारत ।
विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुरुद्यतौ ॥ १८ ॥

भारत ! दोनोंने एक दूसरेका धनुष काटकर घोड़ोंको भी मार डाला और रथहीन हो दोनों ही एक दूसरेपर कुपित हो परस्पर खड्गयुद्ध किये आमने सामने आये ॥ १८ ॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपरिष्कृते ।
तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ ॥ १९ ॥

उनके हाथोंमें सौ-सौ चन्द्र और तारकाके चिह्नोंसे युक्त सुन्दर चर्मकी बनी हुई ढालें और चमकीले खड्ग शोभा पाते थे ॥ १९ ॥

प्रगृह्य विमले खड्गावन्योन्यमभिदुद्रुतौ।
वाशितासङ्गमे यत्तौ सिंहाविव महावने ॥ २० ॥

राजन्! जैसे महान् वनमें एक सिंहनीके लिये दो सिंह लड़ते हों, उसी प्रकार चमचमाते खड्ग लेकर धृष्टकेतु और पौरव दोनों विजयके लिये प्रयत्नशील हो एक दूसरेपर टूट पड़े ॥ २० ॥

मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥ २१ ॥

वे आगे बढ़ने और पीछे हटने आदि विचित्र पैंतरे दिखाते हुए एक दूसरेको ललकारते हुए रणभूमिमें विचरते थे ॥ २१ ॥

पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना।
ताडयामास [illegible] चिच्छेद [illegible] ॥ २२ ॥

पौरवने बड़े भारी खड्गसे धृष्टकेतुकी कनपटीपर वेगपूर्वक प्रहार किया और कहा — खड़ा रह, खड़ा रह ॥ २२ ॥

चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम्।
आजघान शिलाधारं जत्रुदेशे महासिना ॥ २३ ॥

तब चेदिराज धृष्टकेतुने भी रणमें पुरुषरत्न पौरवके गलेकी हँसलीपर शिलापर तेज किये हुए महान् खड्गसे चोट पहुँचायी ॥ २३ ॥

तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिंदमौ ॥ २४ ॥

महाराज! शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर उस महायुद्धमें परस्पर भिड़कर एक दूसरेके वेगपूर्वक किये हुए आघातसे घायल हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २४ ॥

ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव।
जयत्सेनो रथेनाजावपोवाह रणाजिरात् ॥ २५ ॥

तब आपके पुत्र जयत्सेन पौरवको अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें रथद्वारा ही रणभूमिसे बाहर हटा ले गया ॥ २५ ॥

धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
अपोवाह रणे शूरः सहदेवः परंतपः ॥ २६ ॥

इसी प्रकार प्रतापी एवं शत्रुओंको संताप देनेवाले माद्रीकुमार सहदेव कुपित हो धृष्टकेतुको अपने रथपर चढ़ाकर युद्धभूमिसे बाहर हटा ले गये ॥ २६ ॥

चित्रसेनः सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः।
पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥

चित्रसेनने त्रिगर्तराज सुशर्मा नामक राजाको लोहेके बने हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल करके फिर साठ तथा नौ बाणोंद्वारा उन्हें पीड़ित कर दिया ॥ २७ ॥

सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्र विशाम्पते।
चित्रसेनं दशभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध निशितैः शरैः ॥ २८ ॥

प्रजानाथ! तब सुशर्माने रणभूमिमें कुपित होकर आपके पुत्र चित्रसेनको दस-दस तीखे बाणोंद्वारा घोर घायल किया ॥ २८ ॥

चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिंशता नतपर्वणाम्।
आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥ २९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन् यशो मानं च वर्धयन्।

राजन्! चित्रसेनने कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले तीस बाणोंसे रणक्षेत्रमें सुशर्माको घायल और पीड़ित किया। महाराज! उसने समरमें भीष्मके यश और सम्मान दोनोंको बढ़ाया ॥ २९ ॥

सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत् ॥ ३० ॥
पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्यायोधनं प्रति।

राजन्! भीष्मजीके साथ युद्ध करनेमें अर्जुनकी सहायताके लिये पराक्रम करनेवाले सुभद्राकुमार अभिमन्युने राजकुमार बृहद्बलके साथ युद्ध किया ॥ ३० ॥

आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः ॥ ३१ ॥
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः संनतपर्वभिः।

कोसलनरेशने लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे अर्जुनकुमारको घायल करके पुनः झुकी हुई गाँठवाले बीस बाणोंद्वारा उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३१ ॥

सौभद्रः कोसलेन्द्रं तु विव्याधाष्टभिरायसैः ॥ ३२ ॥
नाकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः।

तब सुभद्राकुमारने कोसलनरेशको लोहेके आठ बाणोंसे घायल तो किया, परंतु उन्हें विचलित न कर सका। इसलिये उसने फिर अनेक बाणोंद्वारा बृहद्बलको घायल कर दिया ॥ ३२ ॥

कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ ३३ ॥
आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः।

तदनन्तर अर्जुनकुमारने कोसलनरेशका धनुष भी काट दिया और कंकपत्रयुक्त तीस बाणोंद्वारा उनपर गहरा प्रहार किया ॥ ३३ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३४ ॥
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः।

तब राजकुमार बृहद्बलने दूसरा धनुष लेकर समरभूमिमें कुपित हो अर्जुनकुमार अभिमन्युको बहुतेरे बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ३४ ॥

तयोर्युद्धं समभवद् भीष्महेतोः परंतप ॥ ३५ ॥
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः।
यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत् ॥ ३६ ॥

परंतप महाराज! इस प्रकार समराङ्गणमें क्रोधपूर्वक विचित्र युद्ध करनेवाले उन दोनों वीरोंमें भीष्मके लिये वहाँ

भारी युद्ध हुआ, मानो देवासुरसंग्राममें राजा बलि और इन्द्र में द्वन्द्वयुद्ध हो रहा हो ॥

भीमसेनो गजानीकं योधयन् बह्वशोभत ।
यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन् पर्वतोत्तमान् ॥ ३७ ॥

तथा जैसे वज्रधारी इन्द्र बड़े-बड़े पर्वतोंको विदीर्ण करते हैं, उसी प्रकार भीमसेन हाथियोंकी सेनाके साथ युद्ध करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसंनिभाः ।
निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुंधराम् ॥ ३८ ॥

भीमसेनके द्वारा मारे जाते हुए पर्वतों सरीखे बहुसंख्यक गजराज अपने चीत्कारसे [illegible] पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए एक साथ ही [illegible] धराशायी हो जाते थे ॥

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ॥ ३९ ॥

[illegible] पर्वतोंके समान काले और विशाल [illegible] पृथ्वीपर [illegible] बिखरे हुए पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ॥

युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे ।
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास संगतम् ॥ ४० ॥

महाधनुर्धर युधिष्ठिरने विशाल सेनासे सुरक्षित मद्रराज शल्यको उस युद्धमें सामने पाकर बाणोंद्वारा अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥

मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।
पीडयामास संरब्धो भीमसेनो पराक्रमी ॥ ४१ ॥

[illegible] महारथी धर्मपुत्र [illegible] पीड़ित किया ॥

विराटं सैन्धवो राजा विद्ध्वा संनतपर्वभिः ।
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्दयत् ॥ ४२ ॥

सिन्धुराज जयद्रथने झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंद्वारा राजा विराटको घायल करके पुनः उन्हें तीस बाण मारे ॥

विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीमुखे ।
त्रिंशता निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४३ ॥

महाराज! सेनापति विराटने भी सिन्धुराज जयद्रथकी छातीमें तीस तीखे बाणोंद्वारा [illegible] चोट पहुँचायी ॥

चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ ।
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥ ४४ ॥

उस संग्राममें मत्स्यराज और सिन्धुराज दोनोंके ही धनुष और खड्ग विचित्र थे, [illegible] उन्होंने विचित्र कवच, आयुध और ध्वज धारण किये थे, वे दोनों ही विचित्र रूप धारण करके बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ४४ ॥

द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे
महासमुदयं चक्रे शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४५ ॥

[illegible] द्रोणाचार्यने उस महासमरमें पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न से भिड़कर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा बड़ा भारी युद्ध किया ॥

ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद् धनुः ।
छित्त्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ॥ ४६ ॥

[illegible] तदनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके विशाल धनुषको काटकर पचास बाणोंद्वारा उन्हें भी घायल कर दिया ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥ ४७ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष [illegible] लेकर द्रोणाचार्यके देखते-देखते उनपर बाण चलाये ॥

ताञ्छरान् शरसंघैस्तु संनिवार्य महारथः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत् पञ्च सायकान् ॥ ४८ ॥

[illegible] बाण [illegible] आचार्यने [illegible] द्रुपदकुमारपर पाँच बाण चलाये ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ॥ ४९ ॥

महाराज! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्नने कुपित हो द्रोणाचार्यपर गदा चलायी, जो रणभूमिमें यमदण्डके समान भयंकर थी ॥

तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् ।
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ॥ ५० ॥

[illegible] सुवर्णपत्रसे विभूषित उस गदाको सहसा अपनी ओर आती देख द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें पचास बाण मारकर उसे [illegible] रोक दिया ॥

सा छिन्ना बहुधा राजन् द्रोणचापच्युतैः शरैः ।
चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥ ५१ ॥

राजन्! द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस गदाके कई टुकड़े हो गये और वह चूर-चूर होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुसूदनः ।
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारशवीं शुभाम् ॥ ५२ ॥

अपनी गदा निष्फल हुई देख शत्रुओंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्नने द्रोणपर एक सुन्दर शक्ति चलायी, जो सारी-की-सारी लोहेकी बनी हुई थी ॥

तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५३ ॥

भारत! द्रोणाचार्यने नौ बाण मारकर उस

बाणोंके टुकड़े टुकड़े कर दिये और महाधनुर्धर भूरिश्रवाको भी उस रणभूमिमें बहुत पीड़ित किया ॥ ५२ ॥

धनञ्जयेन महायुद्धं द्रावयन् बहवो रथाः ।
भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥ ५३ ॥

महाराज ! इस प्रकार द्रोणपुत्र और हनुमान्ने भीष्मके लिये यह घोररूप एवं भयानक महायुद्ध हुआ ॥ ५४ ॥

अर्जुनं प्रत्यगाद् राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अभ्यद्रवत सगजो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनने महारथियोंमें भीष्मको लक्ष्य करके उनके ऊपर बाणोंद्वारा पीड़ित करते हुए बड़ी मानवानीके साथ धावा किया। ठीक वैसे ही जैसे वनमें कोई मतवाला हाथी किसी मतवाले हाथीपर आक्रमण कर रहा हो ॥

प्राग्ज्योतिषस्ततो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ॥ ५६ ॥

तब प्रतापी एवं महाबली राजा भगदत्तने मदके कारण अन्धे हुए गजराजपर आरूढ़ हो अर्जुनका सामना किया। उस हाथीके कुम्भस्थलसे तीन धाराओंमें मद चू रहा था ॥

आपतन्तं सहसा ससैन्यं गजमुत्तमम् ।
पर वज्र शरौघेण बीभत्सुः समवारयत् ॥ ५७ ॥

देवराज इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान उस गजराजको सहसा आते देख अर्जुनने बड़ा यत्न करके उसका सामना किया ।

ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५८ ॥

तब हाथीपर बैठे हुए प्रतापी राजा भगदत्तने युद्धमें बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५८ ॥

अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमम् ।
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५९ ॥

अर्जुनने भी अपने सामने आते हुए उस हाथीको चाँदी के समान चमकीले लोहमय तीखे बाणोंद्वारा उस महासमरमें घायल किया ॥ ५९ ॥

शिखण्डिनं च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत् ।
भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाब्रवीत् ॥ ६० ॥

महाराज ! कुन्तीकुमार अर्जुन शिखण्डीको बारंबार यह कहकर प्रेरित करते थे कि तुम भीष्मकी ओर बढ़ो और इन्हें मार डालो ॥ ६० ॥

प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज ।
प्रययौ त्वरितो राजन् द्रुपदस्य रथं प्रति ॥ ६१ ॥

पाण्डुके ज्येष्ठ भ्राता महाराज ! तदनन्तर प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त पाण्डुनन्दन अर्जुनको छोड़कर तुरंत ही द्रुपदके रथकी ओर चल दिये ॥ ६१ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद् द्रुतम् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥ ६२ ॥

महाराज ! तब अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके शीघ्र ही भीष्मपर धावा किया। फिर तो भारी युद्ध छिड़ गया ॥

ततस्ते तावका शूराः पाण्डवं रभसं युधि ।
समभ्यधावन् क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर युद्धमें आपके शूरवीर सैनिक कोलाहल करते और उत्साहपूर्वक धावा करते हुए वेगशाली पाण्डुकुमार अर्जुनकी ओर दौड़ पड़े। वह एक अद्भुत-सी बात थी ॥ ६३ ॥

नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप ।
अर्जुनो व्यधमत् काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ६४ ॥

जनेश्वर ! जैसे आकाशमें फैले हुए बादलोंको हवा छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनने उस अवसरपर आपके पुत्रोंकी विविध सेनाओंको तितर-बितर कर दिया ॥ ६४ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥ ६५ ॥

इधर शिखण्डीने भरतकुलके पितामह भीष्मके पास पहुँचकर शान्तचित्त हो बहुत-से बाणोंद्वारा तुरंत ही उन्हें आच्छादित कर दिया ॥ ६५ ॥

सोमकांश्च रथे भीष्मः शिखाग्निरिव पावकः ।
ददाह धन्वाग्निना सोऽथ समरेऽदहत् ॥ ६६ ॥

वे अग्निके समान प्रज्वलित हो रणभूमिमें क्षत्रियोंको दग्ध कर रहे थे। रथ ही अग्निशाला थी, धनुष उसमें प्रज्वलित होनेवाली लपट था, खड्ग, शक्ति और गदाएँ इंधनका काम दे रही थीं, बाणोंका समुदाय ही उस अग्निकी महाज्वाला थी ॥ ६६ ॥

यथाग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः ।
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन् ॥ ६७ ॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि वायुका सहारा पाकर घास-फूँसके जंगलमें फैलती है, उसी प्रकार दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते हुए भीष्मजी भी अत्यन्त प्रज्वलित हो उठे थे ॥ ६७ ॥

सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् ।
न्यवारयत तत्सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ॥ ६८ ॥

भीष्मने युद्धमें अर्जुनका अनुसरण करनेवाले सोमक क्षत्रियोंको भी बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। साथ ही उन महारथी वीरने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी सेनाको भी आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६८ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः संनतपर्वभिः ।
नादयन् स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे ॥ ६९ ॥

झुकी हुई गाँठवाले सुवर्णमय पंखयुक्त तीखे बाणोंद्वारा शत्रुओंको मारकर भीष्म उस महायुद्धमें सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंको भी शब्दायमान करने लगे ॥ ६९ ॥

पतन्तम् रथिनो राजन् हयांश्च सहसादिभिः
पुष्पाणामिव जालानि पपात स रथाद्धतान् ॥ ७० ॥

राजन्! रथियोंको गिराकर और स्वारोंसहित घोड़ोंको मारकर उन्होंने योद्धा समुदायको मुर्दित तालवनके समान कर दिया।

निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजाश्वांश्च संयुगे
चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ७१ ॥

नरेश्वर! समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने उस संग्राममें रथों, हाथियों और घोड़ोंको मनुष्योंसे शून्य कर दिया।

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः
निशम्य सर्वतो राजन् समकम्पन्त सैनिकाः ॥ ७२ ॥

राजन्! वज्रकी गड़गड़ाहटके समान उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टङ्कारध्वनि सुनकर सब ओरके सैनिक काँपने लगे।

अमोघा न्यपतन् बाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर
नासज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ ७३ ॥

मनुजेश्वर! आपके ताऊके द्वारा चलाये हुए बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते थे। भीष्मके धनुषसे छूटे हुए सायक मनुष्योंके शरीरोंमें नहीं अटकते थे।

निर्मनुष्यान् रथान् राजन् सुयुक्ताञ्जवनैर्हयैः
वातायमानान् पश्याम ह्रियमाणान् विशाम्पते ॥ ७४ ॥

प्रजानाथ! हमने देखा घोड़ोंसे जुते हुए बहुतेरे ऐसे रथ देखे, जिनपर कोई मनुष्य नहीं था और वे घोड़े वायुके समान शीघ्र गतिसे इधर उधर भागकर ले जाते थे।

चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ७५ ॥

वहाँ चेदि, काशि और करूष देशोंके चौदह हजार महारथी वीर, जो विख्यात कुलपुत्र थे और जीवनकी बाजी लगाकर होकर जिन्होंने पाण्डवोंके लिये प्राणतक परित्याग करनेको उद्यत थे,

अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः
संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥ ७६ ॥
जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवान्तकम्

वे युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शौर्यसम्पन्न तथा सुवर्णमय ध्वजधारी थे। वे सब के सब युद्धमें मुँह फैलाये हुए कालके समान भीष्मके पास पहुँचकर घोड़े, रथ और हाथियोंसहित परलोकके पथिक हो गये।

न तत्रासीन्महाराज सोमकानां महारथः ॥ ७७ ॥
यः सम्प्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे

राजन्! उस समय सोमकोंमें एक भी महारथी ऐसा नहीं था, जो युद्धभूमिमें भीष्मके पास पहुँचकर अपने मनमें जीवन रक्षाकी आशा रखता हो।

तांश्च सर्वान् रणे योधान् प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ७८ ॥
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम्

उस समय लोगोंने भीष्मका अद्भुत पराक्रम देखकर यह मान लिया कि युद्धमें सामने आये हुए सभी योद्धा यमलोकमें पहुँच गये ही समान हैं।

न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ॥ ७९ ॥
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ८० ॥

जिनके सारथि श्रीकृष्ण हैं और जिनके रथमें श्वेत घोड़े जुते हुए हैं, उन पाण्डुनन्दन वीर अर्जुनको तथा अमित तेजस्वी पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीको छोड़कर दूसरा कोई महारथी समरभूमिमें भीष्मके सामने जानेका साहस नहीं करता था।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

(इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥)

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

उभय पक्षकी सेनाओंका युद्ध, दुःशासनका पराक्रम तथा अर्जुनके द्वारा भीष्मका मूर्च्छित होना

सञ्जय उवाच

शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम्
दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! शिखण्डीने रणभूमिमें पुरुषप्रवर भीष्मके सामने पहुँचकर उनकी छातीमें दस तीखे भल्ल नामक बाण मारे।

शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा
सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ २ ॥

भारत! गङ्गानन्दन भीष्मने क्रोधसे प्रज्वलित हुई दृष्टिद्वारा शिखण्डीकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उसे जलाकर भस्म कर डालेंगे।

स्त्रीत्वं तस्य स्मरन् राजन् सर्वलोकस्य पश्यतः
न जघान रणे भीष्मः स च तन्नावबुद्धवान् ॥ ३ ॥

राजन्! किंतु उसके स्त्रीत्वका विचार करके भीष्मजीने युद्धस्थलमें उसपर कोई आघात नहीं किया। इस बातको सब लोगोंने देखा, पर शिखण्डी इस बातको नहीं समझ सका।

अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत।
अभिद्रवस्व त्वरित जहि चैनं पितामहम्॥ ४॥

महाराज! तब अर्जुनने शिखण्डीसे कहा— 'वीर! तुम शीघ्र धावा करो और इन पितामह भीष्मका वध कर डालो॥ ४॥

किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम्।
नह्यन्यमनुपश्यामि कंचिद् यौधिष्ठिरे बले॥ ५॥
यः शक्तः समरे भीष्मं योधयेत पितामहम्।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ६॥

'वीर! इस विषयमें बार-बार विचार करने (आगा-पीछा करने)की आवश्यकता नहीं है। तुम महारथी भीष्मको शीघ्र मार डालो। युधिष्ठिरकी सेनामें तुम्हारे सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो समराङ्गणमें भीष्मका सामना कर सके। पुरुषसिंह! मैं तुमसे यह सच्ची बात कह रहा हूँ'॥ ५-६॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत्॥ ७॥

भरतश्रेष्ठ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर शिखण्डी तुरंत ही पितामह भीष्मपर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ७॥

अचिन्तयित्वा तान् बाणान् पिता देवव्रतस्तव।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः॥ ८॥

परंतु आपके पिता देवव्रतने उन बाणोंकी कुछ भी परवा न करके समरमें कुपित हुए अर्जुनको अपने बाणोंद्वारा रोक दिया॥ ८॥

तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः।
अप्रैषीत् स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष॥ ९॥

आर्य! इसी प्रकार महारथी भीष्मने पाण्डवोंकी उस सारी सेनाको (जो उनके सामने मौजूद थी) अपने तीखे बाणोंद्वारा मारकर परलोक भेज दिया॥ ९॥

तथैव पाण्डवा राजन् सैन्येन महता वृताः।
भीष्मं प्रच्छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम्॥ १०॥

राजन्! फिर विशाल सेनासे घिरे हुए पाण्डवोंने अपने बाणोंद्वारा भीष्मको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे बादल सूर्यको आच्छादित कर देते हैं॥ १०॥

स समन्तात् परिवृतो भारतो भरतर्षभ।
निर्ददाह रणे शूरान् वने वह्निरिव ज्वलन्॥ ११॥

भरतभूषण! उस रणक्षेत्रमें सब ओरसे घिरे हुए भीष्म वनमें प्रज्वलित हुए दावानलके समान शूरवीरोंको दग्ध करने लगे॥ ११॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम्।
अयोधयच्च यत् पार्थं जुगोप च पितामहम्॥ १२॥

उस समय वहाँ हमने आपके पुत्र दुःशासनका अद्भुत पराक्रम देखा। एक तो वह अर्जुनसे भी युद्ध कर रहा था और दूसरे पितामह भीष्मकी रक्षामें भी तत्पर था॥ १२॥

कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः॥ १३॥

राजन्! युद्धमें आपके धनुर्धर महामनस्वी पुत्र दुःशासनके उस पराक्रमसे सब लोग बड़े प्रसन्न हुए॥ १३॥

यदेकः समरे पार्थान् सानुगान् समयोधयत्।
न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्बणम्॥ १४॥

वह समरभूमिमें अकेला ही सेवकोंसहित समस्त कुन्तीकुमारोंसे युद्ध कर रहा था, किंतु वहाँ पाण्डव उस प्रचण्ड पराक्रमी दुःशासनको रोक नहीं पाते थे॥ १४॥

दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः।
सादिनश्च महेष्वासा हस्तिनश्च महाबलाः॥ १५॥
विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्धरणीतले।

दुःशासनने वहाँ युद्धमें कितने ही रथियोंको रथहीन कर दिया। उसके तीखे बाणोंसे विदीर्ण होकर बहुत-से महाधनुर्धर घुड़सवार और महाबली गजराज पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १५॥

शरातुरास्तथैवान्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः॥ १६॥
यथाग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद् दीप्तार्चिरुल्बणः।
तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन्॥ १७॥

उसके बाणोंसे आतुर होकर बहुत-से दन्तार हाथी भी चारों दिशाओंमें भागने लगे। जैसे आग ईंधन पाकर अधिक प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार पाण्डव-सेनाको दग्ध करता हुआ आपका पुत्र दुःशासन अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था॥ १६-१७॥

तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः।
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाप्युद्यातुं कथंचन॥ १८॥
ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात् कृष्णसारथेः।

श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेतवाहन इन्द्रकुमार अर्जुनको छोड़कर दूसरा कोई भी पाण्डव महारथी भरतकुलके उस महाकाय वीरको जीतने या उसके सामने जानेका साहस किसी प्रकार न कर सका॥ १८॥

स हि तं समरे राजन् विजित्य विजयोऽर्जुनः॥ १९॥
भीष्ममेवाभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

राजन्! विजयी अर्जुनने समरभूमिमें दुःशासनको जीतकर समस्त सेनाओंके देखते-देखते भीष्मपर ही आक्रमण किया॥ १९॥

विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः॥ २०॥
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः।

अर्जुनस्तु रणे राजन् योधयन् सव्यसाचिनम्
भीष्मको भुजाओंके आलम्बनेसे जोतवाला भारत अर्जुन युद्ध में गाण्डीवधारी ... श्रीवीर वार युद्धाकर बढ़े थे युद्ध करता था ... अर्जुन उस रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए सभी योद्धा था सके थे
शिखण्डी तु रणे राजन् विव्याधैव पितामहम्
शरैरग्निसमस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥ २ ॥
महाराज ... समय रणक्षेत्रमें शिखण्डी अग्निके समान स्पर्शवाले तथा सर्पविषके समान भयंकर बाणोंद्वारा पितामह भीष्मको घायल करने लगा
न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर
स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान् बाणाञ्जगृहे तदा ॥ ३ ॥
परंतु जनेश्वर ! उनके चलाये हुए वे बाण आपके ताऊके शरीरमें कोई भी वेदना नहीं उत्पन्न कर पाते थे। गङ्गानन्दन भीष्म उस समय मुसकराते हुए उन बाणोंको ग्रहण करते थे
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ ४ ॥
जैसे गर्मीसे कष्ट पानेवाला मनुष्य अपने ऊपर जलकी धारा ग्रहण करता है, उसी प्रकार गङ्गानन्दन भीष्म शिखण्डीकी बाणधाराको ग्रहण करते रहे थे
तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ५ ॥
महाराज ! उस युद्धस्थलमें समस्त क्षत्रियोंने देखा, भयंकर रूपधारी भीष्म महात्मा पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध कर रहे थे
ततोऽब्रवीत् तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष
अभिद्रवत सङ्ग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रथैः ॥ ६ ॥
आर्य ! उस समय आपके पुत्रने अपने समस्त सैनिकोंसे कहा— वीरो ! तुमलोग समराङ्गणमें अर्जुनपर चारों ओरसे धावा करो
भीष्मस्त्वां समरे सर्वान् पालयिष्यति धर्मवित्
ते भयं सुमहत् त्यक्त्वा पाण्डवान् प्रति युध्यत ॥ ७ ॥
धर्मज्ञ भीष्म समराङ्गणमें तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे अतः तुमलोग महान् भयका त्याग करके पाण्डवोंके साथ युद्ध करो ॥
एष तालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन्
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च ॥ ८ ॥
सुवर्णमय तालचिह्नसे युक्त विशाल ध्वजसे सुशोभित होनेवाले भीष्मजी हम सबकी रक्षा करते हुए युद्धके मैदानमें खड़े हैं। ये सभी धृतराष्ट्रपुत्रोंके लिये ये ही कल्याणकारी आश्रय और कवच हैं

किं पुनः पार्थ युद्धेषु ... भीष्मं समासितुम्
किमु पार्थ महात्मानं मर्त्यभूता महाबलम् ॥ २९ ॥
देवता भी सम्पूर्ण देवता भी एक साथ युद्धके लिये उद्योग करें तो वे भी भीष्मका सामना करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। फिर कुन्तीके महाबली पुत्र तो मरणधर्मा मनुष्य ही हैं ये उन ... सामना ... कर सकते हैं ॥
तस्माद् द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे
अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि फाल्गुनम् ॥ ३० ॥
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः
अतः योद्धाओ ! युद्धभूमिमें अर्जुनका सामना पाकर पीछे न भागो। मैं स्वयं रणक्षेत्रमें प्रयत्नपूर्वक आज पाण्डुकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा। तुम सब नरेश भी सावधान होकर मेरे साथ रहो
तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ॥ ३१ ॥
सर्वे योधाः सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः
नरेश्वर ! आपके धनुर्धर पुत्रकी यह बात सुनकर वे सभी महाबली और शक्तिशाली योद्धा रोषमें भर गये
ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दासेरकगणाश्च ह ॥ ३२ ॥
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे
बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ३३ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः
शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ३४ ॥
अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम्
विदेह, कलिङ्ग, दासेरक, निषाद, सौवीर, बाह्लीक, दरद, पश्चिम और उत्तर मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्व, शक, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय देशोंके योद्धाओंने ... महासमरमें कुन्तीकुमार अर्जुनपर ... भी भाँति धावा करने लगे ... वे पतिङ्गे आगमें टूटे पड़ते हैं ॥
स तान् सर्वान् सहानीकान् महाराज महारथान् ॥ ३५ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसन्धाय धनञ्जयः
स तैरस्त्रैर्महावेगैर्ददाहाशु महाबलः ॥ ३६ ॥
शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः
राजेन्द्र ! उस रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन आक्रमण करनेवाले उन सभी वीरों और पूर्वोक्त नरेशोंको, उनकी सेनाओंके साथ ... आ रहे थे। महाराज ! महाबली धनंजयने दिव्यास्त्रोंका चिन्तन करके उनका धनुषपर संधान किया और उन महावेगशाली अस्त्रोंद्वारा सेनासहित उन समस्त महारथियोंको जलाकर भस्म कर डाला। जैसे आग पतिङ्गोंको जला देती है, उसी प्रकार अर्जुनने अपने बाणोंके प्रतापसे उन सबको दग्ध कर दिया ॥

तस्य बाणसहस्राणि सुमुचे बहुधाभिभाः ॥ ३७ ॥
दीप्यमानाभिवाकाशे सविद्युत इवाम्बुदः ।

कुरुनन्दन पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाण सब ओर छा गये। उनसे उस समय उनका गाण्डीव धनुष आकाशमें प्रज्वलित सा दिखायी देने लगा ॥ ३७½ ॥

ते शरार्ता महाराज किरीटिना महात्मना ॥ ३८ ॥
नान्वपद्यन्त राजानः सहिता भरतर्षभम् ।

महाराज! वे सब श्रेष्ठ योद्धा पीड़ित हो गये थे उनके विशाल रथ छिन्न भिन्न होकर बिखर गये थे। वे सब राजा एक साथ मिलकर भी किरीटधारी अर्जुनका सामना न कर सके ॥ ३८½ ॥

सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ॥ ३९ ॥
गजारोहाः गजैः सार्धं किरीटिशरताडिताः ।
ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृताऽऽसीद् वसुन्धरा ॥ ४० ॥
विद्रवद्भिश्च बहुधा बलैः राज्ञां समन्ततः ।

किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो रथी अपने ध्वजोंके साथ ही रथोंपर गिर पड़े घुड़सवार घोड़ोंके साथ ही धराशायी हो गये और हाथियोंसहित हाथीसवार भी गिर गये अर्जुनकी भुजाओंसे छूटे हुए बाणोंसे सब ओर भागती विभक्त होकर चारों ओर भागती हुई राजाओंकी सेनाओंसे वसुधा सारी छायी व्याप्त हो रही थी ॥ ३९-४० ॥

अथ पार्थो महाबाहुर्द्रावयित्वा वरूथिनीम् ॥ ४१ ॥
दुःशासनाय सुबहून् प्रेषयामास सायकान् ।

महाराज! उस समय अर्जुनने आपकी सेनाको भगाकर दुःशासनपर बहुत से बाणोंका प्रहार किया ॥ ४१½ ॥

ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ॥ ४२ ॥
धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः ।

वे समस्त लोहमुख बाण आपके पुत्र दुःशासनको छेदकर उसी प्रकार धरतीमें समा गये जैसे सर्प बाँबीमें प्रवेश करते हैं ॥ ४२½ ॥

हयांश्चास्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत् ॥ ४३ ॥
विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान् प्रभुः ।
आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् शक्तिशाली अर्जुनने दुःशासनके घोड़ों तथा सारथिको भी मार गिराया और विविंशतिको भी बीस बाणोंसे मारकर उसे रथहीन कर दिया। इसके बाद पुनः झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा उसे अत्यन्त घायल कर दिया ॥ ४३-४४ ॥

कृपं विद्ध्वा शल्यं च विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् श्वेतवाहन कुन्तीकुमार अर्जुनने कृपाचार्य, विकर्ण तथा शल्यको भी लोहेके बने हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा रथहीन कर दिया ॥ ४५ ॥

एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष ।
दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥ ४६ ॥
सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ।

माननीय नरेश! इस प्रकार रथहीन हुए वे सब महारथी कृपाचार्य, शल्य, विकर्ण, दुःशासन तथा विविंशति अर्जुनसे पराजित हो रणभूमिमें इधर उधर भाग गये ॥ ४६½ ॥

पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥ ४७ ॥
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ।

भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार दिनके पूर्वाह्णकालमें उन महारथियोंको पराजित करके कुन्तीकुमार अर्जुन रणभूमिमें धूमरहित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४७½ ॥

तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिमानिव ॥ ४८ ॥
अन्यानपि महाराज तापयामास पार्थिवान् ।

महाराज! इसी प्रकार अंशुमाली सूर्यके समान अर्जुन दूसरे राजाओंको भी वे अपने बाणोंकी वर्षासे संतप्त करने लगे ॥ ४८½ ॥

पराङ्मुखीकृत्य तदा शरवर्षैर्महारथान् ॥ ४९ ॥
प्रावर्तयत् संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।
मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥ ५० ॥

और भारत! उन्होंने बाणवर्षाद्वारा महारथियोंको युद्धसे विमुख करके कौरव पाण्डवोंकी सेनाओंके बीच रक्तकी नदी बहा दी ॥ ४९-५० ॥

गजाश्च रथसङ्घाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
रथाश्च निहता नागैर्नागा हयैश्च पत्तिभिः ॥ ५१ ॥

रथियोंद्वारा बहुत-से हाथी तथा रथसमूह नष्ट कर दिये गये। हाथियोंने कितने ही रथ चौपट कर दिये और पैदल सिपाहियोंने सवारोंसहित बहुत से घोड़े मार गिराये ॥ ५१ ॥

अन्तराच्छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च ।
निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्वरथयोधिनाम् ॥ ५२ ॥

हाथी घोड़े तथा रथोंपर बैठकर युद्ध करनेवाले सैनिकोंके शरीर और मस्तक बीच बीचसे कटकर सब दिशाओंमें गिर रहे थे ॥ ५२ ॥

छन्नमायोधनं राजन् कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥ ५३ ॥

राजन्! वहाँ गिरे और गिराये जाते हुए कुण्डल और अङ्गदधारी महारथी राजकुमारोंके मृत शरीरोंसे सारी युद्धभूमि आच्छादित हो रही थी ॥ ५३ ॥

रथनेमिनिकृत्ताश्च गजैश्चैवावपोथिताः ।
पादाताश्चाप्यधावन्त साश्वाश्च हयसादिनः ॥ ५४ ॥

उनमेंसे कितने ही रथ के पहियोंसे कट गये थे और कितनोंहीको हाथियोंने अपनी सूँड़ोंसे पकड़कर धरतीपर दे मारा था एवं कितने ही इस निर्भय तथा अपने अलौकिक पुरुषार्थ द्वारा वहीं मारे गये थे।

गजाश्च रथघोषेण पतितेषु समन्ततः ।
विचेरुर्युधि रथा भूमौ ... ॥

...

तत् ... सौभाग्य रुधिरेण समुक्षितम् ।
... रेजे ... शारदम् ॥

हाथी ... तथा ... समुदायसे ... और भीगी हुई वह सारी युद्धभूमि ... के ... बादलोंके समान शोभा पा रही थी।

श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृकाः गोमायुभिः सह ।
प्रणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ॥

कुत्ते, कौए, गीध, भेड़िये, गीदड़ आदि विकराल पशु-पक्षी वह अपना आहार पाकर ... करने लगे।

ववुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें अनेक प्रकारकी वायु प्रवाहित हो रही थी। सब ओर राक्षस और भूतगण गर्जते दिखायी देते थे।

काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः ।
धूमायन्त्यो व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ॥

सोनेके हार बिखरे पड़े थे ... पताकाएँ वायुसे प्रेरित होकर सहसा ... दिखायी देती थीं।

श्वेतच्छत्रसहस्राणि सच्छत्राश्च महारथाः ।
विपर्यस्ता व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥

सहस्रों श्वेत छत्र इधर-उधर गिरे थे। ... सैकड़ों और हजारों महारथी सब ओर बिखरे दिखायी देते थे।

शरासनानि मालाश्च विविधा अगदाः शराः ।
हस्तिपादाश्च मनुजेन्द्र महाराजाः ... ॥

... बाणोंकी ... पताकाओंसहित बड़े-बड़े हाथी चार दिशाओंमें चक्कर काट रहे थे। नरेन्द्र! ... और धनुष धारण किये हुए बहुत-से क्षत्रिय सब ओर पृथ्वीपर पड़े ... थे।

ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥

... भीष्मने दिव्य अस्त्र प्रकट करते हुए ... सब धनुर्धरोंके देखते-देखते कुन्तीकुमार अर्जुनपर धावा किया।

स शिखण्डी रणे पाञ्चाल्यमभ्यद्रवत दंशितः ।
तत समादाय भीष्मस्तत्र पावकोपमम् ॥

उस समय कवचधारी शिखण्डीने युद्धके लिये ... सहन हुए भीष्मपर आक्रमण किया। शिखण्डीको ... देख भीष्मने अग्निके समान तेजस्वी उस दिव्यास्त्रको समेट लिया।

ततस्ते पाण्डवो राजन् मध्यमः श्वेतवाहनः ।
निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम् ॥

तदनन्तर ... श्वेतवाहन अर्जुनने पितामह भीष्मको मूर्छित करके आपकी सेनाका संहार करना आरम्भ किया।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मयुद्धे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्मयुद्धविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मका अद्भुत पराक्रम करते हुए पाण्डवसेनाका भीषण संहार

संजय उवाच

एवं व्यूढेष्वनीकेषु भूयिष्ठेष्वनिवर्तिषु ।
ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं— भरतनन्दन! जिन सेनाओंकी इस प्रकार व्यूह-रचना की गयी थी, उनमें अधिकांश सैनिक युद्धमें पीठ न दिखानेवाले तथा ब्रह्मलोकको ही परम लक्ष्य मानकर युद्धमें तत्पर रहनेवाले थे।

न ह्यनीकमनीकेन समसज्जत संकुले ।
न रथा रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः ॥ २ ॥

परंतु उस घमासान युद्धमें सेनाओंका व्यूह भंग हो गया और युद्धके निश्चित नियमोंका उल्लङ्घन होने लगा। सेनाके साथ सेनाका युद्ध व्यवस्थानुसार नहीं चलता था। रथी रथियोंके साथ युद्ध नहीं करते थे, ... पैदल पैदलोंके साथ।

अश्वा नाश्वैरयुध्यन्त गजा न गजयोधिभिः ।
उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते तत्र भारत ॥ ३ ॥

घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ और हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ नहीं लड़ते थे। भरतवंशी महाराज! ... उन्मत्त के ...

होकर वहाँ योग्यताका विचार किये बिना सबके साथ युद्ध करते थे ॥ ३ ॥

महान् व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत।
अन्योन्यमभ्येत्य विकीर्णेषु च सर्वशः ॥ ४ ॥

उन दोनों सेनाओंमें अत्यन्त भयंकर घमासान हो गया। इसी तरह मनुष्य और हाथियोंके समूह सब ओर बिखर गये थे ॥ ४ ॥

क्षये तस्मिन् महारौद्रे निर्विशेषमजायत।
ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥ ५ ॥
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान्।
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥ ६ ॥

उस महाभयंकर युद्धमें किसीको कोई विशेष पहचान नहीं रह गयी थी। भारत! तदनन्तर शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, दुःशासन और विकर्ण—ये शूरवीर चमकीले रथोंपर बैठकर पाण्डवोंपर चढ़ आये और रणक्षेत्रमें उनकी सेनाको कँपाने लगे ॥ ५-६ ॥

सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः।
भ्रमते बहुधा राजन् मारुतेनेव नौर्जले ॥ ७ ॥

राजन्! जैसे वायुके थपेड़े खाकर नौका जलमें चक्कर काटने लगती है, उसी प्रकार उन महामनस्वी वीरोंद्वारा समरभूमिमें मारी जाती हुई पाण्डवसेना बहुधा इधर-उधर भटक रही थी ॥ ७ ॥

यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति।
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति ॥ ८ ॥

जैसे शिशिरकाल गौओंके मर्मस्थानोंका उच्छेद करने लगता है, उसी प्रकार भीष्म पाण्डवोंके मर्मस्थानोंको विदीर्ण करने लगे ॥ ८ ॥

तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना।
नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार महात्मा अर्जुनने आपकी सेनाके नूतन मेघके समान काले रंगवाले बहुत-से हाथी मार गिराये ॥ ९ ॥

मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः।
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
पेतुरार्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः।

अर्जुनके द्वारा बहुत-से पैदलोंके यूथपति मिट्टीमें मिलते दिखायी देते थे। नाराचों और बाणोंसे पीड़ित हुए सहस्रों महान् गज घोर आर्तनाद करके पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ १०½ ॥

आबद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥
छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः।

मारे गये महामनस्वी वीरोंके आभरणभूषित शरीरों और कुण्डलमण्डित मस्तकोंसे आच्छादित हुई वह रणभूमि बड़ी शोभा पा रही थी ॥ ११½ ॥

तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये ॥ १२ ॥
भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनंजये।
ते पराक्रान्तमालोक्य राजन् युधि पितामहम् ॥ १३ ॥
अभ्यवर्तन्त ते पुत्राः सर्वे सैन्यपुरस्कृताः।
इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ १४ ॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त तस्मिन् वीरवरक्षये।

महाराज! बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाले उस महायुद्धमें जब एक ओर भीष्म और दूसरी ओर पाण्डुनन्दन धनंजय पराक्रम प्रकट कर रहे थे, उस समय पितामह भीष्मको महान् पराक्रममें प्रवृत्त देख आपके सभी पुत्र सेनाओंके साथ स्वर्गको परम लक्ष्य बनाकर युद्धमें मृत्यु चाहते हुए पाण्डवोंपर चढ़ आये ॥ १२—१४½ ॥

पाण्डवा अपि महाराज स्मरन्तो विविधान् बहून् ॥ १५ ॥
क्लेशान् कृतान् सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप।
भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः ॥ १६ ॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च योधयन्ति स्म हृष्टवत्।

राजन्! नरेश्वर! शूरवीर पाण्डव भी पुत्रोंसहित आपके दिये हुए नाना प्रकारके अनेक क्लेशोंका स्मरण करके युद्धमें भय छोड़कर ब्रह्मलोक जानेके लिये उत्सुक हो बड़ी प्रसन्नताके साथ आपके सैनिकों और पुत्रोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५-१६½ ॥

सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ॥ १७ ॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह।

उस समय समरभूमिमें पाण्डव-सेनापति महारथी धृष्टद्युम्नने अपनी सेनासे कहा—'सोमको! तुम सृञ्जय वीरोंको साथ लेकर गङ्गानन्दन भीष्मपर धावा करो' ॥ १७½ ॥

सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयास्तथा ॥ १८ ॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः।

सेनापतिकी यह बात सुनकर सोमक और सृञ्जय वीर बाणोंकी मारसे घायल होनेपर भी गङ्गानन्दन भीष्मकी ओर दौड़े ॥ १८½ ॥

वध्यमानस्ततो राजन् पिता शान्तनवस्तव ॥ १९ ॥
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान्।

राजन्! तब आपके पितृतुल्य शान्तनुनन्दन भीष्म बाणोंकी मार खाकर अमर्षके वश हो गये और सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १९½ ॥

तस्य कीर्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता ॥ २० ॥
सम्प्रदत्तास्त्रशिक्षा वै परानीकविनाशिनी।
स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन् परबलक्षयम् ॥ २१ ॥
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः।
भीष्मो दश सहस्राणि जघान परवीरहा ॥ २२ ॥

तात! पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् परशुरामजीने उन

कवली भीष्मको पशुकेतुका विनाश करनेवाली जो आज्ञा दिया। अर्जुन को थी उसका आश्रय लेकर पाण्डव पक्षीय शत्रुसेनाका संहार करते हुए कुरुकुलके वृद्ध पितामह एवं शत्रुसेनाका नाश करनेवाले भीष्म निरन्तर दस हजार मुख्य योद्धाओंका वध करते आ रहे थे ॥ २०-२१ ॥

ततस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ ।
भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पञ्चालेषु च संयुगे ॥ २३ ॥
गजाश्वममितं हत्वा हता सप्त महारथाः ।
हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः ॥ २४ ॥
नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ।
दन्तिनां च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः ॥ २५ ॥
शिक्षाबलेन निहतं पिता तव विशाम्पते ।

भरतश्रेष्ठ ! उस दसवें दिनके आनेपर एकमात्र भीष्मने युद्धमें मत्स्य और पाञ्चालदेशकी सेनाओंमेंसे अगणित हाथी घोड़ोंको मारकर सात महारथियोंका वध कर डाला। प्रजानाथ ! फिर पाँच हजार रथियोंका वध करके आपके पितामह भीष्मने अपने अस्त्र शिक्षाबलसे उस महायुद्धमें चौदह हजार पैदल सिपाहियों, एक हजार हाथियों और दस हजार घोड़ोंका संहार कर डाला ॥ २३—२५½ ॥

ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् ॥ २६ ॥
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ।
शतानीकं च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैरपातयत् ।

तदनन्तर समस्त भूमिपालोंकी सेनाका उच्छेद करके उन्होंने विराटके प्रिय भाई शतानीकको मार गिराया। महाराज! शतानीकको समरभूमिमें मारकर प्रतापी भीष्मने भल्ल नामक बाणोंद्वारा एक हजार नरेशोंको धराशायी कर दिया ॥ २६-२७½ ॥

उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनंजयम् ॥ २८ ॥
ये च केचन पार्थानामभियाता धनंजयम् ।
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥ २९ ॥

उस रणक्षेत्रमें समस्त योद्धा भीष्मके भयसे उद्विग्न हो अर्जुनको पुकारने लगे। पाण्डवपक्षके जो कोई नरेश अर्जुनके साथ गये थे, वे भीष्मके सामने पहुँचते ही यमलोकके पथिक हो गये ॥ २८-२९ ॥

एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः ।
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ ३० ॥

इस प्रकार भीष्मने दसों दिशाओंमें सब ओर अपने बाणोंका जाल-सा बिछा दिया और कुन्तीकुमारोंकी सेनाको परास्त करके वे सेनाके प्रमुख भागमें स्थित हो गये ॥ ३० ॥

स कृत्वा सुमहत् कर्म तस्मिन् वै दशमेऽहनि ।
सेनयोरन्तरे तिष्ठन् प्रगृहीतशरासनः ॥ ३१ ॥

दसवें दिन वह महान् पराक्रम करके हाथमें धनुष लिये वे दोनों सेनाओंके बीचमें खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

नैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन् निरीक्षितुम् ।
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥ ३२ ॥

राजन्! जैसे ग्रीष्म ऋतुमें आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर दोपहरके समय तपते हुए सूर्यकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार उस समय कोई राजा भीष्मकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी साहस न कर सके ॥ ३२ ॥

यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे ।
तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत ॥ ३३ ॥

भारत! जैसे पूर्वकालमें देवराज इन्द्रने संग्रामभूमिमें दैत्योंकी सेनाको संतप्त किया था, उसी प्रकार भीष्मजी पाण्डव योद्धाओंको संताप दे रहे थे ॥ ३३ ॥

तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः ।
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनंजयम् ॥ ३४ ॥

उन्हें इस प्रकार पराक्रम करते देख मधुसूदन देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे प्रसन्नतापूर्वक कहा— ॥ ३४ ॥

एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः ।
संनिहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥ ३५ ॥

अर्जुन! ये शान्तनुनन्दन भीष्म दोनों सेनाओंके बीचमें खड़े हैं। यदि तुम बलपूर्वक इन्हें मार सको तो तुम्हारी विजय हो जायगी ॥ ३५ ॥

बलात् संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः ।
न हि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥ ३६ ॥

जहाँ ये इस सेनाका संहार कर रहे हैं, वहीं पहुँचकर इन्हें बलपूर्वक स्तम्भित कर दो (जिससे ये आगे या पीछे किसी ओर हट न सकें)। प्रभो! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो भीष्मके बाणोंकी चोट सह सके ॥ ३६ ॥

ततस्तस्मिन् क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः ।
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ३७ ॥

राजन्! इस प्रकार भगवान्से प्रेरित होकर कपिध्वज अर्जुनने उसी क्षण अपने बाणोंद्वारा ध्वज, रथ और घोड़ों सहित भीष्मको आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥

स चापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान् ।
शरव्रातैः शरव्रातान् बहुधा विदुधाव तान् ॥ ३८ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ वीरोंमें प्रधान भीष्मने भी अपने बाणसमूहोंद्वारा अर्जुनके चलाये हुए बाणसमूहोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ३८ ॥

(तथा पुनरमेयात्मा पाण्डवानां महारथान् ।
शरैरनिमिषैर्भीष्मः शिलाधौतैः शितैरपि ॥)

तत्पश्चात् उत्तम शील और तीखी धारवाले बाणोंद्वारा वे पुनः पाण्डव महारथियोंको शीघ्रतापूर्वक भय करने लगे ॥

ततः पाञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४९ ॥
यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह ।
सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥ ५० ॥
द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः ॥ ५१ ॥
एते चान्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः ।
समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥ ५२ ॥

इसी समय पाञ्चालराज द्रुपद, पराक्रमी धृष्टकेतु, पाण्डुनन्दन भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, नकुल-सहदेव, चेकितान, पाँच केकयराजकुमार, महाबाहु सात्यकि, सुभद्राकुमार अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, शिखण्डी, पराक्रमी कुन्तिभोज, सुशर्मा तथा विराट—ये और दूसरे भी बहुत-से महाबली पाण्डव सैनिक भीष्मके बाणोंसे पीड़ित हो शोकके समुद्रमें डूब रहे थे, परंतु अर्जुनने उन सबका उद्धार कर दिया ॥ ४९—५२ ॥

ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ ५३ ॥

तब शिखण्डी बड़े वेगसे उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर भीष्मकी ही ओर दौड़ा। उस समय किरीटधारी अर्जुन उसकी रक्षा कर रहे थे ॥ ५३ ॥

ततोऽस्यानुचरान् हत्वा सर्वान् रणविभागवित् ।
भीष्ममेवाभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् युद्धविभागके अच्छे ज्ञाता और किसीसे भी पराजित न होनेवाले अर्जुनने भीष्मके पीछे चलनेवाले समस्त योद्धाओंको मारकर स्वयं भी भीष्मपर ही धावा किया ॥ ५४ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ५५ ॥
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाजौ रक्षिता दृढधन्वना ।

इनके साथ महाबली चेकितान, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवने भी युद्धमें भीष्मपर ही आक्रमण किया। ये सब-के-सब सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले अर्जुनसे सुरक्षित थे ॥ ५५ ॥

अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥ ५६ ॥
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ।

द्रौपदीके पाँचों पुत्र और अभिमन्यु भी महान् अस्त्र-शस्त्र लिये उस रणक्षेत्रमें भीष्मकी ही ओर दौड़े ॥ ५६ ॥

ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः ॥ ५७ ॥
बहुधा भीष्ममानर्च्छन् मार्गणैः क्षतमार्गणाः ।

ये सभी वीर सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले और युद्धस्थलमें पीठ न दिखानेवाले थे। इन्होंने शत्रुओंके बाणोंका नाश करनेवाले बाणोंद्वारा भीष्मको बारंबार पीड़ित किया ॥ ५७ ॥

विधूय तान् बाणगणान् ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ॥ ५८ ॥
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् ।

परंतु उदारचेता भीष्म उन श्रेष्ठ राजाओंके छोड़े हुए समस्त बाणसमूहोंका नाश करके पाण्डवोंकी विशाल सेनामें घुस गये ॥ ५८ ॥

कृत्वा शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ॥ ५९ ॥
नाभिसंधत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मृत्य भीष्मो बाणान् शिखण्डिने ॥ ६० ॥

वहाँ पितामह भीष्म खेल-सा करते हुए अपने बाणोंद्वारा पाण्डवसैनिकोंके अस्त्र-शस्त्रोंका विनाश करने लगे। परंतु शिखण्डीके स्त्रीत्वका स्मरण करके वे बारंबार मुसकराकर रह जाते थे। उसपर बाण नहीं चलाते थे ॥ ५९-६० ॥

जघान द्रुपदानीके रथान् सप्त महारथः ।
ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत् तदा ॥ ६१ ॥
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ।

महारथी भीष्मने द्रुपदकी सेनाके सात रथियोंको मार डाला। यह देखकर भीष्मपर धावा करनेवाले मत्स्य, पाञ्चाल और चेदिदेशके योद्धाओंका महान् कोलाहल क्षणभरमें सब ओर गूँज उठा ॥ ६१ ॥

ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परंतप ॥ ६२ ॥
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ॥ ६३ ॥

परंतप! जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उन वीरोंने पैदल, घुड़सवार, रथ और रथियोंके समूहोंसे एवं बाणसमूहोंद्वारा भीष्मको आच्छादित कर दिया। उस समय गङ्गानन्दन भीष्म अकेले युद्धके मैदानमें शत्रुओंको अत्यन्त संताप दे रहे थे ॥ ६२-६३ ॥

ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।
किरीटी भीष्ममानर्च्छत् पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ६४ ॥

तदनन्तर भीष्म तथा उन योद्धाओंमें देवासुर संग्रामके समान युद्ध होने लगा। इसी बीचमें किरीटधारी अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मके समीप जा पहुँचे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपराक्रमे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्मपराक्रमविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६५ श्लोक हैं)

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवपक्षके प्रमुख महारथियोंद्वारा सुरक्षित होनेपर भी अर्जुनका भीष्मको रथसे गिराना, शरशय्यापर स्थित भीष्मके समीप हंसरूपधारी ऋषियोंका आगमन एवं उनके कथनसे भीष्मका उत्तरायणकी प्रतीक्षा करते हुए प्राण धारण करना

संजय उवाच

एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार शिखण्डीको आगे करके सभी पाण्डवोंने समरभूमिमें भीष्मको सब ओरसे घेरकर बींधना आरम्भ किया ॥ १ ॥

शतघ्नीभिः सुघोराभिः पट्टिशैः सपरश्वधैः।
मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीभिश्च सर्वशः ॥ २ ॥
शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः ॥ ३ ॥
अताडयन् रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः।

समस्त सृंजय वीर एक साथ मिल हो भयंकर शतघ्नी, परिघ, फरसे, मुद्गर, मुसल, प्रास, गोफन, सुवर्णमय पंखवाले बाण, शक्ति, तोमर, कम्पन, नाराच, वत्सदन्त और भुशुण्डी आदि अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा रणभूमिमें भीष्मको सब ओरसे पीड़ा देने लगे ॥ २-३ ॥

स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ॥ ४ ॥
न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु।

उस समय बहुसंख्यक योद्धाओंके द्वारा अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे पीड़ित होनेके कारण भीष्मका कवच छिन्न-भिन्न हो गया। उनके मर्मस्थान विदीर्ण होने लगे तो भी उनके मनमें व्यथा नहीं हुई ॥ ४ ॥

संदीप्तशरचापार्चिरस्त्रप्रसृतमारुतः ॥ ५ ॥
नेमिनिर्ह्रादसंतापो महास्त्रोदयपावकः।
चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥ ६ ॥
युगान्ताग्निसमो भीष्मः परेषां समपद्यत।

वे शत्रुओंके लिये प्रलयकालकी अग्निके समान अद्भुत तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। धनुष और बाण ही प्रज्वलित हुई आग थे। अस्त्रोंका प्रसार ही वायुका सहारा था और रथके पहियोंकी घरघराहट उस आगकी आँच थी। बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्राकट्य अंगारके समान था। विचित्र धनुष उस आगकी प्रचण्ड ज्वालाओंके समान था। बड़े-बड़े वीर ही ईंधनके समान उसमें गिरकर भस्म हो रहे थे ॥ ५-६ ॥

विवृत्य रथसंघानामन्तरेण विनिःसृतः ॥ ७ ॥
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन्।

पितामह भीष्म एक ही समयमें रथोंके [illegible] घेरेसे बाहर निकल आते और पुनः राजाओंकी सेनाके मध्यभागमें प्रवेश करके वहाँ विचरते दिखायी देते थे ॥ ७ ॥

ततः पाञ्चालराजं च धृष्टकेतुमवेक्ष्य च ॥ ८ ॥
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशाम्पते।

प्रजानाथ! तदनन्तर पांचालराज द्रुपद तथा धृष्टकेतुकी कुछ भी परवा न करके वे पाण्डवसेनाके भीतर घुस आये ॥ ८ ॥

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनंजयम् ॥ ९ ॥
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्।
भीमघोषैर्महावेगैर्वैरिवारणभेदिभिः ॥ १० ॥
षडेतान् निशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः।

फिर भयंकर शब्द करनेवाले महान् वेगशाली मर्मस्थलों और कवचोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा उन्होंने सात्यकि, भीमसेन, पाण्डुपुत्र अर्जुन, विराट, द्रुपद तथा उनके पुत्र धृष्टद्युम्न—इन छः महारथियोंको अत्यन्त घायल कर दिया ॥ ९-१० ॥

तस्य ते निशितान् बाणान् संनिवार्य महारथाः ॥ ११ ॥
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा।

तब उन महारथी वीरोंने भीष्मके उन तीखे बाणोंका निवारण करके पुनः दस-दस बाणोंद्वारा भीष्मको बलपूर्वक पीड़ित किया ॥ ११ ॥

शिखण्डी तु महाबाणान् यान् मुमोच महाव्रते ॥ १२ ॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः।

महारथी शिखण्डीने जिन महान् बाणोंका प्रयोग किया था, वे सुवर्णमय पंखवाले और शिलापर तेज किये हुए थे तो भी वे भीष्मके शरीरमें तनिक भी पीड़ा नहीं उत्पन्न कर सके ॥ १२ ॥

ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाभ्यधावत ॥ १३ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत्।

तब किरीटधारी अर्जुनने कुपित हो शिखण्डीको आगे किये हुए ही भीष्मपर धावा किया और उनके धनुषको काट डाला ॥ १३ ॥

भीष्मस्य धनुषश्छेदं नामृष्यन्त महारथाः ॥ १४ ॥
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च ॥ १५ ॥
सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः।
तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥ १६ ॥

अभिपेतुस्ते। कुरवस्त्वरयन्तस्तु पाण्डवम्।

भीष्मके धनुषका नाश होता देख कौरव महारथियोंसे सहन नहीं हुआ। द्रोण, कृतवर्मा, सिन्धुराज जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य और भगदत्त—ये सात महारथी अत्यन्त कुपित हो किरीटधारी अर्जुनकी ओर दौड़े तथा अपने दिव्य अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनको अत्यन्त क्रोधपूर्वक बाणोंसे आच्छादित करने लगे ॥ १४–१६½ ॥

तेषामासीत् तदा शब्दस्तुमुलः फाल्गुनं प्रति ॥ १७ ॥
उद्धूतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये।

अर्जुनके प्रति आक्रमण करते हुए उन वीरोंका सिंहनाद उसी प्रकार सुनायी पड़ा, जैसे प्रलयकालमें अपनी मर्यादा छोड़कर बढ़नेवाले समुद्रोंकी भीषण गर्जना सुनायी पड़ती है ॥ १७½ ॥

घ्नतानयत गृह्णीत विध्यध्वमवकृन्तत ॥ १८ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति।

अर्जुनके रथके समीप 'मार डालो, ले आओ, पकड़ लो, बींध डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो' इस प्रकार भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ १८½ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १९ ॥
अभ्यधावन् परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ।

भरतश्रेष्ठ! उस भयानक शब्दको सुनकर पाण्डव महारथी अर्जुनकी रक्षाके लिये दौड़े ॥ १९½ ॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २० ॥
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः।
अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २१ ॥
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः।

सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, राक्षस घटोत्कच और अभिमन्यु—ये सात वीर कोपसे मूर्च्छित हो हाथमें विचित्र धनुष धारण किये बड़ी उतावलीके साथ दौड़े ॥ २०-२१½ ॥

तेषां समभवद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥
संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव।

भरतभूषण! उनका वह भयंकर युद्ध देवासुर-संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ २२½ ॥

शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ २३ ॥
अविध्यद् दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे।
सारथिं दशभिश्चास्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे ॥ २४ ॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम्।
(अयात [illegible])
तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः ॥ २५ ॥

भीष्मजीका धनुष कट गया था। उसी अवस्थामें अर्जुनसे सुरक्षित शिखण्डीने दस बाणोंसे उन्हें और दस बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया। तत्पश्चात् एक बाणसे ध्वजको काट गिराया। तब गङ्गानन्दन भीष्मने दूसरा अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर तीखे बाणोंसे अर्जुनको घायल करना आरम्भ किया। यह देख अर्जुनने उस धनुषको भी तीन पैने बाणोंद्वारा काट डाला ॥ २३–२५ ॥

एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः।
धनुर्भीष्मस्य चिच्छेद सव्यसाची परंतपः ॥ २६ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए शत्रुतापी सव्यसाची पाण्डुनन्दन अर्जुन जो-जो धनुष भीष्म लेते, उसी-उसीको काट डालते थे ॥ २६ ॥

स छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन्।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम् ॥ २७ ॥

धनुष कट जानेपर क्रोधपूर्वक अपने मुँहके दोनों कोनोंको चाटते हुए भीष्मने वेगपूर्वक एक शक्ति हाथमें ली, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली थी ॥ २७ ॥

तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ २८ ॥
समादत्त शितान् भल्लान् पञ्च पाण्डवनन्दनः।
तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम्।

भरतश्रेष्ठ! फिर उसे क्रोधपूर्वक उन्होंने अर्जुनके रथपर चला दिया। प्रज्वलित वज्रके समान उस शक्तिको आते देख पाण्डवोंको आनन्दित करनेवाले अर्जुनने अपने हाथमें भल्लनामक पाँच तीखे बाण लिये और कुपित हो उन पाँच बाणोंद्वारा भीष्मकी भुजाओंसे प्रेरित हुई उस शक्तिके पाँच टुकड़े कर दिये ॥ २८-२९½ ॥

सा पपात तथा छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ ३० ॥
मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा।

क्रोधमें भरे हुए अर्जुनद्वारा कटी हुई वह शक्ति मेघोंके समूहसे भिन्न होकर गिरी हुई बिजलीके समान पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३०½ ॥

छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः ॥ ३१ ॥
अचिन्तयद् रणे वीरो बुद्ध्या परपुरंजयः।

अपनी उस शक्तिको छिन्न-भिन्न हुई देख भीष्मजी क्रोधसे भर गये और शत्रुनगरविजयी उन वीरशिरोमणिने रणभूमिमें अपनी बुद्धिद्वारा इस प्रकार विचार किया— ॥ ३१½ ॥

शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ॥ ३२ ॥
यद्येषां न भवेद् गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः।

'यदि महाबली भगवान् श्रीकृष्ण इन पाण्डवोंकी रक्षा न करते होते तो मैं इन सबको केवल एक धनुषके द्वारा ही मार सकता था ॥ ३२½ ॥

अजय्यश्चापि लोकानां सर्वेषामिति मे मतिः।
कारणान्तरमास्थाय नाहं योत्स्यामि पाण्डवान्॥ ३४॥
अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः।

भगवान् सम्पूर्ण लोकोंके लिये अजेय हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। इस समय मैं दो कारणोंका आश्रय लेकर पाण्डवोंसे युद्ध नहीं करूँगा। एक तो ये पाण्डव अवध्य होनेके कारण मेरे लिये अवध्य हैं और दूसरे मेरे सामने शिखण्डी आ गया है, जो पहले स्त्री था॥

पिता तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहत्॥ ३५॥
स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा।
तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवात्मनः॥

पूर्वकालमें जब मैंने माता सत्यवतीका विवाह पिताजीके साथ कराया था, उस समय मेरे पिताने प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये थे—जब तुम्हारी इच्छा होगी, तभी तुम मरोगे तथा युद्धमें कोई भी तुम्हें मार न सकेगा। ऐसी दशामें मुझे स्वेच्छासे ही मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिये। मैं समझता हूँ कि अब उसका अवसर आ गया है॥

एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्यामिततेजसः।
ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन्॥ ३६॥

अमिततेजस्वी भीष्मके इस निश्चयको जानकर आकाशमें खड़े हुए ऋषियों और वसुओंने उनसे इस प्रकार कहा॥

यत् ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम्।
तत् कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्तय॥ ३७॥

तात! तुमने जो निश्चय किया है, वह हमलोगोंको भी बहुत प्रिय है। महाराज! अब तुम वही करो, युद्धकी ओरसे अपनी बुद्धि हटा लो॥

अस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः।
अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः॥ ३८॥

यह बात समाप्त होते ही जलकी बूँदोंके साथ सुगन्धित और शीतल सुखदायी हवा अनुकूल दिशासे चलने लगी॥

देवदुन्दुभयश्चैव सम्प्रणेदुर्महास्वनाः।
पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष॥ ३९॥

मान्यवर! देवताओंकी दुन्दुभियाँ जोर-जोरसे बज उठीं और भीष्मके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥

न च तच्छुश्रुवे कश्चित् तेषां संवदतां नृप।
ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा॥ ४०॥

राजन्! उस समय उपर्युक्त बातें कहनेवाले ऋषियोंका शब्द महाबाहु भीष्म तथा मुझको छोड़कर और कोई नहीं सुन सका। मुझे तो महर्षि व्यासके प्रभावसे ही वह बात सुनायी पड़ी॥

सम्भ्रमश्च महानासीत् त्रिदशानां विशाम्पते।
पतिष्यति रथाद् भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा॥ ४१॥

प्रजानाथ! सम्पूर्ण लोकोंके प्रिय भीष्म रथसे गिरना चाहते हैं, यह जानकर उस समय सम्पूर्ण देवताओंको भी महान् सम्भ्रम हुआ॥

इति देवगणानां च वाक्यं श्रुत्वा महामनाः।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाभ्यवर्तत॥ ४२॥
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः।

देवताओंकी यह बात सुनकर महामनस्वी शान्तनुनन्दन भीष्म समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले तीखे बाणों द्वारा विदीर्ण होनेपर भी अर्जुनका सामना न कर सके॥

शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम्॥ ४३॥
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः।

महाराज! उस समय शिखण्डीने कुपित होकर भरतवंशियोंके पितामह भीष्मकी छातीमें नौ पैने बाण मारे॥

स तेनाभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः॥ ४४॥
नाकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाचलः।

राजन्! युद्धमें शिखण्डीके द्वारा आहत होकर भी कुरुपितामह भीष्म उसी प्रकार कम्पित नहीं हुए, जैसे भूकम्प होनेपर भी पर्वत नहीं हिलता॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः॥ ४५॥
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्।

तदनन्तर अर्जुनने हँसकर गाण्डीव धनुषको खींचते हुए गङ्गानन्दन भीष्मको पचीस बाण मारे॥

पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनंजयः॥ ४६॥
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत्।

तत्पश्चात् पुनः उन्होंने अत्यन्त कुपित हो शीघ्रतापूर्वक सौ बाण मारकर उनके सम्पूर्ण अङ्गों और मर्मस्थानोंमें आघात किया॥

एवमन्यैरपि भृशं विध्यमानः सहस्रशः॥ ४७॥
तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः।

इसी प्रकार दूसरे लोगोंने भी सहस्रों बाणोंद्वारा भीष्मको घायल किया। महारथी भीष्मने तुरंत ही अपने बाणोंद्वारा उन सबको भी बींध डाला॥

तैश्च मुक्ताञ्छरान् भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः॥ ४८॥
निवारयामास शरैः समं संनतपर्वभिः।

सत्यपराक्रमी भीष्म युद्धस्थलमें अन्य वीरोंद्वारा छोड़े हुए बाणोंको झुकी हुई गाँठवाले अपने बाणोंद्वारा तुरंत ही निवारण कर देते थे॥

शिखण्डी तु रणे बाणान् यान् मुमोच महारथः॥ ४९॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः।

महारथी शिखण्डीने रणक्षेत्रमें जिनका प्रयोग किया था, वे सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाण भीष्मजीके शरीरमें कोई पीड़ा नहीं उत्पन्न कर सके॥

ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाभ्यवर्तत ॥ ५० ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत् ।

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए अर्जुन शिखण्डीको आगे रखकर पुनः भीष्मजीकी ओर बढ़े । उन्होंने भीष्मजीके धनुषको काट दिया ॥ ५० ½ ॥

अथैनं दशभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ ५१ ॥
सारथिं विशिखैश्चास्य दशभिः समकम्पयत् ।

तदनन्तर दस बाणोंसे उन्हें घायल करके एक बाणसे उनकी ध्वजाको भी काट डाला । फिर दस बाणोंद्वारा उनके सारथिको कम्पित कर दिया ॥ ५१ ½ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम् ॥ ५२ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरपाहरत् ।

तब गङ्गानन्दन भीष्मने दूसरा अत्यन्त प्रबल धनुष हाथमें लिया, परंतु अर्जुनने तीन तीखे भल्लोंद्वारा मारकर उसे भी तीन जगहसे खण्डित कर दिया ॥ ५२ ½ ॥

निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे ॥ ५३ ॥
एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ ।

उस महायुद्धमें भीष्म जो-जो धनुष हाथमें लेते थे, उसे कुन्तीकुमार अर्जुन आधे निमेषमें काट डालते थे । इस प्रकार उन्होंने रणभूमिमें उनके बहुत-से धनुष खण्डित कर दिये ॥

ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नात्यवर्तत ॥ ५४ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।

तब शान्तनुनन्दन भीष्मने अर्जुनपर हाथ उठाना बंद कर दिया । फिर भी अर्जुनने उन्हें पचीस बाण मारे ॥ ५४ ½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत ॥ ५५ ॥
एष पार्थो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाभ्यहनद् रणे ॥ ५६ ॥

इस प्रकार अत्यन्त घायल होनेपर महाधनुर्धर भीष्मने दुःशासनसे कहा—ये पाण्डव महारथी अर्जुन युद्धमें कुपित होकर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा मुझे घायल कर चुके हैं ॥

न चैष समरे शक्यो जेतुं वज्रभृता अपि ।
न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ॥ ५७ ॥
मां चापि शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्या महारथाः ।

इन्हें वज्रधारी इन्द्र भी युद्धमें जीत नहीं सकते । इस प्रकार सम्पूर्ण देवता, दानव तथा राक्षस वीर एक साथ आ जायँ तो मुझे भी युद्धमें परास्त नहीं कर सकते । फिर दूसरे मनुष्य महारथियोंकी तो बात ही क्या है ॥ ५७ ½ ॥

एवं तयोः संवदतोः फाल्गुनो निशितैः शरैः ॥ ५८ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संयुगे ।

इस प्रकार दुःशासन और भीष्ममें जब बातचीत हो रही थी, उसी समय अर्जुनने अपने तीखे बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें शिखण्डीको आगे करके भीष्मको अत्यन्त घायल कर दिया ॥

ततो दुःशासनं भूयः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ५९ ॥
अतिविद्धः शितैर्बाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना ।
वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि ॥ ६० ॥
मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।

तब वे पुनः दुःशासनसे मुसकराते हुए बोले—गाण्डीवधारी अर्जुनने युद्धस्थलमें जो बाण छोड़े हैं, जिनका स्पर्श वज्र और विद्युत्‌के समान भयंकर है । उनके तीखे बाणोंसे मैं अत्यन्त घायल हो गया हूँ । ये अविच्छिन्न गतिसे छूटनेवाले समस्त बाण शिखण्डीके नहीं हो सकते ॥ ५९-६० ½ ॥

निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः ॥ ६१ ॥
मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
ब्रह्मदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥ ६२ ॥

क्योंकि ये मेरे सुदृढ़ कवचको छेदकर मर्मस्थानोंमें आघात कर रहे हैं और मूसलोंके समान चोट करते हैं । इनका स्पर्श ब्रह्मदण्ड और वज्रके समान असह्य है, इनका वेग वज्रके समान होनेके कारण ये दुःसह हैं । ये शिखण्डीके बाण कदापि नहीं हैं ॥ ६१-६२ ॥

मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
नाशयन्तीव मे प्राणान् यमदूता इवाहिताः ॥ ६३ ॥

ये मेरे प्राणोंमें पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं । अहितकारी यमदूतोंके समान मेरे प्राणोंका विनाश-सा कर रहे हैं । ये शिखण्डीके बाण कदापि नहीं हो सकते ॥ ६३ ॥

गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्बणाः ॥ ६४ ॥

इनका स्पर्श गदा और परिघकी चोटके समान प्रतीत होता है । ये क्रोधमें भरे हुए प्रचण्ड विषवाले सर्पोंके समान जान पड़ते हैं । ये शिखण्डीके बाण नहीं हैं ॥ ६४ ॥

समाविशन्ति मर्माणि नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ६५ ॥
कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवामिव ।

ये बाण मेरे मर्मस्थानोंमें प्रवेश कर रहे हैं, अतः शिखण्डीके नहीं हैं । ये अर्जुनके बाण हैं । ये शिखण्डीके बाण नहीं हैं । जैसे केकड़ेके बच्चे अपनी माताका उदर विदीर्ण करके बाहर निकलते हैं, उसी प्रकार ये बाण मेरे सम्पूर्ण अङ्गोंको छेदे डालते हैं ॥ ६५ ½ ॥

सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ॥ ६६ ॥
वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् ।

गाण्डीवधारी वीर कपिध्वज अर्जुनको छोड़कर अन्य सभी नरेश मिलकर भी मुझे इतनी पीड़ा नहीं दे सकते ॥ ६६ ½ ॥

इति मन्यन्तामतयो विभत्सुरिव पाण्डवान् ॥ ६७ ॥
शक्तिं भीष्म स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत
तामस्य विशिखैश्छित्त्वा त्रिधा विभिन्नताम् ॥ ६८ ॥

महान् क्रोध करते हुए महात्मा भीष्मने पाण्डवोंकी ओर इस प्रकार देखा मानो उन्हें भस्म कर डालेंगे। फिर उन्होंने अर्जुनपर एक शक्ति चलायी, परंतु अर्जुनने तीन बाणों द्वारा उसकी उस शक्तिके तीन टुकड़े कर दिये ॥ ६ ॥

पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तत्र भारत
चर्मादत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥
खड्गं चान्यतरत्प्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा

भरतनन्दन! उसके बाद समस्त कौरव वीरोंके देखते-देखते गङ्गानन्दन भीष्मने मृत्यु अथवा विजय इन दोनोंमें किसी एकका वरण करनेके लिये अपने हाथमें सुवर्णभूषित ढाल और तलवार ले ली ॥

तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत् सायकैस्तथा ॥ ७० ॥
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत्

परंतु वे अभी अपने रथसे उतर भी न पाये थे कि अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा उनकी ढालके सौ टुकड़े कर दिये। यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ६ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वान्यनीकान्यचोदयत् ॥ ७१ ॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि

इसी समय राजा युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंको आज्ञा दी कि गङ्गानन्दन भीष्मपर आक्रमण करो। उनकी ओरसे तुम्हारे मनमें तनिक भी भय नहीं होना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः ॥ ७२ ॥
पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैस्तथा शितैः
वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ॥ ७३ ॥

तदनन्तर पाण्डव सैनिक सब ओरसे तोमर, प्रास, बाणसमूह, पट्टिश, खड्ग, तीखे नाराच, वत्सदन्त तथा भल्लोंका प्रहार करते हुए एकमात्र भीष्मकी ओर दौड़े।

सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत् तदा
तथैव तव पुत्राश्च नेदुर्भीष्मजयैषिणः ॥ ७४ ॥

तदनन्तर पाण्डवोंकी सेनामें घोर सिंहनाद हुआ। इसी प्रकार भीष्मकी विजय चाहनेवाले आपके पुत्र भी उस समय गर्जना करने लगे।

तावकानामभूत् तत्र सिंहनादश्च भारत ॥
अव्यक्तान् तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ७५ ॥

आपके सैनिक एकमात्र भीष्मकी रक्षा और सिंहनाद करने लगे। वहाँ आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ भयंकर युद्ध हुआ।

दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे

आवर्त इव गङ्गायाः सागरस्य महार्णवे ॥ ७६ ॥

राजेन्द्र! दसवें दिन भीष्म और अर्जुनके समागममें वैसा ही भयंकर दृश्य दिखायी दिया, मानो समुद्रमें गङ्गाकी लहरोंके मिलनेके समय उसमें भारी भँवर उठ रही हो।

सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम्
अगम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ता तदाभवत् तदा ॥ ७७ ॥

उस समय एक दूसरेको मारनेवाले युद्धपरायण सैनिकोंके रक्तसे रञ्जित हो वहाँकी सारी पृथ्वी अगम्य-सी हो गयी थी।

समं च विषमं चैव न प्राज्ञायत किंचन
योधानामयुतं हत्वा तस्मिन् स दशमेऽहनि ॥ ७८ ॥
अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु

वहाँ ऊँची और नीची भूमिका भी कुछ पता नहीं चलता था। उस दसवें दिन उस युद्धमें अपने मर्मस्थानोंके विदीर्ण होनेपर भी भीष्मजी दस हजार योद्धाओंको मारकर खड़े हुए थे।

ततः सेनामुखे तस्मिन् स्थितः पार्थो धनुर्धरः ॥ ७९ ॥
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम्

तब उस समय सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए धनुर्धर अर्जुनने कौरवसेनाके बीचसे प्रवेश करके आपकी सेनाको भगाना आरम्भ किया।

वयं श्वेतहयात् भीताः कुन्तीपुत्राद् धनंजयात् ॥
पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः प्राद्रवाम रणे तदा ॥ ८० ॥

हमें तथा अन्य राजाओंने श्वेत घोड़ोंवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनसे भयभीत हो तीखे शस्त्रोंद्वारा पीड़ित होकर युद्धस्थलसे भागना आरम्भ किया। वहाँ हमने पाण्डवोंका वह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने हमारे योद्धाओंको भीष्मका अनुगमन करनेवाले समस्त योद्धाओंको मार भगाया।

राजन्! उस समय श्वेतवाहन कुन्तीपुत्र धनंजयसे डर कर उनके तीखे अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित हो हम सभी लोग रणभूमिसे भागने लगे थे ॥ ६ ॥

सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः
शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ८२ ॥
सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥ ८३ ॥

सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, शाल्वाश्रय त्रिगर्त तथा केकय—

मत्स्य और केकय—इन सभी देशोंके ये सारे महामनस्वी वीर बाणोंसे घायल और घावोंसे पीड़ित होनेपर भी अर्जुनके साथ युद्ध करनेवाले भीष्मको समरभूमिमें छोड़ न सके ॥

ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः।
परिकाल्य कुरून् सर्वाञ्छरवर्षैरवाकिरन् ॥ ८४ ॥

तदनन्तर एकमात्र भीष्मको पाण्डवपक्षीय बहुसंख्यक योद्धाओंने चारों ओरसे घेर लिया और समस्त कौरवोंको दूर भगाकर उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८४ ॥

निपातयत गृह्णीत युध्यध्वमवकृन्तत।
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो राजन् भीष्मरथं प्रति ॥ ८५ ॥

राजन्! उस समय भीष्मके रथके समीप 'मार गिराओ, पकड़ लो, युद्ध करो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो' इत्यादि भयंकर शब्द गूँज रहे थे ॥ ८५ ॥

निहत्य समरे राजञ्छतशोऽथ सहस्रशः।
न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥ ८६ ॥

महाराज! समरमें भीष्म सैकड़ों और हजारों वीरोंका वध करके उस स्थितिमें पहुँच गये थे कि उनके शरीरमें दो अङ्गुल भी ऐसा स्थान नहीं रह गया था, जो बाणोंसे बिंधा न हुआ हो ॥ ८६ ॥

एवंभूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः।
शिताग्रैः फाल्गुनेनाजौ प्राक्शिराः प्रापतद् रथात् ॥ ८७ ॥
किंचिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम्।

इस प्रकार आपके ताऊ भीष्म युद्धस्थलमें अर्जुनके तीखे बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे—उनका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था। उसी अवस्थामें जब कि दिन थोड़ा ही शेष था, आपके पुत्रोंके देखते-देखते पूर्व दिशाकी ओर मस्तक किये रथसे नीचे गिर पड़े ॥ ८७½ ॥

हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानां च भारत ॥ ८८ ॥
पतमाने रथाद् भीष्मे बभूव सुमहास्वनः।

भारत! रथसे भीष्मके गिरते समय आकाशमें खड़े हुए देवताओं तथा भूपालोंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ८८½ ॥

सम्पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम् ॥ ८९ ॥
सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन् हृदयानि नः।

महाराज! महात्मा पितामह भीष्मको रथसे नीचे गिरते देखकर हम सब लोगोंके हृदय भी उनके साथ ही गिर पड़े ॥

स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ ९० ॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम्।
धरणीं न स पस्पर्श शरसङ्घैः समावृतः ॥ ९१ ॥

वे महाबाहु भीष्म सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ थे। वे कटी हुई इन्द्रध्वजाके समान पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए गिर पड़े। उनके सारे अङ्गोंमें सब ओर बाण बिंधे हुए थे। इसलिये गिरनेपर भी उनका धरतीसे स्पर्श नहीं हुआ ॥

शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम्।
रथात् प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् ॥ ९२ ॥

रथसे गिरकर बाणशय्यापर सोये हुए पुरुषप्रवर महाधनुर्धर भीष्मके भीतर दिव्यभावका आवेश हुआ ॥ ९२ ॥

अभ्यवर्षत पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी।
पतन् स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥ ९३ ॥

आकाशसे मेघ वर्षा करने लगा, धरती काँपने लगी। गिरते-गिरते उन्होंने देखा, अभी सूर्य दक्षिणायनमें हैं (यह मृत्युके लिये उत्तम समय नहीं है) ॥ ९३ ॥

संज्ञां चोपलभद् वीरः कालं संचिन्त्य भारत।
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः ॥ ९४ ॥

भारत! ऐसा विचार करके भीष्मने अपने होश-हवासको ठीक रक्खा। उस समय आकाशमें सब ओर यह दिव्य वाणी सुनायी दी ॥ ९४ ॥

कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
कालं कर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने ॥ ९५ ॥

'महात्मा गङ्गानन्दन भीष्म सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा कालपर भी अंकुश रखनेवाले थे। इन्होंने दक्षिणायनमें मृत्यु क्यों स्वीकार की?' ॥

स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत्।
धारयामास च प्राणान् पतितोऽपि महीतले ॥ ९६ ॥
उत्तरायणमन्विच्छन् भीष्मः कुरुपितामहः।
तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ॥ ९७ ॥
महर्षीन् हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै।

उनकी यह बात सुनकर गङ्गानन्दन भीष्मने कहा—'मैं अभी जीवित हूँ।' कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्म पृथ्वीपर गिरकर भी उत्तरायणकी प्रतीक्षा करते हुए अपने प्राणोंको रोके हुए हैं। उनके इस अभिप्रायको जानकर हिमवान्‌की पुत्री महादेवी गङ्गाने महर्षियोंको हंसरूपमें वहाँ भेजा ॥ ९६-९७½ ॥

ततः सम्पातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ॥ ९८ ॥
आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम्।
यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९९ ॥

वे मानसरोवरनिवासी हंसरूपधारी महर्षि एक साथ उड़ते हुए बड़ी उतावलीके साथ कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्मका दर्शन करनेके लिये उस स्थानपर आये, जहाँ वे नरश्रेष्ठ बाणशय्यापर सो रहे थे ॥ ९८-९९ ॥

ते तु भीष्मं समासाद्य मुनयो हंसरूपिणः।
अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १०० ॥

उन हंसरूपधारी ऋषियोंने वहाँ पहुँचकर कुरु-कुलगुरु वीर भीष्मको बाणशय्यापर सोये हुए देखा ॥

ते तु दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
गाङ्गेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् ॥ १ ॥
इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः।

उन भरतश्रेष्ठ महात्मा गङ्गानन्दन भीष्मका दर्शन करके ऋषियोंने उनकी प्रदक्षिणा की। फिर दक्षिणायन सूर्यको लक्ष्य करके परस्पर सलाह करके वे मनीषी मुनि इस प्रकार बोले— ॥

भीष्मः कथं महात्मा सन् संस्थाता दक्षिणायने ॥ २ ॥
इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशम्।

'भीष्मजी महात्मा होकर दक्षिणायनमें कैसे अपनी मृत्यु स्वीकार करेंगे?' ऐसा कहकर वे हंस दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥ २ ॥

सम्प्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥ ३ ॥
तानब्रवीच्छान्तनवो नाहं गन्ता कथंचन।
दक्षिणावर्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम् ॥ ४ ॥

भारत! हंसोंको जाते देख उन्हें देखकर परम बुद्धिमान् भीष्मने कुछ चिन्तन करके उनसे कहा—'मैं सूर्यके दक्षिणायन रहते किसी प्रकार यहाँसे प्रस्थान नहीं करूँगा, यह मेरे मनका निश्चित विचार है ॥ ३-४ ॥

गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद् यन्मे पुरातनम्।
उदगावृत्त आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ ५ ॥

हंसो! सूर्यके उत्तरायण होनेपर ही मैं उस लोकमें जाऊँगा, जो मेरा पुरातन स्थान है। यह मैं आपलोगोंसे सच्ची बात कह रहा हूँ ॥ ५ ॥

धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकाङ्क्षया।
ऐश्वर्यभूतः प्राणानामुत्सर्गे हि यतो मम ॥ ६ ॥

मैं उत्तरायणकी प्रतीक्षामें अपने प्राणोंको धारण किये रहूँगा; क्योंकि मैं जब इच्छा करूँ, तभी अपने प्राणोंका त्याग करूँ, यह शक्ति मुझे प्राप्त है ॥ ६ ॥

तस्मात् प्राणान् धारयिष्ये मुमूर्षुरुदगायने।
यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ॥ ७ ॥
छन्दतो मृत्युरित्येवं तस्य चास्तु वरस्तथा।
धारयिष्ये ततः प्राणानुत्सर्गे नियते सति ॥ ८ ॥

अतः उत्तरायणमें मृत्यु प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं अपने प्राणोंको धारण करूँगा। मेरे महात्मा पिताने मुझे जो वर दिया था कि तुम्हें अपनी इच्छा होनेपर ही मृत्यु प्राप्त होगी, उनका वह वरदान सफल हो। मैं प्राणत्यागका नियत समय आनेतक अपने इन प्राणोंको रोक रखूँगा ॥ ७-८ ॥

इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसानशेत शरतल्पगः।
एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि ॥ ९ ॥
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे।

उन हंसोंसे ऐसा कहकर वे बाणशय्यापर पूर्ववत् सोये रहे। इस प्रकार कुरुकुलशिरोमणि महातेजस्वी भीष्मके गिर जानेपर पाण्डव और सृंजय हर्षसे सिंहनाद करने लगे ॥ ९ ॥

तस्मिन् हते महासत्त्वे भरतानां पितामहे ॥ १० ॥
न किंचित् प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ।

भरतश्रेष्ठ! उन महान् शक्तिशाली एवं भरतवंशियोंके पितामह भीष्मके मारे जानेपर आपके पुत्रोंको कुछ भी सूझ नहीं पड़ा ॥ १० ॥

सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत् तदा ॥ ११ ॥
कृपदुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः।

समस्त कौरवोंपर बड़ा भयंकर मोह छा गया। कृप और दुर्योधन आदि सब लोग सिसक-सिसककर रोने लगे ॥ ११ ॥

विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन् विगतेन्द्रियाः ॥ १२ ॥
दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः।
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥ १३ ॥

वे लोग विषादके कारण दीर्घकालतक एक अवस्थामें पड़े रहे, मानो उनकी सारी इन्द्रियाँ नष्ट हो गयी हों। महाराज! सभी चिन्तामें डूब गये। युद्धमें उनका मन नहीं लगता था। वे पाण्डवोंपर धावा न कर सके, मानो किसी ग्राहने उन्हें पकड़ लिया हो ॥ १२-१३ ॥

अवध्ये शन्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि।
अभावः सहसा राजन् कुरुराजस्य तर्कितः ॥ १४ ॥

महातेजस्वी शान्तनुनन्दन भीष्म अवध्य थे, तो भी मारे गये। इस घटनासे सब लोगोंने यही अनुमान किया कि कुरुराज दुर्योधनका विनाश भी अब समीप ही है ॥ १४ ॥

हतप्रवीराश्च वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः।
कर्तव्यं नाभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ १५ ॥

सव्यसाचीने हमें युद्धमें परास्त कर दिया था, हमारे बड़े-बड़े वीर मारे गये थे और हमलोग तीखे बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे, अतः हमें अपना कर्तव्य नहीं सूझता था ॥ १५ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम्।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खाञ्छूराः परिघबाहवः ॥ १६ ॥

परिघके समान मोटी भुजाओंवाले शूरवीर पाण्डवोंने इहलोकमें विजय पाकर परलोकमें भी उत्तम गति निश्चित कर ली। वे सब-के-सब बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे।

सोमकाश्च रणश्लाघाः प्राहृष्यन्त जनेश्वर ।
ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु च महाबलः ॥ ११७ ॥
आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च ।

जनेश्वर ! पाञ्चालों और सोमकोंके हर्षकी सीमा न रही । सहस्रों रणवाद्य बजने लगे । उस समय महाबली भीमसेन जोर-जोरसे ताल ठोंकने और सिंहके समान दहाड़ने लगे ॥ ११७½ ॥

सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये निहते विभौ ॥ ११८ ॥
संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः ।

शक्तिशाली गङ्गानन्दन भीष्मके मारे जानेपर सब ओर दोनों सेनाओंके वीर योद्धा अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे डालकर भारी चिन्तामें निमग्न हो गये ॥ ११८½ ॥

प्राक्रोशन् प्राद्रवंश्चान्ये जग्मुर्मोहं तथापरे ॥ ११९ ॥

कुछ लोग फूट-फूटकर रोने-चिल्लाने लगे, कुछ इधर-उधर भागने लगे और कुछ लोग मोहको प्राप्त (मूर्च्छित) हो गये ॥ ११९ ॥

क्षत्रं चान्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चान्येऽभ्यपूजयन् ।
ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्महाव्रतम् ॥ १२० ॥

कुछ लोग क्षत्रियधर्मकी निन्दा कर रहे थे और कुछ भीष्मजीकी प्रशंसा कर रहे थे । ऋषियों और पितरोंने महान् व्रतधारी भीष्मकी बड़ी प्रशंसा की ॥ १२० ॥

भरतानां च ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे ।
महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान् ॥ १२१ ॥
जपञ्छान्तनवो धीमान् कालाकाङ्क्षी स्थितोऽभवत् ॥ १२२ ॥

भरतवंशके पूर्वजोंने भी भीष्मजीकी बड़ी बड़ाई की । परम पराक्रमी एवं बुद्धिमान् शान्तनुनन्दन भीष्म महान् उपनिषद्में वर्णित योगका आश्रय ले प्रणवका जप करते हुए उत्तरायणकालकी प्रतीक्षामें शरशय्यापर सोये रहे ॥ १२१-१२२ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मनिपातने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्मका रथसे गिरना नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल १२५ श्लोक हैं)

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्मजीकी महत्ता तथा अर्जुनके द्वारा भीष्मको तकिया देना एवं उभय पक्षकी सेनाओंका अपने शिविरमें जाना और श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवाद

धृतराष्ट्र उवाच

कथमासंस्तदा योधा हीना भीष्मेण संजय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! भीष्मजी बलवान् और देवताके समान थे । उन्होंने अपने पिताके लिये आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया था । उस दिन उनसे रहित होनेके कारण उनके साथियोंने वञ्चित हुए मेरे पक्षके योद्धाओंकी क्या दशा हुई ? ॥ १ ॥

तदैव निहतान् मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः ।
न प्राहरद् यदा भीष्मो घृणित्वाद् द्रुपदात्मजम् ॥ २ ॥

भीष्मजीने अपनी दयालुताके कारण जब द्रुपदकुमार शिखण्डीपर प्रहार करनेसे हाथ खींच लिया, तभी मैंने यह समझ लिया था कि अब पाण्डवोंके हाथसे अन्य कौरव भी अवश्य मारे जायेंगे ॥ २ ॥

ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत् प्रभविष्यति ।
अद्याहं पितरं श्रुत्वा निहतं बत दुर्मतिः ॥ ३ ॥

मेरी समझमें इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात और क्या होगी कि आज अपने पिता भीष्मके मारे जानेका समाचार सुनकर भी जीवित हूँ । मेरी बुद्धि बहुत ही खोटी है ॥ ३ ॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम संजय ।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥ ४ ॥

संजय ! निश्चय ही मेरा हृदय लोहेका बना हुआ है; क्योंकि आज भीष्मजीके मारे जानेका समाचार सुनकर भी यह फटकर टुकड़ोंमें विदीर्ण नहीं हो रहा है ॥ ४ ॥

यदन्यन्निहतेनाजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।
चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥ ५ ॥

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले संजय ! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कुरुकुलसिंह भीष्म जब युद्धमें मारे गये, उस समय उन्होंने दूसरी कौन-कौन-सी चेष्टाएँ की थीं ? यह सब मुझसे कहो ॥ ५ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैः स्म यः पुरा ॥ ६ ॥
स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।

रणभूमिमें देवव्रत भीष्मका मारा जाना मुझे बारंबार असह्य हो उठता है । जो भीष्म पूर्वकालमें जमदग्निनन्दन परशुरामजीके दिव्यास्त्रोंद्वारा भी नहीं मारे जा सके, वे ही

द्रुपदकुमार पाञ्चाल और शिखण्डीके हाथसे मारे गये यह कितने दुःखकी बात है ॥ ६ ॥

संजय उवाच

सायाह्ने निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान् विषादयन् ॥ ७ ॥
पञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः ।

संजयने कहा—महाराज! कुरुकुलके पितामह भीष्म सायंकालमें रणभूमिमें गिरे। उस समय उन्होंने आपके पुत्रोंको तो विषादमें डाल दिया और पाञ्चालोंको हर्ष मनानेका अवसर दे दिया ॥

स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ॥ ८ ॥
भीष्मे रथात् प्रपतिते प्रच्युते धरणीतले ।
हाहेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ॥ ९ ॥

वे पृथ्वीका स्पर्श किये बिना ही उस समय बाणशय्यापर सो गये। भीष्मके रथसे गिरकर धरतीपर पड़ जानेपर समस्त प्राणियोंमें भयंकर हाहाकार मच गया ॥

सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिंजये ।
सेनयोरुभयो राजन् क्षत्रियान् भयमाविशत् ॥ १० ॥

राजन्! कुरुकुलके पुरुषसिंह वीर भीष्म दोनों दलोंके लिये सीमावर्ती वृक्षके समान थे। उनके गिर जानेसे उभय पक्षके क्षत्रियोंमें भय समा गया ॥

भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् ।
कुरवः पर्यवर्तन्त पाण्डवाश्च विशाम्पते ॥ ११ ॥

प्रजानाथ! जिनके कवच और ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये थे, उन शान्तनुनन्दन भीष्मजीको इस अवस्थामें देखकर कौरव और पाण्डव दोनों ही उन्हें घेरकर खड़े हो गये ॥

खं तमःसंवृतमभूदासीद् भानुर्गतप्रभः ।
ररास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥ १२ ॥

उस समय आकाशमें अन्धकार छा गया। सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी। शान्तनुनन्दन भीष्मके मारे जानेपर यह धरती जोर-जोरसे भयानक शब्द करने लगी ॥

अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो अयं ब्रह्मविदां गतिः ।
इत्यभाषन्त भूतानि शयानं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥

वहाँ सोये हुए पुरुषप्रवर भीष्मको देखकर कुछ दिव्य प्राणी कहने लगे—'ये ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, ये ब्रह्मवेत्ताओंकी गति हैं' ॥

अयं पितरमाज्ञाय कामार्तं शान्तनुं पुरा ।
ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥

इन्हीं पुरुषसिंहने पूर्वकालमें अपने पिता शान्तनुको कामपीड़ित जानकर अपने आपको ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी बना लिया ॥

इति स्म शरतल्पस्थं भरतानां महत्तमम् ।
ऋषयः पर्यधावन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥ १५ ॥

इस प्रकार सिद्धों और चारणोंसहित ऋषिगण भरतकुलके महापुरुष भीष्मको बाणशय्यापर स्थित देख पूर्वोक्त बातें कहते थे ॥

हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे ।
न किंचित् प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिष ॥ १६ ॥

आर्य! भरतवंशियोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मके मारे जानेपर आपके पुत्रोंको कुछ भी नहीं सूझता था ॥

विषण्णवदनाश्चासन् हृतश्रीकाश्च भारत ।
अतिष्ठन् व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥ १७ ॥

भारत! उनके मुखपर विषाद छा गया था। वे श्रीहीन और लज्जित हो नीचा मुख किये खड़े थे ॥

पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान् हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १८ ॥

पाण्डव विजय पाकर युद्धके मुहानेपर खड़े थे और सब-के-सब सोनेकी जालियोंसे विभूषित बड़े-बड़े शंखोंको बजा रहे थे ॥

हर्षात् तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चानघ ।
अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥
विक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् ।
निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् ॥ २० ॥

निष्पाप महाराज! जब हर्षोल्लासमें सहस्रों बाजे बज रहे थे, उस समय हमने कुन्तीकुमार महाबली भीमसेनको देखा, वे महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न शत्रुको वेगपूर्वक मार गिरानेके कारण अत्यन्त हर्षमें भरकर नाच रहे थे ॥

सम्मोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत् तदा ।
कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥

उस समय कौरवोंमें बड़ा भारी मोह छा गया था। कर्ण और दुर्योधन भी बारंबार लंबी साँसें खींच रहे थे ॥

तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे ।
हाहाभूतमभूत् सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥ २२ ॥

कौरवपितामह भीष्मके इस प्रकार गिर जानेपर कौरवदलमें सब ओर हाहाकार मच गया। कहीं कोई मर्यादा नहीं रह गयी ॥

दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥
भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनानीकेन दंशितः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं स विषादयन् ॥ २४ ॥

भीष्मजीको रणभूमिमें गिरा देख आपका वीर पुत्र दुःशासन अपने भाईके भेजनेसे अपनी ही सेनाके

फिर दुःखी बड़े वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर दौड़ा गया। उस समय वह कौरव-सेनाको विषादमें डाल रहा था ॥ २३-२४ ॥

तथायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्यवारयन्।
दुःशासनं महाराज विस्मयं चक्रिरे च ह ॥ २५ ॥

महाराज ! दुःशासनको आते देख समस्त कौरवसैनिक उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये कि देखें यह क्या कहता है ॥ २५ ॥

ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरव।
द्रोणस्तदप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! दुःशासनने द्रोणाचार्यसे भीष्मके मारे जाने का समाचार बताया। यह अप्रिय बात सुनते ही द्रोणाचार्य मूर्च्छित हो गये ॥ २६ ॥

स संज्ञामुपलभ्याशु भारद्वाजः प्रतापवान्।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥ २७ ॥

आर्य ! सचेत होनेपर प्रतापी द्रोणाचार्यने शीघ्र ही अपनी सेनाओंको युद्धसे रोक दिया ॥ २७ ॥

विनिवृत्तान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवा अपि सर्वशः।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात् पर्यवारयन् ॥ २८ ॥

कौरवोंको युद्धसे लौटते देख पाण्डवोंने भी शीघ्रगामी अश्वोंपर चढ़े हुए दूतोंद्वारा सब ओर आदेश भेजकर अपने सैनिकोंको भी युद्ध बंद करा दिया ॥ २८ ॥

विनिवृत्तेषु सैन्येषु पारम्पर्येण सर्वशः।
विमुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः ॥ २९ ॥

धीरे-धीरे सब सेनाओंके युद्धसे निवृत्त हो जानेपर सब राजा कवच खोलकर भीष्मके पास आये ॥ २९ ॥

व्युपारम्य ततो युद्धाद् योधाः शतसहस्रशः।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवामराः ॥ ३० ॥

तदनन्तर लाखों योद्धा युद्धसे विरत होकर जैसे देवता प्रजापतिकी सेवामें उपस्थित होते हैं, उसी प्रकार महात्मा भीष्मके पास आये ॥ ३० ॥

ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम्।
अभिवाद्यावतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३१ ॥

वे पाण्डव तथा कौरव बाणशय्यापर सोये हुए भरतश्रेष्ठ भीष्मजीके पास पहुँचकर, उन्हें प्रणाम करके खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

अथ पाण्डून् कुरूंश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान्।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३२ ॥

पाण्डव तथा कौरव जब प्रणाम करके उनके सामने खड़े हुए, तब शान्तनुनन्दन धर्मात्मा भीष्मने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ३२ ॥

स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः।
तुष्यामि दर्शनाच्चाहं युष्माकममरोपमाः ॥ ३३ ॥

महाभाग नरेशगण ! आपलोगोंका स्वागत है। देवोपम महारथियो ! आपका स्वागत है। मैं आपलोगोंके दर्शनसे बहुत संतुष्ट हूँ ॥ ३३ ॥

अभिनन्द्याथ तानेवं शिरसा लम्बताब्रवीत्।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार उन सब लोगोंसे स्वागतभाषण करके अपने लटकते हुए सिरके द्वारा ही वे बोले— राजाओ ! मेरा सिर बहुत लटक रहा है। इसके लिये आपलोग मुझे तकिया दें ॥ ३४ ॥

ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत् तानि पितामहः ॥ ३५ ॥

तब राजालोग बहुत-से बढ़िया कोमल और महीन वस्त्रके बने हुए तकिये ले आये, परंतु पितामह भीष्मने उन्हें लेनेकी इच्छा नहीं की ॥ ३५ ॥

अब्रवीच्च नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान् नृपान्।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर पुरुषसिंह भीष्मने हँसते हुए-से उन राजाओंसे कहा— भूमिपालो ! ये तकिये वीरशय्याके अनुरूप नहीं हैं ॥ ३६ ॥

ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम्।
धनंजयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३७ ॥

इसके बाद वे सम्पूर्ण लोकोंके विख्यात महारथी नरश्रेष्ठ महाबाहु पाण्डुपुत्र धनंजयकी ओर देखकर इस प्रकार बोले— ॥ ३७ ॥

धनंजय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते।
दीयतामुपधानं वै यद् युक्तमिह मन्यसे ॥ ३८ ॥

महाबाहु धनंजय ! मेरा सिर लटक रहा है, बेटा ! इसके अनुरूप जो तकिया तुम्हें ठीक जान पड़े, वह ला दो ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

स संन्यस्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तब अर्जुनने पितामह भीष्मको प्रणाम करके अपना विशाल धनुष चढ़ा लिया और आँसूभरे नेत्रोंसे देखकर इस प्रकार कहा— ॥ ३९ ॥

आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥ ४० ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कुरुश्रेष्ठ ! दुर्धर्ष वीर पितामह ! मैं आपका सेवक हूँ। आज्ञा दीजिये, क्या सेवा करूँ ? ॥ ४० ॥

तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते।
उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपनय स्व मे ॥ ४१ ॥

तब शान्तनुनन्दनने उनसे कहा—तात ! मेरा सिर

लटक रहा है। कुरुश्रेष्ठ फाल्गुन ! तुम मेरे लिये उचित तकिया लगा दो ॥ ४१ ॥

शयनस्यानुरूपं मे शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे ।
त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ४२ ॥
क्षात्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः ।

वीर कुन्तीकुमार ! इस शय्याके अनुरूप शीघ्र मुझे तकिया दो । तुम्हीं उसे देनेमें समर्थ हो; क्योंकि सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें तुम्हारा बहुत ऊँचा स्थान है । तुम क्षत्रिय-धर्मके ज्ञाता तथा बुद्धि और सत्त्व आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न हो ॥ ४२½ ॥

फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत् ॥ ४३ ॥
प्रगृह्यानुमन्त्र्य गाण्डीवं शरांश्च संनतपर्वणः ।
अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ॥ ४४ ॥
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः ।

अर्जुनने 'जो आज्ञा' कहकर इस कार्यके लिये प्रयत्न करना स्वीकार किया और गाण्डीव धनुष ले उसे अभिमन्त्रित करके झुकी हुई गाँठवाले तीन बाणोंको धनुषपर रक्खा । तत्पश्चात् भरतकुलके महात्मा महारथी भीष्मकी अनुमति ले उन अत्यन्त वेगशाली तीन तीखे बाणोंद्वारा उनके मस्तकको अनुगृहीत किया (कुछ ऊँचा करके स्थिर कर दिया) ॥

अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ॥ ४५ ॥
अतुष्यद् भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् ।

सव्यसाची अर्जुनने उनके अभिप्रायको समझकर जब तीव्र तकिया बना दिया, तब धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले भरतश्रेष्ठ भीष्म बहुत संतुष्ट हुए ॥ ४५½ ॥

उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद् धनंजयम् ॥ ४६ ॥
आह सर्वान् समुद्वीक्ष्य भरतान् भारतं प्रति ।
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ॥ ४७ ॥

उन्होंने यह तकिया देनेके कारण अर्जुनकी प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न किया और समस्त भरतवंशियोंकी ओर देखकर योद्धाओंमें श्रेष्ठ सुहृदोंका आनन्द बढ़ानेवाले भरतकुल-भूषण कुन्तीपुत्र अर्जुनसे इस प्रकार कहा— ॥ ४६-४७ ॥

शयनस्यानुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥ ४८ ॥

पाण्डुनन्दन ! तुमने मेरी शय्याके अनुरूप मुझे तकिया प्रदान किया है । यदि इसके विपरीत तुमने और कोई तकिया दिया होता तो मैं कुपित होकर तुम्हें शाप दे देता ॥ ४८ ॥

एवमेव महाबाहो धर्मेषु परिनिष्ठिता ।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै ॥ ४९ ॥

महाबाहो ! अपने धर्ममें स्थित रहनेवाले क्षत्रियको युद्धभूमिमें इसी प्रकार बाणशय्यापर शयन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद् वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥ ५० ॥

अर्जुनसे ऐसा कहकर भीष्मने पाण्डवोंके पास खड़े हुए उन समस्त राजाओं और राजपुत्रोंसे कहा— ॥ ५० ॥

पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाभिसंहितम् ।
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ॥ ५१ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुनने मेरे लिये यह तकिया लगाया है; इसे आपलोग देखें । मैं इस शय्यापर तबतक शयन करूँगा, जबतक कि सूर्य उत्तरायणमें नहीं लौट आते हैं ॥

ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२ ॥
नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान् सुहृदः सुप्रियानिव ॥ ५३ ॥

सात घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम तेजस्वी रथके द्वारा जब सूर्य कुबेरकी दिशाभूत उत्तर दिशाको प्रस्थान कर जायँगे, उस समय जो राजा मेरे पास आयेंगे, वे मेरी उस गतिको देख सकेंगे । निश्चय ही उसी समय मैं अत्यन्त प्रियतम सुहृदोंकी भाँति अपने प्यारे प्राणोंका त्याग करूँगा ॥ ५२-५३ ॥

परिखा खन्यतामत्र ममावसदने नृपाः ।
उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ॥ ५४ ॥

राजाओ ! मेरे इस स्थानके चारों ओर खाईं खोद दी । मैं यहीं इसी प्रकार सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त शरीरसे भगवान् सूर्यकी उपासना करूँगा ॥ ५४ ॥

उपारमध्वं संग्रामाद् वैराण्युत्सृज्य पार्थिवाः ।

भूपालगण ! अब परस्पर वैरभाव छोड़कर युद्धसे विरत हो जाय ॥ ५४½ ॥

संजय उवाच

उपातिष्ठंस्ततो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥ ५५ ॥
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर शरीरसे बाण निकालनेवाले कुशल वैद्य भीष्मजीकी सेवामें उपस्थित हुए । वे सब प्रकारके उपकरणोंसे युक्त और कुशल पुरुषोंद्वारा भलीभाँति शिक्षा पाये हुए थे ॥ ५५½ ॥

तान् दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥ ५६ ॥
धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ।
एवंगते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्ति किम् ॥ ५७ ॥

उन्हें देखकर गङ्गानन्दन भीष्मने आपके पुत्र दुर्योधनसे कहा—भरत ! इन चिकित्सकोंको धन देकर सम्मानपूर्वक विदा कर दो । मुझे इस अवस्थामें अब इन वैद्योंसे क्या काम है ?

क्षत्रधर्मप्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥ ५८ ॥
एभिरेव शरैश्चाहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः ।

क्षत्रिय-धर्ममें जिसकी प्रशंसा की गयी है उस उत्तम गतिको मैं प्राप्त हुआ हूँ । भूपालो ! मैं बाणशय्यापर सोया

हुआ हूँ। अब मेरा यह धर्म नहीं है कि इन बाणोंको निकालकर चिकित्सा कराऊँ। नरेश्वरो! मेरे इस शरीरको इन बाणोंके साथ ही दग्ध कर देना चाहिये ॥ ५८ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तदा ॥ ५९ ॥
वैद्यान् विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ।

भीष्मकी यह बात सुनकर आपके पुत्र दुर्योधनने उन वैद्योंका यथायोग्य सम्मान करके उन्हें विदा किया ॥ ५९½ ॥

ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ॥ ६० ॥
स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्यामिततेजसः ।

तदनन्तर विभिन्न जनपदोंके स्वामी नरेशगण अमित तेजस्वी भीष्मकी यह धर्मविषयक उत्तम निष्ठा देखकर बड़े विस्मित हुए ॥ ६०½ ॥

उपधानं ततो दत्त्वा पितुस्ते मनुजेश्वर ॥ ६१ ॥
सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः ।
उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥ ६२ ॥
तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिः प्रदक्षिणम् ।
विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥ ६३ ॥
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
निवेशायाभ्युपागच्छन् सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ ६४ ॥

राजन्! आपके पितृतुल्य भीष्मको उपर्युक्त तकिया देकर उन नरेश, पाण्डव तथा महारथी कौरव सबोंने एक साथ सुन्दर शय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके उनकी तीन बार परिक्रमा की और सब ओरसे भीष्मकी रक्षाकी व्यवस्था करके सभी वीर अपने शिबिरको ही चल दिये। वे अत्यन्त आतुर होकर भीष्मका ही चिन्तन कर रहे थे। सायंकालमें खूनसे लथपथ हुए वे सब लोग अपने निवासस्थानपर गये ॥ ६१—६४ ॥

निविष्टान् पाण्डवांश्चापि प्रीयमाणान् महारथान् ।
भीष्मस्य पतनाद्‌ हृष्टानुपगम्य महाबलः ॥ ६५ ॥
उवाच माधवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
दिष्ट्या जयसि कौरव्य दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ॥ ६६ ॥

तदनन्तर महारथी भीष्मके गिर जानेसे बहुत प्रसन्न थे और हर्षमें भरकर विश्राम कर रहे थे। उस समय महाबली भगवान् श्रीकृष्ण यथासमय उनके पास पहुँचकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले— कुरुनन्दन! सौभाग्यकी बात है कि तुम जीत रहे हो। यह भी भाग्यकी ही बात है कि भीष्म रथसे गिरा दिये गये ॥ ६५, ६६ ॥

अवध्यो मानुषैरेष सत्यसन्धो महारथः ।
अथवा दैवतैः पार्थ सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ ६७ ॥
त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा ।

ये सत्यप्रतिज्ञ महारथी भीष्म सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंके पारङ्गत विद्वान् थे। इन्हें मनुष्य तथा सम्पूर्ण देवता मिलकर भी मार नहीं सकते थे। आप दृष्टिमात्रसे ही शत्रुओंको भस्म करनेमें समर्थ हैं। आपके पास पहुँचकर भीष्म आपकी घोर दृष्टिसे ही नष्ट हो गये हैं ॥ ६७½ ॥

एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ ६८ ॥
तव प्रसादाद् विजयः क्रोधात् तव पराजयः ।
त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥ ६९ ॥

उनके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णको इस प्रकार उत्तर दिया—श्रीकृष्ण! आप हमारे आश्रय हैं तथा आप ही भक्तोंको अभय दान करनेवाले हैं। आपके ही कृपाप्रसादसे विजय होती है और आपके ही रोषसे पराजय प्राप्त होती है ॥ ६८-६९ ॥

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव ।
रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चापि हिते रतः ॥ ७० ॥
सर्वथा त्वां समासाद्य नाश्चर्यमिति मे मतिः ।

केशव! आप समरभूमिमें सदा जिनकी रक्षा करते हैं और नित्यप्रति जिनके हितमें तत्पर रहते हैं, उनकी विजय हो तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपकी शरण लेनेपर अथवा विजयकी प्राप्ति कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ ७०½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः ॥ ७१ ॥
त्वय्येवैतद् युक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराते हुए कहा—'नृपश्रेष्ठ! आपका कथन सर्वथा युक्तिसंगत है' ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपधानदाने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्मको तकिया देनेसे सम्बन्ध रखनेवाला एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय

अर्जुनका दिव्य जल प्रकट करके भीष्मजीकी प्यास बुझाना तथा भीष्मजीका अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको संधिके लिये समझाना

सञ्जय उवाच

व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन् पितामहम् ॥ १ ॥
तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तमम् ।
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ २ ॥

सञ्जय कहते हैं—महाराज! जब रात बीती और

सबेरा हुआ, तब समस्त राजा, पाण्डव तथा धार्तराष्ट्र वीरशय्यापर सोये हुए वीर पितामह भीष्मजीकी सेवामें उपस्थित हुए। कुरुश्रेष्ठ वे सब क्षत्रिय क्षत्रियशिरोमणि भीष्मजीको प्रणाम करके उनके पास खड़े हो गये ॥ १-२ ॥

कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः।
अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ॥ ३ ॥

सहस्रों कन्याएँ वहाँ जाकर चन्दन-चूर्ण, लावा (खील) और माला-फूल आदि मङ्गलमयी शुभ सामग्री शान्तनुनन्दन भीष्मके ऊपर बिखेरने लगीं ॥ ३ ॥

स्त्रियो वृद्धास्तथा बाला प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः।
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ॥ ४ ॥

स्त्रियाँ, बूढ़े, बालक तथा अन्य साधारण जन शान्तनुकुमार भीष्मजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये, मानो समस्त प्राणी अन्धकारनाशक भगवान् सूर्यकी उपासनाके लिये उपस्थित हुए हों ॥ ४ ॥

तूर्याणि गणिकावाटास्तथैव नटनर्तकाः।
उपानृत्यञ्जगुश्चैव वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ५ ॥

सैकड़ों बाजे बजानेवाले, नट, नर्तक और बहुत-से शिल्पी कुरुकुलके वृद्ध पुरुष पितामह भीष्मके पास आये ॥ ५ ॥

उपारम्य च युद्धेभ्यः संनाहान् विप्रमुच्य च।
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥ ६ ॥
अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिंदमम्।
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ॥ ७ ॥

कौरव तथा पाण्डव युद्धसे निवृत्त हो कवच खोलकर अस्त्र-शस्त्र नीचे डालकर पहलेकी भाँति परस्पर प्रेमभाव रखते हुए अवस्थाकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार यथोचित स्थानपर एकत्र हो दुर्धर्ष वीर देवव्रत भीष्मके समीप एक साथ बैठ गये ॥ ६-७ ॥

सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता।
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ८ ॥

सैकड़ों राजाओंसे भरी और भीष्मसे सुशोभित हुई वह भरतवंशियोंकी दीप्तिमती सभा आकाशमें सूर्यमण्डलकी भाँति उस रणभूमिमें शोभा पाने लगी ॥ ८ ॥

विबभौ च नृपाणां सा गङ्गासुतमुपासताम्।
देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ९ ॥

गङ्गानन्दन भीष्मके पास बैठी हुई राजाओंकी वह मण्डली देवेश्वर ब्रह्माजीकी उपासना करनेवाले देवताओंके समान सुशोभित हो रही थी ॥ ९ ॥

भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ।
अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १० ॥
शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसम्पातमूर्च्छितः।
पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान् प्रत्यभाषत ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ! भीष्मजी बाणोंसे संतप्त होकर सर्पके समान लम्बी साँस खींच रहे थे। वे अपनी वेदनाको धैर्यपूर्वक दबा रहे थे। बाणोंकी जलनसे उनका सारा शरीर जल रहा था। वे शस्त्रोंके आघातसे मूर्च्छित-से हो रहे थे। उस समय उन्होंने राजाओंकी ओर देखकर केवल इतना ही कहा—'पानी' ॥ १०-११ ॥

ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रुः समन्ततः।
भक्ष्यानुच्चावचान् राजन् वारिकुम्भांश्च शीतलान् ॥ १२ ॥

राजन्! तब वे क्षत्रियलोग चारों ओरसे भीष्मजीके खानेयोग्य सामग्री और शीतल जलसे भरे हुए घड़े ले आये ॥ १२ ॥

उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत्।
नाद्य तात मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः ॥ १३ ॥
अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यागतो ह्यहम्।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥ १४ ॥

उनके द्वारा लाये हुए उस जलको देखकर शान्तनुनन्दन भीष्मने कहा—अब मैं मनुष्यलोकके कोई भी भोग अपने उपयोगमें नहीं ला सकता। मैं उन्हें छोड़ चुका हूँ। यद्यपि यहाँ बाणशय्यापर सो रहा हूँ, तथापि मनुष्यलोकसे ऊपर उठ चुका हूँ। केवल सूर्य-चन्द्रमाके उत्तरायणपर आनेकी प्रतीक्षामें यहाँ रुका हुआ हूँ ॥ १३-१४ ॥

एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन् वाक्येन पार्थिवान्।
अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत ॥ १५ ॥

भारत! ऐसा कहकर शान्तनुनन्दन भीष्मने अपनी वाणीद्वारा उन राजाओंकी निन्दा करते हुए कहा—'अब मैं अर्जुनको देखना चाहता हूँ' ॥ १५ ॥

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम्।
अतिष्ठत् प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ १६ ॥

तब महाबाहु अर्जुन पितामह भीष्मके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़ खड़े हो गये और विनयपूर्वक बोले—'मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं कौन-सी सेवा करूँ?' ॥ १६ ॥

तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितम्।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनंजयम् ॥ १७ ॥

राजन्! प्रणाम करके आगे खड़े हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनको देखकर धर्मात्मा भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले— ॥ १७ ॥

दह्यतीदं शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः।
मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति ॥ १८ ॥

अर्जुन ! तुम्हारे बाणोंसे मेरे सम्पूर्ण अङ्ग छिदे हुए हैं, अतः मेरा यह शरीर दग्ध-सा हो रहा है। मर्म-स्थानोंमें अत्यन्त पीड़ा हो रही है। मुख सूखता जा रहा है ॥ १८ ॥

वेदनार्तशरीरस्य पयश्छाशो ममार्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमम्भो यथाविधि ॥ १९ ॥

महाधनुर्धर अर्जुन ! वेदनासे पीड़ित शरीरवाले मुझको तुम जल लाकर दो। तुम्हीं विधिपूर्वक मेरे लिये दिव्य जल प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो ॥ १९ ॥

बाढमित्येवमुक्त्वा तु रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत् कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद् धनुः ॥ २० ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर पराक्रमी अर्जुन रथपर आरूढ़ हो गये और गाण्डीव धनुषपर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसे खींचने लगे ॥ २० ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि श्रुत्वा सर्वे च पार्थिवाः ॥ २१ ॥

उनके धनुषकी टंकार-ध्वनि वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी। उसे सुनकर सभी प्राणी और समस्त भूपाल डर गये ॥ २१ ॥

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः ।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २२ ॥
संधाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः ।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥
अविध्यत् पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ।

तब रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र अर्जुनने रथद्वारा वहाँ सोये हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भरतश्रेष्ठ भीष्मकी रथद्वारा ही परिक्रमा करके अपने धनुषपर एक तेजस्वी बाण रखा और उसे पर्जन्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके सब लोगोंके देखते-देखते भीष्मजीके दाहिने पार्श्वमें पृथ्वीपर उसे मारा ॥ २२-२३ ॥

उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥ २४ ॥
शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ।
अतर्पयत् ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥ २५ ॥
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमः ।

फिर तो शीतल, अमृतके समान मधुर तथा दिव्य सुगन्ध एवं दिव्य रससे युक्त स्वच्छ सुन्दर जलकी धारा ऊपरको उठने लगी। उस शीतल जलधारासे अर्जुनने दिव्य कर्म एवं पराक्रमवाले कुरुश्रेष्ठ भीष्मको तृप्त कर दिया ॥ २४-२५ ॥

कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः ॥ २६ ॥
विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः ।

इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनके उस अद्भुत कर्मसे वहाँ बैठे हुए समस्त भूपाल बड़े विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥

तत् कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥ २७ ॥
सम्प्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव ।

अर्जुनका यह अलौकिक कर्म देखकर समस्त कौरव सर्दीसे पीड़ित गौओंके समान थर-थर काँपने लगे ॥ २७ ॥

विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन् सर्वतो नृपाः ॥ २८ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।

वहाँ बैठे हुए नरेशगण आश्चर्यचकित हो सब ओर अपने दुपट्टे हिलाने लगे। चारों ओर शङ्ख और नगाड़ोंकी भयंकर ध्वनि गूँज उठी ॥ २८ ॥

तृप्तः शान्तनवश्चापि राजन् बीभत्सुमब्रवीत् ॥ २९ ॥
सर्वपार्थिववीराणां संनिधौ पूजयन्निव ।

राजन् ! उस जलसे तृप्त होकर शान्तनुनन्दन भीष्मने अर्जुनकी सम्पूर्ण भूपालोंके समीप उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा ॥ २९ ॥

नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ॥ ३० ॥
कथितो नारदेनासि पूर्वर्षिरमितद्युते ।
वासुदेवसहायस्त्वं महत् कर्म करिष्यसि ॥ ३१ ॥
यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम् ।

महाबाहु कौरवनन्दन ! तुम्हारे लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अमिततेजस्वी वीर ! नारदजीने पहले ही बता दिया था कि तुम पुरातन महर्षि नर हो और भगवान् वासुदेवकी सहायतासे तुम ऐसे-ऐसे महान् कर्म करोगे, जिन्हें निश्चय ही सम्पूर्ण देवताओंके साथ देवराज इन्द्र भी नहीं कर सकते ॥ ३०-३१ ॥

विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ॥ ३२ ॥
धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृषु ॥ ३३ ॥

पार्थ ! जानकार लोग तुम्हें सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी मृत्युरूप जानते हैं। तुम भूमण्डलके मनुष्योंमें और धनुर्धरोंमें प्रधान हो ॥ ३२-३३ ॥

मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां गरुडो वरः ।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ ३४ ॥

जगत्के प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, पक्षियोंमें पक्षिराज गरुड श्रेष्ठ माने जाते हैं, सरिताओंमें समुद्र श्रेष्ठ है और चौपायोंमें गौ सबसे बड़ी मानी गयी है ॥ ३४ ॥

आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान् वरः ।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ॥ ३५ ॥

तेजोमय पदार्थोंमें सूर्य श्रेष्ठ हैं, पर्वतोंमें हिमालय महान्

है जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है और तुम मनुष्य धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हो

न वै क्षमः पाण्डवपुत्रेण पाण्डव
अयोध्यमानः विदुरेण चाथ
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन
मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम् ॥ ३६ ॥

जैसे विदुरने द्रोणाचार्यने परशुरामजीने भगवान् श्रीकृष्णने तथा सञ्जयने भी बार बार युद्ध करनेकी सलाह दी है परंतु दुर्योधनने इनलोगोंकी बातें नहीं सुनीं ३५

परीतबुद्धिर्हि विशालकक्ष्यो
दुर्योधनो न च तन्मूढ़भावात्
स शोष्यते वै विह्वलविग्रहाय
शोकान्वितो भीमबलाभिभूतः ॥ ३७

दुर्योधनकी बुद्धि विपरीत हो गयी है वह अचेत सा हो गया है इसलिये इनलोगोंका बातपर विश्वास नहीं करता है वह शास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन करता है इसलिये भीमसेनसे बलसे पराजित हो मारा जाकर भूमिमें दीर्घकालके लिये सो जायगा

एतच्छ्रुत्वा तत्र च कौरवेन्द्रो
दुर्योधनो दीनमना बभूव
समाप्तवाक्यमन्वतोऽभिवीक्ष्य
विशोभ राजन् भव वीतमन्यु ३८ ॥

भीष्मजीकी यह बात सुनकर कौरवराज दुर्योधन दीनमन बहुत दुःखी हो गया उस धर्मात्मा भीष्मने उसकी ओर देखकर कहा फिर, नहीं शान्त भाव हो और शोकशून्य हो जाओ

इष्टा दुर्योधनात् ते यथा पार्थेन धीमता
अलब्ध्वा भारा अनिला हतिशयानुतमाधिक ३९ ॥

दुर्योधन बुद्धिमान् अर्जुनने जिस प्रकार गीतके अमृतके समान मधुर वाक्ययुक्त उपदेश किस प्रकार की है उसे तुमने अलग देख लिया है

एतस्य पश्चो लोके सितिन् ब्राह्मण कवल शिखरे
आग्नेय वारुण सौम्य वायव्यमथ वैष्णवम् ४० ॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापते
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्दैवस्वतमथापि या ४१ ॥
सर्वलोकेऽस्मिन् मानुषे लोके वेदयते हि धनंजय
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नान्यो वेदेह कश्चन ॥ ४२ ॥

इस भूमण्डलमें एक पराक्रम करनेवाला दूसरा कोई नहीं है आग्नेय वारुण सौम्य वायव्य वैष्णव ऐन्द्र पाशुपत ब्राह्म पारमेष्ठ्य प्राजापत्य धाता त्वष्टा सविता और वैवस्वत आदि समस्त दिव्यास्त्रोंको इस समस्त मानव जगत्में एकमात्र अर्जुन अथवा देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जानते

हैं दूसरा कोई यहाँ इन अस्त्रोंको नहीं जानता है

शक्यः पाण्डवसुतात युद्धे जेतु कथंचन
अमानुषाणि कर्माणि यस्यतानि महात्मन ॥ ४३ ॥
तेन सत्त्ववता संख्ये सुरेणाद्भुतकारिणा
कृतिना समरे राजन् सन्धिर्भवतु मा चिरम् ॥ ४४ ॥

तात पाण्डुपुत्र अर्जुनको युद्धमें किसी प्रकार भी जीतना असम्भव है जिन महात्मा पुरुषने ये अलौकिक कर्म प्रत्यक्ष दिखाये हैं जो धैर्यवान् युद्धमें अद्भुत दिखाने वाले तथा सामर्थ्य सुशोभित होनेवाले हैं राजन् उन अस्त्रविद्याविशारद अर्जुनके साथ समरभूमिमें तुम्हारी शीघ्र सन्धि हो जानी चाहिये इसमें विलम्ब हो

यावत् कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम
तावत् पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४५ ॥

तात कुरुश्रेष्ठ जबतक महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण अपने अधीन हैं तबतक शूरवीर अर्जुनके साथ तुम्हारी सन्धि हो जाय यही ठीक है

यावत् ते न चमूं सर्वां शरैः संनतपर्वभिः
नाशयत्यर्जुनस्तावत् सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४६ ॥

तात जबतक अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा तुम्हारी सारी सेनाका विनाश नहीं कर डालते हैं तभीतक उनके साथ तुम्हारी सन्धि हो जानी चाहिये ४६

यावत् तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः
नृपाश्च बहवो राजंस्तावत् सन्धिः प्रयुज्यताम् ॥ ४७ ॥

राजन् समरभूमिमें जबतक तुम्हारे भाई जबतक जीवित हैं और जबतक बहुत से नरेश भी धारण कर रहे हैं तभीतक तुम अर्जुनके साथ सन्धि कर लो ४७

न निर्दहति ते यावत् क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम्
युधिष्ठिरो रणे तावत् सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४८ ॥

तात जबतक युधिष्ठिर रणभूमिमें क्रोधसे प्रज्वलित नेत्र होकर तुम्हारी सारी सेनाको भस्म नहीं कर डालते हैं तभी तक उनके साथ सन्धि कर लेनी चाहिये

नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः
यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ॥ ४९ ॥
तावत् ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते
युद्धं समाप्तिमभ्येतु तात सम्यक् पाण्डवैः ॥

महाराज नकुल सहदेव तथा पाण्डुपुत्र भीमसेन—ये सब मिलकर जबतक तुम्हारी सेनाका सर्वनाश नहीं कर डालते हैं तभीतक पाण्डववीरोंके साथ तुम्हारा सौहार्द स्थापित हो जाय यही मुझे अच्छा लगता है तात मेरे साथ ही इस युद्धका

भी अन्त हो जाय। तुम पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो ॥

एतत् तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयानघ।
एतत् क्षेमाहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥ १ ॥

अनघ! मैंने जो बात तुमसे कही है, वह तुम्हें रुचिकर जान पड़े। मैं इसीको तुम्हारे तथा कौरवकुलके लिये कल्याणकारी मानता हूँ ॥ १ ॥

त्यक्त्वा मन्युमुपशाम्यस्व पार्थैः
पर्याप्तमेतद् यत्कृतं फाल्गुनेन।
भीष्मस्यान्तादस्तु वः सौहृदं च
सम्प्रीयतां शेषाः साधु राजन् प्रसीद ॥ २ ॥

राजन्! तुम क्रोध छोड़कर कुन्तीकुमारोंके साथ संधि स्थापित कर लो। अर्जुनने आजतक जो कुछ किया है, उतना ही बहुत है। मुझ भीष्मके जीवनका अन्त होनेसे तुम्हारे परस्पर भी अन्त हो जाय। तुमलोगोंमें प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो और जो शेष बचे हैं, वे सब प्रसन्नतापूर्वक जीवित रहें। नरेश! तुम प्रसन्न हो जाओ ॥ २ ॥

राज्यस्यार्धं दीयतां पाण्डवाना-
मिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु।
मा मित्रध्रुक् पार्थिवानां जघन्यः
पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र ॥ ३ ॥

तुम पाण्डवोंको आधा राज्य दे दो। धर्मराज युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ चले जायँ। कौरवराज! ऐसा करनेसे तुम राजाओंमें मित्रद्रोही और नीच नहीं कहलाओगे तथा तुम्हें पापपूर्ण अपयश नहीं प्राप्त होगा ॥ ३ ॥

ममावसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां
सङ्गच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः।
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो
भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन् ॥ ४ ॥

राजन्! मेरे जीवनका अन्त होनेसे प्रजाओंमें शान्ति हो जाय। सब राजा प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरेसे मिलें। पिता पुत्रसे, भानजा मामासे और भाई भाईसे मिले ॥ ४ ॥

न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे
मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्ध्या।
भीष्मस्यान्तादेतदन्ताः स्थ सर्वे
सत्यामेतां भारतीमीरयामि ॥ ५ ॥

दुर्योधन! यदि तुम मोहवश अपनी मूर्खताके कारण मेरे इस समयोचित वचनको नहीं मानोगे तो अन्तमें पछताओगे और इस युद्धमें ही तुम सब लोगोंका अन्त हो जायगा। मैं तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ ॥ ५ ॥

एतद् वाक्यं सौहृदादापगेयो
मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा।
तूष्णीमासीच्छल्यसंतप्तमर्मा
योज्यात्मानं वेदनां संनियम्य ॥ ६ ॥

गङ्गानन्दन भीष्म राजाओंके बीच सौहार्दवश दुर्योधनको यह बात सुनाकर मौन हो गये। बाणोंसे उनके मर्मस्थलोंमें असह्य पीड़ा हो रही थी। उन्होंने उस व्यथाको किसी प्रकार काबूमें करके अपने मनको परमात्माके चिन्तनमें लगा दिया ॥ ६ ॥

संजय उवाच

धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम्।
नारोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम् ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जैसे मरणासन्न पुरुषको औषध अच्छी नहीं लगती है, उसी प्रकार राजा भीष्मका वह धर्म और अर्थसे युक्त हितकर और निर्दोष वचन भी आपके पुत्रको पसंद नहीं आया ॥ ७ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधनं प्रति भीष्मवाक्ये एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें दुर्योधनके प्रति भीष्मका वचनविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीष्म और कर्णका रहस्यमय संवाद

संजय उवाच

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान् पुनः।
तूष्णींभूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! शान्तनुनन्दन भीष्मके चुप हो जानेपर वे सब राजा वहाँसे उठकर अपने-अपने शिविरको चले गये ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः।
ईषदागतसंत्रासस्त्वरयोपजगाम ह ॥ २ ॥

भीष्मजीके रणभूमिमें गिराये जानेका समाचार सुनकर पुरुषप्रवर राधानन्दन कर्णके मनमें कुछ भय समा गया। वह बड़ी उतावलीके साथ उनके पास आया ॥ २ ॥

स ददर्श महात्मानं शरतल्पगतं तदा।

जन्मशय्यागतं वीरं कार्त्तिकेयमिव प्रभुम् ॥ ३ ॥

उस समय उन्होंने देखा, महात्मा भीष्म शरशय्यापर सो रहे हैं, ठीक उसी तरह जैसे शक्तिशाली भगवान् कार्तिकेय जन्मकालमें सरकण्डोंके बिछौनेपर लेटे थे ॥ ३ ॥

निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः।
भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः ॥ ४ ॥
राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव।
द्वेष्योऽत्यन्तमनागाः सन्निति चैनमुवाच ह ॥ ५ ॥

वीर भीष्मके नेत्र बंद थे। उन्हें देखकर महातेजस्वी कर्णके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये और अश्रुगद्गदकण्ठ होकर उसने कहा—'महाबाहु भीष्म! कुरुश्रेष्ठ! मैं वही राधापुत्र कर्ण हूँ, जो सदा आपकी आँखोंमें गड़ा रहता था और जिसे आप सर्वत्र द्वेषदृष्टिसे देखते थे' ॥ ४-५ ॥

तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि बलात् संवृत्य लोचने।
शनैरुद्वीक्ष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रहितं धिष्ण्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः।
पितेव पुत्रं गाङ्गेयः परिरभ्यैकबाहुना ॥ ७ ॥

उसकी यह बात सुनकर कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भीष्मने धीरेसे आँखें खोलकर देखा और उस स्थानको एकान्त देख पहरेदारोंको दूर हटाकर एक हाथसे कर्णको उसी प्रकार स्नेहपूर्वक आलिङ्गन किया, जैसे पिता अपने पुत्रको गले लगाता है। तत्पश्चात् उन्होंने इस प्रकार कहा ॥ ६-७ ॥

एह्येहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह।
यदि मां नाभिगच्छेथा न ते श्रेयो ध्रुवं भवेत् ॥ ८ ॥

आओ, आओ, कर्ण! तुम सदा मुझसे लाग-डाँट रखते रहे, सदा मेरे साथ स्पर्धा करते रहे। आज यदि तुम मेरे पास नहीं आते तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण नहीं होता ॥ ८ ॥

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ॥ ९ ॥

तुम राधाके नहीं, कुन्तीके पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं हैं। महाबाहो! तुम सूर्यके पुत्र हो। मैंने नारदजीसे तुम्हारा परिचय प्राप्त किया था ॥ ९ ॥

कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः।
न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥

तात! श्रीकृष्णद्वैपायन व्याससे भी तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त ज्ञात हुआ था और जो कुछ ज्ञात हुआ, वह सत्य है; इसमें संदेह नहीं है। तुम्हारे प्रति मेरे मनमें द्वेष नहीं है, यह मैं तुमसे सच कहता हूँ ॥ १० ॥

तेजोवधनिमित्तं तु परुषं त्वाहमब्रुवम्।
अकस्मात् पाण्डवान् सर्वानवाक्षिपसि सुव्रत ॥ ११ ॥
येनासि बहुशो राज्ञा चोदितः सूर्यनन्दन।

सुव्रत! तुम अकस्मात् सभी पाण्डवोंपर आक्षेप करते थे, इसलिये मैं तुम्हारे तेजका नाश करनेके उद्देश्यसे तुमसे कठोर बातें कहा करता था; क्योंकि सूर्यनन्दन! तुम राजा दुर्योधनके उकसानेसे अकारण ही पाण्डवोंपर आक्षेप किया करते थे ॥ ११ ॥

जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ १२ ॥
नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि।
तेनासि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥ १३ ॥

तुम्हारा जन्म धर्मलोपसे ही कुन्तीके गर्भसे हुआ है, इसीलिये नीच पुरुषोंके आश्रयसे तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार ईर्ष्यावश गुणवान् पाण्डवोंसे भी द्वेष करनेवाली हो गयी है और इसी कारण कौरवसभामें मैंने तुम्हें अनेक बार कटुवचन सुनाये हैं ॥ १२-१३ ॥

जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम् ॥ १४ ॥

मैं जानता हूँ, तुम्हारा पराक्रम समराङ्गणमें शत्रुओंके लिये दुःसह है। तुम ब्राह्मणभक्त, शूरवीर तथा दानमें उत्तम निष्ठा रखनेवाले हो ॥ १४ ॥

न त्वया सदृशः कश्चित् पुरुषेष्वमरोपम।
कुलभेदभयाच्चाहं सदा परुषमुक्तवान् ॥ १५ ॥

देवोपम वीर! मनुष्योंमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। मैं सदा अपने कुलमें फूट पड़नेके भयसे तुम्हें कटुवचन सुनाता रहा ॥ १५ ॥

इष्वस्त्रे भारसन्धाने लाघवेऽस्त्रबले तथा।
सदृशः फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महात्मना ॥ १६ ॥

बाण चलाने, अस्त्रोंका संधान करने, हाथोंकी फुर्ती दिखाने तथा अस्त्र-बलमें तुम अर्जुन तथा महात्मा श्रीकृष्णके समान हो ॥ १६ ॥

कर्ण काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता।
कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥ १७ ॥

कर्ण! तुमने कुरुराज दुर्योधनके लिये कन्या लानेके निमित्त अकेले काशीपुरीमें जाकर केवल धनुषकी सहायतासे वहाँ आये हुए समस्त राजाओंको युद्धमें परास्त कर दिया था ॥ १७ ॥

तथा च बलवान् राजा जरासन्धो दुरासदः।
समरे समरश्लाघी त्वया न सदृशोऽभवत् ॥ १८ ॥

युद्धकी श्लाघा रखनेवाले वीर यद्यपि राजा जरासंध

युद्धमें एक बलवान् था तथापि वह रणभूमिमें तुम्हारी समानता न कर सका ॥ १८ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तेजसा चार्कसंनिभः।
देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैरधिको युधि ॥ १९ ॥

तुम ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी तथा तेजमें सूर्यके समान हो। समरभूमिमें देवकुमारोंके समान जान पड़ते हो और युद्धमें मनुष्योंसे अधिक पराक्रमी हो।

व्यपनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः।
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २० ॥

मैंने पहले जो तुम्हारे प्रति क्रोध किया था, वह अब दूर हो गया है; क्योंकि पुरुषार्थ द्वारा दैवके विधानको कोई टाल नहीं सकता ॥ २० ॥

सोदर्याः पाण्डवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन।
संगच्छ तैर्महाबाहो मम यदीच्छसि प्रियम् ॥ २१ ॥

शत्रुसूदन! वीर पाण्डव तुम्हारे सगे भाई हैं। महाबाहो! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो उनसे मिल जाओ ॥ २१ ॥

मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनन्दन।
पृथिव्याः सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः ॥ २२ ॥

सूर्यनन्दन! मेरी मृत्युके द्वारा ही यह वैरकी आग बुझ जाय और भूमण्डलके समस्त नरेश अब दुःख-शोकसे रहित एवं निर्भय हो जायँ ॥ २२ ॥

कर्ण उवाच

जानाम्येतन्महाबाहो सर्वमेतदसंशयम्।
यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः ॥ २३ ॥

कर्णने कहा—महाबाहो भीष्म! आप जो कुछ कहते हैं, उसे मैं भी जानता हूँ। यह सब ठीक है, इसमें संशय नहीं है। वास्तवमें मैं कुन्तीका ही पुत्र हूँ, सूतपुत्र नहीं हूँ ॥ २३ ॥

अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्धितः।
(पुत्र दुर्योधनेनाहं स्नेहं वै कृतवान् मुदा।
तत्र सर्वं करिष्यामि यद् यत् स्याद् दुष्करं परम्॥
इत्येवं वै प्रतिज्ञातं वचनं मे सुयोधने।)
भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्याकर्तुमुत्सहे ॥ २४ ॥

परंतु माता कुन्तीने तो मुझे पानीमें बहा दिया और सूतने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया है। (पूर्वकालसे ही मैं दुर्योधनके साथ स्नेह करता आया हूँ और उसका कृपापात्र रहा हूँ। दुर्योधनसे मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि तुम्हारा जो-जो दुष्कर कार्य होगा वह सब मैं पूरा करूँगा।) दुर्योधनका ऐश्वर्य भोगकर मैं उसे निष्फल नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

वासुदेवस्तु पाण्डूनां यथा सम्यग् दृढव्रतः।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥ २५ ॥
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण।
मा चैतद् व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥ २६ ॥
कोपिताः पाण्डवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम्।

जैसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र अर्जुनकी सहायताके लिये दृढ़प्रतिज्ञ हैं, उसी प्रकार मेरा धन, शरीर, स्त्री, पुत्र तथा यश सब कुछ दुर्योधनके लिये निछावर है। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले कुरुनन्दन भीष्म! मैंने दुर्योधनका आश्रय लेकर पाण्डवोंका क्रोध बढ़ाया है, इसलिये चाहता हूँ कि यह क्षत्रियजाति रोगोंका शिकार होकर न मरे (युद्धमें वीर गति प्राप्त करे) ॥ २५-२६ ॥

अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम् ॥ २७ ॥
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत्।

यह युद्ध अवश्यम्भावी है। इसे कोई टाल नहीं सकता। भला, दैवको पुरुषार्थके द्वारा कौन मिटा सकता है ॥ २७½ ॥

पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥ २८ ॥
भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि।

पितामह! आपने भी तो ऐसे निमित्त (लक्षण) देखे थे, जो भूमण्डलके विनाशकी सूचना देनेवाले थे। आपने कौरव सभामें उनका वर्णन भी किया था ॥ २८½ ॥

पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥ २९ ॥
अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे।
विजयिष्ये रणे पाण्डूनिति मे निश्चितं मनः ॥ ३० ॥

पाण्डवों तथा भगवान् वासुदेवको मैं सब प्रकारसे जानता हूँ। वे दूसरे पुरुषोंके लिये सर्वथा अजेय हैं, तथापि मैं उनसे युद्ध करनेका उत्साह रखता हूँ और मेरे मनका यह निश्चित विश्वास है कि मैं युद्धमें पाण्डवोंको जीत लूँगा ॥ २९-३० ॥

न च शक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत् सुदारुणम्।
धनंजयेन योत्स्येऽहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥ ३१ ॥

पाण्डवोंके साथ हमलोगोंका यह वैर अत्यन्त भयंकर हो गया है। अब इसे दूर नहीं किया जा सकता। मैं अपने धर्मके अनुसार प्रसन्नचित्त होकर अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा ॥ ३१ ॥

अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम्।
अनुज्ञातस्त्वया वीर युध्येयमिति मे मतिः ॥ ३२ ॥

तात! मैं युद्धका निश्चय कर चुका हूँ। वीर! मेरा विचार है कि आपकी आज्ञा लेकर युद्ध करूँ, अतः आप मुझे इसके लिये आज्ञा देनेकी कृपा करें ॥ ३२ ॥

दुरुक्तं विप्रतीपं वा संरम्भाच्चापलात् तथा।
यन्मयेह कृतं किंचित् तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥

मैंने क्रोधके कारण अथवा चपलतावश आपके प्रति जो कुछ कटु वचन कहा हो या प्रतिकूल आचरण किया हो, वह सब आप कृपापूर्वक क्षमा कर दें ॥ ३३ ॥

भीष्म उवाच

न चेच्छक्यमथो त्यक्तुं वैरमेतत् सुदारुणम्।
अनुजानामि कर्ण त्वां युध्यस्व स्वर्गकाम्यया ॥ २४ ॥

भीष्मजीने कहा—कर्ण ! यदि यह भयंकर वैर अब नहीं छोड़ा जा सकता तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे युद्ध करो ॥ २४ ॥

विमन्युर्गतसंरम्भः कुरु कर्म नृपस्य हि।
यथाशक्ति यथोत्साहं सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥ २५ ॥

दीनता और क्रोध छोड़कर अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार सत्पुरुषोंके आचारमें स्थित रहकर युद्ध करो। तुम राजाके कार्यमें रत रहो और आचारवान् तो हो ही ॥ २५ ॥

अहं त्वामनुजानामि यदिच्छसि तदाप्नुहि।
क्षत्रधर्मजिताँल्लोकानवाप्स्यसि धनंजयात् ॥ २६ ॥

कर्ण ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम जो चाहते हो, वह प्राप्त करो। धनंजयके हाथसे मारे जाकर तुम्हें क्षत्रियधर्मके पालनसे प्राप्त होनेवाले लोकोंकी उपलब्धि होगी ॥ २६ ॥

युध्यस्व निरहंकारो बलवीर्यव्यपाश्रयः।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ २७ ॥

तुम अभिमानशून्य होकर बल और पराक्रमका आश्रय ले युद्ध करो। क्षत्रियके लिये धर्मानुकूल युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी साधन नहीं है ॥ २७ ॥

प्रशमे हि कृतो यत्नः सुमहान् सुचिरं मया।
न चैव शकितः कर्तुं कर्म सत्य ब्रवीमि ते ॥ २८ ॥

कर्ण ! मैं तुमसे सच कहता हूँ। मैंने कौरवों और पाण्डवोंमें शान्ति स्थापित करनेके लिये दीर्घकालतक महान् प्रयत्न किया था, किंतु मैं अपने इस कार्यमें सफल न हो सका ॥ २८ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तवति गाङ्गेये अभिवाद्योपमन्त्र्य च।
राधेयो रथमारुह्य प्रायात् तव सुतं प्रति ॥ २९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! गङ्गानन्दन भीष्मके ऐसा कहनेपर राधानन्दन कर्ण उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्र दुर्योधनके पास चला गया ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत भीष्मपर्वके अन्तर्गत भीष्मवधपर्वमें भीष्म-कर्णसंवादविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं)

भीष्मपर्व सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप् (अन्य बड़े छन्द) बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर		कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक—५९१	(५९९४)	५११॥-	६०२४॥-
दक्षिण भारतीय पाठ से लिये गये श्लोक—७१	(७१)	५॥	७७॥
भीष्मपर्वकी सम्पूर्ण श्लोक-संख्या			६१००

+01100

श्रवणमहिमा

वैशम्पायन उवाच

इत्येतद् बहुवृत्तान्तं भीष्मपर्वाभिसंज्ञितम्।
श्रुत्वा ते महाराज शोकं त्यक्त्वा सुखी भव ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाराज ! बहुत-सी घटनाओंसे युक्त यह सम्पूर्ण भीष्मपर्व मैंने तुमसे कहा है और तुमने ध्यान देकर सुना है। यह पर्व सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला और शुभ है ॥ १ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं राजेन्द्र श्रद्धयान्वितः।
ब्रह्महत्यादयो ये च पापा नश्यन्ति तस्य वै ॥ २ ॥

विधूय सर्वपापानि विहायान्ते कलेवरम्।
प्रयाति तत् परं विष्णोर्यत्र गत्वा न शोचति ॥ ३ ॥

राजन् ! जो सदा वेदोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंको इस पर्वकी कथा सुनायेगा और जो मनुष्य इसे सुनेंगे, वे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो अन्तमें शरीर छोड़कर भगवान् विष्णुके उस परमपदको प्राप्त होंगे, जहाँ जाकर जीव कभी शोक नहीं करता है ॥ २-३ ॥

तस्मात् प्रयत्नेन आसन्न अश्नन्धर्म।
श्रोतव्यं विधिवत् सम्यक् भारतं मानवैः ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! अतः इस लोक या परलोकमें सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य पूर्ण प्रयत्नपूर्वक महाभारतकी कथा सुनें ॥ ४ ॥

भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान्।
भीष्मपर्वणि पर्वेन्द्र दद्याद् धर्मानुत्तमम् ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! भीष्मपर्व सुन लेनेपर मनुष्य ब्राह्मणोंको गन्ध और माला आदिसे अलंकृत करके उत्तम भोजन करावे तथा यथेष्ट धन दान करे ॥ ५ ॥